संसदीय पद्धति और प्रक्रिया

महेश्वर नाथ कौल
श्याम लाल शकधर

अनूप मिश्र
संपादक

चौथा संस्करण

लोक सभा सचिवालय
भारत

मेट्रोपोलिटन

भारत में संसदीय लोकतंत्र न केवल समय की कसौटी पर खरा उतरा है बल्कि इसने अपनी जड़ें और मजबूत की हैं और इसमें काफ़ी लचीलापन भी आया है। आज विश्व के अनेक देश संसदीय संस्थाओं का सफलतापूर्वक संचालन करने के भारत के अनुभव से लाभान्वित होना चाहते हैं। भारत के संसदीय लोकतंत्र की सफलता का श्रेय उन स्वस्थ संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं को दिया जा सकता है जिन्हें हमने विगत वर्षों में विकसित किया है। समय के साथ विकसित हुई यही संसदीय पद्धतियां और प्रक्रियाएं संसदीय संस्थाओं को सशक्त, प्रभावी और मज़बूत बनाती हैं, विकसित और पोषित करती हैं। इस पुस्तक का आशय संसदीय पद्धति और प्रक्रियाओं के सभी आयामों को संक्षिप्त और सुबोध ढंग से एक स्थान पर संकलित करना है।

मूल रूप में महेश्वर नाथ कौल और श्याम लाल शकधर द्वारा संकलित "संसदीय पद्धति और प्रक्रिया" का पहला संस्करण 1972 में प्रकाशित हुआ था। तब से, इस बहुउद्धृत पुस्तक को 2002 और 2012 में दो बार संशोधित किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य संविधान और विद्यमान विधियों में संशोधन, लोक सभा की प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों में परिवर्तन तथा नए पूर्वोदाहरणों और समय के साथ बनी परिपाटियों की पृष्ठभूमि में इस प्रकाशन को प्रासंगिक बनाए रखना था। वर्ष 1991 में अंग्रेज़ी के चौथे संस्करण के प्रकाशन से यह पुस्तक लोक सभा सचिवालय का आधिकारिक प्रकाशन बन गई है। इस पुस्तक के अनेक अध्यायों में संसदीय पद्धति और प्रक्रियाओं को अनुभवजन्य प्रमाणों, अध्यक्षपीठ के विनिर्णयों, टिप्पणियों और अध्यक्ष के निदेश के साथ स्पष्ट किया गया है। पद्धतियों और प्रक्रियाओं के अलावा यह पुस्तक संसद और इसकी समितियों के कार्यों के विभिन्न आयामों पर भी प्रकाश डालती है।

वर्ष 2012 में इसके पिछले प्रकाशन के बाद से प्रक्रियात्मक नवीनताओं के माध्यम से लोक सभा के कार्यकरण के संबंध में अनेक उपाय किए गए हैं ताकि संसदीय कार्य को सहज और सुव्यवस्थित बनाकर जनता तक पहुंचाया जा सके। इस बीच कई नई परिपाटियां और पद्धतियाँ भी विकसित हुई हैं जिनके कारण इस प्रकाशन में और संशोधन की आवश्यकता पड़ी। व्यापक रूप से अद्यतन बनाए गए इस संशोधित संस्करण ने इस सुविस्तृत, प्रामाणिक तथा आधिकारिक कृति को और अधिक मूल्यवान बना दिया है।

विगत वर्षों में यह प्रकाशन पीठासीन अधिकारियों, सांसदों, राजनीतिक दलों के नेताओं, विधायकों, अधिवक्ताओं, विधिवेत्ताओं, अध्येताओं और राजनीतिक समीक्षकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह पुस्तक राष्ट्रमंडल संसदों और भारत में राज्य विधानमंडलों में भी अत्यंत लोकप्रिय है।

ISBN: 978-81-200-0447-4 **मूल्य: ₹ 4500/-**

संसदीय
पद्धति और प्रक्रिया

(लोक सभा के विशेष संदर्भ में)

"सभा वा न प्रवेष्टव्या, वक्तव्यं वा समंजसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन् वापि, नरो भवति किल्विषी।"

—मनु 8/13

"कोई व्यक्ति या तो सभा में प्रवेश ही न करे
अथवा यदि ऐसा करे, तो उसे वहां धर्मानुसार बोलना चाहिए,
क्योंकि न बोलने वाला अथवा असत्य बोलने वाला मनुष्य,
दोनों ही समान रूप से पाप के भागी होते हैं।"

—मनु 8/13

सच्चे लोकतंत्र के लिए व्यक्ति को केवल संविधान के उपबंधों अथवा विधानमंडल में कार्य संचालन हेतु बनाये गये नियमों और विनियमों के अनुपालन तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि विधानमंडल के सदस्यों में लोकतंत्र की सच्ची भावना भी विकसित करनी चाहिए। यदि इस मौलिक तथ्य को ध्यान में रखा जाए तो स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि मुद्दों पर निर्णय बहुमत के आधार पर लिया जायेगा, फिर भी यदि संसदीय सरकार का कार्य केवल उपस्थित सदस्यों की संख्या और उनके मतों की गिनती तक ही सीमित रखा गया तो इसका चल पाना संभव नहीं हो पायेगा। यदि हम केवल बहुमत के आधार पर कार्य करेंगे, तो हम फासिज्म, हिंसा और विद्रोह के बीज बोएंगे। यदि इसके विपरीत हम सहनशीलता की भावना, स्वतंत्र रूप से चर्चा की भावना और समझदारी की भावना का विकास कर पायें तो हम लोकतंत्र की भावना को पोषित करेंगे।

—गणेश वासुदेव मावलंकर

महेश्वर नाथ कौल
श्याम लाल शकधर

संसदीय पद्धति और प्रक्रिया

(लोक सभा के विशेष संदर्भ में)

अनूप मिश्र
सम्पादक

चौथा संस्करण

लोक सभा सचिवालय
के लिए प्रकाशित

मेट्रोपोलिटन बुक कंपनी प्राइवेट लि.

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली-110001
भारत के लिए प्रकाशित

प्रकाशक :
विवेक गुप्ता, संयुक्त प्रबंध निदेशक,
मेट्रोपोलिटन बुक कंपनी प्रा. लि.,
4273/3, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002,
भारत

वेबसाइट : www.metropolitanbookcompany.com
ई-मेल : metrobks@vsnl.com

पहला संस्करण - 1972
दूसरा संस्करण - 2002
तीसरा संस्करण - 2012
चौथा संस्करण - 2017
(सातवें अंग्रेजी संस्करण, 2016 का अनुवादित स्वरूप)

© लोक सभा सचिवालय

आई.एस.बी.एन. : 978-81-200-0447-4

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन
नियम (पंद्रहवां संस्करण) के नियम 382
के अंतर्गत प्रकाशित

संकलनकर्ता :
प्लस कम्प्यूटर्स
दिल्ली-110093

मुद्रक :
सौरभ प्रिंटर्स, प्रा. लि.
दिल्ली

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री

प्राक्कथन

संसद हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली का सबसे पावन स्थल या मंदिर है। यह महान संस्था राष्ट्रीय एकता को बनाए रखते हुए, हमारे विभिन्न हितों के बीच सामंजस्य, संश्लेषण और समन्वय स्थापित करती है। संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं की सभा के कार्यकरण को सुचारू और व्यवस्थित रूप से चलाने में मुख्य भूमिका है। यद्यपि संविधान का हमारे देश में सर्वोपरि स्थान है परंतु संसदीय कार्यों के सुचारू संचालन के लिए हमने बीते वर्षों में सुस्थापित संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं को भी विकसित किया है। संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं के प्रति सम्मान और उनका सतर्क रूप से पालन किए जाने से संसद और विधानमंडलों की प्रभावकारिता बढ़ती है। संसद का समय बहुमूल्य होता है और इसके द्वारा प्रतिपादित कार्य को लाखों लोग देखते है। यह हमारा दायित्व है कि हम सभा के समय का बुद्धिमानी और विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग करें। सभा और उसकी समितियों की बैठकों में सार्थक और सुविचारित चर्चा और हस्तक्षेपों से संसद में होने वाले विचार-विमर्शों की विषय वस्तु और उसकी गुणवत्ता में सदैव सुधार करने में सहायता मिलती है।

आज जबकि भारत विश्व में अपना उचित स्थान फिर से प्राप्त करने के दृढ़ संकल्प के साथ ऐतिहासिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, ऐसे में हमारे सामने अनगिनत चुनौतियां हैं। इस संदर्भ में, संसद को हमारे विकास एजेंडा के एक साधन के रूप में कार्य करना चाहिए। मुझे यह आशा है कि इस संबंध में प्रत्येक सांसद और प्रत्येक व्यक्ति महात्मा गांधी के इस सूत्र वाक्य के निहितार्थ को जीवन में आत्मसात करेगा कि "जब कभी आपको संदेह हो या तुम्हारा अहं तुम पर हावी होने लगे तो इस कसौटी को आजमाइए; जो सबसे निर्धन और कमजोर व्यक्ति तुमने देखा हो उसकी शक्ल याद करो और स्वयं से यह प्रश्न पूछो कि आप जो कदम उठाने का विचार कर रहे हो वह उस व्यक्ति के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने जीवन और भाग्य पर कुछ नियंत्रण रख सकेगा? दूसरे शब्दों में, क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है? तब तुम्हें लगेगा कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहं समाप्त हो रहा है।"

यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे पास **संसदीय पद्धति और प्रक्रिया** नामक एक पुस्तक है। मैं हाल की प्रक्रियात्मक गतिविधियों को शामिल करते हुए पुस्तक का चौथा संशोधित संस्करण प्रकाशित करने हेतु माननीय लोक सभा अध्यक्ष की पहल की प्रशंसा करता हूं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
नवम्बर, 2015

प्रस्तावना

भारतीय लोकतन्त्र को विश्व में न केवल सबसे बड़े अपितु महानतम कार्यशील लोकतन्त्र के रुप में मान्यता प्राप्त है और इसकी सराहना की जाती है जो कि सर्वथा उचित है। ऐसा न केवल इसके विशाल आकार अपितु इसके बहुलतावादी स्वरूप और समय की कसौटी पर खरे उतरने के कारण है। लोकतांत्रिक परम्पराएं और सिद्धांत भारतीय सभ्यता की विरासत के अभिन्न अंग रहे हैं और सहिष्णुता, विभिन्न राजनैतिक दृष्टिकोणों के लिए पारस्परिक सम्मान की भावना, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और लोकतान्त्रिक सिद्धांतों पर आधारित विभिन्न मुद्दों का समाधान आदि जैसे गुण सदियों में विकसित हुए हैं और जिसकी जड़ें हमारी राजनैतिक चेतना में बहुत गहराई तक समाई हुई हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पंचायत से लेकर संसद तक बड़ी संख्या में प्रातिनिधिक संस्थाओं के नियमित और आवधिक चुनावों ने लोकतन्त्र के प्रति भारत की दृढ़ प्रतिबद्धता को सिद्ध किया है। वस्तुतः प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद होने वाले आम चुनावों को 'लोकतन्त्र के उत्सव' के रूप में देखा जाता है। इन चुनावों के माध्यम से ही नागरिक हमारी पावन लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में सक्रिय रुप से भाग लेते हैं। उनके मत से ही यह निर्धारित होता है कि एक निश्चित अवधि तक देश में कौन-सा राजनैतिक दल सत्ता में रहेगा। यह तथ्य कि बड़ी संख्या में राजनैतिक दल और उससे भी बड़ी संख्या में भिन्न-भिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवार जन प्रतिनिधि बनने के लिए जनादेश प्राप्त करने हेतु चुनावों में भाग लेते हैं जिससे एक अत्यंत अद्‌भुत परिदृश्य सृजित होता है। एक के बाद एक होने वाले चुनावों में यह परिदृश्य बना रहता है और इस प्रकार लोकतन्त्र सक्रिय और जीवंत बना रहता है। दूसरे शब्दों में, एक महानतम कार्यशील लोकतन्त्र, जिसकी विश्व प्रशंसा और चर्चा करता है, समय और सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों की कसौटी पर खरा उतरा है। सोलहवीं लोकसभा के गठन की प्रक्रिया के दौरान, स्थिरता और सुशासन के पक्ष में एक स्पष्ट जनादेश देकर जनता ने लोकतान्त्रिक प्रणाली में एक बार फिर अपनी आस्था और विश्वास को दर्शाया है।

सुशासन, मुख्य रूप से विधायिका के प्रभावी कार्यकरण पर निर्भर करता है जो कि लिखित और अलिखित स्वस्थ संसदीय परम्पराओं और परिपाटियों पर निर्भर करता है। भारतीय लोकतान्त्रिक प्रणाली, जिसमें संसद एक सर्वोच्च निकाय अथवा 'लोकतन्त्र के मंदिर' के रुप में स्थित है, हमारे संवैधानिक उपबंधों, नियमों पूर्व पद्धतियों और प्रक्रियाओं के अनुसार कार्य करती है।

संसद के लिए निर्वाचित होने के पश्चात् जन प्रतिनिधियों से जनता के कल्याण और राष्ट्रहित में विधि निर्माण के कार्य में संलग्न रहने की अपेक्षा की जाती है। हमारी संसदीय प्रक्रियाएं सदस्यों को जनता, जो जन प्रतिनिधियों को अपनी सामूहिक समस्याओं के समाधान की प्रत्याशा से चुनती है, की आवाज उठाने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। विपक्ष और सत्ता पक्ष के सदस्य के रूप में ढाई दशक से अधिक समय के मेरे व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर, मैं विश्वास के साथ यह कह सकती हूँ कि संसद के नियमों और विनियमों, प्रक्रियाओं और प्रथाओं के विद्यमान

स्वरूप के अंतर्गत कोई भी सदस्य, लोक महत्व के मुद्दों को प्रभावी ढंग से उठा सकता है, जनता की शिकायतों को प्रस्तुत कर सकता है, उनके समाधान की मांग कर सकता है और सरकार द्वारा नीति निर्धारण की कार्यवाही पर सार्थक प्रभाव डाल सकता है। असहमति अथवा मतभेद किसी भी कार्यशील लोकतन्त्र का एक अभिन्न अंग होता है और उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए साधन उपलब्ध हैं, परंतु सभा की कार्यवाहियों में व्यवधान पैदा करने अथवा सभा के बीचों बीच आ जाने का कोई औचित्य नहीं है। मैंने ऐसा कभी नहीं किया बल्कि विभिन्न मुद्दों को उठाने पर अपने निर्वाचन क्षेत्र और सामान्य लोगों के हित में मेरी आवाज सुनी जाए, इस हेतु मैंने सभी उपलब्ध संसदीय साधनों का उपयोग किया है।

अब सोलहवीं लोक सभा के अध्यक्ष के रूप में, मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है कि हमारी संसदीय प्रक्रियाएं और नियम सदस्यों को दूरगामी महत्व की विधियों पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए पर्याप्त अवसर और पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। इस बात के लिए एकमात्र स्थिति यह है कि विद्यमान नियमों में उल्लिखित समुचित रीति से सभा को कार्य करने दिया जाए।

कानून निर्माण और विधायन में संवैधानिक प्रावधानों का अतिसर्तक अनुपालन अपरिहार्य होता है। हम सभी अपने संवैधानिक कर्तव्यों से बंधे है और हमें इसके संरचनात्मक ढांचे के अंतर्गत ही कार्य करना होता है। हमारे संविधान ने हमें अपनी सभी लोकतांत्रिक संस्थाएं उपलब्ध कराई है और सदस्यों के साथ-साथ नागरिकों का यह उत्तरदायित्व और कर्तव्य है कि वे इनका सम्मान करें और इन्हें दृढ़ता प्रदान करें ताकि सुशासन साकार हो सके।

पीठासीन अधिकारी सदस्यों और सामूहिक रुप से सभा के अधिकारों का रक्षक होता है और वह सभा के कार्य संचालन को सुगम बनाने हेतु उत्तरदायी भी है। सदन में चर्चा के दौरान पीठासीन अधिकारी यह सुनिश्चित करता है कि सभा के सभी वर्गों को सुना जाए और जब कभी व्यवस्था का प्रश्न उठाया जाता है तब पीठासीन अधिकारी के रूप में, अध्यक्ष को नियमों की व्याख्या करना, पूर्वोदाहरणों और निर्णयों, यदि कोई हो, का अध्ययन करना और संदर्भ लेना पड़ता है और जब कभी आवश्यक हो तो अध्यक्ष से विवेकाधिकार का प्रयोग करके एक नवीन पद्धति विकसित करने में सहायता देने, दिशा निर्देश देने और विनिर्णयों की घोषणा करने की भी अपेक्षा की जाती है।

इन मामलों में अंतिम प्राधिकारी होने के कारण, अध्यक्ष द्वारा दिए गए विनिर्णय पूर्वोदाहरणों और उत्तरवर्त्ती सभाओं के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत बन जाते हैं। 'शून्य काल' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, जिससे सदस्यों को अविलंबनीय लोक महत्व के मामलों को उठाने का एक अवसर प्राप्त होता है और इनकी अनुमति देने हेतु किसी नियम के न होने के बावजूद इसमें भी कोई विलंब नहीं होता है। 'शून्य काल' एक नियमित परंतु सभा की कार्यवाही की अप्रत्यक्ष विशेषता के रूप में आरंभ हुआ था और समय के साथ कार्यवाही की एक महत्वपूर्ण विशेषता बन चुका है और विधिवत रुप से विनियमित होता है। इसलिए, यह सदस्यों के ऊपर निर्भर है कि वे नियमों और प्रक्रियाओं का कैसे सदुपयोग करें और राष्ट्र के व्यापक हित में सभा को सुगमतापूर्वक संचालित करने में सहायता करें।

संसद द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कृत्यों में, इसकी महत्वपूर्ण भूमिकाओं में से एक कार्यपालिका को विधायिका के प्रति सदैव उत्तरदायी बनाए रखना है। इस आधारभूत सिद्धांत का पालन कतिपय प्रक्रियात्मक उपायों के संस्थानीयकरण के माध्यम से किया जाता है बल्कि इसके विवेकपूर्ण प्रयोग से न केवल कार्यवाही का सुगमतापूर्ण संचालन सुनिश्चित होता है बल्कि इसके सदस्यों के बीच तथा कार्यपालिका और संसद के बीच भी सौहार्द स्थापित करने में सहायता मिलती है।

सर्वप्रथम, सन् 1921 में जब केन्द्रीय विधानमंडल अस्तित्व में आया था, भारत में प्रक्रियाओं के निश्चित नियमों का एक निर्दिष्ट समूह निर्मित हुआ और ये नियम कुछेक संशोधनों के साथ 1947 तक बने रहे। इसके पश्चात् भारत के स्वतंत्र होने के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ इन नियमों को वास्तव में अंगीकृत किया गया। वर्ष दर वर्ष, कुछ नियम कई नियमों के रुप में बनाये गए क्योंकि नए नियमों का आविर्भाव हुआ और उन्हें अंगीकृत किया गया, विद्यमान नियमों में परिवर्धन हुआ या हमारे नवोन्मेष से इन्हें परिवर्तित किया गया। सभी नियम समय की कसौटी पर खरे उतरे और ठोस नियमों और प्रक्रियाओं का एक निकाय प्रदान किया। इसके साथ-साथ, संदर्भ लेने के लिए निर्णय विधियों का समूह भी निर्मित होता गया।

सोलहवीं लोक सभा द्वारा अपना विचार-विमर्श शुरु किये जाने के साथ ही लोगों, विशेषकर युवा पीढ़ी को इससे बहुत-सी अपेक्षाएं हैं। संसदीय लोकतन्त्र की शक्ति राष्ट्र के समक्ष आने वाली चुनौतियों का समाधान करने के लिए राजनीति के गतिशील रूपों को समायोजित करने की इसकी नम्यता में निहित है। ऐसा कहा जाता है कि देश के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण दृष्टिकोण संसदीय संस्था से सृजित होता है। इसलिये, संसदों हेतु भविष्य की आयोजना के बहुत से अर्थ होते हैं। इसका अर्थ अपने देश की परम्पराओं की विशिष्टताओं को बनाए रखते हुए तेजी से बदलते समाज और वैश्विक व्यवस्था की जरूरतों और दबावों का सामना करना है। इसका यह भी अर्थ है कि अपनी प्रक्रियाओं में चल रहे सुधारों के प्रति मुक्त सोच रखना ताकि ये समय की आवश्यकताओं और लोकतन्त्र के संरक्षक के रूप में संसद की अपनी भूमिका के अनुरूप बने रहें। भारत में हमने विगत छह दशकों से अधिक समय में कुछ बदलावों के साथ यह सब देखा है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि लोक सभा सचिवालय एम.एन.कौल और एस.एल. शकधर द्वारा रचित 'संसदीय पद्धति और प्रक्रिया' के चौथे संशोधित और अद्यतन संस्करण का प्रकाशन कर रहा है। लोक सभा सचिवालय के आधिकारिक प्रकाशन के रुप में पुस्तक को संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं से संबंधित कई मुद्दों पर आधिकारिक, सर्वाधिक विश्वसनीय और जानकारी से परिपूर्ण माना जाता है। यह पुस्तक न केवल नये सदस्यों हेतु अपितु सभा के अनुभवी और वरिष्ठ सदस्यों हेतु भी अत्यधिक लाभप्रद होगी। नये सदस्य विभिन्न विषयों जैसे 'प्रश्न काल', कार्यवाही वृत्तान्त से शब्दों को निकाले जाने, ध्यानाकर्षण, स्थगन प्रस्ताव आदि के बारे में नियमों और व्याख्याओं का अध्ययन कर भली भांति तैयार हो पायेंगे और कार्यपालिका की विधायिका के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न संसदीय साधनों का बुद्धिमत्तापूर्ण और व्यवहारकुशल उपयोग करके बेहतर ढंग से कार्य कर पाएंगे।

मैं इस पुस्तक के लिए ज्ञानवर्धक प्राक्कथन हेतु माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिससे इसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।

मैं लोक सभा के महासचिव, श्री अनूप मिश्र को बहुत ही अल्प समय में संशोधित संस्करण प्रस्तुत करने के उनके अथक प्रयासों हेतु बधाई देती हूँ। मैं लोक सभा सचिवालय के अधिकारियों की टीम को भी बधाई देती हूँ, जिन्होंने इसे शीघ्रतापूर्वक प्रकाशित करने हेतु कठिन परिश्रम किया है। मुझे आशा है कि यह प्रकाशन भारत के संसदीय लोकतन्त्र के सफल कार्यकरण में गहरी रुचि रखने वाले सांसदों, विधायकों, राजनीतिविदों, शिक्षाविदों, शोधार्थियों, मीडियाकर्मियों और अन्य सभी व्यक्तियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

नई दिल्ली
दिसम्बर, 2015

(सुमित्रा महाजन)
अध्यक्ष, लोक सभा

आमुख

संसद के दो प्रबुद्ध और प्रतिष्ठित अधिकारियों एम.एन. कौल और एस.एल. शकधर द्वारा रचित और वर्ष 1968 से प्रकाशित की जा रही पुस्तक 'संसदीय पद्धति और प्रक्रिया' हमारे संविधान और उन संसदीय पद्धतियों, प्रक्रियाओं, परंपराओं तथा परिपाटियों के निर्माण और क्रमिक विकास का झरोखा है जिनके बीज वर्ष 1947 में हमारी स्वाधीनता से भी बहुत पहले देश की शासन व्यवस्था में भागीदार होने की जनता की इच्छा के फलस्वरूप देश में लोकतांत्रिक और संसदीय संस्थानों के प्रादुर्भाव से ही पड़ गए थे।

नियति से मिलन के बाद से भारत ने एक लंबी दूरी तय की है। एक उभरते हुए लोकतंत्र से यह एक परिपक्व और स्पंदित लोकतंत्र बन गया है। इस संदर्भ में भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर एंटोनी ईडन के शब्दों को उद्धृत करना उचित होगा जिन्होंने वर्ष 1954 में कहा था, "भारत ने हमारी पद्धतियों का अंधानुकरण नहीं किया है बल्कि उन्हें इतना अधिक परिष्कृत और विविध बनाकर प्रस्तुत किया है कि हम सोच भी नहीं सकते। यदि यह सफल होता है तो एशिया महाद्वीप पर इसका प्रभाव आशातीत रूप से अच्छा ही रहेगा। परिणाम चाहे जो भी हो, जिन्होंने यह कार्य किया, हमें उनका अभिनंदन करना चाहिए।" भारत में लोकतंत्र न केवल सफल रहा बल्कि समय के साथ-साथ यह और अधिक सशक्त और सुदृढ़ होता गया है। यह भारत के लोगों द्वारा सुविचारित और बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से तैयार की गई संसदीय पद्धतियों, परंपराओं और परिपाटियों तथा इनका सम्मान करने की स्वस्थ परंपरा के कारण ही संभव हो पाया है। संसदीय संस्थाए, पद्धतियां और प्रक्रियाएं सदैव एक सी नहीं रहतीं; ये परिवर्तनशील होती हैं तथा बदलते हुए राजनीतिक और सामाजिक परिवेश के अनुरूप इनका विकास होता है। संसदीय संस्थाएं सजीव संस्थाओं की भांति हैं जो सामाजिक और राजनीतिक विकास को प्रतिबिम्बित करते हैं।

संसदीय ज्ञान कोष को और समृद्ध करने वाली इस महान कृति के वर्तमान चौथे संस्करण को 15वीं लोक सभा के अनुभवों से सम्पन्न किया गया है। इस खंड में संस्थागत स्मृतियों को कालक्रमानुसार संजोया गया है जो उन सभी के लिए लाभदायक सिद्ध होगा जिन्होंने हमारे लोकतंत्र को सशक्त बनाने में अपना योगदान दिया है चाहे वे पीठासीन अधिकारी हों, सांसद, विधायक, कानूनविद्, न्यायाधीश, अधिवक्ता, शिक्षाविद्, शोधार्थी हों अथवा संसदीय विषयों में विशेषज्ञता रखने वाले संपादक या पत्रकार हों। संसदीय पद्धति और प्रक्रिया नियम अनुभवजन्य साक्ष्यों और उदाहरणों के माध्यम से स्वत: स्पष्ट और ग्राह्य हो जाते हैं अन्यथा वे अत्यंत नीरस प्रतीत होते हैं। इन नियमों, पद्धतियों और प्रक्रियाओं की जानकारी सदस्यों के लिए सदन तथा इसकी समितियों की कार्यवाही में प्रभावशाली ढंग से भाग लेने में सहायक सिद्ध होगी। यह पुस्तक सभा के बहुमूल्य समय के सदुपयोग में भी सहायक रहेगी।

भारत के माननीय प्रधानमंत्री जी के प्राक्कथन ने न केवल इस पुस्तक को गरिमा प्रदान की है बल्कि इसकी विश्वसनीयता और शोभा को भी बढ़ाया है। माननीय अध्यक्ष, लोक सभा की प्रस्तावना ने पुस्तक की अनिवार्यता और इसके उद्देश्य को और अधिक मुखरित किया है। इस पुस्तक में 47 अध्याय हैं। संसदीय मंच संबंधी एक नया अध्याय जोड़ा गया है। सभी अध्यायों को विषय-वस्तु के आधार पर व्यवस्थित किया गया है। संदर्भ हेतु तथा विस्तृत जानकारी चाहने वाले पाठकों की सुविधा हेतु प्रत्येक अध्याय के नीचे पाद-टिप्पणियां दी गई हैं। किसी विशेष मामले या विषय के संबंध में संदर्भ हेतु एक व्यापक अनुक्रमणिका भी संलग्न की गई है।

पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं से संबंधित ऐसे पेचीदा प्रश्नों के उत्तर भी मिल जाते हैं जिनका सामना पीठासीन अधिकारियों और संसदीय अधिकारियों को कभी न कभी करना पड़ता है। उदाहरणत: क्या कोई मंत्री प्रवर समिति का सदस्य बन सकता है? उत्तर है– "वे मंत्री जो राज्य सभा के सदस्य हैं, सभा की प्रवर समिति के सदस्यों के रूप में नियुक्त किए जा सकते हैं। किंतु उन्हें समिति में मतदान करने का अधिकार नहीं होगा। किसी सरकारी विधेयक को तदर्थ समिति के पास भेजे जाने के संबंध में विधेयक के प्रभारी मंत्री को समिति के सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता है जबकि गैर-सरकारी विधेयक के मामले में विधेयक के प्रभारी सदस्य और विधेयक के विषय से संबंधित मंत्रालय के मंत्री को तदर्थ समिति के सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जाता है।"

संसदीय औचित्य और प्रक्रिया से संबंधित एक अन्य प्रश्न यह है कि क्या संसद के दोनों सदनों के किसी सदस्य को किसी राज्य में मंत्री के पद पर नियुक्त किए जाने पर उसे सदन की सदस्यता से त्यागपत्र देना होगा? यदि नहीं तो क्या वह सदन की बैठकों में भाग ले सकता है और मतदान कर सकता है। यहां उलझाव यह है कि यदि कोई व्यक्ति छह माह तक संसद के किसी भी सदन का सदस्य हुए बिना मंत्री पद पर बना रह सकता है तो क्या वह किसी राज्य का मंत्री होते हुए संसद के किसी सदन की बैठकों में भी भाग ले सकता है और मतदान कर सकता है?

इस प्रकार का संसदीय और संवैधानिक औचित्य से संबंधित प्रश्न 12वीं लोक सभा के चौथे सत्र में सामने आया जब संसद के एक तत्कालीन सदस्य जिसे बाद में किसी राज्य का मुख्यमंत्री बना दिया गया था, ने सदन में मंत्री परिषद में विश्वास प्रस्ताव पर मतदान किया था। सदन में इस संबंध में मतभेद था। कुछ सदस्यों का कहना था कि चूंकि मुख्यमंत्री सदन का सदस्य तो रहता ही है, अत: इसे मतदान का हक है जबकि कुछ सदस्यों का मत था कि चूंकि वह सदस्य पहले ही किसी राज्य के मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त हो गया है, अत: उसे मतदान की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

इस रोचक स्थिति में माननीय अध्यक्ष की टिप्पणी यह थी कि "ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जबकि सदस्यों ने सदन में गैर हाजिरी के कारण अपनी सदस्यता को समाप्त किये जाने की स्थिति को रोकने हेतु राज्यों में मंत्री पद पर नियुक्ति के बाद भी लोक सभा के उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर किए। तथापि, कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जबकि पीठ ने यह टिप्पणी की कि यद्यपि ये मंत्री सदन के सदस्य बने रह सकते हैं किंतु यह वांछनीय नहीं है कि वे सदन की चर्चाओं में भाग लें..... पीठ ने निर्णय सदस्य पर छोड़ दिया।" ऐसे उदाहरण कोई पहले या अंतिम नहीं हैं किंतु अध्यक्ष की टिप्पणी भविष्य में पीठ के निर्णयों को सदैव प्रभावित करती है। ये प्रश्न वास्तव में केवल मात्र कुछ उदाहरण हैं, पुस्तक में इस तरह के प्रासंगिक प्रश्नों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

पूर्ववर्ती सभाओं की भांति 15वीं लोक सभा भी बदलते परिवेश के अनुरूप कुछ प्रक्रियागत नवोन्मेष की साक्षी रही है। 15वीं लोक सभा के कार्यकाल के दौरान ही 2 अगस्त 2012 को संसद सदस्यों द्वारा सरकारी काम-काज के दौरान संसद सदस्यों के सामने सरकारी अधिकारियों द्वारा किए गए नयाचार उल्लंघन और अभद्र व्यवहार संबंधी शिकायतों की जांच हेतु एक अलग समिति का गठन किया गया। समिति को अध्यक्ष द्वारा इसे भेजी गई संसद सदस्यों के साथ सरकारी कामकाज के दौरान समय-समय पर निर्धारित नयाचार के नियमों के उल्लंघन, सरकार द्वारा प्रशासन और संसद सदस्यों के बीच सरकारी कामकाज के संबंध में जारी किए गए अनुदेश

या दिशानिर्देशों के उल्लंघन और सरकारी कामकाज के दौरान सरकारी अधिकारियों द्वारा किसी सदस्य के साथ अभद्र व्यवहार किए जाने संबंधी प्रत्येक शिकायत की जांच करने का अधिदेश प्राप्त है। इस संबंध में एक अन्य कदम यह उठाया गया कि सभा में विशेषाधिकार समिति द्वारा सदन में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रतिवेदनों पर चर्चा करने और सदन द्वारा इन प्रतिवेदनों की पूर्ववर्तिता निर्धारित करने संबंधी लोक सभा के प्रक्रिया और कार्य संचालन संबंधी नियमों के नियम 315 और 316 के प्रावधान यथोचित परिवर्तनों सहित सदस्यों के साथ सरकारी कामकाज के दौरान नयाचार संबंधी नियमों के उल्लंघन से संबंधित शिकायतों की जांच करने वाली समिति के प्रतिवेदनों पर भी लागू होंगे।

इस संबंध में दिसम्बर, 2001 में नियम 374क में एक नया प्रावधान जोड़ा गया कि किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अथवा नारे लगाकर या अन्य प्रकार से सभा की कार्यवाही में बाधा डालकर लगातार और जानबूझकर सभा के नियमों का दुरूपयोग करते हुए घोर अव्यवस्था उत्पन्न किए जाने की स्थिति में वह सभा की सेवा से लगातार पांच बैठकों के लिए या सत्र की शेष अवधि के लिए, जो भी कम हो, स्वत: निलंबित हो जाएगा। यह प्रावधान 15वीं लोक सभा के दौरान अलग-अलग अवसरों पर लागू किया गया। ये नियम पीठ द्वारा की गई नियमों की व्याख्या, विनिर्णय और टिप्पणी तथा उन्हें लागू करने से ही सार्थक होते हैं अन्यथा उनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी और वे अनुपयोगी हो जाएंगे।

समय के साथ-साथ संसदीय संस्थाओं को चलाने का हमारा अनुभव और हमारी स्वस्थ परंपराएं और परिपाटियां जिन्हें अनुभव के आधार पर विकसित किया गया है, पूरे विश्व में, विशेष रूप से अफ्रीकी-एशियाई देशों तथा भारत के पड़ोसी देशों में, जो लोकतंत्र अपनाने की ओर अग्रसर हैं, लोकप्रिय हो रही हैं। अब विश्व के अनेकानेक देश भारत के लोकतांत्रिक और संसदीय अनुभव से लाभ उठाना चाहते हैं। यह हमारी संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं की सक्षमता का परिचायक है जो हमारे देश की अद्भुत विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए विकसित की गई हैं।

इस तरह की पुस्तक का संपादन करना अपने आप में एक महती कार्य है, विशेष रूप से जानकारी एकत्र कर उसे विषयानुरूप सुसंगत और प्रभावशाली ढंग से लगाते हुए बीच-बीच में नई प्रक्रियाओं तथा पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान पीठ द्वारा दिए गए विनिर्णयों और टिप्पणियों आदि को व्यवस्थित करना। मेरे लिए यह सीखने का अनूठा अनुभव था। मैं इस अवसर पर भारतीय लोकतंत्र की आरंभिक अवस्था में ऐसी महान कृति को अस्तित्व में लाने के लिए स्व. श्री एम.एन. कौल और श्री एस.एल. शकधर के महत्वूपर्ण योगदान को रिकार्ड में लाना चाहता हूं। मेरे पूर्ववर्ती अधिकारियों ने भी इस ज्ञानप्रद प्रकाशन में अपना योगदान देकर इसे और अधिक मूल्यवान बनाया। मैं एक विचारोत्तेजक प्राक्कथन के लिए माननीय प्रधानमंत्री जी का आभारी हूँ। मैं शिक्षाप्रद प्रस्तावना लिखने और पूर्ण सहयोग देने के लिए माननीय अध्यक्ष महोदया का भी आभार व्यक्त करता हूं।

सचिवालय की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत और पर्यवेक्षण करने वाले अधिकारियों ने इस पुस्तक के अध्यायों को सावधानीपूर्वक अद्यतन करके और तथ्यों का सत्यापन कर इस पुस्तक को तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस सचिवालय में मेरे सहयोगी श्री पी.के.मिश्र, अपर सचिव और उनके अधीन कार्यरत समर्पित अधिकारियों ने इस परियोजना को पूरा करने में अत्यधिक सहायता प्रदान की है। मैं श्रीमती कल्पना शर्मा, संयुक्त सचिव, डॉ. आर. एन. दास, निदेशक; सुश्री समिता भौमिक, अपर निदेशक, श्रीमती रचना शर्मा, संयुक्त निदेशक

और श्री नीरज कुमार, शोध अधिकारी को इस परियोजना को निर्धारित समय में अंतिम रूप देने में उनकी सहायता और सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूं। इस महत्वपूर्ण प्रकाशन का हिन्दी संस्करण तैयार करने में श्री देवेन्द्र सिंह, अपर सचिव के पर्यवेक्षण में संपादन तथा अनुवाद सेवा के अधिकारियों, विशेष रूप से श्रीमती सरिता नागपाल, निदेशक; श्री अजीत सिंह यादव, अपर निदेशक; श्री वी.के. अस्थाना, संयुक्त निदेशक और श्रीमती निशा शर्मा, संपादक का योगदान सराहनीय रहा।

इस संस्करण के प्रकाशक मेट्रोपॉलिटन बुक कंपनी प्रा. लि. के श्री विवेक गुप्ता भी समय पर इस संस्करण को प्रकाशित करने के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है पूर्ववर्ती संस्करणों की भांति ही इस पुस्तक का चौथा हिन्दी संस्करण भी लोकप्रिय होगा और न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी पीठासीन अधिकारियों, संसद सदस्यों और संसदीय अधिकारियों के लिए संदर्भ हेतु उपयोगी सिद्ध होगा।

नई दिल्ली
जून, 2015

(अनूप मिश्र)
महासचिव
लोक सभा

विषय-सूची

	पृष्ठ
प्राक्कथन	*vii*
प्रस्तावना	*ix*
आमुख	*xiii*
संक्षेपाक्षर सूची	*lvii*

अध्याय 1

संसद का प्राधिकार तथा अधिकार क्षेत्र	**1**

अध्याय 2

संसद की संरचना	**19**
राष्ट्रपति	19
राज्य सभा	19
लोक सभा	23

अध्याय 3

राष्ट्रपति का संसद से सम्बन्ध	**30**
राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद	30
राष्ट्रपति का सूचना का अधिकार	32
राष्ट्रपति और संसद के सदन	35
राष्ट्रपति के अन्य कृत्य	42
राष्ट्रपति की विधायी शक्तियां	43
आपात के दौरान शक्तियां	45
राष्ट्रपति की शक्तियों की सीमाएं	46
राष्ट्रपति पर महाभियोग	46
राष्ट्रपति का उत्तराधिकारी	47

अध्याय 4

सदनों के बीच सम्बन्ध	**49**
सदनों के बीच संवाद	49
सदनों की संयुक्त समिति	52
सदनों की संयुक्त बैठक	53

अध्याय 5

राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और संसद सदस्यों का निर्वाचन **58**
राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन 58
राष्ट्रपतीय निर्वाचन संबंधी विवाद 66
पदावधि 69
पुनर्निर्वाचन के लिए पात्रता 70
पद की शपथ 70
लोक सभा के सदस्यों का निर्वाचन 71
सदस्यता के लिए निरर्हताएं 74
दल परिवर्तन के आधार पर सदस्यता के लिए निरर्हता 76
संविधान की दसवीं अनुसूची—एक मूल्यांकन 85
निर्वाचन विधि 87
राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन 89
निर्वाचन सम्बन्धी विवाद 91
स्थानों की रिक्तियां 93

अध्याय 6

लाभ का पद **102**
लाभ के पद से संबंधित संवैधानिक और विधिक स्थिति की जांच करने के लिए संयुक्त समिति 120

अध्याय 7

लोक सभा के पीठासीन अधिकारी **124**
अध्यक्ष का पद 124
निर्वाचन विधि 131
अध्यक्ष का आसन 134
अध्यक्ष का कार्यकाल 141
सभा के विघटन पर अध्यक्ष का त्यागपत्र देने का अधिकार 142
अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद से हटाया जाना 147
सामयिक अध्यक्ष 153
अध्यक्ष द्वारा शपथ ग्रहण 155
अध्यक्ष की वेशभूषा 155

उपाध्यक्ष का पद 156
उपाध्यक्ष का निर्वाचन 156
उपाध्यक्ष का कार्यकाल 159

अध्याय 8

संसद के कार्य-निर्वाहक **161**
अध्यक्ष 161
शक्तियां और कृत्य 162
अध्यक्ष के विनिर्णय 171
अध्यक्ष की अनुशासनात्मक शक्तियां 173
अध्यक्ष के विविध कार्य 173
उपाध्यक्ष 178
सभापति तालिका 181
संसदीय समितियों के सभापति 183
कर्तव्य और शक्तियां 185
मंत्रिपरिषद् 186
मंत्रिपरिषद् के कार्य 192
मंत्रिपरिषद् और लोक सभा 193
संसदीय सचिव 195
सभा का नेता 196
विपक्ष का नेता 201
सचेतक 204
सरकार का मुख्य सचेतक 206
नियंत्रक-महालेखापरीक्षक 208
महान्यायवादी 215
मुख्य निर्वाचन आयुक्त 221
महासचिव 225

अध्याय 9

संसद के सदनों को आहूत करना तथा सत्रावसान और लोक सभा का विघटन **235**
संसद को आहूत करना 235
लोक सभा के सत्र 244

लोक सभा को आहूत करना 246
आमंत्रण भेजा जाना 248
राष्ट्रपति का अभिभाषण 254
लोक सभा की पहली बैठक 257
सभा का सत्रावसान 258
सत्रावसान की प्रक्रिया 261
सत्रावसान के प्रभाव 262
सभा का विघटन 264
विघटन की प्रक्रिया 269
विघटन का प्रभाव 270
आपात सत्र 273

अध्याय 10

सदन में राष्ट्रपति का अभिभाषण, संदेश तथा संसूचनाएं 275
राष्ट्रपति का अभिभाषण 275
अभिभाषण के लिए तिथि का निर्धारण 277
अभिभाषण से संबंधित समारोह 278
अभिभाषण की प्रति का सभा पटल पर रखा जाना 285
अभिभाषण पर चर्चा 288
धन्यवाद प्रस्ताव में संशोधन 289
सदन को संदेश तथा संसूचनाएं 292
राष्ट्रपति तथा सभा के बीच संसूचना 294

अध्याय 11

सदनों, उनकी समितियों और सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां 296
विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने का प्रश्न 298
विशेषाधिकारों का विस्तार क्षेत्र एवं व्याप्ति 311
संसद के मुख्य विशेषाधिकार 312
वाक् स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार तथा न्यायालयों में कार्यवाही से उन्मुक्ति 314
संसद की कार्यवाही से सम्बद्ध साक्षियों आदि का संरक्षण 318

अजनबियों को बाहर निकालने का अधिकार 319

कार्यवाही के प्रकाशन पर नियंत्रण का अधिकार 320

प्रत्येक सभा को अपनी कार्यवाही की वैधता का निर्णय करने का सम्पूर्ण अधिकार 321

सभा का सदस्यों को संसद में उनके आचरण पर दण्ड देने का अधिकार 323

संसद में कार्यवाही 324

संसद की कार्यवाही के संबंध में न्यायालयों में साक्ष्य 325

संसद में कार्यवाही और दण्ड विधि 330

झारखंड मुक्ति मोर्चा मामला: सभा में मतदान करने के लिए न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति 330

परवर्ती घटनाक्रम 339

गिरफ्तारी या उत्पीड़न से मुक्ति का विशेषाधिकार 345

न्यायालयों में साक्षी के रूप में उपस्थिति से छूट 349

सभा के परिसर में वैध आदेश दिए जाने और बन्दीकरण से उन्मुक्ति 350

सदस्यों के बन्दीकरण, निरोध, दोषसिद्धि और रिहाई की सूचना सभा को दिया जाना 351

हिरासत में रखे गये सदस्य द्वारा अध्यक्ष या संसदीय समिति के सभापति के नाम लिखे गये संदेश को रोका न जाना 354

हथकड़ी का प्रयोग 355

बन्दीकरण तथा उत्पीड़न से छूट के विशेषाधिकार को साक्षियों और याचिका देने वालों पर भी लागू किया जाना 356

विशेषाधिकार भंग या अवमानना करने पर सभा की दंड देने, हिरासत में तथा जेल भेजने की शक्ति 356

कारावास की अवधि 361

वारण्ट के प्रपत्र 361

वारण्टों के निष्पादन की शक्तियां 361

सभा के आदेशों का निष्पादन करने वाले अधिकारियों को संरक्षण 363

विशेषाधिकार के भंग या अवमानना के लिए दंड का स्वरूप 363

अनुचित आचरण का आरोप 370

निष्कासन की शक्ति 372

संसद भवन सम्पदा के भीतर संसद की शक्तियां 373

सभा द्वारा सुपुर्दगी के कारणों की न्यायालयों में जांच 375

न्यायालय और विशेषाधिकार के मामले 376

झारखंड मामला 385

विशेषाधिकार भंग और सभा की अवमानना से संबंधित विशिष्ट मामले 386

सभा या उसकी समितियों के समक्ष अवचार 386

सभा या उसकी समितियों के आदेशों की अवज्ञा 387

सभा अथवा उसकी समितियों को मिथ्या, जाली अथवा नकली दस्तावेज प्रस्तुत करना 388

सभा, अथवा उसकी समितियों को प्रस्तुत दस्तावेजों में हेरफेर करना 389

सभा, उसकी समितियों अथवा सदस्यों पर आक्षेप करने वाले भाषण अथवा लेख 389

अध्यक्ष के कर्तव्यों के निर्वहन में उस पर आक्षेप 392

वाद-विवाद के गलत या विकृत वृत्तान्त का प्रकाशन 392

कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गये अंशों का प्रकाशन 394

गोपनीय सत्रों की कार्यवाही का प्रकाशन 395

संसदीय समिति की कार्यवाही, साक्ष्य या प्रतिवेदन का समय से पहले प्रकाशन 395

संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर आक्षेप 396

याचिकाओं को प्रस्तुत करने से पहले उनका परिचालन 396

सभा के कार्य से संबंधित अन्य विभिन्न मामलों का समय से पहले प्रकाशन 397

सदस्यों के कर्तव्य निर्वहन में बाधा डालना 398

सदस्यों का बन्दीकरण 398

सदस्यों का उत्पीड़न 398

सदस्यों के संसदीय आचरण पर अनुचित साधनों से प्रभाव डालने के प्रयास 399

रिश्वत 399

सदस्यों को डराना-धमकाना 400

सभा के अधिकारियो के कार्य में बाधा डालना 401
सभा के अधिकारियों की सहायता के लिए बुलाये जाने पर सरकार के सिविल अधिकारियों का ऐसा करने से इन्कार करना 402
सभा के अधिकारियों का उत्पीड़न 403
साक्षियों को रोकना तथा उनका उत्पीड़न 403
साक्षियों को तोड़ना 404
संसद सदस्यों को सूचना देने के परिणामों से, उनके निर्वाचको और अन्य व्यक्तियों को कोई संरक्षण नहीं 404
मामले जो सभा का विशेषाधिकार हनन या अवमानना नहीं कहे जा सकते 404
विशेषाधिकार के प्रश्न पर कार्यवाही करने की प्रक्रिया 410
विशेषाधिकार प्रश्न उठाने के लिए सभा की अनुमति 413
विशेषाधिकार प्रश्न पर विचार 414
सदस्यों के विरुद्ध शिकायतें 416
दूसरे सदन के सदस्यों अथवा अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें 416
अध्यक्ष द्वारा विशेषाधिकार के प्रश्नों को विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाना 421
अध्यक्ष की निदेश देने की शक्ति 422
दूसरे सदन अथवा राज्य विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी समिति के समक्ष साक्षी के रूप में सदस्य की उपस्थिति 422
लोक सभा सदस्यों द्वारा आस्तियों और देयताओं की घोषणा 424
लोक सभा सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों द्वारा नयाचार प्रतिमान का उल्लंघन और अवमानपूर्ण व्यवहार संबंधी समिति। 425

अध्याय 12

सदस्यों का आचरण **426**
सभा में उपस्थिति के समय सदस्यों द्वारा पालनीय नियम 430
प्रश्नों का अध्यक्षपीठ के माध्यम से पूछा जाना 435
असंगति या पुनरुक्ति 435

बोलते समय पालनीय नियम 436

अध्यक्ष के खड़े होने पर प्रक्रिया 438

आचार संहिता 439

अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले सदस्यों का स्वतः निलंबन 441

लोक सभा में आचार समिति का गठन 442

सभा या किसी समिति के विचाराधीन विषयों में व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित रखने वाले सदस्य 444

भ्रष्टाचार के मामलों में लिप्त होना 446

सदस्यों के आचरण की जांच प्रक्रिया 455

नैतिक सिद्धांत 456

अध्याय 13

वेतन, भत्ते, अन्य हकदारियां और सुख-सुविधाएं 457

(एक)संसद के अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते 457

अन्य सुविधाएं 459

(दो) सदस्यों के वेतन, भत्ते और अन्य हकदारियां 461

वेतन और दैनिक भत्ते 461

यात्रा भत्ता 464

रेल द्वारा मुफ्त यात्रा 467

नेत्रहीन और शारीरिक रूप से अक्षम संसद सदस्यों को सुविधाएं 468

विदेश यात्राओं के लिए भत्ता 468

सदस्यों को भुगतान की विधि 469

पेंशन 469

भूतपूर्व संसद सदस्यों को पेंशन 470

दिवंगत संसद सदस्य/भूतपूर्व संसद सदस्य की पत्नी/पति/पात्र आश्रित को कुटुम्ब पेंशन 470

सरकारी समितियों में सेवा करने वाले सदस्यों को दिए जाने वाले भत्ते आदि 471

यात्रा भत्ता 472

दैनिक भत्ता 472

चिकित्सा सुविधाएं 472

आवास सुविधाएं 473

टेलीफोन सुविधाएं 475

समय से पहले विघटित लोकसभा के
  सदस्यों को सुविधाएं 477
आशुलिपिकीय सहायता 477
वाहन खरीदने के लिए अग्रिम राशि 477
आयकर से छूट 478
संसद ग्रंथालय तथा संदर्भ, शोध, प्रलेखन और
  सूचना सेवा द्वारा प्रदत्त सुविधाएं 478
  संसद ग्रंथालय 478
  दुर्लभ तथा कला पुस्तकें 479
  बाल कक्ष 479
  प्रलेखन सेवा 480
  समाचार कतरन सेवा 481
  माइक्रोफिल्मिंग यूनिट 482
  रिप्रोग्राफी सेवा 483
  सदस्यों के लिए संदर्भ सेवा 483
  शोध और सूचना प्रभाग 484
कम्पयूटरीकृत सूचना सेवा 485
  लोकसभा अध्यक्ष की वेबसाइट 486
  संसदीय संग्रहालय वेबसाइट 486
  संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरो वेबसाइट 486
  लोकसभा टेलीविजन चैनल (एल.एस.टी.वी.) वेबसाइट 486
  संसदीय ग्रंथालय वेबसाइट 486
  लोकसभा सदस्यों को कम्प्यूटर उपकरण की खरीद के लिए
    वित्तीय पात्रता संबंधी योजना 487
  सदस्य पूछताछ बूथ 487
  राजनैतिक दलों के कम्प्यूटर हार्डवेयर 487
  इंट्रानेट और ई-मेल सेवाएं 487
  कम्प्यूटरों की खरीद और रखरखाव 488
  प्रशिक्षण 488
संसदीय संग्राहालय तथा अभिलेखागार प्रभाग 488
संसदीय संग्रहालय 489
सदस्यों को प्रकाशनों की आपूर्ति 491
टेलीप्रिन्टर सेवा 491

लोक सभा सचिवालय की अन्य शाखाओं द्वारा
प्रकाशित सावधिक पत्रिकाएं 491
अन्य सुविधाएं 491
संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (*एमपीलैड्स*) 493
(तीन) मंत्रियों के वेतन, भत्ते और अन्य हकदारियां 494
यात्रा एवं दैनिक भत्ता 495
आवास सुविधाएं 495
चिकित्सा सुविधाएं 496
वाहन खरीदने हेतु अग्रिम राशि 496
(चार) संसद सदस्यों के लिए संकेताक्षर 496

अध्याय 14

संसद में राजनीतिक दलों को मान्यता 497
लोक सभा में दलों की स्थिति 499
मान्यता की शर्तें 506
दसवीं अनुसूची लागू होने के बाद की स्थिति 512
विधानमंडल दलों को सुविधाएं 513

अध्याय 15

सदस्यों द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान और सभा में स्थान ग्रहण 518
शपथ अथवा प्रतिज्ञान 518
शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले
सदस्यों के अधिकार 521
शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने संबंधी प्रक्रिया 523
किसी उप चुनाव में निर्वाचित सदस्य द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान 524
सदस्यों के बैठने की व्यवस्था 528

अध्याय 16

सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति 537
संवैधानिक उपबंध 537
उपस्थिति रजिस्टर 539
घण्टेवार उपस्थिति दर्शाने वाला चार्ट 541
सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति
प्राप्त करने की प्रक्रिया 541

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मंत्रियों की अनुपस्थिति 546
ऐसे सदस्यों की अनुपस्थिति जिन्होंने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो 547
अनुपस्थिति की अनुमति संबंधी आवेदन-पत्रों के निपटान की प्रक्रिया 548
स्थान का रिक्त होना 549
अनुपस्थिति की अनुमति की अवधि समाप्त होने से पहले सदस्य के सभा में उपस्थित होने पर अनुपस्थिति की शेष अवधि का व्यपगत होना 550
सदस्यों का उपस्थिति संबंधी रिकार्ड 550
सदस्यों की उपस्थिति संबंधी जानकारी देना 551
सदस्यों की उपस्थिति संबंधी दस्तावेज न्यायालय में प्रस्तुत करना 551

अध्याय 17

सभा की बैठकें **553**
बैठकों का नियतन 553
बैठक प्रारंभ होने का समय 562
बैठक का प्रारंभ 565
बैठक के दौरान गणपूर्ति 568
सभा का स्थगन 570
सभा की गुप्त बैठक 578

अध्याय 18

कार्य-विन्यास और कार्य सूची **582**
सरकारी कार्य 582
(क) *सरकार द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली कार्य मदें* 582
सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र 582
वक्तव्य और वैयक्तिक स्पष्टीकरण 582
अविलम्बनीय लोक-महत्व के विषयों पर मंत्रियों द्वारा वक्तव्य 582
सदस्यों द्वारा दी गयी ध्यानाकर्षण सूचनाओं के उत्तर में वक्तव्य 586
अशुद्धियां सुधारने के लिए वक्तव्य 586
मंत्री पद से त्यागपत्र देने वाले

सदस्य का वक्तव्य 588
समिति के प्रतिवेदनों पर
मंत्री द्वारा वक्तव्य 588
सदस्यों द्वारा वैयक्तिक स्पष्टीकरण 589
समितियों के लिए निर्वाचन संबंधी प्रस्ताव 593
विधेयकों के पुरःस्थापन अथवा वापस 593
लिये जाने संबंधी प्रस्ताव
समितियों के प्रतिवेदन स्वीकार करने संबंधी प्रस्ताव 594
वित्तीय कार्य 594
विधायी कार्य 595
प्रस्ताव 595
संकल्प 596
(ख) *गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत की गयी और सरकारी कार्य के लिए नियत समय में ली गयी कार्य मदें* 596
शपथ अथवा प्रतिज्ञान 597
निधन संबंधी उल्लेख 598
दुःखद घटनाओं संबंधी उल्लेख 603
महत्वपूर्ण अवसरों संबंधी उल्लेख 604
अध्यक्ष द्वारा की गयी घोषणा 610
गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य 613
वर्ष के दौरान सामान्यतः सत्रों की संख्या 613
सत्र के दौरान उपलब्ध समय का विनियमन 615
सरकारी कार्य के लिए समय 615
गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए समय 616
सरकारी कार्य का विन्यास 617
कार्य-सूची 623

अध्याय 19

प्रश्न **626**
प्रश्न काल 633
सूचना की अवधि 640
प्रश्नों की सूचना का रूप 642
लोक सभा वेबसाइट पर प्रश्नों की सूचना की स्थिति 645
मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न 645

तारांकित प्रश्नों की संख्या के संबंध में सीमाएं 648
प्रश्नों के मौखिक उत्तरों के लिए दिनों का नियतन 649
लिखित उत्तर के लिए प्रश्न 650
प्रश्नों के उत्तर 651
मंत्री द्वारा वक्तव्य के माध्यम से प्रश्नों के उत्तरों में शुद्धि 653
गैर-सरकारी सदस्यों को सम्बोधित प्रश्न 655
प्रश्नों की ग्राह्यता सम्बन्धी शर्तें 656
भारत सरकार और राज्यों के बीच पत्र व्यवहार संबंधी प्रश्न 670
राज्य सरकार के मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में प्रश्न 671
केन्द्रीय सरकार के वित्तीय या नियंत्रक हित वाले सांविधिक निगमों, अन्य संगठनों और कम्पनियों के संबंध में प्रश्न 673
सांविधिक निगम 673
वित्तीय निगम और बैंक 674
लिमिटेड कम्पनियां 675
स्वायत्तशासी संगठन, विश्वविद्यालय आदि 676
सांविधिक संगठन 677
प्रश्नों की ग्राह्यता 678
प्रश्नों की सूची 678
प्रश्न पूछने की विधि 681
प्रश्नों का वापस लिया जाना अथवा स्थगित किया जाना 684
अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्न 686
अनुपूरक प्रश्न 687
अल्प-सूचना प्रश्न 689
प्रश्नों की सूचनाओं का व्यपगत होना 691
प्रश्नों के उत्तरों का अग्रिम प्रचार 692
आधे घण्टे की चर्चा 692

अध्याय 20

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर ध्यान आकर्षित करना 695
सूचना देने की विधि 695
ग्राह्यता की शर्तें 697
ध्यानाकर्षण प्रक्रिया 703

ध्यानाकर्षण को अल्पकालीन चर्चा में बदलना 709
वक्तव्यों की व्याप्ति 709
नामों का इकट्‌ठा लिखा जाना 710

अध्याय 21

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर स्थगन प्रस्ताव 711
स्थगन प्रस्ताव की सूचना 714
स्थगन प्रस्ताव की ग्राह्यता 717
मंत्रीय दायित्व 717
विषय का स्पष्ट होना 719
विषय का अविलम्बनीय होना 721
विषय का लोक महत्व का होना 724
प्रस्ताव प्रस्तुत करने के अधिकार पर निर्बन्धन 726
अध्यक्ष की सहमति 736
सभा की अनुमति 739
प्रस्ताव को लेने का समय 739
चर्चा की रीति तथा व्याप्ति 741

अध्याय 22

विधान 746
विधेयकों का वर्गीकरण 747
धन विधेयक और वित्त विधेयक 747
धन विधेयक 747
धन विधेयक का प्रमाणीकरण 750
धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया 752
वित्त विधेयक 758
श्रेणी 'क' के वित्त विधेयक 758
श्रेणी 'ख' के वित्त विधेयक 759
व्यय अन्तर्ग्रस्त विधेयकों
के साथ वित्तीय ज्ञापन 761
विधेयक की मुख्य बातें 762
नाम 764
उद्‌देशिका 764

अधिनियमन सूत्र 765

संक्षिप्त नाम 766

विस्तार संबंधी खंड 767

प्रारम्भ संबंधी खंड 768

निर्वचन या परिभाषा संबंधी खंड 769

अवधि संबंधी खंड 770

घोषणा संबंधी खंड 771

नियम बनाने संबंधी खंड 771

निरसन तथा व्यावृत्ति खंड 772

अनुसूचियां 773

उद्देश्यों तथा कारणों का कथन 774

खंडों पर टिप्पणियां 775

प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन 776

अध्यादेश का स्थान लेने वाले विधेयक में संशोधनों से संबंधित ज्ञापन 776

अनुबंध 777

सभा की विधायी शक्ति 778

लोक सभा में मूल रूप से पुर:स्थापित किए जाने वाले विधेयक 782

पुर:स्थापन से पूर्व विधेयकों की जांच 782

पुर:स्थापन से पूर्व विधेयकों का प्रकाशन 785

सरकारी विधेयकों का पुर:स्थापन 786

पुर:स्थापन के बाद सरकारी विधेयकों का प्रकाशन 795

विधेयकों को विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों को सौंपा जाना 796

विधेयकों के पुर:स्थापन के बाद के प्रस्ताव 799

विचार करने का प्रस्ताव 801

जनता की राय जानने के लिए परिचालन 801

प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव 803

विधेयकों के पुर:स्थापन के बाद प्रस्तुत प्रस्तावों में संशोधन 807

प्रवर या संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण

के बाद की प्रक्रिया 809
विधेयक पर खण्डवार विचार 811
विधेयकों में संशोधन 813
संशोधनों की सूचना 813
सूचना की अवधि 814
संशोधनों का रूप 816
संशोधनों की ग्राह्यता 816
संशोधनकारी विधेयकों में संशोधन 819
समाप्त होने वाली विधियों को जारी रखने संबंधी विधेयकों में संशोधन 820
राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता वाले संशोधन 821
संशोधनों की सूची 824
संशोधनों और नये खण्डों का चयन 825
संशोधन प्रस्तुत करने की विधि 826
संशोधनों पर विचार 827
संशोधनों का वापस लिया जाना 828
विधेयक का तीसरा वाचन 828
प्रत्यक्ष गलतियों की शुद्धि 830
वाद-विवाद में पारिणामिक शुद्धियां 834
विधेयकों पर वाद-विवाद का स्थगन 834
स्थगित वाद-विवाद का पुन:आरंभ 836
विलम्बकारी प्रस्ताव 837
विधेयकों का वापस लिया जाना 839
लम्बित विधेयकों का रजिस्टर 841
राज्य सभा द्वारा संशोधनों सहित लौटाए गए धन विधेयकों से भिन्न विधेयक 842
राज्य सभा द्वारा लौटाये गये धन विधेयक 845
राज्य सभा में मूल रूप से पुर:स्थापित होने वाले विधेयकों के संबंध में लोक सभा की प्रक्रिया 847
विधेयकों पर अनुमति 851
गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के संबंध में प्रक्रिया संबंधी विशेषतायें 854

विधेयकों की सूचना 855
विधेयकों का प्रारूपण 857
विधेयकों का पुर:स्थापन 857
पुर:स्थापन के बाद प्रस्ताव 858
गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए समय का आबंटन 861
वाद-विवाद का स्थगन 861
लंबित विधेयकों का रजिस्टर 862
संविधान में संशोधन 862
संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक 866
साधारण बहुमत द्वारा संशोधन 866
विशेष बहुमत द्वारा संशोधन 869
एक सदन द्वारा पारित और दूसरे सदन द्वारा संशोधनों के साथ लौटाए गए संविधान शोधन विधेयक 873
विशेष बहुमत द्वारा संविधान-संशोधन और राज्यों द्वारा अनुसमर्थन 874

अध्याय 23

राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं 877
अध्यादेश 877
अध्यादेशों का प्रख्यापन 881
अध्यादेश के स्थान पर लाया गया विधेयक 884
अध्यादेशों का निरनुमोदन करने वाले सांविधिक संकल्प 886
संचित निधि में से विनियोग के लिए अध्यादेश 888
उद्घोषणाएं 889
आपातस्थिति की उद्घोषणा 889
पंजाब के सम्बन्ध में आपातस्थिति की उद्घोषणा 895
राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर उद्घोषणा 896
वित्तीय आपातस्थिति की उद्घोषणा 905

अध्याय 24

अधीनस्थ विधान 907
अधीनस्थ विधान पर नियंत्रण 911

आदेशों का सभा पटल पर रखा जाना 914

आदेशों का उपांतरण 915

प्रस्तावों को प्रस्तुत करने और उन पर चर्चा के लिए समय का नियतन 918

लोक सभा द्वारा यथास्वीकृत संशोधनों को राज्य सभा तथा संबंधित मंत्री को भेजा जाना 920

अध्याय 25

संकल्प **921**

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प 922

संकल्पों की सूचनाएं तथा शलाका (बैलट) 922

संकल्पों का रूप तथा विषय 923

ग्राह्यता की शर्तें 923

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर स्थगित वाद-विवाद को पुन: प्रारम्भ किया जाना 927

गृहीत संकल्प 928

संकल्पों के लिए समय का नियतन 929

संकल्पों के लिए समय-सीमा 930

समय का नियतन, आदेश और अवशिष्ट विषयों का निपटारा 931

संकल्पों का पेश किया जाना 932

संशोधनों की सूचना 933

संशोधनों की ग्राह्यता 933

चर्चा की व्याप्ति 934

उत्तर देने का अधिकार 935

संकल्प का वापस लिया जाना 935

सरकारी संकल्प 936

समय का नियतन और चर्चा 936

सांविधिक संकल्प 939

संविधान के अन्तर्गत संकल्प 940

राष्ट्रपति पर महाभियोग 940

उपराष्ट्रपति का पद से हटाया जाना 940

राज्य सभा के उपसभापति का पद से हटाया जाना 940
अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का पद से हटाया जाना 940
राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों का निरनुमोदन 940
संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय के संबंध में विधान बनाना 940
राष्ट्रीय हित में अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन 941
आपात स्थिति की उद्घोषणा तथा किसी राज्य के संवैधानिक तन्त्र के विफल होने पर जारी की गयी उद्घोषणा का अनुमोदन 941
संसद के अधिनियमों के अन्तर्गत संकल्प 941
संकल्पों की स्थिति और प्रभाव 941

अध्याय 26

प्रस्ताव **944**
प्रस्तावों का वर्गीकरण 945
मूल प्रस्ताव 945
स्थानापन्न प्रस्ताव 955
गौण प्रस्ताव 957
सहायक प्रस्ताव 957
अधिक्रामक प्रस्ताव 957
संशोधन 958
संशोधन के रूप 959
संशोधन की सूचना 960
संशोधन प्रस्तुत करने की विधि 961
संशोधनों की ग्राह्यता 961
प्रस्तावित संशोधनों में संशोधन 962
संशोधनों का चयन 962
संशोधन पर वाद-विवाद की व्याप्ति 963
प्रस्तावों की पुनरावृत्ति तथा उनका वापस लिया जाना 963
सामान्य लोकहित के विषय पर चर्चा का प्रस्ताव 964
प्रस्ताव का रूप 966
निन्दा प्रस्ताव 967

ग्राह्यता की शर्तें 970

सूचना की ग्राह्यता और समय का नियतन 973

अनियत दिन वाले प्रस्ताव 974

प्रस्ताव पर चर्चा 975

विश्वास प्रस्ताव 977

अध्याय 27

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा 978

चर्चा हेतु सूचना 978

ग्राह्यता की शर्तें 980

चर्चा के लिए तिथि-निर्धारण तथा समय का नियतन 983

चर्चा हेतु प्रक्रिया 985

अध्याय 28

मंत्रिपरिषद् में विश्वास तथा अविश्वास प्रस्ताव 988

मंत्रिमण्डल का उत्तरदायित्व 988

अविश्वास प्रस्ताव 991

निन्दा प्रस्ताव 993

अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के संबंध में निर्बन्धन 993

सभा की अनुमति 994

प्रस्ताव पर चर्चा और उसकी व्याप्ति 997

त्यागपत्र देने वाले मंत्री का वक्तव्य 1000

वक्तव्य पर चर्चा न होना 1003

मंत्री और संसद 1003

मंत्री को पद तथा गोपनीयता की शपथ और सूचना का प्रकटीकरण 1004

विश्वास प्रस्ताव 1004

लोकसभा में प्रस्तुत दौरान विश्वास प्रस्ताव और अविश्वास प्रस्ताव 1005

अध्याय 29

वित्तीय विषयों के संबंध में प्रक्रिया 1007

बजट प्रस्तुत किया जाना 1007

बजट पत्रों का वितरण 1014

बजट का समय से पूर्व पता चल जाना: विशेषाधिकार का प्रश्न 1015

बजट पर चर्चा 1016

चर्चा के लिए समय का नियतन 1016

बजट पर सामान्य चर्चा 1019

विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों द्वारा अनुदानों की मांगों पर विचार किया जाना 1020

अनुदानों की मांगों पर चर्चा 1022

अनुदानों की मांगे प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया 1024

अनुदानों की मांगों पर चर्चा की व्याप्ति 1025

गिलोटिन 1025

कटौती प्रस्ताव 1028

नीति निरनुमोदन कटौती 1028

मितव्ययिता कटौती 1028

सांकेतिक कटौती 1029

कटौती प्रस्तावों की ग्राह्यता 1029

कटौती प्रस्तावों की सूचियों का परिचालन 1032

कटौती प्रस्तावों के पेश किये जाने की प्रक्रिया 1033

कटौती प्रस्ताव किसी और के द्वारा पेश नही किया जा सकता 1035

मंत्रालयों के वार्षिक प्रतिवेदनों और कार्य-निष्पादन/परिणामी बजटों का परिचालन 1036

लेखानुदान 1037

अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान 1040

अनुदानों की मांगों की पुस्तिकाएं 1041

अनुपूरक या अधिक मांगों पर चर्चा 1041

अनुपूरक या अधिक मांगों पर कटौती प्रस्ताव 1043

सांकेतिक अनुदान 1043

विनियोग विधेयक 1043

चर्चा की व्याप्ति 1045

संशोधन 1046

वित्त विधेयक 1047

चर्चा की व्याप्ति 1049

अध्याय 30

संसदीय समितियां **1052**

(क) समितियों के संबंध में सामान्य जानकारी 1052

लोक सभा की समितियां 1054

संयुक्त समिति का गठन 1059

समितियों में सदस्यों की नियुक्ति 1059

सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के फलस्वरूप नियुक्त की गयी समितियां 1060

सभा द्वारा निर्वाचित समितियां 1060

अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट समितियां 1062

समितियों में आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना 1063

कार्यकाल 1063

अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट समितियां 1063

सभा द्वारा निर्वाचित समितियां 1064

किसी प्रस्ताव या संकल्प के द्वारा नियुक्त/निर्वाचित समितियां 1065

संविधि के अंतर्गत नियुक्त समितियां 1065

अन्य समितियां 1065

समिति की सदस्यता पर आपत्ति 1066

प्राक्कलन समिति अथवा लोक लेखा समिति अथवा सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति और सरकारी समितियों की सदस्यता 1067

समिति से पदत्याग और स्थानों की रिक्ति 1069

अन्य निकायों की सदस्यता से त्यागपत्र 1071

समितियों की शक्तियां 1071

उप-समितियां नियुक्त करने की शक्ति 1072

साक्ष्य लेने या दस्तावेज मंगाने की शक्ति 1073

व्यक्तियों को बुलाने और पत्रों तथा रिकार्ड मंगाने की शक्ति 1074

विशेष प्रतिवेदन देने की शक्ति 1074

प्रक्रिया संबंधी विषय पर संकल्प पारित करने की शक्ति 1074

विस्तृत नियम बनाने की शक्ति 1074

समितियों की बैठकें 1075
समितियों की बैठकों को रद्द किया जाना 1076
बैठकों का स्थान 1076
गणपूर्ति 1077
अजनबियों का प्रवेश 1079
समिति की बैठकों में गैर-सदस्यों का प्रवेश 1080
समितियों की कार्यवाही 1082
साक्ष्य 1083
साक्षियों को बुलाने की प्रक्रिया 1088
साक्षियों का साक्ष्य लेने की प्रक्रिया 1089
साक्ष्य का शब्दश: रिकार्ड 1090
समिति को दिए गये गुप्त या गोपनीय दस्तावेजों को
उद्धृत न किया जाना 1091
सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने से पहले
साक्ष्य के प्रकाशन का निषेध 1091
साक्ष्य का सभापटल पर रखा जाना 1093
सभा के सदस्यों को साक्ष्य का परिचालन 1095
उप-समितियां 1096
समिति के निर्णयों का रिकार्ड 1097
बैठकों के कार्यवाही सारांश 1097
समितियों के प्रतिवेदन 1099
प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय-सीमा 1099
प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय का बढ़ाया जाना 1100
प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करना और उसका
परिचालन 1101
समिति द्वारा प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार और उसे
स्वीकार किया जाना 1102
कार्यवाही सारांश/विमत टिप्पण 1103
प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत करने से पहले सरकार को
उपलब्ध कराना 1104
सभा या अध्यक्ष को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाना 1105
समितियों के प्रतिवेदन और सभा 1106
प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा नहीं होती 1106

प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा होती है 1107
प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा होती है और उन्हें स्वीकार किया जाता है 1107
ऐसे प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा हो भी सकती है और नहीं भी 1108
किसी समिति और सरकार के बीच असहमति 1108
प्रतिवेदनों का मुद्रण तथा प्रकाशन 1109
प्रतिवेदनों का परिचालन 1109
समितियों के पास लम्बित कार्य पर सत्रावसान का प्रभाव 1110
समितियों का अपूर्ण कार्य 1111
(ख) अलग-अलग समितियां 1113
कार्य मंत्रणा समिति 1113
कृत्य 1114
कार्यकरण की पद्धति 1117
प्रतिवेदन तथा कार्यवाही सारांश 1119
गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति 1124
कृत्य 1125
विधेयकों का वर्गीकरण 1125
संविधान का संशोधन करने के उद्देश्य से रखे गये विधेयकों की जांच 1128
विधेयकों तथा संकल्पों के लिए समय का नियतन 1129
बैठकें बुलाने की प्रक्रिया 1129
कार्यवाही-सारांश 1131
प्रतिवेदन 1131
विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां 1132
प्रवर समिति की सदस्यता 1133
संयुक्त समिति की सदस्यता 1134
प्रवर या संयुक्त समितियों के सदस्य 1136
प्रवर या संयुक्त समिति में और सदस्यों का शामिल किया जाना 1137

प्रवर या संयुक्त समिति में आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना 1138

कार्यकाल 1138

सभापति के कर्तव्य, शक्तियां आदि 1139

प्रवर या संयुक्त समिति के कृत्य 1139

प्रवर या संयुक्त समिति के समक्ष मौखिक और लिखित साक्ष्य 1140

संशोधन 1145

विचार-विमर्श तथा जांच की परिधि 1147

प्रतिवेदन का स्वरूप और विषयवस्तु 1150

- प्रारूप प्रतिवेदन तथा समिति द्वारा यथासंशोधित विधेयक पर विचार 1151

विमत टिप्पण और टिप्पणियां 1152

प्रतिवेदन का सभा में प्रस्तुत किया जाना 1154

- प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय का बढ़ाया जाना 1154
- प्रतिवेदन का मुद्रण तथा उसकी प्रतियों का वितरण 1156

सभापटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति 1156

- संरचना और कार्यकाल 1157
- कार्य क्षेत्र और कृत्य 1157
- कार्य संचालन प्रक्रिया 1157

याचिका समिति 1159

- कृत्य 1160
- बैठकें 1161

प्रतिवेदन की विषयवस्तु 1163

सिफारिशों का स्वरूप 1164

- सिफारिशों के कार्यान्वयन हेतु कार्यवाही 1165

समिति को अभ्यावेदन 1165

लोक लेखा समिति 1166

- संरचना 1167
  - कृत्य 1169

अतिरिक्त व्यय 1170

जांच का स्वरूप और व्याप्ति 1171

राजस्व संबंधी मामलों की जांच 1173

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों की संसद में प्रस्तुतीकरण से पूर्व स्वतं जांच 1173

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों में शामिल नहीं किए गए मामलों की जांच 1173

समिति को भेजे गए मामलों की जांच 1175

न्यायालय में लम्बित मामलों की जांच 1176

लेखा-परीक्षा प्रतिवेदनों पर विचार और पैराओं का चयन 1176

उप-समितियां और कार्य दल 1177

मौके पर जाकर अध्ययन करने वाला दल 1178

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक 1179

समिति की बैठकें 1180

साक्ष्य 1180

निजी कम्पनियों, गैर-सरकारी निकायों आदि के प्रतिनिधियों का साक्ष्य 1181

प्रतिवेदन का तैयार और प्रस्तुत किया जाना 1181

सिफारिशों का कार्यान्वयन 1182

सरकार और समिति के बीच असहमति की स्थिति में प्रक्रिया 1183

प्रतिवेदन पर चर्चा 1184

प्राक्कलन समिति 1185

संरचना 1187

कृत्य 1188

"भारित" मदों की जांच 1190

विशेष रुचि के मामलों की जांच 1190

उप-समितियों/अध्ययन दलों का गठन 1192

समिति द्वारा अध्ययन दौरे 1193

समिति को सहायता 1193

साक्ष्य 1194

सरकारी साक्षियों का बुलाया जाना 1194

गैर-सरकारी साक्षियों का साक्ष्य 1195

निजी कम्पनियों तथा गैर-सरकारी निकायों आदि के प्रतिनिधियों का साक्ष्य 1195

मौखिक साक्ष्य के लिए मुद्दों/प्रश्नों की सूची 1196

कार्यवाही सारांश 1196

विमत टिप्पण रिकार्ड किया जाना 1196

प्रतिवेदन तैयार किया जाना 1196

प्रतिवेदनों के तथ्यों का सत्यापन 1197

समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा 1197

सिफारिशों का कार्यान्वयन 1198

की गई कार्यवाही संबंधी विवरणों को सभापटल पर रखना 1199

समिति की सिफारिशों के अनुसरण में नियुक्त की गई सरकारी समिति का प्रतिवेदन 1199

सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति 1199

संरचना 1201

आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना 1202

कृत्य 1202

समिति की कार्य प्रणाली 1204

सरकारी उपक्रमों का समस्तरीय अध्ययन 1205

अध्ययन दल/उप-समितियां 1205

अध्ययन दौरे 1205

साक्ष्य 1206

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से सहायता 1206

प्रतिवेदन तैयार करना और उसे प्रस्तुत करना 1207

बैठकों का कार्यवाही सारांश 1208

सिफारिशों का कार्यान्वयन 1208

विशेषाधिकार समिति 1209

कृत्य 1209

प्रतिवेदन पर विचार किया जाना 1214

अधीनस्थ विधान संबंधी समिति 1216

संरचना 1216

कृत्य 1217

विचार-विमर्श तथा जांच की व्याप्ति	1219
कार्य प्रणाली	1224
अधिकारियों का साक्ष्य	1225
अध्ययन दौरे	1225
प्रतिवेदन का प्रस्तुत किया जाना	1226
सिफारिशों का कार्यान्वयन	1227
सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति	1228
कृत्य	1228
आश्वासनों का कार्यान्वयन	1229
अध्ययन दौरे	1232
साक्ष्य	1233
प्रतिवेदन तैयार और प्रस्तुत किया जाना	1233
कार्यवाही-सारांश का सभापटल पर रखा जाना	1233
सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति	1233
कृत्य	1234
समिति की कार्यवाही	1236
कार्यवाही सारांश	1238
प्रतिवेदन का स्वरूप और विषय-वस्तु	1238
नियम समिति	1239
कृत्य	1240
नियमों में संशोधनों की प्रक्रिया	1241
सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति	1242
सिफारिशों का कार्यान्वयन	1246
आवास समिति	1246
ग्रंथालय समिति	1248
संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति	1249
लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति	1250
कार्य प्रक्रिया	1252
अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति	1253
संरचना	1254
कृत्य	1254
समिति की कार्य-प्रणाली	1256

विषयों का चयन	1256
उप-समितियां/अध्ययन दल	1256
अभ्यावेदन	1257
तत्स्थानिक अध्ययन दौरे	1257
साक्ष्य	1257
प्रतिवेदन तैयार और प्रस्तुत किया जाना	1257
बैठकों के कार्यवाही-सारांश	1258
समिति कार्य का प्रभाव	1258
महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति	1258
संरचना	1259
कृत्य	1259
समिति की कार्य प्रणाली	1259
रेल अभिसमय समिति	1260
1949 का अभिसमय-प्रथम स्वातंत्र्योत्तर अभिसमय	1265
संरचना	1267
कार्यकाल	1267
कृत्य	1267
अन्य विषयों की जांच	1268
लाभांश-दर	1268
प्रतिवदेन पर विचार	1269
संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति (लोक सभा)	1269
(ग) विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियां	1269
स्थायी समितियों का विकास और गठन	1269
स्थायी समितियों को शासित करने वाले नियम	1273
संरचना	1273
सभापति की नियुक्ति	1273
मंत्री समिति का सदस्य नहीं होगा	1274
कार्यकाल	1274
कृत्य	1274
अनुदानों की मांगों पर विचार करने संबंधी प्रक्रिया	1274
विधेयकों पर विचार किए जाने से संबंधित प्रक्रिया	1275
वार्षिक प्रतिवेदनों की जांच	1275

उप-समितियों/अध्ययन दलों की नियुक्ति 1276
विषयों की जांच की प्रक्रिया 1276
विशेषज्ञों/तकनीकी विशेषज्ञों/परामर्शदाताओं इत्यादि का सहयोग 1276
प्रतिवेदन और कार्यवाही सारांश 1276
की-गई-कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन 1276
समिति के प्रतिवेदनों पर मंत्री द्वारा वक्तव्य 1277
(घ) संसदीय समितियों से भिन्न समितियां जिनमें
सदस्यों का प्रतिनिधित्व था/है 1277
विधायी निकायों की स्थायी समितियां 1277
स्थायी वित्त समिति 1277
अन्य स्थायी समितियां 1278
परामर्शदात्री समितियां 1280
सरकारी समितियां 1283

अध्याय 31

संसदीय मंच **1285**
उद्देश्य 1286
संरचना 1286
विशेषज्ञों का सहयोजन 1287
कार्यकाल 1287
आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना 1287
संसदीय मंचों की बैठकें 1287
जल संरक्षण एवं प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच 1287
संसदीय युवा मंच 1289
संसदीय बाल मंच 1291
जनसंख्या और जनस्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच 1293
भूमंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच 1295
आपदा प्रबन्धन संबंधी संसदीय मंच 1297
शिल्पकार और दस्तकार संबंधी संसदीय मंच 1298
सहस्राब्दि विकास लक्ष्य संबंधी संसदीय मंच 1299
संसदीय समितियों और संसदीय मंचों के बीच अन्तर 1300

अध्याय 32

सामान्य प्रक्रिया नियम **1301**

सूचनाएं 1301

सम्भाव्य सूचनाएं 1305

सूचनाओं में संशोधन 1306

प्रस्ताव को नियम-विरुद्ध ठहराने की अध्यक्ष की शक्ति 1307

चर्चा की प्रत्याशा 1307

सूचनाओं का व्यपगत होना 1308

राष्ट्रपति की सिफारिश 1309

विधेयकों पर सिफारिशों का मुद्रण 1311

सदस्यों को भाषण देने के लिए बुलाये जाने की विधि 1311

भाषण के लिए बुलाये जाने वाले सदस्यों के क्रम का चयन 1312

सभा को सम्बोधित करने की विधि 1315

भाषण के समय पालन किए जाने वाले नियम 1315

न्याय-निर्णयाधीन विषयों पर चर्चा 1316

सदस्य का किसी राज्य में मंत्री नियुक्त किया जाना 1316

किसी व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाया जाना 1317

भाषणों का क्रम और उत्तर देने का अधिकार 1323

अध्यक्ष द्वारा सम्बोधन 1326

समापन 1326

वाद-विवाद की परिसीमा 1328

विनिश्चय के लिये प्रश्न 1328

मत विभाजन 1329

मत विभाजन घंटियों का बजना 1332

मत विभाजन के दौरान भाषणों का न दिया जाना 1333

मत विभाजन की अनुमति न देने का अध्यक्ष का विवेकाधिकार 1333

स्वचालित मतदान अंकन यंत्र द्वारा मत विभाजन 1334

"हां", "ना" और "किसी भी पक्ष में मतदान न देने" वाली पर्चियों द्वारा मत विभाजन 1338

लॉबियों में जाकर मत विभाजन 1338

मत विभाजन में अनियमितताएं 1339

विभाजन संख्यायें आबंटित न होने की स्थिति में मत विभाजन 1340

मत विभाजन सूचियां 1340

उपाध्यक्ष और सभापति तालिका के सदस्यों द्वारा मतदान 1340

निर्णायक मत 1341

व्यवस्था बनाये रखना 1342

व्यवस्था का प्रश्न 1343

नियम 377 के अधीन लोक महत्व के मामलें उठाया जाना 1348

सूचना देने का समय 1350

सूचनाओं की वैधता 1350

ग्राह्यता की शर्तें 1351

मामला उठाये जाने का समय 1351

मामले उठाने की सीमा 1352

सभा पटल पर रखा गया माना जाना 1352

'प्रश्न-काल' के पश्चात्, अर्थात् 'शून्य काल' के दौरान उठाए जाने वाले अविलंबनीय लोक महत्व के मामले 1353

'शून्य काल' शब्द का उद्भव 1354

प्रक्रियात्मक विनिमयों का क्रमिक विकास 1355

वर्तमान परिदृश्य 1356

निवेदन 1357

नियमों का निलम्बन 1358

सभा में मंत्रियों की उपस्थिति 1361

अध्यक्ष की अवशिष्ट और अन्तर्निहित शक्तियां 1362

अध्याय 33

लोक सभा में अजनबियों का प्रवेश **1365**

लोक सभा दीर्घाएं 1368

लॉबी 1373

केन्द्रीय कक्ष और उसकी दीर्घाएं 1373

लोक सभा में अन्तरसत्रावधि में दर्शकों का प्रवेश 1374

अध्याय 34

याचिकायें और अभ्यावेदन **1375**

याचिकायें 1375

याचिकाओं की व्याप्ति 1375
याचिका संबंधी आवश्यक बातें 1377
याचिकाओं की ग्राह्यता 1379
सभा में याचिकाओं का प्रस्तुतीकरण 1381
सूचना की आवश्यकतायें और प्रस्तुतीकरण की विधि 1381
महासचिव द्वारा याचिकाओं के बारे में सूचना दिया जाना 1383
प्रस्तुतीकरण के बाद याचिकाओं का याचिका
समिति को सौंपा गया माना जाना 1383
प्रवर/संयुक्त समिति के समक्ष लम्बित
विधेयकों पर याचिकाएं 1384
अभ्यावेदन 1385

अध्याय 35

सभा पटल पर रखे गए पत्र और पत्रों की अभिरक्षा 1388
सभा पटल पर रखे गए पत्र 1388
संविधान के अंतर्गत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र 1389
संविधियों के अंतर्गत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र 1389
प्रक्रिया नियमों के अंतर्गत सभा पटल पर
रखे जाने वाले पत्र 1391
अध्यक्ष के निदेशों के अंतर्गत सभा पटल पर रखे
जाने वाले पत्र 1392
उद्धृत पत्रों का सभा पटल पर रखा जाना 1393
मंत्रियों के बीच पत्र-व्यवहार 1395
सदस्यों का गुप्त दस्तावेजों से उद्धृत करने का अधिकार 1397
पत्रों को सभा पटल पर रखने के लिए अध्यक्ष की अनुमति 1401
पत्र को सभा पटल पर रखने की सक्षमता 1401
सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्रों का अधिप्रमाणीकरण 1403
पत्रों को सभा पटल पर रखने की प्रक्रिया 1404
सरकार द्वारा सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र 1404
सदस्यों द्वारा सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र 1406
सभा पटल पर रखे गये पत्रों का परिचालन 1409
पत्रों को पुनः सभा पटल पर रखा जाना 1411
संवेदनशील अधिसूचनाओं का सभा पटल पर रखा जाना 1414

सभा पटल पर रखे गये पत्रों में शुद्धियां 1415
सभा पटल पर रखे गए पत्रों का वापस लिया जाना 1415
सभा पटल पर पत्र रखने के परिणाम 1416
पत्रों की अभिरक्षा 1417
सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति 1421

अध्याय 36

लोक सभा में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं 1422
सभा में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं 1422
संसदीय समितियों में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं 1424
कार्यवाही का साथ-साथ भाषांतरण 1425

अध्याय 37

सभा, संसदीय समितियों और संसदीय समारोहों की कार्यवाहियों का अधिकृत वृत्तांत तैयार करना 1427
सभा में कार्यवाही वृत्तान्त की रिपोर्टिंग 1427
सदस्यों द्वारा पुष्टि 1430
गुप्त बैठकों की कार्यवाही 1431
संसदीय समितियों की कार्यवाही की रिपोर्टिंग 1431
सम्मेलनों, विचार गोष्ठियों, कार्यशालाओं, व्याख्यानों, आदि की रिपोर्टिंग 1432

अध्याय 38

सभा अथवा उसकी समितियों के कार्यवाही-वृत्तांत से शब्दों का निकाला जाना 1433
कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गए शब्दों के सम्बन्ध में संकेत 1438
कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गए शब्दों के बारे में प्रेस को सूचना 1439
कार्यवाही के सीधे प्रसारण के समय शब्दों के निकाले जाने का प्रभाव 1439
कार्यवाही वृत्तांत से शब्दों के निकाले जाने के बारे में कानूनी प्रभाव 1439
वीडियो द्वारा रिकार्ड की गई सभा की कार्यवाहियों से अंशों का निकाला जाना 1439
संसदीय समितियों के कार्यवाही-वृत्तांत से शब्दों का निकाला जाना 1440

अध्याय 39

संसदीय पत्रों का मुद्रण तथा प्रकाशन **1441**

वाद-विवाद 1442

वाद-विवाद की अनुक्रमणिकाएं 1444

वाद-विवाद का सारांश 1445

विधेयक 1445

प्रवर/संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन 1447

संसदीय प्रकाशनों/स्मारिकाओं की बिक्री 1447

अध्याय 40

लोक सभा का सचिवालय और बजट **1449**

सचिवालय 1449

सेवा की शर्तें और भर्ती नियम 1452

वेतन आयोग की सिफारिशों का अनुकूलन 1453

वेतन पुनरीक्षण और पुनर्गठन के लिए पहली संसदीय समिति 1453

चौथे केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप वेतन पुनरीक्षण के लिए दूसरी संसदीय समिति 1454

पांचवें केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप वेतन पुनरीक्षण के लिए तीसरी संसदीय समिति 1455

छठे केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप वेतन ढांचे के पुनरीक्षण के लिए चौथी संसदीय समिति 1455

कार्यात्मक आधार पर मोटे तौर पर कार्य का विभाजन 1456

दोनों सचिवालयों में संयुक्त भर्ती 1458

कर्मचारी कल्याण 1458

लोक सभा सचिवालय का कार्यकरण 1459

सूचना का अधिकार अधिनियम का कार्यान्वयन 1459

लोक सभा बजट 1461

वित्तीय स्वायत्तता 1461

एकीकृत वित्त एकक 1465
वित्त पर निगरानी 1465
निधियों के आहरण की विधि 1466
आदेशों का अधिप्रमाणीकरण 1466
जवाबदेही और लेखापरीक्षा 1466
एकीकृत वित्त एकक तथा वित्तीय सलाहकार 1466
कम्प्यूटरीकरण और कम्प्यूटर प्रबंधन 1467
ग्रंथालय में कम्प्यूटरीकरण 1467
ग्रंथालय संबंधी डाटाबेस 1467
वेबसाइट्स 1468
संसद सदस्यों को कम्प्यूटर सुविधाएं 1471
कम्प्यूटरों की खरीद और रखरखाव 1472

अध्याय 41

संसद सम्पदा **1474**
संसद भवन 1474
केन्द्रीय कक्ष 1476
लोक सभा कक्ष 1478
कार्यवाही का प्रसारण 1481
सभा कक्ष के उपयोग पर निर्बन्धन 1481
सदस्यों की लॉबी 1482
दीर्घाएं 1483
राज्य सभा कक्ष 1484
ग्रंथालय कक्ष 1485
समिति कक्ष 1485
मंत्रियों के कक्ष 1485
मंत्रिमंडल कक्ष 1486
दलों के कार्यालयों के कक्ष 1486
संसदीय सौध 1486
संसदीय ज्ञानपीठ 1487
संसद सदस्य अध्ययन कक्ष 1490
ग्रंथालय 1490

जी.एम.सी. बालयोगी सभागार 1490
अन्य प्रदत्त सुविधाएं 1491
स्वागत कार्यालय 1491
विद्युत उपकेन्द्र 1491
सदस्यों की आगन्तुकों से भेंट की व्यवस्था 1492
संसद भवन में सदस्यों के लिए विशेष सुविधाएं 1492
अन्तर-सत्रावधि के दौरान संसद में आगन्तुकों का प्रवेश 1492
सदस्यों के लिए विशेष सेवाएं 1492

अध्याय 42

संसद और राज्य 1493
राज्यपाल 1495
मुख्यमंत्री का चयन 1502
राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त मंत्रिपरिषद का कार्यकाल 1503
विधान सभा को आहूत किया जाना 1503
विधान सभा का सत्रावसान 1504
विधान सभा का विघटन 1504
संसद और राज्य के मामले 1505

अध्याय 43

संसद और न्यायपालिका 1512
न्यायाधीशों की नियुक्ति 1513
न्यायाधीशों की सेवा की शर्तें 1516
न्यायाधीशों द्वारा पदत्याग तथा उनको पद से हटाया जाना 1518
न्यायालयों का विधायिका के साथ संबंध 1524
न्यायालय द्वारा संसद की कार्यवाही की जांच न किया जाना 1526
संसद में न्यायाधीशों के आचरण संबंधी प्रश्नों और चर्चा पर निर्बंधन 1527
न्यायाधीन मामलों पर चर्चा 1529
विधायिका और न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों के संवर्धन हेतु उपायों संबंधी पीठासीन अधिकारियों की समिति 1535

पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में स्वीकृत संकल्प 1540

अध्याय 44

संसद और सिविल सेवा **1542**

सिविल सेवा के अधिकारियों की तुलना में मंत्रियों की भूमिका 1545

मंत्रीय दायित्व का सिद्धान्त 1546

संसद की तुलना में सिविल सेवा के कृत्य 1549

संसद सदस्य और सिविल सेवा के अधिकारी 1552

सिविल सेवा के अधिकारी और मताधिकार 1553

अध्याय 45

संसद और प्रेस **1555**

प्रेस की स्वतंत्रता 1556

संसदीय विशेषाधिकार और प्रेस 1557

प्रेस दीर्घा सुविधाएं 1560

संसदीय पत्रों का दिया जाना 1561

प्रेस कक्ष सुविधाएं 1561

प्रेस पुस्तकालय और संदर्भ सुविधाएं 1561

केन्द्रीय कक्ष और लॉबी सुविधाएं 1562

संसदीय ज्ञानपीठ स्थित मीडिया वर्क-स्टेशन 1562

प्रेस विज्ञप्तियों का जारी किया जाना 1562

सरकार के प्रचार संगठनों को सुविधाएं 1563

प्रेस फोटोग्राफरों को सुविधाएं 1563

सम्मेलनों के दौरान उपलब्ध सुविधाएं 1564

टेलीप्रिंटर सेवा 1564

मीडिया कर्मियों के लिए परिचय कार्यक्रम 1564

प्रेस हेतु खानपान सुविधाएं 1564

मीडिया कर्मियों के बच्चों को बाल कक्ष में जाने की अनुमति 1564

अध्याय 46

संसदीय कार्यवाही का टेलीविजन और रेडियो पर प्रसारण **1565**

रेडियो से प्रसारण 1569

कार्यवाही के टेलीविजन प्रसारण के लिए दिशानिर्देश 1569

दिशानिर्देशों का संशोधन	1571
संसद की कार्यवाही की रिकार्डिंग	1572
रोबोट नियंत्रित मल्टी कैमरा प्रणाली	1573
सीधे टेली प्रसारण हेतु पृथक् उपग्रह चैनल	1573
लोक सभा उपग्रह टेलीविजन चैनल एकक (एलएसटीवी)	1573
दृश्य-श्रव्य एकक और टेलीविजन प्रसारण एकक	1575
दृश्य-श्रव्य एकक	1575
ऑडियो कैसेट	1576
वीडियो कैसेट	1577
राज्य सभा की कार्यवाही की वीसीडी	1577
टेलीविजन प्रसारण एकक	1577
लोक सभा की कार्यवाही की वीडियो कैसेटों की आपूर्ति	1578

अध्याय 47

अन्तरसंसदीय संबंध और आदान-प्रदान	**1580**
भारतीय संसदीय ग्रुप	1581
राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ शाखाओं के लिए संसदीय पद्धति और प्रक्रिया संबंधी विचार गोष्ठियां	1583
वार्षिक राष्ट्रमंडल संसदीय संघ	1584
भारतीय क्षेत्र विचारगोष्ठी	1584
राष्ट्रमण्डल संसदों के अध्यक्षों और पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन	1585
सदस्यता	1585
स्थायी समिति	1586
राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ का भारत क्षेत्र	1586
राष्ट्रमंडल महिला सांसदों का भारत क्षेत्र	1587
सार्क देशों के अध्यक्षों और सांसदों का संघ	1587
संसद तथा राज्य विधानमण्डलों के बीच संबंध	1588
विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन	1589
विधायी निकायों के सचिवों का सम्मेलन	1590
संसदीय समितियों के सभापतियों का सम्मेलन	1590
संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो	1592

संसद/राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के लिए
प्रबोधन कार्यक्रम 1593
संसद सदस्यों के लिए व्याख्यान माला 1593
प्रोफेसर हिरेन मुखर्जी स्मारक वार्षिक संसदीय व्याख्यान 1593
संसद/राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के लिए विचार-
गोष्ठियां और कार्यशालाएं 1594
कम्प्यूटर जागरूकता कार्यक्रम 1594
मीडियाकर्मियों के लिये परिचय कार्यक्रम 1594
विदेशी सांसदों हेतु कार्यक्रम 1594
अखिल भारतीय और केंद्रीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन
अधिकारियों तथा सरकारी अधिकारियों हेतु परिबोधन पाठ्यक्रम 1595
संसद और राज्य विधानमंडल के अधिकारियों हेतु
पाठ्यक्रम 1595
अध्ययन दौरे 1595
लोक सभा इंटर्नशिप कार्यक्रम 1596

संदर्भिका 1597

अनुबंध 1617

(गैर-सरकारी सदस्यों के अधिनियमित विधेयकों के ब्यौरे दर्शाने वाला वितरण)

केस अनुक्रमणिका 1621

विषय अनुक्रमाणिका 1633

संक्षेपाक्षर सूची

ए.ए.एस.ए.ए./अ.अ.आ.छा.सं.	:	अखिल असम आदिवासी छात्र संघ
ए.बी.एच.एम.एस./अ.भा.हि.म.स.	:	अखिल भारतीय हिन्दू महा सभा
ए.बी.टी.एल.सी./अ.भा.लो.को.	:	अखिल भारतीय लोकतांत्रिक कांग्रेस
ए.सी./अ.कां.	:	अरूणाचल कांग्रेस
ए.जी.पी./अ.ग.प.	:	असम गण परिषद
ए.आई.ए.डी.एम.के./अ.भा.अ.द्र.मु.क.	:	अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम
ए.आई.सी.सी./अ.भा.कां.क.	:	अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी
ए.आई.एफ.बी./अ.इं.फा.ब्लॉक	:	ऑल इंडिया फावर्ड ब्लॉक
ए.आई.आई.सी.(एस)/अ.भा.इं.कां. (से.)	:	अखिल भारतीय इंदिरा कांग्रेस (सेक्यूलर)
ए.आई.आई.सी.(टी)/अ.भा.इं.कां. (ति.)	:	अखिल भारतीय इंदिरा कांग्रेस (तिवारी)
ए.आई.एम.ई.आई.एम./आ.इ.म.मु.	:	ऑल इंडिया मजलिस-ए-(इत्तेहादुल) मुसलमीन
ए.आई.आर./आ.इ.रि.	:	ऑल इंडिया रिपोर्टर
ए.आई.आर.	:	आकाशवाणी
ए.आई.आर.जे.पी./अ.भा.रा.ज.पा.	:	अखिल भारतीय राष्ट्रीय जनता पार्टी
ए.आई.टी.सी./अ.भा.तृ.कां.	:	अखिल भारतीय तृषमूल कांग्रेस
अब्राहम एण्ड हात्रे	:	पालियामेंट्री डिक्शनरी: एल.ए.अब्राहम और एस.सी.हात्रे (1956 संस्करण)
ए.एल.जे.	:	इलाहाबाद लॉ जर्नल
ए.पी.एल.सी.	:	आंध्र प्रदेश विधान परिषद
ए.एस.डी.सी.	:	स्वायत्त राज्य माँग समिति
ए.यू.डी.एफ.	:	असम युनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट
ए.वी.आर	:	ऑटोमेटिक वोट रिकार्डर
बी.ए.सी.	:	कार्य मंत्रणा समिति
बी एण्ड पी	:	बजट और भुगतान शाखा
बी.जे.डी./बी.ज.द.	:	बीजू जनता दल
बी.जे.पी./भा.ज.पा.	:	भारतीय जनता पार्टी
बी.के.डी./ब.कि.द.	:	बहुजन किसान दल
बी.एन.पी./भा.न.पा.	:	भारतीय नवशक्ति पार्टी
बी.पी.एफ./बो.पी.फ्रं.	:	बोडोलैंड पीपल्ज फ्रंट
बी.पी.एस.टी./सं.अ.प्र.ब्यूरो	:	संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो
बी.एस.एन.एल./भा.सं.नि.लि.	:	भारत संचार निगम लिमिटेड
बी.एस.पी./ब.स.पा.	:	बहुजन समाज पार्टी

बी.वी.ए./ब.वि.अ.	:	बहुजन विकास अघाड़ी
सी.ए.डी./सी.ए.डिबेट	:	भारत की संविधान सभा के वाद-विवाद
सी.ए. (लेजि.) डिबेट	:	भारत की संविधान सभा (विधायी) के वाद-विवाद
सी.ए.जी.	:	नियंत्रक और महालेखा परीक्षक
सी.ए.एम.	:	सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति
सी.ए.पी.आई.ओ.	:	केन्द्रीय सहायक जन सूचना अधिकारी
सी.ए.आर.	:	कम्प्यूटर असिस्टिंड रिट्रीवल
सी.ए.टी.	:	केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण
सी.सी.टी.वी.	:	क्लोज सर्किट टेलीविजन
सी.एफ.	:	कम्पेयर
सी.जी.ए.	:	सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति
सी.जी.एच.एस./के.स.स्वा.यो.	:	केन्द्र सरकार स्वास्थ्य योजना
'चोगम'	:	राष्ट्रमंडल देशों के शासनाध्यक्षों की बैठक
सी.आई.सी.	:	केंद्रीय सूचना आयुक्त
सी.जे.	:	जर्नल्स ऑफ हाउस ऑफ कार्मस, यू.के. (उसके बाद सत्र वर्ष दिया गया है/दिए गए हैं) मुख्य न्यायाधीश (संदर्भानुसार)
सी.एल.आर.	:	कॉमनवेल्थ लॉ रिपोर्ट्स
सी.एम.सी.	:	कम्प्यूटर मेंटेनेंस कॉर्पोरेशन
सी.पी.	:	याचिका समिति
सी.पी.ए.	:	राष्ट्रमंडल संसदीय संघ
सी.पी.बी.आर.	:	गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति
सी.पी.सी	:	सिविल प्रक्रिया संहिता
सी.पी.आई./भा.क.पा.	:	भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी
सी.पी.आई.सी.	:	केंद्रीकृत पास निर्गम प्रकोष्ठ
सी.पी.आई.(एम)/भा.क.पा.(मा.)	:	भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)
सी.पी.आई.(एम.एल)/भा.क.पा.(मा.ले)	:	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी)
सी.पी.आई.ओ.	:	केंद्रीय जन सूचना अधिकारी
सी.पी.एल.टी.	:	सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति
सी.पी.आर.	:	विशेषाधिकार समिति
सी.पी.यू.	:	सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति
के.लो.नि.वि.	:	केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग
सी.एस.डिबेट्स	:	काउंसिल ऑफ स्टेट डिबेट्स (अवधि के अनुसार)
सी.एस.एल.	:	अधीनस्थ विधान संबंधी समिति
सी.डब्ल्यू एन.	:	कलकत्ता वीकली नोट्स
कैम्पियन	:	'एन इंट्रोडक्शन टु द प्रोसिजर ऑफ द हाउस ऑफ कॉमन्ज'

		(तृतीय संस्करण) लेखक सर गिल्बर्ट कैम्पियन।
कॉर एण्ड एम.	:	कैरिंगटन एंड मार्शमैन की रिपोर्ट, निसि प्रिअ‍ॅस, 1841–1842
कां.(एस.)	:	कांग्रेस (सोशलिस्ट)
कां. (यू)	:	कांग्रेस (अर्स)
सी.आर.पी.सी./(दं.प्र.सं.)	:	दंड प्रक्रिया संहिता
निदेश	:	'लोक सभा के प्रक्रिया नियम के अंतर्गत अध्यक्ष के निदेश (आठवां संस्करण)
डी.एम.के./द्र.मु.क.	:	द्रविड मुनेत्र कषगम
अ.शा.	:	अर्ध–शासकीय
डी.ओ.डी.	:	डॉडस पार्लियामेंट्री कम्पेनियन
डी.पी.ए.	:	संसदीय कार्य मंत्रालय/विभाग
डी.आर.एस.सी.	:	विभागों से संबद्ध स्थायी समितियाँ
डी.वी.डी.	:	डिजिटल वर्सेटाइल डिस्क
ईस्ट	:	ईस्टस रिपोर्टस, किंग्स बेंच, 1800–1812
ई.सी./प्राक्क.स.	:	प्राक्कलन समिति
ई.एल.आर.	:	इलेक्शन लॉ रिपोर्ट्स
एक्स ()	:	असाधारण (इसके बाद कोष्ठक में भाग और खंड सं और तारीख दी गई है)
एफ.बी.	:	फुल बैंच (पूर्ण पीठ)
जी.एन.एल.एफ.	:	गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट
जी.पी.सी.	:	सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति
एच.सी.	:	हॉउस कमेटी/हॉउस ऑफ कॉर्मस यू.के. हाई कोर्ट (संदर्भानुसार)
एच.सी.डिबेट्स	:	हॉउस ऑफ कॉमस डिबेट्स, यू.के. (उसके पहले भाग सं. तथा बाद में तारीख व कॉलम सं. दी गई है)
एच.एल.डिबेट्स	:	हॉउस ऑफ लॉडर्स डिबेट्स, यू.के.
एच.पी.	:	हॉउस ऑफ द पीपुल
एच.पी.डिबेट्स	:	हॉउस ऑफ द पीपुल डिबेट्स (उसके बाद कोष्ठक में भाग सं. तथा बाद में तारीख, पृ.सृ. अथवा कॉलम सं. दी गई है।
एच.जे.सी.(बी.एल.)/ह.ज.कां. (भजन लाल)	:	हरियाणा जनहित कांग्रेस (भजन लाल)
एच.वी.सी./हि.वि.कां.	:	हिमाचल विकास कांग्रेस
एच.वी.पी./हि.वि.पा.	:	हिमाचल विकास पार्टी
एच डब्ल्यू और एस डबल्यू	:	हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर
आई.सी. (एस.सी.एस.)	:	भारतीय कांग्रेस (समाजवादी–शरत चन्द्र सिन्हा)
आई.सी.एस.	:	इंडियन सिविल सर्विस
आई.एफ.एस.	:	इंडियन फॉरेन सर्विस (भारतीय विदेश सेवा)
आई.एफ.यू.	:	इंटीग्रेटेड फाइनेंस यूनिट (एकीकृत वित्त एकक)

आई.एल.आर.	:	इंडियन लॉ रिपोर्ट्स
आई.एन.सी./भा.रा.कां.	:	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
आई.एन.एल.डी./इं.ने.लो.द.	:	इंडियन नेशनल लोक दल
आई.ओ.	:	इंस्ट्रक्शनल ऑर्डर
आई.पी.एफ.	:	इंडियन पीपल्स फ्रंट
आई.पी.जी./भा.सं.ग्रुप	:	भारतीय संसदीय ग्रुप
आई.पी.यू./अं.सं.सं.	:	अंतर-संसदीय संघ
आई.आर.	:	इंटरनल रूल्स (आंतरिक नियम) (उसके बाद कोष्ठक में समिति को नाम दिया गया है)
जे.सी.ओ.पी.	:	लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति
जे.डी.(जी)/ज.द.(गु.)	:	जनता दल (गुजरात)
जे.डी.(एस)/ज.द.(से.)	:	जनता दल (सेक्युलर)
जे.डी.(यू)/ज.द.(यू.)	:	जनता दल (युनाइटेड)
जे.एण्ड.के.एन.सी./ज.क.ने.कां.	:	जम्मू एंड कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस
जे.एण्ड.के.पी.डी.पी.	:	जम्मू एंड कश्मीर पीपल्ज डेमोक्रेटिक पार्टी
जे.एम.एम./झा.मु.मो.	:	झारखंड मुक्ति मोर्चा
जे.पी.सी.	:	संयुक्त संसदीय समिति
जे.पी./ज.पा.	:	जनता पार्टी
जे.पी.आई.	:	जर्नल ऑफ पार्लियामेंटरी इन्फॉर्मेशन (लोक सभा सचिवालय)
जे.एस.ए.	:	संसद सदस्यों के वेतन और भत्तों संबंधी संयुक्त समिति
जे.एस.एच.पार्ल.डिबे.	:	संसद के सदनों की संयुक्त बैठक-डिबे.
जे.वी.एम.(पी.)/झा.वि.मो.	:	झारखंड विकास मोर्चा (प्रजातांत्रिक)
के.बी.	:	लॉ रिपोर्ट्स, किंग्स बेंच डिवीजन
के.सी.(एम)/के.का.(मा.)	:	केरल कांग्रेस (मा.)
के.एल.आर.	:	केरल लॉ रिपोर्ट
एल.ए.डिबेट्स	:	सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स
एल.ए.एन.	:	लोकल एरिया नेटवर्क
लार्डिस	:	ग्रंथालय तथा संदर्भ, शोध, प्रलेखन और सूचना सेवा
एल.सी.	:	लेजिस्लेटिव काउंसिल (सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली से पहले)
एल.जे.	:	जर्नल ऑफ द हॉउस ऑफ लॉर्ड्स (उसके बाद सत्र वर्ष दिए गए हैं)
एल.जे.एस.पी./लो.ज.पा.	:	लोक जनशक्ति पार्टी
एल.आर.आयरलैंड	:	लॉ रिपोर्ट्स (आयरलैंड), चांसरी एंड कॉमन लॉ 1877-1893
एल.आर.क्यू.बी.	:	लॉ रिपोर्ट्स, क्वींस बेंच, 1865-1875
लो.स.	:	लोक सभा (पहली दूसरी या तीसरी लोक सभा दर्शाने के

		लिए एक संख्या दी गई है अर्थात् 2 लो.स. का अर्थ है: दूसरी लोक सभा)
एल.एस.डिबेट्स	:	लोक सभा वाद–विवाद (इसके बाद कोष्ठक में जहाँ आवश्यक भाग सं. और तारीख एवं कॉलम सं दी गई है।)
एल.एस.सी./लो.श.पा.	:	लोक शक्ति पार्टी
एल.एस.टी.वी.	:	लोक सभा टेलीविजन
एम एंड एस	:	माले एंड सेटविन्स रिपोटर्स, किंग्स बेंच, 1813–17
एम.डी.एम.के./मा.द्र.मु.क.	:	मारूमलार्ची द्रविड मुनेत्र कषगम
एम.जी.पी./म.गो.पा.	:	महाराष्ट्रवादी गोमान्तक पार्टी
एम.एच.ए.	:	गृह मंत्रालय
एम.आई.पी.	:	महत्वपूर्ण प्रश्नों का ज्ञापन
एम.एल./मु.ली.	:	मुस्लिम लीग
एम.एल.ए.	:	विधान सभा सदस्य
एम.एल.के.एस.सी./मु.ली.के.रा.स.	:	मुस्लिम लीग केरल राज्य समिति
एम.एन.एफ./मि.ने.फ्रं.	:	मिजो नेशनल फ्रंट
एम.पी.	:	मेम्बर ऑफ पार्लियामेंट (संसद सदस्य)
एम.पी.पी./म.पी.पा.	:	मणिपुर पीपुल्स पार्टी
एम.पी.लैड्स	:	संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना।
एम.पी.वी.एस.	:	मध्य प्रदेश विधान सभा
एम.पी.वी.सी./म.प्र.वि.कां.	:	मध्य प्रदेश विकास कांग्रेस
एम.एस.सी.पी.	:	मणिपुर स्टेट कांग्रेस पार्टी
एम.टी.एन.एल.	:	महानगर टेलीफोन निगम लिमिटिड
एम.यू.डी.	:	शहरी विकास मंत्रालय
मे	:	सर टॉमस एरकिन में की संसदीय विधि, विशेषाधिकार में कार्यवाही तथा व्यवहार संबंधी पुस्तक, 21वां संस्करण (जब तक कहीं अन्य उल्लेख न हो)।
मैक्सवेल	:	मैक्सवेल ऑन इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टेच्यूट्स
सदस्य	:	लोक सभा सदस्य, जब तक कि कहीं अन्य उल्लेख न हो
एन.डी.ए./रा.ज.ग.	:	राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन
एन.आई.सी.	:	राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र
एन.आई.ई.एल.आई.टी.	:	राष्ट्रीय इलेक्ट्रानिक और सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान
एन.एल.पी./रा.लो.पा.	:	राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी
एन.पी.सी./ना.पी.पा.	:	नागालैंड पीपुल्स पार्टी
एन.पी.एफ./ना.पी.फ्रं.	:	नागालैंड पीपुल्स फ्रंट
पी.ए.सी.	:	लोक लेखा समिति
पी.ए.आर.एल.आई.एस.	:	संसद ग्रंथालय सूचना प्रणाली
पी.सी.आर.	:	वेतन आयोग की रिपोर्ट
पी.डी.	:	प्रिविलेज डाईजेस्ट

पी.डिबेट्स	:	अंतरिम संसद के वाद-विवाद
पी.आई.बी.	:	प्रेस सूचना ब्यूरो
पी.एम.ए.	:	संसद संग्रहालय और अभिलेखागार
पी.एम.के./प.म.का.	:	पट्टाली मक्कल काटची
पी.एन.पी./पे.व.पा.	:	पेजेन्ट्स एंड वर्कर्स पार्टी
पी.एन.ओ.	:	संसदीय सूचना कार्यालय (लो.स.स.)
पी.एस.पी./प्र.सो.पा.	:	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी
पार्लि. डिबेट्स	:	पार्लियामेंटरी ड्बिेट्स इन इंग्लैंड (1668 से 1740; वॉल्यूम I-XIX और 1892 से 1908; वॉल्यूम I-199)
पार्लि.रजिस्टर	:	पार्लियामेंटरी रजिस्टर ऑफ दि हाउस ऑफ कॉमन्स डिबेट्स फ्रॉम 1774 टु 1794
पार्लि. सेक्रेटेरिएट	:	संसद सचिवालय
सभा परिसर	:	इसमें कक्ष, लॉबियां, दीर्घायें और अन्य ऐसे स्थान शामिल हैं जिन्हें अध्यक्ष समय-समय पर विनिर्दिष्ट करें
क्यू.बी.डी.	:	क्वीन्स बैंच डिवीजन (इंग्लैंड)
आर.	:	रिपोर्ट/प्रतिवेदन (रिपोर्ट) संख्या और उसके पश्चात् समिति और जिस लोक सभा से वे संबंधित हैं कोष्ठक में लिखा रहता है; जैसे 5 आर (सीपीआर-2एलएस) का मतलब है दूसरी लोक सभा का विशेषाधिकार समिति का पांचवां प्रतिवेदन
आर.एंड.सी.एम.	:	भर्त्ती और सेवा-शर्ते आदेश
आर.सी.	:	नियम समिति
आर.सी.सी.	:	रेल अभिसमय समिति
आर.जे.डी./रा.ज.द.	:	राष्ट्रीय जनता दल
आर.एल.डी./रा.लो.द.	:	राष्ट्रीय लोक दल
आर.पी.अधिनियम	:	लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम
आर.पी.आई./भा.रि.पा.	:	भारतीय रिपब्लिकन पार्टी
आर.ओ.	:	रूटीन आर्डर
आर.एस.	:	राज्य सभा
आर.एस.डिबेट्स	:	राज्य सभा डिबेट्स
आर.एस.पी./रि.सो.पा.	:	रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी
आर.टी.आई.	:	सूचना का अधिकार
नियम	:	जब तक कि अन्यथा विनिर्दिष्ट न हो, इसका अर्थ लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (पंद्रहवा संस्करण) है और नियम से इन नियमों में विनिर्दिष्ट नियम अभिप्रेत हैं
रसेल	:	सर एलिसन रसेल की लेजिस्लेटिव ड्राफ्टिंग एण्ड फॉर्म्स, चौथा संस्करण

सार्क	:	दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संघ
एस.ए.डी./शि.अ.द.	:	शिरोमणि अकाली दल
एस.सी.	:	प्रवर समिति/उच्चतम न्यायालय (संदर्भानुसार)
एस.सी.ए.ए.पी.	:	स्पेशल कॉमनवेल्थ अफ्रीका असिस्टेंट प्लान
एस.डी.एफ./सि.डे.फ्रं.	:	सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट
एस.एस.	:	खण्ड, अगर इसके पश्चात् संख्या हो तो खण्ड सं. और अगर सं. पहले हो तो माला; उदाहरणार्थ–एस.56 का अर्थ है खण्ड 56 और 5 एस का अर्थ है, पांचवी माला
एस.सी.सी.	:	सुप्रीम कोर्ट केसेज
एस.सी.जे.	:	सुप्रीम कोर्ट जर्नल
एस.सी.आर.	:	सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स
एस.जे.पी.(आर)/स.ज.पा.	:	समाजवादी जनता पार्टी (राष्ट्रीय)
एस.एम.पी./स.पा.	:	समता पार्टी
एस.पी./सो.पा.	:	सोशालिस्ट पार्टी
एस.क्यू.	:	तारांकित प्रश्न
एस.आर.ओ.	:	सांविधिक नियम और आदेश
एस.एस.	:	शिव सेना
एस.एस.पी./सं.सो.पा.	:	संयुक्त सोशालिस्ट पार्टी
सचिवालय	:	लोक सभा सचिवालय, जब तक कि अन्यथा विनिर्दिष्ट न हो
एस.जी.	:	लोक सभा के सचिव/महासचिव
अध्यक्ष	:	लोक सभा अध्यक्ष, जब तक कि अन्यथा विनिर्दिष्ट न हो, अथवा जब तक संदर्भ में अन्यथा इंगित न हो
एस.टी.ए.सी.	:	स्थायी तकनीकी सलाहकार समिति
एस.वी.डी./सं.वि.द.	:	संयुक्त विधायक दल
टेबल	:	सभा पटल
टी.डी.पी./ते.दे.पा.	:	तेलुगु देशम पार्टी
टी.एम.सी./त.म.कां.	:	तमिल मनीला कांग्रेस (मूपनार)
टी.आर.एस./ते.रा.स.	:	तेलंगाना राष्ट्रीय समिति
यू.जी.डी.पी.	:	युनाइटेड गोवा डेमोक्रेटिक पार्टी
यू.एम.एफ.	:	युनाइटेड माइनॉरिटीज फ्रंट
यू.पी.ए./सं.प्र.ग.	:	संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन
यू.पी.एस.सी.	:	संघ लोक सेवा आयोग
यू.एस.क्यू.	:	अतारांकित प्रश्न
वी.सी.के.	:	विदुथलाई चिरूथाइगल काटची
वी.एस.डिबे.	:	विधान सभा डिबेट्स
डब्ल्यू.बी.एल.ए.	:	पश्चिम बंगाल विधान सभा
डब्ल्यू.बी.टी.सी.	:	पश्चिम बंगाल तृणमूल कांग्रेस

अध्याय 1

संसद का प्राधिकार तथा अधिकार क्षेत्र

भारत के संविधान का स्वरूप गणतंत्रीय तथा ढांचा संघीय है और उसमें संसदीय प्रणाली के प्रमुख तत्व विद्यमान हैं। इसमें संघ के लिये एक संसद का प्रावधान है जिसमें राष्ट्रपति और दो सदन–अर्थात् राज्य सभा (काउंसिल ऑफ स्टेट्स) और लोक सभा (हाउस ऑफ दी पीपल) सम्मिलित हैं; इसमें संघ की कार्यपालिका का भी प्रावधान है जो संसद के दोनों सदनों के सदस्यों में से सदस्य लेकर बनती है और वह सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है, इस प्रकार संघ की कार्यपालिका और संसद के बीच घनिष्ठ संबंध सुनिश्चित हो जाता है; इसमें यह भी प्रावधान है कि एक राज्याध्यक्ष होगा जिसे भारत का राष्ट्रपति कहा जाएगा और वह केन्द्रीय मंत्रिपरिषद की सहायता तथा सलाह से काम करेगा; भारतीय संविधान में अनेक राज्यों का प्रावधान है जिनकी कार्यपालिकाओं और राज्य विधानमंडलों के बारे में वैसे ही मूल उपबन्ध हैं जैसे कि संघ के बारे में हैं; संविधान में विधि सम्मत शासन की व्यवस्था है तथा इसमें एक स्वतंत्र न्यायपालिका की और एक स्थायी सिविल सेवा की व्यवस्था है। भारत की संसद प्रभुसत्ता सम्पन्न निकाय नहीं है, यह एक लिखित संविधान की सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करती है। इसके विधायी प्राधिकार पर दो प्रकार की सीमाएँ हैं, एक तो यह कि संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का बंटवारा किया गया है और दूसरी यह कि संविधान में न्याय्य मौलिक अधिकारों का समावेश है तथा न्यायिक पुनरीक्षण का प्रावधान है जिसका अर्थ यह है कि संसद द्वारा पारित सभी विधियां अनिवार्यत: संविधान के उपबन्धों के अनुसार होनी चाहिए और उनकी संवैधानिकता की जांच एक स्वतंत्र न्यायपालिका[2] द्वारा की जा सकती है। इन सब उपबंधों से संसद के प्राधिकार तथा अधिकार क्षेत्र के स्वरूप तथा विस्तार का पता चलता है।

---

1. दिल्ली विधि अधिनियम (1912) *के मामले* में, ए.आई.आर. 1951 एस.सी. 332 ।

2. *देखिए* संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 55; संसद द्वारा अनुच्छेद 368 में खण्ड (4) एवं खण्ड (5) अन्त:स्थापित किये गये जिससे यह प्रावधान किया जा सके कि उक्त अनुच्छेद के अधीन किया गया कोई संशोधन "किसी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जायेगा" [खण्ड (4)] और यह कि "इस अनुच्छेद के अधीन इस संविधान के उपबन्धों का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन करने के लिए संसद की संविधायी शक्ति पर किसी प्रकार का निर्बंधन नहीं होगा" [खण्ड (5)]। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने, *मिनर्वा मिल्स के मामले में*, अनुच्छेद 368 के खण्ड (4) और खण्ड (5) को इस आधार पर अविधिमान्य घोषित कर दिया कि इन खण्डों से संविधान के 'अनिवार्य तत्व' या 'बुनियादी ढांचे' को नष्ट करने का प्रयास किया गया है क्योंकि इनके द्वारा संविधान में संशोधन करने संबंधी संसद की शक्ति पर से सभी प्रतिबन्ध हटा लिए गए हैं और संविधान संशोधन अधिनियम की किसी भी आधार पर न्यायिक समीक्षा पर रोक लगा दी गई है—*मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1980, एस.सी. 1789। उच्चतम न्यायालय द्वारा

तथापि, भारत की वर्तमान राज्य व्यवस्था में संसद का स्थान धुरी की भांति है और इसके प्रभुसत्ता सम्पन्न प्राधिकार पर लगे संवैधानिक प्रतिबंधों को महत्वपूर्ण मर्यादाओं के अन्तर्गत समझना होगा। संविधान के अंतर्गत संसद को असीम शक्तियां प्राप्त हैं और इसकी भूमिका वही है जोकि किसी अन्य स्वतंत्र देश के प्रभुसत्ता सम्पन्न विधानमंडल की है।[3] शक्तियों के वितरण की योजना के अंतर्गत संसद के अधिकार क्षेत्र के विस्तार का, उसकी

परवर्ती मामलों में बुनियादी ढांचे की संकल्पना को और आगे विकसित किया गया है। *वामनराव बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 271, *भीम सिंह जी बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 234, *एस.पी. गुप्ता बनाम भारत का राष्ट्रपति,* ए.आई.आर. 1982, एस.सी. 149 (न्यायाधीशों के स्थानांतरण का मामला), *एस.पी. सम्पत कुमार बनाम भारत संघ*, ए.आई.आर. 1987, एस.सी. 386, पी. *साम्बामूर्ति बनाम आंध्र प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर 1987, एस.सी. 663, *किहोटा होल्लोहॉन बनाम जाचिलु* और अन्य, (1992) एस.सी.सी. 309, भीम सिंह जी बनाम भारत संघ ए. आई. आर 1981, आर सी पौदयाल बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1993; एस.सी. 1804, एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ व अन्य ए.आई.आर. 1994 एस. सी 1918; एल. चन्द्रकुमार बनाम भारत संघ व अन्य ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 1125; पी. वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (सी.बी.आई./एस.पी.ई.) ए.आई.आर 1998 एस.सी. 2120; बी आर कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य, ए.आई.आर 2001 एस. सी. 3435; कुलदीप नायर बनाम भारत संघ व अन्य ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 3127; एम. नागराज व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 71; आई.आर. कोइल्हो (मृत) द्वारा एल.आर.एस. बनाम तमिलनाडु राज्य व अन्य, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 861; और राजाराम पाल बनाम माननीय अध्यक्ष, लोक सभा व अन्य; जे.टी. 2007 (2) एस.सी.। उच्चतम न्यायलय ने केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य मामले में मूल ढांचे की सूची पर प्रतिबन्ध लगाए बिना निम्नलिखित को संविधान के अस्तित्व का आधार माना है "(क) संविधान की सर्वोच्चता; (ख) विधि का शासन; (ग) शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त; (घ) संविधान की उद्देशिका में विनिर्दिष्ट उद्देश्य; (ङ) विधि की समीक्षा अनुच्छेद 32 और 226; (च) संघवाद; (छ) पंथनिरपेक्षता; (ज) संपूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक और गणराज्यात्मक ढांचा; (झ) व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सम्मान; (ञ) राष्ट्र की एकता और अखण्डता; (ट) समता का सिद्धान्त समता की हर विशेषता नहीं बल्कि समान न्याय का सार-तत्व; (ठ) भाग III में सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा एक कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए; राज्य की नीति के निदेशक तत्व, भाग-4, पूर्णत:; (ड) मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों के बीच संतुलन; (ढ) शासन की संसदीय प्रणाली; (ण) स्वंतत्र और निष्पक्ष निर्वाचन के सिद्धान्त; (त) अनुच्छेद 368 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का संशोधन करने की सीमाएं; (थ) न्यायपालिका की स्वतंत्रता; (द) न्याय तक प्रभावी पहुंच; (ध) अनुच्छेद 32, 136, 141, 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्तियां; (न) एक अधिनियम के अधीन गठित विवाचन ट्रिब्यूनल द्वारा राज्य की न्यायिक शक्तियों के प्रयोग से लिए गए निर्णय को निरस्त करने के आशय का विधान"।

3. दिल्ली विधि अधिनियम (1912) *के मामले में उद्धृत कृति, तुलना करें,* न्यायाधीश फजलअली की टिप्पणी।

संविधायी शक्तियों का, आपातकालीन स्थितियों में उसकी भूमिका का और न्यायपालिका, कार्यपालिका, राज्य विधानमंडलों तथा संविधान के अन्तर्गत अन्य प्राधिकरणों के साथ उसके सम्बन्धों के विश्लेषण से यह तत्काल स्पष्ट हो जाता है कि उसकी शक्तियां कितनी व्यापक हैं।

संविधान में संसद और राज्य विधानमंडलों के बीच विधायी शक्तियों का जो निर्धारण और वितरण किया गया है, उसकी तीन सूचियां हैं—संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। मोटे तौर पर, संघ सूची के विषयों पर संसद का; राज्य सूची के विषयों पर राज्य विधानमंडलों का अनन्य क्षेत्राधिकार है; और समवर्ती सूची के विषयों पर संसद और राज्य विधानमंडल दोनों ही विधि बना सकते हैं।[4] विधि बनाने की अवशिष्ट शक्तियां संसद में निहित हैं अर्थात् ऐसे विषयों के संबंध में विधि बनाने की शक्ति संसद को प्राप्त है जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है तथा इसमें ऐसा कर निर्धारित करने वाली विधि बनाने की शक्ति भी सम्मिलित है जिस कर का उल्लेख इनमें से किसी भी सूची में नहीं है।[5] इसके अतिरिक्त, संसद भारत के राज्य क्षेत्र के ऐसे भाग के लिए जो किसी राज्य के अन्तर्गत नहीं है, किसी भी विषय के संबंध में विधि बना सकती है चाहे वह विषय राज्य सूची में प्रगणित विषय ही क्यों न हो।[6]

यद्यपि अपने-अपने क्षेत्रों में संसद और राज्य विधानमंडलों को पूर्ण शक्तियां प्राप्त हैं, परन्तु संविधान द्वारा अपनाई गई शक्तियों के बंटवारे की योजना में वैधानिक क्षेत्र में संसद की सामान्य सर्वोपरिता पर कई प्रकार से बल दिया गया है। प्रथमतः राज्य द्वारा बनाई गई विधि उसकी सीमाओं से बाहर लागू नहीं हो सकती, परन्तु संसद द्वारा बनाई गई विधि सारे भारत में प्रभावी हो सकती है और यहाँ तक कि उसका राज्यक्षेत्रातीत प्रवर्तन हो सकता है।[7] इसके अतिरिक्त, किसी राज्य की विधि और संसद द्वारा बनाई गई विधि, जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद सक्षम है, के बीच विरोध होने पर संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी होगी और राज्य द्वारा बनाई गई विधि, उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी।[8] इस नियम का एक ही अपवाद है और वह यह कि यदि समवर्ती सूची के किसी विषय पर किसी राज्य द्वारा बनाई गई विधि संसद द्वारा पहले बनाई गई विधि के विरुद्ध है और यदि इसे राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है और उस पर राष्ट्रपति की अनुमति मिल गई है तो वह विधि उस राज्य में अभिभावी होगी। परन्तु इस विषय में भी, संसद बाद में राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि में संशोधन, परिवर्तन या यहाँ तक कि निरसन करने से निवारित नहीं होगी।[9]

---

4. सातवीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 246 ।
5. अनुच्छेद 248 और सातवीं अनुसूची की पहली सूची की प्रविष्टि 97 ।
6. अनुच्छेद 246(4)।
7. अनुच्छेद 245 ।
8. अनुच्छेद 254(1)।
9. अनुच्छेद 254(2)।

चूंकि राज्य सूची के विषयों के संबंध में विधि बनाने की राज्य विधानमंडल की शक्ति संघ सूची के विषयों के सबंध में विधि बनाने की संसद की शक्ति के अध्यधीन है, इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि यदि संघ सूची की कोई प्रविष्टि और राज्य सूची की कोई प्रविष्टि परस्पर व्यापन करती प्रतीत होती है अर्थात् यदि वे एक ही क्षेत्र का अंशतः व्यापन करती हैं तब संघ सूची की प्रविष्टि द्वारा सम्मिलित किए गए विधान क्षेत्र को राज्य सूची की प्रविष्टि के कार्यक्षेत्र से हटा लिया गया माना जाएगा; और विशेष रूप से संसद द्वारा इस विषय पर विधि बनाने के लिये इसे आरक्षित कर दिया जायेगा; दूसरे शब्दों में, उस सीमा तक राज्य विधानमंडल की शक्ति को कम किया गया माना जाएगा।[10]

यहां तक कि राज्यों के लिए अनन्य रूप से आरक्षित क्षेत्र में भी, कुछ विशेष परिस्थितियों में, संविधान संसद को विधि बनाने का प्राधिकार देता है। जब भी राज्य सभा विशेष बहुमत से समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषणा करे कि राष्ट्रीय हित में राज्य सूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय पर संसद द्वारा कानून बनाना आवश्यक या समीचीन है, तो संसद उस विषय पर कानून बना सकती है।[11] इसके अतिरिक्त, जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो, तो संसद की विधायी क्षमता इतनी व्यापक हो जाती है कि वह राज्य सूची में प्रगणित किसी भी विषय पर विधि बना सकती है।[12] यद्यपि इस प्रकार राष्ट्रीय हित में या आपातकाल में संसद ऐसी शक्ति का प्रयोग करती है तो राज्य विधानमंडल की सामान्य विधायी शक्ति निर्बाधित नहीं होती; परन्तु यदि राज्य द्वारा बनाई गई विधि संसद द्वारा बनाई गई विधि के विरुद्ध हो तो संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी होती है और जब तक वह विधि प्रभावी रहती है, राज्य की विधि विरोध की मात्रा तक अप्रवर्तनीय रहती है।[13] संसद को यह भी शक्ति प्राप्त है कि वह किसी देश के साथ की गई संधि, करार या अभिसमय अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन या संगम में किए गए किसी भी विनिश्चय को कार्यान्वित करने के लिए विधि बना सकती है, चाहे उसका विषय राज्य की सूची के अन्तर्गत ही क्यों न आता हो।[14]

संसद राज्यों के निमंत्रण पर भी राज्य सूची के किसी विषय के बारे में कानून बना सकती है। यदि दो या अधिक राज्य विधानमंडल यह वांछनीय समझें कि उनकी अनन्य विधायी क्षमता के अन्तर्गत आने वाले विषयों में से कोई विषय ऐसा है, जिसका विनियमन

---

10. *एल.बी. पैराडाइज लाटरी सेन्टर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य*, ए.आई.आर. 1975 आंध्र प्रदेश 50 ।
11. अनुच्छेद 249 । इस प्रकार का कानून अस्थायी ही होता है क्योंकि यह संकल्प प्रारम्भ में एक वर्ष तक ही लागू रहता है और उसके बाद उसे हर बार एक वर्ष के लिए बढ़ाना होता है— राज्य सभा ने इस अनुच्छेद के अन्तर्गत 13 अगस्त, 1986 को एक संकल्प पारित किया जिसमें राज्य सूची की प्रविष्टियां 2, 4, 64, 65 और 66 के अधीन कुछ मामलों पर विधि बनाने का अधिकार संसद को दिया गया।
12. अनुच्छेद 250 (1) ।
13. अनुच्छेद 251 ।
14. अनुच्छेद 253 ।

संसदीय कानून द्वारा होना चाहिये और वे इस सम्बन्ध में संकल्प पारित कर दें तो संसद वैसा कानून बना सकती है।[15]

यह बात भी उल्लेखनीय है कि संघ सूची में कुछ प्रविष्टियां ऐसी हैं जिनमें संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह विधि द्वारा आवश्यक घोषणा करने के बाद राज्यों के क्षेत्र के कुछ कार्य या विषय अपने हाथ में ले लें।[16]

यदि किसी समय जब संसद के दोनों सदनों का सत्र न चल रहा हो और परिस्थितिवश तुरंत कार्यवाही करना अपेक्षित हो तो राष्ट्रपति को अध्यादेश[17] जारी करने की शक्ति प्राप्त है जिनका बल और प्रभाव वही होता है जो संसद के अधिनियमों का होता है परन्तु इनकी अवधि अस्थायी होती है। ऐसे प्रत्येक अध्यादेश को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना आवश्यक है और संसद के पुन: समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर ऐसा अध्यादेश प्रवर्तन में नहीं रहता, बशर्ते इससे पहले राष्ट्रपति ने उसे वापस न ले लिया हो अथवा संसद ने उसका निरनुमोदन न कर दिया हो[18] यदि विधान को स्थायी बनाना हो या अधिक अवधि तक बढ़ाना हो तो अध्यादेश के स्थान पर संसद को नियमित विधान बनाना पड़ेगा।

राष्ट्रपति की इस शक्ति का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना कि संसद की विधान बनाने की क्षमता[19] और न्यायालयों को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वे किसी अध्यादेश के विषय की कालो- चितता या उद्देश्य या विषय के संबंध में राष्ट्रपति के प्राधिकार पर आपत्ति कर सकें, लेकिन न्यायालय केवल इस आधार पर आपत्ति कर सकते हैं कि संविधान में संघ को जो विधायी शक्तियां दी गई हैं, अध्यादेश उन शक्तियों के क्षेत्र से बाहर है।[20] तथापि, संसद ने इस प्रकार विधान बनाने के तरीके को अच्छा नहीं समझा है और उसके विचार में इस प्रकार

---

15. इस प्रकार पारित किया गया कानून उन राज्यों में, जिन्होंने इसके लिए संसद से कहा हो, तथा अन्य राज्यों में लागू होता है, जो बाद में संकल्प पारित करके उसे अपना लें—अनुच्छेद 252। *देखिए*, उदाहरणार्थ, संपदा शुल्क अधिनियम, 1953; पुरस्कार प्रतियोगिता अधिनियम, 1955; और नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 ।
16. सूची एक की प्रविष्टियां 7, 23, 24, 27, 52, 54, 56, 62, 63, 64 और 67 ।
17. अनुच्छेद 123 । राज्यपालों को राज्य में ऐसी ही शक्ति प्राप्त हैं, *देखिए* अनुच्छेद 213 । अध्यादेश द्वारा विधान निर्माण के ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 23 — 'राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं'।
18. यह निरनुमोदन संसद के दोनों सदनों द्वारा संकल्प पारित करके किया जाता है और अध्यादेश का प्रवर्तन इनमें से दूसरा संकल्प पारित होने पर समाप्त हो जाता है— अनुच्छेद 123(2)।
19. तुलना करें, अनुच्छेद 123(3)।
20. तुलना करें, *ज्ञान प्रसन्न बनाम पश्चिम बंगाल* (1948) 53 सी. डब्ल्यू. संख्या 27 (70) (एफ.बी.)।

का विधान तभी बनाया जाना चाहिए जब उसके बिना काम न चल सकता हो और इस शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करने के लिए नियम हैं।[21]

किसी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था के असफल होने पर राष्ट्रपति उद्‌घोषणा द्वारा राज्य सरकार के कृत्य तथा राज्य विधानमंडल की शक्तियों के सिवाय राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित शक्तियां अपने हाथ में ले सकता है। उस दशा में यह घोषणा कर दी जाती है कि राज्य विधानमंडल की शक्तियां संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोक्तव्य होंगी।[22] उस दशा में, संसद राज्य के विधानमंडल की विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान कर सकती है अथवा यहां तक कि राष्ट्रपति को यह प्राधिकार दे सकती है कि वह उस शक्ति को किसी अन्य प्राधिकारी को दे दे।[23] जब भी संसद द्वारा ऐसी शक्ति प्रदान की जाती है, वह शक्ति प्रत्यायोजन अधिनियम[24] के द्वारा दी जाती है और उसमें अनिवार्य रूप से यह अपेक्षा की गई है कि राष्ट्रपति द्वारा बनाई गई विधियां (जिन्हें राष्ट्रपति के अधिनियम कहा जाता है) संसद के समक्ष रखी जायेंगी और उनमें विहित समय के अन्तर्गत वैसे रूपभेद किए जा

---

21. नियम 71 के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि जब किसी अध्यादेश के स्थान पर उसमें रूपभेद सहित या उसके बिना कोई विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित किया जाए तो सभा के सामने विधेयक के साथ उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने वाला विवरण भी रखा जाएगा जिनके कारण अध्यादेश द्वारा तुरन्त विधान बनाना आवश्यक हो गया था। इसी प्रकार, जब कोई ऐसा अध्यादेश प्रख्यापित किया जाता है जिसमें सभा के सामने लम्बित किसी विधेयक के उपबन्ध पूर्णत: या अंशत: या रूपभेद सहित समाविष्ट हों, तो ऐसा ही एक विवरण अध्यादेश को प्रख्यापित करने के बाद के सत्र के प्रारम्भ में सभा पटल पर रखना होगा।

22. अनुच्छेद 356 ।

23. अनुच्छेद 357 ।

24. उदाहरण के लिए *देखिए* पंजाब राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1951; पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1953; आंध्र राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1954; ट्रावनकोर-कोचीन राज्य विधानमण्डल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1956; केरल राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1959; उड़ीसा राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1961; केरल विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1965; पंजाब राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1966 और 1987; तमिलनाडु राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1988; तथा जम्मू और कश्मीर राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1992, हिमाचल प्रदेश राज्य विधान मंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1993; मध्य प्रदेश राज्य विधान मंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) अधिनियम, 1993; और उत्तर प्रदेश राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्योजन) अधिनियम 1993 और 1996।

सकेंगे जो संसद करना चाहे।[25] कुछ मामलों में, राष्ट्रपति से यह अपेक्षा की गई है कि संसद द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत कोई अधिनियम बनाने से पहले, जब भी वह व्यवहार्य समझे, संसद के सदस्यों की समिति से परामर्श करें।[26]

व्यापक क्षेत्र में विधान बनाने की शक्तियों के अतिरिक्त संविधान में संसद को संविधायी शक्ति या संविधान में संशोधन करने की शक्ति भी दी गयी है। इस शक्ति का विस्तार भी बहुत व्यापक है तथा संसद इसमें किसी भी प्रकार से अर्थात् संविधान के किसी उपबन्ध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन कर सकती है।[27] और फिर, इस शक्ति के प्रयोग पर कोई असाधारण शर्तें प्रतिबन्ध नहीं लगाती हैं। (उदाहरण के लिए परिपाटी अथवा मत संग्रह द्वारा अनुसमर्थन)।[28] संविधान का संशोधन करने वाले विधेयक के लिए विशेष बहुमत, कुछ मामलों में, राज्य विधानमंडलों द्वारा उसका अनुसमर्थन तथा राष्ट्रपति की अनिवार्य अनुमति आवश्यक है, सिवाए इसके, ऐसे विधेयक को पारित करने की प्रक्रिया लगभग वैसी ही है जैसी कि किसी सामान्य विधेयक को पारित करने की होती है।

---

25. उदाहरण के लिए *देखिए संसद* द्वारा पारित किया गया संकल्प जिसमें पंजाब राज्य सुरक्षा अधिनियम, 1951 में कुछ परिवर्तनों का सुझाव दिया गया था—*पी. डिबेट्स* (*II*) 28.9.1951, कॉ. 3748। संसद ने जिन संशोधनों का सुझाव दिया था वे बाद में पंजाब राज्य सुरक्षा (संशोधन) अधिनियम (राष्ट्रपति का अधिनियम संख्या 3, 1951) में कर दिए गए थे। एक अन्य उदाहरण केरल विश्वविद्यालय (संशोधन) अधिनियम, 1966 का है, जिसमें अधिनियम को संशोधित करने का एक संकल्प लोक सभा ने स्वीकार किया—*लो.स.वा.वि.*, 12.4.1966 पृ. 6533, तथा इस पर राज्य सभा ने सहमति व्यक्त की, *रा.स.वा.वि.*, 12.5.1966 । तत्पश्चात् इसे आवश्यक कार्यवाही हेतु संबंधित मंत्रालय को अग्रेषित कर दिया गया।

26. *देखिए* संसद द्वारा पारित किए गए शक्ति प्रत्यायोजन अधिनियम—पेप्सू के संबंध में (1953 का अधिनियम 22), आंध्र के संबंध में (1954 का अधिनियम 45), ट्रावनकोर-कोचीन के संबंध में (1956 का अधिनियम 29), केरल के संबंध में (1959 का अधिनियम 50, 1964 का अधिनियम 30 और 1965 का अधिनियम 12), उड़ीसा के संबंध में (1961 का अधिनियम 13) और पंजाब के संबंध में (1966 का अधिनियम 28) जिनमें संसद सदस्यों की समितियों के गठन का प्रावधान किया गया था। ये समितियां नहीं थीं अपितु सांविधिक समितियां थीं, जिनका कार्य केवल सलाह देना था।

27. संविधान (बयालीसवां संशोधन), अधिनियम, 1976 ने संविधान में संशोधन करने संबंधी संसद की शक्ति पर से सभी प्रतिबन्ध हटा दिए तथा अनुच्छेद 368 में खण्ड (4)-(5) को जोड़कर संविधान संशोधन अधिनियम की, किसी भी आधार पर, न्यायिक समीक्षा पर रोक लगा दी। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने इन खण्डों को इस आधार पर अमान्य घोषित कर दिया कि इन खंडों द्वारा संविधान के 'अनिवार्य तत्व' अथवा 'बुनियादी ढांचे' को नष्ट करने का प्रयास किया गया है—*मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ, उद्धृत कृति।*

28. *देखिए बी.आर. अम्बेडकर, सं.स.वा.वि.* खंड VII, 4.11.1948, पृ. 86-87 ।

संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 के माध्यम से संविधान के कतिपय 'बुनियादी तत्वों' में परिवर्तन के उद्देश्य से मत संग्रह का प्रयत्न विफल हो गया क्योंकि सरकार राज्य सभा में अपेक्षित दो-तिहाई बहुमत नहीं जुटा सकी।

संविधान के कई अनुच्छेदों में उन विषयों का उल्लेख है जो संसद द्वारा बनायी जाने वाली विधि के अध्यधीन हैं।[29] इन मामलों में, संसद सामान्य विधान पारित करके संविधान में संशोधन किए बिना उसके कुछ उपबन्धों में परिवर्तन कर सकती है या उनके प्रवर्तन को निष्प्रभावी बना सकती है। संविधान के कुछ और उपबन्ध हैं जिनके अन्तर्गत संसद, जहाँ आवश्यक समझे, सामान्य विधान द्वारा अत्यन्त महत्वपूर्ण मामलों के लिए उपबंध कर सकती है और यहाँ तक कि उसमें संविधान में संशोधन का उपबन्ध भी कर सकती है किन्तु इस संबंध में अनुच्छेद 368 की विशेष अपेक्षाएं लागू नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 4 में यह उपबन्ध किया गया है कि संसद द्वारा अनुच्छेद 2 (जो नये राज्यों के संघ में प्रवेश या स्थापना के संबंध में है) अथवा अनुच्छेद 3 (जो नए राज्यों[30] का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन के संबंध में है) के अन्तर्गत बनाई गई विधियों को अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए संविधान का संशोधन नहीं समझा जाएगा लेकिन उससे विधि के उपबन्धों को प्रभावी बनाने के लिए पहली और चौथी अनुसूची में संशोधन किया जा सकता है तथा उसमें, जैसा संसद आवश्यक समझे, अनुपूरक, आनुषंगिक और पारिणामिक उपबन्ध भी अंतर्विष्ट हो सकते हैं। इस उपबन्ध के अन्तर्गत संसद ने, राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956[31] को, जिसके द्वारा भारत के राज्यों का आमूल पुनर्गठन किया गया, सामान्य

---

29. उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 11 द्वारा संसद को नागरिकता के संबंध में कानून बनाने का अधिकार है, चाहे अनुच्छेद 5 से अनुच्छेद 10 तक में कुछ ही उपबन्ध क्यों न हों।

30. अनुच्छेद 3 के कई खण्डों में आए शब्द 'राज्यों' में संघ राज्यक्षेत्र शामिल हैं जिन्हें संविधान की प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट किया गया है– *रामकिशोर सेन बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 644 ।

31. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अतिरिक्त, इस उपबंध के अन्तर्गत, निम्नलिखित अधिनियम पारित किए गए हैं : असम (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1951; आंध्र राज्य अधिनियम, 1953; हिमाचल प्रदेश तथा बिलासपुर (नया राज्य) अधिनियम, 1954; चन्द्र नगर (विलयन) अधिनियम, 1954; बिहार तथा पश्चिमी बंगाल (राज्यक्षेत्र अंतरण) अधिनियम, 1956; आंध्र प्रदेश तथा मद्रास (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1959; राजस्थान तथा मध्य प्रदेश (राज्यक्षेत्र अंतरण) अधिनियम, 1959; बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960; अर्जित राज्यक्षेत्र (विलयन) अधिनियम, 1960; नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962; पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966; बिहार तथा उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1968; आंध्र प्रदेश तथा मैसूर (राज्यक्षेत्र अंतरण) अधिनियम, 1968; मद्रास राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1968; हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970; पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971; मैसूर राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973; लक्कादीव, मिनिकोय तथा अमीनदीवी द्वीप (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973; हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1979; मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986; अरूणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1986; तथा गोवा, दमन तथा दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987; दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1991; मद्रास शहर (नाम परिवर्तन) अधिनियम 1996, द महाराष्ट्र रेस्टोरेशन ऑफ नेम मुम्बई फॉर बॉम्बे एक्ट 1996; द वेस्ट बंगाल कैपिटल (चेंज ऑफ नेम) एक्ट 2001; पांडिचेरी (नाम परिवर्तन) अधि नियम 2006; उत्तरांचल (नाम परिवर्तन) अधिनियम 2011।

विधान[32] की तरह पारित किया था। अतः संसद संविधान में संशोधन करने की अपनी विधायी शक्ति का विधिवत् प्रयोग किए बिना ही कई विषयों के संबंध में संविधान में संशोधन कर सकती है।

यह माना गया है कि अनुच्छेद 170(1) के अंतर्गत निर्धारित किसी विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या को न्यूनतम संख्या से और कम करने की शक्ति, अनुच्छेद 4[33] के अधीन विधि बनाने के प्राधिकार में ही निहित है।

संविधान के संशोधन में राज्य विधानमंडलों की भूमिका सीमित होती है। इससे संबंधित विधान केवल संसद में पुरःस्थापित किया जा सकता है। किसी राज्य में विधान परिषद का सृजन या उसका उत्सादन करने के संबंध में उस राज्य की विधान सभा द्वारा संकल्प पारित

---

32. इस श्रेणी के दूसरे उदाहरण अनुच्छेद 169, पांचवीं अनुसूची के पैरा 7 और छठी अनुसूची के पैरा 21 में दिए गए हैं।

अनुच्छेद 169 में संसद को यह शक्ति दी गयी है कि वह कानून पारित करके राज्यों में विधान परिषदों के उत्सादन या सृजन की व्यवस्था कर सकती है। इसमें कहा गया है कि चाहे ऐसे कानून में संविधान के संशोधन जैसे उपबन्ध हों, जो आवश्यक हों, ऐसे संशोधन को अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए संविधान का संशोधन नहीं माना जाएगा। इसी अनुच्छेद के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करके संसद ने विधान परिषद अधिनियम, 1957 पारित किया था जिसमें आंध्र प्रदेश में विधान परिषद का सृजन और कुछ अन्य राज्यों में विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की व्यवस्था की गई थी जबकि पश्चिम बंगाल विधान परिषद (उत्सादन) अधिनियम, 1969; पंजाब विधान परिषद (उत्सादन) अधिनियम, 1969; आंध्र प्रदेश विधान परिषद (उत्सादन) अधिनियम, 1985; और तमिलनाडु विधान परिषद (उत्सादन) अधिनियम, 1986 में क्रमशः पश्चिम बंगाल, पंजाब, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु राज्यों की विधान परिषदों के उत्सादन का उपबंध किया गया।

पांचवीं अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन और नियंत्रण के बारे में उपबन्ध हैं और उसके पैरा 7 में संसद को इस बात की पूरी शक्ति दी गई है कि वह कानून बनाकर इस अनुसूची के किसी भी उपबन्ध में संशोधन कर सकती है। छठी अनुसूची (जिसमें असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में उपबन्ध हैं) के पैरा 21 में भी, संसद को संशोधन करने की वैसी ही शक्ति दी गयी है। इन अनुसूचियों के इन पैराग्राफों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उनके अंतर्गत बनाया गया कोई कानून 'अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए संविधान का संशोधन नहीं समझा जाएगा'। असम पुनर्गठन (मेघालय) अधिनियम, 1969 और संघ राज्यक्षेत्र सरकार (संशोधन) अधिनियम, 1971 द्वारा छठी अनुसूची में संशोधन किया गया, पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971, संविधान (उनचासवां संशोधन) अधिनियम, 1984 और मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986 द्वारा पांचवीं तथा छठी अनुसूचियों में संशोधन किया गया; और संविधान की पांचवीं अनुसूची (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा पांचवीं अनुसूची के पैरा 6 में संशोधन किया गया।

33. *मंगल सिंह और एक अन्य बनाम भारत संघ,* 1967 एस.सी. 944 ।

करने की संकल्पना की गई है परन्तु इस संबंध में भी संबंधित विधान को संसद में ही प्रारम्भ करना पड़ेगा।[34] जब संसद किसी राज्य या राज्यों के कुछ क्षेत्र लेकर नया राज्य बनाने या किसी राज्य के क्षेत्र को घटाने या बढ़ाने या किसी राज्य के नाम या सीमाओं को बदलने के उद्देश्य से विधान बनाए तो यह अपेक्षित है कि विधेयक को पुर:स्थापित करने से पहले उन राज्यों की राय जानने के लिए भेजे जो राज्य इससे प्रभावित हो रहे हों और वे इस संबंध में विहित समय के भीतर अपनी राय दे दें[35] और इस प्रकार राय जानने के लिए विधेयक को भेजने के कारण उस विधेयक में और आगे संशोधन करने के संबंध में संसद पर कोई रोक नहीं है।[36] केवल जब किसी संशोधन का उद्देश्य अनुच्छेद 368 के परंतुक के उपबन्धों में से

---

34. अनुच्छेद 169 ।
इस संबंध में राज्य विधान सभा का कोई भी संकल्प न तो केन्द्र सरकार को विधान बनाने के लिए बाध्य कर सकता है और न ही संसद को उस पर कोई कानून बनाने या अनुच्छेद के उपबंधों को लागू करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। *देखिए लो.स.वा.वि.* 8.12.1970, पृ. 142-44; 22.8.1984, पृ. 211-22 ।

35. अनुच्छेद 3 के परन्तुक के अन्तर्गत इस समय यही स्थिति है। 1955 में इसका संशोधन किया गया था और उससे पहले इसके अन्तर्गत राष्ट्रपति की यह जिम्मेदारी होती थी कि वह प्रभावित होने वाले राज्यों के विधानमंडलों की राय जान लें। अब तो केवल यह आवश्यक है कि संसद में इस प्रकार के विधेयक को पुर:स्थापित करने से पहले राष्ट्रपति इसे सम्बद्ध राज्य के विधानमंडल को विहित समय में उसकी राय जानने के लिए भेजें (राष्ट्रपति चाहें तो यह समय और बढ़ा सकते हैं)—*देखिए* अर्जित राज्यक्षेत्र (विलयन) विधयेक, 1960 पर लोक सभा के अध्यक्ष का विनिर्णय—*लो.स.वा.वि.* 16.12.1960, पृ. 2927-31 ।
मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000, उत्तर प्रदेश पुनगर्ठन अधिनियम, 2000, 2000 का अधि नियम 29, एेरि बिहार पुनर्गठन अधिनियम 2000 द्वारा मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों का पुनर्गठन करके वर्ष 2000 में तीन नए राज्यों अर्थात् छत्तीसगढ़ उत्तरांचल (अब उत्तराखंड के नाम से जाना जाता है) और झारखंड राज्यों का गठन किया गया है।
राज्यों की राय जानने के लिए विधेयकों के भेजे जाने की बात केवल अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत आने वाले कानूनों पर लागू होती है। किसी राज्य के क्षेत्र में से कुछ क्षेत्र किसी दूसरे देश को देने के संबंध में (उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार यह विषय अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत नहीं आता) संसद पर यह संवैधानिक जिम्मेदारी नहीं है कि वह ऐसे विधेयक को प्रभावित राज्य को भेजे–*देखिए* बेरूबाड़ी संबंधी निर्देश पर उच्चतम न्यायालय का परामर्शक मत। (बेरबाड़ी बनाम संघ, ए.आई.आर. 1960, ए.सी. 845)

36. राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 के संबंध में लोक सभा के अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया कि एक बार संबंधित राज्यों के विधानमंडलों की उचित राय प्राप्त करने के बाद कोई विधेयक संसद में पुर:स्थापित कर दिया जाए तो फिर किसी संशोधन का प्रस्ताव संसद में करने या उसे पारित करने के लिए उसे दोबारा राज्य विधानमंडल के पास भेजना आवश्यक नहीं है और संसद जिस रूप में चाहे उस विधेयक को पारित कर सकती है– *लोस.वा.वि.* (II), 7.8.1956, पृ. 759-61 । उच्चतम न्यायालय ने भी *बाबू लाल बनाम बम्बई राज्य, ए.आई.आर.* 1960 एस.सी. 51 के मामले में यही मत प्रकट किया था।

किसी उपबन्ध में परिवर्तन करना हो तभी यह व्यवस्था लागू होती है कि कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडल उसका अनुसमर्थन करें।

भारत में सारे विधान, चाहे वह संघीय विधान हो, चाहे राज्य विधान अथवा चाहे प्रत्यायोजित विधान, वह शक्ति परस्तात् सिद्धान्त के अध्यधीन होता है और उसकी न्यायालय द्वारा समीक्षा की जा सकती है।[37] संविधान के कुछ उन विशेष उपबन्धों के अतिरिक्त जिनके द्वारा न्यायालयों को विधान की न्यायिक समीक्षा की शक्ति दी गई है, न्यायालयों की यह शक्ति इस धारणा में ही निहित है कि संविधान आधारभूत विधान है जिसके विशेष उपबन्धों का देश का कोई भी सामान्य विधान उल्लंघन नहीं कर सकता।[38] अन्ततोगत्वा, संसद किसी न्यायिक फैसले के प्रभाव को दूर करने के लिए संविधान में संशोधन कर सकती है परन्तु जब तक संविधान में उसके विपरीत संशोधन नहीं कर दिया जाता, संविधान का अर्थ निकालने की अंतिम शक्ति उच्चतम न्यायालय के पास है।[39]

भारत में न्यायालयों द्वारा समीक्षा का क्षेत्र यद्यपि केवल इस बात तक सीमित है कि कानून उस शक्ति के भीतर है या नहीं जो कि विधानमंडल को दी गई है और कि कानून बनाने के लिए जिस प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है उसका पालन किया गया है या नहीं।[40] न्यायालय कोई तीसरा चैम्बर नहीं है कि विधानमंडल द्वारा उस विधान में निश्चित की गई नीति के संबंध में अपनी राय दे। विधान उस बात के चाहे कितना ही विरुद्ध क्यों न हो जिसे

---

37. *के.जे. थॉमस बनाम कृषि आयकर आयुक्त,* मद्रास, ए.आई.आर. 1958 केरल 6 ।

 संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अन्तःस्थापित अनुच्छेद 131 'क' के अन्तर्गत केन्द्रीय कानूनों की संवैधानिक वैधता निश्चित करने का विशेष अधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया गया था। तथापि, संविधान (तैंतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1977 द्वारा इस अनुच्छेद को हटा दिया गया।

38. अनुच्छेद 13 में केवल इतना कहा गया है कि जो कानून मूल अधिकारों का उल्लंघन करता हो, वह निष्प्रभावी होगा। परन्तु, यह कहा गया है कि इस अनुच्छेद के द्वारा भारत में न्यायालयों की न्यायिक समीक्षा की शक्ति समाप्त नहीं होती है। यह अनुच्छेद केवल सावधानीवश रखा गया है, यद्यपि इसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसके बिना भी न्यायालयों के लिये यह आवश्यक है कि वे ऐसे कानून को अवैध घोषित कर दें जो इन अधिकारों का उल्लंघन करता हो। संविधान के किसी भी उपबंध पर न्यायालय द्वारा निर्णय दिया जा सकता है और यही न्यायिक समीक्षा की नींव है–*देखिए गोपालन बनाम मद्रास राज्य* (1950) एस.सी.आर. 88 में मुख्य न्यायाधीश कानिया के विचार।

39. संविधान के अनुच्छेद 132 (1) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को उन मामलों में अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है जिनमें 'संविधान के निर्वचन के बारे में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है' जबकि अनुच्छेद 141 में कहा गया है कि 'उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होगी'।

40. *के.जे. थॉमस बनाम कृषि आयकर आयुक्त, उद्धृत कृति।*

न्यायालय ठीक या गलत समझता हो और उस विधान के उपबन्ध चाहे कितने ही कड़े क्यों न हों, न्यायालय का कर्त्तव्य यही है कि वह उस कानून को तब तक वैध ठहराये जब तक वह संविधान के किसी अनुच्छेद का उल्लंघन न करता हो।[41]

संसद को अपना काम चलाने का अन्तर्निहित अधिकार है और कोई भी दूसरी संस्था उसके काम में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। अपनी प्रक्रिया के संबंध में निर्णय करने का अधिकार एकमात्र संसद को ही है। प्रक्रिया संबंधी कोई त्रुटि रह जाने पर भी उसकी कार्यवाही निष्प्रभावी नहीं हो सकती।[42] जब तक कोई विधेयक विधान नहीं बन जाता, विधान बनाने की प्रक्रिया पूरी न होने के कारण, न्यायालय उसमें तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकते और न ही किसी विधान के प्रख्यापित होते ही उसे स्वयं ही शून्य घोषित कर सकते अथवा न प्रत्यक्ष रूप से रद्द कर सकते जब तक कोई व्यक्ति या पक्ष उस विधान को इस आधार पर चुनौती न दे कि उससे उसके अधिकारों का उल्लंघन हुआ है क्योंकि वह विधान विधायी निकाय के शक्ति परस्तात् है और न्यायालय से उस विधान का निर्वचन करने के लिए कहे।[43]

हाल ही में, सुने जाने के अधिकार संबंधी परंपरागत नियम में बहुत ढील दी गई है और उच्चतम न्यायालय ने समाज के जागरूक नागरिकों के अनुरोध पर ऐसे व्यक्तियों के अधिकार उन्हें दिलाने हेतु 'जनहित अभियोग' की अनुमति दी है जो अपनी गरीबी या अन्य कारणों से अपने संवैधानिक और विधिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय से प्रार्थना नहीं कर सकते।[44]

यद्यपि राज्य के अध्यक्ष को राष्ट्रपति की संज्ञा दी गई है और संविधान के अन्तर्गत संघ की कार्यपालिका शक्ति उसमें निहित है[45] और समस्त कार्यपालिका कार्यवाही उसी के नाम

---

41. *फ्राम नुसरवानजी बलसारा बनाम बम्बई राज्य* ए.आई.आर. (1951) बम्बई 210 में मुख्य न्यायाधीश दागला की राय।

42. अनुच्छेद 122(1) ।

43. *देखिए* श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का भाषण, *सं.स.वा.वि.*, खण्ड IX, 12.9.1949, पृ. 1985-86; *सी. श्रीकिशन बनाम हैदराबाद राज्य व अन्य*, ए.आई.आर. 1956 हैदराबाद 186; और *छोटे लाल बनाम उ.प्र. राज्य*, ए.आई.आर. 1956 इलाहाबाद 228 ।

44. *उदाहरण के लिए देखिए अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ (रेलवे) बनाम भारत संघ*, ए. आई.आर. 1981 एस.सी. 298; *एस.पी. गुप्ता व अन्य बनाम भारत का राष्ट्रपति व अन्य*, ए.आई. आर. 1982 एस.सी. 149; *पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ, ए.आई. आर.* 1982 एस.सी. 1473; *बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ*, ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 802; और *लक्ष्मीकांत पाण्डेय बनाम भारत संघ*, ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 469 । *एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ*, ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 382; *जनहित याचिका केन्द्र बनाम भारत संघ व अन्य*, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 3277 (2003) एस. सी. सी. 532; *डॉ. डी.बी. सिंह बनाम भारत संघ व अन्य*, ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 1923 शांतिभूषण और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2009)। एस.सी.सी. 657;

45. अनुच्छेद 53 ।

से की हुई कही जाती है,[46] भारत की शासन प्रणाली संसदीय है, राष्ट्रपतीय नहीं।[47] राष्ट्रपति में निहित कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग उसे 'इस संविधान के अनुसार' करना होता है[48] और राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए संविधान में एक मंत्रिपरिषद का प्रावधान है जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होता है और 'राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा'[49] यद्यपि राष्ट्रपति 'मंत्रिपरिषद से ऐसी सलाह पर साधारणतः या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा' तथापि राष्ट्रपति 'ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।'[50] अतः, राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष है[51] और वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद है जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री है। मंत्रिपरिषद में केवल संसद के ही सदस्य होते हैं (कोई भी मंत्री यदि छः महीने के भीतर किसी एक सदन की सदस्यता ग्रहण नहीं कर पाता, तो वह पद पर बना नहीं रह सकता)[52] और यह सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है।[53] कार्यपालिका का अध्यक्ष होने के नाते राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है और मंत्रिपरिषद संसद के प्रति उत्तरदायी है। ब्रिटिश मंत्रिपरिषद की तरह, भारतीय मंत्रिपरिषद को भी राज्य की विधायिका और कार्यपालिका को जोड़ने वाली बीच की कड़ी कहा गया है।[54]

संसद के कार्यक्षेत्र और उसकी कार्यविधि का निर्णय उसके आकार के अनुसार होता है। आजकल संसद शासन नहीं चलाती। संसद तो उस कार्यपालिका के माध्यम से ही कार्य चला सकती है, और चलाती है जिसे उसका विश्वास प्राप्त हो। यह कहा गया है कि संसदीय संस्थाओं का आदर्श ऐसी सशक्त कार्यपालिका सरकार है जो निरन्तर सतर्कता और प्रातिनिधिक आलोचना द्वारा संयमित और नियंत्रित हो।[55]

---

46. अनुच्छेद 77(1) ।
47. *देखिए* श्री जवाहरलाल नेहरू का भाषण, *सं.स.वा.वि.,* खंड IV, 21.7.1947, पृ. 53-54; श्री बी. आर. अम्बेडकर का भाषण, *सं.स.वा.वि.,* खंड VII, 4.11.1948, पृ. 61; और श्री टी.टी. कृष्णामाचारी का भाषण, *सं.स.वा.वि.,* खंड XI, 25.11.1949, पृ. 4192 ।
48. अनुच्छेद 53 ।
49. अनुच्छेद 74(1) ।
50. अनुच्छेद 74(1) ।
51. *देखिए* अम्बेडकर का भाषण, *सं.स.वा.वि.,* खंड VIII, 23.5.1949, पृ. 353-54; और *राय साहब राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य* 1955, 2 एस.सी.आर., खण्ड II 225, 236-आर; एस. सी.जे. 304 ।
52. अनुच्छेद 75(5) ।
53. अनुच्छेद 75(3) ।
54. दिल्ली विधि अधिनियम (1912) *के मामले में उद्धृत कृति* न्यायमूर्ति मुखर्जी (पृ. 394-95)।
55. *सी. इल्बर्ट, पार्लियामेंट,* 1948, पृ. 103 ।

सभी विधानों तथा राजस्व और व्यय के संबंध में प्राथमिक पहल का उत्तरदायित्व कार्यपालिका का है। व्यावहारिक तौर पर, सभी विधेयक जो अन्तिम रूप से विधि के रूप में अधिनियमित होते हैं, सरकार द्वारा लाए जाते हैं और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को शलाका (बैलट) प्रक्रिया तथा अन्य रुकावटों से गुजरना पड़ता है।[56] कोई भी विधेयक या संशोधन, जिसमें कर लगाने, हटाने या कर विनियमित करने, सरकारी ऋण को विनियमित करने, भारत की संचित निधि से धन का विनियोग करने या जिसमें अन्य वित्तीय मामलों का प्रावधान हो, राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश के बिना पुर:स्थापित नहीं हो सकता और ऐसे विधेयक को, जिसके अधिनियमित होने से भारत की संचित निधि से व्यय होता हो, बिना राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश के पारित नहीं किया जा सकता[57] और कोई अनुदान की मांग तब तक नहीं की जा सकती, जब तक इस पर राष्ट्रपति द्वारा सिफारिश नहीं की गई हो।[58] "विधानमंडल में बहुमत पाने वाली सरकार दोनों विधायी तथा कार्यपालिका संबंधी कार्यों का वास्तविक नियंत्रण अपने हाथ में ले लेती है" और सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर कार्य करते हुए मंत्रिगण नीति संबंधी उन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का निर्धारण करते हैं जो संसद के समक्ष रखे जाते हैं।[59]

कार्यपालिका की पहल करने की शक्ति अंतत: उसे संसद में प्राप्त समर्थन पर निर्भर करती है। सरकार के कार्यक्रमों और नीतियों पर धन व्यय होता है और इस व्यय पर नियंत्रण संसद का होता है। संविधान के अन्तर्गत बजट अर्थात् प्राक्कलित आय और व्यय के वार्षिक विवरण को संसद में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है।[60] कोई भी कर या व्यय तब तक वैध नहीं होता जब तक कि वह विधि द्वारा प्राधिकृत न हो।[61] यह वित्तीय शक्ति संसद के हाथों

---

56. उदाहरण के लिए, सूचना की कालावधि एक मास है और जहाँ आवश्यक हो, राष्ट्रपति की सिफारिश के लिये सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है। [नियम 65(2) और (3)] गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति इसकी जांच भी करती है और विधेयक का विचार के लिए लिया जाना इस बात पर निर्भर करता है कि समिति उसे किस श्रेणी में रखती है (नियम 294)। सबसे अधिक महत्वपूर्ण है हर दूसरे सप्ताह ऐसे विधान पर विचार करने के लिए ढाई घण्टे के समय का नियत किया जाना (नियम 26)।

    अभी तक कुल 14 गैर-सरकारी विधेयक अधिनियमित हुए हैं। चौदहवीं लोकसभा के दौरान (2004-2009), गैर-सरकारी सदस्यों के 327 विधेयक पुर:स्थापित किए गए जबकि 15वीं लोकसभा के दौरान 14वें सत्र तक गैर-सरकारी सदस्यों के 372 विधेयक पुनर: स्थापित किए गए।
57. अनुच्छेद 117 ।
58. अनुच्छेद 113(3) ।
59. *राय साहब राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य*, 1955 एस.सी.आर. 225 ।
60. अनुच्छेद 112(1)।
61. अनुच्छेद 265 और 114(3) ।

में होने के कारण वह जवाबदेही सुनिश्चित करती है। यह संवैधानिक प्रावधान कि संसद के एक सत्र के समाप्त होने और आगामी सत्र के प्रारंभ होने के बीच छह मास से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए, इस बात को और अधिक सुनिश्चित करता है कि सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों पर संसद का नियंत्रण लगभग निरंतर बना रहे। इस प्रकार वित्त और नीति निर्धारण में पहल करने का कार्य कार्यपालिका का है, जबकि इन नीतियों की समीक्षा करने तथा प्रशासन पर निगरानी रखने का पूरक कार्य संसद का है।

संसदीय प्रक्रिया मंत्रीय उत्तरदायित्व की "दैनिक और आवधिक समीक्षा" का भरपूर अवसर प्रदान करती है। प्रश्नों (अनुपूरक प्रश्नों और असंतोषजनक उत्तर मिलने की स्थिति में आधे घंटे की चर्चा की संभावनाओं सहित), स्थगन प्रस्तावों और ध्यानाकर्षण प्रस्तावों की प्रक्रिया से सरकारी गतिविधियों से संबंधित सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं और कमियां उजागर की जा सकती हैं। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव और बजट पर चर्चा तथा सरकार की नीति के विशिष्ट पहलुओं या परिस्थितियों पर वाद-विवाद के द्वारा प्रशासनिक कार्यों की समीक्षा के महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त, अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों संबंधी प्रस्तावों, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों और अन्य मूल प्रस्तावों के माध्यम से विशिष्ट विषयों पर चर्चा हो सकती है। विभागों के वार्षिक प्रतिवेदनों पर भी चर्चा हो सकती है। विशिष्ट क्षेत्रों में सरकार की विफलता पर चर्चा हो सकती है या स्थानीय समस्याओं को कटौती प्रस्तावों द्वारा उठाया जा सकता है। विधेयकों पर चर्चा के विभिन्न चरणों के दौरान, सरकार की नीति की आलोचना और उसे प्रभावित करने के अवसर मिलते हैं। अत्यंत गंभीर मामलों में, सरकार की निंदा की जा सकती है या उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है।

अध्यक्ष के नियंत्रण में काम करने वाली संसदीय समितियों के नेटवर्क के माध्यम से सरकार की गतिविधियों पर लोक सभा में निरंतर कड़ी निगरानी रखी जाती है।[62] कार्य मंत्रणा समिति जिसमें सभा के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व होता है, सभा के समक्ष सरकार की ओर से रखे जाने वाले सभी विषयों के लिए समय निर्धारित करने की सिफारिश करती है जो स्वीकार कर लिए जाने पर सभा के आदेश के रूप में प्रभावी होती है। इस समिति ने कई बार पहल करके सभा में चर्चा हेतु महत्वपूर्ण विषयों का सुझाव दिया है।[63] गैर-सरकारी

---

62. इन समितियों के गठन और कार्यकरण संबंधी ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 30—'संसदीय समितियाँ'।

63. उदाहरण के लिए, परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण प्रयोग, प्रेस आयोग का प्रतिवेदन, प्रशुल्क तथा व्यापार संबंधी सामान्य करार, नई शिक्षा नीति, पर्यावरण, सती प्रथा को पुनः प्रारंभ करना, मूल्य वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि और राष्ट्रीय सांस्कृतिक नीति तथा राष्ट्रीय आवास नीति संबंधी दृष्टिकोण पत्र पर कार्य मंत्रणा समिति की पहल पर (एक से दसवीं लोक सभा) चर्चा हो चुकी है। 14वीं लोक सभा में ग्लोबल वार्मिंग और भारत अमरीका परमाणु करार पर कार्य मंत्रणा समिति की पहल पर चर्चा हुई।

सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति द्वारा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के वर्गीकरण और उनके लिए समय के नियतन का कार्य किया जाता है। सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति सभा में मंत्रियों द्वारा दिए गए वचनों अथवा आश्वासनों पर नजर रखती है और उन्हें कार्य रूप में परिणत कराती है। अधीनस्थ विधान संबंधी समिति सरकार द्वारा बनाए गए सभी नियमों, भले ही वे सभा पटल पर रखे गए हों अथवा नहीं, की जांच करती है और यह देखती है कि जहाँ भी सरकार को नियम बनाने की शक्ति दी गई है उसका प्रयोग प्रत्यायोजन के अनुरूप हुआ है अथवा नहीं। याचिका समिति न केवल सभा के समक्ष लंबित विधेयकों तथा अन्य मामलों पर प्राप्त याचिकाओं पर विचार करती है बल्कि अन्य विषयों के संबंध में जनता से प्राप्त अभ्यावेदनों पर भी विचार करती है जिससे कि कोई मुख्य शिकायत ऐसी न रहे जिसका समाधान न किया गया हो। 1 जून, 1975 से गठित सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति या किसी अन्य संसदीय समिति के क्षेत्राधिकार में आने वाले पत्रों को छोड़कर सभा पटल पर रखे जाने वाले अन्य सभी पत्रों की जांच करती है जिसका उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ इस बात की जांच करना है कि क्या पत्रों को सभा पटल पर रखने में कोई विलम्ब हुआ है और क्या विलम्ब के मामलों में संतोषजनक स्पष्टीकरण दिया गया है अथवा नहीं। समितियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वित्तीय समितियां हैं—लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति। इसके अतिरिक्त, संसद अन्य समितियां भी गठित कर सकती है जिनमें सबसे आम समितियां विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां हैं। सन् 1997 में गठित महिला अधिकारिता संबंधी समिति राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा सौंपे गए प्रतिवेदनों और महिलाओं से संबंधित अन्य कल्याणकारी उपायों पर विचार करती है। किन्हीं विशिष्ट विषयों की जाँच करने और उस संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए सभा में प्रस्ताव स्वीकृत करके दोनों सदनों द्वारा या अध्यक्ष/सभापति द्वारा समय-समय पर कई तदर्थ समितियां गठित की गई हैं। इनमें राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान कतिपय सदस्यों के आचरण संबंधी समिति, प्रारूप पंचवर्षीय योजना संबंधी समिति, रेल अभिसमय समिति, निर्वाचन विधि में संशोधन संबंधी संयुक्त समिति, दहेज निषेध अधिनियम के कार्यकरण के प्रश्न की जाँच करने के लिए सभाओं की संयुक्त समिति, खेलकूद संबंधी अध्ययन समिति, बोफोर्स संविदा की जाँच करने के लिए संयुक्त समिति और प्रतिभूति तथा बैंकिंग कारोबार में अनियमितताओं की जाँच के लिए संयुक्त समिति, संसद में सुरक्षा संबंधी समिति, लोक सभा सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों द्वारा नयाचार प्रतिमान का उल्लंघन और अवमानपूर्ण व्यवहार संबंधी समितिरू कुछ सदस्यों द्वारा अनुचित आचरण के आरोपों की जाँच संबंधी समिति (प्रश्न पूछने के बदले धन लेने की जांच संबंधी समिति) संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के कार्यान्वयन के मामले में कुछ सदस्यों द्वारा अनुचित आचरण के आरोपों की जांच करने संबंधी समिति; लोक सभी सदस्यों के कदाचार के मामलों की जांच संबंधी समिति; कुछ सदस्यों द्वारा विश्वास प्रस्ताव पर मतदान के संबंध में उन्हें धन दिए जाने के कथित प्रस्ताव के बारे में की गई शिकायत की जांच करने संबंधी समिति (वोट के बदले नोट दिए जाने की जांच करने संबंधी समिति) और आचार समिति,

लाभ के पद की सांविधिक और विधिक स्थिति की जाँच के लिए लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति। 15 दिसम्बर, 2009 को संसंद भवन परिसर के पारम्परिक स्वरूप के अनुरक्षण और विकास संबंधी संयुक्त समिति का गठन किया गया था जिसका उद्देश्य परिरक्षण के मानक सिद्धांतों और प्रक्रिया के अनुसार संसद भवन परिसर में परिरक्षण, संरक्षण, अनुरक्षण और पुर्नवासन संबंधी नीतियां, दिशानिर्देश और कार्यक्रम तैयार करना था। 11 मार्च 2011 को दूरसंचार लाइसेंसों और स्पेक्ट्रम के आवंटन और मूल्य निर्धारण से संबंधित मामलों की जांच संबंधी संयुक्त संसदीय समिति गठन की गई थी।

1989 में (*i*) कृषि; (*ii*) पर्यावरण और वन; तथा (*iii*) विज्ञान और प्रौद्यागिकी के संबंध में प्रत्येक पर एक-एक समिति और कुल तीन, विभागों से सम्बद्ध विषय समितियां गठित करके संसदीय समिति प्रणाली में सुधार लाने की दिशा में शुरुआत की गई थी। इसका उद्देश्य प्रणाली को और अधिक विशेषज्ञतायुक्त बनाना तथा इसे बदलते समय के अनुकूल बनाना और इन समितियों के माध्यम से कार्यपालिका के कार्यों पर अधिक से अधिक निगरानी रखने के लिए संसद को सक्षम बनाना था। इन समितियों के कार्यकरण से प्राप्त अनुभवों के आलोक में मार्च, 1993 में इस समिति प्रणाली में और अधिक सुधार किया गया। जुलाई 2004 में विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों की संख्या 17 से बढ़ाकर 24 (16 लोक सभा के अधीन और 8 राज्य सभा के अधीन) कर दी गई। इस समय सम्पूर्ण सरकारी गतिविधियों के लिए विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों की एक पूर्णतः विकसित प्रणाली है। इन समितियों के कार्यों में मोटे तौर पर अनुदानों की मांगों पर विचार करना, राज्य सभा के सभापति या लोक सभा अध्यक्ष द्वारा, यथास्थिति उन्हें सौंपे गए विधेयकों की जाँच करना, वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार करना और सभा में प्रस्तुत किए गए तथा सभापति या अध्यक्ष द्वारा, यथास्थिति, समिति को सौंपे गए राष्ट्रीय मौलिक दीर्घावधि नीति दस्तावेजों पर विचार करना शामिल हैं। इन स्थायी समितियों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही है कि सरकार के अधिकांश मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों की संवीक्षा अब संसद के कम से कम 31 सदस्यों (लोक सभा से 21 और राज्य सभा से 10) वाली समिति द्वारा की जाती है। इससे नीतियों व कार्यक्रमों, योजनाओं, परियोजनाओं, अन्तर्निहित उद्देश्यों और सरकार द्वारा उनके क्रियान्वयन पर व्यापक विचार-विमर्श में सदस्यों की अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित हुई है। पहले समयाभाव के कारण संसद प्रतिवर्ष कुछेक मंत्रालयों की अनुदानों की मांगों की ही संवीक्षा कर पाती थी।[64]

इसके अलावा सदस्यों को विषय के विशेषज्ञों और नोडल मंत्रालयों के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श करने हेतु मंच प्रदान करने के साथ-साथ उन्हें राष्ट्रीय महत्व के विशिष्ट मुद्दों के संबंध में सूचना और जानकारी देने के उद्देश्य से वर्ष 2005 में संसदीय मंचों का गठन करने की पहल की गई थी। ये मंच सदस्यों को सरोकारों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों और वास्तविक स्थिति के बारे में सुग्राही बनाते हैं और उन्हें नवीनतम सूचना, जानकारी, तकनीकी जानकारी तथा देश-विदेश के विशेषज्ञों से प्राप्त बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं

---

64. साथ ही *देखिए* अध्याय 30–'संसदीय समितियां'।

ताकि वे इन मुद्दों को सभा में प्रभावी तरीकें से उठा सकें। अब तक, जल संरक्षण और प्रबंधन, बाल, युवा, जनसंख्या और जन-स्वास्थ्य, भूमंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन, आपदा प्रबंधन, शिल्पकार और दस्तकार और सहस्राब्दि विकास लक्ष्य से संबंधित आठ संसदीय मंच गठित किये गए हैं।[65]

संक्षेप में, भारत में संसद का राज्य के अंगों में प्रधानता की दृष्टि से एक अद्वितीय स्थान है। इस तथ्य के होते हुए भी कि यह लिखित संविधान और संघीय ढांचे के अन्तर्गत कार्य करती है, इसका वास्तविक प्राधिकार, शक्ति और इसका अधिकार क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यद्यपि संविधान के अन्तर्गत संसद स्वयं देश का शासन नहीं चलाती है, तथापि यह अपनी प्रक्रिया के सोद्देश्य प्रयोग और समिति प्रणाली के माध्यम से विभिन्न प्रकार से शासन व्यवस्था पर प्रभावी ढंग से निगरानी रखती है।

आगामी अध्यायों में समय के साथ-साथ यथा विकसित विभिन्न संसदीय पद्धतियों, कार्यविधियों तथा प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला गया है।

65. देखिए अध्याय 31, संसदीय मंच।

अध्याय 2

संसद की संरचना

संसद द्विसदनीय विधान-मण्डल है और इसकी संरचना राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा[1] से होती है– ये तीन संघटक मिलकर संसद का गठन करते हैं।

राष्ट्रपति

राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है यद्यपि वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है। राष्ट्रपति की शक्तियों तथा संसद के संबंध में उसकी स्थिति का वर्णन अध्याय 3 में और राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन, उसकी पदावधि, पद की शपथ आदि का वर्णन अध्याय 5 में किया गया है।

राज्य सभा

राज्य सभा राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित बारह सदस्यों और राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों के दो सौ अड़तीस से अनधिक प्रतिनिधियों से मिलकर बनती है।[2] राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित सदस्य ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला तथा समाज सेवा जैसे विषयों का विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव होता है।[3]

राज्य सभा में राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जाने वाले स्थानों का आबंटन संविधान की चौथी अनुसूची में इस निमित्त अंतर्विष्ट उपबन्ध के अनुसार किया जाता है।[4]

---

1. अनुच्छेद 79 ।

   14 मई, 1954 को अध्यक्ष मावलंकर ने घोषणा की कि हाउस ऑफ द पीपल को तत्पश्चात् 'लोक सभा' कहा जाएगा। 23 अगस्त, 1954 को काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सभापति ने इसी तिथि के काउंसिल ऑफ स्टेट्स का नाम बदल कर 'राज्य सभा' करने संबंधी इसी प्रकार के निर्णय की घोषणा की। *लो.स.वा.वि.,* 14.5.1954, का 5201 तथा *आर.एस.डिबेट्स,* 23.8.1954, कॉ. 35-37 ।

   'लोक सभा' तथा 'राज्य सभा' शब्दों का पहली बार प्रयोग दिल्ली (कंट्रोल ऑफ बिल्डिंग आपरेशन्स) बिल, 1955 के एक संशोधन में किया गया जिसे सभा द्वारा स्वीकृत किया गया था।
2. अनुच्छेद 80(1) ।
3. अनुच्छेद 80(3) ।
4. अनुच्छेद 80(2) ।

राज्य सभा का पहली बार विधिवत् गठन 3 अप्रैल, 1952 को किया गया था।[5] उसमें 216 सदस्य थे जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित किए गए थे। बाकी 204 सदस्यों का निर्वाचन राज्यों के प्रतिनिधियों के रूप में हुआ था।[6] जम्मू-कश्मीर राज्य के चार प्रतिनिधियों का चयन राष्ट्रपति ने संविधान (जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू होना) आदेश, 1950 के अनुसार राज्य की सरकार से परामर्श करके किया था।[7] वस्तुत: राज्य सरकार ने राष्ट्रपति द्वारा चुने जाने वाले व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करने में उस राज्य की संविधान सभा के सर्वसम्मत संकल्प को कार्यान्वित किया। नए राज्यों के गठन के परिणामस्वरूप, राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों को आवंटित स्थानों की संख्या में समय-समय पर वृद्धि हुई है।[8] इस समय राज्य सभा में कुल 245 स्थान हैं[9] जिनमें राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित 12 सदस्य भी सम्मिलित हैं। एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा भरे जाने वाले 233 स्थानों का आवंटन इस प्रकार है[10]:–

राज्य		*स्थानों की संख्या*
अरुणाचल प्रदेश	–	01
असम	–	07
आंध्र प्रदेश	–	18

5. राज्य सभा की पहली बैठक 13 मई, 1952 को हुई थी।
6. 145 सदस्यों ने भाग 'क' राज्यों, 49 सदस्यों ने भाग 'ख' राज्यों और 10 सदस्यों ने भाग 'ग' राज्यों का प्रतिनिधित्व किया था, जैसा कि संविधान की तत्समय चौथी अनुसूची में अधिकथित था।
7. 14 मई, 1954 के संविधान (जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू होना) आदेश की शर्तों के अनुसार जम्मू-कश्मीर राज्य में राज्य सभा की सभी भावी रिक्तियों को जम्मू-कश्मीर विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचन द्वारा भरा जाना है। इस प्रकार का पहला निर्वाचन नवम्बर, 1954 में हुआ था।
8. समय-समय पर राज्य सभा में निर्वाचित स्थानों की संख्या इस प्रकार रही है: 1952:204; 1954:207; 1956:220; 1960:224; 1964:226; 1966:228; 1972:231; 1976:232 और 1987 से आगे : 233 ।
9. राज्य सभा के उद्भव, संरचना, शक्तियों और स्थिति के विस्तृत विवरण के लिए *देखिए कार्यरत राज्य सभा,* राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2006।
10. संविधान की चौथी अनुसूची, संविधान (छप्पनवां संशोधन) अधिनियम 1987 द्वारा यथा संशोधित।

राज्य		*स्थानों की संख्या*
उत्तर प्रदेश	–	31[11]
उत्तराखंड[13]	–	3[12]
ओडिशा[14]	–	10
कर्नाटक	–	12
केरल	–	09
गुजरात	–	11
गोवा	–	01
छत्तीसगढ़[12]	–	05
जम्मू-कश्मीर	–	04
झारखंड[12]	–	06
तमिलनाडु	–	18
त्रिपुरा	–	01
नागालैंड	–	01
पंजाब	–	07
पश्चिम बंगाल	–	16
बिहार	–	16[15]
मणिपुर	–	01
मध्य प्रदेश	–	11[16]
महाराष्ट्र	–	19
मिजोरम	–	01

11. उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000
12. तीन राज्य अर्थात् छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड क्रमशः मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000, बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 और उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा सृजित किए गए थे।
13. उत्तरांचल (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006 द्वारा राज्य का नाम परिवर्तित कर 'उत्तराखंड' कर दिया गया।
14. उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011 द्वारा राज्य का नाम परिवर्तित कर ओडिशा कर दिया गया।
15. बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000
16. मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000

राज्य		*स्थानों की संख्या*
मेघालय	–	01
राजस्थान	–	10
सिक्किम	–	01
हरियाणा	–	05
हिमाचल प्रदेश	–	03
संघ राज्यक्षेत्र		
दिल्ली	–	03
पुडुचेरी[17]	–	01

राज्य सभा का विघटन नहीं होता, परन्तु उसके सदस्यों में से यथासंभव निकटतम एक–तिहाई सदस्य, संसद द्वारा विधि द्वारा इस निमित्त किए गए उपबन्धों के अनुसार प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर यथाशक्य शीघ्र निवृत्त हो जाते हैं।[18] सदस्यों की पदावधि : *(i)* द्विवार्षिक आधार पर निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों के मामले में उस तिथि से, जिस तिथि से भारत सरकार द्वारा उनके नाम राजपत्र में अधिसूचित किए गए हों।[19] और *(ii)* आकस्मिक रिक्ति भरने के लिए निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्य के मामले में, यथास्थिति; ऐसे व्यक्ति के निर्वाचन की घोषणा अथवा ऐसे व्यक्ति के नामनिर्देशन की घोषणा करने वाली अधिसूचना के राजपत्र में प्रकाशित होने की तिथि से प्रारम्भ होती है।[20]

राज्य सभा के सदस्य की सामान्य पदावधि निर्वाचन अथवा नामनिर्देशन की तिथि से छः वर्ष तक की होती है।[21] तथापि, आकस्मिक रिक्ति को भरने हेतु निर्वाचित अथवा नामनिर्दिष्ट सदस्य पूर्ववर्ती सदस्य की शेष पदावधि तक पद धारण करता है।[22]

17. पांडिचेरी (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006 द्वारा संघ राज्यक्षेत्र का नाम परिवर्तित कर पुडुचेरी कर दिया गया ।
18. अनुच्छेद 83 (1)।
    राज्य सभा के एक–तिहाई सदस्यों के सावधिक निवृत्त होने संबंधी प्रक्रिया *(i)* लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 154; और *(ii)* राज्य परिषद (सदस्यों की पदावधि) आदेश, 1952 में अधिकथित है।
19. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 155(1)।
20. *पूर्वोक्त,* धारा 155(2) ।
21. *पूर्वोक्त,* धारा 154(1)।
22. *पूर्वोक्त,* धारा 154(3) ।

लोक सभा

इस समय लोक सभा[23] में राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए सदस्यों की संख्या पांच सौ तीस से अनधिक है[24] और संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों[25] की संख्या बीस से अनधिक है, जिनका चुनाव ऐसी रीति से होता है जो संसद विधि द्वारा उपबंधित करे।[26] राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए सदस्यों की अधिकतम संख्या की सीमा में वृद्धि की जा सकती है, यदि ऐसी वृद्धि संसद के अधिनियम द्वारा राज्यों के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप हो।[27]

राष्ट्रपति को यह शक्ति[28] प्राप्त है कि यदि उसकी राय में लोक सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोक सभा में उस समुदाय के दो से अनधिक सदस्य नामनिर्देशित कर सकता है।[29]

---

23. लोक सभा का विधिवत गठन पहली बार 17 अप्रैल, 1952 को किया गया था। पहली लोक सभा में 499 स्थान थे। इनमें से 489 स्थान वयस्क मताधिकार द्वारा प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा निर्वाचित व्यक्तियों से, 2 स्थान अनुच्छेद 331 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा आंग्ल-भारतीय समुदाय को प्रतिनिधित्व देने के लिए नामनिर्देशित व्यक्तियों से और 8 स्थान राष्ट्रपति द्वारा विशेष परिस्थितियों (एक स्थान असम के भाग ख जनजातीय क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के लिए, छः स्थान जम्मू-कश्मीर के प्रतिनिधित्व के लिए और एक स्थान अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह के प्रतिनिधित्व के लिए) में नामनिर्देशित व्यक्तियों से भरे गए।
24. संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 के अंतर्गत, अधिकतम संख्या 500 निर्धारित की गई थी। यह संख्या संविधान (इकतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1973 द्वारा बढ़ाकर 525 कर दी गई तथा गोवा, दमण और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 द्वारा इसे और बढ़ाकर 530 कर दिया गया है।
25. संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अधिकतम संख्या 20 निर्धारित की गई थी। अधिकतम संख्या, जिसे संविधान (चौदहवां संशोधन) अधिनियम, 1962 द्वारा बढ़ाकर 25 किया गया था, को पुनः संविधान (इकतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1973 द्वारा घटाकर 20 कर दिया गया।
26. अनुच्छेद 81(1)।
27. गोवा, दमण और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 की धारा 63 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 81 में संशोधन के परिणामस्वरूप राज्यों से लोक सभा के लिए सदस्यों की संख्या 530 तक बढ़ा दी गई।

    देखिए मंगल सिंह बनाम भारत संघ (ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 944) जिसमें पंजाब पुनर्गठन अधिनियम के उपबंधों की वैधता को उच्चतम न्यायालय द्वारा सही ठहराया गया है जिसमें यह व्यवस्था की गई थी कि हरियाणा विधान सभा की सदस्यता अनुच्छेद 170(1) द्वारा निर्धारित न्यूनतम अर्थात् 60 सदस्य से कम होगी।
28. अनुच्छेद 331।
29. राष्ट्रपति द्वारा आंग्ल-भारतीय समुदाय के दो सदस्य अब तक सभी लोक सभाओं में नामित किए गए हैं।

राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों से निर्वाचन के लिए, प्रत्येक राज्य को लोक सभा में स्थानों का आवंटन ऐसी रीति से किया जाता है कि स्थानों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के लिए यथासाध्य एक ही हो। तत्पश्चात् प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाता है कि प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात समस्त राज्य में यथासाध्य एक ही हो।[30] 'जनसंख्या' पद से ऐसी अन्तिम पूर्ववर्ती जनगणना में अभिनिश्चित की गई जनसंख्या अभिप्रेत है जिसके सुसंगत आंकड़े प्रकाशित हो गये हैं। परन्तु जब तक सन् 2026 के पश्चात् की गई पहली जनगणना के सुसंगत आंकड़े प्रकाशित नहीं हो जाते हैं तब तक अंतिम पूर्ववर्ती जनगणना के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जायेगा कि वह 1971 की जनगणना के प्रति निर्देश है[31]। तथापि लोक सभा में स्थानों के आवंटन के उद्देश्य से प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाएगा कि 2001 की जनगणना के अनुसार प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात, समस्त राज्य में यथासाध्य एक ही हो।

राज्यों को लोक सभा में स्थानों के आवंटन और प्रत्येक राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजन का ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसी रीति से पुनः समायोजन किया जाता है जो संसद विधि द्वारा अवधारित करे परन्तु ऐसे पुनः समायोजन से लोक सभा में प्रतिनिधित्व पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ता जब तक उस समय विद्यमान लोक सभा का विघटन नहीं हो जाता है। प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों का पुनः समायोजन उस तारीख से प्रभावी होता है जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे और ऐसे पुनः समायोजन के प्रभावी होने तक लोक सभा के लिए कोई निर्वाचन उन प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों के आधार पर हो सकता है जो ऐसे पुनः समायोजन के पहले विद्यमान है।[32]

---

30. अनुच्छेद 81(2)। तथापि यह तब तक किसी राज्य पर लागू नहीं होता है जब तक कि उस राज्य की जनसंख्या 60 लाख से अधिक न हो जाये।

31. अनुच्छेद 81(3)।

32. अनुच्छेद 82 ।

    निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन, परिसीमन आयोग द्वारा किया गया है। परिसीमन आयोग अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत (अब जिसका निरसन हो चुका है), आयोग को संख्या के निर्धारण के संबंध में अपने प्रस्तावों को पहले प्रकाशित करना पड़ता था और उसके बाद स्थानों के बंटवारे और निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन के संबंध में प्रस्तावों का प्रकाशन करना पड़ता था। उनके संबंध में प्राप्त सुझावों तथा आपत्तियों पर विचार करने के बाद आयोग को एक या अधिक 'अंतिम' आदेशों द्वारा सारे मामलों का फैसला करना होता था। प्रत्येक 'अंतिम' आदेश का प्रकाशन राजपत्र में करना पड़ता था और प्रकाशित होने पर ऐसे आदेश को विधि का पूर्णबल प्राप्त होता था। परिसीमन आयोग अधिनियम, 1962 (अब इसका भी निरसन हो चुका है) के अन्तर्गत आयोग को आदेशानुसार यह प्राधिकार दिया गया था कि वह जनगणना के नवीनतम आंकड़ों के आधार पर तथा इस विषय पर संविधान के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए लोक सभा में

लगभग सभी राज्यों में और कुछ संघ राज्यक्षेत्रों में लोक सभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित हैं।[33]

स्थानों का निर्धारण करे। आयोग के लिए आवश्यक था कि वह केवल निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन संबंधी प्रस्ताव प्रकाशित करे और उनके संबंध में प्राप्त सुझावों तथा आपत्तियों पर विचार करने के बाद एक या अधिक आदेशों द्वारा निर्वाचन-क्षेत्रों के परिसीमन का निर्धारण करे। ऐसे प्रत्येक आदेश का राजपत्र में छपना जरूरी था और प्रकाशित होने पर ऐसे हर आदेश को विधि का पूर्ण बल प्राप्त होता था। परिसीमन आयोग विधयेक, 1962 पर विचार के दौरान एक सदस्य द्वारा एक संशोधन का प्रस्ताव रखा गया था कि 'विधि का पूर्ण बल' इस पदावली से 'पूर्ण' शब्द हटा दिया जाये जिसे सभा द्वारा स्वीकृत किया गया, *लो.स.वा.वि,* 3.12.1962, पृ. 1768-69 ।

परिसीमन अधिनियम, 1972 के अन्तर्गत आयोग को नवीनतम जनगणना आंकड़ों के आधार पर लोकसभा में स्थानों के आबंटन का पुन: समायोजन करना पड़ता है। अन्य मामलों में, अधिनियम में किए गए उपबंध परिसीमन आयोग अधिनियम, 1962 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिमान के अनुसार हैं।

निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन पहली बार 1952 और फिर 1956 में हुआ था। द्विसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (उत्सादन) अधिनियम, 1961 की धारा 7 के अंतर्गत फिर निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन 1961 में हुआ। सन् 1967 के आम चुनावों के पूर्व 1961 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार निर्वाचन-क्षेत्रों का परिसीमन किया गया था। फिर यह कार्य सन् 1971 की जनगणना के अनुसार किया गया और परिसीमन आयोग ने अपना कार्य (तत्समय संघ राज्यक्षेत्र अरुणाचल प्रदेश के मामले को छोड़कर) सन् 1977 के आम चुनावों से पूर्व पूरा कर लिया। संसदीय तथा विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र परिसीमन आदेश, 1976 निर्वाचन आयोग द्वारा 1 दिसंबर, 1976 को बनाया गया था। संविधान (चौरासीवां संशोधन) अधिनियम, 2001 और संविधान (सत्तासीवां संशोधन) अधिनियम 2003 ने अन्य बातों के साथ-साथ संविधान के अनुच्छेदों 81, 82, 170, 330 और 332 को संशोधित कर दिया। तदनुसार, परिसीमन अधिनियम, 2002 (2002 की सं. 33) द्वारा एक नया परिसीमन आयोग गठित किया गया और परिसीमन, अधिनियम 1972 निरसित हो गया। 17 अगस्त, 2007 को परिसीमन आयोग ने 25 राज्यों के संबंध में अधिसूचनाएं जारी की थीं।

33. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए परिसीमन आयोग अधिनियम, 1952 में उपबंध किया गया कि सभी संसदीय और विधान सभा निर्वाचन-क्षेत्रों को या तो एक-सदस्यीय अथवा द्विसदस्यीय होना चाहिए तथा जहां भी व्यवहार्य हो, एक-सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित होने चाहिए और प्रत्येक द्विसदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र में एक स्थान या तो अनुसूचित जातियों के लिए अथवा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित होना चाहिए और दूसरा स्थान अनारक्षित होना चाहिए। तथापि, द्विसदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्रों को राजनीतिक दलों द्वारा व्यावहारिक नहीं माना गया क्योंकि चुनाव के लिए खड़े होने वाले उनके उम्मीदवारों को एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव के लिए खड़े होने वाले उम्मीदवारों के मुकाबले दुगुने क्षेत्र में कार्य करना पड़ता था, दुगुने निर्वाचकों के पास जाकर चुनाव प्रचार करना पड़ता था और परिणामस्वरूप

किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात, लोक सभा में उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को आवंटित स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही है जो यथास्थिति उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की अनुसूचित जातियों की अथवा उस राज्य, संघ राज्यक्षेत्र की या उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के भाग की अनुसूचित जनजातियों की, जिनके संबंध में स्थान इस प्रकार आरक्षित हैं, जनसंख्या का अनुपात उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र[34] की कुल जनसंख्या से है। परन्तु लोक सभा में असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात उस राज्य को आवंटित स्थानों की कुल संख्या के उस अनुपात से कम नहीं होगा जो उक्त स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की कुल जनसंख्या से है। यहाँ प्रयुक्त 'जनसंख्या' पद से वही अभिप्रेत है जैसा कि अनुच्छेद 81(3) में प्रयुक्त है।[35]

अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य का अनारक्षित स्थान से चुनाव लड़ने का अधिकार केवल इसलिए समाप्त नहीं हो जाता कि वह इस उद्देश्य हेतु निर्धारित घोषणा करके आरक्षित स्थान से चुनाव लड़ने की अतिरिक्त रियायत का लाभ उठाता है।[36]

लोक सभा में कुल स्थानों की संख्या 545 है जिनमें से आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने हेतु दो स्थान राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशन द्वारा भरे जाते हैं। निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले 543 स्थान प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए व्यक्तियों से भरे जाते हैं।[37] राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के लिए स्थानों का आवंटन और प्रत्येक राज्य और संघ राज्यक्षेत्र के अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या, यदि कोई हो, निम्न प्रकार है[38]:

दुगुना खर्च वहन करना पड़ता था। प्रशासनिक दृष्टिकोण से भी द्विसदस्यीय बड़े चुनाव क्षेत्रों का प्रबंध करना कठिन पाया गया। अत: द्विसदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्रों को समाप्त करने की मांग हुई और परिणामस्वरूप द्विसदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र (उत्सादन) अधिनियम, 1961 पारित किया गया। इनमें से प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र को दो सुसम्बद्ध और सुविधाजनक एक सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित करने और यह निर्णय करने, कि इनमें से किस निर्वाचन-क्षेत्र के स्थान को अनुसूचित जातियों अथवा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किया जाये, यह कार्य निर्वाचन आयोग को सौंपा गया।

34. अनुच्छेद 330(2)।

35. अनुच्छेद 330(3)।

36. *वी.वी. गिरि बनाम डी. सूरी डोरा और अन्य,* ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 1318 ।

37. लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 4 ।

38. उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011 द्वारा राज्य का नाम परिवर्तित कर 'ओडिशा' कर दिया गया।

राज्य/संघ राज्य क्षेत्र का नाम		स्थानों की कुल संख्या	अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित	अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित
1		2	3	4
I. राज्य				
1.	अरुणाचल प्रदेश	2	–	–
2.	असम	14	1	2
3.	आंध्र प्रदेश	42	7	3
4.	उत्तर प्रदेश	80	17	–
5.	उत्तराखंड	5	1	–
6.	ओडिशा[37]	21	3	5
7.	कर्नाटक	28	5	–
8.	केरल	20	2	–
9.	गुजरात	26	2	4
10.	गोवा	2	–	–
11.	छत्तीसगढ़	11	1	4
12.	जम्मू-कश्मीर	6	–	–
13.	झारखंड	14	1	5
14.	तमिलनाडु	39	7	–
15.	त्रिपुरा	2	–	1
16.	नागालैंड	1	–	–
17.	पंजाब	13	4	–
18.	पश्चिम बंगाल	42	10	2
19.	बिहार	40	6	–
20.	मणिपुर	2	–	1
21.	मध्य प्रदेश	29	4	6
22.	महाराष्ट्र	48	5	4
23.	मिजोरम	1	–	1
24.	मेघालय	2	–	2
25.	राजस्थान	25	4	3
26.	सिक्किम	1	–	–
27.	हरियाणा	10	2	–
28.	हिमाचल प्रदेश	4	1	–

1	2	3	4
II. संघ राज्यक्षेत्र			
1. अंदमान और निकोबार द्वीप समूह	1	–	–
2. चंडीगढ़	1	–	–
3. दादरा और नागर हवेली	1	–	1
4. दमण और दीव	1	–	–
5. पुडुचेरी[39]	1	–	–
6. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली	7	1	–
7. लक्षद्वीप	1	–	1
कुल	543	84	47

लोक सभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण और आंग्ल-भारतीय समुदाय के प्रतिनिधित्व संबंधी संविधान के उपबंध इस संविधान के प्रारम्भ से सत्तर वर्ष की अवधि की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेंगे।[40] लोक सभा में प्रतिनिधित्व पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक उस समय विद्यमान सभा का विघटन नहीं हो जाता है।

लोक सभा यदि पहले ही विघटित नहीं कर दी जाती है तो अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहती है, इससे अधिक नहीं और पांच वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति का परिणाम सभा का विघटन होता है।[41] तथापि इस अवधि को, जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, तब संसद विधि द्वारा ऐसी अवधि के लिए बढ़ा सकेगी जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं होगी और उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रह जाने के

39. पांडिचेरी (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2006 द्वारा संघ राज्य क्षेत्र का नाम परिवर्तित कर पुडुचेरी परिवर्तित कर दिया गया।

40. अनुच्छेद 334 । मूलतः अवधि 'दस वर्ष' के लिए थी। यह अवधि संविधान (आठवां संशोधन) अधिनियम, 1959 द्वारा 'बीस वर्ष' तक के लिए संविधान (तेइसवां संशोधन) अधिनियम, 1970 द्वारा 'तीस वर्ष' तक के लिए; और संविधान (पचपनवां संशोधन) अधिनियम, 1980, द्वारा 'चालीस वर्ष' तक के लिए बढ़ाई गई थी। इस अवधि को संविधान (बासठवां संशोधन) अधिनियम, 1989 द्वारा पचास वर्ष के लिए बढ़ाया गया था और संविधान (उनासीवां संशोधन) अधिनियम, 1999 द्वारा साठ वर्ष तक बढ़ाया गया था तथा संविधान (पंचानवेवां) अधिनियम, 2009 द्वारा सत्तर वर्ष के लिए बढ़ाया गया था।

41. अनुच्छेद 83(2)। मूलतः लोक सभा की कालावधि 5 वर्ष की थी। इसे संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा बढ़ाकर 6 वर्ष किया गया था। इसे संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा पुनः कम करके पाँच वर्ष कर दिया गया था।

पश्चात् उसका विस्तार किसी भी दशा में छह मास की अवधि से अधिक नहीं होगा। पांचवीं लोक सभा का पांच वर्ष का कार्यकाल सामान्यतः 18 मार्च, 1976 को समाप्त होना था। 3 दिसंबर, 1971 और 25 जून, 1975 को आपातकाल की उद्घोषणाओं के जारी होने के बाद, इसके प्रभावी रहने के दौरान, पांचवीं लोक सभा का कार्यकाल पहली बार 4 फरवरी, 1976 को एक वर्ष के लिए बढ़ाया गया था और पुनः 5 नवंबर, 1976 को और एक वर्ष की अवधि के लिए 18 मार्च, 1978 तक बढ़ाया गया था।[42]

अवधि पूर्ण होने से पहले लोक सभा का विघटन असंवैधानिक नहीं है।[43] चौथी लोक सभा का तीन वर्ष और 285 दिनों की अवधि के बाद 27 दिसंबर, 1970 को विघटन किया गया था।[44] पांचवीं लोक सभा का विघटन उसकी बढ़ाई गई अवधि के पूर्ण होने से पूर्व ही 18 जनवरी, 1977 को हो गया था। छठी लोक सभा का विघटन उसके कार्यकाल के पूर्ण होने के पहले ही 22 अगस्त, 1979 को हो गया था। नौवीं, ग्याहरवीं और बारहवीं लोक सभाओं का विघटन भी उनकी अवधियों के पूर्ण होने से पहले क्रमशः 13 मार्च, 1991, 4 दिसंबर, 1997 और 26 अप्रैल, 1999 को हो गया था। तेरहवीं लोक सभा राष्ट्रपति द्वारा 6 फरवरी, 2004 को विघटित कर दी गई थी। चौदहवीं लोक सभा का विघटन 18 मई, 2009 को कर दिया गया था।

---

42. लोक सभा (कालावधि विस्तारण) अधिनियम, 1976 और लोक सभा (कालावधि विस्तारण) संशोधन अधिनियम, 1976।

43. राष्ट्रपति द्वारा दूसरी लोक सभा को 31 मार्च, 1962 को विघटित कर दिया गया था, जबकि तत्समय संविधान के अनुच्छेद 83(2) में अधिकथित उसकी पांच वर्ष की कालावधि पूरी नहीं हुई थी। डा. एन.सी. सामन्त सिन्हा ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दिल्ली में पंजाब उच्च न्यायालय की सर्किट पीठ के समक्ष एक याचिका दायर की थी कि *प्रारंभिक* आदेश जारी किया जाये (और इस बीच प्रतिवादी से कहा जाये कि वह 16 अप्रैल, 1962 को तीसरी लोक सभा को आहूत न करे) तथा समय से पहले लोक सभा का विघटन शून्य तथा निष्प्रभावी घोषित किया जाये जिसे उच्च न्यायालय ने 4 अप्रैल, 1962 को अस्वीकार कर दिया।

44. चौथी लोक सभा के विघटन का प्रमुख कारण सरकार द्वारा नया जनादेश प्राप्त करना था ताकि सरकार अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए समर्थ हो सके, क्योंकि नवम्बर, 1969 में कांग्रेस के दो दलों अर्थात् कांग्रेस (आई) और कांग्रेस (ओ) में विभाजित होने पर सरकार बनाने वाले दल [कांग्रेस (आई)] ने सभा में अपना बहुमत खो दिया था।

अध्याय 3

राष्ट्रपति का संसद से संबंध

संविधान के अंतर्गत संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है जिसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा करता है।[1] संघ की कार्यपालिका शक्ति का क्षेत्र विस्तार संसद की विधायी शक्ति के क्षेत्र विस्तार के समान ही है और संसद राष्ट्रपति और संसद के दोनों सदनों से मिलकर बनती है।[2] इस प्रकार एक ओर राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रमुख है तो दूसरी ओर संसद का अंग। यह तथ्य सर्वोच्च कार्यपालिका और विधायी प्राधिकारियों में वास्तविक संयोजन को दर्शाता है। संविधान के अनुसार तथा वास्तविक व्यवहार में भी कार्यपालिका और विधायिका के बीच बहुत घनिष्ठ संबंध है और यह संबंध किसी भी प्रकार के विरोध अथवा मतभेद की अनुमति नहीं देता।[3]

राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद

संविधान के बयालीसवें संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति के लिए स्पष्ट रूप से यह बाध्य नहीं था कि वह अपने कृत्यों का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही करे। तथापि, उस समय प्रचलित परम्पराओं, प्रथाओं और लोकाचार के साथ पठित औपचारिक संवैधानिक उपबंध[4] में स्पष्ट किया गया था कि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रमुख है और वह मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही अपनी शक्ति का प्रयोग करता है।

बयालीसवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा यह बाध्यकारी बना दिया गया कि राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही करेगा। तथापि, यह बाध्यता संविधान के उस चवालीसवें संशोधन अधिनियम द्वारा आंशिक रूप से कम कर दी गई जिसमें यह उपबंध था कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद से ऐसी सलाह पर साधारणतः या अन्यथा पुनर्विचार की अपेक्षा कर सकता है, परन्तु वह ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा। इसलिए, व्यावहारिक रूप में राष्ट्रपति नहीं बल्कि मंत्रिपरिषद ही सभी कार्यकारी कृत्यों के लिए उत्तरदायी होती है।[5]

---

1. अनुच्छेद 53(1) ।
2. अनुच्छेद 73(1) और 79 ।
3. *देखिए* सुभाष सी. कश्यप : *पार्लियामेंट ऑफ इंडिया : मिथ्स एण्ड रिऐलिटीस,* नेशनल, नई दिल्ली, 1988 पृ. 39, 43 और 70 ।
4. अनुच्छेद 74 का पाठ संशोधन से पूर्व इस प्रकार था : 'राष्ट्रपति को उसके कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री होगा।'
5. जब एक सदस्य ने यह प्रश्न उठाया कि चूंकि संविधान में उपबंध है कि जब भी राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि उसके लिए अध्यादेश जारी करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक हो गया है तो वह अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है और उसके इस कृत्य के

संविधान सभा ने यह कल्पना कभी नहीं की थी कि राष्ट्रपति में निहित शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग वह मंत्रियों के परामर्श के बिना स्वयं करेगा। इस बात को संविधान सभा के बहुत से सदस्यों ने संविधान सभा में सुचारु ढंग से स्पष्ट कर दिया था। प्रारूप समिति द्वारा तैयार किए गए संविधान के मसौदे को पुर:स्थापित करते हुए डा. बी.आर. अम्बेडकर ने इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा था:

> इस मसौदे के अनुसार हमारे राष्ट्रपति का वही स्थान है जो अंग्रेजी विधान के अंतर्गत सम्राट का है। वह राज्य का प्रधान है, किन्तु कार्यपालिका का प्रधान नहीं है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, परन्तु वह राष्ट्र पर शासन नहीं करता... भारतीय संघ के प्रेसीडेंट के लिए अपने मंत्रियों की राय मानना साधारणत: आवश्यक होगा। वह उनकी राय के प्रतिकूल कुछ नहीं कर सकता और न बिना उनकी राय लिये ही कुछ कर सकता।[6]

डा. अल्लादी के. अय्यर ने कहा:

> इस संबंध में एक बात याद रखने की यह है कि राष्ट्रपति जिस किसी भी शक्ति का प्रयोग करेगा वह अपने दायित्व पर नहीं करेगा। संविधान में 'राष्ट्रपति' शब्द उस समस्त निकाय के लिए ही आया है जो विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा।[7]

उच्चतम न्यायालय ने भी यही राय प्रकट की थी:

> अनुच्छेद 53(1), ... के अंतर्गत "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है परन्तु अनुच्छेद 75[8] के अंतर्गत राष्ट्रपति को उसके कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता

औचित्य पर आपत्ति नहीं की जा सकती, इस पर लोक सभा के अध्यक्ष मावलंकर ने टिप्पणी की :

"राष्ट्रपति संवैधानिक राष्ट्रपति है जो सरकार की सलाह पर कार्य करता है। इसलिए जब यह कहा जाए कि राष्ट्रपति का समाधान हो गया है, इसका वास्तविक अर्थ है कि सरकार का समाधान हो गया है। अत: सभा को इस विषय पर सरकार की आलोचना करने का अधिकार है।" – *एच.पी. डिबेट्स* (II) 16.2.1954, का. 90 ।

6. सी.ए.डिबेट्स, 4.11.1984, पृ. 61 ।
   संविधान के प्रारूप में मूलत: एक खंड था और राष्ट्रपति के लिए निर्देशों की एक अनुसूची थी जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी उपबंध किया गया कि राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह पर करेगा। अन्ततोगत्वा इन निर्देशों तथा अनुसूची दोनों को अनावश्यक समझ कर हटा दिया गया। एक विशिष्ट प्रश्न पूछे जाने पर कि "यदि किसी खास मामले में राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह पर नहीं चलता है तो क्या यह संविधान का उल्लंघन समझा जायेगा और क्या इसके लिये उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है।" डा. अम्बेडकर ने कहा— "इसमें तो रंचमात्र भी संदेह नहीं हो सकता है।" *देखिए* सी.ए.डिबेट्स, खंड X, 1949, पृ. 3137 ।
7. सी.ए.डिबेट्स, खंड VII (क), 8.11.1948, पृ. 344, 30.12.1948, पृ. 1984 और 2.8.1949, पृ. 186 भी देखिए।
8. स्पष्ट है कि अनुच्छेद 74(1) जैसा कि संशोधन से पूर्व था, भी इसके साथ पढ़ा जाना चाहिए।

> और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा। इस प्रकार राष्ट्रपति को कार्यपालिका का औपचारिक अथवा संवैधानिक अध्यक्ष बनाया गया है और वास्तविक कार्यपालिका शक्तियां मंत्रियों या मंत्रिमण्डल में निहित हैं।[9]

वास्तविक व्यवहार में भी राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग हमेशा मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही करता रहा है। इस प्रकार संविधान के बयालीसवें संशोधन ने इस संबंध में निरन्तर विद्यमान स्थिति की केवल पुष्टि की।[10]

राष्ट्रपति का सूचना का अधिकार

तथापि, राष्ट्रपति को सूचना प्राप्त करने अथवा सूचना मांगने का अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद 78(क) के अंतर्गत प्रधानमंत्री को संघ के कार्यकलाप के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं के संबंध में मंत्रिपरिषद के सभी विनिश्चयों की संसूचना राष्ट्रपति को देनी होती है। अनुच्छेद 78(ख) प्रधानमंत्री को "संघ के कार्यकलाप की प्रशासन और विधान विषयक प्रस्थापनाओं के संबंध में वैसी संसूचना भेजने को बाध्य करता है जो राष्ट्रपति मांगे।" अनुच्छेद 78 के खंड (ग) के अंतर्गत राष्ट्रपति यह कह सकता है किसी मंत्री द्वारा विनिश्चित किसी विषय को मंत्रिपरिषद के समक्ष रखा जाए और ऐसा करना प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य होगा।

---

9. *राम जवाया बनाम पंजाब* राज्य के मामले में, 1955, 2 एस.सी.आर. 225(236)।
   1960 में राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने भारतीय विधि संस्था, नई दिल्ली में अपने भाषण में कहा: "संविधान में कोई ऐसा उपबंध नहीं है जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया हो कि राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार अपने कृत्यों का प्रयोग करने के लिए बाध्य होगा"– सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, *स्पीचिज बाय डा. राजेन्द्र प्रसाद* 1960-61, पृ. 165 ।
   दिसम्बर 1960 में दिल्ली में एक प्रेस सम्मेलन में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा:
   "राष्ट्रपति ने सदा संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य किया है। ...... हमने अपना संविधान संसदीय प्रणाली के अनुरूप बनाया है न कि उस व्यवस्था के नमूने पर जिसे राष्ट्रपति प्रणाली कहा जाता है, हालांकि हमने अमरीकी संविधान के कई उपबंधों की नकल की है अथवा उन्हें अपनाया है क्योंकि हमारा संविधान संघीय है। मूलतः हमारा संविधान ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली पर आधारित है। आधारभूत बात यही है। वास्तव में, यह कहा गया है कि संविधान में जहां कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है, हमें ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्ज के व्यवहारों का अनुसरण करना चाहिए–प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, जवाहर लाल नेहरूज़ स्पीचिज, खंड IV, सितम्बर 1957–अप्रैल 1963, पृ. 100-101।
10. अनुच्छेद 74(1) में अन्तर्विष्ट इस स्पष्ट उपबंध के बावजूद कि राष्ट्रपति अपने कार्यों के निर्वहन में मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करने को बाध्य होगा, कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में उपराष्ट्रपति, श्री बी.डी. जत्ती द्वारा अनुच्छेद 356 के अंतर्गत नौ राज्य विधान सभाओं को भंग करने संबंधी उद्घोषणाओं पर हस्ताक्षर किए जाने पर संवैधानिक विवाद उठा था। केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा इन उद्घोषणाओं की प्रतियां 29 अप्रैल, 1977 को उपराष्ट्रपति, जो कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे, को हस्ताक्षरार्थ भेजी गई थीं। तथापि, इन उद्घोषणाओं पर उन्होंने लगभग 24 घंटे के विलंब के बाद 30 अप्रैल, 1977 को हस्ताक्षर किये।

यह प्रश्न कि क्या इस संबंध में प्रधानमंत्री को सौंपे गये दायित्व असीम हैं अथवा इनकी कोई विवक्षित सीमाएं हैं, मार्च 1987 में राजनीतिक रूप से बड़ा ही महत्वपूर्ण हो गया था जब एक समाचार- पत्र ने राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री को कथित रूप से लिखे गये पत्र के पाठ को प्रकाशित कर दिया था[11] और जिसमें राष्ट्रपति ने संसद में प्रधानमंत्री के इस वक्तव्य को कि वह राष्ट्रीय हित के महत्वपूर्ण मामलों की जानकारी राष्ट्रपति को देते रहे हैं, की सत्यता को कथित रूप से चुनौती दी थी।

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान बोलते हुए प्रधानमंत्री ने लोक सभा में कहा था:

> "...हमारे मंत्री राष्ट्रपति से निरन्तर मिलते रहते हैं। जब कभी कोई महत्वपूर्ण बात होती है तो इसके बारे में राष्ट्रपति जी से चर्चा की जाती है, विशेषरूप से जब कोई बात राष्ट्रीय हित में हो। ....ऐसा कभी नहीं हुआ है कि राष्ट्रीय हित के मामलों को राष्ट्रपति से छुपा कर रखा गया हो।"[12]

राष्ट्रपति के पद का सम्मान करने और इस पद को राजनीति से ऊपर रखने के लिए सदस्यों से अनुरोध करते हुए प्रधानमंत्री ने राज्य सभा में भी दृढ़तापूर्वक यही कहा।[13]

राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री को लिखे गये कथित पत्र और इससे संबंधित मामलों पर किसी न किसी रूप में चर्चा कराने के लिए दोनों सभाओं में सदस्यों द्वारा बार-बार किए गए प्रयासों को सफलता नहीं मिली क्योंकि दोनों ही सभाओं में पीठासीन अधिकारियों ने लगातार यह विनिर्णय दिया कि किसी भी वाद-विवाद को प्रभावित करने के लिए राष्ट्रपति का नाम किसी

---

11. दिनांक 13 मार्च, 1987 को *इंडियन एक्सप्रेस* ने राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री को अभिप्रायित रूप से लिखे गये पत्र को प्रकाशित किया। कथित पत्र के पाठ जिसे न तो राष्ट्रपति और न ही प्रधानमंत्री द्वारा अधिप्रमाणित किया गया था, में *अन्य बातों के साथ-साथ* निम्नलिखित समाविष्ट था:

    "हमारे देश में राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री संबंध भारत के संविधान के स्पष्ट उपबंधों के अलावा कतिपय सुस्थापित व्यवहारों और परम्पराओं द्वारा विनियमित होते हैं। मैं यह कहने को बाध्य हूं कि कतिपय सुस्थापित परम्पराओं का पालन नहीं किया गया है। आपके विदेश यात्रा पर जाने से पूर्व और वहां से वापस लौटने के पश्चात् इस संबंध में मुझे कोई जानकारी नहीं दी गयी है ... वस्तुत: दक्षिण एशिया में हमारे निकटतम पड़ोसियों, जिनके साथ समस्याएं लंबित हैं, के साथ हमारी विदेश नीति से संबंधित मामलों के बारे में मुझे जानकारी नहीं दी गयी है। कतिपय महत्वपूर्ण घरेलू मामलों को भी लें तो असम, पंजाब और मिजोरम के साथ हुए समझौते से संबंधित मामलों की जानकारी भी मुझे नहीं दी गयी है।

    किसी भी चरण में मुझे नहीं बताया गया ..... यह भी कष्टदायक है कि राष्ट्रपति को सूचना देने संबंधी संवैधानिक उपबंधों का भी सतत रूप से पालन नहीं किया गया है। मैंने आपकी जानकारी में यह ला दिया है कि कुछ जांच आयोगों के प्रतिवेदन भी सरकार को इनकी प्राप्ति के काफी बाद भी मेरे पास नहीं भेजे गये थे।"

12. *लो.स.वा.वि.,* 2.3.1987. पृ. 231 ।
13. *रा.स. डिबेट्स,* 4.3.1987, का. 296 ।

भी रूप में सदन में नहीं लाया जाना चाहिए।[14] यह माना गया कि राष्ट्रपति के नाम पर सभी कार्यपालिका शक्तियों के प्रयोग और उसके समस्त कार्यों के निर्वहन में, मंत्रिपरिषद ही लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है[15] और प्रधानमंत्री अथवा मंत्रिपरिषद तथा राष्ट्रपति के बीच हुई कोई भी बातचीत अथवा उनके बीच किसी भी पत्र का आदान-प्रदान पूर्णत: उनके बीच की बात है और सभा को इससे कोई वास्ता नहीं होना चाहिए।[16] अध्यक्ष ने 19 मार्च, 1987 को विनिर्णय दिया:

> मैं इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट हूं कि सभा में कोई भी वाद-विवाद इस प्रकार का नहीं किया जाना चाहिए जिससे राष्ट्रपति पद के बारे में कोई विवाद उत्पन्न हो या जिसके माध्यम से राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद के संबंधों पर चर्चा की जाये। इस प्रकार की चर्चाओं से बचना राष्ट्र के व्यापक हित में होगा। हम अभी भी स्वस्थ परम्पराओं का विकास करने की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। हमें रोष में आकर, ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे इस प्रक्रिया को नुकसान पहुंचे।[17]

सदन में इस मामले पर चर्चा का अवसर न दिए जाने पर असंतुष्ट विपक्ष ने अध्यक्ष को हटाये जाने का संकल्प प्रस्तुत किया।[18] इस संकल्प में कहा गया "कि यह सभा अध्यक्ष के विनिर्णय, जिसमें 19 मार्च, 1987 को विशेषाधिकार तथा स्थगन प्रस्तावों के प्रश्न पर उनका विनिर्णय भी शामिल है, को ध्यान में रखकर यह महसूस करती है कि महत्वपूर्ण संवैधानिक तथा प्रक्रिया संबंधी मामले एवं ज्वलंत समस्याएं उठाए जाने से सदस्यों को इनकार किये जाने के कारण अध्यक्ष सभा के सभी वर्गों के सदस्यों का विश्वास खो चुका है, और इसलिए यह प्रस्ताव करती है कि उसे अपने पद से हटाया जाए" पर 15 अप्रैल, 1987 को सभा में चर्चा की गई।

चर्चा के दौरान[19] सत्ता पक्ष तथा प्रतिपक्ष के सदस्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से राष्ट्रपति की जानकारी मांगने की शक्ति संबंधी संवैधानिक उपबंधों की व्याख्या करने का प्रयास किया।[20]

संविधान के अनुच्छेद 78 के अंतर्गत राष्ट्रपति को प्रदत्त शक्तियों के समर्थक यह मानते हैं कि "संघ के कार्यकलाप के प्रशासन"-संबंधी जानकारी इत्यादि के बारे में जानकारी मंगाने के लिए राष्ट्रपति की मंत्रिपरिषद से स्वतंत्र उनकी अपनी भूमिका है। दूसरी ओर यह भी मत

---

14. नियम 352(छ:)। *देखिए लो.स.वा.वि.,* 2.3.1987, 9.3.1987, 13.3.1987, 18.3.1987 और 19.3.1987, साथ ही *रा.स. डिबेट्स,* 20.3.1987, का. 259-67, 30.4.1987, का. 211-14 भी देखिए।
15. *लो.स.वा.वि.,* 19.3.1987, पृ. 183 ।
16. *पूर्वोक्त,* पृ. 184 ।
17. *पूर्वोक्त, पृ.* 184 ।
18. *पूर्वोक्त,* 15.4.1987, पृ. 400-03, 405-06 और 447-516 ।
19. *लो.स.वा.वि.,* 15.4.1987, *पृ.* 489 ।
20. *पूर्वोक्त,* पृ. 495 ।

व्यक्त किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 78 को स्वतंत्र उपबंध न मानकर इसे अनुच्छेद 74 जैसे अन्य उपबंधों के साथ देखा जाना चाहिए और यह निर्णय करना केन्द्रीय मंत्रिपरिषद का विशेषाधिकार है कि राष्ट्रपति को किस प्रकार की जानकारी प्रस्तुत की जा सकती है। संसद में इस विषय पर कोई अंतिम राय नहीं बन पायी है।[21]

यह सुझाव दिया गया है कि नीति-निर्माण के समय राष्ट्रपति अपना परामर्श दे सकते हैं या मंत्रिपरिषद को पूरे मामले पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकते हैं, परन्तु मंत्रिपरिषद द्वारा एक बार नीति को अंतिम रूप दे दिये जाने और राष्ट्रपति के समक्ष औपचारिक रूप से प्रस्तुत कर देने के पश्चात् वह अंततः इसे मानने और इसके अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य हैं। श्री बी.एन. राव के शब्दों में:

> मंत्रियों की सलाह पर चलने का अर्थ यह नहीं है कि मंत्रिमंडल के किसी भी विचार को तत्काल स्वीकार कर लिया जाये। किसी प्रस्तावित कार्यवाही के बारे में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद को बता सकता है कि उसे उस पर क्या आपत्तियां हैं और यदि आवश्यक हो तो उसे उस पर पुनर्विचार करने को कह सकता है। अंतिम उपाय के रूप में ही उसे मंत्रिमंडल की अंतिम सलाह स्वीकार करनी चाहिए।[22]

राष्ट्रपति और संसद के सदन

संविधान के अंतर्गत मंत्रिपरिषद केवल लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। "सामूहिक उत्तरदायित्व" का अभिप्राय यह है कि अविश्वास प्रस्ताव संपूर्ण मंत्रिपरिषद के विरुद्ध लाया जा सकता है, किसी एक मंत्री के विरुद्ध नहीं। सामूहिक उत्तरदायित्व के संबंध में डा. बी.आर. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था:

> मेरी राय में सामूहिक उत्तरदायित्व को दो सिद्धांतों के प्रवर्तन के आधार पर लागू किया जा सकता है। पहला सिद्धांत यह है कि प्रधानमंत्री के परामर्श के बिना किसी भी व्यक्ति को मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में मनोनीत नहीं किया जायेगा और दूसरा सिद्धांत यह है कि किसी सदस्य को मंत्रिमंडल में नहीं रखा जायेगा यदि प्रधानमंत्री कहे कि उसे पदच्युत कर दिया जाये।[23]

---

21. सदस्यों द्वारा नियम 189 के अंतर्गत दिए गए नोटिसों को अध्यक्ष ने यह चर्चा करने के लिए गृहीत किया "कि यह सभा भारत सरकार के संविधान के अनुच्छेद 78 के अंतर्गत उल्लिखित प्रधानमंत्री के कर्त्तव्यों के निर्वहन के संबंध में नियम और दिशा-निर्देश बनाने और उन्हें सभा के समक्ष विचारार्थ रखने की अनुशंसा करती है।" तथापि, अभी तक यह सदन के समक्ष चर्चा के लिए नहीं आया है।

    समाचार-भाग 2, 7.5.1987, पैरा 1654; 29.10.1987, पैरा 1893; 12.2.1988, पैरा 2065; 19.7.1988, पैरा 2362; 25.10.1988, पैरा 2542; 15.2.1989, पैरा 2769; 10.7.1989, पैरा 3027; 20.12.1990, पैरा 951; और 15.2.1991, पैरा 1160 ।

22. बी.एन. राव, *इंडियाज कांस्टीट्यूशन इन मेकिंग,* एलाइड पब्लिशर्स, 1963, पृ. 410 ।
23. *देखिए* अनुच्छेद 75(3), *सी. ए. डिबेट्स,* 30.12.1948, पृ. 1993 ।

राष्ट्रपति संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत कर सकेगा, किंतु उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास से अधिक का अंतर नहीं होगा।[24]

राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों का या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा और लोक सभा का विघटन कर सकेगा।[25]

राज्य विधानमंडल के मामले में राज्यपाल, समय-समय पर, विधानमंडल के सदनों या किसी सदन का सत्रावसान कर सकेगा और विधान सभा का विघटन कर सकेगा।[26] राज्यपाल की सत्रावसान की शक्तियों के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की:

> राज्यपाल को विधानमंडल के सत्रावसान की शक्ति प्रदान करने वाले अनुच्छेद में उसकी इस शक्ति पर किसी प्रकार के प्रतिबंध का कोई संकेत नहीं मिलता है। यह प्रश्न इस समय विचारणीय नहीं है कि क्या राज्यपाल द्वारा विधानमंडल का सत्र तथा विधायी कार्य के दौरान, सत्रावसान करना न्यायोचित होगा। यदि कभी ऐसा होता है तो उस समय राज्यपाल के अभिप्राय को, सद्भाव के कथित अभाव और संवैधानिक शक्तियों के दुरुपयोग के आधार पर चुनौती दी जा सकती है।[27]

---

24. अनुच्छेद 85(1) ।

    संविधान सभा में यह सुझाव दिया गया था कि संसद के दोनों सदनों को आहूत करने की शक्ति उनके अध्यक्षों, अर्थात् लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति या उप-सभापति को दी जाये क्योंकि यह संभव है कि सामान्य काल में राष्ट्रपति संसद को आहूत करने में असफल रहे या अपातकाल में उसे आहूत न करे। प्रारूपण समिति के अध्यक्ष डा. बी.आर. अम्बेडकर ने कहा कि यदि राष्ट्रपति कानून द्वारा अपने पर डाले गए उत्तरदायित्व को निभाने में असफल रहे और संसद को आहूत करने से इन्कार कर दे तो यह संविधान का उल्लंघन होगा और महाभियोग द्वारा उसे पदच्युत किया जा सकेगा। इस बात पर प्रकाश डालते हुए कि संसद को आहूत करने की शक्ति राष्ट्रपति को क्यों दी गई है, उन्होंने कहा:

    उदाहरण के लिए किसी युक्तियुक्त कारण से राष्ट्रपति संसद को आहूत नहीं करता बल्कि अध्यक्ष और सभापति दोनों सदनों को आहूत करते हैं, उस स्थिति में क्या होगा? यदि राष्ट्रपति संसद को आहूत नहीं करता तो इसका मतलब यह है कि कार्यपालिका सरकार के पास कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसे इन सदनों के सामने करने के लिए रखा जाये। केवल इसी एक आधार पर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर सभा का सत्र नहीं बुला सकेगा। न तो लोक सभा का अध्यक्ष और न ही राज्य सभा का सभापति सभा को काम दे सकता है। काम तो कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री दे सकता है और वही राष्ट्रपति को संसद को आहूत करने का परामर्श देगा। अत: मेरा विचार है कि अध्यक्ष या सभापति को संसद द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्य की उचित व्यवस्था किए बिना संसद को आहूत करने की शक्ति देना बेकार होगा। इससे कोई लाभ नहीं होगा। *देखिए सी.ए.डिबेट्स,* 18.5.1949, पृ. 183 ।
25. अनुच्छेद 85(2) ।
26. अनुच्छेद 174(2) ।
27. *पंजाब राज्य बनाम सत्यपाल डांग तथा अन्य,* ए.आई.आर. 1969, एस.सी. 903 ।

प्रधानमंत्री लोक सभा को आहूत करने, उसका सत्रावान करने या उसे विघटित करने संबंधी प्रस्ताव मंत्रिमंडल की सलाह से या इसके बिना भी भेज सकता है।[28]

राष्ट्रपति, लोक सभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरंभ में, और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है और संसद को उसके आह्वान के कारण बताता है।[29] प्रारम्भिक अभिभाषण के अलावा, राष्ट्रपति संसद के किसी एक सदन में अथवा एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकेगा।[30] राष्ट्रपति को संसद में उस समय लंबित किसी विधेयक के संबंध में संदेश या कोई अन्य संदेश संसद के किसी सदन को भेज सकने की शक्ति भी प्राप्त है[31] और जिस सदन को कोई संदेश इस प्रकार भेजा गया है वह सदन उस संदेश द्वारा विचार करने के लिए अपेक्षित विषय पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करेगा।

---

28. संविधान सभा में एक सुझाव दिया गया कि कहीं प्रधानमंत्री स्वेच्छाचारिता से लोक सभा के विघटन की राय न दे दे; इस बात को रोकने के लिए यह उपबंध कर दिया जाए कि यदि प्रधानमंत्री लोक सभा की पांच साल की सामान्य कालावधि—जिसकी व्यवस्था संविधान में की गई है, से पहले लोक सभा का विघटन कराना चाहे तो वह उसके कारण लिखित रूप में बताए। प्रारूपण समिति के अध्यक्ष, डा. बी.आर. अम्बेडकर ने कई कारणों से इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा:

    इसी प्रकार ब्रिटेन के सम्राट की तरह भारत-संघ का राष्ट्रपति भी सदन की भावनाओं का आभास कर लेगा कि क्या सदन इस बात से सहमत है कि उसका विघटन कर दिया जाये या सदन यह मानता है कि बिना विघटन के ही किसी अन्य नेता द्वारा काम चलाया जाये। यदि वह देखता है कि भावना ऐसी है कि विघटन के सिवाय कोई और विकल्प नहीं है, तो संवैधानिक राष्ट्रपति के नाते वह निस्संदेह सदन का विघटन करने के विषय में प्रधानमंत्री की मंत्रणा को स्वीकार कर लेगा। अतएव मेरा यह ख्याल है कि लिखित रूप में एक पत्र की मांग करना, जिसमें वे कारण लिखे हुए हों कि प्रधानमंत्री सदन का विघटन क्यों चाहता है, व्यर्थ दिखाई देता है और उसका मूल्य उस कागज़ के बराबर भी नहीं है जिस पर वह लिखा गया है। राष्ट्रपति के लिये सदन की भावनाओं को जानने के तथा यह मालूम करने के और भी उपाय हैं कि क्या प्रधानमंत्री सदन के विघटन की मांग किन्हीं सच्चे कारणों से कर रहा है अथवा केवल दल संबंधी प्रयोजनों से कर रहा है। मेरे विचार में हम राष्ट्रपति पर भरोसा कर सकते हैं कि वह दलों के नेताओं और समूचे सदन के मध्य ठीक ही निर्णय करेंगें। *देखिए सी.ए.डिबेट्स* 18.5.1949, पृ. 184 ।

29. अनुच्छेद 87 ।
30. अनुच्छेद 86(1) ।
31. अनुच्छेद 86(2) ऐसे उपबन्ध के लिए आयरलैंड के संविधान की धारा 13(7) *देखिए।* परन्तु आयरलैंड के राष्ट्रपति को संदेश भेजने से पहले मंत्रिमंडल का अनुमोदन प्राप्त करना पड़ता है और संदेश सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय महत्त्व के विषय के अतिरिक्त और किसी विषय पर नहीं हो सकता है।

राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में राज्य सभा का कार्यकारी सभापति नियुक्त करता है:

जब सभापति का पद रिक्त हो; या

किसी ऐसी अवधि में जब उपराष्ट्रपति, जो राज्य सभा का पदेन सभापति है, राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो अथवा उसके कृत्यों का निर्वहन कर रहा हो; और

उपसभापति का पद भी रिक्त हो।[32]

इसी प्रकार, राष्ट्रपति नई लोक सभा की पहली बैठक की अध्यक्षता के लिए लोक सभा के सदस्यों में से किसी एक को *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त करता है।[33]

संसद के प्रत्येक सदन के प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेनी होती है या प्रतिज्ञान करना होता है।[34]

धन विधेयक से भिन्न, किसी विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद होने की दशा में, राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत कर सकता है जिससे कि वे विधयेक पर विचार कर सकें और उस पर मत दे सकें बशर्ते कि विधेयक लोक सभा के विघटन के कारण व्यपगत न हो गया हो।[35] राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 118(3) के अनुसार राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष के परामर्श से सदनों की संयुक्त बैठकों से संबंधित और उनमें संवाद से संबंधित प्रक्रिया के नियम बनाए हैं।[36]

कतिपय विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त किए बिना न तो पुरःस्थापित किये जा सकते हैं और न उन पर चर्चा की जा सकती है। राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता निम्नलिखित दशाओं में पड़ती है—

---

32. *देखिए* अनुच्छेद 91(1) ।
33. अनुच्छेद 94 के दूसरे परंतुक के अनुसार, विघटित लोक सभा का अध्यक्ष साधारण निर्वाचन के पश्चात् गठित अगली लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के ठीक पहले अपना पद रिक्त कर देता है। ऐसी स्थिति में, जब न तो अध्यक्ष हो, न उपाध्यक्ष, राष्ट्रपति अनुच्छेद 95 (1) के अंतर्गत किसी सदस्य को सामयिक अध्यक्ष नियुक्त करता है। यह सुस्थापित परम्परा रही है कि नवगठित लोक सभा के वरिष्ठतम सदस्य को सामयिक अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है तथा वह सभा द्वारा नये अध्यक्ष का निर्वाचन होने तक अपने पद पर बना रहता है।
34. अनुच्छेद 99—अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 15—'सदस्यों द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान और सभा में स्थान ग्रहण'।
35. अनुच्छेद 108—अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 4—'सदनों के बीच संबंध' और अध्याय 22—'विधान'।
36. ये नियम संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम कहे जाते हैं।

वित्तीय मामलों के संबंध में विधेयकों को पुरःस्थापित करने तथा संशोधन प्रस्तुत करने के लिए। तथापि, किसी कर को कम करने या उसका उत्सादन करने का उपबन्ध करने वाला संशोधन प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक नहीं है।[37]

नए राज्यों के निर्माण या वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन संबंधी विधेयकों को पुरःस्थापित करने के लिए। जहां विधेयक में अन्तर्विष्ट प्रस्थापना का प्रभाव राज्यों में से किसी के क्षेत्र, सीमाओं या नाम पर पड़ता है वहां उस राज्य के विधानमंडल द्वारा उस पर अपने विचार, ऐसी अवधि के भीतर जो निर्देश में विनिर्दिष्ट की जाए या ऐसी अतिरिक्त अवधि के भीतर जो राष्ट्रपति द्वारा अनुज्ञात की जाए, प्रकट किये जाने के लिए वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा उसे निर्देशित किया जाता है और इस प्रकार विनिर्दिष्ट और अनुज्ञात अवधि के समाप्त होने पर ही उस विधेयक को पुरःस्थापित किया जा सकता है।[38]

कर लगाने, जिसमें राज्य हितबद्ध है, संबंधी विधेयक को पुरःस्थापित करने के लिए या संशोधन प्रस्तुत करने के लिए।[39]

ऐसे विधेयक पर विचार करने के लिए जिसके अधिनियमित किये जाने पर भारत की संचित निधि से व्यय करना पड़ेगा।[40]

संसद का कोई अधिनियम या ऐसे किसी अधिनियम का कोई उपबंध केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगा कि राष्ट्रपति ने अपेक्षित सिफारिश नहीं की है या पूर्व मंजूरी नहीं दी है। सिफारिश या पूर्व स्वीकृति लेने की आवश्यकता को केवल प्रक्रियागत मामला ही माना जाता है।[41]

संसद के दोनों सदनों द्वारा विधेयक के पारित हो जाने के बाद इसे राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है जो चाहे तो उस पर अपनी अनुमति दे सकता है अथवा उसे रोक सकता है।[42] संविधान के अंतर्गत ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसमें यह उल्लेख किया गया हो कि किसी विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजने के बाद राष्ट्रपति कितनी अवधि के भीतर उस पर अपनी अनुमति दे देगा। राष्ट्रपति अनुमति के लिए अपने समक्ष विधेयक प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उस विधेयक को, यदि वह धन विधेयक नहीं है तो सदनों को इस संदेश

---

37. अनुच्छेद 110 के साथ पठित अनुच्छेद 117(1) ।
38. अनुच्छेद 3 का परंतुक।
39. अनुच्छेद 274(1) ।
40. अनुच्छेद 117(3) ।
41. अनुच्छेद 255 ।
42. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1991 को संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के बाद राष्ट्रपति को उनकी अनुमति के लिए 18 मार्च, 1991 को भेजा गया था। 9 मार्च, 1992 को सचिव, विधि मंत्रालय ने राज्य सभा को यह सूचित किया कि राष्ट्रपति ने 6 मार्च, 1992 को उपर्युक्त विधेयक पर अपनी अनुमति रोक ली है। विधेयकों को स्वीकृति शीर्षक के अंतर्गत 'विधान' संबंधी अध्याय 22 भी देखें।

के साथ लौटा सकेगा कि विधेयक पर या इसके किन्हीं विनिर्दिष्ट उपबंधों पर पुनर्विचार करे और विशिष्टतया किन्हीं ऐसे संशोधनों, जिनकी उस ने अपने संदेश में सिफारिश की है, के पुर:स्थापन की वांछनीयता पर विचार करे।[43] जब कोई विधेयक इस प्रकार लौटा दिया जाता है तो सदनों को तदनुसार उस पर पुनर्विचार करना पड़ता है। परन्तु यदि सदन उस विधेयक को संशोधन सहित अथवा उसके बिना पुन: पारित कर दे तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति नहीं रोक सकता।[44]

राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए भारत सरकार की प्राक्कलित प्राप्तियों तथा व्यय का विवरण, जिसे वार्षिक वित्तीय विवरण भी कहा गया है अर्थात् बजट रखवाता है। उन प्राक्कलनों में भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशियां तथा भारत की संचित निधि में से किए जाने वाले अन्य प्रस्तावित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशियां अलग-अलग दर्शायी जाती हैं।[45] भारत की संचित निधि पर भारित व्यय के अतिरिक्त व्यय संबंधी प्राक्कलनों को अनुदानों की मांगों के रूप में

---

43. संविधान के अनुच्छेद 111 में इस बात का उल्लेख है कि यदि राष्ट्रपति विधेयक लौटाना चाहता है तो वह इसे उसके पास भेजने के बाद "यथाशीघ्र" लौटा देगा। प्रारूप संविधान के तदनुरूपी अनुच्छेद 91 में यह अवधि "छ: सप्ताह" थी परन्तु डा. अम्बेडकर द्वारा रखे गए एक संशोधन के फलस्वरूप इसे बदल कर "यथाशीघ्र" कर दिया गया था।

    भारतीय डाक घर संशोधन विधेयक, 1986 दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के बाद राष्ट्रपति को उनकी अनुमति के लिए 19 दिसम्बर, 1986 को भेजा गया था। राष्ट्रपति ने इस विधेयक को 3 वर्ष से भी अधिक समय बीत जाने के बाद राज्य सभा को 7 जनवरी, 1990 को सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर दिया। अभी तक इस विधेयक पर सदनों द्वारा पुनर्विचार नहीं किया गया है। चौदहवीं लोक सभा के सातवें सत्र में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित संसद निरर्हता (निवारण) संशोधन विधयेक, 2006 को तत्कालीन राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने दोनों सदनों के पुनर्विचार हेतु लौटा दिया था। तदनन्तर आठवें सत्र में यह विधेयक दोनों सदनों द्वारा बिना किसी परिवर्तन के पुन: पारित हो गया। तथापि यह परिभाषित करने के लिए कि लाभ के क्या-क्या पद होते हैं, संसद की एक संयुक्त समिति गठित की गई। तत्पश्चात् राष्ट्रपति ने विधेयक पर अनुमति दे दी।

44. अनुच्छेद 111

    पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ विनियोग विधेयक, 1954 जो संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया था और उस पर राष्ट्रपति ने अपनी अनुमति रोक ली थी क्योंकि जब तक यह विधेयक राष्ट्रपति के सामने प्रस्तुत किया गया, राष्ट्रपति ने उस उद्घोषणा का निरसन कर दिया जिसके अंतर्गत उसने इस राज्य के कृत्य स्वयं संभाले थे। राष्ट्रपति ने अनुमति रोकने की सूचना लोक सभा के अध्यक्ष को दे दी थी—*एच.पी. डिबेट्स* 5.4.1954, कॉ. 4035 ।

45. अनुच्छेद 112 ।

    राष्ट्रपति की परिलब्धियां और भत्ते तथा उसके पद से संबंधित अन्य व्यय उन मदों में से हैं जो भारत की संचित निधि पर भारित हैं। इस व्यय पर सदन में चर्चा हो सकती है परन्तु मतदान नहीं।

लोक सभा में रखा जाता है और किसी अनुदान की मांग राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही की जा सकती है अन्यथा नहीं।[46]

राष्ट्रपति, जब भी आवश्यक हो, संसद के दोनों सदनों के समक्ष अनुपूरक, अतिरिक्त अथवा अधिक अनुदानों के विवरण भी रखवाता है।[47]

अग्रदाय स्वरूप की "भारत की आकस्मिकता निधि" के नाम से ज्ञात आकस्मिकता निधि राष्ट्रपति के व्ययनाधीन रखी गई है जिससे कि संसद द्वारा, विधि द्वारा, प्राधिकृत किया जाना लंबित रहने तक ऐसी निधि में से अनवेक्षित व्यय की पूर्ति के लिए अग्रिम धन देने के लिए राष्ट्रपति को समर्थ बनाया जा सके।[48]

राष्ट्रपति आंग्ल भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए लोक सभा में दो सदस्यों को नामनिर्देशित कर सकता है।[49] वह साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा जैसे विषयों के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले बारह सदस्यों को राज्य सभा के लिए भी नामनिर्देशित करता है।[50]

राष्ट्रपति इस प्रश्न का विनिश्चय करता है कि क्या संसद का कोई सदस्य सदस्यता के लिए निरर्हित हो गया है या नहीं तथा इस प्रश्न का विनिश्चय करता है कि क्या संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि, दल-परिवर्तन[51] करने के आधार पर निरर्हित होने से अन्यथा, के तहत संसद के किसी सदन के लिए निर्वाचन में भ्रष्ट आचरण का दोषी पाए गए किसी व्यक्ति को संसद का सदस्य चुने जाने और सदस्य बने[52] रहने हेतु निरर्हित किया जाए या नहीं। किसी सदस्य के अनर्ह किए जाने के बारे में राष्ट्रपति का विनिश्चय अंतिम होता है, परन्तु ऐसे किसी भी प्रश्न पर विनिश्चय से पूर्व राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग की राय लेनी होती है जिसे इस निमित्त जांच करने की शक्ति प्राप्त है।[53] दल-बदल करने के आधार पर किसी सदस्य को निरर्हित करने की शक्ति अध्यक्ष में निहित होती है।[54]

---

46. अनुच्छेद 113 ।
47. अनुच्छेद 115 ।
48. अनुच्छेद 267(1) ।
    भारत सरकार ने भारत की आकस्मिकता-निधि की अभिरक्षा, उसमें धन दिए जाने, और उससे धन निकालने से संबंधित या सभी आनुषंगिक मामलों का विनियमन करने के संबंध में नियम बनाए हैं।
49. अनुच्छेद 331 । अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 2–'संसद की संरचना'।
50. अनुच्छेद 80 । अध्याय 2–'संसद की संरचना' भी *देखिए*।
51. संविधान की दसवीं अनुसूची।
52. अनुच्छेद 102 ।
53. अनुच्छेद 103 । पहले ऐसे किसी प्रश्न पर कोई विनिश्चय करने से पूर्व राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग की राय लेनी पड़ती थी और इसकी राय के अनुसार कार्य करना पड़ता था। अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय-5 'राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और संसद सदस्यों का निर्वाचन' ।
54. संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 ।

राष्ट्रपति निम्नलिखित प्रतिवेदन संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करवाता है:[55]

भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के संघ के लेखाओं संबंधी प्रतिवेदन।

वित्त आयोग की सिफारिशें तथा उन पर की गई कार्रवाई के स्पष्टीकारक ज्ञापन।

संघ लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन तथा उन मामलों के संबंध में यदि कोई हों, जिनमें आयोग की सलाह स्वीकार नहीं की गई थी, ऐसी अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग के प्रतिवेदन।

पिछड़ा वर्ग आयोग के प्रतिवेदन तथा उस पर की गई कार्रवाई का स्पष्टीकारक ज्ञापन।

भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त के प्रतिवेदन।

राजभाषा आयोग और राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने वाली संसदीय समिति के प्रतिवेदन जो राष्ट्रपति को प्रस्तुत किए जाते हैं, विगत में संसद के दोनों सदनों के समक्ष भी रखे गए हैं।[56]

राष्ट्रपति के अन्य कृत्य

राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की नियुक्ति करता है जो राष्ट्रपति को सलाह और सहायता देता है तथा जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है जो लोक सभा में बहुमत वाले दल का नेता होता है और उसकी सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहते हैं।[57] तकनीकी तौर पर मंत्रियों की नियुक्ति के मामले में अंतिम चुनाव का अधिकार तो प्रधानमंत्री का है परन्तु किसी ऐसे मंत्री की नियुक्ति जो मंत्रीपद के योग्य न हो तो लोक सभा के लिए यह संभव है कि मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके उस मंत्री को या प्रधानमंत्री को, यदि वह लोक सभा के कहने पर उस मंत्री को हटाने के लिए तैयार न हो, पदच्युत कर दे। राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक है कि वह लोक सभा द्वारा मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव पारित किए जाने पर उस पर उचित ध्यान दे और यदि प्रधानमंत्री उस प्रस्ताव के पारित होने पर त्यागपत्र न दे तो मंत्रिपरिषद् को हटा दे।[58]

---

55. अनुच्छेद 151(1), 281, 323(1) 338(6), 338 क. (6), 340(3) और 350 ख. (2) के अंतर्गत।
56. *देखिए* अनुच्छेद 344 और *लो.स.वा.वि.* 12.8.1957, पृ. 3567 और 22.4.1959, पृ. 6101 ।
57. अनुच्छेद 75 ।
58. *देखिए सी.ए.डिबेट्स,* 30.12.1948, पृ. 1991-94 ।

राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।[59] उच्चतम या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के बाद उसे उसके पद से तब तक नहीं हटाया जा सकता है जब तक साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर ऐसे हटाए जाने के लिए संसद के प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित समावेदन, राष्ट्रपति के समक्ष उसी सत्र में रखे जाने पर राष्ट्रपति ने आदेश न दे दिया हो।[60]

जब राष्ट्रपति अपने पद का त्याग करता है तो वह अपना त्यागपत्र उप-राष्ट्रपति को संबोधित करता है, जिसके द्वारा इसकी सूचना लोक सभा के अध्यक्ष को तुरंत देनी होती है।[61]

राष्ट्रपति की विधायी शक्तियां

उस समय को छोड़कर जब संसद के दोनों सदन सत्र में हों, यदि किसी समय राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरंत कार्यवाही करना उसके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों। इस प्रकार से प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है जो संसद के अधिनियम का होता है, परन्तु प्रत्येक अध्यादेश संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना पड़ता है। संसद के पुन: समवेत होने से छ: सप्ताह की समाप्ति पर या उस अवधि की समाप्ति से पहले दोनों सदन उसके निरनुमोदन करने का संकल्प पारित

---

59. *देखिए* क्रमश: अनुच्छेद 124 और 217 ।

60. अनुच्छेद 124(4) और 218 ।

    अनुच्छेद 124 के खण्ड (5) के अंतर्गत संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता की जांच करने या साक्ष्य मिलने तक उसके हटाने के संबंध में समावेदन देने की प्रक्रिया के संबंध में कानून बना सकती है। संसद ने तदनुरूप न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 पारित किया है। कानून के अंतर्गत प्रक्रिया के संबंध में ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 42–'संसद और न्यायपालिका'।

61. अनुच्छेद 56 । संविधान का जो प्रारूप संविधान सभा में रखा गया था उसमें यह व्यवस्था की गई थी कि राष्ट्रपति अपना त्यागपत्र, राज्य सभा के सभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष को संबोधित करेगा। इस अनुच्छेद को स्वीकार करते समय यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया कि राष्ट्रपति अपना त्यागपत्र उप-राष्ट्रपति को संबोधित करे जिससे कि एक ही व्यक्ति को त्यागपत्र मिले और वह रिक्त स्थान भरने के लिए कार्यवाही शुरू करे। यह भी वांछनीय समझा गया कि लोक सभा के अध्यक्ष को त्यागपत्र की सूचना तत्काल मिलनी चाहिए। अत: यह व्यवस्था की गई कि उप-राष्ट्रपति त्यागपत्र की सूचना तत्काल अध्यक्ष को दे दें। *देखिए स.स.वा.वि.*, 13.12. 1948, पृ. 1702-08 ।

कर देते हैं तो उनमें से दूसरे संकल्प के पारित होने पर अध्यादेश प्रवर्तन में नहीं रहता है। यह राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकता है।[62]

संविधान के प्रारम्भ के तीन वर्ष तक[63] राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गई थी कि वह संविधान लागू होने के ठीक पहले भारत के क्षेत्र में लागू किसी भी विधि के उपबंधों को संविधान के अनुरूप बनाने के प्रयोजन के लिए उन कानूनों के अनुकूलन और उपान्तरण के लिए आदेश जारी कर सकता है चाहे वे उनके निरसन या संशोधन के लिए ही क्यों न हों। वह यह भी व्यवस्था कर सकता है कि ये विधियां आदेश में दी गई तिथि से उन उपान्तरणों तथा संशोधनों सहित लागू होंगी और ऐसे किसी अनुकूलन या उपान्तरण को किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।

संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत में या उसके किसी भाग में प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों को उस अधिनियम द्वारा यथासंशोधित इस संविधान के उपबंधों के अनुरूप बनाने के प्रयोजनों के लिए राष्ट्रपति 1 नवम्बर, 1957 से पहले किए गए आदेश द्वारा ऐसी विधि में निरसन के रूप में या संशोधन के रूप में ऐसे अनुकूलन या उपान्तरण कर सकता है जो आवश्यक या समीचीन हों, परन्तु वह विधि ऐसी तिथि से जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए उस प्रकार किए गए अनुकूलनों तथा उपान्तरणों के अधीन रहते हुए प्रभावी होगी और ऐसे किसी अनुकूलन या उपान्तरण को किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।[64]

राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा यह निर्देश दे सकता है कि ऐसी तारीख, जो उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, से संघ या राज्य की कोई विधि किसी महापत्तन या विमान क्षेत्र पर लागू नहीं होगी अथवा ऐसे अपवादों या उपान्तरणों के अधीन रहते हुए लागू होगी जो उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं।[65]

राष्ट्रपति निम्नलिखित संघ राज्यक्षेत्रों की शांति, प्रगति और सुशासन के लिए विनियम बना सकेगा–

अंडमान और निकोबार द्वीप;

लक्षद्वीप;

---

62. अनुच्छेद 123 । अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 23–'राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं।'

63. *देखिए* अनुच्छेद 372(2)। मूल रूप में बने संविधान में अवधि "दो वर्ष" की थी। संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951 के अंतर्गत इस अवधि को बढ़ाकर "तीन वर्ष" कर दिया गया।

64. *देखिए* अनुच्छेद 372 (क)। इस उपबंध के अंतर्गत जारी किए गए आदेशों के लिए *देखिए* 1956 और 1957 के विधि अनुकूलन आदेश।

65. *देखिए* अनुच्छेद 364 ।

दादरा और नगर हवेली;

दमन और दीव; और

पुडुचेरी।[66]

जब पुडुचेरी संघ राज्यक्षेत्र के लिए विधानमंडल के रूप में कार्य करने के लिए किसी निकाय का सृजन किया जाता है तब राष्ट्रपति विधानमंडल के प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से कोई विनियम नहीं बनाएगा। परन्तु जब कभी भी विधानमंडल के रूप में कार्य करने वाले ऐसे निकाय का विघटन कर दिया जाता है या उस निकाय का ऐसे विधानमंडल के रूप में कार्यकरण अनुच्छेद 239 (क) के खंड (1) के अनुसरण में अधिनियमित संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 के उपबंधों के अंतर्गत निलंबित रहता है, तब राष्ट्रपति ऐसे विघटन अथवा निलंबन की अवधि के दौरान उस संघ राज्यक्षेत्र की शांति, प्रगति और सुशासन के लिए विनियम बना सकेगा।[67]

इस प्रकार बनाया गया कोई विनियम संसद द्वारा बनाए गए किसी अन्य अधिनियम या किसी अन्य विधि का, जो उस संघ राज्यक्षेत्र पर तत्समय लागू है, निरसन या संशोधन कर सकेगा और राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किए जाने पर उसका वही बल और प्रभाव होगा जो संसद के किसी ऐसे अधिनियम का है जो उस राज्यक्षेत्र पर लागू होता है।[68]

आपात के दौरान शक्तियां

यदि राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह[69] या किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो जाने[70] या भारत का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में होने[71] के कारण गंभीर आपात की स्थिति विद्यमान है तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।[72] किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने के मामले में राष्ट्रपति उस राज्य के सभी कृत्य तथा राज्यपाल में निहित और उसके द्वारा प्रयोक्तव्य सभी शक्तियों को अपने हाथ में ले सकेगा।[73] राष्ट्रपति को संविधान (उनसठवां संशोधन) अधिनियम, 1988 द्वारा ऐसी विशेष शक्तियां प्रदान की गई थीं कि यदि संपूर्ण

---

66. पांडिचेरी (नाम-परिवर्तन) अधिनियम, 2006 ने संघ राज्यक्षेत्र का नाम पुडुचेरी के रूप में परिवर्तित कर दिया।

67 अनुच्छेद 239 क और 240(1)

68. अनुच्छेद 240(2) ।

69. अनुच्छेद 352 । संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा प्रख्यापित।

70. अनुच्छेद 356 ।

71. अनुच्छेद 360 ।

72. अनुच्छेद 352 ।

73. अनुच्छेद 356(1) (क)। उद्घोषणाओं के संबंध में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 23–'राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं'।

पंजाब या उसके किसी एक भाग में आंतरिक गड़बड़ी के कारण भारत की अखंडता को खतरा हो तो वह संपूर्ण पंजाब या उसके किसी भाग में आपात स्थिति की उद्घोषणा जारी कर सकता है। दिनांक 30 मार्च, 1988 से प्रभाव में आने वाला यह अधिनियम दो वर्ष की अवधि के लिए अधिनियमित किया गया था तथा बाद में 6 जनवरी, 1990 से प्रभाव में आने वाले संविधान (तिरसठवां संशोधन) अधिनियम, 1989 के द्वारा इसे निरस्त कर दिया गया था।

राष्ट्रपति की शक्तियों की सीमाएं

संविधान में संसद को प्रदत्त कुछ अभिभावी कृत्यों के द्वारा, राष्ट्रपति की शक्तियों की निम्नलिखित सीमाएं भी निर्धारित की गई हैं:

संसद राष्ट्रपति से भिन्न अन्य प्राधिकारियों को विधि द्वारा कृत्य प्रदान कर सकती है।[74]

राष्ट्रपति, किसी धन विधेयक को सदनों के पुनर्विचारण हेतु नहीं भेज सकता है।[75]

राष्ट्रपति, किसी संविधान संशोधन विधेयक या ऐसे विधेयक पर, जिसे उसने सदनों को इस संदेश के साथ लौटाया हो कि उस पर पुनर्विचार किया जाए, यदि वह सदनों द्वारा संशोधन सहित या उसके बिना फिर से पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति हेतु प्रस्तुत किया जाता है, तो वह अनुमति नहीं रोक सकता।[76]

संसद विधि द्वारा वित्त आयोग, जो संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा गठित किया जाता है, में नियुक्ति के लिए सदस्यों के चयन हेतु अर्हता और नीति निर्धारण कर सकती है।[77]

संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति आदेश द्वारा यह घोषणा कर सकेगा कि कोई राज्य उन प्रयोजनों के लिए, जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट किए जायें, 'विदेशी राज्य' नहीं हैं।[78]

राष्ट्रपति पर महाभियोग

राष्ट्रपति को संविधान का अतिक्रमण करने पर महाभियोग द्वारा पद से हटाया जा सकता है।[79]

जब संविधान के अतिक्रमण के लिए राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाना हो तब संसद का कोई सदन आरोप लगाएगा।[80]

---

74. अनुच्छेद 53(3) (ख)।
75. अनुच्छेद 111 का परंतुक।
76. अनुच्छेद 368(2) और अनुच्छेद 111 का परंतुक।
77. अनुच्छेद 280(1) और (2)।
78. अनुच्छेद 367(3) ।
79. अनुच्छेद 56(1) (ख)।
80. अनुच्छेद 61(1)।

ऐसा कोई आरोप तब तक नहीं लगाया जाएगा जब तक कि–

(क) ऐसा आरोप लगाने की प्रस्थापना किसी ऐसे संकल्प में अंतर्विष्ट नहीं है जो कम से कम चौदह दिन की ऐसी लिखित सूचना के दिए जाने के पश्चात् प्रस्तावित किया गया है जिस पर उस सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम एक-चौथाई सदस्यों ने हस्ताक्षर करके उसे लिखित रूप में प्रस्तुत किया है; और

(ख) उस सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा ऐसा संकल्प पारित नहीं किया गया है।[81]

जब आरोप संसद के किसी सदन द्वारा इस प्रकार लगाया गया है तब दूसरा सदन उस आरोप की जांच करेगा या कराएगा और ऐसी जांच में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधित्व कराने का राष्ट्रपति को अधिकार है।[82] ऐसे आरोप की जाँच के लिए संसद के किसी सदन द्वारा नियुक्त या अभिहित किसी न्यायालय, अभिकरण या निकाय द्वारा राष्ट्रपति के आचरण का पुनर्विलोकन किया जा सकेगा।[83]

यदि जांच के परिणामस्वरूप यह घोषित करने वाला संकल्प कि राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाया गया आरोप सिद्ध हो गया है, आरोप की जांच करने या कराने वाले सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित कर दिया जाता है तो ऐसे संकल्प का प्रभाव उसके इस प्रकार पारित किए जाने की तारीख से राष्ट्रपति को उसके पद से हटाना होगा।[84]

राष्ट्रपति का उत्तराधिकारी

संविधान में राष्ट्रपति के उत्तराधिकारी और राष्ट्रपति की पदावधि की समाप्ति से हुई रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन, पदावधि की समाप्ति से पहले ही पूर्ण कर लिए जाने का उपबंध है।[85] जब राष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, पदत्याग या पद से हटाए जाने या अन्य कारण से रिक्त हो तो उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में तब तक कार्य करता है जब तक कि नया राष्ट्रपति निर्वाचित न हो जाए और यह निर्वाचन स्थान रिक्त होने की तारीख के पश्चात् छह मास बीतने से पहले किया जाएगा।[86] संविधान में यह भी उपबंध है कि जब राष्ट्रपति,

---

81. अनुच्छेद 61(2)। ऐसे संकल्प की कोई सूचना अभी तक नहीं दी गई है।
82. अनुच्छेद 61(3)।
83. अनुच्छेद 361, पहला परन्तुक।
84. अनुच्छेद 61(4)।
85. अनुच्छेद 62(1)। राष्ट्रपतीय निर्वाचन 1974, ए.आई.आर. 1974, एस.सी. 1682 के मामले में भी *देखिए*। राष्ट्रपति की पदावधि की समाप्ति से हुई रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन, पदावधि की समाप्ति से पहले ही पूर्ण कर लिया जाना चाहिए भले ही किसी राज्य की विधान सभा भंग क्यों न हो।
86. अनुच्छेद 62(2) के साथ पठित अनुच्छेद 65(1)।

अनुपस्थिति, बीमारी या अन्य किसी कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है तब उप-राष्ट्रपति उस तारीख तक उसके कृत्यों का निर्वहन करेगा जिस तारीख को राष्ट्रपति अपने कर्तव्यों को फिर से संभाल नहीं लेता है।[87]

तथापि, संविधान में ऐसे मामलों के संबंध में उपबंध नहीं है जब राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के पद एक साथ रिक्त हों, अथवा जब उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए ऐसा करने में असमर्थ हो। ऐसे मामलों को सुलझाने हेतु संसद ने एक कानून बनाया जिसमें यह उपबंध किया गया कि ऐसे मामलों में भारत का मुख्य न्यायाधीश और उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करेगा।[88]

जब उप-राष्ट्रपति, वी.वी. गिरि ने, जो कि राष्ट्रपति की मृत्यु के कारण रिक्त हुए पद पर राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे, 20 जुलाई, 1969 के पूर्वाह्न को उप-राष्ट्रपति के पद से त्यागपत्र दे दिया तो उक्त तारीख के पूर्वाह्न से भारत के मुख्य न्यायाधीश ने राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन किया।[89]

---

87. अनुच्छेद 65(2)।

88. राष्ट्रपति (कृत्यों का निर्वहन) अधिनियम, 1969 । यह अधिनियम अनुच्छेद 70 के आधार पर पारित किया गया जो संसद को यह शक्ति देता है कि वह किसी ऐसी आकस्मिकता में, जो संविधान में उपबंधित नहीं है, राष्ट्रपति के कृत्यों के निर्वहन के लिए ऐसा उपबंध कर सकेगी जो वह ठीक समझे।

89. राजपत्र असाधारण, भाग–2, 20.7.1969 ।

    सदन द्वारा कतिपय विधेयकों पर विचार हेतु राष्ट्रपति की सिफारिश मांगी गई। लोक सभा के सचिव को प्राप्त संदेश में राष्ट्रपति की सिफारिश दे दी गई, प्रथम विधेयक के मामले में कहा गया 'राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन कर रहे भारत के मुख्य न्यायाधीश' दूसरे विधेयक के मामले में कहा गया 'राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन कर रहे भारत के मुख्य न्यायाधीश' (श्री एम. हिदायतुल्ला), और बाद के मामलों में कहा गया 'राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन कर रहे श्री एम. हिदायतुल्ला'।

    देखिए समाचार भाग-2, 13.8.1969, पैरा 1295, 18.8.1969, पैरा 1301 और 21.8.1969, पैरा 1305 ।

अध्याय 4

सदनों के बीच संबंध

बहुत से ऐसे अवसर आते हैं जब संसद के दोनों सदनों को एक दूसरे के साथ संवाद करना पड़ता है। संवाद का सामान्य तरीका एक सदन से दूसरे सदन को लिखित संदेश भेजना है।[1] संवाद के अन्य तरीके हैं: सदनों की संयुक्त समितियों की बैठकें और सदनों की संयुक्त बैठकें।

सदनों के बीच संवाद

लिखित संदेश के माध्यम से संवाद का सहारा न केवल एक सदन से दूसरे सदन को विधेयकों को भेजने के लिए लिया जाता है बल्कि एक सदन द्वारा पारित प्रस्तावों[2] और संकल्पों, जिन्हें सूचना अथवा सहमति हेतु दूसरे सदन को भी भेजना अपेक्षित होता है, के भेजने के लिए भी लिया जाता है। तथापि, संदेश का मुख्य उद्देश्य एक सदन से दूसरे सदन

---

1. *देखिए* संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम—नियम 9 और 10 ।
2. लोक सभा द्वारा निम्नलिखित संयुक्त समितियों के लिए प्रस्तावों की स्वीकृत के पश्चात् इन पर सहमति देने और राज्य सभा के सदस्यों के नामों को संसूचित करने हेतु संदेश राज्य सभा को भेजे गए थे:-
   (1) बोफोर्स संविदा के संबंध में स्वीडिश नेशनल आडिट ब्यूरो की रिपोर्ट से उत्पन्न मुद्दों की जांच हेतु संयुक्त समिति-प्रस्ताव 6 अगस्त, 1987 को लोक सभा में स्वीकृत हुआ;
   (2) प्रतिभूतियों, शेयरों, बांडों और अन्य वित्तीय लिखतों से संबंधित अनियमितताओं और धांधलियों की जांच हेतु संयुक्त समिति-प्रस्ताव 6 अगस्त, 1992 को लोक सभा में स्वीकृत हुआ;
   (3) शेयर बाजार घोटाले और तत्संबंधी मामलों संबंधी संयुक्त समिति-प्रस्ताव 26 अप्रैल, 2001 को लोक सभा में स्वीकृत हुआ;
   (4) शीतल पेय, फलों के रस और अन्य पेय पदार्थों में कीटनाशी अवशिष्टों तथा उनके लिए सुरक्षा मानकों संबंधी संयुक्त समिति-प्रस्ताव 22 अगस्त, 2003 को लोक सभा में स्वीकृत हुआ;
   (5) लाभ के पदों से संबंधित संविधानिक और विधिक स्थिति की जांच संबंधी संयुक्त समिति-प्रस्ताव 17 अगस्त 2006 को लोक सभा में स्वीकृत हुआ;
   (6) दूरसंचार लाइसेंसों और स्पेक्ट्रम के आवंटन और मूल्य निर्धारण से संबंधित मामलों की जांच संबंधी संयुक्त समिति-प्रस्ताव 1 मार्च 2011 को लोक सभा में स्वीकृत हुआ और
   (7) अन्य पिछड़े वर्गों (अ.पि.व.) के कल्याण संबंधी समिति नामक दोनों सदनों की एक समिति का गठन-प्रस्ताव 21 दिसम्बर, 2011 को लोक सभा में स्वीकृत हुआ।

को विधेयक भेजना है क्योंकि दोनों सदनों के बीच संवाद की आवश्यकता मुख्य रूप से विधेयकों के संबंध में ही पड़ती है।[3]

किसी सदन द्वारा भेजा जाने वाला संदेश उसके महासचिव द्वारा दूसरे सदन के महासचिव को भेजा जाता है। जिस सदन के महासचिव को संदेश भेजा जाता है वह उस संदेश के बारे में, यदि सदन सत्र में हो, तो प्रथम सुविधाजनक अवसर पर और तात्कालिक मामलों में तुरंत सदन को जानकारी देता है। यदि सभा सत्र में न हो तो सदस्यों को इस संदेश की जानकारी उस सदन के समाचार (बुलेटिन) के पैरा के माध्यम से दी जाती है।

लोक सभा में पुर:स्थापित तथा पारित किए जाने वाले विधेयक : यदि धन विधेयक से भिन्न कोई विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित हो और उसके द्वारा पारित कर दिया जाये तो उसकी संसूचना राज्य सभा को सन्देश द्वारा दी जाती है और इसके साथ ही यथापारित विधेयक की एक प्रति भी भेजी जाती है और विधेयक की प्रति के साथ महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित पृष्ठांकन भी होता है कि विधेयक लोक सभा द्वारा पारित कर दिया गया है। राज्य सभा विधेयक को उसी रूप में पारित कर सकती है और उसकी संसूचना लोक सभा को दे सकती है या इसे संशोधन या संशोधनों सहित पारित कर सकती है और इस आशय के संदेश के साथ लोक सभा को लौटा सकती है कि लोक सभा उक्त संशोधन या संशोधनों पर अपनी सहमति राज्य सभा को संसूचित करे। यदि प्रस्तावित संशोधन लोक सभा को स्वीकार न हो, या लोक सभा विधेयक में वैकल्पिक संशोधन का प्रस्ताव करे तो विधेयक, या अग्रेतर यथासंशोधित विधेयक संदेश सहित राज्य सभा को लौटा दिया जाता है। इस दशा में भी महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित पृष्ठांकन विधेयक के साथ होता है।

यदि धन विधेयक से भिन्न लोक सभा द्वारा पारित किसी विधेयक को, राज्य सभा उसमें संशोधन करके लोक सभा को लौटा दे तथा लोक सभा उन संशोधनों को स्वीकार कर ले तो यह मान लिया जाता है कि वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा अन्तिम रूप से पारित कर दिया गया है, और संदेश राज्य सभा को भेज दिया जाता है। यदि लोक सभा उस विधेयक में राज्य

रक्षा मंत्रालय द्वारा मै. अगस्टा वेस्टलैंड से वीवीआईपी हेलीकॉप्टरों की खरीद में रिश्वत दिए जाने के आरापों और सौदे में तथाकथित बिचौलियों की भूमिका की जांच करने हेतु दोनों सदनों की संयुक्त समिति के गठन हेतु लोक सभा की सहमति और इसके लिए सदस्यों के नाम संसूचित करने हेतु राज्य सभा से संदेश 28 फरवरी, 2013 को लोक सभा में प्राप्त हुआ था। संदेश की सूचना 4 मार्च, 2013 को सभा को दी गई थी। तथापि, राज्य सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर सहमत होने और लोक सभा के सदस्यों, जो इस समिति में कार्य करेंगे, के नामों को दर्शाने वाला प्रस्ताव सहमत हुए मंत्री द्वारा बजट सत्र 2013 के दौरान प्रस्तुत नहीं किया गया।

3. मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत 1921 में केन्द्र में द्विसदनीय विधानमण्डल के प्रारम्भ के समय से असेम्बली द्वारा पारित विधेयकों को संदेश सहित काउन्सिल ऑफ स्टेट्स को भेज दिया जाता था। एक चैम्बर और दूसरे चैम्बर के बीच के संदेशों को एक चैम्बर के सचिव द्वारा दूसरे चैम्बर के सचिव को प्रेषित किया जाता था। *देखिए* भारतीय विधायी नियम, नियम 41 ।

सभा द्वारा किए गए संशोधन या संशोधनों से असहमत हो या उसमें अग्रेतर संशोधन या वैकल्पिक संशोधन का प्रस्ताव करे तो विधेयक या अग्रेतर यथासंशोधित विधेयक एक संदेश के साथ राज्य सभा को लौटा दिया जाता है।

राज्य सभा में पुर:स्थापित तथा पारित किये जाने वाले विधेयक: यदि राज्य सभा में पुर:स्थापित होने वाला तथा उसके द्वारा पारित किया गया कोई विधेयक लोक सभा द्वारा बिना किसी संशोधन के पारित कर दिया जाता है तो राज्य सभा को संदेश भेज दिया जाता है और राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के बारे में आगे कार्रवाई लोक सभा सचिवालय द्वारा की जाती है।

तथापि, यदि लोक सभा उस विधेयक को संशोधन या संशोधनों सहित पारित करती है तो उसे राज्य सभा को इस संदेश के साथ लौटा दिया जाता है कि वह उस संशोधन या संशोधनों से सहमत हो। इस प्रकार लौटाए गए विधेयक पर महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित पृष्ठांकन होता है।

यदि राज्य सभा, लोक सभा द्वारा किए गए सभी संशोधनों या किसी एक संशोधन से असहमत हो या लोक सभा द्वारा किए गए अग्रेतर संशोधनों सहित किन्हीं संशोधनों से सहमत हो या लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों के स्थान पर अग्रेतर संशोधनों का प्रस्ताव करे तो अग्रेतर यथासंशोधित विधेयक को संदेश सहित लोक सभा को पुन: लौटा दिया जाएगा।[4]

इस स्थिति में लोक सभा या राज्य सभा द्वारा मूल रूप में यथापारित विधेयक या उसके द्वारा अग्रेतर संशोधित विधेयक से सहमत हो सकती है या वह राज्य सभा से यह कह सकती है कि वह उसी संशोधन या संशोधनों को स्वीकार कर ले जिससे या जिनसे वह असहमत थी। इस दशा में विधेयक फिर संदेश सहित राज्य सभा को लौटा दिया जाएगा।

यदि दोनों में से किसी सदन में आरम्भ होने वाले विधेयक के संशोधनों पर अनुच्छेद 108(1)[5] के अनुसार कोई सहमति न हो, तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है।

धन विधेयक: धन विधेयक के मामले में, लोकसभा द्वारा यथापारित विधेयक की एक प्रति राज्य सभा को भेजते समय, महासचिव के प्रायिक संदेश और पृष्ठांकन के अतिरिक्त, विधेयक के अंत में अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षरित इस आशय का एक प्रमाणपत्र अंकित होता है कि यह विधेयक धन विधेयक है।[6] राज्य सभा द्वारा सिफारिश किए गए किसी संशोधन अथवा

---

4. अभी तक कोई ऐसा दृष्टांत नहीं है।
5. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 22–'विधान' धन विधेयकों के अन्तर्गत।
6. तात्कालिकता की स्थिति में जब लोक सभा द्वारा पारित धन विधेयक से संबंधित एक संदेश, अध्यक्ष के दिल्ली से बाहर होने के कारण तत्काल राज्य सभा को नहीं भेजा जा सका तो राज्य सभा के महासचिव को अनौपचारिक रूप से सूचित किया गया कि लोक सभा द्वारा विधेयक पारित कर दिया गया है तथा महासचिव द्वारा हस्ताक्षरित संदेश के साथ अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित धन विधेयक राज्य सभा सचिवालय को बाद में भेज दिया जाएगा। इसके साथ ही, लोक सभा द्वारा यथापारित, विधेयक की प्रति राज्य सभा सचिवालय को उसी दिन भेज दी गई।

संशोधनों को लोक सभा स्वीकार कर सकती है या नहीं भी कर सकती है। दोनों ही मामलों में राज्य सभा को इस आशय का संदेश भेज दिया जाता है।[7]

सदनों की संयुक्त समिति[8]

एक सदन द्वारा दूसरे सदन को निम्नलिखित मामलों में भी सन्देश भेजे जाते हैं:

(i) जब लोक सभा में किसी विधेयक (धन विधेयक से अन्यथा) को संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव पारित हो जाए तो राज्य सभा को संदेश भेजा जाता है, जिसमें उससे कहा जाता है कि वह उस प्रस्ताव से सहमत हो और उन सदस्यों के नाम भेजे जो उस समिति में होंगे। राज्य सभा इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद लोक सभा को इस आशय का संदेश भेज देती है जिसमें उस संयुक्त समिति के लिए राज्य सभा द्वारा नियुक्त किए गए सदस्यों के नाम भी होते हैं।

किसी अन्य गठित संयुक्त संसदीय समिति के लिए भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है।

(ii) जब कोई संयुक्त समिति निर्दिष्ट समय में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत न कर सके तो राज्य सभा को इस आशय का संदेश भेज दिया जाता है कि लोक सभा ने प्रस्ताव पारित करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का समय बढ़ा दिया है।

(iii) जब राज्य सभा के कतिपय सदस्यों की मृत्यु, सदन की सदस्यता से निवृत्ति या त्यागपत्र के कारण संयुक्त समिति में स्थान रिक्त हो जाए तो लोक सभा प्रस्ताव पारित करती है जिसमें राज्य सभा से अनुरोध किया जाता है कि उनके स्थान पर नए सदस्यों की नियुक्ति की जाए और यह प्रस्ताव संदेश के रूप में राज्य सभा–को भेजा जाता है। तथापि, यदि समिति की नियुक्ति करने वाले सदन–इस दशा में लोक सभा के सदस्यों के स्थान रिक्त हो जाएं तो रिक्त स्थानों पर नए सदस्यों की नियुक्ति का प्रस्ताव पारित हो जाने पर इस बात की सूचना राज्य सभा को पत्र के माध्यम से दी जाती है न कि संदेश के रूप में।

(iv) जब राज्य सभा किसी विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपती है और लोक सभा से कहा जाता है कि वह इस प्रस्ताव से सहमत हो तो लोक सभा द्वारा उस प्रस्ताव के स्वीकार होने पर राज्य सभा को संदेश भेज दिया जाता है जिसमें उस समिति के लिये नियुक्त किए गए लोक सभा सदस्यों के नाम होते हैं। लोक सभा मुख्य प्रस्ताव को

---

7. वित्त (संख्यांक 2) विधेयक, 1977 तथा वित्त विधेयक, 1978 में राज्य सभा द्वारा संस्तुत संशोधनों पर लोक सभा द्वारा विचार किया गया और उन्हें अस्वीकार कर दिया गया।

विनियोग विधेयक, 1985 तथा विनियोग (संख्यांक 2) विधेयक, 1985 में राज्य सभा द्वारा संस्तुत संशोधनों पर लोक सभा द्वारा विचार किया गया और उन्हें स्वीकार कर लिया गया।

8. संयुक्त समितियों के गठन आदि के बारे में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 30–'संसदीय समितियां'।

स्वीकार करते समय उसमें परिवर्तन या रूपभेद कर सकती है और इस संबंध में राज्य सभा से सिफारिश कर सकती है।

(v) संसद में यह शक्ति अंतर्निहित है कि वह सभा पटल पर रखे गए सांविधिक नियमों तथा आदेशों में संशोधनों की सिफारिश करे, चाहे उस विधि में, जिसके अन्तर्गत उन्हें बनाया गया है, संशोधन का प्रावधान न किया गया हो। जब किसी नियम में कोई संशोधन लोक सभा द्वारा पारित किया जाता है तो वह एक संदेश के साथ राज्य सभा को उसकी सहमति के लिए भेजा जाता है। जब राज्य सभा लोक सभा द्वारा किए गए संशोधन को स्वीकार कर लेती है या उसमें अग्रेतर संशोधन या वैकल्पिक संशोधन करना चाहती है तो वह इस आशय का संदेश भेजती है। यदि दोनों सदनों के बीच अन्तिम रूप से असहमति हो तो उस संशोधन के संबंध में आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाती।[9]

(vi) दोनों सदनों के बीच संदेशों का आदान-प्रदान तब भी होता है जब उनमें से कोई एक "राष्ट्रपति के किसी अधिनियम" को संशोधित करने का संकल्प पारित कर दे, या जब एक सभा द्वारा पारित किया गया तथा दूसरी सभा में विचाराधीन विधेयक वापस लिया जाना हो तब इस आशय का प्रस्ताव पारित करके दूसरी सभा को संदेश भेजा जाता है।

सदनों की संयुक्त बैठक

जब एक सदन द्वारा पारित किसी विधेयक को, धन विधेयक अथवा संविधान संशोधन विधेयक से अन्यथा, दूसरे सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है अथवा विधेयक में किये जाने वाले संशोधनों के बारे में दोनों सदन अन्तिम रूप से असहमत हो जाते हैं या दूसरे सदन को विधेयक प्राप्त होने की तारीख से उसके द्वारा विधेयक पारित किए बिना छह मास से अधिक बीत जाते हैं, तो उस दशा के सिवाय जिसमें लोक सभा का विघटन होने के कारण विधेयक व्यपगत हो गया है, राष्ट्रपति सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना, यदि वे बैठक में हैं, तो संदेश द्वारा या यदि वे बैठक में नहीं हैं तो लोक अधिसूचना द्वारा दे सकता है।[10]

यह केवल समर्थकारी उपबन्ध है जिससे राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह दोनों सदनों के बीच गतिरोध को दूर करने के लिए कदम उठा सकता है। उसके लिए यह बाध्यकारी नहीं है कि वह दोनों सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करे। इसके अतिरिक्त, यह उपबंध प्राप्तकर्ता सदन को छह मास के बाद उसे पारित करने में असमर्थ नहीं बनाता है बशर्ते कि विधेयक लोक सभा के विघटन के कारण व्यपगत

---

9. नियम 238 । साथ ही *देखिए* अध्याय 24–'अधीनस्थ विधान'।

10. अनुच्छेद 108(1)। ऐसा ही उपबन्ध भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत था। *देखिए* भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनूसूची में दी गई धारा 67(3) और उसके अन्तर्गत बनाए गए भारतीय विधायी नियमों के नियम 38 और 39 ।

न हो गया हो, या राष्ट्रपति ने दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने के अपने आशय की सूचना पहले ही न दे दी हो।[11]

जब राष्ट्रपति ने सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दे दी है तो कोई भी सदन विधेयक पर आगे कार्यवाही नहीं करेगा और तत्पश्चात् राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल के परामर्श से प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्तावित और अध्यक्ष द्वारा सहमत होने पर, विधेयक पर चर्चा और मतदान करने के लिए सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आदेश जारी कर सकेगा और यदि वह ऐसा करता है, तो सदन तद्नुसार अधिवेशित होंगे।[12] लोक सभा का महासचिव, राष्ट्रपति द्वारा संयुक्त बैठक के लिए निर्धारित समय और स्थान का जिक्र करते हुए लोक सभा और राज्य सभा के प्रत्येक

---

11. उदाहरणार्थ वास्तुविद (संशोधन) विधेयक, 1980 जिसे 3 दिसम्बर, 1980 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया, 8 दिसम्बर, 1980 को लोक सभा के पटल पर रखा गया, 29 अप्रैल, 1982 को (छह महीने से अधिक समय बीत जाने के बाद) संशोधनों सहित लोक सभा द्वारा पारित किया गया, और लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों पर 3 मई, 1982 को राज्य सभा ने सहमति दी; विक्रय संवर्द्धन कर्मचारी (सेवा शर्तें) संशोधन विधेयक, 1980 जिसे 11 दिसम्बर, 1980 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया, 15 दिसम्बर, 1980 को लोक सभा के पटल पर रखा गया, 16 अक्तूबर, 1982 को (छह महीने से अधिक समय बीत जाने के बाद) संशोधनों सहित लोक सभा द्वारा पारित किया गया और लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों पर 2 नवम्बर, 1982 को राज्य सभा ने सहमति दी; निरसन और संशोधन विधेयक, 1986 जिसे 28 जुलाई, 1986 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया, 29 जुलाई, 1986 को लोक सभा के पटल पर रखा गया, 23 फरवरी, 1988 को (छह महीने से अधिक समय बीत जाने के बाद) संशोधनों सहित लोक सभा द्वारा पारित किया गया और लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों पर 8 मार्च, 1988 को राज्य सभा ने सहमति दी; कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) संशोधन विधेयक, 1992 जिसे 21 जुलाई, 1992 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया, 27 जुलाई, 1992 को लोक सभा के पटल पर रखा गया, 19 अप्रैल, 1993 को (छह महीने से अधिक समय बीत जाने के बाद) संशोधनों सहित लोक सभा द्वारा पारित किया गया, और लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों पर 10 मई, 1993 को राज्य सभा ने सहमति दी; विधि सेवा प्राधिकरण (संशोधन) विधेयक, 1991 जिसे 3 मार्च, 1992 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया, 5 मार्च, 1992 को लोक सभा के पटल पर रखा गया, 4 अगस्त 1994 को (छह महीने से अधिक समय बीत जाने के बाद) संशोधनों सहित लोक सभा द्वारा पारित किया गया और लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों पर 11 अगस्त, 1994 को राज्य सभा ने सहमति दी। मजदूरी संदाय (संशोधन) विधेयक, 2005 जिसे 2 दिसम्बर, 2004 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया, 3 दिसम्बर, 2004 को लोक सभा के पटल पर रखा गया, 17 अगस्त, 2005 को (छह महीने की अवधि बीत जाने के बाद) संशोधनों सहित लोक सभा द्वारा पारित किया गया और लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों पर 24 अगस्त, 2008 को राज्य सभा ने सहमति दी।
12. अनुच्छेद 108(3)।

सदस्य को समन जारी करता है।[13] जब राष्ट्रपति सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दे देता है तब लोक सभा का विघटन हो जाने पर भी संयुक्त बैठक में विधेयक पर कार्यवाही नहीं रुकेगी।[14]

संयुक्त बैठक में प्रक्रिया **:** संयुक्त बैठक में लोक सभा का अध्यक्ष पीठासीन होता है[15] और लोक सभा का महासचिव संयुक्त बैठक के महासचिव के रूप में कार्य करता है।[16] लोक सभा के प्रक्रिया नियम ऐसे परिवर्तनों और रूपभेदों के साथ लागू होते हैं जिन्हें अध्यक्ष आवश्यक या उचित समझे।[17] संयुक्त बैठक किस समय स्थगित होगी तथा दिन और समय या उसी दिन का कोई काल खण्ड जिस समय बैठक स्थगित की जानी है, इसका अवधारण अध्यक्ष करता है।[18]

किसी संयुक्त बैठक में यदि लोक सभा का अध्यक्ष अनुपस्थित हो, तो लोक सभा का उपाध्यक्ष या यदि वह भी अनुपस्थित हो तो राज्य सभा का उपसभापति या यदि वह भी अनुपस्थित हो तो बैठक में उपस्थित सदस्यों द्वारा अवधारित कोई अन्य व्यक्ति इस बैठक में पीठासीन होता है।[19] दोनों सदनों के कुल सदस्यों का दसवां भाग इस संयुक्त बैठक की गणपूर्ति (कोरम) होगी।[20]

यदि सदनों की संयुक्त बैठक में उसे निर्दिष्ट विधेयक ऐसे संशोधनों सहित, यदि कोई हों, जिन पर संयुक्त बैठक में सहमति हो जाती है, दोनों सदनों के उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की कुल संख्या के बहुमत द्वारा पारित हो जाता है, तो संविधान के प्रयोजनों के लिए वह दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया समझा जाता है। संयुक्त बैठक में, ऐसे संशोधनों, यदि कोई हों, जो विधेयक के पारित होने में विलंब के कारण आवश्यक हो गए हैं और ऐसे अन्य संशोधन, जो उन विषयों से सुसंगत हैं, जिन पर सदनों में सहमति नहीं हुई है, से भिन्न विधेयक में कोई और संशोधन प्रस्थापित नहीं किया जाता है और पीठासीन व्यक्ति का इस बारे में विनिश्चय अंतिम होगा कि कौन से संशोधन ग्राह्य हैं।[21]

---

13. संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम, नियम 3 ।
14. अनुच्छेद 108(5)।
15. *देखिए* अनुच्छेद 118(4)।
16. संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम, नियम 2 ।
17. *पूर्वोक्त,* नियम 7 ।
18. *पूर्वोक्त,* नियम 4 ।
19. *पूर्वोक्त,* नियम 5 ।
    26 मार्च, 2002 को संसद के सदनों की संयुक्त बैठक के दौरान अध्यक्ष श्री जी.एम.सी. बालयोगी का पद रिक्त होने के कारण उपाध्यक्ष ने बैठक की अध्यक्षता की।
20. *पूर्वोक्त,* नियम 6 ।
21. देखिए अनुच्छेद 108(4)।

संयुक्त बैठक में अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति प्रथमत: मत नहीं देगा, किन्तु मत बराबर होने की दशा में उसका निर्णायक मत होगा और वह इसका प्रयोग करेगा।[22]

अनुच्छेद 108 के अंतर्गत अभी तक दो अवसरों पर सदनों की संयुक्त बैठकें हुई हैं। प्रथम अवसर वह था जब दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959 में कुछ संशोधनों के बारे में दोनों सदनों के बीच असहमति थी। राष्ट्रपति ने संसदीय कार्य मंत्री के माध्यम से 18 अप्रैल, 1961 को लोक सभा अध्यक्ष को संदेश भेजकर इस विधेयक पर चर्चा और मतदान के उद्देश्य से दोनों सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दी। अध्यक्ष ने यह संदेश लोक सभा में 19 अप्रैल, 1961 को पढ़कर सुनाया तथा उसी दिन राज्य सभा के सभापति ने भी राज्य सभा को इसके बारे में सूचना दी।[23] लोक सभा अध्यक्ष द्वारा 6 मई, 1961 को संयुक्त बैठक आयोजित करने के सुझाव पर सहमति दिए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति ने 22 अप्रैल, 1961 को दोनों सदनों की संयुक्त बैठक 6 मई, 1961 को आहूत करने का आदेश जारी किया। सचिव द्वारा राज्य सभा और लोक सभा सदस्यों को इस बैठक का समय और स्थान विनिर्दिष्ट करते हुए 27 अप्रैल, 1961 को समन जारी किए गए। तदनुसार, संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में 6 मई, 1961 को संयुक्त बैठक हुई तथा 9 मई, 1961 को एक और बैठक हुई जिसमें यथासंशोधित विधेयक को अंतिम रूप से पारित कर दिया गया।[24]

दूसरा अवसर तब आया जब राज्य सभा ने 19 सितम्बर, 1977 को प्रख्यापित बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) अध्यादेश, 1977 का स्थान लेने के लिए अपेक्षित बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 को अस्वीकार कर दिया था। यह विधेयक लोक सभा द्वारा पारित किए जाने के बाद 5 दिसम्बर, 1977 को राज्य सभा को भेज दिया गया था जिसे राज्य सभा ने विधेयक पर विचार करने संबंधी प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने पर 8 दिसम्बर, 1977 को अस्वीकृत कर दिया था। दिनांक 9 दिसम्बर, 1977 को राज्य सभा ने लोक सभा को इस आशय का संदेश भेज दिया। दोनों सदनों की संयुक्त बैठक संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में 16 मई, 1978 को

---

22. अनुच्छेद 100(1)।
23. लो.स.वा.वि., 19.4.1961, पृ. 5692 तथा रा.स.वा.वि., 19.4.1961, पृ. 30 ।
24. संसद के सदनों की संयुक्त बैठक के वाद-विवाद 6.5.1961 एवं 9.5.1961, खंड 1, सं. 1; विधेयक 22.5.1961 के राजपत्र असाधारण (II-1) में 1961 का अधिनियम सं. 28 के रूप में प्रकाशित हुआ।

इस विधेयक पर चर्चा तथा मतदान के लिए आयोजित हुई और इस बैठक में विधेयक अंतिम रूप से पारित हो गया।[25]

तीसरी संयुक्त बैठक 26 मार्च, 2002 को तब हुई थी जब आतंकवाद निवारण अध्यादेश का स्थान लेने के लिए आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002, लोक सभा द्वारा यथापारित, पर विचार करने का प्रस्ताव राज्य सभा ने अस्वीकार कर दिया था। यह बैठक आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 पर चर्चा और मतदान के लिए आयोजित हुई और इस बैठक में विधेयक अंतिम रूप से पारित हो गया।[26]

---

25. संसद के सदनों की संयुक्त बैठक के वाद-विवाद, 16.5.1978 पृ. 25; राजपत्र असाधारण (भाग 1-खंड 1), 11.5.1978 ।

26. संसद के सदनों की संयुक्त बैठक के वाद-विवाद, 26.3.2002, खंड 1, सं. 1; राजपत्र असाधारण (भाग 1-खंड 1), 23.3.2002 ।

अध्याय 5

राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और संसद सदस्यों का निर्वाचन

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का निर्वाचन

संसद और प्रत्येक राज्य के विधान मंडल के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार करने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण एक स्वतंत्र निकाय में निहित है जिसे भारत का निर्वाचन आयोग कहा जाता है। निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उतने अन्य निर्वाचन आयुक्तों से, यदि कोई हो, जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिलकर बनता है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।[1]

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऐसे निर्वाचकगण के सदस्य करते हैं, जिसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं और यह निर्वाचन गुप्त मतदान द्वारा तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है।[2]

---

1. अनुच्छेद 324(1)(2)। इस समय निर्वाचन आयोग एक बहुसदस्यीय निकाय है जिसमें मुख्य निर्वाचन आयुक्त और दो अन्य निर्वाचन आयुक्त होते हैं।

2. अनुच्छेद 54 और 55(3); राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 और राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन नियम, 1974 भी *देखिए*। इन नियमों के लिए *देखिए* विधि मंत्रालय की दिनांक 21.5.1974 की अधिसूचना संख्या एस.ओ. 305(ई), राजपत्र असाधारण (II-3-ii), पृ. 1063-78 ।

   राष्ट्रपति के निर्वाचन के प्रश्न पर संविधान सभा में विस्तारपूर्वक विचार किया गया था। राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन की पद्धति न अपनाये जाने का अन्य बातों के साथ-साथ एक कारण यह था कि इतने बड़े देश में, जोकि लगभग एक उपमहाद्वीप ही है, बिना रुकावट के सफलतापूर्वक चुनाव कराने की व्यवस्था करना लगभग असंभव होगा। अधिक जानकारी के लिए *देखिए सं.स.वा.वि.,* खंड VII, पृ. 1640-61 ।

   यह सुझाव भी अस्वीकार कर दिया गया था कि राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्वाचकगण में केवल संसद सदस्य ही हों ताकि "राष्ट्रपति उसी ग्रुप या दल का प्रतिनिधित्व न करे जोकि केन्द्र में हो।" सं.स.वा.वि., खण्ड IV, पृ. 64 । श्री जवाहरलाल नेहरू तथा डॉ. अम्बेडकर, दोनों ने संविधान सभा में कहा था कि निर्वाचकगण द्वारा निर्वाचन वयस्क मताधिकार पर आधारित प्रत्यक्ष निर्वाचन जैसा ही होगा— *सं.स.वा.वि.,* खंड VII, पृ. 1640 ।

संविधान में यह विहित है कि जहां तक साध्य हो, राष्ट्रपति के निर्वाचन में भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के मापमान में एकरूपता होगी। राज्यों में आपस में ऐसी एकरूपता तथा समस्त राज्यों और संघ में समतुल्यता प्राप्त कराने के लिए संसद और प्रत्येक राज्य की विधान सभा का प्रत्येक निर्वाचित सदस्य ऐसे निर्वाचन में जितने मत देने का हकदार है उनकी संख्या निम्नलिखित रीति से अवधारित की जाती है[3]:

(क) किसी राज्य की विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के उतने मत होते हैं जितने कि एक हजार के गुणित, उस भागफल में हों जो राज्य की जनसंख्या को उस विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से भाग देने पर आये;

(ख) यदि एक हजार के उक्त गुणितों को लेने के बाद शेष पांच सौ से कम नहीं है तो उपर्युक्त खंड (क) में निर्दिष्ट प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या में एक और जोड़ दिया जाता है;

(ग) संसद के प्रत्येक सदन के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या वह होती है जो उपर्युक्त खंड (क) और (ख) के अधीन राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों के लिए नियत कुल मतों की संख्या को, संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से भाग देने पर आये, जिसमें आधे से अधिक भिन्न को एक गिना जाता है और अन्य भिन्नों की उपेक्षा की जाती है।[4]

यह निर्णय लिया गया है कि अनुच्छेद 54 में प्रयुक्त 'राज्य' शब्द के अंतर्गत संघ राज्यक्षेत्रों को शामिल नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 239 क के अंतर्गत संघ राज्यक्षेत्रों के लिए जिस विधान मंडल की संकल्पना की गयी है, वह राज्य विधान सभा नहीं है—*शिवकृपाल सिंह बनाम वी.वी. गिरि,* ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 2097 ।

अनुच्छेद 54 और 55 में प्रयुक्त शब्द 'राज्य' में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली और संघ राज्यक्षेत्र, पुडुचेरी शामिल है—संविधान (सत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1992 ।

3. अनुच्छेद 55(1) और (2)।

4. उदाहरण के लिए 2007 के राष्ट्रपतीय निर्वाचन में उत्तर प्रदेश के लिए राज्य की जनसंख्या 83,849,905 को 403 (राज्य विधान सभा में निर्वाचित सदस्यों की संख्या) से भाग देकर उसे आगे एक हजार से भाग देकर विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य 208 निर्धारित किया गया :

$$= \frac{83849905}{403 \times 1000} = 208.06 = 208.06208$$

इसी प्रकार, सिक्किम विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य

$$= \frac{209843}{32 \times 1000} = 6.55 = 7 \text{ था।}$$

2007 के राष्ट्रपतीय निर्वाचन में 28 राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के मतों का कुल मूल्य 5,49,474 था। इस संख्या को संसद के दोनों सदनों के 776 निर्वाचित सदस्यों

उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है और उसका निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचकगण के सदस्यों द्वारा गुप्त मतदान द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है।[5]

राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र व्यक्ति भारत का नागरिक होना चाहिए, उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो और वह लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो। ऐसे व्यक्ति को भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अधीन या उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का पद[6] धारण नहीं करना चाहिए। संसद या राज्य विधान मंडल का कोई सदस्य राष्ट्रपति पद पर निर्वाचन के लिए खड़ा हो सकता है परन्तु, यदि वह राष्ट्रपति निर्वाचित होता है, तो वह जिस तारीख से राष्ट्रपति का पद भार सम्भालता है, उसी तारीख से संसद या राज्य विधान मंडल में उसका स्थान उसके द्वारा खाली कर दिया गया माना जाता है। लोक सभा अथवा राज्य विधान मंडल के किसी सदन के पीठासीन अधिकारी के पद पर कार्यरत किसी व्यक्ति के लिए भी राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन हेतु कोई रोक नहीं है।[7]

(लोक सभा के 543 तथा राज्य सभा के 233) द्वारा समान रूप से भाग किया गया। एक संसद सदस्य के मत का मूल्य था:

$$= \frac{549474}{776} = 708.085 = 708$$

5. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 2(घ) के साथ पठित अनुच्छेद 64 और 66(1)।

   उपराष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली से इस बात में भिन्न है कि उपराष्ट्रपति के निर्वाचकगण में राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य नहीं होते।

6. अनुच्छेद 58—इस प्रयोजन के लिए राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल या केन्द्र अथवा किसी राज्य के मंत्री के पद को लाभ का पद नहीं माना जाता। *देखिए* अनुच्छेद 58(2), *स्पष्टीकरण* ।

   सरकार के अंतर्गत लाभ के कुछ पदों के संबंध में यह घोषणा की गई है कि उन पदों को धारण करने वाले राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित होने के लिए अनर्ह नहीं होंगे। *देखिए* संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959, धारा 3 ।

   चरण लाल साहू बनाम फखरूद्दीन अली अहमद, ए.आई.आर. 1975, एस.सी. 1288 ।

   यदि कोई व्यक्ति अनुच्छेद 58 के अंतर्गत राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए पात्र है, परन्तु वह अनुच्छेद 71 के अंतर्गत निर्धारित की गई उन कानूनी अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता जिनके द्वारा उस विधि और तरीके का विनियमन किया गया है जिससे नामांकन का विनिश्चय किया जाना चाहिए, तो वह निर्वाचन के लिए 'प्रत्याशी' नहीं होगा।

7. वर्ष 1962 और 1967 में क्रमशः डॉ. एस. राधाकृष्णन और डा. जाकिर हुसैन ने जब राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ा, तो उन्होंने उपराष्ट्रपति पद से त्यागपत्र नहीं दिया। तथापि, 1969 में राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए नामांकन पत्र भरने से पहले उपराष्ट्रपति (डॉ. वी.वी. गिरि) और

उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए पात्रता की शर्तें वही हैं जो कि राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए हैं सिवाए इसके कि उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशी को राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित होना चाहिए।[8] दूसरी ओर राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी को लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित होना चाहिए।[9]

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचन का विनियमन राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 तथा उसके अंतर्गत बनाये गये नियमों के अनुसार होता है।[10]

लोक सभा अध्यक्ष (डॉ. एन. संजीव रेड्डी) ने अपने-अपने संबंधित पद से त्यागपत्र दिया था। डॉ. एन. संजीव रेड्डी ने लोक सभा में अपनी सदस्यता से त्यागपत्र नहीं दिया। वर्ष 1977 में डॉ. एन. संजीव रेड्डी ने राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए नामांकन पत्र भरने से पहले लोक सभा अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया था। वर्ष 1987, 1992, 1997 और 2007 में क्रमशः श्री. आर. वेंकटरामन, डॉ. शंकर दयाल शर्मा, श्री के.आर. नारायणन और श्री भैरों सिंह शेखावत ने जब राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन लड़ा, तो उन्होंने उपराष्ट्रपति पद से त्यागपत्र नहीं दिया।

8. अनुच्छेद 66(3)(ग) ।
9. अनुच्छेद 58(1)(ग)।
10. भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ और पहला आम चुनाव, 1952 में हुआ था। क्योंकि, इस बीच भारत के राष्ट्रपति का पद रिक्त नहीं रह सकता था, संविधान में अस्थायी व्यवस्था की गई—अनुच्छेद 380(1) जिसे संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा निरसित कर दिया गया है—जिसके अंतर्गत संविधान सभा के सदस्यों ने राष्ट्रपति को चुना। तदनुसार, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जो संविधान सभा के सभापति (प्रेसीडेन्ट) थे, निर्विरोध राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

    अनुच्छेद 54 के अंतर्गत राष्ट्रपति पद के लिए पहला निर्वाचन 1952 में हुआ जिसमें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद 6 मई, 1952 को भारत गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए और उन्होंने 13 मई, 1952 को पद भार सम्भाला।

    दूसरा निर्वाचन मई, 1957 में हुआ और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद 10 मई, 1957 को इस पद के लिए दूसरी कार्यावधि के लिए पुनर्निर्वाचित हुए। राष्ट्रपति ने 13 मई, 1957 को पद की शपथ ली।

    तीसरा निर्वाचन 7 मई, 1962 को हुआ और डॉ. एस. राधाकृष्णन राष्ट्रपति के पद के लिए 11 मई, 1962 को निर्वाचित हुए। राष्ट्रपति ने 13 मई, 1962 को पद की शपथ ली।

    6 मई, 1967 को हुए चौथे निर्वाचन में डॉ. जाकिर हुसैन राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचित हुए। उन्होंने 13 मई, 1967 को पद की शपथ ली।

    डा. जाकिर हुसैन के निधन के कारण, राष्ट्रपति पद के लिए पांचवां निर्वाचन अगस्त, 1969 में हुआ और 20 अगस्त, 1969 को डॉ. वी.वी. गिरि राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित हुए। उन्होंने 24 अगस्त, 1969 को पद की शपथ ली।

    छठा निर्वाचन 17 अगस्त, 1974 को हुआ और डा॰ फखरुद्दीन अली अहमद राष्ट्रपति के पद के लिए 20 अगस्त, 1974 को निर्वाचित हुए। उन्होंने 24 अगस्त, 1974 को पद की शपथ ली।

राष्ट्रपति श्री अहमद का निधन 11 फरवरी, 1977 को हुआ और सातवें निर्वाचन तक, जिसे कि छह महीने के भीतर होना था, उपराष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती को कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में शपथ दिलाई गयी।

जुलाई, 1977 को हुए सातवें निर्वाचन में श्री एन. संजीव रेड्डी राष्ट्रपति के पद के लिए एकमात्र विधिवत् नामनिर्दिष्ट प्रत्याशी थे, अतः उन्हें 21 जुलाई, 1977 को राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचित घोषित किया गया। उन्होंने 25 जुलाई, 1977 को पद की शपथ ली।

12 जुलाई, 1982 को हुए आठवें निर्वाचन में ज्ञानी जैल सिंह राष्ट्रपति के पद के लिए 15 जुलाई, 1982 को निर्वाचित हुए। उन्होंने 25 जुलाई, 1982 को पद की शपथ ली।

नौवां निर्वाचन 13 जुलाई, 1987 को हुआ। श्री आर. वेंकटरामन राष्ट्रपति के पद के लिए 16 जुलाई, 1987 को निर्वाचित हुए। उन्होंने 25 जुलाई, 1987 को पद की शपथ ली।

दसवां निर्वाचन 13 जुलाई, 1992 को हुआ। डॉ. शंकर दयाल शर्मा राष्ट्रपति के पद के लिए 16 जुलाई, 1992 को निर्वाचित हुए। उन्होंने 25 जुलाई, 1992 को पद की शपथ ली।

14 जुलाई, 1997 को हुए ग्याहरवें निर्वाचन में श्री के.आर. नारायणन राष्ट्रपति के पद के लिए 17 जुलाई, 1997 को निर्वाचित हुए। उन्होंने 25 जुलाई, 1997 को पद की शपथ ली।

15 जुलाई, 2002 को हुए बारहवें निर्वाचन में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम राष्ट्रपति पद के लिए 18 जुलाई, 2002 को निर्वाचित हुए। उन्होंने 25 जुलाई, 2002 को पद की शपथ ली।

19 जुलाई, 2007 को हुए तेरहवें निर्वाचन में श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल राष्ट्रपति पद के लिए 21 जुलाई, 2007 को निर्वाचित हुईं। उन्होंने 25 जुलाई, 2007 को पद की शपथ ली।

19 जुलाई 2012 को हुए चौहदवें निर्वाचन में श्री प्रणव मुखर्जी राष्ट्रपति पद के लिए 22 जुलाई 2012 को निर्वाचित हुए। उन्होंने 25 जुलाई 2012 को पद की शपथ ली।

अप्रैल, 1952 में उपराष्ट्रपति पद के लिए पहले निर्वाचन में डॉ. एस. राधाकृष्णन एकमात्र विधिवत् नामनिर्दिष्ट प्रत्याशी थे, इसलिए, 25 अप्रैल, 1952 को उनके उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने की घोषणा की गयी। 23 अप्रैल, 1957 को दूसरी कार्यावधि के लिये उनके फिर से निर्वाचित होने की घोषणा की गयी क्योंकि कोई अन्य प्रत्याशी नहीं था। उपराष्ट्रपति पद के लिए 1962 में पहली बार निर्वाचन हुआ। 7 मई, 1962 को हुए इस निर्वाचन में डॉ. जाकिर हुसैन उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

1967 में उपराष्ट्रपति पद के लिए दो प्रत्याशी थे और डा. वी.वी. गिरि निर्वाचित हुए। उपराष्ट्रपति वी.वी. गिरि द्वारा त्याग-पत्र दिये जाने के कारण उपराष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचन 1969 में हुआ और 30 अगस्त, 1969 को श्री जी.एस. पाठक उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उपराष्ट्रपति के पद के लिए अगले निर्वाचन में दो प्रत्याशियों में से 27 अगस्त, 1974 को श्री बी.डी. जत्ती उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

अगस्त, 1979 में हुए निर्वाचन में श्री एम. हिदायतुल्ला एकमात्र प्रत्याशी थे और इसलिए वह 9 अगस्त, 1979 को निर्विरोध उपराष्ट्रपति निर्वाचित घोषित हुए।

उपराष्ट्रपति पद के लिए अगले निर्वाचन में दो प्रत्याशी थे। श्री आर. वेंकटरामन 22 अगस्त, 1984 को उपराष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित हुए।

राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचन के सम्बन्ध में यह स्थापित पद्धति रही है कि लोक सभा अथवा राज्य सभा के महासचिव[11] को रिटर्निंग आफिसर नियुक्त किया जाता है और साथ ही एक या अधिक सहायक रिटर्निंग आफिसरों[12] की नियुक्ति की जाती है।

निर्वाचन आयोग द्वारा एक अधिसूचना द्वारा निर्वाचन के विभिन्न चरणों का ब्यौरा सरकारी राजपत्र में दिया जाता है। वे इस प्रकार हैं: नामनिर्देशन करने की अन्तिम तारीख जो

देखिए सुभाष सी. कश्यप : वाइस प्रेसीडेंशियल इलेक्शन इन इंडिया, 1984, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1986 ।

मई, 1987 में उपराष्ट्रपति के पद से श्री आर. वेंकटरामन द्वारा त्यागपत्र दिये जाने के कारण अगस्त, 1987 में निर्वाचन हुआ। डॉ. शंकर दयाल शर्मा एकमात्र विधिवत् नामनिर्दिष्ट प्रत्याशी होने के कारण 21 अगस्त, 1987 को उपराष्ट्रपति पद के लिए निर्विरोध निर्वाचित घोषित हुए।

अगस्त, 1992 में हुए निर्वाचन में दो प्रत्याशी थे। श्री के.आर. नारायणन 19 अगस्त, 1992 को उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

16 अगस्त, 1997 को हुए निर्वाचन में दो प्रत्याशी थे। श्री कृष्णकांत उसी दिन उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए। श्री कृष्णकांत की कार्यावधि 20 अगस्त, 2002 को समाप्त होनी थी। परन्तु उनका 27 फरवरी, 2008 को निधन हो गया इसलिए रिक्त पद को भरने के लिए निर्वाचन हुआ जिसमें श्री भैरों सिंह शेखावत और श्री सुशील कुमार शिंदे दो प्रत्याशी थे। श्री भैरों सिंह शेखावत उपराष्ट्रपति पद के लिए 12 अगस्त, 2002 को निर्वाचित हुए।

उपराष्ट्रपति पद के लिए अगला निर्वाचन 10 अगस्त, 2007 को हुआ। इसमें श्री हामिद अंसारी, डॉ. श्रीमती नज़मा हेपतुल्ला और श्री रशीद मसूद तीन प्रत्याशी थे। श्री हामिद अंसारी उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए और उन्होंने 11 अगस्त, 2007 को पद भार संभाला।

अगस्त 2012 में हुए निर्वाचन में दो प्रत्याशी- एम. हामिद अंसारी और जसवंत सिंह थे। एम. हामिद अंसारी– 7 अगस्त 2012 को उपराष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

11. 12 नवम्बर, 1973 तक लोक सभा के महासचिव, सचिव, लोक सभा के रूप में पदनामित थे तथा राज्य सभा के महासचिव, सचिव, राज्य सभा के रूप में पदनामित थे।

12. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 3 (1)।

राष्ट्रपति के पहले, तीसरे, पांचवें और सातवें निर्वाचन के लिए लोक सभा के सचिव; नौवें, ग्यारहवें और तेरहवें निर्वाचन के लिए लोक सभा के महासचिव; दूसरे और चौथे निर्वाचन के लिए राज्य सभा के सचिव; तथा छठे, आठवें, दसवें, बारहवें और चौदहवें निर्वाचन के लिए राज्य सभा के महासचिव को रिटर्निंग आफिसर नियुक्त किया गया।

उपराष्ट्रपति के पहले, दूसरे और चौथे निर्वाचन के लिए लोक सभा के सचिव; छठे, आठवें, दसवें, बारहवें और चौहदवें निर्वाचन के लिए लोक सभा के महासचिव; तीसरे और पांचवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए राज्य सभा के सचिव; और सातवें, नौवें और तेरहवें निर्वाचन के लिए राज्य सभा के महासचिव को रिटर्निंग आफिसर के रूप में नियुक्त किया गया।

ग्यारहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए सचिव, संसदीय कार्य मंत्रालय को रिटर्निंग आफिसर के रूप में नियुक्त किया गया।

अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के पश्चात् चौदहवें दिन की तारीख होती है; नामनिर्देशन की संवीक्षा की तारीख जो नामनिर्देशन करने की अंतिम तारीख के ठीक बाद के दिन की होती है; अभ्यर्थिता वापस लेने की अन्तिम तारीख जो नामनिर्देशनों की संवीक्षा की तारीख के पश्चात् दूसरे दिन की होती है और मतदान, यदि आवश्यक हो, की तारीख जो अभ्यर्थिता वापिस लेने की अन्तिम तारीख के पश्चात् पन्द्रहवें दिन से पहले की तारीख नहीं होती। नामनिर्देशन करने अथवा नामनिर्देशन की संवीक्षा करने अथवा अभ्यर्थिता वापस लेने की तारीख का दिन यदि लोक अवकाश दिन हो तो उसके ठीक अगले दिन की तारीख जो लोक अवकाश न हो, को इस प्रयोजनार्थ उपयुक्त तारीख माना जाता है।[13]

राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से हुई रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन की दशा में अधिसूचना पदावरोही राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान से पूर्व के साठवें दिन को या उसके पश्चात् सुविधापूर्वक जितनी शीघ्र जारी की जा सके जारी की जाती है और तारीख ऐसे नियत की जाती है कि निर्वाचन ऐसे समय में पूरा हो जाये कि तद्द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अपना पद ग्रहण पदावरोही राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति की पदावधि के अवसान के अगले दिन को कर सके।[14] राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग या पद से हटाए जाने

---

13. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम 1952, धारा 4(1), यथासंशोधित साथ ही *देखिए* राजपत्र असाधारण (I-1), [II-3(ii)] दिनांक 6.4.1962 ।

14. 1952 में हुए राष्ट्रपति पद के प्रथम निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 6 मई, 1952 को की गयी और राष्ट्रपति ने 13 मई, 1952 को पदग्रहण किया। 1957 में हुए राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 10 मई, 1957 को की गयी जबकि राष्ट्रपति के पद का कार्यकाल समाप्त होने में दो दिन बाकी थे। इस मामले में पहले राष्ट्रपति ही दूसरी बार राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे और उन्होंने अपने पद का कार्यभार 13 मई, 1957 को संभाला। 1962 में हुए राष्ट्रपति के निर्वाचन के परिणाम की घोषणा पदावरोही राष्ट्रपति के पद का कार्यकाल समाप्त होने के एक दिन पूर्व अर्थात् 11 मई, 1962 को की गयी। नये राष्ट्रपति ने 13 मई, 1962 को अपना पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए चौथे निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 9 मई, 1967 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 13 मई, 1967 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए पांचवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 20 अगस्त, 1969 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 24 अगस्त, 1969 को पद की शपथ ली। राष्ट्रपति पद के लिए छठे निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 20 अगस्त, 1974 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 24 अगस्त, 1974 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए सातवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 21 जुलाई, 1977 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई, 1977 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के आठवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 15 जुलाई, 1982 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई, 1982 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए नौवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 16 जुलाई, 1987 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई, 1987 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए दसवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 16 जुलाई, 1992 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई, 1992 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए ग्यारहवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 17 जुलाई, 1997 को की गयी और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई, 1997 को पदभार

अथवा अन्य कारण से हुई उसके पद की रिक्ति भरे जाने के लिए निर्वाचन की दशा में अधिसूचना ऐसी रिक्ति के होने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र जारी की जानी अपेक्षित है।[15]

वर्ष 1974 तक, नामनिर्देशन पत्र दाखिल करने के लिये प्रस्थापक तथा समर्थक के रूप में मात्र एक-एक निर्वाचक की आवश्यकता थी तथा नामनिर्देशन पत्र के साथ प्रतिभूति के

ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए बारहवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 18 जुलाई, 2002 को की गई और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई, 2002 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए तेरहवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 21 जुलाई, 2007 को की गई और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई, 2007 को पदभार ग्रहण किया। राष्ट्रपति पद के लिए चौदहवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 21 जुलाई 2012 को की गई और नए राष्ट्रपति ने 25 जुलाई 2012 को पदभार ग्रहण किया।

1952 में हुए उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 25 अप्रैल, 1952 को की गयी और उपराष्ट्रपति ने 13 मई, 1952 को पदभार ग्रहण किया। 1957 के निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 23 अप्रैल, 1957 को की गयी और इस मामले में उपराष्ट्रपति वही व्यक्ति चयनित होने के कारण, उन्होंने 13 मई, 1957 को पदभार ग्रहण किया। 1962 के निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 7 मई, 1962 को की गयी और नए उपराष्ट्रपति ने 13 मई, 1962 को अपना पदभार ग्रहण किया। चौथे उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 6 मई, 1967 को की गयी और नए उपराष्ट्रपति ने 13 मई, 1967 को अपना पदभार ग्रहण किया। पांचवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 30 अगस्त, 1969 को की गयी और नए उपराष्ट्रपति ने 31 अगस्त, 1969 को अपने पद की शपथ ली। 1974 में हुए उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 27 अगस्त, 1974 को की गयी और नए उपराष्ट्रपति ने 31 अगस्त, 1974 को अपना पदभार ग्रहण किया। सातवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 9 अगस्त, 1979 को की गयी और नए उपराष्ट्रपति ने 31 अगस्त, 1979 को अपना पदभार ग्रहण किया। 1984 में हुए अर्थात् आठवें निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 22 अगस्त, 1984 को की गयी और नए उपराष्ट्रपति ने 31 अगस्त, 1984 को अपना पदभार ग्रहण किया। नौवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 21 अगस्त, 1987 को की गयी और नये उपराष्ट्रपति ने 3 सितम्बर, 1987 को पदभार ग्रहण किया। दसवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा 19 अगस्त, 1992 को की गयी और नए उपराष्ट्रपति ने 21 अगस्त, 1992 को पदभार ग्रहण किया। 16 अगस्त, 1997 को हुए ग्यारहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा उसी दिन की गयी। नए उपराष्ट्रपति ने 21 अगस्त, 1997 को पदभार ग्रहण किया। 12 अगस्त, 2002 को हुए बारहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा उसी दिन की गई। नए उपराष्ट्रपति ने 19 अगस्त, 2002 को पदभार ग्रहण किया। 10 अगस्त, 2007 को हुए तेरहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा उसी दिन की गई। नए उपराष्ट्रपति ने 11 अगस्त, 2007 को पदभार ग्रहण किया क्योंकि पूर्व तत्कालीन उपराष्ट्रपति ने 21 जुलाई, 2007 को पद त्याग कर दिया था। 7 अगस्त 2012 को हुए चौदहवें उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के परिणाम की घोषणा उसी दिन की गई। नए उपराष्ट्रपति ने 11 अगस्त 2012 को पदभार ग्रहण किया।

15. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, धारा 4(2) और (3); साथ ही *देखिए* राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन नियम, 1974 ।

रूप में किसी भी तरह की राशि जमा कराने की आवश्यकता नहीं थी। वर्ष 1997 में, राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 में निम्नलिखित प्रावधान किये जाने के लिए संशोधन किये गये:

(क) कि नामनिर्देशन पत्र पर

(i) राष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, कम से कम पचास निर्वाचकों के हस्ताक्षर प्रस्थापकों के रूप में और कम से कम पचास निर्वाचकों के हस्ताक्षर समर्थकों के रूप में होंगे;[16]

(ii) उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन की दशा में, कम से कम बीस निर्वाचकों के हस्ताक्षर प्रस्थापकों के रूप में और कम से कम बीस निर्वाचकों के हस्ताक्षर समर्थकों के रूप में होंगे;[17]

(ख) कि किसी अभ्यर्थी को निर्वाचन के लिए तब तक सम्यक् रूप से नामनिर्दिष्ट नहीं समझा जाएगा जब तक वह पन्द्रह हजार रुपए की राशि निक्षिप्त नहीं करता या कराता है। तथापि जहां कोई अभ्यर्थी एक से अधिक नामनिर्देशन पत्रों द्वारा नामनिर्दिष्ट है, वहां उसे मात्र एक निक्षेप करना होता है।[18]

यह भी प्रावधान किया गया है कि कोई निर्वाचक उसी निर्वाचन में, चाहे प्रस्थापक के रूप में हो या समर्थक के रूप में एक से अधिक नामनिर्देशन पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेगा और यदि वह ऐसा करता है, तो प्रथम परिदत्त नामनिर्देशन पत्र से भिन्न किसी भी नामनिर्देशन पत्र पर उसका हस्ताक्षर निष्प्रभावी होगा और किसी अभ्यर्थी की ओर से चार से अधिक नामनिर्देशन पत्र प्रस्तुत नहीं किए जा सकते या रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा स्वीकार नहीं किए जा सकते।[19]

राष्ट्रपतीय निर्वाचन संबंधी विवाद

अनुच्छेद 71 के अनुसार राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा।

तथापि, संविधान (उनतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा अनुच्छेद 71 में संशोधन किया गया था तथा संसद को राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन संबंधी शंकाओं और विवादों की जांच और विनिश्चय करने के लिए एक प्राधिकरण अथवा निकाय गठित करने की शक्ति प्रदान की गई और यह भी उपबन्ध किया गया कि ऐसे प्राधिकरण अथवा

---

16. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन (संशोधन) अधिनियम, 1997 द्वारा संख्या 10 (1974 के अनुरूप) से बढ़ाकर 50 कर दी गई।

17. *पूर्वोक्त* द्वारा संख्या 5 (1974 के अनुरूप) से बढ़ाकर 20 कर दी गई।

18. *पूर्वोक्त* द्वारा राशि 2500 रुपये से (1974 के अनुरूप) बढ़ा दी गई।

19. *पूर्वोक्त,* धारा 5(ख) की उपधारा (5) और (6)।

निकाय के निर्णय को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जाएगी। इस संविधान संशोधन के अनुसरण में 3 फरवरी, 1977 को एक अध्यादेश प्रख्यापित किया गया था, जिसमें यह उपबन्ध किया गया था कि राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन संबंधी विवादों का विनिश्चय करने के लिए एक प्राधिकरण गठित किया जाएगा। इस प्राधिकरण में नौ सदस्य होने थे। तीन सदस्य लोक सभा अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाने थे जिनमें से एक उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अथवा सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश होना था और दूसरा व्यक्ति जिसे निर्वाचन संबंधी कानूनों का ज्ञान हो, तीन सदस्य लोक सभा द्वारा और शेष तीन सदस्य राज्य सभा द्वारा निर्वाचित किए जाने थे। तथापि, मार्च, 1977 के आम चुनावों के बाद इस अध्यादेश को व्यपगत होने दिया गया, क्योंकि सरकार ने यह महसूस किया कि संविधान (उनतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 से पहले की स्थिति बहाल करना न केवल उपयुक्त है बल्कि वांछनीय भी है। इस प्रयोजन के लिए संसद द्वारा राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन (संशोधन) अधिनियम, 1977 पारित किया गया जिसमें विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया कि राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन संबंधी विवादों पर विचारण का प्राधिकार उच्चतम न्यायालय को होगा।[20]

राष्ट्रपति के निर्वाचन पर याचिका द्वारा आपत्ति उच्चतम न्यायालय में उस निर्वाचन के किसी अभ्यर्थी द्वारा, अथवा बीस या अधिक निर्वाचकों द्वारा याचिकादाताओं के रूप में मिलकर की जा सकती है। ऐसी कोई याचिका उस घोषणा के, जिसमें निर्वाचित अभ्यर्थी का नाम हो, प्रकाशन की तारीख के पश्चात् किसी भी समय प्रस्तुत की जा सकती है, किन्तु ऐसे प्रकाशन की तारीख से तीस दिनों के पश्चात् प्रस्तुत नहीं की जा सकती।[21]

निर्वाचन अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित करने के आधार इस प्रकार हैं:

(क) निर्वाचित अभ्यर्थी या निर्वाचित अभ्यर्थी की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा निर्वाचन में रिश्वत या असम्यक् असर[22] का अपराध किया गया है;

---

20. 'निर्वाचन' शब्द में चुनाव होने से पहले की तैयारी से लेकर चुनाव के बाद परिणाम घोषित होने तक की संपूर्ण प्रक्रिया शामिल है—*पीटर सैमुअल वैलेस बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1975, दिल्ली 112 ।

21. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1977 में यथासंशोधित), धारा 14क।

22. राष्ट्रपति के पद पर श्री आर. वेंकटरामन के निर्वाचन को पराजित अभ्यर्थी श्री मिथिलेश कुमार ने इस आधार पर चुनौती दी कि कांग्रेस (आई.) दल ने राष्ट्रपति हेतु श्री आर. वेंकटरामन के पक्ष में मत देने के लिए अपने सदस्यों को प्रभावित करने हेतु व्हिप जारी किया।

याचिका खारिज करते हुए उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि याचिकाकर्त्ता यह साबित करने में असफल रहा है कि क्या ऐसा आरोप है कि प्रथम प्रतिवादी (श्री आर. वेंकटरामन) ने स्वयं असम्यक् असर का उपयोग किया अथवा प्रथम प्रतिवादी की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति ने ऐसा किया है अथवा ऐसा कोई आरोप जिस पर मुकदमा चलाया जा सके—*मिथिलेश कुमार बनाम आर. वेंकटरामन और अन्य* ।

(ख) निर्वाचन के परिणाम पर—

(i) किसी मत के अनुचित तौर पर लिए जाने या इन्कार किए जाने के कारण से; अथवा

(ii) संविधान के या राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 या इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों या किए गए आदेशों के उपबन्धों का अनुपालन न किए जाने से; अथवा

(iii) इस तथ्य के कारण कि किसी ऐसे अभ्यर्थी का (निर्वाचित अभ्यर्थी से भिन्न) नामनिर्देशन, जिसने अपनी अभ्यर्थिता वापस नहीं ली है, गलत रूप में स्वीकार किया गया है, तात्विक रूप से प्रभाव पड़ा है; अथवा

(ग) किसी अभ्यर्थी का नामनिर्देशन गलत रूप से अस्वीकार किया गया है या निर्वाचित अभ्यर्थी का नामनिर्देशन गलत रूप से स्वीकार किया गया है।[23]

राष्ट्रपति के रूप में किसी व्यक्ति के निर्वाचन को उसे निर्वाचित करने वाले निर्वाचकगण के सदस्यों में किसी भी कारण से विद्यमान किसी रिक्ति के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।[24]

यदि किसी व्यक्ति ने, जिसने निर्वाचन अर्जी पेश की है निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को प्रश्नगत करने के अतिरिक्त इस घोषणा के लिए दावा किया है कि वह स्वयं या कोई अन्य अभ्यर्थी सम्यक् रूप से निर्वाचित हुआ है और उच्चतम न्यायालय की यह राय है कि वास्तव में अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी ने विधिमान्य मतों में से बहुसंख्यक मत प्राप्त किए हैं तो उच्चतम न्यायालय निर्वाचित अभ्यर्थी का निर्वाचन शून्य घोषित करने के पश्चात्, यथास्थिति, अर्जीदार या ऐसे अन्य अभ्यर्थी को सम्यक्, रूप से निर्वाचित घोषित करेगा। परन्तु यदि यह साबित हो जाता है कि ऐसे अभ्यर्थी का निर्वाचन उस दशा में शून्य होता जिसमें वह निर्वाचित अभ्यर्थी रहता और उसके निर्वाचन को प्रश्नगत करने वाली अर्जी पेश की गई होती तो ऐसे अर्जीदार या अन्य अभ्यर्थी को सम्यक् रूप से निर्वाचित घोषित नहीं किया जाएगा।[25]

---

23. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1977 में यथासंशोधित), धारा 18 ।

24. अनुच्छेद 71, 15 मार्च, 1974 को राज्यपाल द्वारा गुजरात विधान सभा को विघटित कर दिया गया था। इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या उक्त विधान सभा के न होने की स्थिति में राष्ट्रपति पद के निर्वाचन वैध रूप से हो सकते हैं या नहीं। राष्ट्रपतीय उल्लेख में, उच्चतम न्यायालय का यह विचार था कि राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पहले राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन अवश्य कराए जाएं, इस तथ्य के बावजूद कि ऐसे निर्वाचन के समय राज्य की विधान सभा भंग थी (ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 1682) ।

25. राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952 (1977 में यथासंशोधित), धारा 19 ।

प्रधान मंत्री द्वारा सभी निर्वाचकों को लिखा गया पत्र, कि वे राष्ट्रपति के पद के लिए उनके दल के अभ्यर्थी को मत दें और इसी प्रकार मुख्य सचेतक द्वारा संसद में उसके दल के सभी सदस्यों को लिखे गए पत्र में कि वे दिल्ली आएं और राष्ट्रपतीय और उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन के लिए उनसे संपर्क करें, को असम्यक् असर नहीं माना गया था। इसके साथ ही, यह कहा गया कि यदि चुनाव अभियान के दौरान दल के सदस्यों से यह कहा जाता है कि वे केवल अपनी प्रथम वरीयता पर ही चिह्न लगाएं और अन्य किसी वरीयता पर चिह्न न लगाएं क्योंकि इस प्रणाली में मतदान एकल संक्रमणीय मतदान द्वारा होता है, अनुचित नहीं है, क्योंकि ऐसा अनुरोध अथवा परामर्श निर्वाचन के अधिकार के स्वतंत्र प्रयोग को प्रभावित नहीं करता और निर्वाचक इस परामर्श के बावजूद भी अपनी इच्छानुसार मतदान करने के लिए स्वतंत्र होगा।[26]

इसके बावजूद भी वर्ष 1969 में निर्वाचन के अवसर पर, जब श्री एन. संजीव रेड्डी और श्री वी.वी. गिरि उम्मीदवार थे, प्रधान मंत्री ने मतदाताओं को पत्र लिखने से इंकार कर दिया था।

पदावधि

राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करता/करती है।[27] राष्ट्रपति अपने पद की अवधि समाप्त होने से पहले उपराष्ट्रपति को सम्बोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पदत्याग कर सकता/सकती है। ऐसे त्यागपत्र की सूचना उन्हें तुरन्त लोक सभा के अध्यक्ष को देनी होती है। राष्ट्रपति को उसकी पदावधि समाप्त होने से पहले भी महाभियोग द्वारा पद से हटाया जा सकता है।[28]

उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा/सकेगी, और वह राज्य सभा के ऐसे संकल्प द्वारा अपने पद से हटाया जा सकेगा/हटाई जा सकेगी जिसे राज्य सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों ने बहुमत से पारित किया है और जिससे लोक सभा सहमत है।[29]

राष्ट्रपति, डा. जाकिर हुसैन के निधन के समय उपराष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया। श्री वी.वी. गिरि ने उपराष्ट्रपति के पद से त्यागपत्र दिया और त्यागपत्र राष्ट्रपति को संबोधित था। महान्यायवादी के परामर्श से गिरि ने अपने हस्ताक्षर के पश्चात् जिस पद पर वह थे उसका उल्लेख नहीं किया और उन्होंने राष्ट्रपति सचिवालय को

---

26. *बाबूराव पटेल बनाम डा. जाकिर हुसैन,* ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 904 ।

27. अनुच्छेद 56 और 67—राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने पर भी तब तक पद धारण करता है जब तक उसका उत्तराधिकारी पद ग्रहण नहीं कर लेता।

28. अनुच्छेद 56 का परन्तुक—राष्ट्रपति पर महाभियोग संबंधी प्रक्रिया के लिए *देखिए* अध्याय 3—'राष्ट्रपति का संसद से संबंध'।

29. अनुच्छेद 67, परन्तुक (क) और (ख)।

वह त्यागपत्र भेजा। त्यागपत्र की प्रतियां प्रधान मंत्री और मुख्य न्यायाधीश को भी जानकारी के लिए भेजी गई थीं। पत्र को उस दिन के राजपत्र में भी अधिसूचित किया गया था।[30]

यह कहा गया था कि उपराष्ट्रपति के मामले में त्यागपत्र पद छोड़ने की एक प्रक्रिया थी, कि राष्ट्रपति का पद तब भी बना रहता है जब उस पद के लिए निर्वाचित व्यक्ति उस पद पर न हो, कि संविधान के अनुसार इसे प्रभावी बनाने के लिए त्यागपत्र स्वीकार करना आवश्यक नहीं है, और कि विधि में यह उपबन्ध किया गया है कि उपराष्ट्रपति उस समय भी त्यागपत्र दे सकता है जब कोई राष्ट्रपति न हो।[31]

पुनर्निर्वाचन के लिए पात्रता

संविधान में इस बात की कोई कानूनी सीमा निर्धारित नहीं की गयी है कि कोई व्यक्ति लगातार या अन्यथा कितनी बार राष्ट्रपति निर्वाचित किया जा सकता है।[32]

पद की शपथ

अपना पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष अथवा राष्ट्रपति भवन में भारत के मुख्य न्यायाधीश या उसकी अनुपस्थिति में, उच्चतम न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश द्वारा, जो उस समय उपलब्ध हो, पद की शपथ दिलाई जाती है।[33] राष्ट्रपति या शपथ लेता/लेती या प्रतिज्ञान करता/करती है और उस पर हस्ताक्षर करता/करती है कि वह राष्ट्रपति पद का कार्य पालन "श्रद्धापूर्वक" करेगा/करेगी और अपनी पूरी योग्यता से "संविधान का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण" करेगा/करेगी।[34] उपराष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष यह शपथ लेता/लेती

---

30. राजपत्र असाधारण (ii-3) 20.7.1969 ।

31. 31 जुलाई, 1969 को नियम 377 के अधीन एक सदस्य द्वारा उठाए गए मामले के संबंध में 1 अगस्त, 1969 को सभा पटल पर रखा गया विवरण।

32. प्रारूप संविधान के अनुच्छेद 46 में यह व्यवस्था की गयी थी कि राष्ट्रपति केवल एक ही बार पुन: निर्वाचित हो सकता/सकती है। संविधान सभा ने 13 दिसम्बर, 1948 को बिना किसी टिप्पणी के इस उपबन्ध का निरसन कर दिया। 1957 में लोक सभा में एक गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर चर्चा की गई जिसका उद्देश्य संविधान में इस आशय का संशोधन करना था कि राष्ट्रपति अधिक से अधिक दो कार्यकाल तक पद धारण कर सके। इस पर विधि मंत्री द्वारा ऐसे मामले में परम्परा स्थापित किए जाने के पक्ष में विचार व्यक्त किए जाने के बाद विधेयक वापस ले लिया गया—*देखिए लो.स.वा.वि,* 6.9.1957, पृ. 5609-23 ।

33. डा. फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह को क्रमश: 24 अगस्त, 1974 तथा 25 जुलाई, 1982 को राष्ट्रपति भवन के दरबार हाल में राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई गई। 2007 में राष्ट्रपति-निर्वाचन की विजेता श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल को 25 जुलाई, 2007 को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई गई।

34. *देखिए* अनुच्छेद 60 ।

या प्रतिज्ञान करता/करती है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता/करती है कि वह "संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखेगा/रखेगी" और अपने कर्त्तव्यों का "श्रद्धापूर्वक" निर्वहन करेगा/करेगी।[35]

राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए पात्र होने के लिए अभ्यर्थी को संसद के चुनाव में खड़े होने वाले अभ्यर्थी की तरह शपथ या प्रतिज्ञान नहीं करना पड़ता है।[36]

लोक सभा के सदस्यों का निर्वाचन

लोक सभा की अवधि के अवसान पर या उसके विघटन के बाद नई लोक सभा के गठन के लिए साधारण निर्वाचन कराया जाता है।[37]

लोक सभा के लिए निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होते हैं अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नागरिक है और जो ऐसी तारीख को, जो समुचित विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस निमित्त नियत की जाए, कम से कम 18 वर्ष की आयु का है और इस संविधान या समुचित विधानमंडल द्वारा बनाई गयी किसी विधि के अधीन, अनिवास, चित्त विकृति, अपराध या भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर, अन्यथा निरर्हित नहीं कर दिया जाता है, ऐसे किसी निर्वाचन में मतदाता के रूप में दर्ज होने का हकदार होगा।[38] किसी निर्वाचन क्षेत्र में सामान्यत: निवास करने वाले व्यक्ति का नाम मतदान से पूर्व उस निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में शामिल होना चाहिए।

संसद समय-समय पर, विधि द्वारा लोक सभा के लिए निर्वाचनों से सम्बंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में, जिनके अंतर्गत निर्वाचक नामावली तैयार कराना, निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन और लोक सभा का सम्यक् गठन सुनिश्चित करने के लिए अन्य सभी आवश्यक विषय हैं, उपबंध करती है।[39]

---

35. अनुच्छेद 69 ।
36. *बाबूराव पटेल बनाम डॉ. जाकिर हुसैन,* ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 904 ।
37. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 14 ।
38. अनुच्छेद 326 । लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 16 भी *देखिए* ।

    संविधान (बासठवां संशोधन) विधेयक, 1988, जिसमें मताधिकार की आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष करने का प्रावधान था, लोक सभा द्वारा 15 दिसम्बर, 1988 और राज्य सभा द्वारा 20 दिसम्बर, 1988 को पारित किया गया। राज्यों के अनुसमर्थन के बाद यह विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति हेतु 27 मार्च, 1989 को भेजा गया। राष्ट्रपति द्वारा इसे 28 मार्च, 1989 को अनुमति प्रदान की गई और यह संविधान (इकसठवां संशोधन) अधिनियम, 1988 बन गया।
39. अनुच्छेद 327 ।

    इस अनुच्छेद के अंतर्गत निम्नलिखित अधिनियम अधिनियमित किए गए हैं:

    लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950

    लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951

परिसीमन अधिनियम, 2002 (2002 का 33वां) के अधीन एक नया परिसीमन आयोग गठित किया गया और परिसीमन अधिनियम, 1972 को निरसित कर दिया गया। वर्ष 2001 की जनगणना संबंधी आंकड़ों के आधार पर परिसीमन आयोग द्वारा जारी की गई अधिसूचनाओं के अनुरूप राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में तैयार किए गये नए संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों के अनुसार पन्द्रहवीं लोक सभा के गठन के लिए साधारण निर्वाचन कराए गये।

लोक सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पहले राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग से परामर्श करने के पश्चात् उतने प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति कर सकता है जितने वह निर्वाचन आयोग की, उसे प्रदत्त कृत्यों के पालन में, सहायता के लिए आवश्यक समझे।[40]

प्रत्येक राज्य में एक मुख्य निर्वाचन अधिकारी होता है जो निर्वाचन आयोग के अधीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण के अधीन रहते हुए, राज्य की सभी निर्वाचक नामावलियों को तैयार करने, पुनरीक्षण तथा उन्हें शुद्ध करने के कार्य का अधीक्षण करता है।[41]

जम्मू-कश्मीर राज्य में अथवा संघ राज्यक्षेत्र में जहां पर विधान सभा नहीं है, प्रत्येक संसदीय निर्वाचन क्षेत्र, प्रत्येक विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र और प्रत्येक विधान परिषद निर्वाचन क्षेत्र की निर्वाचक नामावली एक निर्वाचन पंजीयन अधिकारी द्वारा तैयार तथा पुनरीक्षित की जाती है।[42]

जम्मू-कश्मीर राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र जहां पर विधान सभा नहीं है, के संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से भिन्न हर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्वाचक नामावली उतने विधान

परिसीमन आयोग अधिनियम, 1952

लोक प्रतिनिधित्व (प्रकीर्ण उपबंध) अधिनियम, 1956

संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959

परिसीमन अधिनियम, 1972 अब परिसीमन अधिनियम, 2002 द्वारा प्रतिस्थापित।

संगत अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अंतर्गत निम्नलिखित नियम भी विरचित किए गए हैं:

(*i*) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण नियम, 1960 (लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 28 के अनुसरण में विरचित)।

(*ii*) निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 (लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 169 के अनुसरण में विरचित)।

निर्वाचन विधि (सिक्किम पर विस्तारण) अधिनियम, 1976 । संगत अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अंतर्गत निम्नलिखित नियम भी बनाये गए हैं:

(क) निर्वाचक रजिस्ट्रीकरण नियम, 1960 का सिक्किम राज्य को लागू होना।

(ख) संसदीय निर्वाचनों का संचालन (सिक्किम) नियम, 1977 ।

(ग) विधान सभा निर्वाचनों का संचालन (सिक्किम) नियम, 1979 ।

40. अनुच्छेद 324(4) ।

41. लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 13क ।

42. *पूर्वोक्त,* धारा 13ख ।

सभा निर्वाचन क्षेत्रों की निर्वाचक नामावलियों से मिलकर गठित होगी जितने उस संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में समाविष्ट हैं।[43] हर विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 के उपबंधों के अनुसार, निर्वाचन आयोग के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के अधीन एक निर्वाचक नामावली भी तैयार की जाती है।[44]

कोई व्यक्ति लोक सभा के किसी स्थान को भरने के लिए चुने जाने के लिए अर्हित तभी होगा यदि वह:

(क) भारत का/की नागरिक है और निर्वाचन आयोग द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्ररूप के अनुसार शपथ लेता/लेती है या प्रतिज्ञान करता/करती है; और उस पर अपने हस्ताक्षर करता/करती है;

(ख) कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का/की है; और

(ग) उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं हैं जो संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस निमित्त विहित की जाएं।[45]

अनुसूचित जातियों के लिए किसी राज्य में आरक्षित स्थान की दशा में, लोक सभा के लिए निर्वाचन के लिए किसी अभ्यर्थी के लिए यह जरूरी है कि वह किसी अनुसूचित जाति का/की सदस्य हो, वह चाहे उस राज्य का/की हो या कि किसी और राज्य का/की और उसका किसी भी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता होना जरूरी है।[46] किसी भी राज्य में (असम के स्वायत्तशासी जिलों के अलावा) अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किसी स्थान की दशा में लोक सभा के लिए निर्वाचन के लिए किसी अभ्यर्थी के लिए यह जरूरी है कि वह किसी अनुसूचित जनजाति का/की सदस्य हो, चाहे वह जनजाति उस राज्य की हो या किसी अन्य राज्य की (असम के जनजातीय क्षेत्रों को छोड़कर) और उसका किसी भी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता होना जरूरी है।[47]

असम के स्वायत्तशासी जिलों में अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किसी स्थान के मामले में अभ्यर्थी के लिए यह जरूरी है कि वह उनमें से किसी जनजाति का/की सदस्य हो और उस संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता हो जिसमें ऐसा स्थान आरक्षित है या ऐसे किसी स्वायत्तशासी जिले वाले अन्य संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता हो।[48]

---

43. *लो. प्र. अधिनियम 1950,* धारा 13घ।

44. *पूर्वोक्त,* धारा 15 ।

45. अनुच्छेद 84, संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 द्वारा यथासंशोधित। शपथ के प्ररूप के लिए *देखिए* तीसरी अनुसूची यथासंशोधित।

46. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 4 ।

47. *पूर्वोक्त* ।

48. *पूर्वोक्त* ।

संघ राज्यक्षेत्र लक्षद्वीप में अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किसी स्थान के मामले में अभ्यर्थी के लिए यह जरूरी है कि वह उनमें से किसी अनुसूचित जनजाति का/की सदस्य हो और उस संघ राज्यक्षेत्र के संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता हो।[49]

सिक्किम राज्य को आबंटित स्थान के मामले में अभ्यर्थी के लिए यह जरूरी है कि वह सिक्किम संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता हो।[50]

किसी अन्य स्थान के मामले में अभ्यर्थी के लिए यह जरूरी है कि वह किसी भी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता हो।[51]

सदस्यता के लिए निरर्हताएं

कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा[52];

(क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है[53];

(ख) यदि वह विकृतचित्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है;

(ग) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया है;

(घ) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषक्ति को अभिस्वीकार किए हुए है;

(ङ) यदि वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा अथवा उसके द्वारा बनाई गई किसी विधि के अतंर्गत निरर्हित कर दिया जाता है; और

---

49. लो. प्र. अधिनियम 1950 ।

50. *पूर्वोक्त,* निर्वाचन विधि (सिक्किम पर विस्तारण) अधिनियम, 1976 द्वारा यथासंशोधित।

51. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 4 ।

52. *अनुच्छेद* 102 ।

53. कोई व्यक्ति केवल इस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है—अनुच्छेद 102(2)। भारत के राष्ट्रपति द्वारा के. मोहनरंगम को नई दिल्ली में तमिलनाडु सरकार के विशेष प्रतिनिधि के पद को धारण करने के कारण अनुच्छेद 102(1) (क) के तहत राज्य सभा सदस्य होने के लिए निरर्हित घोषित किया गया था—अधिसूचना एस.ओ. संख्या 654 (ई) दिनांक 8.9.1982; विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय (विधायी विभाग) तथा राज्य सभा समाचार-भाग 2, 29.9.1982, पैरा 27400 । अध्याय छह—'लाभ का पद' भी देखें, उपरि।

(च) कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा यदि वह संविधान की दसवीं अनुसूची के अधीन इस प्रकार निरर्हित हो जाता है।[54]

उपरोक्त संवैधानिक अपेक्षाओं के अलावा, निर्वाचन विधि में कुछ और निरर्हताएं निर्धारित की गई हैं।[55] मोटे तौर पर ये निम्नलिखित हैं:

(i) निर्वाचन विधि के संगत उपबन्धों के अंतर्गत किसी आदेश द्वारा कतिपय अपराधों के लिए सिद्धदोष ठहराये गये अथवा भ्रष्ट आचरण का दोषी पाए गए किसी व्यक्ति को राष्ट्रपति, यदि वह ऐसा निश्चय करता/करती है, अपने द्वारा निर्धारित अवधि, परन्तु जो ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से अथवा आदेश प्रभावी होने की तारीख से छह वर्षों से अधिक न हो, के लिए निरर्हित करता/करती है।[56]

(ii) निर्वाचन व्ययों का लेखा यथापेक्षित समय के भीतर और रीति से दाखिल करने में असफल रहने तथा उस असफलता के लिए कोई उपयुक्त या न्यायोचित कारण न बताने वाले व्यक्ति को निर्वाचन आयोग के आदेश के अंतर्गत तीन वर्ष की कालावधि के लिए निरर्हित किया जाता है।

(iii) कोई व्यक्ति जो किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है और दो वर्ष से अन्यून के कारावास से दंडादिष्ट किया गया है ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से निरर्हित किया जाता है और वह अपने छोड़े जाने से छह वर्ष की अतिरिक्त कालावधि के लिए निरर्हित बना रहेगा।

कोई व्यक्ति जो जमाखोरी या मुनाफाखोरी का निवारण करने का उपबंध करने वाली किसी विधि या खाद्य या औषधि के अपमिश्रण से संबंधित किसी विधि या दहेज प्रतिषेध, अधिनियम, 1961 के किन्हीं उपबंधों या सती (निवारण) अधिनियम, 1987 के किन्हीं उपबंधों के उल्लघंन के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है और छह मास से अन्यून के कारावास से दंडादिष्ट किया गया है वह ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से निरर्हित हो जाता है और वह अपने छोड़े जाने से छह वर्ष की अतिरिक्त कालावधि के लिए निरर्हित बना रहेगा।

(iv) वह व्यक्ति, जो भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी पद से भ्रष्टाचार के कारण या राज्य के प्रति अभक्ति के कारण पदच्युत किया जाता है ऐसी पदच्युति की तारीख से पांच वर्ष की कालावधि के लिए निरर्हित किया जाता है।

---

54. संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 की धारा 3 द्वारा अन्त:स्थापित (1.3.1985 से)।

55. लो.प्र. अधिनियम, 1951, भाग-दो, अध्याय 3 निर्वाचन विधि (संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा यथासंशोधित।

56. लोक सभा के लिए अमरनाथ चावला के निर्वाचन को उच्चतम न्यायालय द्वारा लो. प्र. अधिनियम, 1951 की धारा 123(6) में यथापरिभाषित भ्रष्ट आचरणों के आधार पर अपास्त किया गया था—*कंवर लाल गुप्ता बनाम अमरनाथ चावला एवं अन्य* । 1972 की सिविल अपील संख्या 1549 तथा लोक सभा समाचार-भाग 2, 16.10.1974, पैरा 1981 ।

(v) अपने व्यापार अथवा कारोबार के अनुक्रम में संघ सरकार को माल का प्रदाय करने या संघ सरकार द्वारा शुरू किए गए किसी कार्य के निष्पादन के लिए संघ सरकार के साथ संविदा पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति को तब तक निरर्हित किया जाता है जब तक ऐसी संविदा विद्यमान है।

(vi) किसी ऐसी कंपनी या निगम (सहकारी सोसाइटी से भिन्न) का, जिसकी पूंजी में संघ सरकार के 25 प्रतिशत से अन्यून अंश हैं, प्रबंध अभिकर्ता, प्रबंधक या सचिव का पद धारण करने वाला व्यक्ति जब तक वह पद धारण किए हुए है, निरर्हित कर दिया जाता है।

यदि यह प्रश्न उठता है कि संसद के किसी सदन का कोई सदस्य संविधान में विनिर्दिष्ट किसी निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं तथा यह भी प्रश्न उठता है कि संसद के किसी भी सदन के निर्वाचन में संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के अंतर्गत भ्रष्ट आचरण के दोषी पाए गए व्यक्ति को संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने अथवा बनने के लिए निरर्हित किया जाना है अथवा नहीं, जिसमें निरर्हता की अवधि अथवा ऐसी निरर्हता की अवधि को हटाने अथवा कम करने का प्रश्न भी शामिल है, तो वह प्रश्न राष्ट्रपति को विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाता है और उसका विनिश्चय इस मामले में अंतिम होता है। फिर भी, ऐसे प्रश्न पर विनिश्चय करने से पहले, राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग की राय लेनी होती है जो, इस प्रयोजनार्थ, ऐसी जांच कर सकता/सकती है जैसी वह उचित समझे।[57]

> यदि अनुच्छेद 103 के अंतर्गत यह प्रश्न उठता है कि कोई सदस्य ठीक तरह से निरर्हता से ग्रस्त हो गया है अथवा नहीं तथा यदि किसी व्यक्ति के अभ्यावेदन पर इस प्रश्न को राष्ट्रपति द्वारा निर्वाचन आयोग की राय के लिए भेजा जाता है तो यह तथ्य कि प्रश्न उठाने वाला और राष्ट्रपति को अभ्यावेदन करने वाला व्यक्ति मामले में आगे नहीं बढ़ना चाहता है एवं अपनी याचिका को वापस लेने की अनुमति मांगता है, तो निर्वाचन आयोग के लिए उक्त संदर्भ पर अपना मत देने से प्रतिविरत रहने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।[58]

दल परिवर्तन के आधार पर सदस्यता के लिए निरर्हता[59]

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985, जो 1 मार्च, 1985 से प्रभावी हुआ, ने संसद और राज्य विधान मंडल के स्थानों के रिक्त होने एवं उनकी सदस्यता के लिए निरर्हता के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 101, 102, 190 और 191 में संशोधन किया तथा संविधान में नयी अनुसूची (दसवीं अनुसूची) जोड़ी गई जिसमें दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के कतिपय उपबंध निर्धारित किए गए। दसवीं अनुसूची में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध

---

57. अनुच्छेद 103, संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा यथासंशोधित।

58. *महाराजा आनन्द चन्द, के.वी.के. सुन्दरम के मामले* में, 5 निर्वाचन विधि प्रतिवेदन 197 ।

59. साथ ही *देखिए* आगे अध्याय 43।

भी है कि कोई सदस्य सदन का सदस्य होने के लिए उस दशा में निरर्हित किया जाता है:

(i) यदि वह ऐसे राजनीतिक दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है;[60] अथवा

(ii) यदि वह ऐसे राजनीतिक दल जिसका वह सदस्य है अथवा उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा दिए गए किसी निदेश के विरुद्ध, ऐसे राजनीतिक दल, व्यक्ति या प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के बिना, ऐसे सदन में मतदान करता है या मतदान करने से विरत रहता है और ऐसे मतदान या मतदान करने से विरत रहने को ऐसे राजनीतिक दल, व्यक्ति या प्राधिकारी ने ऐसे मतदान करने से विरत रहने की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर माफ नहीं किया है;[61] अथवा

(iii) यदि सदन का कोई निर्वाचित सदस्य, जो किसी राजनीतिक दल द्वारा खड़े किए गए अभ्यर्थी से भिन्न रूप में सदस्य निर्वाचित हुआ है, ऐसे निर्वाचन के पश्चात् किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है;[62] अथवा

(iv) यदि सदन का कोई नामनिर्देशित सदस्य, यथास्थिति अनुच्छेद 99 या अनुच्छेद 188 की अपेक्षाओं का अनुपालन करने के पश्चात् अपना स्थान ग्रहण करने की तारीख से छह मास की समाप्ति के पश्चात् किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है।[63]

दसवीं अनुसूची यथाअधिनियमित में राजनीतिक दलों में विभाजन के संबंध में एक उपबंध अंतर्विष्ट था और या इसमें यह उपबंधित था कि जहाँ सदन का कोई सदस्य यह दावा करता है कि वह और उसके विधान दल के कोई अन्य सदस्य ऐसे गुट का प्रतिनिधित्व करने वाला समूह गठित करते हैं जो उसके मूल राजनीतिक दल के विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है और ऐसे समूह में ऐसे विधान दल के कम से कम एक-तिहाई सदस्य हैं, वह निरर्हित नहीं होता।[64] इस उपबंध का बाद में एक संविधान संशोधन अधिनियम[65] के द्वारा लोप कर दिया गया। सदन का कोई सदस्य उस स्थिति में भी निरर्हित नहीं होता है यदि उसके मूल राजनीतिक दल का किसी अन्य राजनीतिक दल में विलय हो जाता है और वह यह दावा करता है कि वह और उसके मूल राजनीतिक दल के अन्य सदस्य, यथास्थिति, ऐसे अन्य राजनीतिक दल के या ऐसे विलय से बने नए राजनीतिक दल के सदस्य बन गए हैं और जिसके लिए संबंधित विधान दल के कम से कम दो-तिहाई सदस्य सहमत हो गए है।[66]

---

60. *दसवीं* अनुसूची, पैरा 2(1) (क)।
61. *पूर्वोक्त*, पैरा 2(1) (ख)।
62. *पूर्वोक्त*, पैरा 2(2) ।
63. *पूर्वोक्त*, पैरा 2(3) ।
64. *पूर्वोक्त*, पैरा 3 ।
65. शब्द और आंकड़े "पैराग्राफ 3 अथवा जैसी स्थिति हो," का संविधान (91वां) संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा लोप किया गया। एस.एस. (1.1.2004 से लागू)।
66. *दसवीं* अनुसूची, पैरा 4 ।

जो व्यक्ति लोक सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा राज्य सभा के उप-सभापति अथवा किसी राज्य की विधान परिषद के सभापति या उप-सभापति अथवा किसी राज्य की विधान सभा के अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुआ है, निरर्हित नहीं होता है, यदि वह, ऐसे पद पर अपने निर्वाचन के कारण, ऐसे राजनीतिक दल की जिसका वह ऐसे निर्वाचन से ठीक पहले सदस्य था, अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है और उसके पश्चात् जब तक वह पद धारण किए रहता है तब तक, उस राजनीतिक दल में पुनः सम्मिलित नहीं होता है या किसी दूसरे राजनीतिक दल का सदस्य नहीं बनता है, या यदि वह, ऐसे पद पर अपने निर्वाचन के कारण, ऐसे राजनीतिक दल की, जिसका वह ऐसे निर्वाचन से ठीक पहले सदस्य था, अपनी सदस्यता छोड़ देता है और ऐसे पद पर न रह जाने के पश्चात् ऐसे राजनीतिक दल में पुनः सम्मिलित हो जाता है।[67]

> यदि यह प्रश्न उठता है कि सदन का कोई सदस्य निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं तो वह प्रश्न, ऐसे सदन के, यथास्थिति, सभापति या अध्यक्ष के विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा। जहां यह प्रश्न उठता है कि सदन का सभापति या अध्यक्ष निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं, वहां वह प्रश्न सदन के ऐसे सदस्य के विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा जिसे वह सदन इस निमित्त निर्वाचित करे और उसका विनिश्चय अंतिम होगा[68] दसवीं अनुसूची के अंतर्गत न्यायालयों द्वारा सदन के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग किया जाना वर्जित है।[69]

दसवीं अनुसूची के पैरा 8(1) के अंतर्गत अध्यक्ष द्वारा विरचित लोक सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985[70] में यह उपबंध है कि निरर्हता के किसी प्रश्न का निर्धारण करने के लिए प्रत्येक विधान दल के नेता—ऐसे विधान दल से भिन्न जिसमें केवल एक ही सदस्य हो—को ऐसे विधान दल के सदस्यों के नाम तथा अन्य अपेक्षित विवरण निर्धारित अवधि के भीतर देना पड़ता है। सदन के प्रत्येक सदस्य को भी निर्धारित प्रपत्र में अपेक्षित विवरण अध्यक्ष को देना पड़ता है।[71] सदस्यों द्वारा दी गई जानकारी का सार लोक सभा के समाचार भाग-2 में प्रकाशित किया जाना अपेक्षित है और यदि अध्यक्ष के समाधानप्रद रूप में उसमें कोई विसंगति बताई जाती है तो समाचार[72] में आवश्यक शुद्धि-पत्र जारी किया जाता है।

कोई सदस्य दसवीं अनुसूची के अधीन निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं, इस प्रश्न का निर्देश उस सदस्य के संबंध में दी गई याचिका द्वारा किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

---

67. *पूर्वोक्त*, पैरा 5 ।
68. दसवीं अनुसूची, पैरा 6(1) ।
69. *पूर्वोक्त*, पैरा 7 ।
70. 18.3.1986 से प्रभावी ।
71. लोक सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985, नियम 63 ।
72. *पूर्वोक्त*, नियम 4 (3)।

ऐसी प्रत्येक याचिका को अभिवचनों के सत्यापन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में अधिकथित रीति से सत्यापित किया जाना अपेक्षित होता है।[73] किसी सदस्य के संबंध में याचिका किसी अन्य सदस्य द्वारा लिखित रूप में अध्यक्ष को दी जाती है और अध्यक्ष के मामले में याचिका महासचिव को संबोधित की जाती है।[74] तथापि, उच्चतम न्यायालय ने 17 जनवरी 2013 के अपने निर्णय द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि ''न केवल सभा का कोई सदस्य बल्कि रूचि रखने वाला कोई भी व्यक्ति अध्यक्ष के संज्ञान में यह तथ्य ला सकता है कि सभा का सदस्य भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत निरर्ह हो गया है।[75]''

किसी सदस्य द्वारा निरर्हता से ग्रस्त होने का अभिकथन करते हुए दी गई याचिका और संलग्न अनुबंध उस सदस्य को भेजे जाने अपेक्षित हैं जिसके संबंध में वह याचिका दी जाती है और जहां ऐसा सदस्य किसी विधान दल का सदस्य हो तथा उस दल के नेता द्वारा ऐसी याचिका दायर नहीं की गई हो तो टिप्पणी हेतु वह याचिका दल के नेता को भी अग्रेषित की जाती है। प्राप्त टिप्पणियों पर विचार करने के पश्चात् अध्यक्ष चाहे तो स्वयं उस प्रश्न पर निर्णय ले सकता है[76] अथवा उसे प्रारम्भिक जांच हेतु और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए

---

73. एक सदस्य द्वारा दो अन्य सदस्यों के विरुद्ध दायर याचिका अध्यक्ष (श्री शिवराज वि पाटील) ने 2 दिसम्बर, 1992 को दल-परिवर्तन रोधी नियमों के नियम 7(2) के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस आधार पर रद्द कर दी कि याचिका के साथ संलग्न दस्तावेजों पर हस्ताक्षर नहीं हुए थे और उनका सत्यापन नहीं किया गया था।

74. लोक सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम 1985, नियम 6 ।

75. अध्यक्ष, उड़ीसा विधान सभा बनाम उत्कल केशरी परिदा सिविल अपील सं. 2013 की 469 ।

76. दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत निर्णय

(क) *याचिकाएं, जिन्हें स्वीकार किया गया*

(एक) 24 नवम्बर, 1988 को अध्यक्ष (डा. बलराम जाखड़) ने एक सदस्य (श्री राम प्यारे पणिका) द्वारा संसद सदस्य श्री लालदुहोमा के विरुद्ध दायर निरर्हता संबंधी एक याचिका विशेषाधिकार समिति को सौंपा। समिति ने श्री लालदुहोमा के विचार सुनने के पश्चात् अपना प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत किया और अध्यक्ष ने उन्हें लोक सभा की सदस्यता से निरर्हित घोषित कर दिया। लो. स.वा.वि., 24.11.1988।

(दो) 11 जनवरी, 1991 को अध्यक्ष (श्री रवि राय) ने जनता दल में विघटन के दावे और जनता दल के कुछ सदस्यों के विरुद्ध निरर्हता संबंधी याचिकाओं के संबंध में संविधान की दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत अपना निर्णय दिया। जनता दल के आठ सदस्यों अर्थात् सर्वश्री बसवराज पाटिल, हेमेन्द्र सिंह बनेरा, विद्याचरण शुक्ल, सरवर हुसैन, भागे गोवर्धन, देवानन्द अमात, डा. बंगाली सिंह और डॉ. शकीलुर रहमान को लोक सभा की सदस्यता से निरर्हित घोषित कर दिया गया और जनता दल में विघटन के परिणामस्वरूप गठित किए गए एक गुट जनता दल (एस) को मान्यता प्रदान की गई। लोक सभा, समाचार भाग-2, 14.1.1991, पैरा सं. 1050।

(तीन) 1 जून, 1993 को अध्यक्ष (श्री शिवराज वि. पाटील) ने जनता दल में विघटन के दावे और जनता दल के कुछ सदस्यों के विरुद्ध निरर्हता संबंधी याचिकाओं के संबंध में संविधान की दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत अपना निर्णय दिया। जनता दल के चार सदस्यों अर्थात् *सर्वश्री* राम सुन्दर दास, गोविन्द चन्द्र मुंडा, गुलाम मोहम्मद खान और रामबदन को लोक सभा की सदस्यता से निरर्हित घोषित कर दिया गया और तदनन्तर एक अलग गुट अर्थात् जनता दल (ए) अस्तित्व में आया। लोक सभा, समाचार भाग-2, 1.6.1993, पैरा 2125 ।

श्री अजीत सिंह और अन्य सदस्यों द्वारा 7 अगस्त, 1992 को अध्यक्ष को दिए गए दस्तावेजों के आधार पर बनने वाले मामलों और सभी बीस सदस्यों की निरर्हता संबंधी याचिकाओं पर दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत निर्णय हेतु सुनवाई अध्यक्ष द्वारा साथ-साथ की गई और उस मामले को 'जनता दल का मामला' के रूप में जाना जाता है। उस मामले में सम्बद्ध पक्षों को मामले में स्वयं अथवा अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से अपना पक्ष रखने की अनुमति प्रदान की गई। मोटे तौर पर कार्यवाही संचालित करने में सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुपालन किया गया। कार्यवाही देखने और उसका समाचार देने के लिए प्रेस और मीडिया को अनुमति दी गई। इस मामले में अध्यक्ष द्वारा सुनवाई 19 अगस्त, 1992 को शुरू हुई और कुल इक्कीस सुनवाइयां हुईं।

प्रारम्भ में मामले में उठने वाले मुद्दे निर्धारित किए गए। पक्षों द्वारा दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य उद्धृत और प्रस्तुत किए गए। पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा विस्तृत दलीलें दी गईं। मामले की पूरी कार्यवाही को शब्दश: रिकार्ड किया गया और उसका टेपरिकार्ड तैयार किया गया। लोक सभा में राजनीतिक दलों के नेताओं को कानूनी मुद्दों पर अपने-अपने विचार रखने की अनुमति प्रदान की गई। (लोक सभा, समाचार भाग 2, 1.6.1993, पैरा सं. 2125)।

तथापि, निरर्हित सदस्यों ने अध्यक्ष के आदेश पर दिल्ली उच्च न्यायालय से स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया और तदनन्तर दसवीं लोक सभा के सदस्य बने रहे।

(चार) 9 मार्च, 2007 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री राजेश वर्मा) द्वारा मोहम्मद शाहिद अखलाक, रमाकान्त यादव और भालचन्द्र यादव के विरुद्ध निरर्हता संबंधी दी गईं तीन याचिकाएं विशेषाधिकार समिति को भेजीं।

समिति ने अपना प्रतिवेदन अध्यक्ष को 12 नवम्बर, 2007 को प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता (श्री राजेश वर्मा) और तीनों प्रतिवादियों (मोहम्मद शाहिद अखलाक, रमाकान्त यादव, भालचन्द्र यादव) की 10-13 दिसम्बर, 2007 तक सुनवाई करने के पश्चात् उन्होंने 27 जनवरी, 2008 के अपने तीन अलग-अलग निर्णयों द्वारा उन्हें लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह घोषित कर दिया। लोक सभा समाचार भाग-2, दिनांक 28.01.2008, पैरा सं. 4424-26 ।

(पांच) 9 मार्च, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री अवतार सिंह भडाना) द्वारा एक अन्य सदस्य (श्री कुलदीप बिश्नोई) के विरुद्ध निरर्हता संबंधी याचिका विशेषाधिकार समिति को भेजी। समिति द्वारा 20 अगस्त, 2008 को अध्यक्ष को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् अध्यक्ष ने 2 सितम्बर, 2008 को इस मामले पर स्वयं सुनवाई की। सुनवाई के दौरान श्री अवतार सिंह भडाना उपस्थित हुए परन्तु श्री कुलदीप बिश्नोई उपस्थित नहीं हुए। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने दिनांक 10 सितम्बर, 2008 के आदेश द्वारा प्रतिवादी (बिश्नोई) को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 12.9.2008, पैरा सं. 6010 ।

(छह) 9 और 20 जुलाई, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (प्रो. रामगोपाल यादव) द्वारा एक अन्य सदस्य (श्री जय प्रकाश) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में स्वयं सुनवाई की। याचिकाकर्ता सुनवाई में उपस्थित हुए जबकि प्रतिवादी उपस्थित नहीं हुए। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने दिनांक 11 सितम्बर, 2008 के अपने आदेश में प्रतिवादी (श्री जय प्रकाश), को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 12.07.2008, पैरा सं. 6011 ।

(सात) 12 सितम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (प्रो. रामगोपाल यादव) द्वारा एक अन्य सदस्य (प्रो. एस.पी. सिंह बघेल) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में मामले की स्वयं सुनवाई की। याचिकाकर्ता (प्रो. रामगोपाल यादव) सुनवाई में उपस्थित हुए जबकि प्रतिवादी (प्रो. एस.पी. सिंह बघेल) उपस्थित नहीं हुए। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने अपने आदेश में दिनांक 12 सितम्बर, 2008 को प्रतिवादी (प्रो. एस.पी. सिंह बघेल) को सभा की सदस्यता से निर्रह करने का निर्णय दिया। लोक सभा सामाचार भाग-2, दिनांक 15.9.2008, पैरा सं. 6014 ।

(आठ) 16 और 26 सितम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री प्रभुनाथ सिंह) द्वारा एक अन्य सदस्य (श्री रामस्वरूप प्रसाद) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में स्वयं सुनवाई की। याचिकाकर्ता तथा प्रतिवादी की बात सुनने के पश्चात् अध्यक्ष ने प्रतिवादी (श्री रामस्वरूप प्रसाद) को सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। *देखें* आदेश दिनांक 3 अक्तूबर, 2008 । लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 7.10.2008, पैरा सं. 6046 ।

(नौ) 25 दिसम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री संतोष गंगवार) द्वारा एक अन्य सदस्य (डा. एच.टी. संगलिअना) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में स्वयं सुनवाई की। याचिकाकर्ता तथा प्रतिवादी की बात सुनने के पश्चात् अध्यक्ष ने प्रतिवादी (डा. एच.टी. संगलिअना) को सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। *देखें* आदेश दिनांक 3 अक्तूबर, 2008 । लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 7.10.2008, पैरा सं. 6047 ।

(दस) 24 सितम्बर, 18 अक्तूबर और 20 नवम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री संतोष गंगवार) द्वारा एक अन्य सदस्य (श्री चन्द्रभान सिंह) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में स्वयं सुनवाई की। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने प्रतिवादी (श्री चन्द्रभान सिंह) को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। *देखें* आदेश दिनांक 5 दिसम्बर, 2008 । लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 8.12.2008, पैरा सं. 6285 ।

(ग्यारह) 26 सितम्बर, 17 अक्तूबर और 31 अक्तूबर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री भर्तृहरि महताब) द्वारा एक अन्य सदस्य (श्री हरिहर स्वाईं) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में स्वयं सुनवाई की। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने प्रतिवादी (श्री हरिहर स्वाईं) को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। *देखें* आदेश दिनांक 10 दिसम्बर, 2008 । लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 10.12.2008, पैरा सं. 6307।

(बारह) 19 सितम्बर, 23 अक्तूबर और 2 दिसम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री किन्जरपु येरननायडु), द्वारा एक अन्य सदस्य (डा. एम. जगन्नाथ) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में स्वयं सुनवाई की। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने प्रतिवादी (डा. एम. जगन्नाथ) को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। *देखें* आदेश दिनांक 15 सितम्बर, 2008 । लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 16.12.2008, पैरा सं. 6342।

(तेरह) 12 सितम्बर और 26 सितम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री प्रभुनाथ सिंह) द्वारा एक अन्य सदस्य (डा. पी.पी. कोया) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में दोनों पक्षों को स्वयं सुना। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने याचिका 1 अक्तूबर, 2008 को विशेषाधिकार समिति, लोक सभा को प्रारंभिक जांच करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए भेजा। विशेषाधिकार समिति, लोक सभा ने 15 दिसम्बर, 2008 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने 22 दिसम्बर, 2008 और 6 जनवरी, 2009 को इस मामले पर 2 बार और सुनवाई की। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने प्रतिवादी (डॉ. पी.पी. कोया) को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। *देखें* आदेश दिनांक 9 जनवरी, 2009 । लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 12.1.2009, पैरा सं. 6427 ।

(चौदह) 17 अप्रैल और 24 अप्रैल, 2009 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने एक सदस्य (श्री बसुदेव आचार्य) द्वारा एक अन्य सदस्य (श्री अबु अयीश मंडल) के विरुद्ध दी गई याचिका के संबंध में दोनों पक्षों को स्वयं सुना। तत्पश्चात्, अध्यक्ष ने प्रतिवादी (श्री अबु अयीश मंडल) को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह करने का निर्णय दिया। *देखें* आदेश दिनांक 27 अप्रैल, 2009 । लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 28.4.2009, पैरा सं 6681 ।

(ख) *याचिकाएं जिन्हें अस्वीकार किया गया*

(एक) 9 सितम्बर, 1987 को अध्यक्ष (डॉ. बलराम जाखड़) ने एक सदस्य द्वारा दो अन्य सदस्यों के विरुद्ध दायर की गई एक याचिका को रद्द करते हुए अपना निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, 10.9.1987, पैरा सं. 1857 ।

(दो) 3 जनवरी, 1996 को अध्यक्ष (श्री शिवराज वि. पाटील) ने जनता दल (ए) के सात सदस्यों के विरुद्ध दायर याचिकाओं को रद्द करते हुए अपना निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, 22.1.1996, पैरा 4497 ।

(तीन) 6 जनवरी, 2002 को अध्यक्ष (श्री जी.एम.सी. बालयोगी) ने डा. रघुवंश प्रसाद सिंह, संसद सदस्य और लोक सभा में राष्ट्रीय जनता दल के नेता द्वारा दल के दो सदस्यों नामत: मोहम्मद अनवरुल हक और श्री सुकदेव पासवान, के विरुद्ध दी गई याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2 28.2.2002, पैरा 2697 ।

(चार) 23 अक्तूबर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने श्री बी. विनोद कुमार, संसद सदस्य और लोक सभा में तेलंगाना राष्ट्र समिति के मुख्य सचेतक द्वारा श्री ए. नरेन्द्र, तेलंगाना राष्ट्र समिति के संसद सदस्य के विरुद्ध दी गई याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, 27.10.2008, पैरा सं. 6171 ।

विशेषाधिकार समिति को भेज सकता है।[77] इस तरह के प्रतिवेदन के प्राप्त होने के पश्चात् अध्यक्ष प्रश्न का निर्धारण करता है। किसी प्रश्न के निर्धारण हेतु अध्यक्ष द्वारा जो प्रक्रिया

(पांच) 10 दिसम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने श्री संतोष गंगवार, संसद सदस्य और लोक सभा में भारतीय जनता पार्टी के मुख्य सचेतक द्वारा श्री सोमाभाई जी. पटेल, भारतीय जनता पार्टी के संसद सदस्य के विरुद्ध दी गई याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, 11.2.2008, पैरा सं. 6315 ।

(छह) 26 दिसम्बर, 2008 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने प्रो. रामगोपाल यादव, संसद सदस्य और लोक सभा में समाजवादी पार्टी के नेता द्वारा अफ़ज़ाल अंसारी, समाजवादी पार्टी के संसद सदस्य के विरुद्ध दी गई याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, 29.12.2008, पैरा सं. 6408 ।

(सात) 21 जनवरी, 2009 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने श्री राजीव रंजन सिंह 'ललन' संसद सदस्य और लोक सभा में जनता दल (यू) के मुख्य सचेतक द्वारा कुंवर सर्व राज सिंह, संसद सदस्य, जनता दल (यू) के विरुद्ध दी गई याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 22.1.2009, पैरा सं. 6448। [याचिका की जांच के दौरान, अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने 1 अक्तूबर, 2008 को याचिका विशेषाधिकार समिति को प्रारंभिक जांच और उसके संबंध में प्रतिवेदन देने के लिए भेजी। विशेषाधिकार समिति ने अपना प्रतिवेदन 5 जनवरी, 2009 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया]।

(आठ) 12 फरवरी, 2009 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने अनंत गंगाराम गीते, संसद सदस्य और लोक सभा में शिव सेना के नेता द्वारा एडवोकेट तुकाराम गणपतराव रेंगे पाटील, शिव सेना के संसद सदस्य के विरुद्ध दी गई याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय दिया। लोक सभा, समाचार भाग-2 दिनांक 13.2.2009, पैरा सं. 6576 । [याचिका की जांच के दौरान अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने याचिका 19 नवम्बर, 2008 को प्रारंभिक जांच तथा उसके संबंध में प्रतिवेदन देने के लिए विशेषाधिकार समिति को भेजा। विशेषाधिकार समिति ने 12 फरवरी, 2009 को अपना प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत किया]।

(नौ) 5 मार्च, 2009 को अध्यक्ष (श्री सोमनाथ चटर्जी) ने प्रो. रामगोपाल यादव, संसद सदस्य और लोक सभा में समाजवादी पार्टी के नेता द्वारा श्री राजनारायण बुधौलिया, समाजवादी पार्टी के संसद सदस्य के विरुद्ध दी गई याचिका को अस्वीकार करने का निर्णय लिया। लोक सभा, समाचार भाग-2, दिनांक 6.3.2009, पैरा सं. 6643 ।

77. दृष्टांत, जिनमें संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत दायर याचिकाएं विशेषाधिकार समिति को भेजी गईं।

(एक) आठवीं लोक सभा: 16, नवम्बर 1987 (श्री हरद्वारी लाल मामला), 12 जनवरी, 1988 (श्री लदुहोमा मामला); (दो) नौवीं लोक सभा : 10 जनवरी, 1991 (श्री पी. मुत्तैह मामला); (तीन) तेरहवीं लोक सभा : 12 मई, 2003 (प्रो. आर.आर. प्रमाणिक मामला); और (चार) चौदहवीं लोक सभा : 9 अगस्त, 2007 (श्री मोहम्मद शाहिद अखलाक, श्री रमाकान्त यादव और श्री भालचन्द्र यादव मामले)। 25 जनवरी 2008 (बेनीप्रसाद वर्मा मामला; 9 मार्च।

अपनाई जाती है और विशेषाधिकार समिति द्वारा प्रारम्भिक जांच करने के उद्देश्य से जिस प्रक्रिया का पालन किया जाता है वह यथासंभव वही प्रक्रिया होती है– जो कि किसी सदस्य द्वारा सभा के विशेषाधिकार को भंग किये जाने के किसी प्रश्न का निर्धारण करने हेतु समिति द्वारा अपनाई जाती है। अध्यक्ष या विशेषाधिकार समिति इस निष्कर्ष पर कि कोई सदस्य दसवीं अनुसूची के अधीन निरर्हता से ग्रस्त हो गया है, तभी पहुंचेगी जबकि उस सदस्य को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का और व्यक्तिगत रूप से सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान कर दिया गया हो।[78]

चौहदवीं लोक सभा के दौरान, लोक सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 के नियम 7(4) के अंतर्गत जब अध्यक्ष, लोक सभा द्वारा चार मामले विशेषाधिकार समिति को सौंपे गए थे, समिति ने यह धारणा बनाई कि ऐसे मामलों में, समिति से अपेक्षा है कि वह मामले के तथ्यों पर अपना निष्कर्ष बताए। समिति का कार्य विधि के प्रश्न का विनिश्चय करना और मामले के गुण दोष का निर्णय करना और सिफारिश करना नहीं है क्योंकि यह दसवीं अनुसूची के अंतर्गत अध्यक्ष के विशेषाधिकार के अंतर्गत आता है।[79]

दसवीं अनुसूची के द्वारा सदन के सभापति या अध्यक्ष को किसी व्यक्ति द्वारा नियमों के जानबूझ कर किए गए उल्लंघन के बारे में उसी रीति से कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया है जिस रीति से सदन के विशेषाधिकार के भंग के बारे में की जाती है।[80]

पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान, ऐसे कई उदाहरण हैं जब याचिका कर्ताओं ने अपनी याचिकाएं वापस ले लीं। एक ऐसा उदाहरण है जब याचिकाकर्त्ता ने याचिका देने के बाद और इस मामले पर निजी सुनवाई किए जाने से पूर्व, याचिका वापस लेने की अनुमति हेतु अध्यक्ष से अनुरोध किया। अध्यक्ष ने अनुरोध स्वीकार कर लिया और याचिका को वापस लिया हुआ माना गया।[81] एक अन्य उदाहरण में, तीन याचिकाओं को जांच और प्रतिवेदन हेतु विशेषाधिकार समिति को सौंपे जाने के बाद वापस लिए जाने की अनुमति दी गई।[82]

2008 का (कुलदीप बिश्नोई मामला); 1 अक्तूबर 2008 (डा. पीपी कोया, हरिभाई राठौड़, एडवोकेट रेगेपाटिल तुकाराम गणपतराव, एल. गणेशन, गिनगी एन. रामचन्द्रन, डा. सी कृष्णन और एस. रविचन्द्रन के मामले); 19 नवम्बर 2008 का (राजनारायण बुधौलिया मामला) और (पाँच) 15वीं लोकसभा, 17 नवम्बर 2011 (राजीव रंजन सिंह, मंगनीलाल मंडल और सुशील कुमार सिंह मामले)।

78. *पूर्वोक्त,* नियम 7 ।

79. राजेश वर्मा, संसद सदस्य द्वारा मोहम्मद शाहिद आशिक, भालचन्द्र यादव और रमाकांत यादव के विरूद्ध तीन अलग-अलग याचिकाएं दी गई, और एक याचिका अवतार सिंह भडाना, संसद सदस्य द्वारा कुलदीप बिश्नोई के विरूद्ध दी गई।

80. दसवीं अनुसूची पैरा 8 (3)।

81. अनंत गंगाराम गीते द्वारा आनन्द प्रकाश परांजपे के विरूद्ध दायर याचिका।

82. प्रो० रंजन प्रसाद यादव द्वारा राजीव रंजन सिंह; मंगनी लाल मंडल और सुशील कुमार सिंह के विरूद्ध दायर याचिका।

संविधान की दसवीं अनुसूची–एक मूल्यांकन

दल–परिवर्तन रोधी कानून के प्रवर्तन की तीन दशक से अधिक की अवधि के दौरान इस कानून की विभिन्न खामियों और असंगतियों की न्यायिक संवीक्षा की गई। दसवीं अनुसूची के विभिन्न उपबंधों को गैर–कानूनी और असंवैधानिक मानते हुए विभिन्न उच्च न्यायालयों में चुनौती दी गई। संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत विभिन्न विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा लिए गए निर्णयों के विरुद्ध भी समय–समय पर उच्च न्यायालयों में याचिकाएं दायर की गईं। ऐसी सभी याचिकाओं को उच्चतम न्यायालय ने भारत सरकार के अनुरोध पर स्वयं के पास अंतरित कर लिया क्योंकि इनमें महत्त्वपूर्ण कानूनी और संवैधानिक व्याख्या के प्रश्न अंतर्ग्रस्त थे।

उच्चतम न्यायालय ने अंतरित याचिकाओं में से एक याचिका को स्वीकार करते हुए 11 नवम्बर, 1991 के अपने निर्णय में (अपनी बहुमत की राय में) दसवीं अनुसूची के पैरा 7 को छोड़कर अन्य सभी उपबंधों को विधिमान्य एवं संवैधानिक रूप से सही ठहराया। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि पैरा 7 संविधान के अधिकार क्षेत्र से बाहर है और यह भी कहा कि उस उपबंध को देखते हुए जो संविधान के अनुच्छेद 136, 226 तथा 227 के प्रवर्तन एवं प्रभाव में परिवर्तन लाता है, संगत विधेयक का राज्य विधानमंडलों द्वारा अनुसमर्थन कर दिया जाना चाहिए था। परन्तु, पृथक्करणीयता के सिद्धांत को लागू करते हुए, इस कानून को पैरा 7 के बिना ही वैध घोषित कर दिया गया। न्यायालय द्वारा विस्तृत निर्णय 18 फरवरी, 1992 को दिया गया।[83]

उच्चतम न्यायालय के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में, पीठासीन अधिकारियों ने विभिन्न मंचों पर इस निर्णय से उत्पन्न निहितार्थों पर विचार किया। उनमें इस बात पर आम सहमति थी कि दल–परिवर्तन रोधी कानून में संशोधन की आवश्यकता है तथा जब तक कानून में संशोधन न हो जाये तब तक उच्चतम न्यायालय के निर्णय का सम्मान किया जाना चाहिए।

केन्द्र एवं अनेक राज्यों में साझा सरकार के चलन ने दल–परिवर्तन रोधी कानून की खामियों को उजागर किया है। विभिन्न मंचों पर इस कानून की बारीकियों, विशेषकर राजनीतिक दलों के विघटन एवं विलय संबंधी बारीकियों पर, गहन विचार–विमर्श किया गया। ग्याहरवीं लोक सभा में, विशेषाधिकार समिति ने अपने अध्ययन दल द्वारा संसद सदस्यों के संसदीय विशेषाधिकारों, अधिकारों एवं दायित्वों के संबंध में किये गये अध्ययन के अनुसरण में 'आचार, सार्वजनिक जीवन में मानदंड, विशेषाधिकार, सदस्यों को सुविधाएं एवं अन्य संबंधित मामलों' के बारे में अपना एक प्रतिवेदन 27 नवम्बर, 1997 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया था। अन्य बातों के साथ–साथ, इस प्रतिवेदन में दल–परिवर्तन रोधी कानून पर भी विचार किया गया। समिति ने यह सुविचारित राय व्यक्त की कि कानून में खामी के कारण ही पीठासीन अधिकारियों ने इस कानून के विभिन्न उपबंधों की व्याख्या अलग–अलग तरीके से

83. *किहोटा होलोहन बनाम जाकिलहू* एवं अन्य ए.आई.आर. 1993, एस.सी. 412 ।

की, जिससे दल-परिवर्तन रोधी कानून की आलोचना हुई और इसकी पुनरीक्षा करने की मांग की गई। यह महसूस किया गया कि इस कानून में सर्वाधिक विवादास्पद उपबंध वे हैं जो दलों के विघटन[84] और विलय से संबंधित हैं। आलोचना का एक मुख्य मुद्दा यह रहा है कि जब कोई व्यक्ति दल परिवर्तन करता है तो उसे दंडित किया जाता है लेकिन सामूहिक दल परिवर्तन की विघटन के नाम पर अनदेखी कर दी जाती है। आलोचना के कुछ अन्य मुद्दे जिन पर गौर किया गया वे इस प्रकार हैं: (क) विभाजन के प्रभावी होने का समय; (ख) विलय को सुविधाजनक बनाने के लिए विभाजन करना; तथा (ग) कुछ विशेष परिस्थितियों के लिए उपबंधों का अभाव जैसे राजनीतिक दलों से सदस्यों का निष्कासन आदि। विशेषाधिकार समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह सिफारिश की कि वर्तमान दल-परिवर्तन रोधी कानून पर भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा गहन चर्चा की जानी चाहिए तथा सरकार को इस कानून में समुचित रूप से संशोधन करने के लिए ठोस उपाय करने चाहिए। जहां दसवीं अनुसूची से विभाजन संबंधी उपबंधों का लोप कर दिया गया है, चिंता के अन्य विषयों का समाधान किया जाना शेष है।

कुल मिलाकर, वर्तमान में सर्वमान्य राय यह है कि दल-परिवर्तन रोधी कानून में संशोधन की आवश्यकता है ताकि इसमें अस्पष्टता की कोई गुंजाइश न रहे।

उच्चतम न्यायालय ने अध्यक्ष, उड़ीसा विधानसभा बनाम उत्कल केशरी परिंदा (सिविल अपील सं 2013 की 469) मामले में 17 जनवरी 2013 को दिए गए अपने निर्णय में सदस्य के अतिरिक्त एक व्यक्ति द्वारा दायर निरर्हता संबंधी याचिका को बनाए रखने के प्रश्न पर व्यापक चर्चा की। न्यायालय का मत था कि सदस्य से इतर व्यक्ति की निरर्हता संबंधी याचिका दायर करने से विरत करने संबंधी नियमों के उपबंध के बारे में दसवीं अनुसूची में न ता विचार किया गया था न तो उपबंध किया गया था। न्यायालय के मत में विधेयक के उद्‌दश्यों और कारणों संबंधी विवरण जो अंततः संविधान (52वां संशोधन) विधेयक, 1985 बना और जिसके द्वारा दसवीं अनुसूची 1 मार्च 1985 से संविधान का अंग बनी, में अन्य बातों के साथ-साथ इस बात को इंगित किया गया है कि राजनीतिक दल परिवर्तन राष्ट्रीय चिन्ता का विषय बन गया है और यदि इस पर अंकुश नहीं लगाया गया तो यह लोकतंत्र और इसे बनाए रखने वाले आधार को ही नष्ट कर देगा। ऐसी स्थिति में, यदि दसवीं अनुसूची की व्याख्या सभा के अध्यक्ष के संज्ञान में यह बात लाने के इच्छुक किसी व्यक्ति के अधिकार कि किसी या कुछ सदस्यों ने सभा की निरर्हता या उसके पैरा 2 और 4 में इंगित कोई संभाव्यता अर्जित की थी को अपवर्जित करने के रूप में की जाती है तो यह दसवीं अनुसूची को संविधान में शामिल किए जाने के उद्‌देश्य को ही निष्प्रभावी कर देगा और संविधान के बावनवें संशोधन के आशय और उद्‌देश्य को विफल कर देगा। न्यायालय का निष्कर्ष था कि न केवल सभा का सदस्य बल्कि ऐसा करने का इच्छुक कोई भी व्यक्ति अध्यक्ष के संज्ञान में यह बात लाने का हकदार होगा कि सभा का कोई सदस्य भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत निरर्ह हो गया है।

---

84. संविधान (इक्यानवां) संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा दसवीं अनुसूची से लोप कर दिया गया।

निर्वाचन विधि

जब साधारण निर्वाचन का समय आता है तो राष्ट्रपति ऐसी तारीखों को, जिनकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाये, राजपत्र में एक या एक से अधिक अधिसूचनाओं द्वारा सभी संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों से अपेक्षा करता है कि वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के उपबंधों तथा इसके अंतर्गत बनाये गये नियमों एवं आदेशों के अनुसार लोक सभा के लिये सदस्य निर्वाचित करें। जहां विद्यमान लोक सभा के विघटन को छोड़कर अन्यथा साधारण निर्वाचन होता है तब अनुच्छेद 83(2) के अंतर्गत जिस तारीख को लोक सभा की अस्तित्वावधि का अवसान होता है, उसके पूर्व छह मास से पहले किसी भी समय ऐसी कोई भी अधिसूचना जारी नहीं की जाती है।[85]

जैसे ही अधिसूचना जारी की जाती है, निर्वाचन आयोग नामनिर्देशन पत्र दाखिल करने, उसकी संवीक्षा करने, अभ्यर्थिता वापस लेने की तारीख निश्चित करता है और यदि आवश्यक हुआ तो उस तारीख या तारीखों को निर्धारित करता है जिन पर निर्वाचन कराया जाएगा। आयोग उस तारीख का भी निर्धारण करता है जिस तारीख तक निर्वाचन की पूरी प्रक्रिया सम्पन्न की जायेगी। उसके बाद संबंधित निर्वाचन क्षेत्रों के लिए रिटर्निंग आफिसर द्वारा आशयित निर्वाचन के बारे में एक लोक सूचना जारी की जाती है।[86]

ऐसे निर्वाचन क्षेत्र में जहां पर आरक्षित स्थान है वहां अभ्यर्थी को उस स्थान को भरने के लिए तब तक अर्हित नहीं माना जाता जब तक वह अपने नामनिर्देशन पत्र में उस जाति अथवा जनजाति का जिसका वह सदस्य है और उस क्षेत्र का उल्लेख नहीं करता जिसके संबंध में वह जाति अथवा जनजाति किसी राज्य की अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति है।[87]

निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी को इस आशय की शपथ लेनी होती है या प्रतिज्ञान करना होता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करने होते हैं कि वह विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखेगा और वह देश की प्रभुता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।

> अभ्यर्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह नामनिर्दिष्ट होने के बाद लेकिन नामनिर्देशन पत्रों की संवीक्षा के लिए निर्धारित तारीख से पहले शपथ ले अथवा प्रतिज्ञान करे और उस पर अपने हस्ताक्षर करे। जो अभ्यर्थी अपने नामनिर्देशन पत्र के साथ अथवा संवीक्षा की निर्धारित तारीख तक ऐसा करने में विफल रहता है वह निर्वाचन के लिए निरर्हित हो जाता है।[88]

---

85. लो.प्र. अधिनियम 1951, धारा 14 ।
86. *पूर्वोक्त,* धारा 30 और 31 ।
87. *पूर्वोक्त,* धारा 33 ।
88. *पशुपतिनाथ सिंह बनाम हरिहर* प्रसाद सिंह, ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 1064 ।

> एक बार जब एक निर्वाचन क्षेत्र के संबंध में सक्षम प्राधिकारी के समक्ष ऐसी शपथ ले ली जाती है अथवा प्रतिज्ञान कर दिया जाता है तब अभ्यर्थी किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होने के बावजूद भी इस शपथ अथवा प्रतिज्ञान से आबद्ध हो जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से नामनिर्दिष्ट होने की स्थिति में बार-बार शपथ ले अथवा प्रतिज्ञान करे और उस पर अपने हस्ताक्षर करे।[89]
>
> शपथ प्रपत्र में केवल छपाई संबंधी अशुद्धि अथवा क्षेत्रीय भाषा में (इस मामले में गुजराती) अभिव्यक्ति (इस मामले में विधान सभा) में अशुद्धि मात्र से किसी अभ्यर्थी के निर्वाचन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा बशर्ते कि वह अन्यथा विधिमान्य हो।[90]

निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी से अपने नामनिर्देशन को विधिमान्य बनाने के लिए दस हजार रुपए की राशि जमा करने की अपेक्षा की जाती है; अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थी द्वारा केवल पांच हजार रुपए की राशि का निक्षेप कराने की अपेक्षा की जाती है।[91]

रिटर्निंग ऑफिसर नामनिर्देशन पत्रों को जांच करता है और उनकी विधिमान्यता के बारे में निर्णय करता है। वह ऐसे किसी भी नामनिर्देशन पत्र को रद्द कर सकता है जो उसकी राय में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 अथवा इसके अधीन बनाये गये नियमों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता। यदि ऐसी त्रुटि सारवान नहीं है, तो वह उस नामनिर्देशन को रद्द नहीं करता। जैसे ही अभ्यर्थिता वापस लेने की अवधि समाप्त होती है रिटर्निंग आफिसर विधिमान्यत: नामनिर्दिष्ट अभ्यर्थियों की एक सूची तैयार करता है और उसे प्रकाशित करता है।[92] निर्वाचन के लिए अभ्यर्थी को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 द्वारा अथवा इसके अधीन प्राधिकृत कृत्यों का पालन करने के लिए एक निर्वाचन अभिकर्त्ता नियुक्त करने का अधिकार है।[93]

मतदान आरम्भ होने के पूर्व किसी मान्यताप्राप्त राजनीतिक दल द्वारा खड़े किए गए अभ्यर्थी की मृत्यु की स्थिति में, रिटर्निंग ऑफिसर उस तारीख तक जो बाद में अधिसूचित की जाती है मतदान के स्थगन की घोषणा करता है और इस तथ्य की रिपोर्ट निर्वाचन आयोग तथा समुचित प्राधिकारी को भी करता है। निर्वाचन आयोग रिटर्निंग ऑफिसर से रिपोर्ट प्राप्त होने पर उस मान्यताप्राप्त राजनीतिक दल से, जिसके अभ्यर्थी की मृत्यु हुई है, उक्त मतदान

---

89. *खाजे खनवा खादर खान हुसैन खां बनाम सिद्दवानाहल्ली निजलिंगप्पा,* ए.आई.आर. 1969 एस. सी. 1034।
90. *विरजी राम सुतारिया बनाम नाथालाल प्रेमजी भनवाडिया,* ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 765 ।
91. *लो.प्र.* अधिनियम 1951, धारा 34 ।
92. *पूर्वोक्त,* धारा 36 और 38 ।
93. *पूर्वोक्त,* धारा 40 और 42 ।

के लिए ऐसी सूचना के जारी किये जाने से सात दिन के भीतर किसी अन्य अभ्यर्थी को नामनिर्दिष्ट करने की अपेक्षा करता है। जहां निर्वाचन लड़ने वाले अभ्यर्थियों की सूची मतदान के स्थगन के पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी, वहां रिटर्निंग ऑफिसर निर्वाचन लड़ने वाले अभ्यर्थियों की नई सूची नए सिरे से तैयार करेगा और प्रकाशित करेगा ताकि राजनीतिक दल द्वारा विधिमान्य रूप से नामनिर्दिष्ट अभ्यर्थी का नाम उसमें सम्मिलित किया जा सके।[94]

संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में निर्वाचन के लिए मतदान कराने के लिए आबंटित कुल कालावधि किसी एक दिन में आठ घंटे से कम की नहीं होती है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए पर्याप्त संख्या में मतदान केन्द्र स्थापित किए जाते हैं और मतदाताओं को मतदान करने के लिए स्वयं अपने-अपने मतदान केन्द्रों में जाना पड़ता है। किसी को परोक्ष मतदान करने की अनुमति नहीं है। विशेष मतदाता, सेवा नियोजित मतदाता निर्वाचन कर्तव्यारूढ़ मतदाता और निवारात्मक नजरबन्दी में रखे गये मतदाता ही वे व्यक्ति हैं, जो डाक द्वारा अपना मत दे सकते हैं।[95]

मतों की गणना पूरी हो जाने के बाद रिटर्निंग ऑफिसर निर्वाचन के परिणाम की घोषणा करता है और उसकी रिपोर्ट समुचित प्राधिकारियों, निर्वाचन आयोग तथा लोक सभा सचिवालय को देता है। रिटर्निंग ऑफिसर द्वारा जिस तारीख को अभ्यर्थी के बारे में निर्वाचित होने की घोषणा की जाती है, वही तारीख उस अभ्यर्थी के निर्वाचित होने की तारीख मानी जाती है। रिटर्निंग ऑफिसर निर्वाचित अभ्यर्थी को निर्वाचन का प्रमाण-पत्र अनुदत्त करता है और उसके द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित उसकी प्राप्ति की अभिस्वीकृति अभ्यर्थी से अभिप्राप्त करता है। यह बाद में लोक सभा के महासचिव को भेज दी जाती है। नए निर्वाचित सदस्य को शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और उस पर हस्ताक्षर करने से पहले अपना निर्वाचन प्रमाण-पत्र सभा के अधिकारी को दिखाना पड़ता है।[96]

राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन

संसद के दोनों सदनों की सदस्यता की अर्हताएं एक जैसी[97] हैं, सिवाए इसके कि राज्य सभा में स्थान भरने के लिए :

---

94. *लो.प्र.अधिनियम 1951*, धारा 52 ।

95. *पूर्वोक्त,* धारा 25, 56, 59 और निर्वाचनों के संचालन नियम, 1961 के नियम 16 और 13 । 'विशेष मतदाता', 'सेवा नियोजित मतदाता', 'निर्वाचन कर्तव्यारूढ़ मतदाता' की परिभाषा के लिए *देखिए* नियम 17 ।

96. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 66, 67, 67 क; और निर्वाचनों के संचालन नियम *उद्धृत कृति* नियम 66 । शपथ या प्रतिज्ञान के बारे में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 15-'सदस्यों द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान और सभा में सदस्यों का स्थान ग्रहण'।

97. इन अर्हताओं का ब्यौरा लोक सभा के सदस्यों के निर्वाचन के संबंध में इसी अध्याय में दिया गया है।

(क) चुने जाने के लिए वही व्यक्ति अर्हित होगा जिसकी आयु कम से कम तीस वर्ष हो; और

(ख) किसी राज्य (जम्मू तथा कश्मीर राज्य के अतिरिक्त) या संघ राज्य क्षेत्र का प्रतिनिधि चुने जाने के लिए वही व्यक्ति अर्हित होगा जो उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में निर्वाचक हो।

राज्य सभा में प्रत्येक राज्य और संघ राज्य क्षेत्र के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों तथा उस राज्य क्षेत्र के निर्वाचक गण के सदस्यों, यथास्थिति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है।[98]

दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र के लिए निर्वाचकगण उस राज्य क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली शासन अधिनियम, 1991 के अधीन गठित विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है।[99]

पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र का निर्वाचकगण संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963[100] के अधीन उस राज्य क्षेत्र के लिए गठित विधान सभा[101] के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा और नागर हवेली, दमन और दीव तथा चण्डीगढ़ संघ राज्य क्षेत्रों का राज्य सभा में कोई प्रतिनिधि नहीं है।

यदि कोई व्यक्ति जो किसी निर्वाचकगण का सदस्य हो, संसद के चुनावों के संबंध में भ्रष्ट और अवैध व्यवहार तथा अन्य अपराधों संबंधी किसी कानून के उपबन्धों के अन्तर्गत संसद की सदस्यता की किसी निरर्हता से ग्रस्त हो जाता है तो वह उस निर्वाचकगण का सदस्य नहीं रहता।[102]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 के अन्तर्गत किसी निर्वाचकगण के सदस्यों द्वारा कोई भी निर्वाचन ऐसे निर्वाचकगण की सदस्यता में किसी रिक्ति के विद्यमान होने के आधार पर ही प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।[103]

---

98. अनुच्छेद 80(4), लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 27क तथा 27ज के साथ पठित।

99. लो.प्र. अधिनियम, 1950, धारा 27क (3), राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली शासन अधिनियम, 1991, धारा 55 (1991 का 1) द्वारा यथासंशोधित।

100. मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986 और अरुणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1986 द्वारा निरसित मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र।

101. लो.प्र. अधिनियम, 1950 धारा 27क(4), संघ राज्य क्षेत्र शासन (संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा यथासंशोधित ।

102. *पूर्वोक्त*, धारा 27छ ।

103. *पूर्वोक्त*, धारा 27ञ ।

राज्य सभा के उन सदस्यों के स्थानों को भरने के प्रयोजन के लिए, जो अपनी पदावधि के अवसान के पश्चात् निवृत्त हो रहे हैं, राष्ट्रपति ऐसी तारीख या तारीखों को, जिसकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, राजपत्र में प्रकाशित एक या अधिक अधिसूचनाओं द्वारा हर एक संबंधित राज्य के यथास्थिति, विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से या निर्वाचकगण के सदस्यों से अपेक्षा करता है कि वे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और इसके अधीन बनाये गये नियमों और आदेशों के उपबन्धों के अनुसार राज्य सभा के सदस्यों को निर्वाचित करें। ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से तीन मास से अधिक पूर्व नहीं निकाली जाती जिस तारीख को निवृत होने वाले सदस्यों की पदावधि का अवसान होना है।[104]

राज्य सभा और लोक सभा के निर्वाचन के लिए प्रशासनिक व्यवस्था तथा उनके संचालन की प्रक्रिया मोटे तौर पर एक जैसी है। तथापि, राज्य सभा में किसी स्थान या स्थानों को भरने के लिए निर्वाचन की दशा में रिटर्निंग आफिसर[105] निर्वाचन आयोग के पूर्वानुमोदन से वह स्थान नियत करता है जहां कि ऐसे निर्वाचन के लिए मतदान होगा और ऐसे नियत स्थान को ऐसी रीति में अधिसूचित करता है जैसी निर्वाचन आयोग निर्दिष्ट करे। रिटर्निंग आफिसर ऐसे नियत स्थान में निर्वाचन में पीठासीन होता है और अपनी सहायता के लिए ऐसा या ऐसे मतदान आफिसर नियुक्त करता है जैसे वह आवश्यक समझे, किन्तु वह किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं कर सकता जो निर्वाचन में या निर्वाचन की बाबत अभ्यर्थी द्वारा या उसकी ओर से नियोजित किया गया हो या अन्यथा इसके लिए काम करता रहा हो।[106]

निर्वाचन सम्बन्धी विवाद

किसी अभ्यर्थी अथवा मतदाता द्वारा निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन के पैंतालीस दिनों के अन्दर निर्वाचन विधि[107] में विहित एक या अन्य आधारों पर दायर निर्वाचन याचिका के माध्यम से किसी निर्वाचन को प्रश्नगत किया जा सकता है:

> किसी निर्वाचित अभ्यर्थी को विधानमंडल में अपने स्थान से त्यागपत्र द्वारा उसके विरुद्ध दायर निर्वाचन याचिका से छुटकारा नहीं मिल सकता, चाहे उसके त्यागपत्र का कोई भी कारण हो।[108]

---

104. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 12 । संविधान (छत्तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा सिक्किम राज्य को आबंटित राज्य सभा के स्थान को पहली बार भरने हेतु धारा 12क में भी धारा 12 के समान ही प्रक्रिया है।

105. सामान्यत: राज्य सभा के निर्वाचन के लिए राज्य विधानमंडलों के सचिवों/अधिकारियों को रिटर्निंग आफिसर/सहायक रिटर्निंग आफिसर के रूप में नियुक्त किया जाता है। *देखिए पशुपतिनाथ सुकुल बनाम नेम चन्द्र जैन तथा अन्य* 74 निर्वाचन विधि प्रतिवेदन 83 ।

106. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 29 ।

107. *देखिए* लो.प्र. अधिनियम, 1951 की धारा 100 और 101 ।

108. *डी. संजीवैय्या बनाम इलेक्शन ट्रिब्यूनल, आन्ध्र प्रदेश,* ए.आई.आर. 1967, एस.सी. 1211 ।

निर्वाचन याचिका को केवल उच्च न्यायालय की अनुमति से ही वापस लिया जा सकता है। यदि परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक हो तो ऐसी कोई बात नहीं है जो ऐसे आवेदन को अस्वीकृत करने के न्यायालय के न्यायिक स्वविवेक में बाधा बन सके। इस संबंध में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की टिप्पणी है:

> न्यायालय द्वारा स्वीकृति दिए जाने अथवा इंकार किए जाने संबंधी मामलों को श्रेणीबद्ध किए जाने का प्रयास न तो उचित है और न ही व्यावहारिक। प्रत्येक मामले को उसकी भिन्न परिस्थितियों के अनुसार निपटाना होता है। तथापि, ऐसे सभी मामलों, जहां न्यायिक स्वविवेक का प्रयोग वांछित हो, में दिशा-निर्देश के एक सामान्य नियम का पालन यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि क्या वापसी का आवेदन सदाशयतापूर्वक किया गया है अथवा यह अन्यथा संभावित परिणामों से बचने का बहाना मात्र है।[109]

एक निर्वाचन को कतिपय कदाचारों के आधार पर चुनौती दी गई थी और मुख्य आरोप था कि कुछ स्वाविवेकाधीन धनराशि, निर्वाचित अभ्यर्थी, जो निर्वाचन के परिणाम तक हरियाणा में मंत्री था, के अधिकार में दे दी गई थी और उसने इस स्थिति का प्रयोग कतिपय गाँवों के पक्ष में अपनी दावेदारी के लिए समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से किया। हालांकि, जब यह पाया गया कि वह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि निर्वाचित अभ्यर्थी ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मतों के लिए सौदा किया था परन्तु उच्चतम न्यायालय ने निम्न टिप्पणी की:

> निर्वाचन निष्पक्षतापूर्वक संचालित कराया जाना चाहिए। विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में, निर्वाचन के ठीक पहले धन व्यय करने की व्यवस्था करना, चाहे वह सामान्य जनकल्याण के लिए ही क्यों न हो, सब कुछ कहे और किए जाने पर भी, यद्यपि वह कदाचार नहीं भी है तब भी वह कुप्रथा तो है ही। कुप्रथा और भ्रष्ट आचरण में बहुत सूक्ष्म अन्तर है। यह समझना चाहिए कि जन कल्याण के लिए परिश्रम चुनाव के ठीक पूर्व नहीं किया जाना चाहिए बल्कि यह उससे काफी पूर्व किया जाना चाहिए और मामूली साक्ष्य भी इस कुप्रथा को भ्रष्ट आचरण में परिवर्तित कर सकता है। निर्वाचन के ठीक पूर्व स्वविवेकाधीन अनुदानों से भुगतान करने से बचना चाहिए।[110]

---

109. *जुगल किशोर बनाम डा. बलदेव प्रकाश,* ए.आई.आर. 1968, पंजाब और हरियाणा 152 । संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 में चुनाव याचिकाओं की सुनवाई के लिए अलग चुनाव पंचाटों के गठन का प्रावधान किया गया है। (अनुच्छेद 323ख)।

110. *घ ासीराम बनाम दल सिंह,* ए.आई.आर. 1968, एस.सी. 1191 ।

उच्चतम न्यायालय की इन टिप्पणियों के अनुसरण में संघ सरकार ने निश्चय किया है कि मंत्रियों द्वारा चुनावों के तीन माह पूर्व से स्वविवेकाधीन धनराशि से कोई व्यय नहीं किया जाएगा—ता.प्र.सं. 845, *लो.स.वा.वि.*, 19.12.1968 ।

स्थानों की रिक्तियां

संसद के दोनों में से किसी सदन का कोई सदस्य अपनी सदस्यता को खो सकता/सकती है और इससे उसका स्थान रिक्त हो सकता है–

(1) यदि सदस्य निम्नलिखित निरर्हताओं में से कोई उपगत करता/करती है:[111]

वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता/करती है;[112] अथवा

सक्षम न्यायालय द्वारा उसे विकृतचित्त घोषित किया जाता है; अथवा वह अनुन्मोचित दिवालिया हो जाता/जाती है; अथवा

उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषिक्त अभिस्वीकार किये हुए है; अथवा वह संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 2 के प्रावधानों का उल्लंघन करता/करती है; अथवा

(2) यदि सदस्य संसद के दूसरे सदन का सदस्य निर्वाचित होता/होती है, जबकि वह एक सदन का सदस्य पहले ही है, उस स्थिति में पहले सदन में उसका स्थान उस तारीख से रिक्त हो जाता है जिस तारीख से वह दूसरे सदन का सदस्य निर्वाचित हो जाता है;[113] अथवा

---

111. *देखिए* अनुच्छेद 101 और 102 ।

112. *देखिए* अनुच्छेद 102(1)(क) । बयालीसवां संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा इसमें संशोधन किया गया। तथापि, संशोधन उपबंध लागू नहीं किया गया है।

113. *देखिए* लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 69 ।

पहली लोक सभा के चार सदस्य 1956 में राज्य सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर लोक सभा के सदस्य नहीं रहे। 1957 में राज्य सभा के 15 सदस्य दूसरी लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। 1962 में राज्य सभा के 15 सदस्य तीसरी लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे और दूसरी लोक सभा के 13 सदस्य राज्य सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर लोक सभा के सदस्य नहीं रहे। राज्य सभा के 11 सदस्य मार्च, 1977 में छठी लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। राज्य सभा के 10 सदस्य जनवरी, 1980 में सातवीं लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। राज्य सभा के 9 सदस्य दिसम्बर, 1984 में आठवीं लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। नवम्बर, 1989 में नौवीं लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर 12 सदस्य राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। जून, 1991 में दसवीं लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर 2 सदस्य राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे। इसी प्रकार मई, 1996 में ग्यारहवीं लोक सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर राज्य सभा के 4 सदस्य उस सभा के सदस्य नहीं रहे। चौदहवीं लोकसभा के चार सदस्य क्रमश:

(3) यदि वह राज्य के विधानमंडल का सदस्य निर्वाचित हो जाता/जाती है, तो राज्य के राजपत्र में उसके निर्वाचन की घोषणा के प्रकाशन के चौदह दिन के भीतर यदि वह राज्य के विधानमंडल की सदस्यता से त्यागपत्र न दे, तो संसद में उसका स्थान रिक्त हो जाता है;[114] अथवा

जून 2004, नवम्बर 2008 और मार्च 2009 को राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने पर लोक सभा के सदस्य नहीं रहे। पन्द्रहवीं लोकसभा के तीन सदस्य जनवरी-फरवरी 2014 में राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने पर लोकसभा के सदस्य नहीं रहे।

114. राज्य विधानमंडल के स्थान से त्यागपत्र उस सदन के पीठासीन अधिकारी को सम्बोधित होना चाहिए न कि किसी अन्य प्राधिकारी को।

1962 में हुए तीसरे साधारण निर्वाचन में लोक सभा के 12 विद्यमान सदस्य राज्य विधानमंडलों के सदस्य निर्वाचित हुए। उनमें से 11 सदस्यों ने चौदह दिन की अवधि समाप्त होने से पहले लोक सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। आन्ध्र प्रदेश विधान सभा में एक सदस्य के निर्वाचन की घोषणा 3 मार्च, 1962 के राज्य राजपत्र में प्रकाशित हुई। चूंकि, उन्होंने त्यागपत्र नहीं दिया था इसलिए वह 18 मार्च, 1962 से लोक सभा के सदस्य नहीं रहे। 1967 में, लोक सभा में एक सदस्य का स्थान 25 फरवरी, 1967 से रिक्त घोषित किया गया था क्योंकि उन्होंने असम विधान सभा, जिसके कि वह निर्वाचन के समय सदस्य थे, की सदस्यता से त्यागपत्र नहीं दिया था। इसी प्रकार, लोक सभा में 13 मई, 1967 से एक सदस्य का स्थान रिक्त घोषित किया गया था क्योंकि मद्रास विधान परिषद में उनके निर्वाचन की घोषणा को राज्य राजपत्र में 28 अप्रैल, 1967 को प्रकाशित किया गया था और उन्होंने लोक सभा से अपना त्यागपत्र नहीं दिया था। इसी प्रकार हरियाणा विधान सभा के एक सदस्य के निर्वाचन से संबंधित घोषणा 25 नवम्बर, 1986 को राज्य राजपत्र में अधिसूचित की गई थी। 1 दिसम्बर, 1986 को सदस्य ने अध्यक्ष को लिखा कि समसामयिक सदस्यता निषेध नियम, 1950 के नियम 2 के उपबन्धों के अधीन 14 दिन की अवधि की समाप्ति पर लोक सभा में उनके स्थान को रिक्त घोषित कर दिया जाए। तदनुसार, 10 दिसम्बर, 1986 से लोक सभा में उनके स्थान को रिक्त घोषित कर दिया गया। कोई अधिसूचना जारी नहीं की गई। निर्वाचन आयोग को एक पत्र के माध्यम से इस संबंध में सूचित किया गया। इस संबंध में एक परिपत्र जारी किया गया और लोक सभा समाचार-भाग 2 में एक पैरा दिया गया। साथ ही *देखिए* समसामयिक सदस्यता निषेध नियम, 1950 का नियम 2 । मार्च 1998 में हुए ग्यारहवें 'आम चुनाव में' लोक सभा के एक वर्तमान सदस्य का निर्वाचन पंजाब विधान सभा के लिए हुआ। उन्होंने लोकसभा सदस्य के रूप में शपथ नहीं ली और विधानसभा की सदस्यता भी बनाए रखीं। तत्पश्चात् समसामयिक सदस्यता निषेध नियम 1950 के नियम 2 के उपबंधों के अधीन लोकसभा में उनकी सदस्यता 24 मार्च 1998 से रिक्त घोषित की गई। एक सदस्य के छत्तीसगढ़ विधानसभा का सदस्य निर्वाचित होने की घोषणा 11 दिसम्बर 2008 को राज्य के राजपत्र में प्रकाशित हुई। चूंकि उन्होंने अपनी सीट से त्यागपत्र नहीं दिया था, इसलिए वह 26 दिसम्बर 2009 से चौदहवीं लोकसभा के सदस्य नहीं रहे।

(4) यदि किसी उच्च न्यायालय द्वारा सदस्य के निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया गया हो;[115] अथवा

उच्च न्यायालय द्वारा आदेश प्रख्यापित किए जाने के साथ ही यह आदेश प्रभावी हो जाता है;[116] जहां आदेश के प्रवर्तन पर यथास्थिति उच्च न्यायालय या, उच्चतम न्यायालय द्वारा रोक लगा दी गई है, उस स्थिति में यह समझा जाता है कि वह आदेश कभी भी प्रभावी नहीं हुआ।[117] जहां आदेश के प्रवर्तन पर अपील के संबंध में विनिर्णय होने तक रोक लगाई गई हो और अपील को उच्चतम न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया हो, तो अपीलकर्ता मूल आदेश की तारीख से नहीं अपितु उच्चतम न्यायालय के विनिर्णय की तारीख से उस सदन का सदस्य नहीं रहता।

एक मामले में, जब किसी सदस्य का निर्वाचन उच्च न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया गया था और स्थगन आदेश के आवेदन पर, उच्चतम न्यायालय ने सदस्य को केवल उतने दिनों के लिए सदन में उपस्थित होने की अनुमति दी जो उसे अपनी सदस्यता बनाये रखने के लिए जरूरी था; न्यायालय द्वारा अपील के संबंध में निर्णय होने तक वह उन प्रतिबन्धों के साथ सदन का सदस्य बना रहा, जो स्पष्ट रूप से उच्चतम न्यायालय के आदेश में बताये गये थे।[118]

---

115. लो.प्र. अधिनियम, 1951, धारा 100(1) ।

116. *पूर्वोक्त,* धारा 107(1) ।

117. *पूर्वोक्त,* धारा 116ख (3) ।

118. दूसरी लोक सभा के लिए डा. वाई.एस. परमार का निर्वाचन, निर्वाचन न्यायाधिकरण ने शून्य घोषित कर दिया था और हिमाचल प्रदेश के न्यायिक आयुक्त ने न्यायाधिकरण के आदेश को वैध ठहराया। इस पर डा. परमार ने उच्चतम न्यायालय से अपील की विशेष अनुमति मांगी और साथ ही रोक आदेश के लिए प्रार्थना पत्र भी दिया। उच्चतम न्यायालय ने रोक आदेश की प्रार्थना पर *अन्य बातों के साथ-साथ* यह आदेश दिया कि उनके द्वारा अपील की सुनवाई और अन्तिम निर्णय तक डा. परमार लोक सभा के सदस्य के रूप में सदन में नहीं बैठेंगे, सिवाए उन दिनों के, जबकि उनकी उपस्थिति उनका स्थान बनाए रखने के लिए आवश्यक हो और वह सदस्य के रूप में कोई पारिश्रमिक नहीं लेंगे। इस आदेश की विधि मंत्रालय ने यह व्याख्या की कि इसमें उपस्थिति और पारिश्रमिक के संबंध में स्पष्ट रूप से उल्लिखित शर्तों के अधीन डा. परमार लोक सभा के सदस्य हैं; वह 60 दिन के अन्तराल से ही सभा में उपस्थित होंगे; और जिस दिन वह उपस्थित हों, उस दिन वह सदस्य के कृत्यों का निर्वहन कर सकते हैं; तथा वह वेतन और भत्तों के सिवाय उन सभी सुविधाओं और रियायतों के हकदार हैं, जो कि सदस्यों को मिलनी चाहिए। लेकिन 17 अक्तूबर, 1958 को उच्चतम न्यायालय ने डा. परमार की अपील रद्द कर दी और वह उस तारीख से लोक सभा के सदस्य नहीं रहे।

दादरा और नागर हवेली से आठवीं लोक सभा के लिए श्री सीताराम जे. गावली का निर्वाचन बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 2 अप्रैल, 1985 को शून्य घोषित कर दिया गया था।

श्री गावली के आवेदन पर उच्च न्यायालय ने अपने आदेश के प्रवर्तन पर तीस दिनों की रोक का आदेश श्री गावली द्वारा किए गए इस परिवचन के बाद दिया कि वह न तो लोक सभा की कार्यवाहियों में भाग लेंगे और न ही लोक सभा में मतदान करेंगे तथा सिर्फ अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने के लिए वह लोक सभा में उपस्थित होंगे। उनकी अपील पर उच्चतम न्यायालय ने अपने 26 अप्रैल, 1985 के आदेश से उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर रोक आदेश को उन्हीं प्रतिबन्धों सहित अगले आदेश तक जारी रखने का आदेश दिया। तदनुसार, आठवीं लोक सभा के तीसरे से आठवें सत्र तक श्री गावली को सम्मन जारी नहीं किए गए; तथापि लोक सभा का सत्र शुरू होने तथा उसकी अवधि के बारे में उन्हें, उनके दोनों पतों पर पत्र के माध्यम से सूचित किया गया था। 25 मार्च, 1987 को अपने अंतिम निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने श्री गावली द्वारा दर्ज अपील पर सुनवाई करते हुए बम्बई उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया। श्री गावली बिना किसी व्यवधान के आठवीं लोक सभा के सदस्य बने रहे। इस संबंध में आवश्यक सूचना लोक सभा समाचार-भाग 2 में प्रकाशित की गई थी। विनिर्णय की प्रतियां संसद ग्रंथालय में भी रखी गईं।

महाराष्ट्र में औरंगाबाद संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से दसवीं लोक सभा के लिए श्री मोरेश्वर सावे का निर्वाचन 16 अप्रैल, 1992 को बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया गया था। आदेश के दो दिनों के भीतर लागत भुगतान किये जाने के अध्यधीन न्यायालय ने आठ सप्ताह का रोक आदेश मंजूर किया। उनकी अपील पर उच्चतम न्यायालय ने अपने 11 जुलाई, 1992 के आदेश से, श्री सावे को लोक सभा के सत्र में उपस्थित होने तथा सदस्यों के उपस्थिति राजिस्टर में अपने हस्ताक्षर करने की अनुमति दी लेकिन अपील के लम्बित होने की अवधि के दौरान न तो उन्हें कोई वेतन और न ही उन्हें मतदान का अधिकार दिया गया। तदनुसार, श्री सावे को दसवीं लोक सभा के चौथे से पंद्रहवें सत्र तक सम्मन जारी नहीं किए गए। तथापि, उन्हें उनके स्थायी पते और दिल्ली के पते पर पत्र द्वारा सत्र के प्रारंभ होने की तारीख और अवधि के बारे में सूचित किया गया। तदुपरान्त, उच्चतम न्यायालय ने अपने 11 दिसम्बर, 1995 के अंतिम निर्णय में, श्री सावे द्वारा दायर अपील पर बम्बई उच्च न्यायालय के 16 अप्रैल, 1992 के निर्णय को अपास्त कर दिया और श्री सावे बिना किसी व्यवधान के दसवीं लोक सभा के सदस्य बने रहे। इस संबंध में आवश्यक सूचना लोक सभा समाचार-भाग 2 में प्रकाशित की गई थी। निर्णय की प्रतियां संसद ग्रंथालय में रखी गईं।

मई-जून, 1991 के साधारण निर्वाचन में श्री यशवंत राव पाटिल महाराष्ट्र के अहमदनगर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से दसवीं लोक सभा के लिए निर्वाचिन हुए थे। एक निर्वाचन याचिका के संबंध में बम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद खंडपीठ ने 30 मार्च, 1993 के अपने आदेश में श्री पाटिल के भ्रष्ट आचरण के आधार पर लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123 (4) के अंतर्गत उनके लोक सभा में निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया और श्री बाला साहिब विखे पाटिल को विधिवत निर्वाचित घोषित किया। उच्च न्यायालय ने आगे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 99 के अंतर्गत एक अन्य सदस्य श्री शरद पवार को भ्रष्ट आचरण के लिए नामित किया। तथापि, न्यायालय ने अपने आदेश के प्रवर्तन पर छह सप्ताह तक रोक लगा दी। तदुपरान्त, 10 मई, 1993 के अपने आदेश में उच्चतम न्यायालय ने श्री पवार की अपील को स्वीकार करते हुए सभा की कार्यवाहियों में सदस्य के भाग लेने,

मतदान करने तथा वेतन लेने पर पाबंदी लगा दी। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 8क के अंतर्गत आगे कार्यवाही करने पर भी रोक लगा दी। पुनः उच्चतम न्यायालय ने 14 मई, 1993 के अपने आदेश में *श्री यशवंत राव पाटिल* की अपील को स्वीकार करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर रोक आदेश को जारी रखा तथा सदस्य के लोक सभा की कार्यवाहियों में भाग लेने तथा मतदान करने और वेतन लेने के अधिकार पर अगले आदेशों तक पाबंदी लगा दी। तथापि, दोनों सदस्यों को न्यायालय द्वारा यह अनुमति दी गई कि वे उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करें जिससे कि वे निरर्हता से बच सकें। श्री पवार के महाराष्ट्र विधान परिषद का सदस्य निर्वाचित होने के परिणामस्वरूप उन्होंने 3 सितम्बर, 1993 से सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। 19 नवम्बर, 1993 को दिए अपने अंतिम विनिर्णय में उच्चतम न्यायालय ने श्री यशवंत राव पाटिल के निर्वाचन को अपास्त करते हुए उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार रखा किंतु न्यायालय के इस विनिर्णय के विरुद्ध व्यवस्था दी कि श्री बाला साहिब पाटिल लोक सभा के लिए विधिवत निर्वाचित हुए थे। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के उस निर्णय को भी अपास्त कर दिया जिसके द्वारा श्री शरद पवार को भ्रष्ट आचरण के लिए नामित किया गया था। तदनुसार, श्री यशवंतराव पाटिल उच्चतम न्यायालय के विनिर्णय की तारीख अर्थात् 19 नवम्बर, 1993 से लोक सभा के सदस्य नहीं रहे। इस संबंध में आवश्यक सूचना दिनांक 2 दिसम्बर, 1993 के समाचार-भाग 2 में प्रकाशित की गई तथा इस बाबत परिपत्र सभी अधिकारियों/शाखाओं को जारी किया गया तथा विनिर्णय की प्रतियां संसद ग्रंथालय में रखी गई। इससे पूर्व, 30 मार्च को बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा जारी आदेश तथा अपील पर उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी अंतरिम आदेश पर ऐसे ही कार्यवाही की गई।

तदुपरान्त, 21 जनवरी, 1994 को निर्वाचन आयोग के सचिव से एक पत्र प्राप्त हुआ था जिसमें यह अनुरोध किया गया था कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8क के अंतर्गत श्री यशवंत राव पाटिल के मामले को भारत के राष्ट्रपति के समक्ष रखा जाए। विषय-वस्तु की जांच के बाद, विधि मंत्रालय (विधायी विभाग) से भी परामर्श लिया गया जिन्होंने इस बात की पुष्टि की कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8क के अंतर्गत लोक सभा के महासचिव द्वारा इस मामले को भारत के राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करना अपेक्षित है। इस मामले में बम्बई उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के विनिर्णय की प्रतियों के साथ एक नोट लोक सभा के महासचिव द्वारा 9 मार्च, 1994 को राष्ट्रपति के सचिव को भेजा गया। इस बाबत निर्वाचन आयोग को भी 15 मार्च, 1994 को लिखित में सूचित किया गया। निर्वाचन आयोग ने 7 जुलाई, 1994 को लिखे अपने पत्र में यह सूचित किया कि भारत के राष्ट्रपति ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 8क(3) के साथ पठित धारा 8क(1) के अनुसरण में और निर्वाचन आयोग की राय के अनुसार कार्य करते हुए 8 जून, 1994 को आदेश दिया कि श्री यशवंत राव पाटिल को 19 नवम्बर, 1993 से आरम्भ होकर चार वर्ष की अवधि के लिए निरर्हित कर दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यह भी कहा गया था कि श्री पाटिल की निरर्हता 18 नवम्बर, 1997 तक अस्तित्व में रहेगी। (राष्ट्रपति के आदेश की प्रति संलग्न थी।) तत्पश्चात् आगे और कोई कार्यवाही नहीं की गयी।

(5) यदि सदस्य को (i) भारतीय दंड सहिता की धारा 153क या धारा 171ङ या धारा 171च या धारा 505(2) और (3) के अंतर्गत किसी ऐसे अपराध के लिए दोषी या सिद्धदोष ठहराया गया है जिसके लिए उसे कारावास का दंड दिया जा सकता है; (ii) लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 125 अथवा धारा 135 अथवा धारा 136 में उल्लिखित निर्वाचन संबंधी अपराध का दोषी पाया गया है; (iii) उक्त अधिनियम के भाग II, अध्याय III में, उल्लिखित कोई अन्य निरर्हता उपगत की है; अथवा

(6) यदि सदस्य सभा की अनुज्ञा लिए बिना 60 दिनों या इससे अधिक दिनों की अवधि के लिए सभा की सभी बैठकों से अनुपस्थित रहता/रहती है;[119] अथवा

(7) यदि सदस्य सभा द्वारा स्वीकृत निष्कासन के किसी प्रस्ताव[120] के परिणामस्वरूप निष्कासित किया गया/की गयी है; अथवा

(8) यदि सदस्य को भारत के राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित किया गया है और राष्ट्रपति के रूप में अपना पद ग्रहण करता/करती है;[121] अथवा

---

119. अनुच्छेद 101(4)। यह उपबंध मात्र निदेशात्मक है आज्ञापक नहीं। 60 दिनों की अवधि की संगणना करने में ऐसी किसी अवधि को हिसाब में नहीं लिया जायेगा जिसके दौरान सभा का सत्रावसान हुआ हो अथवा सभा को चार से अधिक क्रमागत दिनों के लिए स्थगित किया गया हो। 60 दिनों का तात्पर्य 60 दिनों की एकल अखण्डित अवधि से है। यदि सदस्य 59 दिनों तक अनुपस्थित रहता है परन्तु तत्पश्चात् सभा की बैठक में भाग लेता है, तो वह सभा की अनुज्ञा के बिना दोबारा 59 दिनों तक अनुपस्थित रह सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि 60 दिनों की निरंतर अवधि एक ही सत्र की हो। अनुच्छेद 101(4) के अध्यधीन स्थान रिक्ति संबंधी प्रस्ताव सभा के नेता अथवा ऐसे किसी अन्य सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जिसे वह इस संबंध में अपनी ओर से कार्य करने हेतु अपने कृत्य प्रत्यायोजित करे।

19 अप्रैल, 1950 को, संसदीय कार्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर तीन सदस्यों के स्थान रिक्त घोषित किये गये थे। *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 19.4.1950, पृ. 3023 ।

5 दिसम्बर, 1956 को सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति के सभापति द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के फलस्वरूप प्रथम लोक सभा के एक सदस्य का स्थान रिक्त घोषित किया गया था–

देखिए लो.स.वा.वि. (II), 5.12.1956, पृ. 726 । ऐसे उदाहरण भी हैं जब सदस्यों ने राज्यों में मंत्रियों के रूप में नियुक्त होने पर लोक सभा के उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर किए हैं। *देखिए लो.स.वा.वि.*, 17.4.1999; साथ ही देखिए आगे अध्याय 31—'प्रक्रिया के सामान्य नियम'।

120. *मुद्गल मामला* तथा अन्यों के लिए *देखिए* अध्याय 12—'सदस्यों का आचरण'।

121. भारत के राष्ट्रपति का पदभार ग्रहण करने के पश्चात्, पश्चिम बंगाल के जंगीपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य, प्रणब मुखर्जी भारत के संविधान के अनुच्छेद 59 खंड (1), 9 अधिसूचना सं. 21/2/2012 दिनांक 30/7/2012 राजपत्र 11-3 (दो) दिनांक 30.07.2012 के निबंधनों के अनुसार 25 जुलाई 2012 से लोकसभा के सदस्य नहीं रहे।

(9) यदि सदस्य को भारत के उप-राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित किया गया है और उप-राष्ट्रपति के रूप में अपना पद ग्रहण करता/करती है;[122] अथवा

(10) यदि सदस्य को किसी राज्य के राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया गया है और राज्यपाल के रूप में अपना पद ग्रहण करता/करती है;[123] अथवा

(11) यदि सदस्य अपनी सदस्यता से त्यागपत्र दे देता/देती है और उसका त्यागपत्र सभापति या अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो[124] द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है; अथवा

(12) यदि सदस्य को सभा का सदस्य होने के लिए निरर्हित कर दिया गया है।

सदस्य द्वारा दिया जाने वाले त्यागपत्र अपने हस्ताक्षर सहित लिखित रूप में होना चाहिए तथा वह यथास्थिति अध्यक्ष या सभापति को संबोधित होना चाहिए। सदस्य द्वारा बिना शर्त त्यागपत्र दिये जाने के बाद यदि प्राप्त जानकारी से अथवा अन्यथा और ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह उचित समझे, यथास्थिति सभापति या अध्यक्ष का यह समाधान हो जाता है कि त्यागपत्र स्वैच्छिक अथवा असली नहीं है तो वह ऐसे त्यागपत्र को स्वीकार नहीं करता।[125]

यदि कोई सदस्य अपना त्यागपत्र व्यक्तिगत रूप से अध्यक्ष को देता है और उसे सूचित करता/करती है कि त्यागपत्र स्वैच्छिक एवं असली है एवं अध्यक्ष को इसके विपरीत कोई सूचना अथवा जानकारी न हो, तो अध्यक्ष त्यागपत्र तत्काल स्वीकार कर सकता/सकती है।[126] यदि त्यागपत्र अध्यक्ष को डाक द्वारा अथवा किसी अन्य व्यक्ति के जरिए प्राप्त होता है, तो

---

122. अनुच्छेद 66(2) ।

123. अनुच्छेद 158(1) ।

निम्नलिखित सदस्यों द्वारा अपने पदों से त्यागपत्र दिये बिना राज्यपाल के रूप में पदभार ग्रहण करने पर लोक सभा में उनके स्थान रिक्त घोषित कर दिये गये:

(1) डा. पी. सुब्बारायन, राज्यपाल, महाराष्ट्र, 16.4.1962 से—अधिसूचना सं. 21/5/62 टी, दिनांक 1.5.1962, राजपत्र (1-1) दिनांक 12.5.1962 ।

(2) श्री एम.ए. आयंगर, राज्यपाल, बिहार, 12.5.1962 से—अधिसूचना सं. 21/5/62 टी, दिनांक 17.5.1962, राजपत्र (1-1) दिनांक 26.5.1962 ।

(3) श्री के.सी. रेड्डी, राज्यपाल, मध्य प्रदेश, 11.2.1965 से—अधिसूचना में 21/5/62 टी, दिनांक 22.2.1965, राजपत्र (1-1) दिनांक 27.2.1965 ।

(4) श्री आर.डी. भण्डारे, राज्यपाल, बिहार, 4.2.1973 से—का.आ. 106 (50) राजपत्र असाधारण [II-3(ii)] दिनांक 22.2.1973 ।

124. अनुच्छेद 101 (3ख) । मूल रूप से विरचित संविधान में पीठासीन अधिकारी द्वारा त्यागपत्र स्वीकार किये जाने हेतु कोई उपबन्ध अंतर्विष्ट नहीं था और इससे यह विवक्षित होता है कि त्यागपत्र पीठासीन अधिकारी अथवा सचिवालय द्वारा प्राप्त किये जाने के यथाशक्य शीघ्र प्रभावी बन जाता है। त्यागपत्र स्वीकार किये जाने का प्रावधान संविधान (तैंतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1974 द्वारा लागू किया गया था ताकि बलात् त्यागपत्र पर नियंत्रण रखा जा सके।

125. अनुच्छेद 101(3) का परंतुक ।

126. नियम 240(1 क) ।

अध्यक्ष अपने आपको इस बात से सन्तुष्ट करने के लिए कि त्यागपत्र स्वैच्छिक और असली है, जैसा भी आवश्यक समझे, जांच कर सकता/सकती है। यदि अध्यक्ष स्वयं अपने द्वारा अथवा किसी अन्य ऐसे अभिकरण द्वारा, जैसा वह आवश्यक समझे, की गई संक्षिप्त जांच के पश्चात् इस बात से सन्तुष्ट हो कि त्यागपत्र स्वैच्छिक अथवा असली नहीं है तो वह त्यागपत्र स्वीकार नहीं करता/करती है।[127]

त्यागपत्र अध्यक्ष द्वारा स्वीकार किए जाने के पश्चात् ही प्रभावी होता है।[128] सदस्य अपना त्यागपत्र अध्यक्ष द्वारा स्वीकार किये जाने से पूर्व किसी भी समय वापस ले सकता/सकती है।[129] अध्यक्ष, सदस्य का त्यागपत्र स्वीकार करने के पश्चात् यथाशीघ्र सभा को सूचना देगा/देगी कि अमुक सदस्य ने अपने स्थान से त्यागपत्र दे दिया है और वह त्यागपत्र स्वीकार

---

127. नियम 240(1 ख) ।

128. निदेश 47ख(1) ।

129. नियम 240(1 ग) । 15 फरवरी, 1999 को मध्य प्रदेश के भोपाल निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित एक सदस्य ने अध्यक्ष को बाहरवीं लोक सभा की अपनी सदस्यता से त्यागपत्र देने वाला एक पत्र भेजा। उस समय सदस्य को इस बात की पुष्टि करने का आग्रह किया गया कि क्या उनका त्यागपत्र स्वैच्छिक और असली है अथवा नहीं। इस बीच उस सदस्य ने न केवल 26 फरवरी को हुए मतदान में भाग लिया अपितु 8 मार्च से सदस्यों के उपस्थिति रजिस्टर में अपने हस्ताक्षर करना भी आरम्भ कर दिया। जब सदस्य को उनके द्वारा त्यागपत्र दिये जाने का स्मरण कराया गया और अध्यक्ष के चैम्बर में जाकर उनसे मिलने के लिए कहा गया तो वह अध्यक्ष से उनके चैम्बर में जाकर मिले और लिखित में एक पत्र भेजने का वचन दिया। तत्पश्चात्, अध्यक्ष द्वारा उनका त्यागपत्र स्वीकार किये जाने से पूर्व सदस्य ने 19 मार्च, 1999 को भेजे अपने पत्र में कहा कि जिन मुद्दों को लेकर उन्होंने अपना त्यागपत्र दिया था, उनका संबंधित मंत्रालय द्वारा इस बीच समाधान कर दिया गया था और साथ ही उन्होंने अध्यक्ष से प्रार्थना की कि वह इस मामले पर आगे कार्रवाई न करें। अध्यक्ष ने उनके अनुरोध को स्वीकार करते हुए त्यागपत्र को सदस्य द्वारा वापस लिया गया मान लिया।

31 अगस्त 2012 को आन्ध्र प्रदेश के नान्दयाल संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य, एस.पी.आर. रेड्डी ने अपने त्यागपत्र का कारण बताते हुए पंद्रहवीं लोकसभा की सदस्यता से त्यागपत्र देते हुए अध्यक्ष को एक पत्र भेजा। सदस्य ने 5 सितम्बर 2012 को अपना त्यागपत्र वापस लेने संबंधी एक पत्र अध्यक्ष को दिया। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने उनके अनुरोध को स्वीकार करते हुए सदस्य द्वारा दिए गए त्यागपत्र को वापस लिया हुआ मान लिया।

14 नवम्बर 2012 को आन्ध्र प्रदेश के एलुरू संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य, डा. कावुरू सांबासिवा राव ने पंद्रहवीं लोक सभा की सदस्यता से त्यागपत्र देते हुए अध्यक्ष को एक पत्र भेजा। डा. राव ने अध्यक्ष से अनुरोध किया कि त्यागपत्र 1 जनवरी 2013 से स्वीकार किया जाए।

चूंकि सदस्य 1 जनवरी 2013 से पूर्व अपना त्यागपत्र वापस लेने का हकदार था, इसलिए त्यागपत्र को 31 दिसम्बर 2012 तक लम्बित रखने का निर्णय लिया गया। डा. राव ने 31 दिसम्बर 2012 को अध्यक्ष से भेंट कर अनुरोध किया कि उन्हें लोक सभा की सीट से त्यागपत्र देने के निर्णय पर पुनर्विचार करने हेतु बजट सत्र के आरंभ होने तक का समय दिया जाए।

कर लिया गया है। यदि सभा का सत्र न चल रहा हो तो अध्यक्ष को सभा के पुनः समवेत होते ही सभा को इसकी सूचना देनी होती है।[130]

त्यागपत्र अध्यक्ष द्वारा उसे स्वीकार किये जाने की तारीख से प्रभावी होता है और अध्यक्ष द्वारा त्यागपत्र स्वीकार किये जाने के पश्चात् सदस्य उसे वापस नहीं ले सकता/सकती है।[131] यदि सदस्य ने उसके द्वारा दिया गया त्यागपत्र प्रभावी होने के लिए कोई भावी तारीख विनिर्दिष्ट की है, तो उसका त्यागपत्र इस प्रकार विनिर्दिष्ट तारीख को ही प्रभावी होता है यदि अध्यक्ष ने उस तारीख[132] तक त्यागपत्र स्वीकार कर लिया हो। त्यागपत्र जिस तारीख को अध्यक्ष अथवा लोक सभा सचिवालय द्वारा प्राप्त किया गया हो, उस तारीख से पूर्व किसी अन्य तारीख से स्वीकार नहीं किया जा सकता है।[133]

अध्यक्ष द्वारा सदस्य का त्यागपत्र स्वीकार कर लिये जाने के पश्चात् महासचिव, यथासम्भव शीघ्र यह जानकारी लोक सभा बुलेटिन तथा भारत के राजपत्र, असाधारण में प्रकाशित कराता है तथा अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को इस प्रकार हुई रिक्तता की पूर्ति हेतु कार्यवाही करने के लिए अग्रेषित करता है। जब त्यागपत्र आगे की किसी तिथि से लागू होना है तो सूचना, इसके लागू होने की तिथि से पूर्व बुलेटिन और राजपत्र में प्रकाशित नहीं होती है।[134]

त्यागपत्र के लिए सदस्य द्वारा बताये गये कारणों को सभा को सूचित नहीं किया जाता।

अपनी सदस्यता से त्यागपत्र देने वाले सदस्य अपने त्यागपत्र के स्पष्टीकरण में सभा में कोई वक्तव्य नहीं दे सकता।[135]

यदि त्यागपत्र लोक सभा के अंतिम सत्र के पश्चात् किन्तु इसके विघटन से पूर्व प्राप्त होता है, तो सदस्यों को त्यागपत्र दिये जाने और उसे स्वीकार किये जाने की जानकारी समाचार (बुलेटिन) के माध्यम से दी जाती है।

अध्यक्ष ने अनुरोध स्वीकार कर लिया। डा. राव ने 20 फरवरी 2013 (बजट सत्र के आरम्भ होने से एक दिन पूर्व) को अध्यक्ष से पुनः भेंट की और लोकसभा की सदस्यता से अपना त्यागपत्र वापस लेने संबंधी एक पत्र व्यक्तिगत रूप से सौंपा। अध्यक्ष ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और सदस्य के त्यागपत्र को वापस लिया गया मान लिया।

130. नियम 240(2) ।

131. निदेश 47ख(2) ।

132. निदेश 47ख(3) ।

133. निदेश 47ख(4) ।

संविधान (तैंतीसवां संशोधन) अधिनियम प्रवृत्त होने से पूर्व यह प्रथा थी कि त्यागपत्र उसमें विनिर्दिष्ट तारीख से और यदि कोई तारीख विनिर्दिष्ट नहीं की गई हो तो पत्र में दी गई तारीख से प्रभावी होता था। यदि पत्र में भी कोई तारीख न दी गई हो तो त्यागपत्र अध्यक्ष अथवा लोक सभा सचिवालय द्वारा उसे प्राप्त करने की तारीख से प्रभावी होता था।

134. नियम 240(3) ।

135. *लो.स.वा.वि.,* 1.12.1966 पृ. 2777-87 और 2.12.1966, पृ. 2923-24 ।

अध्याय 6

लाभ का पद

विधान मंडल का सदस्य चुने जाने और होने के लिये सरकार के अंतर्गत लाभ के पदों को धारक की निरर्हता की अवधारणा कार्यपालिका के विधान मंडल पर नियंत्रण अथवा प्रभाव को नियंत्रित करने के लिये लोकतांत्रिक सरकार की आवश्यकता से उपजी है। यह प्रावधान देश के लोकतांत्रिक तंत्र की रक्षा के लिए बनाया गया है।[1] इसके अतिरिक्त, कतिपय पदों को धारण करना विधायिका की सदस्यता के साथ असंगत माना गया था, क्योंकि एक व्यक्ति का दो स्थानों पर उपस्थित होना अथवा उन पदों से जुड़े हुए भारी दायित्वों को निभाना शारीरिक भौतिक रूप से असंभव है। तथापि मंत्रियों और सरकार के अन्य सदस्यों के मामले में कार्यपालिका और विधान-मण्डल के मध्य प्रभावी समन्वय बनाने की दृष्टि से छूट दी गई थी।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 102(1) और 191(1) द्वारा ऐसे किसी व्यक्ति के संसद और राज्य विधानमंडल के किसी सभा का सदस्य चुने जाने और होने के लिए निरर्हता का प्रावधान करता है जो संघ अथवा राज्य के अन्तर्गत लाभ का पद धारण करता है, बशर्ते संसद अथवा राज्य विधानमंडल विधि द्वारा यह घोषणा नहीं करते कि ऐसा पद इसके धारक को निरर्ह नहीं करता।

जब तक संसद ने विधि द्वारा अन्यथा घोषित न किया हो, कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित हो जाता है, यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का कोई पद धारण करता है।[2] यदि इस संबंध में कोई प्रश्न उठता है कि क्या कोई संसद सदस्य संविधान में वर्णित किसी निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं तथा यह प्रश्न भी क्या वह लाभ का पद धारण किए हुए है अथवा नहीं, तो वह प्रश्न राष्ट्रपति को विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाता है और उसका विनिश्चय अंतिम होता है तथापि, ऐसे किसी भी प्रश्न पर विनिश्चय करने से पहले

1. लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति (दूसरी लोक सभा) का तीसरा प्रतिवेदन।
2. अनुच्छेद 102(1)(क)। राज्य विधानमंडलों के लिए समरूपी उपबंध अनुच्छेद 191(1)(क) है। संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976, द्वारा 'लाभ का पद' से संबंधित संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) में संशोधन किया गया है। संशोधित अनुच्छेद के अनुसार कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अधीन ऐसा लाभ का कोई पद धारण करता है, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया हो। तथापि, अनुच्छेद 102(1)(क), जैसा कि संविधान (बयालीसवां संशोधन) के अधिनियम 1976 के प्रर्वतन से पूर्व था, को संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा यथावत् रखा गया था।

राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग से राय लेनी होती है और वह ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।[3] यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि इस मामले में राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य नहीं करता है।

इस संवैधानिक उपबंध का मुख्य उद्देश्य संसद अथवा राज्य विधानमंडल के सदस्यों की स्वतंत्रता बनाये रखना तथा यह सुनिश्चित करना है कि संसद अथवा राज्य विधानमंडल में ऐसे सदस्य न हों, जिन्होंने कार्यपालिका सरकार से अनुग्रह अथवा लाभ प्राप्त किया हो और जो कार्यपालिका के अनुग्रह के अंतर्गत होने के कारण इसके प्रभाव में आ सकते हैं। स्पष्टत: यह उपबंध विधायकों के कर्तव्य और स्वहित के बीच टकराव के खतरे को दूर करने अथवा कम करने के लिए किया गया है।[4]

यदि कार्यपालिका सरकार के पास किसी सदस्य को कोई नियुक्ति, ओहदा अथवा पद, जिससे किसी न किसी प्रकार की परिलब्धियां प्राप्त होती हैं, पेश करने की अबाधित शक्तियां हों तो सदस्य के मन में कार्यपालिका सरकार के प्रति कृतज्ञता का भाव जागृत होने की आशंका रहेगी और इस प्रकार वह अपने विचार और कार्य की स्वतंत्रता खो देगा और अपने मतदाताओं का सच्चा प्रतिनिधि नहीं रह पाएगा।[5]

ऐसा कोई निर्बंधन, जिसे संसद अपने सदस्यों पर अधिरोपित करना आवश्यक समझे, विधान में अंतर्विष्ट होना चाहिए अर्थात् ऐसे रूप में होना चाहिए जिसका प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों द्वारा सरलता से निर्वचन किया जा सके और उन्हें सहजता से उपलब्ध कराया जा सके।

हालांकि, अनुच्छेद 102(1)(क) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए संसद द्वारा कतिपय अधिनियमितियां पारित की गई थीं फिर भी आमतौर पर यह महसूस किया गया कि इन अधिनियमों में से किसी से भी स्थिति की अपेक्षाएं व्यापक रूप से पूरी नहीं हुईं।[6] इस पृष्ठभूमि में तथा संसद सदस्यों से अभ्यावेदन प्राप्त होने पर, अध्यक्ष जी.वी. मावलंकर ने राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके 21 अगस्त, 1954 को पं. ठाकुर दास भार्गव के सभापतित्व में लाभ के पदों संबंधी समिति नियुक्त की थी, जिसके निम्नलिखित कार्य थे:

---

3. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 और संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा यथा प्रतिस्थापित अनुच्छेद 103 ।
4. *देवराव लक्ष्मण आनन्दे बनाम केशव लक्ष्मण बोरकर*, ए.आई.आर. 1958 बम्बई 314; साथ ही *देखिए हंसा जीवराज मेहता बनाम इंदूभाई बी. अमीन*, ई.एल.आर. 171 ।
5. विन्ध्य प्रदेश विधान सभा के सदस्यों *के मामले में*, 4 ई.एल.आर. 422 (431)।
6. ये अधिनियमितियां थीं: संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1950; संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1951; और निरर्हता निवारण (संसद तथा भाग-ग राज्य विधानमंडल) अधिनियम, 1953 ।

> सदस्यों की निरर्हता से संबंधित विभिन्न मामलों का अध्ययन करना और सिफारिशें करना ताकि सरकार उन पद्धतियों पर विचार कर सके, जिनके आधार पर सभा में व्यापक कानून लाया जा सके; और
>
> तथ्य, आंकड़े एकत्र करना और यह सुझाव देना कि इन मामलों से कैसे निपटा जाये।[7]

समिति (जिसे इसके पश्चात् भार्गव समिति कहा गया है) ने अपने प्रतिवेदन में टिप्पणी की थी कि साधारणतः संसद सदस्यों को ऐसी समितियों में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जो सलाहकार स्वरूप की हों और जो स्थानीय या लोकप्रिय दृष्टिकोण का ऐसे ढंग से प्रतिनिधित्व करती हों, जिनसे सरकारी दृष्टिकोण कारगर ढंग से प्रभावित हो सके। संसद सदस्य अपनी सदस्यता के कारण प्राधिकार और विश्वास के साथ कुछ कहने और कतिपय मामलों का प्रतिनिधित्व करने की स्थिति में होते हैं और उनके विचारों का अधिकारियों के दृष्टिकोणों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही यह भी महसूस किया गया कि ऊपर प्रकट किये गये विचार के अनुरूप संसद सदस्यों को ऐसी समितियों, आयोगों आदि में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जो उनकी स्वतंत्रता को खतरे में डालते हों या जो उन्हें ऐसी सत्ता या प्रभाव या ओहदा प्रदान करते हों जहां उन्हें सरकार से कुछ प्रश्रय प्राप्त होता है या वे स्वयं प्रश्रय प्रदान करने की स्थिति में हो जाते हैं।[8]

> समिति ने *अन्य बातों के साथ-साथ* एक व्यापक विधेयक पुरःस्थापित करने की सिफारिश की जिसमें ऐसी अनुसूचियां दी जाएं जिनमें ऐसे विभिन्न पदों का उल्लेख हो, जो निरर्हित न करते हों; जिनके लिए छूट दी जा सकती है और जो निरर्हित करते हैं।[9] भार्गव समिति ने महसूस किया कि चूंकि इस प्रकार की कोई अनुसूची विस्तृत अथवा पूर्ण नहीं हो सकती और नए निकायों तथा विद्यमान निकायों के मामलों में निरंतर संवीक्षा करनी होगी, इसलिए इस प्रकार की निरंतर संवीक्षा करने के लिए एक स्थायी संसदीय समिति नियुक्त की जानी चाहिए।[10]

भार्गव समिति की सिफारिशों के अनुसरण में सरकार ने 5 दिसम्बर, 1957 को लोक सभा में संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक पुरःस्थापित किया। इसे सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा गया तथा इसका प्रतिवेदन 10 सितम्बर, 1958 को लोक सभा में प्रस्तुत किया गया।

यथा पुरःस्थापित विधेयक में भार्गव समिति द्वारा संस्तुत कोई अनुसूची नहीं थी। संयुक्त समिति ने यह महसूस किया कि अधिनियमिति में एक ऐसी अनुसूची होनी चाहिए, जिसमें ऐसी सरकारी समिति का उल्लेख हो जिसकी सदस्यता निरर्हित होगी। तदनुसार, संयुक्त समिति ने विधेयक में एक अनुसूची सम्मिलित करने का प्रस्ताव किया जिसके भाग-1 में ऐसी

---

7. लाभ के पदों संबंधी समिति (भार्गव समिति) का प्रतिवेदन भाग-1, पृ. 2 ।
8. *पूर्वोक्त*, भाग-1, पृ. 33 । साथ ही *देखिए* लोक सभा सचिवालय; आफिस ऑफ प्राफिट अंडर द गवर्नमेंट: ए डिस्क्वालिफिकेशन फॉर मेम्बरशिप ऑफ पार्लियामेंट, 1997 ।
9. *पूर्वोक्त*, पृ. 39 ।
10. *पूर्वोक्त*, पृ. 38 ।

समितियों का उल्लेख किया गया था जिनकी सदस्यता निरर्हित होगी और भाग–2 में उन समितियों का उल्लेख था जिनके सभापति, सचिव अथवा स्थायी या कार्यकारी समिति के सदस्यों के पद निरर्हित करेंगे। संयुक्त समिति ने भार्गव समिति की इस सिफारिश को दोहराया कि अनुसूची की निरंतर संवीक्षा करने तथा नए पदों की जांच करने के लिए एक स्थायी संसदीय समिति नियुक्त की जाये।[11]

> संसद द्वारा आगे यथा संशोधित तथा पारित विधेयक पर 4 अप्रैल, 1959 को राष्ट्रपति ने अपनी अनुमति दी।[12]

सदस्यता के लिए निरर्हता का आधार यथासंभव व्यापक होना चाहिए, इस मूलभूत सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए इस विषय पर विधि को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों के रूप में तीन मुख्य सिद्धांत इस प्रकार हैं:

> कतिपय गैर–मंत्रालयी पदों की सभा की सदस्यता के साथ अननुरूपता (जिसमें किसी सदस्य के उसके निर्वाचकों के साथ संबंध तथा उनके प्रति कर्त्तव्यों के प्रश्न को सम्मिलित माना जाना चाहिए);
>
> सभा के सदस्य होने के नाते पदधारकों के अनुचित अनुपात से सभा पर कार्यपालिका के नियंत्रण अथवा प्रभाव को सीमित करने की आवश्यकता; तथा
>
> संसद द्वारा कार्यपालिका के नियंत्रण को सुनिश्चित करने के प्रयोजन से कतिपय मंत्रियों के सभा के सदस्य होने की आवश्यक शर्त।[13]

प्रत्येक लोक सभा के कार्यकाल के लिए लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति का गठन किया जाता है, जो उस संयुक्त समिति, जिसे संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक, 1957 सौंपा गया था, द्वारा जांच की गई समितियों के बाद की उन सभी ऐसी समितियों की रचना और स्वरूप की जांच करती है जिसकी सदस्यता किसी व्यक्ति को संसद का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्ह कर सकती है और इस संबंध में आवश्यक सिफारिशें करती है।[14]

---

11. संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक, 1957, संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, पृ. vii।
12. संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 द्वारा इस विषय से संबंधित पूर्व अधिनियमितियों का निरसन हो गया। इसके अतिरिक्त संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 जो विभिन्न पदों को अनुच्छेद 102(1)(क) और 191(1)(क) की परिधि से बाहर करता है, विशिष्ट अधिनियमितियों में उद्‌घोषणात्मक खंडों के रूप में इस प्रभाव के विशिष्ट प्रावधान हैं कि उसके अन्तर्गत सृजित पद इन अनुच्छेदों के अर्थ के अन्तर्गत लाभ के पद नहीं माने जाते। इनमें से कुछ विनियमितियों में कॉफी अधिनियम, 1942, रबड़ अधिनियम, 1947, प्रेस परिषद अधिनियम, 1978 और वक्फ अधिनियम, 1995 शामिल हैं। (पी.डी.टी. आचारी "द लॉ आन आफिसेज ऑफ प्राफिट", 'द पार्लियामेंटेरियन', 2007/अंक–तीन, भारत, पृ. 39)।
13. क्राउन के अधीन लाभ के पदों संबंधी प्रवर समिति का प्रतिवेदन, एच.सी. 1941, पृ. 13।
14. लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति (जे.सी.ओ.पी) का गठन सर्वप्रथम दूसरी लोक सभा के दौरान अगस्त, 1959 में किया गया था। इसके बाद जून, 1962 (तीसरी लोक सभा),

इस समिति के गठन से पहले, यह सरकार पर छोड़ दिया गया कि वह इस संबंध में विधेयक, जो संसद के समक्ष लाया गया, में आवश्यक प्रस्ताव करे। कोई पद लाभ का पद है या नहीं, इस बात की जांच करने के लिए सरकार द्वारा ध्यान में रखा गया मानदंड वे परिलब्धियां थीं जो किसी सदस्य को ऐसा पद धारण करने पर प्राप्त होतीं। जहां तक उस पद को धारण करने वाले व्यक्ति के ओहदे, सत्ता अथवा प्रश्रय जैसे मामले के अन्य पहलुओं का संबंध है, स्थिति संतोषजनक नहीं है क्योंकि यह भी ऐसे संगत कारक हैं जिन पर विचार किया जाना था भले ही उससे धारक को कोई आर्थिक लाभ न हो। इसके अलावा इस विषय के संबंध में कोई भी अधिनियम कभी भी इतना व्यापक नहीं हो सकता जितना कि उसे होना चाहिए, हालांकि उससे किसी तारीख विशेष की स्थिति स्पष्ट हो सकती है। उसके बाद ऐसे मामले उठ सकते हैं जिनकी संवीक्षा करने की आवश्यकता हो सकती है। भार्गव समिति ने यह प्रस्ताव किया था कि इस मामले को कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार से निकाल कर एक ऐसी संसदीय समिति में निहित किया जाना चाहिए जो इस पर राजनैतिक एवं विधिक दोनों दृष्टि से समग्र रूप से विचार कर सके। तदनुसार, लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति द्वारा स्थिति की निरंतर संवीक्षा की जाती रही तथा उसने इस विषय के बारे में समय-समय पर सिफारिशें कीं।[15]

समिति द्वारा की गई कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार हैं:

> निरर्हता के बारे में संसद सदस्यों में व्याप्त आशंका के निराकरण के लिए सरकार को सभी सरकारी उपक्रमों, चाहे वे उसके पूर्ण अथवा आंशिक स्वामित्व वाले हों, को यह अनुदेश[16] जारी करने चाहिए कि वे अपने नियमों में यह उपबंध करें कि उनके

जून 1967 (चौथी लोक सभा), 1971 (पांचवीं लोक सभा), दिसम्बर 1980 (सातवीं लोक सभा), मई, 1985 (आठवीं लोक सभा), मई, 1990 (नौवीं लोक सभा), सितम्बर 1991 (दसवीं लोक सभा), अगस्त, 1996 (ग्यारहवीं लोक सभा) जुलाई, 1998 (बारहवीं लोक सभा), दिसम्बर 1999 (तेहरवीं लोक सभा), अगस्त 2004 (चौदहवीं लोक सभा) और दिसम्बर 2009 (पंद्रहवी लोक सभा) में इसका गठन किया गया। (छठी लोक सभा के दौरान ऐसी किसी समिति का गठन नहीं किया गया था।)

15. लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति (जे.सी.ओ.पी.) के विस्तृत कार्यकरण के लिए, *देखिए* अध्याय 30—'संसदीय समितियां'। संयुक्त समिति ने दूसरी और तीसरी लोक सभा के कार्यकाल के दौरान पांच-पांच प्रतिवेदन, चौथी लोक सभा के दौरान सात प्रतिवेदन, पांचवीं लोक सभा के दौरान उन्नीस प्रतिवेदन, सातवीं लोक सभा के दौरान बारह प्रतिवेदन, आठवीं लोक सभा के दौरान नौ प्रतिवेदन, दसवीं लोक सभा के दौरान तेरह प्रतिवेदन, ग्याहरवीं लोक सभा के दौरान तीन प्रतिवेदन, बारहवीं लोक सभा के दौरान एक प्रतिवेदन तेरहवीं लोक सभा के दौरान आठ प्रतिवेदन और चौदहवीं लोक सभा के दौरान ग्यारह प्रति प्रस्तुत किए। पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान ग्यारह प्रतिवेदन प्रस्तुत किए गए।

16. भारत सरकार ने वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) के दिनांक 5.9.1960 के कार्यालय ज्ञापन सं. एफ- 6(26)—ई. IV/39 के तहत ऐसे अनुदेश जारी किए।

लिए कार्य करने वाले संसद सदस्य, संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 2 (क) में यथापरिभाषित प्रतिपूरक भत्ते से भिन्न किसी धनराशि के हकदार नहीं होंगे।[17]

संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की अनुसूची में उन निकायों का भी वर्णन किया जाना चाहिए जिनकी सदस्यता ग्रहण करने पर कोई व्यक्ति संसद की किसी भी सभा का सदस्य चुने जाने के लिए अथवा सदस्य होने के लिए निरर्ह हो जायेगा।[18]

संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की अनुसूची के विद्यमान भाग-1 और भाग-2 को जोड़कर एक ही भाग बना दिया जाए ताकि उनमें वर्णित सभी निकायों के अध्यक्षों (चेयरमैनों) और सचिवों को निरर्हता की छूट से अलग रखा जा सके। अधिनियम की अनुसूची में एक नया भाग जोड़ा जाये जिसमें उन निकायों को विनिर्दिष्ट किया जाए, जिनके अकेले सचिवों को ही निरर्हता से छूट प्राप्त नहीं है।[19]

21 दिसम्बर, 1973 को सरकार ने लोक सभा में संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 1973 पुर:स्थापित किया था।[20] विधेयक का आशय संयुक्त समिति द्वारा दूसरी, तीसरी और चौथी लोक सभाओं के दौरान की गई सिफारिशों को कार्यान्वित करना था। विधेयक को सभा में पुर:स्थापित किये जाने से पूर्व उस पर संयुक्त समिति द्वारा विचार किया गया था और उसे समिति की टिप्पणियों के आलोक में संशोधित किया गया था। विधेयक को लोक सभा ने 17 दिसम्बर, 1974 को पारित कर दिया था[21] और उसे 18 दिसम्बर, 1974 को राज्य सभा के पास भेज दिया था। 18 जनवरी, 1977 तक विधेयक राज्य सभा में लंबित था जब लोक सभा भंग हो गई और संविधान के अनुच्छेद 107(5) के अंतर्गत विधेयक व्यपगत हो गया।

19 मई, 1983 को पुन: विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय ने संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 1983 का प्रारूप प्रेषित किया जिसका आशय लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति के 11 अगस्त, 1982 तक प्रस्तुत किए गए चालीस प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों को कार्यान्वित करना था। संयुक्त समिति ने प्रारूप विधेयक पर विचार किया और 27 अप्रैल, 1984 को तत्संबंधी अपने दसवें प्रतिवेदन को स्वीकार किया जिसे 7 मई, 1984 को लोक सभा में प्रस्तुत किया गया था तथा राज्य सभा के पटल पर रखा गया था। विधेयक का आशय अन्य बातों के साथ-साथ एक के बजाय दो अनुसूचियों को

---

17. प्रथम प्रतिवेदन (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति-दूसरी लोक सभा), पृ. viii, पैरा 17-18।
18. तीसरा प्रतिवेदन (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति-दूसरी लोक सभा), पृ. 2, पैरा 10 ।
19. प्रथम प्रतिवेदन (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति-तीसरी लोक सभा) पृ. 4, पैरा 18 ।
20. *लो.स.वा.वि.,* 21.12.1973, पृ. 146-47 ।
21. *लो.स.वा.वि.,* 17.12.1974, पृ. 177 ।

प्रतिस्थापित करके और निरर्हता के लिए अनुशंसित विभिन्न निकायों को शामिल करके मूल अधिनियम की धारा 3 में संशोधन करना था। तथापि, प्रारूप विधेयक को अभी तक संसद में पुर:स्थापित नहीं किया गया है।

समिति के दूसरे प्रतिवेदन (दसवीं लोक सभा) में की गई सिफारिशों को प्रभावी बनाने के लिए संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 में 1993 में संशोधन किया गया था।

अधिनियम में 1999,[22] 2000[23] और 2006[24] में आगे और संशोधन भी किए गए थे।

संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 2013 में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के पदों को पृथक रूप से संरक्षण प्रदान करने का उपबंध किया गया, जिन्हें इससे पहले एक ही आयोग अर्थात् राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग के तहत् संरक्षण प्रदान था और इसे राज्य सभा और लोक सभा में क्रमश: 22 अगस्त, 2013 और 6 सितम्बर 2013 को पारित किया गया।

सामान्यत: 'पद' शब्द से सरकारी अथवा गैर-सरकारी वियोजन का उपयोग करने तथा उसके अंतर्गत फीस और परिलब्धियां लेने का अधिकार अभिप्रेत है।[25]

'लाभ का पद' शब्दों का तात्पर्य केवल ऐसे पद से है, जिसे आय अथवा लाभ प्राप्त होता है। 'पद' शब्द[26] पर 1922 से ही न्यायपालिका में विचार किया जाता रहा है। 'पद' अथवा 'नियोजन' शब्द को न्यायमूर्त्ति राउलत्त ने जीविका की स्थायी महत्वपूर्ण स्थिति के रूप में परिभाषित किया था- जिसका भरने वाले व्यक्ति, जो उस पर कार्य करता रहा है और क्रमिक धारकों द्वारा पदप्राप्ति में भरा गया था, से स्वतंत्र अस्तित्व था।

सामान्यत: 'लाभ' शब्द का अर्थ किसी भी लाभ, प्रसुविधा अथवा उपयोगी परिणामों से है। साधारणत: इसके निर्वचन में इसका आर्थिक लाभ निकाला जाता है लेकिन कुछ मामलों में आर्थिक लाभ के अलावा अन्य लाभ भी इसके अर्थ के अंतर्गत आ सकते हैं। 'लाभ का पद' एक ऐसा पद है जिसके साथ प्रश्रय का कतिपय अधिकार जुड़ा होता है अथवा जिसमें धारक कार्यकारी कृत्य करने का हकदार होता है अथवा जो पदधारक को गरिमा, सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान करता है।

'लाभ का पद' शब्दों को संविधान अथवा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 अथवा संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 में स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है

---

22. संसद में मान्यताप्राप्त दलों तथा समूहों के नेता और मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) संशोधन अधिनियम, 1998 की धारा 5 ।
23. संसद में मान्यताप्राप्त दलों तथा समूहों के नेता और मुख्य सचेतक (प्रसुविधाएं) संशोधन अधिनियम, 2000 की धारा 5 ।
24. संसद (निर्रहता निवारण) संशोधन अधिनियम, 2006 ।
25. स्ट्राउड की जूडिशल डिक्शनरी (1953 संस्करण)।
26. ग्रेट वेस्टर्न रेलवे कंपनी बनाम बेटर (1922) कर मामले 231.

क्योंकि सरकार में विद्यमान और इसके पश्चात् सृजित किये जाने वाले सभी प्रकार के भिन्न-भिन्न पदों का समावेश करने वाली सर्वमान्य परिभाषा तैयार करना सरल नहीं है। मोटे तौर पर, यह इस बात का संकेत करता है कि सरकार को ऐसी स्थिति में नहीं होना चाहिए कि वह किसी सदस्य को ऐसा पद देकर, जहां वह अपने प्राधिकार का प्रयोग कर सके और जिसे ग्रहण करके उसे लगे कि वह एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है भले ही उसे कोई आर्थिक पारिश्रमिक प्राप्त न हो, विचलित कर सके।[27] तथापि, न्यायालयों और अन्य प्राधिकारियों ने अपने निर्णयों में इस संबंध में समय-समय पर कतिपय स्पष्ट मानदंड प्रतिपादित किये हैं और इन्हें इस प्रकार दर्शाया गया है:

> किसी व्यक्ति को निरर्ह ठहराये जाने से पूर्व तीन बातें साबित होनी चाहिएं—कि वह कोई पद धारण करता है; कि वह लाभ का पद है; और एक वह भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन है।[28]
>
> निरर्हता के लिए किसी मामले को प्रस्तुत करने हेतु केवल 'लाभ का तत्व' अपने आप में पर्याप्त नहीं है। पहले यह साबित करना होगा कि उसने जो पद धारण किया हुआ था वह एक 'पद' है।
>
> इसके अतिरिक्त, अनिवार्य आवश्कता यह है कि उम्मीदवार स्वयं 'पद' धारण करता है। 'पद' को बेनामी रूप से धारण नहीं किया जा सकता है।[29]

'लाभ का पद' से नियोजन तथा उससे जुड़ी फीस और परिलब्धियां अभिप्रेत हैं।[30] अत:, यदि किसी पद से वेतन जुड़ा है तो वह तुरन्त और निर्विवाद रूप से उस पद को 'लाभ का पद' बना देता है।[31]

किसी पद के 'लाभ का पद' होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस पद पर किसी प्रकार की नियमित आय हो, न ही यह आवश्यक है कि पदधारक को वास्तव में लाभ हो; केवल यही पर्याप्त है कि पद धारण करने वाले से उस पद से लाभ प्राप्त करने की युक्तिसंगत आशा की जा सकती है।[32]

---

27. *देखिए* स.वा.वि., (लो.स.) 24.12.1953, का. 2100-01 ।
28. *देवराव लक्ष्मण आनन्दे बनाम केशव लक्ष्मण बोरकर,* उद्धृत कृति; साथ ही *देखिए भैरोंलाल बनाम डूंगरसीदास,* ए.आई.आर. 1959 राजस्थान 250; और *एस. उमराव सिंह बनाम दरबारा सिंह,* ए.आई.आर. 1968 पंजाब एंड हरियाणा 450 ।
29. *युगल किशोर सिन्हा बनाम नागेन्द्र प्रसाद यादव,* ए.आई.आर. 1964 पटना 543 ।
30. *बिजेय सिंह बनाम नरबदा चरण लाल,* 2 ई.एल.आर. 426; साथ ही *देखिए रावन्ना बनाम कग्गूडप्पा,* ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 653 (657)।
31. भार्गव समिति का प्रतिवेदन, भाग-1 पृ. 11 ।
32. *ठाकुर दाऊ सिंह बनाम राम कृष्ण राठौर,* 4 ई.एल.आर. 34 ।

इस संदर्भ में राजस्थान उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया:—

> किसी पद के लाभ का पद होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस पद से कोई निश्चित वेतन जुड़ा हो। अगर पद धारण करने वाला अपने पद से जुड़े कृत्यों का निर्वहन करने के लिए कोई फीस या पारिश्रमिक वसूल कर सकता है, तो यह माना जाएगा कि वह लाभ का पद धारण करता है।[33]

वर्तमान संदर्भ में 'लाभ' शब्द का अर्थ अनिवार्य रूप से नकद पारिश्रमिक नहीं है लेकिन निश्चित रूप से इसका अर्थ ऐसे किसी प्रकार के लाभ या अभिलाभ से है जो मूर्त या बोधगम्य है। इसलिए केवल किसी समिति जिससे कोई पारिश्रमिक जुड़ा हुआ नहीं है, का सदस्य होने के फलस्वरूप किसी व्यक्ति को प्राप्त होने वाला प्रभाव अनुच्छेद 102 या 191 के अर्थ के अंतर्गत लाभ नहीं है और ऐसी समिति का सदस्य होना उसे संसद सदस्य होने से निरर्ह नहीं करेगा।[34]

निरर्हता से ग्रस्त होने के प्रयोजनार्थ किसी पद को 'लाभ का पद' नियत करने के लिए केवल पद से सम्बद्ध प्रतिष्ठा और ऐसे फायदे पर्याप्त नहीं होंगे। आर्थिक लाभ अनिवार्य तत्व है और एक बार आर्थिक लाभ होने या हो सकने पर उसकी मात्रा महत्वपूर्ण नहीं है।[35]

'लाभ का पद' शब्दों का अभिप्राय ऐसे पद से है जिसको धारण करने वाला व्यक्ति लाभ अर्जित करने में सक्षम है या जिससे किसी व्यक्ति द्वारा लाभ अर्जित करने की युक्तिसंगत आशा की जा सके। वास्तविक रूप से लाभ अर्जित करना आवश्यक नहीं है। लाभ का अभिप्राय अभिलाभ या किसी ठोस लाभ से है और ऐसे लाभ की राशि महत्वपूर्ण नहीं है।[36]

'लाभ का पद' की अनिवार्य विशेषताएं हैं: इसमें राज्य द्वारा किसी न किसी रूप में कोई नियुक्ति शामिल है; इसमें ऐसी परिलब्धियां शामिल हैं जिनका भुगतान अधिकांशत: आवधिक रूप से किया जा सकता है; यह सीमित अवधि के लिए है; यह समाप्त किया जा सकता है; यह समनुदेशनीय नहीं है; यह दाय योग्य नहीं है; और इस पद के धारक को निश्चित रूप से विधि-सक्षम होना चाहिए।[37]

परिलब्धियां वेतन, मानदेय, फीस, दैनिक भत्तों, यात्रा भत्ता, व्यय की प्रतिपूर्ति या प्रतिपूर्ति भत्ते के रूप में हो सकती हैं।

---

33. *होतीलाल बनाम राय बहादुर,* 15 ई.एल.आर. 55 ।
34. *चंदर नाथ बनाम कुँवर जसवंत सिंह,* 3 ई.एल.आर. 1947 ।
35. *शिवराम केवरान्थी बनाम वेंकटरामना गौड़ा,* 3 ई.एल.आर. 187, साथ ही *देखिए उपेन्द्र लाल बनाम श्रीमती नारायणी देवी,* ए.आई.आर. 1968 मध्य प्रदेश 89 ।
36. *देवराव लक्ष्मण आनंदे बनाम केशव लक्ष्मण बोरकर,* उद्धृत कृति।
37. निर्वाचन अधिकरण अजमेर, *गुलाम चंद चोरड़िया बनाम ठाकुर नारायण सिंह* मामले में 6 ई.एल. आर. 397 ।

> जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यदि किसी पद के साथ वेतन जुड़ा है, तो वह वेतन उस पद को तुरन्त और निर्विवाद रूप से 'लाभ का पद' बना देता है।[38]
>
> अगर 'बैठक फीस' या 'हाजिरी फीस' के रूप में प्रतिफल का भुगतान किया जाता है, तो दैनिक भत्ता होने की वजह से यह 'लाभ' बन जाता है, क्योंकि यह किसी वास्तविक व्यय की पूर्ति करने के लिए तात्पर्यित नहीं है। ऐसा प्रतिफल या पारिश्रमिक तब भी 'लाभ' माना जाता है जब विस्तृत लेखा के बाद यह पाया जाए कि वास्तव में संबंधित सदस्य को कोई वित्तीय लाभ प्राप्त नहीं हुआ है।[39]

यदि कोई व्यक्ति वास्तविक व्यय की पूर्ति करने के लिए आवश्यक धन से ज्यादा धन नहीं लेता है तो यात्रा भत्ते को निरर्हता के रूप में नहीं माना जाता है। मकान किराया भत्ता और वाहन भत्ता लाभ नहीं है क्योंकि इन भत्तों का उपयोग मकान किराये का भुगतान करने और वाहन शुल्कों की पूर्ति करने के लिए किया जाता है; इससे उस व्यक्ति को कोई आर्थिक लाभ नहीं होता है जिसे उसका भुगतान किया जाता है। अगर दैनिक भत्ते की राशि इतनी है जो कि आय का स्रोत नहीं बन सकती है, तब उसे निरर्हता नहीं माना जायेगा।[40]

यात्रा भत्ते/दैनिक भत्ते के अतिरिक्त 25 रुपये 'बैठक फीस' के भुगतान को 'लाभ' माना गया है[41] बैठक फीस/दैनिक भत्ते के रूप में देय राशि 'प्रतिपूर्ति भत्ते[42] से काफी कम होने पर भी, किसी पद को निरर्हता से छूट दिए जाने या न दिए जाने के बारे में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के संबंध में, लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति ने 'प्रतिपूर्ति भत्ते' के अतिरिक्त अन्य मानदण्डों पर भी ध्यान दिया है जैसे कि क्या पद के अंतर्गत कार्यपालिका तथा वित्तीय शक्तियों का उपयोग करना शामिल है या नहीं, जिसके द्वारा पदधारक प्रभाव का इस्तेमाल कर सकता है तथा प्रश्रय प्रदान कर सकता है।[43] यदि किसी पद का धारक ऐसे प्रभाव का इस्तेमाल करने तथा प्रश्रय प्रदान करने की स्थिति में नहीं है और 'प्रतिपूर्ति भत्ते' के अतिरिक्त कोई पारिश्रमिक पाने का भी हकदार नहीं है, तो वह ऐसा भत्ता प्राप्त करने के बाद निरर्ह नहीं माना जाता है।

---

38. भार्गव समिति का प्रतिवेदन, भाग-1, पृ. 11 ।
39. मुख्य निर्वाचन आयुक्त, विंध्य प्रदेश विधान सभा के सदस्यों के मामले में, 4 ई.एल.आर. 422।
40. भार्गव समिति का प्रतिवेदन, भाग-1, पृ. 11-12 ।
41. पांचवां प्रतिवेदन (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति–चौथी लोक सभा), पैरा 16 ।
42. प्रतिपूर्ति भत्ते का अर्थ किसी पद के धारक को दैनिक भत्ते (ऐसा भत्ता जो कि दैनिक भत्ते की उस राशि से ज्यादा नहीं है, जिसके लिए संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अधीन संसद सदस्य हकदार हैं) किसी वाहन भत्ते, मकान किराया भत्ते अथवा यात्रा भत्ते के रूप में देय ऐसी धनराशि से है जो कि उक्त पद के कृत्यों का निर्वहन करने में उसके द्वारा किए गए किसी व्यय की प्रतिपूर्ति के उद्देश्य से दी गई है– *देखिए* संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 धारा 2 (क) ।
43. प्रथम प्रतिवेदन (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति–पांचवीं लोक सभा), पैरा 26 ।

लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति निम्नलिखित मानदंड का पालन इस प्रश्न का निश्चय करने के लिए करती आ रही है कि किसी व्यक्ति को संसद सदस्य चुने जाने के लिए तथा सदस्य होने के लिए किन पदों पर रहने से निरर्ह माना जाना चाहिए और किन पदों पर रहने से निरर्ह नहीं माना जाना चाहिए:

(i) क्या पदधारक संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 2(क) में यथा परिभाषित 'प्रतिपूर्ति भत्ता' से भिन्न कोई अन्य पारिश्रमिक जैसे बैठक फीस, मानदेय, वेतन आदि ले रहा है; [इस प्रकार सिद्धांत यह है कि कोई सदस्य केवल उतना ही ले रहा है जितना कि वास्तविक व्यय होता है तथा उससे उसे कोई आर्थिक लाभ नहीं मिलता है तो उस पर निरर्हता लागू नहीं होगी]।

(ii) क्या वह निकाय, जिसमें पद धारण किया हुआ है, कार्यकारी, विधायी अथवा न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है अथवा उसे निधियों के वितरण, भूमि के आवंटन, लाइसेंस आदि जारी करने की शक्तियां प्रदत्त हैं अथवा उसे नियुक्ति तथा छात्रवृत्ति प्रदान करने आदि की शक्तियां प्राप्त हैं; और

(iii) क्या वह निकाय, जिसमें पद धारण किया हुआ है, प्रश्रय के माध्यम से प्रभाव अथवा शक्ति का प्रयोग करता है।

यदि उपर्युक्त मानदंडों में से किसी का भी उत्तर हाँ में है तो वह पद निरर्हित कर देगा।[44]

किसी व्यक्ति की ऐसे पद पर नियुक्ति, जिससे कुछ पारिश्रमिक प्राप्त होता है, उसे निरर्हित कर देगी, चाहे वह संदाय स्वीकार करता है अथवा नहीं।[45]

'पद' शब्द आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं देता है कि उस व्यक्ति से अलग यह पद विद्यमान होना ही चाहिए जिसे वह धारण कर सकेगा। ऐसे भी मामले हो सकते हैं जिनमें कतिपय व्यक्तियों के विशेष ज्ञान, प्रतिभा, कौशल अथवा अनुभव का उपयोग करने के प्रयोजन से ऐसे पदों का सृजन किया जाता है जो केवल उतनी अवधि तक ही अस्तित्व में रहते हैं जब तक कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा उन्हें धारण किया जाता है। यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल होगा कि ऐसे व्यक्ति पदों के धारक नहीं हैं। अत: केवल यह तथ्य कि किसी व्यक्ति द्वारा धारित कोई पद उस पदधारक द्वारा पद त्यागने के साथ ही समाप्त हो जायेगा अथवा उस पद पर कोई अन्य व्यक्ति नियुक्त नहीं किया जा सकता, यह निष्कर्ष निकालने का कोई आधार नहीं है कि उस व्यक्ति ने 'पद' धारण नहीं किया है।[46]

---

44. 10वां प्रतिवेदन (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति—सातवीं लोक सभा), पैरा 10.5 और 10.6 ।
45. भार्गव समिति का प्रतिवेदन, भाग-1 पृ. 13 ।
46. *देवराव लक्ष्मण आनंदे बनाम केशव लक्ष्मण बोरकर*, उद्धृत कृति।

इस संबंध में उच्चतम न्यायालय की टिप्पणी निम्न प्रकार है:

> 'पद' शब्द के संदर्भ के अनुसार विभिन्न अर्थ हैं। अनुच्छेद 102(1) (क) अथवा 191(1) (क) में आए 'इसका धारक' शब्द इस बात के द्योतक हैं कि ऐसा कोई पद अवश्य है जिसका अस्तित्व पदधारक से अलग है। इसके अलावा, यह तथ्य कि अनुच्छेद 191 द्वारा किसी राज्य के विधानमंडल को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी लाभ के पद की उसके धारक को निरर्हित न करने के लिए घोषणा कर सकता है, इससे पद के धारक से अलग किसी पद की विद्यमानता की पुष्टि होती है। दूसरे शब्दों में, राज्य के विधानमंडल को यह घोषित करने का अधिकार है कि किसी विशिष्ट प्रकार अथवा नाम का लाभ का कोई पद उसके धारक को निरर्हित नहीं करेगा तथा किसी लाभ के पद का विशिष्ट धारक भी निरर्हित नहीं किया जायेगा।[47]

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि आकाशवाणी द्वारा अंशकालिक संवाददाता के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति को किसी पद पर नियुक्ति के रूप में नहीं माना जायेगा, जहां उसे उसकी वैयक्तिक हैसियत में कुछ समय के लिए अंशकालिक संवाददाता के कर्तव्य सौंपे गये थे तथा उसके नियोजन की समाप्ति के पश्चात् किसी भी अन्य व्यक्ति को अंशकालिक संवाददाता नियुक्त नहीं किया गया था।[48]

कोई व्यक्ति केवल तभी निरर्हित होता है जब वह भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन लाभ का कोई पद धारण करता है।[49] यदि पद उक्त सरकार के नियंत्रण के अध्यधीन किसी स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकरण के अधीन धारण किया गया है, तो ऐसी कोई निरर्हता लागू नहीं होती है। सांविधिक निगमों के अधीन पद धारण करने का तात्पर्य अनिवार्यत: यह नहीं है कि सरकार के अधीन पद धारण किया गया है, भले ही निगमों की प्रारंभिक पूंजी सरकार द्वारा प्रदान की गई हो, निगम के सदस्यों की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती हो और निगमों के क्रियाकलापों के नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण की व्यापक शक्तियां सरकार के पास ही क्यों न हों।[50]

तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि ए.के. भट्टाचार्य के मामले[51] में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित करते समय कि क्या स्थानीय निकाय का कोई पद लाभ का पद है या नहीं, स्थानीय निकाय पर सरकार के नियंत्रण के परिमाण और स्वरूप पर बल दिया है।

अनुच्छेद 102(1)(क) के उपबंध के पीछे सिद्धांत यह है कि किसी निर्वाचित सदस्य के कर्तव्यों और हित के बीच कोई विवाद न हो। यह निर्णय लेने के लिए कि क्या किसी

---

47. *श्रीमती कांता कथूरिया बनाम मानक चन्द सुराना,* ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 694 ।
48. *ब्रह्मदत्त बनाम परिपूर्णानंद पेनुली,* ए.आई.आर. 1972, इलाहाबाद 340 ।
49. अनुच्छेद 102(1)(क)।
50. *नारायणस्वामी नायडू बनाम कृष्ण मूर्ति* मामले में मद्रास उच्च न्यायालय, 14 ई.एल.आर. 21 ।
51. *अशोक कुमार भट्टाचार्य बनाम अजय विश्वास,* ए.आई.आर. 1985, एस.सी. 211 ।

स्थानीय प्राधिकरण अथवा सरकार के नियंत्रणाधीन किसी अन्य प्राधिकरण के कर्मचारी अनुच्छेद 102(1)(क) के प्रयोजन के लिए सरकार के अधीन लाभ के पदधारक बन जाते हैं, कर्मचारी के ऊपर सरकार के नियंत्रण के परिमाण और स्वरूप का आकलन प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए ताकि उसके निजी हितों और सरकार के कर्तव्यों के बीच संभावित विवाद से बचा जा सके।

अनुच्छेद 102(1)(क) जैसे उपबंधों को अधिनियमित करने का उद्देश्य यह है कि कोई व्यक्ति, जो संसद अथवा किसी विधानमंडल के लिए निर्वाचित हुआ है, अपने कर्तव्यों का निर्भीकतापूर्वक निर्वहन करने के लिए स्वतंत्र रहे तथा उस पर किसी प्रकार का सरकारी दबाव न पड़े। किसी स्थानीय प्राधिकरण पर सरकार के नियंत्रण के परिमाण का आकलन किया जाना चाहिए ताकि कर्तव्य तथा हित के बीच विवाद की संभावना को समाप्त किया जा सके और निर्वाचित निकायों की शुचिता को बनाए रखा जा सके।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया है कि यह आवश्यक नहीं है कि सभी निश्चायक कारक संयुक्ततः मौजूद रहें। विवेचनात्मक परिस्थितियां ही निर्णायक सिद्ध हुई हैं न कि सकल कारक। एक व्यावहारिक दृष्टिकोण ही युक्तिसंगत निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मार्गदर्शक होना चाहिए, न कि पांडित्य से परिपूर्ण कसौटियां।[52]

उच्चतम न्यायालय ने अपने अनेक निर्णयों[53] में ऐसे परीक्षण निर्धारित किए हैं जिनसे यह पता चलता है कि कोई प्रश्नगत पद सरकार के अधीन पद है अथवा नहीं और वह लाभ का पद है या नहीं। ये परीक्षण हैं: (i) क्या सरकार नियुक्ति करती है; (ii) क्या सरकार के पास पदधारक को हटाने अथवा पदच्युत करने का अधिकार है; (iii) क्या पारिश्रमिक का भुगतान सरकार द्वारा किया जाता है; (iv) पदधारक के कृत्य क्या हैं—क्या वह उनका निर्वहन सरकार के लिए करता है; और (v) क्या उन कृत्यों के निष्पादन पर सरकार का कोई नियंत्रण है?[54]

सरकार के अधीन लाभ के पद का पदधारक और सरकार के अधीन पद अथवा सेवा को पदधारक के बीच अंतर किया जाना चाहिये।

यह तय करने के लिए कि क्या कोई पद सरकार के अधीन है अथवा नहीं, यह देखना आवश्यक नहीं है कि क्या सरकार के पास पदधारक पर कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई करने अथवा उसका पर्यवेक्षण करने की शक्तियां हैं।[55]

---

52. *मधुकर जी.ई. पानक्कर बनाम जसवन्त चोबीदास राजन,* ए.आई.आर. 1976, एस.सी. 2283 ।

53. (क) मौलाना अब्दुल शाकूर बनाम रिखब चंद तथा अन्य एस.सी.आर (1958); एम रामप्पा बनाम संगप्पा तथा अन्य एस.सी.आर (1959); गुरु गोविन्द बसु बनाम शंकरी प्रसाद घोषाल तथा अन्य, एस.सी.आर(1964).

54. *शिवमूर्ति स्वामी बनाम संगन्ना,* (1971), एस.सी.सी. 870 ।

55. मुख्य निर्वाचन आयुक्त, विन्ध्य प्रदेश विधान सभा सदस्यों के *मामले में,* 4 ई.एल.आर. 422 ।

यह तय करने के प्रयोजन से कि क्या कोई लाभ का पद सरकार के अधीन है अथवा नहीं, मुख्यत: यह देखना होता है कि क्या सरकार को किसी व्यक्ति को उस पद पर नियुक्त करने और उसे उस पद से हटाने का अधिकार है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने एक मामले में यह टिप्पणी की:

> यह तय करने के लिए कि क्या कोई व्यक्ति सरकार के अधीन लाभ का पद धारण कर रहा है अथवा नहीं, किसी व्यक्ति को किसी लाभ के पद पर नियुक्त करने अथवा उसे उस पद पर बनाये रखने अथवा उसकी नियुक्ति को स्वविवेक से रद्द करने और सरकारी राजस्व से भुगतान करने की सरकार की शक्ति एक महत्वपूर्ण कारक है, हालांकि सरकारी राजस्व के अतिरिक्त किसी अन्य स्रोत से किया गया भुगतान इस प्रयोजन के लिए सदैव निर्णायक कारक नहीं होता है।[56]

इस विषय से संबंधित विधि की व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने एक अन्य मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> किसी व्यक्ति को सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने के लिए सरकारी सेवा में होना आवश्यक नहीं है और न ही उनके बीच मालिक और सेवक का संबंध होना आवश्यक है।
>
> यह तय करने के लिए कि क्या कोई व्यक्ति सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है अथवा नहीं, नियुक्ति ही निर्णायक कसौटी है। यह कहना सही नहीं है कि इस प्रश्न के निर्धारण में शामिल अनेक कारकों (अर्थात् नियुक्ति प्राधिकारी, नियुक्ति को रद्द करने की शक्ति प्राप्त प्राधिकारी, पारिश्रमिक निर्धारित करने वाला प्राधिकारी, वह स्रोत जिससे पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है तथा वह प्राधिकारी जिसे पद के कर्तव्यों को निर्वहन की रीति नियंत्रित करने तथा इस हैसियत से निदेश देने की शक्ति प्राप्त है) का एक साथ होना आवश्यक है और इनमें से प्रत्येक कारक सरकार की अधीनता दर्शाये और यदि इनमें से कोई एक भी कारक उपलब्ध नहीं है तो केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार के अधीन पद पर कार्यरत व्यक्ति की कसौटी संतोषजनक नहीं है। ऐसी परिस्थिति का विद्यमान होना कि पारिश्रमिक का भुगतान जिस स्रोत से किया जाता है वह सरकारी राजस्व नहीं है, एक अस्पष्ट कारक है और इस प्रश्न का निर्णायक कारक नहीं है। क्या परीक्षण कसौटियां किसी एक कारक अथवा किसी अन्य कारक के आधार पर हों, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। तथापि, यदि कई तत्व जैसे नियुक्त करने की शक्ति, पदच्युत करने की शक्ति, नियंत्रण करने तथा उस पद के कर्तव्यों का निर्वहन किस ढंग से किया जाना है, इस प्रयोजन से निदेश देने की शक्ति तथा

---

56. *मौलाना अब्दुल शकूर बनाम रिखब चन्द,* ए.आई.आर. 1958, एस.सी. 52 । साथ ही *देखिए हंसा जीवराज मेहता बनाम इन्दूभाई बी.अमीन,* 1 ई.एल.आर. 171; तथा *कृष्णप्पा बनाम नारायण सिंह,* 7 ई.एल.आर. 294 ।

पारिश्रमिक का निर्धारण करने की शक्ति, सभी किसी एक मामले में विद्यमान हैं तो यह तय माना जाना चाहिए कि वह अधिकारी इस तरह शक्ति प्राप्त प्राधिकारी के अधीन पद धारण करता है।[57]

निरर्हता के प्रयोजन के लिए लाभ का पद सरकार के अधीन होना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप यह पद सरकार से भिन्न कुछ निजी क्षेत्राधिकार के अधीन होने पर निरर्ह नहीं माना जायेगा।[58]

भारत के राष्ट्रपति द्वारा भेजे गये एक संदर्भ में मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने यह राय दी थी कि यदि पांडिचेरी के महापौर का पद, इस पद से जुड़े भत्तों के आधार पर लाभ का पद माने जाने योग्य है, तो भी इसे सरकार के अधीन लाभ का पद नहीं माना जा सकता। इसलिए पांडिचेरी विधान सभा के एक सदस्य को इस आधार पर सदस्य के रूप में निरर्ह घोषित नहीं किया गया था कि वह पांडिचेरी के महापौर के पद पर कार्यरत है।[59]

किसी प्राधिकारी द्वारा राज्य की उसकी कार्यकारी शक्ति जिसका वह प्रयोग करता है, की हैसियत से अन्यथा की गई नियुक्ति को सरकार द्वारा की गई नियुक्ति नहीं माना जा सकता है।[60] इस प्रकार, कुलपति का पद निरर्हता के अंतर्गत नहीं आता है। कुलपति की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा विश्वविद्यालय के कुलाधिपति की हैसियत से की जाती है, जो उसके कार्यपालिका प्रमुख के पद से भिन्न है और इस तरह कुलपति का पद न तो राज्य सरकार के अधीन है और न ही उसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की गयी मानी गई है।[61]

संसद तथा राज्य विधानमंडलों के सदस्यों को लाभ के पद का धारक नहीं माना गया है क्योंकि न तो उनकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है और न ही उन्हें सरकार द्वारा उनके पद से हटाया जा सकता है। यद्यपि वे अपना वेतन और भत्ते सरकारी राजस्व से प्राप्त करते हैं।[62]

लगभग ऐसे ही कारणों के आधार पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि उत्तर प्रदेश विधान परिषद का सभापति राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद धारण नहीं करता है।[63]

इसके अतिरिक्त लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति ने 15 जुलाई, 1988 को हुई अपनी बैठक में यह निर्णय लिया कि भारत सरकार के सभी मंत्रालयों और राज्य सरकारों से यह कहा जाये कि वे किसी संसद सदस्य को किसी सरकारी समिति/निकाय में नाम-निर्देशित करने से पूर्व लोक सभा के अध्यक्ष अथवा राज्य सभा के सभापति, जैसी भी स्थिति हो, से पूर्व अनुमोदन प्राप्त

---

57. *गुरु गोविंद बसु बनाम संकरी प्रसाद घोषाल,* ए.आई.आर. 1964, एस.सी. 254 ।

58. *गोपाल कुरूप बनाम सैमुअल अरूलप्पन पॉल,* 1961, के.एल.जे. 288 ।

59. ई.एल.आर. खंड XXVI, पृ. 297 ।

60. *ज्योति प्रसाद उपाध्याय बनाम कालका प्रसाद भटनागर,* ए.आई.आर 1962, इलाहाबाद 128 ।

61. *पूर्वोक्त* ।

62. *भोला नाथ बनाम कृष्ण चन्द्र गुप्ता,* 6 ई.एल.आर. 104; *रामनारायण रामगोपाल चमेदिया बनाम श्री रामचन्द्र जागोबा काडू,* ए.आई.आर. 1958, बम्बई 325 ।

63. *डी.एस. अवस्थी बनाम वीरेन्द्र स्वरूप,* ए.आई.आर. 1976, इलाहाबाद 26 ।

करें जब तक कि उस अधिनियम में, जिसके अंतर्गत ऐसी समिति/निकाय का गठन किया गया है, में किसी संसद सदस्य की नियुक्ति का उपबंध न किया गया हो अथवा जहां रबड़ बोर्ड, कॉफी बोर्ड, चाय बोर्ड आदि की भांति स्वयं संगत अधिनियम में ही संसद सदस्यों को निरर्हता से मुक्त रखने का उपबंध किया गया हो।

इस प्रकार, केन्द्रीय/राज्य सरकारों से उनके द्वारा गठित विभिन्न समितियों/निकायों में संसद सदस्यों से नामांकन के बारे में अध्यक्ष का अनुमोदन प्राप्त करने के अनुरोध प्राप्त होते हैं। इन अनुरोधों को समिति के सम्मुख इस दृष्टि से रखा जाता है कि क्या संबंधित सरकारी निकाय के सदस्य/निदेशक/अध्यक्ष का कोई पद सरकार के अधीन कोई लाभ का पद तो नहीं है जिसको ग्रहण करने से कोई सदस्य, संसद सदस्य बने रहने से निरर्ह हो जाता है। सरकार के अधीन लाभ के पद के बारे में सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण मांगे जाने से संबंधित अनुरोधों की भी समिति द्वारा जांच की जाती है और सदस्यों को समिति के निर्णयों से अवगत कराया जाता है।

किसी निर्धारक को निर्हित नहीं किया जाता है क्योंकि वह सरकार के अधीन लाभ का पद धारण नहीं करता है। वह तो केवल राज्य को न्याय प्रशासन में सहायता करता है।[64]

सहायता अनुदान प्राप्त विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्यरत कोई व्यक्ति सरकार के अधीन लाभ का पद केवल इस कारण से धारण नहीं करता कि विद्यालय अध्यापकों को वेतन और मंहगाई भत्ते के कुछ भाग का भुगतान करने के लिए सरकार से अनुदान प्राप्त करता है। यह तय करने के लिए कि कोई पद सरकार के अधीन है या नहीं, सबसे महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि क्या नियुक्ति और पदच्युति की शक्ति सरकार में निहित है या नहीं।[65]

यदि किसी पद विशेष का सरकार द्वारा सृजन किया जाता है और उसके पश्चात् उस पद के धारक को उसकी सेवाओं के लिए नकद भुगतान के बदले पारिश्रमिक में भूमि दी जाती है, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह सरकार के अधीन पद धारण कर रहा है क्योंकि ऐसे मामले में पहले पद का सृजन किया गया है और बाद में सरकार द्वारा यह तय किया गया है कि पदधारक को उसकी सेवाओं के लिए किस प्रकार पारिश्रमिक दिया जाये तथापि, यदि सरकार द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी सराहनीय सेवाओं को ध्यान में रखते हुए अथवा प्राप्तिकर्ता के लिए किसी अन्य व्यक्तिगत प्रतिफल के लिए भूमि दी गई है और यदि ऐसे मामले में उससे कुछ और सेवा की अपेक्षा की जाती है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह सरकार के अधीन कोई पद विशेष धारण कर रहा है। दूसरे मामले में वह प्राथमिक रूप से एक प्राप्तिकर्ता है और यदि उससे अपेक्षित सेवा, यदि कोई है, गौण है और वह उस अनुदान से जुड़ी हुई मात्र एक शर्त है।[66]

---

64. *ईशर सिंह बनाम मंजीत इन्दर सिंह,* 7 ई.एल.आर. 90; *फकीर चन्द बनाम प्रीतम सिंह,* 7 ई.एल. आर. 119; *किशनलाल लामरोर बनाम मदन सिंह,* 10 ई.एल.आर. 49 ।
65. *कृष्णप्पा बनाम नारायण सिंह,* 7 ई.एल.आर. 294 ।
66. *भैरोंलाल बनाम डूंगरसीदास,* ए.आई.आर 1959, राजस्थान 250 ।

किसी भारतीय रियासत का कोई भूतपूर्व शासक, जो संघ सरकार से प्रिवी पर्स के रूप में प्रति वर्ष कोई धनराशि प्राप्त करता है, तो अनुच्छेद 102 अथवा 191 के अर्थ के अनुसार सरकार के अधीन किसी लाभ के पद को धारण नहीं करता।[67]

कोई व्यक्ति विधानमंडल के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए निरर्ह होगा यदि वह अपना नामांकन पत्र प्रस्तुत करते समय सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है।[68] यह निरर्हता उसके अपने पद से बिना शर्त त्यागपत्र देने अथवा कार्य न करने से दूर नहीं होगी परन्तु नामांकन पत्र प्रस्तुत करने से पूर्व उसके त्यागपत्र को समुचित प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किये जाने पर ही दूर होगी।[69] यदि त्यागपत्र ऐसे प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत किया जाता है जो उसे स्वीकार करने के लिए सक्षम नहीं है तो यह निरर्हता दूर नहीं होगी। ऐसे मामले में त्यागपत्र की स्वीकृति अविधिमान्य है और अपना त्यागपत्र प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति को निरर्हित कर दिया जायेगा क्योंकि उसे पद धारण करते हुए ही माना जायेगा।[70]

ऐसे पद, जिनके कर्तव्य न्यूनाधिक स्थायी स्वरूप के होते हैं, के विपरीत ऐसे पद हैं जो अल्पकालिक, अस्थायी अथवा संविदात्मक स्वरूप के हैं। उदाहरणार्थ, सरकार द्वारा नियुक्त किए गए वकील; विशिष्ट परियोजनाओं के लिए सरकार के तकनीकी सलाहकार; लेख, गाइड, पुस्तकें आदि लिखने के लिए सरकार द्वारा अधिकृत लेखक, आकाशवाणी से प्रसारण करने वाले व्यक्ति कर्मचारी राज्य बीमा (ई.एस.आई) के तहत नियुक्त पैनल चिकित्सकों के रूप में कार्यरत मेडिकल प्रेक्टिशनर तथा ऐसे ही अन्य व्यक्ति।

किसी संसद सदस्य द्वारा पुस्तक लिखने का कार्य कोई पद नहीं है तथा सरकार द्वारा पारिश्रमिक के भुगतान से यह सरकार के अधीन लाभ का पद नहीं बन जाता।[71] कोई वकील जो कि एक अनुमोदित रेलवे प्लीडर है अर्थात् जिसे सरकार ने रेलवे से संबंधित मामलों के संचालन के लिए नियुक्त कर रखा है और जिसे कोई प्रतिधारण फीस नहीं मिलती है बल्कि केवल संचालित मामलों के लिए फीस मिलती है, तो वह सरकार के अधीन लाभ के पद का धारक नहीं है।[72] इसी प्रकार एक एडवोकेट, जिसे एक विशेष मामले में सरकारी प्लीडर की सहायता करने के लिये विशेष सरकारी प्लीडर के रूप में नियुक्त किया जाता है लाभ के पद का धारक नहीं है।[73]

---

67. *दौलतराम बनाम महाराजा आनन्द चन्द,* 6 ई.एल.आर. 87 ।
68. निर्वाचन अधिकरण, बेहरामपुर, *राम मूर्ति बनाम सुंभा सरदार* मामले में, 2 ई.एल.आर. 330 ।
69. *पूर्वोक्त* ।
70. निर्वाचन अधिकरण, राजनंदगांव, *ठाकुर दाऊ सिंह बनाम रामकृष्ण राठौर* मामले में, 4 ई.एल.आर. 34 ।
71. लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति, पहला प्रतिवेदन, 1963, पृ. 3 लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति के गठन और कृत्यों के बारे में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* 'अध्याय 30—संसदीय समितियां'।
72. निर्वाचन अधिकरण, इलाहाबाद, *गोंविद मालवीय बनाम मुरली मनोहर* मामले में, 8 ई.एल.आर. 89 ।

73 कान्ता कथूरिया बनाम मानक चंद सुराना ए.आई.आर. 1970, एस.सी.694

कोई व्यक्ति, जो लोक निर्माण विभाग के अधीन कुछ कार्य निष्पादित करने का जिम्मा लेता है तथा सरकार के साथ उस आशय की लिखित संविदा करता है, वह सरकार के अधीन पदधारक नहीं माना जाएगा।[74]

अनुच्छेद 102 अथवा अनुच्छेद 191 संसद अथवा राज्य विधानमंडल की इस शक्ति को मान्यता देते हैं कि वह कानून द्वारा यह घोषित कर सकती है कि अमुक पद के धारक को सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए निरर्हित नहीं किया जाएगा। दोनों अनुच्छेदों की भाषा में कहीं भी यह इंगित नहीं किया गया है कि इस घोषणा को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जा सकता है। इन अनुच्छेदों में 'घोषित' शब्द का अभिप्राय यह नहीं है कि संसद अथवा राज्य विधानमंडल की शक्तियों पर किसी प्रकार का अंकुश है, घोषणा को पूर्व तारीख से प्रभावी बनाया जा सकता है। निर्वाचन को कानून द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से वैध ठहराने की शक्ति के बारे में, उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की:

> यह सच है कि यह (शक्ति) उनके लिए हितकर है, जो तब खड़े हुए थे जब निरर्हता हटाई नहीं गई थी, बनिस्वत उनके, जो इस कारण खड़े नहीं हुए थे क्योंकि निरर्हता हटाई नहीं गई थी। इससे ऐसे भूतलक्षी प्रभाव वाले विधान के औचित्य पर प्रश्न उठ सकता है परन्तु ऐसे विधान बनाने की क्षमता पर नहीं।[75]

उच्चतम न्यायालय का निर्णय है कि उम्मीदवार को उस समय अर्हित अथवा निरर्हित नहीं किया जाना चाहिए जब चुनाव संचालन के कार्यक्रम के अनुसार नामनिर्दिष्ट उम्मीदवारों की सूची को अंतिम रूप देने के उद्देश्य से निर्वाचन अधिकारी द्वारा नामांकनों की जांच का कार्य किया जा रहा हो। न्यायालय की राय में "नामांकन पत्रों की जांच के लिए निर्धारित तारीख" शब्दों का सही अर्थ यही है। संसद के आशय को पूर्णत: प्रभावी बनाने की दृष्टि से धारा 36(2)(क) की व्यापक और उदार व्याख्या की जानी चाहिए। तदनुसार न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि चूंकि अपीलार्थी के त्यागपत्र को नामांकनों की जांच प्रारम्भ होने से पहले प्रभावी हुआ माना जाना चाहिए, अत: यह नहीं माना जा सकता कि अपीलार्थी संगत समय पर लाभ का पद धारण किए हुए था।[76]

अनुच्छेद 191(1)(क) को अधिनियमित करने का उद्देश्य एकदम साफ है। कोई भी व्यक्ति जो विधानमंडल के लिए निर्वाचित होता है, को अपने कर्तव्य का पालन बिना किसी भय के और बिना किसी प्रकार के सरकारी दबाव के स्वतंत्र रूप से करना चाहिए। यदि ऐसा कोई व्यक्ति ऐसे किसी पद पर कार्यरत हो जो उसे पारिश्रमिक प्रदान करता है और उसका उस पद पर बने रहने में सरकार कुछ कर सकने की स्थिति में हो, तो यह हर तरह से संभव है कि उसे सरकार की इच्छाओं को मानना पड़े। सरकार के अधीन लाभ के पद पर कार्य

---

74. *जैनेश्वर बोरा बनाम रिटर्निंग अधिकारी, ए.आई.आर.* 1975, गुवाहाटी 61 ।

75. *श्रीमती कांता कथूरिया बनाम मानक चंद सुराना,* ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 694, (पृष्ठ 698 पर)।

76. *राम स्वरूप बनाम हरि राम और अन्य,* (1983), 3 एस.सी.सी. 373 ।

करने के लिए किसी व्यक्ति के लिए सरकार की सेवाओं में होना आवश्यक नहीं है और उनके बीच किसी प्रकार का मालिक और सेवक का संबंध होने की आवश्यकता नहीं है।[77]

वर्तमान लोक सभा का विघटन आम चुनाव कराने की पूर्व शर्त नहीं है। निःसंदेह यह सत्य है कि अनुच्छेद 102(1)(क) में यह कहा गया है कि कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्ह होगा यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है। किसी भी स्थिति में संसद की सदस्यता सरकार के अधीन कोई लाभ का पद नहीं है। अतः यह तथ्य कि जिस दिन चुनाव हुआ था उस दिन लोक सभा का विघटन नहीं हुआ था, लोक सभा के सदस्य के मामले में अगले आम चुनावों में प्रत्याशी होने के लिए, निरर्ह नहीं होगा।[78]

एक अन्य मामले में, उच्चतम न्यायालय की यह राय थी कि राज्य प्रभारी लेखाकार जैसे अधिकारियों पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं था और वह नगरपालिका का कर्मचारी बना हुआ था यद्यपि उसकी नियुक्ति सरकार की स्वीकृति के अध्यधीन थी।[79]

'1971 के अधिनियम' के अधीन मुख्य संसदीय सचिव के पद पर आसीन व्यक्ति को विधान सभा का सदस्य चुने जाने से निरर्ह घोषित नहीं किया गया। ऐसी कानूनी स्थिति होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिवादी 'सभा' के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के लिए योग्य नहीं था। इस प्रकार प्रतिवादी विधान सभा भंग हो जाने के बाद भी हिमाचल प्रदेश सरकार में मुख्य संसदीय सचिव के पद पर बने रहने का हकदार था।[80]

एक अन्य मामले[81] में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि लाभ का पद ऐसा पद है जो लाभ अथवा धन-संबंधी लाभ देने में समर्थ हो। केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार के अन्तर्गत ऐसा पद-धारण, जिससे तनख्वाह, वेतन, परिलब्धियां, पारिश्रमिक अथवा गैर-प्रतिकरात्मक भत्ता संबद्ध हो, लाभ का पद धारण है। नाम पद्धति महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि पद के संबंध में धन-संबंधी लाभ लिए जाने योग्य है तो यह लाभ का पद बन जाता है। न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि यह तथ्य कि याची समृद्ध है अथवा राज्य सरकार द्वारा दिए गए लाभों/सुविधाओं में उसकी रुचि नहीं थी या वास्तव में आज तक उसने ऐसे लाभ नहीं लिए, इस मामले में प्रासंगिक नहीं है।

लाभ के पद से संबंधित संवैधानिक और विधिक स्थिति की जांच करने के लिए संयुक्त समिति

दिनांक 31 जुलाई, 2006 को लोक सभा द्वारा संसद (निरर्हता निवारण संशोधन) विधेयक, 2006 पर पुनर्विचार करते समय सदन में यह आश्वासन दिया गया था कि माननीय

---

77. *बिहारीलाल दोबरे बनाम रोशन लाल दोबरे,* (1984), 1 एस.सी.सी. 551 ।
78. *भगवती प्रसाद दीक्षित 'घोड़ेवाला' बनाम राजीव गांधी,* ए.आई.आर. 1986, एस.सी. 1534 ।
79. *अशोक कुमार भट्टाचार्य बनाम अजय विश्वास,* ए.आई.आर. 1985, एस.सी. 211 ।
80. *लीला देवी बनाम रंगीला राम राव,* ए.आई.आर. 1985, एच.पी. 21, (पृष्ठ 25 पर)।
81. *जया बच्चन बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 2006, एस.सी. 2119 ।

राष्ट्रपति के संदेश में उठाए गए विभिन्न बिंदुओं की संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति द्वारा जांच की जाएगी। तदनुसार, माननीय विधि और न्याय मंत्री ने लाभ के पद से संबंधित संवैधानिक और विधिक स्थिति की जांच करने के लिए एक संयुक्त समिति का गठन करने के लिए 17 अगस्त, 2006 को लोक सभा में प्रस्ताव पेश किया। लोक सभा ने इस प्रस्ताव को उसी दिन स्वीकार कर लिया। समिति की नियुक्ति से संबंधित प्रस्ताव को राज्य सभा द्वारा 18 अगस्त, 2006 को सहमति प्रदान की गई। इस प्रकार, निम्नलिखित विचारणीय विषयों के साथ लाभ के पद से संबंधित संवैधानिक और विधिक स्थिति की जांच करने के लिए 15 संसद सदस्यों (10 लोक सभा से और 5 राज्य सभा से) की एक संयुक्त समिति गठित की गयी–

(i) संविधान के अनुच्छेद 102 में "लाभ के पद" की निर्णीत व्याख्या की अभिव्यक्ति के संदर्भ में जांच करना और उसमें संवैधानिक सिद्धांतों पर बल देना तथा "लाभ के पद" की व्यापक परिभाषा का सुझाव देना;

(ii) "लाभ का पद" के सामान्य और व्यापक मानदण्डों, जो न्यायपूर्ण, निष्पक्ष और उचित हों और जो सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों पर लागू किए जा सकें, का विकास करने के संबंध में सिफारिश करना;

(iii) संसद सदस्यों की निरर्हता के निवारण से संबंधित विधि व्यवस्था, जैसी कि यूनाइटेड किंगडम में मौजूद है और जिस पर संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा विचार किया गया है, को स्वीकार करने की व्यवहार्यता की जांच करना; और

(iv) किसी अन्य मामले जो उपर्युक्त से संबंधित हो, की जांच करना।

उक्त विचारार्थ विषयों पर विचार-विमर्श करने के पश्चात्, समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ कतिपय टिप्पणियां कीं और अनुच्छेद 102(1)(क) में संशोधन करने की सिफारिश की।[82] समिति का यह विचार था कि एकरूपता बनाए रखने के लिए अनुच्छेद

---

82. समिति की टिप्पणियां/सिफारिशें—

(एक) "लाभ का पद" की एक यथार्थ परिभाषा की आवश्यकता है, मुख्यत: इसलिए, क्योंकि यह जाने बिना कि लाभ का पद क्या है और क्या नहीं है, लाभ का पद धारण करने की छूट देना निरर्थक सा लगता है।

(दो) समिति ने गहराई से महसूस किया कि किसी पद को लाभ के पद के रूप में परिभाषित करते समय उन कार्यालयों/पदों के सामान्य मानदंडों का पता लगाना अनिवार्य है, जो उन्हें लाभ के पद नहीं बनाते हैं अथवा दूसरे शब्दों में जिन्हें लाभ के पद नहीं माना जा सकता है। यह पहलू स्वयं परिभाषा का एक भाग होना चाहिए। तदनुसार समिति ने लाभ के पदों की निम्नलिखित तीन श्रेणियों का पता लगाया है, जिन्हें लाभ का पद नहीं माना जाएगा:

191(1)(क) में भी इसी प्रकार का संशोधन किया जाना चाहिए। समिति ने 22 दिसम्बर, 2008 को अपना प्रतिवेदन संसद को प्रस्तुत किया। लाभ के पद से संबंधित संवैधानिक और विधिक स्थिति की जांच के लिए संयुक्त समिति की सिफारिश को आवश्यक कार्यवाही हेतु भारत सरकार को अग्रेषित कर दिया गया।

---

1. संघ अथवा राज्यों के मंत्री।
2. संसद अथवा राज्य विधानमंडलों में पद।
3. संघ अथवा राज्यों में सलाहकार के पद।

(तीन) समिति ने सिफारिश की कि निम्नलिखित तर्ज पर अनुच्छेद 102(1)(क) में संशोधन किया जाए:–

अनुच्छेद 102(1)

"कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा।"

(क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है,

1. बशर्ते कि–

ऐसे पद का धारक प्रतिकरात्मक भत्ते के अलावा कोई वेतन/पारिश्रमिक न प्राप्त करता हो।

2. बशर्ते यह भी कि–

कोई व्यक्ति केवल इस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि :

1. वह संघ या ऐसे किसी राज्य का मंत्री है;
2. वह संसद या राज्य विधान सभा में कोई पद धारण करता है;
3. संघ या ऐसे किसी राज्य का सलाहकार है।

स्पष्टीकरण: इस खंड के प्रयोजनार्थ:

क. "लाभ के पद" का अर्थ है कोई पद–

1. भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन, जैसा भी मामला हो, चाहे ऐसे पद के लिए वेतन अथवा पारिश्रमिक का भुगतान भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के सार्वजनिक राजस्व से किया जाता है अथवा नहीं; अथवा
2. किसी निकाय के अतंर्गत, जो पूर्णत: या अंशत: भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के स्वामित्व में है और वेतन या पारिश्रमिक का भुगतान ऐसे निकाय द्वारा किया जाता है; और

(अ) जिसका पदधारक सरकार द्वारा प्रदत्त कार्यकारी शक्तियों जिसमें धनराशि का वितरण, भूमि आबंटन, लाइसेंस तथा परमिट जारी करने अथवा सार्वजनिक नियुक्ति करने अथवा महत्वपूर्ण प्रकृति के ऐसे अन्य लाभ प्रदान करने के अथवा विधायी, न्यायिक अथवा अर्द्ध-न्यायिक कार्य करने में समर्थ हैं; और/अथवा

(आ) खंड (एक) अथवा (दो) के अंतर्गत पदधारक वेतन या पारिश्रमिक पाने का हकदार है चाहे वह इसे वास्तव में ले अथवा न ले।

(ख) "संसद और राज्य विधानमंडल में पद" का अर्थ है ऐसे पद जो संसद या किसी राज्य विधानमंडल में विधायी कार्यों के निर्वहन के लिए सीधे संबंधित हैं अर्थात् संसद में विपक्ष के नेता का पद, संसद में पार्टी और मान्यता प्राप्त पार्टियों/समूहों के नेता और उप-नेता का पद, संसद/राज्य विधानमंडल में मुख्य सचेतक, उप-मुख्य सचेतक या सचेतक आदि।

(ग) "वेतन" का अर्थ है पद से जुड़ा वेतन या वेतनमान चाहे ऐसे पद का धारक ऐसा वेतन लेता हो या नहीं।

(घ) "पारिश्रमिक" का अर्थ है पद से जुड़े आर्थिक लाभ और पद से जुड़ी जिम्मेदारियां। लेकिन इसमें कार्यालय चलाने के लिए कर्मचारियों और बुनियादी सुविधाओं पर किया गया व्यय शामिल नहीं किया जाएगा।

(ङ) "प्रतिकरात्मक भत्ता" से धन की वह राशि अभिप्रेत है जो किसी पद के धारक को, उस पद के कृत्यों के पालन में उसके द्वारा उपगत किसी व्यय की प्रतिपूर्ति करने के लिए उसे समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए दैनिक भत्ते (जो भत्ता उस दैनिक भत्ते की रकम से अधिक नहीं होगा, जिसके लिए कोई संसद सदस्य, "संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954" के अधीन हकदार है), किसी वाहन भत्ते, मकान किराया भत्ते या यात्रा भत्ते के रूप में संदेय है।

(च) "सलाहकार" का अर्थ है किसी पद का धारक (या जिस भी नाम से जाना जाता है) जो सार्वजनिक महत्व/हित के किसी मामले के संबंध में किसी विशेष विषय/नीति पर सलाह अथवा सिफारिश देने के लिए ही संबद्ध हो, जिसके लिए सिर्फ प्रतिकरात्मक भत्ता, और न कि वेतन अथवा पारिश्रमिक, ही दिया जाता है।

[कृपया लाभ के पद से संबंधित सांविधिक और विधिक स्थिति की जांच करने के लिए संयुक्त समिति (14वीं लोक सभा) का प्रतिवेदन, लोक सभा सचिवालय, दिसम्बर, 2008 को भी देखें।]

अध्याय 7

लोक सभा के पीठासीन अधिकारी

अध्यक्ष का पद

अध्यक्ष का पद, जिसे 1947 तक प्रेजिडैंट[1] कहा जाता था, 1921 से चला आ रहा है जब मांटेग-चैम्सफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत पहली बार केन्द्रीय विधान सभा बनी थी। उससे पहले विधान परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता भारत का गवर्नर जनरल किया करता था।[2]

सांविधिक उपबन्धों के अनुसार, पहले चार वर्ष की अवधि को छोड़कर—जब विधान सभा के अध्यक्ष की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती थी—अध्यक्ष का निर्वाचन सभा द्वारा किया जाता था।[3] नियुक्त अध्यक्ष को तो गर्वनर जनरल के आदेश द्वारा पदच्युत किया जा सकता था लेकिन निर्वाचित अध्यक्ष को विधान सभा में मतदान द्वारा गवर्नर जनरल की सहमति से ही हटाया जा सकता था। यह भी व्यवस्था की गयी थी कि यदि निर्वाचित अध्यक्ष की विधान सभा की सदस्यता समाप्त हो जाती है तो वह अध्यक्ष पद पर भी नहीं रह सकेगा। अध्यक्ष गवर्नर जनरल को लिखकर पदत्याग कर सकता था।[4]

अपनी योग्यता, विशेष गुणों तथा संसदीय प्रक्रिया के गहन ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हाउस ऑफ कामन्स के एक सदस्य सर फ्रेड्रिक व्हाइट को गवर्नर जनरल द्वारा केन्द्रीय विधान सभा के प्रथम अध्यक्ष के रूप में चार वर्ष के लिए नाम निर्देशित तथा नियुक्त किया गया।[5]

अध्यक्ष के चुनाव के संबंध में नियम पहली बार 1925 में गर्वनर जनरल द्वारा बनाया गया।[6] इस नियम द्वारा मूल प्रक्रिया की एक कमी पूरी हो गयी तथा इसके द्वारा अध्यक्ष के नामनिर्देशन तथा निर्वाचन की पद्धति और चुनाव के विभिन्न चरणों का निर्धारण किया गया।[7]

---

1. सुविधा के लिए और किसी प्रकार के भ्रम को दूर करने के लिए पाठ में "अध्यक्ष" शब्द का प्रयोग विधान सभा के "प्रेजिडैंट" के लिए बारी-बारी से किया गया है, जैसाकि उन्हें 1947 तक पुकारा जाता था।
2. भारतीय परिषद् अधिनियम, 1861 में गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया था कि यदि उसकी अपने मुख्यालय से अनुपस्थित होने की संभावना हो तो वह किसी अन्य को परिषद् के पीठासीन अधिकारी के पद पर नियुक्त कर सकता था। *देखिए* 24 और 25 *विक्ट. सी 67 एस 7* ।
3. भारत शासन विधेयक, 1919 के संबंध में ब्रिटिश संसद की संयुक्त प्रवर समिति की सिफारिश के अनुसरण में ऐसा किया गया था।
4. *देखिए, धारा* 63ग जो कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची में दी गयी है।
5. उन्होंने 3 फरवरी, 1921 को अपने पद की शपथ ली और उनका कार्यकाल 1925 तक रहा। एम.एन. कौल: 'ग्रोथ आफ दी पोजीशन एंड पावर्स आफ दी स्पीकर', *हिन्दुस्तान टाइम्स,* 24 जनवरी, 1954 ।
6. *देखिए* भारतीय विधायी नियम, नियम 5 क।
7. *देखिए* फ्रेड्रिक व्हाइट: '*मैनुअल आफ बिजनेस एंड प्रोसीजर'.* उद्धृत कृति. पृ. 11 ।

> 1925 से 15 अगस्त, 1947 तक, जब भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 लागू हुआ और विधान सभा का अस्तित्व समाप्त हो गया, विधान सभा के अध्यक्ष पद के लिए सभी चुनाव उपरोक्त नियम में बताई गयी प्रक्रिया के अनुसार हुए। निर्वाचन, गवर्नर जनरल द्वारा नियत दिन को मतदान द्वारा होता था।[8] जिस अध्यक्ष का कार्यकाल समाप्त हो रहा हो, वह इस पद के उम्मीदवारों और उनके प्रस्तावकों तथा अनुमोदकों के नामों की घोषणा करता था। मतदान सभा में ही होता था और मतदान पेटी सभा के पटल पर रखी जाती थी। पीठासीन अधिकारी एक-एक करके सदस्यों के नाम पुकारता था और विधान सभा का सचिव उन्हें मतपत्र देता था। सभी सदस्य एक-एक करके मतदान करते थे और यह मतदान अध्यक्ष पीठ के पीछे वाले कमरे में गुप्त रूप से किया जाता था तथा मतपत्रों को पटल पर रखी मतपेटी में डाला जाता था। तत्पश्चात् पीठासीन अधिकारी मतपत्रों की जांच करता था और उन्हें गिनता था। उसके तुरन्त बाद परिणाम की घोषणा कर दी जाती थी। जब गवर्नर जनरल से चुनाव का अनुमोदन करने का संदेश प्राप्त होता था तो पीठासीन अधिकारी उसे सभा में पढ़ देता था और उसके बाद निर्वाचित अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण करता था।

श्री विट्ठलभाई जे. पटेल पहले गैर सरकारी सदस्य थे, जो 24 अगस्त, 1925 को विधान सभा के अध्यक्ष चुने गए।[9] वह स्वराज पार्टी की ओर से उम्मीदवार थे। इस चुनाव में कड़ा मुकाबला था और श्री टी. रंगाचारियार केवल दो वोटों से श्री पटेल से हार गए जिन्हें 58 वोट मिले थे।[10] जब श्री पटेल का चुनाव हुआ तो सर फ्रेड्रिक व्हाइट, जिनका अध्यक्ष के रूप में कार्यकाल समाप्त हो रहा था, सभा की अध्यक्षता कर रहे थे। इस निर्वाचन का अनुमोदन गवर्नर जनरल ने उसी दिन अर्थात् 24 अगस्त, 1925 को कर दिया और श्री पटेल ने तुरंत अपने पद का कार्यभार संभाल लिया। श्री विट्ठल भाई पटेल 20 जनवरी, 1927 को फिर विधान सभा के अध्यक्ष चुने गये। अपने पहले कार्यकाल में श्री पटेल ने पीठासीन अधिकारी के नाते बहुत ख्याति प्राप्त की और उनकी स्थिति इतनी सुदृढ़ हो गयी कि उनके कई ऐसे निर्णयों के बावजूद, जो यद्यपि प्रशंसनीय थे परन्तु तत्कालीन सरकार को पसंद नहीं थे, विधान सभा के सरकारी तथा गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा सर्वसम्मति से उन्हें फिर अध्यक्ष चुन लिया गया।[11]

---

8. भारतीय विधायी नियम, नियम 5क (1) और (3) ।
9. केन्द्रीय विधान सभा में 145 सदस्य थे जिनमें 104 सदस्य निर्वाचित होते थे और शेष सदस्य नामनिर्देशित। नामनिर्देशित सदस्यों में से 26 सरकारी और शेष गैर-सरकारी सदस्य होते थे।
10. *एल.ए. डिबेट्स* 24.8.1925, पृ. 22-23 ।
11. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.1.1927, पृ. 10 ।

अध्यक्ष पटेल ने 28 अप्रैल, 1930 को अपने पद से त्यागपत्र[12] दे दिया। उनके बाद, 9 जुलाई, 1930[13] से सर मुहम्मद याकूब अध्यक्ष बने लेकिन वह केवल एक सत्र अर्थात् तीसरी विधान सभा के सातवें और अन्तिम सत्र तक ही पद पर रहे। 17 जनवरी, 1931 को विधान सभा ने सर इब्राहीम रहीमतुल्ला को अपना अध्यक्ष चुना[14] सर इब्राहिम ने 7 मार्च, 1933 को स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण त्यागपत्र दे दिया। उनके बाद श्री षणमुखम चेट्टी आए, जो 14 मार्च, 1933 को सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गए।[15] सर अब्दुर्रहीम 24 जनवरी, 1935 को अध्यक्ष चुने गए[16] और काफी लंबी अवधि अर्थात् दस वर्षों के लिए इस पद पर रहे। विधान सभा की अवधि समय-समय पर बढ़ाई जाती रही, पहले तो इस आधार पर कि संवैधानिक परिवर्तन होने वाले हैं और बाद में इस आधार पर कि चूंकि दूसरा विश्व युद्ध चल रहा है, इसलिए चुनाव कराकर देश की राजनीतिक स्थिति को नहीं बिगाड़ना चाहिए।[17]

युद्ध समाप्त होने के कुछ ही समय बाद देश में चुनाव हुए और छठी विधान सभा 21 जनवरी, 1946 को बनी। कांग्रेस पार्टी ने श्री जी.वी. मावलंकर को अध्यक्ष पद के लिए उम्मीदवार बनाया और वह 24 जनवरी, 1946 को अध्यक्ष चुने गए[18] गवर्नर जनरल ने उनके निर्वाचन का अनुमोदन कर दिया और श्री मावलंकर ने उसी दिन अपने पद का कार्यभार संभाल लिया।

स्वतंत्रता और उसके बाद **:** भारत स्वतंत्रता अधिनियम, 1947[19] के अन्तर्गत 14 अगस्त, 1947 के बाद केन्द्रीय विधान सभा और राज्य परिषद् का अस्तित्व नहीं रहा और भारत की संविधान सभा को, जो 9 दिसम्बर, 1946 से संविधान बनाने का काम कर रही थी, देश के

---

12. उन्होंने 1930 में महात्मा गांधी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के आह्वान के समर्थन में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। लॉर्ड ईरविन को अपना त्यागपत्र भेजते हुए उन्होंने लिखा था "इन बातों के अलावा देश में इस समय जो गंभीर स्थिति उत्पन्न हो गयी है। मैं महसूस करता हूँ कि यदि मैं सभा के प्रेजिडैंट के पद पर बना रहता हूँ तो मैं इस महत्वपूर्ण घड़ी में भारत के हितों से किनारा करने का दोषी होऊंगा"– विट्ठल भाई पटेल, प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 146।
13. सर मुहम्मद याकूब को 78 मत मिले और उनके प्रतिद्वंद्वी डा. नंद लाल को 22 मत—*देखिए एल. ए. डिबेट्स,* 9.7.1930 पृ. 29 ।
14. सर इब्राहीम रहीमतुल्ला को 76 मत मिले डा. हरिसिंह गौड़ को 36 *मत—देखिए एल.ए. डिबेट्स* 17.1.1931 पृ. 36 ।
15. *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 14.3.1933, पृ. 2044 ।
16. सर अब्दुर्रहीम को 70 मत मिले और टी.ए.के. शेरवानी को 62 मत—*देखिए, एल.ए. डिबेट्स,* 24.1.1935, पृ. 106 ।
17. पांचवीं विधान सभा का कार्यकाल 21.1.1935 से 8.2.1945 तक रहा ।
18. मावलंकर को 66 और उनके प्रतिद्वंद्वी सर काउसजी जहांगीर को 63 मत मिले। *देखिए एल.ए. डिबेट्स* 24.1.1946, पृ. 162 और साथ ही देखिए कौल : 'ग्रोथ आफ दी पोजीशन एण्ड पावर्स ऑफ दी स्पीकर', *उद्धृत कृति* और सुभाष सी.काश्यप: *दादा साहब मावलंकर—फादर ऑफ लोक सभा,* नेशनल नई दिल्ली, 1989, पृ. 9-10 ।
19. *देखिए* 10 और 11, जार्ज षष्टम, सी. 30 धारा 8 ।

विधान मण्डल के रूप में कार्य करने की शक्ति दे दी गयी। इसमें यह उपबन्ध किया गया था कि—

> भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत संघीय विधान मंडल या भारतीय विधान मंडल की शक्तियां, जैसी कि प्रत्येक डोमिनियन में लागू हों, प्रारंभ में डोमिनियन की संविधान सभा द्वारा प्रयुक्त की जाएंगी।[20]

तथापि यह वांछनीय समझा गया कि संविधान सभा के संविधान बनाने के कार्य और विधान मण्डल के रूप में इसके सामान्य कार्य के बीच विभेद रखा जाये। इस संबंध में संविधान सभा के अध्यक्ष (प्रेजिडैंट) (डा. राजेन्द्र प्रसाद) ने 20 अगस्त, 1947 को निम्नलिखित टिप्पणी की:[21]

> मैं समझता हूं कि परिषद् की हैसियत तथा कार्य का प्रश्न महत्वपूर्ण है और हमें उन नियमों का जो हमने यहां के कार्य-संचालन के निमित्त बनाये हैं तथा भारत-शासन-विधान में किये गये अनुकूल परिवर्तनों (अनुकूलन) का तथा स्वाधीनता-कानून का भी विचार करना है। इन सब चीजों का विचार करते हुए हमें मालूम करना है कि क्या हम वैभागिक रूप में दो खंडों में काम कर सकते हैं या हमें एक ही संस्था के रूप में काम करना चाहिये। ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है और मेरा ख्याल है कि सभा के नेता ने जो यह सुझाव रखा है कि इन सबका विचार करने तथा हमारे पथ-प्रदर्शन के नियमों के संबंध में सुझाव देने के लिए एक छोटी-सी उप-कमेटी नियुक्त कर दी जानी चाहिए, वह एक ऐसा सुझाव है जो इस सभा को स्वीकार होना चाहिये और मैं जानना चाहता हूँ कि क्या सभा ऐसा किया जाना पसंद करेगी।

सभा ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया और श्री जी.वी. मावलंकर की अध्यक्षता में 20 अगस्त, 1947 को एक समिति बनायी गयी जिसके विचारार्थ विषय निम्नलिखित थे:[22]

(i) भारत स्वतंत्रता अधिनियम के अधीन, संविधान सभा का ठीक काम क्या है?

(ii) एक विधान-निर्मात्री संस्था के रूप में संविधान सभा के कार्य में और उसके अन्य कार्य में विभेद करना क्या सम्भव है और क्या संविधान सभा पहले कार्य के लिये निश्चित दिन अथवा अवधियां अलग नियत कर सकती है?

(iii) संविधान सभा में देशी रियासतों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों को, उन कार्यवाहियों में, जो विधान-निर्माण कार्य अथवा उन विषयों से जिनके संबंध में उक्त रियासतें सम्मिलित हुईं हैं, ताल्लुक नहीं रखती, भाग लेने का अधिकार दिया जाना चाहिये?

(iv) संविधान सभा या उसके सभापति द्वारा, क्या नये नियम या स्थायी आदेश, यदि कोई बनाने हों, बनाये जाने चाहियें और मौजूदा 'नियमों' या स्थायी आदेशों में क्या संशोधन, यदि कोई करने हों, किये जाने चाहियें?

---

20. *पूर्वोक्त*, धारा 8 परन्तुक (ङ)।
21. *सं.स.वा.वि., खंड* V, 20.8.1947, पृ. 15 ।
22. *सं.स.वा.वि.*, खंड V, 20.8.1947, पृ. 54 ।

29 अगस्त, 1947 को मावलंकर समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद संविधान सभा ने यह संकल्प[23] पारित किया कि संविधान बनाने वाली संस्था के रूप में सभा के कार्य को डोमिनियन विधान मण्डल के रूप में उसके कार्य से अलग समझा जाये और यह भी कि जब यह विधान मण्डल के रूप में कार्य कर रही हो तब उसकी अध्यक्षता करने के लिए अध्यक्ष के चुनाव का उपबन्ध किया जाये।

इस संकल्प के अनुसार संविधान सभा के अध्यक्ष (प्रेजिडेंट) ने भारत डोमिनियन बनने से फौरन पहले के भारतीय विधान सभा नियमों का रूपभेद तथा अनुकूलन कर दिया।

एक अलग संस्था के रूप में संविधान सभा (विधायी) की पहली बैठक सभा भवन में 17 नवम्बर, 1947 को हुई। संविधान सभा के अध्यक्ष (डा. राजेन्द्र प्रसाद) ने बैठक की अध्यक्षता की। संविधान सभा (विधायी) के पहले सत्र में सदस्यों का स्वागत करते हुए डा. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा:[24]

> जैसा कि आपको पता है भारत स्वतंत्रता अधिनियम के अन्तर्गत विधान सभा और राज्य परिषद 14 अगस्त, 1947 के बाद समाप्त हो गयी और इन दोनों सदनों के कार्य अब संविधान सभा को ही करने हैं। यह पहला अवसर है कि संविधान सभा की बैठक इस उद्देश्य के लिए हो रही है। यह महसूस किया गया है कि अच्छा होगा कि संविधान सभा के संविधान बनाने के काम और उसके विधान मण्डल के रूप में सामान्य काम के बीच विभेद बनाए रखा जाये। इस उद्देश्य से यह वांछनीय समझा गया कि जब सभा विधान मण्डल के रूप में काम करे तो इसका एक अध्यक्ष होना चाहिए क्योंकि मैं संविधान सभा का अध्यक्ष (प्रेजिडेंट) होने के साथ-साथ सरकार का भी सदस्य हूं और इस कारण कुछ असंगतियां उत्पन्न हो गयी थीं। अत: अब आपको एक अध्यक्ष का चुनाव करना है जो सरकार से पूर्णतया अलग होगा, अध्यक्ष का काम करेगा और सभा की बैठकों की अध्यक्षता करेगा।

अध्यक्ष पद के लिए केवल एक ही नामांकन श्री जी.वी. मावलंकर, का प्राप्त हुआ था। अत: उनके विधिवत चुने जाने की घोषणा कर दी गयी। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने अध्यक्ष पद खाली कर दिया और उसे तब अध्यक्ष मावलंकर ने ग्रहण किया।[25]

संविधान सभा (विधायी) का अध्यक्ष ही संविधान के लागू होने पर संविधान के अनुच्छेद 379[26] के अंतर्गत अंत:कालीन संसद का अध्यक्ष बना रहा। अत: संविधान 26 जनवरी, 1950 से लागू हुआ परन्तु चूंकि देश में आम चुनाव कराने के लिए समय चाहिए था, अत: संविधान में यह उपबन्ध किया गया कि अंत:कालीन संसद और उसका अध्यक्ष तब तक बने रहेंगे, जब तक कि राष्ट्रपति संविधान के उपबन्धों के अन्तर्गत चुनी गयी संसद को आहूत नहीं करता। तदनुसार श्री जी.वी. मावलंकर ही 17 अप्रैल, 1952 तक अध्यक्ष रहे, जब लोक सभा तथा राज्य सभा, उसी वर्ष हुए आम चुनाव के बाद, विधिवत गठित होने के पश्चात्

---

23. *सं.स.वा.वि.,* खंड V, 29.8.1947, पृ. 60-62 ।
24. *सी.ए.* (लेजि.) डिबेट्स, 17.11.1947, पृ. 1 ।
25. काश्यप: *दादा साहब मावलंकर,* उद्धृत कृति, पृ. 11-21 ।
26. संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 के द्वारा अनुच्छेद 379 को अब निरस्त कर दिया गया है।

समवेत होने के लिए आहूत हुई। उस दिन अन्तःकालीन संसद भी समाप्त हो गयी और इसके परिणामस्वरूप उसी तिथि से अन्तःकालीन संसद का अध्यक्ष भी अध्यक्ष नहीं रहा। चूंकि सभा को कुछ समय बाद बैठक करके अध्यक्ष का चुनाव करना था, उसी दिन, अर्थात् 17 अप्रैल, 1952 को राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 95 (1) के अन्तर्गत एक आदेश जारी किया जिसके द्वारा निवर्तमान अध्यक्ष श्री जी.वी. मावलंकर को, जो पहली लोक सभा के सदस्य चुने जा चुके थे, सभा की पहली बैठक तक अध्यक्ष के कृत्यों का पालन करने के लिए नियुक्त किया गया।

यह नियुक्ति अनुच्छेद 94 के उपबंधों के सिद्धांतों के अनुरूप थी। जिसके अंतर्गत जब भी लोक सभा का विघटन कर दिया जाता है, अध्यक्ष विघटन के बाद लोक सभा की पहली बैठक से तत्काल पहले तक अपना पद रिक्त नहीं करता। अतः राष्ट्रपति का आदेश अन्तःकालीन संसद की समाप्ति और पहली लोक सभा के गठन के बीच अध्यक्ष के बने रहने की कड़ी थी।[27]

11 मई, 1952 को राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 99 के अन्तर्गत एक आदेश जारी किया जिसके द्वारा जी.वी. मावलंकर और एम. अनन्तशयनम् आयंगर की नियुक्ति की गयी जिनमें से किसी भी एक के सामने प्रथम लोक सभा के सदस्य संविधान के उपबन्धों के अनुसार शपथ ले सकते थे या प्रतिज्ञान कर सकते थे। इस प्रकार मावलंकर ने, जो अध्यक्ष के कर्त्तव्यों का भी निर्वहन कर रहे थे, लोक सभा की 13 और 15 मई, 1952 को हुई बैठकों की अध्यक्षता की थी, जब तक कि सदस्यों ने शपथ ली या प्रतिज्ञान किया। जब 15 मई, 1952 को सदस्य शपथ ले चुके या प्रतिज्ञान कर चुके तब मावलंकर ने अध्यक्ष पद छोड़ दिया। उसी समय सचिव ने राष्ट्रपति का एक आदेश पढ़कर सुनाया जिसमें लोक सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य बी. दास को सामयिक अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। उसके बाद बी. दास ने अध्यक्ष के निर्वाचन तक अध्यक्ष पद संभाला।

अध्यक्ष के चुनाव के सम्बन्ध में संवैधानिक उपबंध तथा नियमः लोक सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के चुनाव अब संविधान के अनुच्छेद 93 के उपबन्धों के अन्तर्गत होते हैं।[28]

1952 में, संविधान सभा (विधायी) नियमों को लोक सभा के अनुकूल बनाते समय अध्यक्ष के चुनाव की प्रक्रिया के संबंध में मूलभूत परिवर्तन किए गए। मुख्य परिवर्तन

---

27. *देखिए* एस.एल. शकधरः *अप्वाइंटमैंट ऑफ स्पीकर ऑफ लोक सभा,* जे.पी.आई. खण्ड II, सं. 1, अप्रैल, 1956 तथा II, (1) और काश्यपः *दादा साहब मावलंकर, उद्धृत कृति,* पृ. 12-13।
28. इस अनुच्छेद के अधीन निम्नलिखित चुनाव सम्पन्न हुए हैं:

    पहली लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष क्रमशः 15 मई और 30 मई, 1952 को चुने गए जब जी.वी. मावलंकर अध्यक्ष और अनन्तशयनम् आयंगर उपाध्यक्ष चुने गए।

    27 फरवरी, 1956 को अध्यक्ष मावलंकर के निधन के परिणामस्वरूप अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर अनन्तशयनम् आयंगर को 8 मार्च, 1956 को अध्यक्ष चुना गया।

    अध्यक्ष चुने जाने से एक दिन पूर्व, आयंगर ने उपाध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। यह रिक्ति 20 मार्च, 1956 को सरदार हुकम सिंह के उपाध्यक्ष चुने जाने पर भरी गई।

    दूसरी लोक सभा के लिये, एम. अनन्तशयनम् आयंगर और सरदार हुकम सिंह क्रमशः 11 मई, 1957 और 17 मई, 1957 को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गये।

निम्नलिखित थे:

(i) अध्यक्ष के चुनाव के संबंध में प्रस्ताव की सूचना के साथ नामनिर्दिष्ट व्यक्ति का यह कथन संलग्न करना जरूरी कर दिया गया कि यदि वह निर्वाचित हो गया तो वह

तीसरी लोक सभा के लिए सरदार हुकम सिंह और एस.वी. कृष्णमूर्ति 17 अप्रैल और 23 अप्रैल, 1962 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

चौथी लोक सभा के लिए डा. नीलम संजीव रेड्डी और श्री आर.के. खाडिलकर 17 मार्च और 28 मार्च, 1967 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

19 जुलाई, 1969 को डा. संजीव रेड्डी के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने के कारण डा. गुरदयाल सिंह ढिल्लों 8 अगस्त, 1969 को अध्यक्ष चुने गए।

1 नवम्बर, 1969 को श्री आर. के. खाडिलकर के उपाध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने के कारण श्री जी.जी. स्वैल 9 दिसम्बर, 1969 को उपाध्यक्ष चुने गए।

पांचवीं लोक सभा के लिए डा. गुरदयाल सिंह ढिल्लों और श्री जी.जी. स्वैल 22 मार्च और 27 मार्च, 1971 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

1 दिसम्बर, 1975 को अध्यक्ष डा. ढिल्लों के त्यागपत्र देने के कारण अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर श्री बी.आर. भगत 5 जनवरी, 1976 को अध्यक्ष चुने गए।

छठी लोक सभा के लिए डा. नीलम संजीव रेड्डी और श्री गोडे मुरारी 26 मार्च और 1 अप्रैल, 1977 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

13 जुलाई, 1977 को अध्यक्ष डा. नीलम संजीव रेड्डी के त्यागपत्र देने के कारण अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर श्री के.एस. हेगड़े 21 जुलाई, 1977 को अध्यक्ष चुने गए।

सातवीं लोक सभा के लिए डा. बलराम जाखड़ और श्री जी. लक्ष्मणन 22 जनवरी, 1980 और 1 फरवरी, 1980 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

आठवीं लोक सभा के लिए डा. बलराम जाखड़ और श्री एम. थम्बी दुरई 16 जनवरी और 22 जनवरी, 1985 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

नौवीं लोक सभा के लिए रवि राय और शिवराज वी. पाटील 19 दिसम्बर, 1989 और 19 मार्च, 1990 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

दसवीं लोक सभा के लिए शिवराज वी. पाटील और एस. मल्लिकार्जुनैया 10 जुलाई और 13 अगस्त, 1991 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

ग्यारहवीं लोक सभा के लिए पूर्णो अगितोक संगमा और सूरजभान 23 मई और 12 जुलाई, 1996 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

बारहवीं लोक सभा के लिए गन्ती मोहन चन्द्र बालयोगी और पी.एम. सईद 24 और 17 दिसम्बर 1998 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

तेरहवीं लोक सभा के लिए जी.एम.सी बालयोगी और पी.एम. सईद 22 और 27 अक्तूबर, 1999 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

3 मार्च, 2002 को अध्यक्ष बालायोगी के निधन के कारण अध्यक्ष का पद रिक्त होने के कारण श्री मनोहर जोशी को 10 मई, 2002 को अध्यक्ष चुना गया।

चौदहवीं लोक सभा के लिए सोमनाथ चटर्जी और चरणजीत सिंह अटवाल 4 और 9 जून, 2004 को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने गए।

अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए तैयार होगा। पहले तो प्रस्तावक द्वारा नामनिर्देशन पत्र में केवल इतना कह देना जरूरी था कि जिस व्यक्ति के नाम का प्रस्ताव है उससे पूछ लिया गया है और वह अध्यक्ष के रूप में काम करने के लिए तैयार है।

(ii) मतपत्रों द्वारा अध्यक्ष का चुनाव करने की पद्धति छोड़ दी गयी और अब चुनाव सभा में खुले मतदान द्वारा होना निश्चित हुआ।

(iii) चाहे अध्यक्ष पद के लिए एक ही उम्मीदवार हो, उसके चुनाव का प्रस्ताव विधिवत सभा में रखा और पारित किया जाना जरूरी हो गया।

उसके बाद नियम में कुछ मामूली परिवर्तन किए गए हैं और अध्यक्ष के चुनाव की प्रक्रिया मोटे तौर पर वही है।[29]

निर्वाचन विधि

अध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि राष्ट्रपति को नियत करनी पड़ती है।[30] इस प्रयोजन के लिए जो तिथि सुविधाजनक हो, उसका सुझाव प्रधान मंत्री एक पत्र लिख कर महासचिव को देता है जो प्रधान मंत्री के सुझाव को एक टिप्पणी (नोट) में लिखकर राष्ट्रपति के आदेश के लिए भेजता है। जब राष्ट्रपति उस सुझाव का अनुमोदन कर देता है तो लोक सभा के सदस्यों को संसदीय समाचार के माध्यम से सूचना दे दी जाती है।

इसके साथ ही जो तिथि अध्यक्ष के निर्वाचन के लिए नियत की गयी हो, उस दिन की अग्रिम कार्य-सूची में 'अध्यक्ष का निर्वाचन' मद रखी जाती है। तिथि इस ढंग से नियत की जाती है कि सदस्यों को प्रस्तावों की सूचना देने के लिए कुछ दिनों का समय मिल जाये।[31]

इस प्रकार नियत तिथि से एक दिन पहले दोपहर तक कोई भी सदस्य किसी भी समय

29. *देखिए* नियम 7 ।

30. *देखिए* नियम 7 (1)।

31. गत समय में निर्वाचन और संसदीय समाचार में पैरा जारी करने की तारीख के बीच अन्तर इस प्रकार रहा:

संसदीय समाचार में पैरा जारी करने की तारीख	चुनाव की तिथि
10.05.1952	15.05.1952
03.03.1956	08.03.1956
07.05.1957	11.05.1957
09.04.1962	17.04.1962
29.07.1969	08.08.1969
15.03.1971	22.03.1971
20.12.1975	05.01.1976
24.03.1977	26.03.1977
16.07.1977	21.07.1977
16.01.1980	22.01.1980

इस प्रस्ताव की, कि किसी अन्य सदस्य को सभा का अध्यक्ष चुना जाये महासचिव, को संबोधित लिखित सूचना दे सकता है। इस सूचना का अनुमोदन एक तीसरे सदस्य को करना होता है और उसके साथ उस सदस्य को जिसका नाम प्रस्तावित किया गया हो, यह कथन संलग्न करना पड़ता है कि निर्वाचित, होने पर वह अध्यक्ष के रूप में कार्य करने को राजी है। यदि अध्यक्ष का चुनाव कराए जाने हेतु नियत तिथि से पहले रविवार अथवा सार्वजनिक अवकाश हो तो अध्यक्ष के चुनाव के लिए प्रस्तावों की सूचना उससे पहले कार्यदिवस को 15. 15 बजे तक दी जा सकती है। परन्तु कोई सदस्य अपना नाम प्रस्तावित नहीं कर सकता, न अपना नाम प्रस्तावित करने वाले प्रस्ताव का अनुमोदन कर सकता है और न ही एक से अधिक प्रस्ताव प्रस्तावित या अनुमोदित कर सकता है।[32] सत्ता दल या गठबंधन द्वारा चुने गए उम्मीदवार के निर्वाचन के प्रस्ताव की सूचना सामान्यत: प्रधानमंत्री अथवा संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दी जाती है।

इन प्रस्तावों की सभी सूचनाएं, जो नियमों के अनुसार वैध हों, उसी समय क्रम में, जिसमें वे प्राप्त हुई हों, उस पुनरीक्षित कार्य सूची में सम्मिलित की जाती हैं जो कि अध्यक्ष के चुनाव के लिए नियत तिथि से एक दिन पहले प्रकाशित की जाती है।

जब किसी सदस्य द्वारा दो एक जैसे प्रस्तावों की सूचना दी जाती है तो उनमें से केवल एक, जो पहले प्राप्त हुआ हो, कार्य-सूची में शामिल किया जाता है।

कार्य-सूची में जिस सदस्य के नाम में कोई प्रस्ताव हो, वह पुकारे जाने पर प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकेगा यह प्रस्ताव वापस ले सकेगा और अपना कथन उस बात तक ही सीमित रखेगा[33] यदि प्रस्ताव प्रस्तुत हो जाए तो उसका अनुमोदन वह सदस्य करता है जिसका नाम अनुमोदक के रूप में कार्य-सूची में हो। उसे भी अपना कथन केवल उसी बात तक सीमित रखना पड़ता है।

जो प्रस्ताव रखे जायें और जिनका विधिवत अनुमोदन किया गया हो, उसी क्रम में एक-एक करके मतदान के लिए रखे जाते हैं, जिस क्रम में वे प्रस्तुत किए गए हों। यदि आवश्यक हो तो मत विभाजन द्वारा उनका निर्णय किया जाता है। यदि कोई प्रस्ताव पारित हो जाये तो अध्यक्षता करने वाला व्यक्ति बाकी के प्रस्तावों को रखे बिना यह घोषणा कर देता

05.01.1985	16.01.1985
08.12.1989	19.12.1989
02.07.1991	10.07.1991
18.05.1996	23.05.1996
21.03.1998	24.03.1998
18.10.1999	22.10.1999
01.06.2004	04.06.2004

32. नियम 7 (2) ।

33. *देखिए* नियम 7 (3) ।

है कि पारित किए गये प्रस्ताव में जिस सदस्य का नाम प्रस्तावित किया गया था वह सभा का अध्यक्ष चुना गया है।[34]

अध्यक्ष पद के लिए चाहे एक ही उम्मीदवार हो, उसके निर्वाचन के संबंध में प्रस्ताव विधिवत सभा के सामने रखना और पारित करना जरूरी है।

चुनाव परिणाम की घोषणा के तुरन्त बाद प्रधान मंत्री, सदन के नेता (यदि प्रधानमंत्री सदन के नेता नहीं है तो) और विपक्ष के नेता निर्वाचित अध्यक्ष के पास जाते हैं; झुककर उसका अभिवादन करते हैं और उसे अध्यक्ष के आसन तक ले जाते हैं।

प्रधान मंत्री और सभा के अन्य सदस्य, विभिन्न वर्गों की ओर से अध्यक्ष महोदय का

---

34. श्री मावलंकर के निर्वाचन (15 मई, 1952) के संबंध में सभी प्रस्ताव सामयिक अध्यक्ष ने सभा के सामने रखे। पहला प्रस्ताव पारित होने पर अन्य प्रस्तावों पर आगे कार्यवाही नहीं की गयी। डॉ. बलराम जाखड़ के चुनाव के लिए दो प्रस्ताव (16 जनवरी, 1985) प्रस्तुत किए गए और सभा के समक्ष रखे गए। पहला प्रस्ताव पारित होने पर दूसरे प्रस्ताव पर कार्यवाही नहीं की गयी। श्री रवि राय के चुनाव के लिए प्राप्त चार प्रस्तावों (19 दिसम्बर, 1989) में से तीन प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए और सभा के समक्ष रखे गए। एक प्रस्ताव, जो सूची में तीसरे स्थान पर था, को सभा के समक्ष रखा नहीं जा सका क्योंकि प्रस्तावक सभा में उपस्थित नहीं था। पहला प्रस्ताव पारित होने पर शेष प्रस्तावों पर कार्यवाही नहीं की गई।

    श्री शिवराज वी. पाटील के चुनाव के लिए (10 जुलाई, 1991) ग्यारह प्रस्तावों में से केवल एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया और उसे सभा द्वारा स्वीकृत किया गया था।

    श्री पूर्णो अगितोक संगमा के चुनाव के लिए प्राप्त हुये सभी तेरह प्रस्तावों को प्रस्तुत किया गया और सभा के समक्ष रखा गया। पहला प्रस्ताव पारित होने पर शेष प्रस्तावों पर कार्यवाही नहीं की गई।

    प्रस्ताव जिसमें श्री पूर्णो अगितोक संगमा का नाम प्रस्तावित किया गया था, प्रस्तुत किया गया और सभा के मतदान के लिए रखा गया और अस्वीकृत हो गया। बाद में श्री जी.एम.सी. बालयोगी के नाम का प्रस्ताव करने वाले प्रस्ताव को प्रस्तुत किया गया और सभा द्वारा स्वीकृत किया गया।

    श्री जी.एम.सी. बालयोगी के चुनाव के लिए (22 अक्तूबर, 1999) सभी चौदह प्रस्तावों को प्रस्तुत किया गया और सभा के समक्ष रखा गया। पहला प्रस्ताव पारित होने पर शेष प्रस्तावों पर कार्यवाही नहीं की गई।

    श्री सोमनाथ चटर्जी के चुनाव के लिए (4 जून, 2004) सभी अठारह प्रस्तावों को प्रस्तुत किया गया और सभा के समक्ष रखा गया। पहला प्रस्ताव पारित होने पर शेष प्रस्तावों पर कार्यवाही नहीं की गई।

अभिनंदन करते हैं और अध्यक्ष संक्षेप में उनका उत्तर देता है। इसके बाद सभा अपनी कार्य-सूची का नियमित कार्य, यदि कोई हो, प्रारम्भ करती है।[35]

अध्यक्ष के निर्वाचन की अधिसूचना सचिवालय द्वारा राजपत्र में प्रकाशित करायी जाती है।[36]

अध्यक्ष का आसन

भारत में पीठासीन अधिकारी मोटे तौर पर उन परिपाटियों और परम्पराओं का अनुसरण करते हैं, जिनकी स्थापना ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स के अध्यक्षों ने की है। सर फ्रेड्रिक व्हाइट के कार्यकाल में, जो केवल नामनिर्देशित पीठासीन अधिकारी थे, ब्रिटिश अध्यक्षों की परिपाटी का आमतौर पर पालन किया जाता था। पीठासीन अधिकारी अपने आपको दलगत राजनीति से पूरी तरह अलग रखता था।

अध्यक्ष श्री पटेल ने अपने चुनाव के बाद स्वराज पार्टी से अपना संबंध तोड़ लिया था जिसके वह अध्यक्ष चुने जाने तक सक्रिय सदस्य थे। जब तक वह अध्यक्ष रहे, वह दल से अलग रहे। 1926 के निर्वाचन में वह कांग्रेस टिकट पर नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से अपने पुराने चुनाव क्षेत्र से खड़े हुए और निर्विरोध चुने गए।[37]

अध्यक्ष पटेल के बाद जो व्यक्ति केन्द्रीय विधान सभा के पीठासीन अधिकारी बने—

---

35. सभा, जी.वी. मावलकर (*पी. डिबेट्स,* 15.5.1952, कॉ. 44), एम. अनन्तशयनम् आयंगर (*लो. स.वा.वि.,* 11.5.1957, पृ. 22), सरदार हुकम सिंह (*लो.स.वा.वि.*, 17.4.1962, पृ. 29), डा. एन. संजीव रेड्डी (*लो.स.वा.वि.,* 17.3.1967, पृ. 33 व 26.3.1977, पृ. 9), डा. गुरदयाल सिंह ढिल्लों (*लो.स.वा.वि.,* 23.3.1971, पृ. 10), बी.आर. भगत (*लो.स.वा.वि.,* 5.1.1976, पृ. 26), डा. बलराम जाखड़ (*लो.स.वा.वि.,* 22.1.1980, पृ. 26 और लो.स.वा.वि., 16.1.1985, पृ. 18), रवि राय (*लो.स.वा.वि.*, 19.12.1989, पृ. 16) और शिवराज वी. पाटील (*लो.स.वा.वि,* 10.7.1991, पृ. 25), श्री पूर्णो अगितोक संगमा (*लो.स.वा.वि.,* 23.5.1996, कॉ. 32) और जी. एम.सी. बालयोगी (*लो.स.वा.वि.,* 24.3.1998, कॉ. 7-8, और लो.स.वा.वि., 22.10.1999, कॉ. 3-4) और सोमनाथ चटर्जी (लो.स.वा.वि. 4.6.2004 कॉ. 3-4), के चुनावों के बाद कोई कार्य किए बिना स्थगित हो गई।

    तथापि, 8.3.1956 को एम. अनन्तशयनम् आयंगर (*लो.स.वा.वि.,* 8.3.1956, 1968), 8.8. 1969 को डा. गुरदयाल सिंह ढिल्लों (*लो.स.वा.वि.,* 8.8.1969, पृ.163) और 21.7.1977 को श्री के.एस. हेगड़े (*लो.स.वा.वि.,* 21.7.1977, कॉ. 183) और मनोहर जोशी (लो.स.वा.वि., 10. 5.2002, पृ. 272-74) के अध्यक्ष चुने जाने के बाद सभा का कार्य किया गया। इन सभी मामलों में अध्यक्ष के निधन/त्यागपत्र के कारण मध्यावधि रिक्तियां हो गई थीं।

36. उदाहरण के लिए *देखिए* लोक सभा सचिवालय अधिसूचना सं. 496-1/57, 11.5.1957, राजपत्र (1-2), 18.5.1957; 38/1/85/टी, 16.1.1985; राजपत्र (1-3); 38/1/89/टी, 19. 12.1989. 38/1/91/टी, 38/1/96/टी, 23.5.1996; और 38/1/98/टी, 24.3.1998) 38/1/99/टी, 22.10.1999; 38/1/02/टी, 10.5.2002; और 38/1/04/टी, 4.6.2004 ।

37. जी.आई. पटेल: *श्री विट्ठलभाई पटेल-लाइफ एंड टाइम्स,* बम्बई 1950, पृ. 739 ।

मुहम्मद याकूब, इब्राहीम रहीमतुल्ला, सर षणमुखम चेट्टी, सर अब्दुर्रहीम—उनके भी पीठासीन अधिकारी की तटस्थता और निर्दलीय होने के संबंध में लगभग ऐसे ही विचार थे।[38]

1937 में प्रांतों में लोकप्रिय सरकार बनने के बाद पीठासीन अधिकारी द्वारा अपने दल से संबंध तोड़ लेने का प्रश्न कुछ और विचारणीय हो गया लेकिन कुल मिलाकर इस बात पर सहमति थी कि तटस्थता के लिए यह जरूरी है कि पुराने राजनीतिक संबंध तोड़ने की सच्चे दिल से कोशिश की जाए।

अध्यक्षों का अपने राजनीतिक दलों के साथ कैसा संबंध होना चाहिए और उन्हें कहां तक राजनीति में भाग लेना चाहिए, इस प्रश्न पर भारत में विधायी संस्थाओं के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलनों का ध्यान गया है। 1951 में हुए सम्मेलन में यह राय बनी थी कि ऐसी परिपाटी डाली जाए कि जिस स्थान से अध्यक्ष पुनः निर्वाचन के लिए खड़ा हो, वहां और कोई व्यक्ति उनके मुकाबले में खड़ा न हो और अध्यक्ष दलों की राजनीति में भाग न लें।

अध्यक्ष मावलंकर ने 15 मई, 1952 को लोक सभा का अध्यक्ष चुने जाने पर अध्यक्षों द्वारा राजनीति में भाग लेने के संबंध में सभा में स्थिति स्पष्ट की और कहा—

> "... हमारे राजनीतिक तथा संसदीय जीवन की आज की परिस्थितियों को देखते हुए यह तो स्पष्ट है कि जहां तक राजनीतिक जीवन का संबंध है, भारतीय अध्यक्ष राजनीति से उतना अलग नहीं रह सकता जितना कि ब्रिटिश अध्यक्ष रहता है। परन्तु भारतीय अध्यक्ष, किसी राजनीतिक दल से पूरी तरह अलग रहेगा इसका मतलब यह है कि वह दलों के विचार-विमर्श और विवादों से अलग रहेगा, परन्तु केवल इस कारण कि वह अध्यक्ष बन गया है राजनीतिज्ञ के रूप में उसका अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। हमें अभी राजनीतिक दलों और अध्यक्ष के पद के संबंध में स्वस्थ परिपाटियों का विकास करना है। उसका सिद्धांत यह है कि कोई व्यक्ति एक बार अध्यक्ष बन जाए तो जब तक वह अध्यक्ष बना रहना चाहे, उसके निर्वाचन का विरोध कोई दल नहीं करता, वह निर्वाचन उसके निर्वाचन क्षेत्र में हो या कि सभा में। जब तक यह परिपाटी नहीं बन जाती तब तक अध्यक्ष से यह आशा करना कि वह राजनीति से सर्वथा संबंध-विच्छेद कर लेगा, परस्पर विरोधी आशाएं रखने वाली बात है।
>
> .....यद्यपि मैं कांग्रेसी हूं, मेरा यह कर्त्तव्य और प्रयास होगा कि सभा के सभी सदस्यों और सभी वर्गों के साथ न्याय और समता का व्यवहार करूं। यह मेरा कर्त्तव्य होगा कि तटस्थ रहूं और दल या राजनीतिक कैरीअर के विचारों से ऊपर उठकर काम करूं।[39]"

ग्वालियर में 1953 में पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन हुआ जिसमें यह संकल्प पारित किया गया कि ऐसी परिपाटी बनाई जाये कि जिस स्थान से अध्यक्ष पुनः चुनाव के लिए खड़ा हो, वहां पर उसके मुकाबले में कोई और खड़ा न हो और संकल्प में यह भी कहा गया

38. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.7.1930, पृ. 32; 17.1.1931, पृ. 43; 14.3.1933, पृ. 2059; 24.1.1935, पृ. 110 ।

39. *पी. डिबेट्स* (II), 15.5.1952, कॉ. 43-44, *देखिए* काश्यप: दादा साहेब मावलंकर, *उद्धृतकृति* पृ. 19-21 ।

कि सम्मेलन का सभापति सरकार से कहे कि इस संबंध में शुरुआत की जाये।[40] इस संकल्प के अनुसार सम्मेलन के सभापति (जी.वी. मावलंकर) ने इस प्रश्न पर उस समय के कांग्रेस के अध्यक्ष (जवाहरलाल नेहरू) से बातचीत की। कांग्रेस की कार्यकारिणी ने इस प्रश्न पर विचार किया और एक पत्र मावलंकर को लिखा जिसकी सूचना उन्होंने 1954 में श्रीनगर में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में इन शब्दों में दी:

> स्पष्ट है कि वे (कांग्रेस कार्यकारिणी) इस बात की वांछनीयता को स्वीकार करते हैं कि यह व्यापक परिपाटी बन जानी चाहिए कि अध्यक्ष चुनाव लड़े तो उस चुनाव क्षेत्र में उस स्थान के लिए और कोई खड़ा न हो। परन्तु इसके लिए अन्य राजनीतिक दलों की सहमति आवश्यक है और उनका विचार है कि ऐसी सहमति प्राप्त करना संभव नहीं है। परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि यह उचित परिपाटी है। उन्होंने मेरी चिट्ठी में कही गयी इस बात को भी स्वीकार कर लिया कि जहां तक संभव हो अध्यक्ष को आम चुनाव लड़ने और अध्यक्ष पद पर पुन: निर्वाचन से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। जहां तक संभव हो, होना यह चाहिए कि उसे अपने दल का टिकट दे दें जिससे कि वह अगले आम चुनाव में उम्मीदवार बन सके। मैं समझता हूँ कि जैसा भी निर्णय यह है, यह ठीक दिशा में उचित कदम है। सभी परिपाटियां धीरे-धीरे बनती हैं, उनका विकास शनै:-शनै: ही होता है। मैं समझता हूँ कि हमने इस परिपाटी की मजबूत नींव डाल दी है और अब हमें आगे प्रयास करना पड़ेगा।
>
> मैं यहां कह देना चाहता हूँ कि इस परिपाटी का दूसरा आवश्यक भाग क्या है। वह यह है कि अध्यक्ष को राजनीति के विवादास्पद विषयों में सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिए। इस सारी बात का निचोड़ यह है कि अध्यक्ष को अपने आपको न्यायाधीश की स्थिति में रखना चाहिए। उसे किसी का पक्ष नहीं लेना चाहिए जिससे अनजाने में भी वह किसी विचार के पक्ष या विपक्ष में धारणा न बना ले। इस प्रकार उसे अपनी ईमानदारी और तटस्थता के संबंध में सभा के सभी दलों और समूहों में विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। यदि हम अपने आप इस परिपाटी का विकास कर सकें, तभी हम आगे चल कर दूसरी परिपाटी को उचित सिद्ध कर सकेंगे और वह यह है कि अध्यक्ष पुन: चुनाव में खड़ा हो तो उसके मुकाबले में और कोई उम्मीदवार खड़ा न हो।[41]

अध्यक्ष आयंगर ने इस संबंध में अपने पूर्ववर्ती की राय से सहमति प्रकट की। 8 मार्च, 1956 को अध्यक्ष का पद ग्रहण करते समय उन्होंने कहा:

> मैं, सभा के प्रत्येक दल और प्रत्येक उस सदस्य को, जो किसी भी दल का सदस्य नहीं है, विश्वास दिलाता हूं कि मैं उसके विशेषाधिकारों की कभी अवहेलना नहीं करूंगा। सदस्य के नाते उसके विशेषाधिकारों का मुझे सदा ध्यान रहेगा। मैं परम्पराओं पर चलूंगा। पुरानी परम्पराओं का अनुसरण करूंगा, और जब भी नयी परम्पराएं स्थापित करने की बात होगी तो आप विश्वास रखिए मैं उन्हें स्थापित करने की चेष्टा करूंगा.... मैं एक दल और दूसरे दल में कोई भेद नहीं करता हूं........।[42]

---

40. जी.वी. मावलंकर, *स्पीचिज एण्ड राइटिंग्ज,* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1957, पृ. 39।
41. पूर्वोक्त ।
42. *एल.एस. डिबेट्स,* 8.3.1956, कॉ. 1967-68 ।

जब आयंगर दूसरी बार अध्यक्ष चुने गए तो उन्होंने इस सुझाव का उत्तर देते हुए कि उन्हें कांग्रेस दल का सदस्य नहीं रहना चाहिए, कहा:

> हो सकता है कि मैं अपने दल से इस्तीफा न दूं लेकिन मैं अपने पद पर इस ढंग से कार्य करूंगा कि सभी के मन में यह विश्वास उत्पन्न हो कि सभा के स्तर, परिपाटियों और परम्पराओं को उदात्त बनाया जा रहा है।[43]

अध्यक्ष आयंगर कांग्रेस दल के सदस्य बने रहे लेकिन उन्होंने कांग्रेस संसदीय दल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

वर्तमान स्थिति यह है कि किसी भी अन्य सदस्य की तरह अध्यक्ष उस चुनाव क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है जहां से वह लोक सभा में चुना गया है[44] और उसके स्थान के लिए अन्य उम्मीदवार भी चुनाव लड़ते हैं। अध्यक्ष आयंगर कांग्रेस के उम्मीदवार थे। उनके मुकाबले में तीन निर्दलीय उम्मीदवार चुनाव लड़ रहे थे। परन्तु किसी राजनीतिक दल ने उनके विरुद्ध अपना उम्मीदवार खड़ा नहीं किया। अध्यक्ष ढिल्लों के मुकाबले में भी उम्मीदवार खड़े हुए—ढिल्लों कांग्रेस के उम्मीदवार थे और उनके मुकाबले में पांच उम्मीदवार खड़े हुए जिनमें से तीन उम्मीदवार निर्दलीय थे और दो उम्मीदवारों के नाम राजनीतिक दलों द्वारा नामनिर्दिष्ट किए गए थे।

अध्यक्ष भगत के मुकाबले में भी चुनाव लड़ा गया। वह कांग्रेस के उम्मीदवार थे और उनके मुकाबले में नौ उम्मीदवार खड़े हुए जिनमें से आठ उम्मीदवार निर्दलीय थे और एक उम्मीदवार का नाम एक राजनीतिक दल द्वारा नामनिर्दिष्ट किया गया था।[45]

---

43. *एल.एस. डिबेट्स,* 11.5.1957, कॉ. 38 ।

44. 19 नवम्बर, 1959 को आंध्र प्रदेश तथा मद्रास (सीमाओं में परिवर्तन) विधेयक, 1959 पर विचार प्रारम्भ होने से पहले अध्यक्ष आयंगर ने, जो उस समय पीठासीन थे कहा—

    "अगला कार्य प्रारंभ करने से पहले मैं संक्षेप में कुछ बातें कहना चाहता हूं। सीमाओं का यह मामला मेरे चुनाव क्षेत्र से संबंधित है और इसलिए मैं अध्यक्ष के आसन पर बैठे नहीं रहना चाहता। मैं चाहे कितना ही न्याय करने की चेष्टा क्यों न करूं मैं यह धारणा उत्पन्न नहीं करना चाहता कि मैं कोई निर्णय कर रहा हूँ। अत: मैं उपाध्यक्ष सरदार हुकम सिंह से कहता हूं कि वे अध्यक्ष का आसन ग्रहण करें और इस विधेयक संबंधी कार्यवाही को आगे चलाएं।"

    इसके बाद अध्यक्ष ने अपना आसन छोड़ दिया और जब तक विधेयक सभा में विचाराधीन रहा उन्होंने अध्यक्षता नहीं की।

    देखिए लो.स.वा.वि., 19.11.1959, कॉ. 688, 20.11.1959, कॉ 914; और 23.11.1959, कॉ 1155 ।

    16 मई, 2006 को जब संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 2006 और 31 जुलाई, 2006 संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 2006 के राज्य सभा द्वारा यथापारित को विचार करने तथा पारित करने हेतु लिया गया, अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी ने सभा की कार्यवाही की अध्यक्षता से अनुपस्थित रहने का निर्णय लिया ताकि उन्हें विधेयक पारित कराने में एक पक्ष के रूप में न देखा जाए।

45. श्री बी.आर. भगत जनता पार्टी के उम्मीदवार से चुनाव हार गए।

अध्यक्ष के.एस. हेगड़े के मुकाबले में 1980 में चुनाव लड़ा गया और वह कांग्रेस (आई.) के उम्मीदवार से चुनाव हार गए।

अध्यक्ष बलराम जाखड़ के मुकाबले में 1984 और 1989 में चुनाव लड़ा गया। वह 1985 में पुनः निर्वाचित हुए लेकिन 1989 में जनता दल के उम्मीदवार से चुनाव हार गए। यहां उनके मुकाबले में 19 उम्मीदवार खड़े थे।

अध्यक्ष रवि राय के मुकाबले में भी 1991 में चुनाव लड़ा गया और वह पुनः निर्वाचित हुए। रवि राय ने जनता दल के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा और सात उम्मीदवार उनके मुकाबले में खड़े थे।

अध्यक्ष शिवराज वी. पाटिल के विरुद्ध भी 1996 में चुनाव लड़ा गया और वह पुनः निर्वाचित हुए। (कुल उम्मीदवार–24; भा.रा.कां. का उम्मीदवार विजयी हुआ।)

अध्यक्ष पूर्णो ए. संगमा के विरुद्ध भी 1998 में चुनाव लड़ा गया और वह चार उम्मीदवारों में से कांग्रेस (भा.रा.कां.) के उम्मीदवार के रूप में पुनः निर्वाचित हुए।

अध्यक्ष जी.एम.सी. बालयोगी की सीट के लिए भी 1999 में चुनाव लड़ा गया और वह पांच उम्मीदवारों में से तेलगू देशम पार्टी (टी.डी.पी.) के उम्मीदवार के रूप में पुनः निर्वाचित हुए।

अध्यक्ष मनोहर जोशी की सीट के लिए भी 2004 में चुनाव लड़ा गया इसमें सात उम्मीदवार थे तथा मनोहर जोशी यह चुनाव हार गए थे।

अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने पंद्रहवीं लोक सभा के लिए चुनाव नहीं लड़ा।

अध्यक्ष मीरा कुमार ने वर्ष 2014 में चुनाव लड़ा और वह भारतीय जनता पार्टी (बी. जे.पी) के प्रत्याशी से हार गई, इस सीट पर ग्यारह प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा।

1967 में पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में, सम्मेलन के अध्यक्ष ने अन्य बातों के साथ-साथ संसद/विधान मण्डलों को कारगर ढंग से कार्य करने हेतु सक्षम बनाने के लिए अपनायी या बनाई जाने वाली परम्पराओं आदि पर विचार करने के लिए पीठासीन अधिकारियों की एक समिति गठित की।[46]

समिति ने यह महसूस किया कि संसदीय लोकतंत्र के सफलतापूर्ण कार्यकरण के लिए अध्यक्ष का तटस्थ होना आवश्यक है, इसलिए यह अनिवार्य है कि अध्यक्ष को संबंधित राजनीतिक दल से अपना नाता तोड़ लेना चाहिए। इसे सिद्धांत रूप से लागू करने के लिए समिति ने यह वांछनीय समझा कि ऐसी परिपाटी बनायी जाए कि अध्यक्ष जिस स्थान से इस सभा के लिए चुने जाने अथवा पुनः चुने जाने के लिए खड़ा हो, उस स्थान के लिए उसके

46. इसे समिति के सभापति वी.एस. पागे, चेयरमैन, महाराष्ट्र विधान परिषद के नाम पर पागे समिति के रूप में जाना जाता है। (इसके पश्चात् इसे पागे समिति ही कहा गया है।) पागे समिति की रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट सिफारिशों को अक्तूबर, 1968 में त्रिवेन्द्रम (जिसे अब तिरुवनंतपुरम कहा जाता है) में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में स्वीकार किया गया था।

मुकाबले में कोई उम्मीदवार खड़ा न हो और इस संबंध में समिति ने निम्नलिखित दिशा-निर्देशों की सिफारिश की:

प्रत्येक आम चुनाव अथवा मध्यावधि चुनाव, जैसी भी स्थिति हो, से पूर्व, चुनावों से पहले सरकार बनाने वाले बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल को चुनाव लड़ने वाले सभी राजनीतिक दलों के बीच इस संबंध में आम राय बनाने का प्रयास करना चाहिए कि क्या वे सभी मौजूदा अध्यक्ष के नई सभा में भी अध्यक्ष बनाए जाने के लिए सहमत हैं;

यदि अध्यक्ष ने अपने कार्यकाल के दौरान अपने दायित्वों का निर्वहन निष्पक्षता और कुशलता से किया है तो उसे पद पर बनाए रखा जाना चाहिए;

इस मुद्दे पर निर्णय सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की बैठक में बहुमत की राय से, आवश्यक नहीं कि सर्वानुमति हो, लिया जाना चाहिए। मौजूदा अध्यक्ष को बनाए रखने का निर्णय लिए जाने के बाद राजनीतिक दलों को उसके विरुद्ध प्रत्याशी खड़ा करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और ऐसे राजनीतिक दलों का चुनाव लड़ने वाले निर्दलीय प्रत्याशी के विरुद्ध उसका समर्थन करना चाहिए;

वर्तमान अध्यक्ष को सभा का सदस्य निर्वाचित होने पर चुनाव नहीं लड़ना चाहिए अथवा मुख्यमंत्री या मंत्री नहीं बनना चाहिए। वह अध्यक्ष के लिए निर्विरोध निर्वाचन का पात्र होगा;

यदि चुनाव से पूर्व अध्यक्ष के पद के लिए आम राय नहीं बन पाती है तो सभी राजनीतिक दल अध्यक्ष के पद के लिए अपने-अपने प्रत्याशी खड़े करने के लिए स्वतंत्र होंगे। ऐसी स्थिति में, वर्तमान अध्यक्ष, यदि वह चाहे तो, अपने राजनीतिक दल के टिकट पर चुनाव लड़ने के लिए स्वतंत्र है;

चुनाव हो जाने के पश्चात् बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल को सभा के अध्यक्ष के लिए सभी राजनीतिक दलों से उनकी पसन्द के बारे में विचार-विमर्श करना चाहिए। अध्यक्ष पद हेतु व्यक्ति का चयन करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि भारत में वर्तमान परिदृश्य में यह आवश्यक है कि अध्यक्ष पद के लिए चुने जाने वाले व्यक्ति का राजनीतिक अनुभव और स्थान काफी ऊंचा हो और उसे सभा के नेता जैसा सम्मान प्राप्त हो। यदि अध्यक्ष के पद के लिए आम राय बन जाती है और उसके खिलाफ चुनाव में कोई राजनीतिक दल अपना प्रत्याशी खड़ा नहीं करता है तो अध्यक्ष को अपने राजनीतिक दल से त्यागपत्र दे देना चाहिए;

यदि अध्यक्ष के पद के लिए आम राय नहीं बनती है और उसका निर्वाचन चुनाव के माध्यम से होता है तो अध्यक्ष को चुनाव के पश्चात् अपनी पार्टी के संसदीय दल से त्यागपत्र दे देना चाहिए;

अध्यक्ष को पदभार ग्रहण करने के पश्चात् विवादास्पद दलगत राजनीति से अपने संबंध-विच्छेद कर लेने चाहिए। उसे सरकार द्वारा गठित किसी समिति का सदस्य भी नहीं बनना चाहिए। तथापि, यदि ऐसी कोई समिति सामाजिक या रचनात्मक कार्य से संबंधित है तो वह इसकी अध्यक्षता स्वीकार कर सकता है;

किसी राज्य के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति की उद्घोषणा के संबंध में अध्यक्ष के बारे में संविधान के अनुच्छेद 179 के दूसरे परन्तुक को निलम्बित नहीं किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, ऐसे मामलों में उद्घोषणा से पूर्व अध्यक्ष द्वारा उपयोग की जाने वाली शक्तियों से संबंधित संविधान के प्रावधानों को निलम्बित नहीं किया जाना चाहिए।

यद्यपि अध्यक्ष सभा के लिए अपने चुनाव हेतु किसी राजनीतिक दल के टिकट पर खड़ा होता है फिर भी यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है कि वह अध्यक्ष चुने जाने के पश्चात् अपने दल का सदस्य रहे अथवा नहीं। यदि वह अपने राजनीतिक दल से संबंध विच्छेद नहीं करता है तो उसे अपने दल की बैठकों में भाग नहीं लेना चाहिए।

तथापि संघीय स्तर पर कमोबेश एक परिपाटी विकसित हो चुकी है कि अध्यक्ष स्वयं को अपने दल से अलग रखता है। डा. एन. संजीव रेड्डी ने चौथी लोक सभा का अध्यक्ष चुने जाने पर कांग्रेस पार्टी से त्यागपत्र दे दिया था। डा. जी.एस. ढिल्लों ने डा. एन. संजीव रेड्डी द्वारा त्यागपत्र दिए जाने से रिक्त हुए अध्यक्ष पद पर चुने जाने और पांचवी लोक सभा के अध्यक्ष पद पर अपने पुन: निर्वाचन के पश्चात् संसद में कांग्रेस पार्टी से इस्तीफा दे दिया था लेकिन वे कांग्रेस पार्टी के सदस्य बने रहे।[47]

सर्वश्री बी.आर. भगत, के.एस. हेगड़े, डा. बलराम जाखड़, रवि राय, शिवराज वी. पाटील, पूर्णो ए. संगमा और जी.एम.सी. बालयोगी, मनोहर जोशी, सोमनाथ चटर्जी और मीरा कुमार ने अध्यक्ष चुने जाने पर उस राजनीतिक दल से औपचारिक रूप से त्यागपत्र नहीं दिया था जिसके टिकट पर वे लोक सभा के लिए चुने गए थे। हालांकि, उन्होंने प्रतिज्ञान किया था कि उनका सम्बन्ध समूची सभा से है, न कि किसी दल विशेष से। अध्यक्ष के पद पर रहते हुए उन्होंने अपने दल की किसी बैठक में भी भाग नहीं लिया।

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 द्वारा संविधान में जोड़ी गई दसवीं अनुसूची में यह निर्धारित किया गया है कि सदन में कोई सदस्य चाहे वह किसी दल का हो, यदि वह स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ता है तो वह सदन का सदस्य रहने के अयोग्य हो जाता है।[48] तथापि दसवीं अनुसूची में उस व्यक्ति, जो लोक सभा अथवा किसी राज्य की विधान सभा का अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष अथवा राज्य सभा का उप-सभापति या किसी राज्य की विधान परिषद का सभापति अथवा उप-सभापति चुना गया है, के संबंध में विशेष प्रावधान किया गया है ताकि वह अपने राजनीतिक दल से संबंध-विच्छेद कर सके और

47. लो.स.वा.वि., 17.3.1967, कॉ. 76 और 8.8.1969, कॉ. 228-29 ।

48. संविधान की दसवीं अनुसूची का पैरा 2

जब वह अपना पद छोड़ देता है तो निरर्हित हुए बिना अपने राजनीतिक दल में पुनः शामिल हो सके।[49]

अध्यक्ष का कार्यकाल

अध्यक्ष निर्वाचन के समय से लेकर उस लोक सभा, जिसके लिए वह चुना जाता है, के विघटन के बाद अगली लोक सभा की पहली बैठक से फौरन पहले तक अपने पद पर रहता है। वह पुनः चुना जा सकता है। अध्यक्ष यदि लोक सभा का सदस्य न रहे तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है। यदि अनुच्छेद 101 और 102 में बताई गयी स्थिति उत्पन्न हो जाये तो किसी अन्य सदस्य की तरह वह लोक सभा का सदस्य नहीं रहता। लोक सभा के विघटन पर, यद्यपि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों लोक सभा के सदस्य नहीं रहते, केवल उपाध्यक्ष ही अपना पद छोड़ देता है।[50]

जब भी अध्यक्ष का पद रिक्त हो जाता है, इस संबंध में एक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाती है।

अध्यक्ष को अपने पूरे कार्यकाल में अपने पद के कृत्यों का निर्वहन स्वयं करना पड़ता है और स्टेशन से बाहर होने या बीमारी की दशा में वह अपने काम उपाध्यक्ष को नहीं सौंप सकता।

अध्यक्ष किसी भी समय उपाध्यक्ष को पत्र लिखकर अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है, चाहे उस समय उपाध्यक्ष का पद रिक्त ही क्यों न हो।[51] उसी प्रकार उपाध्यक्ष का त्यागपत्र अध्यक्ष को संबोधित होना चाहिए, चाहे अध्यक्ष का पद रिक्त ही क्यों न हो।[52]

---

49. भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची में प्रावधान किया गया है:
"इस अनुसूची में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति, जो लोक सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा राज्य सभा के उप सभापति अथवा किसी राज्य की विधान परिषद के सभापति या उप-सभापति अथवा किसी राज्य की विधान सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के पद पर निर्वाचित हुआ है, इस अनुसूची के अधीन निरर्हित नहीं होगा:
(क) यदि वह, ऐसे पद पर अपने निर्वाचन के कारण ऐसे राजनीतिक दल की, जिसका वह ऐसे निर्वाचन से ठीक पहले सदस्य था, अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है और उसके पश्चात् जब तक वह पद धारण किये रहता है, तब तक उस राजनीतिक दल में पुनः सम्मिलित नहीं होता है अथवा किसी दूसरे राजनीतिक दल का सदस्य नहीं बनता है; या
(ख) यदि वह, ऐसे पद पर अपने निर्वाचन के कारण ऐसे राजनीतिक दल की, जिसका वह ऐसे निर्वाचन से ठीक पहले सदस्य था, अपनी सदस्यता छोड़ देता है, और ऐसे पद पर न रह जाने के पश्चात् ऐसे राजनीतिक दल में पुनः सम्मिलित हो जाता है।"

50. *देखिए* अनुच्छेद 94 ।

51. अनुच्छेद 94 (ख) ।
पुरानी विधान सभा में त्यागपत्र गवर्नर जनरल को संबोधित करना होता था, जिसे यह भी अधिकार था कि वह अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के निर्वाचन का अनुमोदन करता था—धारा 63ग, जो कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची में दी गयी है।

52. एम.ए. आयंगर ने 7 मार्च, 1956 के अपराह्न को उपाध्यक्ष के पद से त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र अध्यक्ष को संबोधित था और सचिवालय को भेजा गया था यद्यपि अध्यक्ष का पद उस समय

जब अध्यक्ष पदत्याग करना चाहे तो उसे निम्नलिखित औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं—

(i) त्यागपत्र लिखित होना चाहिए—वह हाथ से लिखा हो या टाइप किया हुआ हो—और उस पर अन्त में उसके हस्ताक्षर होने चाहिए; और

(ii) पत्र उपाध्यक्ष को संबोधित किया जाना चाहिए—इसका अभिप्राय है कि यह उसके नाम से नहीं बल्कि पदनाम से भेजा जाना चाहिए।

पत्र में तिथि अवश्य होनी चाहिए और यदि उसमें यह नहीं लिखा गया कि त्यागपत्र किस तिथि से प्रभावी होगा तो त्यागपत्र उस तिथि से लागू होगा जिस तिथि को वह लिखा गया है। यदि पत्र में कोई तिथि नहीं है तो वह उस तिथि से प्रभावी होगा जिस तिथि को वह उपाध्यक्ष या महासचिव को मिला है।

अध्यक्ष के पदत्याग की सूचना सभा को उपाध्यक्ष देता है और यदि उपाध्यक्ष का पद रिक्त हो तो महासचिव को वह त्यागपत्र मिलता है और वही उसकी सूचना सभा को देता है।

त्यागपत्र की अधिसूचना राजपत्र में तथा संसदीय समाचार में प्रकाशित की जाती है।[53]

सभा के विघटन पर अध्यक्ष का त्यागपत्र देने का अधिकार[54]

यद्यपि लोक सभा/विधान सभा के विघटित होने पर अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सभा के अन्य सदस्यों की भांति सभा के सदस्य नहीं रहते हैं परन्तु वास्तव में केवल उपाध्यक्ष ही अपना पदत्याग करता है। अनुच्छेद 94 के दूसरे परन्तुक के अंतर्गत (जो अनुच्छेद 179 के अनुरूप है) यह व्यादेश है कि लोक सभा विघटित होने पर अध्यक्ष अगली लोक सभा की पहली बैठक होने के तत्काल पहले तक अपना पदत्याग नहीं करेगा। यह कहा जा सकता है कि सभा के विघटन के बाद अध्यक्ष त्यागपत्र नहीं दे सकता है और इस संबंध में उनके ऊपर लगाई गई बाध्यता सुविचारित है क्योंकि अध्यक्ष को सचिवालय के कार्य देखने होते हैं और दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों को राष्ट्रपति को प्रेषित करना इत्यादि कार्य करने होते हैं।

रिक्त था। सचिव ने 8.3.1956 को उपाध्यक्ष के त्यागपत्र की सूचना लोक सभा को दी—*देखिए* लोक सभा सचिवालय अधिसूचना सं. 496-टी/56 राजपत्र, असाधारण (1-1), 7.3.1956 और *एल.एस. डिबेट्स* (I), 8.3.1956, कॉ. 809 ।

53. उदाहरण के लिए *देखिए* लोक सभा सचिवालय अधिसूचना भाग-2 सं. 496-टी/56, राजपत्र असाधारण (1-1), 7.3.1956 और समाचार-भाग 2, 7.3.1956, पैरा 2938 ।

एन. संजीव रेड्डी ने 19 जुलाई, 1969 को 17.00 बजे अध्यक्ष (चौथी लोक सभा) के पद से त्यागपत्र दिया। त्यागपत्र उपाध्यक्ष को संबोधित था। उपाध्यक्ष ने उस पर प्राप्त करने का समय दर्ज किया। यह उस तिथि के समाचार-भाग 2 में प्रकाशित हुआ। सभा में कोई घोषणा नहीं की गई।

देखिए लो.स.वा.वि., 5.1.1976, पृ. 1, उपाध्यक्ष ने लोक सभा को सूचित किया कि डा. गुरदयाल सिंह ढिल्लों ने 1 दिसम्बर, 1975 को 7.00 बजे अध्यक्ष के पद से त्यागपत्र दिया।

54. *देखिए* सुभाष सी. काश्यप: 'स्पीकर्स राइट टू रिजाइन', जे.पी.आई., खंड xxxiv, सं. 3, सितम्बर, 1988 ।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 95 में दिया गया है कि अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर उसके दायित्वों का निर्वाह उपाध्यक्ष द्वारा किया जाएगा अथवा यदि उपाध्यक्ष का पद भी रिक्त है तो उसके दायित्वों का निर्वाह किसी ऐसे अन्य सदस्य द्वारा किया जाएगा जिसकी नियुक्ति इस उद्देश्य हेतु राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।

इस प्रश्न के संबंध में कि क्या सभा के विघटित होने और अध्यक्ष के पद के कार्यों का निर्वहन करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति के न होने की स्थिति में अध्यक्ष अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है, आठवीं लोक सभा के एक सदस्य द्वारा किए गए उल्लेख पर गहराई से विचार किया गया था। इस मामले के तथ्य निम्न प्रकार हैं:—

> 22 नवम्बर, 1984 को आन्ध्र प्रदेश विधान सभा विघटित हुई थी। अध्यक्ष (श्री एन.आर. वेंकटरत्नम) अनुच्छेद 179 के दूसरे परन्तुक के अनुसार अपने पद पर कार्य करते रहे। तथापि, नई विधान सभा का गठन होने से पहले उन्होंने लोक सभा का चुनाव लड़ा और उन्हें विधिवत् निर्वाचित घोषित किया गया। उन्होंने 10 जनवरी, 1985 को अध्यक्ष के पद से त्यागपत्र दे दिया। तदनन्तर, उन्होंने महासचिव, लोक सभा को लिखा कि अनुच्छेद 179 के दूसरे परन्तुक के अनुसार वह अभी भी आन्ध्र प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष के पद पर बने रहेंगे, यद्यपि, वह कोई पारिश्रमिक नहीं लेंगे। उनके अनुसार, अनुच्छेद 179 के दूसरे परन्तुक को देखते हुए उनका त्यागपत्र निष्प्रभावी रहा।

उपरोक्त उल्लेख के परिणामस्वरूप विचारार्थ यह प्रश्न उठा था कि क्या आन्ध्र प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष पद से श्री वेंकटरत्नम का त्यागपत्र वांछित था और क्या यह अनुच्छेद 179 के दूसरे परन्तुक को देखते हुए निष्प्रभावी रहा।

इस मामले में एक कानूनी राय यह थी कि प्रतिनिधि निकाय का अध्यक्ष चुन लिए जाने के बाद, श्री वेंकटरत्नम को नई विधान सभा की पहली बैठक के तुरन्त पहले तक अपने पद पर बने रहना होगा और विधान सभा का अध्यक्ष विधान सभा विघटित होने के बाद अपने पद से त्यागपत्र देने के अपने अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता है क्योंकि कतिपय ऐसे कार्य होते हैं जो विधान सभा विघटित होने के बाद भी अध्यक्ष को करने होते हैं। इस आशय का अर्थ यह लगाना कि अध्यक्ष विधान सभा विघटित होने के बाद अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है, इस परन्तुक को निष्प्रभावी कर देगा।

महासचिव, लोक सभा ने इस मामले की गहराई से जांच की और यह महसूस किया कि निम्नलिखित बातों पर आगे विचार होना चाहिए:

(i) अनुच्छेद 179 बिल्कुल अनुच्छेद 94 जैसा ही है। अनुच्छेद 94 लोक सभा के अध्यक्ष पर लागू होता है। अनुच्छेद 67 में उप-राष्ट्रपति के बारे में भी प्रावधान समान ही हैं जिसमें यह प्रावधान है कि उप-राष्ट्रपति का कार्यकाल पांच वर्षों का होगा लेकिन वह (क) अपने पद का त्याग कर सकता है, (ख) उसे उसके पद से हटाया जा सकता है, तथा (ग) वह अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद भी अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक उसके उत्तराधिकारी का चयन न हो जाए। प्रश्न यह उठता है कि क्या परन्तुक (ग) उप-राष्ट्रपति को उसकी इच्छानुसार अपने पद से त्यागपत्र देने से

रोक सकता है। यदि इस व्याख्या को स्वीकार किया जाए तो (ग) न केवल त्यागपत्र दिए जाने से संबंधित परन्तुक (क) पर बल्कि उन्हें उनके पद से हटाये जाने संबंधी परन्तुक (ख) पर भी अभिभावी होगा क्योंकि राज्य सभा लोक सभा से भिन्न, एक स्थायी सदन है। इस प्रकार की एक स्थिति तब उत्पन्न हुई जब उप-राष्ट्रपति, श्री वी. वी. गिरी 3 मई, 1969 जो तत्कालीन राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन के निधन के पश्चात् कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्यरत थे, तथा उन्होंने राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने का निर्णय लिया और विधि अनुसार आवश्यक न होते हुए भी उन्होंने नामांकन पत्र भरने से पहले अपने पद से त्यागपत्र देने का निर्णय किया। यद्यपि उस समय राष्ट्रपति के पद पर कोई भी आसीन न था जिन्हें वे अपना त्यागपत्र संबोधित करते और यहां तक कि उसका कोई उत्तराधिकारी भी न था, तथापि श्री गिरि ने अपने पद से त्यागपत्र दिया और वह तत्काल प्रभावी भी हो गया। हालांकि यह पदावधि समाप्त होने का मामला न था फिर भी यह पूर्वोदाहरण सुसंगत है और इससे यह लगता है कि इसकी अधिक स्वीकार्य व्याख्या यही होगी कि (ग) केवल एक सामर्थ्यकारी उपबंध है जो उप-राष्ट्रपति को सामर्थ्य प्रदान करता है और उसके लिए अनिवार्य करता है कि वह अपने पद की अवधि समाप्त होने के बाद भी अपने पद पर तब तक बना रहे जब तक उसका उत्तराधिकारी उक्त पदभार ग्रहण न कर ले। इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता कि उप-राष्ट्रपति को उनकी इच्छा के विरुद्ध पद पर बने रहने के लिए बाध्य किया जा सकता है और वे अपनी इच्छानुसार पद से त्यागपत्र नहीं दे सकते।

(ii) अनुच्छेद 179 में अन्य बातों के साथ-साथ, यह भी प्रावधान है कि (क) अध्यक्ष यदि विधान सभा का सदस्य नहीं रहता है तो वह अपना पद रिक्त कर देगा, (ख) वह किसी भी समय पद से त्यागपत्र दे सकता है, और (ग) उसे अपने पद से हटाया जा सकता है.... इत्यादि। इस अनुच्छेद के दो परन्तुक हैं। प्रथम परन्तुक विशेष रूप से उन्हें पद से हटाये जाने से संबद्ध है जो खण्ड (ग) में उद्धृत है। दूसरा परन्तुक विशेष रूप से पद के रिक्त होने से संबद्ध है जो खण्ड (ख) में उद्धृत है। त्यागपत्र से संबद्ध कोई भी परन्तुक नहीं है जो खण्ड (ख) में उद्धृत है। अतः यह प्रतीत होता है कि दूसरा परन्तुक केवल सामर्थ्यकारी प्रावधान है जिसे खण्ड (क) के साथ पढ़ा जाना चाहिए। चूंकि खण्ड (क) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विधान सभा का सदस्य नहीं रहने की स्थिति में अध्यक्ष अपना पद छोड़ देगा, अतः यह परन्तुक जोड़ना आवश्यक था कि विधान सभा विघटित हो जाने की स्थिति में उसका सदस्य न होते हुए भी अध्यक्ष अपने पद पर बना रहेगा। दूसरा परन्तुक खण्ड (ख) के प्रावधान के अनुसार 'किसी भी समय' त्यागपत्र देने के अध्यक्ष के अधिकार में बाधक नहीं है और अनुच्छेद का यह ध्येय भी नहीं हो सकता कि अध्यक्ष जैसे उच्च अधिकारी को उसकी इच्छा के विरुद्ध उनके पद पर बने रहने के लिए बाध्य किया जाए।

(iii) दूसरे परन्तुक के बावजूद भी यह व्याख्या कि अध्यक्ष अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी समय पदत्याग कर सकता है दूसरे परन्तुक को निष्प्रभावी नहीं करता क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया है सभा विघटित होने पर, अध्यक्ष का उसका सदस्य न होने की स्थिति में यह परन्तुक अध्यक्ष को अपने पद पर बने रहने के लिए समर्थ बनाने के लिए आवश्यक है।

(iv) यह बहुत महत्वपूर्ण है कि खंड (क) और दूसरे परन्तुक में भी 'रिक्त' शब्द का प्रयोग किया गया है और 'त्यागपत्र' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यदि संविधान निर्माताओं का इरादा 'त्यागपत्र' को शामिल न करना होता तो उन्होंने दूसरे परन्तुक में निश्चित रूप से कह दिया होता कि अध्यक्ष 'पद रिक्त नहीं करेगा' अथवा 'त्यागपत्र' नहीं देगा। वास्तव में, उन्होंने सामान्यतः प्रयुक्त शब्दावली 'पदधारण करता रहेगा' का भी प्रयोग नहीं किया है जिसका प्रयोग अनुच्छेद 67 में उप-राष्ट्रपति के लिए किया गया है।

(v) जहां तक विधान सभा विघटित होने के बाद अध्यक्ष द्वारा अपने पद से 'त्यागपत्र' दिए जाने के बाद अध्यक्ष के पद के कर्त्तव्यों के निर्वहन का संबंध है, इस मामले पर अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारियों और सचिवों के सम्मेलनों में कई बार विचार-विमर्श हो चुका है। उदाहरण के लिए 1976 में आयोजित सम्मेलन में निम्नलिखित प्रश्न उठाया गया था कि 'सभा के विघटन के दौरान अध्यक्ष द्वारा अपने पद से त्यागपत्र दिए जाने अथवा उसकी मृत्यु हो जाने अथवा अन्य कारणों से अशक्तता के कारण अध्यक्ष के पद से जुड़े कार्यों का निर्वहन कैसे होगा'? यह बात पूर्ण रूप से स्वीकार की गई थी कि सभा विघटित होने के बाद अध्यक्ष त्यागपत्र दे सकता है। मृत्यु और अशक्तता जैसी अन्य आकस्मिकताओं पर भी ध्यान दिया गया था। इन दोनों ही स्थितियों में किसी के द्वारा अध्यक्ष पद के कर्त्तव्यों के निर्वहन के संबंध में कुछ समस्या थी। अनुच्छेद 179 के द्वितीय परन्तुक की इस प्रकार व्याख्या किए जाने पर भी यदि अध्यक्ष द्वारा त्यागपत्र दिया जाना निषिद्ध किया जाए, तब भी, मृत्यु हो जाने अथवा अशक्तता की स्थिति में समस्या बनी रहेगी जिसे इस परन्तुक की किसी भी प्रकार की व्याख्या करने के बावजूद रोका नहीं जा सकता। पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में अध्यक्षपीठ ने यह महसूस किया कि ऐसी आकस्मिकता की स्थिति में संविधान इस संबंध में मौन है कि अध्यक्ष के कर्त्तव्यों का निर्वहन कौन करेगा। तथापि, उन्होंने महसूस किया कि राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति इस संबंध में आवश्यक कार्यवाही कर सकते हैं और सचिवालय का प्रशासन मुख्यमंत्री अथवा प्रधान मंत्री, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा चलाया जा सकता है।

(vi) वास्तव में सभा के विघटन के बाद अध्यक्ष का पद रिक्त रहने की स्थिति हिमाचल प्रदेश में उत्पन्न हुई थी जहां विधान सभा ने 14 दिसम्बर, 1984 को अध्यक्ष को पद से हटा दिया था और दूसरा अध्यक्ष निर्वाचित किए बगैर 23 जनवरी, 1985 को विधान सभा विघटित कर दी गई थी।

(vii) जहां तक त्यागपत्र उपाध्यक्ष को संबोधित किए जाने का संबंध है, हमारा सदैव यही दृष्टिकोण रहा है कि उपाध्यक्ष का पद रिक्त होने के बावजूद त्यागपत्र उपाध्यक्ष के कार्यालय को भेजा जाना चाहिए और भेजा जा सकता है। वास्तव में अनुच्छेद 67 के अतंर्गत, वी.वी. गिरी के मामले में भी राष्ट्रपति का पद, जिसे त्यागपत्र संबोधित किया जाना था, उस समय रिक्त था, फिर भी, वी.वी. गिरी ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया

था। तत्कालीन महान्यायवादी से भी परामर्श किया गया था और पाया गया था कि जबकि संविधान में ऐसी स्थिति से निपटने के लिए कोई प्रावधान नहीं है, अनुच्छेद 67 में भी त्यागपत्र केवल स्वीकृति के बाद प्रभावी होने का कोई प्रावधान नहीं है, अत: ऐसी स्थिति में यह त्यागपत्र देने के साथ ही प्रभावी हुआ। उप-राष्ट्रपति के मामले में अनुच्छेद 67 और अध्यक्ष के मामले में अनुच्छेद 94 और 179 में भी त्यागपत्र देने के अधिकार पर विशेष रूप से विचार किया गया है और त्यागपत्र प्रस्तुत करने के साथ ही प्रभावी हो जाता है।[55]

उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में महासचिव, लोक सभा ने निम्नलिखित बातों पर महान्यायवादी की सुविचारित राय मांगी:

(क) क्या अनुच्छेद 179 के दूसरे परन्तुक के कारण एन.आर. वेंकटरत्नम आंध्र प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र नहीं दे पाए;

(ख) क्या त्यागपत्र देने के बावजूद वह आंध्र प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष बने रहे, अर्थात् क्या उनका त्यागपत्र तत्काल प्रभावी नहीं हुआ?

इस मामले में महासचिव, लोक सभा के विचारों का समर्थन करते हुए विद्वान महान्यायवादी ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की:

> सभा के विघटन के कारण उपाध्यक्ष के न होने की स्थिति में अध्यक्ष को त्यागपत्र देने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। यह विधि के सूक्ति सिद्धांत पर आधारित है यथा विधि असंभव करने के लिए विवश नहीं करती, अर्थात् जब विधि के किसी अनिवार्य भाग का निष्पादन आवश्यक अथवा अपरिहार्य हो तो ऐसी असमर्थता विधिसम्मत है। विधि किसी को कोई असंभव कार्य करने के लिए बाध्य नहीं करती है।
>
> यदि हम अनुच्छेद 180 को देखें तो यह विचार और भी प्रबल होता है। अनुच्छेद 180 में यह प्रावधान किया गया है कि जब अध्यक्ष पद रिक्त है तब उपाध्यक्ष या यदि उपाध्यक्ष का पद भी रिक्त है तो विधान सभा का ऐसा सदस्य जिसको राज्यपाल इस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे उस पद के कर्त्तव्यों का पालन करेगा। अत: संविधान में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त होने की स्थिति की कल्पना की गई है। अत: केवल सभा के विघटित होने और कोई उपाध्यक्ष न होने के कारण अध्यक्ष को अपना त्यागपत्र देने से नहीं रोका जा सकता। यह सत्य है कि जब अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों

---

55. संविधान के अतंर्गत उप-राष्ट्रपति और अध्यक्ष जैसे संवैधानिक अधिकारियों का त्यागपत्र किसी प्राधिकारी द्वारा उसके प्रभावी होने से पूर्व स्वीकृत किए जाने पर निर्भर नहीं करता। उच्चतम न्यायालय ने *भारत संघ बनाम गोपाल चंद्र मिश्र* (ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 694) में यह टिप्पणी की कि सरकारी कर्मचारी के मामले में, उसका त्यागपत्र सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत किए जाने पर ही प्रभावी होता है, किंतु उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में ऐसा नहीं है जब वह संविधान के अनुच्छेद 217(1) के परन्तुक (क) के अंतर्गत त्यागपत्र देता है। उसके मामले में उसका त्यागपत्र तभी प्रभावी होता है तथा कार्यकाल उसी तिथि को समाप्त होता है जिस तिथि को वह अपनी इच्छा से पद छोड़ता है। उपर्युक्त संवैधानिक अधिकारियों के मामले में भी स्थिति यही होगी।

के पद रिक्त हों, तो राज्यपाल विधान सभा के सदस्य को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कर सकते हैं और सभा विघटित होने की स्थिति में राज्यपाल द्वारा सभा का कोई भी सदस्य अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करने के लिए उपलब्ध नहीं होगा। किंतु यह अध्यक्ष के त्यागपत्र देने के अधिकार के विरुद्ध नहीं होना चाहिए.....

जिन विनिर्दिष्ट बातों पर महान्यायवादी की राय मांगी गई थी, उनके संबंध में उन्होंने निम्नलिखित राय व्यक्त की :

"(i) अनुच्छेद 179 का दूसरा परन्तुक एन.आर. वेंकटरत्नम को अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए नहीं रोकता; और

(ii) उनका त्यागपत्र तत्काल प्रभावी हुआ जब उन्होंने त्यागपत्र दिया।"

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद से हटाया जाना

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को लोक सभा में, तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से संकल्प पारित करके, उनके पद से हटाया जा सकता है। 'तत्कालीन समस्त सदस्यों' शब्दों का प्रयोग अनुच्छेद 94(ग) में किया गया है जिसका मतलब है सभा के सदस्यों की वास्तविक संख्या। उन स्थानों का ध्यान नहीं रखा जाता जो उस समय खाली हों।[56] ऐसे संकल्प को प्रस्तुत करने के लिए कम से कम चौदह दिन की सूचना देनी पड़ती है। चौदह दिन का हिसाब लगाते समय प्रारम्भ और अंत के दोनों दिन छोड़ दिए जाते हैं।[57]

कोई सदस्य जो अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को हटाने वाले किसी संकल्प की सूचना देना चाहे तो वह यह सूचना लिखित रूप में महासचिव को देगा।[58] दो या अधिक सदस्य संयुक्त रूप से सूचना दे सकते हैं। सूचना प्राप्त होने पर संकल्प प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा निश्चित किए गए किसी दिन की कार्य-सूची में संबंधित सदस्य के नाम में दर्ज कर दिया जाता है। परन्तु उस तरह निश्चित किया गया दिन संकल्प की सूचना प्राप्त होने की तिथि से चौदह दिन बाद का कोई दिन होता है।[59]

---

56. अध्यक्ष मावलंकर का कहना था कि 'सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों' का मतलब है कि जो सदस्य हैं उनका बहुमत, न कि सदस्यों के स्थानों का बहुमत, अर्थात् 'चुने गए और जीवित सदस्य,' इस शब्दावली का प्रयोग अमेरिका के लेखक करते हैं। इस आशय को 'सदस्यों' शब्द से पहले 'तत्कालीन' शब्द लगाकर स्पष्ट कर दिया गया है।

    भारत के भूतपूर्व महान्यायवादी न्यायमूर्ति एम.सी. सीतलवाड का कहना है "यह सभा के तत्कालीन सदस्यों का बहुमत है" दूसरे शब्दों में मान लो कुल सदस्य संख्या दो सौ हो, किसी न किसी कारण से उनमें से आधे दर्जन के स्थान रिक्त हो सकते हैं। यदि ऐसा हो तो 'तत्कालीन समस्त सदस्य' होंगे 6 कम 200 इस प्रकार बहुमत, शेष 194 सदस्यों में से होगा।

57. मैक्सवेल, 10वां संस्करण, पृ. 351 ।

58. नियम 200(1) ।

59. नियम 200(2) ।

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को हटाने के किसी ऐसे संकल्प पर कार्यवाही नहीं की जाती जिसकी सूचना विधिवत् न दी गयी हो।[60]

> अध्यक्ष ने 6 मार्च, 1968 को पंजाब विधान सभा में विपक्ष के एक सदस्य का नाम लिया और तत्पश्चात् सदन से उसे बाहर निकाल देने का आदेश दिया। बाद में, विपक्ष के उपनेता द्वारा अच्छे आचरण का आश्वासन दिए जाने के बाद अध्यक्ष यह आदेश वापस लेने पर सहमत हो गए। इससे काफी शोरगुल हुआ और अध्यक्ष ने सभा को आधे घंटे के लिए स्थगित कर दिया।
>
> जब सभा पुन: समवेत हुई तो (i) सभा की मर्यादा और शिष्टाचार को बनाए रखने, और (ii) सभा में अपने आदेश को पूरी तरह से लागू कराने में विफलता के लिए अध्यक्ष में अविश्वास व्यक्त करते हुए दो एक जैसे प्रस्ताव सभा में प्रस्तुत किए गए। ये प्रस्ताव स्वीकृत हुए और अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि वे चर्चा के लिए दिन तय करेंगे।
>
> 7 मार्च को जब सभा समवेत हुई तो अध्यक्ष ने व्यवस्था के प्रश्न पर दिए गए आदेश में टिप्पणी की कि एक दिन पहले उनके विरुद्ध स्वीकार किया गया अविश्वास प्रस्ताव 'संविधान के अनुच्छेद 179 (ग) का उल्लघंन करता है और इसे प्रस्तुत किया गया ही नहीं माना जाए'। इससे लगातार शोरगुल बना रहा और इस कारण अध्यक्ष ने सभा को दो महीने के लिए स्थगित कर दिया जिससे गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया क्योंकि विधान सभा द्वारा 1968-69 का बजट पारित किया जाना अभी शेष था।

इन घटनाओं का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए अध्यक्ष श्री रेड्डी ने टिप्पणी की:

> अध्यक्ष द्वारा एक सदस्य को निष्कासित करने से संबंधित दी गई व्यवस्था को बदलने की कार्यवाही के बाद ही ये घटनाएं घटीं। तथापि अध्यक्ष को यह अधिकार है कि वह बदली हुई परिस्थितियों में अपने निर्णय को बदल दे।

अध्यक्ष मावलंकर को हटाने के संकल्प की 21 सदस्यों के हस्ताक्षर वाली एक सूचना 3 दिसम्बर, 1954 को प्राप्त हुई। यह सूचना 18 दिसम्बर, 1954 की कार्य-सूची में पहली मद के रूप में सम्मिलित की गयी। यह कार्य-सूची 14 दिसम्बर, 1954 को सदस्यों को परिचालित की गई।

अध्यक्ष सरदार हुकम सिंह को हटाने के संकल्प की 23 सदस्यों के हस्ताक्षर वाली एक सूचना 8 नवम्बर, 1966 को प्राप्त हुई। संकल्प प्रस्तुत करने की अनुमति में प्रस्ताव को 24 नवम्बर, 1966 की कार्य-सूची में सम्मिलित किया गया। निदेश 2 के अनुसार इस मद को 'सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र' संबंधी मद के बाद शामिल किया गया।

60. अंत:कालीन संसद के उपाध्यक्ष में अविश्वास प्रस्ताव की सूचना 11 अक्तूबर, 1951 को प्राप्त हुई थी परन्तु उस पर इस आधार पर आगे कोई कार्यवाही नहीं की गयी कि उसकी सूचना 14 दिन की विहित अवधि से कम थी, क्योंकि उस सत्र को 16 अक्तूबर, 1951 को *अनिश्चित काल के लिए* स्थगित हो जाना था।

हमें यह स्मरण रखना होगा कि अध्यक्ष का पद एक सम्माननीय पद है। सदन के सभी समूहों के द्वारा उनके प्रति सर्वाधिक सम्मान प्रदर्शित किया जाना चाहिए। वस्तुत: यदि उन्हें इस प्रकार का सम्मान नहीं दिया जाता है तो वह अपनी दायित्वपूर्ण जिम्मेदारियों का प्रभावी निर्वाह नहीं कर पायेंगे। अतएव अध्यक्ष को पद से हटाने से संबंधित प्रस्ताव या संकल्प कभी भी बिना गम्भीरता के नहीं लाया जाना चाहिए। इस संबंध में संवैधानिक प्रावधान, नियम और मान्यताएं हैं जिनका पूरी तरह से अनुसरण किया जाना चाहिए।[61]

लोक सभा की बैठक में, जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को हटाए जाने के संकल्प पर विचार हो रहा हो, अध्यक्ष या उपाध्यक्ष जैसी भी स्थिति हो, वह सभा की अध्यक्षता नहीं करेगा चाहे वह सभा में उपस्थित ही हो।[62] उपरोक्त उपबन्ध के अधीन रहते हुए, अध्यक्ष या उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में जैसी भी स्थिति हो, सभापति तालिका का कोई सदस्य बैठक की अध्यक्षता कर सकता है।

जब अध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई संकल्प लोक सभा में विचाराधीन है तब उसको लोक सभा में बोलने और उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग लेने का अधिकार है

61. 6 अप्रैल, 1968 को हुए पीठासीन अधिकारियों के आपात सम्मेलन के दौरान उनका सम्बोधन।

62. अनुच्छेद 96(1) और नियम 201(1)।

यह निर्णय दिया गया है कि किसी संकल्प को प्रस्तुत करने के लिए सभा के विचारार्थ अनुमति के प्रस्ताव का तात्पर्य पद से हटाए जाने के लिए संकल्प पर विचार से नहीं है और यथास्थिति अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के विरुद्ध उनको हटाए जाने से संबंधित संकल्प को प्रस्तुत करने वाले प्रस्ताव के लिए अनुमति पर जब सदन विचार कर रहा हो तो उनके द्वारा यदि अध्यक्षपीठ को खाली नहीं किया जाता तो भी यह संविधान के विरुद्ध नहीं होगा। [*ए.जे. फरीदी बनाम आर. वी. धूलेकर* (उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सभापति) ए.आई.आर. 1963, इलाहाबाद 75] तथापि औचित्य को देखते हुए नियम 201(1) में यह उपबन्ध है कि यदि संकल्प को प्रस्तुत करने की अनुमति का प्रस्ताव विचार के लिए लिया जाता है तो अध्यक्ष या उपाध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, अध्यक्षपीठ से हट जाएगा।

जब 18 दिसम्बर, 1954 को अध्यक्ष को हटाए जाने संबंधी संकल्प लोक सभा में प्रस्तुत हुआ तो उस समय उपाध्यक्ष ने लोक सभा की कार्यवाही की अध्यक्षता की। अध्यक्ष ने उस दिन सभा की कार्यवाही में भाग नहीं लिया।

24 नवम्बर, 1966, को जब अध्यक्ष को हटाए जाने के संकल्प को प्रस्तुत करने की अनुमति वाला प्रस्ताव लिया गया तब बैठक के प्रारम्भ से उपाध्यक्ष पीठासीन हुए। जब सभा द्वारा संकल्प को प्रस्तुत किए जाने की अनुमति नहीं दी गयी तो उसके तुरन्त बाद ही अध्यक्ष पीठासीन हुए। *लो.स.वा.वि.* 24.11.1966, पृ. 2212-17 ।

15 अप्रैल, 1987 को जब अध्यक्ष को हटाए जाने संबंधी संकल्प को प्रस्तुत करने की अनुमति वाला प्रस्ताव लिया गया तब बैठक की अध्यक्षता उपाध्यक्ष ने की। अध्यक्ष ने उस दिन सभा की बैठक में भाग नहीं लिया।

और वह ऐसे संकल्प पर या ऐसी कार्यवाहियों के दौरान किसी अन्य विषय पर प्रथमतः ही मत देने का हकदार है, किन्तु मत बराबर होने की दशा में मत देने का हकदार नहीं होगा।[63]

वह सदस्य जिसके नाम में संकल्प प्रस्तुत किए जाने का प्रस्ताव कार्य-सूची में दर्ज होता है, सिवाए उसके कि जब वह इसे वापस लेना चाहे, जब उसे प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए कहा जाएगा तो वह प्रस्ताव प्रस्तुत करेगा, लेकिन उस समय कोई भाषण नहीं दिया जा सकता।[64]

तब पीठासीन अधिकारी, प्रस्ताव को सभा के सामने रखता है और उन सदस्यों से अपने स्थान में खड़े होने को कहता है जो प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दिए जाने के पक्ष में हों। ऐसे सदस्यों की बिना नाम दर्ज किए गिनती की जाती है। यदि तदनुसार कम से कम पचास सदस्य खड़े हो जायें तो, यथा स्थिति अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या पीठासीन अधिकारी घोषणा करता है कि अनुमति दी गयी है और यह कि संकल्प किसी ऐसे दिन लिया जायेगा जो वह नियत करे और जो अनुमति मांगने से दस दिन से अधिक बाद का न हो। यदि पचास से कम सदस्य खड़े हों तो पीठासीन अधिकारी प्रस्ताव की अनुमति मांगने वाले सदस्य से कहेगा कि सभा उसे अनुमति नहीं देती।[65] संकल्प नियत दिन की कार्य-सूची में प्रश्न काल के बाद और उस दिन का कोई कार्य प्रारम्भ करने से पहले रखा जाएगा।[66]

अध्यक्ष या पीठासीन अधिकारी की अनुमति के बिना इस संकल्प पर होने वाला कोई भी भाषण पन्द्रह मिनट से अधिक लम्बा नहीं हो सकता, लेकिन संकल्प प्रस्तुत करने वाला

---

63. अनुच्छेद 96(2)। अन्यथा अनुच्छेद 100(1) के अनुसार सभापति या अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला कोई अन्य व्यक्ति प्रथमतः मत नहीं दे सकता, किन्तु मत बराबर होने की दशा में उसका निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा।

64. नियम 201(2), 18 दिसम्बर, 1954 को लोक सभा अध्यक्ष को हटाए जाने का संकल्प एक सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया गया, जो सूचना पर हस्ताक्षर करने वाला प्रथम व्यक्ति था, उस समय उस सदस्य द्वारा कोई भाषण नहीं दिया गया।

65. नियम 201(3)।

66. नियम 202 ।

18 दिसम्बर, 1954 को लोक सभा के अध्यक्ष को उसके पद से हटाने के संकल्प को प्रस्तुत करने की अनुमति सभा ने दी क्योंकि पचास से अधिक सदस्य अपने स्थानों में खड़े हो गए थे। उस समय उपाध्यक्ष जो पीठासीन थे, उन्होंने संकल्प पर विचार के लिए उस दिन तीसरे पहर साढ़े तीन बजे का समय नियत कर दिया। संकल्प पर विचार करने के लिए (साढ़े तीन बजे से साढ़े पांच बजे तक) दो घंटे का समय दिया गया था। संकल्प पर विचार किया गया और सभा ने उसे अस्वीकृत कर दिया। *लो.स.वा.वि.,* 18.12.1954 का. 2157-74, 2242-78 ।

लोक सभा अध्यक्ष को हटाने वाले इसी प्रकार के संकल्प पर 15 अप्रैल, 1987 को वही प्रक्रिया अपनायी गयी। संकल्प पर विचार किया गया और सभा ने उसे अस्वीकृत कर दिया। *लो.स.वा.वि.,* 15.4.1987, पृ. 516 ।

सदस्य पीठासीन अधिकारी को अनुमति से, चाहे तो पंद्रह मिनट से अधिक समय तक बोल सकता है।[67]

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को उसके पद से हटाने के संकल्प में आरोप बिल्कुल स्पष्ट होने चाहिए और ऐसे संकल्प पर बोलते समय सदस्यों को विशिष्ट बातों का ही उल्लेख करना चाहिए।

अध्यक्ष श्री मावलंकर को हटाने के संकल्प की ग्राह्यता के सम्बन्ध में उठाए गए व्यवस्था-प्रश्न के सम्बन्ध में उपाध्यक्ष ने निम्नलिखित टिप्पणी की[68]:

> जब तक विशिष्ट आरोप न हों जिनका उत्तर दिया जा सकता हो, और जिनकी विधिवत् पूर्वसूचना न दी गयी हो, तो स्पष्टतया यह संकल्प नियमों के विरुद्ध है। परन्तु जैसा कि माननीय सभा के नेता ने कहा है, ऐसे गंभीर मामले के बारे में, मैं इस प्रस्ताव को केवल तकनीकी त्रुटि के कारण रदद् नहीं करना चाहता....।
>
> यद्यपि प्रत्यक्षत: इस संकल्प की भाषा नियमानुसार उचित नहीं है परन्तु चूंकि यह अध्यक्ष को हटाने का संकल्प है, मैं यह कहूंगा कि मैं इसे इसी समय स्वीकार करने जा रहा हूँ। हां, माननीय सदस्य इसका समर्थन करेंगे तो मैं इसे स्वीकार कर लूंगा। मैं इन तकनीकी बारीकियों में नहीं जाना चाहता क्योंकि यह मामला पहली धारणा का है और इस प्रकार के मामले पर सभा में विचार होना चाहिए। कठिनाई को दूर करने और विशेष बातों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए इस संकल्प पर हस्ताक्षर करने वालों में से जो भी पहले बोले, वह यही कह कर प्रारम्भ करे कि इस प्रश्न से संबधित ये -एक, दो, तीन-बातें हैं और फिर ये-एक, दो, तीन-बातें स्थगन प्रस्तावों के संबंध में हैं। जहां तक 'आदि, आदि' का प्रश्न है यह कोई कानूनी शब्द नहीं है। मैं विशिष्ट बातों से परे किसी विवाद की अनुमति नहीं दूंगा और न ठोस बातों के साथ इस सभा में आदि, आदि जोड़ने की अनुमति दूंगा। इसलिए मैं केवल इन बातों पर बहस की अनुमति दूंगा। यदि मैं ब्यौरा देने और प्रश्न को और स्पष्ट बनाने में नियमितता न अपनाने पर जोर न भी दूं तो भी इतना जरूर कहूंगा कि जो भी सदस्य सबसे पहले भाषण दे, वह उन तीन या चार प्रश्नों का विवरण दे, जो वह सभा के सामने रखना चाहता है और साथ ही उन तीन या चार स्थगन प्रस्तावों वाली बात कहे, जिनके संबंध में वह सभा के सामने कुछ निवेदन करना चाहता है। माननीय अध्यक्ष ने अपने कार्यकाल में किसी और विषय के संबंध में जो भी किया हो, उसकी चर्चा करने की अनुमति नहीं दी जाएगी, केवल इसी कारण कि संकल्प में 'आदि, आदि' शब्दों का प्रयोग किया गया है। अत: चर्चा विशिष्ट बातों पर होगी। इन सभी बातों के अध्यधीन मैं इस संकल्प को स्वीकार करता हूँ।

---

67. *देखिए* नियम 203 । अध्यक्ष मावलंकर को हटाने के संकल्प पर विचार के समय भाषणों के लिए पंद्रह मिनट की समय-सीमा निर्धारित की गयी थी। संकल्प के समर्थन में बोलने वाले पहले वक्ता को बीस से पच्चीस मिनट दिये गए थे।

68. *लो.स.वा.वि.,* 18.12.1954, का. 2167-68 ।

पुनः इसी तरह की स्थिति में, उपाध्यक्ष ने अध्यक्ष, डॉ. बलराम जाखड़ को पद से हटाने वाले संकल्प की ग्राह्यता के बारे में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:[69]

> .... इसके अतिरिक्त सूचना में अनेक कमियां हैं, जिन्हें मैं सभा में प्रस्तुत करना चाहता हूं। जैसा कि सदस्यों को मालूम है, संविधान का अनुच्छेद 94 सभा को "सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत" से पारित संकल्प द्वारा अध्यक्ष को पद से हटाने का अधिकार प्रदान करता है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत बनाये गये नियम 200 और 203 में इस सम्बन्ध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। इतना ही नहीं ऐसा संकल्प संविधान के केवल उपर्युक्त अनुच्छेद तथा उसमें उल्लिखित नियमों द्वारा ही विनियमित नहीं होता बल्कि संविधान का अनुच्छेद 96 तथा अन्य संकल्पों पर लागू होने वाले सामान्य नियम यथा प्रक्रिया नियमों का नियम 173 भी इस पर लागू होता है।
>
> अनुच्छेद 96(2) में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबन्ध है कि जब अध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प सभा में विचाराधीन हो तब उसे सभा में बोलने तथा दूसरे प्रकार से उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा।
>
> प्रक्रिया नियमों के नियम 173 में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबन्ध है कि कोई संकल्प ग्राह्य हो सके, इसके लिए वह निम्न शर्तें पूरी करेगा, अर्थात्
>
> (i) यह स्पष्टतया और सुतथ्यतया व्यक्त किया जाएगा;
>
> (ii) उसमें सारवान रूप से एक ही निश्चित प्रश्न उठाया जाएगा;
>
> उपर्युक्त उपबन्ध को ध्यान में रखते हुए संकल्प में स्पष्ट आरोप होने चाहिए थे। विचाराधीन सूचना में "विशेषाधिकार के प्रश्न और स्थगन प्रस्तावों पर 19 मार्च 1987 को दिए गए विनिर्णय सहित सभा के अध्यक्ष द्वारा दिये गए विनिर्णयों..." का उल्लेख है। इसमें अध्यक्ष द्वारा सदस्यों को "महत्वपूर्ण संवैधानिक और प्रक्रियागत प्रश्न तथा ज्वलंत समस्यायें" उठाने के उनके अधिकारों से वंचित करने का भी उल्लेख किया गया है। इसलिए यह आरोपों के सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट नहीं है।
>
> उपर्युक्त संवैधानिक उपबंधों तथा प्रक्रिया नियमों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए मेरा विचार है कि यह केवल तकनीकी विषय नहीं बल्कि एक सारवान मामला है। चूंकि अध्यक्ष को भाग लेने तथा ऐसे संकल्प पर मतदान करने का अधिकार है, इसलिए यह बिल्कुल उचित होगा कि उन्हें अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों की स्पष्ट जानकारी हो ताकि वे उनका जवाब दे सकें। नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त भी यही अपेक्षा करते हैं, चूंकि आरोप स्पष्ट नहीं हैं, "स्पष्टतया और सुतथ्यतः व्यक्त" नहीं किये गए हैं और एक ऐसा "निश्चित प्रश्न" भी नहीं उठाते जिसकी यथोचित सूचना दी गई हो, यह संकल्प प्रथम दृष्टया ग्राह्य नहीं है।
>
> .... तथापि इन सब बातों के होते हुए भी मैं सूचना देने वाले सदस्यों तथा सभा के शेष सदस्यों के बीच आना नहीं चाहता, क्योंकि यह संकल्प संविधान के अनुच्छेद 94 के अन्तर्गत है और स्वयं अध्यक्ष को पद से हटाने से सम्बन्धित है। मैं यह सभा पर ही छोड़ता हूं कि वह यह निर्णय करे कि क्या सदस्य को अनुमति दी जाए, ...

---

69. *लो.स.वा.वि.,* 15.4.1987, पृ. 399 ।

सामयिक अध्यक्ष

जब अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हो जायें तो लोक सभा का ऐसा सदस्य जिसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए नियुक्त करें उस पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन करता है।[70] इस प्रकार नियुक्त किए गए व्यक्ति को *सामयिक* अध्यक्ष कहा जाता है और इस नाम की वजह से ही उसके सभा द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष से भिन्न होने का पता चलता है। नियुक्त होने के बाद *सामयिक* अध्यक्ष तब तक अपने पद पर रहता है जब तक कि अध्यक्ष का निर्वाचन नहीं हो जाता है।

आम चुनावों के बाद लोक सभा के नव-निर्वाचित सदस्यों को शपथ दिलाने/प्रतिज्ञान कराने और अध्यक्ष का चुनाव कराने के लिए *सामयिक* अध्यक्ष की नियुक्ति की जाती है। वह सभा द्वारा अध्यक्ष का चुनाव करने के तत्काल बाद अपना पद त्याग देता है। *सामयिक* अध्यक्ष शीघ्रतम उपलब्ध समय और किसी भी हालत में सभा की कार्यवाही का संचालन करने के लिए पीठासीन होने से पहले राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति के समक्ष लोक सभा सदस्य के रूप में शपथ ग्रहण करता है। वह पीठासीन होने पर तुरंत सदस्य पंजिका में हस्ताक्षर करता है जिसका तात्पर्य यह हुआ कि उसने सभा में अपना आसन ग्रहण कर लिया है।

जिस व्यक्ति को *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त करना हो उसके नाम का सुझाव प्रधान मंत्री देता है तथा प्रधान मंत्री अपने स्वविवेकानुसार मामले को मंत्रिमंडल के समक्ष रख सकता है। सामान्यत: लोक सभा के सबसे वरिष्ठ[71] सदस्य को *सामयिक* अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया

---

70. अनुच्छेद 95(1)

71. 1952 में बी. दास को *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त किया गया। 1957 और 1962, 1967 व 1971 में सेठ गोविन्द दास को *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त किया गया। जगजीवन राम को सन् 1980 एवं 1985 में *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। प्रो. एन.जी. रंगा को 1989 में *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। इंद्रजीत गुप्त को 1991, 1996, 1998 तथा 1999 में *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। 14वीं लोक सभा (2004) के गठन पर, श्री सोमनाथ चटर्जी जो सबसे वरिष्ठ सदस्य थे, को माननीय राष्ट्रपति द्वारा 2 जून, 2004 को 14वीं लोक सभा की बैठक शुरू होने से 4 जून, 2004 तक बैठक शुरू होने तक अध्यक्ष पद के कर्त्तव्यों के निर्वहन, के लिए *सामयिक* अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया। चूंकि श्री सोमनाथ चटर्जी लोक सभा के अध्यक्ष पद के उम्मीदवार बन गए इसलिए माननीय राष्ट्रपति ने अपने दूसरे आदेश द्वारा श्री बालासाहिब विखे पाटील को 4 जून, 2004 को लोक सभा की बैठक शुरू होने से अध्यक्ष के निर्वाचन होने तक अध्यक्ष के पद के कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए *सामयिक* अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया। 2009 में माणिकराव होडल्या या गावीत को सामयिक अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। वह उनकी नियुक्ति के समय सबसे लम्बी अवधि तक लोक सभाओं के सदस्य थे। 1956 में इस परिपाटी का पालन नहीं किया गया, जब सरदार हुकम सिंह को *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त किया गया। वे सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य नहीं थे, लेकिन बाद में उनके नाम का सुझाव उपाध्यक्ष के पद के लिए किया गया था। 1977 में डी. एन. तिवारी को *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। वह भी सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य नहीं थे।

जाता है तथा आम चुनावों के बाद अभी तक अपनायी गई परिपाटी के अनुसार ऐसी नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति के आदेश संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा प्राप्त किये जाते हैं और अधिसूचित किए जाने के लिए लोक सभा सचिवालय को भेजे जाते हैं।[72]

राष्ट्रपति द्वारा विधिवत् रूप से हस्ताक्षर किया आदेश प्राप्त हो जाने के पश्चात् एक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाती है। उसके साथ ही सदस्यों की जानकारी के लिए संसदीय समाचार में एक पैरा प्रकाशित कर दिया जाता है।[73]

7 मार्च, 1956 को एम. अनन्तशयनम आयंगर ने, जो उस समय उपाध्यक्ष थे और जी.वी. मावलंकर के निधन से रिक्त हुए अध्यक्ष पद के लिए एकमात्र उम्मीदवार थे, अगले दिन अध्यक्ष निर्वाचित होने को ध्यान में रखते हुए उपाध्यक्ष के पद से इस्तीफा दे दिया। त्यागपत्र मिलने पर साढ़े पांच बजे सचिव ने एक टिप्पणी राष्ट्रपति को भेजी, जिसमें यह सूचना दी गयी थी कि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हैं, और यह भी प्रधान मंत्री ने सुझाव दिया है कि 8 मार्च, 1956 को अध्यक्ष के निर्वाचन तक, यह तिथि राष्ट्रपति ने अध्यक्ष के निर्वाचन के लिए पहले नियत की थी, लोक सभा के एक सदस्य सरदार हुकम सिंह को अध्यक्ष के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिए नियुक्त किया जाए। राष्ट्रपति ने आदेश का अनुमोदन कर दिया।

---

72. 1952, 1957, 1962, 1967 और 1971 में *सामयिक* अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति के आदेश संसदीय कार्य मंत्रालय ने प्राप्त किए और उन्होंने ही इसे राजपत्र में प्रकाशित करवाया। 1977, 1980, 1985, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999 और 2004 में संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा आदेश प्राप्त किए गए थे किंतु लोक सभा सचिवालय को राजपत्र में प्रकाशनार्थ भेज दिए गए। देखिए, *राजपत्र असाधारण* (I-I) 38/(2)-1, 24.3.1977; *राजपत्र असाधारण* (I-I) 38/1(2)/80/टी; 16.1.1980; *राजपत्र असाधारण* (I-I) 38/1(2)/85/टी. 7.1.1985; *राजपत्र असाधारण* (I-I) 38/1(2)/89/टी, 12.12.1989; *राजपत्र असाधारण* (I-I) 38/1(2)91/टी, 5. 7.1991/टी, 5.*7.1991; राजपत्र असाधारण* (I-I)38/1(2)/96/टी. 23.5.1996; और *राजपत्र असाधारण* (I-I) 38/1(2)/98/टी 28.3.1998; *राजपत्र असाधारण* (I-I)38/1(2)/99/टी, 16-10-1999 और *राजपत्र असाधारण* (I-I) 38/1(2)/2004/टी, 31.5.2004 ।

73. यदि *सामयिक* अध्यक्ष की नियुक्ति का आदेश, प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल का प्रस्ताव लोक सभा सचिवालय को भेजे बिना, संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा सीधे राष्ट्रपति से प्राप्त कर लिया जाये तो राजपत्र में अधिसूचना संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा स्वयं ही जारी कर दी जाती है और राष्ट्रपति के आदेश की एक प्रति सचिवालय को भेज दी जाती है। उदाहरण के लिए *देखिए* संसदीय कार्य विभाग अधिसूचना सं. एस. 34/52, 17.4.1952, *राजपत्र असाधारण* (I-I) 17.4.1952 और सं. एस. 34/52, 15.5.1952, *राजपत्र असाधारण* (I-I), 15.5.1952 ।

यह आदेश तुरन्त ही राजपत्र[74] और संसदीय समाचार[75] में प्रकाशित कर दिया गया। अनुच्छेद 94 के दूसरे परन्तुक के अनुसार, दूसरी लोक सभा की पहली बैठक से तुरन्त पहले अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर राष्ट्रपति ने सबसे वरिष्ठ सदस्य सेठ गोविंद दास को, अध्यक्ष के निर्वाचन तक, 10 और 11 मई, 1957 के लिए *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त कर दिया।

संविधान तथा प्रक्रिया नियमों के अंतर्गत तथा अन्यथा; *सामयिक* अध्यक्ष को वे सारी शक्तियां प्राप्त हैं जो कि अध्यक्ष को होती हैं।[76] तथापि, वह तभी तक कार्य करता है, जब तक सभा द्वारा अध्यक्ष का चुनाव नहीं कर लिया जाता।[77]

अध्यक्ष द्वारा शपथ ग्रहण

अध्यक्ष को अपना पद संभालने पर शपथ नहीं लेनी पड़ती और न प्रतिज्ञान करना पड़ता है। वह लोक सभा के सदस्य के नाते ही शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है जो उसके अध्यक्ष निर्वाचित होने से पहले ली जाती है। उसी प्रकार उपाध्यक्ष को भी अपना पद संभालने पर कोई शपथ ग्रहण या प्रतिज्ञान नहीं करना पड़ता।

अध्यक्ष की वेशभूषा

1921 से 1946 तक केन्द्रीय विधान सभा (सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली) के अध्यक्ष सभा की बैठकों की अध्यक्षता करते समय लम्बे चोगे और विग पहना करते थे। लेकिन ऐसे भी अवसर हुए हैं कि अध्यक्षता करने वाले अधिकारियों ने ऐसी पोशाक नहीं पहनी है।

---

74. लोक सभा सविचालय अधिसूचना सं. 496-टी/56, 7.3.1956; *राजपत्र असाधारण* (I-I) 7.3.1956 ।
75. समाचार भाग-2, 7.3.1956, पैरा 2938 ।
76. एस.एल. शकधर: "*अपाइंटमैंट ऑफ स्पीकर ऑफ लोक सभा*" *जे.पी.आई.*, खंड-II, सं. (1), अप्रैल 1956 ।
77. चूंकि कर्नाटक विधान परिषद् के सभापति तथा उप-सभापति दोनों पद रिक्त थे इसलिए कर्नाटक के राज्यपाल ने अनुच्छेद 184(1) के अंतर्गत 1 जुलाई, 1984 से सभापति के निर्वाचन तक इस पद के दायित्वों के निर्वहन हेतु परिषद् के एक अन्य सदस्य को नियुक्त किया। तत्पश्चात् 29 नवम्बर, 1984 तथा 18 मार्च, 1985 को दो बार परिषद् की बैठकें हुईं किन्तु सभापति के निर्वाचन हेतु कोई तिथि निर्धारित नहीं की जा सकी। इसके विरोधस्वरूप विपक्ष के सदस्यों ने *सामयिक* सभापति को उनके पद से हटाये जाने संबंधी संकल्प की सूचना दी। इसी बीच राज्यपाल द्वारा 19 मार्च, 1985 को एक अधिसूचना जारी की गई जिसके अनुसार सभापति के निर्वाचन हेतु 8 अप्रैल, 1985 की तारीख निर्धारित की गई। तथापि, 26 मार्च, 1985 से *सामयिक* सभापति ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और उन्हें उनके पद से हटाये जाने संबंधी संकल्प की सूचना निष्प्रभावी हो गई। लोक सभा में *सामयिक* अध्यक्ष द्वारा नियमित अध्यक्ष के रूप में कभी भी कार्य किये जाने का कोई उदाहरण नहीं रहा है। लोक सभा में *सामयिक* अध्यक्ष को पद से हटाये जाने संबंधी संकल्प की सूचना को किसी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखे जाने का भी कोई उदाहरण नहीं रहा है।

1937 में गवर्नर जनरल के सचिव के कार्यालय से एक अधिसूचना जारी की गयी जिसमें बताया गया था कि राज्य परिषद् (काउंसिल ऑफ स्टेट्स) तथा केन्द्रीय विधान सभा (सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली) और गवर्नरों के प्रान्तों की विधान परिषदों तथा विधान सभाओं के पीठासीन अधिकारी कैसी पोशाक पहनेंगे। जुलाई, 1939 में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में इस प्रश्न पर विचार किया गया कि इस अधिसूचना को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष (i) सभा में तथा (ii) सरकारी समारोहों में कैसी पोशाक पहनें। वहां पर आम राय यह थी कि वे पोशक संबंधी अधिसूचना से बाध्य नहीं हैं।

जब 1946 में, श्री जी.वी. मावलंकर ने केन्द्रीय विधान सभा (सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली) के अध्यक्ष का पद संभाला, तब अध्यक्ष द्वारा चोगे या विग को पहली बार तिलांजलि दी गयी । पहली लोक सभा के अध्यक्ष के नाते भी उन्होंने कोई औपचारिक वेशभूषा धारण नहीं की। वही प्रथा अब तक चली आ रही है।

उपाध्यक्ष का पद

भारत में उपाध्यक्ष का पद (जिसे 1947 तक डिप्टी-प्रेजिडैंट के नाम से जाना जाता था) केन्द्रीय विधान सभा (सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली) के अस्तित्व में आने के समय से ही चला आ रहा है। अध्यक्ष की तरह, यदि उपाध्यक्ष भी सभा का सदस्य नहीं रहता तो वह अपने पद पर बना नहीं रह सकता था। वह गवर्नर जनरल को स्वयं पत्र लिखकर पदत्याग कर सकता था और उसे गवर्नर जनरल की सहमति से सभा में मतदान द्वारा भी हटाया जा सकता था।[78]

भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 22 में अन्य बातों के साथ-साथ उपाध्यक्ष के निर्वाचन, कर्त्तव्यों, पद त्याग करने और वेतन के संबंध में भी उपबन्ध थे लेकिन उस अधिनियम के संघ संबंधी भाग के लागू न किए जाने के कारण ये उपबन्ध कभी लागू नहीं हो पाए। यद्यपि 1935 के इस अधिनियम की यह धारा आजादी के बाद, भारत (अन्तःकालीन संविधान) आदेश, 1947 के माध्यम से लागू की गयी परन्तु उसमें उपाध्यक्ष के संबंध में जो उपबंध थे, उन्हें हटा दिया गया था।

उपाध्यक्ष का निर्वाचन

उपाध्यक्ष के निर्वाचन के संबंध में नियम सबसे पहले 1920 में गवर्नर जनरल ने बनाए थे और 1921 से 1947 तक की अवधि में इस पद के सारे निर्वाचन उस नियम में विहित प्रक्रिया के अनुसार मतदान द्वारा हुए।[79]

> यदि एक से अधिक प्रत्याशी हों, तो जिस उम्मीदवार के अधिक वोट आते थे उसके विधिवत् निर्वाचित होने की घोषणा अध्यक्ष द्वारा कर दी जाती थी, परन्तु

---

78. *देखिए,* धारा 63(3) जो भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची में दी गयी है। उपाध्यक्ष की शक्तियों और कृत्यों के लिए *देखिए,* अध्याय-8 'संसद के कार्य निर्वाहक'।
79. *देखिए* विधान सभा नियम, स्थायी आदेश 5(1), *राजपत्र* (1) 18.12.1920, पृ. 2279 ।

यदि गवर्नर जनरल इस निर्वाचन का अनुमोदन न करे तो विहित प्रक्रिया के अनुसार नया चुनाव कराना पड़ता था। जिस सदस्य के उपाध्यक्ष के रूप में निर्वाचन का अनुमोदन गवर्नर जनरल न करे उस विधान सभा के काल में उसके नाम का प्रस्ताव उम्मीदवार के रूप में नहीं किया जा सकता था।[80] किसी उम्मीदवार के उपाध्यक्ष के रूप में निर्वाचन के अनुमोदन के संबंध में गवर्नर जनरल का संदेश अध्यक्ष पढ़ कर सुनाता था।

केन्द्रीय विधान सभा के पहले उपाध्यक्ष सच्चिदानंद सिन्हा थे। वह 3 फरवरी, 1921 को चुने गए थे। गवर्नर जनरल द्वारा उनके निर्वाचन के अनुमोदन की घोषणा सभा में 22 फरवरी, 1921 को की गई थी। सिन्हा ने बिहार तथा उड़ीसा के गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् का सदस्य नियुक्त होने पर केन्द्रीय विधान सभा के उपाध्यक्ष के पद से त्यागपत्र दे दिया। उनके त्यागपत्र की घोषणा 1 सितम्बर, 1921 को की गई और उनके स्थान पर जमशेदजी जाजी भाई उस वर्ष 21 सितम्बर को उपाध्यक्ष चुने गए।[81] उनके बाद दीवान बहादुर टी. रंगाचारियर (4.2.1924), सर मुहम्मद याकूब (31.1.1927), डॉ. एच.एस. गौड़ (11.7.1930), षणमुखम चेट्टी (19.1.1931), अब्दुल मतीन चौधरी (21.3.1933), अखिल चन्द्र दत्त[82] (5.2.1935) और सर मुहम्मद यामीन खां (5.2.1946) उपाध्यक्ष बने। सर मुहम्मद यामीन खां 15 अगस्त, 1947 की अर्द्धरात्रि तक अपने पद पर रहे।

1947 में संविधान सभा (विधायी) के लिए विधान सभा के स्थायी आदेशों का अनुकूलन करते समय, संगत नियम को हटा दिया गया और संविधान सभा (विधायी) नियम, 1947 में उपाध्यक्ष के पद का कोई उपबन्ध नहीं था। लेकिन 1948 में, संविधान सभा (विधायी) के दूसरे सत्र, जो 28 जनवरी, 1948 को आरम्भ हुआ, के दौरान अध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभा की अध्यक्षता करने के लिए उपाध्यक्ष का होना जरूरी समझा गया। अत: संविधान सभा (विधायी) नियमों में आवश्यक संशोधन किए गए और उपाध्यक्ष का पद फिर से बनाया गया।

संविधान सभा (विधायी) के अध्यक्ष की तरह उपाध्यक्ष भी अनुच्छेद 379 के अंतर्गत संविधान के लागू होने पर अंत:कालीन संसद का उपाध्यक्ष बना रहा।

उपाध्यक्ष के चुनाव के संबंध में संविधान के उपबंध और नियम : अब उपाध्यक्ष का चुनाव अनुच्छेद 93 के उपबन्धों से विनियमित होता है। 1952 में लोक सभा के लिए संविधान

---

80. *देखिए* स्थायी आदेश 5 ।

81. सर जाजी भाई निर्णायक मत से चुने गए क्योंकि उनके प्रतिद्वंद्वी डा. एच.एस. गौड़ को भी उनके बराबर वोट मिले थे।

82. विधान सभा का कार्यकाल समय-समय पर 1945 तक बढ़ाया जाता रहा और दत्त लगभग दस वर्ष तक अपने पद पर रहे।

सभा (विधायी) नियमों का अनुकूलन करते समय उपाध्यक्ष के निर्वाचन संबंधी प्रक्रिया में मूलभूत परिवर्तन किए गए। अध्यक्ष के निर्वाचन की तरह उपाध्यक्ष के निर्वाचन में भी मतपत्रों द्वारा चुनाव की पद्धति समाप्त कर दी गई और उसकी बजाय सभा में खुले मतदान का उपबंध किया गया। चाहे इस पद के लिए एक ही उम्मीदवार हो, उसके निर्वाचन का प्रस्ताव विधिवत् सभा में रखा जाता है और पारित किया जाता है।

इसके बाद उस नियम में मामूली परिवर्तन किए गए हैं और उपाध्यक्ष के निर्वाचन की प्रक्रिया मोटे तौर पर वही है।[83]

नए नियम के अंतर्गत उपाध्यक्ष का निर्वाचन : उपाध्यक्ष को चुनने की प्रक्रिया वैसी ही है जैसी कि अध्यक्ष के निर्वाचन की, सिवाए इसके कि उपाध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि अध्यक्ष नियत करता है।[84] सदस्यों को निर्वाचन की तिथि की सूचना संसदीय समाचार के माध्यम से दी जाती है।

संविधान और वर्तमान नियम के अंतर्गत उपाध्यक्ष के पद के लिए पहला निर्वाचन 30 मई, 1952 को हुआ।

उपाध्यक्ष के चयन के प्रस्ताव की प्रक्रिया वैसी ही है जैसी कि अध्यक्ष के लिए है।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के चुनाव संबंधी प्रस्तावों के निपटान हेतु विशिष्ट नियम बनाए गए हैं। इन प्रस्तावों को अन्य सामान्य प्रस्तावों से अलग समझा जाता है और इसलिए अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय सदस्य भाषण नहीं दे सकता।[85]

उपाध्यक्ष के चुनाव के संबंध में अधिसूचना सचिवालय द्वारा राजपत्र में प्रकाशित की जाती है।

---

83. चौदह लोक सभाओं में 13 सदस्य उपाध्यक्ष के पद पर आसीन हुए। उनमें से 4 सत्तापक्ष से थे और शेष अन्य, मुख्यत: विपक्षी दलों से थे। अत: यह परंपरा प्रचलित है जिसमें उपाध्यक्ष के पद पर सत्तापक्ष की बजाय अन्य दल का सदस्य आसीन होता है।

84. नियम 8 (1)।

85. 23 अप्रैल, 1962 को जब उपाध्यक्ष के निर्वाचन का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया तो एक सदस्य ने निवेदन किया कि, यद्यपि नियम इस बात की अनुमति नहीं देते, उसे किसी भी प्रस्ताव पर भाषण करने के अपने अधिकार का प्रयोग करने की अनुमति दी जाए। अध्यक्ष ने कहा कि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के निर्वाचन के संबंध में विशिष्ट नियम बनाए गए हैं। इस कारण इन प्रस्तावों को समान्य प्रस्तावों से अलग समझा जाता है। अत: उस सदस्य को उपाध्यक्ष के निर्वाचन संबंधी प्रस्ताव पर बोलने की अनुमति नहीं दी गई।

उपाध्यक्ष का कार्यकाल

उपाध्यक्ष अपने निर्वाचन से लेकर लोक सभा के विघटन तक अपने पद पर रहता है। वह दोबारा इस पद के लिये चुना जा सकता है।

यदि उपाध्यक्ष लोक सभा का सदस्य न रहे तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है।

अनुच्छेद 101 और 102 में जिन विशेष परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है उनमें से किसी एक के उत्पन्न होने पर उसकी लोक सभा की सदस्यता समाप्त हो सकती है।

जब उपाध्यक्ष का पद रिक्त हो जाता है तो उसकी अधिसूचना तुरन्त राजपत्र में प्रकाशित कर दी जाती है।

उपाध्यक्ष के पद से त्यागपत्र देने की प्रक्रिया वैसी ही है जैसी कि अध्यक्ष के त्यागपत्र की। वह किसी भी समय अध्यक्ष को पत्र लिख कर पदत्याग कर सकता है। त्यागपत्र अध्यक्ष को सम्बोधित करना आवश्यक है, चाहे अध्यक्ष पद खाली ही क्यों न हो।[86]

त्यागपत्र न केवल भेजा जाना चाहिए/प्रेषण के लिए डाक में डाला जाना चाहिए अपितु अध्यक्ष द्वारा वास्तव में उसे प्राप्त किया जाना चाहिए। त्यागपत्र को अध्यक्ष द्वारा वास्तव में प्राप्त करने से पूर्व वापिस लिया जा सकता है।[87] उपाध्यक्ष के त्यागपत्र की सूचना सभा को

---

86. एम.ए. आयंगर ने 7 मार्च, 1956 की अपराह्न में उपाध्यक्ष के अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। यद्यपि उस समय अध्यक्ष का पद रिक्त था, यह त्यागपत्र अध्यक्ष को सम्बोधित था और सचिवालय को भेजा गया था। सचिव ने उपाध्यक्ष के त्यागपत्र की सूचना 8 मार्च, 1956 को लोक सभा को दी—*देखिए* लोक सभा सचिवालय अधिसूचना सं. 496–टी (I) 56, 7.3.1956; *राजपत्र असाधारण* (I-I) 7.3.1956 और *एल.एस. डिबेट्स* (1) 8.3.1956 का 409 ।

87. 27 जून, 1983 को लोक सभा उपाध्यक्ष, जी. लक्ष्मणन का लोक सभा अध्यक्ष को संबोधित एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने सूचित किया था कि उनके द्वारा दिनांक 25 जून, 1983 का पत्र, जो उन्होंने रजिस्टर्ड डाक द्वारा उपाध्यक्ष, लोक सभा के पद से त्यागपत्र देने के लिए मद्रास से भेजा था, उसे रद्द समझा जाए और उस पर कोई कार्यवाही न की जाए। तत्पश्चात् श्री जी. लक्ष्मणन का दिनांक 25 जून, 1983 का एक पत्र जिसमें उन्होंने उपाध्यक्ष, लोक सभा के पद से त्यागपत्र दिया था, नई दिल्ली में रजिस्टर्ड डाक द्वारा 29 जून, 1983 को 1.30 बजे अपराह्न प्राप्त हुआ था।

"7 जुलाई, 1983 को यह मामला कानूनी राय के लिए भेजा गया। यह निम्नवत् था:— "वाक्यांश 'माननीय अध्यक्ष को संबोधित', के बारे में सही व्याख्या यह होगी कि त्यागपत्र न केवल भेजा जाना चाहिए/प्रेषण के लिए डाक में डालना चाहिए, अपितु माननीय अध्यक्ष द्वारा वास्तव में प्राप्त भी किया जाना चाहिए। इसके परिणाम के रूप में इसका अर्थ यह हुआ कि त्यागपत्र का विधिक कार्य दिनांक 25 जून, 1983 के पत्र की माननीय अध्यक्ष द्वारा प्राप्ति से पूर्व अर्थात् 29 जून, 1983 को 1.30 बजे अपराह्न से पूर्व पूरा नहीं होता। दूसरे शब्दों में, उपाध्यक्ष द्वारा उसके पद से त्यागपत्र अभी अपूर्ण था और अप्रतिसंहरणीय नहीं बना था।

अध्यक्ष द्वारा दी जाती है और यदि अध्यक्ष का पद रिक्त हो तो यह सूचना महासचिव द्वारा दी जाती है, जिसे उस दशा में यह त्यागपत्र मिलता है।

त्यागपत्र की सूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाती है।

चूंकि त्यागपत्र पूर्ण विधिक कार्य नहीं था या त्यागपत्र इस अर्थ में अपूर्ण था कि उसके कारण उपाध्यक्ष का पद 27 जून, 1983 को समाप्त नहीं किया गया था, इसलिए उपाध्यक्ष द्वारा उसको वापस लेना उनके अधिकार के अंतर्गत ही था जैसा कि वास्तव में दिनांक 27 जून, 1983 के पत्र द्वारा किया गया है। संविधान में इस तरह त्यागपत्र वापिस लेने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि उपाध्यक्ष द्वारा 29 जून, 1983 को 1.30 बजे अपराह्न से पूर्व त्यागपत्र वापस लेना उसके अधिकार में था।

अंततः, यह कहना सही होगा कि उपाध्यक्ष श्री जी. लक्ष्मणन, उपाध्यक्ष के पद पर बने रहेंगे।"

कानूनी राय के मद्देनजर मामले पर विचार करने के बाद, अध्यक्ष ने पुष्टि की कि श्री जी. लक्ष्मणन उपाध्यक्ष के पद पर बने रहेंगे। 26 जुलाई, 1983 को यह मुद्दा लोक सभा में उठाने के परिणामस्वरूप, यह मामला महान्यायवादी की राय प्राप्त करने के लिए भेजा गया। महान्यायवादी पहले ली गई कानूनी राय से सहमत थे और इस मामले को समाप्त समझा गया। *एल.एस. डिबेट्स,* 26.7.1983 का 7 ।

अध्याय 8

संसद के कार्य-निर्वाहक

1. अध्यक्ष

लोक सभा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, परम्परागत तथा औपचारिक प्रमुख लोक सभा का अध्यक्ष है।[1] सभा में उसका प्राधिकार सर्वोच्च है। यह प्राधिकार, अध्यक्ष की अनन्य और अटल निष्पक्षता पर आधारित है—जो उसके पद की मुख्य विशेषता और उसके जीवन का मूल सिद्धांत है। निष्पक्षता के इस दायित्व का उपबंध संविधान में निहित है जिसमें व्यवस्था है कि केवल मत बराबर होने की दशा में अध्यक्ष मत देने का अधिकारी है।[2] इसके अतिरिक्त, सभा में उसकी निष्पक्षता इस तथ्य से भी सुनिश्चित हो जाती है कि वह दलगत विवादों अथवा राजनीतिक जीवन से प्रभावित नहीं होता और इस हेतु वह अपने दल से त्यागपत्र भी दे सकता है जिसका वह सदस्य रहा हो।[3]

यद्यपि उसकी शक्तियां और कर्त्तव्य नियमों में तथा कुछ हद तक संविधान में अधिकथित हैं, जिन नियमों का उसे उपयोग करना है, वे लचीले हैं और कुछ मामलों में उसे अपने विवेक से काम लेना होता है। उसके कर्त्तव्य बड़े दुष्कर हैं और उनके निर्वहन में उसे किसी भावावेग अथवा पूर्वाग्रह से प्रभावित हुए बिना न्याय और निष्पक्षता की भावना से अनुप्राणित होना चाहिए। उसे सभा को इस बात से प्रभावित करना पड़ता है कि उसके निर्णय ठीक और निष्पक्ष हैं जिससे कि सभा को उस पर विश्वास हो। सभा को इस बात का भी विश्वास होना चाहिए कि अध्यक्ष अपने को सभा की अन्तरात्मा और रक्षक समझता है।

सभा का प्रमुख प्रवक्ता होने के नाते वह उसकी सामूहिक आवाज है और बाहर की दुनिया के लिए सभा का एकमात्र प्रतिनिधि।

राष्ट्रपति से प्राप्त संसूचना सभा को अध्यक्ष के माध्यम से दी जाती है।[4] जब राष्ट्रपति से

---

1. "स्पीकर" शब्द में कुछ विरोधाभास प्रतीत होता है क्योंकि सभा का वही एक ऐसा सदस्य है जो पीठासीन अधिकारी के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के सिवाय सभा में वाद-विवाद में भाग नहीं लेता, किन्तु ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स के पीठासीन अधिकारियों का मूल कार्य वाद-विवाद के अंत में दोनों पक्षों के विचारों का सारांश प्रस्तुत करना और क्राउन के साथ विवाद की स्थिति में सभा (हाउस) के विचारों को 'वाणी' देना था। माइकेल मेकडोना: *दी बुक ऑफ पार्लियामेंट,* लंदन, 1897, पृ. 115; *देखिए* फिलिप लांडी: *दि ऑफिस ऑफ द स्पीकर इन दि पार्लियामेंट्स ऑफ द कामनवेल्थ,* लंदन, 1984, पृ. 11-57 ।
2. अनुच्छेद 100(1)।
3. वर्ष 1967-1969 के दौरान अपने राजनीतिक दल से त्यागपत्र देने वाले पहले अध्यक्ष एन. संजीव रेड्डी थे।
4. नियम 246 ।

संसद में लंबित किसी विधेयक से संबंधित या कोई अन्य संदेश अध्यक्ष को प्राप्त होता है।[5] तो वह उसे सभा को पढ़कर सुनाता है और उस संदेश में निर्दिष्ट विषयों पर विचार करने के लिए अनुकरणीय प्रक्रिया के संबंध में आवश्यक निदेश देता है और ऐसे निदेश देने में वह नियमों को, जिस सीमा तक आवश्यक समझे, निलम्बित या परिवर्तित कर सकता है।[6] इसी प्रकार राष्ट्रपति को संसूचना अध्यक्ष के माध्यम से सभा में तत्संबंधी प्रस्ताव किए जाने और स्वीकृत हो जाने के बाद औपचारिक समावेदन द्वारा भेजी जाती है।[7] इसी प्रकार राज्य सभा के साथ संबंधों के मामले में अध्यक्ष ही सभा का प्रतिनिधि है।

बाह्य दुनिया के लिए सभा के प्रतिनिधि के रूप में अध्यक्ष सभा के निर्णयों की सूचना संबंधित अधिकारियों को देता है और उनसे उन निर्णयों में निहित बातों को कार्यान्वित करने की अपेक्षा रखता है। इसी प्रकार अध्यक्ष के नाते उसे सभा तथा उसके सदस्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के संबंध में, जो पत्र तथा दस्तावेज प्राप्त होते हैं और विदेशों तथा विदेशी विधानमंडलों से जो संदेश प्राप्त होते हैं, उनकी सूचना वह सभा को देता है। जब आवश्यक हो, वह सभा के आदेशों का पालन करने के लिए वारंट भी जारी करता है।

शक्तियां और कृत्य

सभा अपनी बैठक तब प्रारम्भ करती है जब अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य पीठासीन हो, जो संविधान अथवा नियमावली के अंतर्गत सभा की बैठक में पीठासीन होने के लिए सक्षम हो।[8] सभा के सभी सदस्य उसकी बात अत्यधिक सम्मान और ध्यान से सुनते हैं। जब भी अध्यक्ष बोलने के लिए खड़ा होता है, उसे सभी खामोशी से सुनते हैं और यदि कोई सदस्य उस समय बोल रहा हो या बोलना चाहता हो, तो उसे अपने स्थान पर बैठ जाना पड़ता है। जब अध्यक्ष सभा में बोल रहा हो तो यह आशा की जाती है कि उस समय कोई भी उठकर सभा से नहीं जायेगा। सिवाए मूल प्रस्ताव के, उसके विनिर्णय पर आपत्ति नहीं की जा सकती और उन विनिर्णयों का भविष्य में मार्गदर्शन हेतु पूर्व निर्णयों के रूप में संग्रह किया जाता है।

संविधान में अध्यक्ष के पद का उपबंध किया गया है[9] और उसके वेतन तथा भत्ते भारत की संचित निधि पर भारित व्यय हैं।[10] जहां तक संसद के दोनों सदनों के परस्पर संबंधों का

---

5. अनुच्छेद 86(2)।
6. नियम 23 ।
7. नियम 247 । इसका आम उदाहरण है एक साथ समवेत हुए संसद के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण पर सभा द्वारा स्वीकृत धन्यवाद प्रस्ताव, जिसे अध्यक्ष द्वारा राष्ट्रपति को संसूचित किया जाता है।
8. नियम 11 ।
9. अनुच्छेद 93-96 । अध्यक्ष पद के संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 7-लोक सभा के पीठासीन अधिकारी।
10. अनुच्छेद 112(3) (ख); साथ ही *देखिए* अध्याय 13–'वेतन, भत्ते, अन्य हकदारियां और सुख-सुविधाएं'।

प्रश्न है, उनमें कुछ मामलों में संविधान ने अध्यक्ष को विशेष स्थिति प्रदान की है। यह निर्णय अध्यक्ष ही करता है कि कौन-से विषय "धन" संबंधी विषय हैं क्योंकि ये मामले लोक सभा के अनन्य अधिकार क्षेत्र में आते हैं। यदि अध्यक्ष किसी विधेयक को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित करता है तो उसका विनिश्चय अन्तिम होता है।[11] जब कोई भी धन विधेयक राज्य सभा को पारेषित किया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो प्रत्येक धन विधेयक अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित किया जाता है कि वह धन विधेयक है।[12]

दोनों सदनों के बीच किसी वैधानिक उपाय के संबंध में मतभेद होने पर, जब भी संयुक्त बैठक बुलाई जाती है, ऐसी संयुक्त बैठकों की अध्यक्षता अध्यक्ष द्वारा की जाती है और संयुक्त बैठक के संबंध में सभी प्रक्रिया नियम उसके निदेशों तथा आदेशों के अंतर्गत लागू होते हैं।[13] संविधान के अंतर्गत, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अध्यक्ष मत बराबर होने की दशा में केवल निर्णायक मत देता है।[14] परन्तु यदि सभा की किसी बैठक में अध्यक्ष को उसके पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन है तो वह उस बैठक की अध्यक्षता नहीं कर सकता परन्तु ऐसे संकल्प पर या ऐसी कार्यवाहियों के दौरान, किसी अन्य विषय पर प्रथमतः ही मत देने का हकदार है किन्तु मत बराबर होने की दशा में वह मत देने का हकदार नहीं है।[15] संविधान में भी उसके कुछ कर्त्तव्य निर्धारित हैं: उसे गणपूर्ति न होने पर सभा को स्थगित करने या बैठक निलम्बित करने की भी शक्ति प्राप्त है[16] और उसे यह भी प्राधिकार प्राप्त है कि वह स्वविवेक से किसी ऐसे सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे दे, जो हिन्दी में या अंग्रेजी में अपनी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता।[17]

अध्यक्ष पीठासीन अधिकारी के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के अतिरिक्त, सभा में वाद-विवाद में भाग नहीं लेता। परन्तु किसी सदस्य द्वारा प्रश्न उठाये जाने पर या निवेदन किये जाने पर किसी भी समय विचाराधीन विषय पर सदस्यों को उनके पर्यालोचन में सहायता करने के लिए, सभा को संबोधित कर सकता है।[18] इस प्रकार के अवसर दुर्लभ होते हैं[19] परन्तु जब भी वह इस प्रकार सभा को सम्बोधित करे, उसकी अभिव्यक्ति को विनिर्णय के रूप में नहीं समझना चाहिए।

---

11. अनुच्छेद 110 ।
12. अनुच्छेद 110 ।
13. अनुच्छेद 118 (4) तथा संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम का नियम 7 ।
14. अनुच्छेद 100(1) ।
15. अनुच्छेद 96 ।
16. अनुच्छेद 100(4)।
17. अनुच्छेद 120(1)।
18. नियम 360 ।
19. उदाहरणार्थ, अध्यक्ष मावलंकर ने उस प्रक्रिया पर प्रकाश डाला था जोकि उनके विचार में सभा को राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन पर वाद-विवाद हेतु अपनानी चाहिए थी। *देखिए एल.*

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की वर्षगांठ, मई दिवस, हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराये जाने की बरसी तथा जलियांवाला बाग के शहीदों और 13 दिसंबर, 2001 को संसद भवन पर हुए आतंकवादी हमले में शहीद कर्मियों की स्मृति में श्रद्धांजलि देने जैसे महान अवसरों पर और अन्य महत्वपूर्ण मौकों पर सभा में अध्यक्ष द्वारा उचित उल्लेख किया जाना प्रथागत है।[20]

इसी तरह, अध्यक्ष अत्यधिक महत्व की राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं[21] का उल्लेख करने के लिए राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय महत्व की कुछ घटनाओं[22] अथवा किसी त्रासदी[23]

एस. डिबेट्स 9.12.1955, कॉ. 1919-25 और 14.12.1955, कॉ. 2555-2692 । अध्यक्ष संगमा ने भारत की स्वाधीनता की स्वर्ण जयंती के अवसर पर 26 अगस्त, 1997 को सभा को संबोधित किया। चौदहवीं लोक सभा के दौरान, अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने सदन में साप्ताहिक रूप से वक्तव्य देने की प्रथा शुरू की जिसमें सभा द्वारा पूर्ववर्ती सप्ताह में किए गए कार्य की मुख्य मदों का संक्षिप्त ब्यौरा दिया जाता है।

20. *लो.स.वा.वि.,* 10.12.1985, पृ. 1935; 10.12.1968, पृ. 1; *एल.एस. डिबेट्स* 13.4.1969, कॉ. 10995; *लो.स.वा.वि.,* 1.5.1970, पृ. 1-3, 203-05; *लो.स.वा.वि.,* 6.8.1987, पृ. 1 ।
21. महात्मा गांधी के शताब्दी वर्ष के अवसर पर संकल्प *एल.एस. डिबेट्स,* 24.12.1969, कॉ. 102, संयुक्त राष्ट्र की 40वीं वर्षगांठ के संबंध में संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 29.8.1985, पृ. 25-28; भारत छोड़ो आंदोलन की 50वीं वर्षगांठ और स्वतंत्रता आंदोलन के शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के संबंध में संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1992, पृ. 1-2 और भारत की स्वाधीनता की स्वर्ण जयंती की स्मृति में संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 1.9.1997 ।
22. परमाणु निरस्त्रीकरण के संबंध में 6 राष्ट्रों के शिखर सम्मेलन के बारे में प्रस्ताव *लो.स.वा.वि,* 30.1.1985 पृ. 181-82; दक्षिण अफ्रीका में रंगभेदी शासन द्वारा बैंजामिन मुलोइस की हत्या की निंदा संबंधी संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1985, पृ. 231; संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के नेताओं से जिनेवा में उनकी बैठक की पूर्व संध्या पर अपील करने संबंधी संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1985, पृ. 231-32; लीबिया पर संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा की गई बमबारी की निन्दा संबंधी संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 16.4.1986, पृ. 297-98; मास्को में संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के बीच सामरिक अस्त्र कटौती संबंधी संधि (एस.टी.ए.आर.टी.) के सम्पन्न होने का स्वागत संबंधी संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 2.8.1991 पृ. 183-84; पहले प्रजातांत्रिक राष्ट्रपति के रूप में डॉ. नेल्सन मंडेला के साथ दक्षिण अफ्रीका में प्रथम बहुजातीय चुनावों के आधार पर चुनी गई नई सरकार द्वारा कार्यभार ग्रहण करने पर स्वागत संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 10.5.1994, पृ. 353-54 ।
23. कुछ राज्यों में चक्रवात के कारण जान और माल की क्षति पर दुःख व्यक्त करने संबंधी संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 21.11.1977, पृ. 1; प्राकृतिक प्रकोप के लिए कोलम्बिया के लोगों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने संबंधी संकल्प-*लो.स.वा.वि.,* 18.11.1985, पृ. 232; तमिलनाडु में चक्रवातीय तूफान के कारण जान और माल की क्षति पर अपनी वेदना और दुःख प्रकट करने संबंधी संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 8.11.1985, पृ. 232 ।

अथवा राष्ट्र की खुशी प्रकट करने वाले किसी अवसर[24] पर सभा की भावना व्यक्त करने के लिए प्रस्तावों अथवा संकल्पों को सभा के समक्ष रखता है। ऐसे प्रस्ताव अथवा संकल्प बिना चर्चा के सर्वसम्मति से स्वीकार किए जाते हैं क्योंकि ये दलों तथा समूहों (ग्रुपों) के नेताओं से विचार-विमर्श करके एक आम सहमति हो जाने पर सभा के समक्ष लाये जाते हैं।

1969 से यह परम्परा रही है कि अध्यक्ष सभा के विशेष प्रकोष्ठ में संसदीय प्रतिनिधि मंडलों सहित विदेशी प्रतिष्ठित आगन्तुकों की उपस्थिति का उल्लेख करते हैं और तब सदस्य डेस्क थपथपा कर आगन्तुकों का स्वागत करते हैं।[25]

सभा के कार्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, अध्यक्ष सभा की बैठक के प्रारम्भ तथा समाप्त होने का समय नियत करता है और यह निर्णय करता है कि सभा की बैठक किस-किस दिन होगी।[26] अध्यक्ष वह समय भी अवधारित करता है कि किस समय सभा की बैठक *अनिश्चित काल* के लिए या किसी और दिन तक के लिए या उसी दिन के किसी समय या भाग तक के लिए स्थगित की जानी है और उस तिथि विशेष या समय से पूर्व, जब तक के लिए सभा की बैठक स्थगित की गई हो या सभा के *अनिश्चित काल* तक के लिए स्थगित होने के बाद भी किसी भी समय परन्तु सत्रावसान से पहले सभा की बैठक बुला सकता है।[27]

---

24. एक विमान दुर्घटना में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के बाल-बाल बचने पर राहत और खुशी व्यक्त करने के बारे में संकल्प *लो.स.वा.वि.,* 14.11.1977, पृ. 11; और दक्षिण अफ्रीका के स्वतंत्रता सेनानी नेल्सन मंडेला की रिहाई का स्वागत करने के बारे में संकल्प *लो.स.वा.वि,* 14.3.1990, पृ. 270 ।

    मास्को में संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के बीच सामरिक अस्त्र कटौती संबंधी समिति (एस.टी.ए.आर.टी.) के संपन्न होने का स्वागत संबंधी संकल्प *लो.स.वा.वि.*, 2.8. 1991, पृ. 183-84; पहले प्रजातांत्रिक राष्ट्रपति के रूप में डॉ. नेल्सन मंडेला के साथ दक्षिण अफ्रीका में प्रथम बहुजातीय चुनावों के आधार पर चुनी गई नई सरकार द्वारा कार्यभार ग्रहण करने पर स्वागत संकल्प *लो.स.वा.वि.*, 10.5.1994, पृ. 353-54; और अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर स्वीकृत संकल्प एल.एस. डिबेट्स, 8.3.1996, कॉ. 197-205. पाद-टिप्पण 22 भी *देखिए*, पीछे।

25. *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1969, पृ. 1 और *लो.स.वा.वि.,* 7.1.1991, 20.12.2004, कॉ. 1; 28.5. 2005, कॉ. 1.; 29.11.2007, कॉ. 1 ।

26. नियम 12 और 13 ।

27. नियम 15;

    (i) आठवीं लोक सभा का आठवां सत्र, सोमवार, 23 फरवरी, 1987 को प्रारम्भ हुआ था और 12 मई, 1987 को *अनिश्चित काल के* लिए स्थगित कर दिया गया था। तथापि, लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। लोक सभा अध्यक्ष के नियम 15 के परन्तुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए 27 जुलाई, 1987 से लोक सभा की बैठक पुन: बुलाई थी जो 28 अगस्त, 1987 तक चली थी;

सदन के नेता से परामर्श करके वह सरकारी कार्य का क्रम निर्धारित करता है और उसे तभी बदला जा सकता है यदि अध्यक्ष का समाधान हो जाता है कि उस क्रम में परिवर्तन करने का

(ii) इसी प्रकार, आठवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र मंगलवार, 18 जुलाई, 1989 को प्रारम्भ हुआ था और 18 अगस्त, 1989 को *अनिश्चित काल के* लिए स्थगित हुआ था। तथापि, लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। अध्यक्ष ने नियम 15 के परन्तुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए 11 अक्तूबर को लोक सभा की बैठक पुनः बुलाई थी जो 13 अक्तूबर, 1989 तक चली थी;

(iii) इसी प्रकार, नौवीं लोक सभा का तीसरा सत्र मंगलवार, 7 अगस्त, 1990 को प्रारम्भ हुआ और 7 सितम्बर, 1990 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हुआ। तथापि लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। अध्यक्ष ने नियम 15 के परन्तुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए 1 अक्तूबर को लोक सभा की बैठक पुनः बुलाई जो 5 अक्तूबर, 1990 तक चली;

(iv) इसी प्रकार ग्यारहवीं लोक सभा का प्रथम सत्र बुधवार, 22 मई, 1996 को प्रारम्भ हुआ और 28 मई, 1996 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हुआ। तथापि लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। अध्यक्ष ने नियम 15 के परन्तुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए 10 जून, 1996 में लोक सभा की बैठक पुनः बुलाई जो 12 जून, 1996 तक चली;

(v) इसी प्रकार, तेरहवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र 2 दिसंबर, 2003 को प्रारम्भ हुआ और 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। तथापि, लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। अध्यक्ष ने नियम 15 के परंतुक के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा की बैठक 29 जनवरी, 2004 से पुनः बुलाई जो 5 फरवरी, 2005 तक चली; और

(vi) इसी प्रकार, चौदहवीं लोक सभा का सातवां सत्र 16 फरवरी, 2006 को प्रारम्भ हुआ और 22 मार्च, 2006 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। तथापि, लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। अध्यक्ष ने नियम 15 के परंतुक के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा की बैठक 10 मई, 2006 से पुनः बुलाई जो 23 मई, 2006 तक चली; और इसी प्रकार, पंद्रहवी लोक सभा का पंद्रहवां सत्र 5 दिसम्बर को आरंभ हुआ और 18 दिसम्बर 2013 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। तथापि लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था अध्यक्ष ने नियम 15 के परंतुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोकसभा की बैठक 5 फरवरी 2014 से पुनः बुलाई जो 21 फरवरी 2014 तक चली; और

(vii) इसी प्रकार पंद्रहवीं लोकसभा का पंद्रहवा सत्र 5 दिसम्बर को आरंभ हुआ और 18 दिसम्बर 2013 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। तथापि, लोकसभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। अध्यक्ष ने नियम 15 के परतुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा की बैठक 5 फरवरी 2014 से पुनः बुलाई जो 21 फरवरी 2014 तक चली; और

पर्याप्त आधार है।[28] उसे सभा में दलों तथा समूहों (ग्रुपों) को मान्यता देने की भी शक्ति प्राप्त है।[29]

अध्यक्ष सभा के वाद-विवाद तथा कार्यवाही का विनियमन करता है। सदन के नेता के अनुरोध पर की जा सकने वाली गोपनीय बैठकों में भी अध्यक्ष ही यह अवधारित करता है कि कार्यवाही का वृत्तांत कैसे तैयार किया जाये और ऐसे अवसरों पर किस प्रक्रिया का पालन किया जाये।[30] सभा में व्यवस्था बनाए रखना उसकी जिम्मेदारी है और वह सदस्यों से नियमों का पालन करवाता है। इस प्रयोजन के लिए उसे सभी आवश्यक शक्तियां दी गई हैं।[31] वह अवधारित करता है कि कब किस सदस्य को बोलने का अवसर दिया जाये[32] और उसे कितनी देर बोलने दिया जाये। जब भी आवश्यक हो, वह भाषण की समय-सीमा निर्धारित कर सकता है।[33] वह सभा के विचार के लिए प्रश्न प्रस्तुत करता है और उन्हें सभा के विनिश्चय के लिए रखता है।[34] सदस्य द्वारा उठाए गए व्यवस्था के प्रश्नों पर वह अपना निर्णय देता है और उसका निर्णय अंतिम होता है।[35]

अध्यक्ष को मंत्रियों से पूछे जाने वाले प्रश्नों के संबंध में विभिन्न शक्तियां दी गई हैं। यद्यपि प्रश्नों की ग्राह्यता के संबंध में मार्गदर्शक सिद्धान्त नियमों में अधिकथित हैं, उनका निर्वचन करने की शक्ति अध्यक्ष में निहित है।[36] वह प्रश्न काल को भी जो साधारणतया प्रत्येक बैठक का पहला घंटा होता है[37] चाहे तो बदल सकता है, प्रश्नों की सूचना के संबंध में नियम का अधित्याग कर सकता है[38] और अल्प सूचना पर प्रश्न पूछने की अनुज्ञा दे सकता

(viii) इसी प्रकार, पंद्रहवीं लोकसभा का पंद्रहवां सत्र 5 दिसम्बर को आरंभ हुआ और 18 दिसम्बर 2013 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। तथापि लोकसभा का सत्रावसान नहीं किया गया था। अध्यक्ष ने नियम 15 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोकसभा की बैठक 5 फरवरी 2014 से पुनः बुलाई जो 21 फरवरी 2014 तक चली।

28. नियम 25 ।
29. निदेश 120 ।
30. नियम 248-50 ।
31. नियम 378 । *देखिए* आगे इस अध्याय में उपशीर्षक-'अध्यक्ष की अनुशासनात्मक शक्तियां' के अंतर्गत।
32. नियम 350 ।
33. नियम 21, 63, 178, 192, 196, 198(5), 203, 218(5) और 363(1)।
34. नियम 365 ।
35. नियम 376(3)।
36. नियम 43(1)।
37. नियम 32 ।
38. नियम 33 ।

है, यदि वह लोक महत्व का प्रश्न हो और उसके विचार में अविलम्बनीय स्वरूप का हो।[39] यह निर्णय करता है कि किसी प्रश्न का मौखिक के स्थान पर लिखित उत्तर अधिक उचित होगा और यदि वह ठीक समझे तो सदस्य से मौखिक उत्तर चाहने के कारणों को संक्षेप में बताने के लिए कर सकता है,[40] जिस प्रश्न का मौखिक उत्तर देने के लिए समय नहीं बचा हो प्रश्न काल के अंत में, यदि मंत्री अध्यक्ष से अभ्यावेदन करे कि वह प्रश्न विशेष लोकहित का है, तो अध्यक्ष उसका उत्तर देने की अनुज्ञा दे सकता है[41] भले ही जिस सदस्य के नाम में प्रश्न हो, वह अनुपस्थित हो, अध्यक्ष किसी अन्य सदस्य की प्रार्थना पर निदेश दे सकता है कि उसका उत्तर दिया जाये[42] और जब मौखिक उत्तर के लिए सभी प्रश्न पुकारे जा चुके हों और अभी समय बचा हो, तो वह किसी ऐसे प्रश्न को फिर से पुकार सकता है जो उस सदस्य की अनुपस्थिति के कारण न पूछा गया हो, जिसके नाम पर वह प्रश्न हो। नियमों में यह उपबंध किया गया है कि प्रश्नों के उत्तरों से उत्पन्न विषयों पर आधे घंटे की चर्चा उठाई जा सकती है, बशर्ते कि ये विषय पर्याप्त लोक महत्व के हों, परन्तु यह निर्णय अध्यक्ष में निहित है कि क्या कोई विषय संगत नियमों की अपेक्षाओं के अनुरूप है या नहीं।[43]

अध्यक्ष संकल्पों तथा प्रस्तावों की ग्राह्यता का विनिश्चय भी करता है। प्रश्नों की ग्राह्यता के समान उसे संकल्पों तथा प्रस्तावों की ग्राह्यता के संबंध में भी सामान्य विवेकाधिकार है।[44] वह यह निर्णय करता है कि मंत्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव नियमानुसार है या नहीं[45] और कोई कटौती प्रस्ताव अर्थात् अनुदान की मांग में कटौती करने का प्रस्ताव नियमों के अंतर्गत ग्राह्य है अथवा नहीं।[46] यदि अध्यक्ष का यह मत हो कि वाद-विवाद के स्थगन के किसी प्रस्ताव या विधेयक को पुनः परिचालित करने या पुनः किसी समिति को सौंपने का प्रस्ताव विलम्बकारी स्वरूप का है और सभा में नियमों का दुरुपयोग है, तो वह उस पर तुरन्त प्रश्न प्रस्तुत कर सकता है या प्रश्न प्रस्तुत करने से इंकार कर सकता है।[47] अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह विधेयकों तथा प्रस्तावों[48] के संबंध में प्रस्तुत किए गए संशोधनों का संवरण कर कुछ को सभा के सामने प्रस्तुत करने के लिए चुन सकता है और किसी भी ऐसे

39. नियम 54(1)।
40. नियम 44 ।
41. नियम 46, परन्तुक।
42. नियम 48(3) ।
43. नियम 55(3)
44. नियम 174 और 187 ।
45. नियम 198(2)।
46. नियम 211 ।
47. नियम 341 ।
48. नियम 83 और 346 ।

संशोधन को सभा के समक्ष रखने से इंकार कर सकता है जो उसके विचार में तुच्छ हों।[49] इसके अतिरिक्त, अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी निश्चित विषय की चर्चा के प्रयोजन से सभा के कार्य को स्थगित करने के लिए[50] सामान्य लोक हित के विषय पर चर्चा करने के प्रस्ताव[51] के लिए और किसी विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित करने के प्रस्ताव[52] के लिए अध्यक्ष की सहमति जरूरी है।

सभा में याचिकायें प्रस्तुत करने के लिए[53] अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय की ओर किसी मंत्री का ध्यान आकर्षित करने के लिए[54] और किसी मंत्री या अन्य सदस्य द्वारा दिये गये वक्तव्यों में त्रुटि अथवा अशुद्धि की ओर किसी सदस्य द्वारा ध्यान दिलाने के लिए अध्यक्ष की सहमति जरूरी है।[55] इसके अतिरिक्त, कोई मंत्री अपने त्यागपत्र के[56] स्पष्टीकरण के लिए कोई वैयक्तिक वक्तव्य देना चाहे, तो अध्यक्ष की सहमति आवश्यक है और इसी प्रकार, यदि कोई सदस्य वैयक्तिक स्पष्टीकरण[57] देना चाहे, तो भी उसकी सहमति आवश्यक है।

संविधान के उपबंधों या प्रक्रिया संबंधी नियमों या अध्यक्ष द्वारा दिए गए निदेशों या संसद के अधिनियम और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों एवं विनियमों के अनुसरण में सभा पटल पर पत्र अध्यक्ष की अनुमति से रखे जाते हैं। तथापि, यदि अध्यक्ष की राय में यह पत्र उस आदेश से संबंधित हैं, जो संविधान के उपबंधों या विधि के अनुरूप तैयार नहीं किया गया है, तो वह सभा पटल पर उस पत्र को रखने से रोक सकता है, अध्यक्ष उक्त परिस्थितियों में पत्र को सभा पटल पर रखने पर आपत्ति करने वाले व्यवस्था के प्रश्न पर चर्चा की अनुमति

49. नियम 347 ।
50. नियम 56 ।
51. नियम 184 ।
52. नियम 109 ।
53. नियम 160 ।
54. नियम 197 ।
55. निदेश 115 ।
56. नियम 199(1)।
57. नियम 357 ।
58. *लो.स.वा.वि.,* 2.4.1974, पृ. 127-34 और 3.4.1974, पृ. 112-17 ।

29 मार्च, 1974 को, राष्ट्रपति ने संघ राज्यक्षेत्र पांडिचेरी, जो 28 मार्च, 1974, को राष्ट्रपति शासन के अंतर्गत आ गया था, की संचित निधि से व्यय प्राधिकृत करते हुए एक आदेश जारी किया था। राष्ट्रपति के आदेश को 2 अप्रैल, 1974 को सभा पटल पर रखा जाना था। उस दिन, कुछ सदस्यों ने प्रतिवाद किया कि चूंकि संघ राज्यक्षेत्र पांडिचेरी की विधान सभा भंग कर दी गई थी, तो संघ राज्यक्षेत्र पांडिचेरी की संचित निधि से धन की निकासी की शक्ति का प्रयोग केवल संसद द्वारा ही किया जा सकता है। उन्होंने अध्यक्ष से आग्रह किया कि आदेश को जो कि अवैध और असंवैधानिक है, सभा पटल पर रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

दे सकता है।[58]

सभा के नेता के परामर्श से वह बजट, विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक पर सभा द्वारा चर्चा के लिए दिन और कालावधि निर्धारित करता है।[59] किसी सत्र के प्रारम्भ या उसके अवसान, लोक सभा के विघटन और सामान्य तथा रेल बजट को प्रस्तुत करने के लिए तारीख निर्धारित किये जाने के संबंध में सरकार के प्रस्तावों पर उसके विचार राष्ट्रपति को उस समय संसूचित किये जाते हैं, जब राष्ट्रपति संविधान या नियमों के अंतर्गत आवश्यक आदेशों पर हस्ताक्षर करता है।

अध्यक्ष यह निर्धारित करता है कि सभा के विशेषाधिकार भंग या उसके अवमान संबंधी किसी विषय में प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है या नहीं। उसकी सहमति के बिना किसी सदस्य या सभा या उसकी समिति के विशेषाधिकार भंग के संबंध में कोई भी प्रश्न सभा में नहीं उठाया जा सकता।[60] परन्तु अध्यक्ष अपने आप, किसी ऐसे प्रश्न को विशेषाधिकार समिति को निरीक्षण, छानबीन करने तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए सौंप सकता है।[61]

सभी संसदीय समितियों पर अध्यक्ष का सर्वोच्च नियंत्रण है, चाहे वे उसने बनाई हों या कि सभा ने। वह उनके सभापतियों की नियुक्ति[62] करता है, और उनके कार्य संगठन या उनके द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में ऐसे निर्देश देता है, जो वह आवश्यक समझे।[63] वह उनके साथ समय-समय पर परामर्श करता है और उनका मार्गदर्शन करता है और यदि प्रक्रिया संबंधी किसी मुद्दे पर अथवा/अन्यथा, कोई संदेह उत्पन्न हो, तो वह मामला अध्यक्ष को भेज दिया जाता है जिसका विनिर्णय अंतिम होता है। वैसे भी, अध्यक्ष सभी समितियों की

---

3 अप्रैल, 1974 को, विधि मंत्री ने सदस्यों द्वारा उठाए गए मुद्दों के उत्तर में बताया कि 28 मार्च, 1974 को पांडिचेरी विधान सभा भंग हो जाने के बाद पांडिचेरी के बजट और वित्तीय विवरण को 29 मार्च, 1974 को केन्द्र सरकार के पास भेज दिया गया था जो वित्तीय वर्ष 1973-74 की समाप्ति से पूर्व लोक सभा का अंतिम कार्य दिवस था। इसलिए, यदि सभा द्वारा लेखानुदान पारित होना था, तो उसे 29 तारीख को ही पारित हो जाना चाहिए था जोकि बिल्कुल भी व्यवहार्य नहीं था। मंत्री ने कहा कि जो सरकार ने किया था वह उन परिस्थितियों के अंतर्गत न केवल सही था, अपितु विधिक और संवैधानिक भी था। तथापि, दोनों पक्षों को सुनने के बाद, अध्यक्ष महोदय ने अपनी टिप्पणी में कहा कि "वर्तमान में" वह राष्ट्रपति के आदेश को सभा पटल पर रखने की अनुमति नहीं दे रहे हैं।

59. नियम 207(1) और 219(2)। सामान्यतः उन चर्चाओं के लिए समय का निर्धारण कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश के आधार पर सभा करती है।

60. नियम 222 । विशेषाधिकार संबंधी मामला उठाने वाले सदस्य को अध्यक्ष की सहमति के अतिरिक्त, सभा की अनुमति भी लेनी पड़ती है। *देखिए* नियम 225 ।

61. नियम 227 ।

62. नियम 258 ।

63. नियम 283 ।

कार्यवाहियों से पूर्णतः अवगत रहता है। समितियों संबंधी कुछ शक्तियां अध्यक्ष के लिए आरक्षित हैं—कोई भी समिति अध्यक्ष की पूर्वानुमति के बिना संसद भवन/संसदीय सौध से बाहर अपनी बैठक नहीं कर सकती[64] और न ही उसके पूर्वानुमोदन के बिना राज्य सरकारों के अधिकारियों को साक्ष्य देने के लिए बुला सकती है,[65] कार्यवाही से कुछ शब्दों को निकाले जाने और अमर्यादित व्यवहार आदि के संबंध में सभापति के फैसलों के विरुद्ध सदस्यों की अपीलों का निर्णय अध्यक्ष[66] करता है, और जहां यह प्रश्न उठता है कि समिति में किसी दस्तावेज का प्रस्तुत किया जाना या किसी व्यक्ति द्वारा साक्ष्य दिया जाना, उसमें विचार-विमर्श के संगत है या नहीं, तो वह मामला अध्यक्ष के निर्णय के लिए भेजा जाता है और उसका निर्णय अन्तिम होता है।[67] इसी प्रकार यदि सरकार यह दावा करे कि कोई विशेष कागजात, प्रलेख (रिकार्ड) या दस्तावेज गुप्त है और जनहित में यह बताना उचित नहीं कि उसमें क्या लिखा है, परन्तु समिति इस बात पर जोर दे कि वह उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाये, तो यह मामला अध्यक्ष का मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और इस संबंध में उसके निदेशों का पालन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, कुछ समितियां हैं, जैसे कार्य-मंत्रणा समिति, सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति और नियम समिति, जो प्रत्यक्षतः अध्यक्ष के सभापतित्व में काम करती है।

अध्यक्ष इस प्रश्न पर भी विनिश्चय करता है कि क्या सभा का कोई सदस्य संविधान की दसवीं अनुसूची के अनुसार, दल-बदल के आधार पर निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं।

अध्यक्ष के विनिर्णय

जहां तक सभा में या उससे संबंधित मामलों का प्रश्न है, उनके बारे में संविधान तथा नियमों का निर्वचन करने का अधिकार अध्यक्ष का है और ऐसे किसी निर्वचन के संबंध में, सरकार सहित कोई भी अध्यक्ष के साथ तर्क या वाद-विवाद नहीं कर सकता।[68] अध्यक्ष के विनिर्णय उदाहरण हैं जिनसे बाद में आने वाले अध्यक्षों, सदस्यों तथा अधिकारियों का मार्गदर्शन होता है। ऐसे पूर्व उदाहरणों का संग्रह किया जाता है और यथासमय उन्हें प्रक्रिया नियमों का रूप दिया जाता है या परम्परा के रूप में उनका अनुसरण किया जाता है। जैसा

---

64. नियम 267 ।
65. नियम 60(1)।
66. निदेश 64(2)।
67. नियम 270, पहला परंतुक।
68. श्याम लाल शकधरः "आफिसर्स आफ पार्लियामेंट इन द इंडियन पार्लियामेंट", (सं.) ए.बी. लाल, इलाहाबाद, 1956, पृ. 32 । तथापि, अध्यक्ष सदा इस बात का निर्णय करने से इंकार करता है कि कोई विधान संविधान के अधिकारातीत है या नहीं अथवा संविधान के अंतर्गत सभा वह विधान बनाने में सक्षम है या नहीं। *देखिए, एच.पी. डिबेट्स* (II), 9.5.1953, कॉ. 6289-90, *लो. स.वा.वि.,* (II), 10.4.1956, पृ. 2100-01 ।

कि पहले कहा जा चुका है, मूल प्रस्ताव के सिवाय अध्यक्ष के विनिर्णयों को चुनौती नहीं दी जा सकती।[69] जो सदस्य अध्यक्ष के विनिर्णय पर विरोध प्रकट करता है, वह सभा और अध्यक्ष की अवमानना का दोषी होता है।[70] अध्यक्ष का निर्णय बराबर बाध्यकारी होता है, चाहे वह सभा में दिया गया हो चाहे विभागीय फाइल में।[71] अध्यक्ष अपने निर्णय के कारण बताने के लिए बाध्य नहीं होता।[72] सदस्य सभा में या उसके बाहर, अध्यक्ष द्वारा दिये गये विनिर्णय, व्यक्त किये गये विचार या दिये गये वक्तव्य की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आलोचना नहीं कर सकते। यदि कोई सदस्य अध्यक्ष के किसी विनिर्णय के संबंध में सभा में कोई निवेदन करना चाहे, तो अध्यक्ष इस बात का समाधान करके कि इससे सभा की कार्यवाही में अनुचित रूप से बाधा नहीं पड़ेगी, उसे अपनी बात कहने की अनुमति दे सकता है। इस प्रकार अपनी बात कहने वाला सदस्य निर्णय की आलोचना नहीं कर सकता लेकिन किसी मुद्दे पर स्पष्टीकरण मांग सकता है या अध्यक्ष से यह निवेदन कर सकता है कि उसके द्वारा दिये गये तथ्यों के प्रकाश में उस विनिर्णय पर विचार किया जाये।[73]

अध्यक्ष द्वारा सभा में दिये गये विनिर्णयों का निर्वचन व्यक्तिगत पत्रों में नहीं किया जा सकता। अध्यक्षपीठ से जो विनिर्णय अध्यक्ष देता है, उसके बारे में वह सार्वजनिक या समाचारपत्रों से वाद-विवाद में नहीं पड़ता।

अध्यक्ष के लिए संसदीय समितियों के कार्यक्षेत्र और कृत्यों अथवा प्रक्रिया संबंधी अन्य मामलों अथवा सभा की कार्यवाहियों के संबंध में प्राइवेट व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करना प्रथागत नहीं है। तथापि, जहां राज्य सभा के किसी सदस्य से सभा में उस के विरुद्ध कही गयी किसी बात के संबंध में उस सदस्य से कोई पत्र प्राप्त हो, तो अध्यक्ष अपने विवेक से

---

69. *देखिए, एल.ए. डिबेट्स,* 13.3.1924, पृ. 1925-26, *एच.पी. डिबेट्स,* (II), 18.6.1952, कॉ. 2032-33; 24.8.1953, कॉ. 1966; *लो.स.वा.वि.,* (II), 13.9.1954, कॉ. 1307; और 7.9.1956, कॉ. 6096-97 ।

70. *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 28.4.1958, पृ. 5643 ।

71. *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 21.4.1960, पृ. 6008-09 ।

72. *पूर्वोक्त,* 5.8.1959, कॉ. 661; 7.8.1959, कॉ. 1195; और 1.12.1960, कॉ. 3339; 26 अप्रैल, 1966 को नियम समिति ने इस प्रस्थापना पर विचार किया कि इस संबंध में एक विशिष्ट नियम बनाया जाये कि अध्यक्ष किसी प्रस्ताव या किसी मामले में दिये गये अपने निर्णय के संबंध में कारण बताने के लिए बाध्य नहीं होगा। समिति ने यह महसूस किया कि ऐसे नियम की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अध्यक्ष होने के नाते ही उस को यह शक्ति प्राप्त है कि वह सूचनाओं या अन्य मामलों पर अपने विनिर्णय के लिए कारण न बताएं। सभा की यह एक सुस्थापित पद्धति थी जिसे सभी अच्छी तरह समझते थे और इस संबंध में कोई नियम बनाने की आवश्यकता नहीं थी। सभी इसको जानते हैं और समझते हैं। इसलिए इस संबंध में नियम बनाने की जरूरत नहीं है—*देखिए कार्यवाही* सारांश (नियम समिति—तीसरी लोक सभा) 26.4.1966, पैरा 6 ।

73. *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 12.9.1938, पृ. 2035 ।

उस पत्र को मंत्री या सम्बद्ध सदस्य को ऐसी कार्यवाही के लिए भेज सकता है जो वह आवश्यक समझे।[74] अध्यक्ष भी बाध्य नहीं है कि वह किसी ऐसे पत्र या अभ्यावेदन को सभा पटल पर रखे, जो उसे प्राप्त हुआ हो।[75]

अध्यक्ष की अनुशासनात्मक शक्तियां

सभा में व्यवस्था बनाए रखना अध्यक्ष का मूल कर्त्तव्य है। उसे अनुशासनात्मक शक्तियां नियमों से प्राप्त होती हैं और अनुशासन संबंधी मामलों में उनके निर्णयों को सिवाए मूल प्रस्ताव के किसी प्रकार चुनौती नहीं दी जा सकती।[76] अध्यक्ष किसी सदस्य के भाषण की असंगतता या उसमें दोहराई जाने वाली बातों को रोक सकता है और जब कोई सदस्य कोई अनुचित या अपमानजनक बात कहे तो अध्यक्ष हस्तक्षेप कर सकता है और उसे अपने शब्द वापस लेने या उसमें सुधार करने के लिए कह सकता है। अध्यक्ष स्वविवेक से वाद-विवाद में प्रयुक्त मानहानिकारक या अशिष्ट शब्दों[77] या किसी ऐसे सदस्य द्वारा कही गयी किसी बात को कार्यवाही वृत्तान्त से निकाल सकता है, जिसे बोलने की अनुमति न दी गयी हो।[78] जो सदस्य अव्यवस्थापूर्ण व्यवहार का दोषी हो उसे अध्यक्ष सभा से बाहर चले जाने के लिए कह सकता है और यदि कोई सदस्य अध्यक्षपीठ के प्राधिकार की उपेक्षा करता है और हठपूर्वक सभा के कार्य में बाधा डालता है तो अध्यक्ष उसका नाम लेकर उसे सभा से निलम्बित कर सकता है। इसके अतिरिक्त किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अथवा सभा में नारे लगाकर या अन्य प्रकार से सभा की कार्यवाही में बाधा डालकर लगातार और जानबूझकर सभा के नियमों का दुरुपयोग करते हुए घोर अव्यवस्था उत्पन्न किए जाने की स्थिति में अध्यक्ष द्वारा सदस्य का नाम लिए जाने पर वह सभा की सेवा से लगातार पांच बैठकों के लिए या सत्र की शेष अवधि के लिए, जो भी कम हो, स्वत: निलंबित हो जाएगा।[79] घोर अव्यवस्था होने पर वह सभा को स्थगित या उसका कार्य निलम्बित कर सकता है।[80]

अध्यक्ष के विविध कार्य

अध्यक्ष, भारतीय संसदीय ग्रुप का पदेन अध्यक्ष है[81] जो भारत में, अन्तर-संसदीय संघ

---

74. *लो.स.वा.वि.,* 31.8.1961, पृ. 3024-25; एल.एस. डिबेट्स, 29.11.1961, कॉ. 1862-64 ।
75. *पूर्वोक्त,* 17.3.1960, कॉ. 6433 ।
76. नियम 352 और 378 ।
77. नियम 353, 356 और 380, साथ ही *देखिए* अध्याय 37–'सभा के कार्यवाही-वृत्तान्त से शब्दों का निकाला जाना'।
78. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 1.12.1960, पृ. 1695; 7.12.1960, पृ. 2104; एल.एस. डिबेट्स, 8.12. 1960, का. 4579; *लो.स.वा.वि.,* 7.8.1961, पृ. 122-23 और 133 ।
79. नियम 374क।
80. नियम 373-375 ।
81. साथ ही *देखिए* अध्याय 46 (अंतर-संसदीय संबंध एवं विनिमय)।

के राष्ट्रीय ग्रुप के रूप में और राष्ट्रमंडल संसदीय एसोसिएशन की मुख्य शाखा के रूप में काम करता है। अध्यक्ष राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके, विदेशों को जाने वाले विभिन्न संसदीय प्रतिनिधिमंडलों के लिए सदस्यों का नामनिर्देशन करता है। कभी-कभी वह स्वयं इन प्रतिनिधिमंडलों का नेतृत्व करता है। अध्यक्ष, भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन का सभापति भी है।

अध्यक्ष सभा में निधन संबंधी उल्लेख भी करता है, सभा की अवधि समाप्त होने पर विदाई भाषण देता है और साथ ही महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के संबंध में औपचारिक उल्लेख भी करता है।[82]

नियमों के अंतर्गत अध्यक्ष को यह शक्तियां प्राप्त हैं कि जब कोई विधेयक सभा द्वारा पारित हो जाये तो वह उसमें प्रत्यक्ष गलतियों को शुद्ध कर सकता है और अन्य ऐसे परिवर्तन कर सकता है जो सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों के परिणामी हों।[83] जब कोई विधेयक संसद द्वारा पारित किया जाता है और वह सभा के पास हो तो अध्यक्ष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए भेजने से पहले उस पर हस्ताक्षर करके उसे अधिप्रमाणित करे।[84]

नियमों में जिन विषयों के संबंध में कोई विशिष्ट उपबंध नहीं किया गया है तथा नियमों की विस्तृत क्रियान्विति से संबंधित सब प्रश्नों का विनियमन उसी रीति से किया जाता है, जैसा कि अध्यक्ष समय-समय पर निदेश दे।[85] जैसाकि पहले कहा जा चुका है, इन निदेशों का संकलन किया जाता है और उन्हें मार्गदर्शन हेतु प्रकाशित किया जाता है। तथापि, अध्यक्ष के पास वही शक्तियां होती हैं जो उसे सभा अथवा नियमों द्वारा दी जाती हैं। वह स्वयं कोई अपनी नई प्रक्रिया शुरू नहीं कर सकते।[86]

---

82. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 28.3.1957, पृ. 365; 10.5.1957, पृ. 1-13; 10.12.1958 पृ. 1935; 13.4.1961, पृ. 5079; *जे.एस.एच. पार्लियामेंटरी डिबेट्स,* 6.5.1961, कॉ. 1-3; 9.5.1961, कॉ. 151; *लो.स.वा.वि.,* 30.3.1962, पृ. 1202-04; 25.11.1963, पृ. 658-59; 29.5. 1964, पृ. 88-89; 14.2.1966, पृ. 6; 5.5.1969, पृ. 1-6; *एल.एस. डिबेट्स,* 26.3.1977, कॉ. 15-26; 23.6.1980, पृ. 1-11; 26.6.1980, पृ. 1; 4.12.1981, पृ. 251-52; 18.2. 1983, पृ. 7-15; 23.3.1984; कॉ. 1-2; *लो.स.वा.वि.* पृ. 5; 17.1.1985, पृ. 8-37; 27.7. 1987, पृ. 1-5; 6.8.1987, पृ. 1; 22.2.1988, पृ. 14-21; 12.3.1990, पृ. 10-16; 20.11. 1991 पृ. 1-3; 24.11.1992, पृ. 251-52; 2.12.1993, पृ. 1-17. और 9.8.1994, पृ. 1-12; *एल.एस. डिबेट्स,* 26.2.1996 कॉ. 23 और 26.8.1996, कॉ. 1-2; उदाहरणार्थ अध्याय 18-'कार्य-विन्यास और कार्य सूची' के अंतर्गत शीर्षक 'महत्त्वपूर्ण अवसरों संबंधी उल्लेख' भी *देखिए*।
83. नियम 95 ।
84. नियम 128(1) और 154 ।
85. नियम 389 ।
86. *लो.स.वा.वि,* 22.11.1965, पृ. 181-82 ।

अध्यक्ष सचिवालय का प्रमुख है जो उसके अंतिम नियंत्रण तथा निदेशों के अंतर्गत कार्य करता है।[87] सभा के सचिवीय कर्मचारीवृंद, उसके परिसर तथा उसके सुरक्षा-प्रबंध के संबंध में अध्यक्ष का प्राधिकार सर्वोच्च है। सभी अजनबी, आगंतुक तथा समाचारपत्रों के संवाददाता उसके अनुशासन तथा आदेशों के अधीन हैं और आदेश की अवहेलना पर दंड के रूप में उन्हें संसद भवन के परिसर से निकाला जा सकता है अथवा दीर्घाओं के लिए निश्चित या अनिश्चित काल तक के लिए प्रवेशपत्र बंद किये जा सकते हैं या और गंभीर मामलों में अवमानना या विशेषाधिकार भंग के लिए कार्यवाही की जा सकती है। सदस्यों के अधिकारों की रक्षा अध्यक्ष की जिम्मेदारी है और उसकी यह भी जिम्मेदारी है कि वह सदस्यों के लिए समुचित सुविधा सुनिश्चित करे। यदि किसी सदस्य का किसी आपराधिक आरोप के आधार पर बंदीकरण किया जाता है, या उसे कारावास का दंडादेश दिया जाता है अथवा कार्यपालिका आदेश के अन्तर्गत उसे निरुद्ध किया जाता है तो मजिस्ट्रेट या कार्यपालिका प्राधिकारी द्वारा उसकी सूचना तुरन्त अध्यक्ष को दी जानी चाहिए।[88] सदस्य की रिहाई पर भी इसी प्रकार सूचना देना आवश्यक है।[89] अध्यक्ष की अनुज्ञा प्राप्त किए बिना किसी भी सदस्य का सभा के परिसर में बन्दीकरण नहीं किया जा सकता है और न ही किसी सिविल अथवा आपराधिक वैध आदेश का निर्वहन किया जा सकता है।[90] इस प्रकार की अनुज्ञा लेना आवश्यक है चाहे सभा का सत्र हो रहा हो या नहीं। संसद भवन में कोई परिवर्तन या परिवर्धन अध्यक्ष की अनुज्ञा के बिना नहीं किया जा सकता और न संसद की भू-सम्पदा में कोई नया भवन आदि ही उसकी अनुज्ञा के बिना बनाया जा सकता है।

अध्यक्ष की प्रतिष्ठा तथा प्राधिकार के महत्त्व को देश की स्वतंत्रता के प्रारंभ से ही मान्यता दी गयी है। 8 मार्च, 1948 को अध्यक्ष पटेल के चित्र के अनावरण के अवसर पर भाषण देते हुए प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था:

> अध्यक्ष सभा का प्रतिनिधित्व करता है। वह सभा की गरिमा और उसकी स्वतंत्रता का प्रतीक है और चूंकि सभा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है, अत: एक विशिष्ट रूप से अध्यक्ष राष्ट्र की स्वतंत्रता और आजादी का प्रतीक बन जाता है। अत: यह उचित ही है कि अध्यक्ष का पद सम्मानित पद होना चाहिए, उसकी स्थिति स्वतंत्र होनी चाहिए और उस पद पर हमेशा वही व्यक्ति आसीन होने चाहिएं जिनमें असाधारण योग्यता और निष्पक्षता हो।[91]

अध्यक्ष का सभा के अन्दर सर्वोच्च प्राधिकार किसी भावावेश अथवा पूर्वाग्रह से प्रभावित हुए बिना और अपनी निजी स्थिति के संबंध में सदस्यों के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना अपनी पूर्ण योग्यता तथा विवेक के साथ विनिर्णय देने के लिए अपने सद्भावी प्रयासों

---

87. *देखिए* अनुच्छेद 98 ।
88. नियम 229 ।
89. नियम 230 ।
90. नियम 232 और निदेश 124 ।
91. सी.ए. (विधिक) वाद-विवाद, खंड-III, 8-3-1948, 48 पृष्ठ 1743.

के बारे में विश्वास के साथ सदस्यों को प्रभावित करने की क्षमता पर आधारित होता है। उसमें निहित सभी शक्तियों का अभिप्राय सभा के सुचारू कार्यकरण को सुनिश्चित करना है। अध्यक्ष के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से करना अथवा किसी ऐसे ढंग से करना जिससे सभा का कार्यकरण बाधित होता हो, किसी भी हालत में न्यायोचित नहीं होगा।

पश्चिम बंगाल और पंजाब विधान सभाओं के अध्यक्षों द्वारा वर्ष 1967-68 में अपनाए गए रवैयों के परिणामस्वरूप पैदा हुए संदेहों को दूर करने के लिए पागे समिति ने अध्यक्ष के कर्त्तव्यों और दायित्वों तथा सभा के साथ उसके संबंधों पर टिप्पणी करते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया:

> मौलिक सिद्धांत यह है कि सभा संविधान के उपबंधों के अध्यधीन अपने नियमों तथा कार्य संचालन नियमों के मामले में सम्प्रभुता सम्पन्न है इसलिए अध्यक्ष को नियमों द्वारा जो भी शक्तियां प्रदत्त हैं, वे एक उद्देश्य को पूरा करने के लिए हैं अर्थात् सभा को हर समय देश के हित में कार्य करने में सक्षम बनाया जाना चाहिए और अध्यक्ष को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग उनके द्वारा सभा के हित में किया जाना चाहिए।
>
> अध्यक्ष का मुख्य कर्त्तव्य सभा की कार्यवाही को विनियमित करना और सभा के समक्ष आने वाले विभिन्न मामलों पर विचार-विमर्श करना तथा उन पर निर्णय लेना है। अत: उसके समक्ष उठाई गई विभिन्न सूचनाओं अथवा मुद्दों पर विचार करते समय अध्यक्ष को सदैव यह बात ध्यान में रखनी चाहिए और जहां संदेह हो, उसे सभा को अपनी बात रखने के लिए अवसर देने के पक्ष में कार्य करना चाहिए। अध्यक्ष अपने कर्त्तव्यों को इस प्रकार न समझे अथवा अपनी शक्तियों का इस प्रकार निर्वचन न करे अथवा अपने प्राधिकार का अतिक्रमण अथवा अपने निर्णयों को इस प्रकार निरस्त न करे कि वह सभा से अलग होकर कार्य करने लगे। अध्यक्ष सभा का एक अंग होता है और सभा के बेहतर कार्यकरण हेतु वह सभा से अपनी शक्तियां प्राप्त करता है और अंतिम विश्लेषण में, वह सभा का सेवक होता है उसका स्वामी नहीं।[92]
>
> इसके अतिरिक्त, सामान्यत: अध्यक्ष को स्वयं कोई मामला उठाकर उस पर अपना निर्णय नहीं देना चाहिए। जब कोई व्यवस्था का प्रश्न उठाया जाए तो, यदि आवश्यक हो, सदस्यों की बात सुनने के बाद ही उसे अपना विनिर्णय देना चाहिए।

---

92. पागे समिति की रिपोर्ट, पैरा 35 ।

सरल और अच्छे चुने हुए कुछ शब्दों में अध्यक्ष लैंथल ने किंग चार्ल्स-I को दिए अपने उत्तर में सुस्पष्ट रूप से और सदा के लिए अध्यक्ष के प्रथम कर्त्तव्य को व्यक्त किया था:

"महामहिम, यहां मेरे पास न तो देखने हेतु नेत्र हैं, न बोलने हेतु जिह्वा, परन्तु सभा ने जिसका मैं सेवक हूं मुझे निदेश दिया है और मैं महामहिम से विनम्र क्षमा चाहता हूँ कि मैं इस उत्तर के अतिरिक्त और कोई अन्य उत्तर नहीं दे सकता जो महामहिम ने मुझसे मांगा है।"

(फिलिप लॉन्डी: द ऑफिस ऑफ स्पीकर, लन्दन, 1964, पृ. 211)।

व्यवस्था के प्रश्न पर उसे ऐसा विनिर्णय नहीं देना चाहिए जिससे कि सभा द्वारा किसी मामले में पहले लिये गये विनिर्णय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।[93]

यद्यपि अध्यक्ष को सभा को स्थगित करने के संबंध में पर्याप्त विवेकाधिकार प्राप्त है तथापि इस अधिकार का प्रयोग उसके द्वारा यथोचित सीमाओं के अतंर्गत और इस तरीके से किया जाना चाहिए जिससे कि सभा के कार्य में बाधा न पहुंचे।

जैसा कि अध्यक्ष रेड्डी ने टिप्पणी की है[94] अध्यक्ष का पहला कर्त्तव्य यह देखना है कि सभा कार्य कर सके न कि वह अवरुद्ध हो। सभा सर्वोच्च है न कि अध्यक्ष, वह सभा की अवहेलना या उसकी अनदेखी या सभा की शक्तियों और कृत्यों पर स्वयं अधिकार जमाकर अंतर्निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता।

पश्चिम बंगाल विधान सभा में, सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करके अध्यक्ष ने उस सभा को अप्रभावी बना दिया जो इस मामले में यह निर्णय ले सकती थी कि क्या मंत्रालय को सभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त है अथवा नहीं।

पंजाब विधान सभा में, सभा को दो माह के लिए स्थगित करने के अध्यक्ष के निर्णय से पंजाब में गंभीर संकट पैदा हो गया क्योंकि सभा को अभी वर्ष 1968-69 का बजट पास करना था। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की थी:

"जबकि वित्तीय कार्य निपटान हेतु पड़ा हो और संवैधानिक तंत्र तथा स्वयं लोकतंत्र की धज्जियां उड़ रही हों तो ऐसी स्थिति में अध्यक्ष द्वारा स्थगित कर दिए जाने के कारण विधान सभा को 31 मार्च के बाद निष्क्रिय रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"[95]

विधिक विषयों अथवा मंत्रालय की वैधानिकता पर भी विनिर्णय देने का काम अध्यक्ष का नहीं होता। इस संबंध में अध्यक्ष रेड्डी ने टिप्पणी की:

> यदि कोई ऐसा विवाद उठता है कि अमुक मंत्रालय 'विधिक' है या नहीं, तो इसके निपटान का उचित मंच न्यायालय है। लेकिन सभा इस मामले में असहाय नहीं है क्योंकि यदि न्यायालय मुख्य मंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति को वैध ठहरा देता है तो भी सभा मताधिकार से उन्हें उनके पदों से हटा सकती है। अध्यक्ष बिल्कुल भी सामने नहीं आता है और यदि वह मंत्रालय की वैधानिकता की घोषणा स्वयं करता है तथा इस मामले में सभा को अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने से रोकता है, तो वह सभा और न्यायालय के कृत्यों पर स्वयं के अधिकार का झूठा दावा करता है। यही नहीं, यदि अध्यक्ष सभा को अपना कार्य नहीं करने देता है तो वह वास्तव में, मंत्रालय को सभा के प्रति उसके दायित्वों और

---

93. पागे समिति की रिपोर्ट, पैरा 40(i) और (ii) ।
94. 6 अप्रैल, 1968 को पीठासीन अधिकारियों के आपात सम्मेलन में अध्यक्ष रेड्डी द्वारा दिया गया भाषण।
95. *पंजाब राज्य बनाम सत्यपाल डांग, ए.आई.आर.* 1969, एस.सी. 903 ।

जिम्मेदारियों से मुक्त करता है।[96]

अंत में, अध्यक्ष को सभा में वातावरण के प्रति संवेदनशील होना पड़ता है। कभी-कभी जब सभा में उत्तेजना, शोरगुल, दोषारोपण वाली टिप्पणियाँ या लगातार व्यवधान होता है तो स्थिति पर नियंत्रण करने, तनाव दूर करने और ऐसा वातावरण पैदा करने के लिए उसे कुशाग्र बुद्धि और स्वस्थ हंसी-मजाक का सहारा लेना पड़ता है जिसमें वाद-विवाद व्यवस्थित तरीके से और तनाव रहित चल सके। यह एक देन है जो कि प्राकृतिक भी हो सकती है अथवा स्वविकसित भी, लेकिन निश्चित रूप से यह एक बुद्धिमान और सक्षम अध्यक्ष का अत्यधिक प्रभावशीलतापूर्ण साधन है।

अध्यक्ष को भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ रैंक और अग्रता क्रम में छठा स्थान प्राप्त है।[97]

2. उपाध्यक्ष

1950 में संविधान के लागू होने के बाद से उपाध्यक्ष के पद का महत्त्व बढ़ गया है और उसकी स्थिति अधिक प्रमुख हो गयी है। अध्यक्ष के समान उपाध्यक्ष का चुनाव भी लोक सभा द्वारा अपने सदस्यों में से किया जाता है।[98] वह अध्यक्ष के अधीन नहीं है बल्कि उसकी स्वतंत्र स्थिति है और वह केवल सभा के प्रति उत्तरदायी है। वह तब तक पद धारण करता है जब तक वह सभा का सदस्य रहता है अथवा जब तक वह स्वयं पदत्याग नहीं करता अथवा जब तक वह सभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा पारित सभा के संकल्प द्वारा हटाया न जाये।[99]

केन्द्रीय विधान सभा के दिनों में, सभा की बैठक थोड़ी-थोड़ी अवधियों के लिए होती थी और वह भी लम्बे अंतराल के बाद। वर्तमान में, सभा की बैठक वर्ष में लगभग सात महीने होती है और प्रत्येक बैठक लगभग सात घंटे तक चलती है। अध्यक्ष के लिए यह व्यवहार्य नहीं है कि वह किसी विशिष्ट बैठक के दौरान पूरे समय सभा में रहे। यदा-कदा, जब उसे अपने दूसरे कर्त्तव्यों का निर्वहन करना होता है तो वह अपने आसन से उठ आता है, और उसकी अनुपस्थिति में सामान्यत: उपाध्यक्ष ही सभा की कार्यवाही की अध्यक्षता करता है।[100] इसके अतिरिक्त, जब भी अध्यक्ष का पद रिक्त हो, उपाध्यक्ष को उस पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है।[101]

---

96. अध्यक्ष रेड्डी का भाषण, उद्धृत कृति।
97. राष्ट्रपति सचिवालय अधिसूचना सं. 33 प्रेज. 79, दिनांक 26.7.1979 ।
98. अनुच्छेद 93 और नियम 8 ।
    उपाध्यक्ष के पद के उद्भव, संवैधानिक विकास आदि के लिए *देखिए* अध्याय 7–'लोक सभा के पीठासीन अधिकारी' ।
99. अनुच्छेद 94 ।
100. एम.एन. कौल : "पोजीशन एंड फंकशन्स ऑफ डिप्टी स्पीकर", जे.पी.आई, III(2), पृ. 147, साथ ही *देखिए* अनुच्छेद 95 (2)।
101. अनुच्छेद 95(1) अध्यक्ष मावलंकर के निधन पर उपाध्यक्ष ने अध्यक्ष का कार्यभार संभाला और वे उस कार्य को 7 मार्च, 1956 तक करते रहे जब उन्होंने अगले दिन अध्यक्ष पद पर अपने सन्निकट चुनाव की संभावना को ध्यान में रखते हुए उपाध्यक्ष का पद त्याग दिया–लोक सभा सचिवालय अधिसूचना सं. 496-टी/56, 7.3.1956, राजपत्र (1-1) 7.3.1956 ।

उपाध्यक्ष जब सभा की बैठक में पीठासीन हो तो उसे वही शक्तियां प्राप्त होती हैं जो अध्यक्ष को प्राप्त होती हैं और नियमों में अध्यक्ष के प्रति सभी निर्देश उपाध्यक्ष के पीठासीन होने पर उसके प्रति निर्देश समझे जाते हैं।[102] निरन्तर ऐसा निर्णय किया गया है कि अध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभा की बैठक की अध्यक्षता करने वाले उपाध्यक्ष या सभा की बैठक की अध्यक्षता करने वाले किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिये गये विनिर्णय के विरुद्ध अध्यक्ष से कोई अपील नहीं की जा सकती है। अध्यक्ष-पीठ से दिया गया विनिर्णय सभा के समक्ष उठाये गये मामले का तत्काल समाधान करता है और उसे कोई दोबारा नहीं उठा सकता।[103]

तथापि, जब भी सभा में उठाया गया कोई ऐसा प्रश्न जिसके लिए कुछ विचार करने या पूर्व उदाहरण लागू करने या अध्ययन करने की आवश्यकता हो तो उपाध्यक्ष या सभापति उस मामले को अध्यक्ष के निर्णय के लिए छोड़ सकते हैं।

---

19 जुलाई, 1969 को श्री नीलम संजीव रेड्डी के भारत गणतंत्र के राष्ट्रपति के पद का उम्मीदवार होने के कारण अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने के बाद उपाध्यक्ष ने अध्यक्ष का कार्यभार संभाल लिया और 8 अगस्त, 1969 को नए अध्यक्ष का निर्वाचन हो जाने तक वे उस पद पर कार्य करते रहे—लोक सभा सचिवालय अधिसूचना सं. 38/1/69/टी. 19.7.1969, राजपत्र, (1-2), 19.7.1969 ।

1 दिसम्बर, 1975 को श्री जी.एस. ढिल्लों ने केन्द्रीय मंत्रिपरिषद का सदस्य नियुक्त होने पर अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया था। उपाध्यक्ष ने अध्यक्ष का कार्यभार संभाल लिया और 5 जनवरी, 1976 को नए अध्यक्ष की नियुक्ति हो जाने तक लगातार अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे—लोक सभा सचिवालय अधिसूचना सं. 38/1/75/टी, 1.12.1975, राजपत्र असाधारण [II-3(ii)] 1.12.1975 ।

13 जुलाई, 1977 को श्री नीलम संजीव रेड्डी ने अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दिया क्योंकि वह भारत गणतंत्र के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार थे। उपाध्यक्ष ने अध्यक्ष का कार्यभार संभाल लिया और 21 जुलाई, 1977 को नए अध्यक्ष का निर्वाचन हो जाने तक अध्यक्ष का कार्यभार देखते रहे— लोक सभा सचिवालय अधिसूचना सं. 38/1/77/टी, 13.7.1977, रापजत्र असाधारण भाग 2, खंड 3 (ii), 13.7.1977 ।

3 मार्च, 2002 को अध्यक्ष जी.एम.सी. बालयोगी के निधन के उपरांत, उपाध्यक्ष (श्री पी.एम. सईद) ने अध्यक्ष का कार्यभार संभाल लिया और 10 मई, 2002 को नए अध्यक्ष (मनोहर जोशी) का निर्वाचन हो जाने तक लगातार अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे।

102. नियम 10 ।

103. *देखिए, एल.ए. डिबेट्स,* 11.7.1923, पृ. 4533-42; 13.3.1924, पृ. 1689-90; 1.9.1938, पृ. 1444-48 और 1455-63; 5.9.1938, पृ. 1983-86; *लो.स.वा.वि.,* 13.9.1954, का. 1307; 12.4.1961, पृ. 5031 और 7.8.1962, पृ. 236 ।

यदि उपाध्यक्ष किसी संसदीय समिति का सदस्य हो तो उसे उस समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है।[104] सामान्यत: उपाध्यक्ष को कई संसदीय समितियों के लिए नामनिर्देशित किया जाता है।

संसद के सदनों की किसी संयुक्त बैठक से अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उस बैठक की अध्यक्षता करता है और अध्यक्ष की शक्तियों का प्रयोग करता है, और यह बिल्कुल वैसे ही होता है जैसे कि वह सभा की कार्यवाहियों की अध्यक्षता के समय करता है।[105]

अध्यक्ष से भिन्न उपाध्यक्ष सभा में बोल सकता है, उसकी चर्चाओं में भाग ले सकता है और सभा के सामने किसी भी प्रश्न पर सदस्य की तरह वोट दे सकता है, परन्तु ये काम वह तभी कर सकता है जबकि अध्यक्ष सभा की अध्यक्षता कर रहा हो। जब उपाध्यक्ष सभा की अध्यक्षता कर रहा हो, उस समय वह तभी वोट दे सकता है जब किसी विषय के पक्ष में तथा विपक्ष में बराबर-बराबर वोट आएं।

उपाध्यक्ष को अपने दल के राजनीतिक कार्यों में भाग लेने का अधिकार है हालांकि व्यवहार में, वह यथासंभव सक्रिय भागीदारी और विवादास्पद विषयों से दूर रहता है, जिससे सभा में उसकी निष्पक्षता की स्थिति बनी रहे।[106]

लोक सभा में यह परिपाटी स्थापित की गयी है कि उपाध्यक्ष विधेयक, संकल्प आदि प्रायोजित नहीं करता और न ही प्रश्न रखता है।

1953 में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या उपाध्यक्ष "चर्चाओं में भाग लेने, सरकार पर आक्षेप या उसकी आलोचना करने और सभा में मत विभाजनों में भाग लेने के संबंध में सामान्य सदस्यों के अधिकारों का प्रयोग कर सकता है या नहीं" और इस प्रश्न पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए गए। सम्मेलन के सभापति (अध्यक्ष मावलंकर) ने इस प्रश्न पर वाद-विवाद का समापन करते हुए टिप्पणी की:

> उपाध्यक्ष संबंधी प्रश्न ऐसा प्रश्न है जिस पर प्रत्येक उपाध्यक्ष को विचार करना है और निर्णय लेना है। नि:संदेह वह सदस्य है। परन्तु मैं समझता हूं कि उसे यह भी याद रखना है कि उसे सभा की अध्यक्षता करनी है और इसलिए, उसका यह उत्तरदायित्व है कि वाद-विवाद में इस ढंग से आचरण करे कि दलों के सदस्य उसे किसी दल से सम्बद्ध न समझें और यह बंधन केवल उसके द्वारा सभा से बाहर राजनीति में भाग लेने पर ही लागू नहीं होता बल्कि उस भाषा पर भी लागू होता है जिसका प्रयोग वह अपने विचार व्यक्त करने के लिए करता है। यह ऐसा प्रश्न है जिस पर उसे अपने विवेक का प्रयोग करना है।

---

104. नियम 258(1), परन्तुक ।

105. संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम, नियम 5 । अध्यक्ष (जी.एम.सी. बालयोगी) के निधन के कारण उपाध्यक्ष (पी.एम. सईद) ने 26 मई, 2002 को आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 पर सभा की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता की।

106. *देखिए,* शकधर, ऑफिसर्स ऑफ पार्लियामेंट, उद्धृत कृति पृ. 37 ।

उपाध्यक्ष, सभा का पूर्णकालिक अधिकारी है। वह कोई व्यवसाय, व्यापार या निजी प्रैक्टिस नहीं करता।

अध्यक्ष के समान उपाध्यक्ष का वेतन भी भारत की संचित निधि पर भारित व्यय है और वह सभा के मतदान के अध्यधीन नहीं है।[107]

राज्य सभा के उपसभापति, संघ के राज्य मंत्रियों और योजना आयोग के सदस्यों के साथ उपाध्यक्ष को अग्रताक्रम में दसवां स्थान प्राप्त है।[108]

3. सभापति तालिका

सभा के प्रारम्भ में या समय-समय पर, यथास्थिति अनुसार, अध्यक्ष, सभा के सदस्यों में से अधिक से अधिक दस सदस्यों[109] को सभापति तालिका के लिए नामनिर्देशित करता है।[110] अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में, अध्यक्ष या उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष के अनुरोध पर, तालिका में से कोई एक सभा में पीठासीन हो सकता है।[111] ऐसे अन्य व्यक्तियों की सदा आवश्यकता रहती है जो यदा-कदा अध्यक्षता कर सकें क्योंकि हो सकता है अध्यक्ष या उपाध्यक्ष आपस में प्रतिदिन बैठक की पूरी अवधि के दौरान अध्यक्षता का सम्पूर्ण भार वहन न कर पायें। उन्हें सभा के बाहर अन्य कार्य करने के लिए कुछ राहत और समय की आवश्यकता पड़ सकती है।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की दिन की व्यस्तताओं को ध्यान में रखते हुए और सभापति तालिका के सदस्यों की भी सुविधा का पता लगा कर प्रतिदिन एक रोस्टर बनाया जाता है जिसमें आबंटित समय के अनुसार अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सभापति तालिका के सदस्यों को अध्यक्षता करनी होती है। सभा के समक्ष कार्य के स्वरूप और गतिविधियों के अनुसार रोस्टर में अल्प सूचना पर उपयुक्त परिवर्तन किए जा सकते हैं।

सदस्यों को सभापति तालिका के लिए नामनिर्देशित करते समय अध्यक्ष लोक सभा अथवा राज्य सभा में सभापति तालिका के सदस्य के रूप में में या राज्य विधानमंडल में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति या उप सभापति के रूप में उसके पूर्व अनुभव को ध्यान में रखता है सभा में विभिन्न दलों और महिला सदस्यों को भी ध्यान में रखता है। अध्यक्ष एक परिपाटी के रूप में सभापति तालिका में कुछ महिला सदस्यों को नामनिर्देशित करते रहे हैं और विपक्षी

107. अनुच्छेद 112(3) (ख); संसद के अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते संबंधी विधेयक पर चर्चा के लिए *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 27.4.1953, का. 5169-211; 28.4.1953, का. 5233-320, विशेषतया श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का भाषण, का. 5297-304 ।

108. राष्ट्रपति सचिवालय अधिसूचना सं. 33 प्रेज. 79, दिनांक 26.7.1979 ।

109. अध्यक्ष ने सभा में घोषणा की थी कि उन्होंने सभापति तालिका में छह सदस्यों को नामनिर्दिष्ट किया है। समाचार-भाग 1, 18.1.1985 ।

110. समाचार-भाग 2, 4.8.1993, पैरा 2298 ।

111. नियम 9(1) ।

ग्रुपों के कुछ सदस्यों का इस तालिका के सदस्यों के रूप में चयन करते रहे हैं। यह चयन पूर्णरूपेण अध्यक्ष के हाथ में है, परन्तु वह अंतिम चुनाव करने से पहले लोक सभा में राजनीतिक ग्रुपों के नेताओं से परामर्श कर सकता है। तालिका में हर समय दस सदस्यों का होना आवश्यक नहीं है। दस से कम सदस्यों वाली सभापति तालिका भी बनाई जा सकती है और शेष सदस्यों को बाद में नामनिर्देशित किया जा सकता है।

सभापति तालिका का कोई सदस्य, जब सभा की बैठक में पीठासीन हो तो उसकी वही शक्तियां होती हैं जो कि अध्यक्ष की होती हैं जब वह पीठासीन होता है।[112] सभापति के विनिर्णय की आलोचना नहीं की जा सकती है और न ही उस पर कोई चर्चा या अपील हो सकती है। प्राधिकारपूर्ण विनिर्णय के लिए सभापति बहुधा प्रमुख विषयों को अध्यक्ष द्वारा विनिश्चय के लिए सुरक्षित रखते हैं। पीठासीन सभापति के आचरण का उल्लेख सभा की अवमानना समझी जाती है और इसलिए सभा के पीठासीन अधिकारी के रूप में उनका पूरा सम्मान किया जाता है।

सभापति को सभा की सभी चर्चाओं में पूर्णरूपेण भाग लेने और सभा के समक्ष विवादास्पद विषयों सहित सभी विषयों में सक्रिय रूप से भाग लेने की स्वतंत्रता है। वह अपने दल की बैठकों में भाग लेता है और कई बार वह दल का सक्रिय सदस्य होता है।

सभापति, सभापति की नई तालिका के नामनिर्देशित किए जाने तक अपना पद धारण करता है।[113] जब तक कि वह तालिका से पहले ही पद न त्याग दे अथवा मंत्री नियुक्त न किया जाए[114] अथवा उपाध्यक्ष न चुना जाए। सामान्यत: वह एक वर्ष तक अपने पद पर बना रहता है, लेकिन एक ही व्यक्ति को समय-समय पर पुन: नामनिर्देशित किया जा सकता है। यदि सभापति तालिका से पद त्याग करता है तो यह सूचना लोक सभा समाचार में प्रकाशित होती है और सभा में इस संबंध में कोई घोषणा नहीं की जाती है। त्यागपत्र में यदि किसी कारण का उल्लेख भी रहता है, तो उसे प्रकाशित नहीं किया जाता है।[115]

---

112. नियम 10 ।
113. नियम 9(2) ।
114. अध्यक्ष ने 10 मार्च, 1976, को घोषणा की थी कि श्री एच.के.एल. भगत जिन्हें मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया था, के स्थान पर सभापति तालिका में श्री पी. पार्थसारथी को नामनिर्देशित किया गया है। 3 मार्च, 1983, को अध्यक्ष ने श्री वी.एन. गाडगिल और श्री एस. एम. कृष्णा जिन्हें मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया था, के स्थान पर सभापति तालिका में श्री एफ.एच. मोहसिन और श्री आर.एस. स्पैरो को नामनिर्देशित किया था। उसी दिन सभा में अध्यक्ष द्वारा इस आशय की घोषणा की गई थी। अध्यक्ष ने 3 मार्च, 2011 को सभा में घोषणा की थी कि श्री बनी प्रसाद वर्मा जिन्हें मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया था, के स्थान पर सभापति तालिका में श्री सतपाल महाराज को नामनिर्देशित किया था।
115. *देखिए* समाचार-भाग 2, 15.9.1958, पैरा 1791 और समाचार-भाग 2, 12.6.1967, पैरा 195।

4. संसदीय समितियों के सभापति

संसद सदस्य वेतन और भत्ते संबंधी संयुक्त समिति को छोड़कर, अध्यक्ष के कार्याधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली सभी संसदीय समितियों के सभापति[116] की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा उन-उन समितियों[117] के सदस्यों में से की जाती है। संसद सदस्य वेतन और भत्ते संबंधी संयुक्त समिति के मामले में सभापति का निर्वाचन समिति द्वारा अपनी प्रथम बैठक में किया जाता है जबकि पीठासीन अधिकारी द्वारा दोनों सदनों के सदस्यों को समिति का सदस्य बना दिया गया हो। किसी सदस्य को समिति का सभापति नियुक्त करते समय अध्यक्ष उसकी वरिष्ठता, सभापति तालिका के सदस्य या किसी अन्य संसदीय समिति के सभापति के रूप में उसके अनुभव और समिति के काम के विषय तथा स्वरूप को ध्यान में रखता है। यदि अध्यक्ष स्वयं किसी समिति का सदस्य हो, तो वही अनिवार्य रूप से उस समिति[118] का सभापति होता है। जिस समिति का सदस्य अध्यक्ष न हो बल्कि उपाध्यक्ष हो, उसका सभापति उपाध्यक्ष होता है।[119] विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में यदि सभापति तालिका का कोई सदस्य या किसी स्थायी संसदीय समिति का सभापति या संबंधित विधेयक संबंधी किसी प्रवर या संयुक्त समिति का सभापति उस समिति का सदस्य हो, तो आमतौर पर उसे ही समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है। यदि प्रधान मंत्री किसी समिति का सदस्य हो, तो उसे ही उस समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है, चाहे सभापति तालिका का कोई सदस्य भी समिति में सदस्य क्यों न हो।[120] जो मंत्री सदस्य राज्य सभा के सदस्य हों उन्हें भी विधेयकों संबंधी किसी प्रवर या संयुक्त समिति का (जो लोक सभा ने बनाई हो) सभापति नियुक्त किया जा सकता है।[121] यह जरूरी नहीं है कि किसी समिति का सभापति सत्तारूढ़ दल का ही सदस्य हो।[122] यदि किसी समिति का सभापति त्याग पत्र दे दे या किसी कारणवश

---

116. अध्याय 30- 'संसदीय समितियां' में संबंधित शीर्षक के अंतर्गत विभिन्न समितियों के सभापतियों के विस्तृत कार्यों का उल्लेख किया गया है।
117. नियम 258(1) ।
118. कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति और सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के मामले में क्रमशः नियम 287, 330 और सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के नियम 1 के अंतर्गत अध्यक्ष ही उनका पदेन सभापति होता है।
119. नियम 258(1) परन्तुक।
120. प्रधान मंत्री को संविधान (पहला संशोधन) विधेयक, 1951, संबंधी संयुक्त समिति और संविधान (पांचवां संशोधन) विधेयक, 1954 संबंधी संयुक्त समिति का सभापति नियुक्त किया गया।
121. उदाहरण के लिए (i) रक्षा मंत्री, जो राज्य सभा के सदस्य थे, को आरक्षित तथा सहायक वायु सेना विधेयक, 1952 संबंधी संयुक्त समिति का सभापति नियुक्त किया गया; और (ii) श्री सैयद सिब्ते रजी, जो राज्य सभा के सदस्य थे, को प्रतिलिप्यधिकार (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1992 संबंधी संयुक्त समिति का सभापति नियुक्त किया गया।
122. सुस्थापित प्रथा के अनुसार, लोक लेखा समिति के अध्यक्ष का निर्वाचन किसी विपक्षी दल/समिति-समूह के सदस्यों में से किया जाता है।

कार्य करने में असमर्थ हो तो अध्यक्ष समिति के किसी और सदस्य को उसके स्थान पर सभापति नियुक्त कर देता है।[123]

प्रथा के ही अनुसार लोक सभा उपाध्यक्ष को (i) गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक और संकल्प संबंधी समिति; और (ii) ग्रंथालय समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित किया जाता है और नियम 258 के अंतर्गत वह इन दोनों समितियों का सभापति नियुक्त होता है।

इसके अलावा, किसी विधेयक संबंधी कोई प्रवर समिति/संयुक्त समिति अपना सभापति किसी ऐसे सदस्य को नियुक्त कर सकती है जो सत्तारूढ़ दल का न हो। उदाहरण के लिए (एक) भारतीय स्टेट बैंक (अनुषंगी बैंक) विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समिति; और (दो) वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति।

123. नियम 258(2) में निम्नलिखित उदाहरण हैं जब किसी समिति का सभापति अपना कर्त्तव्य निर्वहन करने में असमर्थ पाया गया और अध्यक्ष ने नियम 258(2) के अंतर्गत सभापति के रूप में कार्य करने के लिए समिति के अन्य सदस्य को नियुक्त किया:

(i) सितम्बर-दिसम्बर, 1961 की अवधि के दौरान लोक लेखा समिति के सभापति (श्री सी. पट्टाभाई रमन) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री आर. एल. चतुर्वेदी को लोक लेखा समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(ii) सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के सभापति (पं. डी.एन. तिवारी) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी को 25 सितम्बर, 1967 को सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(iii) प्राक्कलन समिति के सभापति (श्री पी. वेंकटसुब्बैया) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री शांतिलाल शाह को 28 अक्तूबर, 1968 को प्राक्कलन समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(iv) प्राक्कलन समिति के सभापति (श्री के.एन. तिवारी) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री लीलाधर कोटोकी को 7 सितम्बर, 1972 को प्राक्कलन समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(v) सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति की सभापति (श्रीमती सुभद्रा जोशी) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री अमृत नाहटा को 23 अप्रैल, 1973 को सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(vi) सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति की सभापति (श्रीमती सुभद्रा जोशी) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री नवल किशोर शर्मा को 18 मई, 1973 को सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(vii) प्राक्कलन समिति के सभापति (श्री आर.के. सिन्हा) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री तुलसीदास दासप्पा को 31 अगस्त, 1975 को प्राक्कलन समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

अध्यक्ष किसी सदस्य को एक ही साथ समिति का सदस्य और सभापति भी नियुक्त कर सकता है।[124] समिति की किसी बैठक से सभापति की अनुपस्थिति में समिति किसी अन्य सदस्य को उस बैठक में सभापति का कार्य करने के लिए चुनती है।[125]

कर्त्तव्य और शक्तियां

समिति की कार्यवाही के संबंध में सभापति की शक्तियां और उसके कर्त्तव्य लगभग वैसे ही हैं जैसे कि सभा की कार्यवाही और विचार-विमर्श के संबंध में अध्यक्ष के होते हैं। समिति कोई उप-समिति बनाने का फैसला करे तो वही उसके सभापति की नियुक्ति करता है।[126] वह समिति की बैठकों की तारीख तथा समय नियत करता है।[127] यदि समिति की बैठक के लिए नियत समय पर या ऐसी किसी बैठक के दौरान किसी भी समय गणपूर्ति न हो तो सभापति या तो बैठक की गणपूर्ति होने तक उसे निलंबित कर सकता है या बैठक को किसी आगामी दिन तक के लिए स्थगित कर सकता है।[128] समिति की बैठकों में प्रक्रिया के संबंध

(viii) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सभापति (श्री राम धन) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री सूरजभान को 23 सितम्बर, 1977 को अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(ix) याचिका समिति के सभापति (श्री एच.वी. कामत) की विदेश यात्रा के कारण उनकी अनुपस्थिति के दौरान श्री उग्रसेन को 23 सितम्बर, 1977 को याचिका समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(x) संसद भवन परिसर में खान-पान संबंधी संयुक्त समिति के सभापति (श्री राम नाईक) की बीमारी के दौरान श्रीमती सुषमा स्वराज को 9 मई, 1994 को संसद भवन परिसर में खान-पान संबंधी संयुक्त समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(xi) खाद्य, नागरिक आपूर्ति और सार्वजनिक वितरण संबंधी समिति के सभापति (श्री राम कापसे) द्वारा कर्त्तव्यों के निर्वहन में असमर्थता के कारण श्री श्याम बिहारी मिश्रा को 23 जून, 1994 को इस समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(xii) रक्षा संबंधी समिति के सभापति (श्री इन्द्रजीत गुप्त) द्वारा त्यागपत्र दिये जाने के बाद श्री शरद दिघे को 8 फरवरी, 1996 को इस समिति का सभापति नियुक्त किया गया।

(xiii) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सभापति (श्री गोविन्द चन्द्र नास्कर) की बीमारी के दौरान श्री बीरेन सिंह इंगती को 24 अगस्त 2011 को इस समिति के सभापति के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया।

124. नियम 258(1) ।
125. नियम 258(3) ।
126. निदेश 56 (2) ।
127. नियम 264 ।
128. नियम 259(2) ।

में कोई प्रश्न उठे तो उसका निर्णय सभापति ही करता है। यदि प्रक्रिया के प्रश्न पर या अन्य किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो तो, सभापति यदि वह ठीक समझे, इस प्रश्न को अध्यक्ष को निर्दिष्ट कर सकता है और अध्यक्ष का विनिश्चय अंतिम होता है।[129] अध्यक्ष स्वयं भी, समय-समय पर समिति के सभापति को ऐसे निदेश दे सकता है जो वह समिति की प्रक्रिया या उसके काम को विनियमित करने के लिए आवश्यक समझे।[130] समिति के विचार-विमर्श में किसी विषय पर मत समता की अवस्था में सभापति या सभापति का काम करने वाले सदस्य का दूसरा या निर्णायक मत होता है।[131] समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश का अनुमोदन सभापति करता है और अध्यक्ष या सभा को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने से पहले, समिति की ओर से, वह उस पर हस्ताक्षर करता है।[132] प्रतिवेदन का अध्यक्ष या सभा को प्रस्तुत किए जाने से पहले उसकी प्रत्यक्ष गलतियों या तथ्यों संबंधी विषयों को ठीक करने की शक्ति भी उसे प्राप्त है।[133] समिति और अध्यक्ष या समिति तथा सभा के बीच सभी संवाद समिति के सभापति द्वारा भेजे जाते हैं। इसका मतलब यह है कि वह समिति का प्रवक्ता है।

5. मंत्रिपरिषद

राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए संविधान में मंत्रिपरिषद का उपबन्ध किया गया है जिसका प्रधान, प्रधान मंत्री है और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करता है।[134] प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और अन्य मंत्रियों की

---

129. नियम 283(2), *देखिए* सदस्य के आचरण संबंधी समिति का प्रतिवेदन (मुदगल मामला, 1951)।
130. नियम 283(1), *देखिए* निदेश 48 से 108 ।
131. नियम 262 ।

    अक्तूबर, 1957 में जयपुर में हुए विधायी निकायों के सचिवों के सम्मेलन में यह प्रश्न उठाया गया कि जब सभा में पीठासीन अधिकारियों को पहली बार मत देने के अधिकार से वंचित रखा गया तो क्या समिति के सभापति को पहली बार मत देने का अधिकार देना संविधान के अनुच्छेद 100(1) और 189(1) के अनुकूल है। इस संबंध में आम सहमति थी कि समिति के सभापति को इस प्रकार सामान्य या पहली बार मत देने के अधिकार का उपबंध संविधान के विपरीत नहीं है; क्योंकि जब भी अध्यक्ष सभा में सदस्य के नाते उसकी चर्चा में भाग नहीं लेता, समिति का सभापति न केवल समिति के विचार-विमर्श का मार्गदर्शन करता है बल्कि समिति के निष्कर्षों के प्रतिपादन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेता है और वही निष्कर्ष उस समिति के प्रतिवेदन में शामिल किए जाते हैं। जब अध्यक्ष के विपरीत, सभापति को चर्चा में भाग लेने की मनाही नहीं है तो उससे उसके सामान्य मत का अधिकार छीनना नहीं चाहिए। निर्णायक मत का प्रयोग तभी किया जाता है जब किसी विषय पर पक्ष तथा विपक्ष में बराबर मत आयें।
132. नियम 277(3) ।
133. निदेश 71 ख ।
134. अनुच्छेद 74(1) यथासंशोधित। साथ ही *देखिए* अध्याय 3 — 'राष्ट्रपति का संसद से संबंध'।

नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मंत्री की सलाह पर करता है।[135] लोक सभा में बहुमत वाले दल के नेता या ऐसे व्यक्ति को, जो बहुमत प्राप्त कर सके, राष्ट्रपति प्रधान मंत्री बनने का आमंत्रण देता है और वह राष्ट्रपति को अन्य मंत्रियों की नियुक्ति के संबंध में सलाह देता है।[136]

प्रधान मंत्री के निधन होने या त्यागपत्र देने की स्थिति में सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद का विघटन हो जाता है। तथापि, त्यागपत्र के मामले में राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों को वैकल्पिक व्यवस्था होने तक अपने पद पर बने रहने के लिए कह सकता है। निधन के मामले में, जब तक लोक सभा में बहुमत प्राप्त दल अपना नया नेता नहीं चुन लेता है तब तक राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है जो लोक सभा में सर्वाधिक समर्थन जुटा सकने की

---

135. अनुच्छेद 75(1) ।

136. पहले पांच आम चुनावों और फिर सातवें, आठवें और दसवें आम चुनावों के दौरान लोक सभा में बहुमत प्राप्त करने वाले कांग्रेस दल के नेता को प्रधान मंत्री और उसकी सलाह पर अन्य मंत्रियों को नियुक्त किया गया। मार्च, 1977 में हुए छठे आम चुनाव में जनता पार्टी ने लोक सभा में बहुमत प्राप्त किया और इसके नेता को प्रधान मंत्री व उसकी सलाह पर अन्य मंत्रियों को नियुक्त किया गया।

नौवें आम चुनावों में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला और राष्ट्रपति ने सबसे बड़े दल (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रण दिया जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् राष्ट्रपति ने दूसरे सबसे बड़े दल (जनता दल) के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया और अन्य दलों के बाहरी समर्थन से केन्द्र में एक अल्पमत सरकार बनी। ग्यारहवें आम चुनावों में भी किसी दल या गठबंधन को स्पष्ट जनादेश नहीं मिला। राष्ट्रपति ने सबसे बड़े दल (भारतीय जनता पार्टी) के नेता को निर्धारित अवधि के भीतर सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने की शर्त पर सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। बाद में इस सरकार ने त्यागपत्र दे दिया और बाहरी समर्थन से एक नई (संयुक्त मोर्चा) सरकार ने शपथ ली। बाद में बाहरी समर्थन वापस लिए जाने के परिणामस्वरूप सरकार चल नहीं सकी और एक बार फिर बाहरी समर्थन से एक अन्य (संयुक्त मोर्चा) सरकार का गठन हुआ। बारहवें आम चुनाव में भी किसी राजनीतिक दल को सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त करने का जनादेश नहीं मिला। विभिन्न दलों के नेताओं के साथ व्यापक विचार-विमर्श के उपरांत राष्ट्रपति ने सरकार बनाने के लिए सबसे बड़े दल (भारतीय जनता पार्टी) को इस शर्त पर आमंत्रित किया कि वह सभा में अपना बहुमत निर्धारित अवधि अर्थात् सरकार बनाने के दस दिनों के भीतर सिद्ध कर दे।

तेरहवीं, चौदहवीं और पंद्रहवीं लोक सभा के चुनाव क्रमशः 1999, 2004 और 2009 में हुए जिनमें किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। राष्ट्रपति ने तब सबसे बड़े गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जिसके परिणामस्वरूप क्रमशः तेहरवीं के लिए राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (एन.डी.ए.) के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी और चौहदवीं तथा पंद्रहवी के लिए संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए) के नेता डा. मनमोहन सिंह ने सरकार बनाई।

स्थिति में हो। वह निवर्तमान मंत्रिपरिषद के वरिष्ठतम सदस्य को अंतरिम उपाय के तौर पर प्रधान मंत्री नियुक्त कर सकता है।[137]

'मंत्रिपरिषद' में भारत सरकार के सभी श्रेणियों के मंत्री होते हैं चाहे वे 'मंत्रिमंडल के सदस्य' हों या 'राज्य मंत्री' या 'उप मंत्री'।[138] संविधान में इस बात का कोई उपबंध नहीं किया गया है कि मंत्रिपरिषद में कम से कम कितने और अधिकाधिक कितने-कितने मंत्री होने चाहिएं। मंत्रिपरिषद में कितने मंत्री होने चाहिएं इसका निर्णय प्रधान मंत्री पर छोड़ दिया जाता है। समय-समय पर आवश्यकताओं के अनुसार प्रधान मंत्री मंत्रियों की संख्या निर्धारित करता है।[139]

---

137. प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के निधन (27 मई, 1964) और प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री के निधन (11 जनवरी, 1966) पर राष्ट्रपति ने निवर्तमान मंत्रिपरिषद के सबसे वरिष्ठ सदस्य को प्रधान मंत्री के रूप में कार्यभार संभालने के लिए नियुक्त किया। बाकी मंत्री राष्ट्रपति द्वारा उसकी सलाह पर नियुक्त किए गए। तथापि, इन दोनों ही मामलों में, यह व्यवस्था काम चलाऊ या अंतरिम प्रकार की थी और जब समय आया तो प्रत्येक बार बहुमत प्राप्त दल ने भिन्न-भिन्न व्यक्ति को अपना नेता चुना और बाद में राष्ट्रपति ने प्रधान मंत्री बनने के लिए उसे ही आमंत्रित किया। प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी के निधन (31 अक्तूबर, 1984) पर राष्ट्रपति ने राजीव गांधी (जोकि उस समय मंत्रिपरिषद के सदस्य नहीं थे) को प्रधान मंत्री के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया। शेष मंत्री उनकी सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए गए। बाद में श्री राजीव गांधी को कांग्रेस (आई.) दल का नेता चुना गया जिसे उसे सभा में बहुमत प्राप्त था।

138. मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952 की धारा 6.2 के अनुसार 'मंत्री' की परिभाषा 'मंत्रिपरिषद के सदस्य' के रूप में की गई है जिसे चाहे जिस नाम से पुकारा जाए और इसमें 'उप मंत्री' भी शामिल है। संसदीय सचिव मंत्रिपरिषद में शामिल नहीं होते परन्तु यदि वह लोक सभा का सदस्य हो तो वह मंत्री के सारे कृत्यों का निर्वहन कर सकता है (नियम 2)। अत: जो संसदीय सचिव लोक सभा का सदस्य न हो वह सभा की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता।

    1950 में संविधान के आरंभ होने से पहले मंत्रिमंडल के सभी सदस्यों का एक सा दर्जा होता था परन्तु 1952 में सामान्य निर्वाचन के बाद मंत्रियों की 3 श्रेणियां बनाई गईं। सबसे ऊपर थे 'मंत्रिमंडल के सदस्य' बीच में 'मंत्रिमंडल के दर्जे के मंत्री' और सबसे नीचे 'उप मंत्री' को रखा गया।

139. 1952 के सामान्य निर्वाचन के बाद गठित मंत्रिपरिषद में 15 'मंत्रिमंडल के सदस्य' थे, 4 'मंत्रिमंडल के दर्जे के मंत्री' और 2 'उप मंत्री'। दूसरे सामान्य निर्वाचन के बाद 1957 में जो मंत्रिपरिषद बनाई गई, उसमें 13 'मंत्री', 14 'राज्य मंत्री' और 12 'उप मंत्री' थे। 1962 में तीसरे सामान्य निर्वाचन के बाद मंत्रिपरिषद में 17 'मंत्री', 10 'राज्य मंत्री' और 11 'उप मंत्री' थे। 1967 में चौथे सामान्य निर्वाचन के बाद जो मंत्रिपरिषद बनाई गई, इसमें 19 'मंत्रिमंडल के सदस्य', 17 'राज्य मंत्री' और 15 'उप मंत्री' थे। 1971 के चुनावों के बाद गठित मंत्रिपरिषद में 14 'मंत्रिमंडल के सदस्य', 22 'राज्य मंत्री' और 17 'उप मंत्री' थे। 1977 के

'मंत्रिपरिषद' शब्द का अर्थ 'मंत्रिमंडल' शब्द से भिन्न है। संविधान में मंत्रिमंडल शब्द कहीं नहीं है। मंत्रिमंडल, मंत्रिपरिषद की अंतरंग समिति है जो सरकार की नीति बनाती है और जिसकी बैठक, जितनी बार आवश्यक हो, की जाती है, लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि किसी सरकारी काम के लिए मंत्रिपरिषद की बैठक हो। मंत्रिपरिषद का प्रमुख होने के कारण प्रधान मंत्री फैसला करता है कि कौन-कौन से मंत्री मंत्रिमंडल के सदस्य होंगे। केवल मंत्रिमंडल के सदस्य मंत्रियों को ही मंत्रिमंडल की बैठकों में सम्मिलित होने का अधिकार है। राज्य मंत्रियों को यह अधिकार नहीं है परन्तु वे विशेष निमंत्रण मिलने पर मंत्रिमंडल की बैठक में जा सकते हैं।

मंत्रियों के संबलम और भत्ते 12 अगस्त, 1952 से लागू मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952 के द्वारा तय किए जाते हैं।

सभी मंत्री राष्ट्रपति, के प्रसाद पर्यन्त अपने पद धारण करते हैं।[140]

राज्यों में, राज्यपाल, मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है और वह मुख्यमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है।[141] विधान सभा की सदस्यता न रखने वाले व्यक्ति को मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त करने के संबंध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की:

निर्वाचन के बाद जिस मंत्रिपरिषद का गठन हुआ उसमें 20 'मंत्रिमंडल के सदस्य' थे। 1980 के सामान्य निर्वाचन के बाद गठित मंत्रिपरिषद में 15 'मंत्रिमंडल के सदस्य' और 11 'राज्य मंत्री' थे। 1984 के सामान्य निर्वाचन के बाद गठित मंत्रिपरिषद में 15 'मंत्रिमंडल के सदस्य' और 26 'राज्य मंत्री' थे। 1989 के सामान्य निर्वाचन के बाद गठित मंत्रिपरिषद में 19 'मंत्रिमंडल के सदस्य' 29 'राज्य मंत्री' और 5 'उप मंत्री' थे। 1991 के सामान्य निर्वाचन के बाद बनाई गई मंत्रिपरिषद में 16 'मंत्रिमंडल के सदस्य' 35 'राज्य मंत्री' तथा 7 'उप मंत्री' थे 1996 के सामान्य निर्वाचन के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधान मंत्रित्व में गठित मंत्रिपरिषद में केवल 12 'मंत्रिमंडल के सदस्य' थे। श्री वाजपेयी के त्यागपत्र के बाद, 1 जून, 1996 को गठित मंत्रिपरिषद में 12 'मंत्रिमंडल के सदस्य' और 12 'राज्य मंत्री' थे। 1998 के सामान्य निर्वाचन के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधान मंत्रित्व में गठित मंत्रिपरिषद में 20 'मंत्रिमंडल के सदस्य' तथा 21 'राज्य मंत्री' (स्वतंत्र प्रभार वाले 4 राज्य मंत्रियों सहित) थे। 1999 के सामान्य निर्वाचन के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधान मंत्रित्व में गठित 'मंत्रिपरिषद' में 25 'मंत्रिमंडल के सदस्य' और 44 'राज्य मंत्री' (स्वतंत्र प्रभार वाले 7 राज्यमंत्रियों सहित) थे। 2004 के सामान्य निर्वाचन के पश्चात् डा. मनमोहन सिंह के प्रधान मंत्रित्व में गठित मंत्रिपरिषद में 28 'मंत्रिमंडल के सदस्य' और 39 'राज्य मंत्री' (स्वतंत्र प्रभार वाले 10 राज्य मंत्रियों सहित) थे। 2009 के सामान्य निर्वाचन के पश्चात् डा. मनमोहन सिंह के प्रधान मंत्रित्व में गठित मंत्रिपरिषद में 33 'मंत्रिमंडल के सदस्य' 38 राज्यमंत्री और 7 'राज्यमंत्री' (स्वतंत्र प्रभार) थे।

140. अनुच्छेद 75(2)।

141. अनुच्छेद 164(1)।

"विधान सभा की सदस्यता न रखने वाले किन्तु उसका समर्थन हासिल करने वाले व्यक्ति को मुख्य मंत्री नियुक्त किए जाने पर कोई भी संवैधानिक निषेध नहीं है बशर्ते वह व्यक्ति छ: माह के भीतर सभा के लिए निर्वाचित हो जाना चाहिए। यह संसदीय सरकार के उस मूल सिद्धांत का उल्लंघन भी नहीं करता है कि मुख्यमंत्री या प्रधान मंत्री में विधायिका का विश्वास होना ही चाहिए। ऐसी कामचलाऊ नियुक्ति राजनीतिक रूप से वांछनीय अथवा उचित है या नहीं यह सोचना न्यायालय का काम नहीं है।[142]"

राज्य विधानमंडल की सदस्यता न रखने वाले मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

यदि किसी राज्य की विधान सभा किसी ऐसे मुख्यमंत्री और मंत्रियों की नियुक्ति की पुष्टि करती है जो कि राज्य विधानमंडल के सदस्य नहीं हैं तो ऐसी स्थिति में संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो उस नियुक्ति को अवैध करार दे सकता है।[143] शर्त सिर्फ यह है कि उन्हें छह माह के भीतर विधानमंडल के लिए निर्वाचित हो जाना चाहिए।

इस मामले में, 18 अक्तूबर, 1970 को श्री त्रिभुवन नारायण सिंह को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किए जाने को चुनौती दी गई थी। श्री सिंह अपनी नियुक्ति के समय उत्तर प्रदेश राज्य विधान सभा या विधान परिषद में से किसी के भी सदस्य नहीं थे। यह तर्क दिया गया कि अनुच्छेद 164 का खंड (4) केवल उस समय लागू होता है जब कोई मंत्री राज्य के विधानमंडल की अपनी सदस्यता गंवा देता है और अनुच्छेद 164 के खंड (4) के प्रावधान के पीछे उसे पुन: चुनकर आने के लिए छ: महीने का समय देने का विचार है। उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया और याचिका को निरस्त कर दिया।

मंत्री राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त अपने पद धारण करते हैं[144] और मंत्रिपरिषद राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।[145]

पश्चिम बंगाल में राज्यपाल द्वारा संयुक्त मोर्चा सरकार को बर्खास्त करने और 21 नवम्बर, 1967 को डा. पी.सी. घोष को मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त करने की कार्यवाही को कलकत्ता उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। राज्यपाल द्वारा अपने विवेकानुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति को सही ठहराते हुए और इस तर्क को अस्वीकृत करते हुए कि राज्यपाल नहीं, बल्कि केवल विधान सभा ही मंत्रिपरिषद को हटा सकती है, न्यायालय ने टिप्पणी की:

अनुच्छेद 164(1) में यह प्रावधान है कि मंत्री राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे.....। मंत्रियों के पद पर बने रहने के दौरान राज्यपाल का प्रसाद-प्रत्याहार का अधिकार आत्यांतिक और अनिर्बंधित है....

---

142. *हरशरण वर्मा बनाम चन्द्रभान गुप्ता,* ए.आई.आर. 1962, इलाहाबाद 301 साथ ही *देखिए चन्द्रकली बनाम सीताराम,* ए.आई.आर. 1971, इलाहाबाद 236 ।

143. *हरशरण वर्मा बनाम त्रिभुवन नारायण सिंह,* ए.आई.आर. 1971, एस.सी. 1331 ।

144. अनुच्छेद 164(1)।

145. अनुच्छेद 164(2)।

> अनुच्छेद 164 के खंड (2) का यह प्रावधान कि मंत्री राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी हैं, राज्यपाल द्वारा मंत्रियों के पद पर बने रहने के प्रसाद-प्रत्याहार के अधिकार को किसी प्रकार बाधित या निर्बंधित नहीं करता। अनुच्छेद 164 के खंड (2) में उल्लिखित सामूहिक उत्तरदायित्व का तात्पर्य मंत्रिपरिषद का राज्य की विधान सभा के प्रति जवाबदेह होना है। इसका अभिप्राय यह है कि विधान सभा सदस्यों के बहुमत के द्वारा किसी भी मंत्रिपरिषद में अविश्वास व्यक्त किया जा सकता है। लेकिन, विधान सभा की भूमिका यहीं तक सीमित है। संविधान ने राज्य की विधान सभा को मंत्रिपरिषद को हटाने या बर्खास्त करने की शक्ति नहीं दी है। यदि मंत्रिपरिषद राज्य विधान सभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के बाद भी पद त्यागने से इंकार करे तो मंत्रिपरिषद के पद पर बने रहने के दौरान राज्यपाल प्रसाद प्रत्याहार करता है।[146]

पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में पारित संकल्प में सिफारिश की गई थी कि—

कोई मुख्य मंत्री विधान सभा का विश्वास खो चुका है, इस प्रश्न का निर्णय, सदैव, विधान सभा करेगी।[147]

निवर्तमान मुख्य मंत्री की सलाह पर राज्यपाल द्वारा मध्य प्रदेश विधान सभा के सत्रावसान के प्रश्न पर मार्च, 1969 में लोक सभा में हो रही चर्चा में केन्द्रीय गृह मंत्री की टिप्पणी थी:

> यदि सभा का सत्र चल रहा हो और सरकार को मिले समर्थन के बारे में संशय हो, तो इस प्रश्न का निर्णय राज्यपाल नहीं बल्कि विधान सभा ही कर सकती है और उसे ही यह निर्णय करना चाहिए। जब सभा का सत्र नहीं चल रहा हो और विशेषत: उस समय, जब सभा का सत्र चुनावों के बाद बुलाने से पहले आदि; जैसी स्थितियों में राज्यपाल मजबूरन अपने विवेक का प्रयोग करेगा और आवश्यक समर्थन का पता लगाएगा।[148]

उत्तर प्रदेश में बी.के.डी. मुख्य मंत्री के नेतृत्व में गठबंधन सरकार सत्ता में थी जिसका प्रमुख घटक कांग्रेस (आर.) था। दोनों दलों के बीच मतभेद बढ़ने पर, 24 सितम्बर, 1970 को मुख्य मंत्री ने कांग्रेस (आर.) के 13 मंत्रियों और बी.के.डी. के एक उप-मंत्री से तत्काल त्यागपत्र देने को कहा। उनके त्यागपत्र प्राप्त न होने पर मुख्य मंत्री ने राज्यपाल को उन्हें मंत्रिपरिषद से हटाने की सलाह दी।

> राज्यपाल द्वारा परामर्श मांगने पर महान्यायवादी ने, अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि चूंकि राज्यपाल को इस बात की जानकारी थी कि मुख्य मंत्री को विधान सभा का विश्वास प्राप्त नहीं है, तो वह मुख्य मंत्री का त्यागपत्र मांग सकता

146. *महावीर प्रसाद शर्मा बनाम प्रफुल्ल चन्द्र घोष,* ए.आई.आर. 1969, कलकत्ता 198 ।

147. 7 अप्रैल, 1968 को पीठासीन अधिकारियों के आपात सम्मेलन में स्वीकृत संकल्प।

148. *लो.स.वा.वि.*, 12.3.1969, पृ. 162-63 ।

था, और यदि मुख्य मंत्री इस सलाह को नहीं मानता, तो राज्यपाल 6 अक्तूबर को निर्धारित बैठक में विधान सभा के फैसले के पूर्व ही मुख्य मंत्री को पद से हटा सकता था।

राज्यपाल ने 29 सितम्बर, 1970 को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने संबंधी सिफारिश करते हुए अपनी रिपोर्ट में कहा:

> गठबंधन सरकार के मुख्य मंत्री को मंत्रियों को हटाने या मंत्रिपरिषद के पुनर्गठन के मामले में, जिसके कारण सरकार के स्वरूप में ही मौलिक परिवर्तन हो जाता है, एक ही दल की बहुमत सरकार के मुख्य मंत्री के समान नहीं माना जा सकता। सरकार के इस प्रकार के पुनर्गठन के अवसर पर, संविधान की यह भावना है कि पहले मुख्य मंत्री स्वयं त्यागपत्र दे और तब सरकार का पुनर्गठन करे। संविधान की रक्षा के लिए राज्यपाल किसी अन्य प्रकार की कार्यवाही की अनुमति नहीं दे सकता।

मंत्रिपरिषद के कार्य

मंत्रिपरिषद पर राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने की जिम्मेवारी डाली गई है और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करता है।[149] इस संबंध में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की टिप्पणी थी:

> यदि मामलों में निर्णय लेने का अंतिम प्राधिकार मंत्रिपरिषद को देने का इरादा नहीं है तो उसे सिद्धांततः लोक सभा के प्रति जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। अतः मंत्री या मंत्रिपरिषद बाध्यकारी निर्णय लेती है और राष्ट्रपति दिए गए ऐसे परामर्श के अनुसार कार्य करता है।[150]

परन्तु, मंत्रिमंडल ही मंत्रिपरिषद के नाम से कार्य करता है और इसकी सभी शक्तियों का प्रयोग करता है। यही वह मुख्य धुरी है जिसके चारों ओर पूरे देश का प्रशासन चलता है। इसका मुख्य कार्य प्रशासन चलाने के लिए अनुकूल नीति बनाना और उसे अनुमोदन हेतु संसद के समक्ष रखना है। संसद द्वारा यथानुमोदित नीति के कार्यान्वयन के लिए यह उत्तरदायी है।

जब किसी विषय संबंधी नीति के कार्यान्वयन के लिए कई मंत्री शामिल होते हैं तो ऐसे में समस्याओं का उठना स्वाभाविक है। मंत्रिमंडल का यह कार्य है कि वह विभिन्न मंत्रालयों द्वारा उठाए जा रहे विभिन्न कदमों के बीच समन्वय स्थापित करे और उनका मार्गदर्शन करे, जिससे कि विभिन्न मंत्रालयों के भिन्न-भिन्न और कई बार परस्पर विरोधी दावों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके और उनका सफल उपयोग किया जा सके।

मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। यह देखना मंत्रिमंडल का काम है कि संसद में राष्ट्र की यथा अभिव्यक्त इच्छा को व्यवहार में लाया जा सके। इस उद्देश्य के लिए अन्य बातों के साथ-साथ यह आवश्यक विधायी कार्यक्रम तैयार करता है तथा संबंधित मंत्री संसद में विधेयक पुरःस्थापित करते हैं और उन्हें पारित करवाते हैं।

---

149. अनुच्छेद 74(1), साथ ही *देखिए* अध्याय 3—'राष्ट्रपति का संसद से संबंध'।

150. *के. जयराम अय्यर,* ए.आई.आर. 1958 आंध्र प्रदेश 643 के मामले में।

मंत्रिपरिषद और लोक सभा

लोक सभा के लिए आम चुनाव होने के बाद और नयी लोक सभा की पहली बैठक से पहले प्रधान मंत्री और अन्य मंत्री नियुक्त किये जाते हैं और उन्हें उनके पद तथा गोपनीयता[151] की शपथ दिलाई जाती है। प्रधान मंत्री और दूसरे मंत्रियों को उस सदन की जिसके वह सदस्य हैं[152] की सदस्यता की शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना पड़ता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करने होते हैं और ऐसा सदन में अपना नियत स्थान ग्रहण करने से पूर्व करना होता है।[153] यदि लोक सभा के कार्यकाल में मंत्रिपरिषद का पुनर्गठन किया जाता है तो निवर्तमान मंत्रिपरिषद के जो सदस्य नयी मंत्रिपरिषद में शामिल किए जाते हैं, उन्हें नये सिरे से अपने पद तथा गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है।

जब कोई नया मंत्री नियुक्त होता है और अपने पद की शपथ लेता है तो प्रधान मंत्री अथवा उनकी अनुपस्थिति में, संसदीय कार्य मंत्री यथाशीघ्र अवसर पर अध्यक्ष तथा सभा से उसका परिचय कराते हैं।[154] सामान्यत: प्रश्न काल से पहले सभा से मंत्री का परिचय कराया जाता है यद्यपि, ऐसे भी अवसर आये हैं जब सभा से मंत्रियों का परिचय बाद में कराया गया।

जब किसी नए प्रधान मंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद का पुनर्गठन किया जाता है, तो जो मंत्रीगण निवर्तमान मंत्रिपरिषद के सदस्य नहीं थे उनका परिचय प्रधान मंत्री सभा से कराते हैं।[155]

कोई व्यक्ति जो संसद के दोनों में से किसी भी सदन का सदस्य न हो उसे मंत्री नियुक्त किया जा सकता है परन्तु यदि वह मंत्री नियुक्त होने के बाद नियुक्ति की तारीख से निरन्तर छ: मास की अवधि के भीतर दोनों में से किसी भी सदन का सदस्य न बन सके तो वह मंत्री नहीं रहता।[156] तथापि संसद सदस्य के रूप में चुने जाने के बाद उसे फिर से मंत्री के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। मंत्री को दोनों सदनों में उपस्थित रहने और उनकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है परन्तु वह उस सदन में वोट नहीं दे सकता जिसका वह सदस्य नहीं है। जो मंत्री एक सदन का सदस्य हो उसे दूसरे सदन में बोलने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है परन्तु उस सदन में वोट देने का अधिकार नहीं है।[157]

---

151. अनुच्छेद 75(4)।
152. अनुच्छेद 99 ।
153. बैठने की व्यवस्था के लिए *देखिए* अध्याय 15—'सदस्यों द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान और सभा में स्थान ग्रहण'।
154. *लो.स.वा.वि.,* 23.2.1988, पृ. 1 ।
155. *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1964, पृ. 81 ।
156. अनुच्छेद 75(5) श्री चन्द्रशेखर सिंह, एक मंत्री को अपनी नियुक्ति के छ: महीनों के भीतर संसद के लिए न चुने जाने के कारण त्यागपत्र देना पड़ा। बाद में उन्होंने लोक सभा के लिए उप-चुनाव लड़ा और अपने चुने जाने के बाद पुन: उनकी नियुक्ति मंत्री के रूप में की गई।
157. *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1967, पृ. 1227-28।

    ब्रिटेन में मंत्री उसी सदन की कार्यवाहियों में भाग ले सकते हैं जिसके वे सदस्य हैं, दूसरे सदन में नहीं ।

लोक सभा के सत्र के लिए उस मंत्री को आमंत्रण नहीं भेजा जाता जो उस सभा का सदस्य नहीं है (उस मंत्री को भी नहीं भेजा जाता जो दोनों में से किसी भी सदन का सदस्य न हो)। जो मंत्री लोक सभा का सदस्य न हो वह सभा में मंत्री की हैसियत से बोल सकता है, लेकिन निजी रूप से नहीं।[158]

प्रश्न काल के दौरान संसदीय सचिव या उप-मंत्री ही सामान्यत: प्रश्न-सूची में उनके मंत्रियों से संबंधित प्रश्नों का उत्तर देते हैं। मंत्री या राज्य मंत्री तभी हस्तक्षेप करते हैं, जब अनुपूरक प्रश्नों में उठाये गये कुछ मामलों के स्पष्टीकरण के लिए वह ऐसा आवश्यक समझते हैं।

किसी दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित किये गये कार्य के लिए अलग-अलग मंत्री जिम्मेदार होते हैं। प्रस्तावों और संकल्पों आदि का काम देखने के अतिरिक्त मंत्री का प्रमुख कर्त्तव्य यह सुनिश्चित करना है कि उसका विधेयक सभा में सुचारू रूप से पारित हो जाये।

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव या मंत्रिपरिषद में अविश्वास के प्रस्ताव जैसे महत्वपूर्ण वाद-विवाद पर सामान्यत: प्रधान मंत्री[159] ही वाद-विवाद के दौरान उठाये गये मुद्दों पर सरकार की ओर से जवाब देते हैं चाहे वाद-विवाद में अन्य मंत्रियों ने भी भाग लिया हो, वह इस प्रकार मंत्रिपरिषद का नेतृत्व करते हैं।

मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है।[160] मंत्रिपरिषद की लोक सभा के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी का अर्थ है कि अविश्वास प्रस्ताव किसी एक मंत्री के विरुद्ध प्रस्तुत नहीं किया जा सकता बल्कि सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद के विरुद्ध प्रस्तुत किया जाता है।

> मद्रास उच्च न्यायालय में दायर की गयी एक रिट याचिका में यह तर्क दिया गया कि अनुच्छेद 75(3) के अंतर्गत मंत्रिपरिषद "लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी"। लोक सभा भंग होने के बाद मंत्रिपरिषद समाप्त हो जाती है। याचिकाकर्त्ता के अनुसार, संविधान के अनुच्छेद 53(1) के उपबंध के अनुसार,

---

158. 2 सितम्बर, 1960 को वैज्ञानिक अनुसंधान तथा सांस्कृतिक कार्य मंत्री ने असम की स्थिति संबंधी प्रस्ताव पर लोक सभा में अपना भाषण यह कह कर प्रारम्भ किया कि मैं सरकार के सदस्य के नाते नहीं, बल्कि अपनी निजी हैसियत से बोल रहा हूं। इस पर यह व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया कि जब मंत्री लोक सभा का सदस्य नहीं है तो क्या वह अपनी निजी हैसियत से सभा को सम्बोधित कर सकता है। पीठासीन अधिकारी ने विनिर्णय दिया कि मंत्री राज्य सभा का सदस्य होने के नाते लोक सभा में केवल मंत्री के नाते बोल सकता है अन्य हैसियत से नहीं। *एल.एस. डिबेट्स,* 2.9.1960, का. 6575-76 ।

159. 19 फरवरी, 1964 को, गृह मंत्री ने राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन कर रहे उपराष्ट्रपति द्वारा दिये गये अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव संबंधी वाद-विवाद का उत्तर दिया; 8 मई, 1981 को, वित्त मंत्री ने सरकारी यात्रा पर विदेश गये प्रधान मंत्री की अनुपस्थिति में सरकार की ओर से अविश्वास प्रस्ताव संबंधी वाद-विवाद का उत्तर दिया।

160. अनुच्छेद 75(3) ।

शासन चलाने में रिक्तता नहीं आयेगी क्योंकि राष्ट्रपति संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा कर सकता है। उच्च न्यायालय द्वारा इस रिट याचिका को खारिज करने के निर्णय के खिलाफ सर्टिफिकेट द्वारा की गई अपील में उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि मंत्रिपरिषद द्वारा अपने कृत्यों का प्रयोग करने में राष्ट्रपति को सहायता देना और सलाह देना एक अनिवार्य संवैधानिक प्रावधान है। अत: राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह के बिना अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता। उच्चतम न्यायालय ने आगे यह व्यवस्था दी कि अनुच्छेद 75(3) उसी अवस्था में प्रभावी होगा जब लोक सभा भंग न हो अथवा उसका सत्रावसान न हुआ हो।[161]

6. संसदीय सचिव

संसदीय सचिव का पद संवैधानिक नहीं होता है और इसे भारत के संविधान के अंतर्गत प्राधिकरण प्राप्त है। लोकसभा में प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली के नियम 2 के अनुसार 'मंत्री' का आसय मंत्रीपरिषद का सदस्य, राज्यमंत्री, उपमंत्री अथवा संसदीय सचिव से है।

भारत में संसदीय सचिव का पद पहली बार वर्ष 1951[162] में सृजित किया गया था। मंत्रियों से अलग संसदीय सचिवों को राष्ट्रपति की बजाय प्रधानमंत्री शपथ दिलाते हैं। मूल अवधारणा के अनुसार, संसदीय सचिवों के नियुक्ति पूर्ण रूप से संसदीय कार्य में मंत्री की सहायता करने के प्रयोजन से की जाती है। वह मंत्रियों के लिए दस्तावेज तैयार करता है अथवा विशेष प्रश्नों का अध्ययन करता है परन्तु उनके पास कोई कार्य पालक अधिकार नहीं होता है और कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है। इसका समवत् उद्देश्य संसद के युवा सदस्यों को प्रशिक्षण प्राप्त करने का एक अवसर प्रदान करना है। जब संसद का सत्र नहीं चलने के

---

161. *यू.एन.आर. राव बनाम श्रीमती इंदिरा गांधी,* ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1002, इस स्थिति की पुष्टि संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976, धारा 13 द्वारा हुई। यह 3 जनवरी, 1977 से प्रभावी हुई और उसके द्वारा संशोधित अनुच्छेद 74(1) से स्पष्ट किया गया कि 'राष्ट्रपति अपने कृत्यों का निर्वहन करने में मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करेगा'। साथ ही *देखिए* अध्याय 3—राष्ट्रपति का संसद से संबंध। अनुच्छेद 74(1) के परन्तुक को संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 2 द्वारा अंतर्विष्ट किया गया, जिसके अंतर्गत—राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद से ऐसी सलाह पर साधारणत: या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकता है और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के बाद दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा। मंत्रिपरिषद की सामूहिक जिम्मेदारी, मंत्रिपरिषद में अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने की प्रक्रिया और किसी मंत्री विशेष द्वारा त्यागपत्र के लिए *देखिए* अध्याय-28 'मंत्रिपरिषद में विश्वास और अविश्वास का प्रस्ताव' ।

162. 11 जून 1951 को श्री सतीश चन्द्रा और री एस. एन. मिश्रा को संसदीय सचिव नियुक्त किया गया।

दौरान यदि संसदीय सचिव के पास किसी प्रकार का शासकीय कार्य होता है तो कार्य के वास्तविक दिवसों के लिए उन्हें दैनिक भत्ते का भुगतान किया जाता है।

तथापि, वर्ष 1951[163] से समय-समय पर संसदीय सचिवों की नियुक्ति प्रधान मंत्री द्वारा की जाती थी संसदीय सचिवों से संबंधित शक्तियों, कार्यों, दर्जा, वेतन एवं भत्ते के प्रश्न की जांच नहीं की गई। इस स्थिति में संसदीय सचिवों के कार्यकरण की पहचान करने तथा उनके वेतन भत्तों, इत्यादि में संशोधन किए जाने की भी आवश्यकता महसूस की गई। तदनुसार मई 1985 और पुनः जून 1989 में सचिवों की समिति की बैठक में संसदीय सचिवों के कार्यकरण पर विचार किया गया था। समिति ने संसदीय सचिव के दर्जे, शक्तियों एवं कार्यकरण के रूप में निम्नलिखित की पहचान की–

(*i*) संसदीय सचिव की नियुक्ति पूर्णरूपेण प्रधानमंत्री का विवेकाधिकार है जो यह निर्णय लेगा कि संसदीय सचिव के रूप में कब और किसकी नियुक्ति की जाएगी।

(*ii*) वेतन, भत्तों और अन्य पूर्ण शर्तों का निर्णय सरकार द्वारा संसदीय सचिव द्वारा निर्वाहक किए जाने वाले कर्तव्य की सीमाओं सहित विभिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर किया जाएगा।

(*iii*) वह मंत्री के शासकीय कार्य में सहायता करेगा।

(*iv*) वह जिस विभाग/मंत्रालय से संबंधित है, सभा में उसका प्रतिनिधित्व करेगा, और

(*v*) वह उन कार्यों का निष्पादन करेगा जो उसे मंत्री द्वारा सौपा जाएगा।

7. सभा का नेता

प्रधान मंत्री जो लोक सभा में बहुमत वाले दल का नेता होता है, सामान्यतः लोक सभा में सभा के नेता के रूप में काम करता है सिवाय इसके जब वह लोक सभा का सदस्य नहीं होता है। वरिष्ठतम मंत्री, जो राज्य सभा का सदस्य होता है, प्रधान मंत्री द्वारा राज्य सभा में सभा के नेता के रूप में नियुक्त किया जाता है।

जनवरी, 1966 में प्रधान मंत्री की नियुक्ति से जो राज्य सभा की सदस्य थीं, लोक सभा में सभा के एक अलग नेता की नियुक्ति आवश्यक हो गई। प्रधान मंत्री ने एक मंत्री को, जो लोक सभा का सदस्य था, सभा का नेता नियुक्त करने का आदेश दिया और इसकी सूचना अध्यक्ष को दी। प्रधान मंत्री द्वारा सूचित किये जाने पर, अध्यक्ष ने संसदीय कार्य मंत्री का परिचय लोक सभा के नेता के रूप में कराया।[164]

---

163. वर्ष 1951 से कुल 33 संसदीय सचिव नियुक्त किए गए उनमें अंतिम श्री नकूल नायक थे जिनकी नियुक्ति 24 नवम्बर 1990 को की गई थी। वर्ष 1962 से 11 नवम्बर 1984 तक कोई संसदीय सचिव नियुक्त नहीं किया गया।

164. *एल.एस. डिबेट्स,* 14.2.1966, का. 20-21, नियम, 2 में कहा गया है:

"सभा का नेता का तात्पर्य प्रधान मंत्री से, यदि वह सभा का सदस्य हो, अथवा उस मंत्री से है जो सभा का सदस्य हो और सभा के नेता के रूप में कार्य करने के लिए प्रधान मंत्री द्वारा नामनिर्दिष्ट किया नहीं गया हो।"

जुलाई, 1991 में दसवीं लोक सभा के गठन के समय, प्रधान मंत्री जो संसद की किसी भी सभा के सदस्य नहीं थे, ने मानव संसाधन विकास मंत्री को लोक सभा में सभा के नेता के रूप में नामनिर्दिष्ट किया था। इस संदर्भ में सूचित किये जाने पर अध्यक्ष ने मानव संसाधन विकास मंत्री का परिचय सभा के नेता के रूप में कराया।[165] नवम्बर, 1991 में प्रधान मंत्री एक उप-चुनाव में लोक सभा के लिए चुने गये और उन्होंने लोक सभा के सदस्य के रूप में शपथ ग्रहण की। दिसम्बर, 1991 में जब संसदीय कार्य मंत्री ने अध्यक्ष को सूचित किया कि प्रधान मंत्री सभा का नेता होगा तो तद्नुसार अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया।[166]

1996 में प्रधान मंत्री जो संसद की किसी भी सभा के सदस्य नहीं थे, ने संसदीय कार्य तथा रेल मंत्री को सभा के नेता के रूप में नामनिर्दिष्ट किया और अध्यक्ष ने मंत्री को सभा के नेता के रूप में परिचय कराया[167]

1997 में प्रधान मंत्री जो राज्य सभा का सदस्य था, ने रेल मंत्री को सभा के नेता के रूप में नामनिर्दिष्ट किया लेकिन इस संबंध में सभा में कोई औपचारिक घोषणा नहीं की गई।

इसी प्रकार 2004 में, प्रधान मंत्री जो कि राज्य सभा के सदस्य थे ने रक्षा मंत्री को सभा के नेता के रूप में नामनिर्दिष्ट किया परन्तु इस संबंध में सभा में कोई औपचारिक घोषणा नहीं की गई। अध्यक्ष द्वारा 4 जून, 2004 को सभा से उनका परिचय कराया गया।

यह परम्परा रही है कि जब लोक सभा का सत्र चल रहा हो और सभा का नेता लम्बे समय तक अनुपस्थित हो तो संसदीय कार्य मंत्री सभा के नेता से परामर्श करके अध्यक्ष को सूचित करता है कि कौन सभा के नेता के रूप में कार्य करेगा, लेकिन इस संबंध में सभा में कोई औपचारिक घोषणा नहीं की जाती है।[168]

सभा का नेता एक महत्वपूर्ण संसदीय अधिकारी होता है और संसदीय कार्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। सरकार की सम्पूर्ण नीति, विशेषकर जहां तक वह सभा की आंतरिक गतिविधियों और सभा के कार्य से संबंधित उपायों में परिलक्षित होती है, सभा के नेता में ही केन्द्रित होती है।

---

165. *लो.स.वा.वि.,* 10.7.1991, पृ. 23 ।
166. *लो.स.वा.वि.,* 6.12.1991, पृ. 291 ।
167. *लो.स.वा.वि.,* 11.6.1996, का. 1-2 ।
168. 6 मार्च, 1961, को जब प्रधान मंत्री लंदन में होने वाले राष्ट्रमंडल प्रधान मंत्री सम्मेलन में भाग लेने के लिये गये तो संसदीय कार्य मंत्री ने अध्यक्ष को लिखा कि प्रधान मंत्री की अनुपस्थिति के दौरान वित्त मंत्री सभा के नेता के रूप में कार्य करेंगे लेकिन उन्होंने अध्यक्ष से कहा कि इस संबंध में सभा में कोई औपचारिक घोषणा करने की आवश्यकता नहीं है। 30 अगस्त, 1961 को भी संसदीय कार्य मंत्री से ऐसा ही पत्र प्राप्त हुआ था, जब प्रधान मंत्री बेलग्रेड में आयोजित गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए गये हुए थे।

सरकारी कार्य का विन्यास अंततोगत्वा सभा के नेता की जिम्मेदारी है, यद्यपि उसका ब्यौरा उसी के नियंत्रण के अधीन, मुख्य सचेतक जिसे संसदीय कार्य मंत्री का विभाग भी प्राप्त है, के द्वारा तय किया जाता है। सभा के नेता सभा की बैठक आहूत करने और उसके सत्रावसान की तिथियों के संबंध में अपने प्रस्ताव अध्यक्ष के अनुमोदन के लिए उसके पास भेजता है। उसे संसद के किसी सत्र में किए जाने वाले सरकारी कार्यों, अर्थात् विधेयकों, प्रस्तावों, सामान्य तथा विशिष्ट विषयों जैसे पंचवर्षीय योजनाओं, विदेश नीति, आर्थिक या औद्योगिक नीति पर चर्चा तथा अन्य महत्वपूर्ण सरकारी कार्यकलापों का कार्यक्रम बनाना पड़ता है। वह यह तय करता है कि कार्य की विभिन्न मदों की परस्पर पूर्ववर्तिता या प्राथमिकता क्या होगी जिससे कि सारा काम निर्विघ्न पूरा किया जा सके।

सारे सत्र का कार्यक्रम अस्थायी रूप से तय करने के बाद कार्य की प्रगति के आधार पर वह दैनिक तथा साप्ताहिक कार्यक्रम बनाता है। उसके बाद वह प्रति सप्ताह सदस्यों के लिए कार्यक्रम की अग्रिम तौर पर घोषणा करता है।[169] वह कार्य मंत्रणा समिति का सदस्य हो सकता है या संसदीय कार्य मंत्री उस समिति से उसकी ओर से सम्पर्क कर सकता है जो समय-समय पर संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दिए गए अथवा उनके द्वारा प्राप्त सुझावों के आधार पर सरकारी विधेयक और अन्य कार्यों के लिए समय का आवंटन निर्धारित करती है।

सभा का नेता विधान, कार्य की दिशा और उसकी विषयवस्तु निर्धारित करता है। कौन से संशोधन स्वीकार किये जाने हैं, सरकार, गैर-सरकारी सदस्यों के किस विधेयक का समर्थन करेगी और कि किसी प्रश्न पर सदस्यों को स्वतंत्र रूप से वोट देने की अनुमति दी जाये या नहीं—इन बातों का अंतिम फैसला उसी के हाथ में होता है। इसलिए सम्पूर्ण विधायी प्रक्रिया में सभा का नेता संभवत: सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति होता है।

सभा का नेता सभा के कार्य के संबंध में प्रक्रिया संबंधी मामलों का निपटारा करता है और सभा के सामने जो भी कठिनाई आती है उसे दूर करने के लिए अपनी राय देता है। इस

---

169. अगले सप्ताह के लिए सरकारी कार्य संबंधी घोषणा प्रथानुसार सभा के नेता की ओर से संसदीय कार्य मंत्री द्वारा की जाती है।

1966 में संसदीय कार्य मंत्री ने सभा के नेता के रूप में कार्य किया था। सभा के नेता द्वारा अगले सप्ताह के लिए सरकारी कार्य की घोषणा के संबंध में 17 फरवरी, 1966, को सभा में कतिपय सदस्यों द्वारा आपत्ति उठाए जाने पर उन्होंने कहा "कुछेक कृत्य जो मैं यहां संसदीय कार्य मंत्री के रूप में कर रहा था, ये सभा के नेता को दिए गए कृत्य थे तथा तत्कालीन सभा के नेता ने ये शक्तियां मुझे प्रदान की थीं। अब मैं यह कृत्य अपने अधिकार से कर रहा हूं"। *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 17.2.1966, पृ. 3032-33 ।

उद्देश्य से वह सामान्यत: या तो सभा में या अपने कक्ष में[170] उपस्थित रहता है और उसे यह अधिकार है कि वह जब चाहे तब सभा को संबोधित कर सकता है।[171]

कोई सदस्य मंत्री पद से त्यागपत्र देने के बाद अपने पद-त्याग के स्पष्टीकरण के लिए कोई व्यक्तिगत वक्तव्य देना चाहे तो उसकी एक प्रति पहले से सभा के नेता को दी जाती है।[172] वह यह प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है या किसी अन्य सदस्य को अपने कृत्यों का प्रत्यायोजन करके प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार दे सकता है कि अनुच्छेद 101 के खंड 4 के अंतर्गत किसी सदस्य का स्थान रिक्त घोषित कर दिया जाये।[173] सभा का नेता अध्यक्ष से प्रार्थना कर सकता है कि वह सभा की गोपनीय बैठक के लिए कोई दिन या उसका कोई भाग नियत करे।[174] वह यह प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है या किसी सदस्य को यह प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है कि सभा की गोपनीय बैठक के दौरान हुई सभा की कार्यवाही को अब गोपनीय न समझा जाये।[175] वह सरकार की ओर से अध्यक्ष को सलाह देने के लिए हर समय मिल सकता है। सरकारी कार्य के विन्यास के संबंध में अध्यक्ष उससे परामर्श करता है।[176] इसके साथ ही:

अनुच्छेद 87(1) के अधीन सदनों के समक्ष दिए गए राष्ट्रपति के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों पर चर्चा;[177]

शुक्रवार के अतिरिक्त किसी और दिन गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के सम्पादन;[178]

---

170. जनवरी, 1966 और मार्च, 1967, जुलाई-नवंबर, 1991 और मई, 1996-दिसम्बर, 1997, के बीच जब प्रधान मंत्री लोक सभा के सदस्य नहीं थे, सभा के नेता का काम सरकारी कार्य के विषय और उनका क्रम तय करने तक ही सीमित नहीं था बल्कि वह प्रधान मंत्री को सभी संसदीय कार्यों के संबंध में सलाह देता था। वह प्रधान मंत्री के साथ सत्ता पक्ष की अगली सीट पर बैठा करता था।
    चौदहवीं और पंद्रहवीं लोक सभा के मामले में भी प्रधान मंत्री सभा के सदस्य नहीं हैं और सभा का नेता सत्ता पक्ष की अगली सीट पर बैठता है।
171. *देखिए लो.स.वा.वि.*, 24.12.64, पृ. 2632 ।
172. नियम 199 ।
173. नियम 241—वर्तमान प्रथा यह है कि सबसे पहले सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति नियम 326(1)(ii) के अंतर्गत रिपोर्ट देती है कि किसी सदस्य का स्थान रिक्त घोषित कर दिया जाये। यह रिपोर्ट सभा में पेश होने से पहले सभा के नेता की टिप्पणी के लिए उसे भेज दी जाती है। जब वह उससे सहमत हो और सभा उसे स्वीकृत कर ले तो नियम 241(1) के अनुसार, समिति का सभापति पहले सूचना देकर ऐसा प्रस्ताव प्रस्तुत करता है।
174. नियम 248 ।
175. नियम 251 ।
176. नियम 25 ।
177. नियम 16 ।
178. नियम 26 ।

"अनियत दिन वाले प्रस्तावों" पर चर्चा;[179]

अनुदानों की मांगों पर चर्चा तथा मतदान;[180] और

सभा के समक्ष रखे गये विनियम, नियम, उप-नियम, उप-विधि आदि में संशोधन पर विचार करने और उसे पारित करने[181] के लिए दिन या समय नियत करने के संबंध में भी अध्यक्ष सभा के नेता से परामर्श करता है।

सभा की परिपाटी यह है कि जब किसी सदस्य को सभा से निलंबित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाए[182] या किसी सदस्य या सभा या सभा की किसी समिति के विशेषाधिकार के भंग का प्रश्न सभा में उठाया जाये तो सामान्यत: सभा के नेता से परामर्श किया जाता है।

अपने दैनिक कार्यकलाप में सभा का नेता अपने दल के नेता के रूप में कार्य करता है लेकिन कभी-कभी वह सारी सभा के प्रवक्ता या प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। उसकी इस हैसियत से कार्य करने के मुख्य अवसर तब आते हैं जब सारी सभा किसी बाहरी संस्था के प्रति अपनी स्थिति बताना चाहती हो, उदाहरण के लिए, राज्य सभा के साथ किसी मतभेद की दशा में, या लोक सभा के विशेषाधिकार भंग होने पर, या उस समय जब किसी महत्वपूर्ण घरेलू या विदेशी मामले के बारे में लोक सभा की भावनाओं को व्यक्त करना जरूरी है। जब सभा एक संस्था के रूप में कुछ कहना चाहती है, तो वह उसकी ओर से बोलता है।

सभा के नेता की जिम्मेदारी न केवल सरकार तथा सभा में उसके समर्थकों के प्रति है बल्कि विरोधी पक्ष और सारी सभा के प्रति भी है। वह सभा में सरकार और विरोधी ग्रुपों के बीच सम्पर्क बनाये रखता है। वह विरोधी पक्ष तथा सरकार दोनों के वैध या उचित अधिकारों का रक्षक है। इसलिए इस रूप में उसे सारी सभा के अधिकारियों के समर्थकों में सब से आगे होना चाहिए और इस बात का प्रयास करना चाहिए कि चाहे किसी भी ओर से दबाव पड़े सभा को उसके उचित अवसरों से वंचित न किया जाये।

यह ठीक ही कहा गया है कि सभा के नेता में वह सहजवृत्ति होनी चाहिए कि वह पता लगा ले कि सभा के दोनों पक्षों के सदस्यों की भावनाएं क्या हैं और जब भी कोई विवाद हो तो वह उसके स्वरूप तथा व्यापकता को भली-भांति भांप ले। जब भी किसी विषय पर संसद की ओर से बहुत अधिक दबाव डाला जा रहा हो, विशेषकर दोनों ओर से, तो उसे

---

179. नियम 190 ।

180. नियम 208 ।

181. नियम 235 ।

182. सामान्यत: जब अध्यक्ष किसी सदस्य का नाम लेता है तो संसदीय कार्य मंत्री विनिर्दिष्ट अवधि के लिए सभा की सेवा से सदस्य के निलंबन का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। लोक सभा के उन दस सदस्यों के निष्कासन का प्रस्ताव जिन्हें 'प्रश्न पूछने के लिए धन' संबंधी घोटाले में दोषी पाया गया था, के निष्कासन का प्रस्ताव सभा द्वारा 23 दिसम्बर, 2005 को स्वीकृत किए जाने से पूर्व सभा के नेता और तत्कालीन रक्षा मंत्री श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

उसके सामने झुकने के लिए तैयार रहना चाहिए।[183] सभा के नेता के कर्त्तव्य और कार्य के विषय में पागे समिति की टिप्पणी थी:

उसे सभा में अधिकांश समय और प्रश्न काल के दौरान और इसके बाद सभा की सामान्य कार्यवाही की शुरुआत के समय उपस्थित रहना चाहिए। उसका सर्वप्रथम कर्त्तव्य कार्यवाही संचालन में अध्यक्ष की सहायता करना होता है। उसे चर्चा में हर समय मध्यस्थता करने, प्रतिपक्ष द्वारा वाद-विवाद के लिए अवसर प्रदान करने की मांग पर ध्यान देने, चर्चा के लिए समय और तिथि निर्धारित करने, सांसदों के अनियंत्रित व्यवहार पर अंकुश लगाने और सभा के समक्ष मामलों के संबंध में निर्णय लेने में अध्यक्ष की सहायता करने हेतु हमेशा तैयार रहना चाहिए। यदि सभा का नेता अपरिहार्य रूप से अनुपस्थित है या अन्य कारणवश व्यस्त है तो उसे एक उप-नेता मनोनीत कर देना चाहिए जो सभा के नेता की अनुपस्थिति में उक्त कृत्यों का निष्पादन किसी भी समय करे। इस प्रकार या तो नेता या उप-नेता को सभा में उपस्थित रहना चाहिए।[184]

8. विपक्ष का नेता

शासन की कोई भी प्रणाली हो, उसमें सत्ता के लिए सदा संघर्ष रहेगा। जिन लोगों के हाथ में सत्ता नहीं वे उन लोगों को पद्च्युत करने की चेष्टा करेंगे जिन्होंने सरकार बनाई हुई है। इस संघर्ष के कई रूप हो सकते हैं— बलपूर्वक सत्ता हथियाना, क्रांति या चुनाव की प्रक्रिया। संसदीय प्रणाली में विरोधी तत्वों का यह कर्त्तव्य है कि वे स्वीकृत संसदीय तरीकों से सभा में सत्ता के लिए संघर्ष करें। इस शताब्दी की एक सबसे बड़ी संसदीय उपलब्धि यह है कि विपक्ष की भूमिका को औपचारिक रूप से मान्यता प्रदान की गई है और संसदीय प्रणाली में उसे उचित स्थान दिया गया है। अत: विपक्ष का नेता महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। वह प्रतिछाया प्रधान मंत्री होता है और किसी चुनाव में उसके दल का बहुमत हो जाये या सरकार पदत्याग कर दे या हार जाये तो उसे सरकार बनाने की जिम्मेदारी उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। अत: उसे अपनी कथनी तथा करनी में बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है और राष्ट्रीय हित के सवाल पर उससे उतनी ही जिम्मेदारी से काम करने की आशा की जाती है जितनी कि प्रधान मंत्री से। यद्यपि सभा में और सभा के बाहर देश में वह सरकार की कटु तथा तीव्र आलोचना करता है, विदेशों में उसे दलगत राजनीति से दूर रहना चाहिए।

संसदीय सरकार का सुचारू रूप से चलना विरोधी पक्ष और सरकार के बीच परस्पर सहिष्णुता पर आधारित है। यदि विपक्ष का नेता प्रधान मंत्री को शासन करने देता है तो उसके बदले में उसे विरोध करने की अनुमति है। कुछ मामलों, जैसे विदेशों से सम्बन्ध तथा रक्षा नीति आदि पर कोई वचन देने से पहले कभी-कभी प्रधान मंत्री विरोधी पक्ष के नेता से परामर्श भी कर सकता है। किसी घोर राष्ट्रीय संकट के समय, विपक्ष का नेता खुलेआम सरकार की नीति से सहमति प्रकट करके किसी प्रश्न विशेष पर राष्ट्र की एकता का परिचय देता है।

---

183. हर्बर्ट मॉरिसन: गवर्नमेंट एंड पार्लियामेंट : ए सर्वे फ्राम द इनसाइड, लंदन 1964, पृ. 132 ।

184. पागे समिति की रिपोर्ट, उद्धृत कृति, पैरा 47 (1)।

प्रधान मंत्री और विपक्ष के नेता, अपनी मूल नीतियों के अनुरूप, जहां तक संभव हो, एक दूसरे की सुविधा का ध्यान रखते हैं। वैसे तो विपक्ष का नेता सभा में सरकार के कार्य में अकारण बाधा नहीं डालता लेकिन यदि वह यह महसूस करे कि सरकार संसद की आलोचना से बचने की चेष्टा कर रही है और किसी महत्वपूर्ण मामले को संसद की नजर से बचाना चाहती है तो विपक्ष का नेता यह मांग कर सकता है कि उस मामले पर वाद-विवाद किया जाए।

विपक्ष का नेता अल्पसंख्यकों का अधिकृत प्रवक्ता होता है और इस बात का सदा ध्यान रखता है कि उनके अधिकारों पर कोई कुठाराघात न हो। यद्यपि उसका काम इतना कठिन नहीं होता जितना कि प्रधान मंत्री का, लेकिन फिर भी उसके काम का समुचित लोक महत्व है क्योंकि उसे एक दल 'प्रतिछाया मंत्रिमंडल' बनाए रखना पड़ता है जो आवश्यकता पड़ने पर प्रशासन संभाल सके। अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों को पूरा करने में विपक्ष के नेता को न केवल इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि वह आज क्या है, बल्कि इस बात का भी कि वह कल क्या बनने की आशा करता है।

विपक्ष के नेता को स्वयं बड़ा कुशल संसदविज्ञ होना चाहिए और जटिल परिस्थितियों से भली-भांति परिचित होना चाहिए। उसे सभा के नियमों का भली-भांति ज्ञान होना चाहिए। जिससे कि वह उनके अंतर्गत प्राप्त होने वाले अवसरों से लाभ उठा सके। सतर्कता उसकी विशेषता है और उसे लगातार अपने स्थान पर उपस्थित रहना चाहिए।

विपक्ष के नेता की स्थिति तथा जिम्मेदारियों के बारे में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री, हेरल्ड मैकमिलन ने संक्षेप में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए—

> मैं समझता हूं कि विपक्ष के नेता की स्थिति से अधिक कठिन तथा अफलदायक स्थिति और किसी की नहीं होती उसे आलोचना करनी पड़ती है, दोष निकालना उसका काम है लेकिन साथ ही उसे अपनी प्रस्थापनाएं और नीतियां स्पष्ट करनी हैं। जबकि उन्हें कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति उसके पास नहीं है। यह इस अर्थ में अफलदायक है कि जो भी व्यक्ति अपनी प्रशासन संबंधी क्षमता को जानता है और अपनी योजनाएं लागू करना चाहता है उसे इस स्थिति में हमेशा निराशा और कुण्ठा होती है।

उन्होंने आगे यह कहा :

> और फिर, हमारी लगभग अभूतपूर्व प्रशासन प्रणाली के अंतर्गत संसद और राष्ट्र के प्रति विपक्ष के नेता की बड़ी विशेष जिम्मेदारी है। खतरे के समय, विशेषकर उस समय जब किसी दूसरे देश से खतरा हो और विशेषकर साम्राज्य की सुरक्षा को प्रभावित करने वाले मामलों में यद्यपि वह सरकार का आलोचक रहता है लेकिन उसके साथ ही उसे उस सरकार का ने केवल साथ देना होता है बल्कि समर्थन भी करना पड़ता है जिसका विरोध वह करता है। उसे अपनी यह दोहरी जिम्मेदारी सच्चे दिल से निभानी पड़ती है।

लोक सभा के 1977 के आम चुनाव के पहले एक वर्ष (दिसम्बर 1969-दिसम्बर 1970 तक) की संक्षिप्त अवधि के अलावा संसदीय प्रणाली की सरकार में 'विपक्ष' की अवधारणा नहीं थी।[185] नवम्बर, 1969 में कांग्रेस पार्टी में विभाजन होने पर सत्तारूढ़ दल से अलग हुए सांसदों को विपक्षी दल के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी क्योंकि इसकी मान्यता के लिए निर्धारित शर्तें पूरी हो रही थीं।[186] दल को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (संगठन) कहा गया था और इसके नेता को विपक्ष के नेता के रूप में स्वीकार किया गया था।[187] आजादी के बाद यह पहला अवसर था जब लोक सभा में एक विपक्षी दल और एक विपक्ष के नेता को मान्यता प्रदान की गई। छठी लोक सभा के चुनावों के बाद जनता पार्टी सत्ता में आई थी और अब तक सत्ता में रही कांग्रेस पार्टी की सदस्यता घट गई तथा वह लोक सभा में दूसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गई। कांग्रेस संसदीय पार्टी को विपक्षी दल के रूप में और इसके नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

पागे समिति ने यह अनुशंसा की कि मान्यता प्राप्त सबसे बड़े विपक्षी दल (चाहे वह नियमित दल हो अथवा वह विभिन्न दलों अथवा ग्रुपों से बना हुआ दल हो) के नेता को विपक्षी दल के नेता के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। समिति के अनुसार सभा में मुख्यमंत्री द्वारा नीति संबंधी कोई वक्तव्य देने से पहले यदि उसके द्वारा विपक्ष के नेता को निमंत्रित किया जाए, उसे अग्रिम रूप से वक्तव्य की प्रतिलिपि दी जाए और किसी विशेष दिवस पर कोई विशेष कार्य निश्चित करने से पहले उसके सुझावों को अध्यक्ष तथा सभा के नेता द्वारा यथासंभव स्वीकृत किया जाये, तो यह एक स्वस्थ संसदीय परंपरा होगी। समिति ने आगे यह सुझाव भी दिया कि विपक्ष के नेता का वेतन दिया जाना चाहिए, तथा उसे आवास और कार्यालय दिया जाना चाहिए तथा कुछ सचिवीय कर्मचारिवृन्द प्रदान किया जाना चाहिए।[188]

---

185. द्विदलीय शासन प्रणाली के अंतर्गत, जैसा कि ब्रिटेन में है। किसी अनिश्चितता की स्थिति में कि कौन सा दल 'आधिकारिक विपक्ष' कहलाने का हकदार है, को दूर कर दिया गया है। यह सबसे बड़ा अल्पमत वाला दल होता है जो सरकार द्वारा त्याग-पत्र के समय पद ग्रहण के लिए तैयार रहता है। *देखिए* 23वां संस्करण पृ. 247-248 ।

186. मान्यता की शर्तों के लिये *देखिए* अध्याय 14—संसद में राजनीतिक दलों की मान्यता।

187. *एल.एस. डिबेट्स,* 17.12.1969, कॉ. 366-67 ।

उसे संसद भवन में एक कक्ष प्रदान किया गया और कोई अन्य विशेषाधिकार नहीं दिया गया। उसने संयुक्त विपक्ष के नेता के रूप में कार्य नहीं किया, अन्य विपक्षी दलों/ग्रुपों ने बोलने के अपने अधिकार का त्याग नहीं किया। विपक्ष का नेता विपक्षी दलों/ग्रुपों की ओर से निधन संबंधी उल्लेख भी नहीं कर सका।

188. पागे समिति की रिपोर्ट, उद्धृत कृति, पैरा 48-50 ।

संसद में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 के अन्तर्गत लोक सभा और राज्य सभा में विपक्ष के नेताओं को अब कानूनी मान्यता एवं वेतन तथा कतिपय अन्य सुख-सुविधाएं प्रदान की जाती हैं।[189]

इसके अतिरिक्त, अध्यक्ष विपक्ष के नेता को कतिपय अन्य सुविधाएं प्रदान करता है, जैसे (i) लोक सभा में पहली पंक्ति में उपाध्यक्ष की सीट के ठीक बायीं ओर की सीट; और (ii) संसद भवन में सचिवीय और अन्य सुविधाओं सहित एक कक्ष। समारोहों के अवसरों पर विपक्ष के नेता के कुछ विशेषाधिकार भी होते हैं जैसे (i) नव-निर्वाचित अध्यक्ष को आसन तक ले जाना; और (ii) संसद की दोनों सभाओं को राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय पहली पंक्ति में सीट।

9. सचेतक

विधानमंडल में न केवल किसी विचाराधीन मामले का भविष्य बल्कि मंत्रिपरिषद का अस्तित्व ही किसी एक मत-विभाजन के परिणाम पर निर्भर कर सकता है। जब मत-विभाजन की घंटी बजती है तो सदस्यों को दीर्घाओं, ग्रंथालय, संसदीय ज्ञानपीठ और संसदीय सौध आदि से दौड़कर सभा कक्ष में पहुंचने के लिए लगभग साढ़े तीन मिनट का समय मिलता है। लेकिन फिर भी सरकार या कोई भी दल इस बात की ओर से निश्चित होकर नहीं बैठ सकता है कि मत विभाजन के समय हमेशा उस दल के सभी सदस्य पर्याप्त संख्या में सभा परिसर में होंगे। अत: ऐसे अवसरों पर दल के सदस्यों को तैयार रखने की जिम्मेदारी सचेतकों (व्हिप) पर होती है।[190]

सरकार की संसदीय प्रणाली में, संसद में प्रत्येक दल का अपना आंतरिक संगठन होता है। उसके कई अधिकारी होते हैं जिन्हें सचेतक कहा जाता है। ये दल के सदस्यों में से ही चुने जाते हैं। सच तो यह है कि संसदीय लोकतंत्र का सुचारूरूपेण और बिना किसी बाधा के कार्य करना बहुत हद तक सत्तारूढ़ दल अथवा विरोधी दलों के सचेतकों पर निर्भर है।

---

189. विपक्ष के नेता का अर्थ सभा के उस सदस्य से है जो वहां सबसे अधिक सदस्य संख्या वाले विपक्षी दल का नेता है और अध्यक्ष द्वारा इसकी मान्यता दी गयी हो।

स्पष्टीकरण : जब विपक्ष में दो अथवा इससे अधिक दल हों, और उनकी बराबर संख्या हो तो अध्यक्ष इन पार्टियों के दर्जे को ध्यान में रखते हुए ऐसे दलों के नेताओं में से किसी एक को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता देगा और यह मान्यता अंतिम होगी (संसद में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977)।

190. 'व्हिप' पद शिकार के क्षेत्र से लिया गया है। इसका प्रयोग संसद के संदर्भ में पहली बार बर्क ने किया। उसने हाउस ऑफ कामन्स में वाद-विवाद में बोलते हुए बताया कि कैसे सम्राट के मंत्रियों ने अपने समर्थकों को इकट्ठा करने का प्रयत्न किया और कैसे उन्होंने अपने मित्रों को उत्तर और पेरिस से बुलाया और उन्हें जमा किया। बर्क द्वारा प्रयुक्त यह शब्द 'व्हिप' जल्दी की लोकप्रिय हो गया और लोग इसका प्रयोग करने लगे-इल्बर्ट : 'पार्लियामेंट, इट्स हिस्ट्री, कान्स्टीट्यूशन एंड प्रैक्टिस' लंदन, 1948, पृष्ठ 135 ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सचेतकों का मुख्य कार्य यह है कि जब भी सभा में कोई महत्त्वपूर्ण विषय विचाराधीन हो, वे अपने-अपने दलों के सदस्यों को सभा के आस-पास रखें जिससे कि वे मत-विभाजन की घंटी सुनते ही सभा में आ जायें। महत्वपूर्ण विषयों पर मत-विभाजन के समय सदस्यों की उपस्थिति की जिम्मेदारी सचेतकों पर है। सत्रों के दौरान विभिन्न दलों के सचेतक समय-समय पर अपने समर्थकों को सूचनायें-जिन्हें कभी-कभी व्हिप भी कहा जाता है-भेजते रहते हैं जिनमें उन्हें चेतावनी दी जाती है कि कब किसी महत्वपूर्ण विषय पर मत-विभाजन होने की संभावना है। उसमें उन्हें बताया जाता है कि मतदान कब होने की संभावना है और उन से कहा जाता है कि वे उस समय उपस्थित रहें। मत-विभाजन के महत्व पर प्रकाश डालने के लिए उस सूचना के नीचे कई रेखाएं या तीन मोटी रेखाएं खींच दी जाती हैं।[191]

सचेतकों के लिए आवश्यक है कि वे अपने सदस्यों को जानें। इसके लिए सचेतकों को भी सदस्यों से निकट सम्पर्क रखना पड़ता है और उन्हें उनकी रुचि के विषयों, विशेष अभिक्षमताओं, योग्यताओं तथा क्षमताओं का ज्ञान होना चाहिए। वाद-विवाद तथा चर्चा का स्तर बनाए रखने के लिए अध्यक्ष को अपने दल की ओर से बोलने वाले वक्ताओं की सूची भेजते समय या संसदीय समितियों में सदस्यों के नामनिर्दिष्ट करने हेतु दल के सदस्यों के नामों का सुझाव देते समय सचेतक इन सब बातों का ध्यान रखते हैं। वे सदस्यों को सभा के कार्य के संबंध में सूचित करते रहते हैं और दल का अनुशासन बनाए रखते हैं। सभा की दीर्घाओं आदि में सदस्यों के साथ उनका बराबर सम्पर्क रहता है और वे दल के सामन्य सदस्यों और नेताओं के बीच मध्यस्थ का काम करते हैं। वे नेताओं को सदस्यों की विचारधारा से परिचित कराते रहते हैं और यदि कहीं दल-विद्रोह सिर उठा रहा हो, तो उसे शुरू में ही रोक सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने नेताओं को सभा में प्रचलित अन्य विचारों से भी अवगत करा सकते हैं। सचेतकों के माध्यम से ही किसी दल के सदस्य अपने नेता के विचार जान सकते हैं और उन्हें पता चलता है कि उसकी क्या योजनाएं है जिन्हें वह शुरू करना आवश्यक अथवा युक्तिसंगत समझता है। सचेतक दलों के बीच सक्रिय मध्यस्थों का काम करते हैं। उन्हीं के माध्यम से ही वाद-विवाद या सभा के कार्य-संचालन के संबंध में एक दल दूसरे दल से बातचीत कर सकता है।[192]

---

191. दल के महत्वपूर्ण पदाधिकारी के रूप में संसद में प्रमुख सचेतक और दलों तथा समूहों के नेताओं की अहम् भूमिका को देखते हुए संसद में मान्यताप्राप्त दल और समूह के नेता और मुख्य सचेतक (सुविधायें) अधिनियम (1999 का अधिनियम 5) नामक अधिनियम बारहवीं लोक सभा की अवधि के दौरान पारित किया गया। इस अधिनियम में अन्य बातों के साथ-साथ नेताओं और मुख्य सचेतकों के लिए अतिरिक्त सचिवीय और टेलीफोन संबंधी सुविधाओं का प्रावधान है। उन्हें निजी सचिव स्तर का एक श्रेणी-तीन आशुलिपिक उपलब्ध कराया जाएगा।

192. ब्रिटेन में सरकार का मुख्य सचेतक और विरोधी दल का मुख्य सचेतक वह "सामान्य माध्यम" माने जाते हैं जिनके द्वारा सरकारी कार्य संचालन संबंधी वार्ताएं होती हैं; मोरीसन: *गवर्नमेंट एंड पार्लियामेंट, उद्धृत कृति,* पृष्ठ 102 ।

सचेतकों के संबंध में यह ठीक ही कहा गया है कि वे अपने दल के लिए न केवल आघात-मंदक का काम करते हैं बल्कि उसके संकेतक भी हैं। वे न केवल नेता के परामर्शदाता हैं बल्कि दल को एकजुट रखने वाली शक्ति भी। वे विभिन्न क्षेत्रों तथा विचारधाराओं के न केवल विचारमापक हैं, बल्कि सदस्यों के सलाहकार भी हैं।[193]

सरकार का मुख्य सचेतक

लोक सभा में सरकारी दल का मुख्य सचेतक संसदीय कार्य मंत्री होता है।[194] राज्य सभा में संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री मुख्य सचेतक होता है। मुख्य सचेतक प्रत्यक्ष रूप से सभा के नेता के प्रति उत्तरदायी है। उसके कर्त्तव्यों में यह भी शामिल है कि सरकार को संसदीय कार्य के संबंध में परामर्श दे और मंत्रियों से उनके विभागों से संबंधित संसदीय कार्य के संबंध में निकट सम्पर्क बनाए रखे।

जहां तक दल के सदस्यों का संबंध है, उनके विचार जानने और उनके क्रियाकलाप पर नजर रखने का काम दल के नेता की ओर से मुख्य सचेतक का है। वह नेता की इच्छाएं सदस्यों तक पहुंचाता है और नेता को दल में प्रचलित विचारों से अवगत कराता रहता है। जब सदस्यों के रुझानों और मनःस्थितियों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हो, तो वह नेता को उनकी सूचना देता है। सत्रों के दौरान वह, नेता के सलाहकार की हैसियत से प्रतिदिन प्रधान मंत्री से मिलता है। इस प्रतिदिन की निश्चित भेंट के अतिरिक्त वह प्रधान मंत्री से दिन में कई बार थोड़ी-थोड़ी देर के लिए विचार-विमर्श करता है।

मुख्य सचेतक की सहायता के लिए दो राज्यमंत्री और कई बार उप-मंत्री भी होते हैं।[195] उनकी सहायता से वह सत्तारूढ़ दल के सदस्यों पर नियंत्रण रखता है। वह सुनिश्चित करता है कि सभा में गणपूर्ति रहे[196] और मतदान के समय दल के सदस्य पर्याप्त संख्या में सभा में

---

193. सितम्बर, 1952 में कांग्रेस दल सचेतक सम्मेलन में सरकारी मुख्य सचेतक द्वारा दिए गए भाषण से उद्धृत।

194. मुख्य सचेतक को 1949 में मंत्री का दर्जा दिया गया था। 1962 तक उसका दर्जा राज्यमंत्री का था, जब उसे मंत्रिमडल के सदस्य का दर्जा दिया गया। फरवरी, 1966 में लोक सभा संसदीय कार्य मंत्री के सभा का नेता नियुक्त हो जाने के परिणामस्वरूप नई सरकार के मुख्य सचेतक को राज्यमंत्री का दर्जा दिया गया, लेकिन मार्च, 1967 में जब प्रधान मंत्री सभा की नेता बनीं तो मुख्य सचेतक को फिर मंत्रिमंडल के सदस्य का दर्जा दे दिया गया।

195. 30 जून, 1970 से पहले, सरकार के मुख्य सचेतक की सहायता के लिए कई प्रादेशिक सचेतकों के अलावा मुख्य उप-सचेतक होते थे। सरकार के उप-मुख्य सचेतक को संसद सदस्य के रूप में देय वेतन और भत्तों के स्थान पर 1,650 रु. प्रतिमाह दिया जा रहा था— अता. प्र.सं. 951, *लो.स.वा.वि.*, 31.07.1970 ।

196. लोक सभा अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि गणपूर्ति बनाए रखना सरकार की जिम्मेदारी है— *लो.स.वा.वि.* (II), 28.4.1955, का. 5080; साथ ही *देखिए एच.पी. डिबेट्स,* 30.3.1953, कॉ. 3325; और *लो.स.वा.वि.* (II), 2.8.1955, कॉ. 676-77 ।

उपस्थित रहें। इस उद्देश्य से वह सदस्यों को सामान्यत: एक, दो और तीन पंक्ति की पूर्व सूचनाएं भेजता है जो सभा के सामने किसी विषय विशेष मतदान के महत्व को रेखांकित करती है। सभा में गणपूर्ति कराने और उसे बनाए रखने के अतिरिक्त जो भी सभा के कार्य संचालन के लिए अत्यंत आवश्यक है, विशेष अवसरों पर वाद-विवाद की दिशा और उसके स्वरूप आदि के निर्धारण में मुख्य सचेतक का बड़ा हाथ रहता है क्योंकि वह अपने दल की ओर से भाषण करने वालों का चुनाव करता है और उनकी सूची अध्यक्ष को देता है, जिससे कि उनकी ओर 'अध्यक्ष का ध्यान जाने' में सुविधा हो। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्थान पर रखने और अपने दल में एकता बनाये रखने तथा सशक्त रखने की जिम्मेदारी उसी पर है। वह अपने दल के सदस्यों की पृष्ठभूमि, अनुभव, रूझान तथा योग्यताओं आदि को ध्यान में रखते हुए सदस्यों को प्रवर समितियों की सदस्यता तथा अन्य संसदीय या सरकारी कामों के लिए चुनता है। इसके कारण उसके पास सदस्यों को प्रश्रय प्रदान करने की व्यापक शक्ति रहती है जिसके कारण वह सदस्यों को अपने प्रभाव में रख सकता है।

कार्य संचालन के दौरान सरकारी दल तथा विरोधी दलों के सचेतक एक दूसरे के संपर्क में आते हैं, जिससे कि जिन मामलों में दोनों पक्षों की रुचि हो उनके बारे में फैसले किए जाएं और जब दोनों पक्षों को परस्पर समझौता करना सुविधाजनक हो तो कई नाजुक और महत्वपूर्ण अवसरों पर वे एक दूसरे की बात मान लेते हैं। प्रवर समितियों के लिए विरोधी दलों के सदस्यों के चुनाव के मामले में भी सरकार तथा विरोधी पक्ष के सचेतकों के बीच सम्पर्क का बड़ा महत्व है।

सत्तारूढ़ दल और विपक्ष, दोनों के सचेतक संसदीय लोकतंत्र के सुचारू और प्रभावशाली कार्यकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गणपूर्ति करने और सभा के संचालन में सहयोग करने के अपने सामान्य कर्त्तव्यों के अलावा उन्हें अपनी व्यवहार कुशलता के माध्यम से सरकार और विपक्ष के बीच स्थितियों से निपटने के लिए अच्छे और मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने और बनाए रखने होते हैं, जो कि संसदीय कार्य के सुचारू संचालन के लिए पूर्वापेक्षा होती है।[197]

यह प्रश्न कि क्या किसी दल का मुख्य सचेतक अपने दल के कुछ सदस्यों को सभा में लिखित व्हिप जारी कर सकता है या नहीं, 14 दिसम्बर, 1987 को लोक सभा में विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में चर्चा के लिए आया।

यद्यपि इस मामले को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाने की अनुमति दी गई थी परन्तु लोक सभा ने इस पर कोई विशिष्ट निर्णय नहीं लिया क्योंकि इस मामले पर सभा में विचार करने के लिए या विशेषाधिकार समिति को भेजने के लिए आगे कोई प्रस्ताव नहीं लाया गया।[198]

197. पागे समिति की रिपोर्ट, उद्धृत कृति, पैरा 51 ।

198. *देखिए* सुभाष सी. काश्यप: "पार्टी व्हिप्स, पार्लियामेंटरी प्रिविलेज एण्ड एन्टी-डिफैक्शन लॉ" जे.पी.आई., जून, 1988 ।

10. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक

भारत का नियंत्रक-महालेखापरीक्षक संसद का अधिकारी नहीं है। वह एक स्वतंत्र संवैधानिक प्राधिकारी है जो प्रत्यक्षत: सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं है, परन्तु उसका सभा में प्रतिनिधित्व केवल मंत्री के माध्यम से किया जाता है।

> 17 मार्च, 1960 को एक सदस्य ने सुझाव दिया कि महालेखापरीक्षक के बारे में रक्षा मंत्री द्वारा 10 मार्च, 1960 को सभा में की गई कतिपय टिप्पणियों के सम्बन्ध में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से अध्यक्ष को प्राप्त पत्र सभापटल पर रखा जाये। इस संबंध में अध्यक्ष ने टिप्पणी की:
>
> महालेखापरीक्षक इस सभा का अधिकारी नहीं है। वह राष्ट्रपति के अधीन अधिकारी है। संविधान के अंतर्गत वह राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजने के लिए बाध्य है और वह (राष्ट्रपति) उस रिपोर्ट को एक मंत्री के माध्यम से सभा पटल पर रखवाता है।[199]

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करता है। उसे उसके पद से तब तक नहीं हटाया जा सकता है जब तक कि विहित रीति से संसद के प्रत्येक सदन द्वारा किए गए समावेदन पर राष्ट्रपति द्वारा आदेश न दे दिए गए हों।[200]

राष्ट्रपति सामान्यत: प्रधान मंत्री के परामर्श पर नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के पद पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति करता है।[201] अपना पद ग्रहण करने से पहले नियंत्रक-महालेखापरीक्षक राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त व्यक्ति के समक्ष इस प्रयोजन के लिए दिये गए प्ररूप के अनुसार, शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है।[202] नियंत्रक-महालेखापरीक्षक अपने पद पर न रह जाने के पश्चात् भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और पद का पात्र नहीं होता।[203]

---

199. *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 17.3.1960, पृ. 3073; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 18.6.1962, पृ. 5176 ।

200. अनुच्छेद 148(1) के साथ पठित अनुच्छेद 124(4)।

201. प्रधानमंत्री भारत के प्रधान न्यायधीश और लोकसभा में विपक्ष के नेता वाले एक पैनल का गठन कर नियंत्रक महलेखा परीक्षक की नियुक्ति की प्रक्रिया में परिवर्तन लाने की आवश्यकता के बारे में भी गुरूदास गुप्त द्वारा उठाए गए लोकसभा ध्यानकर्षण के जवाब मे 20 मार्च 2013 को वित्त राज्यमंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य में यह कहा गया कि ''नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति हेतु पैनल गठित कर प्रक्रिया में परिवर्तन किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

202. अनुच्छेद 148(2) प्ररूप के नमूने के लिए संविधान की तीसरी अनुसूची का प्ररूप- (*iv*) देखिए।

203. अनुच्छेद 148(4)।

अनेक अर्थों में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बीच हैसियत की समानता है। संविधान में यह व्यवस्था है कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर पद से हटाया जायेगा जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।[204] जहां तक नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के वेतन और सेवा की अन्य शर्तों का संबंध है तो संविधान में यह व्यवस्था है कि वे ऐसी होंगी जो संसद विधि द्वारा अवधारित करे।[205] नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 में प्रावधान है कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर वेतन दिया जायेगा। जहां तक उनकी पदावधि का संबंध है, अधिनियम में यह प्रावधान है कि वह उस तारीख से जिसको वह ऐसा पद ग्रहण करता है, छह वर्ष की अवधि के लिए अथवा जब तक वह पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं करता, जो भी पहले हो, पद धारण करेगा। अधिनियम में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की पेंशन तथा अन्य सेवा शर्तों हेतु विस्तृत उपबंध भी किए गए हैं। अधिनियम के उपबंधों में 1976, 1984, 1987 और पुनः 1994 में संशोधन किये गये हैं। वर्ष 1987 में किए गए संशोधन[206] में यह प्रावधान है कि कोई व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद छोड़ता है, वह उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को संदेय पेंशन के समतुल्य पेंशन और ऐसी पेंशन (जिसके अंतर्गत पेंशन का संराशीकरण शामिल है) कुटुम्ब पेंशन और उपदान का जो उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को अनुज्ञेय है, का हकदार होगा। इसमें यह भी प्रावधान है कि यात्रा भत्ता, किराया मुक्त मकान की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त मकान के मूल्य पर आयकर के संदाय से छूट, सवारी सुविधा, सरकारी भत्ता और चिकित्सा सुविधा से संबंधित सेवा की शर्तें तथा सेवा की ऐसी अन्य शर्तें जो उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को तत्समय लागू है; जहां तक हो सके, किसी सेवारत या सेवानिवृत्त नियंत्रक-महालेखापरीक्षक, यथास्थिति को लागू होंगी।[207]

सेवानिवृत्ति के बाद निम्नलिखित नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की नियुक्ति इस अनुच्छेद की भावना के विरुद्ध नहीं समझी गयी:

श्री वी. नरहरि राव को 1956 में अंतर्राष्ट्रीय बैंक का कार्यकारी निदेशक नियुक्त किया गया।

श्री ए.के. चंदा को 1960 में अनुच्छेद 280 के अंतर्गत बनाए गए तीसरे वित्त आयोग का सभापति नियुक्त किया गया।

देखिए *एल.एस.डिबेट्स,* 12.12.1960, कॉ. 5040-42 ।

204. अनुच्छेद 148(1)।

205. अनुच्छेद 148(3)।

206. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) संशोधन अधिनियम, 1987।

207. *पूर्वोक्त।*

नियंत्रक-महालेखापरीखक के कर्त्तव्य और शक्तियां संसद द्वारा बनाए गए कानून द्वारा निर्धारित की गई हैं।[208] वह रक्षा और रेलवे से संबंधित लेखाओं को छोड़कर संघ और प्रत्येक राज्य के लेखाओं का संकलन करने, और जहां आवश्यक हो उन्हें रखने के लिए जिम्मेदार होता है।[209] वह संघ के, प्रत्येक राज्य के और प्रत्येक ऐसे संघ राज्यक्षेत्र के जिसमें विधान सभा है, प्राप्तियाँ और संवितरण दिखाने वाले अलग-अलग वार्षिक लेखाएं तैयार करने और उन्हें राष्ट्रपति को या राज्यपाल को या प्रशासक, जैसी स्थिति हो, को भेजने के लिए जिम्मेदार होता है। तथापि, राष्ट्रपति नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करने के पश्चात् आदेश द्वारा उसे संघ के लेखाओं या संघ की किन्हीं विशिष्ट सेवाओं अथवा विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से उसे अवमुक्त कर सकता है और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के इस प्रकार अवमुक्त हो जाने के बाद राष्ट्रपति संबंधित लेखा शीर्षों के अंतर्गत वार्षिक प्राप्तियों और संवितरणों को दर्शाने वाले संघ के लेखाओं को तैयार करने और उन्हें प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से भी उसे अवमुक्त कर सकता है। राष्ट्रपति के पूर्व अनुमोदन और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करने के बाद किसी राज्य के राज्यपाल को भी राज्य के लेखाओं के संबंध में ऐसा करने का अधिकार प्राप्त है।[210] जहां नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा लेखों का संकलन किया जाता है उसे विनियोजन लेखा भी तैयार करना और प्रस्तुत करना पड़ता है। वह भारत की संचित निधि से किए गए सभी व्यय, प्रत्येक राज्य और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ राज्यक्षेत्र के सभी व्यय और आकस्मिक निधियों और लोक लेखाओं से संबंधित सभी सौदों का भी लेखा परीक्षण करता है।

---

208. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 ।

209. प्रतिरक्षा संबंधी लेखे प्रतिरक्षा विभाग के वित्तीय सलाहकार द्वारा तैयार किये जाते हैं और रेलवे के लेखे वित्तीय आयुक्त, रेलवे द्वारा तैयार किए जाते हैं।

तथापि, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक कुछ चयनित विभागों (उदाहरणार्थ, खाद्य विभाग, पुनर्वास विभाग, आपूर्ति विभाग, लोक सभा, राज्य सभा आदि) जहां इस प्रयोजनार्थ अलग लेखा कार्यालय विद्यमान थे, के लेखों का अनुरक्षण करने के लिए उत्तरदायी नहीं रहे हैं नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) विधेयक 1971, खंड 10 के बारे में टिप्पणियां।

210. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971, धारा 10 और 11 नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1976, 1984, 1987 और 1994 द्वारा यथासंशोधित।

संघ के विभाग में लेखा परीक्षण से लेखाओं के पृथक्करण का कार्य जो 1 अप्रैल, 1976 को शुरू हुआ था, लगभग सभी संघीय विभागों के अपने-अपने लेखे रखने के साथ पूरा हो गया है और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के पास लेखा परीक्षण का कार्य रह गया है।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक उन निकायों और प्राधिकरणों, जिनका वित्तपोषण पर्याप्त रूप से भारत की संचित निधि या किसी राज्य या विधान सभा वाले किसी संघ राज्यक्षेत्र में से अनुदानों या ऋणों द्वारा किया है, के लेखाओं की लेखापरीक्षा करने के लिए प्राधिकृत है।[211] वह किसी प्राधिकरण द्वारा अनुदान अथवा ऋण मंजूर करने की प्रक्रियाओं की संवीक्षा भी कर सकता है।[212]

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के संघ के लेखाओं संबंधी प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जो उनको संसद के समक्ष रखवाता है।[213] इसी प्रकार, राज्यों के संबंध में वह ऐसे प्रतिवेदन राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत करता है जो इनको राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवाता है।[214]

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन स्वत: लोक लेखा समिति को निर्देशित कर दिए जाते हैं।[215] इन्हीं के आधार पर समिति जांच-पड़ताल करती है और फिर अपना प्रतिवेदन संसद को प्रस्तुत करती है।

> यदि सभा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से कोई जानकारी प्राप्त करना चाहे तो वह जानकारी लोक लेखा समिति के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। परन्तु यदि उस समिति का गठन न किया गया हो तो यह निर्णय करना अध्यक्ष का काम है कि उस मामले में क्या किया जाये बशर्ते कि सदस्य किसी न किसी रूप में चर्चा उठाने की सूचना देते हैं।[216]

यद्यपि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन संक्षिप्त होते हैं, उनमें लोक लेखा समिति को उस विभाग के सारे वर्ष के कार्यकलाप की जानकारी मिल जाती है। जहां तक किसी

---

211. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971, धारा 14 ।
ऋण का अनुदान 'पर्याप्त' माना जाता है यदि यह ऋण 25,00,000 रुपये से कम नहीं है और एक वित्तीय वर्ष में निकाय या प्राधिकरण के कुल व्यय के 75 प्रतिशत से कम नहीं है।

212. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971, धारा 15 ।

213. राष्ट्रपति की ओर से वित्त मंत्री द्वारा रिपोर्टें प्राप्त की जाती हैं और वित्त मंत्री उन रिपोर्टों को संसद के प्रत्येक सदन के पटल पर रखता है।

214. अनुच्छेद 151 (2)।
प्रत्येक राज्य में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के अधीन एक महालेखापाल होता है जिसका काम उस राज्य में होने वाले राज्य तथा केन्द्र के वित्तीय संव्यवहारों का लेखा तैयार करना और उसकी लेखा परीक्षा करना है। संघ राज्यक्षेत्रों के लिए एक महालेखापाल, केन्द्रीय राजस्व होता है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत प्रान्तों में नियुक्त किये गये महालेखापरीक्षक भारत के महालेखापरीक्षक से स्वतंत्र थे परन्तु राज्यों के महालेखापाल संविधान के अंतर्गत भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के अधीन हैं क्योंकि वह राज्यों समेत सारे भारत के वित्तीय प्रशासन के लिए जिम्मेदार हैं।

215. नियम 308 ।

216. *देखिए लो.स.वा.वि.* 18.6.1962, पृ. 5176-80 ।

सरकारी विभाग द्वारा किए गए खर्च की तकनीकी जांच का संबंध है, लेखापरीक्षक विभाग अपने विशेष ज्ञान और अनुभव के आधार पर उसकी गहरी जांच करता है। उसके बाद लोक लेखा समिति सामान्य दृष्टिकोण से उसकी परीक्षा करती है।[217]

भारत का नियंत्रक-महालेखापरीक्षक लोक लेखा समिति की सहायता भी करता है। वह लेखाओं में आपत्तिजनक मामले ढूंढ़ निकालता है और उन्हें उनके सम्बन्ध में प्राप्त की गयी अन्य जानकारी समेत समिति के सामने रखता है। उसके बाद उन विषयों की आगे जांच, विचार तथा उनके संबंध में प्रतिवेदन देना समिति का काम है।[218]

लोक लेखा समिति के कहने पर कभी-कभी नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ने समिति द्वारा विनियोग लेखाओं की जांच से उत्पन्न होने वाले मामलों की विस्तृत और आगे जांच की है।[219]

समिति द्वारा मांगी गयी किसी भी टिप्पणी या ज्ञापन को संबंधित मंत्रालय द्वारा अनिवार्य रूप से पहले नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को भेजा जाता है ताकि उस में दिए गए तथ्यों का सत्यापन किया जा सके। उसके बाद ही वह ज्ञापन समिति को भेजा जाता है।[220]

समिति की पूर्ववर्ती सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही दर्शाने वाले विवरण सहित सभी पत्र जो समिति के सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं, उन्हें सामान्यत: नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को भी भेजा जाता है। समिति के सभापति के निदेश में समिति के सचिवालय द्वारा तैयार किये गये प्रारूप प्रतिवेदन की एक प्रति तथ्यात्मक सत्यापन के लिए नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को अग्रिम रूप से भेजी जाती है।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक लोक लेखा समिति की बैठकों में भी उपस्थित होता है। लोक लेखा समिति के आग्रह पर नियंत्रक महालेखा परीक्षक ने कई बार लेखा प्रतिवेदनों के

---

217. *एस.एल. शकधर:* "कन्ट्रोलर एन्ड ऑडिटर-जनरल आफ इंडिया एंड द यू.के." *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* खण्ड IV संख्या 4, 1950 पृ. 393-410 ।

218. सरकारी साक्षियों का साक्ष्य लेते समय नियंत्रक-महालेखापरीक्षक लोक लेखा समिति के सभापति के दायीं ओर बैठता है। वह सभापति को साक्ष्य के दौरान सहायता देता है और सभापति की अनुमति से वह साक्षी से किसी बात को स्पष्ट करने के लिए कह सकता है और उस मामले के तथ्यों के संबंध में वक्तव्य दे सकता है।
नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसका कोई वरिष्ठ अधिकारी लोक लेखा समिति की अन्य बैठकों में भी उपस्थित होता है और जिस लेखे की जांच की जा रही हो उनसे उठने वाले महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में सदस्यों को स्पष्टीकरण देता है।

219. उदाहरण के लिए *देखिए* (छठा प्रतिवेदन लोक लेखा समिति—पहली लोक सभा) आठवां और अट्ठाइसवां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति—दूसरी लोक सभा) लेखापरीक्षा प्रतिवेदन (रेलवे), 1960 ।

220. वित्त विभाग, भारत सरकार, शिमला, का.ज्ञा.सं.डी./ 6368-एफ, दिनांक 17.8.1934, साथ ही *देखिए* पांचवां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति—पहली लोक सभा) पैरा 7 ।

बारे में औपचारिक प्रस्तुति दी।[221] उसकी उपस्थिति का उल्लेख समिति के कार्यवाही वृत्तान्त में किया जाता है।[222]

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति को उन मामलों का आगे पता लगाने में भी सहायता देता है जो कि लेखापरीक्षा प्रतिवेदन (वाणिज्यिक) या सरकारी कम्पनियों या कानूनी निगमों से संबंधित लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों में उठाए गए हों, जिन्हें समिति ने जांच के लिए अपने हाथ में लिया है। समिति लेखापरीक्षा प्रतिवेदन में उठाए गए मामलों के बारे में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से 'महत्वपूर्ण मुद्दों संबंधी ज्ञापन' भी मंगवाती है। उसके बाद लेखापरीक्षक प्रतिवेदन और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा दिए गए "ज्ञापन" के आधार पर पूछे जाने वाले उपयुक्त प्रश्नों की रूपरेखा तैयार की जाती हैं।

जांचाधीन उपक्रम से संबंधित लेखापरीक्षा रिपोर्ट (वाणिज्यिक) में उठाये गए मामलों पर सरकारी उपक्रमों, मंत्रालयों के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लेते समय, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसका प्रतिनिधि समिति की सहायता करता है और सभापति की अनुमति से साक्षी से किसी मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए कह सकता है और किसी मामले के तथ्यों के बारे में वक्तव्य दे सकता है।[223]

किसी उपक्रम के अधिकारियों का साक्ष्य लेने से पूर्व सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति कभी-कभी लेखा परीक्षा पैराओं में उठाए गए किसी प्रश्न पर स्पष्टीकरण के लिए नियत्रंक-महालेखापरीक्षक के साथ औपचारिक बैठक करती है।[224]

---

221. 27 दिसम्बर 2010 को, '2जी एवं 3जी स्पेक्ट्रम के आबंटन सहित दूरसंचार क्षेत्र में हाल के क्रियाकलाप' की जाँच के संबंध में तथा 12 सितम्बर 2012 को 'कोल ब्लॉकों का आवंटन एवं कोयला उत्पादन में संवर्द्धन' की जांच के संबंध में।

222. समिति की बैठकों की कार्यवाही समिति के प्रतिवेदन के भाग 2 के रूप में दी जाती है और प्रतिवेदन का अंग बन जाती है।

223. जब जांच किसी लेखापरीक्षा पैरा पर आधारित हो तो सरकारी उपक्रमों अथवा संबंधित मंत्रालय के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लेते समय, सचिवालय के अधिकारी सभापति के बायीं ओर बैठते हैं और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और उसके प्रतिनिधि सभापति के दायीं ओर बैठते हैं। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक चर्चा में केवल उन विषयों पर बातचीत होने तक भाग लेता है जिनका संबंध लेखापरीक्षा पैराओं से होता है। उसके बाद वह समिति कक्ष से बाहर आ जाता है।

224. राउरकेला इस्पात संयंत्र और एयर इंडिया के मामले में समिति ने 19 जनवरी 1965 और 30 नवम्बर, 1965 को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के साथ अनौपचारिक चर्चा की थी। उसके बाद सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति ने अपने जांचाधीन विषयों के संबंध में भी नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के साथ अनौपचारिक चर्चा की थी:

   (i) 15 और 16 जुलाई, 1983 को "सेन्ट्रल कोल वॉशरीज्" की जांच के संबंध में ।

   (ii) 18 और 19 जुलाई, 1983 को दुर्गापुर इस्पात संयंत्र के बारे में "सेल" की जांच के संबंध में ।

वित्त मंत्री को संसद में बहुधा उन मामलों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं जिसका निपटान उसकी ओर से नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा किया जाता है।

> अध्यक्ष मावलंकर ने निर्णय दिया कि जब तक नियंत्रक-महालेखापरीक्षक लेखा परीक्षा करने के अतिरिक्त लेखा रखने के लिए जिम्मेदार है तब तक लेखा रखने के संबंध में प्रश्नों की ग्राह्यता का निर्णय उसी प्रकार किया जाना चाहिए जैसाकि किसी अन्य मंत्रालय से संबंधित प्रश्नों का किया जाता है।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के लेखा परीक्षा संबंधी कृत्यों के बारे में जो प्रश्न दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक मामलों से संबंधित होते हैं। उन्हें सामान्यत: स्वीकार नहीं किया जाता, परन्तु नीति संबंधी मामलों के संबंध में तथ्य या आँकड़े जानने के लिए पूछे गये प्रश्न लिखित उत्तर के लिए स्वीकार कर लिए जाते हैं जिससे कि अनुपूरक प्रश्न न पूछे जा सकें। इन प्रश्नों का सभा में उत्तर देने की जिम्मेदारी वित्त मंत्री पर है। व्यवहार में वह उत्तर के लिए सामग्री नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से मंगवा लेता है और उसे सभा के सामने रख देता है। यदि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ने उसे कोई और सामग्री दी हो तो उसके आधार पर वह अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर भी दे सकता है। यदि मंत्री के पास कोई जानकारी न हो तो वह सभा से कह देता है कि वह नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से इस मामले की जांच करने के लिए कहेगा।[225]

(iii) 12 और 13 जुलाई, 1984 को मिनरल एक्सप्लोरेशन कारपोरेशन लिमिटेड की जांच के संबंध में तथा 10 सितम्बर, 1984 को इसके प्रशासनिक इस्पात और खान मंत्रालय (इस्पात विभाग) को जांच के संबंध में ।

(iv) 10 सितम्बर, 1985 को भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड की जांच के संबंध में ।

(v) 31 दिसम्बर, 1985 को भारतीय पैट्रो रसायन निगम लि. और 24 मार्च, 1986 को उसके प्रशासनिक मंत्रालय पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस की जांच के बारे में ।

(vi) 15 जुलाई, और 17 सितम्बर, 1986 को ईस्टर्न कोलफील्ड लि. और 7 जनवरी, 1987 को उसके प्रशासनिक मंत्रालय उद्योग (कोल विभाग) की जांच के बारे में ।

(vii) 1 सितम्बर, 1986 को, कोचीन शिपयार्ड लि. और 12 जनवरी, 1987 को उसके प्रशासनिक मंत्रालय भूतल परिवहन की जांच के बारे में ।

(viii) 29 और 30 नवम्बर, 1990 को राष्ट्रीय खनिज विकास निगम लि. की जांच के बारे में।

(ix) 29 तथा 30 मार्च, 27 अप्रैल, 25 जून और 18 अगस्त, 1993 को भारतीय सीमेंट निगम लि. की जांच के बारे में ।

(x) 6, 7, 16 और 17 सितम्बर, 1993 को इंडियन एयर लाइंस की जांच के बारे में ।

(xi) 28 जनवरी, 1994 तथा 10 फरवरी, 1994 को भारतीय गैस प्राधिकरण लि. की जांच के बारे में।

(xii) 12 तथा 13 जनवरी, 1995 को मझगांव डॉक लि. की जांच के बारे में ।

(xiii) 7, 8 तथा 9 अगस्त, 1995 को नेशलन हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर कारपोरेशन लि. की जांच के बारे में ।

225. शकधर: "कंट्रोलर एंड ऑडिटर-जनरल ऑफ इंडिया एंड यू.के." उद्धृत कृति।

11. महान्यायवादी

महान्यायवादी संसद अथवा मंत्रिपरिषद का सदस्य नहीं होता है। तथापि, उसे यह अधिकार है कि वह किसी भी सदन में, सदनों की किसी संयुक्त बैठक में और संसद की किसी समिति में जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया हो, बोल सकता है और उसकी कार्यवाहियों में अन्यथा भाग ले सकता है किन्तु वह मतदान नहीं कर सकता।[226] उसे संसद सदस्यों के सभी विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां प्राप्त हैं।[227] जब वह सभा में उपस्थित होता है तो सरकारी पक्ष की बेंचों पर बैठता है।[228]

महान्यायवादी की नियुक्ति[229] राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सलाह से करता है और वह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपना पद धारण करता है।[230] उसकी नियुक्ति या सेवानिवृत्ति के लिए कानून में कोई आयु सीमा नहीं रखी गई है।

महान्यायवादी के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र व्यक्ति भारत का नागरिक होना चाहिए जो कम से कम पांच वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश, या किसी उच्च

---

226. *देखिए* अनुच्छेद 88 ।
227. *देखिए* अनुच्छेद 105 (4)।
228. 29 अप्रैल 1963, को महान्यायवादी सभा में सरकारी पक्ष की सबसे अगली बैंच की सीट सं. 4 पर बैठा, *देखिए* कार्यवाही का सारांश, 29.4.1963; 1 मई, 1969, को महान्यायवादी सभा में सरकारी पक्ष की सबसे अगली बैंच की सीट सं. 6 पर विधि मंत्री की बगल में बैठा।
229. जैसा कि "अटार्नी-जनरल" शब्द से स्पष्ट है कि यह पद हमारे देश की राजनीतिक व्यवस्था में इंग्लैंड के इसी नाम के पद के आधार पर रखा गया है। इंग्लैंड में इस पद की आवश्यकता इसीलिए पड़ी थी कि सम्राट अपनी ओर से अपने किसी न्यायालय में उपस्थित नहीं हो सकता था और इसलिए सम्राट को न्यायवादी या प्रतिनिधि की जरूरत थी। अतः इस पद का आरम्भ मुख्यतया न्यायालयों की कार्यवाही से संबंधित है। इंग्लैंड में अटार्नी-जनरल सम्राट का प्रमुख कानूनी अधिकारी है। इस पद पर नियुक्ति राजनीतिक आधार पर होती है और सामान्यतः सत्तारूढ़ दल का समर्थन करने वाले किसी सफल बैरिस्टर को अटार्नी-जनरल बनाया जाता है। फलस्वरूप, सरकार के बदलते ही नया अटार्नी-जनरल नियुक्त कर दिया जाता है।
230. अनुच्छेद 76 (1) और (4), चूंकि ऐसा कोई कृत्य नहीं है जो राष्ट्रपति संविधान के अंतर्गत अपने व्यक्तिगत विवेक से कर सके, यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 76(1) के अंतर्गत महान्यायवादी की नियुक्ति करने में और उसी अनुच्छेद के खंड (4) के अंतर्गत उसे पदच्युत करने में राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

    इंग्लैंड तथा राष्ट्रमंडल के अन्य प्रमुख देशों, जैसे आस्ट्रेलिया, कनाडा और न्यूजीलैंड में महान्यायवादी सदा मंत्री होता है और विधानमंडल का सदस्य होता है। वह कानूनी मामलों का प्रभारी होता है और सरकार की ओर से कानूनी प्रश्नों को निपटाता है। न्यायालयों को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वे उसे साक्षी के रूप में साक्ष्य देने के लिए विवश कर सकें।

न्यायालय में दस वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो और जो राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवेत्ता हो।[231] उसको उतना पारिश्रमिक प्राप्त होता है जो राष्ट्रपति अवधारित करे।[232]

महान्यायवादी को भारत सरकार को विधि संबंधी ऐसे विषयों पर सलाह देनी होती है जो उस सरकार द्वारा निर्देशित किए जायें और विधिक स्वरूप के ऐसे अन्य कर्त्तव्यों का पालन करना होता है, जो समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा उसे सौंपे जायें। उसे सर्वोच्च न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय में मुकद्दमों, अपीलों तथा अन्य प्रक्रियाओं में सरकार की ओर से पेश होना पड़ता है, जिनसे भारत सरकार का सम्बन्ध हो।[233] उसे सभा और अध्यक्ष की ओर से भी न्यायालयों में पेश होना पड़ता है।[234]

महान्यायवादी का यह भी कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय के निर्देशित किसी मामले में सरकार का प्रतिनिधित्व करे और उन कृत्यों का निवर्हन करे जो उसको इस अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन प्रदान किए गए हों।[235]

महान्यायवादी को अपने कर्त्तव्यों के पालन में भारत के सभी न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार है।[236] तथापि, महान्यायवादी भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी विश्वविद्यालय, सरकारी विद्यालय या महाविद्यालय, स्थानीय प्राधिकरण, लोक सेवा आयोग, पत्तन न्यास, पत्तन आयुक्त, सरकारी सहायता या प्रबंधन वाले अस्पताल, कम्पनी अधिनियम,

---

231. अनुच्छेद 124 (3) के साथ पठित अनुच्छेद 76 (1)।

232. अनुच्छेद 76 ।

देखिए विधि अधिकारी (सेवा की शर्तें), नियम 1987, नियम 7 ।

233. अनुच्छेद 76 (2) साथ ही *देखिए* विधि अधिकारी (सेवा की शर्तें) नियम, 1987, नियम 5।

234. महान्यायवादी 28 अगस्त, 1961 को अध्यक्ष की ओर से उच्चतम न्यायालय में पेश हुए जब 25 अगस्त, 1961 को सभा ने एक प्रस्ताव पास कर के महान्यायवादी को हिदायत दी थी कि वह बिलट्ज के सम्पादक तथा संवाददाता की ओर से उच्चतम न्यायालय में की गयी रिट याचिका के संबंध में अध्यक्ष के प्रतिनिधि के रूप में पेश हों और उस मामले की पैरवी करें— *देखिए एल.एस. डिबेट्स*, 25.8.1961, कॉ. 5058 ।

235. सरकारी कार्य में व्यवधान न हो इसके लिए महान्यायवादी को निजी मामले लेने की अनुमति नहीं है— *एल.एस. डिबेट्स,* 25.7.1968, अता. प्र.सं. 948, साथ ही *देखिए* विधि अधिकारी (सेवा की शर्तें) नियम, 1987, नियम 8(1) ।

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27(क) में प्रावधान है कि अगर न्यायालय को किसी मामले में यह लगे कि संविधान की व्याख्या के संबंध में कोई महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित है [यानि अनुच्छेद 132 (1) अनुच्छेद 147 के साथ पठित के संदर्भ में ऐसा प्रश्न] तब यदि प्रश्न सरकार से संबंधित है तो महान्यायवादी को सूचना दिये जाने तक न्यायालय उसका समाधान नहीं करेगा।

236. अनुच्छेद 76 (3)।

1956 की धारा 617 में यथापरिभाषित किसी सरकारी कंपनी, सरकारी स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी निगम, या सरकार की प्रधान रुचि वाले किसी निकाय या संस्था को छोड़कर किसी अन्य पक्ष को सलाह या समर्थन नहीं दे सकता।[237]

महान्यायवादी और उसके बाद किसी राज्य के महाधिवक्ता को अन्य वकीलों की तुलना में अग्रता प्राप्त है और उच्चतम न्यायालय को महान्यायवादी को किसी कार्यवाही की सूचना जारी करने का अधिकार तथा महान्यायवादी भी किसी कार्यवाही में सुनवाई का आवेदन कर सकता है।[238]

लोक सभा के समक्ष विधायी प्रस्तावों के संदर्भ में विवादों में निर्णय लेने में लोक सभा और अध्यक्ष की सहायता के लिए महान्यायवादी ने कई अवसरों पर अध्यक्ष या सभा के सुझाव पर सभा को सम्बोधित किया है और सभा के समक्ष आए मामलों के कानूनी और संवैधानिक पहलुओं पर अपनी राय व्यक्त की है। तथापि, अध्यक्ष किसी विधेयक की शक्तिमत्ता के बारे में महान्यायवादी से सलाह नहीं लेता पर यदि सरकार चाहे तो महान्यायवादी से परामर्श कर सकती है।[239]

जब सभा में महान्यायवादी की उपस्थिति आवश्यक समझी जाती है तो इस उपस्थिति की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है।[240]

---

237. *देखिए* विधि अधिकारी (सेवा की शर्तें) नियम, 1987, नियम 8(क)।

238. *देखिए* आदेश 43, नियम 1 और 2, "उच्चतम न्यायालय नियम" 1966 ।

239. *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 22.4.1963, कॉ. 11214; 26.4.1963, कॉ. 12310 ।

240. निम्नलिखित अवसरों पर महान्यायवादी सभा में अपनी राय व्यक्त करने के लिए उपस्थित था और उसकी उपस्थिति की व्यवस्था सरकार द्वारा की गई थी।

25 फरवरी, 1950, को निवारक नजरबन्दी विधेयक, 1950 के सम्बन्ध में अपनी राय देने के लिए—*पी.डिबेट्स* (II), 25.2.1950, पृ. 890-95 ।

9 मई, 1953 को विन्ध्य प्रदेश विधान सभा (निरर्हता का निवारण) विधेयक, 1953 की संवैधानिकता के बारे में अपनी राय देने के लिए—*एच.पी. डिबेट्स* (II), 9.5.1953, कॉ. 6304-16 ।

28 फरवरी, 1956 का विक्रय कर विधि विधिमान्यकरण विधेयक, 1956 के संबंध में अनुच्छेद 286(2) के निर्वचन पर अपनी राय देने के लिए—एल.एस. डिबेट्स, (II), 28.2.1956, कॉ. 1948-49 ।

29 अप्रैल, 1963 को अनिवार्य जमा योजना विधेयक, 1963 पर चर्चा में भाग लेने के लिए—*एल.एस. डिबेट्स,* 29.4.1963, कॉ. 12752-72 ।

4 अगस्त, 1993, को निम्नलिखित पर अपनी राय देने के लिए—

(i) चुनाव कार्य के लिए तैनात अधिकारियों और कर्मचारियों के संबंध में निर्वाचन आयोग के अनुशासनिक प्राधिकार की सीमा और उसका क्षेत्र; और

तथापि, कुछ अवसरों पर इसकी व्यवस्था सचिवालय द्वारा की गई क्योंकि उन मामलों में सरकार सीधे शामिल नहीं थी।[241]

(ii) कानून और व्यवस्था बनाए रखना मुख्यत: राज्य का विषय है, इस संवैधानिक और कानूनी-स्थिति को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए बलों की तैनाती के मामले में प्राधिकार की सीमा और उसका क्षेत्र।
(*लो.स.वा.वि.,* 4.8.1993, पृ. 353-56)।

241. उदाहरणार्थ, 12 मार्च, 1954 को भारतीय पशु संरक्षण विधेयक, 1952 (गैर-सरकारी विधेयक) पर सेठ गोविन्द दास द्वारा चर्चा के दौरान एक सदस्य डॉ. पी.एस. देशमुख ने सुझाव दिया कि विधेयक पर आगे विचार स्थगित कर दिया जाये ताकि सभा महान्यायवादी को सुन सके। तदनुसार, वाद-विवाद को स्थगित कर दिया गया। जब सभा द्वारा 1 मई, 1954 को विधेयक पर आगे विचार किया गया, तब महान्यायवादी उपस्थित था जिसने एक वक्तव्य दिया। उस दिन, सभा में अनुरोध किया गया कि जब सभा द्वारा विधेयक पर आगे विचार किया जाए तब महान्यायवादी भी उपस्थित रहे। अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि महान्यायवादी से तदनुसार अनुरोध किया जाए। जब 2 अप्रैल, 1955 को विधेयक आगे विचार किए जाने हेतु सभा के समक्ष आया तब महान्यायवादी उपस्थित था। (एल.एस. डिबेट्स, 12.3.1954 कॉ. 2018; 1.5.1954 कॉ. 6239 ।

चार अन्य मामलों में संसदीय समितियों के कार्य के संबंध में उसकी उपस्थिति को अनिवार्य समझा गया—अध्यक्ष ने महान्यायवादी को *मुद्‌गल मामले* (सदस्य के आचरण संबंधी समिति, 1951) की कार्यवाही शुरू करने और जांच के दौरान उपस्थित रहने का निदेश दिया; 17 अप्रैल, 1956, को महान्यायवादी नियम समिति की बैठक में अनुच्छेद 368 की अपेक्षाओं के आलोक में संविधान संशोधन के विधेयक को पारित करने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर अपनी राय देने के लिए उपस्थित हुआ; महान्यायवादी गैर-कानूनी गतिविधियां (निवारण) विधेयक, 1967, संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए उपस्थित हुआ; और उसने विधेयक की शक्तिमत्ता, और वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य सम्मेलन करने और संगम या संघ बनाने के मौलिक अधिकारों पर विधेयक द्वारा प्रस्तावित प्रतिबंधों के औचित्य पर अपनी राय व्यक्त की—*संयुक्त समिति का प्रतिवेदन,* पैरा 8 ।

1 मई, 1969 को महान्यायवादी कृषि सम्पदा (वित्त विधेयक का खण्ड 24) पर सम्पत्ति कर लगाने के लिए संसद की शक्ति के बारे में अपनी राय देने के लिए सभा में उपस्थित हुआ। प्रश्न उसे पहले भेज दिए गए थे और उनके आधार पर उसने अपना वक्तव्य दिया, मामले के संबंध में अनुपूरक प्रश्न किए गए—*एल.एस. डिबेट्स,* 1.5.1969, कॉ. 224-48; महान्यायवादी को अपनी राय देने के लिए बुलाने के सदस्यों के अनुरोध पर उप-प्रधानमंत्री की सहमति के बाद सचिव ने पत्र द्वारा उसको आमंत्रित किया था।

महान्यायवादी ने 15 फरवरी और 8 अप्रैल, 1988 को बोफोर्स संविदा की जांच हेतु गठित संयुक्त समिति को सम्बोधित किया और जांच में अन्तर्ग्रस्त महत्वपूर्ण कानूनी विषयों को स्पष्ट किया—*संयुक्त समिति का प्रतिवेदन,* पैरा 8.1 ।

स्थिति यह है कि महान्यायवादी सभा में स्वयं सभा द्वारा पारित किसी प्रस्ताव पर सरकार के अनुरोध पर या यदि सभा के समक्ष किसी मामले पर अध्यक्ष उसकी बात सुनना चाहे तो अध्यक्ष के अनुरोध पर उपस्थित हो सकता है।

सदस्यगण सभा के समक्ष किसी विधेयक या कार्य के संबंध में महान्यायवादी से उपस्थित रहने का आग्रह करने वाले प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं। इस तरह की सूचनाओं को स्वीकार किया जाता है और सभा इन पर निर्णय लेती है।[242]

जब महान्यायवादी की राय उसके द्वारा सभा की कार्यवाही में भाग लेने से पहले ही सदस्यों को परिचालित कर दी गई हो, तो सदस्य उन प्रश्नों की अग्रिम सूचना दे सकते हैं जो कि वे महान्यायवादी से पूछना चाहते हैं। उन प्रश्नों को महान्यायवादी और संबंधित मंत्री को भेजा जा सकता है।[243]

सभा की कार्यवाही में भाग लेते समय महान्यायवादी से उसके द्वारा व्यक्त किए गए विचारों पर जिरह नहीं की जा सकती। लेकिन सदस्यों को कतिपय मुद्दों पर स्पष्टीकरण, के

---

242. 27 अप्रैल, 1963, को एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया और 29 अप्रैल, 1963, को महान्यायवादी अनिवार्य जमा योजना विधेयक, 1963 पर चर्चा में भाग लेने के लिए सभा में उपस्थित हुआ— *एल.एस. डिबेट्स,* 27.4.1963, कॉ. 12525 ।

3 दिसम्बर, 1966, को संविधान (तेईसवां संशोधन) विधेयक, 1966, के संबंध में अपनी राय देने के लिए महान्यायवादी को लोक सभा में बुलाने का प्रस्ताव सभा ने अस्वीकार कर दिया— *एल.एस. डिबेट्स,* 3.12.1966, कॉ. 7314 ।

25 नवम्बर, 1968 को भारतीय रेल (संशोधन विधेयक), 1968 के संवैधानिक पहलुओं पर सभा को संबोधित करने के लिए महान्यायवादी को आमंत्रित करने का प्रस्ताव सभा ने अस्वीकार कर दिया—*एल.एस. डिबेट्स,* 25.11.1968, कॉ. 294 ।

19 अगस्त, 1974 को सदस्यों द्वारा उठाई गई संवैधानिक आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त परिलब्धियां (अनिवार्य जमा) विधेयक, 1974 पर विचार करने में सभा सक्षम है या नहीं, इस प्रश्न पर लोक सभा को सलाह देने के लिए महान्यायवादी को सभा में बुलाने का प्रस्ताव सभा ने अस्वीकार कर दिया—*एल.एस. डिबेट्स* 19.8.1974, कॉ. 328-33 ।

5 मई, 1988, को जब रक्षा मंत्री ने बोफोर्स संविदा के बारे में संयुक्त संसदीय समिति के संबंध में हुई चर्चा पर अपने उत्तर के दौरान महान्यायवादी की राय का हवाला दिया तो कुछ सदस्यों ने व्यवस्था का प्रश्न उठाते हुए कहा कि महान्यायवादी को स्थिति स्पष्ट करने के लिए सभा में आने के लिए कहा जाना चाहिए। अध्यक्ष ने कहा कि सदस्य महान्यायवादी से सभा के समक्ष विधेयक अथवा अन्य कार्य के संबंध में सभा में उपस्थित होने के लिए प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं और यदि ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो सभा उस पर निर्णय ले सकती है।

तत्पश्चात् प्राप्त सूचनाएं अस्वीकार कर दी गईं क्योंकि संयुक्त संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा पहले ही पूरी हो चुकी थी। *लो.स.वा.वि.,* 5.5.1988, पृ. 280-83 ।

243. *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 29.4.1963, कॉ. 12641 ।

लिए कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति दी जा सकती है।[244] सभा में महान्यायवादी द्वारा दिए गए वक्तव्य पर कोई चर्चा उठाने की अनुमति नहीं दी जाती।

> 1 मई, 1954 को जब महान्यायवादी ने भारतीय पशु परिरक्षण विधेयक की अधिकारातीत प्रकृति के सम्बन्ध में वक्तव्य दिया तो एक सदस्य ने महान्यायवादी के विचारों के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए अध्यक्ष से अनुमति मांगी। अध्यक्ष ने कहा कि महान्यायवादी द्वारा सभा में दिए वक्तव्यों पर चर्चा उठाने की अनुमति देने की प्रथा नहीं है।[245]

अध्यक्ष की ओर से प्रक्रिया सम्बन्धी मामलों या संविधान के उपबन्धों के सम्बन्ध में उसकी राय लेने के उद्‌देश्य से महान्यायवादी को मामले निर्देशित किये गये हैं। ऐसे मामले उसे सीधे निर्देशित किये जाते हैं और महान्यायवादी सीधे ही अपनी राय दे देता है। अध्यक्ष के लिए जरूरी नहीं है कि उसकी राय पर चले लेकिन वह विनिश्चय करने से पहले उसका ध्यान रखता है।[246]

---

244. *पूर्वोक्त,* कॉ. 12753 ।

245. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 1.5.1954, कॉ. 6289 ।

246. अध्यक्ष की ओर से महान्यायवादी को निर्देशित मामलों का उल्लेख तिथि सहित नीचे किया गया है:

संविधान के अनुच्छेद 368 का निर्वचन, जिसमें संविधान का संशोधन करने वाले विधेयकों के पारित करने की विशेष प्रक्रिया विहित की गयी है–15.5.1951 ।

क्या सभा में किसी ऐसे विषय की चर्चा की जा सकती है जो किसी न्यायालय के विचाराधीन हो—29.9.1955 ।

सभा में पुरस्कार प्रतियोगिता विधेयक, 1955 पर चर्चा के दौरान वही प्रश्न उठ सकते हैं कि नहीं जो कि मैसर्स *आर.एम.डी.सी. लिमिटेड बनाम बम्बई राज्य के* मुकदमें में उच्चतम न्यायालय के विचाराधीन हैं—20.9.1955।

क्या संविधान के अनुच्छेद 93 का सही निवर्चन यह है कि अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ने से पहले उपाध्यक्ष पद से त्यागपत्र देना जरूरी है—4.3.1956 ।

क्या सरकार इस बात के लिए बाध्य है कि वह राज्यपाल की रिपोर्ट की प्रति सभापटल पर रखे जिसके आधार पर राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 356 (1) के अंतर्गत कार्यवाही की हो—28.4.1956 ।

सभा के सत्रावसान का उसके सामने निलम्बित विषयों पर क्या प्रभाव पड़ता है—10.8. 1956 ।

क्या दिल्ली (निर्माण कार्य नियंत्रण) विनियमों के नियम 5 (12) (1) और 5 (3) (1) के अंतर्गत लगाये गये प्रभार कर हैं या कि शुल्क; और क्या इस अधिनियम की धारा 19 में जो नियम

बनाने की शक्ति दी गयी है उसके अनुसार विनियमों द्वारा ऐसे प्रभार लगाये जा सकते हैं या नहीं— 23.1.1957 ।

12. मुख्य निर्वाचन आयुक्त

लोक सभा सम्यक रूप से गठित तभी समझी जाती है जब निर्वाचन आयोग द्वारा अधिसूचना जारी कर दी गई हो जिसमें अधिसूचना जारी होने की तारीख तक सभी निर्वाचित अथवा नामनिर्दिष्ट सदस्यों के नाम अंतर्विष्ट हों।[247]

क्या यू.के. की संसद की यह प्रथा कि संसद का एक सदन अपने किसी सदस्य को दूसरे सदन द्वारा बुलाये जाने की अनुमति नहीं देता जब तक कि ऐसी उपस्थिति के संबंध में कोई संदेश प्राप्त न हुआ हो या सदस्य ने उपस्थित होने की सहमति न दे दी हो, संविधान के अनुच्छेद 105 (3)/194 (3) के अनुसरण में भारत में उस मामले में लागू है जहां किसी संसद सदस्य को किसी राज्य के विधानमंडल या उसकी समिति के सामने साक्ष्य देने के लिए उपस्थित होने के लिए कहा जाये—26.6.1958 ।

क्या आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के अंतर्गत जारी किया गया पंजाब गन्ना (गुड़ बनाने के लिए प्रयोग का निषेध) आदेश, 1959, संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) और (छ) के प्रतिकूल हैं या नहीं—12.5.1959 ।

क्या राष्ट्रपति, संविधान के अनुच्छेद 87 (1) के अंतर्गत समवेत संसद के दोनों सदनों के सामने अपना अभिभाषण अंग्रेजी या हिन्दी के अतिरिक्त और किसी भाषा में दे सकता है—10.12.1963 ।

उपाध्यक्ष द्वारा अपने पद से इस्तीफे की वापसी के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 94 का निर्वचन—20.8.1983 ।

सभा भंग होने पर अध्यक्ष के इस्तीफा देने के अधिकार के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 94 और 179 का निर्वचन—30.9.1985 ।

संविधान (52वां संशोधन) अधिनियम, 1985 और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों से संबंधित मुद्दे—24.3.1987 ।

किसी सदस्य को उसके राजनीतिक दल से निष्कासन के परिणामस्वरूप उसे सभा में असंबद्ध मानने के अध्यक्ष के निर्णय के संबंध में संविधान (52वां संशोधन) अधिनियम, 1985 और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के निर्वचन के बारे में उस सदस्य द्वारा उठाए गए प्रश्न—27.5.1987 ।

क्या कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्त्ति सौमित्र सेन को हटाए जाने के प्रस्ताव के संबंध में सचिवालय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया संगत संवैधानिक प्रावधानों की समीक्षा में खरा उतरेगी (17 अगस्त, 2011); न्यायमूर्त्ति सेन को लोकसभा सदस्यों द्वारा उठाए गए मुद्दों/आरोपों का उत्तर देते हुए वाद-विवाद कें अंत में अपने बचाव हेतु पक्ष रखने का लोकसभा में दूसरा अवसर उपलब्ध कराया जाना कानूनी रूप से अनिवार्य है (25 अगस्त 2011); और लोक सभा को न्यायमूर्त्ति सेन को हटाए जाने हेतु प्रस्ताव पर कार्यवाही करनी चाहिए यदि उनके द्वारा दिया गया त्यागपत्र राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है (2 सितम्बर 2011)।

247. *देखिए* लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 73 ।

निर्वाचन आयोग में एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उतने अन्य निर्वाचन आयुक्त होते हैं, यदि कोई हो, जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे।[248]

16 अक्तूबर, 1989 को निर्वाचन आयोग को दो आयुक्तों और एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त सहित पहली बार बहु-सदस्यीय बनाया गया। तथापि, सरकार द्वारा पुनः 2 जनवरी, 1990 को इसे एकल सदस्यीय निकाय बना दिया गया। यद्यपि प्रभावित आयुक्तों में से एक ने सरकार के इस निर्णय को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी, उच्चतम न्यायालय ने इस संबंध में सरकार के इस निर्णय को सही ठहराया।[249] तदुपरांत, 1 अक्तूबर, 1993 को आयोग को मुख्य निर्वाचन आयुक्त के अतिरिक्त दो निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति करके बहु-सदस्यीय बना दिया गया।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। जब राष्ट्रपति द्वारा कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त नियुक्त किया जाता है तो मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है।[250]

> लोक सभा के और प्रत्येक राज्य की विधान सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पहले तथा विधान परिषद वाले प्रत्येक राज्य की विधान परिषद के लिए प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन से पहले राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग से परामर्श करने के पश्चात् आयोग के कृत्यों के पालन में उसकी सहायता के लिए उतने प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति भी कर सकता है, जितने वह आवश्यक समझे।[251]

पहली और दूसरी लोक सभा के मामले में, ऐसी अधिसूचना विधि मंत्रालय द्वारा जारी की गई थी। 1961 में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 में संशोधन किया गया और यह शक्ति निर्वाचन आयोग को दे दी गई—*देखिए विधि मंत्रालय* की अधिसूचना संख्या एफ.(7)/52 सी, दिनांक 2.4.1952 और का.नि.आ. 1120, दिनांक 5.4.1957 और निर्वाचन आयोग अधिसूचना संख्या का.आ. 975, दिनांक 2.4.1962 ।

248. अनुच्छेद 324 (2)।

निर्वाचन आयोग के गठन संबंधी संवैधानिक प्रावधानों (अनुच्छेद 324) को 26 नवम्बर, 1949 से लागू किया गया था, जबकि संविधान के शेष भाग को 26 जनवरी, 1950 से लागू किया गया था। निर्वाचन आयोग का केन्द्रीय कार्यालय, 25 जनवरी, 1950 को स्थापित किया गया था, लेकिन प्रथम मुख्य निर्वाचन आयुक्त, *श्री सुकुमार सेन* ने 21 मार्च, 1950 से अपना कार्यभार ग्रहण किया।

249. *एस.एस. धनोआ बनाम भारत संघ,* एससीसी 1991 ।

खण्ड 3, पृ. 567; ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1745 ।

250. अनुच्छेद 324(2) और (3)।

251. अनुच्छेद 324(4)।

8 अगस्त, 1951 को निर्वाचन आयोग को प्रादेशिक आयुक्तों के चार अस्थायी पदों के सृजन की मंजूरी राष्ट्रपति द्वारा भेजी गयी।

निर्वाचन आयोग के अनुरोध पर, राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयोग या प्रादेशिक आयुक्त को उतने कर्मचारीवृन्द उपलब्ध कराता है जो आयोग के कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक हो।[252]

निर्वाचन आयोग को कार्यकारी सरकार के प्रभाव से मुक्त रखने के लिए संविधान में यह उपबन्ध किया गया है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त को विहित रीति से संसद के प्रत्येक सदन में पारित किए गए समावेदन के बाद राष्ट्रपति के आदेश द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हटाने के लिए समावेदन राष्ट्रपति को केवल 'साबित कदाचार' अथवा 'असमर्थता' के आधार पर दिया जा सकता है जिसे राष्ट्रपति के समक्ष उसी सत्र में रखा जाना चाहिए जिसमें कि वह संसद के प्रत्येक सदन द्वारा, उसकी कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा और उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित किया गया हो।[253] इसके अलावा, मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा की शर्तों में उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।[254]

संविधान के अंतर्गत इसी प्रकार का संरक्षण अन्य निर्वाचन आयुक्तों तथा प्रादेशिक आयुक्तों को दिया गया है, उन्हें भी मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही पद से हटाया

इन अधिकारियों को 1952 के पहले आम चुनाव के संबंध में इसके कृत्यों के निर्वहन में निर्वाचन आयोग को सहायता देनी थी। चार पदों की मंजूरी थी लेकिन अन्ततोगत्वा दो ही पद भरे गये। ये नियुक्तियां अप्रैल, 1952 तक जारी रहीं।

दूसरे आम चुनाव के लिए किसी प्रादेशिक आयुक्त की नियुक्ति नहीं की गयी। उनके स्थान पर तीन उप-निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति अस्थायी रूप से की गयी।

तीसरे आम चुनाव में निर्वाचन आयोग की सहायता के लिए तीन उप-निर्वाचन आयुक्त थे, इनमें से एक पद नियमित कर दिया गया।

1 मार्च, 1966 से 28 फरवरी, 1967 तक एक वर्ष की अवधि के लिए उप-निर्वाचन आयुक्तों के तीन अस्थायी पद सृजित किए गए लेकिन केवल एक ही पद भरा गया और यह पद 31 मई, 1967 तक जारी रहा।

उप-निर्वाचन आयुक्त का एक अन्य पद 14 अप्रैल, 1969 को सृजित किया गया था और वह भी अभी तक जारी है।

इस समय निर्वाचन आयोग की सहायता करने के लिए उप-निर्वाचन आयुक्तों के चार पद हैं। पहले आम चुनाव के पश्चात् किसी प्रादेशिक आयुक्त की नियुक्ति नहीं की गयी है।

252. अनुच्छेद 324(6)।

अधिकांश निर्वाचन पंजीयन अधिकारी, पुनरीक्षण अधिकारी, रिटर्निंग अधिकारी और सहायक रिटर्निंग अधिकारी प्रत्येक राज्य के उच्च अधिकारियों में से लिये जाते हैं।

253. अनुच्छेद 124 (4) और (5) के साथ पठित अनुच्छेद 324 (5), परन्तुक।

254. अनुच्छेद 324 (5)।

जा सकता है, अन्यथा नहीं। उनकी सेवा की शर्तों तथा पदावधि का विनियमन, संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।[255]

मुख्य निर्वाचन आयुक्त के पर्यवेक्षण में निर्वाचन आयोग संसद और प्रत्येक राज्य के विधानमंडल के लिए कराए जाने वाले सभी निवार्चनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावलियों को तैयार करने और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण के लिए जिम्मेदार है।[256]

आयोग को यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि निर्वाचक नामावलियां हर समय अद्यतन रहें। सभी सामान्य निर्वाचनों के अधीक्षण के अतिरिक्त संसद तथा राज्यों के विधानमंडलों में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों की पूर्ति करने के लिए निर्वाचनों के अधीक्षण करने की शक्ति भी निर्वाचन आयोग के पास है। यदि यह प्रश्न उठता है कि संसद का कोई सदस्य संविधान के अधीन वर्णित किसी निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं, ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चय करने से पहले संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग की राय लेनी होती है और इस प्रयोजनार्थ निर्वाचन आयोग ऐसी जांच कर सकता है जो वह उचित समझे।[257] इसी प्रकार किसी राज्य विधानमंडल के किसी सदस्य के विषय में ऐसा ही निर्णय करने से पहले राज्यपाल को आयोग की राय लेनी पड़ती है।[258]

---

255. अनुच्छेद 324 (5)।
256. अनुच्छेद 324 (1)।

    संसद ने दो बड़े कानून पारित किये हैं जिनमें विधि के अन्तर्गत ब्यौरे-वार वे उपबंध किये गये हैं, जिनके अंतर्गत संसद और राज्य विधान सभाओं के लिए विभिन्न चुनाव कराये जाते हैं। पहला है:

    लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950, जिसमें मतदाताओं की अर्हताओं और निर्वाचक नामावलियों की तैयारी संबंधी उपबंध हैं। इसमें यह प्रक्रिया भी बताई गयी है जिसके अनुसार चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन किया जायेगा, संसद में राज्यों के लिए स्थान नियत किये जायेंगे और विभिन्न राज्यों के विधानमंडलों के स्थान नियत किये जायेंगे। दूसरा कानून है : लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, जिसमें निर्वाचनों के वास्तविक संचालन की व्यवस्था की गयी है और उस काम के लिए प्रशासनिक तंत्र, मतदान, निर्वाचन विवाद और उप-चुनावों इत्यादि जैसे मामलों के संबंध में ब्यौरे-वार उपबंध किये गये हैं। इन दो अधिनियमों के अंतर्गत भारत सरकार ने नियम बनाये हैं जिनके नाम हैं : निर्वाचकों का पंजीकरण नियम, 1960 और निर्वाचन संचालन नियम, 1961 । इन दोनों अधिनियमों और सांविधिक नियमों में समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन करने के लिए संशोधन किए गए हैं। अन्य अधिनियम अर्थात् राष्ट्रपतीय और उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम, 1952, और इसके अंतर्गत बनाए गए राष्ट्रपतीय तथा उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन नियम, 1974 में राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन का संचालन करने से संबंधित सभी मामलों के लिए प्रावधान किया गया है।

257. यथासंशोधित अनुच्छेद 102 और 103 ।
258. यथासंशोधित अनुच्छेद 191 और 192 ।

निर्वाचन संबंधी उपबंधों में भी सामान्य निर्वाचनों के दौरान और बाद में हुए अनुभव के प्रकाश में निर्वाचन आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर, समय-समय पर बहुत व्यापक संशोधन किए गए हैं। अत: सम्पूर्ण निर्वाचन तंत्र निर्वाचन आयोग के नियंत्रण तथा निदेशन के अंतर्गत रख दिया गया है। चुनावों के संबंध में हिदायतें देने का अधिकार केवल निर्वाचन आयोग को ही है।

13. महासचिव

लोक सभा के महासचिव[259] की स्थिति बहुत असाधारण है बल्कि यह कहा जा सकता है कि उसकी स्थिति अद्वितीय है। उससे यह आशा की जाती है कि लोक सभा और उसके कार्य के संबंध में जिस बात का ज्ञान भी आवश्यक हो, उसे उसका पता होगा, चाहे यह बात किसी गूढ़ संवैधानिक विषय के बारे में हो या किन्हीं परिस्थितियों में पालन की जाने वाली उपयुक्त प्रक्रिया के बारे में हो। जैसी भी समस्या हो, सदस्य महासचिव से यह आशा करते हैं कि वह उन्हें फौरन अधिकृत राय देगा। सच तो यह है कि सभा का सुचारू रूप से चलना बहुत हद तक महासचिव पर निर्भर है।

महासचिव अध्यक्ष की शक्तियों के प्रयोग तथा कृत्यों के विषय में अध्यक्ष का सलाहकार है और अध्यक्ष के माध्यम से वह सभा को भी सलाह देता है। वह अध्यक्ष के प्राधिकार के अंतर्गत और इसके नाम से काम करता है लेकिन उसके प्रत्यायोजित अधिकार के तहत कार्य नहीं करता। महासचिव द्वारा दिये गए आदेश अध्यक्ष के नाम में आदेश हैं और अध्यक्ष उन आदेशों के लिए पूर्णरूपेण जिम्मेदारी स्वीकार कर लेता है। किन्हीं दो व्यक्तियों का परस्पर इतना निकट संबंध नहीं होता, जितना कि अध्यक्ष और महासचिव के बीच। जहाँ तक सभा के कार्यकरण का संबंध है, उन दोनों में परस्पर सम्पूर्ण विश्वास रहता है। महासचिव बहुत योग्य हो सकता है, वह राजनीति के बीच भी हो सकता है लेकिन उसका प्रशिक्षण इस ढंग का होता है कि वह राजनीतिज्ञ नहीं है। अत: उसकी इस कमी की भरपाई अध्यक्ष कर देता है।

---

259. 12 नवम्बर, 1973 तक महासचिव के पद को सचिव पद कहा जाता था।

एस.एल. शकधर द्वारा महासचिव का पद छोड़ने के बाद इस पद को अगले आदेशों तक सचिव के रूप में पुनर्पदनामित किया गया— *एल.एस. डिबेट्स,* 17.6.1977, कॉ. 298-99 ।

22 दिसम्बर, 1983, को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि अवतार सिंह रिखी, सचिव, लोक सभा को महासचिव, लोक सभा के रूप में पुनर्पदनामित किया गया है— समाचार-भाग 1, 22.12.1983, सं. 388 ।

उनके उत्तराधिकारी, डॉ. सुभाष सी. काश्यप को महासचिव के रूप में नियुक्त किया गया था। अधिसूचना संख्या 296(3)/ए एन-1/जी.एन.-712/84, 25.1.1984, इस प्रकार वह पहले व्यक्ति थे जिन्हें सीधे महासचिव के रूप में नियुक्त किया गया अर्थात् इससे पूर्व सचिव के रूप में कार्य किये बगैर।

वर्ष 1929 में अध्यक्ष पटेल ने उन ठोस सिद्धांतों और परिपाटियों की स्थापना की थी, जो आज तक अध्यक्ष और सचिव के संबंधों पर लागू होती हैं। केन्द्रीय विधान सभा के लिए अलग सचिवालय की स्थापना पर उन्होंने यह टिप्पणी की थी :

> सचिव तथा उसके सहायकों का यह कर्त्तव्य है कि वे प्रत्येक प्रस्ताव और संशोधन का अध्ययन करें और यह देखें कि वह नियमों के अनुकूल है या नहीं। सचिव को पहले से उन आपत्तियों का अनुमान भी लगा लेना चाहिए जो कि सभा में उस दिन के कार्य के संबंध में उठाई जा सकती हैं। उसे चाहिए कि वह इन बातों की ओर अध्यक्ष का ध्यान दिलाए और सभा की बैठक प्रारम्भ होने से पहले उसके संबंध में अध्यक्ष से बात कर ले। उसे चाहिए कि वह यथासंभव पुराने विनिर्णयों और नजीरों और संसदीय प्राधिकारों को भी तैयार रखे। उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि सचिव ही ऐसा व्यक्ति है जो अध्यक्ष को इन सभी मामलों में सलाह दे सकता है और इसलिए उसका कर्त्तव्य है कि वह ऐसी तैयारी करे जो अध्यक्ष के लिए सहायक साबित हो। सचिव के लिए सब से अच्छा और आसान तरीका यह है कि अध्यक्ष के साथ जबानी सारी बातें कर ले। इस विभाग के सुचारू रूप से कार्य करने के लिए यह जरूरी है कि सचिवालय के जो अधिकारी सभा के किसी भी कार्य के संबंध में कोई आदेश देते हैं वे यह याद रखें कि उन आदेशों की जिम्मेदारी अध्यक्ष पर है।

महासचिव के कृत्यों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है: संसदीय और प्रशासनिक।

लोक सभा की बैठकों के दौरान महासचिव को सभा में उपस्थित रहना पड़ता है। वह सभा भवन में अध्यक्ष की मेज के समक्ष निम्नस्थ स्थल पर अपना स्थान ग्रहण करता है और वहां से हर समय अध्यक्ष के साथ परामर्श के लिए उपलब्ध होता है। चर्चा के दौरान, अध्यक्ष को बहुधा नियमों या नजीरों के निर्वाचन से संबंधित मामलों में अपना विनिर्णय देना पड़ता है और उनके संबंध में महासचिव द्वारा दिया गया परामर्श और व्यक्त की गयी राय बहुत महत्वपूर्ण है। जब किसी शंका का समाधान करना होता है या किसी नियम का निर्वचन करना होता है, तो महासचिव संसदीय नजीरों के ज्ञान और अपने अनुभव आदि के आधार पर अध्यक्ष को बता सकता है कि सबसे उपयुक्त हल कौन-सा है। सच तो यह है कि महासचिव को पहले से ही यह अनुमान लगाना होता है कि दिन में सभा में क्या होगा और उस समस्या के हल के लिए उसे तैयार रहना चाहिए और हल का सुझाव तुरन्त देना पड़ता है क्योंकि उस समय किसी से परामर्श करने का समय नहीं होता।

इसलिए, महासचिव के पास कुछ बुनियादी अर्हताएं होनी चाहिएं। पहली अर्हता तो यह है कि उसमें लगातार बदलती हुई परिस्थिति में परामर्श दे सकने की क्षमता हो यहां तक कि उस समय भी जब सभा में किसी विषय पर चर्चा हो रही हो नये और तथ्य या नई जानकारी सामने उत्पन्न होती है। उसके लिए दूसरी आवश्यक अर्हता यह है कि वह हमेशा बदलती अवस्थाओं में नियमों को लागू कर सकने में सक्षम हो।

संसदीय प्रक्रिया में दिन-प्रतिदिन सूक्ष्म परिवर्तन होते चले जाते हैं और इस प्रक्रिया के विकास में महासचिव का बहुत योगदान होता है। जब महासचिव कुछ विषयों के संबंध में बात करने के लिए अध्यक्ष के पास जाता है, तो बहुधा ऐसा होता है कि प्रक्रिया के विषय का स्पष्टीकरण अध्यक्ष के एक शब्द या बात से हो जाता है ऐसी दशा में महासचिव यह सुनिश्चित करता है कि यह शब्द विनिर्णय में तबदील हो जाये और इस प्रकार एक प्रक्रिया का विकास होता है।

महासचिव का काम कठिन और नाजुक किस्म का है। उसे न केवल सरकार और विरोधी पक्ष के बीच संतुलन बनाये रखना पड़ता है, बल्कि दोनों को उस पर विश्वास होना चाहिए। महासचिव की सलाह सभी सदस्यों को उपलब्ध होती है, चाहे वे किसी भी दल से संबद्ध हों। यह परामर्श पूर्णत: स्पष्ट रूप से और पूरी तरह निष्पक्ष होता है। तथापि, वह राय तब तक नहीं देता जब तक कि उससे मांगी न जाये।[260]

उनके कुछ संसदीय दायित्वों का उल्लेख नियमों में भी किया गया है लेकिन बहुत से अन्य दायित्व प्रथा और परिपाटी पर आधारित हैं। महासचिव का प्रथम कार्य यह है कि वह राष्ट्रपति की ओर से प्रत्येक सदस्य को सभा के सत्र में आने का आमंत्रण भेजता है।[261] महासचिव सभा के सदस्यों की एक नामावली रखता है, जिस पर प्रत्येक नए चुने गए सदस्य को सभा में अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व उस की उपस्थिति में हस्ताक्षर करने होते हैं।[262] महासचिव प्रत्येक सदस्य को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि की सूचना भेजता है; अध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि राष्ट्रपति निश्चित करता है और उपाध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि अध्यक्ष निश्चित करता है।[263] महासचिव सदस्य से लिखित नोटिस प्राप्त करता है जिनमें इन पदों के लिए अन्य सदस्यों के नाम प्रस्तावित किये जाते हैं।

महासचिव इस बात के लिए जिम्मेदार है कि वह कार्य का विन्यास ऐसे क्रम में करे जैसा कि अध्यक्ष सदन के नेता या संसदीय कार्य मंत्री से परामर्श करने के बाद निर्धारित करे और सत्र के प्रत्येक दिन के लिए सभा की कार्य-सूची तैयार करे।[264] नियमों के अंतर्गत सदस्यों

---

260. सर फ्रांसिस विलियम लेसेलिज पार्लियामेंट के क्लर्क पद से सेवानिवृत्त हुए तो उनके बारे में उद्‌गार व्यक्त करते हुए मार्क्विस ऑफ सेलस्बरी ने कहा :

    "उनके (सर फ्रांसिस विलियम लेसेलिज) पास हम में से प्रत्येक की बात सुनने के लिए असीमित समय होता था। वे स्वयं कभी राय नहीं देते थे लेकिन राय पूछो तो जरूर बताते थे; और वह राय सदा ठीक होती थी। कभी उन्हें यह ख्याल आये भी कि कोई बड़ी मूर्खतापूर्ण बात सोच रहा है तो वे कहते नहीं थे; उस समय उनके चेहरे पर कष्ट की हल्की छाया झलक जाती थी और हम में से बहुतों के लिए इतना ही काफी होता था।" *एच.एल. डिबेट्स,* 20. 1.1959, कॉ. 556 ।

261. नियम 3 ।
262. नियम 6 ।
263. नियम 7 और 8 ।
264. नियम 25 और 31 ।

द्वारा सूचना महासचिव को ही दी जाती है,[265] उदाहरण के लिए प्रश्नों, प्रस्तावों, संकल्पों, विशेषाधिकार प्रश्नों, स्थगन प्रस्तावों, अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा उठाने के प्रस्ताव आदि की सूचनाएं। महासचिव प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक कार्य-सूची, समाचारों, संशोधनों की सूची तथा प्रत्येक उस पत्र की प्रति, जिसकी नियमों के अनुसार सदस्यों के उपयोग के लिए उपलब्ध कराए जाने की अपेक्षा है, परिचालित करता है।[266]

संसद के दोनों सदनों को राष्ट्रपति द्वारा अभिभाषण के अवसर पर दोनों सदनों के महासचिव संसद भवन में राष्ट्रपति का स्वागत करते हैं और केन्द्रीय कक्ष की ओर राष्ट्रपति की अगुवाई करते हैं। अन्य अधिकारी जो राष्ट्रपति का स्वागत करते हैं और शोभायात्रा में शामिल होते हैं वे हैं—उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, अध्यक्ष और संसदीय कार्य मंत्री।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण की समाप्ति पर जब आधे घंटे के पश्चात् लोक सभा की बैठक अपने चेम्बर में होती है तब महासचिव राष्ट्रपति द्वारा प्रमाणीकृत उनके अभिभाषण की हिन्दी तथा अंग्रेजी प्रति सभापटल पर रखता है। यह इसलिए किया जाता है कि राष्ट्रपति का अभिभाषण सभा की कार्यवाही में सम्मिलित कर लिया जाये और उसका अंग बन जाये।[267]

महासचिव सभा को सम्बोधित या उसके लिए भेजी गयी याचिकायें, दस्तावेज तथा पत्र प्राप्त करता है और ऐसी प्रत्येक याचिका की सूचना सभा को देता है।[268] वह दीर्घाओं में आगन्तुकों के प्रवेश के लिए प्रवेश-पत्र जारी करता है। वह सभा की प्रत्येक बैठक की कार्यवाही का सारांश, संक्षिप्त विवरण तथा शब्दशः वृत्तान्त तैयार करवाता है और उन्हें छपवाता है। इसके अतिरिक्त वह प्रत्येक प्रवर समिति की रिपोर्ट छपवाता है।[269] सभा या उसकी किसी समिति अथवा सचिवालय के सब अभिलेख, दस्तावेज तथा पत्र उसकी अभिरक्षा में रहते हैं और वह अध्यक्ष की अनुज्ञा के बिना ऐसे किसी पत्र को संसद भवन से बाहर नहीं ले जाने देता।[270]

किसी संसदीय समिति के विचाराधीन विषयों के सम्बन्ध में मंत्रियों से प्राप्त होने वाले सभी संदेश तथा व्यक्तियों या संस्थाओं से प्राप्त होने वाले सुझाव, ज्ञापन और अभ्यावेदन महासचिव के नाम भेजे जाते हैं।[271]

---

265. नियम 332(1), नियम 34, 57, 58 (VIII) 170, 185, 193 और 223 भी *देखिए*।
266. नियम 31, 79(2) और 334 ।
267. अधिक जानकारी के लिए *देखिए,* अध्याय 10—'राष्ट्रपति का अभिभाषण, संदेश तथा संसूचना'।
268. नियम 167 ।
269. नियम 305 और 379 ।
270. नियम 383 ।
271. निदेश 63 ।

साधारणतया प्रत्येक संसदीय समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु यदि समिति ऐसे समय अपना प्रतिवेदन पूरा कर ले जब सभा का सत्र न हो रहा हो, तो समिति का सभापति उसे अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है। ऐसे मामले में सभापति अगले सत्र में प्रतिवेदन को सभा में प्रस्तुत करता है। परन्तु यदि उस दौरान लोक सभा का विघटन हो जाये, तो प्रतिवेदन महासचिव द्वारा प्रथम सुविधाजनक अवसर पर नई लोक सभा के पटल पर रखा जाता है। उसे सभा पटल पर रखते समय वह इस आशय का वक्तव्य देता है कि प्रतिवेदन को पिछली लोक सभा के अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और जहां अध्यक्ष द्वारा प्रतिवेदन के मुद्रण, प्रकाशन या परिचालन के आदेश दिए गए हों, तो महासचिव इस बात की सूचना भी सभा को देता है।[272]

लोक सभा से जो भी संदेश राज्य सभा को जाना हो उस पर महासचिव के हस्ताक्षर होते हैं और राज्य सभा से कोई संदेश प्राप्त होने पर, सभा का सत्र हो तो वह उसकी सूचना सभा को देता है; नहीं तो प्रत्येक सदस्य को भेज देता है।[273] सभी विधेयक जो राज्य सभा को भेजे जाने हों या लौटाए जाने हों, उन सब का प्रमाणीकरण महासचिव करता है।[274]

अविलम्बनीयता की अवस्था में और अध्यक्ष के उपस्थित न होने पर वह विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजने से पहले अध्यक्ष की ओर से उसका प्रमाणीकरण भी करता है।[275]

यदि किसी संसदीय समिति का सभापति तत्काल न मिल सकता हो तो महासचिव को समिति की बैठक की तिथि और समय निश्चित करने की भी शक्ति प्राप्त है। किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के सभापति के भी तत्काल न मिल सकने की दशा में उस समिति की बैठक की तिथि और समय निश्चित करते समय, यदि आवश्यक हो तो, महासचिव संबंधित मंत्री से परामर्श कर सकता है।[276] जब कभी किसी साक्षी का साक्ष्य लेना आवश्यक समझा जाता है, तब महासचिव अपने हस्ताक्षर से साक्षी को सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए सम्मन जारी करता है।[277]

किसी विधेयक या उसके संशोधन को पुरःस्थापित किये जाने या उस पर विचार किये जाने के लिए संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति की मंजूरी या सिफारिश पहले से लेनी जरूरी हो, तो संबंधित मंत्री को महासचिव को लिखित सूचना देनी पड़ती है कि राष्ट्रपति ने मंजूरी दे दी है या सिफारिश कर दी है।[278]

---

272. निदेश 71 क ।
273. संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम के नियम 10 और 11 ।
274. नियम 96(2), 121(2) और 137(2)।
275. नियम 128(1), परन्तुक ।
276. नियम 264, परन्तुक ।
277. नियम 269(1)।
278. नियम 68, 82 तथा 348 ।

संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित तथा राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्राप्त प्रत्येक विधेयक महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखा जाता है।[279]

किसी सदस्य द्वारा सभा से अपनी सदस्यता से त्यागपत्र देने के मामले में, अध्यक्ष द्वारा त्यागपत्र स्वीकार किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र महासचिव इस जानकारी को समाचार और राजपत्र में प्रकाशित करवाता है और इस प्रकार हुई रिक्ति की पूर्ति हेतु कार्यवाही करने के लिए उस अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को भेजता है।[280] इसी तरह से जब सभा द्वारा कोई स्थान रिक्त घोषित कर दिया जाता है तो महासचिव यह जानकारी राजपत्र में प्रकाशित करवाता है और उस अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को भेजता है जिससे कि वह इस प्रकार रिक्त हुए स्थान को भरने के लिए कार्रवाई कर सके।[281]

जब दोनों सदनों की संयुक्त बैठक हो तो अध्यक्ष ही उस बैठक की अध्यक्षता करता है और उस संबंध में सचिवालय संबंधी कामों की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी महासचिव पर आ जाती है। वह प्रत्येक सदस्य को आमंत्रण भेजता है, चाहे वह राज्य सभा का सदस्य हो या लोक सभा का और उस आमंत्रण में बैठक की तिथि और स्थान की सूचना देता है। इसके अतिरिक्त महासचिव प्रत्येक संयुक्त बैठक की कार्यवाही का वृत्तांत तैयार करवाता है और ऐसे रूप तथा तरीके से प्रकाशित करता है जैसा कि अध्यक्ष कहे।[282]

महासचिव एक ऐसे सम्पूर्णतया अलग सचिवालय का सर्वोच्च अधिकारी है जो अध्यक्ष के समग्र नियंत्रण के अधीन है जिससे कि सभा को स्वतंत्र परामर्श मिले और उसके निदेशों का पालन बिना बाहरी हस्तक्षेप के किया जा सके। इस श्रेणी में वे सभी प्रशासनिक और कार्यकारी कृत्य आ जाते हैं जो महासचिव अध्यक्ष या सभा की ओर से सम्पन्न करता है जिसमें सदस्यों को सेवाएं और सुविधाएं उपलब्ध करवाना भी शामिल है। लोक सभा का महासचिव होने के नाते वह सभी संसदीय समितियों के सचिव के रूप में कार्य करता है। वह या तो स्वयं इन समितियों में उपस्थित होता है या अपने अधिकारियों को इनमें उपस्थित होने को कहता है। वह सामान्यत: इन समितियों के सारे सचिवालीय कार्यों का पर्यवेक्षण करता है और जहाँ आवश्यक हो, निर्देश देता है। संक्षेप में, वह इस बात की व्यवस्था करता है कि सभा और उसकी समितियों का सचिवालय कार्य सक्षम और योग्य अधिकारियों द्वारा किया जाए, उसका संगठन समुचित रूप से हो और सारा काम सुचारू रूप से हो जिससे कि संसदीय कार्यकुशलता उच्च स्तर की बनी रहे।

लोकतंत्र और विशेषतया लोक सभा का काम प्रभावी ढंग से चलाने के लिए यह बहुत जरूरी है कि सभा के सदस्यों को सभा में अपने कर्त्तव्यों के पालन के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी दी जाये। महासचिव का कर्त्तव्य कार्य-सूची तैयार करने, उसे परिचालित करने,

---

279. निदेश 35 ।

280. नियम 240(3) ।

281. नियम 241(2)।

282. संसद के सदनों (संयुक्त बैठकें तथा संवाद) संबंधी नियम के नियम 3 और 8 ।

सदस्यों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने और प्रक्रिया के संबंध में अध्यक्ष को परामर्श देने तक ही सीमित नहीं है। संसदीय कार्य में सदस्यों का मार्गदर्शन करना भी उसके कर्त्तव्यों में शामिल है। सदस्यों को देश और विदेश की दिन-प्रतिदिन की घटनाओं की पूरी जानकारी देने के उद्देश्य से महासचिव के सम्पूर्ण पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन में एक अद्यतन, पूर्णत: सुसज्जित और कुशल ग्रंथालय तथा संदर्भ, शोध, प्रलेखन एवं सूचना सेवा की व्यवस्था की गई है। सदस्य संदर्भ सेवा, सदस्यों को सभा के समक्ष आने वाले विधायी कार्यों और अन्य मामलों के संबंध में संदर्भ सामग्री उपलब्ध कराती है ताकि वे वाद-विवाद में प्रभावी ढंग से भाग ले सकें। शोध और सूचना प्रभाग का उद्देश्य समसामयिक रुचि के विषयों की पहचान करके सांसदों की आवश्यकताओं का अग्रिम रूप से आकलन करना है जिनकी जानकारी के लिए सामान्यत: अधिक मांग होने की सम्भावना है और उन्हें संदर्भ सूची, प्रलेखन सूची, विवरणिकाएं, पृष्ठधार टिप्पण, सूचना समाचार, तथ्य पत्र, समसामयिक सूचना डाइजेस्ट आदि जारी करके जानकारी देता रहता है। समय-समय पर विभिन्न पत्रिकाएं प्रकाशित करने के अलावा, प्रभाग को विभिन्न संसदीय सम्मेलनों के लिए और विदेशों में जाने वाले संसद सदस्यों के सद्भावना शिष्टमंडलों के लिए संक्षिप्त विवरण, शोध टिप्पण आदि तैयार करने जैसे विशेष कार्य सौंपे जाते हैं। जब भी जरूरी हो यह प्रभाग विशिष्ट टिप्पण और अन्य सामग्री उपलब्ध कराकर विभिन्न संसदीय समितियों की सहायता भी करता है। प्रत्येक चरण में महासचिव नीतिगत निर्णय लेने और उचित निदेश देने में पूर्णत: शामिल होता है।[283]

संसदीय संस्थाओं और प्रक्रियाओं में प्रशिक्षण, प्रबोधन और अध्ययन के लिए आवश्यक अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से एक संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो (बी.पी.एस.टी.) महासचिव के सम्पूर्ण नियंत्रण और मार्गदर्शन में कार्य करता है।[284]

महासचिव अध्ययन दलों का गठन करता है जिसमें सभी दलों के सदस्यों को शामिल किया जाता है और जहां तक सभा के सचिवालीय कार्यों का संबंध है, महासचिव अन्य बहुत सी गतिविधियों की देखरेख करता है। वह भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन, भारत में विभिन्न विधानमंडलों तथा संसदीय समितियों के सभापति के सम्मेलनों, अन्तर-संसदीय संघ के सम्मेलनों, राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ और सार्क देशों के अध्यक्षों के संघ तथा सांसदों के सम्मेलन में और विचारगोष्ठियों जिनको भारतीय संसदीय ग्रुप (आई.पी.जी.) द्वारा आयोजित किया जाता है और इतर संसदीय गतिविधियों जैसे विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा सदस्यों को सम्बोधन, स्वागत समारोह, विदेशों में संसदीय सद्भावना शिष्टमंडल भेजना अथवा भारत में विदेशों से आए इसी तरह के शिष्टमंडलों का सत्कार करने के संबंध में सचिवालीय कार्य करने तथा इनकी तैयारी करने के लिए भी जिम्मेदार होता है। वह भारतीय संसदीय दल, जो अन्तरसंसदीय संघ के राष्ट्रीय दल और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ तथा इसकी कार्यकारिणी

283. अधिक जानकारी के लिए *देखिए*—अध्याय 13 में ग्रंथालय तथा संदर्भ, शोध, प्रलेखन एवं सूचना सेवा से संबंधित भाग।

284. अधिक जानकारी के लिए *देखिए*—अध्याय 46 में संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो से संबंधित भाग।

समिति की भारतीय शाखा दोनों के रूप में कार्य करता है, के पदेन महासचिव के रूप में कार्य करता है।[285]

महासचिव जल संरक्षण एवं प्रबंधन; बाल; युवा; जनसंख्या एवं लोक स्वास्थ्य; वैश्विक तापन और जलवायु परिवर्तन; आपदा प्रबंधन; कलाकार और शिल्पकार तथ सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य से संबंधित आठ संसदीय मंचों का सचिव होता है। वह लोक सभा टेलीविजन चैनल के परामर्शदात्री परिषद का भी सदस्य होता है। यह परिषद, जिसका गठन अध्यक्ष द्वारा किया जाता है, चैनल के कार्यक्रम सामग्री एवं नीति निर्णयों से संबंधित मामलों पर परामर्श देती है।

सचिवालय का प्रशासनिक प्रमुख होने के नाते महासचिव अध्यक्ष में निहित शक्तियों का प्रयोग करता है।[286] जिसमें कर्मचारियों की संख्या,[287] भर्ती के तरीके[288] और विभिन्न श्रेणियों के पदों के लिए अर्हताएं आदि निर्धारित करना[289] शामिल है। वह कुछ श्रेणियों के अधिकारियों के लिए नियुक्तियां करने[290] दंड देने[291] और अपील सुनने[292] वाला प्राधिकारी भी है।

सचिवालय के अधिकारियों तथा कर्मचारियों पर नियंत्रण तथा अनुशासन बनाये रखने संबंधी नियमों का अनुपालन महासचिव कराता है।[293] वह वित्तीय शक्तियों का प्रयोग भी करता है।[294] और लोक सभा तथा उसके सचिवालय के बजट के प्रस्ताव भी रखता है। लोक सभा और उसके सचिवालय की अनुदानों की मांगों पर खर्च के लिए जो धन सभा द्वारा स्वीकृत किया जाता है, उसका लेखाधिकारी महासचिव है।[295]

वह राष्ट्रपति और अध्यक्ष के आदेशों को प्रमाणीकृत करता है।[296] वह लोक सभा या उसके सचिवालय की ओर से भारत सरकार या राज्य सरकारों के मंत्रालयों तथा विभागों और

---

285. भारतीय संसदीय ग्रुप संबंधी नियमों का नियम 9 ।
286. लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा-शर्तें) नियम, 1955 का नियम 22, भर्ती और सेवा-शर्तें, आदेश संख्या 2, दिनांक 28.11.1955 ।
287. लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा-शर्तें) नियम, 1955 का नियम 3 ।
288. *पूर्वोक्त,* नियम 4 ।
289. *पूर्वोक्त,* नियम 5 ।
290. *पूर्वोक्त,* नियम 6, भर्ती और सेवा की शर्तें आदेश संख्या 29, दिनांक 16.2.1956 के साथ पठित।
291. लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा-शर्तें) नियम, 1955 का नियम 14, भर्ती और सेवा-शर्तें आदेश संख्या 30, दिनांक 16.2.1956 के साथ पठित।
292. *पूर्वोक्त,* नियम 18 ।
293. *पूर्वोक्त,* नियम 19 और लोक सभा सचिवालय (आचरण) नियम, 1955 ।
294. लोक सभा सचिवालय की वित्तीय तथा अन्य शक्तियां, बी.एंड पी. संख्या 2(1960 सं.)।
295. लेखा तथा लेखा परीक्षण को अलग-अलग करने की योजना जिसके अंतर्गत वेतन तथा लेखा कार्यालय, लोक सभा की स्थापना 1.10.1955 से की गई।
296. भर्ती और सेवा की शर्तें आदेश संख्या 1, दिनांक 3.11.1955 ।

विदेशी सरकारों के साथ सीधे पत्र-व्यवहार करता है। महासचिव सभा के कार्य या सभा के सामने आ सकने वाले किसी भी विषय के संबंध में सदस्यों तथा मंत्रियों के साथ पत्र-व्यवहार करता है।

महासचिव सभा के सचिवालय का स्थायी अधिकारी होता है और अध्यक्ष सदन के नेता तथा विपक्ष के नेता के परामर्श से उन अधिकारियों में से एक को चुन कर महासचिव नियुक्त करता है जिन्होंने संसद या राज्य विधानमंडलों या सिविल सेवा में लम्बे अर्से तक उल्लेखनीय सेवा की हो।[297] वह प्रमुख सरकारी अधिकारी है, न केवल इसलिए कि उसका काम लोक सभा का दिन-प्रतिदिन का प्रशासन और कार्य चलाना तथा संसदीय प्रक्रिया का सुचारू रूप से पालन करवाना है, बल्कि इस कारण से भी कि वह निष्पक्ष होता है और उसका राजनीति से कोई संबंध नहीं होता है और इस कारण उस पर बाहर के किसी राजनीतिक प्रभाव या दबाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह जनहित में अपने कर्त्तव्यों का पालन उत्साहपूर्वक कर सके, इस उद्देश्य से उसकी सेवा की सुरक्षा और स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए समुचित व्यवस्था की गई है। वह केवल अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी है और उसके कार्यों की चर्चा न तो सभा में की जा सकती है और न ही बाहर।

सभा का महासचिव होने के नाते उसे यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि उसे आपराधिक आरोप को छोड़कर और किसी आधार पर गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। उसके कर्त्तव्य-पालन में बाधा डालना सभा की अवमानना माना जाता है। जिन कामों से महासचिव या अन्य अधिकारियों द्वारा अपने कर्त्तव्यों के पालन में प्रत्यक्ष रूप से बाधा पड़ती हो न केवल उन कामों को सभा अपने विशेषाधिकार का भंग मानती है बल्कि किसी ऐसे आचरण को भी विशेषाधिकार भंग माना जाता है जिससे भविष्य में महासचिव तथा अन्य अधिकारियों द्वारा अपने कर्त्तव्य पालन में बाधा पड़ सकती है।[298]

सचिव चाहे सभा में अपने स्थान पर बैठा हो या समिति की सहायता कर रहा हो या सभा का दिन-प्रतिदिन का काम कर रहा हो, सदस्य उसे भली-भांति जान जाते हैं और वे विधि तथा प्रक्रिया संबंधी मुद्दों पर उसकी सलाह लेते हैं। अपनी अपूर्व योग्यता, लगन, सेवा और शिष्टता के कारण महासचिव सभा के दिल में इस हद तक घर कर लेता है कि किसी महासचिव के सेवानिवृत्त होने पर "एक संसदीय अध्याय की समाप्ति" हो जाती है।[299]

---

297. भर्ती और सेवा शर्तें आदेश संख्या पी.बी.ए.-903/96, दि. 19.10.1996 भर्ती और सेवा शर्तें पी.बी.ए.-905/96, दि. 28-10-1996 के साथ पठित तथा भर्ती और सेवा शर्तें, आदेश सं. पी.बी.ए.-918/97 दि. 27.01.1997 के साथ पठित।

298. मे, 23वां संस्करण, पृ. 148 ।

299. हाउस आफ कामन्स के क्लर्क, सर फ्रेड्रिक विलियम मेटकाफ की सेवा निवृत्ति के अवसर पर बोलते हुए लार्ड प्रिवी सील (मि. हैरी क्रुकशैंक) ने कहा था—"सभा के कलर्क का पदत्याग एक संसदीय अध्याय के समापन का द्योतक होता है।"—*एच.सी. डिबेट्स,* 29.7. 1954, कॉ. 722 ।

इस तरह महासचिव को जिन कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता है उनके लिए अत्यधिक योग्यता, प्रखर बुद्धि, विवेक और विचारशीलता की आवश्यकता है। उसे सच्चे दिल और निष्पक्षता से सभी काम करने पड़ते हैं। महासचिव द्वारा किये जाने वाले कठिन और नाजुक कार्यों के कारण अध्यक्ष तथा सभी राजनीतिक दलों ने सभा में सार्वजनिक रूप से उसकी सराहना की है और उसकी सेवाओं को मान्यता प्रदान की है।[300] उन सभी ने महासचिव के दिन प्रतिदिन के कार्यों के कठिन स्वरूप को स्वीकार किया है। उन कामों के सुचारू रूप से करने के लिए संसद की संस्था के प्रति अत्यधिक निष्ठा और लगाव की आवश्यकता है और उनका सम्पादन कई बार बड़ी कठिन परिस्थितियों में करना पड़ता है।[301]

---

300. सचिव, श्री *एम.एन. कौल* के सेवानिवृत होने पर सभा में दिये गये भाषणों के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 7.9.1964, कॉ. 107-12 ।

 श्री एस.एल. शकधर द्वारा महासचिव के पद का त्याग किए जाने के अवसर पर उनकी प्रशंसा में दिए गए भाषणों के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 17.6.1977, कॉ 291-98 ।

 श्री अवतार सिंह रिखी की सेवानिवृत्ति के अवसर पर उनकी प्रशंसा में दिए गए भाषणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.* 22.12.1983, पृ. 232-35 ।

 श्री के.सी. रस्तोगी द्वारा महासचिव के पद का त्याग किए जाने के अवसर पर उनकी प्रशंसा में दिए गए भाषणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 20.12.1991, पृ. 645-49 ।

 श्री सी.के. जैन द्वारा महासचिव के पद का त्याग किए जाने के अवसर पर उनकी प्रशंसा में दिए गए भाषणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 14.6.1994, पृ. 301 ।

 डा. आर.सी. भारद्वाज द्वारा महासचिव के पद का त्याग किए जाने के अवसर पर उनकी प्रशंसा में दिए गए भाषणों के लिए *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 22.12.1995, कॉ. 579-80 ।

 श्री एस.एन. मिश्र द्वारा महासचिव के पद का त्याग किए जाने के अवसर पर उनकी प्रशंसा में दिए गए भाषणों के लिए *देखिए, लो,स.वा.वि.,* 12.7.1996, कॉ. 298 ।

 श्री जी.सी मलहोत्रा द्वारा महासचिव के पद का त्याग किए जाने के अवसर पर उनकी प्रशंसा में दिए गए भाषणों के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 28-7-2005, कॉ. 364-372।

301. साथ ही *देखिए, सुभाष सी. काश्यप: द आफिस ऑफ द सेक्रेटरी जनरल,* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1989 ।

अध्याय 9

संसद के सदनों को आहूत करना तथा सत्रावसान और लोक सभा का विघटन

संसद को आहूत करना

लोक सभा की अवधि पांच वर्ष है।[1] लोक सभा का विघटन इसकी अवधि के समाप्त होने से पहले राष्ट्रपति के आदेश द्वारा किया जा सकता है। लोक सभा की अवधि समाप्त होने पर इसका विघटन अपने आप ही हो जाता है भले ही राष्ट्रपति द्वारा विघटन संबंधी औपचारिक आदेश जारी न किया जाए।[2]

---

1. अनुच्छेद 83(2)।

   1976 तक लोक सभा की अवधि पांच वर्ष थी। संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 (धारा 17) द्वारा इसे बढ़ाकर छह वर्ष कर दिया गया था। संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 (धारा 13, 20.6.1979 से) द्वारा इसे घटाकर पुनः पांच वर्ष कर दिया गया था।

2. पांच वर्ष की अवधि में नई लोक सभा के गठन और उसकी पहली बैठक के लिए नियत की गई तारीख के बीच की अवधि शामिल नहीं है।

   तीसरी विधान सभा, जिसकी पहली बैठक 19 जनवरी, 1927 को हुई थी, की अवधि गवर्नर-जनरल द्वारा 16 जनवरी, 1930 को आदेश जारी करके 31 जुलाई, 1930 तक बढ़ा दी गई थी। वैसे उसका विघटन साधारणतया 9 जनवरी, 1930 को ही हो जाना चाहिए था।

   चौथी विधान सभा, जिसकी पहली बैठक 14 जनवरी, 1931 को हुई थी, की अवधि गवर्नर-जनरल के एक आदेश द्वारा 31 दिसम्बर, 1934 तक बढ़ा दी गई थी। यह आदेश 22 दिसम्बर, 1933 को विधान सभा को पढ़ कर सुनाया गया था।

   पांचवीं विधान सभा, जिसकी पहली बैठक 21 जनवरी, 1935 को हुई थी, गवर्नर-जनरल द्वारा 30 अक्तूबर, 1937; 7 मई, 1938; 19 अगस्त, 1939; 22 जून, 1940; 10 जुलाई, 1941; 13 जून, 1942; 29 मई, 1943 तथा 23 मई, 1944 को दिए गए आदेशों के आधार पर 1 अक्तूबर, 1945 तक बनी रही। भारत शासन अधिनियम, 1935 के कतिपय उपबंधों के लागू होने के पश्चात् केन्द्रीय विधान सभा की अवधि धारा 63घ(1) द्वारा विनियमित की गई थी जैसा कि उक्त अधिनियम की नौवीं अनुसूची में दिया हुआ है।

   अंतरिम संसद का विघटन नहीं किया गया था परन्तु उसे संविधान के अनुच्छेद 379 [जिसे बाद में संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा निरसित कर दिया गया था] के उपबंधों के अधीन उस समय समाप्त कर दिया गया था जब 17 अप्रैल, 1952 को संसद के दोनों सदनों का गठन हुआ और राष्ट्रपति ने उन्हें पहले सत्र के लिए आहूत किया।

परन्तु जब राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 के अंतर्गत जारी की गई आपात्काल की उद्घोषणा लागू हो, तो लोक सभा की अवधि विधि द्वारा एक बार में एक वर्ष से अनधिक अवधि तक बढ़ाई जा सकती है तथा उद्घोषणा की अवधि समाप्त होने के पश्चात् किसी भी दशा में छह मास की अवधि से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती है।[3]

पहली लोक सभा जिसकी पहली बैठक 13 मई, 1952, को हुई थी, राष्ट्रपति द्वारा 4 अप्रैल, 1957 को उस समय विघटित कर दी गई थी जब उसकी पांच वर्ष की सामान्य अवधि समाप्त होने में अड़तीस दिन शेष थे। दूसरी लोक सभा, जिसकी पहली बैठक 10 मई, 1957 को हुई थी, पांच वर्ष की अपनी सामान्य अवधि से चालीस दिन पूर्व 31 मार्च, 1962 को विघटित कर दी गई थी। तीसरी लोक सभा जिसकी पहली बैठक 16 अप्रैल, 1962 को हुई थी। पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से चवालीस दिन पूर्व 3 मार्च, 1967 को विघटित कर दी गई थी। चौथी लोक सभा जो 16 मार्च, 1967 को समवेत हुई थी पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से एक वर्ष और उनासी दिन पूर्व 27 दिसम्बर, 1970 को विघटित कर दी गई थी। छठी लोक सभा जिसकी पहली बैठक 25 मार्च, 1977 को हुई थी। पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से दो वर्ष, सात माह और तीन दिन पूर्व 22 अगस्त, 1979 को विघटित कर दी गई थी। सातवीं लोक सभा, जिसकी पहली बैठक 21 जनवरी, 1980 को हुई थी, पांच वर्ष की अपनी अवधि से बीस दिन पूर्व 31 दिसम्बर, 1984 को विघटित कर दी गई थी। आठवीं लोक सभा, जो पहली बार 15 जनवरी, 1985 को समवेत हुई थी पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से अड़तालीस दिन पूर्व 27 नवम्बर, 1989 को विघटित कर दी गई थी। नौवीं लोक सभा जिसकी पहली बैठक 18 दिसम्बर, 1989 को हुई थी, पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से तीन वर्ष, नौ माह और चार दिन पूर्व 13 मार्च, 1991 को विघटित कर दी गई थी। दसवीं लोक सभा पहली बार 9 जुलाई, 1991 को समवेत हुई थी, पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से तीन माह और अट्ठाईस दिन पूर्व 10 मई, 1996 को विघटित कर दी गई। ग्यारहवीं लोक सभा, जिसकी पहली बैठक 22 मई, 1996 को हुई थी पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से तीन वर्ष, पांच माह और अट्ठारह दिन पूर्व 4 दिसम्बर, 1997 को विघटित कर दी गई। बारहवीं लोक सभा, जो पहली बार 23 मार्च, 1998 को समवेत हुई थी, पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से तीन वर्ष, सात माह और चार दिन पूर्व 26 अप्रैल, 1999 को विघटित कर दी गई।

तेरहवीं लोक सभा जिसकी पहली बैठक 20 अक्तूबर, 1999 को हुई थी, पांच वर्ष की अपनी अवधि की समाप्ति से आठ माह और 13 दिन पूर्व 6 फरवरी, 2004 को विघटित कर दी गई थी। चौदहवीं लोक सभा जिसकी पहली बैठक 2 जून, 2004 को हुई थी पांच वर्ष की अपनी अवधि पूरी होने से चौदह दिन पूर्व 18 मई 2009 को विघटित कर दी गई थी। पन्द्रहवीं लोकसभा की पहली बैठक 1 जून 2009 को हुई।

देखिए सुभाष सी. काश्यप डिजोल्यूशन आफ लोक सभा, द *पार्लियामेंटेरियन,* L VII, जनवरी, 1977।

3. पांचवीं लोक सभा की पहली बैठक 19 मार्च, 1971 को हुई थी इसकी अवधि 18 मार्च, 1977 तक एक वर्ष के लिए [*देखिए* लोक सभा (कालावधि विस्तारण) अधिनियम, 1976] तथा पुनः 18 मार्च, 1978 तक के लिए [*देखिए* लोक सभा (कालावधि विस्तारण) संशोधन अधिनियम, 1976] बढ़ा दी गई थी। विस्तारित अवधि की समाप्ति से पूर्व इसका 18 जनवरी, 1977 को विघटन कर दिया गया था।

लोक सभा के सत्र की अवधि में राष्ट्रपति के लोक सभा को आहूत करने के आदेश में उल्लिखित तारीख और समय से लेकर राष्ट्रपति द्वारा लोक सभा का सत्रावसान या विघटन किए जाने के दिन तक की अवधि शामिल होती है।[4]

यह आवश्यक नहीं है कि लोक सभा और राज्य सभा को एक साथ अथवा एक ही तारीख को आहूत किया जाए और उनका सत्रावसान किया जाए।[5] वर्ष 1961 तक दोनों सभाओं के सत्र भिन्न-भिन्न तारीखों पर आरंभ होते थे,[6] सिवाए प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के, जब राष्ट्रपति एक साथ समवेत दोनों सदनों के सदस्यों को संबोधित करते हैं।[7] परन्तु, 1962 से सामान्यत: दोनों सभाएं एक साथ आरंभ होती हैं।

---

4. आठवीं लोक सभा का आठवां सत्र 23 फरवरी, 1987 को प्रारंभ हुआ और इसे 12 मई, 1987 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था। तथापि, लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया। संसदीय कार्य मंत्री के एक प्रस्ताव पर अध्यक्ष, लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम 15 के परन्तुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा की बैठक पुन: 27 जुलाई से 28 अगस्त, 1987 तक बुलाए जाने के लिए सहमत हुए। 12 मई, 1987 को लोक सभा के अनिश्चित काल के लिए स्थगित किए जाने से पहले तथा बाद की अवधि वाले दो भागों अर्थात् भाग-एक और भाग-दो को एक सत्र के रूप में माना गया। आठवें सत्र के दूसरे भाग की समाप्ति पर लोक सभा 28 अगस्त 1987 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हुई तथा 3 सितम्बर, 1987 को इसका सत्रावसान कर दिया गया।

   इसी प्रकार, आठवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र, नौवीं लोक सभा के तीसरे सत्र, ग्याहरवीं लोक सभा के पहले सत्र, तेरहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र, चौदहवीं लोक सभा के सातवें सत्र और पंद्रहवीं लोक सभा के पन्द्रहवें सत्र को दो भागों में विभाजित किया गया। प्रत्येक सत्र के भाग-दो की समाप्ति पर लोक सभा का सत्रावसान कर दिया गया।

5. *देखिए* अनुच्छेद 85, यह प्रथा ब्रिटेन की प्रथा से भिन्न है, वहां दोनों सदनों को एक साथ आहूत किया जाता है, उनका सत्रावसान किया जाता है तथा उनका विघटन किया जाता है, यद्यपि हाउस ऑफ लाड्र्स हेरिडिटरी सदन है और विघटन का उसकी सदस्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

6. जब दोनों सदन एक साथ आहूत नहीं किए जाते हैं तो राज्य सभा का सत्र सामान्यत: लोक सभा के सत्र के प्रारंभ होने के एक सप्ताह बाद प्रारंभ होता है। तमिलनाडु तथा नागालैंड में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा, जो क्रमश: 10 तथा 24 मार्च, 1977 को समाप्त होनी थी, को बढ़ाने के लिए सदन का अनुमोदन प्राप्त करने हेतु राज्य सभा का दो-दिवसीय अल्पावधि सत्र 28 फरवरी, 1977 को आहूत किया गया था। यह पहला अवसर था जब राज्य सभा उस समय समवेत हुई जब लोक सभा विघटित थी और चुनावी प्रक्रिया चल रही थी।

7. अनुच्छेद 87(1)।

सत्र के दौरान लोक सभा दिन-प्रतिदिन अथवा एक दिन से अधिक के लिए स्थगित की जा सकती है।[8] इसे अनिश्चित काल के लिए भी स्थगित किया जा सकता है।[9] 'स्थगन' शब्द का अर्थ है किसी भी सभा की बैठक अथवा कार्यवाहियों को किसी समय अथवा किसी अन्य

---

8. अध्यक्ष ने 6 सितम्बर, 1974 को पूर्वाह्न 11.10 बजे सभा को अपराह्न 12.15 बजे तक के लिए स्थगित कर दिया था ताकि कार्य मंत्रणा समिति के सदस्य और दलों तथा ग्रुपों के नेता कार्य मंत्रणा समिति की महत्वपूर्ण बैठक में भाग ले सकें।

   महासचिव ने अपराह्न 12.20 बजे घोषणा की कि चूंकि कार्य मंत्रणा समिति की बैठक अभी भी चल रही है, इसलिए अध्यक्ष ने निर्देश दिया है कि सभा अपराह्न 12.45 बजे पुन: समवेत होगी-*लो.स.वा.वि.* 6.9.1974, पृ. 1-2 ।

   अध्यक्ष ने 17 नवम्बर, 1987 को सभा में शोरगुल होने के कारण सभा को 12.40 बजे से 14.00 बजे तक के लिए स्थगित कर दिया। महासचिव ने 14.00 बजे घोषणा की कि अध्यक्ष ने निर्देश दिया है कि सभा 14.30 बजे तक के लिए स्थगित रहेगी-*लो.स.वा.वि.,* 17. 11.1987 ।

   सभा 20 अगस्त 1993 को 14.00 बजे पुन: समवेत होने के लिए 13.01 बजे स्थगित हुई। 14.00 बजे से 14.10 बजे तक तीन बार घंटी बजाने के बाद भी गणपूर्ति के अभाव में महासचिव ने उपस्थित सदस्यों को सूचित किया कि सभा में गणपूर्ति नहीं है और अध्यक्ष ने निर्देश दिया है कि सभा उसी दिन 14.30 बजे समवेत होगी। तदनुसार सभा 14.35 बजे पुन: समवेत हुई।

   सभा 21 अगस्त, 1993 को 14.00 बजे पुन: समवेत होने के लिए 13.01 बजे स्थगित हुई। 14.00 बजे से 14.10 बजे तक तीन बार घंटी बजाने के बाद भी गणपूर्ति के अभाव में महासचिव ने उपस्थित सदस्यों को सूचित किया कि सभा में गणपूर्ति नहीं है और अध्यक्ष ने निर्देश दिया है कि सभा उसी दिन 15.00 बजे समवेत होगी। तदनुसार सभा 15.03 बजे पुन: समवेत हुई।

   इसी प्रकार के उदाहरण 22, 25 और 29 अप्रैल, 1994; 8 और 19 अगस्त, 1994; 6 सितम्बर, 1996 तथा 8 अगस्त, 1997 को देखने को मिले।

   16 दिसम्बर, 2005 को प्रश्न काल के दौरान सभा के परिसर में संदेहास्पद वस्तु होने की सूचना मिलने पर अध्यक्ष ने इसे 13.00 बजे पुन: समवेत होने के लिए 11.52 बजे स्थगित कर दिया।

   सुरक्षा कर्मियों ने पूरे संसद भवन परिसर की छानबीन की परन्तु कोई संदेहास्पद वस्तु नहीं मिली। अध्यक्ष के निदेश पर 13.00 बजे सदस्यों को सूचित किया गया कि सभा 15.00 बजे पुन: समवेत होगी। तदनुसार सभा 15.00 बजे पुन: समवेत हुई।

9. ग्यारहवीं लोक सभा का छठा सत्र 19 दिसम्बर, 1997 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित होना था, लेकिन निरन्तर व्यवधान के कारण अध्यक्ष ने लोक सभा को 24 नवम्बर, 1997 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया। अध्यक्ष ने 2 दिसम्बर, 1997 को लोक सभा की बैठक दोबारा बुलाई जिसे उसी दिन पुन: अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। इस बीच प्रधान मंत्री ने 28 नवम्बर, 1997 को त्यागपत्र दे दिया।

विनिर्दिष्ट समय के लिए सभा के पुनः समवेत होने तक के लिए स्थगित करना।[10] अनिश्चित काल के लिये स्थगित किये जाने का अभिप्राय है सभा की अगली बैठक के लिये कोई तारीख निर्धारित किये बिना सभा की बैठक को समाप्त करना।

सामान्य संसदीय परम्परा के अनुसार, बिट्रेन की संसद में सभा को अपने द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव पर स्वयं ही निर्णय लेना होता है कि कब उसे स्थगित किया जाये अथवा क्या उसे निर्धारित तारीख तक के लिए या अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया जाये।[11] इसके विपरीत लोक सभा के नियमों में किसी प्रस्ताव को पेश करने की प्रक्रिया को छोटा करने तथा उस पर सीमित चर्चा करने का प्राधिकार अध्यक्ष को दिया गया है। तथापि, अध्यक्ष की शक्ति इस मायने में सीमित है कि वह या तो सभा को किसी निर्धारित समय पर स्थगित कर सकता है या सभा की राय जानने के बाद किसी ऐसे समय के लिए स्थगित कर सकता है जैसा कि वह नियत करे या वह किसी सत्र के प्रारम्भ में जारी सभा की बैठकों के तिथि पत्र के अनुसार दिन-प्रतिदिन के आधार पर सभा को स्थगित करता है। यदि इसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता होती है तो इस मामले पर सभा के नेता की ओर से प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव पर कार्यवाही सभा द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिए।[12]

28 मार्च, 1970 को गुजरात विधान सभा में सरकार ने कार्य मंत्रणा समिति के बहुमत की सिफारिश पर यह प्रस्ताव किया कि सभा को दिन की कार्यवाही के बाद अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया जाये। सभा का अन्य लम्बित कार्य सभा के पुनः समवेत होने पर लिया जाये। तदनुसार, विधान सभा सरकार द्वारा पेश किए गए तथा विधान सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर कार्यवाही उसी दिन अनिश्चितकाल के लिए स्थगित हुई।

---

10. डी ओ डी, 1993, पृ. 743 ।
11. 5 सितम्बर, 1974 को 18.30 बजे एक सदस्य द्वारा पेश किया गया यह प्रस्ताव 'कि सभा स्थगित की जाए' सभा में अस्वीकृत हुआ-*लो.स.वा.वि.*, 5.9.1974, पृ. 1-6 ।
12. सातवीं लोक सभा का नौंवा सत्र 13 अगस्त, 1982 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित होना था। तथापि, उस दिन कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सभा इस बात के लिए सहमत हुई कि मंत्रिपरिषद में अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए समय उपलब्ध कराने हेतु सत्र एक दिन के लिए बढ़ा दिया जाना चाहिए-समाचार-भाग 1, 13.8.1982 । पन्द्रहवीं लोक सभा का सातवां सत्र जो आमतौर पर दो भागों में होना था को 21 अप्रैल 2011 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित होना था। तथापि कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशों (रिपोर्ट 25) के अनुसार और सभा की सहमति से सभा के पहले सत्र को 25 मार्च 2011 तक अर्थात् 17 मार्च 2011 से 25 मार्च 2011 तक बढ़ा दिया गया और सत्र के दूसरे भाग अर्थात् 17 मार्च 2011 से 21 अप्रैल 2011 तक की बैठकों को, असम, केरल, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और पुडुचेरी में विधानसभा चुनावों के कारण, रद्द कर दिया गया। पन्द्रहवीं लोक सभा का दसवां सत्र 21 दिसम्बर 2011 को समाप्त होना था तथापि कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश (रिपोर्ट 30) के अनुसार लोकसभा की बैठक 22 दिसम्बर 2011 को रखी गई थी जिसके निरस्त होने के परिणामस्वरूप सरकारी कार्य की आवश्यक मदों को पूरा करने के लिए पर्याप्त समय देने हेतु 27, 28 और 29 दिसम्बर 2011 को लोक सभा की बैठकें निर्धारित की गईं।

इससे पूर्व अध्यक्ष ने मंत्रिपरिषद में अविश्वास प्रस्ताव के बारे में एक दिन पहले दी गई दो सूचनाओं को इस आधार पर स्वीकार करने से इंकार कर दिया था कि इसका अभिप्राय वाद-विवाद की पुनरावृत्ति होगी। बजट के दौरान इस पर पहले ही चर्चा हो चुकी है और प्रस्तावों के समर्थन में कोई अन्य गंभीर कारण नहीं दिए गए हैं।

सभा के स्थगन की वैधता को गुजरात उच्च न्यायालय में दायर एक याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई थी। याचिका को रद्द करते हुए उच्च न्यायालय ने 2 मई, 1970 को यह निर्णय दिया था कि सभा को इस निमित्त प्राधिकृत किए जाने के लिए नियमों में किसी विशिष्ट उपबंध के अभाव में भी उसे स्थगित करने का अधिकार है। सभा के अधिकार को उस नियम द्वारा सीमित नहीं किया गया जो अध्यक्ष को विशिष्ट रूप से सभा स्थगित करने की शक्ति प्रदान करता है। सभा के स्थगन के प्रस्ताव को अनुमति देने का अध्यक्ष का विनिर्णय उसकी शक्तियों के अंतर्गत है और यह अंतिम है।[13]

पंजाब विधान सभा में 30 जनवरी, 1971 को निम्न वेतनभोगी सरकारी कर्मचारियों की हाल की हड़ताल के मामले तथा राज्य में बिजली संकट से उत्पन्न स्थिति पर चर्चा होनी थी। तथापि विधान सभा 29 जनवरी को मुख्य मंत्री द्वारा पेश किए गए तथा सभा द्वारा ध्वनि मत से पारित किए गए प्रस्ताव पर अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई थी।[14]

अध्यक्ष यदि उचित समझे, उस तिथि विशेष या समय से पूर्व, जब तक के लिए कि सभा की बैठक स्थगित की गई हो, या सभा के अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित होने के बाद किसी भी समय सभा की बैठक बुला सकेगा।[15] सभा के अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने संबंधी सूचना समाचार (बुलेटिन) में जारी की जाती है।

---

13. *दि हिन्दू*, 3 मई, 1970 ।

14. *दि हिन्दुस्तान टाइम्स,* 30 जनवरी, 1971 ।

15. नियम 15 ।

आठवीं लोक सभा का आठवां सत्र 23 फरवरी, 1987 को प्रारम्भ हुआ था और 12 मई, 1987 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हुआ। तथापि, लोक सभा का सत्रावसान नहीं किया गया था।

अध्यक्ष, संसदीय कार्य मंत्री के एक प्रस्ताव पर नियम 15 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा की बैठक 27 जुलाई, 1987 से पुनः बुलाने के लिए सहमत हुए जो 28 अगस्त, 1987 तक चली। 12 मई, 1987 को लोक सभा के अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने के पहले और बाद की सत्र की अवधि को दो भागों अर्थात् भाग-एक और भाग-दो में विभक्त माना गया है।

लोक सभा की बैठक पुनः बुलाने के लिए निम्नलिखित कार्यवाही की गई:

(i) महासचिव के हस्ताक्षर से प्रत्येक सदस्य को व्यक्तिगत रूप से आमंत्रण की भांति अ. शा.पत्र भेजे गए जिसमें उन्हें सूचना दी गई कि लोक सभा की बैठक 27 जुलाई, 1987 को होगी और सत्र के दूसरे भाग के 28 अगस्त, 1987 को समाप्त होने की संभावना है।

ऐसे दो अवसर आए हैं जबकि विधान सभाओं की बैठकें और उनकी कार्य-सूची अध्यक्ष की बजाए किन्हीं अन्य प्राधिकरणों द्वारा निर्धारित की गई। उत्तर प्रदेश विधान सभा के मामले में, भारत के उच्चतम न्यायालय ने मुख्यमंत्री पद के दो दावेदारों (कल्याण सिंह और जगदंबिका पाल) में से सभा का बहुमत किसके पास है इस प्रश्न का निर्णय करने संबंधी एकमात्र मद वाली कार्य-सूची के साथ एक 'संयुक्त बहुमत परीक्षण' कराने का आदेश दिया। न्यायालय ने कार्यवाही का शांतिपूर्वक संचालन करने का आदेश दिया और कहा कि अध्यक्ष द्वारा परीक्षण के परिणाम की ईमानदारीपूर्वक और सच्चाई से घोषणा की जाए। उच्चतम न्यायालय के आदेश से 'संयुक्त बहुमत परीक्षण' की संकल्पना का सूत्रपात हुआ यद्यपि, प्रक्रिया नियमों में ऐसे परीक्षण की व्यवस्था नहीं है।[16]

एक अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने श्री अर्जुन मुंडा द्वारा दायर रिट याचिका पर 9 मार्च, 2005[17] के अपने निर्णय में, राजनैतिक दलों के किस समूह के पास सभा का बहुमत है, यह पता लगाने के लिए झारखंड विधान सभा के अध्यक्ष को न्यायालय द्वारा निर्धारित एक तिथि को सभा में एक बहुमत परीक्षण कराने का आदेश दिया। न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा विश्वास प्रस्ताव पर सभा में मतदान कराने हेतु न केवल एक और दिन अर्थात्, 11 मार्च, 2005 तक झारखंड विधान सभा के सत्र को आगे बढ़ाने और उसी दिन मतदान कराने का निर्णय लिया अपितु, इस बात पर भी बल दिया कि उस दिन की कार्य-सूची में केवल दो राजनैतिक गठबंधनों के बीच शक्ति परीक्षण कराया जाना ही शामिल होगा। इस बात पर बल दिया गया कि सभा की कार्यवाही का संचालन बिल्कुल शान्तिपूर्ण तरीके से किया जाए। सामयिक अध्यक्ष को यह आदेश भी दिया गया कि किसी प्रकार के गलत हथकंडों को अपनाए जाने से रोकने के लिए सभा की कार्यवाही की वीडियोग्राफी की जाए। न्यायालय के इन निर्देशों से विधायिका और न्यायपालिका के बीच के संबंधों में असहजता और बढ़ गई

(ii) सामान्य प्रकार की अन्य सूचनाओं के अलावा आठवीं लोक सभा के आठवें सत्र के भाग-दो के प्रारंभ होने के बारे में सूचना समाचार भाग-2 में प्रकाशित हुई थी। बैठकों का अस्थाई तिथि-पत्र तथा बैलटों की तारीखें और प्रश्नों की सूचनाओं की प्राप्ति की अंतिम तारीख दर्शाने वाले चार्ट भी जारी किए गए।

(iii) मंत्रालयों तथा विभागों को कार्यालय ज्ञापन भेजे गए तथा प्रेस प्रकाशनी भी जारी की गई। आठवें सत्र के भाग-दो के समापन पर लोक सभा 28 अगस्त, 1987 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हुई और 3 सितम्बर, 1987 को उसका सत्रावसान हुआ। आठवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के दूसरे भाग, नौवीं लोक सभा के तीसरे सत्र के दूसरे भाग तथा ग्यारहवीं लोक सभा के पहले सत्र के दूसरे भाग तथा ग्यारहवीं लोक सभा के चौथे और छठे सत्र, तेरहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के दूसरे भाग तथा चौदहवीं लोक सभा के सातवें सत्र के दूसरे भाग और पंद्रहवीं लोक सभा के दूसरे भाग के दौरान बैठक पुन: बुलाने के लिए भी वही कार्यवाही की गई।

16. जगदंबिका पाल बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1998 एस.सी 998 ।

17. अर्जुन मुंडा बनाम झारखंड के राज्यपाल व अन्य रिट याचिका (सिविल) सं. 123/2005 ।

क्योंकि इन निर्देशों को विधायिका के आंतरिक कार्यकरण में न्यायपालिका का अनुचित हस्तक्षेप माना गया।

लोक सभा अध्यक्ष ने विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सभापति की हैसियत से 20 मार्च, 2005 को नई दिल्ली में पीठासीन अधिकारियों का एक आपातकालीन सम्मेलन बुलाया । सम्मेलन में विषय पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् अन्य बातों के साथ-साथ यह संकल्प पारित किया गया कि विधायिका और न्यायपालिका के बीच एक आपसी विश्वास और सम्मान होना चाहिए और यह समझना चाहिए कि वे परस्पर विरोधी उद्देश्यों के लिए कार्य नहीं कर रहे हैं अपितु, इस देश के आम आदमी की सेवा करने और देश को मजबूत बनाने के समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक साथ मिलकर प्रयास कर रहे हैं, और यदि ये दो महत्वपूर्ण संस्थान राष्ट्रीय हितों में एक दूसरे की भूमिका का सम्मान करें और संविधान द्वारा उन्हें प्रदान किए गए कार्यक्षेत्रों के अतिरिक्त दूसरे के कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण न करें तो लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को सफल बनाने में बहुत सहायता मिलेगी और यह बहुत जरूरी है कि विधायिकाओं और न्यायपालिका के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखा जाए।

ऐसा भी हुआ है जब लोक सभा की बैठक तीन बार अल्पावधि सूचना पर उस तारीख और समय से पूर्व बुलाई गई जिस तारीख और समय तक के लिए सभा स्थगित की गई थी।

(i) 28 फरवरी, 1970 को वित्त विधेयक, 1970 को पुर:स्थापित करने के प्रस्ताव का विरोध किया गया। इस प्रस्ताव को सभा द्वारा लगातार व्यवधान के बीच स्वीकृत किया गया और विधेयक को औपचारिक तौर पर पुर:स्थापित किये जाने से पूर्व अध्यक्ष ने सभा को 2 मार्च, 1970 के पूर्वाह्न, 11.00 बजे तक के लिए स्थगित कर दिया। बाद में कुछ सदस्यों ने इस तथ्य की ओर अध्यक्ष का ध्यान उनके कक्ष में जाकर दिलाया। इस बात पर विचार करते हुए कि जब तक विधेयक पुर:स्थापित नहीं कर दिया जाता तब तक वो कर, जो अनन्तिम कर संग्रहण अधिनियम, 1931 के अधीन उस मध्य रात्रि से संग्रहीत किये जाने थे, संग्रहीत नहीं किये जा सकते थे। हालांकि उन्हें सार्वजनिक किया जा चुका था, अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए लोक सभा उस दिन 22.00 बजे पुन: समवेत होगी। सदस्यों को इस बारे में संसदीय समाचार के एक पैरा के माध्यम से और आकाशवाणी से तथा दूरभाष पर सूचित किया गया था। तद्नुसार, उस समय सभा की बैठक हुई तथा विधेयक 22.55 बजे पुर:स्थापित किया गया। तत्पश्चात् सभा 2 मार्च, 1970 के पूर्वाह्न 11.00 बजे पुन: समवेत होने के लिए स्थगित हुई।[18]

(ii) 3 दिसम्बर, 1971 को सभा 6 दिसम्बर, 1971 के पूर्वाह्न 11.00 बजे तक के लिए स्थगित हुई। पाकिस्तान द्वारा 3 दिसम्बर की सायं को भारत पर अचानक आक्रमण किये जाने के कारण 4 दिसम्बर को सभा की बैठक बुलाई गई और इस संबंध में

18. *लो.स.वा.वि.*, 28.2.1970, पृ. 1-22 ।

सदस्यों को आकाशवाणी से तथा दूरभाष पर सूचित किया गया था। सभा की बैठक उस तिथि को नियत समय पर हुई। इसी बीच राष्ट्रपति द्वारा जारी आपातकाल की उद्घोषणा को अनुमोदित किया गया तथा भारत रक्षा विधेयक पारित किया गया। तत्पश्चात् सभा 6 दिसम्बर, 1971 के पूर्वाह्न 10.00 बजे समवेत होने के लिए स्थगित हुई।

(iii) प्रधान मंत्री द्वारा दी गई सूचना के आधार पर अध्यक्ष ने 22 मार्च, 1979 को श्री जय प्रकाश नारायण के निधन के बारे में सभा को सूचना दी। तत्पश्चात् श्री जय प्रकाश नारायण के निधन के संबंध में उल्लेख किया गया और अपराह्न 13.50 बजे सभा की बैठक 23 मार्च, 1979 के पूर्वाह्न 11.00 बजे समवेत होने के लिए स्थगित हुई। स्थगन के कुछ ही समय पश्चात् जब यह पता चला कि श्री जय प्रकाश नारायण के निधन का समाचार गलत था तो अध्यक्ष ने निदेश दिया कि सभा की बैठक जो 23 मार्च, 1979 के पूर्वाह्न 11.00 बजे तक के लिए स्थगित हो गयी थी उस दिन के अपने अधूरे कार्य को निपटाने के लिए उसी दिन अर्थात् 22 मार्च, 1979 को सायं 17.00 बजे होगी। सदस्यों को बैठक के बारे में एक विशेष समाचार-भाग 2 तथा बैठक की कार्य सूची के माध्यम से, आकाशवाणी से और दूरभाष पर सूचित किया गया। तद्नुसार, सभा की बैठक नियत समय पर हुई।

तत्पश्चात् सभा ने श्री जय प्रकाश नारायण के स्वास्थ्य में हो रही प्रगति पर राहत महसूस करते हुए तथा पूर्ण स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हुए सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। तत्पश्चात् सभा 23 मार्च, 1979 के पूर्वाह्न 11.00 बजे पुनः समवेत होने के लिए स्थगित हुई।[19]

राज्य विधान सभा के स्थगन के संबंध में भी नियम सामान्यतः लोक सभा के नियमों की तरह ही हैं। तथापि, कुछ राज्यों में अध्यक्षों ने शक्तियों का प्रयोग किया था जिन्हें इससे संबंधित नियमों, प्रक्रिया और परम्पराओं की परिधि के परे अभिनिर्धारित किया गया था और ये कृत्य घोर राजनैतिक विवादों/विधिक निर्णयों और जनता की आलोचना के विषय बने थे। राज्य विधान सभाओं के ऐसे तात्कालिक और अनियमित स्थगन के कुछ उदाहरण नीचे दिए हैं–

नये मुख्यमंत्री के परामर्श से पश्चिम बंगाल विधान सभा की बैठक 29 नवम्बर, 1967 को बुलाई गयी जिसमें शक्ति परीक्षण हुआ। विधान सभा की नियत समय पर हुई बैठक के तत्काल बाद ही अध्यक्ष ने स्वप्रेरणा से एक वक्तव्य दिया और इन तीन कारणों यथा पूर्व मंत्रिमंडल का विघटन, नये मुख्यमंत्री की नियुक्ति और उसके परामर्श पर सभा की बैठक बुलाने को "असंवैधानिक और अविधिमान्य" करार देते हुए सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया। अध्यक्ष द्वारा सभा को स्थगित कराने के पश्चात् राज्यपाल ने विधान सभा का सत्रावसान कर दिया। 29 जनवरी, 1968 को राज्यपाल ने विधानमंडल

---

19. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.3.1979, कॉ. 321-34 और 335-52 ।

को उसके बजट सत्र के लिए 14 फरवरी को बैठक करने हेतु आमंत्रित किया। इस बीच कलकत्ता उच्च न्यायालय ने एक रिट याचिका पर दिए गए अपने एक निर्णय में राज्यपाल की कार्यवाही की संवैधानिकता और सद्भाव को मान्य ठहराया। सभा की निर्धारित तारीख को हुई बैठक में अध्यक्ष ने नये मुख्य मंत्री के परामर्श से बुलाए गए सत्र की वैधानिकता पर लगाए गए प्रश्न चिह्न के संबंध में 29 नवम्बर, 1967 को उसके द्वारा दिये गये निर्णय को दोहराते हुए अपने कक्ष में प्रवेश करने के तत्काल बाद सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया।

7 मार्च, 1968 को जब पंजाब विधान सभा के अध्यक्ष ने यह निर्णय दिया कि उनके विरुद्ध दिए गए दो अविश्वास प्रस्ताव, जिन्हें पिछले दिन गृहीत किया गया था, "संविधान के अनुच्छेद 179 (ग) का उल्लंघन कर रहे हैं और उन्हें पेश ही नहीं किया गया माना जाना चाहिए" जिसके फलस्वरूप सभा में हो-हल्ला मच गया और सभा को आधे घंटे के लिए स्थगित करना पड़ा। किन्तु थोड़े अन्तराल के बाद बैठक पुन:समवेत होने पर स्थिति और भी बिगड़ गई और अध्यक्ष ने सभा को स्वेच्छा से दो माह के लिए स्थगित कर दिया यद्यपि सभा द्वारा वर्ष 1968-69 का बजट अभी पारित किया जाना था।[20]

गोवा की पांचवीं विधान सभा का तीसरा सत्र 10 जनवरी से 18 जनवरी, 2008 तक होना था। इसी बीच, गोवा सरकार संकट में आ गई क्योंकि यह तब अल्पमत में आ गई जब तीन विधायकों ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया। तथापि, मुख्यमंत्री संकट से उबर गए क्योंकि राज्यपाल ने उसी दिन अर्थात् सत्र के पहले दिन ही विधान सभा का सत्रावसान कर दिया जिससे विपक्ष द्वारा बहुमत साबित करने की मांग पूरी नहीं हुई।

लोक सभा के सत्र

सामान्यत: लोक सभा के एक वर्ष में तीन सत्र होते हैं। लोक सभा की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति द्वारा 22 अप्रैल, 1955 को हुई अपनी बैठक में इस प्रश्न पर कि तीनों सत्रों के प्रारम्भ होने के लिए प्राय: निर्धारित तारीखें ही होनी चाहिए, विचार किया गया था और समिति ने तीनों सत्रों के लिए निम्नलिखित समय-सारणी की सिफारिश की थी—

सत्र	*सत्र प्रारम्भ होने की तारीख*	*सत्र समाप्त होने की तारीख*
बजट सत्र	1 फरवरी	7 मई
मानसून सत्र	15 जुलाई	15 सितम्बर
शीतकालीन सत्र	5 नवम्बर अथवा दीपावली के पश्चात् चौथा दिन जो भी बाद में हो।	22 दिसम्बर

मंत्रिमंडल इन सिफारिशों से सहमत हुआ। तथापि, व्यवहार में इस समय-सारणी का अनुपालन नहीं किया गया है। सत्र भिन्न-भिन्न तारीखों को, किन्तु कमोबेश विनिर्दिष्ट महीनों में ही प्रारम्भ हुए हैं और सत्रावधि सभा में होने वाले कार्य की मात्रा के अनुसार परिवर्तित

20. सभा को पुन: बुलाया गया। बाद की घटनाओं के लिए *देखिए* अध्याय 22, 'धन विधेयक का प्रमाणीकरण' उपशीर्ष के अंतर्गत।

होती रही है। आम चुनाव के पश्चात् पहला सत्र मार्च में 2 अथवा 3 सप्ताह के लिए और दूसरा सत्र अप्रैल–मई में लम्बी अवधि अर्थात् दस से बारह सप्ताह के लिए प्रारम्भ होता रहा है ताकि वित्तीय कार्य का निपटान किया जा सके। तथापि, आम चुनाव की तारीखों के आधार पर इसमें कतिपय फेर–बदल भी होते रहे हैं।[21]

आम चुनाव कराना अनेक कारकों जैसे मौसम, सुरक्षा बलों की आवाजाही, कृषि संबंधी कार्यों, त्यौहार, परीक्षा कार्यक्रम और संभार संबंधी आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। हालांकि पिछली लोक सभा के अंतिम सत्र और नई लोक सभा के पहले सत्र के बीच अन्तर के बारे में कहीं विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन यह भी संविधान के अनुच्छेद 85(1) के उपबन्धों द्वारा शासित होता है। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत यह माना कि विद्यमान सभा के समय–पूर्व विघटन के पश्चात् विधान सभा का गठन करने के लिए चुनाव कराने हेतु निर्धारित अवधि के बारे में न तो संविधान और न ही लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में कुछ उल्लेख किया गया है। तथापि, संविधान की योजना और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के मद्देनजर विधान सभा के गठन हेतु चुनाव विधान सभा के भंग होने की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर ही कराए जाने चाहिए।[22]

---

21. सातवीं लोक सभा का पहला सत्र 21 जनवरी, 1980 को प्रारम्भ हुआ और 2 फरवरी, 1980 तक चला। दूसरा सत्र 11 मार्च, 1980 को प्रारम्भ हुआ और 28 मार्च, 1980 को समाप्त हुआ। तीसरा सत्र, जो 9 जून, 1980 को प्रारम्भ हुआ था, 12 अगस्त, 1980 तक चला।

    इसी प्रकार, आठवीं लोक सभा का पहला सत्र जनवरी में प्रारंभ हुआ और दो सप्ताह से भी अधिक अवधि तक चला। दूसरा सत्र, जो मार्च, 1985 में प्रारम्भ हुआ था, नौ सप्ताह तक चला।

    नौवीं लोक सभा का पहला सत्र 18 दिसम्बर को प्रारम्भ हुआ और 30 दिसम्बर, 1989 को समाप्त हुआ। दूसरा सत्र 12 मार्च से 31 मई, 1990 तक बारह सप्ताह से भी अधिक समय तक चला।

    दसवीं लोक सभा का पहला सत्र लगभग दस सप्ताह अर्थात् 9 जुलाई से 18 सितम्बर, 1991 तक चला परन्तु दूसरा सत्र 20 नवम्बर से 20 दिसम्बर, 1991 तक एक माह चला।

    ग्यारहवीं लोक सभा का पहला सत्र 22 मई को प्रारम्भ हुआ और 12 जून, 1996 को समाप्त हो गया और दूसरा सत्र 10 जुलाई से 13 सितम्बर, 1996 तक चला।

    बारहवीं लोक सभा का पहला सत्र 23 मार्च, 1998 को प्रारम्भ हुआ और 31 मार्च, 1998 को समाप्त हुआ जबकि दूसरा सत्र 27 मई को प्रारम्भ हुआ तथा 6 अगस्त, 1998 को समाप्त हुआ।

    तेरहवीं लोक सभा का पहला सत्र 20 अक्तूबर, 1999 को प्रारंभ हुआ और 29 अक्तूबर, 1999 तक चला जबकि दूसरा सत्र 29 नवम्बर, 1999 को प्रारंभ हुआ और 23 दिसम्बर, 1999 तक चला।

    चौदहवीं लोक सभा का पहला सत्र 2 जून, 2004 को प्रारंभ हुआ और 10 जून, 2004 तक चला जबकि दूसरा सत्र 5 जुलाई 2004 को प्रारंभ हुआ और 26 अगस्त, 2004 तक चला। पंद्रहवीं लोक सभा का पहला सत्र 1 जून 2009 को प्रारंभ हुआ और 9 जून 2009 तक चला जबकि दूसरा सत्र 2 जुलाई 2009 को प्रारंभ हुआ और 7 अगस्त 2009 तक चला।

22. 2002 की विशेष संदर्भ सं. 1, 2003 एससी 87 के संदर्भ में।

लोक सभा को आहूत करना

लोक सभा को आहूत करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। वह प्रधान मंत्री अथवा मंत्रिमंडल की सिफारिश पर इस शक्ति का प्रयोग करता है। वह सभा को आहूत करने के लिए अधिक सुविधाजनक तारीख और समय के बारे में प्रधान मंत्री को अनौपचारिक सुझाव दे सकता है परन्तु इस मामले में अंतिम सलाह प्रधान मंत्री की ही होती है।

> पश्चिम बंगाल में 6 नवम्बर, 1967 को एक मंत्री सहित अठारह सदस्यों द्वारा सत्ताधारी संयुक्त मोर्चा से त्यागपत्र दिये जाने के परिणामस्वरूप, विधान सभा में सरकार के बहुमत के बारे में प्रथम दृष्टया संदेह उत्पन्न हो गए थे। इसलिए राज्यपाल ने 23 नवम्बर को सभा को आहूत करने की इच्छा व्यक्त की ताकि सभा में विश्वास मत प्राप्त किया जा सके, परन्तु मुख्यमंत्री ने कहा कि वह सभा का सत्र यथानिर्धारित 18 दिसम्बर को ही आहूत करेंगे। तब राज्यपाल ने 21 नवम्बर 1967 को मंत्रिपरिषद को बर्खास्त कर दिया।

विधान सभा अध्यक्ष, रेड्डी ने टिप्पणी की कि पश्चिम बंगाल में संकट अपरिहार्य नहीं था क्योंकि इस संबंध में राज्यपाल को निर्धारित समय से पूर्व सभा को आहूत करने के लिए मुख्यमंत्री पर दबाव डालकर इतनी हड़बड़ी फैलाने की आवश्यकता नहीं थी जबकि दो तारीखों के बीच केवल कुछ दिनों का अंतर था।[23]

पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में अंगीकृत संकल्प में यह सिफारिश की गई थी कि निम्नलिखित टिप्पणियों के आलोक में विधानमंडलों को आहूत करने अथवा उनका सत्रावसान करने और मंत्रिपरिषद को बर्खास्त करने की राज्यपालों की शक्तियों के बारे में भारत सरकार को अत्यावश्यक और यथोचित कदम उठाने चाहिए–

> कि राज्यपाल मुख्यमंत्री की सलाह पर विधानमंडल को आहूत करेगा अथवा उसका सत्रावसान करेगा। यह परम्परा विकसित की जाएगी कि मुख्यमंत्री संबंधित पीठासीन अधिकारी से परामर्श करके सभा को आहूत करने अथवा उसका सत्रावसान करने की तारीखें निर्धारित कर सकेगा। राज्यपाल किसी वैकल्पिक तारीख का सुझाव दे सकता है परन्तु यह मुख्यमंत्री अथवा मंत्रिपरिषद के विवेक पर ही छोड़ा जाएगा कि वे अपने निर्णय को बदलें अथवा नहीं। तथापि, यदि विधान सभा को आहूत करने में अनुचित विलम्ब हो और विधान सभा के अधिकांश सदस्य मंत्रिपरिषद में अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा करना चाहें तथा इस संबंध में मुख्यमंत्री से लिखित रूप में इस आशय का अनुरोध करें तो मुख्यमंत्री ऐसा अनुरोध प्राप्त होने के एक सप्ताह के भीतर राज्यपाल को विधान सभा का सत्र बुलाने की सलाह देगा।[24]

लोक सभा को आहूत करने का प्रस्ताव संसदीय कार्य मंत्री (और यदि प्रधान मंत्री सभा का नेता न हो तो सभा के नेता द्वारा) किया जाता है और सत्र के आरम्भ होने की तारीख

23. 6 अप्रैल, 1968 को नई दिल्ली में पीठासीन अधिकारियों के आपातकालीन सम्मेलन में अपने भाषण में।

24. संकल्प 7 अप्रैल, 1968 को हुए आपात सम्मेलन में स्वीकृत किया गया, *उद्धृत कृति* ।

और उसकी अवधि के संबंध में अध्यक्ष के साथ अनौपचारिक रूप से परामर्श करके प्रधान मंत्री को भेज दिया जाता है।[25] प्रधान मंत्री इस सुझाव से सहमत हो सकता है या इसे मंत्रिमंडल के पास भेज सकता है।[26] प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल द्वारा अंतिम रूप से स्वीकार किया गया प्रस्ताव औपचारिक रूप से अध्यक्ष[27] को भेजा जाता है। यदि अध्यक्ष[28] उससे सहमत हो (यदि वह सहमत न हो, ऐसी संभावना कम ही होती है तो वह इसे पुनः विचार के लिए वापस प्रधान मंत्री के पास भेज सकता है) तो वह महासचिव से कह सकता है कि वह प्रस्ताव में निर्दिष्ट तारीख तथा समय पर लोक सभा को आहूत करने के संबंध में राष्ट्रपति का आदेश[29] प्राप्त कर ले। राष्ट्रपति द्वारा उस आदेश पर हस्ताक्षर कर दिये जाने के बाद सचिवालय उसे राजपत्र (असाधारण) में प्रकाशित करवाता है और समाचारपत्रों, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से उसका व्यापक प्रचार करने के उद्देश्य से एक प्रेस विज्ञप्ति जारी करता है।[30]

---

25. *लो.स.वा.वि.,* 1.8.1972, पृ. 129 ।

26. राष्ट्रपति ने जब राजपत्र असाधारण भाग-2 में प्रकाशित अपने 14 सितम्बर, 1962 के आदेश द्वारा लोक सभा का सत्र 19 नवम्बर, 1962 के लिए आहूत किया तो प्रधान मंत्री ने सुझाव दिया कि चीन द्वारा भारत की उत्तरी सीमा पर आक्रमण करने से उत्पन्न स्थिति के कारण सत्र के आरंभ की निर्धारित तारीख से पहले ही 8 नवम्बर 1962 कर दी जाए। इस पर राष्ट्रपति के आदेश पुनः लिए गए और 29 अक्तूबर, 1962 को सदस्यों को नये सिरे से आमंत्रण भेजे गए जिनमें उनसे 8 नवम्बर, 1962 को लोक सभा की बैठक में भाग लेने का अनुरोध किया गया था।

27. *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1970, *पृ.* 15-16 ।

28. यदि अध्यक्ष का पद रिक्त है और उसके पद का कार्य उपाध्यक्ष द्वारा किया जा रहा है, तो सत्र प्रारंभ करने के लिए सरकार के प्रस्ताव पर उपाध्यक्ष की सहमति प्राप्त की जाती है।

29. यदि उपराष्ट्रपति, अनुच्छेद 65 (1) के अंतर्गत राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा है तो लोक सभा को आहूत करने के संबंध में उसके आदेश प्राप्त किये जाते हैं (चौथी लोक सभा का आठवां सत्र, 1969; छठी लोक सभा का पहला सत्र, 1977)।

30. 1929 से पहले, केन्द्रीय विधानमंडल के आह्वान, सत्रावसान और विघटन के संबंध में गवर्नर जनरल के आदेश भारत सरकार के विधायी विभाग द्वारा प्राप्त किए जाते थे और राजपत्र में अधिसूचित करवाये जाते थे। 17 जून, 1929 को गवर्नर जनरल की अध्यक्षता में हुए एक सम्मेलन में जिसमें लार्ड इर्विन के अतिरिक्त विधान सभा के अध्यक्ष, विट्ठलभाई पटेल, भारत सरकार के विधि सदस्य तथा गृह-कार्य सदस्य उपस्थित थे—यह फैसला किया गया कि भविष्य में विधान सभा के आह्वान, सत्रावसान और विघटन के संबंध में गवर्नर जनरल के आदेश विधान सभा विभाग द्वारा प्राप्त किए जायेंगे और अधिसूचित किए जाएंगे। वही प्रथा अब तक चली आ रही है।

    1955 में संसदीय कार्य मंत्री और 1958 में गृह मंत्री ने यह सुझाव दिया कि लोक सभा के आह्वान और सत्रावसान के संबंध में राष्ट्रपति के आदेश संसदीय कार्य मंत्री के आदेशों के अधीन प्राप्त किए जाने चाहिए और उन्हें अधिसूचित किया जाना चाहिए। इन दोनों अवसरों पर अध्यक्ष ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। इसके कारण इस प्रकार थे:

आमंत्रण भेजा जाना

महासचिव व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक सदस्य को आमंत्रण भेजता है।[31] आमंत्रण सामान्यतः राष्ट्रपति के आदेश की प्राप्ति के पश्चात् दो से चार दिनों के अन्दर भेजे जाते हैं।[32] आमंत्रण की भाषा राष्ट्रपति के आदेश की भाषा के अनुरूप होती है और उसमें सत्र के प्रारंभ होने की तारीख, समय तथा स्थान का उल्लेख होता है।

लोक सभा का सत्र आहूत करने के लिए राष्ट्रपति के आदेश, सदस्यों को आमंत्रण आदि जारी करने की तारीख और सत्र के प्रारम्भ होने की तारीख के बीच सामान्यतः चार से दस सप्ताह का अंतराल होता है।[33] अंतराल बहुत कम होने पर सदस्यों को सत्र आरंभ होने तथा

कि राष्ट्राध्यक्ष होने के साथ-साथ राष्ट्रपति संसद का भी अंग है और इसलिए लोक सभा के आह्वान, सत्रावसान तथा विघटन संबंधी मामलों में यह आवश्यक है कि अध्यक्ष सरकार से परामर्श करके तारीख नियत करे और फिर उसकी सूचना राष्ट्रपति को दे;

कि लोक सभा की बैठक बुलाने या न बुलाने का पूरा विवेकाधिकार सरकार को दे दिया जाये तो सम्भव है कि विरोधी पक्ष या अल्पसंख्यक ग्रुपों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़े;

कि सभा की बैठक और उसके स्थगन का समय नियत करना, अनिश्चित काल के लिए स्थगन के बाद उसकी बैठक बुलाने और बैठक प्रारंभ होने का समय नियत करना एक ही प्रक्रिया का अंग है। इसलिए उचित यही है कि अध्यक्ष ही उस संबंध में अंतिम निर्णय करने तथा राष्ट्रपति को सिफारिश करने वाला अधिकारी हो;

कि जिस प्रकार किसी संसदीय समिति की बैठक उसके सभापति की सहमति के बिना नहीं बुलाई जा सकती, उसी प्रकार लोक सभा के आह्वान, सत्रावसान तथा विघटन का निर्णय अध्यक्ष की सहमति के बिना नहीं किया जाना चाहिए। इससे लोकतंत्र के सिद्धांतों को बल मिलेगा; और

कि संविधान में कहीं भी यह उपबंध नहीं किया गया है कि कार्यपालिका ऐसे फैसले की सूचना राष्ट्रपति को देगी।

31. नियम 3 ।

32. परन्तु अंतरिम संसद के चौथे और पांचवें सत्र और पहली लोक सभा के पहले सत्र, पांचवीं लोक सभा के पहले सत्र, छठी लोक सभा के पहले सत्र, सातवीं लोक सभा के दूसरे और छठे सत्र, आठवीं लोक सभा के सातवें सत्र तथा दसवीं लोक सभा के दसवें सत्र, तेरहवीं लोक सभा के ग्यारहवें सत्र तथा चौदहवीं लोक सभा के चौथे, पांचवें, छठे, आठवें, नौवें, बारहवें, तेरहवें सत्र और पंद्रहवीं लोक सभा के पहले सत्र के लिए आमंत्रण उसी दिन जारी किये गये जिस दिन राष्ट्रपति का आदेश राजपत्र में प्रकाशित हुआ था।

33. अंतरिम संसद के दूसरे सत्र दूसरी लोक सभा के पहले और सोलहवें सत्र, तीसरी लोक सभा के पहले, चौथे और आठवें सत्र, चौथी लोक सभा के पहले सत्र, पांचवीं लोक सभा के पहले, तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें तथा सोलहवें सत्र, छठी लोक सभा के पहले और नौवें सत्र, सातवीं लोक सभा के पहले, दूसरे और तीसरे सत्र, आठवीं लोक सभा के पहले और दूसरे सत्र, नौवीं लोक सभा के पहले, चौथे और पांचवें सत्र, दसवीं लोक सभा के पहले, दूसरे, छठे और सोलहवें सत्र, ग्यारहवीं व बारहवीं लोक सभा के पहले से चौथे सत्र तक तेरहवीं लोक सभा

आमंत्रण जारी करने के बारे में रेडियो और टेलीविजन पर प्रेस विज्ञप्ति के द्वारा तथा तार भेज कर सूचित किया जा सकता है।[34]

के पहले, पांचवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें सत्र, चौदहवीं लोक सभा के पहले, पांचवें, सातवें से तेरहवें सत्र और पंद्रहवीं लोक सभा के पहले से तेरहवें सत्र तक अन्तराल चार सप्ताह से कम था।

34. छठी लोक सभा का गठन 23 मार्च, 1977 को हुआ था। छठी लोक सभा के पहले सत्र को आहूत करने संबंधी आदेश पर 23 मार्च, 1977 को उप-राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर किये गये थे जो उस समय राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे और लोक सभा की बैठक 25 मार्च, 1977 को होनी थी। चूंकि, अधिकतर सदस्य जनता पार्टी तथा कांग्रेस पार्टी के नेताओं के चुनाव के संबंध में पहले ही 23 मार्च, 1977 को दिल्ली पहुंच चुके थे, इसलिए सदस्यों के लिए आमंत्रण केवल दिल्ली के पतों पर भेजे गए थे और उन्हें तार भेजने की आवश्यकता नहीं हुई।

सातवीं लोक सभा के आम चुनाव 3 और 6 जनवरी, 1980 को कराये गये और 18 जनवरी, 1980 तक चुनाव परिणाम घोषित कर दिए गए। सातवीं लोक सभा का गठन 10 जनवरी, 1980 को हुआ। प्रधान मंत्री/मंत्रियों ने 14 जनवरी, 1980 को पद की शपथ ली। 21 जनवरी, 1980 से आरंभ होने वाले पहले सत्र हेतु आमंत्रण 16 जनवरी, 1980 को भेजे गये। चूंकि आमंत्रण भेजने तथा सत्र के आरंभ होने की तारीख के बीच समय का अन्तराल केवल 5 दिनों का था, इसलिए दिल्ली से बाहर के सदस्यों को सामान्य रूप से आमंत्रण भेजने के अलावा तार भी भेजे गये। लोक सभा को आहूत करने के संबंध में 15 जनवरी, 1980 को प्रेस विज्ञप्ति भी जारी की गयी।

नौवीं लोक सभा के पांचवें सत्र, जो 16 नवम्बर, 1990 से आरंभ होना था, के लिए आमंत्रण 12 नवम्बर 1990 को भेजे गए। चूंकि आमंत्रण भेजने तथा सत्र के आरंभ होने की तारीख के बीच समय का अंतराल केवल 4 दिनों का था, इसलिए सामान्य रूप से आमंत्रण भेजने के अलावा 11 नवम्बर, 1990 को सभी सदस्यों को उनके स्थायी पतों पर तार भी भेजे गये तथा राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के मुख्य सचिवों/प्रशासकों को इस आशय के वायरलेस संदेश भेजे गये कि वे सदस्यों को लोक सभा के आहूत किए जाने के संबंध में सूचित कर दें।

दसवीं लोक सभा के पहले सत्र जो 22 मई, 1996 को आरंभ होना था, के लिए आमंत्रण 18 मई, 1996 को भेजे गये। चूंकि आमंत्रण भेजने और सत्र के आरंभ होने के बीच पर्याप्त समय नहीं था, इसलिए सदस्यों को तार भी भेजे गये। "निकनेट" के माध्यम से सभी जिला कलेक्टरों/जिला मजिस्ट्रेटों को प्रेस विज्ञप्ति की एक प्रति इस अनुरोध के साथ भेजी गई कि वे लोक सभा सत्र के आरंभ होने के बारे में सदस्यों को सूचित कर दें।

इसी तरह "निकनेट" के माध्यम से सभी जिला कलेक्टरों/जिला मजिस्ट्रेटों को इस अनुरोध के साथ प्रेस विज्ञप्ति भेजी गई कि वे ग्यारहवीं लोक सभा के पहले सत्र के आरंभ होने के बारे में लोक सभा के सदस्यों को सूचित कर दें।

बारहवीं लोक सभा के पहले सत्र, जो 23 मार्च, 1998 को आरंभ होना था, के लिए आमंत्रण 21 मार्च, 1998 को भेजे गये। चूंकि आमंत्रण भेजने तथा सत्र आरंभ होने के बीच पर्याप्त समय का अन्तराल नहीं था इसलिए सदस्यों को तार भी भेजे गये।

जो सदस्य दिल्ली में हों उन्हें आमंत्रण संदेशवाहकों के माध्यम से भेजे जाते हैं और शेष को रजिस्ट्री से, जिससे कि उन्हें सूचना पहुंच जाये। तथापि, कोई सदस्य चाहे तो आमंत्रण तथा दूसरे पत्र स्वयं सचिवालय से उस दिन ले सकता है जिस दिन वे सभी सदस्यों को भेजे जाते हैं। जब आमंत्रण की कोई रजिस्ट्री वापस आ जाये तो सचिवालय उस स्थान का पता लगाने की चेष्टा करता है जहां वह सदस्य उस समय हो और आमंत्रण उस पते पर भेज दिया जाता है। कारागार में निरुद्ध सदस्यों को आमंत्रण उनके कारागार के पते पर भेजे जाते हैं।[35] यदि कोई सदस्य सचिवालय को सूचना दे कि उसे आमंत्रण पत्र नहीं मिला है तो उसे आमंत्रण की दूसरी प्रति भेज दी जाती है।[36]

जहां कोई व्यक्ति आमंत्रण भेजे जाने के पश्चात्, लेकिन किसी सत्र के वास्तव में आरंभ होने से पूर्व, सभा का सदस्य बन जाता है तो उसकी सदस्यता के बारे में सूचना प्राप्त होने पर उसे विधिवत् आमंत्रण भेज दिया जाता है।[37] यदि वह सत्र के आरंभ होने के पश्चात् सदस्य बनता है, तब उसे सत्र के आरंभ होने की तारीख और उसकी संभावित अवधि के बारे में पत्र के माध्यम से सूचना दे दी जाती है।[38]

तेरहवीं, चौदहवीं और पंद्रहवीं लोक सभा का पहला सत्र जो क्रमशः 20 अक्तूबर, 1999, 2 जून, 2004 और 1 जून, 2009 से आरंभ होना था के लिये आमंत्रण 16 अक्तूबर, 1999, 28 मई, 2004 और 26 मई, 2009 को भेजे गये। चूंकि आमंत्रण भेजने तथा सत्र आरंभ होने के बीच पर्याप्त समय नहीं था इसलिए सदस्यों को तार भी भेजे गये।

35. पांचवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के लिए आमंत्रण भेजने के समय 20 सदस्य कारागार में निरुद्ध थे। उनको आमंत्रण पंजीकृत डाक द्वारा संबद्ध जेल प्राधिकारी के माध्यम से भेजे गये थे।

36. दूसरी लोक सभा के आठवें सत्र के लिए दो सदस्यों को दूसरी बार आमंत्रण भेजे गये—एक को 24 जून, 1959 को और दूसरे को 18 जुलाई, 1959 को। उन सदस्यों ने यह सूचना दी थी कि उन्हें 25 मई, 1959 को भेजा गया आमंत्रण नहीं मिला है।

37. दूसरी लोक सभा के चौथे सत्र, जो 10 फरवरी, 1958 से आरंभ होना था, के लिए 28 दिसम्बर, 1957 को जब आमंत्रण भेजे गये तो उस समय एक सदस्य, जिसका चुनाव निर्वाचन अधिकरण द्वारा लोक सभा के लिए रद्द घोषित कर दिया गया था, को आमंत्रण नहीं भेजा गया। तथापि, 31 दिसम्बर, 1957 को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अधिकरण के आदेश के प्रवर्तन पर रोक लगाते हुए तथा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 116क (4) के अधीन एक आदेश पारित किया कि सदस्य बिना किसी व्यवधान के लोक सभा का सदस्य बना रह सकता है और इस प्रकार वह आमंत्रण प्राप्त करने का हकदार है। दूसरी लोक सभा के पांचवें सत्र जो 1 अगस्त, 1958 से आरंभ होना था, के लिए सदस्यों को 2 जून, 1958 को आमंत्रण भेजे गये। किसी विशिष्ट सदस्य के लोक सभा के लिए निर्वाचन के बारे में निर्वाचन अधिकारी से घोषणा 5 जून, 1958 को प्राप्त हुई और उसी दिन उसे आमंत्रण भेज दिया गया।

38. उदाहरणस्वरूप 17 नवम्बर, 1958 को दूसरी लोक सभा, छठे सत्र के आरंभ होने के पश्चात् 16 दिसम्बर, 1958 को निर्वाचित सदस्य को आमंत्रण नहीं भेजा गया। इसी प्रकार 9 फरवरी, 1959 को दूसरी लोक सभा के सातवें सत्र के आरंभ होने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा 4 अप्रैल, 1959 को नामनिर्दिष्ट एक अन्य सदस्य को भी आमंत्रण नहीं भेजा गया।

उस सदस्य को आमंत्रण नहीं भेजा जाता है, जिसका लोक सभा के लिये निर्वाचन उच्च न्यायालय द्वारा रद्द घोषित कर दिया गया हो, चाहे स्थगन आदेश के उसके आवेदन पर उच्चतम न्यायालय ने उक्त न्यायालय द्वारा उसकी अपील के निपटाने के लम्बित रहने तक उसे उतने दिनों तक सभा की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दे दी हो जो कि सभा में उसके स्थान को बनाये रखने के लिए आवश्यक है।[39]

---

39. आठवीं लोक सभा के लिए दादरा और नागर हवेली निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य के निर्वाचन को बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 2 अप्रैल, 1985 को रद्द कर दिया गया था। उक्त सदस्य के आवेदन पर उच्च न्यायालय ने सदस्य द्वारा यह वचन दिये जाने पर कि वह न तो लोक सभा की कार्यवाही में भाग लेगा और न ही वहां मतदान करेगा और वह केवल अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए ही लोक सभा में उपस्थित होगा, अपने आदेश के प्रवर्तन को तीस दिनों के लिए रोक दिया। इसके बाद उस सदस्य ने उच्चतम न्यायालय में एक अपील दायर की। उच्चतम न्यायालय ने 26 अप्रैल, 1985 के अपने आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये स्थगन आदेश के प्रवर्तन को उन्हीं निर्बंधनों के साथ आगामी आदेशों तक जारी रखा। उच्चतम न्यायालय द्वारा लगाये गये निर्बंधनों को ध्यान में रखते हुए उक्त सदस्य को तीसरे से आठवें सत्र तक आमंत्रण नहीं भेजा गया। तथापि, उन्हें पत्रों के माध्यम से सत्रों के आरंभ होने और उनकी अवधि के बारे में सूचना दे दी गई थी। पत्रों के साथ उन्हें समाचार-भाग-2, प्रश्नों का चार्ट, बैठकों के अस्थायी तिथि पत्र भी भेजे गये।

उच्चतम न्यायालय ने 25 मार्च, 1987 के अपने अन्तिम निर्णय में सदस्य को अपील करने की अनुमति दे दी और इस संबंध में बम्बई उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द कर दिया। इस प्रकार सदस्य बिना किसी व्यवधान के आठवीं लोक सभा का सदस्य बना रहा। 10 अप्रैल, 1987 के समाचार-भाग 2 में इस आशय की आवश्यक सूचना प्रकाशित की गई और सभी अधिकारियों/शाखाओं को एक परिपत्र जारी किया गया। इस निर्णय की प्रतियां संसदीय ग्रंथालय में रख दी गई थीं। उक्त सदस्यों को अन्य सदस्यों के साथ नौवें सत्र के लिए आमंत्रण भेजे गए।

नौवीं लोक सभा के लिए दमन और दीव निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य (श्री डी.जे. टंडेल) के निर्वाचन को बंबई उच्च न्यायालय ने 23/25 अक्तूबर, 1990 को रद्द कर दिया। तथापि, उच्च न्यायालय ने अपने आदेश के प्रवर्तन पर आठ सप्ताह के लिए स्थगनादेश दे दिया। 22 नवम्बर, 1990 को उच्च न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा स्थगनादेश को और तीन सप्ताह के लिए बढ़ा दिया। सदस्य ने इस संबंध में उच्चतम न्यायालय में अपील दायर कर दी। उच्चतम न्यायालय ने 8 जनवरी, 1991 के अपने आदेश में इस अपील को मंजूर कर लिया और उन्हें 60 दिनों में एक बार लोक सभा के उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करने की अनुमति दे दी। बाद में, उच्चतम न्यायालय ने 30 जनवरी, 1991 के अपने आदेश के द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश पर पूर्ण रोक लगा दी और अपील पर अन्तिम सुनवाई के लिए 20 मार्च, 1991 की तारीख निश्चित की। उक्त सदस्य के निर्वाचन को अपास्त किए जाने को ध्यान में रखते हुए सातवें सत्र के लिए उन्हें आमंत्रण नहीं भेजा गया। तथापि, एक पत्र के माध्यम से उन्हें सत्र के आरंभ होने और उसकी अवधि के बारे में जानकारी दे दी गई थी। पत्र के साथ उन्हें समाचार-भाग 2, प्रश्नों का चार्ट और बैठकों के अस्थायी तिथि पत्र भी भेजे गए। इससे पहले कि सदस्य

किसी सत्र के आरंभ होने की तारीख में परिवर्तन होने पर सदस्यों को पहले भेजे गए

की अपील उच्चतम न्यायालय के समक्ष अन्तिम सुनवाई के लिए पेश की जाती, नौवीं लोक सभा का 13 मार्च, 1991 को विघटन हो गया। तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने 26 अप्रैल, 1991 को पारित अपने एक आदेश के द्वारा सदस्य की अपील को इस आधार पर खारिज कर दिया कि नौवीं लोक सभा का विघटन हो जाने से यह अपील निष्फल हो गई है।

नौवीं लोक सभा के लिए इरनडोल निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य (श्री उत्तमराव लक्ष्मणराव पाटील) का निर्वाचन बंबई उच्च न्यायालय द्वारा 19 दिसम्बर, 1990 को अकृत और शून्य घोषित कर दिया गया। तत्पश्चात्, 20 दिसम्बर, 1990 को उच्च न्यायालय ने अपने एक आदेश द्वारा अपने आदेश के प्रवर्तन पर चार सप्ताह के लिए रोक लगा दी और सदस्य को उच्चतम न्यायालय से स्थगनादेश प्राप्त करने का निदेश दिया। सदस्य द्वारा अपील किये जाने पर उच्चतम न्यायालय ने 10 जनवरी, 1991 के अपने आदेश के द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश के प्रवर्तन पर स्थगनादेश दे दिया और यह निदेश दिया कि उक्त मामले का उच्चतम न्यायालय द्वारा अन्तिम निपटान किए जाने तक यथास्थिति बनाए रखी जाए।

सदस्य के निर्वाचन को अपास्त किए जाने को ध्यान में रखते हुए नौवीं लोक सभा के सातवें सत्र के लिए आमंत्रण नहीं भेजा गया। तथापि, उन्हें एक पत्र के माध्यम से सत्र के आरम्भ होने और उसकी अवधि के बारे में सूचित कर दिया गया। पत्र के साथ उन्हें समाचार-भाग 2, प्रश्नों का चार्ट और बैठकों का अस्थायी तिथि पत्र भी भेजे गये।

तत्पश्चात् 13 मार्च, 1991 को नौवीं लोक सभा का विघटन हो जाने के कारण इस मामले पर आगे कार्यवाही नहीं हुई।

दसवीं लोक सभा के लिए अहमदनगर निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य (श्री यशवंत राव पाटील) का निर्वाचन बंबई उच्च न्यायालय द्वारा 30 मार्च, 1993 को अकृत और शून्य घोषित कर दिया गया। तथापि, उच्च न्यायालय ने अपने आदेश के प्रवर्तन पर छह सप्ताह के लिए स्थगनादेश दे दिया। उच्च न्यायालय ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 99 के अधीन एक अन्य सदस्य (श्री शरद पवार) को अधिनियम की धारा 123(4) के अधीन भ्रष्ट आचरण करने का दोषी ठहराया। तत्पश्चात् दोनों ही सदस्यों ने उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की। उच्चतम न्यायालय ने 10 मई, 1993 के अपने आदेश के द्वारा श्री शरद पवार की अपील स्वीकार करते हुए उन्हें लोक सभा में मतदान करने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने और संसद सदस्य के रूप में परिलब्धियां प्राप्त करने के सदस्य के अधिकार पर निर्बंधन लगा दिया। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8क के अधीन आगे की कार्रवाई पर रोक लगा दी गई और सदस्य को निरर्हता से बचने के लिए उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करने की अनुमति दे दी गई। पुनः उच्चतम न्यायालय ने श्री यशवंत राव पाटील की अपील स्वीकार करते हुए 14 मई, 1993 के अपने आदेश के द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये स्थगनादेश के प्रवर्तन को जारी रखा और सदस्य के लोक सभा की कार्यवाही में भाग लेने और मतदान करने तथा परिलब्धियां प्राप्त करने के अधिकार पर आगामी आदेशों तक निर्बंधन लगा दिया। तथापि, निरर्हता से बचने के लिए सदस्य को उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करने की अनुमति दे दी गई।

आमंत्रण को रद्द किया जा सकता है और उसके स्थान पर नया आमंत्रण भेजा जा सकता है।[40]

आमंत्रण के साथ ही या उसके भेजे जाने के तुरंत पश्चात् प्रत्येक सदस्य को बैठकों के अस्थायी तिथि पत्र की मुद्रित प्रति भेज दी जाती है जिसमें इस बात का उल्लेख होता है कि लोक सभा की बैठक किस-किस दिन होगी और इन बैठकों में कौन-कौन सा कार्य किया

उच्चतम न्यायालय द्वारा लगाए गए इन निर्बंधनों को देखते हुए, दसवीं लोक सभा के सातवें और आठवें सत्रों के लिए श्री यशवंत राव पाटील को आमंत्रण नहीं भेजे गये। जहां तक श्री शरद पवार का संबंध है, उन्हें सातवें सत्र के लिए आमंत्रण नहीं भेजा गया। तथापि, आठवें सत्र के आरंभ होने से पहले उन्होंने लोक सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। इन मामलों में भी उक्त सदस्यों को सत्रों के आरंभ होने और उनकी अवधि के बारे में पत्रों के माध्यम से जानकारी दे दी गई। पत्रों के साथ उन्हें समाचार-भाग 2, प्रश्नों का चार्ट और बैठकों का अस्थायी तिथि पत्र भी भेजे गए।

उच्चतम न्यायालय ने 19 नवम्बर, 1993 के अपने अंतिम आदेश में श्री यशवंत राव पाटील के निर्वाचन को अपास्त करते हुए बंबई उच्च न्यायालय के आदेश को मान्य ठहराया। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 99 के अधीन श्री शरद पवार को दोषी ठहराने वाले उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया। श्री यशवंत राव पाटिल 19 नवम्बर, 1993 से लोक सभा के सदस्य नहीं रहे। इस आशय की आवश्यक सूचना 2 दिसम्बर, 1993 के समाचार-भाग 2 में प्रकाशित हुई और सभी अधिकारियों/शाखाओं को इस बारे में एक परिपत्र जारी किया गया। इस निर्णय की प्रतियां संसदीय ग्रन्थालय में रख दी गई थीं।

40. (i) गवर्नर जनरल ने बजट सत्र हेतु 20 जनवरी, 1947 को समवेत होने के लिए केन्द्रीय विधान सभा की बैठक बुलाई और इस संबंध में 29 नवम्बर, 1946 को सदस्यों को अधिसूचना तथा आमंत्रण भेजे गए। तत्पश्चात् गवर्नर जनरल ने यह निर्णय लिया कि सत्र को 3 फरवरी, 1947 तक स्थगित कर दिया जाए। 23 दिसम्बर, 1946 को आमंत्रण पुनः भेजे गये।

(ii) राज्य सभा को 7 अगस्त, 1953 को आहूत करने का राष्ट्रपति का आदेश 1 जून, 1953 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया था और सदस्यों को आमंत्रण 28 मई, 1953 को भेजे गए थे। बाद में 5 अगस्त, 1953 को राष्ट्रपति ने यह निर्णय किया कि सत्र 24 अगस्त, 1953 तक स्थगित कर दिया जाए। सदस्यों को दोबारा आमंत्रण 6 अगस्त, 1953 को भेजे गए और इस आमंत्रण के अंत में एक पैरा जोड़कर पुराने आमंत्रण को रद्द किए जाने की सूचना दी गई।

(iii) लोक सभा को 19 नवम्बर, 1962 को आहूत करने का राष्ट्रपति का आदेश 15 सितम्बर, 1962 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया था और सदस्यों को 19 सितम्बर, 1962 को आमंत्रण भेजे गए थे। भारत पर चीन के आक्रमण के कारण, बाद में यह निर्णय किया गया कि सत्र के आरंभ होने की तारीख को और पहले 8 नवम्बर, 1962 कर दी जाए। राष्ट्रपति ने सत्र के आरंभ किए जाने की तारीख को बदलने वाले आदेश पर 27 अक्तूबर, 1962 को हस्ताक्षर किए।

जायेगा। सदस्यों को संसदीय समाचार के माध्यम से राष्ट्रपति के अभिभाषण, सभा की बैठकों के समय, गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए बैलटों की प्रक्रिया, प्रश्नों के उत्तर के लिए दिनों के नियतन और प्रश्नों की सूचनाएं देने संबंधी प्रक्रिया, आदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाती है। प्रश्नों की सूचनाओं की प्राप्ति की प्रथम तथा अंतिम तारीख दर्शाने वाला चार्ट भी प्रत्येक सदस्य को भेजा जाता है।

राष्ट्रपति का अभिभाषण

लोक सभा के प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् संसद के पहले सत्र के आरंभ में और उसके पश्चात् प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के आरंभ में राष्ट्रपति एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने अभिभाषण देता है और संसद को उसके आह्वान के कारण बताता है।[41]

(iv) लोक सभा को सोमवार, 13 मार्च, 1967 को आहूत करने का राष्ट्रपति का आदेश 9 जनवरी, 1967 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया था और सदस्यों को 13 जनवरी, 1967 को आमंत्रण भेजे गए थे। इसी दौरान, नई लोक सभा के लिए निर्वाचन का कार्य पूर्ण हो चुका था और आम धारणा यह थी कि निवर्तमान लोक सभा द्वारा पूर्णावधि (लेम डक सेशन) सत्र बुलाए जाने के बजाए नई लोक सभा द्वारा सत्र बुलाया जाए। प्रधानमंत्री द्वारा इस विचार से सहमत होने पर यह निर्णय किया गया कि निवर्तमान लोक सभा का सत्र रद्द कर दिया जाए। तद्नुसार, राष्ट्रपति ने 3 मार्च, 1967 को राजपत्र में प्रकाशित एक आदेश द्वारा 9 जनवरी, 1967 के अपने पहले आदेश को रद्द कर दिया। सदस्यों को लोक सभा का सत्र रद्द किए जाने की सूचना दे दी गयी और इस संबंध में समाचार-भाग 2 में एक पैरा के द्वारा आमंत्रण भेजे गए (समाचार-भाग 2, 2.3.1967, पैरा 1994)।

41. अनुच्छेद 87(1) ।

संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा अनुच्छेद 87(1) में संशोधन किए जाने से पूर्व, इसके अंतर्गत राष्ट्रपति के लिए यह जरूरी था कि वह प्रत्येक सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत दोनों सदनों के सदस्यों के सामने अभिभाषण दें। तद्नुसार, राष्ट्रपति ने 1950 में अंतरिम संसद के तीनों सत्रों के सामने अभिभाषण दिया।

तीसरे सत्र में यह प्रश्न उठा कि अगला सत्र राष्ट्रपति के अभिभाषण से आरंभ हो या कि सत्र को 5 फरवरी, 1951 को पुन: समवेत होने तक के लिए स्थगित कर दिया जाये जिससे कि राष्ट्रपति के अभिभाषण की आवश्यकता नहीं रहेगी। इस संबंध में अध्यक्ष मावलंकर ने सुझाव दिया कि बजाय इसके कि राष्ट्रपति प्रत्येक सत्र के सामने अभिभाषण दे, यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि वह प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के आरंभ में अभिभाषण दे।

इस सुझाव के अनुसार संविधान में संशोधन कर दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप अब राष्ट्रपति केवल प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के आरंभ में एक साथ समवेत दोनों सदनों के सदस्यों के सामने अभिभाषण देता है। लेकिन, लोक सभा के लिए आम चुनाव होने पर नयी लोक सभा के पहले सत्र के आरंभ में वह उसी वर्ष में फिर एक साथ समवेत दोनों सदनों के सदस्यों

तेरहवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र 2 दिसम्बर 2003 को प्रारंभ हुआ। लोक सभा 23 दिसम्बर 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हुई परंतु सभा का सत्रावसान नहीं हुआ। सभा 29 जनवरी 2004 को पुनः आहूत की गई जिसे सत्र का दूसरा भाग माना गया जो 2 दिसम्बर 2003 को प्रारंभ हुआ था। सत्र के दूसरे भाग की कार्यवाही संवैधानिक वैध ता को उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका में इस आधार पर चुनौती दी गई थी[42] कि वर्ष का पहला सत्र होने के कारण राष्ट्रपति को संविधान के अनुच्छेद 87(1) के अंतर्गत दोनों सभाओं को संबोधित करना चाहिए था। उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज कर दिया।

अनुच्छेद 87(1) के अधीन राष्ट्रपति के अभिभाषण को सुनने के लिए लोक सभा तथा राज्य सभा के सदस्यों के एक साथ समवेत होने को न तो संसद के दोनों सदनों की संयुक्त

के सामने अभिभाषण देता है। 1957 में, राष्ट्रपति ने एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने एक बार 18 मार्च, 1957 को अभिभाषण दिया और दूसरी बार लोक सभा के आम चुनाव के बाद 13 मई, 1957 को। 1962 में भी राष्ट्रपति ने एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने दो बार अभिभाषण दिया: एक बार 12 मार्च, 1962 को और दूसरी बार लोक सभा के आम चुनाव के बाद 18 अप्रैल, 1962 को। ऐसी समान परिस्थितियों में राष्ट्रपति ने 1989, 1991, 1996, 1999 और 2009 में एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने प्रत्येक वर्ष में दो बार अभिभाषण दिया। लेकिन, 1967 में और इसी प्रकार 1971 में भी, राष्ट्रपति ने एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने केवल एक ही बार, अर्थात् क्रमशः 18 मार्च, 1967 और 23 मार्च, 1971 को अभिभाषण दिया क्योंकि कैलेंडर वर्ष शुरू होने के बाद निवर्तमान लोक सभा का कोई सत्र नहीं हुआ था। 1977 में 18 जनवरी को लोक सभा का विघटन हो गया था। उस वर्ष राज्य सभा का पहला सत्र 28 फरवरी को हुआ था लेकिन उस समय राष्ट्रपति का अभिभाषण नहीं हुआ था। आम चुनाव के बाद, 23 मार्च, 1977 को लोक सभा का गठन हुआ। राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे उप-राष्ट्रपति ने 28 मार्च, 1977 को एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने अभिभाषण दिया। 1980 और 1985 में, राष्ट्रपति ने एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने केवल एक ही बार, अर्थात् क्रमशः 23 जनवरी, 1980 और 17 जनवरी, 1985 को अभिभाषण दिया। तेरहवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र 23 दिसम्बर, 2003 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। तथापि, सभा का सत्रावसान नहीं किया गया। चौदहवें सत्र का दूसरा भाग लोक सभा की पहली बैठक पर राष्ट्रपति के परंपरागत अभिभाषण के बिना 29 जनवरी, 2004 को शुरू हुआ क्योंकि यह पहले के शीतकालीन सत्र का ही विस्तार था। तत्पश्चात् 6 फरवरी, 2004 को तेरहवीं लोक सभा का विघटन हो गया। 17 मई, 2004 को चौदहवीं लोक सभा का गठन हुआ था और 7 जून, 2004 को प्रथम सत्र में राष्ट्रपति का अभिभाषण हुआ था। साथ ही *देखिए* "अध्याय 10—सदन में राष्ट्रपति का अभिभाषण, संदेश तथा संसूचना"।

42. रामदास अठावले बनाम भारत संघ और अन्य रिट याचिका (सिविल), 2004 की संख्या 86

बैठक और न ही लोक सभा या राज्य सभा की बैठक माना जाता है।[43] जब राष्ट्रपति उक्त अनुच्छेद के अधीन दोनों सदनों के सामने अभिभाषण देता है, तो वह संसद के अंग के रूप में कार्य करता है। जब वह दोनों सदनों के सामने अभिभाषण देने के संवैधानिक कार्य का निर्वहन करता है तो वह अपने अभिभाषण के पूर्ण होने तक दोनों सदनों की कार्यवाहियों का प्रभारी होता है। इस उद्देश्य के लिए वह अपने पद की गरिमा और मर्यादा के साथ-साथ दोनों सदनों की गरिमा और मर्यादा के अनुरूप कार्यवाहियों का उचित रीति से संचालन कर सकता है। यद्यपि राष्ट्रपति कार्यवाहियों का प्रभारी होता है, फिर भी न तो उसे पद[44] और न ही राज्य सभा के सभापति को, न ही अध्यक्ष को और न ही किसी अन्य व्यक्ति को उक्त अनुच्छेद के अधीन उसके अभिभाषण के लिए एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों की बैठक की अध्यक्षता करने के लिए कहा जा सकता है।

तथापि, सदस्यों पर राष्ट्रपति का नियंत्रण समझा जाता है। वह सदस्यों को व्यवस्था बनाए रखने और किसी सदस्य, यदि वह बोलने के लिए खड़ा होता है, कोई प्रदर्शन करता है या अन्य किसी प्रकार से बैठक में व्यवधान उत्पन्न करता है, को बैठक से बाहर जाने के लिए कह सकता है।[45] तत्पश्चात् ऐसे सदस्य के विरुद्ध कार्यवाही उस सदन द्वारा की जाएगी जिसका वह सदस्य होता है।

संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में दिये गए राष्ट्रपति के अभिभाषण को महासचिव द्वारा उसी दिन सभा पटल पर रखा जाना होता है जब सभा राष्ट्रपति के अभिभाषण

---

43. केन्द्र में विधानमंडल के गठन के समय से लेकर सदा इसी विचार का प्रतिपादन किया गया है। 16 सितम्बर, 1936 को यह प्रश्न उठाया गया कि विधानमंडल के सामने गवर्नर जनरल का अभिभाषण विधान सभा की कार्यवाही का अंग है या नहीं, इस पर अध्यक्ष अब्दुर्रहीम ने स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की–

"मैं इस प्रश्न के संबंध में स्थिति को बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कम से कम मेरे एक पूर्वाधिकारी (सर फ्रेड्रिक व्हाइट) ने स्पष्ट रूप से यह राय प्रकट की थी कि जब गवर्नर जनरल धारा 63ख(3) के अधीन विधान सभा के सदस्यों या विधान सभा तथा राज्य की विधान परिषद के सदस्यों के सामने अभिभाषण देता है तो वह न तो विधान सभा की बैठक होती है और न ही दोनों सदनों की संयुक्त बैठक। विधान सभा की बैठक तभी विधिवत् रूप से गठित हुई मानी जाती है जब अध्यक्ष अपने आसन पर बैठा हो।... मैं सर फ्रेड्रिक व्हाइट के इस विचार से सहमत हूं।" *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 16.9.1936, पृ. 1142-43 ।

44. चूंकि राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का न तो सदस्य होता है और न ही हो सकता है, *देखिए,* अनुच्छेद 59(1)। इसलिए उसे अनुच्छेद 87(1) के अधीन अपने अभिभाषण के लिए एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों की बैठक की अध्यक्षता करने के लिए नहीं कहा जा सकता।

45. संयुक्त सचिव/अवर सचिव, सुरक्षा, केन्द्रीय कक्ष जहां राष्ट्रपति एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के सामने अपना अभिभाषण देता है, में उपस्थित रहता है। राष्ट्रपति किसी ऐसे सदस्य, जिसे उन्होंने बाहर जाने के लिए कहा हो, को वहां से बलपूर्वक हटाए जाने के लिए, यदि आवश्यक हो तो, उसकी सेवाएं ले सकता है।

के आधे घंटे के पश्चात् अपने सभा कक्ष में अपनी बैठक करती है तथा इसी अवस्था में अभिभाषण को लोक सभा की कार्यवाही में सम्मिलित किया जाता है।

लोक सभा की पहली बैठक

आम चुनाव के पश्चात् लोक सभा की पहली बैठक पहली बार उस तारीख और समय पर की जाएगी जो राष्ट्रपति ने इसके आहूत करने के लिए अपने आदेश में निर्धारित की है। सभा की बैठक तभी विधिवत होगी जब उसमें अध्यक्ष या लोक सभा का कोई अन्य सदस्य पीठासीन हो जो संविधान अथवा प्रक्रिया नियमों के अधीन सभा की बैठक में पीठासीन होने के लिए सक्षम हो।[46]

किसी आम चुनाव में निर्वाचित होकर आए लोक सभा के सदस्यों के समक्ष राष्ट्रपति द्वारा अभिभाषण दिए जाने से पूर्व कुछ प्रारम्भिक कदम उठाने होते हैं। सदस्यों को शपथ लेनी होती है या प्रतिज्ञान करना होता है और उसके बाद सभा में अपना स्थान ग्रहण करना होता है। तत्पश्चात्, सभा अध्यक्ष का चुनाव करती है। राष्ट्रपति के अभिभाषण की तारीख से पूर्व इस प्रयोजन के लिए लोक सभा की एक या दो बैठकें होती हैं।[47] लोक सभा के बाद के सत्रों में इस प्रकार की प्रारंभिक औपचारिकताओं का पालन नहीं करना होता है।

इस प्रकार, लोक सभा के आम-चुनाव के पश्चात् उसका पहला सत्र तब आरंभ होता है जब उसकी पहली बैठक उसके अपने सभाकक्ष में *सामयिक* अध्यक्ष[48] की अध्यक्षता में

---

46. अनुच्छेद 95 और नियम 11 ।

47. पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं लोक सभा क्रमशः 13 मई और 15 मई, 1952, 10 और 11 मई, 1957, 16 और 17 मई, 1962, 16 और 17 मार्च, 1967, 19 और 22 मार्च, 1971, 25 और 26 मार्च, 1977, 21 और 22 जनवरी, 1980, 15 और 16 जनवरी, 1985, 18 और 19 दिसम्बर, 1989, 9 और 10 जुलाई, 1991, 22 और 23 मई, 1996, 23 और 24 मार्च, 1998, 21 और 22 अक्तूबर, 1999, 2, 3, 4 जून, 2004 और 1 तथा 2 जून 2009 को समवेत हुई जब सदस्यों ने अपना स्थान ग्रहण किया और अध्यक्ष का चुनाव किया। राष्ट्रपति ने क्रमशः 16 मई, 1952, 13 मई, 1957, 18 मई, 1962, 18 मार्च, 1967, 23 मार्च, 1971, 28 मार्च, 1977, 23 जनवरी, 1980, 17 जनवरी, 1985, 20 दिसम्बर, 1989, 11 जुलाई, 1991, 24 मई, 1996, 25 मार्च, 1998, 25 अक्तूबर, 1999, 7 जून, 2004 और 4 जून 2009 को एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण दिया।

48. जब अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के पद रिक्त होते हैं, तब अध्यक्ष के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 95(1) के अधीन लोक सभा के एक सदस्य की नियुक्ति की जाती है, जिसे *सामयिक* अध्यक्ष कहा जाता है। *सामयिक* अध्यक्ष की नियुक्ति की आवश्यकता सामान्यतः लोक सभा के विघटन के बाद उस समय पड़ती है जब विघटित लोक सभा का अध्यक्ष, जो नई लोक सभा की पहली बैठक तक अपने पद पर बना रहता है, अपना पद त्याग देता है और किसी अन्य सदस्य को नया अध्यक्ष चुने जाने तक सभा की अध्यक्षता करनी होती है।

होती है, जिससे कि सदस्य सभा में अपना स्थान ग्रहण कर सकें और अध्यक्ष का चुनाव कर सकें। यह सत्र तब आरंभ हुआ नहीं माना जाएगा जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 87(1) के अनुसरण में संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के समक्ष अभिभाषण देते हैं।[49]

सभा का सत्रावसान

अनुच्छेद 85(2) के अधीन राष्ट्रपति के आदेश द्वारा सभा के किसी सत्र की समाप्ति को 'सत्रावसान' कहा जाता है। राष्ट्रपति, सभा का सत्रावसान करने के लिए शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रधानमंत्री की सलाह पर कार्यवाही करता है। राष्ट्रपति को सलाह भेजने से पूर्व प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल से विचार-विमर्श करता है। सभा का सत्रावसान किसी भी समय किया जा सकता है, भले ही सभा की बैठक चल रही हो। तथापि, सामान्यत: सभा की बैठक के अनिश्चित काल के लिए स्थगित किए जाने के बाद ही सत्रावसान किया जाता है।[50]

---

49. अनुच्छेद 87(1) में, "के प्रारंभ में" शब्दों में लोक सभा के पहले सत्र के प्रारंभ के लिए राष्ट्रपति द्वारा नियत तारीख के बाद का युक्तियुक्त समय भी अंतर्निहित है। विधि मंत्री ने 1960 में लोक सभा सचिवालय द्वारा किए गए एक उल्लेख में भी यही विचार व्यक्त किया था जहां तक राज्य सभा का संबंध है, वहां ऐसी स्थिति आती ही नहीं है क्योंकि इस सभा का कभी विघटन नहीं होता है और भारत का उप-राष्ट्रपति उसका पदेन सभापति होता है। 4 अप्रैल, 1957 को लोक सभा के विघटन के पश्चात् राज्य सभा की बैठक 13 मई, 1957 को ही हुई, उसी दिन राष्ट्रपति ने दोनों सदनों के एक साथ समवेत सदस्यों के सामने अभिभाषण दिया था।

50. 22 दिसम्बर, 1950 को अंतरिम संसद को 5 फरवरी, 1951 तक के लिए स्थगित कर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप अंतरिम संसद का तीसरा सत्र, जो 15 नवम्बर, 1950 को आरंभ हुआ था, 9 जून, 1951 तक चला और स्थगन की अवधि के दौरान सभा का सत्रावसान नहीं किया गया।

    तीसरी लोक सभा को 11 दिसम्बर, 1962 को 21 जनवरी, 1963 तक के लिए स्थगित कर दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप इसका तीसरा सत्र, जो 8 नवम्बर, 1962 को आरंभ हुआ था, 25 जनवरी, 1963 तक चला और स्थगन की अवधि के दौरान सभा का सत्रावसान नहीं किया गया।

    आठवीं लोक सभा का आठवां सत्र 23 फरवरी, 1987 को आरंभ हुआ था जिसे 12 मई, 1987 को *अनिश्चित काल के* लिए स्थगित कर दिया गया। अध्यक्ष ने नियम 15 के परन्तुक के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, लोक सभा की बैठक 27 जुलाई से 28 अगस्त, 1987 तक पुन: बुलाई जिसके परिणामस्वरूप इसका आठवां सत्र जो 23 फरवरी, 1987 को आरंभ हुआ था, 3 सितम्बर, 1987 तक चला तथा स्थगन की अवधि के दौरान सभा का सत्रावसान नहीं किया गया। लोक सभा का सत्रावसान 3 सितम्बर, 1987 को किया गया।

    आठवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र 18 जुलाई, 1989 को आरंभ हुआ तथा 18 अगस्त, 1989 को इसे *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित कर दिया गया। अध्यक्ष ने नियम 15 के परन्तुक

सभा के सत्रावसान और नए सत्र के पुनः समवेत होने के बीच की अवधि को 'अंतर्सत्रावधि' कहा जाता है।

जहां कार्य-सूची की सभी मदों पर चर्चा हो गई हो और विधानमंडल की बैठक स्थगित हो गई हो, तो वहां स्थगित बैठक (इस मामले में मैसूर विधान सभा 26 दिसम्बर, 1970 को स्थगित होने के बाद 15 मार्च, 1971 को समवेत हुई) को नया 'सत्र' नहीं कहा जाएगा। क्योंकि कार्य-सूची में नई मदें शामिल की जा सकती हैं अथवा कार्य-सूची में संशोधन किया जा सकता है। किसी सत्र को केवल सत्रावसान द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है, स्थगन द्वारा नहीं।[51]

लोक सभा के अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने और उसके सत्रावसान के बीच सामान्यतः दो से चार दिन[52] का समय लगता है। हालांकि, ऐसे कुछ उदाहरण भी हैं जब जिस दिन लोक सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया गया उसी दिन उसका सत्रावसान

के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा की बैठकें 11 से 16 अक्तूबर, 1989 तक पुनः बुलाईं। तथापि, सभा 13 अक्तूबर, 1989 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित हो गई। इसके परिणामस्वरूप, चौदहवां सत्र, जो 18 जुलाई, 1989 को आरंभ हुआ था, 20 अक्तूबर, 1989 तक चला तथा स्थगन की अवधि के दौरान सभा का सत्रावसान नहीं किया गया। लोक सभा का सत्रावसान 20 अक्तूबर, 1989 को किया गया।

इसी प्रकार, नौवीं लोक सभा का तीसरा सत्र 7 अगस्त, 1990 को आरंभ हुआ तथा 7 सितम्बर, 1990 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित हुआ। अध्यक्ष ने नियम 15 के परन्तुक के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा की बैठकें 1 से 5 अक्तूबर, 1990 तक पुनः बुलाईं। इसके परिणामस्वरूप, तीसरा सत्र, जो 7 अगस्त, 1990 को आरंभ हुआ था, 11 अक्तूबर, 1990 तक चला तथा स्थगन की अवधि के दौरान सभा का सत्रावसान नहीं किया गया। लोक सभा का सत्रावसान 11 अक्तूबर, 1990 को किया गया। ग्यारहवीं लोक सभा के 1996 और 1997 में आयोजित पहले, चौथे और छठे सत्रों के मामले 2003-2004 में तेरहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र और 2006 में चौदहवीं लोक सभा के सातवें सत्र में ऐसे ही अन्य उदाहरण मौजूद हैं।

51. *एच. सिद्‌दावीरप्पा एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य,* मुख्य सचिव, विधान सौध, ए.आई.आर. 1971 मैसूर 200 ।

52. पांचवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र का सत्रावसान इसके 7 अगस्त, 1975 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित होने के 27 दिन पश्चात् 3 सितम्बर, 1975 को हुआ था।

    छठी लोक सभा के आठवें सत्र का सत्रावसान इसके 16 जुलाई, 1979 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित होने के 16 दिन पश्चात् 3 अगस्त, 1979 को हुआ था।

    सातवीं लोक सभा के पन्द्रहवें सत्र का सत्रावसान इसके 27 अगस्त, 1984 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित होने के 15 दिन पश्चात् 11 सितम्बर, 1984 को हुआ था।

    आठवीं लोक सभा के ग्यारहवें सत्र का सत्रावसान इसके 5 सितम्बर, 1988 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित होने के 25 दिन पश्चात् 30 सितम्बर, 1988 को हुआ था।

भी कर दिया गया।[53] लोक सभा के सत्रावसान की सूचना संसदीय समाचार के माध्यम से दी जाती है।

20 जुलाई, 1967 को मध्य प्रदेश विधान सभा, जो शिक्षा संबंधी अनुदानों की मांगों पर चर्चा कर रही थी, का राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर सत्रावसान कर दिया गया।[54]

इस मामले पर लोक सभा में उसी दिन एक स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा की गई। इस आरोप का खंडन करते हुए कि केन्द्र सरकार ने राज्यपाल को निर्देश जारी किया था, केन्द्रीय गृह मंत्री ने कहा कि संवैधानिक प्रमुख की हैसियत से राज्यपाल विधान सभा के सत्रावसान के संबंध में मुख्यमंत्री की सलाह मानने को बाध्य थे।[55]

मध्य प्रदेश विधान सभा का सत्रावसान 12 मार्च, 1969 को राज्यपाल द्वारा निवर्तमान मुख्यमंत्री की सलाह पर किया गया जिन्होंने सत्तारूढ़ संयुक्त विधायक दल के घटकों के बीच कथित मतभेदों के कारण 10 मार्च को ही त्यागपत्र दे दिया था।

मामला जब लोक सभा में उठाया गया तब केन्द्रीय गृह मंत्री ने इस दृष्टिकोण को दोहराया कि "यदि मुख्य मंत्री सत्रावसान की सलाह देता है तो राज्यपाल उसे मानने को बाध्य है"।[56]

हरियाणा विधान सभा का सत्रावसान 28 फरवरी, 1970 को किया गया, जबकि उसे मुख्यमंत्री द्वारा पेश किये गये तथा सभा द्वारा पारित किये गये प्रस्ताव पर उससे पिछले दिन ही अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया था। सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने हेतु प्रस्ताव की सूचना विधान सभा अध्यक्ष को 27 फरवरी को लगभग अपराह्न 12.15 बजे प्राप्त हुई थी। उसी दिन 13.00 बजे के पश्चात् मंत्रिपरिषद में अविश्वास के प्रस्ताव की सूचना अध्यक्ष महोदय को प्राप्त हुई जिसे उन्होंने गृहीत कर लिया और उस पर चर्चा कराए जाने की तारीख 3 मार्च निर्धारित की गई।

"मंत्रिपरिषद में अविश्वास के प्रस्ताव के गृहीत किये जाने के बाद सभा में उसके विचाराधीन होने की स्थिति में सत्रावसान के प्रश्न का संवैधानिक पहलू" विषय पर लोक सभा में 2 और 4 मार्च, 1970 को चर्चा की गई। वाद-विवाद में हस्तक्षेप करते हुए केन्द्रीय गृह

आठवीं लोक सभा के बारहवें सत्र का सत्रावसान इसके 16 दिसम्बर, 1988 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित होने के 20 दिन पश्चात् 5 जनवरी, 1989 को हुआ था।

दसवीं लोक सभा के सातवें सत्र का सत्रावसान इसके 28 अगस्त, 1993 को *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित होने के 26 दिन पश्चात् 23 सितम्बर, 1993 को हुआ था।

53. दूसरी लोक सभा के दूसरे और तीसरे सत्र, तीसरी लोक सभा के पांचवें, सातवें और ग्यारहवें सत्र तथा सातवीं लोक सभा के दूसरे सत्र और तेरहवीं लोक सभा के पांचवें सत्र का सत्रावसान उसी दिन किया गया था जिस दिन वे *अनिश्चित काल* के लिए स्थगित हुए थे।

54. उससे पिछले दिन यह सूचना दी गई कि सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी के छत्तीस सदस्यों ने दल बदल लिया है और वे विरोधी 'संविद' में सम्मिलित हो गए हैं।

55. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.7.1967, कॉ. 13493-500 ।

56. *पूर्वोक्त,* 12.3.1969, कॉ. 271-72 ।

मंत्री ने कहा कि सभा का सत्रावसान करने की मुख्यमंत्री की सलाह को स्वीकार करना राज्यपाल का संवैधानिक कर्त्तव्य है तथा अपने स्थगन प्रस्ताव पर मुख्यमंत्री ने यह सिद्ध कर दिया कि सभा उसके साथ थी।[57]

पंजाब विधान सभा, जिसे अध्यक्ष ने 27 मार्च, 1970 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया था, का राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर 10 अप्रैल को, सत्रावसान कर दिया गया। विपक्ष ने सभा के स्थगन का इस आधार पर विरोध किया कि अध्यक्ष के विरुद्ध सभा में अविश्वास प्रस्ताव विचाराधीन था।

राज्यपाल ने सत्रावसान के संबंध में विपक्ष द्वारा उठाई गई विभिन्न कानूनी और संवैधानिक आपत्तियां अस्वीकृत कर दीं। वह इस बात से संतुष्ट थे कि अध्यक्ष को पद से हटाए जाने हेतु संकल्प पेश करने संबंधी सूचना विलम्ब से प्राप्त हुई थी तथा उस पर ध्यान न देना अध्यक्ष के संवैधानिक अधिकारों के अंतर्गत था।[58]

सत्रावसान की प्रक्रिया

लोक सभा के अनिश्चित काल तक स्थगित किये जाने के पश्चात् संसदीय कार्य मंत्री (या सभा का नेता जैसी भी स्थिति हो) सभा के सत्रावसान के बारे में महासचिव को प्रधान मंत्री अथवा मंत्रिमंडल के इरादे की सूचना भेजता है।

अध्यक्ष की सहमति प्राप्त होने के पश्चात् महासचिव प्रधान मंत्री के प्रस्ताव को राष्ट्रपति[59] के पास भेजता है। राष्ट्रपति द्वारा आदेश[60] दिए जाने के बाद इसे उस दिन के राजपत्र, असाधारण में अधिसूचित किया जाता है जिस दिन वह सचिवालय में प्राप्त हुआ हो। साथ ही सदस्यों की जानकारी के लिए संसदीय समाचार में भी लोक सभा के सत्रावसान की सूचना प्रकाशित की जाती है। इसके अलावा एक प्रेस विज्ञप्ति भी जारी की जाती है। आकाशवाणी और दूरदर्शन एल.एस.टी.वी. चैनल से भी इस समाचार का प्रसारण करने के लिए कहा जाता है।

---

57. *पूर्वोक्त,* 2.3.1970, कॉ. 272 तथा 4.3.1970, कॉ. 369-70 ।
58. *एशियन रिकार्डर,* खंड XVI, संख्या, 21, 1970, पृ. 9553; साथ ही *देखिए* अनुच्छेद 179 (ग)।
59. जब उप-राष्ट्रपति अनुच्छेद 65 (1) के अधीन राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो तो सत्रावसान से संबंधित प्रस्ताव उसके पास भेजा जाता है। (चौथी लोक सभा का सातवां सत्र, 1969; छठी लोक सभा का पहला सत्र 1977)।
60. राष्ट्रपति का सत्रावसान का आदेश तत्काल प्रभावी होता है और शायद ही कभी वह पूर्वेक्षित अथवा भूतलक्षी प्रभाव से लागू हुआ हो।

यह आवश्यक नहीं है कि सत्रावसान के आदेश की सूचना उसके प्रभावी होने से पूर्व प्रत्येक सदस्य के पास व्यक्तिगत रूप से पहुंचे। आदेश का राजपत्र में विधिवत् रूप से अधिसूचित हो जाना पर्याप्त होगा।[61]

सत्रावसान के प्रभाव

लोक सभा का स्थगन होने या इसके अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने पर सभा में लंबित कार्य व्यपगत नहीं होता। सत्रावसान होने से सत्र समाप्त हो जाता है और लोक सभा के बने रहने में बाधा नहीं आती, उसका अस्तित्व तो विघटन होने पर ही समाप्त होता है।[62]

जहां तक सभा में लंबित कार्य पर पड़ने वाले प्रभाव का संबंध है, सत्रावसान और विघटन के बीच सदैव भिन्नता रही है। भारत शासन अधिनियम, 1919 के अधीन बनाए गए पहले स्थायी आदेशों में विशेष रूप से यह उपबंध किया गया था कि सत्र का अवसान होने पर सभी लंबित सूचनाएं व्यपगत हो जाएंगी परन्तु पहले ही पुर:स्थापित किये जा चुके और सभा में लंबित विधेयकों पर अगले सत्र में विचार किया जाएगा।[63] विधेयकों को दिया गया यह संरक्षण, 1929 में विधेयकों की सूचना पर भी लागू किया गया।[64] परिपाटी के अनुसार सारे प्रस्ताव, संकल्प और संशोधन जो सभा या उसकी समितियों में पेश किये गये हों, लेकिन जिन पर विचार न हुआ हो, अगले सत्र में लिये जाते हैं। लंबित विधेयकों के संबंध में यह संरक्षण बाद में भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 30(1)[65] में शामिल किया गया और लंबित सूचनाओं संबंधी उपबंध, संविधान सभा (विधायी)[66] द्वारा बनाये गये प्रक्रिया संबंधी नियमों में सम्मिलित किया गया।

सभा में लंबित कार्य की विभिन्न मदों पर लोक सभा के सत्रावसान से पड़ने वाले प्रभाव की वर्तमान स्थिति संक्षेप में इस प्रकार है:

विधेयक : अनुच्छेद 107(3) में यह स्पष्ट उपबंध है कि किसी भी सभा के सामने लंबित कोई विधेयक सत्रावसान के बाद व्यपगत नहीं होगा। प्रवर अथवा संयुक्त समितियों के समक्ष विचाराधीन विधेयकों को भी संरक्षण दिया जाता है। विधेयकों संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समितियों के काम पर सत्रावसान के प्रभाव के संबंध में 26 जुलाई, 1956 को आपत्ति उठायी गयी। अध्यक्ष ने इस आपत्ति को खारिज करते हुए यह टिप्पणी की:

---

61. *पंजाब राज्य बनाम सत्यपाल डांग और अन्य,* ए.आई.आर 1969, एस.सी. 903 ।
62. *एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्री कृष्ण सिन्हा और अन्य,* ए.आई.आर. 1960, एस.सी. 1186 ।
63. विधान सभा नियम, 1920 का.आ. संख्या 4 ।
64. *पूर्वोक्त, का.आ.* संख्या 4, यथासंशोधित।
65. अधिनियम का संघ संबंधी भाग लागू नहीं होने के कारण यह सांविधिक उपबंध 15 अगस्त, 1947 को लागू हुआ।
    देखिए भारत (अन्तरिम संविधान) आदेश, 1947 अनुसूची की धारा 30 के साथ पठित धारा 3 ।
66. *देखिए* संविधान सभा (विधायी) प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम 1948, नियम 106(1)।

> संविधान में स्पष्ट रूप में कानूनी उपबंध है कि संसद के सत्रावसान पर विधेयक व्यपगत नहीं होगा। इसका मतलब यह है कि जहां तक विधेयक का संबंध है, उस पर सत्रावसान का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विधेयक का अर्थ विधेयक के सभी चरणों से है। इस मामले में विधेयक प्रवर समिति के विचाराधीन था... सभा का सत्रावसान होने पर भी प्रवर समिति अपना कार्य जारी रखती है क्योंकि सत्रावसान का विधेयक के लंबित होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।[67]

किसी विधेयक पर या उसके किसी चरण विशेष पर चर्चा के लिए समय नियत करने का सभा का आदेश, सत्रावसान पर व्यपगत नहीं होता।[68] सत्रावसान होने पर विधेयक पुर:स्थापित करने के आशय की सूचनाएं व्यपगत नहीं होतीं और आगामी सत्र में नयी सूचना की आवश्यकता नहीं होती, सिवाए उस स्थिति के जब संविधान के अधीन विधेयकों के लिये प्राप्त सिफारिश लागू न रही हो।[69]

प्रस्ताव, संकल्प और संशोधन : प्रक्रिया नियमों के अधीन प्रस्ताव, संकल्प और संशोधन, जो सभा में पेश किये जा चुके हों और लंबित हों, सत्रावसान होने पर व्यपगत नहीं होते और उन पर अगले सत्र में विचार किया जाता है।[70]

> लोक सभा में यह प्रश्न उठाया गया था कि चूंकि अनुच्छेद 107(3) के अधीन विशेष रूप से केवल वही विधेयक व्यपगत होने से बचते हैं जो दोनों में से किसी भी सभा के सामने लंबित हों, तथा अन्य सभी लंबित कार्य सत्रावसान के बाद व्यपगत हो जाते हैं। अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की कि उस अनुच्छेद में स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया कि विधेयक के अतिरिक्त जो भी कार्य लंबित होगा वह व्यपगत हो जाएगा, अत: अनुच्छेद 118 के अधीन बनाये गये "लोक सभा के प्रक्रिया नियम" का उपबंध लागू होगा।[71]

संसदीय समितियों के समक्ष लंबित कार्य : प्रक्रिया नियमों में स्पष्ट रूप से उपबंध किया गया है कि किसी समिति के सामने लंबित कोई कार्य केवल इस कारण व्यपगत नहीं हो

---

67. *एल.एस. डिबेट्स* (II), 26.7.1956, कॉ. 984-85; साथ ही *देखिए* नियम 284 ।
68. सभा द्वारा जिन विधेयकों के लिए समय नियत किया जा चुका हो, उन्हें अगले सत्र में समय नियत करने के लिए कार्य-मंत्रणा समिति या गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के सामने पुन: नहीं रखा जाता।
69. नियम 335, परन्तुक ।
70. नियम 336 ।
71. *लो.स.वा.वि.* (II), 20.7.1956, पृ. 143-64 ।

    महान्यायवादी ने भी इसका समर्थन किया जिन्होंने बाद में उन्हें भेजे गए एक संदर्भ के बारे में यह राय व्यक्त की :

    "अनुच्छेद 107(3) में इस नियम का एक ही अपवाद है कि सत्रावसान से सारा लंबित कार्य व्यपगत हो जाएगा। परन्तु यह अनुच्छेद संसद को इस नियम का अन्य अपवाद करने से नहीं रोकता क्योंकि संसद संविधान के अनुच्छेद 118(1) और 118(2) के अधीन प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करके और अपवाद कर सकती है। संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो उस शक्ति को निर्बाध अथवा सीमित करे ताकि संसद को इससे आगे तथा अन्य अपवाद करने से रोका जा सके। अत:, नियम 335 और 336 सक्षम और वैध हैं।"

जायेगा कि सभा का सत्रावसान कर दिया गया है और इस प्रकार सत्रावसान होने पर भी समिति अपना कार्य करती रहेगी।[72] नियमों में यह उपबंध मार्च, 1957 में महान्यायवादी से परामर्श करने के बाद किया गया था।[73]

अनुच्छेद 107(3) का वास्तविक अभिप्राय तो यह है कि संसद इस बात को बिल्कुल असंदिग्ध रूप से प्रतिपादित कर देना चाहती थी कि सभा के सत्रावसान के कारण विधेयक समाप्त नहीं हो जायेंगे और जहां तक सत्रावसान के अन्य प्रभावों का संबंध है, यह मामला सभा की मर्जी पर छोड़ दिया गया कि वह अनुच्छेद 118(1) के अधीन प्रक्रिया नियमों में अपनी इच्छानुसार उपबंध कर सकती है, यहां तक कि सभा सत्रावसान के प्रभाव से उन सभी विषयों को व्यपगत होने से बचा ले जिन पर थोड़ी-सी भी चर्चा हुई हो और केवल वही विषय व्यपगत हों जो सभा के सामने नहीं रखे गए हों। जहां तक सूचनाओं का संबंध है, विधेयकों की सूचनायें इस अपवाद में आती हैं।[74]

संसद की किसी सभा का सत्रावसान होने पर राष्ट्रपति को अनुच्छेद 323 के अधीन अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है। यदि सत्रावसान करने और उसकी अधिसूचना प्रकाशित होने से पहले कोई अध्यादेश प्रख्यापित किया जाता है, तो वह शून्य होगा।[75]

सभा का विघटन

अनुच्छेद 85(2)(ख) के अधीन राष्ट्रपति के आदेश द्वारा या लोक सभा की पहली बैठक के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष की अवधि पूरी हो जाने पर लोक सभा के कार्यकाल की समाप्ति को "सभा का विघटन" कहा जाता है।[76]

---

72. नियम 284, साथ ही *देखिए* अध्याय 30—संसदीय समितियां।
73. महान्यायवादी ने नियम समिति को भेजे गए एक टिप्पण में यह कहा था: यदि प्रक्रिया नियमों में इस तरह का उपबंध मौजूद है तो वे समितियां जिनका विधेयकों से कोई संबंध नहीं है, अंतर्सत्रावधि में भी अपना काम कर सकती हैं। अगर सभा कार्य करने में असमर्थ हो तो समिति के काम करते रहने में कोई अनुचित बात नहीं है। सभा अपनी प्रक्रिया के नियमों के माध्यम से समितियों को कार्य जारी रखने का अधिकार दे सकती है ताकि समितियों को कार्य करते रहने की शक्ति तथा प्राधिकार उन्हें सभा से प्राप्त हो सकें—कार्यवाही सारांश (नियम समिति) 19.3.1957, पृ. 38 ।
74. यह महान्यायवादी की राय के अनुकूल है—साथ ही *देखिए*, नियम 335 ।
75. *विद्या चौधरी बनाम बिहार प्रान्त,* ए.आई.आर. 1950, पटना 19 ।
76. *देखिए* अनुच्छेद 83(2)। संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा इस अनुच्छेद में संशोधन कर लोक सभा की अवधि छह वर्ष कर दी गयी थी। संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा लोक सभा का कार्यकाल पुनः पांच वर्ष कर दिया गया।

विधानमंडल का विधिवत् रूप से गठन[77] हो जाने के पश्चात् इसे विघटित किया जा सकता है हालांकि यह केवल बैठक के लिए आहूत किए जाने के पश्चात् ही अपना कार्य करना आरंभ करता है।

केरल में, फरवरी/मार्च, 1965 के मध्यावधि निर्वाचन के बाद नवगठित विधान सभा को इसकी बैठक के लिए आहूत किए जाने के पहले ही 24 मार्च, 1965 को संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन एक उद्घोषणा के तहत विघटित कर दिया गया था। उद्घोषणा की संवैधानिकता तथा वैधता को एक याचिका में चुनौती दी गई थी। तथापि, इस मामले में न्यायालय ने यह निर्णय दिया:

> "न ही अनुच्छेद 172 और न ही अनुच्छेद 174 में यह उपबंध है कि किसी राज्य विधानमंडल का विघटन इसकी पहली बैठक के लिए निर्धारित तारीख के बाद ही किया जा सकता है... विधान सभा के गठित होने के बाद इसे विघटित किया जा सकता है।"[78]

इसी प्रकार, तेरहवीं बिहार विधान सभा के लिए चुनाव फरवरी, 2005 में तीन चरणों में करवाये गए। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 के अनुसरण में निर्वाचन आयोग ने अधिसूचना जारी की। विधान सभा की 243 सीटों के लिए कोई भी दल/चुनाव पूर्व गठबंधन बहुमत प्राप्त नहीं कर सका। इस स्थिति में, बिहार के राज्यपाल ने 6 मार्च, 2005 की अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि नवगठित सभा को निलंबित रखा जाए, चूंकि कोई भी राजनीतिक दल सरकार बनाने की स्थिति में नहीं था। संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत 7 मार्च, 2005 को एक अधिसूचना जारी की गई जिसके माध्यम से बिहार राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया तथा सभा को निलंबित रखा गया। इसके बाद भी जब कोई स्थायी गठबंधन नहीं बन सका तो बिहार के राज्यपाल ने भारत के राष्ट्रपति को 21 मई, 2005 को एक अन्य रिपोर्ट भेजी। रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया कि निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों को अपनी ओर मिलाने के प्रयास चल रहे थे। उनके विचार में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी जहां निलंबन की स्थिति में रखी गई सभा का विघटन करना वांछनीय था ताकि जनता को सरकार चुनने का एक और अवसर प्राप्त हो सके। मंत्रिमंडल ने रिपोर्ट स्वीकार करने का निर्णय लिया और राष्ट्रपति को बिहार विधान सभा का विघटन करने की सिफारिश की। राष्ट्रपति ने सिफारिश को स्वीकार किया। निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार 23 मई, 2005 को सभा के विघटन की अधिसूचना जारी की गई। इस प्रकार, बिहार विधान सभा का विघटन हुआ, जिसके गठन के पश्चात् एक भी बैठक नहीं हुई थी। इस अधिसूचना को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। न्यायालय ने बहुमत से निर्णय दिया कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 73 के तहत अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात् सभी उद्देश्यों के लिए बिहार विधान सभा को गठित माना जाएगा और उसका कार्यकाल उसके विधिवत् गठन से भिन्न मामला है। न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि बिहार विधान सभा को विघटित करने की उद्घोषणा

---

77. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 में यह उपबंध किया गया है कि विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के लिए चुने गए सदस्यों के नामों की निर्वाचन आयोग द्वारा सरकारी राजपत्र में अधिसूचना जारी किए जाने के बाद लोक सभा अथवा विधान सभा को "विधिवत् रूप से गठित माना जाएगा"।

78. *के.के. आबू बनाम भारत संघ तथा अन्य,* ए.आई.आर. 1965, केरल 229 ।

असंवैधानिक थी किन्तु विघटन की अधिसूचना के असंवैधानिक होने के बावजूद, यथापूर्व स्थिति बहाल करना इसका स्वाभाविक परिणाम नहीं होगा। न्यायालय का विचार था कि यदि अधिसूचना को अविधिमान्य करार दिया जाए तब भी यथापूर्व स्थिति बहाल करना उपयुक्त समाधान नहीं होगा।[79]

> लोक सभा को इसके पूर्ण कार्यकाल से पहले विघटित करना असंवैधानिक नहीं है।
>
> दूसरी लोक सभा को राष्ट्रपति ने 31 मार्च, 1962 को विघटित कर दिया जबकि उसकी पांच वर्ष की पूरी अवधि समाप्त नहीं हुई थी। इस पर डॉ. एन. सामंत सिंह ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दिल्ली स्थित पंजाब उच्च न्यायालय की सर्किट बैंच के समक्ष दायर एक याचिका, जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि इस आशय का एक प्रारम्भिक आदेश जारी किया जाये (और उस समय तक प्रतिवादियों को 16 अप्रैल, 1962 को तीसरी लोक सभा को आहूत करने से रोका जाये) कि समय से पहले दूसरी लोक सभा का विघटन शून्य तथा प्रभावहीन है, उच्च न्यायालय ने 4 अप्रैल, 1962 को रद्द कर दी।

विघटन से वे व्यक्ति जनता के प्रतिनिधि नहीं रहते जिनसे लोक सभा का गठन होता है। लोक सभा का विघटन हो जाने के बाद साधारण निर्वाचन के पश्चात् ही वह समवेत हो सकती है। इस संबंध में यह निर्णय दिया गया है:

> किसी विधानमंडल को बैठक के लिए केवल तभी आहूत किया जा सकता है जब वह उस समय अस्तित्व में हो। विघटित विधानमंडल को बैठक के लिए आहूत नहीं किया जा सकता है।[80]

राज्य सभा का कभी भी विघटन नहीं होता है और जहां राज्य विधानमंडल द्विसदनीय है वहां विधान परिषद का भी विघटन नहीं होता है।

लोक सभा का विघटन करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है तथा वह इस शक्ति का प्रयोग प्रधान मंत्री की सलाह पर करता है। प्रधान मंत्री, मंत्रिमंडल की सलाह ले सकता है अथवा राष्ट्रपति को सिफारिश करने के लिए अपनी राय के बारे में उसे सूचित कर सकता है।[81] लोक सभा का विघटन करने के लिए राष्ट्रपति को सलाह देने की शक्ति प्रधान मंत्री के पास अपने दल को एकजुट रखने तथा उसको टूटने से रोकने के लिए एक निवारक के रूप में सबसे प्रबल हथियार है। यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या कोई प्रधान मंत्री, जो सत्तारूढ़ दल का विश्वास खो चुका हो अथवा जिसे ऐसा विश्वास खोने का खतरा हो, को राष्ट्रपति को लोक सभा का विघटन करने की सलाह देनी चाहिए तथा क्या राष्ट्रपति को ऐसी सलाह को

---

79. *रामेश्वर प्रसाद एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य,* ए.आई.आर. 2006 एससी 980 ।
80. रामेश्वर प्रसाद एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, ए.आई.आर. 2006 एससी 980 ।
81. 1970 में प्रधान मंत्री ने लोक सभा का विघटन करने के मंत्रिमंडल के निर्णय से राष्ट्रपति को अवगत कराया। पुनः 1977 में प्रधान मंत्री ने राष्ट्रपति को पांचवीं लोक सभा का विघटन करने तथा नए चुनाव करवाने का आदेश देने के लिए सलाह दी थी।

अस्वीकार करने का संवैधानिक अधिकार है।[82] इन प्रश्नों के कोई निश्चित उत्तर नहीं दिए गए हैं, और न ही विश्वास करने के लिए कोई पूर्वोदाहरण है। तथापि, एक बात स्पष्ट है: कोई प्रधान मंत्री, जिसने त्यागपत्र नहीं दिया है अथवा जिसे राष्ट्रपति द्वारा पदच्युत नहीं किया गया है, हमेशा ऐसी सलाह दे सकता है, चाहे उसने अपनी पार्टी का विश्वास खो दिया हो अथवा नहीं। राष्ट्रपति, यदि वह ऐसी सलाह को न मानने का निर्णय करता है, को पहले वैकल्पिक प्रधान मंत्री की व्यवस्था करनी चाहिए जो लोक सभा में बहुमत जुटा सके और तब उसकी सलाह लेनी चाहिए तथा तदनुसार कार्यवाही करनी चाहिए।

जहां तक राज्य विधान सभा का संबंध है, इसका विघटन करने के बारे में संवैधानिक व्यवस्था लोक सभा की तरह ही है। तथापि, अनुच्छेद 356 में यह अपेक्षित है कि यदि विधान सभा के कार्यकाल के दौरान किसी भी समय राज्य सरकार को संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सके, तो राज्यपाल को राष्ट्रपति को रिपोर्ट करनी होती है।[83] सामान्यत: ऐसी परिस्थितियों में राज्यपाल विधान सभा का विघटन नहीं करता है चाहे उन्हें मुख्यमंत्री ने ऐसा करने की सलाह दी हो, लेकिन यदि वह राष्ट्रपति को रिपोर्ट देने से पहले विधान सभा का विघटन करता है तो यह गैर-कानूनी नहीं है।

मुख्यमंत्री की सलाह पर पंजाब विधान सभा की बैठक 14 जून, 1971 को आहूत की गई क्योंकि विधान सभा में पहले ली गई लेखा अनुदान की स्वीकृति की अवधि 30 जून को समाप्त होनी थी। सत्तारूढ़ अकाली पार्टी के भीतर बढ़ते मतभेद को देखते हुए 12 जून को

---

82. जम्मू और कश्मीर के संविधान के उपबंधों के अधीन राज्यपाल राज्य विधान सभा का विघटन करने के लिए मुख्यमंत्री की सलाह मानने के लिए बाध्य है। जम्मू और कश्मीर के मुख्यमंत्री, शेख अब्दुल्ला (जिन्होंने कांग्रेस विधायी दल के बहुमत का समर्थन खो दिया था) की सिफारिश पर राज्यपाल ने 27 मार्च, 1977 को विधान सभा का विघटन कर दिया और राष्ट्रपति शासन लगा दिया। राज्यपाल ने बताया कि मुख्यमंत्री ने उन्हें राज्य विधान सभा का विघटन करने की सलाह दी थी। चूंकि, उनके पास कोई विधिक विकल्प नहीं था, इसलिए उन्होंने विधान सभा का विघटन कर दिया तथा प्रशासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

83. संविधान के अनुच्छेद 356 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उप-राष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती ने, जो भारत के कार्यवाहक राष्ट्रपति थे, 30 अप्रैल, 1977 को बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल राज्य सरकारों के सभी कृत्यों को अपने हाथ में लेने वाली नौ उद्घोषणाएं जारी कीं। इन राज्यों की विधान सभाओं का भी विघटन कर दिया गया था। इससे पहले केन्द्रीय गृह मंत्री चरण सिंह ने इन राज्यों के मुख्यमंत्रियों को सुझाव दिया था कि मार्च, 1977 में हुए लोक सभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी की करारी हार को देखते हुए वे स्वयं ही राज्य विधान सभाओं का विघटन कर दें और जनादेश प्राप्त करें। लेकिन मुख्यमंत्रियों ने सुझाव को मानने से इंकार कर दिया था। इसके अलावा उच्चतम न्यायालय में संघ सरकार के अनुरोध की संवैधानिकता को भी चुनौती देने का प्रयास किया गया। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में हस्तक्षेप करने से मना कर दिया।

मुख्यमंत्री ने राज्यपाल को विधान सभा का तुरंत विघटन करने की सलाह दी ताकि वे जनता से नया जनादेश प्राप्त कर सकें। उनकी सलाह पर कार्यवाही करते हुए राज्यपाल ने 13 जून को विधान सभा का विघटन कर दिया। मुख्यमंत्री ने भी अपना त्यागपत्र दे दिया जो राज्यपाल ने स्वीकार कर लिया।

वैकल्पिक सरकार के गठन की सम्भावना का पता न लगाने और स्वयं ही विधान सभा का विघटन करने के राज्यपाल के औचित्य पर संसद में चर्चा की गई थी।[84] राज्य सभा में वाद-विवाद का उत्तर देते हुए गृह मंत्रालय में केन्द्रीय राज्य मंत्री ने यह टिप्पणी की कि जहां किसी मुख्यमंत्री ने प्रथम दृष्ट्या विधान सभा में बहुमत का विश्वास खो दिया है, जैसा कि पंजाब के मामले में हुआ, राज्यपाल के लिए यह उचित कदम होगा कि वह विघटन के मामले में मुख्यमंत्री की सलाह पर कार्य न करें अपितु वह विरोधी दलों से परामर्श करके स्थिति का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन करें।[85]

यह एक विवाद का विषय है कि क्या राज्यपाल, अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट देने से पूर्व स्वयं विधान सभा का विघटन कर सकता है या नहीं। सामान्यत: यह परिपाटी रही है कि राष्ट्रपति ऐसी स्थिति में विधान सभा के विघटन का आदेश दें जहां राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट में ऐसी सिफारिश की है क्योंकि यदि राज्यपाल का विरोधी दलों से परामर्श करने के पश्चात् भी यही विचार है कि विद्यमान परिस्थितियों में विघटन ही उचित मार्ग है, तो ऐसे मामले में राष्ट्रपति निश्चित रूप से राज्यपाल की इस सलाह पर गम्भीरता से विचार करेगा।[86]

इससे पहले भी इस प्रकार के दो उदाहरण हैं, जब राज्यपाल ने 26 जून, 1970 को केरल विधान सभा का और 4 जनवरी, 1971 को तमिलनाडु विधान सभा का विघटन किया था। तथापि, इन दोनों मामलों में मुख्यमंत्री को विधान सभा में बहुमत प्राप्त था।

जब राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा के अनुसरण में कोई आदेश जारी कर दिया हो और जिससे राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली शक्तियां, जिन्हें राष्ट्रपति ने अपने हाथ में ले लिया हो, राज्यपाल द्वारा भी प्रयोग की जा सकती हों तो विधान सभा का विघटन करने संबंधी राज्यपाल के आदेश में किसी भी प्रकार की संवैधानिक अथवा विधिक अशक्तता नहीं है।[87]

---

84. *आर.एस. डिबेट्स,* 21.6.1971, कॉ. 97-148 और 26.6.1971, कॉ. 19-42; *एल.एस. डिबेट्स,* 2.8.1971, कॉ. 225-37 और 5.8.1971, कॉ. 202-61 ।

85. *आर.एस. डिबेट्स,* 22.6.1971, कॉ. 30-42 ।

86. *पूर्वोक्त* ।

87. *लो.स.वा.वि.*, 18.3.1974, पृ. 162 । गुजरात के राज्यपाल द्वारा राज्य द्वारा विधान सभा के विघटन के संबंध में गृह मंत्री का वक्तव्य।

विघटन की प्रक्रिया

लोक सभा के सामान्य विघटन की प्रक्रिया यह है कि लोक सभा के अन्तिम सत्र के समाप्त होने से कुछ दिन पहले महासचिव संसदीय कार्य मंत्री के माध्यम से प्रधान मंत्री से (और यदि प्रधान मंत्री सदन का नेता न हो तो सदन के नेता के माध्यम से) विघटन के संबंध में पूछताछ करता है, या संसदीय कार्य मंत्री (या सदन का नेता जैसी भी स्थिति हो) स्वयं प्रधान मंत्री द्वारा सुझाई गयी तारीख के बारे में पत्र भेज देता है।

प्रधान मंत्री का अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव महासचिव द्वारा राष्ट्रपति को भेज दिया जाता है। टिप्पणी के साथ आदेश का प्रारूप भी भेजा जाता है जिसमें सभा के विघटन की प्रस्तावित तारीख दी होती है। राष्ट्रपति द्वारा उस तारीख को आदेश पर हस्ताक्षर किये जाते हैं जिस दिन लोक सभा का विघटन होना होता है। राष्ट्रपति द्वारा आदेश[88] किए जाने के बाद, उसे उस दिन के राजपत्र, असाधारण में प्रकाशित किया जाता है जिस दिन वह सचिवालय में प्राप्त हुआ हो। उसके साथ ही सचिवालय समाचारपत्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि के माध्यम से व्यापक प्रचार के लिये एक प्रेस विज्ञप्ति जारी करता है। लोक सभा के विघटन के बारे में सदस्यों को जानकारी देने के लिए संसदीय समाचार में एक पैरा भी जारी किया जाता है।

यदि प्रधान मंत्री राष्ट्रपति से सभा को उसकी सामान्य अवधि की समाप्ति से पूर्व ही विघटित करने की सिफारिश करने का निर्णय करता है तो प्रधान मंत्री ऐसे प्रस्ताव को राष्ट्रपति के पास भेजता है और राष्ट्रपति के विघटन संबंधी आदेश की सूचना अध्यक्ष को देता है जो, महासचिव को उसे राजपत्र में अधिसूचित करने तथा संसदीय समाचार, समाचारपत्रों तथा अन्य समाचार माध्यमों से सदस्यों को सूचित करने के लिए कहता है।

> नवम्बर, 1969 में कांग्रेस संसदीय दल के विभाजित होने के साथ ही सत्तारूढ़ दल ने लोक सभा में अपना बहुमत खो दिया। प्रधान मंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति ने 27 दिसम्बर, 1970 को अर्थात् उसकी सामान्य अवधि से एक वर्ष और उनासी दिन पूर्व विघटन का दिया क्योंकि प्रधान मंत्री सरकार की नीतियों के बारे में जनादेश चाहते थे, खासकर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि यदि वे बहुमत के साथ सत्ता में वापस आते हैं तो उनका दल अपनी नीतियों को सहजता से कार्यान्वित कर सकता है। राष्ट्रपति के आदेश की सूचना अध्यक्ष महोदय को दे दी गई और सदस्यों को सभा के विघटन के संबंध में संसदीय समाचार, रेडियो आदि के माध्यम से सूचित कर दिया गया।

पांचवीं लोक सभा जो 1971 में निर्वाचित हुई थी, का राष्ट्रपति द्वारा 18 जनवरी, 1977 को विघटन कर दिया गया। लोक सभा के विघटन संबंधी राष्ट्रपति के आदेश को संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा 18 जनवरी, 1977 को प्रेस को जारी किया गया। प्रधान मंत्री ने राष्ट्रपति को लोक सभा का विघटन करने की सलाह देने से पूर्व अध्यक्ष से परामर्श किया था।

---

88. राष्ट्रपति का विघटन संबंधी आदेश तत्काल प्रभावी होता है और यदा-कदा ही पूर्वेक्षित अथवा भूतलक्षी प्रभाव से लागू होता है।

विघटन का प्रभाव

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विघटन किसी सभा की अवधि की समाप्ति को दर्शाता है और उसके बाद नई सभा का गठन किया जाता है।[89] एक बार सभा का विघटन हो जाने पर इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। राष्ट्रपति में ऐसी कोई शक्ति निहित नहीं है कि वह विघटन के अपने आदेश को रद्द कर सके तथा पूर्ववर्ती सभा को पुनर्जीवित कर सके। विघटन के परिणाम सुनिश्चित और अपरिवर्तनीय होते हैं। संविधान के अधीन लोक सभा का ही विघटन हो सकता है और विघटन हो जाने पर उसका सारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष लम्बित सभी कार्य उसके विघटन पर व्यपगत हो जाते हैं।[90] विघटित सभा के रिकार्ड का कोई भी अंश नयी सभा के रिकार्ड या रजिस्टरों में न तो लिया जा सकता है और न ही उतारा जा सकता है।[91] संक्षेप में, विघटन से वर्तमान लोक सभा पर पूरी तरह से पर्दा पड़ जाता है।[92]

विभिन्न प्रकार के कार्यों पर विघटन के प्रभाव की स्थिति इस प्रकार होती है:

विधेयक : 1923 से पहले, केन्द्रीय विधान सभा में स्थिति यह थी कि एक सदन द्वारा पारित किया गया और दूसरे सदन को भेजा गया विधेयक उस सदन के विघटन पर व्यपगत नहीं होता था जिसने वह विधेयक पारित किया हो। यदि दूसरा सदन उस विधेयक को पारित कर देता था तो गवर्नर जनरल की स्वीकृति मिलने पर वह कानून बन जाता था। तब यह प्रश्न उठा कि यदि दूसरा सदन उस विधेयक को स्वीकार करने की बजाय उसमें कोई संशोधन कर दे तो उस विधेयक की स्थिति क्या होगी। इस स्थिति का सामना करने के लिए 1924 में नियम 36ग बनाया गया जिसमें यह उपबन्ध किया गया कि:

दोनों में से किसी चैम्बर के विघटन पर सभी विधेयक, जो विघटित होने वाले चैम्बर में पुर:स्थापित किये गये हों या जो नियम 25 के अधीन चैम्बर के पटल पर रखे गये हों और जो भारतीय विधानमंडल द्वारा पारित न किये हों, व्यपगत हो जायेंगे।

यह नियम 14 अगस्त, 1947 तक लागू रहा और इसके लागू होने से दोनों सदनों द्वारा पहले ही पारित किये गये विधेयक, जिन्हें गवर्नर जनरल की स्वीकृति मिलनी शेष हो, सदन के विघटन पर व्यपगत होने से बच गए।

अनुच्छेद 107 में बताया गया है कि लोक सभा के विघटन होने की दशा में संसद के दोनों सदनों के सामने लम्बित विधेयकों पर क्या प्रभाव होगा। लम्बित विधेयकों पर विघटन के प्रभाव की वर्तमान स्थिति इस प्रकार है:

---

89. भारत में लो.प्र. अधिनियम, 1951 की धारा 14 के अधीन लोक सभा का साधारण निर्वाचन वर्तमान सभा की अवधि समाप्त होने से छह महीने पूर्व कराया जा सकता है। जबकि वर्तमान सभा के विघटन के पश्चात् ही नई सभा का गठन किया जाता है।
90. यहां तक कि ऐसा कार्य जैसे लोक सभा द्वारा निपटाये गये विधेयक, परन्तु जो राज्य सभा में लंबित हैं, विघटन की तारीख को व्यपगत हो जाते हैं।
91. तथापि संसदीय समितियों के प्रतिवेदन और मंत्रियों द्वारा दिये गये आश्वासन इसके अपवाद हैं।
92. एम.एन. कौल "इफेक्ट ऑफ डिजोल्यूशन अपॉन पेंडिंग बिजनेस इन पार्लियामेंट" जे.पी.आई. (IV) (I)।

लोक सभा में, विघटन के समय लम्बित सभी विधेयक चाहे वे लोक सभा में आरम्भ हुए हों अथवा राज्य सभा द्वारा भेजे गए हों, व्यपगत हो जाते हैं; और

राज्य सभा में लोक सभा द्वारा पारित विधेयक जिनका विघटन की तारीख को राज्य सभा द्वारा निपटान न किया गया हो और जो राज्य सभा में लम्बित हों, व्यपगत हो जाते हैं। राज्य सभा में आरंभ होने वाले केवल वही विधेयक जिन्हें लोक सभा ने पारित न किया हो और राज्य सभा में लम्बित हों, व्यपगत नहीं होते।[93]

परन्तु यदि किसी विधेयक के संबंध में दोनों सदनों में असहमति है और विघटन से पहले राष्ट्रपति ने उस विधेयक पर विचार करने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने के अपने आशय की सूचना दे दी है तो वह विधेयक व्यपगत नहीं होता और सदनों की संयुक्त बैठक में पारित किया जा सकता है, चाहे राष्ट्रपति द्वारा संयुक्त बैठक बुलाने के अपने आशय की सूचना देने के बाद लोक सभा का विघटन हो गया हो।[94]

संविधान में ऐसे विधेयक पर विघटन के प्रभाव के संबंध में कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं है जिसे दोनों सदनों ने पारित कर दिया हो और जो राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जा चुका हो। तथापि, यह निर्णय दिया गया है कि लोक सभा के विघटन पर ऐसा विधेयक व्यपगत नहीं होता। इसके अतिरिक्त, यदि राष्ट्रपति ऐसे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिये लौटा दे तो नयी लोक सभा उस पर विचार कर सकती है और यदि वह उसे (बिना संशोधन या संशोधन सहित) पारित कर दे तो उसे "पुनः" पारित किया हुआ विधेयक माना जायेगा।[95]

अन्य कार्य, जैसे प्रस्ताव, संकल्प आदि : लोक सभा के विघटन पर सभा में लंबित अन्य सभी कार्य जैसे प्रस्ताव, संकल्प, संशोधन, अनुदानों की अनुपूरक मांगें आदि वे चाहे जिस चरण में हों, व्यपगत हो जाती हैं। साथ ही सभा में प्रस्तुत सभी याचिकाएं, जो याचिका समिति को सौंपी गयी हों, व्यपगत हो जाती हैं।

किसी अधिनियम के उपबंधों के अधीन दोनों सदनों के पटल पर रखे गये सांविधिक नियमों के अनुमोदन या उनमें परिवर्तन का प्रस्ताव भी जो लोक सभा ने पारित कर दिया हो और राज्य सभा को उसकी सहमति के लिये भेज दिया हो या राज्य सभा ने उसे पारित कर दिया हो और लोक सभा को उसकी सहमति के लिए भेज दिया हो, लोक सभा का विघटन होने पर व्यपगत हो जाता है।[96]

---

93. राज्य सभा में आरंभ होने वाला विधेयक (जैसाकि वास्तुविद विधेयक, 1970 के संबंध में हुआ था) जो लोक सभा को भेजने और लोक सभा द्वारा उसे संशोधन सहित लौटा दिये जाने के बाद राज्य सभा में लंबित हो, व्यपगत हो जायेगा।

94. अनुच्छेद, 108 (5) ।

95. *पुरुषोत्तमन नम्बूदिरी बनाम केरल राज्य,* ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 694 । इस मामले में यह निर्णय दिया गया कि राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति की सहमति हेतु लंबित विधेयक अनुच्छेद 196 के खंड (5) से बाहर है और सभा के विघटित होने पर इसे व्यपगत हुआ नहीं कहा जा सकता।

96. सभा पटल पर रखे गये सांविधिक नियमों पर लोक सभा के विघटन के प्रभाव के बारे में भारत में विधायी निकायों के सचिवों की समिति की बैठक में, जो मार्च, 1957 में हैदराबाद में हुई थी, विचार किया गया। इसमें यह निर्णय किया गया कि ऐसे मामलों में "व्यपगत होने संबंधी

न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3 (1) के अनुसरण में किसी न्यायाधीश को हटाये जाने के लिए राष्ट्रपति को समावेदन करने का कोई प्रस्ताव, यदि गृहीत किया जा चुका है, लोक सभा के विघटित होने पर व्यपगत नहीं होगा।[97]

सभा के कार्यकाल के दौरान कही गयी किसी बात को अथवा किये गये किसी कार्य को सभा के विघटित होने के पश्चात् "विशेषाधिकार के रूप में नहीं उठाया जा सकता"[98]

समिति के समक्ष कार्य : लोक सभा का विघटन होने पर उसकी संसदीय समितियों के समक्ष लंबित सभी कार्य व्यपगत हो जाता है। लोक सभा का विघटन होने पर समितियां स्वयं विघटित हो जाती हैं।[99] लेकिन यदि कोई समिति सभा के विघटन से पहले अपना काम पूरा न कर सके तो वह सभा को इस बात की सूचना दे सकती है। उस दशा में समिति द्वारा तैयार किए गए किसी प्रारंभिक ज्ञापन या टिप्पण या उसके द्वारा लिया गया साक्ष्य नयी समिति की नियुक्ति पर उसे दे दिया जाता है।[100] इसी प्रकार जहां किसी समिति ने अपना प्रतिवेदन उस समय तैयार कर लिया हो जब सभा का सत्र न चल रहा हो और समिति के सभापति द्वारा उसे अध्यक्ष को पेश कर दिया गया हो और अगले सत्र में उस प्रतिवेदन के सभा में पेश किये जाने से पहले सभा का विघटन हो गया हो तो महासचिव उस प्रतिवेदन को नयी सभा के पटल पर सबसे पहले सुविधाजनक अवसर पर रख देता है। प्रतिवेदन रखते समय महासचिव यह वक्तव्य देता है कि यह प्रतिवेदन पिछली लोक सभा के अध्यक्ष को इसके विघटन के पहले पेश किया गया था। जहां अध्यक्ष ने यह आदेश दिया था कि नियम 280 के अधीन प्रतिवेदन को मुद्रित किया जाए या सदस्यों में परिचालित किया जाये, महासचिव इस तथ्य के बारे में भी सभा को सूचित करता है।[101]

सामान्य नियम" लागू किया जाना चाहिए। इस बात पर जोर दिया गया कि चूंकि नई सभा एक भिन्न संस्था है, इसलिए पुरानी सभा के रिकार्ड का कोई भाग नई सभा के रिकार्ड का भाग नहीं बन सकता। इसलिए नई सभा दूसरी सभा द्वारा भेजे गए किसी संदेश या संशोधनों पर विचार नहीं कर सकती।

97. उच्चतम न्यायालय ने *न्यायिक उत्तरदायित्व संबंधी उप समिति बनाम भारत संघ* के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया:

   "यह सच है कि *पुरुषोत्तमन नम्बूदिरी* का मामला (ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 694) विधायी उपाय से संबंधित है और प्रस्ताव के रूप में लंबित कार्य नहीं हैं। लेकिन हमारा यह मत है कि न तो यह सिद्धांत कि सभा का विघटन होने पर उसका सारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है और न ही संविधान के अनुच्छेद 118 के अधीन बनाए गए किसी नियम या नियमों में ऐसे विशिष्ट प्रावधान हैं, जो अनुच्छेद 124 के अधीन न्यायाधीश को हटाये जाने हेतु प्रस्ताव पर विघटन का प्रभाव निर्धारित करते हों। इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 124 (5) तथा उसके अधीन बनाया गया कानून इस क्षेत्र में अनुच्छेद 118 के प्रवर्तन को वर्जित करता है।" ए.आई. आर. 1992 एस.सी. 320 ।

98. *लो.स.वा.वि.*, 7.4.1977, पृ. 11-12

99. *देखिए कौल : इफेक्ट ऑफ डिजोल्यूशन, उद्धृत कृति,* जे.पी.आई. खंड (IV), संख्या 1, 1958, पृ. 19 ।

100. नियम 285; साथ ही *देखिए* अध्याय 30-संसदीय समितियां।

101. निदेश 71क (6)।

मंत्रियों द्वारा दिए गए आश्वासन : मंत्रियों द्वारा सभा में दिए गए ऐसे आश्वासन, जिनका सरकार द्वारा कार्यान्वयन किया जाना है और जिनके बारे में सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति द्वारा प्रतिवेदन दिया गया है, लोक सभा का विघटन होने पर व्यपगत नहीं हुए समझे जाते हैं।[102]

आपात सत्र

लोक सभा का आपात सत्र आहूत करने की प्रक्रिया वही है जो कि एक नियमित सत्र को आहूत करने की है।[103] राष्ट्रपति का आदेश उसी रूप में जारी किया जाता है जिस रूप में कि अन्य सत्र के आरम्भ होने के लिए किया जाता है और अन्य औपचारिकताएं भी उसी प्रकार की जाती हैं। सचिवालय द्वारा जारी की गयी प्रेस विज्ञप्ति में उस विशेष प्रयोजन का भी उल्लेख किया जाता है जिसके लिए सत्र बुलाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यदि अल्प सूचना पर सत्र बुलाया गया है और नियमित रूप से आमंत्रण भेजने का समय नहीं है तो सदस्यों को प्रेस और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा सूचित किया जा सकता है।[104]

---

102. पहली लोक सभा का विघटन होने से पहले सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति ने महत्वपूर्ण लम्बित आश्वासनों में से कुछ आश्वासनों का चयन किया और उन्हें एक प्रतिवेदन में शामिल किया ताकि नई सभा की उत्तरवर्ती समिति उन पर आगे कार्यवाही कर सके। समिति ने अपने प्रतिवेदन में (जो पहली लोक सभा की अन्तिम बैठक में 28 मार्च, 1957 को प्रस्तुत किया गया था) सिफारिश की कि इन आश्वासनों को सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जाए।

103. 1942 में विधान सभा का एक आपात सत्र 14 सितम्बर, 1942 को बुलाया गया ताकि अगस्त, 1942 में कांग्रेस द्वारा प्रारम्भ किए गए सिविल असहयोग आन्दोलन से उत्पन्न स्थिति पर विचार किया जा सके।

    इस सत्र को बुलाने के लिए गवर्नर जनरल का आदेश 24 अगस्त, 1942 को प्राप्त हुआ और सदस्यों को आमंत्रण अगले दिन भेजे गए।

    जब भारतीय रुपये का अवमूल्यन हुआ तो संविधान सभा (विधायी) का आपात सत्र 5 अक्तूबर 1949 को बुलाया गया। यह सत्र दो दिन तक चला। सत्र बुलाने के लिए मंत्रिमंडल का प्रस्ताव 21 सितम्बर, 1949 को देर रात तक प्राप्त हुआ और सदस्यों को आमंत्रण 23 सितम्बर, 1949 को भजे गए।

    1950 में कोरिया की स्थिति पर विचार करने के लिए अंतरिम संसद का एक आपात सत्र बुलाया गया। 11 जुलाई, 1950 को मंत्रिमंडल ने 31 जुलाई, 1950 से सत्र बुलाने का प्रस्ताव रखा। उसी दिन राष्ट्रपति के आदेश प्राप्त कर लिए गए और सदस्यों को आमंत्रण भेज दिए गए।

104. नियम 3 परन्तुक।

    नियम समिति ने नियम में यह परन्तुक 14 दिसम्बर, 1953 को हुई अपनी बैठक में जोड़ा। चूंकि पांचवीं और सातवीं लोक सभा के पहले सत्र अल्प सूचना पर बुलाए गए थे और आमंत्रण भेजने की तारीख और सत्र प्रारम्भ होने की तारीख के बीच क्रमश: केवल चार और पांच दिनों का ही अन्तर था, इसलिए आमंत्रण सामान्य रूप से भेजे जाने के साथ-साथ बाहर रहने वाले सभी सदस्यों को लोक सभा के आहूत किये जाने के बारे में तार के माध्यम से

जब अल्प सूचना पर आपात सत्र बुलाया जाता है तो रेल तथा विमान सेवा के अधिकारियों को हिदायत दी जाती है कि वे सत्र में आने वाले सदस्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता दें।

आपात सत्र की अवधि और उसके प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष यह निर्णय करता है कि प्रश्न काल होना चाहिए या नहीं।[105]

यदि आमंत्रण भेजे जाने तथा सत्र के आरम्भ होने के बीच समय इतना कम हो कि प्रश्नों, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों तथा विधेयकों आदि के लिए विहित सूचना की अवधि पूरी नहीं हो सकती तो अध्यक्ष को यह शक्ति है कि वह सूचना की अवधि कम कर सकता है।[106] तथापि, प्रश्नों के संबंध में ऐसी शक्ति सरकार के परामर्श से प्रयोग में लायी जाती है।

भी सूचना दी गई। नौवीं लोक सभा के पांचवें सत्र और दसवीं लोक सभा के पहले सत्र के आरम्भ होने के बारे में सदस्यों को सूचित करने के लिए राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों के मुख्य सचिवों/प्रशासकों को बेतार संदेश भी भेजे गए। सभी जिला कलेक्टरों/जिला मजिस्ट्रेटों को निकनेट के माध्यम से इस अनुरोध के साथ प्रेस विज्ञप्ति भी जारी की गई कि वे ग्यारहवीं लोक सभा के पहले सत्र के आरम्भ होने के बारे में लोक सभा सदस्यों को सूचित करें हालांकि ये सत्र आपात सत्र नहीं थे।

105. 1942, 1949 और 1950 में होने वाले आपात सत्रों में प्रश्न काल समाप्त नहीं किया गया।

106. *देखिए,* नियम 33, 65 (3) और 170 ।

1957 में दूसरी लोक सभा के पहले सत्र में आमंत्रण भेजे जाने और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर विचार के लिए नियत दिन के बीच मुश्किल से एक मास का समय था। इस परिस्थिति में इन विधेयकों के लिए विहित एक महीने की सूचना देने में आ रही कठिनाई को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष ने विधेयकों के लिए एक महीने से कम की सूचना स्वीकार कर ली। इसी प्रकार की रियायत क्रमशः 1962, 1967 और 1971 में तीसरी, चौथी और पांचवीं लोक सभा के पहले सत्र में भी दी गई।

अध्याय 10

सदन में राष्ट्रपति का अभिभाषण, संदेश तथा संसूचनाएं

राष्ट्रपति का अभिभाषण

संविधान में यह उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति संसद के किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण कर सकेगा।[1] संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति के लिए यह भी आवश्यक है कि वह लोक सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करेगा और संसद को उसके आह्वान के कारण बताएगा।[2]

> राज्याध्यक्ष द्वारा संसद के समक्ष अभिभाषण का उपबन्ध बहुत पहले से ही अर्थात् वर्ष 1921 से है जब भारत शासन अधिनियम, 1919 के अन्तर्गत पहली बार केन्द्रीय विधानमंडल की स्थापना की गयी थी। इस अधिनियम में यह उपबन्ध किया गया था कि गवर्नर जनरल अपने विवेक से केन्द्रीय विधानमंडल के किसी भी सदन में अभिभाषण कर सकता है।[3] यद्यपि उस अधिनियम में एक साथ समवेत दोनों सदनों में गवर्नर जनरल के अभिभाषण का स्पष्ट उपबन्ध नहीं था, तथापि व्यावहारिक रूप से 1921 से 1946 तक गवर्नर जनरल ने निचले सदन में अलग से और एक साथ समवेत दोनों सदनों में भी अनेक अवसरों पर अभिभाषण किया।
>
> अगस्त, 1947 तक गवर्नर जनरल के अभिभाषण के संबंध में भारत शासन अधिनियम, 1919 के उपबंध लागू थे। वर्ष 1947 में स्वतंत्रता के बाद, भारत शासन अधिनियम, 1935 यथा अनुकूलित में यह उपबन्ध किया गया था कि गवर्नर जनरल डोमिनियम विधानमंडल में अभिभाषण कर सकता है और उस उद्देश्य के लिए सदस्यों को उपस्थित होने के लिए कह सकता है।[4] परन्तु नवम्बर, 1947 से जनवरी, 1950 तक संविधान सभा (विधायी) की सम्पूर्ण अवधि के दौरान गवर्नर जनरल ने उक्त सभा में एक बार भी अभिभाषण नहीं किया। वर्ष 1950 में, जब संविधान लागू हुआ, अंतरिम संसद के तीन सत्र हुए। यह अनुभव किया गया कि राष्ट्रपति का अभिभाषण एक वर्ष में तीन बार होने से अभिभाषण पर चर्चा करते समय बार-बार वही मुद्दे दोहराये जाएंगे और उन पर

---

1. अनुच्छेद 86(1)। यह उपबंध वैसा ही है जैसा कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची में सम्मिलित धारा 63क(2) और 63ख(3) में है। तथापि, संविधान के प्रारम्भ से लेकर अब तक राष्ट्रपति ने इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संसद के किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण नहीं किया है।
2. अनुच्छेद 87(1)।
3. धाराएं 63(क)(3) और 63(ख)(3), *उद्धृत कृति* ।
4. भारत शासन अधिनियम, 1935, यथा अनुकूलित की धारा 20(1)।

समय लगेगा। इसके अतिरिक्त, इस प्रक्रिया में कुछ प्रशासनिक कठिनाइयां थीं।[5] इसलिए संविधान में संशोधन करके यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति का अभिभाषण लोक सभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरम्भ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में ही हो।[6]

राष्ट्रपति का अभिभाषण चूंकि सरकार का नीति वक्तव्य होता है इसलिए सरकार ही इसका मसौदा तैयार करती है। अभिभाषण की विषयवस्तु के लिए राष्ट्रपति नहीं, बल्कि सरकार जिम्मेदार होती है।[7] इसमें पिछले वर्ष के दौरान सरकार के कार्यकलापों और उपलब्धियों की समीक्षा तथा महत्वपूर्ण घरेलू और सामयिक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के संबंध में सरकार की नीति का उल्लेख होता है। इसमें चालू सत्र के लिए सरकारी कार्य के बारे में भी संक्षेप में बताया जाता है। तथापि, इसमें सत्र में किए जाने वाले सभी संभावित विधायी कार्यों का ब्यौरा नहीं होता। इसलिए, अभिभाषण के बाद उस सत्र में किए जाने वाले संभावित सरकारी कार्य का ब्यौरा देते हुए समाचार (बुलेटिन) में एक अलग से पैरा प्रकाशित किया जाता है।

राज्यों में राज्यपाल राज्य विधानमंडल में अभिभाषण करता है और राज्य विधानमंडल को "उसे आहूत करने के कारणों" की सूचना देता है। यदि राज्यपाल अभिभाषण करने में असमर्थ हो, तो राष्ट्रपति राज्यपाल के उस कृत्य के निष्पादन हेतु कोई दूसरे प्रावधान कर सकता है।[8] ऐसा प्रावधान अनिवार्य है। इस संबंध में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी:

यदि कोई विधानमंडल अनुच्छेद 176 की अपेक्षानुसार, आरम्भ में राज्यपाल के अभिभाषण के बिना अपनी बैठक करता है और विधायी कार्य करता है, तो इसकी कार्यवाही अवैध और अविधिमान्य होती है और उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।[9]

---

5. प्रवर समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित संविधान (पहला संशोधन) विधेयक, 1951 के खंड 7 पर वाद-विवाद का उत्तर देते हुए प्रधान मंत्री ने कहा:
   "असली दिक्कत यह है कि इस (अभिभाषण) के लिए सभा से बाहर कुछ तैयारियां करनी पड़ती
   हैं जिसमें प्राय: कठिनाइयां आती हैं। सदस्य जानते हैं कि जब छ: घोड़ों वाली बग्घी आती है तो इसके
   लिए पूरा प्रबन्ध करना पड़ता है। लेकिन यह कठिनाई सभा या उसके सदस्यों को नहीं उठानी पड़ती, बल्कि उसका बोझ दिल्ली के प्रशासन पर पड़ता है।" – *पी. डिबेट्स* (II), 2.6.1951, कॉ. 9960 ।
6. *देखिए* संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951 की धारा 7—साथ ही *देखिए* अध्याय 9—'संसद के सदनों का आह्वान तथा सत्रावसान और लोक सभा का विघटन'।
7. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.2.1960, कॉ. 2105 ।
8. *देखिए* अनुच्छेद 160 ।
9. *सैयद अब्दुल मन्सूर हबीबुल्लाह बनाम अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान सभा,* ए.आई.आर. 1966, कलकत्ता 371 ।

वर्ष 1969 में पश्चिम बंगाल के राज्यपाल ने राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों में अपना अभिभाषण देते हुए अभिभाषण के दो पैराओं को छोड़ दिया। इस मामले के संवैधानिक और राजनीतिक पहलुओं पर लोक सभा में वाद-विवाद हुआ। वाद-विवाद का उत्तर देते हुए गृह मंत्री ने कहा कि राज्याध्यक्ष का अभिभाषण "एक नीति संबंधी सार्वजनिक घोषणा है जो सरकार आगामी वर्ष के दौरान कार्यान्वित करना चाहती है........ अभिभाषण में यह अपेक्षा की जाती है कि भविष्य और वर्तमान को ध्यान में रखा गया हो परन्तु इन दो पैराओं में इतिहास की व्याख्या करने की कोशिश की गयी थी.."।[10]

महान्यायवादी के अनुसार, राज्यपाल के अभिभाषण का इस्तेमाल मंत्रिपरिषद् द्वारा राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में राज्यपाल के किसी कृत्य पर कोई टिप्पणी करने अथवा उसकी आलोचना करने के लिए नहीं किया जा सकता।[11]

पंजाब के राज्यपाल ने 14 मार्च, 1969 को पंजाब विधानमंडल के एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण करते समय उन पैराओं को भी पढ़ा जिनमें विगत वर्ष आदि के दौरान सरकार के कार्यों की आलोचना की गई थी। पंजाब विधान परिषद् ने 21 मार्च को राज्यपाल के अभिभाषण पर अधिकारिक धन्यवाद प्रस्ताव में कांग्रेस प्रतिपक्ष का एक संशोधन स्वीकार किया। संशोधन में यह खेद व्यक्त किया गया था कि "वर्ष 1968-69 का बजट पारित करते समय संवैधानिक उपबन्धों और संसदीय परम्पराओं का उल्लंघन किए जाने के संबंध में अभिभाषण के पैरा 4 में की गई टिप्पणियां स्वीकृत तथ्यों के प्रतिकूल हैं। बजट उनके द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश के उपबन्धों के अनुसार पारित किया गया। विनियोग विधेयकों पर अपनी अनुमति देकर, राज्यपाल बजट पारित करवाने में विधानमंडल के दोनों सदनों की ही भांति एक पक्ष हो गए। इन टिप्पणियों में ऐसी विरोधी बातें हैं जिन्हें उन्हें अपने अभिभाषण में शामिल नहीं करना चाहिए, विशेष रूप से तब, जबकि ये भारत के उच्चतम न्यायालय के निष्कर्ष के भी विरुद्ध हैं"।

अभिभाषण के लिए तिथि का निर्धारण

लोक सभा के लिए प्रत्येक साधारण निर्वाचन के बाद प्रथम सत्र में सदस्यों के शपथ ले चुकने या प्रतिज्ञान कर चुकने और अध्यक्ष का चुनाव हो जाने के पश्चात् राष्ट्रपति संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इन प्रारम्भिक कार्यों में सामान्यत: दो से तीन दिन लग जाते हैं। जब तक राष्ट्रपति संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण न कर चुका हो तब तक सभा में और कोई कार्य नहीं किया जाता।[12] यह इसलिए किया जाता है ताकि राष्ट्रपति के अभिभाषण को बाकी सभी कार्यों की अपेक्षा अग्रता दी जाये। इसी कारण, प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र में, राष्ट्रपति का अभिभाषण उस तिथि और समय पर होता है जो दोनों सदनों के सत्र प्रारम्भ होने के लिए अधिसूचित किया गया हो। उस दिन लोक

10. *लो.स.वा.वि.*, 10.3.1969, पृ. 171 ।
11. अता. प्र.सं. 6145, *लो.स.वा.वि.*, 11.4.1969 ।
12. *लो.स.वा.वि.* (II), 11.5.1957, पृ. 16 ।

सभा का सत्र राष्ट्रपति का अभिभाषण समाप्त होने के उपरान्त, जब दोनों सदन अपने-अपने सभा भवन में औपचारिक कार्य करने के लिए समवेत होते हैं, आधे घंटे बाद शुरू होता है।

नई लोक सभा के प्रथम सत्र या वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ के संबंध में, अध्यक्ष को प्रस्ताव भेजते समय संसदीय कार्य मंत्री (या सदन का नेता, यदि प्रधान मंत्री सदन का नेता न हो) उस तिथि और समय का सुझाव भी देता है जब राष्ट्रपति को संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण करना हो। दोनों में से किसी भी सदन को आहूत करने के राष्ट्रपति के आदेश में राष्ट्रपति के अभिभाषण का उल्लेख नहीं होता और न ही उन आमंत्रणों में ही इसकी चर्चा होती है जोकि सदस्यों को भेजे जाते हैं। सदस्यों को राष्ट्रपति के अभिभाषण की तिथि, समय और स्थान की सूचना संसदीय समाचार में एक पैरा के माध्यम से दी जाती है।

अभिभाषण से सम्बन्धित समारोह

संसद के दोनों सदनों के सदस्य संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में एकत्र होते हैं जहां राष्ट्रपति अपना अभिभाषण करता है।[13] जिन नए सदस्यों ने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो, उन्हें या तो निर्वाचन अधिकारी द्वारा दिये गए निर्वाचन प्रमाण-पत्र दिखाने पर या शपथ ले चुके अथवा प्रतिज्ञान कर चुके किसी सदस्य द्वारा परिचय करवाने पर या महासचिव द्वारा उन्हें सत्र के लिए भेजे गए आमंत्रण पत्र को देखकर राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश करने दिया जाता है।

केन्द्रीय कक्ष में सेक्टर एक से पांच तक पहली कुछ पंक्तियों के स्थान केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों,[14] लोक सभा के उपाध्यक्ष और राज्य सभा के उप-सभापति के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। सेक्टर 6 से 8 तक पहली एक या दो पंक्तियों के स्थान विपक्षी दलों और दोनों सदनों में पर्याप्त सदस्य संख्या रखने वाले समूहों के नेताओं के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। सेक्टर 1 से 8 तक दूसरी पंक्ति में केन्द्रीय कक्ष के गलियारे (गैंग्वे) के दोनों तरफ के स्थान सभापति की तालिका के सदस्यों और संसदीय समितियों के सभापतियों के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। अन्य सदस्य किसी भी रिक्त स्थान पर बैठ सकते हैं।

संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में राष्ट्रपति का अभिभाषण संविधान के अंतर्गत सब से अधिक भव्य और औपचारिक कार्यवाही है। उस अवसर पर अत्यधिक गरिमा और शालीनता का ध्यान रखा जाता है। यदि कोई सदस्य कोई ऐसा कार्य करे जिससे राष्ट्रपति के

---

13. 1952 में हुए पहले साधारण निर्वाचन से पहले जब दो अलग-अलग सदनों का गठन हुआ, राष्ट्रपति ने अंतरिम संसद में इसके पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें सत्र के आरम्भ में संसद के सभा-भवन (अब लोक सभा भवन) में अभिभाषण दिया।
14. मंत्रियों से, अभिभाषण से बहुत पहले पूछा जाता है कि कहीं वे अभिभाषण के समय अनुपस्थित तो नहीं होंगे, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनके लिए आरक्षित स्थान रिक्त न रहें। अनुपस्थिति संबंधी अपेक्षित सूचना मिलने पर संबंधित मंत्रियों के आरक्षित स्थान अन्य सदस्यों को दे दिए जाते हैं।

अभिभाषण के इस अवसर की सौम्यता भंग होती हो या व्यवधान उत्पन्न होता हो, तो वह सदन, जिसका वह सदस्य है, उस के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है।[15] जब भी ऐसा कोई अपराध होता है, सदन इस मामले की जांच करने के लिए और प्रतिवेदन देने के लिए एक समिति का गठन कर सकता है, या यदि यह अपराध निश्चित और विशिष्ट हो, तो सदन संबंधित सदस्य या सदस्यों को समिति द्वारा जांच की प्रक्रिया से गुजरे बिना भी दंडित कर

---

15. संसद के 12 फरवरी, 1968 को एक साथ समवेत दोनों सदनों में राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर लोक सभा के दो सदस्यों ने बाधा उत्पन्न की। इस घटना के बाद दोनों सदनों के लगभग सत्तर-अस्सी सदस्य उठकर बाहर चले गए। 28 फरवरी को दोनों सदस्यों को अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर दिया गया और उसके बाद लोक सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसके माध्यम से जिन अन्य सदस्यों ने बहिर्गमन (वॉक-आउट) में भाग लिया था उन्हें छोड़कर दोनों सदस्यों के आचरण को गलत ठहराते हुए 'उनके अवांछनीय, अमर्यादित और अशोभनीय व्यवहार' के लिए उन्हें फटकार लगाई। *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1968, पृ. 972-80, 983-90; 28.2.1968., पृ. 230-31 ।

    लोक सभा के एक सदस्य पर 23 मार्च, 1971 को एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों में राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर बाधा उत्पन्न करने और उनके प्रति निरादर प्रकट करने का आरोप लगाया गया। 2 अप्रैल को सभा द्वारा इस संबंध में प्रस्ताव स्वीकृत कर दिए जाने के बाद, अध्यक्ष द्वारा 'मामले की विस्तृत जांच करने और उचित कार्यवाही तथा भविष्य के लिए मार्ग-निर्देश सुझाने' के लिए 5 अप्रैल, 1971 को एक समिति गठित की गई–*लो.स.वा.वि.,* 2.4.1971, पृ. 115-28, 139-42 और समाचार-भाग 2, दिनांक 5.4.1971 । समिति ने अपना पहला प्रतिवेदन सभा में 15 नवम्बर, 1971 को प्रस्तुत किया। समिति का यह विचार था कि सदस्य के आचरण की निन्दा की जानी चाहिए। तथापि, समिति ने सुझाव दिया कि समिति के समक्ष सदस्य द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उदारता बरती जा सकती है और मामले को बंद किया जा सकता है।

    ऐसी ही एक समिति 1963 में गठित की गई थी और इसकी सिफारिशों को सदन ने स्वीकार कर लिया था तथा तीन सदस्यों को अध्यक्ष ने फटकार लगाई थी—*लो.स.वा.वि.,* 18.2.1963, पृ. 1-4; 19.2.1963, पृ. 100-01; 19.3.1963; पृ. 2159 ।

    13 मार्च, 1972 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान लगातार व्यवधान डालकर और फिर सदन से बहिर्गमन करके सदस्यों के एक समूह ने बाधा उत्पन्न की। अध्यक्ष ने यह मामला 17 मार्च, 1972 को एक समिति के विचारार्थ भेजा (*लो.स.वा.वि.,* 17.3.1972, कॉ. 131)। अपने दूसरे प्रतिवेदन में समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर सदस्यों के आचरण के बारे में तथा व्यवस्था, गरिमा और शालीनता बनाए रखने के संबंध में कतिपय दिशानिर्देश तय किए: (i) संविधान में नए अनुच्छेद 87क का अंत:स्थापन, ताकि यह उपबंध किया जा सके कि संसद के सदन/सदनों में अभिभाषण के अवसर पर राष्ट्रपति पीठासीन होगा; (ii) राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर प्रक्रिया संबंधी नियम बनाने के लिए अनुच्छेद 118 में संशोधन; और (iii) संविधान के अनुच्छेद 175 और 176 के अधीन राज्य विधानमंडलों में राज्यपाल के अभिभाषण के लिए ऐसे ही संवैधानिक प्रावधान।

सकता है। प्रत्येक दशा में दोषरोपित सदस्य की सुनवाई आवश्यक होगी और यदि आवश्यक हुआ, तो उस घटना संबंधी संगत प्रस्ताव पर चर्चा स्थगित की जा सकती है ताकि वह सदस्य

---

19 फरवरी, 1973 को जब राष्ट्रपति का अभिभाषण चल रहा था, कुछ सदस्य केन्द्रीय कक्ष से बाहर चले गए। 18 फरवरी, 1974 को जैसे ही राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण पढ़ना शुरू किया, एक सदस्य ने कुछ टिप्पणी की। साथ ही कुछ सदस्य मंच की तरफ तेजी से गए और चिल्ला कर कुछ कहा। पांच मिनट के बाद वे शोर मचाते हुए केन्द्रीय कक्ष से बाहर चले गए। 17 फरवरी, 1975 को, जैसे ही राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण पढ़ना शुरू किया, एक सदस्य ने खड़े होकर कुछ चिल्लाते हुए व्यवधान उत्पन्न किया और फिर कक्ष से बाहर चला गया। राष्ट्रपति ने इस व्यवधान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और अपना अभिभाषण जारी रखा।

16 फरवरी, 1981 को जब उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति के अभिभाषण का हिन्दी पाठ पढ़ रहे थे, एक सदस्य ने अपनी सीट से उठकर कुछ निवेदन किया और तत्पश्चात् केन्द्रीय कक्ष से बाहर चला गया। तथापि उप-राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण पढ़ना जारी रखा। 18 फरवरी, 1982 को जब राष्ट्रपति अपना अभिभाषण पढ़ रहे थे, एक सदस्य ने उत्तर प्रदेश सरकार के विरुद्ध कतिपय टिप्पणियां कीं। राष्ट्रपति ने उससे अपनी सीट पर बैठने और विघ्न उत्पन्न नहीं करने के लिए कहा। तत्पश्चात् सदस्य अपनी सीट पर बैठ गया और राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण पुनः शुरू किया। 12 मार्च, 1990 को जब राष्ट्रपति अपना अभिभाषण पढ़ रहे थे कुछ सदस्य अपनी सीटों पर खड़े हो गए और 'मेहम' मामले और पंजाब समस्या को उठाया। राष्ट्रपति ने व्यवधान पर ध्यान न देते हुए अपना अभिभाषण पढ़ना जारी रखा। इसके बाद कतिपय सदस्य सभा से उठकर बाहर चले गए। इसके पश्चात् जब राष्ट्रपति ने आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में कमी का उल्लेख किया तो कुछ सदस्यों ने इससे अपनी असहमति व्यक्त की। तत्पश्चात् राष्ट्रपति ने यह टिप्पणी की कि उनके पास अभिभाषण पर चर्चा करने के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध रहेगा और उनसे उन्हें व्यवधान नहीं डालने के लिए कहा। पुनः राष्ट्रपति ने जब मंडल आयोग का जिक्र किया तो दो सदस्य उठ खड़े हुए और उन्होंने कतिपय टिप्पणियां कीं। राष्ट्रपति ने उन्हें अपने स्थान पर बैठने को कहा। बाद में वे सभा से बहिर्गमन कर गए। राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण जारी रखा। 16 फरवरी, 2006 को जब राष्ट्रपति अपना अभिभाषण पढ़ रहे थे, एक सदस्य अपने स्थान पर खड़ा हो गया और उसने कतिपय टिप्पणियां कीं। राष्ट्रपति ने इस पर ध्यान नहीं दिया और अपना अभिभाषण जारी रखा। 25 फरवरी, 2008 को जब राष्ट्रपति अपना अभिभाषण पढ़ रहे थे तो तेलंगाना राष्ट्र समिति के सदस्य उठ खड़े हुए और उन्होंने नारे लगाए और तख्तियां दिखाईं। तत्पश्चात् वे केन्द्रीय कक्ष से बाहर चले गए। तथापि राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण जारी रखा।

तथापि, राजस्थान विधान सभा के राज्यपाल के अभिभाषण के समय कुछ सदस्यों द्वारा व्यवधान उत्पन्न किए जाने के मामले में, राज्यपाल ने स्वयं ही उन सदस्यों को सदन से निष्कासित करने का आदेश दिया।

26 फरवरी, 1966 को, राजस्थान के राज्यपाल ने सदन में उनके अभिभाषण में बार-बार व्यवधान उत्पन्न करने के लिए राजस्थान विधान सभा से कुछ सदस्यों को सदन से निष्कासित कर दिया। बाद में किसी विपक्षी सदस्य द्वारा एक विशेषाधिकार प्रस्ताव पेश किया गया और

अपनी बात कह सके।[16] साथ ही यह भी परिपाटी है कि जिस समय राष्ट्रपति अभिभाषण कर रहा हो, कोई सदस्य केन्द्रीय कक्ष से उठ कर नहीं जाता[17] अभिभाषण से कुछ दिन पहले संसदीय समाचार (बुलेटिन) के माध्यम से सदस्यों को समारोहों और उस अवसर पर पालन किए जाने वाले नियमों के बारे में सूचित किया जाता है। उनसे यह भी अनुरोध किया जाता है कि वे राष्ट्रपति के केन्द्रीय कक्ष में आने से पांच मिनट पहले अपना स्थान ग्रहण कर लें और अभिभाषण समाप्त हो जाने के बाद राष्ट्रपति के केन्द्रीय कक्ष से चले जाने तक अपने स्थान पर ही बैठे रहें।[18]

पश्चिम बंगाल में 8 फरवरी, 1965 को शोरगुल और व्यवधान के कारण राज्यपाल विधानमंडल में अपना अभिभाषण नहीं कर सके और इस कमी को पूरा करने के लिए विधानमंडल के सदस्यों को सम्बोधित इस अभिभाषण का प्रकाशन कराके सभा पटल पर रखवा दिया गया। परमादेश रिट को खारिज करते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि प्रक्रियात्मक असफलता पर बहुत ज्यादा बल नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि

मामले को विधान सभा की विशेषाधिकार समिति को भेज दिया गया। समिति ने यह पाया कि राज्यपाल ने अपने अभिभाषण के दौरान उन सदस्यों को निकाल कर अनुच्छेद 176(1) के अधीन अपनी शक्तियों और प्राधिकार के भीतर कार्य किया है। *राजस्थान, वि.स.वा.वि.*, 24. 9.1966 ।

सभा से सदस्यों को निकलवाने संबंधी राज्यपाल की कार्यवाही को राजस्थान उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका द्वारा चुनौती दी गई। न्यायालय ने रिट याचिका को अन्य बातों के साथ-साथ यह मानते हुए खारिज कर दिया कि राज्यपाल के अभिभाषण पूरा कर चुकने के बाद ही विधानमंडल को इस पर चर्चा करने और अपनी राय देने का अवसर मिलता है, और यह कि, इसलिए, याचिकाकर्ता, राज्यपाल से विधान सभा में अभिभाषण पूरा करने से पूर्व न तो कोई प्रश्न पूछ सकता है और न ही कोई टिप्पणी कर सकता है। राज्यपाल की कार्यवाही के संबंध में, न्यायालय ने मामले पर अन्य कारणों के साथ-साथ इस कारण से विचार करना उचित नहीं समझा कि याचिकाकर्ताओं को राज्यपाल के अभिभाषण के दौरान केवल इसीलिए निकाला गया कि वह अभिभाषण करने के अपने संवैधानिक दायित्व को पूरा कर सकें और अन्य सदस्यगण उसे सुन सकें—*योगेन्द्रनाथ हांडा बनाम राज्य,* ए.आई.आर.,1967, राजस्थान 123 ।

16. उदाहरणार्थ *देखिए लो.स.वा.वि.,* 20.2.1968, पृ. 987-88 और 28.2.1968, पृ. 230-31 ।
17. 5 फरवरी, 1953 को अंतरिम संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर एक सदस्य अभिभाषण के बीच में ही सभा कक्ष छोड़ कर चला गया। अगले ही दिन उसने अध्यक्ष को पत्र भेज कर उन परिस्थितियों के बारे में बताते हुए जिनमें उसे अभिभाषण के बीच से उठ कर जाना पड़ा था, क्षमा मांग ली।
18. केन्द्रीय कक्ष के भूमि तल की लाबियाँ और प्रथम तल की दीर्घाएं क्रमशः राष्ट्रपति के परिवार के सदस्यों और उसके अतिथियों, विदेशों के राजदूतों और उनके पति/पत्नियों; सभापति तथा अध्यक्ष के परिवार के सदस्यों और अतिथियों, प्रेस संवाददाताओं, गण्यमान्य दर्शकों तथा राज्य सभा और लोक सभा के सदस्यों द्वारा अनुशंसित दर्शकों के लिए आरक्षित रखी जाती हैं।

राज्यपाल अभिभाषण की प्रति सभा पटल पर रख दिए जाने से इसका अभिप्राय पूरा हो गया है और सदस्यगण अभिभाषण की विषयवस्तु से अवगत हो गए हैं। न्यायालय ने आगे टिप्पणी की कि:

"जब तक कि एक संवैधानिक परम्परा न बन जाए कि राज्यपाल का अभिभाषण उतनी ही तन्मयता, सम्मान और शिष्टाचार के साथ सुना जाना चाहिए जो किसी राज्य के संवैधानिक प्रमुख के संबंध में अपेक्षित हो, तब तक ऐसे अवसर आ सकते हैं जब विधानमंडल के सदस्य राज्यपाल द्वारा अभिभाषण के समय जोर-जोर से हल्ला कर सकते हैं और उपद्रव कर सकते हैं। यदि शोरगुल काफी तेज हो और उपद्रव भी कम नहीं हो तो राज्यपाल मानवीय सीमाओं के कारण अपना अभिभाषण शुरू करने या पूरा करने में कामयाब नहीं हो सकेगा तथा वह अभिभाषण के प्रकाशन के अन्य तरीकों पर विचार कर सकेगा। अनुच्छेद 176 के अधीन अभिभाषण शुरू करने या पूरा करने में राज्यपाल के असफल रहने पर और अभिभाषण को किसी अन्य प्रकार प्रकाशित करवाने के लिए मजबूर होने पर यह मानना कि विधानमंडल की बैठक हुई ही नहीं है, ऐसे उपद्रवों को मान्यता देने जैसा होगा जिसके वे पात्र नहीं हैं।"[19]

राष्ट्रपति अपनी राजकीय बग्घी या लिमोसिन कार में अपने सचिव और सैनिक सचिव के साथ संसद भवन के उत्तर-पश्चिम द्वार पर पहुंचता है। साथ में राष्ट्रपति के अंगरक्षक होते हैं। जब राष्ट्रपति संसद भवन पर आकर बग्घी या कार से उतरता है तो अंगरक्षक उसे 'राष्ट्रीय सलामी' देते हैं और राज्य सभा का सभापति, प्रधानमंत्री, लोक सभा का अध्यक्ष, संसदीय कार्य मंत्री और दोनों सदनों के महासचिव द्वार पर उसका स्वागत करते हैं।

इसके बाद एक शोभायात्रा में राष्ट्रपति को केन्द्रीय कक्ष में ले जाया जाता है।[20] जब शोभायात्रा केन्द्रीय कक्ष के गैंग्वे में दाखिल होती है, तो लोक सभा का मार्शल मंच से राष्ट्रपति

---

19. *सैयद अब्दुल मंसूर हबीबुल्लाह बनाम अध्यक्ष, पं. बंगाल विधान सभा, ए.आई.आर.*, 1966, कलकत्ता 363 ।

20. शोभायात्रा का क्रम यह होता है:

एडीसी	Δ		Δ	एडीसी
महासचिव, राज्य सभा	Δ		Δ	महासचिव, लोक सभा
राज्य सभा का सभापति	Δ		Δ	लोक सभा का अध्यक्ष
संसदीय कार्य मंत्री	Δ	राष्ट्रपति	Δ	प्रधानमंत्री
राष्ट्रपति का सचिव	Δ		Δ	राष्ट्रपति का सैनिक सचिव
एडीसी	Δ		Δ	एडीसी
एडीसी	Δ		Δ	एडीसी

10 फरवरी, 1964 को उप-राष्ट्रपति ने राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करते हुए संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण किया। इसलिए शोभायात्रा के क्रम में और मंच पर बैठने के क्रम में कुछ परिवर्तन किये गए। शोभायात्रा में राज्य सभा के उप-सभापति ने राज्य

के आगमन की घोषणा करता है। इसके साथ ही कक्ष के प्रवेश द्वार की ओर मुंह करके दीर्घा में खड़े दो बिगुल-वादक बिगुल बजाते हैं।[21] राष्ट्रपति के प्रवेश करने पर सदस्य खड़े हो जाते हैं और जब तक राष्ट्रपति मंच पर जाकर बैठ नहीं जाते, सदस्य खड़े ही रहते हैं। केन्द्रीय कक्ष में मंच के सामने पहुंच कर यह शोभायात्रा दो भागों में बंट जाती है: राष्ट्रपति, राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष, मंच पर अपने-अपने स्थानों को जाते हैं: राष्ट्रपति बीच के आसन पर बैठते हैं उनके दायें राज्य सभा के सभापति और बायें लोक सभा के अध्यक्ष बैठते हैं;[22] प्रधानमंत्री और संसदीय कार्य मंत्री मंच के सामने पहली कतार की बैंचों में अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते हैं और शोभायात्रा के साथ आए दूसरे अधिकारी केन्द्रीय कक्ष में मंच के दायें और बायें रखी कुर्सियों की ओर जाते हैं लोक सभा के महासचिव, राष्ट्रपति के सैनिक सचिव और दो एडीसी राष्ट्रपति के बायीं ओर तथा राज्य सभा के महासचिव, राष्ट्रपति के सचिव और दो एडीसी उनके दायीं ओर बैठते हैं, दो एडीसी मंच पर राष्ट्रपति की कुर्सी के पीछे खड़े होते हैं। जब राष्ट्रपति मंच पर अपने स्थान पर पहुंचते हैं तो उनकी दायीं

सभा के सभापति का स्थान लिया; लोक सभा के सचिव और अध्यक्ष उप-राष्ट्रपति के बायीं ओर तथा राज्य सभा के सचिव और उप-सभापति उसके दायीं ओर थे। मंच पर अध्यक्ष और उप-सभापति, उप-राष्ट्रपति के क्रमश: दायीं और बायीं ओर बैठे थे। इसी प्रकार केन्द्रीय कक्ष में लोक सभा का सचिव मंच के दायीं ओर तथा राज्य सभा का सचिव बायीं ओर बैठा था।

28 मार्च, 1977 को राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे उप-राष्ट्रपति ने संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण किया। शोभायात्रा में राज्य सभा के सामयिक सभापति ने राज्य सभा के सभापति का स्थान लिया। लोक सभा के महासचिव और अध्यक्ष राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे उप-राष्ट्रपति की बायीं ओर तथा राज्य सभा के महासचिव और सामयिक सभापति उसकी दायीं ओर थे। मंच के ऊपर अध्यक्ष और सामयिक सभापति ने राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे उप-राष्ट्रपति के क्रमश: दायीं और बायीं ओर अपना स्थान ग्रहण किया। केन्द्रीय कक्ष में, लोक सभा के महासचिव मंच के दायीं ओर तथा राज्य सभा के महासचिव मंच के बायीं ओर बैठे।

21. केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति के आगमन की सूचना देने के लिए बिगुल बजाने की शुरुआत 10 फरवरी, 1958 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय से हुई। उससे पहले शोभायात्रा के आगे चलने वाला एडीसी केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति के प्रवेश की सूचना देने के लिए कहता था : 'संसद के सदस्यगण, राष्ट्रपति जी' राष्ट्रपति के आगमन की घोषणा लोक सभा के मार्शल द्वारा किए जाने की परम्परा का आरंभ 1978 में हुआ और कुछ वर्षों के लिए बिगुल बजाने की परिपाटी बंद कर दी गई।

22. 5 जनवरी, 1976 को लोक सभा के उपाध्यक्ष ने अध्यक्ष का, जिन्होंने इससे पहले त्याग पत्र दे दिया था, स्थान लिया। केन्द्रीय कक्ष में मंच के ऊपर लोक सभा के उपाध्यक्ष और राज्यसभा के सभापति राष्ट्रपति के क्रमश: बायीं और दायीं ओर बैठे थे।

ओर केन्द्रीय कक्ष की लॉबी में उपस्थित बैंडवादक राष्ट्रगान की धुन बजाते हैं। उसके बाद जब राष्ट्रपति बैठ जाते हैं तो पीठासीन अधिकारी, सदस्यगण और दर्शक-दीर्घाओं में दर्शक अपने-अपने स्थानों पर बैठ जाते हैं। तत्पश्चात् राष्ट्रपति मुद्रित अभिभाषण[23] हिन्दी अथवा अंग्रेजी में पढ़ते हैं, जिसके बाद यदि आवश्यक हो तो राज्य सभा के सभापति द्वारा अभिभाषण को दूसरी भाषा में पढ़ा जाता है। अभिभाषण समाप्त होने पर राष्ट्रपति उठ खड़े होते हैं तथा उनके साथ ही सदस्यगण और दीर्घाओं में बैठे दर्शक भी उठ खड़े होते हैं तथा राष्ट्रगान की धुन फिर बजाई जाती है। उसके बाद राष्ट्रपति, अपने आगमन के समय जैसी ही शोभायात्रा के क्रम में केन्द्रीय कक्ष से बाहर चले जाते हैं। जब तक शोभायात्रा केन्द्रीय कक्ष से बाहर नहीं

---

23. (i) राष्ट्रपति द्वारा पढ़े जाने वाले अभिभाषण की प्रतियां राष्ट्रपति सचिवालय से प्राप्त की जाती हैं और राष्ट्रपति की मेज पर पहले ही रख दी जाती हैं। अभिभाषण की हिन्दी और अंग्रेजी की एक-एक प्रति उप-राष्ट्रपति और अध्यक्ष को भी उनके उपयोग हेतु उपलब्ध कराई जाती है।

(ii) 1968 में, राष्ट्रपति ने पहले हिन्दी में अभिभाषण पढ़ा। वह थोड़ी देर के लिए बैठ गए और फिर उठकर उसका अंग्रेजी रूपान्तर पढ़ा। 1970 में राष्ट्रपति ने अभिभाषण अंग्रेजी में दिया और प्रत्येक पैरा के अंत में उसका हिन्दी रूपान्तर राष्ट्रपति के सचिव द्वारा पढ़ा गया।

जब लोक सभा की अपने कक्ष में बैठक हुई तब एक व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया कि अभिभाषण का हिन्दी पाठ राष्ट्रपति के सचिव द्वारा पढ़ा जाना संवैधानिक उपबंधों के विरुद्ध है। अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि वह संवैधानिक अनौचित्य से अनभिज्ञ थे और वह राष्ट्रपति को अभिभाषण का पाठ किसी भाषा विशेष में पढ़ने का निर्देश नहीं दे सकते थे। *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1970, पृ. 15-16 ।

1971, 1972, 1973 और 1974 में, राष्ट्रपति ने अभिभाषण अंग्रेजी में पढ़ा और तत्पश्चात् उप-राष्ट्रपति ने उसे हिन्दी में पढ़ा। 1975 और 1976 में राष्ट्रपति ने पहले हिन्दी में और फिर अंग्रेजी में अभिभाषण दिया। 1977 में राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए उप-राष्ट्रपति ने पहले हिन्दी में फिर अंग्रेजी में अभिभाषण पढ़ा। 1978, 1979, 1980, 1981, 1982, 1988, 1989, 1990, 1991, 1992, 1998, 1999, 2000, 2001, 2002, 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, फरवरी, 2009 और 2013 में राष्ट्रपति ने अंग्रेजी में अभिभाषण पढ़ा और तत्पश्चात् उप-राष्ट्रपति ने उसे हिन्दी में पढ़ा। 1983, 1984, 1985, 1986, 1987, 1993, 1994, 1995, 1996, 1997 जून, 2009, 2010, 2011 और 2012 में, राष्ट्रपति ने हिन्दी में अभिभाषण पढ़ा और फिर उप-राष्ट्रपति ने उसे अंग्रेजी में पढ़ा।

राष्ट्रपति ने वर्ष 2005, 2006 और 2007 में अपना अभिभाषण मंच पर रखे एक लैपटॉप के स्क्रीन से पढ़ा।

राष्ट्रपति ने 2002 और 2008 से 2012 तक अपना अभिभाषण बैठकर पढ़ा। 21 फरवरी, 2013 को राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण खड़े होकर पढ़ा।

चली जाती, सदस्य खड़े रहते हैं। राष्ट्रपति संसद भवन के द्वार पर पहुंच कर राज्य सभा के सभापति, प्रधानमंत्री, लोक सभा के अध्यक्ष, संसदीय कार्य मंत्री और दोनों सदनों के महासचिवों से विदा लेते हैं। राष्ट्रपति के अंगरक्षक उन्हें फिर 'राष्ट्रीय सलामी' देते हैं और उसके बाद राष्ट्रपति अपने सचिव और सैनिक सचिव के साथ राजकीय बग्घी/कार में बैठ कर अंगरक्षकों सहित राष्ट्रपति भवन के लिए प्रस्थान कर जाते हैं।

केन्द्रीय कक्ष में इस समारोह की फोटो लेने की अनुमति नहीं है। तथापि, 20 दिसम्बर, 1989 से उस समारोह का दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण किया जाता है।

अभिभाषण की प्रति का सभा पटल पर रखा जाना

राष्ट्रपति का अभिभाषण सुनने के लिए संसद के दोनों सदनों का एक साथ समवेत होना, न तो लोक सभा की बैठक कहा जा सकता है, न राज्य सभा की, और न ही दोनों सदनों की संयुक्त बैठक, क्योंकि लोक सभा या राज्य सभा की बैठक या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक, तब विधिवत गठित होती है जब अध्यक्ष या कोई ऐसा सदस्य पीठासीन हो जो संविधान या नियमों के अंतर्गत पीठासीन होने का अधिकारी है।[24] राष्ट्रपति द्वारा दिये गये अभिभाषण को सभा की कार्यवाही का अंग बनाने और उसे उसमें शामिल करने के लिए सभा की एक अलग बैठक राष्ट्रपति का अभिभाषण समाप्त होने के आधे घंटे बाद होती है, जिसमें महासचिव अभिभाषण की हिन्दी तथा अंग्रेजी की राष्ट्रपति द्वारा अधिप्रमाणित प्रतियां सभा पटल पर रखता है।[25] जिस दिन राष्ट्रपति अभिभाषण करता है उसी दिन उसका सैनिक सचिव अभिभाषण की

---

24. अनुच्छेद 118; लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों का नियम 11; और राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों का नियम 10

25. राष्ट्रपति के अभिभाषण की प्रति को सभा पटल पर रखे जाने की प्रक्रिया 1952 में प्रथम बार अपनाई गई थी जब पहले साधारण निर्वाचन के बाद 16 मई, 1952 को राष्ट्रपति ने एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण किया। इससे पूर्व राष्ट्रपति द्वारा अंतरिम संसद में किया जाने वाला अभिभाषण या गवर्नर जनरल द्वारा केन्द्रीय विधान सभा या केन्द्रीय विधानमंडल के दोनों सदनों के समक्ष किया जाने वाला अभिभाषण वाद-विवाद में छापा जाता था और इसकी प्रतियां सभा पटल पर नहीं रखी जाती थीं।

सभा में 16 सितम्बर, 1936 को एक सदस्य द्वारा यह प्रश्न उठाया गया कि क्या गवर्नर जनरल द्वारा दिया गया अभिभाषण विधानमंडल की कार्यवाही का भाग है और यदि नहीं, तो इसे असेम्बली की डिबेट्स में क्यों छापा जाता है? अध्यक्ष अब्दुर रहीम ने स्थिति के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए यह बताया कि गवर्नर जनरल का अभिभाषण असेम्बली की कार्यवाही का भाग नहीं है क्योंकि यह निर्णय लिया जा चुका है कि जब गवर्नर जनरल असेम्बली की बैठक या संयुक्त बैठक में अपना अभिभाषण करता है तो उसे असेम्बली या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक नहीं माना जाएगा। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि असेम्बली के आरम्भ से ही

अधिप्रमाणित प्रति सचिवालय को दे देता है। कतिपय औपचारिक कार्यों जैसे विधेयक पुर:स्थापित करने, रिपोर्ट पेश करने और मंत्रियों द्वारा पत्रों को सभा पटल पर रखने, आदि के पूरा होने के बाद सभा सामान्यत: उस दिन के लिए स्थगित हो जाती है।[26]

परिपाटी यह है कि राष्ट्रपति-सचिवालय से राष्ट्रपति के अभिभाषण की जो मुद्रित प्रतियां मिलती हैं सभा पटल पर उनकी एक प्रति रखी जाने के बाद ही उन्हें सदस्यों और अन्य व्यक्तियों को वितरित किया जाता है। सभा की लॉबी में प्रत्येक सदस्य को एक अंग्रेजी और एक हिन्दी प्रति दी जाती है। जिन सदस्यों को लॉबी से ये प्रतियां नहीं मिल पातीं, उनसे अनुरोध किया जाता है कि वे प्रकाशन फलक से ये प्रतियां ले लें।[27]

अभिभाषण की अशुद्धियों को ठीक करने की प्रक्रिया : यदि राष्ट्रपति द्वारा अपनी अधिप्रमाणित प्रति में कतिपय शुद्धियां की जाती हैं तथा यदि ये शुद्धियां अन्य मुद्रित प्रतियों में न की गई हों, तो सचिवालय सदस्यों को ये प्रतियां बांटने से पहले शुद्धि-पत्र जारी कर देता है।[28]

यह प्रथा रही है कि गवर्नर जनरल के अभिभाषण को सदन की कार्यवाही में शामिल किया जाए ताकि सदस्यों को इस अभिभाषण की पूर्ण और प्रामाणिक रिपोर्ट उपलब्ध करवाई जा सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि जब तक सदन इस मुद्दे पर कोई उपयुक्त प्रस्ताव लाकर अपनी इच्छा व्यक्त नहीं करता, तब तक सुस्थापित प्रथा में किसी प्रकार के संशोधन की उनकी कोई मंशा नहीं है—

देखिए एल.ए. डिबेट्स, 16.9.1936, पृ. 1142-43।

26. तथापि, 18 मार्च, 1967 को राष्ट्रपति का अभिभाषण समाप्त होने के आधा घंटे बाद जब सदन की बैठक अपने कक्ष में हुई तो कतिपय सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया कि उनके द्वारा स्थगन प्रस्ताव और मंत्रिपरिषद् के प्रति अविश्वास प्रस्ताव के लिए दी गई सूचनाओं पर उसी दिन चर्चा करवाई जाए।

    चूंकि, सरकार को मंत्रिपरिषद् के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पर उसी दिन चर्चा करवाने में कोई आपत्ति नहीं थी, अत: अध्यक्ष ने प्रस्ताव पर चर्चा की अनुमति दे दी-*लो.स.वा.वि.,* 18.3.1967; पृ. 37-42 ।

    एक अन्य अवसर पर 23.1.1980 को राष्ट्रपति के अभिभाषण की प्रति के सभा पटल पर रखने के बाद अफगानिस्तान में तत्कालीन घटनाक्रम के संदर्भ में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दी जा रही हथियारों की सहायता से संबंधित ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर चर्चा की अनुमति दी गई थी- *लो.स.वा.वि,* 23.1.1980, पृ. 17-18 ।

27. राष्ट्रपति के अभिभाषण की प्रतियों के वितरण की व्यवस्था के बारे में सदस्यों को समाचार भाग-2 के माध्यम से सूचित किया जाता है।

28. 8 फरवरी, 1960 को राष्ट्रपति ने 11.00 बजे अपना अभिभाषण आरम्भ करने से एक घंटा पूर्व अपने द्वारा अधिप्रमाणित और सचिवालय में प्राप्त हुई अभिभाषण की हिन्दी और अंग्रेजी की मुद्रित प्रतियों में कतिपय शुद्धियां की थीं। सचिवालय द्वारा अभिभाषण की दोनों भाषाओं की प्रतियों का शुद्धिपत्र जारी किया गया और उसे अभिभाषण की प्रतियों के साथ सदस्यों को बांट दिया गया।

यदि राष्ट्रपति द्वारा अभिभाषण किये जाने और उसकी प्रति पटल पर रखे जाने के बाद किसी मंत्रालय को अभिभाषण में कोई त्रुटि दिखाई देती है तो उसमें सुधार की प्रक्रिया यह है कि सम्बन्धित मंत्रालय राष्ट्रपति का ध्यान उस ओर दिलाता है। जब राष्ट्रपति उस त्रुटि को सुधारने का अनुमोदन कर दे, तो राष्ट्रपति सभा को संदेश भेज सकता है जिसे सीधे अध्यक्ष को सम्बोधित किया जा सकता है या किसी मंत्री के माध्यम से उस तक पहुंचाया जा सकता है तथा जब उसकी घोषणा कर दी जाए और उसे सभा पटल पर रख दिया जाए तो उसे कार्यवाही वृत्तांत तथा सभा के आधिकारिक अभिलेख में शामिल कर लिया जाता है।[29]

---

29. वर्ष 1959 में राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण 9 फरवरी, 1959 को दिया था। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा 13 फरवरी, 1959 को शुरू हुई। इस धन्यवाद प्रस्ताव को सभा द्वारा 19 फरवरी को पारित कर दिया गया था और उसी दिन इसकी सूचना राष्ट्रपति को दे दी गई थी। संसदीय कार्य विभाग ने इस स्तर पर अभिभाषण में यह गलती पाई कि अभिभाषण के पैरा 35 में 'उनचास विधेयक' शब्दों के स्थान पर 'उनसठ विधेयक' शब्द प्रतिस्थापित किए जाने हैं और यह अनुरोध किया कि इसकी सूचना सदस्यों को या तो बुलेटिन के माध्यम से दी जाए या इस गलती को संसदीय वाद-विवाद में सुधार दिया जाए। संसदीय कार्य विभाग से अभिभाषण में उक्त शुद्धि करने के लिए उपर्युक्त प्रक्रिया अपनाने का अनुरोध किया गया था। तथापि, वहां से बाद में कोई भी सूचना प्राप्त नहीं हुई।

    1961 में सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय ने यह अनुरोध किया कि राष्ट्रपति के दिनांक 14 फरवरी, 1961 के अभिभाषण के पैरा 24 में अंतिम शब्द 'द्वारा' के स्थान पर 'को' प्रतिस्थापित किया जाए। उनसे भी अभिभाषण में शुद्धि हेतु निर्धारित प्रक्रिया अपनाने के लिए कहा गया था परन्तु इसके बाद उनसे अभी तक कोई भी सूचना नहीं मिली।

    एक अन्य मामले में 21 फरवरी, 1994 को राष्ट्रपति द्वारा दिए गए अभिभाषण के हिन्दी पाठ में एक वाक्य का उल्लेख न होने की सूचना निदेशक, राष्ट्रपति सचिवालय से प्राप्त हुई थी। जांच के बाद यह पता चला कि राष्ट्रपति ने अपना अभिभाषण देते समय हिन्दी के इस वाक्य को पढ़ा था तथा उपराष्ट्रपति ने अंग्रेजी के पाठ में भी संबंधित वाक्य को पढ़ा था। यह भी पाया गया कि सदस्यों को परिचालित इस अभिभाषण की अधिप्रमाणित अंग्रेजी प्रतियों में भी संबंधित वाक्य का उल्लेख था परन्तु हिन्दी पाठ की अधिप्रमाणित प्रति और सदस्यों को परिचालित प्रतियों में इसका उल्लेख नहीं था। अत: यह निर्णय लिया गया था कि हिन्दी की अधिप्रमाणित प्रति में आवश्यक शुद्धि कर दी जाए, इसके लिए शुद्धि पत्र जारी करने की आवश्यकता नहीं है।

    20 फरवरी, 1997 को सभाओं के समक्ष अभिभाषण शुरू होने के एक घंटे पूर्व राष्ट्रपति ने अधिप्रमाणित प्रतियां (हिन्दी और अंग्रेजी में) से एक वाक्य हटा दिया। शेष प्रतियों (अंग्रेजी और हिन्दी) को राष्ट्रपति सचिवालय तथा टेबल आफिस के कर्मचारियों द्वारा हाथ से ठीक कर दिया गया था।

अभिभाषण पर चर्चा

अभिभाषण पर चर्चा अभिभाषण किए जाने के कुछ दिनों बाद प्रारम्भ होती है और बीच के समय में अन्य सरकारी कार्य किया जाता है।[30]

मूल रूप में यथाअधिनियमित संविधान के तत्सम्बन्धी अनुच्छेद में यह व्यवस्था थी कि प्रत्येक सदन की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों द्वारा राष्ट्रपति के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिए समय नियत करने के लिए तथा सदन के अन्य कार्य की अपेक्षा ऐसी चर्चा की पूर्ववर्तिता के लिए उपबन्ध किया जाए।[31]

> तद्नुसार, 1950 में अंतरिम संसद के तीन सत्रों में अभिभाषण पर चर्चा राष्ट्रपति द्वारा अभिभाषण करने के अगले दिन प्रारम्भ हुई। तथापि, यह महसूस किया गया कि अभिभाषण हो चुकने के तत्काल बाद इस पर चर्चा की जाए तो सदस्यों को इसका अध्ययन करने, चर्चा की तैयारी करने और संशोधनों की सूचना देने का पर्याप्त समय नहीं मिलता। इसलिए "सदन के अन्य कार्य की अपेक्षा ऐसी चर्चा की पूर्ववर्तिता" शब्दों का, संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951 के द्वारा लोप कर दिया गया।[32]

अध्यक्ष सदन के नेता के परामर्श से, राष्ट्रपति के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों पर चर्चा के लिए समय नियत करता है।[33] इस प्रयोजन के लिए, राष्ट्रपति के अभिभाषण से लगभग एक सप्ताह पहले संसदीय कार्य मंत्री (या सदन का नेता यदि प्रधान मंत्री सदन के नेता न हों) अभिभाषण पर चर्चा के लिए तिथियों के अस्थायी कार्यक्रम का सुझाव देता है। अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत होने पर यह कार्यक्रम सदस्यों की जानकारी के लिए बुलेटिन में प्रकाशित कर दिया जाता है। तथापि, अभिभाषण पर चर्चा के लिए समय, सभा द्वारा राष्ट्रपति के अभिभाषण के बाद, कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर नियत किया जाता है। सामान्यत: इस चर्चा के लिए तीन दिन रखे जाते हैं।

चर्चा एक सदस्य द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव पेश किये जाने और एक अन्य सदस्य द्वारा उसका अनुमोदन किये जाने पर होती है।[34]

---

30. भारत शासन अधिनियम, 1919 या भारत शासन अधिनियम, 1935 में केन्द्रीय विधानमंडल में गवर्नर जनरल द्वारा किए गए अभिभाषण पर चर्चा करने संबंधी कोई उपबंध नहीं था। अत: केन्द्रीय विधान सभा में इस अभिभाषण पर कभी भी कोई चर्चा नहीं हुई।
31. अनुच्छेद 87 (2), मूल रूप में यथाअधिनियमित।
32. इस सम्बन्ध में प्रधान मंत्री के विचारों के लिए *देखें,* प्रवर समिति द्वारा यथाप्रतिवेदित संविधान (पहला संशोधन) विधेयक, 1951 की धारा 7 पर उनका उत्तर—*एल.एस. डिबेट्स* (II) 2.6.1951, कॉ. 9949 ।
33. अनुच्छेद 87 (2) और नियम 16 ।

    अनुच्छेद 87 से भिन्न, संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि अनुच्छेद 86 (1) के अन्तर्गत राष्ट्रपति के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों पर चर्चा के लिए समय नियत किया जाए, यद्यपि नियमों के अन्तर्गत अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है— *देखिए* नियम 22 ।
34. नियम 17 ।

सुस्थापित प्रथा के अनुसार इस प्रस्तावक तथा अनुमोदक का चयन प्रधान मंत्री द्वारा किया जाता है और वे सदैव सत्तारूढ़ दल के सदस्य होते हैं।[35] प्रस्ताव, जिसकी सूचना एक सदस्य देता है और दूसरा उसका अनुमोदन करता है, संसदीय कार्य मंत्री द्वारा तथा सदन के नेता (यदि प्रधान मंत्री सदन का नेता न हो) के माध्यम से प्राप्त होता है और अध्यक्ष द्वारा इसे स्वीकार कर लिए जाने पर वह प्रस्ताव बुलेटिन तथा कार्य-सूची में प्रकाशित कर दिया जाता है।

अभिभाषण पर चर्चा के लिए नियत दिनों में सदन उसमें निर्दिष्ट विषयों पर चर्चा कर सकता है।[36] इस चर्चा का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और सम्पूर्ण प्रशासन पर चर्चा हो सकती है। धन्यवाद प्रस्ताव पर संशोधनों के माध्यम से ऐसे विषय भी उठाए जाते हैं जिनका अभिभाषण में विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं होता। एक सीमा केवल यह है कि सदस्य उन विषयों की चर्चा नहीं कर सकते जो भारत सरकार की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी नहीं है।[37] तथा राष्ट्रपति का नाम वाद-विवाद में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि अभिभाषण की विषय वस्तु की जिम्मेदारी सरकार की है, न कि राष्ट्रपति की।[38]

धन्यवाद प्रस्ताव में संशोधन

राष्ट्रपति द्वारा अभिभाषण किए जाने के पश्चात्, परंतु उसकी प्रति सभा पटल पर रखे जाने से पूर्व, धन्यवाद प्रस्ताव पर प्राप्त संशोधनों की सूचनाएं वैध मानी जाती हैं। तथापि, धन्यवाद प्रस्ताव की सूचना सचिवालय को प्राप्त होने के पश्चात् संशोधन की सूचियां सदस्यों को परिचालित कर दी जाती हैं।

सदस्य धन्यवाद प्रस्ताव में निर्दिष्ट विषयों के बारे में तथा उन विषयों के बारे में संशोधन सभा पटल पर रखते हैं जिनका उनके विचार से अभिभाषण में उल्लेख नहीं किया गया है।[39] संशोधन उस रूप में पेश किए जाते हैं जैसा अध्यक्ष उचित समझे।[40] सदस्यों द्वारा जिन संशोधनों की सूचना दी जाती है, उनकी जांच सचिवालय में की जाती है और उनमें से जो

35. तथापि ऐसे अवसर आए हैं जब राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव का अनुमोदन सत्ताधारी गठबंधन सरकार अथवा सरकार को समर्थन दे रहे दल के सदस्य द्वारा किया गया। *देखें एल.एस. डिबेट्स* 16.3.2000, कॉ. 305, 7.3.2001, कॉ. 410, 15.3.2002, कॉ. 338 और 24.2.2003, कॉ. 290 ।
36. नियम 17, तथापि सदन के मतैक्य से दी गई सहमति से, किसी विषय पर अलग प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा उठाई जा सकती है, चाहे उसका उल्लेख राष्ट्रपति के अभिभाषण में भी किया गया हो– *देखिए लो.स.वा.वि.*, 11.2.1964, पृ. 79 ।
37. *लो.स.वा.वि.*, 16.5.1957, पृ. 313 ।
38. *एल.एस. डिबेट्स*, 22.2.1960, कॉ. 2105 ।
39. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 19.5.1952, का. 87-88 ।
40. नियम 18 ।

प्रत्यक्षतः नियमानुकूल हों वे सदस्यों में परिचालित किए जाते हैं। जो संशोधन संविधान के उपबन्धों से मेल न खाते हों या जिन में किसी अन्य मित्र देश की सरकार या राज्य के अध्यक्ष के प्रति अशिष्टता बरती गयी हो अथवा राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के आचार पर टिप्पणी की गयी हो, अथवा अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन मामलों से संबंधित हों तो उन्हें अस्वीकार कर दिया जाता है।[41] यदि उसी सत्र में अभिभाषण में निर्दिष्ट विशेष विषयों पर चर्चा के लिए समय नियत किया गया हो तो उन विषयों के सम्बन्ध में भी संशोधन अस्वीकार कर दिये जाते हैं।[42] धन्यवाद प्रस्ताव के स्वयं एक मूल प्रस्ताव होने के कारण इसका स्थानापन्न प्रस्ताव अननुमेय है। किसी प्रस्ताव पर चर्चा का आरम्भ उस प्रस्ताव का प्रस्तावक करता है और उसके बाद उसके अनुमोदक को बोलने का अवसर मिलता है। अनुमोदक का भाषण समाप्त होने के बाद अध्यक्ष द्वारा इस आशय की घोषणा की जाती है कि धन्यवाद प्रस्ताव में जिन सदस्यों के संशोधन परिचालित हो चुके हों, ये यदि अपने संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हों, तो उन संशोधनों के क्रमांक जिन्हें वे प्रस्तुत करना चाहते हों, दर्शाते हुए 15 मिनटों के भीतर सभा पटल पर पर्चियां भेज दें। केवल वही संशोधन, जिनके संबंध में पर्चियां निर्धारित समय में प्राप्त होती हैं, प्रस्तुत किये गए माने जाते हैं।

तत्पश्चात् शीघ्र ही सदस्यों द्वारा प्रस्तुत संशोधनों का क्रमांक दर्शाते हुए एक सूची सूचना पट्ट पर लगा दी जाती है ताकि यदि किसी सदस्य को इस सूची में कोई गलती दिखाई दे, तो अविलम्ब इस बात की ओर सभा पटल पर आसीन अधिकारी का ध्यान दिलाया जा सके। इस स्थिति में भी, अध्यक्ष को यह विवेकाधिकार है कि वह किसी संशोधन को नियम के विरुद्ध ठहरा दे, भले ही वह संशोधन सदस्यों को परिचालित किया जा चुका हो। जो सदस्य इस समय अपने संशोधन नहीं रखते उन्हें चर्चा प्रारम्भ होने पर अपने संशोधन रखने की अनुमति नहीं दी जाती।[43] तथापि, कुछेक मामलों में, यदि अध्यक्ष उपयुक्त समय पर संशोधन न रखे जाने के किसी सदस्य द्वारा बताये गए कारण से संतुष्ट हो तो वह उस सदस्य को अपना संशोधन बाद में रखने की अनुमति दे सकते हैं।[44]

सामान्यतया, जिस संशोधन की सूचना अनेक सदस्यों द्वारा दी गई हो, उसे उन सूचनाओं को प्राप्त होने की तारीख और समय के अनुसार ऐसे सभी सदस्यों के नाम शामिल करते हुए संशोधनों की सूची में मुद्रित किया जाता है तथापि, एक जैसे संशोधन प्रस्तुत करना नियमानुसार नहीं है।

यदि एक जैसे संशोधन अलग-अलग सूचियों में मुद्रित हो जाते हैं, तो संशोधन को केवल उसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया गया माना जाएगा जिसका नाम संशोधनों की मुद्रित सूची में सबसे पहले

---

41. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 17.2.1954, कॉ. 386 और *एल.एस. डिबेट्स* (II), 20.3.1957, कॉ. 112 ।
42. *पी. डिबेट्स* (II), 1.8.1950, कॉ. 32-33 ।
43. *पी. डिबेट्स* (II), 1.2.1950, पृ. 41; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 19.5.1952, कॉ. 88-89 और *एल.एस. डिबेट्स,* 19.2.1959, कॉ. 1960-61 ।
44. *लो.स.वा.वि,* 15.5.1957, पृ. 182; 21.2.1966, पृ. 3191; और 28.2.1979, पृ. 209 ।

आया हो और यदि उस सदस्य ने संशोधन प्रस्तुत करने के अपने अभिप्राय की सूचना दे दी हो भले ही अन्य सदस्यों ने भी वैसे संशोधनों को प्रस्तुत करने के अपने अभिप्राय की सूचना दे दी हो।[45]

अध्यक्ष, यदि उचित समझे, तो सभा की सलाह से भाषणों के लिए एक समय-सीमा भी निर्धारित कर सकते हैं।[46] इस प्रयोजन हेतु चर्चा के पहले दिन अध्यक्ष एक घोषणा करके समय-सीमा निर्धारित करते हैं जो साधारणत: ग्रुपों के नेताओं के भाषण के लिए 30 मिनट और अन्य सदस्यों के भाषण के लिए 15 मिनट से अधिक नहीं होती।[47] तथापि, प्रधान मंत्री को, जब वह सरकार की ओर से वाद-विवाद का उत्तर दे रहे होते हैं, अधिक समय दिया जाता है।

सामान्यतया सभा की बैठक में अभिभाषण पर चर्चा के दौरान किसी अन्य विषय पर विचार करके बाधा नहीं डाली जाती। जिन दिनों सभा अभिभाषण पर चर्चा प्रारम्भ करती है या जारी रखती है उन दिनों चर्चा प्रारम्भ होने से पहले केवल औपचारिक स्वरूप का ही कार्य किया जा सकता है।[48] तथापि, अभिभाषण की चर्चा में किसी स्थगन प्रस्ताव को लाया जा सकता है और वह भी तब, जबकि सभा ने ऐसे प्रस्ताव को पेश करने की अनुमति दे दी हो[49] या अभिभाषण पर चर्चा को उस स्थिति में स्थगित किया जा सकता है जब यह प्रस्ताव किया जाए कि अभिभाषण की चर्चा छोड़ कर पहले किसी सरकारी विधेयक या किसी अन्य सरकारी कार्य को लिया जाए।[50]

---

45. निदेश 42 ।
46. नियम 21 ।
47. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.2.1961, कॉ. 871 ।
48. नियम 19(1)(ख) ।
49. नियम 19(3)।
50. नियम 19(2)।
    (i) एक अवसर पर अभिभाषण पर चर्चा, बिना किसी औपचारिक प्रस्ताव के कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई थी जिससे कि एक सरकारी विधेयक पर चर्चा हो सके— *देखिए लो.स.वा.वि.* (II), 2.2.1956 और 21.2.1956 ।
    (ii) 21 मार्च, 1967 को रेल बजट और सामान्य बजट पर चर्चा के लिए, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा को स्थगित कर दिया गया था। *देखिए लो.स.वा.वि.,* 21.3.1967, पृ. 207; 27.3.1967, पृ. 326; 28.3.1967, पृ. 432-33 और 29.3.1967, पृ. 579-81 ।
    (iii) 1995 में, राष्ट्रपति ने संसद के दोनों सदनों में 13 फरवरी को अभिभाषण किया। अत्यावश्यक वित्तीय और विधायी कार्यों के कारण राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव चर्चा के लिए 25 अप्रैल, 1995 को लिया जा सका था।

अन्त में, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर हुए वाद-विवाद का उत्तर सामान्यतया प्रधानमंत्री देते हैं।[51] लेकिन यदि कोई और मंत्री वाद-विवाद का उत्तर दे देता है तो यह भी नियमानुसार है।[52] तथापि, कई अवसरों पर मंत्रियों ने वाद-विवाद में भाग लिया है या अपने मंत्रालयों से सम्बन्धित विषयों का उत्तर दिया है और प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विषय सम्बन्धी स्थिति की समीक्षा की है।[53]

प्रधानमंत्री द्वारा वाद-विवाद का उत्तर देने के बाद पेश किए गए संशोधनों को निपटाया जाता है और धन्यवाद प्रस्ताव सभा के सामने मतदान के लिए रखा जाता है। यदि चर्चा पर अपने उत्तर के दौरान प्रधानमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद के त्यागपत्र देने के निर्णय की घोषणा कर देता है तो धन्यवाद प्रस्ताव निष्फल घोषित कर दिया जाता है और आगे की कार्यवाही रोक दी जाती है।[54]

प्रस्ताव पारित होने पर अध्यक्ष सीधे एक पत्र के माध्यम से उसे राष्ट्रपति को भेज देते हैं।[55] राष्ट्रपति भी अध्यक्ष को संदेश भेज कर प्रस्ताव मिलने की सूचना देते हैं। संदेश मिलने पर अध्यक्ष उसे सभा में पढ़कर सुना देते हैं।[56]

सदन को संदेश तथा संसूचनाएं

संविधान में यह उपबंध है कि राष्ट्रपति, संसद में उस समय लंबित किसी विधेयक के संबंध में संदेश या कोई अन्य संदेश, संसद के किसी सदन को भेज सकेगा और जिस सदन

---

51. एक अवसर पर गृह मंत्री ने वाद-विवाद का उत्तर दिया, जबकि प्रधानमंत्री पहले बोल चुके थे। *देखिए लो.स.वा.वि.,* 16.2.1957 और 17.5.1957 ।
52. नियम 20 और *लो.स.वा.वि.,* 19.2.1964, पृ. 613 ।
53. *पी. डिबेट्स* (II), 1.8.1950, कॉ. 96-106; 2.8.1950, कॉ. 111-312; 17.11.1950, कॉ. 194-262; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 20.5.1952, कॉ. 206-14; 21.5.1952, कॉ. 238-48 और 307-13; 22.5.1952, कॉ. 376-97; 22.2.1954, कॉ. 410-39 और 449-54, *लो.स.वा.वि.* (II), 25.2.1955, पृ. 338-59 और 22.2.1956, पृ. 284-91 ।
54. संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों में 21 फरवरी, 1991 को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव की चर्चा का समापन करते हुए 6 मार्च, 1991 को प्रधानमंत्री ने यह सूचित किया कि मंत्रिपरिषद् ने त्यागपत्र देने का निर्णय लिया है और वह इस निर्णय को संप्रेषित करने के लिए तत्काल राष्ट्रपति से मिलने जा रहे हैं।

    इस पर अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की कि मंत्रिपरिषद् के त्यागपत्र देने के निर्णय को देखते हुए राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव निष्फल हो गया– *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 6.3.1991, पृ. 365-66 ।
55. 3 मार्च, 1987 को जब लोक सभा अध्यक्ष विदेश में थे, उपाध्यक्ष ने सदन द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव पारित होने की सूचना राष्ट्रपति को, 'कृते अध्यक्ष' के रूप में हस्ताक्षरित एक पत्र द्वारा दी थी।
56. नियम 246-साथ ही *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 4.5.1962, कॉ. 2612; *लो.स.वा.वि.,* 25.3. 1986, पृ. 237-38; 10.3.1987, पृ. 291 ।

को कोई संदेश इस प्रकार भेजा गया है वह सदन उस संदेश द्वारा विचार करने के लिए अपेक्षित विषय पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करेगा।[57]

नियमों में यह उपबन्ध है कि जब राष्ट्रपति से ऐसा कोई संदेश प्राप्त हो तो अध्यक्ष वह संदेश सभा में पढ़कर सुनायेगा और उन विषयों पर विचार की प्रक्रिया के संबंध में आवश्यक निर्देश देगा जिनका उल्लेख संदेश में किया गया हो। अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह ऐसे निर्देश देते समय नियमों को निलम्बित कर सकता है या उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकता है।[58]

राष्ट्रपति धन विधेयक से भिन्न किसी विधेयक अथवा संविधान में संशोधन करने वाले किसी विधेयक, जो एक सदन द्वारा पारित किए जाने और दूसरे सदन को पारेषित किए जाने के पश्चात् दूसरे सदन द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है;[59] या विधेयक में किए जाने वाले संशोधनों के बारे में दोनों सदन अंतिम रूप से असहमत हो गए हैं; या दूसरे सदन को विधेयक प्राप्त होने की तारीख से उसके द्वारा विधेयक पारित किए बिना छह मास से अधिक बीत गए हैं; पर विचार-विमर्श करने और मत देने के प्रयोजन के लिए दोनों सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना भी देगा।[60]

---

57. अनुच्छेद 86(2)। यह प्रावधान भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 20 (2) के सदृश है। तथापि, संविधान के लागू होने से लेकर अभी तक राष्ट्रपति ने इस उपबंध के अधीन कोई संदेश नहीं भेजा है।

58. नियम 23 ।

59. अनुच्छेद 108 (1) (क)। 22 मार्च 2002 को राष्ट्रपति ने एक संदेश भेजा जिसमें उन्होंने आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 पर विचार-विमर्श करने और मत देने के प्रयोजन के लिए सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दी जिसे 18 मार्च 2002 को लोक सभा में पारित कर दिया गया था और 21 मार्च, 2002 को राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था क्योंकि इस विधेयक पर विचार किए जाने का प्रस्ताव राज्य सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था। अन्त में 26 मार्च, 2002 को आयोजित संयुक्त बैठक में विधेयक पारित कर दिया गया और 28 मार्च, 2002 को इसे राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान कर दी गयी।

60. अनुच्छेद 108 (1)(ख)1 18 अप्रैल, 1961 को राष्ट्रपति ने इस अनुच्छेद के अधीन सन्देश भेजा जिसमें उन्होंने दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959 पर विचार-विमर्श करने और मत देने के प्रयोजन के लिए सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दी। इस विधेयक में संशोधन करने के संबंध में दोनों सदनों में अंतिम रूप से असहमति हो गयी थी। इसी प्रकार राष्ट्रपति ने 8 मई, 1978 को संदेश भेजा जो 10 मई, 1978 को मिला। इसमें उसने बैंक सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 पर विचार-विमर्श करने और मत देने के प्रयोजन के लिए सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने आशय की सूचना दी। इस विधेयक पर दोनों सदन अंतिम रूप से असहमत हो गए थे। *देखिए* अध्याय 4-'सदनों के बीच संबंध'।

राष्ट्रपति को यह शक्ति भी प्राप्त है कि वह संसद के सदनों द्वारा पारित विधेयक, यदि वह धन विधेयक या संविधान संशोधन विधेयक नहीं है, अनुमति के लिए अपने समक्ष विधेयक प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उस विधेयक को, सदनों को इस संदेश के साथ लौटा सकेगा[61] कि वे विधेयक पर या उसके किसी विनिर्दिष्ट उपबंधों पर पुनर्विचार करें और विशिष्टतया किन्हीं ऐसे संशोधनों के पुरःस्थापन की वांछनीयता पर विचार करें जिनकी उसने अपने संदेश में सिफारिश की है।[62] जब विधेयक इस प्रकार लौटा दिया जाता है तब सदन विधेयक पर तदनुसार पुनर्विचार करेंगे और यदि विधेयक सदनों द्वारा संशोधन सहित या उसके बिना फिर से पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अनुमति नहीं रोक सकता।

राष्ट्रपति तथा सभा के बीच संसूचना

राष्ट्रपति से सभा को संसूचना राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित लिखित संदेश द्वारा अध्यक्ष को दी जाती है, या यदि राष्ट्रपति सभा की बैठक के स्थान से अनुपस्थित हो तो उसका संदेश मंत्री के माध्यम से अध्यक्ष को भेजा जाता है।[63]

---

61. अनुच्छेद 111 और 368 ।

62. अभी तक राष्ट्रपति ने संसद के पुनर्विचार के संदेश के सहित कुल दो विधेयक वापस भेजे हैं। भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986, राज्य सभा सचिवालय ने 19 दिसम्बर, 1986 को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत कर दिया था। राष्ट्रपति ने इस विधेयक को राज्य सभा को 7 जनवरी, 1990 को इस संदेश के साथ वापस कर दिया कि संसद इस विधेयक पर विशिष्ट रूप से खण्ड 16 पर पुनः विचार करे। राष्ट्रपति के संदेश के संदर्भ में राज्य सभा ने 12 वर्षों से भी अधिक समय तक इस विधेयक पर कोई विचार नहीं किया। 13 मार्च, 2002 को राज्य सभा ने लोक सभा से यह सिफारिश करने का प्रस्ताव पारित किया कि लोक सभा राज्य सभा को यह विधेयक वापस लेने की अनुमति करने पर सहमति प्रदान करे। 16 मार्च, 2002 को लोक सभा इस प्रस्ताव से सहमत हुई। अंत में राज्य सभा द्वारा 21 मार्च, 2002 को यह विधेयक वापस ले लिया गया।

    दोनों सभाओं द्वारा यथापारित संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 2006 24 मई, 2006 को राज्य सभा सचिवालय द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किया गया। राष्ट्रपति ने 30 मई, 2006 को अपनी टिप्पणियों के संदेश सहित विधेयक पर पुनः विचार के लिए सभाओं को वापस कर दिया। विधेयक पर पुनः विचार किया गया और राज्य सभा द्वारा इसे 27 जुलाई, 2006 को पुनः पारित कर दिया गया। राज्य सभा द्वारा पुनः यथापारित विधेयक 28 जुलाई, 2006 को लोक सभा के पटल पर रखा गया और इसे लोक सभा द्वारा 31 जुलाई, 2006 को पारित कर दिया गया। विधेयक पर राष्ट्रपति द्वारा 18 अगस्त, 2006 को अनुमति दे दी गई।

63. नियम 246—दो अलग-अलग अवसरों पर राष्ट्रपति ने अध्यक्ष को संबोधित करके अपने हस्ताक्षर से (i) दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959; और (ii) बैंक सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977 पर विचार-विमर्श करने और मतदान करने के लिए संसद के दोनों सदनों की

राष्ट्रपति से जो संदेश प्राप्त होते हैं उन्हें अध्यक्ष सभा में पढ़कर सुना देते हैं।[64]

सभा से राष्ट्रपति को संसूचना दी जाती है:

(i) सभा में प्रस्ताव किए जाने और स्वीकृत हो जाने के बाद औपचारिक समावेदन द्वारा; और

(ii) अध्यक्ष के माध्यम से।[65]

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के अतिरिक्त अभी तक कोई संसूचना सभा से राष्ट्रपति को नहीं भेजी गई।

संयुक्त बैठक बुलाने संबंधी अपने आशय की सूचना अध्यक्ष को संसदीय कार्य मंत्री के माध्यम से भेजी थी। यह संदेश अध्यक्ष द्वारा सभा को पढ़कर सुनाया गया था। *लो.स.वा.वि,* 19.4.1961, पृ. 5692; और 10.5.1978, पृ. 155 । तथापि, प्रतिवर्ष धन्यवाद प्रस्ताव के पारित होने का जो संदेश राष्ट्रपति को भेजा जाता है राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर से भेजी जाने वाली उसकी अभिस्वीकृति, अध्यक्ष स्वयं प्राप्त करके उसकी सूचना सदन को देता है।

64. *लो.स.वा.वि.,* 19.4.1961, पृ. 5622 ।

केन्द्रीय विधान सभा में 1935 तक जब भी गवर्नर-जनरल से प्राप्त कोई संदेश पढ़ा जाता था, उसे सुनते समय सदस्य खड़े रहते थे (*एल.ए. डिबेट्स* 5.2.1934, पृ. 480; 8.2.1934, पृ. 655 और 5.2.1935, पृ. 408) लोक सभा में 1960 में इस प्रथा को फिर पुनर्जीवित किया गया जब राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव की प्राप्ति के संदेश को सदस्यों ने खड़े होकर सुना। लेकिन 1962 की इस प्रथा को फिर तिलांजलि दे दी गई, क्योंकि उससे पिछले वर्ष कतिपय सदस्यों ने इस पर आपत्ति की थी।

65. नियम 247—यह नियम केन्द्रीय विधान सभा के स्थायी आदेश 74 जैसा है।

अध्याय 11

सदनों, उनकी समितियों और सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां

संसदीय भाषा में विशेषाधिकार शब्द सामूहिक रूप से संसद के प्रत्येक सदन और उनकी समितियों तथा व्यक्तिगत रूप से दोनों सदनों के प्रत्येक सदस्य के कुछ अधिकारों और उन्मुक्तियों के लिए प्रयुक्त होता है। संसदीय विशेषाधिकारों का उद्‌देश्य संसद की स्वतंत्रता, प्राधिकार और गरिमा की रक्षा करना है। संविधान के अन्तर्गत संसद को जो कृत्य सौंपे गए हैं उनके समुचित रूप से निर्वहन के लिए विशेषाधिकार आवश्यक हैं। ये विशेषाधिकार सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त हैं क्योंकि सभा अपने सदस्यों की सेवाओं का अबाध प्रयोग किए बिना अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकती, और इसी प्रकार ये विशेषाधिकार प्रत्येक सभा को सामूहिक रूप से अपने सदस्यों के संरक्षण और अपने प्राधिकार तथा गरिमा बनाए रखने के लिए प्राप्त हैं।[1]

आज के युग में संसद के विशेषाधिकार को उस दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण से देखना होगा जिस दृष्टिकोण से इसे कार्यपालिका के प्राधिकार के विरुद्ध संसद के संघर्ष के दौरान के दिनों में देखा जाता था। उन दिनों विशेषाधिकार के बारे में यह धारणा थी कि ये विशेषाधिकार उस कार्यपालक प्राधिकारी से संसद सदस्यों का संरक्षण है जो संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं था। अब संसद के विशेषाधिकारों की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि ही बदल गयी है क्योंकि कार्यपालिका अब संसद के प्रति उत्तरदायी है। इन विशेषाधिकारों का आधार यह है कि सभा तथा उसके सदस्यों की गरिमा तथा स्वतंत्रता की रक्षा की जाये।[2]

इसलिए, इन विशेषाधिकारों का निर्वचन करते समय इस सामान्य सिद्धांत का ध्यान रखना पड़ता है कि संसद के विशेषाधिकार सदस्यों को इसलिए दिए जाते हैं कि वे "संसद में बिना किसी बाधा या रोक के अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकें"।[3] वे सदस्यों को भी उसी हद तक उपलब्ध हैं जिस हद तक कि "सभा द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए उनका होना आवश्यक है। उनके कारण सदस्य समाज के प्रति अपने दायित्वों से मुक्त नहीं हो जाता, बल्कि संसद सदस्य होने के नाते अन्य राष्ट्रजनों की तुलना में उनके ये दायित्व

---

1. एम.एन. कौल, *कोडीफिकेशन ऑफ द लॉ ऑन प्रिविलेज* (अगस्त, 1950 में पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में परिचालित टिप्पणी)।
2. *रिपोर्ट ऑफ कमेटी ऑफ स्पीकर्स,* 1956, पृ. 9, पैरा 16 ।
3. *कैप्टन रैम्से के मामले में विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन*—एच.सी. 164 (1939-40), पृ. VI, पैरा 19 ।

और भी अधिक बढ़ जाते हैं।"[4] संसद के विशेषाधिकारों के कारण संसद सदस्य, कानूनों के लागू होने की दृष्टि से अन्य नागरिकों की अपेक्षा अलग स्थिति में नहीं हो सकता सिवाए उस दशा में जबकि संसद के हित में उसे उनसे छूट देने के ठोस और समुचित कारण हों।[5]

आधारभूत सिद्धांत यह है कि सभी नागरिक, जिनमें संसद सदस्य भी आते हैं, विधि की दृष्टि में बराबर हैं। विधि के लागू होने के विषय में कोई संसद सदस्य, जब तक कि संविधान या किसी विधि में स्पष्ट रूप से इसकी व्यवस्था न की गयी हो, सामान्य नागरिक की अपेक्षा अधिक विशेषाधिकारों की मांग नहीं कर सकता।[6]

जब कोई व्यक्ति या कोई प्राधिकरण, व्यक्तिगत रूप से सदस्यों या सामूहिक रूप से सभा या इसकी समितियों के किसी विशेषाधिकार, अधिकार या उन्मुक्ति की अवहेलना करता है या उसका हनन करता है तो उस अपराध को विशेषाधिकार भंग की संज्ञा दी जाती है और उसके लिए सभा दण्ड दे सकती है। इसके अतिरिक्त, सभा के प्राधिकार या उसकी गरिमा के सन्दर्भ में अपराध कहे जा सकने वाले यथा सभा के वैध आदेशों की अवज्ञा या उसकी या उसके सदस्यों या अधिकारियों की मानहानि जैसे कार्यों के लिए भी सभा दण्ड दे सकती है यद्यपि इन कार्यों से कोई विशिष्ट विशेषाधिकार भंग नहीं होता है। ऐसे कार्यों को यद्यपि प्राय: 'विशेषाधिकार भंग' कह दिया जाता है, लेकिन उनके लिए उचित संज्ञा 'अवमानना' है।[7]

प्रत्येक सदन स्वयं अपने विशेषाधिकारों का रक्षक है; न केवल यह किसी ऐसे विषय का एकमात्र निर्णायक है जो किसी प्रकार विशेषाधिकार का भंग करता हो बल्कि यदि वह उचित समझे तो किसी भी ऐसे व्यक्ति को कारावास का दंड दे सकता है या उसकी भर्त्सना कर सकता है, जिसे वह अवमानना का दोषी समझता हो। सभा का दंड देने का क्षेत्राधिकार केवल उसके अपने सदस्यों का या उसके सामने किए अपराधों तक ही सीमित नहीं है बल्कि सभा की हर प्रकार की अवमानना पर लागू होता है उसके दोषी चाहे सभा के सदस्य हों या वे लोग जो सदस्य नहीं हैं, और चाहे वह अपराध सभा में हुआ हो या सभा के बाहर।

सभा की किसी ऐसे व्यक्ति को दंड देने की शक्ति, जो सभा की अवमानना करे या उसके किसी विशेषाधिकार को भंग करे, सबसे महत्वपूर्ण विशेषाधिकार है। इसी शक्ति के कारण संसद के विशेषाधिकार वास्तविक बनते हैं और इसी के कारण सभा के अधिकारों के संरक्षण और उसकी गरिमा बनाए रखने के सम्बन्ध में संसद की प्रभुसत्ता को बल मिलता है।[8]

---

4. *लीविस के मामले में विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन*—एच.सी. 244 (1951), पृ. IX, पैरा 22 ।
5. *रिपोर्ट ऑफ कमेटी ऑफ स्पीकर्स,* 1956, पृ. 9, पैरा 18 ।
6. *देशपांडे के मामले में विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन*–पहली लोक सभा, पैरा 17 ।
7. अधिक जानकारी के लिए *देखिए*, आगे इसी अध्याय का उप-शीर्षक 'विशेषाधिकार भंग और सभा की अवमानना से संबंधित विशिष्ट मामले'।
8. कौल, *उद्धृत कृति* ।

विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने का प्रश्न

संसद के सदनों तथा उनके सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां भारत के संविधान के अनुच्छेद 105 में दी गयी हैं। इस अनुच्छेद में संसद में वाक्स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार और सदस्यों को संसद या उसकी किसी समिति में "उनके द्वारा कही गयी किसी बात या दिए गए किसी मत के सम्बन्ध में किसी न्यायालय की कार्यवाही" से उन्मुक्ति का उपबन्ध विशिष्ट रूप से किया गया है। इस अनुच्छेद में यह भी उपबन्ध किया गया है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध "संसद के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के सम्बन्ध में किसी न्यायालय द्वारा कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।" तथापि अन्य बातों में इस अनुच्छेद के मूल रूप से यथा अधिनियमित खंड (3) में उपबन्ध किया गया था कि "संसद के प्रत्येक सदन की तथा प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी जैसी संसद, समय-समय पर विधि द्वारा परिभाषित करे तथा जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं तब तक वे ही होंगी जो इस संविधान के प्रारंभ अर्थात् 26 जनवरी, 1950 को ब्रिटेन की पार्लियामेंट के हाउस ऑफ कामन्स, तथा उसके सदस्यों और समितियों की है"।[9]

अनुच्छेद 105(3) को संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 के द्वारा संशोधित किया गया था।[10] 20 जून, 1979 से प्रवृत्त संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 15 में प्रावधान है कि अन्य बातों में संसद के प्रत्येक सदन की और प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी जो संसद, समय-समय पर, विधि द्वारा, परिनिश्चित करे और जब तक वे इस प्रकार परिनिश्चित नहीं की जाती हैं तब तक वे वही होंगी जो संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 15 के प्रवृत्त होने से ठीक पहले उस सदन की और उसके सदस्यों और समितियों की थीं। 20 जून, 1979 को संसद को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे उन्हें अब सन्दर्भ अवधि के रूप में विर्निदिष्ट किया गया है और हाउस ऑफ कामन्स का विशेष उल्लेख

---

9. अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर तथा डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की टिप्पणियों के लिए *देखिए सं.स.वा.वि.,* खंड VIII, 19.5.1949, पृ. 253-54; 3.6.1949, खंड VIII, पृ. 890-92 । साथ ही *देखिए सं.स.वा.वि.,* 16.10.1949, खंड X, पृ. 3315-18 ।

10. इसी प्रकार, राज्यों के विधानमंडलों के सदनों की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियों से संबंधित अनुच्छेद 194 (3) में संशोधन किया गया है। [संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 26 के द्वारा] ताकि राज्य के विधानमंडल के किसी सदन की और ऐसे विधानमंडल के किसी सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी जो वह विधानमंडल समय-समय पर, विधि द्वारा परिनिश्चित करे और जब तक वे इस प्रकार परिनिश्चित नहीं की जाती हैं तब तक वहीं होंगी जो संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 26 के प्रवृत्त होने से ठीक पहले उस सदन की और उसके सदस्यों और समितियों की थीं।

हटा दिया गया है। इस संशोधन का उद्देश्य, जैसा कि तत्कालीन विधि मंत्री ने संविधान (संशोधन) विधेयक की चर्चा का उत्तर देते हुए कहा था 'भारत जैसा स्वाभिमानी देश अपने संवैधानिक दस्तावेज में विदेशी संस्था का उल्लेख करने से बचना चाहेगा।' तथापि, अनुच्छेद 105(3) और 194(3) में किए गए संशोधन शाब्दिक स्वरूप के थे और बुनियादी तौर पर स्थिति 26 जनवरी, 1950 जैसी ही है।

अभी तक संसद ने प्रत्येक सदन, उसके सदस्यों तथा समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियों की परिभाषा करने के लिए कोई व्यापक कानून[11] नहीं बनाया। ऐसे किसी कानून के अभाव में सभा और उसके सदस्यों तथा समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां वास्तविक व्यवहार में वही हैं जो कि संविधान के प्रारम्भ पर ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स, उसके सदस्यों तथा उसकी समितियों की थीं।

---

11. 1956 में संसद में संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1956 पारित किया गया जिसे एक गैर-सरकारी सदस्य ने पेश किया था। उसकी धारा 3 में यह उपबन्ध किया गया था:

    (1) उपधारा (2) में उपबन्धित दशा को छोड़कर कोई भी व्यक्ति किसी न्यायालय में, किसी समाचार में संसद के दोनों में से किसी सदन की कार्यवाही के मूलत: सच्चे विवरण के प्रकाशन के लिए किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही का भागी नहीं होगा जब तक कि यह प्रमाणित न कर दिया जाए कि प्रकाशन द्वेष की भावना से किया गया है।

    (2) उपधारा (1) में किए गए किसी उपबन्ध का मतलब यह नहीं लिया जाएगा कि वह किसी ऐसी सामग्री के प्रकाशन को संरक्षण प्रदान करता है जिसका प्रकाशन जनहित में नहीं किया गया है।

    यह अधिनियम बेतार टेलीग्राफी द्वारा संसदीय कार्यवाही के प्रसारण पर भी लागू होता था। यह अधिनियम फरवरी, 1976 में निरस्त कर दिया गया था। तथापि, 1956 के अधिनियम के तहत स्थिति को संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1977 के द्वारा बहाल किया गया था।

    सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 135 'क' के अन्तर्गत संसद तथा राज्य विधानमंडलों के सदस्य किसी सभा के सत्र अथवा समिति की बैठक के दौरान और उसके चालीस दिन पहले और बाद में सिविल प्रक्रिया के अन्तर्गत गिरफ्तारी और नजरबन्दी से उन्मुक्त हैं।

    संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 42 के द्वारा शामिल संविधान के अनुच्छेद 361 'क' में प्रावधान है कि:

    (1) कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन या, यथास्थिति, किसी राज्य की विधान सभा या किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन की किन्हीं कार्यवाहियों के सारत: सही विवरण के किसी समाचार पत्र में प्रकाशन के संबंध में किसी न्यायालय में किसी भी प्रकार की सिविल या दांडिक कार्यवाही का तब तक भागी नहीं होगा जब तक यह साबित नहीं कर दिया जाता है कि प्रकाशन विद्वेषपूर्वक किया गया है:

इस विषय पर कानून बनाने के प्रश्न पर पीठासीन अधिकारियों का ध्यान 1921 से ही है। अध्यक्ष फ्रेड्रिक व्हाइट ने उस वर्ष हुए अध्यक्षों के पहले सम्मेलन में कहा:

> भारत के विधानमंडलों के संदर्भ में विशेषाधिकार का सारा प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है. .. प्रश्न यह है कि क्या कानूनी शक्ति ली जाए जिससे कि विधानमंडल अवमानना के लिए दंड दे सके।

उन्होंने आगे यह भी कहा कि हाउस ऑफ कामन्स जैसे विशेषाधिकार भारत के विधानमंडलों को किसी कानून के अन्तर्गत नहीं दिए गए, इसलिए उन्हें अवमानना के लिए दंड की कोई शक्ति नहीं है।

इस विषय पर अध्यक्षों के सम्मेलन में समय-समय पर विचार किया गया और अन्ततोगत्वा 1933 में जब ब्रिटेन की संसद में भारत शासन विधेयक पर विचार किया जा रहा था, अध्यक्षों के सम्मेलन ने केन्द्रीय विधान सभा के सचिव को यह अधिकार दिया कि वह लंदन की हाउस ऑफ लार्ड्स की संयुक्त समिति के क्लर्क को इस सम्बन्ध में एक ज्ञापन भेजे। ज्ञापन का अनुमोदन तथा उस पर हस्ताक्षर अध्यक्ष षणमुखम चेट्टी ने किए थे जिसके पैरा 4 में कहा गया था:

> अध्यक्षों के सम्मेलन की सर्वसम्मत राय यह थी कि भारत में भावी विधानमंडलों, चाहे वे केन्द्र के हों या प्रान्तों के, को वही शक्तियां, उन्मुक्तियां तथा विशेषाधिकार दिए जाएं जो हाउस ऑफ कामन्स को प्राप्त हैं।... सम्मेलन की राय है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्रिटिश नार्थ अमेरिका अधिनियम, 1867 की धारा 18, तत्पश्चात् पार्लियामेंट ऑफ कैनेडा अधिनियम, 1875 द्वारा संशोधित, जैसी ही एक धारा भारत के संविधान में रखी जाए... इन विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के प्रयोग तथा उनके संरक्षण के लिए, केन्द्र तथा प्रान्तों के विधानमंडलों को अभिलेख न्यायालय घोषित किया जाए, ताकि वे अधिनियम के उल्लंघन की जांच कर सकें और उनके लिए दण्ड दे सकें।

तथापि ब्रिटिश संसद ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

परन्तु इस खंड की कोई बात संसद के किसी सदन या यथास्थिति, किसी राज्य की विधान सभा या किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन की गुप्त बैठक की कार्यवाहियों के विवरण के प्रकाशन पर लागू नहीं होगी।

(2) खंड (1) किसी प्रसारण केन्द्र के माध्यम से उपलब्ध किसी कार्यक्रम या सेवा के भाग रूप बेतार तार यांत्रिकी के माध्यम से प्रसारित रिपोर्टों या सामग्री के संबंध में उसी प्रकार लागू होगा जिस प्रकार वह किसी समाचार पत्र में प्रकाशित रिपोर्टों या सामग्री के संबंध में लागू होता है।

स्पष्टीकरण : इस अनुच्छेद में, 'समाचार पत्र' के अन्तर्गत समाचार एजेंसी की ऐसी रिपोर्ट भी शामिल हैं जिसमें किसी समाचार पत्र में प्रकाशन के लिए सामग्री अंतर्विष्ट है।

इस प्रश्न को 1938 में अध्यक्षों के सम्मेलन में फिर उठाया गया। इस विषय पर अध्यक्ष अब्दुर्रहीम ने भारत सरकार को एक ज्ञापन भेजा और उससे कहा कि वह उसे संबंधित अधिकारियों को भेज दे। इस ज्ञापन के पैरा 5 में कहा गया था:

> सम्मेलन ने सर्वसम्मति से अपनी इस राय पर बल दिया कि भारत सरकार से कहा जाए कि वह भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 28 और धारा 71 में संशोधन करने के लिए फौरन कार्यवाही करे जिससे कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधानमंडलों और उनके सदस्यों तथा अधिकारियों को वही शक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त हों जो कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स के अध्यक्ष तथा सदस्यों को प्राप्त हैं।
>
> 1939 में पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में इस बात पर सहमति हुई थी कि विशेषाधिकार की परिभाषा होनी चाहिए। लेकिन इस विषय पर अन्ततोगत्वा कोई विधान पारित नहीं किया गया।[12]

उसके बाद अध्यक्ष मावलंकर के कहने पर, जहां तक केन्द्र का सम्बन्ध था, भारत शासन अधिनियम की धारा 28 में अनुकूलन आदेश दिनांक 31 मार्च, 1948 के माध्यम से संशोधन कर दिया गया। अनुकूलित रूप में धारा 28(2) में कहा गया था:

> अन्य विषयों में, डोमिनियन विधानमंडल के सदस्यों के विशेषाधिकार वैसे ही होंगे जिनकी परिभाषा समय-समय पर डोमिनियन विधानमंडल के अधिनियम द्वारा की जाए, और जब तक उनकी परिभाषा इस प्रकार नहीं की जाती, वे वैसे ही होंगे जैसे कि इस डोमिनियन की स्थापना से तुरन्त पहले ब्रिटेन की संसद के हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों के थे।

सितम्बर, 1949 में जब इस विषय पर कानून बनाने के प्रश्न पर सम्मेलन में विचार किया गया तो सभापति (अध्यक्ष मावलंकर) ने यह राय प्रकट की:—

> इस समय यह अधिक अच्छा होगा कि हम अभी विशिष्ट विशेषाधिकारों की परिभाषा न करें बल्कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स के पूर्वोदाहरणों पर ही भरोसा करें। इस समय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने में यह हानि होगी। जब भी कोई नयी स्थिति उत्पन्न होगी हम अपने को उस के अनुसार ढाल नहीं पायेंगे और सदस्यों को अधिक विशेषाधिकार नहीं दे सकेंगे। आज हमें इस बात का तो आश्वासन है कि हमारे विशेषाधिकार वही हैं जो हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों के हैं...
>
> आज की स्थिति में इस सम्बन्ध में कानून बनाने की चेष्टा से हमारे विशेषाधिकार संभवत: कम हो जायेंगे। इसलिए हमें इस बात पर ही सन्तोष कर लेना चाहिए कि इस मामले में हम हाउस ऑफ कामन्स के बराबर हैं। पहले यह परिपाटी स्थापित हो जाए और बाद में हम इसे ठोस आधार पर स्थापित करने की बात सोच सकेंगे।[13]

इस सम्बन्ध में कानून बनाने के प्रश्न पर प्रान्तों से प्राप्त सिफारिशों की जांच करने के लिए चार अध्यक्षों की एक समिति गठित की गई थी।

---

12. *पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की कार्यवाही,* 18.7.1939, पृ. 18-24 ।
13. *पूर्वोक्त,* 2.9.1949, पृ. 28-29 ।

अध्यक्षों की इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित टिप्पणी की:—

> समिति का विचार है कि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अनुच्छेद 194(3) के अन्तर्गत कोई विधानमंडल केवल कुछ पहलुओं के सम्बन्ध में अपने सदस्यों की शक्तियों, विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों की परिभाषा करने के लिए कानून बना दे और बाकी विषयों में उनके विशेषाधिकार, शक्तियां तथा उन्मुक्तियां वही रहने दी जायें जो हाउस ऑफ कामन्स की हैं। समिति का विचार है कि यदि इस अनुच्छेद के अन्तर्गत कोई विधानमंडल ऐसा कानून बनाने के लिए सक्षम है तभी विधानमंडल को अपने सदस्यों की शक्तियों, विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों की परिभाषा करने के लिए ऐसा कानून बनाना चाहिए, अन्यथा इस समय ऐसा कानून नहीं बनाना चाहिए।[14]

विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने के प्रश्न और अध्यक्षों की समिति की रिपोर्ट पर अगस्त, 1950 में पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में ब्यौरे-वार विचार किया गया। सम्मेलन के सभापति (अध्यक्ष मावलंकर) ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा:

> यदि हम विशेषाधिकार सम्बन्धी कानून बनाने की बात सोचें तो उसमें दो बहुत बड़ी कठिनाइयां और अड़चनें होंगी। वे हैं:
>
> (i) इस समय यदि कोई विधान बनाया जाता है तो उसका मतलब यह होगा कि वह केवल उन विषयों के सम्बन्ध में बनेगा जो वर्तमान सरकार को स्वीकार्य हैं। यह तो स्पष्ट है कि चूंकि सभा में सरकार का बहुमत है, अत: सभा उसी बात को मानेगी जो सरकार स्वीकार करना उचित समझती हो। इस बात को याद रखना महत्वपूर्ण है कि सदस्यों के विशेषाधिकारों की कल्पना किसी दल विशेष के संदर्भ में नहीं की जा सकती, बल्कि वे तो सभी सदस्यों के लिए हैं, चाहे वे सरकारी पक्ष के हों या विरोधी पक्ष के। इसलिए मुझे डर है कि विधान बनाने की कोशिश का परिणाम कहीं यह न हो कि इस समय उपलब्ध विशेषाधिकार भी कहीं कम हो जायें।
>
> (ii) मेरा ऐसा सोचने का दूसरा कारण यह है कि कोई भी कानून बनाने से विशेषाधिकार और अधिक स्पष्ट हो जायेंगे और अध्यक्षता करने वाले अधिकारियों के लिए विशेषाधिकारों का निर्वचन करके उनको बदलने या उनका क्षेत्र विस्तृत करने की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। आज उनके पास यह गुजांइश है कि वे ब्रिटिश संसद के विशेषाधिकारों के आधारभूत सिद्धांतों को भारत की परिस्थितियों के अनुकूल बना कर लागू कर सकते हैं।
>
> मैं यहां आपका ध्यान इस विषय पर सचिव की टिप्पणी[15] की ओर दिलाना चाहता हूं जो आपको परिचालित की जा रही है।[16]

---

14. *विधानमंडलों तथा उनके सदस्यों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का सुझाव देने के लिए नियुक्त की गई अध्यक्षों की समिति का प्रतिवेदन,* 1950 पृ. 1 पैरा 4 ।
15. कौल, *उद्धृत कृति।*
16. *पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की कार्यवाही,* 21.8.1950, पृ. 2-3 ।

इस टिप्पणी में अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित बातों पर भी जोर दिया गया था:

हमारे संविधान में एक महत्वपूर्ण विशेषता है और वह यह है कि इसमें मूल अधिकारों की घोषणा की गयी है और न्यायालयों को वह निर्णय देने की शक्ति दी गयी है कि कोई कानून या उसका कोई भाग इस कारण शून्य या अवैध है कि वह किसी विशेष मूल अधिकारों के विरुद्ध है और इसलिए संसद को वह कानून बनाने की शक्ति नहीं है।

इस समय संसद के विशेषाधिकार संविधान का अंग हैं और 'आधारभूत विधि' के अभिन्न अंग हैं। इसलिए न्यायालयों को विशेषाधिकार से संबंधित वर्तमान कानून, जिसके तहत अध्यक्ष को बिना कारण बताए वारंट जारी करने की शक्ति है, का मूल अधिकारों के साथ तालमेल बिठाना होगा। उच्चतम न्यायालय के लिए यह कहना बहुत कठिन होगा कि संसद के वर्तमान विशेषाधिकारों के बारे में संविधान के एक भाग में स्पष्ट रूप से किया गया उपबन्ध मूल अधिकारों के कारण किसी प्रकार से प्रतिबंधित होता है।[17]

लेकिन यदि एक बार भारत में संसद द्वारा अधिनियम बनाकर विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध कर दिया जाता है तो सारी स्थिति बदल जाती है। ....न्यायालय किसी अन्य

---

17. 1958 में, उच्चतम न्यायालय ने *सर्चलाईट के मुकदमें* में इस विचार को ठीक बताया और यह निर्णय दिया:

"यह ठीक है कि अनुच्छेद 105(3) के पहले भाग के अन्तर्गत संसद द्वारा अथवा अनुच्छेद 194(3) के पहले भाग के अन्तर्गत राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाया गया कानून संविधानिक शक्ति के प्रयोग द्वारा बनाया गया कानून नहीं है... लेकिन वह अनुच्छेद 246 और प्रविष्टियों.... [सूची 1 की प्रविष्टि 75 और सातवीं अनुसूची की सूची (ii), की प्रविष्टि 39] के अन्तर्गत सामान्य विधायी शक्तियों के अन्तर्गत बनाया गया कानून होगा। इसके परिणामस्वरूप यदि ऐसे कानून से कोई भी मूल अधिकार छिन जाता या कम हो जाता है, तो यह अनुच्छेद 13(2) के सर्वोच्च उपबन्धों के विरुद्ध होगा और जिस सीमा तक यह उस उपबंध के विरुद्ध होगा, उस तक वह शून्य होगा। सम्भव है कि इसी कारण संसद और राज्यों के विधानमंडलों ने अपनी शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की परिभाषा करने वाला कोई कानून नहीं बनाया है बिल्कुल वैसे ही जैसे कि आस्ट्रेलिया की संसद ने अपने संविधान की धारा 49 के अन्तर्गत कोई कानून नहीं बनाया जो हमारे अनुच्छेद 194(3) के अनुरूप है.... लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस अनुच्छेद के बाद के अंश द्वारा दी गयी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां यदि मूल अधिकारों के विरुद्ध हों, तो वे उस विरोध की सीमा तक शून्य होंगी। इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि अनुच्छेद 105(3) और अनुच्छेद 194(3) के उपबंध सांविधानिक कानून हैं, संसद या विधानमंडलों द्वारा बनाये गए साधारण कानून नहीं हैं और इसलिए वे संविधान के भाग III जितने ही सर्वोच्च हैं।

अनुच्छेद 19(1)(4) और अनुच्छेद 194(3) को परस्पर संगत बनाना होगा और उसका एकमात्र तरीका यह है कि अनुच्छेद 19(1)(क) को अनुच्छेद 194(3) के बाद के अंश के अध्यधीन पढ़ा जाये... हमारे विचार में समरस निर्वचन के सिद्धांत को अपनाना पड़ेगा और इसका निर्वचन ऐसा करना पड़ेगा कि अनुच्छेद 19(1) और (4) के उपबंध जो सामान्य हैं, अनुच्छेद 194(1) और इसके खण्ड (3) के बाद के भाग, जो विशेष हैं इसके अनुरूप हों।" *एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्री कृष्ण सिन्हा,* ए.आई.आर. 1959, एस.सी. 395 ।

> अधिनियम की तरह इस अधिनियम की भी जांच कर सकेंगे और संभव है कि उनका निर्णय यह हो कि मूल अधिकारों के उपबन्धों को देखते हुए भारत के किसी विधानमंडल को यह निर्धारित करने की स्वतंत्रता नहीं है कि अध्यक्ष वारंट पर उसके जारी करने के कारण लिखे बिना कोई वैध वारंट जारी कर सकता है.... और (तब) सारे विषय न्यायालयों के सामने आ सकेंगे और संसद अपने विशेषाधिकारों सम्बन्धी विषयों का फैसला करने का अपना अनन्य अधिकार खो बैठेगी।

सम्मेलन में चर्चा के दौरान इस विषय पर मतभेद थे। कुछ अध्यक्षों ने कहा कि कानून बनाना चाहिए और कुछ ने कहा कि नहीं। अन्ततोगत्वा इस सम्मेलन में इस प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सका।[18]

विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने की बात 1954 में प्रेस आयोग ने भी कही थी।[19] लेकिन इस बात को अध्यक्ष मावलंकर ने स्वीकार नहीं किया। 3 जनवरी, 1955 को राजकोट में पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में बोलते हुए उन्होंने कहा:—

> प्रेस आयोग ने इस प्रश्न पर केवल समाचारपत्रों के दृष्टिकोण से विचार किया है। सम्भव है कि उन्होंने महसूस किया हो कि इस सम्बन्ध में समाचारपत्रों की कठिनाइयां वास्तविक हैं; लेकिन विधानमंडल के दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना पड़ेगा।
>
> विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने से विधानमंडल की प्रभुसत्ता तथा प्रतिष्ठा को धक्का पहुंच सकता है लेकिन उससे प्रेस को कोई लाभ नहीं होगा। यह दलील दी जा सकती है कि प्रेस को यह बताया ही नहीं जाता कि क्या विशेषाधिकार दिये गये हैं। इसका सरल जवाब यह है कि ये वही विशेषाधिकार हैं जो संविधान द्वारा विधानमंडल, उसके सदस्यों इत्यादि को दिये जाते हैं और जो इंग्लैंड में हाउस ऑफ कामन्स को प्राप्त हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि हाउस ऑफ कामन्स नये विशेषाधिकार की स्थापना की अनुमति नहीं देता, केवल उन्हीं विशेषाधिकारों को मान्यता दी जाती है जो लम्बे समय से परंपरागत रूप में स्थापित हो चुके हैं। इसलिए विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है।[20]

सम्मेलन में इस मुद्दे पर चर्चा की गई और सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि 'मौजूदा परिस्थितियों में संहिताकरण की न तो आवश्यकता है और न ही यह वांछनीय है।[21]

लोक सभा में एक गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक—संसदीय विशेषाधिकार विधेयक—जिसका उद्देश्य यह था कि मंत्रियों को लिखे गये सदस्यों के पत्रों को भी 'संसद की

---

18. *पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की कार्यवाही,* 21.8.1950, पृ. 35-51 ।
19. *प्रेस आयोग की रिपोर्ट,* 1954, भाग 1. पृ. 421, पैरा 1096 ।
20. *पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की कार्यवाही,* 3.1.1955, पृ. 5 ।
21. *पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की कार्यवाही,* 3.1.1955, पृ. 35-37 ।

    दोनों सदनों के अनिश्चित विशेषाधिकार के द्वारा इनकी गरिमा और स्वतंत्रता को काफी हद तक अक्षुण्ण रखा जाता है—*एच.सी. डिबेट्स,* खण्ड-563, का. 1300-01 ।

कार्यवाही' की परिभाषा में सम्मिलित कर लिया जाए, पर बोलते हुए विधि मंत्री ने कहा[22] :

> अंततः, इस बात को कमोबेश अब लगभग सभी स्वीकार करते हैं कि विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध न किया जाए बल्कि ऐसे ही छोड़ दिया जाये.... यह बात हमारे देश में और भी ज्यादा लागू होती है। यद्यपि इंग्लैंड में संसद यदि चाहे तो विशेषाधिकारों को बढ़ाने या सीमित करने के सम्बन्ध में बिना किसी सीमा के कोई भी विधि पारित कर सकती है लेकिन भारत में हम कोई इस प्रकार की विधि पारित करने की बात सोचते हैं तो हमें उन बन्धनों को देखना पड़ेगा जो संविधान ने हमारे ऊपर लगा दिये हैं। हाल ही में *'पटना सर्चलाइट मुकदमे'* में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में यह स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो गई है। उसमें ऐसा निर्णय किया गया है कि यदि संसद अपने वर्तमान विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में कोई विधि पारित करती है, तो सम्भव है कि वह कानून की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण हो और संविधान के भी विरुद्ध हो।
>
> इसलिए, मैं समझता हूँ कि बुद्धिमानी तथा सावधानी का तरीका तो यही है कि हम इस सभा या दूसरी सभा के विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में बिना सोचे-समझे या बड़े पैमाने पर कोई विधि न बनायें।

मद्रास उच्च न्यायालय में दायर एक रिट याचिका में यह प्रतिवाद किया गया था कि अनुच्छेद 194(3) स्वरूप में अंतःकालीन और अस्थायी है, यह कि इस विषय पर कोई विधि न बनाया जाना जानबूझकर नहीं की जाने वाली कार्यवाही थी जिसके परिणामस्वरूप उक्त अनुच्छेद के दूसरे भाग के अन्तर्गत जिस बात की गारन्टी दी गई थी वह उपलब्ध नहीं रहा और यह माना जाए कि वह चूक स्वरूप व्यपगत हो गया है। इस संबंध में न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

> यह समझना बहुत कठिन है कि स्वतः व्यपगत होने अथवा किसी कार्यवाही के अभाव में व्यपगत होने का सिद्धान्त राज्य विधानमंडल के संबंध में अनुच्छेद 194(3) पर कैसे लागू हो सकता है.... ऐसे किसी निष्कर्ष पर पहुंचना असम्भव है कि कार्यवाही जानबूझकर नहीं की गई, यह मत धारण करते हुए तो यह बात असम्भव ही है कि इस तरह कार्यवाही न करने के परिणामस्वरूप यह उपबंध व्यपगत अथवा समाप्त हो जाएगा। इसके विपरीत, जहां संविधान में अधिकारों की किसी स्थिति के बारे में शर्त निर्धारित करना अभिप्रेत है, वहां स्पष्ट रूप में ऐसा उल्लेख किया जाता है और अनुच्छेद 334, 337 और 347 इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।[23]

वर्ष 1965 में, बम्बई में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में विधानमंडलों और उसके सदस्यों एवं इनकी समितियों के अधिकारों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के संहिताबद्ध करने के पक्ष में दलील दी गई थी। सम्मेलन ने इस मुद्दे पर बहस की और संहिताबद्ध न करने का निर्णय लिया।

---

22. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.2.1959, कॉ. 2275-76 ।

23. *सी. सुब्रह्मण्यम बनाम अध्यक्ष मद्रास विधान सभा,* ए.आई.आर. 1969, मद्रास 10 ।

दूसरे प्रेस कमीशन ने 3 अप्रैल, 1982 को सरकार को दी अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि प्रेस की आजादी के दृष्टिकोण से यह अनिवार्य है कि संसद और विधानमंडलों के विशेषाधिकारों को यथाशीघ्र संहिताबद्ध किया जाए। यह भी सिफारिश की गई थी कि कथित विशेषाधिकार भंग आदि के विरुद्ध कार्यवाही करने संबंधी प्रक्रिया से संबंधित संसद के सदनों और विधानमंडलों के प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों की पुनरीक्षा की जानी चाहिए ताकि उनमें ऐसे उपबन्धों को शामिल किया जा सके जिनके द्वारा विशेषाधिकार भंग संबंधी कार्यवाही में अवमाननाकर्ताओं को अपना बचाव स्वयं करने का समुचित अवसर दिया जा सके।

सभा, उसके सदस्यों और समितियों के अधिकारों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को संहिताबद्ध करने के प्रश्न पर 14 और 15 मार्च, 1992 को नई दिल्ली में संसद और भारत के राज्य विधानमंडलों की विशेषाधिकार संबंधी समितियों के सभापतियों के प्रथम सम्मेलन में विचार किया गया था। सम्मेलन द्वारा सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया था कि 'विशेषाधिकारों का कोई संहिताकरण नहीं किया जाना चाहिए'।

इस मामले पर लोक सभा के अध्यक्ष की अनुमति से दसवीं लोक सभा की विशेषाधिकार समिति द्वारा भी विचार किया गया था। उक्त समिति ने 'संसदीय विशेषाधिकारों के संहिताकरण' के मामले पर अपने चौथे प्रतिवेदन में, जिसे 19 दिसम्बर, 1994 को सभा पटल पर रखा गया, यह महसूस किया कि जहां तक संसदीय विशेषाधिकारों के दुरुपयोग के आरोपों का संबंध है, इसकी सच्चाई इस संबंध में पेश की गयी तस्वीर के एकदम विपरीत है। समिति ने यह बात भी मानी कि अवमानना के लिए विधानमंडलों के पास दंड देने के जो अधिकार हैं वे कमोबेश वही हैं जो न्यायालयों को अपनी अवमानना के लिए दंडित करने के लिए प्राप्त हैं। अत:, समिति यह मानती है कि सभा की अवमानना अथवा विशेषाधिकार का भंग किस बात से होता है इसका निर्णय बहुत ज्यादा शब्दों में उल्लेख करने के बजाय प्रत्येक मामले के तथ्य और परिस्थितियों के अनुसार ही सबसे अच्छे ढंग से किया जा सकता है। पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए समिति ने संसदीय विशेषाधिकारों के संहिताकरण न किए जाने की सिफारिश की।

चूंकि चौथे प्रतिवेदन (दसवीं लोक सभा) के प्रस्तुतीकरण के बाद भी विभिन्न गलत अवधारणाएं बनी रहीं, जिनका बने रहना शिक्षित वर्ग ने भी दु:खद माना। विशेषाधिकार समिति (चौदहवीं लोक सभा) ने यह महसूस किया कि संसदीय विशेषाधिकार की उक्त अवधारणा पर पुनर्विचार करने की अत्यन्त आवश्यकता है। तदनुसार, अध्यक्ष महोदय की अनुमति से विशेषाधिकार समिति, चौदहवीं लोक सभा, ने "संसदीय विशेषाधिकार संहिताकरण एवं संगत मामले" से संबंधित विषय को पुनर्विचार के लिए लिया। विशेषाधिकार समिति का ग्यारहवां प्रतिवेदन 30 अप्रैल, 2008 को सभा पटल पर रखा गया। समिति ने एकदम शुरुआत में उन मौलिक कारणों/प्रमुख कारकों पर विचार किया जिनसे कतिपय क्षेत्रों में संसदीय विशेषाधिकारों के संहिताकरण की प्राय: आवश्यकता एवं मांग महसूस की गयी। समिति ने इन प्रमुख क्षेत्रों/कारकों पर ध्यान देना उचित समझा। अत: समिति सदस्यों के विशेषाधिकारों की सीमा

और दायरे को स्पष्ट करने तथा व्याप्त गलत अवधारणाओं को दूर करने के लिए आगे बढ़ी। विस्तृत प्रश्नावली के माध्यम से समिति ने विधानमण्डल, विधिक व्यावसाय, मीडिया और शैक्षिका–विधा से जुड़े प्रबुद्ध लोगों/संस्थानों के विचार प्राप्त किए। समिति ने विदेशी संसदों से भी विचार प्राप्त किए।

समिति ने अपने प्रतिवेदन में संसदीय विशेषाधिकारों से संबंधित पहलुओं के समूचे दायरे, आधारभूत वास्तविकताओं, संसदीय विशेषाधिकारों संबंधी प्रश्नावली के उत्तरों और इस विषय की सुस्थापित अवधारणा पर विचार करने के पश्चात् और इस विधिक मामले पर गहन अध्ययन करने के पश्चात् अपनी टिप्पणियों/निष्कर्षों को निम्न रूप से प्रस्तुत किया:—

(i) संसद सदस्यों को संसदीय विशेषाधिकार सिर्फ इसलिए दिए जाते हैं ताकि वे अपने संसदीय कर्त्तव्यों का निर्वहन उन्मुक्त रूप से कर सकें। सदस्य जब अपने संसदीय कर्त्तव्यों का निर्वहन नहीं कर रहे होते हैं तो उन्हें कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते।

(ii) कुछ क्षेत्रों में व्याप्त कतिपय अवधारणाओं के विपरीत संसद सदस्यों को कोई विशेषाधिकार नहीं दिये जाते हैं जो कि आम नागरिकों को प्राप्त नहीं होते हैं। इन विशेषाधिकारों से उस मूल अवधारणा के साथ कोई समझौता नहीं किया जाता जिसके अन्तर्गत कानून के समक्ष सभी नागरिक बराबर हैं।

(iii) विशेषाधिकार संसद सदस्यों के वे सामर्थ्यकारी अधिकार हैं जिनसे सदस्य अपने क्षेत्र के मतदाताओं के विचारों और उनकी चिन्ताओं को निर्भय होकर पेश कर सकें। इसलिए इन अधिकारों को सदस्यों के क्षेत्र के मतदाताओं के अप्रत्यक्ष अधिकार कहा जा सकता है। इन विशेषाधिकारों का यही सार है जिसकी प्रशंसा की जानी चाहिए।

(iv) विशेषाधिकार के उल्लंघन अथवा सभा की अवमानना के लिए सभा की दाण्डिक शक्तियों का बहुत कम प्रयोग किया गया है। लोक सभा में पिछले साढ़े पांच दशकों के दौरान विशेषाधिकार के उल्लंघन तथा सभा की अवमानना के लिए केवल एक मामले में चेतावनी दी गई है, दो मामलों में फटकार और एक मामले में निष्कासन हुआ है। राज्य सभा में विशेषाधिकार के उल्लघंन और सभा की अवमानना के लिए फटकार के केवल दो मामले हुए हैं।

(v) उपर्युक्त स्थिति इस बात की साक्षी है कि संसदीय विशेषाधिकारों का कभी दुरुपयोग नहीं हुआ है जैसी कि कुछ क्षेत्रों में गलत धारणा बनी हुई है।

(vi) समिति की प्रश्नावली का उत्तर देने वाले बहुमत का दृष्टिकोण यह है कि संसदीय विशेषाधिकारों का संहिताकरण नहीं होना चाहिए।

समिति की अन्ततः राय यह है कि संसदीय विशेषाधिकारों के संहिताकरण का कोई अवसर नहीं बनता तथा वास्तविकता यह है कि संसदीय विशेषाधिकार शब्दावली के सही अर्थ और विद्यमान आधारभूत वास्तविकताओं के प्रति जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। तदनुसार समिति ने संसदीय विशेषाधिकारों का संहिताकरण न करने की सिफारिश की।

संहिताकरण के पक्ष में जो मुख्य दलीलें दी गई हैं, वे निम्नलिखित हैं:–

(i) संसदीय विशेषाधिकारों का आशय यह है कि उनका उपयोग जनता की ओर से उनके हितों में किया जाए न कि उनका उपयोग उनके हितों के विरुद्ध उनके ही खिलाफ किया जाए;

(ii) जब तक संसदीय विशेषाधिकारों, उन्मुक्तियों और अधिकारों को संहिताकरण के माध्यम से स्पष्टत: परिभाषित और सही–सही परिसीमित नहीं किया जाता, तब तक वे नागरिकों और प्रेस के लिए अस्पष्ट और जटिल बने रहते हैं और वास्तव में कोई नहीं जानता कि संसद, इसके सदस्यों और इसकी समितियों के विशेषाधिकार वस्तुत: क्या हैं और इससे अनजाने में उनमें से बहुतों का उल्लंघन हो जाता है;

(iii) किसी भी लोकतांत्रिक समाज में किसी भी व्यक्ति वर्ग के विशेषाधिकारों की अवधारणा कालदोषयुक्त है, अत: यदि ये हैं भी तो इन्हें कृत्यात्मक उद्देश्य से आवश्यक कम–से–कम होना चाहिए और इन्हें अनिवार्यत: स्पष्ट शब्दों में परिभाषित किया जाना चाहिए।

(iv) संसद की संप्रभुता निरंतर एक मिथक और भ्रामक बात हो गई है क्योंकि यदि कोई भी संप्रभुता है तो वह भारत के उन लोगों में निहित है जो लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के आम चुनावों के समय इसका प्रयोग करते हैं;

(v) विधि सम्मत शासन, व्यक्ति के अधिकार, स्वतंत्र न्यायपालिका और संवैधानिक सरकार वाली स्वतंत्र और लोकतांत्रिक प्रणाली में यह उचित ही है कि संविधान में निहित नागरिकों के मूल अधिकार निर्वाचित संसद सदस्यों और विधायकों सहित किसी भी व्यक्ति वर्ग के विशेष अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों से ऊपर होने चाहिए और ऐसे सभी दावे न्यायपालिका की संवीक्षा के अध्यधीन होने चाहिए क्योंकि ऐसे हालात पैदा हो सकते हैं, जहां लोगों के अधिकारों को संसद अथवा तत्कालिक बंधक अथवा अस्थिर संसदीय बहुमत के परिप्रेक्ष्य में संरक्षण प्रदान करना पड़ सकता है;

(vi) संविधान में इसकी विशेष रूप से परिकल्पना की गई थी कि संसद के दोनों सदनों, तथा राज्य विधानमंडलों और उनके सदस्यों तथा समितियों के लिए विशेषाधिकारों को संबंधित विधानमंडल विधि द्वारा परिभाषित करे और इसलिए संविधान निर्माताओं की निश्चित रूप से इन विशेषाधिकारों को मूल अधिकारों, संविधान के उपबंधों और न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार के अध्यधीन रखने की मंशा थी;

(vii) सबसे अच्छा यह होगा कि न्यायपालिका के संवीक्षाधिकार के अंतर्गत आने वाले मामलों का निपटारा न्यायालयों द्वारा ही किया जाए और किसी भी स्थिति में ऐसा कोई कारण नहीं है कि न्यायालय, जिन्हें उन विशेषाधिकारों, शक्तियों और उन्मुक्तियों की जांच–पड़ताल करने का पूर्ण अधिकार है, जिनका संसद के सदनों द्वारा दावा किया जाता है, वे उनके समुचित प्रयोग की जांच क्यों न करें और सदनों द्वारा दिए गए किसी आदेश को रद्द क्यों न करें तथा शिकायत के अंतिम निपटान किए जाने तक शिकायतकर्त्ता को अन्तरिम राहत क्यों न प्रदान करें; और

(viii) किसी भी स्थिति में कोई नया विशेषाधिकार जोड़े जाने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि– (क) संविधान के अंतर्गत अभी भी भारत के संसदीय विशेषाधिकार वस्तुत: 'हाउस ऑफ कामन्स' के उन्हीं पूर्वोदाहरणों से शासित होते हैं जैसे कि वे संविधान प्रवृत होने के समय विद्यमान थे; और (ख) स्वयं 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में भी नये विशेषाधिकारों के सृजन की अनुमति नहीं है।[24]

अत:, यह स्पष्ट है कि जहां संसदीय मंचों पर प्रबल मत संहिताकरण के विरुद्ध रहा है वहीं बुद्धिजीवी वर्ग और प्रेस कुल मिलाकर संहिताकरण के पक्ष में रहे हैं। संहिताकरण के विरुद्ध जो मुख्य दलीलें दी गई हैं, वे निम्नलिखित हैं:–

(i) संसदीय विशेषाधिकार संविधान का अभिन्न अंग है और इस तरह से उन्हें 'आधारभूत कानून' के रूप में जाना जाता है। जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा 'सर्चलाइट मामले' में उल्लेख किया गया है, अनुच्छेद 105(3) और अनुच्छेद 194(3) के उपबंध संवैधानिक कानून हैं और वे संसद अथवा राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाए गए साधारण कानून नहीं हैं और इस तरह से वे भाग-3 के उपबंधों की भांति सर्वोच्च हैं;

(ii) जैसा कि उच्चतम न्यायालय, द्वारा *एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्री कृष्ण सिन्हा* के मामले में आगे उल्लेख किया गया है (ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395), अनुच्छेद 19(1)(क) और अनुच्छेद 194(3) का सामंजस्य बैठाना होगा और इनका सामंजस्य करने का एकमात्र तरीका यही है कि अनुच्छेद 19(1)(क) को अनुच्छेद 194(3) के उत्तरवर्ती भाग के अध्यधीन करके पढ़ा जाए। सामंजस्यपूर्ण संरचना के सिद्धान्त को स्वीकार करके इस प्रकार विरचित किया जाना चाहिये कि अनुच्छेद 19(1)(क) के इस तरह से सामंजस्यपूर्ण विरचित उपबंध, जो कि सामान्य प्रकार के हैं वह अनुच्छेद 194(1) और इसके खंड (3) के उत्तरवर्ती भाग, जोकि विशिष्ट हैं, के अध्यधीन हों;

(iii) अनुच्छेद 105(3) के पूर्व भाग के अनुसरण में संसद द्वारा अथवा अनुच्छेद 194(3) के पूर्व भाग के अनुसरण में राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि संविधानकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाई गई विधि नहीं होगी.... बल्कि अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत इनकी सामान्य विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाई गई विधि होगी और परिणामत: यदि ऐसी विधि द्वारा किसी भी मूल अधिकार को वापस ले लिया जाता है या उसे कम किया जाता है तो यह विधि अनुच्छेद 13(2) के पूर्वकृत प्रावधानों का उल्लंघन करेगा और यह ऐसे उल्लंघन की सीमा तक शून्य होगा;[25]

(iv) यह कहना कि संसदीय विशेषाधिकारों का आशय यह है कि उनका प्रयोग जनता की ओर से किया जाए न कि उनके विरुद्ध किया जाए, यह मान कर चलना है कि इसमें हितों का टकराव है, यह एक भ्रामक दलील है। वस्तुत: दोनों के बीच कोई द्वि-विभाजन नहीं है अथवा होना भी नहीं चाहिए।

---

24. *देखिए,* सुभाष सी. कश्यप: *'पार्लियामेंट ऑफ इंडिया',* नई दिल्ली, 1988, पृ. 212-13 ।

25. *एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्री कृष्ण सिन्हा,* ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395 ।

इस बात पर बल देना होगा कि ये विशेषाधिकार किसी सामंतवादी संस्था अथवा शासकों को नहीं दिए गए हैं; वे तो संसद के सदनों के लिए निर्वाचित जनता के प्रतिनिधियों को प्रदान किए गए हैं और इस आधार पर इन्हें जनता के अधिकारों और हितों के विरुद्ध नहीं माना जाना चाहिए। भारत की जनता ने संविधान के माध्यम से ये अधिकार जन-प्रतिनिधि के रूप में इन सदस्यों को प्रदान किए हैं जिनका उपयोग वे जनता के व्यापक हित में सामूहिक और वैयक्तिक रूप से करते हैं।

(v) इन विशेषाधिकारों का एकमात्र उद्देश्य और औचित्य यह है कि जन-प्रतिनिधि बिना किसी भय अथवा पक्षपात तथा बिना किसी बाधा अथवा अड़चन के लोगों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों का कारगर रूप से और दक्षतापूर्वक निर्वहन कर सकें।

(vi) संसदीय विशेषाधिकारों का विस्तार क्षेत्र सुपरिभाषित और सीमित रखा गया है। कसौटी यह है कि यदि कोई व्यवधान, आक्षेप अथवा लांछन सभा के सदस्य की हैसियत से उसके चरित्र अथवा आचरण के बारे में नहीं है और सभा के वास्तविक कार्य निर्वहन के दौरान उत्पन्न मामले के संबंध में नहीं है तो वह संसद अथवा संसद सदस्य के विशेषाधिकार का कोई मामला नहीं होगा। पिछले पचास वर्षों में निर्णयज विधि के मामलों की संख्या से यह सिद्धान्त स्पष्टत: स्थापित हुआ है। अत: यह कहना सही नहीं होगा कि संसदीय विशेषाधिकार अस्पष्ट और जटिल हैं।

(vii) बुनियादी कानून यह है कि सभी नागरिकों को कानून के समक्ष एक समान समझा जाना चाहिए जो संसद सदस्यों के मामले में भी लागू होता है। संसद में जब वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं, उसे छोड़कर उनके अधिकार और आजादी आम नागरिकों की भांति ही है। इस प्रकार विशेषाधिकार किसी भी तरह से सदस्यों को समाज के प्रति अपने सामान्य दायित्वों से छूट नहीं देते और ये दायित्व उन पर उतने ही लागू होते हैं बल्कि इस हैसियत से वे सम्भवत: अन्य लोगों की तुलना में उन पर अधिक लागू होते हैं।

(viii) यह बात मानकर चलना कि विशेषाधिकारों के संहिताकरण मात्र से ही विधि निर्माताओं और न्यायकर्ताओं के बीच टकराव स्वयंमेव समाप्त हो जाएगा, एक बहुत ही सहज अवधारणा है। इससे समस्याओं का समाधान होने की बजाय, हो सकता है विधानमंडल और न्यायपालिका के बीच के संबंधों के मामले में अनपेक्षित समस्याएं पैदा हो जाएं।

(ix) विधानमंडलों के पास अवमानना के लिए दंड देने की जो शक्ति है वह कमोबेश न्यायालयों द्वारा अपनी अवमानना के लिए दंड देने की शक्तियों के समान और समतुल्य है। किस बात से विशेषाधिकार भंग होता है अथवा सभा की अवमानना होती है, इसका सही निर्णय अनेक शब्दों में उल्लेख करने की बजाय प्रत्येक मामले के तथ्य और परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है।

(x) यदि संसद और न्यायालयों के बीच परस्पर विश्वास और सम्मान की भावना हो तो विशेषाधिकार संबंधी कानून को संहिताबद्ध करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होगी। संहिताबद्ध कानून होने से संसद, इसके सदस्यों और समितियों को बदनाम करने पर आमादा व्यक्तियों को अधिक लाभ होगा और न्यायालयों से अधिकाधिक हस्तक्षेप करने के लिए कहा जाएगा। लिखित कानून होने से संसद और न्यायालयों के लिए उस गरिमा को बनाये रखना मुश्किल हो जायेगा जो वस्तुत: संसद की है और जिसे न्यायालय हमेशा उतने ही उत्साह से उचित ठहराएंगे जितने उत्साह से वे अपनी गरिमा को उचित ठहराते हैं;[26]

(xi) यदि विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध कर दिया जाएगा तो इससे जुड़े सारे मामले न्यायालय के समक्ष आएंगे और विधानमंडल अपने विशेषाधिकार से जुड़े मामलों के अवधारण के संबंध में अपने अनन्य अधिकार को खो देंगे और सूक्ष्म निर्धारण से उसका मूल तत्व ही समाप्त हो जाएगा।

विशेषाधिकारों का विस्तार क्षेत्र एवं व्याप्ति

ग्यारहवीं लोक सभा में विशेषाधिकारों संबंधी समिति ने संसदीय विशेषाधिकारों एवं सम्बद्ध मामलों की समग्र रूप से पुनरीक्षा करने का निर्णय किया। इसके फलस्वरूप संसदीय विशेषाधिकारों, आचार एवं संबंधित मामलों का अध्ययन करने के लिए विशेषाधिकार समिति ने एक अध्ययन दल गठित किया था। तथापि, अध्ययन दल ने अध्ययन के क्षेत्र को विस्तृत करने का निर्णय किया और केवल विशेषाधिकारों एवं अधिकारों का ही नहीं बल्कि सदस्यों की जिम्मेदारियों एवं दायित्वों का भी अध्ययन किया जिसके कारण इस अध्ययन को आचार एवं आचार संहिता के क्षेत्र में रखा गया। अध्ययन दल ने ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका एवं आस्ट्रेलिया में आचार, मानदंडों, विशेषाधिकारों एवं इससे सम्बद्ध मामलों के बारे में वर्तमान प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन[27] करने के बाद निष्कर्ष पर पहुंचकर अपना प्रतिवेदन 14 अक्तूबर, 1997 को विशेषाधिकार समिति को सौंपा। गहन विचार- विमर्श एवं कतिपय सुधारों के पश्चात् विशेषाधिकार समिति ने 7 नवम्बर, 1997 को आचार, सार्वजनिक जीवन में अपनाए जाने वाले मानदंडों, विशेषाधिकारों, सदस्यों को दी जाने वाली सुविधाओं एवं अन्य सम्बद्ध मामले सम्बन्धी प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया।

चूंकि सभा का सत्र नहीं चल रहा था, अत: विशेषाधिकार समिति के सभापति ने उक्त प्रतिवेदन 27 नवम्बर, 1997 को अध्यक्ष को सौंपा।[28] परन्तु, सभा के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने से पूर्व ही 4 दिसम्बर, 1997 को ग्यारहवीं लोक सभा भंग हो गई थी।

---

26. *एम. हिदायतुल्ला : ए जजेज मिसलेनी,* मुम्बई, 1972, पृष्ठ 210-211 ।

27. अध्ययन दल ने अपने अध्ययन के सन्दर्भ में आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका के अध्ययन दौरे भी किए।

28. नियम 280 के साथ पठित निदेश 71-क।

इस प्रतिवेदन में संसदीय विशेषाधिकारों के विभिन्न पहलुओं और विशेष रूप से आचार संबंधी मामलों को विस्तारपूर्वक शामिल किया गया है। प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों/दिए गए निष्कर्षों की मूल बातें समिति की सुविचारित राय में इस तथ्य पर आधारित हैं कि विशेषाधिकार/दायित्व और आचार सभी आपस में एक-दूसरे से जुड़ी बातें हैं इसलिए उन पर एक ही संसदीय समिति द्वारा विचार किया जाना चाहिए। मुख्य सिफारिश यह थी कि विशेषाधिकार समिति का नाम बदलकर आचार और विशेषाधिकार समिति कर दिया जाए जो आचार तथा विशेषाधिकार संबंधी दोनों विषयों को देखे।[29] इस प्रतिवेदन में सदस्यों के दायित्वों और विशेषाधिकारों एवं उन्हें दी जाने वाली सुविधाओं, चुनाव सुधार, दल-परिवर्तन रोधी कानून में संशोधन तथा राजनीतिक अपराधीकरण के संबंध में अन्य अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई हैं। इन सिफारिशों का यदि कार्यान्वयन किया गया तो इसके दूरगामी परिणाम होंगे क्योंकि इससे हमारी शासन व्यवस्था में संसद सदस्यों और विधायकों की भूमिका पुन: परिभाषित होगी तथा एक हद तक संसदीय विशेषाधिकारों के क्षेत्र का विस्तार होगा।

संसद के मुख्य विशेषाधिकार

संसद, उसके सदस्यों तथा समितियों के कुछ विशेषाधिकारों को संविधान, कुछ कानूनों तथा सभा के प्रक्रिया नियमों में विनिर्दिष्ट किया गया है लेकिन बाकी विशेषाधिकार ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स के पूर्वोदाहरणों पर और इस देश में विकसित परिपाटियों पर आधारित हैं।

इनमें से कुछ अधिक महत्वपूर्ण विशेषाधिकार ये हैं—

(i) *संविधान में विनिर्दिष्ट विशेषाधिकार*

संसद में वाक् स्वातंत्र्य।[30]

संसद में या उसकी किसी समिति में संसद सदस्य द्वारा कही गयी किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसे किसी भी न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति।[31]

किसी भी व्यक्ति को संसद के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के संबंध में किसी न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति।[32]

---

29. विशेषाधिकार समिति (13वीं लो.स.) ने समुचित विचार-विमर्श के पश्चात् तथा अपनी पूर्व समिति के आचार संबंधी प्रतिवेदन में अन्तर्निहित सिफारिशों के पूर्वाग्रह के बिना अपने पहले प्रतिवेदन (अध्यक्ष, लोक सभा को 4 अप्रैल, 2000 को प्रस्तुत किया गया और पटल पर 18 अप्रैल, 2000 को रखा गया) में यह सिफारिश की कि लोक सभा में एक पृथक आचार समिति गठित की जाए। इसके पश्चात् अध्यक्ष (13वीं लो.स.) ने 16 मई, 2000 को लोक सभा में 15 सदस्यीय आचार समिति गठित की।
30. अनुच्छेद 105(1)।
31. अनुच्छेद 105(2)।
32. *पूर्वोक्त।*

न्यायालयों को संसद की कार्यवाही की जांच करने का निषेध।[33]

संसद के किसी सदन की किन्हीं कार्यवाहियों के सारत: सही विवरण के किसी समाचारपत्र में प्रकाशन के संबंध में किसी न्यायालय में किसी भी प्रकार की सिविल, या दांडिक कार्यवाही से तब तक उन्मुक्ति जब तक यह साबित नहीं कर दिया जाता कि प्रकाशन विद्वेषपूर्ण किया गया है। यही उन्मुक्ति बेतार-तार यांत्रिकी के माध्यम से प्रसारित रिपोर्टों या सामग्री के संबंध में भी उपलब्ध है।[34]

(ii) *कानूनों में विनिर्दिष्ट विशेषाधिकार*

सभा के सत्र के दौरान तथा उसके आरंभ होने के चालीस दिन पहले और उसकी समाप्ति के चालीस दिन बाद तक दीवानी मामलों में सदस्यों की गिरफ्तारी से छूट।[35]

(iii) *सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों में विनिर्दिष्ट विशेषाधिकार*

किसी सदस्य की गिरफ्तारी, निरोध, दोषसिद्धि, कारावास तथा रिहाई के संबंध में तुरन्त सूचना प्राप्त करने का सदन का अधिकार।[36]

सभा के सदस्य को सभा के परिसर में बन्दीकरण तथा किसी वैध आदेश दिये जाने से छूट।[37]

सभा की गोपनीय बैठक की कार्यवाही या विनिश्चयों के प्रकट किए जाने का निषेध।[38]

(iv) *पूर्वोदाहरणों पर आधारित विशेषाधिकार*

सभा के सदस्यों या अधिकारियों को, सभा की अनुमति के बिना, सभा की कार्यवाही के संबंध में किसी न्यायालय में साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।[39]

सभा के सदस्यों या अधिकारियों को दूसरे सदन या उसकी समिति या राज्य के विधानमंडल के सदन या उसकी किसी समिति के सामने साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए तब तक विवश नहीं किया जा सकता जब तक कि सभा अनुमति न दे दे और वह सदस्य सहमत न हो जिसकी उपस्थिति अपेक्षित है।[40]

---

33. अनुच्छेद 122 ।
34. अनुच्छेद 361(क)।
35. सिविल प्रक्रिया संहिता, धारा 135 क-अधिक जानकारी के लिए *देखिए,* आगे इसी अध्याय का उपशीर्षक 'दीवानी मुकदमों में गिरफ्तारी से मुक्ति का विशेषाधिकार'।
36. नियम 229 और 230 ।
37. नियम 232 और 233 ।
38. नियम 252 ।
39. पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-पहली लोक सभा)
40. छठा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा)।

उपरोक्त विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के अतिरिक्त प्रत्येक सदन को कुछ पारिणामिक शक्तियां प्राप्त हैं जो उसके विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के संरक्षण के लिए आवश्यक हैं। ये शक्तियां निम्नलिखित हैं:—

व्यक्तियों को, चाहे वे सभा के सदस्य हों या नहीं, सभा के विशेषाधिकार भंग या अवमानना के लिए सुपुर्द करने की शक्ति;[41]

साक्षियों को उपस्थित होने के लिए विवश करने और व्यक्ति के बुलाने एवं दस्तावेज तथा रिकार्ड मंगाने की शक्ति;[42]

अपनी प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन के विनियमन की शक्ति;[43]

अपने वाद-विवाद और कार्यवाही का प्रकाशन निषिद्ध करने की शक्ति;[44] और

अजनबियों को बाहर निकालने की शक्ति।[45]

वाक् स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार तथा न्यायालयों में कार्यवाही से उन्मुक्ति

संविधान के उपबंध : संसद के सदस्यों का वाक् स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार अनुच्छेद 105 के खंड (1) और (2) में दिया गया है, और इन खंडों में कहा गया है–

(1) इस संविधान के उपबंधों के और संसद की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों और स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए संसद में वाक् स्वातंत्र्य होगा।

(2) संसद में या उसकी किसी समिति में संसद के किसी सदस्य द्वारा कही गयी किसी बात अथवा दिये गये किसी मत के संबंध में उस के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी और किसी व्यक्ति के विरुद्ध, संसद के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के संबंध में इस प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

यह विशेषाधिकार भारतीय विधानमंडल के सदस्यों को स्पष्ट रूप से पहली बार मांटेग-चैम्सफोर्ड सुधारों के अंतर्गत दिया गया था और इसे कानूनी मान्यता दी गयी थी।[46]

---

41. *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट,* 1961, खंड-V-2, भाग-III, पृ. 51-52 (10 अप्रैल, 1954 का *राजस्थान विधान सभा का मामला)*1974, खंड-XIX-2, पृ. 42-43 और 1975, खंड-XX-1, पृ. 7-8 (लोक सभा में दर्शकों द्वारा नारे लगाना और अपने साथ हथियार ले जाना)। *होमी डी. मिस्त्री बनाम नफीसुल हसन-ब्लिट्ज केस,* आई.एल.आर. 1957 बम्बई 218; द *सर्चलाइट केस,* ए.आई.आर 1959 *एस. सी. 395; सी. सुब्रह्मण्यम का केस,* ए.आई.आर. 1968 मद्रास 10 ।
42. नियम 269 और 270, *हरीन्द्र नाथ बरूआ बनाम देवकांत बरूआ,* ए.आई.आर 1958 असम 160।
43. अनुच्छेद 118(1)।
44. द *सर्चलाइट केस।*
45. नियम 387 ।
46. भारत शासन अधिनियम की धारा 67(1) जो कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची में दी गई है।

उसके अंतर्गत विधानमंडल के सदस्य को भारतीय विधानमंडल के किसी सदन में अपने 'भाषण तथा मत' के संबंध में किसी न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति प्राप्त थी।[47] भारत शासन अधिनियम, 1935 के मूल रूप में तथा अनुकूलित रूप में और उसके बाद संविधान में 'कही गयी किसी बात या दिए गए मत' शब्दों को जोड़कर इस स्थिति को और स्पष्ट कर दिया गया।[48]

एक मामले में यह तर्क दिया गया था कि अनुच्छेद 105(2) द्वारा प्रदत्त उन्मुक्ति केवल उससे संबंधित है जो संसद के कार्य की दृष्टि से संगत हो तथा यह ऐसे किसी कार्य से संबंधित नहीं है जो उपर्युक्त दृष्टि से पूरी तरह असंगत है। इस तर्क को अस्वीकृत करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा था:

> अनुच्छेद द्वारा उन्मुक्ति (प्रदान) किए जाने के साथ-साथ "संसद में .... कही गई किसी बात" के संदर्भ में "किसी बात" शब्द की व्यापक व्याप्ति है और यह शब्द "प्रत्येक बात" का समतुल्य है। एक मात्र सीमाबद्धता "संसद में" शब्द से उत्पन्न होती है जिसका तात्पर्य है संसद की बैठक के दौरान/और संसद की कार्यवाही के दौरान। एक बार यह प्रमाणित होने पर कि संसद की बैठक जारी थी और उसकी कार्यवाही चल रही थी, उस कार्यवाही के दौरान कही गई किसी बात के आधार पर किसी भी न्यायालय में किसी भी कार्यवाही के लिए उन्मुक्ति प्राप्त है। वे जो कुछ कहते हैं वह संसद के नियमों के अनुशासन, सदस्यों की विचारशीलता एवं अध्यक्ष द्वारा कार्यवाही नियंत्रण के अध्यधीन है। इस मामले में न्यायालयों का कोई हस्तक्षेप नहीं है और वास्तव में यह होना भी नहीं चाहिए।[49]

अनुच्छेद 105(2) के उपबंध उन व्यक्तियों के संबंध में भी वैसे ही लागू होते हैं। जिन्हें संविधान के अनुसार दोनों में से किसी सदन या उसकी किसी समिति में बोलने या उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है जैसे कि संसद सदस्यों के संबंध में।[50] लेकिन यह उन्मुक्ति संसद या उसकी समिति में "कही गयी किसी बात या दिए गए मत" पर ही लागू होती है।

संसद में बोलने और कार्य करने पर कोई आपत्ति या बंधन नहीं है। लेकिन बाहरी प्रभाव या हस्तक्षेप से इस प्रकार की स्वतंत्रता का यह मतलब नहीं है कि सभा में बोलने की स्वतंत्रता अबाध तथा बिना किसी अवरोध के है। सभा में वाक् स्वातंत्र्य के अधिकार पर संविधान के

---

47. भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 28(1)।
48. देश के स्वतंत्र होने पर, भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 28(1) का अनुकूलन कर दिया गया और यह 15 अगस्त, 1947 से संविधान के लागू होने तक लागू रही।
49. *तेज किरण जैन बनाम एन. संजीव रेड्डी,* ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1573 ।
50. अनुच्छेद 105(4), अनुच्छेद 88 के अंतर्गत प्रत्येक मंत्री और भारत का महान्यायवादी दोनों में से किसी सदन, या दोनों सदनों की संयुक्त बैठकें या संसद की किसी समिति में—जिसका सदस्य वह नामित किया गया है – बोल सकता है या इसकी कार्यवाही में भाग ले सकता है, लेकिन उसे इस अनुच्छेद के कारण मत देने का अधिकार नहीं है।

उपबंधों के बंधन हैं।[51] इसके अतिरिक्त नियमों के बंधन भी हैं जिनका उद्देश्य यह है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध अकारण या निराधार आरोप न लगाए जा सकें।[52] मंत्रियों या सदस्यों द्वारा दिए गए गलत वक्तव्यों की ओर ध्यान दिलाने की प्रक्रिया पर अध्यक्ष के निदेश लागू होते हैं।[53] जब कोई सदस्य इन में से किसी प्रतिबंध का उल्लंघन करता है तो अध्यक्ष उसे अपना भाषण बंद करने के लिए कह सकता है[54] या वह सदस्य द्वारा प्रयुक्त मानहानिकारक, अशिष्ट, असंसदीय या अभद्र शब्दों को सभा की कार्यवाही से निकाले जाने का आदेश दे सकता है[55] या वह सदस्य को सभा से बाहर चले जाने का आदेश दे सकता है[56] या सदस्य को सदन की सेवा से निलम्बित करने का विषय मतदान के लिए सभा के समक्ष रख सकता है।[57]

अत: अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत सदस्यों को जो वाक् स्वातंत्र्य दिया गया है वह संविधान के केवल उन्हीं उपबंधों के अधीन है जो संसद की प्रक्रिया के विनियमन के लिए हैं। इसके अतिरिक्त इस बारे में उस पर सभा के नियम तथा स्थायी आदेश भी लागू होते हैं। लेकिन इस पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं लग सकता जो कि अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत विधि द्वारा किसी साधारण नागरिक के वाक् स्वातंत्र्य पर लगाया जा सकता है।[58]

अनुच्छेद 194[59] के खंड (1) का निर्वचन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की थी[60]—

---

51. उदाहरणार्थ *देखिए* अनुच्छेद 121 ।
52. नियम 352 और 353 ।
    पी. डिबेट्स (II), 24.9.1951 कॉ. 3243; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 1.8.1952, कॉ. 5042; 30.3.1953, कॉ. 3252-53 और 3316-17 ।
53. निदेश 115(1), *लो.स.वा.वि* (II), 22.12.1956, पृ. 1505-6; 4.12.1957, पृ. 1816; 17.3.1959, पृ. 3361 ।
54. नियम 356, *पी. डिबेट्स* (II), 29.2.1952, कॉ. 1626 ।
55. नियम 380, *लो.स.वा.वि,* 25.7.1952, कॉ. 4633; 13.3.1953, कॉ. 1531-35; 1.9.1954, कॉ. 599-600; 7.5.1970, पृ. 124-25 और 10.6.1971, पृ. 108-10 ।
56. नियम 373; एच.पी. डिबेट्स (II), 10.3.1954, कॉ. 1732; *लो.स.वा.वि.* (II), 1.4.1959, पृ. 4426 और 17.8.1959, पृ. 1488 ।
57. नियम 374, साथ ही *देखिए कामथ का मामला एल.एस. डिबेट्स* (II), 26.8.1955, कॉ. 11329-31 और *अर्जुन सिंह भदौरिया का मामला, लो.स.वा.वि.,* 9.4.1959, पृ. 5212; *एच.सी. कछवाय का मामला, लो.स.वा.वि.,* 2.5.1972, पृ. 264-65 और 3.5.1972, पृ. 115-18 ।
58. *एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्रीकृष्ण सिन्हा (सर्चलाइट केस)*, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395 ।
59. संसद के सदनों के लिए ऐसा ही उपबंध अनुच्छेद 105(1) में है।
60. *सर्चलाइट केस* (ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395, उद्धृत कृति)।

अनुच्छेद 194 के खंड (1) में विद्यमान "विधानमंडल की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले" शब्दों का अर्थ यह लेना चाहिए कि ये संविधान के उपबंधों तथा नियमों और स्थायी आदेशों को शासित करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाये तो विधानमंडल में वाक् स्वातंत्र्य, विधानमंडल की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले सांविधानिक उपबन्धों के अधीन हो जाती है। इसका अर्थ है कि यह उन अनुच्छेदों के अधीन है जो भाग 6 में प्रक्रिया के संबंध में हैं और जिनमें अनुच्छेद 208 और 211 शामिल हैं। यह बिल्कुल वैसे ही है जैसे कि अनुच्छेद 105(1) के अंतर्गत संसद में वाक् स्वातंत्र्य, इसी अर्थ में भाग 5 में दिए गए प्रक्रिया संबंधी अनुच्छेदों, जिनमें अनुच्छेद 118 और 121 शामिल हैं, के अधीन हो जाती है।

कोई सदस्य संसद में अपने भाषण और कार्य के संबंध में सभा के अनुशासन के ही अध्यधीन है और उसके विरुद्ध उनके संबंध में किसी भी न्यायालय में कोई दीवानी या फौजदारी कार्यवाही नहीं की जा सकती।[61] संसद या उसकी समिति में कही गयी किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में पूर्ण विशेषाधिकार दिया गया है ताकि सदस्य अपनी बात कहते हुए डरे नहीं और स्वतंत्र रूप से अपने विचार प्रकट कर सकें। इसलिए सदस्यों को न्यायालयों की कार्यवाही से पूर्ण संरक्षण प्रदान किया गया है, चाहे वे जानते हों कि उन्होंने जो कुछ कहा है वह झूठ है तथा द्वेष की भावना से कहा है।[62] चाहे सभा में किसी सदस्य के भाषण से न्यायालय की अवमानना होती हो परन्तु उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती, क्योंकि सभा में दिए गए भाषण विशेषाधिकार के अंतर्गत आते हैं।[63] सभा में कही गई किसी भी बात या किया गया कार्य ऐसा मामला है जिसके संबंध में सभा ही विचार कर सकती है।[64] इसी सिद्धान्त के आधार पर एक राज्य की विधानसभा में उसके सदस्य द्वारा दिए गए भाषण के संबंध में, जिसमें संसद सदस्यों पर कथित रूप से आक्षेप किए गए थे, लोक सभा में विशेषाधिकार भंग के लिए कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दी गयी।[65]

---

61. *एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्रीकृष्ण सिन्हा,* *ए.आई.आर.* 1959 एस.सी. 395; *सुरेश चंद्र बनर्जी बनाम पुनीत गोआला,* ए.आई.आर. 1951 कलकत्ता 176; *सुरेन्द्र महंती बनाम नवकृष्ण चौधरी और अन्य,* ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168; *भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के मामले में* ए.आई.आर. 1965, एस.सी. 745; और *तेज किरन जैन बनाम एन. संजीव रेड्डी,* ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1573 ।

62. *सुरेश चंद्र बनर्जी बनाम पुनीत गोआला,* ए.आई.आर. 1951 कलकत्ता 176 ।

63. *सुरेन्द्र महंती बनाम नवकृष्ण चौधरी और* अन्य, ए.आई.आर. 1958 उड़ीसा 168 ।

64. *पूर्वोक्त।*

65. *लो.स.वा.वि.,* 26.3.1959, पृ. 3975-76; राज्य विधान सभाओं में इसी प्रकार के उदाहरणों के लिए *देखिए* प्रिविलेजिस डाईजेस्ट 1971, खंड XVI, 1, पृ. 23-24; 1973, खंड XVIII, 2, पृ. 24-25; और 1975, खंड XX, 2, पृ. 46-47 ।

अत: संविधान के अनुच्छेद 105 के खंड(1), और खंड (2) में किए गए स्पष्ट संवैधानिक उपबंध सभा में कही गई किसी भी बात या उसकी रिपोर्टों के प्रकाशन के संबंध में किसी न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति और वाक् स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार के संबंध में सम्पूर्ण तथा निर्णायक संहिता हैं। अतएव जो भी बात इन उपबंधों के क्षेत्र से बाहर हो, उसके संबंध में न्यायालय देश की विधि के अनुसार कार्यवाही कर सकते हैं। अत: यदि कोई सदस्य ऐसे प्रश्नों को प्रकाशित करता है जिन्हें अध्यक्ष ने अस्वीकार कर दिया है और जो मानहानिकारक हैं तो उसके विरुद्ध मानहानि संबंधी कानून के अंतर्गत न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है।[66]

वाक् स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार को बनाए रखना : प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है कि वह कोई ऐसा काम न करे जिसका उसके वाक् स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, जैसा कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स ने 15 जुलाई, 1947 को एक संकल्प के माध्यम से घोषणा की थी–

> यदि कोई सदस्य किसी बाहरी संस्था या निकाय के साथ कोई ऐसी संविदा करता है जिससे संसद में उस सदस्य की स्वतंत्रता और कार्य करने की स्वतंत्रता पर कोई बंधन या नियंत्रण लगता हो या जिसमें यह कहा गया हो कि वह किसी भी रूप में, सभा में किए जाने वाले किसी काम में उस निकाय के प्रतिनिधि के रूप में काम करेगा तो यह सभा की गरिमा और उस सदस्य की अपने निर्वाचकों के प्रति जिम्मेदारी और सभा में वाक् स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार के अनुरूप नहीं होगा क्योंकि सदस्य की जिम्मेदारी अपने निर्वाचकों तथा सारे देश के प्रति है न कि उसके किसी वर्ग विशेष के प्रति।[67]

संसद की कार्यवाही से सम्बद्ध साक्षियों आदि का संरक्षण

साक्षियों, याचिकादाताओं और उनके वकीलों को, जो किसी सदन या उसकी किसी समिति के सामने पेश होते हैं, अनुच्छेद 105 (3) के अंतर्गत उनके द्वारा सभा या उसकी समिति में कही गयी बातों के आधार पर मुकदमों तथा उत्पीड़न से संरक्षण प्रदान किया गया है। इस विशेषाधिकार को सभा के वाक् स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार का ही विस्तार समझना चाहिए, क्योंकि इसका प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि सभा को जो जानकारी दी जाए वह निर्बाध रूप से और बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के दी जाए।

---

66. *जतीश चंद्र घोष के मामले में,* ए.आई.आर. 1956 कलकत्ता 433-37 ।

67. *एच.सी. डिबेट्स* (1946-47), 440 कॉ. 284-355; साथ ही *देखिए* एच.सी. 118 (1946-47) जिसमें *मि. ब्राउन और सिविल सर्विस क्लैरिकल एसोसिएशन के मामले पर* विशेषाधिकार समिति की रिपोर्ट है, पृ. XII, पैरा 13; और एच.सी, 85 (1943-44) *मि. राबिनसन और नेशनल यूनियन ऑफ डिस्ट्रीब्यूटिव एण्ड एलाइड वर्कर्स का मामला।*

जिन व्यक्तियों ने सभा की किसी समिति के सामने साक्ष्य दिया हो यदि उनके द्वारा कही गयी बातों के आधार पर उनका उत्पीड़न किया जाए या उन्हें धमकी दी जाए तो सभा इसे विशेषाधिकार का भंग समझती है।[68]

किसी याचिका भेजने वाले या उसके वकील का सभा को याचिका देने पर[69] या वकील के रूप में कार्य करने पर उत्पीड़न[70] किया जाए तो वह भी सभा की अवमानना है।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति के विरुद्ध इस आधार पर कानूनी कार्यवाही की जाए कि उसने सभा या उसकी किसी समिति की कार्यवाही के दौरान कोई साक्ष्य दिया है, तो उसे सभा विशेषाधिकार का भंग समझती है।[71] इसके अतिरिक्त सभा की किसी समिति के सामने दिए गए साक्ष्य के दौरान कही गयी बातों के आधार पर यदि किसी के विरुद्ध अपमान वचन का मुकदमा किया जाए, तो न्यायालय द्वारा उसे नहीं सुना जाएगा।[72]

अजनबियों को बाहर निकालने का अधिकार

प्रत्येक सदन को अजनबियों को बाहर निकालने और बंद कमरे में वाद-विवाद करने का अधिकार है। यह अधिकार तो वाक् स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार का तर्कसंगत परिणाम है क्योंकि इसके कारण जब भी आवश्यक हो, सभा स्वतंत्र वाद-विवाद के लिए अकेले में बैठ सकती है। जैसाकि उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है[73]:

> .... सभा (ब्रिटेन का हाउस ऑफ कामन्स) जिस वाक् स्वातंत्र्य का दावा करती है और जो उसे सम्राट ने दे रखी है, उसकी सुरक्षा आवश्यक होने पर वाद-विवाद की गोपनीयता द्वारा सुनिश्चित की जाती है और वाद-विवाद का संरक्षण वाद-विवाद तथा कार्यवाही के प्रकाशन का निषेध करके तथा अजनबियों को बाहर निकालकर किया जाता है... (अजनबियों को निकालने के) इस अधिकार का प्रयोग 1923 में किया गया और उसके बाद 18 नवम्बर, 1958 को। इससे पता चलता है कि अवसर पड़ने पर अजनबियों को सभा से निकालकर वाद-विवाद को गुप्त रखने और इस प्रकार अपनी सुरक्षा करने का उत्साह हाउस ऑफ कामन्स में कम नहीं हुआ है।

---

68. *ग्रेफी का मामला, पार्लियामेंटरी डिबेट्स* (1819) 39, कॉ. 976-77, 978-81; 986-87; *पैरट का मामला, पार्लियामेंटरी डिबेट्स* (1845) 81, कॉ. 1446; *कैम्ब्रियन रेलवे डायरेक्टरों का मामला, पार्लियामेंटरी डिबेट्स* (1892), 5, कॉ. 595-698, 883; के. *रवीन्द्रन का मामला, लो.स.वा.वि.*, 10.7.1980, पृ. 136-37 ।
69. मे, 24वां संस्करण पृष्ठ 267
70. *पूर्वोक्त* ।
71. *फिलिप तथा अन्यों का मामला, पार्लियामेंटरी डिबेट्स* (1845), 81, कॉ. 1436 ।
72. मे, 21वां संस्करण, पृ. 132 ।
73. *एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्रीकृष्ण सिन्हा* (*सर्चलाइट केस*), ए.आई.आर. 1959, एस.सी. 395।

> अजनबियों को बाहर निकालने का उद्देश्य यह है कि सभा में वाद-विवाद तथा कार्यवाही के प्रकाशन का निषेध किया जाए....

लोक सभा के अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि जब वह उचित समझे, वह अजनबियों को सभा के किसी भी भाग से चले जाने के लिए कह सकता है।[74] सभा को किसी गुप्त बैठक के दौरान सभा भवन, लॉबी या दीर्घाओं में किसी अजनबी को नहीं रहने दिया जाता है।[75]

यदि कोई अजनबी सभा के परिसर के किसी ऐसे भाग में पाया जाए जो सदस्यों के लिए सुरक्षित है या कोई अजनबी संसद भवन के परिसर मे कदाचार करे या उस समय बाहर न जाए जब कि सभा की बैठक के दौरान सभी अजनबियों को बाहर जाने के लिए कहा जाए तो उसे सभा के परिसर से निकाला जा सकता है या लोक सभा का अपर सचिव, संयुक्त सचिव, सुरक्षा, उसे हिरासत में ले सकता है।[76]

कार्यवाही के प्रकाशन पर नियंत्रण का अधिकार

संसद के वाद-विवाद या कार्यवाही के वृत्तान्त के प्रकाशन पर प्रत्येक सदन का नियन्त्रण है। दोनों सदनों को अधिकार है कि वे इस वृत्तान्त के प्रकाशन का निषेध कर सकते हैं। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के अलावा यह टिप्पणी भी की है:

> हमारे संविधान में स्पष्ट रूप से यह उपबंध किया गया है कि जब तक कि संसद या राज्य के विधानमंडल, जैसी भी स्थिति हो, सभा उसके सदस्यों तथा उसकी समितियों को शक्तियों, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियों की परिभाषा करने के लिए कानून नहीं बनाती, उसकी शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां वही होंगी जो कि हाउस ऑफ कॉमन्स की हमारे संविधान के प्रारंभ होने की तिथि को थी। उस समय ये सभी शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां हाउस ऑफ कामन्स को प्राप्त थीं, यह देखकर भी यदि हम उन शक्तियों, विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों से अपने सदनों को वंचित कर दें तो वह संविधान का निर्वचन करना नहीं होगा बल्कि उसे नए सिरे से लिखने वाली बात होगी।[77]

सभा की अपने वाद-विवाद तथा कार्यवाही के प्रकाशन पर नियंत्रण रखने, और आवश्यक हो तो, उस प्रकाशन का निषेध करने की शक्ति का मुख्य उद्देश्य यह है कि जब भी आवश्यक हो, वाद-विवाद को गुप्त रख कर वाक् स्वतंत्रता की रक्षा की जाए। यह शक्ति संविधान द्वारा व्यक्तियों को दिए गए वाक् स्वातंत्र्य के सामान्य अधिकार से ऊपर है।[78]

---

74. नियम 387, साथ ही *देखिए* अध्याय 33–'लोक सभा में अजनबियों का प्रवेश'।
75. नियम 248(2), साथ ही *देखिए* अध्याय 17–'सभा की बैठकें'।
76. नियम 387 क, प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1976, खंड XXI, 1, पृ. 15, राजस्थान विधान सभा में अजनबी का अनधिकृत प्रवेश।
77. *एम.एस.एम. शर्मा,* बनाम *श्रीकृष्ण सिन्हा,* ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395 ।
78. *पूर्वोक्त* ।

लोक सभा में महासचिव, अध्यक्ष के निदेशानुसार, सभा की कार्यवाही का पूरा वृत्तान्त तैयार कराने और उसे प्रकाशित कराने के लिए प्राधिकृत है।[79] अध्यक्ष सभा के कार्य के संबंध में किसी पत्र, दस्तावेज या प्रतिवेदन अथवा पटल पर रखे गए या सभा या उसकी किसी समिति के सामने प्रस्तुत किए गए किसी पत्र, दस्तावेज या प्रतिवेदन के मुद्रण, प्रकाशन, वितरण तथा बिक्री के लिए प्राधिकृत कर सकता है। ऐसा मुद्रण, प्रकाशन, वितरण तथा बिक्री इस संबंध में संविधान के उपबंधों के अर्थ में, सभा के प्राधिकार के अंतर्गत किया गया समझा जाता है।[80] यदि यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या कोई पत्र, दस्तावेज या प्रतिवेदन सभा के कार्य से संबंधित है या नहीं तो उस प्रश्न को अध्यक्ष को निर्दिष्ट किया जाता है जिसका विनिश्चय अन्तिम होता है।[81]

किसी व्यक्ति द्वारा संसद के किसी सदन की किन्हीं कार्यवाहियों के सारतः सही विवरण के किसी समाचारपत्र में प्रकाशन को न्यायालय में दीवानी या फौजदारी कार्यवाही से संविधान के अंतर्गत तब तक संरक्षण प्रदान किया गया है जब तक यह साबित नहीं कर दिया जाता है कि प्रकाशन विद्वेषपूर्वक किया गया है।[82] संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1977 के अंतर्गत भी संसद की कार्यवाही से सारतः सही विवरण के समाचार पत्रों में प्रकाशन तथा बेतार तार यांत्रिकी के माध्यम से प्रसारण को सांविधिक संरक्षण प्रदान किया गया है।[83]

यदि कोई सदस्य सभा में दिए गए अपने भाषण को वाद-विवाद से अलग प्रकाशित करता है तो वह एक अलग प्रकाशन बन जाता है जिसका सभा की कार्यवाही से कोई संबंध नहीं है और उसमें उल्लिखित मानहानि संबंधी किसी बात के लिए उसे प्रकाशित करने वाला सदस्य देश की विधि के अंतर्गत उत्तरदायी हो जाता है।[84]

प्रत्येक सभा को अपनी कार्यवाही की वैधता का निर्णय करने का सम्पूर्ण अधिकार

संसद, संविधान की सीमाओं में रहते हुए प्रभुसत्तासम्पन्न है। सभा को किसी बाहरी संस्था के हस्तक्षेप के बिना अपना काम करने का अंतर्निहित अधिकार है। संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सभा में किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिये गये किसी मत के संबंध में न्यायालयों का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। सभा को अपनी कार्यवाही की वैधता का निर्णय करने का अनन्य अधिकार प्राप्त है।[85]

---

79. नियम 379 ।
80. अनुच्छेद 105(2) ।
81. नियम 382 ।
82. अनुच्छेद 361क, संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा अन्तःस्थापित।
83. संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1977, धारा 3 और 4; फरवरी, 1976 और अप्रैल, 1977 के बीच अधिनियम निरस्त रहा।
84. *सम्राट* बनाम *क्रीवे* आई.एम. एण्ड एस. 373 ।
85. *सुरेन्द्र महंती* बनाम *नवकृष्ण चौधरी और अन्य* (ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168) आई.एल. आर. 1958, कटक 195 ।

इसके अतिरिक्त, सभा को सामूहिक रूप से यह विशेषाधिकार भी प्राप्त है कि वह किसी न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना यह फैसला करे कि उसे किन-किन विषयों पर विचार करना है और किस क्रम में:

> ... यह सभी जानते हैं कि अध्यक्ष को किसी प्रश्न विशेष पर विचार करने की अनुमति देने से रोकने, या विधानमंडल के किसी भी सदन की विधायी प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने या दोनों में से किसी भी सदन में चर्चा या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से किये गये किसी रिट, निदेश या आदेश जारी करने की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सकता।[86]

सभा अपने लिये निर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिए किसी बाहरी प्राधिकार के प्रति जिम्मेदार नहीं है। वह अपने विवेकाधिकार से उस प्रक्रिया से हटकर कार्य कर सकती है।[87]

संसद की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा। संसद का कोई अधिकारी या सदस्य, जिसमें इस संविधान द्वारा या इसके अधीन संसद में प्रक्रिया या कार्य संचालन का विनियमन करने की अथवा व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियां निहित हैं, उन शक्तियों के अपने द्वारा प्रयोग के विषय में किसी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं होगा।[88] इस संबंध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने फैसला दिया था कि–

> ... यह न्यायालय, किसी भी अर्थ में, विधानमंडल या अध्यक्ष के विनिर्णय के विरुद्ध अपील या पुनरीक्षण का न्यायालय नहीं है। बहुत प्रतिष्ठित पद पर आसीन होने के नाते अध्यक्ष पर ही सभा की प्रतिष्ठा तथा गरिमा बनाये रखने की अनन्य जिम्मेदारी है।
>
> .... इस न्यायालय का सभा के आंतरिक मामलों पर प्रभाव डालने वाले किसी विषय के संबंध में कोई रिट, निदेश या आदेश जारी करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है।[89]

---

86. *राजनारायण सिंह* बनाम *आत्माराम गोविंद खेर,* ए.आई.आर. 1954, इलाहाबाद 319; *हेमचन्द्र सेनगुप्ता* बनाम *अध्यक्ष पश्चिम बंगाल विधान सभा,* ए.आई.आर. 1956, कलकत्ता 378; *सी. श्रीकृष्ण* बनाम *हैदराबाद स्टेट और अन्य,* ए.आई.आर 1956, हैदराबाद 186 ।

87. नियम 388 ।

88. अनुच्छेद 122, राज्य विधानमंडलों के मामले में अनुच्छेद 212 ।

89. *राजनारायण सिंह* बनाम *आत्माराम गोविंद* खेर, ए.आई.आर. 1954, इलाहाबाद 319, साथ ही *देखिए बिहार राज्य* बनाम *कामेश्वर सिंह,* ए.आई.आर. 1952, एस.सी. 252; *श्रद्धाकर* बनाम *उड़ीसा विधान सभा,* ए.आई.आर. 1952, उड़ीसा 234; *सी. श्रीकृष्ण* बनाम *हैदराबाद स्टेट और अन्य* ए.आई.आर. 1956, हैदराबाद 186; *हेमचन्द्र सेनगुप्ता और अन्य* बनाम *अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान सभा,* ए.आई.आर. 1956, कलकत्ता 378; *गोदावरिस मिश्र* बनाम *नंद किशोर दास,* ए.आई.आर. 1953 उड़ीसा 111; *राम दुबे* बनाम *मध्य भारत सरकार,* ए.आई.आर. 1952 मध्य भारत 57 ।

तथापि केरल उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने यह फैसला दिया था कि:

> संविधान के अनुच्छेद 212(1) में परिकल्पित उन्मुक्ति अनियमित प्रक्रिया की शिकायत के मामले तक ही सीमित है। यदि अक्षेपित कार्यवाही को अवैध अथवा असंवैधानिक करार देते हुए चुनौती दी जाए तो ऐसी कार्यवाही की न्यायालय द्वारा संवीक्षा की जा सकती है।[90]

सभा का सदस्यों को संसद में उनके आचरण पर दण्ड देने का अधिकार

प्रत्येक सदन को अपनी बैठक के दौरान सदस्यों द्वारा अव्यवस्थापूर्ण आचरण तथा अन्य अवमाननाओं के लिए दण्ड देने का अधिकार प्राप्त है।[91] यह शक्ति सभा को इसलिए प्राप्त है कि उसे सभा में उठाये जाने वाले सभी मामलों के सम्बन्ध में सभा के अंदर संज्ञान लेने के अनन्य अधिकार के साथ-साथ "अपने भीतरी मामलों के विनियमन" करने का अधिकार प्राप्त है।

> इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि "यदि किसी विधान सभा को अपने विशेषाधिकार भंग करने वालों को दंड देने की शक्ति न हो, या वह अपने सदस्यों पर अनुशासन संबंधी विनियम लागू न कर सके या अपने आदेशों का पालन न करवा सके तो वह अपने श्रेष्ठ कर्त्तव्यों का पालन समुचित रूप से नहीं कर पायेगी।[92]
>
> इसके अतिरिक्त उड़ीसा विधान सभा में दिये गये एक भाषण के आधार पर हुई न्यायालय की अवमानना पर कार्यवाही के एक मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया था कि "सभा में जो कुछ भी कहा जाये या किया जाये, वह ऐसा मामला है जिस पर स्वयं सभा ही कार्यवाही कर सकती है"। न्यायालय ने यह भी कहा कि विधानमंडल या अध्यक्ष को "किसी ऐसे सदस्य के विरुद्ध उपयुक्त कार्यवाही करने की शक्ति है, जो अनुच्छेद 194 के खण्ड (1) के अंतर्गत अपने वाक् स्वातंत्र्य के अधिकार का प्रयोग करते समय उस खण्ड में निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करता है"।[93]

अध्यक्ष जो सभा में व्यवस्था बनाये रखता है उसे "अपने विनिर्णयों के प्रवर्तन के प्रयोजन के लिए सब आवश्यक शक्तियां प्राप्त हैं"।[94] अध्यक्ष तथा सभा की अनुशासन संबंधी शक्तियां अंशत: नियमों में ही दी गई हैं। नियमों में यह उपबन्ध किया गया है कि जिस किसी सदस्य का व्यवहार घोर अव्यवस्थापूर्ण हो या अध्यक्षपीठ के प्राधिकार की उपेक्षा करे या जो हठपूर्वक और जानबूझकर सभा के कार्य में बाधा डाल कर सभा के नियमों का दुरुपयोग करे उसे अध्यक्ष बाहर जाने को कह सकता है या सभा से निलम्बित कर सकता है।[95]

---

90. *केरल राज्य* बनाम *आर. सुदर्शन बाबू और* अन्य, आई.एल.आर. (केरल) 1983, पृ. 661-70।
91. *देखिए* अनुच्छेद 105(3)।
92. *राजनारायण सिंह* बनाम *आत्माराम गोविंद खेर,* ए.आई.आर. 1954, इलाहाबाद 319 ।
93. *सुरेन्द्र महंती* बनाम *नवकृष्ण चौधरी* और *अन्य,* ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168 ।
94. नियम 378 ।
95. नियम 373 और 374 ।

हरियाणा विधान सभा के किसी सदस्य द्वारा दायर की गई रिट याचिका के संबंध में पंजाब तथा हरियाणा के उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की थी कि प्रक्रिया तथा कार्य संचालन को विनियमित करने की अध्यक्ष की शक्ति के बारे में किसी न्यायालय द्वारा आपत्ति नहीं की जा सकती और न्यायालय सदन की प्रक्रियागत अनियमितताओं की जांच करने के लिए सक्षम नहीं है।[96]

संसद में कार्यवाही

"संसद में कार्यवाही" या "संसद में कही गई किसी बात"—इन शब्दों को अभी तक किसी न्यायालय ने स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया है। तथापि पारिभाषिक शब्दों के रूप में इनका निर्वचन व्यापक रूप से यह किया गया है कि इन में कोई भी औपचारिक कार्यवाही, जिसमें सामान्यतया सभा द्वारा सामूहिक रूप से किये गये निर्णय आ जाते हैं और कार्य के वे रूप शामिल हैं जिनमें सभा कार्यवाही करती है और इसमें वह सारी प्रक्रिया भी है जिसका मुख्य अंग वाद-विवाद है जिसके द्वारा सभा निर्णय करती है। अत: इन शब्दों का अर्थ मात्र भाषणों या वाद-विवाद से कहीं अधिक व्यापक है।

"संसद में कार्यवाही" पदावली में प्रश्न का पूछना और उस प्रश्न, प्रस्ताव, विधेयक अथवा किसी अन्य मामले की लिखित सूचना देना शामिल है। इसके अतिरिक्त इसमें किसी भी सदस्य द्वारा किसी भी सभा की समिति में उसके सदस्य होने के नाते अपने कृत्यों के निर्वहन में कही या की गई बात तथा दोनों में से किसी भी सभा में संसदीय कार्य के करने के संबंध में कही गई प्रत्येक बात शामिल है।[97]

इस संबंध में उड़ीसा उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की थी:

> ऐसा लगता है कि संसदीय प्रथा के अनुसार "संसद की कार्यवाही" शब्दों का प्रयोग संसद के सत्र के दौरान होने वाली कार्यवाही के लिये ही नहीं किया जाता, बल्कि इसके अन्तर्गत कुछ प्रारम्भिक कार्य भी आ जाते हैं जैसे कि प्रश्नों की या संकल्पों आदि की सूचनाएं देना। सम्भवत: इस शब्दावली के अर्थ को व्यापकता इस कारण प्रदान की गई है कि जब किसी प्रश्न की सूचना दी जाती है और अध्यक्ष उसे स्वीकार या अस्वीकार कर देता है तो यह समझना चाहिए कि वे प्रश्न संसद के सत्र में वास्तव में पूछे गये और, यथास्थिति, स्वीकार या अस्वीकार कर दिये गये।[98]

---

96. *देखिए, एच.सी.* 101 (1938-39), पृ. IV-V।

97. *जय सिंह राठी* बनाम *हरियाणा राज्य,* ए.आई.आर. 1970, पंजाब और हरियाणा 379; साथ ही *देखिए, केरल उच्च न्यायालय का मामला, उद्धृत कृति*।

98. *गोदावरिस मिश्र* बनाम *नंद किशोर दास,* ए.आई.आर. 1953, उड़ीसा 111 ।

जहां किसी प्रश्न या संकल्प की लिखित सूचना देने को "संसद की कार्यवाही" समझा जाता है वहीं यदि कोई सदस्य किसी सार्वजनिक विषय पर सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए किसी मंत्री को कोई पत्र लिखता है तो उसे 'संसद की कार्यवाही' नहीं समझा जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संविधान के अंतर्गत, "संसद में किसी कार्यवाही की विधिमान्यता प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता के आधार पर प्रश्नगत नहीं की जा सकती"।[99]

संसद की कार्यवाही के संबंध में न्यायालयों में साक्ष्य

सदन में या उसकी किसी समिति की कार्यवाही के संबंध में किसी न्यायालय में साक्ष्य देने या सदन अथवा उसकी समिति की कार्यवाही के संबंध में या उस सदन के अधिकारियों की अभिरक्षा में रखे किसी दस्तावेज को न्यायालय में पेश करने के लिए उस सभा की अनुमति जरूरी है। दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति की पहली रिपोर्ट में कहा गया था कि "सभा की अनुमति पहले से लिये बिना सभा के किसी सदस्य या अधिकारी को, सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाही के संबंध में न्यायालय में साक्ष्य नहीं देना चाहिए और न सभा की कार्यवाही से संबंधित या महासचिव की अभिरक्षा में रखे किसी दस्तावेज को पेश करना चाहिए"।[100]

जब सभा का सत्र न चल रहा हो तो अध्यक्ष, आपातिक मामलों में, न्यायालय में किसी संगत दस्तावेज के पेश किये जाने की अनुमति दे सकता है जिससे कि न्याय मिलने में कोई विलम्ब न हो और बाद में जब सभा की बैठक हो उस समय, या संसदीय समाचार के माध्यम से, सभा को इस बात की सूचना दे सकता है।[101] लेकिन यदि उस मामले का संबंध किसी विशेषाधिकार के प्रश्न से हो, विशेषकर साक्षी के विशेषाधिकार से या किसी दस्तावेज के पेश किये जाने का मामला हो, जिसके संबंध में अध्यक्ष यह समझे कि यह तो सभा के विवेकाधिकार का मामला है, तो अध्यक्ष सभा की अनुमति के बिना ही अपेक्षित अनुज्ञा देने से इनकार कर सकता है।[102]

जब भी सभा या उसकी किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित किसी दस्तावेज के किसी न्यायालय में पेश किये जाने की जरूरत हो तो न्यायालय या मुकदमे के पक्षकारों को सभा से प्रार्थना करनी पड़ती है और ठीक-ठीक बताना पड़ता है कि कौन से दस्तावेजों की

---

99. अनुच्छेद 122(1)।

100. पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) जो सभा ने 13.9.1957 को स्वीकार किया था; *लो.स.वा.वि.,* 13.9.1957, पृ. 6245-46 । पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-आठवीं लोक सभा) जो सभा ने 6.5.1988 को स्वीकार किया था; *देखिए लो.स.वा.वि.* 6.5.1988, कॉ. पृ. 166-67।

    जहां न्यायालय में पेश किया जाने वाला दस्तावेज सचिवालय के किसी अधिकारी के सेवा रिकार्ड से संबंधित किसी प्रशासनिक मामले के बारे में हो तो अध्यक्ष नियम 383 के अधीन स्वयं आवश्यक अनुज्ञा दे सकता है।

101. समाचार-भाग 2 में एक पैरा संसद सदस्य श्री शंकर देव के मामले के संबंध में 28 अक्तूबर, 1957 को जारी किया गया था।

102. पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) पैरा 8; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.* 13.9.1957, पृ. 6245-46 ।

जरूरत है, किस प्रयोजन के लिये उनकी जरूरत है और किस तिथि तक उन्हें पेश किया जाना चाहिए। प्रत्येक मामले में स्पष्ट रूप से यह भी बताना पड़ता है कि क्या उस दस्तावेज की प्रमाणित प्रति ही भेजी जाए या कि उसे सभा का अधिकारी न्यायालय के सामने पेश करे।[103]

विशेषाधिकार समिति की उपरोक्त सिफारिशों और सभा में उन पर हुई चर्चा के अनुसरण में भारत सरकार ने सभी राज्य सरकारों से कहा था कि वे अपने-अपने उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों से इस संबंध में परामर्श करें ताकि निम्नलिखित मुद्दों पर उपयुक्त निदेश जारी किये जा सकें:–

> कि जब संसद के रिकार्ड न्यायालय में पेश करने हों तो सम्बोधन का उचित रूप अपनाया जाए;
>
> कि अधिकतर मामलों में कम से कम पहली बार में, दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां मंगाना ही काफी होगा, और मूल दस्तावेज बाद में तभी मांगे जायें जब दोनों पक्ष उनके सुनिश्चित प्रमाण पर बल दें;
>
> कि न्यायालयों को यह याद रखना चाहिए कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 78(2) के उपबन्धों के अंतर्गत विधानमंडलों की कार्यवाही को अधिकृत संसदीय प्रकाशनों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। और उन्हें यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि संसद को दस्तावेजों के लिए तभी कष्ट दिया जाए जब कि संसद की अभिरक्षा में विद्यमान अप्रकाशित दस्तावेजों की आवश्यकता साक्ष्य में हो।

न्यायालय द्वारा सभा से संसद के रिकार्ड पेश करने या सभा के अधिकारियों से न्यायालय में जाकर मौखिक साक्ष्य देने के लिये अनुरोध के प्रयोजन हेतु उनके प्रयोग के लिए अनुरोध पत्र का एक विशेष प्रपत्र विहित किया है।

जब लोक सभा के सत्र के दौरान किसी न्यायालय से, सभा या उसकी समितियों की कार्यवाही से संबंधित किसी दस्तावेज अथवा महासचिव की अभिरक्षा में रखे किसी दस्तावेज को पेश करने का अनुरोध प्राप्त होता है[104] तो अध्यक्ष उस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप देता है। समिति की रिपोर्ट आने पर, समिति का सभापति या कोई सदस्य सभा में इस आशय का प्रस्ताव रखता है कि सभा उस रिपोर्ट से सहमत है और सभा के निर्णय के अनुसार आगे कार्यवाही की जाती है।[105]

---

103. पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—दूसरी लोक सभा)।

104. सभा तथा उसकी किसी समिति के अथवा सचिवालय संबंधी सभी अभिलेख, दस्तावेज तथा पत्र महासचिव की अभिरक्षा में रहते हैं और ऐसे अभिलेखों, दस्तावेज या पत्रों को अध्यक्ष की अनुज्ञा के बिना संसद भवन से बाहर नहीं ले जा सकते। नियम 383 ।

105. पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—दूसरी लोक सभा) *उद्धृत कृति,* पैरा 10 और 11; साथ ही *देखिए* दूसरा प्रतिवेदन और दसवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा), नौवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—चौथी लोक सभा) *और लो.स.वा.वि.,* 26.11.1969, पृ. 130 ।

एक प्रश्न यह उठाया गया था कि क्या ऐसे प्राप्त सभी अनुरोधों को विशेषाधिकार संबंधी समिति को सौंपना आवश्यक था और क्या अध्यक्ष स्वयं इसकी अनुमति नहीं दे सकता। अध्यक्ष ने अनुच्छेद 105(3) के उपबंधों के अंतर्गत यह उचित समझा कि वर्तमान प्रक्रिया का अनुसरण जारी रखा जाये।[106]

विशेषाधिकार समिति, चौदहवीं लोक सभा ने यह महसूस किया कि विशेषकर सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रावधानों के आलोक में सभा, उसकी समितियों, आदि की कार्यवाही से संबंधित दस्तावेजों हेतु न्यायालयों और जांच एजेंसियों से प्राप्त अनुरोधों पर कार्यवाही करने की प्रक्रिया की समीक्षा करने की आवश्यकता है। समिति ने अध्यक्ष की अनुमति से इस मामले को विचारार्थ लिया। इस मामले से संबंधित बारहवां प्रतिवेदन अध्यक्ष, लोक सभा को 28 अप्रैल, 2008 को प्रस्तुत किया गया और सभा पटल पर 30 अप्रैल, 2008 को रखा गया। सभा द्वारा यह प्रतिवेदन 23 अक्तूबर, 2008 को स्वीकार किया गया।

समिति ने अपने प्रतिवेदन में निम्नलिखित सिफारिशें कीं :

(i) *सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाहियों से संबंधित दस्तावेज प्राप्त करने हेतु अनुरोध करने की प्रक्रिया।*

(क) यदि न्यायालय अथवा न्यायालय में चल रही कानूनी कार्यवाहियों से संबंधित किसी पक्ष द्वारा, सभा अथवा किसी समिति की कार्यवाहियों से संबंधित दस्तावेज प्राप्त करने के लिए अनुरोध किया जाता है, तो न्यायालय अथवा कार्यवाहियों से संबंधित पक्ष, जैसी भी स्थिति हो, अपेक्षित दस्तावेजों, प्रयोजन, जिसके लिए दस्तावेज चाहिए तथा तिथि, जब तक वह दस्तावेज चाहिएं, संबंधी ब्यौरा देंगे। प्रत्येक मामले में विशेष रूप से यह भी बताया जाना चाहिए कि क्या केवल प्रमाणित प्रतियां अथवा दस्तावेजों की फोटोप्रतियां भेजी जानी चाहिएं अथवा सभा के किसी अधिकारी द्वारा उन्हें न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(ख) यदि पुलिस, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो आदि जैसी जांच एजेंसियों द्वारा सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाहियों से संबंधित दस्तावेज प्राप्त करने हेतु अनुरोध किया जाता है तो वह अपेक्षित दस्तावेजों, प्रयोजन जिसके लिए वह दस्तावेज चाहिए तथा तिथि, जिस तक वह दस्तावेज चाहिए, के संबंध में ब्यौरा देंगे।

(ii) *सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाहियों से संबंधित दस्तावेज प्राप्त करने संबंधी अनुरोधों पर कार्यवाही करने की प्रक्रिया*

(क) (i) यदि अनुरोध न्यायालय अथवा न्यायालय में चल रही कार्यवाहियों से संबंधित किसी पक्ष द्वारा किया जाता है और सभा का सत्र नहीं चल रहा है तो अध्यक्ष

---

106. *लो.स.वा.वि.,* 25.4.1958, कॉ. पृ. 5433-37 ।

आपातिक मामलों में, न्याय प्रक्रिया में विलंब को रोकने के लिए न्यायालय में संगत दस्तावेज प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकता है और सभा के समवेत होने पर तद्नुसार सूचित कर सकता है।

(ii) यद्यपि, यदि अध्यक्ष को ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे किसी अनुरोध में विशेष रूप से सभा, सभा की किसी समिति, किसी सदस्य अथवा साक्षी के विशेषाधिकार का कोई प्रश्न सन्निहित है अथवा उसे ऐसा प्रतीत होता है कि दस्तावेज प्रस्तुत किया जाना स्वयं सभा के संविवेक का विषय है, तो वह इस तथ्य के बावजूद कि सभा का सत्र नहीं चल रहा है, अपेक्षित अनुमति प्रदान करने से मना कर सकता है और मामले की जांच करने और उस पर प्रतिवेदन तैयार करने हेतु विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।

(iii) यदि ऐसा अनुरोध सभा के सत्र के दौरान किया जाता है तो अध्यक्ष अनुरोध को विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।

(iv) यदि अनुरोध में, किसी संसद सदस्य अथवा किसी अधिकारी को सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाहियों के संबंध में साक्ष्य देने हेतु दस्तावेजों के बिना अथवा उनके साथ न्यायालय में प्रस्तुत होना अपेक्षित है, तो अध्यक्ष, मामले को, चाहे सभा का सत्र चल रहा हो अथवा नहीं, विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।

(ख)(i) यदि अनुरोध, पुलिस, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो आदि जैसी किसी जांच एजेंसी द्वारा किया जाता है, तो अध्यक्ष मूल दस्तावेज उन्हें सौंपे बिना अपेक्षित दस्तावेजों की फोटोप्रतियां या फोटोग्राफ लेने की अनुमति दे सकता है।

(ii) यद्यपि, यदि अध्यक्ष को ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे किसी अनुरोध में विशेष रूप से सभा, सभा की किसी समिति, किसी सदस्य अथवा साक्षी के विशेषाधिकार का कोई प्रश्न सन्निहित है अथवा उसे ऐसा प्रतीत होता है कि दस्तावेज प्रस्तुत किया जाना स्वयं सभा के संविवेक का विषय है अथवा जांच एजेंसी लिखित रूप से निर्दिष्ट किए जाने वाले कारणों हेतु मूल दस्तावेज प्राप्त करने पर जोर देती है, अथवा वह किसी संसद सदस्य अथवा सभा के किसी अधिकारी का साक्ष्य रिकार्ड करने की इच्छा व्यक्त करती है, तो अध्यक्ष मामले की जांच करने और उस पर प्रतिवेदन तैयार करने हेतु विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।

(iii) न्यायालय अथवा जांच एजेंसियों से सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित दस्तावेजों से अन्यथा दस्तावेजों, जो महासचिव की अभिरक्षा में होते हैं, को प्राप्त करने के अनुरोधों पर विचार करने संबंधी प्रक्रिया।

(क) यदि न्यायालय अथवा पुलिस या केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो इत्यादि जैसी जांच एजेंसियों से सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित

दस्तावेजों से अन्यथा दस्तावेजों, जो महासचिव की अभिरक्षा में होते हैं, को प्राप्त करने के अनुरोध प्राप्त होते हैं, तो अध्यक्ष की अनुमति से ऐसे दस्तावेजों की प्रतियां उपलब्ध कराई जा सकती हैं।

स्पष्टीकरण: सभा अथवा उसकी किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित दस्तावेजों से अन्यथा दस्तावेजों, जो महासचिव की अभिरक्षा में होते हैं, का आशय होगा और इसमें होंगे सभा, सभा की किसी समिति, सभा के सदस्य से संबंधित सामान्य सूचना या सभा के सत्रों की अवधि; जैसे तिथियां, जब सभा समवेत हुई: सभा की समिति की बैठकों की संख्या और/अथवा तिथियां, उन दिवसों की संख्या, जब कोई सदस्य सभा अथवा सभा की किसी समिति की बैठक में उपस्थित हुआ, सदस्य द्वारा निर्दिष्ट समय में लिया गया यात्रा/महंगाई भत्ता, किसी सदस्य के नमूना हस्ताक्षर/हस्तलिपि, किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज, किसी सदस्य द्वारा अपनी परिसंपत्तियों और देयताओं के संबंध में दी गई जानकारी, किसी सदस्य द्वारा नियोजित निजी सहायकों इत्यादि का नाम और पता, तथा आदि-इत्यादि शामिल होगा (किंतु इसे ऐसे दस्तावेजों की संपूर्ण सूची नहीं माना जाये)।

(iv) इस प्रश्न कि क्या कोई दस्तावेज सभा अथवा सभा की किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित है, का निर्णय अध्यक्ष द्वारा लिया जाएगा और उसका निर्णय अंतिम होगा।

(v) सभा या इसकी किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित दस्तावेजों, जो सार्वजनिक दस्तावेज होते हैं, की प्रति न्यायपालिका को दी जा सकती है और सामान्यत: इसकी प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने संबंधी अनुरोध तब तक न किया जाए, जब तक की ऐसे अनुरोध के विशिष्ट कारण न हों।

(vi) विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखने अथवा सभा में प्रस्तुत करने के उपरांत प्रक्रिया:

विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखने अथवा सभा में प्रस्तुत करने के उपरांत, सभापति या समिति का कोई सदस्य इस संबंध में सभा में प्रस्ताव कर सकता है कि सभा प्रतिवेदन से सहमत है और सभा के निर्णयानुसार आगे कार्यवाही की जाएगी।

एक सिफारिश यह भी की गई कि सरकार सूचना का अधिनियम, 2005 में अन्य बातों के साथ-साथ एक संशोधन भी करे ताकि संसद के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले मामलों से संबंधित जानकारी/दस्तावेजों हेतु अधिनियम के अंतर्गत आवेदक के लिए यह आवश्यक किया जा सके कि वह उन कारणों को स्पष्ट करे जिनके लिए उसे इनकी आवश्यकता है; और पीठासीन अधिकारी को ऐसे अनुरोध की जांच करने और उस पर रिपोर्ट देने के लिए उसे सभा की विशेषाधिकार समिति को भेजने का अधिकार प्रदान किया जा सके।

संसद में कार्यवाही और दण्ड-विधि

चूंकि, संसद में या उसकी किसी समिति में संसद के किसी सदस्य द्वारा कही गयी किसी बात या दिये गये किसी मत के सम्बन्ध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती।[107] इसका मतलब यह है कि कोई सदस्य वाद-विवाद में कुछ भी कहे—चाहे वह कितनी ही आपराधिक बात क्यों न हो—उसके विरुद्ध न्यायालय कार्यवाही नहीं कर सकता। उड़ीसा उच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि "कोई भी न्यायालय विधानमंडल के किसी सदस्य द्वारा सभा में दिये गये भाषण के आधार पर उसके विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकता"।[108]

यह भी फैसला किया गया है कि सभा में भाषणों या प्रश्नों के माध्यम से किये गये किसी रहस्योद्घाटन के कारण शासकीय गुप्त बात अधिनियम के अंतर्गत मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।[109]

किसी सदस्य द्वारा सभा के अन्दर किये गये किसी आपराधिक कार्य को संरक्षण के प्रयोजन के लिए सभा की कार्यवाही का अंश नहीं माना जा सकता। इसलिए, महाराष्ट्र विधान सभा में जब एक सदस्य ने अपने माइक को लाउडस्पीकर से जोड़ने के लिए ऑपरेटर पर गुस्सा किया और लाउडस्पीकर ऑपरेटर पर पेपरवेट फेंका और वह अध्यक्ष की ओर दौड़ा तथा अध्यक्ष के सामने के माइक को झपट लिया तो उस सदस्य को न केवल सभा से निष्कासित किया गया, अपितु बाद में उसे भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत सिद्धदोष भी ठहराया गया और छह महीने के कठोर कारावास से दंडित भी किया गया।[110]

झारखंड मुक्ति मोर्चा मामला—सभा में मतदान करने के लिए न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति

वर्ष 1991 में दसवीं लोक सभा के आम चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई.एन.सी.) सबसे बड़े दल के रूप में उभरकर सामने आयी तथा उसने प्रधान मंत्री पी.वी. नरसिंहराव के नेतृत्व में सरकार का गठन किया। दसवीं लोक सभा के सातवें सत्र के दौरान 28 जुलाई, 1993 को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के सदस्य श्री अजय मुखोपाध्याय ने सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उस समय लोक सभा के सदस्यों की वास्तविक संख्या 528 थी तथा उनमें से कांग्रेस (आई.) के 251 सदस्य थे। इस प्रकार कांग्रेस (आई.) के सदस्य साधारण बहुमत से 14 कम थे। 26 जुलाई, 1993 को लोक सभा में अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा आरम्भ हुई तथा 28 जुलाई, 1993 तक इस पर बहस जारी रही। तत्पश्चात्, प्रस्ताव उस दिन

---

107. अनुच्छेद 105(2) ।

108. *सुरेन्द्र महन्ति* बनाम *नवकृष्ण चौधरी और* अन्य, ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168 ।

109. शासकीय गुप्त बात अधिनियम, (1938-39) संबंधी प्रवर समिति (हाउस ऑफ कॉमन्स, यू. के.) की रिपोर्ट एच.सी. 101, (1938-39)।

110. प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1967, खंड XII-1 पृ. 53-54 ।

मतदान के लिए रखा गया। 28 फरवरी, 1996 को राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा (आर.एम.एम.) के श्री रविन्द्र कुमार ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई.) में 1 फरवरी, 1996 की तारीख में, एक शिकायत दर्ज की जिसमें यह आरोप लगाया था कि सर्वश्री पी.वी. नरसिंहराव, सतीश शर्मा, अजित सिंह, वी.सी. शुक्ल, आर.के. धवन और एक अन्य व्यक्ति श्री ललित सूरी ने विभिन्न राजनीतिक दलों, व्यक्तियों और समूहों को तीन करोड़ से अधिक की राशि रिश्वत देकर 28 जुलाई, 1993 को सभा में सरकार का बहुमत सिद्ध करने के लिए जुलाई, 1993 में एक आपराधिक षड्यंत्र रचा और उक्त आपराधिक षड्यंत्र के क्रम में उपर्युक्त व्यक्तियों ने श्री सूरज मंडल को 110 करोड़ रुपये दिये। उक्त शिकायत के आधार पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने अन्य बातों के साथ-साथ झारखंड मुक्ति मोर्चा (जे.एम.एम.) के संसद सदस्य सर्वश्री शिबू सोरेन, साइमन मरान्डी और शैलेन्द्र महतो के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(2)(*iii*) के साथ पठित धारा 13(2) के अंतर्गत चार मामले दर्ज किए।

ये मुद्दे लोक सभा में भी छाए रहे। दसवीं लोक सभा के सोलहवें सत्र के दौरान 11 मार्च, 1996 को अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान न करने के लिए झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के सदस्यों को अभिकथित धन देने तथा उन्हें प्रलोभन देने के मुद्दे से संबंधित विशेषाधिकार के प्रश्न को सभा में उठाने की अनुमति मांगी गई थी। तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री शिवराज वी. पाटील ने सूचना को नामंजूर करते हुए यह टिप्पणी की, "... यह मामला न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है और वही प्रस्तुत किए गये साक्ष्य के आधार पर उचित निर्णय ले सकता है"। तदुपरान्त, दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा सिविल रिट याचिका संख्या 23/96 के संबंध में 24 मई, 1996 को पारित आदेश के अनुसरण में 11 जून, 1996 को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ)(*iii*) के साथ पठित धारा 7, 12, 13(2) के अंतर्गत सर्वश्री वी.सी. शुक्ल, आर.के. धवन, ललित सूरी और अन्य के विरुद्ध एक अन्य मामला दर्ज किया गया। जांच पूरी करने के पश्चात् केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने नई दिल्ली में विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में 30 अक्तूबर, 1996; 9 दिसम्बर, 1996 और 22 जनवरी, 1997 को तीन आरोप पत्र दाखिल किए।

इस बीच अक्तूबर, 1996 में इस मामले में लोक सभा में तत्संबंधी विषय पर ग्याहरवीं लोक सभा के सदस्य श्री शिबू सोरेन और दसवीं लोक सभा के सदस्य सर्वश्री सूरज मंडल, साइमन मरांडी और शैलेन्द्र महतो द्वारा ग्यारहवीं लोक सभा के अध्यक्ष श्री पी.ए. संगमा को अभ्यावेदन दिए गए।

श्री शिबू सोरेन ने दिनांक 5 अक्तूबर, 1996 के अपने अभ्यावेदन में अन्य बातों के साथ-साथ एक विधिक प्रश्न उठाया अर्थात् "सभा में मतदान करने के संबंध में सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध रिश्वत लेने का आरोप विशेषाधिकार का भंग है जिसकी जांच केवल सभा द्वारा ही की जा सकती है और जो न्यायालय में वाद योग्य नहीं है"।

सर्वश्री शिबू सोरेन, सूरज मंडल, साइमन मरांडी और शैलेन्द्र महतो ने दिनांक 18 अक्तूबर, 1996 के अपने संयुक्त अभ्यावेदन में, राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा द्वारा दायर एक सिविल रिट याचिका के प्रत्युत्तर में श्री अजीत भरिहोक, विशेष न्यायाधीश, दिल्ली के न्यायालय में चल रहे मामले का उल्लेख करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि "उपर्युक्त आरोपों की केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा की जा रही जांच, (उनकी) गिरफ्तारी, और विभिन्न न्यायालयों में इसी मामले के संदर्भ में उनके और अन्य के द्वारा की जा रही कार्यवाहियां न

केवल असंवैधानिक या अधिकारातीत हैं अपितु लोक सभा के अपने अनन्य क्षेत्र में, उसकी सर्वोच्चता, शक्तियां तथा विशेषाधिकारों का भी गंभीर अतिक्रमण है"।

संसद में अथवा उसकी किसी समिति सदस्य द्वारा कुछ कहे जाने अथवा उनके द्वारा मतदान किए जाने के संबंध में किसी न्यायालय की कार्यवाही से संसद सदस्यों की उन्मुक्ति के प्रश्न पर यह भी कहा गया कि "विद्वत उच्च न्यायालय की समस्त कार्यवाही न केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 105(2) के द्वारा वर्जित है अपितु, शक्तियों और विशेषाधिकारों सहित विशेषाधिकार भंग से संबंधित किसी भी मामले की जांच करने के मामले में लोक सभा की अनन्य अधिकारिता द्वारा भी वर्जित है"।

इस मामले की जांच करने पर यह अनुभव किया गया कि चूंकि उस समय तक इन मुद्दों पर कोई अंतिम न्यायिक निर्णय नहीं दिया गया था इसलिए ऐसे कानूनी और संवैधानिक प्रश्नों को उठाने का उचित मंच न्यायालय है। इसके बाद श्री शिबू सोरेन को इस मामले में लिखित में सूचित किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 105 के अंतर्गत सदस्यों की उन्मुक्ति की व्याप्ति और विस्तार के संबंध में उनके अभ्यावेदन में उठाए गए संवैधानिक और कानूनी मुद्दे यथार्थ व्याख्या से संबंधित हैं। इसलिए ऐसे मुद्दों को उठाने का समुचित मंच न्यायालय है। तदनुसार सदस्य से अनुरोध किया गया कि यदि वह चाहता है तो इन संवैधानिक और विधिक मुद्दों को वह अपने अधिवक्ता के माध्यम से समुचित न्यायालय में उठा सकता है।

विशेष न्यायाधीश ने तर्क सुनने के पश्चात् 6 मई, 1997 को एक आदेश पारित किया, जिसमें उन्होंने कहा कि सभी अपीलार्थियों के विरुद्ध आरोपों की विरचना को न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं। विशेष न्यायाधीश ने यह भी कहा कि अभियुक्त संख्या क-3 से क-5 अर्थात् सर्वश्री सूरज मंडल, शिबू सोरेन और शैलेन्द्र महतो द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत अपराध किए जाने का प्रथम दृष्ट्या साक्ष्य मौजूद है।

विशेष न्यायाधीश के समक्ष अभियुक्तों की ओर से एक आपत्ति यह की गयी थी कि संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत मामले का विचारण करने संबंधी न्यायालय की अधिकारिता वर्जित है क्योंकि यह विचारण उन मामलों से संबंधित है जो संसद (लोक सभा) और उसके सदस्यों के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियों से संबंधित है क्योंकि आरोप पत्रों का आधार यह था कि संसद के कुछ सदस्यों ने अविश्वास प्रस्ताव के विरोध में मतदान करने के लिए रिश्वत ली थी और इस मामले में जिस संविवाद पर निर्णय लिया जाना है, वह अविश्वास प्रस्ताव के संबंध में संसद सदस्यों द्वारा किए गए मतदान के बारे में उनके उद्देश्य और कार्यवाही से संबंधित होगा। विशेष न्यायाधीश के उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध एक पुनरीक्षण याचिका दिल्ली उच्च न्यायालय में दायर की गयी थी। मामले की जांच के बाद दिल्ली उच्च न्यायालय ने पाया कि विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने भारत के उच्चतम न्यायालय में अपील की। उस अपील पर उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ

द्वारा सुनवाई की गई। अपीलार्थियों के अधिवक्ता का तर्क सुनने के पश्चात् उक्त न्यायपीठ ने 18 नवम्बर, 1997 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:

> इन याचिकाओं में अन्य प्रश्नों के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 105 के निर्वचन से संबंधित एक सारभूत विधिक प्रश्न भी उठाया गया है अत: इन याचिकाओं की सुनवाई और निपटान संविधान पीठ द्वारा किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में इस मुद्दे को उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ के समक्ष रखा गया। सुनवाई के प्रारम्भ में न्यायालय ने 9 दिसम्बर, 1997 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:

> 18 नवम्बर, 1997 के आदेश के तहत इन मामलों को इस न्यायालय को सौंप दिया गया क्योंकि इन याचिकाओं में अन्य प्रश्नों के साथ-साथ एक सारभूत विधिक प्रश्न, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 105 की व्याख्या की गई थी, उठाया गया है। इसलिए इन याचिकाओं की सुनवाई तथा निपटान संविधान पीठ द्वारा अपेक्षित है। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता इससे सहमत हैं कि संविधान पीठ, संविधान के अनुच्छेद 105 की व्याख्या से संबंधित प्रश्नों का ही निपटान कर सकती है तथा किसी संसद सदस्य और राज्य विधान सभा के सदस्य पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम लागू होने की बात और अन्य प्रश्नों पर खंडपीठ द्वारा विचार किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 19 अप्रैल, 1998 को इस मामले पर अपना निर्णय दिया।

न्यायालय ने अपने विचार के लिए निम्नलिखित दो आधारभूत प्रश्न निर्धारित किए थे:

(i) क्या संविधान का अनुच्छेद 105 किसी संसद सदस्य द्वारा रिश्वत की पेशकश करने अथवा रिश्वत लेने के अपराध में उसे किसी फौजदारी न्यायालय में अभियोजन करने से उन्मुक्ति प्रदान करता है।

(ii) क्या किसी संसद सदस्य को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की परिधि से निम्नलिखित कारणों से बाहर रखा गया है कि-(क) वह उक्त अधिनियम की धारा 2(ग) के अंतर्गत परिभाषित "लोक सेवक" के दायरे में नहीं आता है; और (ख) वह उक्त अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (1) के खंड (क), (ख) और (ग) में समाविष्ट व्यक्ति नहीं है तथा उक्त अधिनियम के अंतर्गत उसके अभियोजन के लिए कोई सक्षम प्राधिकारी नहीं है।

पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तीन अलग-अलग निर्णय दिए गए जिनमें पहला निर्णय न्यायमूर्ति एस.सी. अग्रवाल और न्यायमूर्ति ए.एस. आनन्द; दूसरा निर्णय न्यायमूर्ति जी. एन. रे और तीसरा निर्णय न्यायमूर्ति एस.पी. भरूचा और न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू द्वारा दिया गया।

विद्वान न्यायाधीशों ने अभियुक्तों/अपीलार्थियों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में रखा-(क) अभिकथित रिश्वत लेने वाले; और (ख) अभिकथित रिश्वत देने वाले। प्रथम श्रेणी को आगे दो उप-श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया—वे जिन्होंने अविश्वास प्रस्ताव के दौरान सभा में मतदान किया तथा दूसरे वे जिन्होंने प्रस्ताव के दौरान मतदान नहीं किया।

उपर्युक्त दोनों मुद्दों पर बहुमत और अल्पमत का निर्णय तथा निर्णय हेतु अंगीकृत औचित्य को संक्षेप में निम्नवत् बताया जा सकता है:–

(i) क्या संविधान का अनुच्छेद 105 किसी संसद सदस्य द्वारा रिश्वत की पेशकश करने अथवा रिश्वत लेने के अपराध में उसे किसी फौजदारी न्यायालय में अभियोजन से उन्मुक्ति प्रदान करता है?

न्यायमूर्ति एस.पी. भरूचा और न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू द्वारा किए गए बहुमत-निर्णय के बारे में न्यायमूर्ति जी.एन. रे ने अपने एक अलग निर्णय में उनके साथ सहमत होते हुए कहा कि श्री अजित सिंह के अलावा, अभिकथित रिश्वत लेने वाले सदस्यों को अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त है तथा वे किसी न्यायालय में अभिकथित षड्यंत्र और समझौते के उत्तरदायी नहीं हैं। श्री अजित सिंह ने अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान नहीं किया था इसलिए उन्हें अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है। अत: अभिकथित रिश्वत देने वाले को कोई उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है। इसलिए उनके विरुद्ध आपराधिक अभियोजन जारी रहेगा।

"अभिकथित रिश्वत लेने वालों के विरुद्ध यह आरोप है कि वे एक आपराधिक षड्यंत्र के पक्षकार थे और अभिकथित रिश्वत देने वालों के साथ सहमत थे अथवा उनके साथ एक समझौता किया कि वे.... अवैध तरीका अख्तियार कर.... अविश्वास प्रस्ताव को गिरा देंगे। अभिकथित षड्यन्त्र और समझौते का कथित उद्देश्य अविश्वास प्रस्ताव को गिराना है और कथित रिश्वत लेने वालों के बारे में कहा गया है कि उन्होंने धनराशि इस प्रस्ताव को गिराने के उद्देश्य से अथवा इनाम के रूप में ली है। कथित षड्यन्त्र, रिश्वत और अविश्वास प्रस्ताव के बीच का सम्बन्ध एकदम स्पष्ट है। आरोप यह है कि कथित रिश्वत लेने वालों ने अविश्वास प्रस्ताव को गिराना सुनिश्चित करने के लिए रिश्वत ली... हमारे विचार से हम इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकते हैं कि मत डाले गए और यदि रिश्वत लेने वालों के खिलाफ कथित तथ्य सही हैं कि ये मत कथित षड्यंत्र और समझौते को पूरा करने के लिए डाले गए थे, तो इस स्थिति में यह मान लेने पर कि 'के संबंध में' अभिव्यक्ति का व्यापक अर्थ होना चाहिए, इसका यह अर्थ निकलता है कि कथित षड्यंत्र और समझौते का परस्पर सम्बन्ध है और यह उन मतों से सम्बन्धित है तथा दाण्डिक कार्यवाही में प्रस्तावित जांच संबंधित अभिप्रेरण के बारे में है। विद्वान महान्यायवादी से इस बात पर सहमत होना कठिन है कि, यद्यपि 'के संबंध में' शब्दों को व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए, तथापि अनुच्छेद 105(2) के अधीन प्राप्त संरक्षण केवल उन अदालती कार्यवाहियों तक सीमित है जो कि दिए गए भाषण अथवा डाले गए मत अथवा इससे उत्पन्न स्थिति का प्रतिवाद करती हैं अथवा सरंक्षण का उद्देश्य इसके फलस्वरूप पूरा होगा। इस संरक्षण का उद्देश्य है कि सदस्य संसद में अपने विचार व्यक्त कर सकें और तद्नुरूप मत दे सकें और इस कारण न्यायालय में जवाबदेही के भय से मुक्त हों.... अनुच्छेद 105(2) में यह उपबंध नहीं है और यदि विद्वान महान्यायवादी सही होते तो इसका अर्थ यही होता कि सदस्य ने जो कुछ कहा है अथवा उसने किस प्रकार मत डाला है इसके लिए वह जवाबदेह नहीं है। वर्तमान अभियोजन में ऐसे किसी उद्देश्य का आरोपण न करते हुए ऐसी स्थिति की परिकल्पना करना कठिन नहीं है जिसके अनुसार यदि किसी सदस्य ने दल के नेताओं की इच्छा के विपरीत भाषण दिया है अथवा मतदान किया है तो उसे यह आरोप लगाकर अभियोजन द्वारा तंग किया जाए कि वह संसद में एक निश्चित परिणाम प्राप्त करने के लिए किसी समझौते और षड्यंत्र में शामिल था और उसे रिश्वत दी गई थी।"

"संसद सदस्य को अनुच्छेद 105 के उप-अनुच्छेद (2) के अधीन प्राप्त संरक्षण अनिवार्यत: अनुच्छेद 105 के उप-अनुच्छेद (1) के अंतर्गत सुनिश्चित वाक्-स्वातंत्र्य से मिलता है। दोनों उप-अनुच्छेद (1) तथा (2) एक दूसरे के पूरक हैं और संविधान के अनुच्छेद 105 में परिकल्पित मतदान के अधिकार का प्रयोग करने की स्वतंत्रता और वाक्-स्वातंत्र्य के सारतत्व के द्योतक हैं। संविधान के अनेक अनुच्छेदों तथा कुछ अन्य विधायी उपबन्धों में प्रयुक्त शब्द 'के संबंध में' इस न्यायालय के अनेक निर्णयों में देखे गये हैं। इन शब्दों की सही व्याख्या किसी सुनिश्चित सूत्र के अंतर्गत नहीं की जा सकती बल्कि उनकी व्याख्या उस सन्दर्भ में की जानी चाहिए जिसमें इनका प्रयोग किया गया है और उस उद्देश्य को देखना होगा जो कि संबंधित उपबंध के अन्तर्गत प्राप्त किया जाना है। जिस सन्दर्भ में 'के संबंध में' शब्दों का प्रयोग अनुच्छेद 105 के उप-अनुच्छेद (2) में किया गया है और जिस प्रयोजन के लिए अनुच्छेद 105 के उप-अनुच्छेद (2) में वाक्-स्वातंत्र्य और मत देने की स्वतन्त्रता की गारंटी दी गई है वह संविधान के अनुच्छेद 105 के उप-अनुच्छेद (1) तथा (2) के तहत स्पष्ट रूप से दिए गए ऐसे अधिकार पर किसी पाबन्दी या कटौती की अनुमति नहीं देते। तथापि, यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 105 के उप-अनुच्छेद (2) के अंतर्गत प्राप्त संरक्षण संसद सदस्य द्वारा संसद में वास्तव में दिए गए मत और संसद में वास्तव में दिए गए भाषण के संबंध में होना चाहिए।"

"श्री राव ने कहा कि चूंकि अनुच्छेद 105(2) के उपबन्धों के कारण कथित रिश्वत लेने वालों ने कोई अपराध नहीं किया था अत: कथित रिश्वत देने वालों ने भी कोई अपराध नहीं किया था। अनुच्छेद 105(2) में यह उपबन्ध नहीं है कि जो अन्यथा अपराध है वह जब संसद सदस्य द्वारा किया जाता है और यह उसके संसद में भाषण और मतदान से संबंधित है, तब यह अपराध नहीं होता। इसके अंतर्गत वस्तुत: यह उपबंध किया गया है कि एक संसद सदस्य ऐसी किसी बात के लिए न्यायालय में जवाबदेह नहीं होगा जिसका संबंध संसद में उसके भाषण या मतदान से हो। यदि किसी संसद सदस्य ने संसद में अपने भाषण अथवा मतदान द्वारा कोई अपराध किया है तो उसके लिए उसे अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत अभियोजन से उन्मुक्ति प्राप्त है। इस अपराध को करने में जिन व्यक्तियों ने ऐसे संसद सदस्य के साथ षड्यन्त्र किया है उन्हें ऐसी कोई उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है। इसलिए उन पर इसके लिए अभियोजन चलाया जा सकता है।"

न्यायमूर्ति एस.सी. अग्रवाल और न्यायमूर्ति ए.एस. आनन्द द्वारा दिए गए अल्पमत निर्णय में कहा गया है कि किसी संसद सदस्य को संसद या इसकी किसी समिति में भाषण देने अथवा मतदान करने के उद्देश्य से रिश्वत की पेशकश करने अथवा रिश्वत लेने के अपराध के लिए फौजदारी न्यायालय के समक्ष अभियोजन से अनुच्छेद 105(2) अथवा अनुच्छेद 105(3) के तहत उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है।

"अनुच्छेद 105(2) में, 'के संबंध में' शब्दों का प्रयोग 'कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत' के पश्चात् किया गया है। 'कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत' का केवल यही अर्थ हो सकता है कि ऐसा भाषण जो पहले ही दिया जा चुका है अथवा मत जो

पहले ही दिया जा चुका है। इसलिए जवाबदेही से उन्मुक्ति केवल तब लागू होती है जब कोई भाषण दे दिया गया हो या मत दे दिया गया हो। यह उन्मुक्ति उस स्थिति में प्राप्त नहीं होगी जब कोई भाषण नहीं दिया गया है और मत नहीं दिया गया है.... यदि 'के संबंध में' शब्दों के बारे में श्री राव द्वारा प्रस्तुत दलील को स्वीकार कर लिया जाए तो यदि संसद सदस्य ने संसद के समक्ष विचारणीय किसी मामले पर अपनी बात नहीं कहने और मत नहीं देने के लिए रिश्वत ली हो तो उस पर रिश्वत लेने के आरोप में अभियोजन चलाया जा सकेगा लेकिन यदि वह संसद में एक विशेष तरीके से बोलने अथवा अपना मत देने के लिए रिश्वत स्वीकार करता है और उसी तरीके से संसद में बोलता है अथवा अपना मत देता है तो उसे ऐसे आरोप के लिए अभियोजन से उन्मुक्ति प्राप्त होगी। यह कल्पना करना भी कठिन है कि संविधान के निर्माता उन्मुक्ति प्रदान करने के मामले में ऐसे संसद सदस्य जिसने संसद में एक विशेष तरीके से बोलने अथवा अपना मत देने के लिए रिश्वत प्राप्त की है और उसी तरीके से अपनी बात कही है अथवा अपना मत दिया है, तथा ऐसे संसद सदस्य जो सभा के समक्ष आने वाले किसी विशिष्ट मामले पर न बोलने अथवा मत न देने के लिए रिश्वत प्राप्त करता है और समझौते के अनुसार सदन में नहीं बोलता अथवा अपना मत नहीं देता, के बीच अन्तर रखना चाहते थे ताकि पहले प्रकार के संसद सदस्य को रिश्वत के आरोप पर अभियोजन से उन्मुक्ति प्रदान की जा सके लेकिन बाद वाली श्रेणी के संसद सदस्यों को यह उन्मुक्ति नहीं दी जाए। यदि अनुच्छेद 105(2) में प्रयुक्त शब्दों 'के संबंध में' का अर्थ 'से उत्पन्न' हो तो इस अस्पष्ट स्थिति से बचा जा सकता है। यदि 'के संबंध में' अभिव्यक्ति से यह अर्थ निकाला जाए तो अनुच्छेद 105(2) के तहत प्रदत्त उन्मुक्ति उस दायिता तक सीमित नहीं रहेगी जो एक संसद सदस्य द्वारा संसद या इसकी किसी समिति में कही गई किसी बात या दिये गये किसी मत से उत्पन्न होती है या उसके कारण हुई है। यह उन्मुक्ति तभी उपलब्ध होगी जब कही गई बात या दिया गया मत उस कार्यवाही का अनिवार्य और अविच्छिन्न कारण भूत है जिससे दायिता उत्पन्न होती है। यह उन्मुक्ति ऐसे कार्य की दायिता से संरक्षण देने के लिए उपलब्ध नहीं होगी जो संसद सदस्य द्वारा कही गई बात या दिए गए मत से पहले किया गया है चाहे उसका संबंध सदस्य द्वारा कही गई बात अथवा दिए गए मत से हो यदि ऐसा कार्य दायिता को उत्पन्न करता है जो स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होती है और सदस्य द्वारा संसद में भाषण देने अथवा मत देने पर निर्भर नहीं करती। ऐसी स्वतंत्र दायिता को संसद सदस्य द्वारा संसद में कही गई किसी बात अथवा दिए गए मत से संबंधित दायिता नहीं माना जा सकता। जिस दायिता के लिए अनुच्छेद 105(2) के तहत उन्मुक्ति का दावा किया जा सकता है वह ऐसी दायिता है जो संसद में कही गई बात अथवा दिए गए मत के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है।"

"अनुच्छेद 105(2) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'के संबंध में' पर हमारी दलील से यह प्रश्न उत्पन्न होता है; सभा के समक्ष विचाराधीन किसी मामले पर संसद सदस्य द्वारा एक विशेष तरीके से बोलने या मत देने के प्रयोजन के लिए उसके द्वारा ली गई रिश्वत से उत्पन्न अभियोजनीय दायिता क्या ऐसी स्वतंत्र दायिता है जिसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह सदस्य द्वारा संसद में कही गई किसी बात अथवा दिए गए मत से उत्पन्न हुई है। हमारे

विचार से इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए। रिश्वत का अपराध प्राप्तकर्त्ता के खिलाफ तब बनता है जब वह एक विशेष तरीके से कार्य करने के वायदे के लिए धनराशि लेता है अथवा लेना स्वीकार करता है। धनराशि स्वीकार कर लेने अथवा धनराशि स्वीकार करने का समझौता पूरा हो जाने के साथ ही यह अपराध पूरा हो जाता है और यह प्राप्तकर्त्ता द्वारा अवैध वायदे के निष्पादन पर निर्भर नहीं है। धनराशि प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अपराधी माना जाएगा चाहे वह अवैध सौदे को पूरा करने में विफल ही क्यों न रहा हो। रिश्वत के अपराध को सिद्ध करने के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक है कि अपराधकर्त्ता ने एक विशेष तरीके से कार्य करने के वायदे के लिए धनराशि प्राप्त की है अथवा प्राप्त करने के लिए सहमत हो गया है और यह आवश्यक नहीं है कि इस संबंध में आगे बढ़कर यह सिद्ध किया जाए और साबित किया जाए कि उसने वास्तव में उस विशेष तरीके से कार्य किया।"

"आपराधिक षड्यंत्र का अपराध तब होता है जबकि दो या अधिक व्यक्ति कोई अवैध कार्य करने या करवाने को सहमत होते हैं अथवा जबकि दो या अधिक व्यक्ति ऐसा कार्य करते हैं अथवा अवैध साधनों द्वारा ऐसा कार्य करवाने को सहमत होते हैं जो अवैध नहीं था। भारतीय दंड संहिता की धारा 120क के परन्तुक के मद्देनज़र किसी अपराध को करने की सहमति स्वयं आपराधिक षड्यंत्र होगी और यह आवश्यक नहीं है कि सहमति के अलावा कोई कार्य उसके अनुसरण में उस सहमति के एक या अधिक पक्षकारों द्वारा किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि जब दो या अधिक व्यक्ति रिश्वत का अपराध करने के लिए समझौता करते हैं तो यह आपराधिक षड्यंत्र माना जाएगा और इस बात का कोई विशेष महत्व नहीं है कि समझौते के अनुसरण में जो कार्य करने पर सहमति हुई थी वह कार्य हुआ या नहीं।

इस प्रकार एक संसद सदस्य द्वारा विशेष तरीके से संसद में कोई बात कहने अथवा अपना मत देने के लिए स्वीकार की गई रिश्वत के फलस्वरूप उत्पन्न आपराधिक दायिता सदस्य द्वारा कही गई बात अथवा दिए गए मत से स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होती है इसलिए उक्त दायिता को संसद में कही गई किसी बात अथवा दिए गए किसी मत के संबंध में दायिता नहीं माना जा सकता। अतः हमारा यह मत है कि अनुच्छेद 105(2) के तहत दिए गए संरक्षण को अभियोजन से उन्मुक्ति के दावे के लिए किसी अपीलार्थी के संबंध में लागू नहीं किया जा सकता।"

विद्वत न्यायाधीशों (न्यायमूर्ति भरूचा और न्यायमूर्ति राजेन्द्र बाबू) द्वारा की गई एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी यह है कि संसद कथित रूप से रिश्वत देने वाले तथा रिश्वत प्राप्तकर्त्ता के विरुद्ध विशेषाधिकारों के उल्लंघन और अवमानना हेतु कार्रवाई कर सकती है।

(ii) क्या कोई संसद सदस्य इस कारण से भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की परिधि से बाहर है कि : (क) वह ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे उक्त अधिनियम की धारा 2(ग) में यथा परिभाषित 'लोक सेवक' माना जा सकता है और (ख) वह उक्त अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (i) के खण्ड (क), (ख) तथा (ग) में समाविष्ट व्यक्ति नहीं है और उक्त अधिनियम के तहत अभियोजन की मंजूरी देने के लिए कोई सक्षम प्राधिकारी नहीं है?

सही-सही कहा जाये तो इस मुद्दे पर कोई बहुमत अथवा अल्पमत निर्णय नहीं थे। सभी तीन निर्णयों में कहा गया था कि संसद सदस्य 'लोक सेवक' हैं।

तथापि, न्यायमूर्ति भरूचा और न्यायमूर्ति राजेन्द्र बाबू के अनुसार, मंजूरी देने वाले सक्षम प्राधिकारी के न होने के कारण भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 10, 11 और 13 के तहत अपराधों के लिए संसद सदस्यों के विरुद्ध अभियोजन नहीं किया जा सकता।

न्यायमूर्ति अग्रवाल और न्यायमूर्ति आनन्द के अनुसार, चूंकि इस अधिनियम की धारा 19(1) के तहत संसद सदस्य को हटाने और उसके अभियोजन की मंजूरी देने के लिए कोई सक्षम प्राधिकारी नहीं है, अत: न्यायालय मंजूरी के अभाव में धारा 19(1) में उल्लिखित अपराधों का संज्ञान कर सकता है लेकिन जब तक संसद द्वारा इस संबंध में विधि में समुचित संशोधन करके उपबंध न किया जाए, तब तक अभियोजन एजेंसी फौजदारी अदालत में किसी संसद सदस्य के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 10, 11, 13 तथा 15 के तहत दंडनीय अपराध के संबंध में आरोप-पत्र दायर करने से पूर्व यथास्थिति सभापति, राज्य सभा/अध्यक्ष, लोक सभा की अनुमति प्राप्त करेगी।

न्यायमूर्ति जी.एन. राय ने इस निर्णय से सहमति व्यक्त की थी।

"यद्यपि संविधान में 'पद' शब्द संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडलों के सदस्यों से संबंधित उपबंधों में प्रयोग नहीं किया गया है लेकिन संसद सदस्यों से संबंधित अन्य संसदीय अधिनियमितियों में 'पद' शब्द का प्रयोग किया गया है। संविधान, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 तथा संसद सदस्य वेतन, भत्ते एवं पेंशन अधिनियम, 1954 के उपबन्धों तथा इस न्यायालय के विनिर्णय में 'पद' शब्द को दिए गए अर्थ को देखते हुए हमारा मत है कि संसद की सदस्यता इस अर्थ में एक हैसियत वाला 'पद' है जिसके साथ ऐसे कतिपय दायित्व जुड़े हैं जो सार्वजनिक स्वरूप के हैं और उनका अस्तित्व 'पद' के धारक से अलग है। अत: यह कहा जाए कि संसद सदस्य एक 'पद' धारण करता है।

अगला प्रश्न यह है कि क्या एक संसद सदस्य अपने पद के आधार पर किसी लोक कर्त्तव्य का निष्पादन करने के लिए प्राधिकृत है अथवा उससे ऐसा करने की अपेक्षा की जाती है। जैसा कि *आर.एस. नायक बनाम ए.आर. अन्तुले* के मामले में पहले ही बताया जा चुका है, इस न्यायालय ने यह कहा था कि यद्यपि राज्य विधानमंडल का कोई सदस्य सरकार के निदेशानुसार अथवा सरकार के लिए किसी लोक कर्त्तव्य का निर्वहन नहीं करता है लेकिन वह नि:सन्देह संविधान और उसके मतदाताओं द्वारा उस पर सौंपे गए लोक कर्त्तव्यों का निर्वहन करता है और वह संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन करता है जिसके लिए संविधान के अंतर्गत उसे पारिश्रमिक दिया जाता है।"

"1988 के अधिनियम में 'लोक कर्त्तव्य' अभिव्यक्ति को धारा 2(ख) में परिभाषित किया गया है, जिससे ऐसा कर्त्तव्य अभिप्रेत है जिसके निर्वहन में राज्य, जनता या समस्त समुदाय का हित हो।"

संसद सदस्य द्वारा ली जाने वाली शपथ या किए जाने वाले प्रतिज्ञान का प्ररूप (संविधान की तीसरी अनुसूची में यथाविहित) इस प्रकार है:–

"मैं अमुक, जो राज्य सभा (या लोक सभा) का सदस्य निर्वाचित (या नामनिर्देशित) हुआ हूँ ईश्वर की शपथ लेता हूं/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा, मैं भारत की संप्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूँ उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।"

'जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा' "ये शब्द इस बात को दर्शाते हैं कि संसद सदस्य को संसद सदस्य के रूप में शपथ ग्रहण करने के पश्चात् कतिपय कर्त्तव्यों का निर्वहन करना होता है। संविधान के अंतर्गत केन्द्रीय कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी है और संसद सदस्य मंत्रिपरिषद के कार्यों के प्रहरी के रूप में कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त संसद सदस्य, विधान बनाने सहित, जो उसका प्रधान कार्य है, संसदीय कार्यवाहियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह ऐसे कर्त्तव्यों का निर्वहन करता है जिनमें राज्य, जनता और समस्त समुदाय का हित निहित होता है और इसलिए वे कर्त्तव्य लोक कर्त्तव्य हैं । यह कहा जा सकता है कि संविधान संसद सदस्य को ऐसे कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिए प्राधिकृत है और उससे ऐसा करने की अपेक्षा करता है और वह इन कर्त्तव्यों का निर्वहन अपने पद पर होने की वजह से करता है।"

"इसलिए हमारा यह विचार है कि संसद सदस्य एक पद धारण करता है और उस पद के आधार पर उससे ऐसे कर्त्तव्यों का निर्वहन करने की अपेक्षा की जाती है अथवा वह इसके लिए प्राधिकृत है और ऐसे कर्त्तव्य लोक कर्त्तव्य हैं। इसलिए संसद सदस्य 1988 के अधिनियम की धारा 2 के खंड (ग) के उप-खंड (viii) की परिधि के अंतर्गत आता है।"

तथापि, जैसा कि न्यायालय द्वारा इंगित किया गया है संसद द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19(1) के तहत संसद सदस्य के अभियोजन की मंजूरी देने के लिए अभी तक किसी सक्षम प्राधिकारी को स्पष्ट करने हेतु कोई कानून अधिनियमित नहीं किया गया है। अत: यदि संसद सदस्य को अभियोजित किया जाना है तो अभियोजन एजेंसी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7, 10, 11, 13 और 15 के तहत दण्डनीय अपराध के लिए आरोप-पत्र दाखिल करने से पूर्व राज्य सभा के सभापति या लोक सभा के अध्यक्ष से यथास्थिति अनुमति लेनी होगी, तदनुसार, लोक सभा अध्यक्ष लोक सभा के संसद सदस्य के अभियोजन हेतु स्वीकृति देने हेतु सक्षम प्राधिकारी है, पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान अध्यक्ष ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत दण्डनीय अपराध के संबंध में अभियोजन/जांच एजेंसी से अनुरोध प्राप्त होने पर लोक सभा के दो सदस्यों के अभियोजन की स्वीकृति दी।

परवर्ती घटनाक्रम

नवम्बर, 1998 में केन्द्रीय सरकार ने उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय की पुनरीक्षा का अनुरोध करते हुए एक याचिका दायर की थी। 16 दिसम्बर, 1998 को उच्चतम न्यायालय

की पांच न्यायाधीशों वाली संविधान पीठ ने केन्द्रीय सरकार की पुनरीक्षण याचिका इस आधार पर खारिज कर दी कि इसे दायर करने में असाधारण विलम्ब हुआ है। उपर्युक्त न्यायपीठ मुख्य न्यायमूर्ति ए.एस. आनन्द की अध्यक्षता में गठित की गई थी जिसके सदस्य न्यायमूर्ति एस.पी. भरूचा, के. वेंकटसामी, बी.एन. कृपाल और एस. राजेन्द्र बाबू थे। मुख्य न्यायमूर्ति ने अपने आदेश में यह टिप्पणी की थी :

> "पुनरीक्षण याचिका दायर करने में असाधारण विलम्ब हुआ है। विलम्ब की अनदेखी करने संबंधी आवेदन में तर्कसंगत अथवा संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इसमें केवल यह कहा गया है कि विलम्ब कर्मचारियों की कमी के कारण हुआ है ... विलम्ब की अनदेखी करने का यह कोई आधार नहीं है। विलम्ब की अनदेखी करने संबंधी आवेदन को खारिज किया जाता है और इसके परिणामस्वरूप पुनरीक्षण याचिका भी खारिज की जाती है क्योंकि यह कालातीत हो गई है।"

5 मई, 1999 को उच्चतम न्यायालय ने श्री पी.वी. नरसिंह राव और अन्य द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय के उस आदेश के विरुद्ध की गई सभी अपीलों का निपटान करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के विशेष न्यायाधीश अजीत भरिहोक के आदेश के विरुद्ध अपीलार्थियों की पुनरीक्षण याचिका को खारिज करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित आदेश पारित किया था:

> "इन अपीलों के लंबित होने की अवधि के दौरान, चूंकि इस न्यायालय ने आगे की कार्यवाही के संबंध में स्थगन आदेश नहीं दिया था, विचारण पहले ही शुरू हो चुका है और चल रहा है। न्यायमूर्तियों के समक्ष रखे गए मूल मुद्दों के बारे में संविधान पीठ द्वारा पहले ही उत्तरित प्रश्नों को देखते हुए हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि इन अपीलों में उठाए गए किन्हीं अन्य प्रश्नों पर विचार किया जाए क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर विद्वान विचारण न्यायाधीश (ट्रायल जज) को उपर्युक्त मामले में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखकर देना होगा।"

उच्चतम न्यायालय के उक्त आदेश के अनुसरण में कथित रिश्वत लेने वाले व्यक्तियों ने संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अन्तर्गत अपने संसदीय विशेषाधिकार को ध्यान में रखते हुए अभियोजन से उन्मुक्ति का दावा करते हुए स्वयं को बरी किए जाने के संबंध में आवेदन पत्र दिए।

अभियोजन पक्ष ने दिनांक 31 मई, 1999 के अपने उत्तर द्वारा इन आवेदनों का प्रतिवाद किया जिनमें यह आरोप लगाया गया था कि उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ के 17 अप्रैल, 1999 के निर्णय को कथित रिश्वत लेने वाले (आवेदनकर्त्ताओं) को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध करने हेतु दुष्प्रेरित करने के लिए विमुक्ति दिया जाना नहीं माना जायेगा। इसलिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 12 के अंतर्गत उनके विरुद्ध मुकदमे की कार्यवाही की जानी चाहिए। आगे यह भी कहा गया था कि अभियुक्त सर्वश्री शिबू सोरेन, सूरज मंडल और साइमन मरांडी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत दंडनीय अपराध का आरोप लगाया गया था जो कथित रूप से इस मामले की जांच के लंबित रहने के दौरान किया गया था। इस प्रकार, उपर्युक्त

कृत्य का संसद में उक्त आवेदकों द्वारा दिए गए मत से कोई सीधा संबंध नहीं है इसलिए उक्त आरोप के लिए मुकदमे की कार्यवाही चलती रहनी चाहिए। यह भी कहा गया था कि जहां तक अभियुक्त अजित सिंह का संबंध था, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत संरक्षण के हकदार नहीं थे; इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उनके द्वारा उन्मुक्ति और इस मामले से बरी किए जाने के लिए दिया गया तर्क उपयुक्त नहीं है।

आवेदनकर्त्ताओं और अभियोजन पक्ष के निवेदनों पर विचार करने के बाद केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश ने 4 जून, 1999 को निम्नलिखित निर्णय दिया:

(i) "सभी आवेदनकर्त्ताओं पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 7, 12 और 13(2) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के अंतर्गत दण्डनीय षड्यंत्र रचने का अपराध और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 13(2) और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के अंतर्गत दण्डनीय मूल अपराधों को करने का आरोप लगाया गया है। इसके अतिरिक्त, अभियुक्त सूरज मंडल, शिबू सोरेन और साइमन मरांडी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत दंडनीय अपराध करने का भी आरोप लगाया गया है। अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान के तरीके के संबंध में अभियुक्त अजित सिंह और अन्य आवेदक अभियुक्तों की भूमिका में तथ्यात्मक अंतर है। रिकार्ड के अनुसार श्री अजित सिंह को छोड़कर अन्य आवेदकों ने अविश्वास प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान किया था जबकि श्री अजित सिंह ने अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया था....।"

(ii) "यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ की बहुमत की राय में श्री अजित सिंह को छोड़कर सभी आवेदनकर्त्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 105(2) द्वारा दी जाने वाली उन्मुक्ति के हकदार हैं। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि आवेदनकर्त्ताओं, जो उस समय संसद सदस्य थे, के मामले में उन्मुक्ति का कहां तक विस्तार किया जा सकता है।" इस प्रश्न का संकेत निर्णय के पैरा संख्या 134 से 137 और पैरा संख्या 143 में पाया जा सकता है जो निम्न प्रकार से है:

"हमारा निष्कर्ष यह है कि श्री अजित सिंह के अतिरिक्त अन्य रिश्वत लेने वाले व्यक्तियों को अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त है और वे कथित षड्यंत्र और समझौते के लिए न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। उनके विरुद्ध आरोप असफल हो जाएंगे। श्री अजित सिंह ने अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान नहीं किया इसलिए उन्हें अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है।"

(iii) "उक्त उल्लिखित निर्णय में माननीय न्यायाधीश भरूचा की टिप्पणी के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है कि माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ की बहुमत राय यह है कि संविधान के अनुच्छेद 105(2) की विस्तृत व्याख्या की जानी चाहिए और उक्त अनुच्छेद के अंतर्गत प्रदत्त उन्मुक्ति आवेदनकर्त्ताओं को न केवल अविश्वास प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान करने के लिए कथित रूप से रिश्वत लेने संबंधी आपराधिक

कार्यवाही के विरुद्ध उपलब्ध हैं बल्कि अवैध साधनों से अविश्वास प्रस्ताव को अस्वीकृत कराने के लिए रिश्वत लेने वाले व्यक्तियों द्वारा कथित षडयंत्र के विरुद्ध भी उपलब्ध है क्योंकि कथित षडयंत्र, रिश्वत और अविश्वास प्रस्ताव के बीच संबंध स्पष्ट है। 4 एस.सी.सी. 425(1998) में उल्लिखित निर्णय के पैरा संख्या 143 में माननीय न्यायमूर्ति भरूचा के निष्कर्ष से यह स्पष्ट होता है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के उपबंधों के संदर्भ में मामले के तथ्यों और संविधान के अनुच्छेद 105(2) का विश्लेषण करने के पश्चात् बहुमत ने यह निष्कर्ष निकाला है कि श्री अजित सिंह को छोड़कर अन्य कथित रिश्वत लेने वालों को संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त है और वे कथित षडयंत्र तथा समझौते के लिए न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। उन पर लगाए गए आरोप विफल हो जायेंगे .... इसलिए संविधान पीठ की बहुमत की राय का यह निष्कर्ष स्पष्ट है कि जहां तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 7, 12 और 13(2) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के अंतर्गत लगाए गए आरोपों और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 7 और 13(2) के अंतर्गत लगाए गए अन्य प्रमुख आरोपों का संबंध है, आवेदनकर्त्ताओं अर्थात् सूरज मंडल, शिबू सोरेन, साइमन मरांडी, राम लखन सिंह यादव, राम शरण यादव, रोशनलाल, अनादि चरण दास, अभय प्रताप सिंह और हाजी गुलाम मोहम्मद खां संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उन्मुक्ति के हकदार हैं। इसलिए, मेरे विचार से उन पर उक्त आरोपों के लिए अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है और उक्त आरोप छोड़ दिए जाएं।"

(iv) "अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या अभियुक्त सूरज मंडल, शिबू सोरेन और साइमन मरांडी को, जिनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के आरोप हैं, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 अथवा अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उक्त उन्मुक्ति दी जा सकती है? उनके विरुद्ध आरोप यह है कि वर्तमान मामले की जांच के दौरान जबकि दिल्ली में फरवरी-अप्रैल, 1996 के बीच रिट याचिका संख्या 789/96 दिल्ली के माननीय उच्च न्यायालय में निपटान के लिए लंबित थी तब दिल्ली, रांची और अन्य स्थानों पर उक्त अभियुक्तों ने गलत दस्तावेज अथवा रिकार्ड बनाकर झूठे सबूत दिए, अर्थात् रांची में झारखंड मुक्ति मोर्चा के केन्द्रीय कार्यालय में इस आशय के प्रमाण जुटाने का प्रयास किया कि उनके खातों में जो राशि जमा की गई थी वह वास्तव में दल द्वारा प्राप्त किया गया गया चंदा था न कि कथित रिश्वत में ली गई राशि।"

(v) "जांच अधिकारी द्वारा एकत्रित किए गए साक्ष्य के अनुसार अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान जुलाई, 1993 में किया गया था और साक्ष्य गढ़ने का कार्य कथित रूप से फरवरी से अप्रैल, 1996 के दौरान उस समय किया गया था जबकि इस मामले की जांच की जा रही थी। मतदान और साक्ष्य/रिकार्ड को कथित रूप से गढ़े जाने के बीच समय का भारी अंतर होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि संसद में इन

अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किए गए मतदान और साक्ष्य गढ़ने के बीच कोई संबंध है। साक्ष्य को कथित रूप से गढ़े जाने का कार्य आवेदनकर्त्ता अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा बाद में किया गया कार्य है जो उनके विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही से बचाव के लिए तैयार किए गए थे साथ ही उक्त गढ़े गए साक्ष्य का उपयोग उन अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध प्रतिवाद के रूप में किया जा सकता है जिन पर कथित रिश्वत लेने वाले व्यक्तियों द्वारा रिश्वत लिए जाने के कार्य को उत्प्रेरित करने का षड्यंत्र रचने के लिए अभियोजन चलाया जा रहा है। इसलिए मेरे विचार से भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत सूरज मंडल, शिबू सोरेन और साइमन मरांडी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का उन पर लगाए गए अन्य आरोपों से कोई दूर का ही संबंध हो सकता है लेकिन इसका संसद में उनके द्वारा दिए गए मत से कोई सीधा संबंध नहीं है। इसलिए उक्त आरोप छोड़े नहीं जा सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उपलब्ध उन्मुक्ति केवल संसद में संसद सदस्य द्वारा कही गई किसी बात अथवा दिए गए किसी मत के संबंध में है। लेकिन कथित कार्य, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत आरोप के बारे में है, संसद के बाहर किया गया है और यह अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा संसद में दिए गए मत से ढाई वर्ष से अधिक की अवधि बीत जाने के बाद किया गया है इसलिए अब अभियुक्तों द्वारा दिए गए मत और साक्ष्य गढ़ने के बीच कोई संबंध होने का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। इसलिए मेरा यह विचार है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत लगाए गए आरोपों के लिए आवेदनकर्त्ताओं पर मुकदमा चलाया जा सकता है....।"

(vi) "इस प्रकरण में उनकी (श्री अजित सिंह की) भूमिका अन्य कथित रिश्वत लेने वाले व्यक्तियों की भूमिका से भिन्न है। जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों के अनुसार कथित रिश्वत लेने वाले अन्य व्यक्तियों ने अविश्वास प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान किया था और कथित रूप से उन्होंने विश्वास प्रस्ताव को उसके विरुद्ध मतदान करके अस्वीकृत कराने के लिए षड्यंत्र रचने हेतु रिश्वत ली थी। परन्तु अभियुक्त अजित सिंह के मामले में उनके स्वयं के अनुसार उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया और जबकि उनके विरुद्ध आरोप यह है कि वह अन्य व्यक्तियों के साथ अवैध उपायों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव को अस्वीकृत कराने के आपराधिक षड्यंत्र में शामिल हुए और अविश्वास प्रस्ताव को अस्वीकृत कराने के लिए कथित रिश्वत देने वाले व्यक्तियों से विधिक रूप से मिलने वाले पारिश्रमिक के अतिरिक्त अवैध परितोषण और उक्त समझौते को पूरा करने के लिए उन्होंने स्वयं अपने लिए तथा जनता दल (अजित ग्रुप) के अन्य संसद सदस्यों के लिए 300 लाख रुपये का अवैध परितोषण स्वीकार किया और प्राप्त किया। यदि हम अभियुक्त पर लगाए गए उक्त आरोपों का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि स्वयं और अन्य व्यक्तियों के लिए अवैध परितोषण प्राप्त करने और अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर षड्यंत्र रचने का श्री अजित सिंह का उद्देश्य अविश्वास प्रस्ताव के विरुद्ध मतदान कर अविश्वास प्रस्ताव अस्वीकार कराने का था। तथापि, यह सब मानते हैं कि उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया, इसलिए श्री अजित सिंह द्वारा अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मत दिये जाने का कथित उद्देश्य और उनके द्वारा रिश्वत लेने तथा षड्यंत्र रचने संबंधी उद्देश्य के बीच कोई संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता है। इसलिए मेरे विचार से अनुच्छेद 105(2)

के अंतर्गत उन्हें उन्मुक्ति नहीं दी जा सकती है। यहां इस बात का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि संविधान पीठ के निर्णय के पश्चात् श्री अजित सिंह ने माननीय उच्चतम न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की थी। उन्होंने अपनी पुनरीक्षण याचिका में यह दलील दी कि उन्होंने वास्तव में अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया है और संविधान पीठ के निर्णय द्वारा उन्हें तथ्य की गलत अवधारणा कि उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान नहीं किया था के आधार पर उन्मुक्ति नहीं दी गई। उक्त पुनरीक्षण याचिका माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अस्वीकृत कर दी गई थी। श्री अजित सिंह द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पर किए गए मतदान के तथ्य को माननीय उच्चतम न्यायालय के ध्यान में लाने के बाद भी माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण याचिका खारिज किए जाने की बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि उच्चतम न्यायालय के अनुसार श्री अजित सिंह संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उन्मुक्ति के हकदार नहीं हैं। कारण स्पष्ट है। श्री अजित सिंह द्वारा अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में दिए गए मत का उद्देश्य उनके कथित रूप से रिश्वत स्वीकार करने के उद्देश्य से पूरी तरह अलग है। अत: श्री अजित सिंह द्वारा अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान करने के उद्देश्य और कथित षडयंत्र में शामिल होने और अवैध परितोषण लेने के उद्देश्य के बीच कोई संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता। अत: मेरे विचार से संविधान पीठ के बहुमत की राय के स्पष्ट निष्कर्ष को देखते हुए अजित सिंह भारत के संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अन्तर्गत उन्मुक्ति के आधार पर छोड़े जाने के हकदार नहीं हैं।"

(vii) "कथित रिश्वत लेने वाले व्यक्तियों द्वारा उकसाए जाने के कृत्य का उकसावे के अनुसरण में अवैध परितोषण लिए जाने तथा संसद में दिये गए मत के निहित उद्देश्य के बीच प्रत्यक्ष संबंध है। अत: उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ की बहुमत राय को देखते हुए संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उपलब्ध उन्मुक्ति कथित षड्यंत्र और उकसावे के संबंध में भी लागू होती है।"

(viii) "उपर्युक्त चर्चा को देखते हुए, मेरा यह निष्कर्ष है कि अजित सिंह के अतिरिक्त सभी आवेदक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(घ) के साथ पठित धारा 7, 12, और 13(2) के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के तहत लगाये गये आरोपों के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अन्तर्गत उन्मुक्ति के हकदार हैं, लेकिन अभियुक्त सूरज मंडल, शिबू सोरेन और साइमन मरांडी पर अभियोजन कार्यवाही भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के अंतर्गत चलती रहेगी। मेरा यह भी निष्कर्ष है कि आवेदक अजित सिंह संविधान के अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत उन्मुक्ति का हकदार नहीं है और उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर मुकदमा चलता रहेगा। उपर्युक्त निष्कर्ष के परिणामस्वरूप, अभियुक्त रामलखन सिंह यादव, राम शरण यादव, रोशन लाल, अनादि चरण दास, अभय प्रताप सिंह और हाजी गुलाम मोहम्मद खान को एतद्द्वारा बरी किया जाता है और अभियुक्त सूरज मंडल, शिबू सोरेन और साइमन मरांडी के विरुद्ध भारतीय दंड

संहिता की धारा 193 के अंतर्गत लगे आरोपों के अलावा सभी आरोपों को छोड़ दिया गया है।"

गिरफ्तारी या उत्पीड़न से मुक्ति का विशेषाधिकार

विशेषाधिकार की आवश्यकता : संसद सदस्यों को अन्य विशेषाधिकारों की तरह सत्र के दौरान और सत्र से चालीस दिन पहले और सत्र से चालीस दिन बाद तक की अवधि के लिए दीवानी मामलों में गिरफ्तारी से मुक्ति का विशेषाधिकार प्रदान किया गया है ताकि वे संसद में बिना किसी बाधा या रुकावट के अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन कर सकें। इस विशेषाधिकार का उद्देश्य यह है कि "सदस्य अपने संसदीय कर्त्तव्यों के पालन के लिए संसद में सुरक्षित पहुंच सकें और नियमित रूप से वहां उपस्थित हो सकें।"

विशेषाधिकार का क्षेत्र : इस विशेषाधिकार के विकास को देखें, तो पता चलता है कि इसे केवल दीवानी मामलों तक सीमित रखने की प्रवृत्ति रही है। न केवल प्रत्येक प्रकार के फौजदारी मामले इसके क्षेत्र से बाहर रखे गये हैं बल्कि ऐसे भी मामले इसके क्षेत्र से बाहर रखे गये हैं जो फौजदारी मामले तो नहीं हैं लेकिन दीवानी की बजाय वे फौजदारी प्रकार के अधिक हैं। यह स्थिति उस सिद्धान्त के अनुरूप है जिसका प्रतिपादन 1641 में हाउस ऑफ कामन्स ने लार्ड्स के साथ विचार-विमर्श के बाद किया था कि "संसद का विशेषाधिकार राष्ट्रमण्डल की सेवा के संबंध में प्रदान किया गया है और इसका प्रयोग राष्ट्रमंडल के अनिष्ट के लिए नहीं किया जाता।"

भारत में विधायी निकायों के सदस्यों को दीवानी प्रक्रिया के अन्तर्गत गिरफ्तारी तथा जेल में रखे जाने से छूट 1925 में विधानमंडल सदस्य छूट अधिनियम[111] के अन्तर्गत दी गयी थी। उसके अन्तर्गत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में धारा 135क जोड़ी गयी थी। बाद में विधियों का अनुकूलन आदेश, 1950[112] के माध्यम से इस धारा का अनुकूलन किया गया। इसमें यह उपबन्ध किया गया है कि विधान सभा के किसी सदस्य को विधानमंडल या उसकी किसी समिति जिसका वह सदस्य हो, की बैठक जारी रहने के दौरान और उस बैठक से चौदह दिन पहले और चौदह दिन पश्चात् किसी दीवानी प्रक्रिया के अन्तर्गत न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही जेल में रखा जा सकता है। लेकिन 26 जनवरी, 1950 को संविधान के लागू होने पर भारत में गिरफ्तारी से मुक्ति के विशेषाधिकार का विस्तार और अवधि वही हो गयी जो कि ब्रिटेन[113] में है, अर्थात् यह मुक्ति सभा के सत्र से चालीस दिन पहले और चालीस दिन बाद के लिए है न कि केवल, चौदह दिन के लिए जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 135क में उपबन्ध किया गया था।[114] अत: मद्रास उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था:

---

111. विधानमंडल सदस्य छूट अधिनियम, 1925 की धारा 3 ।
112. अनुच्छेद 372(2) के अन्तर्गत जारी किया गया।
113. अनुच्छेद 105(3)।
114. यही विचार भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने भी अद्यपूर्व मध्य भारत राज्य की सरकार को सम्बोधित अपने पत्र 91/51-पुलिस-(1), दिनांक 5 मई, 1952 में भी व्यक्त किया गया था।

> संसद के सदस्य को सभा की बैठक से चालीस दिन पहले और चालीस दिन बाद तक की अवधि के लिए दीवानी ऋण के लिए गिरफ्तारी से उन्मुक्ति प्राप्त है अर्थात् किसी कर्ज के न चुकाने पर यदि उसके विरुद्ध कोई डिक्री जारी कर दी गयी हो या निर्णय से पहले उसे गिरफ्तार करने की चेष्टा हो तो वह निश्चय ही गिरफ्तारी से उन्मुक्ति या छूट का दावा कर सकता है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि जहां संसद सदस्य पर अभ्यारोप्य अपराध का आरोप हो, वहां यह उन्मुक्ति नहीं दी जा सकती और न उसका दावा किया जा सकता है।[115]

किसी दीवानी मामले में किसी संसद सदस्य की ऐसी अवधि के दौरान गिरफ्तारी जबकि उसे ऐसी गिरफ्तारी से छूट प्राप्त है, विशेषाधिकार का भंग है और वह सदस्य रिहाई का हकदार है। राजस्थान विधान सभा ने एक मामले में अपनी विशेषाधिकार समिति की इस रिपोर्ट से सहमति व्यक्त की थी कि राजस्व संबंधी मामले में एक सदस्य की गिरफ्तारी सभा के विशेषाधिकार का भंग है क्योंकि राजस्व का मामला दीवानी कार्यवाही के मामले जैसा है।[116]

गिरफ्तारी से छूट फौजदारी अपराधों में नहीं होती: गिरफ्तारी से छूट का विशेषाधिकार "वहां लागू नहीं होता और न ही उसका दावा किया जा सकता है जहां संसद सदस्य पर अभ्यारोप्य अपराध का आरोप हो।"[117] सभा किसी सदस्य का फौजदारी कानूनी प्रक्रिया से किंचित भी बचाव नहीं करेगी यद्यपि संसद परिसर के अंदर किसी सदस्य पर फौजदारी कार्यवाही विशेषाधिकार का भंग है।[118] पैरोल पर रिहा किया गया सदस्य सभा की बैठकों में भाग नहीं ले सकता।[119]

> एक मामले में, जहाँ याचिका देने वाला तत्कालीन त्रावणकोर-कोचीन विधानसभा का सदस्य था, और उसके विरुद्ध दो फौजदारी मामले थे जिनके सम्बन्ध में उसे गिरफ्तार किया गया था, त्रावणकोर-कोचीन उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की:
>
> .... *मे* की पुस्तक *'पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस'* (15वां संस्करण, पृष्ठ 78) से यह स्पष्ट है कि "गिरफ्तारी से छूट के विशेषाधिकार का दावा फौजदारी अपराधों या सांविधिक निरोध के मामलों में नहीं किया जाता और वह छूट दीवानी मामलों तक सीमित है। उसे फौजदारी मामलों में और आपातकालीन कानूनों के प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करने दिया जाता.....
>
> जब तक निरोध कानूनी रूप से वैध है... याचिका देने वाले के स्थान की [अनुच्छेद 190(4) के अन्तर्गत] रिक्ति के खतरे या उसके अपने दैनिक भत्ते से हाथ धो बैठने के

---

115. *वेंकटेस्वरलू* के मामले में, ए.आई.आर. 1951 मद्रास 272; साथ ही *देखिए के. आनन्दन नाम्बियार* के मामले में ए.आई.आर. 1952 मद्रास 117; *अंशुमाली मजुमदार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*, ए.आई.आर. 1952 कलकत्ता 632; *ए. कुंजन नाडार बनाम सरकार*, ए.आई.आर. 1955 त्रावणकोर-कोचीन 154 ।
116. *देखिए गुरदयाल सिंह संधु* का मामला; राजस्थान विधान सभा, वाद-विवाद 27.9.1956 ।
117. *देखिए वेंकटेस्वरलू* के मामले में ए.आई.आर. 1951 मद्रास 272 ।
118. *एच.सी.* 185 (1970-71), पृ. 7 ।
119. *लो.स.वा.वि.,* 24.11.1965, पृ. 1365-66 ।

खतरे के आधार पर यह दावा नहीं किया जा सकता कि उसे उस निरोध के सामान्य या संभाव्य परिणामों से राहत दी जाये।[120]

दशरथ देव के मामले (1952) में लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी विचार व्यक्त किया कि दाण्डिक न्याय के प्रशासन में यदि किसी संसद सदस्य को गिरफ्तार किया जाता है तो गिरफ्तारी सभा के विशेषाधिकार का भंग नहीं है।

24 दिसम्बर, 1969 को कुछ सदस्यों, जोकि कथित रूप से लोक सभा की कार्यवाही में भाग लेने के लिए जा रहे थे, की गिरफ्तारी के बारे में लोक सभा में एक विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया था। अध्यक्षपीठ ने विनिर्णय दिया कि चूंकि सदस्यों को भारतीय दंड संहिता के उपबन्धों के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था और उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था अत: विशेषाधिकार का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं था।[121]

संसद सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के दौरान किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात अथवा कार्य की संसद से बाहर की जाने वाली जांच, सदस्य के रूप में उसके कर्त्तव्यों के निर्वहन के अधिकार में गम्भीर हस्तक्षेप मानी जाएगी। लोक सभा में किसी सदस्य द्वारा किए गए प्रकटीकरण और सभापटल पर उसके द्वारा रखे गये दस्तावेजों के बारे में केन्द्रीय जांच ब्यूरो द्वारा न्यायालय में दायर किसी प्राथमिकी और शपथ-पत्र में किये गये किसी भी उल्लेख की अध्यक्षपीठ द्वारा भर्त्सना की गई है।[122] लेकिन जहां किसी सदस्य द्वारा सभा में किए गए किसी प्रकटीकरण से यह इंगित होता है कि उसके पास पुलिस द्वारा किसी फौजदारी के मामले में की जा रही जांच से संबंधित महत्वपूर्ण सूचना है, तो राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति ने निम्नलिखित प्रक्रिया की सिफारिश की है:

> यदि किसी मामले में कोई सदस्य सभा में ऐसी कोई बात कहता है जो फौजदारी मामले की जांच की दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप से संगत है और जो कि जांच प्राधिकारियों की राय में सकारात्मक साक्ष्य के तौर पर उनके लिए अति महत्वपूर्ण है तो वह जांच प्राधिकारी तद्नुसार गृह मंत्री को इसकी सूचना दे सकता है। यदि मंत्री का समाधान हो जाता है कि मामले में संबधित सदस्य की सहायता की आवश्यकता है तो मंत्री सभापति के माध्यम से सदस्य से उनसे मिलने का अनुरोध करेगा। यदि सदस्य अपेक्षित जानकारी देने के लिए सहमत हो जाता है तो गृह मंत्री उसका उपयोग इस तरीके से करेगा कि उससे सदस्य के किसी संसदीय विशेषाधिकार पर कोई आंच न आए। तथापि, यदि सदस्य गृह मंत्री के अनुरोध को न माने तो मामला वहीं समाप्त हो जाना चाहिए।[123]
>
> समिति की सिफारिशों के अनुसरण में गृह मंत्रालय द्वारा सभी राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्र प्रशासनों को समुचित अनुदेश जारी किए गए।[124]

---

120. *ए. कुंजन नाडार बनाम सरकार,* ए.आई.आर. 1955 त्रावणकोर-कोचीन 154; साथ ही *देखिए* में की पुस्तक 'पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस' चौबीसवां संस्करण, पृ. 102 ।
121. *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट,* 1970, खंड XV, 2, पृ. 42; 1976, खंड XXI, 1 पृ. 12 ।
122. *लो.स.वा.वि.,* 17.12.1981, पृ. 183-84 ।
123. राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति का 12वां प्रतिवेदन।
124. गृह मंत्रालय, पत्र सं. 32/2/66/68-पोल 1(ए) डी.एस., दिनांक 8 जून, 1969 और 2 अगस्त, 1969।

निवारक निरोध के मामले में गिरफ्तारी से छूट का दावा नहीं किया जाता: गिरफ्तारी से छूट का विशेषाधिकार किसी सांविधिक प्राधिकार के अन्तर्गत प्रशासनिक आदेश से निवारक गिरफ्तारी या निरोध के मामले में लागू नहीं होता।

देशपाण्डे के मामले (1952) में लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि निवारक निरोध अधिनियम, 1950 के अन्तर्गत किसी सदस्य की गिरफ्तारी सभा के विशेषाधिकार का भंग नहीं है। समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी भी की थी:

> निवारक निरोध मूलत: वैसी ही दाण्डिक कार्यवाही है जैसी कि किसी अपराध करने के सन्देह में, या दण्ड प्रक्रिया संहिता के संगत उपबन्धों के अन्तर्गत किसी कार्यवाही के दौरान या उसके परिणामस्वरूप पुलिस द्वारा या किसी मजिस्ट्रेट के आदेश से की गयी कोई गिरफ्तारी, और इस आधार पर कोई ठोस अन्तर नहीं किया जा सकता कि निवारक निरोध केवल सन्देह के आधार पर हो सकता है न कि इस आधार पर कि जिस व्यक्ति को निरुद्ध करने का निदेश दिया गया है उसने वास्तव में कोई अपराध किया है। संविधान राज्य के हित में निवारक निरोध का प्राधिकार देता है और यह सुस्थापित हो चुका है कि "संसद का विशेषाधिकार राष्ट्रमंडल की सेवा के लिए प्रदान किया गया है और उसका प्रयोग राष्ट्रमंडल के अनिष्ट के लिये नहीं किया जाता।" और इसके अतिरिक्त जैसा कि हाउस ऑफ कामन्स की विशेषाधिकार समिति ने *रैम्से* के मामले में कहा था, "प्रत्येक निरोध, चाहे वह निवारक हो, या दाण्डिक या किसी अन्य प्रकार का, के सम्बन्ध में एक बात सामान्य है कि वह सम्पूर्ण समाज के संरक्षण के लिए होता है..."

भारत में न्यायालयों ने भी उपर्युक्त विचार की पुष्टि की है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की थी कि:

> निवारक निरोध का स्वरूप दीवानी की बजाय फौजदारी अधिक है। निवारक निरोध अधिनियम केवल उन व्यक्तियों के निरोध की अनुमति देता है जो राज्य के लिए खतरनाक हों या खतरनाक हो सकते हों। यह सच है कि ऐसे आदेश तभी दिये जाते हैं जब फौजदारी के आरोपों को संभवत: प्रमाणित नहीं किया जा सकता लेकिन ये आदेश घृणित और आपराधिक तथा देशद्रोहपूर्ण गतिविधियों के संदेह के आधार पर ही दिये जाते हैं.....[125]

मद्रास उच्च न्यायालय के सामने एक मामले में, मद्रास विधान सभा के एक सदस्य ने, जो उस समय सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने सम्बन्धी अधिनियम के अन्तर्गत निरुद्ध था, मद्रास विधान सभा के सत्र के लिए आमन्त्रण मिलने पर न्यायालय से प्रार्थना की कि वह परमादेश या कोई अन्य समुचित रिट जारी उसके मद्रास विधान सभा की बैठकों में उपस्थिति के उसके अधिकार की घोषणा की जाये और उसे लागू किया जाये जिससे कि वह स्वतंत्र रूप से या युक्तियुक्त प्रतिबंधों के साथ सभा की बैठकों में उपस्थित हो सके। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि कोई सदस्य गिरफ्तारी और निरुद्ध किए जाने के मामले में निवारक निरोध

---

125. *अंशुमाली मजूमदार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,* ए.आई.आर. 1952 कलकत्ता 632; साथ ही *देखिए वेंकटेस्वरलू* के मामले में *ए.आई.आर.* 1951 मद्रास 269 ।

कानून के अन्तर्गत किसी प्रकार के विशेषाधिकार का दावा नहीं कर सकता और यह टिप्पणी की:

> जब एक बार किसी निवारक निरोध कानून के अंतर्गत विधान सभा के किसी सदस्य को गिरफ्तार कर लिया जाता है और उसे कानूनी तौर पर निरुद्ध किया जाता है, तो चाहे उस पर वास्तविक रूप से मुकदमा न चलाया जाए, इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि विद्यमान कानून के अंतर्गत उसे सभा की बैठकों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। हमारे यह घोषणा करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि उसे सशस्त्र पहरे के अंतर्गत विधान सभा की बैठक में भाग लेने का अधिकार है।[126]

इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी:

> संसद के सत्र में उपस्थित होने, वाद-विवाद में भाग लेने और अपना मत दर्ज करने के विषय में संसद सदस्य के अधिकार, इस शब्द से सही-सही अर्थ में संवैधानिक अधिकार नहीं हैं और यह पूर्णत: स्पष्ट है कि ये अधिकार मूल अधिकार तो बिल्कुल ही नहीं हैं। जहां तक निरुद्ध किए जाने संबंधी वैध आदेश का संबंध है, कोई संसद सदस्य सामान्य नागरिक से अधिक विशेष दर्जा दिये जाने का दावा नहीं कर सकता।[127]

न्यायालयों में साक्षी के रूप में उपस्थिति से छूट

किसी न्यायालय में साक्षी के रूप में उपस्थिति से छूट का विशेषाधिकार भी दीवानी मामले में गिरफ्तारी से छूट के विशेषाधिकार के बराबर है और इस सिद्धांत पर आधारित है कि सभा में सदस्य की उपस्थिति उसके और सभी दायित्वों से अधिक महत्वपूर्ण है और सदस्यों की सेवा तथा उपस्थिति पर सबसे पहले हक सभा का है।

मद्रास विधान सभा में एक सदस्य ने विशेषाधिकार का प्रश्न इस आधार पर उठाने की कोशिश की कि उसे एक न्यायालय ने साक्षी के रूप में उपस्थित होने का आदेश दिया है जबकि विधान सभा का सत्र चल रहा है। सभापति ने सभा से राय मांगी कि क्या सदस्य को साक्षी के रूप में उपस्थित होने की अनुमति दी जाए। सभा ने अनुमति नहीं दी जिस पर सभापति ने टिप्पणी की कि सदस्य अपने विशेषाधिकार का दावा कर सकता है और सभा में रह सकता है।[128]

राष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत विशेष उल्लेख के मामले में 1 मई, 1974 को लोक सभा के अध्यक्ष को उच्चतम न्यायालय से एक नोटिस मिला। नोटिस में यह अपेक्षा की गई थी कि अध्यक्ष न्यायालय के किसी अधिवक्ता के माध्यम से न्यायालय में उपस्थित हों और उच्चतम न्यायालय के समक्ष उसकी कार्यवाही में जितना उचित समझें, हिस्सा लें। सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति, जिसके समक्ष यह मामला प्रस्तुत

---

126. *के. आनंदन नाम्बियार* के मामले में ए.आई.आर. 1952 मद्रास 117 ।

127. *के. आनंदन नाम्बियार और आर. उमानाथ* बनाम *मुख्य सचिव, मद्रास सरकार,* ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 657 ।

128. *मद्रास एल.ए. डिबेट्स,* 17.11.1959 ।

किया गया था, ने यह सलाह दी कि न तो लोक सभा और न ही अध्यक्ष को इस मामले में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना चाहिए। सभा इस निर्णय से सहमत हुई और तद्नुसार उच्चतम न्यायालय को सूचित कर दिया गया।[129]

इसी प्रकार का एक नोटिस राज्य सभा के सभापति को भी उच्चतम न्यायालय से प्राप्त हुआ था। इसकी सामान्य प्रयोजन संबंधी समिति द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार इस मामले में राज्य सभा द्वारा कोई कार्यवाही नहीं की गई।[130]

एक अन्य मामले में लोक लेखा समिति के सभापति को समिति के एक प्रतिवेदन में की गई कतिपय टिप्पणी के मामले में अंतर्ग्रस्त होने के कारण न्यायालय से समन प्राप्त हुआ। 1 अगस्त, 1975 को लोक सभा अध्यक्ष ने इस मामले को सभा के समक्ष प्रस्तुत करते हुए लोक लेखा समिति के सभापति को समन की अनदेखी करने का सुझाव दिया और न्यायालय में किसी भी तरह न उपस्थित होने के लिए कहा।[131]

सभा के परिसर में वैध आदेश दिए जाने और बन्दीकरण से उन्मुक्ति

अध्यक्ष की अनुज्ञा लिए बिना किसी सदस्य को सभा के परिसर में न तो कोई वैध, सिविल अथवा आपराधिक आदेश दिया जा सकता है और न ही उसका बन्दीकरण किया जा सकता है और चाहे सभा का सत्र चल रहा हो या न चल रहा हो, यह अनुमति आवश्यक है।[132] नियम में सभा के परिसर को परिभाषित किया गया है।[133]

> पंजाब विधान सभा के एक मामले में जब एक पुलिस अधिकारी ने पहले से सभा की अनुमति प्राप्त किये बिना सभा के परिसर में एक सदस्य को वारण्ट के आधार पर बन्दीकरण की चेष्टा की तो सभा ने पुलिस अधिकारी को विशेषाधिकार भंग का दोषी ठहराया। उस पुलिस अधिकारी ने बिना शर्त क्षमा याचना की, जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया।[134]

लेकिन विधान मंडल सचिवालय में कर्मचारियों की सभा के परिसर में बन्दीकरण के एक मामले में केरल विधान सभा के अध्यक्ष ने विशेषाधिकार के प्रश्न को नामंजूर करते हुए यह विनिर्णय दिया:

> अध्यक्ष की अनुमति के बिना सभा के परिसर में बन्दीकरण पर रोक केवल विधान सभा के सदस्यों पर ही लागू होती है। मैं नहीं समझता कि सदस्यों के अलावा अन्य व्यक्तियों को यह विशेषाधिकार प्रदान करना संभव है और न तो यह अपेक्षित ही है क्योंकि

---

129. *लो.स.वा.वि.,* 9.5.1974, पृ. 118 ।
130. *रा.स.वा.वि.,* 9.5.1974 ।
131. *लो.स.वा.वि.,* 1.8.1975, पृ. 3-4 ।
132. नियम 232 और 233 ।
133. नियम 2(1) और निदेश 184 ।
134. *पंजाब विधान सभा वाद-विवाद,* 19.2.1959 और 19.3.1959 ।

इससे कानून की समुचित प्रक्रिया पर अनावश्यक निर्बंधन लगता है अथवा उसमें बाधा पड़ती है।[135]

भारत सरकार ने संबंधित अधिकारियों को इस आशय की हिदायतें दी हैं कि न्यायालय, वैध, सिविल या आपराधिक आदेश अध्यक्ष या सचिवालय के माध्यम से संसद सदस्यों को न दें। समुचित प्रक्रिया यह है कि संबंधित सदस्य को समन सीधे, संसद भवन के परिसर के बाहर, अर्थात् उनके निवास स्थान पर या और कहीं दिये जायें।[136]

भारत सरकार ने राज्य सरकारों और प्रशासनों के माध्यम से, संबंधित पुलिस तथा अन्य अधिकारियों को इस आशय की हिदायतें दी हैं कि उनके द्वारा सभा के परिसर में बन्दीकरण करने के लिए अनुमति का अनुरोध अध्यक्ष से आमतौर पर न किया जाये। ऐसे अनुरोध अत्यावश्यक मामलों में ही किये जाने चाहिएं, जहां सभा के उस दिन स्थगित होने तक प्रतीक्षा न की जा सकती हो। ऐसे प्रत्येक मामले में अनुरोध कम से कम पुलिस उप-महानिरीक्षक के स्तर के अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए और उसमें यह बताया जाना चाहिए कि सभा परिसर में बन्दीकरण जरूरी क्यों है।[137]

सदस्यों के बन्दीकरण, निरोध, दोषसिद्धि और रिहाई की सूचना सभा को दिया जाना

जब किसी सदस्य का किसी आपराधिक आरोप पर या आपराधिक अपराध के आधार पर बन्दीकरण किया जाये या किसी न्यायालय द्वारा उसे कारावास का दण्ड दिया जाये या कार्यकारी आदेश के अंतर्गत उसे निरुद्ध किया जाये तो सुपुर्दगी करने वाला न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या कार्यकारी प्राधिकारी, यथास्थिति, इस बात की सूचना तुरन्त अध्यक्ष को देगा। वह यह भी बताएगा कि, यथास्थिति बन्दीकरण, निरोध या दोषसिद्धि के क्या कारण हैं तथा सदस्य को कहां पर निरुद्ध किया है या जेल में रखा गया है। यह सूचना उसे एक विहित प्रपत्र में देनी पड़ती है। *जाम्बवंत धोते* के मामले (1973) में विशेषाधिकार समिति ने यह सिफारिश की थी कि जब किसी सदस्य का आंतरिक सुरक्षा अधिनियम, 1971 अथवा निवारक निरोध का उपबन्ध करने वाले किसी अन्य कानून के अंतर्गत बन्दीकरण और उसे निरुद्ध किया जाये तो अधिकारियों को चाहिए कि वे अध्यक्ष को सदस्य के बन्दीकरण और निरुद्ध किए जाने के बारे में तुरन्त सूचना दें और साथ ही ऐसे बन्दीकरण और निरोध के कारणों का उल्लेख भी करें और इसके अतिरिक्त जब ये कारण निवारक निरोध के लिए निर्धारित कानून के अनुसार निरुद्ध व्यक्ति को दिए गए हों तो उन विस्तृत कारणों की एक प्रति उसी समय लोक

---

135. *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* 1973, खंड XVIII, 2, पृ. 34 ।

136. गृह मंत्रालय का पत्र संख्या 35/2/57-पी. II, 7.10.1958 को सभी राज्य सरकारों तथा प्रशासनों को भेजा गया था और संख्या 1/1602/25/95-आई.एस. (डी-III) 19 जून, 1996 जो सभी राज्य सरकारों एवं संघ राज्यक्षेत्रों के मुख्य सचिवों को भेजा गया था [फाइल सं. 16-76/95/ एल.बी.-1 (प्रिव.)] ।

137. गृह मंत्रालय के पत्र संख्या 56/58 ज्यूडि., 14 अप्रैल और 30 सितम्बर, 1953 और पत्र संख्या 35/2/57 पी. II, 8 फरवरी, 1958 ।

सभा अध्यक्ष को भी भेजें।[138] जब किसी सदस्य का बन्दीकरण किया जाए और दोषसिद्धि के बाद अपील का फैसला होने तक जमानत पर रिहा किया जाए या वैसे रिहा किया जाए तो संबंधित अधिकारी से अपेक्षा की जाती है कि वह इस बात की सूचना भी विहित प्रपत्र में अध्यक्ष को दे।[139]

> यदि किसी सदस्य का 'बन्दीकरण' शब्द के सही कानूनी अर्थ के अंतर्गत बन्दीकरण नहीं किया गया है बल्कि पुलिस द्वारा कुछ समय के लिए निरुद्ध किया गया है और फिर छोड़ दिया जाता है, तो उस स्थिति में भी संबंधित अधिकारियों द्वारा अध्यक्ष को मामले की आवश्यक जानकारी न दे पाना तकनीकी रूप से सभा का विशेषाधिकार भंग माना जाता है।[140]

सुपुर्दगी करने वाले न्यायाधीश अथवा मजिस्ट्रेट को सदस्य के बन्दीकरण या निरुद्ध किये जाने अथवा दोषसिद्धि की सूचना अध्यक्ष को देनी होती है क्योंकि यही वह अधिकारी है जिसने सदस्य को सभा में उपस्थित होने और अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन देने से रोका है। ऐसे मामलों में जबकि न्यायाधीशों के पैनल ने दण्ड दिया हो तो न्यायाधीशों के पैनल में जो वरिष्ठतम न्यायाधीश होता है उसे तथ्य की जानकारी देनी होती है। केवल कानूनी तौर पर प्राधिकृत व्यक्ति ही किसी व्यक्ति को गिरफ्तार अथवा निरुद्ध कर सकता है और सभा को सूचना प्राप्त होने पर यह देखना होता है कि उक्त व्यक्ति किसी सदस्य को कार्य करने से रोकने के लिए प्राधिकृत था।

यदि किसी सदस्य को अर्थदंड दिया जाता है तो ऐसी सूचना देना अधिकारियों के लिए आवश्यक नहीं है। जिन मामलों में न्यायालय के अधिकारी अर्थात् रजिस्ट्रार द्वारा सूचना भेजी जाती है तो वह नियमों के विरुद्ध नहीं है।

---

138. *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* 1975, खंड XX, 2, पृ. 37-41 ।

139. नियम 229, 230 और नियमों की तीसरी अनुसूची।

भारत सरकार ने सभी राज्य सरकारों और प्रशासनों को यह सलाह दी है कि जब किसी सदस्य को किसी भी आधार पर उदाहरण के लिए अपील का फैसला होने तक जमानत के कारण या अपील पर दण्ड रद्द किये जाने पर या सरकार द्वारा अपील पर दंड माफ किए जाने पर या निवारक नजरबन्दी समाप्त होने पर जेल से रिहा किया जाता है, तो ऐसी रिहाई की सूचना भी अनिवार्यत: अध्यक्ष को दी जानी चाहिए। यदि कोई सदस्य नजरबंद हो या कारावास का दण्ड भुगत रहा हो या उसे जब एक जेल से दूसरी जेल में स्थानान्तरित किया जाता है तब भी निरोध या कारावास के स्थान में परिवर्तन की सूचना अध्यक्ष को देनी पड़ती है—गृह मंत्रालय का पत्र संख्या 35/2/57-पी. II, दिनांक 21 मई, 1958 ।

140. *स्वामी ब्रह्मानन्द* का मामला, पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-चौथी लोक सभा); *के. सी. हल्दर* का मामला *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* 1976, खंड XXI, 1, पृ. 2-4; साथ ही कु. *फ्रिडा टोपनो का मामला,* पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दसवीं लोक सभा)।

यदि सभा का सत्र जारी हो तो जैसे ही अध्यक्ष को किसी सदस्य की गिरफ्तारी, दोषसिद्धि अथवा रिहाई की सूचना मिलती है तो अध्यक्ष उसे सभा में पढ़ देता है।[141] यदि सभा का सत्र न चल रहा हो तो वह निदेश देता है कि वह सूचना सदस्यों की जानकारी के लिए 'बुलेटिन' में प्रकाशित कर दी जाए।[142]

जब किसी सदस्य को जमानत पर या अपील पर बरी किए जाने पर रिहाई की सूचना प्राप्त होती है तो सभा को उसकी मूल गिरफ्तारी की सूचना देने से पहले, उसकी गिरफ्तारी या बाद में उसकी रिहाई या बरी किए जाने की सूचना अध्यक्ष द्वारा सभा को देनी जरूरी नहीं है।[143]

यदि कोई सदस्य, उसकी रिहाई की सूचना सभा को दिए जाने से पहले सभा में आने लगा हो तो उस बात की सूचना सभा में नहीं दी जाती, बल्कि सदस्यों की जानकारी के लिए बुलेटिन में प्रकाशित कर दी जाती है।

न्यायाधीश अथवा मजिस्ट्रेट या किसी अन्य अधिकारी द्वारा किसी सदस्य की गिरफ्तारी, निरोध अथवा कारावास की सूचना सभा को न दे पाना सभा के विशेषाधिकार का भंग है।

> 1 मार्च, 1950 को एक सदस्य ने पूर्वी पंजाब जन सुरक्षा अधिनियम, 1949 के अंतर्गत अध्यक्ष को तथ्य की जानकारी दिए बिना एक अन्य सदस्य को दिल्ली से हटाए जाने के संबंध में सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया। इस मामले पर सभा में चर्चा की गई और जब सरकार ने इस पर अपना खेद व्यक्त किया तो सभा ने एक सदस्य द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर इस मामले में छोड़ने का निर्णय लिया।[144]
>
> हैदराबाद विधान सभा ने एक सदस्य की गिरफ्तारी के बारे में विधान सभा अध्यक्ष को सूचित न कर पाने के लिए एक पुलिस उप-निरीक्षक को विशेषाधिकार भंग करने का दोषी ठहराया। उक्त पुलिस उप-निरीक्षक को आन्ध्र प्रदेश, विधान सभा (राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् हैदराबाद विधान सभा का प्रमुख उत्तरवर्ती) के बार (विधिज्ञ परिषद्) के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया, जहां उसने बिना शर्त माफी मांगी।[145]

यद्यपि, किसी सदस्य के कारावास का स्थान या उसे निरुद्ध किए जाने का स्थान या एक जेल से दूसरे जेल में भेजे जाने या हिरासत से छोड़े जाने की जानकारी अध्यक्ष को न दे पाना अपने आप में विशेषाधिकार भंग का मामला नहीं है, फिर भी, यह एक सुस्थापित

---

141. नियम 231 ।
142. *पूर्वोक्त* ।
143. नियम 231, परन्तुक।
144. *पी. डिबेट्स* (II), 1.3.1950, पृ. 1019-45 ।
145. *हैदराबाद एल.ए. डिबेट्स,* 18.6.1952, 19.6.1952, पृ. 353, 393-98; 10.12.1952, पृ. 1106-24 और *आन्ध्र प्रदेश एल.ए. डिबेट्स,* 25.3.1957, पृ. 327-30 और 15.4.1957, पृ. 96 ।

परम्परा का पालन न किया जाना तो अवश्य है।[146]

> *दशरथ देव* के मामले (1952) में विशेषाधिकार समिति ने यह कहा था कि जब किसी सदस्य को आपराधिक न्याय के प्रशासन के दौरान गिरफ्तार किया जाता है और उसे जमानत पर तुरन्त रिहा कर दिया जाता है तो संबंधित मजिस्ट्रेट का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह इस मामले की जानकारी सभा को दे।
>
> समिति ने अपने चौथे प्रतिवेदन (1958) में यह भी निर्णय दिया था कि एक सदस्य पर मुकदमा चलने तक जमानत पर उसकी रिहाई की सूचना अध्यक्ष को न भेजकर अधिकारियों ने कोई विशेषाधिकार भंग नहीं किया।

यदि शांति कायम रखने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के अंतर्गत किसी सदस्य को आबद्ध किया जाता है तो उसका आदेश जारी करने वाले मजिस्ट्रेट के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह इस बात की सूचना अध्यक्ष को दे, क्योंकि ऐसे आदेश से सदस्य के सभा की बैठकों में उपस्थित होने में बाधा नहीं पड़ती है।

यह फैसला करने के लिए कि किसी मामले विशेष में आवश्यक जानकारी अध्यक्ष को तत्काल भेजी गई है या नहीं उस मामले की सारी परिस्थितियों पर विचार करना पड़ता है। विशेषाधिकार समिति ने यह निर्णय किया है कि "यद्यपि यह सभी जानते हैं कि इस प्रकार की सूचना तुरन्त दी जानी चाहिए, इस विषय में कोई पक्का नियम नहीं बनाया जा सकता। बहुत कुछ प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा[147]।"

जहां अध्यक्ष को आवश्यक सूचना भेजने में देरी हुई है, उसके लिए संबंधित अधिकारियों ने खेद प्रकट किया है।[148]

हिरासत में रखे गये सदस्य द्वारा अध्यक्ष या संसदीय समिति के सभापति के नाम लिखे गए संदेश को रोका न जाना

हिरासत में रखे गये किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष, महासचिव या किसी संसदीय समिति के सभापति के नाम लिखे गये पत्र को रोकना विशेषाधिकार भंग है लेकिन यदि कोई सदस्य जेल से किसी दूसरे सदस्य के नाम चिट्ठी लिखता है और उसे सरकार रोक लेती है तो यह

---

146. 23 अगस्त, 1957 को अध्यक्ष *आयंगर* द्वारा रिकार्ड किए गए कार्यवाही सारांश और सभी राज्यों एवं प्रशासनों को गृह मंत्रालय द्वारा भेजा गया पत्र संख्या 35/2/57-पी. II, 21 मई, 1958 ।

147. *देशपाण्डे* का मामला (1952) (विशेषाधिकार समिति-पहली लोक सभा) साथ ही देखिए *महावीर त्यागी* का मामला, *रा.स.वा.वि.,* 30.8.1973 और *जाम्बवन्त धोते* का मामला, प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1975, खंड XX-2, पृ. 37-47 ।

148. एक सदस्य को 9 जून, 1952 को जमानत पर रिहा किया गया था। संबंधित मजिस्ट्रेट ने 12 मार्च, 1953 को सदस्य की रिहाई की सूचना देते हुए, देरी के लिए क्षमा मांगी-*देखिए लो.स.वा.वि.* (II) 19.3.1953, का. 1803; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.* 20.10.1982 पृ. 220-21 ।

विशेषाधिकार भंग नहीं है।[149] वर्ष 1952 में मद्रास उच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि विधान मंडल का जो सदस्य निरुद्ध हो, उसे विधान मंडल के साथ पत्र व्यवहार करने और अध्यक्ष तथा विशेषाधिकार समिति के सभापति को अभ्यावेदन देने का अधिकार है और किसी भी कार्यपालक प्राधिकारी को यह अधिकार नहीं है कि वह ऐसे पत्रों को रोक ले।[150]

विशेषाधिकार समिति ने 1958 में यह सिफारिश की थी कि राज्य सरकारों तथा प्रशासनों की जेल संहिताओं, बंदियों के सुरक्षा नियमों आदि में इस आशय के उपबंध किये जायें कि यदि संसद का कोई सदस्य सुरक्षा या अन्य कारणों से गिरफ्तार किया गया हो या निरुद्ध हो या कारावास में हो तो उसके द्वारा, यथास्थिति, लोक सभा के अध्यक्ष, राज्य सभा के सभापति या संसदीय समिति के सभापति या दोनों सदनों की संयुक्त समिति के सभापति को लिखे गये पत्र संबंधित जेल के अधीक्षक द्वारा तुरन्त सरकार को भेजे जाने चाहिए ताकि सभा के सदस्य के नाते बंदी के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के अनुसार सरकार उस पर कार्यवाही कर सके।[151] समिति ने यह सुझाव भी दिया कि इस संबंध में एकरूपता लाने के लिए राज्यों के विधान मंडलों के सदस्यों के संबंध में भी ऐसे ही उपबंध किये जाने चाहिए।

तदनुसार गृह मंत्रालय ने सभी राज्य सरकारों तथा प्रशासनों को सलाह दी कि वे अपने संगत नियमों में आवश्यक उपबंध कर लें।[152]

हथकड़ी का प्रयोग

ऐसा कोई विशेषाधिकार नहीं है कि कोई संसद सदस्य, जो फौजदारी आरोप के आधार पर गिरफ्तार किया गया हो, उसे हथकड़ी न लगायी जा सके।[153] लेकिन भारत सरकार ने राज्य सरकारों और प्रशासन के माध्यम से पुलिस और अन्य सम्बन्धित अधिकारियों को इस आशय की हिदायतें दे रखी हैं कि जो लोग पुलिस की हिरासत में हों और कैदियों को, चाहे उन पर मुकदमा चल रहा हो या वे सिद्धदोष हो चुके हों, सामान्यतः हथकड़ी न लगायी जाये और हथकड़ियों का प्रयोग उन्हीं मामलों में किया जाये जहां कि बंदी बहुत दुःस्साहसी हों और जहां यह विश्वास करने के युक्तियुक्त कारण हों कि वह हिंसा पर उतर आयेगा या भागने की कोशिश करेगा या ऐसे ही कोई और कारण हों, तभी हथकड़ी लगायी जाये।[154]

---

149. चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) पृ. 11-12 ।
150. *के. आनन्दन नाम्बियार* का मामला, ए.आई.आर. 1952 मद्रास 117 ।
151. *कंसारी एच. का मामला,* चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—दूसरी लोक सभा) पृ. 11-12 ।
152. गृह मंत्रालय का पत्र सं. 35/8/58-पी II, 24.1.1959 और 14.5.1959 ।

    उसके बाद से अनेक राज्य सरकारों और प्रशासनों ने इस संबंध में आवश्यक उपबंध कर दिये हैं और अपने-अपने नियमों में उपयुक्त संशोधन कर लिये हैं।
153. पांचवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—दूसरी लोक सभा) पृ. 47 ।
154. गृह मंत्रालय का परिपत्र सं. एफ. 2/13/67-पी. IV, 26 जुलाई 1957 और संख्या 35/8/58-पी. II, दिनांक 24 जनवरी, 1959, पांचवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—दूसरी लोक सभा). पृ. 48 ।

बन्दीकरण तथा उत्पीड़न से छूट के विशेषाधिकार को साक्षियों और याचिका देने वालों पर भी लागू किया जाना

उसी सिद्धान्त के आधार पर, जो कि संसद सदस्यों पर लागू होता है, गिरफ्तारी तथा उत्पीड़न से छूट का विशेषाधिकार उन साक्षियों के सभा या उसकी किसी समिति के सामने आने, रुकने और वापस जाने पर भी दिया गया है जिन्हें सभा या उसकी किसी समिति के सामने बुलाया जाये और उन लोगों को भी, जो सभा के कार्य के संबंध में उपस्थित हैं जैसे कि साक्षियों या पक्षों के वकील। संसद की अव्यवहित सेवा में संलग्न अधिकारियों को भी यही विशेषाधिकार प्राप्त है।[155]

अत: सभा या उसकी किसी समिति के सामने पेश होने के लिये बुलाये गये साक्षियों, याचिका देने वालों या अन्य व्यक्तियों की किसी दीवानी आदेशिका के आधार पर सभा या उसकी किसी समिति में जाते समय, वहां उपस्थिति के दौरान, वापसी पर, गिरफ्तारी की जाये या कराने की कोशिश की जाये तो यह सभा की अवमानना होगी।[156] उसी प्रकार सभा की अव्यवहित सेवा में संलग्न किसी अधिकारी को फौजदारी आरोप के अतिरिक्त किसी आधार पर गिरफ्तार करना या गिरफ्तार करने की कोशिश करना सभा की अवमानना है।[157]

विशेषाधिकार भंग या अवमानना करने पर सभा की दंड देने, हिरासत में तथा जेल भेजने की शक्ति

संसद तथा राज्य विधान मंडलों के प्रत्येक सदन को विशेषाधिकार भंग या अवमानना पर दंड देने की शक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त उसे विशेषाधिकार संबंधी मामलों में व्यक्तियों को बुलवाने, (इन अपराधों के) कथित अपराधियों को हिरासत में रखने और अपराधियों को हिरासत या जेल भेजने की शक्ति भी प्राप्त है।

संसद और राज्य विधान मंडलों के पास न केवल अवमानना के लिए दंड देने का अधिकार है बल्कि उन्हें स्वयं यह निर्णय करने का अधिकार भी है कि कौन सा मामला अवमानना का है और कौन-सा नहीं क्योंकि इसके बिना अवमानना के लिए दंडित करने के विशेषाधिकार का कोई अर्थ नहीं रह जाता।[158]

संसद सदस्यों को हथकड़ी लगाने संबंधी उदाहरणों के लिए *देखिए–प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* 1975, खंड XX, पृ. 53-54, (उ.प्र. विधान सभा) और *लो.स.वा.वि.,* 6.8.1974 पृ. 68; *एल.एस. डिबेट्स,* 14.8.1974, का. 203-08; 30.8.1974, का. 165-72 (बिहार के सत्याग्रही)।

155. मे, 24वां संस्करण, पृ. 131 ।
156. *पूर्वोक्त*, पृ. 132 ।
157. मे, 24वां संस्करण, पृ. 267 ।
158. हिदायतुल्ला, उद्धृतकृति पृ. 193 ।

'विशेषाधिकार भंग' शब्द का अर्थ व्यक्तिगत रूप से किसी संसद सदस्य अथवा सामूहिक रूप से संसद के किसी अधिकार, विशेषाधिकार या उन्मुक्ति के प्रति असम्मान दर्शाना है। सम्यक जांच के उपरांत, 'विशेषाधिकार भंग' को उसी प्रकार दंडित किया जाता है जिस प्रकार न्यायालय अपने प्राधिकार या गरिमा की अवमानना के लिए दंडित करते हैं।

व्यवहार में, सामान्यतः 'विशेषाधिकार भंग' शब्द का प्रयोग अवमानना के लिए भी किया जाता है। तथापि, यह सम्यक् रूप से केवल उसी प्रकार की अवमानना के लिए प्रयुक्त होता है जो सभा या उसके सदस्य के विशेषाधिकारों के उल्लंघन या उसके प्रति असम्मान के रूप में होता है।

सभा की अवमानना की परिभाषा सामान्यतः इस प्रकार की जाती है—"कोई ऐसा कार्य या चूक जो संसद के किसी भी सदन या इसके सदस्य अथवा अधिकारी के कार्य निष्पादन में अड़चन या बाधा डालता है अथवा जिसकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रवृत्ति ऐसे परिणाम देने को ही यद्यपि इस अपराध का कोई पूर्व उदाहरण नहीं है।"[159] इस प्रकार, यदि कोई कार्य जो प्रत्यक्ष रूप से सभा के कार्य निष्पादन में बाधा उपस्थित करने वाला न हो पर जिसकी प्रवृत्ति सभा की निंदा या अवमानना करके या उसका उपहास करके अथवा इसके प्राधिकार को निम्नतर करके, ऐसा परिणाम उत्पन्न करने की हो तो वह अवमाननाकारी होता है। इसके अतिरिक्त सभा न केवल उन अवमाननाओं के लिए दंडित कर सकती है जो "उन तथ्यों से उत्पन्न होती हैं जिनका सामान्य न्यायालय संज्ञान ले सकता है बल्कि उनके लिए भी जिनका संज्ञान नहीं ले सकते यथा-अवमाननाकारी अपमान, घोर लांछन, मुंह से बोले गये अपशब्द जो कानूनी कार्यवाही योग्य मिथ्यापवाद की श्रेणी में नहीं आते अथवा शारीरिक क्षति पहुंचाने की धमकी।"[160]

तथापि, संसद की अवमाननाओं की प्रकृति और उनकी गम्भीरता में काफी अंतर हो सकता है। जहां एक ओर गंभीर अभद्र शब्दों और गैर-जिम्मेदाराना अपशब्दों से अवमानना हो सकती है वहीं वह दूसरी ओर स्वयं संस्था के रूप में संसद की गरिमा को ही ठेस पहुंचाने वाले गंभीर प्रहारों से भी हो सकती है।[161] ऐसे अपराधों को सामान्यतः विशेषाधिकार भंग कहा जाता है लेकिन यह पूर्णतः सही नहीं हैं। जहां सभी विशेषाधिकार भंग, उस सभा जिसके विशेषाधिकार भंग होते हैं.... की अवमानना है, वहीं कोई व्यक्ति सभा की अवमानना का दोषी हो सकता है चाहे उसने सभा के किसी विशेषाधिकार को भंग नहीं किया हो। उदाहरणार्थ जब वह किसी समिति के समक्ष उपस्थित होने संबंधी आदेश का पालन नहीं करता अथवा सदस्य

---

159. मे, चौबीसवां संस्करण, पृ. 115 ।

160. *पूर्वोक्त,* पृ. 129 ।

161. एच.सी. 112(1947-48), पृ. iii-iv, *डेली मेल का मामला।*

विशेषाधिकार समिति (चौदहवीं लोक सभा) ने अपने 19वें प्रतिवेदन में यह निर्णय दिया कि सभा पटल पर नोटों की गड्डियां रखना सदन की अवमानना करना है।

की हैसियत से किसी अन्य सदस्य के चरित्र या आचरण के बारे में आक्षेप प्रकाशित करता है तो वह अवमानना का दोषी हो सकता है।[162]

विशेषाधिकार भंग या अवमानना के लिए दंड देने की सभा की शक्ति को "संसद के विशेषाधिकार की आधारशिला" कहा गया है तथा सभा द्वारा अपने कर्त्तव्यों के पालन और अपने प्राधिकार एवं विशेषाधिकारों की रक्षा के लिए यह शक्ति जरूरी समझी जाती है।[163] यह शक्ति वैसी ही है जैसी कि न्यायालयों को अपनी अवमानना करने वालों को दंड देने की है और इसी कारण संसद को भी दी गई है। ऐसी शक्ति के बिना "सभा का जरा सा भी सम्मान नहीं रहेगा और वह सर्वथा अक्षम हो जायेगी।"[164]

विधानमंडल को अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति इस देश में हाल ही में दी गई है। 1919 के अधिनियम के द्वारा भारतीय विधानमंडल के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार दिए गए थे लेकिन विधानमंडल को यह शक्ति नहीं दी गयी कि वह अवमानना या विशेषाधिकार भंग के लिए दंड दे सके।[165] भारत शासन अधिनियम, 1935 में इन विशेषाधिकारों का क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया लेकिन उसमें स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि इस अधिनियम या किसी अन्य भारतीय अधिनियम में कही गयी किसी बात का अर्थ यह नहीं लिया जायेगा कि उसके द्वारा संघीय विधानमंडल को यह शक्ति मिलती है या उसे दोनों सदनों में से किसी सदन या सदनों की संयुक्त बैठक को यह शक्ति देने का अधिकार मिलता है कि दोनों सदन या उनकी संयुक्त बैठक या विधान मंडल की किसी समिति या अधिकारी को न्यायालय का दर्जा दिया जाये और या इसके सिवाए कोई दंड देने या अनुशासन की शक्ति मिलती है कि वह नियमों या स्थायी आदेशों का उल्लंघन करने वाले या गड़बड़ी या अव्यवस्था फैलाने पर किसी व्यक्ति को सभा भवन से निकाल सके।[166] लेकिन संविधान के प्रारम्भ होने पर संसद के दोनों सदनों और राज्यों के विधानमंडलों को यह शक्ति दी गयी कि वे अवमानना तथा विशेषाधिकार भंग के लिए दण्डित कर सकते हैं और अपराधी को हिरासत में ले सकते हैं या जेल भेज सकते हैं। वर्ष 1957 में बम्बई उच्च न्यायालय ने इस शक्ति को वैध ठहराया जब एक मामले में कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति कोयाजी ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की थी :

> .... संविधान के निर्माताओं का आशय यह था कि एकमात्र सभा को ही यह निर्णय करने की शक्ति होनी चाहिए कि उसका विशेषाधिकार भंग हुआ है या नहीं। इसलिए मैं समझता हूं कि यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जब अनुच्छेद 194(3) में यह उपबंध किया

---

162. अब्राहम और हात्रे, पृ. 76 ।
163. कुशिंग, *लेजिस्लेटिव असेम्बलीज,* पैरा 532-33, *साथ ही देखिए मे,* 24वां संस्करण, पृ. 197 ।
164. *देखिए बर्डट* बनाम *एबट के मामले में* मुख्य न्यायमूर्ति लार्ड एलनबरो (14 ईस्ट 150) की टिप्पणी।
165. भारत शासन अधिनियम की धारा 67(7) जो भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची में दी गई है।
166. भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 28(3)।

गया है कि सभा के विशेषाधिकार वही होंगे जो कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स के हैं, तो अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति सभा को स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में दी गई है और इसका मतलब यह है कि इस शक्ति का प्रयोग भी वैसा ही होगा जैसा कि हाउस ऑफ कामन्स की शक्ति का ।

उन्होंने यह भी कहा:

.... हाउस ऑफ कामन्स की अवमानना के लिए सुपुर्दगी का विशेषाधिकार प्राप्त है, इस अधिकार का सबसे महत्वपूर्ण तत्व यह है कि अभियुक्त को सामान्य वारण्ट द्वारा सुपुर्द और गिरफ्तार किया जा सकता है। इसलिए यह दलील नहीं दी जा सकती कि यदि हाउस ऑफ कामन्स की शक्तियां भारत के विधान मंडल के किसी सदन को कानून द्वारा नहीं बल्कि संविधान द्वारा दी गई हैं, तो सामान्य वारण्ट द्वारा सुपुर्दगी की शक्ति हाउस आफ कामन्स की अपनी शक्ति है और जिस विधानमंडल को यह शक्ति प्रदत्त की जाती है उसे यह स्वत: प्राप्त नहीं हो जाती क्योंकि जब शक्ति दी जाती है, तो वह वरिष्ठ न्यायालय अर्थात् अभिलेख न्यायालय की शक्ति होती है और वरिष्ठ या अभिलेख न्यायालय की वारण्ट जारी करने की शक्ति हाउस आफ कामन्स की ही होनी चाहिए। इसका तर्कसंगत परिणाम यह है कि वारण्ट जारी करने की शक्ति भी इसी शक्ति के साथ है।[167]

असम उच्च न्यायालय ने बाद में 1958 में इसी स्थिति की पुष्टि की :

यह बात तो अब सुस्थापित हो चुकी है कि इंगलैंड के हाउस ऑफ कामन्स को कुछ सुस्पष्ट अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हैं जो परम्परा और प्रथा के कारण सुस्थापित हो चुके हैं। उनमें से एक महत्वपूर्ण विशेषाधिकार है सभा के उच्च अधिकार की अवमानना तथा उसके विशेषाधिकार को भंग करने पर किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति। यह शक्ति न केवल सभा के सदस्यों के संबंध में प्राप्त है बल्कि बाहर के लोग भी इसके क्षेत्र में आ जाते हैं और जब सभा अपने उन अधिकारों तथा विशेषाधिकारों को क्रियान्वित करने के लिए कार्यवाही करती है तो न्यायालयों को उसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। उचित मंच सभा ही है जहां कि प्रभावित व्यक्ति अपने अधिकारों की क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है। भारत के संविधान के अंतर्गत ये शक्तियां और विशेषाधिकार संसद तथा राज्यों के विधान मंडलों के सदनों को प्राप्त हैं।[168]

विशेषाधिकार के मामले में व्यक्तियों को बुलाने तथा कथित अपराधियों को हिरासत में देने की शक्ति का प्रयोग उत्तर प्रदेश विधान सभा ने 1952 में किया था।

साप्ताहिक समाचार पत्रिका ब्लिट्ज के कार्यवाहक सम्पादक होमी डी. मिस्त्री को विधान सभा अध्यक्ष द्वारा जारी किए गए वांरट के आधार पर पुलिस ने 11 मार्च, 1952[169] को बम्बई में गिरफ्तार कर लिया जिससे कि श्री मिस्त्री को विशेषाधिकार भंग के आरोप का उत्तर देने के लिए 19 मार्च, 1952 को सभा के सामने पेश किया जा सके। श्री मिस्त्री

---

167. *होमी डी. मिस्त्री बनाम नफीसुल हसन* आई.एल.आर. 1957, बम्बई 218 ।

168. *नरेन्द्र नाथ बरुआ बनाम देवकांत बरुआ* और अन्य, ए.आई.आर. 1958 असम 160 ।

169. अध्यक्ष ने वारण्ट उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा 7 मार्च, 1952 को पारित किए गये संकल्प के आधार पर जारी किया था।

को 18 मार्च, 1952 तक लखनऊ में हिरासत में रखा गया जिस दिन कि उन्हें बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका पर[170] उच्चतम न्यायालय के आदेश के अनुसरण में रिहा कर दिया गया। यह याचिका इस आधार पर दी गयी थी कि श्री होमी मिस्त्री को चौबीस घंटे के भीतर किसी मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया गया जो कि अनुच्छेद 22(2) के उपबंधों के विरुद्ध है। बाद में श्री मिस्त्री ने एक दीवानी मुकदमा दायर किया, जिसमें उन्होंने अवैध गिरफ्तारी और निरोध के लिए हरजाने का दावा किया था। बम्बई उच्च न्यायालय के कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति कोयाजी ने इस मामले में अन्य बातों के साथ-साथ यह भी फैसला दिया कि सभा को यह शक्ति है कि वह कथित अपराधी को गिरफ्तार कराने और उसे सभा के कटघरे के सामने लाए जाने का आदेश दे सकती है जिससे कि वह विशेषाधिकार भंग के आरोप का उत्तर दे सके। इस संबंध में न्यायालय ने कहा था :

> .... उत्तर प्रदेश की विधान सभा को यह पूरा अधिकार था कि वह अनुच्छेद 194 द्वारा स्पष्ट रूप से दिए गए विशेषाधिकार के प्रयोग द्वारा अपनी गरिमा की रक्षा कर सके। इसी विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए उसने वारण्ट जारी किया जिसमें कहा गया है कि वह सभा की अवमानना के लिए जारी किया गया है, और इसलिए यह वारण्ट सामान्य वारण्ट है, और इसकी जांच यह न्यायालय नहीं कर सकता और इसको वैध रूप से कार्यान्वित किया जा सकता है....।[171]

भारत की संसद और राज्य विधानमंडलों ने अवमानना या विशेषाधिकार के भंग के लिए व्यक्तियों को जेल भेजने की शक्ति का प्रयोग किया है।[172]

यदि सभा की उपस्थिति में ही अवमानना की जाती है तो अवमानना करने वाले को नहीं सुना जा सकेगा। उसे अपर सचिव, सुरक्षा द्वारा तत्काल अभिरक्षा में लिया जाता है और

---

170. *गणपति केशवराम रेड्डी बनाम नफीसुल हसन,* ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 636 ।

    लेकिन यह मानना चाहिए कि सर्चलाइट केस, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395-423 द्वारा यह निर्णय रद्द हो गया, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने कहा था—"*गणपति केशवराम रेड्डी बनाम नफीसुल हसन के* मामले में हमारा निर्णय पूरी तरह वकील को दी गई रियायत के आधार पर था और उसे इस विषय पर हमारी सुनिश्चित राय नहीं माना जा सकता।"

171. *होमी डी. मिस्त्री बनाम नफीसुल हसन* आई.एल.आर. 1957, बम्बई 218 ।

172. *लो.स.वा.वि.,* 15.12.1967, 15.11.1968, 9.4.1969, 13.12.1969, 31.8.1970, 23.7.1973, 21.12.1973, 11.4.1974, 26.7.1974, 6.9.1974, 26.11.1974, 6.3.1975, 14.11.1977, 6.3.1979, 28.8.1981, 17.9.1981, 18.3.1982, 5.4.1982, 28.7.1982, 10.5.1983, 2.3.1984, 7.5.1984, 30.7.1985, 23.7.1987, 23.11.1987. *रा.स.वा.वि.,* 21.12.1967, 30.3.1973, 18.3.1982, 23.3.1982, 26.8.1983, 21.11.1983, *बिहार विधान सभा वाद-विवाद,* 2.3.1973, 22.8.1973, *गुजरात विधान सभा वाद-विवाद,* 15.6.1970; केरल एल.ए. डिबेट्स, 11.3.1969, 5.8.1969; मध्य प्रदेश विधान सभा वाद-विवाद, 2.4.1960, 5.3.1968, 9.9.1968, 7.3.1970, 21.9.1970, 26.3.1973, 28.3.1973, *महाराष्ट्र विधान सभा वाद-विवाद,* 12.6.1972, *राजस्थान विधान सभा वाद-विवाद,* 10.04.1956; *उत्तर प्रदेश विधान परिषद वाद-विवाद,* 28.10.1965; *उत्तर प्रदेश विधान सभा वाद-विवाद,* 19.7.1966 ।

पूछताछ हेतु आवश्यक न्यूनतम समय के लिए निरुद्ध रखा जाता है। अवमानना करने वाले के द्वारा क्षमा याचना करने पर सभा उसे सहर्ष स्वीकार कर सकती है और उसे मुक्त कर सकती है। अवमानना करने वाले को दंड देने का काम केवल सभा द्वारा ही किया जा सकता है। इस प्रयोजनार्थ संसदीय कार्य मंत्री एक प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। प्रस्ताव में कारावास की अवधि तथा स्थान अथवा जेल जिसमें अभियुक्त को रखा जाना है, विनिर्दिष्ट किया जा सकता है। सभा द्वारा प्रस्ताव स्वीकार किये जाने पर जेल के प्रभारी अधीक्षक को संबोधित सुपुर्दगी के वारण्ट पर अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं। तत्पश्चात् अपर सचिव, सुरक्षा अभियुक्त को उसके कारावास के स्थान पर ले जाता है।

कारावास की अवधि

सभा जिस अवधि के लिए किसी अपराधी को अवमानना के अपराध में हिरासत या जेल में रख सकती है, वह अधिकाधिक सभा के सत्र की अवधि के बराबर हो सकती है।[173] जब सभा का सत्रावसान हो जाता है तो बंदी को रिहाई का हक मिल जाता है लेकिन जहां सभा यह समझे कि जिस बंदी को सत्रावसान के कारण छोड़ दिया है उसे समुचित दंड नहीं मिला, तो उसे वह अगले सत्र में फिर जेल भेज सकती है और तब तक वहां रख सकती है जब तक कि सभा संतुष्ट न हो जाये।

वारण्ट के प्रपत्र

कोई ऐसा विनिर्दिष्ट प्रपत्र विहित नहीं किया गया है जिसके अनुसार सभा के आदेश से अध्यक्ष द्वारा वारण्ट जारी किया जाना चाहिए। वर्ष 1957 में बम्बई उच्च न्यायालय के कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति कोयाजी ने टिप्पणी की थी...।[174]

> ...इस वारण्ट को देखा जाए तो स्पष्ट है कि यह सामान्य वारण्ट है, जिसमें कहा गया है कि इस पक्षकार की उपस्थिति अवमानना संबंधी कार्यवाही में जरूरी है और इसलिए, किसी न्यायालय को ऐसे किसी वारण्ट की जांच करने और यह फैसला करने का अधिकार नहीं है कि यह उचित तथा वैध वारण्ट है अथवा नहीं।

वारण्टों के निष्पादन की शक्तियां

प्रत्येक सभा को अपने आदेश लागू करने की शक्ति है जिसमें, इस प्रयोजन के लिए आवश्यकता पड़ने पर इसके अधिकारियों को किसी मकान के दरवाजे तुड़वाकर खुलवाने की शक्ति भी शामिल है। इसके अतिरिक्त, इसे अवमानना की कार्यवाही के संबंध में वारण्टों का निष्पादन करवाने की शक्ति भी है।[175] सभा अपने प्राधिकार के अधीन पीठासीन अधिकारी द्वारा जारी किए गए वारण्ट के निष्पादन में सिविल अधिकारियों से सहायता देने के लिए कह

---

173. *सुशांत कुमार चांद* बनाम *उड़ीसा विधान सभा,* ए.आई.आर. 1973, उड़ीसा 111 ।

174. *होमी डी. मिस्त्री* बनाम *नफीसुल हसन,* आई.एल.आर. 1957, बम्बई 218 ।

175. *हावर्ड* बनाम *गोसेट,* 1842 कार एंड एम. 382 ।

सकता है। सभा का ऐसा विचार है कि सिविल सरकार की प्रत्येक शाखा सभा के आदेशों और वारण्टों के निष्पादन में सहायता करने के लिए बाध्य है।

बम्बई उच्च न्यायालय में यह तर्क दिया गया कि अध्यक्ष द्वारा किए गए वारण्ट का निष्पादन विधानमंडल की प्रशासनिक व्यवस्था के माध्यम से ही किया जा सकता है, किसी पुलिस अधिकारी के माध्यम से नहीं और न राज्य सरकार के अन्य अधिकारियों के माध्यम से। कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति, कोयाजी, ने इस संबंध में यह टिप्पणी की[176]:

> विधान सभा के आदेशों के पालन के लिए बल का प्रयोग विशेषाधिकार का एक परम आवश्यक तत्व है जिससे अवमानना के लिए दोषी व्यक्ति को सुपुर्द किया जा सके और उसे दंड दिया जा सके। केवल इस आधार पर कि यहां 'सार्जेंट एट आर्म्स' जैसा कोई अधिकारी नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार विशेषाधिकार की विषय-वस्तु समाप्त हो जाती है या कम हो जाती है... बल्कि मेरे विचार में.... इससे उस विशेषाधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।... यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी विहित व्यवस्था के अभाव के कारण विधान सभा को अवमानना तथा उसके लिए दंड देने के संबंध में अपने निर्णय को कार्यान्वित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।.... यदि वह वारण्ट हाउस ऑफ कामन्स के अध्यक्ष द्वारा 'सार्जेंट एट आर्म्स' को दिया जाता है तो 'सार्जेंट एट आर्म्स' उसके निष्पादन के लिए पुलिस की सहायता लेगा या यहां तक कि किसी भी सिविलियन की...... सभा के अधिकारी की, चाहे वह कोई भी हो, कोई अन्य सहायता ले सकता है।

लोक सभा के मामले में समन, पत्र आदि संघ अथवा राज्य सरकारों की एजेंसी के माध्यम से भेजे जाते हैं। जब किसी साक्षी या विशेषाधिकार भंग या अवमानना के दोषी किसी व्यक्ति को लोक सभा की विशेषाधिकार समिति के सामने उपस्थित होने के लिए समन भेजे जाते हैं तो समन की मूल प्रति उस व्यक्ति को सीधे रजिस्ट्री से भेज दी जाती है और दूसरी प्रति उसे संबंधित राज्य सरकार की एजेंसी के माध्यम से भेजी जाती है।

> *मुद्गल मामले* (1951) में एक सदस्य के आचरण के बारे में समिति ने साक्षियों को समिति के समक्ष बुलाने के लिए इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया था। *ब्लिट्ज मामले* (1961) में भी *ब्लिट्ज* के सम्पादक को, सभा का विशेषाधिकार भंग करने तथा अवमानना करने पर सभा के कटघरे में आकर भर्त्सना स्वीकार करने के लिए बुलाने में इसी प्रक्रिया का पालन किया गया था।

श्री एच.एल. सैली को एक पत्र की दूसरी प्रति पंजाब सरकार की एजेंसी के माध्यम से भेजी गई जिसमें उसे अपना एक लिखित बयान देने और विशेषाधिकार समिति (1966) के सामने स्वयं पेश होने के लिए कहा गया था।[177]

जब विशेषाधिकार भंग करने अथवा सभा की अवमानना करने के दोषी सरकारी अधिकारियों को विशेषाधिकार समिति के समक्ष पेश होने के लिए कहा जाता है तो उनकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए पत्र संबंधित मंत्रालय/विभाग को भेजे जाते हैं जिसमें उनसे

---

176. *होमी डी. मिस्त्री* बनाम *नफीसुल हसन,* आई.एल.आर. 1957, बम्बई 218 ।

177. *सैली मामला,* 1966, पांचवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा)।

यह अनुरोध किया जाता है कि वे संबंधित अधिकारी को समिति के समक्ष प्रस्तुत होने का निर्देश दें।[178]

सभा के आदेशों का निष्पादन करने वाले अधिकारियों को संरक्षण

सभा के आदेश से अध्यक्ष द्वारा जारी किए गए सुपुर्दगी के वारण्ट का निष्पादन करने वाले अधिकारियों को अतिक्रमण, हमला या अप्राधिकृत बंदीकरण की कार्रवाई के विरुद्ध तब तक संरक्षण प्रदान किया जाता है जब तक कि वारण्ट में बताए गए सुपुर्दगी के कारण सभा के क्षेत्राधिकार से बाहर न हों। यदि अधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र से आगे बढ़कर काम न करे तो न्यायालय उसे संरक्षण देंगे चाहे वारण्ट उन नियमों के अनुसार तकनीकी स्वरूप का न हो जिनके आधार पर अवर न्यायालयों के वारण्टों की जांच की जाती है। इस संबंध में बम्बई उच्च न्यायालय के कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति कोयाजी ने यह टिप्पणी की:[179]

> ...रिट का निष्पादन करने वाले सभी अधिकारियों और उस काम में सहायता देने वाले किसी भी व्यक्ति को संरक्षण प्राप्त होगा क्योंकि जैसाकि 'मे' द्वारा निर्धारित किया गया है, दोनों सभाएं यह समझती हैं कि उनके वारण्टों तथा आदेशों के निष्पादन में जब भी जरूरत हो, सिविल सरकार की प्रत्येक शाखा सहायता करने के लिए बाध्य है। उन्हें बार-बार ऐसी सहायता की जरूरत पड़ती है।

विशेषाधिकार के भंग या अवमानना के लिए दंड का स्वरूप

जिन मामलों में विशेषाधिकार भंग या अवमानना का अपराध इतना गंभीर न हो कि उसके लिए कारावास को ही ठीक दंड समझा जाये, उस व्यक्ति को सभा के कटघरे में बुलाया जा सकता है और सभा के आदेश से अध्यक्ष द्वारा उसकी भर्त्सना की जा सकती है या उसे फटकार लगाई जा सकती है। भर्त्सना सब से कम दंड है जबकि फटकार[180] अधिक गंभीर दंड है जिसके माध्यम से सभा अपना रोष प्रकट करती है। लोक सभा में दो ऐसे मामले हुए हैं जिनमें संबंधित व्यक्तियों को सभा के कटघरे में बुलाया गया और अध्यक्ष द्वारा उनकी भर्त्सना की गयी, उनमें एक मामला एक साप्ताहिक पत्रिका[181] में प्रकाशित अपमानजनक लेख

---

178. दूसरा, चौथा और आठवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-सातवीं लोक सभा)।

179. *होमी डी. मिस्त्री* बनाम *नफीसुल हसन,* आई.एल.आर. 1957, बम्बई 218 ।

180. सभा द्वारा फटकार की दंडात्मक शक्ति का प्रयोग एक मामले में किया गया जो कि सभा के विशेषाधिकार भंग या अवमानना से संबंधित नहीं था किन्तु एक सदस्य के दुराचार से संबंधित था। लोक सभा के कुछ सदस्यों के विरुद्ध एमपीलैड योजना के कार्यान्वयन में दुराचार के मामले में, सभा के नेता द्वारा पुर:स्थापित प्रस्ताव पर समिति द्वारा मामले की जांच से सहमत होते हुए, 20 मार्च, 2006 को सभा ने सदस्यों को फटकार लगाने का प्रस्ताव स्वीकृत किया। [*देखें* लोक सभा वाद-विवाद दिनांक 20 मार्च, 2006; पी.डी. वोल्यू-सदस्यों के दुराचार की जांच संबंधी समिति का प्रतिवेदन।]

181. *ब्लिट्ज मामला* तेरहवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) *एल.एस. डिबेट्स,* 18.8.1961, कॉ. 3044-53; 19.8.1961 कॉ. 3318-80; 21.8.1961, कॉ. 3786 और 29.8.1961 कॉ. 5501-5502 ।

के लिए विशेषाधिकार भंग और सभा की अवमानना का था[182] और दूसरा एक संसदीय समिति के समक्ष जानबूझकर तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश करने और मिथ्या साक्ष्य देने का था।[183] दूसरे मामले में महाराष्ट्र राज्य के दो पुलिस अधिकारियों को कथित रूप से एक सदस्य पर हमला करने और गाली-गलौज करने के लिए विशेषाधिकार भंग और सभा की अवमानना संबंधी आरोप का उत्तर देने के लिए सभा के कटघरे में बुलाया गया।[184] एक मामले में, लोक सभा के पूर्व महासचिव की (सभा के कटघरे में बुलाए बिना), सभा में एक प्रस्ताव स्वीकार करके, एक टी.वी. न्यूज चैनल पर साक्षात्कार के दौरान लोक सभा अध्यक्ष पर की गई टिप्पणी के कारण भर्त्सना की गई। दोनों अधिकारियों ने उस दिन की घटना के लिए संबंधित सदस्य और सभा से माफी मांगी। उनके द्वारा माफी मांगे जाने को ध्यान में रखते हुए सभा ने निर्णय लिया कि इस मामले को समाप्त समझा जाए।

राज्य सभा में भी एक ऐसा मामला आया जिसमें तीन व्यक्तियों—एक पुस्तक के संयुक्त लेखकों—को सभा के कटघरे में बुलाया गया और सभापति द्वारा उनकी भर्त्सना की गई क्योंकि उन्होंने उक्त पुस्तक में वित्त विधेयक, 1980 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने से पूर्व ही वित्त अधिनियम, 1980 के रूप में वर्णित किया था।[185]

अपराधियों पर मुकदमा चलाना : विशेषाधिकार भंग के उस मामले में, जो कानून के अंतर्गत एक अपराध भी है, यदि सभा यह आवश्यक समझे कि उसे जितना दंड देने का अधिकार है वह उस अपराध के लिए पर्याप्त नहीं होगा, या जहां किसी और कारण से सभा यह समझे कि कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए तो वह अपनी स्वयं को कार्यवाही के स्थान पर या उसके अतिरिक्त अपराधी पर न्यायालय में मुकदमा चलाने का निदेश दे सकती है।

लोक सभा ने एक सरकारी अधिकारी के मामले में निदेश दिया कि इसके द्वारा लगाई गई फटकार के अतिरिक्त, सरकार को उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही करनी चाहिए। तत्पश्चात् 25 अप्रैल, 1973 को इस्पात और खान मंत्री ने सभा को सूचित किया कि सभा द्वारा स्वीकृत संकल्प के दूसरे भाग को कार्यान्वित करने में कतिपय संवैधानिक कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं। इसलिए, इस मामले की विशेषाधिकार समिति द्वारा समीक्षा की गई तथा इसकी सिफारिशों पर सभा ने 2 दिसम्बर, 1970 के अपने पूर्व के संकल्प के बाद के भाग को विखण्डित करते हुए 29 नवम्बर, 1973 को दूसरा संकल्प स्वीकृत किया।[186]

---

182. *एस.सी. मुखर्जी मामला, लो.स.वा.वि.*, 6.3.1969, पृ. 155-58; कार्यवाही सारांश (विशेषाधिकार समिति) 16.7.1969, पैरा 5; बारहवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—चौथी लोक सभा) *लो.स.वा.वि.* 2.12.1970, पृ. 265-80; 9.12.1970, पृ. 134-35 ।

183. *के.एम. कौशिक का मामला, लो.स.वा.वि*, 18.11.1970, पृ. 163-71 और *एल.एस. डिबेट्स*, 3.12.1970, कॉ. 184-88 ।

184. डा. एस.सी. कश्यप मामला, तीसरा प्रतिवेदन (एलपीआर, चौदहवीं लोक सभा)।

185. उन्नीसवां और बीसवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—राज्य सभा); और *रा.स.वा.वि.*, 24.12.1980 पृ. 1-2 ।

186. *लो.स.वा.वि.*, 29.11.1973, पृ. 110-14 ।

एक अन्य मामले में एक दर्शक को दर्शक दीर्घा में नारे लगाने तथा अपने पास दो पिस्तौल और एक पटाखा रखने के कारण दंडित किया गया था। सभा की अवमानना करने के लिए उसे एक महीने का कठोर कारावास का दंड देने के अतिरिक्त सभा द्वारा स्वीकृत एक प्रस्ताव में इस बात का उपबंध था कि यह दंड विधि के अधीन दिए गए अन्य दंड पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा। बाद में मामला अध्यक्ष के आदेश से पुलिस अधिकारियों को भेजा गया।[187]

लोक सभा में दो अन्य मामलों में, उन दर्शकों को, जिनके पास चाकू और विस्फोटक पाये गए, विधि के अधीन दिए गए अन्य दंड पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कठोर कारावास का दंड दिया गया। बाद में अध्यक्ष की अनुमति से लोक सभा के सुरक्षा (वॉच एण्ड वार्ड) अधिकारी ने पुलिस स्टेशन में लिखित रिपोर्ट दायर की।[188]

सदस्यों को दंड : अपने सदस्यों के मामले में सभा के पास दो अन्य प्रकार के दंड देने का भी प्रावधान है जिनके द्वारा सभा भर्त्सना और फटकार लगाने के अलावा सदस्यों को सभा की सेवा से निलम्बित करके और उन्हें निष्कासित करके अपनी अप्रसन्नता व्यक्त कर सकती है।

लोक सभा के एक सदस्य के आचरण और कार्यकलापों की जांच करने हेतु एक समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव 8 जून, 1951 को स्वीकार किया गया था। समिति की राय थी कि सदस्य का आचरण सभा की गरिमा के प्रतिकूल तथा उन मानदंडों से असंगत था जिनकी, संसद अपने सदस्यों से अपेक्षा करती है।

समिति के उक्त प्रतिवेदन के अनुसरण में 24 सितम्बर, 1951 को उस सदस्य को सभा से निष्कासित करने का एक प्रस्ताव सभा के समक्ष लाया गया। वाद-विवाद में भाग लेने के पश्चात् सदस्य ने अपना त्यागपत्र उपाध्यक्ष को सौंप दिया। सभा ने सदस्य द्वारा प्रस्ताव के प्रभाव का परिवचन किये जाने के प्रयास का विरोध किया तथा 25 सितम्बर, 1951 को सर्वसम्मति से निम्नलिखित संशोधित प्रस्ताव स्वीकार किया:–

> "कि यह सभा, श्री एच.सी. मुदगल, संसद सदस्य के आचरण की जांच करने के लिए 8 जून, 1951 को नियुक्त समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् समिति के इन निष्कर्षों को स्वीकार करती है कि मुदगल का आचरण सभा की गरिमा को कम करता है तथा उन मानदंडों से असंगत है जिनकी संसद अपने सदस्यों से अपेक्षा करती है और यह संकल्प करती है कि मुदगल का सभा से निष्कासन उचित था और आगे यह भी संकल्प करती है कि अपने वक्तव्य की समाप्ति पर सदस्य द्वारा उपाध्यक्ष को दिया गया त्यागपत्र का निबन्धन इस सभा की अवमानना करता है जो कि उनके अपराध को और बढ़ाता है।[189]

---

187. *एल.एस. डिबेट्स,* 11.4.1974; कॉ. 218-64 ।

188. *पूर्वोक्त,* 26.7.1974; कॉ. 316-18 और 26.11.1974, कॉ. 300-14 ।

189. *पी. डिबेट्स,* 8.6.1951, कॉ. 10464-65; 24.9.1951, कॉ. 3202; और 25.9.1951, कॉ. 3289 सदस्य के आचरण संबंधी समिति (*मुदगल मामला*) के बारे में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 12 'सदस्यों का आचरण'।

पूर्व प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध सभा का विशेषाधिकार भंग करने और उसकी अवमानना करने का प्रश्न विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए एक प्रस्ताव 18 नवम्बर, 1977 को सभा द्वारा स्वीकृत किया गया था जो कि श्रीमती इंदिरा गांधी और अन्य व्यक्तियों द्वारा पिछली लोक सभा के दौरान सभा में एक प्रश्न विशेष का उत्तर देने के लिए जानकारी एकत्रित करने वाले कतिपय अधिकारियों को बाधा पहुंचाने, उन्हें धमकाने, उनका उत्पीड़न करने तथा उनके विरुद्ध मिथ्या मामले बनाने के बारे में था।

विशेषाधिकार समिति का यह विचार था कि श्रीमती इंदिरा गांधी ने उन कतिपय अधिकारियों को जो सभा में एक प्रश्न विशेष के उत्तर के लिए सूचना एकत्र कर रहे थे, बाधा पहुंचाकर, उन्हें धमकाकर और उत्पीड़ित करके तथा उनके विरुद्ध मिथ्या मामले बनाकर विशेषाधिकार भंग किया है और सभा की अवमानना की है। समिति ने सिफारिश की कि श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा गंभीर विशेषाधिकार भंग करने तथा सभा की अवमानना करने के लिए उन्हें दंडित किया जाना चाहिए किन्तु यह सभा के सामूहिक विवेक पर छोड़ दिया गया कि वह ऐसा दंड दे सकती है जो वह उचित समझे।

सभा ने 19 दिसम्बर, 1978 को इस आशय का एक संकल्प स्वीकृत किया कि श्रीमती इंदिरा गांधी को सभा के सत्रावसान तक कारावास में रखा जाए और उनके द्वारा गंभीर विशेषाधिकार भंग करने तथा सभा की अवमानना करने के लिए उन्हें सभा की सदस्यता से भी निष्कासित किया जाए।[190]

तथापि, 7 मई, 1981 को सातवीं लोक सभा ने निम्नलिखित संकल्प स्वीकार कर छठी लोक सभा द्वारा 19 दिसम्बर, 1978 को स्वीकृत प्रस्ताव रद्द कर दिया[191]—

"छठी लोक सभा 19 दिसम्बर, 1978 को स्वीकृत एक संकल्प समिति (विशेषाधिकार) की सिफारिशों और निष्कर्षों से सहमत हुई और इनके आधार पर श्रीमती इंदिरा गांधी, श्री आर.के.धवन और श्री. डी. सेन को विशेषाधिकार भंग करने का दोषी पाया गया तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन करने के आरोप में उन्हें अधिकतम दंड दिया गया।

महाराष्ट्र विधान सभा के एक सदस्य को सभा से निष्कासित किया गया था–*महाराष्ट्र विधान सभा डिबेट्स* 13.8.1864, पृ. 12-28 ।

मार्च, 1966 में मध्य प्रदेश विधान सभा के दो सदस्यों को निष्कासित किया गया था तथा उनके स्थानों को रिक्त घोषित कर दिया गया था। दोनों भूतपूर्व विधायकों की रिट याचिकाओं पर, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने उनके निष्कासन को सही ठहराया।

190. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.11.1977, कॉ. 235-37, तीसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–छठी लोक सभा) *एल.एस. डिबेट्स,* 19.12.1978, कॉ. 393-94, प्रिविलेजिज डाइजेस्ट, 1979 खंड XXIV, 2 पृ. 33-43; साथ ही **देखिए** भारत का राजपत्र, 19.12.1978, अधिसूचना संख्या 21. 5.78/टी।

191. *एल.एस. डिबेट्स,* 7.5.1981, कॉ. 336-441, प्रिविलेजिज डाइजेस्ट, 1981 खंड XXVI, 2 पृ. 2-5।

* * * *

अत: अब सभा यह संकल्प तथा घोषणा करती है:

(क) समिति तथा सभा की उक्त कार्यवाहियों को संसदीय विशेषाधिकार की विधि में पूर्वोदाहरण नहीं माना जाएगा;

(ख) समिति के निष्कर्ष और सभा के निर्णय संसदीय विशेषाधिकार की विधि और संविधान में दिए गए सभी के लिए सुनिश्चित मूलभूत सुरक्षोपायों के सर्वस्वीकृत सिद्धान्तों से असंगत और अतिक्रमणात्मक है; तथा

(ग) श्रीमती इंदिरा गांधी, श्री आर.के. धवन और श्री डी. सेन उनके ऊपर लगाए आरोपों से निर्दोष सिद्ध हुए।

और तद्नुसार, यह सभा:

छठी लोक सभा द्वारा 19 दिसम्बर, 1978 को स्वीकृत संकल्प को रद्द करती है"

श्रीमती इंदिरा गांधी के निष्कासन के पश्चात् लोक सभा में विपक्ष के नेता, श्री सी.एम. स्टीफन ने निर्वाचन आयोग के समक्ष कतिपय विधिक और संवैधानिक मुद्दे उठाये जिन पर निर्वाचन आयोग ने सार्वजनिक सुनवाई की तथा विभिन्न राजनीतिक दलों और व्यक्तियों द्वारा उनके समक्ष रखे गये विभिन्न मुद्दों पर सुनवाई करने के पश्चात् निम्नलिखित आदेश दिया:–

"लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 149(1) और धारा 150 क्रमश: लोक सभा और राज्य विधान सभा में हुई आकस्मिक रिक्तियों को भरने से संबंधित हैं। इसलिए इन धाराओं में तीन श्रेणियों का उल्लेख किया गया है जिसके तहत आकस्मिक रिक्तियां उत्पन्न हो सकती हैं, अर्थात्:–

(1) स्थान रिक्त होना;

(2) स्थान रिक्त घोषित किया जाना; और

(3) निर्वाचन शून्य घोषित किया जाना।

इन धाराओं में इस बात का उल्लेख नहीं है कि किस परिस्थिति में कोई स्थान रिक्त हो सकता है अथवा रिक्त या शून्य घोषित किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 101 के खण्ड (1) से (3) स्थान रिक्त होने के मामले से संबंधित है, तथा अनुच्छेद 101 का खण्ड (4) स्थान रिक्त घोषित करने के मामले से संबंधित है (संविधान के अनुच्छेद 190 से 191 राज्य विधान सभाओं से संबंधित हैं)। यह कहना उचित नहीं है कि संविधान के ये अनुच्छेद प्रवर्तन की दृष्टि से सर्वांगपूर्ण हैं तथा अन्य किसी आकस्मिकता को स्वीकार नहीं करते जिसके अंतर्गत किसी स्थान को रिक्त हुआ अथवा रिक्त घोषित किया गया समझा जा सके। मृत्यु एक आकस्मिक घटना है जिसके फलस्वरूप स्थान रिक्त हो जाता है; लेकिन अनुच्छेद में इसका उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत संविधान के अनुच्छेद 62(2) में विशेष रूप से मृत्यु को एक आकस्मिकता माना गया है जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति का स्थान मृत्यु की स्थिति में रिक्त हो सकता है। संविधान के अनुच्छेद 102 में यथा-परिकल्पित किसी निर्वाचित अभ्यर्थी का निर्वाचन लोक सभा से किसी सदस्य की सदस्यता की निरर्हता के आधार के अलावा अन्य आधारों पर शून्य घोषित किया जा सकता है यदि: (1) किसी निर्वाचित अभ्यर्थी का नामांकन अनुचित रूप से स्वीकार किया गया हो;

(2) किसी पराजित अभ्यर्थी का नामांकन अनुचित रूप से अस्वीकार किया गया हो; (3) मतदान को अनुचित रूप से प्राप्त, स्वीकार, इन्कार या अस्वीकार किया गया हो जिससे निर्वाचन के परिणाम भौतिक रूप से प्रभावित हुए हों; अथवा (4) संविधान के अनुच्छेद 84(क) के अधीन अपेक्षित रूप से शपथ नहीं ली हो। यदि अनुच्छेद 101 और 102 को स्वांगपूर्ण माना जाए तथा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 149 को केवल इन अनुच्छेदों के उपबंधों से पूरी तरह सम्बद्ध माना जाए तो अन्य आकस्मिकताओं के परिणामस्वरूप किसी स्थान का रिक्त होने अथवा जैसाकि ऊपर बताया गया है, किसी निर्वाचन को शून्य घोषित किये जाने को धारा 149 के अधीन प्रभावी नहीं माना जा सकता।

अनुच्छेद 105(3) में संसद के प्रत्येक सदन की और प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का उल्लेख है परन्तु यह और कि जब तक विधि द्वारा वर्जित न किया जाए वे शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां वैसी ही होंगी जो ब्रिटेन की संसद के हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों और समितियों को संविधान के प्रारंभ होने के समय उपलब्ध थीं। उस अनुच्छेद में प्रयुक्त पद "अन्य बातों में" स्पष्ट रूप से इसके प्रवर्तन के क्षेत्र की व्यापक व्याप्ति को दर्शाता है। जैसा कि हमने पहले देखा है, संविधान और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अधीन विभिन्न प्राधिकारियों के कार्य के परिणामस्वरूप कोई स्थान रिक्त हो सकता है अथवा रिक्त या शून्य घोषित किया जा सकता है। ऐसा इसलिए है कि अनुच्छेद 101 अथवा 102 सर्वांगपूर्ण नहीं हैं तथा अनुच्छेद 105 को आगे की आकस्मिकता के मामले में उसका अनुपूरक माना जाए जिसके अधीन निष्कासन के कारण कोई स्थान रिक्त हो सकता है।"

*　　*　　*　　*

"हरद्वारी लाल मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय के होते हुए भी लोक सभा ने अपने एक सदस्य को निष्कासित करने के लिए अपनी शक्ति का प्राख्यान किया है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 149 के अधीन निर्वाचन आयोग के लिए यह अपेक्षित है कि वह सभा के निर्णय को क्रियान्वित करे तथा लोक सभा द्वारा दिए गए निष्कासन के आदेश को लागू करे।"

*　　*　　*　　*

"संविधान, लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों अथवा निर्वाचन से संबंधित किसी अन्य विधि में 'निष्कासन' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। तथापि, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय तथा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय हैं जिनमें स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि किसी स्थान का रिक्त होना स्वतः ही निष्कासन का परिणाम है।"

पंजाब और हरियाणा तथा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालयों की निम्नलिखित टिप्पणियां महत्वपूर्ण हैं:–

"(431) बहुमत की राय से हम इस रिट याचिका को स्वीकृति देते हैं तथा हरियाणा विधान सभा के 8 जनवरी, 1975 के संकल्प को जिसमें याचिकाकर्त्ता को निष्कासित किया गया है, असंवैधानिक, अवैध तथा अप्रवर्तनीय मानते हैं तथा इसके परिणामस्वरूप भारत के निर्वाचन आयोग को यह आदेश देते हैं कि उपर्युक्त कार्य के परिणामस्वरूप रिक्त हुए स्थानों को न भरा जाए। हम पक्षकारों को अपना खर्च वहन करने की भी छूट देते हैं।"

[आई.एल.आर. (1977) 2 पंजाब और हरियाणा 269 पृष्ठ 577]

"यह सच है कि हाउस ऑफ कॉमन्स के पास किसी सदस्य को निष्कासित करने और स्थान खाली कराने का जो विशेषाधिकार अथवा अधिकार है वह मात्र निष्कासन का परिणाम है। लेकिन मध्य प्रदेश विधान सभा इस उद्देश्य से कोई स्थान रिक्त करने और सदस्य को निष्कासित करने के विशेषाधिकार का दावा नहीं कर रही है। यह किसी सदस्य को निष्कासित किए जाने पर उसके स्थान को भरने के लिए कोई निदेश देने के अधिकार का भी दावा नहीं कर रही है। निष्कासन के परिणामस्वरूप यदि किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है तो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अनुसार उपचुनाव कराके स्थान भरा जाता है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 150 में ऐसा कुछ नहीं है जिससे किसी सदस्य के निष्कासन के परिणामस्वरूप उसका स्थान रिक्त होने के मामले में वह उपबन्ध लागू नहीं हो सकता। यदि विद्वान अधिवक्ता की दलील से यह सुझाव अभिप्रेत हो कि मध्य प्रदेश विधान सभा किसी सदस्य को निष्कासित कर सकती है लेकिन उसका स्थान रिक्त नहीं कर सकती और इस प्रकार उसे सभा की बैठकों से सदा के लिए बाहर कर सकती है, तब इस सुझाव को अव्यवहारिक मानते हुए अस्वीकार करना होगा।"

[ए.आई.आर. 1967 मध्य प्रदेश 95 पृ. 103]।

"हमारे विचार से किसी भी प्रकार से यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि चूंकि, संविधान में ऐसा कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राज्य विधानमंडल द्वारा किसी सदस्य के निष्कासन के फलस्वरूप उस सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है, इसलिए विधानमंडल द्वारा किसी सदस्य को निष्कासित करने के अधिकार अथवा विशेषाधिकार का दावा नहीं किया जा सकता। जहां तक राज्य विधानमंडल द्वारा निष्कासन की शक्ति का प्रयोग करने का संबंध है, अनुच्छेद 194(3), अनुच्छेद 190 और अनुच्छेद 191 अथवा किसी अन्य अनुच्छेद से एकदम स्वतंत्र रूप से प्रवर्तित होता है। संविधान में ऐसा कुछ भी नहीं है जो राज्य विधानमंडल से संबंधित घोषित शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों तथा सदस्य को निष्कासित करने की शक्ति, जिसके फलस्वरूप निष्कासित सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है, को कम करने का कोई आधार अथवा औचित्य, उत्पन्न करता हो। अत: अनुच्छेद 190 तथा अनुच्छेद 191 पर आधारित तर्क स्वीकार नहीं किए जा सकते।"

"(25) अभी इस बात पर विचार किया जाना बाकी है कि मध्य प्रदेश विधान सभा द्वारा बनाए गए प्रक्रिया तथा कार्य संचालन संबंधी नियमों में सदस्य को निष्कासित किए जाने के बारे में कोई नियम न होने का क्या प्रभाव पड़ेगा। ऐसा नियम न होना किसी भी तरह इस बात का द्योतक नहीं है कि विधान मंडल को किसी सदस्य को निष्कासित करने की शक्ति नहीं है जिससे कि उसका स्थान रिक्त हो जाए अथवा उसे अपनी शक्ति का प्रयोग करने से निवारित करने की शक्ति नहीं है।"

[ए.आई.आर. 1967 मध्य प्रदेश 95 पृ. 103-104]

"उपरोक्त मत के अनुसार निष्कासन के साथ ही स्थान रिक्त होने का स्वत: प्रभाव भी जुड़ा है और सभा के एक अलग आदेश के द्वारा सदस्य के निष्कासन के फलस्वरूप स्थान रिक्त होने की घोषणा करने की आवश्यकता नहीं है।"

"अधिसूचना में, 'के फलस्वरूप' तथा 'सदस्य नहीं रहता' शब्दों के प्रयोग से भ्रम तथा संदेह उत्पन्न हुए हैं। इनका यह मतलब हुआ कि निष्कासन हो जाने के बाद अधिसूचना के तहत स्थान का रिक्त होना घोषित किया गया है। इस निष्कासन के बारे में मेरे इस निष्कर्ष को देखते हुए कि निष्कासन और स्थान का रिक्त होना एक साथ होते हैं, दोनों घटनाओं के बीच कोई अन्तर नहीं है, इस व्याख्या को अस्वीकार कर देना चाहिए। अधिसूचना को मात्र एक सूचना के रूप में पढ़ा जाना चाहिए जो केवल यह बता रही है

कि सभा ने सदस्य को निष्कासित करने का निर्णय लिया है और इसका निश्चित रूप से यह मतलब है कि इसके साथ ही स्थान रिक्त हो गया है।"

* * * *

"जिस रूप में यह जानकारी लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 149 अथवा धारा 150 के तहत निर्वाचन आयोग को भेजी जाती है कि स्थान रिक्त हो गया है, भी महत्त्वपूर्ण है। इस संबंध में, मैं मध्य प्रदेश विधान सभा[192] से प्राप्त संदेश का उल्लेख करता हूं जिसमें सुरेश सेठ के निष्कासन से उत्पन्न रिक्त स्थान के संबंध में निर्वाचन आयोग को औपचारिक सूचना भेजी गई थी। लोक सभा सचिवालय की अधिसूचना एक सामान्य अधिसूचना है और इसकी एक प्रति सचिवालय के एक अधिकारी द्वारा इस रिक्त स्थान को भरने के औपचारिक अनुरोध के बिना सरकार के अन्य अधिकारियों के साथ ही निर्वाचन आयोग को भी भेजी गई है। भविष्य में वर्तमान मामले में व्यापक रूप से उठाई गई आपत्तियों और सन्देहों से बचने के लिए निर्वाचन आयोग को भेजा जाने वाला संदेश एक औपचारिक दस्तावेज होना चाहिए क्योंकि इसी के आधार पर चुनाव प्रक्रिया आरम्भ होती है। वर्तमान मामले में मैंने दिनांक 19.12.1978 को राजपत्र अधिसूचना में दी गई इस जानकारी पर गौर किया है कि लोक सभा ने श्रीमती इंदिरा गांधी को निष्कासित कर दिया है और मेरा मत है कि निष्कासन का मतलब यह है कि इसके साथ ही स्थान रिक्त हो गया है। मेरा यह भी मानना है कि निष्कासन लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 149 में रिक्त होने वाले स्थान की प्रथम श्रेणी के तहत आता है।"

अनुचित आचरण के आरोप

2005 में कुछ संसद के सदस्यों पर उनके पद का दुरूपयोग करने का आरोप लगाया गया ।[193] इन आरोपों की जांच करने के लिए अध्यक्ष महोदय द्वारा एक अस्थायी समिति अर्थात् अनुचित आचरण के आरोपों की जांच करने वाली समिति का गठन किया गया जिसने 21 दिसम्बर, 2005 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। समिति ने दोषी सांसदों के निष्कासन की सिफारिश की। 23 दिसम्बर, 2005 को सदन के नेता ने निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

"कि यह सभा कतिपय सदस्यों के अनुचित आचरण के आरोपों की जांच के लिए गठित समिति के प्रतिवेदन का संज्ञान लेती है.... कि उनका आचरण संसद सदस्यों के नाते

---

192. मध्य प्रदेश विधान सभा के सचिव का भारत के निर्वाचन आयोग के सचिव को भेजा गया पत्र संख्या 126421, लेज, 78, दिनांक 8 सितम्बर, 1978 इस प्रकार है—

"मुझे आपको यह सूचित करने का निदेश हुआ है कि 7 सितम्बर, 1978 को मध्य प्रदेश विधान सभा द्वारा एक प्रस्ताव, जिसके द्वारा मध्य प्रदेश विधान सभा की निर्वाचन क्षेत्र संख्या 274 इन्दौर-5 से निर्वाचित सदस्य सुरेश सेठ को निष्कासित किया गया है, के स्वीकार किये जाने के फलस्वरूप उक्त निर्वाचन क्षेत्र 7 सितम्बर, 1978, के अपराह्न से रिक्त हो गया है। इस सचिवालय की दिनांक 7 सितम्बर, 1978 की अधिसूचना संख्या 125131 लेज की एक प्रति संलग्न है।"

193. एक टेलीविजन चैनल ने 12 सितम्बर 2005 को एक रहस्योद्घाटन करने हुए संसद सदस्यों को संसदीय प्रश्नों की सूचनाएं सभापटल पर रखने के बदले में धन लेते हुए दिखाया।

अनैतिक तथा अशोभनीय था तथा लोक सभा के सदस्य के रूप में उनका बने रहना स्वीकार्य नहीं है तथा सभा यह सकल्प प्रस्तुत करती है कि उन्हें लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित कर दिया जाए।

एक सदस्य द्वारा पेश प्रस्ताव में यह संशोधन कि मामले को लोक सभा की विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाए, को ध्वनि मत से अस्वीकृत कर दिया गया।

प्रस्ताव ध्वनि मत से स्वीकृत हुआ और परिणामस्वरूप दस सदस्य लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित हो गए।

श्री राजारामपाल जिन्होंने अपने निष्कासन संबंधी मामले को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी, को छोड़कर सभी निष्कासित सदस्यों ने दिल्ली उच्च न्यायालय में चुनौती दी। सभी रिट याचिकाएं उच्चतम न्यायालय में स्थानांतरित कर दी गई। उच्चतम न्यायालय की एक पांच न्यायाधीशों की बेंच ने 10 जनवरी, 2007, को दिए गए अपने निर्णय में सदस्यों के निष्कासन को उचित ठहराया।

अपने विशेषाधिकारों के मामले में सभा सर्वोच्च है। यह अपने विशेषाधिकार के प्रश्न पर विचार करने के मामले में विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका तीनों की शक्तियों से युक्त है। अपने पूर्वोदाहरणों के अधीन सभा को यह घोषित करने की शक्ति प्राप्त है कि इसके विशेषाधिकार क्या हैं, यह उस अभियुक्ति का नाम ले सकती है जिसने कथित रूप से सभा का विशेषाधिकार भंग किया है अथवा उसकी अवमानना की है, यह स्वयं अथवा अपनी समिति के माध्यम से न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही कर सकती है, व्यक्तियों को बुला सकती है और रिकार्ड मंगा सकती है, अपनी प्रक्रिया निर्धारित कर सकती है, किसी व्यक्ति को दोषी ठहरा सकती है, उसे सजा दे सकती है और अपने आदेश से सजा को क्रियान्वित कर सकती है। इस मामले में एक सीमा यह है कि उच्चतम न्यायालय अपने अन्तिम विश्लेषण में इस बात की पुष्टि करे कि सभा को यह विशेषाधिकार प्राप्त है जिसका वह दावा करती है और एक बार इसकी पुष्टि हो जाने के बाद मामला पूर्णत: सभा के हाथ में आ जाता है। सभा को संविधान के ढांचे के भीतर रहकर कार्य करना चाहिए और विशेषकर मूल अधिकारों की परिधि के अंतर्गत कार्य करना चाहिए, इसे सदाशयतापूर्ण तरीके से कार्य करना चाहिए, नैसर्गिक न्याय का अनुपालन करना चाहिए और न सिर्फ न्याय करना चाहिए बल्कि ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए कि न्याय किया गया है और इससे लोक मत संतुष्ट होगा।[194]

मुद्गल मामले में सभा की समिति ने अभियुक्त को सभी अवसर प्रदान किए। उसे अधिवक्ता की सेवा लेने, गवाहों से जिरह करने, अपने ही गवाह प्रस्तुत करने और अपने

194. विवादों में दोष और न्याय-निर्णयन की अवधारणा न्यायिक कार्य है। इसलिए अनेक देशों में विशेषाधिकार भंग, सभा की अवमानना आदि का प्रश्न और इसके लिए दंड के बारे में विनिश्चय केवल न्यायालय द्वारा किया जाता है।

अधिवक्ता के माध्यम से अपना बचाव पक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति दी गयी। समिति द्वारा मामले की सम्पूर्ण जांच के दौरान महान्यायवादी ने भी समिति की सहायता की थी।

निष्कासन की शक्ति

हरद्वारी लाल मामले (1977) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने घोषणा की थी कि भारत में सभाओं को निष्कासन की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।[195] मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने 1966 में यह घोषणा की कि सभा को निष्कासन की शक्ति प्राप्त है।[196]

इन दो परस्पर विरोधी निर्णयों का उच्चतम न्यायालय द्वारा 2007 में 'प्रश्न के बदले धन' मामले में सभा द्वारा निष्कासित सदस्यों द्वारा दायर याचिका पर अपने निर्णय के माध्यम से समाधान किया गया।

भारत के उच्चतम न्यायालय की पांच सदस्यीय संविधान पीठ, जिसने अपने सदस्यों को निष्कासित करने की संसद की सभाओं की शक्ति के मुख्य मुद्दे पर विचार किया, ने इस मामले में 10 जनवरी 2007 को अपना निर्णय[197] घोषित किया। उच्चतम न्यायालय ने अपने बहुमत के निर्णय जो भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश वाई.के. सभरवाल, न्यायमूर्ति के. जी. बालकृष्णन और न्यायमूर्ति डी.के. जैन द्वारा दिए गए निर्णयों से मिलकर बना तथा न्यायमूर्ति सी.के. ठक्कर द्वारा अलग से दिए गए निर्णयों में सदस्यों को निष्कासित करने की सभा की शक्तियों तथा प्रत्येक विधायी निकाय अपनी कार्यवाही विनियमित करने की

प्रोफेसर एस.एस.डी. स्मिथ ने अपनी पुस्तक "*कान्स्टिट्यूशनल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ*" में सुझाव दिया है कि "असंहिताबद्ध अवमानना, अवमानना के आरोपों की जांच के लिए असंतोषजनक प्रक्रिया तथा सभा का यह आग्रह करना कि इसके सदस्यों के हितों से संबंधित मामलों में उसका निर्णय लोक हित पर प्रभाव की परवाह किए बगैर अन्तिम है, इन सबका असंतोषजनक संयोजन यह संकेत देता है कि सभा को विशेषाधिकार भंग तथा अवमानना के मामले में अपना क्षेत्राधिकार छोड़कर न्यायालयों के सुपुर्द कर देना चाहिए जैसे इसने निर्वाचन विवरणी संबंधी विवादों के अवधारण संबंधी अपने विशेषाधिकार को छोड़ दिया है।"

प्रो. हैरी स्ट्रीट ने भी अपनी पुस्तक "*फ्रीडम, दि इन्डीविजुवल एंड दि लॉ*" में कहा कि "हाउस ऑफ कॉमन्स को नागरिकों के खिलाफ मुकदमा चलाने का कार्य अपना कार्य नहीं समझना चाहिए; अपने सदस्यों को अनुशासित करना एक बात है और बाहरी व्यक्ति को सजा देना इससे अलग है।

हाउस ऑफ कॉमन्स के लिए एक न्यायालय की तरह बर्ताव करना कठिन हो सकता है, समाधान यही है कि यह नागरिकों को जेल भेजने अथवा अन्यथा सजा देने की इन शक्तियों को छोड़ दें जिस प्रकार इसने विवादित निर्वाचनों के मामलों में अपने क्षेत्राधिकार को न्यायाधीशों के लिए छोड़ दिया है।"

195. आई.एल.आर. (1977) 2, पंजाब और हरियाणा 269 ।
196. ए.आई.आर. 1967, मध्य प्रदेश 95 ।
197. राजारामपाल बनाम माननीय अध्यक्ष लोक सभा और अन्य उच्चतम न्यायालय रिपोर्ट खंड 1 (2007) 317।

शक्ति-आत्म संरक्षण, आत्म परिक्षण और अनुशासन बनाए रखने की शक्ति है, को वैध ठहराया जिनके प्रयोग से यह किसी सदस्य को निलंबित या निष्कासित कर सकती है। यह भी निर्णय दिया गया था कि संसद के प्राधिकार की अवमानना का विचारण और उसके लिए दंड संसद के सिवाय और किसी के समक्ष कहीं नहीं दिया जा सकता है, यद्यपि विधायिका की अवमानना शक्ति न्यायिक समीक्षा के अध्यधीन है। अपने निर्णय में न्यायमूर्ति आर.वी. रवीन्द्रन ने निर्णय दिया कि संसद को सदस्य को निष्कासित करने की शक्ति नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने अपने बहुमत के निर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ टिप्पणी की:

> "…. भारत की विधायिका द्वारा किसी सदस्य को निष्कासित करने की शक्ति से मुक्त होने का दावा अनुच्छेद 105(3) के माध्यम से हाउस ऑफ कॉमन्स से विरासत में मिले एक विशेषाधिकार के रूप में किया जा सकता है। …. संसद के प्राधिकार की अवमानना का विचारण और उसके लिए दंड इसके सिवाय अन्य किसी के समक्ष कहीं नहीं किया जा सकता है। अवमानना की शक्ति या विशेषाधिकार के प्रयोग की नीति की न्यायिक समीक्षा का तात्पर्य यह नहीं है कि उक्त अधिकारिता को न्यायपालिका द्वारा हड़पा जा रहा है। जैसा कि अनुच्छेद 122(1) के संदर्भ में पाया गया कि केवल प्रक्रिया की अनियमितता संसद की कार्यवाही अथवा उसके प्रभाव को चुनौती देने का आधार नहीं हो सकती है और आयुक्ति-संगतता के संबंध में भी समान विचार अपनाया जा सकता है किंतु अवैधता और असंवैधानिकता के तत्व हमारी संवैधानिक व्यवस्था में संसदीय कार्यवाही का बचाव नहीं कर सकते।

उच्चतम न्यायालय ने सभा की अपने सदस्यों को निष्कासित करने की शक्ति को वैध ठहराते हुए स्वयं यह निर्णय करने के लिए क्या सदस्य को निष्कासित करने से पूर्व नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का पालन किया गया, न्यायिक समीक्षा के प्रयोग की शक्ति स्वयं के लिए आरक्षित रखी।

संसद भवन सम्पदा के भीतर संसद की शक्तियां

अध्यक्ष ही ऐसा प्राधिकारी है जिसके निदेश के अधीन संसद भवन सम्पदा के भीतर व्यवस्था बनायी रखी जाती है। यदि कोई कार्यपालक प्राधिकारी ऐसी अधिसूचनाएं अथवा आदेश जारी करता है जो संसद भवन की सम्पदा पर लागू होते हैं अथवा संसद भवन सम्पदा के भीतर किसी मामले में जांच कराता है अथवा सम्पदा के भीतर किसी अपराध के लिए किसी के विरुद्ध कोई आरोप लगाता है, तो यह सभा की अवमानना है।

> 4 अप्रैल, 1970 से पहले, जिला मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन जारी आदेशों में संसद भवन सम्पदा को स्पष्ट रूप से अलग नहीं रखा जाता था। उसी दिन अध्यक्ष द्वारा निदेश जारी किए जाने पर, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी आदेशों में संसद भवन सम्पदा को तत्पश्चात् स्पष्ट रूप से अलग रखा जाता है। यद्यपि कार्यपालक प्राधिकारी को धारा 144 के अधीन ऐसा आदेश जारी करने की शक्तियां प्राप्त हैं जिन्हें संसद भवन सम्पदा पर लागू किया जा सकता है, लेकिन विशेषाधिकार विधि के अधीन कार्यपालक प्राधिकारियों के लिए संसद भवन सम्पदा के भीतर इस शक्ति का प्रयोग करने का प्रतिषेध है। कार्यपालक प्राधिकारी, अध्यक्ष की अनुमति के बिना संसद भवन सम्पदा के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते हैं अथवा संसद भवन सम्पदा के भीतर किसी संज्ञेय अपराध के लिए किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं कर सकते।

अध्यक्ष द्वारा 4 अप्रैल, 1970 को जारी निदेश इस प्रकार हैं:[198]

(1) लोक सभा का संयुक्त सचिव, सुरक्षा, संसद भवन सम्पदा के सीमा क्षेत्र में व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव कार्यवाही करेगा कि संसद सदस्यों को संसद भवन में आने अथवा वहां से जाने में कोई बाधा अथवा अड़चन न हो।

(2) संसद भवन सम्पदा के भीतर सम्पूर्ण क्षेत्र और सभी मार्ग संसद सदस्यों के लिए किसी अड़चन अथवा बाधा से मुक्त और खुले रखने के लिए संसद भवन सम्पदा के सीमा क्षेत्र के भीतर निम्नलिखित गतिविधियां निषिद्ध हैं–

(i) सार्वजनिक सभा का आयोजन;

(ii) पांच या इससे अधिक व्यक्तियों का एकत्र होना;

(iii) अग्नेयास्त्र, झण्डे, इश्तिहार, लाठियां, भाले, तलवारें, डंडे, ईंट, पत्थर आदि लेकर चलना;

(iv) नारे लगाना;

(v) भाषण आदि देना;

(vi) जुलूस अथवा प्रदर्शन;

(vii) प्रवेशरोधन अथवा धरना; और

(viii) कोई अन्य गतिविधि अथवा आचरण जिससे संसद सदस्यों के लिए बाधा अथवा अड़चन उपस्थित हो अथवा होने की आशंका हो।

(3) लोक सभा का संयुक्त सचिव, सुरक्षा अध्यक्ष के अनुदेशों अथवा अनुज्ञा के अन्तर्गत, संसद भवन सम्पदा में व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस से जब भी आवश्यक हो, सहायता के लिए प्रार्थना कर सकता है।

संयुक्त सचिव, सुरक्षा, अध्यक्ष द्वारा दिए गए निदेशों के उल्लंघन के लिए किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है। तब वह इस मामले की रिपोर्ट महासचिव के माध्यम से अध्यक्ष को करेगा। अध्यक्ष इस मामले में जांच के आदेश दे सकता है तथा ऐसे आदेश दे सकता है जिसे वह उचित समझे। अध्यक्ष यह निदेश दे सकता है कि ऐसे व्यक्ति को छोड़ देने अथवा पुलिस अधिकारियों को सौंपे जाने के लिए संसद भवन सम्पदा से बाहर ले जाया जाए। लेकिन पुलिस अधिकारी किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध संसद भवन सम्पदा के भीतर उसके द्वारा कही गई किसी भी बात अथवा किए गए किसी कार्य के लिए तब तक आरोप नहीं लगायेगा जब तक अध्यक्ष ने उन्हें इस निमित्त अधिकृत न किया हो।[199] यदि अध्यक्ष प्रथम

198. निदेश 124 क।

199. *लो.स.वा.वि.* 15.4.1974—एक दर्शक जो अपने साथ अग्नेयास्त्र ले जाते हुए पाया गया, से संबंधित मामला।

दृष्टया इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि संबंधित व्यक्ति ने निदेश का घोर उल्लंघन किया है तो वह इस मामले की रिपोर्ट सभा को कर सकता है और सभा, इस सम्बन्ध में पेश किए गए प्रस्ताव के आधार पर उसे सभा की अवमानना के लिए दंड दे सकती है।

सभा द्वारा सुपुर्दगी के कारणों की न्यायालयों में जांच

भारत के उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को संविधान के अधीन यह शक्ति प्रदान की गई है कि वे सभा द्वारा सुपुर्द किए गए व्यक्तियों को अपने सामने पेश किए जाने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी कर सकते हैं।[200] इस शक्ति का प्रयोग उच्चतम न्यायालय ने 1954 में एक ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में किया था जो अवमानना की कार्यवाही के संबंध में उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा जारी किए गए वारंट के अनुसरण में हिरासत में था।[201]

भारत के संविधान के प्रारंभ होने पर अर्थात् 26 जनवरी, 1950 को ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में विद्यमान स्थिति को संक्षेप में बताते हुए मुख्य न्यायमूर्ति एम. हिदायतुल्ला ने यह टिप्पणी की:

> सभा को अपने विशेषाधिकारों के भंग के लिए अथवा अपने प्राधिकार की अवमानना करने वाले आचरण के लिए सुपुर्दगी का अधिकार है, परन्तु बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियमों के अधीन कार्य कर रहे न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका पर विचार करने के लिए बाध्य हैं, हाउस ऑफ कॉमन्स ने संकल्प द्वारा इस स्थिति को स्वीकार किया कि जेलर को विवरणी अवश्य देनी चाहिए तथा वारंट प्रदर्शित करना चाहिए। न्यायालयों ने अपनी ओर से वारंट को स्वीकार किया जिसे 'रिट निसि' का अंतिम उत्तर माना गया। साधारणत: विवरणी से पहले जमानत का प्रश्न ही पैदा नहीं होता लेकिन यदि विवरणी दायर नहीं की जाती अथवा दोषपूर्ण होती है तो कैदी को जमानत दी जा सकती है और छोड़ा जा सकता है। जैसा कि *'शेरिडन' के मामले के* बाद हुए वाद-विवाद से स्पष्ट है कि साधारणत: संदेह का लाभ देने का प्रश्न पैदा नहीं होता यदि 'रिट निसि' दायर की जाती है। यदि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के इतिहास का अध्ययन किया जाए तो यह पाएंगे कि सभा ने बहुत

---

200. *देखिए* अनुच्छेद 32 (2) और 226 ।

201. *देखिए गणपति केशवराम रेड्डी बनाम नफीसुल हसन और उत्तर प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 636 ।

होमी डी. मिस्त्री बनाम *नफीसुल हसन* (आई.एल.आर. 1957, बम्बई 218) में, कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति कोयाजी ने यह टिप्पणी की कि *पंजाब राज्य* बनाम *अजायब सिंह* (1953) एस.सी.आर. 254 में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि "अनुच्छेद 22 (1) और (2) में प्रयुक्त भाषा में इस बात का संकेत है कि यह अनुच्छेद कार्यपालिका या अन्य गैर-न्यायिक प्राधिकरण के कार्य के विरुद्ध संरक्षण देने के लिए रखा गया है" लेकिन उन्होंने यह निर्णय दिया कि उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष ने सभा में संकल्प के अनुसार जो वारंट जारी किया है, वह न्यायिक वारंटों की श्रेणी में आता है और इसलिए "उसके विरुद्ध वह संरक्षण नहीं दिया जा सकता, जिसका उपबन्ध अनुच्छेद 22 में किया गया है"।

समय पहले ही यह दृष्टिकोण छोड़ दिया है कि न्यायालय अपना कर्त्तव्य निभाते समय इसकी गरिमा का हनन करता है और इसलिए इंग्लैंड में द्वैतवाद समाप्त हो गया।[202]

न्यायालय और विशेषाधिकार के मामले[203]

भारत में न्यायालयों ने इस बात को स्वीकार किया है कि संसद की कोई सभा या कोई राज्य विधानमंडल स्वयं ही इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय कर सकता है कि किसी मामले में विशेषाधिकार भंग हुआ है या नहीं। यह भी निर्णय किया गया है कि अवमानना के लिए सभा की सुपुर्दगी की शक्ति हाउस ऑफ कॉमन्स की शक्ति के समान ही है और कोई भी न्यायालय इस शक्ति के प्रयोग की संवीक्षा करने के लिए सक्षम नहीं होगा।[204]

जहां तक प्रत्येक सभा का अपनी आन्तरिक कार्यवाही पर अनन्य नियंत्रण होने का सम्बन्ध है, अनुच्छेद 105(2) स्पष्ट रूप से संसद के किसी सदस्य द्वारा सभा या उसकी समिति में कही गयी किसी बात या दिये गये किसी मत के संबंध में न्यायालयों की अधिकारिता का वर्जन करता है। उड़ीसा उच्च न्यायालय ने 1958 में यह निर्णय दिया कि किसी भी न्यायालय को विधानमंडल के किसी सदस्य के विरुद्ध वहां दिए गए उसके किसी भाषण के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही करने की शक्ति नहीं है, चाहे उसने उस भाषण में उच्च न्यायालय पर ही आक्षेप क्यों न किए हों।[205] न्यायालयों ने यह भी निर्णय दिए हैं कि जहां तक सभा की आन्तरिक प्रक्रिया[206] पर उसके नियंत्रण का सम्बन्ध है, उसमें न्यायालय को हस्तक्षेप का कोई अधिकार नहीं है, और न उन्हें इस कार्यवाही की वैधता पर इस आधार पर आपत्ति करने की शक्ति है कि प्रक्रिया में कोई कथित अनियमितता हुई है।[207]

---

202. *हिदायतुल्ला, उद्धृत कृति* पृ. 210 ।

203. साथ ही *देखिए,* आगे अध्याय 42 ।

204. *एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्रीकृष्ण सिन्हा ए.आई.आर.* 1959, एस.सी. 395; *होमी डी. मिस्त्री* बनाम *नफीसुल हसन,* आई.एल.आर. 1957 बम्बई 218; *हरेन्द्र नाथ बरूआ* बनाम *देवकांत बरूआ,* ए.आई.आर. 1958, असम 160 ।

    केशव सिंह बनाम *अध्यक्ष विधानसभा, उत्तर प्रदेश* के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि विधान सभा को अपनी अवमानना करने पर कार्यवाही करने की वही शक्ति प्राप्त है जो कि हाउस आफ कॉमन्स को है–

    ए.आई.आर. 1965, इलाहाबाद 349 (354)।

205. *सुरेन्द्र महंती* बनाम *नवकृष्ण चौधरी,* ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168; आई.एल.आर. 1958, कटक 195 ।

206. *राजानारायण सिंह* बनाम *आत्माराम गोविंद* खेर, ए.आई.आर. 1954, इलाहाबाद 319; *हेमचन्द्र सेन गुप्ता* बनाम *अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधानसभा* ए.आई.आर. 1956, कलकत्ता 378; *सी. श्रीकृष्ण* बनाम *हैदराबाद राज्य और अन्य,* ए.आई.आर. 1956, हैदराबाद 186 ।

207. *बिहार राज्य* बनाम *कामेश्वर,* ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 267; *श्रद्धाकर* बनाम *उड़ीसा विधान सभा,* ए.आई.आर. 1952 उड़ीसा 234; *गोदावरिंस मिश्र* बनाम *नन्दकिशोर दास,* ए.आई.आर. 1953 उड़ीसा 111; *राम दुबे* बनाम *मध्य भारत सरकार,* ए.आई.आर. 1952, मध्य भारत 73।

जब भूतपूर्व अध्यक्ष सहित सभा के कुछ सदस्यों को *जगद्गुरु शंकराचार्य* संबंधी मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष स्वयं या वकील के माध्यम से उपस्थित होने के लिए नोटिस दिये गये थे तो उस समय विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया था। अध्यक्ष ने संबंधित सदस्यों को उस नोटिस को नज़रअदांज करने के लिए कहा और महान्यायवादी से कहा कि वे इस बात को न्यायालय के ध्यान में लाएं कि इस मामले में जो कुछ भी कहा गया है, वह संविधान के अनुच्छेद 105 के अधीन आता है।[208]

ऐसी स्थिति में जहां सदस्यों को कोई समन नहीं भेजे गए बल्कि उन्हें केवल 'दाखिल करने की सूचना' भेजी गई, के संबंध में सभा के दृष्टिकोण के बारे में न्यायालय द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों के आधार पर सभा में फिर से इस मामले पर चर्चा की गई, इस पर अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया:

> न्यायालय चाहे कोई समन जारी करे अथवा कोई सूचना, इससे हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। अंततः सभा के विशेषाधिकार का प्रश्न तब पैदा होता है जब सदस्यों को, जो कुछ उन्होंने सभा में कहा है, उसके संबंध में अपना बचाव करने के लिए कहा जाता है।[209]

जब एक सदस्य को उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील दाखिल करने की सूचना दी गई तो उसने न्यायालय के समक्ष स्वयं उपस्थित होने और अपने बचाव करने की इच्छा व्यक्त की तो इस संबंध में अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की :

> यदि वह अनुच्छेद 105 के बारे में पूर्ण रूप से जानते हुए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है तो मेरे विचार से हमें उसके विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रस्ताव लाना होगा।[210]

लोक लेखा समिति के सभापति को समिति के 71वें प्रतिवेदन (पांचवीं लोक सभा) में की गई कतिपय टिप्पणियों से संबंधित सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए न्यायालय से समन प्राप्त हुए थे। उस पर अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की:

> जैसी कि सभा की प्रथा रही है, मैंने समिति के सभापति से कहा है कि समन को नज़रअंदाज कर दें और उन्हें न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की जरूरत नहीं है। तथापि, मैं संबंधित कागज़ात ऐसी कार्यवाही करने के लिए, जैसी वह उचित समझें विधि मंत्री को भेज रहा हूँ ताकि वह इस संबंध में सही संवैधानिक स्थिति के बारे में न्यायालय को अवगत करा सकें।[211]

11 अप्रैल, 1979 को कर्नाटक उच्च न्यायालय से एक नोटिस प्राप्त हुआ था जिसमें एक सदस्य को सभा से निष्कासित किए जाने के संबंध में लोक सभा द्वारा पारित एक संकल्प की वैधता को चुनौती देने वाली एक रिट याचिका के संबंध में उस न्यायालय में लोक सभा

208. *लो.स.वा.वि.,* 3.4.1970 पृ. 150-51 और 22.4.1970 पृ. 148-55 ।
209. *पूर्वोक्त,* 22.4.1970 ।
210. *पूर्वोक्त* ।
211. *लो.स.वा.वि.,* 1.8.1975 ।

सचिव को स्वयं अथवा अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होने के लिए कहा गया था। लोक सभा अध्यक्ष ने 12 अप्रैल, 1979 को यह मामला सभा के समक्ष रखा और टिप्पणी की कि उन्होंने लोक सभा सचिव से कहा है कि वह इस नोटिस का कोई उत्तर न दें।[212]

इसी प्रकार, पटना उच्च न्यायालय से एक नोटिस प्राप्त हुआ था जिसमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सभापति को यह कारण बताने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया था कि इस रिट याचिका को, जिसमें बिहार के एक समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता देने संबंधी परमादेश याचिका जारी करने की प्रार्थना की गई है, को क्यों न स्वीकार कर लिया जाए। अध्यक्ष ने इस संबंध में यह टिप्पणी की[213]:

> सभा की प्रथा के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सभापति को नोटिस का कोई उत्तर नहीं देने के लिए कहा गया है। विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री से अनुरोध किया जा रहा है कि वह इस संबंध में पटना उच्च न्यायालय को सही संवैधानिक स्थिति से अवगत करा दें।

6 नवम्बर, 1987 को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि उन्हें उच्चतम न्यायालय के सहायक रजिस्ट्रार से एक नोटिस प्राप्त हुआ है जिसमें एक सिविल रिट याचिका को दिल्ली उच्च न्यायालय से भारत के उच्चतम न्यायालय में अंतरित करने संबंधी अंतरण याचिका के बारे में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया है। अध्यक्ष ने इस संबंध में यह टिप्पणी की[214]:

> लोक सभा की सुस्थापित परम्परा एवं परिपाटी के अनुसार मैंने यह निश्चय किया है कि नोटिस का उत्तर न दिया जाए। मैंने संबंधित कागज़ात विधि और न्याय मंत्रालय में राज्य मंत्री को ऐसी कार्यवाही करने के लिए, जैसा कि वह उचित समझें, भेज दिए हैं ताकि वह न्यायालय को सही संवैधानिक स्थिति और सभा की सुस्थापित परिपाटियों से अवगत करा सकें।

27 जुलाई, 1988 को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि उन्हें बम्बई उच्च न्यायालय से दो नोटिस प्राप्त हुए हैं जिनमें गुड्स-क्रेन्स-अध्याय उपशीर्ष सं. 8426-00 में उत्पाद शुल्क की दरों के बारे में यथापारित और राजपत्र में प्रकाशित विधेयक (केन्द्रीय उत्पाद शुल्क टैरिफ विधेयक, 1985) में अंतर का आरोप लगाने वाली दो रिट याचिकाओं के संबंध में मुझे अथवा लोक सभा महासचिव को उस न्यायालय में एक शपथ पत्र दाखिल करने के लिए उपस्थित होने के लिए कहा गया है। अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि सभा की सुस्थापित परम्परा तथा परिपाटी के अनुसार उन्होंने यह निश्चय किया है कि नोटिसों का उत्तर न दिया जाए और उन्होंने संबंधित कागज-पत्र विधि और न्याय मंत्री को ऐसी कार्यवाही करने के लिए, जैसी वह

---

212. *लो.स.वा.वि.*, 12.4.1979, पृ. 181-82 ।

213. *एल.एस. डिबेट्स,* 5.4.1982, कॉ. 604-05; प्रिविलेजिस डाइजेस्ट खंड XXVII, 2, पृ. 1 ।

214. *एल.एस. डिबेट्स,* 6.11.1987, कॉ. 203; प्रिविलेजिस डाइजेस्ट खंड XXXIII, 1, पृ. 5-6 ।

उचित समझे, भेज दिए हैं ताकि वह और न्यायालय को सही संवैधानिक स्थिति और सभा की सुस्थापित परिपाटियों से अवगत करा सकें।[215]

27 दिसम्बर, 1990 को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि 7 दिसम्बर, 1990 को उन्हें दिल्ली उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार से एक नोटिस प्राप्त हुआ है कि जिसमें उन्हें 1990 की सिविल रिट याचिका संख्या 3871 के संबंध में कारण बताने के लिए कहा गया है। रिट याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 के द्वारा दसवीं अनुसूची में जोड़े गए पैरा 6 और पैरा 7 की वैधता और संवैधानिकता को भी चुनौती दी गई। अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि सभा की सुस्थापित प्रथा तथा परिपाटी के अनुसार उन्होंने यह निर्णय लिया है कि इस नोटिस का जवाब न दिया जाए और संबंधित कागज-पत्र विधि और न्याय मंत्री को ऐसी कार्यवाही करने के लिए, जैसी वह उचित समझें, भेज दिये हैं ताकि वह उच्च न्यायालय को सही संवैधानिक स्थिति और सभा की सुस्थापित परिपाटियों से अवगत करा सकें।[216]

4 मार्च, 1992 को लोक सभा के सदस्य और भूतपूर्व अध्यक्ष रवि राय को भारत के उच्चतम न्यायालय के सहायक रजिस्ट्रार से 1992 की रिट याचिका संख्या 149 के मामले में एक नोटिस प्राप्त हुआ था जिसमें उन्हें यह कारण बताने के लिए 10 मार्च, 1992 को स्वयं अथवा अपने वकील के माध्यम से उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया था कि रिट याचिका में की गई प्रार्थना के अनुसार प्रारम्भिक आदेश (रूल निसि) क्यों न जारी किया जाए। उसी दिन उक्त नोटिस को मूल रूप में रवि राय द्वारा लोक सभा अध्यक्ष को इस मामले में उनकी सलाह के लिए भेज दिया गया था। 9 मार्च, 1992 को अध्यक्ष (शिवराज वि. पाटील) ने यह मामला सभा के समक्ष रखा और अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की:

> .... हमने भारत के पीठासीन अधिकारियों की एक बैठक आयोजित की थी जिसमें लगभग सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया था कि उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का कानून में कोई संशोधन होने तक सम्मान किया जाना चाहिए। उक्त बैठक में हमने यह भी कहा था कि माननीय पीठासीन अधिकारीगण स्वयं को न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र के अधीन न लाएं। हम, एक अत्यंत जिम्मेदार संस्था के तौर पर यह चाहते हैं कि न्यायपालिका के सम्मान और गौरव को भी अक्षुण्ण बनाए रखा जाए। ऐसी स्थिति में हमारे लिए संतुलन बनाए रखना सर्वाधिक अहम बात है।
>
> .... मैंने यह बात माननीय नेताओं और रवि राय जी को भी बताई है। मैंने यह कहा है कि अध्यक्ष को न्यायालय में उपस्थित नहीं होना चाहिए। कागज-पत्र न्यायालय को दे दिए जाने चाहिएं और न्यायालय जिस प्रकार भी चाहे निर्णय ले सकता है। यह मामला विधि मंत्रालय की जानकारी में भी लाया जा सकता है और यदि आवश्यक हो तो विधि मंत्रालय, विधान मंडल के इस दृष्टिकोण से न्यायपालिका को अवगत करा सकता है।

---

215. *पूर्वोक्त,* 27.7.1988, कॉ. 247 ।

216. *लो.स.वा.वि.,* 27.12.1990, पृ. 262 ।

> एक ओर हम उन्हें कागज-पत्र उपलब्ध कराएंगे और उनके निर्णय को स्वीकार करेंगे तथा उसका सम्मान करेंगे परन्तु दूसरी ओर हम यह भी अपेक्षा करेंगे कि पीठासीन अधिकारी न्यायालय के समक्ष उपस्थित न हों और वे स्वयं को न्यायालय के क्षेत्राधिकार में न लाएं। मैंने यही दृष्टिकोण व्यक्त किया है। साथ ही मैंने यह भी कहा कि मैं इस मामले को इस सम्माननीय सभा की जानकारी में लाऊंगा और सभा की सहमति के बाद ही हम किसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे। इसलिए मैंने यह दृष्टिकोण आपके समक्ष रख दिया है। मैं समझता हूं कि यदि इस पर हम सभी की सहमति बनती है तो हम इस पर अमल करेंगे।[217]

चौदहवीं लोक सभा के दौरान अध्यक्ष, लोक सभा ने श्री राजेश वर्मा, संसद सदस्य द्वारा संविधान की दसवीं अनुसूची और लोक सभा सदस्य (दल-बदल के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 के अधीन श्री मोहम्मद शाहिद अललाम, श्री रमाकांत यादव और श्री भालचन्द्र यादव, संसद सदस्यों के विरुद्ध दी गई याचिकाओं पर तीन अलग निर्णय दिये जिनमें उक्त तीन सदस्यों को सभा की सदस्यता से निरर्ह किया गया, श्री मौहम्मद शाईद अखलाक ने सभा की सदस्यता से उन्हें निरर्ह करने के अध्यक्ष के निर्णय को चुनौती देने के लिए एक रिट याचिका दायर की। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 20 फरवरी, 2008 को यह निर्देश देते हुए आदेश दिया कि अन्य बातों के साथ-साथ अध्यक्ष, लोक सभा; महासचिव, लोक सभा और संयुक्त सचिव लोक सभा सचिवालय को नोटिस जारी किए जाएं जिन्हें याचिका में क्रमशः प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 बनाया गया है। मामले की जांच के पश्चात् यह दृष्टिकोण अपनाया गया कि अध्यक्ष, लोक सभा जब दसवीं अनुसूची के अधीन किसी मामले का निर्णय करता है तो वह अधिकरण के रूप में कार्य करता है जब उनके निर्णय को न्यायालय में चुनौती दी जाती है तो वह अधिकरण के निर्णय को चुनौती देने के समान होगा। जब किसी अधिकरण के निर्णय की समीक्षा की जाती है तो उसे या तो वैध ठहराया जाता है या उसे उलट दिया जाता है। किसी अधिकरण को एक साधारण विधान के मामले की तरह प्रतिवादी नहीं बनाया जा सकता है। तद्नुसार यह निर्णय किया गया कि इस मामले में न्यायालय में उपस्थित न हुआ जाए।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने 31.7.2007 के आदेश में इस याचिका को खारिज किया।

जहां तक संविधान के अधीन नागरिकों को दिए गए मूल अधिकारों की तुलना में संसद के विशेषाधिकारों का संबंध है, उच्चतम न्यायालय ने 1959 के वाक्-स्वातंत्र्य एवं अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से जुड़े एक मामले में यह निर्णय दिया था:

> अनुच्छेद 194 के खंड (2) के उपबंधों में यह कहा गया है कि खंड (1) में उल्लिखित वाक्-स्वातंत्र्य अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन दी गई अभिव्यक्ति और वाक्-स्वातंत्र्य से भिन्न है और अनुच्छेद 19 के खंड (2) में अवधारित किसी कानून द्वारा उसे किसी भी तरह से कम नहीं किया जा सकता।

---

217. *लो.स.वा.वि.*, 9.3.1992, पृ. 265 ।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया था कि अनुच्छेद 105 (3) और 194 (3) में किए गए उपबंध संवैधानिक विधियां हैं न कि संसद अथवा राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाई गई सामान्य विधियां हैं। अत: वे उपबंध उतने ही सर्वोच्च हैं जितने मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेदों के उपबंध।[218]

परन्तु 1964 में एक मामला[219] सामने आया जिससे "विधानमंडल और उसके अधिकारियों के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय और उसके न्यायाधीशों की शक्तियों और अधिकारिता के बारे में तथा उच्च न्यायालय और उसके न्यायाधीशों के कर्त्तव्यों के निर्वहन के संबंध में राज्य विधानमंडल उसके सदस्यों की शक्तियों, विशेषाधिकारों एवं उन्मुक्तियों के बारे में जटिल एवं महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न पैदा हो गये"। इसमें शामिल विधि के प्रश्न इतने लोक महत्व तथा संवैधानिक महत्व के थे कि राष्ट्रपति ने मामले को उच्चतम न्यायालय को उसकी राय के लिए भेजना उचित समझा। इस मामले में विवाद का मुख्य मुद्दा यह था कि विधानमंडलों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 194 (3) के अधीन किसी नागरिक को अवमानना के लिए सामान्य वारण्ट के द्वारा विचारण के लिए सुपुर्द करने की शक्ति है जिसके परिणामस्वरूप न्यायालय सुपुर्दगी के सम्बन्ध में अपनी अधिकारिता से वंचित हो जाते हैं।

उच्चतम न्यायालय ने अपने बहुमत निर्णय[220] में यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 194 (3) द्वारा राज्यों के विधानमंडलों को दी गई शक्तियां और विशेषाधिकार मूल अधिकारों के अधीन हैं और विधानमंडलों को यह विशेषाधिकार या शक्ति प्राप्त नहीं है कि उनके सामान्य वारण्टों को निर्णायक माना जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि शर्मा मामले में संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये सभी मूल अधिकारों की प्रासंगिकता और उनकी प्रयोज्यता का सामान्य प्रश्न उठाया ही नहीं गया था। अत: उस मामले में बहुमत निर्णय का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि "उन्होंने सामान्य रूप से यह कह दिया है कि जब भी अनुच्छेद 194 (3) के बाद के उपबंधों तथा भाग 3 द्वारा दिए गए मूल अधिकारों के उपबंधों

---

218. *देखिए एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्री कृष्ण सिन्हा (सर्चलाइट मामला)*, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395 ।

219. यह मामला उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा केशव सिंह को सभा का विशेषाधिकार भंग करने तथा उसकी अवमानना करने के लिए जेल सुपुर्द किये जाने और बाद में संविधान के अनुच्छेद 226 तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 49ञ के अधीन दायर की गयी एक रिट याचिका पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ द्वारा उन्हें जमानत पर रिहा कर दिये जाने के कारण उत्तर प्रदेश विधान सभा तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय के बीच पैदा हुए विवाद से उत्पन्न हुआ था।

परन्तु इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने केशव सिंह की रिट याचिका खारिज कर दी और उन्हें अभिरक्षा में अभ्यर्पण करने और उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा उन्हें दी गयी कारावास की शेष अवधि की सजा भुगतने का आदेश दिया–ए.आई.आर. 1965, इलाहाबाद, 349 ।

220. *अनुच्छेद 143 के मामले मे*, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 745 ।

के बीच कोई विवाद हो, तो 194 (3) के उपबंध लागू होंगे और मूल अधिकारों के नहीं। अतः बहुमत निर्णय से यह निश्चित हो गया है कि अनुच्छेद 19 (1) (क) लागू नहीं होगा, बल्कि अनुच्छेद 21 लागू होगा"। न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया:

> अनुच्छेद 194 के खंड (3) में दिए गए उपबंधों के प्रभाव पर विचार करते हुए जब ऐसा प्रतीत हो कि उक्त उपबंधों और मूल अधिकारों के उपबंधों के बीच कोई विवाद है तो सुसंगत व्याख्या करने वाले नियम को अपनाकर उक्त विवाद को हल करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

भारत में विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में उच्चतम न्यायालय की इस राय पर विचार किया गया। यह सम्मेलन 11 और 12 जनवरी, 1965 को मुम्बई में हुआ था और इसमें सर्वसम्मति से एक संकल्प पारित किया गया था जिसमें यह विचार प्रकट किया गया था कि अनुच्छेद 105 और 194 में समुचित संशोधन किए जायें ताकि संविधान निर्माताओं के आशय के बारे में किसी प्रकार की कोई आशंका न रहे कि विधानमंडलों, उनके सदस्यों तथा उनकी समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का किसी भी स्थिति में यह अर्थ न निकाला जा सके कि वे संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद के अध्यधीन अथवा अधीनस्थ हैं।

इसी बीच इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि विधान सभा को अपनी अवमानना के लिए सुपुर्दगी देने की शक्ति है। इसलिए, सरकार ने निर्णय किया कि संविधान में संशोधन किये जाने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय की यह राय थी कि उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई राय और इलाहाबाद उच्च न्यायालय[221] के द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में विधानमंडल और न्यायपालिका अपनी-अपनी परिपाटियों का विकास करेंगे।

वर्ष 1984 में दो राज्य विधानमंडलों—केरल राज्य विधान सभा और आंध्र प्रदेश विधान परिषद् के समक्ष विशेषाधिकार के दो मामलों के संबंध में उच्चतम न्यायालय के समक्ष दायर दो रिट याचिकाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न और उत्पन्न होने वाले मुद्दों पर विचार करने के लिए विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का एक आपात सम्मेलन बुलाया गया था।

केरल विधान सभा के मामले में एक प्रेस संवाददाता को प्रेस दीर्घा का पास केरल विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा इसलिए रद्द कर दिया गया था क्योंकि उसने अध्यक्ष के ऊपर आक्षेप लगाया था। उक्त प्रेस संवाददाता ने अपना पास रद्द किए जाने को चुनौती देते हुए केरल उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की। न्यायालय ने केरल विधान सभा के अध्यक्ष और सचिव को नोटिस जारी किया। केरल सरकार ने उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध एक अपील दायर की। केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस मामले पर विचार किया और एकल न्यायाधीश के उस आदेश को उचित ठहराया जिसमें उसने टिप्पणी की थी कि अपील में किसी प्रकार के हस्तक्षेप के लिए नहीं कहा गया है। पूर्ण पीठ ने यह भी टिप्पणी की कि "संविधान के अनुच्छेद 212 (1) में परिकल्पित उन्मुक्ति ऐसे मामले तक

---

221. *देखिए लो.स.वा.वि.*, 8.3.1966, पृ. 4285 ।

ही सीमित है जहां शिकायत मात्र यह हो कि प्रक्रिया अनियमित थी । यदि आक्षेपित कार्यवाहियों को गैर-कानूनी या असंवैधानिक होने के रूप में चुनौती दी जाती है तो ऐसी कार्यवाहियां किसी भी न्यायालय में जांच के लिए खुली होंगी।"[222]

बाद में केरल सरकार ने पूर्ण पीठ के आदेश और विनिर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में एक विशेष अनुमति याचिका दायर की। उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने 7 फरवरी, 1984 को अपील स्वीकार कर ली और उच्च न्यायालय में आगे की सभी कार्यवाहियों पर रोक लगा दी।

आंध्र प्रदेश विधान परिषद् मामले में *ईनाडु* के सम्पादक ने अपने 10 मार्च, 1983 के समाचार पत्र में सदन और उसकी कार्यवाहियों पर कथित रूप से आक्षेप किया था। सभापति ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति को भेजा जिसने 27 फरवरी, 1984 को सदन में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में बताया कि संपादक ने गंभीर रूप से विशेषाधिकार भंग किया है और सदन की अवमानना की है। समिति ने सिफारिश की कि संपादक को सदन के कटघरे में बुलाया जाये और उसकी भर्त्सना की जाये। समिति के प्रतिवेदन को सदन द्वारा 6 मार्च, 1984 को बिना किसी चर्चा के स्वीकार किया गया। इससे पूर्व कि सदन संपादक के विरुद्ध कोई कार्यवाही करती, उसने समिति के निष्कर्षों को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर कर दी।

उच्चतम न्यायालय में लम्बित उक्त मामलों से उत्पन्न मुद्दों पर विचार करने के लिए 25 अप्रैल, 1984 को नई दिल्ली में भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का एक आपात सम्मेलन आयोजित किया गया था। सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए, सभापति (डॉ. बलराम जाखड़) ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा:

> "हम इसी वर्ष जनवरी में अपने वार्षिक विचार-विमर्श के लिए मुम्बई में मिले थे। तब से अब तक संवैधानिक महत्व की अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं घटी हैं जिनमें विधानमंडल, प्रेस और न्यायपालिका शामिल हैं। आंध्र प्रदेश विधान परिषद् और केरल विधान सभा से संबंधित विशेषाधिकार के दो मामले इस समय उच्चतम न्यायालय के समक्ष लम्बित हैं। आज हम यहां विशेष रूप से विशेषाधिकार के इन मामलों, जिनका हमारे विधानमंडलों के प्रभावी कार्यकरण पर व्यापक प्रभाव पड़ने वाला है, से उत्पन्न मुद्दों पर विचार करने के लिए एकत्र हुए हैं। हमने इस विषय पर हाल ही में मुम्बई में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में विचार किया और इस विषय से संबंधित सभी पहलुओं पर गहनता से विचार करने के उपरांत 3 जनवरी, 1984 को एक संकल्प स्वीकार किया और इस बात की अभिपुष्टि की कि विधानमंडल सभा के कार्य संचालन और भारत के संविधान द्वारा प्रदत्त अपनी शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के मामले में सर्वोच्च है और उस संबंध में किसी अन्य प्राधिकारी को हस्तक्षेप करने की न तो कोई शक्ति है और न ही अधिकारिता।"

---

222. *केरल राज्य* बनाम *आर. सुदर्शन बाबू और अन्य,* आई.एल.आर. (केरल) 1983, पृ. 661 ।

इस विषय पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने के उपरान्त, सम्मेलन ने सर्वसम्मति से निम्नलिखित संकल्प स्वीकृत किया:

"भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारी 25 अप्रैल, 1984 को नई दिल्ली में हुई आपात बैठक में संविधान के अधीन विधानमंडल की सर्वोच्चता और न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा प्रेस की स्वतंत्रता में अपनी आस्था दोहराते हुए सर्वसम्मति से संकल्प करते हैं:

(क) कि संविधान के अनुच्छेद 105/194 के अधीन भारत में विधानमंडलों का सदन, अपने सदस्यों और समितियों के विशेषाधिकारों से संबंधित सभी मामलों का, न्यायालयों या अन्य किसी प्राधिकरण के हस्तक्षेप के बिना निर्णय करने का अनन्य क्षेत्राधिकार है और संविधान निर्माताओं का भी यही आशय था;

(ख) कि संविधान के अनुच्छेद 118/208 के अधीन बनाये गए नियमों की किसी भी न्यायालय द्वारा संवीक्षा नहीं की जा सकती तथा उन नियमों के संवैधानिक उपबंधों के अध्यधीन होने के कारण उनसे संबंधित यह उपबंध संविधान में दिए गए प्रक्रिया नियमों से संबंधित उपबंधों को निर्देशित करता है और न कि अन्य सभी उपबंधों को;

(ग) कि विधानमंडलों और न्यायालयों के बीच आपसी विश्वसनीयता और सम्मान विद्यमान रहना चाहिए, प्रत्येक को एक-दूसरे की स्वतंत्रता, गरिमा और क्षेत्राधिकार को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि उनकी भूमिकाएं एक-दूसरे की पूरक हैं;

(घ) कि यदि आवश्यक हो तो संविधान में संशोधन किया जा सकता है जिससे कि इस स्थिति को सभी प्रकार के संदेह के दायरे से बाहर रखा जा सके; और

(ङ) कि जनवरी, 1984 में बम्बई सम्मेलन में नियुक्त पीठासीन अधिकारियों की समिति इस मामले में आगे की प्रगति पर निरंतर निगरानी रखेगी तथा सम्मेलन के सभापति को समय-समय पर उपयुक्त सिफारिशें करेगी तथा अक्तूबर, 1984 में कलकत्ता में होने वाली बैठक में इसे अंतिम रूप से सम्मेलन को सौंपेगी।

यह सम्मेलन सभापति को उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे अन्य कदम, जो वह उचित समझे, उठाने के लिए प्राधिकृत करता है।"

तथापि, उच्चतम न्यायालय के समक्ष रिट याचिका पर सुनवाई होने के पूर्व ही केरल विधान सभा का विघटन हो गया। 1 जून, 1985 को आंध्र प्रदेश विधान परिषद् (उत्सादन) अधिनियम, 1985[223] के द्वारा आंध्र प्रदेश विधान परिषद् का उत्सादन कर दिया गया।

---

223. 1985 का अधिनियम सं. 35 ।

झारखंड मामला

झारखंड विधान सभा के चुनाव फरवरी, 2005 में हुए थे। मतदाताओं ने खंडित जनादेश दिया। झारखंड के राज्यपाल ने विभिन्न राजनीतिक दलों से परामर्श के बाद 2 मार्च, 2005 को श्री शिबू सोरेन के नेतृत्व में झारखंड मुक्ति मोर्चा और इसके सहयोगी दलों को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। सोरेन सरकार को 21 मार्च, 2005 तक सभा में अपना बहुमत सिद्ध करना था जिसे बाद में राज्यपाल ने पहले कर 15 मार्च, 2005 के लिए निर्धारित कर दिया। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेता, जिसने 81 सदस्यीय झारखंड विधान सभा में बहुमत के समर्थन का दावा किया, ने झारखंड के मुख्यमंत्री के रूप में भी शिबू सोरेन की नियुक्ति को चुनौती देने के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की।

9 मार्च, 2005 को माननीय मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने रिट याचिका (सिविल) संख्या 123/2005, अर्जुन मुंडा बनाम झारखंड के राज्यपाल और अन्य तथा एक और रिट याचिका (सिविल) संख्या 120/2005, अनिल कुमार झा बनाम भारत संघ और अन्य में अन्य बातों के साथ-साथ यह निर्देश देते हुए अंतरिम आदेश दिया कि (एक) 10 मार्च, 2005 के लिए आहूत झारखंड विधान सभा का सत्र 11 मार्च, 2005 अर्थात् अगले दिन तक जारी रहे और उस दिन विश्वास मत को शक्ति परीक्षण के लिए रखा जाए; (दो) 11 मार्च, 2005 को विधान सभा में एकमात्र कार्य प्रतिस्पर्धी राजनीतिक गठबंधनों के बीच शक्ति परीक्षण होगा; (तीन) विधान सभा में कार्यवाही शांतिपूर्ण होगी और विघ्न यदि कोई उसमें हुआ तो, उसे गंभीरता से लिया जाएगा; (चार) शक्ति परीक्षण का परिणाम सामयिक अध्यक्ष द्वारा निष्ठापूर्वक और सच्चाई से घोषित किया जाए।

अत: उच्चतम न्यायालय के अंतरिम आदेश में सभा का कार्य नियत करने, सभा में व्यवस्था बनाए रखने और सभा की कार्यवाही की वीडियो रिकार्डिंग आदि के निदेश हैं जो ऐसे मामलों से संबंधित हैं जिनके बारे में निर्णय नियमों के अधीन और परिपाटी के अनुसार सभा के पीठासीन अधिकारी या स्वयं सभा के अनन्य क्षेत्राधिकार में आता है।

इस मामले पर 20 मार्च, 2005 को नई दिल्ली में आयोजित विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के आपात सम्मेलन में चर्चा की गई।

अध्यक्ष (चौदहवीं) लोक सभा और सम्मेलन के सभापति ने अपने समापन भाषण में अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की:

> "जैसा कि हमारे संविधान निर्माताओं ने कल्पना की कि संविधान ही देश की सर्वोच्च निधि है और शासन की सभी शाखाएं संविधान के अध्यारोही प्राधिकार और नियंत्रण के अध्यधीन हैं। यदि दृष्टिकोण में कोई मतभेद है, तो अन्त: सदैव संविधान की भावना अभिभावी होगी, पीठासीन अधिकारियों ने इस बात पर भी बल दिया कि विधानमंडल की कार्यवाही और विशेषाधिकारों से संबंधित सभी मामलों में वह एकमात्र अभिरक्षक और निर्णायक है। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि जैसा कि अनुच्छेद 122 और 212 में उपबंध है कि संसद या राज्य विधानमंडल का कोई अधिकारी या सदस्य, जिसमें प्रक्रिया पर कार्य संचालन का विनियमन करने की अथवा व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियां निहित

हैं, उन शक्तियों के प्रयोग के विषय में किसी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अध्यधीन नहीं होगा। कुछ माननीय पीठासीन अधिकारियों ने इस प्रश्न का भी उल्लेख किया कि क्या कोई संवैधानिक संशोधन किया जाए।

मैं वास्तव में खुश हूं कि माननीय पीठासीन अधिकारियों ने एक अत्यधिक संवेदनशील विषय पर अपने गरिमापूर्ण वाद-विवाद द्वारा हमारी बिरादरी का सम्मान बढ़ाया है। विधायिका और न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों के संवैधानिक जनादेश का पालन करने की अत्यावश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने गत वर्षों में विधायिका-न्यायपालिका संबंधों के मामले पर विभिन्न न्यायालयों विशेष रूप से उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिर्णयों और निर्णयों का भी उल्लेख किया। साथ ही उन्होंने इस बात को भी दोहराया कि विधायिका अपनी कार्यवाही और विशेषाधिकारों से संबंधित मामलों में एकमात्र अभिरक्षक और निर्णायक है जिसे उच्चतम न्यायालय ने भी मान्यता दी है। साथ ही संविधान के उपबंधों के अनुसार अपने क्षेत्र में माननीय उच्चतम न्यायालय की सर्वोच्चता को भी दोहराया है।"

सम्मेलन ने अपने सर्वसम्मत संकल्प में अन्य बातों के साथ-साथ यह संकल्प पारित किया कि:

"विधायिका और न्यायपालिका के बीच पारस्परिक विश्वास और सम्मान होना चाहिए और यह समझ भी होनी चाहिए कि वे विपरीत उद्देश्यों के लिए कार्य नहीं कर रहे हैं किंतु समान लक्ष्य अर्थात् इस देश के आम आदमी की सेवा और इस देश को सुदृढ़ बनाने के लिए मिलकर प्रयास कर रहे हैं.........।

कि लोकतांत्रिक शासन की सफलता अत्यधिक सुकर होगी यदि ये दो महत्वपूर्ण संस्थाएं राष्ट्रीय प्रयास में एक-दूसरे की भूमिका का सम्मान करें और संविधान द्वारा उन्हें नियत क्षेत्रों में अतिक्रमण न करें....।

कि विधायिका और न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखना अत्यावश्यक है।"

विशेषाधिकार भंग और सभा की अवमानना से संबंधित विशिष्ट मामले

संसद की प्रत्येक सभा तथा किसी राज्य के विधानमंडल की सभा को अवमानना या विशेषाधिकार भंग के लिए दण्ड देने की जो शक्ति प्राप्त है वह अवमानना के लिए दण्ड देने की सामान्य शक्ति के समान है, जो वरिष्ठ न्यायालयों को प्राप्त होती है और जो विवेक पर आधारित शक्ति है उन सभी कार्यों की सूची नहीं बनाई जा सकती जिन्हें सभा की अवमानना समझा जायेगा। तथापि, विशेषाधिकार भंग और अवमानना के कुछ विशिष्ट मामले नीचे दिये जा रहे हैं।

सभा या उसकी समितियों के समक्ष अवचार

सामूहिक रूप से सभा का अनादर विशेषाधिकार भंग का आधारभूत और मूल रूप है और ऐसे लगभग सभी मामलों को इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता है। सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष किसी प्रकार का अवचार—चाहे उसके दोषी संसद के सदस्य हों या साधारण नागरिक, जो दर्शक दीर्घा में जाने दिये गये हों या साक्षी के रूप में समिति की बैठक में आये

हों—सभा की अवमानना माना जाएगा। ऐसे अवचार को सभा के समक्ष अव्यवस्थापूर्ण, मानहानिकारक, अनादरपूर्ण या अवज्ञाकारी व्यवहार माना जाएगा।

सभा या उसकी समितियों के समक्ष अजनबियों और साक्षियों द्वारा अवचार के कुछ विशिष्ट मामले इस प्रकार हैं, जिन्हें सभा की अवमानना समझा गया है:

सभा या उसकी समितियों की कार्यवाही में हस्तक्षेप करना या बाधा डालना;

सभा के सदस्य होने का दावा करना और शपथ ले लेना[224];

सभा की अनुमति प्राप्त किये बिना, सभा या उसकी समिति की बैठक के दौरान, सभा के परिसर में कोई सिविल या दांडिक आदेशिका तामील करना अथवा निष्पादित करना;

किसी समिति के समक्ष किसी साक्षी द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से इन्कार किया जाना[225];

किसी साक्षी द्वारा किसी समिति के प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार या दस्तावेज, जो उसके पास हों, पेश करने से इन्कार किया जाना;

किसी समिति के समक्ष टालमटोल करना या झूठा साक्ष्य देना[226] या जानबूझकर सच्चाई छिपाना या समिति को गुमराह करते रहना; और

समिति के साथ खिलवाड़ करना[227] उसके प्रश्नों के अपमानजनक उत्तर देना या नशे में धुत होकर समिति के समक्ष आना।

सभा या उसकी समितियों के आदेशों की अवज्ञा

सभा के आदेशों की अवज्ञा, चाहे वे आदेश सभी के लिये हों या उनमें किसी व्यक्ति विशेष को कोई कार्य विशेष करने या न करने के लिये कहा गया हो, सभा की अवमानना है। सभा की किसी समिति के आदेशों की अवज्ञा को सभा की अवमानना माना जाता है बशर्ते कि वह आदेश समिति के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता हो। सभा अथवा उसकी किसी समिति के आदेशों के निष्पादन को रोकना, उसमें विलंब करना, उसमें बाधा पहुंचाना अथवा

---

224. *बी.के. मजूमदार का मामला, लो.स.वा.वि.,* 15.7.1957 और 12.8.1957 ।

225. *श्रीमती इंदिरा गांधी का मामला*—प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1979, खंड XXIV, 2, पृ. 33–34 ।

226. *एस.सी. मुखर्जी का मामला*–प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1971, खंड XVI, पृ. 1–8; *राजेश कुमार मांझी का मामला*–2 आर (14वीं लोक सभा) सदस्य (लोक सभा) के अवचार की जांच करने हेतु समिति; *बाबूभाई के कटारा का मामला*–3 आर (14वीं लोक सभा) लोक सभा सदस्य के अवचार की जांच करने हेतु समिति ।

227. *आंध्र प्रदेश एल.सी. डिबेट्स,* 7.2.1975 ।

हस्तक्षेप करना भी सभा की अवमानना है। इस प्रकार की अवमानना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

> किसी साक्षी अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, जिसे सभा या उसकी समिति ने अपने सामने पेश होने के लिये कहा हो, उस आदेश को मानने से इन्कार किया जाना या उसकी अवहेलना किया जाना;
>
> जब सभा से बाहर जाने के लिये कहा जाये तो सभा से बाहर जाना या जाने से इन्कार करना;
>
> जब अध्यक्ष द्वारा सभा की बैठक के दौरान अजनबियों से सभा से बाहर जाने के लिये कहा जाये और कोई अजनबी बाहर न जाये तो उस व्यक्ति को सभा के परिसर से हटाया जा सकता है या अभिरक्षा में लिया जा सकता है।[228];
>
> सभा की गुप्त बैठक में किसी मामले में हुई कार्यवाही या किये गये विनिश्चयों का प्रकट किया जाना[229];
>
> समिति के समक्ष कागज-पत्र या अन्य दस्तावेज प्रस्तुत करने के आदेश की अवज्ञा किया जाना;
>
> सभा या उसकी किसी समिति में पेश होने के समन तामील किये जाने से बचने के लिए फरार हो जाना ;
>
> किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति से कोई पत्र जो समिति के समक्ष पेश होना है, प्राप्त करने के लिए उसे पैसा या लाभदायक स्थिति देने का प्रस्ताव करना; और
>
> किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति से ऐसा पत्र प्राप्त करने हेतु मनाने अथवा उत्प्रेरित करने का प्रयास करना जो पत्र उस व्यक्ति के लिए किसी समिति के समक्ष प्रस्तुत करना अपेक्षित हो।

सभा अथवा उसकी समितियों को मिथ्या, जाली अथवा नकली दस्तावेज प्रस्तुत करना

संसद की किसी भी सभा अथवा उसकी किसी समिति को धोखा देने की दृष्टि से उसे मिथ्या, जाली अथवा नकली दस्तावेज प्रस्तुत करना सभा के विशेषाधिकार का हनन और उसकी अवमानना है। अध्यक्ष मावलंकर ने *सिन्हा मामले*[230] में सभा के समक्ष मिथ्या अथवा जाली दस्तावेज प्रस्तुत करने से रोकने की अनिवार्यता पर बल देते हुए लोक सभा में यह कहा था:

> .... प्रथमत: यह आवश्यक है कि इस बात की जांच की जाए कि डॉ. सिन्हा द्वारा सभा पटल पर रखे गये दस्तावेज असली हैं अथवा नहीं; ऐसी जांच इसलिए आवश्यक है कि सभा के समक्ष ऐसे दस्तावेज, जो असली नहीं हैं अथवा जाली हैं, प्रस्तुत करने पर रोक लग सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई भी सदस्य ऐसे दस्तावेजों, जो असली नहीं हैं और अतंत: मिथ्या अथवा जाली पाये जाते हैं, को निर्दिष्ट करके अथवा सभा पटल पर रखकर सदन के किसी वर्ग को जानबूझकर या अनजाने में गुमराह न कर सके।

---

228. नियम 387 क ।

229. नियम 252 ।

230. *देखिए सिन्हा मामला* (1952) के बारे में विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन: *एच.पी.डिबेट्स* (II), 23.6.1952, कॉ. 2334 ।

सभा अथवा उसकी समितियों को प्रस्तुत दस्तावेजों में हेरफेर करना

महासचिव[231] की अभिरक्षा से कोई दस्तावेज निकालना अथवा सभा अथवा उसकी समितियों[232] को प्रस्तुत दस्तावेजों में हेर-फेर करना सदन की अवमानना है।

सभा, उसकी समितियों अथवा सदस्यों पर आक्षेप करने वाले भाषण अथवा लेख

सभा अथवा उसकी समितियों के स्वरूप या कार्यवाही अथवा सभा के किसी सदस्य के बारे में संसद सदस्य के रूप में उसके चरित्र अथवा आचरण पर आक्षेप करने वाला कोई भाषण देना अथवा अपमानजनक लेख मुद्रित अथवा प्रकाशित करना सभा के विशेषाधिकार का हनन और सभा की अवमानना है।[233]

सभा के निर्णय के विरुद्ध किसी बाहरी व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करना सभा के निर्णय पर आक्षेप करने के बराबर है और परिमाणतः यह सभा की अवमानना है। यदि कोई सदस्य सभा के निर्णय से संतुष्ट नहीं है तो उसके लिए समुचित उपाय यह है कि वह सभा के निर्णय का विखंडन करने हेतु सभा में प्रस्ताव पेश करे।[234]

सभा अथवा उसकी समितियों अथवा सदस्यों पर आक्षेप करने वाले भाषण और लेख के दोषी व्यक्तियों को सभा द्वारा अवमानना के रूप में इस सिद्धांत के आधार पर दण्डित किया जाता है कि ऐसे कृत्य "सदनों की सम्यक् प्रतिष्ठा को कम करके उनके कृत्यों के निष्पादन में बाधा डालने वाले" होते हैं। सभा केवल उन तथ्यों से उत्पन्न अवमानना के लिए ही दण्डित नहीं कर सकती है जिनका संज्ञान सामान्य न्यायालय करते हैं, अपितु ऐसे तथ्यों के लिए भी दण्डित कर सकती है जिनका वे संज्ञान नहीं कर सकते हैं। अतः किसी संसद

---

231. नियम 383 ।

232. नियम 269 (3)।

233. (i) सभा पर लांछन लगाने के लिए, *देखिए एम.ओ. मथाई मामला,* नौवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा); *मुलगांवकर मामला, चौथा प्रतिवेदन* (*विशेषाधिकार समिति*-चौथी लोक सभा) *प्रतिपक्ष-मामला, प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* 1976, खंड XXI, 2, पृ. 34-35; *जगजीत सिंह मामला* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1976, खंड XXI, 2, पृ. 38-39; *थानीनीराम मामला, केरल एल.ए. डिबेट्स,* 19.8.1971; *हरद्वारी लाल मामला,* हरियाणा विधान सभा डिबेट्स, 1.3.1973 और (ii) संसदीय समिति पर लांछन लगाने के लिए, *देखिए सैली मामला,* पांचवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा); *फाइनेंशियल एक्सप्रेस मामला,* लो.स.वा.वि. 11.4.1969, पृ. 126-127 और एल.एस. डिबेट्स, 16.4.1969, कॉ. 113-16, सातवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-चौथी लोक सभा); *दैनिक देशबंधु मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1976, खंड XXI, 2, पृ. 42; *पी.आर. नायक और एस.एस. खेड़ा मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1974, खंड XIX. 2, पृ. 33-35; और *जे.आर.डी. टाटा मामला,* पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-सातवीं लोक सभा)।

234. *बालू का मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1957, (1-1), पृ. 19 ।

सदस्य के विषय में लिखा गया अपमानजनक लेख किसी सिविल अथवा दण्ड विधि के अधीन अपमानजनक लेख न होते हुए भी विशेषाधिकार हनन करने की कोटि में आ सकता है।

तथापि, किसी संसद सदस्य के बारे में लिखा गया अपमानजनक लेख यदि उसके चरित्र अथवा सभा का सदस्य होने के नाते उसके आचरण से संबंधित है और "सभा के कार्य के वास्तविक निष्पादन से उत्पन्न मामलों पर आधारित" है तो वह विशेषाधिकार का हनन कहलाता है। इसलिए सभा के सदस्य की हैसियत से भिन्न हैसियत से सदस्यों पर किये गये आक्षेपों से, विशेषाधिकार का हनन अथवा सभा की अवमानना नहीं होती। इसी प्रकार सदस्यों पर अस्पष्ट आरोप लगाने वाले अथवा कड़े शब्दों में उनके संसदीय आचरण की आलोचना करने वाले भाषण अथवा लेख, जो विशेष रूप से लोक विवाद के चलते किया जाए और जिसमें कोई असद्भावपूर्वक अभ्यारोपण न किया गया हो, तो ऐसे भाषण अथवा लेख को सभा की अवमानना अथवा विशेषाधिकार का हनन नहीं समझा जाएगा।[235]

इसी प्रकार, सभा के किसी वर्ग विशेष अथवा सदन में किसी दल विशेष के बारे में कहे गये मानहानिकारक शब्द सभा की अवमानना नहीं समझे जाते हैं क्योंकि उससे समस्त सभा प्रभावित नहीं होती। अतः, लोक सभा में एक मामले में, जिसमें एक समाचार पत्र में एक राजनीतिक नेता द्वारा सार्वजनिक भाषण देते समय किया गया उसका यह कथन उद्धृत किया गया था कि विधानमंडलों में राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि "ऐसे लोग हैं जिन्हें प्रथम श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट गिरफ्तार कर सकता है" और वे "ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास जीवनयापन का कोई गरिमापूर्ण साधन नहीं है" अध्यक्ष अयंगर ने इसे विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं माना था।[236]

प्रत्येक मानहानिकारक वक्तव्य के मामले में चाहे वह तकनीकी दृष्टि से विशेषाधिकार का हनन अथवा सभा की अवमानना होता हो, उसे गंभीरता से लेना अथवा उस पर कार्यवाही करना सदन की गरिमा के अनुपयुक्त समझा जाता है।[237]

इसी प्रकार, सभा गैर जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा दिए गए मानहानिकारक वक्तव्यों को अनिवार्य रूप से गंभीरता से नहीं लेती। अपमानजनक लेखों के ऐसे मामलों पर निर्णय करने में, यह माना गया है कि इस बात पर विचार करते समय कि क्या किसी मामले में विशेषाधिकार पर बल दिया जाना चाहिए अथवा नहीं, अपमानजनक लेख/वक्तव्य के प्रकाशन के परिणाम और परिस्थिति और इस प्रकार का वक्तव्य देने वाले व्यक्ति की अवस्थिति को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

---

235. *पार्लियामेंटरी डिबेट्स* (1888) 1323, कॉ. 1312; और (1907) 171, कॉ. 876; *एच.सी. डिबेट्स,* (1919) 232, कॉ. 2153; आठवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा) पृ. 4–5; *लो.स.वा.वि.,* 4.9.1972 और 7.4.1977 ।

236. *लो.स.वा.वि.,* 20.4.1960, पृ. 5869–70 ।

237. नौवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)

विशेषाधिकार का हनन और सभा की अवमानना करने वाले भाषणों और लेखों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है–

सभा पर आक्षेप;[238]

सदस्यों के कर्त्तव्यों के निर्वहन में उन पर आक्षेप;[239]

सभा की किसी समिति में कार्य कर रहे सदस्यों पर आक्षेप;[240]

सभा की किसी समिति के सभापति के आचरण पर आक्षेप।[241]

---

238. *हिन्दुस्तान स्टेण्डर्ड का मामला,* सातवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा) एम.ओ. मथाई, नौवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा); *धीरेन्द्र भौमिक,* ग्यारहवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा) *प्रतिपक्ष मामला, लो.स.वा.वि.,* 3.9.1974; *हरद्वारी लाल मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1975, खंड XXI, पृ. 15–20; और *ज्योति बसु का मामला, पश्चिम बंगाल एल.ए. डिबेट्स,* 29.3.1972 ।

239. *डेली प्रताप मामला, लो.स.वा.वि.* (II), 30.8.1955, कॉ. 2233–35, *हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड मामला,* सातवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–चौथी लोक सभा) *महाराष्ट्र टाइम्स मामला,* छठा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–चौथी लोक सभा), *बसुमती मामला, लो.स.वा.वि.,* 21.3.1969, पृ. 145–46; 9.4.1969, पृ. 98; *आर्यावर्त मामला, लो.स.वा.वि.,* 24.4.1970, पृ. 128 और 14.5.1970, पृ. 146; *असम वीकली मामला, लो.स.वा.वि.,* 23.6.1971 और 5.8.1971; *नवभारत टाइम्स मामला, लो.स.वा.वि.,* 10.8.1971; *हिन्दुस्तान मामला, लो.स.वा.वि,* 19.4.1973; *जे.के. आर्गेनाइजेशन मामला, लो.स.वा.वि.,* 5.9.1973 पृ. 19 और 19.11.1973, पृ. 126–27; *आर्गेनाइजर मामला, लो.स.वा.वि.,* 23.4.1974, पृ. 120–22 और 10.5.1974, पृ. 123–24; *पैट्रियट मामला, लो.स.वा.वि.*, 13.3.1974, पृ. 126; *हिन्दुस्तान टाइम्स मामला, लो.स.वा.वि.,* 16.7.1977, पृ. 2–3, 18.7.1977, पृ. 142 और 3.3.1978; दूसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–छठी लोक सभा) *नेशनल हैराल्ड मामला, एल.एस. डिबेट्स,* 29.8. 1973, कॉ. 211; *इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया मामला, लो.स.वा.वि.,* 22.12.1978, पृ. 213–14; *आर. वेंकटरामन मामला, लो.स.वा.वि.,* 16.9.1981, पृ. 199–206; *केरल कौमुदी मामला, आर.एस. डिबेट्स,* 17.12.1970, कॉ. 123–26 और 5.4.1971; *टी.ए. पई और वालमुखी मामला, आर.एस. डिबेट्स,* 7.4.1972; *आर्गेनाइजर मामला, आन्ध्र प्रदेश विधान सभा डिबेट्स,* 16.12.1968 और 10.12.1968; *आल इंडिया रेडियो मामला, आन्ध्र प्रदेश विधान सभा डिबेट्स,* 1.7.1974, *जनसत्ता मामला,* गुजरात विधान सभा वाद–विवाद, 29.3.1969 *और आर्य संदेश मामला,* गुजरात विधान सभा वाद–विवाद, 28.11.1969 ।

240. *हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड का मामला,* सातवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा) *दैनिक देशबंधु मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1976 खंड XXI, 2, पृ. 42–44 ।

    साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स* (1857–58) 150, कॉ. 1022, 1063, 1198; *एच.सी. डिबेट्स* (1909), 7, कॉ. 235. (1921) 145, कॉ. 831; *बॉवल्स और हंट्समैन मामला,* एच.सी. 95 (1932–33)।

241. *फ्रांस मामला, पी. डिबेट्स* (1874) 219 कॉ. 752–55; *डेली हैराल्ड मामला, एच.सी.* 98 (1924), *एस.सी. डिबेट्स* (1924) 174, कॉ. 748; *जे.आर.डी. टाटा मामला,* पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–सातवीं लोक सभा) *लो.स.वा.वि.,* 2.2.1980 पृ. 1–2 और 19.8.1981 ।

न्यायालय में दिए गए बयान अथवा न्यायालय में दायर रिट याचिका में अथवा शपथपत्र में दिए गए बयान में विशेषाधिकार हनन अथवा सभा की अवमानना के लिए कार्यवाही से उन्मुक्त नहीं है।[242]

अध्यक्ष के कर्त्तव्यों के निर्वहन में उस पर आक्षेप

अध्यक्ष, लोक सभा का पद संवैधानिक पद है तथा हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में इसे प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। यद्यपि संविधान अथवा प्रक्रिया के नियमों के अधीन अध्यक्ष के लिए यह आवश्यक नहीं है कि इस पद के लिए निर्वाचित होने पर वह उस राजनीतिक दल से अपने संबंध समाप्त करे जिस दल से वह है, कि सभा का संचालन करते समय वह पूर्णत: निष्पक्ष तरीके से कार्य करता है। अत: निष्पक्षता अध्यक्ष के पद की अभिन्न विशेषता है। इसलिए सभा के अध्यक्ष के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में अध्यक्ष की निष्पक्षता पर आक्षेप विशेषाधिकार और सभा की अवमानना है।[243]

वाद-विवाद के गलत या विकृत वृत्तान्त का प्रकाशन

प्रत्येक सभा को अपने वाद-विवाद और कार्यवाही के प्रकाशन पर नियंत्रण और यदि आवश्यक हो तो उसके प्रकाशन का निषेध करने की शक्ति प्राप्त है।[244] सामान्यत: सभा की कार्यवाही की रिपोर्ट देने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता है। परन्तु जब वाद-विवाद की दुर्भावनापूर्वक रिपोर्टिंग की जाती है अर्थात् जब वाद-विवाद को जानबूझकर गलत ढंग से पेश किये जाने का प्रश्न उठता है तब अपराधी को सभा का विशेषाधिकार भंग करने और सभा की अवमानना करने के लिए दण्ड दिया जा सकता है।

सभा या उसकी समितियों के वाद-विवाद या कार्यवाही के झूठे या विकृत, आंशिक या हानिकारक वृत्तान्तों का प्रकाशन या विशिष्ट सदस्यों के भाषणों को जानबूझकर गलत ढंग से प्रस्तुत करना या उनके भाषणों को स्थान न देना वैसा ही अपराध है जैसा कि सभा, उसकी समितियों या सदस्यों के संबंध में अपमानजनक लेख का प्रकाशन करना और ऐसे प्रकाशन

---

242. *मधु लिमये मामला,* चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा) *पी.आर. नायक और एस.एस. खेर मामला,* पांचवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-पांचवीं लोक सभा)।

243. *पॉयनियर मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट खंड 2005, खंड 50, पृ. 3-5, *डॉ. एस.सी. कामण मामला,* लो.स.वा.वि., 23.5.2006, 3 आर. (सी.पी.आर. 14वीं लोक सभा) प्रिविलेजिस डाइजेस्ट खंड I, पृ. 2-4, *दि स्टेट्समैन मामला,* 4 आर. (सी.पी.आर. 14वीं लोक सभा) प्रिविलेजिस डाइजेस्ट खंड I, पृष्ठ 4-9, *14 फ्री प्रेस जर्नल एंड दि बिजनेस स्टेंडर्ड मामला,* 13 आर. (सी.पी.आर. चौदहवीं लोक सभा) प्रिविलेजिस डाइजेस्ट खंड 53, पृष्ठ 5-7 दाऊद मिया खान मामला का 17 आर. (सी.पी.आर. 14वीं लोक सभा) प्रिविलेजिस डाइजेस्ट खंड 53 पृ. 7-11 ।

244. *एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्रीकृष्ण सिन्हा (सर्चलाइट मामला),* ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 395 ।

के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को सभा के विशेषाधिकार भंग या अवमानना के लिये दण्ड दिया जा सकता है।[245]

> 27 मार्च, 1967 को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि दो सदस्यों से *हिन्दुस्तान टाइम्स* के विरुद्ध इस आधार पर विशेषाधिकार के एक प्रश्न की सूचना प्राप्त हुई है कि समाचारपत्र के 24 मार्च, 1967 के अंक में प्रकाशित एक समाचार में पिछले दिन की सभा की कार्यवाही को गलत ढंग से पेश किया गया है क्योंकि उस समाचारपत्र के विशेष संवाददाता ने एक सदस्य के नाम से जो बात छापी है उसमें सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से एक पर आक्षेप किया गया है। अध्यक्ष ने कहा कि इस मामले पर आगे कार्यवाही करने से पहले मैं प्रथा के अनुसार इस समाचारपत्र के सम्पादक से पूछूंगा कि उसे इस संबंध में क्या कहना है।[246]
>
> 29 मार्च, 1967 को अध्यक्ष ने हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक का पत्र सभा में पढ़कर सुनाया जिसमें क्षमा मांगी गयी थी और यह कहा गया था कि वह समाचार छापने में सचमुच गलती हुई है। सभा ने उस क्षमायाचना को स्वीकार कर लिया और निदेश दिया कि क्षमायाचना का पत्र और उस सदस्य द्वारा 23 मार्च, 1967 को सभा में दिया गया वास्तविक वक्तव्य समाचारपत्र के अगले अंक में मुखपृष्ठ पर प्रकाशित किया जाये।[247] समाचारपत्र ने ऐसा ही किया।

तथापि, सभा इस मामले को पहले संबंधित समाचारपत्र के सम्पादक को भेजने के बजाय इसे विशेषाधिकार समिति को सौंपने का निर्णय ले सकती है।[248]

अत: इस संबंध में सभा का विशेषाधिकार भंग तथा अवमानना का अभिप्राय यह होगा: (i) सभा की कार्यवाही को जानबूझकर गलत ढंग से पेश करना या कुछ सदस्यों के भाषणों को जानबूझकर गलत ढंग से पेश करना; और (ii) कुछ सदस्यों के भाषणों को जानबूझकर न छापना।

---

245. *कलिंग मामला, लो.स.वा.वि.,* 13.7.1967, कॉ. 5328-34, तीसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-चौथी लोक सभा); *आर्यावर्त मामला, लो.स.वा.वि.,* 26.8.1968, पृ. 232, 15.11.1968, पृ. 849; *हिन्दुस्तान टाइम्स मामला, लो.स.वा.वि.,* 28.7.1969, लोक सभा समाचार भाग-2, 2.8.1969, *आल इंडिया रेडियो मामला, लो.स.वा.वि.,* 19.12.1974, पृ. 115-19; 20.12.1974, पृ. 138-40; *टाइम्स आफ इंडिया मामला, लो.स.वा.वि,* 19.7.1978, पृ. 127-28; 21.7.1978, पृ. 147-48, 1.8.1978, पृ. 152-53; चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-छठी लोक सभा); *सतीश अग्रवाल मामला, लो.स.वा.वि.,* 17.3.1982, पृ. 218-20, पांचवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-सातवीं लोक सभा)।
246. *लो.स.वा.वि.,* 27.3.1967, पृ. 320-21, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 6.7.1967, 10.7.1967, 28.7.1969 और 28.4.1970, पृ. 111; 10.4.1972, पृ. 108-09; और 28.3. 1974, पृ. 119 ।
247. *पूर्वोक्त,* 29.3.1967, *इंडियन एक्सप्रेस मामले के लिए देखिए लो.स.वा.वि.,* 6.7.1967 और 10.7.1967 ।
248. *लो.स.वा.वि.,* 13.7.1967 ।

सही समाचार नहीं देने अथवा गलत ढंग से पेश करने के प्रत्येक मामले को बहुत गंभीरतापूर्वक लिया जाना सभा की गरिमा के अनुरूप नहीं है। अधिकांश मामलों में जब क्षमायाचना कर ली जाती है तो उन मामलों में आगे जांच नहीं की जाती बल्कि क्षमायाचना स्वीकार करते हुए और संबंधित सम्पादक को समाचारपत्र के अगले अंक में क्षमायाचना प्रकाशित करने का निर्देश देते हुए मामले को समाप्त कर दिया जाता है।[249]

कार्यवाही वृत्तान्त से निकाले गये अंशों का प्रकाशन

सभा के कार्यवाही वृत्तान्त से निकाले गये अंशों को प्रकाशित करना सभा के विशेषाधिकार का हनन तथा इसकी अवमानना है।[250] इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है:

> कानूनी रूप से अध्यक्ष द्वारा किसी सदस्य के भाषण के किसी अंश को निकालने के बारे में दिये गये आदेश का अभिप्राय यह होगा कि वह अंश बोला ही नहीं गया है। यद्यपि ऐसी परिस्थिति में पूरे भाषण की रिपोर्ट तथ्यत: सही हो सकती है, उसे कानूनी रूप से विकृत और अविश्वसनीय रिपोर्ट माना जाएगा और ऐसे भाषण के विकृत और अविश्वसनीय अंश का प्रकाशन अर्थात् सभा में अध्यक्ष द्वारा पारित आदेश का अनादर करते हुए निकाले गए अंश के प्रकाशन को प्रथम दृष्ट्या अहितकारक समाचार के प्रकाशन से उत्पन्न सभा का विशेषाधिकार भंग माना जाए।[251]

किसी समाचारपत्र में सभा की वह कार्यवाही जिसे अध्यक्ष ने कार्यवाही वृत्तान्त से निकाल दिया हो, छपी हो तो उसके सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक या संवाददाता बिना शर्त

---

249. *सामी सांज मामला,* विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन, गुजरात विधान सभा (22.7.1967 को सभा में प्रस्तुत) और *गुजरात विधान सभा डिबेट्स,* 1.3.1968; *आर्यावर्त मामला, लो.स.वा.वि,* 26.8.1968, पृ. 232 और 15.11.1968, पृ. 849; *इंडियन एक्सप्रेस मामला, लो.स.वा.वि.,* 7.8.1969, पृ.172–73 और 11.8.1969, पृ. 135–36; *जनयुगोम मामला,* तीसरा प्रतिवेदन, विशेषाधिकार समिति, केरल विधान सभा और *केरल एल.ए. डिबेट्स,* 11.8.1969; *आल इंडिया रेडियो मामला,* लो.स.वा.वि., 22.12.1969, पृ. 154–56; *समाचार भारती मामला, लो.स.वा.वि.,* 10.3.1970; *नार्दन इंडिया पत्रिका मामला, लो.स.वा.वि.,* 28.4.1970, पृ. 111 और 13.5.1970 पृ. 110; और *इंडियन नेशन मामला, लो.स.वा.वि.,* 1.9.1970, पृ. 154, *टाइम्स आफ इंडिया मामला, लो.स.वा.वि.,* 10.4.1972 और 21.4.1972; *इंडियन एक्सप्रेस मामला, लो.स.वा.वि.,* 3.5.1973, पृ. 85–89 और 16.5.1973; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि,* 8.8.1977, पृ. 1–2, 24.4.1978, 22.3.1978, 28.8.1978, पृ. 173–74; 4.5.1979, पृ. 203, 8.7.1980, पृ. 181–82; *अताई ओ साई मामला, आर. एस. डिबेट्स,* 1.8.1973, कॉ. 4514–29, *मदर लैंड मामला, रा.स.वा.वि.,* 27.3.1973 और 31.3.1973; साथ ही *देखिए रा.स.वा.वि.,* 23.8.1973, *आर.एस. डिबेट्स,* 10.5.1978, कॉ. 174–75, 24.7.1980, 18.3.1981, 29.4.1981, 18.8.1981, 19.2.1982; *नवजीवन मामला, उत्तर प्रदेश विधान सभा वाद-विवाद,* 31.7.1972 और 1.8.1972; *स्टेट्समैन मामला, रा.स.वा.वि,* 1.6.1972; *कन्हैया लाल मिश्र मामला, उत्तर प्रदेश विधान सभा वाद-विवाद,* 7.8.1974 ।
250. *देखिए* नियम 380 तथा 381 जो वाद-विवाद से शब्दों को निकालने के आदेश देने की अध्यक्ष की शक्ति के बारे में है।
251. *एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्रीकृष्ण सिन्हा,* ए.आई.आर. 1959, एससी 395 ।

क्षमायाचना कर सकते हैं और यदि सभा उस क्षमायाचना को स्वीकार कर ले तो सभा उस पर आगे कोई कार्यवाही नहीं करने के लिए सहमत हो सकती है।

सभा ऐसे समाचारपत्र के सम्पादक से कह सकती है कि वे समाचारपत्र के अगले संस्करण में भूल सुधार कर दे और अपनी क्षमायाचना भी छाप दे और ऐसा करने के बाद वह अध्यक्ष के माध्यम से सभा को इस बात की सूचना दे सकता है।[252]

गोपनीय सत्रों की कार्यवाही का प्रकाशन

किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी रीति से सभा की गोपनीय बैठक की कार्यवाही या उसमें लिए गए विनिश्चयों का प्रकटन जब तक कि सभा गोपनीय रखने पर लगे प्रतिबंध को हटा नहीं लेती है, सभा का घोर विशेषाधिकार हनन माना जाता है।[253] इसका कारण यह है कि संबंधित व्यक्ति ऐसी बात प्रकट करता है जिसको प्रकट न करने के लिए सभा ने आदेश दिया है। ऐसे मामलों में यह प्रश्न असंगत है कि कार्यवाही या विवरण सही अथवा गलत।

संसदीय समिति की कार्यवाही, साक्ष्य या प्रतिवेदन का समय से पहले प्रकाशन

यदि किसी संसदीय समिति की कार्यवाही, साक्ष्य या दस्तावेजों के सभा में पेश किये जाने से पहले उसकी कार्यवाही या उसके सामने दिए गए साक्ष्य या उसके सामने पेश किए गए दस्तावेजों के किसी अंश का प्रकाशन कर दिया जाए तो वह सभा का विशेषाधिकार हनन तथा अवमानना है।[254]

इस प्रकार लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने *सुन्दरैया मामले* में स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की:

> संसद के विशेषाधिकारों संबंधी विधि तथा प्रथा के अनुसार जब संसद की कोई समिति दिन-प्रतिदिन अपनी बैठकें कर रही हो तो उसकी कार्यवाही प्रकाशित नहीं की जानी चाहिए और न ही उसके सामने पेश किए गए दस्तावेजों या उसके द्वारा किए गए विनिश्चयों को प्रेस को बताया जाना चाहिए... यह अत्यंत वांछनीय है कि जो विषय

---

252. *फ्री प्रेस जरनल (बम्बई) मामला; एल.एस. डिबेट्स,* 21.12.1959, कॉ. 6264-66; *लो.स.वा.वि.,* 9.2.1960, पृ. 64; समाचार भाग-2, 23.12.1959, पैरा 3227; *हिन्दुस्तान टाइम्स मामला, लो.स.वा.वि.,* 10.11.1966, पृ. 1075; 22.11.1966, पृ. 1943-44; *इंडियन एक्सप्रेस मामला, लो.स.वा.वि.,* 25.3.1982, 31.3.1982, *इंडियन एक्सप्रेस मामला, लो.स.वा.वि.,* 24.7.1985 ।

253. नियम 251 तथा 252 ।

254. *हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड मामला,* सातवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) *एल.ए. डिबेट्स,* 6.3.1940, पृ. 979 तथा 12.3.1940, पृ. 1183-84; *पी. डिबेट्स* (II), 27.3.1950, पृ. 2187; *सुन्दरैया मामला* (विशेषाधिकार समिति-पहली लोक सभा), साथ ही *देखिए* सातवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) *लो.स.वा.वि.,* 2.8.1966, पृ. 106-11, 5.5.1966, पृ. 144-45, तथा 12.8.1966, पृ. 100-101; नियम तथा निर्देश 55 । *देखिए* 23वां प्रतिवेदन (14वीं लोक सभा)।

संसदीय समिति के विचाराधीन हो या जिसके संबंध में समिति जांच कर रही हो, उसके संबंध में समुचित छान-बीन किए बिना कोई भी व्यक्ति, चाहे वह संसद सदस्य हो या पत्रकार, कोई वक्तव्य या टिप्पणी न करे और न ही उसे प्रकाशित करे।[255]

इसी प्रकार किसी संसदीय समिति से प्रतिवेदन के सभा में पेश किए जाने से पहले प्रतिवेदन के मसौदे या स्वीकृत प्रतिवेदन का प्रकाशन सभा का विशेषाधिकार हनन माना जाता है।

संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर आक्षेप

कोई भी व्यक्ति किसी संसदीय समिति की सिफारिशों पर कोई आक्षेप नहीं कर सकता। समितियां भी उसी सम्मान की अधिकारी हैं जिसकी संसद। अतः यदि कोई व्यक्ति समिति के विनिश्चयों या उसके आचरण पर आक्षेप करता है तो वह सभा का विशेषाधिकार हनन है।[256]

कोई भी व्यक्ति, जो किसी संसदीय समिति की सिफारिश से प्रभावित हुआ हो, समिति को अभ्यावेदन दे सकता है और वे तथ्य बता सकता है जो उसके विचार में ठीक हैं लेकिन वह उन तथ्यों को बाहर प्रकट नहीं कर सकता। उसी प्रकार यदि सरकार समिति के किसी निष्कर्ष या सिफारिश के संबंध में कुछ कहना चाहे या उस पर अपनी राय व्यक्त करना चाहे, तो उसे यह अधिकार है कि वह अपनी बात सीधे समिति को या अध्यक्ष को बताए। अध्यक्ष सरकार की बात समिति के सभापति को भेज सकता है जिससे कि समिति उस प्रश्न पर फिर से विचार कर सके। यदि फिर भी सरकार तथा समिति के बीच मतभेद बना रहे तो समिति द्वारा अगले प्रतिवेदन में दिए दोनों विवरण सभा पटल पर रख दिए जाते हैं।[257]

याचिकाओं को प्रस्तुत करने से पहले उनका परिचालन

जो दस्तावेज संसद में रखे जाने वाली याचिका के समान हो, उसके सभा में पेश किए जाने से पहले उसका परिचालन सभा का विशेषाधिकार हनन माना जा सकता है।

---

255. *सुन्दरैया मामला* (विशेषाधिकार समिति-पहली लोक सभा), पृ. 2-3 ।

256. *भारत सेवक समाज मामला, लो.स.वा.वि.*, 19.4.1965, पृ. 3807-12; *खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग मामला, लो.स.वा.वि.*, 16.8.1965, पृ. 70-71. *फाइनेंशियल एक्सप्रेस मामला, लो.स.वा.वि.*, 11.4.1969, पृ. 126-27 और 16.4.1969, पृ. 83-85; सातवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-चौथी लोक सभा), *पाइपलाइन जांच आयोग मामला, एल.एस. डिबेट्स*, 7.4.1972, कॉ. 168-82, चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-पांचवीं लोक सभा); *सी.आर. दास गुप्ता मामला, लो.स.वा.वि.*, 30.4.1974, पृ. 134-41 और 2.8.1974, पृ. 94; *जेआरडी टाटा मामला, लो.स.वा.वि.*, 2.2.1980, पृ. 1-2, पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-सातवीं लोक सभा) *लो.स.वा.वि.*, 19.8.1981 ।

257. *लो.स.वा.वि.*, 19.4.1965, पृ. 3807-12; 16.8.1965; पृ. 68-71; *पी.आर. नायक तथा एस.एस. खेरा मामला*, प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, 1974; खंड XIX, 2, पृ. 33-35; *दैनिक देशबंधु मामला, मध्य प्रदेश विधान सभा वाद-विवाद*, 4.3.1974 तथा 14.8.1974, *सी.आर. दास गुप्ता मामला*, प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1975, खंड XX, 1, पृ. 1-2; *दीपिका मामला*, प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1975 *खंड* XX, 1, पृ. 20-22 ।

2 अगस्त, 1966 को सभा में विशेषाधिकार हनन का मामला अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर उठाया गया था कि एक व्यक्ति ने एक पुस्तिका, जो लोक सभा में रखे जाने वाली याचिका के समान थी, को सभा में प्रस्तुत किए जाने से पहले मुद्रित कराया और परिचालित किया था। यह भी कहा गया कि उस पुस्तिका पर उसके मुद्रक का नाम नहीं था।[258] यह मामला विशेषाधिकार समिति के विचार तथा रिपोर्ट के लिए उसे 23 अगस्त, 1966 को सौंप दिया गया।

समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि इस आरोप के समर्थन में कोई भी साक्ष्य नहीं है कि सम्बद्ध व्यक्ति ने अभिप्रेत याचिका प्रकाशित करके बांटी है, सिवाए उन तीन सदस्यों के जिनसे उसने उस अभिप्रेत याचिका को संसद में पेश करने के लिए सम्पर्क किया था। यद्यपि इस मामले की परिस्थितियां बड़ी संदिग्ध हैं, विशेषकर इस बात को देखते हुए कि उक्त पुस्तिका में उस मुद्रणालय का नाम नहीं छापा गया है, जहां यह छपी है, समिति ने यह सिफारिश की कि इस पुस्तिका के बांटे जाने के प्रमाण के अभाव में—और यह देखते हुए कि सम्बद्ध व्यक्ति ने क्षमा मांग ली है—इस मामले में आगे कोई कार्यवाही न की जाए।[259]

सभा के कार्य से संबंधित अन्य विभिन्न मामलों का समय से पहले प्रकाशन

संसदीय प्रथा, रीति और परिपाटी के अनुसार प्रश्नों, स्थगन प्रस्तावों, संकल्पों की सूचनाओं और प्रश्नों के उत्तरों तथा सभा के कार्य संबंधित अन्य ऐसे ही विषयों का समय से पहले समाचारपत्रों में प्रचार, चाहे वह किसी भी कारण से हो अशोभनीय है। हालांकि तकनीकी रूप से इसे सभा का विशेषाधिकार हनन और अवमानना नहीं माना जाता। यदि ऐसा होता है तो अध्यक्ष जो व्यक्ति इसके लिए उत्तरदायी है उसके प्रति अप्रसन्नता व्यक्त करता है। ऐसी अनुचित बातों और परिपाटियों के भंग होने के निम्नलिखित उदाहरण हैं:

प्रश्नों का उन्हें अध्यक्ष द्वारा गृहीत किए जाने से पहले और उनके उत्तर सभा में दिए जाने या सभा पटल पर रखे जाने से पहले, प्रकाशन।[260]

प्रश्नों के उत्तरों का, उनको सभा में दिए जाने या पटल पर रखे जाने से पहले प्रकाशन।[261]

स्थगन प्रस्तावों अथवा संकल्पों की सूचनाओं का, अध्यक्ष द्वारा गृहीत किए जाने या सभा में उनका उल्लेख होने से पहले प्रकाशन।[262]

---

258. *लो.स.वा.वि.,* 2.8.1966, पृ. 109-11 ।

259. बारहवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा)।

260. नियम 334क; *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 6.2.1948, पृ. 336; और 10.2.1949, पृ. 511; *लो.स.वा.वि.,* 10.9.1963, पृ. 2645-47 ।

261. नियम 53; साथ ही *देखिए प्रेस सूचना ब्यूरो का मामला* जिसमें ब्यूरो की क्षमायाचना को सभा ने स्वीकार कर लिया था—*लो.स.वा.वि.,* 26.7.1957, पृ. 2367 और 27.7.1957, पृ. 2475-76 ।

262. *एल.ए. डिबेट्स,* 27.3.1933, पृ. 2655; *सी.ए.* (लेजि.) *डिबेट्स,* 6.2.1948, पृ. 336; *एच.पी. डिबेट्स,* 10.12.1952, कॉ. 1973-81 और 12.12.1952, कॉ. 2123 ।

अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव की सूचना का समय से पहले प्रचार।[263]

अध्यक्ष को उसके पद से हटाए जाने संबंधी संकल्प का समय से पहले प्रचार।[264]

सरकार द्वारा सभा के किसी संकल्प या सभा में दिए गए वचन के अनुसार नियुक्त की गयी समिति या आयोग की रिपोर्ट का प्रकाशन।[265]

जब सभा सत्र में हो, उस समय मन्त्रियों द्वारा सभा के बाहर की गयी नीति संबंधी महत्वपूर्ण घोषणाएं।[266]

सदस्यों के कर्त्तव्य निर्वहन में बाधा डालना

सदस्यों का बन्दीकरण

संसद सदस्यों को अपना संसदीय कार्य करने से "छोटी-मोटी बाधा डालकर नहीं रोका जाना चाहिए"। जैसा कि पहले कहा गया है कि यदि किसी संसद सदस्य को, संसद के सत्र के दौरान या उसके प्रारंभ से चालीस दिन पहले या समाप्त होने के चालीस दिन बाद, किसी आपराधिक आरोप या निवारक निरोध अधिनियम अथवा लोक सुरक्षा के हित में भारत रक्षा अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तारी को छोड़कर किसी अन्य प्रकार से गिरफ्तार किया जाए या करवाया जाए तो यह सभा का विशेषाधिकार हनन तथा उसकी अवमानना है।

सदस्यों का उत्पीड़न

यदि किसी सदस्य को, अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए, अर्थात् जब वह सभा में उपस्थित हो या उपस्थित होने के लिए आ रहा हो या सभा से जा रहा हो, रोका जाए या उत्पीड़न किया जाए, तो यह सभा का विशेषाधिकार हनन तथा उसकी अवमानना है। इस प्रकार सभा में जाते हुए या वहां से आते हुए सदस्यों का अपमान किया जाना सदा घोर विशेषाधिकार हनन माना गया है।[267] इसी प्रकार संसद में किसी सदस्य के आचरण के कारण उसका उत्पीड़न विशेषाधिकार हनन माना जाता है।

---

263. *लो.स.वा.वि.,* 14.3.1975, पृ. 124 ।

264. *पूर्वोक्त,* 15.4.1987 ।

265. *पी. डिबेट्स* (II), 5.4.1951, कॉ. 5981-82; *लो.स.वा.वि.* (II), 5.9.1955, कॉ. 2717-19; *असम ट्रिब्यून मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1974, खंड XIX, पृ. 16 ।

266. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 1.9.1953, कॉ. 1865-66; *लो.स.वा.वि.,* 1.5.1959, पृ. 6893-94; *एल.एस. डिबेट्स,* 26.11.1959, कॉ. 1919; 4.12.1959, कॉ. 3415; 17.12.1959, कॉ. 5638; *लो.स.वा.वि.,* 18.3.1960, पृ. 3214; 22.12.1960, पृ. 3435-36; 27.8.1963, पृ. 1454-57; 18.12.1963, पृ. 2801-02; 19.12.1963, पृ. 2957-58; 2.5.1973, पृ. 118; 6.4.1977, पृ. 58; 30.11.1977, पृ. 138-39; 7.12.1977, पृ. 125-26; 4.3.1974 पृ. 126-28; 26.3.1980, 19.6.1980, पृ. 144; *एल.एस. डिबेट्स,* 26.6.1980, कॉ. 258-59; 2.4.1984, 16.8.1985; *आर.एस. डिबेट्स,* 10.8.1970, 18.8.1970, कॉ. 255-56; 19.8.1970, कॉ. 170; 4.3.1974, कॉ. 77-95; 19.6.1980 और 19.8.1985 ।

267. *पटवान यूनियन मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1974, खंड XIX, 2, पृ. 46-47 ।

सदस्यों का उत्पीड़न करने पर सदस्यों तथा अन्य लोगों को दण्ड दिए जाने के उदाहरण निम्नलिखित हैं:–

सभा के सत्र या समिति की बैठक में शामिल होने के लिए आते हुए अथवा जाते हुए किसी सदस्य का उत्पीड़न और उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाना;[268]

सभा के परिसर में सदस्यों पर आक्रमण;

सभा के परिसर में सदस्यों के लिए अपमानजनक शब्द या गाली का प्रयोग;

सभा या उसकी किसी समिति में सदस्यों के व्यवहार के आधार पर उन्हें लड़ने के लिए ललकारना;

सदस्यों को संसद में उनके आचरण के सन्दर्भ में अपमानजनक पत्र भेजना;

किसी सदस्य को संसद में उसके आचरण के आधार पर आर्थिक क्षति पहुँचाने की धमकी;

सभा के परिसर में सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करने में उसे किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा डराना और बाधित करना।[269]

सदस्य को हमले अथवा उत्पीड़न के विरुद्ध विशेषाधिकार केवल तभी प्राप्त होगा जब संसद सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते समय उसे बाधित किया जाये अथवा किसी प्रकार उत्पीड़ित किया जाये। ऐसे मामलों में, जहां सदस्यों पर उस समय हमला किया गया हो, जब वे किसी संसदीय कर्त्तव्य का निर्वहन नहीं कर रहे थे, यह अभिनिर्धारित किया गया कि कोई विशेषाधिकार हनन अथवा सभा की अवमानना नहीं की गयी है।[270]

सदस्यों के संसदीय आचरण पर अनुचित साधनों से प्रभाव डालने के प्रयास

रिश्वत

सदस्यों के संसदीय आचरण पर अनुचित ढंग से प्रभाव डालने का कोई प्रयास विशेषाधिकार हनन है। अत: किसी सदस्य को रिश्वत देना या सदस्य के नाते उसके आचरण पर प्रभाव डालने के लिए कोई धन देना, अथवा किसी विधेयक या संकल्प या किसी ऐसे विषय या बात के समर्थन या विरोध के लिए, जो सभा या उसकी किसी समिति के सामने

---

268. *कृष्णन मनोहरन मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1975, खंड XX, 2, पृ. 136–37; *लालजी भाई मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1976, खंड XXI, 1, पृ. 1–2, *ए.के. साहा मामला,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1976, खंड XXI, 2, पृ. 28–31 ।

269. *राजस्थान विधान सभा डिबेट्स,* 28.2.1969 और विशेषाधिकार समिति का ग्यारहवां प्रतिवेदन 26.8.1969 ।

270. *डॉ. सरदीश राय और बी.एस. भौरा के मामले, लो.स.वा.वि.,* 17.11.1971; *समर गुहा मामला, लो.स.वा.वि.,* 19.11.1973; *राम हिदाऊ मामला, लो.स.वा.वि.,* 1.3.1974 और 16.3.1974, *निरेन घोष मामला, रा.स.वा.वि.,* 19.2.1974, 14.5.1974 और 14.5.1975 तथा *पंजाब विधान सभा के सदस्यों पर हमले के मामले,* प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1976, खंड XXI, 1, पृ. 14 ।

विचार के लिए आने या रखी जाने वाली हो, कोई शुल्क या इनाम देना विशेषाधिकार हनन माना गया है। इसके अतिरिक्त सभा के किसी सदस्य या अधिकारी को किसी विधेयक, संकल्प अथवा सभा या उसकी समिति के सामने आने या रखी जाने वाली किसी बात या विषय का मसौदा तैयार करने, सलाह देने या उसका पुनरीक्षण करने के लिए कोई शुल्क या इनाम देना भी सभा की अवमानना हो सकती है। यहां इस बात पर बल देना उचित होगा कि यह अपराध, रिश्वत देने की पेशकश में ही निहित है और इसे सदा विशेषाधिकार हनन माना गया है, बेशक धन चाहे वास्तव में न दिया गया हो। इसके अतिरिक्त, किसी सदस्य को धन देने की कोई भी पेशकश आपत्तिजनक है, चाहे वह किसी ऐसे संघ के लिए हो जिससे वह सदस्य सम्बद्ध हो या किसी धर्मार्थ प्रयोजन के लिए हो; तथा यह शर्त जुड़ी हो कि सदस्य उनके मामले की पैरवी करेगा या उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न करा देगा।[271]

किसी सदस्य को किसी मंत्री के साथ कोई प्रश्न उठाने के लिए तैयार करने हेतु यदि कोई धन या अन्य लाभ देने की पेशकश की जाये, तो वह भी विशेषाधिकार हनन होगा क्योंकि सदस्य के सामने उस प्रकार के विषय इसी कारण रखे जाते हैं कि उसे सभा में प्रश्न पूछने और दूसरे तरीकों से किसी मामले को उठाने की शक्ति प्राप्त है।

तथापि, सभा के कार्य से भिन्न किसी कार्य के संबंध में रिश्वत देने की पेशकश करना विशेषाधिकार हनन अथवा सभा की अवमानना नहीं है। उदाहरण के तौर पर आयात अनुज्ञापत्र के मामले में यह आरोप लगाया था कि लोक सभा के किसी सदस्य ने कतिपय आवेदकों का हित साधने के लिए रिश्वत ली थी तथा कई सदस्यों के जाली हस्ताक्षर किये थे। इस संबंध में विशेषाधिकार का प्रश्न नामंजूर किया गया था क्योंकि ऐसा माना गया कि सदस्य का आचरण अनुचित होते हुए भी सभा के कार्य से संबंधित नहीं था। किन्तु, साथ ही साथ, यह अभिनिर्धारित किया गया कि रिश्वत लेने और हस्ताक्षरों की कूटरचना करने के आरोप काफी गंभीर हैं तथा यह कृत्य संसद सदस्य के लिए अशोभनीय है, अत: उसे सभा की गरिमा को ठेस पहुंचाने का दोषी ठहराया जा सकता है।[272]

सदस्यों को डराना-धमकाना

किसी सदस्य को तर्क की बजाय किसी अन्य ढंग से प्रभावित करने का प्रयास, जिसका उद्देश्य उसे अपने कर्त्तव्य निर्वहन से रोकना हो, विशेषाधिकार हनन है। अत: सदस्यों को उनके संसदीय आचरण में प्रभावित करने के लिए धमकी देकर डराने का प्रयास विशेषाधिकार हनन है।

---

271. *राजस्थान विधान सभा डिबेट्स,* 22.8.1969 और 26.8.1969 (पंचायत प्रधान मामला)।

272. *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1974, पृ. 142; और प्रिविलेजिस डाइजेस्ट 1975, खंड XX, पृ. 8-11, साथ ही *देखिए* राज्य सभा चुनाव के संबंध में विधान सभा सदस्यों को रिश्वत देने के कथित प्रयास का मामला—*उत्तर प्रदेश विधान सभा वाद-विवाद,* 27.3.1974; आयात अनुज्ञापत्र मामले के पूर्ण विश्लेषण के लिए *देखिए एस.एल. शकधर:* द इम्पोर्ट लाइसेंसिस केस: सम इम्पार्टेण्ट प्रिविलेज इश्यूज, *जे.पी.आई.* खंड XXI, सं. 3 ।

सरकार के अधिकारी, सदस्यों को सरकार की नीतियों और प्रशासनिक मामलों से अवगत कराने की दृष्टि से, उनसे मिल सकते हैं, सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं अथवा उन्हें लिख सकते हैं। किन्तु सदस्यों पर प्रभाव डालना, उन्हें बाधित करना, उनके काम में अड़चन डालना अथवा ऐसे साधनों का उपयोग करना जो सभा में कार्य करने की उनकी स्वतंत्रता को सीमित करते हों, आपत्तिजनक है और प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर इसे सभा की अवमानना माना जा सकता है।

यदि सदस्यों से पत्रकार, सम्पादक अथवा वकील के रूप में वृत्तिक कार्य के संबंध में संपर्क साधा जाता है, तो ऐसा करना संसद सदस्य के रूप में उनके कार्य को प्रभावित करना नहीं समझा जाएगा।[273]

> जबकि इस बात का कोई साक्ष्य नहीं था कि राज्य व्यापार निगम के तत्कालीन चेयरमैन ने धमकियों अथवा किसी अन्य अनुचित तरीके से संसद सदस्य के रूप में सदस्य के आचरण को प्रभावित करने का ऐसा प्रयास किया था, जो विशेषाधिकार हनन अथवा सभा की अवमानना होता तथापि, विशेषाधिकार समिति ने महसूस किया कि राज्य व्यापार निगम में कथित अनियमितताओं और संदिग्ध कदाचार के बारे में लेख लिखने अथवा संसद में भाषण देने से रोकने हेतु सदस्य को प्रभावित करने की दृष्टि से चेयरमैन द्वारा सदस्य तथा अन्य व्यक्ति से सम्पर्क साधने का प्रयास करना उचित नहीं था। जबकि समिति इस बात से संतुष्ट थी कि चेयरमैन ने किसी ऐसे अनुचित साधन का प्रयोग नहीं किया था, जो तकनीकी रूप से विशेषाधिकार हनन कहलाता, किन्तु समिति का यह मत था कि एक जिम्मेदारी के पद पर आसीन लोक सेवक के रूप में उसे अधिक विवेक से कार्य करना चाहिए था।[274]

सभा के अधिकारियों के कार्य में बाधा डालना

सभा में आने, वहां उपस्थित रहने और वहां से जाने के समय गिरफ्तारी तथा उत्पीड़न से छूट सभा के ऐसे अधिकारियों को भी प्राप्त है जिनकी उपस्थिति सभा की सेवा में वैयक्तिक रूप से अनिवार्य है। अत: ऐसे किसी व्यक्ति को, आपराधिक आरोप के आधार पर गिरफ्तार करने को छोड़कर, गिरफ्तार करना या करवाना सभा का विशेषाधिकार हनन तथा अवमानना है। इसी प्रकार, सभा के किसी अधिकारी या सभा द्वारा नियोजित किसी अन्य व्यक्ति या सभा के आदेशों का निष्पादन कराने वाले किसी व्यक्ति के कर्त्तव्य निर्वहन में बाधा डालना सभा की अवमानना है। इस प्रकार की अवमानना के उदाहरण निम्नलिखित हैं:

> सभा के किसी अधिकारी अथवा सभा के आदेशों का निष्पादन कराने वाले अथवा अपने कर्त्तव्य का निर्वहन कर रहे किसी अन्य व्यक्ति का अपमान करना या उसे गाली देना या उस पर हमला करना या उसका प्रतिरोध करना।[275]

---

273. *लो.स.वा.वि.,* 3.4.1968, पृ. 899-901 ।

274. *पटेल मामला* पांचवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—चौथी लोक सभा)।

275. *राज नारायण और उत्तर प्रदेश विधान सभा के अन्य सदस्यों का मामला* (1959) प्रिविलेजिस डाइजेस्ट।

सभा के अधिकारियों की सहायता के लिये बुलाये जाने पर सरकार के सिविल अधिकारियों का ऐसा करने से इन्कार करना

वर्ष 1977 में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठा कि क्या एक सिविल सेवा के अधिकारी को जो सभा में किसी प्रश्न के उत्तर के लिए सूचना संगृहीत कर रहा है, संसदीय विशेषाधिकारों द्वारा संरक्षण प्राप्त है और क्या मंत्री द्वारा उसे दिया गया कोई दंड सभा की अवमानना है। यह प्रश्न छठी लोक सभा की विशेषाधिकार संबंधी समिति के विचारार्थ आया, जिसे 18 नवम्बर, 1977 को सभा द्वारा अंगीकार एक प्रस्ताव के अनुसरण में समिति को सौंपा गया था जिसमें पूर्व प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के विरुद्ध उन कतिपय अधिकारियों को, जो सभा में उठाए गए एक प्रश्न के उत्तर के लिए सूचना संगृहीत कर रहे थे, बाधा पहुंचाने, धमकाने, परेशान करने तथा उनके विरुद्ध मिथ्या मामले गढ़ने के लिए विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया था।

समिति द्वारा भारत के महान्यायवादी का विचार पूछे जाने पर उनकी राय थी कि सभा में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर से संबंधित अपेक्षित जानकारी संगृहीत करना सम्बद्ध मंत्री की जिम्मेदारी है। मंत्री द्वारा नियोजित किसी एजेंसी को अथवा सरकारी कर्मचारियों अथवा उन व्यक्तियों को जिन्हें यह कार्य सौंपा गया है, लोक सभा के कर्मचारी अथवा अधिकारी नहीं माना जा सकता। इसलिए, जिन व्यक्तियों को परेशान किया गया, वे न तो सभा के अधिकारी और कर्मचारी थे और न ही उन्हें किसी भी सभा द्वारा नियोजित किया गया था तथा न ही उन्हें उसके आदेशों के निष्पादन की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। लोक सभा द्वारा ऐसा कोई आदेश नहीं दिया गया था; मंत्री ने स्वत: सामग्री की मांग की थी और इस कार्य को करने के लिए किसी भी सभा द्वारा कोई आदेश जारी नहीं किया गया था। तथापि, यह प्रश्न ज्यों का त्यों है कि क्या कतिपय व्यक्तियों के छापे मारने अथवा गिरफ्तारी करने संबंधी आदेशों से लोक सभा के कार्य-निष्पादन में कोई बाधा अथवा अड़चन पड़ी है।

विशेषाधिकार समिति ने 21 नवम्बर, 1978 को सभा में प्रस्तुत किए गए अपने तीसरे प्रतिवेदन में यह राय व्यक्त की थी कि यद्यपि तकनीकी दृष्टि से यह मंत्री की जिम्मेदारी है कि वह सभा को सूचना उपलब्ध कराये, तथापि जिन अधिकारियों से वह अपेक्षित सूचना का संग्रहण करता है, उन्हें किसी प्रकार से बाधित अथवा परेशान करे जिससे वे अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में हतोत्साहित होते हों अथवा ऐसी ही स्थिति में उनकी इच्छाशक्ति अथवा कार्यक्षमता का ह्रास होता हो, इससे संसद के कार्यकरण में अड़चन पैदा होगी।

"अत: ऐसे अधिकारियों को सभा की सेवा में समझा जाना चाहिए और उन्हें सभा के आदेशों के निष्पादन या उसके कृत्यों के निर्वहन हेतु व्यस्त किया गया समझा जाना चाहिए तथा संसद द्वारा मांगी गई ऐसी किसी सूचना या संग्रहण करने हेतु उनके विधिसम्मत कर्त्तव्यों में किसी प्रकार की बाधा अथवा अड़चन डाले जाने को सभा की अवमानना माना जा सकता है"। मोटे तौर पर "वे सभी व्यक्ति जो संसद के प्रयोजन और कृत्यों का निर्वहन करते हैं अथवा उन्हें आगे बढ़ाते हैं, वे अवमानना कि विधि के सीमित प्रयोजन के लिए संसद के अधिकारी समझे जाते हैं"।

छठी लोक सभा ने 19 दिसम्बर, 1978 को एक प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमें वह विशेषाधिकार समिति के तीसरे प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों और निष्कर्ष से सहमत हुई।

तथापि सातवीं लोक सभा ने 7 मई, 1981 को एक प्रस्ताव स्वीकार कर छठी लोक सभा द्वारा अंगीकृत उपर्युक्त प्रस्ताव को विखंडित[276] करते हुए यह विचार व्यक्त किया कि छठी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति के तीसरे प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट निष्कर्ष संसदीय नियमों, पूर्वोदाहरणों और परम्पराओं के पूर्णत: विरुद्ध थे तथा इससे संसद के अधिकारियों को अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए प्राप्त उन्मुक्ति का उन अपरिमित व्यक्तियों तक विस्तार हो गया था जो संसद से बिल्कुल असंबद्ध थे। सभा ने यह संकल्प किया कि समिति के निष्कर्ष और सभा का निर्णय संसदीय विशेषाधिकार संबंधी विधि के सुस्थापित सिद्धान्तों और संविधान में उल्लिखित सभी को प्राप्त आधारभूत सुरक्षोपायों से मेल नहीं खाते थे और इनसे उनका उल्लंघन होता था।

सभा के अधिकारियों का उत्पीड़न

इसके अतिरिक्त उन कृत्यों जिनमें सभा के अधिकारियों को अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन से प्रत्यक्षत: रोका जाता हो, कोई ऐसा आचरण भी जिससे अप्रत्यक्ष रूप से भविष्य में उन्हें उनके कर्त्तव्य निर्वहन में रुकावट पड़ती हो, सभा का विशेषाधिकार हनन तथा उनकी अवमानना माना जा सकता है। यदि सभा या उसकी समितियों के आदेशों के निष्पादन में लगे सभा के किसी अधिकारी का उत्पीड़न किया जाये या उसके द्वारा अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के दौरान किए गए किसी कार्य के लिए उसका उत्पीड़न किया जाये तो यह सभा का विशेषाधिकार हनन तथा उसकी अवमानना है। इसी प्रकार सभा के आदेशों या उसकी प्रथा के अनुसार किए गए कामों के लिए सभा के अधिकारियों के विरुद्ध न्यायालयों में मुकदमे करके उन्हें तंग करना भी विशेषाधिकार हनन है।

परन्तु आजकल प्रथा यह है कि जब सभा के किसी अधिकारी या कर्मचारी के विरुद्ध सभा के आदेशों के अनुपालन में या उसकी प्रथा के अनुसार किए गए कार्य के आधार पर किसी व्यक्ति द्वारा न्यायालय में कोई मुकदमा किया जाये तो सभा महान्यायवादी को अनुदेश देती है कि वह उस अधिकारी की ओर से न्यायालय में पेश हो और उसकी वकालत करे।[277]

साक्षियों को रोकना तथा उनका उत्पीड़न

सभा या उसकी समितियों के समक्ष पेश होने के लिए बुलाए गए साक्षी को गिरफ्तार करना सभा की अवमानना है। इसी प्रकार, किसी साक्षी का सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष उपस्थिति के समय या बाद में साक्षी के रूप में उसके पेश होने अथवा साक्ष्य देने के

276. *एल.एस. डिबेट्स,* 7.5.1981, कॉ. 440-41 ।

277. *ब्लिट्ज मामला, लो.स.वा.वि.,* 25.8.1961, पृ. 2540-43 ।

कारण यदि उत्पीड़न किया जाता है, तो यह सभा की अवमानना है।[278] इस प्रकार की अवमानना के उदाहरण निम्नलिखित हैं:–

सभा के परिसर में किसी साक्षी पर हमला;

सभा के परिसर में साक्षी के लिए धमकी, अपमान या गाली-गलौज़ भरी भाषा का प्रयोग;

किसी व्यक्ति द्वारा सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष दिए गए साक्ष्य के आधार पर उससे इसका स्पष्टीकरण देने को कहना या उसकी निन्दा करना;

समिति अथवा समितियों के समक्ष साक्ष्य देने पर या दिए गए साक्ष्य के आधार पर व्यक्तियों पर हमला करना; और

किसी व्यक्ति के विरुद्ध इस आधार पर कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ करना कि उसने सभा या उसकी किसी समिति की कार्यवाही के दौरान कोई साक्ष्य दिया है।

साक्षियों को तोड़ना

सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष दिए जाने वाले किसी साक्ष्य के संबंध में किसी साक्षी को तोड़ने या सभा अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष पेश होने या साक्ष्य देने से किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से रोकने या बाधा डालने का प्रयास करना भी विशेषाधिकार हनन तथा सभा की अवमानना है।

संसद सदस्यों को सूचना देने के परिणामों से, उनके निर्वाचकों और अन्य व्यक्तियों को कोई संरक्षण नहीं

उन साक्षियों से भिन्न, जिन्हें सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष दिए गए साक्ष्य के परिणामों से सभा द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता है, संसद सदस्यों के निर्वाचकों और उन व्यक्तियों को—देश के सामान्य कानून के अंतर्गत उपलब्ध सीमित विशेषाधिकार के अतिरिक्त कोई संरक्षण नहीं दिया जाता, जो संसद सदस्यों की अपनी व्यक्तिगत हैसियत में स्वेच्छा से कोई सूचना देते हैं।

मामले जो सभा का विशेषाधिकार हनन या अवमानना नहीं कहे जा सकते

जैसा कि पहले कहा गया है, सभा के कार्य से संबंधित विभिन्न मामलों का, समय से पहले प्रचार करना एक अनुचित कार्य है, लेकिन यह सभा का विशेषाधिकार हनन या अवमानना नहीं है।[279] कुछ अन्य कार्य भी हैं जो अनुचित हो सकते हैं, लेकिन तकनीकी तौर पर ये सभा के विशेषाधिकार हनन या उसकी अवमानना की परिभाषा में नहीं आते हैं, इस श्रेणी में आने वाले कुछ विशेष मामले आगे दिए गए हैं—

यदि कोई सदस्य या मंत्री सभा में कोई ऐसा वक्तव्य देता है जो किसी अन्य सदस्य के विचार में असत्य, अपूर्ण या गलत है तो वह विशेषाधिकार हनन नहीं है। यदि कोई गलत

---

278. *के. रवीन्द्रन का मामला, लो.स.वा.वि.,* 10.7.1980, पृ. 136-37 ।

279. नियम 334क ।

वक्तव्य दिया जाता है तो उस मामले का निपटारा करने के दूसरे उपाय हैं।[280] सभा के विशेषाधिकार का हनन अथवा उसकी अवमानना के मामले में यह साबित करना पड़ता है कि वक्तव्य न सिर्फ गलत अथवा भ्रामक था, बल्कि यह सभा को गुमराह करने के लिए जानबूझकर दिया गया था। विशेषाधिकार हनन तभी होता है जब कि कोई मंत्री कोई गलत या असत्य वक्तव्य जानबूझकर, सोच-समझकर और यह जानते हुए देता है कि वह गलत या असत्य है।[281]

जब दो सदस्यों ने खाद्य और कृषि मंत्री के विरुद्ध इस आधार पर विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहा कि जब वह लोक लेखा समिति के समक्ष पेश हुए थे तो उन्होंने सच्चाई को छिपाया था और समिति को गुमराह किया था इस पर अध्यक्ष ने अपने विनिर्णय में अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी कहा:

> किसी मंत्री द्वारा दिए गए गलत वक्तव्यों को विशेषाधिकार हनन का आधार नहीं बनाया जा सकता। यदि जानबूझकर झूठ बोला जाये और यह प्रमाणित हो जाये, तभी निश्चित रूप से यह विशेषाधिकार हनन की परिधि में आता है। अन्य भूलें तथा गलतियां इस श्रेणी में नहीं आतीं, क्योंकि हम प्राय: देखते हैं कि मंत्री वक्तव्य देते हैं, जिनमें गलतियां होती हैं और बाद में वे उन भूलों का सुधार करते हैं।[282]

बजट प्रस्तावों या शासकीय गुप्त बातों के रहस्योद्घाटन को विशेषाधिकार हनन का आधार नहीं बनाया जा सकता।

बजट प्रस्तावों के कथित रहस्योद्घाटन के संबंध में दो सदस्यों ने 3 मार्च, 1956 को जब स्थगन प्रस्तावों की सूचनाएं दीं तो, इस पर एक अन्य सदस्य ने कहा कि यह तो स्पष्टतया सभा का विशेषाधिकार हनन है। इस संबंध में अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया:

> इस मामले में कोई विशेषाधिकार हनन हुआ है या नहीं, इसका निर्णय करने में हमें ब्रिटेन के पूर्वोदाहरणों से मार्गदर्शन मिल सकता है। जहां तक मैं मालूम कर पाया हूं, हाउस ऑफ कॉमन्स में केवल दो मामले हुए हैं, जिनमें उस सभा ने बजट प्रस्तावों के रहस्योद्घाटन के संबंध में विचार किया है। वे थे—थॉमस का मामला और डालटन का मामला। दोनों में से किसी भी मामले में बजट प्रस्तावों के पहले से पता चल जाने को सभा के विशेषाधिकार हनन का मामला नहीं माना गया और न ही ये मामले जांच के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपे गए। हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रचलित विचार यह है कि जब तक वित्तीय प्रस्ताव सभा के समक्ष नहीं रखे जाते, वे शासकीय रूप से गुप्त होते हैं।

---

280. निदेश 115. *लो.स.वा.वि.,* 13.12.1973, पृ. 86-89 ।

281. *लो.स.वा.वि.,* 10.3.1964, पृ. 1715; 18.4.1966, पृ. 6793; 2.12.1974, पृ. 142 ।

282. *सुब्रह्मण्यम मामला, लो.स.वा.वि.,* 17.8.1966, पृ. 128-30, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 22.8.1966, पृ. 90-92; 24.8.1966, पृ. 112-15; 5.9.1966, पृ. 22-23; 13.12.1973, पृ. 86-89; 2.12.1974, पृ. 142; 2.2.1980, पृ. 2-5 और 7.9.1981, पृ. 170-72 ।

> इसलिए इस बजट के प्रस्तावों के रहस्योद्‌घाटन के मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपने का प्रश्न ही नहीं उठता।[283]

दल की बैठकों में मंत्रियों द्वारा दिए गए वक्तव्य विशेषाधिकार संबंधी नियमों की परिधि में नहीं आते।[284]

यदि लोकहित के विषयों के संबंध में पहले वक्तव्य सभा में नहीं, बल्कि सभा के बाहर दिया जाए, तो इसमें संसद का कोई विशेषाधिकार अन्तर्ग्रस्त नहीं है। ऐसे कार्य परिपाटी तथा औचित्य के विरुद्ध हैं, लेकिन उनके आधार पर विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[285]

यदि सदस्यों के निमित्त दस्तावेजों को पहले प्रेस तथा गैर-सदस्यों को बांट दिया जाए तो यह विशेषाधिकार हनन नहीं है, लेकिन ऐसा करना उचित नहीं समझा जाता है।

बैंक पंचाट आयोग के प्रतिवेदन का सारांश सभा पटल पर रखा गया। इस संबंध में 22 अगस्त, 1955 को सभा में विशेषाधिकार हनन का प्रश्न उठाया गया। इस पर अध्यक्ष ने टिप्पणी की:

> जब भी कोई प्रतिवेदन संसद में प्रस्तुत किया जाना हो तो सरकार को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि उसका सारांश या उसकी जानकारी उसके संसद में प्रस्तुत किए जाने से पहले समाचार पत्रों में न छपे। अब जो कुछ भी हुआ है बड़ी अनियमित बात है और मुझे ज्ञात नहीं कि इसके लिए कौन जिम्मेदार है। मंत्री ने इस संबंध में जांच करने का वादा किया है और हमें उस जांच के परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिए।[286]

---

283. *लो.स.वा.वि.* (II), 19.3.1956, पृ. 1217-18, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 10.3.1959; 18.4.1964; 25.7.1974, पृ. 112-16; 29.7.1974, पृ. 126-29; 30.7.1974, पृ. 74; 23.2.1981, पृ. 198-200; तथा 25.2.1982, पृ. 179-80 ।

284. इसी प्रकार, जब सभा का सत्र चल रहा हो, तब यदि दल का पदाधिकारी मंत्रिमंडल के निर्णय से संबंधित कोई महत्वपूर्ण वक्तव्य देता है, तो इसमें संसद का विशेषाधिकार अन्तर्ग्रस्त नहीं है— *लो.स.वा.वि.,* 14.4.1965, पृ. 3620-21; दल की बैठक में दल के सदस्यों को कोई कथित धमकी दी जाती है—*लो.स.वा.वि.,* 1.9.1970, पृ. 138-154; किसी दल द्वारा अपने सदस्यों को निदेश जारी किया जाता है कि वे अन्य दलों के सदस्यों के साथ मेल-जोल न करें—*लो.स.वा.वि,* 1.8.1973, पृ. 116-17; किसी सदस्य को उसके दल का नेता कथित तौर पर धमकाता है—*लो.स.वा.वि.,* 8.8.1974, पृ. 92; विशेषाधिकार समिति की रिपोर्ट पर की गई कार्यवाही के संबंध में दल का निर्णय लेने के लिए संसदीय दल की बैठक बुलाई जाती है— *लो.स.वा.वि.,* 22.12.1978, पृ. 213 ।

285. *लो.स.वा.वि.,* 5.9.1955, कॉ. 2717; *एल.एस. डिबेट्स,* 19.12.1963, कॉ. 5792-93; *लो.स.वा.वि.,* 12.9.1963, पृ. 2872-75; 18.12.1963, पृ. 2801-02; 19.12.1963, पृ. 2957-58; 26.3.1980; 16.8.1985; *आर.एस. डिबेट्स,* 18.8.1970, कॉ. 255-56; 19.8.1970, कॉ. 255-56; 19.8.1985, कॉ. 250-52 ।

286. *लो.स.वा.वि.* (II), 22.8.1955, कॉ. 1759-60 ।

5 सितम्बर, 1955 को मंत्री ने यह पता लगाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की कि जानकारी बाहर कैसे पहुंची। जिस सदस्य ने विशेषाधिकार का यह प्रश्न उठाया था, वह मंत्री के वक्तव्य से संतुष्ट नहीं था और यह मांग की गई कि यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाये। अध्यक्ष ने अपने विनिर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा:

> ... प्रेस का भी समान रूप से यह कर्त्तव्य है कि संसद की परिपाटियों का अनुसरण करने में सहायता करे। किसी विषय विशेष को संसद में पेश किए जाने से पहले उसके संबंध में जानकारी प्राप्त कर लेना और उसका प्रचार करना गलत है। इसमें संदेह नहीं कि उस समाचारपत्र के लिए ऐसा करना उचित नहीं था।[287]

प्रधानमंत्री द्वारा 17 नवम्बर, 1950 को सभा में दिए गए आश्वासन के अनुसरण में सरकार ने चीनी के आयात के संबंध में आरोपों की जांच करने के लिए गंगानाथ समिति की नियुक्ति की थी। इस समिति के प्रतिवेदन के सभा पटल पर रखे जाने से पहले जब उसके निष्कर्ष प्रेस को जारी कर दिए गए तो विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया। 5 अप्रैल, 1951 को उपाध्यक्ष ने विनिर्णय दिया:

> .... यह समिति सभा ने नियुक्त नहीं की थी और इस समिति पर अपना प्रतिवेदन सभा को देने की जिम्मेदारी नहीं थी।... इसमें संदेह नहीं कि यदि कोई समिति सरकार द्वारा सभा के किसी संकल्प या उसकी इच्छा के अनुसरण में नियुक्त की जाती है, न कि स्वतंत्र रूप से तो जब सभा की बैठक हो रही हो तो सभा यह आशा तो करेगी ही कि समिति को कार्यवाही की सूचना पहले सभा को दी जाये। इस बात को देखते हुए इस मामले में कोई भी विशेषाधिकार हनन नहीं हुआ है।[288]

जब किसी समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किया गया हो तो सदस्यों को इस प्रतिवेदन की प्रतियां उपलब्ध कराने से पहले समाचारपत्रों में इसका प्रकाशन अवांछनीय है, लेकिन यह सभा का विशेषाधिकार हनन नहीं है।[289]

नियमों, परिपाटियों तथा प्रथाओं के उल्लंघन को विशेषाधिकार हनन नहीं माना जाता। यदि नियमों आदि का उल्लंघन किया जाये तो यह अध्यक्ष की अप्रसन्नता अथवा उपयुक्त प्रस्ताव के माध्यम से सभा की निंदा का हेतु हो सकता है।[290]

यदि समाचारपत्रों में अथवा रेडियो या टेलीविजन पर किसी सदस्य का पूरा भाषण न प्रस्तुत किया जाए या उसके भाषण का सारांश ही दिया जाये तो इसमें कोई विशेषाधिकार हनन नहीं है। यदि किसी भाषण विशेष को उतना ही स्थान न दिया जाये जितना कि दूसरे भाषणों को दिया गया हो या उसे प्रमुख स्थान न दिया जाये, तो भी कोई विशेषाधिकार हनन नहीं होता।

---

287. *एल.एस. डिबेट्स,* 5.9.1955, कॉ. 12183-85 ।

288. *पी. डिबेट्स* (II), 5.4.1951, कॉ 5981-82 ।

289. *पार्लियामेंटरी डिबेट्स* (1893-94) 14, कॉ. 812; *एच.सी. डिबेट्स* (1947-48) 54, कॉ. 1125-26 ।

290. *लो.स.वा.वि.,* 12.8.1966, पृ. 100-101; 15.4.1987, पृ. 397-400 ।

यदि किसी आपराधिक आरोप में पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति से सभा को संबोधित ऐसी याचिका का प्रपत्र जो किसी सदस्य के माध्यम से सभा के समक्ष पेश किया जाना हो, बरामद किया जाए, तो उसको भी सभा का विशेषाधिकार हनन या अवमानना नहीं समझा जाता।[291]

अनुच्छेद 85 के अंतर्गत संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान किसी सदस्य का अवांछनीय, अमर्यादित और अशोभनीय व्यवहार विशेषाधिकार हनन अथवा सभा की अवमानना का मामला नहीं है लेकिन सदस्यों के आचरण और उनके द्वारा सभा में शिष्टाचार और मर्यादा बनाए रखने का मामला है।[292]

अनुच्छेद 176 के अंतर्गत विधानमंडल में राज्यपाल के अभिभाषण के दौरान व्यवधान डालने वाले सदस्यों को राज्यपाल के आदेशों द्वारा सभा से हटाए जाने को सभा अथवा इसके सदस्यों का विशेषाधिकार हनन नहीं माना जाता है।[293]

मुख्यमंत्री द्वारा कथित रूप से दिए गए इस वक्तव्य को कि उनके राज्य के एक भाग की स्थिति का अध्ययन करने के लिए संसदीय समिति का गठन उनके राज्य के मामलों में हस्तक्षेप है, संसद का विशेषाधिकार हनन और उसकी अवमानना नहीं मानी गयी।[294] इसी प्रकार मुख्यमंत्री के उनके राज्य की स्थिति का अध्ययन करने के लिए संसदीय प्रतिनिधिमंडल भेजने संबंधी लोक सभा में दिए गए सुझाव का विरोध करने संबंधी कथित वक्तव्य को सभा का विशेषाधिकार हनन अथवा उसकी अवमानना नहीं मानी गयी।[295]

मंत्री द्वारा सभा में दिए गए आश्वासन को क्रियान्वित नहीं किया जाना न तो सभा का विशेषाधिकार हनन है और न ही उसकी अवमानना है, क्योंकि नीतिगत मामलों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया ऐसी नीति को निर्धारित करने वाले अनेक कारकों पर निर्भर है।[296] *आयात लाइसेंस मामले में* अध्यक्ष ने अन्य बातों के साथ-साथ यह विनिर्णय दिया कि सभा के पास सरकार के पूछताछ करने और अपने निर्देशों का पालन करवाने के अनेक उपाय उपलब्ध हैं लेकिन किसी आश्वासन का पूरी तरह से पालन न कर पाना अथवा इसे पूरा करने में विलम्ब हो जाना विशेषाधिकार हनन नहीं होगा।[297]

---

291. तीसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—तीसरी लोक सभा)।
292. *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1968, पृ. 972-973, राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान सदस्यों के आचरण संबंधी समिति (1971) का पहला और दूसरा प्रतिवेदन जो क्रमशः 15.11.1971 और 14.4.1972 को सभा में प्रस्तुत किए गए।
293. *राजस्थान विधान सभा की विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन* (24.9.1966 को विधान सभा द्वारा स्वीकृत किया गया)।
294. *लो.स.वा.वि.,* 7.4.1969, पृ. 150-66 ।
295. *एल.एस. डिबेट्स,* 21.4.1969, कॉ. 2469 ।
296. *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* (1957), खंड I, संख्या 2, भाग-III, पृ. 11-19. *लो.स.वा.वि.,* 16.8.1965, पृ. 145-55 और *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* (1976), खंड XXI, 1, पृ. 14-15 ।
297. *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1974, पृ. 141-42; *एस.एल. शकधर : दि इम्पोर्ट लाइसेंसिस केस,* जे.पी.आई. XXI, 3 ।

यदि विनियोग लेखे विधान सभा पटल पर रखे जाने से पूर्व विधान परिषद् पटल पर रखे जाते हैं तो यह विशेषाधिकार हनन नहीं है, हालांकि उन्हें विधान सभा में पहले रखना अधिक उपयुक्त होगा जो उन पर मतदान कराती है अथवा सरकारों के लिए धनराशियां प्रदान करती है।[298]

यदि सदस्यों के पत्रों की सेंसर द्वारा जांच की जाती है तो विशेषाधिकार का प्रश्न पैदा नहीं होता क्योंकि सेंसरशिप का प्रावधान विधि के अंतर्गत किया गया है। डाकघर अधिनियम, 1898 की धारा 26 सेंसरशिप को लोक आपात की स्थिति में अथवा लोक सुरक्षा अथवा शांति के हित में प्राधिकृत करती है।[299] इसी प्रकार यदि सदस्यों के टेलीफोन टैप किए जाते हैं तो भी विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठता है।[300]

अध्यक्ष द्वारा सभा के किसी कार्य पर चर्चा करने के लिए नियत किए गए समय में कटौती करना विशेषाधिकार हनन नहीं है। अध्यक्ष स्वेच्छा से समय निर्धारित कर सकता है। अध्यक्ष के सम्बन्ध में विशेषाधिकार हनन का कोई प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह विशेषाधिकारों का संरक्षक है।[301]

यदि निरुद्ध रखे गये किसी सदस्य का अध्यक्ष को संबोधित पत्रादि उसे गृह विभाग के सचिव के माध्यम से पहुंचता है, तो यह विशेषाधिकार का मामला नहीं होगा।[302]

जब कोई मंत्री सभा में अपने त्यागपत्र देने के कारण बताने वाला वक्तव्य न देने का निश्चय करता है, तो इससे विशेषाधिकार का कोई प्रश्न नहीं उठता। तथापि, यदि वह ऐसा वक्तव्य सभा में देने से पूर्व इसे प्रेस में दे देता है, तो यह सभा की अवमानना होगी।[303]

किसी तार पर अथवा किसी समाचार एजेंसी द्वारा कतिपय सदस्यों के कूटरचित हस्ताक्षरों का कथित उपयोग, जो समग्र रूप से संसद पर आक्षेप नहीं है, विशेषाधिकार हनन नहीं है। यद्यपि यह एक गंभीर मामला है किन्तु इसका समाधान सभा में नहीं अपितु सभा के बाहर हो सकता है।[304]

निर्वाचकगण के सदस्यों के रूप में किसी विधानमंडल के सदस्यों के आचरण पर आक्षेप करना विशेषाधिकार हनन नहीं है, क्योंकि आरोपों और लांछनों का सभा के प्रति उनके कर्त्तव्यों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।[305]

---

298. *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* (1962), खंड VI, 2, भाग-III, पृ. 31-32 ।
299. *मद्रास एल.ए. डिबेट्स,* 1954, खंड XIX, पृ. 578-81; *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* (1960), खंड IV, सं. 3, भाग-III, पृ. 65-66 ।
300. *लो.स.वा.वि.,* 29.4.1960, पृ. 6807; 28.8.1981, पृ. 172-75 ।
301. *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट* (1963), खंड VIII, पृ. 11-12 ।
302. *मद्रास एल.ए. डिबेट्स,* 5.2.1963, कॉ. 622-24 ।
303. *उत्तर प्रदेश एल.ए. डिबेट्स,* 21.8.1959, पृ. 482-90 ।
304. *एच.सी. डिबेट्स,* 19.4.1948, कॉ. 1448 और 26.4.1948, कॉ. 32 ।
305. जे.पी.आई., खंड XVI, सं. 3, पृ. 97 ।

जब किसी संसदीय समिति का प्रारूप प्रतिवेदन सभा के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया हो, चाहे इसे अभी मुद्रित रूप में सदस्यों को उपलब्ध न भी कराया गया हो, तो समिति के निष्कर्षों को प्रकाशित करना सभा के प्रति कोई अपराध नहीं है।

यदि कोई सदस्य दौरे पर जाए और वहां कोई अधिकारी उसकी अगवानी के लिए उपस्थित न हो, तो यह विशेषाधिकार हनन नहीं है।[306]

किसी सरकारी अधिकारी द्वारा संसद सदस्यों को अपने विभाग में संबंधित फाइलें दिखाने से इंकार करना विशेषाधिकार हनन नहीं है।[307]

बजट सत्र आरम्भ होने से ठीक पहले सरकार द्वारा कर-वसूली में वृद्धि की घोषणा करना विशेषाधिकार हनन नहीं माना गया है।[308]

विशेषाधिकार के प्रश्न पर कार्यवाही करने की प्रक्रिया

विशेषाधिकार के प्रश्न पर कार्यवाही करने की प्रक्रिया मोटे तौर पर नियमों में निर्धारित की गई है।[309] अध्यक्ष की सहमति प्राप्त करने के पश्चात् ही सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया जा सकता है।[310] यह इस कारण बाध्यकर बनाया गया है ताकि ऐसा मामला, जो प्रत्यक्ष ग्राह्य न हो उठाकर सभा का समय न लिया जाए।[311] अत: विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने के इच्छुक सदस्य से अपेक्षित है कि वह इस आशय की एक लिखित सूचना महासचिव को, जिस दिन यह प्रश्न उठाया जाना प्रस्तावित हो उस दिन 10.00 बजे तक दे दे।[312] यदि विशेषाधिकार का प्रश्न किसी दस्तावेज पर आधारित हो, तो वह दस्तावेज सूचना के साथ संलग्न होना चाहिए।[313] सूचना प्राप्त होने पर अध्यक्ष इस मामले पर विचार करता है और वह सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने पर या तो अपनी सहमति दे देता है अथवा उसे रोक लेता है। तत्पश्चात् संबंधित सदस्य को अध्यक्ष के विनिश्चय की सूचना दी जाती है। तत्काल महत्व के मामले में जब सूचना देने के लिए समय ही न हो, अध्यक्ष ने एक सदस्य को, उसके द्वारा

---

306. *लो.स.वा.वि.,* 3.3.1969, पृ. 160-61 ।
307. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.8.1973, कॉ. 226-35 ।
308. *पूर्वोक्त,* 9.6.1980, कॉ. 275-76; 22.2.1983; *आर.एस. डिबेट्स,* 19.2.1982, कॉ. 172-85।
309. नियम 222 से 228 और 313 से 316 ।
310. नियम 222 ।
311. *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स* (II), 20.12.1949, पृ. 829 और 847-49; *पी. डिबेट्स* (II), 10.3.1950, पृ. 1338 और 13.11.1950, कॉ. 937-38; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 13.5.1953, कॉ. 6479; और *एल.एस. डिबेट्स,* 9.5.1957, कॉ. 2656-57; *लो.स.वा.वि.,* 29.5.1957, पृ. 1244-45।
312. नियम 223 ।
313. *पूर्वोक्त* ।

लिखित में पूर्व सूचना दिए बिना ही विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति दी है।[314]

इस बात का निर्णय पूर्णतः सभा को ही लेना होता है कि जिस मामले की शिकायत की गई है वह वास्तव में विशेषाधिकार हनन अथवा सभा की अवमानना का प्रश्न है अथवा नहीं, क्योंकि केवल सभा को ही अपने विशेषाधिकारों के बारे में निर्णय लेने का अधिकार है। किसी मामले को, सभा में विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाने के लिए सहमति देते हुए अध्यक्ष केवल इस बात पर विचार करता है कि क्या यह मामला आगे जांच करने के लिए उपयुक्त है और क्या इसे सभा के समक्ष उठाया जाना चाहिए। अपनी सहमति देने में अध्यक्ष विशेषाधिकार के प्रश्न की ग्राह्यता हेतु निर्धारित निम्नलिखित शर्तों से मार्गदर्शन लेता है:[315]

एक ही बैठक में एक से अधिक प्रश्न नहीं उठाये जायेंगे;

प्रश्न हाल ही में हुए किसी विशिष्ट मामले तक सीमित रहेगा; और

मामले में सभा का हस्तक्षेप अपेक्षित है।

अतः सदस्य द्वारा विशेषाधिकार का कोई प्रश्न सर्वप्रथम अवसर पर उठाया जाना चाहिए और इस पर सभा द्वारा अन्तःक्षेप किया जाना चाहिए।[316] यदि उठाये जाने हेतु अपेक्षित कोई विशिष्ट मामला किसी समय विशेष पर अविलम्बनीय महत्व का हो तो विशेषाधिकार की सूचना देने में एक दिन का विलम्ब भी घातक सिद्ध हो सकता है।[317]

कोई ऐसा विषय, जो सभा की सुविधानुसार अथवा इस कारण स्थगित किया जाए कि अध्यक्ष को इस पर पूर्णतः विचार करने का अवसर मिले, तो इसकी प्राथमिकता उस समय भी बनी रहती है जब इसे अंततः उठाये जाने की अनुमति दी जाए। यह विनिश्चय अध्यक्ष को ही करना है कि क्या विशेषाधिकार के प्रश्न की विषय-वस्तु हाल ही में घटित कोई विशिष्ट मामला है अथवा नहीं।[318]

अध्यक्ष, इस बात का विनिश्चय करने से पूर्व कि क्या विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाये जाने हेतु प्रस्तावित मामले में सभा का हस्तक्षेप आवश्यक है और क्या उसे सभा में यह मामला उठाए जाने के लिए सहमति देनी चाहिए। आरोपी व्यक्ति को यह अवसर दे सकता

---

314. *लो.स.वा.वि.* (II), 12.9.1956, पृ. 2228-29, सदस्य ने शिकायत की थी कि उस दिन सभा की बैठक में भाग लेने के लिए जब वह संसद भवन परिसर में प्रवेश कर रहे थे तो पुलिस ने उन्हें रोक लिया। साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 7.5.1959 ।

315. नियम 224 ।

316. *पी. डिबेट्स* (II), 30.11.1950, कॉ. 937-38 ।

317. *लो.स.वा.वि.,* 17.8.1966, पृ. 130, साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 30.11.1950, कॉ. 937-38 ।

318. *एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्री कृष्ण सिन्हा,* ए.आई.आर. 1959, एस.सी 395; और *एम.एस.एम. शर्मा बनाम श्री कृष्ण सिन्हा,* ए.आई.आर. 1960, एस.सी. 1186 ।

है कि वह अध्यक्ष को मामले के संबंध में अपनी स्थिति स्पष्ट करे।[319] विशेषाधिकार के किसी प्रश्न की ग्राह्यता का विनिश्चय करने से पूर्व अध्यक्ष, यदि वह उचित समझे तो, सदस्यों के विचार भी सुन सकता है।[320] जब कोई सदस्य किसी दूसरे सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहे तो अध्यक्ष उस प्रश्न को सभा में उठाने की सहमति देने से पहले सदैव उस सदस्य को, जिसके विरुद्ध शिकायत की गई हो, अध्यक्ष अथवा सभा के समक्ष ऐसे तथ्य रखने का अवसर देता है जो उस विषय से संगत हों।[321]

> विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की मांग करते समय, सदस्य को सभा के समक्ष अपने तर्क के पक्ष में सभी आवश्यक साक्ष्य उपलब्ध कराने चाहिएं। किसी पश्चात्वर्ती तिथि को, कोई और साक्ष्य उपलब्ध कराना ग्राह्य नहीं है। इसलिए, विशेषाधिकार संबंधी ऐसा कोई प्रश्न उस मामले पर नहीं उठाया जा सकता जिस पर किसी विशेषाधिकार के प्रश्न के मामले में पहले विनिश्चय किया जा चुका है चाहे सदस्य के पास अपने तर्क के समर्थन में नई सामग्री हो। ऐसे मामले मे सदस्य अन्य उपायों का सहारा ले सकता है; वह उस विषय पर उचित चर्चा उठा सकता है।

तथापि, ऐसे अवसर आये हैं जब अध्यक्ष ने विशेषाधिकार संबंधी प्रश्न उठाने हेतु अपनी सहमति रोक दी, तो सदस्यों ने अगले दिन पुन: उस मामले को उठाने की मांग की। उस पर अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि यदि उससे संबंधित कोई दस्तावेज अथवा साक्ष्य हैं तो सदस्य उन्हें अतिरिक्त सूचना के माध्यम से देने के लिए स्वतंत्र है और वह उन सूचनाओं की जांच करेंगे।[322]

यदि कोई समाचारपत्र सभा का कार्यवाही वृत्तान्त गलत छापे अथवा सभा या इसके सदस्यों पर आक्षेप करते हुए टिप्पणी प्रकाशित करे, तो अध्यक्ष सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने के लिए अपनी सहमति देने से पूर्व सर्वप्रथम उस समाचारपत्र के सम्पादक को अपना पक्ष रखने का अवसर देता है।[323] जब संबंधित समाचारपत्र का सम्पादक या प्रेस संवाददाता खेद प्रकट कर दे या भूल सुधार छाप दे तो उसके बाद अध्यक्ष सामान्यत: उस

---

319. *लो.स.वा.वि.,* 4.4.1961, पृ. 4281-82; 2.5.1961, पृ. 6742-43; 5.8.1966, पृ. 145 और पृ. 147-48; 3.3.1969, पृ. 160-61; 18.3.1969, पृ. 143; 9.4.1969, पृ. 98; *एल.एस. डिबेट्स,* 10.8.1971, कॉ. 219; *लो.स.वा.वि.,* 8.5.1973, पृ. 115-16; 5.9.1973, पृ. 20; 23.4.1974, पृ. 121; 22.12.1978, पृ. 211-14 ।

320. *एल.एस. डिबेट्स,* 23.9.1958, कॉ. 8053-84; 27.9.1958, कॉ. 8987; 7.8.1959, कॉ. 1227; 21.4.1965, कॉ. 10238-75 ।

321. *पूर्वोक्त,* 7.5.1959, कॉ. 15576-79; 9.5.1959, कॉ. 16040-42 *शील भद्र याजी मामले के लिए देखिए रा.स.वा.वि.,* 30.5.1967, 5.6.1967 और 19.6.1967 ।

322. *आर. वेंकटरामन मामला, एल.एस. डिबेट्स,* 7.9.1981, कॉ. 313-25 और 8.9.1981, कॉ. 278-85 ।

323. *एल.एस. डिबेट्स,* 4.4.1961, कॉ. 9034-38; 2.5.1961, कॉ. 14904-08; 5.8.1966, कॉ. 2980-81 तथा कॉ. 2983-95; 9.4.1969, कॉ. 171-72; 10.8.1971, कॉ. 219; 8.5.1973, कॉ. 186-87; 22.12.1978, कॉ. 314-15 ।

विशेषाधिकार प्रश्न को सभा में उठाने की सहमति नहीं देता।[324]

कभी-कभी सदस्यों ने पुलिस के हाथों व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होने पर पुलिस प्राधिकारियों द्वारा अभिकथित रूप से अपशब्द कहे जाने, दुर्व्यवहार किए जाने अथवा बाधा उत्पन्न किए जाने जैसे मामलों को विशेषाधिकार के प्रश्नों के रूप में उठाया है।

> जब अध्यक्ष को किसी सदस्य से पुलिस प्राधिकारियों द्वारा उस पर हमले अथवा उसके साथ दुर्व्यवहार की शिकायत या सूचना प्राप्त होती है तो अध्यक्ष, यदि उससे संतुष्ट होता है, तो सदस्य को नियम 377 के अधीन सभा में वक्तव्य देने की अनुमति दे सकता है।[325] ऐसी स्थिति में सदस्य को अपने वक्तव्य, जो इस संबंध में वह सभा में देना चाहता है, की एक अग्रिम प्रति अध्यक्ष को सौंपने के लिए कहा जा सकता है। तत्पश्चात् अध्यक्ष उस मामले से संबंधित तथ्यों पर सरकार का बयान ले सकता है। दोनों पक्षों की ओर से दिए गए तथ्यों के मद्‌देनज़र, अध्यक्ष यह विनिश्चय कर सकता है कि क्या उसे विशेषाधिकार प्रश्न के रूप में उस मामले को सभा में उठाने की अनुमति देनी चाहिए।

तथापि, सभी उत्तरवर्ती अध्यक्षों की यह राय रही है कि संसदीय कार्य से असम्बद्ध कार्य करते हुए किसी सदस्य पर हमला अथवा उसके साथ दुर्व्यवहार या पुलिस अथवा सरकार के अधिकारियों द्वारा उसके प्रति दर्शायी गई अशिष्टता मात्र को विशेषाधिकार का मामला नहीं माना जा सकता और सदस्यों द्वारा ऐसी शिकायतें सीधे मंत्री को भेजी जानी चाहिएं।

विशेषाधिकार प्रश्न उठाने के लिए सभा की अनुमति

जब अध्यक्ष किसी विषय को विशेषाधिकार प्रश्न के रूप में सभा में उठाने की सहमति दे दें। तो उसकी सूचना देने वाला सदस्य, अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर, विशेषाधिकार प्रश्न उठाने के लिए सभा की अनुमति मांगता है।[326] अनुमति मांगते समय सदस्य को उस विशेषाधिकार प्रश्न के संबंध में संक्षिप्त वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है।[327] अध्यक्ष ने अपने विवेक से कभी-कभी अन्य सदस्यों को भी उस विशेषाधिकार प्रश्न से संबंधित संक्षिप्त वक्तव्य देने की अनुमति दी है।[328] यदि अनुमति देने पर आपत्ति की जाए तो अध्यक्ष उन

---

324. *पूर्वोक्त,* 18.9.1963, कॉ. 6786-87; 5.8.1966, कॉ. 2980-81, कॉ. 2983-85; 3.3.1969, कॉ. 225-26; 18.3.1969, 25.3.1969, 9.4.1969, कॉ. 171-72; 14.5.1970, कॉ. 229-30; 22.11.1971, 15.5.1973, कॉ. 18-19; 10.5.1974, कॉ. 233; 30.8.1976, कॉ. 185-87; 22.12.1978, कॉ. 319-20; *रा.स.वा.वि.,* 29.11.1967 और 5.4.1971 ।

325. यह नियम ऐसे मामलों को उठाए जाने से संबंधित है जो व्यवस्था के प्रश्न न हों। *देखिए, भोगेन्द्र झा मामला, लो.स.वा.वि.,* 6.4.1981, पृ. 200-01; *सत्यनारायण जटिया मामला, लो.स.वा.वि.,* 22.12.1981, पृ. 259-61; *डा. गोलाम याजदानी मामला, लो.स.वा.वि.,* 5.11.1982, पृ. 256-57 ।

326. नियम 225(1)।

327. *पूर्वोक्त* ।

328. *एल.एस. डिबेट्स,* 11.5.1954, कॉ. 5999-6000; 12.5.1968, कॉ. 1046-81; *लो.स.वा.वि,* 14.12.1987, पृ. 20-21 ।

सदस्यों को अपने-अपने स्थान पर खड़े होने के लिए कहता है जो अनुमति देने के पक्ष में हों।[329] तद्नुसार, यदि पच्चीस या अधिक सदस्य खड़े हो जायें तो यह समझा जाता है कि सभा ने उस विषय के उठाये जाने की अनुमति दे दी है और अध्यक्ष घोषणा कर देता है कि अनुमति दी गयी है; अन्यथा अध्यक्ष सदस्य को यह सूचित करता है कि सभा ने उसे यह विषय उठाने की अनुमति नहीं दी है।

सभा में विशेषाधिकार प्रश्न उठाने की अनुमति वही सदस्य मांग सकता है जिसने उस विशेषाधिकार प्रश्न की सूचना दी हो। वह अपनी ओर से किसी अन्य सदस्य को वह प्रश्न उठाने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता।[330]

विशेषाधिकार प्रश्न को कार्य-सूची की अन्य मदों की अपेक्षा पूर्ववर्तिता दी जाती है। तद्नुसार विशेषाधिकार प्रश्न उठाने की अनुमति प्रश्नों के बाद और सूची की अन्य मदों को लिये जाने से पहले मांगी जाती है।[331]

तथापि, जिन अविलम्बनीय मामलों में सभा का हस्तक्षेप आवश्यक हो, उन्हें अध्यक्ष प्रश्नों के बाद सभा की बैठक के दौरान किसी भी समय उठाने की अनुमति दे सकता है, लेकिन ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं।[332]

विशेषाधिकार प्रश्न पर विचार

सभा द्वारा किसी विशेषाधिकार प्रश्न को उठाने की अनुमति दिये जाने के बाद, या तो सभा स्वयं उस पर विचार करके उसका निर्णय कर सकती है और या किसी सदस्य द्वारा रखे गये प्रस्ताव के अनुसार उस मामले की जांच और छानबीन करने तथा इस संबंध में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंप सकती है।[333] सामान्य प्रथा यही है कि शिकायत संबंधी मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाता है और सभा तब तक अपना निर्णय नहीं लेती, जब तक कि विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत न कर दिया जाए।[334] तथापि जिन मामलों में सभा को यह लगे कि उठाया गया प्रश्न अत्यन्त तुच्छ है, या जिस व्यक्ति पर विशेषाधिकार हनन का आरोप है, उसने समुचित रूप से क्षमायाचना

---

329. नियम 225(2), *लो.स.वा.वि.*, 27.9.1958, पृ. 4372; 10.2.1959, पृ. 86 ।

330. *लो.स.वा.वि.*, 25.9.1958, पृ. 4038-39 ।

331. नियम 225(1) और निदेश 2 ।

332. नियम 225(1) दूसरा परन्तुक; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.* (II), 12.9.1956, *पृ.* 2228-29 और 25.8.1961, पृ. 2543 ।

333. नियम 226, साथ ही *मजूमदार मामला, लो.स.वा.वि.*, 15.7.1957, पृ. 1626-28; और *के.एम. कौशिक मामला, लो.स.वा.वि.*, 18.11.1970, पृ. 163-64; 3.12.1970, पृ. 136-37 ।

334. *नम्बूदरीपाद का मामला, लो.स.वा.वि*, 27.11.1958, पृ. 795-814, *मथाई का मामला, लो.स.वा.वि.*, 10.2.1959, पृ. 82-94; *भौमिक का मामला, लो.स.वा.वि.*, 30.8.1960, पृ. 2829; *ब्लिट्ज़ मामला, लो.स.वा.वि.*, 20.4.1961, पृ. 5794-95 ।

कर ली है, तो सभा उस संबंध में और आगे कार्यवाही न करने का फैसला करके स्वयं ही उस प्रश्न को निपटा लेती है।[335] यदि कथित विशेषाधिकार हनन के संबंध में सभा में भिन्न-भिन्न राय हो, तो मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपने की बजाय सभा में ही निपटा लिया जाता है।

> 5 अप्रैल, 1967 को सभा में विशेषाधिकार का एक प्रश्न उठाया गया था जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि विदेश मंत्री, वाणिज्य मंत्री और प्रधान मंत्री ने सभा में भ्रामक और गलत वक्तव्य देकर सभा को गुमराह किया है।[336] यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया गया। संसदीय कार्य मंत्री ने इसके विरोध में इस आशय का प्रस्ताव पेश किया है कि संबंधित मंत्रियों ने सभा का कोई विशेषाधिकार हनन नहीं किया है।
>
> इस पर व्यवस्था का यह प्रश्न उठाया गया कि दूसरा प्रस्ताव जो नकारात्मक मत के समान है, नियम 344 के अंतर्गत नियम विरुद्ध है। नियम 226 का उल्लेख करते हुए अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि इन दोनों में से कोई एक या दोनों ही प्रस्ताव दिये जा सकते हैं और यह विनिर्णय दिया:[337]
>
> मूल प्रस्ताव में कहा गया है कि प्रथम दृष्ट्या यह विशेषाधिकार हनन का मामला बनता है और इस मामले को जांच हेतु विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाना चाहिए। यदि मतदान में यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाता है तो इसका यही अर्थ होगा कि यह मामला विशेषाधिकार समिति को न सौंपा जाए और विशेषाधिकार के प्रश्न का मूल भाग, अर्थात् क्या सभा का विशेषाधिकार हनन अथवा उसकी अवमानना हुई है, अनिर्णित रह जाता है और इस प्रश्न पर मामले के गुणावगुण के आधार पर सभा को निर्णय करना है।
>
> अत: संसदीय कार्य मंत्री को सभा से यह निर्णय लेने का अनुरोध करने का अधिकार है कि क्या सभा का विशेषाधिकार हनन अथवा उसकी अवमानना हुई है।
>
> मेरा विनिर्णय यह है कि दोनों प्रस्ताव नियमानुकूल हैं और इन दोनों को ही, एक के बाद एक सभा में मतदान के लिए रखा जाना चाहिए।

विस्तृत वाद-विवाद के बाद, जिसमें विदेश मंत्री तथा वाणिज्य मंत्री ने इस मामले के तथ्यों को स्पष्ट किया, मूल प्रस्ताव पर मतदान हुआ और प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। उसके बाद दूसरे प्रस्ताव पर मतदान हुआ और वह सभा द्वारा स्वीकृत कर लिया गया।

---

335. *शिब्बनलाल सक्सेना का मामला, पी. डिबेट्स* (II), 1.3.1940, पृ. 1019-95; *प्रेस सूचना ब्यूरो का मामला, लो.स.वा.वि.*, 26.7.1957, पृ. 2367 और 27.7.1957, पृ. 2475-76; *लीलाधर कोटकी का मामला, लो.स.वा.वि.*, 19.12.1958, पृ. 3117; *फ्री प्रेस जर्नल का मामला, एल. एस. डिबेट्स*, 21.12.1959, कॉ. 6264-66 और *लो.स.वा.वि.*, 9.2.1960, पृ. 64; और *टाइम्स का मामला, लो.स.वा.वि.*, 17.11.1960, पृ. 463-64; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 5.8.1966, पृ. 147-48, 14.5.1970, पृ. 146; 30.8.1976, पृ. 112 और 22.12.1978, पृ. 213-14 ।

336. *एल.एस. डिबेट्स*, 5.4.1967, कॉ. 2914-3001 ।

337. *पूर्वोक्त*, 5.4.1967, कॉ. 2934-36 । साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 5.9.1974 ।

सदस्यों के विरुद्ध शिकायतें

जब किसी सदस्य द्वारा कथित विशेषाधिकार हनन या सभा की अवमानना की शिकायत की जाती है तो शिकायत के संबंध में सभा की कार्यवाही एक जैसी नहीं होती। वह इस बात पर निर्भर करती है कि शिकायत किसी सदस्य के विरुद्ध है या किसी अजनबी के विरुद्ध। दोनों मामलों के संबंध में मुख्य अंतर यह है कि यदि शिकायत किसी सदस्य के विरुद्ध हो, तो शिष्टाचार के नाते उसे इस मामले के उठाये जाने की सूचना पहले से दे दी जाती है। इसके अतिरिक्त, जब कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहता है, तो जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अध्यक्ष उसे सभा में वह मामला उठाने की अनुमति देने से पहले जिस सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गयी हो, उसे इस मामले से संबंधित तथ्य जो उसके पास हों अध्यक्ष या सभा के समक्ष रखने का अवसर देता है। जब सभा के कथित विशेषाधिकार हनन या उसकी अवमानना की शिकायत किसी सदस्य द्वारा सभा से बाहर दिये गये और समाचार-पत्र में प्रकाशित हुए कथित वक्तव्य पर आधारित हो और उस सदस्य ने कह दिया हो कि उसने ऐसा वक्तव्य नहीं दिया है, तो अध्यक्ष ने समाचार-पत्र में प्रकाशित समाचार की बजाय उस सदस्य के इस कथन को स्वीकार कर लिया और विशेषाधिकार प्रश्न के उठाये जाने की अनुमति नहीं दी।[338]

जब प्रेस साक्षात्कार में किसी सदस्य पर किसी अन्य सदस्य द्वारा किए गए आक्षेप संबंधी कथित विशेषाधिकार हनन का कोई प्रश्न उठाया गया तो अध्यक्ष ने जिस सदस्य पर आक्षेप लगाया था और जिस सदस्य ने कथित रूप से ऐसा आक्षेप लगाया था, उन दोनों सदस्यों को अपना-अपना स्पष्टीकरण देने की अनुमति प्रदान की और तत्पश्चात् उस मामले को समाप्त समझा गया।[339]

जब किसी सदस्य के विरुद्ध कोई शिकायत सभा के समक्ष लाई जाये, तो यह आवश्यक है कि वह सदस्य उस समय सभा में उपस्थित हो। यदि वह उपस्थित न हो तो शिकायत अगली बैठक तक के लिए स्थगित कर दी जाती है। जब शिकायत किए जाने के समय सदस्य, जिसके विरुद्ध शिकायत है, सभा में उपस्थित हो, तो उसकी बात सुनी जाती है और उसके बाद अध्यक्ष उसे सभा से चले जाने के लिये कहता है।

अन्य बातों के संबंध में, कथित विशेषाधिकार हनन या सभा की अवमानना की शिकायत चाहे किसी सदस्य के विरुद्ध हो या किसी अजनबी के, उसके निपटारे की प्रक्रिया एक जैसी है।

दूसरे सदन के सदस्यों अथवा अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें

संसद का कोई भी सदन दूसरे सदन के किसी सदस्य पर न तो अपने प्राधिकार का दावा कर सकता है और न ही उसका प्रयोग कर सकता है। परिणामस्वरूप, कोई भी सदन स्वयं, दूसरे सदन के किसी सदस्य या अधिकारी द्वारा किये गये किसी विशेषाधिकार हनन या अवमानना के लिये उसे दंड नहीं दे सकता।

---

338. *एल.एस. डिबेट्स,* 7.5.1959, कॉ. 15576-79 और 9.5.1959, कॉ. 16040-42 ।

339. *एल.एस. डिबेट्स,* 4.12.1981, कॉ. 326-27 और 17.12.1981, कॉ. 316-17 ।

किसी सदस्य द्वारा अपने सदन या भारत के किसी भी राज्य विधानमंडल में दिये गये किसी भाषण के आधार पर विशेषाधिकार हनन या सभा की अवमानना का मामला नहीं बनाया जा सकता क्योंकि संसद के प्रत्येक सदन तथा सभी राज्य विधानमंडलों की कार्यवाही विशेषाधिकार प्राप्त हैं और किसी सदन में कही गयी किसी बात के आधार पर किसी अन्य सदन में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती।

> 26 मार्च, 1959 को एक सदस्य ने सभा का ध्यान भुवनेश्वर से प्रकाशित होने वाले उड़िया दैनिक 'समाज' के 18 मार्च, 1959 के अंक में प्रकाशित एक समाचार की ओर दिलाया, जिसमें कथित रूप से उड़ीसा के मुख्यमंत्री ने संसद सदस्यों के विरुद्ध अतिरंजित और असामान्य टिप्पणियां की थीं। सदस्य ने कहा कि उड़ीसा के मुख्यमंत्री तथा 'समाज' के सम्पादक को अपने आचरण के बारे में स्पष्टीकरण देने के लिए सभा के कठघरे में बुलाया जा सकता है अथवा इसके विकल्प में यह मामला जांच करने और इस पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु विशेषाधिकार समिति को सौंपा जा सकता है।
>
> अध्यक्ष ने, इस कारण से अपनी सहमति देने से इंकार करते हुए कि प्रत्येक सदन अपनी कार्यवाही के मामले में सर्वोच्च है, यह विनिर्णय दिया:
>
> यदि वास्तव में माननीय मुख्यमंत्री ने वही कहा है जिसका कि उन पर आरोप लगाया गया है, तो यह खेदजनक है... यदि यह वास्तव में सच है, तो ऐसा आगे नहीं होना चाहिए। मैं आशा करता हूँ और मुझे विश्वास है कि इस हितकर सिद्धांत का सर्वत्र अनुपालन होगा—कोई भी सदन दूसरे सदन पर या उसके सदस्य पर कोई आक्षेप नहीं लगाएगा और न ही कोई सदस्य दूसरे सदन के किसी सदस्य पर अथवा उस सदन पर कोई आक्षेप लगाएगा।[340]

30 मार्च, 1970 को राज्य सभा में वाद-विवाद के दौरान उस सभा के एक सदस्य ने लोक सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध कतिपय आरोप लगाए। इस संबंध में लोक सभा में कुछ चर्चा करने के बाद अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति का ध्यान इस मामले की ओर आकर्षित करते हुए पत्र प्रेषित किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उन्होंने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "आप इस बात से सहमत होंगे कि किसी भी सभा के सदस्यों के लिए यह वांछनीय है कि वे अपनी सभा में दूसरी सभा के सदस्यों पर कोई आरोप अथवा आक्षेप लगाएं।"
>
> राज्य सभा के सभापति ने लोक सभा अध्यक्ष से सहमति व्यक्त करते हुए अपने उत्तर में कहा कि राज्य सभा के उप सभापति ने सदस्य के भाषण के संबंध में अपना निरनुमोदन पहले ही व्यक्त कर दिया था।[341]

---

340. *समाज का मामला, लो.स.वा.वि.,* 26.3.1959, पृ. 3976 ।

341. *लो.स.वा.वि.,* 1.9.1970, पृ. 154; *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट,* 1971, खंड XVI, 2, पृ. 49 साथ ही *देखिए; हिन्दुस्तान का मामला-बिभूति मिश्र का प्रकाशित भाषण, प्रिविलेजिस डाइजेस्ट,* 1973, खंड XVIII, 2, पृ. 24-26; *रा.स.वा.वि,* 19.6.1967, 22.6.1967 और 24.12.1969 तथा *गोवा, दमन और दीव विधान सभा डिबेट्स,* 24.3.1975 ।

तथापि, यदि दूसरे सदन के सदस्य अथवा किसी अन्य राज्य विधानमंडल के किसी सदस्य ने अपने सदन से बाहर ऐसा किया है तो उसके विरुद्ध विशेषाधिकार हनन अथवा सदन की अवमानना के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है।

> 11 मई, 1954 को राज्य सभा में एक सदस्य ने विशेषाधिकार का प्रश्न उठाते हुए यह आरोप लगाया कि लोक सभा के एक सदस्य ने अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के इकत्तीसवें अधिवेशन में राज्य सभा की कार्यवाही पर आक्षेप लगाए थे तथा उसने यह अनुरोध किया कि मामले की जांच के लिए कदम उठाए जाएं।
>
> अगले दिन, जिस सदस्य के विरुद्ध यह आरोप लगा था उसने सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया और कहा कि विगत रात्रि को उन्हें राज्य सभा के सचिव द्वारा जारी एक नोटिस दिया गया। प्रधान मंत्री ने कहा कि पत्र में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं था और यह कहा कि 1952 में *सुन्दरैया मामले* में राज्य सभा के एक सदस्य ने लोक सभा द्वारा की जा रही एक जांच में सहायता की थी।
>
> 15 मई, 1954 को सभापति ने राज्य सभा को सूचित किया कि उन्हें लोक सभा अध्यक्ष से एक संदेश मिला था जिसके साथ संबंधित सदस्य का वक्तव्य संलग्न था। अपने सह टिप्पण में, अध्यक्ष ने उस सुझाव का उल्लेख किया जो उसने सभा में दिया था कि दोनों सभाओं की विशेषाधिकार समितियों को ऐसे मामलों के लिए परस्पर सहमति से एक समान प्रक्रिया विकसित करनी चाहिए। इस पर राज्य सभा ने सहमति व्यक्त की थी।
>
> लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक का प्रतिवेदन दोनों सभाओं में 23 अगस्त, 1954 को प्रस्तुत किया गया था जिसमें उन मामलों के लिए प्रक्रिया निर्धारित की गई थी जिनमें एक सभा के सदस्य ने दूसरी सभा का विशेषाधिकार हनन किया हो। लोक सभा ने 2 दिसम्बर, 1954 को प्रतिवेदन को स्वीकृत किया।[342]

तद्नुसार, जब किसी सभा में सभा के विशेषाधिकार हनन या अवमानना का ऐसा प्रश्न उठाया जाता है, जिसमें दूसरी सभा के सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी का मामला अन्तर्ग्रस्त होता है, तब इस प्रक्रिया का पालन किया जाता है कि जिस सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया है उसका पीठासीन अधिकारी दूसरी सभा के पीठासीन अधिकारी को उस मामले को भेज देता है, लेकिन ऐसा वह तभी करता है जब वह उस सदस्य की बात से संतुष्ट हो जाता है, जिसने उस मामले को उठाया है अथवा उस दस्तावेज का, जिसके आधार पर यह शिकायत की गई है, गहन अध्ययन करने के पश्चात् ऐसा निर्णय लेता है कि विशेषाधिकार हनन हुआ है।[343] इस प्रकार से भेजे गए मामले में दूसरी सभा के पीठासीन अधिकारी का यह

---

342. दोनों सभाओं में हुई चर्चा की विस्तृत जानकारी के लिए *देखिए आर.एस. डिबेट्स,* 11.5.1954, कॉ. 5999-6000; 14.5.1954, कॉ. 6424-33; 15.5.1954, कॉ. 6539-41: *एच.पी.डिबेट्स* (II), 12.5.1954, कॉ. 7161-69; 13.5.1954, कॉ. 7275-83 ।

343. लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक का प्रतिवेदन तथा राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति का 32वां प्रतिवेदन।

कर्त्तव्य है कि वह उस मामले का निपटान उसी प्रकार करे जैसे वह उसी सभा अथवा उसके सदस्य के विशेषाधिकार हनन का मामला है। इसके पश्चात्, वह पीठासीन अधिकारी उस सभा के जहां यह मामला मूलत: उठाया गया था, पीठासीन अधिकारी को जांच, यदि कोई हो, की रिपोर्ट और संदर्भित मामले पर की गई कार्यवाही के बारे में सूचना भेजता है।

यदि दोषी सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी उस सभा जिसमें यह प्रश्न उठाया गया था के पीठासीन अधिकारी से, अथवा दूसरी सभा के पीठासीन अधिकारी से, जिसे यह मामला भेजा गया था, क्षमा याचना कर लेता है, तो इस मामले में सामान्यत: आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाती है।[344]

> कांग्रेस संसदीय दल की एक बैठक में, एक सदस्य ने दो मंत्रियों के विरुद्ध कुछ आरोप लगाए थे। 20 जून, 1967 को प्रधानमंत्री ने सभा में यह वक्तव्य दिया कि सदस्य द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर ये आरोप सिद्ध नहीं होते हैं।[345]
>
> 21 जून, 1967 को सभा में विशेषाधिकार का यह प्रश्न उठाया गया, कि चूंकि दोनों मंत्रियों, जो सभा के सदस्य हैं, के विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं हुए, इस मामले में पूरी सभा की बदनामी हुई। यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया कि विशेषाधिकार का मामला दोनों सभाओं की विशेषाधिकार समितियों के संयुक्त प्रतिवेदन द्वारा विकसित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही करने के लिए राज्य सभा के सभापति को भेज दिया जाए।
>
> विधि मंत्री ने वाद-विवाद में भाग लेते हुए टिप्पणी की कि "वक्तव्य सार्वजनिक रूप से नहीं बल्कि दल की बैठक में दल के नेता को सम्बोधित करते हुए दिया गया था... और यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया गया था, जो दल का एक सदस्य है और इसलिए उसके विरुद्ध दल के नेता, प्रधान मंत्री द्वारा दलीय अनुशासन के हित में कार्यवाही की जा सकती है।" उसने प्रस्ताव का दो कारणों से विरोध किया: "पहला, चूंकि यह कांग्रेस दल का अंदरूनी मामला है, और दूसरा, क्योंकि यदि इन्हें (ऐसे मामलों को) विशेषाधिकार हनन माना जायेगा तो देश में दल का कार्यकरण असम्भव हो जाएगा।"
>
> लम्बे वाद-विवाद के बाद, प्रस्ताव पर मतदान कराया गया और सभा द्वारा इसे अस्वीकृत कर दिया गया।[346]

अध्यक्ष ने 17 अगस्त, 1987 को सभा को सूचित किया कि उन्हें रक्षा अनुसंधान और विकास विभाग में राज्य मंत्री (जो कि दूसरे सदन का सदस्य था) के विरुद्ध 15 अप्रैल, 1987 को सभा में उनके द्वारा दिए गए एक वक्तव्य द्वारा सभा को कथित रूप से, जानबूझकर गुमराह किये जाने के संबंध में एक विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना प्राप्त हुई थी। अध्यक्ष ने सभा को यह भी सूचना दी कि मंत्री से प्राप्त टिप्पणियों और उस सदस्य, जिसे मंत्री की टिप्पणियों की प्रति भेजी गई थी, से विशेषाधिकार के प्रश्न के संबंध में प्राप्त एक और सूचना

---

344. *एन.सी. चटर्जी का मामला, आर.एस. डिबेट्स,* 8.12.1954, कॉ. 1134 ।

345. *अर्जुन अरोड़ा का मामला, लो.स.वा.वि.,* 30.5.1967 और 20.6.1967 ।

346. लो.स.वा.वि., 21.6.1967 ।

का अध्ययन करने के पश्चात्, उनका विचार उस मामले को राज्य सभा की उप सभापति के पास ऐसी कार्यवाही हेतु भेजने का है, जो उनके विचार से इस तथ्य को देखते हुए आवश्यक और समुचित हो कि मंत्री दूसरे सदन का सदस्य है और इसलिए विशेषाधिकार के प्रश्न से लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठकों के प्रतिवेदन में निर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार निपटा जा सकता है। राज्य सभा के सभापति ने 25 मार्च, 1988 को विशेषाधिकार के प्रश्न को अस्वीकृत कर दिया और इस विनिर्णय की एक प्रति लोक सभा अध्यक्ष को भेज दी।[347]

जहां पर किसी संसद सदस्य द्वारा किसी राज्य विधानमंडल अथवा राज्य विधानमंडल के किसी सदस्य द्वारा संसद अथवा दूसरे राज्य के विधानमंडल की अवमानना अथवा उसका विशेषाधिकार हनन किया गया हो, तो एक ऐसी परिपाटी विकसित की जा रही है कि जब किसी विधानमंडल में विशेषाधिकार हनन का कोई ऐसा प्रश्न उठाया जाता है, जिसमें अन्य विधानमंडल का सदस्य संलिप्त हो, तब पीठासीन अधिकारी उस मामले को उस विधानमंडल, जिससे उक्त सदस्य सम्बद्ध है, के पीठासीन अधिकारी के पास भेजता है और संबंधित पीठासीन अधिकारी उस विशेषाधिकार हनन के मामले से उसी तरह से निपटता है जैसे कि वह मामला उसी सभा के विशेषाधिकार हनन का मामला हो, परन्तु जब तक उस मामले को उठाने वाले सदस्य की बात सुनने अथवा जहां पर किसी दस्तावेज पर आधारित शिकायत है, तो उस दस्तावेज का अध्ययन करने के बाद पीठासीन अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि कोई विशेषाधिकार हनन नहीं हुआ है अथवा मामला इतना तुच्छ है कि उस पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है, वह ऐसे मामले में विशेषाधिकार हनन के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकता है। यह प्रक्रिया उन विधानमंडलों द्वारा अपनाई जा रही है जिन्होंने इस आशय का संकल्प स्वीकृत कर लिया है।

4 अक्तूबर, 1982 को सभा में एक विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी गई थी जो कि एक सदस्य को एक विधान सभा के कथित विशेषाधिकार हनन और अवमानना के सिलसिले में उस सभा के समक्ष कथित रूप से बुलाए जाने के बारे में था क्योंकि उस सदस्य ने एक प्रेस वक्तव्य में यह आरोप लगाया था कि राज्य सभा के चुनाव के लिए उसकी पार्टी का उम्मीदवार इसलिए हार गया क्योंकि "विपक्ष के कुछ विधान सभा सदस्यों को खरीद लिया गया था।"

इसी प्रकार, 22 अगस्त, 1984 को लोक सभा के अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि एक विधान सभा द्वारा उस राज्य की विधान परिषद की समाप्ति का प्रस्ताव करने के संबंध में पारित संकल्प को कथित रूप से अस्वीकार करने के लिए सभा के एक सदस्य (जो केन्द्रीय विधि मंत्री भी था) के विरुद्ध विशेषाधिकार के प्रश्न को उसकी विशेषाधिकार समिति को सौंपे जाने के संबंध में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाए जाने की अनुमति मांगी गई है।

---

347. *लो.स.वा.वि.,* 17.8.1987; *रा.स.वा.वि.,* 24.8.1987 और 25.3.1988; और *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, खंड* XXXIII, 1, पृ. 1-5 ।

अध्यक्ष ने सभा को यह सूचित करते हुए कि उन्हें इस संबंध में न तो विधान सभा से और न ही सम्बद्ध सदस्य से कोई संसूचना प्राप्त हुई है, यह टिप्पणी की कि यह सुस्थापित परिपाटी रही है कि किसी ऐसे सदस्य के विरुद्ध जो दूसरे विधानमंडल से सम्बद्ध हो, यदि विशेषाधिकार हनन या सभा की अवमानना का प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है, तो उस मामले को उस विधानमंडल के पीठासीन अधिकारी को ऐसी कार्यवाही के लिए भेज दिया जाता है जिसे वह आवश्यक समझे।

अध्यक्ष ने आशा व्यक्त की कि इस संवदेनशील और महत्वपूर्ण मुद्दे पर विचार करते समय सभी सम्बद्ध व्यक्ति सुसंगत तथ्यों को ध्यान में रखेंगे।[348]

अध्यक्ष द्वारा विशेषाधिकार के प्रश्नों को विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाना

अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह, स्वप्रेरणा से, विशेषाधिकार हनन या अवमानना के किसी भी प्रश्न की जांच, और अन्वेषण करने तथा प्रतिवेदन देने के लिए इसे विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।[349] ऐसा करते समय अध्यक्ष के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह इस मामले को सभा के उस विचार तथा विनिर्णय के लिए उसके समक्ष रखे कि क्या मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाये।

> जैसाकि पहले कहा गया है, चूंकि केवल सभा ही अपने विशेषाधिकारों के मामले में सर्वोपरि है, इसलिए सामान्यत: विशेषाधिकार के सभी प्रश्नों पर सभा द्वारा ही विचार किया जाना चाहिए। अध्यक्ष की शक्ति मूलत: यह देखना है कि क्या कोई मामला प्रत्यक्षत: ऐसा है जिसे सभा के अन्य कार्यों की तुलना में प्राथमिकता देकर विशेषाधिकार के मामले के रूप में उठाए जाने की अनुमति दी जा सकती है। एक बार जब अध्यक्ष किसी मामले को विशेषाधिकार के मुद्दे के रूप में उठाए जाने की अनुमति दे देता है, तब सभा को ही यह विनिश्चय करना होता है कि क्या वास्तव में विशेषाधिकार हनन या सभा की अवमानना का मामला बनता है और क्या उस संबंध में स्वयं सभा को विनिश्चय करना चाहिए अथवा इसे विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाना चाहिए। यद्यपि कुछ मामलों में अध्यक्ष ने सदस्य द्वारा मामले को सभा में उठाए जाने की अनुमति दे दी और तत्पश्चात् घोषणा कर दी कि वह अपनी वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करते हुए मामले को समिति को सौंप रहे हैं;[350] उत्तरवर्ती अध्यक्षों ने इस वैवेकिक शक्ति का यह अर्थ लिया कि अध्यक्ष स्वयं केवल ऐसे मामले को ही समिति को सौंप सकता है जिस पर सभा में ऐसी व्यापक सहमति हो; कि अध्यक्ष की शक्ति सभा की शक्ति की समवर्ती अथवा प्रतिस्थानी नहीं है और इस नियम का एकमात्र उद्देश्य सभा के समय की बचत करना और ऐसे मामलों में औपचारिक प्रक्रिया को संक्षिप्त करना है, जहां चर्चा से यह ज्ञात होता हो कि मामले को समिति को सौंपे जाने पर आम सहमति है।

---

348. *लो.स.वा.वि.*, 22.8.1984; *प्रिविलेजिस डाइजेस्ट, खंड* XXIX, 2, पृ. 6-7 ।

349. नियम 227 ।

350. *देशपांडे का मामला* (पहली लोक सभा-1952); *दशरथ देव का मामला* (पहली लोक सभा-1952); *सिन्हा का मामला* (पहली लोक सभा-1952) और *सुन्दरैया का मामला* (पहली लोक सभा-1952)।

तथापि, कई मामलों में, अध्यक्ष ने ऐसा विषय, सभा के समक्ष लाए बिना सीधे समिति को सौंप दिया।[351]

अध्यक्ष जब अपनी वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करते हुए विशेषाधिकार का कोई प्रश्न विशेषाधिकार समिति को सौंपता है, तो समिति सामान्यतः अपना प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत करती है।[352] तत्पश्चात् अध्यक्ष या तो मामले को बंद कर देता है अथवा समिति का प्रतिवेदन सभा पटल पर रखे जाने का निदेश दे देता है।[353] तब इस मामले पर और आगे कार्यवाही सभा के निर्णय के अनुसार की जाती है।

अध्यक्ष की निदेश देने की शक्ति

अध्यक्ष, विशेषाधिकार समिति में या सभा में विशेषाधिकार प्रश्न पर विचार से संबंधित सब विषयों के बारे में प्रक्रिया विनियमन के लिए ऐसे निदेश दे सकेगा जो आवश्यक हों।[354]

दूसरे सदन अथवा राज्य विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी समिति के समक्ष साक्षी के रूप में सदस्य की उपस्थिति

संसद के किसी भी सदन को, किसी अवसर पर दूसरे सदन के किसी सदस्य को अपने समक्ष उपस्थित होने के बाध्य करने की बात तो दूर, उसे बुलाने का भी प्राधिकार नहीं है। यदि दूसरे सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए किसी सदन के सदस्य की उपस्थिति वांछित हो, तो न केवल उस सदन की अनुमति जिसका वह सदस्य है अपितु संबंधित सदस्य की सहमति प्राप्त करना भी आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, किसी सदन का सदस्य साक्ष्य देने के लिए दूसरे सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष उपस्थित होने के बाध्य नहीं है और यदि वह साक्ष्य देने का इच्छुक भी हो तो भी वह उस सदन, जिसका

देशपांडे के मामले में अध्यक्ष मावलंकर ने टिप्पणी की कि वह नियम 314 (वर्तमान नियम 227) के अंतर्गत अपने प्राधिकार का प्रयोग करते हुए मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपना पंसद करेंगे ताकि सदन को "प्रक्रिया नियमों में निर्धारित लम्बी प्रक्रिया" से गुजरना न पड़े— *एच.पी. डिबेट्स* (II), 27.5.1952, पृ. 621 ।

351. पहले प्रतिवेदन से सातवां प्रतिवेदन, दसवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा), पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–आठवीं लोक सभा), दूसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–नौवीं लोक सभा)।

352. तथापि, *देशपांडे का मामला;* (पहली लोक सभा–1952); *दशरथ देव का मामला;* (पहली लोक सभा–1952); *सिन्हा का मामला;* (पहली लोक सभा–1952) और *सुन्दरैया का मामला* (पहली लोक सभा–1952) में समितियों ने अपने प्रतिवेदन सभा को प्रस्तुत किए।

353. कुछ मामलों में समितियों ने अध्यक्ष से स्वयं सिफारिश की कि प्रतिवेदन सभा पटल पर रखा जाए–*देखिए* छठा, सातवां और दसवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)।

354. नियम 228 । सभा द्वारा विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने संबंधी प्रक्रिया के लिए *देखिए,* अध्याय 30 'संसदीय समितियां' के अन्तर्गत शीर्षक 'विशेषाधिकार समिति'।

वह सदस्य है, की अनुमति के बिना ऐसा नहीं कर सकता है।[355] इस स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता, चाहे सदन का सत्र चल रहा हो अथवा नहीं।[356]

यह सिद्धांत के किसी सदन और किसी राज्य विधानमंडल के सदन के बीच अथवा विभिन्न राज्य विधानमंडलों के सदनों और उनके सदस्यों के बीच उसी प्रकार लागू होता है जैसे कि संसद के दोनों सदनों तथा उनके सदस्यों के बीच लागू है।[357]

इस सिद्धांत के अनुसार, लोक सभा अपने किसी सदस्य को संसद के दूसरे सदन अथवा उसकी किसी समति अथवा राज्य विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य देने की अनुमति प्रदान नहीं करती जब तक कि उसमें उपस्थित होने के लिए अनुरोध नहीं किया गया हो और जब तक कि उस सदस्य ने, जिसकी वहां उपस्थिति अपेक्षित है, अपनी सहमति न दी हो। यह आवश्यक है कि संसद के दूसरे सदन अथवा उसकी किसी समिति अथवा राज्य विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के ऐसे अनुरोध में उस कारण और प्रयोजन का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए जिसके लिए सदस्य की उपस्थिति वांछित है।[358]

सदस्य का यह भी कर्तव्य है कि वह सभा से पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना दूसरे सदन अथवा उसकी किसी समिति अथवा राज्य विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष कोई साक्ष्य न दे। सदस्य द्वारा अपने कर्त्तव्य में किसी तरह की उपेक्षा अथवा कर्त्तव्य भंग को सभा की अवमानना माना जाएगा।[359]

जब दूसरे सदन अथवा किसी समिति अथवा राज्य विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए किसी सदस्य द्वारा सभा के अनुमति मांगने का अनुरोध प्राप्त होता है, तो उस विषय को अध्यक्ष द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाता है।[360] समिति के प्रतिवेदन पर सभा में समिति के सभापति अथवा किसी सदस्य द्वारा इस आशय का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है कि सभा प्रतिवेदन से सहमत है और तत्पश्चात् सभा के निर्णयानुसार आगे की कार्यवाही की जाती है।[361]

---

355. *देखिए* छठा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)।
356. *पूर्वोक्त* ।
357. *पूर्वोक्त* ।
358. दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति द्वारा अपने छठे प्रतिवेदन में पद्धति और प्रक्रिया निर्धारित की गई थी जिसे सदन ने 17 दिसम्बर, 1958 को स्वीकृत किया था।
359. *लीलाधर कोटकी का मामला, लो.स.वा.वि.*, 19.12.1958, पृ. 3117 ।
360. *देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)।
361. *लो.स.वा.वि.*, 25.4.1958, पृ. 5437 ।

लोक सभा के सदस्यों द्वारा आस्तियों और देयताओं की घोषणा

एक सिविल अपील[362] में उच्चतम न्यायालय के समक्ष महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि मतदाताओं को मतदान से पूर्व अपने उम्मीदवार का सुसंगत विवरण जानने का अधिकार है या नहीं। अपील में भारतीय विधि आयोग के 170वें प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों को आधार बनाया गया था जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ अपेक्षा की गई थी कि उम्मीदवार अपने, अपने पति/पत्नी और आश्रित संबंधियों के स्वामित्व वाली आस्तियों के विवरण का सत्य और ठीक प्रकटन करे। उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक अधिकार समझौते को आधार बनाते हुए अभिमत व्यक्त किया था कि लोकतंत्र में सूचना प्राप्त करने का अधिकार सर्वमान्य है और लोकतंत्र की अवधारणा से प्रवाहित होने वाला नैसर्गिक अधिकार है। तदनुसार न्यायालय ने निर्वाचन आयोग को निर्देश दिया कि वह संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए आवश्यक आदेश जारी करके संसद या राज्य विधानमंडल के लिए निर्वाचित होने के इच्छुक प्रत्येक उम्मीदवार से अन्य बातों के साथ-साथ शपथ-पत्र पर अपनी अपने पति/पत्नी एवं अपने आश्रितों की आस्तियों (अचल, चल, बैंक में जमा धन आदि) के साथ-साथ देयताओं की यदि कोई हों, विशेषत: जब किसी लोक वित्तीय संस्थान या सरकार का अतिशोध्य हो, सूचना मांगे।

इसके अनुसरण में, सरकार ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में अपेक्षित संशोधनों के संबंध में आम सहमति बनाने की दृष्टि से 08 जुलाई, 2012 को राजनीतिक दलों की बैठक आयोजित की। विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों ने एकमत से कहा कि राजनीति का अपराधीकरण रोकने की आवश्यकता है और उन्होंने सुझाव दिया कि प्रारूप विधेयक परिचालित किया जाए। तदनुसार, प्रारूप विधेयक तैयार किया गया और 2 अगस्त, 2002 को हुई राजनीतिक दलों की बैठक में इस पर चर्चा हुई। इसी क्रम में संसद द्वारा लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 2002 पारित किया गया जिसके माध्यम से लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में धारा 75क अंत: स्थापित हुई जिसमें सदस्यों द्वारा आस्तियों और देयताओं के संबंध में सूचना प्रदान किए जाने का उपबंध है।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 75क की उप-धारा (3) के अधीन अध्यक्ष, लोक सभा को प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए वर्ष 2004 में लोक सभा सदस्य (आस्तियों और देयताओं की घोषणा) नियम, 2004 बनाए गए। आस्ति और देयता नियमावली के नियम 3 के अनुसार लोकसभा के लिए निर्वाचित प्रत्येक उम्मीदवार शपथ लेने अथवा प्रतिज्ञान करने की तारीख से नब्बे दिन के अंदर प्रारूप–I में धारा 75क की उप-धारा (1) के अनुसरण में निम्नलिखित अपेक्षित सूचना अध्यक्ष को प्रस्तुत करेगा:–

(i) चल और अचल सम्पत्ति जिसका स्वामी अथवा लाभार्थी वह सदस्य, उसका पति/पत्नी और आश्रित बच्चे संयुक्त रूप से अथवा.... पृथक्त हों।

---

362. वर्ष 2001 की सिविल अपील सं. 7178 (भारत का संघ बनाम ऐसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफार्म्स एंव एक अन्य)

(ii) किसी लोक वित्त संस्थान के प्रति उसकी देयताएं; और

(iii) केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकारों के प्रति उसकी देयताएं।

किसी सदस्य द्वारा आस्ति और देयता नियमावली, 2004 का जानबूझ कर उल्लंघन जिसमें सम्मिलित है आस्तियों और देयताओं की सूचना को दबाना, सभा के विशेषाधिकार का उल्लंघन माना जाएगा। भारत का कोई भी नागरिक अथवा कोई अन्य सदस्य शपथ-पत्र और यदि उसके पास ऐसा कोई दस्तावेजी साक्ष्य हो जिस पर वह निर्भर करता हो, उसके साथ अध्यक्ष को लिखित शिकायत कर सकता है कि किसी सदस्य ने आस्ति और देयता नियमावली के उपबंधों का जानबूझ कर उल्लंघन किया है। ऐसी शिकायत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में अधिकथित रीति से हस्ताक्षरित और सत्यापित भी की जाएगी। यदि शिकायत में नियमावली की प्रक्रियागत अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया हो तो उसे अध्यक्ष द्वारा उसके उपाबंधों के साथ उस पर सदस्य की लिखित टिप्पणी मांगते हुए ऐसे सदस्य को अग्रेषित किया जाता है।

टिप्पणी प्राप्त होने और उस पर विचार करने के पश्चात् ऐसा समाधान होने पर कि नियमों का जानबूझ कर उल्लंघन नहीं हुआ है, अध्यक्ष शिकायत को नामंजूर कर सकता है। तथापि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते यदि अध्यक्ष का समाधान हो कि ऐसा करना आवश्यक अथवा समीचीन है, वह शिकायत को जांच करने और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु विशेषाधिकार समिति को भेज सकता है।

लोक सभा सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों द्वारा नयाचार प्रतिमान का उल्लंघन और अवमानपूर्ण व्यवहार संबंधी समिति

2 अगस्त, 2012 को अध्यक्ष ने नयाचार उल्लंघन की, जिसे विशेषाधिकार भंग न माना जाए, शिकायतों पर कार्रवाई करने हेतु एक तदर्थ समिति नामतः लोक सभा सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों द्वारा नयाचार प्रतिमान का उल्लंघन और अवमानपूर्ण व्यवहार संबंधी समिति का गठन[363] किया।

समिति के निम्नलिखित विचारार्थ विषय होंगे-

(क) निम्नलिखित के संबंध में अध्यक्ष द्वारा उसे भेजी गई शिकायत की जांच करना।

(i) संसद सदस्यों के साथ पदीय व्यवहार के संबंध में समय-समय पर निर्धारित नयाचार प्रतिमानों का उल्लंघन।

(ii) प्रशासन और संसद सदस्यों के बीच पदीय व्यवहार के संबंध में सरकार द्वारा जारी निर्देशों अथवा दिशानिर्देशों का उल्लंघन; और

(iii) पदीय व्यवहार के दौरान सरकारी सेवकों द्वारा किसी सदस्य के साथ अशिष्ट व्यवहार के संबंध में अध्यक्ष द्वारा उसे भेजी गई प्रत्येक शिकायत की जांच, करना और

(ख) ऐसी सिफारिशें करना जो वह उचित समझे।

---

363. समाचार भाग-2, 2-8-2012, पैरा 4274-78

अध्याय 12

सदस्यों का आचरण

संसदीय जीवन में उच्चतम परम्पराएं बनाये रखने के लिए सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे सभा में और सभा के बाहर आचरण का एक निश्चित स्तर बनाये रखें। उनका व्यवहार इस प्रकार का होना चाहिए जिससे संसद तथा उसके सदस्यों की गरिमा बढ़े। सदस्यों का आचरण प्रथाओं के प्रतिकूल अथवा सभा की प्रतिष्ठा के विरुद्ध अथवा किसी भी प्रकार से उस स्तर के विपरीत नहीं होना चाहिए, जिसकी आशा संसद अपने सदस्यों से करती है।[1]

---

1. संसद अपने सदस्यों से जिस स्तर के आचरण की अपेक्षा करती है, उसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं:

    सदस्यों को विश्वास में लेकर जो जानकारी उन्हें दी जाती है या जो जानकारी उन्हें संसद की समितियों के सदस्य होने के नाते दी जाती है वह उन्हें किसी और को नहीं देनी चाहिए और न उसका प्रयोग उन्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उस पेशे में करना चाहिए, जिसमें वे लगे हुए हैं; उदाहरण के लिए समाचारपत्र के सम्पादक या संवाददाता का पेशा या किसी व्यापारिक फर्म के मालिक का पेशा आदि।

    सदस्य को सरकार से किसी ऐसी फर्म, कम्पनी या संस्था के लिए काम लेने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए जिसके साथ उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध हो।

    सदस्य को ऐसे प्रमाणपत्र नहीं देने चाहिएं जो तथ्यों पर आधारित न हों।

    सदस्य को सरकार की तरफ से जो निवास स्थान रहने के लिए दिया जाता है उसको किसी को किराये पर देकर लाभ नहीं उठाना चाहिए।

    सदस्य को ऐसे किसी मामले में, जिसमें उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वित्तीय हित हो, सरकार के अधिकारियों या मंत्रियों पर अनुचित प्रभाव नहीं डालना चाहिये।

    सदस्य को किसी ऐसे व्यक्ति या संगठन से, जिसकी ओर से उसे काम करना है, उस काम के लिये जोकि वह करना चाहता है या करने का विचार रखता है, किसी प्रकार का आतिथ्य स्वीकार नहीं करना चाहिए।

    सदस्य को एक वकील या कानूनी सलाहकार या कांउसेल या सालीसीटर के रूप में किसी मंत्री या किसी कार्यकारी अधिकारी के सामने पेश नहीं होना चाहिए जो अर्द्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता हो।

    सदस्य को अपने चुनाव क्षेत्र के लोगों की ओर से अपर्याप्त या निराधार तथ्यों के आधार पर कार्यवाही प्रारम्भ नहीं करनी चाहिए।

    सदस्य को किसी की शिकायतों के तत्पर समर्थक के रूप में अपने आपको इस्तेमाल नहीं होने देना चाहिए।

विशेषाधिकार समिति के अतिरिक्त, जो कि सभा और उसके सदस्यों के विशेषाधिकार भंग के मामलों की जांच करती है, समय-समय पर सभा की ओर से किसी सदस्य के आचरण की जांच करने और यह पता लगाने के लिए तदर्थ समितियां नियुक्त की जा सकती हैं कि वह आचरण सभा की प्रतिष्ठा को घटाने वाला था या नहीं और सदस्य से जिस स्तर की अपेक्षा की जाती है, उससे मेल खाता था या नहीं।[2]

सदस्य को जो धनराशि देय है उसके दावा करने वाले बिलों पर गलत प्रमाण-पत्र नहीं देना चाहिए।

सदस्य को किसी अधिकारी को प्रलोभन देकर अनधिकृत रूप से सरकार से ऐसी जानकारी प्राप्त नहीं करनी चाहिए जिसे उस अधिकारी को अपने कर्त्तव्यों के निवर्हन में सामान्य रूप से नहीं देना चाहिए और न ही किसी ऐसे व्यक्ति को लोक महत्व तथा नीति के मामलों में अपने वरिष्ठ अधिकारियों के विरुद्ध उससे बात करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

सदस्य को अपने किसी संबंधी या किसी ऐसे व्यक्ति के लिये, जिसमें उसकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दिलचस्पी हो, नौकरी या व्यापारिक संविदा प्राप्त करने के लिए सरकारी अधिकारियों को न कोई सिफारिशी पत्र लिखने चाहिएं और न ही उनसे इस संबंध में बात करनी चाहिए-समाचार भाग-2, 17.5.1952, पैरा 57 ।

2. (i) उदाहरण के लिये एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (*मुद्गल मामला*) 1951 में नियुक्त की गई थी और राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय कुछ सदस्यों के आचरण संबंधी दो समितियों की नियुक्ति क्रमश: 1963 और 1971 में की गई थी।

(ii) कुछ सदस्यों पर अनुचित आचरण के आरोपों की जांच के लिए 12 दिसंबर, 2005 को गठित समिति के प्रतिवेदन पर लोक सभा ने समिति के निष्कर्षों को स्वीकार करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया कि दस सदस्यों का आचरण अनैतिक था और संसद सदस्यों के लिए अशोभनीय है और उन्हें 23 दिसंबर, 2005 को सभा की सदस्यता से निष्कासित कर दिया।

(iii) श्रीमती जया बच्चन, संसद सदस्य (राज्य सभा) को लाभ का पद धारण करने की वजह से राष्ट्रपति के आदेश द्वारा 16 मार्च, 2006 को राज्य सभा की सदस्यता से निरर्ह कर दिया गया। इसी तरह कृष्ण मुरारी मोघे, संसद सदस्य (लोक सभा) को लाभ का पद धारण करने की वजह से राष्ट्रपति के आदेश द्वारा 10 जुलाई, 2007 को लोक सभा की सदस्यता से निरर्ह कर दिया गया।

(iv) लोक सभा के सदस्यों के अवचार की जांच करने के लिए गठित समिति (16 मई, 2007 को गठित) के तीसरे प्रतिवेदन में की गयी सिफारिशों के आधार पर लोक सभा ने 20 अगस्त, 2008 को एक सदस्य (बाबूभाई के. कटारा) को सभा की सदस्यता से निष्कासित करने संबंधी एक प्रस्ताव पारित किया।

1951 में, जब अंतःकालीन संसद के एक सदस्य श्री एच.जी. मुद्गल के आचरण की जांच करने के लिए एक समिति की नियुक्ति का प्रश्न सभा में उठा, तो कुछ सदस्यों ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये विशेष समिति बनाने की आवश्यकता पर संदेह प्रकट करते हुए कहा कि जब सभा की विशेषाधिकार समिति मौजूद है तो इस विशेष समिति की क्या जरूरत है। अध्यक्ष मावलंकर ने उस समय कहाः—

> (यद्यपि) नियमों के अंतर्गत एक विशेषाधिकार समिति बनी हुई है, तथापि सभा को यह शक्ति प्राप्त है कि यदि विशेष परिस्थितियां उत्पन्न हो जाएं और जांच करना आवश्यक हो, तो दूसरी विशेष समितियां बनाई जा सकती हैं। इसमें कोई असंगत बात नहीं है। इसके अलावा, यह प्रश्न विचारणीय है कि जिस प्रकार के आचरण का आरोप सदस्य पर लगा है, उससे वास्तव में सभा का विशेषाधिकार भंग हुआ है या वह कुछ और बात है। हो सकता है कि कोई सदस्य ऐसे ढंग का आचरण करे जोकि सभा नहीं चाहती फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह विशेषाधिकार का हनन नहीं है। इन सभी परिस्थितियों में हाउस ऑफ कॉमन्स में यह प्रथा रही है कि एक विशेष समिति नियुक्त की जाये और उस संबंध में प्रस्ताव लाने की प्रक्रिया वही है जिसका पालन आमतौर पर हाउस ऑफ कॉमन्स में किया जाता है, हालांकि वहां विशेषाधिकार समिति मौजूद है।[3]

'किसी सदस्य का आचरण' इस शब्दावली के अर्थ की व्यापकता की परिभाषा कहीं भी विस्तारपूर्वक नहीं की गयी है और सभा को यह शक्ति प्राप्त है कि प्रत्येक मामले में वह यह निश्चय करे कि क्या सदस्य ने अनुचित ढंग से काम किया है या ऐसे ढंग से काम किया है जो संसद सदस्य को शोभा नहीं देता। इसलिए हो सकता है कि किसी विशेष मामले के तथ्य किसी भी उस शीर्षक के अंतर्गत न आ सकें जो कि सभा के विशेषाधिकार भंग या अवमानना के हैं, फिर भी सम्भव है कि किसी सदस्य के आचरण के संबंध में सभा यह समझे कि वह अशोभनीय है और सभा की प्रतिष्ठा को गिराने वाला है।[4]

सभा को यह अधिकार है कि वह अपने सदस्यों को उनके अवचार के लिए दंड दे सकती है। वह सभा के अन्दर और सभा के बाहर सदस्यों के आचरण की जांच के लिए अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकती है। उनको यह भी शक्ति प्राप्त है कि वह सदस्यों को उनके

(v) 18 मई, 2007 को श्री राजेश कुमार माँझी के विरुद्ध आरोपों से संबंधित एक मामला सदस्यों के अवचार की जांच करने के लिये समिति को भेजा गया था। अपने प्रथम प्रतिवेदन में समिति ने सिफारिश की कि उन्हें सभा की इन बैठकों के लिये निलंबित किया जाए।

(vi) 22 जुलाई, 2008 को कुछ सदस्यों द्वारा विश्वास मत पर मतदान के संबंध में उन्हें कथित रूप से धनराशि दिए जाने के संबंध में की गई शिकायत की जांच के लिये एक समिति गठित की गई थी (चौदहवीं लोक सभा, दिसम्बर 2008)

3. *पी. डिबेट्स* (II), 6.6.1951, का. 10264-65 ।

4. *देखिए* कुछ सदस्यों के आचरण संबंधी समिति की रिपोर्ट, *उद्धृत कृति*, 1963, पृ. 7-8 ।

अव्यवस्थापूर्ण आचरण और अन्य अवमाननाओं के लिए दंड दे सके चाहे वे सभा में किए गए हों या सभा के बाहर।[5]

सदस्यों द्वारा किये गये अवचार अथवा अवमाननाओं के लिये सभा ये दंड दे सकती है: चेतावनी, भर्त्सना, सभा से चले जाने के लिये आदेश, सभा की सेवा से निलम्बन, कारावास और सभा से निष्कासन।[6]

यदि किसी समय अध्यक्षपीठ की यह राय हो कि किसी सदस्य का व्यवहार घोर अव्यवस्था पूर्ण है, तो उस सदस्य को तत्काल सभा से बाहर चले जाने का निदेश दिया जा सकता है।[7] जो सदस्य अध्यक्षपीठ के प्राधिकार की उपेक्षा करता है अथवा सभा के कार्य में

---

5. *पूर्वोक्त* ।

6. 29 अगस्त, 1966 को दिये गये एक निर्णय में, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने श्री यशवंत राव मेघावाले तथा श्री पंधारीराव कृदत्त को मध्य प्रदेश विधान सभा की सदस्यता से निष्कासित किए जाने को उचित ठहराया तथा यह निर्णय दिया कि चूंकि विधान सभा को यह शक्ति तथा विशेषाधिकार है कि वह किसी सदस्य को निष्कासित कर सकती है जिसके परिणामस्वरूप उसका वह स्थान खाली हो जाता है, इसलिए 17 मार्च, 1966 को विधान सभा द्वारा स्वीकृत दो संकल्पों, जिनके द्वारा उपरोक्त दो सदस्यों को निष्कासित किया गया था, की यथार्थता, वैधता अथवा औचित्य को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। *यशवंत राव मेघावाले बनाम मध्य प्रदेश विधान सभा,* ए.आई.आर. 1967 मध्य प्रदेश 95 ।

   तथापि, 18 अप्रैल, 1977 को दिये गए एक निर्णय में पंजाब तथा हरियाणा उच्च न्यायालय ने 3-2 के बहुमत को यह निर्णय दिया था कि राज्य विधान मंडल को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह विधिवत निर्वाचित सदस्यों को सभा की अवमानना किये जाने पर दंड के रूप में सभा से निष्कासित कर दे। निर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया था कि सभा की अवमानना के लिए दंड सुविदित तथा सुनिर्धारित हैं। इस हेतु उसकी निंदा की जा सकती है, सत्र की अवधि के दौरान उस सदस्य को सभा से निलम्बित किया जा सकता है, जुर्माना लगाया जा सकता है तथा अंत में सबसे महत्पूर्ण शक्ति यह है जिसके अधीन अवमानना करने वाले सदस्य को कारावास को सुपुर्द किया जा सकता है। *'हरद्वारी लाल मामला' हिन्दुस्तान टाइम्स*, 9.4.1977 ।

   श्री वी. किशोर चन्द्र एस. देव को संसदीय कार्य मंत्री द्वारा 15 अप्रैल, 1987 को प्रस्तुत तथा सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के द्वारा एक दिन के लिये सभा से निलम्बित किया गया था। श्री अजय विश्वास को 29 जुलाई, 1987 को संसदीय कार्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत तथा सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के द्वारा आठवीं लोक सभा के आठवें सत्र की शेष अवधि के लिए सभा से निलम्बित किया गया था। निलम्बन 30 जुलाई, 1987 से तत्काल प्रभाव से संसदीय कार्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत तथा सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव द्वारा रद्द कर दिया गया था।

   डा. दत्ता सामंत को 11 मई, 1988 को सभा की कार्यवाही में बार-बार रुकावट डालने के कारण सभा से बाहर जाने का निदेश दिया गया था।

7. नियम 373 ।

हठपूर्वक और जानबूझकर बाधा डालता है, पीठासीन अधिकारी उसका नाम ले सकता है और किसी अन्य सदस्य द्वारा रखे गए और सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर उस सदस्य को सभा की सेवा से निलम्बित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अथवा सभा के नियमों का उल्लंघन करके अथवा सभा में नारे लगाकर अथवा अन्य प्रकार से सभा की कार्यवाही में हठपूर्वक और जानबूझकर बाधा डालकर घोर अव्यवस्था उत्पन्न किए जाने की स्थिति में अध्यक्ष द्वारा सदस्य का नाम लिए जाने पर वह सभा की सेवा से लगातार पांच बैठकों के लिए या सभा की शेष अवधि के लिए, जो भी कम हो, स्वत: निलंबित हो जाएगा।[8] 'सदस्य को निकालने' का उद्देश्य यह है कि सभा में कोई ऐसा व्यक्ति न रहे जो सदस्य होने के योग्य नहीं है।

विशेषाधिकार समिति (ग्यारहवीं लोक सभा) ने 'आचार सार्वजनिक जीवन में मानदंड, संसद सदस्यों के विशेषाधिकार और सुविधाएं तथा अन्य संगत मामलों' संबंधी अपने प्रतिवेदन में मानदंडों/आचार संहिता के विभिन्न पहलुओं पर विस्तारपूर्वक विचार किया।[9]

सभा में उपस्थिति के समय सदस्यों द्वारा पालनीय नियम

सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे सभा की बैठक के दौरान कुछ नियमों का पालन करें जिन्हें तकनीकी भाषा में संसदीय शिष्टाचार के नियम कहा जाता है। ये नियम लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों तथा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर दिये गये विनिर्णयों पर आधारित हैं। सदस्यों को सभा की बैठक के दौरान लोक सभा में संसदीय शिष्टाचार के जिन नियमों का साधारणतया पालन करना होता है, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण नियम यह हैं:

> जब अध्यक्ष सभा में प्रवेश करते हैं तो सभी सदस्यों को बातचीत बन्द कर देनी चाहिए और अपनी सीटों पर जाकर अपने स्थानों पर खड़े हो जाना चाहिए। उस समय सभा में प्रवेश करने वाले सदस्यों को शांतिपूर्वक तब तक गलियारे में खड़ा रहना चाहिए जब तक अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण न कर लें।[10]
>
> सदस्य को सभा में कोई ऐसी पुस्तक, समाचारपत्र या पत्र नहीं पढ़ना चाहिए, जिसका संबंध सभा की कार्यवाही से न हो अथवा जो उसके लिए आवश्यक न हो।[11]

---

8. नियम 374 और नियम 374 क।
9. यह प्रतिवेदन 27 नवम्बर, 1997 को अध्यक्ष (ग्यारहवीं लोक सभा) को प्रस्तुत किया गया था। 4 दिसम्बर, 1997 को लोक सभा भंग कर दी गई। बाद में महासचिव ने बारहवीं लोक सभा के दौरान 28 मार्च, 1998 को इस प्रतिवेदन को लोक सभा के सभा पटल पर रखा। *देखिए* इसी अध्याय में उप-शीर्षक 'नैतिक सिद्धांत'।
10. लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, चौदहवां संस्करण, लोक सभा सचिवालय, 2004, पैरा 43(1)।
11. नियम 349 (एक); *लो.स.वा.वि.* 12.2.1959, कॉ. 667; 5.3.1963, कॉ. 2304-05 ।

सदस्य को किसी अन्य सदस्य के भाषण में अव्यवस्थित बात कहकर, सीत्कार करके भाषण के साथ-साथ उसकी टीका करके अथवा किसी अन्य प्रकार से बाधा डालकर अथवा शोर मचाकर अथवा किसी अव्यवस्थित रीति से बाधा नहीं डालनी चाहिए।[12] किसी के भाषण को समझने हेतु किसी बात को स्पष्ट करने के लिए या सूचना प्राप्त करने के लिए अथवा किसी वक्तव्य पर अतीक्ष्ण ढंग से आपत्ति करने के लिए कभी-कभार बीच में बोलने की अनुमति है, परन्तु बार-बार बीच में बोलकर व्यवधान डालने को अध्यक्ष ने हमेशा अनुचित माना है।[13] बार-बार व्यवधान डालने से कार्यवाही में गड़बड़ होती है और सारी सभा की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती है।[14]

जब सभा की बैठक चल रही हो तो प्रत्येक सदस्य को सभाकक्ष में प्रवेश करने तथा उससे बाहर जाने के समय शिष्टाचार बरतना चाहिए।[15]

सदस्य को सभा भवन में प्रवेश करते समय या बाहर जाते समय, अपने स्थान पर बैठते समय अथवा वहां से उठते समय अध्यक्षपीठ के प्रति नमन करना चाहिए।[16] यह सम्मान अकेले उस व्यक्ति के लिए नहीं होता जो उस समय अध्यक्षपीठ पर बैठा हो, बल्कि सारी सभा के लिए होता है।[17]

किसी सदस्य को अध्यक्षपीठ और उस सदस्य के बीच से नहीं गुजरना चाहिए जोकि भाषण दे रहा हो। अध्यक्षपीठ ने इस नियम के उल्लंघन को बहुत बुरा माना है।[18]

ज्यों ही अध्यक्ष बोलने के लिए खड़ा हो या 'शान्ति' रखने के लिए कहे और सभा को संबोधित करे, प्रत्येक सदस्य को अपने स्थान पर बैठ जाना चाहिए। जिस समय अध्यक्ष खड़ा हो, उस समय सदस्यों को सभा के बीच से नहीं लांघना चाहिए, न चलना चाहिए, न खड़े रहना चाहिए और न ही सभा में आना अथवा सभा से उठकर जाना चाहिए।[19]

---

12. नियम 349 (दो), और (नौ)
13. *लो.स.वा.वि.*, 25.4.1956, कॉ. 6309-10; साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स* (ii), 17.11.1950, कॉ. 250-51 ।
14. *लो.स.वा.वि..* (II), 22.7.1952, कॉ. 4324 ।
15. लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति* पैरा 43 (27)।
16. नियम 349 (तीन)।
17. *लो.स.वा.वि.* (II), 27.8.1956, कॉ. 4546-47; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 2.3.1961, पृ. 1399-1400 ।
18. नियम 349 (iv), साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 11.9.1957, कॉ. 13321; 1.4.1958, कॉ. 7768; *लो.स.वा.वि.,* 28.4.1958, पृ. 5645; *लो.स.वा.वि.*, 3.9.1965, कॉ. 3591; 29.8.1968, कॉ. 2681-82; लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति, पैरा* 43 (24)।
19. नियम 361 और लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(31); साथ ही *देखिए, पी. डिबेट्स* (II), 17.11.1950; कॉ. 249; 19.3.1951, कॉ. 4761-62; और *एच.पी. डिबेट्स* (I), 19.5.1952, कॉ. 1 ।

किसी सदस्य को जो सभा में बोल रहा हो, उस समय अपने स्थान पर बैठ जाना चाहिए जब कोई अन्य सदस्य वाद-विवाद के बीच में अध्यक्षपीठ की अनुमति से व्यवस्था के प्रश्न पर बोलता है अथवा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है।

सदस्य को सदैव अध्यक्षपीठ को संबोधित करना चाहिए।[20] अध्यक्ष ने इस बात को सदा अनुचित माना है कि सदस्य एक-दूसरे के साथ आपस में बहस करते रहें।

सदस्य को सभा को संबोधित करते समय अपने स्थान पर रहना चाहिए। जब कोई सदस्य उस स्थान पर न बैठा हो, जहां वह आमतौर पर बैठता है और वह कोई अनुपूरक प्रश्न पूछता है अथवा भाषण देने के लिए उठता है, तो अध्यक्ष उसे नहीं बुलाता है।[21] लेकिन अगर कोई सदस्य अपने स्थान से बोल रहा है और उसकी आवाज रिपोर्टरों या भाषान्तरकारों को ठीक से सुनाई नहीं दे रही है, तो उससे यह कहा जा सकता है कि वह माइक्रोफोन के पास के किसी स्थान से आकर बोले।

जब कोई सदस्य सभा में भाषण न दे रहा हो, तो उसे शान्त रहना चाहिए। सदस्यों को सभा भवन में परस्पर बातचीत नहीं करनी चाहिए, परन्तु यदि बातचीत करना अत्यन्त आवश्यक हो तो सदस्य धीमे स्वर में बातचीत कर सकते हैं, जिससे कि सभा की कार्यवाही में बाधा न पड़े। सदस्यों को एक-दूसरे के साथ बोलना या हंसी मजाक नहीं करना चाहिए।[22]

यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति किसी दीर्घा में अथवा विशेष स्थान (बॉक्स) में प्रवेश करे तो किसी सदस्य को प्रशंसा घोष नहीं करना चाहिए।[23]

किन्तु कुछ उपयुक्त मामलों में अध्यक्ष सभा की विशेष गैलरी में बैठे विशिष्ट विदेशी आगन्तुकों का उल्लेख कर सकता है तथा ऐसे अवसरों पर सदस्य अपनी मेजें थपथपाकर उन आगन्तुकों का स्वागत कर सकते हैं।[24]

सभा भवन के भीतर बैठे किसी भी सदस्य को गैलरी में बैठे किसी व्यक्ति से बात नहीं करनी चाहिए न ही कोई निर्देश करना चाहिए अथवा न ही उनसे अपील करनी

---

20. नियम 349 (छ:) और लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43 (29-xii)।
21. नियम 349 (सात); *देखिए पी. डिबेट्स* (I), 21.3.1950, पृ. 955-56; साथ ही *देखिए एल.एस. डिबेट्स* (II), 26.9.1955, का. 15234; और 19.12.1960, का. 6334 ।
22. नियम 349 (आठ); साथ ही *देखिए एच.पी. डिबेट्स* 4 (II), 19.5.1952, का. 116 ।
23. नियम 349 (दस) ।
24. उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.* 20.2.1969, पृ. 1; 26.2.1969, पृ. 1. *लो.स.वा.वि.,* 16.11.1970, का. 203; *लो.स.वा.वि.,* 23.11.1970, पृ. 1; 28.3.1972, पृ. 1; 16.8.1972. पृ. 1; 13.11.1972, पृ. 1; 4.12.1972, पृ. 1; 29.3.1979, पृ. 1; 6.8.1985, पृ. 1; 10.8.1986, पृ. 1; 3.12.1987, पृ. 1-2; 28.3.1988, पृ. 1-2; 16.8.1989, पृ. 1; 2.1.1991, पृ. 8-9; 7.1.1991, पृ. 1; 21.2.1991 पृ. 1.; 30.11.1992, पृ. 1; 1.12.1992, पृ. 1; 22.4.1993, पृ. 1; 10.5.1993, *एल.एस. डिबेट्स,* 25.12.1993, का. 425-26; और 28.2.1994, पृ. 1।

चाहिए, तथापि, कुछ मामलों में जहां, उदाहरणार्थ यदि कोई मंत्री सभा में अपना वक्तव्य देते समय हड़ताल करने वाले व्यक्तियों से अपने काम पर वापिस आने की अथवा आंदोलन समाप्त करने की अपील करता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह गैलरी में बैठे किसी व्यक्ति से अथवा बाहर के किसी अन्य व्यक्ति से अपील कर रहा है।[25]

दर्शक दीर्घा में बैठे किसी अजनबी की उपस्थिति के उल्लेख को नियम विरुद्ध माना गया है।[26]

सदस्य को संसद भवन परिसर और संसद भवन सम्पदा में भूख-हड़ताल, *धरना* या कोई प्रदर्शन या कोई धार्मिक समारोह नहीं करना चाहिए।[27]

सभा की बैठक पूरे दिन के लिए स्थगित होने के बाद सदस्य सभा के परिसर में केवल एक घंटे के लिए रह सकता है। उसके बाद वह संसद भवन सम्पदा के किसी भी भाग में तब तक नहीं रह सकता जब तक कि स्पष्ट रूप से अध्यक्ष की अनुमति न ले ली गई हो।[28]

यदि किसी सदस्य को यह पता हो कि उसके विरुद्ध किसी मामले के संबंध में पुलिस के अधिकारी उसकी तलाश में हैं, तो उसे संसद भवन परिसर में शरण नहीं लेनी चाहिए। ऐसा करना उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। संसद भवन को संरक्षण या सुरक्षा का स्थान नहीं बनना चाहिए।[29]

इसके अतिरिक्त, संसद की परिपाटियों और शिष्टाचार के नियमों के अनुकूल सदस्यों को निम्नलिखित कार्य करने की मनाही है :

अपना कोट बांह पर लटका कर सभा में प्रवेश करना।[30]

सभा में अपना हैट डेस्क पर रखना।[31]

छड़ी लेकर सभा-भवन में आना, जब तक कि अध्यक्ष ने बुढ़ापे और शारीरिक शैथिल्य के कारण विशेष परिस्थितियों में उसकी अनुमति न दी हो।[32]

सभा में धूम्रपान करना।[33]

---

25. नियम 349(दस)। लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति, पैरा* 43(36)।
26. नियम 352(नौ); *एल.ए. डिबेट्स,* 1.2.1922, पृ. 2095 ।
27. *लो.स.वा.वि.,* 28.4.1965, का. 1172-76; 12.5.1972. पृ. 140 और 31.7.1972, का. 21-48 ।
28. *पूर्वोक्त,* 28.4.1960, का. 11572-76 ।
29. *लो.स.वा.वि.* 18.3.1964, का. 6092-94 ।
30. नियम 349(उन्नीस); लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43 (18); और साथ ही *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 25.4.1960, का 13633-34 ।
31. नियम 349(उन्नीस); *पूर्वोक्त,* पैरा 43(18); और *पी. डिबेट्स*(II), 6.2.1950, पृ. 227 ।
32. नियम 349(बीस); *पूर्वोक्त,* पैरा 43(19)।
33. नियम 349(उन्नीस); *पूर्वोक्त,* पैरा 43(18)।

सभा में '*जय हिन्द' या 'वन्देमातरम्'* या इस प्रकार की और कोई बात कहना।[34]

सभा में नारे लगाना[35]

सभा में अपने स्थान पर झण्डा या कोई प्रतीक लगाना।[36]

सभा में टेपरिकार्डर लाना या उसे बजाना।[37]

गैंगवे (सीटों के बीच के रास्ते) में खड़े होना और दूसरे सदस्यों से बातें करना।[38]

सभा में वाद-विवाद के दौरान कोई चीज दिखाना या प्रदर्शित करना।[39]

अध्यक्ष की पूर्व लिखित अनुमति के बगैर संसद भवन परिसर में ऐसे साहित्य, प्रश्नावली अथवा पुस्तिका इत्यादि का वितरण करना, जो सभा के कार्य से संबंधित न हों।[40]

सभा में स्वयं उठकर अध्यक्ष पीठ के पास जाना।[41]

अपना भाषण देने के तुरन्त बाद सभा से बाहर चले जाना।[42]

---

34. *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 15.3.1948, पृ. 2118 ।

    दसवीं लोक सभा के पांचवें सत्र अर्थात् 24 नवम्बर, 1992 से सत्र के आरंभ में और सभा के अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने से पहले सभा में क्रमशः राष्ट्रगान (जन गण मन) और राष्ट्रीय गीत (वन्देमातरम्) की धुन बजाई जा रही है।

    लो.स.वा.वि., 24.11.1992, पृ. 1; 23.12.1992, पृ. 249 और नेताओं की बैठक का कार्यवृत्त, दिनांक 24.11.1992 ।

35. नियम 349(ग्यारह); लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(10) और *लो.स.वा.वि.,* 13.11.1962, पृ. 636 ।
36. नियम 349(सोलह); *एल.ए. डिबेट्स,* 2.4.1937, पृ. 2553 ।
37. नियम 349(बाईस); *लो.स.वा.वि.,* 12.3.1975, पृ. 147-48 ।
38. लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(23); *लो.स.वा.वि.,* 5.4.1958, का. 8473 और 28.2.1963, का. 1425 ।
39. नियम 349(सोलह); *लो.स.वा.वि.,* 5.4.1958. पृ. 4030-31; 4.3.1960, पृ. 2097, 24.4.1960, का. 7921; 16.3.1965, पृ. 1906-07; 26.7.1966, पृ. 5; 14.5.1970, का. 36; 8.7.1971, पृ. 95 और लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(15)।
40. नियम 349 (अठारह); *एच.पी.डिबेट्स* (II), 14.11.1952, का. 512; और लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(17)।
41. नियम 349(तेरह); *एच.पी. डिबेट्स* (II), 5.4.1954, का. 4057. *लो.स.वा.वि.,* 21.3.1963, पृ. 2376; 31.3.1967, पृ. 824, और 28.7.1980, पृ. 215, यदि आवश्यक हो तो वे चिट भेज सकते हैं।
42. नियम 349(सत्रह), *एल.एस. डिबेट्स,* 23.3.1961, का. 6831-32; लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(16)।

और

वाद-विवाद के दौरान किसी प्रकार के छिछोरेपन तथा कटुक्ति अथवा चुभने वाले परिहास में शामिल होना।

सभा में मर्यादा और गरिमा बनाए रखने के लिए सदस्यों को किसी प्रकार की कोई उच्छृंखलता नहीं करनी चाहिए, जिसमें महिला सदस्यों द्वारा स्वेटर बुनना भी शामिल है।[43]

प्रश्नों का अध्यक्षपीठ के माध्यम से पूछा जाना

यदि कोई सदस्य सभा के सामने किसी विषय के संबंध में कोई बात कहना चाहता हो या उस सदस्य से जो कि बोल रहा हो कोई स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए या सभा के विचाराधीन किसी विषय के बारे में किसी बात की व्याख्या के लिए प्रश्न पूछना चाहता हो तो उसे अपने प्रश्न अध्यक्षपीठ के माध्यम से पूछने चाहिएं।[44] बोलते समय सदस्यों को अपने स्थान से बोलना चाहिए और खड़े होकर बोलना चाहिए लेकिन बीमारी या कमजोरी की वजह से अक्षम सदस्य को बैठे-बैठे बोलने की अनुमति दी जा सकती है।

किसी सदस्य को बोलते समय अन्य सदस्यों को उनके नाम से संबोधित नहीं करना चाहिए, बल्कि सदा अध्यक्ष को संबोधित करना चाहिए और अन्य सदस्यों को जो भी बात कहनी हो, वह अध्यक्ष के माध्यम से कहनी चाहिए। यह भी निर्णय दिया गया है कि सदस्य को आपस में एक-दूसरे को अन्य पुरुष से संबोधित करना चाहिए।[45] उसी प्रकार, मंत्रियों को उनके नाम से नहीं बल्कि पदनाम से संबोधित करना चाहिए।[46]

असंगति या पुनरुक्ति

यदि अध्यक्ष यह महसूस करे कि जो सदस्य बोल रहा है वह बार-बार असंगत बातें कह रहा है अथवा स्वयं अपने प्रतर्कों की या उन सदस्यों जो उससे पहले बोल चुके हैं, द्वारा प्रयुक्त प्रतर्कों की उकता देने वाली पुनरुक्ति कर रहा है तो वह उस सदस्य से अपना भाषण समाप्त करने का निर्देश दे सकता है।[47] यदि सदस्य अध्यक्ष की अवज्ञा करके बोलता जाए तो उसके द्वारा कही गई बातें कार्यवाही वृत्तांत में शामिल नहीं की जातीं।[48] कई बार यह भी निर्णय दिया गया है कि बोलते समय सदस्यों को अपने तर्क दोहराने नहीं चाहिए।[49] तर्कों को दोहराने से सदा बचना चाहिए सिवाय उन मामलों के जहां कि किसी बात पर बल देने के लिए उनका दोहराया जाना आवश्यक हो।

---

43. *लो.स.वा.वि.,* 9.11.1962, पृ. 133 ।
44. नियम 355 ।
45. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 22.5.1952, का. 374-75; 23.5.1952, का. 485, *लो.स.वा.वि.* 6.4.1961, का. 972; साथ ही *देखिए* नियम 349 (छह)।
46. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 29.4.1954, का. 6107 ।
47. नियम 356 ।
48. *लो.स.वा.वि.,* 2.8.1972, पृ. 18 ।
49. *एल.ए. डिबेट्स,* 19.2.1923, पृ. 2541; *पी. डिबेट्स* (II), 29.2.1952, का. 1626 ।

बोलते समय पालनीय नियम

सदस्य अपने भाषणों में उन मामलों का निर्देश नहीं कर सकते जो न्यायाधीन हों।[50] जहां सदस्य अध्यक्षपीठ के मना करने पर भी उन मामलों का उल्लेख करने पर बल देता है, जो *न्यायाधीन* हैं, तो अध्यक्षपीठ उसे तुरन्त अपना भाषण बंद करने के लिए कह सकता है। अध्यक्षपीठ यह भी कह सकता है कि सदस्य को उस मामले का उल्लेख नहीं करना चाहिए था जो *न्यायाधीन* है। दोनों कथनों को कार्यवाही-वृत्तांत में शामिल किया जाएगा तथा अध्यक्षपीठ सदस्य द्वारा पहले से ही बोले गए शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकालने का आदेश नहीं देता है।[51]

तथापि, *न्यायाधीन मामलों* का नियम विशेषाधिकार के मामलों पर अथवा अपने सदस्यों के संबंध में सभा के अनुशासनिक क्षेत्राधिकार के बारे में लागू नहीं होता, इस प्रकार के मामलों में अध्यक्षपीठ तथा सभा द्वारा प्रत्येक मामले पर उसके गुण-दोषों के आधार पर विचार किया जाता है।[52]

सदस्यों को दूसरे सदस्यों के विरुद्ध व्यक्तिगत आरोप लगाने की अनुमति नहीं है।[53]

किसी सदस्य से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह संसद या किसी राज्य के विधानमंडल के व्यवहार या कार्यवाही के विषय में आपत्तिजनक शब्दावली का प्रयोग करे। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे सभा के किसी निर्णय पर, उसे रद्द करने के प्रस्ताव को छोड़कर आक्षेप नहीं करेगा।[54]

---

50. नियम 352(एक)।
51. *लो.स.वा.वि.,* 27.6.1967, पृ. 3506-17; 28.6.1967, पृ. 3654-56, और 11.8.1971, पृ. 150-153।
52. आयात लाइसेंस मामला नाम के एक मामले में, यह शिकायत की गई थी कि एक सदस्य ने सरकार से कुछ आवेदकों को आयात लाइसेंस प्राप्त करवाने में घूस ली थी तथा संसद के कुछ सदस्यों के जाली हस्ताक्षर किए थे। संबंधित सदस्य ने अध्यक्ष को लिखा कि चूंकि यह मामला न्यायालय के विचाराधीन है, अत: इसके संबंध में सभा में चर्चा नहीं की जानी चाहिए। अध्यक्ष ने अपना विनिर्णय देते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि प्रस्तुत मामले में आरोप घूसखोरी तथा जालसाजी के हैं जो प्रत्यक्ष रूप से सी.बी.आई. जांच द्वारा सदस्य के विरुद्ध सिद्ध हुए हैं तथा ये आरोप बहुत ही गंभीर किस्म के हैं तथा एक संसद सदस्य के लिए अशोभनीय है और सदस्य को सभा की प्रतिष्ठा गिराने का दोषी ठहराया जा सकता है। अत: सभा सदस्य के आचरण से संबंधित किसी प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए उन्मुक्त है तथा न्यायालय के विचाराधीन होने का नियम इसके बीच में नहीं आएगा। *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1974, पृ. 136 ।
53. नियम 352 (दो), *लो.स.वा.वि.,* 26.3.1968, पृ. 1494-96; 14.11.1968, पृ. 668; 11.12.1968, पृ. 82 तथा 197-98; *लो.स.वा.वि.* 16.12.1968, का. 259-60, तथा *लो.स.वा.वि.,* 23.12.1977, पृ. 254-260 ।
54. नियम 352(तीन) तथा (चार); असंसदीय अभिव्यक्तियों को कार्यवाही वृत्तांत से निकाले जाने के लिए *देखिए* अध्याय 37 ।

सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे किसी उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों पर आरोप नहीं लगाएंगे या आक्षेप नहीं करेंगे।[55] उन्हें वाद-विवाद में राष्ट्रपति का नाम लेने की भी अनुमति नहीं है और वे उसके नाम का प्रयोग वाद-विवाद पर प्रभाव डालने के लिए नहीं कर सकते।[56] सदस्यों को संसदीय भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। उनके शब्द तथा अभिव्यक्तियां अभिद्रोहात्मक, राजद्रोहात्मक और मानहानिकारक नहीं होनी चाहिएं। यद्यपि सरकार की आलोचना करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है, फिर भी सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सभा के कार्य में बाधा डालने के लिए अपने इस अधिकार का प्रयोग नहीं करेंगे।[57]

सदस्यों को इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए जो अपमानजनक हों अथवा अध्यक्ष पर आक्षेप करके कहे गए हों।[58]

सदस्यों को किसी व्यक्ति के विरुद्ध मानहानिकारक या अपराधारोपक स्वरूप के आरोप लगाने की अनुमति नहीं है जब तक कि अध्यक्ष और संबधित मंत्री को इस बात की सूचना पहले से न दे दी गयी हो।[59]

यदि कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य के विरुद्ध आरोप लगाना चाहता है, तो उसे अध्यक्ष को इस संबंध में पहले से ही लिखित जानकारी देनी चाहिए।[60]

यदि कोई सदस्य बिना कोई सूचना दिए किसी मंत्री का नाम लेकर उसके विरुद्ध आरोप लगाता है तो इस प्रकार उल्लेख किए गए नाम को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया जाएगा।[61]

सदस्य की अभिरक्षा में रखी फाइलों अथवा पत्रों को जांच के लिए तब तक नहीं मांगा जा सकता, जब तक कि संबंधित सदस्य ने उसमें से कुछ उद्धृत न किया हो।[62]

यदि मंत्री किसी दस्तावेज या राजपत्र (स्टेट पेपर) का अपने शब्दों में संक्षेप या सारांश बता दे, तो उसके लिए संगत पत्रों को सभापटल पर रखना आवश्यक नहीं है।[63] तथापि, अध्यक्ष सभा की मांग पर अवलोकन के लिए मंत्री से मूल दस्तावेज अथवा पत्र प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है, ताकि वह स्वयं को संतुष्ट कर सके कि तथ्य का दिया गया सारांश या सार उचित तथा पर्याप्त है।

---

55. नियम 352(पांच)।
56. नियम 352(छह)।
57. नियम 352(सात) और (आठ) ।
58. *लो.स.वा.वि.* 14.11.1972, का. 261-62; *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1980, पृ. 171-72; 17.12.1980, पृ. 208; और 29.4.1981, पृ. 262-64 ।
59. नियम 353, अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 31—प्रक्रिया के सामान्य नियम।
60. *लो.स.वा.वि.,* 22.12.1972, पृ. 145-147; 24.8.1981, पृ. 339-40 ।
61. *पूर्वोक्त, लो.स.वा.वि.* 24.11.1972, का. 340-41; 15.10.1982, का. 330-38 ।
62. *पूर्वोक्त,* 30.5.1972, का. 332-40 ।
63. नियम 368, परन्तुक 2 ।

कोई सदस्य अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त करने के बाद किसी मंत्री या अन्य सदस्य द्वारा दिए गए वक्तव्य में किसी भूल या अशुद्धि की ओर ध्यान दिला सकता है तथा इसके उत्तर में अपना वक्तव्य दे सकता है।[64]

सभा में उस विषय का उल्लेख करने से पूर्व, सदस्य अध्यक्ष को भूल या अशुद्धि का ब्यौरा लिखेगा। अपने आरोप के समर्थन में सदस्य के पास जो भी साक्ष्य हों, उन्हें अध्यक्ष के सामने रखना चाहिए। यदि अध्यक्ष उचित समझे तो वह आरोप के संबंध में वस्तुस्थिति जानने के लिए उस मामले की ओर संबंधित मंत्री या सदस्य का ध्यान दिला सकता है। इसके बाद यदि अध्यक्ष आवश्यक समझे तो वह उस सदस्य को, जिसने आरोप लगाया था, उस विषय को सभा में उठाने की अनुमति दे सकता है।

किसी सदस्य द्वारा सभा में मामला उठाने हेतु अनुमति देने के संबंध में दो भेद किए गए हैं: (i) वे वक्तव्य जो सदस्य द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के संदर्भ में प्रथम दृष्टि में सही नहीं हैं; और (ii) वे वक्तव्य जो सदस्य की अपनी व्याख्या या तर्क के अनुसार गलत हैं। बाद वाली स्थिति में मामले को उठाने की अनुमति नहीं दी जाती। सदस्य द्वारा दिये जाने वाले वक्तव्य तथा मंत्री द्वारा उत्तर में दिए जाने वाले वक्तव्य संबंधी मद को तब तक कार्यसूची में नहीं रखा जाता जब तक कि काफी समय पहले लिखित में उसकी प्रतियां अध्यक्ष के पास प्रस्तुत न कर दी जाएं तथा अध्यक्ष ने उन्हें अनुमोदित न कर दिया हो। वे शब्द, मुहावरे तथा अभिव्यक्तियां जो अध्यक्ष द्वारा अनुमोदित वक्तव्यों में नहीं होतीं, यदि बोली जाती हैं तो सभा की कार्यवाही का अंग नहीं बनतीं। सभा में दो वक्तव्य दे चुकने के बाद सामान्यत: मामले को समाप्त समझा जाता है। तथापि, यदि सदस्य मामले को आगे बढ़ाना चाहे तो मामले पर चर्चा के लिए प्रस्ताव की सूचना दे सकता है। सदस्यों को सभा में लोक सभा सचिवालय तथा अध्यक्ष के कार्यों से संबंधित मामलों को उठाने की अनुमति नहीं है।[65]

किसी सदस्य को किसी अन्य सदस्य के भाषण को नहीं पढ़ना चाहिए।[66]

किसी भी सदस्य को अध्यक्ष या लोक सभा सचिवालय को भेजी गयी किसी सूचना अथवा पत्र के विषय को सभा में उठाने की तब तक अनुमति नहीं है जब तक कि अध्यक्ष ने उसे विशिष्ट रूप से ऐसा करने की अनुमति न दे दी हो। उसे लिखित भाषण नहीं पढ़ना चाहिए तथापि टिप्पणों की सहायता ली जा सकती है।[67]

अध्यक्ष के खड़े होने पर प्रक्रिया

जब भी अध्यक्ष सभा को संबोधित करने के लिए खड़ा हो तो सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे शान्तिपूर्वक उसे सुनें और उस समय जो सदस्य बोल रहा हो या बोलने

---

64. *निदेश* 115, साथ ही *देखिए* अध्याय 18–"कार्य विन्यास और कार्य-सूची"।
65. *देखिए* सुभाष सी. कश्यप: *पार्लियामेंट ऑफ इंडिया–मिथ्स एण्ड रियेलिटीज,* नेशनल, नई दिल्ली 1988, पृ. 80 ।
66. *पूर्वोक्त* ।
67. लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(30)।

वाला हो, उससे अपना स्थान ग्रहण करने की अपेक्षा की जाती है।[68] जब अध्यक्ष सभा को संबोधित कर रहा हो तो कोई सदस्य अपने स्थान से उठ कर नहीं जाएगा।[69]

यह एक सुस्थापित संसदीय परम्परा है कि ज्यों ही अध्यक्ष सभाकक्ष में अध्यक्षता हेतु आए या बोलने के लिए खड़ा हो या शांति रखने के लिए कहे तो प्रत्येक सदस्य को तुरन्त अपने स्थान पर बैठ जाना चाहिए।[70] जब अध्यक्ष सभा को सम्बोधित कर रहा हो, उस समय सदस्य को व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाना चाहिए।[71]

आचार संहिता

यद्यपि लोक सभा के सदस्यों के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं है तथापि सदस्यों के शिष्ट और गरिमापूर्ण व्यवहार को सुनिश्चित करने के लिए लोक सभा के प्रक्रिया और कार्यसंचालन नियमों के अंतर्गत विभिन्न प्रावधान हैं। विधायकों की आचार संहिता के संबंध में गत वर्षों के दौरान कुछ खास मानदंड स्थापित हुए हैं।

भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के वार्षिक सम्मेलन के दौरान यद्यपि अनुशासन और शिष्टता बनाए रखने का मुद्दा चर्चा के लिए बार-बार आता रहा है। मई, 1992 में गांधी नगर, गुजरात में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया है कि विधानमंडलों में अनुशासन और शिष्टाचार बनाए रखने के मुद्दे पर विचार-विमर्श हेतु एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया जाए जिसमें सभा की कार्यवाही से जुड़े व्यक्तियों को बुलाया जाए।

इसी क्रम में 23 और 24 सितम्बर, 1992 को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में पीठासीन अधिकारियों, दलों के नेताओं, संसदीय कार्यमंत्रियों, सचेतकों, सांसदों, विधायकों और संसद तथा राज्य विधानमंडलों के वरिष्ठ अधिकारियों का एक दो दिवसीय अखिल भारतीय सम्मलेन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन के दौरान संसदीय संस्थाओं के कार्यकरण से संबंधित कई पहलुओं पर प्रतिनिधियों द्वारा विचार-विमर्श किया गया।

सुस्थापित मानदण्डों और नियमों में विहित प्रावधानों के आधार पर, आचार संहिता का एक प्रारूप तैयार किया गया और उसे 'संसद तथा राज्य विधानमंडलों में अनुशासन तथा शिष्टाचार' शीर्षक नामक पत्र में शामिल किया गया, जिसे इस विशेष सम्मेलन के दौरान प्रतिनिधियों के सन्दर्भ और प्रयोग हेतु लोक सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित किया गया।

---

68. नियम 361 (1)
69. नियम 361 (2) ।
70. लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति,* पैरा 43(31); *पी. डिबेट्स* (II), 17.11.1950, का. 249; *एच.पी. डिबेट्स,* 3.6.1952, का. 1048; और *लो.स.वा.वि.,* 11.8.1959, का. 1721 ।
71. *पी. डिबेट्स,* 19.3.1951, का. 4761-62; *एच.पी. डिबेट्स*(I), 19.5.1952, का. 1; और *लो.स.वा.वि.* 13.5.1957, का. 66 ।

विस्तृत विचार-विमर्श के बाद सम्मेलन में अन्य बातों के साथ-साथ विधायकों के दायित्वों और कर्त्तव्यों को दोहराते हुए सर्वसम्मति से एक संकल्प पारित किया गया, जिसमें यह सुझाव दिया गया कि राजनीतिक दल अपने विधायकों के लिए आचार संहिता तैयार करें और उनके द्वारा इसका अनुपालन सुनिश्चित करें।

26 अगस्त से 1 सितम्बर, 1997 तक हुए लोक सभा के स्वर्ण जयन्ती स्मारक सत्र के दौरान भी यह विषय विचार-विमर्श हेतु उठाया गया। सत्र के दौरान, सभा ने एकमत से एक संकल्प पारित किया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान भी था:

> "कि सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन संबंधी सम्पूर्ण नियमों तथा व्यवस्थित कार्य संचालन संबंधी पीठासीन अधिकारियों के निर्देशों के सचेतन तथा गरिमापूर्ण अनुपालन द्वारा संसद की प्रतिष्ठा का परिरक्षण और संवर्द्धन किया जाए, विशेषकर–
>
> * प्रश्नकाल की अनुल्लंघनीयता बनाए रखकर,
> * सभा के शासकीय क्षेत्रों में अतिक्रमण न करके अथवा नारेबाजी न करके, तथा
> * गणतंत्र के राष्ट्रपति के अभिभाषण में व्यवधान अथवा हस्तक्षेप के किन्ही प्रयासों से निरपवाद रूप से दूर रहकर।

'आचार, सार्वजनिक जीवन में मानदंड, विशेषाधिकार, सदस्यों को मिलने वाली सुविधाएं और अन्य सम्बद्ध विषयों' पर विशेषाधिकार समिति (ग्यारहवीं लोक सभा) के प्रतिवेदन में संसदीय विशेषाधिकार के विभिन्न पहलुओं, मतदाताओं के प्रति सदस्यों के कर्त्तव्यों और सदस्यों के लिए आचार संहिता और मानदण्डों की आवश्यकता पर विस्तार से विचार-विमर्श किया गया। स्पष्ट तौर पर कहें तो इस प्रतिवेदन में सदस्यों द्वारा हितों के प्रकटन, सदस्यों के लिए आचार संहिता[72], दल-बदल विरोधी कानून, राजनीति के अपराधीकरण और इन शिकायतों से निपटने की प्रक्रिया के व्यापक मानदंडों के बारे में सिफारिशें की गयी थीं।

जून, 2001 में चण्डीगढ़ में आयोजित भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के चौसठवें सम्मेलन, के दौरान सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया था कि विधानमंडलों में अनुशासन और शिष्टाचार को प्रभावी ढंग से सुनिश्चित करने के उपायों पर विचार-विमर्श करने के लिए पीठासीन अधिकारियों, मुख्यमंत्रियों, संसदीय कार्य मंत्रियों, विपक्ष के नेताओं, अन्य नेताओं और दलों के सचेतकों का एक उच्च स्तरीय सम्मेलन आयोजित किया जाए। तद्नुसार "संसद और राज्य तथा संघ राज्यक्षेत्रों के विधानमंडलों में अनुशासन और शिष्टाचार" पर पीठासीन अधिकारियों, मुख्यमंत्रियों, संसदीय कार्य मंत्रियों, दलों के नेताओं और सचेतकों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन 25 नवंबर, 2001 को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में आयोजित किया गया।

---

72. 'आचार, सार्वजनिक जीवन में मानदंड, विशेषाधिकार, सदस्यों को मिलने वाली सुविधाएं और अन्य सम्बद्ध विषयों' पर विशेषाधिकार समिति (ग्यारहवीं लोक सभा) का प्रतिवेदन, पृ. 66-67 ।

सम्मेलन ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित किया कि विधायकों के लिए एक आचार संहिता स्वीकृत की जाए, इसके कार्यान्वयन के लिए सभी विधानमंडलों के प्रक्रिया नियमों में आवश्यक परिवर्तन सम्मिलित किए जाएं और इसके उल्लंघन अथवा अतिक्रमण पर दंड का उपबंध किया जाए। आचार संहिता लागू करने के लिए सभी विधानमंडलों में एक आचार समिति के गठन की सिफारिश भी की गयी। प्रस्ताव में यह आग्रह किया गया कि संसद के लिए कम से कम 110 दिन और बड़ी और छोटी विधानमंडलों के लिए क्रमश: 90 और 50 दिन की बैठकें सुनिश्चित करने के लिए तत्काल कदम उठाए जाएं। इसमें यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि सभी राजनैतिक दलों द्वारा चुनावों के लिए उम्मीदवारों का चयन करते समय सार्वजनिक जीवन में सुस्थापित मानदण्डों पर जोर देते हुए एक मानक निर्धारित करें; सभा के नेता, विपक्ष के नेता और राजनैतिक दलों तथा विधानमंडलों के दलों के नेताओं द्वारा उनके सदस्यों की ओर से अनुशासित व्यवहार सुनिश्चित करके सभा में शिष्टाचार बनाये रखने में उत्तरदायी और प्रभावी भूमिका निभाने; सभा में सत्तापक्ष और विपक्ष के सदस्यों द्वारा एक-दूसरे के प्रति और अधिक सहनशील, नम्र तथा विवेकशील होने के सच्चे मन से प्रयास किए जाने चाहिए और पीठासीन अधिकारियों और राजनैतिक तथा विधानमंडल के दलों के नेतृत्व को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सदस्यों, विशेष रूप से नए सदस्यों को संसदीय प्रक्रिया, पद्धति, अनुशासन और शिष्टाचार का उचित प्रशिक्षण और जानकारी प्रदान की जाए।

अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले सदस्यों का स्वत: निलंबन

सभा का सुचारू संचालन सुनिश्चित करने के लिए लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों में 5 दिसंबर, 2001 से नियम 374क शामिल किया गया। इस नियम में यह उपबंध है कि किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अथवा सभा के नियमों का उल्लंघन करके सभा में नारे लगाकर या अन्य प्रकार से सभा की कार्यवाही में हठपूर्वक और जानबूझकर बाधा डालकर घोर अव्यवस्था उत्पन्न किए जाने की स्थिति में अध्यक्ष द्वारा सदस्य का नाम लिए जाने पर वह सभा की सेवा से लगातार पांच बैठकों के लिए या सभा की शेष अवधि के लिए जो भी कम हो, स्वत: निलंबित हो जाएगा। परन्तु सभा किसी भी समय, प्रस्ताव पारित करके ऐसे निलंबन को रद्द कर सकेगी। अध्यक्ष द्वारा इस नियम के अंतर्गत निलंबन किए जाने की घोषणा के बाद निलंबित सदस्य सभा से तुरंत बाहर चला जाएगा।

इस नियम का मुख्य उद्देश्य सभा की सेवा से सदस्य का निलंबन करने के लिए प्रस्ताव पेश किए जाने और इसकी स्वीकृति की आवश्यकता से छुटकारा पाना है। इस नियम के अधीन अध्यक्ष द्वारा सदस्य का नाम लिया जाना ही लगातार पांच बैठकों के लिए या सत्र की शेष अवधि के लिए, जो भी कम हो, सदस्य के निलंबन के लिए पर्याप्त है।

लोक सभा में आचार समिति का गठन

तेरहवीं लोक सभा के दौरान अध्यक्ष ने 16 मई, 2000 को लोक सभा में 15 सदस्यीय आचार समिति का गठन किया था।

समिति के कृत्यों में (क) सदस्यों के नैतिक और आचार संबंधी आचरण पर ध्यान रखना; (ख) किसी सदस्य के अनैतिक आचरण अथवा संसदीय व्यवहार से संबंधित आचरण जो इसे सौंपा गया हो, से संबंधित प्रत्येक शिकायत की जांच करना और ऐसी सिफारिशें करना जो वह उचित समझे; और (ग) उन विशेष कृत्यों जो अनैतिक आचरण माने जाते हैं, से संबंधित नियम बनाने संबंधी बातें शामिल थीं। समिति जहाँ आवश्यक समझे, सदस्यों के अनैतिक आचरण से संबंधित मामलों सहित आचार संबंधी मामलों में स्वतः संज्ञान लेते हुए भी मामलों को विचार और जांच के लिए ले सकती है और जैसा उचित समझे वैसी सिफारिशें कर सकती है।

समिति ने अपना पहला प्रतिवेदन 31 अगस्त, 2001 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया और इसे 22 नवंबर, 2001 को सभा पटल पर रखा और इसे 16 मई, 2002 को सभा द्वारा स्वीकृत किया गया। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की गयी कि सदस्यों के लिए नैतिक व्यवहार के मानक लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों, अध्यक्ष के निदेशों और उन परिपाटियों में जो विभिन्न समितियों द्वारा अपने प्रतिवेदनों में की गयी सिफारिशों के आधार पर विकसित हुई हैं, में भी पर्याप्त रूप से उपबंध किए गए हैं। समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश भी की कि सदस्यों को निम्नलिखित सामान्य नैतिक सिद्धांतों का अनुपालन तो करना ही चाहिए जो किसी नियमों/निदेशों/परिपाटियों के उपबंधों पर आधारित नहीं हैं–

- सदस्यों को अपनी स्थिति का उपयोग जन सामान्य के कल्याण के लिए अवश्य करना चाहिए।
- अपने व्यक्तिगत हित और जनहित में टकराव की स्थिति में उन्हें यह मसला अवश्य ही इस तरह से हल करना चाहिए कि जनता के प्रति उनके कर्त्तव्य को उनके व्यक्तिगत हितों से ऊपर रखा जा सके।
- व्यक्तिगत वित्तीय/पारिवारिक हितों के बीच टकराव को इस ढंग से सुलझाया जाए कि सार्वजनिक हित को नुकसान न पहुंचे।
- सरकारी पदों पर आसीन सदस्यों को सरकारी संसाधनों का उपयोग इस ढंग से करना चाहिए जिससे कि सार्वजनिक हित को बढ़ावा मिले।
- सदस्यों को संविधान के भाग-चार क में सूचीबद्ध मूल कर्त्तव्यों को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।
- सदस्यों को सार्वजनिक जीवन में नैतिकता, प्रतिष्ठा, शालीनता और मूल्यों का उच्च स्तर बनाए रखना चाहिए।

समिति ने सिफारिश की कि लोक सभा के प्रत्येक सदस्य के लिए अपनी आय, परिसंपत्तियों और देयताओं की घोषणा को अनिवार्य बना दिया जाए। इस उद्देश्य के लिए, लोक सभा में चुने जाने के तुरंत पश्चात् सदस्यों को एक वित्तीय प्रकटीकरण विवरण भरना होगा। सदस्यों द्वारा दी गयी सूचना के आधार पर लोक सभा सचिवालय में एक "रजिस्टर ऑफ मेम्बर्स इंटरेस्ट्स" रखा जाएगा। यह रजिस्टर केवल अध्यक्ष, लोक सभा की अनुमति से ही किसी शिकायतकर्ता को उपलब्ध कराया जाएगा।

लोक सभा में 20 नवंबर, 2002 को प्रस्तुत अपने दूसरे प्रतिवेदन में समिति ने यह महसूस किया कि सदस्यों द्वारा वित्तीय प्रकटीकरण और हितों की घोषणा के बारे में अपने पहले प्रतिवेदन में की गयी सिफारिशों के अलावा किसी और कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है क्योंकि लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अध्यादेश, 2002[73] के प्रख्यापित होने के साथ ही इससे जुड़ी सभी आवश्यकताएं पूर्ण हो गई हैं।

समिति ने सिफारिश की कि अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारियों, मुख्यमंत्रियों, नेताओं इत्यादि के 25 नवम्बर, 2001 को नई दिल्ली में आयोजित सम्मेलन में विधायकों के लिए सर्वसम्मति से स्वीकृत आचरण संहिता को लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम में उचित ढंग से शामिल कर दिया जाए।

समिति ने यह सिफारिश भी की कि किसी सदस्य के अनैतिक आचरण से संबंधित शिकायत करने की प्रक्रिया निर्धारित करके इसे प्रक्रिया नियमों में शामिल कर लिया जाए।

लोक सभा सदस्यों के कदाचार के संबंध में जांच करने हेतु गठित समिति ने अपने दूसरे प्रतिवेदन में आचार संहिता के एक व्यापक ढांचे की सिफारिश की थी। तथापि, समिति ने यह सिफारिश की थी कि संहिता को स्वीकार करने के पहले यदि आवश्यक हो तो राजनैतिक दलों और विधानमंडल के दलों के नेताओं और अन्य लोगों की राय भी ली जा सकती है।

पीठासीन अधिकारियों की अवज्ञा, शोर, व्यवधान और विधानमंडलों में कदाचार के अन्य गंभीर कृत्यों सहित अनुशासनहीनता के विषय और स्थिति में सुधार की भावी रणनीति के बारे में 25 से 26 मई, 2007 को तिरुअनंतपुरम में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के 72वें सम्मेलन में पुनः विचार-विमर्श किया गया। प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों की यह राय थी कि अध्यक्षपीठ के प्रति असम्मान प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति और नियमों और परिपाटियों का उल्लंघन, अमर्यादित व्यवहार में सम्मिलित होना, सभा को स्थगन के लिए बाध्य करना और प्रश्नकाल, वाद-विवाद और चर्चा न होने देना गंभीर चिंता के विषय हैं और इसके लिए गहन आत्ममंथन किए जाने की आवश्यकता है। इस बात पर भी जोर दिया गया कि सभा कक्षा के अंदर और बाहर विधायकों का गरिमापूर्ण और मर्यादित आचरण संसदीय व्यवस्था के सुचारू और प्रभावी कार्यकरण की पूर्वापेक्षा है। सम्मेलन में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया जिसमें

73. बाद में लोक प्रतिनिधित्व (तीसरा संशोधन) अधिनियम, 2002 के नाम से अधिनियमित ।

विधायकों के अमर्यादित आचरण के विक्षुब्धकारी रुझान पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गई जिसकी वजह से विधायी निकायों की विश्वसनीयता को व्यवस्थित ढंग से क्षति पहुंच रही है।

सभा या किसी समिति के विचाराधीन विषयों में व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित रखने वाले सदस्य

यदि सभा में विचाराधीन किसी मामले में किसी सदस्य का व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित निहित हो, तो उस मामले पर कार्यवाही में भाग लेते समय सदस्य को अपने हित के स्वरूप की घोषणा करनी चाहिए।[74] उससे यह अपेक्षा की जाती है कि औचित्य इसी में है कि वह स्वयं यह फैसला करे कि उस मामले में सभा में मत-विभाजन के समय अपना मत देते समय उसका निर्णय कहीं उस हित के कारण सार्वजनिक नीति से विचलित तो नहीं हो जाएगा।[75] इस प्रकार के किसी सदस्य के मत पर मत-विभाजन के तुरन्त बाद और उसका परिणाम अध्यक्ष द्वारा घोषित किये जाने से पहले, आपत्ति की जा सकती है और जब इस प्रकार की आपत्ति की जाए तो अध्यक्ष यदि आवश्यक समझे आपत्ति करने वाले सदस्य से अपनी आपत्ति के आधारों को स्पष्ट ढंग से कहने के लिए और जिस सदस्य के मत पर आपत्ति की गई है उससे अपना मामला बताने के लिए कह सकता है। उसके बाद अध्यक्ष विनिश्चय करता है कि उस समय का मत अस्वीकृत किया जाना चाहिए या नहीं और अध्यक्ष का विनिश्चय अंतिम होता है।[76]

किसी सदस्य को किसी संसदीय समिति में सम्मिलित किए जाने पर भी इस आधार पर आपत्ति की जा सकती है कि उस सदस्य का कोई ऐसा व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित इतना गहरा है कि उससे समिति द्वारा विचारणीय विषयों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।[77]

जब इस प्रकार की आपत्ति की जाए तो आपत्ति करने वाला सदस्य अपनी आपत्ति का आधार और आरोपित हित के स्वरूप का सुतथ्यतया कथन करता है। जिस सदस्य के विरुद्ध आपत्ति की गई है, उसे अध्यक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर देता है। यदि तथ्यों के संबंध में कोई विवाद हो तो अध्यक्ष उन दोनों सदस्यों से कहता है कि वे अपने-अपने मामले की पुष्टि में दस्तावेज या अन्य साक्ष्य प्रस्तुत करें। अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करने

---

74. लोक सभा सदस्यों की निर्देशिका *उद्धृत कृति*, पैरा 43 (40); *एल.ए. डिबेट्स*, 2.6.1924, पृ. 2469-85 ।

75. *एल.ए. डिबेट्स*, 26.1.1925, पृ. 250-51 ।

76. नियम 371 । इस नियम के प्रयोजन के लिए सदस्य का हित प्रत्यक्ष व्यक्तिगत या आर्थिक और अलग से उस व्यक्ति का होना चाहिए जिसके मत पर आपत्ति की गई है और इस प्रकार का नहीं होना चाहिए कि इस चीज का जनता के साथ या उसके किसी वर्ग या श्रेणी के साथ या राज्य की किसी नीति के विषय में अन्य के साथ उसका भी हित है।

77. नियम 255 ।

के बाद अध्यक्ष जो विनिश्चय देता है वह अंतिम होता है।[78]

जब तक विवाद चलता है वह सदस्य, जिसकी समिति में नियुक्ति के विरुद्ध आपत्ति की गई हो, यदि वह निर्वाचित या नाम निर्देशित हो गया हो तो समिति का सदस्य बना रहता है। वह समिति की बैठकों में चर्चा में भाग ले सकता है, लेकिन उसे मत देने का अधिकार नहीं होता।[79]

यदि अध्यक्ष यह निर्णय दे कि उस सदस्य का समिति के समक्ष विचाराधीन किसी विषय में कोई व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित है तो उसकी समिति की सदस्यता तुरंत समाप्त हो जाती है बशर्ते कि समिति की उस बैठक की कार्यवाही, जिसमें वह सदस्य उपस्थित था, अध्यक्ष के विनिश्चय से किसी प्रकार प्रभावित न हो।[80]

अत: जहां किसी समिति के किसी सदस्य का उस समिति द्वारा विचार किए जाने वाले किसी विषय में कोई व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित हो, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह समिति के सभापति के माध्यम से अध्यक्ष को बताए कि उसका उस मामले में क्या हित है। उस विषय पर विचार करने के बाद अध्यक्ष अपना विनिश्चय देता है जोकि बाध्यकारी होता है।[81]

नियमों में वर्तमान प्रावधानों के अतिरिक्त, विशेषाधिकार समिति (ग्यारहवीं लोक सभा) ने आचार से संबंधित मामलों में अपनी रिपोर्ट में सदस्यों द्वारा वित्तीय प्रकटन और हितों की घोषणा के संबंध में कतिपय सिफारिशें कीं।[82]

---

78. *पूर्वोक्त* ।
79. नियम 255 (ङ)।
80. नियम 255 (च)।
81. निदेश 52 क।

    1978 में सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के एक सदस्य ने अध्यक्ष को लिखा कि वह एक गैर-सरकारी कंपनी का चेयरमैन तथा प्रबंध निदेशक है और उस कंपनी के कुछ अन्य सरकारी उद्यमों, जो समिति के जांचाधीन हैं, के साथ व्यापारिक संबंध हैं। अध्यक्ष ने निदेश दिया कि उस सदस्य को उन सरकारी उद्यमों के जांच के सभी स्तरों पर समिति की कार्यवाहियों से बाहर रहने के लिए कहा जाये। उन्होंने यह भी निदेश दिया कि उन उद्यमों से संबंधित पत्र तथा सामग्री उस सदस्य को न दी जाए।

    सातवीं लोक सभा के दौरान एक सदस्य पर तथाकथित आक्रमण के मामले में संबंधित विशेषाधिकार का मामला विशेषाधिकार समिति को भेजा गया था जिसका कि वह स्वयं सदस्य था। जब समिति की बैठक में इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया गया तो अध्यक्ष ने निदेश दिया कि मामले की जांच के सभी स्तरों पर सदस्य को समिति की कार्यवाही से बाहर रखा जाए तथा मामले से संबंधित पत्र तथा सामग्री सदस्य को न दी जाए।
82. समिति का विचार था कि सदस्यों की परिसम्पत्तियों, निजी धारिताओं, हितों के संबंध में पारदर्शिता और सदस्यों द्वारा उपहार और आतिथ्य सत्कार को स्वीकार करने के बारे में

लोक सभा के सदस्यों के अवचार के मामलों की जांच संबंधी समिति ने अपने दूसरे प्रतिवेदन में 'अवचार के विभिन्न पहलू और सदस्यों से अपेक्षित आचरण/व्यवहार के मानकों के मूल प्रतीक' के बारे में लोक सभा के सदस्यों के लिए आचरण संहिता से संबंधित सिफारिशें करते समय सदस्यों के 'पंजीयन योग्य हित', 'हितों के टकराव' और 'व्यक्तिगत हित' के मामले पर भी विचार-विमर्श किया।

पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान, आचार समिति का "लोक सभा सदस्यों के हितों के रजिस्टर का रख-रखाव और सभा अथवा उसकी समिति में हितों की घोषणा विषयक दूसरा प्रतिवेदन 13 दिसम्बर, 2012 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया गया, 18 दिसम्बर, 2012 को सभा के पटल पर रखा गया। उसमें सदस्यों के हित के रजिस्टर की सिफारिश की गई जिसमें सभा का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने के लिये जिस तारीख को शपथ लेता हे अथवा प्रतिज्ञान करता है, उससे 90 दिनों के भीतर अपने हितों के संबंध में इस प्रयोजन हेतु निर्धारित फॉर्म में जानकारी प्रस्तुत करेगा। इसके अतिरिक्त समिति ने यह भी सिफारिश की कि पाँच आर्थिक हित नामांकित निदेशक का लाभकारी पद, नियमित लाभकारी कार्यकलाप नियंत्रक प्रकृति की शेयरधारिता, निर्दिष्ट किये अनुसार इन हितों के प्रत्येक घटक के साथ जुड़े होने की जानकारी लोकसभा के सदस्यों द्वारा हित रजिस्टर में दर्ज की जाए। आचार समिति द्वारा सिफारिश किए गए इन हितों की घोषणा, राज्य सभा के सदस्यों द्वारा राज्य सभा के प्रक्रिया नियमों में इस संबंध में किए गए अनुबंध के अनुसार पहले से ही की जा ऐसे हितों की घोषणा के अनुरूप है।

भ्रष्टाचार के मामलों में लिप्त होना

जो सदस्य, सदस्य के नाते अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में भ्रष्टाचार करें, उनके आचरण को सभा विशेषाधिकार भंग मानती है। अत: किसी सदस्य द्वारा कोई घूस लेना, जिससे कि सदस्य के नाते उनके आचरण पर प्रभाव पड़ता हो या किसी विधेयक, संकल्प, विषय या उस बात के समर्थन या विरोध के लिए जोकि सभा या किसी समिति के सामने आनी हो, कोई शुल्क, प्रतिकर या इनाम लेना विशेषाधिकार भंग है। यदि कोई सदस्य किसी व्यक्ति के साथ सभा में उसके दावों का पक्ष लेने तथा उसकी पैरवी करने के लिए पैसा लेने का करार करता है तो वह भी विशेषाधिकार भंग है अथवा सदस्य का कदाचरण है।[83]

प्रकटीकरण करना सदस्यों की प्रतिष्ठा को बढ़ाने और उनके बारे में जनता की झूठी जानकारी को दूर करने में काफी सहायक होगा, इसलिए सदस्यों द्वारा वित्तीय प्रकटन आवश्यक है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समिति ने कई सिफारिशें कीं, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश लोक सभा के प्रत्येक सदस्य द्वारा उसकी आय, परिसम्पत्तियों व देयताओं को बताना एक आवश्यक शर्त बताई गई है।

83. सदस्य के आचरण संबंधी समिति का प्रतिवेदन (*मुद्गल मामला,* 1951) 84 ।

1951 में अंत:कालीन संसद ने अपने एक सदस्य श्री एच.जी. मुद्‌गल के आचरण तथा कृत्यों के संबंध में जांच-पड़ताल करने के लिए सभा की एक तदर्थ समिति की नियुक्ति की थी। इस सदस्य ने किसी व्यापार संघ के साथ लेन-देन किया था जिसमें संघ की ओर से कुछ समस्याओं के संबंध में संसद में समर्थन प्राप्त करने और प्रचार करने के लिए उसे कुछ कथित वित्तीय और अन्य व्यापारिक लाभ प्राप्त होते थे। सभा ने समिति से कहा कि वह इस बात पर विचार करे कि क्या उस सदस्य का आचरण सभा की प्रतिष्ठा और उन स्तरों के विरुद्ध है या नहीं जिनकी अपेक्षा संसद अपने सदस्यों से करती है।[84]

समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव सभा में 8 जून, 1951 को स्वीकार किया गया था।[85] वह प्रस्ताव प्रधानमंत्री (सदन के नेता) ने रखा था। प्रस्ताव बड़ा व्यापक था और उसमें समिति के कार्य करने की सारी व्यवस्था का उपबंध था। अवशिष्ट शक्तियां अध्यक्ष को दी गयीं जिससे कि किसी तकनीकी परंतु महत्वपूर्ण अपेक्षाओं के कारण समिति के काम में देरी न हो।

समिति में पांच सदस्य थे।[86] समिति की गणपूर्ति तीन रखी गई। समिति को यह शक्ति दी गई कि वह उसे सौंपे गये मामलों या जांच के विषय से सम्बद्ध मामलों में साक्षियों की बात सुन सकती है और मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य ले सकती है। समिति को यह भी शक्ति दी गई कि वह बम्बई में या भारत में किसी अन्य स्थान में, जैसा कि अध्यक्ष निर्णय करे, साक्ष्य ले सकती है। समिति को यह विवेकाधिकार दिया गया कि वह उसके सामने दिए गए किसी साक्ष्य को गुप्त या गोपनीय मान सकती है। सम्बद्ध सदस्य को स्वयं समिति में आकर अपनी बात कहने या यदि वह आवश्यक समझे तो अपने वकील के माध्यम से कहने की अनुमति दी गई और यदि समिति चाहे तो वह किसी अन्य व्यक्ति की ओर से, जिस सीमा तक आवश्यक समझे, उसके वकील की बात सुन सकती थी।

अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया कि वह समिति की प्रक्रिया को विनियमित करने और उसकी कार्य व्यवस्था के लिए, जैसा आवश्यक समझें, समिति के सभापति को समय-समय पर निर्देश दे सकते हैं, (इस संबंध में अध्यक्ष ने सभापति को कई निर्देश दिये)।

प्रस्ताव में ही इन सभी बातों की व्यवस्था की गई थी।

समिति के समक्ष इस मामले की शुरुआत महान्यायवादी ने की। उसने संक्षेप में उस सारी सामग्री का सार प्रस्तुत किया जोकि समिति को दी जा चुकी थी। महान्यायवादी ने सारे मामले का निष्पक्ष चित्र पेश किया। अंत में उसने वह प्रश्न रखा जिस पर समिति को विचार करके अपना निर्णय करना था।

---

84. *पी. डिबेट्स* (II), 8.6.1951, कॉ. 10464-65 ।

85. *पूर्वोक्त* ।

86. समिति के सभापति और सदस्यों के नाम प्रस्ताव में ही दिये गये थे। सभा की राय से सभी वर्गों से अपने न्यायिक स्वभाव के लिए प्रसिद्ध तथा कानून अथवा संसदीय अनुभव वाले सदस्य लिये गये।

साक्ष्य पूरा हो चुकने के बाद, साक्ष्य और समिति द्वारा किये गये फैसले के आधार पर, समिति के सचिवालय ने समिति की रिपोर्ट का मसौदा तैयार किया। जब सभापति ने उस मसौदे का अनुमोदन कर दिया तो उस पर समिति ने विचार किया और रिपोर्ट स्वीकार कर ली। उसके बाद वह रिपोर्ट सभापति ने अध्यक्ष को दी और उसी तिथि को, जिसका उल्लेख समिति की नियुक्ति करने वाले प्रस्ताव में किया गया था, वह रिपोर्ट सभा में पेश की गयी। समिति ने सदस्य को संसद में प्रश्न उठाने, अग्रिम संविदा (विनियमन) विधेयक में संशोधन पेश करने तथा मंत्रियों आदि के साथ भेंट आयोजित करने के लिए धन संबंधी लाभ प्राप्त करने के लिए दोषी पाया।[87] अपनी इस रिपोर्ट में समिति ने यह निर्णय दिया कि श्री एच.जी. मुद्‌गल का आचरण सभा की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाने वाला था और उन स्तरों के अनुकूल नहीं था जिनकी अपेक्षा संसद अपने सदस्यों से करती है।

उसके बाद सभा ने प्रधान मंत्री द्वारा 24 सितम्बर, 1951 को पेश किये गये प्रस्ताव के आधार पर उस रिपोर्ट पर विचार किया। समिति ने सिफारिश की थी कि उस सदस्य को सभा से निकाल दिया जाए। सदस्य ने वाद-विवाद में भाग लेने के बाद सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। एक संकल्प में सभा ने समिति के निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया और सदस्य के इस प्रयत्न की निंदा की कि उसने त्यागपत्र देकर उसे सभा से निकालने के प्रस्ताव के प्रभाव से बचने की चेष्टा की जोकि सभा की अवमानना है और इस प्रकार उसका अपराध और भी गंभीर हो गया।[88]

एक अन्य मामले में कुछ सदस्यों ने संघ सरकार के कोटे से उन्हें आवंटित कारें, इस तरह के आवंटन को शासित करने वाले सांविधिक आदेशों का उल्लंघन करके बेचने से संबंधित प्रश्न, सभा में उठाया था तथा यह मांग की थी कि मामले की जांच के लिए एक समिति का गठन किया जाए। प्रधानमंत्री ने इस संबंध में सभा में वक्तव्य दिया कि एक सदस्य ने न्यायालय के समक्ष अपना दोष स्वीकार किया था तथा न्यायालय ने उस सदस्य पर जुर्माना लगाया था। सदस्य ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध कोई अपील दायर नहीं की तथा साथ ही उसने संसद सदस्य के रूप में उससे अपेक्षित ईमानदारी के स्तर से नीचे व्यवहार करने के लिए सभा से क्षमा मांगी थी। वह सदस्य सभा द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था क्योंकि यह मामला अन्य मामलों के साथ न्यायालय में निर्णय के लिए लम्बित पड़ा था, इसलिए सभा ने न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करने का निर्णय किया।[89]

इस मामले में चूंकि सदस्य ने अपना दोष स्वीकार कर लिया था इसलिए मामले में और आगे कार्यवाही करने की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी थी। *मुद्‌गल मामले में,* सदस्य ने लगाए गए कथित आरोप के लिए दोषी होना स्वीकार नहीं किया था तथा मामले की जांच के लिए सभा की एक समिति नियुक्त की गई थी।

---

87. *देखिए* सुभाष सी. काश्यप; '*द मिनिस्टर्स एंड द लेजिस्लेटर्स*' मेट्रोपालिटन, नई दिल्ली 1982, पृ. 46–47 ।
88. *पी. डिबेट्स,* 24.9.1951, कॉ. 3202 और 25.9.1951, कॉ. 3298 ।
89. *लो.स.वा.वि.,* 25.3.1968, पृ. 1345–48 ।

किसी सदस्य द्वारा किसी विधेयक, याचिका या अन्य दस्तावेज का मसौदा तैयार करने या उसके संबंध में राय देने के लिए, जोकि सभा या उसकी समिति में पेश किया गया हो या पेश किया जाने वाला हो, कोई शुल्क, प्रतिकर, भेंट या इनाम लेना भी विशेषाधिकार भंग होगा।

सदस्यों द्वारा दलों की गुप्त बैठकों की कार्यवाही के संबंध में गोपनीय जानकारी के प्रकटन के लिए पैसा लेना यद्यपि विशेषाधिकार भंग या अवमानना नहीं माना गया लेकिन एक ऐसा सम्मानरहित आचरण माना गया है, जिसके लिए कठोर दंड मिलना चाहिए, क्योंकि इससे सभा जनता की नजरों में गिर जाती है।

सदस्यों द्वारा सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में कोई अवांछनीय, गरिमा रहित और अशोभनीय आचरण या अपने कर्त्तव्य की अवहेलना या उल्लंघन और उससे संबंधित अपराध भी सभा द्वारा कदाचार समझे जा सकते हैं।

> 18 फरवरी, 1963 को अनुच्छेद 87 के अंतर्गत संसद के दोनों सदनों के एक साथ समवेत सत्र में संसद के 5 सदस्यों ने राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय अव्यवस्था उत्पन्न की। उसी दिन जब लोक सभा की अलग से बैठक हुई, एक फैसला किया गया कि "उन 5 सदस्यों के अव्यवस्था पैदा करने के संबंध में उनके आचरण पर" तथा "इस बात पर विचार करने और रिपोर्ट देने के लिए कि क्या उन सदस्यों का आचरण परम्पराओं के विपरीत है और उस अवसर की गरिमा के विरुद्ध है या उन मानकों से मेल नहीं खाता है जिनकी अपेक्षा संसद अपने सदस्यों से करती है, एक *तदर्थ* समिति बनायी जाये। समिति से कहा गया कि वह जैसा उचित समझे, वैसी सिफारिशें करें"। अध्यक्ष ने 19 फरवरी, 1963 को की गई घोषणा के अनुसार एक समिति की नियुक्ति की।[90]
>
> समिति में 15 सदस्य थे, जिनका नामनिर्देशन अध्यक्ष ने किया था। उपाध्यक्ष समिति के एक सदस्य थे और उन्हें समिति का सभापति नियुक्त किया गया। समिति से कहा गया था कि एक निश्चित तिथि तक अपना प्रतिवेदन दे दे।[91] दूसरे मामलों में संसद की समितियों के संबंध में सभा के प्रक्रिया नियम इस समिति पर ऐसे परिवर्तनों और रूपभेदों के साथ लागू किए गए जोकि अध्यक्ष ने करने चाहे।
>
> समिति ने इच्छा व्यक्त की कि इस घटना में जिन सदस्यों का संबंध है, उनके और राष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री के बीच हुए पत्र व्यवहार को समिति को उनका अवलोकन करने के लिए उपलब्ध कराया जाये। राष्ट्रपति के सचिवालय तथा प्रधान मंत्री के सचिवालय ने उस पत्र-व्यवहार की प्रतियां समिति को दीं और समिति ने उनका अध्ययन किया।
>
> समिति ने इस घटना से संबंधित सदस्यों को समिति के सामने उपस्थित होकर अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर दिया। इसमें शामिल तीन सदस्यों ने लिखित वक्तव्य

---

90. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.2.1963, कॉ. 2-10; 19.2.1963, कॉ. 173-74, इस संबंध में *देखिए,* अध्याय 10-सदन में राष्ट्रपति का अभिभाषण, संदेश तथा संसूचना।

91. अध्यक्ष ने समिति की प्रार्थना पर प्रतिवेदन पेश करने के लिये समय बढ़ा दिया-*लो.स.वा.वि,* 2.3.1963 ।

भी समिति को दिये। समिति के सामने जो साक्ष्य दिया गया, उसका *शब्दश:* रिकार्ड रखा गया और समिति के प्रतिवेदन के साथ लगा दिया गया।

समिति के सचिवालय ने एक ज्ञापन तैयार किया जिसमें इस मामले के सभी तथ्य, संवैधानिक स्थिति, प्रथाएं तथा नजीरें थीं। उसमें ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स की प्रथाएं और नजीरें भी शामिल थीं। यह ज्ञापन सचिवालय द्वारा समिति के सदस्यों को उनके विचारार्थ बांटा गया।

जब साक्ष्य लिया जा चुका और समिति अपने निष्कर्ष पर पहुंच चुकी तो उसकी रिपोर्ट का मसौदा समिति के सचिवालय ने तैयार किया जिस पर समिति ने विचार किया और उसे स्वीकार किया।

सभा ने इस घटना से संबंधित सदस्यों के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही के संबंध में समिति की सिफारिशें स्वीकार करने के लिए समिति के सभापति द्वारा रखे गए प्रस्ताव पर रिपोर्ट पर विचार किया। जब संबंधित सदस्यों ने अपनी सफाई में सभा के सामने अपने बयान दे दिये तो सभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसके बाद अध्यक्ष ने समिति की सिफारिशों के अनुसार इस घटना से संबंधित तीन सदस्यों की भर्त्सना की।[92]

चौदहवीं लोक सभा के दौरान, सदस्यों द्वारा अवचार की कुछ घटनाओं के परिणामस्वरूप, जबकि आचार समिति अस्तित्व में थी, अध्यक्ष ने मामले की जांच करने और एक निश्चित समय- सीमा के अंदर उन्हें अपना प्रतिवेदन अध्यक्ष को सौंपने के लिए अलग से एक तदर्थ जांच समिति का गठन किया।

---

92. *लो.स.वा.वि.* 19.3.1964, कॉ. 4701-90, समिति ने दो अन्य सदस्यों के व्यवहार के संबंध में नरम दृष्टिकोण अपनाया तथा उनके आचरण का केवल निरनुमोदन किया है।

संविधान के अनुच्छेद 87 के अधीन, 12 फरवरी, 1968 को संसद की दोनों सभाओं के एक साथ समवेत सत्र में राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय राष्ट्रपति के प्रति अनादर प्रकट करने तथा अव्यवस्था उत्पन्न करने के लिए 28 फरवरी, 1968 को दो सदस्यों की अध्यक्ष द्वारा भर्त्सना की गयी *लो.स.वा.वि.,* 28.2.1968, पृ. 230-31 ।

2 अप्रैल, 1971 को सभा ने एक समिति का गठन करने का निर्णय लिया जिसे अनुच्छेद 87 के अंतर्गत संसद के दोनों सभाओं के एक साथ समवेत सत्र के समय राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर सभा के सदस्य द्वारा कार्यवाही में बाधा उत्पन्न करने तथा राष्ट्रपति के प्रति अनादर प्रदर्शित करने के संबंध में जांच करनी थी— *लो.स.वा.वि.,* 2.4.1971, पृ. 115-26, 239-46 तथा 271-72, उक्त निर्णय लिये जाने के अनुसरण में 5 अप्रैल, 1971 को अध्यक्ष द्वारा एक समिति गठित की गई, जिसने 15 नवम्बर, 1971 को सभा में अपना पहला प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

14 अप्रैल, 1972 को समिति ने संविधान के अनुच्छेद 86 तथा 87 के अधीन संसद सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर व्यवस्था तथा शालीनता बनाए रखने के लिए मार्गनिर्देशों के संबंध में अपना दूसरा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

12 दिसंबर, 2005 को एक निजी टेलीविजन चैनल ने अपने समाचार बुलेटिन में कुछ संसद सदस्यों को सभा में प्रश्न पूछने और अन्य मामलों को उठाने के लिए कथित रूप से धन स्वीकार करते हुए उनका वीडियो फुटेज दिखाया।

उसी दिन, अध्यक्ष ने उन सदस्यों से जिनके नाम वीडियो फुटेज में दिखाए गए थे, से अनुरोध करते हुए यह टिप्पणी की कि वे सभा के सत्र में तब तक भाग न लें जब तक कि मामले की जांच न कर ली जाए और कोई निर्णय न ले लिया जाए और उन्होंने एक पांच सदस्यीय जांच समिति नियुक्त की जिसे यह निदेश दिया गया कि वह 21 दिसंबर, 2005 तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे। समिति को स्वयं अपनी प्रक्रिया का अनुपालन करने को प्राधिकृत कर दिया गया।

सभी दस सदस्यों का साक्ष्य लेने और उनके लिखित वक्तव्यों पर विचार करने तथा वीडियो फुटेज देखने के पश्चात्; समिति ने अपने प्रतिवेदन[93] में यह सिफारिश की कि सभा सभी दस सदस्यों को चौदहवीं लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित करने पर विचार कर सकती है। सभी दस सदस्यों को लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित करने संबंधी प्रस्ताव सभा के नेता द्वारा पेश किया गया जिसे 23 दिसंबर, 2005 को सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

19 दिसंबर, 2005 को दूसरे निजी चैनल ने अपने एक कार्यक्रम में संसद-सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के कार्यान्वयन के मामले में लोक सभा के कुछ सदस्यों को कथित रूप से अनुचित आचरण में लिप्त दिखाया। 20 दिसंबर, 2005 को जब सभा समवेत हुई तो अध्यक्ष ने सभा में एक टिप्पणी की कि जो सदस्य इस मामले में कथित रूप से शामिल हैं उनसे अनुरोध है कि वे सभा की बैठकों में तब तक भाग न लें जब तक कि मामले की जांच नहीं कर ली जाती और कोई निर्णय नहीं लिया जाता। उसी दिन अध्यक्ष ने मामले की जांच के लिए एक जांच समिति गठित करते हुए एक और टिप्पणी की। तद्नुसार, अध्यक्ष द्वारा मामले की जांच करने के लिए एक सात सदस्यीय समिति का गठन कर दिया गया। समिति के द्वारा 31 जनवरी, 2006 तक अपना प्रतिवेदन सौंपा जाना था।

सभी पांचों संबंधित सदस्यों का साक्ष्य लेने और उनके लिखित बयानों पर विचार करने तथा वीडियो फुटेज देखने के पश्चात्, समिति ने अपने प्रतिवेदन[94] में यह टिप्पणी की कि यदि सही कहा जाए तो इन चार सदस्यों (पांच सदस्यों में से एक को पहले ही सभा की सदस्यता से निष्कासित किया जा चुका था) के अनुचित आचरण उनके संसदीय कर्त्तव्यों से संबंधित नहीं थे और वास्तव में उनमें से किसी को भी धन लेते हुए नहीं दिखाया गया था । समिति

93. लोक सभा के कुछ सदस्यों के अनुचित आचरण के आरोपों की जांच करने संबंधी समिति का प्रतिवेदन।

94. एम.पी. लैड योजना के कार्यान्वयन के मामले में कुछ सदस्यों के अनुचित आचरण के आरोपों की जांच करने संबंधी समिति का प्रतिवेदन।

ने सिफारिश की कि इन सदस्यों की भर्त्सना की जाये और इन चारों सदस्यों की 20 दिसंबर, 2005 से 22 मार्च, 2006 तक लोक सभा और समितियों की बैठकों से अनुपस्थिति की अवधि को सभा की सदस्यता से निलंबन माना जाए। सभा के नेता द्वारा पेश किए गये प्रस्ताव पर प्रतिवेदन को सभा ने 20 मार्च, 2006 को स्वीकार कर लिया।

एक सदस्य को जारी किए गये 'कार पार्किंग लेबल' के दुरुपयोग से संबंधित अनैतिक व्यवहार के लिए सदस्य के विरुद्ध शिकायत के एक मामले में आचार समिति ने अपने दूसरे प्रतिवेदन, जिसे 25 अगस्त 2006 को सभा पटल पर रखा गया, में यह सिफारिश की कि इस तथ्य के आलोक में कि सदस्य ने किसी दुर्भावनावश ऐसा नहीं किया था और उसके द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण पर विचार तथा उसके द्वारा क्षमा याचना किए जाने पर मामले को समाप्त समझा जाए।

एक सदस्य द्वारा अपनी पत्नी और पुत्र के पासपोर्ट पर दो व्यक्तियों को विदेश भेजने के प्रयास में उसकी गिरफ्तारी की घटना के परिणामस्वरूप लोक सभा अध्यक्ष ने 16 मई, 2007 को लोक सभा के सदस्यों के अवचार की जांच के लिए एक समिति गठित की। समिति को सदस्यों के अवचार के सभी पहलुओं की जांच करने के लिए व्यापक अधिकार दिए गए थे।

अध्यक्ष ने 21 मई, 2007 को लोक सभा के सदस्यों के अवचार के मामलों की जांच करने संबंधी समिति को मामला सौंपते हुए निम्नलिखित आदेश पारित किया:—

> "भारतीय दण्ड संहिता और पासपोर्ट अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत कथित अपराधों के लिए संसद सदस्य की गिरफ्तारी से उत्पन्न मामले को लंबित जांच और कार्यवाहियों, यदि कोई हों, के परिणामस्वरूप किसी सक्षम न्यायालय और ऐसे न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अध्यधीन समिति को सौंप दिया गया है। समिति से अनुरोध है कि वह इस तथ्य को नोट करे कि लोक सभा लंबित जांच और कार्यवाहियों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती और ऐसा निर्णय नहीं ले सकती जिससे लंबित जांच और कार्यवाहियों, यदि कोई हों, का अतिक्रमण होता हो। इसके अतिरिक्त, इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि संबंधित संसद सदस्य इस समय अभिरक्षा में है और प्रत्यक्षत: समिति के समक्ष किसी कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए सभा में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के बारे में 16 मई, 2007 को की गयी टिप्पणी के अध्यधीन समिति जैसा उचित समझे वैसा निर्णय ले।"

तद्नुसार, जांच समिति ने यह निर्णय लिया कि जब सदस्य जमानत पर रिहा होंगे तब मामले को विचारार्थ लिया जायेगा। जांच समिति ने मई, 2008 में सदस्य के जमानत पर रिहा होने के पश्चात् इस मामले पर विचार किया। समिति ने अपने तीसरे प्रतिवेदन, जिसे 10 सितंबर, 2008 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया गया और 20 अक्तूबर, 2008 को सभा के पटल पर रखा गया, में विधिवत विचार-विमर्श के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि सदस्य ने अवचार और समिति तथा सभा की अवमानना का गंभीर कृत्य किया है, जिससे कि एक संस्था के रूप में संसद की विश्वसनीयता को गहरा आघात लगा है। तद्नुसार, समिति ने सिफारिश की कि इन्हें सभा की सदस्यता से निष्कासित कर दिया जाए। सभा ने 21 अक्तूबर, 2008 को सदस्य को निष्कासित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

इसी बीच एक अन्य सदस्य (राजेश कुमार मांझी) के विरुद्ध लगे आरोपों से संबंधित एक मामला 18 मई, 2007 को सभा में प्रस्तुत किया गया था, में यह निष्कर्ष निकाला कि सदस्य किसी अन्य महिला को अपनी पत्नी बताकर सरकारी दौरे पर ले गया था। समिति ने यह सिफारिश की कि सभा सदस्य की भर्त्सना करे और उसे सभा की तीस बैठकों के लिए निलंबित भी कर दिया जाए। समिति ने यह सिफारिश भी की कि उक्त सदस्य को चौदहवीं लोक सभा के कार्यकाल की समाप्ति तक सरकारी दौरों पर अपनी पत्नी या साथी को साथ ले जाने पर प्रतिबंध लगा दिया जाए। सभा द्वारा समिति का प्रतिवेदन 30 अगस्त, 2007 को स्वीकार कर लिया गया।

तत्पश्चात्, एक दूसरी घटना में 22 जुलाई, 2008 को मंत्रिपरिषद में विश्वास प्रस्ताव पर वाद-विवाद के दौरान तीन सदस्य (अशोक अर्गल, फग्गन सिंह कुलस्ते और महावीर भगोरा) सभा में दो थैले लेकर अध्यक्षपीठ के आसन के समीप आ गए। सदस्यों ने उन थैलों में से नोटों की गड्डियाँ निकालकर सभा-पटल पर रखना शुरू कर दिया। तब पीठासीन उपाध्यक्ष ने शोर-शराबे के बीच सभा को स्थगित कर दिया। इसके तुरंत पश्चात्, अध्यक्ष के कक्ष में राजनैतिक दलों के नेताओं के साथ आयोजित बैठक में अध्यक्ष ने तीनों सदस्यों को लिखित वक्तव्य देने का निदेश दिया ताकि उचित कार्रवाई शुरू की जा सके। तत्पश्चात् 18.00 बजे सभा के समवेत होने पर अध्यक्ष ने निम्नलिखित टिप्पणी की:[95]

> "माननीय सदस्यगण,...... कुछ समय पहले, जब मेरे प्रतिष्ठित सहयोगी, माननीय उपाध्यक्ष, सभा की कार्यवाही का संचालन कर रहे थे, उस समय कतिपय ऐसी घटनाएं घटित हुईं, जो मेरे विचार से, अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण हैं। संसद के इतिहास में यह अत्यंत दु:खद दिन है कि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हुई। तत्पश्चात्, मैंने माननीय नेताओं की एक बैठक बुलाई। मैं माननीय विपक्ष के नेता का आभारी हूँ। वह भी वहां उपस्थित थे।
>
> हमने सभा के तीनों माननीय सदस्यों को सुना है। उनकी कुछ शिकायतें थीं। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे अपनी शिकायतें लिखित में मुझे दें। मैंने उन्हें, नेताओं को आश्वासन दिया है और मैं इस सभा को आश्वासन देता हूं कि सभा का संरक्षक होने के नाते, मैं इस संबंध में अपेक्षित सभी संभव कदम उठाऊंगा। ऐसा करना मेरा कर्त्तव्य है और मैं सभा के सभी वर्गों का सहयोग चाहता हूँ।
>
> मुझे मामले की जांच करने में अपने विवेक का उपयोग करने दें और मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि यदि कोई भी इस मामले में दोषी पाया गया तो उसे बख्शा नहीं जाएगा।"

सदस्यों ने 25 जुलाई, 2008 को इस मामले में अपनी संयुक्त लिखित शिकायत दी। लोक सभा अध्यक्ष ने 26 जुलाई, 2008 को मामले की जांच के लिए एक जांच समिति नियुक्त की। तद्नुसार 26 जुलाई, 2008 को अध्यक्ष ने एक सात सदस्यीय जांच समिति, अर्थात् विश्वास प्रस्ताव पर मतदान के संबंध में कुछ सदस्यों को कथित रूप से धन दिए जाने के बारे में उनके द्वारा की गयी शिकायत की जांच करने संबंधी समिति का गठन किया।

---

95. लोक सभा के सदस्यों के अवचार की जांच करने संबंधी समिति का पहला अधिवेशन।

समिति ने अपना प्रतिवेदन 12 नवंबर, 2008 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया। समिति का प्रतिवेदन 15 दिसंबर, 2008 को सभा पटल पर रखा गया। समिति ने अपने निष्कर्षों और परिणामों, विशेषतौर पर तीनों साक्षियों की भूमिका को ध्यान में रखते हुए अपने प्रतिवेदन में यह सिफारिश[96] की कि इस मामले की किसी समुचित अन्वेषण एजेंसी[97] द्वारा आगे और जांच कराई जाये। समिति ने यह सिफारिश भी की कि एक सभा के सदस्य को दूसरी सभा अथवा तत्संबंधी समिति के समक्ष उपस्थित होने की प्रक्रिया, जैसा कि विशेषाधिकार समिति (दूसरी लोक सभा) ने 1958 में अपने छठे प्रतिवेदन में सिफारिश की थी, की समीक्षा किए जाने की

---

96. 16 दिसंबर, 2008 को, लोक सभा अध्यक्ष ने समिति द्वारा की गयी सिफारिशों के आलोक में उचित कार्रवाई शुरू करने के लिए मामले को गृह मंत्रालय को सौंपते हुए सभा में एक टिप्पणी की। उन्होंने अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की "तीन सदस्यों द्वारा सभा में लाए गए और प्रदर्शित किए गए करेंसी नोट इस समय महासचिव की अभिरक्षा में रखे गये हैं... चूंकि यदि जांच की जाती है तो इसके प्रयोजनार्थ इस धन की जरूरत पड़ सकती है, जैसाकि समिति ने सुझाव दिया है। अत: महासचिव द्वारा इसे एक माह तक रखा जाएगा और यदि जांच के प्रयोजनार्थ इस संबंध में कोई अनुरोध प्राप्त नहीं होता है, तो इसके बाद इस धन को अदावाकृत धनराशि के रूप में सरकार के पास जमा करा दिया जाएगा। "(*लो.स.वा.वि.* 16.12.2008)। 17 दिसंबर, 2008 को, लोक सभा के महासचिव की ओर से एक आ.शा. पत्र इस अनुरोध के साथ गृह सचिव के पास भेजा गया कि इस मामले को, ऐसी कार्रवाई, जो इस मामले में उचित हो, के लिए गृह मंत्री के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। अ.शा. पत्र के साथ प्रारूप प्रतिवेदन की एक प्रति और 16 दिसंबर, 2008 के लोक सभा वाद-विवाद से संबंधित उद्धरण, जिसमें अध्यक्ष द्वारा की गयी टिप्पणी शामिल थी, की प्रति भी संलग्न की गई थी। तत्पश्चात्, 20 जनवरी, 2009 को गृह सचिव द्वारा महासचिव को संबोधित एक संदेश प्राप्त हुआ, जिसमें यह सूचना दी गयी थी कि गृह मंत्री के अनुमोदन से यह निर्णय लिया गया है कि इस मामले को आगे जांच के लिए दिल्ली पुलिस को सौंप दिया जाए। करेंसी नोटों के संबंध में एक अनुरोध किया गया था कि इन्हें कुछ और समय तक वहीं रहने दिया जाये और दिल्ली पुलिस आयुक्त इस बारे में लोक सभा सचिवालय के संपर्क में रहेंगे। करेंसी नोट्स और संबंधित सामग्री 29 जनवरी, 2009 को संबंधित ए.सी.पी/अन्तर्राज्यीय प्रकोष्ठ, अपराध शाखा, दिल्ली पुलिस को सौंप दिए गए।

97. वर्ष 2011 में जे.एम.लिंगदोह और 13 अन्य द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष जन हित याचिका (पी आई एल) दायर की गई थी, जिसमें मामले में धीमी जांच का आरोप लगाया गया था। दिल्ली पुलिस द्वारा दायर स्थिति रिपोर्ट का अध्ययन करने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि मामला विधि अनुसार आगे बढ़ेगा और जनहित याचिका खारिज कर दी।

जांच को तेज करने के लिये दिल्ली पुलिस ने लोक सभा अध्यक्ष से न्यायालय में चार्जशीट दायर करने के उद्देश्य से विश्वास प्रस्ताव पर मतदान के संबंध में कुछ सदस्यों कथित रूप से ध्यान दिये जाने के बारे में उनके द्वारा की गई शिकायत की जांच करने हेतु गठित समिति के प्रतिवेदन से संबंधित मूल दस्तावेजों को प्राप्त करने की अनुमति मांगी। अध्यक्ष ने विशेषाधिकार समिति, चौदहवीं लोकसभा द्वारा अपने बारहवें प्रतिवेदन, जिसे 30 अप्रैल, 2008 को सभा के पटल पर रखा गया था और 23 अक्तूबर, 2008 को पारित किया गया था, में

आवश्यकता है ताकि इसे यूनाइटेड किंगडम की संसद में अब अपनायी जाने वाली पद्धति के समकक्ष लाया जा सके।

इस प्रकार के अवचार के अन्य उदाहरण हैं–(i) किसी सदस्य द्वारा उस सभा की अनुमति लिये बिना, जिसका वह सदस्य हो, सभा या उसकी किसी समिति की कार्यवाही या उसके वाद-विवाद के संबंध में किसी न्यायालय में साक्ष्य देना[98]; और (ii) सदस्य द्वारा उस सभा की अनुमति के बिना जिसका वह सदस्य हो, दूसरे सदन या उसकी समिति के सामने साक्षी के रूप में जाना।[99]

किसी व्यक्ति द्वारा संसद सदस्यों के विरुद्ध, व्यक्ति के रूप में, उनके आचरण के संबंध में की गई शिकायतों अथवा ऐसी शिकायतों, जिनमें उन पर व्यावसायिक कदाचार का आरोप लगाया जाता है, की जांच अध्यक्ष द्वारा की जाती है और उन्हें निपटाया जाता है।[100]

सदस्यों के आचरण की जांच प्रक्रिया

यदि किसी व्यक्ति को यथोचित विश्वास हो जाए कि किसी सदस्य ने ऐसे ढंग से काम किया है जो उसके विचार में सभा की गरिमा या उस स्तर से मेल नहीं खाता जिसकी अपेक्षा संसद सदस्य से की जाती है, वह इसके बारे में अध्यक्ष या सदन के नेता को सूचना दे सकता है। इस प्रकार का आरोप लगाने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह सबसे पहले यह सुनिश्चित करे कि उसके पास जो तथ्य हैं वे सही हैं और वे प्रमाणित साक्ष्य पर आधारित हैं जो चाहे दस्तावेज के रूप में हो अथवा या परिस्थितियों पर आधारित हो। उसे तथ्यों का चयन और उनका विन्यास बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए क्योंकि यदि यह प्रमाणित हो जाए कि आरोप तुच्छ हैं, बेकार हैं या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत ईर्ष्या या वैमनस्य पर आधारित हैं, तो उस पर सभा के विशेषाधिकार भंग का आरोप लग सकता है, इसलिए इस बात का अत्यधिक महत्व है कि आरोप ठोस, प्रमाणित और जांचे हुए तथ्यों पर आधारित हों।

जब किसी सदस्य के कथित कदाचार के संबंध में जानकारी मिलती है, तो सामान्य प्रथा यह है कि प्रधान मंत्री उन आरोपों की जांच करता है और यदि वह अन्य जानकारी मंगवाना

की गई सिफारिशों के अनुरूप दिल्ली पुलिस को चार्टशीट दाखिल करने के लिये मूल दस्तावेजों से अलग किए बिना अपेक्षित दस्तावेजों की फोटो लेने की अनुमति दे दी। इसके अतिरिक्त एक अभियुक्त पर अन्य बातों के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1998 के उल्लंघन के लिये भी मुकदमा चलाये जाने के लिये अनुमति मांगी गयी थी। लोक सभा अध्यक्ष ने झारखण्ड मुक्ति मोर्चा मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार सदस्य पर मुकदमा चलाने की मंजूरी भी दे दी।

98. *लो.स.वा.वि.,* 13.9.1957, पृ. 6245-46 ।

99. तीसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); *लो.स.वा.वि.,* 25.4.1958, पृ. 5437; छठा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); *लो.स.वा.वि.,* 17.12.1958, पृ. 2794-95 तथा *लीलाधर कोटकी का मामला, लो.स.वा.वि.,* 19.12.1958, पृ 3117 ।

100. निदेश 95 । अध्यक्ष ऐसी शिकायतों के निपटारे के लिये या तो सम्बद्ध सदस्य के साथ विचार-विमर्श करता है या उससे कहता है कि उन शिकायतों के संबंध में तथ्य दें।

चाहे तो उसे मंगाकर उनकी भी जांच करता है। यदि वह संतुष्ट हो जाए कि इस मामले में उसको आगे कार्यवाही करनी चाहिए तो वह उस सदस्य को भी इस बात का पूरा और उचित अवसर देता है वह इस मामले में अपना पक्ष रखे, जिससे कि वह उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को गलत सिद्ध कर सके और प्रधान मंत्री के सामने ऐसी अन्य जानकारी रखे जिससे उसे किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता मिले। जब सदस्य मौखिक रूप से या लिखकर अपनी बात प्रधान मंत्री तक पहुँचा देता है तो प्रधान मंत्री सारे साक्ष्य की बड़ी सावधानीपूर्वक जांच करता है। यदि सदस्य ने समुचित कारण बता दिए हों और यह पता चले कि उसके आचरण में कोई अनुचित बात नहीं थी और उसने सारे संदेह दूर कर दिए हों तो उस मामले को वहीं छोड़ दिया जाता है और सदस्य को निर्दोष घोषित कर दिया जाता है। यदि प्रधान मंत्री समझें कि उस संबंध में सभा में कोई वक्तव्य देना चाहिए तो वह ऐसा कर सकता है। लेकिन यदि सदस्य द्वारा कही गई बातों और साक्ष्य के आधार पर प्रधान मंत्री यह समझें और अध्यक्ष यह फैसला करे कि उसकी जांच के लिए कोई प्रत्यक्ष कारण है तो यह मामला सभा के सामने लाया जाता है। इस संबंध में एक संसदीय समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा जाता है और उससे कहा जाता है कि वह इस विशेष मामले की जांच करे और एक निर्दिष्ट तिथि तक अपनी रिपोर्ट सभा को दे।

लेकिन यदि प्रारम्भिक जांच में यह पता चले कि आरोप लगाने वाले व्यक्ति ने गलत तथ्य दिये हैं और उस सदस्य को जानबूझकर या अपनी असावधानी के कारण बदनाम करने की चेष्टा की है, तो उसे सभा के विशेषाधिकार भंग का दोषी माना जाता है।[101]

नैतिक सिद्धांत

विशेषाधिकार समिति (ग्यारहवीं लोक सभा) ने आचार संबंधी मुद्दों पर अपने प्रतिवेदन में बहुत सोच समझकर विचार[102] किया कि नैतिक सिद्धांत, जोकि किसी भी लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धांत हैं, विधानमंडलों के चुनावों पर भी पूरी तरह से लागू होते हैं।

समिति ने अपने प्रतिवेदन में सदस्यों की 'संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना' तथा अन्य कल्याण योजनाओं में सदस्यों के लिप्त होने संबंधी मामलों तथा सदस्यों और प्रशासन के बीच सरकारी कामकाज तथा इस संबंध में जारी दिशा निर्देशों पर भी विभिन्न सिफारिशें की हैं।

---

101. अध्यक्ष का विनिर्णय, *लो.स.वा.वि.,* 31.5.1967 ।
 श्री अर्जुन अरोड़ा के दो मंत्रियों के विरुद्ध आरोपों पर प्रधान मंत्री के वक्तव्य के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 30.5.1967 और 20.6.1967 ।
102. समिति की राय थी कि चूंकि विधानमंडलों के सभी चुनावों में जोखिम अधिक होते हैं, अत: उम्मीदवारों के दृढ़ संकल्प के साथ-साथ उनकी तथा उन राजनीतिक दलों, जिनकी ओर से चुनाव लड़ते हैं, की निराशा के कारण हाल ही में चुनाव संबंधी कदाचार उत्पन्न हो गए हैं, उदाहरणार्थ चुनाव के दौरान धन का गलत प्रयोग और राजनीति का अपराधीकरण। इस प्रकार की स्थितियां लोकतांत्रिक संस्थानों की विश्वसनीयता को ही समाप्त करती हैं जो कुल मिलाकर विधानमंडलों के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों पर निर्भर करती हैं। तद्नुसार समिति ने इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए चुनावी खर्चों, राजनीति का अपराधीकरण तथा दल-बदल विरोधी कानून पर कुछ सिफारिशें की हैं।

अध्याय 13

वेतन, भत्ते, अन्य हकदारियां और सुख-सुविधाएं

1. संसद के अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते

राज्य सभा के सभापति और उप-सभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते संसद अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953 द्वारा विनियमित होते हैं। राज्य सभा के सभापति को 1,25,000 रु. प्रतिमाह वेतन दिया जाता है।[1] लोक सभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और राज्य सभा के उप-सभापति को 50,000 रु. प्रतिमाह वेतन[2] तथा 45,000 रु. प्रतिमाह की दर से निर्वाचन क्षेत्र भत्ता[3] दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उनमें से प्रत्येक व्यक्ति ऐसे अधिकारी के रूप में अपने पूरे कार्यकाल में 2000 रु. प्रतिदिन की दर से दैनिक भत्ता पाने का हकदार है।[4] राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष को 2000 रु. प्रतिमाह सत्कार भत्ता दिया जाता है और राज्य सभा के उप-सभापति तथा लोक सभा के उपाध्यक्ष को 1000 रु. प्रतिमाह सत्कार भत्ता दिया जाता है।[5]

केन्द्रीय विधान सभा के निर्वाचित अध्यक्ष को 4000 रु. प्रतिमाह की दर से वेतन दिया जाता था।[6] उसे अपने कार्यकाल में विधान सभा के अध्यक्ष के कर्त्तव्यों के अतिरिक्त कोई अन्य काम या व्यवसाय करने की अनुमति नहीं थी।[7] जनवरी, 1948 से अप्रैल, 1953 तक अध्यक्ष को 3000 रुपये प्रतिमाह वेतन और 500 रुपये प्रतिमाह सत्कार भत्ता दिया जाता था।[8]

यात्रा तथा दैनिक भत्ता नियम के अंतर्गत केन्द्रीय विधान सभा के सदस्यों को जो सामान्य भत्ते मिलते थे, उनके अतिरिक्त केन्द्रीय विधान सभा के उपाध्यक्ष को उस अवधि के लिए, जिसमें कि वह विधान सभा के काम में लगा हुआ हो, 1000 रु. प्रतिमाह के हिसाब से वेतन दिया जाता था; संविधान सभा (विधायी) के उपाध्यक्ष का वेतन उन्हीं प्रयोजनों के

---

1. संसद अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953, धारा 3, यथासंशोधित *देखें* 2008 का अधिनियम 30। 1 जनवरी 2006 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू।
2. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, 2010 के अधिनियम 37 द्वारा यथा संशोधित, 18 मई 2009 से प्रभावी।
3. *पूर्वोक्त,* धारा 3, यथासंशोधित, 1 अक्तूबर, 2010 से प्रभावी। संसद सदस्य निर्वाचन क्षेत्र का भत्ता नियम, 1986। दिनांक 13 दिसम्बर, 2010 के राजपत्र असाधारण (II) (3)(i) में प्रकाशित सा०क०नि० 956 (ङ) द्वारा प्रतिस्थापित।
4. *पूर्वोक्त,* धारा 3, यथासंशोधित, 1 अक्तूबर, 2010 से प्रभावी।
5. *पूर्वोक्त,* धारा 5 संसद अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953।
6. विधान सभा (अध्यक्ष का वेतन) अधिनियम, 1925 ।
7. *पूर्वोक्त,* धारा 2(2)।
8. भारत सरकार, विधि मंत्रालय (सुधार) अधिसूचना सं. कॉ.आ. 2, 28.2.1948 ।

लिए 1500 रुपये प्रतिमाह निर्धारित किया गया था।[9]

> यदि यह प्रश्न उठता है कि किसी अवधि के दौरान उपाध्यक्ष विधान सभा या संविधान सभा (विधायी) के काम पर लगा हुआ था या नहीं, तो उसे विनिश्चय के लिए अध्यक्ष को सौंप दिया जाता था और उसका विनिश्चय अंतिम होता था।

अपना पद ग्रहण करने पर और पदमुक्त होने पर अध्यक्ष अपने तथा अपने कुटुम्ब के सदस्यों के लिए और अपने तथा अपने कुटुम्ब के सामान के परिवहन के लिए उतना यात्रा भत्ता पाने का हकदार है जितना कि किसी केबिनेट मंत्री को अपना पद ग्रहण करने पर या पदमुक्त होने पर मिलता है।[10]

अध्यक्ष अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में भारत में जो दौरा करता है, उसके लिए उसे वही यात्रा तथा दैनिक भत्ते मिलते हैं जो कि मंत्रिमंडल के सदस्य को मिलते हैं और जब वह इस प्रकार के दौरे पर भारत से बाहर जाता है तो उसे वही यात्रा तथा दैनिक भत्ते मिलते हैं जिनका निर्धारण प्रत्येक मामले में सरकार करती है।[11] सामान्यत: अध्यक्ष को वही यात्रा और दैनिक भत्ते भारत के बाहर दौरा करने पर मिलते हैं जो किसी केबिनेट मंत्री को दिए जाते हैं।

प्रत्येक सत्र की समाप्ति पर दिल्ली से अपने निर्वाचन क्षेत्र तक और अगले सत्र के प्रारंभ में दिल्ली तक वापसी यात्रा के लिए वह वही यात्रा भत्ता पाने का हकदार है जो केबिनेट मंत्री को मिलता है। इसके अतिरिक्त, उसे अपनी कार लाने का वास्तविक प्रभार और अपने शोफर के लिए निम्नतम श्रेणी का रेल का वास्तविक किराया दिया जाता है।[12]

अध्यक्ष को सारे देश में राजकीय अतिथि माना जाता है। उसके कार्यक्रम की एक प्रति संबंधित राज्य विधान सभा के अध्यक्ष और सचिव को भेजी जाती है जो राज्य प्रशासन से कहते हैं कि वे उनका वैसा ही सत्कार करें जैसाकि किसी अति विशिष्ट अतिथि के पधारने पर सामान्यत: किया जाता है। अध्यक्ष को दी जाने वाली सुविधाओं में नि:शुल्क ठहरने, खाने और परिवहन की सुविधा शामिल है।

उपाध्यक्ष को समान प्रयोजनों के लिए वही यात्रा तथा दैनिक भत्ते दिए जाते हैं जो कि किसी राज्य मंत्री को मिलते हैं। लेकिन वह अपनी मोटरकार आदि लाने के लिए कोई प्रभार प्राप्त करने का हकदार नहीं है।[13]

इसके अतिरिक्त, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को संसद के किसी अन्य सदस्य की तरह रेलवे का पहले दर्जे का वातानुकूलित अथवा अभिजात्य दर्जे का एक नि:शुल्क अनन्तरणीय पास दिया जाता है जिससे वे भारत में किसी रेल से किसी समय यात्रा करने के हकदार होते हैं।[14]

---

9. विधान सभा (उपाध्यक्ष का वेतन) अधिनियम, 1921, धारा 2; और विधान सभा विभाग मंजूरी सं. 83/49-प्रशासन (ई) 1, दिनांक 27.4.1949 ।
10. संसद अधिकारी (यात्रा और दैनिक भत्ते) नियम, 1956, नियम 2(क)।
11. *पूर्वोक्त* नियम 2 (ख) और (ग)।
12. *पूर्वोक्त,* नियम 3 ।
13. *पूर्वोक्त,* नियम 4 ।
14. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 6, यथासंशोधित।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे उन पर लागू होने वाले नियमों के अंतर्गत भत्ते लेने का दावा नहीं कर सकते।

> यात्रा तथा अन्य भत्तों के संबंध में केन्द्रीय विधान सभा का अध्यक्ष निम्नलिखित का हकदार था—
>
> वह अपने निर्वाचन क्षेत्र के मुख्यालय और शिमला या दिल्ली के बीच अथवा शिमला और दिल्ली के बीच यात्रा के लिए पहले दर्जे का कंपार्टमेंट आरक्षित करा सकता था और प्रत्येक यात्रा के लिए अधिकतम पहले दर्जे के एक किराये तक की राशि अपने वास्तविक यात्रा खर्च के रूप में ले सकता था;
>
> वह अपने निर्वाचन क्षेत्र के मुख्यालय से दिल्ली और दिल्ली से वापस वहां तक अपने जोखिम पर मोटर कार के लाने, ले जाने का खर्चा और अपने शोफर के लिए तीसरे दर्जे का रेल किराया वर्ष में उतनी बार ले सकता था जितनी बार कि सभा का सत्र हो;
>
> जब भी वह शिमला अथवा दिल्ली अथवा अपने निर्वाचन क्षेत्र के मुख्यालय के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर जाता था तो उसे 15 रुपये प्रतिदिन का ठहरने का भत्ता मिलता था।

उपाध्यक्ष को यात्रा और दैनिक भत्ते वही मिलते थे जो कि विधान सभा सदस्यों को यात्रा तथा दैनिक भत्ते नियमों के अंतर्गत मिला करते थे।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष स्वयं यह फैसला करते हैं कि उन्हें कब यात्रा करनी है और वे अपने बिलों का प्रमाणीकरण स्वयं ही करते हैं। जहां तक विदेश यात्रा का संबंध है, प्रधान मंत्री और अध्यक्ष के बीच विचार-विमर्श होता है और उसके बाद इस प्रयोजन के लिए प्रधान मंत्री की सहमति प्राप्त कर ली जाती है।

अन्य सुविधाएं

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष अपनी पदावधि भर और उसके ठीक पश्चात् एक मास की अवधि तक किराया दिए बिना सुसज्जित निवास स्थान का उपयोग करने के हकदार होते हैं और ऐसे निवास स्थान के अनुरक्षण के बारे में उन पर वैयक्तिक तौर पर कोई प्रभार नहीं पड़ता।[15] संसद के अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर उसका कुटुम्ब उस सुसज्जित निवास स्थान का उपयोग करने का हकदार होता है जो संसद के अधिकारी के अधिकार में था और उसकी मृत्यु के ठीक पश्चात् एक मास की अवधि के लिए किराया दिए बिना वह उसका उपयोग कर सकता है और ऐसे निवास स्थान के अनुरक्षण के बारे में उसके कुटुम्ब पर कोई प्रभार नहीं पड़ेगा; उसका कुटुम्ब एक मास की अतिरिक्त अवधि के लिए विहित किराया और ऐसी अतिरिक्त अवधि के दौरान उस निवास स्थान में उपयोग की गई बिजली और पानी का प्रभार देकर उस निवास स्थान का उपयोग कर सकता है।

---

15. 20, अकबर रोड, नई दिल्ली का बंगला विशेष तौर पर केन्द्रीय विधान सभा के पहले अध्यक्ष के लिए बनाया गया था और 1921 से यह अध्यक्ष के सरकारी निवास स्थान के रूप में आरक्षित है।

निवास स्थान के संबंध में 'अनुरक्षण' के अंतर्गत स्थानीय रेटों और करों का संदाय और बिजली तथा पानी की व्यवस्था शामिल है और 'निवास स्थान' के अंतर्गत कर्मचारी क्वार्टर और उससे संलग्न अन्य भवन और उसका उद्यान शामिल है।[16]

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष और उनके कुटुम्ब के सदस्य सरकार द्वारा अनुरक्षित अस्पतालों में निःशुल्क वास सुविधा और चिकित्सीय उपचार के भी हकदार होते हैं।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों इस निमित्त निर्धारित शर्तों के अध्यधीन कार की खरीद के लिए अधिकाधिक चार लाख रुपये अथवा खरीदी जाने वाली कार की वास्तविक कीमत तक का, दोनों में से जो भी कम हो, प्रति संदेय मोटर कार अग्रिम ले सकते हैं।[17]

अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष यदि लोक सभा सदस्य नहीं रहता है तो अपना पद रिक्त कर देता है।[18] जब भी लोक सभा का विघटन किया जाता है, तो विघटन के पश्चात् होने वाले लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के ठीक पहले तक अध्यक्ष पद को रिक्त नहीं करता।[19] इस बात को देखते हुए अध्यक्ष अपना पद रिक्त होने की तारीख तक अपना वेतन और भत्ते लेता रहता है लेकिन उपाध्यक्ष को लोक सभा का विघटन होने पर वेतन और भत्ते नहीं मिलते हैं।

जब अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष, दोनों के पद रिक्त हो तो राष्ट्रपति द्वारा एक *सामयिक* अध्यक्ष की नियुक्ति की जाती है और वह अध्यक्ष के निर्वाचित होने तक अपने पद पर रहता है[20] परन्तु *सामयिक* अध्यक्ष को उस काल के लिए जिसमें कि वह अध्यक्ष हैं पद के कृत्यों का निर्वहन करता है, वेतन तथा भत्ते नहीं मिलते जो अध्यक्ष को अनुज्ञेय हैं।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, जिन्हें संसद अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953 यथासंशोधित के अंतर्गत वेतन तथा भत्ते मिलते हैं, लोक सभा के सदस्य होने के नाते उस निधि से कोई भी राशि लेने के हकदार नहीं हैं जिसकी व्यवस्था संसद द्वारा संसद के सदस्यों के वेतन तथा भत्तों के लिए की जाती है।

राज्य सभा के सभापति तथा उप सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के वेतन तथा भत्तों आदि पर होने वाला सारा व्यय भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्यय है।[21]

---

16. संसद अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953, धारा 4 ।
17. संसद अधिकारी (मोटर कार ऋण) नियम, 1953, नियम 2 ।
18. अनुच्छेद 94(क)।
19. अनुच्छेद 94, दूसरा परन्तुक।
20. *देखिए,* अनुच्छेद 95 (1)।
21. अनुच्छेद 112 (3) (ख)।

2. सदस्यों के वेतन, भत्ते और अन्य हकदारियां

वेतन और दैनिक भत्ते

लोक सभा तथा राज्य सभा का प्रत्येक सदस्य, जो मंत्री अथवा सभा का अधिकारी न हो, अपनी संपूर्ण पदावधि के दौरान प्रतिमास पचास हजार रुपये की दर से वेतन प्राप्त करने का हकदार है।[22] सदस्य की पदावधि उस तारीख से प्रारंभ होती है जिस दिन निर्वाचन आयोग द्वारा सभा के गठन के बारे में अधिसूचना प्रकाशित की जाती है और उस तारीख को समाप्त हो जाती है जिस दिन उसका स्थान रिक्त हो जाए। उसके वेतन पर आय कर लगता है।

वेतन के अतिरिक्त, लोक सभा तथा राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य को कर्त्तव्य पर रहते हुए निवास की किसी अवधि के दौरान प्रतिदिन दो हजार रुपये[23] मात्र की दर से बिना इस बात का ध्यान किए कि वह कब आया और कब गया, दैनिक भत्ता मिलता है।[24]

परन्तु यह कि कोई भी सदस्य पूर्वोक्त भत्ते का तब तक हकदार नहीं होगा जब तक कि वह सदन के उस सत्र के उस दिन, जिस दिन के लिए भत्ते का दावा किया जाता है (बीच में पड़ने वाली छुट्टियों को छोड़कर जिसके लिए ऐसे हस्ताक्षर आवश्यक नहीं हैं) लोक सभा सचिवालय अथवा राज्य सभा सचिवालय, यथास्थिति, द्वारा इस प्रयोजन के लिए रखे गए रजिस्टर पर हस्ताक्षर नहीं करता।[25]

---

22. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम 1954, धारा 3, 18 मई 2009 से यथासंशोधित।

23. *पूर्वोक्त,* 1अक्तूबर 2010 से यथासंशोधित ।

24. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 धारा 3 यथासंशोधित।

    'कर्त्तव्य पर रहते हुए निवास की अवधि' से ऐसी अवधि अभिप्रेत है जिसके दौरान सदस्य ऐसे स्थान पर, जहां संसद के किसी सदन का सत्र अथवा समिति की बैठक होती है अथवा जहां ऐसे सदस्य की हैसियत में उसके कर्त्तव्य से संबंधित कोई अन्य कार्य किया जाता है, वहां वह ऐसे सत्र अथवा बैठक में उपस्थित होने के प्रयोजन के लिए अथवा ऐसा अन्य कार्य करने के लिए निवास करता है, और इसके अंतर्गत—

    (i) संसद के किसी सदन के सत्र की दशा में उस सत्र के प्रारंभ होने से ठीक पूर्ववर्ती तीन दिन से अनधिक ऐसे निवास की अवधि तथा ऐसी तारीख, जिसको संसद का सदन अनिश्चित काल के लिए या सात दिन से अधिक अवधि के लिए स्थगित कर दिया जाता है, के ठीक पश्चात्‌वर्ती तीन दिन से अनधिक ऐसे निवास की अवधि; और

    (ii) समिति की बैठक या किसी अन्य कार्य की दशा में, समिति के कार्य या अन्य कार्य के प्रारंभ होने से ठीक पूर्ववर्ती दो दिन से अनधिक ऐसे निवास की अवधि तथा समिति के कार्य या अन्य कार्य की समाप्ति के ठीक पश्चात्‌वर्ती दो दिन से अनधिक ऐसे निवास की अवधि शामिल है।

25. *पूर्वोक्त,* यथासंशोधित, 9.6.1993 से प्रभावी, (1993 का अधिनियम 48)।

सदस्य प्रतिमाह 45,000 रुपये[26] की दर से निर्वाचन क्षेत्र भत्ता और प्रतिमास 45,000 रुपये[27] की दर से कार्यालय व्यय भत्ता पाने का हकदार है जिसमें से 15,000 रुपये लेखन सामग्री मदों पर और डाक व्यय की पूर्ति के लिए और लोक सभा/राज्य सभा सचिवालय ऐसे व्यक्ति (व्यक्तियों) को 30,000 रुपये प्रतिमास तक संदाय कर सकता है जिसे संसद सदस्य ने सचिवालय सहायता अभिप्राप्त करने के लिए लगाया हो बशर्ते कि उस व्यक्ति को कम्प्यूटर की जानकारी हो, जिसे किसी सदस्य द्वारा प्रभावित किया गया हो।

स्वतंत्रता से पूर्व विधानमंडल में उपस्थिति के दौरान सदस्यों के खर्च के विनियमन के संबंध में समय-समय पर भारत सरकार द्वारा अधिसूचना अथवा नियमों के रूप में आदेश जारी किए जाते थे जिनमें सामान्यत: सदस्यों के दैनिक तथा यात्रा भत्तों के विनियमन की व्यवस्था की जाती थी।

सदस्यों के वेतन आदि के संबंध में मुख्य उपबंध अब संसद द्वारा किए जाते हैं परंतु उनका ब्यौरा संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्ते संबंधी संयुक्त समिति द्वारा तैयार किया जाता है।[28] इस समिति के निर्णय लोक सभा अध्यक्ष तथा राज्य सभा के सभापति के अनुमोदन के अध्यधीन होते हैं। वे इस बाबत अनुमोदन संघ सरकार से परामर्श करके देते हैं।

केन्द्रीय विधान सभा के सदस्यों को विधान सभा की बैठक के स्थान पर निवास के प्रत्येक दिन के लिए प्रतिदिन 15 रुपये का भत्ता मिलता था[29] और मार्च, 1921 में यह भत्ता बढ़ाकर प्रतिदिन 20 रुपये कर दिया गया।[30] अक्तूबर, 1928 में दैनिक भत्ते के उपबंध में संशोधन किया गया जिसके द्वारा कर्त्तव्य पर रहते हुए निवास की किसी भी अवधि को उसमें शामिल कर दिया गया।[31]

विधान सभा के गैर-सरकारी सदस्यों को वेतन देने का प्रस्ताव पहली बार 1933 में अध्यक्ष षणमुखम चेट्टी ने किया, जिस पर विशेष समिति ने विचार किया, परन्तु आयकर की कठिनाइयों को देखते हुए इस प्रस्ताव को छोड़ दिया गया।

बजट सत्र, 1945 के प्रारंभ से गैर-सरकारी सदस्य इस बात के हकदार हो गए कि वे युद्धकाल की अवधि के दौरान प्रतिदिन 30 रुपये दैनिक भत्ता और प्रतिदिन 15 रुपये वाहन भत्ता ले सकते हैं। ये बढ़ी हुई दरें बजट सत्र 1946-47 के अंत तक लागू रहीं।

जब संविधान सभा अपने विधायी कार्य करने के लिए समवेत हुई तो सदस्य ऐसी दरों पर और ऐसी शर्तों पर भत्ता लेने के हकदार हो गए जो कि 'डोमिनियन' की स्थापना

---

26. संसद सदस्य (निर्वाचन क्षेत्र संबंधी भत्ता) नियम 1986, नियम 2, यथासंशोधित, 1 अक्तूबर, 2010 से प्रभावी।
27. संसद सदस्य (कार्यालय व्यय भत्ता) नियम, 1988, नियम 3, यथासंशोधित, 1अक्तूबर 2010 से प्रभावी।
28. संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के कार्यकरण के लिए *देखिए* अध्याय-30 ''संसदीय समितियां''।
29. वित्त विभाग, संकल्प संख्या 2441–ई.बी., 13.12.1920।
30. *पूर्वोक्त,* संख्या 529-ई.बी., 23.3.1921 ।
31. विधायी विभाग, संकल्प संख्या एफ. 159/28-ई, 4.10.1928 ।

के तुरंत पहले लागू थीं।[32] अप्रैल, 1948 में यह निर्णय किया गया कि दोनों भत्ते अर्थात् दैनिक भत्ता और वाहन भत्ता मिला दिए जाएं और प्रतिदिन 45 रुपये समेकित दैनिक भत्ता कर दिया जाए जिस पर कोई आयकर न लगे और यह भत्ता सभी सदस्यों को मिले, बिना इस बात का ध्यान रखते हुए कि सभा की बैठक संविधान बनाने वाली सभा के रूप में हो रही है या विधायी सभा के रूप में हो रही है।

1949 में संविधान सभा ने एक संकल्प[33] पारित किया जिसके अंतर्गत दैनिक भत्ते में प्रतिदिन 5 रुपये की स्वैच्छिक कटौती की गई। इस प्रकार अक्तूबर, 1949 के समेकित दैनिक भत्ता घटकर प्रतिदिन 40 रुपये रह गया। अंतरिम संसद और पहली लोक सभा के सदस्यों को भी इसी दर पर भत्ता मिलता रहा।

संविधान में सदस्यों को वेतन तथा भत्ते[34] देने के संबंध में जो उपबंध किया गया था, उसके अनुसरण में अध्यक्ष, मावलंकर ने 6 जून, 1952 को दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति की नियुक्ति की घोषणा की। इस समिति का काम इस प्रश्न पर विचार करना था कि संसद के सदस्यों को केवल वेतन ही दिया जाए अथवा कुछ वेतन और कुछ भत्ते दिए जाएं।[35]

समिति ने यह सिफारिश करते हुए 4 अगस्त, 1952 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि सदस्यों को 35 रुपये दैनिक भत्ता दिया जाए। इस प्रतिवेदन पर सभा में 27 मार्च, 1954 को विचार किया गया और सभा ने एक संकल्प पारित करके इस प्रश्न को संयुक्त समिति के पास फिर भेज दिया।[36] समिति ने अपना दूसरा प्रतिवेदन 20 अप्रैल, 1954 को प्रस्तुत किया, जिसमें यह सिफारिश की गई थी कि सदस्यों को या तो प्रतिमाह 300 रुपये वेतन और 20 रुपये दैनिक भत्ता दिया जाए या 40 रुपये दैनिक भत्ता दिया जाए। संविधान के उपबंध का अनुपालन करते हुए संसद ने संसद सदस्य वेतन तथा भत्ता अधिनियम, 1954 पारित किया, जिसके अंतर्गत सदस्य का मासिक वेतन 400 रुपये और 40 रुपये के स्थान पर 21 रुपये दैनिक भत्ता निश्चित किया गया।[37]

निर्वाह लागत में वृद्धि और अन्य बहुत से खर्चों के कारण, जोकि सदस्यों को सार्वजनिक जीवन में रहने के कारण करने पड़ते हैं, यह समझा गया कि उनकी परिलब्धियां पर्याप्त नहीं हैं और इसलिए उनका दैनिक भत्ता बढ़ाकर 1964 में 31 रुपये प्रतिदिन, 1969 में 51 रुपये, 1983 में 75 रुपये प्रतिदिन, 1988 में 150 रुपये और उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर के अध्यधीन 1993 में 200 रुपये प्रतिदिन और पुनः 20 अगस्त, 1998 को 400 रुपये प्रतिदिन कर दिया गया। अब 14 सितम्बर, 2006 से यह 1000 रु. प्रतिदिन है। अब 1 अक्तूबर, 2010 से यह 2000 रुपये प्रतिदिन है।

---

32. भारत सरकार अधिनियम, 1935, धारा 29, भारत (अंतरिम संविधान) आदेश, 1947 द्वारा यथा स्वीकृत।
33. *सं.स.वा.वि.,* खण्ड X, 17.10.1949, पृ. 385-88 ।
34. अनुच्छेद 106 ।
35. *लो.स.वा.वि.* (II), 6.6.1952, कॉ. 939-42 ।
36. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 27.3.1954, कॉ. 3360-90 ।
37. *पूर्वोक्त,* 14.5.1954, कॉ. 1790-94 ।

जिस सदस्य को संविधान के अंतर्गत सभा से अनुपस्थिति की अनुमति मिल जाए, उसे कोई दैनिक भत्ता अनुमत्य नहीं है।[38] सत्र के दौरान किसी सदस्य को सभा की सेवा से एक निर्धारित अवधि के लिए निलंबित कर दिया जाए तो वह कर्त्तव्य पर रहते हुए निवास के प्रत्येक दिन के लिए दैनिक भत्ता पाने का हकदार है, लेकिन जिस सदस्य को शेष सत्र के लिए सभा की सेवा से निलंबित कर दिया जाए वह दैनिक भत्ता पाने का हकदार नहीं है।[39]

कोई सदस्य अपनी नजरबंदी के दौरान दैनिक भत्ता पाने का हकदार नहीं होता है क्योंकि जिस स्थान पर सत्र हो रहा है, उस स्थान पर नजरबंदी की हालत में उसका निवास सत्र में उपस्थित होने के प्रयोजन के लिए उसका निवास नहीं समझा जा सकता है।

संसद सदस्यों के वेतन में संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के जरिए समय-समय पर वृद्धि की गई। सबसे पहले संसद सदस्यों का वेतन बढ़ाकर 1 जून, 1964 से 500 रुपये; 30 अगस्त, 1983 से 750 रुपये; 26 दिसम्बर, 1985 से 1000 रुपये; 1 अप्रैल, 1988 से 1500 रुपये; 20 अगस्त, 1998 से 4000 रुपये और सितम्बर 2001 से 12000 रु. प्रतिमाह कर दिया गया।[40] अब यह 16 सितम्बर, 2006 से 16,000 रु. प्रतिमाह है। अब यह 18 मई, 2009 से पचास हजार रूपये है।

यात्रा भत्ता

लोक सभा तथा राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य को सदन के सत्र या किसी समिति की बैठक में उपस्थित होने के प्रयोजन के लिए या सदस्य के रूप में, अपने कर्त्तव्यों से संबंधित किसी अन्य कार्य हेतु उपस्थित होने के प्रयोजन के लिए अपने प्रायिक निवास स्थान से उस स्थान तक, जहां ऐसा सत्र या ऐसी बैठक होने वाली हो या अन्य कार्य किया जाने वाला हो तथा ऐसे स्थान से अपने प्रायिक निवास स्थान तक वापसी के लिए की गई प्रत्येक यात्रा के लिए निम्नलिखित यात्रा भत्ता दिया जाता है:—

(क) यदि यात्रा रेल द्वारा की जाती है, तो प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए पहले दर्जे के एक टिकट और दूसरे दर्जे के एक टिकट के किराए के बराबर राशि, चाहे सदस्य ने वास्तव में किसी भी दर्जे में यात्रा की हो;

(ख) यदि यात्रा वायु मार्ग द्वारा की जाती है, तो प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए वायुयान के 1-1/4 टिकट के किराए के बराबर राशि;

---

38. *देखिए* अनुच्छेद 101 (4) और अध्याय 16-'सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति' जो सदस्य सभा की अनुमति लेकर बीमारी के कारण अनुपस्थित रहता है और सत्र के स्थान पर ही निवास करता है वह दैनिक भत्ता पाने का हकदार है, जब तक कि यह स्पष्ट न हो जाए कि छुट्टी के दौरान उसका वहां पर रहना केवल इलाज के लिए है।

देखिए संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के निर्णय, दिनांक 13.8.1960 और 18.12.1963 ।

39. *समाचार-भाग* 2, 29.11.1965, पैरा 1504 ।

40. 2010 के अधिनियम 37 द्वारा प्रतिस्थापित– 18 मई 2009 से प्रभावी।

(ग) यदि यात्रा या उसका कोई भाग रेल या वायुयान द्वारा नहीं किया जा सकता है–

(i) जहां यात्रा या उसका कोई भाग स्टीमर द्वारा किया जा सकता है वहां प्रत्येक ऐसी यात्रा या उसके भाग के लिए स्टीमर में उच्चतम दर्जे के 1-3/5 टिकट के किराए (भोजन रहित) के बराबर राशि।

(ii) जहां यात्रा या उसका कोई भाग सड़क मार्ग द्वारा किया जाता है, वहां प्रत्येक यात्रा या उसके भाग के लिए 16 रुपये प्रति कि.मी. की दर से सड़क मील भत्ता[41] सदस्य को दिल्ली में घर से हवाई-अड्डे तक या हवाई-अड्डे से घर तक सड़क मार्ग से की गई यात्रा के लिए न्यूनतम 320 रुपये की राशि दी जाती है।

(घ) रेल अथवा स्टीमर से जुड़े हुए स्थानों की सड़क द्वारा पूर्णतः या भागतः यात्रा करने पर सदस्य सड़क मील भत्ता प्राप्त करने का हकदार होता है।[42]

जहां कोई सदस्य सदन के सत्र या किसी समिति की बैठक के दौरान भारत में किसी स्थान को जाने के लिए 15 दिन से कम अवधि के लिए अनुपस्थित रहता है, वहां वह ऐसे स्थान को, ऐसी यात्रा के लिए और ऐसे स्थान से वापसी यात्रा के लिए निम्नलिखित यात्रा भत्ता पाने का हकदार है:–

(क) यदि यात्रा रेल द्वारा की जाती है, तो प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए, पहले दर्जे के एक टिकट के किराये के बराबर राशि, चाहे सदस्य ने वास्तव में यात्रा किसी भी दर्जे से की हो;

(ख) यदि समिति की बैठक के दौरान यात्रा वायु मार्ग द्वारा की जाती है तो प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए वायुयान के एक टिकट के किराए के बराबर राशि।

परन्तु यह तब जबकि ऐसे यात्रा भत्ते, ऐसे दैनिक भत्तों की कुल रकम से अधिक नहीं होते, जो यदि वह सदस्य उस प्रकार अनुपस्थित नहीं रहता, तो अनुपस्थिति के दिनों के लिए उसे अनुज्ञेय होते।

परन्तु यह और कि प्रथम परन्तुक की कोई भी बात लागू नहीं होगी यदि सदस्य समिति की बैठक के दौरान भारत में किसी स्थान को जाने के लिए एक से अनधिक बार वायु मार्ग द्वारा यात्रा करता है।

अनुदानों की मांगों पर विचार किए जाने के दौरान विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों की बैठकों में सदस्यों के भाग लेने हेतु 31 मार्च, 1995 से एक विशेष प्रावधान किया गया। कोई सदस्य विभागों से सम्बद्ध किसी स्थायी समिति की दो बैठकों के बीच छह दिन से अनधिक के ऐसे अंतराल के दौरान, जब संसद का कोई सदन बजट सत्र के दौरान नियत अवधि के लिए स्थगित कर दिया जाता है, भारत में किसी स्थान पर जाने के लिए वायु मार्ग द्वारा की गई प्रत्येक यात्रा के लिए यात्रा भत्ता पाने का हकदार होगा।

---

41. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 4, 1 अक्तूबर, 2010 से प्रभावी।

42. *पूर्वोक्त* धारा-5, 5 सितम्बर 2006 से प्रभावी।

परन्तु यह कि ऐसे यात्रा भत्ते, वायुयान के किराए को छोड़कर, ऐसे दैनिक भत्तों की कुल रकम से अधिक नहीं होंगे, जो यदि वह सदस्य अनुपस्थित नहीं रहता तो अनुपस्थिति के दिनों के लिए उसे अनुज्ञेय होते।[43]

प्रत्येक सदस्य को या तो अकेले या पति/पत्नी के साथ या साथियों या नातेदारों की किसी संख्या के साथ पूरे वर्ष के दौरान भारत में किसी स्थान से किसी अन्य स्थान को वायु मार्ग द्वारा चौंतीस एकल यात्राएं करने की सुविधा दी गई है। पति/पत्नी, साथी या नातेदारों द्वारा की गई कोई यात्रा चौंतीस यात्राओं की सीमा की संगणना करने में जोड़ी जाएगी। जहाँ किसी सदस्य द्वारा एक वर्ष में वायु मार्ग द्वारा की जाने वाली यात्राएं चौंतीस से कम हैं, वहां उसके द्वारा न की गई ऐसी यात्राओं की संख्या पश्चात्वर्ती वर्ष के खाते में अग्रनीत हो जाएंगी।[44]

परन्तु कोई सदस्य किसी वर्ष के दौरान अपने द्वारा की गई चौंतीस यात्राओं से अधिक यात्राओं की बाबत कोई संदाय पाने का हकदार नहीं होगा। निर्धारित की गई सीमा, जिसके अंतर्गत दैनिक भत्ते की रकम के संदाय, जो अनुपस्थिति के दिनों के लिए अनुज्ञेय होता यदि सदस्य इस प्रकार अनुपस्थित नहीं रहता, इस मामले में लागू नहीं होगी।

विमान यात्राओं के प्रयोजनों के लिए वर्ष की संगणना संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1985 अर्थात् 26 दिसम्बर, 1985 के प्रारंभ से शुरू होने वाले वर्ष और प्रत्येक पश्चात्वर्ती वर्ष तथा किसी ऐसे व्यक्ति की दशा में जो ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् सदस्य बनता है, ऐसी तारीख से, जब सदस्य की हैसियत में उसकी पदावधि प्रारंभ होती है, शुरू होने वाले वर्ष और प्रत्येक पश्चात्वर्ती वर्ष से की जाएगी।[45]

ऐसा प्रत्येक सदस्य, जिसका जम्मू-कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र में सामान्य निवास स्थान है, लद्दाख के किसी विमान-पत्तन से दिल्ली विमान-पत्तन तक आने और जाने के लिए उसके द्वारा अपनी पत्नी/पति या किसी एक व्यक्ति के साथ किसी भी समय की गई प्रत्येक एकल यात्रा के लिए वायुयान के टिकट के किराए के बराबर रकम पाने का हकदार है।[46]

जहां सदन के एक सत्र के स्थगन या यथास्थिति किसी समिति की एक बैठक तथा उसी स्थान पर उस सदन के पुन: समवेत होने या समिति की अगली बैठक के बीच अंतराल 5 दिन[47] से अधिक न हो और संबद्ध सदस्य अंतराल के दौरान ऐसे स्थान पर रहता है, वह वहां ऐसे स्थान पर निवास के प्रत्येक दिन के लिए विहित दैनिक भत्ता लेने का हकदार है।

---

43. पूर्वोक्त, धारा 5(1क), 31 मार्च 1995 से प्रभावी।
44. *पूर्वोक्त,* 15 सितम्बर, 2006 से प्रभावी।
45. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1985, 26 दिसम्बर, 1985 से प्रभावी।
46. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1988 (1988 का अधिनियम 30), 1 अप्रैल, 1988 से प्रभावी।
47. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) (अधिनियम 40), 2006, 15 सितम्बर 2006 से प्रभावी।

रेल द्वारा मुफ्त यात्रा

प्रत्येक सदस्य को वातानुकूलित प्रथम दर्जे या आभिजात्य दर्जे[48] का एक मुफ्त अहस्तांतरणीय रेल पास दिया जाता है जिससे वह भारत में किसी भी रेल से किसी भी समय यात्रा करने का हकदार हो जाता है। ऐसे मामले में जब तक किसी सदस्य को मुफ्त रेल पास न दिया जाए अथवा जो सदस्य न रह जाने पर अपना पास वापस कर देता है, वह संबद्ध अधिनियम में निर्दिष्ट प्रावधान के अनुसार की गई रेल यात्रा के लिए किसी रेलगाड़ी के वातानुकूलित प्रथम दर्जे या आभिजात्य दर्जे के एक टिकट के किराए के बराबर रकम पाने का हकदार होगा।[49] प्रत्येक सदस्य, जब वह रेलगाड़ी से यात्रा करता है तब उसके साथ आने-जाने वाला एक व्यक्ति वातानुकूलित दो टियर[50] दर्जे के एक मुफ्त रेल पास का हकदार है। सदस्य की पत्नी/पति, यदि कोई हो, सदस्य के साथ भारत में किसी स्थान से किसी अन्य स्थान तक सभी रेलगाड़ियों के वातानुकूलित प्रथम दर्जे अथवा आभिजात्य दर्जे में किसी भी रेलगाड़ी से मुफ्त रेल यात्रा करने का हकदार है।[51]

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह संघ राज्यक्षेत्र या लक्षद्वीप संघ राज्यक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रत्येक सदस्य को एक मुफ्त अहस्तांतरणीय पास दिया जाता है जिससे वह अपने निर्वाचन क्षेत्र के किसी एक भाग तथा उसके दूसरे भाग के बीच या अपने निर्वाचन क्षेत्र के एक भाग तथा भारत की मुख्य भूमि के निकटतम पत्तन के बीच स्टीमर द्वारा उच्चतम दर्जे से किसी भी समय यात्रा करने का हकदार है। द्वीप समूह का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रत्येक सदस्य अपने प्रायिक निवास स्थान से भारत की मुख्य भूमि के निकटतम विमानपत्तन तक वायुयान के टिकट के किराए के बराबर राशि प्राप्त करने का हकदार है।[52]

इसके अतिरिक्त, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह संघ राज्यक्षेत्र या लक्षद्वीप संघ राज्यक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाला सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र के किसी एक भाग और भारत की मुख्य भूमि के निकटतम पत्तन के बीच स्टीमर द्वारा उच्चतम दर्जे में (भोजन रहित) यात्रा करने के लिए सदस्य के साथ आने-जाने वाले एक व्यक्ति के लिए मुफ्त पास का या अपने निर्वाचन क्षेत्र में अपने प्रायिक निवास स्थान से और भारत की मुख्य भूमि के निकटतम पत्तन तथा स्टीमर से उच्चतम दर्जे (भोजन रहित) में आने-जाने के लिए अपनी पत्नी/पति, यदि कोई हो, के लिए एक मुफ्त अहस्तांतरणीय पास का हकदार है। ऐसा प्रत्येक सदस्य द्वीप

---

48. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1999, 22 मार्च, 1999 से प्रभावी।
49. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1954, धारा 4(1)।
50. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1993, 22 मार्च, 1999 से प्रभावी।
51. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 1999, 22 मार्च, 1999 से प्रभावी।
52. *पूर्वोक्त* ।

में, प्रायिक निवास स्थान से भारत की मुख्य भूमि के निकटतम विमानपत्तन तक अपनी पत्नी/पति, यदि कोई हो, के लिए या अपने साथ आने-जाने वाले एक व्यक्ति के लिए वायुयान के टिकट के किराए के बराबर की रकम का हकदार भी है।[53]

नेत्रहीन और शारीरिक रूप से अक्षम संसद सदस्यों को सुविधाएं[54]

नेत्रहीन अथवा शारीरिक रूप से अक्षम सदस्य को उसके साथ चलने वाले व्यक्ति हेतु अतिरिक्त किराया प्राप्त करने की पात्रता है, यदि यात्रा रेल द्वारा की जाती है तो साथ जा रहे व्यक्ति को वातानुकूलित और दो-टीयर श्रेणी के मुफ्त रेल पास के बदले उस श्रेणी में यात्रा करने हेतु नि:शुल्क रेल पास प्रदान किया जाता है जिसमें सदस्य यात्रा करता है; और यदि सदस्य द्वारा यात्रा न तो रेल में और न ही हवाई यात्रा के द्वारा पूरी की जाती है तो उसे एक रोड माइलेज के समक्ष राशि प्रदान करने की पात्रता है।[55]

विदेश यात्राओं के लिए भत्ता

जहां सदस्य के नाते अपने कर्त्तव्यों के पालन के निमित्त कोई सदस्य भारत से बाहर यात्रा करता है तो वह नि:शुल्क वापसी वायुयान व रेल व समुद्री मार्ग व्यय और उतने दैनिक भत्ते का हकदार है जितना भारत सरकार के श्रेणी-एक के पदाधिकारी को मिलता है।[56]

सदस्यों को रास्ते में जहां बाध्य होकर रुकना पड़ जाए और विमान कंपनियां भोजन और निवास की व्यवस्था न करें, वहां रुकने के स्थान पर मिलने वाले अधिकतम दैनिक भत्ते की राशि पर भोजन और निवास पर होने वाले व्यय, पारपत्र शुल्क और टीके आदि लगाने पर हुए वास्तविक व्यय और आवश्यक वाउचर प्रस्तुत करने पर कर्त्तव्य पालन के समय किए गए आनुषंगिक व्यय जैसे बख्शीश, टैक्सी का किराया और कैब का भाड़ा प्राप्त करने के लिए भी सदस्य हकदार है। जहां वाउचर उपलब्ध न हो, व्यय इस प्रमाण-पत्र के आधार पर मिल जाता है कि वह व्यय वस्तुत: किया गया है।

यदि यह प्रश्न उठे कि सदस्य ने देश के बाहर जो यात्रा की है, वह संसद के कार्य के लिए थी या नहीं, तो लोक सभा के सदस्य की दशा में, यह प्रश्न अध्यक्ष को और राज्य सभा के सदस्य की दशा में, राज्य सभा के सभापति को विनिश्चय के लिए भेज दिया जाता है और इस विषय में उनका विनिश्चय अंतिम होता है।

कोई भी सदस्य अपनी सदस्यता अवधि के दौरान एक लाख रुपये तक की विदेशी मुद्रा के कोटे का पात्र है।

इसके अलावा, सदस्य तथा सदस्य की पत्नी अथवा पति स्वयमेव अध्ययन दौरे के सिलसिले में विदेश जाने के लिए राजनयिक पारपत्र जारी किए जाने का पात्र है।

---

53. *पूर्वोक्त* ।
54. 7 जून 2000 से लागू 2000 के अधिनियम 17 द्वारा स्थानापन्न
55. 17 मई 2004 से भूतलक्षी आधार पर 2006 के अधिनियम 40 द्वारा सम्मिलित।
56. *देखिए*, संसद सदस्य (विदेश यात्रा के लिए भत्ते) नियम, 1960, नियम 2(1) (दो) तथा (2) (एक)।

सदस्यों को भुगतान की विधि

सदस्यों को वेतन तथा भत्तों का भुगतान, लोक सभा और राज्य सभा यथास्थिति, के वेतन और लेखा कार्यालयों द्वारा किया जाता है। सदस्यों की सुविधा के लिए संसद भवन में भारतीय स्टेट बैंक का एक भुगतान कार्यालय है, जहां सदस्य अपने चैक सारे साल भुना सकते हैं।[57]

पेंशन

(क) भूतपूर्व संसद सदस्यों को पेंशन : ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को आठ हजार रुपए[58] प्रतिमास पेंशन दी जाएगी जिसने किसी भी अवधि तक[59] अंत:कालीन संसद या संसद के किसी भी सदन के सदस्य के रूप में सेवा की है:

परंतु जहां किसी व्यक्ति ने अंत:कालीन संसद और संसद के किसी सदन के सदस्य के रूप में पांच वर्ष से अधिक की कालावधि के लिए सेवा की है, वहां उसे पांच वर्ष से अधिक प्रत्येक वर्ष के लिए आठ सौ रुपए प्रतिमास की अतिरिक्त पेंशन दी जाएगी।

उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए वर्ष की संगणना करने में वह कालावधि हिसाब में ली जाएगी, जिसके दौरान किसी व्यक्ति ने मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952 में यथापरिभाषित मंत्री के रूप में या संसद अधिकारी वेतन और भत्ता अधिनियम, 1953 में यथापरिभाषित संसद अधिकारी के रूप में (राज्य सभा के सभापति से भिन्न) या [संसद में विपक्षी नेता वेतन और भत्ता अधिनियम, 1977 में यथापरिभाषित विपक्षी नेता के रूप में] सेवा की है या लोक सभा या राज्य सभा के सदस्य के आधार पर सभी या किन्ही ऐसी दो हैसियतों के रूप में सेवा की है।

जहां ऐसी अवधि में, जिसके लिए इस अधिनियम के अधीन पेंशन संदेय है, किसी वर्ष का कोई भाग अंतर्विष्ट है तब, यदि ऐसा भाग नौ मास का या उससे अधिक का है तो उसे अतिरिक्त पेंशन के संदाय के प्रयोजन के लिए पूरे एक वर्ष के बराबर किया जाएगा[60] और यदि ऐसा भाग नौ मास से कम है तो उसे गणना में नहीं लिया जाएगा।

जहां भूतपूर्व संसद सदस्य पेंशन के लिए हकदार कोई व्यक्ति—

(i) राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचित हो जाता है या किसी राज्य के राज्यपाल के पद पर या किसी संघ राज्यक्षेत्र के प्रशासक के पद पर नियुक्त किया जाता है; या

---

57. वेतन और लेखा कार्यालय के संबंध में अधिक जानकारी के लिए, *देखिए* अध्याय 39–लोक सभा का सचिवालय और बजट।

58. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 8क, 2010 के उपधिनियम 37 द्वारा प्रतिस्थापित, 18 मई 2009 से प्रभावी।

59. *पूर्वोक्त* ।

60. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 8(क), 9 जनवरी, 2004 को यथासंशोधित।

(ii) राज्य सभा या लोक सभा अथवा किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की विधान सभा अथवा किसी राज्य की विधान परिषद् का सदस्य बन जाता है; या

(iii) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या किसी स्थानीय प्राधिकारी के अधीन वेतन पर नियुक्त किया जाता है या ऐसी सरकार, निगम या स्थानीय प्राधिकारी से किसी पारिश्रमिक का अन्यथा हकदार हो जाता है;

वहां ऐसा व्यक्ति उस अवधि के लिए, जिसके दौरान वह ऐसा पद धारण करता है या ऐसे सदस्य के रूप में बना रहता है या इस प्रकार नियोजित रहता है या ऐसे पारिश्रमिक के लिए हकदार रहता है। भूतपूर्व संसद सदस्य पेंशन के लिए हकदार नहीं होगा:

परन्तु जहां ऐसे व्यक्ति को ऐसा पद धारण करने के लिए या ऐसा सदस्य होने के लिए या इस प्रकार नियोजित होने के लिए संदेय वेतन या जहां ऐसे व्यक्ति को खंड (iii) में निर्दिष्ट संदेय पारिश्रमिक, इन दोनों में से कोई संदेय पेंशन से कम है वहां ऐसा व्यक्ति केवल अतिशेष को पेंशन के रूप में पाने का हकदार होगा।

जहां भूतपूर्व संसद सदस्य पेंशन का हकदार कोई व्यक्ति, किसी अन्य पेंशन का भी हकदार[61] है वहां ऐसा व्यक्ति किसी अन्य पेंशन के अतिरिक्त ऐसी अन्य पेंशन प्राप्त करने का हकदार होगा। तथापि, किसी भूतपूर्व संसद सदस्य को पेंशन की मंजूरी संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम की धारा 8क तथा धारा 8कख में निर्धारित शर्तों द्वारा शासित होगी।

(ख) दिवंगत संसद सदस्य/भूतपूर्व संसद सदस्य की पत्नी/पति/पात्र आश्रित को कुटुम्ब पेंशन : दिवंगत संसद सदस्य की पत्नी/पति या आश्रित अपने जीवनकाल की शेष अवधि के दौरान उस पेंशन के 50 प्रतिशत के बराबर कुटुम्ब पेंशन पाने का हकदार[62] है जो अन्यथा दिवंगत संसद सदस्य को उसकी मृत्यु के समय देय थी। आश्रित संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम की धारा 2 (कक) में यथाविहित शर्तों को पूरा करने के अध्यधीन पेंशन प्राप्त करेगा। उन दिवंगत भूतपूर्व संसद सदस्यों, जो 15 सितम्बर, 2006 से पहले संसद के किसी भी सदन के सदस्य थे, की पत्नी/पति या आश्रित भी उन्हीं निबंधनों और शर्तों के अधीन कुटुम्ब पेंशन का हकदार होगा जो दिवंगत संसद सदस्य की पत्नी/पति या आश्रित पर लागू हैं।

यदि पत्नी/पति या आश्रित संसद सदस्य वेतन, भत्ता और अधिनियम के अंतर्गत किसी पेंशन का हकदार है तो वह कुटुम्ब पेंशन प्राप्त करने का हकदार नहीं होगी/होगा।

---

61. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 8(क)(3), 9 जून, 1993 को यथासंशोधित।

62. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 8कग, 15 सितम्बर, 2006 को यथासंशोधित।

कोई भी व्यक्ति 15 सितम्बर, 2006 से पूर्व की अवधि के लिए कुटुम्ब पेंशन के बकायों का दावा करने का हकदार नहीं होगा।

तथापि भूतपूर्व संसद सदस्य की पत्नी/पति या आश्रित को कुटुम्ब पेंशन की मंजूरी संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 8कख में निर्धारित शर्तों द्वारा शासित होगी।

सरकारी समितियों में सेवा करने वाले सदस्यों को दिए जाने वाले भत्ते आदि

सदस्यों को सरकार द्वारा समय-समय पर गठित समितियों और आयोगों का सदस्य नियुक्त या नामनिर्देशित किया जाता है। किसी गैर-सांविधिक निकाय में सेवा करने वाले सदस्यों को देय वेतन, मानदेय, भत्ते, बैठक शुल्क आदि और परिलब्धियां या सुविधाएं सामान्यत: उस सरकारी अधिसूचना या संकल्प में उल्लिखित होती हैं जिसे उस समिति आदि के गठन के समय जारी किया जाता है और किसी कानूनी निकाय के मामले में इन बातों के संबंध में जानकारी संबंधित अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत बनाए गए नियमों में दी जाती है। सदस्यों को भत्तों आदि की अदायगी भारत सरकार के संबद्ध मंत्रालयों या राज्य सरकारों के विभागों द्वारा की जाती है।

लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति ने यह सिफारिश की थी कि सदस्यों को निरर्हता से ग्रस्त होने के खतरे को रोकने के लिए सरकार को चाहिए कि वह सभी सरकारी उपक्रमों को, चाहे वे पूर्णतया या भागत: सरकार के स्वामित्व में हों, यह अनुदेश जारी करे कि वे अपने नियमों में ऐसा उपबंध करें कि उनमें सेवा कर रहे सदस्य 'प्रतिकरात्मक भत्ते' जिसे संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 2(क) में परिभाषित किया गया है, के सिवाय किसी भी धनराशि के हकदार न हों।[63] सरकार द्वारा गठित गैर-सांविधिक निकायों के संबंध में भी वैसी ही सिफारिश की गयी थी।[64]

तद्नुसार, भारत सरकार ने सरकार द्वारा गठित समितियों, आयोगों और जांच बोर्डों आदि में सेवा करने वाले सदस्यों को यात्रा भत्ते और दैनिक भत्ते आदि जैसे पारिश्रमिकों के भुगतान के संबंध में विस्तृत अनुदेश जारी किए।[65]

---

63. *देखिए* पहला प्रतिवेदन (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 17 ।
'प्रतिकरात्मक भत्ते' की परिभाषा इस प्रकार की गई है— प्रतिकरात्मक भत्ते से धन की वह राशि अभिप्रेत है जो किसी पद के धारक को उस पद के कृत्यों के पालन में उसके द्वारा उपगत किसी व्यय की प्रतिपूर्ति करने के लिए उसे समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए दैनिक भत्ते (जो भत्ता उस दैनिक भत्ते की रकम से अधिक न होगा जिसके लिए कोई संसद सदस्य, संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अधीन हकदार है) और किसी प्रवहण भत्ते, गृह भाटक भत्ते या यात्रा भत्ते के रूप में संदेय है।

64. *पूर्वोक्त,* पैरा 18 ।

65. वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग), कार्यालय ज्ञापन संख्या एफ. 6(26) ई-IV/59, दिनांक 5.9.1960 समय-समय पर यथासंशोधित—*देखिए* अता.प्र.सं. 3717, *लो.स.वा.वि.,* पृ. 45-46, 9.12.1968 ।

इन अनुदेशों के अनुसार संसद सदस्य सामान्यतः निम्नलिखित भत्तों के हकदार हैं:–

(क) यात्रा भत्ता

संसद सदस्य संघ सरकार द्वारा गठित समितियों/आयोगों आदि के कार्य के संबंध में रेल, सड़क, विमान और स्टीमर द्वारा की गयी यात्राओं के संबंध में उसी दर पर यात्रा भत्ते का हकदार है जो कि यथासंशोधित संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 4 के अंतर्गत अनुज्ञेय है।[66]

(ख) दैनिक भत्ता

संसद सदस्य उसी दर पर दैनिक भत्ता पाने का हकदार है जो संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 3 के अंतर्गत अनुज्ञेय है अर्थात् 2000 रुपये प्रतिदिन। संसद सदस्य यदि वास्तव में बैठक के स्थान पर रहता है तो वह बैठक के शुरू होने से दो दिन पहले तथा बैठक की समाप्ति के दो दिन बाद तक के लिए भी दैनिक भत्ता पाने का हकदार होगा।[67]

संसद के सत्र के दौरान या उस अवधि में, जब किसी संसदीय समिति, जिसका वह सदस्य है, की बैठक हो रही हो, सदस्य सरकारी समिति, आयोग आदि के काम के संबंध में कोई दैनिक भत्ता पाने का हकदार नहीं होता क्योंकि वह अपना दैनिक भत्ता सचिवालय से लेता है। तथापि यदि वह यह प्रमाणित करता है कि वह सरकारी समिति आदि से संबद्ध अपने कार्य के कारण संसद के सत्र या संबद्ध संसदीय समिति की बैठक में उपस्थित नहीं हो सका और उसने सचिवालय से कोई दैनिक भत्ता नहीं लिया है तो वह ऊपर उल्लिखित दैनिक भत्ता पाने का हकदार होगा।

चिकित्सा सुविधाएं

संसद सदस्य वही चिकित्सा सुविधाएँ प्राप्त करने के हकदार है जो केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना (सीजीएचएस) के अंतर्गत केन्द्रीय सिविल सेवा के प्रथम श्रेणी के राजपात्रित अधिकारियों को उपलब्ध हैं।[68]

16 नवम्बर, 1959 से पहले सदस्यों को चिकित्सा सुविधाएं देने की कोई नियमित व्यवस्था नहीं थी, जब चिकित्सा सुविधा (संसद सदस्य) नियम, 1959 के अनुसरण में अंशदायी स्वास्थ्य सेवा योजना (जिसका नाम अब केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना कर दिया गया है) उनके लिए भी लागू की गयी थी। पांच औषधालय मुख्यतः सदस्यों और उनके

---

66. लोक सभा सचिवालय का.ज्ञा. सं. एफ. 11/5/एमएसए/86, 30 जनवरी, 1989 ।

67. *पूर्वोक्त* । 1 अक्तूबर 2010 से प्रभावी/यथासंशोधित।

68. *देखिए* चिकित्सा सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1959 । प्रत्येक सदस्य से उसके वेतन के हिसाब से उसी दर से अनिवार्य मासिक अभिदाय उद्गृहीत किया जाता है जो सदस्य के समान वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारी द्वारा संज्ञेय होता है और ऐसा अभिदाय सदस्य के मासिक वेतन बिल से वसूल किया जाता है।

कुटुम्ब की चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

इसके अतिरिक्त, सदस्यों के लाभ के लिए एक-एक आयुर्वेदिक, यूनानी और होम्योपैथिक औषधालय भी कार्य कर रहे हैं। ये सुविधाएं सदस्य को संसद सदस्यता समाप्त होने के एक माह बाद तक अनुज्ञेय हैं।

सदस्यों की सुविधा के लिए संसद भवन तथा विट्ठलभाई पटेल हाउस परिसर में आपतिक मामलों को देखने के लिए एक वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी के अधीन निर्धारित अवधि के दौरान वर्ष भर एक प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र कार्य करता है।

संसदीय सौध में एक चिकित्सा जांच केन्द्र भी स्थापित किया गया है जिसमें एक चिकित्सा विशेषज्ञ तथा एक्स-रे, अल्ट्रासाऊंड, ईसीजी, फिज़ियोथेरेपी, हृदय रोग जांच तथा प्रयोगशाला परीक्षण सुविधाएं उपलब्ध हैं। विनिर्दिष्ट दिनों में सप्ताह में तीन दिन दंत विशेषज्ञ, नेत्र विशेषज्ञ, कान-नाक-गला विशेषज्ञ, शल्य क्रिया विशेषज्ञ, अस्थि विशेषज्ञ, स्त्री रोग विशेषज्ञ, चर्म रोग विशेषज्ञ, बाल चिकित्सा विशेषज्ञ और मनोरोग विशेषज्ञ जैसे अन्य विशेषज्ञों के अलावा एक आहार विशेषज्ञ भी इस केन्द्र में आते हैं।

केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना के अंतर्गत 6 जुलाई, 1976 से भूतपूर्व संसद सदस्यों को स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा चिकित्सा सुविधाएं प्रदान की गयी हैं।

केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना की सुविधाएं इसके लाभभोगियों को अब देश में अनेक महत्वपूर्ण शहरों में उपलब्ध हैं।

आवास सुविधाएं

संसद सदस्य फ्लैट (होस्टल आवास सुविधा सहित) के रूप में अनुज्ञप्ति (लाइसेंस)[69] फीस के संदाय के बिना अपने पूरे कार्यकाल के दौरान आवास सुविधा[70] के हकदार हैं। सदस्य

---

69. लोक सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन के बाद, नई दिल्ली में सदस्यों के ठहरने के लिए अस्थायी व्यवस्था की जाती है। ऐसे आवास को अस्थायी आवास माना जाता है। इस अस्थायी आवास में ठहरने के दौरान सदस्यों को तब तक के लिए बिना लाइसेन्स शुल्क के "सिंगल सुईट" प्रदान किया जाता है जब तक कि उन्हें नियमित आवास उपलब्ध नहीं करा दिया जाता। तथापि, अस्थायी आवास में अपने ठहरने के दौरान सदस्यों को भोजन और अन्य अतिरिक्त सेवाओं के लिए प्रभार की अदायगी करनी होगी।

70. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, यथासंशोधित, धारा 8 तथा आवास और टेलीफोन सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1956, यथासंशोधित, नियम 2 ।

    'अनुज्ञप्ति फीस' में फर्नीचर, टेबल और पेडेस्टल पंखों, टेबल लैम्पों, फ्लोर स्टेंडर्ड लैम्प, बायलर्स, रेफ्रीजरेटर्स, डेजर्ट कूलरों और वातानुकूलन यूनिटों की लाइसेंस फीस और अतिरिक्त सेवाओं के संबंध में लिए जाने वाले प्रभार भी शामिल हैं।

    'सुधार' या 'वृद्धि' से अभिप्रेत है अतिरिक्त आवास सुविधा, फर्नीचर, टेबल और पेडेस्टल पंखे, टेबल लैम्प, फ्लोर स्टेंडर्ड लैम्प, बायलर, प्रशीतक, डेजर्ट कूलरों तथा वातानुकूलन यूनिटों की व्यवस्था करना।

की हैसियत को ध्यान में रखते हुए आवास समिति द्वारा[71] निर्धारित मानदंडों के अनुसार सदस्यों को बंगले के रूप में भी आवास आबंटित किए जाते हैं जिसके लिए उन्हें सामान्य अनुज्ञप्ति फीस का संदाय करना होता है।

आवास और टेलीफोन सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1956 यथासंशोधित[72] के अंतर्गत उस सदस्य को जिसे उसकी हकदारी के अनुसार कोई भी आवास आबंटित किया जाता है, उस आवास में किए गए किसी भी सुधार या वृद्धि के लिए अथवा इसमें उपलब्ध कराई गई किसी अतिरिक्त सेवा के लिए अनुज्ञप्ति फीस का संदाय करना होगा, जो इस प्रकार के सुधार, वृद्धि अथवा अतिरिक्त सेवा के संबंध में देय सामान्य किराए से पच्चीस प्रतिशत कम होगी। सदस्यों को क्रमश: टिकाऊ फर्नीचर की बाबत 60,000 रुपये और गैर-टिकाऊ फर्नीचर की बाबत 15,000 रुपये की विद्यमान धनीय सीमा के भीतर रहते हुए मुफ्त फर्नीचर उपलब्ध कराया जायेगा। सदस्यों द्वारा अपने निवास स्थान में 75,000 रुपये की अधिकतम सीमा से अतिरिक्त वांछित फर्नीचर के लिए फर्नीचर के मूल्य ह्रास पर आधारित अतिरिक्त किराया देना होगा। इसके अलावा, अतिरिक्त व्यवस्था जैसे कि स्नानागार और रसोईघर में टाइलें लगाने की मांग हो वहां यह सुविधा तथा प्रत्येक तीन माह की अवधि के बाद सोफा कवर और पर्दे धुलवाने की सुविधा सदस्य को नि:शुल्क प्राप्त होगी।

प्रत्येक सदस्य, उसे आबंटित किसी भी आवास सुविधा की बाबत या दिल्ली में किसी गैर- सरकारी आवास के बाबत, जिसमें वह निवास कर रहा है, जल और विद्युत प्रदाय के लिए प्रभारों का संदाय किए बिना प्रत्येक वर्ष की पहली जनवरी को आरंभ होने वाले वर्ष में प्रतिवर्ष अधिकतम 50,000 यूनिट विद्युत का (बिजली/पावर के मीटर की अलग-अलग 25,000 यूनिट अथवा संयुक्त रूप से) और प्रतिवर्ष 4,000 किलोलीटर जल का नि:शुल्क

'फर्नीचर' से फर्नीचर की ऐसी मदें अभिप्रेत हैं जो किसी सदस्य को उसे आबंटित निवास स्थान के लिए मिलती हैं और इसके अंतर्गत किसी सदस्य द्वारा अपने निवास स्थान में किराए पर ली गई अतिरिक्त मदें शामिल हैं।

'अतिरिक्त सेवा के लिए प्रभार' से अभिप्रेत है निम्नलिखित के संबंध में प्रभार—

- सदस्यों के निवास स्थानों में संबद्ध झाड़कशों, जमादारों तथा कर्मचारियों को झाड़न और झाड़ू उपलब्ध कराना;
- सदस्यों के निवास स्थानों पर बिजली के बल्बों का प्रदाय;
- फूलों की क्यारियों का रख-रखाव;
- सदस्यों के फायदे के लिए बनाए गए किसी स्थान (जैसे पूछताछ कार्यालय) का रख-रखाव; और
- सदस्यों के सामान्य फायदे के लिए उपलब्ध कराई गई कोई अन्य सुविधा।

71. आवास समिति के लिए, *देखिए* अध्याय 30—संसदीय समितियां।

72. आवास और टेलीफोन सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1956, नियम 2(3), 12 दिसम्बर, 2006 से प्रभावी।

उपभोग करने का हकदार होगा।[73]

नई लोक सभा के पहले सत्र के आरंभ होने से पूर्व सभी सदस्यों को सचिवालय एक परिपत्र जारी करता है जिसमें निवास स्थान के लिए आवेदन मांगे जाते हैं। आवास आबंटित करते समय यथासंभव यह प्रयास किया जाता है कि आवास समिति द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार सदस्य को अभीष्ट टाइप का आवास ही आबंटित किया जाए।

किसी सदस्य को यह अनुमति नहीं है कि वह यथास्थिति लोक सभा या राज्य सभा की आवास समिति के सभापति से लिखित पूर्व-अनुमति प्राप्त किए बिना अपना निवास स्थान किसी और को किराए पर दे दे या किसी अन्य व्यक्ति को चाहे वह संसद सदस्य ही क्यों न हो, अपने साथ वहां रख ले। सदस्य अपने सेवानिवृत्त होने, पदत्याग करने या हटाये जाने के बाद अधिकाधिक एक महीने तक उतना ही किराया देकर उस मकान में रह सकता है जितना वह इनमें से किसी घटना के घटने से पहले दे रहा था।

तथापि सदस्य के निधन की स्थिति में उसका परिवार अधिकतम छह महीने तक उस मकान में रह सकता है जिसके लिए उसे उतनी ही अनुज्ञप्ति फीस देनी होगी जितनी सदस्य के निधन के तुरंत पूर्व ली जाती थी। इसके बाद आबंटन रद्द समझा जाएगा। आवास के लिए अनुज्ञप्ति फीस और टेलीफोन प्रभार आदि की जो राशि संपदा निदेशालय और टेलीफोन विभाग द्वारा निर्धारित की जाती है, सदस्य के वेतन के बिल से काट ली जाती है।

जहां तक संभव हो सदस्यों के अतिथियों के उपयोग हेतु यथानिर्धारित अनुज्ञप्ति फीस का संदाय करने पर सदस्यों को अल्पावधि के लिए भी निवास स्थान दिया जाता है।

सदस्यों को निवास स्थान आबंटित करने और उनमें अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करने से संबंधित सभी प्रश्नों का निपटारा संबंधित आवास समिति करती है।

सदस्यों के लिए संसद भवन में भी कुछ कमरे उपलब्ध हैं, जहां वे अपना संसदीय कार्य कर सकते हैं।

सदस्यों को आबंटित किए गए भवनों और लॉन के रख-रखाव का काम केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग करता है। फर्नीचर के अतिरिक्त यह विभाग निर्धारित किराए पर सदस्यों को बिजली के उपकरण जैसे रूम हीटर, गीज़र, रेफ्रीजरेटर, टेबल तथा पेडस्टल पंखे और एयर कूलिंग यूनिट आदि भी देता है।

टेलीफोन सुविधाएं

अपनी पदावधि के दौरान सदस्य तीन निःशुल्क टेलीफोनों का हकदार है जिनमें से एक को वह या तो अपने निवास स्थान पर लगवा सकता है या दिल्ली या नई दिल्ली में अपने कार्यालय में और दूसरा अपने प्रायिक निवास स्थान पर अथवा अपने निर्वाचन क्षेत्र में अथवा उस राज्य में जहां वह निवास करता है, उसके द्वारा चुने गए स्थान पर लगवा सकता है। इनमें से दोनों टेलीफोनों के लिए संस्थापन प्रभार, मासिक किराया और पचास हजार स्थानीय कॉल[74] प्रतिवर्ष तक के प्रभार का वहन सरकार करती है। इसके अतिरिक्त किसी विधेयक संबंधी

73. *आवास और टेलीफोन सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1956,* नियम 2(2), 12 दिसम्बर, 2006 से प्रभावी।

74. पूर्वोक्त, नियम 4

प्रवर या संयुक्त समिति या किसी अन्य तदर्थ समिति को छोड़कर किसी संसदीय समिति के सभापति को उसके दिल्ली और नई दिल्ली के आवास पर लगे टेलीफोन से की गई कॉलों के लिए प्रभार के भुगतान से छूट दी जाएगी।[75] इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं:—

(i) प्रत्येक सदस्य दिल्ली/नई दिल्ली स्थित अपने आवास अथवा अपने प्रायिक निवास स्थान पर अथवा जिस राज्य में उसका निर्वाचन क्षेत्र पड़ता है उस राज्य में अथवा उस राज्य में जिसमें वह रहता है अपने चयनित स्थान पर संस्थापन और किराया प्रभार का भुगतान किए बिना एक अतिरिक्त टेलीफोन लगवाने का भी हकदार है और उस टेलीफोन पर इंटरनेट कनेक्टिविटी की सुविधा और एक वर्ष के दौरान 50,000 स्थानीय कॉलें नि:शुल्क की जा सकती हैं।

(ii) प्रत्येक टेलीफोन पर अनुमत्य उपर्युक्त 50,000 नि:शुल्क स्थानीय कॉलों को एक साथ जोड़ा जा सकता है जो कि एक वर्ष में कुल मिलाकर 1,50,000 स्थानीय कॉलें होती हैं।

(iii) सदस्य उपर्युक्त 1,50,000 नि:शुल्क स्थानीय कॉलों की सुविधा का लाभ उठाने के लिए कितने ही टेलीफोनों का उपयोग कर सकता है बशर्ते सभी टेलीफोन सदस्य के नाम पर हों तथा अतिरिक्त टेलीफोनों का संस्थापन और किराया प्रभार स्वयं सदस्य द्वारा वहन किया जाए।

(iv) सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र में उपयोग हेतु नेशनल रोमिंग सुविधायुक्त एमटीएनएल का एक मोबाइल फोन कनेक्शन और एमटीएनएल/बीएसएनएल अथवा एमटीएनएल/बीएसएनएल की सुविधाएं उपलब्ध न होने की स्थिति में किसी प्राइवेट मोबाइल आपरेटर से **अन्य मोबाइल फोन कनेक्शन** लेने का भी हकदार है तथा इन टेलीफोनों से की गई कॉलें उसे तीन टेलीफोनों पर उपलब्ध उपर्युक्त 1,50,000 कॉलों में समायोजित की जा सकती हैं। तथापि, प्राइवेट मोबाइल फोन कनेक्शन के लिए पंजीकरण और किराया प्रभार स्वयं सदस्य द्वारा वहन किया जाता है।

(v) यदि कोई सदस्य एक वर्ष में अनुमत्य नि:शुल्क कॉलों से अधिक कॉल करता है तो उन अधिक कॉलों को अगले वर्ष के लिए तीन टेलीफोनों पर उपलब्ध कालों में समायोजित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, किसी वर्ष की अप्रयुक्त टेलीफोन कॉलों को सदस्य का स्थान रिक्त होने तक अगले वर्षों के लिए अग्रेनीत कर दिया जाता है।

(vi) सदस्य उपर्युक्त तीन टेलीफोनों में से किसी भी एक टेलीफोन पर एमटीएनएल/बीएसएनएल की ब्राडबैण्ड सुविधा प्राप्त करने का भी हकदार है बशर्ते कि सरकार इस सुविधा के

---

75. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (यथासंशोधित) धारा 8; *देखिए*— आवास और टेलीफोन सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1956, यथासंशोधित और अता.प्र. सं. 674, *लो.स.वा.वि.,* 24.7.1969, पृ. 80 ।

प्रभार के रूप में सीधे एमटीएनएल/बीएसएनएल को प्रति माह 1500 रुपये तक अदा करे।

इसके अतिरिक्त, यदि सदस्य को कोई दूसरा निवास स्थान दिया जाता है या वह सरकार की तरफ से दिए गए स्थान को छोड़ देता है, तो उसका टेलीफोन दूसरे स्थान पर लगाने के लिए कोई पैसा नहीं लिया जाता है। सदस्य को एक बार टेलीफोन नंबर दे दिया जाए तो, जहां तक संभव हो (संसद का सत्र समाप्त होने पर टेलीफोन बंद करने के बाद) जब वह टेलीफोन फिर लगाया जाता है तो उसका नंबर उसकी प्रार्थना पर वही रहने दिया जाता है।

(vii) सदस्य इस सुविधा के भी हकदार हैं–

(एक) संसद सदस्य के हेतु अनुमान्य स्थानीय कॉल के कोटे से समायोजित की जाने वाली स्थानीय 999 रुपए प्रतिमाह की स्थानीय काल के समक्ष उसके बदले में मोबाइल चिप व आई पेड के लिए डाउन लोड (असमीमित नि:शुल्क डाटा डाउनलोड) की सुविधा।

(दो) नि:शुल्क कॉलों के कोटे से समायोजित किए जाने वाली 999 रुपए प्रतिमाह के समकक्ष स्थानीय कॉल के बदले असीमित ब्लैकबेरी डाटा प्रयोग तथा सदस्यों को प्रदत्त 3जी डाटा प्लान के अनुसार 3.6 एमपीबीएस का इन्सटेंट मैसेजिंग डाटा का प्रयोग करने की सुविधा।

(तीन) संसद सदस्य को अवमूल्य कॉल के कोटा से समायोजित किए जाने वाली 15 रुपए प्रतिमाह की स्थानीय कॉल के समकक्ष उसके बदले में वर्तमान 3जी मोबाइल सेट पर मोबाइल टी.वी. तथा मोबाइल कनेक्शन की सुविधा।

जहां किसी सदस्य की मृत्यु उसकी पदावधि के दौरान हो जाती है, वहां उसका परिवार सदस्य की मृत्यु से 2 माह से अनधिक अवधि के लिए टेलीफोन रखने और ऐसी सुविधाओं के उपभोग का हकदार होगा जो सदस्य को उसकी मृत्यु से ठीक पहले उपलब्ध थीं।

समय से पहले विघटित लोक सभा के सदस्यों को सुविधाएं

यदि कोई लोक सभा समय से पहले विघटित हो जाती है, तो विघटित लोक सभा के सदस्य लोक सभा के विघटन की तारीख से अगली लोक सभा के गठन तक अप्रयुक्त टेलीफोन कॉलों का उपयोग करने के हकदार हैं। इसके अलावा, यदि कोई सदस्य अगली लोक सभा के लिए पुनर्निवाचित हो जाता है तो वह अंत:कालीन अवधि के दौरान उपयोग की गई अतिरिक्त टेलीफोन कॉलों का समायोजन अगली लोक सभा के प्रथम वर्ष के लिए प्रदत्त कोटे से कर सकता है।

आशुलिपिकीय सहायता

सदस्यों को सीमित हद तक अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में आशुलिपिकीय सहायता दी जाती है जिससे कि वे अपना तात्कालिक संसदीय कार्य शीघ्र और ठीक ढंग से निपटा सकें।

वाहन खरीदने के लिए अग्रिम राशि

प्रत्येक सदस्य वाहन, जिसे खरीदने का विचार है, की वास्तविक कीमत या इस प्रयोजनार्थ निर्धारित शर्तों के अध्यधीन चार लाख रुपये से अनधिक, इनमें से जो भी कम हो,

का अग्रिम लेने का हकदार है। उक्त अग्रिम पर संघ सरकार द्वारा सरकारी कर्मचारियों के लिए वाहन क्रय हेतु अग्रिम के मामले में निर्धारित दर से साधारण ब्याज लिया जाएगा।[76]

आयकर से छूट

सदस्य द्वारा प्राप्त मासिक पारिश्रमिक को आयकर के प्रयोजनार्थ "अन्य स्त्रोतों से प्राप्त आय" कहा जाता है और परिणामस्वरूप स्त्रोत पर आयकर की कटौती नहीं की जाती। दैनिक भत्ते और यात्रा भत्ते पर आयकर नहीं लगता।

संसद ग्रंथालय और संदर्भ, शोध, प्रलेखन तथा सूचना सेवा द्वारा प्रदत्त सुविधाएं

लोक सभा सचिवालय की संसद ग्रंथालय और संदर्भ, शोध, प्रलेखन तथा सूचना सेवा का मुख्य उद्देश्य संसद की दोनों सभाओं के सदस्यों को विभिन्न घटनाओं के संबंध में निष्पक्ष, उद्देश्यपरक, प्रामाणिक और समय पर नियमित रूप से समुचित जानकारी देना है। यह सेवा संसद सदस्यों को दोनों सदनों के सामने चर्चा के लिए आने वाले विधायी उपायों और अन्य विषयों के संबंध में संदर्भगत सामग्री भी उपलब्ध कराती है जिससे कि वे संबंधित सदन में वाद-विवाद में प्रभावशाली ढंग से भाग ले सकें।

ग्रंथालय और संदर्भ, शोध, प्रलेखन तथा सूचना सेवा के विभिन्न प्रभागों/स्कंधों द्वारा प्रदत्त विभिन्न सुविधाएं तथा सेवाएं संक्षेप में इस प्रकार हैं—

संसद ग्रंथालय

संसद ग्रंथालय, संसद ग्रन्थालय भवन (संसदीय ज्ञानपीठ) में स्थित है। ग्रंथालय प्रभाग के मुख्य कार्य हैं—पुस्तकों, आवधिक पत्र-पत्रिकाओं, प्रतिवेदनों और विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त अन्य प्रकाशित सामग्री का अर्जन, प्रक्रमण, परिरक्षण और उन्हें जारी किया जाना।

वर्तमान में संसद ग्रंथालय द्वारा सदस्यों के उपयोग एवं संदर्भ हेतु 481 पत्रिकाओं तथा 85 समाचार पत्रों का अर्जन किया जाता है। इनमें अंग्रेजी की 374 हिन्दी की 72 तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की 35 पत्रिकाएँ सम्मिलित हैं। अंग्रेजी, हिन्दी और विभिन्न अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित आवधिक पत्र-पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों को संसद ग्रन्थालय भवन के भूतल के 'ए' ब्लाक में तथा संसद भवन के भूतल स्थित अध्ययन कक्ष में भी रखा जाता है। संसदीय समितियों के प्रतिवेदनों, विधि संबंधी रिपोर्टों, केन्द्रीय, राज्य और विदेशी सरकारों की रिपोर्टों, संयुक्त राष्ट्र तथा उसकी संबद्ध एजेंसियों के प्रकाशनों और अन्य संदर्भ प्रकाशनों जिनकी वर्तमान कुल संख्या 1.27 विलियन है। को संसद ग्रन्थालय भवन के प्रथम तथा द्वितीय निम्न तल में रखा जाता है। केन्द्रीय विधान सभा, संविधान सभा, लोक सभा, राज्य सभा, भारत में समस्त राज्य विधानमंडलों और चुनिन्दा विदेशी संसदों, भारत के तथा सभी राज्यों के राजपत्रों, 1841 से लेकर अब तक के केन्द्रीय अधिनियमों, विधेयकों, दोनों सदनों के पटलों पर रखे गए विवरणों को 'जी' ब्लाक में रखा जाता है। बहुविध विषयों से संबंधित पुस्तकों को ड्युई डेसीमल वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार व्यवस्थित किया गया है और ग्रन्थालय के

76. *उद्धृत कृति,* नियम 4 क।

प्रथम तल एवं प्रथम निम्न तल में रखा गया है। अध्ययन कक्ष संसद ग्रन्थालय के भूतल और प्रथम तल, दोनों पर स्थित हैं।

सदस्यों को पुस्तकों और अन्य प्रकाशनों का जारी किया जाना ग्रन्थालय नियमों द्वारा विनियमित किया जाता है जिन्हें ग्रन्थालय समिति की सिफारिशों के आधार पर तैयार किया जाता है।

राष्ट्रपति महात्मा गांधी की स्मृति में गांधी की कृतियों और अंग्रेजी, हिन्दी तथा भारत की अन्य विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में उनसे संबंधित साहित्य को भूतल पर एक *पृथक गांधियाना* अनुभाग में रखा जाता है। जिसके संसद ग्रंथालय 9 अगस्त 1978 में प्रारम्भ किया गया था। इसी प्रकार भारत के पहले प्रधान मंत्री, पंडित जवाहर लाल नेहरू से संबंधित ग्रन्थालय में जिसे नेहरूआना के नाम से एक पृथक एकक बनाया गया है जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त, संसद ग्रन्थालय में भूतल पर एक बाल कक्ष भी स्थित है।

दुर्लभ तथा कला पुस्तकें

संसद ग्रन्थालय में राजनीति, विधि, इतिहास, कला, चित्रकला, मूर्ति कला और स्थापत्य कला संबंधी दुर्लभ पुस्तकों का एक समृद्ध संकलन है। भारतीय कला संबंधी पुस्तकों के अंतर्गत भारतीय इतिहास का व्यापक चित्रण किया गया है जिनमें उसके विकास के विभिन्न चरणों को दर्शाया गया है। इनमें मुगल, राजपूत, कांगड़ा, गढ़वाल आदि विभिन्न कला शैलियों के चित्र शामिल हैं। विदेशी कला संकलनों के अंतर्गत माइकेल एंजेलो, लियोनार्दो द विन्सी और राफेल जैसे सुविख्यात कलाकारों की कृतियां तथा चीनी और जापानी कला, रूसी, जर्मनी, फ्रांसीसी, अमरीकी और अरबी चित्रकला संबंधी ग्रन्थ आते हैं। वर्ष 1671 में प्रकाशित बर्नियर कृत 'हिस्ट्री ऑन लेट रिवोल्यूशन ऑफ द ग्रेट मुगल एम्पायर' नामक पुस्तक संसद ग्रन्थालय में उपलब्ध सर्वाधिक पुरानी पुस्तकों में से है। संसद ग्रन्थालय में एक अन्य महत्वपूर्ण दुर्लभ दस्तावेज भारत के संविधान की मूल हस्तलिखित (अंग्रेजी और हिन्दी) प्रति है।

बाल कक्ष

जहां तक विधानमंडल ग्रन्थालयों का संबंध है, मुख्य संसद ग्रन्थालय के शाखा ग्रन्थालय के रूप में स्थापित बाल कक्ष एक अद्वितीय व्यवस्था है। बच्चों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था भारत के संसद ग्रन्थालय के अलावा केवल जापान की नेशनल *डाइट* लाइब्रेरी में है। संसद ग्रन्थालय में बाल कक्ष की स्थापना बाल अधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र[77] अभिसमय के लक्ष्य को पूरा करने की दिशा में एक कदम है।

---

77. बाल अधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र अभिसमय में हर बालक/बालिका को आयु, मूल वंश, लिंग, भाषा, सामाजिक हैसियत और सांस्कृतिक प्रष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव किये बिना सभी के लिये समान परिस्थितियों में पूर्ण क्षमता विकसित करेन का अधिकार, सूचना, सामग्री और कार्यक्रमों तक मुक्त तथा निर्वाध पहुँच का अधिकार दिया गया है।

बाल कक्ष का उद्‌घाटन अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी द्वारा 21 अगस्त, 2007 को किया गया था। संसद ग्रन्थालय में "बाल कक्ष" की स्थापना करने के पीछे उनकी अवधारणा बच्चों को, विशेष रूप से समाज के उपेक्षित वर्गों के उन बच्चों को सहज रूप से जरूरी जानकारी उपलब्ध कराने की दिशा में एक पहल है जिनकी पहुंच अच्छे और समृद्ध पुस्तकालय तक नहीं है। इस कक्ष की अभिकल्पना बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित करने और उन्हें संसद ग्रन्थालय के विपुल संसाधनों तथा संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार में प्रदर्शित वस्तुओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करने में समर्थ बनाने के लिए की गई है।

बाल कक्ष में 3418 से भी अधिक पुस्तकें, पत्रिकाएं/समाचारपत्र तथा पुराने क्लासिक्स, समकालीन कला साहित्य, विश्व कोश विज्ञान परियोजना संबंधी पुस्तकें एवं सीडी/डीवीडी के रूप में ई-साहित्य भी उपलब्ध कराया गया है। बच्चे समय-समय पर कम्प्यूटर और प्लाज्मा स्क्रीन पर फिल्म, नाटक और अन्य ज्ञानवर्धक कार्यक्रम भी देख सकते हैं। बच्चों को शैक्षिक उपकरण के रूप में कम्प्यूटर का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और सहायता प्रदान की जाती है।

बाल कक्ष को संवादात्मक कार्यकलाप का केन्द्र बनाने के लिए समय-समय पर चित्रकला प्रतियोगिता, किस्से-कहानी सुनाने, कथा चित्रण संबंधी प्रतियोगिता एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा कठपुतली शो भी आयोजित किए जाते हैं।

अपने शुभारम्भ से ही बाल कक्ष विभिन्न स्कूलों, विशेष रूप से समाज के उपेक्षित वर्गों के बच्चों को आकर्षित करता रहा है। मान्यताप्राप्त स्कूलों और पंजीकृत गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रायोजित बच्चों के छोटे-छोटे समूह बाल कक्ष का नियमित प्रयोग कर रहे हैं।

8 से 17 वर्ष तक की आयु के बच्चे इस बाल कक्ष की सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं। इसकी सदस्यता निम्नलिखित बच्चों को भी प्रदान की जाती है :—

(क) संसद सदस्यों/पूर्व सांसदों के बच्चे/पौत्र-पौत्रियां;

(ख) लोक सभा तथा राज्य सभा दोनों सचिवालयों और साथ ही संसदीय कार्य मंत्रालय के स्थायी कर्मचारियों के बच्चे;

(ग) लोक सभा तथा राज्य सभा की प्रेस दीर्घा हेतु प्रत्यायित पत्रकारों के बच्चे; और

(घ) पंजीकृत गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रायोजित बच्चे। सदस्यता प्राप्त करने के लिए निर्धारित प्रपत्र स्वागत कार्यालय, संसदीय ज्ञानपीठ से प्राप्त किया जा सकता है और इसे भारत की संसद की वेबसाइट http://loksabha.nic.in से भी डाउनलोड किया जा सकता है।

प्रलेखन सेवा

संसद ग्रंथालय की प्रलेखन सेवा 1975 में प्रारम्भ की गई थी जिसका प्रयोजन ग्रंथालय मे आने वाले समाचार पत्रों, आवधिक पत्रिकाओं तथा संपादित पुस्तकों में छपने वाले लेखों को सूचीबद्ध करना था। चयनित लेखें की सूचीबद्ध प्रविष्टियों में वर्गीकरण की विशिष्ट योजना के अनुसार ग्रंथसूची संबंधी विवरण यथा लेखक का नाम, शीर्षक, नाम या प्रकाशन

की तिथि अथवा वर्ष, उपयुक्त टीका तथा विषय-शीर्षक सम्मिलित होता है। एक पखवाड़े में आए लेखें को क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित किया जाता है, उनकी प्रविष्टि कम्प्यूटर में की जाती है तथा 'संसदीय प्रलेखन' शीर्ष के अन्तर्गत उनका प्रकाशन किया जाता है। पहले, दिसम्बर, 1988 तक इन चयनित लेखों के ग्रन्थावली संबंधी विवरण को 'पाक्षिक प्रलेखन' नामक शीर्ष के अंतर्गत प्रकाशित किया जाता है।

अगस्त, 2008 के उपरान्त सेवा द्वारा 'संसदीय प्रलेखन' नामक हिन्दी प्रकाशन भी प्रकाशित किया जाता है ताकि संसद सदस्यों तथा दोनों सचिवालयों के उन अधिकारियों, शोधार्थियों तथा अन्य प्रयोक्ताओं की सूचना आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके जो संसद ग्रंथालय में आने वाले हिन्दी समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं तथा संपादित पुस्तकों में छपने वाले लेखों की ग्रंथावली-सूची संबंधी विवरण प्राप्त करना चाहते हैं।

संसदीय प्रलेखन के हिन्दी और अंग्रेजी संस्करणों के इलेक्ट्रॉनिक संस्करण को संसद सदस्य, लोक सभा व राज्य सभा सचिवालय के अधिकारियों को उनके ई-मेल पते पर प्रेषित किया जाता है। ये प्रकाशन सामान्य जनता को Parliament of India: http://Loksabha.nic.in, Parliament library → services → documentation और http://Loksabha.nic.in हिन्दी के होम पेज पर उपलब्ध हैं।

सूचीबद्ध प्रविष्टियों को विभिन्न मानदंडों जैसे लेखक का नाम, प्रकाशन वर्ष व प्रकाशक का नाम तथा लेख का विषय आदि के आधार पर ऑनलाइन भी खोजा जा सकता है। हालांकि 'पार्लियामेंटरी डाक्यूमेंटेशन' तथा 'संसदीय प्रलेखन प्रलेखन' भारत की संसद के होम पेज पर उपलब्ध है, प्रकाशन की कुछ कम्प्यूटराइज प्रतियां भी निकाली जाती हैं तथा उन्हें लोक सभा सचिवालय के अधिकारियों के संदर्भ और उपयोग हेतु वितरित किया जाता है। 'डाक्यूमेंटेशन फॉरनाइटली (1975-1988), 'पार्लियामेंटरी डाक्यूमेंटेशन (1989 से आगे) और संसदीय प्रलेखन (अगस्त 2008 से आगे) के जिल्द चढ़ी पुस्तकों को संदर्भ के प्रयोजन से संसद ग्रंथालय में रखा जाता है।

समाचार कतरन सेवा

समाचार कतरन सेवा—जिसकी स्थापना 1956 में की गई थी—अंग्रेजी और हिन्दी के चुनिन्दा समाचारपत्रों में से ली गईं सभी सुसंगत और अद्यतन समाचारों की प्रेस कतरनें तथा विधायी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों में हुए महत्वपूर्ण घटनाक्रमों के समाचार, सम्पादकीय टिप्पणी और लेख आदि उपलब्ध कराकर संसद सदस्यों और संसद ग्रन्थालय के अन्य उपयोक्ताओं की सूचनागत आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। सभी समाचार कतरनों का वर्गीकरण एक विशेष रूप से तैयार वर्गीकरण योजना, जो डेवी डेसिमल वर्गीकरण प्रणाली पर आधारित है, के अनुसार किया जाता है। इनका विषय-वार फोल्डर बनाकर समुचित क्रम में लगाया जाता है। इन फोल्डरों का अध्ययन संसद ग्रन्थालय के अध्ययन कक्षों में ही किया जा सकता है, इन्हें बाहर के लिए जारी नहीं किया जाता। सामयिक महत्व की चुनिन्दा प्रेस कतरनों (अंग्रेजी भाषा की) को संसदीय परिसर में कार्यरत स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क से जुड़े कम्प्यूटर के माध्यम से, वर्गीकरण संख्या और वांछित

विषय के 'की-वर्ड' डालकर देखा जा सकता है। साधारणतया, प्रेस कतरनों को दो वर्षों तक संभालकर रखा जाता है। तथापि, स्थायी महत्व और रुचि की तथा सांविधानिक, संसदीय और कानूनी विषयों से संबंधित प्रेस कतरनों की समीक्षा करके उन्हें स्थायी रूप से सुरक्षित रखा जाता है।

माइक्रोफिल्मिंग यूनिट

संसद ग्रन्थालय की माइक्रोफिल्मिंग यूनिट की स्थापना 1987 में कम्प्यूटर की सहायता से माइक्रोफिल्मीकृत दस्तावेजों से सूचना प्रदान करने के लिए की गयी थी। यह यूनिट संसदीय ज्ञानपीठ भवन में स्थित है। इस यूनिट के पास तीन आर.वी. 3 और एक एम.आर.डी. 2 कैमरे उपलब्ध हैं जिससे क्रमश: 16 मिमी. और 35 मिमी./16 मि.मी. रोल्स की माइक्रोफिल्मिंग की जा सकती है। माइक्रोफिल्म्स रोल्स के अतिरिक्त प्रतियां तैयार करने हेतु एक प्रोसेसर और एक डुप्लीकेटर भी उपलब्ध हैं। माइक्रोफिल्मों का प्रयोग माइक्रोफिल्म रीडर-सह-प्रिंटर की सहायता से किया जा सकता है जो कि शाखा में लगा हुआ है।

यूनिट में 1673 से भी अधिक माइक्राफिल्म रोल्स हैं जिनमें 33 लाख एक्सपोजर उपलब्ध हैं। ये हैं—भारतीय विधान परिषद वाद-विवाद (1858-1920), केन्द्रीय विधान सभा वाद-विवाद (3 फरवरी, 1921 से 12 अप्रैल, 1947), काउंसिल ऑफ स्टेट्स डिबेट्स (3 फरवरी, 1921 से 19 मई, 1954), संविधान सभा वाद-विवाद (विधायी) और अंग्रेजी तथा हिन्दी में प्रारूप तैयार करना (9 दिसंबर, 1946 से 24 जनवरी, 1950), संसदीय वाद-विवाद (अस्थायी संसद और हाउस ऑफ दी पीपल) (28 जनवरी, 1950 से 13 मई, 1954), लोक सभा और राज्य सभा वाद-विवाद (हिन्दी और अंग्रेजी), भारत का संविधान (मूल लिखित प्रति), पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की कार्यवाही, लोक सभा के पटल पर रखे गए पत्र, संसदीय समितियों से संबंधित जानकारी, विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों के प्रतिवेदन, ओ एण्ड एम रिकार्ड्स, ग्रन्थालय अभिलेख विधेयक, दुर्लभ पुस्तकें, अध्यक्षपीठ द्वारा दिए गए निर्णय, अध्यक्षपीठ द्वारा की गई टिप्पणियां, अध्यक्ष के निदेश तथा लोक सभा सचिवालय के कुछेक प्रकाशन। इनके अतिरिक्त, ऐतिहासिक महत्व के कुछ दस्तावेजों की भी माइक्रोफिल्मिंग की गई है, यथा—भारतीय गोलमेज सम्मेलन की कार्यवाही (1930-1932), भारतीय संविधान सभा—सांविधानिक पूर्व वृत्तान्त (1947); भारतीय सांविधिक आयोग-ज्ञापन (1930), सरदार पटेल के पत्राचार (1945-1950)—खंड I से X, भारतीय ऐतिहासिक अभिलेख आयोग—कार्यवाही (1920-1960), विभाजन संबंधी कार्यवाही-विशेषज्ञ समिति सं.-1 (1947-1949) और इंडियन रिकार्ड सीरीज-फोर्ट विलियम-इंडिया हाउस करेसपांडेन्स: खंड II से IV तथा अन्य समसामयिक पत्र एवं पुरातात्विक महत्व के पत्र।

यूनिट का विचार कुछ अन्य दस्तावेजों, जैसे संसद ग्रंथालय में यथा उपलब्ध विभिन्न जांच समितियों और आयोगों की रिपोर्टों, समाचारपत्रों (साजिल्द खंड) आदि की भी माइक्रोफिल्मिंग करने का है।

माइक्रोफिल्मों को संसद सदस्यों और संसद ग्रन्थालय के अन्य उपयोक्ताओं द्वारा भी देखा जा सकता है।

राज्य सभा के भूतपूर्व सांसद एस.एस. आहलुवालिया की अध्यक्षता में एक सदस्यीय समिति का 10 जुलाई, 2012 को गठन किया गया था ताकि संसदीय कार्रवाई और दस्तावेजों का माइक्रोफिल्मिंग तथा डिजीटलीकरण किया जा सके तथा संसदीय ग्रंथालय का एक डिजिटल ग्रंथालय के रूप में विकास रूपांतरित किया जा सके। समिति द्वारा संसदीय अभिलेखों का साथ-साथ डिजीटलीकरण और माइक्रोफिल्मिग की प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया जा रहा है।

रिप्रोग्राफी सेवा

वर्ष 1975 में स्थापित यह सेवा सदस्यों की महत्वपूर्ण प्रेस कतरनों, संसदीय प्रश्नों और उत्तरों साविधिक पत्रिकाओं और समाचारपत्रों में छपे लेखों और पुस्तकों के अंशों और अन्य दस्तावेजों की फोटो कापियों की त्वरित आवश्यकता को पूरा करती है।

सदस्यों के लिए संदर्भ सेवा

सदस्यों के लिए संदर्भ सेवा संसद सदस्यों, पीठासीन अधिकारियों और संसदीय समितियों के सभापतियों को महत्वपूर्ण विधायी प्रस्तावों और आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक संवैधानिक और कानूनी विषयों पर वास्तविक तथ्यात्मक और नवीनतम सूचना उपलब्ध कराती है। सदस्यों के संदर्भों के प्रत्युत्तर में दी जाने वाली सामग्री का दायरा सामान्यतया संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस समय मौजूद कार्यों से संबंधित विषयों तक सीमित होता है। सदस्यों को हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में जानकारी उपलब्ध कराई जाती है।

सदस्यों के लिए संदर्भ सेवा मुख्यत: निम्नलिखित कार्य करती है:—

(i) प्रकाशित दस्तावेजों से सदस्यों को तुरंत संदर्भ उपलब्ध कराना;

(ii) सदस्यों के संदर्भों के संबंध में नवीनतम प्रासंगिक सामग्री, तथ्यात्मक आंकड़े और सांख्यिकी आदि एकत्र करना और उसे उपलब्ध कराना;

(iii) महत्वपूर्ण विधेयकों सहित महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में संदर्भ सूची टिप्पण तैयार करना; और

(iv) संभावित संदर्भ कार्य के भाग के रूप में सामयिक मुद्दों पर पत्रिकाएं/पृष्ठाधार टिप्पण/फैक्ट शीट्स/सूचना बुलेटिन और सूचना फोल्डर्स आदि तैयार करना और "स्टडी बाक्स" तैयार रखना।

ऐसे अनियमित पत्रों की संख्या अब पार्लियामेंट ऑफ इंडिया की वेबसाइट पर उपलब्ध है तथा ये डिजिटल रूप में इंटरनेट पर भी उपलब्ध है ताकि संसद सदस्यों और सचिवालय के उपयोग हेतु उनको ऑनलाइन आधार पर प्रस्तुत किया जा सके। इसके अतिरिक्त नेशनल इन्फार्मेशन केन्द्र (एनआईसी) भारत सरकार द्वारा संसद संदस्यों के संदर्भ अभिलेखों के रिकार्ड रखने के लिए एक सॉफ्टवेयर पैकेज भी विकसित किया गया है।

इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित तदर्थ प्रकाशनों का संशोधन और उन्हें अद्यतन बनाने का कार्य भी समय-समय पर किया जाता है:

(i) राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में राष्ट्रपति शासन;
(ii) 1947 से केन्द्रीय मंत्रिपरिषद;
(iii) 1950 से राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश;
(iv) भारत की संसद: एक अध्ययन (प्रत्येक लोक सभा के कार्यकाल के अंत में प्रकाशित)
(v) लोक सभा में विभिन्न कार्यों के लिए खर्च किया गया समय (-) एक विश्लेषण;
(vi) भारत-कुछ तथ्य (समय-समय पर अद्यतन)

अंतर-सत्रावधि के दौरान यह सेवा समसामयिक महत्व के विषय पर पत्र तैयार करती है जिन्हें सत्रावधि के दौरान सदस्यों को उपलब्ध कराया जाता है। इसके अतिरिक्त, संदर्भ प्रभाग संसद ग्रन्थालय के निकट सहयोग से, भारतीय संसद द्वारा आयोजित संसदीय सम्मेलनों और संगोष्ठियों के दौरान शिष्टमंडलों की सूचना आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संदर्भ पटल की व्यवस्था करता है। संदर्भ पटल पर चुनिन्दा संसदीय प्रकाशनों और संदर्भ पुस्तकों को प्रदर्शित किया जाता है।

शोध और सूचना प्रभाग

शोध और सूचना प्रभाग संसद सदस्यों की बहुविषयक सूचना आवश्यकताओं के दृष्टिगत इन्हें अद्यतन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों की घटनाओं की सतत आधार पर तथा संसद की दोनों सभाओं के समक्ष आने वाले महत्वपूर्ण मुद्दों की भी सूचना देने का पूरा-पूरा प्रयास करता है जिसके लिए वह हिन्दी और अंग्रेजी में विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाएं विशेष पुस्तकें विवरणिकाएं प्रकाशित करता है। इन्हें इस प्रकार प्रदान की गयी सूचना से महत्वपूर्ण विषयों पर संतुलित दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता मिलती है। इस सेवा द्वारा प्रख्यात नेताओं, जिनकी प्रतिमाओं और चित्रों का अनावरण समय-समय पर संसद भवन परिसर में होता रहता है, का जीवनवृत्त भी तैयार किया जाता है। ये सभी प्रकाशन विश्वसनीय प्रकाशित स्रोतों पर आधारित होते हैं और इन प्रकाशनों को अद्यतन बनाए रखने के लिए प्रयास जारी रहते हैं।

शोध और सूचना सेवा निम्नलिखित आवधिक पत्रिकओं का प्रकाशन भी नियमित आधार पर करती है:–

(i) दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन (त्रैमासिक)
(ii) डाइजेस्ट ऑफ सेन्ट्रल एक्ट्स (त्रैमासिक);
(iii) डाइजेस्ट ऑफ लेजिस्लेटिव एण्ड कांस्टिट्यूशनल केसेज् (त्रैमासिक);
(iv) आईपीजी न्यूजलेटर (त्रैमासिक)।

अन्य बातों के साथ-साथ प्रभाग अन्य देशों की सद्भावना यात्रा पर जाने वाले अथवा अंतर-संसदीय संघ (आईपीयू), राष्ट्रमंडल संसदीय संगठन (सीपीए), दक्षेस अध्यक्षों और सांसदों के संगठन, राष्ट्रमंडल अध्यक्षों और पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलनों के तत्वावधान में आयोजित विभिन्न अन्तर-संसदीय सम्मेलनों/बैठकों/संगोष्ठियों में भाग लेने के लिए जाने वाले भारतीय संसदीय शिष्टमंडलों के लिए 'संक्षिप्त विवरण', पृष्ठाधार टिप्पण, प्रारूप, ज्ञापन, व्याख्यात्मक टिप्पण, संकल्प आदि तैयार करता है।

कंप्यूटरीकृत सूचना सेवा

बीसवीं शताब्दी में सूचना को एकत्रित करने, प्रसंस्कृत और वितरण करने संबंधी प्रौद्योगिकी में अत्यधिक विकास हुआ है। अन्य विकासों के साथ, वर्ल्डवाइल्ड टेलीफोन नेटवर्क की स्थापना, रेडियों, टेलीविजन और उपग्रह प्रौद्योगिकी की खोज का उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है। आज, इन सभी प्रौद्योगिकियों ने मिलकर देश, क्षेत्र या विश्व के सुदूर भागों में रहने वाले लोगों को एक-दूसरे के निकट आने में सोचने और सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक साथ काम करने में काफी सुविधा प्रदान की है।

संचार और परिकलन की गति और कार्यक्षेत्र में वृद्धि कर आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकियां (आईटी) ने मानव संपर्क, संचार और विचार की मूल पद्धतियों में परिवर्तन किया है। इसने आर्थिक वृद्धि और विकास को गति प्रदान की है और विश्वभर में सूचना और ज्ञान के बेहतर प्रसार में भी मदद की है।

भारतीय संसद ने सूचना प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए विशिष्ट कदम उठाए हैं ताकि संसद सदस्य अपने कर्त्तव्यों का बेहतर निर्वहन कर सकें। संसदीय ग्रंथालय ने ऑटोमेशन के क्षेत्र में दिसम्बर, 1985 में एक छोटी शुरूआत की थी, जब संसदीय ग्रंथालय सूचना प्रणाली (पीएआरएलआईएस) प्रबंधन हेतु नेशनल इंफार्मेटिक्स सेंटर (एनआईसी) की मदद से एक कंप्यूटर केन्द्र की स्थापना की गई थी। तब से कंप्यूटरीकरण कार्यक्रम में काफी बदलाव आया है और अब लगभग संपूर्ण लोक सभा सचिवालय ऑटोमेशन की प्रक्रिया में है।

संसदीय ग्रंथालय सूचना प्रणाली (पीएआरएलआईएस) को ग्रंथालय के भीतर ही संसद सदस्यों के लाभ के लिए तैयार किया गया है। प्रारम्भ में यह संसदीय सूचना के लिए विषय अनुक्रमणिका संदर्भो का डाटाबेस था। बाद में सभी डाटाबेसों को वेब फॉर्मेट में पूर्ण पाठ डाटाबेस मे परिवर्तित किया गया था। और भारतीय संसद के वेब पेज अर्थात http://parliamentofindia.nic.in में उपलब्ध कराया गया।

काफी कम समय में ही इस होम पेज में राज्य सभा और लोक सभा के भीतर निर्मित सूचना, भारतीय संविधान भारतीय संसद के इतिहास, संसदीय पद्धतियों और प्रक्रियाओं, संविधान सभा की कार्यवाहियों, राज्य सभा और लोक सभा दोनों सदनों के सदस्यों का जीवनवृत्त और इनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि इत्यादि संबंधी सूचना का महत्वपूर्ण स्त्रोत और संदर्भ टूल बन गया है। लोक सभा और राज्य सभा की पृथक वेबसाइटें संबंधित सचिवालयों द्वारा चलाई जा रही हैं और भारतीय संसद के होम पेज से लिंक हैं।

इसके अतिरिक्त, संसद के बारे में सामान्य सूचना लोक सभा में प्रक्रिया और कार्य संचालन नियम, अध्यक्ष द्वारा निर्देश, भारत सरकार की संसदीय कार्य संबंधी पुस्तिका संसद सदस्यों संबंधी सरकारी अनुदेश और संसद भवन और संसदीय ज्ञानपीठ का आभासी दौरा भी होम पेज पर उपलब्ध है। भारत में विधायी निकायों, राज्य सभा, अन्य संसदों, अन्तर्संसदीय संघ, राष्ट्रमंडल संसदीय संघ, भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रालयों, राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों, निर्वाचन आयोग, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के लिए लिंक विधायी साइटों, न्यायिक/विधिक साइटों और सरकारी साइटों के अंतर्गत प्रदान किया गया है।

लोक सभा अध्यक्ष की वेबसाइट (http://speakerloksabha.nic.in)

लोक सभा अध्यक्ष के लिए एक पृथक होम पेज विकसित किया गया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ वर्तमान अध्यक्ष का जीवनवृत्त, राजनीतिक और व्यक्तिगत उपलब्धियाँ, अध्यक्ष की भूमिका, जिन कार्यक्रमों में शामिल हुए, भाषण और प्रेस विज्ञप्ति सम्मिलित हैं। सभी पूर्व अध्यक्षों का जीवनवृत्त, उनके कार्यकाल के साथ इस साइट पर उपलब्ध है।

संसदीय संग्रहालय वेबसाइट (http://parliamentmuseum,org)

संसदीय संग्रहालय की परस्पर संवाद वेबसाइट को अध्यक्ष लोक सभा द्वारा 19 दिसम्बर, 2007 को प्रारम्भ किया गया था। यह वेबसाइट भारतीय इतिहास के 2500 वर्षों में फैली भारत की लोकतांत्रिक विरासत की कहानी को बताती है। यह कहानी वाक्-थ्रू पीरियड सैटिंग्स के साथ ध्वनि-प्रकाश-विडियो एनिमेशन, बड़ी-स्क्रीन परस्पर संवाद, कंप्यूटर मल्टीमीडिया, एनीमेट्रोनिक्स, मल्टी-स्क्रीन विहंगम प्रस्तुति के साथ आकर्षक दृश्यांकन प्रदान करती है। प्रयोक्ता भारतीय लोकतंत्र संबंधी क्विज़ में भाग ले सकता है, पिक्चर पोस्ट-कार्ड चुन सकते हैं, ई-मेल और संग्रहालय को सुझाव दे सकते हैं या प्रश्न पूछ सकते हैं।

संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरो (बीपीएसटी) वेबसाइट (http://bpst.nic.in)

इस वेबसाइट में परिबोधन कार्यक्रमों, व्याख्यानों पाठ्यक्रमों, सदस्यों हेतु सेमिनारों, प्रशिक्षण कार्यक्रम, लोक सभा अध्येतावृत्ति कार्यक्रम, अखिल भारतीय सेवाओं प्रशिक्षुओं हेतु प्रबोधन पाठ्यक्रम, संसदीय और सरकारी अधिकारियों इत्यादि के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम संबंधी सूचना भी प्रदान करता है।

लोक सभा टेलीविजन चैनल (एलएसटीवी) वेबसाइट (http://loksabhatv.nic.in)

24 घंटे लोक सभा टीवी वेबसाइट के अतिरिक्त इसकी समय सारणी और महत्त्वपूर्ण विडियों क्लिपिंग होम पेज पर उपलब्ध है।

संसदीय ग्रंथालय वेबसाइट (http://164.100.47.134/plibrary/home.htm)

यह वेबसाइट संसदीय ग्रंथालय संग्रह, ग्रंथालय में नई पुस्तकों, ई-संसाधनों और संसद सदस्यों की उपलब्ध विभिन्न सेवाओं संबंधी सूचना प्रदान करते हैं।

लोक सभा सदस्यों को कम्प्यूटर उपकरण की खरीद के लिए वित्तीय पात्रता संबंधी योजना

उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में लोक सभा के सदस्यों के लिए कम्प्यूटर के प्रावधान संबंधी समिति का गठन लोक सभा सदस्यों की कम्प्यूटर हार्डवेयर आवश्यकताओं की सिफारिश के लिए किया गया। संसद सदस्यों (लोक सभा) को वित्तीय योजना के अंतर्गत कम्प्यूटर हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर कम्प्यूटर और अन्य सामग्रियों की खरीद की सुविधा प्रदान की जाती है जोकि 31 जुलाई, 2009 से लागू हुई। किसी सदस्य के लिए इस योजना के अंतर्गत उपस्कर और सॉफ्टवेयर को खरीदने हेतु उसके कार्यकाल के दौरान उसकी लोक सभा सदस्य के रूप में चाहे वो साधारण चुनाव/उपचुनाव में चुना जाए या संविधान के अनुच्छेद 331 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा मनोनित किया जाए,[78] वित्तीय पात्रता तीन लाख रुपये होगी। तथापि, सदस्य को उक्त वित्तीय पात्रता का लाभ लेने के लिए ई-रीडर उपकरण खरीदना अनिवार्य होगा। सदस्य द्वारा इस योजना के अंतर्गत खरीदे गए कम्प्यूटर हार्डवेयर का रख-रखाव और बीमा प्रभार स्वयं सदस्य द्वारा वहन किया जाता है। योजना के अंतर्गत सदस्य द्वारा खरीदे गए कम्प्यूटर उपकरण उसी के पास रहेंगे। तथापि, मौजूदा आयकर नियमों के अनुसार जब वह सदस्य नहीं रह जाता है/जाती है तो उसे कम्प्यूटर उपकरण की ह्रास लागत जमा करनी पड़ेगी।

सदस्य पूछताछ बूथ

एक सदस्य पूछताछ बूथ कमरा नम्बर जी–127 संसदीय ज्ञानपीठ भवन में स्थापित किया गया है जहाँ सदस्य डीलर को राशि भुगतान के लिए या कम्प्यूटर उपकरण की खरीद के लिए वित्तीय पात्रता की नई योजना के अंतर्गत प्रतिशत के लिए इनवोयरण/बिल प्रारूप जमा कर सकते हैं। सदस्यों को ई-रीडर के प्रयोग और उनके उपकरणों में ई-रीडर स्थापित करने संबंधी निर्देश भी दिए जाते हैं।

राजनैतिक दलों के कम्प्यूटर हार्डवेयर

कम्प्यूटर उपकरण (लोक सभा में विधायी दल और अधिकारी) नियम, 2009 के अनुसार राजनीतिक दल जिन्हें संसद भवन परिसर में स्थान दिया गया है, वे सचिवालय द्वारा एक डेस्कटॉप, एक यूपीएस, एक प्रिंटर और इंटरनेट कनेक्शन के लिए पात्र होंगे। कम्प्यूटर हार्डवेयर के रख-रखाव की सुविधा भी सचिवालय के द्वारा दी जाएगी। यद्यपि, बीमा लागत और उपभोज्य वस्तुएँ राजनैतिक दलों द्वारा वहन की जाएगी।

इंट्रानेट और ई-मेल सेवाएँ

डाटा शेयर करने और इंटरनेट सुलभ करने के लिए उच्च निष्पादन, उच्च पोर्ट घनत्व, तीव्र इंटरनेट और एक्सेस, वितरण और बैक बोन लेयर्स और सर्वर फार्म और डाटा केन्द्र पर्यावरण सहित गीगाबाइट इंटरनेट, नेटवर्क के सभी भागों में समयोजन प्रदान करने के लिए उच्च स्पीड लोकल एरिया नेटवर्क (लैन) बिछाया गया है। तीनों भवनों और स्वागत कार्यालय

---

78. 13 जनवरी, 2015 से अंत:स्थापित किया गया।

का स्वतंत्र लोकल एरिया नेटवर्क उच्च स्पीड कनेक्टिविटी प्रदान करने के लिए ऑप्टिकल फाइबर से एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। बाहरी जगत से इंटरनेट सहित कंप्यूटर कनेक्टिविटी राष्ट्रीय सूचना केन्द्र नेटवर्क के माध्यम से प्रदान की जा रही है, जिसे एनआईसीएनईटी के नाम से जाना जाता है। सभी संसद सदस्यों और सचिवालय के अधिकारियों/विभागों को डोमेन नेम (sansad.nic.in) सहित एक डेडिकेट ई-मेल मैसेज सेवा उपलब्ध है।

कम्प्यूटरों की खरीद और रख-रखाव

सूचना के प्रभावी प्रबंधन हेतु लोक सभा सचिवालय में अनेक कम्प्यूटर और सर्वर स्थापित किए गए हैं। प्रस्तावों की तकनीकी जाँच के लिए स्थायी तकनीकी सलाहकार समिति (एसटीएसी) गठित की गई है और सचिवालय के विभिन्न कार्यालयों/शाखाओं की कम्प्यूटर हार्डवेयर आवश्यकताओं पर विचार-विमर्श करने और संस्तुत करने के लिए लोक सभा सचिवालय में कम्प्यूटरीकरण संबंधी एक अधिकारियों की समिति गठित की गई है। समिति की सिफारिशों पर आवश्यक कम्प्यूटर हार्डवेयर खरीदे जाते हैं।

कम्प्यूटरों के रख-रखाव का कार्य एक रख-रखाव एजेंसी को सौंपा गया है जिसने सभी अधिकारियों/शाखाओं से प्राप्त कॉलों को दर्ज करने हेतु संसद परिसर में एक 'कॉल डिस्पैच' केन्द्र प्रयोक्ताओं की सहायता हेतु टेलीफोन पर भी सहायता प्रदान करता है।

प्रशिक्षण

संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरों में संसद सदस्यों/कर्मचारियों के लाभ हेतु ज्ञान प्राप्त करने और संसदीय कार्यों के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न प्रयोगों में उनके कौशल विकसित/निखारने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम समय-सयम पर आयोजित किए जाते हैं।

संसदीय संग्रहालय और अभिलेख प्रभाग (पीएमए)

देश में संसदीय लोकतंत्र के विकास के साथ भारत की संसद इसके इतिहास, कार्यकलाप और प्रमुख व्यक्तियों का एक प्रमाणिक और अद्यतन चित्तपूर्ण अभिलेख संरक्षित करने की प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता महसूस की गई। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए लार्डिस के हिस्से के रूप में वर्ष 1976 में फोटोग्राफों और फिल्मों का एक संसदीय अभिलेख शुरूआत में आरम्भ किया गया था। तदनंतर, अगस्त, 1984 में तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष और सामान्य प्रयोजन समिति द्वारा संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार शुरू करने का प्रस्ताव अनुमोदित किया गया था। बहुत तैयारी और धरातलीय कार्य के पश्चात्, लोक सभा अध्यक्ष द्वारा दिसम्बर, 1989 में संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार (पीएमए) का उद्घाटन किया गया था।

इस प्रभाग को मूल्यवान अभिलेखों, ऐतिहासिक दस्तावेजों, फोटोग्राफों, दुर्लभ वस्तुओं और भारत के संविधान और इसके संसदीय संस्थानों के मूल, विकास और कार्यकरण से जुड़ी चीजों का अर्जन, भंडारण और अनुरक्षण शुरू करने के मूल उद्देश्य के साथ शुरू किया गया है। पीएमए इन रिकार्डों और वस्तुओं से रक्षा करके भूत और भविष्य को भावी पीढ़ियों के लिए अनुरक्षित करने की कोशिश करता है, और इससे भारत में संसदीय संस्थानों के इतिहास

और विकास की बेहतर समझ को विकसित करने में सहायता करता है। प्रभाग, प्राचीन वस्तुओं और फोटोग्राफों की आदर्श स्थितियों में भंडारण और प्रदर्शन उचित मरम्मत, नवीकरण, वैज्ञानिक अनुरक्षण, वर्गीकरण पर ध्यान देने का कार्य करता है।

पीएमए के विशेष संग्रहों में अन्य के ज्ञान विशिष्ट राष्ट्रीय नेताओं और प्रख्यात सांसदों, भारतीय राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के विधान भवनों की प्रतिकृति और फोटोग्राफ और विदेशी संसदीय भवनों, उपहारों, स्मृति चिह्नों, निजी पत्रों, सांसदों की डायरी और पत्राचार स्मारक टिकट और सिक्के और भारतीय संसद के इतिहास का व्यापक फोटोग्राफिक रिकॉर्ड इसके कार्यक्रम और क्रियाकलाप शामिल हैं। पीएमए के फोटोग्राफिक संग्रह बेहतर अनुरक्षण और फोटोग्राफों की सरल उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल फार्मेट में भी अनुरक्षित है।

प्रभाग, संबंधित सरकारी संस्थाओं के सहयोग से, समय-समय पर संसद सदस्यों और आमजन के लिए भारत की संसद और अन्य लोकतांत्रिक विभिन्न संस्थानों के कार्यकरण और उपलब्धियों से संबंधित विभिन्न संकल्पनाओं पर प्रदर्शनियां आयोजित करता है।

संसदीय संग्रहालय

संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार (पीएमए) के हिस्से के रूप में संग्रहालय अनुभाग को शुरू में माडलों, मानचित्रों, कृतियों, वस्तुओं, फोटोग्राफों और अन्य दृश्य प्रौद्योगिकियों की मदद से भारत में और विदेशों में संसदीय संस्थानों का उद्‌भव और उनके कार्यकरण को दिखाने के लिए स्थापित किया गया था।

मई 2002 में पीएमए के संसदीय ग्रंथालय भवन में स्थानांतरित होने के पश्चात् संसदीय ग्रंथालय भवन में ग्रंथालय भवन में संपूर्ण संसदीय संग्रहालय शुरू[79] करके संसद को ले जाने के विचार की अवधारणा की गई थी। इस उद्देश्य के साथ, एक अति आधुनिक हाईटेक और भारत के उच्च लोकतांत्रिक विरासत को दर्शाने वाला अंतर्राष्ट्रीय स्तर का कार्यशील संसदीय संग्रहालय 11 महीने के रिकॉर्ड समय में स्थापित किया गया था। संग्रहालय का उद्‌घाटन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ॰ ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा 14 अगस्त, 2006 को किया गया था और 5 सितम्बर, 2006 से आम जन के लिए इसे खोल दिया गया है। यह भू-तल पर 1500 वर्ग मील से अधिक और संसदीय ग्रंथालय भवन के कक्ष से जी–118 में मेजानिन तल पर

79. इस पहल के क्रम में डॉ. सरोज घोष, एक प्रख्यात संग्रहालयविद और यूनेस्को, पेरिस के ग्रंथालयों की अंतर्राष्ट्रीय परिषद की पूर्व अध्यक्ष और भारत में विज्ञान संग्रहालयों की राष्ट्रीय परिषद की सेवानिवृत्त महानिदेशक संसंदीय संग्रहालय को शुरू करने के लिए आमंत्रित किया गया था। डॉ. घोष का कागजी चित्रण प्रस्तुति को 21 अप्रैल 2005 को आयोजित बैठक में सभी राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा अनुमोदित किया गया था। इसके अनुक्रम में 24 अगस्त, 2005 को लोक सभा सचिवालय और कोलकाता संग्रहालय सोसायटी के बीच एक विश्वस्तरीय संग्रहालय स्थापित करने के समझौते पर हस्ताक्षर हुए थे। 17 मार्च, 2006 को सभी राजनीतिक दलों द्वारा संग्रहालय की अंतिम संकल्पना अनुमोदित की गई थी।

बना हुआ है।

संग्रहालय संगीत-प्रकाश वीडियो संयोजन, वृहत्-स्तर कार्यशील कम्प्यूटर मल्टी-मीडिया और इमर्सिव विज्युलाइजेशन मल्टी स्क्रीन पैनोरमिक प्रोजेक्शन सहित, वर्चुयल रियलिटी और एनिमेट्रोनिक्स के साथ आवधिक क्रम के सात प्रमुख समूहों के जरिए भारत की लोकतांत्रिक विरासत की संपूर्ण गाथा को प्रदर्शित करने का प्रयत्न करता है। पहला समूह 'शुरुआती विरासत और मध्ययुगीन अवधि' पर है। इस समूह में भारत की प्राचीन लोकतांत्रिक विरासत, परिषदों, अंतर्राष्ट्रीय शांति और सौहार्य के मिशन और अकबर के प्रसिद्ध धर्म निरपेक्ष पंथ, दीन-ए-इलाही को दर्शाया गया है। दूसरी समूह स्वतंत्रता आंदोलन पर आधारित है, जिसमें विविधता में एकता झांकियों के जरिए बहु-सांस्कृतिक बहुलतावादी समाज को प्रदर्शित करने की कोशिश की गई है, स्वतंत्रता आंदोलन और डांडी मार्च का जीवंत पुनर्सृजन—जिसमें दर्शकों की भावनात्मक भागीदारी है जो 1930 के प्रसिद्ध डांडी मार्च में भाग लेने में सक्षम बनता है। तीसरा-समूह 'सत्ता का अंतरण' की विधायी सुधारों, बहु-दलीय लोकतंत्र और मल्टी-स्क्रीन प्रोजेक्शनों सहित वृत्ति चित्रों के माध्यम से झांकियों के जरिए प्रदर्शित करता है। संविधान निर्माण अगला समूह है। जिसमें संविधान के प्रारूपण पर पृथक झांकियां स्थापित की गई है, सरकार के तीन अंग और वयस्क मताधिकार। पांचवी झांकी पुननिर्मित राज्य सभा, लोक सभा और केन्द्रीय कक्ष के माध्यम से संसद के कार्यकरण को दर्शाने का प्रयास करती है, जिसमें दर्शकों को पंडित जवाहरलाल नेहरू के प्रसिद्ध 'ट्रिस्ट विद डैस्टिनी' भाषण को सुनने का अवसर प्राप्त होता है। अगली झांकी 'विश्व की संसदों' का चिंतन करती है। सूचना बैंक अंतिम झांकी है जो राष्ट्रीय नेताओं के चित्र, शिल्पचित्र से अलंकृत है तथा साथ ही सुसज्जित संसाधन केन्द्र जहां लोकतांत्रिक विरासत स्वतंत्रता संग्राम और संसद सदस्यों के फोटोग्राफ आदि से संबंधित दृश्य और पाठय सूचना उपलब्ध है। दृष्टि बाधित दर्शकों के लिए संग्रहालय में विभिन्न स्थानों पर देश की लोकतांत्रिक विरासत को संक्षेप में ब्रेल लिपि में लिखा गया है।

वर्ष 2007 में स्थापित एक सुसज्जित संरक्षण प्रयोगशाला संसदीय संग्रहालय में महत्वपूर्ण शिल्पचित्रों के संग्रहों का संरक्षण और पुनरुद्धार करती है।

सामान्य दर्शकों के अतिरिक्त भारी संख्या में विद्यार्थी, अति विशिष्ट व्यक्ति, विदेशी राजनयिक और अन्य गणमान्य व्यक्ति संग्रहालय का दौरा करते हैं। उपर्युक्त के अतिरिक्त दर्शक कुर्सी पर बैठ कर डीवीडी/सीडी के माध्यम से संग्रहालय के दौरे का आनंद ले सकते हैं। मध्य तल पर स्मृति चिह्न विक्रय केन्द्र है, जहां संसदीय संग्रहालय लोगो वाली 50 से अधिक वस्तुओं की बिक्री की जाती है।

लोगों तक संग्रहालय की पहुंच का और विस्तार करने के उद्देश्य से 19 दिसम्बर, 2007 को संसदीय संग्रहालय के संबंध में एक वेबसाइट (www.parliamentmuseum.org) आरम्भ की गई है जो दर्शकों को संग्रहालय के आभासी दौरे का अवसर प्रदान करती है। अंतर्राष्ट्रीय संग्रहालय परिषद का सदस्य होने के नाते संसदीय संग्रहालय अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हैं।

सदस्यों को प्रकाशनों की आपूर्ति

ग्रंथालय और संदर्भ, शोध, प्रलेखन तथा सूचना सेवा (लार्डिस) द्वारा प्रकाशित सभी सावधिक पत्रिकाएं अनुरोध किए जाने पर संसद सदस्यों को ग्रंथालय काउन्टरों पर उपलब्ध कराई जाती हैं। जो सदस्य इन प्रकाशनों में से किसी एक या सभी को नियमित आधार पर प्राप्त करना चाहते हैं, वे इसके लिए एक विशिष्ट लिखित अनुरोध करते हैं और उनका नाम प्रेषण सूची में शामिल कर लिया जाता है।

टेलीप्रिन्टर सेवा

सदस्यों को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय नवीनतम समाचारों से अवगत कराने के उद्देश्य से संसद भवन में अंग्रेजी, हिन्दी तथा उर्दू में टेलीप्रिंटर मशीनें लगाई गई हैं। संसद सत्र के दौरान महत्वपूर्ण समाचारों को संसद ग्रंथालय के बाहर (भूमि तल तथा अन्यत्र) बोर्डों पर लगा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, संसद भवन में न्यूज स्केनर लगाए गए हैं। टेलीप्रिंटर समाचारों के अतिरिक्त, संसदीय कार्यकलापों से संबंधित फोटोग्राफ, नक्शे, चार्ट आदि भी संसद भवन में इन बोर्डों पर तथा अन्यत्र प्रदर्शित किए जाते हैं।

लोक सभा सचिवालय की अन्य शाखाओं द्वारा प्रकाशित सावधिक पत्रिकाएं

लार्डिस द्वारा प्रकाशित सावधिक पत्रिकाओं के अतिरिक्त लोक सभा सचिवालय की विधायी शाखा (विशेषाधिकार) प्रतिवर्ष "प्रिविलेजिस डाइजेस्ट" नाम की पत्रिका प्रकाशित करती है जिसमें संसद और राज्य विधानमंडलों के विशेषाधिकारों के मामलों का सारांश और विशेषाधिकार संबंधी अन्य लेख होते हैं।

इसके अतिरिक्त, लोक सभा सचिवालय का राजभाषा प्रभाग[80] सदस्यों के उपयोग के लिए निम्नलिखित हिन्दी सावधिक पत्रिकाएं, प्रकाशित करता है–

(i) संसदीय पत्रिका (त्रैमासिक); और

(ii) केन्द्रीय अधिनियम सार (त्रैमासिक)।

अन्य सुविधाएं

संसद में मान्यताप्राप्त राजनीतिक दलों तथा ग्रुपों को संसद भवन परिसर में उनके कार्यालय के लिए स्थान उपलब्ध कराया जाता है। तथापि यह सुविधा सदस्य को व्यक्तिगत रूप से उपलब्ध नहीं है।

संसद भवन के प्रथम तल पर दो जलपान गृह हैं तथा सेंट्रल हॉल के पास एक अल्पाहार गृह है। सदस्यों तथा उनके अतिथियों के लिए संसद भवन, स्वागत कार्यालय में भी जलपान

---

80. पूर्व में प्रकाशित होने वाली आवधिक पत्रिकाओं अर्थात् सारांश सेवा (त्रैमासिक), समाचार मंजूषा (मासिक), सरकारी उपक्रम: समाचार और अभिमत सार (मासिक) का प्रकाशन ग्रन्थालय समिति की गुरुवार, 5 दिसम्बर 2002 को हुई तीसरी बैठक में किए गए निर्णय के अनुसार जनवरी, 2003 से बंद कर दिया गया।

सुविधाएं उपलब्ध हैं। सदस्यों के लिए इसी प्रकार की सुविधाएं संसदीय सौध तथा संसद ग्रंथालय भवन में भी उपलब्ध हैं।

संसद भवन में दो जलपान गृहों के अलावा, सदस्यों की सुविधा के लिए चाय बोर्ड और कॉफी बोर्ड अपने स्टॉल चलाते हैं। संसद भवन तथा संसदीय सौध, दोनों में ऐसे स्टॉल भी हैं जहां दिल्ली दुग्ध योजना के दुग्ध उत्पाद उपलब्ध हैं।

संसद भवन के भूमि तल पर दो प्रकाशन काउन्टर हैं जिनमें से एक लोक सभा तथा दूसरा राज्य सभा के सदस्यों के लिए है, जहां सदस्यों को वितरण के लिए रखे प्रकाशनों को सदस्य ले सकते हैं। लेखन सामग्री, शुभकामना पत्र आदि भी छपवाये जाते हैं और इन काउन्टरों पर बेचे जाते हैं।

संसद भवन और संसदीय सौध में स्थित भारतीय स्टेट बैंक की शाखाएं बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करती हैं। सेफ डिपोजिट लॉकर उपलब्ध कराने के अलावा बैंक ने संसदीय सौध में दो एटीएम लगाए हैं अर्थात् पुराने स्वागत कार्यालय तथा दूसरा लिफ्ट सं. 1 और 2 के पास निम्नतल पर। सदस्यों तथा संसद के कर्मचारियों के लिए एक एटीएम ग्रंथालय भवन में उपलब्ध है। सदस्यों की सुविधा के लिए स्टेट बैंक की दोनों शाखाओं द्वारा इंटरनेट बैंकिंग एवं ॠण सुविधा भी प्रदान की जा रही है। दो उप-डाकघर-एक संसद भवन में तथा दूसरा संसदीय सौध में वर्ष भर कार्य करते हैं। रेलवे और इंडियन एयरलाइन्स के बुकिंग कार्यालय भी संसद भवन में वर्ष भर काम करते हैं। सत्र के दौरान तथा अंतरसत्रावधि में मामूली भुगतान पर संसद सदस्यों को उनके आवास से संसद भवन और वापिस उनके घर तक पहुंचाने के लिए विशेष वाहनों की व्यवस्था की गयी है।

नई दिल्ली नगरपालिका परिषद (न.दि.न.पा.प.)का एक संपूर्ण संपर्क कार्यालय संसदीय सौध में सदस्यों की उनके निवास स्थान पर लगे मीटरों से संबंधित शिकायतों तथा न.दि.न.पा.प. से संबंधित अन्य सभी मामलों, जिनमें सदस्यों के बिजली और पानी के बिल भी शामिल हैं, पर कार्रवाई करने के लिए वर्ष भर कार्य करता है। संसद भवन के स्वागत कार्यालय में सत्रावधि के दौरान एलपीजी की आपूर्ति तथा दोषपूर्ण प्रतिष्ठापन आदि के संबंध में सामयिक सेवा उपलब्ध कराने हेतु तेल उद्योग का एक एलपीजी सेवा काउंटर कार्य करता है।

लोक सभा और राज्य सभा की आउटर लॉबी में क्रमश: लोक सभा तथा राज्य सभा, दोनों के सदस्यों के लिए लॉकर प्रदान किए गए हैं। ये लॉकर सदस्यों के लिए कागजात, पुस्तकें आदि रखने हेतु सुविधाजनक हैं।

यदि कोई सदस्य वाहन खरीदना चाहता है तो वह उद्योग मंत्रालय के माध्यम से वाहन खरीद सकता है जो सीधे वाहन विनिर्माताओं से प्राथमिकता के आधार पर ऐसे वाहन दिलाने की व्यवस्था करता है। इसके अतिरिक्त रक्षा मंत्रालय भी सदस्यों के अनुरोध पर नकद भुगतान करने पर अतिरिक्त रक्षा स्टाक में से अम्बेसडर कार, जीप और मोटर साइकिल, यदि वे उपलब्ध हों, की आपूर्ति की व्यवस्था करता है।

इसके अतिरिक्त पूरे वर्ष वित्त मंत्रालय (राजस्व विभाग) संसदीय सौध में सदस्यों को उनकी कर विवरणियां आदि फार्म भरने में सहायता देने के लिए एक आयकर अनुभाग संचालित करता है।

जब संसद का सत्र चल रहा हो तो संसद भवन और संसदीय सौध के आस-पास यातायात को विनियमित किया जाता है जिससे कि भीड़-भाड़ और शोर न हो। सदस्यों को प्रत्येक वर्ष के लिए मोटर गाड़ियों के विशेष लेबल भी दिए जाते हैं।

सदस्यों की राजधानी में सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन से अवगत कराने और अन्य कार्यकलाप करने के लिए कान्स्टीट्यूशन क्लब में उनके लिए आधुनिक सुविधाओं का प्रबंध किया गया है। यह क्लब विट्ठलभाई पटेल हाऊस परिसर में स्थित है और जो संसद भवन से दो फर्लांग से भी कम दूरी पर है। इस क्लब में जो सभागार है, वह राजधानी के सबसे बड़े सभागारों में से एक है। क्लब के साथ ही एक आधुनिक तरण ताल भी है। इस सभागार का नाम अध्यक्ष "जी.वी. मावलंकर के नाम पर मावलंकर ऑडीटोरियम" रखा गया है जो पहली और दूसरी लोक सभा के अध्यक्ष थे। ये क्लब और सभागार, सभी संसदीय दलों को अपने राजनीतिक कार्यकलापों के लिए भी उपलब्ध कराए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन्डोर और आउटडोर खेल जैसे बैडमिंटन आदि की व्यवस्था क्लब परिसर में ही की गई है। क्लब प्रबंधन के तत्वावधान में उपर्युक्त अवसरों पर वार्ताओं, चर्चाओं और अन्य सांस्कृतिक कार्यकलापों का आयोजन किया जाता है।

मुख्य क्लब के अतिरिक्त नार्थ एवेन्यू और साउथ एवेन्यू में, जहां अधिकतर सदस्य रहते हैं दो सामुदायिक केन्द्र हैं। इनमें इंडोर खेलों की बेहतर सुविधाएं उपलब्ध हैं।

वर्ष 1997 में विशेषाधिकार समिति (ग्यारहवीं लोक सभा) ने कई अन्य बातों के अतिरिक्त सदस्यों को दी जाने वाली सुविधाओं पर विचार किया और महसूस किया कि भारत में संसद सदस्यों को दी जाने वाली सुविधाएं विश्व की कुछ अन्य संसदों के सदस्यों को दी जाने वाली सुविधाओं की तुलना में बहुत कम हैं। समिति ने "नैतिकता, लोक जीवन में मानक, विशेषाधिकार, सदस्यों को सुविधाएं एवं अन्य संबंधित मामले" पर अपने प्रतिवेदन में सदस्यों को कुछ अतिरिक्त सुविधाएं प्रदान करने संबंधी सिफारिशें कीं।

संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (एमपीएलएडीएस)

भारत सरकार द्वारा संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना शुरू की गई जो 23 दिसम्बर, 1993 से प्रभावी हुई जिसके अंतर्गत प्रत्येक सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र में किए जाने वाले विकास कार्यों के बारे में जिलाधीश को सुझाव दे सकता है। इस उद्देश्य हेतु प्रतिवर्ष प्रति सदस्य को एक करोड़ रुपये की राशि आबंटित की गई। 23 दिसम्बर, 1998 को यह राशि बढ़ाकर दो करोड़ रुपए कर दी गई है।[81] बाद में वित्त वर्ष 2011-12 से यह राशि बढ़ाकर पांच करोड़ रुपये कर दी गई है।

---

81. साथ ही *देखिए* अध्याय 30—संसदीय समितियां।

ग्रामीण क्षेत्र और विकास मंत्रालय द्वारा वर्ष 1994 में संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना की संकल्पना, कार्यान्वयन एवं निगरानी के संबंध में विस्तृत दिशानिर्देश जारी किए गए। अक्तूबर, 1994 में योजना के कार्यान्वयन और निगरानी के लिए धन जारी करने से संबंधित संपूर्ण कार्य योजना और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन विभाग जो अब सांख्यिकी और कार्यान्वयन मंत्रालय है। को हस्तांतरित कर दिया गया। योजना के संबंध में विभाग ने संशोधित दिशानिर्देश दिसम्बर 1994, फरवरी 1998, सितम्बर 1999, अप्रैल 2002 और नवम्बर 2005 और अगस्त, 2012 में जारी किए।[82]

बारहवीं लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान योजना की निगरानी के लिए तथा लोक सभा के सदस्यों की शिकायतों पर विचार करने हेतु पहली बार संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना से संबंधित एक 23-सदस्यीय तदर्थ समिति गठित की गई।[83] इस समय समिति में 24 सदस्य हैं।

3. मंत्रियों के वेतन, भत्ते और अन्य हकदारियां

केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को दिए जाने वाले वेतन और भत्ते समय-समय पर यथासंशोधित मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952 द्वारा शासित होते हैं। अधिनियम के उपबंधों के अनुसार प्रत्येक मंत्री अपनी संपूर्ण पदावधि के दौरान प्रतिमास वेतन और प्रतिदिन के लिए भत्ता उन्हीं दरों पर पाने का हकदार होगा जैसा कि संसद सदस्यों के संबंध में संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 3 में विनिर्दिष्ट है। प्रत्येक मंत्री संसद सदस्यों के संबंध में उक्त अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत विनिर्दिष्ट दर पर निर्वाचन क्षेत्र भत्ता पाने का हकदार भी होगा।

अधिनियम के अंतर्गत यथा उपबन्धित वेतन और भत्तों के अतिरिक्त, प्रत्येक मंत्री को विनिर्दिष्ट दरों पर सत्कार भत्ता भी दिया जाएगा।[84] अर्थात्

(क) प्रधानमंत्री तीन हजार रुपये प्रतिमास;

(ख) प्रत्येक मंत्री, जो केबिनेट का सदस्य है— दो हजार रुपये प्रतिमास;

(ग) राज्य मंत्री— दो हजार रुपये प्रतिमास; और

(घ) उपमंत्री— छः सौ रुपये प्रतिमास।

कोई व्यक्ति जो संबंधित अधिनियम के अंतर्गत कोई वेतन या भत्ते प्राप्त कर रहा है, संसद के किसी भी सदन की अपनी सदस्यता के लिए संसद द्वारा वेतन या भत्ते के रूप में दी जाने वाली निधियों में से कोई राशि पाने का हकदार नहीं होगा।

---

82. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* "संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी दिशानिर्देश" कार्यक्रम का कार्यान्वयन विभाग, भारत सरकार अथवा http://mplads.nic.in

83. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* आगे अध्याय 30।

84. मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952, 1985 का अधिनियम 76, 26.12.1985 से प्रभावी, धारा 51।

यात्रा एवं दैनिक भत्ता

मंत्री : (क) अपने तथा अपने कुटुम्ब के सदस्यों के लिए और अपने तथा अपने कुटुम्ब की चीजबस्त के परिवहन के लिए यात्रा भत्ते (i) पद ग्रहण करने के लिए दिल्ली से बाहर के अपने प्रायिक निवास स्थान से दिल्ली तक की यात्रा के बारे में, और (ii) पदमुक्त होने पर दिल्ली से बाहर अपने प्रायिक निवास स्थान तक की यात्रा के बारे में; तथा (ख) अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में अपने द्वारा किए गए दौरों के बारे में, वे चाहे समुद्र, सड़क या वायुमार्ग द्वारा हों, यात्रा और दैनिक भत्ते पाने का हकदार है। इसके अतिरिक्त, मंत्री तथा उसके कुटुम्ब[85] का कोई भी एक सदस्य, जो उसके साथ यात्रा कर रहा हो, प्रतिवर्ष, भारत में ही की गई बारह से अनधिक वापसी यात्राओं के लिए यात्रा भत्ता पाने का हकदार है जो उन्हीं समान दरों पर देय है जिस पर ऐसे मंत्री को उक्त खंड में वर्णित दौरों के संबंध में [उपधारा (1) के खंड (ख)] के अंतर्गत देय है; और यह प्रत्येक वर्ष में अड़तालीस[86] एकल यात्राओं की कुल हकदारी के अध्यधीन है। इस संदर्भ में वापसी यात्रा से अभिप्राय ऐसी यात्रा से है जो एक स्थान से किसी अन्य स्थान तक की गई हो तथा ऐसे अन्य स्थान से पहले उल्लिखित स्थान तक की गई हो।

आवास सुविधाएं

मंत्री अपनी पूरी पदावधि के दौरान तथा उसके तत्काल बाद एक मास की अवधि तक किराये के संदाय के बिना एक सुसज्जित निवास स्थान का उपयोग करने का हकदार है तथा ऐसे निवास स्थान के अनुरक्षण के बारे में कोई प्रभार मंत्री पर वैयक्तिक तौर पर नहीं पड़ेगा।[87]

मंत्री की मृत्यु हो जाने पर उसका कुटुम्ब, मंत्री की मृत्यु के तत्काल बाद एक माह तक अनुरक्षण के लिए कोई संदाय किए बिना, मंत्री के अधिभोग में सुसज्जित निवास स्थान का उपयोग करने का हकदार होगा और उसके बाद अगले एक मास की अतिरिक्त कालावधि के लिए ऐसी दरों पर किराया देकर, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए और ऐसी अतिरिक्त कालावधि के दौरान उस निवास स्थान में उपयुक्त बिजली और पानी के बाबत प्रभार देकर उस निवास स्थान का उपयोग करने का हकदार होगा।

---

85. 'कुटुम्ब' से मंत्री के साथ रहने वाली उसकी पत्नी तथा उसके साथ रहने वाली और उस पर पूर्णतया आश्रित जायज संतान तथा सौतेली संतान से अभिप्रेत है। इन नियमों के प्रयोजनार्थ कुटुम्ब में एक से अधिक पत्नी शामिल नहीं हैं। यदि मंत्री विवाहित महिला है तो 'कुटुम्ब' में उसका पति, जो उसके साथ रहता हो तथा उस पर पूर्ण रूप से आश्रित हो, शामिल होगा।

86. *उद्धृत कृति* ।

87. 'निवास स्थान' के अंतर्गत स्टाफ क्वार्टर और उससे अनुलग्न अन्य निर्माण और उसका उद्यान आते हैं और निवास स्थान के संबंध में 'अनुरक्षण' के अंतर्गत स्थानीय दरों और करों का संदाय तथा बिजली एवं पानी के उपबंध आते हैं।

चिकित्सा सुविधाएं

मंत्री और उसके कुटुम्ब के सदस्य सरकार द्वारा अनुरक्षित अस्पतालों में निःशुल्क वास सुविधा और चिकित्सीय उपचार के भी हकदार हैं।

वाहन खरीदने हेतु अग्रिम राशि

किसी भी मंत्री को मोटर कार खरीदने के लिए संदेय अधिदाय के तौर पर ऐसी धनराशि[88] जो इस निमित्त बनाए गए नियमों द्वारा अवधारित की जाए, संदत्त की जा सकेगी जिससे वह अपने पद के कर्त्तव्यों का सुविधानुसार तथा दक्षतापूर्वक निर्वहन कर सके।

4. संसद सदस्यों के लिए संकेताक्षर

सदस्य अपने नाम के बाद संक्षिप्त पदनाम "एम.पी." का उपयोग कर सकते हैं।

1952 में राज्य सभा के कुछ सदस्यों ने इस बात पर हल्का असंतोष व्यक्त किया कि उनके नाम के बाद "एम.सी." लगाया जाता है। चूंकि दोनों सदन मिलकर संसद बनती है, अध्यक्ष मावलंकर ने वेतन तथा भत्तों के भुगतान संबंधी संयुक्त समिति को यह मामला सौंपा और उससे कहा कि वह इस संबंध में अपनी सिफारिशें करे कि लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य अपने नाम के बाद कौन सा संक्षिप्त पदनाम लगाएं। समिति ने यह सिफारिश की कि दोनों सदनों के सदस्यों को संसद सदस्य या एम.पी. कहा जाए।[89]

---

88. दिनांक 31.12.1998 के सा.का.नि. 986(ख) के अनुसार अवधारित एक लाख रुपये ।
89. संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों के भुगतान और संसद सदस्यों के संक्षिप्त पदनाम संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन, जुलाई, 1952, पृ. 8 ।

अध्याय 14

संसद में राजनीतिक दलों को मान्यता

दलीय प्रणाली लोकतांत्रिक शासन की किसी भी प्रणाली और विशेष रूप से संसदीय शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है। कुछ सदस्यों को छोड़कर, जो किसी दल में शामिल न हों, संसद के अधिकांश सदस्यों की दो तरह की हैसियत होती है: वे एक तो अपने निर्वाचन क्षेत्र का और दूसरे अपने दल का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमेशा ही एक दल या दलों का गठबंधन सत्तारूढ़ होता है और एक दल या कई दल विपक्ष में होते हैं।

केन्द्रीय विधान सभा में, उस अर्थ में कोई दलीय प्रणाली नहीं थी। जैसी संसदीय लोकतंत्र में होती है, जहां सत्तारूढ़ दल सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। दल केवल विरोधी पक्ष में ही थे, कोई दल उस रूप में सत्तारूढ़ नहीं था।

यद्यपि पहली विधान सभा में नरम दल के सदस्य (मोडरेट्स) 'पूर्वानुमानित संख्या' में चुने गए थे, पर उन्होंने कोई अलग स्थाई दल गठित नहीं किया।[1] वर्ष 1923 में दूसरे चुनाव के बाद विधान सभा के दो कांग्रेसजनों, सर्वश्री सी.आर. दास और मोतीलाल नेहरू ने एक सुसंहत, अनुशासित और सुगठित स्वराज पार्टी बनाई, लेकिन स्वराज पार्टी और निर्दलीय ग्रुप में सारे के सारे निर्वाचित सदस्य शामिल नहीं थे। पहली बार 1927 में तीसरी विधान सभा में अधिकतर निर्वाचित सदस्य संगठित समूहों में बंटे।[2] उनके नाम थे–स्वराजवादी, निर्दलीय (इन्डिपेण्डेण्ट),[3] राष्ट्रवादी (नेशनलिस्ट),[4] सेंट्रल मुस्लिम पार्टी[5] और यूरोपियन ग्रुप।

वर्ष 1932 में कांग्रेस के समादेश का अनुपालन करते हुए स्वराज पार्टी ने विधानमण्डल का बहिष्कार किया। लेकिन 1934 में, इस पार्टी ने अपने संविधान में संशोधन कर दिया, जिसके अंतर्गत उसे कांग्रेस संगठन के अंग के रूप में कार्य करना था और अपने आंतरिक प्रशासनिक मामलों के बारे में उसे पूरी स्वतंत्रता थी।[6]

---

1. साइमन रिपोर्ट, पृ. 250 और 257 ।

   उस समय राजनैतिक विचारधाराएं नरम दलीय और गरम दलीय या राष्ट्रवादियों में बंटी थीं। राष्ट्रवादियों को मांटेग चेम्सफोर्ड सुधार सर्वथा अस्वीकार्य थे और इसलिए उन्होंने चुनाव नहीं लड़ा।
2. *पूर्वोक्त, पृ.* 257।
3. इण्डिपेण्डेण्ट पार्टी के नेता श्री एम.ए. जिन्ना थे।
4. राष्ट्रवादी पार्टी एक नयी पार्टी थी, जिसका नाम पुराना था। इसमें उत्तरदायी सहयोगी (रेस्पोन्सिव कोओपरेटर्स) और हिन्दू महासभा के सदस्य थे, जिनके नेता सर्वश्री एम.आर. जयकर और एन. सी. केलकर थे–*साइमन रिपोर्ट,* पृ. 256-57 ।
5. केन्द्रीय मुस्लिम पार्टी के नेता सर जुल्फिकार अली खान थे।
6. *देखिए* पट्टाभि *सीता रमैया, हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस,* 1935, खण्ड I, पृ. 570-71 ।

वर्ष 1934 महत्वपूर्ण था, केवल इसलिए नहीं कि पुरानी स्वराज पार्टी फिर जीवित हो गई बल्कि इस कारण भी कि नयी कांग्रेस नेशनल पार्टी गठित की गई।[7] इस बात के बावजूद कि कांग्रेस दल के सदस्य विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित थे और विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते थे, एक बार किसी प्रश्न पर कोई निर्णय ले लिए जाने पर यह दल विधान सभा में एक यंत्र की तरह कार्य करता था और प्रभावशाली संसदीय विपक्ष के रूप में अपनी दक्षता का सबूत देता था।[8]

> कांग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी समिति द्वारा पारित एक संकल्प के अनुसरण में 1939 में कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने केन्द्रीय विधान सभा की कार्यवाही का बहिष्कार किया। केवल 1943 में ही कांग्रेस के सदस्य सभा में अपने स्थानों पर वापस गये।
>
> केन्द्रीय विधानमंडल में दलीय प्रणाली के विकास में एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग में 1945 में एक समझौता हुआ जिसका कारण दोनों दलों का उस सरकार को नापसन्द करना था। जब विपक्ष का पलड़ा भारी हो गया, तब कांग्रेस और लीग गठजोड़ के कारण सरकार की कई बार हार हुई।[9]
>
> जब युद्ध के कारण बहुत समय तक चुनाव स्थगित रहने के बाद 1945 में चुनाव हुए तो नव-निर्वाचित विधानमंडल का स्वरूप बिल्कुल बदला हुआ था और इसमें दलों की स्थिति सुस्पष्ट और सुपरिभाषित हो गई। विपक्ष का बहुमत था तथा कांग्रेस और मुस्लिम लीग मिलकर सरकार को हरा सकते थे और उन्होंने कई मामलों पर सरकार को हराया भी।
>
> जब भारत स्वतंत्र हुआ, तभी जाकर देश में संसदीय शासन प्रणाली अस्तित्व में आयी, जिसमें मंत्रिमंडल विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी था, एक दल सत्तारूढ़ था और अनेक राजनीतिक दल विपक्ष में थे।

भारतीय राज्यतंत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता राजनीतिक बहुलवाद की प्रधानता है। बहुत से राजनीतिक दल लोक सभा और राज्य विधानमंडलों के चुनावों में भाग लेते हैं। ऐसे प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात्, जिन राजनीतिक दलों ने पहली से पंद्रहवीं लोक सभा में प्रतिनिधित्व किया, उनके सदस्यों की संख्या तालिका 1 में दी गई है।

---

7. इस पार्टी का गठन अगस्त, 1934 में पं. मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में कलकत्ता में हुए एक सम्मेलन में हुआ जिसमें कांग्रेस जन और अन्य लोग शामिल थे और इसका उद्देश्य अन्य बातों के साथ-साथ कम्यूनल एवार्ड के विरुद्ध आन्दोलन करना था—*साइमन रिपोर्ट,* पृ. 577।
8. *इण्डियन रिव्यू,* जून 1935, पृ. 409 ।
9. बजट सत्र (1945) की 43 बैठकों में विपक्ष ने सरकार को 21 मामलों में हराया और एक प्रश्न पर सरकार और विपक्ष के बराबर-बराबर वोट थे और अध्यक्ष के निर्णायक मत के द्वारा ही सरकार को बचाया जा सका। इसके विपरीत, केवल दो मत विभाजनों में विपक्ष की हार हुई। चार प्रश्नों पर, जिनमें से एक निन्दा का प्रस्ताव भी था, सरकार ने मत विभाजन के लिए जोर नहीं दिया और चुपचाप हार सह ली—*इण्डियन ईयर बुक,* 1945-46, पृ. 958 ।

तालिका-1
लोक सभा में दलों की स्थिति

(1952, 1957, 1962, 1967, 1971, 1977, 1980, 1984, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 और 2009-2014 के साधारण निर्वाचन के बाद सभा की प्रथम बैठक के समय)।

वर्ष	प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों की संख्या	कांग्रेस/ कांग्रेस (आई.)	जनता	भाजपा	कम्यु. पार्टी	सोशलिस्ट पार्टी	किसान-मजदूर पार्टी	जनसंघ	स्वतंत्र पार्टी	द्र.मु.क.	तेलुगु देशम	अन्य दल	निर्दलीय/ अन्य
1952	489	366	–	–	27	12	10	3	–	–	–	–	71
1957	494[10]	365	–	–	27	19 (प्र.सो.पा.)		4	–	–	–	–	73
1962	494[11]	364	–	–	34	6 13 (प्र.सो.पा.)	–	14	25	7	–	–	37
1967	520[12]	283	–	–	24 (भा.क.पा.) 19 [भा.क.पा. (मा.ले.)]	23 (सं.सो.पा.) 14 (प्र.सो.पा.)	–	31	45	24	–	–	56

10. 13 मई, 1957 को 6 स्थान रिक्त थे।
11. 509 स्थानों में से 494 पर प्रत्यक्ष निर्वाचित हुए; 24 अप्रैल, 1962 को 9 स्थान रिक्त थे।
12. 523 स्थानों में से 520 पर प्रत्यक्ष निर्वाचित हुए; 26 जुलाई, 1967 को 3 स्थान रिक्त थे। कांग्रेस को प्राप्त 283 स्थानों में अध्यक्ष का स्थान शामिल नहीं है क्योंकि अध्यक्ष ने इस पद पर निर्वाचन के बाद कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया था।

वर्ष	प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों की संख्या	कांग्रेस/ कांग्रेस (आई.)	जनता	भाजपा	कम्यु. पार्टी	सोशलिस्ट पार्टी	किसान-मजदूर पार्टी	जनसंघ	स्वतंत्र पार्टी	द्र.मु.क.	तेलुगु देशम	अन्य दल	निर्दलीय/ अन्य
1971	518[13]	349 15 [कांग्रेस (ओ.)]	–	–	25 [भा.क.पा. (मा.)] 23 (भा.क.पा.)	3 (सं.सो.पा) 3 (रि.सो.पा.)	–	22	8	23	–	17[14]	23
1977	542[15]	153	306	–	22 [भा.क.पा. (मा.)] 7 (भा.क.पा.)	–	–	–	–	19 (अ.भा. अ.द्र.मु.क.)	–	–	32
1980	524[16]	351 13 [कांग्रेस (यू.)]	31 4 [जनता (एस.)]	–	35 [भा.क.पा. (मा.)]	4 (रि.सो.पा.)	–	–	–	16 2 (अ.भा. अ.द्र.मु.क.)	–	14[17]	6

13. 519 सीटों में से 518 पर प्रत्यक्ष निर्वाचन हुआ; 19 मई, 1971 को 5 स्थान रिक्त थे।
14. 19 मई 1971 की स्थिति के अनुसार तेलंगाना प्रजा समिति-10, मुस्लिम लीग-4, केरल कांग्रेस-3 ।
15. प्रत्यक्ष निर्वाचित सदस्य; 23 मार्च, 1977 को 3 स्थान रिक्त थे।
16. 10 जनवरी, 1980 को 18 स्थान रिक्त थे।
17. झारखंड पार्टी-1, नेशनल कांफ्रेंस-2, मुस्लिम लीग-3, केरल कांग्रेस (आई.)-1, केरल कांग्रेस (मणि)-1, अकाली दल-1, सिक्किम जनता परिषद-1, फारवर्ड ब्लॉक-3, महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी-1 ।

वर्ष	प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों की संख्या	कांग्रेस/ कांग्रेस (आई.)	जनता	भाजपा	कम्यु. पार्टी	सोशलिस्ट पार्टी	किसान-मजदूर पार्टी	जनसंघ	स्वतंत्र पार्टी	द्र.मु.क.	तेलुगु देशम	अन्य दल	निर्दलीय/ अन्य
1984	508[18]	399 4 [कांग्रेस (एस.)]	10	–	22 [भा.क.पा. (मा.)] 6 (भा.क.पा.)	3 (रि.सो.पा.)	–	–	–	12 (अ.भा. अ.द्र.मु. क.)	28	14[19]	10
1989	524[20]	195 1 [कांग्रेस (एस.सी. एस.)]	141 (ज.द.)	85	32 [भा.क.पा. (मा.)] 12 (भा.क.पा.)	4 (रि.सो.पा.)	–	–	–	11 (अ.भा. अ.द्र.मु.क.)	2	33[21]	12
1991	508[22]	*226 1 [कांग्रेस (एस.सी. एस.)]	56 (ज.द.)	**117	35 [भा.क.पा. (मा.)] 13 (भा.क.पा.)	4 (रि.सो.पा.)	–	–	–	11 (अ.भा. अ.द्र.मु.क.)	13	30[23]	1

* अमेठी सीट सहित जहां से स्व. श्री राजीव गांधी को निर्वाचित घोषित किया गया।

** श्री लाल कृष्ण आडवाणी और श्री अटल बिहारी वाजपेयी, जिन्होंने दो-दो निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ा, की एक-एक अन्य सीट सहित।

18. 31 दिसम्बर, 1984 को 36 स्थान रिक्त थे।
19. नेशनल कांफ्रेंस-3, भारतीय जनता पार्टी-2, मुस्लिम लीग-2, लोकदल-3, फारवर्ड ब्लाक-2, केरल कांग्रेस (आई.)-2 ।
20. 8 मई, 1990 को 19 स्थान रिक्त थे।
21. आ.इ.म.मु-1, झा.मु.मो.-3, इ.पी.फ्रं-1, मार्कसिस्ट (कोआर्ड)-1, म.गो.पा.-1, ज.क (ने.का)-3, मुस्लिम लीग-2, के.का.(एम.)-1, शिव सेना-3, शि.अ.द.(मा.)-6, ब.स.पा.-3, सिं. सं.प.-1, अ.भा.हि.म.स.-1, फॉरवर्ड ब्लॉक-3, गो.ने.लि.फ्रं-1 ।
22. 20 जून, 1991 को 41 स्थान रिक्त थे।
23. आ.इ.म.स.-1, ए.एस.डी.सी.-1, अ.ग.प.-1, झा.मु.मो.-6, ज.द.(ग)-1, ह.वि.पा.-1, जनता पार्टी-5, मुस्लिम लीग-2, के.का.(एम.)-1, ब.स.पा.-1, शिव सेना-4, एम.पी.पी.-1, एन.पी.सी.-1, सिं.सं.पा-1, आ. इ. फा. ब्लॉक-3 ।

वर्ष	प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों की संख्या	कांग्रेस/ कांग्रेस (आई.)	जनता	भाजपा	कम्यु. पार्टी	सोशलिस्ट पार्टी	किसान-मजदूर पार्टी	जनसंघ	स्वतंत्र पार्टी	द्र.मु.क.	तेलुगु देशम	अन्य दल	निर्दलीय/ अन्य
1996	533[24]	135	43 (ज.द.)	160	32 [भा.क.पा. (मा.)] 11(भा.क.पा.)	5 (रि.सो.पा.)	–	–	–	17	16	105[25]	9
1998	537[26]	141	6	179	32 [भा.क.पा. (मा.)] 9 (भा.क.पा.)	5(रि.सो.पा.)	–	–	–	24 (18 अ.भा. अ.द्र.मु.क.)	12	123[27]	6
1999	535[28]	111	20[ज.द. (यू.)] 1 [ज.द. (एस.)]	182	32 [भा.क.पा. (मा.)] 4(भा.क.पा.) 1[भा.क.पा. (मा.ले.) ले]	3(रि.सो.पा.)	–	–	–	12 (द्र.मु.क.) 10(अ.भा. अ.द्र.मु. क.) 4 (मा.द्र.मु.क.) 1 (एम जी आर.ए. आई.ए.डी.एम. के)	29	120[29] –	5

24. 22 मई, 1996 को 10 स्थान रिक्त थे।
25. त.म.कां.(एम.)-20, स.पा.-17, शिव सेना-15, ब.स.पा.-11, समता पा.-8, शि.अ.द.-8, अ.ग.प.-5, आ.इ.इं.कां. (ति.)-4, आ.इ.फा. ब्लॉक-3, ह.वि.पा.-3, मु.ली.-2, आ.इ.म.मु.-1, ए.एस.डी.सी.-1, झा.मु.मो.-1, म.प्र. वि.कां.-1, म.गो.पा.-1, के.कां. (एम.)-1, सि.डे.फ्रं.-1 और यू.गो.डे.पा.-1।
26. 10 मार्च, 1998 को 4 स्थान रिक्त थे।
27. स.पा.-20, राजद-17, समता पा.-12, बी.ज.द.-9, शि.अ.द.-8, प.बं.तृ.कां-7, शि.से.-6, ब.स.पा.-5, रि.पा.इं-4, पी.एम.के.-4, इं.ने.लो.द.-4, मा.द्र.मु.क.-3, लो.श.पा. 3., त.म.कां.(एम.)-3, आ.इं.फा.ब्ला-2, मु.ली-2, अ.कां-2, ज.पा.-1, ह.वि.पा.-1, आ.इं.रा.ज.पा.-1, के.कां.(एम.)-1, स.ज.पा.(रा.)-1, सि.डे.फ्रं-1, पी.व.पा.-1, आ.इं.का.(एस.)-1, ए.एस.डी.सी.-1, आ.इ.म.मु.-1, यू.एम.एफ.-1 और म.स्टे.कां.पा.-1 ।
28. 20 अक्तूबर, 1999 (13वीं लोक सभा की प्रथम बैठक की तिथि) की स्थिति के अनुसार 6 निर्वाचन क्षेत्रों में चुनाव होने थे और 2 स्थान रिक्त थे।
29. स.पा.-25, शिव सेना-15, ब.स.पा.-14, बी.ज.द.-10, ए.आई.टी.सी.-8, रा.ज.द.-7, रा.का.पा.-7 ई.ने.लो.द.-5, पी.एम. के. -5, ज.क.ने.कॉ.-4, ए.एल.एल.टी.सी.-2, ऑ.इं.फा. ब्लॉक-2, मु.ली.के.रा.स.-2, रा.लो.द.-2, शि.अ.द.-2, ऑ.इं.म.मु.-1, बी.बी.एम.-1, हि.वि.कां.-1, के कॉ.-1, के.कॉ.(एम.)-1, म.रा.कॉ.द.-1, पीडब्ल्यूपी.-1, शि.अ.द. (सिमरनजीत सिंह मान)-1, एस.डी.एफ-1, एस.जे.पी. (आर)-1 ।

वर्ष	प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों की संख्या	कांग्रेस/ कांग्रेस (आई.)	जनता	भाजपा	कम्यु. पार्टी	सोशलिस्ट पार्टी	किसान–मजदूर पार्टी	जनसंघ	स्वतंत्र पार्टी	द्र.मु.क.	तेलुगु देशम	अन्य दल	निर्दलीय/ अन्य
2004	541[30]	145	8 [ज.द. (यू)] 3[ज.द. (एस)]	138	43[भा.क.पा. (मा.)] 10 (भा.क.पा.)	3 (रि.सो.पा.)	–	–	–	16 (द्र.मु.क.) 4(मा.द्र. मु.क.)	5	161[31]	5
2009	543[32]	206	20 [ज.द. (यू.)] 3 [ज.द. (एस.)]	116	16 [(भा.क.पा. (मा.)] 4 (भा.क.पा.)	2 (रि.सो.पा.)	–	–	–	18 (द्र.मु.क.) 9 (अ.भा.द्र.मु.क.) 1 (मा.द्र.मु.क.)	6	133[33]	9

30. 2 जून, 2004 (14वीं लोक सभा की प्रथम बैठक की तिथि) की स्थिति के अनुसार 2 स्थान रिक्त थे।

31. स.पा.–35, रा.ज.द.–23, ब.स.पा.–19, शिव सेना– 12, बी.ज.द.–11, एन.सी.पी.–9, शि.अ.द.–8, प.म.क.–6, झा.मु.मो.–5, टी.आर.एस.–5, लो.ज.श.पा.–4, ऑ.इं.फा. ब्लॉक–3, रा.लो.द.–2, ए.आई.टी.सी.–2 अ.ग.प.–2, ज.क.ने.कां.–2, आ.ई.म.मु.–1, भा.क.पा.–1, आई.एफ.डी.पी.–1, जे. एंड के.पी.डी.पी.–1, के.कॉ.–1, एम.एल.के. एस.सी.–1, ना.पी.फ्रं.–1, मि.ने.फ्रं.–1, एन.एल.पी.–1, आर.पी.आई. (ए.)–1, एस.जे.पी. (आर.)–1, सि.दे.प.–1 ।

32. 15वीं लोक सभा के गठन की तारीख अर्थात् 18 मई, 2009 की स्थिति के अनुसार दलों की स्थिति।

33. स.पा. 23, (श्री अखिलेश यादव सहित, जो 2 सीटों से निर्वाचित हुए।) ब.स.पा.–21, अ.भा.तृ.कां.–19, बी.ज.द.–14, शिव सेना–11, रा.कां.पा.–9, रा.लो.द.–5, शि.अ.द.–4, रा.ज.द.–4, ज.क.ने.कां–3, ऑ.इं.फा.ब्लॉक–2, झा.मु.मो.–2, एम.एल.के.एस.सी.–2, टी.आर.एस.–2, आ.ई.म.मु.–1, अ.ग.पा.–1, ए.यू.डी.एफ.–1, बी.बी.ए.–1, बी.पी.एफ.–1, एच.जे.सी.(बी.एल.)–1, जे.वी.एम.(पी.)–1, के.सी.(एम.)–1, एन.पी.एफ.–1, एस.डी.एफ.–1, स्वाभिमानी क्ष–1, वी.सी.के.–1

1. अ.भा.हि.म.स.	अखिल भारतीय हिन्दू महासभा
2. अ.भा.लो.कां.	अखिल भारतीय लोकतांत्रिक कांग्रेस
3. अ.भा.अ.द्र.मु.क.	अखिल भारतीय अन्ना द्रविड मुनेत्र कषगम
4. आ.इं.फा. ब्लॉक	ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक
5. आ.इं.इं.कां (ति.)	ऑल इंडिया इंदिरा कांग्रेस (तिवारी)
6. आ.इं.इं.कां.(एस.)	ऑल इंडिया इंदिरा कांग्रेस (सेक्यूलर)
7. आ.इं.म.मु.	ऑल इंडिया मजलिस-ए-इत्तेहादुल मुस्लिमीन
8. आ.इ.रा.ज.पा.	ऑल इंडिया राष्ट्रीय जनता पार्टी
9. अ.इ.तृ.का.	आल इंडिया तृणमूल कांग्रेस
10. अ.ग.प.	असम गण परिषद
11. अ.कां.	अरूणाचल कांग्रेस
12. ए.एस.डी.सी.	ऑटोनामस स्टेट डिमांड कमेटी
13. ए.यू.डी.एफ.	असम संयुक्त लोकतांत्रिक फ्रंट
14. बी.ज.द.	बीजू जनता दल
15. भा.ज.पा.	भारतीय जनता पार्टी
16. भा.न.पा.	भारतीय नवशक्ति पार्टी
17. बी.पी.एफ.	बोडोलैण्ड पीपुल्स, फ्रंट
18. ब.स.पा.	बहुजन समाज पार्टी
19. बी.वी.ए.	बहुजन विकास अघादी
20. भा.क.पा.	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी
21. भा.क.पा.(मा.)	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)
22. भा.क.पा.(मा.ले.)	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी लेनिनवादी)
23. भा.क.पा.(मा.ले.)लि.	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी लेनिनवादी) लिबरेशन
24. कांग्रेस (एस.)	कांग्रेस (सोशलिस्ट)
25. कांग्रेस(यू.)	कांग्रेस (अर्स)
26. कांग्रेस (ओ.)	कांग्रेस (विपक्ष) पार्टी
27. द्र.मु.क.	द्रविड़ मुनेत्र कषगम
28. गो.ने.लि.फ्रं	गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट
29. हि.वि.कां.	हिमाचल विकास कांग्रेस
30. ह.वि.पा.	हरियाणा विकास पार्टी
31. ह.ज.का. (बी.एल.)	हरियाणा जनहित कांग्रेस (बी.एल.)
32. इंडियन कांग्रेस (एस.सी.एस.)	इंडियन कांग्रेस (सोशलिस्ट-शरत चंद्र सिन्हा)
33. भा.रा.कां.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
34. इं.ने.लो.दल	इंडियन नेशनल लोक दल
35. इं.पी.फ्रं.	इंडियन पीपुल्स फ्रंट
36. ज.क.ने.कां	जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस
37. ज.क.पी.डे.पा.	जम्मू कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी
38. ज.पा.	जनता पार्टी
39. ज.द. (गु.)	जनता दल (गुजरात)
40. ज.द. (सेक्यूलर)	जनता दल (सेक्यूलर)

41. ज.द. (सं.)	जनता दल (संयुक्त)
42. झा.मु.मो.	झारखंड मुक्ति मोर्चा
43. झा.वि.मो. (प्र.)	झारखंड विकास मोर्चा (प्रजातांत्रिक)
44. के.कां.(एम.)	केरल कांग्रेस (एम.)
45. लो.श.पा.	लोक शक्ति पार्टी
46. लो.ज.श.पा.	लोक जन शक्ति पार्टी
47. म.प्र.वि.कां.	मध्य प्रदेश विकास कांग्रेस
48. म.गो.पा.	महाराष्ट्रवादी गोमांतक पाटी
49. म.पी.पा.	मणिपुर पीपुल्स पार्टी
50. म.स्टे.कां.पा.	मणिपुर स्टेट कांग्रेस पार्टी
51. मा.द्र.मु.क.	मारूलमेलारची द्रविड़ मुनेत्र कषगम
52. मा.को.	मार्क्सवादी कोओर्डिनेशन
53. मि.ने. फ्रंट	मिजो नेशनल फ्रंट
54. मु.ली.	मुस्लिम लीग
55. मु.ली.के. स्टेट क.	मुस्लिम लीग केरल स्टेट कमिटी*
56. ना.पी.का.	नागालैंड पीपुल्ज कौंसिल
57. ना.पी.फ्रं.	नागालैंड पीपुल्स फ्रंट
58. ने.लो.पा.	नेशनल लोकतांत्रिक पार्टी
59. पी.एम.के.	पट्टाली मक्कल काट्ची
60. पी.व.पा.	पीजेन्ट्स एंड वर्कर्स पार्टी
61. प्र.सो.पा.	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी
62. रा.ज.द.	राष्ट्रीय जनता दल
63. रा.लो.द.	राष्ट्रीय लोक दल
64. रि.पा.ई.	रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया
65. रि.सो.पा.	रिवोल्युशनरी सोशलिस्ट पार्टी
66. शि.अ.द.	शिरोमणि अकाली दल
67. सि.डे.फ्रं.	सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट
68. स.ज.पा.(रा.)	समाजवादी जनता पार्टी (राष्ट्रीय)
69. समता पा.	समता पार्टी
70. स.पा.	समाजवादी पार्टी
71. शि.से.	शिव सेना
72. सि.सं.प.	सिक्किम संग्राम परिषद
73. स.सो.पा.	संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी
74. ते.दे.पा.	तेलुगु देशम पार्टी
75. त.म.का.	तमिल मनीला कांग्रेस (मूपनार)
76. ते.रा.स.	तेलंगाना राष्ट्र समिति
77. यू.गो.डे.पा.	यूनाइटिड गोवा डेमोक्रेटिक पार्टी
78. यू.एम.एफ.	यूनाइटिड माइनोरिटीज फ्रंट
79. वि.चि.का.	विदुतलाई चिरूतइगल काची
80. पं.ब.तृ.का.	पश्चिम बंगाल तृणमूल कांग्रेस

*अध्यक्ष ने इस पार्टी के 22.6.2012 से इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग में विलय को मान्यता दी।

अध्यक्ष मावलंकर ने एक बार कहा था कि लोकतंत्र का विकास उपयुक्त ढंग से तब तक नहीं हो सकता जब तक कि दलों की संख्या न्यूनतम नहीं होती, संभवतः दो मुख्य दलों से अधिक दल नहीं होने चाहिएं, जिसमें कि एक सत्तारूढ़ दल हो तथा दूसरा विपक्षी दल।[34] पहली लोक सभा के दौरान, दलों के नेताओं के आग्रह पर अध्यक्ष मावलंकर ने संसदीय दलों/समूहों को मान्यता देने और स्थानों के आवंटन से संबंधित मामले पर सभा के प्रमुख सदस्यों से चर्चा की। दलों की संख्या को बढ़ने से रोकने और छोटे-छोटे समूहों के बनने को निरुत्साहित करने के लिए उन्होंने उन सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिनके आधार पर लोक सभा में संसदीय कार्य के लिए राजनैतिक दलों को मान्यता दी जा सकती है।[35] बाद में इन सिद्धान्तों को अध्यक्ष के निदेशों में शामिल किया गया।

मान्यता की शर्तें

अध्यक्ष के निदेशों में प्रतिपादित उपरोक्त सिद्धांतों में यह उपबंध है कि सदस्यों की जो संस्था लोक सभा में संसदीय दल बनाना चाहती है, उसे निम्नलिखित अपेक्षित शर्तें पूरी करनी चाहिए।[36]

(i) उनकी एक स्पष्ट विचारधारा और कार्यक्रम होना चाहिए, चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र में हो, आर्थिक क्षेत्र में या सामाजिक क्षेत्र में हो, जिसकी घोषणा उन्होनें साधारण निर्वाचन के समय की हो और जिसके आधार पर वे सभा के सदस्य चुने गए हों। उनकी एक समरूप इकाई होनी चाहिए जो कि सुसंगठित इकाई बन सकती हो।

(ii) उनका एक संगठन, सभा के भीतर और सभा के बाहर दोनों स्थानों पर होना चाहिए जिसे देश के समक्ष सभी महत्वपूर्ण समस्याओं के संबंध में जनमत की जानकारी होनी चाहिए।

(iii) उनकी सदस्य संख्या कम से कम इतनी होनी चाहिए कि वे सभा में गणपूर्ति बनाए रखें, अर्थात् उस संख्या से कम नहीं होनी चाहिए जितनी कि सभा की बैठक में गणपूर्ति बनाए रखने के लिए निश्चित की गई है, जो कुल सदस्य संख्या का दसवां भाग है।[37]

---

34. जी.वी. मावलंकर, *स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स*, पृ. 47 ।

35. *निदेशों का इतिहास ।*

36. *देखिए* निदेश 121 (एक)।

37. भूतपूर्व केन्द्रीय विधान सभा में (जिसमें 1937 से लेकर 1945 तक 141 सदस्य थे) एक दल बनाने के लिए कम से कम 10 सदस्यों की आवश्यकता थी। वर्ष 1941 में अध्यक्ष, श्री अब्दुर्रहीम ने विभिन्न दलों के नेताओं से परामर्श करने के बाद इस संख्या को घटाकर 9 कर दिया, जिससे कि उस यूरोपियन ग्रुप को मान्यता प्रदान की जा सके जिसके सदस्यों की संख्या 10 से घट कर 9 रह गई थी।

यह भी उपबंध किया गया है कि जिस राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व लोक सभा में हो और जो पहली दो शर्तें पूरी करता हो, परन्तु जिसके सदस्यों की संख्या अपेक्षित न्यूनतम संख्या, अर्थात् सभा की कुल सदस्य संख्या के दसवें भाग से कम हो, उसे संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है बशर्ते कि उसके सदस्यों की संख्या कम से कम 30 हो।[38]

पहली लोक सभा में कम्युनिस्ट पार्टी को सभा में संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी, लेकिन अगस्त, 1954 में उस ग्रुप से वह मान्यता छिन गई क्योंकि इसके सदस्यों की संख्या घटकर 29 रह गई थी। दूसरी लोक सभा में सदस्यों के किसी भी ग्रुप को संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता नहीं दी गई। तीसरी लोक सभा में, कम्युनिस्ट पार्टी, जिसके 34 सदस्य थे, को सभा में संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता प्रदान की गई। लेकिन सितम्बर, 1964 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी में विभाजन के कारण इस ग्रुप की मान्यता छिन गई, जिसके परिणामस्वरूप सभा में भी वह ग्रुप दो भागों में बंट गया। वर्ष 1967 में आम चुनावों के बाद गठित चौथी लोक सभा में स्वतंत्र पार्टी (45 सदस्य) और जनसंघ (31 सदस्य) को संसदीय ग्रुपों के रूप में मान्यता दी गई। नवम्बर, 1969 में कांग्रेस के विभाजन के बाद कुछ सदस्यों ने सत्तारूढ़ कांग्रेस दल से अपने को पृथक करके कांग्रेस दल (विपक्ष) नाम से एक अलग दल बना लिया। चूंकि सभा में इसके सदस्यों की संख्या 60 थी और यह संसदीय दल के रूप में मान्यता के लिए सभी निर्धारित शर्तें पूरी करता था, पहली बार इसे विपक्षी दल के रूप में मान्यता दी गई और इसके नेता डॉ० रामसुभग सिंह को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्रदान की गई। दिसम्बर, 1970 में लोक सभा के विघटन तक इसकी मान्यता बनी रही।[39] वर्ष 1971 में हुए साधारण निर्वाचन में सत्तारूढ़ कांग्रेस दल को 515 स्थानों की सभा में 348 स्थान प्राप्त हुए और कोई भी विपक्षी दल मान्यता के लिए आवश्यक न्यूनतम स्थान प्राप्त नहीं कर सका, इसलिए पांचवीं लोक सभा में सदस्यों के किसी भी समूह को सभा में संसदीय समूह के रूप में मान्यता नहीं दी गई।

---

38. निदेश 121 (दो) ।

केन्द्रीय विधान सभा में अध्यक्ष, मावलंकर ने ग्रुप के रूप में मान्यता प्रदान करने के लिए सदस्यों की संख्या 10 नियत की थी। उसके बाद यह संख्या बढ़ाकर 30 कर दी गई है लेकिन जहां तक सभा में चर्चा में भाग लेने के लिए वक्ताओं के चयन का संबंध है, जिन ग्रुपों की सदस्य संख्या 10 या अधिक है, उन्हें विभिन्न चर्चाओं में बोलने के लिए समय दिया जाता है।

लो.स.वाद-विवाद 16.3.1964, कॉ. 5595-96 ।

संतुलित तरीके से सदस्यों को बोलने का मौका देने के लिए अध्यक्ष ने 1971 में दलों को मुख्य दलों (अर्थात् वे दल जिनके सदस्यों की संख्या 15 से अधिक है), मंझोले और छोटे दलों (अर्थात् वे दल जिनके केवल 3 या 4 सदस्य हैं) में वर्गीकृत किया। *लो.स.वा.वि.,* 31.3.1971 ।

39. समाचार-भाग 1, 17.12.1969, लो.स.वा.वि. 17.12.1969, पृ. 238 ।

वर्ष 1977 में हुए साधारण निर्वाचन के बाद, जनता पार्टी सभा में 306 स्थान प्राप्त करके सत्तारूढ़ दल के रूप में उभरी और पूर्ववर्ती सत्तारूढ़ कांग्रेस दल 153 स्थान प्राप्त करके विपक्षी दल के रूप में सामने आया। चूंकि जनता और कांग्रेस दोनों दल संसदीय दल के रूप में मान्यता हेतु सभी शर्तें पूरी करते थे, अत: उन्हें संसदीय दल के रूप में मान्यता दी गई। छठी लोक सभा में सदस्यों का कोई भी ग्रुप संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता हेतु अपेक्षित शर्तों को पूरा नहीं करता था।

9 मार्च, 1978 को कांग्रेस दल का कांग्रेस और कांग्रेस (आई.) के रूप में विभाजन होने के परिणामस्वरूप, 58 सदस्यों वाले कांग्रेस दल (आई.) को संसदीय दल के रूप में मान्यता दी गई। इसी प्रकार, जनता पार्टी का जनता और जनता (एस.) में विभाजन होने के बाद 68 सदस्यों की संख्या वाले जनता पार्टी (एस.) को 16 जुलाई, 1979 से संसदीय दल के रूप में मान्यता दी गई।

सातवीं लोक सभा में, केवल कांग्रेस (आई.) दल को संसदीय दल के रूप में मान्यता दी गई। 41 सदस्यों वाली जनता पार्टी (एस.), 35 सदस्यों वाली भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) और 31 सदस्यों वाली जनता पार्टी को सभा में संसदीय ग्रुपों के रूप में मान्यता दी गई। मार्च, 1980 में जनता ग्रुप ने संसदीय ग्रुप के रूप में अपनी मान्यता खो दी, क्योंकि जनता ग्रुप के तीन सदस्य इससे अलग हो गए थे और इसके परिणामस्वरूप जनता ग्रुप के सदस्यों की संख्या 31 से घटकर 28 रह गई थी।

31 दिसम्बर, 1984 को गठित आठवीं लोक सभा में कांग्रेस (आई.) दल, जिसके 398 सदस्य थे, सबसे बड़े दल के रूप में उभरकर सामने आया और इसे संसदीय दल के रूप में मान्यता दी गई। 30 सदस्यों वाले तेलुगु देशम को संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता दी गई। सदस्यों का अन्य कोई ग्रुप लोक सभा में संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता हेतु अपेक्षित शर्तों को पूरा नहीं करता था। तथापि, 3 मार्च, 1988 को तेलुगु देशम ग्रुप ने भी संसदीय ग्रुप के रूप में अपनी मान्यता खो दी, क्योंकि इसके एक सदस्य ने लोक सभा से त्यागपत्र दे दिया था जिसके परिणामस्वरूप इसके सदस्यों की संख्या 30 से घटकर 29 रह गई थी।

2 दिसम्बर, 1989 को गठित नौवीं लोक सभा में, 194 सदस्यों वाले कांग्रेस (आई.), 141 सदस्यों वाले जनता दल और 86 सदस्यों वाली भारतीय जनता पार्टी को संसदीय दलों के रूप में मान्यता दी गई। 32 सदस्यों वाली भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मा.) को सभा में संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता दी गई।

20 जून, 1991 को गठित दसवीं लोक सभा में 224 सदस्यों वाली कांग्रेस (आई.), 119 सदस्यों वाली भारतीय जनता पार्टी और 51 सदस्यों वाले जनता दल को संसदीय दलों के रूप में मान्यता दी गई। 35 सदस्यों वाली भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मा.) को सभा में संसदीय ग्रुप के रूप में मान्यता दी गई।

तथापि, कुछ मामलों में, सदस्यों की एक संस्था के सदस्यों की संख्या 30 से कम होने पर भी उसे अध्यक्ष महोदय के आदेश पर औपचारिक मान्यता दिए बिना सुविधा के लिए ग्रुप का नाम दिया गया।[40]

---

40. (i) पहली लोक सभा में सदस्यों की जिन संस्थाओं को यह नाम दिया गया, वे थे—नेशनल डेमोक्रेटिक ग्रुप, पी.एस.पी. ग्रुप, यूनियन ऑफ सोशलिस्ट्स एण्ड प्रोग्रेसिव, गणतंत्र परिषद, सोशलिस्ट ग्रुप और लोक सेवक संघ।

(ii) दूसरी लोक सभा में, कम्युनिस्ट पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी शेड्यूल कास्ट फेडरेशन, (बाद में यह नाम बदलकर रिपब्लिकन ग्रुप रखा गया), स्वतंत्र पार्टी, गणतंत्र परिषद, भारतीय जनसंघ, हिन्दू महासभा और द्रविड़ मुनेत्र कषगम के सदस्यों को ऐसे ग्रुपों की संज्ञा दी गई।

(iii) तीसरी लोक सभा में, ऊपर (ii) में, उल्लिखित ग्रुपों के अतिरिक्त मुस्लिम लीग और निर्दलीय दल को भी ग्रुप की संज्ञा दी गई।

(iv) चौथी लोक सभा में द्रविड़ मुनेत्र कषगम, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, संयुक्त समाजवादी दल, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, प्रोग्रेसिव ग्रुप, इन्डिपेन्डेंट पार्लियामेंट्री ग्रुप और निर्दलीय संगठन के सदस्यों को ग्रुपों की संज्ञा दी गई।

(v) पांचवीं लोक सभा में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, द्रविड़ मुनेत्र कषगम, जनसंघ और कांग्रेस पार्टी (विपक्ष) के सदस्यों को ग्रुप की संज्ञा दी गई।

(vi) छठी लोक सभा में, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) और ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम के सदस्यों को ग्रुप की संज्ञा दी गई।

(vii) सातवीं लोक सभा में, जनता (एस.), भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), जनता और द्रविड़ मुनेत्र कषगम को ग्रुप की संज्ञा दी गई।

(viii) आठवीं लोक सभा में, तेलुगु देशम और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), के सदस्यों को ग्रुप की संज्ञा दी गई।

(ix) नौवीं लोक सभा में, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के सदस्यों को एक ग्रुप की संज्ञा दी गई।

(x) दसवीं लोक सभा में, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के सदस्यों को एक ग्रुप की संज्ञा दी गई।

पांचवीं, छठी और सातवीं लोक सभाओं के सदस्यों की सूची में 15 से कम (अर्थात् ग्रुप के रूप में मान्यता हेतु अपेक्षित सदस्यों की संख्या की आधी से कम) और 2 तक की सदस्यता वाले किसी ग्रुप के सदस्यों की दलीय सम्बद्धता 'अन्य दल' के रूप में दर्शायी गयी थी। यदि दल का केवल एक ही सदस्य था, उसे असम्बद्ध सदस्य के रूप में माना गया। ऐसे सदस्यों और निर्दलीय सदस्यों की दलीय सम्बद्धता 'असम्बद्ध' के रूप में दर्शायी गई थी।

15 अथवा इससे अधिक सदस्य संख्या वाले ग्रुपों से सम्बद्ध सदस्यों की दलीय सम्बद्धता उन ग्रुपों के नाम से, जिनसे वे सम्बद्ध थे, दर्शायी गयी थी।

सभा में कार्य करने के प्रयोजन से कुछ घटक ग्रुपों, जिनको मिलाकर कोई दल बनता हो, जिनका संसदीय कार्य संबंधी कार्यक्रम एक समान हो, एक ही संगठन हो, एक ही नेता और सचेतक उनकी ओर से सभा में बोलने वाला हो, को संसदीय दल या ग्रुप के रूप में मान्यता देने की परंपरा रही है। यह शर्त सरकार और विपक्षी दलों दोनों पर समान रूप से लागू की गई और कई घटक ग्रुपों से बने सत्ताधारी दल या उसी प्रकार बने विपक्षी दल के बीच कोई भेद-भाव नहीं किया गया।

आठवीं लोक सभा में, 'निर्दलियों' और 'विधानमंडल दलों के अकेले सदस्यों' को 'असम्बद्ध' रूप में दर्शाने की परंपरा संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 के लागू होने के बाद समाप्त कर दी गई, जिसमें इस बात का उपबंध है कि "सभा का कोई निर्वाचित सदस्य, उस राजनीतिक दल, यदि कोई है, जिसने उसे ऐसे सदस्य के रूप में चुनाव के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया था, से सम्बद्ध माना जाएगा।" तदनुसार, 7 अगस्त, 1987 से सदस्यों की सूची में केवल उन्हीं सदस्यों को निर्दलीय रूप में दर्शाया गया था जिन्होंने निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा और निर्वाचित हुए। नामनिर्दिष्ट सदस्यों को (असम्बद्ध सदस्यों के साथ मिलाने के बजाय) इसी रूप में दिखाया गया था। इसी तरह, दलों के टिकटों पर निर्वाचित अकेले सदस्यों को उन दलों से, जिनसे वे संबंधित थे, संबद्ध दिखाया गया था। केवल उन्हीं सदस्यों को, जो किसी दल के टिकट पर सभा के लिए निर्वाचित हुए थे लेकिन जिन्हें बाद में पार्टी से निष्कासित कर दिया गया, सदस्यों की सूची में 'असम्बद्ध' के रूप में माना गया और दर्शाया गया।

दसवीं लोक सभा के दौरान इस मामले की नए सिरे से जांच करायी गयी। यह निर्णय लिया गया था कि निकाले गए सदस्यों को 'असम्बद्ध' नहीं माना जाए और इसके स्थान पर उन्हें उन दलों जिनसे वे निकाले गए हैं, को आबंटित स्थानों से अलग लोक सभा में कहीं अलग बैठाया जाए तथा लोक सभा में और अन्य अभिलेखों में दलीय स्थिति में दलीय सम्बद्धता में कोई परिवर्तन नहीं किया जाए। आज यही व्यवस्था चल रही है। वास्तव में, दसवीं लोक सभा में संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत जनता दल मामले में 1 जून, 1993 को दिए गए अपने निर्णय में राजनीतिक दलों से निष्कासन और निकाले गए सदस्यों की स्थिति के बारे में अध्यक्ष (शिवराज वि. पाटील) द्वारा की गई टिप्पणी के परिणामस्वरूप ही यह परिपाटी स्थापित हुई है।

"इस संबंध में, पैरा 2(1) का स्पष्टीकरण (क) संगत है:

(क) सभा का कोई निर्वाचित सदस्य उस राजनीतिक दल, यदि कोई हो, से सम्बद्ध माना जाएगा जिसने उसे ऐसे सदस्य के रूप में निर्वाचन हेतु उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया था।

यह किसी सदस्य को दी गई संवैधानिक स्थिति है, जो निष्कासन के द्वारा उससे वापस नहीं ली जा सकती है।"

(समाचार भाग-2, दिनांक 1.6.1993)।

विभिन्न विचारधाराओं वाले विभिन्न दलों के सदस्यों और अलग नाम वाले तदर्थ ग्रुपों के असम्बद्ध सदस्यों को भी सभा में कार्य करने के उद्देश्य से दल या ग्रुप की संज्ञा दी गई थी।[41]

निदेशों में यह भी उपबंध था कि सभा में कार्य करने के प्रयोजन के लिए सदस्यों की किसी संस्था को संसदीय दल या ग्रुप के रूप में मान्यता केवल अध्यक्ष द्वारा दी जायेगी और इस मामले में उसका निर्णय अंतिम होगा।[42] अध्यक्ष ने स्वयं पहल करके यह मान्यता नहीं दी बल्कि संबद्ध सदस्यों को इस संबंध में अध्यक्ष से औपचारिक रूप से अनुरोध करना पड़ा।[43] अध्यक्ष को पत्र लिखते समय सदस्यों की संस्था को यह प्रमाणित करना पड़ता था कि वे दल अथवा ग्रुप के रूप में मान्यता पाने के प्रयोजन के लिए निर्धारित शर्तों को पूरा करते हैं। अनुरोध पर सभी संबंधित सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक थे।[44]

---

41. पहली, दूसरी और तीसरी लोक सभा में इण्डिपेंडेंट पार्लियामेंट्री ग्रुप, दूसरी और तीसरी लोक सभा में यूनाइटेड प्रोग्रेसिव पार्लियामेंट्री ग्रुप।

    24 नवम्बर, 1967 को, चौथी लोक सभा में अध्यक्ष ने घोषणा की कि भविष्य में वे सदस्य, जो निर्दलीय के रूप में लोक सभा के लिए निर्वाचित हुए, असम्बद्ध बने रहेंगे और उनके द्वारा बनाए गए किसी भी ग्रुप को मान्यता नहीं दी जाएगी। तदनुसार, इसके बाद इण्डिपेंडेंट पार्लियामेंट्री ग्रुप, प्रोग्रेसिव ग्रुप और निर्दलीय संगठन के सदस्यों को असम्बद्ध सदस्य माना गया–*लो.स.वा.वि.,* 24.11.1967, पृ. 1371

    निर्दलीय सदस्यों द्वारा बनाए ग्रुपों को मान्यता देने की प्रथा चौथी लोक सभा के आठवें सत्र के दौरान फिर शुरू की गई और वाद-विवाद में वक्ताओं के चयन और साथ-साथ सीटों के आवंटन के प्रयोजन यूनाइटेड इण्डिपेंडेंट पार्लियामेंट्री ग्रुप (यूआईपीजी) और भारतीय क्रांति दल (बीकेडी) को मान्यता दी गई। इसी तरह की मान्यता पांचवीं लोक सभा में यूनाइटेड इण्डिपेंडेंट पार्लियामेंट्री ग्रुप (यूआईपीजी) को दी गई।

    ग्यारहवीं लोक सभा में, एक सदस्य (जी.जी. स्वेल) ने अध्यक्ष को एक 'यूनाइटेड पार्लियामेंट्री ग्रुप' के गठन के बारे में सूचना दी, जिसमें निर्दलीय सदस्य और एक सदस्यीय दलों के सदस्य शामिल थे तथा इस ग्रुप को मान्यता देने का अनुरोध किया। संविधान की दसवीं अनुसूची के उपबंधों और संसदीय दलों और ग्रुपों की तुलना में लोक सभा में उस समय की स्थिति के आलोक में, इस मामले की जांच करने के बाद यह निर्णय लिया गया कि श्री जी.जी. स्वेल के अनुरोध को मानना व्यवहार्य नहीं है। सदस्य को तदनुसार सूचना दे दी गई–(फा.सं. 28/1/96-टी)।

42. निदेश 120 ।

43. दूसरी लोक सभा में, कम्युनिस्ट पार्टी के 30 सदस्य थे और वह ग्रुप के रूप में मान्यता पाने के लिए निर्धारित अन्य शर्तें पूरा करती थी, लेकिन उसने मान्यता के लिए अध्यक्ष से औपचारिक रूप से अनुरोध नहीं किया, इसलिए उसे ग्रुप के रूप में औपचारिक रूप से मान्यता नहीं दी गई।

44. किसी भी सदस्य के हस्ताक्षर न होने की स्थिति में, उस ग्रुप के नेता से कहा जाता है कि वह सदस्यों से हस्ताक्षर कराये। सदस्यता की पुष्टि करना दल या ग्रुप के नेता की जिम्मेदारी है।

दसवीं अनुसूची लागू होने के बाद की स्थिति

3 मार्च, 1985 से संविधान की दसवीं अनुसूची के प्रवृत्त होने तथा लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1988 (जिसके द्वारा सभी राजनीतिक दलों के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण का उपबंध करने के लिए धारा 29क लायी गई) के बाद सदन में किसी दल के सदस्यों की संख्या के आधार पर अध्यक्ष द्वारा संसदीय दल/ग्रुप को मान्यता देने की तुलना में संसदीय दलों/ग्रुपों को मान्यता देने की अवधारणा में काफी बदलाव आया है।

दसवीं अनुसूची के प्रयोजन के लिए, सदन में किसी राजनीतिक दल-विशेष से संबद्ध सभी सदस्यों को सदन में उस दल के 'विधानमंडल दल' से संबद्ध माना जाएगा भले ही उस 'विधानमंडल दल' की सदस्य संख्या कुछ भी हो। अत: सदन में किसी राजनीतिक दल के अकेले सदस्य का भी उस नाम से एक विधानमंडल दल होगा। तथापि निर्दलीय उम्मीदवारों के रूप में जो सदस्य लोक सभा के चुनाव लड़कर और जीतकर आए हों और वे सदस्य जिन्हें नामनिर्देशित किया गया हो, उन्हें उनकी स्थिति अर्थात् निर्दलीय या नामनिर्देशित सदस्यों, जो भी स्थिति हो, के रूप में दर्शाया जाता है।

तदनुसार, अध्यक्ष द्वारा संसदीय दलों/ग्रुपों को मान्यता देने के संबंध में निदेशों संबंधी उपबंधों की एक बिल्कुल अलग दृष्टिकोण से व्याख्या करने की आवश्यकता थी। संविधान की दसवीं अनुसूची के प्रवृत्त होने के बाद से, निदेशों का उपयोग अब मुख्य रूप से कार्य संबंधी उपयोगिता अर्थात् सदन में दल/ग्रुपों में से वक्ताओं का चयन करने; विभिन्न संसदीय समितियों के लिए नामनिर्देशन पर विचार करने; सदन में स्थानों का आवंटन करने; संसदीय पत्र उपलब्ध कराने, आदि तक सीमित रखा जाता है।

इसके बावजूद, सदन में कार्य आदि के संदर्भ में राजनीतिक दलों/ग्रुपों को मान्यता देना दसवीं लोक सभा के कार्यकाल के मध्य तक जारी रहा।

तथापि संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत जनता दल के मामले पर विचार-विमर्श के दौरान, संविधान का दसवीं अनुसूची के उपबंधों की गहन जांच-पड़ताल की गई।

लोक सभा में विधानमंडल दलों के टूटने के कारण अलग हुए ग्रुपों के संदर्भ में यह विचार[45] स्थापित हुआ कि राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करना केवल भारत के निर्वाचन आयोग के क्षेत्राधिकार में आता है।

लेकिन इस प्रक्रिया का एक अपवाद भी था, जबकि यूनियन ऑफ सोशलिस्ट्स एण्ड प्रोग्रेसिव के मामले में, जिसका गठन 1952 में हुआ था, सचिवालय ने इस ग्रुप के नेता से कहने के बजाए ग्रुप के सदस्यों को अलग-अलग लिखा कि वे इस ग्रुप की सदस्यता की पुष्टि करें। इसी प्रकार दूसरी लोक सभा में निर्दलीय संसदीय ग्रुप के चार सदस्यों से यह कहा गया कि वे उस ग्रुप की अपनी सदस्यता की लिखित रूप में पुष्टि करें।

45. दसवीं लोक सभा के दौरान समता पार्टी के मामले में, 1994 में जनता दल के टूटने के परिणामस्वरूप अलग हुए सदस्यों के ग्रुप को कोई औपचारिक मान्यता नहीं दी गई।

परिणामस्वरूप, ग्यारहवीं लोक सभा से, जबकि विधानमंडल दल सदन में अपनी सदस्य संख्या के आधार पर कतिपय कार्य संबंधी सुविधाएं प्राप्त कर रहे हैं, निदेश 120 और निदेश 121 के अनुसार अध्यक्ष द्वारा मान्यता दिए जाने की प्रथा समाप्त कर दी गई।

विधानमंडल दलों को सुविधाएं

यद्यपि संसदीय दलों और ग्रुपों को मान्यता देने की प्रथा को अब समाप्त कर दिया गया है, तथापि विधानमंडल दलों को उनकी सदस्य संख्या के आधार पर अध्यक्ष द्वारा कतिपय सुविधाएं दिए जाने के लिए पुराने मानदण्डों का अभी भी पालन किया जा रहा है। किसी संसदीय दल को कतिपय ऐसी सुविधाएं उपलब्ध होती हैं जो अध्यक्ष द्वारा उस दल को प्रदान की जाती हैं। वह किसी संसदीय ग्रुप को इनमें से सुविधाएं दे सकता है जिनको वह ग्रुप के लिए ठीक अथवा व्यवहार्य समझे। सदस्यों की संस्था को भी कुछ सुविधाएं प्रदान की जा सकती हैं, यदि अध्यक्ष की राय में ऐसा करने से सभा के कार्य संचालन में सुविधा हो। सभी मामलों में सुविधाएं देने के संबंध में अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है।[46]

किसी भी संसदीय दल को सामान्यतः निम्नलिखित सुविधाएं दी जाती हैं:[47]

(i) दल की सदस्य संख्या और सभा भवन में उपलब्ध कुल स्थानों की संख्या के अनुपात में सभा में स्थानों के ब्लॉकों को नियत करना।[48]

(ii) दल के संसदीय कार्य के प्रयोजन के लिए संसद भवन में टेलीफोन और इंटरनेट सुविधायुक्त एक सुसज्जित कमरा नियत करना।

पाँचवीं लोक सभा तक सत्तारूढ़ कांग्रेस दल को संसद भवन में दो सुसज्जित कमरे दिए गए थे। विपक्ष के "ग्रुपों" को केन्द्रीय कक्ष की लॉबी में एक सुसज्जित कमरा और कुछ लाउंज दिए गए थे। छठी लोक सभा में सत्तारूढ़ जनता दल और कांग्रेस दल, जो उस समय विपक्ष में था, दोनों को संसद भवन में चार-चार सुसज्जित कमरे दिए गए थे। अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम "ग्रुप" को भी एक सुसज्जित कमरा आवंटित किया गया था। सातवीं लोक सभा में, सत्तारूढ़ कांग्रेस दल को चार कमरे आवंटित किए गए थे। दोनों सदनों में कम से कम आठ सदस्यों वाले अन्य राजनीतिक दलों को भी एक-एक सुसज्जित कमरा आवंटित किया गया था। यह

ग्यारहवीं लोक सभा में समता पार्टी और जनता पार्टी के टूटने के परिणामस्वरूप, क्रमशः समाजवादी पार्टी (राष्ट्रीय) और राष्ट्रीय जनता दल नामक अलग हुए समूहों को भी अध्यक्ष द्वारा कोई औपचारिक मान्यता नहीं दी गई–लो.स.वा.वि., 12.9.1996 तथा फा.सं. 46/4/97 टी।

46. *देखिए,* निदेश 122 और 123 ।

47. निदेश 122 ।

48. किसी दल या ग्रुप के सदस्यों के लिए स्थानों के नियतन के ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय-15, 'सदस्यों द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान और सभा में स्थान ग्रहण' के अंतर्गत उप-शीर्षक *सदस्यों के बैठने की व्यवस्था* ।

सुविधा आठवीं, नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं, चौदहवीं और पंद्रहवीं लोक सभाओं में जारी रही। सदस्यों को आशुलिपिकीय सहायता सचिवालय द्वारा उपलब्ध करायी जाती है और उनके लिए एक टेलीफोन की व्यवस्था भी की जाती है।

(iii) दल की बैठकों के आयोजन के लिए समिति कक्षों या उपलब्ध अन्य स्थान को नियत करना।

दलों या ग्रुपों से लिखित अनुरोध मिलने पर, उन्हें संसदीय कार्य से संबंधित बैठकें करने के लिए केन्द्रीय कक्ष और समिति कक्ष उपलब्ध कराये जाते हैं। प्रत्येक अनुरोध पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाता है।

निम्नलिखित प्रकार के अनुरोध स्वीकार किए गए हैं:

संसद में कोई नया दल या ग्रुप बनाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए सदस्यों की बैठक करने के लिए।

संसद में किसी दल या ग्रुप की बैठक करने के लिए।

कतिपय राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने में संसद सदस्यों के सहयोग पर विचार करने के लिए कतिपय राज्यों के सदस्यों की बैठक करने के लिए।

किसी राज्य विशेष के सदस्यों तथा मंत्रियों की बैठक करने के लिए, जिसमें उस राज्य से संबंधित समस्याओं पर विचार किया जा सके।

सभी दलों के सदस्यों की बैठक करने के लिए।

लेकिन किसी भी दल या ग्रुप को स्थाई रूप से कोई समिति कक्ष आवंटित नहीं किया जाता।[49]

(iv) उन संसदीय अथवा सरकारी पत्रों या प्रकाशनों को उपलब्ध करवाना जो समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा निर्धारित किये जाएं।

किसी दल या ग्रुप को संसदीय पत्र या प्रकाशन उसकी ओर से अध्यक्ष से विशिष्ट अनुरोध किए जाने पर उपलब्ध करवाए जाते हैं।

(v) दल के सदस्यों की संख्या के अनुपात में किसी संसदीय समिति के लिए नामनिर्देशन करना।

सदस्यों को, संसदीय समितियों के सदस्यों के रूप में नामनिर्देशित करने के लिए सभा में दलों अथवा ग्रुपों के नेताओं से अपने-अपने दल/ग्रुप के सदस्यों के नामों का प्रस्ताव अध्यक्ष के विचारार्थ हेतु भेजने का अनुरोध किया जाता है। ये नाम बिना किसी पूर्वाग्रह के प्राप्त किये जाते हैं, क्योंकि यह पूर्णत: अध्यक्ष के विशेषाधिकार पर निर्भर करता है कि वह नेता द्वारा सिफारिश किए अनुसार सदस्य को नामांकित न करें। सामान्यत: संबंधित दल अथवा ग्रुप द्वारा

---

49. 17 जून, 1952 को कांग्रेस दल ने यह अनुरोध किया था कि सत्रों के दौरान दल की महापरिषद् की बैठकें आयोजित करने के लिए प्रत्येक शुक्रवार को उनके लिए एक विशेष कमरा स्थायी रूप से आवंटित कर दिया जाये। इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया गया।

की गई सिफारिशों को अध्यक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है[50] और समिति जहां सदस्यों का नामांकन किया जाना है, में सभी दलों और ग्रुपों का प्रतिनिधित्व, कुल मिलाकर कमोबेश सभा में उनकी अलग-अलग सदस्य संख्या के अनुपात में होता है।[51] विभागों संबंधी स्थायी समिति से अन्यथा किसी समिति में स्थान आकस्मिक रिक्त होने की स्थिति में, केवल उसी ग्रुप से परामर्श किया जाता है जिससे समिति से जाने वाला सदस्य सम्बद्ध हो।

संसदीय समितियों के अतिरिक्त अन्य समितियां, परिषदें और बोर्ड आदि हैं जिनका गठन सरकार द्वारा किया जाता है, जिन्हें सामान्यतः सरकारी समितियां कहा जाता है। इनमें दोनों सदनों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व भी होता है। ये समितियां न तो अध्यक्ष के निदेशों के अंतर्गत काम करती हैं और न ही अपना प्रतिवेदन सभा या अध्यक्ष को प्रस्तुत करती हैं। लेकिन इन सरकारी समितियों में सभा के सदस्यों का नाम-निर्देशन, अध्यक्ष ऐसी समितियों, परिषदों और बोर्डों आदि के गठन तथा कृत्यों के संबंध में सरकारी अधिसूचनाओं, संकल्पों आदि में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार संबंधित मंत्री के अनुरोध पर, लोक सभा में दलों और ग्रुपों के नेताओं के परामर्श से करता है।

लोक सभा के जो सदस्य विदेश जाने वाले किसी शिष्टमंडल के सदस्य बनते हैं उनका चयन अध्यक्ष, संसदीय कार्य मंत्री और लोक सभा में विपक्षी दलों और ग्रुपों के नेताओं के परामर्श से करता है। शिष्टमंडल के लिए सदस्यों को चुनते समय अध्यक्ष यह देखता है कि सदस्य किस दल का है तथा शिष्टमंडल जिस देश को जा रहा है और जिस उद्देश्य से जा रहा है उसकी दृष्टि से वह सदस्य उपयुक्त है अथवा नहीं। चूंकि शिष्टमंडल में सभी सदस्यों को एक ही समय विदेशों में नहीं भेजा जा सकता। अतः अध्यक्ष उनको चक्रानुक्रम से शिष्टमंडल के लिए चुनता है।[52]

---

50. 1988 (आठवीं लोक सभा) में कार्य मंत्रणा समिति और विशेषाधिकार समिति के लिए सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करते समय अध्यक्ष ने लोक सभा में जनता पार्टी के नामनिर्देशितियों को इन समितियों के लिए परस्पर बदल दिया।

51. 8 अगस्त, 1960 को स्वतंत्र ग्रुप के उप-नेता ने अध्यक्ष को संबोधित एक पत्र में *अन्य बातों के साथ-साथ* यह भी अनुरोध किया था कि उनके ग्रुप को कतिपय अन्य संसदीय समितियों में भी प्रतिनिधित्व दिया जाये। इस अनुरोध को अस्वीकार करते समय सदस्य को सूचित किया गया कि संसदीय समितियों में सभी दलों और ग्रुपों का प्रतिनिधित्व (अध्यक्ष द्वारा मनोनीत) कुल मिलाकर कमोबेश सदन में उनकी अलग-अलग सदस्य संख्या के अनुपात में है।

52. संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशनों के लिए जाने वाले शिष्टमंडलों में संसद सदस्यों को भी शामिल किया जाता है जहां वे प्रतिनिधियों, वैकल्पिक प्रतिनिधियों और साथ ही संसदीय सलाहकारों के रूप में कार्य करते हैं। इन सदस्यों का चयन भारत सरकार के विवेकाधिकार से किया जाता है और इस हेतु अनेक बातों पर विचार किया जाता है, जिसमें चुने हुए प्रतिनिधि की सरकार की नीतियों से सहमति और महासभा में इन नीतियों को समुचित रूप से उठाने और उनका पूरी तरह समर्थन करने की उनकी क्षमता आदि शामिल है। ता. प्र. संख्या 1263, *लो.स.वा.वि.*, 17.4.1968, अता. प्र.सं. 1405, *लो.स.वा.वि.*, 26.11.1969 और अता. प्र. संख्या 3541, *लो.स.वा.वि.*, 10.12.1969 ।

(vi) वाद-विवाद में बोलने के लिए बुलाये जाने हेतु सदस्यों के चुनावों के लिए नामों की एक तालिका अध्यक्ष को देना।

सभा के वाद-विवाद में भाग लेने के लिए वक्ताओं के चुनाव में दलों तथा ग्रुपों के नेताओं को आमतौर पर प्राथमिकता दी जाती है और उन्हें सामान्यत: अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक समय दिया जाता है।

(vii) जहां कहीं आवश्यक हो, सरकार के विभिन्न विधायी और वित्तीय कारोबार अथवा सभा के समक्ष आने वाली किसी अन्य मामले में समय के नियतन हेतु परामर्श करना।

अध्यक्ष लोक सभा में राजनैतिक दलों के सदस्यों का कार्य-मंत्रणा समिति हेतु नाम-निर्देशन करता है, जो सभा द्वारा किए जाने वाले सरकारी, विधायी और वित्तीय कारोबार की विभिन्न मदों हेतु समय का नियतन करती है। समिति की सदस्य संख्या 15 तक सीमित है। चूंकि लोक सभा में राजनैतिक दलों की संख्या विगत वर्षों में काफी बढ़ गई है, समिति की प्रतिनिधित्व विशेषता को सुनिश्चित करने के लिए एक प्रथा विकसित की गई है, जिसके तहत समिति में प्रतिनिधित्व प्राप्त न करने वाले दलों के नेताओं को समिति की बैठकों के लिये विशेष आमंत्रिती के रूप में आमंत्रित किया जाता है। चौदहवीं और पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान, पांच और अधिक सदस्य संख्या वाले दलों के नेताओं, जिन्हें कार्य मंत्रणा समिति में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ था, को समिति की बैठकों में विशेष आमंत्रिती के रूप में आमंत्रित किया गया था।

सभा में प्रक्रिया संबंधी मामले के संबंध में राजनैतिक दलों/ग्रुपों के ग्रुप प्रतिनिधियों से भी परामर्श किया जा सकता है।[53]

---

53. उदाहरण के लिए, 9 सितम्बर, 1958 को अध्यक्ष ने विपक्ष के विभिन्न ग्रुपों के प्रतिनिधियों के साथ बैठक की। विचार-विमर्श के बाद सभा में स्थगन प्रस्तावों को पेश किए जाने के संबंध में प्रक्रिया निर्धारित की गई थी।

21 अप्रैल, 1962, को अध्यक्ष ने स्थगन प्रस्तावों को निपटाने के संबंध में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में दलों और ग्रुपों के नेताओं या उनके प्रतिनिधियों के साथ अनौपचारिक बैठक की–*देखिए* लो.स.वा.वि., 23.4.1962, पृ. 246 ।

चीनी आक्रमण से उत्पन्न संकट के कारण प्रक्रिया को सरल बनाने की जो आवश्यकता आ पड़ी थी, उसके संबंध में अध्यक्ष ने 7 नवम्बर, 1962 को दलों और ग्रुपों के नेताओं अथवा उनके प्रतिनिधियों के साथ औपचारिक बैठक की, *देखिए* लो.स.वा.वि., 8.11.1962, पृ. 61-62।

इसी प्रकार 27.11.1962 और 11.12.1962 को अध्यक्ष ने प्रक्रिया संबंधी मामले पर दलों और ग्रुपों के नेताओं के साथ बैठक की।

अध्यक्ष की दलों और ग्रुपों के नेताओं के साथ ध्यानाकर्षण सूचनाओं, अल्पसूचना प्रश्नों और आधे घण्टे की चर्चाओं आदि के संबंध में विचार-विमर्श करने के लिए 6 सितम्बर, 1963 को तथा सभा में भाषणों की भाषा के प्रश्न पर विचार करने के लिए 26 नवम्बर, 1963 को बैठक हुई थी।

(viii) राष्ट्रपति के अभिभाषण और अन्य महत्वपूर्ण समारोहों के अवसरों पर केन्द्रीय कक्ष में अगली पंक्ति में स्थानों का नियतन।

सभी मान्यताप्राप्त विपक्षी दलों और ग्रुपों के नेताओं तथा लोक सभा में 8 और राज्य सभा में 5 सदस्यों वाले दलों के नेताओं को एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों की बैठक में राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर और इसी के समान संसदीय समारोहों के दौरान केन्द्रीय कक्ष में सामने की पंक्ति में सीटें आबंटित की जाती हैं। इन सीटों के आबंटन के लिए अपनाया गया सिद्धांत यह है कि लोक सभा में अधिकतम सदस्य संख्या वाले किसी दल/ग्रुप के नेता को एक सीट आबंटित की जाती है और उससे अगली सीट राज्य सभा में अधिकतम सदस्य संख्या वाले दल/ग्रुप के नेता को आबंटित की जाती है और इसी क्रम में अन्य सीटों का आबंटन होता है। तथापि, परिस्थितियों के अनुसार, समय-समय पर मामले की पुनरीक्षा की जाती है और उपर्युक्त सदस्यों से कम सदस्य संख्या वाले छोटे ग्रुपों के नेताओं के लिए भी अगली पंक्ति में सीटें आरक्षित की जाती हैं।

इसके अतिरिक्त, दलों और ग्रुपों को पुस्तकालय की सुविधा जैसी कुछ और सुविधाएं दी जाती हैं। कभी-कभी सदन के नेता की सिफारिश पर ग्रुपों के नेताओं को सामान्य पूल से आवास आबंटित किए जाते हैं।

चौथी लोक सभा (1967-70) के दौरान सभा के कार्य से संबंधित विभिन्न मामलों पर चर्चा करने के लिए दलों और ग्रुपों के नेताओं के साथ अध्यक्ष की पन्द्रह बैठकें हुई थीं।

पाँचवीं और सातवीं लोक सभा (1971-1984) की अवधि के दौरान, सभा के कार्यों से संबंधित महत्त्वपूर्ण मामलों पर चर्चा करने के लिए, दलों और ग्रुपों के नेताओं के साथ अध्यक्ष की इकहत्तर बैठकें हुई थीं।

आठवीं लोक सभा के दौरान सभा के कार्यों से संबंधित विभिन्न विषयों पर चर्चा करने के लिए दलों और ग्रुपों के नेताओं के साथ अध्यक्ष की सोलह बैठकें हुई थीं।

नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं लोक सभा के दौरान अध्यक्ष ने विभिन्न दलों/ग्रुपों के नेताओं के साथ सभा के कार्यों से संबंधित विषयों पर चर्चा के लिए क्रमशः अठारह, सत्तर, बाइस, दस और साठ बैठकें आयोजित की थीं।

चौहदवीं लोक सभा के दौरान विभिन्न दलों/ग्रुपों के नेताओं के साथ अध्यक्ष की 151 बैठकें हुई थी। जिनमें से 18 बैठकें सत्र से ठीक पूर्व आयोजित की गई थी।

पंद्रहवीं लोक सभा (सितम्बर, 2013 के अंत तक) के दौरान राजनैतिक दलों/ग्रुपों के साथ अध्यक्ष की 22 बैठकें हुई थीं, जिनमें से 14 बैठकें सभा के कार्यों से संबंधित विभिन्न विषयों पर चर्चा करने के लिए सत्र से ठीक पहले आयोजित की गई थी।

अध्याय 15

सदस्यों द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान और सभा में स्थान ग्रहण

शपथ अथवा प्रतिज्ञान

प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963[1] द्वारा यथासंशोधित संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिये गये प्ररूप के अनुसार शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना पड़ता है। प्रचलित रीति के अनुसार, नव-निर्वाचित लोक सभा की पहली बैठक की अध्यक्षता *सामयिक* अध्यक्ष[2] करता है।

कार्यवाही को सरल और औपचारिक तथा सामान्य संसदीय प्रथा के अनुकूल बनाने के लिए जिस व्यक्ति को राष्ट्रपति *सामयिक* अध्यक्ष नियुक्त करता है, उसी को अनुच्छेद 99 के अधीन वह एक ऐसे व्यक्ति के रूप में भी नियुक्त करता है, जिसके समक्ष सदस्य शपथ ले सकते हैं या प्रतिज्ञान कर सकते हैं।[3]

सामयिक अध्यक्ष, जिसे स्वयं राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में शपथ दिलाई जाती है, सभा में आकर सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर करता है[4] और हस्ताक्षर होने के बाद यह समझ लिया जाता है कि उसने सभा में अपना स्थान ग्रहण कर लिया है। उसके बाद वह अन्य

---

1. अनुच्छेद 99 ।
2. अनुच्छेद 94, के दूसरे परन्तुक के अनुसार साधारण निर्वाचन के बाद गठित नई लोक सभा की पहली बैठक के तुरन्त पूर्व विघटित लोक सभा का अध्यक्ष अपना पद त्याग कर देता है; क्योंकि उस समय न तो अध्यक्ष होता है और न कोई उपाध्यक्ष, इसलिए राष्ट्रपति अनुच्छेद 95 (1), के अधीन नई लोक सभा के अध्यक्ष का चुनाव हो जाने तक उसकी पहली बैठक की अध्यक्षता करने के लिए एक सदस्य की नियुक्ति करता है। इस प्रकार नियुक्त किये गये सदस्य को *सामयिक* अध्यक्ष कहा जाता है। कृपया लोक सभा के पीठासीन अधिकारी संबंधी अध्याय 7 भी देखें; पूर्वोक्त।
3. *सामयिक* अध्यक्ष के साथ-साथ सभा के दो या तीन और वरिष्ठ सदस्यों की नियुक्ति उन व्यक्तियों के रूप में की जाती है, जिनमें से किसी के भी सामने नव-निर्वाचित सदस्यों को शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना पड़ता है। *देखिए* राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे उप-राष्ट्रपति द्वारा 24 मार्च, 1977 को जारी किया गया आदेश—*राजपत्र असाधारण* (1-1), 24.3.1977 । नई लोक सभा की पहली बैठक आरम्भ होने पर *सामयिक* अध्यक्ष इन अन्य सदस्यों की नियुक्ति सभापति तालिका के लिए कर देता है, जिससे कि वे किसी बैठक के दौरान *सामयिक* अध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभा की अध्यक्षता कर सकें—लो.स.वा.वि., 25.3.1977, पृ. 1-2 और *लोक सभा समाचार भाग*-2, 16.1.1980, पैरा 30, 7.1.1985, पैरा 41 ।
4. सदस्यों की नामावली वह रजिस्टर है जो सत्र के दौरान सभा पटल पर रखा जाता है और अन्तर्सत्रावधि में यह सभा के एक अधिकारी की अभिरक्षा में रहता है।

सदस्यों को सभा में शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए बुलाता है। जब कोई सदस्य शपथ ले चुकता है या प्रतिज्ञान कर चुकता है तो *सामयिक* अध्यक्ष उसे सभा पटल पर रखी हुई सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर करने के बाद सभा में अपना स्थान ग्रहण करने की अनुमति देता है।

नवगठित सभा की पहली बैठक के दिन सदस्यों को शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए बुलाए जाने से पहले, मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा अध्यक्ष को प्रस्तुत की गई एक पुस्तिका, जिसमें लोक सभा के लिए निर्वाचित सदस्यों की सूची होती है, महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखी जाती है।[5]

अध्यक्ष का निर्वाचन हो जाने पर, *सामयिक* अध्यक्ष का पद स्वत: समाप्त हो जाता है। जिन सदस्यों ने अध्यक्ष के चुनाव से पहले शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो, वे अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष या सभा की अध्यक्षता करने वाले सभापति तालिका के किसी सदस्य[6] जैसी भी स्थिति हो, के समक्ष शपथ ले सकते हैं या प्रतिज्ञान कर सकते हैं।

यदि शपथ दिलाने वाला व्यक्ति सभा के पीठासीन अधिकारी के अलावा कोई अन्य व्यक्ति हो और शपथ सभा से बाहर ली जाये, तो शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने को सभा की कार्यवाही नहीं माना जाता है; परन्तु यदि शपथ सभा की किसी बैठक में दिलायी जाती है तो यह कार्यवाही का भाग होती है और इस बात में अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है कि शपथ किस तरह दिलायी जाये।

> इस मुद्दे को कि किसी राज्य विधानमंडल में शपथ किस भाषा में दिलायी जाये, लोक सभा में उठाया जा सकता है क्योंकि इसका संविधान के कार्यचालन पर प्रभाव पड़ता है। यह विषय न्याय्य भी है क्योंकि शपथ अनुच्छेद 99 के अधीन दिलायी जानी होती है और कोई भी सदस्य संवैधानिक उपबंध का उल्लंघन होने पर किसी भी न्यायालय में जा सकता है।[7]

---

5. लो.स.वा.वि., 16.3.1967, पृ. 1; 19.3.1971, पृ. 2; 25.3.1977, पृ. 1-2; 21.1.1980, पृ. 1; 15.1.1985, पृ. 2; 18.12.1989, पृ. 1; 9.7.1991, पृ. 1; और 22.5.1996, कॉ. 2; 23.3.1998, कॉ. 2; 20.10.1999 कॉ. 2; 2.6.2004 कॉ. 2; 1.6.2009
6. राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए एक सामान्य आदेश के द्वारा इस प्रयोजनार्थ इन व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है। सामान्य आदेश 24 फरवरी, 1954 को जारी किया गया था। *देखिए राजपत्र, असाधारण* (1-1), 24.2.1954 ।

   उपचुनावों में निर्वाचित सदस्य अध्यक्ष, अथवा उपाध्यक्ष या सभापति तालिका के किसी सदस्य के समक्ष शपथ लेते हैं या प्रतिज्ञान करते हैं।
7. लो.स.वा.वि., 20.3.1969, पृ. 129 ।

यदि कोई सदस्य शपथ लिये बिना या प्रतिज्ञान किये बिना सभा में बैठता है या मत देता है, तो वह प्रत्येक दिन के लिए, जब वह इस प्रकार बैठता है या मत देता है, 500 रुपये की शास्ति का भागी होगा जो उससे संघ को देय ऋण के रूप में वसूल की जाएगी।[8]

चुनाव परिणाम की घोषणा होने के बाद, निर्वाचन अधिकारी यथाशीघ्र चुनाव परिणाम की सूचना संघ सरकार, निर्वाचन आयोग और लोक सभा के महासचिव को देता है।[9] परिणाम की घोषणा होने के बाद, निर्वाचन अधिकारी निर्वाचित उम्मीदवार को निर्वाचन प्रमाणपत्र[10] देता है और उसकी प्राप्ति की रसीद जिस पर सदस्य के हस्ताक्षर होते हैं, उससे लेता है और उस रसीद को रजिस्ट्री द्वारा महासचिव को भेज देता है।[11]

राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी सदस्य के मामले में, विधि मंत्रालय नामनिर्देशन का पत्र उक्त सदस्य को देता है, ताकि वह शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के समय सभा पटल पर इसे प्रस्तुत कर सके।

शपथ लेने के लिए नियत तारीख से काफी दिन पहले सदस्यों से अनुरोध किया जाता है कि जब वे शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और सभा में अपना स्थान ग्रहण करने के लिए आयें तो वे निर्वाचन अधिकारी द्वारा दिया गया निर्वाचन प्रमाणपत्र अपने साथ अवश्य लाएं और

---

8. अनुच्छेद 104 ।
9. *देखिए* लो.प्र. अधिनियम 1951, धारा 67 ।
10. निर्वाचन प्रमाणपत्र के प्ररूप के लिए *देखिए* निर्वाचन संचालन नियम, 1961, प्ररूप 22 ।
11. *पूर्वोक्त,* नियम 66 ।

    यह उपबंध 13.8.1958 को लोक सभा सचिवालय के कहने पर किया गया था जिससे कि कोई अनधिकृत व्यक्ति संसद सदस्य के रूप में न आ सके, *देखिए,* 13 अगस्त, 1958 की अधिसूचना संख्या सा.का.नि. 700क ।

    16 जुलाई, 1957 को एक व्यक्ति ने निर्वाचित सदस्य होने का दावा करते हुए शपथ ली। उसने सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर किये और सभा में अपना स्थान ग्रहण किया । ज्यों ही यह पता चला कि वह व्यक्ति विधिवत् रूप से निर्वाचित नहीं हुआ है तो उसके हस्ताक्षर सदस्यों की नामावली से निकाल दिये गये। तथापि, उस व्यक्ति के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई क्योंकि डॉक्टरों के बोर्ड का कहना था कि इस व्यक्ति का मानसिक संतुलन ठीक नहीं है; वह मनोविदलन प्रतिक्रिया (सिजोफ्रेनिक रिएक्शन) बीमारी से पीड़ित है जोकि एक प्रकार का मानसिक रोग है। भविष्य में इस प्रकार की संभावना को रोकने के लिए, नियम समिति ने (*देखिए* नियम समिति का तीसरा प्रतिवेदन जो 30 अप्रैल, 1958 को सभा पटल रखा गया था) यह विचार व्यक्त किया कि सदस्यों को रिटर्निंग अधिकारी से औपचारिक निर्वाचन प्रमाणपत्र प्राप्त करके पेश करना चाहिए, जिससे कि किसी अनधिकृत व्यक्ति के आने के खतरे से बचा जा सके। तद्नुसार विधि मंत्रालय ने लोक प्रतिनिधित्व (निर्वाचन का संचालन और निर्वाचन याचिकाएं) नियम, 1956 में यह उपबंध कर दिया।

सभा के किसी अधिकारी से आकर मिलें।[12] जब सदस्य यह प्रमाणपत्र सभा के अधिकारी को दिखाता है तो वह जब भी आवश्यक हो, सदस्य के हस्ताक्षर का मिलान उस रसीद पर किए गए उसके हस्ताक्षर से करता है जो कि निर्वाचन अधिकारी से प्राप्त होती है। निर्वाचित सदस्य की पहचान कर लेने पर संबंधित अधिकारी उस प्रमाणपत्र के पीछे हस्ताक्षर करके यह लिख देता है कि उसकी पहचान कर ली गई है और वह प्रमाणपत्र सदस्य को लौटा देता है। सदस्य से यह कहा जाता है कि वह उस प्रमाणपत्र को अपने साथ उस समय लाए जब वह शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए आए। शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले और सभा में अपना स्थान ग्रहण करने से पहले सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे यथास्थिति, अपने निर्वाचन प्रमाणपत्र अथवा सदस्य के रूप में[13] उन्हें नामनिर्दिष्ट करने वाली अधिसूचनाओं की प्रमाणित प्रतियां, महासचिव के पास जमा करा दें। रसीद सभा पटल पर भी सदस्य की पुष्टि, यदि आवश्यक हो के लिए रखी जाती है।

शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले सदस्यों के अधिकार

कोई व्यक्ति उस तारीख से सभा का सदस्य बन जाता है जिस तारीख को निर्वाचन अधिकारी[14] द्वारा उसके निर्वाचित होने की घोषणा की गई हो, परन्तु उसे तब तक सभा में बैठने और मत देने का अधिकार नहीं होता जब तक कि उसने विहित रूप से शपथ न ले ली हो या प्रतिज्ञान न कर लिया हो और उसके बाद सभा में अपना स्थान ग्रहण न कर लिया हो परन्तु वह सभा के गठन के बारे में निर्वाचन आयोग की अधिसूचना के प्रकाशित होने की तारीख[15] से सदस्य के रूप में अपना वेतन प्राप्त करने का हकदार है[16] उसे सदस्य के अन्य

---

12. इस संबंध में संसदीय समाचार में इस आशय का एक पैरा मुद्रित किया जाता है। उसमें सदस्यों से एक निश्चित तारीख तक यह बताने के लिए कहा जाता है कि वे शपथ लेना चाहेंगे या प्रतिज्ञान करना चाहेंगे तथा वे किस भाषा में शपथ लेंगे या प्रतिज्ञान करेंगें । उदाहरण के लिए, *देखिए* समाचार भाग-2, 24.3.1977, पैरा 4 ।

13. लोक सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 का नियम 4(2) संविधान (52वां संशोधन) अधिनियम, 1985 के लागू होने से पहले सदस्यों के निर्वाचन प्रमाणपत्रों का सत्यापन करने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया यह थी कि शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले, उन सदस्यों को छोड़कर जिन्हें सभा पटल अधिकारी भलीभांति जानते हों, शेष सभी सदस्यों को अपने निर्वाचन प्रमाणपत्रों को दिखाना पड़ता था। यदि कोई सदस्य उस समय अपना प्रमाणपत्र न दिखा सके और यदि वह इससे पहले सभा का सदस्य रह चुका हो, तो उसे निर्वाचन अधिकारी से महासचिव द्वारा प्राप्त रसीद के आधार पर शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने दिया जाता था और यदि वह सदस्य पहली बार चुना गया हो तो किसी अन्य वर्तमान सदस्य द्वारा उसका परिचय कराये जाने पर और उपर्युक्त रसीद पर उसके हस्ताक्षर का सत्यापन किए जाने पर उसे शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की अनुमति दी जाती थी।

14. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 67 क ।

15. संसद सदस्य वेतन, भत्ता तथा पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 2 (ग) और अधिनियम में बाद में किए गए संशोधनों के साथ पठित धारा 3 ।

16. लो. प्र. अधिनियम, 1951, धारा 73 ।

अधिकार भी प्राप्त हैं। उसे अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के पद के लिए नामनिर्दिष्ट किया जा सकता है[17] या सभा की किसी प्रवर या किसी अन्य समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट और निर्वाचित किया जा सकता है परन्तु वह ऐसी समिति के सदस्य के रूप में तब तक कार्य नहीं कर सकता जब तक कि उसने शपथ न ले ली हो या प्रतिज्ञान न कर लिया हो और सभा में अपना स्थान ग्रहण न किया हो।[18]

वह संसद की दोनों सभाओं के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय भी उपस्थित रह सकता है।[19]

कोई सदस्य, जिसने सभा में अपना स्थान ग्रहण न किया हो, प्रश्न या संकल्प की सूचना दे सकता है और उन्हें गृहीत किया जा सकता है लेकिन न उसे और न उसकी ओर से किसी अन्य सदस्य को यह अधिकार प्राप्त है कि वह प्रश्न पूछ सके या संकल्प पेश कर सके। अध्यक्ष, व्हाइट ने 1924 में यह टिप्पणी की थी।[20]

> कोई सदस्य, जिसने अपने पद की शपथ न ली हो, इस सभा में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन नहीं कर सकता.... सुविधा के लिए शपथ लेने से पहले, मैंने प्रश्नों तथा संकल्पों की सूचनाएं स्वीकार करने का फैसला किया है जिससे कि सभा का कार्य प्रारम्भ होने के पहले प्रश्न आदि को स्वीकार करने का काम पूरा हो सके। परन्तु जब प्रश्न पूछने या इस सभा में कोई और कार्य करने का प्रश्न उठता है तो वह तब तक नहीं किया जा सकता जब तक शपथ न ली गई हो।

कोई सदस्य, जिसने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो या सभा में अपना स्थान ग्रहण न किया हो, सभा की बैठकों से अनुपस्थिति की अनुमति मांगने का हकदार है जिससे

---

17. 11 मई, 1957 को पेश किए जाने वाले प्रस्ताव की सूचना, जिसमें दूसरी लोक सभा के अध्यक्ष पद के लिए श्री एम. अनन्तशयनम अय्यंगर के नाम का प्रस्ताव किया गया था, 10 मई, 1957 को 9.30 बजे प्राप्त हुई, जबकि श्री अय्यंगर ने उस दिन 11 बजे के बाद शपथ ली।

18. *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 20.1.1937, पृ. 87; 30.1.1946, पृ. 239 और 7.11.1946, पृ. 857।

19. राष्ट्रपति के अभिभाषण की तारीख से कुछ दिन पहले उन सदस्यों की जानकारी के लिए, जिन्होंने शपथ न ली हो, निम्नलिखित पैरा संसदीय समाचार में दिया जाता है:

    जिन सदस्यों ने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो, उन्हें निर्वाचन अधिकारी द्वारा दिये गये निर्वाचन प्रमाणपत्र दिखाने पर या किसी सदस्य द्वारा जो शपथ ले चुका है या प्रतिज्ञान कर चुका है, परिचय कराए जाने या आमंत्रण की प्रति दिखाने पर राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय केन्द्रीय कक्ष में जाने दिया जायेगा।

    पैराओं में 1977 में आवश्यक संशोधन किए गए थे क्योंकि संसदीय समाचार छठी लोक सभा की पहली बैठक से पहले जारी किया गया था — लोक सभा समाचार भाग-2, 24.3.1977, पैरा 24 ।

20. *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 1.2.1924 पृ. 32 ।

कि उसका स्थान रिक्त न हो जाए।[21] कोई सदस्य शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और सभा में अपना स्थान ग्रहण करने से पहले त्यागपपत्र भी दे सकता है।[22]

शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने संबंधी प्रक्रिया

नव-निर्वाचित सभा की पहली बैठक में समान्यतः सदस्य शपथ लेते हैं या प्रतिज्ञान करते हैं। उस दिन सभा में समवेत सदस्य केवल शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के बाद ही सभा में अपना स्थान ग्रहण करते हैं।

यह परिपाटी बन गई है कि कार्य आरम्भ किये जाने से पूर्व *सामयिक* अध्यक्ष सदस्यों से इस अवसर की महत्ता को देखते हुए दो मिनट के लिए मौन खड़े रहने के लिये कहता है।[23] तत्पश्चात् '*सामयिक* अध्यक्ष' सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर करता है। वह उन व्यक्तियों के नामों की भी घोषणा करता है जिन्हें उसने अपनी अनुपस्थिति में सभा की अध्यक्षता करने के लिए सभापति तालिका के सदस्य के रूप में नियुक्त किया है।[24]

---

21. *देखिए* अनुच्छेद 101 (4)।

22. श्री यू. मुथुरामलिंग थेवर और श्री राम करन जोशी ने, जो 1952 में हुए पहले साधारण निर्वाचन में लोक सभा के लिए निर्वाचित हुए थे, शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और सभा में अपना स्थान ग्रहण करने से पहले ही क्रमशः 5 फरवरी और 23 फरवरी, 1952 को लोक सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। श्री आर. वेंकटरामन, श्री एम.वी. कृष्णप्पा (तीसरी लोक सभा के लिए निर्वाचित), श्रीमती विजया राजे सिंधिया, श्री जी. लच्छना तथा श्री जसवंत मेहता (चौथी लोक सभा के लिए निर्वाचित) और श्री भागीरथी गोमांगो तथा श्री मनमोहन टुडु (पांचवीं लोक सभा के लिए निर्वाचित), प्रेमसिंह लालपुरा (बारहवीं लोक सभा के लिए निर्वाचित) और श्री मुलायम सिंह यादव (चौदहवीं लोकसभा के लिए निर्वाचित) ने शपथ लेने और सभा में अपना स्थान ग्रहण करने से पहले सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

23. पहली बैठक से कुछ दिन पहले, प्रधानमंत्री को मौन धारण करने संबंधी प्रथा के बारे में सूचित किया जाता है। *सामयिक* अध्यक्ष सदस्यों से मौन खड़े रहने के लिए कहते समय यह कहता है कि:–

    "आज हम एक पावन अवसर पर एकत्र हुए हैं। संविधान के अधीन एक नयी सभा का गठन हुआ है जिस पर देश और हमारी जनता के कल्याण की महान और भारी जिम्मेदारी है। यह उपयुक्त ही है कि हम सब अपना कार्य आरम्भ करने से पहले दो मिनट के लिए मौन खड़े रहें।" लो.स.वा.वि., 10.5.1957, पृ० 1; कृपया लो.स.वा.वि. 19.3.1971, पृ. 1; 25.3.1977, पृ. 1-2; 21.1.1980, पृ. 1; 15.1.1985, पृ. 1; 18.12.1989, पृ. 1; 9.7.1991, पृ. 1 और 22.5.1996, कॉ. 19; 23.3.1998 कॉ. 1; 20.10.1999 कॉ. 1; 2.6.2004, कॉ. 1, 1.6. 2009 कॉ 1 भी देखें।

    10 मई, 1957 को *सामयिक* अध्यक्ष ने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शताब्दी का भी उल्लेख किया, जो कि संयोगवश दूसरी लोक सभा की पहली बैठक के दिन पड़ रही थी।

24. 1962 में *सामयिक* अध्यक्ष (सेठ गोविन्द दास) ने सभापति तालिका के लिए सदस्यों का नाम निर्देशन नहीं किया।

सदस्य एक विशेष क्रम में शपथ लेते या प्रतिज्ञान करते हैं। महासचिव द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए सदस्यों के नाम पुकारे जाते हैं। पहले प्रधान मंत्री का नाम पुकारा जाता है और उसके बाद अन्य मंत्रियों के नाम। तत्पश्चात् सभापति तालिका के सदस्यों के नाम पुकारे जाते हैं। इसके बाद राज्यवार[25] अन्य सदस्यों को बुलाया जाता है। उन सदस्यों के नाम अन्त में पुनः पुकारे जाते हैं जो शपथ न ले सके हों या प्रतिज्ञान न कर सके हों।

सदस्य अंग्रेजी या संविधान की आठवीं अनुसूची में दी गई 22 भाषाओं में से किसी भी भाषा में शपथ लेते या प्रतिज्ञान करते हैं।[26] अंग्रेजी संस्करण के मामले में संविधान की तीसरी अनुसूची में दिए गए शपथ या प्रतिज्ञान के प्ररूप का अनुसरण किया जाता है। इसी प्रकार विभिन्न भाषाओं में अनुदित संविधान की तीसरी अनुसूची में प्रयुक्त प्ररूपों का, कुछ मामलों में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ, अनुसरण किया जाता है।[27]

---

25. वर्ष 1977 में छठी लोक सभा के सदस्यों को शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के लिए निम्नलिखित क्रम से बुलाया गया:
    (i) प्रधान मंत्री,
    (ii) विपक्ष का नेता,
    (iii) सभापति तालिका के सदस्य, और
    (iv) राज्यवार अन्य सदस्य।
    लो.स.वा.वि., 25.3.1977, पृ. 1–2 ।
26. *देखिए* संविधान (बानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003 ।
27. अध्यक्ष मावलंकर ने 1952 में हिन्दी के शपथ/प्रतिज्ञान के प्ररूप में थोड़ा संशोधन किया था।

    1952 में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने उर्दू के शपथ/प्रतिज्ञान के प्ररूप में थोड़ा संशोधन किया था।

    असमिया, कन्नड़, संस्कृत और उड़िया के मामले में इन भाषाओं में अनुदित संविधान की तीसरी अनुसूची में दिए गए संस्करण का प्रयोग किया जाता है।

    गुजराती, बंगला, पंजाबी, मलयालम, तमिल और तेलुगु के प्ररूप का रूप उससे कुछ भिन्न है जो कि इन भाषाओं में संविधान के अनुवाद में दिया गया है।

    कश्मीरी (देवनागरी तथा फारसी लिपियों) में इस प्ररूप का अनुवाद लोक सभा सचिवालय द्वारा किया गया है।

    जब सिंधी संविधान की आठवीं अनुसूची में दी गई भाषाओं में शामिल की गई तो सिंधी में प्ररूप का अनुवाद राज्य सभा के एक सदस्य द्वारा कराया गया।

    कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली के मामले में राजभाषा स्कंध ने संविधान की तीसरी अनुसूची में दिए गए इन तीन भाषाओं के शपथ/प्रतिज्ञान के प्ररूप की प्रतियां उपलब्ध कराईं।

    बोडो, मैथिली, संथाली और डोगरी के मामले में राजभाषा स्कंध ने इनके शपथ/प्रतिज्ञान के प्ररूप की प्रतियां उपलब्ध कराईं।

सदस्य निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार व्यक्तिगत रूप से शपथ लेते या प्रतिज्ञान करते हैं। महासचिव द्वारा नाम पुकारे जाने पर, सदस्य जहां पर वह बैठा होता है, वहां से उठकर महासचिव की मेज की दायीं ओर आ जाता है और महासचिव, यथास्थिति, शपथ या प्रतिज्ञान के प्ररूप की प्रति उस भाषा में, जिसमें वह शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना चाहे, उसे दे देता है। सदस्य अध्यक्षपीठ की ओर मुंह करके शपथ लेता या प्रतिज्ञान[28] करता है और उसके बाद *सामयिक* अध्यक्ष के पास जाता है और उससे हाथ मिलाता है, जो तब उसे सभा में अपना स्थान ग्रहण करने की अनुमति दे देता है। तत्पश्चात् सदस्य अध्यक्ष के आसन के पीछे से महासचिव की मेज के दूसरी ओर चला जाता है जहां वह सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर करता है और उसके बाद अपना स्थान ग्रहण करता है।

किसी ऐसे सदस्य के मामले में जो बीमार है और अपने स्थान से उठ नहीं सकता है, उस सदस्य द्वारा सभा में जहां वह बैठा हो, यदि वह ऐसा चाहे, तो वहीं से शपथ ली जा सकती है या प्रतिज्ञान किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में सभा पटल पर बैठा अधिकारी शपथ या प्रतिज्ञान का प्ररूप पत्र उस सदस्य के पास ले जाता है। जब सदस्य शपथ ले चुका होता है या प्रतिज्ञान कर चुका होता है तो सदस्यों की नामावली उसके पास ले जायी जाती है और वह वहीं पर उसमें हस्ताक्षर कर देता है।[29]

---

28. चूंकि 25.3.1977 को एक सदस्य नेत्रहीन होने के कारण शपथ का प्ररूप नहीं पढ़ सका, इसलिए एक अन्य सदस्य ने शपथ को पढ़ा जिसे नेत्रहीन सदस्य ने दोहराया।

29. हरिसरन प्रसाद श्रीवास्तव को बीमार होने के कारण अपने स्थान पर ही बैठे-बैठे शपथ लेने की अनुमति दी गई—एल.ए.डिबेट्स, 6.3.1940, पृ. 979 ।

उत्तर प्रदेश के मन्नो लाल द्विवेदी को, जो बीमार था, अपनी बारी आने से पहले बिहार के सदस्यों के साथ शपथ लेने की अनुमति दी गई थी। *लो.स.वा.वि.,* 16.4.1962, पृ. 5 ।

हिफजुल रहमान को, जो बीमार था, अपनी बारी आने से पहले शपथ लेने और सदस्यों की नामावली में अपने स्थान पर बैठे-बैठे हस्ताक्षर करने की अनुमति दी गयी थी। *एल.एस. डिबेट्स,* 16.4.1962, का. 3 ।

जमिलस रहमान जो बीमार था, अपने स्थान पर बैठे-बैठे शपथ लेने और सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर करने की अनुमति दी गयी थी। *लो.स.वा.वि.,* 13.3.1985, पृ. 1 ।

बीर सिंह महत्तो, जिसके पैर की हड्डी टूटी हुई थी, को सभा में व्हील चेयर पर लाया गया था और उसे व्हील चेयर पर बैठकर प्रतिज्ञान लेने की अनुमति दी गयी थी। उसने व्हील चेयर पर बैठे-बैठे ही सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर किए। *लो.स.वा.वि.*, 26.3.1998, कॉ. 5 ।

ए.बी.ए गनी खां चौधरी ने बीमार होने के कारण अपने स्थान पर बैठे बैठे शथप ली, लो. स. वा. वि. 3.6.2004 कॉ.6।

बलीराम कश्यप, जिनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, ने अपने स्थान से शपथ ली, लो. स. वा. वि. 3.6.2009, कॉ.2।

सभा में शपथ लेते या प्रतिज्ञान करते समय सदस्यों के लिए यह जरूरी है कि वे अपना वही नाम पढ़ें जो निर्वाचन अधिकारी से मिली उनके चुनाव की घोषणा में दिया गया हो।

शपथ या प्रतिज्ञान ठीक ढंग से किया गया है या नहीं, इसके संबंध में उस व्यक्ति का निर्णय अंतिम होता है जिसके समक्ष शपथ ली गयी हो या प्रतिज्ञान किया गया हो।[30]

जो सदस्य पहले दिन शपथ नहीं ले सकते या प्रतिज्ञान नहीं कर सकते वे उसी सत्र में अथवा बाद के सत्र में किसी भी अन्य दिन सभा की बैठक आरम्भ होते ही शपथ ले सकते हैं या प्रतिज्ञान कर सकते हैं। तथापि, अनुरोध पर एक सदस्य को अन्तर्सत्रावधि के दौरान शपथ लेने की अनुमति दी गयी है।[31]

> जब कोई व्यक्ति किसी निर्वाचन याचिका के संबंध में न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप सदस्य नहीं रह जाता है और उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति निर्वाचित घोषित किया जाता है और वह व्यक्ति सभा में अपना स्थान ग्रहण कर लेता है और यदि बाद में पहले व्यक्ति के निर्वाचन को अमान्य घोषित करने वाला आदेश उच्चतर न्यायालय द्वारा उलट दिया जाता है तो पहले व्यक्ति को, पुनः शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उस पहले सदस्य के स्थान पर निर्वाचित घोषित दूसरे सदस्य की सदस्यता स्वतः समाप्त हो जाती है।
>
> 1962 के साधारण निर्वाचन में तीसरी लोक सभा के लिए निर्वाचित एक सदस्य ने शपथ ली थी या प्रतिज्ञान किया था और सभा में अपना स्थान ग्रहण किया था। निर्वाचन अधिकरण ने उसके चुनाव को अमान्य घोषित कर दिया था और उसी आदेश में दूसरे उम्मीदवार को उसके स्थान पर विधिवत् निर्वाचित घोषित कर दिया गया था और इसके परिणामस्वरूप उसने 7 सितम्बर, 1964 को शपथ ली और सभा में अपना स्थान ग्रहण किया।
>
> 19 दिसम्बर, 1966 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्वाचन अधिकरण के आदेश को रद्द कर दिया। विधि मंत्रालय के परामर्श से यह निर्णय किया गया कि वह सदस्य उस तारीख से पुनः सदस्य बन गया जिस तारीख को उस अधिकरण के आदेश को उच्च न्यायालय ने उलट दिया था। इसलिए उससे पुनः शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की अपेक्षा की गई। परन्तु वह ऐसा नहीं कर सका, क्योंकि सभा का आगे कोई सत्र नहीं हुआ और 3 मार्च, 1967 को लोक सभा का विघटन हो गया।

---

30. राजस्थान *एल.ए. डिबेट्स,* 13.12.1956 और मध्य प्रदेश *एल.ए. डिबेट्स,* 8.7.1957 ।
31. बारहवीं लोक सभा की एक सदस्या (श्रीमती विजया राजे सिंधिया) पहले सत्र के दौरान शपथ नहीं ले सकीं/प्रतिज्ञान नहीं कर सकीं क्योंकि वह बीमार थीं। तत्पश्चात् उन्होंने अध्यक्ष से उनके कक्ष में शपथ लेने के लिए अनुमति मांगी क्योंकि वह अपनी बीमारी से पूर्णतः ठीक नहीं हुई थीं। उनके अनुरोध को मान लिया गया और अध्यक्ष के कक्ष में आवश्यक व्यवस्था की गयी। उसके बाद सदस्या ने अन्तर्सत्रावधि के दौरान प्रधान मंत्री, संसदीय कार्य मंत्री तथा अपने कुछ अतिथियों की उपस्थिति में अध्यक्ष के कक्ष में हिन्दी में शपथ ली तथा सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर किये।

कोई भी सदस्य शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने, सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर करने और सभा में अपना स्थान ग्रहण करने से पहले सभा में कोई टिप्पणी नहीं कर सकता।[32]

किसी उप-चुनाव में निर्वाचित सदस्य द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान

अन्तर्सत्रावधि के दौरान किसी उपचुनाव में निर्वाचित होकर आया कोई सदस्य सत्र के आरम्भ होने पर ही सभा में शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है। यद्यपि कोई सदस्य अनुच्छेद 99 के अधीन राष्ट्रपति के समक्ष अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष किसी भी समय सभा से बाहर शपथ ले सकता है या प्रतिज्ञान कर सकता है, तथापि लोक सभा में यह प्रथा रही है कि सदस्य सभा में ही शपथ लेते हैं।

ज्यों ही किसी उपचुनाव में किसी सदस्य के निर्वाचन के संबंध में निर्वाचन अधिकारी से घोषणा प्राप्त होती है, सदस्य को यथास्थिति, चालू सत्र की अवधि या अगले सत्र के आरम्भ होने की तारीख के बारे में सूचित किया जाता है और उससे यह बतलाने के लिए कहा जाता है कि वह किस तारीख को शपथ लेना या प्रतिज्ञान करना चाहेगा। उससे यह भी कहा जाता है कि वह अपने साथ अपना निर्वाचन प्रमाण-पत्र भी लाये और किसी वर्तमान सदस्य के माध्यम से बैठक के आरम्भ होने से कम से कम एक घंटा पहले पटल पर बैठने वाले अधिकारी से संपर्क स्थापित करे, जिससे कि बैठक आरम्भ होने से पहले आवश्यक औपचारिकताएं पूरी कर ली जाएं।

> तथापि, ऐसे भी उदाहरण हुए हैं, जहां अध्यक्ष ने ऐसे सदस्यों को भी शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की अनुमति दी है, जिन्होंने पहले से शपथ लेने की सूचना नहीं दी थी या जिनके निर्वाचन के संबंध में सभी पत्र नहीं मिले थे।[33]

ऐसे सदस्य द्वारा सभा की बैठक के आरम्भ होते ही शपथ ली जाती है या प्रतिज्ञान किया जाता है।[34] ऐसा करने पर वह सबसे पहले उपलब्ध अवसर पर सभा की कार्यवाही में भाग ले सकता है। यदि वह अन्तर्सत्रावधि के दौरान निर्वाचित हुआ है तो वह उस दिन प्रश्न पूछ सकता है जिस दिन के लिए उसने प्रश्नों की सूचना दी है। यदि उसने उस दिन के लिए किसी प्रश्न की सूचना न दी हो तो वह अन्य सदस्यों के प्रश्नों पर अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है।

यदि कोई सदस्य उस समय आये जबकि सभा की बैठक आरम्भ हो चुकी हो तो वह सभा की बैठक के दौरान अध्यक्ष के निर्देशानुसार किसी भी सुविधाजनक समय पर शपथ ले

---

32. *लो.स.वा.वि.,* 13.8.1963, पृ. 2; 23.4.1973, पृ. 1-3; 18.2.1975, पृ. 1 ।

    एक उदाहरण के तौर पर जब एक सदस्य द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले की गई कतिपय टिप्पणियों को डिबेट्स में रिकार्ड किया गया, *देखिए, एल.एस. डिबेट्स,* 16.3.1967, कॉ. 14 ।

33. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 19.4.1960 ।

34. नियम 5 और निदेश 2 ।

सकता है अथवा प्रतिज्ञान कर सकता है परन्तु तब तक उसे सभा में बैठने नहीं दिया जाता और उससे यह कहा जाता है कि वह सभा की लॉबी में प्रतीक्षा करे।

ऐसे अनेक अवसर आये हैं जबकि अध्यक्ष ने सदस्यों को उस दिन का कार्य आरम्भ हो चुकने के बाद शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की अनुमति दी है।[35] लेकिन कतिपय अन्य अवसरों पर अध्यक्ष ने ऐसी रियायत नहीं दी है।

सदस्यों के बैठने की व्यवस्था

सदस्य सभा में उस क्रम में बैठते हैं जैसा कि अध्यक्ष निर्धारित करे।[36] मान्यताप्राप्त सभी दलों और ग्रुपों के लिए दल अथवा ग्रुप के सदस्यों की संख्या तथा सभा में कुल उपलब्ध स्थानों के अनुपात में स्थानों के ब्लॉक नियत किये जाते हैं, स्थानों के उन ब्लॉकों में से अलग-अलग स्थान सदस्यों के लिए दल या ग्रुप द्वारा नियत किये जाते हैं और इसकी सूचना अध्यक्ष को दे दी जाती है। छोटे ग्रुपों अथवा निर्दलयी सदस्यों के लिए स्थानों के ब्लॉक नियत नहीं किए जाते हैं। ऐसे ग्रुपों से अलग-अलग सदस्यों और निर्दलयी सदस्यों के लिए स्थान अध्यक्ष द्वारा नियत किये जाते हैं। ऐसे ग्रुपों के जो सदस्य साथ बैठने की इच्छा प्रकट करें, उन्हें यथासंभव, एक दूसरे के निकटस्थ स्थान प्रदान किए जाते हैं।

सभा के उन वरिष्ठ सदस्यों के लिए जिन्होंने लम्बे समय तक और निष्ठा से सभा की सेवा करके विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है, प्रमुख स्थान नियत किये जाते हैं और उपयुक्त मामलों में सबसे पहली पंक्ति में स्थान दिए जाते हैं। ऐसा करते समय उन दलों और ग्रुपों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है जिनके वे सदस्य होते हैं।[37] उपाध्यक्ष के लिए अध्यक्ष के आसन

---

35. *देखिए लो.स.वा.वि.,* (II) 18.5.1954, पृ. 5355; 1.10.1955, पृ. 5503; 17.5.1957, पृ. 377; 24.8.1957, पृ. 4419; 21.12.1963, पृ. 3188-89; 30.3.1967, पृ. 310; 26.3.1971, पृ. 5; और 22.12.1973, पृ. 17 ।

36. *देखिए* नियम 4, केन्द्रीय विधान सभा में भी सदस्य उसी क्रम में बैठते थे, जैसा कि अध्यक्ष नियत करता था। (*देखिए* स्था.आ. 26)।

    अन्तरिम संसद और लोक सभा में भी केन्द्रीय विधान सभा का ही नियम मामूली परिवर्तन के साथ चलता रहा। नियम 4 लगभग वैसा ही है जैसा स्था. आ. 26 था।

37. दूसरी लोक सभा के आरम्भ में निम्नलिखित सदस्यों के लिए विपक्ष के ब्लॉक की पहली पंक्ति में स्थान नियत किये गये थे:-

    श्री फ्रेंक एन्थनी, आंग्ल भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले एक नाम-निर्देशित सदस्य और निर्दलीय संसदीय ग्रुप के सदस्य।

    श्री शिब्बन लाल सक्सेना (निर्दलीय), जो उत्तर प्रदेश के महाराजगंज निर्वाचन क्षेत्र से चुने गये थे।

    श्री जे.बी कृपलानी-प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के ग्रुप के नेता। नवम्बर, 1960 में इस पार्टी से त्यागपत्र देने के बाद, वह असम्बद्ध सदस्य बन गये लेकिन सार्वजनिक जीवन में उनकी हैसियत को ध्यान में रखते हुए, उनके लिए नियत किये गये स्थान में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

के बायीं ओर पहली पंक्ति में पहला स्थान नियत किया जाता है।[38] विपक्ष के नेता, यदि कोई

स्थापित सिद्धांत अर्थात् संसद में उनकी प्रतिष्ठा और सार्वजनिक जीवन में उनके महत्व को देखते हुए, निम्नलिखित सदस्यों को उनकी दल सम्बद्धता पर विचार किए बगैर उनकी विशेष स्थिति के आधार पर लोक सभा कक्ष सत्ता पक्ष के लिए आरक्षित अगली सीटों को छोड़कर अगली पंक्ति में स्थान दिया गया।

तीसरी लोक सभा: श्री फ्रेंक एंथनी को निर्दलीय संसदीय ग्रुप के नेता और वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं. 352 आबंटित।

चौथी लोक सभा : डॉ. गोविन्द दास, फादर ऑफ दि हाउस को सीट नं. 266 आबंटित। श्री फ्रैंक एंथनी (असंबद्ध सदस्य) को वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं., 351 आबंटित।

पांचवीं लोक सभा : डॉ. गोविन्द दास फादर ऑफ दि हाउस को पहले सीट नं. 266 और बाद में सीट नं. 181 आबंटित। श्री फ्रैंक एंथनी को वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं. 352 आबंटित।

सातवीं लोक सभा : श्री फ्रैंक एंथनी (असंबद्ध सदस्य) को, वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं. 351 आबंटित।

आठवीं लोक सभा : श्री फ्रैंक एंथनी (असंबद्ध सदस्य) को वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं. 352 आबंटित।

दसवीं लोक सभा : श्री चन्द्रशेखर (जे.पी.) को वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं. 181 तथा श्री के.पी. उन्नीकृष्णन (कांग्रेस एस.) को वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं. 266 आबंटित।

ग्याहरवीं लोक सभा : श्री चन्द्रशेखर (जे.पी.) को भूतपूर्व प्रधानमंत्री होने के नाते सीट नं. 366 आबंटित ।

बारहवीं लोक सभा : श्री चन्द्रशेखर (एस.जे.पी.-आर.) को सीट नं. 99; श्री इन्द्र कुमार गुजराल (जे.डी.) को सीट नं. 187; और श्री एच.डी. देवगौड़ा (जे.डी.) को भूतपूर्व प्रधानमंत्री होने के नाते; सीट नं. 188 और श्री इन्द्रजीत गुप्त (सी.पी.आई.) को फादर ऑफ दि हाउस होने के नाते सीट नं. 276 आबंटित।

तेरहवीं लोक सभा : श्री चन्द्रशेखर (एस.जे.पी.-आर.) को भूतपूर्व प्रधानमंत्री होने के नाते सीट नं. 277 और श्री इन्द्रजीत गुप्त को फादर ऑफ दि हाउस होने के नाते सीट नं. 454 आबंटित।

चौदहवीं लोक सभा : श्री एच.डी. देवगौड़ा (जे.डी.एस.) को संसदीय कार्य मंत्री द्वारा खाली किए जाने पर सीट नं. 99 और श्री चन्द्रशेखर (एस.जे.पी.-आर.) को भूतपूर्व प्रधानमंत्री होने के नाते सीट नं. 187 आबंटित।

पंद्रहवीं लोक सभा : श्री टी.आर. बालू (द्रमुक) को वरिष्ठ नेता होने के नाते सीट न. 99, श्री एच. डी. देवगौड़ा को भूतपूर्व प्रधानमंत्री होने के नाते सीट नं. 187 और श्री लालू प्रसाद (आर जे डी) को वरिष्ठ सदस्य होने के नाते सीट नं. 188 आवंटित। ये सभी सीटें संसदीय कार्य मंत्री की सिफारिश पर आंबटित की गई थीं।

38. यह परिपाटी कि उपाध्यक्ष के लिए अध्यक्ष के आसन के बायीं ओर पहला स्थान नियत किया जाये, 1927 में बनी थी, जब अध्यक्ष श्री पटेल ने यह निदेश दिया था कि तत्कालीन उपाध्यक्ष के लिए उनके बायीं ओर पहला स्थान नियत किया जाये। साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 16-3-1970, पृ. 168 ।

हों, के लिए पहली पंक्ति में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया जाता है।[39] कैबिनेट मंत्रियों, राज्य मंत्रियों और उप-मंत्रियों के लिए अध्यक्ष के आसन के दायीं ओर उनकी वरिष्ठता के उस क्रम में, जैसाकि संसदीय कार्य मंत्री ने सूचित किया हो, अध्यक्ष द्वारा पहली पंक्ति में स्थान नियत किए जाते हैं।

---

39. पहली, दूसरी, तीसरी और पांचवीं लोक सभा में विपक्ष का कोई नेता नहीं था, क्योंकि विपक्ष के किसी भी दल को निदेश 121 के अधीन संसदीय दल के रूप में मान्यता नहीं दी गई थी। पहली लोक सभा के दौरान कम्युनिस्ट पार्टी को संसदीय दल के रूप में मान्यता दी गई। कम्युनिस्ट ग्रुप के नेता के लिए उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया और इस ग्रुप के अन्य सदस्यों के लिए उसकी पिछली पंक्ति में एक दूसरे के साथ-साथ स्थान नियत किये गये थे। तथापि अगस्त 1954 में जब इसके सदस्यों की संख्या घट कर 29 हो जाने के कारण उसकी मान्यता छिन गई।

चौथी लोक सभा में नवम्बर, 1969 में सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी में विभाजन होने के साथ इससे अलग होने वाले कुछ सदस्यों ने कांग्रेस पार्टी (विपक्ष) नामक एक पृथक पार्टी बनायी और इसके नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई और उसके लिए उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया।

मार्च, 1977 में, छठी लोक सभा का गठन होने पर, विपक्ष में कांग्रेस पार्टी एक मात्र ऐसी पार्टी थी, जो निदेश 121 के अधीन संसदीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए पात्र थी। अत: इसके नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई और उसके लिए उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया। साथ ही *देखिए* अध्याय-8 में विपक्ष का नेता शीर्षक के तहत् 'संसद के कार्य निर्वाहक'।

फरवरी, 1980 में सातवीं लोक सभा का गठन होने पर, विपक्ष में किसी भी पार्टी को निदेश 121 के अनुसार, संसदीय दल के रूप में मान्यता नहीं दी गई थी। जनता (एस.), सी.पी.आई. (एम.), जनता, डी.एम.के., कांग्रेस (यू.), और सी.पी.आई. के नेताओं के लिए पहली पंक्ति में स्थान नियत किये गए थे। श्री फ्रैंक एंथनी, आंग्ल भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले नाम-निर्देशित सदस्य के लिए पहली पंक्ति में स्थान नियत किया गया था।

8वीं लोक सभा का गठन 31 दिसम्बर, 1984 को हुआ था और निदेश 121 के अनुसार विपक्ष की किसी भी पार्टी को संसदीय दल के रूप में मान्यता नहीं दी गई थी। तेलुगु देशम, सी.पी.आई. (एम.), जनता, सी.पी.आई और ए.आई.ए.डी.एम.के. के नेताओं के लिए पहली पंक्ति में स्थान नियत किये गये थे।

श्री फ्रैंक एंथनी, आंग्ल भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले नाम-निर्देशित सदस्य के लिए पहली पंक्ति में स्थान नियत किया गया था।

दिसम्बर, 1989, में नौवीं लोक सभा का गठन होने पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी होने के कारण, इसके नेता श्री राजीव गांधी को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई थी और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया था। संयुक्त मोर्चे में विभाजन होने के कारण श्री वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली सरकार ने सत्ता छोड़ी और 10 नवम्बर, 1990, को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सरकार बनाने के लिए श्री चन्द्रशेखर को समर्थन दिया। इसके परिणामस्वरूप उस समय भारतीय जनता पार्टी, लोक सभा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बाद सबसे बड़ी पार्टी होने के कारण मुख्य विपक्षी दल बना और इसके नेता श्री. एल.के. आडवाणी को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई और उपरोक्त स्थान उनके लिए नियत किया गया।

लोक सभा कक्ष में सदस्यों के बैठने की व्यवस्था में समय-समय पर कई परिवर्तन हुए हैं। केन्द्रीय विधान सभा के दिनों में कक्ष में कुल 148 स्थान थे। संविधान सभा (विधायी) के सदस्यों के लिये बैठने की व्यवस्था करने हेतु 1947 में स्थानों की संख्या बढ़ाकर 300 कर दी गई। डोमिनियन विधानमण्डल की हैसियत से एक विशिष्ट निकाय के रूप में कार्य करने के लिए संविधान सभा की बैठक कक्ष में ही हुआ करती थी। वर्ष 1952 में पहले साधारण निर्वाचन के बाद स्थानों की संख्या बढ़ाकर 466 कर दी गयी। जोकि निर्वाचित सदस्यों की संख्या से कम थी। 530 सदस्यों के बैठने की व्यवस्था करने के लिए वर्ष 1957 में स्थानों की संख्या और बढ़ायी गई। प्रत्येक सदस्य के लिए एक स्थान की व्यवस्था की गई।

वर्ष 1975 में 20 स्थानों की और व्यवस्था की गयी और अब कक्ष में 550 सदस्य बैठ सकते हैं।

दूसरी लोक सभा के प्रारम्भ में मत विभाजन में मतों की गणना करने के लिए स्वचालित मतदान रिकार्ड करने वाले उपकरण को लगाने से यह अनिवार्य हो गया कि सभा भवन में प्रत्येक सदस्य के लिए एक स्थान विशेष नियत किया जाए और वह उसी स्थान पर बैठे। बाद

जून, 1991, में दसवीं लोक सभा के गठन के समय श्री एल. के. आडवाणी को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया। दो वर्ष बाद जुलाई, 1993, में श्री अटल बिहारी वाजपेयी को भारतीय जनता पार्टी का नेता चुना गया और परिणामस्वरूप उन्हें विपक्ष के नेता के रूप में शपथ दिलाई गई और उन्होंने उपरोक्त स्थान ग्रहण किया।

इसी प्रकार मई, 1996 में ग्यारहवीं लोक सभा के गठन के समय श्री पी.वी. नरसिम्हा राव को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई थी और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया था। मई, 1996 में भारतीय जनता पार्टी सरकार द्वारा त्यागपत्र देने के फलस्वरूप श्री अटल बिहारी वाजपेयी विपक्ष के नेता बने और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया।

मार्च, 1998 में, बारहवीं लोक सभा के गठन के समय श्री शरद पवार को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई थी और उनके लिए लोक सभा के सभा भवन में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया था।

अक्तूबर, 1999 में तेरहवीं लोक सभा का गठन होने पर श्रीमती सोनिया गांधी को विपक्ष के नेता के रूप मे मान्यता दी गयी थी और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया था।

इसी प्रकार मई, 2004 में चौदहवीं लोक सभा के गठन के समय श्री एल.के. आडवाणी को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गयी और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया।

मई 2009 में पंद्रहवीं लोक सभा के गठन पर, श्री एल. के. आडवाणी को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया। तदन्तर 21 दिसम्बर 2009 को श्रीमती सुषमा स्वराज को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता दी गई और उनके लिए लोक सभा कक्ष में उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान नियत किया गया।

में दसवीं लोक सभा के दौरान मार्च, 1995 में कम्प्यूटरीकृत एकीकृत माइक्रोफोन प्रबंधन प्रणाली साथ-साथ भाषान्तरण और लोक सभा कक्ष में मत विभाजन के दौरान नेता को रिकार्ड करने के लिए लोक सभा कक्ष में स्वचालित वोट रिकार्डिंग की व्यवस्था की गई। आज प्रत्येक सदस्य के लिए एक निश्चित स्थान नियत है और उसे उसी स्थान से सभा को संबोधित करना होता है[40] जब तक कि अध्यक्षपीठ द्वारा अन्यथा निदेश न दिया जाए[41] और उसे मत विभाजन के समय अपने स्थान पर लगे उपकरण से ही अपना मत रिकार्ड करना होता है।[42]

> केन्द्रीय विधान सभा में सत्र के आरम्भ में जब एक बार दलों के लिए स्थान नियत कर दिये जाते थे तो उस सत्र के दौरान सामान्यतया स्थानों के उस क्रम में कोई और परिवर्तन नहीं किया जाता था, जब तक कि बैठने की व्यवस्था में प्रस्तावित परिवर्तन बहुत मामूली न हों और उसके कारण सारे सत्र के लिये बैठने की व्यवस्था बिगड़ती न हो। जहां किसी दल के सदस्यों ने जिनके लिए स्थान नियत किये गये थे, पूरे सत्र में सभा की बैठकों में भाग नहीं लिया और इस संबंध में दल ने औपचारिक रूप से पहले सूचना दे दी तो उनके स्थान दूसरे ग्रुपों के सदस्यों को दे दिये गये थे।[43] एक बार कोई सदस्य किसी स्थान को ग्रहण कर लेता था तो उसे उसी स्थान पर बैठना पड़ता था और वह अध्यक्षपीठ की अनुमति के बिना किसी अन्य खाली स्थान पर नहीं बैठ सकता था।[44]

---

40. नियम 349 (सात) साथ ही *देखिए* लो.स.वा.वि., 8.3.1960, पृ. 2295-96, और 19.12.1960, पृ. 37 । सभा में अपना भाषण देते समय सदस्यों द्वारा नियमों के अनुपालन के मामले पर 9 मार्च, 2005 को हुई कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में चर्चा की गयी, जिसमें अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि मंत्रियों को छोड़कर सभी सदस्य तब तक अपना भाषण अपने स्थान से ही देंगे जब तक कि अध्यक्षपीठ द्वारा अन्य स्थान से भाषण देने की अनुमति न दी जाए।

    वर्ष 2005 से समाचार भाग-दो में एक सत्र के दौरान नियमित रूप से एक पैरा भी प्रकाशित किया जाता है, जिसमें सदस्यों का ध्यान लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम 349 (vii) और 351 की ओर दिलाया जाता है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध है कि जब सभा की बैठक चल रही हो, सदस्य को अपने स्थान पर ही बैठना होगा और सभा को संबोधित करते समय अपने स्थान से ही अपना भाषण देना होगा।

41. अध्यक्षपीठ अक्सर उन सदस्यों को जिनके भाषण उनके स्थान से सुनाई नहीं देते, माइक्रोफोन के निकटस्थ बेंच पर आकर सभा में भाषण देने की अनुमति देता है। *देखिए* लो.स.वा.वि., 21.12.1955, कॉ. 3515; 31.3.1960, पृ. 4204; 26.8.1960, पृ. 2572 और 22.12.1960, पृ. 3453 ।

42. मत विभाजन के समय प्रत्येक सदस्य को एक हाथ से अपने स्थान पर लगे 'वोट इनिशियेसन स्विच' को दबाना होता है और उसी समय दूसरे हाथ से तीन पुश बटनों में से किसी एक को दबाना होता है और तभी सभा में अध्यक्षपीठ के दोनों ओर की दीवार पर लगे इंडिविजुअल डिसप्ले पैनल में सदस्य के स्थान से संबंधित एलईडी के समनुरूप सेट में लगा बल्ब जलेगा अन्यथा प्रत्येक सदस्य के वोट करने की सही स्थिति का पता नहीं चल पाएगा।

43. *देखिए,* लो.स.वा.वि. 28.10.1941, पृ. 147-50; 29.10.1941, पृ. 209-10 और *इंडियन एनुअल रजिस्टर,* 1939 (ii) पृ. 15 और 21 ।

44. एल.ए. डिबेट्स, 8.3.1926, पृ. 2144; 27.2.1929, पृ. 1320-21 ।

जब 1950 में अंतरिम संसद अस्तित्व में आई और सभा भवन में स्थानों की संख्या सदस्यों की संख्या से कम थी, तो अध्यक्ष ने औपचारिक रूप से किसी के लिए कोई स्थान नियत नहीं किया था और कोई सदस्य किसी भी ब्लॉक में जिस स्थान पर बैठना चाहता था बैठ जाता था। एक बार वह कोई स्थान चुन लेता था तो उससे यह आशा की जाती थी कि वह उसी स्थान पर बैठेगा जिस पर वह बैठता रहा है और वहीं से सभा में भाषण देगा।[45]

पहले साधारण निर्वाचन में लोक सभा के लिए चुनकर आए सदस्यों की कुल संख्या 499 थी। चूंकि सभा कक्ष में स्थानों की संख्या केवल 466 थी, इसलिए विपक्ष के विभिन्न ग्रुपों के लिए आनुपातिक आधार पर इकट्ठे स्थान नियत किए गये।[46] तत्पश्चात् शेष स्थान बहुमत वाले दल को दिये गये और उसे अपने अलग-अलग सदस्यों को स्थान देने की छूट दी गई थी।[47]

पहली तीन पंक्तियां, अध्यक्ष के आसन के दायीं ओर के पहले ब्लॉक मंत्रियों और कुछ सदस्यों के लिये आरक्षित हैं, जिन्हें ये स्थान उनकी वरिष्ठता के क्रम में दिये जाते हैं।[48] जो मंत्री लोक सभा के सदस्य नहीं है, उन्हें कोई नियत स्थान नहीं दिया जाता[49] तथापि इन पंक्तियों में कुछ स्थान खाली रखे जाते हैं जिन पर वे बैठ सकते हैं। प्रधानमंत्री को चाहे वह सभा का सदस्य हो या नहीं, सदैव अध्यक्ष के आसन के दायीं ओर पहला स्थान दिया जाता है। राजनैतिक दलों के नेताओं तथा वैसे सदस्यों जो भूतपूर्व प्रधानमंत्री और अत्यधिक वरिष्ठ सदस्य हैं, को भी पहली पंक्ति में स्थान दिया जाता है। जहां तक छोटे दलों, जिनके सदस्यों की संख्या 5 से कम है, के सदस्यों को स्थान नियत करने का संबंध है तो उन्हें निर्दलीय सदस्यों के समकक्ष रखा जाता है। इन दलों के सदस्यों को स्थापित सिद्धांतों अर्थात् संसद में उनकी प्रतिष्ठा, सार्वजनिक जीवन में उनके महत्व, इत्यादि को देखते हुए, अध्यक्ष द्वारा स्वविवेक से स्थान नियत किए जाते हैं।

---

45. *एच.पी. डिबेट्स* (i), 21.3.1950, पृ. 955-56 ।

46. यह नियतन नव-निर्वाचित सभा की पहली बैठक के कुछ दिन बाद आनुपातिक आधार पर किया गया था। तब तक सदस्यों से कहा गया था कि वे उसी स्थान पर बैठे जिस पर कि वे प्रश्नोत्तर काल में बैठे थे। *देखिए एच.पी. डिबेट्स* (1), 19.5.1952, 6.11.1952, कॉ. 65-66, साथ ही *देखिए, लो.स.वा.वि.* (i), 7.12.1954, कॉ. 1071 ।

47. *देखिए एच.पी. डिबेट्स* (II), 18.6.1952, कॉ. 2035-36।

48. जिन मंत्रियों के लिए दूसरी पंक्ति में स्थान नियत किये गये हों, उन्हें अध्यक्ष (कम से कम प्रश्नोत्तर काल के दौरान) पहली पंक्ति में, यदि वे खाली हों बैठने की अनुमति देता है ताकि वे प्रश्नों के उत्तर दे सकें। यदि उस समय वे मंत्री आ जायें जिनके लिए पहली पंक्ति में स्थान नियत किये गये हैं, तो वे उस समय दूसरी पंक्ति में बैठ जाते हैं।

    अन्य किसी समय जब मतदान न हो रहा हो, किसी विधेयक का प्रभारी मंत्री किसी अन्य स्थान पर बैठ सकता है—*देखिए लो.स.वा.वि.* (II), 11.12.1958, कॉ. 4535-37।

49. तथापि, गृह मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत के मामले में, जो कि राज्य सभा के सदस्य थे, यह एक अपवाद था। उनके लिए कक्ष में निश्चित स्थान नियत किया गया था।

सरकारी दल सत्तारूढ गठबंधन के लिये जो ब्लॉक आरक्षित हों, उनके बाकी स्थान अलग-अलग सदस्यों को सरकार के मुख्य सचेतक, संसदीय कार्य मंत्री की सिफारिश पर इस संबंध में अध्यक्ष द्वारा निर्धारित सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार दिए जाते हैं।[50] उप-चुनावों में चुनकर आए सदस्यों द्वारा स्थानों के नियतन के संबंध में पहले से ही नियत स्थानों में प्रस्तावित परिवर्तन करने के बारे में बाद के सभी अनुरोधों पर मुख्य सचेतक ही कार्यवाही करता है और इस संबंध में जो भी परिवर्तन वह प्रस्तावित करता है, उन्हें वह अध्यक्ष के अनुमोदन के लिए उसके पास भेज देता है।

जब नये मंत्रियों की नियुक्ति पर पहली पंक्तियों में और स्थानों की आवश्यकता पड़ती है तो सत्तापक्ष का मुख्य सचेतक उनके लिए स्थान नियत करने हेतु आवश्यक स्थानों की व्यवस्था करता है। अध्यक्ष सत्तापक्ष के मुख्य सचेतक की सिफारिश पर उन गैर-सरकारी सदस्यों को, जिनके स्थान इस प्रकार मंत्रियों को दे दिये गये हैं, दल के लिए आरक्षित ब्लॉकों में अन्य स्थानों पर बिठाता है।

विपक्ष के जिन दलों और ग्रुपों को अध्यक्ष ने मान्यता दी है उन्हें अपने सदस्यों की संख्या के अनुपात में अध्यक्ष के आसन के बायीं ओर के ब्लाकों से आरंभ करके एक साथ स्थान दिये जाते हैं। उस पार्टी और ग्रुप, जिसके सदस्यों की संख्या सबसे ज्यादा है, को एकदम बायीं ओर स्थान दिए जाते हैं और उसके बाद की सर्वाधिक सदस्य संख्या वाली पार्टी को उस पार्टी और ग्रुप के दायीं ओर स्थान दिए जाते हैं और इसी तरह यह प्रक्रिया आगे चलती है। जब किन्हीं पार्टियों या ग्रुपों की संख्या में कोई परिवर्तन होता है तो अध्यक्ष उनकी सदस्य संख्या के अनुसार उनके लिए नये सिरे से स्थान नियत कर सकता है। किसी पार्टी या ग्रुप के सदस्यों के स्थान संबंधित पार्टी अथवा ग्रुप के नेता द्वारा अध्यक्ष के अनुमोदन से नियत किये जाते हैं और अलग-अलग सदस्यों को स्थान नियत करने में सामान्यतः उन्हीं सिद्धांतों का पालन किया जाता है जो सरकारी दल गठबंधन के मामले में लागू होते हैं।

---

50. सामान्यतः निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता है:—

जहां तक संभव हो जो सदस्य दोबारा चुनकर आए हों, उन्हें उनके मूल स्थान ही दिये जाते हैं या आस-पास के स्थान दिये जाते हैं;

भारत सरकार और राज्य सरकारों के कुछ पूर्व मंत्रियों को, जो सभा के लिए चुनकर आए हों, पहली पंक्तियों में या मंत्रियों के स्थानों के पीछे स्थान देने में वरीयता दी जाती है;

वाद-विवाद में बहुधा भाग लेने वाले प्रमुख सदस्यों को, पहली पंक्तियों में स्थान दिए जाते हैं; और

नए प्रमुख सदस्यों को सार्वजनिक जीवन में उनकी प्रमुखता, व्यक्तिगत हैसियत आदि के आधार पर जहां तक इन बातों का भली-भांति ज्ञान हो, स्थान दिये जाते हैं।

छोटे ग्रुपों के सदस्यों के लिए अध्यक्ष द्वारा अलग-अलग स्थान नियत किये जाते हैं। अध्यक्ष अपने विवेक से ऐसे सदस्यों को एक साथ स्थान दे सकता है। किसी ग्रुप के सदस्य आपस में अपने स्थान बदलना चाहें तो अध्यक्ष इस बारे में किये गये उनके अनुरोध पर उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे सकता है।

जब किसी उप-चुनाव में चुन कर आया कोई सदस्य शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने आता है तो उसे अध्यक्ष के आसन के दायीं ओर के पहले ब्लॉक में पिछली पंक्तियों में किसी स्थान पर बिठा दिया जाता है। यदि वह सदस्य विपक्ष की किसी पार्टी या ग्रुप का सदस्य हो और उस ब्लॉक के पास बैठना चाहे तो उसे वहां बैठने की अनुमति दे दी जाती है। जब सदस्य शपथ ले लेता है या प्रतिज्ञान कर लेता है, तब उसके लिए एक नियमित स्थान नियत किया जाता है।

यदि कोई सदस्य किसी उप-चुनाव में चुनकर आया हो और किसी पार्टी या ग्रुप से सम्बद्ध हो तो नये सदस्य द्वारा शपथ ले लिए जाने अथवा प्रतिज्ञान किए जाने के बाद उसको बिठाने के लिए यदि आवश्यक हो तो उस पार्टी या ग्रुप के अन्य सदस्यों के लिए नियत स्थानों में, अध्यक्ष को सूचित करते हुए समुचित फेर-बदल करके संबंधित पार्टी या ग्रुप को एक अतिरिक्त स्थान दे दिया जाता है। किसी उप-चुनाव में चुनकर आए किसी छोटे ग्रुप के सदस्य या किसी निर्दलीय सदस्य के लिए अध्यक्ष द्वारा स्थान नियत किया जाता है।

सभा के कार्यकाल के दौरान यदि संविधान की दसवीं अनुसूची के पैराओं के अनुसार विभाजन या विलय के कारण जब किसी नयी पार्टी या ग्रुप का गठन हुआ हो तो उसके सदस्यों को अन्य सदस्यों के लिए नियत स्थानों में कोई परिवर्तन किए बिना जहां तक संभव हो एक-दूसरे के निकट एक साथ स्थान नियत किये जाते हैं।

जब किसी पार्टी या ग्रुप का नेता बदल जाता है तो अध्यक्ष उस ग्रुप के सदस्यों की संख्या और सार्वजनिक जीवन में ग्रुप के नए नेता की प्रमुखता तथा उसकी व्यक्तिगत हैसियत को ध्यान में रखते हुए एक बेहतर स्थान और किसी उपयुक्त मामले में सबसे अगली पंक्ति में स्थान दे सकता है।[51]

---

51. दूसरी लोक सभा के आरम्भ में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के ग्रुप के नेता श्री जे.बी. कृपलानी को पहली पंक्ति में स्थान दिया गया था। उन्होंने नवंबर, 1960 में अपने ग्रुप से त्यागपत्र दे दिया था। उसके बाद श्री अशोक मेहता उस ग्रुप के नेता बने। उन्हें पंक्ति में वह रिक्त स्थान दिया गया था।

तीसरी लोक सभा के आरम्भ में, कम्युनिस्ट ग्रुप, जो मान्यता प्राप्त ग्रुप के रूप में कार्य कर रहा था, के नेता को उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान दिया गया था। 1964 में इस कम्युनिस्ट ग्रुप का दो ग्रुपों में विभाजन हो गया था और संसदीय ग्रुप के रूप में इसने अपनी मान्यता खो दी थी। उसके बाद उपाध्यक्ष के स्थान से अगला स्थान स्वतंत्र ग्रुप के नेता को दिया गया था जिसकी सदस्य संख्या सभा में गैर-मान्यता प्राप्त ग्रुपों में सबसे अधिक थी।

यदि सभा के सत्र के दौरान किसी पार्टी या ग्रुप के सदस्यों की संख्या बढ़ जाती है या कम हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप स्थानों के नए ब्लॉक के लिए वह पार्टी या ग्रुप हकदार हो जाता है तो जब तक सत्र समाप्त नहीं हो जाता है तब तक आमतौर पर बैठने की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। इसके बाद के सत्र के आरम्भ होने पर स्थानों को पुनः नियत किया जा सकता है।[52]

आठवीं लोक सभा के दसवें सत्र के दौरान 16.3.1988 को ए.आई.ए.डी.एम.के. ग्रुप का नेता बदल जाने पर ए.आई.ए.डी.एम.के. के नेता को पहली पंक्ति में स्थान दिया गया था।

52. पंद्रहवीं लोक सभा के बारहवें सत्र के दौरान बैठने की व्यवस्था में परिवर्तन तब किया गया था, जब सत्तारुढ़ संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सहयोगी पार्टी अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस ने गठबंधन से अलग होने के बाद अपने सदस्यों के लिए अलग स्थान की मांग की थी।

अध्याय 16

सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति

प्रत्येक चुनाव-क्षेत्र के लोग यह आशा करते हैं कि जिस सदस्य को वे चुनते हैं, वह लोक सभा में अपना स्थान ग्रहण करेगा और सभा की बैठकों में भाग लेगा, सिवाय उस दशा के जब उसके लिए अनुपस्थित रहना अपरिहार्य कारणों से आवश्यक हो जाए। लोक सभा को यह अधिकार है कि वह उससे पूछ सके कि वह क्यों अनुपस्थित था। सभा के प्रति सदस्यों का कर्त्तव्य सर्वोपरि है और उनसे यह आशा की जाती है कि वे सभा की बैठकों से तभी अनुपस्थित हों जब वे अनुपस्थित रहने के लिये बाध्य हो जायें।[1]

संवैधानिक उपबंध

संविधान में यह उपबंध है कि यदि संसद के किसी भी सदन का कोई सदस्य साठ दिन की अवधि तक सदन की अनुज्ञा के बिना सदन की सभी बैठकों से अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकेगा।[2] साठ दिन की उक्त अवधि की संगणना करने में किसी ऐसी अवधि को हिसाब में नहीं लिया जाएगा जिसके दौरान सदन सत्रावसित या निरंतर चार से अधिक दिनों के लिए स्थगित रहता है।[3]

> केन्द्रीय विधान सभा में, यदि कोई सदस्य लगातार दो महीने तक भारत से बाहर रहा हो या अपने पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने में असफल रहा हो, तो गवर्नर जनरल, उसके स्थान के रिक्त होने की घोषणा कर सकता था,[4] परन्तु निर्वाचित सदस्य के मामले में गवर्नर जनरल संवैधानिक उपबंध के अंतर्गत कार्यवाही करने की सम्भावना पर तभी विचार कर सकता था, जब उस निर्वाचन क्षेत्र के लोग, जिनके प्रति सदस्य मुख्य रूप से अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिये जिम्मेदार था, गर्वनर जनरल से ऐसा करने के लिये कहें। यदि कोई गैर-सरकारी नाम-निर्देशित सदस्य नियमित रूप से उपस्थित नहीं रह सकता था तो उसके लिये अच्छा रास्ता यही था कि वह अपने पद से त्याग-पत्र दे दे।

---

1. चौथा प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति पहली लोकसभा)।
2. अनुच्छेद 101(4)

   लोक सभा के नियमों में सभा की बैठक से अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगने की विधि तथा सदन के नेता द्वारा किसी सदस्य के स्थान को रिक्त घोषित करने के लिए प्रस्ताव पेश करने की प्रक्रिया के बारे में तद्नुसार उपबंध किया गया है—*देखिए* नियम 242 और 325 से 328 ।
3. अनुच्छेद 101(4), परन्तुक।
4. भारत शासन अधिनियम की धारा 93(2), जो कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची में दी गई है।

> भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के पारित होने से लेकर संविधान के लागू होने की अवधि तक, ऐसा कोई संवैधानिक उपबन्ध नहीं था कि संविधान सभा (विधायी) के सदस्यों के स्थानों को सभा की बैठकों से उनके लगातार अनुपस्थित रहने पर रिक्त घोषित किया जा सके और न ही सदस्यों के लिये यह आवश्यक था कि वे अनुपस्थित रहने के लिए सभा की अनुमति प्राप्त करें।[5]

नियमों के अंतर्गत, सदन के नेता द्वारा या किसी ऐसे अन्य सदस्य, जिसे उसने इस प्रयोजन के लिये अपने कृत्य प्रत्यायोजित कर दिये हैं द्वारा प्रस्ताव पेश किए जाने पर स्थान रिक्त घोषित कर दिया जाता है।[6]

वर्तमान प्रथा यह है कि सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति[7] सबसे पहले रिपोर्ट देती है कि सभा संबंधित सदस्य के स्थान को रिक्त घोषित करे। यह रिपोर्ट सभा में पेश किए जाने से पहले सदन के नेता की टिप्पणी के लिये उसके पास भेजी जाती है। जब सभा उस रिपोर्ट को स्वीकार कर लेती है तो सदन का नेता, अथवा यदि उसने इस संबंध में अपना अधिकार समिति के सभापति को प्रत्यायोजित कर दिया हो, तो समिति का सभापति, इस संबंध में सूचना देकर प्रस्ताव पेश कर सकता है।[8]

संविधान में उल्लिखित साठ दिन की अवधि का मतलब है '60 दिन की लगातार अवधि जिसमें कोई व्यवधान न हो' और इन उपबंधों के अंतर्गत किसी सदस्य को निरर्हित करने के लिये उसकी अनुपस्थिति लगातार होनी चाहिए।

> अनुपस्थिति की अवधि की गणना किसी सदस्य के सभा की बैठकों से अनुपस्थित होने के दिन से लेकर, उस दिन तक की जाती है जिस दिन वह अगली बार सभा में उपस्थित होता है, चाहे वह अवधि एक ही सत्र में हो या पश्चात्वर्ती सत्रों में। किसी सत्र के दौरान ऐसे दिनों को, जब सभा की कोई बैठक न हो, इस अवधि में गिना जाता है परन्तु सत्रावसान की अवधि या निरंतर चार दिन से अधिक की ऐसी अवधि, जब सभा की बैठक स्थगित कर दी गई हो, नहीं गिनी जाती।[9]

संवैधानिक उपबंध केवल निदेशात्मक हैं, आज्ञापक नहीं और किसी स्थान को तब तक रिक्त घोषित नहीं किया जा सकता, जब तक सदस्य ने दुराग्रहपूर्वक अपने कर्त्तव्य की अवहेलना न की हो। किसी स्थान को रिक्त घोषित करने की शक्ति समर्थकारी शक्ति है और सभा किसी सदस्य की 60 दिन से अधिक दिन की अवधि की अनुपस्थिति को भी क्षमा करने में सक्षम है।[10]

---

5. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के पारित होने के बाद भारत शासन अधिनियम, 1935 की नौवीं अनुसूची तथा धारा 25(3) को भारत (अन्तरिम संविधान) आदेश, 1947 के अंतर्गत 1935 के अधिनियम से निकाल दिया गया।
6. नियम 241(1)।
7. समिति के कृत्यों तथा उसके कार्य करने के ब्यौरे के संबंध में *देखिए* अध्याय 30—"संसदीय समितियां" के अंतर्गत शीर्षक 'सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति'।
8. *लो.स.वा.वि.*, 5.12.1956, कॉ. 1922-36 ।
9. *पी. डिबेट्स* (II), 19.4.1950, पृ. 3023 ।
10. नियम समिति का कार्यवाही सारांश, 17.12.1953, पृ. 21 ।

जहां कोई सदस्य अनुपस्थिति की अनुमति मांगने के आवेदन पत्र की तिथि से पहले ही साठ दिन से अधिक की अवधि तक अनुपस्थित रह चुका हो, वहां आवेदन पत्र की तिथि तक अनुपस्थित रहने की सभा द्वारा दी गई अनुमति को 'अनुपस्थिति-क्षमा' कहा जाता है और आवेदन पत्र की तिथि के बाद अनुपस्थित रहने, यदि आवेदन किया हो, की अनुमति को 'अनुपस्थित रहने की अनुमति देना' कहा जाता है।[11]

उपस्थिति रजिस्टर

सदस्यों की उपस्थिति दर्ज करने के लिये सदस्यों का एक उपस्थिति रजिस्टर रखा जाता है, जिसमें सदस्य किसी दिन सभा की बैठक में उपस्थित होने के संकेतक के रूप में अपने नाम के सामने हस्ताक्षर करते हैं।[12]

> सभा में प्रवेश करने से पहले, सदस्य को लॉबी में रखे उपस्थिति रजिस्टर में अपनी हाजिरी लगानी होती है और प्रतिदिन उस पर हस्ताक्षर करने होते हैं।[13] सदस्यों की सुविधा के लिये इस रजिस्टर को चार भागों में बांटा जाता है—प्रत्येक भाग में मत-विभाजन संख्या की एक शृंखला दी होती है और प्रत्येक भाग लॉबी में अलग-अलग मेजों पर रखा रहता है।
>
> प्रतिदिन सभा के स्थगित हो जाने के बाद उपस्थिति रजिस्टर के सभी चारों भाग इकट्ठे कर लिये जाते हैं और सदस्यों की उपस्थिति अर्थात् किन सदस्यों ने हस्ताक्षर किए हैं/नहीं किए हैं, संबंधी जानकारी लोक सभा की वेबसाइट पर डाली जाती है। जिससे कि सदस्यों की उपस्थिति का सम्पूर्ण रिकार्ड रखा जा सके और उनकी लगातार अनुपस्थिति का हिसाब लगाया जा सके। विभिन्न लोक सभा के मूल उपस्थिति रजिस्टरों को अलग से जिल्दबद करके रिकार्ड के रूप में रखा जाता है।

संविधान या नियमों में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि सदस्यों के लिये उपस्थिति रजिस्टर में हर रोज अपनी हाजिरी लगाना जरूरी है। वास्तव में रोजाना सभा में उपस्थित रहने वाले बहुत से सदस्य उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर नहीं करते हैं। ऐसे भी मामले हो सकते हैं जहां सदस्य लॉबी में उपस्थिति रजिस्टर पर किसी दिन हस्ताक्षर तो कर दें, लेकिन वास्तव में वे उस दिन सभा में बिल्कुल भी उपस्थित न रहे हों। उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर का यह मतलब नहीं है कि जिन सदस्यों ने हस्ताक्षर किये हैं, वे सारे दिन सभा में उपस्थित थे। सदस्य

---

11. सातवां प्रतिवेदन को सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति का सातवां प्रतिवेदन को पहली लोक सभा) सभा द्वारा 23.12.1954 को स्वीकार किया गया।
12. यह रजिस्टर पहली बार 11 दिसम्बर, 1947 को शुरू किया गया था। इससे पहले प्रथा यह थी कि लॉबी में सचिवालय का एक अधिकारी सदस्यों की उपस्थिति दर्ज करता था; सभा के सदस्यों की संख्या में वृद्धि को तथा इस बात को देखते हुए कि सदस्य दिन में विभिन्न समय पर सभा में आते हैं, यह प्रथा संतोषजनक और ठीक नहीं समझी गई।
13. यह जानकारी सदस्य निर्देशिका में दी गई है। सदस्यों को उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करने की आवश्यकता के बारे में स्मरण कराने के लिए समय-समय पर समाचार भाग-दो में एक पैरा भी जारी किया जाता है। 1950 से पहले ऐसे अनुस्मारक परिपत्र के रूप में जारी किये जाते थे।

सभा की बैठक के दौरान किसी भी समय आकर उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर कर सकते हैं। कुछ ऐसे अवसर भी होते हैं जब भूलवश या जल्दी में कुछ सदस्य उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर नहीं करते हैं। कई बार उनके हस्ताक्षर पढ़े नहीं जा सकते और बाद में ऐसे हस्ताक्षरों का पता चलना कठिन हो सकता है। नियमत: मंत्री लोग उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर नहीं करते। इन सब बातों से पता चलता है कि उपस्थिति रजिस्टर कोई सम्पूर्ण दस्तावेज नहीं है। यह इस बात को दर्शाने वाला स्वेच्छा पर आधारित साक्ष्य का एक रिकार्ड मात्र है कि किसी सदस्य विशेष ने किसी दिन विशेष को उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर किये हैं। इसलिये यदि रजिस्टर में किसी सदस्य के हस्ताक्षर न हों तो इसका यह मतलब नहीं है कि उस दिन वह सभा में उपस्थित नहीं था।

9 जून, 1993 से पूर्व, किसी सदस्य को दैनिक भत्ते का भुगतान किया जाना उपस्थिति रजिस्टर में उसके हस्ताक्षर पर निर्भर नहीं करता था। तथापि, 9 जून 1993 से कोई भी सदस्य दैनिक भत्ते का हकदार तभी होगा जब उसने सभा के सत्र के उन सभी दिनों के लिये (बीच में पड़ने वाले अवकाश के उन दिनों को छोड़कर जिनके लिये रजिस्टर में हस्ताक्षर करना आवश्यक नहीं है।), जिनके लिये उसने दैनिक भत्ते का दावा किया है, रजिस्टर में हस्ताक्षर किये हों।[14]

1997 में विशेषाधिकार समिति (ग्यारहवीं लोक सभा) ने 'आचार, सार्वजनिक जीवन में आदर्श, सदस्यों के विशेषाधिकार और उन्हें सुविधाएं और अन्य संबंधित मामले' संबंधी अपने प्रतिवेदन में इस मामले पर भी विचार किया।[15]

यह उपस्थिति रजिस्टर सदस्यों को उनकी उपस्थिति के संबंध में संविधान के उपबंधों की याद दिलाने के लिये इस्तेमाल किया जाता है। यदि किसी सदस्य ने काफी समय तक उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर न किये हों और जब उपस्थिति रजिस्टर में उसके हस्ताक्षरों के आधार पर उसकी अनुपस्थिति 40 या अधिक दिनों की हो जाये तो उस सदस्य को इस बात की याद दिलाई जाती है कि वह समय रहते अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन करे। इस प्रकार याद दिलाने से यदि वह सदस्य पहले उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर नहीं करता रहा है तो वह भविष्य में हस्ताक्षर करने के लिए प्रेरित होता है।

---

14. संसद सदस्य, वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (2006 की अधिनियम संख्या 40 द्वारा संशोधित) की धारा 3 ।

15. समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह विचार व्यक्त किया कि सभा में उपस्थित हुए बिना दैनिक भत्ते का दावा करना अनैतिक है। तथापि, समिति ने महसूस किया कि उक्त सांविधिक उपबंध को कानून की भावना के अनुरूप सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। तार्किक दृष्टिकोण अपनाते हुए यह राय दी गई कि जो सदस्य सभा की बैठक में उपस्थित रहता है वह दैनिक भत्ते का हकदार है। अत: कुछ अपवाद के मामलों में जब कोई सदस्य अनजाने में उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करना भूल जाता है लेकिन इसके बावजूद भी वह सभा में पूरी निष्ठा से उपस्थित रहता है, तो उपस्थिति का सुनिश्चित प्रमाण प्रस्तुत किए जाने पर दैनिक भत्ते से संबंधित उसके दावे पर विचार किया जाना चाहिए।

घण्टे-वार उपस्थिति दर्शाने वाला चार्ट

उपस्थिति रजिस्टर के साथ-साथ एक चार्ट भी होता है जिसे लॉबी अधिकारी तैयार करता है, जिसमें दिन के विभिन्न घण्टों के दौरान सभा में उपस्थित सदस्यों की संख्या दर्शायी जाती है। यह चार्ट इसलिये रखा जाता है कि दिन में एक बार किसी समय हाजिरी लगाने के बजाए सभा में सदस्यों की उपस्थिति की सही-सही स्थिति सामने आ सके। इस चार्ट में यह भी दर्शाया जाता है कि दिन में सभा में कुल कितने सदस्य उपस्थित थे। प्रत्येक सत्र की समाप्ति पर एक विश्लेषणात्मक सारांश तैयार किया जाता है, जिसमें सत्र के दौरान प्रतिदिन उपस्थित रहने वाले सदस्यों की अधिकतम और न्यूनतम संख्या, घण्टे-वार उपस्थित सदस्यों की अधिकतम और न्यूनतम संख्या तथा उपस्थिति का दैनिक औसत दर्शाया जाता है। हालांकि, इस चार्ट में उपस्थित सदस्यों के नामों की बजाय उनकी केवल संख्या दर्शायी जाती है।

सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिया

जो सदस्य संविधान के उपबंधों के अंतर्गत दंड से बचने के लिये सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगना चाहता है, उसे लिखित में एक आवेदन-पत्र देना पड़ता है, जिसमें यह बताना होता है कि उसे कितने दिन अनुपस्थित रहने की अनुमति चाहिए, वह किस तिथि से प्रारम्भ होगी और किस तिथि को समाप्त होगी और उसके क्या आधार हैं।[16] अनुपस्थिति की अनुमति मांगने का आवेदन-पत्र अध्यक्ष या सचिवालय या सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति के सभापति को संबोधित किया जा सकता है। यदि आवेदन-पत्र इनसे भिन्न किसी अन्य व्यक्ति या निकाय को संबोधित हो, तो उस सदस्य से नया आवेदन-पत्र देने के लिए कहा जाता है।

> लिखित आवेदन-पत्र देने का मतलब यह है कि संबंधित सदस्य को उस पर अपने हस्ताक्षर करने चाहिए। अनुपस्थिति की अनुमति तार[17], ई-मेल और फैक्स द्वारा भेजे गये आवेदन-पत्रों तथा बाद में स्वयं सदस्य द्वारा लिखे गए हस्ताक्षरित पत्र के आधार पर भी दी गयी है।

यदि कोई सदस्य किन्हीं कारणों से, जिन्हें अध्यक्ष उचित समझे, स्वयं लिखकर सभा से अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगने में असमर्थ हो, तो किसी अन्य सदस्य को उसकी ओर से अनुपस्थिति की अनुमति का आवेदन-पत्र देने की अनुमति दी जा सकती है।[18]

---

16. नियम 242, यह नियम पहली बार 1950 में बनाया गया था।
17. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 15.4.1950, पृ. 2 ।
18. कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति) पहली लोक सभा, 13.12.1955; नौवां प्रतिवेदन (सभा की सदस्यों बैठकों से की अनुपस्थिति संबंधी समिति, चौथी लोक सभा और दसवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, सातवीं लोक सभा)।

किसी बीमार सदस्य के अंगूठे के निशान वाला आवेदन-पत्र किसी वर्तमान सदस्य के माध्यम से प्राप्त होने पर समिति द्वारा उस पर विचार किया गया और समिति द्वारा अनुशंसित अवकाश सभा ने स्वीकृत किया।[19]

बीमारी के आधार पर अनुपस्थिति की अनुमति के लिये सदस्य की ओर से उसके पुत्र द्वारा हस्ताक्षरित एक आवेदन-पत्र प्राप्त होने पर समिति द्वारा उस पर विचार किया गया और अनुपस्थिति की अनुमति दिये जाने की अनुशंसा की गई।[20] इसी प्रकार, गम्भीर रूप से जल जाने के आधार पर सदस्य की ओर से उसकी पत्नी से प्राप्त एक आवेदन-पत्र पर समिति द्वारा विचार किया गया और अनुमति की अनुशंसा की गई।[21] दूसरी ओर, एक सदस्य की ओर से किसी दूसरे सदस्य द्वारा हस्ताक्षरित और सम्बोधित आवेदन-पत्र को वैध नहीं माना गया, क्योंकि वह सदस्य स्वयं आवेदन कर सकता था।[22]

किसी सदस्य के निजी सचिव द्वारा उसकी ओर से अनुपस्थिति की अनुमति का आवेदन-पत्र भेजे जाने पर उसे अनुपस्थिति की अनुमति का वैध आवेदन-पत्र नहीं माना जाता।[23]

जब किसी आवेदन-पत्र में अनुपस्थिति की अनुमति की विशिष्ट अवधि या कारण या दोनों में से कुछ भी न लिखा गया हो, तो उस आवेदन-पत्र पर विचार करने से पूर्व संबंधित सदस्य को चिट्ठी लिखकर यह कहा जाता है कि वह दोनों बातों की सूचना दे।

जिस अवधि के लिये कोई सदस्य अनुपस्थिति की अनुमति मांगे, वह 60 दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए।[24] यदि कोई सदस्य 60 दिन से अधिक की अवधि की अनुमति मांगता है, तो समिति पहली बार उसे केवल 59 दिनों की अनुमति देने की सिफारिश करती है।[25]

---

19. *देखिए* 10वां और 11वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, छठी लोक सभा; छठा प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति। आठवीं लोक सभा।
20. *देखिए* तीसरा, 10वां और 11वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, चौथी लोक सभा); 16वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, चौथी लोक सभा)।
21. दसवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति)।
22. *देखिए* पन्द्रहवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, चौथी लोक सभा)।
23. एक सदस्य के निजी सचिव ने 15.11.1958 के अपने पत्र में सूचित किया कि सदस्य का अमेरिका में इलाज चल रहा है और वह अपने हस्ताक्षर करके छुट्टी का आवेदन-पत्र भेजने की स्थिति में नहीं है। इस पत्र को छुट्टी का आवेदन-पत्र नहीं माना गया और निजी सचिव को यह परामर्श दिया गया कि वह सदस्य से छुट्टी का अपना आवेदन-पत्र सीधे अध्यक्ष को भेजने के लिए कहे।
24. नियम 242(2), परन्तुक; पहला प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति-पहली लोक सभा)।
25. बीसवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति-पहली लोक सभा)।

यदि कोई सदस्य ऐसी अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति मांगता है जिसका एक भाग तो चालू सत्र में आता हो और दूसरा भाग अगले सत्र में आता हो तो उस दशा में पहली बार उसे केवल चालू सत्र के अंत तक अनुपस्थिति की अनुमति दी जाती है बशर्ते कि इस प्रकार स्वीकृति की अवधि 59 दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए। अनुपस्थिति की अवधि का जो भाग अगले सत्र में आता है, उसके लिए सदस्य को नया आवेदन-पत्र भेजने के लिए कहा जाता है।[26]

जब अनुपस्थिति की अवधि 15 दिन से कम हो, उस दशा में अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन-पत्र देना आवश्यक नहीं है।[27] वैसे देखा जाये तो संविधान के उपबंधों के अधीन 60 दिन से कम की अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति सभा से लेना आवश्यक नहीं है परन्तु सदस्यों द्वारा ऐसा करना अधिक अच्छा रहता है।[28]

ज्यों ही किसी सदस्य के सभा की अनुमति लिये बिना लगातार अनुपस्थित रहने के 40 दिन हो जाते हैं तो सचिवालय उसे इस संबंध में सूचित करता है, जिससे कि वह समय रहते अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन-पत्र दे सके और बाद में उसे किसी प्रकार की कोई कठिनाई उत्पन्न न हो।[29] किसी सदस्य के लगातार 50 दिन तक अनुपस्थित रहने पर उसे एक और स्मरण पत्र भेजा जाता है। इससे सदस्य अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन कर सकता है या यह स्पष्ट कर सकता है कि वह सभा में उपस्थित होता रहा है परन्तु उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर नहीं कर सका।[30] यदि कोई सदस्य सभा की बैठक से लगातार 60 दिन या अधिक समय तक अनुपस्थित रहा है और उसने अनुपस्थिति की अनुमति नहीं ली है तो उसका ध्यान इस संबंध में संवैधानिक उपबंधों और संगत नियमों की ओर दिलाया जाता है और उसे यह सलाह दी जाती है कि वह अनुपस्थिति की माफी के लिए आवेदन-पत्र दे जिसमें अनुपस्थिति के कारण बताए जिससे कि सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति को उसकी जानकारी हो सके और वह उसके आवेदन-पत्र पर विचार कर सकें।[31] लेकिन इसी तरह के मामले में ऐसी सूचना मंत्री को नहीं भेजी जाती।

---

26. कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), 19.8.1959, पैरा 3(5)।
27. सातवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 3 ।
28. *देखिए* लो.स.वा.वि., 9.5.1956, कॉ. 7720-21 और सत्रहवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा)।
29. सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति की सिफारिश के अनुसरण में ऐसा किया गया है *देखिए* कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा), 15.3.1956, पैरा 4 और 5; तेरहवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 16 ।
30. कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा), 24.3.1975, 11.4.1975 और 25.7.1975 ।
31. पहला प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा) संगत उपबंधों के लिए *देखिए* अनुच्छेद 101(4) और नियम 241(1)।

अनुपस्थिति की अनुमति संबंधी आवेदन-पत्रों में अनुपस्थिति की अनुमति के कारण स्पष्ट रूप से बताने पड़ते हैं।[32] आवेदन-पत्र में दिए गए कारण उचित, पर्याप्त और विश्वसनीय होने चाहिएं। सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति की सिफारिश पर लोक सभा ने यह निर्धारित किया है[33] कि निम्नलिखित कारणों के आधार पर सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति दी जा सकती है–

(i) चिकित्सीय जांच सहित स्वयं की रुग्णता;

(ii) परिवार में रुग्णता, दुर्घटना या विपत्ति;

(iii) परिवार में मृत्यु;

(iv) स्वयं का विवाह या परिवार में विवाह;

(v) जेल में निरुद्ध किया जाना;

(vi) तीर्थयात्रा या धार्मिक समारोह में भाग लेना;

(vii) (क) सम्मेलनों और शिष्टमंडलों में भाग लेने, (ख) अध्ययन दौरे, (ग) व्याख्यान, या (घ) खेल-कूद में भाग लेने के लिए विदेश यात्रा;

(viii) निर्वाचन क्षेत्र या देश के किसी भाग में बाढ़, सूखा अग्निकाण्ड या भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदाओं में राहत कार्य;

(ix) निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या मतदाता सूचियां तैयार करने संबंधी कार्य;

(x) किसी जांच आयोग संबंधी कार्य;

(xi) निर्वाचन क्षेत्र में समारोह, यथा शहीद दिवस, शताब्दी समारोह, विधान सभा या राज्य आदि में किसी नई परियोजना का उद्घाटन, जिसमें सदस्य की प्रमुख भूमिका हो;

(xii) निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव या उप-चुनाव;

(xiii) पार्टी अधिवेशन या पार्टी की बैठकों में भाग लेना;

(xiv) निर्वाचन क्षेत्र में आन्दोलन या अशांति; और

(xv) संचार व्यवस्था का ठप्प होना।

लोक सभा इस बात पर भी सहमत[34] हुई थी कि उपरोक्त कुछ आधारों पर दीर्घावधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति देना ठीक नहीं रहेगा और इस प्रकार अनुमति प्रदान करते समय न केवल आधार पर बल्कि अनुपस्थिति की अवधि भी एक महत्वपूर्ण कारक होगा।

---

32. नियम 242(2); साथ ही *देखिए* पहला प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–पहली लोक सभा), पैरा 3(ii) और (iii)।

33. सत्रहवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–पांचवीं लोक सभा) यह प्रतिवेदन लोक सभा द्वारा 3.12.1974 को स्वीकृत किया गया।

34. पूर्वोक्त।

लोक सभा ने यह भी निर्णय किया[35] कि निम्नलिखित आधारों पर साधारणतः अनुमति नहीं दी जानी चाहिए–

(i) पूर्ववर्ती पैरा में उल्लिखित निर्वाचन क्षेत्र में कार्यों से भिन्न कार्य;

(ii) व्यावसायिक या कारोबार में व्यस्तता कार्य;

(iii) निजी कार्य; और

(iv) पूर्ववर्ती पैरा में उल्लिखित आधारों से भिन्न घरेलू समस्या।

लोक सभा ने यह भी निर्णय[36] लिया कि सदस्यों द्वारा दी गयी सूचना पर विश्वास किया जाना चाहिए और सदस्यों को उस आधार, जिस पर अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन दिया गया हो, के समर्थन में कोई पत्र या प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।[37]

अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन हल्के और साधारण कारणों के आधार पर या ऐसे आधार पर नहीं किया जाना चाहिए जिससे सभा की प्रतिष्ठा तथा गरिमा कम होती हो।[38]

एक सदस्य से प्राप्त अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन पत्र के संबंध में अध्यक्ष मावलंकर ने यह टिप्पणी की थी–

> इसके साथ ही मैं एक और प्रश्न पर आता हूं और वह यह है कि बेहतर यही होगा कि सभा उन कारणों जिनकी वजह से सदस्य अनुपस्थित रहा है, के औचित्य पर विचार करें। मैं इस मामले की बात नहीं कर रहा हूं लेकिन मैंने ऐसे मामले देखे हैं कि आवेदन पत्र आये हैं और हमने अनुपस्थिति की अनुमति दी है। उनमें से कुछ आवेदन पत्र ऐसे थे जिनमें बताये कारणों पर विश्वास करना कठिन था और सदस्य ने संसद सदस्य के नाते अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन से अनुपस्थित रहने के युक्तियुक्त कारण नहीं बताये थे।[39]

जहां किसी सदस्य ने अपने आवेदन पत्र में अनुपस्थिति की अनुमति के आधार न बताएं हों, वहां उसके आवेदन पत्र पर विचार किए जाने से पूर्व उससे ऐसा करने को कहा जाता है। यदि सदस्य द्वारा बताये गये कारण अस्पष्ट हों, तो उससे कहा जाता है कि वह उन्हें स्पष्ट

---

35. सत्रहवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पांचवी लोक सभा) यह प्रतिवेदन लोक सभा द्वारा 3.12.1974 को स्वीकृत किया गया।

36. *पूर्वोक्त* ।

37. इससे पहले एक अवसर पर जब एक सदस्य लम्बी अवधि तक सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहा था, तो उसे और आगे अवकाश स्वीकृत करने के प्रश्न पर विचार करने के पूर्व उसे अपनी अनुपस्थिति के बारे में पूर्ण कारण बताने और सिविल सर्जन का चिकित्सा प्रमाण-पत्र देने का निदेश दिया गया था। *एल.एस. डिबेट्स,* 17.9.1963, कॉ. 6515 ।

38. *देखिए,* चौथा प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–पहली लोक सभा) कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–पहली लोक सभा), 13.12.1955 ।

39. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 20.4.1953, कॉ. 4627 ।

करें ताकि सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति अनुपस्थिति की अनुमति की सिफारिशें कर सके और सभा भी अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान कर सके।[40]

देश का दौरा करने, लोगों के साथ मुलाकात करने और उनकी शिकायतें सुनने या देश के विभिन्न भागों में शांति यात्रा आयोजित करने या स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय अखंडता संबंधी, 'एकता' नृत्यनाटिका में भाग लेने के लिए अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन पत्र को समिति द्वारा उचित माना गया और अनुमति प्रदान करने की सिफारिश की गई, जिसे बाद में सभा द्वारा स्वीकृत किया गया।[41]

> जब सभा का सत्र चल रहा हो, और कोई सदस्य, किसी सरकारी समिति या आयोग का सदस्य हो और वह उसके कार्य के संबंध में बाहर गया हो, तो उसे अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन करना होगा।[42]

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मंत्रियों की अनुपस्थिति

अनुपस्थिति की अनुमति के संबंध में संवैधानिक उपबंध अध्यक्ष पर भी लागू होते हैं क्योंकि वह भी सभा का सदस्य है। जब भी अध्यक्ष को किसी सत्र के दौरान लम्बी अवधि तक अपरिहार्य कारणों से अनुपस्थित होना पड़ता है, वह उपाध्यक्ष को एक संदेश भेज देता है जिसमें वह अपनी अनुपस्थिति के कारण बताता है और कहता है कि यह संदेश सभा को दे दिया जाये और उसे अनुपस्थित रहने की अनुमति देने के लिए अनुरोध किया जाये।[43]

---

40. निम्नलिखित कारणों को अस्पष्ट बताया गया और उन्हें उचित नहीं माना गया और संबंधित सदस्यों से कहा गया कि वे सभा की बैठकों में उनकी अनुपस्थिति के ठीक-ठीक कारणों को स्पष्ट रूप से बतायें:–
    (क) जरूरी काम, जहां यह नहीं बताया गया कि क्या काम है;
    (ख) कोई निजी कार्य, जिसके कारण सदस्य को लगातार अपने निर्वाचन क्षेत्र में उपस्थित रहना था;
    (ग) सदस्य के क्षेत्र में राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक उपद्रव–कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–दूसरी लोक सभा) 19.12.1957 और 30.3.1960 । सदस्य निर्वाचन क्षेत्र के कार्यों में व्यस्त है या सदस्य को अपनी फैक्टरी का काम देखना है जैसे कारण उचित नहीं माने जाते हैं–
    लो.स.वा.वि., 18.3.1974 ।
41. कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–सातवीं लोक सभा 15.4.1983; सातवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–आठवीं लोक सभा) और तीसरा प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति–आठवीं लोक सभा)।
42. *लो.स.वा.वि.,* 23.9.1965, कॉ. 7182-85 ।
43. *देखिए पी. डिबेट्स,* 11.9.1951, कॉ. 2365-66; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 13.2.1953, कॉ. 29-30 और एल.एस. डिबेट्स, 15.2.1956, कॉ. 19 ।

अध्यक्ष द्वारा अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन पत्र और सदस्य की अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन पत्र के बीच प्रक्रिया संबंधी अन्तर केवल इतना है कि अध्यक्ष का आवेदन पत्र संदेश के रूप में होता है जो अध्यक्षता करने वाले व्यक्ति द्वारा सीधे सभा को बता दिया जाता है और सभा इस मामले को सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति के समक्ष रखे जाने से पूर्व तत्काल अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान कर देती है।

जहां अध्यक्ष की अनुपस्थिति अल्प अवधि के लिए हो वहां वह सभा को सूचित नहीं करता है बल्कि उपाध्यक्ष और महासचिव को बता देता है ताकि उपाध्यक्ष या सभापति तालिका के किसी सदस्य द्वारा सभा की बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए आवश्यक व्यवस्था की जाये।

इसी प्रकार जब उपाध्यक्ष को किसी सत्र के दौरान अल्प अवधि के लिए अनुपस्थित रहना हो, तो वह इस बात की सूचना अध्यक्ष को दे देता है।

मंत्रियों को जब अपने मुख्यालय के बाहर अपने कृत्यों का निर्वहन करना अपेक्षित हो या वे ऐसे कारणों से सभा में उपस्थित न रह सकते हों जो उनके नियंत्रण से बाहर हैं तो उन्हें सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति के लिए सभा के पास आवेदन पत्र भेजना आवश्यक नहीं है।

तथापि, ऐसे अवसर आये हैं जब मंत्रियों से अनुपस्थिति की अनुमति के संबंध में प्राप्त आवेदन पत्रों पर विधिवत् विचार किया गया और उन्हें अनुपस्थिति की अनुमति प्रदान की गई।[44]

सामान्यत: जब भी मंत्रीगण लम्बी अवधि तक सभा से अनुपस्थित रहना चाहते हैं तो वे सभा और अध्यक्ष के प्रति शिष्टाचार के नाते अपनी प्रस्तावित अनुपस्थिति की सूचना अध्यक्ष को दे देते हैं।[45]

मंत्रीगण सभा की बैठकों से अपनी अल्प अवधि की अनुपस्थिति की सूचना अध्यक्ष को दे देते हैं और उनकी अनुपस्थिति में उनके नाम से होने वाले संसदीय कार्य के लिए उनके द्वारा किए गए प्रबन्ध की भी जानकारी देते हैं।

ऐसे सदस्यों की अनुपस्थिति जिन्होंने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो

जिस सदस्य ने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो, उसे भी यह अधिकार है कि वह संविधान में बताये गये दंड से बचने के लिए सभा की बैठकों से अनुपस्थिति की अनुमति मांग सकता है।[46]

---

44. *एच.पी. डिबेट्स*(II) 16.9.1953, कॉ. 3804 और सोलहवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति-पहली लोक सभा)।

45. 16 अप्रैल, 1960 को खाद्य तथा कृषि मंत्री (श्री एस.के. पाटिल) ने अध्यक्ष को यह सूचना दी कि चूंकि उन्हें संयुक्त राज्य अमरीका जाना है इसलिए वह सभा की बैठकों में उपस्थित नहीं हो पाएंगे।

46. अप्रैल, 1952 में विधि मंत्रालय से यह पूछा गया था कि उस सदस्य की क्या स्थिति है जिसने शपथ न ली हो और जो सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहा हो। इस संबंध में विधि मंत्रालय

अनुपस्थिति की अनुमति संबंधी आवेदन-पत्रों के निपटान की प्रक्रिया

सदस्यों से प्राप्त सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगने के सभी आवेदन-पत्र सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति के समक्ष रखे जाते हैं और वह उन पर विचार करके अपना प्रतिवेदन देती है।[47]

समिति का प्रतिवेदन उसी दिन सब सदस्यों में परिचालित कर दिया जाता है जिस दिन वह सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

यदि प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशें इस प्रकार की हों कि संबंधित सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति दी जाये या उनकी अनुपस्थिति को माफ किया जाये जैसी स्थिति हो तो सभा में प्रतिवेदन के प्रस्तुत किये जाने के बाद अध्यक्ष सभा की अगली बैठक में इन सिफारिशों के संबंध में सभा की सहमति प्राप्त करता है।

तत्पश्चात् संबंधित सदस्यों को, यथास्थिति, पत्र द्वारा सूचित कर दिया जाता है कि उन्हें अनुपस्थिति की अनुमति दे दी गई है या उनकी अनुपस्थिति माफ कर दी गई है।

जिस दिन सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति दी जाती है या सभा उनकी अनुपस्थिति को माफ कर देती है, उसी दिन उन सभी सदस्यों के नाम और उनकी छुट्टी की अवधि या माफ की गई अनुपस्थिति की अवधि संसदीय समाचार भाग-एक में प्रकाशित कर दी जाती है।

जब अध्यक्ष समिति के प्रतिवेदन में दी गई सिफारिशों पर सभा की सहमति लेता है तो सामान्यत: कोई भी सदस्य उसका विरोध नहीं करता है, परंतु विसम्मति की यदि कोई आवाज उठती है तो अध्यक्ष सभा की राय लेता है और उसके अनुसार फैसला करता है। ऐसा करते समय वह सदस्यों के ध्वनि-मत के आधार पर ही निर्णय करता है और यदि आवश्यक हो, तो इस विषय पर मत-विभाजन की अनुमति भी दे सकता है।

ने निम्नलिखित परामर्श दिया-

"जिस सदस्य ने शपथ न ली हो, वह सभा में नहीं बैठ सकता और सदस्य के रूप में कार्य नहीं कर सकता, परन्तु इस बात का भी कोई कारण नहीं है कि अनुच्छेद 101 के खण्ड(4) के अन्तर्गत अपने स्थान को रिक्त घोषित किए जाने से बचने के लिए अनुपस्थिति की अनुमति न मांगे। उस खण्ड का उद्देश्य केवल यही नहीं होना चाहिए कि विधायक के नाते यदि सदस्य अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करता है तो उसे दंड दिया जाना चाहिए, बल्कि यह भी सुनिश्चित होना चाहिए कि सभा में सभी निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व हो। यदि हम इन में से पहली राय को मानते हैं तो उसका परिणाम यह होगा कि जिस सदस्य ने शपथ नहीं ली है, वह उस सदस्य, जिसने शपथ ली है, से बेहतर स्थिति में होगा क्योंकि अनुच्छेद 101 का खंड(4) बाद वाले सदस्य पर लागू होगा न कि उस पर जिसने शपथ नहीं ली। संविधान का आशय यह तो नहीं हो सकता कि जिस व्यक्ति ने अपने शपथ लेने के कर्त्तव्य की अवहेलना की है, उसको उस व्यक्ति की अपेक्षा अधिक अच्छी स्थिति प्रदान की जाये, जो अपने इस कर्त्तव्य का पालन कर चुका है।"

47. समिति की प्रक्रिया के लिए *देखिए* अध्याय 30—"संसदीय समितियां" के अंतर्गत शीर्षक 'सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति'।

विगत में अध्यक्ष सभा की राय लेते समय सदस्यों को प्रतिवेदन पर मुद्दे उठाने की अनुमति दिया करता था, बशर्ते उन्होंने इसकी लिखित में पूर्व सूचना दी हो।[48] यदि किसी मुद्दे के बारे में कोई सूचना प्राप्त होती थी, तो समिति के सभापति को इसकी जानकारी दे दी जाती थी ताकि वह सभा में किसी उपयुक्त दिन को उस मुद्दे का उत्तर दे सके। हालांकि, इस प्रक्रिया का अब पालन नहीं किया जाता है।

स्थान का रिक्त होना

जब समिति यह सिफारिश करती है कि ऐसे सदस्य, जो सभा की अनुमति के बिना उसकी बैठकों से लगातार 60 दिन या उससे अधिक दिनों तक अनुपस्थित रहा हो, को अनुपस्थिति की अनुमति न दी जाए तो वह यह भी सिफारिश करती है कि उस सदस्य के स्थान को रिक्त घोषित करने के लिए सभा में एक प्रस्ताव पेश किया जाए।[49]

सभा द्वारा समिति का प्रतिवेदन[50] स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात् अगले दिन समिति का सभापति[51] संबंधित सदस्य के स्थान को रिक्त घोषित करने के लिए एक प्रस्ताव पेश करता है।[52]

इस प्रकार का प्रस्ताव या तो सदन के नेता द्वारा या किसी ऐसे सदस्य, जिसे उसने इस संबंध में अपने कृत्य प्रत्यायोजित कर दिए हों[53], द्वारा पेश किया जा सकता है। आजकल प्रथा यह है कि यह प्रस्ताव समिति के सभापति द्वारा पेश किया जाता है।[54]

---

48. सदस्य प्रतिवेदन से संबंधित किन्हीं मुद्दों, जिन्हें वे उठाना चाहते हैं, के बारे में पहले से सूचना दे सकें, के दृष्टिगत प्रतिवेदन के प्रस्तुत किए जाने के बाद संसदीय समाचार में एक पैरा प्रकाशित किया गया था जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि 'जो सदस्य प्रतिवेदन के संबंध में कोई मुद्दा उठाना चाहते हों, उन्हें चाहिए कि उसकी लिखित सूचना संसदीय सूचना कार्यालय को दे दें'।
49. अठारहवां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 9(9)।
50. प्रतिवेदन को सभा में प्रस्तुत किए जाने से पहले अध्यक्ष और सदन के नेता को अनुमोदन के लिए भी भेजा जाता है—*देखिए लो.स.वा.वि.*(II) 4.12.1956, कॉ. 1789 ।
51. मार्च, 1954 में इस समिति के गठन से पहले प्रथा यह थी कि अनुच्छेद 101(4) के अन्तर्गत सदस्य के स्थान को रिक्त घोषित करने के लिए कार्यवाही संसदीय कार्य मंत्री द्वारा की जाती थी, जिसे सदन के नेता ने यह काम सौंप रखा था *देखिए पी. डिबेट्स*(II), 19.4.1950, कॉ. 3023 ।
52. प्रस्ताव में यह बताने की आवश्यकता नहीं होती है कि संबंधित सदस्य सभा की अनुमति के बिना उसकी बैठकों से वास्तव में कितनी अवधि के लिए अनुपस्थित रहा—*लो.स.वा.वि.*, 5.12.1956, कॉ. 1925 ।
53. नियम 241 ।
54. *देखिए लो.स.वा.वि.*, 5.12.1956, कॉ. 1922-26 ।

ऐसे किसी प्रस्ताव पर कोई संशोधन पेश करने की अनुमति नहीं होती है।[55]

प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् महासचिव इस बात की सूचना राजपत्र[56] में छपवाता है। इस अधिसूचना की प्रतियां निर्वाचन आयोग को भेजी जाती हैं ताकि वह इस प्रकार उत्पन्न रिक्ति को भरे तथा ये प्रतियां संबंधित सदस्य, उस क्षेत्र के मुख्य निर्वाचन अधिकारी, जहां से सदस्य निर्वाचित हुआ हो, भारत सरकार के सभी मंत्रालयों और अन्य संबंधित पक्षों को भी भेजी जाती हैं।

जिस तिथि को सभा ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया हो, उसी तिथि से उस सदस्य का स्थान रिक्त हुआ माना जाता है।

अनुपस्थिति की अनुमति की अवधि समाप्त होने से पहले सदस्य के सभा में उपस्थित होने पर अनुपस्थिति की शेष अवधि का व्यपगत होना

यदि कोई सदस्य, जिसे अनुपस्थिति की अनुमति दे दी गई हो, उस अवधि के दौरान सभा के सत्र में उपस्थित हो जाता है जिसकी अनुपस्थिति की अनुमति उसे दी गई है, तो उसकी उपस्थिति के बाद की सारी शेष अनुमति प्राप्त अवधि व्यपगत हो जाती है।[57]

सदस्यों का उपस्थिति संबंधी रिकार्ड

सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति या उपस्थिति संबंधी सारे रिकार्ड या सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति के सभी रिकार्ड महासचिव के अधिकार

---

19 अप्रैल, 1950 को संसदीय कार्य मंत्री द्वारा लोक सभा में पेश किए गए प्रस्ताव के अंतर्गत (एक) श्री रावू स्वेताचलपति रामकृष्ण रंगा राव, (दो) श्री राघिव एहसान, और (तीन) श्री अब्दुल हामिद, अस्थायी संसद के सदस्यों के स्थानों को अनुच्छेद 101(4) के अधीन रिक्त घोषित कर दिया गया।

5 दिसम्बर, 1956 को सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति (लोक सभा) के सभापति द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव के अंतर्गत श्री एस.एन. महापात्रा, पहली लोक सभा के सदस्य, के स्थान को अनुच्छेद 101 (4) के अधीन रिक्त घोषित कर दिया गया।

इसी प्रकार, राज्य सभा में 21 दिसम्बर, 2000 को राज्य सभा द्वारा स्वीकृत एक प्रस्ताव के अंतर्गत श्री बरजिन्दर सिंह हमदर्द के स्थान को अनुच्छेद 101 (4) के अधीन रिक्त घोषित कर दिया गया।

55. *पूर्वोक्त*, कॉ. 1923 ।

56. नियम 241 (2)।

57. नियम 245 ।

में रहते हैं।[58] ऐसे रिकार्ड में शामिल हैं: सदस्यों का उपस्थिति रजिस्टर, सदस्यों की घंटे वार उपस्थिति तथा उनकी कुल उपस्थिति दर्शाने वाला दैनिक और समेकित चार्ट, सदस्यों से प्राप्त अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदन पत्र और समिति के प्रतिवेदन तथा उसकी बैठकों के कार्यवाही सारांश।

सभा के पूरे दिन के लिए स्थगित होने के बाद, उपस्थिति पत्र (अॅटेन्ड्ॅन्स शीट) लॉबी से हटा लिया जाता है। जब कोई सदस्य लिखित रूप से सूचित करता है कि यद्यपि वह सभा में उपस्थित था, किन्तु उस दिन वह उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करना भूल गया था, तो उपस्थिति पत्र में उसे उपस्थित दिखाए बिना उसके मूल वक्तव्य को उपस्थिति पत्र के साथ नत्थी कर दिया जाता है।

सदस्यों की उपस्थिति संबंधी जानकारी देना

पहले जब किसी सदस्य या भूतपूर्व सदस्य से, किन्हीं विशेष दिनों के लिए या किसी विशिष्ट अवधि में सभा में अपनी उपस्थिति के संबंध में सचिवालय के रिकार्ड के आधार पर जानकारी देने का अनुरोध प्राप्त होता था तो उसे यह बताने के लिए कहा जाता था कि उसे यह जानकारी किस प्रयोजन के लिए चाहिए थी[59]। ऐसे प्रत्येक अनुरोध पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाता है।[60] और तदनुसार जानकारी दी जाती थी। तथापि, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 लागू होने से स्थिति में बदलाव आया है। अब सदस्यों की उपस्थिति संबंधी जानकारी सदस्यों और गैर-सदस्यों के अनुरोध पर उन्हें उपलब्ध करायी जा रही है। वस्तुतः चूंकि उपस्थिति रजिस्टर के बारे में जानकारी वेबसाइट पर डाली जा रही है, इसलिए यह पहले से ही सार्वजनिक रूप से अवलोकनार्थ उपलब्ध है। लोकसभा के सदस्यों की उपस्थिति संबंधी जानकारी उन सभी आवेदकों को उपलब्ध करायी जाती है जो सूचना का अधिकार अधिनियम के महत जानकारी मागंते हैं।

सदस्यों की उपस्थिति संबंधी दस्तावेज न्यायालय में प्रस्तुत करना

सभा में किसी सदस्य या किसी भूतपूर्व सदस्य की उपस्थिति संबंधी दस्तावेज सभा की अनुमति से, सचिवालय के किसी अधिकारी द्वारा किसी न्यायालय में पेश किए जा सकते हैं

---

58. नियम 383 ।
59. निदेश 114(1)।
60. निदेश 114(2)।

बशर्ते कि इस संबंध में न्यायालय से अनुरोध प्राप्त हुआ हो।[61] तथापि, जहां इसमें अतंर्ग्रस्त मुद्‌दा निर्णायक रूप से सिद्ध न होता हो वहां उपस्थिति रजिस्टर पेश करने के अनुरोध का अनुपालन नहीं किया जा सकता।[62]

61. 1957 में सचिवालय के एक अधिकारी को बम्बई के एक न्यायालय में संगत दस्तावेज पेश करने के लिए कहा गया था जिनसे अन्य बातों के साथ-साथ यह भी प्रकट होता था कि 14 नवम्बर, 1950 से 9 जून, 1951 तक अन्तरिम संसद का एक भूतपूर्व सदस्य किस-किस तिथि को सभा की बैठकों में उपस्थित था।

62. 12 मार्च, 1964 को उत्तर प्रदेश के गृह-विभाग ने अगस्त-सितम्बर, 1959 का उपस्थिति रजिस्टर जुडिशियल मजिस्ट्रेट इलाहाबाद की अदालत में पेश करने की प्रार्थना की थी ताकि न्यायालय यह पता लगा सके कि एक भूतपूर्व सदस्य उस अवधि में सभा में उपस्थित था या नहीं। राज्य सरकार से यह कहा गया कि वह न्यायालय का ध्यान इस ओर दिलाए कि जब कोई सदस्य सभा की बैठक में उपस्थित होता है तो उसके ऊपर कोई ऐसी कानूनी बाध्यता नहीं है कि वह उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर करे और उस रजिस्टर में किसी सदस्य के हस्ताक्षर का न होना इस बात का भी अकाट्य प्रमाण नहीं है कि सदस्य उस दिन सभा में उपस्थित नहीं था या वह उस दिन दिल्ली में नहीं था।

अध्याय 17

सभा की बैठकें

बैठकों का नियतन

सभा की बैठकें उन दिनों होती हैं जिनका निर्देश अध्यक्ष, सभा के कार्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर दें।[1] "सभा में कार्य की स्थिति" का मतलब है कार्य का

---

1. नियम 13

केन्द्रीय विधान सभा (1921-47) भारत की संविधान सभा (विधायी) और अंतरिम संसद में बैठकें नियत करने के संबंध में यही नियम था- *देखिए विधान सभा के स्थायी आदेश,* 1945 स्था.आ.-99 3(3); *भारत की संविधान सभा,* (*विधायी*) *के नियमों का* नियम 13, और *संसद में प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों* का नियम 9 ।

15 जनवरी, 1983 को संसदीय कार्य मंत्री ने सातवीं लोक सभा के 11वें सत्र के प्रारम्भ होने की तारीख और उसकी अवधि की सूचना देते हुए अध्यक्ष से यह अनुरोध किया कि गुट-निरपेक्ष सम्मेलन को ध्यान में रखते हुए सभा की बैठकें 7 से 10 मार्च, 1983 तक नियत न की जाएं। अध्यक्ष इससे सहमत हुए और उन दिनों कोई बैठक नियत नहीं की गई। इस आशय का एक पाद-टिप्पण बैठकों के अस्थायी तिथि पत्र में दिया गया कि "7 से 10 मार्च, 1983 तक कोई बैठक नहीं होंगी"।

इसी प्रकार 17 अक्तूबर, 1983 को संसदीय कार्य मंत्री ने सातवीं लोक सभा के 13वें सत्र के प्रारम्भ होने की तारीख तथा उसकी अवधि की सूचना देते हुए अध्यक्ष से अनुरोध किया जिसे उन्होंने स्वीकार किया तथा नई दिल्ली में राष्ट्रमंडल देशों के शासनाध्यक्षों के सम्मेलन को ध्यान में रखते हुए 23 से 30 नवम्बर, 1983 तक सभा की बैठकें नियत नहीं की गईं। इस आशय का एक पाद-टिप्पण बैठकों के अस्थायी तिथि पत्र में दिया गया।

आठवीं लोकसभा के बारहवें सत्र के दौरान संसदीय कार्य मंत्री ने 3 अक्टूबर, 1988 को अनुरोध किया जिसे अध्यक्ष ने स्वीकार किया और दीवाली के उपलक्ष्य में 7 नवम्बर से 11 नवम्बर 1988 के दौरान सभा की बैठकें नियत नहीं की गई और तदनुसार एक पाद-टिप्पण अस्थायी तिथि पत्र में दिया गया।

एक अन्य अवसर पर 31 जनवरी, 1994 को इसी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए संसदीय कार्य मंत्री ने दसवीं लोक सभा के 9वें सत्र के प्रारम्भ होने की तारीख और उसकी अवधि की सूचना देते हुए अध्यक्ष से अनुरोध किया कि वह सभा को शुक्रवार, 18 मार्च, 1994 को स्थगित करे जिससे विभागों से सम्बद्ध संसदीय स्थायी समितियां, मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों पर विचार कर सकें और उनके बारे में प्रतिवेदन तैयार कर सकें। अध्यक्ष इससे सहमत हुए और इस आशय का उल्लेख बैठकों के अस्थायी तिथि पत्र में किया गया

महत्व तथा उसका परिमाण।[2]

सामान्यत: एक वर्ष में सभा के तीन सत्र होते हैं जो लगभग 23 से 24 सप्ताह तक चलते हैं और एक वर्ष में सभा की औसतन 120 बैठकें होती हैं। तथापि, 1993 में विभागों से संबंधित संसदीय स्थायी समितियों के गठन के पश्चात् प्रतिवर्ष लोक सभा की वास्तविक बैठकों की संख्या 100 दिनों से कम रही है। संविधान में संसद के सदनों के लिए बैठकों की संख्या विहित नहीं की गई है। नियम पुस्तिका, अर्थात् लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम में भी इस संबंध में कोई उल्लेख नहीं है।[3]

जब अध्यक्ष किसी सत्र की अवधि के संबंध में सरकार का सुझाव स्वीकार कर लेता है तो अध्यक्ष के आदेश से वे दिन नियत किये जाते हैं जब कि सभा की बैठक सरकारी तथा गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य करने के लिए होगी।[4] अध्यक्ष को सभा की बैठक नियत करने का अधिकार है और इसके लिए सरकार की सहमति लेना न तो आवश्यक है और न ही

1994 से बजट सत्र के दौरान सभा में 3 से 4 सप्ताह का अवकाश होता है जिसमें विभागों से संबंधित संसदीय स्थायी समितियाँ मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों पर विचार करती हैं और अपना प्रतिवेदन तैयार करती हैं जिन्हें, अवकाश के बाद जब सभा पुन: समवेत होती है, सभा के समक्ष रखा जाता है।

2. *एल.ए. डिबेट्स,* 22.2.1946, पृ. 1352-56 और 1393-95 ।

3. तथापि हिमाचल प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्यों की विधान सभाओं के प्रक्रिया नियमों में वर्ष के दौरान बैठकों की एक न्यूनतम संख्या का प्रावधान है। उत्तर प्रदेश की विधान परिषद में भी ऐसा ही प्रावधान है।

   चंडीगढ़ में 28 और 29 जून 2001 को 'भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के चौसठवें सम्मेलन' में "प्रक्रियात्मक एकरूपता और सभा के समय का बेहतर प्रबंधन" पर पीठासीन अधिकारियों की समिति का प्रतिवेदन सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी सिफारिश की गई कि "विधानमंडलों की बैठकों की एक-न्यूनतम संख्या के बारे में कोई संवैधानिक प्रावधान होना चाहिए। 100 से अधिक सदस्यों वाले बड़े राज्यों के लिए 100 बैठकें तथा अन्य छोटे राज्यों जिनमें 100 से कम सदस्य हों, 60 बैठकें होनी चाहिए"।

   इसके बाद 25 नवम्बर, 2001 को चंडीगढ़ में हुए प्रमुख राजनीतिक दलों के एक सम्मेलन, जिसमें विभिन्न राज्यों के पीठासीन अधिकारियों और मुख्यमंत्रियों ने भाग लिया, में एक संकल्प स्वीकृत किया गया जिसमें यह सिफारिश की गई कि संसद के लिए 110 दिनों की अनिवार्य बैठकें होंगी तथा बड़े और छोटे राज्यों के विधानमंडलों के लिए क्रमश: 90 और 50 दिनों की बैठकें होंगी, और इस निमित्त संविधान में उपयुक्त संशोधनों का सुझाव भी दिया गया।

4. केन्द्रीय विधानसभा में, प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में प्रस्तावित सरकारी दिनों की सूची अध्यक्ष को उसके अनुमोदन के लिए भेजी जाती थी, *देखिए, फ्रेड्रिक व्हाइट, लेजिसलेटिव असेम्बली मैन्यूअल ऑफ बिजिनेस एंड प्रोसीजर,* पृ. 2 ।

सहमति ली जाती है। तथापि, अध्यक्ष सामान्य तौर पर सभा की आम इच्छा अथवा सभा द्वारा यथास्वीकृत कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसार कार्य करता है।[5]

---

5. पांचवीं लोक सभा का बजट सत्र 22 मई, 1976 को समाप्त होना था। उस दिन की बैठक रद्द करनी पड़ी और यह सत्र 24 से 27 मई तक बढ़ा दिया गया। सभा द्वारा यह कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर किया गया। *लो.स.वा.वि.,* 6.5.1976, पृ. 78, सातवीं लोक सभा का पन्द्रहवां सत्र 24 अगस्त, 1984 को समाप्त होना था। कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सभा 25 और 27 अगस्त, 1984 को भी बैठक करने के लिए सहमत हुई।

[66वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-सातवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 21.8.1984, पैरा 2999]

आठवीं लोक सभा का पहला सत्र 25 जनवरी, 1985 को समाप्त होना था। कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सभा 29 और 30 जनवरी, 1985 को भी बैठक करने के लिए सहमत हुई।

[पहला प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 24.1.1985, पैरा 107]

कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर लोक सभा 4 अप्रैल, 1985 के लिए नियत अपनी बैठक को रद्द करने के लिए सहमत हुई, क्योंकि क्रमशः महावीर जयंती तथा गुड फ्राइडे के उपलक्ष्य में 3 और 5 अप्रैल, 1985 को कोई भी बैठकें नियत नहीं की गई।

[चौथा प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 2.4.1985, पैरा 289]।

आठवीं लोक सभा का तीसरा सत्र 22 अगस्त, 1985 को समाप्त होना था। कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सभा, सत्र को 29 अगस्त, 1985 तक बढ़ाने के लिए सहमत हुई।

[12वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 23.8.1985, पैरा 597]

कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर लोक सभा 27 मार्च, 1986 के लिए नियत अपनी बैठक को रद्द करने के लिए सहमत हुई, क्योंकि क्रमशः होली तथा गुड फ्राइडे के उपलक्ष्य में 26 मार्च और 28 मार्च, 1986 को कोई भी बैठकें नियत नहीं की गई थीं। तदनुसार 27 मार्च के लिए नियत गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य 25 मार्च, 1986 के लिए नियत किया गया।

[22वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 24.3.1986, पैरा 970]

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत किए गए एक प्रस्ताव पर लोक सभा इस बात के लिए सहमत हुई कि 17 मार्च, 1987 के लिए नियत बैठक को रद्द कर दिया जाए। (समाचार-भाग 2, 13.3.1987, पैरा 1567)

संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत किए गए एक प्रस्ताव पर लोक सभा 11 मई, 1987 को भी बैठक करने के लिए सहमत हुई।

(समाचार-भाग 2, 8.5.1987, पैरा 1655)

22 फरवरी, 1946 को एक स्थगन प्रस्ताव पर विचार करने के लिए केन्द्रीय विधान सभा की बैठक नियत करने के संबंध में अध्यक्ष मावलंकर ने बैठकें नियत करने संबंधी

कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर लोक सभा 15 अप्रैल, 1988 के लिए नियत बैठक को रद्द करने के लिए सहमत हुई, क्योंकि क्रमशः वैशाखी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में 13 और 14 अप्रैल, 1988 के लिए कोई बैठक नियत नहीं की गई थी।

[51वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 4.4.1988, पैरा 2204]

भारत द्वारा 89वें अंतर संसदीय सम्मेलन आयोजित किये जाने के कारण लोक सभा कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर 2, 6, 7, 8, 12, 15 और 16 अप्रैल, 1993 के लिए नियत बैठकों को रद्द करने के लिए सहमत हुई।

[26वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 16.3.1993, पैरा 1877]

दसवीं लोक सभा का सातवां सत्र 27 अगस्त, 1993 को समाप्त होना था। कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सभा शनिवार 28 अगस्त, 1993 को अपनी बैठक के लिए सहमत हुई।

[33वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 25.8.1993, पैरा 2367]

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सभा 18 मार्च, 1994 को स्थगित होकर 18 अप्रैल, 1994 को पुनः समवेत होनी थी। कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर, लोक सभा शनिवार, 19 मार्च, 1994 को बैठक करने के लिए सहमत हुई।

[38वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 2.3.1994, पैरा 2832]

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सभा को 2 जून, 1995 को स्थगित होना था। कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर सभा शनिवार, 3 जून, 1995 को अपनी बैठक नियत करने के लिए सहमत हुई।

[51वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा), समाचार-भाग 2, 31.5.1995, पैरा 3982]

ग्यारहवीं लोक सभा का पांचवां सत्र 29 अगस्त, 1997 को समाप्त होना था, लेकिन दलों और समूहों के नेताओं के निर्णय के अनुसार सभा की बैठक शनिवार, 30 अगस्त और सोमवार 1 सितम्बर, 1997 को भी हुई।

कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर शुक्रवार 16 नवम्बर, 2007 के लिए नियत लोक सभा की बैठक रद्द कर दी गई और इसके स्थान पर शनिवार 1 दिसंबर, 2007 के लिए सभा की एक बैठक नियत की गई।

[42वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-चौदहवीं लोक सभा) समाचार भाग-2, 15.11.2007, पैरा 4245]

कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर लोक सभा शुक्रवार, 7 मार्च, 2008 के लिए नियत बैठक को रद्द करने के लिए सहमत हुई।

नियम[6] की व्याख्या के संबंध में यह टिप्पणी की:—

"इसमें सरकार की सहमति का कोई प्रश्न नहीं है और मैं समझता हूँ कि मुझे दिन-प्रतिदिन की बैठकें नियत करने का अधिकार है।"[7]

सत्र के आमंत्रण के साथ सदस्यों को बैठकों का अस्थायी तिथि पत्र भी भेजा जाता है, जिसमें बैठकों का कार्यक्रम दिया जाता है। उसमें उन दिनों का उल्लेख तो होता ही है, जिन दिनों सभा की बैठकें होनी होती हैं, साथ ही इस बात का उल्लेख भी होता है कि सप्ताह

[46वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-चौदहवीं लोक सभा) समाचार भाग-2, 4.3.2008, पैरा 4587]

कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर लोक सभा शुक्रवार, 2 मई 2008 के लिए नियत बैठक को रद्द करने के लिए सहमत हुई।

[48वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-चौदहवीं लोक सभा) समाचार भाग 2, 21.4.2008, पैरा 4740]

पन्द्रहवीं लोक सभा का सातवां (बजट) सत्र 21 अप्रैल, 2011 को समाप्त होना था। सभा को 16 मार्च, 2011 को स्थगित होने के बाद 4 अप्रैल, 2011 को पुन: समवेत होना था ताकि स्थायी समितियां अनुदानों की मांगों पर विचार कर सकें। तथापि कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर चैत्र सुकलड़ी/गुड़ी पड़्व/उगडी/चेती चांद त्यौहार के उपलक्ष्य में सभा की 4 अप्रैल, 2011 के लिये नियत बैठक रद्‌द कर दी गई।

तदनुसार 16 मार्च, 2011 को स्थगित होने के पश्चात् सभा को 4 अप्रैल, 2011 के बजाय 5 अप्रैल, 2011 को समवेत होना था। तदुपरांत कार्यमंत्रणा समिति की सिफारिश पर सत्र का पहला भाग 25 मार्च, 2011 तक बढ़ा दिया गया (अर्थात् 17.3.2011 से 25.03.2011 तक) और सत्र के दूसरे भाग की 5.4.2011 से 21.4.2011 के दौरान होने वाली बैठकें असम, केरल, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल राज्यों तथ पुद्‌दुचेरी संघ राज्यक्षेत्र के विधानसभा चुनावों को ध्यान में रखते हुए रद्‌द कर दी गईं। (23वां प्रतिवेदन, कार्य मंत्रणा समिति-पन्द्रहवीं लोकसभा) समाचार भाग दो, 23.2.2011, पैरा 2508; 25वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पन्द्रहवीं लोक सभा) समाचार भाग दो, 8.3.2011, पैरा 2578)

पन्द्रहवीं लोक सभा का नौंवा सत्र 21 दिसम्बर, 2011 को समाप्त होना था तथापि 5 दिसम्बर, 2011 के लिये नियत सभा की बैठक रदद् किए जाने के कारण कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर 22 दिसम्बर, 2011 को लोक सभा की एक बैठक नियत की गई। कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर ही लोकसभा की 27, 28 और 29 दिसंबर, 2011 के लिये बैठकें नियत की गईं ताकि आवश्यक सरकारी कार्य पूरे करने के लिये पर्याप्त समय मिल जाये।

[30वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—पंद्रहवीं लोकसभा), समाचार-भाग दो, 1.12.2011, पैरा 3437 : 33वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पंद्रहवीं लोक सभा) समाचार-भाग दो, 22.11.2011 पैरा-3559]

3 मई, 2012 को अध्यक्ष की दलों के नेताओं के साथ हुई बैठक में लिये गये निर्णय के अनुसार भारत की संसद की पहली बैठक की 60वीं बैठक की वर्षगांठ के उपलक्ष्य में रविवार, 13 मई, 2012 को सभा की विशेष बैठक नियत की गई।

6. *देखिए विधानसभा का स्थायी आदेश,* 1945 स्था. आ. 3(3)।

7. *एल.ए. डिबेट्स,* 22.2.1946, पृ. 1393-95 ।

के किस-किस दिन बैठक नहीं होगी और किस दिन होगी, और उसमें किस प्रकार का कार्य किया जायेगा, वह कार्य सरकारी होगा या गैर-सरकारी सदस्यों का होगा और इसके अतिरिक्त यह भी बताया जाता है कि सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के संबंध में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कौन-कौन से दिन नियत किये गये हैं। प्रश्नों के उत्तर देने के लिए मंत्रालयों को पांच समूहों में बांट दिया जाता है और सप्ताह के प्रत्येक दिन उनमें से एक समूह के संबंध में प्रश्न पूछे जाते हैं।[8] यह जानकारी भी उस संसदीय समाचार में प्रकाशित की जाती है जिसमें सत्र आरम्भ होने से संबंधित विभिन्न मामलों के संबंध में अन्य जानकारी दी जाती है।[9]

अस्थायी तिथि पत्र में दर्शाये गये और संसदीय समाचार में प्रकाशित बैठकों के कार्यक्रम में आवश्यकता पड़ने पर किसी भी समय परिवर्तन किया जा सकता है और अध्यक्ष उसकी घोषणा सभा में कर सकता है। ऐसे परिवर्तनों की सूचना संसदीय समाचार में भी प्रकाशित की जाती है।

> तीसरी लोक सभा के ग्यारहवें सत्र से सामान्यत: शनिवार को सभा की बैठक नियत नहीं की जाती है चाहे सप्ताह में कोई छुट्टी ही क्यों न आती हो।[10] तथापि, यदि शनिवार फरवरी का अंतिम कार्य दिवस है तो उस दिन सामान्य बजट प्रस्तुत करने के लिए सभा की बैठक शाम के 5 बजे नियत की जाती है।[11]
>
> सरकारी कार्यालयों में 1985 के मध्य से पांच दिन का सप्ताह करने के सरकारी निर्णय के फलस्वरूप हर शनिवार की छुट्टी रहने लगी है। तदनुसार आठवीं लोक सभा के आठवें सत्र के लिए बैठकों का अस्थायी तिथि पत्र बनाते समय शनिवार 28 फरवरी, 1987 को कोई बैठक नियत नहीं की गई थी किन्तु संसदीय कार्य मंत्री के सुझाव पर अध्यक्ष विशिष्ट रूप से वर्ष 1987-88 का सामान्य बजट प्रस्तुत करने के लिए शनिवार, 28 फरवरी, 1987 को सायं 5 बजे सभा की बैठक बुलाने के लिए सहमत हो गए और तदनुसार सदस्यों को संसदीय समाचार के माध्यम से सूचित कर दिया गया था।

---

8. 12 नवम्बर, 1962 से पहले भारत सरकार के मंत्रालयों को तीन समूहों में बांटा गया था और संबंधित मंत्रियों ने बारी-बारी से प्रश्नों के उत्तर दिऐ थे-*देखिए* संसदीय समाचार, 22.5.1961 ।
9. *देखिए* समाचार-भाग 2, 5.6.1965 ।
10. तीसरी लोक सभा के दसवें सत्र तक यह प्रथा थी कि यदि सप्ताह के दौरान कोई छुट्टी हो अथवा सप्ताह के बीच से सत्र प्रारम्भ हुआ हो तो उस सप्ताह में सभा की बैठक शनिवार को नियत की जाती थी। *देखिए,* संसदीय समाचार भाग 2, 30.6.1956, पैरा 336-38; 9.8.1956, पैरा 3464-66, पहले बैठकें उस स्थिति में शनिवार को भी नियत की जाती थीं, जब सभा की बैठक सप्ताह में किसी दिन किसी सदस्य के निधन अथवा अन्य किसी कारण से कोई कार्य किए बिना स्थगित हो गयी हो-लो.स.वा.वि., 9.8.1956, पृ. 799; 1.12.1961, पृ. 1257।
11. वर्ष 2000 से सामान्य बजट प्रस्तुत किए जाने का समय सायं पांच बजे से बदलकर पूर्वाह्न 11 बजे कर दिया गया है।

कभी-कभी सभा की बैठकें शनिवार को नियत की जाती हैं ताकि सभा बढ़ते हुए सरकारी कार्य को निपटा सके। अतिरिक्त बैठक नियत करने का अनुरोध संसदीय कार्य मंत्री द्वारा किया जाता है और उस पर कार्य-मंत्रणा समिति द्वारा विचार किया जाता है। समिति एक प्रतिवेदन तैयार करती है जिसे सभा द्वारा स्वीकृत किया जाता है।[12] यदि समिति के पास बैठक बुलाने तथा प्रस्ताव पर विचार करने के लिए समय नहीं होता है तो बैठक का नियतन अध्यक्ष द्वारा सभा की राय जानने के बाद किया जाता है।

लोक सभा में वे सभी छुट्टियां होती हैं जो भारत सरकार में होती हैं। उनके अतिरिक्त लोक सभा में रक्षाबंधन, महाशिवरात्रि, मई दिवस (पहली मई), वैशाखी, गुरू रविदास जयन्ती, रामनवमी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर जयन्ती के दिन भी छुट्टी होती है।[13] बैठकें नियत करते समय भारत सरकार की अन्य प्रतिबंधित छुट्टियों का ध्यान नहीं रखा जाता है।[14] जब भी किसी सत्र के दौरान भारत सरकार तदर्थ आधार पर छुट्टी की घोषणा करती है तो अध्यक्ष उस अवसर का ध्यान रखते हुए, जिसके उपलक्ष्य में छुट्टी की घोषणा की गयी हो, इस प्रश्न पर विचार करता है कि वह छुट्टी लोक सभा में भी की जाये या नहीं।[15] यदि यह फैसला कर लिया जाये कि ऐसे किसी दिन को लोक सभा में भी छुट्टी की जाये तो उसके बदले सभा की बैठक सप्ताह में उस दिन रखी जा सकती है, जिस दिन कोई और बैठक पहले से नियत न हो।

विशेष परिस्थितियों में सभा की बैठक किसी छुट्टी के दिन भी नियत की जा सकती है।[16] कई बार सभा की बैठकें सत्र के लिए निर्धारित अंतिम तिथि से आगे भी बढ़ा दी

---

12. उदाहरण के लिए *देखिए* चौथी लोक सभा की कार्य-मंत्रणा समिति का 10वां तथा 11वां प्रतिवेदन जिन पर क्रमश: 8.12.1967 तथा 15.12.1967 को सभा द्वारा सहमति प्राप्त की गई। चौथी लोक सभा की कार्य मंत्रणा समिति का 27वां प्रतिवेदन जिस पर 13.12.1968 को सभा की सहमति प्राप्त की गई।
13. लोक सभा में रक्षाबंधन के दिन छुट्टी होनी चाहिए, यह निर्णय सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने 28 जुलाई, 1956 को लिया था। अन्य दिनों की छुट्टियों के बारे में *देखिए लो.स.वा.वि.,* 5.3.1970, पृ. 134 (*महाशिवरात्रि के* लिए); लो.स.वा.वि., 27.4.1972, पृ. 79-80; 28.4.1972, पृ. 114 (*मई दिवस के* लिए); और लो.स.वा.वि., 26.3.1973, पृ. 121 (*वैशाखी* के लिए); लो.स.वा.वि., 18.2.1981 (*गुरू रविदास जयन्ती* के लिए); और सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति की सिफारिशें, दिनांक 30.4.1982 (*रामनवमी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर जयन्ती* के लिए)।
14. *एल.एस. डिबेट्स* 7.3.1965, कॉ. 1894-95 ।
15. उदाहरण के लिए, भारत सरकार ने यह घोषणा की कि 20.3.1958 को दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र के सारे कार्यालय बंद रहेंगे, जिससे कि सरकारी कर्मचारी उस दिन होने वाले दिल्ली नगर निगम के चुनावों में निर्वाचन अधिकारी और मतदान अधिकारियों के रूप में कार्य कर सकें। उस दिन के लिए अनन्तिम रूप से नियत लोक सभा की बैठक रद्द नहीं की गई थी क्योंकि वह किसी त्यौहार के लिए आम छुट्टी का दिन नहीं था।
16. भारत सरकार ने *बुद्ध पूर्णिमा* के उपलक्ष्य में 13.5.1957 को छुट्टी की घोषणा कर दी थी लेकिन उस दिन राष्ट्रपति ने संसद के दोनों सदनों के सामने अपना अभिभाषण दिया और लोक सभा की बैठक हुई।

जाती हैं।[17] सत्र की अवधि इस प्रकार बढ़ाने का कार्य हमेशा सत्र के प्रारम्भ हो चुकने के बाद ही किया जाता है। इस संबंध में एक प्रस्ताव सदन का नेता अध्यक्ष को भेजता है। उसके बाद अध्यक्ष उसे कार्य-मंत्रणा समिति के सामने रखता है जो कि इस संबंध में सभा को रिपोर्ट देती है। सभा में समिति का प्रतिवेदन स्वीकार कर लिये जाने पर सत्र के बढ़ाये जाने के संबंध में एक पैरा संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है। इसके साथ ही एक और पैरा प्रकाशित किया जाता है, जिसमें यह दर्शाया जाता है कि सत्र की जो अवधि बढ़ाई गई है उसके दौरान कौन-कौन सी अतिरिक्त बैठकें नियत की गयी हैं।[18] जब कार्य मंत्रणा समिति के पास बैठक करने का समय न हो तो (एक) अध्यक्ष द्वारा सभा में घोषणा[19] करने के बाद अथवा (दो) सभा द्वारा प्रस्ताव स्वीकार करके अथवा (तीन) मंत्री के सुझाव[20] पर सभा की सहमति ले कर सत्र की अवधि बढ़ायी जाती है। इसके साथ ही यह सूचना सदस्यों की जानकारी के लिए संसदीय समाचार में प्रकाशित की जाती है।

कोई बैठक रद्द भी की जा सकती है। इसकी आवश्यकता तभी पड़ सकती है जबकि कोई कार्य करने को रह न गया हो या सरकार यह समझे कि सरकार के सभी निर्धारित कार्य सत्र की अंतिम तिथि के पहले ही समाप्त हो जायेंगे, या किसी कारण से भी बैठक रद्द करने की आवश्यकता पड़ सकती है।[21] अध्यक्ष को यह निर्णय करने की शक्ति है कि किसी दिन सरकारी कार्य करने के लिए सभा की बैठक की जाये या नहीं।

इसी प्रकार भारत सरकार ने *रामनवमी* के उपलक्ष्य में 29 मार्च, 1977 को छुट्टी की घोषणा कर दी, परन्तु उस दिन लोक सभा की बैठक हुई।

17. संसदीय कार्य मंत्री ने (1) 19 से 23 अप्रैल, 1976 तक सभा की बैठकें रद्द करने, (2) सत्र की अवधि 22 मई, 1976 तब बढ़ाने जिस अवधि के दौरान कोई प्रश्न काल नहीं रखा गया और (3) वित्तीय कार्यक्रम पुन: नियत करने के बारे में 19 मार्च, 1976 को सभा में एक वक्तव्य दिया। सभा इस पर सहमत हुई-*लो.स.वा.वि.,* 19.3.1976, पृ. 88 ।

18. समाचार भाग-2, 13.12.1952, पैरा 650; 23.4.1954, पैरा 1290; 24.1.1985, पैरा 107; 23.8.1985, पैरा 597; 13.8.1986; पैरा 1241; 31.3.1993, पैरा 1931 और 23.12.1993, पैरा 2623 ।

19. *देखिए* समाचार भाग-2, 6.8.1957 और *लो.स.वा.वि.,* 6.8.1957, पृ. 3257, समाचार भाग-2, 8.5.1987, पैरा 1655 और 11.5.1987, पैरा 1659 ।

20. समाचार भाग-2, 10.12.1987, पैरा 2009; 9.1.1991, पैरा 1037; और 11.6.1996, पैरा 87 ।

21. 15 दिसम्बर, 1950 को उपाध्यक्ष ने सरदार वल्लभ भाई पटेल के निधन का उल्लेख करने के बाद सभा को उस दिन के लिए स्थगित कर दिया और यह घोषणा की कि 16.12.1950 के लिए पहले नियत की गई बैठक रद्द कर दी गई है। *देखिए पी. डिबेट्स,* 15.12.1950, कॉ. 1832 ।

6 फरवरी, 1952 शाम के 5 बजे से ठीक पहले जबकि राष्ट्रपतीय तथा उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन विधेयक पर वाद-विवाद चल रहा था तो प्रधान मंत्री ने सभा को सम्राट जार्ज षष्टम

के निधन की सूचना दी और यह सुझाव दिया कि अगले दिन अर्थात् 7.2.1952 के लिए नियत बैठक रद्द कर दी जाये। अध्यक्ष ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया- *देखिए पी. डिबेट्स* (2), 6.2.1952, कॉ. 96 ।

10 सितम्बर, 1957 को कार्य की बहुत सी मदें निर्धारित समय से पहले निपटा ली गई थीं, इसलिए अध्यक्ष ने 14 सितम्बर, 1957 के लिए पहले से नियत बैठक को रद्द करने की घोषणा कर दी— *देखिए लो.स.वा.वि.,* 10.9.1957, पृ. 5865 ।

संसदीय कार्य मंत्री ने 12 अप्रैल, 1976 के लिए नियत सभा की बैठक *महावीर जयंती* के उपलक्ष्य में रद्द करने का सुझाव दिया। सभा इस बात से सहमत हुई—*लो.स.वा.वि.,* 8.4.1976, पृ. 54 ।

सातवीं लोक सभा का आठवां सत्र 6 मई, 1982 को समाप्त होना था। परन्तु लोक सभा 30 अप्रैल, 1982 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई और 3, 4, 5 और 6 मई, 1982 के लिए नियत बैठकें रद्द कर दी गईं, समाचार-भाग 2, 30.4.1982, पैरा 1622 ।

आठवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के दूसरे भाग को 16 अक्तूबर, 1989 को समाप्त होना था। परन्तु लोक सभा 13 अक्तूबर, 1989 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई और 16 अक्तूबर, 1989 के लिए नियत बैठक को रद्द समझा गया।

नौवीं लोक सभा का सातवां सत्र निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 10 मई, 1991 को समाप्त होना था। लेकिन लोक सभा की बैठक 12 मार्च, 1991 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई- [फा.सं. 37/1 (VII)/91/7] । कार्यक्रम के अनुसार दसवीं लोक सभा का दसवां सत्र 16 जून, 1994 को समाप्त होना था। तथापि लोक सभा की बैठक 14 जून, 1994 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई तथा 15 और 16 जून, 1994 के लिए नियत बैठकें रद्द हो गईं। [फा.सं. 37/1 (X)/94/टी] ।

ग्यारहवीं लोक सभा का पहला सत्र 31 मई, 1996 को समाप्त होना था। तथापि, लोकसभा की बैठक 28 मई, 1996 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई तथा 30 और 31 मई, 1996 के लिए नियत बैठकें रद्द हो गईं [फा. सं. 37/1(1) 96/टी]।

ग्यारहवीं लोक सभा का छठा सत्र 19 दिसम्बर, 1997 को समाप्त होना था तथापि प्रधान मंत्री के त्यागपत्र के कारण लोक सभा की बैठक 2 दिसम्बर, 1997 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई।

चौदहवीं लोक सभा का ग्यारहवां सत्र 14 सितम्बर, 2007 को समाप्त होना था। तथापि लोक सभा 10 सितंबर, 2007 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गयी और आगामी दिनों अर्थात् 11, 12, 13 और 14 सितंबर, 2007 के लिए नियत बैठकों को रद्द मान लिया गया।

चौदहवीं लोक सभा का तेरहवां सत्र 9 मई, 2008 को समाप्त होना था, तथापि लोक सभा 5 मई, 2008 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गयी और आगामी दिनों अर्थात् 6, 7, 8 और 9 मई, 2008 के लिए नियत बैठकों को रद्द मान लिया गया।

पंद्रहवीं लोक सभा का तीसरा सत्र 21 दिसम्बर को समाप्त होना था। तथापि लोक सभा 18 दिसम्बर 2009 को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित हो गई और सोमवार 21 दिसम्बर के लिए नियत बैठक रद्द हो गई। (फा. सं. 37/1 (iii) 2009/टी)

सत्र के दौरान किसी दिन विशेष के लिए नियत सभा की बैठक उस सत्र के प्रारम्भ होने से पहले भी रद्द की जा सकती है और उसके बदले नई बैठक नियत की जा सकती है।[22] जब कोई बैठक रद्द की जाती है, तो उसकी घोषणा अध्यक्ष द्वारा सभा में की जाती है और संसदीय समाचार में इस संबंध में एक पैरा प्रकाशित किया जाता है।[23] उन मामलों में जहां ये दोनों बातें करना संभव न हो, सभा में केवल घोषणा करना या केवल संसदीय समाचार में एक पैरा प्रकाशित करना ही काफी समझा जाता है।

शुक्रवार को या यदि शुक्रवार अवकाश का दिन हो, तो सप्ताह के किसी और दिन बैठक के अंतिम ढाई घंटे गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य करने के लिए रखे जाते हैं।[24]

बैठक प्रारंभ होने का समय

सभा की बैठकें जब तक अध्यक्ष अन्यथा निर्देश न दे, सामान्यत: पूर्वाह्न 11 बजे प्रारम्भ होती हैं[25] और बैठक का सामान्य समय पूर्वाह्न 11 बजे से अपराह्न एक बजे तक और अपराह्न 2 बजे से सायं 6 बजे तक होता है तथा अपराह्न 1 बजे से 2 बजे तक का मध्याह्न भोजनावकाश होता है।[26] किंतु ऐसे अवसर आये हैं जब सभा की बैठक मध्याह्न भोजनावकाश के दौरान चलती रही, ताकि सरकारी तथा अन्य कार्य करने के लिए अतिरिक्त समय प्रदान किया जा सके। बजट सत्र के दौरान सामान्य तौर पर कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश और सभा द्वारा उस पर सहमति दिए जाने पर, अनुदानों की मांगों पर विचार शुरू करने के समय से लेकर वित्त विधेयक के पारित होने तक भोजनावकाश को निलंबित कर

पंद्रहवीं लोक सभा का तेरहवां सत्र 10 मई 2013 को समाप्त होना था। तथापि लोक सभा 8 मई 2013 को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित हो गई थी। 9 तथा 10 मई, 2013 के लिए नियत बैठकें रद्द हो गईं। (फा. सं. 37/1 (xiii)/2013/टी)

22. 23 जुलाई, 1956 के लिए नियत की गई सभा की बैठक 30 जून, 1956 को रद्द कर दी गई जबकि जिस सत्र के लिए वह बैठक नियत की गई थी, वह 16 जुलाई, 1956 से प्रारम्भ होनी थी। उस बैठक के बदले नई बैठक 28 जुलाई, 1956 के लिए नियत की गई-*देखिए* समाचार-भाग दो, 30.6.1956, पैरा 3336 और 3337 ।

23. *लो.स.वा.वि.* (II), 9.8.1956, कॉ 2550, *एल.एस. डिबेट्स,* 10.8.1957, कॉ. 2987-89 और इन दोनों दिन जारी किये गये संसदीय समाचार ।

24. नियम 26 ।

25. नियम 12 ।

1929 में स्थायी आदेशों संबंधी प्रवर समिति की सिफारिश पर सभा की बैठक प्रारम्भ होने के समय को बदलने की शक्ति अध्यक्ष को दी गई थी। *देखिए एल.ए. डिबेट्स* (1), 1929, पृ. 761-63 और गजट (5), 2.4.1929 ।

26. बैठकों के ये समय 27 मार्च, 1967 से लागू किये गये–*देखिए* समाचार-भाग दो, 23.3.1967, पैरा 53 । इससे पहले 10 सितम्बर, 1954 से सभा की बैठक लगातार प्रात: 11 बजे से सायं 5 बजे तक होती थी और बीच में मध्याह्न भोजन अवकाश नहीं होता था।

दिया जाता है ताकि वित्तीय कार्य पर चर्चा करने के लिए अधिक समय उपलब्ध कराया जा सके।[27]

सदस्यों को किसी सत्र की बैठकों के प्रारंभ होने और समाप्त होने के सामान्य समय की सूचना संसदीय समाचार के माध्यम से दी जाती है। इस सूचना के साथ ही उन्हें सत्र के प्रारंभ होने से संबंधित विभिन्न विषयों के संबंध में भी जानकारी दी जाती है। जहां तक प्रतिदिन बैठक के प्रारंभ होने के समय का संबंध है, अध्यक्ष बैठक को स्थगित करते समय यह भी बताता है कि सभा की अगली बैठक किस तिथि को तथा कितने बजे प्रारंभ होगी। यह बात संबंधित संसदीय समाचार और सभा के उस दिन के कार्यवाही वृत्तांत में भी बतायी जाती है।

सभा की बैठक आरम्भ होने का समय, अध्यक्ष के निर्देश के अंतर्गत स्थिति के अनुसार बदला जा सकता है।[28]

> पहली लोक सभा में सभा की बैठकें प्रयोगात्मक रूप से भिन्न-भिन्न समय पर प्रारम्भ की गईं। सभा की बैठक पूर्वाह्न सवा आठ बजे से लेकर अपराह्न दो बजे तक के बीच विभिन्न समय पर आरंभ करने के प्रयोग किये गये, हालांकि नियमों में यह व्यवस्था थी कि बैठक पूर्वाह्न पौने ग्यारह बजे प्रारंभ होगी।[29] सभा प्रारंभ करने के नये समय में यह कठिनाई देखी गयी कि अधिक कार्य निबटाने के लिये यदि किसी दिन अधिक समय की आवश्यकता पड़ती थी, तो वह नहीं मिल पाता था। तदनुसार 1954 में अध्यक्ष श्री मावलंकर ने सदस्यों और सदन के नेता की सहमति से यह घोषणा की कि 10 सितम्बर, 1954 से सभा की बैठक बिना किसी मध्यावकाश के पूर्वाह्न 11 बजे से लेकर सायं 5 बजे तक होगी।[30] 1956 में संबंधित नियम को उस समय विद्यमान प्रथाओं के अनुरूप बनाया गया। सितम्बर 1954 के बाद से सभा की बैठक के प्रारंभ होने के समय में कुछ विरले अवसरों को छोड़कर कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। तथापि, सभा की बैठकों के समय में 27 मार्च, 1967 से परिवर्तन कर दिया गया। 23 मार्च, 1967 को अध्यक्ष ने सभा

---

27. 50वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति)-(आठवीं लोक सभा), पहला प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-बारहवीं लोक सभा), दूसरा प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-बारहवीं लोक सभा), तीसरा प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-बारहवीं लोक सभा), आठवां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-बारहवीं लोक सभा), तीसरा प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-चौदहवीं लोक सभा)।
28. नियम 12 ।
29. 1920 से 1948 तक सभा की बैठक प्रारंभ होने का समय, नियमों में की गयी व्यवस्था के अनुसार, पूर्वाह्न 11 बजे था। 1948 में इस समय को बदलकर पूर्वाह्न पौने ग्यारह बजे कर दिया गया-*देखिए* संविधान सभा (विधायी) के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम, नियम 12 ।
30. *देखिए लो.स.वा.वि.* (II), 8.9.1954, कॉ. 1248-52 । लेकिन, 1956 में बैठक के प्रारंभ होने के समय से संबंधित नियम में संशोधन कर दिया गया-*देखिए* कार्यवाही सारांश (नियम समिति) 14.12.1956, पैरा 5, समाचार-भाग 2, 24.12.1956, पैरा 3935; और *लो.स. अधि.स.* 715-सी.1/56, 24.12.1956, राजपत्र असाधारण (1-1), 24.12.1956 ।

को सूचित किया कि 21 मार्च, 1967 को उन्होंने विपक्षी दलों के नेताओं तथा संसदीय कार्य राज्य मंत्री के साथ बैठक की थी, जिसमें सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया था कि सभा की बैठक अपराह्न 1 बजे से अपराह्न 2.00 बजे तक मध्याह्न भोजनावकाश के लिए स्थगित रहेगी और इस वजह से सभा की बैठकों का संशोधित समय 11.00 बजे से पूर्वाह्न 1.00 बजे और अपराह्न 2.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक होना चाहिए। सभा की बैठकों का समय 8 मई, 1979 से सत्र की समाप्ति अर्थात् 18 मई, 1979 तक पूर्वाह्न 10.30 बजे से सायं 6.30 बजे तक नियत किया गया।[31]

असाधारण स्थिति में सभा की बैठक के प्रारम्भ होने का समय बदला जा सकता है।[32] यह परिवर्तन या तो सदस्यों के इस अनुरोध पर किया जा सकता है कि वे किसी धार्मिक उत्सव[33] या किसी समारोह में भाग लेना चाहते हैं, हालांकि यह प्रार्थना सदा स्वीकार नहीं की जाती है[34] अथवा यह परिवर्तन कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश के अनुसरण में किया जा सकता है जिसमें कि यह कहा गया हो कि कार्य की कुछ मदें ऐसी हैं जिन पर विचार करने और उनका फैसला करने के लिए अधिक समय की आवश्यकता है।[35] सभा की बैठक की

---

31. *लो.स.वा.वि.,* 7.5.1979, पृ. 148-53 ।
32. 3 दिसम्बर, 1971 की शाम को पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया। 4 दिसम्बर, 1971 को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि वह प्रधान मंत्री द्वारा विपक्ष के नेताओं के साथ की गई एक बैठक के फलस्वरूप उत्पन्न इस प्रस्ताव से सहमत हैं कि सोमवार, 6 दिसम्बर, 1971 से सत्र की समाप्ति तक (एक) लोक सभा की बैठक पूर्वाह्न 10 बजे से अपराह्न 1 बजे तक होगी; और (दो) कोई प्रश्न काल नहीं होगा तथा कोई ध्यानाकर्षण प्रस्ताव नहीं रखे जायेंगे। उपर्युक्त निर्णय 23 दिसम्बर, 1971 को सत्र की समाप्ति तक लागू रहा। *लो.स.वा.वि,* 4.12.1971, पृ. 37 और समाचार-भाग 2, 4.12.1971, पैरा 455 ।
33. *देखिए, पी. डिबेट्स* (II), 19.8.1953, कॉ. 1166; और समाचार-भाग 2, 20.8.1953, पैरा 776 ।
34. 7 दिसम्बर, 1955 को कुछ सदस्यों ने यह अनुरोध किया था कि 14 दिसम्बर, 1955 को सूर्य ग्रहण होने के कारण सभा के प्रारम्भ होने का समय बदल दिया जाये। अध्यक्ष ने यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया।
35. *लो.स.वा.वि.* (II), 1.3.1956, पृ. 535 और समाचार-भाग 2, 1.3.1956, पैरा 2898, *लो.स.वा.वि.,* (II), 5.9.1956, पृ. 1914 ।

    बैठक प्रारंभ करने का समय थोड़ा पहले रखा गया ताकि सभा 11 बजे भारत के स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हुए व्यक्तियों की याद में दो मिनट का मौन रख सके (i) 30.1.1976, *देखिए* समाचार-भाग 2, 29.1.1976, पैरा 2619, (ii) 30.1.1980, *देखिए* समाचार-भाग 2, 29.1.1980, पैरा 65 और (iii) 30.1.1985, *देखिए,* समाचार-भाग 2, 29.1.1985, पैरा 127, और (iv) शहीदी दिवस के अवसर पर 30 जनवरी, 2004 को तेरहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के दूसरे भाग के दौरान, लोक सभा की बैठक पूर्वाह्न 11 बजे के स्थान पर मध्याह्न 12 बजे आरंभ हुई। *एल.एस. डिबेट्स,* 30.1.2004, *देखिए* समाचार-भाग 2, 28.1.2004, पैरा 4436।

अवधि में परिवर्तन या तो कार्य-मंत्रणा समिति की, सभा द्वारा स्वीकृत सिफारिश या, अध्यक्ष द्वारा घोषणा किए जाने के किया जाता है। कार्यमंत्रणा समिति का प्रतिवेदन स्वीकार किये जाने या अध्यक्ष द्वारा घोषणा किये जाने के बाद, यथास्थिति, संसदीय समाचार में एक पैरा भी प्रकाशित किया जाता है, जिसके माध्यम से सदस्यों को परिवर्तित समय की सूचना दी जाती है।[36]

जिस दिन राष्ट्रपति संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों के सामने अभिभाषण देते हैं उस दिन लोक सभा की बैठक राष्ट्रपति का अभिभाषण समाप्त होने के आधे घंटे बाद प्रारंभ होती है।

असाधारण मामालों में, किसी दिन सभा की बैठक प्रारंभ होने का समय तदर्थ आधार पर नियत किया जा सकता है। ऐसा, उस दिन किये जाने वाले कार्य के स्वरूप को ध्यान में रखकर किया जाता है।[37]

किसी सम्मानित विदेशी अतिथि या उसके आने के संबंध में आयोजित किसी समारोह के कारण सभा की बैठक प्रारंभ होने का निर्धारित समय नहीं बदला जाता।[38]

बैठक का प्रारंभ

सभा की बैठक तभी विधिवत् गठित होती है जब कि उसमें अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य पीठासीन हो जो संविधान अथवा नियमों के अंतर्गत सभा की बैठक में पीठासीन होने के लिए सक्षम हो।[39] इसलिये यह आवश्यक है कि सभा की बैठक प्रारम्भ होने के लिए नियत समय पर और जब तक बैठक चले तब तक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या सभापति-तालिका का कोई सदस्य सभा की अध्यक्षता करे। यदि ऐसा कोई व्यक्ति उपस्थित न हो तो ऐसा अन्य व्यक्ति जो लोक सभा द्वारा अवधारित किया जाए, अध्यक्ष के रूप में कार्य कर सकता है।[40]

---

36. *पी. डिबेट्स* (II), 19.4.1951, कॉ. 7041-42 और समाचार-भाग 2, 19.4.1951, पैरा 268; *लो.स.वा.वि.,* 23.3.1967, पृ. 251 और समाचार-भाग 2, 23.3.1967, पैरा 53, चौथा प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—पांचवीं लोक सभा) 1971, कॉ-163-64 समाचार-भाग 2, 4.12.1971 और समाचार-भाग 2, 6.12.1996, पैरा 692 ।
37. *लो.स.वा.वि.,* 11.5.1957, पृ. 15; 28.2.1959 (शनिवार) को सभा की बैठक सायं 5.00 बजे प्रारंभ हुई, *देखिए लो.स.वा.वि.,* 28.2.1959, पृ. 1 और *लो.स.वा.वि.,* 27.2.1965, पृ. 737; 17.12.1971, पृ. 27; 29.2.1992 और 27.2.1993, कॉ. 1 ।
38. अफगानिस्तान के सम्राट को 11 फरवरी, 1958 को दिल्ली पहुंचना था। यह सुझाव नहीं माना गया कि इस दिन सभा की बैठक पूर्वाह्न 11 बजे की बजाय दोपहर बाद प्रारंभ हो।
39. नियम 11 ।
40. अनुच्छेद 95 (2)

    24 नवम्बर, 1977 को सभा की सहमति के बाद एक सदस्य (श्री. सी.एम. स्टीफन) ने कुछ समय के लिए सभा की बैठक की अध्यक्षता की क्योंकि अध्यक्ष को कार्यमुक्त करने के लिए उपाध्यक्ष या सभापति तालिका का कोई सदस्य उपलब्ध नहीं था। *लो.स.वा.वि.,* 24.11.1977, पृ. 139 ।

सभा की बैठक गठित करने के लिये मंत्रियों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है।[41]

राष्ट्रपति का अभिभाषण सुनने के लिये संसद के दोनों सदनों के एक साथ समवेत होने को सभा या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसकी अध्यक्षता अध्यक्ष नहीं करता है।[42]

अध्यक्ष या सभा की बैठक में पीठासीन होने के लिये सक्षम किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सभा की बैठक प्रारंभ होते समय अध्यक्ष का आसन ग्रहण करने से पहले यह सुनिश्चित कर लिया जाता है कि सभा में गणपूर्ति हो। यदि गणपूर्ति नहीं है तो घंटी बजाई जाती है और बैठक का प्रारंभ उतने समय के लिये रुक जाता है, जितना कि गणपूर्ति करने में लगता है।[43]

---

11 अगस्त, 1982 को सभा उपाध्यक्ष के इस सुझाव पर सहमत हो गई कि एक सदस्य (श्री रतन सिंह राजदा) कुछ समय के लिए अध्यक्ष के तौर पर कार्य करें क्योंकि उन्हें कार्यमुक्त करने के लिए सभा में सभापति तालिका का कोई भी सदस्य उपलब्ध नहीं था। *लो.स.वा.वि.,* 11.8.1982, कॉ 535 ।

3 मार्च 1984 को एक सदस्य (श्री एम.सी. डागा) ने अध्यक्ष को कार्यमुक्त किया था क्योंकि सभा में न तो उपाध्यक्ष और न ही सभापति तालिका का कोई सदस्य उपस्थित था। *लो.स.वा.वि.*, 3. 3.1984, कॉ 3058, 82 ओर 97 ।

श्री एम.सी. डागा ने उपाध्यक्ष को कार्यमुक्त किया था क्योंकि सभापति तालिका का कोई भी सदस्य सभा में उपस्थित नहीं था। *लो.स.वा.वि.,* 8.5.1984, रात्रि लगभग 8.35 बजे। लो.स.वा.वि., 13.12.1985, अपराह्न लगभग 3.55 बजे और *लो.स.वा.वि.* 17.11.1986, अपराह्न लगभग 3.57 बजे।

10 मार्च 2008 को, सभापति, (श्री वरकला राधाकृष्णन) जो अध्यक्षपीठ पर आसीन थे, ने सुझाव दिया कि चूंकि सभापति तालिका का कोई भी सदस्य उपलब्ध नहीं है, श्री सी.के. चन्द्रप्पन कुछ समय के लिए अध्यक्षता कर सकते हैं। इस पर सभा ने सहमति दे दी। तदनुसार, श्री सी.के. चन्द्रप्पन ने सायं 8.58 बजे से रात्रि 9.07 बजे तक, जब सभापति तालिका के एक सदस्य (श्री वरकला राधाकृष्णन) ने उन्हें कार्यमुक्त किया, बैठक की अध्यक्षता की। एल.एस. डिबेट्स, 10.3.2008।

23 अक्तूबर 2008 को लगभग 6.01 बजे सभापति (श्री वरकला राधाकृष्णन) जो अध्यक्षपीठ पर आसीन थे, ने सुझाव दिया कि चूंकि सभापति तालिका का कोई भी सदस्य उपलब्ध नहीं है, कोई वरिष्ठ सदस्य कुछ समय के लिए अध्यक्षता कर सकता है, इस पर सभा ने सहमति दे दी। तदनुसार, श्री पी.एस. गढ़वी ने सायं 6.02 बजे से सायं 6.07 बजे तक, जब सभापति तालिका के एक सदस्य (श्री वरकला राधाकृष्णन) ने उन्हें कार्यमुक्त किया, बैठक की अध्यक्षता की। एल.एस. डिबेट्स 23.10.2008 ।

41. *लो.स.वा.वि.,* 16.3.1972, पृ. 106 ।

42. एल.ए.डिबेट्स, 16.9.1936, पृ. 1142-43 ।

43. *लो.स.वा.वि.,* 16.11.1962, 16.4.1963, 26.8.1991, 20.7.1992, 10.5.1993 से 14.5.1993, 19.5.1995, 23.5.1995, 24.5.1995 से 26.5.1995, 29.5.1995 से 31.5.1995, 26.7.1996, 9.9.1996, 29.11.1996, 16.12.1996, 3.3.1997, 21.3.1997, 8.5.1997, 9.5.1997, 12.5.1997, 13.5.1997, 16.5.1997, 4.8.1997, 8.8.1997,

बैठक के प्रारंभ में[44] अध्यक्ष या, उसकी अनुपस्थिति में कोई अन्य पीठासीन अधिकारी अध्यक्ष के कमरे से, जो कि अध्यक्ष के आसन के ठीक पीछे है, सभा में प्रवेश करता है। उसके आगे-आगे मार्शल होता है जो अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या पीठासीन अधिकारी, यथास्थिति, के आने की घोषणा हिन्दी में करता है।

इस घोषणा को सुनकर सदस्य अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो जाते हैं और वहां पर खड़े रहते हैं। पटल पर बैठे अधिकारी और रिपोर्टर भी अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो जाते हैं। लेकिन दीर्घाओं में दर्शक बैठे रहते हैं। अध्यक्ष के आने पर सभा का सारा वातावरण ही बदल जाता है। वह मंच पर रखी हुई अपनी कुर्सी की ओर जाता है और सभा में सभी ओर—पहले बायीं ओर, फिर दायीं ओर और उसके बाद सामने झुक कर अभिवादन करता है तथा उसके बाद वह अपना स्थान ग्रहण करता है।[45] सदस्य भी अध्यक्षपीठ की ओर झुक कर उसका अभिवादन करते हैं और ज्यों ही अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण करता है, सदस्य भी अपने-अपने स्थानों पर बैठ जाते हैं। अन्य सदस्य जो सभा भवन में प्रवेश कर रहे हों, वे दरवाजे के पास गलियारे में ही रुक जाते हैं और अपने स्थानों की ओर तभी जाते हैं जबकि अध्यक्ष ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया हो। अध्यक्ष के अपने स्थान पर विराजमान होने पर सभा की बैठक प्रारंभ होती है। अपना आसन ग्रहण करते ही अध्यक्ष कार्य-सूची के अनुसार उस दिन का कार्य प्रारंभ कर देता है।

11.8.1997, 29.8.1977, 30.8.1997, 1.9.1997, 13.3.1999, 15.5.2000, 16.8.2000, 2.5.2002, 9.12.2002, 22.8.2003, 19.12.2003, 29.4.2005, 19.5.2005, 1.12.2006, 1.12.2007, 3.12.2007, 21.4.2008, 15.12.2008, 22.12.2008, 1.6.2009, 3.7.2009, 9.7.2009, 10.7.2009, 13.7.2009, 15.7.2009, 17.7.2009, 21.7.2009, 24.7.2009, 28.7.2009, 26.11.2009, 30.11.2009, 4.12.2009, 11.12.2009, 14.12.2009, 4.3.2010, 5.3.2010, 19.4.2010, 20.4.2010, 21.4.2010, 6.5.2010, 2.8.2010, 3.8.2010, 4.8.2010, 5.8.2010, 6.8.2010, 9.8.2010, 10.8.2010, 12.8.2010, 13.8.2010, 19.8.2010, 26.8.2010, 9.11.2010, 25.2.2011, 1.3.2011, 8.3.2011, 11.3.2011, 15.3.2011, 16.3.2011, 18.3.2011, 22.3.2011, 23.3.2011, 4.8.2011, 5.8.2011, 19.8.2011, 26.8.2011, 2.9.2011, 13.3.2012, 14.3.2012, 15.3.2012, 19.3.2012, 22.3.2012, 25.4.2012, 30.4.2012, 2.5.2012, 3.5.2012, 4.5.2012, 9.5.2012, 15.5.2012, 16.5.2012, 17.5.2012, 18.5.2012, 21.5.2012, 9.8.2012, 14.8.2012, 17.8.2012, 30.11.2012, 7.12.2012, 10.12.2012, 18.12.2012, 22.2.2013 और 26.2.2013 । ऐसे कुछ अवसर हुए हैं जबकि सभा की बैठक प्रारंभ होने के पहले गणपूर्ति की घंटी बजानी पड़ी परन्तु ऐसा अवसर नहीं आया जबकि गणपूर्ति के अभाव में सभा की बैठक प्रारंम्भ ही न हो सकी हो।

44. पा.टि. 34 देखिये, राष्ट्रगान (जन गण मन) और राष्ट्रगीत (वंदेमातरम) की धुन बजाये जाने पर सदस्यों के आचरण संबंधी अध्याय बारह।

45. तथापि, आजकल यह देखा जाता है कि पीठासीन अधिकारी अपने हाथ जोड़कर सभा का अभिवादन करते हैं।

बैठक के दौरान, यदि थोड़े समय के लिये स्थगित होने के बाद सभा फिर समवेत हो, तब भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है।

बैठक के दौरान गणपूर्ति

सभा की बैठक गठित करने के लिये गणपूर्ति सभा की कुल सदस्य संख्या का दसवां भाग है। यदि सभा की बैठक के दौरान किसी समय गणपूर्ति न हो, तो अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में काम करने वाले व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह या तो सभा की बैठक को स्थगित कर दे या गणपूर्ति होने तक बैठक को निलम्बित कर दे।[46]

अध्यक्ष की तब तक यह प्रकल्पना रहती है कि बैठक की पूरी अवधि के दौरान गणपूर्ति बनी हुई है, जब तक कि कोई सदस्य उसका ध्यान इस ओर न दिलाये कि गणपूर्ति नहीं है। ऐसी दशा में घंटी बजाई जाती है और यदि पहली बार घंटी बजाने पर गणपूर्ति हो जाये और या आवश्यक होने पर दूसरी बार घंटी बजाने पर, जैसाकि अध्यक्ष निदेश दे, गणपूर्ति हो जाये तो सभा का कार्य चलता रहता है। अन्यथा अध्यक्ष गणपूर्ति न होने के कारण सभा की बैठक को स्थगित कर देता है।[47]

ऐसे बहुत कम अवसर आए हैं, जबकि गणपूर्ति के लिए लगातार तीसरी बार घंटी बजी हो और गणूपर्ति की तीसरी घंटी बजने के बाद सभा की बैठक हुई हो।[48]

---

46. संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ अनुच्छेद 100 में गणपूर्ति से संबंधित उपबन्धों का लोप कर दिया गया और अनुच्छेद 118(1) में संशोधन कर दिया गया ताकि प्रत्येक सभा इस बारे में उपयुक्त नियम बना सके। किन्तु संविधान (44वां संशोधन) अधिनियम, 1978 के द्वारा संगत उपबन्धों का लोप कर दिया गया।

47. ऐसे कुछ अवसर हुए हैं जबकि पीठासीन अधिकारी ने गणपूर्ति न होने के कारण सभा की बैठक को स्थगित कर दिया लो.स.वा.वि. 5.4.1963 कॉ 8104 और 9.4.1963 कॉ 8851 उदाहरण के लिये 31 जुलाई, 2009 (दूसरा सत्र, पंद्रहवीं लोक सभा) को सभा गणपूर्ति न होने के कारण पूरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई, एल. एस. डिबेट्स, 31.7.2009, कॉ. 134।

48. 19 नवम्बर, 1987 को अपराह्न लगभग 5.25 बजे एक विधेयक पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने गणपूर्ति का प्रश्न उठाया। घंटी को 5.34 बजे गणपूर्ति होने तक तीन बार बजाना पड़ा।

    इसी प्रकार 20 नवम्बर, 1987, 8 अगस्त, 1994, 19 मई, 1995 और 6 सितम्बर, 1996 को मध्याह्न भोजनावकाश के बाद घंटी को क्रमश: 2.08 बजे, 2.25 बजे, 2.45 बजे और 2.26 बजे गणपूर्ति होने तक तीन बार बजाना पड़ा।

कोई सदस्य यदि एक बार यह आपत्ति कर दे कि सभा में गणपूर्ति नहीं है तो वह उस आपत्ति को वापस नहीं ले सकता।[49] एक बार अध्यक्ष का ध्यान गणपूर्ति के अभाव की ओर दिला दिया जाये तो उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्यवाही करे।

जिस समय गणपूर्ति की घंटी बज रही हो, उस समय कार्यवाही निलम्बित रहती है और गणपूर्ति होने तक निलम्बित रहती है।

जब सभा की बैठक मध्याह्न भोजनावकाश के बिना लगातार होती थी, उन दिनों में यह परिपाटी बन गई थी कि मध्याह्न भोजनकाल के दौरान अर्थात अपराह्न एक बजे से दो बज कर तीस मिनट के बीच उपस्थित सदस्यों की गिनती नहीं की जाएगी और जिस विषय पर भी उस समय मतदान करने की आवश्यकता हुई, उसे अपराह्न 2.30 बजे के बाद तक के लिये स्थगित कर दिया जाएगा।[50] यद्यपि उस समय में ध्वनि मत किया गया और यदि उस पर आपत्ति की गई तो मतदान अपराह्न 2.30 बजे के बाद ही हुआ।[51] परन्तु जब अपराह्न एक बजे मत विभाजन हो रहा था तो उसे जारी रखा गया और पूरा किया गया।[52] कई अवसरों पर मत विभाजन को अपराह्न 2.30 बजे के बाद तक के लिये स्थगित किया गया।[53] परंतु ऐसे भी कुछ अवसर हुए हैं जबकि सभी दलों और सदस्यों के एकमत से मत विभाजन अपराह्न एक बजे और 2.30 बजे के बीच किया गया।[54]

ऐसे अन्य अवसर जब गणपूर्ति नहीं होने पर घंटी लगातार तीन बार बजानी पड़ी और तीसरी बार घंटी के बजने पर गणपूर्ति हुई:

29.11.1991, 13.12.1991, 7.5.1993, 26.7.1993, 30.7.1993, 6.8.1993, 16.8.1993, 18.8.1993, 23.8.1993, 11.12.1993, 22.2.1994, 25.4.1994, 3.5.1994, 12.5.1994, 26. 7.1994, 4.8.1994, 16.8.1994, 15.3.1995, 20.3.1995, 22.3.1995, 24.3.1995, 2.5. 1995, 18.5.1995, 22.5.1995, 26.5.1995, 29.5.1995, 1.6.1995, 6.9.1996, 11.9. 1996; 28.11.1996, 29.11.1996, 21.2.1997, 28.2.1997, 3.3.1997, 10.3.1997, 15.3. 1997, 17.3.1997, 30.4.1997, 2.5.1997, 5.5.1997, 8.5.1997, 12.5.1997, 13.5. 1997, 14.5.1997, 15.5.1997, 8.8.1997, 29.8.1997, 18.12.1997, 5.5.2000, 24.11. 2000, 3.8.2001, 3.12.2004, 10.12.2004, 4.8.2005, और 12.8.2005, 9.11.2005, 24. 2.2006, 12.5.2006, 19.5.2006, 24.11.2006, 16.3.2007, 22.11.2007, 23.11.2007, 30.11.2012 और 22.2.2013।

49. *एल.एस. डिबेट्स,* 10.9.1956, कॉ. 7677 ।
50. *लो.स.वा.वि.*, 8.9.1954, कॉ. 1002-05 ।
51. *पूर्वोक्त,* 11.4.1955, कॉ. 3726-27 ।
52. *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1961, पृ. 471 ।
53. *लो.स.वा.वि.* (II), 11.4.1955, कॉ. 3726-27, 9.4.1956, कॉ. 4722; *एल.एस. डिबेट्स,* 26.8.1960 पृ. 2583; 29.8.1962, पृ. 2323 और 21.11.1962, पृ. 1218 ।
54. *पूर्वोक्त,* 1.12.1959, पृ. 1339; 16.12.1960, पृ. 2933; *एल.एस. डिबेट्स,* 2.5.1962, कॉ. 2087-89; *लो.स.वा.वि.,* 31.5.1962, पृ. 3812 ।

समय-समय पर कुछ सदस्यों द्वारा बराबर आपत्ति किये जाने पर कई अवसरों पर इस परिपाटी का अनुसरण नहीं किया गया और यदि गणपूर्ति न होने के संबंध में कोई आपत्ति की गयी तो पीठासीन अधिकारी ने बिल्कुल उसी प्रकार कार्य किया जैसा वह दिन में किसी समय करता।[55]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आजकल सभा की बैठक मध्याह्न भोजन हेतु एक घंटे के लिए स्थगित होती है।

सभा में गणपूर्ति की कमी की ओर पीठासीन अधिकारी का ध्यान दिलाने के संबंध में एक और परिपाटी थी:

> 'एक बार सभा में उपस्थित सदस्यों की गिनती हो जाने के बाद एक घंटे तक पुन: गिनती नहीं की जाती थी और साथ ही जब सभा अपने सामान्य समय के बाद बैठी हो तो भी गणपूर्ति का ध्यान नहीं रखा जाता था।[56] परन्तु जब सभा को किसी विषय पर निर्णय करना होता था, तब गणपूर्ति आवश्यक थी, चाहे सभा अपने सामान्य समय के बाद ही क्यों न बैठी हो।'[57]

कभी-कभी सदस्य उपस्थित सदस्यों की गिनती किये जाने के एक घंटे के अंदर दोबारा उनकी गिनती न किये जाने[58] अथवा सभा की बैठक सामान्य समय के बाद तक के लिए बढ़ा दिये जाने की स्थिति में गणपूर्ति के संबंध में आपत्ति न किये जाने[59] की परिपाटी का विरोध करते थे। ऐसे भी अवसर आये जबकि सदस्यों ने इस परिपाटी का अनुसरण नहीं किया और उपरोक्त दोनों दशाओं में अध्यक्ष का ध्यान गणपूर्ति के अभाव की ओर दिलाया और अध्यक्ष को या तो सभा कुछ समय के लिए स्थगित करनी पड़ी[60] या यदि गणपूर्ति नहीं हो सकी, तो सभा को शेष दिन के लिये स्थगित करना पड़ा।[61]

सभा का स्थगन

जब तक अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दे, सभा की बैठक प्रतिदिन सामान्यत: सायं 6 बजे

---

55. *पूर्वोक्त,* 3.9.1955, कॉ. 1090-96, 5.9.1955, कॉ. 2719-22 और *एल.एस. डिबेट्स* 19.8.2011 का. 66-67।
56. *पूर्वोक्त,* 22.3.1960, पृ. 3466 और 25.3.1960, पृ. 3864 ।
57. *पूर्वोक्त,* 16.3.1963, पृ. 1966-67 ।
58. *लो.स.वा.वि.,* 16.3.1963, पृ. 1943; 29.3.1963, कॉ. 6496-97; 15.4.1963, पृ. 4294-95।
59. *पूर्वोक्त,* 29.3.1963, पृ. 3125; 1.4.1963, पृ. 3190 ।
60. *पूर्वोक्त,* 21.4.1965, पृ. 4003 । एल एस डिबेट्स 26.8.2010. का. 240
61. *पूर्वोक्त,* 16.3.1963, पृ. 1967; 5.4.1963, कॉ. 4373, 8103; 9.4.1963, पृ. 3862 ।

समाप्त होती है।[62] लेकिन बैठक अपने आप समाप्त नहीं हो जाती और न ही उसकी समाप्ति के लिये कोई प्रस्ताव पारित किया जाता है।[63] सभा तभी स्थगित होती है और किसी दिन बैठक तभी समाप्त होती है जब पीठासीन अधिकारी सभा में इस आशय की घोषणा करता है।[64]

किसी सत्र के दौरान लोक सभा की बैठक समय-समय पर दिन-प्रतिदिन अथवा एक दिन से अधिक दिनों के लिए, अथवा अनिश्चित काल[65] के लिए स्थगित की जा सकती

---

62. नियम 12, *लो.स.वा.वि.,* 23.3.1967, पृ. 251 ।

 9 मार्च, 1982 को अनेक सदस्यों के अनुरोध पर 10 मार्च, 1982 को होली के उत्सव के उपलक्ष्य में सभा सायं 5.25 बजे स्थगित कर दी गयी थी। *लो.स.वा.वि.,* 9.3.1982 ।

 सभा को 29 जनवरी, 1976 और 29 जनवरी, 1985 को अपराह्न 4 बजे स्थगित कर दिया गया था ताकि सदस्य गणतंत्र दिवस समापन समारोह देख सकें—*लो.स.वा.वि.,* 29.1.1976, पृ. 110 और *एल.एस.डिबेट्स* 29.1.1985 का. 102।

 कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर लोक सभा इस बात पर सहमत हुई कि सभा को 27 नवम्बर, 1986 को सायं 5 बजे स्थगित किया जाना चाहिए ताकि सदस्य उस दिन सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी का भाषण सुन सकें—31वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—आठवीं लोक सभा समाचार—भाग 2), 26.11.1986, पैरा 1393 ।

 30 अप्रैल, 1990, को सभा की बैठक सायं 5.42 बजे स्थगित कर दी गई ताकि सदस्य केन्द्रीय कक्ष में जापान के प्रधान मंत्री का भाषण सुन सकें। 4 दिसम्बर, 2003 को सदस्यों ने इच्छा व्यक्त की कि सभा की बैठक समय से पूर्व स्थगित कर दी जानी चाहिए ताकि वे पांच राज्य विधान सभाओं के लिए हुए चुनावों के परिणाम सुन सकें। तदनुसार सभा अपराह्न 12.46 बजे पूरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई—एल.एस. डिबेट्स, 4.12.2003. कॉ. 402-04।

63. *एल.ए. डिबेट्स* 7.2.1924, पृ. 345 ।

64. *लो.स.वा.वि.,* 25.11.1970, पृ. 172 ।

65. 6 सितम्बर, 1974 को पूर्वाह्न 11.10 बजे अध्यक्ष ने सभा को मध्याह्न 12.15 बजे तक के लिए स्थगित किया ताकि कार्य-मंत्रणा समिति के सदस्य तथा दलों एवं ग्रुपों के नेता कार्य-मंत्रणा समिति की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बैठक में भाग ले सकें।

 अपराह्न 12.20 बजे महासचिव ने घोषणा की कि चूंकि कार्य-मंत्रणा समिति की बैठक अभी चल रही है, अतएव अध्यक्ष ने निदेश दिया है कि सभा अपराह्न 12.45 बजे पुनः समवेत होगी– *लो.स.वा.वि.,* 6.9.1974, पृ. 2 ।

 17 नवम्बर, 1987 को सभा में शोरगुल होने की वजह से अध्यक्ष ने अपराह्न 12.40 बजे सभा की बैठक अपराह्न 2 बजे तक के लिए स्थगित कर दी। अपराह्न 2 बजे महासचिव ने घोषणा की कि अध्यक्ष ने निदेश दिया है कि सभा अपराह्न 2.30 बजे तक स्थगित रहेगी। *लो.स.वा.वि.,* 17.11.1987 कॉ 430 ।

है।[66] सामान्य संसदीय प्रथा के अनुसार सभा को ही इस आशय का प्रस्ताव प्रस्तुत करके यह अवधारित करना होता है कि उसकी बैठक कब स्थगित हो या किस निश्चित तारीख तक अथवा अनिश्चित काल के लिए स्थगित की जाये। प्रस्ताव प्रस्तुत करने तथा उस पर चर्चा करने की प्रक्रिया को संक्षिप्त करने के लिए लोक सभा के नियमों द्वारा यह प्राधिकार अध्यक्ष में निहित किया गया है। परन्तु अध्यक्ष की शक्ति इस दृष्टि से सीमित है कि वह या तो निश्चित समय पर अथवा किसी नियम अथवा प्रथा के अंतर्गत ऐसे अन्य समय पर अथवा सभा की राय लेने के बाद जैसा वह अवधारित करे, सभा की बैठक को स्थगित करता है तथा वह सत्र के आरंभ में जारी किए गए बैठकों के कैलेण्डर के अनुसार दिन-प्रतिदिन सभा की बैठक को स्थगित करता है। यदि इस बारे में किसी परिवर्तन की आवश्यकता हो तो मामले के बारे में सभा के नेता की ओर से एक प्रस्ताव प्रस्तुत करके सभा द्वारा निर्णय लिया जाना होता है। अध्यक्ष यदि उचित समझे तो वह सभा की बैठक उस तिथि या समय से पहले बुला सकता है जिस तिथि या समय तक के लिये सभा की बैठक स्थगित की गई है अथवा सभा की बैठक अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने के बाद वह किसी भी समय सभा की बैठक बुला सकता है।[67]

---

66. *लो.स.वा.वि.*, 5.9.1974, पृ. 1-5 ।

67. नियम 15 । अभी तक ऐसे दो अवसर ही आए हैं जबकि बैठक को किसी विशेष दिन और समय तक के लिए स्थगित करने के बाद उस तिथि या समय से पहले अध्यक्ष ने सभा की बैठक फिर बुलाई हो। ब्यौरे के लिए *देखिए*–अध्याय-9 "संसद के सदनों को आहूत करना"।

सभा अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो जाने के बाद ढाई मास के अन्तराल के बाद पुन: बुलाई गई थी।

आठवीं लोक सभा के आठवें और चौदहवें सत्र, नौंवी लोक सभा के तृतीय सत्र, ग्यारहवीं लोक सभा के प्रथम सत्र तेरहवीं लोकसभा के चौदहवें सत्र और चौदहवीं लोक सभा के सातवें सत्र के दो-दो भाग थे जैसा कि नीचे दर्शाया गया है :

(I)	भाग I 23.2.1987 से 12.5.1987	3.9.1987 को
	भाग II 27.7.1987 से 28.8.1987	लोक सभा का सत्रावसान हुआ।
(II)	भाग I 18.7.1989 से 18.8.1989	20.10.1989 को
	भाग II 11.10.1989 से 13.10.1989	लोक सभा का सत्रावसान हुआ।
(III)	भाग I 7.8.1990 से 7.9.1990	11.10.1990 को
	भाग II 1.10.1990 से 5.10.1990	लोक सभा का सत्रावसान हुआ।
(IV)	भाग I 22.5.1996 से 28.5.1996	13.6.1996 को
	भाग II 10.6.1996 से 12.6.1996	लोक सभा का सत्रावसान हुआ।
(V)	भाग I 2.12.2003 से 23.12.2003	6.2.2004 को
	भाग II 29.1.2004 से 5.2.2004	लोक सभा विघटित हुई।
(VI)	भाग I 16.2.2006 से 22.3.2006	25.5.2006 को
	भाग II 10.5.2006 से 23.5.2006	लोक सभा का सत्रावसान हुआ।

> जब इस प्रस्ताव पर 'कि सभा अब स्थगित हो' पर चर्चा हो रही हो अर्थात् स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा शुरू होने के समय से लेकर प्रस्ताव पर चर्चा समाप्त होने के समय तक अध्यक्ष उस दिन के लिए सभा को स्थगित नहीं कर सकता है क्योंकि उस समय के दौरान सभा को ही उसके स्थगन के बारे में निर्णय लेना होता है। किन्तु चर्चा को मध्याह्न भोजनावकाश तथा औपचारिक मदों के निपटान तथा पत्रों को सभा पटल पर रखने के लिए रोका जा सकता है।[68] अध्यक्ष मतदान को भी अगली बैठक तक स्थगित नहीं कर सकता है चाहे उससे इस आशय का अनुरोध क्यों न किया गया हो। प्रस्ताव पर सभा को उस दिन के लिए स्थगित करने से पहले चर्चा पूरी करनी होती है। यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो सभा प्रस्ताव की स्वीकृति के अनुसरण में स्वतः ही स्थगित हो जाती है। यदि प्रस्ताव अस्वीकृत होता है तो स्थगन प्रस्ताव द्वारा जिस कार्य-मद पर चर्चा रोक दी गयी थी वह फिर शुरू हो जाती है अथवा थोड़ी देर के लिए कार्य-सूची की अगली मद ले ली जाती है और तत्पश्चात् अध्यक्ष द्वारा उस दिन के लिए सभा की बैठक स्थगित कर दी जाती है। जब सभा की अनुमति से प्रस्ताव वापस ले लिया जाता है और यदि सभा की बैठक को सामान्य समय में स्थगित करने का समय हो तो सभा की बैठक और किसी कार्य को शुरू किए बिना स्थगित की जा सकती है।[69]

जब सभा की बैठक का समय बढ़ाया जाना हो तो अध्यक्ष द्वारा सभा की सहमति कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर ली जाती है, जो इस संबंध में सरकार के सुझाव पर विचार करके अपनी रिपोर्ट सभा को देती है।[70] यदि इस प्रयोजन के लिये कार्य-मंत्रणा समिति की बैठक बुलाने का समय न हो, तो अध्यक्ष इसकी घोषणा सभा में करता है और सभा की सहमति प्राप्त करता है।

गलत धारणा के अंतर्गत अध्यक्ष द्वारा सभा के स्थगन के बारे में न्यायालय में आपत्ति की जा सकती है।

> यदि किसी राज्य की विधान सभा अध्यक्ष द्वारा स्थगित कर दी जाती है और इस बीच राज्यपाल सभा का सत्रावसान कर देता है और वित्तीय प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए एक अध्यादेश जारी करने के बाद किसी विशेष दिन बैठक बुलाने के लिए पुनः आमंत्रित करता है तो अध्यादेश की अपेक्षानुसार सभा के बहुमत का आदेश प्राप्त किये बिना अध्यक्ष द्वारा सभा को पुनः स्थगित करने अथवा पूर्व स्थगन को जारी रखने की घोषणा करने की कार्यवाही अकृत एवं शून्य तथा प्रभावहीन हो जाती है। इन परिस्थितियों में सभा को नए सिरे से स्थगित करने के अध्यक्ष के विनिर्णय को गलत धारणा पर आधारित होने के कारण न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।[71]

---

68. *लो.स.वा.वि.,* क्रमशः 4.11.1986, 18.7.1989, 9.1.1991 और 22.2.1991 ।
69. *लो.स.वा.वि.,* 18.2.1954, कॉ. 191; 18.8.1958, पृ. 755; 12.3.1959, पृ. 3042; 26.5.1967, पृ. 596-601; और 22.7.1968, पृ. 221 ।
70. *देखिए*—25वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—तीसरी लोक सभा)।
71. *पंजाब राज्य बनाम सत्यपाल डांग:* ए.आई.आर. 1969, एस.सी. 903 ।

सामान्य समय से पहले स्थगन: यदि कार्य-सूची में दिया गया कार्य समय से पहले समाप्त हो जाए, तो उस दिन सभा उसी समय स्थगित हो जाती है।[72]

जिस दिन राष्ट्रपति केन्द्रीय कक्ष में संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों के सामने अपना अभिभाषण देता है उस दिन सभा की बैठक अभिभाषण समाप्त होने के आधे घंटे बाद अपने सभा कक्ष में होती है। उस बैठक में राष्ट्रपति के अभिभाषण की एक प्रति सभा पटल पर रखी जाती है और कुछ अन्य औपचारिक कार्य किया जाता है, जैसे कि सरकारी विधेयकों का पुर:स्थापन और पत्रों को सभा पटल पर रखा जाना आदि। उसके बाद सामान्यत: सभा की बैठक उस दिन के लिये स्थगित हो जाती है।[73]

पहले, सामान्य बजट, इस प्रयोजन के लिए नियत दिन को सायं 5 बजे प्रस्तुत किया जाता था। उस दिन सभा सामान्यत: 4 बजे एक घंटे के लिए स्थगित की जाती थी और सायं 5 बजे पुन: समवेत होती थी जब बजट प्रस्तुत किया जाता था।[74] वर्ष 2001 के बाद से, संसदीय कार्य मंत्री के सुझाव के अनुसार सामान्य बजट फरवरी महीने के अंतिम कार्य दिवस को पूर्वाह्न 11 बजे प्रस्तुत किया जा रहा है। उस दिन और कोई कार्य संव्यवहार नहीं होता। बैठकों के अंतरिम कैलेण्डर में इस बारे में एक फुट-नोट जोड़ा जाता है।

---

72. उदाहरण के लिए, *देखिए—लो.स.वा.वि.,* 19.6.1962, 11771-72, 5.8.1975, 7.8.1975, कॉ. 116; 18.6.1977, पृ. 18; 11.3.1991, कॉ. 362; एल.एस. डिबेट्स, 28.5.1996, कॉ. 96; 1.9.1997, कॉ. 1410; 3.3.2003, कॉ. 480; 25.8.2004, कॉ. 824; 1.12.2007, कॉ. 72 ।

73. तथापि 18.3.1967 को सभा स्थगित नहीं हुई बल्कि उसने मंत्रिमंडल में अविश्वास के प्रस्ताव पर विचार प्रारंभ किया। ब्यौरे के लिये *देखिए* अध्याय 10 के अन्तर्गत शीर्षक—'अभिभाषण की प्रति का सभा पटल पर रखा जाना'।

74. 20 मार्च, 1967 को सामान्य बजट सायं 5.00 बजे प्रस्तुत किया जाना था तथापि सायं 5.01 बजे अविश्वास प्रस्ताव पर मत विभाजन चल रहा था। मत विभाजन तथा प्रस्ताव को निपटाने के बाद सभा सायं 5.10 बजे 10 मिनट के लिए स्थगित हुई और सायं 5.20 बजे पुन: समवेत हुई, उस समय वर्ष 1967-68 के लिए सामान्य बजट प्रस्तुत किया गया था—*लो.स.वा.वि.,* 20.3.1967, पृ. 119 ।

    28 मार्च, 1977 को वर्ष 1977-78 के लिए अन्तरिम सामान्य बजट अपराह्न 12.59 बजे प्रस्तुत किया गया था और सभा बजट प्रस्तुत करने से पहले मध्यावकाश के लिए स्थगित नहीं हुई थी। दो दिन चर्चा करने के बाद सभा द्वारा चार मास के लिए लेखानुदान स्वीकृत किया गया था।

    21 फरवरी, 1991 को अध्यक्ष के साथ दलों और समूहों के नेताओं की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि वर्ष 1991 से, आम बजट प्रस्तुत किए जाने के पहले, सभा की कार्यवाही एक घंटे की संक्षिप्त अवधि (आधे घंटे की बजाय) के लिए स्थगित की जाए, ताकि लोक सभा के सभा कक्ष की विभिन्न दीर्घाओं में सुरक्षा जांच के लिए पर्याप्त समय दिया जा सके।

यदि सभा की बैठक के दौरान सभा में किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है या नयी दिल्ली में किसी सदस्य की मृत्यु उस समय होती है जबकि सभा की बैठक हो रही हो, तो सभा उस दिन के लिए स्थगित हो जाती है।

तथापि पंद्रहवीं लोकसभा के दौरान अध्यक्ष ने नेताओं के साथ हुई बैठक में यह निर्णय लिया कि यदि अंतर्सत्रावधि के दौरान किसी निवर्तमान सदस्य का निधन हो जाता है तो अंतर्सत्रावधि के पश्चात् सभा समेवत होने के पहले दिन सभा की बैठक स्थगित कर दी जाये। कुछ मामलों में किसी मित्र राष्ट्र के राज्याध्यक्ष या किसी महान व्यक्ति की मृत्यु पर भी सदन के नेता के अनुरोध पर सभा की बैठक स्थगित की गयी है।[75]

अन्य कई अवसरों पर भी अध्यक्ष ने सभा को या तो उसी दिन थोड़े अंतराल के बाद पुन: समवेत होने के लिए या अगले दिन सभा के समवेत होने के निश्चित समय तक के लिये उसके निश्चित समय से पहले स्थगित किया है।[76]

सभा की बैठक गणपूर्ति न होने के कारण जल्दी स्थगित हो सकती है।[77]

यदि सभा में घोर अव्यवस्था हो जाये तो अध्यक्ष, यदि वह आवश्यक समझे, सभा को स्थगित कर सकता है या बैठक के बाद के किसी समय तक के लिये, जिसका उल्लेख वह करे, निलम्बित कर सकता है।[78]

सामान्यत: किसी प्रमुख विदेशी नेता के आगमन या उसके संबंध में होने वाले किसी समारोह या किसी अन्य समारोह के कारण सभा को उसके निर्धारित सामान्य समय से पहले स्थगित करने की प्रथा नहीं है,[79] परन्तु, ऐसे अवसर आए हैं जब सभा की सहमति से बैठक को समय से पहले स्थगित किया गया।[80]

---

75. सदस्यों के निधन आदि के कारण सभा के स्थगन के बारे में ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 18—'कार्य विन्यास और कार्य-सूची' के अंतर्गत उप-शीर्षक 'निधन संबंधी उल्लेख'।
76. उदाहरणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 17.8.1959, पृ. 1503; 15.2.1961, पृ. 120; 8.3.1961, पृ. 1904 और 11.2.1964, पृ. 121, 5.5.2008 ।
77. उदाहरणों के लिए देखिए *लो.स.वा.वि.,* 12.12.1963, पृ. 2317; 1.9.1972, पृ. 157; 22.4.1988, पृ. 267 और 4.5.1988, पृ. 426; 3.4.1992, कॉ. 522; 4.12.1992, कॉ. 684 और 18.12.1993, कॉ. 114; 15.3.1997, कॉ. 140, 5.3.1999 कॉ 448, 25.4.2003 कॉ 458 ।
78. नियम 375 साथ ही *देखिए* अध्याय 31—'प्रक्रिया के सामान्य नियम' के अन्तर्गत शीर्षक 'व्यवस्था बनाए रखना'।
79. *एस.एल.डिबेट्स,* 21.11.1955 कॉ. 133; 9.12.1959, कॉ. 4330; और 10.12.1959, पृ. 4554 ।
80. देखें पाद टिप्पण-60, 14 अगस्त, 2006 को लोक सभा सायं 4.34 बजे स्थगित हो गई ताकि सदस्य संसदीय ज्ञानपीठ में भारत के राष्ट्रपति द्वारा संसदीय संग्रहालय के उद्घाटन समारोह में शामिल हो सकें। एल.एस. डिबेट्स, 14.8.2006, कॉ. 350 ।

निर्धारित समय के बाद स्थगन: यदि किसी दिन आधे घंटे की चर्चा होनी हो तो वह सायं 5.30 बजे के बाद आरम्भ की जाती है।[81] यदि किसी दिन यह फैसला किया जाए कि सभा की बैठक सामान्य समय के बाद तक होगी और यदि उस दिन आधे घंटे की चर्चा भी होनी हो, तो बैठक का समय आधे घंटे और बढ़ा दिया जाता है।[82] सामान्य तौर पर बजट सत्र के दौरान अनिवार्य वित्तीय कार्यों के निपटान के पश्चात् आधे घंटे की चर्चाएं सायं 6.00 बजे आरंभ की जाती हैं।[83]

जिस दिन किसी अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा होनी हो अथवा अनियत दिन का प्रस्ताव या अल्पकालिक चर्चा कार्य-सूची में रखी गयी हो तो सभा की बैठक सामान्य समय के बाद तक चलती है।

कार्य अधिक होने के कारण कई बार सभा की बैठक उसके स्थगन के सामान्य समय के बाद तक चलती रही है।[84]

---

81. 27.3.1967 से पहले आधे घंटे की चर्चा, सभा की बैठक समाप्त होने के सामान्य समय अर्थात् सायं 5.00 बजे के बाद ही प्रारम्भ की जाती थी-*देखिए* लो.स.वा.वि., 18.12.1963 ।

82. *लो.स.वा.वि.,* 31.3.1959 ।

83. 23वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—आठवीं लोक सभा) 49वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा—समिति, आठवीं लोक सभा)।

84. अंतरिम संसद की सबसे लम्बी बैठक 6 अक्तूबर, 1951 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 9 बजे से लेकर अपराह्न 1.05 मिनट तक और उसके बाद अपराह्न 3.33 बजे से रात्रि 8.30 बजे तक और तत्पश्चात् रात्रि 9.15 बजे से लेकर रात्रि 11 बजकर 20 मिनट तक-कुल 11 घण्टे 7 मिनट बैठी।

    पहली लोक सभा की सबसे लम्बी बैठक 30.5.1956 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 10 बजे से लेकर रात्रि 8.30 बजे तक मध्याह्न अवकाश के बिना लगातार 10 घण्टे 30 मिनट तक बैठी।

    तीसरी लोक सभा की सबसे लंबी बैठक 6.9.1966 को हुई जबकि लोक सभा पूर्वाह्न 11.00 बजे से रात्रि 11 बजे तक 11 घंटे 5 मिनट तक बैठी। इसमें रात्रि 8.35 बजे से रात्रि 9.30 बजे तक अवकाश रहा।

    चौथी लोक सभा की सबसे लम्बी बैठक 24 मार्च, 1970 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 11.00 बजे से लेकर रात्रि 10.32 बजे तक अवकाश के बिना लगातार 11 घण्टे 32 मिनट तक बैठी।

    पांचवीं लोक सभा की सबसे लम्बी बैठक 9 मई, 1974 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 11.00 बजे से रात्रि 1.30 बजे (10 मई, 1974) तक 13 घण्टे 50 मिनट तक बैठी जिसमें अपराह्न 2.10 बजे से अपराह्न 2.50 बजे तक अवकाश रहा।

छठी लोक सभा की सबसे लम्बी बैठक 23 दिसम्बर, 1977 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 11.00 बजे से लेकर रात्रि 11.05 बजे तक मध्याह्न भोजनावकाश के बिना कुल 12 घण्टे और 5 मिनट तक लगातार बैठी (नियम 193 के अन्तर्गत चर्चा)।

सातवीं लोक सभा की सबसे लम्बी बैठक 15 सितम्बर, 1981 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 11.00 बजे से रात्रि 03.58 बजे (16 सितम्बर, 1981) तक मध्याह्न भोजनावकाश के बिना कुल 16 घण्टे 58 मिनट तक लगातार बैठी। (आवश्यक सेवा विधेयक, 1981 पर विचार तथा पारित करना)।

आठवीं लोक सभा की सबसे लम्बी बैठक 5 मई, 1986 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 11.00 बजे से रात्रि 2.48 बजे (6 मई, 1986) तक 15 घण्टे 48 मिनट तक बैठी और बीच में अपराह्न 1.37 बजे से अपराह्न 2.42 बजे तक मध्याह्न भोजनावकाश रहा। [मुस्लिम महिला (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986 पर विचार और पारित करना]।

दसवीं लोक सभा की सबसे लम्बी बैठक 30 मार्च, 1993 को हुई जबकि सभा पूर्वाह्न 11.01 बजे से प्रातः 06.25 बजे (31 मार्च, 1993) तक 19 घंटे 24 मिनट तक बैठी और बीच में अपराह्न 1.45 बजे से अपराह्न 2.34 बजे तक मध्याह्न भोजनावकाश रहा। (1993-94 के लिए रेल बजट पर सामान्य चर्चा)।

ग्यारहवीं लोक सभा में सबसे लम्बी बैठक 30 अगस्त, 1997 को हुई जबकि लोक सभा पूर्वाह्न 11.08 बजे से प्रातः 8.24 बजे (31 अगस्त, 1997) तक कुल 21 घंटे और 16 मिनट बैठी और बीच में अपराह्न 1.55 बजे से अपराह्न 3.03 बजे तक मध्याह्न भोजनावकाश रहा।

बारहवीं लोक सभा में सबसे लम्बी बैठक 8 जून, 1998 को हुई जबकि वर्ष 1998-99 के लिए रेल बजट पर चर्चा हेतु लोक सभा पूर्वाह्न 11.00 बजे से प्रातः 6.04 बजे (9 जून, 1998) तक कुल 19 घंटे और 4 मिनट बैठी और बीच में मध्याह्न भोजनावकाश रहा।

तेरहवीं लोक सभा में सबसे लंबी बैठक 30 अप्रैल, 2002 को हुई जो पूर्वाह्न 11 बजे से प्रातः 4.25 बजे (1 मई, 2002) तक बिना मध्याह्न भोजनावकाश के सत्रह घंटे और पच्चीस मिनट तक चली। (नियम 184 के अधीन चर्चा)।

चौदहवीं लोक सभा में सबसे लंबी बैठक 20 जुलाई, 2004 को पूर्वाह्न 11 बजे से मध्य रात्रि पश्चात् 12.53 बजे (21 जुलाई, 2004) तक, जिसमें पूर्वाह्न 11.40 बजे से मध्याह्न 12 बजे तक अवकाश रहा। तेरह घण्टे तैंतीस मिनट चली इस बैठक में बजट (सामान्य) 2004-2005; लेखानुदान की मांगों (सामान्य), 2004-2005 और 2001-2002 के लिए अतिरिक्त अनुदानों की मांगों (सामान्य) पर सामान्य चर्चा हुई और मतदान हुआ।

पंद्रहवीं लोक सभा में 27 दिसम्बर, 2011 को सभा की बैठक पूर्वाहन 11:21 बजे से रात्रि 11:53 बजे तक लगभग 12 घण्टे 19 मिनट चली जिसमें लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 (नये भाग चौदह ख का अंतः स्थापन) और लोक हित प्रकटन और प्रकटन करने वाले व्यक्तियों को संरक्षण विधेयक 2010 पर संयुक्त चर्चा की गई।

किसी बैठक का समय बढ़ाने के लिये कोई प्रस्ताव पारित करना जरूरी नहीं है परन्तु जब कार्य-मंत्रणा समिति बैठक का समय बढ़ाने की सिफारिश करती है।[85] तो सभा एक प्रस्ताव स्वीकार करके समिति के प्रतिवेदन से सहमति प्रकट करती है। ऐसा अवसर आया है जब कि गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य पर विचार के लिए निश्चित दिन को सभा द्वारा विशेष प्रस्ताव पारित करके बैठक का समय बढ़ाया गया है, जिससे कि अगला संकल्प प्रस्तुत किया जा सके।[86]

सदस्यों ने बैठक का समय सामान्य समय के बाद बढ़ाये जाने पर आपत्ति की है और कई बार अध्यक्ष भी उनसे सहमत हुए हैं।[87] परन्तु सभा की बैठकों का समय बढ़ाये जाने से पूरी तरह बचना संभव नहीं रहा है। बजट सत्र के दौरान तो यह प्रथा सी बन गई है कि बैठक का समय बढ़ा दिया जाता है, जिससे कि बजट पर चर्चा के लिए अधिक समय मिल सके।

अनिश्चित काल के लिए स्थगन: सत्र की अन्तिम बैठक के दिन अध्यक्ष सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर देता है।

सभा की गुप्त बैठक

सदन के नेता के अनुरोध पर अध्यक्ष किसी दिन या दिन के किसी भाग को सभा की गुप्त बैठक के लिए नियत कर सकता है।[88]

जब सभा की गुप्त बैठक हो रही हो तो चैम्बर, लॉबी या दीर्घाओं में राज्य सभा के सदस्यों को छोड़कर जो अपनी दीर्घा में बैठे हों और अध्यक्ष द्वारा प्राधिकृत उन व्यक्तियों को छोड़कर, जो कि उस समय चैम्बर, लॉबी या दीर्घाओं में उपस्थित हों, किसी अजनबी को चैम्बर, लॉबी या दीर्घाओं में उपस्थित रहने की अनुमति नहीं दी जाती।[89]

---

85. उदाहरण के लिए समिति ने निम्नलिखित प्रतिवेदनों में सभा का समय बढ़ाने की सिफारिश की—22वां, 24वां, 26वां और 27वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—पहली लोक सभा) पहला, तीसरा, 8वां, 9वां, 15वां, 37वां, 52वां, 62वां, 63वां और 65वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—दूसरी लोक सभा); पहला, दूसरा, छठा और 10वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—तीसरी लोक सभा); 28वां और 32वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—पांचवीं लोक सभा); 5वां प्रतिवेदन; (कार्य-मंत्रणा समिति—छठी लोक सभा); पहला, 12वां और 21वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—आठवीं लोक सभा); 12वां और 17वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—नौवीं लोक सभा); चौथा, छठा, 14वां, 17वां और 24वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति—दसवीं लोक सभा)। चौथा, छठा, बारहवां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-तेरहवीं लोक सभा); बारहवां, उनतीसवां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-चौदहवीं लोक सभा) तेतीसवां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पंद्रहवीं लोक सभा)।
86. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.7.1956, कॉ. 5198-5202 ।
87. *पूर्वोक्त,* 29.4.1955, कॉ. 6857-58 ।
88. नियम 248 ।
89. *पूर्वोक्त* ।

आज तक सभा की गुप्त बैठक केवल एक बार, केन्द्रीय विधान सभा में 27 फरवरी, 1942 को हुई थी।[90] बहुत से सदस्यों द्वारा लिखित अभ्यावेदन करने पर 23 फरवरी, 1942 को सदन के नेता ने सभा के अध्यक्ष से अनुरोध किया कि वह युद्ध की स्थिति पर चर्चा करने के लिए 27 फरवरी, 1942 को सभा की गुप्त बैठक बुलाए।

सभा की राय जानने के बाद अध्यक्ष ने घोषणा की कि काउंसिल ऑफ स्टेट के लिए नियत दीर्घा को छोड़कर उस दिन सभी दीर्घायें खाली कर दी जायेंगी और यह निदेश दिया कि गुप्त बैठक का कार्यवाही वृत्तांत न तो लिखा जाएगा, न रिकॉर्ड किया जाएगा और न ही उसे प्रकाशित किया जाएगा।[91]

27 फरवरी, 1942 को युद्ध की स्थिति पर विचार का प्रस्ताव रखे जाने से पहले केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष ने निम्नलिखित घोषणा की:

"इससे पहले कि मैं श्री अणे से कहूं कि वे उस प्रस्ताव को पेश करें, जो उनके नाम से रखा जाने वाला है, मैं इस बात को पहले स्पष्ट कर देता हूं, कि इसके बाद से जो भी कार्यवाही होगी वह गुप्त बैठक में होगी। इसलिए काउंसिल ऑफ स्टेट के सदस्यों के लिए नियत दीर्घा को छोड़कर बाकी सभी दीर्घाओं को खाली करा लिया जायेगा।"[92]

---

90. लेकिन 21.12.1946 को भारत की संविधान सभा ने समिति के रूप में गुप्त रूप से अपनी कार्यवाही करके प्रक्रिया समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया। अगले दिन फिर सभा की गुप्त बैठक हुई। जिसमें प्रक्रिया समिति द्वारा बनाये गये नियमों के मसौदे पर आगे विचार जारी रखा गया–*इण्डियन एनुअल रजिस्टर,* सम्पादन, *एन.पी. मित्रा,* कलकत्ता, 1946, खंड 2, पृ. 360 । 22 और 24 जनवरी, 1947 को भी संविधान सभा ने समिति के रूप में कार्य करते हुये 1946–47 और 1947–48 के वर्षों के लिये संविधान सभा के खर्च के प्राक्कलनों पर विचार किया, *पूर्वोक्त,* 1947, खंड 1, पृ. 311 और 314 ।

91. *एल.ए. डिबेट्स,* 23.2.1942, पृ. 405 ।

92. इस निर्देश के अनुसार सभी दीर्घाओं और लॉबियों से अजनबियों को निकाल दिया गया और विभिन्न दीर्घाओं के लिए जाने वाले दरवाजों पर कुंडी लगाकर ताले लगा दिये गये। अधिकारियों की दीर्घा और गवर्नर जनरल के कक्ष को भी खाली करा कर ताले लगा दिये गये। काउंसिल ऑफ स्टेट की गैलरी के दरवाजे को भी बंद कर लिया गया, लेकिन उसे ताला नहीं लगाया गया और सुरक्षा तथा प्रहरी विभाग के कर्मचारियों को दरवाजे के बाहर तैनात कर दिया गया जिससे कि केवल उस चैम्बर के सदस्य ही प्रवेश कर सकें। जहां तक सदस्यों की लॉबी का संबंध है किसी भी व्यक्ति को वहां नहीं जाने दिया गया चाहे उसके पास लॉबी का पास हो या कि सत्र का कार्ड। केवल केन्द्रीय विधानमंडल के दोनों सदनों के सदस्यों को ही लॉबी में जाने की अनुमति दी गई। सदस्यों की लॉबी के एक दरवाजे को छोड़ बाकी सभी दरवाजों पर कुंडी लगा कर ताले लगा दिये गये। खुले दरवाजे के बाहर सुरक्षा अधिकारी को तैनात कर दिया गया जिससे कि वह इस प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान सदस्यों को ही लॉबी और चैम्बर में जाने दें। ये सारे पूर्वोपाय करने के बाद और चैम्बर की सारी दीर्घाओं और लॉबियों की भली-भांति तलाशी लेने के बाद सुरक्षा अधिकारी ने चैम्बर में जाकर इस बात की सूचना सचिव को दी और सचिव ने अध्यक्ष को सूचित किया कि सभी दीर्घाओं और लॉबियों को सभी अजनबियों से खाली करा लिया गया है। उसके बाद सुरक्षा अधिकारी बाहर चला गया और अध्यक्ष ने सदन के नेता श्री अणे को अपना प्रस्ताव पेश करने को कहा। *एल.ए. डिबेट्स,* 27.2.1942, पृ. 617–18 ।

दोनों सदनों के सदस्यों के अतिरिक्त जिन व्यक्तियों को उस बैठक के दौरान चैम्बर में रहने दिया गया, वे थे सभा के सचिव, उप-सचिव और सहायक सचिव तथा मार्शल।

अध्यक्ष किसी गुप्त बैठक के कार्यवाही वृत्तांत की रिपोर्ट ऐसी रीति से निकलवा सकेगा जो वह ठीक समझे परन्तु कोई अन्य उपस्थित व्यक्ति गोपनीय बैठक की किसी कार्यवाही या विनिश्चयों के संबंध में आंशिक अथवा पूर्ण कोई टिप्पणी या अभिलेख नहीं रखेगा और न ऐसी कार्यवाही का वृत्तांत निकालेगा, न ही उसके वर्णन की चेष्टा करेगा।[93]

27 फरवरी, 1942 को हुई गुप्त बैठक की कार्यवाही का कोई रिकार्ड तैयार नहीं किया गया और न प्रकाशित किया गया। रिकार्ड के लिए विधान सभा के अध्यक्ष के आदेश के अंतर्गत केवल निम्नलिखित शब्द वाद-विवाद में छापे गये:

बाकी बैठक गुप्त हुई और सभा ने माननीय श्री एम.एस. अणे द्वारा पेश किए गए निम्नलिखित प्रस्ताव पर विचार किया:

'कि युद्ध की स्थिति पर विचार किया जाए।'[94]

गुप्त बैठक के संबंध में अन्य सब प्रकरणों में प्रक्रिया ऐसे निदेशों के अनुसार होती है, जोकि अध्यक्ष दे।[95]

जब यह समझा जाता है कि किसी गुप्त बैठक की कार्यवाही को गुप्त रखने की आवश्यकता समाप्त हो गई है, तो अध्यक्ष की सम्मति प्राप्त करके सदन का नेता या उसके द्वारा अधिकृत कोई सदस्य यह प्रस्ताव पेश कर सकता है कि गुप्त बैठक के दौरान सभा में

---

93. नियम 249 ।
94. *एल.ए. डिबेट्स,* 27.2.1942, कॉ. 618 ।
95. नियम 250 ।

27 फरवरी, 1942 को केन्द्रीय विधान सभा की जो गुप्त बैठक हुई थी उसके संबंध में निम्नलिखित प्रक्रिया निर्धारित की गई थी:

यदि कोई मत विभाजन हो, तो सूचना कार्यालय के दो गणक आयेंगे परन्तु अध्यक्ष द्वारा मत विभाजन का परिणाम घोषित किये जाने के बाद वे वहां से चले जायेंगे।

ज्यों ही अध्यक्ष महोदय यह निदेश देंगे कि किसी को दीर्घाओं में न रहने दिया जाये और कि गुप्त बैठक की कार्यवाही का कोई रिकॉर्ड प्रकाशित नहीं होगा, तो रिपोर्टर सभा कक्ष से चले जायेंगे।

काउंसिल ऑफ स्टेट के सचिव को एक पत्र भेजा गया जिसमें, उन्हें इस निर्णय की सूचना दी गई थी कि 27 फरवरी, 1942 को सभा की गुप्त बैठक होगी। पत्र में यह भी कहा गया कि काउंसिल ऑफ स्टेट के जो सदस्य चर्चा को सुनना चाहें उनके लिये काउंसिल ऑफ स्टेट की दीर्घा खुली रहेगी। काउंसिल ऑफ स्टेट के सचिव से यह अनुरोध भी किया गया कि वह काउंसिल के सदस्यों को एक परिपत्र द्वारा इस बात की सूचना दे दें और उनसे यह भी कहे कि इस कार्यवाही को गुप्त रखने की आवश्यकता है। (बाद में अध्यक्ष ने उस अवसर पर कांउसिल ऑफ स्टेट के सदस्यों को सार्वजनिक दीर्घा में बैठने की भी अनुमति दे दी।)

वायसराय के सैन्य सचिव को भी एक पत्र भेजा गया था जिसमें उसे यह सूचना दी गयी कि प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान गवर्नर जनरल का प्रकोष्ठ बन्द रहेगा।

जो कार्यवाही हुई है उसे अब गोपनीय न माना जाए। सभा द्वारा ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत होने पर महासचिव गुप्त बैठक की कार्यवाही का वृत्तांत तैयार करवाता है और उसे यथासाध्य शीघ्र ऐसे रूप में तथा ऐसी रीति से प्रकाशित करवाता है जैसाकि अध्यक्ष निदेश दे।[96]

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसके अधीन रहते हुए किसी गुप्त बैठक की कार्यवाही या विनिश्चयों का किसी व्यक्ति द्वारा किसी भी रीति से प्रकट किया जाना सभा का घोर विशेषाधिकार भंग समझा जाता है।[97]

केन्द्रीय विधान सभा की 27 फरवरी 1942 को हुई गुप्त बैठक की कार्यवाही या विनिश्चियों को प्रकट करने के संबंध में भारत सरकार ने भारत रक्षा नियम, 1939 के नियम 34 में संशोधन करके अग्रिम रूप से भारतीय विधानमंडल की दोनों सभाओं में से किसी भी सभा की गुप्त बैठक की कार्यवाही के प्रकाशन अथवा प्रकटीकरण को दण्डनीय अपराध बना दिया था जो कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष तक हो सकती थी (या जुर्माने से अथवा दोनों से) दण्डनीय था, *देखिए* भारत रक्षा नियम, 1939 का नियम 34(2)(क) तथा 38(5)। इसी प्रकार का उपबंध संसद की किसी गुप्त बैठक के लिए भारत रक्षा नियम, 1962 में भी किया गया था, *देखिए* भारत रक्षा नियम, 1962 का नियम 35(2)(1) और 41(5) ।

---

96. नियम 251 ।

27 फरवरी, 1942 को जब गुप्त बैठक में युद्ध की स्थिति के संबंध में प्रस्ताव पर चर्चा हो चुकी तो सभा स्थगित हो गयी। उसके बाद सभा की किसी भी बैठक में यह प्रस्ताव पेश नहीं किया गया कि गुप्त बैठक के दौरान हुई कार्यवाही को अब गोपनीय न माना जाये।

97. नियम 252 ।

अध्याय 18

कार्य-विन्यास और कार्य-सूची

संसदीय कार्य को दो मुख्य शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है, अर्थात् सरकारी कार्य और गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य। सरकारी कार्य को आगे दो और श्रेणियों में बांटा जा सकता है: (क) सरकार द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली कार्य मदें, और (ख) गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली किन्तु सरकारी समय में ली जाने वाली कार्य मदें।

सरकारी कार्य

(क) सरकार द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली कार्य मदें

सरकार द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली कार्य मदें कई प्रकार की हो सकती हैं। इनका संक्षिप्त ब्यौरा निम्नलिखित है:

(i) सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र

मंत्रीगण संविधान के संगत उपबंधों, विभिन्न अधिनियमितियों, प्रक्रिया नियमों या अध्यक्ष के निदेशों के अंतर्गत और सभा की प्रथाओं या परिपाटियों के अनुसार सरकारी दस्तावेजों और पत्रों को सभा पटल पर रखते हैं। इन पत्रों को सभा पटल पर रखे जाने का प्रयोजन सदस्यों के उपयोग के लिए उन्हें अधिकृत जानकारी उपलब्ध कराना और चर्चा के लिए आधार तैयार करना है।

किसी गैर-सरकारी सदस्य को सामान्यत: तब तक कोई दस्तावेज या पत्र सभा पटल पर रखने की अनुमति नहीं दी जाती, जब तक कि अध्यक्ष द्वारा उसे ऐसा करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर दिया जाता।[1]

(ii) वक्तव्य और वैयक्तिक स्पष्टीकरण

प्रश्न काल समाप्त होने पर मंत्रीगण विभिन्न प्रकार के वक्तव्य और स्पष्टीकरण देते हैं, इनका संक्षिप्त ब्यौरा नीचे दिया जा रहा है।

अविलम्बनीय लोक-महत्व के विषयों पर मंत्रियों द्वारा वक्तव्य[2]

लोक-महत्व के विषयों से सभा को अवगत रखने के लिए या सामयिक महत्व के

---

1. मंत्रियों अथवा गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा सभा पटल पर पत्रों या दस्तावेजों के रखे जाने संबंधी प्रक्रिया के ब्यौरे के लिए, *देखिए* अध्याय 35-'सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र और पत्रों की अभिरक्षा'।
2. नियम 372 ।

किसी विषय के संबंध में सरकार की नीति बताने के लिए मंत्री समय-समय पर अध्यक्ष की सहमति से सभा में वक्तव्य देते हैं।

वक्तव्य देने के इच्छुक मंत्री को पहले से यह बताना पड़ता है कि वह किस तिथि को वक्तव्य देना चाहता है।[3] यह सूचना, यथासंभव, कम से कम एक दिन पहले देनी पड़ती है ताकि उस मद को कार्य-सूची में शामिल किया जा सके।[4] वक्तव्य, उपयुक्त समय पर, अर्थात् प्रश्न तथा अन्य औपचारिक कार्य मदें समाप्त होने के बाद दिया जाता है। मंत्री को वक्तव्य की एक प्रति अध्यक्ष की जानकारी के लिए पहले से देनी पड़ती है, चाहे वह वक्तव्य गुप्त या गोपनीय ही क्यों न हो। मंत्री चाहे तो वक्तव्य के मूल पाठ में, उसके सभा में पढ़े जाने से पहले, परिवर्तन कर सकता है, लेकिन जहां तक संभव हो, संशोधित वक्तव्य की एक प्रति अध्यक्ष को पहले से दे दी जानी चाहिये।

मंत्री को नीति संबंधी वक्तव्य किसी भी समय देने का अधिकार है।[5] जब मंत्री महत्वपूर्ण मामलों में बिना तैयारी के कोई वक्तव्य देना चाहता है, तो इस बात पर बल नहीं दिया जाता कि उस वक्तव्य की एक अग्रिम प्रति दी जानी चाहिए थी,[6] परन्तु उसे लिखकर या व्यक्तिगत रूप से मिलकर अध्यक्ष को यह जानकारी पहले ही देनी होती है कि वह किन कारणों से अल्प सूचना पर वक्तव्य देना चाहता है।[7]

मंत्री को सरकार द्वारा किसी विदेशी सरकार के साथ की गई संधि अथवा करार की जानकारी सभा को देने हेतु सभा में वक्तव्य देने का अधिकार है।[8] मंत्रियों द्वारा सामयिक विदेशी मामलों के बारे में सभा को जानकारी दिये जाने की परम्परा है। मंत्री दो बाह्य देशों के बीच हुई संधि के बारे में वक्तव्य दे सकता है। अध्यक्ष मंत्री को वक्तव्य देने की अनुमति, कार्य-सूची में तत्संबंधी प्रविष्टि हुए बिना भी दे सकता है।[9] यह आपत्ति वैध नहीं है कि प्रत्येक मामले में महत्वपूर्ण नीति संबंधी वक्तव्य की मद को कार्य-सूची में अवश्य शामिल किया

---

3. निदेश 119 ।
4. तथापि, अध्यक्ष कार्य-सूची में प्रविष्टि के बिना भी किसी मंत्री को कोई महत्वपूर्ण वक्तव्य देने की अनुमति दे सकता है।
5. *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1972, पृ. 137-38; 4.8.1972, पृ. 122-26 ।
6. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 23.3.1959 और 3.4.1959, जब प्रधानमंत्री ने क्रमशः तिब्बत की स्थिति के संबंध में तथा तिब्बत के दलाई लामा द्वारा अपने देश की सीमा पार करके भारत में आने के संबंध में बिना तैयारी के वक्तव्य दिये थे। इसके अतिरिक्त देखिए *लो.स.वा.वि.,* 18.3.2008, जब विदेश मंत्री और सदन के नेता, श्री प्रणव मुखर्जी ने सरबजीत सिंह के संबंध में वक्तव्य दिया।
7. पूर्वोक्त, 23.11.2007, 442; 28.11.2007, 351-53; 18.3.2008 और 19.3.2008 ।
8. *लो.स.वा.वि.,* 23.7.1974, पृ. 113-17 ।
9. *पूर्वोक्त,* 14.8.1970, पृ. 147 ।

जाना चाहिए।[10] तथापि, जब कोई मंत्री कार्य-सूची में तत्संबंधी प्रविष्टि हुए बिना कोई महत्वपूर्ण वक्तव्य देता है, तब इस बीच यदि समय हो तो एक अनुपूरक कार्य-सूची सभा में सदस्यों को परिचालित कर दी जाती है, अन्यथा सदस्यों की जानकारी के लिए अध्यक्षपीठ द्वारा घोषणा कर दी जाती है अथवा सूचना पटलों पर तत्संबंधी सूचना प्रदर्शित की जाती है।[11]

नियमानुसार, किसी मंत्री द्वारा वक्तव्य दिये जाने के बाद प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाती क्योंकि सभा के सामने ऐसा कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं होता है, जिस पर सभा में वाद-विवाद हो सके।[12]

तथापि ऐसे दृष्टांत हैं जब अपवाद मामलों में, सदस्यों को स्पष्टीकरण हेतु प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई थी।[13] इस बारे में सुस्थापित अपवाद केवल एक ही है और वह है जब संसदीय कार्य मंत्री आगामी सप्ताह के सभा के कार्य के बारे में वक्तव्य देता है, उस समय सभा के कार्य के बारे में सदस्यों द्वारा कुछ बातें पूछी जा सकती हैं। लम्बे वक्तव्यों को सभा पटल पर रखा जा सकता है[14] और इनकी प्रतियां सदस्यों में परिचालित की जा सकती हैं। मंत्री के वक्तव्य पर तत्काल प्रश्न पूछने के बजाय, सदस्य एक उपयुक्त सूचना देकर उस पर चर्चा की मांग कर सकते हैं।[15] यदि वक्तव्य किसी महत्वपूर्ण विषय के बारे में हो तो चर्चा के लिए उस दिन अनुमति दी जा सकती है जिस दिन वक्तव्य दिया गया हो।[16]

जब कोई मंत्री, मंत्री के नाते वक्तव्य दे, तो सदस्य उससे यह नहीं कह सकते कि वह किसी अन्य प्राधिकारी से उन तथ्यों का सत्यापन कराए।[17]

सभा को सभी गम्भीर घटनाओं के संबंध में शीघ्रातिशीघ्र जानकारी मिल जाये इसके लिए एक परिपाटी का अनुसरण किया जा रहा है कि मंत्री ऐसी घटनाओं के संबंध में सभा में स्वतः वक्तव्य दे दें।[18] अध्यक्ष किसी मंत्री को भी किसी ऐसे महत्वपूर्ण मामले पर वक्तव्य

---

10. *पूर्वोक्त* ।
11. *पूर्वोक्त*, 16.9.1964, पृ. 859-60 ।
12. *एच.पी. डिबेट्स*, 19.11.1952, कॉ. 851-52; 24.11.1952, कॉ. 1064, *लो.स.वा.वि.*, 31.7.1956, पृ. 511; 25.11.1957, पृ. 1099-1100; 4.12.1957, पृ. 1816; और 27.3.1958, पृ. 3340 ।
13. *लो.स.वा.वि.* 30.11.2005 और 20.12.2005.
14. *पूर्वोक्त*, 19.11.1958, पृ. 262; 16.12.1958, पृ. 2551-52; 23.3.1966, पृ. 5404; और 24.11.1971, पृ. 170-74 ।
15. *पूर्वोक्त*, 25.4.1973, पृ. 130-31 और पृ. 151; *लो.स.वा.वि.*, 24.3.1987, कॉ. 848-946।
16. *पूर्वोक्त*, 23.3.1966, पृ. 5406-07; 24.3.1966, पृ. 5493-94; 27.4.1966, पृ. 7485-86; 28.4.1966, पृ. 7589; और 7.3.1988, पृ. 478-79 ।
17. *सी.ए. (लेज.) डिबेट्स*, 8.12.1949, पृ. 290; *लो.स.वा.वि.*, 17.2.1960, कॉ. 1644 ।
18. *लो.स.वा.वि.*, 25.2.1988, पृ. 219-20; 24.3.1988, पृ. 237-38 ।

देने के लिए कह सकता है जिस पर सदस्यों द्वारा ध्यानाकर्षण सूचना और अल्प सूचना प्रश्न दिए जा चुके हों।[19] अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की है कि ऐसे वक्तव्य यथासंभव व्यापक होने चाहिए जिससे कि ऐसी सभी बातों का उत्तर मिल जाये जो कि सदस्यों ने तद्विषयक अपनी उन ध्यानाकर्षण सूचनाओं और अल्प सूचना प्रश्नों में उठायी हों, जिनकी प्रतियां मंत्रियों को मिल चुकी होती हैं।[20] यह विनिर्णय भी दिया गया है कि जब सभा का सत्र चल रहा हो तो नीति संबंधी वक्तव्य पहले सभा में दिये जायें और उसके बाद ही उनकी सूचना समाचारपत्रों या जनता को दी जाये।[21] किन्तु यदि ऐसा वक्तव्य सरकार की घोषित नीति के विपरीत नहीं है तो मंत्रियों को सभा से बाहर ऐसे वक्तव्य देने से नहीं रोका जा सकता।[22] तथापि, अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की है कि जहां पहले से घोषित नीति को ही स्पष्ट करने के लिए सभा से बाहर वक्तव्य दिया गया हो, वहां मंत्री को उसके बारे में सभा में भी शीघ्रातिशीघ्र वक्तव्य देना चाहिए।[23] समाचारपत्रों के माध्यम से अपने ऊपर लगाए गए आरोपों के बारे में अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मंत्री द्वारा अपने दल के सामने ऐसा वक्तव्य दिये जाने में कोई अनौचित्य नहीं है जब तक कि उसमें सरकारी नीति के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें न कही गयी हों।[24] अध्यक्ष का विनिर्णय है कि मंत्रियों को सभा में ऐसे वक्तव्य देने चाहिएं जिनमें यह बताया जाए कि उनकी राजकीय विदेश यात्राओं के क्या परिणाम निकले हैं।[25]

ऐसी कोई कानूनी अथवा संवैधानिक अपेक्षा नहीं है जिसके अनुसार सरकार को सभा में ऐसा वक्तव्य देने के लिए बाध्य होना पड़े कि किसी दूसरे देश के प्रधानमंत्री की भारत

---

19. *पूर्वोक्त,* 29.11.1963, पृ. 1198-99; 22.11.1966, पृ. 1947-53; *लो.स.वा.वि.* 26.4.1976; कॉ. 151-52 और *लो.स.वा.वि.,* 27.4.1976, पृ. 85 ।

20. *पूर्वोक्त,* 19.3.1958, पृ. 2679-80 ।

21. *पी. डिबेट्स,* 11.4.1951, कॉ. 64-65; *एच.पी. डिबेट्स,* 1.9.1953, कॉ. 1865-66; *लो.स.वा.वि.,* 23.12.1960, पृ. 3564-66; और 28.8.1973, पृ. 129-31 ।

    यह निर्णय करते समय कि किन वक्तव्यों को पहले सभा में दिया जायेगा नीति संबंधी मामलों और समाचारों में अन्तर करना होगा। नीति संबंधी मामलों में सरकार को पहले जानकारी सभा को देनी चाहिए, किन्तु समाचार के मामले में जानकारी सभा में दिए जाने से पहले, समाचारपत्रों को दी जा सकती है—*लो.स.वा.वि.,* 3.12.1971, पृ. 140-42 और पृ. 175-76; 3.3.2006, कॉ. 254-58; 7.3.2007, कॉ. 470-77, और 20.3.2007, कॉ. 362-65 ।

22. *लो.स.वा.वि.,* 7.12.1962, पृ. 1947 ।

23. *लो.स.वा.वि.,* 18.3.1970, पृ. 151; *लो.स.वा.वि.,* 19.6.1980, कॉ. 219-20; *लो.स.वा.वि.,* 20.6.1988, पृ. 144-45 ।

24. *लो.स.वा.वि.,* 4.4.1963, पृ. 3405-08 ।

25. *पूर्वोक्त,* 5.5.1972, पृ. 103-05; 22.2.1978, पृ. 140-41; 24.2.1978, पृ. 143-45; 23.7.2003, कॉ. 407-501; 21.12.2004, कॉ. 497-504; 29.7.2005, कॉ. 402-09 ।

यात्रा के परिणाम क्या रहे अथवा उसे, ऐसी यात्रा के दौरान दोनों सरकारों के बीच हस्ताक्षरित करारों या संधियों की प्रतियां सभा पटल पर रखनी पड़ें। तथापि, यदि ऐसी यात्रा के दौरान सरकारों के बीच कुछ महत्वपूर्ण वार्ताएं हुई हैं और कोई करार किया गया है तथा यदि सभा में किसी दल या समूह का कोई नेता या काफी बड़ी संख्या में सदस्य इस बारे में अध्यक्ष को लिखते हैं, तो अध्यक्ष, इस पर सरकार से कह सकता है कि सदस्यों की मांग के अनुसार वह सभा में वक्तव्य दे या तत्संबंधी रिपोर्ट, संयुक्त विज्ञप्ति और दोनों सरकारों के बीच हुए करारों को सभा पटल पर रखें।[26] ऐसे दृष्टांत हैं जब मंत्रियों ने अपने मंत्रालयों से संबंधित विभिन्न योजनाओं को लेकर हुई प्रगति के बारे में स्वत: वक्तव्य दिए हैं।[27]

सदस्यों द्वारा दी गयी ध्यानाकर्षण सूचनाओं के उत्तर में वक्तव्य

(*देखिए* अध्याय 20—"ध्यानाकर्षण प्रक्रिया" शीर्षक के अंतर्गत अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों पर ध्यानाकर्षण)

अशुद्धियां सुधारने के लिए वक्तव्य

जब किसी मंत्री को यह पता चलता है कि उसके द्वारा किसी तारांकित/अतारांकित/अल्प सूचना प्रश्न या अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में या वाद-विवाद के दौरान सभा को कोई गलत जानकारी दी गई है, तो वह उसके द्वारा दिए गए पिछले उत्तर या जानकारी में शुद्धि करने के लिए एक वक्तव्य दे सकता है या उसे सभा पटल पर रख सकता है। मंत्री को अपने अभिप्राय की अग्रिम सूचना महासचिव को देनी होती है और अपने प्रस्तावित वक्तव्य की एक प्रति अध्यक्ष की जानकारी के लिए भेजनी पड़ती है।[28] यदि वक्तव्य देने में कोई विलम्ब हुआ हो तो विलम्ब के लिए उत्तरदायी कारण प्रस्तुत करने होते हैं।

सदस्य को किसी मंत्री या किसी अन्य सदस्य द्वारा दिये गये किसी वक्तव्य की किसी गलती या अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाने की पूरी स्वतंत्रता है परन्तु उसे उस मामले को सभा में उठाने के लिए अध्यक्ष से लिखकर अनुमति मांगनी पड़ती है।[29] अपने आरोप की पुष्टि में

---

26. *पूर्वोक्त*, 20.3.1979, पृ. 164-69 और पृ. 171 ।

    प्रधानमंत्री ने ईरान के परमाणु कार्यक्रम के मुद्दे पर अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण में भारत के दृष्टिकोण, अमरीकी राष्ट्रपति के हाल के दौरे के सन्दर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ सिविल परमाणु ऊर्जा सहयोग के संबंध में लोक सभा में क्रमश: 17.2.2006, 7.3.2006 और 13.8.2007 को वक्तव्य दिए।

27. *लो.स.वा.वि.*, 16.5.2007; 31.8.2007; 4.12.2007 और 30.4.2008 ।

28. निदेश 16—प्रश्नों के उत्तरों की अशुद्धियां सुधारने की प्रक्रिया का ब्यौरे वार विवरण, संगत शीर्षक के अंतर्गत 'प्रश्न' से संबंधित अध्याय 19 में दिया गया है।

29. निदेश 115(1) सदस्यों द्वारा दिये गये वक्तव्यों के उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.*, 22.12.1956, पृ. 1505-06; 4.12.1957, पृ. 1816; 17.3.1959, पृ. 3361; *लो.स.वा.वि.* 8.4.1967, कॉ. 3747-53; *लो.स.वा.वि.*, 1.4.1968, पृ. 1214-20; 9.5.1984, पृ. 166; 27.8.1984, पृ. 3-7; 19.11.1986, पृ. 210-13 ।

सदस्य को उस गलती या अशुद्धि का ब्यौरा बताना पड़ता है और वह इस संबंध में उसके पास उपलब्ध कोई प्रमाण भी अध्यक्ष के सामने रख सकता है।[30] अध्यक्ष अपने विवेक का उपयोग करते हुए लगाये गए आरोप के संबंध में वास्तविक स्थिति का पता लगाने के प्रयोजन से उस मामले को संबंधित मंत्री या सदस्य जिसने वक्तव्य दिया है, की जानकारी में ला सकता है। जब अध्यक्ष सदस्य को, वह मामला सभा में उठाने की अनुमति दे देता है तब सदस्य के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह ऐसा करने से पहले संबंधित मंत्री या सदस्य को मामले को उठाने संबंधी अपनी मंशा के बारे में सूचना दे दे। उसके बाद उस मद को सम्बन्धित मंत्री या सदस्य के परामर्श से उस दिन की कार्य-सूची में शामिल कर लिया जाता है। एक बैठक के लिए ऐसी एक से अधिक मद गृहीत नहीं की जा सकती।[31]

जब कोई सदस्य किसी मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य में किसी विसंगति की ओर संकेत करता है और चाहता है कि उसे शुद्ध किया जाए तो सदस्य को यह मामला सभा में उठाने की अनुमति केवल तभी दी जा सकती है यदि सम्बद्ध मामले का सदस्य के अपने वक्तव्य से प्रत्यक्ष संबंध हो या वह उसके द्वारा पूछे गये प्रश्न से उत्पन्न हुआ हो।[32]

यदि कोई मंत्री, जिसके वक्तव्य में शुद्धि की मांग की गई है, स्वयं ही अपने पहले के वक्तव्य को स्पष्ट/शुद्ध करने वाला वक्तव्य स्वत: देने की अनुमति मांगता है तो जिस सदस्य ने वह मामला उठाने की सूचना दे रखी हो, उसे अपना वक्तव्य देने की अनुमति नहीं दी जाती है।[33]

यह सुनिश्चित करने के लिए कि सदस्य इस अवसर का लाभ उठा कर विषयेत्तर मामले न उठाए, अर्थात् ऐसी बातें न उठाए जिनका उल्लेख उसके द्वारा पहले प्रस्तुत किए गए गलती या अशुद्धि से संबंधित ब्यौरे में नहीं किया गया हो, अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की है कि उस विषय को सभा के सामने लाये जाने से पहले, सदस्य को उस वक्तव्य की एक प्रति अग्रिम रूप से दे देनी चाहिए जोकि वह गलती या अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाने के लिये देना चाहता हो और उसे वही वक्तव्य पढ़ना चाहिए जिसको अध्यक्ष ने स्वीकृत किया हो।[34] स्वीकृत वक्तव्य की एक प्रति संबंधित मंत्री को दी जाती है जिससे कि वह उन विशिष्ट बातों का उत्तर देने के लिए तैयार होकर आये, जिन्हें सभा में उठाये जाने की संभावना है।

सभा में जिस अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाया जाये, उसका स्पष्टीकरण देने हेतु संबंधित मंत्री या सदस्य वहीं उसी समय[35] या उस मामले को सभा में उठाने वाले सदस्य को विधिवत सूचना देकर किसी बाद की तिथि[36] को वक्तव्य दे सकता है। सदस्य का वक्तव्य या मंत्री

30. निदेश 115 (2)।
31. *लो.स.वा.वि.* 7.9.1966, कॉ. 9839 ।
32. *लो.स.वा.वि.,* 26.8.1963, पृ. 1311-13; *लो.स.वा.वि.* 28.8.1968, कॉ. 2493-97 ।
33. *पूर्वाक्त* 22.4.1968, पृ. 1119-20 ।
34. *पूर्वोक्त,* 25.4.1960, पृ. 6216-21 ।
35. *पूर्वोक्त,* 1.4.1961, पृ. 4038-39 ।
36. *पूर्वोक्त,* 28.3.1961, पृ. 3697-98 ।

द्वारा दिया गया उसका उत्तर लम्बा होने की स्थिति[37] में या सभा का समय बचाने के लिए अध्यक्ष द्वारा तत्संबंधी निर्णय लिये जाने पर[38] वक्तव्य सभा पटल पर रखे जा सकते हैं।

यदि सभा में मंत्री के वक्तव्य के दौरान बार-बार बाधा डाली जाती है और उसे अपना वक्तव्य पूरा नहीं करने दिया जाता तो अध्यक्ष मंत्री से अपना वक्तव्य सभा पटल पर रखने के लिए कह सकते हैं।[39]

मंत्री भी, अध्यक्ष की अनुमति से ऐसा वक्तव्य दे सकता है जिसमें किसी सदस्य द्वारा सभा में दी गयी जानकारी में गलती या अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाया गया हो।[40]

मंत्री-पद से त्यागपत्र देने वाले सदस्य का वक्तव्य

(*देखिए* अध्याय 28—'मंत्रिपरिषद में विश्वास तथा अविश्वास के प्रस्ताव' के अन्तर्गत)

समिति के प्रतिवेदनों पर मंत्री द्वारा वक्तव्य

स्थायी समिति द्वारा अपने प्रतिवेदनों में की गई सिफारिशों/टिप्पणियों पर मंत्रालयों द्वारा की गई कार्यवाही से सभा को अवगत कराने के लिए अध्यक्ष ने समिति के प्रतिवेदनों पर मंत्री द्वारा वक्तव्य से संबंधित अध्यक्ष के निदेशों में नया निदेश 73क[41] अंत:स्थापित किया।

संबंधित मंत्री लोक सभा की विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों के प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों के क्रियान्वयन की स्थिति के संबंध में अपने मंत्रालय से संबंधित एक वक्तव्य सभा में छह महीनों में एक बार देगा। वक्तव्य देने वाला मंत्री जिस तिथि को अपना वक्तव्य देना चाहता है उसकी सूचना और अपने वक्तव्य की एक प्रति लोक सभा सचिवालय को अध्यक्ष के सूचनार्थ अग्रिम रूप से उपलब्ध कराता है।

संबंधित मंत्री वक्तव्य देने के लिए अध्यक्ष की लिखित में अनुमति लेता है और उसकी अनुमति के बाद सभा में वक्तव्य देता है।

जब वक्तव्य देने की सूचना मंत्री/मंत्रालय से उसी दिन प्राप्त होती है जिस दिन वक्तव्य दिए जाने का प्रस्ताव है तो वक्तव्य देने की अनुमति प्राप्त करने हेतु उसे अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यदि अध्यक्ष अपनी अनुमति दे देता है और समय उपलब्ध होता है तो इस मद को अंतर्विष्ट करते हुए एक अनुपूरक कार्य-सूची महासचिव के अनुमोदन से जारी की जाती है तथा उसे सभा में सदस्यों को परिचालित कर दिया जाता है। कार्य-सूची की प्रतियां रिपोर्टरों और भाषान्तरकारों को भी प्रदान की जाती हैं।

---

37. *पूर्वोक्त,* 6.3.1964, पृ. 1581-83 ।
38. *पूर्वोक्त* ।
39. *लो.स.वा.वि.* 21.3.1969, कॉ. 2301 ।
40. उदाहरणार्थ श्रम उपमंत्री ने 10 दिसम्बर, 1959 को उन कतिपय आरोपों के संबंध में वक्तव्य दिया जो 2 अप्रैल, 1959 को चीनाकुरी कोयला खान दुर्घटना पर चर्चा के दौरान दो सदस्यों ने एक सरकारी अधिकारी के विरुद्ध लगाए थे।
41. *देखिए* समाचार भाग-दो दिनांक 1.9.2004, पैरा 456 ।

यदि मंत्री वक्तव्य तुरन्त देना चाहता है और उसके लिए अनुमति भी प्रदान कर दी गई है लेकिन अनुपूरक कार्य-सूची को परिचालित करने के लिए समय नहीं है तो मद को अध्यक्ष और अधिकारियों की कार्य-सूची में "एन.ए." (कार्य-सूची में शामिल नहीं) मद के रूप में यथोचित स्थान पर शामिल कर लिया जाता है।

यदि मंत्री का वक्तव्य लम्बा है अथवा यदि उसके लिए सभा का अधिक समय चाहिए और यदि अध्यक्ष का ऐसा निर्णय है तो वक्तव्य को सभा पटल पर रख दिया जाता है।

मंत्री द्वारा सभा में अपना वक्तव्य दे देने/सभा पटल पर रख देने के बाद, उसकी एक प्रति स्थायी समिति और समन्वय प्रकोष्ठ को वक्तव्य की आगे और जांच करने हेतु भेज दी जाती है।

सदस्यों द्वारा वैयक्तिक स्पष्टीकरण

जिन सदस्यों के संबंध में सभा में कोई वैयक्तिक टिप्पणी या आलोचना की गई हो, उन्हें भी अध्यक्ष की अनुमति से अपनी सफाई में वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने का अधिकार है भले ही उस समय सभा के सामने तत्संबंधी ऐसा कोई प्रश्न न हो।[42] सदस्य को उस स्थिति में भी वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने का अधिकार है, जब कि सभा में उस पर लगाए गए आरोप उसकी संसद सदस्य की हैसियत से संबंधित न हो, बल्कि अन्य प्रकार के हों।[43] तथापि समाचारपत्रों में छपे किसी ऐसे समाचार, जो सभा की कार्यवाही से संबंधित न हो, का खंडन करने के लिए अथवा उसको स्पष्ट करने हेतु वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने के लिए सभा का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।[44]

अत: वैयक्तिक स्पष्टीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि वह किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष की पूर्व अनुमति से दिया गया ऐसा वक्तव्य है जिसमें किसी प्रश्न या अवसर विशेष के संबंध में अपने आचरण के बारे में स्पष्टीकरण दिया गया हो, किसी अन्य सदस्य द्वारा लगाये गये आरोप का उत्तर दिया गया हो, अथवा कथित गलत ढंग से पेश की गई बात को शुद्ध किया गया हो। वैयक्तिक स्पष्टीकरण किसी दिन का सभा का मुख्य कार्य आरम्भ होने से पूर्व दिया जाता है, बशर्ते अध्यक्ष सम्बद्ध सदस्य को ऐसा वक्तव्य देने की अनुमति वाद-विवाद के दौरान उसी समय न दे दें, जब उस पर आरोप लगाए गए हों।

यदि कोई सदस्य वाद-विवाद के दौरान किसी अन्य सदस्य या मंत्री पर विषय से सम्बन्धित नियम के अन्तर्गत अध्यक्ष को अग्रिम सूचना दिये बिना ही कोई आरोप लगाता है, तो सामान्यत: सदस्य को व्यवस्था बनाए रखने के लिए कहा जाता है। तथापि जब ऐसे कोई

---

42. *देखिए* नियम 357, *एल.ए. डिबेट्स,* (1935), खण्ड VI, पृ. 1733-34; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 11.3.1953, कॉ. 1772; *लो.स.वा.वि.,* 17.3.1970, पृ. 154-58; 23.5.1972, पृ. 93-95; 22.11.1973, पृ. 127-28; 6.5.1976, पृ. 78; 27.8.1981, पृ. 210; 31.3. 1987, पृ. 265-66; 7.5.1987, पृ. 316-18 और 17.11.1987, पृ. 267-70 ।

43. *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1968, पृ. 1025-26 ।

44. *पूर्वोक्त,* 4.6.1971, पृ. 98 ।

आरोप कार्यवाही वृत्तांत में सम्मिलित हो जाते हैं, तब उस तथाकथित आरोपित सदस्य या मंत्री को उसके अनुरोध पर सभा में वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की अनुमति दे दी जाती है ताकि वह अपनी स्थिति उसी दिन या बाद में किसी दिन स्पष्ट कर सकें।

जब सम्बद्ध सदस्य आरोप लगाए जाने के समय सभा में उपस्थित हो, तो सामान्यत: उसे आरोप लगाने वाले सदस्य का भाषण समाप्त होने पर अथवा आरोप लगाने वाले सदस्य के आरोप लगाने के बाद अवसर दिए जाने पर तत्काल ही वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने हेतु वक्तव्य देने की अनुमति दे दी जाती है।[45] परन्तु वह दूसरे सदस्य के भाषण के बीच में लम्बा वैयक्तिक स्पष्टीकरण नहीं दे सकता। इसके लिए उसे अनुमति लेकर मामले को अलग से उठाना चाहिए।[46]

जब सम्बद्ध सदस्य तत्काल वैयक्तिक स्पष्टीकरण नहीं देना चाहता या वह आरोप लगाए जाने के समय सभा में उपस्थित न हो, तो उसे बाद मे वक्तव्य देने की अनुमति दे दी जाती है। ऐसे मामले में वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की अनुमति मांगने वाला सदस्य या तो अध्यक्ष के समक्ष उसके कक्ष में तत्संबंधी तथ्य व्यक्तिगत रूप से रखता है या लिखित रूप में अध्यक्ष से अनुरोध करता है जिसके साथ अपने प्रस्तावित स्पष्टीकरण के रूप में दिए जाने वाले वक्तव्य की प्रति या उसका सारांश संलग्न कर देता है। वैयक्तिक स्पष्टीकरण की इस अग्रिम प्रति पर यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से विचार किया जाता है कि वह उत्तम पुरुष में लिखी गई हो, ताकि वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने वाला सदस्य उसमें उल्लिखित तथ्यों की पूरी जिम्मदारी ले तथा वक्तव्य संक्षिप्त हो, सुसंगत हो और उसमें नये विवादग्रस्त या विवादयोग्य मुद्दे सम्मिलित न किये गये हों।[47] यदि उसके किसी भाग को आपत्तिजनक या वैयक्तिक स्पष्टीकरण की परिधि से बाहर समझा जाता है तो सदस्य को वक्तव्य देने की अनुमति देने से पूर्व उस वक्तव्य में से ऐसे भाग को निकाल देने के लिए कहा जाता है। यह प्रति अध्यक्ष को उसके अनुमोदनार्थ काफी पहले देनी होती है।

यदि अनुमति दे दी गई हो तो सदस्य अध्यक्ष द्वारा निर्धारित तारीख और समय पर सभा में वक्तव्य देता है और उस मंत्री अथवा सदस्य को जिसने आरोप लगाए हों, तदनुसार यह सूचित किया जाता है कि वक्तव्य कब दिया जाएगा।[48]

---

45. *एल.ए. डिबेट्स,* (1928), खण्ड I, पृ. 492; खंड IV, पृ. 1135; 5.4.1934, पृ. 3268-76; और *लो.स.वा.वि.,* 24.4.1965, कॉ. 1227-28, एक मंत्री को, उस पर मंत्री की हैसियत से लगाये गये आरोपों का उसी समय खंडन करने की अनुमति उससे तत्संबंधी वक्तव्य का लिखित पाठ मांगे बिना ही, दे दी गयी है-*लो.स.वा.वि.,* 28.8.1974, पृ. 115-16; 29.8.1974, पृ. 84-86 ।

46. *लो.स.वा.वि.,* 16.3.1965, कॉ. 4580 ।

47. नियम 357 ।

48. वैयक्तिक स्पष्टीकरण के उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.*, 7.9.1955, पृ. 2962; 21.8.1963, पृ. 926-28; *लो.स.वा.वि.,* 12.2.1964, कॉ. 300-03; 2.12.1966, पृ. 2926-31, पृ. 178-79; 27.3.1967, पृ. 326-28; 20.8.1968, पृ. 1645-46; 29.8.1968, पृ. 178-79; और 17.3.1970, पृ. 154-58; 9.4.1974, पृ. 120; 12.4.1979, पृ. 210; 29. 1.1980, पृ. 137-38; 6.3.1984, पृ. 317-18; 30.7.1984; पृ. 221-22; और 5.3.1986, पृ. 132-33,

वैयक्तिक स्पष्टीकरण दिये जाने के उपरान्त इस पर कोई अन्य प्रश्न करने की अनुमति नहीं है। यदि सभा में आरोपों का खण्डन कर दिया जाता है तो सामान्यत: उस सदस्य द्वारा, जो आरोप लगाता है, इस खण्डन को स्वीकार कर लिया जाता है। यदि आरोप लगाने वाला सदस्य वैयक्तिक स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं भी होता है तो भी कोई अन्य वक्तव्य देने की अनुमति नहीं दी जाती है। इसके पीछे यह उद्देश्य रहता है कि इसे वाद-विवाद का रूप न दिया जाए।[49] जब किसी सदस्य द्वारा वैयक्तिक स्पष्टीकरण दिया जाता है तो किसी अन्य सदस्य को जवाबी स्पष्टीकरण देने की अनुमति देने की प्रथा नहीं है।[50] दोनों पक्षों का वक्तव्य रिकार्ड पर आ जाने की स्थिति में यह मामला समाप्त मान लिया जाता है। तथापि, सदस्य के वैयक्तिक स्पष्टीकरण दिये जाने के उपरांत अध्यक्ष द्वारा उपयुक्त मामलों में संबंधित मंत्री अथवा सदस्य को स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी जा सकती है। इसके लिए भी एक अग्रिम प्रति प्रस्तुत करना आवश्यक है।[51]

ऐसे मामलों में जहां दूसरी सभा में लोक सभा के सदस्य के विरुद्ध कुछ आरोप लगाए गए, अध्यक्ष ने संबंधित सदस्य को सभा में अपनी स्थिति स्पष्ट करने की अनुमति दी है।[52] अध्यक्ष ने उन सदस्यों को भी, जिनके नामों का उल्लेख सरकार द्वारा की जा रही कतिपय जांच के संबंध में दूसरी सभा में किया गया, सभा में अपनी-अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी है।[53]

अध्यक्ष ने उन सदस्यों को भी सभा में अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की अनुमति प्रदान की है जिनके नाम किसी गुप्तचरी के मामले में दाखिल किए गए आरोप-पत्र में शामिल थे।[54]

12.7.2004, कॉ. 399-402; 16.7.2004, कॉ. 296-309; 11.8.2005, कॉ. 313-14; 30.8.2005, कॉ. 20-22 । यदि कोई सदस्य मंत्री द्वारा सभा में दिये गये वक्तव्य में उसके नाम का उल्लेख किये जाने को देखते हुए व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देना चाहता है, तो सदस्य द्वारा अध्यक्ष को अग्रिम रूप से प्रस्तुत किये गये स्पष्टीकरण के पाठ की एक प्रति सम्बंधित मंत्री को भेजी जा सकती है। *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1975, पृ. 152-55 ।

49. नियम 357 । सदस्यों द्वारा यह आपत्ति किए जाने पर कि वैयक्तिक स्पष्टीकरण में विवादास्पद विषय का उल्लेख किया गया है। वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने वाले मंत्री ने आपत्तिजनक टिप्पणियों को वापस ले लिया है। *लो.स.वा.वि.,* 28.8.1973, पृ. 132-34 ।
50. *लो.स.वा.वि.,* 13.12.1972, पृ. 138 ।
51. *पूर्वोक्त,* 27.3.1967, पृ. 437-39; , 27.3.1967, कॉ. 995 ।
52. *पूर्वोक्त,* 30.8.1969, पृ. 6-8 और 1.4.1970, पृ. 118-19; बाद के मामले में, अध्यक्ष ने, एक सदस्य के सुझाव पर, वैयक्तिक स्पष्टीकरण के बारे में राज्य सभा के सभापति को पत्र लिखा। 4.4.1970 को राज्य सभा में सभापति ने इस पत्र का हवाला दिया और सदस्यों से कहा कि वे दूसरी सभा के सदस्यों के बारे में उल्लेख करते समय संयम बरतें।
53. *लो.स.वा.वि.,* 28.8.1974, पृ. 139 ।
54. *लो.स.वा.वि.,* 5.3.1986, पृ. 132-33 ।

जब सभा में किसी राजनैतिक दल विशेष के विरुद्ध आरोप लगाए जाते हैं, तो सभा में उस दल अथवा समूह के नेता या उसकी अनुपस्थिति में सचेतक[55] को उस संबंध में एक वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है। तथापि, उसे, उसके द्वारा दिये जाने वाले वक्तव्य का पाठ अध्यक्ष को प्रस्तुत करना होता है तथा अध्यक्ष द्वारा वक्तव्य का अध्ययन करने के उपरान्त उसे अनुमति प्रदान किए जाने पर ही वह वक्तव्य दे सकता है।[56]

जब सभा पटल पर रखी गई किसी रिपोर्ट में किसी सदस्य के, सभा में अथवा सभा के बाहर, आचरण के बारे में कोई ऐसा उल्लेख हो, जो उस रिपोर्ट की विषय-वस्तु बन जाए, तब उस सदस्य को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी जा सकती है।[57] किसी सदस्य को उस स्थिति में भी वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी जा सकती है, यदि यह समझा जाए कि जिस वक्तव्य पर आपत्ति की गई है, वह उसी सदस्य ने दिया है।[58]

वैयक्तिक स्पष्टीकरण केवल उसी सदस्य द्वारा दिया जा सकता है जिसके विरुद्ध सदन में वाद-विवाद के दौरान कोई आरोप लगाया गया हो; उस सदस्य की ओर से कोई अन्य सदस्य स्पष्टीकरण नहीं दे सकता।

जो सदस्य वैयक्तिक स्पष्टीकरण देना चाहता हो, उसे यथाशीघ्र स्पष्टीकरण दे देना चाहिए,[59] उसे विषय विशेष तक अपनी बात सीमित रखनी चाहिए और वाद-विवाद का उत्तर देने या अपने बारे में की गई सामान्य आलोचना का उत्तर देने का प्रयास नहीं करना चाहिए[60]; वैयक्तिक स्पष्टीकरण का उपयोग अन्य भाषण देने के लिये नहीं किया जा सकता[61]; किसी विषय के संबंध में जो न्याय-निर्णयाधीन हो, वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की अनुमति नहीं दी जाती, भले ही उसका सदन में मंत्री ने ही उल्लेख किया हो[62]; यदि कोई सदस्य किसी दूसरे

---

55. *पूर्वोक्त,* 9.3.1989 ।
56. *पूर्वोक्त,* 11.12.1967 और 13.12.1967; 12.12.1967 और 14.12.1967 । तथापि, अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की कि विपक्षी दलों/ग्रुपों के नेताओं को एक साथ बैठकर एक प्रक्रिया तैयार करनी चाहिए जिससे कि दलों और व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप न लगाए जाएं।
    लो.स.वा.वि., 14.12.1967, पृ. 3357।
57. *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1969, पृ. 156-57 ।
58. *पूर्वोक्त*-12.2.1964, पृ. 176 ।
59. *एल.ए. डिबेट्स* (1930), खण्ड III, पृ. 2350 ।
60. *पूर्वोक्त,* (1931), खण्ड VI, पृ. 1226, खण्ड VII, पृ. 1923 ।
61. *पूर्वोक्त* (1923), खण्ड III, पृ. 3070 ।
62. 11 अगस्त, 1960 को, वित्त मंत्री ने सभा में बताया कि एक सदस्य विदेशी मुद्रा विनियमन के उल्लंघन के मामले में संलिप्त है। 6 सितम्बर, 1960 को, जब उस सदस्य ने वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने के लिए अनुमति मांगी तब अध्यक्ष ने इस आधार पर अनुमति देने से इन्कार कर दिया कि यह मामला पहले ही न्याय निर्णयाधीन है।

सदस्य की किसी दलील का खंडन करने के लिए उद्धरण दे तो वह वैयक्तिक स्पष्टीकरण नहीं है[63]; प्रत्येक साधारण विषय के संबंध में वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की भी अनुमति नहीं दी जाती है।[64] वैयक्तिक स्पष्टीकरण देते समय किसी सदस्य के लिए यह बताना उपयुक्त नहीं है कि उसने पहले किसी प्रस्ताव विशेष पर मत क्यों नहीं दिया।[65]

वैयक्तिक स्पष्टीकरण के जो अंश आपत्तिजनक ठहराये गये, वे सभा के कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिए गये हैं।[66] ऐसे शब्द, वाक्यांश और पदावली जो अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत वक्तव्य में शामिल न हो, यदि बोले जाते हैं, तो सभा की कार्यवाही-वृत्तान्त का भाग नहीं बनते हैं।[67]

(iii) समितियों के लिए निर्वाचन संबंधी प्रस्ताव

सभा के कार्य की एक और औपचारिक मद वह प्रस्ताव है जिसका प्रयोजन किसी समिति, आयोग अथवा निकाय (संसदीय समिति से भिन्न) जो संविधान के उपबंधों के अन्तर्गत अथवा संसद के अधिनियम के अन्तर्गत और उसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों के अनुसार अथवा किसी सरकारी संकल्प की शर्तों के अनुसार गठित हो, के लिये सदस्यों का चुनाव करना होता है।[68] सम्बन्धित मंत्री से परामर्श के बाद, वह तिथि नियत कर ली जाती है, जब मंत्री को प्रस्ताव पेश करना होता है और वह मद उस दिन की कार्य-सूची में प्रश्न काल के बाद और मुख्य कार्य से पहले शामिल कर ली जाती है।

(iv) विधेयकों के पुरःस्थापन अथवा वापस लिये जाने संबंधी प्रस्ताव

किसी विधेयक को पुरःस्थापित करने या वापस लेने की अनुमति हेतु प्रस्ताव को कार्य की औपचारिक मद माना जाता है और उसका निपटान उस दिन का मुख्य कार्य प्रारम्भ करने से पहले किया जाता है।[69]

अध्यक्ष किसी विनियोग विधेयक को, अनुदानों की मांगें सभा द्वारा स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात्, दिन में बाद में पुरःस्थापित किये जाने की अनुमति दे सकता है। आमतौर पर वार्षिक वित्त विधेयक, सामान्य बजट के पेश किये जाने के शीघ्र बाद, पुरःस्थापित किया जाता है।[70]

---

63. *एल.ए. डिबेट्स* (1931), खण्ड V, पृ. 331 ।
64. *पूर्वोक्त,* (1926), खण्ड VII, पृ. 1140 ।
65. *पूर्वोक्त,* (1928), खण्ड II, पृ. 1410 ।
66. *लो.स.वा.वि.,* 17.11.1966, पृ. 1551 ।
67. निदेश 115ग, *लो.स.वा.वि.,* 19.5.1970, पृ. 131-32; 23.5.1972, पृ. 93-95; और 8.8.1977, पृ. 21-23 ।
68. ऐसी समिति, आयोग अथवा निकाय के गठन की प्रक्रिया का विस्तृत ब्यौरा अध्याय 30-'संसदीय समितियों' में दिया गया है।
69. निदेश 2-औपचारिक कार्यों की मदों के लिए-*देखिए* इस अध्याय में 'सरकारी कार्य का विन्यास' शीर्षक के अन्तर्गत।
70. विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक के संबंध में अधिक जानकारी के लिए, *देखिए* अध्याय 29 'वित्तीय विषयों के संबंध में प्रक्रिया'।

ऐसे विधेयक के मामले में, जिसे किसी अध्यादेश का स्थान लेना हो, मंत्री के अपेक्षित वक्तव्य जिसमें यह बताया जाये कि कौन-सी परिस्थितियों के कारण अध्यादेश द्वारा तुरन्त विधान बनाना आवश्यक हो गया, की मद को विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव की प्रविष्टि के बाद कार्य-सूची में रखा जाता है।[71]

इस बात की भी अनुमति है कि किसी विधेयक या विधेयकों को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव या प्रस्तावों को कार्य-सूची में शामिल कर लिया जाए, भले ही वह दिन वित्तीय कार्य या राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के लिए ही नियत किया गया हो।[72]

(v) समितियों के प्रतिवेदन स्वीकार करने संबंधी प्रस्ताव

कतिपय संसदीय समितियों के प्रतिवेदन स्वीकार करने संबंधी प्रस्ताव सभा में प्रतिवेदनों के प्रस्तुत किए जाने के बाद रखे जाते हैं।[73] ऐसे प्रस्ताव को भी कार्य की औपचारिक मद माना जाता है और इसका निपटान उस दिन का मुख्य कार्य प्रारम्भ करने से पहले कर दिया जाता है।

(vi) वित्तीय कार्य

सभा द्वारा किये जाने वाले वित्तीय कार्य[74] में निम्नलिखित मदें शामिल होती हैं—

> रेल बजट तथा सामान्य बजट और अनुपूरक/अतिरिक्त अनुदानों की मांगों का विवरण पेश किया जाना; सामान्य बजट तथा रेल बजट पर सामान्य चर्चा; सामान्य बजट और रेल बजट के संबंध में लेखा अनुदानों की मांगों पर मतदान; सामान्य बजट तथा रेल बजट के संबंध में अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान; अनुपूरक तथा अतिरिक्त अनुदानों की मांगों और प्रत्ययानुदान पर चर्चा और उन पर मतदान; सभा द्वारा पारित की गयी विभिन्न मांगों के संबंध में विनियोग विधेयकों पर चर्चा और उन्हें पारित किया जाना; वित्त विधेयक पर चर्चा और उसका पारित किया जाना; तथा उन राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों, जो राष्ट्रपति के शासनाधीन हों, के बजट, अनुपूरक और अतिरिक्त अनुदानों का पेश किया जाना और

---

71. नियम 71(1), अध्यादेश द्वारा विधान बनाने के संबंध में अधिक जानकारी के लिए, *देखिए* अध्याय 23—'राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं'।
72. नियम 19(1)(क) और 220 ।
73. नियम 290, 295, 315 और 328—ऐसे प्रस्तावों को स्वीकार किए जाने के संबंध में ब्यौरा अध्याय 30—"संसदीय समितियां" में "कार्य-मंत्रणा समिति", "विशेषाधिकार समिति" और "सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति" के अन्तर्गत दिया गया है।

    गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार करने का प्रस्ताव सभा का मुख्य कार्य आरम्भ करने से पूर्व गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को करने के लिए नियत समय के अन्तर्गत निपटाया जाता है।
74. वित्तीय मामलों में प्रक्रिया संबंधी अधिक जानकारी के लिए, *देखिए* अध्याय 29—'वित्तीय विषयों के संबंध में प्रक्रिया'।

उन पर चर्चा करना तथा तत्संबंधी विनियोग विधेयकों का पेश किया जाना, उन पर विचार करना और उनका पारित किया जाना।

उपर्युक्त सभी मदों के संबंध में प्रविष्टियां कार्य-सूची में शामिल की जाती हैं।

(vii) विधायी कार्य

सभा में मंत्री तथा गैर-सरकारी सदस्य विधेयक पुर:स्थापित कर सकते हैं और उन्हें संचालित कर सकते हैं।[75] परन्तु सरकारी कार्य के लिए निर्धारित समय में केवल उन्हीं विधेयकों को पुर:स्थापित किया जा सकता है और उन पर विचार हो सकता है जिनकी सूचना मंत्रियों ने दी हो।

(viii) प्रस्ताव

लोक महत्व के विषय पर विचार करने का प्रस्ताव अध्यक्ष की सहमति से प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसे प्रस्ताव पर चर्चा सरकारी कार्य के लिए निर्धारित समय में होती है, भले ही उस प्रस्ताव की सूचना किसी गैर-सरकारी सदस्य ने दी हो या किसी मंत्री ने।[76] उन गृहीत प्रस्तावों में से, जिनकी सूचना गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा दी गई हो, सामान्यत: केवल उन्हीं प्रस्तावों को चर्चा के लिए लिया जाता है जिन पर चर्चा करने के लिए कार्य मंत्रणा समिति द्वारा सिफारिश की जाती है। इन प्रस्तावों को चर्चा के लिए कब लिया जाएगा, इसका कोई समय नियत नहीं है।

पहले यह परिपाटी थी कि किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत एक प्रस्ताव, उस अवधि को छोड़कर जब बजट पर चर्चा हो रही हो, प्रत्येक सप्ताह अपराह्न 4 से 6 बजे तक सभा में विचारार्थ ले लिया जाता था। तथापि कुछ मामलों में ऐसे प्रस्ताव पर चर्चा के लिए दिन में उससे पहले भी समय दिया गया।[77] जब कोई प्रस्ताव किसी मंत्री द्वारा पेश किया जाना था, तो उसे सामान्यतया प्रश्न काल के तुरन्त बाद लिया गया और यदि कार्य की कोई ऐसी मद थी जो अविलम्बनीय थी या जिस पर आंशिक रूप से कुछ चर्चा की जा चुकी थी, तो उसका निपटारा होने के तुरन्त बाद ऐसा प्रस्ताव लिया गया। वर्ष 1971 (पांचवीं लोक सभा) से कार्य मंत्रणा समिति स्वयं सभा में चर्चा के लिए ऐसे प्रस्तावों का चयन कर रही है और उनके लिए समय का नियतन कर रही है। अनेक मामलों में समिति ने उन प्रस्तावों पर चर्चा के लिए तिथियां भी निर्धारित की हैं।

---

75. विभिन्न प्रकार के विधेयकों के पुर:स्थापित किये जाने, उन पर विचार करने और उन्हें पारित किये जाने तथा उनके खण्डों में संशोधन रखे जाने संबंधी प्रक्रिया आदि के ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 22–'विधान'।

76. प्रस्ताव पेश करने के संबंध में विस्तृत प्रक्रिया के लिए, *देखिए* अध्याय 21–अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर स्थगन तथा अध्याय 26–'प्रस्ताव'।

77. *लो.स.वा.वि.,* 14.8.1959, पृ. 1316; 11.9.1959, पृ. 3959; 12.9.1959, पृ. 4017 और 11.8.1961, पृ. 945 ।

(ix) संकल्प

सभा में संकल्प मंत्रियों तथा गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं।[78] परन्तु विधेयकों की भांति केवल वही संकल्प सरकारी कार्य के लिए निर्धारित समय में लिये जाते हैं, जो मंत्रियों ने प्रस्तुत किए हों। तथापि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत सांविधिक संकल्पों—जैसे राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का निरनुमोदन करने के लिए संकल्प या सांविधिक नियमों तथा आदेशों में संशोधन करने के उद्देश्य से सभा पटल पर रखे गये संकल्प—पर सरकारी कार्य के लिए नियत समय के दौरान चर्चा की जाती है।[79] गैर-सरकारी सदस्यों के अन्य संकल्पों पर चर्चा एक शुक्रवार छोड़कर दूसरे शुक्रवार को अन्तिम ढाई घंटे के दौरान या उन पर चर्चा के लिये नियत किसी अन्य दिन होती है।[80]

(ख) गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत की गयी और सरकारी कार्य के लिए नियत समय में ली गयी कार्य मदें

गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य अर्थात् विधेयक और संकल्प जिन पर प्रत्येक शुक्रवार को या अध्यक्ष द्वारा नियत किसी अन्य दिन ढाई घंटे तक विचार होता है, के अतिरिक्त कुछ ऐसी कार्य मदें हैं जो यद्यपि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं, लेकिन उन पर सरकारी कार्य के लिये नियत समय के दौरान विचार होता है।[81]

दो मदों, अर्थात् किसी मंत्री या अन्य सदस्य द्वारा दिये गये वक्तव्यों में गलतियां या अशुद्धियां बताने वाले वक्तव्य और सदस्यों द्वारा वैयक्तिक स्पष्टीकरण, जिनका वर्णन इस अध्याय में पहले किया जा चुका है, के अतिरिक्त इस श्रेणी में आने वाली कार्य की अन्य मदें, निम्नलिखित है:[82]

> प्रश्न और अल्प सूचना प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव; अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों की ओर ध्यानाकर्षण; राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव; विशेषाधिकार के प्रश्न; अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा; मंत्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव; अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को पद से हटाने के लिए संकल्प; उन विनियमों, नियमों, उप-नियमों, उप-विधियों आदि में संशोधन करने के प्रस्ताव जो सभा पटल पर रखे गये

---

78. संकल्पों के रखे जाने संबंधी प्रक्रिया और उनकी ग्राह्यता की शर्तों के ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 25—'संकल्प'।
79. *लो.स.वा.वि.,* 17.12.1959, पृ. 2768-69; 22.12.1959, पृ. 3236; 8.8.1960, पृ. 719; 24.4.1961, पृ. 6103; 6.9.1961, पृ. 3698; 22.3.1988, पृ. 235-56, 257-300; 19.7.1996, पृ. 228-52; और 5.3.1997, कॉ 331 ।
80. नियम 26 ।
81. चौदहवें सत्र (पांचवीं लोक सभा) के पहले दिन सभा ने सत्र के दौरान केवल सरकारी कार्य करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया। *लो.स.वा.वि.,* 21.7.1975 ।
82. इनसे सम्बन्धित प्रक्रिया सुसंगत अध्यायों में उपयुक्त स्थानों पर बतायी गयी है।

हैं और जो संविधान या संसद द्वारा किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रत्यायोजित विधायी कृत्यों के अनुसरण में बनाये गये हैं; लोक हित के विषयों पर चर्चा के लिए प्रस्ताव; अनुदानों की मांगों को कम करने के प्रस्ताव; अर्थात् कटौती प्रस्ताव; प्रश्नों और उनके उत्तरों से उत्पन्न विषयों पर आधे घंटे की चर्चा;[83] सांविधिक संकल्प; और नियम 377 के अधीन मामले।

उपर्युक्त सभी मदों के बारे में कार्य-सूची में प्रविष्टियां की जाती हैं। प्रश्नों और अल्प-सूचना प्रश्नों के संबंध में अलग सूचियां छापी जाती हैं, जिनमें प्रश्नों का पाठ होता है और प्रश्नों का यह पाठ कार्य-सूची में शामिल नहीं किया जाता है। इसी प्रकार यदि नियमों तथा विनियमों, आदि में संशोधन करने संबंधी प्रस्तावों की संख्या अधिक हो तो उनका पाठ कार्य-सूची में शामिल नहीं किया जाता। प्रस्तावों को बुलेटिन में अथवा पृथक सूची में प्रकाशित करके उस दिन से एक दिन पहले सदस्यों को परिचालित किया जाता है जिस दिन की कार्य-सूची में प्रस्तावों की प्रविष्टि दर्ज की गयी हो।

इसके अतिरिक्त, कार्य की निम्नलिखित अन्य मदों को संवैधानिक उपबन्धों या स्थापित परिपाटी के अनुसार, सरकारी कार्य हेतु नियत समय में लिया जाता है:

शपथ या प्रतिज्ञान; निधन संबंधी उल्लेख; समारोही अवसरों पर उल्लेख; अध्यक्ष द्वारा घोषणाएं।

शपथ अथवा प्रतिज्ञान

लोक सभा के प्रत्येक सदस्य को, चाहे वह किसी साधारण निर्वाचन में या उसके बाद होने वाले किसी उप-चुनाव में लोक सभा का सदस्य निर्वाचित हुआ हो या राष्ट्रपति द्वारा नाम-निर्देशित किया गया हो, संविधान के अनुसार शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना पड़ता है।[84] यद्यपि किसी भी सदस्य को राष्ट्रपति के समक्ष या राष्ट्रपति द्वारा शपथ दिलाने के लिये नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष सभा के बाहर शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने पर कोई पाबन्दी नहीं है तथापि ऐसी सुदृढ़ प्रथा बन गई है कि सदस्य केवल लोक सभा की बैठक में ही शपथ लेते हैं या प्रतिज्ञान करते हैं। चूंकि, सदस्यों द्वारा सभा की कार्यवाही में भाग लेने से पूर्व सभा में अपना स्थान ग्रहण करना आवश्यक है, इसलिए शपथ-ग्रहण या प्रतिज्ञान तथा स्थान ग्रहण करने के दोनों कार्य साथ-साथ किये जाते हैं जिससे कि सदस्य सभा की कार्यवाही में शीघ्र भाग ले सकें और इस अवसर की गरिमा बनी रहे। इस मद को उस दिन की कार्य-सूची में सबसे पहले अर्थात् प्रश्न काल से पहले स्थान दिया जाता है। बहुत कम

---

83. आधे घंटे की चर्चा संबंधी ब्यौरे के लिए, *देखिए* अध्याय 19–'प्रश्न' के संगत शीर्षक के अन्तर्गत।

84. अनुच्छेद 99 ।

अवसरों पर ही कोई सदस्य दिन के अन्त में या दिन के बीच किसी अन्य सुविधाजनक समय पर शपथ ले सकता है या प्रतिज्ञान कर सकता है।[85]

निधन संबंधी उल्लेख

सभा में, किसी वर्तमान सदस्य, भूतपूर्व सदस्य, विशिष्ट व्यक्ति और मित्र देशों के राष्ट्राध्यक्षों के निधन के संबंध में उल्लेख करने की प्रथा है। इस संबंध में सभा की सुस्थापित परिपाटी यह है कि यह मद सरकारी कार्य के लिये निर्धारित समय में ली जाती है और इसे कार्य की अन्य सभी मदों की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है, अर्थात् यह मद प्रश्न काल से पहले ली जाती है।[86] इसमें जो समय लगता है उसे पूरा करने के लिए प्रश्न काल को उसके नियत समय से आगे नहीं बढ़ाया जाता।[87]

> यदि किसी दिन की कार्य-सूची जारी करने से पहले यह पता चल जाए कि सभा में कोई निधन संबंधी उल्लेख किया जाना है तो कार्य-सूची में 'प्रश्नों' के पहले परन्तु "शपथ या प्रतिज्ञान" के बाद उसकी प्रविष्टि की जाती है, जिसमें दिवंगत व्यक्ति का नाम और उसकी सदस्यता का ब्यौरा दिया जाता है। तथापि, यदि उसके निधन के संबंध में उस दिन की कार्य-सूची जारी होने के बाद सूचना मिले तो निधन संबंधी उल्लेख की प्रविष्टि अध्यक्ष के कार्य-सूची पत्रों में कर दी जाती है। यदि किसी वर्तमान सदस्य या मंत्री का निधन नई दिल्ली में उस समय हो जाए जब सभा की बैठक हो रही हो, तो आगे का कार्य निलंबित किया जा सकता है और निधन संबंधी उल्लेख किए जाने के बाद सभा की बैठक को स्थगित किया जा सकता है।[88] या उस दिन कोई और कार्य किये बिना सभा की बैठक तत्काल स्थगित की जा सकती है और उस दशा में निधन संबंधी उल्लेख अगली बैठक में किया जाता है।[89]

---

85. निदेश, *लो.स.वा.वि.,* (II), 18.5.1954, पृ. 5452; 1.10.1955, पृ. 3680-94; 17.5.1957, पृ. 377; 24.8.1957, पृ. 4419; 21.12.1963; पृ. 3188; 20.3.1967, पृ. 96; 26.3.1971, पृ. 5; 4.3.1983, कॉ 1; 18.11.1983, पृ. 262; 15.5.2007, कॉ. 512 ।

    शपथ ग्रहण तथा प्रतिज्ञान संबंधी ब्यौरा अध्याय 15 में दिया गया है।

86. निदेश 2, यथा संशोधित—पहले यह मद सामान्यतः प्रश्न काल के समाप्त होने के तुरंत बाद ली जाती थी।

87. *लो.स.वा.वि.,* 12.4.1965, पृ. 3461-65 ।

88. *एल.ए. डिबेट्स,* 5.3.1945, पृ. 1056; 6.3.1945, पृ. 1057; *लो.स.वा.वि.,* 7.5.1955, कॉ. 8279; 16.2.1956, कॉ. 37; *लो.स.वा.वि.,* 17.5.1957, पृ. 405; *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1959, कॉ. 577; *लो.स.वा.वि.,* 9.8.1967, पृ. 1237-40; 7.8.1972, पृ. 1-3; 14. 12.1978, पृ. 1; 6.5.1985, पृ. 1; 25.3.1988, पृ., 1-4 ।

89. *लो.स.वा.वि.,* 27.5.1954, कॉ. 142; 29.5.1964, कॉ. 143-76; *लो.स.वा.वि.,* 12.4.1973, पृ. 79; 16.4.1973, पृ. 1-4; 19.3.1982, पृ. 292 और 22.3.1982, पृ. 1-9 ।

किसी वर्तमान सदस्य के निधन पर, उसके निधन की सूचना मिलते ही अध्यक्ष द्वारा सभा में प्रथम उपलब्ध अवसर पर निधन संबंधी उल्लेख किया जाता है।[90] तथापि, किसी मंत्री या किसी ऐसे सदस्य के निधन के मामले में, जिसका देश के सार्वजनिक जीवन में प्रमुख स्थान हो, निधन की सूचना सदन के नेता द्वारा सभा को दी जाती है और विभिन्न राजनीतिक दलों या ग्रुपों के नेता और प्रवक्ता उसके बारे में संक्षिप्त उल्लेख करते हैं और अंत में अध्यक्ष श्रद्धांजलि अर्पित कर कार्यवाही समाप्त करता है।[91] इसी प्रकार, ऐसे प्रमुख व्यक्तियों के निधन पर, जिन को जनता में बहुत सम्मान प्राप्त हो[92]

---

90. *पूर्वाक्त,* 8.2.1960, पृ. 10; 22.2.1960, पृ. 1006; 21.3.1960, पृ. 3335; 8.9.1960, पृ. 3729; 4.10.1982, पृ. 1-11; 23.7.1985, पृ. 1-4 और 22.2.1988, पृ. 14-21 ।

91. 23 दिसम्बर, 2004 को सदन के नेता, प्रणव मुखर्जी ने 14.46 बजे भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव के निधन का उल्लेख किया। तत्पश्चात्, उन्होंने अध्यक्ष से सभा की बैठक स्थगित करने का अनुरोध किया। अध्यक्ष ने शोक संबंधी संक्षिप्त उल्लेख किया और सदस्य थोड़ी देर के लिए मौन खड़े रहे। उसके बाद, 14.54 बजे सभा की कार्यवाही अनिश्चितकाल के लिए स्थगित कर दी गई क्योंकि यह चौदहवीं लोक सभा के तीसरे सत्र की अंतिम बैठक थी। निधन संबंधी औपचारिक उल्लेख लोक सभा में 25 जनवरी, 2005 को चौथे सत्र की पहली बैठक शुरू होने पर किया गया।

    तथापि, चौदहवीं लोक सभा की अधिकांश अवधि के दौरान, अध्यक्ष ने केवल निधन संबंधी उल्लेख ही किए चाहे दिवंगत व्यक्ति की सार्वजनिक हैसियत कुछ भी क्यों न रही हो।

    30 नवम्बर, 2012 को सभा के नेता सुशील कुमार शिंदे ने सभा को जानकारी दी कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दर कुमार गुजराल का उसी दिन अपरान्ह 3.30 बजे गुड़गांव के एक अस्पताल में निधन हो गया । सभा को 3 दिसम्बर, 2012 को पुनः समवेत होने के लिए स्थगित कर दिया गया था।

    3 दिसम्बर, 2012 को, सभा श्री इन्दर कुमार गुजराल के निधन संबंधी उल्लेख से बाद स्थगित कर दी गई थी।

92. 'प्रमुख व्यक्तियों' की श्रेणी के अंतर्गत महात्मा गांधी, अरविन्द घोष, बी.एन. राव, सैयद फजल अली, लेडी माउण्टबेटन, महाराज त्रैलोक्य नाथ चक्रवर्ती–अविभाजित भारत के स्वतंत्रता सेनानी; चार्ल्स दि गाल–फ्रांस के भूतपूर्व राष्ट्रपति; डॉ. सी.वी. रमन, हरेकृष्ण कोनार, सीपीआई (एम) की केन्द्रीय समिति के सदस्य, सर शिवसागर रामगुलाम–मारीशस के गवर्नर जनरल; ले दुआन-वियतनाम की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव; समोरा मैकैल-मोजाम्बिक के राष्ट्रपति; एम.जी. रामचन्द्रन तमिलनाडु के मुख्यमंत्री, सत्यजीत रे-चलचित्रिकी के शिखर पुरुष; न्यायमूर्ति एम. हिदायतुल्ला-भारत के भूतपूर्व उपराष्ट्रपति; जे.आर.डी. टाटा-भारतीय उद्योग के शिखर पुरुष; डॉ. एम. चैन्नारेड्डी–तमिलनाडु के राज्यपाल; देंग ज्योपिंग-चीनी नेता; और ई. एम.एस. नम्बूदरीपाद मार्क्सवादी नेता और केरल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री, श्रीमती एम॰एस॰ सुब्बुलक्ष्मी कर्नाटक संगीत की जानी-मानी हस्ती और भारत रत्न से पुरस्कृत, स्वामी रंगनाथ नंदा–रामाकृष्ण मिशन के प्रेसीडेन्ट, उत्साद बिस्मिल्लाह खान–अनुभवी शहनाई वादक, और भारत रत्न से पुरस्कृत, बाबा आम्टे-सामाजिक कार्यकर्त्ता और सर एडमंड हिलेरी जाने-माने

या मित्र देशों के राष्ट्राध्यक्षों[93] के निधन पर निधन संबंधी उल्लेख अनिवार्य रूप से प्रधान मंत्री के कहने पर किये जाते हैं।

लोक सभा, अन्तरिम संसद, संविधान सभा और केन्द्रीय विधान सभा के भूतपूर्व सदस्यों और सभा के भूतपूर्व सचिवों के निधन पर भी निधन संबंधी उल्लेख किये जाते

पर्वत रोही, ज्योति बसु-पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री, पण्डित भीमसेन जोशी, प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक, धर्म देव आनंद-विख्यात अभिनेता, ए.के. हंगल–विख्यात अभिनेता, बाल केशव ठाकरे–शिव सेना के संस्थापक, पण्डित रवि शंकर–विख्यात संगीतज्ञ और राज्य सभा के पूर्व सदस्य के संबंध में निधन संबंधी उल्लेख किए गए हैं–*देखिए* क्रमानुसार *सी.ए. (लेज) डिबेट्स,* 2.2.1948, पृ. 101; *पी. डिबेट्स,* 6.12.1950, कॉ. 1255; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 30.11.1953, कॉ. 1027; *लो.स.वा.वि.* 27.8.1959, कॉ. 3797; *लो.स.वा.वि.,* 22.2.1960, पृ. 1006; 10.8.1970, पृ. 180-81; 11.11.1970, पृ. 1-2; 23.11.1970, पृ. 2-3; 24.7.1974, पृ. 1; 16.12.1985, पृ. 1; 17.7.1986, पृ. 2-23; 4.11.1986, कॉ. 1-4; 22.2.1988, पृ. 14-21; 24.4.1992, पृ. 1-4; 2.12.1993, पृ. 1-14 (सभा स्थगित); 2.12.1996, कॉ 1-3; 21.2.1997 कॉ 1-2; और 25.3.1998 कॉ 1–2, 13.12 2004, कॉ. 1-2; 26.4.2005, कॉ. 1-2; 21.8.2006, कॉ. 1-2; 25.2.2008, कॉ. 1-5; 22.2.2010 कॉ. 49-50; 21.2.2010 कॉ. 9-10; 8.2.2011, कॉ. 2963; 27.8.2012 कॉ. 1; 12.2.2012 कॉ. 7-8; 12.12.2012 कॉ. 1-2।

93. मुस्तफा कमाल पाशा; किंग जार्ज, षष्टम; मार्शल स्टालिन; त्रिभुवन बीर विक्रम शाह; कान्सेटेन्टिन उस्तीनोविच चेरनेन्को–सोवियत संघ के राष्ट्रपति; ओलोफ पाल्मे-स्वीडन के प्रधानमंत्री; खान अब्दुल गफ्फार खाँ-स्वतंत्रता सेनानी; जिया-उल-हक—पाकिस्तान के राष्ट्रपति; अयातुल्लाह रूहोल्लाह खुमैनी–ईरान के धर्मगुरु और रणसिंघे प्रेमदासा–श्रीलंका के राष्ट्रपति के निधन संबंधी उल्लेख के बाद सभा की बैठक उस दिन के लिए स्थगित भी हो गयी-*देखिए* क्रमानुसार *एल.ए. डिबेट्स,* 14.11.1938, पृ. 2954; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 6.2. 1952, कॉ. 96; 6.3.1953, कॉ. 1567. *लो.स.वा.वि ,* 14.3.1955, कॉ. 1941; 13.3.1985, पृ. 1; 3.3.1986, पृ. 1; और 22.2.1988, पृ. 1; 18.8.1988, पृ. 1; 18.7.1989, पृ. 3; और 3.5.1993, पृ. 1 । परन्तु कोरिया जनतांत्रिक गणराज्य के राष्ट्रपति किम-ल-सुंग तथा जोर्डन के किंग हुसैन; संयुक्त अरब अमीरात (यू.ए.ई.) के प्रेजीडेन्ट, शेख ज़ायेद बिन सुल्तान अल नाहयान; नेशनल अथारिटी तथा फिलीस्तीन मुक्ति संगठन के अध्यक्ष, श्री यासीर आराफ़ात; वैटिकन के धर्म गुरू, पॉप जॉन पॉल-II; सऊदी अरब के महामहिम सम्राट, फ़ाद बिन अब्दुल अज़ीज अल सौद; कुवैत के आमीर, शेख ज़ावेर अल-अहमद अल जाबेर अल सबाह; रूसी परिसंघ के पूर्व प्रेजीडेन्ट बोरिस निकोलविच येल्तसिन के मामले में निधन संबंधी उल्लेख के पश्चात् सभा में निर्धारित कार्य जारी रहा पौलेण्ड के प्रेसीडेंट लेख काजिंस्की, वेनेजुएला के प्रेसीडेंट हुगो चावेज, बंगलादेश के प्रेसीडेंट मोहम्मद जिल्लूर रहमान, युनाइटिड किंगडम की भूतपूर्व प्रधानमंत्री लेडी मार्ग्रेट थैचर के मामले में निधन संबंधी उल्लेख के पश्चात् सभा में कार्य जारी रहा। *लो.स.वा.वि.,* 25.7.1994, पृ. 1 और 25.3.1998, 1.12.2004, कॉ. 1-4; 19.4.2005, कॉ. 1-2; 2.8.2005, कॉ. 1-2; 16.2.2006, कॉ. 1-3; 27.4.2007, कॉ. 1-3 *लो.स.वा.वि.,* 15.04.2010 का 1-3, *लो.स.वा.वि.,* 11.03.2013 कॉ-1 *लो.स.वा.वि.,* 21.03.2013 कॉ 1 और *लो.स.वा.वि.,* 22.04.2013, कॉ 1–2।

हैं।[94] केन्द्रीय विधान सभा के किसी ऐसे भूतपूर्व सदस्य के निधन पर, जो निधन के समय भारत का राष्ट्रिक न हो, सभा में कोई उल्लेख नहीं किया जाता।

लेकिन 5 नवम्बर, 1952 और 9 मई, 1958 को सर अब्दुल रहीम (केन्द्रीय विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष), जिनका निधन कराची में हुआ और डॉ. खान साहब (केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य), जिनका निधन लाहौर में हुआ, के संबंध में सभा में निधन संबंधी उल्लेख किये गये।

लोक सभा में सामान्यत: राज्य सभा के किसी सदस्य के निधन पर निधन संबंधी उल्लेख नहीं किया जाता, जब तक कि वह लोक सभा का पूर्व सदस्य न रह चुका हो, लेकिन कुछ अपवाद हुए हैं, जब राज्य सभा के वर्तमान अथवा भूतपूर्व सदस्यों के निधन पर निधन संबंधी उल्लेख किया गया है।[95] कतिपय मामलों में दिवंगत आत्मा के प्रति सम्मान के रूप में लोक सभा की बैठक को भी उस दिन के लिए स्थगित कर दिया गया।[96]

जब किसी भूतपूर्व अथवा वर्तमान मंत्री का निधन हो जाता है तो लोक सभा में निधन संबंधी उल्लेख अनिवार्य रूप से किया जाता है, भले ही वह मंत्री राज्य सभा का सदस्य ही क्यों न हो[97] और कतिपय मामलों में लोक सभा की बैठक भी, कोई और कार्य किए बिना, उस दिन के लिए स्थगित कर दी गयी।[98]

राज्य सभा की भूतपूर्व उपसभापति वायलेट अल्वा के निधन पर विशेष मामले के रूप में, न केवल निधन संबंधी उल्लेख किया गया, अपितु सभा की बैठक भी स्थगित कर दी गई।[99]

---

94. एम.एन. कौल-सचिव, लोक सभा, *लो.स.वा.वि.,* 18.1.1985, पृ. 11 एस.एल. शकधर-महासचिव, लोक सभा, 15.7.2002, कॉ. 9 ।
95. आचार्य नरेन्द्र देव (राज्य सभा के वर्तमान सदस्य), भूपेश गुप्त (राज्य सभा के वर्तमान सदस्य), वी.एन. तिवारी (राज्य सभा के तत्कालीन सदस्य) और के. बसुदेव पाणिकर (राज्य सभा के तत्कालीन सदस्य), श्री पी.एम. सईद (राज्य सभा के वर्तमान सदस्य) और निर्मला कुमारी देशपान्डे (राज्य सभा की वर्तमान सदस्य) *लो.स.वा.वि.* (II), 20.2.1956, पृ. 127-28; 17.8.1981, पृ. 3-4; 3.4.1984, पृ. 1-9; और 3.5.1988, पृ. 1-2; 19.12. 2005, कॉ. 1-3; 5.5.2008, कॉ. 1-3 वी.एन. तिवारी की हत्या पर सभा द्वारा शोक प्रस्ताव भी पारित किया गया।
96. के. बसुदेव पाणिकर, राज्य सभा के वर्तमान सदस्य, *लो.स.वा.वि.,* 3.5.1988, पृ. 1-2 ।
97. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, हाफिज मोहम्मद इब्राहिम, आबिद अली, डी.पी. धर, भोला पासवान शास्त्री, श्री बीर बहादुर सिंह और प्रो. सैयद नुरूल हसन, विलासराव देशमुख-लो.स.वा.वि., 6.12.1956, पृ. 575-76. 12.2.1968, पृ. 2-5; 23.7.1973, पृ. 1-11; 18.1.1985, पृ. 3; 18.7.1989, कॉ. 1-3; 26.4.1993, पृ. 1-2 और 16-08-2012 का 1।
98. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और हाफिज मोहम्मद इब्राहिम-*लो.स.वा.वि.,* 6.12.1956, पृ. 775-79 और 12.2.1968, पृ. 2-5 । कांशी राम के मामले में, जो लोक सभा तथा राज्य सभा, दोनों के सदस्य थे, संसदीय कार्य राज्य मंत्री के अनुरोध किए जाने पर उनके निधन संबंधी उल्लेख के पश्चात्, सभा की कार्यवाही स्थगित कर दी गई, *लो.स.वा.वि.,* 22.11.2006, कॉ. 1-5 ।
99. *लो.स.वा.वि.,* 20.11.1969 ।

जब किसी भूतपूर्व सदस्य के निधन का समाचार बहुत विलम्ब से प्राप्त होता है, तो लोक सभा में निधन संबंधी उल्लेख नहीं किया जाता। तथापि, अध्यक्ष या महासचिव द्वारा दिवंगत के निकटतम संबंधी को संवेदना पत्र भेज दिया जाता है।[100]

कतिपय मामलों में, लोक सभा के वर्तमान सदस्य का निधन होने पर, उसके संबंध में निधन संबंधी उल्लेख के बाद लोक सभा स्थगित कर दी गई। अब प्रथा यह है कि सभा की बैठक तभी स्थगित की जाती है जब ऐसा करना आवश्यक हो, जिससे कि सदस्य किसी वर्तमान सदस्य की शव-यात्रा के साथ जा सकें और इस मामले में इस बात को महत्व नहीं दिया जाता कि वह व्यक्ति मंत्री रहा है या नहीं।[101]

> यह प्रथा है कि वर्तमान सदस्यों आदि के निधन के बारे में, यदि उनका निधन पिछली अन्तर-सत्रावधि में हुआ है, निधन संबंधी उल्लेख सत्र के पहले दिन किए जाते हैं, लेकिन उसके उपरान्त सभा स्थगित नहीं की जाती है।

---

100. दिनांक 9 अगस्त, 1971 को अध्यक्ष ने वीराबाहु के बड़े पुत्र को संवेदना पत्र भेजा। वीराबाहु के बारे में निधन संबंधी उल्लेख नहीं किया जा सका था, क्योंकि उनकी मृत्यु की सूचना बहुत विलंब से प्राप्त हुई थी। दिनांक 13 मार्च, 1979 को अध्यक्ष ने बनमाली कुम्भर की पत्नी को संवेदना पत्र भेजा। जिनके बारे में निधन संबंधी उल्लेख नहीं किया जा सका था, क्योंकि उनकी मृत्यु की सूचना बहुत विलम्ब से प्राप्त हुई थी। मार्च 1987 में अध्यक्ष और सदस्यगण की ओर से महासचिव ने प्रथम लोक सभा के सदस्य शालिग्राम रामचन्द्र भारतीय के पुत्र को संवेदना पत्र भेजा। शालिग्राम रामचन्द्र भारतीय के बारे में निधन संबंधी उल्लेख नहीं किया जा सका था, क्योंकि उनकी मृत्यु की सूचना बहुत विलंब से प्राप्त हुई थी। 3 मार्च, 2008 को महासचिव ने अध्यक्ष और सदस्यों की ओर से पहली लोक सभा के सदस्य, एस.वी.एल. नरसिम्हन की पत्नी को एक संवेदना पत्र लिखा। उनके बारे में लोक सभा में निधन संबंधी उल्लेख नहीं किया जा सका था क्योंकि उनकी मृत्यु की सूचना काफी विलम्ब से प्राप्त हुई थी। 4 अप्रैल, 2013 को महासचिव ने अध्यक्ष और सदस्यों की ओर से पहली लोक सभा के सदस्य एम.एस. गुरूपदस्वामी के पोते को एक संवेदना पत्र लिखा। उनके बारे में लोक सभा में निधन संबंधी उल्लेख नहीं किया जा सका था क्योंकि उनकी मृत्यु की सूचना काफी विलंब से प्राप्त हुई।
101. *पूर्वोक्त,* 21.11.1964, पृ. 436 ।

    दिनांक 31 जुलाई, 1974 को तत्कालीन सदस्य तथा औद्योगिक विकास राज्य मंत्री एम.बी. राणा की नयी दिल्ली में मृत्यु हो जाने पर, निधन संबंधी उल्लेख करने के उपरान्त अध्यक्ष ने 11.05 बजे सभा को 17.00 बजे पुनः समवेत होने तक के लिए स्थगित किया, जब वित्त (संख्यांक-2) विधेयक को पुरःस्थापित करने के लिए कार्य-सूची में शामिल किया गया था। *लो.स.वा.वि.,* 31.7.1974, पृ. 1-2 तथापि, कुछ अपवाद भी हैं, जब वर्तमान सदस्य की मृत्यु पर उस स्थिति में भी सभा को स्थगित कर दिया गया, जबकि उनका अंतिम संस्कार दिल्ली में नहीं किया गया था- *लो.स.वा.वि.,* 14.7.1980, पृ. 1-7; 6.5.1985, कॉ. 1-2; और 27.11.1987, कॉ. 7-10 । 1998 से किसी वर्तमान सदस्य की मृत्यु पर, इस तथ्य पर विचार किए बिना कि उसकी मृत्यु दिल्ली में हुई अथवा दिल्ली के बाहर हुई या सत्रावधि में हुई अथवा अन्तर-सत्रावधि में हुई, सभा की बैठक हमेशा स्थगित कर दी गई।

तथापि, चौथी लोक सभा के ग्यारहवें सत्र के पहले दिन, एक विशेष मामले के रूप में सभा सर्वश्री पी. गोविन्द मेनन, विधि और समाज कल्याण मंत्री, डी. एरिंग, खाद्य, कृषि सामुदायिक विकास और सहयोग उप-मंत्री (दोनों लोक सभा के वर्तमान सदस्य) तथा चार अन्य भूतपूर्व सदस्यों की, पिछली अन्तर-सत्रावधि में हुई मृत्यु पर निधन संबंधी उल्लेख करने के उपरान्त कोई कार्य किए बिना स्थगित हो गई थी।[102]

किसी वर्तमान सदस्य (जिसमें मंत्री भी शामिल हैं) अथवा किसी भूतपूर्व सदस्य की मृत्यु हो जाने पर, अध्यक्ष द्वारा सभा में निधन संबंधी उल्लेख किया जाता है।[103] उसके उपरांत दिवंगत के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए सदस्य कुछ देर मौन खड़े रहते हैं।[104]

30 जनवरी, 1976, 1980, 1985 और 2004 को सदस्य उन शहीदों की याद में दो मिनट तक मौन खड़े रहे, जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दी थी।[105]

यह भी प्रथा है कि सभा की कार्यवाही के संबद्ध अंश सहित महासचिव के हस्ताक्षर से संवेदना पत्र दिवंगत के निकटतम संबंधी को भेजा जाता है।[106]

दु:खद घटनाओं संबंधी उल्लेख

अध्यक्ष देश और विदेश में जान और माल को हुए नुकसान संबंधी दु:खद घटनाओं का उल्लेख भी करता है।[107]

---

102. *पूर्वोक्त,* 27.7.1970, पृ. 7-8 ।

103. पहले जब सभा में किसी वर्तमान सदस्य या भूतपूर्व सदस्य के निधन के संबंध में उल्लेख किया जाता था, तो उस दल या समूह के नेता को, जिससे वह संबद्ध था तथा अन्य समूहों के नेताओं और उपयुक्त मामलों में सदस्यों को भी, यदि उन्होंने ऐसा चाहा, अध्यक्ष द्वारा निर्धारित समय-सीमा के भीतर रहते हुए, निधन संबंधी उल्लेख करने की अनुमति दी जाती थी। इससे पूर्व का पाद टिप्पण सं. 92 भी देखें।

104. *एल.ए. डिबेट्स,* 5.3.1945, पृ. 1056; 6.3.1945, पृ. 1057 और *लो.स.वा.वि.*, 7.5.1955, पृ. 6188 ।

105. *लो.स.वा.वि.,* 30.1.1976, 30.1.1980, 30.1.1985, 30.1.2004 ।

106. संवेदना पत्र तभी भेजा जाता है, जब सभा के किसी वर्तमान सदस्य, भूतपूर्व सदस्य, मंत्री, किसी विशिष्ट व्यक्ति या किसी मित्र राष्ट्र के राष्ट्राध्यक्ष की मृत्यु के संबंध में सभा में निधन संबंधी उल्लेख किया गया हो।

107. अध्यक्ष ने सभा की ओर से विमान चालक दल सहित उन 329 यात्रियों की मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट किया जो 23 जून, 1985 को आयरिश समुद्र-तट के नजदीक "एम्परर कनिष्क" नामक एयर-इंडिया के जम्बोजेट की हुई दुर्घटना में मारे गये थे। उसके बाद, सदस्यगण थोड़ी देर मौन खड़े रहे—*लो.स.वा.वि.,* 23.7.1985, पृ. 5; अध्यक्ष ने हरिद्वार के 'कुम्भ मेले' में हुई भगदड़ में भारी संख्या में हुई मौतों और अनेक अन्य लोगों के घायल हो जाने पर दुख प्रकट करते हुए इस घटना का उल्लेख किया तथा शोक-संतप्त परिवारों के प्रति सभा की संवेदना

महत्वपूर्ण अवसरों संबंधी उल्लेख

ऐसी परिपाटी है कि अध्यक्ष कतिपय महत्वपूर्ण अवसरों का सभा में समुचित उल्लेख करता है। जब सामान्य निर्वाचन के बाद नई लोक सभा की पहली बैठक होती है, तो सामयिक

प्रकट की। इसके उपरांत, सदस्यगण इस घटना के शिकार लोगों की स्मृति में थोड़ी देर मौन खड़े रहे—*लो.स.वा.वि.,* 15.4.1986, पृ. 1; अध्यक्ष ने 21 अगस्त, 1988 को उत्तरी बिहार, देश के कुछ अन्य भागों तथा नेपाल और बांग्लादेश में आए भूकंप के कारण जान और माल की हुई भारी और दुखद क्षति का उल्लेख किया। तत्पश्चात्, सदस्यगण थोड़ी देर मौन खड़े रहे—*लो.स.वा.वि.,* 22.8.1988, पृ. 2; अध्यक्ष ने 7 दिसम्बर, 1988 को आर्मेनिया में आए विनाशकारी भूकंप के कारण जान और माल की हुई भारी और दुखद क्षति का उल्लेख किया—*लो.स.वा.वि.,* 13.12.1988, पृ. 1; अध्यक्ष ने 20 नवम्बर, 1991 को उत्तर प्रदेश के गढ़वाल क्षेत्र में आए भूकंप का उल्लेख किया। तत्पश्चात्, सदस्यगण थोड़ी देर मौन खड़े रहे—*लो.स.वा.वि,* 20.11.1991, पृ. 3 । सभापति ने मुम्बई में बम विस्फोटों में भारी संख्या में मारे गए लोगों का उल्लेख किया—*लो.स.वा.वि.,* 12.3.1993, पृ. 213 । अध्यक्ष, प्रधान मंत्री, विपक्ष के नेता, दलों और समूहों के नेताओं ने 30 सितम्बर, 1993 को महाराष्ट्र तथा निकटवर्ती राज्यों—आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में आए भीषण भूकंप के कारण जान और माल की हुई भारी और दुखद क्षति का उल्लेख किया— *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1993, कॉ. 1-23 (सभा स्थगित)। अध्यक्ष ने हरियाणा के डबवाली शहर (सिरसा), के एक स्कूल में समारोह के दौरान लगी भीषण आग से 350 लोगों के मारे जाने संबंधी दुखद घटना–*लो.स.वा.वि.,* 26.2. 1996, पृ. 23; खराब मौसम के कारण अमरनाथ तीर्थयात्रियों की मृत्यु—*लो.स.वा.वि.,* 26.8.1996, कॉ. 2; दो दुखद घटनाओं-आन्ध्र प्रदेश में आए तूफान से हुई तबाही तथा 12 नवंबर, 1996 को सऊदी अरेबियन एयरलाइंस और कजाक एयरलाइंस के विमानों की आकाश में हुई टक्कर में अनेक लोगों की मृत्यु—*लो.स.वा.वि.,* 20.11.1996, पृ. 4 का उल्लेख किया। 24 मार्च, 1998 को पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में आए समुद्री तूफान के कारण हुई अनेक लोगों की मौत और संपत्ति की हुई क्षति—*लो.स.वा.वि.,* 25.3.1998 कॉ 17–23; 9 जून, 1998 को गुजरात के सौराष्ट्र और कच्छ क्षेत्रों तथा राजस्थान के जालौर में आए तूफान—*लो.स.वा.वि.,* 10.6.1998; 7 मार्च, 1999 को दक्षिण-पश्चिम दिल्ली के पप्पनकलां में भारतीय वायु सेना के विमान की दुर्घटना में लोगों की मृत्यु। ऐसे उल्लेखों के कुछ अन्य उदारहण इस प्रकार हैं–
14 मार्च, 1999 को नई दिल्ली के यमुना पुश्ता क्षेत्र में विजय घाट के समीप झुग्गी बस्ती में लगी भीषण आग में हुई जन-हानि और 15 अप्रैल, 1999, को गढ़वाल क्षेत्र और उत्तर भारत के अनेक भागों में 29 मार्च, 1999 को आए भीषण भूकंप, 15 अगस्त, 2004 को असम तथा जम्मू और कश्मीर में स्वतंत्रता दिवस समारोह के दौरान हुए आतंकवादी हमले; 26 दिसंबर, 2004 को भारत के दक्षिणी तटीय हिस्सों तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य भागों में आई सूनामी त्रासदी में मारे गए लोगों के संबंध में; 20, जनवरी 2005 को जम्मू और कश्मीर में हुए हिम स्खलन तथा भू-स्खलन में मारे गए लोगों के बारे में; 25 जनवरी, 2005 को महाराष्ट्र के सतारा जिले में मंदरादेवी नामक स्थान पर स्थित कालूबाई मंदिर में हुई भगदड़ में मारे गए

लोग; 22 फरवरी, 2005 को जारंड, ईरान में आए भूकंप के बारे में; 28 मार्च, 2005 को इण्डोनेशिया में आए भूकंप में हुई जान-माल की क्षति; 7 और 21 जुलाई, 2005 को लंदन में हुए बम विस्फोटों में हुई अनेक लोगों की मृत्यु; 23 जुलाई, 2005 को मिस्र के शर्म-अल-शेख में हुए आतंकवादी हमलों के बारे में; 26 जुलाई, 2005 को मुंबई में लगातार हुई भारी वर्षा के कारण हुई अनेक लोगों की मौत के संबंध में; 27 जुलाई, 2005 को मुंबई हाई क्षेत्र में एक ड्रिलिंग प्लेटफार्म से एक नौवहन पोत के टकरा जाने से लगी भीषण आग में हुई अनेक लोगों की मृत्यु के बारे में;

8 अक्तूबर, 2005 को, उत्तर भारत, विशेष रूप से जम्मू और कश्मीर तथा पाकिस्तान में आए विनाशकारी भूकंप के संबंध में; 25 नवम्बर 2005 को तमिलनाडु में लगातार हुई भीषण वर्षा के कारण हुई जान-माल की क्षति के बारे में; 23 नवम्बर 2005 को चेन्नई में एक बाढ़ राहत केंद्र पर हुई भगदड़ में मारे गए लोगों के बारे में; 7 मार्च, 2006 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी शहर में एक के बाद एक हुए बम धमाकों में मारे गए लोगों के बारे में; 30 अप्रैल, 2006 को जम्मू और कश्मीर में हुए एक आतंकवादी हमले में अनेक लोगों की हत्या के बारे में; 27 मई, और 17 जुलाई, 2006 को जावा, इण्डोनेशिया में क्रमश: आए भूकंप और सूनामी के संबंध में; 11 जुलाई, 2007 को मुंबई की उपनगरीय रेलों में हुए सात बम विस्फोटों तथा महाराष्ट्र और गुजरात में हुई लगातार भारी वर्षा के कारण बड़े पैमाने पर हुई जान और माल की क्षति के बारे में; 30 जुलाई, 2006 को पनामा, बहरीन में हुई एक अग्नि दुर्घटना में हुई 16 भारतीय नागरिकों की मृत्यु के बारे में; 18 फरवरी, 2007 को पानीपत, हरियाणा के निकट अटारी जा रही समझौता एक्सप्रेस में हुए दो बम धमाकों में मारे गए लोगों के बारे में; 20 फरवरी, 2007 को केरल में एक नाव डूबने की त्रासदी में अध्यापकों और विद्यार्थियों की मृत्यु के बारे में; 11 अप्रैल, 2007 को अल्जीयर्स, अल्जीरिया तथा कैसाबलांका, मोरक्को में हुए आतंकवादी हमलों के बारे में; 7 सितम्बर, 2007 को राजस्थान के राजसमन्द जिले में हुई सड़क दुर्घटना, जिसमें लगभग छियासी व्यक्तियों की मृत्यु हो गई, के बारे में; 15 नवम्बर, 2007 को बांग्लादेश के तटीय क्षेत्रों में आये समुद्री चक्रवात "साइडर" से बड़े पैमाने पर हुई जान और माल की क्षति के संबंध में; 23 नवम्बर, 2007 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद, वाराणसी और लखनऊ में एक के बाद एक हुए कई बम विस्फोटों में अनेक लोगों की मौत होने के बारे में; 29 नवम्बर, 2007 को छत्तीसगढ़ के दांतेवाड़ा जिले में हुए बारूदी सुरंग विस्फोट के बारे में जिसमें सेकेन्ड मिजोरम रिजर्व पुलिस बटालियन के 10 जवानों सहित 12 व्यक्ति मारे गए; 16 अप्रैल, 2008 को बड़ौदा, गुजरात के निकट बोदेली में स्कूली बच्चों को ले जा रही एक बस के नर्मदा नहर में गिरने के संबंध में, जिसमें 41 बच्चों की मौत हो गई थी; 29 जून, 2008 को उड़ीसा के मलकनगिरी जिले में हुए नक्सली हमले के बारे में जिसमें आंध्र प्रदेश और उड़ीसा पुलिस के 50 से ज्यादा सुरक्षा कर्मी मारे गए; 7 जुलाई, 2008 को काबुल स्थित भारतीय दूतावास पर हुए आतंकवादी हमले के फलस्वरूप 5 दूतावास कार्मिकों एवं 60 से भी अधिक अफगानी नागरिकों की मृत्यु के संबंध में; देश के विभिन्न भागों में आतंकवादी गतिविधियों के प्रकोप के बारे में जिसके परिणामस्वरूप अनेक निर्दोष व्यक्तियों की जानें गईं तथा सम्पत्ति का नुकसान हुआ। बिहार, उड़ीसा और असम में आई अभूतपूर्व बाढ़ के परिणामस्वरूप हुई व्यापक जान-माल की क्षति के बारे में जिसमें बड़ी संख्या में लोग बेघर

अध्यक्ष अवसर की महत्ता के संबंध में संक्षेप में कुछ कहता है और उसके बाद सदस्य थोड़ी

हो गए; 26 नवम्बर, 2008 को मुम्बई के अनेक भीड़-भाड़ वाले स्थानों और महत्वपूर्ण होटलों में हुए आतंकवादी हमलों के फलस्वरूप मारे गए 164 लोगों तथा बड़े पैमाने पर हुए सम्पत्ति के नुकसान का भी उल्लेख किया। तत्पश्चात्, सदस्यगण थोड़ी देर मौन खड़े रहे। पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान भी अध्यक्ष ने 4 जून, 2009 को 'आइला' चक्रवात, जिससे पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश प्रभावित हुए थे, और एअर फ्रांस के हवाई जहाज, जिसमे 228 यात्री सवार थे, की एटलांटिक महासागर में हुई दुर्घटना का उल्लेख किया था। 19 नवम्बर, 2009 को बस्तर, छत्तीसगढ़ में नक्सली हमले, जिसमें संसद सदस्य श्री बलीराम कश्यप के पुत्र की मृत्यु हुई थी, केरल के इदुक्की जिले में नाव के थेक्काडी झील में डूब जाने की दुर्घटना में 45 पर्यटकों की मृत्यु और महाराष्ट्र के गडचिरौली जिले में लाहेरी पुलिस स्टेशन पर नक्सली हमला, जिसमें 17 पुलिसकर्मी मारे गये थे, का उल्लेख किया। 21 अक्तूबर, 2009 को उत्तर प्रदेश में मथुरा के पास गोवा एक्सप्रेस और मेवाड़ एक्सप्रेस के बीच रेल दुर्घटना में 22 लोगों के मारे जाने का उल्लेख किया। 25 नवम्बर, 2009 को केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में अत्यधिक बारिश, भू-स्खलन और बाढ़ तथा चक्रवात का उल्लेख किया। मुम्बई में आतंकवादी हमले, जिसमें मासूम भारतीय नागरिकों के साथ ही विदेशी नागरिकों की जानें गई थीं, को अंकित करते हुये 26 नवम्बर, 2009 को एक संकल्प पारित किया गया था। 22 फरवरी, 2010 को पुणे में बेकरी पर आंतकवादी हमले में विदेशी नागरिकों सहित 15 लोगों के मारे जाने और 60 लोगों के घायल होने का उल्लेख किया। 14 मार्च, 2011 को जापान के उत्तर-पूर्व तट पर आए 9 तीव्रता के भूकंप जिससे विध्वंसकारी सूनामी उत्पन्न हुआ और जिसके कारण कई हजार लोगों की जानें गई और बड़े पैमाने पर जान-माल की क्षति हुई, का उल्लेख किया। 1 अगस्त, 2011 को आतंकवादी हमले में मुंबई में तीन बम धमाकों में 25 लोग मारे गये और लगभग 100 लोगों के घायल होने का उल्लेख किया। 22 नवम्बर, 2011 को सिक्किम में आये गंभीर भूंकप का उल्लेख किया जिसके कारण 111 से अधिक लोग मारे गऐ और कई सौ लोग घायल हुये। वान के टर्की के पूर्वी प्रान्त में भूकंप में 641 लोग मारे गए और 2076 लोग घायल हुए, थाईलैण्ड में बाढ़, जिसमें 2.45 मिलियन लोग प्रभावित हुए थे और 500 से अधिक लोग मारे गए। 21 दिसम्बर, 2011 को 'सेंडोग' तेज तूफान से प्रभावित फिलीपीन्स के दक्षिणी द्वीप मिन्दाराव में बहुत बड़ी संख्या में लोगों के मारे जाने का उल्लेख किया। 12 मार्च, 2012 को मध्य फिलीपीन्स में आए भूकम्प का उल्लेख किया। जिसमें 69 लोगों की मृत्यु हुई और 100 से ज्यादा लोग घायल हुए। 21 मार्च, 2012 को आन्ध्र प्रदेश के खम्माम जिले में एक स्कूल बस के नहर में गिर जाने से 14 बच्चों के मारे जाने और 30 बच्चों के घायल होने का उल्लेख किया। 8 अगस्त, 2012 को असम में बाढ़ से 125 से अधिक लोगों के मारे जाने और लगभग 24 लाख लोगों के प्रभावित होने तथा माल और फसल को भारी नुकसान तथा क्षति होने, असम में छिट-पुट जातीय हिंसा में 73 लोगों के मारे जाने और 61 लोगों के घायल होने के अतिरिक्त लगभग 2 लाख लोगों के बेघर होने, अमरनाथ यात्रा के दौरान 100 से ज्यादा तीर्थयात्रियों के मारे जाने का उल्लेख किया। 22 नवम्बर, 2012 को आन्ध्र प्रदेश और

तमिलनाडु के तटों से टकराए चक्रवात नीलम में 25 से अधिक लोगों के मारे जाने, संयुक्त राज्य के पूर्वी तट पर टकराए रेतीले तूफान के कारण 113 लोगों के मारे जाने और माल की हानि तथा पटना में बांकीपुर के पास बांस के पुल के गिर जाने के कारण हुई त्रासद घटना, जिसके कारण 17 से अधिक लोगों के मारे जाने और 40 लोगों के घायल होने का उल्लेख किया। 10 फरवरी, 2013 को इलाहाबाद रेलवे स्टेशन पर भगदड़ के कारण कुम्भ मेले में 37 तीर्थयात्रियों के मारे जाने का उल्लेख किया; 21-02-2013 को हैदराबाद में बम विस्फोट में मारे गये कई लोगों और 20-02-2013 को उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में यमुना नदी में नाव के डूब जाने से 11 लोगों के मारे जाने का उल्लेख किया।

22 फरवरी, 2013 को बिहार के गया जिले में बारूदी सुरंगों में हुए विस्फोट में 6 पुलिसकर्मी मारे गए; 27 फरवरी, 2013 को कोलकाता बाजार में हुई बहुत बड़ी अग्नि दुर्घटना में 19 लोग मारे गए, 4 मार्च, 2013 को जालंधर, पंजाब में सड़क दुर्घटना में स्कूल के 11 बच्चे मारे गए।

13 मार्च, 2013 को श्रीनगर, जम्मू और कश्मीर में के॰रि॰पु॰ब॰ कैम्प पर आतंकवादी हमले में के॰रि॰पु॰ब॰ के पांच जवान मारे गए और कई लोग घायल हुए;

19 मार्च, 2013 को महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले में बस दुर्घटना में 36 लोग मारे गए;

4 अप्रैल, 2013 को महाराष्ट्र के थाणे में इमारत के ढह जाने से 74 लोग मारे गए;

9 अप्रैल, 2013 को सूडान में संयुक्त राष्ट्र शान्ति सेना में 5 भारतीय जवान मारे गए;

15 अप्रैल, 2013 को संयुक्त राज्य अमरीका के बोस्टन में बम विस्फोट घटना में 3 लोग मारे गए और 170 लोग घायल हुए;

16 अप्रैल, 2013 को दिल्ली में एक बच्चे का बलात्कार;

24 अप्रैल, 2013 को बांग्लादेश के सावर में बहु-मंजिला इमारत के ढह जाने के कारण कई लोग मारे गए और कई लोग घायल हुए; 25 मई, 2013 को बस्तर में नक्सली हमले में 28 लोग मारे गए।

18 जून, 2013 को उत्तराखण्ड में भू-स्खलन और अचानक आई बाढ़ के कारण अभूतपूर्व आपदा;

25 जून, 2013 को बचाव कार्य के दौरान भारतीय वायु सेना के हैलीकॉप्टर पर सवार 5 कर्मीदल सदस्य और 15 अन्य लोग मारे गए;

24 जून, 2013 को श्रीनगर में सेना दल पर आतंकवादी हमले के कारण 8 जवान मारे गए;

2 जुलाई, 2013 को झारखण्ड में दुमका पर नक्सली हमले में पुलिस अधीक्षक सहित छह पुलिसकर्मी मारे गए;

16 जुलाई, 2013 को मध्याह्न भोजन योजना के तहत बिहार में सारण में विषाक्त भोजन के कारण स्कूल के 23 बच्चे मारे गए।

24 जुलाई, 2013 को स्पेन में रेलगाड़ी दुर्घटना के कारण कई लोग मारे गए;

30 जुलाई, 2013 को राजस्थान में हनुमानगढ़ में सड़क दुर्घटना में स्कूल के कई बच्चे मारे गए;

देर के लिए मौन खड़े हो जाते हैं।[108] इसी प्रकार सभा के विघटन से पहले उसकी अन्तिम बैठक में अध्यक्ष विदाई भाषण देता है जिसमें वह सभा के कार्य संचालन में सदस्यों के सहयोग के लिए उनका धन्यवाद करता है और संक्षेप में उस निवर्तमान लोक सभा की अवधि के दौरान उपलब्धियों की चर्चा करता है।[109] सदस्यों की ओर से सभा का नेता इस अवसर पर संक्षेप में उल्लेख कर सकता है।

इसके साथ ही अध्यक्ष ने भी निम्नलिखित अवसरों पर सभा में अन्य बातों के साथ-साथ कुछ उल्लेख किए: संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव-अधिकारों संबंधी सार्वभौमिक घोषणा को स्वीकार करने की दसवीं, बीसवीं, पच्चीसवीं, चालीसवीं और पचासवीं वर्षगांठ,[110] संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के चालीसवें और पचासवें स्मारक दिवस,[111] 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की बावनवीं वर्षगांठ,[112] 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की शताब्दी,[113] राष्ट्रपति द्वारा जलियांवाला बाग में शहीद-स्मारक का अनावरण,[114] एक विशिष्ट व्यक्ति की जन्म शताब्दी,[115]

---

1 अगस्त, 2013 को पंजाब में भाखड़ा नहर में बस के गिर जाने के कारण 40 लोग मारे गए;

5 अगस्त, 2013 को भारी वर्षा, बाढ़ और भू-स्खलन के कारण केरल में मौतें;

6 अगस्त, 2013 को हिमाचल प्रदेश में शिमला के पास नागोरी में बस दुर्घटना के कारण 10 लोग मारे गए।

108. *लो.स.वा.वि.,* 13.5.1952, पृ. 1; 10.5.1957, पृ. 1-13; 16.4.1962, पृ. 1; 16.3.1967, पृ. 1; 19.3.1971, पृ. 1; 25.3.1977, पृ. 1; 21.1.1980, पृ. 1; 15.1.1985, पृ. 1; 2.6. 2004, कॉ. 1, 1.06.2009, पृ॰ 1 ।

109. *पूर्वोक्त,* 28.3.1957, पृ. 401-7; 30.3.1962, पृ. 1202 ।

110. *पूर्वोक्त,* 10.12.1958, पृ. 1935; *पूर्वोक्त,* 10.12.1968, कॉ. 1-2; 10.12.1973, पृ. 1-2; 7.12.1988, पृ. 220-22; 10.12.1998 ।

111. *पूर्वोक्त,* 29.8.1985, कॉ 31–35 और 22.12.1994, कॉ 234–35 ।

112. *पूर्वोक्त,* 9.8.1994 ।

113. *पूर्वोक्त,* 10.5.1957, पृ. 1 ।

114. *पूर्वोक्त,* 13.4.1961, पृ. 5079 ।

115. दिनांक 6 मई, 1961 को संसद की सभाओं की संयुक्त बैठक में अध्यक्ष ने पं. मोतीलाल नेहरू, जो केन्द्रीय विधान सभा में विपक्ष के नेता थे, की स्मृति में उल्लेख किया, क्योंकि उस दिन उनकी जन्म शताब्दी थी—*देखिए* संसद की दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक, *पी. डिबेट्स,* 6.5.1961, कॉ. 1-3 ।

दिनांक 9 मई, 1961 को संसद की दोनों सभाओं की बैठक हुई, उसमें अध्यक्ष ने श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर की स्मृति के संबंध में उल्लेख किया, जिनकी जन्म शताब्दी एक दिन पहले मनाई गई थी—*देखिए* संसद की दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक, *पी. डिबेट्स,* 9.5.1961, कॉ.151 ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू की 12वीं पुण्य-तिथि,[116] कार्ल मार्क्स की सौवीं पुण्य तिथि,[117] साइमन बोलिवर की जन्म द्विशती,[118] दूसरे विश्व युद्ध में फ़ासिस्टवाद के विरुद्ध लड़ाई में मारे गए शहीदों की चालीसवीं वर्षगांठ,[119] जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर परमाणु बम गिराए जाने की इकतालीसवीं, बयालीसवीं, चवालीसवीं, पैंतालीसवीं, सैंतालीसवीं, उनचासवीं, बावनवीं और तिरपनवीं बरसी,[120] जाम्बिया की फुटबाल टीम के खिलाड़ियों की एक विमान दुर्घटना में मृत्यु,[121] आजाद हिन्द फौज द्वारा भारत-बर्मा सीमा पार करने की पचासवीं वर्षगांठ,[122] और बांग्लादेश का पच्चीसवां मुक्ति दिवस।[123]

---

116. *लो.स.वा.वि.,* 27.5.1976, पृ. 1 ।
117. *पूर्वोक्त,* 14.3.1983, पृ. 254 ।
118. *पूर्वोक्त,* 26.7.1983, पृ. 4 ।
119. *पूर्वोक्त,* 9.5.1985, पृ. 162-63 ।
120. *पूर्वोक्त,* 6.8.1986, कॉ. 1-2; *लो.स.वा.वि.,* 6.8.1987, पृ. 1; *एल.एस. डिबेट्स,* 9.8.1989, कॉ. 1-2; *लो.स.वा.वि.,* 9.8.1990, कॉ 1-2; 6.8.1992, कॉ 1-2; 9.8.1994, कॉ 1-2; और 6.8.1998, कॉ 80-81 ।
121. *पूर्वोक्त,* 29.4.1993, पृ. 223 ।
122. *पूर्वोक्त,* 18.3.1994, पृ. 242-45 ।
123. *पूर्वोक्त,* 16.12.1996, कॉ. 2-3 । अध्यक्ष द्वारा 13 दिसम्बर, 2001 को संसद भवन पर हुए आतंकवादी हमले की घटना तथा 2012 तक इसकी पश्चात्वर्ती बरसी के अवसरों पर निम्नलिखित वर्षगांठों और घटनाओं का भी उल्लेख किया गया। 18 अगस्त, 2004 को, मेजर राज्यवर्धन सिंह राठौर द्वारा एथेन्स ओलम्पिक में डबल ट्रैप शूटिंग मुकाबले में ओलम्पिक रजत पदक जीतने पर; 11 मार्च, 2005 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में दांडी मार्च की प्लैटिनम जयंती के संबंध में; 25 अप्रैल, 2005 को 1955 में हुए बानडुंग सम्मेलन की 50वीं वर्षगांठ के अवसर पर; 5 मई, 2005 को, पोलर सैटेलाइट लांच व्हिकल पी एस एल वी-सी 6 को सफलतापूर्वक छोड़े जाने के संबंध में; 9 मई, 2005 को, विश्व युद्ध-II की समाप्ति की 60वीं वर्षगांठ के संबंध में; 2 अगस्त, 2005 को, मुंशी प्रेमचंद के जन्म की 125वीं वर्षगांठ के संबंध में; 9 अगस्त, 2005 को, भारत छोड़ो आंदोलन की 63वीं और 64वीं वर्षगांठ तथा जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर परमाणु बम गिराए जाने की 60वीं बरसी के संबंध में; 28 नवम्बर, 2005 को डा. विद्यापति सिंहानिया द्वारा 26 नवम्बर, 2005 को गैस संचालित गुब्बारे (हॉट एयर बैलून) से 69,852 फुट अक्षांश तक उड़ान भर कर विश्व रिकार्ड बनाने पर उन्हें बधाई देते हुए; 12 दिसम्बर, 2005 को सचिन तेन्दुलकर को टेस्ट क्रिकेट में 35 शतक का विश्व रिकॉर्ड बनाने पर बधाई देते हुए; 17 फरवरी, 2006 को भारतीय क्रिकेट टीम के सदस्यों और कप्तान को पाकिस्तान के विरुद्ध एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय श्रृंखला जीतने पर बधाई देते हुए; 8 मार्च, 2006 और 2007 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर; 13 मार्च, 2006 को, अनिल कुम्बले को टेस्ट क्रिकेट में 500 विकेट लेने वाला पहला भारतीय क्रिकेटर बनने पर बधाई देते हुए; 25 जुलाई, 2006 को अभिनव बिन्द्रा द्वारा

अध्यक्ष द्वारा की गयी घोषणा

अध्यक्ष द्वारा कभी-कभी सभा में कतिपय विषयों के संबंध में, जैसे कि किसी सदस्य

---

24 जुलाई, 2006 को जगरेब, क्रोएशिया में हुई वर्ल्ड चैम्पियनशिप में 10 मी. एयर राइफल मुकाबले में स्वर्ण पदक जीतने पर बधाई देते हुए; 10 अगस्त, 2006 को, भारत छोड़ो आन्दोलन की 64वीं वर्षगांठ तथा जापानी शहरों पर परमाणु बम गिराए जाने की 61वीं बरसी पर; 29 नवम्बर, 2006 को डीआरडीओ के वैज्ञानिकों को 27 नवम्बर, 2006 को जमीन से जमीन पर मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र के प्रथम सफल परीक्षण पर बधाई देते हुए; 29 और 30 नवम्बर, 2006 को विश्व महिला बॉक्सिंग चैम्पियनशिप में स्वर्ण पदक जीतने पर एम.सी. मेरी कॉम और जेनी आर.एल., लेखा के.सी. तथा सरिता देवी को बधाई देते हुए; 1 दिसम्बर, 2006 और 2007 को, विश्व एड्स दिवस के मौके पर एक उल्लेख किया गया; 5 और 18 दिसम्बर, 2006 को, सुश्री कोनेरू हम्पी तथा अन्य खिलाड़ियों को दोहा में हुए एशियाई खेलों के विभिन्न मुकाबलों में पदक जिताने वाले प्रदर्शन के लिए बधाई दी; 18 दिसम्बर, 2006 को, विश्व अल्पसंख्यक अधिकार दिवस के मौके पर; 12 मार्च, 2007 को, फ्रेंच गुयाना के कौरोऊ से इनसैट-4बी, उपग्रह के सफल प्रक्षेपण पर; 10 मई, 2007 को भारत के पहले स्वतंत्रता संग्राम की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर; 30 अगस्त, 2007 को कप्तान बाइचिंग भूटिया और उनकी टीम को नेहरू फुटबाल कप जीतने पर बधाई देते हुए; 5 सितम्बर, 2007 को, वैज्ञानिकों को आंध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा से प्रक्षेपण यान जीएसएलवी-एफ 04 के जरिए उपग्रह इन्सैट-4 सीआर के सफल प्रक्षेपण पर बधाई देते हुए तथा साथ ही शिक्षक दिवस के अवसर पर; 10 सितम्बर, 2007 को, अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस तथा इंडियन हॉकी चैम्पियनशिप के मौके पर उल्लेख किया गया; 3 दिसम्बर, 2007 को, विश्व नि:शक्तता दिवस के मौके पर; 10 मार्च, 2008 को राष्ट्रमंडल दिवस के मौके पर; 22 अप्रैल, 2008 को विश्व पृथ्वी दिवस के मौके पर; 28 अप्रैल, 2008 को इसरो के वैज्ञानिकों को आंध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा से पीएसएलवी-सी 9 द्वारा रिकार्ड दस उपग्रहों के एक साथ सफल प्रक्षेपण पर बधाई देते हुए; 22 जुलाई, 2008 को, जूनियर इंडियन हॉकी टीम को दक्षिण कोरिया के विरुद्ध जूनियर एशिया हॉकी कप जीतने पर बधाई देते हुए; 2008 में बीजिंग में हुए ओलम्पिक खेलों में पुरुष 10 मी. एयर राइफल शूटिंग मुकाबले में अकेले पहला निजी स्वर्ण पदक जीतने वाले अभिनव बिन्द्रा, पुरुष 75 कि.ग्रा. वर्ग में मुक्केबाजी के मुकाबले में कांस्य पदक जीतने वाले विजेन्द्र कुमार और पुरुष 66 कि.ग्रा. वर्ग में फ्री-स्टाइल कुश्ती मुकाबले में कांस्य पदक जीतने वाले सुशील कुमार को 20 अक्तूबर, 2008 को बधाई देते हुए एक उल्लेख किया गया; पुन: 20 अक्तूबर, 2008 को, सचिन तेन्दुलकर को टेस्ट क्रिकेट में सर्वाधिक रन बनाने वाला खिलाड़ी बनने तथा सौरव गांगुली को टेस्ट क्रिकेट में 7000 से अधिक रन बनाने और अमित मिश्रा को मोहाली में अपने पहले ही टेस्ट मैच में 5 विकेट लेने एवं अन्य भारतीय खिलाड़ियों जिन्होंने पुणे में हुए राष्ट्रमंडल युवा खेलों में पदक तालिका में शीर्ष स्थान प्राप्त किया के अवसर पर बधाई उल्लेख किया गया; 22 अक्तूबर, 2008 को, इसरो के वैज्ञानिकों को श्रीहरिकोटा से चन्द्रयान-I के सफल प्रक्षेपण पर बधाई देते हुए उल्लेख किया गया; 16 दिसम्बर, 2008 को, भारतीय क्रिकेट टीम को चेन्नई में इंग्लैण्ड के विरुद्ध पहला टेस्ट मैच जीतने पर बधाई देते हुए एक उल्लेख किया गया।

5 जून, 2009 को 'विश्व पर्यावरण दिवस', 1 दिसम्बर, 2009, 2010 और 2011 को विश्व एड्स दिवस, 3 दिसम्बर, 2009 और 2010 को विश्व विकलांग दिवस के अवसर पर; अध्यक्ष द्वारा, 7 दिसम्बर, 2009 को भारतीय क्रिकेट के इतिहास में पहली बार आईसीसी टैस्ट रैंकिंग में भारत को पहले स्थान पर लाने के लिये भारतीय क्रिकेट टीम को बधाई देते हुए; 10 दिसम्बर, 2009, 2010 और 2012 को मानवाधिकार दिवस; 25 फरवरी, 2010 को सचिन तेंदुलकर को ग्वालियर में अन्तर्राष्ट्रीय एक दिवसीय मैच में दोहरा शतक लगाने वाले पहले क्रिकेटर बनने पर बधाई देते हुए; 8 मार्च, 2010 और 2011 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर; 15 अप्रैल, 2010 को भारतीय कबड्डी टीम के लुधियाना में कबड्डी विश्व कप, 2010 जीतने पर बधाई देते हुए; 22 अप्रैल, 2010 को 'पृथ्वी दिवस' के अवसर पर। उन्नीसवें राष्ट्रमण्डल खेल, 2010 में भारतीय महाद्वीप को 101 पदक जीतने पर बधाई देते हुए गुआनजोन, चीन में सोलहवें एशियाई खेलों में 14 स्वर्ण, 17 रजत और 33 कांस्य पदक जीतने के लिए भारतीय महाद्वीप को बधाई देते हुए; 3 दिसम्बर, 2010 को भारत के पहले राष्ट्रपति और भारत रत्न डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद की 125वीं जन्मशती के अवसर पर; 21 फरवरी, 2011 को अन्तर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के अवसर पर बधाई देते हुए; 9 अगस्त, 2011 को भारत छोड़ो आन्दोलन की 69वीं सालगिरह पर; 5 सितम्बर, 2011 को "शिक्षक दिवस"; 8 सितम्बर, 2011 को अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस के अवसर पर; पण्डित मदन मोहन मालवीय की 150वीं जन्मशती पर बधाई देते हुए; 12 दिसम्बर, 2011 को दिल्ली को देश की राजधानी पुन: बनाये जाने के 100 वर्ष पूरे होने के अवसर पर; 27 दिसम्बर, 2011 को राष्ट्रीय गान के पहले वादन के 100 वर्ष पूरे होने पर, श्री सचिन तेंदुलकर को क्रिकेट में 100वां अन्तर्राष्ट्रीय शतक बनाने पर; 24 अप्रैल, 2012 और 2013 को पंचायती राज दिवस के अवसर पर; 8 मई, 2012 को गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर की 151वीं जन्म शती के अवसर पर बधाई देते हुए; 9 अगस्त, 2012 को इन्टरनेशनल इंडीजीनियस पीपल्स डे; सर्वश्री विजय कुमार, गगन नारंग, सुशील कुमार, योगेश्वर दत्त, सुश्री सायना नेहवाल और सुश्री एम.सी. मेरीकॉम का लंदन ओलंपिक, 2012 में पदक जीतने पर; 27 अगस्त, 2012 को आस्ट्रेलिया में आईसीसी अण्डर–19 विश्व कप जीतने के लिये भारतीय क्रिकेट टीम, पेरालंपिक खेल, 2012 में रजत पदक जीतने के लिये श्री गिरीशा होसनगारा नागाराजेगौडा का उल्लेख।

8 मार्च, 2013 को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस';

22 अप्रैल, 2013 को 'पृथ्वी दिवस' के अवसर पर;

22 अप्रैल, 2013 को सुश्री राही समोबत के अन्तर्राष्ट्रीय शूटिंग खेल परिसंघ, विश्व कप की 25 वीं मीट खेल पिस्तौल प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक जीतने वाली पहली भारतीय महिला शूटर बनने के लिये;

23 अप्रैल, 2013 को 24 अप्रैल को राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस मनाने के अवसर पर;

5 अगस्त, 2013 को भारतीय क्रिकेट टीम को बरकिंगघंम में इंग्लैण्ड को हराकर चैम्पियन्स ट्रॉफी जीतने के लिए, भारतीय क्रिकेट टीम को जिम्बाब्वे के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय एक दिवसीय मैच जीतने के लिये; भारतीय तीरंदाजी टीम के कोलंबिया में विश्व कप चैम्पियनशिप में एक स्वर्ण और दो कांस्य पदक जीतने के लिये; सुश्री के. जेनिता को चेकोस्लावाकिया गणतन्त्र में

द्वारा त्यागपत्र,[124] किसी सदस्य की गिरफ्तारी, निरुद्ध किया जाना, दोषसिद्धि अथवा रिहाई के संबंध में प्राप्त सूचना,[125] सदस्यों को सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति की मंजूरी[126] और सभा की बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए सभापति तालिका के गठन[127] के बारे में घोषणाएं की जाती हैं। अध्यक्ष पीठ द्वारा की जाने वाली ऐसी घोषणाओं के संबंध में कार्य-सूची में कोई प्रविष्टि नहीं की जाती। इन सब को कार्य की औपचारिक मदें माना जाता

विकलांग हेतु विश्व शतरंज चैम्पियनशिप जीतने के लिए; भारतीय कुश्ती टीम के 28–7–2013 के मंगोलिया के उलानबतार में एशियाई कैटेड चैम्पियनशिप में फ्रीस्टाईल श्रेणी में चैम्पियन ट्रॉफी जीतने के अलावा 3 स्वर्ण, 9 रजत और 3 कांस्य पदक सहित 15 पदक जीतने के लिए, श्री आदित्य मेहता को काली, कोलंबिया में पुरुष स्नूकर प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक जीतने के लिये और भारतीय जूनियर महिला हॉकी टीम के जर्मनी में पहली बार कांस्य पदक जीतने के लिये बधाई देते हुए उल्लेख।

6 अगस्त, 2013 को हिरोशिमा और नागासाकी में आणविक बम गिराये जाने से हुई तबाही की 68वीं वर्षगांठ का उल्लेख;

12 अगस्त, 2013 को पी.वी. सिंधू को विश्व कप बैंडमिंटन में कांस्य पदक जीतने के लिये और श्री सौम्यजीत घोष और सुश्री मनिका बत्रा को ब्राजील में सेन्टोस में वर्ल्ड टूर ब्राजील ओपन में क्रमश: टेबल टेनिस में अण्डर-21 पुरुष और महिला एकल खिताब जीतने के लिये बधाई देने के लिये;

26 अगस्त, 2013 को भारतीय एथलीट्स को चीन में भारतीय युवा खेलों में 3 स्वर्ण सहित 14 पदक जीतने के लिये; भारतीय क्रिकेट टीम को सिंगापुर में अण्डर-23 आईसीसी इमर्जिंग ट्रॉफी जीतने के लिये और भारतीय महिला तीरंदाजी टीम को पॉलैण्ड के रॉकलॉब तीरंदाजी विश्वकप में रिकर्व टीम इवेंट में स्वर्ण पदक में जीतने के लिये और सानिया मिर्जा को न्यू हेवन में डब्ल्यू.टी.ए.न्यू. हेवन ओपन में डबल्स टेनिस ट्रॉफी जीतने के लिये बधाई देते हुए उल्लेख।

29 अगस्त, 2013 को राष्ट्रीय खेल दिवस;

5 सितम्बर, 2013 को शिक्षक दिवस के अवसर पर उल्लेख।

124. *पूर्वोक्त,* 11.2.1960, पृ. 272; 12.4.1960, पृ. 5178; 8.8.1960, पृ. 718; 11.8.1960, पृ. 1065; 15.3.1985, पृ. 185; 18.3.1985, पृ. 162; 22.7.1986, पृ. 182; 24.2.1988, पृ. 182; और 2.3.1988, पृ. 139 ।

125. *पूर्वोक्त,* 1.3.1960, पृ. 1681; 3.3.1960, पृ. 1955; 4.3.1960, पृ. 2069; 6.4.1960; पृ. 4591; 2.8.1960, पृ. 202; 22.8.1960, पृ. 2029; 31.8.1960, पृ. 2954; 24.2.1961, पृ. 981; 26.4.2007, कॉ. 6-7 ।

126. *पूर्वोक्त,* 19.12.1960, पृ. 3054-55; 7.4.1961, पृ. 4674-9941; 3.5.1961, कॉ. 15226; 5.9.1961, कॉ. 7109; 15.6.1962, कॉ. 10840-41; 1.12.1986, पृ. 183; 27.3.1987, पृ.115 और 11.5.1988, पृ. 162-63, 6.12.2007, कॉ. 334-35; 5.9.2007, कॉ. 750-52 ।

127. *पूर्वोक्त,* 11.2.1960, पृ. 272; 16.8.1960, पृ. 1347; 19.4.1962, पृ. 88; 18.1.1985, कॉ. 126-27; 15.7.2004, कॉ. 469-70; 18.3.2006, कॉ. 8 ।

है और जहां तक संभव हो, इन्हें दिन के प्रारम्भ में सभा का मुख्य कार्य प्रारम्भ होने से पहले निपटा दिया जाता है।

गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य

प्रत्येक शुक्रवार को अथवा अध्यक्ष द्वारा नियत किसी अन्य दिन के अन्तिम ढाई घंटे का समय गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के सम्पादन के लिए नियत होता है।[128] गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित कार्य मदों पर गैर-सरकारी सदस्यों के लिए निर्धारित समय में विचार किया जाता है।

> गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक; गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प; गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति की रिपोर्टों के स्वीकृत किए जाने के लिए प्रस्ताव; गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों के लिए नियत समय को बढ़ाने संबंधी प्रस्ताव; और किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पुर:स्थापित विधेयक से संबंधित प्रवर समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए समय बढ़ाने का प्रस्ताव या इसी तरह से किसी विधेयक पर विचार जानने के उद्देश्य से इसे परिचालित करने का प्रस्ताव।

वर्ष के दौरान सामान्यतः सत्रों की संख्या

एक वर्ष में लोक सभा के सामान्यत: तीन सत्र होते हैं।[129] पहला सत्र फरवरी के पहले या दूसरे सप्ताह में प्रारम्भ होता है[130] और मई के पहले सप्ताह तक या मध्य तक चलता है। इस सत्र का अपना महत्व है क्योंकि इसके प्रारम्भ में एक साथ समवेत संसद की दोनों सभाओं में राष्ट्रपति अभिभाषण देता है। राष्ट्रपति के अभिभाषण के बाद उसके अभिभाषण पर "धन्यवाद प्रस्ताव" प्रस्तुत करने के लिए एक दिन नियत किया जाता है। इस प्रस्ताव पर तीन-चार दिन तक बहस होती है और सदस्यों को राष्ट्रपति के अभिभाषण में बताई गई

---

128. नियम 26 ।

129. 1957 और 1962 में जब लोक सभा के लिए साधारण निर्वाचन हुए तो नई लोक सभा के तीन सत्रों के अतिरिक्त पूर्ववर्ती लोक सभा का भी एक-एक सत्र हुआ था जो कि नई लोक सभा का चुनाव होने और उसका परिणाम घोषित होने के बाद हुआ था लेकिन तब तक नई लोक सभा विधिवत गठित नहीं हुई थी। इन्हें आमतौर पर लेमडक सेशन कहा जाता है। इन सत्रों का उद्देश्य यह था कि लेखा अनुदान पारित कर दिया जाए जिससे कि सरकार नई लोक सभा के गठित होने तक अपना काम चला सके।

    तथापि, तीसरी लोक सभा का कोई लेमडक सेशन नहीं हुआ, क्योंकि चौथे आम चुनाव के परिणाम घोषित होने के शीघ्र बाद ही 16 मार्च, 1967 को चौथी लोक सभा का गठन कर दिया गया था। इसी प्रकार चौथी, पांचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बाहरवीं, तेरहवीं और चौदहवीं लोक सभा का कोई तदर्थ सत्र नहीं हुआ। संबंधित नई लोक सभा के पहले सत्र में लेखानुदान पारित किया गया।

130. चुनाव वर्ष के दौरान, हो सकता है कि इस समय-सारणी का पालन न किया जाए।

सरकारी नीति और अन्य किसी ऐसे मामले के संबंध में विचार व्यक्त करने का अवसर प्राप्त होता है जिसका राष्ट्रपति ने अपने भाषण में कोई उल्लेख न किया हो।[131] इस सत्र का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें रेल बजट तथा सामान्य बजट प्रस्तुत किए जाते हैं और उन पर चर्चा होती है। इस कारण इस सत्र को सामान्यतः बजट सत्र कहा जाता है।

रेल बजट और सामान्य बजट पारित किए जाने के अतिरिक्त इस सत्र में, जब भी सरकार चाहती है, विधेयक, प्रस्ताव और संकल्प जैसी अन्य मदों पर भी विचार किया जाता है।

बजट सत्र में बैठकों की कुल संख्या सामान्यतः 30[132] से 40 दिनों के बीच होती है। विभागों से संबद्ध स्थाई समितियों के गठन से पूर्व बजट सत्र में बैठकों की कुल संख्या 50 से 60 तक होती थी।

वर्ष का दूसरा सत्र, जिसे वर्षाकालीन सत्र कहा जाता है, सामान्यतः जुलाई/अगस्त में प्रारम्भ होता है और सितम्बर के पहले या दूसरे सप्ताह तक चलता है। यह सत्र अपेक्षाकृत कम अवधि का होता है और इसमें मुख्य रूप से विधायी कार्यों, प्रस्तावों पर चर्चा[133] और अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर ही चर्चा[134] होती है। इन प्रस्तावों और अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर चर्चाओं से सदस्यों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के सामयिक मामलों पर सरकार का ध्यान केन्द्रित करने तथा साथ ही स्वायत्त निकायों और अन्य सरकारी उपक्रमों की रिपोर्टों पर चर्चा करने का अवसर मिलता है। इस सत्र में वित्तीय कार्य अनुपूरक अनुदानों की मांगों या अतिरिक्त अनुदानों की मांगों पर विचार तथा मतदान करने से सम्बन्धित होता है परन्तु उसके लिए कुछ ही घंटे का समय दिया जाता है। इस सत्र में बैठकों की संख्या लगभग 30 होती है।[135]

वर्ष का तीसरा सत्र जिसे शीतकालीन सत्र कहा जाता है, नवम्बर में प्रारम्भ होता है और दिसम्बर के तीसरे सप्ताह तक चलता है। वर्षाकालीन सत्र की भांति ही इस सत्र में भी मुख्य

131. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 10—सदन में राष्ट्रपति का अभिभाषण, संदेश तथा संसूचना।

132. पन्द्रहवीं लोक सभा का सातवां सत्र, जो 21 फरवरी, 2011 को आरम्भ हुआ था, उसे 21 अप्रैल, 2011 तक समाप्त होना था। तथापि असम, केरल, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल तथा संघ राज्यक्षेत्र पुदुरी में विधान सभा चुनाव के कारण सत्र की समय-सारणी तदनुसार पुनः बनाई गई और 25 मार्च, 2011 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने से पहले इसकी 23 बैठकें हुई।

133. नियम 184, 189 और 342 के अंतर्गत गृहीत प्रस्ताव ।

134. नियम 93 के अंतर्गत।

135. पन्द्रहवें सत्र अर्थात् चौदहवीं लोक सभा का अंतिम सत्र, जो 12 फरवरी, 2009 को अंतिम बजट पास करने के लिए शुरू हुआ और 26 फरवरी, 2009 को समाप्त हो गया, की कुल मिलाकर केवल 10 बैठकें हुईं ।

रूप से विधायी कार्यों, और प्रस्तावों तथा अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर चर्चा होती है। इस सत्र में भी बैठकों की कुल संख्या लगभग 30 होती है।[136]

सत्र के दौरान उपलब्ध समय का विनियमन

लोक सभा की बैठक सामान्यतः पूर्वाह्न 11.00 बजे प्रारम्भ होती है और सायं 6.00 बजे समाप्त हो जाती है तथा बीच में अपराह्न 1.00 बजे से लेकर अपराह्न 2.00 बजे तक मध्याह्न भोजनावकाश रहता है। बैठकों के समय की सूचना संबंधित संसदीय समाचार में समय-समय पर अधिसूचित की जाती है। अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह भोजनावकाश को समाप्त कर दें अथवा सभा की दिन की बैठक की सामान्य अवधि को बढ़ा सकता है, परन्तु जब सभा को देर तक बैठना हो तो सामान्यतः सभा की सहमति ली जाती है।

सरकारी कार्य के लिए समय

प्रत्येक बैठक का पहला घंटा सामान्यतः प्रश्नों तथा उनके उत्तरों के लिए नियत होता है।[137] तथापि, यदि कोई मंत्री प्रश्न काल के अंत में अध्यक्ष से यह कहे कि कोई अमुक प्रश्न विशेष जो मौखिक प्रश्न हेतु नहीं आया था, लोक-हित का है, जिसका उत्तर वह देना चाहता है, तो उस प्रश्न को उठाने की अनुमति दे दी जाती है।[138] लगभग आधा घंटा औपचारिक कार्य-मदों को निपटाने में लगता है।[139] इस प्रकार किसी भी दिन किसी सामान्य बैठक के छह घंटों में से वास्तव में केवल साढ़े चार घंटे ही सरकारी कार्य किए जाने के लिए उपलब्ध होते हैं, तथा गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य हेतु नियत दिनों में सरकारी कार्य किए जाने के लिए केवल दो घंटे का समय उपलब्ध होता है।

यह सुझाव देना सरकार का काम है कि वह जो कार्य करना चाहती है, उसे ध्यान में रखते हुए सत्र की अवधि कितनी होनी चाहिए। तथापि, अध्यक्ष सदस्यों के हितों का ध्यान रखता है और यह सुनिश्चित करता है कि सत्र के दौरान उपलब्ध कुल समय में से

---

136. चौदहवीं लोक सभा का चौदहवां सत्र, जो 21 जुलाई, 2008 को शुरू होकर 23 दिसम्बर, 2008 तक बिना सत्रावसान के जारी रहा, अभी तक का सर्वाधिक लम्बा सत्र रहा। तथापि, इस अवधि के दौरान सभा की केवल 18 बैठकें ही हुईं। अध्याय 17—सभा की बैठकें भी *देखिए* ।

137. ऐसे अवसर बहुत कम होते हैं जब उन सदस्यों, जिनके नाम में प्रश्न गृहीत हों, के अनुपस्थित होने की स्थिति में प्रश्न काल की अवधि एक घंटे से कम रह जाती हो। वर्ष 2010 में नियम 48(3) में संशोधन के पश्चात्, यदि पुकारा गया प्रश्न नहीं पूछा जाता अथवा वह सदस्य जिसके नाम में प्रश्नगृहीत है, अनुपस्थित है, तो अध्यक्ष निदेश दे सकता है कि इसका उत्तर दिया जाए और अन्य सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है।

138. नियम 46 परंतुक।

139. *देखिए* इसी अध्याय में "कार्य-सूची" शीर्षक के अंतर्गत।

गैर-सरकारी सदस्यों को समय का उचित भाग मिले।[140] कई अवसर ऐसे आये हैं, यद्यपि ऐसा बहुत कम हुआ है, जब सभा ने ऐसे प्रस्ताव स्वीकार किये हैं कि सत्र के दौरान केवल सरकारी कार्य ही किए जाएं।[141]

सरकारी कार्य की विभिन्न मदों और ऐसी अन्य मदों के लिए, जो सरकारी समय में ली जाती हैं, समय की सिफारिश कार्य-मंत्रणा समिति द्वारा की जाती है, जिसके प्रतिवेदन समय-समय पर सभा के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं और संसदीय कार्य मंत्री द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव के माध्यम से सभा द्वारा स्वीकार किये जाते हैं।[142]

गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए समय

प्रत्येक शुक्रवार को, या अन्य ऐसे किसी दिन, जो इस कार्य के लिए नियत किया जाये, अंतिम ढाई घंटे का समय गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए लगाया जाता है।

> वर्ष 1922 में गवर्नर जनरल द्वारा पहली बार उपबंध किया गया कि "गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए उतने दिन नियत किये जायें जो गवर्नर जनरल के विचार में लोकहित के अनुरूप नियत करना संभव है।"[143] यह उपबंध लगभग बिना किसी परिवर्तन के 1948 तक लागू रहा, जब अध्यक्ष को यह शक्ति दी गई कि वह गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए समय नियत कर सके, क्योंकि अब इसे "कार्य"[144] माना जाने लगा था। तथापि, 1953 तक लोक सभा में गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए सप्ताह का कोई विशेष दिन नियत नहीं किया गया था। दो महीने के पूरे सत्र में तदर्थ आधार पर केवल

---

140. *लो.स.वा.वि.*, 7.9.1962, पृ. 3213 ।

141. पांचवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के प्रथम दिन (21-7-1975)सभा ने संसदीय कार्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया:

    "यह सभा संकल्प करती है कि लोक सभा के वर्तमान सत्र का स्वरूप कतिपय अविलम्बनीय और महत्वपूर्ण सरकारी कार्य करने के लिए आपात सत्र होने के नाते, इस सत्र में केवल सरकारी कार्य ही किए जाएंगे और सत्र के दौरान सभा में किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत प्रश्न, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव और किसी अन्य कार्य सहित अन्य किसी भी कार्य पर, चाहे वह कुछ भी हो, विचार नहीं किया जाए और इसके लिए विषय से संबंधित लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम के सभी संगत नियम निलंबित किए जाते हैं"-*लो.स.वा.वि.*, 21.7.1975, पृ. 16-49, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 25.10.1976, पृ. 15-16 ।

142. बैठक को 18.00 बजे के बाद बढ़ा कर या शनिवार या छुट्टी के दिन अतिरिक्त बैठकें रखकर सरकारी समय को बढ़ाने के संबंध में ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 30—कार्य-मंत्रणा समिति से संबंधित।

143. मैनुअल ऑफ बिजनेस एण्ड प्रोसीजर इन दि लेजिस्लेटिव असेम्बली (1922 एडीशन), पैरा 20, रूल 6 ।

144. सी.ए. (लेजिस्लेटिव) रूल्स ऑफ प्रोसीजर एंड कंडक्ट ऑफ बिजनेस (1948 एडीशन) (ये नियम 1 सितम्बर, 1948 से लागू हुए) पार्ट IV, रूल 15 ।

दो या तीन या कभी-कभी चार दिन गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए नियत किये जाते थे। वर्ष 1953 में, प्रक्रिया नियमों में संशोधन करके यह उपबंध किया गया कि शुक्रवार को बैठक के अंतिम ढाई घंटे का समय गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए रखा जाए।[145]

वर्ष 1963 में तीसरी लोक सभा के चौथे सत्र तक सत्र के पहले शुक्रवार को संकल्प रखने के साथ, शुरू करते हुए संकल्प और विधेयक बारी-बारी से रखे जाते थे। मंत्रियों को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों की अधिकाधिक सूचना देने के लिए 1963 के चौथे सत्र से, सत्र के पहले शुक्रवार को गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक और दूसरे शुक्रवार को संकल्प तथा आगे इसी क्रम से विधेयक और संकल्प रखे जाते हैं।

सरकारी कार्य का विन्यास

महासचिव के लिए यह आवश्यक है कि वह निर्धारित दिनों को किए जाने वाले सरकारी कार्य का विन्यास ऐसे क्रम में करे, जैसा कि अध्यक्ष सदन के नेता से परामर्श करने के बाद निर्धारित करे।[146]

सदन के नेता के लिए यह आवश्यक है कि वह सत्र के पहले दो या तीन दिन के संभावित सरकारी कार्य की सूचना कम से कम दस दिन पहले दे दे। उसके शीघ्र बाद कार्य-सूची तैयार की जाती है और सदस्यों में परिचालित की जाती है जिससे कि उन्हें उसमें शामिल किये गये कार्य की विभिन्न मदों में संशोधनों की सूचना देने के लिए पर्याप्त समय मिल सके। सत्र के प्रारम्भ होने से एक या दो दिन पहले, प्रथम दिन की कार्य-सूची पुनरीक्षित की जाती है और ध्यानाकर्षण सूचनाएं, सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र, मंत्रियों के वक्तव्य और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने आदि से संबंधित कार्य मदें[147] जो पहले से जारी की गई कार्य-सूची में नहीं थीं, पुनरीक्षित कार्य-सूची में शामिल कर ली जाती हैं।

---

145. नियम 26 ।

कई अवसरों पर गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य ढाई घंटे की सामान्य अवधि के बाद भी चलाए गए हैं। उदाहरणार्थ *देखिए, लो.स.वा.वि.*, 20.7.1956, पृ. 143; 1.8.69, पृ. 171-72; 16.2.1968, पृ. 634; 21.8.1970, पृ. 185-198; 20.11.1970, पृ. 185 और 327; 30.8.1974, पृ. 116 ।

146. नियम 25 ।

147. कार्य मदें, जो कि सामान्यत: सदन के नेता से प्राप्त नहीं होती हैं, कार्य-सूची में अध्यक्ष द्वारा निर्धारित निम्नलिखित क्रम में रखी जाती हैं (*देखिए* निदेश 2)।

शपथ या प्रतिज्ञान, संसद की दोनों सभाओं में राष्ट्रपति के अभिभाषण का सभा पटल पर रखा जाना; निधन संबंधी उल्लेख; प्रश्न (अल्प सूचना प्रश्नों सहित); सभा का कार्य स्थगित करने के प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति; विशेषाधिकार भंग संबंधी प्रश्न; सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र; राष्ट्रपति के संदेश सुनाना; राज्य सभा के संदेश सुनाना; विधेयकों पर राष्ट्रपति की अनुमति के बारे में सूचना; सभा के सदस्यों की गिरफ्तारी अथवा निरुद्ध किया जाना अथवा रिहाई के बारे

सत्र प्रारम्भ होने के बाद सदन का नेता संसदीय कार्य मंत्री के माध्यम से दिन-प्रतिदिन किए जाने वाले सरकारी कार्य से संबंधित सूचना भेजता रहता है। यदि किसी दिन की कार्य-सूची जारी की जा चुकी हो और उस दिन लिए जाने वाले कार्य की किसी नई मद की सूचना संसदीय कार्य मंत्री से मिले तो एक अनुपूरक कार्य-सूची जारी कर दी जाती है जिसमें उस मद का उल्लेख होता है या यदि कोई पुनरीक्षित कार्य-सूची जारी करनी हो, तो उस मद को उसमें शामिल कर लिया जाता है। जब समय कम हो तो अनुपूरक कार्य-सूची उसी दिन सभा में सदस्यों में परिचालित की जा सकती है।[148]

सदस्यों को ऐसे सरकारी कार्यों, जो सभा में अगले सप्ताह में किए जाने हों, के संबंध में पहले से सूचना देने के लिए संसदीय कार्य मंत्री सदन के नेता की ओर से सभा में प्रत्येक सप्ताह की अंतिम बैठक में एक वक्तव्य देता है।[149] वक्तव्य दिए जाने के बाद अधिक से अधिक दस सदस्य, उन सदस्यों के अतिरिक्त जो कार्य मंत्रणा समिति के सदस्य हैं, दो संक्षिप्त

में मजिस्ट्रेटों अथवा अन्य प्राधिकारियों से प्राप्त सूचनाएं, सभा की बैठक से सदस्यों की अनुपस्थिति की अनुमति के बारे में अध्यक्ष की घोषणा; सभा के सदस्यों के पद त्याग; सभापति तालिका, समितियों आदि में नाम-निर्देशन आदि विविध विषयों के बारे में अध्यक्ष द्वारा घोषणाएं; अध्यक्ष द्वारा विनिर्णय; समितियों के प्रतिवेदनों का प्रस्तुत किया जाना, विधेयकों संबंधी प्रवर/संयुक्त समिति के समक्ष दिये गये साक्ष्य का रखा जाना; याचिकाओं का प्रस्तुत किया जाना, मंत्रियों द्वारा वक्तव्य; समितियों के लिए निर्वाचन के प्रस्ताव; विधेयकों से संबंधित प्रवर/संयुक्त समितियों के प्रतिवेदनों को प्रस्तुत करने के लिए समय बढ़ाये जाने के प्रस्ताव; ध्यानाकर्षण सूचनाएं; अपने पदत्याग के स्पष्टीकरण में भूतपूर्व मंत्रियों द्वारा वैयक्तिक वक्तव्य; निदेश 115 के अधीन वक्तव्य; नियम 357 के अधीन वैयक्तिक स्पष्टीकरण (यदि वाद-विवाद के दौरान न किया गया हो), कार्य मंत्रणा समिति के प्रतिवेदनों को स्वीकार करने के लिए प्रस्ताव; अध्यक्ष/उपाध्यक्ष को हटाने के लिए संकल्प प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव; मंत्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव; अनुदानों की अनुपूरक/अतिरिक्त मांगों (सामान्य; रेल और राष्ट्रपति शासन के अधीन किसी राज्य के संबंध में) का प्रस्तुत किया जाना; वापस लिये जाने वाले विधेयक, पुर:स्थापित किये जाने वाले विधेयक; अध्यादेशों द्वारा तुरन्त विधान बनाने के कारणों को बताने वाले व्याख्यात्मक विवरणों का सभा पटल पर रखा जाना; नियम 377 के अधीन ऐसे मामले उठाना जो व्यवस्था के प्रश्न नहीं हैं; और विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदनों पर विचार।

148. *लो.स.वा.वि.* 24.9.1973, कॉ. 12641; *लो.स.वा.वि.,* 28.7.1970, कॉ. 513; 20.2.1975, पृ. 120-23 ।

149. सभा के कार्य के संबंध में साप्ताहिक वक्तव्य पहली बार 10 मई, 1956 को दिया गया था। अध्यक्ष द्वारा सरकार से कार्य के संबंध में वक्तव्य देने को कहने के बारे में लिए गए निर्णय के ब्यौरे के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 4.5.1956, पृ. 3089-90 और 9.5.1956, पृ. 3282-84 ।

सभा के कार्य के संबंध में साप्ताहिक वक्तव्य तथा उस कार्यक्रम में किए गए किसी परिवर्तन की सूचना सदस्यों की जानकारी के लिए संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दी जाती है।

उल्लेख कर सकते हैं जिनमें अगले सप्ताह की कार्य-सूची में रखे जाने वाले विषयों का सुझाव दिया गया हो। इन सदस्यों के नामों और उनकी पारस्परिक प्राथमिकता का निर्धारण बैलट से किया जाता है। उल्लेख का पाठ संक्षिप्त और सुस्पष्ट होना चाहिए और सामान्यत: प्रत्येक उल्लेख 50 शब्द से अधिक का नहीं होना चाहिए। इन उल्लेखों का पाठ अध्यक्ष से विधिवत् रूप से स्वीकृत होने पर कार्यवाही-वृत्तान्त में शामिल किया जाता है।[150] यदि किसी सप्ताह के लिए घोषित कार्यक्रम में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़े, तो सदन के नेता की ओर से संसदीय कार्य मंत्री सभा में इस आशय का एक वक्तव्य देता है।

सामान्यत: कार्य का विन्यास उसी क्रम में किया जाता है जिसमें कि वह सदन के नेता की ओर से संसदीय कार्य मंत्री ने भेजा हो, तथापि अध्यक्ष के निदेशों से या सभा के निर्णय के अनुसार, इस क्रम में परिवर्तन किया जा सकता है।[151] सभा के आदेश से कार्य-सूची में कोई नई मद भी शामिल की जा सकती है।[152]

यह सुस्थापित प्रथा है कि जिस कार्य मद पर आंशिक रूप से विचार हो चुका है उसे कार्य-सूची में नई मद से पहले रखा जाता है।[153]

तथापि, ऐसी किसी कार्य मद को जिस पर आंशिक रूप से विचार हो चुका हो, अन्य मदों पर पूर्ववर्तिता उस स्थिति में नहीं भी दी जा सकती, जब अध्यक्ष संबद्ध मंत्री या सदन के नेता के

---

150. नियम समिति की बैठक का कार्यवाही सारांश, 9.5.1988 ।

अगले सप्ताह होने वाले कार्य के बारे में सदस्यों के उल्लेखों पर लगने वाले सभा के समय को बचाने के लिए 9 जनवरी, 1976 को अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि जो सदस्य कोई सुझाव देना चाहते हैं, वे इस संबंध में संसदीय कार्य मंत्री को अग्रिम रूप से सूचना दें, ताकि अगले सप्ताह के कार्य के बारे में सभा में वक्तव्य देने से पहले वह उनके अनुरोधों पर विचार कर सकें। *लो.स.वा.वि.,* 9.1.1976, पृ. 86-87 ।

151. उदाहरणार्थ, *देखिए लो.स.वा.वि.,* 20.8.1956, पृ. 1238 और पृ. 1240 ।

152. 24 अगस्त, 1956 को, एक गैर-सरकारी सदस्य का स्त्री और बालक संस्था अनुज्ञापन विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव पारित होने के बाद सभा ने अध्यक्ष का यह सुझाव स्वीकार कर लिया कि राज्य सभा द्वारा यथापारित स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार दमन विधेयक तथा बालक विधेयक भी उसी प्रवर समिति को सौंप दिया जाए और इन विधेयकों के संबंध में प्रस्ताव अपेक्षाकृत अल्प अवधि की ही सूचना से 25 अगस्त, 1956 की कार्य-सूची में शामिल कर लिया जाये। तद्नुसार, इन दो सरकारी विधेयकों को प्रवर समिति को सौंपने के संबंध में प्रविष्टियां उस दिन की कार्य-सूची में निम्नलिखित टिप्पणी के साथ शामिल कर ली गईं;

"सभा के आदेश से शामिल की गई"।

153. *लो.स.वा.वि.*, 21.11.1956, कॉ. 301-02; साथ ही *देखिए* 17.2.1961 की पुनरीक्षित अनुपूरक कार्य-सूची और *एल.एस. डिबेट्स,* 17.2.1961, कॉ. 61 ।

कहने पर इस आशय का निदेश दे दे, या पहले से यह घोषणा की जा चुकी हो कि किसी मद विशेष पर किसी विशेष दिन चर्चा की जाएगी।[154]

---

154. उदाहरणार्थ, निम्नलिखित मामलों में संबंधित मंत्री या सदन के नेता के अनुरोध पर, उन मदों को जिन पर आंशिक रूप से चर्चा हो चुकी थी, कार्य की अन्य मदों पर पूर्ववर्तिता नहीं दी गई:

दूसरी पंचवर्षीय योजना संबंधी प्रस्ताव पर आगे चर्चा सामान्यत: 11 नवंबर, 1957 को जारी रहनी थी। लेकिन इस मद को 20 नवम्बर, 1957 की कार्य-सूची में शामिल किया गया। भारतीय रिज़र्व बैंक अध्यादेश के निरनुमोदन संबंधी संकल्प पर चर्चा तथा भारतीय रिज़र्व बैंक (दूसरा संशोधन) विधेयक पर विचार 25 नवम्बर, 1957 को पुन: प्रारम्भ किया जाना था। लेकिन इन दो मदों की बजाए नागा पहाड़ी त्यूनसाग क्षेत्र विधेयक को पूर्ववर्तिता दी गई।

9 दिसम्बर, 1957 को निवारक निरोध (जारी रखना) विधेयक, 1957 को वेतन का भुगतान (संशोधन) विधेयक 1957 पर आगे विचार की तुलना में पूर्ववर्तिता दी गई।

5 मई, 1961 की पुनरीक्षित कार्य-सूची में भारतीय रेल (संशोधन) विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की रिपोर्ट संबंधी प्रस्ताव, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हो चुकी थी, से पहले शामिल किया गया।

16 और 17 सितंबर, 1963 की कार्य-सूचियों में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी प्रस्ताव को औषधि तथा प्रसाधन सामग्री (संशोधन) विधेयक से पहले शामिल किया गया जिस पर 13 सितंबर, 1963 को आंशिक रूप से चर्चा हो चुकी थी। ऐसा इसलिए किया गया, क्योंकि पहले ही यह घोषित कर दिया गया था कि अंतर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी प्रस्ताव पर इन दोनों दिनों चर्चा की जायेगी।

29 जुलाई, 1975 की पुनरीक्षित कार्य-सूची में दिल्ली विक्रय-कर विधेयक को भारत रक्षा (संशोधन) विधेयक, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हो चुकी थी, की तुलना में पूर्ववर्तिता दी गई। एक सदस्य के पूछने पर संसदीय कार्य मंत्री ने कार्य मदों के क्रम में परिवर्तन करने के कारण बताये–*लो.स.वा.वि.,* 29.7.1975, पृ. 8-10; 24.8.1976; पृ. 118।

24 नवंबर, 1987 की पुनरीक्षित कार्य-सूची में संविधान (छप्पनवां संशोधन) विधेयक को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (संशोधन) विधेयक पर आगे चर्चा की तुलना में पूर्ववर्तिता दी गई थी।

15 दिसम्बर 1987 की पुनरीक्षित कार्य-सूची में प्रत्यक्ष कर विधियां (संशोधन) विधेयक और चंडीगढ़ (शक्तियों का प्रत्यायोजन) विधेयक को अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद विधेयक, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हो चुकी थी, से पहले रखा गया।

18 दिसंबर, 1991 की पुनरीक्षित कार्य-सूची में संविधान (चौहत्तरवां संशोधन) विधेयक और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र शासन विधेयक को कुटुंब न्यायालय (संशोधन) विधेयक, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हो चुकी थी, से पहले रखा गया।

22 दिसंबर, 1993 की पुनरीक्षित कार्य-सूची में कला क्षेत्र फाउंडेशन विधेयक को रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष उपबंध) संशोधन विधेयक पर आगे चर्चा की तुलना में पूर्ववर्तिता दी गई।

> यदि सरकार ने इस बात के कोई कारण नहीं बताए कि अगले दिन की कार्य-सूची में उस मद को क्यों नहीं शामिल किया गया जिस पर आंशिक रूप से विचार हो चुका है, तो इस संबंध में अध्यक्ष ने यह निदेश दिया है कि उस मद को कार्य-सूची में औपचारिक कार्य के बाद प्रथम मद के रूप में रखा जाए।[155]

तथापि विनियोग विधेयक पर विचार किए जाने और उसे पारित किए जाने जैसी कार्य मद, जिस पर वास्तव में सभा का बहुत ही कम समय लगता है, कार्य-सूची में उस मद से पहले रखी जा सकती है, जिस पर आंशिक रूप से विचार हो चुका हो।

सामान्यत: किसी दिन के लिए निपटाने हेतु रखे गए किसी कार्य के क्रम में उस दिन कोई परिवर्तन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि सभा उसमें परिवर्तन की स्वीकृति न दे दे अथवा अध्यक्ष का यह समाधान न हो जाए कि ऐसे परिवर्तन के लिए पर्याप्त आधार है।[156] अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया है कि किसी दिन विशेष के लिए निश्चित किसी कार्य मद को सामान्यत: आस्थगित न किया जाए।[157] तथापि, किसी मंत्री द्वारा अनुरोध किए जाने पर और इस संबंध में सभा के सहमत हो जाने पर कार्य-सूची में रखी गई किसी कार्य मद का क्रम बदला जा सकता है।[158] अथवा यह भी हो सकता है कि उस कार्य मद को लिया ही न जाए।[159]

---

155. सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) संशोधन विधेयक, जिस पर 29 अगस्त, 1963 को आंशिक रूप से चर्चा की गई थी, को 2 सितम्बर, 1963 की कार्य-सूची में बिना कोई कारण बताए शामिल नहीं किया गया था। कार्य मदों के सरकार द्वारा प्रस्तुत क्रम को बदला गया और जिस विधेयक पर आंशिक रूप से पहले चर्चा हो चुकी थी, उसे 2 सितंबर, 1963 की कार्य-सूची में सम्मिलित किया गया ।

156. नियम 25, परन्तुक, तथापि यह अग्रिम कार्य-सूची में रखी गयी उन कार्य मदों पर लागू नहीं होता जिन्हें बाद में पुनरीक्षित कार्य-सूची जारी करते समय उससे निकाला जा सकता है। *लो.स.वा.वि.,* 29.8.1962, पृ. 2313 ।

    उदाहरणार्थ, 30 अगस्त, 1969 की पुनरीक्षित कार्य-सूची में उस दिन के लिए रखे गए विधायी कार्यों के क्रम में, सभा की सहमति से दो बार परिवर्तन किया गया था ताकि सभा कतिपय विधेयकों को बिना किसी चर्चा के निपटा सके—*लो.स.वा.वि.,* 30.8.1969, पृ. 1-2; 22.3.1974, पृ. 120-121; और 2.9.1976, पृ. 42-49 ।

157. *लो.स.वा.वि.,* 8.3.1963, पृ. 1420 ।

158. *पूर्वोक्त,* 16.11.1956, कॉ. 278, 22.6.1962, पृ. 5767; और 21.8.1962, पृ. 1622 ।

159. *पूर्वोक्त,* 29.8.1962, पृ. 2313

    अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) विधेयक कार्य-सूची में जिस मंत्री के नाम पर दर्शाया गया था, उसके द्वारा विधेयक पर विचार करने हेतु प्रस्ताव पेश किये जाने से पूर्व संसदीय कार्य मंत्री द्वारा प्रस्ताव पेश किए जाने और सभा द्वारा स्वीकृत कर लिए जाने पर यह मद स्थगित कर दी गई थी। *लो.स.वा.वि.,* 24.5.1976, पृ. 15-16 ।

जब कार्य-सूची में शामिल की गई किसी मद को शुद्धि-पत्र के माध्यम से कार्य-सूची से निकालना हो तो संबद्ध मंत्री को उस मद को निकाले जाने के कारण अध्यक्ष को बताने पड़ते हैं।[160] तथापि, यह हो सकता है कि कोई कार्य मद जो किसी दिन की कार्य-सूची में रखी गई हो, सभा में समुचित उपस्थिति न होने के कारण न ली जाए।[161] इसी प्रकार यह भी हो सकता है कि यदि कोई दिन किसी महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए नियत किया गया हो, तो उस दिन औपचारिक कार्य की कतिपय मदें न ली जायें।[162]

किसी विशेष समय के लिए निर्धारित किसी कार्य मद का सभा स्थगित होने के सामान्य समय से पूर्व निपटान हो जाने पर कार्य-सूची में पहली ऐसी किसी मद पर चर्चा शुरू की जा सकती है, जिसका निपटान न हुआ हो।

अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया है कि कार्य की जो मद अग्रिम कार्य-सूची में रखी गई हो, उसे इस आधार पर वापस नहीं लिया जा सकता कि संभवत: सभा के सभी वर्गों का अनुमोदन उसे प्राप्त न हो पाये, और यह कि यदि दोनों सदनों से संबंध रखने वाली मद सहित कोई ऐसी मद कार्य-सूची में हों, तो उसे दूसरे सदन में उठाई गई किसी आपत्ति के आधार पर कार्य-सूची से निकाला नहीं जाएगा, क्योंकि दूसरे सदन द्वारा अपनी राय व्यक्त करने का समुचित समय वह है जब कि वह मद सभा द्वारा दूसरे सदन को भेजे गए संदेश के माध्यम से उसके सामने आए।[163]

यदि सभा किसी वर्तमान सदस्य या भूतपूर्व सदस्य या किसी सुविख्यात व्यक्ति के निधन के कारण या किसी अन्य कारण से कोई कार्य किए बिना स्थगित हो जाती है तो उस दिन की कार्य-सूची में शामिल की गई औपचारिक कार्य की मदें अगले दिन की कार्य-सूची में रखी जा सकती हैं[164] यदि यह निर्णय किया जाता है कि निधन संबंधी उल्लेखों के पश्चात् सभा स्थगित हो जाएगी तो कार्य-सूची में कोई कार्य नहीं रखा जाता है।[165]

---

160. *पूर्वोक्त,* 21.1.1963, पृ. 58 ।
161. *पूर्वोक्त,* 16.11.1956, का. 302 ।
162. *पूर्वोक्त,* 14.11.1962, पृ. 745 ।
163. *पूर्वोक्त,* 29.8.1962, पृ. 2312-14 ।
164. उदाहरणार्थ, *देखिए* 1.3.1963, 2.3.1963, 12.8.1986, 30.11.1986, 4.5.1988, 19.12.1991, 24.3.1992, 20.12.1993, 21.4.1994, 1.3.1996, 20.12.1996 और 21.4.1997 की कार्य-सूचियां।
165. *देखिए,* 19.2.1973, 25.7.1983, 17.7.1986, 27.7.1987, 11.7.1991 और 26.2.1996 की कार्य-सूचियां।

कार्य-सूची

कार्य-सूची सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य[166] की उन मदों की सूची है जो कि सभा में किसी एक दिन या अधिक दिनों में उस क्रम में ली जानी होती है, जिस क्रम में वे इस सूची में लिखी गई हैं। कार्य-सूची महासचिव द्वारा तैयार की जाती है और उसकी एक प्रति प्रत्येक सदस्य को उस दिन सभा की बैठक शुरू होने से पहले दी जाती है।[167] कार्य-सूची में सबसे पहली मद सामान्यत: "प्रश्नों" की होती है। तथापि, नए सदस्यों द्वारा शपथ ग्रहण अथवा प्रतिज्ञान, निधन संबंधी उल्लेख और सभा में नए मंत्रियों का परिचय जैसी मदों को "प्रश्नों" से पहले लिया जाता है।[168] "प्रश्न" मद कार्य-सूची में रखी जाती है, परन्तु उस दिन उत्तर दिए जाने के लिए तारांकित, अतारांकित और अल्प-सूचना प्रश्नों की सूचियां अलग से छापी और परिचालित की जाती हैं। इसी प्रकार किसी विधेयक, प्रस्ताव, संकल्प आदि में पेश किए जाने वाले संशोधन तथा कटौती प्रस्तावों को अलग से छापा जाता है। कार्य-सूची, प्रश्न सूची, संशोधनों की सूची, कटौती प्रस्तावों की सूची और विधेयक आदि को मिलाकर उस दिन की सकल कार्य-सूची बनती है।

ऐसा कार्य, जो किसी दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित न हो, उसे किसी बैठक में विचारार्थ तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि अध्यक्ष ने उसकी अनुमति पहले से न दे दी हो।[169] यदि कोई सदस्य ऐसा विषय उठाना चाहे जो कार्य-सूची में सम्मिलित न हो तो उसे अध्यक्ष को यह लिखकर बताना पड़ता है कि वह कौन-सा मामला उठाना चाहता है और यदि अध्यक्ष द्वारा इसकी अनुमति दे दी जाती है तो वह सदस्य उस विषय को सभा में उठा सकता है।

तथापि, कार्य-सूची में किसी प्रविष्टि के बिना निम्नलिखित कार्य मदों को लिया जा सकता है:

> उपचुनाव में निर्वाचित होने पर किसी सदस्य द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान; किसी वर्तमान या भूतपूर्व सदस्य या सुविख्यात व्यक्ति का निधन होने पर निधन संबंधी उल्लेख; स्थगन प्रस्ताव; राष्ट्रपति के संदेश को सुनाना; अध्यक्ष द्वारा घोषणा या विनिर्णय; विशेषाधिकार का प्रश्न; किसी सदस्य की गिरफ्तारी आदि की सूचना की घोषणा; किसी सदस्य के त्यागपत्र संबंधी घोषणा, और किसी नियम के निलंबन का प्रस्ताव।

---

166. जिस दिन सभा द्वारा गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य भी लिया जाना हो, उस दिन की कार्य-सूची दो भागों में विभाजित होती है—भाग एक में सरकारी कार्य और भाग दो में गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य दर्शाया जाता है।

    गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के बारे में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 22-"विधान" और अध्याय 25-"संकल्प" के संगत भाग।

167. नियम 31 (1)।

168. निदेश 2 ।

169. नियम 31(2); *लो.स.वा.वि.,* 13.3.1961, पृ. 2323-24 ।

कतिपय महत्वपूर्ण अवसरों पर भी कार्य-सूची में प्रविष्टि के बिना सभा में विशेष उल्लेख किए जाते हैं।[170] गोपनीय विधेयकों को, अध्यक्ष की पूर्वानुमति लेकर, कार्य-सूची में कोई प्रविष्टि किए बिना पुरःस्थापित किया जाता है।[171] विशेष परिस्थितियों में, आपात विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति दी गई है जबकि उस दिन की कार्य-सूची में इसकी पूर्व प्रविष्टि नहीं की गयी थी।[172] इसी प्रकार, किसी मंत्री को अत्यावश्यक लोक महत्व के ऐसे विषय पर, जिसमें विलंब नहीं किया जा सकता, वक्तव्य देने की अनुमति दी जा सकती है बशर्ते कि संबंधित मंत्री ने इसके लिए अध्यक्ष से पहले से अनुरोध किया हो।[173]

अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए तथा सभा की इच्छा और विषय-विशेष की अविलम्बनीयता को ध्यान में रखते हुए किसी कार्य-मद पर विचार की भी अनुमति दे सकता है, जो कार्य-सूची में सम्मिलित न हो।[174]

कार्य-सूची की किसी अन्य मद के पारित होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न किसी आकस्मिक मद की प्रविष्टि "विधेयक, प्रस्ताव या संकल्प आदि की आकस्मिक सूचना" शीर्षक के अंतर्गत की जाती है।[175]

ऐसी कार्य मदों को, जिन्हें कार्य-सूची में सम्मिलित करने के लिए नियमों के अंतर्गत, सूचना अपेक्षित हो, सूचना की कालावधि समाप्त होने के बाद ही कार्य-सूची में शामिल किया जाता है।[176] कार्य-सूची में किसी मद को तब तक भी सम्मिलित नहीं किया जाता है जब तक कि उस कार्य के वर्ग से संबंधित नियमों के उपबंधों का पालन न किया गया हो। यदि कोई

---

170. *लो.स.वा.वि.,* 13.5.1952, पृ. 1; 10.5.1957, पृ. 1-2; 10.12.1958, पृ. 1935 तथा इन दिनों की कार्य-सूचियां।

171. कार्य-सूची में बिना किसी प्रविष्टि के सभा में पुरःस्थापित किए गए गुप्त विधेयकों के उदाहरणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 15.5.1957, पृ. 238; 3.12.1957, पृ. 1730; *एल. एस. डिबेट्स,* 12.12.1957, कॉ. 5318, *लो.स.वा.वि.,* 28.2.1958, पृ. 1429; 27.9.1958, पृ. 4385-86, 27.4.1959, पृ. 6423 ।

172. *लो.स.वा.वि.,* 30.5.1957, पृ. 1364-66 ।

173. मंत्रियों द्वारा दिये गये ऐसे वक्तव्यों के उदाहरणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 6.6.1967, 8.6.1967, 15.6.1967 और 20.7.1967 ।

174. *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1956, पृ. 1994-95; 17.12.1959, पृ. 2772, 2781-82; 11.2.1960, पृ. 236-39 ।

175. 'आकस्मिक सूचना' संबंधी ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय-32 – 'प्रक्रिया के सामान्य नियम'।

176. नियम 31 (3)।

संबंधित मंत्री या सदस्य यह सूचित करता है कि वह कार्य-सूची की किसी मद विशेष से संबंधित किसी नियम या नियम के किसी भाग के निलंबन का प्रस्ताव लाना चाहता है तो उस नियम के निलंबन के लिए आवश्यक प्रस्ताव के साथ उस मद को कार्य-सूची में सम्मिलित कर लिया जाता है।[177]

177. नियम 388 के अंतर्गत, कोई मंत्री या सदस्य, अध्यक्ष की सहमति से, सभा के सामने किसी प्रस्ताव विशेष के संबंध में लागू होने वाले किसी नियम को निलंबित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। *लो.स.वा.वि.,* 9.12.1955, कॉ. 1930-45; 23.4.1956, पृ. 2608-17, 30.8.57, पृ. 4957-58; 15.12.1958, पृ. 268-71; 11.12.1959, पृ. 2283-84; 31.3. 1960, पृ. 4189-90; 28.8.1962, पृ. 2187-90; 25.3.1976, पृ. 88-95; 26.4.1983, पृ. 227; 20.12.1983, पृ. 311-13; 21.12.1983, पृ. 268-71; 24.2.1984, पृ. 200-01; 5. 8.1986, पृ. 221; 13.12.1988, पृ. 13; 4.10.1990, पृ. 8; 20.12.1991, पृ. 587; 3.12. 1992, पृ. 250-51 और 25.8.1995, कॉ. 376; 11.3.2006, कॉ. 16-17 ।

अध्याय 19

प्रश्न

संसद में प्रश्नों की प्रक्रिया के विकास का उन संवैधानिक परिवर्तनों के साथ गहरा संबंध है जो कि समय-समय पर विधानपालिका के गठन, कृत्यों तथा शक्तियों में हुए हैं। ब्रिटेन की संसद द्वारा भारत में जो भी संवैधानिक सुधार लागू किये गए, उनके फलस्वरूप प्रश्न पूछने का क्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होता गया।

> पहली विधान परिषद् जो कि 1853 के अधिकार-पत्र अधिनियम (चार्टर एक्ट) के अंतर्गत बनायी गयी थी, का मुख्य उद्देश्य कानून तथा विनियम बनाना था। इस अधिनियम में विधान परिषद् की शक्तियों को परिभाषित नहीं किया गया था परंतु इस परिषद् ने कार्यपालिका के कार्यों के संबंध में प्रश्न पूछकर और उनके औचित्य पर बहस करके कुछ हद तक अपनी स्वतंत्रता का परिचय दिया।[1]
>
> 1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम, जो स्पष्ट रूप से विधान परिषद् के कार्यों को केवल विधान संबंधी विषयों तक ही परिसीमित करता है, कई पहलुओं से प्रगति विरोधी था और इसके परिणामस्वरूप विधान परिषद् के सुधारों की मांग हुई जिससे कि सदस्यों को प्रश्नों के माध्यम से जानकारी पा सकने का अधिकार भी हो। यह मांग 1892 के भारतीय परिषद् अधिनियम में स्वीकार कर ली गई।
>
> भारतीय परिषद् अधिनियम, 1892 के अंतर्गत बनाये गये नियमों में यह उपबंध किया गया था कि जो सदस्य प्रश्न पूछना चाहे, उसे प्रश्न की पूर्व सूचना विधायी विभाग के सचिव को कम से कम पूरे 6 दिन पूर्व लिखित रूप में देनी चाहिये।[2] परिषद् का अध्यक्ष[3] यदि उचित समझे तो वह पूरे 6 दिन से कम अवधि की पूर्व सूचना पर उन प्रश्नों को पूछने की अनुमति दे सकता था जिसके लिए अधिक समय हेतु अनुमति अपेक्षित थी अथवा आवश्यकता होने पर प्रश्न का उत्तर देने के लिए और अधिक समय भी दे सकता था।[4] अध्यक्ष जिन प्रश्नों के पूछे जाने की अनुमति देता था उन्हें उस दिन के सूचना पत्र (नोटिस पेपर) में शामिल कर लिया जाता था और उन्हें उसी क्रम में पूछा जाता था जिस क्रम में वे सूचना पत्र में होते थे। कार्य की पहली मद के रूप में प्रश्न ही होते थे।[5] प्रश्न

---

1. बनर्जी, अनिल चन्द्र *(ई डी.)इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल डाक्यूमेंट्स,* खण्ड 1, पृ. XXVI ।
2. भारतीय परिषद् अधिनियम, 1892 के अंतर्गत बनाये गये विधान परिषद् कार्य-संचालन नियमों का नियम 6 ।
3. वर्ष 1921 तक गवर्नर जनरल विधान परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करते थे, उस वर्ष परिषद् ने विधान सभा को यह दायित्व सौंपा और इसकी बैठकों का संचालन एक अधिकारी द्वारा किया जाने लगा जिसे प्रेसीडेंट कहते थे। वर्ष 1947 में इसे अध्यक्ष कहा जाने लगा। परन्तु पुस्तक के मूल पाठ में सभी जगह अध्यक्ष शब्द का ही प्रयोग किया गया है।
4. कार्य-संचालन नियम, *उद्धृत कृति,* नियम 9 ।
5. पूर्वोक्त, नियम 10 ।

उसी सदस्य को पढ़ना होता था जिसने उसकी सूचना दी हो, या उसकी अनुपस्थिति में, यदि वह ऐसा चाहता हो, कोई अन्य सदस्य उसकी ओर से वह प्रश्न पढ़ता था और प्रश्न का उत्तर सम्बद्ध विभाग का प्रभारी सदस्य या कोई ऐसा सदस्य देता था जिसे परिषद् का अध्यक्ष उस प्रयोजन के लिए नाम-निर्दिष्ट करे।[6]

किसी प्रश्न के उत्तर पर वाद-विवाद की अनुमति नहीं दी जाती थी।[7] पूछा गया प्रश्न और उसका उत्तर परिषद् की कार्यवाही में शामिल कर लिया जाता था।[8]

प्रश्नों की प्रक्रिया के विकास का अगला चरण भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 के अधीन बनाए गए नियमों से प्रारम्भ हुआ। इन नियमों के अंतर्गत प्रश्नों के लिए पूर्व सूचना की अवधि पूरे 6 दिन से बढ़ाकर 10 दिन कर दी गई[9] और, पहली बार, अनुपूरक प्रश्न पूछने का उपबंध किया गया। अब मूल प्रश्न पूछने वाला सदस्य उस जानकारी के किसी तथ्य के और अधिक स्पष्टीकरण हेतु अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता था जिसके बारे में उसने मूल प्रश्न में जानकारी मांगी थी।[10] लेकिन विभाग का प्रभारी सदस्य चाहे तो वह पूछे गए किसी अनुपूरक प्रश्न का उत्तर देने से इंकार कर सकता था और उस स्थिति में उस अनुपूरक प्रश्न को नये प्रश्न के रूप में परिषद् की अगली बैठक में पूछा जा सकता था।[11] इसके अतिरिक्त, अध्यक्ष कोई कारण बताए बिना किसी भी अनुपूरक प्रश्न को अस्वीकार कर सकता था।[12]

प्रश्न के स्वरूप संबंधी नियम को भी अधिक व्यापक बनाया गया। यह उपबंध किया गया कि ऐसे प्रश्न की अनुमति नहीं दी जायेगी जो बहुत लम्बे हों, या जिनमें तर्क, अनुमान, व्यंग्यपूर्ण या मानहानिकारक अभिव्यक्तियां हों या व्यक्तियों की सरकारी या सार्वजनिक हैसियत के कारण नहीं वरन् किन्हीं अन्य कारणों से उन पर आक्षेप किए गए हों या किसी परिकल्पित स्थिति के संबंध में सरकार से उसकी राय या स्थिति का समाधान किए जाने की मांग की गयी हो।[13]

---

6. विधान परिषद् में कार्य-संचालन नियम *उद्धृत कृति,* नियम 11 ।
7. *पूर्वोक्त,* नियम 13 ।
8. *पूर्वोक्त,* नियम 14 ।

   परन्तु प्रश्न न तो इतनी बार पूछे जाते थे और उतने अधिक भी नहीं हुआ करते थे जितने कि आजकल हैं। प्रश्न और उनके उत्तर कई बार भाषणों का रूप धारण कर लेते थे। प्रश्न और उनके उत्तर दोनों ही दो या तीन पन्नों पर आते थे। *देखिए* भारत में गवर्नर जनरल की परिषद् की कार्यवाही का सारांश, 1895, खण्ड 34, पृ. 165-68 ।
9. भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 के अंतर्गत बनाये गए नियमों का नियम 6 ।
10. *पूर्वोक्त,* नियम 12 ।
11. *पूर्वोक्त,* नियम 13 ।
12. *पूर्वोक्त,* नियम 14 ।
13. *पूर्वोक्त,* नियम 4 ।

अध्यक्ष द्वारा प्रश्नों को अस्वीकृत करने से संबंधित नियम सरल बना दिया गया। अध्यक्ष को अब तक यह शक्ति प्राप्त थी कि वह कोई कारण बताये बिना यह कह कर किसी प्रश्न को अस्वीकार कर सकता था कि उसका उत्तर देना जनहित में नहीं होगा। उक्त शक्ति को व्यापक बनाते हुए अब अध्यक्ष को यह शक्ति भी दी गई कि वह किसी प्रश्न या उसके किसी भाग को इस आधार पर भी अस्वीकार कर सकता था कि उसकी राय में वह प्रश्न किसी स्थानीय सरकार की विधान परिषद् में पूछा जाना चाहिए।[14]

परिषद् में किसी प्रश्न की ग्राह्यता या अग्राह्यता के संबंध में अध्यक्ष के किसी आदेश पर कोई चर्चा करने की अनुमति नहीं थी।[15]

उस समय तक अध्यक्ष यह विनिर्णय दे सकता था कि कार्य-सूची में दर्ज किसी प्रश्न का उत्तर जनहित के आधार पर दिया जा सकता है, चाहे वह प्रश्न पूछा न गया हो, अब यह व्यवस्था की गई कि अध्यक्ष यह निदेश दे सकता है कि कार्य-सूची में रखे गए प्रश्न का उत्तर जनहित के आधार पर दिया जाए चाहे उस प्रश्न को वापस ले लिया गया हो।[16]

प्रश्नों की प्रक्रिया के विकास का अगला महत्वपूर्ण चरण 1919 के मान्टेग चैम्सफोर्ड सुधारों के लागू होने के साथ प्रारम्भ हुआ। उस समय जो नियम और स्थायी आदेश बनाये गये उनके माध्यम से कुछ उल्लेखनीय परिवर्तन किए गए।

उस समय प्रश्नों के लिए कोई समय निश्चित नहीं था। अध्यक्ष जनहित को ध्यान में रखते हुए उतना समय प्रश्नों के लिए निर्धारित कर सकता था, जितना कि वह प्रश्नों के पूछे जाने और उनके उत्तर दिये जाने के लिए उचित समझे। नये नियमों के अंतर्गत प्रत्येक बैठक का पहला घंटा इस प्रयोजन के लिए निश्चित किया गया।[17] प्रश्नों से पहले निधन संबंधी उल्लेख या कोई औपचारिक कार्य ही अध्यक्ष की अनुमति से किया जा सकता था।[18]

यद्यपि नियमों में यह व्यवस्था की गई थी कि अध्यक्ष चाहे तो पूरे दस दिन से कम की सूचना पर प्रश्न की अनुमति दे सकता था तथापि, नये नियमों के अंतर्गत वह उस प्रश्न से सम्बद्ध सरकारी सदस्य की सहमति से सूचना की अवधि को कम कर सकता था।[19]

जब कोई सदस्य अल्प-सूचना पर प्रश्न पूछना चाहता था तो वह अध्यक्ष और प्रभारी सदस्य, दोनों को 'प्राइवेट सूचना' देता था।[20] ऐसे प्रश्न यदि स्वीकार किए जाते थे, तो उन्हें

14. *पूर्वोक्त,* नियम 8 ।
15. *पूर्वोक्त,* नियम 9 ।
16. *पूर्वोक्त,* नियम 15 ।
17. *विधान सभा में कार्य-संचालन तथा प्रक्रिया नियमावली* (1926 संस्करण), स्था.आ.सं. 10 ।
18. *पूर्वोक्त,* पृ. 31, साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 20.9.1921, पृ. 485-86 ।
19. नियमावली, *उद्धृत कृति* स्था.आ.सं. 13 ।
20. *पूर्वोक्त,* पृ. 24 साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 9.2.1922, पृ. 2284 और 1.3.1926, पृ. 1978 ।

यथास्थिति, प्रश्न काल के बाद या, कार्य-सूची में रखे गए प्रश्नों के उत्तर दिए जा चुकने पर, यदि उत्तर में कार्यवाही का पूरा पहला घंटा न लग गया हो, लिया जाता था।[21]

सामान्यत: अध्यक्ष दस दिन की सूचना से कम अवधि की सूचना पर प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं देता था, परन्तु जब सूचना सत्र की संभाव्य समाप्ति के दस दिन के भीतर दी गयी हो तो उसके द्वारा यही परिपाटी अपनायी जाती थी कि बिना किसी पक्षपात के वह सम्बद्ध विभाग से यथासंभव सूचना की अवधि को कम करने और तत्संबंधी प्रश्न का उत्तर देने के लिए कहता था।[22]

सरकारी सदस्य को संबोधित प्रश्न के लिए यह आवश्यक था कि वह उन सार्वजनिक मामलों से संबंधित हो, जिनके साथ उस सदस्य का सरकारी तौर पर संबंध हो या प्रशासन के उस विषय से संबंधित हो जिसके लिए वह सदस्य उत्तरदायी हो।[23] प्रश्न किसी गैर-सरकारी सदस्य से भी पूछे जा सकते थे बशर्ते वे किसी विधेयक, संकल्प या सभा के कार्य से संबंधित किसी ऐसे विषय के बारे में हों, जिनके लिए वह सदस्य उत्तरदायी हो।[24]

सितम्बर, 1921 में यह प्रथा प्रारम्भ की गयी थी कि सदस्य जिन प्रश्नों का मौखिक उत्तर चाहते हों, उनसे पहले तारे का चिन्ह लगा दिया जाये। उन्हें "तारांकित प्रश्न" कहा जाता था। जिन प्रश्नों पर तारे का चिन्ह न हो, उन्हें अलग से छापा जाता था और उनके उत्तर बाद में परिचालित किए जाते थे और उन्हें शासकीय वृत्तांत में तारांकित प्रश्नों से अलग छापा जाता था। जहां किसी तारांकित प्रश्न का उत्तर बहुत लम्बा हो, तो प्रथानुसार वह उत्तर सभा पटल पर रख दिया जाता था।[25]

नियमों तथा स्थायी आदेशों में इस बात की कोई सीमा नहीं थी कि कोई सदस्य एक दिन में कितने प्रश्न पूछ सकता है। प्रश्न क्रमबद्ध छापे जाते थे और उसी क्रम में उन्हें पुकारा जाता था, जिस क्रम में वे सूची में छपे होते थे। जिन प्रश्नों का उत्तर प्रश्न काल में नहीं दिया जा सकता था वे अगले दिन पूछे जाते थे और इसी प्रकार क्रम चलता था।[26]

यदि किसी प्रश्न के लिए पुकारा जाये और वह सदस्य उसे न पूछे जिसके नाम में वह है अथवा वह सदस्य अनुपस्थित हो, तो अध्यक्ष किसी और सदस्य के अनुरोध पर यह निदेश दे सकता था कि उस प्रश्न का उत्तर दिया जाये।[27]

---

21. नियमावली *उद्धृत कृति,* पृ. 30-31, साथ ही *देखिए, एल.ए. डिबेट्स,* 23.2.1926, पृ. 1649-1652, 6.9.1927 पृ. 3989-93 ।
22. नियमावली उद्धृत कृति, पृ. 25।
23. *पूर्वोक्त,* स्था.आ.सं. 14(1)।
24. *पूर्वोक्त,* स्था.आ.सं. 14(2)।
25. *पूर्वोक्त,* पृ. 31, साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 5.9.1921, पृ. 98-99, 26.9.1921, पृ. 985-1005।
26. नियमावाली, *उद्धृत कृति* पृ. 31, साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 19.9.1921, पृ. 464, 20.9.1921, पृ. 486 ।
27. नियमावली *उद्धृत कृति,* स्था.आ. 19 ।

अनुपूरक प्रश्नों संबंधी नियम को भी विस्तृत कर दिया गया। अब न केवल मूल प्रश्न पूछने वाला सदस्य बल्कि कोई भी सदस्य अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता था।[28] अनुपूरक प्रश्नों की कोई सीमा नहीं थी। हां, अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से उनकी संख्या की सीमा निर्धारित कर सकता था। सामान्यत: अध्यक्ष तभी हस्तक्षेप करता था जब सरकारी सदस्य द्वारा कुछ समय तक अनुपूरक प्रश्न पूछे जा चुके हों, किसी भी स्थिति में प्रश्नों को वाद-विवाद का रूप धारण नहीं करने दिया जाता था।[29]

जिस सदस्य ने शपथ न ली हो, वह कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता था और उसकी ओर से और कोई सदस्य भी प्रश्न नहीं पूछ सकता था।[30] नये उपबंधों से यह नियम हटा दिया गया कि अध्यक्ष उस प्रश्न का भी उत्तर देने का आदेश दे सकता है जो सम्बद्ध सदस्य ने वापस ले लिया हो।

1937 में नियमों में कतिपय मूलभूत संशोधन किये गये,[31] जो इस प्रकार हैं:–

सदस्य को उस सरकारी सदस्य का सरकारी पद बताना होता था जिसे प्रश्न संबोधित किया गया हो और यदि वह प्रश्न किसी गैर-सरकारी सदस्य को संबोधित किया गया हो तो उस सदस्य को नाम से संबोधित किया जाता था।[32] यदि कोई सदस्य प्रश्न में गलत संबोधन करता था तो यह जिम्मेदारी उस विभाग की थी जिसके प्रतिनिधि को प्रश्न संबोधित किया गया हो कि वह विधान सभा विभाग (लेजिस्लेटिव एसेम्बली डिपार्टमेंट) को उस प्रश्न का उत्तर देने की जिम्मेदारी जिस सरकारी सदस्य की है, उसके बारे में सूचित करे। विधान सभा विभाग सदस्य को वह प्रश्न भेजे बिना उसे संबंधित सरकारी सदस्य द्वारा प्रश्नों के उत्तर के लिए नियत पहले दिन की सूची में रख देता था जिसकी प्रश्न सूची पहले जारी न की गई हो बशर्ते उस सदस्य द्वारा उस दिन भेजे जाने वाले प्रश्नों का कोटा समाप्त न हो गया हो। यदि उस दिन के लिए निर्धारित उसका कोटा पूरा हो गया हो तो उसे प्रश्न की सूचना नये सिरे से देनी पड़ती थी।[33]

सदस्य को यह बताना पड़ता था कि वह अपने प्रश्न का उत्तर किस तिथि को चाहता है।[34] यदि प्रश्न उपयुक्त विभाग को संबोधित किया गया हो, परन्तु सदस्य भूल से गलत तिथि दे दे और किसी ऐसे दिन अपने प्रश्न का उत्तर चाहे जो दिन उस विषय के लिए उत्तरदायी विभाग के प्रभारी सदस्य द्वारा उत्तर दिए जाने के लिए आरक्षित न हो तो वह प्रश्न उस विभाग के लिए निर्धारित अगले दिन के लिए रख दिया जाता था।

---

28. *पूर्वोक्त,* नियम 10 ।
29. *पूर्वोक्त,* पृ. 32 ।
30. पूर्वोक्त, पृ. 31, साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 1.2.1924, पृ. 32 ।
31. संशोधित प्रक्रिया 15 अप्रैल, 1937 से लागू हुई।
32. भारतीय विधान सभा नियम 1937, नियम 8क (i) (क) ।
33. *एल.ए. डिबेट्स,* 1.9.1937, पृ. 942-43 ।
34. भारतीय विधान सभा नियम, 1937, नियम 8क (i) (ख)।

अल्प-सूचना प्रश्न के अतिरिक्त और किसी भी प्रश्न को प्रश्नों की सूची में तब तक नहीं रखा जाता था जब तक कि अध्यक्ष की स्वीकृति हेतु प्रश्नों के लिए पूरे पांच दिन पूर्व की सूचना सम्बद्ध सरकारी सदस्य द्वारा न दी गयी हो।[35]

किसी एक दिन किसी सदस्य के गृहीत प्रश्नों में से पांच से अधिक प्रश्न उत्तर के लिए नहीं लिए जाते थे।[36] परन्तु सदस्य पांच से अधिक प्रश्नों की पूर्व सूचना दे सकता था और यदि वे गृहीत हो जाएं तो उन्हें उस दिन के प्रश्नों की अंतिम रूप से तैयार सूची में शामिल कर दिया जाता था। लेकिन सदस्य को यह स्वतंत्रता नहीं थी कि वह सूची में छपे अपने पांच प्रश्नों में से कोई भी प्रश्न पूछ सके, बल्कि प्रश्नों को उसी क्रम में लिया जाता था जिस क्रम में वे सूची में दिए गए थे।[37] परन्तु किसी सदस्य द्वारा किसी एक दिन पूछे जाने वाले अतारांकित प्रश्नों की संख्या पर कोई सीमा लागू नहीं की गयी थी।

प्रश्नकाल का समय अलग-अलग दिनों के लिए बारी-बारी से ऐसे विभाग या विभागों द्वारा उत्तर दिए जाने के लिए नियत किया जाता था जिनका आदेश अध्यक्ष जिसे उस समय प्रेसीडेंट कहा जाता था, समय-समय पर देते थे। परन्तु गैर-सरकारी सदस्यों को संबोधित प्रश्नों के संबंध में ऐसी कोई पाबंदी नहीं थी।[38] सदस्य तब तक किसी प्रश्न की सूचना नहीं दे सकते थे जब तक कि विभिन्न विभागों द्वारा प्रश्नों के उत्तर दिए जाने के लिए दिन नियत न कर दिए गए हों।[39]

प्रश्नों को उनकी प्राथमिकता के अनुसार क्रम में रखा जाता था। तत्पश्चात् प्रत्येक विभाग से संबंधित प्रश्न अलग समूह में रखे जाते थे, विभाग अथवा विभागों के समूह को आबंटित दिनों के अनुसार विभागों का परस्पर क्रम निश्चित किया जाता था।

यदि किसी दिन उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में रखा गया कोई प्रश्न उस दिन प्रश्न काल में न पुकारा जा सके तो वह सरकारी सदस्य जिसे वह प्रश्न संबोधित किया गया हो, उस प्रश्न का लिखित उत्तर सभा पटल पर रख देता था। ऐसे प्रश्न का मौखिक उत्तर दिया जाना अपेक्षित नहीं था और ऐसे प्रश्न के संबंध में कोई अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछा जाता था।[40]

सदस्य को इस बात की अनुमति थी कि वह उस दिन की बैठक प्रारम्भ होने से पहले जिस दिन के लिए उसका प्रश्न सूची में रखा गया हो, किसी भी समय लिखित सूचना देकर, अपना प्रश्न या तो वापस ले सकता था या उसे किसी बाद के दिन के लिए

---

35. *पूर्वोक्त,* नियम 8क (ii) ।
36. *पूर्वोक्त,* नियम 8क (iii), साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स* 8.2.1937, पृ. 590 ।
37. स्था.आ.सं. 17, जिसको विधान सभा ने 28 अगस्त, 1933 को स्वीकार किया।
38. भारतीय विधान सभा नियम, 1937, नियम 8क (iv) ।
39. विभागों को तीन समूहों (ग्रुपों) में वर्गीकृत किया गया था और प्रत्येक समूह से संबंधित प्रश्नों का उत्तर एक नियत दिन को दिया जाना था।
40. नियम, *उद्धृत कृति,* नियम 8क (v), साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 8.2.1937, पृ. 592, 9.2.1937, पृ. 616 ।

स्थगित कर सकता था। प्रश्न स्थगित होने की दशा में उसे सूची में उन सब प्रश्नों के बाद रखा जाता था जो स्थगित न किए गए हों और जब ऐसी सूचना देने के बाद पूरे दो दिन बीत चुके हों।[41] उस समय विद्यमान प्रथानुसार स्थगित किए गए प्रश्नों की सूचना संबद्ध विभागों को उसी दिन दी जाती थी जिस दिन वे स्थगित किए गए हों और मुद्रित अनुपूरक सूचियां उनको दी गयी हों।

सदस्य प्रश्नों के बारे में अध्यक्ष द्वारा स्वीकार या अस्वीकार किए जाने से पहले कोई पत्र-व्यवहार नहीं कर सकते थे। उन प्रश्नों के संबंध में जो सदस्यों को वापस भेजे जाते थे या जिनके संबंध में कोई पत्र-व्यवहार होता था, उन्हें नई सूचना के रूप में माना जाता था और ऐसे मामले में सदस्यों को उत्तर के लिए नई तिथि का सुझाव देना होता था। यदि कोई प्रश्न नियमानुकूल होता था तो जिस रूप में सदस्य ने तैयार किया हो उसे उसी रूप में, बिना किसी संशोधन के, प्रश्न सूची में शामिल कर लिया जाता था।

इस उद्देश्य से कि सदस्य उससे अधिक प्रश्नों की सूचना न दें जितने कि सामान्यत: एक घंटे में पूछे जा सकते हों, प्रतिदिन सूचना पट पर एक सूची लगा दी जाती थी जिससे पता चलता था कि प्रत्येक तिथि के लिए कितने प्रश्नों की सूचना आ चुकी है।[42]

तत्पश्चात् 1947 में देश के स्वतंत्र होने तक प्रश्न प्रक्रिया हेतु कोई परिवर्तन लागू नहीं किया गया। अब विधानमंडल के प्रति जिम्मेदार हो जाने के बाद सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह प्रशासन संबंधी सभी मामलों के बारे में पूरी जानकारी संसद के सामने रखे। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन उस नियम का निराकरण किया जाना था, जिसके अंतर्गत विदेश संबंधी मामलों, जनजातियों, वर्जित क्षेत्रों और भारतीय रियासतों के संबंध में प्रश्न पूछे जाने संबंधी निर्णय गवर्नर जनरल के विवेकाधिकार पर ही निर्भर था।

अंतरिम संसद जो 1952 के साधारण निर्वाचन तक जारी रही उसने कार्य-संचालन संबंधी व्यापक नियम बनाये, जिनमें प्रश्नों से संबंधित पहले से विद्यमान बहुत से उपबंध शामिल कर लिए गये। आजकल प्रश्नों के संबंध में जो प्रक्रिया नियम हैं, वे मूलत: उन्हीं उपबंधों पर आधारित हैं। वर्ष 1952 से 2013 की अवधि के दौरान प्रश्न संबंधी प्रक्रिया में कई परिवर्तन हुए। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

(i) प्रश्न सूची में एक दिन में मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की संख्या 30 से घटाकर 20 कर दी गई।[43]

(ii) एक दिन में मौखिक उत्तर हेतु सदस्य के प्रश्न पूछने की सीमा तीन से घटाकर एक कर दी गयी।[44]

---

41. नियम, *उद्धृत कृति,* नियम 8क उप-खण्ड (v), के परन्तुक।

42. *एल.ए. डिबेट्स,* 8.2.1937, पृ. 592, 595-96 ।

43. *देखिए* पांचवीं लोक सभा, नियम समिति का चौथा प्रतिवेदन।

44. *पूर्वोक्त,* पहले नियम समिति ने अपनी 25 नवंबर, 1971 की बैठक में यह सिफारिश की थी कि तारांकित प्रश्न सूची में किसी सदस्य द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों की संख्या तीन से घटाकर दो कर दी जाए। इसे बाद में अध्यक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया गया। साथ ही *देखिए* समाचार भाग-II, 25.11.1971 ।

(iii) एक दिन में अतारांकित प्रश्नों की सूची में प्रश्नों को शामिल करने की सीमा 200 से बढ़ाकर 230 कर दी गयी।[45]

(iv) मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न सूची में सदस्यों को शामिल करने की सीमा पांच से घटाकर दो कर दी गयी।[46]

(v) मौखिक उत्तर हेतु मुद्रित प्रश्न सूची में प्रश्नों का अतंरण नहीं होता।[47]

(vi) प्रश्न काल की पहले से रिकार्ड की गयी कार्यवाहियों का दूरदर्शन प्रसारण 2 दिसम्बर, 1991 से शुरू हुआ और इनका रेडियो पर प्रसारण 21 जुलाई, 1992 से शुरू हुआ। प्रश्न काल का सीधा प्रसारण 25 अगस्त, 1994 से शुरू हुआ।

(vii) प्रश्नों की पूर्व सूचना देने की अवधि पूरे 15 दिनों से कम नहीं होनी चाहिये।[48]

(viii) किसी नियत बैठक के लिए सदस्यों द्वारा प्रश्नों की सूचना देने की संख्या 10 तक सीमित कर दी गई है।[49]

(ix) किसी दिन प्रश्नों की सूचना 230 से अधिक होने पर उन्हें व्यपगत माना जायेगा।[50]

(x) पंद्रहवीं लोक सभा के 12वें सत्र से प्रश्नों की सूचनाओं की स्थिति लोक सभा वेबसाइट पर उपलब्ध करायी जाती है।[51]

प्रश्न काल

मौखिक प्रश्नों के उत्तर केवल सभा में ही दिये जाते हैं। नवम्बर, 1969 तक लोक सभा में यह सुस्थापित प्रथा थी कि सदस्यों को उत्तरों की प्रतियां पहले से न दी जाएं। इस नियम का एक अपवाद यह था कि जब तारांकित प्रश्नों के उत्तर में लंबे विवरण सभा पटल पर रखे

---

45. *देखिए* नियम समिति का प्रतिवेदन जो 23.8.1984 को सभा पटल पर रखा गया। इसके पूर्व, समिति की 28 अगस्त, 1968 की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार प्रश्नों की अधिकतम संख्या 200 निर्धारित की गई थी।

46. *देखिए* नियम समिति का कार्यवाही-सारांश जो 19.4.1973 को सभा पटल पर रखा गया। नियम समिति की क्रमशः 27 नवंबर, 1969; 13 अगस्त, 1970 और 25 नवंबर, 1971 को हुई बैठकों के दौरान प्रश्न सूची में सदस्यों के नाम शामिल करने की सीमा, दो वर्ष की अवधि तक के लिए, पांच से घटाकर दो कर दी गयी।

47. *देखिए* का.ज्ञा. सं. 13/3/V/92-क्यू. दिनांक 12 नवम्बर, 1992 ।

48. नियम और प्रक्रिया के नियम 33 में संशोधन किया गया। देखिए समाचार भाग-(II) पैरा 1265, 19 मार्च 2010। इससे पूर्व प्रश्नों की पूर्व सूचना अवधि पूरे दस दिन से कम नहीं और 21 दिन से अधिक नहीं होती।

49. अध्यक्ष के निदेश में निदेश 10ख जोड़ा गया, देखिए समाचार भाग (II) पैरा 1354, 16 अप्रैल 2010.

50. समाचार भाग (II), 17.2.2012, पैरा 3670

51. समाचार भाग (II), 18.2.2012, पैरा 4832

जाने हों, तो सम्बद्ध सदस्यों के अनुरोध पर उन विवरणों की प्रतियां प्रश्न काल आरम्भ होने से आधा घंटा पहले उनको दे दी जाती थीं।[52] इसी प्रकार, जब किसी प्रश्न के उत्तर में किसी पूर्व प्रश्न के उत्तर अथवा ग्रंथालय में रखे हुए किसी दस्तावेज का संदर्भ दिया जाता था तो सदस्य को बैठक शुरू होने से आधा घंटे पहले ऐसे प्रश्न या दस्तावेज संदर्भ हेतु उपलब्ध करा दिये जाते थे। नवम्बर, 1969 से 1981 तक, तारांकित प्रश्नों के उत्तर दोनों सदनों के सदस्यों के संदर्भ हेतु सूचना कार्यालय और लॉबी में रखे जाते थे। वर्ष 1981 तक यह एक अनौपचारिक व्यवस्था थी। परन्तु वर्ष 1981 में नियम समिति द्वारा इसका अनुमोदन कर दिए जाने के पश्चात्,[53] सदस्यों को इस व्यवस्था के बारे में बुलेटिन के माध्यम से औपचारिक सूचना दे दी जाती थी।

सदस्यों ने समय-समय पर सुझाव दिये हैं कि यदि उन्हें प्रश्नों के उत्तर की प्रतियां पहले से मिल जाएं तो उन्हें अनुपूरक प्रश्न पूछने में सहायता मिलेगी।

> सबसे पहली बार यह सुझाव केन्द्रीय विधान सभा में 1 मार्च, 1921 को दिया गया था जिसे स्वीकार नहीं किया गया था क्योंकि तब स्थायी आदेश या नियमों में ऐसा कोई उपबंध नहीं था जिसके अंतर्गत उत्तर की प्रतियां पहले से दी जा सकतीं और साथ ही ऐसी प्रथा आरंभ करने पर स्पष्ट रूप से आपत्ति भी की गयी थी।
>
> प्रश्नों संबंधी स्थायी आदेश में संशोधन करने की वांछनीयता पर विचार करने हेतु 13 सितम्बर, 1935 को एक प्रवर समिति गठित की गयी।[54] सभा में 6 मार्च, 1936 को प्रस्तुत की गयी अपनी रिपोर्ट में समिति ने प्रश्नों के उत्तर पहले से देने की प्रक्रिया का यह कहकर समर्थन नहीं किया कि अन्य अनेक कारणों के साथ-साथ यह भी एक कारण है कि ऐसा करने से प्रश्न काल का महत्व समाप्त हो जाएगा, उसमें रुचि कम हो जाएगी और कार्यवाही दिखावा मात्र रह जाएगी।
>
> यह प्रश्न 7 फरवरी, 1946 को फिर उठाया गया, एक सदस्य ने उस समय यह सुझाव दिया कि प्रश्नों के उत्तर बैठक प्रारम्भ होने के लगभग एक घंटा पहले पटल पर रख दिए जाएं। अध्यक्ष मावलंकर ने इस विषय पर गहनता से विचार किया। श्री मावलंकर ने यह बात स्वीकार करते हुए कि ऐसी प्रथा से न केवल समय की बचत होगी बल्कि अनुपूरक प्रश्न भी संगत रूप से पूछे जा सकेंगे, सभा के नेता के विचारार्थ 14 फरवरी, 1948 को एक टिप्पणी लिखी, जिसमें उन्होंने कहा:
>
> मैं यह महसूस करता हूं कि ऐसा होने से सभा की मौखिक कार्यवाही का महत्व बहुत हद तक कम हो जाएगा और संभव है कि सभा के ऐसे अनेक सदस्यों की, जो उत्तर पढ़ने का कष्ट ही नहीं करते, अनुपूरक प्रश्नों में रुचि ही न रहे।
>
> सभा के नेता अध्यक्ष के इस विचार से सहमत थे कि "छपे हुए उत्तर से कार्यवाही की रोचकता समाप्त हो जाएगी और उसमें सदस्यों की रुचि कम हो जाएगी।"

---

52. ब्यौरे के लिए *देखिए* आगे इसी अध्याय में "प्रश्नों के उत्तर" के अंतर्गत ।
53. नियम समिति का कार्यवाही सारांश 10.8.1987 ।
54. *एल.ए. डिबेट्स,* 13.9.1935, पृ. 1011-12 ।

25 फरवरी, 1953 को यह प्रश्न सभा में फिर उठाया गया और विद्यमान प्रथा के पक्ष में अंतिम निर्णय कर लिया गया। उस समय सभा में पीठासीन उपाध्यक्ष ने टिप्पणी की:

इस प्रश्न पर कई बार विचार हो चुका है और यह निर्णय किया जा चुका है कि यदि छपे हुए उत्तर पहले से सदस्यों में बांट दिए जाएंगे तो प्रश्न काल का महत्व समाप्त हो जाएगा।

अध्यक्ष द्वारा 12 अगस्त, 1969 को लोक सभा में की गई घोषणा के अनुसार प्रयोगात्मक आधार पर नवम्बर, 1969 से तारांकित और अल्प सूचना प्रश्नों के उत्तरों के पांच सेट संसदीय सूचना कार्यालय में बैठक शुरू होने से आधा घंटा पहले रखवाने का प्रबंध कर दिया गया।

अगस्त, 1982 में एक सदस्य द्वारा अभ्यावेदन दिये जाने पर इस मामले को नियम समिति को सौंप दिया गया। समिति ने इस प्रस्ताव के गुण-दोषों पर विस्तार से विचार-विमर्श किया और संबंधित मंत्री द्वारा उस सुबह जिस दिन उस प्रश्न का उत्तर दिया जाना है, प्रश्न में कोई परिवर्तन कर दिया जाना अथवा सदस्य द्वारा अंतिम क्षण में अपना प्रश्न वापस ले लिया जाना जैसी सरकार द्वारा बतायी गयी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए तारांकित प्रश्नों के उत्तरों की प्रतियां बैठक शुरू होने से आधा घंटा पहले संसदीय सूचना कार्यालय में तथा कुछ प्रतियां बाहरी लॉबी में रखे जाने की व्यवस्था को जारी रखने की सिफारिश की। समिति ने प्रश्नों के उत्तर सभा में दिये जाने या उनके उत्तरों की प्रतियां सभा पटल पर रखे जाने से पहले सदस्यों को उनके घरों पर अथवा विभिन्न दलों और गुटों के कार्यालयों में उपलब्ध करवाने के सुझाव को अस्वीकार कर दिया।[55]

राज्य सभा में यह मामला सन् 1968 में उठाया गया था। वाद-विवाद के दौरान यह बताया गया कि वर्तमान प्रक्रिया के अंतर्गत कोई मंत्री प्रश्न का मौखिक उत्तर देने के लिए खड़ा होने तक उसके उत्तर में परिवर्तन कर सकता है और ऐसा करने का उसे अधिकार है क्योंकि हो सकता है कि उसे उस समय तक कुछ नई जानकारी प्राप्त हो जाये अथवा वह अंतिम क्षण पर किसी दस्तावेज को देख सकता है और इससे उसके उत्तर में भारी परिवर्तन हो सकता है। इसलिए सदस्यों को उत्तर पहले से दे दिये जाने की स्थिति में प्रश्न काल की रोचकता तो कम हो ही जाएगी, साथ ही इससे मंत्रियों को भी काफी परेशानी का सामना करना पड़ेगा।[56]

तथापि, इस समय राज्य सभा में भी यही प्रक्रिया है कि तारांकित प्रश्नों के उत्तर सदस्यों द्वारा देखे जाने के लिए सूचना कार्यालय में बैठक शुरू होने से आधा घंटा पहले उपलब्ध करा दिये जाते हैं।

जब तक अध्यक्ष अन्यथा आदेश न दे तब तक सदन की प्रत्येक बैठक का पहला घंटा प्रश्नोत्तर के लिए उपलब्ध होता है।[57]

शनिवार को कोई प्रश्न काल नहीं होता है चाहे बजट प्रस्तुत करने जैसे विशिष्ट प्रयोजन हेतु सभा की बैठक शनिवार को भी होनी निर्धारित हो।

---

55. नियम समिति का कार्यवाही सारांश, 5.8.1982 ।

56. *देखिए* एम.एन. कौल की टिप्पणियां, *आर.एस. डिबेट्स,* 17.12.1968, कॉ 4447-48 ।

57. नियम 32, *लो.स.वा.वि.,* 2.5.1974, पृ. 1; 28.8.1974, पृ. 1 ।

> तथापि, जब सत्र के मध्य अल्प सूचना पर किसी ऐसे दिन सदन की बैठक तय की जाती है जो बैठक के कार्य दिवसों में पहले शामिल न किया गया हो तो उस दिन प्रश्नोत्तर हेतु समय आबंटित नहीं किया जाता। इसी प्रकार, जब सत्र समाप्त होने की पूर्व-निश्चित तारीख के बाद एक दिन या कुछ दिन के लिए सत्र की अवधि बढ़ाई जाती है तो सामान्यत: प्रश्नोत्तर के लिए समय आबंटित नहीं किया जाता। किंतु जब पूर्व निर्धारित तिथियों के लिए प्रश्नों की सूचना देने की अंतिम तारीख आने से पहले सत्रावधि को कुछ दिन के लिए बढ़ाने का निर्णय किया जाता है तो अतिरिक्त सत्र दिवसों के लिए प्रश्न काल रखा जाता है।[58]

किसी नव-निर्वाचित सदस्य द्वारा शपथ ग्रहण या प्रतिज्ञान किये जाने अथवा निधन संबंधी उल्लेख कार्य की ऐसी मदें हैं, जो प्रश्नोत्तर से पूर्व सम्पन्न की जाती हैं।[59]

गणपूर्ति की घंटी बजने, उपस्थित सदस्यों की गिनती करने[60], सदस्यों द्वारा शपथ ग्रहण या प्रतिज्ञान करने[61], निधन संबंधी उल्लेख करने[62], अध्यक्ष द्वारा घोषणाएं करने[63] में या किसी अन्य मामले[64] पर लगा समय प्रश्नों के लिए नियत समय में ही गिना जाता है और प्रश्न काल बैठक के पहले घंटे के बाद नहीं बढ़ाया जाता जिससे कि सभा के सामने अन्य कार्यों के लिए निश्चित समय प्रश्नोत्तर में न लग जाए। यद्यपि ऐसे अवसर विरले ही होते हैं, जब अध्यक्ष की अनुमति से प्रश्न काल के बाद में भी प्रश्नों के उत्तर दिये जाएं, परन्तु उसके लिये यह आवश्यक है कि–

> मंत्री अध्यक्ष से यह निवेदन करे कि प्रश्न का विषय विशेष रूप से जनहित का है[65] या सदस्य अध्यक्ष से यह निवेदन करे कि प्रश्न जनहित का है और मंत्री उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए इच्छुक हो।[66]

---

58. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.4.1966, कॉ. 12554; समाचार भाग-2, 31.3.1993, पैरा 1931 ।
59. निदेश 2 ।
60. *लो.स.वा.वि.,* (i), 7.3.1956; 13.3.1956; 15.3.1956; 5.4.1956 और 19.11.1957 ।
61. *एल.ए. डिबेट्स,* 8.3.1938, पृ. 39-40; *पी. डिबेट्स* (*ii*), 1.8.1950, कॉ. 17 और 19-20; *लो.स.वा.वि.,* 14.5.1957; 15.5.1957 और 11.11.1957 ।
62. तथापि, ऐसा उदाहरण है जब निधन-संबंधी उल्लेखों में लगे समय को प्रश्न काल के निश्चित समय अर्थात् दोपहर 12 बजे से आगे बढ़ाकर पूरा किया गया, *लो.स.वा.वि.,* 12.4.1965, पृ. 3461-65 ।
63. *पी. डिबेट्स* (i), 15.11.1950, कॉ. 1-2 ।
64. *एच.पी. डिबेट्स* (i), 19.5.1952, कॉ. 25; *लो.स.वा.वि.,* 4.3.1958, पृ. 1589; 21.8.1968, कॉ. 3246 ।
65. *देखिए* नियम 46; *पी. डिबेट्स,* 30.8.1951, कॉ. 816; *एच.पी. डिबेट्स* (i) 7.7.1952, कॉ. 1529-30; *एल.एस. डिबेट्स* (i), 26.5.1956, कॉ. 4369-70 ।
66. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.12.1957, कॉ. 6060-61; 4.12.1959, कॉ. 3348; 29.2.1960, कॉ. 3119; 18.4.1960, पृ. 3001-02; 9.9.1960, पृ. 3869, और 29.3.1965, पृ. 2530-31 ।

ऐसे बहुत ही कम अवसर आते हैं जब प्रश्न काल निर्धारित समय से पहले ही समाप्त हो जाए[67] और ऐसा अधिकांशतः तब होता है जब वह सदस्य अनुपस्थित हो जिसके नाम में मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न सूची में प्रश्न होता है।

अपवादस्वरूप कुछ मामलों में अन्य कार्य के लिए अधिक समय उपलब्ध कराने अथवा कोई अत्यावश्यक कार्य करने के लिए प्रश्न काल को समाप्त किया जा सकता है बशर्ते सम्पूर्ण सदन ऐसा करने के लिए एकमत हो।[68] अध्यक्ष ने बहुत ही कम मामलों में नियमों द्वारा प्रदत्त अपनी उस शक्ति का प्रयोग किया है जिसके द्वारा वह किसी बैठक का पहला घंटा प्रश्न काल के लिए नियत न करने का निदेश दे सकता है।[69] सामान्य स्थिति में ऐसा केवल एक ही अपवाद होता है और वह है प्रत्येक वर्ष का प्रथम सत्र और लोक सभा के आम चुनाव के बाद का प्रथम सत्र, जब राष्ट्रपति के अभिभाषण के दिन तक या उस दिन के लिए प्रश्न काल नहीं रखा जाता है। सन् 1975 और 1976 में दो बार ऐसा हुआ जबकि सरकार के अनुरोध पर अध्यक्ष ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए निर्देश दिया था कि पांचवीं लोक सभा के चौदहवें और अठारहवें सत्र में प्रश्न काल नहीं होगा।[70] दोनों ही मामलों में सत्र प्रारम्भ होने पर सरकार की ओर से प्रस्ताव रखे गए तथा सदन द्वारा स्वीकार किए गए जिसके द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ प्रश्न काल निलम्बित कर दिया गया था।[71] अध्यक्ष ने अपनी इस शक्ति का प्रयोग 7 और 16 नवम्बर, 1990 को नौवीं लोक सभा के क्रमशः चौथे और पांचवें सत्र के दौरान भी किया था। इन दोनों अवसरों पर सत्र किसी विशेष उद्देश्य के लिए आयोजित किया गया था अर्थात् दोनों बार मंत्रिपरिषद को सभा का विश्वास मत प्राप्त करना था। इस प्रकार इन दोनों अवसरों पर प्रश्न काल नहीं हुआ। चौदहवीं लोक सभा के दौरान भी 21 और 22 जुलाई, 2008 को सत्र आयोजित हुआ ताकि सरकार सभा में विश्वास-मत प्राप्त कर सके। इन दोनों दिनों में भी प्रश्न काल नहीं हुआ।

---

67. प्रश्न काल 17.8.1976; 22.4.1985; 24.3.1986; 29.4.1987; 8.5.1987; 7.3.1988; 10.5.1988; 2.12.1988; 19.4.1989; 8.5.1989 और 6.3.1991 और 30.11.2009 को समय से पहले ही समाप्त हो गया था।

68. *एल.ए. डिबेट्स,* 28.3.1921, पृ. 1619-20; 12.9.1924, पृ. 3277; 1.2.1932, पृ. 211; 2.2.1932, पृ. 267; 29.9.1932, पृ. 1557; 29.3.1933, पृ. 2769-71; 3.2.1936, पृ. 2; 26.2.1936, पृ. 1549; 4.3.1936, पृ. 1893; 29.2.1940, पृ. 849; 18.9.1942, पृ. 233, 273 और 487; 10.8.1943, पृ. 575; 13.11.1943, पृ. 249; *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 8.8.1950; *पी. डिबेट्स* (ii), 29.3.1951, पृ. 5326; *पी. डिबेट्स* (i), 19.6.1952, कॉ. 1049; समाचार भाग-2, 18.6.1952, पृ. 52; 27.6.1952, पृ. 65; 28.6.1952; *पी. डिबेट्स* (i), 1.7.1952, कॉ. 1367; 2.7.1952, कॉ. 1397; 22.12.1953, कॉ. 1535; *लो.स.वा.वि.,* 4.12.1971, पृ. 37; 21.7.1975, पृ. 2-3; 25.10.1976, 16.12.1992, कां. 2.28; 21.2.1983, पृ. 1; 13.5.1985, पृ. 1; 20.4.1987, पृ. 2-3 16.12.1992ए कां. 2.20 और *एल. एस. डिबेट्स,* 9.1.1993, कॉ. 4, 20.11.1997 का. 422-434, 15.4.1999 पृ. 1 और 2, 11.12.2008, पृ. 1-30, 25.2.2010, पृ.1-21.

69. नियम 32 ।

70. समाचार भाग-2, 9.7.1975, पृ. 2399 और 16.9.1976, पृ. 2950 ।

71. *लो.स.वा.वि.,* 21.7.1975, पृ. 16-24 और 25.10.1976, पृ. 15-16 ।

ऐसे भी मौके आए हैं जब अध्यक्ष प्रश्न काल निलंबित करने को सहमत नहीं हुए[72] अथवा उन्होंने किसी दिन प्रश्न काल समाप्त करने के लिए किसी सदस्य को व्यवस्था का प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी।[73] इसी प्रकार, कुछ मामलों में, अध्यक्ष ने प्रश्न काल संबंधी नियम को निलम्बित करने संबंधी प्रस्ताव को रखने की अनुमति नहीं दी।[74] कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जब प्रश्न काल संबंधी नियम को निलम्बित करने हेतु प्रस्ताव रखा गया लेकिन सभा द्वारा इसे अस्वीकृत कर दिया गया।[75]

किसी दिन के प्रश्न काल को समाप्त कर दिए जाने की स्थिति में सामान्य प्रथा यह है कि उस दिन के मौखिक उत्तर के लिए वर्गीकृत सभी प्रश्नों (तारांकित प्रश्नों) को लिखित उत्तर के लिए प्रश्न (अतारांकित प्रश्न) मान लिया जाता है और उनके उत्तर भी लिखित उत्तर के लिए वर्गीकृत प्रश्नों, यदि कोई हों तो, के उत्तरों के साथ उस दिन के वाद-विवाद में छाप दिए जाते हैं। तथापि, कई बार ऐसा भी हुआ है जब ऐसे सभी प्रश्नों (मौखिक और लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों) को सदन की सहमति से, किसी अन्य ऐसे कार्य दिवस को अंतरिम कर दिया गया जिस दिन प्रश्नों के लिए समय आबंटित नहीं था।[76]

जब प्रश्न काल समाप्त तो नहीं किया जाता लेकिन शोर-शराबे और लगातार व्यवधान के कारण प्रश्नों को मौखिक उत्तर के लिए नहीं लिया जाता है तो उस दिन के लिए नियत मौखिक उत्तर के लिए सभी प्रश्न लिखित उत्तर के लिए प्रश्न मान लिये जाते हैं, और उनके उत्तर भी अन्य लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों के उत्तरों के साथ उस दिन के वाद-विवाद में छाप दिए जाते हैं।[77] जब कुछ प्रश्नों का उत्तर मौखिक रूप से दे दिये जाने के बाद प्रश्न काल निलम्बित किया जाता है तो मौखिक उत्तर के लिए शेष सभी प्रश्नों को लिखित उत्तर के लिए प्रश्न मान लिया जाता है और उनके उत्तर लिखित उत्तर के लिए अन्य प्रश्नों के उत्तरों के साथ उस दिन के वाद-विवाद में छाप दिये जाते हैं।[78]

---

72. *पूर्वोक्त,* 2.5.1974, पृ. 1; 28.8.1974, पृ. 1 ।
73. *पूर्वोक्त,* 17.11.1980, कॉ. 4 ।
74. 10.1.1974 को दलों और ग्रुपों के नेताओं के साथ अध्यक्ष की बैठक का कार्यवाही सारांश, *एल.एस. डिबेट्स,* 11.11.1974, कॉ. 7-8; *लो.स.वा.वि.,* 8.12.1980, पृ. 1; 24.2.1981, पृ. 1; 1.4.1981, पृ. 1; 6.4.1981, पृ. 1, 7.4.1981, पृ. 1; और 16.4.1984, पृ. 5-7 ।
75. *लो.स.वा.वि.,* 2.5.1974, पृ. 1; 28.8.1974; पृ. 1; 7.4.1975, पृ. 1; 15.4 1975, पृ. 1; 15.4.1987, पृ. 10-13; 14.3.1989, पृ. 6; 24.4.1989, पृ. 1-7; और 22.5.1990, पृ. 1 ।
76. *पी. डिबेट्स* (ii), 29.3.1951, कॉ. 5326; *पी. डिबेट्स* (i), 31.1.1951, कॉ. 2699-2750 और *एल.एस. डिबेट्स,* 25.8.1950, कॉ. 1637-1714 ।
77. *एल.एस. डिबेट्स,* 13.7.1979, कॉ. 9; *लो.स.वा.वि.,* 17.8.1984, पृ. 1-7; 1.12.1986, पृ. 7; 29.7.1987, पृ. 3-5 ।
78. 31 जुलाई, 1985 को सभा के एक सदस्य की हत्या के कारण तथा 30 जुलाई, 1987 को श्रीलंका में हमारे प्रधान मंत्री पर हुए हमले के समाचार के कारण प्रश्न काल को बीच में ही निलम्बित कर दिया गया था।

जब सभा की एक अथवा एक से अधिक बैठक रद्द हो जाने अथवा बिना किसी कार्यवाही के सभा की बैठक स्थगित हो जाने के कारण प्रश्न काल समाप्त हो जाता है तो उस दिन के लिए तारांकित और अतारांकित सूची में शामिल प्रश्नों को अगली बैठक के लिए अतारांकित प्रश्न मान लिया जाता है और इन प्रश्नों को इनके उत्तर सहित सभा पटल पर रखा मान लिया जाता है और उन्हें अगले दिन की बैठक के वाद-विवाद में शामिल कर लिया जाता है।[79] ऐसे उदाहरण हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत कम है जब ऐसे प्रश्नों को अगले[80] अथवा पहले दिन की बैठक[81] जिसे निरस्त की गई बैठक के बदले में नियत किया गया था, के लिए अन्तरित कर दिया गया। यदि सभा की बैठक प्रश्नों को लिये जाने से पहले ही निधन संबंधी उल्लेख अथवा किसी अन्य कारण से स्थगित हो जाती है और उसी दिन कुछ समय पश्चात् इसकी पुनः बैठक होती है तो तारांकित और अतारांकित प्रश्नोत्तरों को सभा पटल पर रखा मान लिया जाता है और उन्हें उस दिन के कार्यवाही वृत्तांत में प्रकाशित कर दिया जाता है।[82] जब सत्रावसान के निकट सभा की बैठकें निरस्त कर दी जाती हैं और सत्रावसान नियत समय से पहले करने का निर्णय ले लिया जाता है तो निरस्त बैठकों की प्रश्न सूची व्यपगत हो जाती है।[83]

---

79. *लो.स.वा.वि.,* 24.2.1958, पृ. 948-49; 25.2.1958, पृ. 974-1053; 1.6.1964; 19.2.1981; 15.4.1981; 5.5.1982; 15.5.1982; 26.7.1983; 19.3.1984; 14.3.1985; 7.4.1985; 7.5.1985; 22.8.1985; 4.3.1986; 28.7.1987; 30.11.1987; 3.3.1988; 28.3.1988; और 13.4.1988 ।

80. तत्कालीन लोक सभा के सदस्य लाला अचिंत राम के निधन के कारण 1 दिसम्बर, 1961 को होने वाला प्रश्न काल स्थगित कर दिया गया और फिर यह अगले दिन, 2 दिसंबर, 1961 को हुआ– *एल.एस. डिबेट्स,* 1.12.1961, कॉ. 2549 । 3 मार्च, 1969 को भी अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया, कि चूंकि अगले दिन 4 मार्च, 1969 को होली पर्व है, अतः सभा उस दिन नहीं बैठेगी और 4 मार्च, 1969 के लिए नियत सभा कार्य, प्रश्न काल सहित, 5 मार्च, 1969 को किया जाएगा। *एल.एस. डिबेट्स,* 3.3.1969, कॉ. 227 ।

81. 25 फरवरी, 1969 को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि जैसा कि पहले माना जा रहा था, ईदुल्जुहा का अवकाश 27 फरवरी, 1969 को न होकर अब 28 फरवरी, 1969 को होगा और 28 फरवरी 1969 के लिए नियत कार्य 27 फरवरी 1969 को किया जायेगा; *एल.एस. डिबेट्स,* 25.2.1969, कॉ. 230 ।

82. *पूर्वोक्त,* 9.4.1979, पृ. 14; 1.8.1985, पृ. 1; 31.7.1985, पृ. 9-10; 28.7.1987 और 30. 7.1987, पृ. 9 ।

83. चौदहवीं लोक सभा के दसवें सत्र के दौरान, सभा 17 मई, 2007 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई और 18, 21 व 22 मई, 2007 को मौखिक व लिखित उत्तरों वाले प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत समझी गईं। चौदहवीं लोक सभा के ग्यारहवें सत्र में भी 11, 12, 13 और 14 सितंबर, 2007 को लिए जाने वाले प्रश्न व्यपगत माने गए चूंकि सभा समय-पूर्व ही 10 सितंबर, 2007 को स्थगित हो गई। इसी प्रकार, चौदहवीं लोक सभा के तेरहवें सत्र के समय सभा 9 मई, 2008 की बजाय 5 मई, 2008 को ही अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई और 6, 7, 8 और 9 मई को मौखिक व लिखित उत्तरों वाले प्रश्नों की सूचनाएं व्यपगत समझी गईं।

सूचना की अवधि

जब तक कि अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दे, सदस्य के लिए आवश्यक है कि वह प्रश्न के लिए कम से कम पूरे दस दिन पहले सूचना दे।[84] पूरे दस दिन की गणना करते समय उन दोनों तिथियों को जिस दिन स्वीकार किए जाने पर प्रश्न उत्तर के लिए लिया जाएगा और जिस दिन सूचना प्राप्त हुई है छोड़ दिया जाता है।

पंद्रहवीं लोकसभा के चौथे सत्र तक नियम 33[85] में संशोधन करने से पूर्व प्रश्नों की पूर्व सूचना देने की अवधि पूरे दस से कम नहीं और 21 दिन से अधिक नहीं थी। सामान्यत: अध्यक्ष सूचना देने की अवधि को कम नहीं करता तथापि विशेष परिस्थितियों में और सदस्यों के हितों में वह सूचना अवधि में ढील दे सकता है। चौदहवीं लोकसभा के 11वें सत्र के दौरान लोकसभा का सत्र जो 10 अगस्त 2007 को आरम्भ होना था, लोकसभा आहित करने की सूचना विलंब से अर्थात् 28 जुलाई 2007 (शनिवार) को जारी की गई। बैलेट कराने की तिथि वही अर्थात् 30 जुलाई 2007 ही रखी गई जो 10 अगस्त 2007 की बैठक हेतु तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की पूर्व सूचना प्राप्त करने का अंतिम दिन था। लोकसभा का सत्र बुलाए जाने की सूचना जारी होने के बाद अर्थात् 29 जुलाई 2007 को रविवार होने के कारण सदस्यों को 10 अगस्त 2007 को होने वाली पहली बैठक हेतु प्रश्नों की पूर्व सूचना देने के लिये पर्याप्त समय नहीं मिल पाया था। विशेष मामले के रूप में दिल्ली से बाहर रहने वाले सदस्यों की सुविधा हेतु 10 अगस्त 2007 को होने वाली सत्र की पहली बैठक हेतु प्रश्नों की सूचनाएं 30 जुलाई 2007 को पूर्वाहन 1 बजे तक ली गई, उन्हें बैलेट में शामिल किया गया और उस दिन बैलेट पूर्वाहन 4 बजे[86] कराया गया। इसी प्रकार पंद्रहवीं लोकसभा का 12वां सत्र जो 15 नवम्बर, 2007 से प्रारम्भ होना था, के लिये सूचना विलंब से अर्थात् 5 नवम्बर 2007 को जारी की गई। 15 और 16 नवम्बर 2007 को होने वाली सभा की बैठकों के लिये नियम 33 और 35 के अधीन पूरे 10 दिन की न्यूनतम पूर्वसूचनावधि के तत्कालीन प्रावधान का पालन नहीं किया जा सका। सदस्यों के हितों की रक्षा हेतु अध्यक्ष ने उक्त शर्तों में ढील देते हुए 15 और 16 नवम्बर 2007 की बैठकों हेतु 10 दिन की न्यूनतम सूचना अवधि को कम कर इन बैठकों के लिए प्रश्नकाल निश्चित किया और संबंधित मंत्रालयों को तदनुसार सूचना दे दी गई। 15 और 16 नवम्बर 2007 की बैठकों के लिए तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की मुद्रित सूचियों

---

84. नियम 33। *देखिए* दूसरा प्रतिवेदन (नियम समिति–चौथी लोक सभा), कार्यवाही-सारांश, 30 अगस्त, 1974। नियम समिति की सिफारिशों के आधार पर प्रश्नों के लिए अधिक से अधिक इक्कीस दिन की सूचना देने की प्रणाली में ढील दी गई लेकिन 28 अगस्त 1968 और 29 अगस्त 1969 को क्रमश: यह प्रणाली पुन: लागू कर दी गई तथापि पंद्रहवी लोकसभा के पांचवे सख (2010) से प्रश्नों की पूर्व सूचना की अवधि पूरे 15 दिन निर्धारित की गई है।
85. *एल. एस. समाचार* भाग (2), 19.2.2010, पैरा 1265
86. *एल. एस. समाचार* भाग (2), 28.7.2007, पैरा 3761

को मंत्रालयों तथा सदस्यों को क्रमश: 10, 12 और 16 नवम्बर 2007 को परिचालित किया गया। परिणामत: 15 और 16 नवम्बर 2007 हेतु निर्धारित प्रश्न काल के लिये मंत्रालयों को उत्तर देने हेतु केवल तीन दिन का समय मिला जबकि सामान्यत: यह पांच दिन का होता है।[87] एक अन्य मामले में, पंद्रहवीं लोकसभा के 13वें सत्र के दौरान अध्यन ने लोकसभा की प्रक्रिया और कार्य संचलन नियमों के नियम 33 का प्रयोग करते हुए 22 फरवरी 2013 को होने वाली बैठक के लिये प्रश्नों की सूचना देने की अवधि में ढील दी थी। उक्त तिथि को होने वाली बैठक के लिये सूचना अवधि में 13 दिन की छूट दी गई तदनुसार उक्त दिन की बैठक के लिये प्रश्नों की सूचनाएं 8 फरवरी 2013 को एक बजे तक ली गई और इस दिन बैलेट 4 बजे हुआ।[88]

प्रश्नों की सूचनाएं उस तिथि के अगले दिन से दी जा सकती हैं जिस दिन आमंत्रण जारी किए जाते हैं। लेकिन पंद्रह दिन से पहले प्राप्त सूचनाओं तथा पंद्रह दिन प्राप्त सूचनाओं का एक साथ बैलट किया जाता है।

किसी सत्र के अन्तिम दिनों के लिए प्रश्नों की सूचनाएं जो पूरे दस दिन से कम हों सदस्यों को वापिस कर दी जाती हैं और वे सूचनाएं अगले सत्र के लिए स्वीकार नहीं की जातीं।

प्रत्येक बैठक के संबंध में प्रश्नों की सूचनाओं की प्राप्ति की तिथियों को दर्शाने वाला विवरण आमन्त्रण के साथ सदस्यों को परिचालित किया जाता है।

जब तक कि अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दे कोई प्रश्न उत्तर के लिए प्रश्न सूची में तब तक नहीं रखा जाएगा जब तक ऐसे प्रश्न की सूचना ऐसे मंत्री को, जिससे वह संबंधित हो, दिये पांच दिन न बीत गये हों।[89]

किसी दिन विशेष के लिए प्रश्नों की छपी सूचियां मंत्री को उसके उत्तर की तिथि से पांच दिन पहले दी जाती हैं ताकि उसे पता चल जाए कि स्वीकृत प्रश्न का क्या रूप है और वह उसका उत्तर तैयार कर ले।

> नवम्बर, 1962 तक प्रश्नों के उत्तर तैयार करने हेतु सामग्री एकत्र करने को ध्यान में रखते हुए सभी प्रश्नों की सूचनाओं की अग्रिम प्रतियां सचिवालय में प्राप्त होने के बाद अनौपचारिक व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार को भेज दी जाती थीं। प्रश्न प्रणाली के सरलीकरण के परिणामस्वरूप, जिसे कि तीसरी लोक सभा ने 1962 में स्वीकार किया, सभी प्रश्नों की सूचनाओं की अग्रिम प्रतियों को मंत्रालयों को भेजने की प्रथा बंद कर दी

87. *लो. स. समाचार* भाग (2), 5.11.2007, पैरा 4139–4157

88. *लो. स. समाचार* भाग (2), 6.02.2013, पैरा 4902

89. नियम 35, तथापि अध्यक्ष ने सूचना की न्यूनतम पांच दिन की अवधि को समाप्त करने से इन्कार कर दिया है।

गयी। इसके बजाय यह निर्णय लिया गया कि मंत्रालयों को प्रश्नों को स्वीकृत किये जाने के निर्णय के तुरन्त बाद स्वीकृत प्रश्नों की अग्रिम प्रतियां ही उपलब्ध कराई जायें।[90] प्रश्नों की स्वीकृति के तुरन्त बाद अनौपचारिक व्यवस्था के अन्तर्गत इनकी अग्रिम प्रतियां मंत्रालयों के प्रतिनिधियों द्वारा लोक सभा सचिवालय से एकत्र कर ली जाती हैं ताकि इन प्रश्नों का उत्तर तैयार करने के लिए मंत्रालयों को अधिक से अधिक समय मिल सके लेकिन अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत प्रश्न का प्राधिकृत पाठ केवल अन्तिम छपी हुई प्रश्न सूची में से ही लेना होता है। अग्रिम प्रति के ऊपर शीर्ष भाग में 'अनन्तिम रूप से स्वीकृत प्रश्न' अंकित होता है।

सभी प्रश्नों की सूचनाओं की अग्रिम प्रतियां भेजने की प्रथा वर्ष 1937 में तब प्रारम्भ की गई थी जब कुछ विभागों के प्रभारी अधिकारियों ने अध्यक्ष से यह कहा कि प्रश्नों की स्वीकृति की सूचना केवल पांच दिन पूर्व मिलने के कारण उन पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है और समयाभाव के कारण भली-भांति विचार न किए जाने के परिणामस्वरूप असंतोषजनक उत्तर दिए जाने का खतरा बना रहता है। उन्होंने यह सुझाव दिया कि जब विधान सभा से संबंधित विभाग को प्रश्न की सूचना मिले तो उसके शीघ्र बाद ही प्रश्नों की अग्रिम प्रतियां उन्हें भेज दी जायें।[91]

अग्रिम प्रति मिलने पर सम्बद्ध मंत्रालय अध्यक्ष के विचारार्थ निम्नलिखित तथ्यपरक जानकारी भेज सकता है और प्राय: भेजता भी है:

क्या उनके समूचे प्रश्न अथवा उस प्रश्न के किसी भाग का उत्तर पहले किसी प्रश्न के उत्तर में दिया जा चुका है;

क्या अपेक्षित जानकारी किसी उपलब्ध दस्तावेज या किसी सामान्य निर्देश ग्रन्थ में उपलब्ध है;

क्या प्रश्न का विषय मुख्यतया भारत सरकार से सम्बद्ध नहीं है; और

प्रश्न निपटान के लिए कोई और संगत जानकारी।

प्रश्नों की सूचना का रूप

सदस्य द्वारा प्रश्न की सूचना महासचिव को लिखित रूप में दी जाती है और उसमें प्रश्न के पाठ के अतिरिक्त इन बातों का उल्लेख किया जाना अपेक्षित है—

प्रश्न जिस मंत्री को सम्बोधित हो उसके पद का नाम; और

वह तिथि जिसको कि प्रश्न के उत्तर के लिए प्रश्न सूची में रखे जाने का विचार हो।[92]

प्रत्येक नयी लोक सभा के गठन पर सभी सदस्यों को एक ऐसी पुस्तिका परिचालित की जाती है जिसमें प्रश्नों का उत्तर देने के प्रयोजन से विभिन्न मंत्रालयों को आबंटित विषय दर्शाये होते हैं ताकि सदस्य सम्बन्धित मंत्री को सही रूप से अपने प्रश्न सम्बोधित कर सकें

---

90. *लो.स.वा.वि.*, 9.11.1962, पृ. 61-62 ।

91. भारतीय विधान सभा नियम 1937, नियम 8(ii) ।

92. नियम 34 ।

तथा विषय के आबंटन में किसी प्रकार के परिवर्तन होने पर बुलेटिन के माध्यम से अथवा विषय सम्बन्धी पुस्तिका में एक परिशिष्ट जारी करके सदस्यों को इसकी सूचना दी जाती है।

पंद्रहवी लोकसभा के चौथे सत्र तक नियमों के अंतर्गत किसी सदस्य द्वारा दी जाने वाली तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की सूचनाओं की संख्या निर्धारित नहीं थी। किंतु पद्रंहवीं लोकसभा के पांचवें सत्र से उस सत्रावधि के दौरान सदस्यों को संबंधित मंत्री (मंत्रियों) से प्रश्नों के मौखिक और लिखित दोनों उत्तरों के लिए दस से अधिक सूचनाएं न देने की अनुमति दी गई जो सदस्य पूरे सत्र के लिए सूचनाएं देना चाहते हों, वे अपनी परस्पर प्राथमिकता दर्शा कर ऐसा कर सकते हैं। यदि ऐसे वरीयता न दर्शायी गई हो तो प्रति दिन 10 से अधिक ऊपर प्राप्त सभी सूचनआों को उनकी प्राप्ति के समय के आधार पर अगले दिन के लिये रखा जायेगा।[93]

सत्र के लिए आमंत्रण जारी किए जाने के अगले दिन से संसदीय सूचना कार्यालय और वितरण शाखा में अधिसूचित किये गये समय के दौरान सभी कार्य दिवसों में सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। मंत्रियों द्वारा प्रश्नों का उत्तर देने हेतु दिवसों के आबंटन के संबंध में एक पैराग्राफ बुलेटिन में अधिसूचित किया जाता है। ऐसी सूचनाओं की परस्पर प्राथमिकता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है।[94] डाक द्वारा भेजी गई सूचनाएं भी स्वीकार की जाती हैं लेकिन तार द्वारा प्रश्न की सूचना को वैध नहीं माना जाता।

प्रश्नों की सूचनाओं का बैलट प्रत्येक आबंटित दिन से पंद्रह दिन पूर्व किया जाता है और उस दिन 10 बजे तक प्राप्त सभी सूचनाओं को बैलट में शामिल किया जाता है। यदि आमंत्रण जारी किये जाने की तिथि और सत्र के दौरान प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आबंटित प्रथम दिन के बीच समय इतना कम है कि दिल्ली से बाहर के सदस्यों द्वारा भेजी गई सूचनाएं आबंटित दिन से पंद्रह दिन पहले नहीं पहुंच सकतीं तो सत्र के प्रथम कुछ दिनों के लिए बैलट करने की तारीखें अध्यक्ष के आदेश के अधीन आबंटित दिन से पहले की पंद्रह दिन से कम अवधि के लिए भी निर्धारित की जाती हैं। कई बार एक से अधिक नियत दिन के लिए बैलट एक ही दिन में किए जा सकते हैं। तारांकित और अतारांकित प्रश्नों के लिए पृथक-पृथक बैलट किए जाते हैं।

यदि एक से अधिक सदस्यों से एक ही समय किसी प्रश्न की समरूप सूचनाएं प्राप्त होती हैं तो इनकी परस्पर प्राथमिकता निर्धारित करने के लिए बैलट किया जाता है और बैलट में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले सदस्य से प्राप्त सूचना को वैध माना जाता है। अन्य सदस्यों से प्राप्त सूचनाओं को अस्वीकृत कर दिया जाता है।

सभी सूचनाएं उनके प्राप्त होने के समय के क्रम में रखी जाती हैं। जब प्रत्येक तिथि के लिए मिली सूचनाओं की प्राथमिकता का निर्णय हो जाता है, तो प्रश्नों को बैलट द्वारा प्राप्त प्राथमिकता आधार पर क्रमबद्ध रूप में डायरी किया जाता है। अतारांकित प्रश्नों की सूचनाओं की श्रृंखलाबद्ध क्रम संख्या तारांकित प्रश्नों की सूचनाओं की आबंटित क्रम संख्या से भिन्न होती है। सम्बद्ध मंत्रियों को केवल उन्हीं प्रश्नों की टाइप की हुई अग्रिम प्रतियां भेजी जाती हैं जो स्वीकार किये गये हों।

---

93. *लो.स.वा.वि.,* 24.9.1965, पृ. 2901 ।

94. निदेश 10 बी, समाचार भाग (2), 16.4.2010, पैरा 1354

सदस्यों द्वारा सभा में किये गए इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया गया कि उनके अनुपूरक प्रश्नों को अगली तिथि के लिए नियमित प्रश्न मान लिया जाये, क्योंकि वे सूचनाओं सम्बन्धी अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते।[95]

प्रत्येक प्रश्न की सूचना पर सदस्य को अलग-अलग हस्ताक्षर करने होते हैं और उनके हस्ताक्षर समझने में कहीं भूल न हो जाये, इसलिए उसे अपनी विभाजन संख्या तथा नाम मोटे अक्षरों में लिखना पड़ता है।[96] बिना हस्ताक्षर के प्रश्नों की सूचनाएं स्वीकार नहीं की जातीं और उन्हें हस्ताक्षर के लिए सम्बद्ध सदस्यों को वापस भेज दिया जाता है।[97] इसी प्रकार, यदि प्रश्नों की सूचनाओं पर किसी सदस्य के हस्ताक्षर उसके नमूना हस्ताक्षर से मेल नहीं खाते और उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है तो ऐसी पूर्व सूचनाओं को तब तक वैध नहीं माना जाता जब तक वह सदस्य यह स्वीकार न कर ले कि उन सूचनाओं पर उसी ने हस्ताक्षर किए हैं। कोई भी अन्य व्यक्ति सदस्य की ओर से किसी प्रश्न की सूचना पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता।

सदस्यों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रश्नों की सूचनाएं केवल हिन्दी या अंग्रेजी में दें और वे सुस्पष्ट हों जिससे उनका लिप्यंतरण करने में कोई गलती न हो। सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रश्न के उत्तर दिये जाने के लिए केवल एक ही तिथि का उल्लेख करें, वैकल्पिक तिथियां नहीं दें। सदस्यों का यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया जाता कि उनके जिन प्रश्नों पर उत्तर के लिए तिथियां न दी गई हों, उन्हें उत्तर के लिए किसी ऐसी तिथि की प्रश्न सूची में शामिल कर लिया जाये जो सचिवालय या सम्बद्ध मंत्री के लिए सुविधाजनक हो। ऐसी स्थिति में सदस्यों से कहा जाता है कि वे स्वयं अपने प्रश्नों के उत्तर के लिए तिथियों का उल्लेख करें।

सदस्य प्रश्न की सूचना सादे कागज पर भी लिख कर दे सकता है लेकिन यह आवश्यक है कि सूचना की मूल आवशकताएं पूरी की गई हों अर्थात् उनमें उत्तर की तिथि, उस मंत्री का पदनाम जिसे प्रश्न सम्बोधित किया गया हो, सदस्य के हस्ताक्षर तथा विभाजन संख्या आदि का उल्लेख किया गया हो। तथापि, संसदीय सूचना कार्यालय सदस्यों के अनुरोध पर उन्हें तारांकित/अतारांकित और अल्प सूचना प्रश्नों की सूचना देने के लिए मानकीकृत छपे फार्म उपलब्ध कराता है।[98] इन फार्मों पर प्रश्न के पाठ के साथ चिपकाई गई प्रश्न की सूचना अथवा मोहर द्वारा हस्ताक्षरित प्रश्नों की सूचनाएं या पेंसिल से हस्ताक्षरित सूचनाएं वैध सूचना के रूप में स्वीकार नहीं की जातीं और सदस्यों को वापस लौटा दी जाती हैं। अनिश्चित अवधि के लिए नजरबंद सदस्य से प्राप्त प्रश्नों की सूचनाएं चाहें वे तारांकित हों अथवा अतारांकित, अतारांकित ही मानी जाती हैं और उन पर तद्नुरूप कार्यवाही की जाती है। यह भी प्रथा रही

---

95. *पी. डिबेट्स,* 4.4.1950, पृ. 1286 ।

96. समाचार भाग-2, 6.1.1960, पैरा-3267 ।

97. नियम 332 ।

98. *पी. डिबेट्स,* 28.11.1950, पृ. 765 ।

है कि कोई सदस्य प्रश्नों की सूचनाएं तो दे सकता है परंतु शपथ या प्रतिज्ञान किए बगैर कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता।[99]

यदि कोई प्रश्न एक से अधिक विषयों से संबंधित हो, तो इसे दो या उससे अधिक अलग-अलग अपने आप में पूर्ण प्रश्नों में मंत्रालय-वार बांट दिया जाता है जिससे कि उनके उत्तर सुस्पष्ट हों।[100]

यदि कोई प्रश्न गलती से किसी अन्य मंत्री को संबोधित कर दिया जाता है तो वह मंत्री सचिवालय को यह सूचित करता है कि वह प्रश्न अन्य मंत्री को अंतरित किया जा रहा है जिससे वह सम्बद्ध है। ऐसी स्थिति में उपयुक्त मंत्री को इन प्रश्नों का अंतरण सचिवालय द्वारा तभी स्वीकार किया जाता है जबकि उक्त मंत्री जिसे वह प्रश्न अंतरित किया गया हो, ने स्वीकृति की सूचना सचिवालय को दे दी हो।[101] यदि सचिवालय द्वारा प्रश्न की प्रारंभिक जांच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रश्न सही मंत्री को संबोधित नहीं किया गया है तो उक्त प्रश्न को सही मंत्री को अंतरित कर दिया जाता है और सदस्य को इस बारे में सूचित कर दिया जाता है।

किसी प्रश्न को उत्तर के लिए सामान्यत: उसी तिथि के लिए स्वीकार किया जाता है जिस तिथि हेतु सूचना सदस्य द्वारा उल्लिखित की गई हो। परन्तु जहां प्रश्न की सूचना या तो मंत्री को या सम्बद्ध सदस्य को तथ्यों की सत्यता का पता लगाने के लिए भेजनी आवश्यक हो, तो प्रश्न स्वीकार किए जाने पर उसे उस तिथि, जो कि सदस्य ने अपनी सूचना में उल्लिखित की हो, के बाद की किसी तिथि के लिए रखा जाता है।[102]

लोकसभा की वेबसाइट पर प्रश्नों की सूचनाओं की स्थिति[103]

पंद्रहवीं लोकसभा के 12वें सत्र से सदस्यों की सूचना हेतु प्रश्नों की सूचनाओं की स्थिति लोकसभा की वेबसाइट पर उपलब्ध है। चूंकि सूचना का परिचालन प्रतिबंधित श्रेणी में रखा गया है, अत: इस उद्देश्य से प्रत्येक सदस्य के लिये एक लॉगिन पेज का सृजन किया गया है। तथापि लोकसभा के संसदीय सूचना कार्यालय (पी.एन.ओ.) को बैलेट परिणामों की हार्ड कापियां भेजे जाने की प्रथा अभी भी जारी है।

मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न

जो सदस्य अपने प्रश्न का मौखिक उत्तर चाहता हो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह इस प्रयोजनार्थ प्रश्न से पहले तारे का चिह्न लगा दे। यदि वह इस प्रकार का चिह्न नहीं

---

99. *एल.एस. डिबेट्स,* 29.3.1971, कॉ. 2 ।

100. *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 1.2.1949, पृ. 4 ।

101. *लो.स.वा.वि.,* 28.8.1958, पृ. 1629-33 ।

102. *देखिए* नियम 43 (2)।

103. समाचार भाग (2) 21.2.2012, पैरा 3679

लगाता तो प्रश्न स्वीकार किये जाने पर उसे लिखित उत्तर के प्रश्नों की सूची में छापा जाता है।[104]

यदि अध्यक्ष की राय में मौखिक उत्तर के लिए रखा गया कोई प्रश्न ऐसा हो कि उसका लिखित उत्तर देना अधिक उपयुक्त होगा तो वह यह निदेश दे देता है कि उसे लिखित प्रश्नों की सूची में शामिल कर लिया जाये। ऐसा निर्देश देने से पहले अध्यक्ष, यदि उचित समझे तो वह मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न की सूचना देने वाले सदस्य से पूछ सकता है कि वह संक्षेप में बताये कि वह किन कारणों से उस प्रश्न का मौखिक उत्तर चाहता है।[105]

मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची का प्रबंध नियंत्रण में रखने के प्रयोजन से और इस उद्देश्य से भी कि महत्वपूर्ण प्रश्नों का मौखिक उत्तर मिल जाये, निम्नलिखित प्रकार के प्रश्नों को सामान्यत: लिखित प्रश्नों की सूची में अन्तरित किया जाता है:–

(i) ऐसे प्रश्न जिनमें आंकड़ों के रूप में जानकारी मांगी गई हो;[106]

(ii) ऐसे प्रश्न जिनमें विस्तृत ब्यौरे मांगे गये हों जिससे यह स्पष्ट हो कि उत्तर लम्बा होगा, यथा किसी सम्मेलन के संकल्प या किसी विशेषज्ञ समिति की सिफारिशें तथा उस पर की गई कार्यवाही आदि;

(iii) ऐसे प्रश्न जिनमें स्थानीय अथवा राज्य के विषय उठाये गये हों, उदाहरण के लिए किसी रेल फाटक, फ्लैग स्टेशन या सार्वजनिक टेलीफोन सुविधा का प्रारम्भ किया जाना;[107]

(iv) संविधान के अन्तर्गत सेवाओं में संरक्षित समुदाय जैसे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व संबंधी प्रश्न जिनमें नीति या प्रशासन संबंधी ऐसा कोई विषय न हो, जिसका स्पष्टीकरण सभा में किया जाना आवश्यक हो।[108]

(v) प्रशासनिक ब्यौरे से संबंधित प्रश्न, यथा किसी सरकारी कार्यालय, दूतावास आदि में कर्मचारियों की संख्या;[109]

(vi) ऐसे प्रश्न जिन पर प्रत्यक्षत: अनुपूरक प्रश्न पूछने की कोई गुंजाइश न हो, यथा विचाराधीन प्रतिवेदन या ऐसे विषय जिनके संबंध में पत्र-व्यवहार या कूटनीतिक स्तर पर बातचीत चल रही हो;

---

104. नियम 36, *एल.ए. डिबेट्स,* 5.9.1921, पृ. 98-99 ।

105. *देखिए* नियम 44 ।

106. अता. प्र.सं. 7159, 7243 और 7244, 18.4.1978; 1926, 5.8.1985; 669, 26.2.1993; 933, 17.8.2007 ।

107. अता. प्र.सं. 8058, 25.4.1978; 8123, 26.4.1978, 9053, 28.4.1983; 2244, 17.8.2007; 54, 15.11.2007 ।

108. अता. प्र.सं. 5980, 10.5.1985; 985, 22.11.1985; 4603, 25.4.2008 ।

109. अता. प्र.सं. 8372, 19.4.1982; 2855, 6.12.1985 और 2128, 10.3.1987; 3623; 13.12.1991; 4802, 20.12.1991 ।

(vii) ऐसे प्रश्न जिनमें सभा पटल पर विवरण रखने की मांग की गई हो।

(viii) ऐसे प्रश्न जो सामान्यत: पर्याप्त लोक महत्व के न होकर केवल सीमित वर्ग के लोगों के हित में हो, यथा खदानों में शिशु गृहों की व्यवस्था अथवा रेल विभाग में टिकट निरीक्षकों के लिए विश्राम गृहों की व्यवस्था किया जाना आदि।

(ix) ऐसे प्रश्न जो किसी सांविधिक निकाय से संबंधित विषयों के बारे में हों जिनके बारे में पूछे गये अनुपूरक प्रश्नों से ऐसे निकाय की स्वायत्तता पर प्रभाव पड़ सकता है।[110]

(x) ऐसे प्रश्न जो ऐसे विषय पर हों जिस पर उसी सत्र में अनेक प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका हो तथा जिसे तारांकित प्रश्न के रूप में स्वीकार कर लिये जाने पर उस पर पूछे गये अनुपूरक प्रश्नों में उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति हो।[111]

(xi) ऐसे प्रश्न जिनमें तथ्यों पर आधारित जानकारी मांगी गई हो और जिन पर अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने की बहुत ही कम गुंजाइश हो।[112]

(xii) ऐसे प्रश्न जिनके बारे में नियम 193 के अन्तर्गत चर्चा अथवा नियम 197 के अंतर्गत ध्यानाकर्षण प्रस्ताव आदि पर चर्चा पहले हो चुकी हो या होना निश्चित कर दिया गया हो।[113]

(xiii) ऐसे प्रश्न, जिनमें रक्षा खरीदों, रक्षा तैयारियों, विदेशों के साथ संबंधों अथवा ऐसे अन्य विषयों की जानकारी मांगी गई हो, जिनके अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर में दी जाने वाली जानकारी देश की सुरक्षा अथवा मित्रराष्ट्रों के साथ संबंधों के प्रतिकूल हो।[114]

(xiv) ऐसे प्रश्न जिनमें न्याय निर्णयाधीन मामलों या सांविधिक न्यायाधिकरणों/अन्य जांच एजेंसियों के जांचाधीन मामलों के बारे में तथ्यपरक जानकारी मांगी गई हो।[115]

(xv) चुनावों तथा निर्वाचनों आयोग से संबंधित प्रश्न, यह मानते हुए कि उन पर अनुपूरक प्रश्नों के जरिए मुख्य निर्वाचन आयुक्त के आचरण पर चर्चा की जा सकती है।[116]

---

110. अता. प्र.सं. 9395, 5.5.1978; 9.6.1980; 2586, 9.3.1982; 4692, 23.3.1982 और 868, 24.2.1983; 2608, 31.8.2007 ।

111. अता. प्र.सं. 8482 और 8624, 28.4.1978; 1433, 29.3.1985; 979, 23.11.2007; ता. प्रा.सं. 28, 16.11.2007,

112. अता. प्र.सं. 10265, 12.5.1978; 1222, 24.10.2008 ।

113. अता. प्र.सं., 10265, 12.5.1978; 6281, 1.4.1982; 1947, 11.12.2008 ।

114. अता. प्र.सं. 3989, 20.3.1979; 396, 10.7.1979; 3578, 30.7.1982; 1088, 1090 और 1112, 26.3.1985; 1410, 2.3.1988; 2599, 11.3.1988; 3822, 13.12.1991; 1168, 1.3.2006 ।

115. अता. प्र.सं. 5922, 3.4.1970; 3447, 2.11.1982; 938, 25.2.1983; 7333, 13.4.1983; 1383, 1.8.1983; ता.प्र.सं. 300, 15.3.1988 ।

116. अता. प्र.सं. 2586, 9.3.1982; 4692, 23.3.1982; 3754, 19.4.1985; 4534, 25.8.1987।

(xvi) किसी राज्य के चुनिंदा जिलों के बारे में जानकारी की मांग करने वाले प्रश्न।[117]

(xvii) ऐसे मामलों से संबंधित प्रश्न जिन्हें तारांकित प्रश्न के रूप में स्वीकार कर लिये जाने पर जनहित को क्षति पहुंचने की आशंका हो।[118]

(xviii) किसी सरकारी उपक्रम/सांविधिक निकाय के प्रशासनिक ब्यौरों की विस्तृत जानकारी मांगने वाले प्रश्न[119]। और

(xix) निर्विदा आमन्त्रण सूचनाओं, जिनके बारे में सरकार जनहित की दलील दे रही हो, के प्रत्युत्तर में प्राप्त प्रस्तावों का ब्यौरा मांगने वाले प्रश्न।[120]

वह प्रश्न जिसकी सूचना तारांकित प्रश्न के रूप में प्राप्त हुई हो परन्तु जिसे अतारांकित प्रश्न के रूप में गृहीत किया गया हो तथा लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में छाप दिया गया हो तो संबंधित सदस्य से अभ्यावेदन प्राप्त होने पर उसे पुनः तारांकित प्रश्न में नहीं बदला जाता है। ऐसे मामलों में सदस्य को यह कहा जाता है कि वह अपने प्रश्न को तारांकित प्रश्न के रूप में गृहीत किये जाने के लिए विचार हेतु नयी सूचना अतारांकित प्रश्न में दिये गये उत्तर को ध्यान में रखते हुए दे सकता है। फिर भी एक विरल मामला ऐसा भी है जबकि सदस्य के प्रथम वरीयता वाले एक तारांकित प्रश्न की सूचना को लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में शामिल कर लिया गया था तथा उसी सदस्य का दूसरा प्रश्न मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में शामिल कर लिया गया था किन्तु सदस्य से अभ्यावेदन प्राप्त होने पर अध्यक्ष सदस्य के प्रथम वरीयता वाले प्रश्न को मौखिक प्रश्नों की सूची में शामिल करने के लिए सहमत हो गये थे। तद्नुसार, अतारांकित प्रश्न सूची वाला प्रश्न तारांकित प्रश्न सूची में और तारांकित प्रश्न सूची में शामिल प्रश्न अतारांकित प्रश्न सूची में शामिल कर लिया गया था।[121]

तारांकित प्रश्नों की संख्या के संबंध में सीमाएं

यद्यपि एक सदस्य मौखिक और लिखित उत्तरों हेतु अधिकतम 10 प्रश्नों की सूचनाएं दे सकता है। परन्तु किसी एक दिन की प्रश्न सूची में किसी सदस्य के पांच से अधिक गृहीत तारांकित एवं अतारांकित प्रश्न नहीं रखे जाते हैं।[122] इनमें से, सदस्य द्वारा तारे से चिह्नित केवल

---

117. अता. प्र.सं. 230, 21.2.1983 ।

118. अता. प्र.सं. 196, 20.2.1979; 1864, 26.3.1980; 9576, 4.5.1988; 1410, 2.3.1988; 3883, 31.8.1990 ।

119. अता. प्र.सं. 394, 10.7.1979; 8, 9.6.1980; 389, 22.2.1983; 762, 22.3.1985; 5980, 10.5.1985; 7086, 17.5.1985 और 10323, 10.5.1998 ।

120. अता. प्र.सं., 2335, 9.4.1985 ।

121. *एल.एस. डिबेट्स,* 17.12.1985, ता. प्र.सं. 410 और अता. प्र.सं. 4465 ।

122. पांच प्रश्नों की सीमा 12 नवम्बर, 1962 से प्रारम्भ की गई थी। *एल.एस. डिबेट्स,* 8.11.1962, कॉ. 90; *लो.स.वा.वि.,* 9.11.1962, पृ. 8-9, 61-62 ।

एक ही तारांकित प्रश्न मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में रखा जाता है।[123]

एक दिन के मौखिक उत्तरों के लिए एक सदस्य का एक प्रश्न होने की सीमा, उसी दिन उत्तर के लिए गृहीत उसके अल्प सूचना प्रश्न पर लागू नहीं होती। किसी दिन की तारांकित प्रश्न सूची में किसी सदस्य के एक से अधिक प्रश्न उस स्थिति में हो सकते हैं जबकि किसी पहले के दिन की तारांकित प्रश्न सूची में शामिल किया गया उसका कोई प्रश्न अंतरण अथवा स्थगन के आधार पर उसमें शामिल कर लिया गया हो।

सूचना देने वाला सदस्य वरीयता बताकर संकेत कर देता है कि मौखिक उत्तरों के लिए प्रश्न किस क्रम में रखे जायें और यदि कोई ऐसा वरीयता क्रम अंकित न हो तो प्रश्नों को अध्यक्ष के निर्णय के अनुसार मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में रखा जाता है। फिर भी, यह आवश्यक नहीं है कि अध्यक्ष सदैव सदस्य द्वारा अंकित क्रम के अनुसार ही प्रश्न रखे बल्कि वह लोक महत्व एवं विषय की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए सदस्य के किसी एक प्रश्न को तारांकित प्रश्नों की सूची में शामिल करने हेतु चुन सकता है।[124]

किसी भी एक दिन मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न सूची में साधारणतया बीस से अधिक प्रश्न शामिल नहीं किये जाते किन्तु अंतरित अथवा स्थगित प्रश्नों को सूची में शामिल कर लिये जाने पर उसमें प्रश्नों की संख्या बढ़ सकती है। बीस प्रश्नों के अतिरिक्त शेष गृहीत प्रश्न लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में रख दिये जाते हैं।[125]

प्रश्नों के मौखिक उत्तरों के लिए दिनों का नियतन

प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपलब्ध समय, ऐसे मंत्रालय या मंत्रालयों से सम्बद्ध प्रश्नों का उत्तर देने के लिए भिन्न दिनों में चक्रानुक्रम से इस प्रकार नियत किया जाता है जैसा कि अध्यक्ष समय-समय पर निदेश दें और प्रत्येक दिन जब तक कि अध्यक्ष सम्बद्ध मंत्री की सम्मति से अन्यथा निदेश न दे, केवल ऐसे मंत्रालय या मंत्रालयों से सम्बद्ध प्रश्न ही, जिनके लिए उस दिन समय नियत किया गया हो, मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न सूची में रखे जाते हैं।[126]

जैसे ही किसी सत्र के प्रारम्भ तथा अंत होने की तिथियां नियत हो जाती हैं, मंत्रालय द्वारा प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विभिन्न मंत्रालयों के लिए दिन नियत कर दिये जाते हैं और उनकी सूचना संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दी जाती है और उसे सत्र के लिए आमन्त्रण के साथ जारी कर दिया जाता है। प्रश्नों का उत्तर देने के लिए नियत दिनों के बारे में जानकारी 'बैठकों के अस्थायी तिथि पत्र' में शामिल की जाती है।

---

123. तारांकित प्रश्नों की सूची में शामिल किये जाने के लिए एक सदस्य के तीन प्रश्नों की सीमा भी 12 नवम्बर, 1962 से ही शुरू की गई थी। प्रश्नों की यह संख्या वर्ष 1974 में घटाकर एक कर दी गई। *एल.एस. डिबेट्स,* 8.11.1962, कॉ. 90; 9.11.1962, पृ. 61-62; और समाचार भाग-2, 10.5.1974, पैरा 1734 ।

124. नियम 37(2) ।

125. नियम 37(1), समाचार-भाग 2, 25.11.1971, पैरा 438 ।

126. नियम 38 ।

नवम्बर, 1962 सभा में प्रश्नों के उत्तर देने के प्रयोजनार्थ तक भारत सरकार के मंत्रालय को तीन समूहों में बांटा गया था और मंत्री बारी-बारी से प्रश्नों के उत्तर देते थे। 1962 से विभिन्न मंत्रालयों को तीन की बजाए पांच समूहों में बांट दिया गया है ताकि प्रत्येक मंत्रालय से संबंधित प्रश्नों के उत्तर सप्ताह में किसी एक निश्चित दिन दिये जा सकें।[127]

विगत अनुभव के आधार पर, प्रश्नों के उत्तर देने के प्रयोजन से संबंधित मंत्रालयों का वर्गीकरण इस ढंग से किया जाता है कि प्रत्येक मंत्रालय समूह के हिस्से में, यथासाध्य बराबर-बराबर प्रश्न आयें। यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि सभा में मंत्रालय द्वारा उत्तर दिये जाने का दिवस राज्य सभा में प्रश्नों के उत्तर के लिए नियत दिवस एक ही न हो ताकि मंत्रीगण प्रश्नों का उत्तर देने हेतु अपने-अपने लिए निर्धारित दिनों पर दोनों सदनों में उपस्थित हो सकें। यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि केबिनेट स्तर के मंत्री या स्वतंत्र प्रभार वाले मंत्री को प्रश्नों का उत्तर देने के लिए दोनों सभाओं में से किसी भी सभा में सप्ताह में एक दिन से अधिक न आना पड़े।

जब किसी सत्र के दौरान किसी मंत्रालय का दो भागों में विभाजन कर दिया जाता है या कोई नया मंत्रालय बना दिया जाता है तो उस मंत्रालय से संबंधित प्रश्नों और उनके उत्तर देने की तिथियों का निर्णय सम्बद्ध मंत्रालय के परामर्श से किया जाता है और उसकी सूचना संसदीय समाचार में अधिसूचित कर दी जाती है।

लिखित उत्तर के लिए प्रश्न

यदि किसी प्रश्न को तारे से चिन्हित न किया गया हो या किसी दिन मौखिक उत्तरों की प्रश्न-सूची में डाले गये किसी प्रश्न को उस दिन उत्तर देने के लिये उपलब्ध निर्धारित समय के अंदर-अंदर न पुकारा जाए, तो जिस मंत्री को प्रश्न संबोधित किया गया है, उसके द्वारा ऐसे प्रश्नों को प्रश्नकाल के अंत में या सभी मौखिक प्रश्न पूछ लिये जाने के तुरंत बाद जैसे भी स्थिति हो, सभा पटल पर रखा हुआ माना जायेगा।[128] पन्द्रहवीं लोक सभा के चौथे सत्र तक उन तारांकित प्रश्नों के उत्तर भी सभा पटल पर रख दिये जाते हैं जिनको पूछने वाले सदस्य अनुपस्थित हों और जिनको पूछने का अधिकार प्रश्नकर्त्ता द्वारा किसी अन्य सदस्य को न दिया गया हो या जिनको अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर प्रश्नकर्त्ता खड़ा न हो।

पंद्रहवीं लोकसभा के पांचवें सत्र से यदि किसी दिन किसी कारणवश प्रश्नकाल न हो पाये, उस दिन के लिये मौखिक और लिखित उत्तरों की प्रश्न सूची में सम्मिलित प्रश्नों के उत्तरो को जिन मंत्रियों को वे प्रश्न संबोधित किये गये है, द्वारा सभा पटल पर रखा हुआ मान लिया जायेगा और वे उस दिन की कार्यवाही का हिस्सा बन जायेगें। तथापि यदि प्रश्नकाल स्थगित होने के बाद सभा की बैठक जारी नहीं रहती, उस दिन के लिये मौखिक और लिखित उत्तरों की प्रश्न सूची में शामिल प्रश्नों को सभा की अगली बैठक के प्रश्नकाल के बाद सभा

---

127. *लो.स.वा.वि.,* 8.11.1962, पृ. 61-62; 9.11.1962, पृ. 61-62 ।

128. *देखिए* नियम 39(1)

पटल पर रखा हुआ माना जायेगा और वे उस दिन की कार्यवाही का हिस्सा बन जायेंगे।[129]

प्रश्नों के लिखित उत्तर मंत्री द्वारा औपचारिक रूप से सभा पटल पर नहीं रखे जाते हैं परन्तु प्रश्न काल के अन्त में उन्हें सभा पटल पर रखा गया मान लिया जाता है।

किसी एक दिन के लिए लिखित उत्तरों के लिए प्रश्नों की सूची में 230 से अधिक प्रश्न शामिल नहीं किये जाते हैं। इस संख्या में अधिक से अधिक 25 प्रश्न और जोड़े जा सकते हैं बशर्ते कि प्रश्न 'राष्ट्रपति शासन' के अधीन राज्यों के बारे में हों। किसी दिन की तारांकित और अतारांकित सूचियों में शामिल किये गये एक सदस्य के पांच प्रश्नों से अधिक प्रश्नों को अगृहीत मान लिया जाता है और इन्हें किसी अगले दिन की सूची में शामिल नहीं किया जाता। ऐसे प्रश्नों के बारे में संबंधित सदस्य को जानकारी दे दी जाती है। यदि वह सदस्य इन प्रश्नों के बारे में सूचनाएं पुनः प्रवर्तित करता है तो सत्र के दौरान बाद की उपलब्ध तिथियों में सम्मिलित किए जाने के लिए उन पर विचार किया जा सकता है। ऐसे गृहीत प्रश्नों पर जो 230 से अधिक होने के कारण किसी एक दिन की सूची में शामिल नहीं हो पाते, सत्र के दौरान अगली उपलब्ध तिथियों में शामिल करने के लिए स्वतः ही विचार किया जाता है। प्रश्नों की ऐसी सूचनाएं जो 230 से अधिक हों और जिन्हें किसी भी सूची में शामिल न किया जा सका हो, सत्र के अंत में व्यपगत हो जाती हैं।[130] ततपश्चात् पंद्रहवीं लोकसभा के पांचवें सत्र से प्रश्नों की 230 से ऊपर की सूचनाओं को संबंधित सदस्य को वापिस कर दिया जाता है और यदि सदस्य चाहें तो उन्हें फिर से नये रूप में सभा पटल पर रखा सकता है।[131] तथापि इस प्रक्रिया में पुनः परिवर्तन किया गया और अब 230 से ऊपर की सूचनाएं व्यपगत हो जाती हैं और सदस्यों के अनुरोध थे, यदि वे चाहे तो ऐसे प्रश्नों की प्रति उन्हें उपलब्ध करायी जाती है।[132]

प्रश्नों के उत्तर

सभा में किसी दिन दिये गये प्रश्नों के मौखिक उत्तर उस दिन की कार्यवाही में "प्रश्नों के मौखिक उत्तर" शीर्षक के अंतर्गत छापे जाते हैं जबकि लिखित उत्तर वाले प्रश्नों सहित ऐसे तारांकित प्रश्नों के उत्तर, जिनके मौखिक उत्तर सभा में न दिये गये हों, कार्यवाही में "प्रश्नों के लिखित उत्तर" शीर्षक के अन्तर्गत छापे जाते हैं।

कार्यवाही में प्रश्नों के उत्तर उस मंत्री के नाम में छापे जाते हैं जो वास्तव में सभा में उनका उत्तर देता है। प्रश्नों के लिखित उत्तर और उन तारांकित प्रश्नों के उत्तर भी, जो सभा पटल पर रखे जाते हैं, उसी मंत्री के नाम में छापे जाते हैं, जिनके नाम वे उत्तर होते हैं।

जब किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर दिया जाता है जो एक से अधिक सदस्यों के नाम में हो तो सभा की कार्यवाही में ऐसे सभी सदस्यों के नाम छापे जाते हैं। लेकिन जहां ऐसे किसी प्रश्न का मौखिक उत्तर दिया गया हो, तो सबसे ऊपर उस सदस्य का नाम लिखा जाता है

---

129. देखिए नियम 39(3), समाचार भाग (एक), 19.3.10, पैरा 1265 ।

130. यह प्रथा पंद्रहवीं लोकसभा के चौथे सत्र तक इस प्रथा का पालन किया जाता रहा।

131. समाचार भाग (एक), 9.7.2010, पैरा 1593 ।

132. समाचार भाग (दो) 17.2.2012, पैरा 3670 ।

जिसने वास्तव में सभा में वह प्रश्न पूछा हो और उसके नाम के पहले जमा का चिह्न (+) लगा दिया जाता है।[133]

निम्नलिखित मामलों में प्रश्न सूची में कोई प्रश्न एक से अधिक सदस्यों के नाम दिखाया जा सकता है—

जहां विभिन्न सदस्यों से उसी या सम्बद्ध विषयों पर प्रश्नों की बहुत-सी सूचनाएं प्राप्त हुई हों और कोई एक समेकित प्रश्न स्वीकार कर लिया गया हो; और

जब किसी विषय पर कोई प्रश्न गृहीत हो तो उसी विषय पर प्रश्न की सूचना देने वाले अन्य सदस्यों के नामों का भी गृहीत प्रश्न पर उल्लेख कर दिया जाता है। प्रश्नों की सूची छप जाने और सदस्यों में बंट जाने के बाद यदि उस सूची में शामिल किसी प्रश्न के विषय पर किसी और प्रश्न की सूचना प्राप्त हो तो संबंधित सदस्य का नाम उस प्रश्न को पूछने वालों के साथ नहीं लिखा जाता, बल्कि उसकी सूचना को अगृहीत करके उस सदस्य का ध्यान पहले गृहीत हुए प्रश्न की ओर आकृष्ट कर दिया जाता है।

जहां प्रश्न सूची में कोई प्रश्न एक से अधिक सदस्यों के नाम में छपा हो तो यह माना जाता है कि वह प्रश्न उन सभी सदस्यों के नाम में है।

लोक सभा में किसी प्रश्न के उत्तर में उसी सत्र में राज्य सभा में किसी प्रश्न के दिये गये उत्तर या कार्यवाही का संदर्भ नहीं दिया जा सकता और राज्य सभा में दिये गये किसी उत्तर में लोक सभा में उसी सत्र में दिये गये किसी उत्तर या उसकी कार्यवाही का कोई उल्लेख नहीं किया जा सकता।[134] अत: उसी सत्र में दोनों सदनों में एक जैसे ही प्रश्नों की गृहीत किये जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

यदि किसी प्रश्न में राज्य सभा में पूछे गये किसी प्रश्न के उत्तर का उल्लेख नहीं किया गया हो, तो ऐसे उल्लेख को प्रश्न गृहीत करने से पहले हटा कर स्वत: पूर्ण स्वरूप दिया जाता है।

जब मौखिक उत्तर के लिए किसी प्रश्न के उत्तर में कोई विवरण सभा पटल पर रखा जाता है या उसमें पहले पूछे गये किसी प्रश्न के उत्तर का उल्लेख होता है तो संबंधित सदस्यों को आधा घंटे पहले, विवरण या पहले पूछे गये प्रश्न के उत्तर की प्रतियां उपलब्ध करा दी जाती हैं ताकि वे उनमें दी गयी जानकारी का अध्ययन कर सकें और उसके आधार पर अनुपूरक प्रश्न पूछ सकें। जहां प्रश्नकर्ता सदस्य के अलावा कोई अन्य सदस्य किसी प्रश्न के उत्तर में सभा पटल पर रखे जाने वाले विवरण की प्रति प्राप्त करने का इच्छुक होता है, तो अतिरिक्त प्रतियां उपलब्ध होने पर उस सदस्य को दे दी जाती हैं। ऐसे विवरणों या उत्तरों की

---

133. दैनिक कार्यवाही की विषय-सूची वाले पृष्ठ पर निम्नलिखित पाद-टिप्पणी दी जाती है: "किसी सदस्य के नाम पर अंकित + चिह्न इस बात का द्योतक है कि सभा में उस प्रश्न को उस सदस्य ने ही पूछा था।"

134. नियम 51 ।

प्रतियों को गोपनीय माना जाता है और प्रश्न का उत्तर दिये जा चुकने या प्रश्न काल समाप्त होने, इनमें से जो भी पहले हो, तक उनके प्रकाशन की अनुमति नहीं होती। यदि किसी कारण से विवरण सभा पटल पर न रखा जाए या उत्तर न दिया जाए या सभा में उत्तर देते समय मंत्री उसमें कोई फेर-बदल कर दे, तो मूल विवरण को प्रकाशित नहीं किया जाता।[135]

प्रश्न सूचियों की मुद्रित प्रतियां प्रत्यायित संवाददाताओं को वितरित की जाती हैं अथवा प्रश्न काल प्रारम्भ होने से एक घंटा पूर्व निर्धारित मूल्य पर आम जनता के लिए इसकी बिक्री की जाती है।

मंत्री द्वारा वक्तव्य के माध्यम से प्रश्नों के उत्तरों में शुद्धि

जब सभा में किसी प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका हो अथवा वह सभा पटल पर रख दिया गया हो और उसके बाद मंत्री को यह पता चले कि उसने जो उत्तर दिया था वह सही नहीं था तो वह सीधे संबंधित सदस्य को इस स्थिति का स्पष्टीकरण देकर मामले को वहीं समाप्त नहीं कर सकता क्योंकि सभा में उत्तर दिये जाने के बाद वह सार्वजनिक बन जाता है और केवल मंत्री और सदस्य के बीच का मामला नहीं रहता। ऐसी स्थिति में मंत्री को अपने पहले उत्तर में शुद्धि करने के लिए या तो वक्तव्य देना पड़ता है या सभा पटल पर रखना पड़ता है।

जब कोई मंत्री अपने द्वारा दिए गए किसी तारांकित अथवा अल्प सूचना अथवा अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में अथवा वाद-विवाद में दी गई जानकारी की किसी अशुद्धि को शुद्ध करना चाहे तो वह उस उत्तर अथवा जानकारी में शुद्धि करने के आशय की सूचना महासचिव को देता है और उसके साथ उस वक्तव्य की एक प्रति संलग्न रहती है जिसे वह अपने पहले उत्तर को शुद्ध करने के लिए देना चाहता है।[136] मंत्री से ऐसी सूचना मिलने पर तत्संबंधी मद उपयुक्त दिन के लिए कार्य-सूची में शामिल कर दिया जाता है।

नियत दिन पुकारे जाने पर मंत्री सभा में तत्संबंधी वक्तव्य देता है।[137] जिस सदस्य के प्रश्न के पहले दिये गये उत्तर को मंत्री शुद्ध करना चाहता हो, उसे मंत्री द्वारा वक्तव्य दिए जाने के बाद स्पष्टीकरण मांगने की अनुमति दी जा सकती है।[138] यदि कोई सदस्य किसी प्रश्न के उत्तर में की गई शुद्धि के बारे में अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहता हो तो वह अध्यक्ष से लिखित

---

135. निदेश 13 (3)

136. निदेश 16; *एल.एस. डिबेट्स,* 16.8.1959, कॉ. 1275-1300; 8.12.2005, कॉ. 33; अता. प्र.सं. 4795, 28.4.2008, ता. प्र.सं. 212, 12.12.2008 ।

137. *एल.एस. डिबेट्स,* 11.2.1958, कॉ. 90-91; 2.8.1960, कॉ. 363-364; *लो.स.वा.वि.,* 2.8.1985, पृ. 205-6; 26.11.1986, पृ. 201, 11.5.1988, पृ. 259; और 20.8.1992, पृ. 138; *एल.एस. डिबेट्स* 5.8.1994 कॉ. 45; 19.12.2008 ।

138. *पूर्वोक्त,* 21.2.1968, कॉ. 2417-18 ।

रूप में अनुमति मांग सकता है। यदि अध्यक्ष अनुमति दे देता है तो वह मद कार्य-सूची में शामिल कर ली जाती है।[139]

सभा के समय की बचत करने के लिए लम्बे वक्तव्य पढ़ने की अनुमति नहीं दी जाती है, बल्कि उन्हें सभा पटल पर रखा जाता है और इस प्रकार उनको उस दिन के मुद्रित वाद-विवाद में शामिल कर लिया जाता है।

चूंकि, पहले दिये गये किसी उत्तर में शुद्धि करने वाला वक्तव्य नया उत्तर होता है इसलिए सदस्य यदि चाहें तो उसके सम्बन्ध में अनुपूरक प्रश्न पूछ सकते हैं,[140] हालांकि इस अधिकार का प्रयोग यदा-कदा ही किया जाता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि जिस वक्तव्य को सभा में पढ़े जाने के बजाए सभा पटल पर रखे जाने का निदेश दिया गया हो तो सदस्य उसके सम्बन्ध में अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछ सकेंगे। इस स्थिति से निपटने के लिए ऐसा प्रबन्ध है कि मंत्री किसी तारांकित अथवा अल्प सूचना प्रश्न के उत्तर में शुद्धि करने वाले अपने प्रस्तावित वक्तव्य की प्रतियां एक दिन पहले सचिवालय को भेज देता है। संसदीय सूचना कार्यालय के माध्यम से सभा की बैठक के प्रारम्भ होने से आधा घंटा पहले सम्बद्ध उत्तर सहित उस वक्तव्य की एक प्रति सम्बद्ध सदस्य को दे दी जाती है, जिससे कि वह उसमें दी गई जानकारी का अध्ययन कर सके।[141] किन्तु साथ ही उससे यह अनुरोध किया जाता है कि वह इस विषय को सभा में उठाये जाने तक तत्संबंधी जानकारी को गोपनीय रखे।[142] 25 अप्रैल, 2012 को नागरिक उडड्यन मंत्री द्वारा 28 मार्च, 2012 को ''एअरक्राफ्ट अंडर इंयू ऐमिशन ट्रेडिंग'' के संबंध में पूछे गये तारांकित प्रं सं. 217 में दिये गये उत्तर को शुद्ध करने के लिए एक वक्तव्य दिया गया। तत्पश्चात् अध्यक्ष पीठ के निद्रेश 17(3) के अधीन असाद्दीन ओवेसी को एक अनुपूरक प्रश्न पूछने का अनुमति दी जिसका उत्तर मंत्री द्वारा दिया गया।[143]

> यदि किसी मंत्री द्वारा दी गई जानकारी में शुद्धि करने के आशय की सूचना उससे उस समय प्राप्त हो जब लोक सभा का सत्र न हो रहा हो तो महासचिव इस प्रश्न पर विचार करता है कि क्या वह वक्तव्य मंत्री द्वारा अगले सत्र में दिया जा सकता है या नहीं। इस सम्बन्ध में उसके द्वारा अध्यक्ष के आदेश प्राप्त कर लिये जाते हैं। यदि विषय ऐसा हो कि अगले सत्र तक प्रतीक्षा न की जा सके तो मंत्री के वक्तव्य को सभा की कार्यवाही के शासकीय प्रतिवेदन में शामिल कर लिया जाता है।

---

139. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.4.1968, कॉ. 2092; 25.4.1968, कॉ. 3034-50 और पुनरीक्षित कार्य-सूची 25.4.1968 । *एल.एस. डिबेट्स,* समाचार भाग (दो) 8.12.05, पृ.5675, एल.एस. डिबेट भाग (एक) 25.4.12.
140. निदेश 17(3) ।
141. निदेश 17(1) ।
142. निदेश 17(2) ।
143. *एल.एस. डिबेट्स,* (1) 25.4.2012 ।

जहां मूल उत्तर को प्रकाशित करना वांछनीय न समझा जाए वहां केवल संशोधित उत्तर ही छापा जाता है और उसके साथ एक उपयुक्त पाद-टिप्पण दे दिया जाता है।

कोई गैर-सरकारी सदस्य भी अध्यक्ष से अपने किसी अनुपूरक प्रश्न में हुई अशुद्धि को शुद्ध करने की अनुमति मांग सकता है लेकिन ऐसा कभी-कभार ही होता है। जब ऐसी अनुमति मांगी जाती है तो अध्यक्ष उस सदस्य को उस स्थिति में ही शुद्धि करने की अनुमति देता है जब उससे मंत्री द्वारा दिये गये उत्तर पर कोई प्रभाव न पड़ता हो।[144]

प्रश्नों/वक्तव्यों के उत्तरों में शुद्धि यथासम्भव शीघ्र[145] सामान्यतः एक हफ्ते के भीतर[146] करनी होती है। अध्यक्ष का विनिर्णय है कि विलम्ब के मामले में, शुद्धि करने वाले वक्तव्य में विलम्ब के कारणों का भी उल्लेख होना चाहिए।[147] तथापि, विलम्ब के बारे में दिये गये कारणों से संतुष्ट होने पर अध्यक्ष इस शर्त में ढील दे सकता है।

गैर-सरकारी सदस्यों को संबोधित प्रश्न

प्रश्न किसी गैर-सरकारी सदस्य को भी संबोधित किया जा सकता है, बशर्ते उस प्रश्न का विषय किसी ऐसे विधेयक, संकल्प अथवा सभा के किसी अन्य कार्य से संबंधित हो, जिसके लिए वह सदस्य उत्तरदायी हो। ऐसे प्रश्नों के संबंध में वही प्रक्रिया अपनाई जाती है जो मंत्री को संबोधित प्रश्नों के संबंध में अपनाई जाती है और उसमें ऐसे परिवर्तन किए जा सकते हैं जो अध्यक्ष आवश्यक या सुविधाजनक समझे। सामान्यतः ऐसे प्रश्नों के संबंध में अनुपूरक प्रश्नों के लिए अनुमति नहीं दी जाती। तथापि, अनुरोध किए जाने पर स्पष्टीकरण की अनुमति दी जा सकती है।[148]

ऐसे प्रश्न की सूचना सम्बोधित सदस्य को उसकी राय जानने के लिए भेजी जाती है। उसकी राय प्राप्त हो जाने पर उस प्रश्न को यथास्थिति गृहीत या अस्वीकृत किया जा सकता है। यदि सदस्य की ओर से उस बारे में कोई प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं होती तो उस प्रश्न के संबंध में कोई कार्यवाही नहीं की जाती है। जब ऐसे प्रश्न का उत्तर किसी समिति का सभापति देता है तो वह गैर-सरकारी सदस्य की हैसियत से नहीं बल्कि समिति की ओर से उत्तर देता है।[149]

लोक सभा में प्रश्न अध्यक्ष को सम्बोधित नहीं किए जा सकते।[150]

---

144. *एल.एस. डिबेट्स,* 12.4.1960, कॉ. 11152; 13.4.1960, कॉ. 11475 ।
145. पूर्वोक्त 12.8.1966, का. 4559-61; 24.8.1966 का. 6801-05; 29.11.1966 का 5936-39 ।
146. निदेश 16(iv)।
147. *एल.एस. डिबेट्स,* 30.11.1966 का 6331; 21.12.04, का 408-16, ता.प्र.सं. 87, 7.12.2008 ।
148. नियम 40; *लो.स.वा.वि.,* 30.4.1957, 28.7.1966, पृ. 116-17; 30.11.1966; 17.7.1967; 18.7.1967; 28.2.1968; 19.4.1968; *एल.ए. डिबेट्स,* 23.1.1923, पृ. 1368; *एल.एस. डिबेट* 6.9.19 का. 42-44 ।
149. *लो.स.वा.वि.,* 30.4.1975 ।
150. *एल.ए. डिबेट्स,* 5.9.1928, पृ. 224 ।

> तथापि कुछ ऐसे अवसर आए हैं जब केन्द्रीय विधान सभा के पीठासीन अधिकारी को प्रश्न सम्बोधित किए गए और वस्तुत: उसने सभा में उन प्रश्नों का उत्तर भी दिया।[151] किन्तु 1937 के बाद ऐसा कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं हुआ कि जब अध्यक्ष से कोई प्रश्न पूछा गया हो।

अब यह परिपाटी बन चुकी है कि अध्यक्ष के प्रशासनिक नियंत्रण के अन्तर्गत विषयों के संबंध में प्रश्न स्वीकार नहीं किए जाते, और अध्यक्ष के निर्देश पर उनके संबंध में सदस्यों को मौखिक रूप से जानकारी दे दी जाती है।[152]

प्रश्नों की ग्राह्यता संबंधी शर्तें

प्रश्न लोक-महत्व के किसी ऐसे विषय पर जानकारी प्राप्त करने के लिए पूछे जाते हैं जो उस मंत्री के विशेष संज्ञान में हो जिसे वह संबोधित किया गया हो। तथापि, प्रश्न पूछने का अधिकार कतिपय शर्तों के अधीन है जिनका विवरण निम्नलिखित है।[153]

प्रश्न स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होना चाहिए और इतना अधिक सामान्य नहीं होना चाहिए कि उसका कोई विशिष्ट उत्तर न दिया जा सके अथवा सूचक प्रकृति का भी नहीं होना चाहिए: प्रश्न जो अस्पष्ट हैं अथवा अत्यंत सामान्य रूप के हैं अथवा जानकारी लेने के बजाय देने के लिए पूछे गए हैं वे ग्राह्य नहीं होते। तथापि, लोक महत्व के मामलों से सम्बन्धित प्रश्न जो लक्ष्यहीन, विस्तृत और अस्पष्ट स्वरूप के हों उनको ग्राह्य बनाने के लिए सदस्य की अनुमति से उनमें संशोधन किया जा सकता है। छठी लोक सभा के नौवें सत्र के दौरान, एक सदस्य बी.सी. कांबले ने प्रश्न की सूचना देते हुए नए विमानों और सह-उपस्करों की खरीद के संबद्ध में पर्यटन और नागर विमानन मंत्रालय के निर्णय के विषय में जानना चाहा। चूँकि प्रश्न अत्यंत विस्तृत सामान्य रूप का और अस्पष्ट था जिसका निर्दिष्ट उत्तर दिया जाना कठिन होता, अत: सदस्य को सूचित करते हुए प्रश्न को यथोचित रूप में संशोधित कर लिया गया। तथापि, ऐसे ही विषय पर एक अन्य प्रश्न पहले ही गृहीत कर लिया गया था, अत: उक्त सदस्य का नाम

---

151. *पूर्वोक्त,* 10.1.1922, पृ. 1366; 12.3.1923, पृ. 3229-30; 11.9.1928, पृ. 505-06; 14.9.1928, पृ. 739-62; 16.9.1936, पृ. 1142-43 ।

152. *पूर्वोक्त,* 24.9.1929, पृ. 1328-29; ऐसे भी कई मामले आए हैं जब अध्यक्ष के प्रशासनिक नियन्त्रण के अधीन होने के कारण उनसे सम्बन्धित प्रश्नों को अस्वीकार कर दिया गया है जैसे उदाहरणार्थ, संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरो द्वारा आयोजित विचारगोष्ठी के बारे में जानकारी; संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में चित्र लगाए जाने; सत्रावधियों के दौरान संसदीय कार्यवाही का दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण; लोक सभा की कार्यवाही में राजभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग किए जाने; संसद सदस्यों को मकानों के आवंटन संबंधी नीति/मार्गनिर्देश; भूतपूर्व संसद सदस्यों द्वारा सरकारी आवास का रखा जाना या उसे खाली किया जाना; एशियाई संसद संस्था; राष्ट्रमण्डल संसदीय सम्मेलनों में भाग लेने और अध्ययन दौरों के लिए राज्य विधानमण्डलों के सचिवों के दौरे, विदेशों की यात्रा पर जाने वाले संसदीय शिष्टमण्डलों इत्यादि से संबंधित प्रश्न ।

153. नियम 41 ।

पहले से ही गृहीत उस प्रश्न के साथ जोड़ लिया गया। तथापि, 22 अगस्त, 1979 को लोक सभा के भंग हो जाने के कारण यह प्रश्न लिया नहीं जा सका।[154]

प्रश्न में कोई ऐसा नाम या कथन नहीं होना चाहिए जो प्रश्न को बोधगम्य बनाने के लिए सर्वथा आवश्यक न हो : प्रश्न गृहीत करते समय उसके मूल पाठ में आये व्यक्तियों के नाम सामान्यत: हटा दिये जाते हैं। परन्तु किसी अधिकारी के नाम का यदि उल्लेख हो तो केवल उसका पद नाम दिया जा सकता है, बशर्ते प्रश्न को बोधगम्य बनाने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो। अध्यक्ष ने अनुपूरक प्रश्न पूछते समय व्यक्तियों के नाम लिये जाने की प्रवृत्ति को अनुचित बताया।[155] परन्तु कोई सदस्य यदि यह समझे कि कुछ ऐसे नाम हैं जिनकी सूचना मंत्री को देना आवश्यक है, तो उसे अध्यक्ष यह कह सकता है कि वह वे नाम संबंधित मंत्री को बता दे।[156] अपवादस्वरूप कुछ मामलों में जहां प्रश्न को बोधगम्य अथवा स्वत: पूर्ण बनाने के लिए नामों का दिया जाना आवश्यक समझा गया, ऐसा करने की अनुमति दी गई है।[157]

यदि किसी प्रश्न में कोई कथन हो, तो सदस्य को उसकी परिशुद्धता के लिए उत्तरदायी होना पड़ेगा: इस शर्त में जिस उत्तरदायित्व की बात की गयी है, वह नैतिक उत्तरदायित्व है; कानूनी नहीं। यदि अंततोगत्वा वह कथन असत्य और निराधार निकले तो संबंधित सदस्य अध्यक्ष द्वारा निंदा का पात्र हो जाता है। जहां किसी प्रश्न में कही गयी किसी बात के समर्थन में सदस्य से कोई प्रथम दृष्टया साक्ष्य देने के लिए कहा जाए, और वह ऐसा साक्ष्य न दे सके, तो अध्यक्ष उस प्रश्न को अस्वीकार कर सकता है।[158] सातवीं लोक सभा के पंद्रहवें सत्र के दौरान, एक सदस्य श्री चंद्रपाल शैलानी ने एक तारांकित प्रश्न हेतु सूचना दी जो सलेमपुर (उ.प्र.) में प्रस्तावित एरोमैटिक काम्पलैक्स को केरल स्थानांतरित करने के संबंध में था। प्रश्न को अनंतिम रूप से गृहीत करते हुए समाचार संदर्भ के बिना यथा प्रस्तुत रूप में मंत्रालय को भेजा गया। मंत्रालय ने अपने नोट में लिखा कि उक्त प्रश्न तथ्याधारित नहीं है। परिणामस्वरूप उसे अस्वीकार कर दिया गया।

जब कोई सदस्य अपने किसी प्रश्न में दिये गये तथ्यों के सत्य होने का प्रमाण दे और अध्यक्ष उससे संतुष्ट हो जाए तो उस प्रश्न को इस तथ्य के बावजूद गृहीत कर दिया जाता है कि जिस मंत्री को वह प्रश्न भेजा गया था, उसने भिन्न मत प्रकट किया है। सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा 24 सितम्बर 1988 को कुछ अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों को प्रतिबंधित सामान

---

154. *मैनुअल ऑन बिजनस एंड प्रोसीज़र* (1989 संस्करण) (पृष्ठ 222-23, नोट-XIV)।

155. *लो.स.वा.वि.*, 6.3.1954, कॉ. 758; 9.12.1964, पृ. 1653; 4.8.1978, पृ. 2; 22.12.1978, पृ. 13-14; 6.3.1981, पृ. 9; 13.3.1981, पृ. 3-4; 19.3.1982, पृ. 15-18; 23.3.1988, पृ. 20 (ता. प्र.सं. 411); 30.3.1988, पृ. 1 (ता. प्र.सं. 511); 8.4.1988; पृ. 13, (ता. प्र. सं., 620)।

156. *पूर्वोक्त,* 26.3.1957, पृ. 100 ।

157. *एल.एस. डिबेट्स,* 30.3.1979, कॉ. 454; *लो.स.वा.वि.*, 6.8.1980, पृ. 60; 19.4.1983, पृ. 192-93; 2.3.1984, पृ. 205-6; 18.4.1984, पृ. 196; 31.7.1984, कॉ. 11-12; 11.4.1986, पृ. 28-29; और 14.11.1986, पृ. 121-22 ।

158. *एच.पी. डिबेट्स* (I), 20.5.1952, कॉ. 51 ।

लाने के लिये मुंबई के सहारा हवाई अड्डे पर रोकने/गिरफ्तार करने के संबंध में एक प्रश्न वित्त मंत्रालय को भेजा गया था जिसने बताया कि उस तिथि को किसी भी अति महत्वपूर्ण व्यक्ति को रोका/गिरफ्तार नहीं किया गया। तत्पश्चात् वह सदस्य जिसे अपने इस वक्तव्य के समर्थन में उसके पास उपलब्ध जानकारी प्रदान करने का निवेदन किया गया था, ने बताया कि यह प्रश्न मुंबई के एक जाने माने उद्योगपति द्वारा मौखिक रूप से दी गई विश्वसनीय जानकारी के आधार पर तैयार किया गया है और उसके पास इससे संबंधित कोई दस्तावेज नहीं है। सदस्य के उत्तर को देखते हुए प्रश्न गृहीत कर लिया गया।[159]

समाचार-पत्रों में छपे समाचारों पर आधारित प्रश्न सामान्यत: तब तक ग्राह्य नहीं होते जब तक कि सदस्य तथ्यों की जिम्मेदारी नहीं लेता किन्तु यह शर्त अन्य देशों से संबंधित ऐसे मामलों और वहां घटने वाली ऐसी घटनाओं पर लागू नहीं होती जिनका भारत पर प्रभाव पड़ता हो, क्योंकि सदस्यों द्वारा अन्य देशों के मंत्रियों या सरकारों के भाषणों, उनके द्वारा किए गए उपायों या की गयी कार्यवाहियों के समाचारों आदि की सत्यता या असत्यता के संबंध में पता लगाया जाना सम्भव नहीं है।[160] अध्यक्ष ने अनुपूरक प्रश्न पूछते समय समाचार-पत्रों में प्रकाशित समाचारों का उद्धरण देने अथवा उनका उल्लेख करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं किया है।[161] तथापि, अन्य दृष्टि से स्वत: पूर्ण और लोक महत्व के मामले से संबंधित प्रश्नों को समुचित सम्पादन के पश्चात् गृहीत कर लिया जाता है और संशोधित पाठ के बारे में सदस्यों को जानकारी दे दी जाती है।[162]

किसी प्रश्न में तर्क, अनुमान, व्यंग्यात्मक शब्दावली, अभ्यारोपण, विशेषण या मानहानिकारक कथन नहीं होने चाहिए : प्रश्न पूछते समय सदस्य को विशेष जानकारी प्राप्त करने तक ही सीमित रहना चाहिए।[163] यदि किसी प्रश्न की सूचना में ऐसे शब्द, पदावलियां या अभिव्यक्तियां हों जिनमें तर्क, अनुमान, अभ्यारोपण, विशेषण या प्रासंगिक आनुषंगिक विषय हों या मानहानिकारक, असंसदीय, व्यंग्यात्मक, असंगत, शब्दाडम्बरपूर्ण या अन्यथा अनुपयुक्त बातें हों, तो अध्यक्ष अपने विवेक का उपयोग करते हुए ऐसे प्रश्न को परिचालित करने से पहले संशोधित कर सकता है।[164] सदस्य प्रश्नोत्तर काल का लाभ उठाकर एक ही प्रकार के अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछ सकता है।[165] सदस्य प्रश्नों के माध्यम से केवल जानकारी प्राप्त कर

---

159. सं ता. सं म. से 3029, 2.12.88 को उत्तर दिया गया।
160. *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स*(I), 23.2.1949, पृ. 1000-01; *लो.स.वा.वि.* (I), 24.7.1985, पृ. 65-66 और पृ. 144; 18.7.1986, पृ. 363, 410; 8.5.1987, पृ. 103; 14.8.1987, कॉ. 2005-06; 20.4.1988, पृ. 132 (अता. प्र.सं. 7646); 30.3.1995, कॉ. 1597 ।
161. *पूर्वोक्त,* 28.7.1980, पृ. 20-22 ।
162. *एल.एस. डिबेट्स,* 5.5.1987, कॉ. 19-20; (अता. प्र.सं. 2147), 14.3.2008 ।
163. *एल.एस. डिबेट्स,* 10.12.1956, कॉ. 1211 ।
164. नियम 43 ।
165. *एल.एस. डिबेट्स,* 6.4.1977, कॉ. 7; 4.5.1976, कॉ. 31 ।

सकते हैं और मंत्रियों के साथ बहस नहीं कर सकते।[166] परन्तु किसी मंत्री और सदस्य के बीच तथ्य पर आधारित किसी प्रश्न के संबंध में मतभेद होने की स्थिति में, अध्यक्ष ने संबंधित सदस्य को यह निदेश दिया है कि वह उस मामले को प्रत्यक्ष रूप से सभा में उठाने की बजाय पहले मंत्री का ध्यान उसकी ओर विशेष रूप से दिलाए।[167]

अध्यक्ष ने प्रश्न पूछने और उत्तर दिए जाने के दौरान सदस्यों पर आक्षेप किए जाने या सरकार को बुरा भला कहे जाने या बदनाम करने वाली बातें कही जाने या व्यंग्यात्मक बातें कही जाने या यह आरोप लगाए जाने कि कोई व्यक्ति किसी विशेष अभिप्राय से कोई बात कह रहा है, जैसी बातों की निंदा की है।[168] जहां तक व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप लगाने की बात है, सदस्यों से यह कहा गया है कि वे अपने कथनों की सत्यता की जांच कर लें, क्योंकि एक बार सार्वजनिक रूप से कोई आरोप लगा दिये जाने पर, चाहे वह सिद्ध हो या न हो, संबंधित व्यक्ति पर उसका ऐसा प्रभाव होता है जिसे दूर नहीं किया जा सकता, विशेषकर इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जिन व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप लगाए जाते हैं उन्हें सभा के सामने आकर अपनी स्थिति स्पष्ट करने का कोई अवसर नहीं मिलता।[169] जब अनुपूरक प्रश्न पूछते समय व्यक्तियों, सरकारी कर्मचारियों या संस्थाओं के विरुद्ध आरोप लगाए जाते हैं, तो अध्यक्ष ऐसी बातों को सभा की कार्यवाही से निकालने का आदेश देता है और उन बातों को समाचारपत्रों में प्रकाशित करने का भी निषेध कर देता है।[170]

प्रश्न में किसी विषय पर राय प्रकट करने या विधि संबंधी किसी गूढ़ प्रश्न या किसी काल्पनिक समस्या के समाधान के लिए मांग नहीं की जानी चाहिए: जिन प्रश्नों में सुझाव दिए गए हों या राय दी गयी हो या किसी विषय के संबंध में सरकार की राय मांगी गयी हो या काल्पनिक समस्या उठाई गई हो उन्हें नियमानुकूल नहीं माना जाता।[171] जिन प्रश्नों में किसी सारभूत विधिक मुद्दे के बारे में मत जानने का प्रयास किया गया हो वे अग्राह्य होते हैं।[172]

---

166. *पूर्वोक्त,* 16.12.1957, पृ. 2740; 27.4.1976, पृ.11, 18 (ता. प्र.सं. 362), 17.4.2008 ।
167. *लो.स.वा.वि.,* 21.8.1958 ।
168. *पूर्वोक्त,* 22.8.1957, पृ. 4168; 17.2.1959, पृ. 703-4; 13.8.1959, पृ. 15-16; 26.11.1980, पृ. 9-10 ।
169. *लो.स.वा.वि.* 20.8.1957, पृ. 3962-63; 24.4.1959, पृ. 6272; 29.2.1960, पृ. 1508; 6.3.1981, कॉ. 14; 13.3.1981, पृ. 276-85 और पृ. 324-34; अता. प्र.सं. 3029, 2.12. 1988 ।
170. *पूर्वोक्त,* 21.12.1954, कॉ. 2731-33; 29.4.1959, पृ. 6622-24; 17.11.1980, पृ. 13; 9.12.1983, पृ. 12-13; 25.3.1985, पृ. 19; और 14.8.1987, पृ. 29 ।
171. *पूर्वोक्त,* 15.5.1956, पृ. 2415; 1.4.1958, पृ. 3639; 24.8.1959, पृ. 2035; 21.6.1971, पृ. 12; 28.7.1971, पृ. 8; 30.7.1971, पृ. 12-13; 13.6.1977, पृ. 4-5; 6.7.1977, पृ. 4; 25.7.1977, पृ. 12-13; और *एल.एस. डिबेट्स,* 4.12.1980, कॉ. 19-20 ।
172. *देखिए* नियम 41(2)(V) ।

संविधान या कानूनों या नियमों के निर्वचन संबंधी प्रश्न या उनमें संशोधनों के लिए सुझाव देने अथवा ऐसे कानूनों तथा नियमों का ब्यौरा जानने के लिए पूछे गए प्रश्न अग्राह्य होते हैं।[173] सातवीं लोक सभा के पंद्रहवें सत्र के दौरान एक प्रश्न को इसलिए अग्राह्य किया गया चूँकि उसमें एक प्रस्ताव पर विधिक राय चाही गई थी।

प्रश्न में किसी व्यक्ति के पद या सार्वजनिक हैसियत के अतिरिक्त उसके चरित्र या आचरण के बारे में कोई बात नहीं पूछी जानी चाहिए : सदस्य को सरकार के किसी भी कार्य की आलोचना करने की पूरी स्वतंत्रता है, परन्तु जहां तक किसी व्यक्ति के विरुद्ध मानहानिकारक वक्तव्य देने का संबंध है, उसे इस संबंध में सभा में वाक्-स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। दसवीं लोक सभा के दूसरे सत्र के दौरान, एक प्रश्न को इसलिए अग्राह्य किया गया क्योंकि उसमें व्यक्ति विशेष पर आक्षेप किया गया था।[174]

जिन प्रश्नों में किसी व्यक्ति के प्रति व्यक्तिगत आक्षेप हों और जिनका उद्देश्य सरकार के किसी अधिकारी या किसी व्यक्ति का समर्थन करना या उसको बदनाम करना हो, वे गृहीत नहीं किए जा सकते, क्योंकि ऐसी बात सार्वजनिक हित में नहीं है कि किसी अधिकारी के गुणों या अवगुणों या किसी व्यक्ति के आचरण पर इस प्रकार की चर्चा की जाए।[175]

प्रश्न में साधारणतः 150 से अधिक शब्द नहीं होने चाहिए : लम्बे प्रश्न को अन्यथा ग्राह्य होने पर जहां सम्भव हो, उसे समुचित रूप से संक्षिप्त कर दिया जाता है या उसे दो या तीन अलग-अलग स्वतः पूर्ण प्रश्नों में विभक्त कर दिया जाता है। जब ऐसा किया जाता है तो उस प्रश्न की सूचना देने वाले सदस्य और संबंधित मंत्री को प्रश्न के गृहीत रूप से अवगत करा दिया जाता है।

जो प्रश्न अनुचित रूप से लम्बा हो, परन्तु अन्यथा महत्वपूर्ण हो तो उसके अनावश्यक भागों तथा शब्दों को हटाकर और उसके मूल आशय को ज्यों का त्यों रखते हुए उसे गृहीत कर लिया जाता है।

जब कोई प्रश्न मौखिक उत्तर के लिए आ जाए तो सदस्यों को उस पर लम्बे अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाती। अनुपूरक प्रश्नों का संक्षिप्त और ठोस होना आवश्यक है।[176] यह विनिर्णय बार-बार दिया गया है कि ये प्रश्न सीधे, प्रत्यक्ष, प्रासंगिक और मुख्य प्रश्न

---

173. *लो.स.वा.वि.,* 16.5.1956, पृ. 2463-64; *एल.एस. डिबेट्स,* 4.9.1957, कॉ. 11472; 26.11.1957, कॉ. 2225; *लो.स.वा.वि.,* 30.11.1960, पृ. 1504-5; 17.5.1966, पृ. 8786-87 ।

174. *एल.ए. डिबेट्स,* 12.3.1937, पृ. 1825-27; *एल.एस. डिबेट्स,* 20.8.1957, कॉ. 8823 ।

175. *एच.पी. डिबेट्स* (I), 8.12.1950, कॉ. 741; 11.8.1953, कॉ. 458-59; *एल.एस. डिबेट्स,* 26.3.1957, कॉ. 150-53 ।

176. *एल.एस. डिबेट्स,* 30.7.1957, कॉ. 2650-51; *लो.स.वा.वि.,* 4.7.1977, पृ. 21; 30.6.1980, पृ. 2; 1.7.1980, पृ. 2-3; *एल.एस. डिबेट्स,* 25.4.1983, कॉ. 25 और 22.3.1990, कॉ. 1 ।

के विषय से ही संबंधित हों।[177] अध्यक्ष ने अनुपूरक प्रश्न पूछने के बहाने लम्बा भाषण देने,[178] तैयार की गई विषय सामग्री से पढ़ने[179] और किसी एक ही अनुपूरक प्रश्न में अनेक बातें पूछने की प्रवृत्ति की निंदा की है।[180]

प्रश्न ऐसे विषय से संबंधित नहीं होना चाहिए जो मुख्यतया भारत सरकार का विषय न हो: राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले विषयों अर्थात् संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-दो अर्थात् राज्य सूची में उल्लिखित विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त करने वाले प्रश्नों को सामान्यत: अस्वीकृत कर दिया जाता है।[181] किसी ऐसे विषय से, जो भारत सरकार का विषय नहीं है, संबंधित प्रत्येक प्रश्न को गुण-दोष के आधार पर गृहीत करने का अधिकार अध्यक्ष को है। ऐसे मामलों में लोक महत्व के आधार पर निर्णय किया जाता है। यदि देश में पीलिया, एड्स आदि के फैलने से स्वास्थ्य सम्बंधी खतरे की आशंका हो अथवा कानून का मामला हो या प्रश्न अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और अल्पसंख्यकों पर अत्याचार, साम्प्रदायिक दंगों जैसे हों तो अध्यक्ष ऐसी सूचनाएं स्वीकार करने के लिए कह सकता है। किसी राज्य के प्रशासन की नीति की जानकारी के बजाय केवल सूचना की माँग करने वाले प्रश्नों को सामान्यत: गृहीत कर लिया जाता है। कुछ मामलों में राज्य की नीतियों से संबंधित प्रश्नों को गृहीत किया जा सकता है बशर्ते वे (1) अखिल भारतीय महत्व अथवा हित के विषयों से संबंधित हों[182]; (2) ऐसी नीतियों अथवा मामलों से संबंधित हों जहां भारत

---

177. *पूर्वोक्त,* 5.4.1977, पृ. 10; *एल.एस. डिबेट्स,* 28.7.1977, कॉ. 18-19; 17.4.1978, कॉ. 30; *लो.स.वा.वि.,* 17.6.1980, पृ. 14; 21.7.1980, पृ. 11-12; 28.7.1980, पृ. 24; 7.4. 1982, पृ. 5; 25.3.1983, पृ. 8-9; 9.8.1984, पृ. 2-3, 17; 6.11.1987, पृ. 4-8 (ता. प्र.सं.-1); 10.12.1987, पृ. 5-6 (ता. प्र.सं. 499); 10.8.1990, पृ. 17-18 (ता. प्र.सं. 66); और 17.3.2006, कॉ. 24 ।

178. *पूर्वोक्त,* 28.2.1983, पृ. 15-16; 21.3.1983, पृ. 17-18; 16.4.1985, पृ. 5-6; 7.5.1985, पृ. 5-8; 14.8.1987, पृ. 1 (ता. प्र.सं. 264); और 5.4.1990, पृ. 15 (ता. प्र.सं. 340)।

179. *पूर्वोक्त,* 3.5.1985, पृ. 4; 15.5.1985, पृ. 24; 30.4.1986, पृ. 10-11 ।

180. *पूर्वोक्त,* 23.2.1981, पृ. 13; 30.4.1982, पृ. 1-4; 21.7.1982, पृ. 12; 16.8.1983, पृ. 22; 14.5.1985, पृ. 4-5 ।

181. *पूर्वोक्त,* 26.5.1971, कॉ. 13; *लो.स.वा.वि.,* 13.8.1984, पृ. 6-7 ।

182. *पूर्वोक्त,* 21.2.1979, पृ. 149-50; 2.7.1980, पृ. 92; 3.3.1982, पृ. 75; 14.3.1985, पृ. 90-91; 11.12.1985, पृ. 49; 23.7.1986, पृ. 17-21; 5.11.1986, पृ. 12-13; 2.4. 1987, पृ. 139-44; 11.11.1987, पृ. 19-20 (ता.प्र.सं. 68); 18.11.1987, पृ. 46 (अता. प्र. सं. 1695); 26.11.1987, पृ. 16-18 (ता.प्र.सं. 293); 7.4.1988, पृ. 23-24 (ता. प्र.सं. 598)।

सरकार द्वारा अनुदान अथवा परामर्श दिया जाता है[183]; और (3) ऐसे सभी मामले जिनके संबंध में राज्य सरकारें भारत सरकार के एजेन्ट के रूप में कार्य करती हैं यद्यपि यह निर्धारित करने का काम राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया है कि वे किन-किन विषयों में सरकार के एजेन्ट के रूप में कार्य कर रही हैं।[184] अत: राज्य सरकार के कार्यक्षेत्र में पड़ने वाले[185] अखिल भारतीय महत्व के प्रश्न भी ग्राह्य होते हैं।[186]

कोई भी सदस्य राज्यों को दिये गये केन्द्रीय अनुदान अथवा सहायता के नियंत्रण, पर्यवेक्षण अथवा प्रशासन से संबंधित सभी मामलों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछ सकता है, यद्यपि राज्यों को धन केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया जाता है। और उसे खर्च करने तथा अपने पर्यवेक्षण में योजना को निष्पादित करने और कार्यक्रमों आदि को कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारें उत्तरदायी हैं, इस संबंध में तथापि ऐसा प्रश्न पूछा जाना नियमानुकूल है कि उस धन को किस प्रकार खर्च किया गया, किन-किन परियोजनाओं या प्रयोजनों के लिए उसे खर्च किया गया अथवा क्या उसे खर्च करते समय मितव्ययिता अथवा अपेक्षित सावधानी बरती गई थी या नहीं। इसके अतिरिक्त सदस्य केन्द्रीय अधिनियमों के प्रवर्तन/केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के कार्यान्वयन, रेल यात्रा में संरक्षा (क्योंकि यात्रियों की संरक्षा सुनिश्चित करना रेल प्राधिकारियों का काम है) आदि के बारे में भी प्रश्न पूछ सकते हैं।

प्रश्न में किसी समिति की ऐसी कार्यवाही के बारे में नहीं पूछा जाना चाहिए, जो सभा के समक्ष न रखी गयी हो: समिति की कार्यवाही को गोपनीय माना जाता है और किसी को इस बात की अनुमति नहीं होती कि वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समिति के अन्तिम या अनन्तिम प्रतिवेदन या निष्कर्ष सहित उसकी कार्यवाही के संबंध में, समिति के प्रतिवेदन को सभा में प्रस्तुत किये जाने से पहले, समाचारपत्रों को कोई जानकारी दे।[187] अत: किसी समिति की कार्यवाही के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से पूछे गये प्रश्न को गृहीत नहीं किया जाता। किसी समिति की कार्यवाही के संबंध में जानकारी मांगने के उद्देश्य से पूछे गये अनुपूरक प्रश्नों को भी नियम विरुद्ध ठहराया गया है।[188]

---

183. *पूर्वोक्त,* 16.5.1985, पृ. 39-40; 7.8.1986; 6.11.1986, पृ. 35-86, 170; 4.12.1986, पृ. 51-52; 7.5.1987, पृ. 148-49; 9.11.1987, पृ. 206-07 (अता. प्र.सं. 340); 12.11.1987, पृ. 27 (अता. प्र.सं. 882); 10.12.1987, पृ. 75-76 (अता. प्र.सं. 5124); 10.3.1988, पृ. 61-62 (अता. प्र.सं. 2386); 21.3.1988; पृ. 159-60 (अता. प्र.सं. 4045); 12.5.1988, पृ. 55-56 (अता. प्र.सं. 10689)।

184. *पूर्वोक्त,* 16.5.1985, पृ. 36; 19.11.1987, पृ. 169-70 (अता. प्र.सं. 2005); 2.12.1987, पृ. 105 (अता. प्र.सं. 3909); *एल.एस. डिबेट्स,* 9.12.1987, कॉ. 35 (ता. प्र.सं. 491); *लो.स. वा.वि.,* 24.3.1988, पृ. 76 (ता. प्र.सं. 4546); (अता. प्र.सं. 41), 17.10.2008 ।

185. *पूर्वोक्त,* 4.5.1961, पृ. 6952-58; 9.8.1961, पृ. 465-66 और 542-43 ।

186. साथ ही *देखिए* आगे अध्याय 41—"संसद और राज्य"।

187. निदेश 55 ।

188. *एल.एस. डिबेट्स,* 9.3.1954, कॉ. 849 ।

प्रश्न में किसी ऐसे व्यक्ति के चरित्र या आचरण पर आक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, जिसके आचरण पर मूल प्रस्ताव के द्वारा ही आपत्ति की जा सकती हो: संविधान के उपबन्धों के अंतर्गत[189], कुछ पदों पर आसीन व्यक्तियों, जैसे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, अध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, मुख्य निर्वाचन आयुक्त और नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के आचरण पर सभा में चर्चा नहीं की जा सकती है, जब तक कि इसके लिए मूल प्रस्ताव न रखा गया हो। अत: इन विषयों पर प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते।

प्रश्न में किसी व्यक्ति के आचरण पर दोषारोपण नहीं किया जाना चाहिए और न ही ऐसा कोई संकेत होना चाहिए: अध्यक्ष ने प्रश्नों और उत्तरों में आक्षेप करने और व्यक्तिगत बातों को लाने की निंदा की है।[190] छठी लोक सभा के सातवें सत्र के दौरान अध्यक्ष ने एक प्रश्न को अस्वीकार करते हुए टिप्पणी की कि यह प्रश्न अत्यंत वैयक्तिक स्वरूप का है और जिसके विरुद्ध पूछा जा रहा है उसके चरित्र पर आक्षेप करता है। लोक सभा की कार्यवाही का एक ऐसा भाग अध्यक्ष के आदेश द्वारा कार्यवाही वृत्तांत से निकाल दिया गया था, जिसमें एक सदस्य द्वारा पूछा गया एक अनुपूरक प्रश्न ऐसा था जिसमें आक्षेप किया गया था और कुछ जिम्मेदार व्यक्तियों के व्यक्तिगत आचरण पर दोषारोपण किया गया था।[191]

प्रश्न में नीति संबंधी ऐसे मामले नहीं उठाए जाने चाहिए जो इतने विशद हों कि प्रश्न के उत्तर की सीमा में न आ सकें[192]: नीति संबंधी जिन विषयों पर बजट पर चर्चा के दौरान अधिक अच्छी तरह चर्चा की जा सकती है या जिन्हें संकल्प या प्रस्ताव के माध्यम से उठाया जा सकता है, वे किसी प्रश्न का विषय नहीं हो सकते।[193] इसके अतिरिक्त, ऐसे प्रश्नों की अनुमति नहीं दी जाती जिनका उद्देश्य उस नीति में परिवर्तन करना हो, जिसे सभा पहले स्वीकार कर चुकी हो।[194]

प्रश्न जिनके उत्तर पहले दिये जा चुके हैं या जिनका उत्तर देने से इन्कार कर दिया गया हो की सारत: प्रश्नों में पुनरावृत्ति नहीं की जानी चाहिए: जिन प्रश्नों का उत्तर पहले ही पूरी तरह दिया जा चुका हो उनकी पुनरावृत्ति करना प्रश्न पूछने के अधिकार का दुरुपयोग माना जाता है या यह समझा जाता है कि उनका उद्देश्य सभा की प्रक्रिया में बाधा डालना या उस

---

189. अनुच्छेद 61, 94 (ग), 121 और 148 ।

190. *एच.पी. डिबेट्स* (I), 11.8.1953, कॉ. 458-59 ।

191. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.7.1956; 11.8.1978, पृ. 9; और 16.6.1980, पृ. 21-22।

192. नियम 42 (i) (xii); *एल.ए. डिबेट्स,* 18.9.1935, पृ. 2168-69; *एल.एस. डिबेट्स,* 23.12 1954, पृ. 2288-90; *एल.एस. डिबेट्स,* 9.4.1956, कॉ. 1960; 18.8.1958, पृ. 642-43; 24.2.1966, पृ. 3439; 5.7.1977, पृ. 2-3; और *एल.एस. डिबेट्स,* 23.3. 1978, कॉ. 23।

193. *एल.एस. डिबेट्स,* 9.4.1956, कॉ. 1960; *लो.स.वा.वि.,* 27.8.1958, पृ. 1526; और 17.12.1968, पृ. 6 ।

194. *पूर्वोक्त,* 28.3.1957, कॉ. 236; *लो.स.वा.वि.,* 29.7.1957, पृ. 2545; 12.2.1960, पृ. 331-32; और 18.4.1960, पृ. 5590-91 ।

पर प्रतिकूल प्रभाव डालना है। जिन प्रश्नों का सारतः उत्तर दिया जा चुका हो उन्हें गृहीत नहीं किया जाता है। जिन प्रश्नों के कुछ भागों का उत्तर सभा में पहले से दिये गये उत्तरों में आ जाता हो, उस प्रश्न को गृहीत करते समय ऐसे भाग निकाल दिये जाते हैं और संबंधित सदस्यों को उन पहले पूछे गये प्रश्नों की जानकारी दे दी जाती है जिनके उत्तर में वे बातें आ गई हों। यदि कोई ऐसा प्रश्न हो, जो सारतः उस प्रश्न की पुनरावृत्ति हो, जिसका उत्तर पहले दिया जा चुका है, तो इस बात की ओर सचिवालय का ध्यान दिलाना संबंधित मंत्रालयों का काम है।[195]

जब किसी मंत्री ने किसी प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार कर दिया हो, तो उसी विषय पर बाद में प्राप्त होने वाले प्रश्न स्वीकार नहीं किये जाते।

सामान्यतः किसी प्रश्न को केवल इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जाता कि उस में मांगी गई जानकारी देना लोकहित में नहीं है। यह मंत्री का काम है कि वह लोकहित में ऐसे प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार करे।[196] तथापि, अपवादात्मक परिस्थितियों में अध्यक्ष किसी ऐसे प्रश्न को अस्वीकार कर सकता है जिसमें ऐसी जानकारी मांगी गयी हो, जिसका प्रचार करना राष्ट्रीय हित में न हो, जैसे कि सेना की तैनाती, शस्त्रों के निर्माण की प्रक्रिया आदि।[197]

प्रश्न में तुच्छ विषयों पर जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए: ऐसे प्रश्नों के लिए निरुत्साहित किया जाता है जिनमें तुच्छ विषयों पर जानकारी मांगी गयी हो अथवा महत्वहीन बातें पूछी गयी हों या जो सर्वथा स्थानीय विषयों से संबंधित हों।[198] अध्यक्ष ने सदस्यों को यह राय दी है कि वे ऐसे प्रश्नों के संबंध में पहले तो स्थानीय अधिकारियों या संबंधित मंत्री अथवा सलाहकार समिति से बातचीत करें और अन्तिम विकल्प के रूप में ही ऐसे प्रश्नों को सभा के सामने लाएं।[199]

प्रश्न में गोपनीय विषयों पर जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए : किसी गोपनीय पत्र अथवा पत्राचार के संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता, लेकिन यदि वह पत्र अथवा समाचार सार्वजनिक हो जाता है और उससे संबंधित प्रश्न की सूचना नियमानुकूल होती है और अध्यक्ष ऐसे प्रश्न को मामले के गुणावगुणों के आधार पर गृहीत कर सकता है।

---

195. *लो.स.वा.वि.,* 1.12.1954, पृ. 948-49 ।

196. *पूर्वोक्त,* 28.7.1956, पृ. 404; 13.8.1959, पृ. 1129-30; 3.9.1959, पृ. 3079-80; *एल.एस. डिबेट्स,* 24.11.1959, कॉ. 1358-60; 4.4.1960, कॉ. 9530-35; 13.8.1962, पृ. 375-78; 22.4.1963, पृ. 4809; 27.4.1976, कॉ. 31-33; 9.3.1979, कॉ. 240; 11.4.1979, पृ. 95; 11.6.1980, पृ. 45; 9.7.1980, 15.9.1981, पृ. 200; 26.2.1982, पृ. 101-03; 26.7.1983, पृ. 383-84; 3.12.1986, पृ. 45; 22.3.1988, पृ. 166; (अता. प्र.सं. 4253)।

197. *एल.एस. पूर्वोक्त,* 24.11.1959, कॉ. 1358-60; 15.2.1960, पृ. 771-73 ।

198. *एच.पी. डिबेट्स* (1), 19.4.1954, कॉ. 2106; *एल.एस. डिबेट्स* (1), 24.2.1956, कॉ. 203; 22.3.1956, कॉ. 1333-34; अता. प्र.सं. 708, 26.7.1984; अता. प्र.सं. 2679, 9.8.1984 ।

199. *एल.एस. डिबेट्स,* 28.3.1987, का. 238-39; *साथ ही देखिए पी. डिबेट्स* (1), 24.9.1951, कॉ. 1614-15 ।

प्रश्न में साधारणतः अतीत के इतिहास के विषयों पर जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए: जिन प्रश्नों में अतीत के इतिहास की चर्चा हो या जो उन विषयों पर आधारित हों जो ऐतिहासिक या सैद्धांतिक स्वरूप के हैं, उन्हें गृहीत नहीं किया जाता है।[200]

प्रश्न में ऐसी जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए जो सुलभ दस्तावेजों या साधारण संदर्भ ग्रंथों में दी गई हो: जिन प्रश्नों में ऐसी जानकारी मांगी गयी हो, जो राजपत्रों, प्रतिवेदनों, दस्तावेजों, पुस्तकों और पत्रों में उपलब्ध हो, उन्हें गृहीत नहीं किया जाता। ये संदर्भ सामान्यतः पुस्तकालय में उपलब्ध होते हैं। जहां सदस्य अपनी सुविधानुसार उन्हें देख सकते हैं। राज्य सभा के पिछले सत्रों की कार्यवाही को उपलब्ध दस्तावेज माना गया है और यदि किसी प्रश्न का उत्तर इस कार्यवाही में मिलता हो तो उसे लोक सभा में गृहीत नहीं किया जाता। इसी प्रकार, यदि किसी प्रश्न का उत्तर लोक सभा की पिछली कार्यवाही में उपलब्ध हो तो उसे राज्य सभा में गृहीत नहीं किया जाता।

प्रश्न में ऐसे संगठनों या व्यक्तियों के नियंत्रण के अन्तर्गत विषय नहीं उठाए जाने चाहिए जो मुख्यतया भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी न हों : सामान्यतः ऐसा निजी कंपनियों/गैर-सरकारी संगठनों और स्वायत्तशासी निकायों के कार्यों के संबंध में प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते जो सरकार से कोई अनुदान नहीं लेते, तथापि, उनके संबंध में उसी सीमा तक प्रश्न पूछे जा सकते हैं जिस सीमा में उनका संबंध सरकार के कार्य से हो।[201] उन गैर-सरकारी संगठनों के संबंध में प्रश्न गृहीत किए जाते हैं जिन्हें सरकार ने अनुदान दिए हों।[202]

जो व्यक्ति मुख्यतया भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं, उनके वक्तव्यों पर आधारित प्रश्न लोक महत्व के आधार पर विशेष परिस्थितियों में स्वीकार किए जा सकते हैं।[203]

प्रश्न में किसी ऐसे विषय पर जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए जो भारत के किसी भी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय के विचाराधीन हो : ऐसे अनुपूरक प्रश्नों को जो किसी न्यायालय में चल रहे मुकदमे के ब्यौरे से संबंधित हों, नियम-विरुद्ध ठहराया गया

---

200. *पी. डिबेट्स,* 7.3.1950, पृ. 630; 16.5.1951, का. 4296 ।

201. *पी. डिबेट्स,* 20.8.1951, का. 435-36; साथ ही देखिए *एल.एस. डिबेट्स,* 26.8.1983, का. 290; 10.8.1984, कॉ. 298-300; 28.7.1987, का. 524 । 1988 में एक प्रश्न जिसमें यह पूछा गया कि क्या उस समय ओहियो स्टेट के एक पाँच-सदस्यीय शिष्टमंडल ने भारत का दौरा किया था, नियम (viii) के तहत अस्वीकार किया गया चूँकि यह दौरा पंजाब, हरियाणा और दिल्ली वाणिज्य परिसंघ ने आयोजित किया था जो गैर-सरकारी निकाय था और इसमें भारत सरकार की कोई जिम्मेदारी नहीं बनती थी।

202. *एल.एस. डिबेट्स,* 2.4.1960, का. 9296, ता.प्र.सं. 2460; 27.3.1979, पृ. 103-04; 19.3.1980, पृ. 59-61; *लो.स.वा.वि.,* 9.6.1980, कॉ. 716; और *लो.स.वा.वि.,* 16.12.1983, पृ. 159 ।

203. 19.8.1959, अता. प्र.सं. 1107 ।

है।[204] जिस विषय की जांच पुलिस द्वारा की जा रही हो, उसके संबंध में प्रश्नों की अनुमति देने से इस आधार पर इन्कार नहीं किया जा सकता कि मामला न्यायालय के विचाराधीन है, तथापि, अध्यक्ष ने ऐसे प्रश्नों के लिए निरुत्साहित किया है और सदस्यों को यह राय दी है कि यदि उनके पास किसी ऐसे विषय के संबंध में कोई विशेष और विश्वसनीय जानकारी हो, जिसके संबंध में पुलिस जांच कर रही हो, तो उन्हें चाहिए कि वे वह जानकारी अधिकारियों को दे दें।[205] इसी प्रकार जिस विषय के संबंध में विभागीय जांच की जा रही हो, उसको भी निरुत्साहित किया गया है, यद्यपि उसे न्यायालय के विचाराधीन होने के आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता।[206] विचाराधीन कैदियों से संबंधित प्रश्नों को भी नियम-विरुद्ध ठहराया गया है।[207] तथापि, किसी विशेष मामले में ऐसे प्रश्न गृहीत किए जा सकते हैं, जिनमें मात्र आंकड़ों अथवा तथ्यों के संबंध में और न कि मामले के गुणावगुणों के बारे में जानकारी मांगी गई हो, यद्यपि यह न्यायालय के विचाराधीन किसी मामले से संबंधित हो तथा इस जानकारी के प्रकट होने से मामले की जांच पर कोई प्रभाव न पड़ता हो।[208]

प्रश्न में साधारणतः ऐसे विषयों के बारे में नहीं पूछा जाना चाहिए जो किसी न्यायिक या अर्द्धन्यायिक कृत्य करने वाले किसी संविहित न्यायाधिकरण या संविहित पदाधिकारी के या किसी विषय की जांच या अनुसंधान करने के लिए नियुक्त किसी आयोग या जांच न्यायालय के सामने विचाराधीन हों किन्तु उसमें जांच की प्रक्रिया या विषय या प्रक्रम से संबंधित विषयों की ओर निर्देश किया जा सकता है, यदि उससे न्यायाधिकरण या आयोग या जांच न्यायालय द्वारा उस विषय पर विचार किये जाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना न हो: साधारणतः ऐसे विषयों के संबंध में प्रश्न स्वीकार नहीं किये जाते जिन की जांच की जा रही हो।[209] यह विनिर्णय दिया गया है कि किसी ऐसी जांच के संबंध में, जोकि चल रही हो, प्रश्न पूछना उचित नहीं है, क्योंकि इससे जांच के परिणाम पर प्रभाव पड़ सकता है।[210] ऐसे प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है, जिनमें किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति पर चलाये जा रहे मुकदमे की प्रगति के बारे में जानकारी मांगी गयी हो, परन्तु उस मामले के गुणावगुणों के

---

204. *पूर्वोक्त*, 5.5.1959, पृ. 7082 ।
205. *पूर्वोक्त*, 7.4.1958, पृ. 4163 ।
206. *पूर्वोक्त*,, 1.8.1958, पृ. 532-33 ।
207. *पी. डिबेट्स* (1), 21.2.1950, पृ. 364 ।
208. *लो.स.वा.वि.*, 25.2.1983, पृ. 41-42; 8.5.1984, पृ. 222-24; 13.8.1986, पृ. 38-39; 5.12.1986, पृ. 117; 24.3.1987, पृ. 34-35; 11.8.1987, पृ. 38; 22.11.2002, ता. प्र.सं. 74 ।
209. *एल.एस. डिबेट्स*, 7.4.1959, कॉ. 10222; 2002 में शिवानी भटनागर हत्याकांड के संबंध में ।
210. *पी. डिबेट्स*, 5.4.1950, पृ. 1310; *लो.स.वा.वि.*, 3.8.1977, पृ. 5-7; 1990 में बोफोर्स तोप सौदे के संबंध में।

संबंध में प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाती। उसी प्रकार इस संबंध में भी प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है कि किसी विशेष जांच के संबंध में सरकार किस प्रकार कार्य कर रही है और उस जांच की रिपोर्ट कब प्रस्तुत की जाएगी।[211] जब किसी जांच की प्रक्रिया या विषय या उसकी स्थिति के संबंध में प्रश्न स्वीकार किये जाते हैं तो उन्हें सामान्यत: अतारांकित प्रश्न के रूप में स्वीकार किया जाता है जिससे कि केवल तथ्यों पर आधारित जानकारी प्राप्त की जा सके।

प्रश्न में साधारणत: ऐसे विषयों पर जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए जो किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हों: साधारणत: किसी ऐसे विषय के संबंध में कोई प्रश्न स्वीकार नहीं किया जाता, जो किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हो।[212] विषयों को तब तक समिति के विचाराधीन माना जाता है जब तक कि समिति अपने प्रतिवेदन में सभा को यह सूचना न दे दे कि सरकार ने समिति द्वारा की गई मूल सिफारिशों पर क्या कार्यवाही की है।[213] तथापि, अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया है कि यदि सरकार ने किसी संसदीय समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित करने में बहुत देर लगा दी हो तो सदस्य उन सिफारिशों के संबंध में प्रश्न पूछ सकते हैं।[214]

प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति या सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति की सिफारिशों के संबंध में प्रश्न विशेष अवस्थाओं में स्वीकार किये जा सकते हैं। जहां किसी प्रश्न में किसी समिति की सिफारिशों का प्रत्यक्ष रूप से कोई उल्लेख न किया गया हो, यद्यपि समिति ने उस विषय पर विचार किया हो, तो वह प्रश्न तभी ग्राह्य होगा जबकि इसमें कुछ ऐसे तथ्यों की जानकारी मांगी गई हो जो समिति के प्रतिवेदनों में तत्काल उपलब्ध न हों।[215]

किसी समिति के प्रतिवेदन में दी गई सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही के अध्याय 1 और 4 (अर्थात् प्रतिवेदन और सरकार के वे उत्तर जो समिति ने अन्तिम रूप से स्वीकार नहीं किये हैं और जिन पर पुन: कार्यवाही की जानी है) में दी गई विशिष्ट सिफारिशों के संबंध में जानकारी मांगने वाले प्रश्न ग्राह्य होते हैं।

ऐसे प्रश्न ग्राह्य होते हैं जिनमें किसी समिति की विशिष्ट सिफारिशों के सम्बन्ध में जानकारी मांगी गयी हो और उन पर बहुत समय से कोई कार्यवाही न की गई हो तथा जिनके बारे में समिति को सरकार ने समुचित समय में यह न बताया हो कि सरकार ने उन पर क्या कार्यवाही की है।[216]

---

211. *पी. डिबेट्स* (1), 8.5.1951, कॉ. 4044-45; *एल.एस. डिबेट्स,* 2.8.1985, ता. प्र.सं. 164 ।
212. *एच.पी. डिबेट्स* (1), 17.4.1954, कॉ. 2042; *एल.एस. डिबेट्स,* 13.7.1967, ता.प्र.सं. 1111 ।
213. निदेश 102 ।
214. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.12.1959, कॉ. 6852; *लो.स.वा.वि.,* 15.3.1979, पृ. 73-74; *एल.एस. डिबेट्स,* 20.4.1979, कॉ. 89-90; 7.3.1986, ता. प्र.सं. 190 ।
215. *पूर्वोक्त,* 28.7.1978, कॉ. 181-82 ।
216. *लो.स.वा.वि.,* 15.3.1979, पृ. 73-74; *एल.एस. डिबेट्स,* 20.4.1979, कॉ. 89-90 ।

सामान्यतः लेखापरीक्षा रिपोर्ट के सम्बन्ध में सभा में तब तक कोई प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जाती, जब तक कि लोक लेखा समिति ने उस रिपोर्ट पर विचार न कर लिया हो। तथापि, लेखापरीक्षा रिपोर्ट के ऐसे विषयों से संबंधित प्रश्न अध्यक्ष द्वारा स्वीकार कर लिये जाते हैं, जो अभी लोक लेखा समिति के सामने न आए हों, मगर धोखाधड़ी के गम्भीर मामलों या सरकारी रुपये के गबन से सम्बन्धित हों।

जब प्रश्न लेखापरीक्षा रिपोर्ट पर आधारित हो और उसमें मांगी गयी जानकारी उस रिपोर्ट में हो, तो सामान्यतः उस प्रश्न की अनुमति नहीं दी जाती और सदस्य का ध्यान उस रिपोर्ट के संगत अंश की ओर दिलाया जाता है।

जब किसी प्रश्न में उससे अधिक जानकारी मांगी गयी हो, जितनी कि लेखापरीक्षा रिपोर्ट में दी गई हो और वह विषय महत्वपूर्ण न हो तो सामान्यतः उसे एक अतारांकित प्रश्न के रूप में स्वीकार किया जाता है जिससे कि वह जानकारी रिकार्ड पर आ जाए।

जहां कोई प्रश्न यद्यपि लेखापरीक्षा रिपोर्ट में दी गई जानकारी पर आधारित हो, परन्तु उसमें लोक महत्व का कोई विषय उठाया गया हो और यह वांछनीय समझा जाये कि वह जानकारी मौखिक उत्तर में दी जाये जिससे कि अनुपूरक प्रश्न पूछे जा सकें तो ऐसे प्रश्न को तारांकित प्रश्न के रूप में स्वीकार किया जाता है। ऐसी स्थिति में उसे लेखापरीक्षा रिपोर्ट से अलग कर दिया जाता है अर्थात् उसमें से उस रिपोर्ट का उल्लेख निकाल दिया जाता है और उस प्रश्न को स्वतः पूर्ण प्रश्न रहने दिया जाता है जिससे कि उसके स्वीकार करने से इस सामान्य नियम का उल्लंघन न हो कि सामान्यतः प्रश्न उन विषयों के बारे में न पूछे जाएं जोकि किसी लेखापरीक्षा रिपोर्ट में दिये गये हों।[217]

संसद सदस्यों की सलाहकार समिति में जिन विषयों पर चर्चा की गई हो उन्हें प्रश्न काल के दौरान उठाने की अनुमति नहीं दी जाती है अथवा इसकी कार्यवाही का प्रश्न काल के दौरान सभा में उल्लेख नहीं किया जाता।[218] तथापि, जहां सलाहकार समिति में चर्चित विषयों के बारे में समाचार पत्रों में कोई समाचार प्रकाशित हुआ हो अथवा समिति की ओर से प्रेस को कोई जानकारी दी गई हो तो ऐसे मामलों का प्रश्न काल के दौरान सभा में उल्लेख किया जा सकता है।[219]

प्रश्न उस विषय से संबंधित नहीं होना चाहिए जिससे मंत्री आधिकारिक रूप से संबंधित नहीं हो: किसी मंत्री द्वारा गैर-सरकारी हैसियत से कही गई या बताई गई किसी बात के संबंध में प्रश्नों को अनुमति नहीं दी जाती है।

प्रश्न में किसी मित्र देश के प्रति अशिष्ट बात नहीं कही जानी चाहिए : किसी विदेशी राज्य जिसके संबंध में भारत सरकार का कोई कार्यकारी अधिकार नहीं है, के प्रशासन और

---

217. *लो.स.वा.वि.*, 10.3.1988, पृ. 24 (ता. प्र.सं. 235)।

218. *लो.स.वा.वि.*, 31.7.1970, पृ. 12-13 ।

219. *पूर्वोक्त*, 5.8.1970, पृ. 15 ।

अन्य विषयों के संबंध में प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते। अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया है कि भारत सरकार ने जो विदेशी विशेषज्ञ बुलाए हों उनकी आलोचना नहीं की जानी चाहिए।[220] यह प्रश्न अग्राह्य माना गया है कि सरकार ने किसी नये देश को मान्यता देने से पहले क्या कसौटी अपनाई थी।[221]

प्रश्न में मंत्रिमंडल में की जाने वाली चर्चा या राष्ट्रपति को किसी ऐसे विषय के बारे में दी गई मंत्रणा संबंधी जानकारी नहीं मांगी जानी चाहिए, जिसके संबंध में जानकारी न देने का संवैधानिक, सांविधिक या परम्परागत दायित्व हो : ऐसे प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते जिनमें मंत्रिमंडल, उसकी समितियों या उप-समितियों के आंतरिक कार्यकरण के संबंध में ऐसी जानकारी मांगी गई हो, जो कि गोपनीय स्वरूप की है। तथापि, मंत्रिमंडलीय समिति के गठन से संबंधित ऐसे मामले जिनका व्यापक प्रचार किया गया हो, के संबंध में तथ्यपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न गृहीत किया जा सकता है।[222] किसी प्रस्ताव विशेष के गुणावगुणों के संबंध में मंत्रिमंडल में चर्चा के दौरान यदि मंत्रियों के बीच कोई मतभेद हो, तो वह किसी प्रश्न का विषय नहीं बन सकता, क्योंकि पूरा मंत्रिमण्डल सभा के प्रति उत्तरदायी है।[223] इसी प्रकार, किसी आंतरिक चर्चा में किसी विषय पर दो मंत्रियों के बीच मतभेद के बारे में जानकारी प्राप्त करने संबंधी अनुपूरक प्रश्न पूछने की मनाही की गई है।[224] किन्तु, मंत्रिमण्डल के दो सदस्यों द्वारा लोक महत्व के किसी विषय पर सार्वजनिक रूप से व्यक्त किए गए विचारों में यदि मतभेद हो तो उसके संबंध में प्रश्नों को स्वीकार कर लिया जाता है, जिससे कि गलतफहमी दूर हो सके।[225] ऐसे प्रश्न भी ग्राह्य नहीं किये जाते जो अधिकारियों द्वारा मंत्री को दी गयी मंत्रणा के संबंध में हों।[226]

राज्य के प्रमुख के संबंध में प्रश्न का उत्तर सभा में नहीं दिया जाता: सामान्यत: राज्य के प्रमुख के संबंध में प्रश्न सभा में उत्तर देने के लिए ग्राह्य नहीं किये जाते। यदि प्रश्न ग्राह्य हो, तो आवश्यक सूचना राष्ट्रपति के सचिव से प्राप्त करके सदस्य को दी जा सकती है। इस श्रेणी में वे प्रश्न आते हैं जिनमें केवल तथ्यों पर आधारित जानकारी मांगी गयी हो जैसे कि राष्ट्रपति के विदेश दौरे, राष्ट्रपति सम्पदा और उस पर होने वाला खर्च, राज्यपालों की नियुक्ति, प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों को इस्तीफा देने के लिए दिए गए

---

220. *एच.पी. डिबेट्स* (1), 26.2.1953, कॉ. 554-55 ।
221. *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 28.11.1948, पृ. 20 ।
222. *लो.स.वा.वि.,* 14.3.1990, पृ. 143 (अता. प्र.सं. 356)।
223. *लो.स.वा.वि.,* 10.8.1959, पृ. 713 ।
224. *पूर्वोक्त,* 23.3.1978, पृ. 5 ।
225. वाणिज्य तथा उद्योग मंत्री और खाद्य तथा कृषि मंत्री — इन दोनों मंत्रियों ने उर्वरक के उत्पादन के संबंध में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के बारे में परस्पर विरोधी वक्तव्य दिए। इस विषय पर एक प्रश्न स्वीकार कर लिया गया और 3 दिसम्बर, 1958 की प्रश्न सूची में ता. प्र.सं. 514 के रूप में मुद्रित किया गया, परन्तु सदस्य ने प्रश्न वापस ले लिया।
226. *पी. डिबेट्स* (1), 3.9.1951, कॉ. 906 ।

दिशा-निर्देशों या दया-याचिकाओं के संबंध में राष्ट्रपति के विशेषाधिकार के विषय संबंधी प्रश्न अग्राह्य हैं, क्योंकि सांविधिक उपबंधों से इतर उसमें राष्ट्रपति के आचरण पर चर्चा करने का भी उपबंध है। तथापि, ऐसे विषयों के संबंध में तथ्यात्मक जानकारी मांगने वाले प्रश्न गृहीत किये जाते हैं।

चूंकि राज्यपाल अपने-अपने राज्य के प्रमुख होते हैं, अत: उनके बारे में या उन पर आक्षेप लगाने वाले अथवा उनकी विवेकाधीन शक्तियों और विवेकाधिकार क्षेत्र, को स्पष्ट करने वाले मार्ग निर्देशों के बारे में प्रश्न गृहीत नहीं किए जाते हैं। तथापि, अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन के अधीन कार्य करने वाले राज्य के राज्यपाल के बारे में प्रश्न पूछे जा सकते हैं। राज्य विधान परिषदों[227] में मनोनयन के संबंध में राज्य सरकार द्वारा राज्यपालों को भेजे गये दिशा-निर्देशों और राज्यपालों की नियुक्ति के पूर्व मुख्यमंत्रियों[228] से परामर्श संबंधी तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करने वाले प्रश्न भी गृहीत किए जाते हैं।

राज्यों के प्रमुखों के बीच हुई बातचीत के बारे में प्रश्न किसी अन्य राज्य के प्रमुख द्वारा दिये गये वक्तव्य के बारे में मत की अभिव्यक्ति संबंधी प्रश्न तथा राजनयिक बातचीत, पत्राचार अथवा औपचारिक विचार-विमर्श से संबंधित प्रश्न सामान्यत: गृहीत नहीं किए जाते।

उप-राष्ट्रपति के संबंध में, जो राज्य सभा का पदेन सभापति भी होता है, प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते।

दूसरे सदन के अधिकार-क्षेत्र में आने वाले विषयों के संबंध में प्रश्न गृहीत नहीं किए जाते हैं: जहां तक सदनों के अधिकार-क्षेत्र का संबंध है, वे दोनों स्वतंत्र हैं। अत: किसी सदन में किसी ऐसे विषय के संबंध में प्रश्न नहीं पूछा जा सकता, जो कि दूसरे सदन के अधिकार-क्षेत्र में आता हो। यहां तक कि अध्यक्ष ने अनुपूरक प्रश्नों की अवधि के दौरान राज्य सभा की कार्यवाहियों से उद्धरण देने को भी अनुचित ठहराया है।[229]

भारत सरकार और राज्यों के बीच पत्र-व्यवहार संबंधी प्रश्न

उन विषयों के संबंध में, जिन पर भारत सरकार और किसी राज्य की सरकार के बीच पत्र-व्यवहार हुआ हो या हो रहा हो, कोई प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं है। केवल तथ्यों के संबंध में प्रश्न पूछे जा सकते हैं और ऐसे प्रश्नों के उत्तर केवल तथ्यों तक ही सीमित रहते हैं।[230]

---

227. *लो.स.वा.वि.,* 22.3.1990, पृ. 15-17 (ता.प्र.सं. 146)।

228. *पूर्वोक्त,* 15.3.1990, पृ. 102 (ता.प्र.सं. 559)।

229. *लो.स.वा.वि.,* 17.6.1980, पृ. 15 ।

230. नियम 42, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 21.5.1957, पृ. 510; *एल.एस. डिबेट्स,* 28.8.1957, कॉ. 7484; लो.स.वा.वि., अता.प्र.सं. 1733; 3.3.1982, पृ. 135-36; ता.प्र.सं., 577, 7.4.1986, पृ. 3. अता.प्र.सं. 8384; *एल.एस. डिबेट्स,* 30.4.1986, कॉ. 104; अता.प्र.सं. 9188, 7.5.1986, कॉ. 114-15; अता.प्र.सं. 1417, *एल.एस. डिबेट्स,* 4.8.1987, पृ. 130 और अता.प्र.सं. 2084, 8.3.1988, पृ. 162-63 ।

ऐसे प्रश्न सामान्यत: गृहीत नहीं किये जाते जिनमें भारत सरकार द्वारा राज्य सरकार को भेजे गये किसी विशेष विषय के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा दी गयी राय के सम्बन्ध में जानकारी मांगी गयी हो।

ऐसे प्रश्न भी गृहीत नहीं किये जाते जिनमें केन्द्रीय सरकार के पास लम्बित पड़े राज्य सरकार के पत्र अथवा अनुरोध के संबंध में केन्द्रीय सरकार के उत्तर के बारे में पूछा गया हो, क्योंकि प्रश्न को केन्द्रीय सरकार से उत्तर प्राप्त करने का माध्यम नहीं बनाया जा सकता और उस पर पहले राज्य सरकार को सूचना देना आवश्यक है तथा सभा में उसकी जानकारी खुलासा नहीं किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार, यदि किसी विषय पर बातचीत चल रही हो, तो उसके संबंध में सामान्यत: प्रश्न ग्राह्य नहीं होते। तथापि, जहां राज्य सरकार के किसी प्रस्ताव को मंजूर करने में केन्द्रीय सरकार[231] की ओर से अत्यधिक विलम्ब हो रहा हो अथवा विषय लम्बे समय से लम्बित पड़ा हो तो ऐसे प्रश्न गृहीत किये जाते हैं ताकि सभा को विषय संबंधी अपेक्षित जानकारी प्राप्त हो सके।

राज्य सरकार के मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में प्रश्न

कोई प्रश्न तभी ग्राह्य हो सकता है जबकि वह किसी ऐसे लोक महत्व के विषय के बारे में हो, जिसके संबंध में प्रशासकीय जिम्मेदारी मुख्य रूप से भारत सरकार की हो। संविधान में संघ तथा राज्य सरकारों के प्रशासकीय अधिकार क्षेत्र की परिभाषा की गयी है और मुख्य रूप से उनका परिसीमन किया गया है। ऐसे विषय भी हैं जिनके बारे में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के अधिकार-क्षेत्र की स्पष्ट रूप से परिभाषा नहीं की गयी अथवा कोई ऐसा विषय हो सकता है जिसमें दोनों की मिली-जुली जिम्मेदारी हो। संविधान या प्रक्रिया नियमों में कोई ऐसा विशिष्ट उपबन्ध नहीं है जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव ऐसे प्रश्नों की ग्राह्यता पर पड़ता हो, जो राज्य सरकारों के मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में हों। तथापि, इस संबंध में लोक सभा में विनिर्णयों तथा परम्पराओं के माध्यम से कुछ सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है, जिनके अनुसार लोक सभा में ऐसे प्रश्नों की ग्राह्यता का निर्णय किया जाता है।

राज्य सरकारों के मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में प्रश्नों को निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

ऐसे प्रश्न जो राज्य के मुख्यमंत्रियों के अतिरिक्त अन्य मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में हों :

ऐसे प्रश्न स्वीकार नहीं किए जाते, क्योंकि राज्य सरकारों के मंत्रियों के लिए जो आचरण संहिता बनी है, उसका पालन करवाना मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी है और मुख्य मंत्री राज्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी है।

---

231. *एल.एस. डिबेट्स, अता.प्र.सं.* 1499, 26.11.1985, कॉ. 268; अता.प्र.सं. 3970, 24.3.1986, कॉ. 216; ता.प्र.सं. 577, 7.1.1986, कॉ. 4-7; अता.प्र.सं. 7656, 23.4.1987, कॉ. 97-98 और अता.प्र.सं. 686, 11.11.1987, कॉ. 92 ।

तथापि, यदि किसी विषय के संबंध में केन्द्रीय सरकार के किसी अभिकरण (एजेंसी), जैसे कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो या विशेष पुलिस विभाग द्वारा जांच की जा रही हो तो ऐसे मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में लोक सभा में प्रश्न गृहीत किए जा सकते हैं और उनका उत्तर दिया जा सकता है।[232]

प्रश्न जो राज्यों के मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में हों:

मंत्रियों के लिए जो आचरण संहिता बनी है, उसके अन्तर्गत किसी राज्य के मुख्यमंत्री के विरुद्ध प्रधानमंत्री से शिकायत की जा सकती है और प्रधानमंत्री मुख्यमंत्री के विरुद्ध भ्रष्टाचार की जांच करवा सकता है। अत: केन्द्रीय सरकार इस विषय से संबंधित सभी मामलों के बारे में सभा के प्रति उत्तरदायी हो जाती है। इसलिए राज्यों के मुख्य मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में लोक सभा में प्रश्न स्वीकार किये जाते हैं और उनका उत्तर दिया जाता है।[233] जम्मू और कश्मीर के मुख्य मंत्री के मामले में ऐसा नहीं होता क्योंकि संविधान का अनुच्छेद 162 जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू नहीं किया गया है।

प्रश्न जिनमें राज्य सरकारों के मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के मामलों और उनके बारे में विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा की गई कार्यवाही के बारे में जानकारी मांगी गई हो:

ऐसे प्रश्नों को लिखित उत्तर के लिए स्वीकार किया जा सकता है[234] क्योंकि संविधान के अंतर्गत यह व्यवस्था करना केन्द्रीय सरकार का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार चले[235] और इसलिए सभा को यह जानने का अधिकार है कि केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने क्या कार्यवाही की है। किन्तु, चूंकि मूल जिम्मेदारी तो राज्य सरकारों और राज्य विधानमण्डलों की है कि वे इस संबंध में कार्यवाही करें, इसलिए व्यक्तिगत मामलों के बारे में लोक सभा केन्द्र सरकार से जवाब तलब नहीं करती और इसलिए मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न सामान्यत: स्वीकार नहीं किये जाते। विभिन्न मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करने के लिए राज्य सरकारों के मार्गदर्शन के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाई गई प्रक्रिया की जानकारी मांगने वाले प्रश्नों को मौखिक उत्तर के लिए गृहीत किया जा सकता है।[236]

---

232. ता.प्र.सं. 63, 9.9.1964; ता.प्र.सं. 73, 18.11.1964 और अता.प्र.सं. 1535, 13.10.1982, कॉ. 55 ।

233. ता.प्र.सं. 499, 30.9.1964; ता.प्र.सं. 644, 23.12.1964; ता.प्र.सं. 135, 24.2.1965; ता.प्र.सं. 3141, 5.5.1965; ता.प्र.सं. 145, 10.11.1965; ता.प्र.सं., 555, 24.11.1965; ता.प्र.सं., 1408, 2.3.1966; ता.प्र.सं. 981, 6.4.1966; अता.प्र.सं. 1535, 13.10.1982, कॉ. 55; और ता.प्र.सं., 143, 5.3.1986, कॉ. 29 ।

234. उदाहरण के लिए *देखिए* अता.प्र.सं., 5358, 11.5.1966 ।

235. *देखिए* अनुच्छेद 355 ।

236. उदाहरण के लिए *देखिए* ता.प्र.सं. 122, 24.2.1965 ।

केन्द्रीय सरकार के वित्तीय या नियंत्रक हित वाले सांविधिक निगमों, अन्य संगठनों और कम्पनियों के संबंध में प्रश्न

जिन सांविधिक निगमों और सीमित दायित्व वाली कम्पनियों में सरकार का पूर्णतः या अंशतः धन लगा हो, उनके संबंध में प्रश्नों की ग्राह्यता प्रत्येक मामले के गुणावगुणों के आधार पर सामान्यतः निम्नलिखित ढंग से विनियमित की जाती है:

जब कोई प्रश्न नीति संबंधी विषय के बारे में हो, या मंत्री के किसी कृत्य या उसकी किसी भूल के संबंध में हो, या उसमें लोक महत्व का विषय उठाया गया हो, लेकिन देखने में ऐसा प्रतीत होता हो कि यह दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के संबंध में है या किसी व्यक्ति से संबंधित मामला है, तो उसे सामान्यतः मौखिक उत्तर के लिए गृहीत कर लिया जाता है।

जिस प्रश्न में आंकड़े मांगे गए हों या ऐसी जानकारी मांगी गयी हो जिसके लिए ब्यौरे-वार विवरण देना पड़े, उसे सामान्यतः अतारांकित प्रश्न के रूप में गृहीत किया जाता है।

जो प्रश्न स्पष्ट रूप से दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के संबंध में हों और जिनके मंत्रालयों, निगमों या सरकारी कम्पनियों पर उत्तर उतने उपयोगी न हों जितना कि उन्हें तैयार करने के लिए काम करना पड़े तो सामान्यतः उन्हें अस्वीकार कर दिया जाता है।[237]

भारत शासन अधिनियम, 1919 के अन्तर्गत बनाए गए नियम[238] में यह प्रावधान किया गया था कि अध्यक्ष किसी प्रश्न अथवा किसी प्रश्न के किसी अंश को इस आधार पर कि वह ऐसे विषय से सम्बन्धित है जो मूल रूप में गवर्नर जनरल-इन-कौंसिल से सम्बन्धित विषय नहीं है, अस्वीकृत कर सकता है। वास्तव में इस नियम के बनने के फलस्वरूप ऐसी संस्थाओं से सम्बन्धित प्रश्नों की ग्राह्यता का क्षेत्र सीमित हो गया है, जो यथेष्ट स्वायत्तशासी संस्थाएं हों। ऐसी संस्थाओं से संबंधित प्रश्नों की ग्राह्यता "मैनुअल ऑफ बिजनेस एण्ड प्रोसीजर" में उल्लिखित सिद्धान्तों के आधार पर की जाती रही है।[239]

तथापि, स्वतंत्रता के पश्चात् और औद्योगिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्रों में सरकार के कार्यों में वृद्धि के फलस्वरूप सरकार के औद्योगिक तथा वाणिज्यिक उपक्रमों की व्यवस्था के लिए विभिन्न सांविधिक निगमों और सरकारी कम्पनियों को स्थापित किया गया। उनके सम्बन्ध में प्रश्नों की ग्राह्यता के सम्बन्ध में बनाई गई प्रक्रिया का आगामी पैराग्राफों में उल्लेख किया गया है।

सांविधिक निगम

संसद द्वारा पारित अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित सांविधिक निगमों के मामले में उसके कार्यों के प्रति मंत्रालय की कितनी जिम्मेदारी है, का उल्लेख संविधि की किसी विशेष धारा

237. समाचार भाग-दो, 18.11.1958 ।

238. इंडियन लेजिस्लेटिव रूल्स का नियम 7 ।

239. *मैनुअल ऑफ बिजनेस एण्ड प्रोसीजर* (1926 संस्करण), पृ. 26 ।

में किया जाता है।[240] ऐसे निगमों से सम्बन्धित प्रश्नों की ग्राह्यता मुख्यत: संविधि में उल्लिखित प्रावधानों के निर्वचन और लागू किये जाने पर निर्भर करती है।[241] प्रशासनिक ब्यौरे सम्बन्धी प्रश्न उन मामलों में स्वीकार किये जा सकते हैं जहां सिद्धान्त का मामला हो या लोक महत्व का विषय हो।

वित्तीय निगम और बैंक

वित्तीय निगमों और राष्ट्रीयकृत बैंकों के कार्यकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करने सम्बन्धी प्रश्नों की जांच वित्तीय संस्थाओं, बैंकों आदि और उपभोक्ताओं के बीच सम्बन्ध की विश्वसनीयता को ध्यान में रखते हुए की जाती है। निम्नलिखित पहलुओं पर मांगी गई जानकारी वाले प्रश्नों को ग्राह्य किया गया है:

(1) चेयरमैन और निदेशक मंडल की नियुक्ति जहां कि ये पद काफी समय से रिक्त पड़े हैं, अथवा वहां पर नियुक्तियों में अनियमितताओं के आरोप हैं, बशर्ते कि इसका कुछ तथ्यात्मक आधार हो।[242]

(2) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के लिए पदों का आरक्षण और बकाया रिक्त पदों का भरा जाना।[243]

(3) बैंकों में लूटमार/डकैती/लूट।[244]

(4) बैंकों में धोखाधड़ी, अथवा अत्यधिक धनराशि के ऐसे ऋण जिनकी तथाकथित वसूली का भरोसा न हो, बशर्ते इनका प्रमाण हो।[245]

---

240. जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 की धारा 21; दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 की धारा 485 और 487 ।

241. *पी. डिबेट्स* (1), 8.4.1950, पृ. 1386-87; *एच.पी. डिबेट्स* (1), 10.6.1952, का. 746 ।

242. अता.प्र.सं., 2644, 11.3.1988; अता.प्र.सं., 8026, 22.4.1988; अता.प्र.सं. 851, 27.11.1992; अता.प्र.सं. 4912, 2.4.1993; अता.प्र.सं. 563, 24.11.2006 ।

243. ता.प्र.सं. 350, 18.3.1988; अता.प्र.सं. 3849, 18.3.1988; अता.प्र.सं. 7052, 15.4.1988; अता.प्र.सं. 2623, 6.12.1991; अता.प्र.सं. 3240, 11.12.1992; अता.प्र.सं. 2943, 18.8.2004; अता.प्र.सं. 3478, 15.12.2006; अता. प्र. सं. 4810, 18.12.2009; अता. प्र. सं. 163, 22.2.2013 ।

244. अता.प्र.सं. 715, 26.2.1988; अता.प्र.सं. 835, 26.2.1988; अता.प्र.सं. 7006, 15.4.1988; अता.प्र.सं., 4375, 18.12.1992; ता.प्र.सं. 837, 30.4.1993; अता.प्र.सं. 47, 10.8.2007 अता.प्र.सं. 1414, 27.11.2009 ।

245. अता.प्र.सं. 5432, 11.12.1987; अता.प्र.सं. 8986, 29.4.1988; अता.प्र.सं. 1598, 17.7.1992; अता.प्र.सं. 1946, 4.12.1992; अता.प्र.सं. 1761, 5.3.1993; अता.प्र.सं. 1089, 24.10.2008; अता. प्र. सं. 3492, 14.12.2012; अता.प्र.सं. 121, 22.12.2013, तां. प्र. सं. 16, 22.2.2013 ।

(5) अधिकारियों और कर्मचारियों के विरुद्ध कदाचार के आरोप जिनके संबंध में तथ्यात्मक आधार की जानकारी हो। ऐसा प्रत्येक मामला उनके गुण-दोष पर निर्भर होगा।[246]

(6) बैंकों द्वारा देश में समाज के कमजोर वर्गों के लोगों और बेरोजगार युवाओं को ऋण देना।[247]

(7) राष्ट्रीयकृत बैंकों में उपभोक्ता सेवाओं में सामान्य गिरावट।[248]

(8) राष्ट्रीयकृत बैंकों की राज्य-वार शाखाएं अथवा राज्य-वार ऋण वितरण ।[249]

(9) राष्ट्रीयकृत बैंकों को दिशा-निर्देशों और उनके कार्यान्वयन के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक का नियन्त्रण।[250]

विभिन्न निगमों, बैंकों, आदि के लाभ और हानि संबंधी जानकारी जो वार्षिक रिपोर्ट में उपलब्ध होती है, से संबंधित प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते। तथापि, ऐसे प्रश्न जिनमें ऐसी अवधि के बारे में जानकारी मांगी गई है जिनके लिए वार्षिक रिपोर्ट अथवा विभिन्न वर्षों के लिए तुलनात्मक आंकड़े संसद के सभा पटल पर नहीं रखे गये हैं, गृहीत किये जाते हैं।[251]

लिमिटेड कम्पनियां

प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियां, जिनके सभी शेयर सरकार के पास हों, सांविधिक निगमों जैसी नहीं होती हैं। अतः इन कम्पनियों से सम्बन्धित प्रश्नों की ग्राह्यता के मामले में अधिक

246. अता.प्र.सं. 4910, 26.8.1987; अता.प्र.सं. 8980, 29.4.1988; अता.प्र.सं. 902, 27.11.1992; अता.प्र.सं. 1946, 4.12.1992; अता.प्र.सं. 3922, 20.12.2005 ।

247. अता.प्र.सं., 3779, 18.3.1988; अता.प्र.सं. 2573 और 2652, 11.3.1988; ता.प्र.सं. 2631, 11.12.1992; अता.प्र.सं. 673, 26.2.1993; अता.प्र.सं. 5182, 11.5.2007; अ.ता.प्र.सं. 303, 14.12.12; अता.प्र. सं. 4246, 22.3.2013 ।

248. अता.प्र.सं. 731, 26.2.1988; अता.प्र.सं. 4948, 25.3.1988; अता.प्र.सं. 6374, 8.4.1988; अता.प्र.सं. 6026, 3.4.1992; अता.प्र.सं. 442, 20.12.1992; अता.प्र.सं. 1894, 24.8.2004 । ता.प्र.सं. 220, 7.12.2012, अताप्रं.सं. 6183, 3.5.2013.

249. अता.प्र.सं., 6363, 8.4.1988; अता.प्र.सं. 8157, 22.4.1988; अता.प्र.सं. 5277, 3.4.1992; अता.प्र.सं. 2630, 24.7.1992; ता.प्र.सं. 248, 12.3.1993; अता.प्र.सं. 2328, 14.3.2008; अता.प्र.सं. 4617, 25.4.2008 । अतांप्र.सं. 40, 8.8.2012; तां. प्र. 261, 15.3.2016

250. अता.प्र.सं., 3285, 27.11.1987; अता.प्र.सं. 3708, 18.3.1988; अता.प्र.सं. 4877, 25.3.1988; ता.प्र.सं. 511, 10.7.1992; अता.प्र.सं. 3196, 11.12.1992; अता.प्र.सं. 4320, 18.12.1992; अता.प्र.सं. 5679, 16.4.1993; अता.प्र.सं. 5322, 29.4.2005; अता.प्र.सं. 51, 9.7.2004 । अता.प्र.सं. 424, 23.11.2012 ।

251. ता.प्र.सं. 106, 13.11.1987; अता.प्र.सं. 7125, 18.4.1988; अता.प्र.सं. 2709, 24.7.1992; अता.प्र.सं. 7292, 30.4.1993; ता.प्र.सं. 918, 7.5.1993; ता.प्र.सं. 63, 9.7.2004; अता.प्र.सं. 1285, 7.3.2008 ।

उदारता से काम लिया जाता है।

यही सिद्धान्त उन प्राइवेट कम्पनियों के मामले में लागू होता है जिनके अधिकांश शेयर सरकार के पास हैं और जिनका प्रबन्ध सरकार द्वारा किया जाता है।

अन्य प्राइवेट कम्पनियों के मामले में, जिनमें सरकार ने पूंजी निवेश किया हो, लेकिन उन पर सरकार का नियन्त्रण न हो, ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं जो एक शेयरधारक पूछ सकता है। इसके अतिरिक्त लोक-महत्व के विषयों पर भी प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

कुछ परिस्थितियों में सदस्य निगमों अथवा सरकारी कम्पनियों से सीधे जानकारी प्राप्त कर सकते हैं : सांविधिक निगमों और लिमिटेड कम्पनियों के कार्य के सम्बन्ध में, जिनमें सरकार ने पूंजी निवेश किया हो अथवा उनका नियंत्रण सरकार के अधीन हो, ऐसी जानकारी, जो सामान्यतः प्रश्न के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है, सदस्यों द्वारा सम्बन्धित निगमों अथवा कम्पनियों से सीधे ही प्राप्त की जा सकती है। इस प्रयोजन के लिए, मंत्रालय अपने अधीन कार्य करने वाले सांविधिक निगमों अथवा संगठनों और लिमिटेड कम्पनियों को निदेश जारी करते हैं कि वे सदस्यों को उनके द्वारा मांगी गयी आवश्यक जानकारी सीधे ही उपलब्ध करायें।[252] यदि किसी मामले में सांविधिक निगम अथवा सरकारी कम्पनी, किसी सदस्य द्वारा मांगी गई जानकारी किसी कारणवश उपलब्ध नहीं कराती है, तो इस सम्बन्ध में सदस्य द्वारा न तो सरकार को अथवा न ही अध्यक्ष को कोई अभ्यावेदन किया जा सकता है। ऐसे मामलों में, सदस्य नियमों के अन्तर्गत उन्हें उपलब्ध सामान्य संसदीय अवसरों का लाभ उठा सकते हैं।

स्वायत्तशासी संगठन, विश्वविद्यालय आदि

किसी पूर्ण स्वायत्तशासी संगठन के बारे में प्रश्न केवल तभी गृहीत किये जाते हैं, जबकि वे उन विषयों के बारे में ही हों, जिनके संबंध में भारत सरकार उस सम्बन्धित अधिनियम के उपबन्ध के अन्तर्गत हस्तक्षेप कर सकती हो जिसके माध्यम से संगठन बनाया गया है और यदि प्रश्न सामान्य स्वरूप के हैं। किन्तु, ऐसे संगठनों के सामान्य प्रशासन के सम्बन्ध में प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते।

अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की:—

> इस सभा में एक मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछें। सभा यद्यपि प्रभुतासम्पन्न है और यह भारत के किसी भी भाग में किसी भी विषय के सम्बन्ध में चर्चा कर सकती है, लेकिन ऐसा संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत ही किया जा सकता है। हमने कुछ स्वायत्तशासी संस्थाओं का गठन किया है और यदि हम यह चाहते हैं कि स्वायत्तशासन की भावना को बल मिले तो सभा में प्रश्न पूछ कर ऐसे स्वायत्तशासी संगठनों में कम से कम हस्तक्षेप किया जाना चाहिए।[253]

---

252. *एल.एस. डिबेट्स,* 17.9.1958, कॉ. 256-68 तथा 280-82; साथ ही *देखिए* समाचार भाग-दो, 18.11.1958 ।

253. *एच.पी. डिबेट्स* (*1*), 10.6.1952, कॉ. 746 ।

जहां तक उन विश्वविद्यालयों का सम्बन्ध है, जिन पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण है, उनके प्रशासन से संबंधित ब्यौरा पूछने वाले प्रश्न इस आधार पर गृहीत नहीं किये जाते कि विश्वविद्यालय स्वायत्तशासी हैं और सामान्यतः उनके प्रशासन के सम्बन्ध में सभा में प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए। प्रश्न केवल तभी पूछे जा सकते हैं जब (i) सरकार को स्पष्ट रूप से नियंत्रण तथा अधीक्षण की सांविधिक शक्तियां प्राप्त हों, (ii) कोई ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा जाता है जिस पर सरकार को अपने विचारों से विश्वविद्यालय को अवगत कराना चाहिए, और यदि आवश्यक हो तो सरकार इन विचारों को कार्यान्वित करवाने के लिए अनुदान वापस लेने की धमकी दे सकती है और (iii) महत्वपूर्ण सांख्यिकीय जानकारी अपेक्षित है, जिसमें आन्तरिक नीति या प्रशासन संबंधी कोई प्रश्न न हो।

विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में प्रश्नों की ग्राह्यता के विषय पर जून, 1954 में श्रीनगर में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में विचार किया गया। सम्मेलन के सभापति (अध्यक्ष मावलंकर) ने इस संबंध में संक्षेप में इस प्रकार बताया:—

> जहां स्वायत्तशासी संस्थाओं को सरकारी कोष से पैसा मिलता हो, वहां यह नहीं कहा जा सकता कि उनके सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। इसके विपरीत, दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के सम्बन्ध में और आंतरिक प्रशासन के ब्यौरे के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इन संस्थाओं को बेहतर ढंग से और कुशलतापूर्वक कार्य करने के उद्देश्य से उन्हें स्वायत्तता दी गई है और इनकी स्वायत्तता में सार्वजनिक राय के द्वारा अथवा विधानमंडलों की राय के द्वारा किसी भी प्रकार का दबाव डालकर हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। ये दो विपरीत छोर हैं। जहां तक उन मामलों का सम्बन्ध है, जो इन दोनों के बीच आते हैं, मैं समझता हूँ कि इनके लिए कोई भी सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता। प्रत्येक प्रश्न का फैसला तथ्यों और गुणावगुणों के आधार पर करना पड़ेगा। यह प्रश्न के स्वरूप, प्रश्न में निहित आक्षेपों के प्रकार पर निर्भर करेगा और उसके बाद यह निर्णय किया जायेगा कि क्या इस प्रश्न को गृहीत किया जाये अथवा नहीं।

सांविधिक संगठन

संघ लोक सेवा आयोग, निर्वाचन आयोग आदि जैसे सांविधिक संगठनों से संबंधित प्रश्नों के बारे में कोई सुस्पष्ट नियम नहीं बनाये गये हैं। प्रत्येक प्रश्न की इसके गुणावगुण के आधार पर जांच की जाती है। सामान्यतः ऐसा कोई प्रश्न गृहीत नहीं किया जाता, जो इन संगठनों के सांविधिक कार्य के निर्वहन में हस्तक्षेप करता हो।

भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के बारे में प्रश्नों को इस प्रकार विनियमित किया जाता है कि केवल ऐसे विषयों से सम्बन्धित प्रश्न ही गृहीत किए जाएं जिनका नीति सम्बन्धी विषय पर कोई प्रभाव पड़ता हो अथवा जो अत्यधिक लोक महत्व के हों और वे प्रश्न भी जो केवल तथ्यात्मक आंकड़े प्राप्त करने के लिए पूछे गये हों। भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक को कौन-कौन से अधिकारों का प्रयोग करना चाहिए और क्या वह

प्रशासकीय ब्यौरे अथवा कार्य दक्षता, अर्थव्यवस्था आदि जैसे विषयों की जांच कर सकता है, के बारे में प्रश्न काल के दौरान चर्चा नहीं की जा सकती।[254]

प्रश्नों की ग्राह्यता

पूर्ववर्ती पैराग्राफों में प्रश्नों की ग्राह्यता की जो शर्तें बताई गई हैं उनमें सभी प्रकार के प्रश्न नहीं आते। जिन प्रश्नों की ग्राह्यता पर नियमों के विशिष्ट उपबन्ध लागू नहीं होते, उनका फैसला पूर्व-उद्धरणों, सुस्थापित संसदीय प्रथाओं, परम्पराओं और व्यवहारों को ध्यान में रखकर किया जाता है। उनमें और अन्य मामलों में अध्यक्ष यह निर्णय करता है कि कोई प्रश्न या उसका कोई भाग नियमों के अन्तर्गत ग्राह्य है अथवा नहीं और वह यदि यह समझे कि कोई प्रश्न या उसका कोई भाग, प्रश्न पूछने के अधिकार का दुरुपयोग है या उसका उद्देश्य सभा की प्रक्रिया में बाधा डालना या उस पर बुरा प्रभाव डालना है, या वह नियमों का उल्लंघन करता है तो वह उसे अस्वीकार कर सकता है।[255]

वस्तुत: अध्यक्ष को नियमों द्वारा प्रदत्त और उसमें अंतनिर्हित वैवेकिक शक्तियां प्राप्त हैं और वह चाहे तो कोई कारण बताए बिना किसी भी प्रश्न को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है और कोई भी उसकी शक्ति के इस प्रयोग पर आपत्ति नहीं कर सकता।[256] किसी प्रश्न के सम्बन्ध में अध्यक्ष के निर्णय के विरुद्ध अध्यक्ष को अभ्यावेदन देने का कोई अधिकार नहीं है, लेकिन तथ्य उसके सामने रखे जा सकते हैं अथवा वह स्वयं तथ्य मंगा सकता है परन्तु यह बात पूरी तरह से उसके विवेकाधिकार में है कि वह किसी मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद जैसा निर्णय उचित समझे, करे।[257]

प्रश्नों की सूची

अध्यक्ष द्वारा स्वीकार किये गये प्रश्न उस दिन की प्रश्न-सूची में, यथास्थिति, मौखिक या लिखित उत्तर के लिए सम्मिलित किये जाते हैं।[258]

किसी दिन के लिए मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में प्रश्न नियम 37 के अधीन प्रश्न-सूची में शामिल करने के प्रयोजनार्थ किए गए बैलट में प्रत्येक सदस्य द्वारा प्राप्त वरीयता के अनुसार प्रश्न सम्मिलित किए जाएंगे।[259]

---

254. *लो.स.वा.वि.* 18.6.1962, पृ. 5178-79 ।
255. नियम 43 (1)।
256. *एल.ए. डिबेट्स,* 3.9.1929, पृ. 128; *एल.एस. डिबेट्स,* 18.6.1962, कॉ. 11271, 11274-75 ।
257. *पूर्वोक्त,* 4.7.1923, पृ. 4262-63 ।
258. नियम 45 ।
259. निदेश 11 ।

प्रश्न-सूचियों को निम्नलिखित प्रतिबंधों के अध्यधीन तैयार किया जाता है:

(i) किसी भी दिन के लिए प्रश्न-सूची में मौखिक उत्तरों[260] के लिए कुल प्रश्नों की संख्या 20 से अधिक और लिखित उत्तर के लिए 230 से अधिक नहीं होनी चाहिए। तथापि, स्थगित अथवा अन्तरित प्रश्नों को सम्मिलित करके प्रश्न-सूची की संख्या में वृद्धि की जा सकती है। यदि राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यों से सम्बन्धित प्रश्न हैं तो लिखित उत्तर के लिये प्रश्न-सूची में अधिक से अधिक 25 प्रश्न और सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(ii) जब एक ही अथवा उससे सम्बद्ध विषय पर प्रश्नों के लिए अनेक सूचनायें प्राप्त होती हैं तो उन्हें या तो समाहित कर लिया जाता है अथवा बैलट में प्राप्त वरीयता और ग्राह्यता के अनुसार उनमें से एक प्रश्न स्वीकार कर लिया जाता है। इसमें अन्य सदस्यों के नाम सम्मिलित कर लिये जाते हैं। तथापि, तारांकित प्रश्न में केवल दो सदस्यों के नाम ही सम्मिलित किये जा सकते हैं।[261]

(iii) मौखिक उत्तरों की प्रश्न-सूची के लिए 'एक सदस्य एक प्रश्न' का नियम है चाहे अकेले किसी सदस्य के नाम से ही प्रश्न हो अथवा उसका नाम अन्य सदस्यों के नाम के साथ सम्मिलित किया गया हो। इसके अतिरिक्त कोई स्थगित प्रश्न अथवा अन्तरित प्रश्न भी सम्मिलित किया जा सकता है।

(iv) किसी भी सदस्य के नाम में किसी एक दिन के मौखिक और लिखित उत्तरों के लिए प्रश्न सूचियों में 5 से अधिक प्रश्न सम्मिलित नहीं किये जा सकते। इसके अतिरिक्त स्थगित और अन्तरित प्रश्नों को सम्मिलित किया जा सकता है।

(v) ऐसे सभी प्रश्न, जो तारांकित अर्थात् मौखिक उत्तरों के लिए स्वीकार हो जाते हैं लेकिन वे उपर्युक्त प्रतिबन्धों के कारण मौखिक उत्तरों की प्रश्न-सूची में शामिल नहीं किये जाते हैं तो उन्हें अतारांकित प्रश्न माना जाता है और उन्हें उपर्युक्त प्रतिबन्धों को ध्यान में रखते हुए लिखित उत्तरों की प्रश्न-सूची में शामिल किया जाता है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि लिखित उत्तरों की प्रश्न-सूची के लिए स्वीकार किये गये प्रश्नों में प्रत्येक सदस्य का कम से कम एक प्रश्न अवश्य सम्मिलित हो।

किसी भी दिन की मौखिक और लिखित उत्तर की प्रश्न-सूची के लिए स्वीकृत प्रश्न संख्या प्राय: उपर्युक्त सीमाओं से अधिक होती है इसलिए प्रश्नों की राउंडिंग करनी पड़ती है जिसका तात्पर्य है—लोक सभा की नियम समिति के निर्णयों के अनुसार प्रश्नों का चयन करना और निर्धारित संख्या से अधिक प्रश्नों को हटाना। मौखिक और लिखित उत्तरों की प्रश्न-सूचियां तैयार करने के लिए अलग-अलग राउंडिंग की जाती है।

---

260. नियम 37 ।

261. समाचार भाग-दो, 25.11.1971; पैरा 438 ।

अतारांकित प्रश्नों अर्थात् लिखित उत्तरों के लिए प्रश्नों की राउंडिंग निम्नलिखित चरणों में की जाती है:

(i) इस राउंडिंग के लिए तीन प्रकार के प्रश्नों पर विचार किया जाता है, अर्थात् (क) ऐसे प्रश्न जिनके लिए सूचनाएं मूल रूप में अतारांकित प्रश्न अर्थात् लिखित उत्तरों के लिए दी गई हों और जो प्रश्नों के उत्तर की वांछित तारीख से 15 दिन पूर्व प्रात: 10 बजे तक प्राप्त की गई हों; (ख) ऐसे प्रश्न जिनकी सूचना मूल रूप से मौखिक उत्तरों के लिए दी गई हो परन्तु जो तारांकित प्रश्न-सूची में अर्थात् मौखिक उत्तरों की सूची में शामिल न किये गये हों।

(ii) उपरोक्त (एक) में उल्लिखित सभी गृहीत प्रश्नों में से, पहली राउंडिंग में, प्रत्येक सदस्य का एक प्रश्न लिखित उत्तरों की प्रश्न-सूची में शामिल किया जाता है, परन्तु उन सदस्यों के प्रश्न शामिल नहीं किये जाते, जिनके प्रश्न मौखिक उत्तरों की प्रश्न-सूची में पहले ही शामिल किये गये हों। इसमें न केवल उन सदस्यों के नाम निकाल दिये जाते हैं जिनके नाम केवल तारांकित सूची में हैं अपितु उन सदस्यों के नाम भी निकाल दिये जाते हैं जिनके नाम अन्य सदस्य के साथ सम्मिलित किये गये हैं।

(iii) दूसरे और उत्तरवर्ती राउंडों के प्रत्येक राउंड में प्रत्येक सदस्य का एक प्रश्न शामिल किया जाता है जिसमें सदस्य के प्रश्नों की अधिकतम सीमा पांच और प्रश्नों की कुल संख्या 230 होती है।

(iv) जैसे ही प्रश्नों की संख्या 230 की सीमा तक पहुंचती है, वैसे ही राउंडिंग की प्रक्रिया रोक दी जाती है, इस बात का ध्यान किए बिना कि उस समय चल रहा राउंड पूरा हुआ या नहीं।[262]

एक दिन के लिए अतारांकित प्रश्नों की सूची में 230 प्रश्नों से अधिक प्रश्न होने पर, उन्हें बाद की उपलब्ध सम्बद्ध तारीखों की अतारांकित प्रश्नों की सूची में शामिल किया जाता था जिसके लिये सदस्यों को नए सिरे से सूचना नहीं देनी होती थी। प्रश्नों की सूचनाएं जो 230 से अधिक हैं और जिन्हें बाद की तारीखों की किसी भी सूची में शामिल नहीं किया जा सकता सत्र की समाप्ति पर व्यपगत हो जाती थी।[263] पंद्रहवीं लोकसभा के पाचवें सत्र से 230 से ऊपर की सभी सूचनाएं संबंधित सदस्य को वापिस कर दी जाती थी और यदि सदस्य चाहें तो इन सूचनाओं को नये रूप में सभा पटल पर रख सकते थे।[264] तथापि इस प्रथा में पुन: परिवर्तन और अब 230 प्रश्नों से ऊपर की सूचनाएं व्ययगत मानी जाती है और ऐसे प्रश्नों की सूचनाओं की प्रतियां सदस्यों के निवेदन पर, यदि वे चाहे तो उन्हें दे दी जाती है।

262. यह प्रथा दसवीं लोक सभा के चौथे सत्र से शुरू हुई।
263. यह प्रथा पंद्रहवीं लोकसभा के चौथे सत्र तक जारी रही।
264. लो.स. समाचार भाग (दो) 9.7.2010, पैरा 1593

मौखिक और लिखित उत्तरों के लिए प्रश्नों की क्रम संख्या पृथक-पृथक डाली जाती है। प्रत्येक सत्र के आरंभ होने पर प्रत्येक सूची के लिए यह संख्या 1 से प्रारम्भ की जाती है और सत्र के अंत तक या क्रमानुसार इसी प्रकार चलती रहती है।

मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची हरे कागज पर और लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची सफेद कागज पर मुद्रित की जाती है।

उन मंत्रालयों के नाम, जिनके संबंध में प्रश्न किसी सूची विशेष में शामिल किये गये हों, प्रश्न सूची के शीर्ष में अंकित किये जाते हैं और प्रत्येक सूची में शामिल प्रश्नों की कुल संख्या भी दर्शायी जाती है।

प्रश्न सूची में शामिल प्रत्येक प्रश्न के लिए एक उपयुक्त शीर्षक दिया जाता है और उस सदस्य का नाम, जिसने प्रश्न पूछा है तथा उस मंत्री का पद नाम, जिसे वह प्रश्न संबोधित किया गया है, मोटे अक्षरों में मुद्रित किया जाता है।

प्रश्नों की सूची में से किसी प्रश्न को वापस लेने या स्थगित करने अथवा बाद की तारीख के लिए अन्तरित करने के लिए उसे शुद्धिपत्र जारी करके उक्त प्रश्न सूची से निकाला जाता है।

किसी सत्र के अंतिम कुछ दिनों में ऐसे गृहीत प्रश्नों के संबंध में अनुपूरक सूचियां जारी की जा सकती हैं जोकि समयाभाव के कारण नियमित सूची में शामिल न किये जा सके हों।

तारांकित प्रश्नों की अनुपूरक सूची में प्रश्न, मूल सूची के प्रश्नों की तुलना में, उनके प्राप्त होने के क्रम में रखे जाते हैं। उन्हें समुचित क्रम में रखने के लिए उन प्रश्नों की संख्या के बाद (क), (ख) और (ग) आदि लिख दिया जाता है।

अतारांकित प्रश्नों की अनुपूरक सूची के प्रश्न मूल सूची के बाद ही रखे जाते हैं।

उन गृहीत प्रश्नों के संबंध में, जिनकी सूचना हिन्दी में दी गई हो, तारांकित तथा अतारांकित प्रश्नों की अलग सूचियां हिन्दी में जारी की जाती हैं, जिसमें प्रश्नों की क्रम संख्या वही होती है जो अंग्रेजी सूची में होती है। सदस्यों तथा मंत्रियों को अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी प्रश्नों की सूचियां भेजी जाती हैं।

प्रश्न पूछने की विधि

मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न उसी क्रम में पुकारे जाते हैं जिनमें कि वे प्रश्न सूची में रखे गये हों।[265]

अध्यक्ष बारी-बारी से प्रत्येक उस सदस्य को पुकारता है जिसके नाम में कोई प्रश्न मौखिक उत्तर के लिये प्रश्नों की सूची में हो। जिस सदस्य को इस प्रकार पुकारा गया हो वह अपने स्थान पर उठता है और प्रश्न सूची में दी गई संख्या पुकार कर प्रश्न पूछता है।

---

265. नियम 46 ।

किसी सदस्य के कहने पर किसी प्रश्न को उसकी बारी से पहले वरीयता नहीं दी जाती।[266] बहुत ही आपवादिक मामलों में ऐसा हुआ है कि जो प्रश्न सूची में बहुत नीचे हों, उन्हें उनके महत्व के कारण उनकी बारी से पहले ले लिया गया हो। प्रश्न काल के अंत में इस तरह का केवल एक प्रश्न लिया जा सकता है।[267]

जो प्रश्न किसी दिन के मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में हो और जिसकी प्रश्न काल के दौरान मौखिक उत्तर के लिए पूछे जाने की सम्भावना न हो, उसके महत्व को देखते हुए उसे बारी से पहले लिया जा सकता है, यदि इसके लिए संबंधित सदस्य ने प्रश्न काल के प्रारंभ होने से पहले इस संबंध में अध्यक्ष को लिखा हो और अध्यक्ष सभा की राय मालूम करने के बाद उससे सहमत हो। ऐसे प्रश्नों का उत्तर प्रश्न काल के अन्त में दिया जाता है।[268]

जब किसी सदस्य को प्रश्न पूछने के लिए पुकारा जाए और वह यह कहे कि वह प्रश्न नहीं पूछना चाहता तो यह मान लिया जाता है कि उस प्रश्न को वापस ले लिया गया है।[269] तथापि एक उदाहरण ऐसा भी है जब उस सदस्य ने जिसके नाम से प्रश्न का मौखिक उत्तर दिया जाना था, प्रश्न पूछने की अनिच्छा जताई और तब अध्यक्ष ने प्रश्न के महत्व को देखते हुए अन्य सदस्यों को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दे दी।[270]

जब किसी सदस्य को प्रश्न पूछने के लिए पुकारा जाये और वह अनुपस्थित हो तो प्रश्न को अतारांकित मान लिया जाता है और उसका उत्तर वाद-विवाद में छाप दिया जाता है।[271]

यदि कोई प्रश्न पुकारा जाये और जिस सदस्य के नाम में वह प्रश्न है वह अनुपस्थित हो, और प्रश्न न पूछा जाये तो अध्यक्ष किसी अन्य सदस्य के अनुरोध पर यह निदेश दे सकता है कि उस प्रश्न का उत्तर दिया जाये। तथापि, पहले राउंड में अनुपस्थित सदस्यों के तारांकित प्रश्नों के उत्तर देने की अनुमति अध्यक्ष द्वारा प्रश्न के महत्व के बारे में संतुष्ट होने पर बहुत ही कम अवसरों पर दी जाती है।[272] पंद्रहवीं लोक सभा के पांचवे सत्र से यदि कोई प्रश्न पुकारा जाएं और जिस सदस्य के नाम में वह प्रश्न है वह अनुपस्थित हो, तो अध्यक्ष यह निर्देश

---

266. *पी. डिबेट्स* (1), 21.4.1951, का. 3367; 10.8.1951, कॉ. 179; *एल.एस. डिबेट्स,* 12.8.1960, कॉ. 2299-2302 ।

267. *पी. डिबेट्स,* 31.3.1951, कॉ. 2699, 2727-28; *एल.एस. डिबेट्स,* 7.12.1956, कॉ. 1149-52; 28.8.1958, कॉ. 3337; 1.5.1961, का. 14570 ।

268. *लो.स.वा.वि.,* 1.3.1960, पृ. 1625; एल.एस. डिबेट्स, 18.11.1960, का. 522-24; 13.12.1960, का. 2441-42 ।

269. *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 5.4.1949, पृ. 2125; *लो.स.वा.वि.,* 13.3.1959, पृ. 3065; 30.8.1960, पृ. 2769-70, 2830 ।

270. उदाहरणार्थ *देखिए, एल.एस. डिबेट्स*, 9.5.2007, पृ. 12065-69 ।

271. *लो.स.वा.वि.,* 24.3.1955, का. 1397 ।

272. उदाहरण के लिए *देखिए, एल.एस. डिबेट्स*, 21.11.1956, का. 334-36; 3.12.1956, का. 844-45; ता.प्र.सं., 887, 18.5.1990; पृ. 12, ता.प्र.सं. 43, 25.2.1993 ।

दे सकता है कि उसका उत्तर दिया जाए।[273] 9 मई 2007 को एक सदस्य श्री अनंतकुमार हेगरे द्वारा दिया गया तारांकिप प्रश्न सं. 488 पुकार गया तो अध्यक्ष ने सदस्य को जो समय सभा में उपस्थित या प्रश्न पूछने के लिये कहा। उस सदस्य ने कहा कि वह प्रश्न नहीं पूछना चाहता। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने यह जानना चाहा कि क्या कोई अन्य सदस्य अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहता है क्योंकि विषय की महत्ता और सदस्यों की इसमें रूचि को देखते हुए वह अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दे सकते हैं। अनेक सदस्यों ने इसमें रूचि दिखाई और अध्यक्ष ने उन्हें अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनमुति दी।[274]

यदि कोई प्रश्न दो सदस्यों के नाम में हो, और मौखिक उत्तर के लिए पुकारे जाने पर एक सदस्य अनुपस्थित हो, तो दूसरा सदस्य, यदि वह सभा में उपस्थित हो, तो प्रश्न पूछ सकता है।[275] पंद्रहवीं लोकसभा के चौथे सत्र तक निम्नलिखित प्रावधान लागू था जिसे अब हटा लिया गया है।

जब मौखिक उत्तरों के लिए सभी प्रश्न पुकारे जा चुके हों, तथा प्रश्नकाल समाप्त होने में समय शेष हो, तो अध्यक्ष, दूसरे राउंड में, कोई भी प्रश्न जिसे किसी सदस्य के अनुपस्थित होने के कारण न पूछा गया हो, जिसके नाम में वह प्रश्न हो उसे पुन: पुकार सकता है तथा किसी सदस्य को अन्य किसी सदस्य विशेष के नाम वाले प्रश्न पूछने की अनुमति भी दे सकता है यदि उस सदस्य विशेष द्वारा उसे इसके लिए प्राधिकृत किया गया हो।[276] अध्यक्ष स्वविवेक से उस सदस्य के प्रश्न का उत्तर देने का भी निदेश दे सकता है जो अनुपस्थित हो और जिसने अपनी ओर से प्रश्न पूछने के लिए किसी अन्य सदस्य को प्राधिकार पत्र न दिया हो, यदि उसकी अथवा संबंधित मंत्री की राय में प्रश्न की विषय-वस्तु ऐसी महत्वपूर्ण हो, जिसका सभा में उत्तर दिया जाना उचित हो।[277]

---

273. नियम 48 (3) ।

274. एल.एस. डिबेट्स पा.(1) 9.5.2007; एल.एस. डिबेट पार्ट-I, 19.12.2011, एल.एस.डिबेट्स पार्ट-I, 19.3.2012; एल.एस.डिबेट्स पार्ट-I, 27.4.2012, प्र. 6655 *एल.एस.डिबेट्स* पार्ट-I 30.4.2012; *एल.एस.डिबेट्स* पार्ट-I, 29.11.2012

275. *एच.पी. डिबेट्स* (1), 12.1.1953, का. 3008 ।
उदाहरण के लिए *देखिए,* ता.प्र.सं., 754, 8.5.1985, का. 24-30; ता.प्र.सं. 152, 5.3.1986, का. 21-24; ता.प्र.सं. 472, 5.12.1986, का. 10-14; और ता.प्र.सं. 82, 12.11.1987, का. 5-10 ।

276. नियम 49 ।

277. निदेश 15 हटा दिया गया । उदाहरण के लिए *देखिए* ता.प्र.सं. 231, 28.11.1988, का. 24, 38-39 ।

प्रश्नों के लिए निर्धारित किये गये समय के दौरान, यदि किसी प्रश्न की बारी मौखिक उत्तर के लिए नहीं आ पायी हो और यदि मंत्री अध्यक्ष से यह निवेदन करता है कि उक्त प्रश्न विशेष लोक हित का है, जिसका वह उत्तर देना चाहता है, तो अध्यक्ष की अनुमति से प्रश्न काल की समाप्ति पर उसका उत्तर दिया जा सकता है।[278]

जब उसी या किसी सम्बद्ध विषय पर दो या अधिक प्रश्न किसी मंत्री को मौखिक उत्तर के लिए सम्बोधित किए गए हों और किसी एक दिन की प्रश्नों की सूची में शामिल हों तो उनमें से पहले प्रश्न का उत्तर दिये जाने के समय पर अध्यक्ष स्वयं या किसी सदस्य की प्रार्थना पर यह निदेश दे सकता है कि ऐसे दो या अधिक प्रश्नों का उत्तर एक साथ दे दिया जाए और इस बात को ध्यान में रखे बिना कि वे सूची में किस क्रम में हैं।[279]

प्रश्नों का वापस लिया जाना अथवा स्थगित किया जाना

जो प्रश्न किसी दिन की स्वीकृत प्रश्नों की सूची में आ गया हो, उस दिन की बैठक प्रारंभ होने से पहले किसी भी समय सदस्य द्वारा पूर्व सूचना देकर उसे वापस लिया जा सकता है या बाद के किसी दिन के लिए स्थगित कराया जा सकता है।[280] यदि अध्यक्ष द्वारा सभा में उस प्रश्न के पुकारे जाने पर भी सदस्य उठ कर यह कहता है कि वह अपना प्रश्न वापस लेना चाहता है तो उस प्रश्न को वापस लेने की अनुमति दे दी जाती है।[281]

जब कोई सदस्य अपने प्रश्न को स्थगित करवाना चाहता हो तो स्थगन की पूर्व सूचना में वह तिथि बतानी आवश्यक है, जिसके लिए वह प्रश्न को स्थगित करवाना चाहता है और बाद का वह दिन, उस मंत्री के लिए नियत दिन होना चाहिए, जिसे वह प्रश्न सम्बोधित किया गया है। उस प्रश्न को उन सभी प्रश्नों के बाद सूची में रखा जाता है जो इस प्रकार स्थगित न किये गये हों।[282]

---

278. नियम 46, परन्तुक।
उदाहरण के लिए *देखिए पी. डिबेट्स* 30.8.1951, कॉ. 815-16; *एच.पी. डिबेट्स* (1), 7.7.1952, कॉ. 1529-30; *लो.स.वा.वि.* 26.5.1956, 2787; 31.5.1957, कॉ. 3132-33; 4.12.1959, कॉ. 3348-56; 29.2.1960, कॉ. 3119-23; 18.4.1960, पृ. 5608-10; 9.9. 1960, कॉ. 7739-44; 29.3.1965, पृ. 2531-33; 20.12.1978, कॉ. 16-18 ।

279. निदेश 14—उदाहरण के लिए *देखिए पी. डिबेट्स* (1), 20.3.1951, कॉ. 2390; *लो.स.वा. वि.,* (1), 23.8.1954, कॉ. 225; 1.9.1954, कॉ. 422-23; 2.9.1954, कॉ. 624-25; 7. 9.1954, कॉ. 856; 11.9.1954, कॉ. 1108-09; 16.9.1954, कॉ. 1412-13; *एल.एस. डिबेट्स,* 18.11.1956, कॉ. 301; 27.11.1956, कॉ. 3171; 28.11.1956, कॉ. 2783; 3. 8.1959, कॉ. 2 और 20; 20.8.1959, कॉ. 1667-68; *लो.स.वा.वि.,* 31.5.1967, पृ. 1885; *एल.एस. डिबेट्स,* 4.10.1982, कॉ. 20-23; 20.10.1982, कॉ. 10-18; *लो.स.वा.वि.,* 21. 2.1986, पृ. 16-19; और 11.8.1987, पृ. 1; 6.5.2005, कॉ. 41-60 ।

280. नियम 47 ।

281. नियम 48(2)।

282. नियम 47 ।

उन मामलों में, जहां सदस्य अपने प्रश्नों को स्थगित कर दिये जाने का अनुरोध करते हैं, ऐसे प्रश्नों की बैलट में मिली वरीयता समाप्त हो जाती है।

मंत्रियों को पहले से सूचना देने के उद्देश्य से स्थगित प्रश्न को स्थगन की पूर्वसूचना प्राप्त होने की तारीख से दो दिन के बाद ही सूची में रखा जाता है।[283]

जो प्रश्न, प्रश्नों की छपी हुई सूची में स्थगित किया गया हो, नयी सूची में उसका नम्बर वही रहता है, जो कि पहले दिन की सूची में था, जहां से उसे अन्तरित किया गया है। इसे उस दिन के लिए गृहीत सभी प्रश्नों के नीचे "स्थगित प्रश्न" शीर्षक के अन्तर्गत मुद्रित किया जाता है।[284]

जब किसी प्रश्न को किसी दिन की प्रश्नों की सूची में, रख दिया जाता है तो उसके बाद उसको स्थगित करने के लिए कहने का अधिकार संबंधित सदस्य को है, न कि सामान्य रूप में उस मंत्री को जिसे उस प्रश्न का उत्तर देना है। तथापि एक उदाहरण ऐसा भी है जब अतारांकित प्रश्न सूची में मुद्रित एक प्रश्न उस समय अध्यक्ष के निदेश से वापस ले लिया गया जब संबंधित मंत्री ने अनुरोध करते हुए यह कहा कि देशहित में और सुरक्षा के लिहाज से इस प्रश्न का उत्तर दिया जाना ठीक न होगा।[285]

कुछ ऐसे प्रश्नों को स्थगित करने के लिए अध्यक्ष ने प्रधान मंत्री के अनुरोध को स्वीकार किया जिनका प्रधानमंत्री स्वयं उत्तर देना चाहते थे।[286] अन्य मंत्रियों की ओर से अपेक्षित सूचना एकत्र करने के लिए अधिक समय की मांग करने पर अथवा ऐसे ही अन्य उपयुक्त कारणों से उनके अनुरोध पर भी अध्यक्ष द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई है। जब मंत्री के कहने पर कोई प्रश्न स्थगित किया जाता है, तो बैलट में मिली इसकी वरीयता यथावत् बनी रहती है और इसे अगले दिन की सूची में उसी स्थान पर रखा जाता है, जिस स्थान पर यह उस सूची में था, जिसमें से इसे स्थगित किया गया है।[287] उदाहरणत: अध्यक्ष के निर्देश पर विपक्षी दल के सदस्यों के सभा की कार्यवाही में भाग न लेने के कारण तारांकित प्रश्न सूची में मुद्रित पांच प्रश्नों को स्थगित कर दिया गया। 8 अगस्त 2006 को अध्यक्ष द्वारा मौखिक उत्तरों की प्रश्न सूची में से तारांकित प्र. सं. 221, 222, 225, 226 और 227 को स्थगित कर दिया गया क्योंकि प्रश्नकाल के दौरान विपक्षी दल के सदस्य सभा में उपस्थित नहीं थे अध्यक्ष ने एक सदस्य, रामदास अठावले का प्रश्न सं. 221 को जिसमें उनका नाम दूसरे स्थान पर था, उठाने का अनुरोध स्वीकार नहीं किया। सभी पांच प्रश्नों को 22 अगस्त 2006 की प्रश्न सूची

283. नियम 47, परन्तुक ।

284. नियम 47 ।

285. अता.प्र.सं. 1508, 22.8.2007 ।

286. समाचार भाग-दो, 22.4.1955, पैरा सं. 2142; और *एल.एस. डिबेट्स,* 3.5.1955, कॉ. 2889-900 ।

287. *एल.एस. डिबेट्स,* 16.12.2004 ।

में उसी रूप में सूचीबद्ध किया गया। सूची में 25 प्रश्न थे।[288] कुछ अपरिहार्य कारणों के कारण, 16 मई 2012 को नागरिक उड्डयन मंत्री सभा में उपस्थित नहीं हो सके थे। अध्यक्ष के निर्णय लिया कि मंत्री के नाम पर सूचीबद्ध सभी प्रश्न अगले सत्र में अगली तिथि के लिये स्थगित कर दिए जाएं। तदनुसार, चारों प्रश्नों को 17 अगस्त 2012 की मौखिक उत्तरों की सूची में उसी रूप में सूचीबद्ध किया गया। सूची में 24 प्रश्न थे।[289] अगले दिन का निर्धारण करते समय सदस्य की सुविधा का भी ध्यान रखा जाता है।

जब किसी प्रश्न के उत्तर में यह कहा जाता है कि उस विषय पर किसी परवर्ती दिन वक्तव्य दिया जायेगा, तो प्रश्न का उत्तर दे दिया गया माना जाता है और वह प्रश्न स्थगित नहीं हो सकता।[290]

अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्न

यदि कोई प्रश्न पुकारा जाए और जिस सदस्यों के नाम से वह प्रश्न है, वह अनुपस्थित हो तो अध्यक्ष यह निर्देश दे सकता है कि उस प्रश्न का उत्तर दिया जाए।[291] पंद्रहवीं लोक सभा के चौहदवें सत्र तक प्रावधान यह था कि जब सभी प्रश्न जिनके लिए मौखिक उत्तर मांगा गया हो, पुकारे जा चुके हों, और प्रश्नकाल समाप्त न हुआ हो, तो प्रक्रिया के अनुसार किन्हीं ऐसे प्रश्नों को, जो पहले उन सदस्यों की, जिनके नाम में वे प्रश्न हों, अनुपस्थिति के कारण न पूछा जा सका हो, पुनः पुकारा जाता है।[292] इसमें एक ऐसे अनुपस्थित सदस्य के प्रश्नों को भी पूछा जा सकता है, जिसने किसी दूसरे सदस्य को अपनी ओर से प्रश्न पूछने के लिए प्राधिकृत कर रखा हो।

किसी सदस्य द्वारा अपनी अनुपस्थिति में किसी दूसरे को प्रश्न पूछने हेतु दिया गया प्राधिकार लिखित रूप में ही होना चाहिए[293] तथा इसमें प्रश्न का और जिस तारीख को प्रश्न पूछा जाना है, उसका उल्लेख होना चाहिए। कई दिनों अथवा पूरे सत्र के लिए एक सामान्य प्राधिकार को मान्यता प्रदान नहीं की गयी है।[294] प्राधिकार पत्र, जिस दिन ऐसे प्रश्नों का उत्तर दिया जाना है, उससे कम से कम एक दिन पहले सचिवालय को भेजे जाने आवश्यक हैं। तथापि, यदि जिस दिन प्रश्न का उत्तर दिया जाना होता है, उसी दिन ऐसे प्राधिकार दिये जाते हैं, तो ऐसी स्थिति में उन सदस्यों को, जिनके पास अपने पक्ष में ऐसे प्राधिकार पत्र हों, इन

288. *एल.एस. डिबेट्स,* (1) 8.8.2006 ।

289. *एल.एस. डिबेट्स,* (1) 16.5.2012 ।

290. *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 28.3.1949, पृ. 1904-05 ।

291. नियम 48 (3); समाचार भाग (दो), 19.3.2010, पैरा 1265

292. नियम 49 । उदाहरण के लिए *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 19.2.1946, पृ. 1130-32; *एल.एस. डिबेट्स* (1), 29.11.1954, कॉ. 649 ।

293. *लो.स.वा.वि.* 14.3.1956, कॉ. 1026 ।

294. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.3.1939, पृ. 1824 ।

प्राधिकार पत्रों को अधिक से अधिक 11 बजे पूर्वाह्न तक सभा पटल अधिकारी के पास जमा कराना आवश्यक है। कोई सदस्य जो किसी अनुपस्थित सदस्य के प्रश्न पूछने के लिए प्राधिकृत हो, पुनः उस प्राधिकार को किसी अन्य सदस्य को नहीं सौंप सकता।

किसी ऐसे अनुपस्थित सदस्य के प्रश्नों को, जिसने किसी अन्य सदस्य को प्राधिकृत न कर रखा हो अतारांकित माना जाता है और उसके उत्तरों को उस दिन के वाद-विवाद में मुद्रित कर दिया जाता है जो इसके लिए नियत किया गया हो।[295]

यदि कोई सदस्य, जिसके नाम में कोई प्रश्न हो, अनुपस्थित हो और उसने किसी अन्य सदस्य को अपनी ओर से प्रश्न पूछने का प्राधिकार पत्र न दिया हो, तो अध्यक्ष यदि उसकी राय में या संबंधित मंत्री की राय में प्रश्न का विषय इतना महत्वपूर्ण हो, कि उसका उत्तर सभा में दिया जाना आवश्यक हो, उस प्रश्न का, दूसरे राउंड में उत्तर देने की अनुमति दे सकता है।[296]

विशेष परिस्थितियों में प्रश्न की महत्ता को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष उस प्रश्न को पहले ही राउंड में उत्तर दिये जाने के लिए स्वीकार कर सकता है।[297]

ऐसे सदस्यों के प्रश्नों को, जिन्हें सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदान कर दी गई हो, उतनी अवधि के लिए लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में शामिल किया जाता है, जितनी अवधि के लिए उन्हें सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदान की गई है। ऐसे सदस्यों के प्रश्नों को, जो विदेश यात्रा पर हों, उनकी अनुपस्थिति की अवधि के दौरान प्रश्नों की सूची में नहीं रखा जाता।[298]

अनुपूरक प्रश्न

उस सदस्य को, जो प्रश्न सूची में सम्मिलित अपना प्रश्न पूछता है, मंत्री द्वारा प्रश्न का उत्तर दिये जाने के बाद, दो अनुपूरक प्रश्न पूछने का अवसर मिलता है। इसके उपरान्त, यदि किसी दूसरे सदस्य का नाम, उसी प्रश्न के लिए प्रश्न सूची में सम्मिलित है, तो उसे एक अनुपूरक प्रश्न पूछने का अवसर मिलता है। तत्पश्चात्, कोई भी सदस्य, अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर, मूल प्रश्न और उसके उत्तर से उत्पन्न कोई अनुपूरक प्रश्न, किसी तथ्यगत विषय के स्पष्टीकरण के लिए पूछ सकता है।[299] लेकिन सरकार से किसी प्रकार की नीति निर्धारित करने

---

295. *लो.स.वा.वि.* 24.3.1955, कॉ. 1397; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 23.8.1960, ता.प्र.सं. 657 और 672; *लो.स.वा.वि.* 18.5.1990, ता.प्र.सं. 881-84 ।

296. निदेश 15 । उदाहरण के लिए *देखिए, एल.एस. डिबेट्स,* 28.4.1958, कॉ. 11892; 18.3.1960, कॉ. 666-67; *लो.स.वा.वि.,* 28.11.1988, पृ. 24-25 ।

297. *लो.स.वा.वि.* 18.5.1990, ता.प्र.सं. 887, पृ. 12-16; 25.2.1993, ता.प्र.सं. 43, पृ. 16 । एस.एस. डिबेट्स, 9.5.2007; देखिए पीछे पा.टि.से. 272 ।

298. *लो.स.वा.वि.,* 3.3.1960, पृ. 1892 ।

299. नियम 50; और *एल.एस. डिबेट्स,* 12.3.1956, कॉ. 900 ।

के आग्रह[300] अथवा मंत्री से किसी प्रकार का आश्वासन लेने के प्रयोजन,[301] अथवा किसी मामले पर मंत्री की राय जानने,[302] अथवा मंत्री द्वारा पूरी तरह से स्थिति स्पष्ट कर दिए जाने के बाद सरकार द्वारा लिए गए किसी निर्णय की सत्यता संबंधी जानकारी प्राप्त करने,[303] अथवा किसी मामले को, इसका आधार सुनिश्चित किए बिना उठाने,[304] की दृष्टि से अनुपूरक प्रश्न पूछना अग्राह्य है। अनुपूरक प्रश्नों के माध्यम से जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए, न कि जानकारी अथवा कार्यवाही करने के सुझाव दिए जाएं।[305] इन्हें बिना किसी प्रस्तावना के पूछा जाना चाहिए और मंत्री द्वारा इनके संक्षिप्त उत्तर दिए जाने चाहिएं।[306] अनुपूरक प्रश्न संक्षिप्त, सुस्पष्ट तथा मूल प्रश्न की विषय-वस्तु के दायरे में होने चाहिएं।[307] जब अनुपूरक प्रश्न सीधा मूल प्रश्न से उत्पन्न न हुआ हो, तो अध्यक्ष मंत्री को यह निदेश दे सकता है कि सदस्य को लिखित रूप में जानकारी भेज दी जाए।[308]

सदस्यों द्वारा सभा में अनुपूरक प्रश्न पूछने का अवसर प्राप्त करने के अनुरोध संबंधी भेजी गई पर्चियों पर ध्यान नहीं दिया जाता।[309] ऐसे सदस्यों द्वारा अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने की निन्दा की गई है, जिन्हें पीठासीन अधिकारी ने नहीं बुलाया हो।[310] कोई भी सदस्य यह दावा नहीं कर सकता कि किसी प्रश्न विशेष के संबंध में अनुपूरक प्रश्न पूछने का उसका अधिकार है।[311] यह निर्णय करना अध्यक्ष के विवेकाधिकार में है कि वह किसी सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए बुलाना चाहता है। सबसे पहले उस सदस्य को अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है, जिसने मूल प्रश्न की सूचना दी हो, और उसे भी जिसका नाम प्रश्न सूची में साथ जुड़ा हो।[312] जब तक किसी अन्य दल/ग्रुप से कोई और सदस्य अनुपूरक प्रश्न पूछने

300. *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1959, पृ. 3345; ता.प्र.सं. 13 का अनुपूरक प्रश्न; 17.12.1968, ता.प्र.सं. 786 का अनुपूरक प्रश्न।

301. *पूर्वोक्त,* 21.8.1968, ता.प्र.सं. 571 का अनुपूरक प्रश्न।

302. *पूर्वोक्त,* 3.12.1970, पृ. 17; 28.7.1971, कॉ. 11; और 30.7.1971, पृ. 12-13 ।

303. *पूर्वोक्त,* 9.3.1985, पृ. 18 ।

304. *पूर्वोक्त,* 29.1.1980, पृ. 30 ।

305. *पूर्वोक्त,* 21.8.1970, पृ. 6; 9.8.1988, पृ. 21-22 ।

306. *पूर्वोक्त,* 10.12.1970, पृ. 37; 13.3.1980, पृ. 1; 7.5.1985, पृ. 5-8; 14.8.1987, पृ. 6-7; 5.5.1988, पृ. 4-5; 5.4.1990, पृ. 15 ।

307. *पूर्वोक्त,* 7.4.1969, पृ. 13; 29.7.1980, पृ. 2; 17.3.1982, पृ. 14; 28.2.1983, का. 23-24; 14.8.1987, पृ. 6-7; 10.12.1987, पृ. 8; 22.11.1988, पृ. 15-19; 2.3.1989, पृ. 3-4; 10.8.1990, पृ. 17-18 ।

308. *पूर्वोक्त,* 25.8.1981, कॉ. 6 ।

309. *पूर्वोक्त,* 3.4.1970, पृ. 27 ।

310. *पूर्वोक्त,* 30.11.1956, कॉ. 776; 8.12.1964, पृ. 1559; 9.3.1966, कॉ. 4420; 24.11.1987, पृ. 18-19 ।

311. *पूर्वोक्त,* 12.2.1958, पृ. 143-44; 25.7.1986, पृ. 7-12 ।

312. *एच.पी. डिबेट्स,* 19.5.1952, कॉ. 4; 26.4.1954, का. 2280; और 19.12.1955, कॉ. 1150 ।

वाला न हो, तो मूल प्रश्न की सूचना देने वाले सदस्य तथा जिस सदस्य का नाम प्रश्न सूची में साथ में जुड़ा हो, द्वारा अनुपूरक प्रश्न पूछ लिये जाने के पश्चात् उसी दल/ग्रुप के एक से अधिक सदस्य को, सामान्यत: अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान नहीं की जाती है।[313] लेकिन यह निर्णय करना अध्यक्ष के विवेकाधिकार में है कि वह सदस्यों को कब और किस क्रम से अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए बुलाएगा।[314]

अनुपूरक प्रश्न पूछा जाना चाहिए, वह पढ़ा नहीं जाना चाहिए[315] अथवा जांच समिति/आयोग की रिपोर्ट से उद्धृत नहीं किया जाना चाहिए[316] और उसमें मूल प्रश्न के ऐसे अंशों को, यदि कोई हों, दोहराया नहीं जा सकता, जिन्हें अध्यक्ष ने अस्वीकृत कर दिया हो।[317] किसी प्रश्न विशेष पर कितने अनुपूरक प्रश्न पूछे जाएंगे, इसका निर्णय अध्यक्ष करता है। सामान्य तौर पर बहुत अधिक अनुपूरक प्रश्न पूछने को हतोत्साहित किया जाता है।[318]

यदि कोई मंत्री किसी अनुपूरक प्रश्न का उत्तर तत्काल न दे सके, तो वह उसके लिए सूचना मांग सकता है[319] लेकिन किसी विशेष तरीके से उसे उत्तर देने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।[320]

अनुपूरक प्रश्नों की ग्राह्यता पर वही नियम लागू होते हैं, जो मूल प्रश्नों की ग्राह्यता पर लागू होते हैं।[321]

अल्प सूचना प्रश्न

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय से सम्बन्धित कोई प्रश्न किसी सदस्य द्वारा पूरे दस दिन से कम की पूर्व सूचना पर मौखिक उत्तर के लिए पूछा जा सकता है और सदस्य को अल्प सूचना पर प्रश्न पूछने के कारण संक्षेप में बताने पड़ते हैं। जिस प्रश्न की पूर्व सूचना में ये कारण नहीं बताये गये हों, वह प्रश्न सदस्य को वापस भेज दिया जाता है।[322]

यदि अल्प सूचना प्रश्न की सूचना पर एक से अधिक सदस्यों ने हस्ताक्षर किये हैं तो वह सूचना केवल प्रथम हस्ताक्षरकर्ता द्वारा दी गई मानी जाती है।[323] जब दो या दो से अधिक

---

313. *एल.एस. डिबेट्स,* 8.7.1971, कॉ. 20 ।
314. *पूर्वोक्त,,* 29.2.1960, पृ. 1469 ।
315. *पूर्वोक्त,* 1.3.1956, पृ. 334-35; 27.3.1958, पृ. 3306; 24.8.1962, पृ. 1768; *एल.एस. डिबेट्स,* 23.1.1963, कॉ. 5895; *लो.स.वा.वि.,* 3.5.1985, पृ. 4; 15.5.1985, पृ. 24; 16.5.1985, पृ. 2; और 30.4.1986, पृ. 2 ।
316. *पूर्वोक्त,* 8.6.1971, पृ. 17-18 ।
317. *एल.ए. डिबेट्स,* 19.8.1926, पृ. 11।
318. *एच.पी. डिबेट्स* (1), 23.4.1954, कॉ. 2250 ।
319. *एल.ए. डिबेट्स,* 23.3.1931, पृ. 2496-97 ।
320. *लो.स.वा.वि.,* 18.6.1962, पृ. 5178-80; 23.2.1988, पृ. 16 ।
321. *पी. डिबेट्स,* 4.4.1951, कॉ. 2841-50 ।
322. नियम 54(1) और (5)।
323. नियम 54(3 क)।

सदस्य एक ही विषय पर अल्प सूचना प्रश्न पूछें और उनमें से एक अल्प सूचना प्रश्न उत्तर के लिए स्वीकार कर लिया जाए, अथवा जब अध्यक्ष ने यह निदेश दे दिया हो कि सभी सूचनाओं को एक ही सूचना में समेकित कर दिया जाए, क्योंकि उसकी राय में एक ऐसा प्रश्न तैयार करना वांछनीय है, जिसमें सदस्यों द्वारा उठाई गई सब बातें आ जाएं, तो जिस सदस्य की सूचना स्वीकार कर ली जाती है, उसके अतिरिक्त, बैलट द्वारा निर्धारित अधिक से अधिक चार सदस्यों के नाम स्वीकृत प्रश्न के सामने दिये जाते हैं।[324]

यदि अध्यक्ष प्रश्न की अविलम्बनीयता को स्वीकार कर ले,[325] तो संबंधित मंत्री से पूछा जाता है कि क्या वह अल्प सूचना प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में है और यदि हां, तो किस तिथि को किसी अल्प सूचना प्रश्न को स्वीकार करना या अस्वीकार करना मंत्री के हाथ में है[326] परन्तु उस प्रश्न को अस्वीकार करना अध्यक्ष के विवेकाधिकार में है, चाहे मंत्री उसका उत्तर देने के लिए तैयार ही क्यों न हो। यदि मंत्री अल्प सूचना प्रश्न स्वीकार करने से इन्कार कर दे और अध्यक्ष का यह मत हो कि वह प्रश्न पर्याप्त लोक महत्व का है कि उसका मौखिक उत्तर सभा में दिया जाना चाहिए तो, वह उस प्रश्न को सामान्य प्रश्न के रूप में स्वीकार करते समय सबसे ऊपर रख सकता है जिससे कि सदस्य उसके सम्बन्ध में अनुपूरक प्रश्न पूछ सकें।[327] परन्तु, यह प्रक्रिया आपवादिक मामलों में ही अपनाई जाती है और किसी दिन की प्रश्न सूची में इस प्रकार की पूर्ववर्तिता केवल एक ही प्रश्न को दी जा सकती है।[328]

उन मामलों में, जहां कि प्रश्न में निर्दिष्ट विषय को अविलम्बनीय नहीं समझा जाता, अध्यक्ष किसी अल्प सूचना प्रश्न को सामान्य प्रश्न के रूप में न्यूनतम दस दिनों की सूचना के साथ तारांकित या अतारांकित बना कर स्वीकार कर सकता है।[329]

जब कोई अल्प सूचना प्रश्न स्वीकार कर लिया जाता है और कार्य सूची में रख दिया जाता है, तो उसे प्रश्न काल के तत्काल बाद या उस दिन के सभी तारांकित प्रश्नों के समाप्त होने के बाद पुकारा जाता है[330] और यदि उस दिन प्रश्न काल न रखा गया हो या हटा दिया गया हो तो अल्प सूचना प्रश्न को कार्य की पहली मद मान लिया जाता है और यदि किसी नये सदस्य को शपथ लेनी हो या प्रतिज्ञान करना हो, तो उसके तत्काल बाद अल्प सूचना प्रश्न को पुकारा जाता है।[331]

यदि अल्प सूचना प्रश्न पुकारे जाने पर, उसे सदस्य द्वारा नहीं पूछा जाता या वह सदस्य अनुपस्थित है और उसने किसी अन्य सदस्य को अपनी ओर से प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं

---

324. नियम 54(4), यथासंशोधित।
325. जहां आवश्यक हो, सम्बन्धित मंत्रालय से कहा जाता है कि वह तथ्य प्रस्तुत करे जिससे कि अध्यक्ष प्रश्न की ग्राह्यता के बारे में निर्णय कर सके।
326. *एल.एस. डिबेट्स*, 16.8.1956, कॉ. 3417 ।
327. *पूर्वोक्त,* 3.11.1956, 29.8.1973 और 17.12.1973 ।
328. नियम 54(3), परन्तुक ।
329. *एल.एस.* डिबेट्स, 24.8.1957, कॉ. 9730 ।
330. नियम 54(2)
331. *एल.एस. डिबेट्स*, 2.5.1955, कॉ. 3471; 4.8.1955, कॉ. 2901; और 5.5.1955, कॉ. 3497 ।

दिया है, तो अध्यक्ष उसका लिखित उत्तर सभा पटल पर रखवाता है।[332] इन दशाओं में, यदि मंत्री ने विषय के लोक महत्व को देखते हुए उत्तर देने की इच्छा व्यक्त की है, तो अध्यक्ष किसी अन्य सदस्य को वह प्रश्न पूछने की अनुमति देता है अथवा उस मंत्री को प्रश्न और उस प्रश्न का उत्तर पढ़कर सुनाने की अनुमति देता है।[333]

अल्प सूचना प्रश्नों की सूची में रखा गया अल्प सूचना प्रश्न मंत्री के अनुरोध पर और सम्बद्ध सदस्य की सहमति से किसी और दिन के लिए स्थगित किया जा सकता है।[334]

अल्प सूचना प्रश्नों की ग्राह्यता की शर्तें वही हैं जो कि सामान्य प्रश्नों पर लागू होती हैं, परन्तु प्रत्येक अल्प सूचना प्रश्न अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय से सम्बन्धित होना चाहिए।[335]

सामान्यत: किसी दिन के लिए एक से अधिक अल्प सूचना प्रश्न नहीं रखा जाता है। मंत्रियों द्वारा किसी एक दिन उत्तर देने के लिए एक से अधिक ऐसे प्रश्न स्वीकार कर लिये जाने की स्थिति में उनमें से केवल एक को उस दिन की सूची में रखा जाता है और बाकी प्रश्नों को या तो बाद की तिथियों तक स्थगित कर दिया जाता है और, यदि कोई तिथि उपलब्ध न हो, तो उनको अस्वीकृत कर दिया जाता है। आपवादिक मामलों में अध्यक्ष किसी एक दिन एक से अधिक अल्प सूचना प्रश्नों के पूछे जाने की अनुमति दे सकता है।[336] किसी विशेष दिन, सामान्य कार्य किए बिना लोक सभा के स्थगित हो जाने पर, उस दिन के लिए गृहीत अल्प सूचना प्रश्न को स्थगित नहीं किया जाता, बल्कि उसका उत्तर आगामी बैठक में सभा पटल पर रखा मान लिया जाता है तथा उस दिन के वाद-विवाद में मुद्रित किया जाता है।[337]

गैर-सरकारी सदस्यों को सम्बोधित अल्प सूचना प्रश्न स्वीकार नहीं किए जाते हैं।

प्रश्नों की सूचनाओं का व्यपगत होना

कई बार प्रश्नों की सूचनाएं अस्पष्ट या अनिश्चित होती हैं। ऐसे मामलों में, वे सूचनाएं सदस्यों को वापस भेज दी जाती हैं और उनसे कुछ बातों का स्पष्टीकरण करने के लिए कहा जाता है जिससे कि अध्यक्ष प्रश्नों की ग्राह्यता का निर्णय कर सके। यदि सदस्यों से उनका समय पर उत्तर नहीं आता और बाद में सभा का सत्रावसान कर दिया जाता है तो यह मान लिया जाता है कि वे सूचनाएं व्यपगत हो गयी हैं।[338]

---

332. निदेश 18, और *लो.स.वा.वि.,* 25.2.1959, पृ. 1491; 18.3.1980 ।
333. *पी.डिबेट्स* (1), 25.11.1950, का. 337-38; और *लो.स.वा.वि.,* 25.2.1959, पृ. 1491 ।
334. *लो.स.वा.वि.,* 5.9.1961, पृ. 3460-61 ।
335. नियम 54(7)।
336. नियम 52 ।
337. *लो.स.वा.वि.,* 10.12.1965, पृ. 2541 ।
338. *पूर्वोक्त,* 12.3.1987, कॉ. 470 ।

प्रश्नों के उत्तरों का अग्रिम प्रचार

मंत्री प्रश्नों के जो उत्तर सभा में देना चाहता है, उनके प्रकाशन की अनुमति तब तक नहीं दी जाती, जब तक कि सभा में वास्तव में उत्तर न दिये गये हों या सभा पटल पर न रखे गये हों।[339]

नियमों के अनुसार किसी प्रश्न की सूचना का तब तक प्रचार करने पर रोक है जब तक कि उस प्रश्न का उत्तर सभा में न दे दिया जाये।[340]

आधे घण्टे की चर्चा

सदस्य, समुचित लोक महत्व के किसी विषय, जिसके संबंध में हाल में किसी प्रश्न का मौखिक या लिखित उत्तर दिया गया हो, और जिसके संबंध में किसी तथ्य के स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो, चर्चा करने की सूचना दे सकता है।[341] यदि यह सूचना स्वीकार कर ली जाए तो चर्चा केवल आधे घंटे के लिए होती है और किसी बैठक के अन्तिम तीस मिनटों में होती है।[342] परन्तु, ऐसे भी उदाहरण हैं, जब आधे घंटे की चर्चा 30 मिनट की निर्धारित अवधि के बाद तक चली है।[343] आधे घंटे की चर्चा सामान्यतः सप्ताह में तीन दिन अर्थात् सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को होती है। तथापि, बजट सत्र के दौरान वित्तीय कार्य का निपटान होने तक आधे घंटे की चर्चा नहीं होती।

इस प्रकार की चर्चा उठाने के इच्छुक सदस्य को उस प्रश्न का उत्तर दिये जाने के सामान्यतः तीन दिन के भीतर और जिस दिन को वह उस विषय पर चर्चा करना चाहता हो, उससे कम से कम तीन दिन पहले लिखित सूचना महासचिव को देनी होती है। इस प्रकार की सूचना के साथ एक व्याख्यात्मक टिप्पण भी होना चाहिए, जिसमें उस विषय पर चर्चा उठाने के कारण बताये गये हों।[344] परन्तु, अध्यक्ष सम्बन्धित मंत्री की सहमति से सूचना की अवधि की शर्त हटा सकता है, लेकिन अभी तक ऐसा कोई उदाहरण नहीं है।

---

339. नियम 53 ।

340. नियम 334 क ।

341. नियम 55 (1)।

342. *एल.एस. डिबेट्स,* 10.4.1958, कॉ. 9390, 23.3.1976, कॉ. 762-63 ।

343. *पूर्वोक्त,* 2.3.1960, कॉ. 5283; 4.9.1962, पृ. 2738-53; 23.3.1967, कॉ. 875-903, 4.12.1974, कॉ. 322; *लो.स.वा.वि.,* 13.7.1977, पृ. 163; 16.12.1977, पृ. 175; 29.3.1978, पृ. 177; 24.8.1981, कॉ. 367-80; 30.11.1981, कॉ. 309; 3.8.1983, कॉ. 303-28; 19.12.1985, पृ. 249-77; 4.5.1987, पृ. 297-313; 25.11 1987, पृ. 237; 2.12.1987, पृ. 193; 2.3.1988, पृ. 213; 6.5.1988, पृ. 249; 15.3.1989, पृ. 273-80; 29.8.1991, पृ. 306-27; 12.9.1991, पृ. 275-89; 12.3.1993, पृ. 233-47 ।

344. पूर्व में सूचना के समर्थन में कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक थे। इस प्रक्रिया में परिवर्तन कर दिया गया है, *देखिए* समाचार भाग-दो, दिनांक 8.8.1967, पैरा 303 ।

अध्यक्ष ही यह निर्णय करता है कि जिस विषय पर चर्चा उठायी जानी है, वह समुचित लोक महत्व का है या नहीं। तथापि, वह किसी सूचना को स्वीकार करने से पहले उसकी एक प्रति सम्बन्धित मंत्री को उसकी टिप्पणी के लिये भेजता है।

किसी सूचना के स्वीकार कर लिये जाने पर मंत्री और सूचना देने वाले सदस्य से परामर्श करके चर्चा की निश्चित तारीख निर्धारित की जाती है।

अध्यक्ष द्वारा किसी एक दिन के लिए दो से अधिक सूचनाएं स्वीकार कर लिये जाने पर कार्य-सूची में शामिल करने के लिए उनकी पूर्ववर्तिता निर्धारित करने के उद्देश्य से बैलट किया जाता है। जो मद किसी विशेष दिन चर्चा हेतु रखी गयी हो और उसे उस दिन निपटाया न जा सका हो, तो उसे किसी अन्य दिन के लिए तब तक नहीं रखा जाता जब तक सदस्य ऐसा न चाहता हो। ऐसी दशा में, अगले उपलब्ध दिन के लिए उसे फिर बैलट में शामिल किया जाता है।

किसी सदस्य के नाम से एक सप्ताह में एक से अधिक आधे घंटे की चर्चा नहीं रखी जाती बशर्ते कि वह सदस्य उसी सत्र में दो से अधिक घंटे की चर्चा उठाने की मांग नहीं करेगा। यदि एक सदस्य के नाम पर एक चर्चा हो चुकी हो तो ऐसी स्थिति में सप्ताह की शेष बैठकों में उसके नाम की सूचनाओं को बैलट में शामिल नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त, यदि कोई सदस्य एक ही सत्र में आधे घंटे की दो चर्चा उठा चुका हो, तो उसके नाम से आयी सूचनाओं को सत्र की शेष बैठकों के लिए बैलट नहीं किया जाता।[345]

जब मंत्री के पास वाद-विवाद का पूरा उत्तर देने के लिए समय नहीं होता है, तो वह अध्यक्ष की अनुमति से, पटल पर विवरण रख सकता है।[346] जब आधे घंटे की चर्चा में पर्याप्त समय लग जाए तो अध्यक्ष मंत्री को पटल पर एक ऐसा विवरण रखने का निदेश दे सकता है, जिसमें उन मुद्दों के उत्तर हों जिन्हें मंत्री ने अब तक अपने उत्तर में शामिल नहीं किया है।[347]

यदि वह सदस्य, जिसके नाम में, कार्य-सूची में आधे घंटे की चर्चा रखी गयी है, अनुपस्थित रहता है, तो चर्चा आरम्भ नहीं की जाती।[348] अध्यक्ष ने, प्रार्थना किए जाने पर आधे घंटे की चर्चा के लिए नियत दिन सम्बन्धित सदस्य के अपरिहार्य रूप से अनुपस्थित रहने पर अथवा मंत्री के अनुरोध पर अथवा सभा द्वारा ऐसा निर्णय लेने पर चर्चा किसी अन्य दिन के लिए स्थगित की है।[349]

अति-आवश्यक कार्य के निपटान हेतु, समय उपलब्ध कराने के लिए, अध्यक्ष उस दिन के लिए कार्य-सूची में रखी गई आधे घन्टे की चर्चा को अगले दिन तक के लिए स्थगित करने का निर्देश दे सकता है और यह आवश्यक नहीं कि वह अगला दिन आधे घन्टे की चर्चा करने का निर्धारित दिन ही हो।[350]

---

345. *समाचार भाग*-दो, 9.11.1981, पैरा 1256 ।
346. निदेश 19, *एल.एस. डिबेट्स* (II), 28.8.1956, कॉ. 4862 ।
347. *लो.स.वा.वि.,* 16.6.1971, पृ. 136; 12.8.1971, पृ. 148 ।
348. *पूर्वोक्त,* 8.12.1969, 10.12.1969, 25.3.1970 ।
349. *पूर्वोक्त,* 30.8.1956, पृ. 1648; 18.11.1968, कॉ. 204-05; 9.8.1982, पृ. 264; 19.8.1985, पृ. 334-35 ।
350. *लो.स.वा.वि.,* 5.5.1975, पृ. 171; 20.12.1977, पृ. 194-96; 20.8.1985, पृ. 319-34 ।

आपवादिक मामलों में, जब किसी सत्र के दौरान चर्चा के लिए समय उपलब्ध न हो, अध्यक्ष ने कार्य सूची में शामिल ऐसी गृहीत सूचना को अगले सत्र के लिए स्थगित करने के आदेश दिये हैं।[351] ऐसे मामले में, सम्बन्धित सदस्य को, अगले सत्र में भी चर्चा उठाने के लिए फिर से सूचना देनी पड़ती है।

सामान्यतः किसी दिन कार्य-सूची में आधे घन्टे की एक ही चर्चा रखी जाती है, परन्तु किसी सत्र के अन्तिम कुछ दिनों में एक दिन की कार्य-सूची में एक से अधिक ऐसी चर्चाएं रखी जा सकती हैं। यदि किसी दिन की कार्य सूची में दो चर्चाएं शामिल कर ली गयी हों, जिनके विषय परस्पर संबंधित हों, यद्यपि वे विभिन्न मंत्रियों को संबोधित हों, तो उन्हें एक साथ लिया जाता है।[352]

चर्चा प्रारम्भ करने की प्रक्रिया यह है कि सूचना देने वाला सदस्य अपनी बात कहता है[353] और सम्बन्धित मंत्री संक्षेप में उसका उत्तर देता है। तदुपरान्त, जिन सदस्यों ने प्रश्न पूछने के लिए अध्यक्ष को पूर्व सूचना दी है, उनमें से प्रत्येक को, तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के प्रयोजन से एक-एक प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है।[354] तथापि केवल चार सदस्यों को एक-एक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। ऐसी स्थिति में, जब चार से अधिक सदस्य प्रश्न पूछने की अनुमति प्राप्त करना चाहते हैं, तो बैलट द्वारा उनमें से, चार सदस्यों का चयन कर लिया जाता है। ऐसे उदाहरण भी हैं, जब पूर्व सूचना देने वाले सदस्यों के साथ-साथ, ऐसे सदस्यों को भी प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई जिन्होंने पूर्व सूचना नहीं दी थी।[355] उस सदस्य को जिसने आधे घन्टे की चर्चा न उठाई हो, अथवा वह ऐसी चर्चा में भाग न ले रहा हो, यदि चर्चा के दौरान उसके विरुद्ध आरोप लगाये गये हों तो उस स्थिति में उसे व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दी जा सकती है।[356] उसके बाद सम्बन्धित मंत्री पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है। तब चर्चा समाप्त होती है क्योंकि सभा के सामने कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं होता, इसलिए इस पर कोई मतदान भी नहीं होता।

किसी दिन की कार्य-सूची में रखी गई आधे घन्टे की चर्चा को, चर्चा शुरू होने से पहले किसी भी समय सम्बन्धित सदस्य द्वारा वापस लिया जा सकता है।[357]

आपवादिक मामलों में, जब कोई विषय महत्वपूर्ण हो, अध्यक्ष, स्वविवेक से, आधे घन्टे की चर्चा को, नियम 193 के अन्तर्गत अल्पकालीन चर्चा में परिवर्तित कर सकता है।[358]

---

351. *पूर्वोक्त,* 10.9.1956, पृ. 2102 ।
352. *एल.एस. डिबेट,* 9.9.1959, पृ. 3683 ।
353. *पूर्वोक्त,* 30.7.1952, पृ. 3864 ।
354. *पूर्वोक्त,* 29.7.1968, पृ. 1146 ।
355. *पूर्वोक्त,* 13.2.1963, कॉ. 4745; *लो.स.वा.वि.,* 26.4.1966, पृ. 7390; 24.8.1981, पृ. 367-80; 30.11.1981, पृ. 309-32; 3.8.1983, पृ. 303-28; 19.12.1985, पृ. 249-77; 4.5.1987, कॉ. 470-96; 12.9.1991, पृ. 275-76 ।
356. *पूर्वोक्त,* 20.8.1969, पृ. 300-02 ।
357. *पूर्वोक्त,* 9.9.1960, पृ. 7972 ।
358. *पूर्वोक्त,* 5.8.1960, पृ. 633 ।

अध्याय 20

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर ध्यान आकर्षित करना

कोई सदस्य अध्यक्ष की पूर्व अनुज्ञा से किसी मंत्री का ध्यान अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय की ओर आकर्षित कर सकता है और मंत्री एक संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या बाद में वक्तव्य देने के लिए समय मांग सकता है।[1]

सूचना देने की विधि

मंत्री का ध्यान आकर्षित करने की सूचना सदस्य द्वारा महासचिव को सम्बोधित की जानी चाहिए और अब यह प्रथा सुस्थापित हो चुकी है कि उसकी एक प्रति अलग से अध्यक्ष को और सम्बद्ध मंत्री को भेज दी जाती है।[2] मंत्री को सूचना की प्रति भेजने का प्रयोजन यह है कि मंत्री की पहले से तत्संबंधी विषय का पता लग जाये और यदि आवश्यक हो तो मंत्री उस सूचना में उठाये गये विषयों से सम्बन्धित तथ्य अध्यक्ष को दे सके, ताकि अध्यक्ष उस सूचना की ग्राह्यता के बारे में निर्णय करते समय उनसे सहायता ले सके। महासचिव को सम्बोधित सूचना और अध्यक्ष तथा संबंधित मंत्री को पृष्ठांकित उसकी प्रतियां संसदीय सूचना

---

1. नियम 197

   यह नियम 1 जनवरी, 1954 को प्रक्रिया नियमों में शामिल किया गया था। उससे पहले ऐसी प्रबल भावना थी कि किसी गैर-सरकारी सदस्य के लिए कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है जिसके माध्यम से वह अल्प-सूचना पर कोई महत्वपूर्ण मामला उठा सके। ऐसे प्रयोजनों के लिए बहुधा स्थगन प्रस्ताव की प्रक्रिया का सहारा लिया जाता था। चूंकि स्थगन प्रस्ताव स्वरूपतः निन्दा प्रस्ताव होता है और उसका क्षेत्र बहुत सीमित होता है, इसलिए अन्य प्रयोजनों के लिए उसका प्रयोग बुरा समझा गया। (साथ ही *देखिए* अध्याय 21—"अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर स्थगन प्रस्ताव")।

   "ध्यानाकर्षण सूचनाओं" की अवधारणा मूलतः भारतीय है। यह आधुनिक संसदीय प्रक्रिया में नयी पद्धति है। इसमें उत्तर हेतु प्रश्न पूछने के साथ-साथ अनुपूरक प्रश्न पूछने और संक्षेप में टिप्पणी करना भी शामिल है जिसमें सभी विचार सही रखे जाते हैं और सरकार को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है। कभी-कभी इसके माध्यम से सदस्यों को किसी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में सरकार की परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आलोचना करने और किसी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में सरकार की असफलता या अपर्याप्त कार्यवाही को उजागर करने का अवसर प्राप्त होता है।

2. वर्ष 1971, 1975 और 1976 के दौरान जब आपातस्थिति लागू थी, सभा ने सरकारी कार्य की अविलम्बनीयता एवं महत्व को देखते हुए कुछ समय के लिए ध्यानाकर्षण के मामलों को लेना छोड़ दिया था–*देखिए लो.स.वा.वि.,* 4.12.1971, पृ. 37; 21.7.1975, पृ. 16-24 और 25.10.1976, पृ. 15-20 ।

कार्यालय में प्राप्त की जाती हैं। मंत्री को पृष्ठांकित प्रति संबंधित मंत्रालय द्वारा स्वयं लोक सभा सचिवालय से प्राप्त की जाती है। किसी सत्र के प्रारम्भ होने से पूर्व ऐसी सूचनाएं उस दिन से ही दी जा सकती हैं जो पहले से निर्धारित कर दिया जाता है और संसदीय समाचार में अधिसूचित कर दिया जाता है (ऐसा दिन सामान्यत: सत्र के प्रारम्भ होने की तिथि से पहले तीसरा कार्य दिवस होता है)। अध्यक्ष इन सूचनाओं पर सत्र के प्रारम्भ से कुछ दिन पहले ही विचार करता है। सूचनाओं को प्राप्त करने की संसदीय समाचार में अधिसूचित तिथि से पूर्व प्राप्त सूचनाएं संबंधित सदस्यों को वापस भेज दी जाती हैं। परन्तु सत्र प्रारम्भ होने के पश्चात् सूचना उस दिन प्रात: दस बजे तक आ जानी चाहिए जिस दिन वह विषय सभा में उठाने का विचार हो। उसके बाद प्राप्त होने वाली सूचना को अगली बैठक के लिए दी गई सूचना माना जाता है।[3] जब किसी ऐसे विषय पर जिसे अध्यक्ष ने गृहीत करने के लिए चुना हो, पांच से अधिक सदस्यों की सूचनाएं प्राप्त हुई हों, तो प्रत्येक सूचना की सापेक्ष प्राथमिकता निश्चित करने के लिए बैलट किया जाता है। जब अध्यक्ष द्वारा चुने गये विषय पर सूचनाएं देने वाले सदस्यों की संख्या पांच या इससे कम होती है तो उनकी पारस्परिक प्राथमिकता का निश्चय सूचनाओं की प्राप्ति की तिथि और समय के आधार पर किया जाता है।[4]

सभा की पहली बैठक से प्रारम्भ होने वाले सप्ताह के दौरान उस सप्ताह के सभा की बैठक वाले अंतिम दिन के 10 बजे प्रात: तक प्राप्त हुई सभी सूचनाएं उस सप्ताह के लिए वैध होती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि किसी दिन विशेष के लिए दी गई सूचनाओं पर उसी दिन के लिए विचार किया जाये। उन पर उनकी वैधता की अवधि के दौरान किसी भी दिन या उसके बाद भी, तत्संबंधी विषय के महत्व को ध्यान में रखते हुए विचार किया जा सकता है। ऐसी सूचनाओं को जो सप्ताह में न ली गई हों, जिसके लिए वे दी गई थीं, सप्ताह के अंतिम कार्य-दिवस को प्रात: 10 बजे व्यपगत माना जाता है, बशर्ते अध्यक्ष द्वारा उनमें से कोई सूचना किसी बाद की बैठक के लिए गृहीत न की गई हो या संबंधित मंत्री से तथ्य प्राप्त होने तक विचाराधीन न रखी गई हो।

अध्यक्ष द्वारा किसी विषय का चयन कर लिए जाने के बाद, उसके बारे में सूचनाएं देने वाले सदस्यों को मौखिक रूप से सूचित कर दिया जाता है। संबंधित मंत्री को भी प्रमुख अधिकारियों के माध्यम से इस बारे में मौखिक सूचना दे दी जाती है और उसके पश्चात् लिखित सूचना दे दी जाती है। सदस्य को ऐसी जानकारी न मिलने की स्थिति में यह मान लिया जाता है कि अध्यक्ष ने सूचना का चयन नहीं किया है।

कोई सदस्य किसी एक बैठक के लिए दो से अधिक सूचनाएं नहीं दे सकता। एक ही विषय पर एक से अधिक सदस्य सूचनाएं दे सकते हैं किन्तु कार्य-सूची में पांच से अधिक

---

3. नियम 197(2)(दो) और निदेश 113 ख ।
4. नियम 197(2) (चार)।

सदस्यों के नाम नहीं रखे जाते। इन नामों का फैसला बैलट द्वारा किया जाता है।[5] जहां किसी सूचना पर एक से अधिक सदस्यों के हस्ताक्षर हों, वहां यह माना जाता है कि सूचना पहले हस्ताक्षरकर्ता ने दी है।

ग्राह्यता की शर्तें

ध्यानाकर्षण सूचना की ग्राह्यता की दो मुख्य कसौटियां हैं—अविलम्बनीयता और लोक महत्व।[6] ऐसी सूचना की ग्राह्यता का निर्णय अध्यक्ष करता है।[7] किसी सूचना को स्वीकार या अस्वीकार करने की अध्यक्ष की शक्ति असीमित है।[8] अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होता है और

---

5. नियम 197(1) और (2), इस नियम में 23 जून, 1967 को संशोधन किया गया था। उससे पहले किसी सदस्य द्वारा दी जाने वाली सूचनाओं की अधिकतम संख्या निर्धारित नहीं थी और न ही इस बारे में कोई प्रतिबंध था कि एक ही विषय पर कितने सदस्य सूचना दे सकते हैं।

   यद्यपि नियमों के अंतर्गत कोई सीमा नहीं लगाई गई थी। अध्यक्ष ने इस प्रथा को निरुत्साहित किया कि एक ही सदस्य द्वारा अनेक सूचनाएं दी जायें और निर्णय दिया कि कोई सदस्य किसी बैठक विशेष के लिए दो से अधिक सूचनाएं नहीं दे सकता—*देखिए लो.स.वा.वि.,* 23.8.1965, पृ. 562, और समाचार भाग-2, 23.8.1965, पैरा 1380 ।

6. नियम 197(1)।

7. *पूर्वोक्त और एल.एस. डिबेट्स,* 19.8.1965, कॉ. 993 ।

   अध्यक्ष ने सूचनाओं को अस्वीकार करने के कारण बताने या सभा में इस संबंध में सदस्यों के साथ तर्क-वितर्क करने से साफ इंकार किया—*देखिए लो.स.वा.वि.,* 5.8.1959, पृ. 368-72, 17.2.1961, पृ. 362; और 21.2.1961 पृ. 593-94 ।

   परन्तु सदस्य चाहें तो वे अध्यक्ष से उसके कक्ष में मिल सकते हैं और अपने विचार उसके सामने रख सकते हैं। उचित और पर्याप्त कारण होने पर अध्यक्ष अपने आदेशों की पुनरीक्षा कर सकता है—*देखिए लो.स.वा.वि.,* 3.5.1962, पृ. 1154; 11.11.1965, पृ. 499-508; 1.9.1966, पृ. 115 ।

8. इस सम्बन्ध में अध्यक्ष किसी पूर्वोदाहरण से पूरी तरह बंधा नहीं है, यद्यपि उसने अपने लिए कुछ स्पष्ट नियम या परिपाटियां निर्धारित कर रखी हैं। उदाहरण के लिए क्या सूचना का विषय केन्द्रीय सरकार के किसी मंत्री के संज्ञान में आता है; क्या विषय तुच्छ है, तर्क-वितर्क प्रधान है या अस्पष्ट या सामान्य है या उसे किसी अन्य संसदीय प्रक्रिया के माध्यम से समुचित रूप से निपटाया जा सकता है या नहीं। किसी सूचना का स्वीकार किया जाना पूर्वोदाहरण नहीं बन जाता, क्योंकि किसी अन्य संदर्भ में वैसे ही विषय पर सूचना अस्वीकार की जा सकती है। कोई सूचना ग्राह्य है या नहीं, उसका फैसला इस बात पर निर्भर करता है कि उस बारे में अध्यक्ष क्या अनुभव करता है, उसका विवेक क्या कहता है और जिस दिन सूचना प्राप्त हुई है उस दिन अध्यक्ष को उपलब्ध जानकारी के संदर्भ में परिस्थितियां क्या हैं। संभव है कि किसी समय कोई विषय प्रारम्भ में उतना महत्वपूर्ण और अविलम्बनीय प्रतीत न हो और उसे कोई महत्व न दिया जाये किन्तु बाद में किसी दिन उसी संदर्भ में कुछ नयी घटनाएं घटित होने के कारण वह मामला अधिक महत्वपूर्ण बन सकता है और फिर अध्यक्ष उससे संबन्धित

सदस्य ध्यानाकर्षण सूचनाओं की ग्राह्यता के प्रश्न को सभा में नहीं उठा सकते।[9]

एक ही विषय पर[10] स्थगन प्रस्ताव के स्थान पर ध्यानाकर्षण सूचना की ग्राह्यता का निर्णय अध्यक्ष द्वारा लिया जा सकता है; ध्यानार्कषण सूचना से सामान्यत: स्थगन प्रस्ताव की सूचना व्यर्थ और अनावश्यक हो जाती है।[11]

सूचना की ग्राह्यता का निर्णय करने से पहले यदि अध्यक्ष चाहे तो संबंधित मंत्री से तथ्य और उसके संबंध में उसकी राय मांग सकता है क्योंकि तथ्यात्मक आधार के अभाव में किसी सूचना को अस्वीकार किया जा सकता है।[12] जहां आवश्यक हो, वहां मंत्री से यह भी कहा जाता है कि विशिष्ट बातों के संबंध में जानकारी दी जाये जैसे कि केन्द्रीय सरकार की जिम्मेदारी, उसका स्वरूप और उसके क्षेत्राधिकार आदि।[13] यह सम्भव है कि किसी सूचना को, स्वीकार होने के बाद, उसी दिन विचारार्थ लिया जा सकता है बशर्ते कि उस दिन कार्य-सूची में ध्यानाकर्षण की और कोई सूचना न हो। उस स्थिति में मामले की अविलम्बनीयता के आधार पर अध्यक्ष चाहे तो दूसरी सूचना को बाद में उसके द्वारा नियत किसी अन्य समय पर लिया जा सकता है। दूसरी सूचना के लिए सामान्यत: बैठक के अंत में समय नियत किया जाता है।[14]

सूचना को स्वीकार कर सकता है। अध्यक्ष सूचना को, उसमें उठाए गये विषय के महत्व और अविलम्बनीयता को देखकर ही स्वीकार या उसका चयन करता है। यद्यपि कभी-कभी अध्यक्ष किसी विषय के महत्व का निर्धारण उसमें दिलचस्पी रखने वाले सदस्यों की संख्या या उसमें निहित राष्ट्रीय हित के आधार पर करता है। परन्तु ये बातें भी अन्य आधारों की भांति ही हैं जिन पर अध्यक्ष विचार करता है तथा ये अपने आप में निर्णायक तत्व नहीं है।

9. *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1962, कॉ. 308; 22.11.1985, पृ. 204-05; 12.8.1986, पृ. 391 ।
10. *लो.स.वा.वि.,* 1.5.1962, पृ. 872-73 ।
11. *पूर्वोक्त,* 3.5.1966, पृ. 7819; 7.8.1970, पृ. 139 ।
12. *पूर्वोक्त,* 11.4.1960, पृ. 5043 ।
13. मंत्री द्वारा अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले तथ्य अध्यक्ष के पास 24 घंटे के अन्दर पहुंच जाने चाहिएं, अन्यथा अध्यक्ष द्वारा मंगाये गये तथ्यों के बिना सूचनाओं की ग्राह्यता का निर्णय स्वतंत्र रूप से कर दिया जाता है।
14. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 17.12.1963, पृ. 2685-87 और 2714-19; 24.11.1965, पृ. 1362-64 और 1383-85 । तथापि, अब यह स्थापित प्रथा बन गई है कि ध्यानाकर्षण सूचना कम से कम एक दिन पहले स्वीकार की जाती है और तत्संबंधी प्रविष्टि छपी हुई कार्य-सूची में कर दी जाती है। ऐसे भी उदाहरण हैं कि एक ही दिन में एक से अधिक ध्यानाकर्षण सूचनाएं स्वीकार की गई हैं। *लो.स.वा.वि.,* 19.11.1963, पृ. 213-18 और 255-63; 27.11.1963, पृ. 927-34 और 981-82; 17.12.1963, पृ. 2688-90, और 2714-19; 17.5.1966, पृ. 8821-24 और पृ. 17441-57, 4.8.1978, पृ. 150-56 और पृ. 175-80, 20.2.1977, कॉ. 330-38; 15.5.1979, कॉ. 266-89 और 396-416; *लो.स.वा.वि.,* 16.5.1979, पृ. 170-87

किसी ध्यानाकर्षण सूचना को उस स्थिति में भी अस्वीकृत किया जा सकता है जबकि समान विषय पर इस प्रकार की सूचना दूसरी सभा में गृहीत कर ली गई हो और संबंधित मंत्री महोदय ने उसके उत्तर में वक्तव्य दे दिया हो।[15] यह आवश्यक नहीं है कि यदि कोई सूचना एक सभा में गृहीत कर ली गई है तो उसके समान या उस जैसी सूचना दूसरी सभा में भी गृहीत की जानी चाहिए क्योंकि प्रत्येक सभा का पीठासीन अधिकारी स्वतंत्र रूप से निर्णय लेता है।[16]

नियमानुसार सूचना उसी दिन दी जानी चाहिए जिस दिन वह विषय उठा हो या जिस दिन उसका सार्वजनिक रूप से पता चला हो। यदि सूचना बाद में दी गई है तो उसे इस आधार पर अस्वीकार किया जा सकता है कि उस विषय को यथाशीघ्र नहीं उठाया गया है।[17]

ध्यानाकर्षण के माध्यम से केवल वही प्रश्न उठाये जा सकते हैं जिनके लिए मुख्य रूप से केन्द्रीय सरकार जिम्मेदार हो।[18] लेकिन ऐसे उदाहरण हैं जहां उन विषयों से संबंधित

और पृ. 271-81; 27.3.1980, पृ. 165-77, और 380-92; *लो.स.वा.वि.*, 10.5.1983, पृ. 244-54 और कॉ. 405-17; *एल.एस. डिबेट्स,* 8.5.1984, कॉ. 319-37 और 446-68, 27.11.2007 ।

15. *लो.स.वा.वि.,* 24.8.1965, पृ. 659-60 ।

16. *पूर्वोक्त,* 1.3.1966, पृ. 3896; 17.11.1966, पृ. 1563-64 ।

17. ध्यानाकर्षण सूचनाएं सदस्यों द्वारा मुख्य रूप से समाचारपत्रों में प्रकाशित जानकारी के आधार पर दी जाती हैं। कभी-कभी सूचना सदस्य के निर्वाचकों द्वारा लिखित रूप से भेजी गई सूचना पर आधारित होती है, परन्तु ऐसी सूचनाओं की संख्या बहुत कम होती है।

    समाचार-पत्रों की रिपोर्टों पर आधारित एक सूचना जिसके बारे में अध्यक्ष को अभ्यावेदन दिया गया था कि उसमें प्रस्तुत तथ्य सही नहीं थे, दूसरे सदन में मंत्री द्वारा उस विषय पर दिये गये वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष द्वारा गृहीत कर ली गयी थी—*लो.स.वा.वि.,* 12.3.1970, पृ. 149-53, 13.3.1970, पृ. 156 ।

18.(क) सामान्यत: अध्यक्ष द्वारा निम्नलिखित विषयों के संबंध में सूचनाएं गृहीत की गई हैं:

(i) वे घटनाएं जिनका संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा या देश की एकता से हो,

(ii) देश या उसके किसी भाग में खाद्य, सूखे या बाढ़ संबंधी गम्भीर स्थिति,

(iii) आवश्यक सेवाओं को बनाये रखने से संबंधित मुद्दे,

(iv) किसी संघ राज्य क्षेत्र में कानून तथा व्यवस्था संबंधी घटनायें जिनके संबंध में सदस्यों तथा जनता में बहुत उद्विग्नता हो,

(v) राज्यों या संघ राज्यक्षेत्रों में संवैधानिक व्यवस्था के सुचारू कार्यकरण से संबंधित गम्भीर घटनाएं,

(vi) तेल, उर्वरक, कपड़ा, चीनी आदि जैसी महत्वपूर्ण वस्तुओं के उत्पादन से संबंधित गम्भीर मुद्दे,

सूचनाएं अध्यक्ष ने गृहीत की हैं जो मुख्य रूप से केन्द्रीय सरकार के विषय नहीं थे परंतु

(vii) किसी विदेशी सरकार के किसी कार्य से संबंधित प्रश्न, जिससे भारत के हितों पर गम्भीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता हो,

(viii) किसी पड़ोसी देश के साथ सीमा पर हुई घटनाएं, जो गम्भीर हों या जिनमें कुछ व्यक्तियों की जानें गयी हों,

(ix) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के संबंधों से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्नों संबंधी विषय,

(x) विदेशों में होने वाली गम्भीर घटनायें, जिनमें भारतीय कूटनीतिज्ञ या भारतीय नागरिकों का संबंध हो।

(ख) ऊपर जिन विषयों की सूची दी गई है, वह सम्पूर्ण नहीं है और अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से उपर्युक्त श्रेणियों में उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त किसी और विषय के सम्बन्ध में ध्यानाकर्षण की सूचना गृहीत कर सकता है। ऐसा करते समय वह उस विषय की अविलम्बनीयता और लोक महत्व का ध्यान रखता है। निम्नलिखित विषयों के संबंध में ध्यानाकर्षण की सूचनाएं सामान्यतया गृहीत नहीं की जातीं :

(i) राज्यों में कानून तथा व्यवस्था संबंधी विषय [राज्य में कानून और व्यवस्था संबंधी एक ध्यानाकर्षण सूचना को अस्वीकृत किए जाने पर मंत्री महोदय से कहा गया कि वे राज्य सरकार से वास्तविक तथ्य मंगवा कर वास्तविक वक्तव्य दें परन्तु सूचना प्रस्तुत करने वाले सदस्यों को वक्तव्य पर प्रश्न करने की अनुमति नहीं होगी—*लो.स.वा.वि.,* 18.4.1966, पृ. 6791-92; 20.4.1966, पृ. 7011-14];

(ii) हड़ताल, तालाबंदी, अनशन और आन्दोलन;

(iii) कर्मचारियों की सेवा की शर्तें आदि;

(iv) दुर्घटनाएं;

(v) ऐसे विषय जिन पर निकट भविष्य में वाद-विवाद होने की सम्भावना हो या जिन पर चर्चा करने का निश्चय पहले ही किया जा चुका हो;

(vi) ऐसे विषय जिनके लिए मुख्य रूप से केन्द्रीय सरकार जिम्मेदार नहीं है;

(vii) दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक मामले;

(viii) तुच्छ या महत्वहीन विषय;

(ix) किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी ध्यानाकर्षण सूचनाओं की विषय-वस्तु नहीं बन सकती—*देखिए* अध्यक्ष का निर्णय, *लो.स.वा.वि.,* 24.3.1964, का. 7145-47 ।

(x) केन्द्र तथा राज्यों या राज्यों के बीच सामान्य सम्बन्धों संबंधी छुट-पुट मामले;

(xi) स्वायत्तशासी निगमों और स्थानीय निकायों संबंधी विषय;

(xii) कानून की सामान्य प्रक्रिया के अंतर्गत गिरफ्तारियां, तलाशियां, माल की जब्ती या निषेधाज्ञा का जारी किया जाना;

(xiii) अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय या करार, जो सामान्य रूप से किये गये हों;

(xiv) पड़ोसी देशों के साथ सीमा पर होने वाली छुटपुट घटनाएं;

जिनका कोई विशेष महत्व या लोक महत्व था[19] या इसलिए गृहीत की हैं कि उनका संबंध

(xv) भारत सरकार और विदेशों की सरकारों के बीच होने वाले सामान्य पत्र व्यवहार के दौरान आयी चिट्ठियां या संदेश;

(xvi) विदेशों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों या ऐसे विदेशियों द्वारा भारत के संबंध में दिये गये वक्तव्य, जिनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता न हो;

(xvii) किसी जारी रहने वाले ऐसे विषय के संबंध में होने वाली मामूली घटनाएं, जिस पर पहले ही वक्तव्य दिया जा चुका हो;

(xviii) प्रतिष्ठित विदेशियों के दौरे या उनके और भारत सरकार के मंत्रियों के बीच होने वाली बातचीत, जिसके संबंध में सामान्य तौर पर विज्ञप्तियां जारी की जाती हैं;

(xix) राज्यपालों की नियुक्तियां या राज्यों में मंत्रिमंडलों का गठन, जब तक कि संवैधानिक व्यवस्था का घोर उल्लंघन न हुआ हो;

(xx) राज्य विधानमंडल में घटने वाली घटनाएं या दिये गए भाषण [हालांकि कानून और व्यवस्था का विषय राज्य का है परन्तु राज्य विधानमंडल की मर्यादा को भंग करने संबंधी एक ध्यानाकर्षण सूचना विशेष मामले के रूप में स्वीकार की गई थी, *लो.स. वा.वि.,* 1.8.1969, पृ. 149-53 और 6.8.1969, पृ. 138-60];

(xxi) विदेशों की संसदों में घटने वाली घटनाएं;

(xxii) अन्य महत्वहीन मामले—*देखिए* चौथी लोक सभा की नियम समिति का कार्यवाही सारांश, 10.7.1967 ।

19. लेबनान तथा जोर्डन में विदेशी सेनाओं की उपस्थिति से मध्य-पूर्व में उत्पन्न स्थिति के संबंध में एक सूचना गृहीत कर ली गई और उसके उत्तर में 14 अगस्त, 1958 को लोक सभा में एक वक्तव्य दिया गया—*देखिए लो.स.वा.वि.,* 14.8.1958, पृ. 456-62 ।

14 जनवरी, 1959 को उत्तर प्रदेश के टिहरी के एक गांव में अनुसूचित जाति के लोगों की एक बारात के कथित उत्पीड़न के संबंध में एक सूचना अध्यक्ष ने इस कारण गृहीत कर ली कि उसका विशेष महत्व था यद्यपि मुख्य रूप से यह राज्य सरकार का मामला था और उसके उत्तर में 20 फरवरी, 1959 को सभा में एक वक्तव्य दिया गया—*देखिए लो.स.वा.वि,* 20.2.1959, पृ. 1149 ।

उत्तर प्रदेश सभा के सदस्यों को उर्दू में शपथ लेने की अनुमति न देने के संबंध में एक सूचना, पीठासीन अधिकारी की कार्यवाही पर विचार करने की दृष्टि से नहीं बल्कि इससे उठने वाले संवैधानिक मुद्दों पर विचार करने और इस मामले के राष्ट्रीय महत्व को देखते हुए गृहीत की गई— *लो.स.वा.वि.,* 20.3.1969, पृ. 129-36 ।

एक सूचना राज्य विधानमंडल के परिसर की पवित्रता को भंग करने के बारे में गृहीत की गई, यद्यपि कानून और व्यवस्था राज्य का विषय है—*लो.स.वा.वि.,* 1.8.1969, पृ. 149-50; 4.8.1969, पृ. 160-66 और 6.8.1969, पृ. 138-60 ।

केन्द्रीय सरकार के राजस्व या केन्द्रीय सहायता और अनुदानों से था।[20]

सामान्यत: ऐसी सूचना को अस्वीकृत कर दिया जाता है अथवा लम्बित रखा जा सकता है यदि इस विषय पर मंत्री महोदय से यह सूचना मिली हो कि वह स्वत:[21] ही इस विषय

राष्ट्रपति के चुनाव के बारे में बिहार विधान सभा के सदस्यों पर कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा दबाव और अनुचित प्रभाव डालने के कथित प्रयासों के बारे में एक सूचना मामले के लोक महत्व को ध्यान में रखकर गृहीत की गई–*लो.स.वा.वि.,* 7.8.1969, पृ. 165–73 ।

एक राज्य में व्यापक हिंसा और अराजकता की स्थिति पर उस राज्य के मुख्यमंत्री द्वारा कथित भूख हड़ताल संबंधी एक सूचना इसलिए गृहीत की गई, क्योंकि सभा, जैसा कि अध्यक्ष ने टिप्पणी की थी इस तरह के अनशन, जो कि एक असाधारण घटना थी, के कारण जानने की हकदार थी—*लो.स.वा.वि.,* 3.12.1969, पृ. 130–36 ।

उत्तर प्रदेश के एक गांव में कुछ हरिजन महिलाओं और बच्चों को जीवित जलाए जाने की कथित घटना संबंधी एक सूचना गृहीत की गई। 2.8.1972 को जब इस संबंध में चर्चा आरम्भ हुई तो मंत्री महोदय ने वक्तव्य दिया कि राज्य सरकार के पास इस घटना की कोई जानकारी नहीं है और राज्य सरकार से रिपोर्ट प्राप्त हो जाने पर एक विवरण सभा पटल पर रख दिया जायेगा। सदस्यों के अनुरोध पर मुद्दे को स्थगित कर दिया गया और 9.8.1972 को इस मामले को पुन: लिया गया और मंत्री महोदय ने वक्तव्य दिया तथा स्पष्टीकरण संबंधी प्रश्नों का उत्तर दिया–*लो.स.वा.वि.,* 2.8.1972, पृ. 126–27 और 9.8.1972, पृ. 113–16 ।

20. निम्नलिखित विषयों पर ध्यानाकर्षण सूचनाएं गृहीत की गई:—

    (i) उर्वरक की ढुलाई के लिए केन्द्रीय राजस्व से 3.77 करोड़ रुपये का बोगस भुगतान, जैसा कि आन्ध्र प्रदेश विधानमंडल के लोक लेखा समिति के तीसरे प्रतिवेदन, 16.3.1970 में इसकी जानकारी दी गई है—*लो.स.वा.वि.,* 13.4.1970, पृ. 169–74 ।

    (ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पंजाब और हरियाणा में अनेक कालेजों को अनुदान कथित रूप से बंद किया जाना, जिसके परिणामस्वरूप ये कालेज बंद हो गए—*लो.स.वा.वि.,* 5.12.1972, कॉ. 199–223 ।

    (iii) राजस्थान में 12,500 गांवों में विद्यमान अकाल की स्थिति का सामना करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा उक्त राज्य को सहायता की कथित कमी—*लो.स.वा.वि.,* 15.12.1972, पृ. 119–23 ।

21. भारत-तिब्बत सीमा पर 3 जनवरी, 1960 को डकोटा विमान के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के बारे में 11 जनवरी, 1960 को दो ध्यानाकर्षण सूचनाएं प्राप्त हुईं। इसी विषय पर 21 प्रश्नों की सूचनाएं प्राप्त हुईं। सभी सूचनाओं को परिवहन और संचार मंत्रालय से प्राप्त इस सूचना को ध्यान में रखकर लंबित रखा गया कि इस विषय पर मंत्री महोदय 10 फरवरी, 1960 को स्वत: सभा में वक्तव्य देंगे और इसके बाद ध्यानाकर्षण सूचनाएं और प्रश्नों की सूचनाएं अस्वीकृत कर दी गईं।

    तथापि मंत्री महोदय द्वारा वक्तव्य देते समय अध्यक्ष ने सभा में इस बात का उल्लेख किया कि इस विषय पर उन्हें दो ध्यानाकर्षण सूचनाएं और 21 प्रश्नों की सूचनाएं प्राप्त हुई थीं।

पर एक वक्तव्य देंगे या इस विषय को अन्य प्रस्ताव के माध्यम से उठाए जाने की संभावना हो, जिसे चर्चा के लिए गृहीत कर लिया गया हो।[22] तथापि मंत्री महोदय द्वारा यह सूचना दिए जाने पर कि वह स्वतः एक वक्तव्य देंगे अध्यक्ष स्वविवेक से किसी सूचना को गृहीत कर सकता है।[23] मामले की अविलम्बनीयता और सभा में तत्काल वक्तव्य देने की मांग को देखते हुए, पीठासीन अधिकारी मंत्री महोदय को स्वतः वक्तव्य देने की अनुमति दे सकते हैं और अगले दिन के लिये[24] इस विषय पर गृहीत ध्यानाकर्षण सूचना को अस्वीकृत कर सकते हैं। लोक महत्व के मामलों में मंत्री महोदय से आशा की जाती है कि वह स्वतः ही सभा में वक्तव्य दें।[25]

किसी विषय पर व्यपगत सूचनाओं या अस्वीकृत सूचनाओं को नई सूचनाएं देकर पुनर्जीवित किया जा सकता है।[26]

ध्यानाकर्षण प्रक्रिया

जब अध्यक्ष कोई सूचना उसी दिन के लिए गृहीत कर लेता है तो अध्यक्ष के उपयोग के लिए कार्य-सूची में यह दर्शाते हुए एक प्रविष्टि की जाती है कि उस मद को किस क्रम में लिया जाएगा। उठाए जाने वाले विषय का पाठ अध्यक्ष, संबंधित सदस्य, मंत्री और पटल पर बैठने वाले अधिकारियों के प्रयोग के लिए तैयार किया जाता है। यदि सूचना अगले या उसके बाद के किसी दिन के लिए गृहीत की गई हो तो स्वीकृत पाठ की प्रविष्टि मुद्रित कार्य-सूची में कर दी जाती है।

---

22. *लो.स.वा.वि.,* 14.8.1963, पृ. 241 ।

23. बम्बई में सड़क परिवहन ऑपरेटरों की हड़ताल के बारे में 20 अप्रैल, 1960 को दो ध्यानाकर्षण सूचनाएं प्राप्त हुईं। परिवहन और संचार मंत्रालय ने सूचित किया कि मंत्री महोदय इस बारे में 27 अप्रैल, 1960 को सभा में स्वतः वक्तव्य देंगे। अध्यक्ष ने निदेश दिया कि ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में वक्तव्य दिया जाना चाहिए।

    6 अप्रैल, 1985 को 20 सदस्यों ने अनेक रेल दुर्घटनाओं और विशेषकर 5 अप्रैल, 1985 को हावड़ा-अमृतसर मेल और हावड़ा-अमृतसर एक्सप्रेस रेल दुर्घटना के बारे में सूचनाएं प्रस्तुत कीं। रेल मंत्री ने उसी दिन सूचित किया कि वह 8 अप्रैल, 1985 को इस विषय पर स्वतः वक्तव्य देंगे। यह निर्णय किया गया कि मंत्री महोदय द्वारा ध्यानाकर्षण सूचनाओं के उत्तर में वक्तव्य दिया जाना चाहिए। तदनुसार, ध्यानाकर्षण सूचनाएं गृहीत कर ली गईं और मंत्री महोदय ने 8 अप्रैल, 1985 को वक्तव्य दिया–*लो.स.वा.वि.,* 8.4.1985, पृ. 336-37 ।

24. *लो.स.वा.वि.,* 23.11.1973, पृ. 160-65 ।

25. 26 जुलाई, 1977 को एक सदस्य ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया कि विदेश मंत्री के नेपाल के दौरे जैसे महत्वपूर्ण मामले पर उन्हें ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में वक्तव्य देने के बजाय स्वतः एक वक्तव्य देना चाहिए था। अध्यक्ष, सदस्य की बात से सहमत थे और उन्होंने टिप्पणी की कि यह उचित ही होता कि मंत्री महोदय स्वयं ही एक वक्तव्य देते।

26. निदेश 2 में, ऐसी सूचनाओं पर कार्यवाही का क्रम है xxii ।

गृहीत सूचनाएं सामान्यतः सदन में निर्देश-2 में निर्धारित क्रम पर ली जाती हैं परन्तु विशेष मामलों में उन्हें उसी दिन निर्धारित समय के बाद में लिया जा सकता है।[27]

अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर वह सदस्य, जिसके नाम में वह सूचना कार्य-सूची में दर्शायी गयी हो, अपने स्थान पर खड़ा होता है और संबंधित मंत्री का ध्यान उस विषय की ओर दिलाता है और उससे अनुरोध करता है कि वह उसके संबंध में वक्तव्य दे।[28] जिस सदस्य के नाम में ध्यानाकर्षण की कोई सूचना कार्य-सूची में रखी गई हो, वह किसी अन्य सदस्य को अपनी ओर से ध्यान आकर्षित करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता।

ध्यानाकर्षित किए जाने पर यदि मंत्री के पास उस मामले के सभी तथ्य हों तो वह वक्तव्य दे सकता है। यदि उस समय मंत्री के पास मांगी गई जानकारी न हो तो वह वक्तव्य देने के लिए बाद के किसी समय या किसी तिथि तक समय मांग सकता है।[29] अध्यक्ष सभा की कार्यवाही के अंत में वक्तव्य देने का निदेश दे सकता है अथवा यदि मंत्री एक से अधिक बार समय दिये जाने का अनुरोध करता है तो अध्यक्ष अपने विवेकानुसार उसे समय दे सकता है। नियमों में दिए गए "बाद में किसी समय या तिथि पर वक्तव्य देने के लिए समय मांग सकता है" शब्दों के अर्थ के बारे में यह विनिर्णय दिया गया है कि इनमें एक से अधिक बार समय मांगने या समय देने का निषेध नहीं है।[30]

---

27. *लो.स.वा.वि.,* 30.11.1962, पृ. 1677, 1688; 23.4.1963, पृ. 996; 19.3.1965, पृ. 220; 28.3.1966, पृ. 5705-11; 9.11.1966, पृ. 932-35; 26.8.1970, पृ. 120-22; 24.6. 1971, पृ. 106-07, 264-81; 23.7.1971, पृ. 131-34, 163-66; 20.3.1973, पृ. 128-30, 382-412; 23.3.1973, पृ. 118-19; 10.4.1975, पृ. 131-32 ।

28. यदि कोई सूचना हिन्दी में प्राप्त होती है तो सामान्य परिपाटी यही है कि उसका वक्तव्य भी हिन्दी में ही होना चाहिए। *देखिए—लो.स.वा.वि.,* 20.11.1963, पृ. 355-56, साथ-साथ भाषांतरण की व्यवस्था हो जाने के बाद से अब यह मंत्री की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह अपना वक्तव्य अपनी पसन्द की भाषा हिन्दी या अंग्रेजी में दे।

29. नियम 197 (1) ऐसे उदाहरणों के लिए जिनमें मंत्री ने वक्तव्य बाद की तिथि में देने की अनुमति मांगी हो और जो उसे दे दी गई हो, *देखिए लो.स.वा.वि.,* 22.8.1963, पृ. 1056 और 26.8.1963, पृ. 1308; 13.9.1963, पृ. 2973-80 और 16.9.1963, 2975-80, 1.5.1964, पृ. 4019-20 और 4.5.1964, पृ. 4990-91; 22.9.1964, पृ. 1286-90 और 24.9.1964, पृ. 1460-61; 2.12.1964, पृ. 1239-45 और 3.12.1964, पृ. 1343; 16.12.1964, पृ. 2106 और 17.12.1964, पृ. 2157-61; 2.8.1972, पृ. 126-27 और 9.8.1972, पृ. 113-16 ।

    अध्यक्ष के निदेशों के अंतर्गत वक्तव्य उसी दिन बाद में दिया गया तथा उस पर प्रश्न पूछे गये, *देखिए—लो.स.वा.वि.,* 7.3.1968, पृ. 1155-62 ।

30. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 1.4.1965, पृ. 2742-47; 2.4.1965, पृ. 2939-44; 5.4.1965, पृ. 3027-35 ।

> जिस विषय पर कोई सदस्य संबंधित मंत्री का ध्यान पहले ही दिला चुका हो, उसके बारे में यदि किसी दिन विशेष को वक्तव्य देने का वादा किया गया हो तो उस पर वह वक्तव्य उस सदस्य के अनुरोध पर किसी बाद की तिथि के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता, अगर उस सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले अन्य सदस्य उसके स्थगन के पक्ष में न हों।[31]

यदि वक्तव्य छोटा हो तो मंत्री सामान्यत: सभा में उसको पढ़ देता है और उसके बाद वे सदस्य प्रश्न पूछते हैं जिनके नाम कार्य-सूची में होते हैं, और मंत्री उत्तर देता है। पूछे गए और अध्यक्ष द्वारा अनुमति दिए गए प्रश्नों के अनुसार, यदि आवश्यक हो तो, अन्य मंत्री और प्रधान मंत्री भी प्रश्नों का उत्तर देते हैं।[32] यदि दिया जाने वाला वक्तव्य लम्बा हो, तो अध्यक्ष मंत्री से यह कह सकता है कि वक्तव्य का सारांश पढ़ कर सुना दे और पूरा वक्तव्य सभा पटल पर रख दे।[33] ऐसे मामलों में सामान्यत: प्रथा यह है कि सदस्य स्वयं वक्तव्य का अध्ययन करते हैं और उसके संबंध में प्रश्न बाद में सामान्यत: उस दिन बैठक के अंत में या सभा की अगली बैठक में जो भी अध्यक्ष द्वारा नियत किया जाये, पूछते हैं।[34] जहां वक्तव्य लम्बा होता है और उसे सामान्यत: सभा पटल पर रख दिया जाता है वहां मंत्रियों को उस वक्तव्य की प्रतियां पटल कार्यालय में उसी दिन 10.30 बजे तक पहुंचानी होती हैं, ताकि उन्हें संबंधित सदस्यों को उपलब्ध कराया जा सके।[35] वक्तव्य के सभा पटल पर रखे जाने की स्थिति में जब वक्तव्यों की प्रतियां सदस्यों को पहले ही उपलब्ध करा दी जाती हैं तो सदस्य प्रश्न पूछते हैं और मंत्री उत्तर देता है।[36] यदि मंत्री द्वारा दिए जाने वाले वक्तव्य की प्रतियां सदस्यों को पहले ही उपलब्ध करा दी गई हों, जैसा कि अब लगभग प्रत्येक मामले में किया जाता है[37] तो भी मंत्री को सदन में वक्तव्य देने तक अपने वक्तव्य में संशोधन करने का

---

31. *पूर्वोक्त,* 8.12.1965, पृ. 2381; 9.12.1965, पृ. 2482 ।
32. किसी सूचना के उत्तर में कोई भी मंत्री वक्तव्य दे सकता है और यह आवश्यक नहीं है कि संबंधित मंत्रालय का वरिष्ठतम मंत्री व्यक्तिगत रूप से वक्तव्य दे–*लो.स.वा.वि.,* 8.3.1965, पृ. 1275 ।
33. *लो.स.वा.वि.,* 1.10.1955, कॉ. 15021, 29.3.1956, कॉ. 3719-20, 22.8.1957, कॉ. 8212-14; लो.स.वा.वि., 11.2.1960, पृ. 271-72 और 22.2.1960, पृ. 1011-12 ।
34. *पूर्वोक्त,* 28.11.1963, पृ. 1080-81, 407-18; 10.12.1963, पृ. 2064-65, 2109-10 ।
35. *लो.स.वा.वि.,* 10.11.1965, पृ. 427 ।

    अध्यक्ष महोदय ने टिप्पणी की है कि अगर वक्तव्य की प्रतियां समय पर प्राप्त न हों, तो उस मद को बैठक के अंत में लिया जाएगा और तब तक संबंधित मंत्री को प्रतीक्षा करनी होगी–*लो.स.वा.वि.,* 31.8.1970, पृ. 161 ।
36. *लो.स.वा.वि.,* 25.11.1965, पृ. 1454-57 ।
37. 9.8.1973 को सचिवालय द्वारा सभी मंत्रालयों को एक परिपत्र जारी किया गया था जिसमें उनसे कहा गया था कि वे ध्यानाकर्षण सूचना के संदर्भ में दिए जाने वाले वक्तव्य की अग्रिम प्रतियां उस दिन प्रात: 10 बजे तक भेज दें जिस दिन वह वक्तव्य दिया जाने वाला हो ताकि वे प्रतियां बैठक शुरू होने से पहले अध्यक्ष तथा संबंधित सदस्यों को उपलब्ध करायी जा सकें।

अधिकार है, लेकिन उसे इसकी पूर्व सूचना सचिवालय को देनी होगी।[38]

यदि वक्तव्य में पूरी जानकारी नहीं दी गई है, तो मंत्री को इस विषय पर एक अन्य वक्तव्य देने की सुविधा देने हेतु मामले को स्थगित रखा जाता है और उन सदस्यों को जिन्होंने सूचना दी है, आगे वक्तव्य दिए जाने के समय प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है।[39]

ध्यानाकर्षण वक्तव्य पर स्पष्टीकरण के लिए पूछे गए प्रश्नों को गृहीत सूचना की विषय वस्तु तक ही सीमित रखना होता है[40] और उनमें न तो किसी उच्च प्राधिकारी के आचरण के बारे में आक्षेप किया जाना चाहिए[41] और न ही उनमें आश्वासन मांगे जाने चाहिए।[42] जहां वक्तव्य पुलिस के पास दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट अथवा न्यायिक जांच के मामले पर आधारित होता है, वहां जांच की प्रक्रिया, उसके विषय और उसकी स्थिति[43] तक सीमित केवल कुछ प्रश्नों की अनुमति दी जा सकती है, मामले के गुणदोष के बारे में प्रश्नों की अनुमति नहीं दी जाती है[44] और उस मामले में कथित रूप से शामिल व्यक्ति का नाम लेकर उल्लेख करने की अनुमति भी नहीं दी जाती।

यदि पहला सदस्य, जिसके नाम में कार्य-सूची में ऐसी मद दी गई है पीठासीन अधिकारी द्वारा पुकारे जाने के समय उपस्थित न हो, तो सूची में दर्ज अगला सदस्य मंत्री का ध्यान आकर्षित कर सकता है। यदि वे सभी सदस्य जिनके नाम में कार्य-सूची में विषय दर्शाया गया है मद लिये जाने के समय सभा में उपस्थित नहीं होते, तो मंत्री वक्तव्य नहीं देता परन्तु अध्यक्ष की अनुमति से वह उस वक्तव्य को सभा पटल पर रख सकता है। इस प्रकार सभा पटल पर रखा गया वक्तव्य सभा की कार्यवाही में तो दर्शाया जाता है लेकिन बुलेटिन में ध्यानाकर्षण के उत्तर में रखा गया दिखाने की बजाए उसे मंत्री द्वारा स्वप्रेरणा से सभा पटल पर रखा गया दिखाया जाता है।[45] जहां विषय बहुत महत्वपूर्ण होता है वहां अध्यक्ष, मंत्री को

---

38. *लो.स.वा.वि.,* 14.5.1973, पृ. 1-2 ।
39. *पूर्वोक्त,* 26.11.1963, पृ. 805-06; 29.11.1963, पृ. 1195-98 और 2.8.1968, पृ. 1836-37; 21.8.1968, पृ. 1750-53; 2.8.1972, पृ. 126-27 और 9.8.1972, पृ. 113-16 ।
40. *पूर्वोक्त,* 2.4.1969, पृ. 82-83 ।
41. *पूर्वोक्त,* 3.3.1969, पृ. 156-57 ।
42. *पूर्वोक्त,* 4.8.1970, पृ. 159 ।
43. *पूर्वोक्त,* 26.3.1973, पृ. 113-16 ।
44. *पूर्वोक्त,* 5.4.1965, पृ. 3028-29 ।
45. *पूर्वोक्त,* 17.12.1958, पृ. 2793; 26.2.1959, पृ. 1680 साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 21.3.1960, पृ. 3339 ।

    एक मामले में उत्तर भारत में उद्योगों को कोयले की अपर्याप्त सप्लाई के बारे में ध्यानाकर्षण 14.3.1962 की कार्य-सूची में शामिल किया गया था लेकिन जब उस मद को लिया जाने लगा तो संबंधित सदस्य अनुपस्थित था। उसने अपनी सूचना अगले दिन पुनः दी लेकिन उसे अस्वीकृत कर दिया गया—*लो.स.वा.वि.,* 14.3.1962, पृ. 134 ।

सभा में वक्तव्य देने की अनुमति दे सकता है परन्तु इस स्थिति में भी उस वक्तव्य को ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में दिया गया न मानकर मंत्री द्वारा स्वप्रेरणा से दिया गया माना जाता है।[46] तथापि यदि संबंधित सदस्य/सदस्यगण मद को लिए जाने के समय सभा में उपस्थित न हों या मंत्री का ध्यान आकर्षित करने से मना करते हैं तो मंत्री के लिए वक्तव्य देना या सभा पटल पर रखना अनिवार्य नहीं है।[47]

जिस समय मंत्री द्वारा वक्तव्य दिया जाए, उस समय उस पर कोई वाद-विवाद नहीं हो सकता।[48] लेकिन वक्तव्य में दिए गए विषय पर बाद की किसी तिथि को वाद-विवाद करने की सूचना देने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।[49]

कार्य-सूची में जिन सदस्यों के नाम दिये गए हों उनमें से प्रत्येक सदस्य द्वारा ध्यानाकर्षण वक्तव्य पर स्पष्टीकरण हेतु केवल एक ही प्रश्न पूछा जा सकता है। यदि इस प्रकार पूछा गया कोई प्रश्न अस्वीकार कर दिया जाए तो सामान्यतया वह सदस्य दूसरा प्रश्न नहीं पूछ सकता है।[50] यदि सभा की इच्छा हो कि कोई प्रश्न न पूछा जाए तो कोई भी प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाती।[51] उन सदस्यों को प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जाती, जिनके नाम कार्य-सूची में न हों। तथापि ऐसे अवसर भी आए हैं जब अध्यक्ष ने सदस्यों को स्पष्टीकरण हेतु प्रश्न पूछने की अनुमति दी है जबकि उनके नाम कार्य-सूची में नहीं थे।[52]

सदस्यों द्वारा स्पष्टीकरण के लिए पूछे गए प्रश्न इतने लम्बे नहीं होने चाहिए कि ध्यानाकर्षण वाद-विवाद में बदल जाये। सामान्यत: एक ध्यानाकर्षण विषय पर आधे घंटे से

---

46. *लो.स.वा.वि.* (II), 30.9.1955, कॉ. 5339-40 ।

47. *पूर्वोक्त,* 7.8.1970, पृ. 144, 26 नवम्बर, 1985 की कार्य-सूची में कुछ सैन्य अधिकारियों की एवरेस्ट पर चढ़ने के दौरान हुई मृत्यु के बारे में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव दो सदस्यों के नाम पर रखा गया था। जब उस मद को लेने का समय आया, तो मंत्री का ध्यान आकर्षित करने के लिए दोनों सदस्यों में से कोई भी सभा में उपस्थित नहीं था। इसलिए मंत्री को वक्तव्य देने या उसे सभा पटल पर रखने के लिए नहीं कहा गया तथा कार्य-सूची की अगली मद को ले लिया गया और ध्यानाकर्षण सूचना व्यपगत हो गई। *लो.स.वा.वि.,* 26.11.1985, पृ. 214 ।

48. नियम 197(2)।

49. अध्यक्ष द्वारा विनिर्णय—*देखिए लो.स.वा.वि.,* 27.6.1967 । कॉ॰ 7825-47

50. *लो.स.वा.वि.,* 30.8.1963, पृ. 1761-65; 13.9.1963, पृ. 2980-86 ।

51. *पूर्वोक्त,* 23.3.1964, पृ. 2496-97, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 23.11.1969, कॉ. 3361-71 ।

52. *पूर्वोक्त,* 20.11.1963, पृ. 348-50; 3.12.1963, पृ. 1472-73 ।

तथापि एक सदस्य को जिसका नाम कार्य-सूची में नहीं था येरूसलम में अल अक्सा मस्जिद को जलाए जाने की घटना के धार्मिक महत्व को देखते हुए विशेष मामले के रूप में ध्यानाकर्षण वक्तव्य के बारे में स्पष्टीकरण हेतु प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई थी—*लो.स.वा.वि.,* 26.8.1969, पृ. 151-56 ऐसे और उदाहरणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 20.2.1979,

अधिक चर्चा नहीं होनी चाहिए और विशेष रूप से अधिक महत्वपूर्ण मामलों में 30 से 45 मिनट से अधिक समय नहीं लिया जाना चाहिए। ध्यान दिलाने वाला सदस्य दस मिनट ले सकता है और अन्य प्रत्येक सदस्य 2 से 5 मिनट तक का समय ले सकते हैं। मंत्री उन सदस्यों द्वारा पूछे गए सभी प्रश्नों का बाद में उत्तर देते हैं जिनके नाम से वह मद कार्य-सूची में दर्ज है। पीठासीन अधिकारी किसी मंत्री को किसी विशेष तरीके से स्पष्टीकरण संबंधी प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।[53]

यदि एक ही बैठक के लिए एक से अधिक विषय प्रस्तुत किए जाएं तो उस विषय को प्राथमिकता दी जाती है जो अध्यक्ष के विचार में अधिक अविलम्बनीय और महत्त्वपूर्ण हो।[54] दूसरा विषय उन्हीं सदस्यों द्वारा नहीं उठाया जा सकता है जिन्होंने पहला विषय उठाया हो। इसे बैठक के अंत में या उसके तत्काल पूर्व जैसाकि अध्यक्ष निश्चित करे, लिया जा सकता है।[55] इसके साथ ही संबंधित मंत्री पहले विषय के संबंध में एक संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है और दूसरे विषय के संबंध में संबंधित मंत्री द्वारा सभा पटल पर वक्तव्य रखा जा सकता है।

सभा पटल पर रखे गए वक्तव्य की एक प्रति उन सभी सदस्यों को दी जाती है जिनके नाम में वह मद कार्य-सूची में दी गयी हो।[56] यदि प्रधान मंत्री को एक ही दिन दो ध्यानाकर्षण प्रस्तावों में से किसी एक के उत्तर में वक्तव्य देना हो तो उस विषय को कार्य-सूची में प्राथमिकता दी जाती है।[57] यदि सत्र के अंतिम दिन प्राप्त सूचना उस दिन के लिए गृहीत कर ली जाती है, किन्तु संबंधित मंत्री वक्तव्य देने में असमर्थ है तो अध्यक्ष मंत्री को किसी बाद की तारीख में एक टिप्पणी सचिवालय को भेजने का निदेश दे सकता है, जिसमें सूचना (नोटिस) देने वाले सदस्य को भेजने हेतु अपेक्षित जानकारी दी गई हो।[58]

पृ. 230-32; 8.5.1981, पृ. 229-30; 5.8.1988, पृ. 225-26; 10.5.1990, पृ. 204-05; *एल.एस. डिबेट्स,* 31.3.1992, कॉ. 341; 27.11.1966, कॉ. 217-24; 8.5.2007, कॉ. 478-92; 20.8.2007, कॉ. 304-20; 14.8.2006, कॉ. 261, 263-68 और 276-84; 17. 5.2006, कॉ. 410-35; 6.3.2006, कॉ. 331-50; 18.3.2008 । कॉ॰ 521-541; 11.12. 2009, कॉ. 58-68; 20.12.2011, कॉ॰ 73-87; 29.12.2011 कॉ॰ 7672-7703

53. *लो.स.वा.वि.,* 22.7.1977, पृ. 230, और समाचार भाग-2, 14.11.1985, पैरा सं. 710 और कार्यवाही सारांश (नियम समिति) 28.8.1985 ।
54. नियम 197 (4)

    15 अप्रैल, 1954 को जब प्रधान मंत्री इस नियम के अंतर्गत गोवा पर उत्तरी अटलान्टिक और आंग्ल-पुर्तगाली संधियों के लागू किये जाने के संबंध में वक्तव्य दे चुके थे तो उन्होंने उसी नियम के अंतर्गत एक भिन्न विषय पर वक्तव्य देने के लिए अध्यक्ष से अनुमति मांगी। अध्यक्ष ने उन्हें अनुमति नहीं दी—*देखिए एच.पी. डिबेट्स,* (ii) 15.4.1954, कॉ. 4810 ।
55. नियम 197 (3), परन्तुक ।
56. निदेश 47क (1)।
57. निदेश 47क (2)।
58. *लो.स.वा.वि.,* 17.5.1966, पृ. 8821-24 ।

किसी ध्यानाकर्षण सूचना, जिसे गृहीत किया गया हो और कार्य-सूची में सम्मिलित किया गया हो, को संबंधित सदस्यों द्वारा अध्यक्ष की अनुमति से वापिस लिया जा सकता है यदि वे अपनी ऐसी इच्छा सभा में व्यक्त करें।[59]

ध्यानाकर्षण को अल्पकालीन चर्चा में बदलना

किसी विशेष दिन के लिए गृहीत अविलम्बनीय लोक महत्व के मामले संबंधी ध्यानाकर्षण की सूचना अध्यक्ष की अनुमति से और सभा की सहमति के आधार पर अल्पकालीन चर्चा के रूप में परिवर्तित की जा सकती है।

ऐसे अवसर भी आए हैं जब अध्यक्ष आदेश पत्र में सम्मिलित किए गए किसी विषय पर ध्यानाकर्षण को उसी दिन अथवा किसी अन्य उत्तरवर्ती दिन विचार करने हेतु अल्पकालीन चर्चा के रूप में परिवर्तित करने पर सहमत हुए।[60]

वक्तव्यों की व्याप्ति

ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में दिया गया वक्तव्य किसी प्रश्न के उत्तर के स्वरूप की तरह नहीं होता इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि उसमें केवल तथ्य ही बताये जायें। वक्तव्य में सरकार या मंत्री की राय, निष्कर्ष तथा निर्णय हो सकते हैं और यह आवश्यक नहीं है कि यह इस प्रकार का हो कि इसके संबंध में सभा में पूर्ण सहमति हो। इसी प्रकार से ऐसे वक्तव्य पर जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे सुझाव, आलोचना और मंत्री के विचारों से प्रतिकूल विचारों के रूप में हो सकते हैं और इसलिए इस बात पर कोई प्रतिबंध नहीं है कि मूल वक्तव्य तथा उस पर पूछे जाने वाले प्रश्न और उनके उत्तर केवल तथ्यों तक ही सीमित हों।

ऐसे वक्तव्यों पर वाद-विवाद हो सकता है। प्रतिबंध केवल इतना है कि जिस समय ऐसा वक्तव्य दिया जाए उस समय उस पर वाद-विवाद नहीं हो सकता। किसी मंत्री द्वारा ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में दिये गये किसी वक्तव्य के किसी विषय पर बाद की किसी तिथि को वाद-विवाद के लिए सूचना देने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। अत: यदि सभा के कुछ सदस्य, मंत्री के वक्तव्य में उसके द्वारा प्रकट किये गये विचारों और निष्कर्षों से सहमत नहीं हों तो उन्हें इस बात की पूरी आजादी है कि वे उस पर वाद-विवाद कर सकते हैं और सभा के सामने समुचित प्रस्ताव या प्रश्न प्रस्तुत कर सभा की राय रिकार्ड पर ला सकते हैं।[61]

---

59. *पूर्वोक्त,* 25.11.1965, पृ. 1451; 22.7.1971, पृ. 118 ।

60. *लो.स.वा.वि.,* 19.2.1975, कॉ. 213-17; 20.2.1975, कॉ. 202-03 और 393-457; 12.8.1987, कॉ. 363-67; 17.8.1987, कॉ. 430-84; 24.8.1987, कॉ. 771; 18.11.1987, कॉ. 353; 23.11.1987, कॉ. 420; 30.3.1988, कॉ. 241; 12.4.1988, कॉ. 517; 3.5.1990, कॉ. 476-78 और 485; 16.5.2006, कॉ. 418-27; 7.12.2006, कॉ. 338; 24.8.2007, कॉ. 307-08 ।

61. अध्यक्ष द्वारा विनिर्णय-*लो.स.वा.वि.,* 28.6.1967, पृ. 3654-56 ।

नामों का इकट्ठा लिखा जाना

सामान्यत: ऐसे विषय पर कोई सूचना गृहीत नहीं की जाती, जिस पर कोई अल्प सूचना प्रश्न की सूचना गृहीत की गई हो और जिस विषय पर कोई अल्प सूचना प्रश्न गृहीत किया जा चुका हो, उस पर ध्यानाकर्षण सूचना गृहीत नहीं की जाती। जब एक ही विषय पर ध्यानाकर्षण की सूचना और अल्प सूचना प्रश्न की सूचना एक साथ आई हो, तो मंत्री उत्तर देने के लिए उन दोनों सूचनाओं में से किसी एक का चयन कर सकता है। यदि अध्यक्ष ने ध्यानाकर्षण सूचना पहले गृहीत न कर ली हो तो वह मंत्री से सूचना प्राप्त होने पर उस सूचना को गृहीत कर सकता है जो मंत्री ने चुनी हो।[62] किसी गृहीत अल्प सूचना प्रश्न पर नामों को इकट्ठा लिखने के लिए नियम 54(4) के अंतर्गत बैलट केवल उन्हीं सदस्यों का किया जाता है जिन्होंने उस विषय पर अल्प सूचना प्रश्न की सूचना दी हो। इस विषय पर ध्यानाकर्षण सूचनाएं देने वाले सदस्यों के नाम उसमें शामिल नहीं किए जाते।[63]

जब भी कोई मंत्री किसी ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में वक्तव्य देता है तो उससे यह आशा की जाती है कि वह उन सभी बातों का उत्तर दे जो कि अल्प सूचना प्रश्नों अथवा उसी विषय पर प्राप्त अन्य प्रश्नों की सूचनाओं में उठायी गयी हों और जिनकी सूचनाएं उस तिथि से पहले मंत्री के पास पहुंच चुकी हों।

19 मार्च, 1958 को अध्यक्ष आयंगर ने टिप्पणी की थी कि जब भी कोई मंत्री, अध्यक्ष या सभा के पूर्ववर्ती निदेश के अनुसरण में या ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में सभा में कोई वक्तव्य दे तो उसे चाहिए कि वह उन सभी बातों का उत्तर दे जो कि उस विषय पर उन विभिन्न सूचनाओं में उठायी गयी हों जिनकी प्रतियां तब तक उसके पास पहुंच गयी हों।[64]

सामान्यत: सभा ध्यानाकर्षण सूचना के आधार पर सरकार से कोई कार्यवाही करने की सिफारिश नहीं करती, परन्तु कई बार प्रश्न सुझावों के रूप में होते हैं और सरकार अपने उत्तरों में यह बताती है कि वह उन सुझावों को स्वीकार करने की स्थिति में है या नहीं।[65]

---

62. नियम 54 (1) के अन्तर्गत अल्प सूचना प्रश्न तभी गृहीत किया जा सकता है जबकि मंत्री अल्प सूचना पर उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार हो, परन्तु ध्यानाकर्षण सूचना संबंधित मंत्री से पूछे बिना गृहीत की जा सकती है।

63. *लो.स.वा.वि.,* 6.12.1977, पृ. 158-59 ।

64. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 19.3.1958, पृ. 2677-79 ।

65. उदाहरण के लिए बर्मा में भारतीय लोगों द्वारा नियंत्रित व्यापार के राष्ट्रीयकरण के बाद भारतीयों की दुर्दशा के संबंध में सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया कि विदेश मंत्रालय के अधिकारियों को बर्मा भेजा जाए जिससे कि वे वहां के भारतीयों की शिकायतों की जांच कर सकें और बर्मा सरकार से यह कह सकें कि वह उन्हें सुव्यवस्थित ढंग से भारत आने की अनुमति दे। यह सुझाव सरकार ने स्वीकार कर लिया। *देखिए लो.स.वा.वि.,* 28.4.1964, पृ. 4661-65 ।

अध्याय 21

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर स्थगन प्रस्ताव

सामान्यत: अध्यक्ष की अनुमति के बिना किसी बैठक में ऐसा कोई कार्य नहीं किया जा सकता, जो उस दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित न हो।[1] तथापि अविलम्बनीय लोक महत्व का कोई विषय, यदि अध्यक्ष ने उसके लिए अनुमति दे दी हो, सभा का नियमित कार्य रोककर शीघ्रातिशीघ्र स्थगन प्रस्ताव सभा में प्रस्तुत कर उठाया जा सकता है। अध्यक्ष मावलंकर के शब्दों में:

> स्थगन प्रस्ताव वास्तव में अत्यंत असाधारण प्रस्ताव है, क्योंकि माननीय सदस्य इस बात को तो महसूस करेंगे कि किसी ऐसे विषय, जिसके संबंध में पहले से कोई सूचना न दी गई हो और जो कार्य-सूची में सम्मिलित न हो, पर चर्चा की अनुमति देना बहुत से अनुपस्थित सदस्यों के प्रति अन्याय करना है। इसलिए, प्रथा यह रही है कि किसी दिन की कार्य-सूची में कोई नया विषय शामिल नहीं किया जायेगा, जब तक कि ऐसा अवसर न हो कि कोई बहुत ही गम्भीर बात हो गयी हो, जिसका सारे देश, उसकी सुरक्षा और उसके हितों तथा हो रही सभी घटनाओं पर, प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा हो, और उन पर सभा द्वारा तत्काल ध्यान दिए जाने की आवश्यकता हो। केवल ऐसी ही परिस्थिति में स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने पर विचार किया जा सकता है। स्थगन प्रस्ताव कार्य-सूची में तब तक शामिल नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसका विषय अत्यधिक व्यापक, महत्वपूर्ण और गम्भीर न हो।[2]

स्थगन प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य यह है कि अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया जाये, ताकि सरकार के निर्णय की आलोचना की जा सके, क्योंकि इस बारे में समुचित सूचना के साथ प्रस्ताव या संकल्प प्रस्तुत किये जाने पर बहुत देर हो सकती है।[3]

> स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने संबंधी उपबंध, जो मुख्यत: ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स की कार्य-संचालन प्रक्रिया पर आधारित था, पहली बार 1920 में उस समय प्रवृत्त किया गया, जब भारत शासन अधिनियम, 1919 के अधीन गठित की जाने वाली विधानसभा के लिए भारतीय विधायी नियम बनाये गये थे।[4] ये नियम केन्द्रीय विधानमंडल की दोनों सभाओं पर लागू होते थे और इनमें यह व्यवस्था की गयी थी कि स्थगन प्रस्ताव किसी

---

1. नियम 31(2)।
2. *लो.स.वा.वि.,* 22.2.1955, कॉ. 23-31 उदाहरण के लिए *देखिए* पुनरीक्षित कार्य-सूची 12.8.1966, 14.11.1972, 22.3.1978, 27.4.1983 व 28.2.1984 ।
3. *एल.ए.डिबेट्स,* 9.6.1924, पृ. 2812 ।
4. *राजपत्र असाधारण,* 27.9.1920, पृ. 1003-10 ।

> भी सभा में रखा जा सकता है। यह व्यवस्था ब्रिटेन में प्रचलित प्रथा से भिन्न थी क्योंकि वहां स्थगन प्रस्ताव केवल हाउस ऑफ कॉमन्स में रखा जा सकता था। वर्ष 1947 में इस स्थिति में सुधार किया गया[5] और नियमों में किए गये इस उपबंध का लोप कर दिया गया, जिसके अन्तर्गत गवर्नर जनरल को यह शक्ति प्राप्त थी कि अध्यक्ष द्वारा किसी स्थगन प्रस्ताव के रखे जाने की अनुमति दिए जाने के बावजूद, गवर्नर जनरल कतिपय मामलों में उसको अस्वीकार कर सकता था।

प्रारम्भ से ही स्थगन प्रस्ताव को यद्यपि पूर्णतया तो नहीं, तथापि निन्दा प्रस्ताव जैसा माना गया है।[6] इस पर प्रकाश डालते हुए अध्यक्ष फ्रेड्रिक व्हाइट ने कहा था:

> इस सभा के किसी स्थगन प्रस्ताव को प्रत्यक्षत: कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। नियम में की गई व्यवस्था के अनुसार यह मात्र एक ऐसा सुविधाजनक तरीका है जिसके माध्यम से विधान सभा का सामान्य कार्य स्थगित कर दिया जाता है, ताकि अचानक उत्पन्न होने वाली किसी आपात स्थिति पर विचार किया जा सके। पीठासीन अधिकारी ऐसे अवसर पर केवल यही प्रश्न रखता है कि "सभा अब स्थगित होती है"। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता है तो सभा के इस कार्य के दो अर्थ लिये जा सकते हैं: (i) पहला यह कि उस विषय के सम्बन्ध में सभा के अधिकतर सदस्यों ने गंभीर चिन्ता व्यक्त की है; और (ii) दूसरा यह कि इसे उस विषय पर सभा द्वारा सरकार की निन्दा करने संबंधी सम्भावित मत के रूप में देखा जाए।[7]

पहली केन्द्रीय विधान सभा के 1921 में गठन के बाद से स्थगन प्रस्ताव पेश करने की प्रक्रिया में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, परन्तु स्वतंत्रता के बाद से इन प्रस्तावों का प्रयोजन और प्रभाव बदल गया है। स्वतंत्रता से पहले अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर चर्चा करने के लिए सदस्यों के पास प्रक्रियागत उपाय बहुत कम थे। इसीलिए उन्हें बहुधा एक ही नियम अर्थात् स्थगन प्रस्ताव का सहारा लेना पड़ता था। उन दिनों स्थगन प्रस्ताव को पूर्णतया निन्दा प्रस्ताव नहीं समझा जाता था क्योंकि सरकार सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। विधान सभा के अध्यक्ष को नियमों की व्याख्या संसदीय परिपाटियों या प्रथाओं के आधार पर नहीं, बल्कि उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करनी पड़ती थी। इस प्रकार प्रथा बन गई कि किसी भी महत्वपूर्ण मामले को स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा के लिए उठाया जाता था। अध्यक्ष सदा स्थगन प्रस्तावों को उदारतापूर्वक स्वीकार करके चर्चा की अनुमति दे देता था। यह प्रथा इतनी सुस्थापित हो गयी थी कि जब भारत स्वतंत्र हुआ और सरकार संसद के प्रति

---

5. वर्ष 1952 में जब लोक सभा और राज्य सभा का गठन किया गया तो केवल लोक सभा के प्रक्रिया नियमों में स्थगन प्रस्ताव संबंधी व्यवस्था रहने दी गई क्योंकि मंत्रिपरिषद् केवल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है—*देखिए* संविधान का अनुच्छेद 75(3)।
6. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड I, 1921, पृ. 406; 12.3.1924, पृ. 3229-30; खण्ड (I), 1927, पृ. 1080; खण्ड V, 1927, पृ. 4381; और *पी. डिबेट्स,* 21.3.1950, पृ. 1889-95 ।
7. *एल.ए. डिबेट्स,* 12.3.1923, पृ. 3229-30; साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड (I) , 1927, पृ. 406 और 1028; खण्ड V, 1927 पृ. 4381 ।

उत्तरदायी बनी तो सदस्यों ने इस बात को महसूस नहीं किया कि स्थिति में परिवर्तन आ गया है और अब महत्वपूर्ण मामलों को स्थगन प्रस्तावों के माध्यम से चर्चा के लिए उठाया जाना उचित नहीं है। इस संबंध में कुछ कमी नियमों में भी थी। नियमों में इस प्रकार का संशोधन या परिवर्तन नहीं किया गया था जिससे कि ऐसे विषयों पर संसद में चर्चा के लिए अन्य अवसर मिल सकें। इसलिए एक ऐसा काल प्रारम्भ हुआ जिसमें पीठासीन अधिकारी तथा सदस्यों के बीच तनातनी रहती थी। सदस्य स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा करना चाहते थे और अध्यक्ष इसका प्रतिरोध करता था, क्योंकि यह व्यवस्था स्वस्थ संसदीय प्रक्रिया के हित में नहीं थी।[8] इसीलिए अध्यक्ष मावलंकर ने प्रारम्भ में ही इस नयी व्यवस्था में स्थगन प्रस्ताव की व्याप्ति पर प्रकाश डाला। अंतरिम संसद में 21 मार्च, 1950 को अपने निर्णय में उन्होंनें कहा:

> सबसे महत्वपूर्ण कसौटी सदैव यह होगी कि जिस प्रश्न को स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से उठाया जाना है, क्या वह अचानक उठा है और उसके कारण कोई ऐसी आपात स्थिति उत्पन्न हुई है जिसे प्रथम दृष्ट्या अविलम्बनीय कहा जा सके और इस कारण सभा को बाकी सारे कार्य स्थगित कर देने चाहिएं और नियत समय पर उस अविलम्बनीय विषय पर चर्चा प्रारम्भ करनी चाहिए। अविलम्बनीयता ऐसी होनी चाहिए कि उस विषय में देर करने की बिल्कुल कोई गुंजाइश न हो और उस पर उसी दिन चर्चा की जाए जिस दिन उसकी सूचना दी गयी हो।
>
> केन्द्रीय विधानसभा के उत्तरवर्ती अध्यक्षों ने, जिसमें मैं भी शामिल हूँ, स्थगन प्रस्ताव की ग्राह्यता के नियम को, जैसाकि वह हाउस ऑफ कामन्स में है, बहुत शिथिल कर दिया था और उसका स्पष्ट कारण यह था कि गैर-सरकारी सदस्यों को, जो विरोधी पक्ष में थे, लोक महत्व के विषयों पर चर्चा करने के बहुत कम अवसर मिलते थे। उस समय सरकार विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं थी और न ही उसके नियंत्रण में थी। इसीलिए पीठासीन अधिकारियों द्वारा नियमों को और अधिक उदार बनाने का समुचित आधार था, ताकि स्थगन प्रस्तावों के माध्यम से सभी महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा करने का अवसर प्राप्त हो सके... अब परिस्थितियां बिल्कुल बदल गयी हैं। नयी व्यवस्था में चर्चा करने के बहुत से अवसर उपलब्ध हैं और सरकार के उत्तरदायी स्वरूप को देखते हुए हम यह नहीं कह सकते कि किसी भी महत्वपूर्ण मामले पर चर्चा करने के लिए स्थगन प्रस्ताव ही सामान्य उपाय है।[9]

यदि कोई स्थगन प्रस्ताव पारित हो जाता है तो इसका मतलब यह है कि सभा ने सरकार की नीति का कड़े शब्दों में निरनुमोदन किया है, न कि यह है कि सरकार की निन्दा की गयी है। सरकार को अपदस्थ करने के लिए आवश्यक है कि नियमों में किए गए उपबंधों के अनुसार सदस्य मंत्रिपरिषद् में अविश्वास के प्रस्ताव की सूचना दें।[10]

---

8. *फर्स्ट पार्लियामेंट: ए सोवीनियर,* लोक सभा सचिवालय, पृ. 29-30 ।
9. *पी. डिबेट्स,* 21.3.1950, पृ. 1889-95 ।
10. नियम 198(1), साथ ही *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 6.8.1962, कॉ. 12; *लो.स.वा.वि.,* 19.11.1963, पृ. 216-18 ।

स्थगन प्रस्ताव की सूचना

स्थगन प्रस्ताव की सूचना सदस्यों द्वारा एक निर्धारित प्रपत्र में दी जाती है, जिसकी प्रतियां उन्हें संसदीय सूचना कार्यालय से मिलती हैं। सभा के कार्य के स्थगन के प्रस्ताव की सूचना देते समय सदस्य को वह निश्चित विषय बताना पड़ता है जिस पर वह चाहता है कि सभा विचार करे। उसे सूचना का विषय उन्हीं सीमाओं के भीतर रखना होता है, जो नियमों में निर्धारित की गयी हैं और अपनी बात संक्षेप में स्पष्ट रूप से कहनी होती है। जो सूचना अस्पष्ट हो या जिसमें वाद-विवाद के रूप में लम्बी दलीलें हों, उसे इसी आधार पर अस्वीकार कर दिया जाता है।[11]

सूचना का विषय गुप्त रखा जाता है और उसमें क्या लिखा है यह सदस्यों या प्रेस को नहीं बताया जाता। स्थगन प्रस्ताव की सूचना देने वाला सदस्य उसके सभा में पेश होने से पहले उसका प्रचार करने अथवा प्रकाशित करने हेतु प्रेस को देने के लिए स्वतंत्र नहीं है। यदि वह ऐसा करता है तो इसे नियमों का उल्लंघन माना जाता है।[12]

स्थगन प्रस्ताव की सूचना उस दिन जिस दिन कि प्रस्ताव करने का विचार हो, बैठक प्रारम्भ होने से पहले महासचिव को देनी होती है,[13] जिसकी प्रतियां अध्यक्ष, संबंधित मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री को दी जानी चाहिए।

नियमों में 'बैठक प्रारम्भ होने से पहले' शब्दों का अर्थ यह है कि बैठक प्रारम्भ होने से समुचित समय पहले, ताकि सूचना अध्यक्ष के बैठक प्रारम्भ होने के समय उसके पीठासीन होने से पहले उसके कार्यालय में पहुंच सके। किसी सत्र के आरम्भ होने से पहले, सूचनाएं पहले से नियत की गईं और संसदीय समाचार में अधिसूचित की गई तिथि के बाद ही दी जा सकती हैं।[14]

> 1920 में बनाए गए स्थायी आदेशों में यह उपबंध किया गया था कि स्थगन प्रस्ताव की सूचना केवल सभा के सचिव को दी जायेगी।[15] विधान सभा नियमों में 1937 में संशोधन करके यह उपबंध किया गया कि सूचना की एक-एक प्रति अध्यक्ष और सरकार के उस सदस्य को भी दी जायेगी, जिसके विभाग से उस प्रस्ताव के विषय का संबंध हो।[16]

---

11. नियम 198(1)(ख) *एल.ए. डिबेट्स,* 3.3.1941, पृ. 917 ।
12. नियम 334क; *एच.पी. डिबेट्स,* 10.12.1952, कॉ. 1974-75 ।
13. नियम 57 ।

    6 अप्रैल, 1970 को नियम 57 को निलम्बित कर दिया गया था ताकि सभा एक ऐसे स्थगन प्रस्ताव पर विचार कर सके जिसकी सूचना बैठक शुरू होने के बाद दी गयी थी- *लो.स.वा.वि.,* 6.4.1970, कॉ. 245 ।
14. *देखिए* समाचार भाग II, दिनांक 8.1.1973 और प्रक्रिया के सामान्य नियम अध्याय XXXII ।
15. स्थायी आदेश 22 ।
16. भारतीय विधायी नियम का नियम 11(2)।

महासचिव को संबोधित सूचनायें और उनकी अध्यक्ष तथा संबंधित मंत्रियों और संसदीय कार्य-मंत्री को पृष्ठांकित प्रतियां संसदीय सूचना कार्यालय में प्राप्त की जाती हैं।[17] स्थगन प्रस्ताव की सूचनाओं पर विचार करने के लिए अध्यक्ष को पर्याप्त समय दिये जाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यह निर्धारित किया गया है कि किसी दिन प्रातः 10.00 बजे तक प्राप्त स्थगन प्रस्तावों की सूचनाएं उस दिन के लिए मान्य समझी जायेंगी। यदि संसदीय सूचना कार्यालय में 10.00 बजे के पश्चात् स्थगन प्रस्ताव की सूचना की प्रतियां प्राप्त की जाती हैं तो सूचना समय पर प्राप्त नहीं हुई समझी जाएगी और उसे अगली बैठक के लिए दी गई सूचना समझा जायेगा।[18]

यदि सभा, कोई कार्य किए बिना ही, पूरे दिन के लिए स्थगित हो जाती है, तो उस दिन के लिए प्राप्त सूचनाएं अगली बैठक के लिए लंबित रखी जाती हैं।[19]

कोई भी सदस्य किसी एक बैठक के लिए एक से अधिक ऐसी सूचना नहीं देगा।

यदि एक ही विषय पर अनेक सूचनाएं एक ही समय पर प्राप्त की जाती हैं तब उनकी परस्पर वरीयता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है।

यदि किसी सूचना पर एक से अधिक सदस्यों के हस्ताक्षर हों तो यह समझा जाता है कि सूचना प्रथम हस्ताक्षरकर्ता द्वारा दी गई है।[20]

जब कोई सदस्य दस बजे से पहले स्वयं अध्यक्ष को स्थगन प्रस्ताव की सूचना देता है और उस सूचना की प्रति महासचिव को दस बजे के बाद मिलती है लेकिन सदस्य यदि अध्यक्ष का इस बात से समाधान करा सके कि असाधारण परिस्थितियों के कारण ऐसा हुआ है, तो अध्यक्ष यह विनिर्णय दे सकता है कि सूचना समय पर प्राप्त हुई है।

---

17. पहले मंत्रियों को स्थगन प्रस्ताव की दी जाने वाली प्रतियां संबंधित मंत्रियों को स्वयं सदस्य द्वारा दी जाती थीं-*एल.ए. डिबेट्स,* 21.2.1938, पृ. 881-89 ।

18. निदेश 113ख ।

19. 23 जून, 1980, 25 जुलाई, 1985 और 21 अगस्त, 1985, 20 फरवरी, 2001 और 28 नवम्बर, 2001 को प्राप्त की गई सूचनाएं अगली बैठक के लिए लंबित की गईं क्योंकि क्रमशः श्री संजय गांधी (तत्कालीन सदस्य); श्री हुकम सिंह, (पूर्व लोक सभा अध्यक्ष), सरदार हरचंद सिंह लोंगोवाल (अध्यक्ष, शिरोमणि अकाली दल) श्री इंदरजीत गुप्ता (वर्तमान सदस्य) और श्री विष्णुदत्त शर्मा (वर्तमान सदस्य) के निधन के कारण उस दिन सभा कोई कार्य किए बिना ही स्थगित कर दी गई थी। 21 फरवरी, 2003 और 28 जुलाई, 2003 की सूचनाओं को भी अगली बैठक के लिए लंबित किया गया क्योंकि वर्तमान सदस्यों के निधन पर निधन संबंधी तथा अन्य उल्लेख किए जाने के बाद सभा कोई कार्य किए बिना ही स्थागित कर दी गई थी।

20. नियम 57, व्याख्या (एक)।

यदि स्थगन प्रस्ताव की कोई सूचना निर्धारित अवधि के पश्चात् प्राप्त होती है और उसमें सदस्य द्वारा यह उल्लेख नहीं किया जाता कि इस प्रस्ताव को किस दिन लिया जाए, तो वह अगली बैठक के लिए दी गई सूचना समझी जाती है और ऐसी सूचना की ग्राह्यता निर्धारित करने के लिए इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि क्या सदस्य द्वारा प्रथम उपलब्ध अवसर पर स्थगन प्रस्ताव की सूचना दी गई है।

सुस्थापित परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति के अभिभाषण से पूर्व स्थगन प्रस्ताव की सूचनाएं दोनों सभाओं की एक साथ समवेत सभा के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण के तुरन्त पश्चात् होने वाली बैठक से अगली बैठक में विचार करने के लिए स्थगित समझी जाती हैं।[21] तथापि, राष्ट्रपति के अभिभाषण वाले दिन भी ऐसे प्रस्ताव को रखने के बारे में कोई प्रतिबंध नहीं है।[22]

जब मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा हो रही हो, तब स्थगन प्रस्ताव के लिए अनुमति नहीं दी जाती है।[23] जब अविश्वास प्रस्ताव की सूचना प्राप्त हुई हो, तो अध्यक्ष स्थगन प्रस्तावों को तब तक स्थगित कर सकता है जब तक कि सभा द्वारा अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए अनुमति दिये जाने का निर्णय न ले लिया जाये।

सामान्यतः बजट पर चर्चा के दौरान अथवा राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान स्थगन प्रस्तावों के लिए अनुमति नहीं दी जाती है, क्योंकि इस चर्चा के दौरान सदस्यों को सभा का ध्यान आकर्षित करने के लिए पर्याप्त अवसर मिल जाते हैं।[24]

---

21. *लो.स.वा.वि.,* 11.5.1957, कॉ. 25; 18.4.1962, कॉ. 43-44; 17.2.1965, कॉ. 23; *लो.स.वा.वि.*, 14.2.1966, पृ. 1; 28.1.1980, कॉ॰ 34-36, 16.2.1981, कॉ. 33 ।

22. जब 18 मार्च, 1967 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के पश्चात् सभा समवेत हुई तब कुछ विपक्षी दलों के सदस्य इस परम्परा से सहमत नहीं हुए और उन्होंने अपने स्थगन प्रस्ताव पर उसी दिन चर्चा किए जाने पर जोर दिया। मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्ताव की भी दो सूचनाएं दी गई थीं। सदस्य चाहते थे कि उन्हें भी उसी दिन सभा में रखा जाए जिसके लिए प्रधान मंत्री ने सहमति व्यक्त की। तद्नुसार उसी दिन मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा हुई और स्थगन प्रस्ताव सभा में चर्चा के लिए नहीं लिया गया—

    लो.स.वा.वि., 18.3.1967, कॉ. 100-20 ।

23. *लो.स.वा.वि.,* 19.8.1963, पृ. 645-51; 20.8.1963, पृ. 790-92, 794; 4.8.1966, कॉ. 2612-13; 2.11.1966, कॉ. 451-52; 3.9.1973, पृ. 1-4 ।

24. अध्यक्ष ने 19 फरवरी, 1981 को स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति देते हुए, यह टिप्पणी की थी कि सामान्यतः जब राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा हो रही हो तब सभा में स्थगन प्रस्ताव रखे जाने का शायद ही कोई कारण होगा। तथापि दिल्ली में जहरीली और नकली शराब का सेवन करने के कारण हुई दर्दनाक मौतों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने स्थगन प्रस्ताव के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की। तद्नुसार चर्चा 16.00 बजे आरम्भ होकर उसी दिन समाप्त हुई। *लो.स.वा.वि.,* 19.2.1981, कॉ. 460-61, और 548-622 ।

स्थगन प्रस्ताव की ग्राह्यता

कोई स्थगन प्रस्ताव तभी ग्राह्य हो सकता है जब उसमें निम्नलिखित अत्यावश्यक तत्व मौजूद हों:

मंत्रीय दायित्व

सामान्यत: किसी स्थगन प्रस्ताव का विषय भारत सरकार के व्यवहार अथवा किसी चूक से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में संबंधित होना चाहिए और उसमें भारत सरकार के किसी कार्य की आलोचना उपलक्षित होनी चाहिए, अर्थात् या तो उसने ऐसा कोई कार्य किया जिसकी आलोचना की जानी है या कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जोकि उस समय उसके द्वारा किया जाना बहुत आवश्यक था।[25] कोई स्थगन प्रस्ताव तभी ग्राह्य हो सकता है जब सरकार संविधान और विधि[26] द्वारा प्रदत्त अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में असफल रही हो। जिस विषय में हस्तक्षेप करना सरकार का दायित्व न हो उसके संबंध में स्थगन प्रस्ताव नियम विरुद्ध है। स्थगन प्रस्ताव ऐसे विषयों के बारे में भी नहीं रखे जा सकते जिनके संबंध में मंत्री किसी कानून के अन्तर्गत दिये गये विवेकाधिकार का प्रयोग करता हो।

किसी राज्य सरकार से संबंधित किसी विषय के संबंध में स्थगन प्रस्ताव अग्राह्य होता है।[27] अत: राज्य के किसी विषय के संबंध में स्थगन प्रस्ताव की कोई सूचना हो तो उसके साथ एक वक्तव्य होना चाहिए जिसमें यह बताया गया हो कि उसके बारे में भारत सरकार ने अपनी जिम्मेदारी किस प्रकार नहीं निभाई है।[28] तथापि, कानून तथा व्यवस्था या राज्य के अन्य किसी विषय से संबंधित यदि स्थगन प्रस्ताव हो और वह अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लोगों से संबंधित हो,[29] तो ऐसे स्थगन प्रस्ताव को गृह मंत्री के पास

---

25. *एल.ए. डिबेट्स,* 4.9.1928, पृ. 153, साथ ही देखिए *एल.ए. डिबेट्स खण्ड* II, 1923, पृ. 5034; खण्ड IV, 1924, पृ. 1315 और 2812; *लो.स.वा.वि.,* 31.5.1957, कॉ. 3203-05; और 10.3.1975 कॉ. 217-20 ।

26. *लो.स.वा.वि.,* 24.5.1971, पृ. 102-03, 18.4.1974, पृ. 102 ।

27. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड (IV), 1924, पृ. 1626-27, *एच.पी. डिबेट्स* (II), 15.2.1954, कॉ. 21-22; *लो.स.वा.वि.,* 7.4.1955; कॉ. 3522; 21.12.1956 कॉ 3889-90, 2.5.1957, कॉ. 1388-89; 5.8.1959, कॉ 661-66; 29.8.1959, कॉ 5086; 11.3.1966, कॉ. 5041; 28.11.1973, पृ. 107-08 तथा 4.9.1974, कॉ. 30-32 ।

28. *लो.स.वा.वि.,* 29.8.1957, पृ. 4854-55 ।

29. अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत राष्ट्रपति एक आयोग (राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग) की नियुक्ति करता है जो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए किए गए रक्षोपायों से संबंधित सभी मामलों की जांच करता है। उस आयोग की रिपोर्ट संसद की दोनों सभाओं और संबंधित राज्य की विधान सभा के पटलों पर रखी जाती है। तथापि संविधान (नवासीवां संशोधन) अधिनियम 2003 के जरिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए क्रमश: अनुच्छेद 338 और 338क के अधीन तत्संबंधी मामलों से निपटने के लिए दो पृथक राष्ट्रीय आयोग सृजित किऐ गए थे।

भेजा जा सकता है, ताकि वह उस संबंध में संबंधित राज्य सरकार से पूछताछ कर सके और स्थगन प्रस्ताव की सूचना देने वाले सदस्य या सदस्यों को सीधे जानकारी दे सके।[30]

किसी राज्य में उत्पन्न ऐसी संवैधानिक समस्याओं, जिनमें संघ सरकार द्वारा हस्तक्षेप किया जाना अनिवार्य हो जाता है, के बारे में स्थगन प्रस्ताव नियमानुकूल ठहराया गया है। अतः अध्यक्ष ने ऐसे स्थगन प्रस्तावों को पेश करने की अनुमति दी है जो किसी विधान सभा का सत्रावसान ऐसी स्थिति में करने से राज्यपाल को रोकने में संघ सरकार की विफलता के बारे में था जबकि विधान सभा का सत्र बजट पारित करने के लिए बुलाया गया था और कुछ सदस्यों द्वारा दल-बदल के कारण कुछ मांगों पर मतदान सरकार के विपक्ष में किये जाने की आशंका थी तथा जो राज्यपाल[31] द्वारा विधान सभा का विघटन रोकने में संघ सरकार की विफलता के बारे में था।

किसी विधान सभा के विघटन संबंधी स्थगन प्रस्ताव को भी नियमानुकूल ठहराया गया।[32]

एक स्थगन प्रस्ताव जो विधान सभा के सत्रावसान के पश्चात् धन के विनियोग के बारे में राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश पर चर्चा करने की अनुमति प्राप्त करने के बारे में था, उसको नियामनुकूल नहीं ठहराया गया, क्योंकि राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 213 के उपबन्धों के अनुसार कार्यवाही की गई थी।[33]

यह निर्णय दिया गया है कि राज्य सरकार के किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा कानून तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए स्थानीय पुलिस की सहायता के उद्देश्य से सशस्त्र सेना को बुलाया जाना किसी स्थगन प्रस्ताव का विषय नहीं हो सकता क्योंकि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973[34] के अन्तर्गत कोई मजिस्ट्रेट जब यह महसूस करे कि सेना बुलाये बिना किसी गैर-कानूनी रूप से एकत्रित भीड़ को तितर-बितर नहीं किया जा सकता तो उसे सेना बुलाने की शक्ति प्राप्त है।[35]

किसी राज्य सरकार द्वारा की गई कार्यवाही, जिसे वह संविधान के उपबंधों के अधीन करने के लिए सक्षम है स्थगन प्रस्ताव का विषय नहीं हो सकती।[36]

---

30. *लो.स.वा.वि.,* 7.8.1959, पृ. 647-49 ।
31. *पूर्वोक्त,* 20.7.1967, पृ. 6069-70; 5.3.1973, पृ. 134-36 ।
32. *पूर्वोक्त,* 29.3.1977, कॉ. 159-240 ।
33. *पूर्वोक्त,* 1.4.1981, कॉ. 266-310 ।
34. आपराधिक दंड संहिता धारा 130 और 151 ।
35. *लो.स.वा.वि.,* 12.8.1958, कॉ. 356-61; 4.9.1959, कॉ. 6402-22 ।
36. *पूर्वोक्त,* 14.3.1960, कॉ. 5694-95 ।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर चर्चा की अनुमति के लिए दी गई स्थगन प्रस्ताव की सूचना अग्राह्य मानी गई है।[37]

जब राष्ट्रपति ने उद्घोषणा द्वारा यह घोषणा कर दी हो कि किसी राज्य के विधानमंडल की शक्तियों का प्रयोग संसद के प्राधिकार द्वारा अथवा उसके अधीन किया जायेगा और उस राज्य के विधानमंडल को विघटित कर दिया गया हो, तो उस राज्य के संबंध में राज्य के किसी भी विषय पर लोक सभा में स्थगन प्रस्ताव रखा जा सकता है। लेकिन ऐसे प्रस्ताव की ग्राह्यता पर उस राज्य के विधानमंडल के नियम लागू नहीं होते, बल्कि लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम लागू होते हैं।[38]

किसी स्वायत्तशासी संगठन अथवा निगम के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन संबंधी क्रियाकलापों के बारे में स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा नहीं की जा सकती।[39]

किसी विदेशी सरकार[40] अथवा दूसरे देश के घटनाक्रम, जो भारत सरकार के क्षेत्राधिकार से बाहर हों, पर स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा नहीं की जा सकती।[41]

विषय का स्पष्ट होना

स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से उठाया जाने वाला विषय:

(क) ***एक ही विशिष्ट मामले से संबंधित होना चाहिए :*** किसी जांच रिपोर्ट पर चर्चा करने के उद्देश्य से दी गई स्थगन प्रस्ताव की सूचना को एक विशिष्ट मामले से संबंधित नहीं माना गया है।

किसी प्रस्ताव में एक से अधिक मुद्दे नहीं उठाये जाने चाहिएं। तथापि, विभिन्न स्थगन प्रस्तावों में जिन विषयों का उल्लेख किया गया है, यदि वे मूल रूप से एक जैसे प्रश्न उठाते हों, तो उन पर प्रथम गृहीत प्रस्ताव में एक साथ चर्चा करने की अनुमति है।[42] जब एक ही विषय पर दो या अधिक सूचनाएं प्राप्त हुई हों तो अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से उस सूचना को स्वीकार करता है जो यथानिर्धारित रूप में हो, चाहे वह पहले प्राप्त न हुई हो।[43]

---

37. *पूर्वोक्त,* 25.7.1985, पृ. 154-56 ।
38. *पूर्वोक्त,* 5.8.1959, पृ. 371-72 ऐसी उद्घोषणा राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत जारी की जाती है।
39. *पूर्वोक्त,* 28.8.1959, पृ. 2517-18 ।
40. *एल.ए.डि.,* 29.3.1933, पृ. 2771; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 30.6.1952, कॉ. 2819 ।
41. *लो.स.वा.वि.,* 23.3.1960, कॉ. 7545-71 ।
42. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.2.1945, पृ. 126-71 ।
43. *लो.स.वा.वि.,* 12.3.1959, पृ. 2976-80 ।

(ख) ***सामान्य रूप से व्यक्त नहीं होना चाहिए और उसमें बहुत से मामलों को सम्मिलित भी नहीं किया जाना चाहिए :*** जिस स्थगन प्रस्ताव में देश में राजनीतिक स्थिति जैसा कोई सामान्य विषय उठाने की चेष्टा की गयी हो,[44] या मध्यम वर्ग की बेकारी के कारण भारत में असामान्य आर्थिक स्थिति से उत्पन्न शोचनीय स्थिति की चर्चा की गई हो[45] या किसी राज्य में अराजकता की चर्चा हो[46] या इस बात की चर्चा हो कि सरकार ने अपना रवैया स्पष्ट नहीं किया है[47] या रेलगाड़ियों के देर से चलने तथा रेल दुर्घटनाओं में वृद्धि के बारे में चर्चा हो,[48] उसे नियमानुकूल नहीं माना गया है। यदि कोई स्थगन प्रस्ताव किसी मंत्री द्वारा दिये गये किसी वक्तव्य को आधार बनाकर पेश किया जाना हो, तो उसमें या तो वह वक्तव्य पूरा आना चाहिए या उसका सार होना चाहिए, अन्यथा वह कोई निश्चित विषय नहीं बन पाता जिस पर चर्चा के लिए सभा को स्थगित करना आवश्यक हो।[49]

(ग) ***तथ्यों पर आधारित होना चाहिए :*** स्थगन प्रस्ताव पेश करने से पहले प्रस्तावकर्ता के पास सभी तथ्य मौजूद होने चाहिएं।[50] जहां वह जानकारी स्वयं सदस्य को हो, तो यह माना जा सकता है कि वह प्रस्ताव तथ्यों पर आधारित है, बशर्ते वह सभा में उन तथ्यों की पुष्टि कर दे।[51] किसी स्थगन प्रस्ताव की सूचना पर केवल इस आधार पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि वह समाचार पत्रों में छपे किसी समाचार पर आधारित है, तथापि और अधिक तथ्य उपलब्ध होने के बाद ही अध्यक्ष द्वारा उस प्रस्ताव को स्वीकार किया जाना चाहिए। जब तक सरकार समाचारों की सत्यता स्वीकार न कर ले, उन्हें स्थगन प्रस्ताव के प्रयोजन के लिए प्राधिकृत नहीं माना जा सकता।[52] व्यक्तिगत तार को स्थगन प्रस्ताव का आधार नहीं माना जा सकता।[53] जब सरकार तथ्यों की सत्यता स्वीकार न करे तो सदस्य को अपनी सूचना के समर्थन में कोई प्रामाणिक जानकारी देनी होती है।[54] किसी उपयुक्त मामले में अध्यक्ष किसी सूचना

---

44. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड II, 1922 पृ. 1453 ।
45. *पूर्वोक्त,* खण्ड III, 1923, पृ. 4640–41 ।
46. *पूर्वोक्त,* खण्ड III, 1933, पृ. 2633–56; खण्ड IV, पृ. 149–50 ।
47. *पूर्वोक्त,* 6.2.1936, खण्ड I, पृ. 293–95 ।
48. *पूर्वोक्त,* 10.11.1938, पृ. 2825 अन्य उदाहरणों के लिये *देखिए पूर्वोक्त,* खण्ड II, 1922, पृ. 3016–17; खण्ड III, 1923, पृ. 1544; और खण्ड IX, 1933, पृ. 2971 ।
49. *एल.ए. डिबेट्स,* 6.4.1945, पृ. 2658–70 ।
50. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड IV, 1937, पृ. 613; 5.2.1936, पृ. 198–99 ।
51. *पूर्वोक्त,* 27.2.1933, पृ. 1250–51 ।
52. *एच.पी. डिबेट्स,* II, 30.5.1952, कॉ. 861; *एल.ए. डिबेट्स,* 21.4.1936, पृ. 4343–44; *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1992 पृ. 243 ।
53. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड III, 1923, पृ. 4680–82; और 21.4.1936, पृ. 4343–44 ।
54. *पूर्वोक्त,* 5.10.1936, पृ. 2345–47 ।

को अगले दिन तक के लिए स्थगित कर सकता है ताकि और अधिक जानकारी एकत्र करके सभा के सामने रखी जा सके।[55]

ऐसे विषयों के संबंध में स्थगन प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता जिनके तथ्यों पर विवाद हो या जिनके तथ्य उपलब्ध न हों। जब सरकार स्थगन प्रस्ताव में बताये गये तथ्यों की सत्यता से इन्कार करती है, तो अध्यक्ष तथ्यों के संबंध में सरकार की बात स्वीकर कर लेता है।[56]

विषय का अविलम्बनीय होना

इस बात का निर्णय करते समय कि कोई विषय अविलम्बनीय है या नहीं, अध्यक्ष इस शब्द के सामान्य अर्थ पर ध्यान नहीं देता बल्कि यह देखता है कि नियम में उसका किस तरह से तकनीकी रूप से प्रयोग किया गया है।[57] किसी विषय के अविलम्बनीय होने के लिए यह आवश्यक है कि वह आपात स्थिति की तरह अचानक प्रस्तुत हो गया हो।[58]

जिन विषयों को अविलम्बनीय माना गया है, उनमें शामिल हैं: सामान्य बजट के पेश किये जाने के बाद मुद्रा विधेयक को स्थगित करने के संबंध में सरकार का निर्णय;[59] सभा से परामर्श किए बिना सेना को विदेश भेजा जाना;[60] भारत सरकार तथा राज्यों की सरकारों के बीच कतिपय आय स्रोतों के आवंटन हेतु सिफारिशें करने तथा जांच करने के लिए समिति के सदस्यों की नियुक्ति की घोषणा करने वाली विज्ञप्ति;[61] धार्मिक स्थलों का उग्रवादी गतिविधियों के लिए उपयोग;[62] सरकार द्वारा बजट सत्र की पूर्व संध्या को उर्वरकों और पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि का निर्णय लिया जाना;[63] राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री और अन्य विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा में लापरवाही का बरता जाना।[64]

---

55. *पूर्वोक्त,* खण्ड II, 1938, पृ. 1977, *लो.स.वा.वि.*, 30.11.1955, कॉ. 783-84; 2.12.1955 कॉ. 6380; और 22.12.1955, कॉ. 2677-85 ।
56. *एल.ए. डिबेट्स,* 19.11.1940, पृ. 184-85; *लो.स.वा.वि.,* 19.5.1972, पृ. 107-09 ।
57. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड II, 1922, पृ. 1453; 14.3.1922, पृ. 3016 अविलम्बनीय शब्द के अर्थ पर अध्यक्ष श्री मावलंकर ने प्रकाश डाला था (दिल्ली में तांगेवालों की दुर्दशा के संदर्भ में) उन्होंने कहा था– "यह मामला निश्चित रूप से एक अविलम्बनीय मामला है लेकिन इसे महत्वपूर्ण भी होना चाहिए इसलिए मैंने कहा था कि मामला इतना महत्वपूर्ण नहीं है जिसके लिए सभा का स्थगन कर दिया जाए"। *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 7.8.1950, पृ. 1989-95 ।
58. *एल.ए. डिबेट्स,* 6.2.1933, पृ. 240 ।
59. *पूर्वोक्त,* खंड I, 1927, पृ. 545-46 ।
60. *पूर्वोक्त,* खंड I, 1927, पृ. 51-55 ।
61. *पूर्वोक्त,* खंड VI, 1935, पृ. 1194-97 ।
62. *लो.स.वा.वि.,* 26.4.1983, पृ. 223-28, 516; 27.4.1983, पृ. 295-307 ।
63. *पूर्वोक्त,* 21.2.1986, कॉ. 359-500 ।
64. *पूर्वोक्त,* 4.11.1986, कॉ. 299-376 ।

जिन विषयों को अविलम्बनीय नहीं माना गया है, उनमें शामिल हैं : भारत के किसी उद्योग में गंभीर बेकारी का प्रश्न;[65] एक ब्रिटिश कम्पनी को हावड़ा पुल का ठेका दिये जाने के संबंध में भारत सरकार का रवैया;[66] बलूचिस्तान और सिंध की सीमा पर डाले गए डाके, जिनमें एक अधिकारी और तीन क्लर्कों की मृत्यु हुई;[67] बीकानेर के समीप रेल दुर्घटना, जिसमें 45 यात्री मारे गये और 61 व्यक्ति घायल हुए;[68] चाय की कीमतों में अत्यधिक कमी होने के कारण चाय बागानों का बंद होना;[69] दिल्ली में विमान दुर्घटना;[70] श्रीलंका द्वारा कच्चा तीवू द्वीप पर कथित कब्जा;[71] तथा त्रिवेन्द्रम में केरल उच्च न्यायालय की पीठ स्थापित करने संबंधी आन्दोलन के फलस्वरूप त्रिवेन्द्रम में गिरफ्तारियां और दण्ड दिया जाना।[72]

कोई विषय तभी अविलम्बनीय होता है जब कि वह हाल ही में हुई किसी घटना से संबंधित हो और उसे प्रथम उपलब्ध अवसर पर उठाया जाए।[73] जब सभा का सत्र न हो, तो उस अवधि से संबंधित विषय सभा के समवेत होने के पहले ही दिन उठाये जाने चाहिए।[74] जो विषय कुछ समय से जारी हो, उसे स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से नहीं उठाया जा सकता।[75]

हाल ही में हुई कोई घटना 'अविलम्बनीय' विषय नहीं होती, यदि उस पर चर्चा करने का अवसर समुचित रूप से थोड़े ही समय बाद सामान्य कार्यवाही के दौरान प्रदान किया जाए।[76]

---

65. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड IV, 1934, पृ. 1315 ।
66. *पूर्वोक्त,* खण्ड I, 1936, पृ. 293-95 ।
67. *पूर्वोक्त,* खण्ड VII, 1938, 2953-54 ।
68. *एच.पी. डिबेट्स,* II, 20.5.1952, कॉ. 157-58 ।
69. *पूर्वोक्त,* 9.2.1952, कॉ. 1897 ।
70. *लो.स.वा.वि.,* 26.2.1954, पृ. 609 ।
71. *पूर्वोक्त,* 28.3.1956, पृ. 1519-20 ।
72. *पूर्वोक्त,* 28.11.1956, कॉ. 1271-77 ।
73. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड VIII, 1926, पृ. 59; खण्ड V, 1927, पृ. 40, 58-60; खण्ड IV, 1930, पृ. 566-67; *एच.पी. डिबेट्स,* II, 22.5.1952, कॉ. 329-30 ।
74. *लो.स.वा.वि.,* 1.8.1960, पृ. 69-70 ।
75. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड III, 1928, पृ. 157; *लो.स.वा.वि.,* 27.9.1958, पृ. 4364-65; 9.3.1960, कॉ. 4915-16; 3.12.1991, पृ. 247-54 ।
76. फ्रेड्रिक व्हाइट, *मैनुअल ऑफ बिजनेस एंड प्रोसीजर;* पृ. 33-34; साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड II, 10.1.1922, पृ. 1453 और 2176-79; खण्ड V, 1929, पृ. 1626 खण्ड I, 1937, पृ. 159 ।

    अध्यक्ष ने स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने के संबंध में अपनी स्वीकृति प्रदान नहीं की क्योंकि गृह मंत्री ने स्वत: उसी विषय अर्थात् पंजाब विधान सभा को भंग करना और तत्संबंधी घोषणा पर वक्तव्य देने और उसके तुरंत बाद उस पर चर्चा करने की सूचना दी थी। तद्नुसार मंत्री ने उस विषय पर 7 मार्च, 1988 को एक वक्तव्य दिया, जिसके तुरन्त बाद उस पर नियम 193 के अन्तर्गत चर्चा की गयी। चर्चा उसी दिन समाप्त हो गयी। *लो.स.वा.वि.,* 7.3.1988 ।

यह निर्णय लिया गया है कि ऐसे विषय के संबंध में स्थगन प्रस्ताव नियमानुकूल नहीं है जो उसी सत्र में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव;[77] बजट;[78] अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी प्रस्ताव;[79] और उसी सत्र में लोक महत्व के विषय यथा खाद्य नीति आदि,[80] पर चर्चा के दौरान उठाया जा सके; इसी प्रकार जो विषय किसी अन्य प्रक्रियागत माध्यम यथा ध्यानाकर्षण सूचना, प्रश्न, अल्प-सूचना प्रश्न, आधे घंटे की चर्चा, अल्पकालिक चर्चा, आदि,[81] से उठाया जा सकता हो, उसे स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से नहीं उठाया जा सकता।[82]

जिस विषय पर सभा में चर्चा हो चुकी हो, उसे उसी सत्र में पुनः स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से नहीं उठाया जा सकता।[83] इसी प्रकार यदि एक ही विषय के संबंध में दिन-प्रतिदिन नयी-नयी परिस्थितियां उत्पन्न हो रही हों, तो उस संबंध में दी गयी स्थगन प्रस्ताव की सूचना को दिन-प्रतिदिन संशोधित नहीं किया जा सकता।[84]

अध्यक्ष किसी उपयुक्त मामले में सदस्य के किसी अविलम्बनीय विषय को उठाने के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उसके स्थगन प्रस्ताव की सूचना पर विचार स्थगित कर सकता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में स्थगन प्रस्ताव पर विचार स्थगित किया गया है:

> जब तक तत्संबंधी कतिपय जानकारी प्राप्त न कर ली गयी हो,[85] या पूरे तथ्य उपलब्ध न हों।[86]

---

77. *पी. डिबेट्स* II, 7.8.1951, कॉ. 30-31 *लो.स.वा.वि.,* 11.2.1964, कॉ. 142-43; 20.2.1973, कॉ. 207-22 ।
78. *एच.पी. डिबेट्स* II, 16.5.1952, कॉ. 65-68; 14.5.1957, पृ. 77-78; 20.2.1973, पृ. 122-26; 4.3.1974, पृ. 126-29 ।
79. *लो.स.वा.वि.,* 14.11.1956, पृ. 1 ।
80. *पूर्वोक्त,* 11.11.1957, पृ. 46 ।
81. *पूर्वोक्त,* 16.11.1954, कॉ. 9-10 ।
82. *पूर्वोक्त,* 13.3.1955, कॉ. 2199-200; 15.2.1956, पृ. 8; 25.7.1957, पृ. 2318 ।
83. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड III, 1923, कॉ. 5034-55; *लो.स.वा.वि.,* 16.8.1955, पृ. 1343-44; *एल.एस.डिबेट्स,* 22.4.1992. पृ. 243 ।
84. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड III, 1930, पृ. 2327 ।
85. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड II, 1930, पृ. 1413-14; *एच.पी. डिबेट्स,* 5.11.1952, कॉ. 4-6; 6.12.1952, कॉ. 1720-27; *लो.स.वा.वि.,* 20.9.1954, कॉ. 24-69; 29.11.1954, कॉ. 1223-24; 25.11.1957, पृ. 1070-73; 16.12.1957, पृ. 1806-07; 28.8.1958, पृ. 1721-25; 25.11.1958, पृ. 709-10; और 1.9.1958, कॉ. 5587-600 ।
86. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड (क) 1938, पृ. 1977 ।

किसी महत्त्वपूर्ण विधेयक,[87]अथवा सभा के समक्ष किसी प्रस्ताव पर चर्चा समाप्त करने के लिए।[88]

किसी विषय विशेष पर विधि मंत्री द्वारा अपनी राय अध्यक्ष को देने का समय देने के लिए[89] अथवा प्रस्तावक को अपने प्रस्ताव में से कुछ शब्दों का लोप करके उसमें संशोधन करने के लिए[90] अथवा सदस्यों द्वारा प्रस्ताव के माध्यम से जिस विषय को उठाया जाना था उसके अध्ययन के लिए उनको और अधिक समय देने के लिए।[91]

जब सायं 5 बजे बजट गिलोटिन किया जाना था[92] या उस समय जबकि वायसराय को मध्याह्न पश्चात् विधान सभा के समक्ष अभिभाषण देना था।[93]

जब अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव पर विचार अधिक समय के लिए स्थगित कर दिया जाता है, तो उस प्रस्ताव की नयी सूचना देना आवश्यक है।[94]

विषय का लोक महत्व का होना

स्थगन प्रस्ताव को नियमानुकूल होने के लिए इतने अधिक लोक महत्व का होना चाहिए कि उसके लिए सभा का सामान्य कार्य रोकना आवश्यक हो जाए। इस संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता कि लोक महत्व के अंतर्गत कौन से विषय शामिल हैं। लोक महत्व के प्रश्न के बारे में निर्णय प्रत्येक मामले के गुणावगुण के आधार पर किया जाता है।[95] यह सदा एक सापेक्ष प्रश्न होता है और भारत जैसे विशाल देश में किसी घटना के महत्व को देश के संपूर्ण प्रशासन की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए आंकना पड़ता है।[96]

निम्नलिखित बातों के आधार पर सामान्यत: यह निर्णय लिया जाता है कि स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से उठाया जाने वाला विषय लोक महत्व का विषय है–

(i) उठाया जाने वाला विषय किसी वैयक्तिक शिकायत की बजाय व्यापक विषय होना चाहिए: सेवा संबंधी शिकायतों तथा प्रशासनिक स्वरूप के व्यक्तिगत मामले, जैसा कि

---

87. *पूर्वोक्त,* खण्ड V, 1929, पृ. 1239 ।

88. *पूर्वोक्त,* खण्ड IV, 1944, पृ. 264-65 और 285, इस मामले में स्थगन प्रस्ताव रखने की अनुमति दे दी गयी थी।

89. *एल.ए.डिबेट्स,* खण्ड I, 1932, पृ. 657-63 ।

90. *पूर्वोक्त,* खण्ड III, 1933, पृ. 2771 ।

91. *पूर्वोक्त,* खण्ड IX, 1933, पृ. 3686 ।

92. *पूर्वोक्त,* खण्ड III, 1932, पृ. 2283; 24.2.1938, पृ. 1104 ।

93. *पूर्वोक्त,* खण्ड I, 1935, पृ. 99 ।

94. *पूर्वोक्त,* खण्ड VIII, 1933, पृ. 2013-14 ।

95. *फ्रेड्रिक व्हाइट मैनुअल, उद्धृत कृति,* पृ. 33 ।

96. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 27.5.1952, कॉ. 620; 7.8.1950, कॉ. 393-95 ।

सरकार के अधिकारियों या अधिकारियों के किसी वर्ग की नियुक्ति, पदोन्नति आदि को स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से नहीं उठाया जा सकता।[97]

(ii) उठाया जाने वाला विषय लोक महत्व का विषय होना चाहिए। निम्नलिखित विषयों पर स्थगन प्रस्ताव नियमानुकूल ठहराये गए थे, क्योंकि उनमें भारतीयकरण का सिद्धांत था–

इंग्लैंड के एस.पी. चैम्बर्स की मुख्य आयकर आयुक्त के पद पर नियुक्ति,[98] एक गैर–भारतीय की बीमा अधीक्षक के रूप में नियुक्ति, जब कि केवल एक ही भारतीय इस पद के लिए अर्ह था।[99]

(iii) यद्यपि सामान्यत: भारत सरकार की नीति तथा उसका रवैया स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से उठाये जाने हेतु उचित विषय नहीं माना जाता, किन्तु ऐसे अवसर आ सकते हैं जबकि सरकार की नीति तथा उसका रवैया लोक महत्व का विषय बन जाए।[100] उदाहरणार्थ, महात्मा गाँधी के संबंध में एक समाचार पत्र में छपे एक अश्लील लेख के बारे में पूछे गए प्रश्नों के दिए गए उत्तर से स्पष्ट होने वाला सरकार का रवैया,[101] भारत के कई भागों में छापे और गिरफ्तारियां,[102] फिजी को भेजे गए भारतीय प्रतिनिधिमंडल की रिपोर्ट को प्रकाशित न करने का सरकार का निर्णय;[103] कोचीन में दूसरे शिपयार्ड संबंधी परियोजना को कार्यरूप न देने का भारत सरकार का कथित निर्णय।[104]

निम्नलिखित मामलों में स्थगन प्रस्ताव की सूचनाएं अन्य बातों के अतिरिक्त इस आधार पर अस्वीकार कर दी गईं कि उनमें उठाए गए विषय, लोक-महत्व के विषय नहीं थे:

> शिमला में दो पुलिस अधिकारियों द्वारा दो कांग्रेसी स्वयंसेवकों को धक्के देना और पीटना;[105] एक नगर में डकैती;[106] विधान सभा के सदस्यों के संबंध में दी गई गोपनीय रिपोर्ट (जिसे साधारण विभागीय विषय ठहराया गया);[107] बन्नू जिले के सीमावर्ती क्षेत्र में

---

97. *लो.स.वा.वि.,* 10.2.1958, पृ. 1–4; 9.3.1961, पृ. 1994–95 ।
98. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड VII, 1937, पृ. 3119 ।
99. *पूर्वोक्त,* खण्ड IV, 1938, पृ. 113 ।
100. *पूर्वोक्त,* खण्ड VI, 1930, पृ. 1390 ।
101. *पूर्वोक्त,* खण्ड VI, 1930 पृ. 1390-91 ।
102. *पूर्वोक्त,* खण्ड III, 1929, पृ. 2277 ।
103. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड I, 1927, पृ. 403 ।
104. *लो.स.वा.वि.,* 15.3.1960, कॉ. 5899-5909 ।
105. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड IV, 1930, पृ. 559-60 ।
106. *पूर्वोक्त* खण्ड IV, 1930, पृ. 678 ।
107. *पूर्वोक्त,* खण्ड III, 1935, पृ. 2965-68 ।

सशस्त्र टोरीखाल वजीरियों द्वारा पांच हिन्दुओं का अपहरण;[108] दिल्ली में दीवानी न्यायालयों के पास दंगे के कारण उत्पन्न तनाव;[109] कलकत्ता बन्दरगाह में अमरीका के विध्वंसक जहाजों का आना;[110] दिल्ली परिवहन सेवा के पास ऐसी गाड़ियों का न होना, जो चालू हालत में हों;[111] सरकार द्वारा बैंक कर्मचारियों की प्रस्तावित हड़ताल के संबंध में जारी की गयी प्रेस विज्ञप्ति (यह मामला भारत की अर्थव्यवस्था में इतने अधिक महत्व का नहीं समझा गया कि इस पर स्थगन प्रस्ताव गृहीत किया जाए);[112] उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा कुछ चीनी मिलों का अपने हाथ में लिया जाना (संपूर्ण भारत के परिप्रेक्ष्य में इसे लोक-महत्व का विषय नहीं ठहराया गया);[113] तथा दिल्ली में बम विस्फोट।[114]

प्रस्ताव प्रस्तुत करने के अधिकार पर निर्बन्धन

सभा को स्थगित करने के प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार निम्नलिखित सामान्य निर्बन्धनों के अध्यधीन होता है।[115] अर्थात्–

(i) **एक ही बैठक में एक से अधिक ऐसा प्रस्ताव नहीं किया जाएगा**

स्थगन प्रस्ताव उस समय विधिवत पेश किया हुआ माना जाता है जब सभा उसे पेश करने की अनुमति दे दे।[116] अध्यक्ष यदि स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने की सम्मति दे, और सभा भी अनुमति दे, तो बाकी बची सूचनाओं का निपटान निम्नलिखित प्रक्रिया से किया जाता है:

एक ही विषय के बारे में सूचनाएं अग्राह्य हो जाती हैं।[117]

विभिन्न विषयों संबंधी सूचनाएं सभा की अगली बैठक में लिये जाने के लिए बनी रहती हैं।[118]

लम्बित सूचनाओं को सभा की अगली बैठक में लिए जाने की प्रक्रिया दिन-प्रतिदिन उस समय तक चल सकती है जब तक कि सारी सूचनाओं का निपटान न हो जाये। उस मामले में, जहां अध्यक्ष ने किसी स्थगन प्रस्ताव के रखे जाने की सहमति दे दी

---

108. *पूर्वोक्त,* खण्ड IV, 1939, पृ. 4215 ।
109. *एच.पी. डिबट्स* (II), 27.5.1952, कॉ. 619-21 ।
110. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 3.3.1953, कॉ. 1261-67 ।
111. *पूर्वोक्त,* 23.11.1954, कॉ. 689 ।
112. *पूर्वोक्त,* 6.12.1954, पृ. 1212 ।
113. *पूर्वोक्त,* 23.12.1955, कॉ. 3906 ।
114. *पूर्वोक्त,* 12.8.1957, पृ. 3566 ।
115. नियम 58 ।
116. नियम 60 ।
117. *लो.स.वा.वि.,* 21.4.1960, कॉ. 12978-79 ।
118. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड I, 1934, पृ. 29-30 ।

हो, परन्तु सभा ने उसके प्रस्तुत किए जाने की अनुमति न दी हो, तो उसके एकदम बाद प्राप्त हुई सूचना जिसका निपटान अध्यक्ष ने अपने कक्ष में पहले ही न कर दिया हो, को लिया जाता है। इसी प्रकार, जब अध्यक्ष किसी स्थगन प्रस्ताव का सभा में उल्लेख करने के बाद उसके प्रस्तुत किये जाने पर अपनी सहमति रोक लेता है तो उसके एकदम बाद प्राप्त हुई सूचना जिसका निपटान अध्यक्ष ने कक्ष में पहले से ही न कर दिया हो, को लिया जाता है।

जब किसी दिन के लिए एक से अधिक स्थगन प्रस्तावों की सूचनाएं प्राप्त हों और अध्यक्ष उन्हें सभा के सामने लाने का फैसला करे तो उन्हें उस समय क्रम में एक के बाद एक करके लिया जाता है जिसमें वे प्राप्त हुई हों। यदि एक ही विषय पर एक से अधिक सूचनाएं हों, तो अध्यक्ष अपने विवेक से उनको एक साथ ही ले सकता है।[119] कई बार अध्यक्ष ने एक ही समय पर एक से अधिक सूचनाएं सभा के सामने रखने से इंकार किया है, हालांकि सूचनाएं एक जैसे विषय पर थीं। इंकार इस आधार पर किया गया है कि सभा को इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या पहला प्रस्ताव नियमानुकूल है और यदि वह नियमानुकूल है तो क्या उस पर आपत्ति किए जाने के बावजूद सभा उसे पेश किए जाने की अनुमति देती है।[120]

जब एक ही विषय पर प्राप्त हुई एक से अधिक स्थगन प्रस्तावों की सूचनाएं ली जाती हैं और उठाया जाने वाला विषय नियमानुकूल होता है, तो अध्यक्ष सामान्यत: उस सूचना को लिए जाने की अनुमति देता है जो सबसे पहले प्राप्त हुई हो।[121] लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अध्यक्ष अपने विवेक का उपयोग करते हुए उनमें से किसी ऐसी सूचना को लिए जाने की अनुमति दे सकता है जो समुचित रूप से लिखी गयी हो, चाहे वह पहले प्राप्त न हुई हो।[122]

(ii) *एक ही प्रस्ताव द्वारा एक से अधिक विषय पर चर्चा नहीं की जा सकती*

जब कोई स्थगन प्रस्ताव गृहीत कर लिया जाए तो उस पर वाद-विवाद उसी विषय तक सीमित रहना चाहिए, जिसका उल्लेख प्रस्ताव में किया गया हो।[123]

(iii) *प्रस्ताव हाल ही में घटित किसी विशिष्ट विषय तक सीमित रहना चाहिए।*[124]

---

119. *लो.स.वा.वि.,* 1.8.1960, कॉ. 96 ।
120. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड I, 1943, पृ. 33-34 ।
121. *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1957, पृ. 3025 और 18.8.1958, पृ. 518-20 ।
122. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.2.1945, पृ. 126-27; *लो.स.वा.वि.,* 12.3.1959, पृ. 2976-80 ।
123. *लो.स.वा.वि.,* 12.3.1959, पृ. 3037-39 ।
124. नियम 58 (तीन); *एल.ए. डिबेट्स,* 14.9.1922, पृ. 501-03; और *लो.स.वा.वि.,* 6.8.1962, कॉ. 142 ।

(iv) *प्रस्ताव द्वारा विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए।*

सन् 1921 में जो नियम और स्थायी आदेश बनाए गए थे, उनमें स्पष्ट रूप से यह प्रतिबंध नहीं लगाया गया था कि स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से कोई विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[125] तथापि, अध्यक्ष ने समय-समय पर यह विनिर्णय दिया है कि विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की उचित प्रक्रिया, स्थगन प्रस्ताव नहीं है।[126] यह भी विनिर्णय दिया गया कि बाहर वालों द्वारा की जाने वाली आलोचना से सभा की रक्षा करने के लिए स्थगन प्रस्ताव का सहारा नहीं लिया जा सकता।[127]

अध्यक्ष अब्दुर्रहीम ने 27 फरवरी, 1936 को दिये अपने विनिर्णय में स्थगन प्रस्ताव और विशेषाधिकार प्रश्न के बीच विभेद को स्पष्ट किया था:

> सामान्यत: विधान सभा के कार्य को स्थगित करने के प्रस्ताव का उद्देश्य अविलम्बनीय लोक-महत्व के किसी निश्चित मामले में सरकार के आचरण या उसके रवैये पर चर्चा करना और उसकी आलोचना करना है जबकि ऐसे मामले में जिसमें मुख्य मुद्दे के रूप में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया हो सभा को ऐसी कार्यवाही करने के लिए, जिसे करने के लिए यह सक्षम है, कहा जाएगा ताकि सदस्यों की उनके कर्त्तव्यों के निर्वहन में बाधा पहुंचाने या तंग किए जाने से रक्षा की जा सके या सभा की गरिमा को बनाया रखा जा सके। परन्तु, विशेषाधिकार प्रश्न यदि अविलम्बनीय लोक-महत्व का ऐसा निश्चित विषय है, जिसके लिए मूलत: सरकार जिम्मेदार है और प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य उस मामले में सरकार के आचरण की चर्चा और आलोचना करना हो, तो वह विषय नियमों में निर्धारित प्रतिबंधों और सीमाओं के अनुरूप स्थगन प्रस्ताव के द्वारा उठाया जा सकता है।[128]

स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले जब सभा के विशेषाधिकार, शक्तियां और उन्मुक्तियां परिभाषित नहीं थीं, तब सदस्यों को निरुद्ध करने तथा उन पर प्रतिबंध लगाने के परिणामस्वरूप पेश किए गए स्थगन प्रस्ताव नियमानुकूल ठहराये जाते थे, क्योंकि उन प्रस्तावों का मुख्य उद्देश्य उस मामले के माध्यम से सरकार के आचरण के बारे में चर्चा और आलोचना करना होता था।[129]

स्वतंत्रता के बाद अध्यक्ष मावलंकर ने यह विनिर्णय दिया कि देश के सामान्य कानून के अंतर्गत किसी सदस्य की गिरफ्तारी सभा में विशेषाधिकार का हनन नहीं है और इस मामले

---

125. भारतीय विधायी नियम, 1921 का नियम 12 ।
126. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड II, 1936, पृ. 1783 ।
127. *पूर्वोक्त,* खण्ड III, 1928, पृ. 154 ।
128. *पूर्वोक्त,* खण्ड II, 1936, पृ. 1783 ।
129. उदाहरणार्थ : (i) स्वर्ण मानक और भारतीय रिज़र्व बैंक विधेयक, *एल.ए. डिबेट्स,* 13.9.1927, पृ. 4242, 4277-97; (ii) सभा के सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करने से किसी सदस्य को रोकने में सरकार का आचरण, *एल.ए. डिबेट्स,* 22.1.1935, पृष्ठ 77; (iii) सरकार का यह निर्णय कि सभा का कोई सदस्य, जो एक राजनैतिक नेता भी हो, भारत वापस आने पर स्वतंत्र रहने की अपेक्षा नहीं कर सकता है–*एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड IV, 1936, पृ. 3059-60, 3089-3114 ।

को स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से नहीं उठाया जा सकता, क्योंकि कोई सदस्य देश के कानूनों से केवल इस आधार पर विमुक्ति नहीं पा सकता कि वह इस सभा का सदस्य है। उन्होंने यह विनिर्णय दिया कि जब किसी सदस्य को गिरफ्तार किया जाता है तो सरकार उस प्राधिकार के अंतर्गत कार्य कर रही होती है जोकि उसे कानून के अंतर्गत मिला है, अतः विशेषाधिकार का कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता क्योंकि उस मामले में सदस्य किसी अन्य भारतीय नागरिक के समान है।[130] इसके अतिरिक्त, नियमों के अंतर्गत, कोई सदस्य स्थगन प्रस्ताव के द्वारा विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठा सकता।[131] नियमों में यह भी उपबंध है कि जब कोई मामला स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से उठाया जा चुका हो, तो उसी मामले को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।[132]

(v) *प्रस्ताव द्वारा ऐसे विषय पर फिर चर्चा नहीं की जायेगी जिस पर उसी सत्र में चर्चा की जा चुकी हो*।[133]

किसी ऐसे विषय पर स्थगन प्रस्ताव नियमानुकूल नहीं है जो मूल रूप से वैसा ही हो, जैसा कि पहले ही स्थगन प्रस्ताव के द्वारा उठाया जा चुका हो और जिसे सभा में प्रस्तुत करने की अनुमति अध्यक्ष ने नहीं[134] दी हो अथवा जिसे प्रस्तुत करने की अनुमति सभा ने नहीं दी हो।[135] इसी प्रकार जिस विषय पर सभा चर्चा कर चुकी हो, उसे उसी सत्र में स्थगन प्रस्ताव के द्वारा दोबारा तब तक नहीं उठाया जा सकता जब तक कि कोई नयी परिस्थितियां पैदा न हुई हों, जिसके कारण सभा का सामान्य कार्य रोकना उचित हो।[136]

जो विषय दिन-प्रतिदिन प्रश्नों, आधे-घंटे की चर्चाओं आदि के माध्यम से सभा के समक्ष लाये जाते हैं, उन्हें स्थगन प्रस्ताव के द्वारा नहीं उठाया जा सकता।[137]

---

130. *पी. डिबेट्स* (II), 28.2.1950, पृ. 971-78 ।

वर्ष 1950 में नियमों में एक उपबंध किया गया, जिसमें विशिष्ट रूप से यह व्यवस्था की गई कि स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से कोई विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।

131. नियम 58 (चार)।

132. *लो.स.वा.वि.,* 2.4.1973, कॉ. 277-78; 4.4.1973, कॉ. 217-19 ।

133. *एल.ए. डिबेट्स,* 27.7.1923, पृ. 5034-35 और 11.2.1935, पृ. 628-32 और *लो.सा.वा.वि.,* 22.4.1992, पृ. 243 ।

134. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.10.1936, पृ. 2773 ।

135. *पूर्वोक्त,* 5.11.1940, पृ. 71-72 और 6.11.1940, पृ. 149 ।

136. *पूर्वोक्त,* 1.11.1944, पृ. 43; *लो.स.वा.वि.;* 16.8.1955, कॉ. 10141-42; 4.9.1974 कॉ. 43 ।

137. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 9.12.1952, कॉ. 1897 ।

(vi) *प्रस्ताव में उस विषय की पूर्वाशा नहीं की जानी चाहिए जो विचार के लिए पहले ही नियत किया जा चुका हो।*

अध्यक्ष द्वारा यह निर्णय लेते समय कि क्या कोई चर्चा पूर्वाशा के आधार पर नियमानुकूल नहीं है, उस विषय की पूर्वाशा की संभाव्यता को ध्यान में रखा जाता है ताकि समुचित समय के भीतर उसे सभा के समक्ष लाया जा सके। इस उपबंध के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए अध्यक्ष मावलंकर ने कहा–

> बात यह है कि यदि माननीय सदस्यों को किसी वाद-विवाद पर वह प्रश्न उठाने का अवसर मिलने की संभावना हो, तो उसे स्थगन प्रस्ताव के द्वारा उठाने की अनुमति नहीं दी जायेगी। स्थगन प्रस्ताव किसी ऐसे विषय को सभा के सामने लाने का तरीका है जो कार्य-सूची या आदेश-पत्र में शामिल न किया गया हो। यह एक ऐसा नया मामला लिया जाने जैसा है जिसे लेने का सभा का इरादा न रहा हो और जिसके संबंध में सभी सदस्यों को कोई सूचना भी न हो। अत: सभी के हित में यह प्रथा रही है कि किसी असाधारण विषय पर स्थगन प्रस्ताव की अनुमति दी जाये जो वास्तव में अविलम्बनीय हो और जिस पर सभा द्वारा विचार किये जाने के लिए और कोई अवसर मिलने की संभावना नहीं हो।[138]

इसलिए किसी स्थगन प्रस्ताव के द्वारा किसी ऐसे विषय को नहीं उठाया जाना चाहिए, जिसके गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर चर्चा के लिए नियत दिन पर संकल्प रूप में लिये जाने की संभावना हो;[139] या जिस पर सभा में शीघ्र ही चर्चा किए जाने की संभावना हो;[140] या जो राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर संशोधनों के द्वारा उठाया गया हो; या[141] जो बजट पर और वित्त विधेयक पर उसी सत्र में चर्चा के दौरान उठाया जा सकता हो;[142] इसी प्रकार जब अनुदानों की मांगों पर चर्चा की जा रही हो, तो स्थगन प्रस्ताव की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि अनुदानों की मांगों को मत द्वारा अस्वीकार करके सरकार की निन्दा की जा सकती है, तथापि यदि आवश्यक हो, तो स्थगन प्रस्ताव के विषय पर पृथक चर्चा की अनुमति दी जा सकती है।[143]

---

138. *पूर्वोक्त,* 16.5.1952, कॉ. 63-67; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 12.6.1962, पृ. 4782-84; 13.6.1962, पृ. 4900 ।
139. *एल.ए. डिबेट्स,* 12.2.1942, पृ. 102-05; 14.2.1942, पृ. 170-72 और 27.7.1943, पृ. 85-86 ।
140. *पूर्वोक्त,* 26.9.1929, पृ. 1618-27 ।
141. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 13.2.1953, कॉ. 32, साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 7.8.1951, कॉ. 30-31; *लो.स.वा.वि.,* 11.2.1964, पृ. 79-80 ।
142. *एल.ए. डिबेट्स,* 15.2.1943, पृ. 212-13; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 20.2.1953, कॉ. 611-12 ।
143. *लो.स.वा.वि.,* 1.4.1968, कॉ. 1207; 16.4.1968, पृ. 517-18 ।

परंतु यदि किसी विषय पर कटौती प्रस्ताव की सूचना दी गई है तो उसी विषय पर स्थगन प्रस्ताव की सूचना देने पर कोई रोक नहीं है।[144]

(vii) *प्रस्ताव किसी ऐसे विषय के संबंध में नहीं होना चाहिए जो भारत के किसी भाग में अधिकारिता रखने वाले किसी न्यायालय के न्यायनिर्णयन के अन्तर्गत हो।*[145]

कोई विषय तब तक न्यायाधीन नहीं माना जाता जब तक कि उस पर कानूनी कार्यवाही वास्तव में प्रारम्भ न हो गई हो,[146] किन्तु जैसे ही कोई शिकायत या कोई याचिका भारत के किसी भी भाग में अधिकारिता रखने वाले न्यायालय में दायर कर दी जाती है और वह विषय न्यायालय के विचाराधीन हो जाता है तो सभा उस पर विचार नहीं कर सकती।[147] जिस स्थगन प्रस्ताव के पेश किये जाने की अनुमति सभा ने दे दी हो उस पर विचार करने के समय यदि वह विषय न्यायाधीन हो गया हो तो उस पर चर्चा नहीं की जा सकती।[148] किसी ऐसे विषय पर सभा में चर्चा नहीं हो सकती जिसके संबंध में कोई अपील की जा सकती हो।[149]

यद्यपि सभा की सर्वसम्मति से यह इच्छा हो सकती है कि वह किसी ऐसे विषय पर चर्चा करे जो न्यायाधीन हो, तथापि अध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि वह उस बात की अनुमति न दे।[150] किसी न्यायालय के समक्ष विचाराधीन मुकदमे में विहित कानूनी प्रक्रिया का पालन न किये जाने का विषय स्थगन प्रस्ताव के द्वारा सभा में नहीं उठाया जा सकता।[151]

जब किसी स्थगन प्रस्ताव के प्रस्तावक का इरादा यह हो कि वह कुछ व्यक्तियों की गिरफ्तारी के संबंध में सरकार की नीति पर चर्चा चाहता है, न कि गिरफ्तार व्यक्तियों के उन मामलों पर, जोकि न्यायालय में लंबित हों, तो उस स्थगन प्रस्ताव को नियमानुकूल ठहराया जा सकता है।[152]

किसी स्थगन प्रस्ताव के द्वारा यदि ऐसे किसी सदस्य की गिरफ्तारी पर चर्चा करना उद्देश्य हो, जिसके विरुद्ध आरोप वापस ले लिए गये हों, तो उसे इसी आधार पर नियमानुकूल नहीं माना जाएगा कि उस सदस्य के साथ जो अभियुक्त था, उसके विरुद्ध मामले की जांच

---

144. *एल.ए. डिबेट्स,* 10.3.1928, पृ. 1244 ।
145. न्यायाधीन विषयों पर चर्चा के संबंध में विस्तृत ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 42—'संसद और न्यायपालिका'।
146. *एल.ए. डिबेट्स,* 13.2.1946, पृ. 924-25 ।
147. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 9.3.1953, कॉ. 1579-89 ।
148. *एल.ए. डिबेट्स,* 24.3.1938, पृ. 1104; 25.3.1938, पृ. 1220-21 ।
149. *पूर्वोक्त,* खण्ड VI, 1933; पृ. 1120; 9.6.1924, पृ. 2812 और 27.7.1943, पृ. 82-83 ।
150. *पूर्वोक्त,* 20.9.1921, पृ. 581-82; साथ ही *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 8.9.1922, पृ. 278-79; 11.9.1922, पृ. 357-60; 22.3.1930, पृ. 2216-20 और 24.3.1930, पृ. 2327 ।
151. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 9.3.1953, कॉ. 1579-81 ।
152. *एल.ए. डिबेट्स* (II), 21.3.1929, पृ. 2271-77 ।

अभी जारी है और वह विषय अभी भी न्यायाधीन है।[153]

यदि किसी स्थगन प्रस्ताव के विषय के दो भाग हों और सभा द्वारा उस प्रस्ताव के पेश किये जाने की अनुमति दिये जाने के बाद उनमें से एक न्यायाधीन हो जाता है तो चर्चा उसी भाग तक सीमित रखनी पड़ती है जो कि न्यायाधीन न हो। अध्यक्ष ने इस आपत्ति को नियम विरुद्ध ठहराया है कि ऐसे मामले में सारे प्रस्ताव पर ही विचार नहीं होना चाहिए।[154]

यह भी निर्णय दिया गया कि कानून के सामान्य प्रशासन के दौरान जारी किये गये किसी आदेश के विषय को स्थगन प्रस्ताव के द्वारा नहीं उठाया जा सकता, चाहे कानून के अंतर्गत उसके कोई और उपचार न हों।[155] उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए किसी विनिर्णय पर चर्चा की अनुमति नहीं है।[156] लेकिन किसी सैनिक न्यायालय द्वारा दिया गया दण्ड, सामान्य न्यायालय के निर्णय की अपेक्षा भिन्न है और उस पर स्थगन प्रस्ताव के द्वारा चर्चा की जा सकती है।[157]

(viii) *प्रस्ताव में कोई ऐसा प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए जो संविधान या नियमों के अंतर्गत महासचिव को लिखित सूचना देकर अलग प्रस्ताव द्वारा ही उठाया जा सकता हो।*

इस उपबंध को पहली बार अंतरिम संसद के नियमों में 1951 में सम्मिलित किया गया[158] केन्द्रीय विधान सभा या संविधान सभा (विधायी) के नियमों तथा स्थायी आदेशों में ऐसा कोई उपबंध नहीं किया गया था, तथापि समय-समय पर अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया कि निम्नलिखित विषय स्थगन प्रस्ताव के द्वारा नहीं उठाये जा सकते हैं:

गवर्नर जनरल (अब राष्ट्रपति) का आचरण या उसके द्वारा की गयी कोई कार्यवाही;[159]

किसी राज्य के राज्यपाल का आचरण;[160] और

अध्यक्ष का आचरण[161] अथवा अध्यक्ष द्वारा दिया गया कोई आदेश।[162]

---

153. *पूर्वोक्त,* 8.3.1937, पृ. 1571-77 ।
154. *पूर्वोक्त,* 12.2.1941, पृ. 958-59 ।
155. *पूर्वोक्त,* 30.3.1937, पृ. 2384 ।
156. *लो.स.वा.वि.,* 25.7.1985, कॉ. 180 ।
157. *पूर्वोक्त,* 20.3.1943, पृ. 1277-78 ।
158. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 24.4.1951, पैरा 5; संसद सचिवालय, अधिसूचना सं. 30-सी/51, 30.4.1951; राजपत्र असाधारण 1 (i), 4.5.1951 ।
159. *एल.ए. डिबेट्स,* 17.3.1925, पृ. 2495-98; 16.9.1936, पृ. 1154-55; 16.2.1938, पृ. 719-23; 10.8.1939, पृ. 72-73 और 6.11.1940, पृ. 145-48 ।
160. *पूर्वोक्त,* 3.9.1936, पृ. 373-79; *लो.स.वा.वि.,* 5.3.1984, कॉ. 310-12; और 7.8.1984, कॉ. 367 ।
161. *एल.ए. डिबेट्स,* 11.2.1935, पृ. 625-28 ।
162. *पूर्वोक्त,* 8.10.1936, पृ. 2664-65 ।

संविधान के अंतर्गत एक विशिष्ट प्रस्ताव की सूचना देकर तथा विहित रूप में निम्नलिखित व्यक्तियों के आचरण पर सभा में चर्चा की जा सकती है, अर्थात्:

राष्ट्रपति;[163] उप-राष्ट्रपति;[164] अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष;[165] उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश;[166] नियंत्रक-महालेखापरीक्षक;[167] उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश;[168] और मुख्य निर्वाचन आयुक्त।[169]

नियमों में विशिष्ट रूप से कहीं किसी अन्य व्यक्ति का उल्लेख नहीं किया गया है जिसके आचरण पर अलग प्रस्ताव के माध्यम से ही चर्चा की जा सके। तथापि, अध्यक्ष को यह निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है कि किसी व्यक्ति विशेष के आचारण पर ऐसे मूल प्रस्ताव के माध्यम से ही चर्चा की जा सकती है, जो अध्यक्ष द्वारा अनुमोदित रूप में हो।[170]

अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की है कि सदस्यों को सांविधिक निकायों के सदस्यों;[171] उच्च पदस्थ व्यक्तियों[172] और किसी राज्य के राज्यपाल;[173] मुख्यमंत्री;[174] अथवा राज्य सरकार के किसी अन्य मंत्री; और राज्य विधानमंडल के सदस्यों;[175] पर कोई आरोप नहीं लगाने चाहिए और न ही उनके संबंध में कोई आक्षेप करने चाहिए।

साधारणतया किसी ऐसे स्थगन प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की अनुज्ञा नहीं दी जाती जो किसी ऐसे विषय पर चर्चा उठाने के लिए हो, जो न्यायिक या अर्द्धन्यायिक कृत्य करने वाले किसी सांविधिक न्यायाधिकरण या प्राधिकरण के या किसी विषय की जांच या अनुसंधान करने के लिए नियुक्त किसी आयोग या जांच न्यायालय के सामने लम्बित हो, तथापि अध्यक्ष स्वविवेक से ऐसे विषय को उठाने की अनुमति दे सकता है, जो जांच की प्रक्रिया या विषय या प्रक्रम से संबंधित हो, यदि अध्यक्ष का समाधान हो जाए कि इससे सांविधिक न्यायाधिकरण, प्राधिकरण या आयोग या जांच न्यायालय द्वारा उस विषय पर विचार किये जाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है।[176]

---

163. अनुच्छेद 61 और अनुच्छेद 361 (1) का पहला परन्तुक।
164. अनुच्छेद 67 ।
165. अनुच्छेद 94 ।
166. अनुच्छेद 124 (4) ।
167. अनुच्छेद 148 (1) ।
168. अनुच्छेद 217 (1) परन्तुक (ख)।
169. अनुच्छेद 324 (5) पहला परन्तुक।
170. नियम 352 (पांच), व्याख्या।
171. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 13.5.1954, कॉ. 7304, 7305 और 7361 ।
172. *पूर्वोक्त* ।
173. *लो.स.वा.वि.,* 6.3.1954, कॉ. 1385; 14.3.1960, कॉ. 5679-87 ।
174. *पूर्वोक्त,* 20.3.1956 कॉ. 3159 ।
175. *पूर्वोक्त,* 13.12.1954, कॉ. 2767; 10.12.1955, कॉ. 2213; और 23.3.1956, पृ. 1479 ।
176. नियम 59 परन्तुक ।

किसी ऐसे विषय के संबंध में स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने की अनुमति नहीं दी जाती जो न्यायाधीन हो अथवा जो निर्वाचन आयोग के समक्ष किसी याचिका का विषय हो।[177]

सामान्यत: भीषण असैनिक तथा सैनिक विमान दुर्घटनाओं, रेल दुर्घटनाओं, खानों या समुद्र में हुई दुर्घटनाओं या विस्फोटों की न्यायिक जांच की जाती है और अन्य दुर्घटनाओं में सांविधिक या विभागीय जांच की जाती है। यदि सरकार यह तर्क दे कि दुर्घटना के संबंध में जांच की जा रही है, तो उस संबंध में स्थगन प्रस्ताव नियम विरुद्ध ठहराया जाता है।[178] जहां किसी राज्य सरकार ने कोई विषय किसी जांच आयोग को सौंप दिया हो, उस पर भी स्थगन प्रस्ताव अग्राह्य ठहराया गया है।[179]

कुछ और आधार, जो कि अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर अपने विनिर्णयों में दिये गये हैं, जिनके कारण स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने की अनुमति नहीं दी गई है, निम्नलिखित हैं:

यदि अध्यक्ष की राय में उससे नियमों में निहित भावना का उल्लंघन होता हो;[180]

यदि उसका उद्देश्य जानकारी प्राप्त करना हो;[181]

यदि उसका उद्‌देश्य नीति के व्यापक प्रश्नों पर विचार करना हो;[182]

यदि उसमें संविधान के उपबंधों का निर्वचन करने के लिए कहा गया हो (उसके लिए उपयुक्त मंच उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय है);[183]

यदि उसमें यह आरोप लगाया गया हो कि किसी राज्य सरकार ने संविधान के उपबंधों का उल्लंघन किया है;[184]

---

177. *लो.स.वा.वि.,* 25.3.1971, कॉ. 13-21 ।

178. पूरी जांच रिपोर्ट पर चर्चा स्थगन प्रस्ताव के लिए महत्वपूर्ण विषय नहीं है। जिस मामले की जांच लंबित हो वह भी अग्राह्य है। सी.एल.ए. डिबेट्स, 26.8.1937, कॉ. 611-16; *लो.स.वा.वि.,* 12.3.1958 कॉ. 4526-27, *देखिए लो.स.वा.वि.,* 3.9.1956, पृ. 1763-66; 26.11.1956, कॉ. 987-99; *लो.स.वा.वि.* 11.11.1957, पृ. 45-46; 1.12.1959, कॉ. 2464-67; 14.12.1959, कॉ. 4851-56; 21.11.1960, पृ. 728-29; 24.4.1961, कॉ. 13353-57 ।

179. *लो.स.वा.वि.,* 7.8.1961, पृ. 122 ।

180. *एल.ए.डिबेट्स,* 21.2.1928, पृ. 569-76 ।

181. *लो.स.वा.वि.,* 3.12.1959, कॉ. 3167-69 और 4.12.1959, कॉ. 3818; साथ ही *देखिए एच.सी. डिबेट्स,* 9.4.1951, कॉ. 660-61 ।

182. *एल.ए. डिबेट्स,* 2.11.1944, पृ. 142-43 ।

183. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 14.11.1952, कॉ. 515 ।

184. *लो.स.वा.वि.,* 29.8.1959, कॉ. 5086 ।

यदि यह आरोप लगाया गया हो कि किसी विधेयक विशेष के संबंध में सरकार ने संविधान के उपबंधों का पालन नहीं किया है;[185]

यदि उसमें ऐसे विषय उठाये गये हों जिनके फलस्वरूप विधान बनाना पड़े;[186]

यदि उसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा भूख हड़ताल किए जाने का उल्लेख हो;[187]

यदि उसमें ऐसे विषय उठाये गये हों, जिनके संबंध में शिकायतों का निवारण विद्यमान कानून के अतंर्गत किया जा सकता हो;[188]

यदि वह दिन-प्रतिदिन के प्रशासन संबंधी कार्य का मामला हो;[189]

यदि वह किसी तुच्छ मामले के विषय से संबंधित हो;[190]

यदि वह उन विषयों से संबंधित हो जहां मंत्री अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत किसी संधि में उल्लिखित कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हों;[191]

यदि वह सामान्य प्रकार की तालाबन्दी व हड़तालों जैसे औद्योगिक विवादों या तालाबन्दी या हड़ताल की आशंका के संबंध में हों;[192]

यदि वह किसी ऐसी कार्यवाही के संबंध में हो जो अधिकारियों ने विधि के विधिवत् प्रशासन के दौरान की हो;[193]

यदि वह दिन-प्रतिदिन की नीति से संबंधित विषय के बारे में हो;[194]

यदि वह संसद के किसी अधिनियम में परिवर्तन कराने के लिए किये गये प्रदर्शनों के संबंध में हो;[195]

---

185. *लो.स.वा.वि.,* 2.2.1960, कॉ. 3582-93 ।
186. *एल.ए. डिबेट्स,* 4.9.1935, पृ. 343-47; 23.3.1936, पृ. 3057-59 ।
187. *पूर्वोक्त,* 22.2.1939, पृ. 1316; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 8.12.1952, कॉ. 1823-24; 6.8.1953, कॉ. 209; *लो.स.वा.वि.,* 16.8.1961, कॉ. 2389-93 ।
188. *एल.ए. डिबेट्स,* 27.7.1943, पृ. 82-83 ।
189. *लो.स.वा.वि.,* 28.8.1959, कॉ. 4872 ।
190. समाचार-भाग 2, 31.8.1959, पृ. 2916 ।
191. *एच.पी. डिबेट्स,* 23.2.1953, कॉ. 1287-88 ।
192. *एल.ए. डिबेट्स,* 10.3.1928, पृ. 1239-41 ।
193. *पूर्वोक्त,* 22.2.1941, पृ. 539-40; 3.3.1941, पृ. 917-18 और 5.3.1941, पृ. 1023 ।
194. *पी. डिबेट्स,* 15.11.1950, कॉ. 18-20 ।
195. *लो.स.वा.वि.,* 18.12.1958, पृ. 2957-60 ।

यदि वह किसी प्रश्न के दिये गये असन्तोषजनक उत्तर;[196] या लोक हित के आधार पर सरकार द्वारा किसी प्रश्न का उत्तर देने से इंकार करने के संबंध में हो;[197]

यदि यह दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 144 के अन्तर्गत प्रख्यापित आदेशों के संबंध में हो;[198]

यदि वह सरकार के सदस्यों (अब मंत्रियों) द्वारा निजी विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता के बारे में चर्चा करने के संबंध में हो;[199] तथा

यदि वह सभा की कार्यवाही के बारे में एक सर्वसम्मत कार्यक्रम तैयार करने में सरकार की तथाकथित असफलता के संबंध में हो।[200]

स्थगन प्रस्ताव की ग्राह्यता का निर्णय करते समय अध्यक्ष सभा में सम्बद्ध मंत्री या विधि मंत्री से परामर्श करने से प्रतिवारित नहीं है।[201]

यदि अध्यक्ष ने स्थगन प्रस्ताव स्वीकार कर लिया हो और बाद में उसे यह प्रतीत हो कि उसे वह विषय सभा के निर्णय हेतु नहीं छोड़ना चाहिए था तो वह सभा को इस बात की सूचना दे सकता है और सदस्य द्वारा प्रस्ताव पेश करने से पहले, उससे यह कह सकता है कि वह अपना प्रस्ताव वापस ले ले।[202]

अध्यक्ष की सहमति

यदि अध्यक्ष इस बात से संतुष्ट होता है कि किसी स्थगन प्रस्ताव में उठाया जाने वाला विषय निश्चित तौर पर अविलम्बनीय और लोक-महत्त्व का है तो वह उसके पेश किये जाने की सहमति दे देता है। केवल इस कारण कि चर्चा के लिए प्रस्तावित विषय अविलम्बनीय लोक-महत्व का निश्चित विषय है, अध्यक्ष उसके नियमानुकूल होने का निर्णय देने के लिए बाध्य नहीं है। संभव है कि कोई विषय अविलम्बनीय हो, निश्चित हो, लोक-महत्व का हो और फिर भी, किसी समुचित दशा में, अध्यक्ष ऐसे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे।[203] सहमति देने से इन्कार करना अध्यक्ष के परम विवेकाधिकार में है और वह उसके लिए कोई कारण बताने को बाध्य नहीं है।[204]

---

196. *एल.ए. डिबेट्स,* 4.9.1933, पृ. 782-83 ।
197. *पूर्वोक्त,* 27.9.1937, पृ. 2493 ।
198. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 30.5.1952, कॉ. 861 ।
199. *एल.ए. डिबेट्स,* 16.9.1936, पृ. 1155-61 और 17.9.1936, पृ. 1457-58 ।
200. *लो.स.वा.वि.,* 4.9.1974, कॉ. 1-28 ।
201. *पूर्वोक्त,* 10.8.1962, पृ. 642-43 ।
202. *एल.ए. डिबेट्स,* 4.9.1928, पृ. 152-54 ।
203. *पूर्वोक्त,* 4.9.1928, पृ. 152 ।
204. *लो.स.वा.वि.,* 17.2.1961, कॉ. 611 और 21.2.1961, कॉ. 1100-01 ।

यदि अध्यक्ष इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि चर्चा के लिए प्रस्तावित विषय प्रथमदृष्टया नियमों के अनुकूल है तो वह उस प्रस्ताव के रखे जाने की सहमति दे देता है।[205]

यदि किसी विषय पर स्थगन प्रस्ताव पर एक बार सहमति दे दी गई है तो उसे दूसरे विषय के लिए नहीं बदला जा सकता।[206]

परन्तु जहां अध्यक्ष इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि किसी स्थगन प्रस्ताव की सूचना प्रथमदृष्टया अग्राह्य है तो वह उस विषय को सभा के सामने लाए बिना अपनी सहमति देने से इन्कार कर देता है[207] और सम्बद्ध सदस्य को अध्यक्ष के निर्णय की सूचना दे दी जाती है। जहां विषय ऐसा हो कि वह निर्धारित सीमाओं में न आता हो या किसी सूचना की ग्राह्यता का निर्णय करने के लिए अध्यक्ष के पास पूरे तथ्य न हों, वहां पर सभा में इस बात का उल्लेख कर सकता है कि उसे प्रस्ताव की सूचना मिली है और उसके बाद वह सम्बद्ध सदस्य का और या मंत्री का संक्षिप्त वक्तव्य इस बारे में सुनता है कि उठाये जाने के लिए प्रस्तावित विषय नियमों के अंतर्गत आता है या नहीं और उसके बाद वह विषय के गुणावगुणों के आधार पर अपना निर्णय देता है।

जब अध्यक्ष स्थगन प्रस्ताव रखे जाने हेतु अपने कक्ष में अपनी सहमति रोक लेता है तो उसके लिए प्रस्ताव को सभा में पढ़ना अथवा अपनी सहमति न देने के कारणों को बताना आवश्यक नहीं है।[208] जब किसी सदस्य को अध्यक्ष के इस निर्णय की सूचना दे दी जाती है

---

205. अध्यक्ष ने 3 अगस्त, 1973 को मंत्री द्वारा एक विषय पर वक्तव्य दिये जाने के बाद, स्थगन प्रस्ताव लाने की अनुमति दी थी, हालांकि स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने का समय समाप्त हो चुका था–*लो.स.वा.वि.,* 3.8.1973, पृ. 129-30, 135-39 ।

206. अध्यक्ष ने 17 नवम्बर, 1980 को सभा को सूचित किया कि वह रेल दुर्घटनाओं संबंधी विषय पर कुछ सदस्यों द्वारा पेश किए गये स्थगन प्रस्ताव को सहमति दे चुके हैं। तत्पश्चात् कई सदस्यों ने इस रेल दुर्घटना संबंधी स्थगन प्रस्ताव को वापस लेने की बात कही और अध्यक्ष से उक्त स्थगन प्रस्ताव के बदले में मूल्यों में वृद्धि के बारे में दूसरा स्थगन प्रस्ताव गृहीत करने का अनुरोध किया। अध्यक्ष ने तदुपरान्त टिप्पणी की कि वह अपना निर्णय पहले ही दे चुके हैं और अब इसे इस तरह बदला नहीं जा सकता क्योंकि इसके बारे में ऐसा कोई पूर्व दृष्टांत भी नहीं है। तथापि, वह नियम 184 आदि के अन्तर्गत मूल्य-वृद्धि पर चर्चा करने की अनुमति देंगे। रेल दुर्घटना पर चर्चा के लिए सभा से अनुमति लेने हेतु सदस्यों का नाम एक-एक करके पुकारे जाने पर प्रस्ताव से संबंधित सदस्य अनुपस्थित पाए गए, क्योंकि वे पहले ही सभा से बहिर्गमन कर गए थे–*लो.स.वा.वि.,* 17.11.1980, कॉ. 322-28 ।

207. *पी. डिबेट्स,* 7.3.1950, पृ. 1178 साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 9.8.1956, कॉ. 2537-53।

208. *लो.स.वा.वि.,* 13.2.1968, पृ. 156-57; 16.4.1968, पृ. 517; *लो.स.वा.वि.,* 15.12.1972, कॉ. 224-25; 21.3.1980, पृ. 162-65; 9.6.1980, पृ. 181-87; 18.11.1980, पृ. 90-92; 27.11.1980, पृ. 160-65; तथा 6.4.1981, पृ. 186-90 ।

कि उसने स्थगन प्रस्ताव रखे जाने की सहमति नहीं दी है, तो उसके बाद सभा में सूचना के विषय या उसके अस्वीकार किये जाने के कारणों के संबंध में कोई प्रश्न उठाये जाने की अनुमति नहीं दी जाती।[209] तथापि, कोई सदस्य यदि अध्यक्ष से यह निवेदन करना चाहे कि वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करे तो वह या तो बाद में अध्यक्ष के कक्ष में उससे मिलकर अपनी बात कह सकता है और या उस संबंध में अध्यक्ष को लिखकर अभ्यावेदन दे सकता है।[210] यदि सदस्य के निवेदन पर अध्यक्ष इस बात से सन्तुष्ट हो जाता है कि सभा में उस विषय को लाने के पर्याप्त आधार हैं तो वह इस तथ्य के बावजूद कि इसकी सूचना उस दिन न देकर एक दिन पूर्व दी गई थी, अगले दिन या तो उसका सभा में उल्लेख करता है, अथवा सदस्य को इसे उठाने की अनुमति देता है।

जब सभा में स्थगन प्रस्ताव लाया जाता है, तो अध्यक्ष के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उन सभी सदस्यों का नाम पढ़े जिन्होंने इस प्रस्ताव की सूचना पर हस्ताक्षर किये हैं या इस विषय पर अलग-अलग सूचनाएं दी हैं। अध्यक्ष इस बात का भी निर्णय करता है कि वह सभा में स्थगन प्रस्ताव को अक्षरशः पढ़े या केवल उतना ही पढ़े जितना कि वह उचित समझे।[211] अध्यक्ष स्थगन प्रस्ताव के पूर्ण पाठ को पढ़े बिना केवल उसके मूल विषय का संदर्भ देकर सभा में इसका निपटान कर सकता है।[212] अपमानजनक वक्तव्यों वाले प्रस्ताव सभा में अध्यक्ष द्वारा न तो पढ़े जाते हैं और न ही उनके उल्लेख करने की अनुमति दी जाती है। यदि ऐसे वक्तव्य सदस्यों द्वारा सभा में पढ़े भी जाते हैं तो उन्हें सभा की कार्यवाही वृत्तांत से निकाल दिया जाता है।[213]

समुचित मामले में अध्यक्ष स्थगन प्रस्ताव की सूचना के बदले उसी दिन या अगले दिन ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की सूचना[214] को स्वीकार कर सकता है किन्तु यह उठाये जाने वाले विषय की प्रकृति और अविलम्बनीयता पर निर्भर करता है। जब ऐसा किया जाता है तब सदस्य को नियमों के अन्तर्गत ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की नियमित सूचना प्रस्तुत करनी होती है और उसकी प्रति संबद्ध मंत्री को जवाब देने के लिए उपलब्ध करानी होती है ताकि इसके उत्तरस्वरूप वह वक्तव्य दे सके।

---

209. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 16.11.1953, कॉ. 6; *लो.स.वा.वि.,* 23.12.1954, कॉ. 3827, 9.8.1956, कॉ. 9551-53; 23.4.1958, कॉ. 11077; 11.9.1958, कॉ. 5956-57; 24.9.1958, कॉ. 8349; और 9.2.1960, कॉ. 100-01 तथा 105-06 ।

210. *पूर्वोक्त,* 27.4.1953, कॉ. 5152 ।

211. *पूर्वोक्त,* 30.6.1952, कॉ. 2820-21; 28.11.1995, कॉ. 256; 10.7.1996, कॉ. 379; 25.5.2000, 20.11.2001 कॉ. 430-31; 11.3.2002; 7.4.2003, कॉ. 30; 1.3.2005, कॉ. 11-12 ।

212. *पी. डिबेट्स* (II), 5.3.1952, कॉ. 1993-94 ।

213. *लो.स.वा.वि.,* 1.9.1954, कॉ. 742 ।

214. नियम 197; *लो.स.वा.वि.,* 11.6.1980, कॉ. 179-82 ।

सभा की अनुमति

स्थगन प्रस्ताव की सूचना पर अध्यक्ष की अनुमति मात्र से कोई सदस्य सभा की कार्यवाही को स्थगित करने का अधिकारी नहीं हो जाता; उसे सभा की अनुमति भी लेनी होती है।

जब अध्यक्ष किसी स्थगन प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए अनुमति दे देता है तो उसके बाद वह उचित समय पर अर्थात् जब प्रश्नों का निपटान कर दिया गया हो, संबंधित सदस्य को पुकारता है और उसे कहता है कि अपने स्थान पर खड़े होकर वह सभा से स्थगन का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति मांगे।[215] सभा में स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा के समय स्थगन प्रस्ताव की सूचना देने वाला सदस्य उपस्थित होना चाहिए। जब सदस्य सभा से अनुमति मांगता है, उस समय उसे अपने को इसी आशय तक सीमित रखना होता है। इस चरण पर वह वक्तव्य नहीं दे सकता।[216] यदि कोई सदस्य अनुमति दिये जाने पर आपत्ति करता है तो अध्यक्ष उन सदस्यों से, जो अनुमति देने के पक्ष में हों, कहता है कि वे अपने स्थानों पर खड़े हो जाएं।[217] उसके बाद ऐसे सदस्यों की गिनती की जाती है, परन्तु उनके नाम दर्ज नहीं किए जाते। यदि कम से कम 50 सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में खड़े हो जाते हैं, तो अध्यक्ष यह घोषणा कर देता है कि अनुमति दे दी गयी है।[218]

किसी स्थगन प्रस्ताव के रखे जाने की अनुमति दिए जाने पर आपत्ति, अध्यक्ष द्वारा यह घोषणा किए जाने कि 'सभा अनुमति देती है', से पहले की जानी चाहिए[219] बाद में कोई भी सदस्य इस आधार पर इस प्रश्न को पुनः नहीं उठा सकता है कि वह सभा की कार्यवाही को समझ नहीं पाया है।[220]

प्रस्ताव को लेने का समय

स्थगन प्रस्ताव, जिसके पेश करने की अनुमति सभा द्वारा दे दी गई हो 16.00 बजे या यदि अध्यक्ष, सभा में कार्य की स्थिति को देखते हुए ऐसा निदेश दे तो उससे पहले भी किसी समय लिया जाता है।[221] जब सभा की बैठक ही सायं 16.00 बजे के बाद प्रारम्भ हो रही हो

---

215. नियम 60 ।
216. *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1963, पृ. 76-77 ।
217. *पूर्वोक्त,* 3.8.1957, पृ. 3025; *लो.स.वा.वि.,* 18.8.1958, कॉ. 1356-68; 12.3.1959, पृ. 2976; 18.2.1975, पृ. 108-10 ।
218. *लो.स.वा.वि.,* 15.3.1960, कॉ. 5907-09; 29.3.1977, कॉ. 2-3; *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड III, 1922, पृ. 501-03; खण्ड I, 1930, पृ. 627-31 भी देखिए।
219. *एल.ए. डिबेट्स,* खण्ड I, 1921, पृ. 410 ।
220. *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1963, कॉ. 102 ।
221. नियम 61; *एल.ए. डिबेट्स,* 5.9.1939, पृ. 361-374 और 387-88; 21.1.1927, पृ. 16 और 18-40; *लो.स.वा.वि.,* 15.2.1966, कॉ. 201, 296; 22.7.1968, कॉ. 358-481; 3.9. 1974, कॉ. 1-11, 19.11.1974, पृ. 136; 21.2.1986, कॉ. 271-278; 28.11.2005, कॉ. 455-56; 29.11.2006, कॉ. 350 ।

तो उस दिन कोई स्थगन प्रस्ताव नहीं लिया जा सकता।[222]

> वर्ष 1922 में विधान सभा में स्थायी आदेशों में संशोधन करके यह उपबन्ध किया गया कि यदि किसी स्थगन प्रस्ताव के रखे जाने की अनुमति दी जा चुकी हो, तो उसे सायं 4 बजे से पहले भी लिया जा सकता है, यदि अध्यक्ष सरकार के सम्बद्ध सदस्य की सहमति से ऐसा निदेश दे दे।[223] 1937 में बजट पेश किए जाने के लिए विधान सभा की बैठक 17.00 बजे हुई। अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया कि उस दिन जो स्थगन प्रस्ताव प्राप्त हुआ है, उस पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रस्ताव यदि नियमानुकूल हुआ तो भी उसे केवल 16.00 बजे या उससे पहले ही लिया जा सकता है।[224] मंत्री की सहमति से संबंधित उपबन्ध 1947 में इस आधार पर हटा दिया गया कि संसद प्रभुतासम्पन्न है और इसीलिए अध्यक्ष को सभा की आन्तरिक प्रक्रिया से संबंधित मामलों में निर्बाध अधिकार होना चाहिए। तथापि, यह उपबन्ध किया गया कि अध्यक्ष यह निदेश देने से पहले कि कोई स्थगन प्रस्ताव सायं 4 बजे से एक घण्टा पहले लिया जाए, सभा के नेता से यह पता लगा सकता है कि ऐसा करना उसके लिए सुविधाजनक होगा या नहीं।

यदि सभा में कार्य की स्थिति की यह मांग हो कि स्थगन प्रस्ताव सायं 4 बजे से पहले नहीं लिया जाए तो इस अनुरोध के बावजूद कि प्रस्ताव पर सायं 4 बजे से पहले विचार किया जाये, अध्यक्ष के लिये यह जरूरी है कि वह उस निवेदन को अस्वीकार कर दे।[225] दूसरी ओर यदि कोई महत्वपूर्ण कार्य किया जाना हो, तो अध्यक्ष सभा की सहमति से, या नियम को निलम्बित करके यह निदेश दे सकता है कि स्थगन प्रस्ताव सायं 4 बजे के एक घण्टे बाद लिया जाये[226] और यदि असाधारण मामलों में आवश्यक हो जाए, तो स्थगन प्रस्ताव बाद के किसी दिन लिये जाने का भी निदेश दे सकता है।[227]

जब किसी स्थगन प्रस्ताव के पेश किये जाने की अनुमति सभा द्वारा दे दी जाए और उस पर चर्चा के लिये समय नियत कर दिया जाये तो अध्यक्ष को यह प्रस्ताव रखने की अनुमति देनी पड़ती है,[228] सिवाय ऐसी परिस्थिति के, जहां कोई ऐसी नयी परिस्थिति उत्पन्न

---

222. *एल.ए. डिबेट्स*, 27.2.1937, पृ. 1153 ।

223. विधान सभा के स्थायी आदेश की धारा 23 में संशोधन ।

224. *एल.ए. डिबेट्स*, 27-2-1937, पृ. 1153

225. *एल.ए. डिबेट्स*, 26.1.1932, पृ. 73 ।

226. *एच.पी. डिबेट्स*, 18.2.1954, कॉ. 248; *एल.एस. डिबेट्स*, 12.3.1959, कॉ. 5853; *लो.स.वा वि.*, 20.7.1967, पृ. 6069-70; एल.एस.डिबेट्स, 29.3.1977, कॉ. 2-3 ।

227. *एल.ए. डिबेट्स*, 24.2.1938, पृ. 1134; 22.3.1946, पृ. 2792; 25.3.1946, पृ. 2878; 6.11.1944, पृ. 264-65 और 285; *लो.स.वा.वि.*, 13.11.1972, पृ. 121-23; 14.11.1972, पृ. 135-56, 21.3.1978, पृ. 299-301; 22.3.1978, पृ. 158-67; 26.4.1983, पृ. 223-28, 516; 27.4.1983, कॉ. 379-496; 24.2.1984, कॉ. 300-313; 27.2.1984, कॉ. 433-36, और 28.2.1984, कॉ. 513-686 ।

228. *एल.ए. डिबेट्स*, 4.9.1928, पृ. 153 ।

हो गयी हो, जिसके कारण उस प्रस्ताव पर चर्चा नियमों का उल्लंघन किये बिना नहीं की जा सकती हो।[229] लेकिन सदस्य को इस बात की स्वतंत्रता है कि यदि वह चाहे तो सभा द्वारा प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दिये जाने और उस पर चर्चा के लिये समय नियत किये जाने के बावजूद प्रस्ताव पेश न करे।[230]

प्रस्ताव पर चर्चा नियत समय पर प्रारम्भ करने में सामान्यत: विलम्ब नहीं किया जाता, जब तक कि ऐसा करना नितान्त आवश्यक न हो। उदाहरणार्थ सम्भव है कि उस समय चल रहे मत विभाजन को पूरा करने के लिये कुछ और समय की आवश्यकता हो,[231] अथवा चर्चा प्रारम्भ करने में विलम्ब प्रस्तावक की सहमति से भी हो सकता है।[232]

चर्चा की रीति तथा व्याप्ति

नियत समय पर वह सदस्य, जिसने अपना स्थगन प्रस्ताव रखने की अनुमति सभा से प्राप्त कर ली हो, यह प्रस्ताव पेश करता है: कि सभा अब स्थगित होती है।[233]

प्रस्तावक के निश्चित विषय पर बोल चुकने के बाद अन्य सदस्य बोलते हैं और उनके बाद सम्बन्धित मंत्री का भाषण होता है। विशेष परिस्थितियों में अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से प्रस्तावक को बिना भाषण दिये अपना प्रस्ताव रखने की अनुमति दे सकता है और सम्बद्ध मंत्री से कह सकता है कि उसके पास जो जानकारी उपलब्ध हो उसके बारे में सभा को बताए, जिसके आधार पर वाद-विवाद किया जा सके।[234] ऐसे मामले में प्रस्तावक, मंत्री के भाषण के बाद अपना भाषण देता है और मंत्री को वाद-विवाद के अंत में फिर बोलने का अवसर दिया जाता है।

स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा के लिये 2 घंटे 30 मिनट का समय दिया जाता है हालांकि उससे पहले भी वाद-विवाद समाप्त हो सकता है। यदि अध्यक्ष का समाधान हो जाये कि पर्याप्त वाद-विवाद हो चुका है तो वह 18.30 बजे, या ऐसे अन्य समय, जो वाद-विवाद

---

229. स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा, जो सायं 16.00 बजे होनी थी, नहीं की गयी क्योंकि वह विषय न्यायाधीन था—*एल.ए. डिबेट्स,* 24.3.1938, पृ. 1104; 25.3.1931, पृ. 120-21 ।

230. 18.9.1935 को एक स्थगन प्रस्ताव रखने की अनुमति सभा द्वारा दी जा चुकी थी, किंतु 16.00 बजे अर्थात् स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा के लिए नियत समय पर, अध्यक्ष ने सभा में यह घोषणा की कि सदस्य ने यह सूचना भेजी है कि वह प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं करना चाहता। *एल. ए. डिबेट्स,* 18.9.1935, पृ. 1194-97 ।

231. *एल.ए. डिबेट्स,* 4.2.1939, पृ. 169 और 200; 10.2.1939, पृ. 691 ।

232. *पूर्वोक्त,* 6.11.1944, पृ. 285

233. ऐसे उदाहरण भी हैं, जबकि अध्यक्षपीठ की अनुमति से प्रस्तावक के स्थान पर किसी अन्य सदस्य ने स्थगन प्रस्ताव पर प्रारम्भिक भाषण दिया। *लो.स.वा.वि.,* 27.4.1983, कॉ. 379-400।

234. *एल.ए. डिबेट्स,* 1.4.1946, पृ. 3313-14 ।

प्रारम्भ होने के समय से ढाई घंटे से कम न हो, प्रश्न रख सकेगा।[235] तथापि, स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा उसी दिन समाप्त होनी चाहिए।[236]

स्थगन प्रस्तावों पर "केवल चर्चा मात्र"

> एक सदस्य ने 5 जुलाई, 1967 को ऐसे स्थगन प्रस्ताव के निपटान की प्रक्रिया के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया जिस पर मतदान के लिये बल नहीं दिया जाता। उसने *अन्य बातों के साथ-साथ* यह भी कहा कि ऐसे प्रस्तावों के सम्बन्ध में यह घोषणा की जाये कि इन पर "केवल चर्चा मात्र" हुई है।
>
> केन्द्रीय विधान सभा के स्थायी आदेशों में स्थगन प्रस्तावों में "केवल चर्चा होने" के सम्बन्ध में एक उपबन्ध था।[237] जब 1950 में संविधान के प्रारम्भ होने से पहले तक लागू संविधान सभा (विधायी) नियमों में संशोधन किया गया, और अध्यक्ष ने उनका आशोधन और अनुकूलन किया, ताकि वे संविधान के उपबन्धों, तत्कालीन परिपाटी और समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा किये गये निर्णयों के अनुकूल हो जायें, तो नियम 53 (अब नियम 62) से स्थगन प्रस्ताव पर "चर्चा मात्र" सम्बन्धी उपबन्ध का लोप कर दिया गया। इसके लिए उस नियम से "परन्तु शर्त यह है कि यदि वाद-विवाद सायं 6 बजे तक समाप्त न हो, तो यह स्वतः समाप्त हो जायेगा और उसके बारे में प्रश्न नहीं रखा जायेगा" शब्दावली का लोप कर दिया गया।
>
> इस समय प्रक्रिया यह है कि नियम 339 के साथ पठित नियम 62 के अनुसार, जब तक कि प्रस्ताव रखने वाले सदस्य ने सभा की अनुमति से प्रस्ताव वापिस न ले लिया हो, अध्यक्ष को प्रश्न सभा के मतदान के लिये रखना होता है। अध्यक्ष के निदेश सं. 44 के अन्तर्गत, यदि प्रस्ताव रखने वाला सदस्य अध्यक्ष को सूचित करे कि वह उस पर आग्रह नहीं करना चाहता और यदि इसके पश्चात् वह प्रस्ताव सभा के सामने मतदान के लिए नहीं रखा जाता तो उसे सभा की अनुमति से वापस लिया गया माना जाता है। लेकिन कोई भी सदस्य अध्यक्ष से निवेदन कर सकता है कि प्रस्ताव को सभा के सामने मतदान के लिए रखा जाये।

सभा में इस सम्बन्ध में प्रक्रिया का एक प्रश्न उठाया गया और उसे नियम समिति को सौंप दिया गया। नियम समिति ने यह निर्णय लिया कि नियम 62 और निदेश सं. 44 के उपबंधों को देखते हुए स्थगन प्रस्तावों के निपटान के सम्बन्ध में वर्तमान प्रक्रिया को परिवर्तित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।[238] यह निर्णय करते समय समिति ने निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा:

---

235. नियम 62 ।

236. *लो.स.वा.वि.,* 11.11.1974, पृ. 138-39 ।

237. स्थायी आदेश, 24 (1), परन्तुक।

238. *देखिए* कार्यवाही सारांश (नियम समिति—चौथी लोक सभा), 10.7.1967 ।

स्थगन प्रस्ताव में सरकार की निन्दा निहित होती है। अत: सामान्यत: उचित यही होगा कि ऐसे किसी प्रस्ताव पर सभा का सुस्पष्ट निर्णय हो।[239]

स्थगन प्रस्ताव के अन्तर्गत महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा के लिये सभा जितना समय चाहे, ले सकती है। नियमों के अन्तर्गत केवल न्यूनतम समय-सीमा ही निर्धारित की गयी है। यदि यह प्रक्रिया प्रारम्भ की जाये कि प्रस्तावों पर "चर्चा मात्र" ही हो, तो न्यूनतम समय अधिकतम समय बन जायेगा और कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि समुचित चर्चा न हो और चर्चा अधूरी रह जाये। केन्द्रीय विधान सभा में हुए अनुभव से यही स्पष्ट हुआ।

इसके अतिरिक्त यदि नियमों में यह उपबन्ध किया जाता कि स्थगन प्रस्तावों पर "चर्चा मात्र" होने का भी उपबंध हो, तो सत्तारूढ़ दल को सदा इस बात का प्रलोभन रहता कि ऐसे प्रस्तावों पर मात्र चर्चा होना सुनिश्चित करने की व्यवस्था करे ताकि सभा कोई निर्णय न कर सके। यह आशंका सदा बनी रहेगी, जैसी कि केन्द्रीय विधान सभा के दिनों में बहुधा हुआ करता था।

यह सुनिश्चित करने के लिये कि समुचित संख्या में सदस्य वाद-विवाद में भाग ले सकें, विभिन्न दृष्टिकोण सभा के सामने रखे जा सकें और वाद-विवाद सामान्यतया निर्धारित समय के भीतर समाप्त किया जा सके, अध्यक्ष भाषणों की समय-सीमा निर्धारित कर सकता है।[240] सामान्यत: प्रस्तावक को छोड़कर सदस्यों के लिए समय-सीमा निर्धारित है लेकिन सम्बद्ध मंत्री को अधिक समय दिया जा सकता है।[241]

प्रस्ताव पर वाद-विवाद केवल उन्हीं विशिष्ट विषयों तक सीमित रखा जाता है जिनका सूचना में उल्लेख किया गया हो और जिनका उल्लेख सभा में अध्यक्ष ने किया हो।[242]

स्थगन प्रस्ताव के प्रस्तावक को वाद-विवाद का उत्तर देने का अधिकार है।[243] इस मामले में यद्यपि स्थगन प्रस्तावों के संबंध में उत्तर देने के अधिकार को शासित करने वाली

---

239. समिति का यह विचार था कि यदि किसी विषय पर केवल चर्चा किया जाना मात्र ही अपेक्षित हो, तो नियम 193 के अन्तर्गत अल्पकालिक चर्चा की जा सकती है या नियम 342 के अन्तर्गत प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाने सम्बन्धी प्रक्रिया का सहारा लिया जा सकता है।

240. नियम 63 ।

241. 18 अगस्त, 1958 को भाषणों के लिए 15 मिनट की समय-सीमा निर्धारित की गयी—*लो.स.वा.वि.*, 18.8.1958, पृ. 698 ।

12 मार्च, 1959 को 10 मिनट की समय-सीमा निर्धारित की गयी—*लो.स.वा.वि.* 12.3.1959, कॉ. 6009 ।

19 मार्च, 1962 को सदस्यों के भाषणों के लिए 10 मिनट और मंत्री के भाषण के लिए 30 मिनट की समय-सीमा निर्धारित की गयी—*लो.स.वा.वि.*, 19.3.1962, कॉ. 467-69, 12.3.1959, कॉ. 6012 ।

242. *लो.स.वा.वि.*, 19.11.1963, कॉ. 407.69 ।

243. *एल.ए. डिबेट्स*, 25.2.1926, पृ. 1868; *लो.स.वा.वि.*, 18.8.1958, पृ. 516-17, 3.8.1967, कॉ. 6920; और 18.2.1975, पृ. 107-47; 26.7.2005 कॉ. 716, 25.7.2006, कॉ. 354।

कोई विशेष प्रक्रिया नहीं है, तथापि अन्य सभी प्रस्तावों के संबंध में लागू उत्तर देने के अधिकार सम्बन्धी सामान्य नियम[244] को ही स्थगन प्रस्तावों पर भी लागू माना जाता है।[245] अध्यक्ष की अनुमति से सम्बद्ध मंत्री (चाहे वाद-विवाद में वह पहले बोल चुका हो या नहीं) प्रस्ताव में उत्तर के बाद बोल सकता है।[246]

स्थगन प्रस्ताव सभा के सामने मतदान के लिये रखा जाता है और उस पर मत विभाजन की मांग की जा सकती है। तथापि, विपक्ष और सरकार के बीच भारी मतभेद की स्थिति के इतर स्थिति में चर्चा के बाद स्थगन प्रस्ताव वापस लिया जा सकता है।[247]

> यदि वाद-विवाद के अन्त में प्रस्तावक अध्यक्ष को सूचित करे कि वह उस पर आग्रह नहीं करना चाहता और यदि इसके पश्चात् प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा सभा के सामने मतदान के लिए नहीं रखा जाता, तो अध्यक्ष यह घोषणा कर सकता है कि ऐसा प्रस्ताव सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया माना जाये। परन्तु कोई सदस्य यदि यह निवेदन करे कि प्रस्ताव सभा के मतदान के लिये रखा जाये तो अध्यक्ष निर्णय हेतु उसे सभा के मतदान के लिये रखता है।[248]

जिस समय इस प्रस्ताव "कि सभा अब स्थगित होती है" पर चर्चा चल रही होती है, स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा प्रारम्भ होने से लेकर उस पर चर्चा समाप्त होने तक अध्यक्ष को सभा स्थगित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है क्योंकि उस समय सभा के स्थगन की शक्ति सभा के पास ही होती है। अध्यक्ष प्रस्ताव पर मतदान भी अगली बैठक तक स्थगित नहीं कर सकते चाहे इस सम्बन्ध में अध्यक्ष से कोई अनुरोध ही क्यों न किया गया हो। तथापि सभा, हमेशा की तरह[249] भोजनावकाश हेतु संक्षिप्त अन्तराल के लिए स्थगित की जा सकती है। सभापटल पर रखे जाने वाले पत्रों जैसे औपचारिक विषयों के निपटान से प्रस्ताव पर चर्चा बाधित हो सकती है।[250] लेकिन प्रस्ताव का उस दिन सभा के स्थगित होने से पहले निपटान करना आवश्यक है। यदि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है, तो प्रस्ताव स्वीकार होने के फलस्वरूप, सभा स्वतः स्थगित हो जाती है। यदि प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है तो जो कार्य स्थगन प्रस्ताव के कारण रोक दिया गया था, पुनः प्रारम्भ हो जाता है अथवा थोड़े समय के लिए कार्य-सूची की अगली मद पर चर्चा प्रारम्भ की जाती है और इसके बाद सभा अध्यक्ष

---

244. नियम 358 (3)।

245. *एल.ए. डिबेट्स*, 25.2.1926, पृ. 1868 ।

246. *पूर्वोक्त*, 25.8.1925, पृ. 194 ।

247. *पूर्वोक्त*, 24.2.1921, पृ. 400-406; और *लो.स.वा.वि.*, 29.3.1977, कॉ. 240 ।

248. निदेश 44 और अध्यक्ष का विनिर्णय, *लो.स.वा.वि.*, 12.7.1967, पृ. 5155-56 ।

249. 4 नवम्बर, 1986 को चर्चा में भोजनावकाश के कारण व्यवधान पड़ा। *लो.स.वा.वि.*, 9.1.1991, पृ. 271; 22.2.1991, पृ. 239; और 15.3.1993 कॉ. 573 । 8 अगस्त, 2012 को चर्चा में भोजनावकाश के कारण व्यवधान पड़ा। *लो.स.वा.वि.*, 2.8.2012 कॉ 40.

250. *लो.स.वा.वि.*, 18.7.1989; पृ. 263-65

द्वारा उस दिन के लिए स्थगित की जाती है। जब प्रस्ताव सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया हो और यदि सामान्य रूप से वह समय सभा के स्थगित होने का है तो सभा कार्य पुन: आरम्भ किए बिना स्थगित की जा सकती है।[251]

विपक्ष के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 24 जुलाई, 1997 को बिहार की हाल की घटनाओं पर केन्द्र सरकार के उदासीन रवैये से उत्पन्न गंभीर स्थिति के संबंध में स्थगन प्रस्ताव रखा था। कुछ देर चर्चा के बाद प्रस्तावक और सभा की सहमति से स्थगन प्रस्ताव को नियम 184 के अंतर्गत चर्चा किए जाने वाले प्रस्ताव के रूप में संपरिवर्तित किया गया, प्रस्ताव पर नियम 184 के अंतर्गत 25, 28 और 29 जुलाई, 1997 को चर्चा की गई और इसे अस्वीकृत कर दिया गया।[252]

---

251. *एल.एस. डिबेटस,* 18.2.1954, कॉ. 309; 18.8.1958, कॉ. 1539; 19.3.1959, कॉ. 6040; 26.5.1967, कॉ. 1195-1223; तथा 22.7.1968, कॉ. 682 ।
252. *लो.स.वा.वि.,* 24.7.1997, कॉ. 462 ।

अध्याय 22

विधान

संसद का एक महत्वपूर्ण कार्य विधान बनाना है, हालांकि उसका यही एकमात्र कार्य नहीं है।[1] "विधि" शब्द की सर्वाधिक स्वीकृत परिभाषा किसी अधिनियम में दिया गया वह अनिवार्य निदेश है, जिसे विधिवत रूप से गठित विधान मंडल ने विधेयक के रूप में नियमित रूप से वाद-विवाद करने के पश्चात् विहित तरीके से पारित किया है, तथा राष्ट्राध्यक्ष ने उसे अनुमति दी है, और जिसे प्रत्येक नागरिक मानने के लिए बाध्य होता है और जिसे लागू करना न्यायालयों, जिन पर विधि के प्रति सम्मान की भावना सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी है, के लिए अनिवार्य होता है।[2] 'विधि' शब्द में कोई भी ऐसा नियम, विनियम, उपविधि या उपनियम आता है, जो किसी अधीनस्थ प्राधिकारी ने अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में स्पष्ट रूप से दी गई शक्तियों के अधीन तथा उसमें निर्दिष्ट सीमाओं के भीतर रहते हुए बनाया हो।

विधान संबंधी सभी प्रस्ताव विधेयकों के रूप में संसद में लाये जाते हैं। विधेयक संविधि का ही प्रारूप होता है, और कोई भी विधेयक, चाहे वह सरकार द्वारा पुर:स्थापित किया गया हो अथवा किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा, तभी कानून बन सकता है जब इसे संसद की दोनों सभाओं की स्वीकृति तथा राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है। प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन होते हैं :—

> प्रथम वाचन का अर्थ है: विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव, जिसके स्वीकृत होने पर विधेयक पुर:स्थापित किया जाता है, या ऐसे विधेयक का पुर:स्थापन जो राजपत्र में पहले ही प्रकाशित हो चुका हो अथवा ऐसे विधेयक का सभापटल पर रखा जाना जो दूसरे सदन द्वारा पारित किया गया हो, जहां कि उसे मूल रूप में लाया गया था।
>
> द्वितीय वाचन में दो प्रक्रम होते हैं : "पहले प्रक्रम" में सामान्यत: इनमें से कोई एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर विधेयक के सिद्धांतों और उपबंधों पर चर्चा की जाती है; कि विधेयक पर विचार किया जाये; कि उसे लोक सभा की प्रवर समिति को सौंपा जाये; कि उसे राज्य सभा की सहमति से दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा जाये; कि उस पर राय जानने के लिए उसे परिचालित किया जाये; और "दूसरे प्रक्रम" में पुर:स्थापित किये गये या प्रवर

---

1. सुभाष सी. काश्यप: पार्लियामेंट ऐज ए मल्टी-फंक्शनल इंस्टीट्यूशन, *जे.पी.आई.*, खंड XXXIII, सं. 2, जून, 1987 । साथ ही *देखिए* सुभाष सी. कश्यप, हू *लेजिस्लेट्स इन दि माडर्न वर्ल्ड*, इंटर-पार्लियामेंटरी यूनियन, जेनेवा, 1976 ।
2. एस.एल. शकधर: दि प्रोसेस ऑफ लेजिसलेशन इन दि इंडियन पार्लियामेंट, (सं.) ए.बी. लाल 1956, पृ. 95 ।

समिति या संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में, यथास्थिति, विधेयक पर खंड-वार विचार किया जाता है।

तृतीय वाचन में इस प्रस्ताव पर चर्चा की जाती है कि विधेयक (या यथा संशोधित विधेयक) पारित किया जाए।

विधेयकों का वर्गीकरण

विधेयकों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है: सरकारी विधेयक और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक। यह वर्गीकरण इस बात पर आधारित है कि उन्हें किसी मंत्री ने पेश किया है या किसी गैर-सरकारी सदस्य ने। विधेयकों की विषय-वस्तु के आधार पर उन्हें पुन: निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है:

मूल विधेयक (ऐसे विधेयक जिनमें नये प्रस्ताव, विचार या नीतियां हों);

संशोधनकारी विधेयक (ऐसे विधेयक जिनका उद्देश्य विद्यमान अधिनियमों में रूपभेद, संशोधन करना या उनका पुनरीक्षण करना हो);

समेकन विधेयक (ऐसे विधेयक जिनका उद्देश्य किसी विषय-विशेष पर विद्यमान विधि का समेकन करना हो);

समाप्त होने वाले कानूनों (जारी रखना) संबंधी विधेयक (ऐसे विधेयक जिनका आशय उन अधिनियमों जिनकी अवधि समाप्त हो रही है को जारी रखना हो);

ऐसे विधेयक जिनका उद्देश्य निरसन विधेयक, (विद्यमान अधिनियमों का निरसन करना हो)

अध्यादेशों का स्थान लेने वाले विधेयक;[3] और

संविधान (संशोधन) विधेयक।[4]

धन तथा वित्त विधेयकों को उनके विशेष प्रकार का होने के कारण, दूसरे विधेयकों से अलग समझा जाता है। इन पर विस्तृत रूप से निम्न प्रकार कार्यवाही की जाती है:

धन विधेयक और वित्त विधेयक

धन विधेयक

धन विधेयक की परिभाषा इस प्रकार की गई है:—

"(1) कोई विधेयक धन विधेयक समझा जाएगा यदि उसमें केवल निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों से संबंधित उपबंध है, अर्थात्:—

(क) किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन;

(ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने का या कोई प्रत्याभूति देने का विनियमन अथवा भारत सरकार द्वारा अपने ऊपर ली गई या ली जाने वाली किन्हीं वित्तीय बाध्यताओं से संबंधित विधि का संशोधन;

---

3. अधिक जानकारी के लिए *देखिए,* अध्याय 23—राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं ।

4. *देखिए* आगे इसी अध्याय में 'संविधान में संशोधन' शीर्षक के अंतर्गत ।

(ग) भारत की संचित निधि अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना;

(घ) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग;

(ङ) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना या ऐसे किसी व्यय की रकम को बढ़ाना;

(च) भारत की संचित निधि या भारत के लोक लेखे के अंतर्गत धन प्राप्त करना अथवा ऐसे धन की अभिरक्षा या उसका निर्गमन अथवा संघ या राज्य के लेखाओं की संपरीक्षा; या

(छ) उपखंड (क) से उपखंड (च) में विनिर्दिष्ट किसी विषय का आनुषंगिक कोई विषय।

(2) कोई विधेयक केवल इस कारण धन विधेयक नहीं समझा जाएगा कि वह जुर्मानों या अन्य आर्थिक शास्तियों के अधिरोपण का अथवा अनुज्ञप्तियों के लिए फीसों की या की गई सेवाओं के लिए फीसों की मांग का या उनके संदाय का उपबंध करता है अथवा इस कारण धन विधेयक नहीं समझा जाएगा कि वह किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन का उपबंध करता है"।[5]

मुख्य शब्दों के निहितार्थ: संविधान में धन विधेयक के संबंध में जिन मुख्य शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनके निहितार्थ के बारे में संपदा शुल्क विधेयक, 1953 के संबंध में सावधानीपूर्वक विचार किया गया था और उनको इस प्रकार स्पष्ट किया गया है;

संविधान में जिन मुख्य शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे हैं: 'से संबंधित', 'अधिरोपण', 'विनियमन' और 'आनुषंगिक' और इनका अर्थ लगाते समय न केवल उनके सामान्य अर्थ का ध्यान रखा जाना चाहिए बल्कि जिस संदर्भ में उनको प्रयुक्त किया गया है, उसमें उनके विशेष अर्थों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।[6]

'अधिरोपण' और 'अधिरोपण से संबंधित' शब्दों के बीच विभेद करना पड़ेगा। 'अधिरोपण' का अर्थ हो सकता है कर की दर, व्यापकता तथा क्षेत्र, जबकि 'अधिरोपण से संबंधित' शब्द व्यापक है और इनके अर्थ में वे विषय भी आ जाते हैं, जिनका प्रत्यक्ष संबंध कर संग्रहण से है, जैसे कि कर संग्रहण की व्यवस्था तथा प्रक्रिया, अभ्यावेदन, अपीलों आदि के लिए उपबंध। भारत के संविधान में प्रयुक्त 'विनियमन' शब्द का अर्थ तो इससे भी अधिक व्यापक है। इसमें कर के अधिरोपण, परिवर्तन, कर को माफ करने या समाप्त करने से संबंधित पूरी योजना परिकल्पित है। शब्दकोष के अनुसार 'विनियमन करने' का अर्थ है नियमों से शासित करना और किसी कर के संबंध में इसका आशय उस कर से संबंधित सभी विषयों को नियमों से शासित करना है।

---

5. अनुच्छेद 110 ।

6. *देखिए फेडरेल कमिश्नर आफ टैक्सेशन बनाम मुनरो,* 1926; *कामनवेल्थ लॉ रिपोर्ट,* खंड 38, पृ. 184-95 ।

इन व्यापक शब्दों के अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 110 में एक और उपबंध यह है कि कर के अधिरोपण तथा उसके विनियमन के जो अन्य आनुषंगिक मामले हैं, उन्हें भी धन विधेयक की परिभाषा की सीमा के अंतर्गत समझा जा सकता है। अत: समूचा अनुच्छेद इतना व्यापक है कि उसमें न केवल कर की दर, उसका क्षेत्र तथा व्यापकता आ जाती है अपितु कर-निर्धारण, अपीलें, पुनरीक्षण आदि की पूरी व्यवस्था भी आ जाती है। इसी दृष्टि से वित्त विधेयक, जिनमें कर की दरों के अतिरिक्त, उन करों के संग्रहण आदि के लिए क्षेत्र संबंधी उपबंध होते हैं, को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया गया है।[7]

अध्यक्ष मावलंकर ने यह विचार व्यक्त किया:

> प्रत्यक्षत: मुझे ऐसा लगता है कि अनुच्छेद 110 के शब्द (किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन तथा विनियमन) इतने व्यापक हैं कि उनकी व्यापकता के कारण समेकित विधेयक धन विधेयक बन जाता है। यह प्रश्न उठ सकता है कि शब्द 'केवल' का ठीक-ठीक अर्थ या विस्तार क्या है। यह भी प्रश्न उठ सकता है कि क्या उस शब्द के कारण 'अधिरोपण, उत्सादन, परिहार आदि' शब्दों, सामान्य तथा व्यापक शब्दों के रूपभेद या नियंत्रण पर कोई प्रभाव पड़ता है और पड़ता है तो कितना।
>
> प्रत्यक्षत: मैं यह समझता हूं कि 'केवल' शब्द से उनके सामान्य अर्थ का विस्तार सीमित नहीं होता। यदि किसी विधेयक में मुख्य रूप से किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, आदि के संबंध में उपबंध है तो केवल इस बात के कारण कि उसमें कुछ और ऐसे उपबंध आ गये हैं जो कि उस कर के प्रशासन के लिए आवश्यक हैं, या जो उस विधेयक के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक हैं, तो मैं समझता हूँ उस विधेयक को धन विधेयकों की श्रेणी से निकाला नहीं जा सकता। इसके लिए विधेयक के उद्देश्य को देखना पड़ेगा। अत: यदि विधेयक के मुख्य उपबंधों का उद्देश्य किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, आदि है तो अन्य उपबंध आनुषंगिक होंगे और ऐसे उपबंधों के उस विधेयक में शामिल होने के आधार पर उस विधेयक को धन विधेयकों की श्रेणी से नहीं निकाला जा सकता। यदि "केवल" शब्द का यह अर्थ नहीं लगाया जायेगा तो अनुच्छेद 110 प्रभावहीन

---

7. भारतीय आय कर (संशोधन) विधेयक को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया गया था। उस विधेयक के संबंध में विधि मंत्रालय ने 24 अप्रैल, 1953 को निम्नलिखित राय दी थी:

   "पूरे आय कर अधिनियम को ऐसा कानून माना जा सकता है जिसमें संविधान के अनुच्छेद 110(1) के खंड (क) में निर्दिष्ट केवल एक या अधिक विषयों से संबंधित उपबंध ही है। संशोधनकारी विधेयक मूल अधिनियम की तरह लोक सभा में पुर:स्थापित किये गये थे और इसी तरह इसमें भी उस खंड में निर्दिष्ट केवल एक या अधिक विषयों का उल्लेख है। संशोधनकारी विधेयक में कहीं-कहीं एक या दो ऐसे उपबंध हैं जो प्राधिकारियों की नियुक्ति तथा उनकी शक्तियों, आदि को परिभाषित करते हैं, परन्तु इस संदर्भ में यह मान लेना ठीक होगा कि ये संशोधन भी आय कर के अधिरोपण या विनियमन के प्रयोजनों के लिए या उनके आनुषंगिक हैं। [*देखिए* अनुच्छेद 110(1) का उपखंड (छ)] प्रवर समिति ने विधेयक में जो संशोधन किये हैं उनसे इस संबंध में किसी भी परिस्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता है और इसलिए संशोधित विधेयक को धन विधेयक ही समझा जाना चाहिए।"

हो कर रह जाएगा। कोई भी कर, उसके निर्धारण, संग्रहण, प्रशासन, उसे न्यायालयों या न्यायाधिकरण को सौंपे जाने, आदि के संबंध में उपबंध किये बिना नहीं लगाया जा सकता। ऐसा हो सकता है कि किसी कर लगाने वाले विधेयक में केवल एक ही ऐसी धारा हो जो कर लगाने से संबंधित हो और उसके अतिरिक्त पचासों ऐसी अन्य धाराएं हो सकती हैं जो उस अधिरोपण के क्षेत्र, तरीके या रीति के संबंध में हों।

इसके अतिरिक्त, हमें अनुच्छेद 110 के उप-खंड (2) के उपबंधों पर भी विचार करना होगा और इन उपबंधों से प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से "केवल" शब्द की व्यापकता को स्पष्ट करने में सहायता मिल सकेगी।

धन विधेयक का प्रमाणीकरण

यदि यह प्रश्न उठ जाए कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं तो उस संबंध में अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है।[8] जब अध्यक्ष किसी विधेयक के बारे में यह निर्णय दे देता है कि वह धन विधेयक है तो वह उस पर अपने हस्ताक्षर सहित इस आशय का एक प्रमाण-पृष्ठांकित करता है कि विधेयक धन विधेयक है। उसके बाद ही विधेयक राज्य सभा को भेजा जाता है या राष्ट्रपति को अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है।[9]

1953 में प्रवर समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित भारतीय आय कर (संशोधन) विधेयक, 1952 को, धन विधेयक की श्रेणी में रखे जाने पर राज्य सभा में एक प्रश्न उठाया गया था। प्रवर समिति द्वारा विधेयक में कई परिवर्तन कर दिये गये थे।[10] इस पर संसद के दोनों सदनों के बीच विवाद प्रारम्भ हो गया और यह मामला तभी तय हुआ जब कि प्रधान मंत्री ने स्पष्ट किया कि-

किसी विधेयक को धन विधेयक घोषित करने का अध्यक्ष का प्राधिकार अंतिम है; एक बार अध्यक्ष प्रमाण-पत्र दे दें, तो उसको चुनौती नहीं दी जा सकती; और कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं इसका प्रमाण-पत्र देने या इस बारे में फैसला करते समय अध्यक्ष के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह इस संबंध में किसी से परामर्श करे।[11]

धन विधेयक होने के संबंध में प्रमाण-पत्र केवल अध्यक्ष द्वारा ही दिया जा सकता है यदि अध्यक्ष का पद रिक्त न हो।[12]

स्वेच्छया वेतन अभ्यर्पण (करों से छूट) संशोधन विधेयक, 1955, लोक सभा द्वारा 18 फरवरी, 1956 को पारित किया गया था। उस समय अध्यक्ष महोदय दिल्ली से बाहर थे। उस विधेयक के संबंध में यह प्रमाण-पत्र दिया जाना था कि वह धन विधेयक है,

---

8. अनुच्छेद 110(3)।
9. अनुच्छेद 110(4) और नियम 96(2) और 128(1) ।
10. अध्यक्ष द्वारा विधेयक को धन विधेयक प्रमाणित किये जाने से पहले विधि मंत्रालय से पूछा गया था कि क्या प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में भी वह विधेयक धन विधेयक बना रहा।
11. *देखिए एच.पी. डिबेट्स* (II), 6.5.1953, कॉ. 5881-84 ।
12. *देखिए* अनुच्छेद 95(1) के साथ पठित अनुच्छेद 110(4)।

यद्यपि उपाध्यक्ष महोदय दिल्ली में थे। उस विधेयक को बिना इस प्रमाण-पत्र के कि यह धन विधेयक है राज्य सभा को भेज दिया गया, क्योंकि अध्यक्ष का पद रिक्त नहीं था।

दूसरी ओर, जब 27 फरवरी, 1956 को अध्यक्ष मावलंकर के निधन पर अध्यक्ष का पद रिक्त हो गया तो उपाध्यक्ष ने, जिसे संविधान के अनुच्छेद 95(1) के अंतर्गत अध्यक्ष पद के कार्य का निर्वहन करने की शक्ति प्राप्त है, एक विधेयक (विनियोग विधेयक 1956) को धन विधेयक होने का प्रमाण-पत्र दे दिया। इसके अतिरिक्त उसने राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजे गए एक और विधेयक (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विधेयक, 1956) की प्रतियों को भी प्रमाणित किया।

तेरहवीं लोक सभा के नौवें सत्र के दौरान भी जब 03 मार्च, 2002 को अध्यक्ष बालयोगी के अचानक निधन के कारण अध्यक्ष का पद रिक्त हो गया था, उपाध्यक्ष जो अध्यक्ष के पद के कार्य का निर्वहन कर रहे थे, ने निम्नलिखित विधेयकों को राज्य सभा को भेजे जाने से पूर्व धन विधेयकों के रूप में प्रमाणित किया था और उन्होंने उन्हें राष्ट्रपति को भेजने से पूर्व उनकी प्रतियों को भी प्रमाणित किया:

विनियोग (रेल) लेखानुदान विधेयक, 2002; विनियोग (रेल) विधेयक, 2002, विनियोग विधेयक, 2002; विनियोग (संख्याक–2) विधेयक, 2002; विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 2002; विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 2002; उत्तर प्रदेश विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 2002; उत्तर प्रदेश विनियोग विधेयक, 2002; जूट विनिर्मित उपकर (संशोधन) विधेयक, 2002; विनियोग (रेल) संख्याक–2 विधेयक, 2002; और विनियोग (संख्याक–3) विधेयक, 2002

पंजाब में अध्यक्ष द्वारा 7 मार्च, 1968 को विधान सभा की बैठक दो महीने तक के लिए स्थगित कर दी गई थी। इसके फलस्वरूप गंभीर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई क्योंकि बजट 31 मार्च से पूर्व पारित किया जाना था। इस अभूतपूर्व स्थिति से निपटने के लिए राज्यपाल ने 11 मार्च को विधान सभा का सत्रावसान कर दिया और दो दिन पश्चात् पंजाब विधान मंडल (वित्तीय कार्य संबंधी प्रक्रिया का विनियमन) अध्यादेश प्रख्यापित किया जिसकी धारा 3 में यह व्यवस्था थी कि विधान मंडल के किसी भी सदन की बैठक सदन की अनुमति के बिना तब तक स्थगित नहीं की जायेगी जब तक कि वित्तीय कार्य पूरा न कर लिया जाये। जब विधान सभा की 18 मार्च को आमंत्रित बैठक हुई, तो अध्यक्ष ने सदन की बैठक को आमंत्रित करने के राज्यपाल के आदेश को "अवैध, असंवैधानिक और अमान्य" करार दिया और दो महीने तक सदन को स्थगित करने की अपनी पहली व्यवस्था की पुन: पुष्टि की और चैम्बर से उठकर चले गये। तथापि, अध्यादेश के निदेशों के अनुसार सदन की बैठक जारी रही और उपाध्यक्ष ने सभा की अध्यक्षता की और सभा की कार्यवाही हुई। सभा द्वारा दो विनियोग विधेयक पारित किये गये और उपाध्यक्ष द्वारा यह प्रमाणित करने के उपरांत कि ये धन विधेयक हैं उन्हें विधान परिषद को भेजा गया। विधान परिषद द्वारा विधेयक पारित किये जाने के उपरांत उपाध्यक्ष द्वारा दिये गये एक अन्य प्रमाण-पत्र सहित इन विधेयकों को राज्यपाल के समक्ष रखा गया और राज्यपाल ने विधेयकों पर अपने हस्ताक्षर करके अनुमति प्रदान की।

यदि अध्यक्ष अपने कर्त्तव्य का परित्याग करके पंजाब जैसी स्थिति उत्पन्न करता है जिससे राज्य के संवैधानिक और प्रशासनिक तंत्र को गंभीर खतरा उत्पन्न हो जाता है, तो उपाध्यक्ष किसी धन विधेयक को प्रमाणित कर सकता है, यद्यपि, उसके लिए संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया है। पंजाब के मामले में उपाध्यक्ष द्वारा विधेयकों को प्रमाणित करने को उच्चतम न्यायालय द्वारा

अनुमोदित किया गया। उच्चतम न्यालयाल ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की:

> जब उपाध्यक्ष धन विधेयक पारित होने के समय अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अनुच्छेद 180(2) के अंतर्गत अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है तो वह अनुच्छेद 199(4) के अंतर्गत धन विधेयक को कारगर ढंग से प्रमाणित कर सकता है, यद्यपि अनुच्छेद 199(4) में केवल विधान सभा के अध्यक्ष का ही उल्लेख किया गया है।[13]

एक अन्य मामले में पटना उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की:

> यदि कोई धन विधेयक अध्यक्ष के प्रमाण-पत्र के बिना जैसा कि अनुच्छद 199(4) के अन्तर्गत अपेक्षित है, विधान परिषद को भेजा जाता है और इसके स्थान पर विधेयक के साथ "पीठासीन सदस्य, जो अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहा है," द्वारा दिया गया प्रमाण-पत्र लगा है, तो यह तर्क, कि विधेयक राज्य विधान मंडल द्वारा विधिमान्य रूप से पारित नहीं किया गया है और इसे संवैधानिक दृष्टि से अवैध माना जाना चाहिए, अनुच्छेद 212 को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस अनुच्छेद में यह उल्लेख है कि किसी राज्य के विधान मंडल की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।[14]

धन विधेयकों के संबंध में विशेष प्रक्रिया

धन विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है।[15] लोक सभा द्वारा पारित किये जाने के बाद विधेयक को राज्य सभा को उसकी सिफारिश के लिए पारेषित किया जाता है और सदन से अपेक्षित होता है कि वह विधेयक प्राप्त होने की तारीख से 14 दिन की अवधि के भीतर अपनी सिफारिशों, यदि कोई हों, सहित उस विधयेक को लोक सभा को लौटा दे।

---

13. *पंजाब राज्य बनाम सत्य पाल डांग,* ए.आई.आर. 1969 एस.सी. 903 । इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के कानूनी आशय के संबंध में गुजरात विधान सभा के अध्यक्ष राघवजी ल्यूवा की अध्यक्षता में गठित पीठासीन अधिकारियों की एक समिति द्वारा चर्चा की गई थी। समिति इस निर्णय पर पहुंची कि: संविधान के अंतर्गत किसी धन विधेयक को प्रमाणित करने के लिए अध्यक्ष की शक्तियों का प्रत्यायोजन विचारणीय नहीं है;
    अध्यक्ष स्वविवेक से यह निर्णय करता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं; और उच्चतम न्यायालय का निर्णय केवल किसी विशेष मामले में उत्पन्न परिस्थितियों के संबंध में है और यह सभी मामलों में लागू नहीं होता है-ल्यूवा कमेटी रिपोर्ट, पैरा 8 ।
14. *पटना जिला ट्रक ओनर्स एसोसिएशन बनाम स्टेट ऑफ बिहार,* ए.आई.आर. 1963, पटना 16।
15. अनुच्छेद 109 ।
    राज्य सभा के एक सदस्य ने भारतीय आय कर अधिनियम, 1922 में संशोधन करने के लिए एक विधेयक की सूचना दी। राज्य सभा के सभापति ने 5 अप्रैल, 1956 को वह विधेयक अध्यक्ष को भेजा जिससे वह यह निर्णय ले सके कि क्या वह विधेयक धन विधेयक है या नहीं। अध्यक्ष अय्यंगर ने उसे धन विधेयक माना। इस बात की सूचना राज्य सभा के सभापति को दे दी गई और वह विधेयक राज्य सभा में पुर:स्थापित नहीं किया गया।

लोक सभा, राज्य सभा द्वारा की गयी सभी सिफारिशों या किन्हीं सिफारिशों को स्वीकार कर सकती है या उन्हें अस्वीकार कर सकती है। यदि लोक सभा, राज्य सभा द्वारा की गयी किसी सिफारिश को स्वीकार कर लेती है तो विधेयक, राज्य सभा द्वारा सिफारिश किए गए और लोक सभा द्वारा स्वीकार किये गये संशोधनों सहित दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया समझ लिया जाता है। परन्तु, यदि लोक सभा, राज्य सभा की किसी भी सिफारिश को स्वीकार नहीं करती तो राज्य सभा द्वारा सिफारिश किए गए किसी संशोधन के बिना संसद के दोनों सदनों द्वारा विधेयक को उस रूप में पारित किया गया समझा जाता है जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया था।[16]

ऐसे अवसर भी आये हैं जबकि राज्य सभा ने अपनी सिफारिशों सहित धन विधेयक लौटाये हैं और राज्य सभा द्वारा की गई सिफारिशों को, जो कि औपचारिक स्वरूप की थीं, लोक सभा द्वारा स्वीकार किया गया है।[17]

यदि राज्य सभा 14 दिन की विहित अवधि के भीतर विधेयक को न लौटाये तो उस अवधि की समाप्ति पर वह विधेयक उसी रूप में दोनों सदनों द्वारा पारित हुआ मान लिया जाता है जिस रूप में उसे लोक सभा ने पारित किया था।[18]

---

16. वित्त (संख्या 2) विधेयक, 1977 और वित्त विधेयक, 1978 के मामलों में राज्य सभा द्वारा की गई सिफारिशें लोक सभा द्वारा क्रमशः 2 अगस्त, 1977 और 11 मई, 1978 को स्वीकार नहीं की गईं और इन विधेयकों को दोनों सदनों द्वारा उसी रूप में पारित किया गया मान लिया गया जिस रूप में लोक सभा द्वारा पारित किया गया था और उन्हें राष्ट्रपति की अनुमति हेतु भेजा गया।

17. ट्रावनकोर-कोचीन विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1956 और संघ उत्पाद शुल्क (वितरण) विधेयक, 1957 के मामले में राज्य सभा द्वारा की गई सिफारिशें लोक सभा द्वारा क्रमशः 3 मई, 1956 और 12 दिसम्बर, 1957 को स्वीकार की गईं। इसी प्रकार 30 जनवरी, 1985 को राज्य सभा द्वारा विनियोग (रेल) विधेयक, 1985, विनियोग (रेल) संख्यांक 2 विधेयक, 1985, विनियोग विधेयक, 1985, विनियोग (संख्यांक 2) विधेयक, 1985 और पंजाब विनियोग विधेयक, 1985 जो गणराज्य वर्ष में परिवर्तन करने अर्थात् पैंतीसवें से छत्तीसवें करने से संबंधित था, के बारे में की गई सिफारिशें लोक सभा द्वारा स्वीकार की गईं।

18. लोक सभा द्वारा यथापारित निम्नलिखित विधेयक उनके सामने दर्शायी गई तिथियों को संदेश सहित राज्य सभा को भेजे गये;

    (*i*) विनियोग (रेल) संख्यांक 4 विधेयक, 1978-21 दिसम्बर, 1978 ।

    (*ii*) विनियोग (रेल) संख्यांक 5 विधेयक, 1978-21 दिसम्बर, 1978 ।

    (*iii*) विनियोग (संख्यांक 5) विधेयक, 1978-22 दिसम्बर, 1978 ।

14 दिन की अवधि की गणना राज्य सभा सचिवालय में धन विधेयक के पहुंचने की तिथि से की जाती है न कि उस तिथि से जबकि उसे राज्य सभा के पटल पर रखा जाता है।

तथापि, 26 दिसम्बर, 1978 को उपर्युक्त विधेयकों में से किसी भी विधेयक पर विचार किये बिना राज्य सभा का सत्रावसान हो गया। तदनुसार इन विधेयकों को संविधान के अनुच्छेद 109 के खंड (5) के अन्तर्गत राज्य सभा सचिवालय में इनकी प्राप्ति की तिथि से 14 दिन की अवधि के समाप्त होने पर अर्थात् निम्नलिखित तिथियों को दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया गया:

(*i*) विनियोग (रेल) संख्यांक 4 विधेयक, 1978-5 जनवरी, 1979 को।

(*ii*) विनियोग (रेल) संख्यांक 5 विधेयक, 1978-5 जनवरी, 1979 को।

(*iii*) विनियोग (संख्यांक 5) विधेयक, 1978-6 जनवरी, 1979 को।

चौदह दिन की अवधि की गणना करने में राज्य सभा सचिवालय द्वारा इन विधेयकों की प्राप्ति की तिथियां, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 9(1) के उपबंधों के अनुसार, जो अनुच्छेद 367 के अंतर्गत संविधान के निर्वचन के लिए लागू होता है, सम्मिलित नहीं की गई। तदनुसार उपर्युक्त (*i*) और (*ii*) में उल्लिखित विधेयक 6 जनवरी, 1979 को और उपर्युक्त (*iii*) में उल्लिखित विधेयक 8 जनवरी, 1979 को (7 जनवरी, 1979 को रविवार होने के कारण) विधि मंत्रालय के माध्यम से राष्ट्रपति को उनकी अनुमति हेतु प्रस्तुत किये गये थे।

दसवीं लोक सभा के सोलहवें सत्र के दौरान निम्नलिखित धन विधेयक, लोक सभा द्वारा यथापारित, 12 मार्च, 1996 को संदेश सहित राज्य सभा को भेजे गये :—

(*i*) विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1996 ।

(*ii*) विनियोग विधेयक, 1996 ।

(*iii*) वित्त विधेयक, 1996 ।

(*iv*) विनियोग (रेल) लेखानुदान विधेयक, 1996 ।

(*v*) विनियोग (रेल) संख्यांक 2 विधेयक, 1996 ।

(*vi*) विनियोग (रेल) विधेयक, 1996 ।

(*vii*) उत्तर प्रदेश विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1996 ।

(*viii*) उत्तर प्रदेश विनियोग विधेयक, 1996 ।

(*ix*) जम्मू और कश्मीर विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1996 ।

(*x*) जम्मू और कश्मीर विनियोग विधेयक, 1996 ।

राज्य सभा की बैठक उपर्युक्त विधेयकों में से किसी भी विधेयक पर विचार किए बिना 12 मार्च, 1996 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गई। तदनुसार इन विधेयकों को राज्य सभा सचिवालय में इनकी प्राप्ति की तिथि से 14 दिन की अवधि के समाप्त होने पर 27 मार्च, 1996 को संविधान के अनुच्छेद 109 के खंड (5) के अंतर्गत दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया मान लिया गया। उपर्युक्त सभी विधेयकों को 27 मार्च, 1996 को विधि मंत्रालय के माध्यम से राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजा गया। विधेयकों पर उसी दिन अनुमति प्राप्त हो गई।

धन विधेयक लोक सभा द्वारा पारित होने के तुरंत बाद राज्य सभा को भेज दिया जाता है, जब तक कि अध्यक्ष ने इसके विपरीत कोई आदेश न दिया हो।[19]

(एफ. संख्या 1/6(3)/96/एल-1, 1/6(2)/96/एल-1, 1/6(1)/96/एल-1, 1/14(1)/96-एल-1, 1/14(3)/96 एल-1, 1/14(2)/96/एल-1, 1/6(5)/96/एल-1, 1/6(4)/96/एल-1, 16(7) 96/एल-1 और 1/6(6)/ 96/एल-1

बारहवीं लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान 17 मार्च, 1999 को लोक सभा द्वारा यथापारित निम्नलिखित धन विधेयक उसी दिन संदेश सहित राज्य सभा को भेजे गये-

(*i*) विनियोग (लेखानुदान), विधेयक, 1999 ।

(*ii*) विनियोग विधेयक, 1999 ।

(*iii*) विनियोग (संख्यांक 2) विधेयक, 1999 ।

राज्य सभा की बैठक 19 मार्च, 1999 को उपर्युक्त विधेयकों पर विचार किए बिना 12 अप्रैल, 1999 को पुन: समवेत होने तक के लिए स्थगित हो गई। तदनुसार राज्य सभा सचिवालय में इन विधेयकों के पारित होने के बारे में संदेश प्राप्त होने की तारीख से 14 दिन की अवधि समाप्त होने पर इन विधेयकों को 1 अप्रैल, 1999 को दोनों सभाओं द्वारा पारित किया गया मान लिया गया। विधेयकों पर 1 अप्रैल, 1999 को राष्ट्रपति की अनुमति भी मिल गई।

चौदहवीं लोक सभा के दौरान उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) संशोधन विधेयक, 2008 लोक सभा द्वारा 22 दिसंबर, 2008 को पारित किया गया और उसे संदेश सहित उसी दिन राज्य सभा को भेज दिया गया। राज्य सभा अपने 214वें सत्र के दौरान इस विधेयक पर विचार नहीं कर सकी और 23 दिसंबर 2008 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गयी। चूंकि लोक सभा अध्यक्ष द्वारा इस विधेयक को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया गया था। अत: इसे राज्य सभा में प्राप्ति के संदेश की तारीख से 14 दिन की अवधि समाप्त होने के पश्चात् 6 जनवरी 2009 को दोनों सभाओं द्वारा पारित मान लिया गया। विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति 5 फरवरी 2009 को मिल गयी।

तदनुसार, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 5 के उपबंध के अनुसार विधेयकों को 31 मार्च, 1999 के समाप्त होने पर अर्थात् इसके प्रारम्भ होने के पहले दिन की समाप्ति के तत्काल बाद लागू मान लिया गया।

19. भारतीय टैरिफ (संशोधन) विधेयक, 1955 जो कि धन विधेयक था, जिसे लोक सभा द्वारा 26 जुलाई, 1955 को उस समय पारित किया गया, जब राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा था, लेकिन राज्य सभा का सत्र कुछ समय बाद प्रारम्भ होना था। अध्यक्ष मावलंकर ने सभा में एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने कहा कि कानूनी निर्वचन के अनुसार जब राज्य सभा का सत्र न चल रहा हो तो उस समय भी राज्य सभा के सचिव को कोई विधेयक भेजा जा सकता है और यह मान लिया जायेगा कि वह विधेयक राज्य सभा को मिल गया है। लेकिन उन्होंने कहा, "मैं सचिव को निर्देश दे रहा हूं कि इस विधेयक को फौरन राज्य सभा को न भेजें बल्कि कुछ समय बाद भेजें जिससे कि राज्य सभा का सत्र प्रारम्भ होने से पहले 14 दिन की अवधि समाप्त न हो जाए। इससे राज्य सभा को उस विधेयक पर विचार करने का अवसर मिल जायेगा।" *लो.स.वा.वि.*, 1.8.1955, कॉ.514-15 ।

किसी धन विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है। लेकिन जहां कोई विधेयक अनुच्छेद 110(1) के उप खंड (क) से (च) में निर्दिष्ट मामलों में से किसी मामले के आनुषंगिक विषय के संबंध में हो तो उस विधेयक के पुर:स्थापित किये जाने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता नहीं है।[20]

भारतीय आय कर (संशोधन) विधेयक, 1956, 16 मई, 1956 को लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया था। उसका उद्देश्य भारतीय आय कर अधिनियम, 1922 की धारा 5 की उपधारा 7(क) में एक व्याख्या जोड़ना था, जिससे कि उस उपधारा में प्रयुक्त शब्द 'मामले' के अर्थ को अधिक स्पष्ट किया जा सके। यह माना गया कि चूंकि इस विधेयक में मूल अधिनियम में प्रयुक्त शब्द 'मामले' के अर्थ को स्पष्ट किया गया है, इसलिए इस विधेयक के उपबंधों को आय कर के अधिरोपण या विनियमन के प्रयोजन के लिए आनुषंगिक माना जा सकता है। चूंकि वह विधेयक अनुच्छेद 110(1) के उपखंड (छ) में विनिर्दिष्ट बातों से संबंधित था, इसलिए इसे धन विधेयक माना गया। परन्तु अनुच्छेद 117 के खंड (1) के अंतर्गत उस विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक नहीं समझी गई।

धन विधेयक दोनों सदनों की संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता।

आय कर विधेयक, 1961, जिसे 24 अप्रैल, 1961 को पुर:स्थापित किया गया था, का उद्देश्य आय कर तथा अधि-कर के संबंध में विधि में संशोधन तथा उसका समेकन

इसी प्रकार ट्रावनकोर-कोचीन विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1956 जो कि धन विधेयक था, लोक सभा द्वारा 29 मार्च, 1956 को पारित किया गया। इसे भी अध्यक्ष के निर्देशानुसार रोके रखा गया क्योंकि उस समय राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा था। ऐसा इसलिए किया गया कि राज्य सभा उस पर विचार करके उसे 14 दिन के भीतर लौटा सके। इसलिए इस विधेयक को राज्य सभा के पास सभा की बैठक पुन: होने पर भेजा गया।

चौदहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र के दौरान निम्नलिखित तीन धन विधेयक 24 अक्तूबर 2008 को लोक सभा द्वारा पारित किए गए:

(*i*) राष्ट्रपति की परिलब्धियां और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 2008;

(*ii*) उपराष्ट्रपति की पेंशन (संशोधन) विधेयक, 2008; और

(*iii*) संसद अधिकारी वेतन और भत्ता (संशोधन) विधेयक, 2008 ।

जब तक उपरोक्त तीनों विधेयक लोक सभा द्वारा पारित किए गए। राज्य सभा 10 दिसंबर 2008 को पुन: समवेत होने के लिए पहले ही स्थगित की जा चुकी थी। राज्य सभा को चर्चा का अवसर प्रदान करने और 14 दिनों की निर्धारित अवधि के अन्दर विधेयक को लोक सभा को वापस करने के लिए उपरोक्त तीनों विधेयकों के संबंध में दूसरी सभा को भेजे जाने वाले संदेश को अध्यक्ष के निदेश के अधीन 8 दिसम्बर, 2008 तक। रोक लिया गया। और इन्हे 15 दिसम्बर, 2008 को बिना किसी सिफारिश के लोक सभा को लौटा दिया गया।

20. अनुच्छेद 110(1) (छ) के साथ पठित अनुच्छेद 117 (1) ।

करना था। 19 अप्रैल, 1961 को वित्त मंत्री ने उस विधेयक को दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव की सूचना दी। चूंकि अध्यक्ष ने इस विधेयक को धन विधेयक माना था, इसलिए वित्त मंत्री को सूचना दी गई कि यह विधेयक संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता। उसके बाद मंत्री ने एक संशोधित प्रस्ताव की सूचना दी, जिसमें कहा गया था कि विधेयक को सभा की प्रवर समिति को सौंपा जाये।

जब 26 अप्रैल, 1961 को राज्य सभा में एक सदस्य ने उस विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपने के संबंध में प्रश्न उठाया, तो राज्य सभा के सभापति ने बताया कि केवल वित्त विधेयक ही संयुक्त समिति को सौंपे जा सकते हैं, धन विधेयक नहीं। चूंकि अध्यक्ष ने आय कर विधेयक, 1961 के धन विधेयक होने की पुष्टि की है, इसलिए उसे संयुक्त समिति को सौंपने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

उससे पहले मद्रास सरकार द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या कोई धन विधेयक किसी राज्य के विधान मंडल के दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है या नहीं, विधि मंत्री ने यह विचार प्रकट किया था:

जहां तक धन विधेयकों का संबंध है, संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में बताये गये आशय स्पष्ट हैं। विधान परिषद का काम तो तभी प्रारम्भ होता है जबकि ऐसे विधेयक पर विधान सभा में चर्चा हो चुकी हो, उससे पहले नहीं। विधान सभा द्वारा विधेयक के गुणावगुणों पर विचार से पहले ही संयुक्त/प्रवर समिति की प्रक्रिया को मंजूरी देना संविधान के उपबंधों और उसके आशय, दोनों का उल्लंघन है। संविधान में धन विधेयकों के संबंध में एक बहुत ही विशिष्ट प्रक्रिया की व्यवस्था की गयी है और उस प्रक्रिया का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। ऐसे विधेयक को संयुक्त/प्रवर समिति को सौंपना प्रक्रिया के अनुकूल नहीं होगा। संविधान का यह आशय कभी नहीं रहा कि विधान परिषद या उसकी समितियां विधान सभा द्वारा धन विधेयक के पारित किये जाने से पहले उसके किसी प्रक्रम पर विचार करें।[21]

अध्यक्ष ने निदेश दिया है कि मंत्रालयों को चाहिए कि वे कराधान उपायों (उपकर के उद्ग्रहण सहित) को अन्य सभी मामलों से पृथक रखने के सभी प्रयास करें और तदनुसार विधेयक का प्रारूप तैयार करें तथापि, यदि किसी मामले विशेष में संवैधानिक और कानूनी आधार पर ऐसा करना असंभव हो तो अध्यक्ष के विचार के लिए एक ज्ञापन प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जिसमें संयुक्त विधेयक सभा के समक्ष प्रस्तुत करने के कारणों का उल्लेख हो इस ज्ञापन पर विचार करने के बाद यदि अध्यक्ष अनुमति दें तो तभी इस विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए कार्य-सूची में शामिल किया जा सकेगा।[22]

---

21. कार्यवाही सारांश (पहली लोक सभा की नियम समिति), 15.4.1953 ।

22. चौदहवीं लोक सभा के तेरहवें सत्र के दौरान 26 फरवरी, 2008 को विधेयक के प्रभारी मंत्री ने चीनी विकास निधि (संशोधन) विधेयक, 2008 के पुन:स्थापन हेतु सूचना दी। विधेयक का आशय चीनी विकास निधि अधिनियम, 1982 और चीनी उपकर अधिनियम, 1982 में संशोधन करना था। विधेयक का आशय चीनी विकास निधि (संशोधन अध्यादेश, 2008 का स्थान लेना भी था। चूँकि विधेयक के कराधान और अन्य विषयों से संबंधित उपबंध अंतर्निष्ट

वित्त विधेयक

संविधान में धन विधेयकों तथा वित्त विधेयकों के बीच विभेद किया गया है।[23] वित्त विधेयकों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है: पहली श्रेणी में वे विधेयक हैं जिनमें उन विशेष विषयों में से किसी के भी संबंध में उपबंध किया गया हो, जिनके कारण कोई विधेयक धन विधेयक बन जाता है, परंतु इनमें केवल वही विषय नहीं हैं;[24] दूसरी श्रेणी में ऐसे विधेयक आते हैं जो, यदि अधिनियमित हो जायें और लागू हो जायें तो, उन पर भारत की संचित निधि में से खर्च करना पड़ेगा।[25] संदर्भ की सुविधा के लिए पहले को वित्त विधेयक श्रेणी 'क' और दूसरे को वित्त विधेयक श्रेणी 'ख' में रखा जा सकता है।

श्रेणी 'क' के वित्त विधेयक

श्रेणी 'क' के अंतर्गत आने वाला वित्त विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है और उसे पुर:स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी है[26] यदि

थे, मंत्रालय से अध्यक्ष के अवलोकन हेतु एक ज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था जिसमें ये कारण बताये गए हों कि ये पृथक विधेयक पुर:स्थापित करके कराधान के मामलों से संबंधित भाग को अन्य मामलों से पृथक क्यों नहीं किया जा सकता। मंत्रालय से अपेक्षित ज्ञापन प्राप्त होने पर अध्यक्ष ने विधेयक को पुन:स्थापित करने की अनुमति देते हुए समय यह निदेश दिया कि भविष्य में विधेयकों (अध्यादेशों सहित) का प्रारूप तैयार करते समय, जब तक अति आवश्यक न हो, कराधान से संबंधित विषयों को एक ही विधेयक में अन्य उपबंधों के साथ सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। प्रशासनिक मंत्रालय और संसदीय कार्य मंत्रालय तथा विधि और न्यायमंत्रालय को अध्यक्ष के आदेश की लिखित सूचना दे दी गई थी।

23. संविधान के अनुच्छेद 117 में वे मामले आते हैं जबकि संसद के समक्ष न केवल कराधान प्रस्ताव (उपकर के उद्ग्रहण सहित) बल्कि अन्य मामलों के विधेयक प्रस्तुत किये जाते हैं। इन विधेयकों को अनुच्छेद 110 के अंतर्गत धन विधेयक नहीं कहा जा सकता। अत: अनुच्छेद 117 के अंतर्गत संयुक्त या मिश्रित विधेयक प्रस्तुत करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। तथापि, संयुक्त या मिश्रित किस्म के विधेयक जहां तक संभव हो सके बहुत कम होने चाहिएं और उन्हीं मामलों में ये प्रस्तुत किये जाने चाहिए जहां कराधान प्रस्ताव तथा इनसे संबंधित अन्य मामलों को पृथक करना संभव नहीं है—तेल उद्योग (विकास)विधेयक, 1974 के संबंध में उठाये गये व्यवस्था के प्रश्न पर अध्यक्ष का विनिर्णय-*लो.स.वा.वि.,* 19.8.1974, पृ. 131-33।
24. वे विधेयक जो अनुच्छेद 117 के खंड (1) के अंतर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए *देखिए* वाणिज्य पोत परिवहन (संशोधन) विधेयक, 1977, सम्पदा शुल्क (संशोधन) विधेयक, 1984 और केंद्रीय सड़क निधि (संशोधन) विधेयक, 2006।
25. वे विधेयक जो अनुच्छेद 117 के खंड (3) के अंतर्गत आते हैं।
26. यह संदेह उत्पन्न होने पर कि क्या राज्य सभा में पुर:स्थापित और पारित विधेयक संविधान के अनुच्छेद 117(1) के अंतर्गत आता है। जिसमें राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि विधेयक के किसी विशिष्ट खण्ड से अनुच्छेद 110(क) का खंड (क) प्रभावित होता है पीठासीन अधिकारी ने इसे सभा पर छोड़ दिया कि वह चाहे तो उस खंड को निकाल सकती है या उसे स्वीकार कर सकती है। राज्य सभा द्वारा यथापारित बोनस संदाय (संशोधन) विधेयक, 1976 लोक सभा ने पारित कर दिया-*लो.स.वा.वि.,* 4.2.1976, कॉ. पृ. 19-22 ।

ऐसा विधेयक इस सिफारिश के बिना पुर:स्थापित कर दिया जाये तो उसे वापस लेना पड़ता है परंतु राष्ट्रपति की आवश्यक सिफारिश मिल जाने पर इसे पुन: पुर:स्थापित किया जा सकता है।[27] सामान्यत: ऐसा विधेयक दोनों सदनों की संयुक्त समिति को नहीं सौंपा जा सकता। लेकिन लोक सभा विशेष मामलों में सम्बद्ध नियम के निलम्बन का प्रस्ताव स्वीकार करके ऐसे विधेयकों को संयुक्त समिति को सौंप सकती है।[28] एक अवसर पर श्रेणी 'क' का विधेयक नियम 74 के परंतुक को निलम्बित किए बिना संयुक्त समिति को सौंपा गया है।[29]

श्रेणी 'ख' के वित्त विधेयक

जब किसी विधेयक में अन्य बातों के साथ-साथ भारत की संचित निधि से खर्च के एक या कई प्रस्ताव हों, उदाहरण के लिए यह उपबंध किया गया हो कि अधिकारियों या अन्य प्राधिकारियों की नियुक्ति की जाए या किसी संस्था की स्थापना की जाये तो यह श्रेणी 'ख' का वित्त विधेयक बन जाता है। ऐसे विधेयकों के उदाहरण इस प्रकार हैं:

भारतीय स्टेट बैंक विधेयक, 1955,[30] अग्रिम संविदा (विनियम) संशोधन विधेयक,

---

27. उदाहरण के लिए कर्मचारी राज्य बीमा विधेयक, 1951 को राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त होने के बाद 28 अप्रैल, 1951 को वापस लेना पड़ा, उसे उसी दिन पुन: पुर:स्थापित किया गया है।
28. उदाहरण के लिए निम्नलिखित वित्त विधेयकों के संबंध में नियम 74 के पहले परंतुक को निलम्बित कर दिया गया और उसके बाद इन विधेयकों को दोनों सदनों की संयुक्त समितियों को सौंप दिया गया—राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956, *लो.स.वा.वि.* (II), 23.4.1956, दिल्ली नगर निगम विधेयक, 1957, *लो.स.वा.वि.,* 9.9.1957; वाणिज्य पोत परिवहन विधेयक, 1958, *लो.स.वा.वि.,* 25.2.1958; भारतीय स्टेट बैंक समनुषंगी बैंक विधेयक; 1959, *लो.स.वा.वि.,* 29.4.1959, कंपनी (संशोधन) विधेयक 1959, *लो.स.वा.वि.* 6.5.1959, त्रिपुरा भू-राजस्व तथा भूमि सुधार विधेयक 1959; *लो.स.वा.वि.,* 11.12.1959; मणिपुर भू-राजस्व तथा भूमि सुधार विधेयक, 1959, *लो.स.वा.वि.,* 15.12.1959; साधारण बीमा कारोबार (राष्ट्रीयकरण) विधेयक, 1972, *लो.स.वा.वि.,* 30.5.1972; लोक वित्तीय संस्था विधि (संशोधन) विधेयक, 1973 *लो.स.वा.वि.,* 25.3.1974; जीवन बीमा निगम, विधेयक, 1983, *लो.स.वा.वि,* 21.12.1983; और लोक पाल विधेयक, 1985, *लो.स.वा.वि,* 28.8.1985 ।
29. बहुराज्य सहकारी सोसायटी विधेयक, 1977 के मामले में नियम 74 के परन्तुक को निलंबित नहीं किया गया, क्योंकि अध्यक्ष ने यह माना कि नियम का परंतुक अनावश्यक है और वित्त विधेयकों के मामले में इसका निलंबन आवश्यक नहीं है। उसी दिन श्रेणी 'क' के एक अन्य वित्त विधेयक मानसिक स्वास्थ्य विधेयक, 1978, जो कि नियम 74 के परंतुक का निलंबन करके संयुक्त समिति को भेजा जाना था, संयुक्त समिति को नियम 74 के परन्तुक का निलंबन किए बिना ही भेजा गया- *लो.स.वा.वि.,* 15.5.1978, पृ. 126-27 ।
30. विधेयक में अन्य बातों के साथ-साथ भारतीय स्टेट बैंक द्वारा अनुरक्षित एकीकरण और विकास निधि में संघ सरकार द्वारा अंशदान किये जाने और बैंक के खातों की जांच करने और रिपोर्ट तैयार करने के लिए लेखा परीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

1960,[31] उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (न्यायाधीश संख्या) संशोधन विधेयक, 1977,[32] ब्रह्मपुत्र बोर्ड विधेयक, 1980,[33] राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड विधेयक, 1986[34] और आवश्यक वस्तु (विशेष उपबंध) चालू रखने का विधेयक, 1987[35], माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक देख-रेख और कल्याण विधेयक, 2007[36] और राजीव गांधी राष्ट्रीय युवा विकास संस्थान विधेयक, 2011[37].

श्रेणी 'क' के वित्त विधेयक या धन विधेयक के विपरीत श्रेणी 'ख' के वित्त विधेयक, जिसके लिए भारत की संचित निधि में से खर्च करना होता है, को दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है और उसे पुर:स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी नहीं है। तथापि उस पर प्रत्येक सदन में विचार के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है और जब तक ऐसी सिफारिश नहीं मिल जाती, दोनों में से कोई भी सदन ऐसे विधेयक को पारित नहीं कर सकता।[38]

> यदि राष्ट्रपति की सिफारिश सहित लोक सभा द्वारा पारित कोई विधेयक राज्य सभा संशोधन सहित वापस कर देती है तो राज्य सभा द्वारा किये गये संशोधन पर विचार करने के लिए राष्ट्रपति की दुबारा से सिफारिश की आवश्यकता नहीं है चाहे उसके परिणामस्वरूप

---

31. इस बात की संभावना थी कि इससे वायदा बाजार आयोग का काम कुछ और बढ़ जाएगा और आयोग को एक चौथा सदस्य और कुछ अतिरिक्त कर्मचारी नियुक्त करने पड़ सकते हैं।
32. विधेयक में उच्चतम न्यायालय में चार और न्यायाधीश नियुक्त करके न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने की व्यवस्था की गई।
33. विधेयक में अन्य बातों के साथ-साथ ब्रह्मपुत्र घाटी में बाढ़ और भूमि के कटाव पर नियंत्रण करने के लिए योजना बनाने और उपायों का एकीकृत रूप से कार्यान्वयन करने हेतु एक बोर्ड का गठन करने की व्यवस्था की गई।
34. विधेयक में आतंकवादी गतिविधियों का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड के नाम से केन्द्र का एक सशस्त्र बल गठित करने और विद्यमान बल को एक कानूनी बल के रूप में मानने की व्यवस्था की गई।
35. विधेयक में समाप्त हो रहे कानून की अवधि 5 से 10 वर्ष बढ़ाने की व्यवस्था थी। मूल अधिनियम के अंतर्गत गठित प्रवर्तन तंत्र का व्यय पांच वर्ष तक केन्द्रीय सरकार को वहन करना था।
36. विधेयक में अन्य बातों के साथ इस बात का उपबंध किया गया था कि माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की देख-रेख के लिए आवश्यकता आधारित उचित तंत्र उपलब्ध कराया जाए जिसमें बेहतर चिकित्सा सुविधाओं के प्रावधान हों और प्रत्येक जिले में एक 'ओल्ड एज होम' स्थापित किया जाए।
37. विधेयक में अन्य बातों के साथ-साथ राजीव गांधी राष्ट्रीय युवा विकास संस्थान के संस्थापन और इसे राष्ट्रीय महत्व का संस्थान घोषित करने का उपबंध करना था।
38. अनुच्छेद 117(3); साथ ही *देखिए एल.एस.डिबेट्स* (II), 29.9.1955, कॉ. 15760-813 ।

खर्च में वृद्धि ही क्यों न हो गयी हो। इसी प्रकार प्रवर समिति/संयुक्त समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित किसी विधेयक पर विचार करने के लिए और उससे संबंधित संशोधित वित्तीय ज्ञापन के लिए राष्ट्रपति की नई सिफारिश की आवश्यकता नहीं है, चाहे समिति द्वारा विधेयक में परिवर्तन किए जाने पर खर्च में वृद्धि ही क्यों न हो गयी हो।

किसी विधेयक पर विचार करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव पेश करने से पहले उसके प्रभारी सदस्य को प्राप्त करनी पड़ती है।

विधि मंत्री ने यह विचार व्यक्त किया कि यदि विधेयक को पारित करने का प्रस्ताव पेश करने से पहले राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त कर ली जाये तो, यद्यपि संविधान की अपेक्षा पूरी हो जाती है तथापि राष्ट्रपति द्वारा इसकी सिफारिश न किए जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। अत: विधेयक पर विचार का प्रक्रम प्रारम्भ होने से तुरंत पूर्व, प्रस्तावक को राष्ट्रपति की सिफारिश सभा के सामने रखनी चाहिए, जिससे कि सभा ऐसे काम में न लगी रहे, जो अन्ततोगत्वा निष्फल साबित हो।[39]

सरकारी विधेयक के मामले में, राष्ट्रपति की सिफारिश उस समय प्राप्त की जा सकती है जब कि विधेयक पर चर्चा हो रही हो।[40]

यदि इस संबंध में संदेह हो कि किसी विधेयक के अधिनियमित होने के बाद भारत की संचित निधि में से खर्च करना पड़ेगा या नहीं तो संबंधित मंत्री से कहा जाता है कि वह विधेयक पर विचार के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश प्रस्तुत करे या यह प्रमाणपत्र दे कि इस विधेयक के पारित होने के बाद कोई खर्च नहीं करना पड़ेगा।

किसी ऐसे विधेयक पर भी विचार करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है जिसके अधिनियमित होने पर अप्रत्यक्ष रूप से खर्च करना पड़े।[41]

श्रेणी 'क' का कोई वित्त विधेयक यदि अधिनियमित हो जाये तो उसके लिए भी भारत की संचित निधि में से खर्च करना पड़ सकता है। ऐसी दशा में, इस विधेयक के पुर:स्थापित किये जाने तथा उस पर विचार करने, दोनों के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है।[42]

---

39. *पी. डिबेट्स* (II), 12.4.1951, कॉ. 6727-28 ।
40. उदाहरणार्थ, निवारक निरोध (जारी रखना) विधेयक, 1960 के बारे में देखिए *लो.स.वा.वि.,* 1.12.1960, पृ. 1714-22 ।
41. *एल.एस. डिबेट्स,* 1.12.1960, कॉ. 3418-22 ।
42. ऐसे विधेयकों के उदाहरण हैं: कम्पनी (संशोधन) विधेयक 1959; विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर तथा पुनर्वास) दूसरा संशोधन विधेयक, 1959; त्रिपुरा भू-राजस्व तथा भूमि सुधार विधेयक, 1960; सम्पदा शुल्क (संशोधन) विधेयक, 1960; राष्ट्रीय आवास बैंक विधेयक, 1987; लघु और आनुषंगिक उपक्रमों को विलंबित संदाय पर ब्याज विधेयक, 1993; राष्ट्रीय कर अधिकरण विधेयक, 2004; विज्ञान और अभियांत्रिकी अनुसंधान बोर्ड विधेयक, 2008; उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) संशोधन विधेयक, 2008, और जीवन बीमा निगम (संशोधन) विधेयक, 2008; कंपनी विधेयक, 2011; और कृषि जैव सुरक्षा विधेयक, 2013.

व्यय अन्तर्ग्रस्त विधेयकों के साथ वित्तीय ज्ञापन

जिस विधेयक में भारत की संचित निधि में से व्यय अन्तर्ग्रस्त हो, उसके साथ एक वित्तीय ज्ञापन होना आवश्यक है, जिसमें यह बताया गया हो कि किन उद्देश्यों पर व्यय होने की सम्भावना है। उस ज्ञापन में व्यय अन्तर्ग्रस्त खण्डों की ओर विशेष ध्यान दिलाना और उस आवर्ती तथा अनावर्ती व्यय का भी प्राक्कलन देना जरूरी है जो विधेयक के विधि रूप में पारित होने की अवस्था में अन्तर्ग्रस्त है। तथापि, जहाँ आवर्ती और अनावर्ती व्यय का प्राक्कलन देना संभव न हो, ऐसी स्थिति में अध्यक्ष विधेयक को पुरस्थापित करने/उस पर विचार करने की अनुमति दे सकता है।[43] विधेयक के ऐसे खंडों या उपबंधों को मोटे टाइप या तिरछे अक्षरों में छापा जाता है। परन्तु जहां किसी विधेयक में कोई खंड जिसमें व्यय अन्तर्ग्रस्त हो, मोटे टाइप या तिरछे अक्षरों में न छपा हो, तो उस विधेयक का प्रभारी सदस्य अध्यक्ष की अनुमति

---

43. 9 सितम्बर, 1965 को, यूनियन टैरीटरीज (डायरेक्ट इलेक्शन टू हाउस ऑफ पीपुल) विधेयक, 1965 पर विचार किये जाने के प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान एक सदस्य ने यह आपत्ति की कि विधेयक के साथ संलग्न वित्तीय ज्ञापन में आवर्ती और अनावर्ती व्यय का प्राक्कलन नहीं दिया गया है। अध्यक्ष ने यह निर्णय दिया कि सामान्यत: ऐसे प्राक्कलन दिए जाने चाहिए। परंतु ऐसा न कर पाने की स्थिति में विधेयक को अस्वीकार नहीं किया जा सकता– *लो.स.वा.वि.* 9.9.1965, कॉ. 4769-72।

    यूनिवर्सिटीज फॉर रिसर्च एण्ड इनोवेषन विधेयक, 2012 के साथ संलग्न वित्तीय ज्ञापन में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया है कि उस प्रक्रम में उस पर होने वाले व्यय का प्राक्कलन देना कठिन है क्योंकि यह अनुसंधान एवं नवोन्मेषन हेतु उन लोक वित्तपोषित विश्व विद्यालयों की संख्या पर निर्भर करेगा जो सरकार स्थापना करने हेतु निर्धारित करे। यद्यपि वित्तीय ज्ञापन में आवर्ती एवं अनावर्ती व्यय का प्राक्कलन नहीं दिया गया था परंतु अध्यक्ष द्वारा दिए गए विनिर्णय और वित्तीय ज्ञापन में बताई गई स्थिति को देखते हुए, संशोधित वित्तीय ज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए नहीं कहा गया और 21 मई, 2012 को विधेयक को पुन:स्थापित करने की अनुमति दे दी गई।

    स्ट्रीट वेंडर (प्रोटोक्शन ऑफ लाइवलीहुड एण्ड रेगुलेशन ऑफ स्ट्रीट वेंडिंग) विधेयक, 2012 के साथ संलग्न वित्तीय ज्ञापन में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया था कि विधेयक के अंतर्गत किए जाने वाले विभिन्न कार्यों में अंतर्ग्रस्त आवर्ती और अनावर्ती व्यय के रूप में कुल वित्तीय व्यय स्थानीय प्राधिकारियों, राज्य सरकारों और केंद्रीय सरकार द्वारा वहन किया जाएगा और उस प्रक्रम में भारत की संचित निधि में से होने वाले आवर्ती और अनावर्ती व्यय का सही अनुमान लगाना संभव नहीं है। यद्यपि वित्तीय ज्ञापन में आवर्ती और अनावर्ती व्यय का प्राक्कलन नहीं दिया गया था, परंतु अध्यक्ष द्वारा दिए गए विनिर्णय और वित्तीय ज्ञापन में बतायी गई स्थिति को देखते हुए संशोधित वित्तीय ज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए नहीं कहा गया और 6 सितम्बर, 2012 को विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति दे दी गई।

से ऐसे खण्डों को सभा के ध्यान में लायेगा।[44]

यदि किसी सरकारी विधेयक से संबंधित वित्तीय ज्ञापन अपूर्ण पाया जाता है, तो संबंधित मंत्री से कहा जाता है कि वह पूर्ण ब्यौरा दे और पुनरीक्षित ज्ञापन की प्रतियां सदस्यों की जानकारी के लिए अलग से उनको भेज दी जाती हैं।[45]

ऐसी दशा में जब आवर्ती व्यय अंतर्ग्रस्त होता है और कोई अनावर्ती व्यय नहीं अथवा

---

44. नियम 69 ।

पीठासीन अधिकारी ने स्वविवेक से एक विधेयक [राज्य सभा द्वारा यथापारित पश्चिम बंगाल राज्य विधानमंडल (शक्तियों का प्रत्यायोजन) विधेयक, 1968] पर विचार करने की अनुमति दी थी, जिसके खंडों में अन्तर्ग्रस्त व्यय भारत की संचित निधि में से होना था परन्तु ये खंड मोटे टाइप या तिरछे अक्षरों में नहीं छपे थे–*लो.स.वा.वि.,* 22.3.1968 और 25.3.1968 ।

पोत परिवहन विकास निधि समिति (उत्सादन) संशोधन विधेयक, 1987 के मामले में मंत्री महोदय ने विधेयक पुरःस्थापित करते हुए खंड 2, जिसमें भारत की संचित निधि में से व्यय होना था तथा जो मोटे अक्षरों में नहीं छपा था, की ओर सभा का ध्यान दिलाया था। *लो.स.वा.वि.,* 24.8.1987, पृ. 324 ।

45. राज्य वित्त निगम (संशोधन) विधेयक, 1965 के मामले में, विधेयक की प्रूफ प्रति के साथ जो वित्तीय ज्ञापन था, वह अपूर्ण था, क्योंकि उसमें विधेयक के विधि के रूप में पारित होने पर अन्तर्ग्रस्त आवर्ती तथा अनावर्ती व्यय का प्राक्कलन नहीं दिया गया था। मंत्री महोदय से कहा गया कि वह एक ऐसा ब्यौरे-वार विवरण दे, जिसमें आवर्ती व्यय का ब्यौरा दिया हो। लेकिन मूल ज्ञापन विधेयक के साथ छापा गया और सदस्यों को भेज दिया गया था। जब पुनरीक्षित वित्तीय ज्ञापन प्राप्त हुआ तो वह भी सदस्यों को भेज दिया गया।

आवश्यक वस्तु (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1967, को प्रवर समिति को भेजे जाने संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान, व्यवस्था का यह प्रश्न उठाया गया कि विधेयक के साथ जो वित्तीय ज्ञापन है, वह अपूर्ण है, क्योंकि उसमें अंतर्ग्रस्त आवर्ती तथा अनावर्ती व्यय के प्राक्कलन नहीं दिए गये हैं। पीठासीन अधिकारी द्वारा व्यवस्था के प्रश्न को उचित ठहराया गया तथा विधेयक पर आगे विचार स्थगित कर दिया गया ताकि सरकार अंतर्ग्रस्त आवर्ती तथा अनावर्ती व्यय का ब्यौरा बताने वाला एक संशोधित वित्तीय ज्ञापन प्रस्तुत कर सके। सरकार द्वारा प्रस्तुत संशोधित वित्तीय ज्ञापन अलग से सदस्यों को परिचालित किया गया। मंत्री से प्राप्त पत्र, जिसमें विधेयक पर विचार करने के लिए राष्ट्रपति को नए सिरे से सिफारिश की गई थी, को भी संसदीय समाचार (बुलेटिन) में प्रकाशित किया गया। *एल.एस. डिबेट्स,* 29.11.1967, कॉ. 3631-68; समाचार-भाग 2, 4.12.1967, पैरा 399 । वाणिज्य बोर्ड और विकास प्राधिकरण (आयकर से छूट) विधेयक, 1998, जिसकी प्रतियां सदस्यों को पहले ही परिचालित कर दी गयी थीं, की जांच के दौरान यह पाया गया कि विधेयक में भारत की संचित निधि में से व्यय का उपबंध है। सरकार के ध्यान में यह मामला लाए जाने पर सरकार द्वारा जारी वित्तीय ज्ञापन अलग से सदस्यों को 16 दिसंबर, 1998 को परिचालित किया गया और विधेयक 21 दिसंबर 1998 को पुरःस्थापित किया गया।

इसके विपरीत जब अनावर्ती व्यय अन्तर्ग्रस्त होता है और आवर्ती व्यय नहीं और इस तथ्य का उल्लेख विधेयक के साथ संलग्न वित्तीय ज्ञापन में नहीं होता है, तो मंत्री को इस आशय का एक पत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है तथा इस पत्र की प्राप्ति पर इसे संसदीय समाचार (बुलेटिन) में प्रकाशित कर दिया जाता है।[46]

यदि किसी विधेयक के साथ वित्तीय ज्ञापन न हो और बाद में विचार के प्रक्रम पर अध्यक्ष यह निर्णय दे कि ऐसा ज्ञापन आवश्यक है तो मंत्री को वित्तीय ज्ञापन सभा में पढ़कर सुनाने की अनुमति दी जा सकती है[47] और कुछ असाधारण मामलों में किसी विधेयक के पेश किए जाने के समय वित्तीय ज्ञापन संबंधी नियम निलम्बित किया जा सकता है।[48]

विधेयक की मुख्य बातें

नाम

प्रत्येक विधेयक का नाम होता है जिसमें बताया जाता है कि उस विधेयक का स्वरूप क्या है विधेयक का नाम जिसे सामान्यत: पूरा नाम कहा जाता है विधेयक से पहले होता है और उसे अधिनियम में रहने दिया जाता है और वह संक्षिप्त नाम से भिन्न होता है जो कि अधिनियम की पहली धारा में आता है। इस बात की सावधानी बरती जाती है कि नाम इतना व्यापक हो कि उसमें विधेयक के सारे उपबंध आ जायें; अस्पष्ट न हों, क्योंकि अस्पष्ट होने की दशा में ऐसे संशोधन रखे जा सकते हैं जो कि प्रस्तावित विधेयक के क्षेत्र से बाहर हों।[49]

उद्देशिका

उद्देशिका वह खंड है जो किसी संविधि के प्रारम्भ में, विधेयक के नाम के बाद और अधिनियमन खंड से पहले होता है। उद्देशिका का आशय कुछ ऐसे तथ्यों पर प्रकाश डालना है जिन्हें अधिनियम में दिये गये उपबंधों को समझने से पहले स्पष्ट करना आवश्यक है। आजकल विधेयक में उद्देशिका रखने की प्रथा नहीं रही। बहुत कम ऐसे विधेयक हैं, जिनमें

चौदहवीं लोक सभा के पंद्रहवें सत्र के दौरान राष्ट्रीय जलमार्ग (बराक नदी का लखीपुर गंगा हिस्सा) विधेयक, 2007 के संबंध में परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी स्थायी समिति के प्रतिवेदन में की गई सिफारिश को ध्यान में रखते हुए विधेयक के प्रभारी मंत्री ने संशोधित वित्तीय ज्ञापन प्रस्तुत किया। 12 फरवरी, 2009 को संशोधित वित्तीय ज्ञापन सदस्य को परिचालित किया गया ।

46. *देखिए* उदाहरण के लिए समाचार-भाग 2, 29.7.1968, 26.8.1968 और 31.5.1971 ।

47. *लो.स.वा.वि.,* (II), 22.11.1956, पृ. 289 ।

48. *पूर्वोक्त, एल.एस. डिबेट्स,* 30.8.1957, कॉ. 10920-32 ।

49. साधारण खंड अधिनियम, 1987–जे. बार्टले द्वारा टिप्पण, पृ. 159 ।

आजकल उद्देशिका रहती है।[50]

एक समय था जब उद्देशिका को विधेयक का अंग नहीं माना जाता था, परन्तु बाद में इसके प्रतिकूल विचार व्यक्त किया गया था।[51] उद्देशिका में भी उसी प्रकार संशोधन किया जाता है, जैसा कि विधेयक के किसी अन्य अंग में।[52]

अधिनियमन सूत्र

अधिनियमन सूत्र विधेयक के खंडों से पहले एक संक्षिप्त पैरा होता है। लोक सभा ने 1954 में अधिनियमन सूत्र का जो रूप स्वीकार किया था, वह इस प्रकार है:

"भारत गणराज्य के.... वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो"

1950 से पहले अधिनियमन सूत्र के निम्नलिखित रूप होते थे:

---

50. शकधर, उद्धृत कृति, पृ. 96 ।

संविधान प्रवृत्त होने के बाद से कुछ ही विधेयक प्रस्तावना सहित पारित किए गए हैं। उदाहरणार्थ, चार्टर्ड लेखापाल विधेयक, 1949; हैदराबाद निर्यात शुल्क (विधिमान्यीकरण) विधेयक, 1955; पुरस्कार प्रतियोगिता विधेयक, 1956; लोक ऋण (संशोधन) विधेयक, 1956; केरल स्थानीय प्राधिकरण विधि (संशोधन) विधेयक, 1959; छोटे सिक्के (अपराध) विधेयक, 1971; एशियन रिफ्रेक्टरीज लिमिटेड (उपक्रम का अर्जन) विधेयक, 1971; भारत रक्षा विधेयक, 1971; आपात संकट (माल) बीमा विधेयक, 1971; नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) विधेयक, 1976; काल्टेक्स [काल्टेक्स आइल रिफाइनिंग (इंडिया) लि. के शेयरों तथा काल्टेक्स (इंडिया) लि. के भारत में उपक्रमों का अर्जन] विधेयक, 1977; बंगाल कैमिकल एंड फार्मास्यूटिकल वर्क्स लि. (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) विधेयक, 1980; सती (निवारण) विधेयक, 1987; अयोध्या में कतिपय क्षेत्र अधिग्रहण विधेयक, 1993; और निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) विधेयक, 1995 । राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली नियम (विशेष उपबंध) विधेयक, 2007; भारतीय टायर निगम लिमिटेड (स्वामित्व का विनिवेश) विधेयक, 2007; हाथ से मैला उठाने वाले कर्मियों के नियोजन का प्रतिषेध और उनका पुनर्वास विधेयक, 2012 भारतीय जैव प्रौद्योगिकी विनियामक प्राधिकरण विधेयक, 2013; और कृषि जैव सुरक्षा विधेयक, 2013।

पहले आम प्रथा यह थी कि विधेयक के प्रारम्भ में एक या अधिक प्रस्तावनाएं होती थीं। उदाहरण के लिए मुर्शिदाबाद संपदा प्रशासन अधिनियम, 1933 में पांच प्रस्तावनाएं थीं।

51. बार्टले, उद्धृत कृति पृ. 161 ।

52. भारतीय टैरिफ (संशोधन) अधिनियम, 1924; भारतीय नौसेना सशस्त्रीकरण (संशोधन) अधिनियम, 1931; और हस्त सफाईकर्मियों का नियोजन और शुष्क शौचालयों का सन्निर्माण (प्रतिबंध) [द इम्प्लोयमैंट ऑफ मैनुअल स्कैवेंजर्स एंड कंस्ट्रक्शन ऑफ ड्राई लेट्रीन्ज (प्रोहिबिशन)] बिल, 1993 में प्रस्तावनाएं थीं, जो संशोधित रूप में स्वीकार की गईं।

यह अधिनियमित हो कि....[53]

निम्नलिखित रूप में अधिनियमित किया....[54]

एतद्द्वारा यह अधिनियमित किया जाता है या निम्नलिखित रूप में अधिनियमित किया जाता है...[55]

बजट सत्र 1950 में निम्नलिखित रूप में स्वीकार किया गया था:

संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो....[56]

27 अप्रैल 1954 को विधि मंत्रालय के सुझाव पर निम्नलिखित अधिनियमन सूत्र रखने का फैसला किया गया:

भारत गणराज्य के...वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो...

उसके कुछ ही समय बाद अध्यक्ष ने यह सुझाव दिया कि "हमारा गणराज्य" शब्दों के स्थान पर 'भारत गणराज्य' शब्द रखे जाएं क्योंकि 'हमारा' शब्द में साम्राज्यवाद की झलक आती है। कुछ दिन बाद सभा में औपचारिक रूप से पेश किए गये, स्वीकृत एक संशोधन के फलस्वरूप 'हमारा गणराज्य' शब्दों के स्थान पर 'भारत गणराज्य' शब्द हिमाचल प्रदेश तथा बिलासपुर (नये राज्य) विधेयक, 1954 के अधिनियम सूत्र में रखे गये।[57]

संक्षिप्त नाम

प्रत्येक विधेयक का एक संक्षिप्त नाम होता है। यह नाम संक्षिप्त होना अनिवार्य है क्योंकि यह तो उस विधेयक का लेबल अथवा अनुक्रमणिका शीर्षक मात्र है और इसलिए उसे उपयुक्त होना ही चाहिए। संक्षिप्त नाम विधेयक के पहले खंड में रखा जाता है—'इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम... अधिनियम, 20... है।'

किसी अधिनियम का हवाला देने के लिये उसका संक्षिप्त नाम या उस अधिनियम की संख्या तथा वर्ष बताया जाता है। जहां किसी अधिनियम में किसी अन्य अधिनियम का हवाला देना या उसका उद्धरण देना आवश्यक हो, वहां उसका संक्षिप्त नाम विधेयक के पाठ में दे दिया जाता है और हाशिये में उसकी संख्या और वर्ष बता दिया जाता है।

जहां एक ही मूल अधिनियम का संशोधन करने वाले दो या इससे अधिक विधेयक हों

---

53. *देखिए* दक्कन सहायक अभिकर्ता नियुक्ति अधिनियम, 1835 ।

54. *देखिए* समुद्र सीमा शुल्क अधिनियम, 1878 ।

55. *देखिए* डावर एक्ट, 1839; और भारती टैरिफ (संशोधन) अधिनियम, 1949 ।

56. *देखिए* पुनर्वास तथा वित्त प्रशासन (संशोधन) विधेयक, 1950 ।

57. 'हमारा गणराज्य' शब्द केवल निम्नलिखित तीन विधेयकों में आये थे जो पहले ही पारित किए जा चुके थे जिन्हें राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो चुकी थी: निर्हता निवारण (संसद तथा भाग 'ग' राज्य विधान- मंडल) संशोधन विधेयक, 1954; स्वेच्छया वेतन अभ्यर्पण (कराधान से छूट) संशोधन विधेयक, 1954; और कारखाना (संशोधन) विधेयक, 1954 ।

और उसी वर्ष में पारित किये गए हों वहां संशोधन करने वाले अधिनियमों की संख्या एक के बाद एक लगाई जाती है।[58]

विस्तार संबंधी खंड

संसद द्वारा पारित विधि सम्पूर्ण देश पर लागू होती है, सिवाय उस दशा के जहां कि संविधि में इसके विपरीत कोई उपबंध किया गया हो। लेकिन इसके विस्तार को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करना सुविधाजनक और कभी-कभी आवश्यक हो जाता है।[59]

विस्तार की दृष्टि से अधिनियमों को निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

ऐसे अधिनियम जो पूरे भारत पर लागू होते हैं;

ऐसे अधिनियम जो जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर पूरे भारत पर लागू होते हैं;[60]

ऐसे अधिनियम जो केवल संघ राज्य क्षेत्रों पर लागू होते हैं; और

संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-दो में उल्लिखित ऐसे विषयों से संबंधित अधिनियम जो केवल उन राज्यों पर लागू हो सकते हैं; जिनके विधानमंडलों ने इस संबंध में संकल्प पारित कर दिये हों।[61]

लेकिन किसी अधिनियम के स्वरूप के कारण जब इसमें वे क्षेत्र बताये गये हों, जिन

---

58. उदाहरणार्थ लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1987 और लोक प्रतिनिधित्व (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1987। परन्तु संविधान का संशोधन करने वाले अधिनियमों की दशा में संक्षिप्त नाम में अधिनियमों की संख्या, उस वर्ष का ध्यान किये बिना जिसमें कि वह पास किया गया हो, क्रमानुसार दी जाती है। *उदाहरणार्थ* संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951, संविधान (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1952; संविधान (तीसरा संशोधन) अधिनियम, 1954 आदि।

59. बार्टले, *उद्धृत कृति,* पृ. 164 ।

60. संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टियां, जिनके संबंध में संसद को जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है, संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1954 में संशोधित रूप में दी गई है। इनमें से कुछ मामलों के संबंध में केन्द्रीय कानून, जम्मू-कश्मीर राज्य (विधि का विस्तार) अधिनियम, 1956 के अंतर्गत उस राज्य पर लागू किये गये हैं।

61. *देखिए* अनुच्छेद 252—ऐसे अधिनियमों के उदाहरण हैं—सम्पदा शुल्क अधिनियम 1953, (जो अधिनियम की पहली अनुसूची में उल्लिखित राज्यों में स्थित कृषि भूमि पर लागू होता है); पुरस्कार प्रतियोगिता अधिनियम, 1955; भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1984; सम्पदा शुल्क (संशोधन) अधिनियम, 1986. और हस्त सफाईकर्मियों का नियोजन और शुष्क शौचालयों का सन्निर्माण (प्रतिबंध) अधिनियम [द इम्प्लायमैंट आफ मैनुअल स्कैवेंजर्स एंड कंस्ट्रक्शन आफ ड्राई लैट्रीन्ज (प्रोहिबिशन) एक्ट] 1993 ।

पर वह लागू होता है या उन व्यक्तियों का उल्लेख किया गया हो जो इसके अंतर्गत आते हों या वे वस्तुएं बताई गई हों, जो इस क्षेत्र में आती हों विस्तार संबंधी खंड अनावश्यक हो सकता है।[62]

प्रारम्भ संबंधी खंड

प्रारम्भ संबंधी खंड विधेयक का महत्वपूर्ण उपबंध होता है। सामान्यतः होता यह है कि संक्षिप्त नाम, विस्तार संबंधी खंड, और प्रारम्भ संबंधी खंड, यदि कोई हो, को एक ही धारा में रख दिया जाता है, जिसे तीन उपधाराओं में बांट दिया जाता है।[63]

अधिनियमों के लागू होने के संबंध में सामान्य नियम यह है कि यदि किसी अधिनियम में उसके प्रारम्भ होने की तिथि के संबंध में कोई स्पष्ट उपबंधन न किया गया हो तो वह उस दिन लागू होता है जिस दिन उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई हो।[64] इस सामान्य उपबंध को देखते हुए, ऐसे अधिनियमों जिन्हें तुरन्त प्रवृत्त करना होता है, में प्रारम्भ संबंधी खंड सामान्यतः नहीं होते हैं।[65]

कुछ मामलों में किसी अधिनियम को भूतलक्षी प्रभाव से लागू करना आवश्यक होता है। इस उद्देश्य के लिये अधिनियमों की भाषा सामान्यतः निम्नलिखित होती है—

"यह अधिनियम.... से प्रवृत्त हुआ समझा जायेगा"[66]

कुछ अन्य दशाओं में ऐसा करना आवश्यक हो सकता है कि किसी अधिनियम का प्रवर्तन स्थगित किया जाये और उसे भविष्य की किसी सुविधाजनक तिथि से लागू किया जाये। लेकिन जिस समय अधिनियम संसद द्वारा पारित किया जाता है उस समय हमेशा यह संभव या सुविधाजनक नहीं होता है कि वह तिथि निर्धारित की जाये जब से उसे लागू किया जाना हो। ऐसी दशा में यह तरीका अपनाया जाता है कि सरकार को शक्ति दे दी जाती है कि वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा वह तिथि नियत करे जिस दिन से अधिनियम लागू किया जाना है। इन सभी दशाओं में अधिनियम निर्दिष्ट तिथि या अधिसूचना में नियत तिथि से ही लागू होता

---

62. उदाहरण के लिए भारतीय वायु सेना अधिनियम, 1950; नागा पहाड़ियां त्योनसांग क्षेत्र अधिनियम, 1958; सरकारी बचत पत्र अधिनियम, 1959 ।
63. बार्टले, *उद्धृत कृति,* पृ. 164 ।
64. साधारण खंड अधिनियम, 1897, धारा 5 (1)।
65. उदाहरण के लिए, सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1958; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) अधिनियम, 1958; उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1959 ।
66. उदाहरण के लिए सीमा शुल्क टैरिफ (संशोधन) विधेयक, 1995, 14 फरवरी, 1995 को पुरःस्थापित किया गया था और उसे 1 जनवरी, 1995 को भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया गया।

है, यद्यपि इस बीच वह अधिनियम संविधि पुस्तक में रहा है।[67]

जो विधि किसी भावी तिथि से लागू होती है, चाहे वह तिथि अधिनियम में ही निर्दिष्ट की गई हो, अथवा उसकी अधिसूचना सरकार द्वारा की जानी हो, उनके संबंध में प्रत्येक मामले की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को देखते हुए विधेयक के प्रारंभ के खंड में अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसमें विभिन्नता इस कारण होती है कि संभवतः अधिनियम के सभी उपबंध एक ही समय पर या उन सभी क्षेत्रों में, जिन पर वह अधिनियम लागू होता है, लागू करने का विचार न हो। ऐसी परिस्थितियों में, यदि सही तिथि या तिथियों का पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सके, तो तिथि या तिथियों को अधिसूचना द्वारा निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है।[68]

जब किसी अधिनियम को अधिसूचना द्वारा किसी भावी तिथि से लागू करना हो, तो यह आवश्यक नहीं है कि जिस धारा के अंतर्गत अधिसूचना जारी की जानी है, उसके बारे में यह व्यक्त किया जाए कि उसका प्रवर्तन तुरन्त होगा, यद्यपि इस संबंध में एक समान प्रथा नहीं रही है।[69]

निर्वचन या परिभाषा संबंधी खंड

निर्वचन संबंधी खंड सामान्यतः संक्षिप्त नाम वाले खंड या प्रोद्धरण खंड[70] के तुरंत बाद रखा जाता है। अधिनियम में प्रयुक्त जिन शब्दावलियों की परिभाषा की गई हो, यदि वे एक ही धारा में आती हैं, तो परिभाषा उस धारा[71] में दी जाती है और जहां परिभाषा केवल विधेयक के किसी भाग विशेष या अध्याय विशेष के लिए आवश्यक हो, तो वह उस भाग या

---

67. उदाहरण के लिए, रेलवे दावा न्यायाधिकरण अधिनियम, 1987; अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद अधिनियम, 1987; और महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय अधिनियम, 1996 ; जीवन बीमा निगम (संशोधन) विधेयक, 2011 और धन-शोधन निवारण (संशोधन) विधेयक, 2012।

68. राष्ट्रीय आवास बैंक अधिनियम, 1987; सती (निवारण) अधिनियम, 1987; कारखाना विनियमन विधेयक 2011; और प्रतिभूति हित का प्रवर्तन और ऋण वसूली विधि संशोधन विधेयक, 2012।

69. उच्चतम न्यायालय ने *टी.के. मुदलियार बनाम पोट्टी* के मामले में यह निर्णय दिया है कि जिस धारा के अंतर्गत अधिसूचना जारी की जानी हो वह अधिनियम के पारित होते ही तत्काल लागू हो जाती है—एस.सी.जे. 1956, 333-34 ।

70. पूर्ववर्ती भारतीय अधिनियमों में अर्थात् 1859 के पहले पारित अधिनियमों में, निर्वचन संबंधी खंड अधिनियम के अंत में आता है—बार्टले, *उद्धृत कृति* पृ. 172 । सामान्य प्रथा से हटकर लोक सभा में 30 अगस्त, 2010 को पुरः स्थापित प्रत्यक्ष कर संहिता, 2010 में परिभाषा खंड को विधेयक के अंत में रखा गया था।

71. *देखिए* दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 की धारा 45; खान तथा खनिज पदार्थ (विनियमन तथा विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 23; और वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 की धारा 441 ।

अध्याय[72] में दी जाती है।

परिभाषाओं की आवश्यकता केवल इसलिए पड़ती है कि, बोझिल वाक्यांशों को बार-बार न दुहराना पड़े; कुछ ऐसे शब्दों को स्पष्ट किया जाए, जिनका अर्थ अस्पष्ट या अनिश्चित हो, किसी शब्द का अर्थ ऐसे निर्वचन में दिए गए अर्थ से भिन्न हो।[73] जिसका न्यायिक रूप से निर्वचन किया जा चुका हो, या अधिनियम के प्रयोजनों के लिए किसी ऐसी चीज को सम्मिलित करना हो या उसे निकाल देना हो जिसके सम्मिलित करने या निकाल दिए जाने के संबंध में कोई संदेह हो। परिभाषाओं को वर्णानुक्रम में रखा जाता है।

सामान्यतः प्रयोग में आने वाली, अधिकांश परिभाषाएं, अब साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 3 में दी जाती हैं और *यथोचित परिवर्तन* करके अधिनियमों तथा विनियमों पर लागू होती हैं, सिवाय उन दशाओं को छोड़कर जबकि उनको स्पष्ट रूप से अलग न किया गया हो।[74]

अवधि संबंधी खंड

कुछ विधियां सीमित अवधि के लिए होती हैं और उन्हें एक संक्षिप्त निश्चित अवधि के लिए अधिनियमित किया जाता है। ऐसी अधिनियमितियां उसमें उल्लिखित अवधि समाप्त होने के पश्चात् प्रभावी नहीं रहतीं।[75]

अवधि संबंधी खंड विधेयक के पहले खंड में उपखंडों के रूप में रखा जाता है। भिन्न-भिन्न विधेयकों में इसका रूप, स्थिति के अनुसार, भिन्न-भिन्न हो सकता है।

---

72. *देखिए* वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 की धारा 357 और 390 ।

73. *देखिए* हिमाचल प्रदेश विधान सभा (गठन और कार्यवाहियां) विधिमान्यकरण अधिनियम, 1958 ।

74. बार्टले, *उद्धृत कृति* ।

75. जब किसी अस्थाई अधिनियम को जारी रखना हो, वहां समाप्त होने वाली विधि को जारी रखने का विधेयक संसद के समक्ष लाया जाता है, जिसके माध्यम से उस अधिनियम की अवधि विनिर्दिष्ट तिथि तक बढ़ा दी जाती है। समाप्त होने वाले अधिनियम के अवधि संबंधी खंड में संशोधन कर दिया जाता है ताकि उसकी समाप्ति के लिए मूल अधिनियम में निर्धारित तिथि बदल दी जाये। उदाहरण के लिए *देखिए* आवश्यक वस्तु (विशेष उपबंध) जारी रखना अधिनियम, 1987 और आवश्यक वस्तु (विशेष उपबंध) संशोधन विधेयक, 1993 ।

    जिस अधिनियम की अवधि सीमित हो, उसे संशोधनकारी अधिनियम जिसका आशय समाप्त होने वाले अधिनियम के खंड की अवधि का लोप करना है, के माध्यम से स्थाई बनाया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाप्त होने वाले अधिनियम की अवधि सीमित नहीं रहती। ऐसे संशोधनकारी अधिनियमों के उदाहरण के लिए *देखिए* दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 1935; विदेशी मुद्रा विनियमन (संशोधन) अधिनियम, 1957; और भ्रष्टाचार निवारण (संशोधन) अधिनियम, 1957 ।

घोषणा संबंधी खंड

कुछ विधेयकों में घोषणा संबंधी खंड भी होते हैं।[76] घोषणा संबंधी खंड जो विधेयक के प्रोद्धरण खंड (खंड 1) के बाद आता है, संविधि का वह भाग होता है "जो उस आवश्यकता या अपेक्षा की घोषणा करता है, जिसे पूरा करने के लिए वह विधि बनायी गयी हो।"।[77]

नियम बनाने संबंधी खंड

कार्यपालिका की विभिन्न विधियों को लागू करने के लिए नियम तथा विनियम बनाने की शक्ति प्रत्यायोजित करने से संबंधित उपबंध विधेयक के नियम बनाने संबंधी खंड में होते हैं।

नियम बनाने संबंधी खंड निम्नलिखित सामान्य सिद्धांतों पर आधारित होता है:

कि नियम या विनियम संसद के सामने रखे जाएं;

कि नियमों, आदि को उनके प्रकाशन से पहले या प्रकाशन के बाद यथाशीघ्र संसद के समक्ष विशिष्ट अवधि के लिए रखा जाये; कि नियमों में संसद संशोधन कर सकेगी।

आजकल उन सभी विधेयकों में, जिनके द्वारा शक्ति प्रत्यायोजित की जानी हो, निम्नलिखित खंड होता है।[78]

इस धारा के अंतर्गत बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के बाद, यथाशीघ्र संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। यह अवधि एक सत्र में या दो आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकती है और यदि उस सत्र के अवसान से पहले, जिसमें यह नियम रखा गया हो, या उसके ठीक बाद के सत्र में, दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित

---

76. सामान्यत: संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची की निम्नलिखित 8 प्रविष्टियों के संबंध में जो विधेयक पारित किए जाने हों, उनमें घोषणा संबंधी खंड होता है:

    प्रविष्टियां 7, 23, 27, 52, 53, 54, 56 और 67 ।

77. घोषणा संबंधी खंड का कोई निश्चित रूप नहीं है। विभिन्न प्ररूपों के प्रयुक्त नमूनों के लिए *देखिए* उद्योग (विकास तथा विनियमन) अधिनियम, 1951; प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारक और पुरातत्वीय स्थान और अवशेष (राष्ट्रीय महत्व की घोषणा) अधिनियम, 1951; अत्यावश्यक पदार्थ (विक्रय या क्रय पर कर की घोषणा और विनियमन) अधिनियम, 1952; ज्वलनशील पदार्थ अधिनियम, 1952; राष्ट्रीय राजपथ अधिनियम, 1956; खान तथा खनिज पदार्थ (विनियमन तथा विकास) अधिनियम, 1957; भारतीय सांख्यिकीय संस्था अधिनियम, 1959; रामपुर रजा लाइब्रेरी विधेयक, 1975 आदि।

78. विधि मंत्रालय द्वारा तैयार किया गया माडल खंड जो राज्य सरकारों को (*देखिए* 22 दिसम्बर, 1959 को लोक सभा में प्रस्तुत किया गया, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के सातवें प्रतिवेदन का पैरा 45) परिचालित किया गया था।

रूप में प्रभावी होगा। यदि उक्त अवसान से पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभावी हो जायेगा। किन्तु उस नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभावी होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।[79]

अध्यक्ष नियम बनाने संबंधी खंड से उठने वाले मुद्दों को अधीनस्थ विधान संबंधी समिति को उनकी जांच तथा उनके बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु सौंप सकता है।[80]

किसी अधिनियम के अतंर्गत बनाए गए नियमों का सांविधिक प्रभाव होता है।[81]

नियम बनाने संबंधी खंड द्वारा दी गई नियम बनाने की शक्ति में नियमों में और नियम जोड़ने, उनमें संशोधन करने, उनमें परिवर्तन करने या उनके रद्द करने की शक्ति भी शामिल है।[82] अधिनियम में जो परिभाषाएं दी गई हों, उन्हें इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों में सम्मिलित कर लिया जाता है, जिससे कि उन्हें नियमों को दोहराने की आवश्यकता न पड़े।[83] जिस अधिनियम का निरसन कर दिया गया हो, उसके अतंर्गत बनाए गए नियमों का प्रभाव समाप्त हो जाता है और वास्तव में वे भी निरसित हो जाते हैं। यदि ऐसे अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियम जिसका निरसन कर दिया गया हो और जिसे फिर से अधिनियमित किया गया हो, तो वे तब तक लागू रहते हैं, जब तक कि वे दोबारा बनाए गए अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और उनके स्थान पर नए नियम न बनाए गए हों।[84]

निरसन तथा व्यावृत्ति खंड

निरसन तथा व्यावृत्ति संबंधी उपबंध एक ही खंड में रखे जाते हैं। यह खंड हमेशा विधेयक के अंत में रखा जाता है ताकि जब भी उस खंड का निरसन किया जाये तो उस अधिनियम का ढांचा पहले जैसा ही रहे।[85]

जब किसी अधिनियम का निरसन किया जाता है, तो जब तक कि अधिनियम के पाठ से भिन्न आशय प्रकट न हो तब तक निम्नलिखित बातें नहीं होतीं:

> उससे कोई ऐसी बात पुनः लागू नहीं होती, जोकि निरसन होने के समय लागू या विद्यमान न हो; या

---

79. इन नियमों की संवीक्षा के लिए *देखिए* अध्याय-30 संसदीय समितियां, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति शीर्षक के अंतर्गत।
80. *लो.स.वा.वि.,* 12.12.1968, पृ. 114-128; 14.12.1968 पृ. 1; 17.12.1968 पृ. 168।
81. यह बात 'वर्तमान विधि' की परिभाषा से भी प्रमाणित होती है जैसा कि संविधान में दिया गया है। *देखिए* अनुच्छेद 366(10) ।
82. साधारण खंड अधिनियम, 1897, धारा 21 ।
83. पूर्वोक्त, धारा 20 ।
84. *पूर्वोक्त,* धारा 24 ।
85. बार्टले, *उद्धृत कृति,* पृ. 179 ।

उससे इस प्रकार निरसित किसी अधिनियम का पुराना प्रवर्तन या उसके अंतर्गत विधिवत् की गयी या होने दी गई ऐसी बात पर प्रभाव नहीं पड़ता; या

इस प्रकार निरसित किसी अधिनियम के अंतर्गत प्राप्त, उद्भूत अथवा लिए गये किसी अधिकार विशेषाधिकार, आभार या दायित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता; या

इस प्रकार निरसित किये गये किसी अधिनियम के अनुसार किसी अपराध के लिए दिये गये किसी अर्थ-दंड, जब्ती या दंड पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; या

उपर्युक्त इस प्रकार के अधिकार, विशेषाधिकार, आभार, दायित्व, अर्थ-दंड, जब्ती या दंड के संबंध में किसी जांच, विधिक कार्यवाही या उपचार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता;

और न ऐसी कोई जांच बिठायी जा सकती है, विधिक कार्यवाही या उपचार को जारी रखा या लागू किया जा सकता है और न ऐसा कोई अर्थ-दंड, जब्ती या दंड दिया जा सकता है जो निरसन अधिनियम के अभाव में न किया जा सकता हो।[86]

किसी अधिनियम का निरसन करने पर उसके अंतर्गत बनाये गये सभी नियम, आदि अपने आप निरसित हो जाते हैं, जब तक कि निरसन करने वाले अधिनियम में इसके विपरीत कोई उपबंध न किया गया हो।

व्यावृत्ति खंड में ऐसी बात को सुरक्षित रखा जाता है जो कि उस खंड के न होने से अधिनियमन वाले भाग के शब्दों में सम्मिलित की जाती। इस खंड में केवल उन वस्तुओं का परिरक्षण किया जाता है जो अधिनियम के समय वस्तुत: थीं और इसलिए उसका प्रभाव उन संव्यवहारों पर नहीं पड़ता, जो निरसन संविधि के लागू होने की तिथि को पूर्ण हो चुके थे। यह खंड संविधि में इस कारण रखा जाता है कि किसी व्यक्ति को उसके उन अधिकारों के संबंध में संरक्षण प्रदान किया जा सके, जो उसने उस समय की वर्तमान विधि के अंतर्गत प्राप्त किये हों।[87]

अनुसूचियां

कुछ विधेयकों के साथ अनुसूचियाँ संलग्न होती हैं। नियम के अनुसार ब्यौरे की बातें अनुसूचियों में दी जाती हैं, उदाहरण के लिये, प्रपत्रों करारों और प्लान आदि के दृष्टांत अनुसूचियों में दिये जाते हैं। जब किसी संगठन का गठन विधेयक में ही दिया गया हो तो नियुक्ति के ढंग और उस संगठन की बैठकों को अनुशासित करने वाले नियम अनुसूची में दे दिये जाते हैं। कई बार जहां कई अधिनियमों या कई अधिनियमों के अंशों का निरसन किया जा रहा हो या जहां बहुत से छोटे-छोटे संशोधन किये जा रहे हों उन्हें अनुसूची में बताना सुविधाजनक होता है।[88]

---

86. साधारण खंड अधिनियम, 1897, धारा 6 ।

87. *गुलाब चन्द बनाम कुदीलाल,* ए. आई.आर, 1951, मध्य भारत 1, 38, एफ.बी ।

88. *देखिए*-व्यापार और पण्य वस्तु विधेयक, 1958 तथा व्यापार चिह्न विधेयक, 1993 के मामले।

'पहली अनुसूची', 'दूसरी अनुसूची' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है और 'अनुसूची-I' और 'अनुसूची-II' का प्रयोग नहीं किया जाता। जब किसी विधेयक या अधिनियम में किसी अनुसूची का उल्लेख किया जाता है तो वहां इस शब्द का पहला अक्षर मोटा रखा जाता है जिससे कि पढ़ने वाले का ध्यान फौरन उस तरफ चला जाये और उस अनुसूची को किसी ऐसी अन्य अनुसूची से अलग किया जा सके जिसकी ओर विधेयक या अधिनियम में संकेत किया गया हो। सुविधा के लिये उस विधेयक के खंड या खंडों का उल्लेख, जिनमें अनुसूची की चर्चा की गई हो, अनुसूची के शीर्ष में किया जाता है।

अनुसूची भी संविधि का अंग होती है और अधिनियम के अन्य अंगों की तरह ही उसका अंग होती है। अर्थान्वयन संबंधी प्रयोजनों के लिये इसे अधिनियम के अन्य प्रावधानों के साथ ही पढ़ना चाहिए।[89]

विधेयक के जिन महत्वपूर्ण पहलुओं का वर्णन ऊपर किया गया है उनके अतिरिक्त विधेयक के साथ उद्देश्यों तथा कारणों का कथन भी होता है और जहां आवश्यक हो खंडों पर टिप्पणियां वित्तीय ज्ञापन[90] प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन, अध्यादेश का स्थान लेने वाले विधेयकों में संशोधनों से संबंधित ज्ञापन और एक अनुबंध होता है जिसमें उस अधिनियम के उन उपबंधों के उद्धरण होते हैं जिनका संशोधन किया जाना हो। यद्यपि ये दस्तावेज विधेयक का अंग नहीं होते किन्तु इनका सकारात्मक प्रयोजन होता है। विधेयक के साथ लगे ये दस्तावेज लोक सभा द्वारा पास किये जाने पर राज्य सभा द्वारा उस पर विचार करने हेतु उसे राज्य सभा को भेजते समय हटा दिये जाते हैं। उसी प्रकार राज्य सभा जब कोई विधेयक पास करके उस पर विचार करने के लिए लोक सभा के पास भेजती है तो उसके साथ लगे ये दस्तावेज भी हटा दिये जाते हैं।

उद्देश्यों तथा कारणों का कथन

1862 से प्रत्येक विधेयक के साथ उद्देश्यों तथा कारणों का कथन संलग्न करने की प्रथा निरंतर चली आ रही है, जिसमें संक्षेप में प्रस्तावित विधान के प्रयोजनों पर प्रकाश डाला जाता है। उक्त कथन में विधेयक में शामिल की गई बातों की व्याख्या की जाती है। उसमें विधेयक के उद्देश्य बताये जाते हैं और उससे विधेयक की आवश्यकता तथा उसके विस्तार को समझने में सहायता मिलती है परन्तु न्यायालय किसी अधिनियम का निर्वचन करते समय इस विवरण का सहारा नहीं ले सकता। इसका कारण यह है कि यह कथन पेश किये गये विधेयक के संबंध में होता है और संभव है कि विधेयक के पारित होने तक उसमें काफी परिवर्तन कर दिये जायें। विधान का आशय तो उन शब्दों से निकालना पड़ता है जोकि उसमें प्रयुक्त किये गये हों न कि जैसा उसका अभिप्राय रहा हो। इसलिए जब किसी अधिनियम का अर्थ लगाना हो तो इस कथन का ध्यान नहीं रखा जाता।[91]

89. *धुनेसुर कुंवर बनाम राय गुडर सहाय,* आई.एल.आर. 2 कलकत्ता 337, 339 एफ.बी. *अल्ताप अली बनाम जमसूर अली,* ए.आई.आर. 1926 कलकत्ता 638 ।

90. वित्तीय ज्ञापन के लिये *देखिए* पीछे इसी अध्याय में पृ. 534-35 ।

91. *महालक्ष्मी बनाम श्याम रंगिनी,* आई.एल.आर. (1941) । कलकत्ता 499; ए.आई.आर. 1941 कलकत्ता 673 ।

उद्देश्यों तथा कारणों के कथन की भाषा गैर-तकनीकी होनी चाहिए। यह अनावश्यक रूप से लम्बा नहीं होना चाहिए और न ही उसमें कोई तर्क-वितर्क वाली बात होनी चाहिए और यदि अध्यक्ष चाहे तो इसका पुनरीक्षण किया जा सकता है।[92] इसके अतिरिक्त विधेयक का प्रभारी सदस्य इस पर हस्ताक्षर करता है।

विधेयक का प्रभारी सदस्य विधेयक को पेश करते समय अध्यक्ष की अनुमति से इस कथन में संशोधन कर सकता है।[93] उद्देश्यों तथा कारणों के कथन में किसी कमी का उल्लेख विधेयक प्रस्तुत करते समय किया जाना चाहिए। इस संबंध में विधेयक पर विचार करते समय उठाया गया मुद्दा वैध नहीं माना जाता है।[94] तथापि विधेयक पर प्रतिवेदन तैयार करते समय संसदीय समिति द्वारा सुझाए गए परिवर्तन उद्देश्यों तथा कारणों के कथन में शामिल किए जा सकते हैं और इसकी संशोधित प्रतियां सदस्यों में परिचालित की जा सकती हैं।[95]

खंडों पर टिप्पणियां

कुछ विधेयकों में खंडों पर टिप्पणियां भी दी जाती हैं जिनमें विधेयक के विभिन्न

उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि तथापि अनुच्छेद 14 (जो विधि के समक्ष समता से संबंधित है) के कथित अतिक्रमण के मामले में निश्चित ही इस प्रकार के कथन पर गौर किया जा सकता है-*जालन्धर रबर गुड्स मैन्यूफैक्चरर्स एसोसियेशन बनाम* भारत संघ, ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1589 ।

92. नियम 65 (1), परन्तुक ।

93. *लो.स.वा.वि.,* 16.12.1960, पृ. 1925-32 ।

संविधान (एक सौ चारवां संशोधन) विधेयक, 2005 जिसे 14 दिसंबर 2005 को पुर:स्थापित किया जाना था, के मामले में प्रभारी मंत्री ने अध्यक्ष से अनुरोध किया, उद्देश्यों और कारणों के कथन में कुछ परिवर्तन की अनुमति दी जाए। विधेयक का पुर:स्थापन स्थगित कर दिया गया। संशोधित कथन 19 दिसंबर 2005 को सदस्यों को परिचालित किया गया और विधेयक 20 दिसंबर 2005 को पुर:स्थापित किया गया।

94. *एल.एस. डिबेट्स,* 5.8.1968, का. 248 ।

95. (*i*) उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों और सेवकों के वेतन, भत्ते, छुट्टी और पेंशन, विधेयक, 1994 और दिल्ली उच्च न्यायालय के अधिकारियों और सेवकों के वेतन, भत्ते, छुट्टी और पेंशन विधेयक 1994 राज्य सभा में 19 अगस्त 1994 को पुर:स्थापित किए गए। विधेयकों की जांच और उस पर अपना प्रतिवेदन देने के लिए गृह मंत्रालय की स्थाई समिति को सौंप दिए गए। समिति ने विधेयकों संबंधी अपने प्रतिवेदन में इन विधेयकों के उद्देश्यों और कारणों के कथन में संशोधन की सिफारिश की। राज्य सभा सचिवालय के जरिये विधि मंत्रालय से प्राप्त उद्देश्यों और कारणों के पुनरीक्षित कथन लोक सभा के सदस्यों को परिचालित किए गए।

(*ii*) सर्तकता आयोग विधेयक, 1999 संबंधी संयुक्त समिति ने विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन के पैरा 7 का लोप करने की सिफारिश की। संयुक्त समिति के साथ सहमति व्यक्त करते हुए प्रभारी मंत्री ने उद्देश्यों और कारणों के कथन का एक पुनरीक्षित विवरण अग्रेषित किया जिसे लोक सभा के सदस्यों को परिचालित किया गया।

उपबंधों और उनके महत्व पर प्रकाश डाला जाता है। उनमें बताया जाता है कि किस आधार पर विधेयक के विशेष उपबंध बनाये गए हैं। ये टिप्पणियां स्पष्टीकरण के लिए होती हैं तथा इनसे विधेयक के खंडों पर उनके उचित संदर्भ में विचार करने में आसानी रहती है।

प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन

किसी अधीनस्थ विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन के प्रस्ताव वाले सभी विधेयकों के साथ एक ऐसा ज्ञापन होना चाहिए जिसमें इन प्रस्तावों की व्याख्या की गई हो। इस ज्ञापन में प्रस्तावों के विस्तार की ओर ध्यान दिलाया जाता है और यह भी बताया जाता है कि वे सामान्य प्रकार के हैं या असाधारण प्रकार के।

यदि अधीनस्थ विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन के प्रस्ताव का कोई विधेयक बिना ऐसे प्रस्तावों के स्पष्टीकरण ज्ञापन के प्राप्त हुआ हो तो संबंधित मंत्री से कहा जाता है कि वह इससे संबंधित ज्ञापन दे, और यदि वह ज्ञापन विधेयक के छपने के बाद प्राप्त हो तो ज्ञापन की प्रतियां सदस्यों को अलग से परिचालित की जाती हैं।[96]

यदि प्रत्यायोजित विधान से संबंधित ज्ञापन पर सरकार द्वारा पुनरीक्षण किए जाने की मांग की जाती है तो उसकी एक प्रति लोक सभा के पटल पर रखी जाती है तथा इसके बाद इसे सदस्यों को परिचालित कर दिया जाता है।[97]

अध्यादेश का स्थान लेने वाले विधेयक में संशोधनों से संबंधित ज्ञापन

जब कभी अध्यादेश के उपबंधों में संशोधन करने सहित किसी अध्यादेश का स्थान लेने वाला कोई विधेयक सभा में पुरःस्थापित किया जाता है, तो इस विधेयक के साथ संलग्न ज्ञापन में इन संशोधनों को स्पष्ट किया जाता है।[98]

---

96. विश्वविद्यालयों के स्वायत्तशासी निकाय होने के कारण उनके कामकाज के क्षेत्र को सीमित करने के संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाये गये हैं। *देखिए* हैदराबाद विश्वविद्यालय विधेयक, 1974, *लो.स.वा.वि.,* 7.8.1974, पृ. 121-143 ।

97. विदेश व्यापार (विकास तथा विनियमन) विधेयक, 1992 लोक सभा में यथा पुनःस्थापित के मामले में, वाणिज्य मंत्रालय ने यह अनुरोध किया कि अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की सिफारिश के अनुसार प्रत्यायोजित विधान के विषय में एक पुनरीक्षित ज्ञापन सदस्यों को परिचालित किया जाए। मंत्रालय को सूचित किया गया कि पुनरीक्षित ज्ञापन को सर्वप्रथम सभा के पटल पर रखा जाना चाहिए। तद्नुसार, 16 जुलाई, 1992 को वाणिज्य मंत्रालय के उप-मंत्री द्वारा पुनरीक्षित ज्ञापन सभा के पटल पर रखा गया और इसके बाद उसी दिन सदस्यों को इसकी प्रतियां परिचालित कर दी गईं।

98. (*i*) उदाहरण के लिए *देखिए* तस्कर और विदेशी मुद्रा छलसाधाक (संपत्ति समपहरण) विधेयक 1976; विवादग्रस्त निर्वाचन (प्रधानमंत्री और अध्यक्ष) विधेयक 1977; वित्त (संशोधन) विधेयक 1987; अयोध्या में कतिपय क्षेत्रों का अर्जन विधेयक, 1993; और पेटेंट (संशोधन) विधेयक, 1995 ।

अनुबंध

जहां किसी मूल अधिनियम की कुछ धाराओं में संशोधन करना हो तो उनके पाठ को सामान्यतया अनुबंध के रूप में संशोधन विधेयक के साथ लगा दिया जाता है। यदि बहुत सी धाराओं में संशोधन करने का विचार हो, तो प्रभारी मंत्री के अनुरोध पर उन धाराओं को अनुबंध के रूप में नहीं छापा जाता लेकिन मूल अधिनियम की प्रति संबंधित मंत्रालय द्वारा सदस्यों के इस्तेमाल के लिए उनमें बांटने के लिए भेज दी जाती है।[99] लेकिन मूल अधिनियम के वृहदाकार होने की स्थिति में अधिनियम की प्रतियां सदस्यों में न बांटकर संबंधित मंत्रालय से प्राप्त इसकी कुछ प्रतियां सदस्यों के देखने हेतु संसद ग्रंथालय में रख दी जाती हैं।[100] इस संबंध में *समाचार भाग-2* में एक पैरा छाप दिया जाता है।

1950 से पहले जिस अधिनियम में संशोधन विधेयक द्वारा संशोधन करने का विचार हो, उसकी धारायें विधेयक के साथ नहीं छापी जाती थीं।

14 अगस्त, 1950 को जब आवश्यक पूर्ति (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम में और आगे संशोधन किये जाने हेतु इसे सभा के सामने विचार के लिए लाया गया तो यह प्रश्न उठाया गया कि सदस्यों की सुविधा के लिए संशोधनकारी विधेयक के साथ मूल अधिनियम की वे धारायें भी छापी जानी चाहिए, जिनमें संशोधन करने का विचार हो। इस पर अध्यक्ष ने यह निदेश दिया:

> भविष्य में जब भी मूल अधिनियम में संशोधन करने के लिए संशोधनकारी विधेयक पेश किये जायें तो मूल अधिनियम की संगत धाराओं की अनुसूची विधेयक के साथ दी जानी चाहिए।[101]

(*ii*) दंड विधि (संशोधन) विधेयक, 2013 का आशय कतिपय संशोधनों के साथ दंड विधि (संशोधन) अध्यादेश, 2013 का स्थान लेना था। चूंकि संशोधनों वाला ज्ञापन विधेयक के साथ संलग्न नहीं था इसलिए मंत्रालय में अपेक्षित ज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। ज्ञापन प्राप्त होने के पश्चात् उसे 18 मार्च, 2013 को सदस्यों को परिचालित कर दिया गया। विधेयक को पुर:स्थापन विचारण के पश्चात् 19 मार्च, 2013 को पारित किया गया।

99. *देखिए लो.स.वा.वि.,* (II), 5.5.1954, पृ. 4656-57 । इसी प्रकार दहेज प्रतिषेध (संशोधन) विधेयक, 1984 के मामले में मूल अधिनियम की मंत्रालय से प्राप्त प्रतियां सदस्यों को परिचालित की गई थीं।

100. उदाहरण के लिए सीमा शुल्क टैरिफ (संशोधन) विधेयक, 1985 तथा प्रत्यक्ष कर कानून (संशोधन) विधेयक, 1987 ।

101. *पी. डिबेट्स,* 14.8.1950, कॉ. 1010-14 ।

15 नवम्बर, 1950 को पुर:स्थापित किये गये असम राइफल्स (संशोधन) विधेयक, 1950 के साथ पहली बार एक अनुबंध संलग्न किया गया था।

परन्तु किसी गोपनीय विधेयक के साथ ऐसा उपबंध नहीं लगाया जाता।[102]

सभा की विधायी शक्ति

संविधान में संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण तीन प्रकार से करने की व्यवस्था की गई है: संघ सूची में वे सब विषय आते हैं जिनके संबंध में केवल संसद ही विधान बना सकती है। राज्य सूची में वे विषय शामिल किये गये हैं जिनके संबंध में किसी भी राज्य के विधानमंडल को विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है और समवर्ती सूची में वे विषय हैं जिनके संबंध में संसद तथा किसी भी राज्य के विधानमंडल को विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है।[103] जो विषय समवर्ती सूची या राज्य सूची में नहीं आते हैं उनके संबंध में विधान बनाने की अवशिष्ट शक्ति संसद को दी गई है और ऐसी शक्ति के अन्तर्गत ऐसे कर के अधिरोपण के लिए जो उन सूचियों में से किसी में वर्णित नहीं हैं, विधि बनाने की शक्ति है।[104]

विधान बनाने की क्रम परम्परा में, संसद द्वारा बनायी गयी विधि को उच्च दर्जा दिया गया है। समवर्ती सूची के अंतर्गत संसद द्वारा बनायी गयी विधि और राज्य विधानमंडल द्वारा बनायी गयी विधि दोनों के बीच असंगति को इस प्रकार दूर किया जाता है कि संसद द्वारा निर्मित विधि अभिभावी होगी तथा उस राज्य के मंडल द्वारा बनायी गयी विधि विरोध की मात्रा तक शून्य होगी।[105] परंतु यदि राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई कोई विधि राष्ट्रपति के विचार हेतु आरक्षित रख ली जाती है और उसे राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो असंगति होते हुए भी वह उसराज्य में प्रभावी होगी।[106]

तीनों सूचियों में प्रविष्टियां मात्र विधायी शीर्ष हैं या विधान बनाने के कार्यक्षेत्र हैं। यह ऐसे क्षेत्र का निर्धारण करते हैं जिन पर उपयुक्त विधानमंडल की विधि प्रभावी होगी। प्रविष्टियों की भाषा को न्यायालयों द्वारा अत्यंत व्यापक रूप से देखा जाता है जिसका कारण यह है कि विषयों के निर्धारण में किसी वैज्ञानिक अथवा तर्कपूर्ण व्याख्या को आधार नहीं बनाया गया है बल्कि यह विस्तृत और व्यापक श्रेणियों की सूची मात्र है। विभिन्न सूचियों अथवा एक ही सूची में जब कोई प्रविष्टियां परस्पर मिलती हैं अथवा स्पष्टतया एक दूसरे के विपरीत लगती

102. उदाहरण के लिए, भारतीय टैरिफ (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1957; सम्पदा शुल्क (संशोधन) विधेयक, 1958; भारतीय रिज़र्व बैंक (संशोधन) विधेयक, 1959; वित्त विधेयक, 1960 और अनिवार्य निक्षेप स्कीम (आयकर दाता) संशोधन विधेयक, 1985 में अनुबंध संलग्न नहीं किए गये थे।

103. अनुच्छेद 246 ।

104. अनुच्छेद 248(1) और संघ सूची की प्रविष्टि 97 ।

105. अनुच्छेद 254(1) ।

106. अनुच्छेद 254 (2)

हों तो न्यायालय द्वारा ऐसी दोनों प्रविष्टियों को एक साथ पढ़कर इनकी व्याख्या करके और जहां आवश्यक हो एक प्रविष्टि की भाषा दूसरे के अनुरूप संशोधित करके इनमें समन्वय स्थापित किया जाता है।[107]

विधायी शक्ति में उन विधियों को जो किसी एक अथवा अन्य कमी के कारण अमान्य पाई गई हों विधिमान्य बनाने की पूरक अथवा सहायक शक्ति सम्मिलित है। उपयुक्त विधानमंडल उक्त कमी को दूर करने तथा विधिमान्य कानून पारित करने में सक्षम है ताकि उक्त विधि के उपबंधों को पारित किये जाने की तिथि से प्रभावी बनाया जा सके।[108] इसी प्रकार किसी कानून के अंतर्गत की गई कार्यवाही, जो पर्याप्त रूप से बोधगम्य नहीं हो, को विधिमान्य बनाने की विधायी शक्ति, संसद अथवा किसी विधानमंडल द्वारा किसी विषय पर विधि बनाने की शक्ति की सहायक अथवा पूरक शक्ति है।[109]

विशेष विषयों पर लोक सभा की विधान बनाने की क्षमता के बारे में इन तीन सूचियों में विषयों के वर्गीकरण से संबंधित व्यवस्था के प्रश्न समय-समय पर सभा के समक्ष उठाये गये हैं।

> प्रान्तों की स्वायत्तता संबंधी भारत शासन अधिनियम, 1935 के भाग-तीन के लागू होने के पश्चात क्षेत्राधिकार का प्रश्न पहली बार केन्द्रीय विधान सभा में 1937[110] में उठाया गया था। उससे पहले इस प्रकार का प्रश्न उठाया नहीं जा सकता था क्योंकि यह फैसला करने की शक्ति गवर्नर जनरल इन कौंसिल या गवर्नर को, जैसी भी स्थिति हो, प्राप्त थी कि कोई विषय केन्द्रीय या प्रान्तीय विषय से संबंधित है, हस्तान्तरित विषय है या आरक्षित विषय है। ये विषय न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में नहीं थे।

लोक सभा में यह प्रथा स्थापित हो चुकी है कि अध्यक्ष व्यवस्था के किसी ऐसे प्रश्न पर अपना विनिर्णय नहीं देता जिसमें यह प्रश्न उठाया गया हो कि विधेयक संवैधानिक दृष्टि से सभा के विधायी क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है या नहीं। सभा भी किसी विधेयक के संबंध में सभा के क्षेत्राधिकार के विशिष्ट प्रश्न पर कोई विनिर्णय नहीं लेती है। इसके बारे में सदस्य अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं तथा सभा के विचारार्थ सभा के क्षेत्राधिकार के संबंध में पक्ष और विपक्ष में अपने तर्क दे सकते हैं। सदस्य, विधेयक को पुर:स्थापित करने की

---

107. *हरकचन्द रमनचन्द बंथिया बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1453; साथ ही *देखिए कलकत्ता गैस कंपनी लि. बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,* ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 1044; बम्बई *राज्य बनाम नरोत्तमदास जेठा भाई,* ए.आई.आर. 1951 एस.सी. 69।

108. *राय रामकृष्ण बनाम बिहार राज्य,* ए.आई.आर 1963 एस.सी. 1667 ।

109. *मैटल कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लि. बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर., 1970 कलकत्ता 19 ।

110. *एल.ए. डिबेट्स,* 1.4.1937, पृ. 2546-48, विधायी शक्ति संबंधी प्रश्न अक्तूबर, 1937 में फिर उठाया गया—*पूर्वोक्त,* 6.10.1937, पृ. 4145-52; 7.10.1937, पृ. 3197-3202 ।

अनुमति के प्रस्ताव पर या विधेयक पर अनुवर्ती प्रस्तावों पर मतदान के समय इस पहलू को ध्यान में रखते हैं।[111]

> 1942 से पहले, जब भी केन्द्रीय विधान सभा में इस संबंध में कोई आपत्ति की जाती थी कि क्या सभा किसी विधेयक, खंड या संशोधन को अधिनियमित करने के लिए सक्षम है या नहीं, तो अध्यक्ष स्वयं अपने ऊपर यह जिम्मेदारी लेता था और दोनों पक्षों के तर्कों को सुनने के बाद उस व्यवस्था के प्रश्न को ठीक बता देता था या उसे नियम विरुद्ध ठहरा देता था। अध्यक्ष अब्दुर्रहीम ने यह विनिर्णय दिया कि सभा की विधायी सक्षमता का प्रश्न ऐसा है जिसका निर्णय स्वयं सभा को करना चाहिए। उन्होंने कहा:
>
> "सभा की विधायी सक्षमता के संबंध में किसी प्रश्न, जिससे बहुत कठिनाई और जटिलता उत्पन्न हो सकती है, के संबंध में अध्यक्ष को व्यवस्था के प्रश्न पर सरसरी तौर पर फैसला नहीं देना चाहिए। सच तो यह है कि फेडरल कोर्ट की स्थापना इन प्रश्नों का निपटारा करने के उद्देश्य से ही की गई है और वास्तव में अध्यक्ष के पास न सुविधाएं हैं, न समय और न ही सामग्री, जिसके आधार पर इस प्रकार के किसी प्रश्न का संतोषजनक निर्णय कर सके और अंतिम रूप से यह निर्णय दे सके कि सभा को किसी प्रस्तावित विधान पर विचार करना चाहिए या नहीं।
>
> इसलिए मैं यह निर्णय देना चाहता हूं कि यह प्रश्न ऐसा नहीं है, जिसका निपटारा व्यवस्था का प्रश्न उठाये जाने पर अध्यक्ष के किसी विनिर्णय द्वारा किया जाना चाहिए।"[112]

परन्तु ऐसे अवसर आये हैं जब अध्यक्ष ने विषय का अंतिम फैसला सभा पर छोड़ते हुए विधेयकों के संबंध में सभा के क्षेत्राधिकार के विषय में अपने विचार प्रकट किये।[113]

यदि किसी विधेयक को पेश करने के प्रस्ताव का विरोध इस आधार पर किया गया है कि सभा विधायी रूप से सक्षम नहीं है तो उस विषय पर पूरे वाद-विवाद की अनुमति दी जा सकती है।[114]

---

111. *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1963, पृ. 5122-23; साथ ही *देखिए* एल.एस. डिबेट्स, 2.8.1965, कॉ. 3914; *लो.स.वा.वि.* 14.11.1968, पृ. 680; 21.3.1969, पृ. 164-76; *एल.एस. डिबेट्स,* 19.8.1974, कॉ. 270-72; 23.2.1981, पृ. 222-23; *एल.एस. डिबेट्स,* 2.3.1981, कॉ. 364-69 तथा *लो.स.वा.वि.,* 23.4.1981, पृ. 170-72 ।

112. *एल.ए. डिबेट्स,* 17.2.1942, पृ. 280-83 । इस विनिर्णय के स्पष्टीकरण के लिए *देखिए पूर्वोक्त,* 25.3.1942, पृ. 1533 ।

113. उदाहरण के लिए *देखिए, लो.स.वा.वि.,* (II), 30.9.1955, कॉ. 5417-24; *एल.एस. डिबेट्स,* 28.2.1956, कॉ. 1031, 1048-55; *लो.स.वा.वि.,* 7.8.1956, पृ. 760-61; *एल.एस. डिबेट्स,* 18.8.1958, कॉ. 1400-23; 9.8.1961, कॉ. 1016-17 और 1033; *लो.स.वा.वि.,* 1.9.1976, पृ. 9 ।

114. नियम 72, *लो.स.वा.वि.,* 13.4.1963, पृ. 4157-60; *एल.एस. डिबेट्स,* 2.3.1981 कॉ. 314-21 ।

जब किसी विधेयक को पारित करने के लिए किसी संवैधानिक अपेक्षा को पूरा करना आवश्यक हो, तो अध्यक्ष बीच के प्रक्रमों में विधेयक पर चर्चा की अनुमति दे सकता है और सरकार से कह सकता है कि वह इस बीच उस अपेक्षा को पूरा कर ले।

> 25 अप्रैल, 1958 को जब सम्पदा शुल्क (संशोधन) विधेयक प्रवर समिति को सौंपने के प्रस्ताव पर चर्चा हो रही थी, एक सदस्य ने कहा कि चूंकि इस विधेयक द्वारा कृषि भूमि के संबंध में सम्पदा शुल्क लगाने का प्रस्ताव है, जो कि राज्य का विषय है, इसलिए संसद इस संबंध में तभी आगे कोई कार्यवाही कर सकती है जब कि दो या अधिक राज्य एक संकल्प पारित कर दें, जैसा कि संविधान के अन्तर्गत अपेक्षित है।[115]
>
> दोनों पक्षों के तर्क सुनने के बाद अध्यक्ष ने प्रतिविरोध को सही ठहराया। लेकिन अध्यक्ष का विचार था कि संविधान में अधिनियम के पारित होने के संबंध में ही निषेध है। चूंकि, इस समय सभा विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के प्रक्रम में है, इसलिए यह अपना विचार जारी रख सकती है ताकि इस बीच सरकार यह सुनिश्चित कर सके कि कम से कम दो राज्यों के विधानमंडल संकल्प पारित करें जैसाकि संविधान में कहा गया है। उसके बाद सभा संविधान के उपबंधों के अनुसार इस विधेयक को पारित कर सकती है।[116]

लोक सभा और अध्यक्ष को, सभा के समक्ष प्रस्तावित विधान संबंधी प्रश्नों का निर्णय करने, सहायता देने के लिए भारत के महान्यायवादी ने कई बार अध्यक्ष या सभा के सुझाव पर सभा को संबोधित किया है और सभा में विचाराधीन विषयों के विधिक और संवैधानिक पहलुओं के संबंध में अपनी राय दी है।[117]

---

115. *देखिए* अनुच्छेद 252 ।

116. *लो.स.वा.वि.*, 25.4.1958, पृ. 5438-48 ।

आवश्यक सेवाएं बनाए रखने का विधेयक, 1968 के खंड 2 पर विचार करते समय यह मुद्दा उठाया गया था कि खंड 2 के उपखंड (1) में उल्लिखित, भूतल, जल या वायु मार्ग से यात्रियों अथवा माल को लाने ले जाने की परिवहन सेवाएं अधिकांशतः राज्य से संबंधित विषयों के अंतर्गत आती हैं और अनिवार्य रूप से वे केन्द्रीय क्षेत्र में नहीं हैं। अध्यक्षपीठ ने इस आपत्ति का अनुमोदन किया और यह सुझाव दिया कि इस खंड को सुस्पष्ट और सुनिश्चित बनाया जाए। परिणामस्वरूप मंत्री महोदय ने 'वायु' शब्द के बाद 'जिसके बारे में संसद को विधि बनाने का अधिकार है' शब्दों को खंड में अंत:स्थापित करने के लिए एक संशोधन प्रस्ताव रखा जिसे सभा ने स्वीकृत किया—*लो.स.वा.वि.,* 16.12.1968; 17.12.1968 ।

117. उदाहरण के लिए महान्यायवादी ने सभा के सामने निम्नलिखित विधेयकों के संबंध में संबोधन किया:

निवारक निरोध अधिनियम, 1950 के संबंध में 25.2.1950 को ।

विन्ध्य प्रदेश विधान सभा (अनर्हता निवारण) विधेयक, 1953 के संबंध में 9.5.1953 को।

भारतीय पशु परिरक्षण विधेयक, 1952 (एक गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक) के संबंध में 1.5.1954 को ।

लोक सभा में मूल रूप से पुर:स्थापित किए जाने वाले विधेयक

पुर:स्थापन से पूर्व विधेयकों की जांच

विधेयक को लोक सभा में पुर:स्थापित करने के प्रस्तावित दिन से लगभग एक सप्ताह पूर्व विधि मंत्रालय से गोपनीय विधेयक के सिवाय, विधेयक की दो अधिप्रमाणित प्रूफ प्रतियां[118] मंगाई जाती हैं।

सचिवालय में प्रूफ प्रतियों की जांच यह सुनिश्चित करने हेतु की जाती है कि क्या विधेयक विभिन्न संवैधानिक उपबंधों तथा नियमों के अनरूप है, अर्थात्:

क्या विधेयक में उद्देश्यों और कारणों का कथन अन्तर्विष्ट है;[119]

क्या संविधान के किसी उपबंध के अंतर्गत विधेयक के पुर:स्थापन अथवा उस पर विचार किए जाने हेतु राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है और यदि हां, तो क्या संबंधित मंत्री से यह सिफारिश प्राप्त हुई है या नहीं;[120]

क्या संविधान संबंधी अन्य शर्तें पूरी कर ली गई हैं;[121]

बिक्री कर विधिमान्यकरण विधेयक, 1956 के संबंध में 28.2.1956 को ।

अनिवार्य निक्षेप स्कीम विधेयक, 1963 के संबंध में 29.4.1963 को और वित्त विधेयक, 1969 (तत्संबंधी खंड 24 के बारे में दिये गये अपने मत के स्पष्टीकरण के लिए) के संबंध में 1.5.1969 को ।

118. एक प्रति पर "मूल" और दूसरी प्रति पर "अनुलिपि" लिखा होता है।

119. नियम 65 ।

120. इन संवैधानिक उपबंधों के ब्यौरे हेतु *देखिए* अध्याय-31 'प्रक्रिया के सामान्य नियम' राष्ट्रपति की सिफारिश उप-शीर्षक के अंतर्गत ।

121. उदाहरण के लिए, यदि विधेयक राज्य सूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय के सम्बन्ध में है तो यह देखना होगा कि उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह बताया गया है या नहीं कि अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 252 में निर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण किया गया है। इसके अतिरिक्त, (संघ सूची की प्रविष्टि संख्या 7, 23, 52, 53, 54, 56 और 67 में उल्लिखित किसी विषय से संबंधित विधेयक के मामले में) उद्देश्यों और कारणों के कथन में इस बात की व्याख्या होनी चाहिए कि संसद द्वारा उस विषय पर विधान बनाना क्यों समीचीन माना गया है। इसके अतिरिक्त, जिस विधेयक के अंतर्गत संघ तथा राज्यों दोनों के लिए किसी अखिल भारतीय सेवा का सृजन करना हो, उसके संबंध में अनुच्छेद 312 के अंतर्गत यह आवश्यक है कि वह राज्य सभा द्वारा विनिर्दिष्ट बहुमत से पारित विशिष्ट संकल्प पर आधारित हो।

अनुच्छेद 3 के किसी उपबंध से संबंधित विधेयक के मामले में इस बात की भी जांच की जाती है कि राष्ट्रपति ने उस विधेयक को राज्य विधानमंडल या संबंधित विधानमंडलों को उल्लेखित विनिर्दिष्ट अवधि के अन्दर अपनी राय बताने के लिए भेजा अथवा नहीं।

क्या लोक निधि में से व्यय सम्बन्धी विधेयक के खण्डों या उपबन्धों को तिरछे या मोटे अक्षरों में मुद्रित किया गया है अथवा नहीं;[122]

क्या विधेयक के साथ वित्तीय ज्ञापन आवश्यक है और यदि हां, तो क्या यह ज्ञापन विधेयक के साथ संलग्न किया गया है अथवा नहीं;[123]

क्या अधीनस्थ विधान संबंधी ज्ञापन आवश्यक है और यदि हां, तो क्या उसे विधेयक के साथ संलग्न किया गया है अथवा नहीं;[124]

क्या अध्यादेश का स्थान लेने वाले विधेयक में अन्तर्विष्ट उपांतरणों के संबंध में ज्ञापन, यदि आवश्यक हो, विधेयक के साथ संलग्न किया गया है अथवा नहीं;

क्या संशोधन विधेयक के मामले में, मूल अधिनियम की संशोधनाधीन धाराओं को अनुबंध में उद्धृत किया गया है अथवा नहीं;

यदि विधेयक में 25 से अधिक खंड हैं तो क्या विधेयक के साथ "खण्डों का विन्यास" है अथवा नहीं;

क्या प्रूफ प्रतियों में की गई शुद्धियों पर विधि मंत्रालय की मुहर है अथवा नहीं।

विधेयक में इन सभी अपेक्षाओं के पूरा होने पर विधेयक के शीर्ष पर "विधेयक संख्या" दी जाती है[125] और उसका डॉकेट पृष्ठ तैयार करके विधेयक के साथ लगा दिया जाता है।[126] तत्पश्चात् मूल प्रूफ प्रति को प्रेस को मुद्रण हेतु इन अनुदेशों के साथ भेज दिया जाता है कि प्रत्येक पृष्ठ पर पंक्तियों के आगे पंक्ति संख्या लिखी जाये।

नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) विधेयक, 1976; संपदा शुल्क (संशोधन) विधेयक, 1986; जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) संशोधन विधेयक, 1988 और हस्त सफाई कर्मियों का नियोजन और शुष्क शौचालयों का सन्निर्माण (प्रतिबंध) [द इम्प्लॉयमैंट ऑफ मैन्यूअल स्कावैंजर्स एंड कंस्ट्रक्शन ऑफ ड्राई लैट्रीन्ज (प्रोहिबिशन)] विधेयक, 1993; विधेयक के खण्ड 1 के उपखण्ड (2) में उल्लिखित, राज्यों द्वारा अनुच्छेद 252 के अधीन पारित संकल्पों के अनुसरण में प्रस्तुत किए गए थे ।

122. नियम 69(2) ।

123. नियम 69(1) ।

124. नियम 70 ।

125. विधेयक संख्या इस प्रकार दर्शायी जाती है:

"20......... का विधेयक सं. ...."

विधेयकों की क्रम संख्या एक कलैंडर वर्ष के लिए क्रमानुसार दी जाती है।

126. 1963 से पूर्व, विधेयक के मुख पृष्ठ पर विधेयक संख्या, विधेयक का संक्षिप्त नाम और प्रक्रम अर्थात् "लोक सभा में पुर:स्थापित किया जाना है'' अथवा "लोक सभा में यथा पुर:स्थापित" का उल्लेख होता था। तथापि, जनवरी, 1963 से बचत उपाय के रूप में मुख पृष्ठ देना बंद कर दिया गया है।

विधेयक की प्रतियां दो खेपों में छापी जाती हैं। पहले "लोक सभा में पुर:स्थापित किया जाना है" लेख वाली प्रतियां छापी जाती हैं और ये प्रतियां पुर:स्थापन के कम से कम दो दिन पहले सदस्यों में बांट दी जाती हैं। विधेयक के पुर:स्थापन की तिथि निर्धारित होने परन्तु विधेयक के वास्तव में पुर:स्थापन से पूर्व मुख पृष्ठ पर "लोक सभा में यथा पुर:स्थापित" लेख वाले विधेयक की प्रतियां छापी जाती हैं और पुर:स्थापन की तिथि दर्शायी जाती है।[127]

छपी हुई प्रतियां मिलने पर उसकी एक प्रति का मूल प्रूफ प्रति के साथ बड़ी बारीकी से मिलान किया जाता है। उसके बाद एक संशोधित प्रति विधि मंत्रालय के प्रारूपकार (ड्राफ्ट्समैन) को जांच के लिए भेजी जाती है। यदि आवश्यक हो तो एक शुद्धि पत्र (जिस में प्रारूपकार द्वारा बताई गई अशुद्धियां भी शामिल होती हैं) या तो विधेयक के साथ या उसके बाद अलग से सदस्यों को भेज दिया जाता है।[128]

प्रारूपकार द्वारा अधिप्रमाणित उस विधेयक के हिन्दी संस्करण की दो प्रूफ प्रतियां, राजभाषा स्कन्ध, विधि मंत्रालय से प्राप्त होती हैं।[129]

विधेयक के हिन्दी संस्करण की प्रूफ प्रतियां जैसे ही प्राप्त होती हैं, उन्हें मुद्रित करवाया जाता है और उन्हें उन संसद सदस्यों को भेज दिया जाता है। जो अपने संसदीय पत्र हिन्दी में चाहते हैं। विधेयक की प्रतियां राज्य सभा सचिवालय, संबंधित मंत्रालय और विधि मंत्रालय के राजभाषा स्कंध को भी भेजी जाती हैं।

डॉकेट पृष्ठ पर सबसे ऊपर 'लोक सभा', मध्य में विधेयक का पूरा नाम और नीचे दाहिनी ओर कोने में प्रभारी मंत्री का नाम तथा पदनाम लिखा होता है।

अप्रैल, 1963 से, राष्ट्रपति की सिफारिश या मंजूरी के बारे में संबंधित मंत्रालय से प्राप्त पत्र को विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन के बाद विस्तार में छापा जाता है और विधेयक के डॉकेट पृष्ठ पर इस संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया जाता।

127. फरवरी, 1963 से "लोक सभा में पुर:स्थापित किया जाने वाला" और "लोक सभा में यथा पुर:स्थापित" दोनों प्रकार की प्रतियां एक ही बार छाप ली जाती हैं । पुर:स्थापन की तिथि के लिए स्थान छोड़ दिया जाता है और विधेयक के पुर:स्थापित हो जाने के बाद ''लोक सभा में यथा पुर:स्थापित" प्रतियों पर तिथि की मुहर लगा दी जाती है।

128. शुद्धि पत्र द्वारा केवल मुद्रण, व्याकरण और गणित संबंधी अथवा प्रत्यक्ष अशुद्धियां ही शुद्ध की जा सकती हैं। अन्य परिवर्तनों, परिवर्धनों या रूपान्तरण के लिए सभा में संशोधन रखे जाने चाहिए— *लो.स.वा.वि.*, 19.8.1974, पृ. 137 । भारतीय निर्यात-आयात बैंक विधेयक, 1981 और मोटरयान विधेयक, 1987 के मामले में व्याकरण तथा गणित संबंधी और प्रत्यक्ष अशुद्धियों को छोड़कर अन्य मुख्य अशुद्धियां स्वीकार नहीं की गई थीं। मोटरयान विधेयक, 1987 के मामले में, इस आधार पर विधेयक वापस ले लिया गया था कि उसमें अनेक अशुद्धियां थीं ।

129. पहली बार दिल्ली (शक्तियों का प्रत्यायोजन) विधेयक, 1963 का हिन्दी संस्करण तीसरी लोक सभा के छठे सत्र में प्राप्त हुआ था।

पुर:स्थापन से पूर्व विधेयकों का प्रकाशन

किसी विधेयक के प्रभारी सदस्य की प्रार्थना पर, उसे सभा में पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव किये बिना भी अध्यक्ष यह आदेश दे सकता है कि उस विधेयक को राजपत्र में प्रकाशित कर दिया जाए।[130] जिस समय सभा का सत्र चल रहा हो, उस समय किसी विधेयक को उसके पुर:स्थापन के पहले प्रकाशित किये जाने की प्रथा नहीं है, परन्तु विशेष मामलों में अध्यक्ष इस बात की अनुमति दे सकता है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1953 को सभा के सत्र के दौरान प्रकाशित करने की अनुमति दी गयी थी ताकि मंत्री अपने प्रेस सम्मेलन में जनता को विधेयक की विषय वस्तु बता सके और उसके संबंध में राय जान सके, जिससे कि यदि आवश्यक हो तो अगले सत्र में एक संशोधित विधेयक पेश किया जा सके।

स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार दमन विधेयक, 1954 के मामले में विधेयक को इस शर्त पर प्रकाशित करने की अनुमति दी गई कि यदि उसे सत्र के दौरान पुर:स्थापित न किया जा सका तो उसे सत्र की समाप्ति पर प्रकाशित किया जा सकता है। तथापि, इस विधेयक को पुर:स्थापन से पहले राजपत्र में प्रकाशित नहीं किया गया था।

जब कोई विधेयक सभा में पुर:स्थापित किये जाने से पहले राजपत्र में प्रकाशित किया जा चुका हो तो बाद में सदस्य, सभा में इसके पुर:स्थापित किये जाने का विरोध नहीं कर सकते।[131]

---

130. नियम 64 विधेयक, उद्देश्यों और कारणों का कथन, खण्डों पर टिप्पणियों, अधीनस्थ विधान संबंधी ज्ञापन और वित्तीय ज्ञापन आदि सहित, यदि कोई हो, प्रकाशित किया जाता है। तथापि, विधेयक के विषय वस्तु पृष्ठ (खंडों का विन्यास) और अनुबंध, जिसमें कि उस मूल अधिनियम के वे भाग दिये जाते हैं जिनका संशोधन उस विधेयक द्वारा किया जाना हो, राजपत्र में प्रकाशित नहीं किये जाते।

    निम्नलिखित मामलों में विधेयकों के प्रभारी मंत्रियों से विधेयक राजपत्र में प्रकाशित करने हेतु अनुरोध प्राप्त हुए थे और उन्हें स्वीकार कर लिया गया था :

    1. मोटर यान (संशोधन) विधेयक, 1955, 12.11.1955 को प्रकाशित हुआ।
    2. कराधान विधि (संशोधन) 1969, 20.5.1969 को प्रकाशित हुआ।
    3. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) विधेयक, 1969, 20.5.1969 को प्रकाशित हुआ।

    जीवन बीमा निगम विधेयक, 1983 के मामले में विधेयक को पुर:स्थापित करने से पहले प्रकाशित करने के बारे में वित्त मंत्री का अनुरोध इस आधार पर स्वीकार नहीं किया गया था कि सरकार के पास विधेयक को पूर्व सत्र में लाने हेतु पर्याप्त समय था चूंकि जीवन बीमा निगम के पुनर्गठन के निर्णय की घोषणा 1981 में कर दी गई थी और मंत्री ने विधेयक के पुर:स्थापन की सूचना तथा इस विधेयक को लोक सभा के वर्षाकालीन (मानूसन) सत्र, 1983 में विचार किए जाने हेतु राष्ट्रपति की सिफारिश भी भेज दी थी।

131. *एल.ए. डिबेट्स,* 18.8.1926, पृ. 66 ।

जो विधेयक अध्यक्ष के आदेशानुसार राजपत्र में प्रकाशित किया जा चुका हो, उसे सभा में पुर:स्थापित करने की अनुमति मांगने का प्रस्ताव करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे विधेयक के संबंध में अगला कदम उसे पुर:स्थापित करने का होता है जो उसे पुर:स्थापित करने की अनुमति मांगने से भिन्न होता है। परन्तु यदि विधेयक के प्रकाशन के बाद उसमें परिवर्तन किये जायें तो फिर वह एक नया विधेयक बन जाता है और विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव वैसे ही रखना पड़ता है जैसे कि किसी और विधेयक के संबंध में।

यदि सभा में रखे जाने वाले किसी विधेयक के संबंध में, पहले से उसका प्रचार करना वांछनीय समझा जाये तो अध्यक्ष, अंतर सत्रावधि के दौरान प्रेस विज्ञप्ति जारी करने की अनुमति दे सकता है।

दूसरी लोक सभा के पहले सत्र के बाद ही अंतर सत्रावधि के दौरान अध्यक्ष ने वित्त मंत्री को भारतीय आयकर अधिनियम का संशोधन करने वाले विधेयक के संबंध में उसे लोक सभा में पुर:स्थापित किये जाने से पहले प्रेस विज्ञप्ति जारी करने की अनुमति दी। इस विधेयक का उद्देश्य यह उपबंध करना था कि अनिवासियों द्वारा भारत में दिये गये ऋण पर उन्हें मिले ब्याज को कुछ परिस्थितियों में आयकर से मुक्त रखा जाये।[132]

किसी सदस्य द्वारा किसी विधेयक के उपबंधों का प्रचार उसके सभा में पुर:स्थापन से पहले करना सुस्थापित संसदीय परिपाटियों के विरुद्ध है।

सरकारी विधेयकों का पुर:स्थापन

यदि कोई मंत्री कोई विधेयक पुर:स्थापित करना चाहता है तो उसे विधेयक के पुर:स्थापन के लिए सभा की अनुमति मांगने के आशय की लिखित सूचना सात दिन पहले देनी पड़ती है।

तथापि, अध्यक्ष चाहे तो पुर:स्थापन की अनुमति मांगने के प्रस्ताव को इससे कम अवधि की सूचना पर स्वीकार कर सकता है।[133]

---

132. समाचार भाग-2, 27.6.1957, पैरा 285 ।

133. निदेश 19 क

पहली लोक सभा के अंत तक मंत्रियों द्वारा विधेयकों के पुर:स्थापन की सूचना देने के संबंध में कोई एकरूप प्रक्रिया नहीं थी। कुछ मामलों में सूचना प्राप्त होती थी। जबकि अन्य मामलों में सूचना प्राप्त नहीं होती थी और विधि मंत्रालय से विधेयक की प्रूफ प्रति प्राप्त होने पर ही संसदीय कार्य विभाग के कहने पर उस मद को कार्य-सूची में शामिल कर लिया जाता था। दूसरी लोक सभा के पहले सत्र में यह निर्णय किया गया था कि विधेयक के पुर:स्थापन के लिए सूचना देने की प्रक्रिया एक जैसी ही होनी चाहिए, चाहे वे विधेयक मंत्रियों के हों अथवा गैर-सरकारी सदस्यों के। तद्नुसार अध्यक्ष द्वारा यह निदेश जारी किया गया था। तब से मंत्री भी सभी विधेयकों के संबंध में पुर:स्थापन के लिए महासचिव को लिखित सूचना देते हैं।

किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति मांगने का प्रस्ताव रखने के आशय की सूचना सभा के सत्रावसान पर व्यपगत नहीं होती है और यदि उस विधेयक को अगले सत्र में पुर:स्थापित करना हो, तो उसके लिए नई सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती।[134] लेकिन किसी ऐसे विधेयक के संबंध में नई सूचना आवश्यक है जिसके बारे में संविधान के अन्तर्गत दी गई स्वीकृति या सिफारिश प्रभावी न रही हो।[135]

किसी दूसरे मंत्री द्वारा विधेयक पुर:स्थापित किया जाना वहां अवैध नहीं होता जहां वह मंत्री जिसने विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए मूल रूप से सूचना दी हो और उसके संबंध में राष्ट्रपति की सिफारिश प्रेषित कर दी हो, मंत्री न रहे।[136]

किसी विधेयक के पुर:स्थापन के संबंध में कार्य-सूची में तब तक प्रविष्टि नहीं की जाती जब तक कि पुर:स्थापन की प्रस्तावित तिथि से कम से कम दो दिन पहले विधेयक की प्रतियां सदस्यों को उपलब्ध न करा दी गयी हों।[137] अध्यक्ष द्वारा विनियोग विधेयक, वित्त विधेयक और ऐसे गोपनीय विधेयकों[138] के संबंध में जो कार्य-सूची में नहीं रखे जाते, यह शर्त हटा दी जाती है। अन्य विधेयकों के संबंध में यदि संबंधित मंत्री अध्यक्ष के विचार के लिए दिए गए ज्ञापन में इस बात के समुचित कारण बता देता है कि सदस्यों को विधेयक की प्रतियां उपलब्ध कराये बिना उसे क्यों पुर:स्थापित किया जा रहा है, तो अध्यक्ष विधेयक की प्रतियां

134. नियम 335 ।

135. नियम 335, परन्तुक ।

136. *लो.स.वा.वि.,* 23.7.1969, पृ. 157 ।

137. निदेश 19 ख

इस निदेश के 1957 में जारी होने के पूर्व विधेयक की प्रतियां सभा में पुर:स्थापित करने के बाद सदस्यों को परिचालित करने की प्रथा थी। यद्यपि पुर:स्थापित करने के समय कुछ प्रतियां सदस्यों की जानकारी हेतु लॉबी में रखी जाती थीं। चूंकि किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए अनुमति के प्रस्ताव का किसी सदस्य द्वारा विरोध करने हेतु नियम 72 में प्रावधान था इसलिए यदा-कदा यह मांग होती रहती थी कि विधेयक पुर:स्थापित किए जाने से पहले ही परिचालित किए जाने चाहिए, ताकि सदस्य पुर:स्थापन के प्रस्ताव पर मतदान करते समय विधेयक की विषय-वस्तु से अवगत हो सकें। सभा की इच्छा के अनुसार अध्यक्ष द्वारा यह निदेश 13.9.1957 को जारी किया गया।

यदि मंत्री सभा में उपस्थित न हो तो उसका उप-मंत्री अथवा कोई अन्य मंत्री उसकी ओर से प्रस्ताव रख सकता है। बशर्ते कि अध्यक्ष ने संबंधित मंत्री के लिखित अनुरोध पर ऐसा करने की अनुमति दे दी हो।

138. निदेश 19 ख । उदाहरणार्थ, तेल उद्योग (विकास) विधेयक, 1974 और अनिवार्य निक्षेप स्कीम (आयकर दाता) संशोधन विधेयक, 1985 को गोपनीय विधेयकों के रूप में पुर:स्थापित किया गया— *लो.स.वा.वि.,* क्रमश: 22.7.1974 और 16.3.1985 ।

सदस्यों में बांटने से पहले या उसे देर से बांटे जाने पर उसके पुर:स्थापन की अनुमति दे सकता है।[139]

आवश्यक वस्तु (संशोधन) विधेयक, 1957 की प्रूफ प्रति 29 मई, 1957 को प्राप्त हुई थी और उसे 30 मई, 1957 को पुर:स्थापित किया जाना था। 30 मई, 1957 को प्रश्नोत्तरकाल के दौरान सदस्यों को विधेयक की मुद्रित प्रतियां बांटी गयीं। जब इस पर व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया, तो अध्यक्ष ने कहा कि सरकार द्वारा इस विधेयक की अविलम्बनीयता के संबंध में दिये गये अभ्यावेदन पर मैंने इस विधेयक के पुर:स्थापित किए जाने की अनुमति दे दी है। उसके बाद विधेयक पुर:स्थापित कर दिया गया।

---

139. कुछ ऐसे विधेयकों के उदाहरण, जिन्हें उनकी प्रतियों के परिचालन के बाद दो दिन से कम समय में पुर:स्थापित किया गया, इस प्रकार हैं:—

1. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) संशोधन विधेयक, 1976 (*लो.स.वा.वि.,* 23.3.1976);
2. संघ लेखा विभागीकरण (कार्मिक अंतरण) विधेयक, 1976 (*लो.स.वा.वि.,* 23.3.1976);
3. जीवन बीमा निगम (समझौता उपांतरण) विधेयक, 1976 (*लो.स.वा.वि.,* 31.3.1976; 1.4.1976);
4. कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) संशोधन विधेयक, 1976 (*लो.स.वा.वि.,* 7.5.1976);
5. संविधान (बयालीसवां संशोधन) विधेयक, (*लो.स.वा.वि.,* 21.5.1976);
6. अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां आदेश (संशोधन) विधेयक, 1976 (*लो.स.वा.वि.,* 21.5.1976);
7. बैंककारी और लोक वित्तीय संस्था विधि (प्रकीर्ण उपबंध) संशोधन विधेयक, 1976 (*लो.स.वा.वि.,* 24.5.1976);
8. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क टैरिफ विधेयक, 1985 (*लो.स.वा.वि.,* 13.12.1985);
9. अरूणाचल प्रदेश राज्य (संशोधन) विधेयक, 1987 (*लो.स.वा.वि.,* 8.5.1987);
10. मोटर यान विधेयक, 1987 (*लो.स.वा.वि.,* 11.5.1987);
11. मोटर यान विधेयक, 1988 (*लो.स.वा.वि.,* 13.5.1988);
12. दिल्ली नगर निगम (संशोधन) विधेयक, 1993 (*लो.स.वा.वि.,* 14.5.1993);
13. मानव अधिकार आयोग विधेयक, 1993 (*लो.स.वा.वि.,* 14.5.1993);
14. केन्द्रीय करों पर अग्रिम विनिर्णय व्यवस्था प्राधिकरण विधेयक, 2007 ;
15. केन्द्रीय विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 2012 (*लो.स.वा.वि.* 26.11.2012);
16. संविधान (अनुसूचित जनजातियां) आदेश (दूसरा संशोधन) विधेयक, 2012 (*लो.स.वा.वि.* 14.12.2012);
17. दंड विधि (संशोधन) विधेयक, 2013 (*लो.स.वा.वि.* 19.3.2013)।

विधेयक के पुर:स्थापन के लिए नियत तिथि को अध्यक्ष प्रभारी मंत्री को बुलाता है और वह विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव रखता है। जब अध्यक्ष इस प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखता है और प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है, तब मंत्री द्वारा विधेयक पुर:स्थापित किया जाता है। पुर:स्थापना चरण पर केवल वही मंत्री, जिसने विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति के लिए सूचना दी है, विधेयक पुर:स्थापित कर सकता है किन्तु यदि उसने विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव रखने हेतु दूसरे मंत्री को अनुमति देने के लिए अध्यक्ष को पहले ही लिख दिया हो तो दूसरा मंत्री उसकी ओर से विधेयक पुर:स्थापित कर सकता है।

चूंकि वह मंत्री, जिसके नाम से भारत टैरिफ (संशोधन) विधेयक, 1969 दर्ज था सभा में उपस्थित नहीं था और उसने अध्यक्ष को पहले इस बारे में नहीं लिखा था, इसलिए संबंधित उप मंत्री को मंत्री की ओर से विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति नहीं दी गई थी।[140]

यदि विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध किया जाये तो अध्यक्ष, यदि वह उचित समझे, प्रस्ताव रखने वाले सदस्य और उसका विरोध करने वाले सदस्य का संक्षिप्त व्याख्यात्मक कथन सुनने के बाद किसी वाद-विवाद के प्रश्न को सभा के समक्ष रख सकता है।[141] जब किसी प्रस्ताव का विरोध इस आधार पर किया जाता है कि इस विधेयक के माध्यम से ऐसी विधि बनायी जा रही है जो सभा की विधायी क्षमता के बाहर है तो उस पर विस्तृत वाद-विवाद की अनुमति दी जा सकती है।[142] तथापि वित्त विधेयक अथवा विनियोग विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव मतदान के लिए तत्काल रख दिया जाता है।[143]

परिपाटी यह है कि सामान्यत: विधेयक को पुर:स्थापित करने के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जाता है किन्तु ऐसे अनेक अवसर आये हैं जब सभा में सरकार के विधेयकों के पुर:स्थापन के प्रस्ताव का विरोध किया गया है।[144] जो सदस्य विधेयक को पुर:स्थापित करने

---

140. *लो.स.वा.वि.,* 13.12.1969 पृ. 130; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 22.7.1968 ।

141. नियम 72 ।

142. *पूर्वोक्त,* प्रथम परन्तुक—उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 13.4.1963 पृ. 4157-60 और 2.3.1981, पृ. 195-200 ।

143. *पूर्वोक्त, द्वितीय परन्तुक*—उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 28.2.1974, पृ. 147-52 ।

144. उदाहरणार्थ संविधान (नौवां संशोधन) विधेयक, 1960 अधिगृहीत राज्य क्षेत्र (विलय) विधेयक, 1960; संविधान (तैतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1977; संविधान (बावनवां संशोधन) विधेयक, 1984; आवश्यक सेवा (संशोधन) विधेयक, 1985; मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986; अवैध प्रवासी (न्यायाधिकरणों द्वारा अवधारण) संशोधन विधेयक, 1987; तेल क्षेत्र (विनियमन तथा विकास) संशोधन विधेयक, 1993, संविधान (अठारहवां संशोधन) विधेयक, 1993 और लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1993 तथा भारतीय जैव प्रौद्योगिकी नियामक प्राधिकरण विधेयक, 2013 के संबंध में पुर:स्थापन के प्रस्ताव का विरोध किया गया।

की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध करना चाहता है, उसे उस दिन, जिस दिन विधेयक पुर:स्थापित किए जाने के लिए कार्य-सूची में सम्मिलित किया गया हो, (बैठक के आरम्भ होने से पहले 10.00 बजे तक) महासचिव को लिखकर इस बात की अग्रिम सूचना देनी होती है। 10 दिसम्बर, 2004 से प्रभावी नियम 72 के उपनियम(2) में यह संशोधन किया गया है कि जो सदस्य विधेयक के पुर:स्थापन का विरोध करना चाहते हैं उनके लिए यह अनिवार्य है कि वे अपनी सूचना में अपने विरोध के कारणों का संक्षेप एवं सुस्पष्ट उल्लेख करें।[145] जो सदस्य 10.00 बजे के पश्चात् विधेयकों को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की सूचना देते हैं, उन्हें सामान्यतया विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति नहीं दी जाती है।[146] परन्तु अपवादस्वरूप कुछ मामलों में अध्यक्ष किसी ऐसे सदस्य को विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दे सकता है भले ही उसकी सूचना 10.00 बजे के बाद प्राप्त हुई हो।[147] जैसे ही विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की

---

145. चौदहवीं लोक सभा के तीसरे सत्र के दौरान एक सदस्य के. येरन्नायडू ने 16 दिसंबर 2004 को पुर:स्थापन के लिए सूचीबद्ध आंध्र प्रदेश विधायी परिषद विधेयक, 2004 के पुर:स्थापन का विरोध करने की सूचना दी। चूंकि पुर:स्थापन का विरोध करने के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया था अत: अध्यक्ष ने सूचना स्वीकार नहीं की। जब सदस्य ने सभा में विधेयक को पुर:स्थापित किए जाने के प्रस्ताव का विरोध करना चाहा तो अध्यक्ष ने इसकी अनुमति नहीं दी और निम्नलिखित टिप्पणी की:—

    "हमने सोच-समझकर नियमों में परिवर्तन किया है और आप भी इसमें शामिल थे। इनमें यह बताया गया है कि केवल विरोध की सूचना देना भर काफी नहीं है, माननीय सदस्य को उन आधारों के बारे में बताना चाहिए जिनके कारण वे विरोध कर रहे हैं। आपने ऐसा नहीं किया है और आप चाहते हैं कि मैं नियमों का उल्लंघन करुं। हमने इसमें पहले ही संशोधन कर दिया है और आप भी इसमें शामिल थे। आप मुझसे यह उम्मीद न रखें कि मैं इसका उल्लंघन करुंगा।"

    17 मई 2007 को कई सदस्यों ने भारत टायर निगम लिमिटेड (स्वामित्व का विनिवेश) विधेयक 2007 के पुर:स्थापन का विरोध करने की सूचना दी। चूंकि सूचना में पुर:स्थापन का विरोध करने के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया था, अत: अध्यक्ष ने विधेयक के पुर:स्थापन का विरोध करने की अनुमति नहीं दी। *लो.स. वाद-विवाद* 17.5.2007 कॉ. 336।

146. 1 दिसम्बर, 1983 को एक सदस्य, जिसने वाणिज्य पोत परिवहन (संशोधन) विधेयक, 1983 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने के लिए प्रात: 10.25 बजे एक सूचना दी थी, को विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति नहीं दी गई। एक अन्य अवसर पर 25 जनवरी, 1985 को एक सदस्य जिसने प्रशासनिक अधिकरण विधेयक, 1985 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने के लिए प्रात: 10.50 बजे सूचना दी थी, को विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति नहीं दी गई।

147. कुछ सदस्यों को, जिन्होंने मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने के लिए उस दिन, जिसको विधेयक कार्य-सूची

सूचना प्राप्त होती है, लोक सभा सचिवालय विधेयक के प्रभारी मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री को सूचित कर देता है। यदि दो या अधिक सदस्य इस प्रकार की सूचना देते हैं तो अध्यक्ष उस सदस्य को बुलाता है जिसकी सूचना सर्वप्रथम प्राप्त हुई हो और यदि सभी सदस्यों से सूचनाएं एक ही समय पर प्राप्त हुई हों तो पूर्ववर्तिता निर्धारित करने के लिए उनके नामों का बैलट किया जाता है।[148] अपवादस्वरूप कुछ मामलों में एक से अधिक सदस्यों को विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दी जा सकती है।[149] जब किसी विधेयक को पुर:स्थापन करने के प्रस्ताव का विरोध करने की अनुमति कई सदस्यों द्वारा मांगी जाती है तब सामान्यत: अध्यक्ष प्रमुख दलों और अन्य ग्रुपों के सदस्यों को उसको पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति देता है।

18 मई, 1979 को, जब सूचना देने वाले कई सदस्यों ने संविधान (पचासवां संशोधन) विधेयक, 1979 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति मांगी, तो अध्यक्षपीठ ने प्रमुख दलों के दो-दो सदस्यों और अन्य ग्रुपों में से प्रत्येक के एक अथवा दो सदस्यों (कुल मिलाकर 11 सदस्य) को विधेयक को पुर:स्थापित करने के विरोध में अपने निवेदन करने की अनुमति दी थी। सदस्यों द्वारा उठाये गये मुद्दों का मंत्री द्वारा स्पष्टीकरण दिये जाने पर मत विभाजन के बाद विधेयक को पुर:स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया और विधेयक पुर:स्थापित किया गया।

में सम्मिलित किया गया था, 10.00 बजे के बाद सूचनाएं दी थीं, विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दी गई थी—*लो.स.वा.वि.,* 25.2.1986, पृ. 221-44 ।

एक अन्य अवसर पर एक सदस्य को, जिसने राष्ट्रीय सुरक्षा (संशोधन) विधेयक, 1987 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने के लिए 10.00 बजे के बाद सूचना दी थी, विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दी गई थी—*लो.स.वा.वि.,* 31.7.1987 पृ. 151-64 ।

पुन:, एक सदस्य को, जिसने संविधान (अड़सठवां संशोधन) विधेयक, 1990 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने के लिए 10.40 बजे सूचना दी थी, विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दी गई थी- *लो.स.वा.वि.,* 23.5.1990, पृ. 222-26 ।

148. एक अवसर पर उन सदस्यों जिनसे सूचनाएं प्राप्त हुई थीं, के नामों का बैलट किया गया और जिस सदस्य का नाम बैलट में आया, उसे विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दी गई—*लो.स.वा.वि.,* 22.7.1975, पृ. 10-11 ।

149. 25 सदस्यों को आवश्यक सेवा विधेयक, 1981 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दी गई । मत विभाजन के पश्चात् विधेयक को पुर:स्थापित किया गया-*लो.स.वा.वि,* 10.9.1981, पृ. 241-285 ।

छह सदस्यों को नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 1985 का विरोध करने की अनुमति दी गई- *लो.स.वा.वि.,* 18.11.1985 पृ. 232-36 ।

जब सभा की विधायी सक्षमता के आधार पर विधेयक को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति मांगी जाती है, तो उस पर पूरी बहस होती है। सदस्यों को विधेयक के गुणावगुणों का उल्लेख किये बिना संक्षिप्त वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है।[150]

यदि कोई विधेयक सारत: उस विधेयक के समान है, जिसके संबंध में सभा उसी सत्र में निर्णय कर चुकी हो, तो उसे पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता। ऐसा विधेयक तभी पुर:स्थापित किया जा सकता है, जब सभा उस नियम का निलम्बन करने के लिए सहमत हो जाये जिसके अधीन समान प्रस्ताव एक सत्र में दो बार नहीं लाये जा सकते।[151]

तथापि, समान विषय से संबंधित परन्तु सारत: भिन्न विधेयकों को उसी सत्र में पुर:स्थापित करने की अनुमति दी जा सकती है।[152]

सामान्यत: सभा में एक बार पुर:स्थापित किये गये विधेयक को सरकार को ऐसा अवसर प्रदान करने के लिए वापिस नहीं लिया जा सकता कि वह उस विधेयक को बिना किसी परिवर्तन के उसी सत्र के दौरान पुर:स्थापित कर सके। तथापि, संविधान (बाईसवां संशोधन) विधेयक के मामले में अध्यक्ष ने एक विशेष मामले के रूप में इस हिदायत के साथ कि इसे भविष्य में पूर्वोदाहरण न माना जाये, उन नियमों का निलम्बन करने का प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दी, जो इस विधेयक को वापस लेने में बाधक थे।[153]

---

10 सदस्यों को मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986 को पुर:स्थापित करने का विरोध करने की अनुमति दी गई। मत विभाजन के पश्चात् विधेयक पुर:स्थापित किया गया—*लो.स.वा.वि.,* 25.2.1986, पृ. 221-41 ।

150. विक्षुब्ध क्षेत्र (विशेष न्यायालय) संशोधन विधेयक, 1981; आवश्यक सेवा विधेयक, 1981 और मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) विधेयक, 1986-*लो.स.वा.वि.,* 22.4.1981 और 23.4.1981, पृ. 161-175 10.9.1981, पृ. 286-93 और 25.2.1986, पृ. 221-41 ।

151. नियम 388 के साथ पठित नियम 338 ।

उदाहरण के लिए जहां विधेयकों को पुर:स्थापित करने के लिए नियम 338 निलंबित किया गया *देखिए—एल.एस. डिबेट्स,* 18.12.1958, कॉ. 4999-5001; 23.8.1984, पृ. 223-27 और 4.4.1990, पृ. 416-17 ।

152. *देखिए* हिन्दू मठ विधेयक 1950 (दो विधेयक)—*पी.डिबेट्स,* (II) 12.12.1950, कॉ. 1548 और 1552-53 । ये गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक थे।

153. *एल.एस. डिबेट्स,* 2.4.1969, कॉ. 151-59; 25 मार्च, 1969 को संविधान (बाईसवां संशोधन) विधेयक का खंड 2 सभा द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया क्योंकि मत विभाजन कराने पर उसे इस प्रयोजनार्थ अपेक्षित विशेष बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था। बाद में उक्त विधेयक पर नियम 110 (ग) लागू होने को निलम्बित करने का प्रस्ताव 2 अप्रैल, 1969 की कार्य सूची में शामिल किया गया था, जिससे सरकार इसी विधेयक को उसमें कोई परिवर्तन किए बिना फिर से पुर:स्थापित कर सके।

कोई विधेयक जो सभा में लम्बित किसी अन्य विधेयक पर पूर्णत: या अंशत: निर्भर है उस विधेयक के पारित हो जाने की पूर्वाशा में, जिस पर कि वह निर्भर है, सभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है परन्तु दूसरा विधेयक सभा में विचार किए जाने और पारित किए जाने के लिए तभी लिया जा सकता है जब पहला विधेयक संसद द्वारा पारित किया जा चुका हो और राष्ट्रपति द्वारा उस पर अनुमति दी जा चुकी हो।[154]

संविधान (बाईसवां संशोधन) विधेयक, जो 15 अप्रैल, 1969 को लोक सभा द्वारा और 30 अप्रैल, 1969 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया, राष्ट्रपति की अनुमति हेतु लंबित पड़ा था। इसका संशोधन करने वाले विधेयक, जिसकी सूचना एक गैर-सरकारी सदस्य ने 24 अप्रैल को दी थी, को 25 जुलाई, 1969 को पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गई जबकि दूसरे विधेयक, जिस पर यह निर्भर था, पर राष्ट्रपति की अनुमति नहीं मिल पाई थी।

परस्पर निर्भर विधेयकों के मामले में संबंधित नियम के परन्तुक को निलंबित करके उन पर विचार किया गया है और उन्हें पारित किया गया है।[155] जहां कोई विधेयक दूसरे ऐसे विधेयक

एक अन्य उदाहरण में 22.8.1984 को संविधान (सैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1982 पर विचार करने का प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ क्योंकि मत विभाजन कराने पर उसे इस प्रयोजनार्थ अपेक्षित विशेष बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। इसके बाद इस विधेयक को पुर:स्थापित करने और उस पर विचार करने के मामले में नियम 338 के लागू होने को निलम्बित करने के प्रयोजन से दो प्रस्ताव नियम 388 के अधीन 23.8.1984 को स्वीकृत किये गये, ताकि सरकार उसी विधेयक को उसमें कोई संशोधन किये बिना केवल नाम में परिवर्तन करके अर्थात् संविधान (तिरेपनवां संशोधन) विधेयक, 1984 के नाम से फिर से पुर:स्थापित कर सके—*लो.स.वा.वि.,* 23.8.1984, पृ. 560-611 ।

एक अन्य उदाहरण में 30 मार्च, 1990 को संविधान (चौंसठवां संशोधन) विधेयक, 1990, राज्य सभा द्वारा यथापारित, पर विचार करने का प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ, क्योंकि मत विभाजन कराने पर उसे इस प्रयोजनार्थ अपेक्षित विशेष बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। इसके बाद इस विधेयक को पुर:स्थापित करने और उस पर विचार करने के मामले में नियम 338 के लागू होने को निलंबित करने के प्रयोजन से एक प्रस्ताव नियम 388 के अधीन 4 अप्रैल, 1990 को स्वीकृत किया गया ताकि सरकार उसी विधेयक को उसमें कोई संशोधन किये बिना केवल नाम में परिवर्तन करके अर्थात् संविधान (पैंसठवां संशोधन) विधेयक 1990 के नाम से फिर से पुर:स्थापित कर सके— *लो.स.वा.वि.,* 4.4.1990, पृ. 416-17 ।

154. नियम 66—*पी. डिबेट्स* (II), 24.8.1953, कॉ. 1368-70 ।

155. नियम 66, परन्तुक—संविधान (तेरहवां संशोधन) विधेयक, 1962 और नागालैंड राज्य विधेयक, 1962 दोनों पर एक साथ विचार किया गया और उन्हें एक साथ पारित किया गया—*एल.एस. डिबेट्स,* 28.8.1962, कॉ. 4483-98 और 4498-648; 29.8.1962, कॉ. 4794-813, इसी प्रकार, प्रौद्योगिकी विकास बोर्ड विधेयक, 1995 तथा अनुसंधान और विकास उपकर (संशोधन) विधेयक, 1995 दोनों पर एक साथ विचार किया गया और उन्हें एक साथ पारित किया गया—*लो.स.वा.वि.,* 25.8.1995, कॉ. 392-410 ।

पर निर्भर हो जिसका आशय संविधान में संशोधन करना हो और दोनों विधेयकों को एक साथ लिया जाना अपेक्षित हो, तो वहां संविधान (संशोधन) विधेयक को दूसरे विधेयक से पहले निपटाना होगा।[156]

> अपवाद के मामलों में, किसी ऐसे विधेयक पर जो ऐसे किसी अन्य विधेयक, जो सभा में लम्बित है, पर निर्भर है, उस विधेयक के, जिस पर वह निर्भर है, दोनों सभाओं द्वारा पारित कर लिए जाने और उस पर राष्ट्रपति द्वारा अनुमति दिये जाने से पहले इस विधेयक पर नियम का परन्तुक लागू होने को निलम्बित करने का प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिये जाने के पश्चात् विचार करने और उसे पारित करने की अनुमति दी जा सकती है।[157]

लौह अयस्क खान और मैंगनीज अयस्क खान श्रम कल्याण उपकर विधेयक, 1976 और लौह अयस्क खान तथा मैंगनीज अयस्क खान श्रम कल्याण निधि विधेयक, 1976 पर जो परस्पर निर्भर थे, एक साथ विचार किया गया और उन्हें एक साथ पारित किया गया—*एल. एस. डिबेट्स* 25.3.1976 कॉ. 224 और 26.3.1976 कॉ. 152-53 । बीड़ी कर्मकार कल्याण उपकर विधेयक, 1976 और बीड़ी कर्मकार कल्याण निधि विधेयक, 1976 पर जो परस्पर निर्भर थे, एक साथ विचार किया गया और उन्हें एक साथ पारित किया गया—*एल.एस. डिबेट्स* 26.3.1976 कॉ. 153 । जूट विनिर्मित उपकर विधेयक, 1983 और जूट विनिर्मित विकास परिषद विधेयक, 1983 पर, जो परस्पर निर्भर थे, एक साथ विचार किया गया और उन्हें एक साथ पारित किया गया—*एल.एस. डिबेट्स* 5.8.1983, कॉ. 368-69; 8.8.1983, कॉ. 388-415 और 9.8.1983, कॉ. 404-16 । संविधान (तिरेपनवां संशोधन) विधेयक, 1986 और मिजोरम राज्य विधेयक, 1986 पर, जो परस्पर निर्भर थे, एक साथ विचार किया गया और उन्हें एक साथ पारित किया गया—*एल.एस. डिबेट्स* 5.8.1986, कॉ. 259-414 ।

156. संविधान (इक्कीसवां संशोधन) विधेयक, 1966 और लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक 1966—*एल.एस., डिबेट्स,* 8.11.1966, कॉ. 1963 । संविधान (पचपनवां संशोधन) विधेयक, 1986 और अरुणाचल प्रदेश राज्य विधेयक, 1986—*एल.एस. डिबेट्स* 8.12.1986 कॉ. 24-141 ।

157. आपात संकट (माल) बीमा विधेयक और आपात संकट (कारखाना) बीमा विधेयक, जहां, बाद वाला विधेयक पहले विधेयक पर निर्भर था, पर एक साथ विचार किया गया और उन्हें एक साथ पारित किया गया—*लो.स.वा.वि.,* 5.12.1962, पृ. 1833-34; 7.12.1962, पृ. 1950-80 ।

सभा द्वारा संघ लेखा विभागीकरण (कार्मिक अंतरण) विधेयक, 1976 पर नियम 66 के परन्तुक के लागू होने को निलम्बित करने का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिये जाने के पश्चात् विचार किया गया और उसे पारित किया गया—*लो.स.वा.वि.,* 25.3.1976, पृ. 95 ।

पुनः 1971 में आपात स्थिति के कारण (i) आपात संकट (माल) बीमा विधेयक और आपात संकट (उपक्रम) बीमा विधेयक—*एल.एस. डिबेट्स* 8.12.1971 कॉ. 57-58; (ii) वैयक्तिक क्षति (आपात उपबन्ध) संशोधन विधेयक और वैयक्तिक क्षति (प्रतिकर बीमा)

किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव किसी भी दिन इस बात के होते हुए भी कि वह दिन वित्तीय कार्य के लिए नियत किया गया है, पेश किया जा सकता है और उसी दिन विधेयक को पुर:स्थापित भी किया जा सकता है।[158]

इस संबंध में कोई निर्बंधन नहीं है कि किसी दिन विशेष को कितने सरकारी विधेयक पुर:स्थापित किये जा सकते हैं या एक ही मंत्री द्वारा कितने विधेयक पुर:स्थापित किये जा सकते हैं।

पुर:स्थापन के बाद सरकारी विधेयकों का प्रकाशन

विधेयक के पुर:स्थापित किये जाने के बाद यथा शीघ्र उसे उसी तारीख को, जिसको कि उसे पुर:स्थापित किया गया हो, राजपत्र में प्रकाशन के लिए भेजा जाता है यदि वह पुर:स्थापन से पहले ही राजपत्र में प्रकाशित न किया जा चुका हो।[159] यदि कोई विधेयक

संशोधन विधेयक—*एल.एस. डिबेट्स* 15.12.1971 कॉ. 12; और 16.12.1971 कॉ. 131; (*iii*) संविधान (सत्ताईसवां) संशोधन विधेयक 1971 *एल.एस. डिबेट्स* 21.12.1971 कॉ. 7-8 । जो पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) विधेयक, 1971 जिसे लोक सभा द्वारा 15.12.1971 को पारित किया गया था तथा जिसे निर्भरशील विधेयक पर विचार किये जाने की तारीख पर राष्ट्रपति की सम्मति नहीं मिल सकी, पर निर्भर था, (iv) संघ राज्यक्षेत्र शासन (संशोधन) विधेयक, 1971 (*लो.स.वा.वि.,* 21.12.1971), जो पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) विधेयक, 1971 तथा संविधान (सत्ताईसवां संशोधन) विधेयक, 1971 जिन्हें लोक सभा द्वारा क्रमश: 15.12.1971 तथा 21.12.1971 को पारित किया गया तथा निर्भरशील विधेयक पर विचार किये जाने की तारीख की राष्ट्रपति की सम्मति नहीं मिल सकी, पर निर्भर था; तथा (v) पूर्वोत्तर परिषद् विधेयक, 1971 (लो.स.वा.वि., 22.12.1971, कॉ. 47) जो पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) विधेयक; 1971 संविधान (सत्ताईसवां संशोधन) विधेयक, 1971 तथा संघ राज्यक्षेत्र शासन (संशोधन) विधेयक, 1971, जिन्हें लोक सभा द्वारा क्रमश: 15.12.1971, तथा 21.12.1971 को पारित किया गया तथा निर्भरशील विधेयक पर विचार किये जाने की तारीख को राष्ट्रपति की सम्मति नहीं मिल सकी, पर निर्भर था के संबंध में भी यही प्रक्रिया अपनायी गई।

158. नियम 220 । ऐसे कई उदाहरण हैं जबकि वित्तीय कार्य के लिए नियत दिनों में विधेयक पुर:स्थापित किये गये। 15 मार्च, 1954 के दिन, जो बजट (सामान्य), 1954-55 पर चर्चा करने के लिए नियत किया गया था, एक सरकारी विधेयक *अर्थात्* अस्पृश्यता (अपराध) विधेयक, 1954 पुर:स्थापित किया गया था और 23 मार्च, 1985 के दिन, जो बजट (सामान्य), 1985-86 पर चर्चा करने के लिए नियत किया गया था, राष्ट्रीय सुरक्षा (संशोधन) विधेयक, 1985 पुर:स्थापित किया गया था। 23 मार्च, 1987 को भ्रष्टाचार निवारण विधेयक, 1987 पुर:स्थापित किया गया था जबकि बजट (सामान्य), 1987-88 पर चर्चा की जा रही थी।

159. नियम 73—विधेयक राजपत्र, असाधारण (II-2) में प्रकाशित किये जाते हैं।

यदि किसी विधेयक के मामले में, जिसे अध्यक्ष के निदेशानुसार पुर:स्थापित करने से पहले प्रकाशित किया जाना हो, तो विधेयक की विषय-सूची वाला पृष्ठ और उसके उपाबंध राजपत्र में प्रकाशित नहीं किये जाते हैं।

राष्ट्रपति की सिफारिश पर पुर:स्थापित किया जाता है या राष्ट्रपति ने लोक सभा से किसी विधेयक पर विचार करने की सिफारिश की है, तो राष्ट्रपति की सिफारिश भेजने वाले मंत्री के पत्र को विधेयक में उद्देश्यों तथा कारणों के कथन के बाद सविस्तार छापा जाता है और उसी प्रकार वह राजपत्र में भी प्रकाशित किया जाता है।

समान विधेयकों को, जब इस आधार पर पुनः पुर:स्थापित किया जाता है कि प्रथमतः उन्हें पुर:स्थापित करने की सिफारिश राष्ट्रपति से प्राप्त नहीं की गयी थी, दोबारा राजपत्र में प्रकाशित किए जाने की आवश्यकता नहीं होती।

किसी विधेयक के राजपत्र में प्रकाशित किये जाने का यह मतलब नहीं है कि उस विधेयक की प्रतियां सदस्यों को भेजने की आवश्यकता नहीं रही।[160]

विधेयकों को विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों को सौंपा जाना

वर्ष 1993 में विभागों से संबद्ध 17 स्थायी समितियों के गठन के साथ भारतीय संसद के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। प्रत्येक समिति में 45 सदस्य होते थे, 30 सदस्यों को लोक सभा के सदस्यों में से अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता है तथा 15 सदस्यों को राज्य सभा के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता था। कार्यकारी नीतियों, विधायी और बजटीय प्रस्तावों आदि की स्थायी समितियों द्वारा शीघ्रतापूर्वक जांच करने और उन पर सभाओं में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने को सुकर बनाने की दृष्टि से वर्ष 2004 में स्थायी समितियों की संख्या 17 से बढ़ाकर 24 कर दी गयी है। अब हर स्थायी समिति में 31 सदस्य होते हैं। 21 सदस्यों को लोक सभा के सदस्यों में से अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता है और 10 सदस्यों को राज्य सभा के सदस्यों में से राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता है।[161] सभी मंत्रालयों/विभागों को स्थायी समितियों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत लाया गया है।[162] विभागों से संबद्ध 24 स्थायी समितियों में से 8 राज्य सभा के क्षेत्राधिकार के अधीन और 16 लोक सभा के क्षेत्राधिकार के अधीन हैं।

प्रत्येक मंत्रालय/विभाग की अनुदानों की मांगों पर विचार करने के अलावा इन समितियों को किसी मंत्रालय/विभाग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले ऐसे विधेयकों, जिन्हें, यथास्थिति, राज्य सभा के सभापति अथवा लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा, उन्हें भेजा गया है, की जांच करने का कार्य सौंपा गया है[163] प्रत्येक स्थायी समिति द्वारा विधेयकों की जांच तथा

---

160. *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 6.9.1928, पृ. 299-305 ।

161. नियम 331 घ।

162. नियम 331 ग।

163. नियम 331 ङ (1) (ख)। 1 मई, 2005 से पूर्व विधेयकों को स्थायी समितियों को सौंपते समय विधेयकों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कोई समय-सीमा नियत नहीं की गयी थी। मई, 2005 में अध्यक्ष द्वारा यह विनिश्चय किया गया कि विधेयक को सौंपते समय समिति से यह अनुरोध किया जाए कि वह विधेयक पर अपना प्रतिवेदन तीन महीने के अंदर दे दे।

उनके संबंध में सभा को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया जायेगा।[164]

(क) समिति, उसे सौंपे गए विधेयकों के सामान्य सिद्धान्तों तथा खण्डों पर विचार करेगी और उन पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगी;

(ख) समिति किसी भी सभा में पुर:स्थापित[165] केवल ऐसे विधेयकों[166] पर विचार करेगी जिन्हें यथास्थिति, सभापति, राज्य सभा अथवा अध्यक्ष द्वारा उसे सौंपा जाए; और

(ग) समिति, दिए गए समय में विधेयकों पर अपना प्रतिवेदन देगी।

यदि कोई विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया हो और उसे ऐसी समिति को सौंपा जाना हो जो राज्य सभा के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आती हो तो ऐसे विधेयक को अध्यक्ष, लोक सभा द्वारा ऐसा अनुरोध किये जाने पर सभापति, राज्य सभा द्वारा समिति को सौंपा जाएगा और इसके विपरीत यदि कोई विधेयक राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया हो और उसे ऐसी समिति को सौंपा जाना हो जो लोक सभा के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आती हो तो ऐसे विधेयक को सभापति, राज्य सभा द्वारा ऐसा अनुरोध किए जाने पर अध्यक्ष लोक सभा द्वारा समिति को सौंपा जाएगा।[167]

तथापि, समिति को यह स्वतंत्रता होगी कि वह अपना प्रतिवेदन तीन महीने से पहले भी दे सकती है और यदि उसे तीन महीने से अधिक समय की आवश्यकता हो तो वह प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए पीठासीन अधिकारी से समय बढ़ाए जाने का भी अनुरोध कर सकती है।

164. नियम 331 ज ।

165. तकनीकी और कम महत्व वाले विधेयकों को छोड़कर सभी विधेयकों को समितियों को सौंपा जाता है। विधेयकों का स्थान लेने वाले अध्यादेशों और अविलम्बनीय स्वरूप के विधेयकों को भी समितियों को नहीं सौंपा जाता है क्योंकि उन्हें निश्चित तारीख तक अधिनियमित करना अपेक्षित होता है। तथापि, ग्यारहवीं लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान इसका एक अपवाद रहा जब विद्युत विधि (संशोधन) अध्यादेश, 1997 का स्थान लेने के लिए प्रस्तुत विद्युत विधि (संशोधन) विधेयक, 1995 को सभा के अनेक सदस्यों की मांग पर उक्त विधेयक की जांच करने और उस पर प्रतिवेदन देने के लिए उसे ऊर्जा संबंधी स्थायी समिति को सौंपा गया था। तथापि, समिति 4 दिसम्बर, 1997 को ग्यारहवीं लोक सभा के विघटन से पूर्व विधेयक पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं कर सकी।

166. सरकारी क्षेत्र लौह और इस्पात कंपनियां (पुनर्गठन) और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) विधेयक, 1993 को पुर:स्थापित किए जाने से पूर्व ही समिति को सौंप दिया गया था।

167. आरंभ में, ऐसे विधेयकों को समितियों को सौंपने के लिए अनुरोध पत्रों का आदान-प्रदान पीठासीन अधिकारियों के स्तर पर किया जाता था; बाद में यह निर्णय लिया गया कि ऐसे पत्रों का आदान-प्रदान दोनों सभाओं के महासचिवों के स्तर पर किया जाए।

स्थायी समितियों के प्रतिवेदनों का प्रत्ययकारी महत्व होगा और उन्हें समिति की सुविचारित सलाह माना जाएगा। यदि सरकार समिति की किसी भी सिफारिश को स्वीकार करती है तो वह विधेयक पर विचार किए जाने के समय सरकारी संशोधन ला सकती है अथवा विधेयक वापस ले सकती है और समिति की सिफारिशों को शामिल करके एक नया विधेयक ला सकती है।[168]

---

168. (क) ऐसा उदाहरण जब सरकारी संशोधन स्थायी समितियों की सिफारिश के अनुसरण में लाए गए थे:—

(*i*) राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग विधेयक, 1993 ।

(*ii*) संदाय और परिनिर्धारण पद्धति विधेयक, 2006 ।

(*iii*) बैंककारी विधि (संशोधन) अधिनियम, 2012।

(*iv*) विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) संशोधन अधिनियम, 2012।

(*v*) महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष) अधिनियम, 2013।

(ख) ऐसे उदाहरण जब स्थायी समिति की सिफारिशों को शामिल करने के पश्चात् नया विधेयक पुर:स्थापित किया गया:—

(*i*) प्रतिभूति संविदा (विनियमन) संशोधन विधेयक, 2005 लोक सभा में 16 दिसंबर, 2005 को पुर:स्थापित किया गया और इसे वित्त संबंधी स्थायी समिति को सौंप दिया गया। चूंकि स्थायी समिति द्वारा सिफारिश किया गया मत जिस पर सरकार सहमत हुई, विधेयक में परिकल्पित मत से अलग था अत: सरकार ने पहले वाला विधेयक वापस ले लिया और समिति की सिफारिशें शामिल करने के पश्चात् उसी दिन एक नया विधेयक अर्थात् प्रतिभूति संविदा (विनियमन) संशोधन विधेयक, 2006 पुर:स्थापित किया।

(*ii*) प्रतिस्पर्धा (संशोधन) विधेयक, 2006 लोक सभा में 9 मार्च 2006 को पुर:स्थापित किया गया और वित्त संबंधी स्थायी समिति को सौंप दिया गया। समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप विधेयक में अपेक्षित बड़ी संख्या में संशोधनों को ध्यान में रखते हुए विधेयक वापस ले लिया गया और 29 अगस्त 2007 को प्रतिस्पर्धा (संशोधन) विधेयक, 2007 पुर:स्थापित किया गया।

(*iii*) कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 2009 लोक सभा में 3 अगस्त, 2009 को पुर:स्थापित किया गया था और वित्त संबंधी स्थायी समिति को भेज दिया गया था। स्थायी समिति की सिफारिशों और विधेयक से सम्बद्ध विभिन्न लोगों के सुझावों के कारण विधेयक में किए जाने वाले बड़ी संख्या में संशोधनों को देखते हुए विधेयक वापस ले लिया गया और कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 2011 नाम का एक नया विधेयक 14 दिसम्बर, 2011 को पुर:स्थापित किया गया।

विधेयकों के पुरःस्थापन के बाद के प्रस्ताव

विधेयक के पुरःस्थापित किए जाने के बाद संबंधित विधेयक का प्रभारी सदस्य निम्नलिखित में से कोई भी प्रस्ताव पेश कर सकता है:[169]

> कि विधेयक पर विचार किया जाये; या कि विधेयक को सभा की प्रवर समिति को सौंप दिया जाये; या कि विधेयक को, राज्य सभा की सहमति से, दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंप दिया जाये; या कि विधेयक को उस पर राय जानने के लिए परिचालित किया जाए।

यदि सदस्यों को विधेयक की प्रतियां, उसके संबंध में कोई प्रस्ताव पेश करने से कम से कम दो दिन पहले उपलब्ध न कराई गई हों, तो कोई भी सदस्य उस के संबंध में मंत्री द्वारा ऐसा प्रस्ताव पेश किए जाने पर आपत्ति कर सकता है और जब तक अध्यक्ष उस प्रस्ताव के पेश किए जाने की अनुमति न दे तब तक वह आपत्ति मान्य होगी।[170] चूंकि विधेयक की प्रतियां उसके पुरःस्थापन से दो दिन पहले सदस्यों को परिचालित की जानी होती हैं[171] इसलिए तकनीकी दृष्टि से अगला प्रस्ताव उस दिन पेश किया जा सकता है जिस दिन विधेयक पुरःस्थापित किया जाये। तथापि, परिपाटी के अनुसार किसी विधेयक के संबंध में अगला प्रस्ताव उस दिन नहीं रखा जाता जिस दिन विधेयक पुरःस्थापित किया गया हो।[172]

---

169. नियम 74 ।

170. नियम 74, दूसरा परन्तुक।

171. निदेश 19 ख।

172. ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां इस परम्परा कि किसी विधेयक के संबंध में अगला प्रस्ताव उसी दिन नहीं पेश किया जाएगा जिस दिन इसे पुरःस्थापित किया गया है, का पालन नहीं किया गया:

    गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक : दी टेम्पल एंट्री बिल-*एल.ए. डिबेट्स,* 24.3.1933, पृ. 2532-39; भारतीय मोटरयान (संशोधन) विधेयक—*एल.ए. डिबेट्स,* 3.9.1936, पृ. 394; और दि मुस्लिम इंटेस्टेट सक्सेशन बिल—*एल.ए.डिबेट्स,* 15.9.1939, पृ. 605 और 607 ।

    सरकारी विधेयक : संसद सदस्य वेतन और भत्ता (संशोधन) विधेयक, 1975—*लो.स.वा.वि.,* 6.8.1975, पृ. 3-12 ।

    संविधान (चालीसवां संशोधन) विधेयक, 1975—*लो.स.वा.वि.,* 7.8.1975, पृ. 4-21; संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1983—*लो.स.वा.वि.,* 26.8.1983, पृ. 320;

    संविधान (तिरेपनवां संशोधन) विधेयक, 1984, *एल.एस. डिबेट्स,* 23.8.1984, कॉ. 619; राष्ट्रपति की पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1985—*लो.स.वा.वि.,* 19.12.1985, पृ. 285-86। [आपराधिक विधि (संशोधन) विधेयक, 2013, *लो.स.वा.वि.,* 19.3.2013]

जहां किसी विधेयक की प्रतियां उसके पुर:स्थापन के बाद परिचालित की जाती हैं अर्थात् वित्त विधेयकों और गोपनीय विधेयकों के सम्बन्ध में, या किसी अन्य स्थिति में, जहां विधेयक की प्रतियां उसके पुर:स्थापन के दो दिन पहले परिचालित करना संभव नहीं हो सका, वहां पुर:स्थापन के बाद अगला प्रस्ताव तभी पेश किया जा सकता है जब विधेयक की प्रतियां सदस्यों के पास पहुंचे कम से कम दो दिन हो चुके हों। तथापि, जहां किसी विधेयक का प्रभारी सदस्य अध्यक्ष से यह प्रार्थना करे कि किसी विधेयक की प्रतियां सदस्यों को परिचालित करने के दो दिन से पहले उसके सम्बन्ध में अगला प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दी जाये तो अध्यक्ष अपने विवेक का उपयोग करके सूचना की इस अवधि में छूट दे सकता है और इस मामले के सभी तथ्यों पर विचार करके और सभा की राय जानने के पश्चात् प्रस्ताव पेश किए जाने की अनुमति दे सकता है।

> भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक एक गोपनीय विधेयक के रूप में पुर:स्थापित किया गया था। मंत्री द्वारा इसकी अविलम्बनीयता बताए जाने पर सभा इस पर अगले दिन विचार करने के लिए सहमत हो गई। तथापि, अगले दिन जब विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव पेश किया गया, तो इस पर विचार करने पर आपत्ति की गई, और तद्नुसार उस पर आगे विचार करना स्थगित कर दिया गया।[173]

तथापि, विनियोग विधेयकों के मामले में अविलम्बनीयता के आधार पर अध्यक्ष प्रतियों के पहले से परिचालित किए जाने की आवश्यकता के संबंध में जोर नहीं देता है और इन मामलों में इस परिपाटी कि किसी विधेयक के सम्बन्ध में अगला प्रस्ताव उसी दिन पेश नहीं किया जाना चाहिए, जिस दिन इसे पुर:स्थापित किया गया हो, को भी अध्यक्ष सामान्यत: विनियोग विधेयक के प्रभारी मंत्री के अनुरोधों पर छूट दे देता है। सामान्यत: अध्यक्ष संबंधित मंत्री की ओर से किए गए विशिष्ट अनुरोधों पर अनेक अवसरों पर विनियोग विधेयकों को पुर:स्थापित करने, उन पर विचार करने तथा उन्हें उसी दिन पारित करने की अनुमति दे देता है।[174]

---

173. *लो.स.वा.वि.,* 27.4.1959, पृ. 6423, 6482; *एल.एस. डिबेट्स,* 28.4.1959, कॉ. 13766-80; संविधान (अठहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1992—*लो.स.वा.वि.,* 20.8.1992, पृ. 6-40 ।

174. उदाहरण के लिए विनियोग (संख्यांक 5) विधेयक, 1957; विनियोग (संख्यांक 2) विधेयक, 1959; विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1960; विनियोग (संख्यांक 4) विधेयक, 1962; विनियोग (रेल) संख्यांक 4 विधेयक, 1962; विनियोग विधेयक, 1985; विनियोग (रेल) विधेयक, 1987; विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1991; विनियोग (रेल) विधेयक, 1993; विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1995; विनियोग विधेयक, 1995; विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 2007 और विनियोग (संख्याक 4) विधेयक, 2007; विनियोग (लेखानुदान) विधेयक 2013 और विनियोग (रेल)लेखानुदान विधेयक, 2013, उसी दिन पुर:स्थापित किए गए, उन पर विचार किया गया और उन्हें पारित किया गया।

विचार करने का प्रस्ताव

जब यह प्रस्ताव "कि विधेयक पर विचार किया जाए" पेश किया जाता है या बाद के किसी दिन, जिस दिन तक के लिए विधेयक पर चर्चा स्थगित कर दी जाती है, तो विधेयक के सिद्धान्त तथा उसके उपबन्धों पर सामान्य रूप से चर्चा होती है, परन्तु विधेयक के ब्यौरे पर उससे अग्रेतर चर्चा नहीं की जाती, जितनी कि उसके सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हो।[175] संशोधनकारी विधेयकों के मामले में चर्चा संशोधनकारी विधेयक के उपबन्धों तक ही सीमित रखी जाती है और मूल अधिनियम के अन्य मुख्य उपबन्धों पर चर्चा नहीं की जाती, जब तक कि संशोधनकारी विधेयक के खण्डों के फलस्वरूप मूल अधिनियम की किसी अन्य धारा का संशोधन या उपांतरण होना अनिवार्य न हो।[176]

जब दो समान प्रकृति के विधेयक सभा में लम्बित हों, तो दोनों विधेयकों पर विचार करने के प्रस्तावों पर संयुक्त चर्चा करने की अनुमति दे दी जाती है, परन्तु सभा के मतदान के लिए दोनों प्रस्ताव अलग-अलग रखे जाते हैं।[177]

जनता की राय जानने के लिए परिचालन

जब कोई विधेयक पुर:स्थापित कर दिया जाता है, तो विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव पेश कर सकता है कि विधेयक पर राय जानने के लिए उसे परिचालित किया जाये। यदि ऐसा प्रस्ताव पेश किया गया हो, तो इस आशय का संशोधन पेश नहीं किया जा सकता है कि विधेयक पर विचार किया जाये या उसे सभा की प्रवर समिति या दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंप दिया जाये।[178]

विधेयक के प्रभारी सदस्य द्वारा विधेयक पर विचार किये जाने या उसे प्रवर अथवा संयुक्त समिति को सौंपे जाने के लिए पेश किए गए किसी प्रस्ताव पर संशोधन के रूप में इस आशय का प्रस्ताव भी पेश किया जा सकता है कि विधेयक पर राय जानने के लिए उसे परिचालित किया जाए।

किसी सदस्य को ऐसे किसी विधेयक को परिचालित किये जाने का प्रस्ताव पेश करने की अनुमति है जिस पर विचार किए जाने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक

---

175. नियम 75 ।

176. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 15.7.1952, कॉ. 3894; *एल.एस. डिबेट्स* (II), 27.4.1954, कॉ. 5823-24 ।

177. *एल.एस.डिबेट्स,* 9.12.1955, कॉ. 2016-32 और 10.12.1955, कॉ. 2101-55; *एल.एस. डिबेट्स,* 5.12.1956, कॉ. 1987-92; *लो.स.वा.वि.,* 7.12.1956; पृ. 784-801; 11.12. 1956, पृ. 966-99; 12.12.1956, पृ. 990-1037; 19.12.1960, पृ. 3055-3086; 20.12. 1960, पृ. 3171-3205; 26.3.1976, पृ. 95-101; 19.8.1981, पृ. 234-48; 24.8.1981, पृ. 318-67; 25.8.1981, पृ. 225-66; 3.5.1984, पृ. 263-312 ।

178. नियम 75 (2)।

हो, परन्तु उस समय तक विधेयक के प्रभारी सदस्य द्वारा वह सिफारिश प्राप्त न कर ली गई हो, अथवा राष्ट्रपति ने विधेयक पर विचार करने की अपनी सिफारिश रोक ली हो।[179]

पहले, जब कभी राष्ट्रपति किसी विधेयक पर विचार करने के लिए अपनी सिफारिश रोक लेता था तो विधेयक को परिचालित करने के प्रस्ताव की सूचना नियम के विरुद्ध समझी जाती थी। तथापि, विधेयक का प्रभारी सदस्य राष्ट्रपति से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने का अनुरोध कर सकता था।

किसी विधेयक को परिचालित करने का प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिए जाने का यह मतलब नहीं है कि सभा ने उसके सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है और यदि वह प्रस्ताव अस्वीकार हो जाता है तो विधेयक अस्वीकृत नहीं होता है।[180]

विधेयक को उस पर जनता की राय जानने के लिए परिचालित करने के प्रस्ताव में वह अवधि विनिर्दिष्ट की जाती है जिसके दौरान राय ली जानी होती है।[181] प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के बाद सभा की सहमति के बिना निर्दिष्ट तारीख में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

विधेयक राज्य सरकारों को परिचालित किया जाता है और उनसे कहा जाता है कि वे उसे अपने राजपत्रों में प्रकाशित कर दें और विधेयक के उपबन्धों के सम्बन्ध में अपनी राय राज्य विधानमंडलों के सदस्यों और ऐसे सार्वजनिक निकायों, चुने हुए पदाधिकारियों या अन्य व्यक्तियों, जिनसे परामर्श लेना राज्य सरकारें उचित समझें, की रायों की दो-दो प्रतियां प्रस्ताव में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर भेजें। कुछ मामलों में राज्य सरकारों से यह भी कहा जा सकता है कि वे उच्च न्यायालयों की राय प्राप्त करें।[182]

किसी विधेयक पर रायें प्राप्त हो जाने के पश्चात् सचिवालय में यह पता लगाने के लिए उनकी जांच की जाती है[183] कि उनमें कहीं कोई मानहानिकारक या अपमानजनक कथन तो नहीं है या कोई ऐसी बातें तो नहीं कही गयी हैं जिनसे संसद या राज्य विधानमंडलों की गरिमा

---

179. *लो.स.वा.वि.,* 26.5.1967, पृ. 610-62 ।

180. *एल.ए. डिबेट्स,* 10.1.1922, पृ. 1452 ।

181. निदेश 21 ।

182. जब सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार किसी विधेयक को परिचालित किया जाना होता है तो विधि मंत्री से इस संबंध में परामर्श किया जाता है कि उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के विचार जानना वांछनीय है या नहीं।

183. सभा के निदेशानुसार परिचालित किये गये विधेयकों पर रायों आदि को एकत्र करने की जिम्मेदारी सचिवालय की है। यदि कोई विधेयक कार्यपालिका आदेश के अधीन परिचालित किया गया हो, तो यह जिम्मेदारी संबंधित मंत्रालय पर आती है।

विधेयक जनता की राय जानने के लिए मुख्यतया लोक सभा के निदेश के अनुसार परिचालित किये जाते हैं। जो विधेयक कार्यपालिका आदेश के अधीन जनता की राय जानने के लिए परिचालित किये गये हैं, वे इस प्रकार हैं:—दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1953; और हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1954 ।

कम होती है। उन रायों का सम्पादन किया जाता है जिससे कि अनावश्यक सामग्री को निकाला जा सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि भाषा सौम्य और गरिमापूर्ण हो। उन रायों का सम्पादन तथा समेकन करने के बाद उन्हें 'विधेयक के पत्र'[184] के रूप में मुद्रित किया जाता है और विधेयक का प्रभारी सदस्य उन्हें सभा पटल पर रखता है। सभा पटल पर रखने के बाद सभी रायें मुद्रित की जाती हैं और उनकी प्रतियां दोनों सभाओं के सदस्यों को उपलब्ध कराई जाती हैं। यदि लोक सभा का सत्र न चल रहा हो तो सभा पटल पर रखे जाने से पहले अध्यक्ष के आदेशानुसार रायें सदस्यों में परिचालित की जाती हैं। उस स्थिति में लोक सभा का अगला सत्र आरम्भ होने के बाद, यथाशीघ्र उन रायों को सभा पटल पर रख दिया जाता है।[185]

राज्य सरकारों को हिन्दी या अंग्रेजी से भिन्न किसी अन्य भाषा में प्राप्त हुई रायों के मामले में यह आवश्यक है कि वे सचिवालय को भेजने से पहले उन रायों का हिन्दी या अंग्रेजी में अनुवाद करवा लें। तथापि, यदि कोई राज्य सरकार ऐसा नहीं करती है तो ऐसी रायों को विधेयक पर अभ्यावेदन समझा जाता है और उन्हें भारत सरकार के सम्बन्धित मंत्रालय को दिखाने के बाद संसद ग्रन्थालय में रख दिया जाता है। सदस्यों को संसदीय समाचार (बुलेटिन) के माध्यम से ऐसे अभ्यावेदनों के सम्बन्ध में सूचित कर दिया जाता है।[186]

'विधेयक के पत्र' सभा पटल पर रखते समय विधेयक का प्रभारी सदस्य केवल इतना कहता है कि वह विधेयक सम्बन्धी पत्र पटल पर रख रहा है और यदि वह विधेयक पर उसके आगे कार्यवाही करना चाहता हो तो यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक को सभा की प्रवर समिति या दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंप दिया जाये।[187] यदि अध्यक्ष यह प्रस्ताव करने की अनुमति न दे कि विधेयक पर विचार किया जाये।[188]

जो विधेयक सभा के निदेश द्वारा उस पर राय जानने के लिए परिचालित किया गया हो उसके प्रवर समिति या संयुक्त समिति को सौंपे जाने के बाद सभा पटल पर रखी गई रायों का सारांश तैयार किया जाता है और उसे विधेयक सम्बन्धी समिति के सदस्यों को उपलब्ध कराया जाता है।[189]

प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव

सामान्य प्रथा के अनुसार, किसी विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के प्रस्ताव में सभा

---

184. निदेश 22 ।
185. निदेश 24 ।
186. निदेश 23 ।
187. यदि कोई विधेयक सभा के निदेश से जनता की राय जानने के लिए परिचालित किया जाये तो उसको किसी प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव उस तारीख तक ग्राह्य नहीं होता जिस तारीख तक रायों को भेजने की अवधि समाप्त न हो जाये।
188. नियम 75 (3)।
189. निदेश 26 ।

के उन सदस्यों के नाम होते हैं, जिन्हें उस समिति में नियुक्त किया जाना हो। जब कोई विधेयक प्रवर समिति को सौंपा जा चुका हो, तो उसके बाद विधेयक के प्रभारी सदस्य द्वारा पेश किए गए और सभा द्वारा स्वीकृत एक प्रस्ताव द्वारा अतिरिक्त सदस्यों को समिति का सदस्य नियुक्त किया जा सकता है।[190]

जिन सदस्यों के नाम किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव में शामिल किये जाते हैं, उनके बारे में यह नहीं समझ लिया जाता कि उन्होंने सहमति दे दी है बल्कि प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को स्पष्ट रूप से उनकी सहमति प्राप्त करनी पड़ती है।[191]

किसी विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के प्रस्ताव में केवल लोक सभा के सदस्यों के नाम सम्मिलित किये जाते हैं। तथापि, प्रस्ताव में उन मंत्रियों के नाम भी सम्मिलित किये जा सकते हैं, जो राज्य सभा के सदस्य हों, परन्तु इस प्रकार उस प्रवर समिति में सदस्य के रूप में नियुक्त किये गये मंत्रियों को मत देने का कोई अधिकार नहीं होता है।

किसी सरकारी विधेयक के मामले में विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपे जाने के प्रस्ताव में विधेयक के प्रभारी मंत्री का नाम सदैव सम्मिलित किया जाता है, जबकि गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के मामले में प्रस्ताव में प्रभारी सदस्य का तथा उस मंत्री का नाम शामिल किया जाता है, जिसके मंत्रालय से विधेयक की विषय-वस्तु संबंधित हो। उन सदस्यों की संख्या नियत नहीं की गई है जिनके नाम समिति में नियुक्ति के प्रस्ताव में सम्मिलित किए जा सकते हैं और प्रत्येक समिति के लिए सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। समिति में जैसा कि प्रस्ताव से परिलक्षित होता है, सामान्यतः सभा के दलों तथा ग्रुपों का प्रतिनिधित्व रहता है।

यह बाध्यकारी नहीं है कि जो सदस्य किसी विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव पेश करता है, उसका नाम भी उन सदस्यों की सूची में हो, जिन्हें समिति का सदस्य नियुक्त किया जाना है।[192]

---

190. 30 अगस्त, 1939 को केन्द्रीय विधान सभा में यह प्रस्ताव रखा गया और स्वीकार किया गया कि भारतीय रबड़ नियंत्रण (संशोधन) विधेयक संबंधी प्रवर समिति में एक और सदस्य को शामिल किया जाये—*एल.ए. डिबेट्स,* 30.8.1939, पृ. 149 । इसी प्रकार 25 अगस्त, 1956 को लोक सभा में यह प्रस्ताव रखा गया और स्वीकार किया गया कि स्त्री तथा बालक संस्था (अनुज्ञापन) विधेयक, 1953 संबंधी प्रवर समिति में और सदस्यों को शामिल किया जाये- *लो.स.वा.वि.,* 25.8.1956, पृ. 1441 ।

191. *लो.स.वा.वि.,* 26.11.1956, पृ. 424; *एल.एस. डिबेट्स,* 11.2.1959, कॉ. 413-16 ।
राजभाषा (संशोधन) विधेयक को सभाओं की संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव मतदान के लिए नहीं रखा गया, क्योंकि इसके लिए कतिपय ऐसे सदस्यों की सहमति प्राप्त नहीं की गई थी जिनके नाम उक्त प्रस्ताव में सम्मिलित थे—*एल.एस. डिबेट्स* 13.12.1969, कॉ. 6714-16; *लो.स.वा.वि.,* 26.10.1976, पृ. 17-18 ।

192. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 4.5.1954, कॉ. 6479 ।

परिपाटी यह है कि जिन सदस्यों को समिति में नियुक्त किया जाना हो, उन्हें विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव पर बोलने की अनुमति नहीं दी जाती है।[193] तथापि, आपवादिक मामलों में इस परिपाटी से हटकर कार्य किया गया है।[194]

किसी विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव में समिति को यह अनुदेश भी दिया जा सकता है कि वह ऐसे विषयों पर भी विचार करे, जिनका उल्लेख विधेयक में न हो, परन्तु वे विषय विधेयक की विषय-वस्तु से संबंधित होने चाहिए।[195]

जब किसी समिति की मूल अधिनियम की उन धाराओं में, जिनका समावेश संशोधनकारी विधेयक में नहीं किया गया है, संशोधन करने के अनुदेश दिए जाते हैं तो वे सुनिश्चित और स्पष्ट होने चाहिएं।[196]

समिति नियुक्त करने के प्रस्ताव में एक विशिष्ट तारीख, जिस तक या उस अवधि जिसके भीतर उसे अपना प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत करना होता है, का उल्लेख किया जाता है। जब कोई विशिष्ट तारीख न बताई गयी हो, तो सामान्यत: समिति को यह निर्देश दिया जाता है कि वह 'अगले सत्र के पहले सप्ताह के अन्तिम दिन तक' या 'अगले सत्र के पहले दिन' अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।

किसी गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक को एक प्रस्ताव[197] या अलग-अलग प्रस्तावों[198] के द्वारा उसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है, जिसके पास उसी विषय पर सरकारी विधेयक भेजा गया है/भेजे गए हैं या जिस संयुक्त या प्रवर समिति के पास गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक भेजा गया है, उसके पास उसी विषय पर सरकारी विधेयक भेजा जा सकता है/भेजे जा सकते हैं।

दो समान प्रकृति के विधेयकों को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्तावों पर एक साथ चर्चा करने की अनुमति दी जा सकती है।[199]

---

193. *पूर्वोक्त,* 30.4.1954, कॉ. 6140 ।

194. *पी. डिबेट्स* (II), 21.11.1950, कॉ. 351-52; *एच.पी. डिबेट्स,* 6.11.1952, कॉ. 89-90; *एल.एस. डिबेट्स,* 17.7.1957, कॉ. 3900-01, और 15.11.1960, कॉ. 341, 348-59 ।

195. देखिए *लो.स.वा.वि.,* 24.9.1955, पृ. 4758-65 ।

196. *पूर्वोक्त,* 2.8.1955, पृ. 656-64 ।

197. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 8.5.1954, कॉ. 6855-57 ।

198. *लो.स.वा.वि.,* 24.8.1956, पृ. 1427-28; 25.8.1956, पृ. 1439; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 29.4.1959 और 30.4.1959, क्रमश: पृ. 6695; पृ. 6787 *एल.एस डिबेट्स,* 15.12.1959, कॉ. 5141-44 ।

199. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.9.1955 और 24.9.1955 का क्रमश: 14586 और 15091-96।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि धन विधेयकों या ऐसे वित्तीय विधेयकों को किसी संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता जिनमें कोई ऐसा उपबन्ध हो, जिसके कारण कोई विधेयक धन विधेयक बन जाता हो।[200]

ज्यों ही कोई प्रवर या संयुक्त समिति अपना *अन्तिम प्रतिवेदन* सभा में प्रस्तुत कर देती है, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है और उसके बाद किसी अन्य विधेयक को उस समिति को सौंपने का प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता।[201] संयुक्त समिति तब भी निष्क्रिय हो जाती है, यदि सरकार लोक सभा का विघटन होने के बाद समिति का समापन करने के इरादे से समिति को पुनर्गठित नहीं करती ।[202]

किसी विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिये जाने के पश्चात् सभा उस विधेयक के सिद्धान्त के प्रति वचनबद्ध हो जाती है।[203]

जब किसी विधेयक को किसी संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव लोक सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो तो वह एक संदेश सहित राज्य सभा की सहमति के लिए राज्य सभा को भेजा जाता है। इस प्रस्ताव में लोक सभा के उन सदस्यों के नाम होते हैं, जिन्हें समिति का सदस्य नियुक्त किया गया हो और यह भी बताया जाता है कि उस समिति में राज्य सभा के कितने सदस्य होंगे। राज्य सभा से यह अनुरोध किया जाता है कि वह समिति के लिए अपने सदस्य नामनिर्दिष्ट करे और उनके नामों की सूचना लोक सभा को दे दे। किसी संयुक्त समिति में लोक सभा और राज्य सभा के सदस्यों का अनुपात सामान्यतया 2:1 का होता है।

संयुक्त समिति को विधेयक सौंपने की लोक सभा की सिफारिश से सहमति प्रकट करते हुए यदि राज्य सभा संयुक्त समिति के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने का समय बढ़ाये जाने की सिफारिश करती है तो लोक सभा द्वारा विधेयक के प्रभारी मंत्री द्वारा प्रस्तुत एक प्रस्ताव के माध्यम से इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया जाता है। प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के पश्चात् इस आशय का एक संदेश राज्य सभा को भेज दिया जाता है।[204]

---

200. आयकर तथा अधिकार संबंधी विधि के संशोधन या समेकन संबंधी विधेयकों को धन विधेयक माना गया है।

201. *एल.एस. डिबेट्स,* 16.7.1956, कॉ. 8-9 ।

202. अर्जित प्रतिरक्षण न्यूनता संलक्षण (एड्स) निवारण विधेयक, 1989 राज्य सभा में 18 अगस्त, 1989 को पुर:स्थापित किया गया था तथा 8 जनवरी, 1991 को इसे संयुक्त समिति को सौंप दिया गया था। सहमति संबंधी प्रस्ताव लोक सभा द्वारा 11 जनवरी, 1991 को स्वीकार किया गया था। 13 मार्च, 1991 को नौवीं लोक सभा का विघटन हो जाने के साथ ही यह समिति निष्क्रिय हो गई तथा दसवीं लोक सभा के गठन के बाद भी निष्क्रिय रही, क्योंकि सरकार ने इसे पुनर्गठित नहीं किया। 12 अगस्त, 1992 को यह विधेयक राज्य सभा में वापस ले लिया गया।

203. *एल.एस. डिबेट्स,* 30.7.1956, कॉ. 1527-32 ।

204. *एल.एस. डिबेट्स,* 7.5.1970, कॉ. 185; *लो.स.वा.वि.,* 9.5.1956, पृ. 3319; *आर.एस. डिबेट्स,* 16.5.1956, कॉ. 2362-63; और *लो.स.वा.वि.,* 17.5.1956, पृ. 3665-66 ।

विधेयकों के पुरःस्थापन के बाद प्रस्तुत प्रस्तावों में संशोधन

जब प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव रखता है "कि विधेयक पर विचार किया जाए" या "उसे प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपा जाए" या "उसे राय जानने के लिए परिचालित किया जाए" तो सामान्य तौर पर विधेयक के सिद्धान्त तथा उसके उपबन्धों पर चर्चा होती है, परन्तु विधेयक के ब्यौरे पर उससे अधिक चर्चा नहीं की जाती जितनी कि उसके सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हो। उस समय विधेयक के किसी भी खण्ड पर संशोधन पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु यदि प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव रखे कि विधेयक पर विचार किया जाए तो कोई अन्य सदस्य संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक सभा की प्रवर समिति या राज्य सभा की सहमति से दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंप दिया जाये या विधेयक को संशोधन में निर्दिष्ट तारीख तक राय जानने के लिए परिचालित किया जाये। यदि प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव रखे कि विधेयक को सभा की प्रवर समिति को सौंप दिया जाये तो कोई सदस्य संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव रख सकता है कि इसे दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंपा जाये और यदि प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव रखे कि विधेयक दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंपा जाए तो कोई सदस्य यह प्रस्ताव रख सकता है कि उसे सभा की प्रवर समिति को सौंपा जाये या विधेयक को उस पर राय जानने के लिए परिचालित किया जाये।[205]

किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने या इसे परिचालित करने के संबंध में कोई संशोधन, विधेयक पर विचार करने के लिए रखे गये प्रस्ताव के तुरन्त बाद ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए।[206] विधेयक और इसके कतिपय खण्डों पर विचार करने के प्रस्ताव के स्वीकृत होने के पश्चात् विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने का संशोधन नियम विरुद्ध होता है।[207]

कुछ अवसरों पर ऐसा भी हुआ है कि जब एक विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव रखा जा चुका था और उस पर कुछ चर्चा हो चुकी थी तो विधेयक के प्रभारी सदस्य ने कुछ सदस्यों द्वारा दिये गये सुझावों को मानकर स्वयं यह संशोधन पेश किया कि विधेयक को संयुक्त या प्रवर समिति को सौंप दिया जाए।[208]

---

205. नियम 75 ।

206. यदि उस चरण में इस संशोधन का प्रस्ताव नहीं किया गया है, तो इसे नियम 75 के उपनियम (2) को निलंबित करने के बाद प्रस्तुत किया जा सकता है–*लो.स.वा.वि.*, 3.4.1969, पृ. 194; 18.4.1969, पृ. 192 ।

207. *लो.स.वा.वि.*, (II), 14.11.1968, पृ. 669 ।

208. *पूर्वोक्त*, 17.8.1961, कॉ. 2845 और 2857-80; 18.9.1961, कॉ. 3067; 17.11.1971, कॉ. 200-07; 11.12.1993 कॉ. 9-121 ।

जब कोई संशोधन, जिसका प्रयोजन राय जानने के लिए उसे परिचालित करना हो और विचार करने के प्रस्ताव पर पेश किया गया हो, विलम्बकारी हो और विधेयक के उद्देश्यों को ही निष्फल करने वाला हो तो उसे नियम-विरुद्ध ठहराया जाता है।[209] इसके अतिरिक्त समाप्त होने वाली विधियों को जारी रखने से संबंधित विधेयकों की दशा में ऐसे संशोधन, जिन्हें मूल अधिनियमों की समाप्ति की तारीखों के बाद की तारीखों तक विधेयक पर राय जानने के प्रयोजनार्थ उन्हें परिचालित करने का प्रस्ताव हो, तो वे अग्राह्य होते हैं।[210]

यदि सभा के समक्ष यह प्रस्ताव हो कि विधेयक को सभा की प्रवर समिति या दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंप दिया जाये, तो संशोधन पेश किया जा सकता है कि सभा यथास्थिति प्रवर या संयुक्त समिति को यह निदेश दे कि वह विधेयक में कोई विशेष या अतिरिक्त उपबन्ध करे और यदि आवश्यक या सुविधाजनक हो, तो उन संशोधनों, जो उस मूल अधिनियम में किए जाने हों जिसका विधेयक द्वारा संशोधन करना प्रस्तावित हो, पर विचार करके उनके संबंध में प्रतिवेदन दे। ऐसा संशोधन उस दशा में भी पेश किया जा सकता है जब सभा के समक्ष यह प्रस्ताव हो कि विधेयक पर विचार किया जाए और किसी सदस्य ने यह प्रस्ताव रखा हो कि विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंप दिया जाए।[211] विधेयकों को प्रवर समिति/संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव पर संशोधन पेश किया जा सकता है, लेकिन ऐसे मामले में सर्वप्रथम संशोधन का निपटान किया जाता है और उसके बाद मुख्य प्रस्ताव को मतदान के लिए रखा जाता है।[212]

सभा की राय जानने के बाद अध्यक्षपीठ द्वारा संयुक्त समिति को विधेयक सौंपे जाने के बारे में संशोधन को, संशोधित रूप में मतदान के लिए रखा जा सकता है।[213]

किसी विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के ऐसे संशोधन को नियम-विरुद्ध ठहराया जाता है जिसमें उन सदस्यों के नाम न दिये गये हों, जिन्हें समिति का सदस्य नियुक्त किया जाना हो।[214]

जिस सदस्य का नाम किसी विधेयक को प्रवर समिति या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव में सम्मिलित हो तो, उसे उस प्रस्ताव पर संशोधन पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती।[215]

---

209. *एल.एस.डिबेट्स* (II), 27.11.1959, कॉ. 2229 ।
210. *लो.स.वा.वि.* 9.12.1957, पृ. 2157-58 ।
211. नियम 75, पहला परन्तुक-साथ ही *देखिए-एच.पी. डिबेट्स,* (II), 8.5.1954, कॉ. 6854-57 ।
212. संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक, 1993, *एल.एस. डिबेट्स,* 3.8.1993, कॉ. 536-64 ।
213. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.11.1957, कॉ. 1106-31 ।
214. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 10.3.1954, कॉ. 1746 ।
215. *एल.एस. डिबेट्स,* 27.8.1956, कॉ. 4627-29 ।

जब किसी विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव पेश किया जा चुका हो तो इस आशय का संशोधन पेश करने की अनुमति नहीं है कि विधेयक पर तत्काल विचार किया जाए।[216]

प्रवर या संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण के बाद की प्रक्रिया

किसी विधेयक पर प्रवर या संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के लोक सभा में प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् विधेयक का प्रभारी सदस्य निम्नलिखित प्रस्तावों में से कोई एक प्रस्ताव रख सकता है[217]:

कि यथा प्रतिवेदित विधेयक पर विचार किया जाए; अथवा

कि यथा प्रतिवेदित विधेयक को, परिसीमा के बिना या केवल विशेष खंडों या संशोधनों के संबंध में ही उसी समिति या एक नई समिति को पुनः सौंपा जाए; अथवा

समिति को विधेयक में कोई विशेष या कोई अतिरिक्त उपबंध करने के अनुदेशों के साथ; अथवा

कि यथा प्रतिवेदित विधेयक को, उस पर राय या अग्रेतर राय जानने के प्रयोजनार्थ यथास्थिति, परिचालित किया जाये या पुनः परिचालित किया जाए।

यदि विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव करे कि प्रवर या संयुक्त समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित विधेयक पर विचार किया जाये तो कोई भी सदस्य इस आधार पर प्रस्ताव किए जाने पर आपत्ति कर सकता है कि समिति के प्रतिवेदन की प्रतियां प्रस्ताव किए जाने के दिन से कम से कम दो दिन पहले सदस्यों को उपलब्ध नहीं कराई गई हैं; जैसा कि अपेक्षित है।[218] यह आपत्ति अभिभावी रहती है, परन्तु अध्यक्ष चाहे तो अविलम्बनीय मामलों में, समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने की अनुमति दे सकता है।

प्रवर या संयुक्त समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद समिति के प्रतिवेदन के विचार तक और उस प्रतिवेदन में निर्दिष्ट विषयों तक ही सीमित रखा जाता है परन्तु सदस्य ऐसे वैकल्पिक सुझाव दे सकते हैं जो विधेयक के सिद्धान्तों के अनुरूप हों।[219] यह विनिर्णय दिया गया है कि यथा प्रतिवेदित विधेयक पर चर्चा समिति के प्रतिवेदन तक ही सीमित रहनी चाहिए और विधेयक के सिद्धान्त पर पुनः चर्चा नहीं की जा सकती।[220]

उन सदस्यों, जिन्होंने समिति में सदस्यों के रूप में काम किया, से भिन्न सदस्यों को सामान्यतः विधेयक पर चर्चा के दौरान बोलने में प्राथमिकता दी जाती है। समिति के सदस्यों

216. *एल.एस. डिबेट्स*, 30.4.1959, कॉ. 12464-65 ।

217. नियम 77 (1)।

218. नियम 77(1) उपनियम (1) (क) का परन्तुक।

219. नियम 78 ।

220. *एच.पी. डिबेट्स* (II). 25.7.1952, कॉ. 4573; 1.8.1952, कॉ. 4998 ।

को बोलने का अवसर दिया जा सकता है, यदि अन्य सदस्यों द्वारा उठाये गये प्रश्नों के संबंध में उनसे किसी उत्तर की अपेक्षा हो।[221]

यदि विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव करे कि यथा प्रतिवेदित विधेयक पर विचार किया जाये तो कोई सदस्य संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक समिति को पुन: सौंपा जाए या, उस पर राय या अग्रेतर राय जानने के प्रयोजन के लिए यथास्थिति परिचालित या पुन: परिचालित किया जाए।[222] तथापि, यदि ऐसा संशोधन विलम्बकारी स्वरूप का हो तो वह अग्राह्य होता है।

> इस आशय के प्रस्ताव की सूचना कि विधेयक के खण्ड (या खंडों) को प्रवर समिति को सौंपा जाए या पुन: सौंपा जाए, नियमानुसार होती है, बशर्ते कि सूचना में उन मुद्दों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया हो जिन पर समिति को विचार करना है। ऐसा प्रस्ताव संबंधित सदस्य द्वारा उस चरण पर रखा जा सकता है जबकि कोई खंड विशेष (या प्रथम चरण पर जहां अनेक खंड या अंत: संबंधित खण्ड) सभा के समक्ष हों। ऐसे मामले में खंडों या खंड के अन्य संशोधनों को लिए जाने से पहले इस प्रस्ताव का निपटान किया जाता है। कई बार अंत: निर्भर खण्डों पर चर्चा, सूचना से संबंधित मुख्य खण्ड या खण्डों को लिए जाने तक स्थगित की जा सकती है।[223]

समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित विधेयक पर विचार के दौरान विधेयक के उन खण्डों, जिनका प्रवर या संयुक्त समिति ने लोप कर दिया है, के पुन:स्थापन के संशोधन नियमानुसार होते हैं।[224] विधेयक को यथापूर्व स्थिति में लाने का संशोधन उस दशा में रखा जा सकता है जब कि प्रवर समिति ने किसी संशोधनकारी विधेयक की व्याप्ति से बाहर जाकर मूल अधिनियम की किसी धारा या किन्हीं धाराओं का लोप किया हो।[225]

यदि सभा के समक्ष यह प्रस्ताव हो कि विधेयक पुन: उसी समिति को सौंपा जाये तो इस आशय का संशोधन नहीं रखा जा सकता कि किसी खण्ड विशेष का लोप किया जाये और शेष विधेयक को समिति को पुन: सौंपा जाए।[226] वास्तव में ऐसे किसी प्रस्ताव पर और कोई संशोधन नहीं रखा जा सकता।[227]

---

221. *एल.एस. डिबेट्स,* 12.8.1959, कॉ. 2050-51 ।
222. नियम 77 (2)।
223. *आर.एस. डिबेट्स,* 2.12.1968, कॉ. 2246-64 ।
224. *एल.ए. डिबेट्स,* 3.2.1923, पृ. 1858-59 ।
225. *लो.स.वा.वि.,* 20.12.1958, कॉ. 6708, 6715 ।
226. *लो.स.वा.वि.,* 23.9.1921, पृ. 916-17 ।
227. *पी. डिबेट्स* (II), 4.9.1951, कॉ. 1903-04 ।

विधेयक पर खण्डवार विचार

विधेयक, या प्रवर अथवा संयुक्त समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित विधेयक पर विचार किए जाने संबंधी प्रस्ताव पर मतदान होने और उसके पारित होने के बाद विधेयक पर खण्डवार विचार आरम्भ किया जाता है।[228] अध्यक्ष प्रत्येक खण्ड को अलग-अलग पुकार सकता है और जब किसी खण्ड विशेष से संबंधित संशोधन निपटा दिये गये हों, तब वह प्रश्न रखता है।[229]

यदि अध्यक्ष ठीक समझे तो वह किसी खण्ड पर विचार स्थगित कर सकता है[230] या सारे खण्ड को सभा के मतदान के लिए रखने से पहले यह निदेश दे सकता है कि विधेयक के उस खण्ड के एक भाग पर सभा अलग से विचार करे और उसके संबंध में मतदान हो।[231]

जब किसी विधेयक के खण्ड पर चर्चा समाप्त हो चुकी हो, तो कतिपय परिस्थितियों में, उस पर मतदान स्थगित किया जा सकता है।

> हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1956 के खण्ड 4 पर चर्चा 2 मई, 1956 को समाप्त हुई थी, परन्तु उस पर मतदान अगले दिन तक के लिए आस्थगित कर दिया गया जिससे कि सरकार ऐसे उपबंध करने की आवश्यकता की जांच कर सके ताकि मिताक्षर सहदायिकी सम्पत्ति का विभाजन कराने के पुत्र के अधिकार के संबंध में पंजाब तथा अन्य राज्यों में प्रचलित रिवाजों में अन्तर के कारण उत्पन्न विषमता से बचा जा सके।[232]

अध्यक्ष अपनी निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, यदि चाहे तो, किसी विधेयक के किसी खण्ड अथवा विधेयक के मामले में प्रस्ताव को सभा के मतदान के लिए न रखे।[233]

> हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1956 पर खण्डवार विचार करने के दौरान अध्यक्ष के ध्यान में यह बात लाई गई कि विधेयक के खण्ड 8 (ग) और खण्ड 8 (घ), जिन्हें सभा पहले ही स्वीकार कर चुकी है, को देखते हुए खण्ड 12 और खण्ड 13 आवश्यक नहीं हैं। तदनुसार, अध्यक्ष ने विधेयक के खण्ड 12 और खण्ड 13 सभा के मतदान के लिए नहीं रखे।[234]

---

228. विधेयक पर खण्डवार विचार करने के समय सदस्यों के भाषण उसी खण्ड तक सीमित रहते हैं, जो उस समय सभा के समक्ष हो- *लो.स.वा.वि.*, 6.2.1951, कॉ. 2426 ।
229. नियम 88 - प्रश्न इस प्रकार रखा जाएगा:
   "कि यह खण्ड (या कि यह खंड, संशोधित रूप में, यथास्थिति) विधेयक का अंग बने।"
230. नियम 89 ।
231. *लो.स.वा.वि.* 2.9.1954, कॉ. 2556-57 ।
232. पूर्वोक्त, 2.5.1956, कॉ. 7054 ।
233. पन्द्रहवीं लोक सभा के नौवें सत्र के दौरान, 27 दिसम्बर, 2011 को संविधान (116वां संशोधन) विधेयक, 2011 पर विचार करने संबंधी प्रस्ताव विशेष बहुमत से पारित हुआ। तथापि प्रवृत्त खंड-2 और 3 खंड 3 नियम 155 के उपबंधों के अनुरूप विशेष बहुमत से पारित नहीं किए जा सके। चूंकि विधेयक के सभी खंड नकार दिए गए इसलिए विधेयक पारित करने का प्रस्ताव निष्फल हो जाने के कारण अध्यक्ष ने उसे पेश करने की अनुमति नहीं दी।
234. लो.स.वा.वि. 7.5.1956, कॉ.7391-92।

यदि किसी विधेयक का प्रभारी सदस्य किसी एक खण्ड का विधेयक से लोप करना चाहता हो, तो सामान्य प्रक्रिया यह है कि वह खण्ड सभा के मतदान के लिए रखा जाये और उसे अस्वीकृत करा दिया जाये।[235]

सरकारी विधेयक के मामले में सभा द्वारा ऐसे खण्डों को अस्वीकृत कराने के लिए संबंधित मंत्री को लिखित रूप में सूचित किया जाता है। जब कोई विधेयक पुरःस्थापित किया जा चुका हो तो सम्पूर्ण विधेयक सभा के समक्ष विचारार्थ माना जाता है और किसी खण्ड को वापस लेने का प्रस्ताव रखने की अनुमति नहीं दी जाती है।[236]

यदि कोई अनुसूची या अनुसूचियां हों तो उन्हें सामान्यतः खण्डों के निपटाये जाने के बाद विचार के लिए लिया जाता है।[237] अनुसूचियों में संशोधन की प्रक्रिया भी खण्डों को संशोधित करने की प्रक्रिया की ही भांति होती है। मूल अनुसूचियों पर विचार किये जाने के बाद नई अनुसूचियों पर विचार किया जाता है। तथापि, अध्यक्ष किसी अनुसूची या अनुसूचियों को खण्डों के निपटाये जाने से पहले या किसी खण्ड के साथ या अन्यथा जैसा कि वह ठीक समझे उन पर विचार किए जाने की अनुमति दे सकता है।[238] जब किसी विधेयक का कोई खण्ड उन संशोधनों, जो अनुसूची में किये गये हों, के संबंध में हो, तो पहले अनुसूची का

---

235. किसी खंड का लोप करने वाला कोई संशोधन नकारात्मक स्वरूप का होने के कारण नियमों के विरुद्ध है तदनुसार विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकार और पुनर्वास) दूसरा संशोधन विधेयक, 1959 का खंड 7 और निष्क्रांत सम्पत्ति प्रशासन (संशोधन) विधेयक, 1959 का खंड 7 सभा से अस्वीकृत कराया गया- *लो.स.वा.वि.* 9.12.1960, कॉ. 180-221; 10.2.1960, पृ. 177-209; 11.12.1960, पृ. 273-90 । एक अन्य उदाहरण में वित्त विधेयक, 1987 के खंड 49 और खंड 53 का लोप करने वाले संशोधनों को नकारात्मक स्वरूप के होने के कारण नियमों के विरुद्ध पाया गया। प्रधानमंत्री, जिनके पास वित्त मंत्रालय भी था, को स्थिति से अवगत कराया गया और लिखित रूप में निवेदन किया गया कि सभा द्वारा इन खंडों को अस्वीकृत कराएं। तदनुसार, ये खंड सभा से अस्वीकृत कराए गए-*लो.स.वा.वि.,* 4.5.1987, पृ. 273 । इसी प्रकार, वित्त विधेयक, 1992 के खंड 59, 74 और 101 का लोप करने वाले संशोधनों को नकारात्मक स्वरूप के होने के कारण नियमों के विरुद्ध पाया गया। वित्त मंत्रालय को सूचित किया गया कि वह इन खण्डों को सभा से अस्वीकृत कराये और तदनुसार 6 मई, 1992 को ये खंड सभा द्वारा अस्वीकृत कराये गये-*लो.स.वा.वि.,* 6.5.1992, पृ. 286-339 । गृहमंत्री ने दंड विधि (संशोधन) विधेयक, 2013 के खंड 29 को सभा द्वारा अस्वीकृत किए जाने हेतु एक नोटिस सभा पटल पर रखा। तदनुसार खंड-बार विचार के समय खंड 29 को अस्वीकृत कर दिया गया। लो.स.वा.वि 19.3.2013।
236. *देखिए पी. डिबेट्स,* (II), 21.12.1950, कॉ. 2213-15; *एल.एस. डिबेट्स,* 21.2.1956, कॉ. 451-531; और 6.12.1961, कॉ. 5565-66 ।
237. नियम 90 ।
238. *पूर्वोक्त,* परन्तुक ।

निपटान किया जाता है और उसके बाद उस खण्ड का।[239] कई बार जब विशेष खण्डों पर विचार किसी संगत अनुसूची पर निर्भर करता है, तो उन खण्डों और संबंधित अनुसूची पर एक साथ विचार किया जाता है।

> राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956, जिसमें 114 खण्ड और 6 अनुसूचियां थीं, के मामले में उसके खंड 16 से 49 और अनुसूची 1, 2 और 3 और खंड 71 से 114 और अनुसूची 4, 5 और 6 पर एक साथ विचार किया गया।

यदि अध्यक्ष उचित समझे तो वह किसी विधेयक के खंडों, उसकी अनुसूचियों या उन दोनों को एक साथ एक प्रश्न के रूप में सभा के मतदान के लिए रख सकता है, बशर्ते कि कोई सदस्य किसी खंड या अनुसूची को अलग से सभा के मतदान के लिए रखने के लिए अनुरोध न करे।[240]

खंड-1, अधिनियमन सूत्र, उद्देशिका, यदि कोई हो, और विधेयक के पूरे नाम पर विचार तभी किया जाता है जब कि अन्य खंडों और अनुसूचियों (जिनमें नये खंड तथा नयी अनुसूचियां भी सम्मिलित हैं) का निपटान कर दिया गया हो[241] और इनमें संशोधन उसी रीति से किया जा सकता है जैसे कि विधेयक के किसी अन्य खंड के मामले में किया जाता है। उसके बाद अध्यक्ष प्रश्न रखता है।

विधेयकों में संशोधन

संशोधनों की सूचना

किसी विधेयक में कोई संशोधन करने की सूचना किसी अन्य सूचना की तरह लिखित रूप में महासचिव को सम्बोधित करके देनी होती है। उस पर सूचना देने वाले सदस्य के सम्यक रूप से हस्ताक्षर होने चाहिए और वह निर्धारित समय में संसदीय सूचना कार्यालय में देनी होती है।[242]

---

239. *लो.स.वा.वि.,* 1931, खंड III, पृ. 2443 ।

240. नियम 91 ।

241. नियम-92 खंड-1 को अन्त में लेने का कारण यह सुनिश्चित करना है, कि उसकी शब्द रचना समुचित हो, जिससे कि वह विधेयक के उनके विभिन्न उपबंधों के अनुरूप हो, जिनमें कोई परिवर्तन हो चुका होता है-*पी. डिबेट्स,* 5.12.1951, कॉ. 2363 ।

242. सचिवालय का संसदीय सूचना कार्यालय सभी कार्यदिवसों को 10 बजे से लेकर 15.15 बजे तक सदस्यों से सूचनाएं लेता है। संसदीय सूचना कार्यालय में 15.15 बजे के बाद दी गई सूचनाएं अगले कार्य दिवस को 10 बजे दी गई मानी जाती हैं। नियम 332; 30.1.1988 का समाचार-भाग 2, पैरा 2048 ।

    सूचना देने के लिए मुद्रित प्रपत्र सदस्यों के उपयोग के लिए संसदीय सूचना कार्यालय में रखे जाते हैं। अध्यक्ष ने इस बात को अनुचित माना है कि सदस्य कागज के टुकड़ों पर या पैंसिल से लिखी हुई सूचनाएं दें -*एल.ए.डिबेट्स,* 10.4.1934, पृ. 3495; 11.4.1934, पृ. 3559-60।

सदस्य चाहें तो किसी विधेयक पर संशोधन की सूचना उसके पुर:स्थापित होने के साथ ही दे सकते हैं जिसके लिए उन्हें उस विधेयक के संबंध में अगला प्रस्ताव कार्य-सूची में शामिल किए जाने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।

सभा की सेवा से निलम्बित सदस्यों द्वारा रखे गए संशोधनों को उनके निलंबन की अवधि के दौरान स्वीकार नहीं किया जाता है, चाहे वे संशोधन निलंबन की अवधि समाप्त होने के पश्चात् विचार हेतु लिए जाने वाले विधेयकों से ही संबद्ध क्यों न हों।

सूचना की अवधि

किसी संशोधन की सूचना उस दिन, जिस दिन विधेयक पर लोक सभा में विचार किया जाना हो, से कम से कम एक दिन पहले देनी आवश्यक है।[243] कोई भी सदस्य किसी ऐसे संशोधन के रखे जाने पर आपत्ति कर सकता है जिसकी आवश्यक सूचना न दी गयी हो और जब तक कि अध्यक्ष उस संशोधन को रखे जाने की अनुमति न दे दे, यह आपत्ति अभिभावी होती है।[244] अल्प सूचना पर विचार करने हेतु लिए गए विधेयकों के मामले में संशोधनों की सूचना की अवधि की शर्त अध्यक्ष द्वारा हटा दी गई है।[245]

चूंकि संशोधन, सदस्यों को अंग्रेजी और हिन्दी में साथ-साथ परिचालित किए जाते हैं, अत: नियम समिति (चौथी लोक सभा) ने यह निर्णय लिया कि सदस्यों से यह निवेदन किया जाए कि वे उस दिन से जिस दिन विधेयक चर्चा के लिए सभा में लिया जाना हो, कम से कम दो दिन पहले संशोधनों की सूचना दें। तदनुसार, प्रत्येक सत्र के आरंभ होने से कुछ दिन पहले संसदीय समाचार के माध्यम से सदस्यों से यह निवेदन किया जाता है कि वे उस दिन से, जिस दिन विधेयक चर्चा के लिए सभा में लिया जाना हो, कम से कम दो दिन पहले ऐसी सूचनाएं दें।[246]

---

243. नियम 79 ।

244. *लो.स.वा.वि.,* 28.4.1958, कॉ. 11997-99 ।

245. *पूर्वोक्त,* 21.3.1955, कॉ. 2761-62; 31.5.1957, कॉ. 3254-55; 20.11.1962, कॉ. 2564-2600; 2.8.1968, कॉ. 3934-35; 29.8.1970, कॉ. 12-13; 6.8.1974, कॉ. 210 ।

संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 2006 की प्रतियां सदस्यों को 22 अगस्त, 2006 को सभा में ही इसे पुर:स्थापित किए जाने के ठीक पहले परिचालित कर दी गयी थी। विधेयक पर विचार तथा पारित किए जाने के लिए इसे 23 अगस्त, 2006 को सूचीबद्ध किया गया था। चूंकि सदस्यों को विधेयक का अध्ययन करने और इसमें किए जाने वाले संशोधनों की सूचनाएं देने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिला, अध्यक्ष ने सूचना अवधि को अधित्यक्त (समाप्त) कर दिया और सदस्यों को विधेयक में संशोधनों की सूचनाएं इस पर विचार किए जाने के दिन तक देने की अनुमति प्रदान कर दी।

246. समाचार-भाग 2, 18.2.1988, पैरा 2103, 20.7.1994, पैरा 3202 ।

ऐसे संशोधन को जिसकी विधिवत् सूचना न दी गयी हो, तब पेश करने की अनुमति दी जा सकती है जब किसी अन्य सदस्य ने वैसे ही संशोधन की विधिवत् सूचना दे दी हो और उसने अपने उस संशोधन को पेश करने से इंकार कर दिया हो।[247]

अध्यक्ष किसी संशोधन के लिए सूचना की अवधि की शर्त को हटा भी सकता है बशर्ते कि सभा उससे सहमत हो।[248] सरकारी संशोधनों को बिना सूचना के भी रखे जाने की अनुमति दी जा सकती है जब तक कि इससे लोकहित पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ता हो।[249] जब सरकारी संशोधनों को अल्पकालीन सूचना पर रखने की अनुमति दे दी जाये, तो इन संशोधनों के संशोधनों को भी अल्पकालीन सूचना पर रखने की अनुमति दे दी जाती है।[250] यदि विधेयक का प्रस्ताव रखने वाला सदस्य मान जाये और संशोधन को स्वीकार कर ले तो अंतिम समय में भी संशोधन को स्वीकार किया जा सकता है।[251]

---

247. *लो.स.वा.वि., खंड* VII, 1938, पृ. 3680 ।

248. *एच.पी. डिबेट्स,* (II), 11.7.1952, कॉ. 3611; *लो.स.वा.वि.,* 23.11.1956. कॉ. 2688-96 ।

249. 23 अगस्त, 2006 को संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 2006 के प्रभारी मंत्री ने विधेयक पर खण्ड-वार विचार प्रारंभ होने के ठीक पहले एक संशोधन सभा पटल पर रखा। समयाभाव के कारण संशोधन की जांच सभा पटल पर ही की गयी और महासचिव से इसे शामिल करने की मौखिक अनुमति ली गयी। संशोधन सभा में परिचालित किया गया, इस पर मतदान हुआ और इसे स्वीकृत किया गया। विधेयक, यथा संशोधित, उसी दिन पारित कर दिया गया। 18 दिसंबर, 2012 को गृहराज्यमंत्री ने संविधान (118वां संशोधन) विधेयक 2012 खंडवार विचारण आरंभ होने से थोड़ी देर पूर्व ही सभापटल को एक संशोधन की सूचना दी। विधेयक परिणामी प्रकृति का था और महासचिव की मौखिक अनुमति प्राप्त हो जाने के बाद इसे गृहीत कर लिया गया और चैम्बर में परिचारण किया गया। विधेयक, यथा संशोधित उसी दिन पारित कर दिया गया।

250. भूमि अर्जन (संशोधन) के विधेयक के मामले में संशोधनों की सूचनाएं 29 अगस्त, 1962 तथा 30 अगस्त, 1962 को 15.15 बजे के बाद दी गयी थीं। जिन्हें 30 अगस्त, 1962 को पेश करने की अनुमति दी गयी, क्योंकि सरकारी संशोधनों जिन्हें संशोधित करने के लिए ये संशोधन रखे गये थे या जिनसे इन संशोधनों का प्रत्यक्ष संबंध था की सूचना भी, 30.8.1962 को ही दी गयी थी। *लो.स.वा.वि.,* 10.9.1991, कॉ. 291-98 । 23 अगस्त, 2005 को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी विधेयक, 2004 के प्रभारी मंत्री ने एक संशोधन सभा पटल पर रखा जिसे स्वीकार किया गया और सभा में परिचालित किया गया क्योंकि विधेयक आगे और विचार तथा पारित करने के लिए उसी दिन सूचीबद्ध था। जब विधेयक पर खण्ड-वार विचार चल रहा था। तब एक सदस्य ने सरकारी संशोधन में एक संशोधन सभा पटल पर रखा। संशोधन गृहीत किया गया परन्तु इसे पर्याप्त समय न होने के कारण परिचालित नहीं किया जा सका। सभा द्वारा सरकारी संशोधन में संशोधन अस्वीकृत कर दिया गया।

251. *लो.स.वा.वि.,* 27.5.1957, पृ. 994; 29.2.1957, कॉ. 10793-94; और 5.9.1957, पृ. 5472; 18.6.1971, पृ. 131-32; 28.11.1978, कॉ 344-45; 15 12.1987, कॉ. 140-41 ।

संशोधनों का रूप

किसी विधेयक या किसी विधेयक के खंड (या अनुसूची) से संबंधित किसी प्रस्ताव में कोई संशोधन उसी रूप में होना चाहिए, जिसमें कि अध्यक्ष सभा का सम्पूर्ण और स्पष्ट निर्णय जानने के लिए उसे मतदान के लिए रख सके।[252]

यदि कोई सदस्य किसी संशोधन की सूचना उचित रूप में नहीं देता है तो सचिवालय उसे मुद्रित और सदस्यों में परिचालित किए जाने से पूर्व सम्बन्धित सदस्य [253] के साथ परामर्श करके उसका उपयुक्त रूप से सम्पादन कर लेता है।

संशोधनों की ग्राह्यता

विधेयक के खंडों और उसकी अनुसूचियों के संशोधनों की ग्राह्यता निम्नलिखित शर्तों के अधीन होती है—

(क) *संशोधन, विधेयक की व्याप्ति के भीतर होने चाहिए और जिस खंड से उसका संबंध हो उसकी विषय वस्तु से संगत होना चाहिए।*[254]

किसी संशोधन के माध्यम से विधेयक में कोई नया या बाहर का विषय नहीं लाया जाना चाहिए।[255] विधेयक की व्याप्ति का विस्तार करने वाले या उस के आशय से बाहर जाने वाले संशोधनों को नियम-विरुद्ध ठहराया गया है।[256] तथापि, विधेयक की व्याप्ति को सीमित करने

ग्रामीण विकास मंत्री ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी विधेयक, 2004 में ठीक उसी दिन संशोधन पेश किया जिस दिन विधेयक विचार और पारित किये जाने हेतु सूचीबद्ध था। संशोधन को चैम्बर में परिचालित किया गया। प्रो॰ विजय कुमार मल्होत्रा ने इस सरकारी संशोधन में एक संशोधन सभा में पेश किया। प्रो॰ विजय कुमार मल्होत्रा द्वारा सरकारी संशोधन में प्रस्तुत किया गया संशोधन गृहीत कर लिया गया परन्तु समयाभाव के कारण परिचालित नहीं किया जा सका। प्रो॰ विजय कुमार मल्होत्रा द्वारा सरकारी संशोधन में प्रस्तुत किए गए संशोधन को मतदान हेतु रखा गया और यह अस्वीकृत हो गया। लो.स.वा.वि. 23.8.2005.

लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक 2011 पर चर्चा के दौरान 27 दिसम्बर, 2012 को श्रीमती सुषमा स्वराज, श्री वी.नारायणस्वामी (प्रभारी मंत्री) और श्री विष्णुपद राय द्वारा अंतिम समय में प्रस्तुत संशोधन गृहीत हुए और चैम्बर में परिचालित किए गए।

252. *एल.ए. डिबेट्स,* 21.3.1923, पृ. 3816 ।

253. सामान्यत: सदस्य सचिवालय के सुझाव के अनुसार संशोधन के रूप में परिवर्तन करना स्वीकार कर लेते हैं। तथापि ऐसे मामले हुए हैं जब सदस्यों ने यह अनुरोध किया कि संशोधन को उसी रूप में परिचालित किया जाए जिसमें उनकी सूचना दी गयी थी। ऐसे मामलों में संशोधनों को उसी रूप में परिचालित किया जाता है।

254. नियम 80 (एक) ।

255. *एल.ए. डिबेट्स,* 27.5.1924, पृ. 2293 ।

256. *पूर्वोक्त,* 14.9.1925, पृ. 1216; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 20.8.1953, कॉ. 1190-91; *लो.स.वा.वि.,* 31.5.1957, पृ. 1539; 27.4.1960, कॉ. 14232; 15.4.1969, कॉ. 241;

वाला संशोधन पेश किया जा सकता है, बशर्ते कि उस परिसीमा का स्वरूप ऐसा न हो जिसमें विधेयक का संपूर्ण आधार और व्याप्ति ही समाप्त हो जाए।[257]

कतिपय मामलों में अध्यक्ष ने नियम 80 (एक) के निलम्बन के लिए प्रस्ताव पेश किए जाने की अनुमति दी है ताकि प्रभारी मंत्री विधेयक की व्याप्ति से बाहर के संशोधन पेश कर सके।[258]

(ख) *संशोधन सभा के उसी प्रश्न पर पूर्व विनिश्चयों से असंगत नहीं होना चाहिए।*[259]

एक ही विधेयक के किसी खण्ड के उपबन्धों, जिन्हें सभा पहले ही स्वीकार कर चुकी हो, से असंगत नए उपबन्ध अंत:स्थापित करने के उद्देश्य से दिए गए संशोधनों को नियम-विरुद्ध ठहराया गया है।[260] इस प्रकार, किसी विधेयक के खण्ड-1 का कोई ऐसा संशोधन जो विधेयक के अन्य खण्डों के संबंध में किये गये विनिश्चय से असंगत हो, नियम-विरुद्ध होता है।[261]

(ग) *कोई संशोधन ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे वह खण्ड, जिसे संशोधन करने का उसमें प्रस्ताव हो, दुर्बोध या व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हो जाए।*[262]

लो.स.वा.वि., 5.8.1969, पृ. 143-44 और पृ. 155 । 10 मई, 2002 को वित्त राज्य मंत्री ने परक्राम्य लिखत (संशोधन) विधेयक 2001 में 18 संशोधन, जिनका आशय परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 में संशोधन करना था, की सूचना दी। मंत्री द्वारा दिए गए संशोधनों की सूचना का आशय उपर्युक्त अधिनियम में संशोधन करने के अलावा बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम 1891 और "सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000" में संशोधन करना था। संशोधनों जो कि विधेयक की व्याप्ति के बाहर थे के बारे में नियम 80(i) की आवश्यकता को समाप्त करने के मंत्री के अनुरोध से सहमत नहीं हुआ जा सका क्योंकि परक्राम्य लिखत (संशोधन) विधेयक, यथा पुर:स्थापित, में उपर्युक्त दोनों अधिनियमों का कोई जिक्र नहीं था और उक्त अधिनियमों के उद्धरण विधेयक में संलग्न नहीं किए गए थे। संबंधित मंत्रालय से इस विधेयक को वापस लेने और संशोधनों को शामिल करते हुए एक नया व्यापक विधेयक लाने को कहा गया।

257. *एल.ए डिबेट्स,* 4.6.1924, पृ. 2572-73; 5.6.1924, पृ. 2708; और 19.3.1925, पृ. 2655-56 ।

258. *वित्त विधेयक,* 1976, *लो.स.वा.वि.,* 17.5.1976, कॉ. 47-48, 51-55; *लो.स.वा.वि.,* 9.5.1983, पृ. 300-301; 11.12.1993 कॉ. 165 ।

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण और कल्याण विधेयक, 2007, *लो.स.वा.वि,* 5.12.2007 ।

259. नियम 80 (दो)।

260. *एच.पी. डिबेट्स,* (II), 10.9.1953, कॉ. 3168-71 ।

261. *लो.स.वा.वि.,* 29.8.1962, पृ. 213-19-320 ।

262. नियम 80 (तीन)।

यदि किसी संशोधन में बाद के किसी संशोधन या अनुसूची की ओर निर्देश किया जाए या उसके बिना वह बोधगम्य न हो तो प्रथम संशोधन का प्रस्ताव करने से पहले बाद के संशोधन या अनुसूची की सूचना देनी होती है जिससे कि संशोधनमाला पूर्ण रूप से बोधगम्य हो जाये।[263]

(घ) *कोई संशोधन तुच्छ या अर्थहीन नहीं होना चाहिए।*[264]

(ङ) *किसी ऐसे संशोधन को अनुमति नहीं दी जाती, जिसका प्रभाव नकारात्मक मत हो।*[265]

इस सिद्धान्त के अनुसार, ऐसे संशोधनों को अनुमति नहीं दी जाती जिनका उद्देश्य विधेयक के किसी खण्ड का लोप करना हो।[266] इसके लिए उचित तरीका यह है कि इस खण्ड के विरुद्ध मत दिया जाए। ऐसे संशोधन भी नियम-विरुद्ध हैं, जिनका उद्देश्य किसी खण्ड से कतिपय शब्दों, जिनका अभिप्राय वस्तुतः खण्ड का लोप करना होता है, का लोप करना हो।

(च) *संशोधन विलम्बकारी स्वरूप का नहीं होना चाहिए।*[267]

सामान्यतः अध्यक्षपीठ द्वारा किसी संशोधन को इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जाता कि वह संविधान के अधिकारातीत है।[268]

किसी ऐसे विधेयक, जिससे किसी अंतर्राष्ट्रीय करार की पुष्टि होती हो, की अनुसूची के संशोधन अग्राह्य हैं, सभा चाहे तो करारों को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर सकती है, परन्तु संशोधनों के माध्यम से करार में परिवर्तन करने की अनुमति नहीं दी जाती।[269]

किसी विधेयक के पार्श्व शीर्षकों के संशोधनों को अनुमति नहीं है क्योंकि ऐसे शीर्षक विधेयक का अंग नहीं बनते हैं।[270]

---

263. नियम 80 (चार)।

264. नियम 80 (छह) साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 10.12.1957, कॉ. 4517-18 ।

265. नियम 344 (2)

266. *एल.ए. डिबेट्स,* 19.2.1946, पृ. 1153; *लो.स.वा.वि.,* 28.11.1978, कॉ. 345-52; 24.11.1981, कॉ. 453; वित्त विधेयक, 1987 के खण्ड 49 और खण्ड 53 का लोप करने के लिए प्रधान मंत्री जो उस समय वित्त मंत्री भी थे, द्वारा रखे गये दो संशोधनों को परिचालन से रोक लिया गया था। बाद में, खण्ड 49 और खण्ड 53 सभा द्वारा 4 मई, 1987 को अस्वीकार कर दिये गये थे।

267. *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 11.4.1955, कॉ. 4846-47; 21.8.1958, कॉ. 1024-34 ।

268. *एच.पी. डिबेट्स* (II) 28.8.1953, कॉ. 1789-90, साथ ही *देखिए* पीछे इसी अध्याय में 'सभा की विधायी शक्ति' शीर्षक के अन्तर्गत ।

269. *लो.स.वा.वि.,* 24.9.1958, कॉ. 8448 ।

270. *पी. डिबेट्स* (II), 10.2.1950, पृ. 409-10 ।

किसी विनियोग विधेयक में उल्लिखित किसी अनुदान का लोप करने के लिए दिया गया संशोधन इस आधार पर अग्राह्य है कि अनुदान की मांग सभा द्वारा पहले ही स्वीकृत की जा चुकी है।[271]

किसी ऐसे संशोधन का संशोधन रखा जा सकता है, जिसे अध्यक्ष सभा में पहले ही प्रस्तुत कर चुका हो।[272]

संशोधनकारी विधेयकों में संशोधन

किसी अधिनियम का संशोधन करने वाले विधेयक के संशोधनों की व्याप्ति सीमित है। सामान्यतः मूल अधिनियम की उन धाराओं के संशोधन अग्राह्य[273] होते हैं जिनका उल्लेख संशोधनकारी विधेयक में न किया गया हो। उन धाराओं, जिनका उल्लेख किया गया हो, के संशोधनों के मामले में भी यह आवश्यक है कि ऐसे संशोधन, संशोधनकारी विधेयक की व्याप्ति के भीतर होने चाहिए।[274] अतः यदि मूल अधिनियम की "परिभाषा" धारा के कई भाग हों और संशोधनकारी विधेयक में किसी एक परिभाषा विशेष, जिसका उस धारा के अन्य भागों से कोई संबंध न हो, का ही उल्लेख किया गया हो, तो अन्य भागों से संबंधित या परिभाषा, जिसका संशोधन किया जाना हो, में कोई प्रभावी भाग अन्तःस्थापित करने वाला कोई संशोधन नियम-विरुद्ध होता है।[275]

यदि किसी संशोधनकारी विधेयक का उद्देश्य मूल अधिनियम की किसी धारा के खण्ड का संशोधन करना हो, तो उस धारा के बाकी खण्डों का स्वतः संशोधन नहीं किया जा

---

8 अगस्त 2001 को पादप प्रजातियां और कृषक अधिकार संरक्षण विधेयक 2000 के प्रभारी मंत्री ने संयुक्त समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित संशोधनों की सूचनाएं दीं जिनमें से कुछ या तो अध्याय के शीर्षक, उप-शीर्षक में संशोधन के बारे में अथवा उप-शीर्षक को अन्तःस्थापित/लोप किए जाने से संबंधित थी। मंत्री द्वारा अध्याय के शीर्षक, उप-शीर्षक अथवा उप-शीर्षक को अन्तःस्थापित/लोप किए जाने से संबंधित दिए गए संशोधनों को गृहीत नहीं किया गया और उन्हें इस आधार पर परिचालित करने से रोक दिया गया कि ऐसे परिवर्तन खण्डों का भाग नहीं हैं। प्रारुपकार के अनुरोध पर अध्यक्ष द्वारा इन परिवर्तनों को विधेयक में शामिल करने की अनुमति प्रदान कर दी गयी।

एक सदस्य (बसुदेव आचार्य) ने लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 2011 में संशोधन प्रस्तुत किए जिसका आशय अन्य बातों के साथ-साथ विधेयक के अध्याय शीर्ष में संशोधन करना था। संशोधन इस आधार पर गृहीत नहीं हुआ कि ऐसे संशोधन विधेयक के खंडों के अंग नहीं होते हैं।

271. *लो.स.वा.वि.,* 18.3.1970, पृ. 160 ।

272. नियम 80 (सात) *देखिए लो.स.वा.वि.,* 10.9.1991, कॉ 21291-98 ।

273. *लो.स.वा.वि.,* 23.11.1954, 23.4.1959, कॉ. 13056-59; *लो.स.वा.वि.,* 29.11.1960, पृ. 1464; 31.8.1965, पृ. 1213-14, पृ. 1219-1220 ।

274. *एच.पी. डिबेट्स,* 11.7.1952, कॉ. 3609-10; *लो.स.वा.वि.,* 22.11.1955, कॉ. 5812-15 ।

275. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 12.3.1954, कॉ. 2010-12 ।

सकता, जब तक कि प्रस्तावित संशोधन, संशोधनकारी विधेयक के उपबन्धों का आनुषंगिक या उन पर निर्भर न हो, या पारिणामिक न हो।[276]

> इसलिए संशोधनकारी विधेयक से प्रभावित होने वाली मूल अधिनियम की धाराओं के, जिनका उल्लेख संशोधनकारी विधेयक में नहीं किया गया हो, संशोधन रखने की अनुमति तब दी गयी है, जब कि ऐसे संशोधन उन संशोधनों के, जो संशोधनकारी विधेयक के माध्यम से किए जाने हों, पारिणामिक हों या जो उन संशोधनों से घनिष्ठ रूप से संबंधित होने के कारण विधेयक की व्याप्ति के भीतर आते हों।[277]
>
> निरसनकारी तथा संशोधनकारी विधेयकों के मामले में यह निर्णय दिया गया है कि उन अधिनियमों, जिनका निरसन या संशोधन किया जाना हो, के संशोधन विधेयक की व्याप्ति के भीतर नहीं आते।[278]

समाप्त होने वाली विधियों को जारी रखने संबंधी विधेयकों में संशोधन

जब किसी अस्थायी अधिनियम को जारी रखना वांछनीय हो तो उसकी अवधि को एक विनिर्दिष्ट तारीख तक बढ़ाये जाने के लिए एक अलग विधेयक संसद के समक्ष लाया जाता है। ऐसे विधेयकों के संशोधनों की व्याप्ति बहुत सीमित होती है। ऐसे संशोधन, जिनका आशय मूल अधिनियम की उन धाराओं का, जो विधेयक में सम्मिलित नहीं किए गए, संशोधन करना हो, विधेयक की व्याप्ति से बाहर होते हैं।[279] परन्तु सभा चाहे तो उस अधिनियम के कार्यकरण की आलोचना कर सकती है और ऐसी दिशाएं सुझा सकती है जिनमें सुधार किया जाना चाहिए, क्योंकि यही एक अवसर होता है जब सदस्य इस संबंध में अपनी शिकायतें व्यक्त कर सकते हैं।

---

276. *लो.स.वा.वि.,* 21.6.1962, पृ. 5675; साथ ही *देखिए, लो.स.वा.वि.,* 30.8.1962, कॉ. 5152; 21.1.1963, कॉ. 5551-54 ।
277. *पूर्वोक्त,* 8.8.1962, कॉ. 763; 24.8.1962, कॉ. 3772-75 ।
278. *एच.पी. डिबेट्स,* 11.12.1953, कॉ. 1943-48 ।
279. *पी. डिबेट्स,* (II), 20.3.1951, कॉ. 4859-62 ।

    दिल्ली और अजमेर-मेवाड़ किराया नियंत्रण (संशोधन) विधेयक, 1951 पर विचार के दौरान जब एक सदस्य ने मूल अधिनियम के किसी खंड को प्रतिस्थापित करने के लिए संशोधन पेश करना चाहा तो अध्यक्ष मावलंकर ने यह टिप्पणी की :

    "मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मोटे तौर पर, ऐसे मामलों में, जहां कोई विधेयक किसी समाप्त होने वाली विधि को जारी रखने के लिए लाया जाता है ऐसा संशोधन प्रस्तुत करना हमारी शक्ति से बाहर है, जिसका आशय समाप्त होने वाली विधि के मूल उपबन्धों को बदलना या उनमें रूप भेद करना हो। इस सामान्य नियम के कुछ अपवाद हैं। यह इस बात पर निर्भर है कि समाप्त होने वाली विधि को जारी रखने के उद्देश्य से लाया गया विधेयक किस प्रकार का है परन्तु वे अपवाद भी बहुत सीमित हैं और प्रक्रिया संबंधी हैं। मुख्य बात तो यह है कि समाप्त होने वाली जिस विधि को जारी रखने के लिए विधेयक लाया जाता है विधेयक पर विचार के समय उसके मूल उपबन्धों में संशोधन या परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

किसी विधि को जारी रखने संबंधी विधेयक को उस पर समाप्त होने वाली विधि के समाप्त होने की तारीख से पूर्व किसी तारीख तक राय जानने के प्रयोजन के लिए परिचालित करने के संशोधन ग्राह्य हैं।[280] तथापि, ऐसे विधेयकों को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को अनुदेशों के साथ या उनके बिना सौंपने के संशोधन इस आधार पर अस्वीकार किए गए हैं कि किसी विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को तभी सौंपा जा सकता है जब उस विधेयक के सिद्धान्तों को सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है।[281]

ऐसे संशोधन ग्राह्य हैं जिनका आशय जारी रखे जाने वाले विधेयक में उल्लिखित समाप्त होने वाली विधि के प्रवर्तन की अवधि को कम करना हो।[282]

यदि समाप्त हो रहे किसी अधिनियम की अवधि को बढ़ाये जाने के अलावा किसी विधेयक का आशय उस अधिनियम में कुछ संशोधन करना भी हो, तो समाप्त हो रहे अधिनियम की उन धाराओं जिनका संशोधन किया जाना हो, के संशोधन भी पेश किए जा सकते हैं। किसी धारा विशेष जिसका संशोधन किया जाना हो, के बाहर के विषयों से संबंधित किन्तु अधिनियम की नई स्कीम से घनिष्ठ रूप से संबंधित तथा उन धाराओं, जिनका संशोधन किया जाना हो, से अद्‌भुत संशोधन को अनुमति दी जा सकती है बशर्ते कि वे अन्यथा नियमानुसार हों।[283]

राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता वाले संशोधन

कुछ मामलों में, राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना विधेयकों के संशोधन सभा में अथवा समिति में नहीं रखे जा सकते।[284] यदि कोई सदस्य ऐसा कोई संशोधन रखना चाहे तो उसे अपने संशोधन की सूचना के साथ किसी मंत्री के माध्यम से भेजी गई ऐसी सिफारिश अनुबद्ध करनी होती है और यह सूचना तब तक मान्य नहीं होगी जब तक इस अपेक्षा का पालन नहीं हो जाता।[285]

सदस्य सामान्यत: अपनी ओर से राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के लिए सचिवालय को आवेदन करते हैं। सदस्य के पत्र की एक प्रति के साथ संशोधन, जिसके लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है, की एक प्रति अपेक्षित सिफारिश प्राप्त करने के लिए संबंधित मंत्रालय को भेजी जाती है। संबंधित मंत्री द्वारा राष्ट्रपति द्वारा सिफारिश करने/उसे रोक लेने की सूचना

280. *लो.स.वा.वि.,* 9.12.1957, पृ. 2157-58 ।

281. *पूर्वोक्त* ।

282. *पूर्वोक्त,* पृ. 2157, *लो.स.वा.वि.,* 10.12.1957, कॉ. 4517 ।

283. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 21.7.1952, कॉ. 4209-14 ।

284. अनुच्छेद 117 और अनुच्छेद 274 के अधीन ऐसे संशोधनों के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है।

285. नियम 81। वास्तव में, सामान्यत: ऐसे संशोधनों को मुद्रित किया जाता है और सदस्यों को परिचालित किया जाता है, परन्तु यदि उन्हें राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना सभा में रखने की चेष्टा की जाए, तो उन्हें नियम-विरुद्ध ठहरा दिया जाता है-*देखिए लो.स.वा.वि.,* 19.1.1976, कॉ. 260-61, 265-66 ।

सचिवालय को भेजी जाती है। तत्पश्चात् उसे संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है।[286]

अन्य बातों के साथ-साथ किसी ऐसे संशोधन को रखने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है जिसका निम्नलिखित आशय हो–

नया कर अधिरोपित करना;[287]

कर के अधिरोपण में वृद्धि करना;[288]

विधेयक में अधिरोपित शुल्क से प्राप्त आय को भारत की संचित निधि में रखे जाने से रोकना, जिससे कि उस राशि का प्रयोग अन्य प्रयोजन के लिए किया जा सके;[289]

जब विधेयक में किसी विशेष अवधि के लिए कर लगाने का प्रस्ताव हो, तो उस कर को अनिश्चित काल के लिए अधिरोपित करना;[290]

किसी वित्त विधेयक की अनुसूची के एक भाग से किसी मद को दूसरे भाग में अंतरित करना, जिसका परिणाम यह होगा कि शुल्क बढ़ जायेगा;[291] और कर के भार में वृद्धि करना।[292]

इसके अतिरिक्त, ऐसे संशोधनों को जिनका आशय ऐसा कर अथवा शुल्क, जिसमें राज्य हितबद्ध हैं, अधिरोपित करना है या उसमें परिवर्तन करना है, राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।[293] ऐसे संशोधन जब भी अपेक्षित सिफारिश के

---

286. 8 अगस्त, 1986 और 11 अगस्त, 1986 को कई सदस्यों ने उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (सेवा शर्तें) संशोधन विधेयक, 1986 के कुछ खंडों के संशोधनों की सूचना दी जिसके लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक थी। राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के लिए सदस्यों के अनुरोध संबंधित मंत्रालय को भेजे गए। जब 12 अगस्त, 1986 को 17.00 बजे विचार करने के लिए वह खण्ड, जिसका संशोधन करने की सूचना दी गयी थी, लिया गया, तब तक राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त नहीं हुई थी, इसलिए अध्यक्ष ने सदस्यों को अपने संशोधन पेश करने की अनुमति नहीं दी। सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने और उसकी सूचना देने का कार्य संबंधित मंत्री का है। अध्यक्ष ने सदस्यों के विचारों से सहमत होते हुए विधेयक पर चर्चा स्थगित कर दी। मंत्री द्वारा अध्यक्ष को राष्ट्रपति की सिफारिश की सूचना दिये जाने के पश्चात् उसी दिन 18.00 बजे आगे चर्चा की गई। तत्पश्चात् सदस्यों को अपने संशोधन पेश करने की अनुमति दी गई ।

287. *लो.स.वा.वि.,* 21.4.1956, पृ. 2590 ।

288. *लो.स.वा.वि.,* 31.8.1957, कॉ. 11094 ।

289. *लो.स.वा.वि.,* 21.2.1927, पृ. 1095 ।

290. *पूर्वोक्त।*

291. *पूर्वोक्त,* 19.2.1928, पृ. 3718-19 ।

292. *लो.स.वा.वि.,* 3.9.1957, पृ. 5248-5257 ।

293. अनुच्छेद 274 (1)

यह निर्धारित करने के लिए कि क्या किसी ऐसे विधेयक, जिसका आशय ऐसे कर अथवा शुल्क, जिसमें राज्य हितबद्ध हैं, में परिवर्तन करना है, के संशोधनों को प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है, इसके लिए विधेयक के उपबन्धों, न कि मूल अधिनियम के उपबंधों, जिन्हें संशोधित करने का प्रस्ताव है, को ध्यान में रखना होता है *लो.स.वा.वि.,* 1.9.1958, कॉ. 3993-94 ।

बिना प्रस्तुत किए गए, अध्यक्ष ने उन्हें नियम-विरुद्ध ठहराया है।[294]

आय कर अथवा कुछ मदों पर उत्पाद शुल्क के संबंध में ऐसे संशोधनों, जिनका आशय कर अथवा शुल्क में परिवर्तन करना हो अर्थात् सभा के समक्ष विचाराधीन विधेयक में निर्धारित दरों को बढ़ाना अथवा कम करना हो, के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है।[295]

तथापि, अन्य बातों के साथ-साथ उस संशोधन को रखने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता नहीं है जिसका निम्नलिखित आशय हो—

विधेयक में प्रस्तावित कर की सीमाओं को समाप्त करना अथवा कम करना या उस कर को किसी विद्यमान कर की सीमाओं तक बढ़ाना;[296]

यथापूर्व स्थिति बनाये रखना अर्थात्, यदि किसी विधेयक में किसी विद्यमान शुल्क को हटाने का प्रस्ताव है, तो उस उपबन्ध को हटाने के संशोधन का अर्थ यह होगा कि यथापूर्व स्थिति बनी रहेगी, यद्यपि संशोधन का प्रत्यक्ष प्रभाव यह होगा कि कर बढ़ जाएगा;[297]

किसी मद विशेष में शुल्क की दर बढ़ाना, परन्तु किसी अन्य मद में से उस दर को कम करना जिससे कि संशोधन का कुल प्रभाव यह होगा कि कर कम हो जाएगा;[298] और

किसी विधेयक में कोई ऐसा उपबन्ध फिर से करना, जिसे प्रवर समिति ने बदल दिया है जिसका प्रकट प्रभाव यह होगा कि कर का भार बढ़ जाएगा।[299]

विधेयक पर किसी सदस्य द्वारा संशोधन प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश उस स्थिति में पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है, जब अन्य सदस्यों द्वारा दिये गये ऐसे समान संशोधनों पर राष्ट्रपति की सिफारिश पहले ही प्राप्त कर ली गई हो।[300]

---

294. *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1959, पृ. 6144-6157 साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 11.8.1960, कॉ. 2201 ।
295. *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1959, पृ. 6138 ।
296. नियम 81 ।
297. *लो.स.वा.वि.,* 22.2.1934, पृ. 2583 ।
298. *पूर्वोक्त,* 22.3.1933, पृ. 2381-83 ।
299. *लो.स.वा.वि.,* 3.9.1957, पृ. 5248-49 ।
300. 26 अप्रैल, 1969 को एक सदस्य द्वारा वित्त विधेयक, 1969 के संशोधन पेश करने के लिए अनुच्छेद 117 (1) और अनुच्छेद 274 (1) के अधीन राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त की गई। यह निर्णय किया गया कि यदि वह सदस्य, जिसके संशोधनों के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त की गई है, संशोधनों को पेश करने के लिए सभा में उपस्थित न हो अथवा उन्हें पेश करने का इच्छुक न हो तो अन्य सदस्यों द्वारा दिये गये समान संशोधनों को पेश करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है।

चूंकि संशोधन की सूचनाएं सत्रावसान होने पर व्यपगत हो जाती हैं, इसलिए बाद के सत्र में ऐसे समान संशोधनों को प्रस्तुत करने के लिए भी राष्ट्रपति की सिफारिश की पुनः आवश्यकता होती है।[301]

ऐसे संशोधन जिनके, स्वीकृत हो जाने पर, भारत की संचित निधि में से व्यय अंतर्ग्रस्त हो, के लिए राष्ट्रपति की और सिफारिश की आवश्यकता नहीं है, यदि राष्ट्रपति ने विधेयक पर विचार करने की सिफारिश पहले ही कर दी हो।

संशोधनों की सूची

जिन संशोधनों की सूचना दी जा चुकी हो, उनका विन्यास, समय-समय पर जारी संशोधनों की सूची में यथासाध्य उसी क्रम में रखा जाता है, जिसमें वे सभा में पुकारे जाएं। किसी खण्ड के एक ही विषय पर एक-सा ही प्रश्न उठाने वाले संशोधनों को रखते समय उस संशोधन को पूर्ववर्तिता दी जाती है जिसकी सूचना विधेयक के प्रभारी सदस्य से प्राप्त हुई हो; यदि उस सदस्य से कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई है तो दूसरे सदस्यों से प्राप्त ऐसी सूचनाओं के संबंध में उस संशोधन को पूर्ववर्तिता दी जाती है जिसकी सूचना पहले प्राप्त हुई हो। इस बात के अध्यधीन संशोधनों को उसी क्रम में रखा जाता है जिस क्रम में उनकी सूचनाएं प्राप्त हुई हों।[302]

संशोधनों को सूची में निम्नलिखित क्रम में रखा जाता है—

> विलम्बकारी प्रस्ताव: संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करने के लिए राष्ट्रपति को विधेयक भेजने के प्रस्ताव; विधेयक पर राय जानने के लिए उसे परिचालित करने वाले संशोधन; विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने वाले संशोधन; विद्यमान खण्ड पर नया खण्ड प्रतिस्थापित करने वाले संशोधन; किसी उपखंड या उप-पैरा का लोप करने वाले संशोधन; विद्यमान उपखण्ड या उप-पैरा के स्थान पर उपखंड या उप-पैरा प्रतिस्थापित करने वाले संशोधन; कतिपय शब्दों का लोप करने वाले संशोधन; कतिपय शब्द जोड़ने या अन्तःस्थापित करने वाले संशोधन; और कोई नया खण्ड जोड़ने या अन्तःस्थापित करने वाले संशोधन।

यदि कोई सदस्य किसी ऐसे संशोधन, जो किसी अन्य सदस्य के नाम से पहले गृहीत किये गये संशोधन के समान हो, की सूचना देता है तो सदस्यों के नाम कोष्ठक में रखे जाते हैं।

किसी विधेयक के खण्डों तथा अनुसूचियों से संबंधित संशोधन विधेयक पर विचार करने के प्रस्तावों के संशोधनों से पृथक सूची में रखे जाते हैं।

कुछ संशोधनों के संबंध में अपेक्षित राष्ट्रपति की सिफारिश का संकेत संशोधनों की सूची में दिया जाता है, यदि उनकी प्राप्ति की सूचना सूची को मुद्रण के लिए भेजने से पहले

---

301. *लो.स.वा.वि.,* 9.11.1970, पृ. 157-58 ।

302. नियम 84 ।

प्राप्त होती है।[303] किसी विधेयक के संबंध में संशोधनों की कई सूचियां जारी की जा सकती हैं लेकिन, जहाँ तक व्यवहार्य हो, किसी एक दिन में प्राप्त संशोधनों को एक साथ रखकर एक ही सूची के रूप में जारी किया जाए।[304]

संशोधनों की सूचियां सभी मंत्रियों, लोक सभा के सदस्यों और विधेयकों से संबंधित मंत्रालयों को भेजी जाती हैं।

जब किसी विधेयक पर, जिसके बहुत अधिक खण्ड हों, उस दिन से, जिस दिन उस पर खण्डवार विचार किया जाना हो, एक दिन पहले अधिक संख्या में संशोधन प्राप्त हों, तो संशोधनों का क्रम, जिसके अनुसार संशोधन प्रस्तुत किए जायेंगे, दर्शाने वाली एक कुंजी तैयार की जाती है और उसे सभी सदस्यों को परिचालित किया जाता है। इसमें उन संशोधनों का भी उल्लेख होता है जिनमें राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक होती है।[305]

संशोधनों और नये खण्डों का चयन

अध्यक्ष को प्रस्तावित किये जाने वाले नये खण्डों या संशोधनों का चयन करने की शक्ति प्राप्त है और यदि वह ठीक समझे तो किसी सदस्य से, जिसने संशोधन की सूचना दी हो, उस संशोधन के उद्देश्य की ऐसी व्याख्या करने के लिए कह सकता है, जिससे कि वह उस पर अपना कोई निर्णय दे सके।[306]

जब अध्यक्ष द्वारा एक जैसे कई संशोधनों में से एक संशोधन चुन लिया जाए, तो सभा को उसका निर्णय मानना पड़ता है।[307]

---

303. संशोधनों की सूची में पाद-टिप्पण के रूप में निम्नलिखित संकेत दिया जाता है :

"भारत के संविधान के अनुच्छेद 117 के खण्ड (1) और अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) के अनुसरण में राष्ट्रपति ने लोक सभा से सिफारिश की है कि इस सूची में अंतर्विष्ट संशोधनों को पेश किया जाए।

यदि ऐसी सिफारिश सूची मुद्रित होने के पश्चात् प्राप्त होती है तो अध्यक्ष और अधिकारियों के कार्य-सूची पत्रों के सेटों में आवश्यक संकेत दिया जाता है। समय मिलने पर सिफारिश समाचार (बुलेटिन) में भी प्रकाशित की जाती है"

304. जिन संशोधनों की सूचनाएं 15.15 बजे तक सचिवालय में प्राप्त हो जाएं और जो अन्यथा ग्राह्य हों, सामान्यत: उसी रात मुद्रित की जाती हैं, बशर्ते कि जिस विधेयक के संबंध में संशोधन हो, वह कार्य-सूची में सम्मिलित किया जा चुका हो। इन संशोधनों की सूचियां सदस्यों को उनके निवास स्थानों पर भेज दी जाती हैं।

305. जिन संशोधनों को पेश करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक हो और जिनकी सूचना उस समय तक प्राप्त नहीं हुई हो अथवा प्राप्त हो गई हो, उन्हें तारांकित कर दिया जाता है और पाद-टिप्पण दिया जाता है।

306. नियम 83 ।

307. *एल.ए. डिबेट्स,* 8.9.1922, पृ. 286; साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स,* 5.10.1951, कॉ. 4324-25; *लो.स.वा.वि.,* 5.8.1957, पृ. 3163 और 23.8.1957, पृ. 4359 ।

संशोधन प्रस्तुत करने की विधि

जब यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया हो कि विधेयक पर विचार किया जाए तो कोई भी सदस्य अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर विधेयक के उस संशोधन को सभा में रख सकता है जिसकी उसने पहले सूचना दे दी हो। समय बचाने और तर्कों की पुनरावृत्ति रोकने के लिए एक दूसरे पर निर्भर कितने ही संशोधनों के संबंध में, सामान्यतया एक साथ चर्चा करने की अनुमति दी जाती है।[308]

विधेयक के किसी खण्ड के संशोधन उस खण्ड के सभा के समक्ष रखे जाने के तुरन्त बाद पेश करने होते हैं।[309] किसी सदस्य द्वारा केवल इतना कह देना कि वह किसी खण्ड विशेष के संबंध में संशोधन रखेगा, पर्याप्त नहीं है और संशोधन के संबंध में यह नहीं समझा जाएगा कि उसे पेश कर दिया गया है। सदस्य को सभा में अपना संशोधन पेश करने के लिए उस समय उपस्थित रहना चाहिए जब वह खण्ड जिससे यह संशोधन संबंधित है, विचार करने के लिए लिया जाए।[310] कोई भी संशोधन किसी सदस्य द्वारा किसी दूसरे सदस्य की ओर से पेश नहीं किया जा सकता।[311] इसी प्रकार कोई संशोधन जिसकी सूचना किसी मंत्री द्वारा दी गई हो, उस समय तक किसी अन्य मंत्री[312] द्वारा पेश नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके द्वारा उसकी अग्रिम सूचना न दे दी गई हो।[313]

जब किसी विधेयक पर बहुत अधिक संशोधन परिचालित किए गए हों, तब सभा का समय बचाने के उद्देश्य से अध्यक्ष सदस्यों से यह कहता है कि वे पर्चियों पर उन संशोधनों, जिन्हें वे पेश करना चाहते हैं, की क्रम संख्या लिखकर सभा पटल पर दे दें। उसके बाद अध्यक्ष उन संशोधनों की संख्या की घोषणा करता है जिन्हें पेश किया गया मान लिया जाता है।[314]

---

308. नियम 86 ।
309. *पी. डिबेट्स* (II), 10.3.1950, कॉ. 1364-65 ।
310. *लो.स.वा.वि.,* 24.11.1960, पृ. 1124 ।
311. *लो.स.वा.वि.,* 5.9.1957, कॉ. 12142-43; 6.9.1957, कॉ. 12382 ।

    जब अध्यक्ष किसी सदस्य को अपने संशोधन पेश करने के लिए पुकारे और उस समय वह सदस्य सभा में उपस्थित न हो तो वह संशोधन रखने का अपना अवसर खो बैठता है-*लो. स.वा.वि.,* 9.9.1957, कॉ. 12889; साथ ही *देखिए सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स* (II), 2.12.1949, कॉ. 200 ।

    एक बार एक अनुपस्थित सदस्य की ओर से, सभा की सहमति से, किसी दूसरे सदस्य को संशोधन पेश करने की अनुमति दी गई क्योंकि वह संशोधन सरकार को स्वीकार्य था—*लो. स.वा.वि.,* 2.12.1968, पृ. 1035 ।
312. *लो.स.वा.वि.,* 18.3.1968, कॉ. 1287-88 ।
313. *पूर्वोक्त,* 20.11.1968, कॉ. 220 ।
314. कार्यवाही वृत्तान्त में इन संशोधनों को अलग-अलग सदस्य द्वारा पेश किया गया दिखाया जाता है।

एक जैसे संशोधन रखना नियम के अनुकूल नहीं है, परन्तु जिन सदस्यों ने एक जैसे संशोधनों की सूचना दी हो तो वे पहले पेश किये गये अपने संशोधनों के समर्थन में बोल सकते हैं।[315]

अपना संशोधन पेश करते समय सदस्य अध्यक्षपीठ की अनुमति से उसमें संशोधन कर सकता है।[316]

संशोधनों पर विचार

जब किसी खण्ड विशेष पर संशोधन पेश किये गए हों, तो वे सदस्य, जिनकी ओर अध्यक्ष का ध्यान जाता है, उस खण्ड, जिससे संशोधन संबंधित हों और उन संशोधनों के संबंध में बोलते हैं। यद्यपि संशोधन की सूचना मात्र देने से सदस्य को बोलने[317] का अधिकार नहीं मिल जाता, फिर भी, यदि समय हो, तो संशोधन की सूचना देने वाले सदस्यों को अपने संशोधन[318] के समर्थन में बोलने का अवसर दिया जाता है।

संशोधनों पर सामान्यत: उसी क्रम में विचार किया जाता है जिस क्रम में विधेयक के खण्ड हैं, जिनके संबंध में वे रखे गए हैं। जब किसी खण्ड पर चर्चा समाप्त हो जाती है तो अध्यक्ष उन संशोधनों को सभा में रखता है, जिन्हें सभा में मतदान के लिए पेश किया गया है। पहले सरकारी संशोधनों को मतदान के लिए रखा जाता है। तत्पश्चात्, अध्यक्ष किसी खण्ड पर शेष ऐसे सभी संशोधनों को, जो सरकारी संशोधन के स्वीकार होने पर अग्राह्य न हुए हों,

---

315. *लो.स.वा.वि.,* 3.9.1957, पृ. 5254 ।

316. *लो.स.वा.वि.,* 29.8.1962, कॉ. 4807 ।

317. *एच.पी. डिबेट्स,* (II), 28.11.1952, कॉ. 1370; *लो.स.वा.वि.,* 24.9.1955, कॉ. 4797-98 । 31 जुलाई 2006 को संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 2006 पर खण्डवार विचार के दौरान उपाध्यक्ष ने कुछ सदस्यों को अपने संशोधन पेश करते समय बोलने की अनुमति दी।

318. एक ऐसा भी उदाहरण है कि जब कुछ सदस्यों को जिन्हें अपने संशोधनों पर बोलने का अवसर नहीं मिल सका, अपने संशोधनों के समर्थन में एक-एक लिखित ज्ञापन देने की अनुमति दी गयी।

2 अगस्त, 1956 को राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 पर खण्डवार विचार के दौरान एक सदस्य ने, जिसे समयाभाव के कारण अपने संशोधन पर बोलने का अवसर नहीं मिला था, अध्यक्ष से अनुरोध किया कि उसे एक लिखित ज्ञापन देने की अनुमति दी जाये। अध्यक्ष ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया और सभा में यह घोषणा की कि जिन सदस्यों को अपने संशोधन पर बोलने का अवसर नहीं मिला, वे लिखित ज्ञापन भेज सकते हैं, परन्तु कोई ज्ञापन दो पृष्ठ से अधिक का नहीं होना चाहिए और उसमें वे केवल अपने संशोधनों के समर्थन में ही तर्क दें। कुछ सदस्यों ने लिखित ज्ञापन दिये जिन्हें गृह मंत्रालय को भेज दिया गया, जिससे कि मंत्री उनका उत्तर दे सकें या उन पर विचार कर सकें— *लो.स.वा.वि.,* 2.8.1956, कॉ. 2044 ।

एक प्रश्न के रूप में मतदान के लिए रखता है जब तक कि कोई सदस्य यह अनुरोध न करे कि उसके संशोधनों पर अलग[319] से मतदान कराया जाए। जब किसी विधेयक के किसी खण्ड का संबंध विधेयक की अनुसूची में सम्मिलित कतिपय संशोधनों से हो तो उस अनुसूची को उस खण्ड से पहले निपटाया जाता है।[320]

संशोधनों का वापस लिया जाना

किसी संशोधन को, जिसे सभा में पेश किया जा चुका हो, उसके प्रस्तावक की विशेष प्रार्थना पर सभा की अनुमति से ही वापस लिया जा सकता है। यदि संशोधन वापस लेने की अनुमति का विरोध किया जाता है तो उस पर निर्णय लेने हेतु उसे सभा में मतदान के लिए रखा जाता है। यदि किसी संशोधन में कोई संशोधन करने का प्रस्ताव किया गया हो तो मूल संशोधन को तब तक वापस नहीं लिया जा सकता जब तक कि प्रस्तावित संशोधन का निपटान न कर लिया जाए।[321]

विधेयक का तीसरा वाचन

जब किसी विधेयक के सभी खण्डों और अनुसूचियों, यदि कोई हों, पर विचार हो चुके और सभा उन पर मतदान कर चुके तो विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को पारित[322] किया जाए। जब किसी विधेयक में संशोधन किए गए हों तो यह प्रस्ताव कि विधेयक को संशोधित रूप में पारित किया जाए, सामान्यत: उसी दिन नहीं रखा जाता जिस दिन उन विधेयकों पर विचार समाप्त[323] हुआ हो। उसी दिन विधेयक को पारित करने का प्रस्ताव रखे जाने के बारे में उस आधार पर आपत्ति की जा सकती है कि सदस्य यथासंशोधित विधेयक का अध्ययन करना चाहेंगे और यदि वह आपत्ति स्वीकार कर ली जाए तो विधेयक को पारित करने का प्रस्ताव किसी भावी तारीख को पेश किया जाता है।[324]

---

319. नियम 85 (2)।

320. *एल.ए. डिबेट्स,* 31.3.1931, पृ. 2443 ।

321. नियम 87 ।

322. नियम 93(1)—1 अप्रैल, 1977 को राज्य सभा में गृह मंत्री ने, संघ राज्य क्षेत्र शासन (संशोधन) विधेयक, 1977, लोक सभा द्वारा यथापारित और दिल्ली प्रशासन (संशोधन) विधेयक, 1977, लोक सभा द्वारा यथापारित के मामले में इस आशय का प्रस्ताव पेश नहीं किया कि विधेयक संशोधित रूप में पारित किया जाए—*लो.स.वा.वि.,* 11.4.1977 ।

323. नियम 93 (2); और *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1968, पृ. 1038-39 ।

324. यह निर्बंधन केवल उसी अवस्था में लागू होता है जबकि द्वितीय वाचन के समय विधेयक में पर्याप्त संशोधन किये गये हों और उन संशोधनों को समझने तथा तृतीय वाचन के दौरान विधेयक पर अपनी टिप्पणियां करने के लिए तैयार रहने के लिए समय की आवश्यकता हो—*लो.स.वा.वि.,* 2.6.1964, पृ. 335-37; 16.12.1967, पृ. 3564-65; *लो.स.वा.वि.,* 4.8.1969, कॉ. 440 ।

तथापि सामान्य मामलों में, अध्यक्ष ने प्रस्ताव को उसी दिन रखे जाने की अनुमति दी है।[325]

औपचारिक, शाब्दिक या सभा द्वारा स्वीकृत किये गये संशोधनों के कारण पारिणामिक संशोधनों को छोड़ कर, कोई भी संशोधन इस प्रस्ताव पर नहीं रखा जा सकता कि विधेयक पारित किया जाए।[326]

यदि किसी विधेयक के पारित हो जाने के बाद, परन्तु उस पर राष्ट्रपति की सहमति मिलने से पहले सरकार यह चाहती है कि सारभूत संशोधनों पर विचार किया जाए, तो वह ऐसे संशोधनों पर विचार करने के लिए राष्ट्रपति से सभा को संदेश भिजवा सकती है।

इस प्रस्ताव पर "कि विधेयक (अथवा संशोधित रूप में विधेयक) पारित किया जाए"-चर्चा पूर्ण रूप में विधेयक के समर्थन में या अस्वीकार करने के लिए तर्क देने तक

---

325. *देखिए* राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 9.8.1956; संविधान (नौवां संशोधन) विधेयक, 1956 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 6.9.1956; अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां आदेश (संशोधन) विधेयक, 1956 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 10.9.1956; बैंककारी विधि (संशोधन) विधेयक, 1968 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 6.8. 1968; बीमा (संशोधन) विधेयक, 1968 के संबंध में, और बैंककारी कम्पनी (उपक्रमों का अर्जन और अन्तरण) विधेयक, 1969 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 9.12.1968; साधारण बीमा कारोबार (राष्ट्रीयकरण) विधेयक, 1972 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 28.8.1972; रुग्ण कपड़ा उपक्रम (राष्ट्रीयकरण) विधेयक, 1974 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 11.12.1974; राष्ट्रीय आवास बैंक विधेयक, 1987 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 2.5.1988; और वित्त विधेयक, 1992 के संबंध में *लो.स.वा.वि.,* 6.5.1992 ।

किसी ऐसे विधेयक, जो प्रवर अथवा संयुक्त समिति द्वारा संशोधनों सहित अथवा संशोधनों के बिना प्रतिवेदित हो और जिसमें सभा द्वारा कोई संशोधन नहीं किया गया हो, के बारे में प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में रखा जाता है—

"कि विधेयक, प्रवर/संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में पारित किया जाए।"

जब किसी विधेयक में सभा द्वारा संशोधन किया जाता है, चाहे उसमें समिति द्वारा कोई संशोधन किया गया है अथवा नहीं, तो प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में रखा जाता है।

"कि विधेयक, संशोधित रूप में पारित किया जाए।"

326. नियम 93(3)

संशोधन इस अर्थ में शाब्दिक होने चाहिए कि उनके किये जाने से विधेयक के कानून बन जाने पर उसमें कोई सारभूत अन्तर न पड़े। कोई संशोधन विधेयक के प्रभाव में परिवर्तन करता है या नहीं, यह एक ऐसा विषय है जिसका निर्णय अध्यक्ष करता है—635, *एच.सी. डिबेट्स,* 22.2.1961, कॉ. 724-25 ।

उदाहरणार्थ: विशेष विवाह विधेयक 1954, *एल.एस.* डिबेट्स, 17.9.1954; दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1954—*लो.स.वा.वि.,* 18.12.1954; भारतीय स्टेट बैंक विधेयक,

ही सीमित रहती है। सदस्यों को विधेयक के ब्यौरे का उससे अधिक उल्लेख नहीं करना चाहिए, जितना कि उनके तर्कों के प्रयोजन के लिए, जो कि सामान्य स्वरूप के होने चाहिएं, आवश्यक हों।[327]

प्रत्यक्ष गलतियों की शुद्धि

किसी विधेयक के पुरःस्थापित रूप में या किसी प्रवर या संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में सभा द्वारा स्वीकृत संशोधनों के अतिरिक्त कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। लेकिन अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह विधेयक का शुद्धि-पत्र निकाल कर विधेयक के किसी प्रक्रम में मुद्रण की या लिपिक की किसी स्पष्ट गलती में शुद्धि कर सकता है, बशर्ते कि इस प्रकार की शुद्धि किसी ऐसी अशुद्धि के बारे में न हो, जिसका संबंधित मंत्रालय द्वारा पुरःस्थापन से पहले मुद्रित किसी गुप्त विधेयक में कराधान पर प्रभाव पड़े।[328]

वित्त विधेयक, 1956 के पुरःस्थापन के बाद सरकार ने मुद्रण संबंधी कुछ गलतियों को शुद्ध किये जाने के लिए अध्यक्ष से लिखित प्रार्थना की। उनमें से एक गलती का प्रभाव यह था कि कुछ वस्तुओं पर शुल्क 155 प्रतिशत के स्थान पर 55 प्रतिशत लग रहा था। अध्यक्ष ने इस शुद्धि को स्वीकार नहीं किया।

अध्यक्षपीठ की अनुमति से वित्त मंत्री ने सभा में एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने मुद्रण की इस गलती की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया।[329] बाद में विधेयक पर खण्डवार विचार के दौरान वित्त मंत्री ने संख्या, "55" के स्थान पर "155" प्रतिस्थापित

1955—*लो.स.वा.वि.,* 30.4.1955; बैंककारी कम्पनी (उपक्रमों का अर्जन और अन्तरण) विधेयक, 1969—*लो.स.वा.वि.,* 4.8.1969, पृ. 246; कराधान विधि (संशोधन) विधेयक, 1969— *लो.स.वा.वि.,* 17.11.1970, कॉ. 316 के मामले में पारिणामिक संशोधन तीसरे वाचन के प्रक्रम में रखे गये और स्वीकृत किये गये।

केवल इसी प्रक्रम में संशोधन मतदान के लिए रखे जाते हैं। संशोधन स्वीकार किये जाने के पश्चात् वे खण्ड; जिनसे वे संशोधन संबंधित होते हैं, मतदान के लिए नहीं रखे जाते क्योंकि वे पारित किये जाने वाले विधेयक के अंग बन चुके होते हैं।

एक अवसर पर नियम 93(3) निलम्बित किया गया था जिससे सभा संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1969 के कुछ खण्डों पर, जिनको सभा ने पहले स्वीकार कर लिया था, चर्चा पुनः आरम्भ कर सके—*लो.स.वा.वि.,* 7.8.1969, पृ. 184 ।

327. नियम 94; साथ ही देखिए. *एल.ए. डिबेट्स,* 24.2.1932, पृ. 1154; 28.2.1946, पृ. 1691; *पी. डिबेट्स* (II), 31.3.1950, पृ. 237; 19.12.1950, कॉ. 876-77; 29.2.1952, 1551 और *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1962, कॉ. 700 ।

328. निदेश 32—उदाहरण के लिए *देखिए* वित्त (संख्यांक 2) विधेयक 1980; वित्त विधेयक, 1982; औषध तथा प्रसाधन सामग्री (संशोधन) विधेयक, 1982 और मोटर यान विधेयक, 1987 ।

329. *लो.स.वा.वि.,* 3.3.1956, पृ. 639; 30.8.1965, पृ. 1089 ।

करने के लिए एक औपचारिक संशोधन पेश किया, जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया।[330]

प्रारूपकार द्वारा सुझाये गये प्रारूप सम्बन्धी सुधारों के रूप में प्रमुख शुद्धियों को भी शुद्धिपत्र में शामिल करने के लिए स्वीकार नहीं किया जाता है। ऐसे मामलों में प्रारूपकार से निवेदन किया जाता है कि वह संबंधित मंत्रालय को सरकारी संशोधन प्रस्तुत करने की सलाह दे।

मोटर यान विधेयक, 1987 को बिना जांच किए 11 मई, 1987 को एक विशेष मामले के रूप में लोक सभा में पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गई। प्रारूपकार ने जांच की गई प्रति में प्रारूपण संबंधी सुधार के रूप में कई बड़ी-बड़ी शुद्धियां की थीं। प्रारूपकार द्वारा सुझाई गई अधिकांश शुद्धियां स्वीकार नहीं की गईं। अत: उन्हें शुद्धिपत्र में शामिल नहीं किया गया। प्रारूपकार से संबंधित मंत्रालय को सरकारी संशोधन प्रस्तुत करने की सलाह देने का निवेदन किया गया था।

सरकार को ऐसी अशुद्धियों को ठीक करने के लिए तीन सौ पांच संशोधन प्रस्तुत करने पड़े। विधेयक पर उस सत्र के दौरान विचार नहीं हो सका और वह उस सत्र के दौरान, जिस सत्र के दौरान संशोधन दिए गए थे, पारित नहीं हुआ। शरदकालीन सत्र, 1987 में जल-भूतल परिवहन मंत्री ने इस आधार पर विधेयक को वापस लेने की सूचना दी कि उसमें मुद्रण संबंधी कई अशुद्धियां हैं। 15 दिसम्बर, 1987 को सभा की अनुमति से वह विधेयक वापस ले लिया गया।

लोक सभा द्वारा किसी विधेयक के पारित किये जाने के बाद भी, अध्यक्ष को उसकी प्रत्यक्ष गलतियों में शुद्धि करने और उनमें ऐसा अन्य परिवर्तन करने का अधिकार है, जो सभा द्वारा स्वीकार किये गये संशोधनों के परिणामस्वरूप आवश्यक हो गया हो।[331]

---

330. *लो.स.वा.वि.,* 21.4.1956, कॉ. 5999-6000; 1.9.1965, कॉ. 3176 ।

331. नियम 95 ।

विधि मंत्री द्वारा निर्वाचन विधि संशोधन विधेयक, 1975 में अंत:संदर्भों और खण्डों के पारिणामिक पुन: संख्यांकन से संबंधित एक संशोधन पेश नहीं किया गया, क्योंकि अध्यक्ष को आवश्यक शुद्धियों के लिए प्राधिकृत किया गया था—*लो.स.वा.वि.,* 5.8.1975, पृ. 12-13 । एक दूसरे उदाहरण में सिनेमा कर्मकार और सिनेमा थियेटर कर्मकार (नियोजन का विनियमन), संशोधन विधेयक, 1981 में भी खंडों के पारिणामिक पुन: संख्यांकन के संबंध में मंत्री द्वारा संशोधन पेश नहीं किया गया और लोक सभा सचिवालय द्वारा इस पर जोर नहीं दिया गया क्योंकि अध्यक्ष को आवश्यक शुद्धियां करने के लिए प्राधिकृत किया था—*लो.स.वा.वि.,* 24.11.1981, पृ. 308-34 ।

कई अवसरों पर जब किसी विधेयक में कई नए खंड अन्त: स्थापित किए जाते हैं या उससे वर्तमान खंडों का लोप किया जाता है, तब अध्यक्ष, विधेयक के पारित हो जाने के बाद, जहां आवश्यक हो खंडों को पुन: क्रमबद्ध करने का आदेश देता है।[332]

> लोक सभा द्वारा पारित विधेयक विधि मंत्रालय के प्रारूपकार को जांच करने के लिए भेजे जाते हैं जिससे ऐसी प्रत्यक्ष गलतियों आदि में शुद्धि करने में अध्यक्ष की सहायता कर सके। कई बार प्रभारी मंत्री के अनुरोध पर अध्यक्ष किसी विधेयक पर चर्चा के दौरान विधेयक की प्रतियों में प्रत्यक्ष प्रकृति की मुद्रण संबंधी त्रुटियों में संशोधन स्वीकार कर सकते हैं।[333] नियमानुसार प्रारूपकार द्वारा विधेयकों में बतायी और अध्यक्ष द्वारा स्वीकार की गई ऐसी गलतियां विधेयकों को राज्य सभा को भेजे जाने से पहले शुद्धि कर दी जाती है। अविलम्बनीय मामलों में विधेयक लोक सभा द्वारा पारित किए जाने के तत्काल बाद भेज दिया जाता है और प्रारूपकार द्वारा दिए गए सुझावों या बताई गई शुद्धियों, जो अध्यक्ष द्वारा स्वीकार की जाएं, की सूचना राज्य सभा सचिवालय को दे दी जाती हैं। जो विधेयक दोनों सभाओं द्वारा पारित किये गये हों और अन्त में लोक सभा के पास हो, उन्हें राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजने से पहले सदैव उनकी जांच की जाती है।[334]

प्रारूपकार द्वारा सुझाई गई सभी शुद्धियों को अध्यक्ष द्वारा अधिप्रमाणित किया जाना चाहिए।

किसी विधेयक या प्रस्ताव में पारिणामिक परिवर्तन करने की अध्यक्ष की शक्ति उस विधेयक या प्रस्ताव के सम्बन्ध में सभा के निर्णय की परिधि से बाहर नहीं हो सकती; उस शक्ति का प्रयोग उन निर्णयों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए किया जाता है।[335] लोक सभा द्वारा स्वीकार किये गये किसी संशोधन में शुद्धि के जरिए शब्दों का प्रतिस्थापन तभी अनुमत्य है जब कि सभा उसके लिए प्राधिकार दे दे। यह उचित नहीं है कि किसी खण्ड के

---

332. देखिए, दंड विधि संशोधन विधेयक, 2013 पर, *लो.स.वा.वि.* दिनांक 19.3.2013, कॉ 687-89, वित्त विधेयक 2013 पर, दिनांक *लो.स.वा.वि.* 30.4.2013, कॉ 781-820।

333. 2 मई, 2002 को संविधान (अनुसूचित जातियां) आदेश (संशोधन) विधेयक, 2002 और संविधान (अनुसूचित जातियां और जनजातियां) आदेश (संशोधन) विधेयक, 2002 के विचारण हेतु प्रस्ताव पर संयुक्त चर्चा का उत्तर देते हुए प्रभारी मंत्री ने सूचित किया कि लोक सभा में यथा पुर:स्थापित संविधान (अनुसूचित जातियां) आदेश (संशोधन) विधेयक, 2002 के अंग्रेजी संस्करण में मुद्रण संबंधी गलती है। जिसे प्रत्यक्ष त्रुटि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। तत्पश्चात् अध्यक्ष त्रुटि को प्रत्यक्ष गलती के रूप में स्वीकार करने हेतु सहमत हो गए। *लो.स.वा.वि.* 2.5.2002 कॉ-306-78।

334. दूसरी लोक सभा के चौथे सत्र से यह प्रथा प्रारम्भ हो गयी कि राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजे जाने वाले विधेयक की प्रति को अंतिम रूप में मुद्रित करने के पश्चात् और अध्यक्ष द्वारा उस पर हस्ताक्षर करने के पूर्व उसे प्रारूपकार को जांच करने के लिए दोबारा भेजा जाता है। इस प्रक्रम में प्रारूपकार विधेयक में केवल मुद्रण की गलतियों की ओर ध्यान दिला सकता है।

335. *पी. डिबेट्स* (II), 9.6.1951, कॉ. 10610-14 ।

शब्द विन्यास को बदल दिया जाये, क्योंकि वह तो विधान बनाने के बराबर हो जायेगा।[336] तथापि, अध्यक्ष किसी खंड के अधिनियमन सूत्र को और स्पष्ट करने के लिए उसके शब्दों में परिवर्तन करने की अनुमति दे सकता है।[337]

अत: परिवर्तन करने की शक्ति का प्रयोग, केवल औपचारिक, शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी तथा मुद्रण की गलतियों में शुद्धि करने, खण्ड, उपखण्ड, आदि को संख्यांकित करने में होने वाली किसी प्रत्यक्ष चूक या गलतियों को ठीक करने और ऐसे परिवर्तन, जो केवल पारिणामिक और स्पष्टीकरण देने वाले हों, करने तक ही सीमित है।

जब कोई विधेयक राज्य सभा में पहले पुर:स्थापित होता है और लोक सभा उसमें संशोधन करके उसे राज्य सभा को वापस भेजती है, तो उसमें किसी पारिणामिक या प्रत्यक्ष गलती में शुद्धि नहीं की जाती, सिवाय उस गलती के जो कि लोक सभा द्वारा किये गये संशोधनों में हुई हो। ऐसा केवल आपवादिक मामलों में होता है कि लोक सभा द्वारा संशोधित न किए गए विधेयक के अंशों में प्रारूपकार द्वारा सुझाई गई शुद्धियों को अध्यक्ष द्वारा प्रत्यक्ष गलतियों के रूप में स्वीकार किया गया हो।[338]

---

336. इस आधार पर अध्यक्ष ने विश्वभारती विधेयक, 1951 के खण्ड 45 के पुनर्प्रारूपण के संबंध में प्रारूपकार के सुझाव पर अपनी सहमति रोक ली।

337. पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान विधि मंत्रालय के प्रारूपकार ने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (संशोधन) विधेयक, 2011 की अनुमति प्रति में निम्नलिखित संशोधन सुझाए:

"(*i*) खंड (ट) के बाद अंत:स्थापित करें" के स्थान पर

"(*ii*) खंड (ट) के बाद निम्न खंड अंत:स्थापित किया जाएगा-यथा; चूंकि प्रारूपकार का सुझाव केवल तकनीकी प्रकृति का था और इससे कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पड़ता था, अत: अध्यक्ष ने प्रारूपकार के अनुरोध को प्रत्यक्ष गलती के रूप में स्वीकार कर लिया-प्रतिस्थापित करें।

338. निम्नलिखित उदाहरणों में ऐसा अपवाद किया गया था:

लोक सभा ने हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, 1956 राज्य सभा द्वारा यथापारित, 8 मई, 1956 को संशोधनों सहित पारित किया था। लोक सभा द्वारा पारित किये गये विधेयक की एक प्रति प्रारूपकार को जांच के लिए भेजी गयी थी और उसने विधेयक के उन अंशों में, जिनका संशोधन लोक सभा ने नहीं किया था, कतिपय शुद्धियां कीं। अध्यक्ष ने इन शुद्धियों को प्रत्यक्ष गलतियों के रूप में स्वीकार किया और राज्य सभा को संदेश सहित भेजे गये विधेयक में वे शुद्धियां समाविष्ट की गईं।

लोक सभा ने न्यूनतम मजदूरी (संशोधन) विधेयक, 1961 राज्य सभा द्वारा यथापारित 10 अगस्त, 1961 को संशोधन सहित पारित किया था। उस विधेयक की जांच करते समय प्रारूपकार ने विधेयक के उस अंश में, जिसका संशोधन लोक सभा ने नहीं किया था, एक शुद्धि की। अध्यक्ष ने इसे एक प्रत्यक्ष गलती के रूप में स्वीकार किया और सन्देश सहित राज्य सभा को भेजे गये विधेयक में वह शुद्धि समाविष्ट की गई।

वाद-विवाद में पारिणामिक शुद्धियां

जहां किसी खण्ड के संबंध में कोई संशोधन पेश किया गया हो और सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो और बाद में अध्यक्ष ने उस संशोधन के सम्बन्ध में किसी शुद्धि को प्रत्यक्ष गलती मान लिया हो तो वह शुद्धि मुद्रित वाद-विवाद में कोई पाद-टिप्पण दिए बिना संशोधन में ही अन्तर्विष्ट कर ली जाएगी।[339]

जब अध्यक्ष ने किसी खंड के संबंध में कोई शुद्धि स्वीकार कर ली हो जो उस खंड में संशोधन से संबंधित न हो और उस खंड को सभा ने स्वीकार कर लिया हो, तो उस शुद्धि को मुद्रित वाद-विवाद में एक समुचित पाद-टिप्पण में दर्शाया जाता है।[340]

विधेयकों पर वाद-विवाद का स्थगन

सभा में विचाराधीन विधेयक के किसी प्रक्रम पर अध्यक्ष की सहमति से यह प्रस्ताव पेश किया जा सकता है कि विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित किया जाये।[341]

वाणिज्य पोत परिवहन (संशोधन) विधेयक, 1965 और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1965 में प्रारूपकार ने विधेयकों के उन अंशों में, जिनका संशोधन लोक सभा ने नहीं किया था, शुद्धियां कीं। अध्यक्ष ने इन्हें प्रत्यक्ष गलतियों के रूप में स्वीकार किया और राज्य सभा को संदेश सहित भेजे गये विधेयक में ये शुद्धियां समाविष्ट की गईं।

इन मामलों में राज्य सभा सचिवालय को एक अलग से संदेश भी भेजा गया जिसमें उससे यह अनुरोध किया गया था कि विधेयकों में किये गये परिवर्तनों को सभापति के ध्यान में लाया जाए।

339. निदेश 33 ।

340. निदेश 33 ।

ऐसे कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं जिनमें ऐसे पाद-टिप्पण दिए गए:

कम्पनी विधेयक, 1955, *लो.स.वा.वि.,* 6.9.1955, कॉ. 12440, 12444, 12560, 12570 और 7.9.1955, कॉ. 12728 और 12755; हिन्दू दत्तक-ग्रहण तथा भरण-पोषण विधेयक, 1956, *लो.स.वा.वि,* 14.12.1956, पृ. 1131; प्रादेशिक परिषद् विधेयक, 1956, *लो.स.वा.वि,* 20.12.1956 पृ. 1389 ।

दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1978—*लो.स.वा.वि.,* 28.11.1978, पृ. 165-68 ।

सिनेमा कर्मकार और सिनेमा थिएटर कर्मकार (नियोजन का विनियमन) विधेयक, 1981—*लो.स.वा.वि.,* 24.11.1981, कॉ. 453-54 ।

341. नियम 109-ऐसे प्रस्ताव को किसी विधेयक के पुर:स्थापन अथवा तीसरे वाचन के समय भी पेश करने की अनुमति दी गई—*लो.स.वा.वि.,* 8.5.1975, पृ. 159-60; 31.8.1966, कॉ. 8134-36; 6.8.1969, पृ. 152; 24.8.1993, कॉ. 389-92 ।

अध्यक्ष अपनी सहमति रोक सकता है।[342] वह किसी सरकारी विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित करने के प्रस्ताव का विरोध करने के लिए एक से अधिक सदस्यों को अनुमति दे सकता है।[343] जब किसी विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जाता है, तो विधेयक पर चर्चा जारी रहती है।[344]

किसी विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित करने के प्रस्ताव एक ही सत्र के दौरान एक से अधिक बार पेश किये जा सकते हैं[345] और ये प्रस्ताव तब भी पेश किए जा सकते हैं जबकि विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव वास्तव में पेश नहीं किया गया हो।[346]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर वाद-विवाद सभा में पेश किए गए तथा सभा द्वारा स्वीकृत-प्रस्तावों पर स्थगित किये गये हैं।[347] ऐसे स्थगन के अनुरोध इस आश्वासन पर आधारित थे कि सरकार सम्यक समय पर स्वयं वैसा ही या व्यापक विधान लायेगी, जिसमें वे उपबन्ध होंगे जो कि उस विधेयक द्वारा अधिनियमित किये जा रहे हैं। कुछ मामलों में सम्बद्ध मंत्री द्वारा किये गये और सभा द्वारा स्वीकृत अनुरोध पर सभा में वाद-विवाद स्थगित किया गया और इस प्रकार सभा में ऐसा कोई प्रस्ताव पेश नहीं किया गया।[348]

> गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के प्रतिवेदन जिसका संबंध अन्य बातों के साथ-साथ उस विधेयक पर आगे चर्चा के लिए समय के आवंटन से है, को स्वीकार करने संबंधी प्रस्ताव में सभा द्वारा स्वीकृत संशोधन के आधार पर एक गैर-सरकारी विधेयक पर आगे चर्चा स्थगित की गई है।[349]

---

342. उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 21.11.1968, पृ. 1538-39; 26.11.1968, कॉ. 329; 2.12.1968, कॉ. 263-65 ।
343. *लो.स.वा.वि.,* 15.11.1956, कॉ. 3022-37 ।
344. *पूर्वोक्त,* 14.11.1968, कॉ. 308-11 ।
345. *पूर्वोक्त,* 25.11.1965, कॉ. 8866-70, 14.11.1968, कॉ. 258-61; 283-84; 25.11.1985, कॉ. 357-58 और 2.12.1985, कॉ. 347-48 ।
346. *देखिए* संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक, 1993 और लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1993 का मामला, *लो.स.वा.वि.,* 24.8.1993, कॉ. 358-92 ।
347. कुछ उदाहरणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 26.3.1954, कॉ. पृ. 2163-64; 10.12.1954, कॉ. 2492-2513; 24.12.1954, कॉ. 4084-93; 4098-4100 और 4100-17; 16.11. 1962, कॉ. 2093-94 और 5.12.1985, कॉ. 349-50 ।
348. एक गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक अर्थात् हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) विधेयक, 1962 पर विचार करने के प्रस्ताव पर चर्चा विधि मंत्रालय में उपमंत्री के अनुरोध पर, जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया था, स्थगित की गयी- *लो.स.वा.वि.,* 17.8.1962, पृ. 1162-63 ।
349. *लो.स.वा.वि.,* 13.12.1968, पृ. 152-53; 21.12.1969, कॉ. 278-92 ।

ऐसे भी अवसर आये हैं जब कि सरकारी विधेयक पर वाद-विवाद या तो प्रस्ताव के आधार पर या बिना किसी प्रस्ताव के पेश और स्वीकृत हुए ही स्थगित किया गया है, ताकि सरकार विधेयक में रुचि रखने वाले सदस्यों के साथ अनौपचारिक बातचीत कर सके,[350] अथवा कुछ आंकड़े या अतिरिक्त जानकारी संबंधी सभा की मांग को पूरा कर सके,[351] या विधेयक पर चर्चा के दौरान सदस्यों द्वारा दिये गये सुझावों और की गई आलोचना पर विचार कर सके,[352] या विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपने के सुझाव पर विचार कर सके।[353]

कार्य की किसी मद पर वाद-विवाद को स्थगित करने के लिए ऐसे प्रस्ताव को रखने की अनुमति नहीं दी जाती जो केवल इस उद्देश्य से रखा जा रहा हो कि किसी अन्य मद पर पहले विचार प्रारम्भ हो जाये।[354]

यह निर्णय करना अध्यक्ष का कार्य है कि पिछली बार किये गये वाद-विवाद के स्थगन संबंधी प्रस्ताव के बाद से पर्याप्त समय बीत चुका है या नहीं।[355]

अध्यक्ष द्वारा वाद-विवाद के स्थगन का प्रस्ताव किये जाने हेतु केवल यह आधार पर्याप्त नहीं है कि सभा में उपस्थिति बहुत कम है।[356]

स्थगित वाद-विवाद का पुनः आरंभ

किसी गैर-सरकारी विधेयक पर वाद-विवाद प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर उस पर हो रहे वाद-विवाद को उसी या अगले सत्र में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत किए गए अगले दिन तक के लिए स्थगित कर दिया जाता है किन्तु उसे आगे चर्चा के लिए कार्य-सूची में पुनः तब तक नहीं रखा जाता जब तक कि बैलेट में उसे पूर्ववर्तिता प्राप्त न हो गयी हो।[357]

---

350. संविधान (आठवां संशोधन) विधेयक, 1955-*लो.स.वा.वि.,* 12.12.1955, कॉ. 2254-67; संविधान (बहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1991; और संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1991-*लो.स.वा.वि.,* 3.12.1992, कॉ. 68-70 ।
351. राज्य वित्तीय निगम (संशोधन) विधेयक, 1956-*लो.स.वा.वि.*(II), 24.8.1956, पृ. 1398-1495; 16.11.1956, पृ. 118-21 भी *देखिए* ।
352. भूमि अर्जन (संशोधन) विधेयक, 1962-*लो.स.वा.वि.,* 21.8.1962, पृ. 1618-19; रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबंध) विधेयक, 1985-*लो.स.वा.वि.,* 25.11.1985, कॉ. 357-58 और संसद सदस्य वेतन भत्ता और पेंशन (संशोधन) विधेयक, 1992-*लो.स.वा.वि.,* 20.8.1992, पृ. 40-65 ।
353. *लो.स.वा.वि.,* 23.5.1972, पृ. 19-30 ।
354. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.3.1924, पृ. 2041 ।
355. *पूर्वोक्त* 9.12.1926, पृ. 971-72 ।
356. *एल.ए. डिबेट्स,* 1.4.1937, पृ. 2515 ।
357. नियम 30(1) ।

जब गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर वाद-विवाद अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित कर दिया जाता है तो विधेयक का प्रभारी सदस्य यदि वह गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत बाद के किसी दिन ऐसे विधेयक पर चर्चा जारी रखना चाहता है तो वह वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करने के लिए सूचना दे सकता है और ऐसी सूचना मिलने पर ऐसे विधेयक की सापेक्ष पूर्ववर्तिता बैलेट द्वारा निर्धारित की जाती है।[358]

जब किसी विधेयक पर स्थगित वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करने की सूचना बैलेट होने के बाद प्राप्त हो तो वह विधेयक कार्य-सूची में पहले बैलेट हुए विधेयकों के नीचे रखा जाएगा।[359]

> तथापि, जब किसी गैर-सरकारी विधेयक पर वाद-विवाद सरकारी कार्य के लिए आवंटित किसी विशेष तारीख और समय के लिए स्थगित किया जाता है तो स्थगित वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करने के लिए प्रस्ताव रखने की आवश्यकता नहीं होती।[360]

किसी सरकारी विधेयक के मामले में वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करने के प्रस्ताव की सूचना देना केवल उसी स्थिति में आवश्यक है जबकि उस पर वाद-विवाद का स्थगन सभा द्वारा स्वीकार किये गये किसी प्रस्ताव के अनुसरण में किया गया हो।[361]

विलम्बकारी प्रस्ताव

यदि अध्यक्ष की यह राय हो कि किसी विधेयक से संबंधित प्रस्ताव पर वाद-विवाद के स्थगन का कोई प्रस्ताव सभा के नियमों का दुरुपयोग है, तो वह उस पर या तो तुरन्त प्रश्न रख सकेगा या प्रश्न प्रस्तुत करने से इन्कार कर सकेगा।[362]

जब अध्यक्ष की यह राय हो कि किसी विधेयक पर अग्रेतर राय जानने के लिए उसे पुनः परिचालित करने का प्रस्ताव ऐसे विलम्बकारी प्रस्ताव के स्वरूप का है, जिस अवस्था में मूल परिचालन ही पर्याप्त या व्यापक था या यह कि पूर्व परिचालन के बाद विधेयक के पुनःपरिचालन की आवश्यकता हेतु कोई परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई है तो वह उस पर तुरन्त प्रश्न रख सकेगा या प्रश्न प्रस्तुत करने से इन्कार कर सकेगा।[363]

इसी प्रकार, यदि अध्यक्ष की राय यह हो कि किसी विधेयक पर सभा की प्रवर समिति या संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदन दिए जाने के बाद विधेयक को सभा की प्रवर समिति या

---

358. नियम 30(2) ।

359. निदेश 4 ।

360. *लो.स.वा.वि.,* 24.4.1970, पृ. 142-46 और 5.12.1985, कॉ. 349-50 ।

361. *पूर्वोक्त* 11.5.1965, कॉ. 14385-410; 18.8.1965, कॉ. 785-815; 15.2.1966, कॉ. 265-67; 22.11.1966, कॉ. 4687 और 4.12.1992, कॉ. 607-08 ।

362. नियम 109 और 341(1) ।

363. नियम 341(2) ।

सदनों की संयुक्त समिति को फिर से सौंपे जाने या उसके परिचालन या पुन:परिचालन का प्रस्ताव ऐसे विलम्बकारी प्रस्ताव के स्वरूप का है जिसमें, यथास्थिति, सभा की प्रवर समिति या संयुक्त समिति विधेयक पर उचित रीति से विचार कर चुकी है, या यह कि विधेयक के किसी समिति से आने के बाद कोई अप्रत्याशित या नई परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई है तो वह उस पर तुरंत प्रश्न रख सकेगा या प्रश्न प्रस्तुत करने से इंकार कर सकेगा।[364]

जब अध्यक्ष की राय यह हो कि कोई प्रस्ताव विलम्बकारी स्वरूप का है तो वह स्वविवेक से उस प्रस्ताव को तुरंत सभा में मतदान के लिए रख सकता है।[365]

किसी अध्यादेश का स्थान लेने वाले विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने या उस पर उस तिथि के बाद तक जिस तक कि उस विधेयक को अवश्य पारित हो जाना चाहिए, विचार जानने के लिए परिचालित करने वाले संशोधन, विलम्बकारी स्वरूप के नहीं माने जाते।

किसी विधेयक पर चर्चा स्थगित करने या उसे प्रवर समिति को सौंपने के लिए रखे गये संशोधन विलम्बकारी स्वरूप के नहीं होते, यदि उन संशोधनों का प्रभाव विधेयक के पारित होने में विलम्ब करना न होकर विधेयक को 'विफल' करना हो।[366]

---

364. नियम 341(3) ।

365. *लो.स.वा.वि.,* 25.7.1955, पृ. 118-23; साथ ही *देखिए पूर्वोक्त* 10.8.1955, कॉ. 4148-52; 18.2.1956, कॉ. 282-84; 20.2.1956, पृ. 171-72 ।

366. एक सदस्य ने राज्य सभा द्वारा यथापारित भ्रष्टाचार निवारण (संशोधन) विधेयक, 1957 पर विचार के प्रस्ताव पर दो संशोधनों की सूचना दी। पहले संशोधन का उद्देश्य यह था कि विधेयक पर विचार अगले सत्र तक के लिए स्थगित किया जाए और दूसरे संशोधन का उद्देश्य यह था कि विधेयक को एक प्रवर समिति को सौंपा जाये और उससे कहा जाये कि अपनी रिपोर्ट अगले सत्र के पहले दिन से पहले दे दे। निकट भविष्य में लोक सभा के विघटन की दृष्टि से उन दोनों में से कोई भी संशोधन स्वीकार करने का मतलब यह होता कि विधेयक "विफल" हो जाता। इस मामले में यह विनिर्णय दिया गया कि संशोधन विलम्बकारी प्रस्ताव नहीं है क्योंकि इन संशोधनों का प्रभाव विधेयक के पारित होने में विलम्ब करना नहीं है, बल्कि संसदीय प्रक्रिया के अनुसार इस विधेयक को विफल करना है क्योंकि सभा के विघटन पर सभी विचाराधीन विधेयक व्यपगत हो जाते हैं। इन संशोधनों को सदस्यों में परिचालित किया गया परन्तु उन्हें सरकार द्वारा दिये गये इस आश्वासन पर सभा में प्रस्तुत नहीं किया गया कि सरकार जल्दी से जल्दी एक व्यापक विधेयक लायेगी—*लो.स.वा.वि.,* 28.2.1957 ।

विधेयकों का वापस लिया जाना

विधेयक का प्रभारी सदस्य विधेयक के किसी प्रक्रम[367] पर विधेयक को इस आधार पर वापस लेने की अनुमति का प्रस्ताव कर सकता है कि—

विधेयक में अन्तर्विष्ट विधायी प्रस्ताव समाप्त किया जाना है; या

बाद में उस विधेयक के स्थान पर एक नया विधेयक लाया जाना है जिससे उसमें अन्तर्विष्ट उपबन्धों में सारवान् रूप से फेरबदल हो जाएगा; या

बाद में उस विधेयक के स्थान पर एक अन्य विधेयक लाया जाना है जिसमें अन्य उपबन्धों के अतिरिक्त उसके सभी या कोई उपबन्ध सम्मिलित हों;

और यदि ऐसी अनुमति दी जाती है तो उस विधेयक के संबंध में कोई अग्रेतर प्रस्ताव नहीं किया जाता।[368]

किसी विधेयक के वापस लिये जाने के तत्काल बाद नया विधेयक पुर:स्थापित किया जा सकता है "बाद में" पदावली में 'तत्काल बाद' अर्थ भी निहित है।[369]

जब कोई विधेयक यथास्थिति सभा की प्रवर समिति या सदनों की संयुक्त समिति के विचाराधीन हो, तो विधेयक की वापसी के प्रस्ताव की सूचना स्वत: समिति को सौंपी मानी

---

367. बीमा विनियामक प्राधिकरण विधेयक, 1996 पर खण्ड-वार विचार करने के दौरान जब कुछ खण्ड स्वीकृत हो गए थे तो माननीय मंत्री ने सभा की सहमति प्राप्त कर विधेयक को वापिस लेने की अनुमति का प्रस्ताव पेश किया । प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और विधेयक वापस ले लिया गया— *लो.स.वा.वि.,* 6.8.1997, कॉ. 213 ।

भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986 लोक सभा और राज्य सभा द्वारा क्रमश: 18 नवंबर, 1986 और 10 दिसंबर, 1986 को यथापारित, को राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 111 के अधीन दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए राज्य सभा के पास वापस भेजा गया। राष्ट्रपति के संदेश के बाद राज्य सभा द्वारा विधेयक पर 12 वर्षों से भी अधिक समय तक पुनर्विचार नहीं किया गया। 13 मार्च, 2002 को राज्य सभा ने लोक सभा से यह सिफारिश करने संबंधी प्रस्ताव स्वीकृत किया कि लोक सभा विधेयक को वापस लेने के लिए राज्य सभा द्वारा दी जा रही अनुमति से सहमत है। 16 मार्च, 2002 को लोक सभा इस प्रस्ताव से सहमत हुई। अंतत: इस विधेयक को 21 मार्च, 2002 को राज्य सभा से वापस ले लिया गया।

368. नियम 110—अगस्त, 1956 में इस नियम को खण्ड (ग) रखे जाने से पहले अध्यक्ष ने कुछ अवसरों पर इस श्रेणी में आने वाले विधेयकों के वापस लिये जाने का प्रस्ताव अपने अवशिष्ट अधिकारों का प्रयोग करते हुए रखने की अनुमति दी है—*लो.स.वा.वि.,* 18.4.1956, पृ. 2439-43; 15.3.1956, पृ. 1115; 30.4.1956, पृ. 2866-70 ।

369. *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1966, पृ. 76-77; 18.2.1969, पृ. 155-56; 3.8.1984, पृ. 308-09; 6. 8.1984, पृ. 321-27 ।

किसी विधेयक के वापस लिए जाने के तत्काल बाद नया विधेयक पुन:स्थापित किए जाने के कुछ उदाहरण हैं:–

जाएगी और समिति द्वारा सभा को दिए गए प्रतिवेदन में राय व्यक्त करने के बाद प्रस्ताव को कार्य-सूची में रखा जाएगा।[370]

यदि राज्य सभा द्वारा पारित कोई विधेयक लोक सभा में विचाराधीन हो, तो उस विधेयक को वापस लेने का प्रस्ताव सभा द्वारा पारित किये जाने के बाद राज्य सभा को उसकी सहमति के लिए भेजा जाता है। यदि राज्य सभा उस प्रस्ताव से सहमति प्रकट करती है, तो विधेयक को वापस लेने का प्रस्ताव लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है तथा इस पर सामान्य प्रक्रिया के अनुसार विचार किया जाता है[371] और जब प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो इसका उस संबंध में एक संदेश राज्य सभा को भेजा जाता है।

जब सरकार लोक सभा में विचाराधीन किसी विधेयक को वापस लेना चाहे, तो संबंधित मंत्री द्वारा विधेयक को वापस लेने के कारणों का एक विवरण सदस्यों को उस दिन से काफी पहले परिचालित किया जाता है जिस दिन उसे वापस लेने का प्रस्ताव किया जाना है।[372]

यदि किसी विधेयक को वापस लेने की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध किया जाये, तो यदि अध्यक्ष ठीक समझे, प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले तथा प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्य

(क) 13 मार्च 2003 को विधि मंत्री ने निर्वाचन और अन्य संबंधित विधि (संशोधन) विधेयक, 2002 को वापस लेने हेतु सभा की अनुमति मांगी। अनुमति मिल गई और विधेयक वापस ले लिया गया। एक नया विधेयक नामतः निर्वाचन और अन्य संबंधित विधियाँ (संशोधन) विधेयक, 2003 उसी दिन पुरःस्थापित किया गया।

(ख) 19 मार्च 2013 को, गृहमंत्री ने दंड विधि (संशोधन) विधेयक 2012 को वापस लेने हेतु सभा की अनुमति मांगी। अनुमति मिल गई और विधेयक वापस ले लिया गया। एक नया विधेयक नामतः दंड विधि (संशोधन) विधेयक, 2013 उसी दिन पुरःस्थापित किया गया।

370. नियम 110, प्रथम परन्तुक; साथ ही *देखिए सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स* (II), 5.10.1949, पृ. 8 ।

371. नियम 110, दूसरा परन्तुक ।

राज्य सभा द्वारा यथापारित अधिवक्ता (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1968 और आयुध (संशोधन) विधेयक, 1981 को वापस लेने संबंधी प्रस्तावों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 18.8.1970, पृ. 166-68; 23.11.1970, पृ. 133-34 तथा 26.7.1983, पृ. 481 और 2.8. 1983, पृ. 294-98; अन्य उदाहरणों के लिए *देखिए*—राज्य सभा द्वारा यथापारित भारतीय चिकित्सा परिषद (संशोधन) विधेयक, 1992; दंत चिकित्सक (संशोधन) विधेयक, 1992 और माल बहुविद परिवहन विधेयक, 1992—*लो.स.वा.वि.,* 23.2.1993, पृ. 295-96; 1.3. 1993, कॉ. 587-88; 25.2.1993, पृ. 204-05 और 3.3.1993, कॉ. 536-37 ।

372. निदेश 36 निर्वाचन विधि (कतिपय पूर्वोत्तर राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण) संशोधन विधेयक, 1986; मोटर यान विधेयक, 1987; आवश्यक वस्तु (विशेष उपबन्ध) संशोधन विधेयक, 1992 तथा लघु और आनुषंगिक औद्योगिक उपक्रमों को निलंबित संदाय पर ब्याज विधेयक, 1992; भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (संशोधन) विधेयक, 2009; शत्रु संपत्ति (संशोधन और विधिमान्यकरण) विधेयक, 2010; और अपराधिक विधि (संशोधन) विधेयक, 2012।

को संक्षिप्त व्याख्यात्मक वक्तव्य देने की अनुज्ञा दे सकता है और उसके बाद अग्रेतर वाद-विवाद के बिना प्रश्न रख सकता है।[373]

लम्बित विधेयकों का रजिस्टर

उपयुक्त रिकार्ड रखने के लिए सचिवालय में प्रत्येक सत्र के सभा में लम्बित विधेयकों का रजिस्टर रखा जाता है। लम्बित विधेयकों में निम्नलिखित शामिल होते हैं:

> सभा में पुर:स्थापित किया गया विधेयक, जिसका निपटारा न किया गया हो;[374] राज्य सभा को भेजा गया तथा राज्य सभा द्वारा संशोधन या सिफारिश, जैसी भी स्थिति हो, सहित लौटाया गया और सभा पटल पर रखा गया विधेयक;[375] राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया और लोक सभा को भेजा गया तथा लोक सभा के पटल पर रखा गया विधेयक;[376] और राष्ट्रपति द्वारा संदेश सहित लौटाया गया विधेयक।[377]

जो विधेयक राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया हो और जिसे उस सभा ने किसी संयुक्त समिति को सौंप दिया हो और उसके संबंध में लोक सभा को यह संदेश भेजा हो कि वह उस प्रस्ताव से सहमत हो और संयुक्त समिति के सदस्य के रूप में कार्य करने के लिए लोक सभा के सदस्यों के नाम राज्य सभा को बताए, ऐसे विधेयक को लोक सभा में लम्बित विधेयक नहीं माना जाता और उसे लोक सभा में लम्बित विधेयकों के विवरण में शामिल नहीं किया जाता। यह विवरण सभा के सत्रावसान के बाद जारी किया जाता है।

जब सभा द्वारा किसी विधेयक के विभिन्न प्रक्रमों के बारे में प्रभारी सदस्य द्वारा किया गया कोई प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाये, तो उस विधेयक को सभा में लम्बित विधेयकों के रजिस्टर से हटा दिया जाता है।[378] सभा में लम्बित कोई ऐसा विधेयक भी लंबित विधेयकों के रजिस्टर से निकाल दिया जाता है, जिसके समान कोई अन्य विधेयक सभा द्वारा

---

373. नियम 111; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.* (II), 15.3.1956, पृ. 1115; *एल.एस. डिबेट्स,* 2.8.1983, कॉ. 386 ।

374. *देखिए* नियम 112 और 113 ।

375. *देखिए* नियम 98 और 104 ।

376. *देखिए* नियम 114 और 122—यदि राज्य सभा, जिसमें विधेयक आरम्भ किया गया हो, द्वारा पारित किये गये विधेयक के लोक सभा को भेजे जाने तक लोक सभा का सत्रावसान हो जाए, तो उसे लोक सभा में लम्बित विधेयक नहीं माना जाता, क्योंकि विधेयक सभा पटल पर नहीं रखा गया है।

377. अनुच्छेद 111 के अन्तर्गत।

378. नियम 112(1), 22 अगस्त 1984 का संविधान (सैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1982 पर विचार के लिए प्रस्ताव रखा गया, जो अपेक्षित विशेष बहुमत द्वारा स्वीकृत नहीं हुआ, और तदनन्तर इस विधेयक को लम्बित विधेयकों के रजिस्टर से हटा दिया गया। 18 मार्च, 1986 को सभा की अनुमति से रावी और व्यास जल न्यायाधिकरण विधेयक, 1986 वापस ले लिया गया, अत: यह विधेयकों के रजिस्टर से हटा दिया गया ।

पारित कर दिया जाये या जिस विधेयक को वापस ले लिया गया हो।[379] जब किसी लम्बित विधेयक का उद्देश्य किसी ऐसे अधिनियम में संशोधन करना हो जिसका बाद में निरसन हो गया हो, तो उसे विधेयक के रजिस्टर से हटा दिया जाता है।[380]

राज्य सभा द्वारा संशोधनों सहित लौटाए गए धन विधेयकों से भिन्न विधेयक

यदि, धन विधेयक के अतिरिक्त, कोई ऐसा विधेयक, जिसे लोक सभा ने पारित करके राज्य सभा को भेजा हो और उसे राज्य सभा द्वारा संशोधन के बाद लोक सभा को लौटाया जाये, तो उसे सभा पटल पर रख दिया जाता है।[381] और राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधन

---

379. नियम 112(2)

22 दिसम्बर, 1971 को लोक सभा में पुरःस्थापित किया गया संविधान (अट्ठाईसवां संशोधन) विधेयक, 1971 लम्बित विधेयकों के रजिस्टर से हटा दिया गया, क्योंकि उसके उपबन्ध संविधान (चवालीसवां संशोधन) विधेयक, 1976 में समाविष्ट किये गये थे जिसे संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 के रूप में अधिनियमित किया गया *देखिए* समाचार-भाग 2, 27 दिसम्बर, 1976, पैरा 3020 ।

श्री सी.के. चन्द्रप्पन, संसद सदस्य द्वारा रखे गये वन (संरक्षण) संशोधन विधेयक, 2004 (नई धारा 2क का अन्तःस्थापन) को लोक सभा में लंबित विधेयकों के रजिस्टर से हटा दिया गया क्योंकि इसका उद्देश्य अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन्य निवासी (वन्य अधिकारों को मान्यता) विधेयक, 2006 (सरकारी विधेयक) से पूरा हो गया, जिसे लोक सभा द्वारा 15 दिसम्बर, 2006 को स्वीकृत किया गया ।

380. निदेश 37 ।

संसद सदस्य, श्री खगेन दास द्वारा रखे गये त्रिपुरा उच्च न्यायालय विधेयक, 2010 को लोक सभा में लंबित विधेयकों के रजिस्टर से हटा दिया गया क्योंकि इसका उद्देश्य उत्तर-पूर्व क्षेत्र (पुनर्गठन) और संबंधित विधि (संशोधन) विधेयक, 2012 (सरकारी विधेयक) से पूरा हो गया जिसे लोकसभा द्वारा 11 मई 2012 को स्वीकृत किया गया।

विधेयकों के रजिस्टर से गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों को हटाये जाने के संबंध में इस अध्याय में 'गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों' के अन्तर्गत *देखिए* ।

381. नियम 98 ।

ऐसे विधेयकों में से कुछ विधेयक निम्नलिखित हैं जो लोक सभा ने पारित किए और जिन्हें राज्य सभा ने संशोधनों सहित लौटा दिया :

फरीदाबाद विकास निगम विधेयक 1955; बीमा (संशोधन) विधेयक, 1957; सम्पदा शुल्क और रेल यात्री भाड़ों पर कर (वितरण) विधेयक, 1957; संसद (अनर्हता निवारण) विधेयक, 1957; दहेज निषेध विधेयक, 1959; तार संबंधी विधियां (संशोधन) विधेयक, 1960; मोटर परिवहन कर्मचारी विधेयक, 1960; बोनस संदाय (संशोधन) विधेयक, 1980; मुम्बई उच्च न्यायालय (गोवा, दमन और दीव पर अधिकारिता का विस्तारण) विधेयक, 1981; तेल क्षेत्र (विनियमन तथा विकास) संशोधन विधेयक, 1984; तथा गोवा, दमन और दीव पुनर्गठन विधेयक, 1987 । धन शोधन निवारण विधेयक, 1999 ; प्रौद्योगिकी संस्थान

उसी रात सदस्यों में परिचालित कर दिये जाते हैं, जब विधेयक सभा पटल पर रखा गया हो। साथ ही सदस्यों को लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक की मुद्रित प्रतियां भी उपलब्ध कराई जाती हैं।

संशोधित विधेयक के सभा पटल पर रखे जाने के बाद सरकारी विधेयक के मामले में कोई मंत्री या अन्य मामले में, कोई सदस्य, दो दिन की सूचना देने के बाद या अध्यक्ष की सहमति से बिना सूचना के, यह प्रस्ताव कर सकता है कि संशोधनों पर विचार किया जाये।[382] संशोधनों पर विचार करने संबंधी प्रस्ताव की सूचना प्राप्त होने पर इसे कार्य-सूची[383] में सम्मिलित कर लिया जाता है और सदस्यों में परिचालित कर दिया जाता है।

यदि यह प्रस्ताव कि राज्य सभा द्वारा किये गये संशोधनों पर विचार किया जाये स्वीकृत हो जाए, तो अध्यक्ष ऐसे संशोधनों को सभा के सामने ऐसी रीति से रखता है, जिसे वह उस पर विचार करने के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक समझे।[384]

राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधन के विषय से संगत कोई संशोधन प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु विधेयक में कोई अग्रेतर संशोधन तब तक प्रस्तुत नहीं किया जायेगा, जब तक कि वह राज्य सभा द्वारा किए गए किसी संशोधन का आनुषंगिक या वैकल्पिक न हो।[385]

कतिपय मामलों में, न केवल राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों में संशोधन रखने की अनुमति दी गई बल्कि कुछ अन्य खण्डों में संशोधन रखने की अनुमति भी दी गई क्योंकि राज्य

(संशोधन) विधेयक, 2012; राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (संशोधन) विधेयक, 2012; संविधान (एक सो अठ्ारह संशोधन) विधेयक, 2012; और कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण प्रतिषेध और उपचार) विधेयक, 2013

382. नियम 99 ।

बोनस संदाय (संशोधन) विधेयक, 1980 में राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधन को अध्यक्ष की अनुमति से दो दिन की पूर्व सूचना के बिना, लोक सभा में चर्चा के लिए रखा गया-*लो. स.वा.वि.*, 2.2.1980, पृ. 148-49 ।

383. धनशोधन निवारण विधेयक, 1999 जिसे लोक सभा ने 2 दिसम्बर, 1999 में स्वीकृत कर दिया था, को राज्य सभा ने 25 जुलाई, 2002 को 235 संशोधनों के साथ वापस भेजा। चूंकि लोक सभा द्वारा विचार करने और सहमत होने के लिए संशोधनों की संख्या बहुत अधिक थी, अत: कार्यसूची में (मंत्री द्वारा दी गयी सूचना) संशोधनों के पाठ को सम्मिलित करने की सामान्य प्रथा के बजाय संशोधनों को अलग से सदस्यों को परिचालित किये गये और इसका संकेत कार्यसूची में दिया गया। लोक सभा वाद-विवाद, 28.11.2002, कॉ. 510 । यह भी निर्णय लिया गया कि यदि संशोधनों का निपटान उस दिन न हुआ जिस दिन के लिये रखे गये तो ऐसे प्रत्येक दिन जिस दिन विधेयक को कार्यसूची में सम्मिलित किया जायेगा, संशोधनों की सूची भी अलग से रखी जायेगी ।

384. नियम 100(1) ।

385. नियम 100(2) ।

सभा द्वारा किए गए संशोधनों के परिणामस्वरूप[386] अथवा समय बीतने के कारण वे संशोधन आवश्यक हो गये थे।[387]

यदि लोक सभा, राज्य सभा द्वारा किसी विधेयक में किये गये संशोधन से सहमत हो, तो वह राज्य सभा को इस संबंध में एक संदेश भेजती है, किन्तु यदि वह उस संशोधन से असहमत हो या कोई अग्रेतर संशोधन अथवा वैकल्पिक संशोधन का प्रस्ताव करे, तो यह सभा विधेयक को या अग्रेतर संशोधित विधेयक को, उस आशय के एक संदेश के साथ राज्य सभा को लौटा देती है।[388]

यदि लोक सभा किसी विधेयक में राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधन से सहमत होने के अलावा कोई अग्रेतर संशोधन करती है तो वह अग्रेतर संशोधन को समाविष्ट करके, संदेश को उसकी प्रति सहित राज्य सभा को भेजती है ताकि राज्य सभा भी लोक सभा द्वारा किए गए अग्रेतर संशोधन से सहमत हो सके।[389]

यदि कोई विधेयक लोक सभा को इस संदेश के साथ लौटा दिया जाये कि राज्य सभा उस संशोधन या उन संशोधनों पर आग्रह करती है जिनसे लोक सभा असहमत है, तो यह समझा जायेगा कि संशोधन या संशोधनों के बारे में दोनों सभाओं में अन्तिम रूप से असहमति हो गयी है।[390] ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति अपने इस आशय की सूचना दे सकता है कि वह दोनों सभाओं की एक संयुक्त बैठक इस विधेयक पर विचार करने तथा उस पर मतदान के लिए बुलाना चाहता है।[391]

> यदि दूसरी सभा द्वारा विधेयक के प्राप्त होने के बाद छह महीने से अधिक की अवधि बीत जाये और वह सभा उस विधेयक को पारित न करे तो भी राष्ट्रपति दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक बुला सकता है।[392] तथापि यह केवल एक समर्थकारी उपबन्ध है और

---

386. *लो.स.वा.वि.* (II), 28.9.1955, कॉ. 5090-5103 ।

387. *लो.स.वा.वि.,* 24.2.1959, पृ. 1444-59 ।

388. नियम 101 ।

389. लोक सभा द्वारा यथा पारित जांच आयोग (संशोधन) विधेयक, 1990 को राज्य सभा द्वारा यथासंशोधित 10 अप्रैल, 1990 को पारित किया गया जिसे लोक सभा ने राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों से सहमत होने के साथ-साथ अग्रेतर संशोधनों सहित 31 मई, 1990 को पुन:पारित कर दिया। 17 अगस्त, 1990 को राज्य सभा, लोक सभा द्वारा किए गए अग्रेतर संशोधनों से सहमत हुई।

390. नियम 102 ।

391. अब तक ऐसे केवल तीन अवसर आये हैं जब दोनों सभाओं की संयुक्त बैठकें बुलाई गई हैं अर्थात् दहेज निषेध विधेयक, 1959; बैंक सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1978; और आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 । अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 4—सभाओं के बीच सम्बन्ध ।

392. अनुच्छेद 108(1)(ग) ।

ऐसे उदाहरण हैं जबकि राज्य सभा द्वारा पारित किये गये और लोक सभा के सभा पटल पर रखे गये विधेयक लोक सभा ने न केवल उनकी लोक सभा में प्राप्ति के छह महीने बीत जाने के बाद पारित किये हैं;[393] बल्कि उनमें से कई तो लोक सभा के विघटन पर व्यपगत हो गये।[394]

राज्य सभा द्वारा लौटाये गये धन विधेयक

यदि लोक सभा द्वारा पारित किया गया कोई धन विधेयक जो राज्य सभा को भेजा गया हो, बिना किसी सिफारिश के लोक सभा को लौटा दिया जाये तो महासचिव इस संबंध में राज्य सभा का सन्देश सभा में पढ़ देता है, बशर्ते कि उस समय सभा का सत्र चल रहा हो, अन्यथा वह संसदीय समाचार (बुलेटिन) में प्रकाशित कर दिया जाता है। अविलम्बनीयता की स्थिति में, जब सभा की बैठक न चल रही हो, प्राप्त संदेश संसदीय सामाचार में प्रकाशित कर दिए जाते हैं।[395] ऐसा संदेश पढ़े जाने अथवा प्रकाशित किए जाने के पश्चात् विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है।[396]

---

393. (i) भारतीय रेलवे (संशोधन) विधेयक, 1953 राज्य सभा द्वारा 1 सितम्बर, 1953 को पारित किया गया था और 3 सितम्बर, 1953 को लोक सभा के सभा पटल पर रखा गया था और लोक सभा ने इसे 25 अगस्त, 1956 को पारित किया।

(ii) रेलवे सामान (अनधिकृत कब्जा) विधेयक, 1954 राज्य सभा द्वारा 31 अगस्त, 1954 को पारित किया गया था और इसे 2 सितम्बर, 1954 को लोक सभा के सभा पटल पर रखा गया था। लोक सभा ने इसे संशोधनों सहित 1 दिसम्बर, 1955 को पारित किया।

(iii) रामपुर रजा लाइब्रेरी (संशोधन) विधेयक, 1980 राज्य सभा द्वारा 20 नवम्बर, 1980 को पारित किया गया तथा 24 नवम्बर, 1980 को लोक सभा के सभा पटल पर रखा गया। लोक सभा ने इसे 30 नवम्बर, 1981 को पारित किया ।

(iv) विक्रय संवर्द्धन कर्मचारी (सेवा शर्त) संशोधन विधेयक, 1980 राज्य सभा द्वारा 11 दिसम्बर, 1980 को पारित किया गया तथा 15 दिसम्बर, 1980 को लोक सभा के सभा पटल पर रखा गया। लोक सभा द्वारा इसे 16 अक्तूबर, 1982 को पारित किया गया।

394. भारतीय माल की बिक्री (संशोधन) विधेयक, 1960 राज्य सभा द्वारा 29.2.1960 को पारित किया गया था और 4 मार्च, 1960 को लोक सभा के सभा पटल पर रखा गया था। यह 4.4.1962 को दूसरी लोक सभा के विघटन पर व्यपगत हो गया।

संविधान (इकतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1975 राज्य सभा द्वारा 9 अगस्त, 1975 को यथापारित 5 जनवरी, 1976 को लोक सभा के सभापटल पर रखा गया, 18 जनवरी, 1977 को पांचवीं लोक सभा के विघटन पर व्यपगत हो गया।

395. नियम 103 ।

396. अनुच्छेद 111 ।

जब कोई धन विधेयक राज्य सभा द्वारा संशोधनों की सिफारिश सहित वापस किया जाये तो प्राप्त होने पर वह महासचिव द्वारा सभा पटल पर रख दिया जाता है।[397]

राज्य सभा जिन संशोधनों की सिफारिश करती है, उन्हें एक अलग सूची में सम्मिलित करके उसी दिन सदस्यों में परिचालित कर दिया जाता है और उस सूची के नीचे पाद-टिप्पण में यह बताया जाता है कि विधेयक किस तिथि को लोक सभा द्वारा पारित किया गया, किस तिथि को राज्य सभा ने उस पर विचार किया और किस तिथि को लोक सभा को सिफारिश सहित वापस भेजा।[398]

जब ऐसा विधेयक सभा पटल पर रखा जाये, जिसके संबंध में राज्य सभा ने कुछ संशोधन करने की सिफारिश की हो, तो उसका प्रभारी मंत्री दो दिन की सूचना देकर या अध्यक्ष की अनुमति से बिना सूचना के, यह प्रस्ताव रख सकता है कि राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है, उन पर विचार किया जाये।[399]

प्रस्ताव के स्वीकार किये जाने पर, अध्यक्ष उन संशोधनों को, जिनकी सिफारिश राज्य सभा ने की हो, सभा के विचार के लिए उस रीति से रखता है जिसे कि वह सबसे अधिक सुविधाजनक समझे।[400] इस प्रयोजन के लिए यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है कि राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है उन्हें स्वीकार कर लिया जाये।[401] लोक सभा चाहे तो उनमें से किसी या सभी संशोधनों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है, जिनकी सिफारिश

---

397. नियम 104 ।

398. राज्य सभा द्वारा लौटाये गये त्रावणकोर कोचीन विनियोग (लेखा अनुदान) विधेयक, 1956; संघ उत्पाद शुल्क (वितरण) विधेयक, 1957 जिनमें कुछ संशोधनों की सिफारिश की गयी थी, क्रमश: 30 अप्रैल, 1956 और 19 दिसम्बर, 1957 को लोक सभा के पटल पर रखे गये राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की थी, वे एक अलग सूची में सम्मिलित करके इन्हीं तिथियों को लोक सभा के सदस्यों में परिचालित किये गये।

    वर्ष 1985 में राज्य सभा ने प्रत्येक विधेयक में संशोधन की सिफारिश करके पांच विनियोग विधेयक अर्थात् विनियोग (रेल) विधेयक, 1985; विनियोग (रेल) संख्या 2 विधेयक, 1985; विनियोग विधेयक, 1985; विनियोग (संख्या 2) विधेयक, 1985; तथा पंजाब विनियोग विधेयक, 1985 वापस लौटाए जो 30 जनवरी, 1985 को लोक सभा के पटल पर रखे गए और राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की थी वे लोक सभा सदस्यों को उसी दिन परिचालित कर दिये गये।

399. नियम 105; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.* (II), 3.5.1956, पृ. 3033-36 तथा 30.1.1985, पृ. 177-80 ।

400. नियम 106 ।

401. 3 मई, 1956 को जब सभा ने त्रावणकोर कोचीन विनियोग (लेखा अनुदान) विधेयक, 1956 के संबंध में यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि उसमें राज्य सभा द्वारा जिस संशोधन की सिफारिश की गयी है उस पर विचार किया जाये, तब राजस्व तथा असैनिक व्यय मंत्री ने निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया:

राज्य सभा ने की हो।[402] यदि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये और लोक सभा उनमें से किसी संशोधन को स्वीकार कर ले, जिसकी सिफारिश राज्य सभा ने की हो, तो यह माना जाता है कि राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की है और जिन्हें लोक सभा ने स्वीकार किया है उनके सहित वह विधेयक दोनों सभाओं ने पास कर दिया है।[403]

यदि सभा उनमें से कोई संशोधन स्वीकार नहीं करती है जिनकी सिफारिश राज्य सभा ने की हो, तो विधेयक राज्य सभा सिफारिश किए गए किसी संशोधन के बिना दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पारित किया गया समझा जाएगा जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया था।[404]

राज्य सभा ने जिन संशोधनों की सिफारिश की हो उनके संबंध में लोक सभा के निर्णय की सूचना एक संदेश के माध्यम से राज्य सभा को भेज दी जाती है।[405]

राज्य सभा में मूल रूप से पुरःस्थापित होने वाले विधेयकों के संबंध में लोक सभा की प्रक्रिया

धन विधेयक या धन विधेयक के संबंध में निर्दिष्ट किसी विषय का उपबन्ध करने वाले किसी विधेयक को छोड़कर, कोई भी विधेयक राज्य सभा में पुरःस्थापित किया जा सकता है।[406]

जब कोई विधेयक राज्य सभा में पुरःस्थापित किया जाता है, उसकी प्रतियां यथाशीघ्र लोक सभा के सदस्यों को उनकी जानकारी के लिए बांट दी जाती हैं।[407]

"कि राज्य सभा ने जिस संशोधन की सिफारिश की है, उसे स्वीकार कर लिया जाये।" यह प्रस्ताव सभा के मतदान के लिए रखा गया और इसे स्वीकार कर लिया गया—*लो.स.वा.वि.,* 3.5.1956, पृ. 3033-36, 30.1.1985, कॉ. 280-86 ।

402. अनुच्छेद 109(2) ।

403. अनुच्छेद 109(3) ।

404. अनुच्छेद 109(4) वित्त विधेयक, 1978 लोक सभा द्वारा 29 अप्रैल, 1978 को पारित किया गया और राज्य सभा को भेजा गया। राज्य सभा द्वारा एक संशोधन की सिफारिश सहित इस विधेयक को 9 मई, 1978 को वापस लौटा दिया गया। राज्य सभा द्वारा जिस संशोधन की सिफारिश की गई थी, उस पर 11 मई, 1978 को लोक सभा में विचार किया गया और उसे अस्वीकार कर दिया गया। राज्य सभा को इस आशय का संदेश उसी दिन भेज दिया गया। विधेयक को संसद की दोनों सभाओं द्वारा उसी रूप में पारित मान लिया गया, जिसमें कि उसे लोक सभा ने पारित किया था और 12 मई, 1978 को राष्ट्रपति ने उस पर अपनी सहमति दे दी थी—*लो.स.वा.वि.,* 11.5.1978, पृ. 5-11 ।

405. नियम 107 और 108 संदेश के रूप में के लिए *देखिए* अध्याय 4—सभाओं के बीच संबंध।

406. अनुच्छेद 109 और 117(1), साथ ही पीछे इसी अध्याय में 'धन विधेयक' और 'वित्त विधेयक' शीर्षक के अंतर्गत *देखिए* ।

407. संसद के दोनों सदनों के बीच ऐसी व्यवस्था की गई है कि एक सभा में यथापुरःस्थापित विधेयकों की प्रतियां दूसरी सभा के सदस्यों में परिचालित करने के लिए उस सभा को भेजी जाती हैं।

राज्य सभा में पुरःस्थापित किसी विधेयक के, उस सभा में पारित होने से पहले, राज्य सभा चाहे तो उस विधेयक को सदनों की किसी संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव पारित कर सकती है और उस प्रस्ताव के माध्यम से लोक सभा से यह सिफारिश कर सकती है कि वह भी उस संयुक्त समिति में शामिल हो। इस संबंध में राज्य सभा का संदेश महासचिव द्वारा सभा में पढ़कर सुनाया जाता है। उसके बाद विधेयक का प्रभारी मंत्री समुचित सूचना के बाद यह प्रस्ताव रख सकता है कि सभा राज्य सभा की सिफारिश से सहमत हो, और साथ ही उस प्रस्ताव में यह भी कहा जा सकता है कि लोक सभा के अमुक-अमुक सदस्यों को उस संयुक्त समिति के लिए नाम-निर्दिष्ट किया जाये।

> यदि संयुक्त समिति को कोई विधेयक सौंपने के लिए राज्य सभा की सिफारिश पर सहमति के लिए सभा द्वारा पहले से स्वीकृत प्रस्ताव में दिए गये नामों में संशोधन करना आवश्यक समझा जाये तो लोक सभा में निम्न प्रस्ताव प्रस्तुत करना आवश्यक है:
>
> सभा द्वारा स्वीकृत सहमति के प्रस्ताव के संबंध में नियम 338 के प्रयोग के निलम्बन का प्रस्ताव;
>
> सभा द्वारा स्वीकृत सहमति के प्रस्ताव पर सभा के निर्णय को रद्द करने वाला प्रस्ताव; और
>
> मूलतः यथाप्रस्तावित सहमति के प्रस्ताव में संशोधन करने वाला प्रस्ताव—यथाप्रस्तावित मूल प्रस्ताव सदस्यों को अग्रिम रूप से परिचालित किया जाना चाहिए।[408]

प्रस्ताव में राज्य सभा की इस सिफारिश से सहमत होते हुए कि लोक सभा संयुक्त समिति में सम्मिलित हो, राज्य सभा से सिफारिश भी की जा सकती है।[409] राज्य सभा की सिफारिश से सहमत होने का प्रस्ताव लोक सभा द्वारा पारित करके संदेश के माध्यम से राज्य सभा को भेजे जाने पर, लोक सभा द्वारा एक और प्रस्ताव पारित करके पहले प्रस्ताव को संशोधित किया जा सकता है।[410] बाद का प्रस्ताव भी संदेश के माध्यम से राज्य सभा को भेजा जाता है।

> राज्य सभा के इस प्रस्ताव से सहमत होते हुए कि विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपा जाये, लोक सभा विधेयक के सिद्धान्त से बंध नहीं जाती।[411]

---

408. *लो.स.वा.वि.,* 13.8.1968, कॉ. 2044-45; 28.8.1968, कॉ. 5207; 29.8.1968, कॉ. 2986-89; 13.5.1988, कॉ. 302 ।

409. *लो.स.वा.वि.,* 8.12.1954, कॉ. 2232-76 ।

410. *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1962, कॉ. 6787-95, जो परिसीमन विधेयक, 1962 के संबंध में है और *लो.स.वा.वि.,* 13.5.1988, कॉ. 302 जो पोत परिवहन अभिकर्ता अनुज्ञापन विधेयक, 1987 के संबंध में है।

411. *लो.स.वा.वि.,* 17.12.1953, कॉ. 2427-28 ।

जब राज्य सभा में उद्भूत कोई विधेयक उस सदन द्वारा पारित करके लोक सभा को भेजा जाता है तो राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक को अग्रेषित करने वाले संदेश को महासचिव द्वारा सभा में पढ़कर सुनाया जाता है और विधेयक की प्रति सभा पटल पर रख दी जाती है। उसके बाद राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक की प्रतियां लोक सभा के सदस्यों को बांटी जाती हैं।[412]

यदि, जिस समय संदेश प्राप्त हो, उस समय लोक सभा का सत्र न हो रहा हो, तो उस संदेश को संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दिया जाता है। उस दशा में अगले सत्र के आरम्भ में उस विधेयक के सभा पटल पर रखे जाने से पहले सदस्यों में विधेयक की प्रतियां बांटी जाती हैं।

विधेयक के इस प्रकार सभापटल पर रखे जाने के बाद किसी भी समय संबंधित मंत्री विधेयक पर विचार किए जाने के आशय के प्रस्ताव की सूचना दे सकता है।[413] जब तक अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दे, तो प्रस्ताव को, उसकी सूचना की प्राप्ति के बाद से दो दिन से पूर्व की कार्य-सूची में सम्मिलित नहीं किया जाता है।[414]

जिस दिन प्रस्ताव कार्य-सूची में रखा गया हो, उस दिन मंत्री यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक पर विचार किया जाये। उस दिन या उसके बाद के किसी ऐसे दिन जब तक के लिए चर्चा स्थगित की गई हो, विधेयक के सिद्धान्त तथा उसके सामान्य उपबन्धों पर चर्चा होती है। इस प्रक्रम पर विधेयक के ब्यौरे पर केवल उसी हद तक चर्चा होती है, जिस हद तक कि उसके सिद्धान्त की व्याख्या के लिए ऐसा करना आवश्यक हो।[415]

> यदि विधेयक पहले से ही सदनों की किसी संयुक्त समिति को न सौंपा गया हो तो इस प्रक्रम पर कोई भी सदस्य यह संशोधन प्रस्तुत कर सकता है कि विधेयक को प्रवर समिति को सौंपा जाये।[416] यदि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर ले, तो विधेयक प्रवर समिति को सौंप दिया जाता है और उसके संबंध में समिति में भी वही प्रक्रिया होती है, जो कि लोक सभा में पुर:स्थापित किए गए और प्रवर समिति को सौंपे गये किसी अन्य विधेयक के संबंध में होती है।[417]

---

412. नियम 114—जब राज्य सभा द्वारा पारित कोई विधेयक लोक सभा के पटल पर रखा जाये और यदि उस समय आम चुनाव के बाद नयी लोक सभा का गठन हुआ हो, तो राज्य सभा में यथापुर:स्थापित विधेयक की प्रतियां भी सदस्यों को दी जाती हैं।

413. नियम 115 ।

414. नियम 116 ।

415. नियम 117 ।

416. नियम 118 ।

417. निम्नलिखित विधेयक जो राज्य सभा में पुर:स्थापित किए गए थे और उस सभा ने पारित कर दिये थे, लोक सभा की प्रवर समिति को सौंपे गये थे:

रेलवे सामान (विधि विरुद्ध कब्जा) विधेयक, 1954

> यदि यह प्रस्ताव कि राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक (न कि किसी सदस्य द्वारा पेश किया गया संशोधन) प्रवर समिति को सौंपा जाये, अस्वीकार कर दिया जाता है तो यह समझा जाता है कि उस विधेयक को लोक सभा ने अस्वीकार कर दिया है।[418]
>
> किसी ऐसे विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को पुनः सौंपने[419] या विधेयक को राय जानने के लिए परिचालित करने[420] के संशोधन नियम-विरुद्ध हैं।

यदि यह प्रस्ताव कि राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक पर विचार किया जाये अस्वीकार हो जाता है तो यह समझा जाता है कि सभा ने विधेयक को अस्वीकार कर दिया है।[421] यदि वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो विधेयक पर खण्ड वार विचार किया जाता है। संशोधनों पर विचार तथा विधेयक पारित करने की प्रक्रिया वही है जो कि लोक सभा में प्रारम्भ होने वाले विधेयकों से संबंधित नियमों में दी गई है।[422] यदि विधेयक बिना किसी संशोधन के पारित हो जाता है, तो राज्य सभा को यह सूचित करते हुए संदेश भेजा जाता है कि सभा ने विधेयक को बिना किसी संशोधन के स्वीकार कर लिया है। यदि विधेयक को संशोधनों सहित पारित किया जाता है तो उसे एक संदेश सहित राज्य सभा को वापस भेज दिया जाता है और उससे कहा जाता है कि वह संशोधनों से सहमत हो। लोक सभा द्वारा स्वीकार किए गए संशोधन, चाहे वे पूर्णतया पारिणामिक या औपचारिक ही क्यों न हो, ऐसे विधेयक को राज्य सभा की सहमति के लिए भेजा जाता है। लोक सभा द्वारा स्वीकार किए गए संशोधनों को राज्य सभा को संदेश सहित लौटाए जाने वाले विधेयक की प्रति में कार्यान्वित किया जाता है। विधेयक में तब तक कोई पारिणामिक या प्रत्यक्ष भूलों का सुधार नहीं किया जाता, जब तक कि लोक सभा स्पष्ट रूप से इस संबंध में संशोधन स्वीकार न कर ले।[423]

बाल विधेयक, 1954

बीज विधेयक, 1964

दीवान चमन लाल का भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1967

अधिवक्ता (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1968

मानव अंग प्रत्यारोपण विधेयक, 1993 ।

418. नियम 127 (दो)।

419. *लो.स.वा.वि.,* 27.4.1956, पृ. 2827 ।

420. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 8.12.1953, कॉ. 1666-67; 8.5.1954, कॉ. 6860, 6891-92 ।

421. नियम 127—संविधान के लागू होने के बाद से ऐसा कोई अवसर नहीं आया जब राज्य सभा द्वारा पारित किये गये विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव लोक सभा ने अस्वीकार कर दिया हो।

422. नियम 120 ।

423. *देखिए* पीछे इसी अध्याय में 'प्रत्यक्ष गलतियों की शुद्धि' शीर्षक के अंतर्गत ।

यदि राज्य सभा लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों या उनमें से किसी संशोधन से असहमत हो या लोक सभा द्वारा किए गए किसी संशोधन को उसमें और संशोधन करके स्वीकार कर ले या लोक सभा द्वारा किए गए संशोधनों के स्थान पर और संशोधनों का प्रस्ताव करे, तो विधेयक और संशोधित रूप में, सभा द्वारा प्राप्त किए जाने पर सभा पटल पर रखा जाता है। उसके बाद सरकारी विधेयक की दशा में, कोई मंत्री या किसी अन्य दशा में कोई सदस्य, दो दिन की सूचना देकर, या अध्यक्ष की सहमति से बिना सूचना के, यह प्रस्ताव कर सकता है कि संशोधनों पर विचार किया जाये।[424]

यदि वह प्रस्ताव कि संशोधनों पर विचार किया जाये, स्वीकृत हो जाए तो अध्यक्ष संशोधनों को सभा के समक्ष ऐसी रीति से विचार के लिए रखता है जिसे वह सबसे अधिक सुविधाजनक समझे। राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों के विषय से संगत संशोधन प्रस्तुत किये जा सकते हैं लेकिन विधेयक में कोई और संशोधन तब तक नहीं रखे जा सकते जब तक कि वह राज्य सभा द्वारा किये गये संशोधनों के पारिणामिक या वैकल्पिक न हो।[425] लोक सभा राज्य सभा द्वारा मूल रूप से पारित किये गये विधेयक राज्य सभा द्वारा यथा और संशोधित विधेयक जैसा भी मामला हो, से सहमत हो सकती है या विधेयक को इस संदेश के साथ वापस भेज सकती है कि वह उस संशोधन या उन संशोधनों पर आग्रह करती है जिनसे राज्य सभा असहमत हो गई है। यदि कोई विधेयक राज्य सभा को इस संदेश के साथ वापस भेजा जाये कि लोक सभा किसी ऐसे संशोधन या संशोधनों पर आग्रह करती है जिनसे राज्य सभा सहमत नहीं हो सकी, तो यह समझा जाता है कि उन संशोधनों के संबंध में दोनों सभाएं अन्तिम रूप से असहमत हो गई हैं।[426]

विधेयकों पर अनुमति

जब कोई विधेयक संसद की दोनों सभाओं द्वारा पारित कर दिया जाये तो वह राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।[427]

---

424. नियम 122 और 123 ।

425. नियम 124 ।

426. नियम 125 और 126 ।

427. अनुच्छेद 111

लोक सभा सचिवालय विधेयकों पर राष्ट्रपति की अनुमति निम्नलिखित मामलों में प्राप्त करता है: सभी धन विधेयक;

राज्य सभा में प्रारम्भ होने वाले और वहां से लोक सभा को भेजे गये और लोक सभा द्वारा बिना किसी संशोधन के पारित किए गए विधेयक;

लोक सभा में प्रारम्भ होने वाले और राज्य सभा द्वारा संशोधनों सहित लौटाये गये और अन्ततोगत्वा लोक सभा द्वारा पारित किये गये विधेयक; और

दोनों सभाओं की संयुक्त बैठकों में पारित किए गए विधेयक ।

राष्ट्रपति विधेयक पर या तो अनुमति दे सकता है[428] या अपनी अनुमति रोक सकता है[429] यदि वह धन विधेयक न हो, तो उसे इस संदेश के साथ वापस भेज सकता है कि उस विधेयक या उसके कुछ निर्दिष्ट उपबंधों पर पुनर्विचार किया जाये या ऐसे संशोधनों के पुर:स्थापन होने की वांछनीयता पर विचार किया जाये जिनकी सिफारिश उसने अपने संदेश में की हो।[430]

राष्ट्रपति की अनुमति के लिए विधेयक की दो प्रतियों पर अध्यक्ष हस्ताक्षर करता है और उस पर यह प्रमाणपत्र देता है कि विधेयक को संसद की सभाओं ने पारित कर दिया है।

यदि अध्यक्ष नई दिल्ली में अनुपस्थित हो तो महासचिव अविलम्बनीय मामलों में अध्यक्ष की ओर से विधेयक को प्रमाणित कर सकता है। ऐसा दिल्ली सड़क परिवहन प्राधिकार (संशोधन) विधेयक, 1953 और अनर्हता निवारण (संसद तथा भाग "ग" राज्यों के विधान मंडल) विधेयक, 1953 के संबंध में किया गया था।

428. अनुमति निम्नलिखित रूप में दी जाती है:

"मैं इस विधेयक को अनुमति देता हूं, राष्ट्रपति"

यदि किन्हीं कारणों से राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन उपराष्ट्रपति द्वारा किया जा रहा हो अथवा उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो, तो उपरोक्त पृष्ठांकन में "राष्ट्रपति" शब्द के स्थान पर निम्नलिखित शब्द प्रतिस्थापित किए जाते हैं :

"राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता हुआ उपराष्ट्रपति" अथवा "राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा उपराष्ट्रपति" जैसा भी मामला हो।

429. राष्ट्रपति ने संसद की सभाओं के द्वारा पारित किए गए पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ विनियोग विधेयक, 1954 पर अपनी अनुमति नहीं दी, क्योंकि राष्ट्रपति की उस उद्घोषणा, जिसके अन्तर्गत उसने पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ की सरकार के कृत्य स्वयं संभाल लिये थे, के रद्द किये जाने के बाद वह विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके सामने रखा गया था।

ऐसे विधेयक के मामले में जिसके द्वारा अनुच्छेद 368 के आशय अनुसार संविधान में संशोधन किया जाना हो, राष्ट्रपति के पास सभाओं द्वारा आवश्यक विशेष बहुमत द्वारा पारित विधेयक पर अपनी अनुमति देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

430. अनुच्छेद 111, परन्तुक

इस विषय में संविधान में कुछ नहीं कहा गया है कि राष्ट्रपति किसी विधेयक को विचारार्थ कितने समय तक अपने पास रख सकता है। राज्य सभा सचिवालय द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति हेतु 19 दिसम्बर, 1986 को भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक, 1986 उनके पास भेजा गया था। राष्ट्रपति ने 7 जनवरी, 1990 को इस संदेश के साथ इस विधेयक को राज्य सभा को वापस लौटा दिया कि इस विधेयक पर विशेष रूप से उसके खण्ड 16 पर पुन:विचार किया जाए। राष्ट्रपति के संदेश के अनुसार इस विधेयक पर राज्य सभा ने 12 वर्ष से अधिक समय तक पुन:विचार नहीं किया।

यदि विधेयक लोक सभा में प्रारम्भ हुआ हो, तो प्रक्रिया यह है कि यदि लोक सभा का सत्र चल रहा हो तो राष्ट्रपति का संदेश महासचिव द्वारा सभा में पढ़ा जाता है, अन्यथा उसे संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है। तत्पश्चात् संसद की दोनों सभाओं द्वारा पारित किये गये और राष्ट्रपति द्वारा अनुमति देने के बाद लौटाये गये विधेयक को सभा पटल पर रखा जाता है।[431] यदि कोई विधेयक राष्ट्रपति द्वारा निश्चित संशोधन विनिर्दिष्ट किये बिना वापस कर दिया जाता है तो उसके संबंध में समुचित संशोधनों सहित वही प्रक्रिया लागू होती है जो कि पुर:स्थापित होने के बाद अन्य विधेयकों के संबंध में लागू होती है। जहां राष्ट्रपति ने संशोधनों की सिफारिश की हो, वहां किसी सरकारी विधेयक के मामले में कोई मंत्री या गैर–सरकारी विधेयक के मामले में, कोई सदस्य अपने इस आशय का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की सूचना दे सकता है कि संशोधनों पर विचार किया जाये[432] और उसके बाद जो प्रक्रिया अपनाई जाती है वह वही है जो किसी सामान्य विधेयक के संबंध में अपनाई जाती है।

यदि यह प्रस्ताव कि राष्ट्रपति द्वारा सिफारिश किए गए संशोधनों पर विचार किया जाये, पारित न हो तो उस प्रस्ताव की सूचना देने वाला सदस्य तत्काल यह प्रस्ताव रख सकता है कि दोनों सभाओं द्वारा मूल रूप से पारित किये गये विधेयक को पुन: बिना किसी संशोधन के पुन:पारित कर दिया जाये।[433] जब कोई विधेयक लोक सभा द्वारा संशोधन सहित या बिना संशोधन के, यथास्थिति, पुन:पारित कर दिया जाये तो उसे इस संदेश के साथ राज्य सभा को भेज दिया जाता है कि राज्य सभा उन संशोधनों से सहमत हो।[434] उसके बाद, विधेयक को दोनों सभाओं द्वारा पारित किये जाने तक, अथवा तब तक

---

13 मार्च, 2002 को राज्य सभा ने लोक सभा से यह सिफारिश करते हुए एक प्रस्ताव स्वीकार किया कि लोक सभा राज्य सभा द्वारा विधेयक वापस लिए जाने की अनुमति से सहमत है। 16 मार्च, 2002 को लोक सभा द्वारा प्रस्ताव पर सहमति दी गई। अन्तत: 21 मार्च, 2002 को राज्य सभा में विधेयक वापस लिया गया।

संसद (निरर्हता निवारण) संशोधन विधेयक, 2006, संसद की दोनों सभाओं द्वारा यथापारित, 30 मई, 2006 को राष्ट्रपति द्वारा उनकी टिप्पणी सहित संसद की दोनों सभाओं के पुनर्विचार हेतु लौटा दिया गया था। विधेयक पर पुनर्विचार किया गया और 27 जुलाई, 2006 को इसे पुन:पारित किया गया। विधेयक, राज्य सभा द्वारा यथा पुन:पारित, 28 जुलाई, 2006 को लोक सभा के पटल पर रखा गया। जब राष्ट्रपति के संदेश में की गई टिप्पणियों के आलोक में विधेयक पर पुन: विचार किया जा रहा था, विनिश्चय किया गया कि केवल ऐसे संशोधन जो राष्ट्रपति के संदेश में संदर्भित मामले की व्याप्ति के भीतर हैं, स्वीकृत किए जाएंगे। विधेयक, राज्य सभा द्वारा यथा पुन:पारित, 31 जुलाई, 2006 को लोक सभा द्वारा पारित किया गया। 18 अगस्त, 2006 को विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति दी गई।

431. नियम 129(2) ।

432. *देखिए* नियम 130 ।

433. नियम 136 ।

434. नियम 137 ।

जब तक कि यह नहीं समझ लिया जाता कि दोनों सभाएं संशोधन या संशोधनों के संबंध में अन्तिम रूप से असहमत हो गई हैं, वही प्रक्रिया अपनायी जाती है, जो किसी अन्य सामान्य विधेयक के संबंध में अपनाई जाती है।

जब राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार वापस भेजे गये विधेयक पर दोनों सभाओं द्वारा पुनर्विचार कर लिया जाये और दोनों सभाएं उसे संशोधन सहित या बिना संशोधन के पुन:पारित करके, राष्ट्रपति के सामने अनुमति के लिए रखे तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति देने से इंकार नहीं कर सकता।[435]

जब कोई विधेयक दोनों सभाओं द्वारा पुन:पारित कर दिया जाये और उस समय वह लोक सभा के पास हो तो उसकी दो प्रतियों पर अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं और वह विधेयक निम्नलिखित रूप में राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है।[436]

> "उपर्युक्त विधेयक संविधान के अनुच्छेद 111 के परन्तुक के अनुसार संसद की दोनों सभाओं द्वारा पुन:पारित किया गया है।
>
> दिनांक........... अध्यक्ष"

प्रत्येक विधेयक की अनुमति प्राप्त या प्रमाणित[437] प्रति महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखी जाती है।[438]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के संबंध में प्रक्रिया संबंधी विशेषताएं

जहां तक गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पेश किए गए विधेयकों का संबंध है, उनके बारे में सामान्य प्रक्रिया तो वही है जो सरकारी विधेयकों के बारे में है लेकिन उसके कुछ विशेष प्रक्रियात्मक पहलू हैं जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

---

435. *पुरुषोत्तमन बनाम केरल राज्य के मामले में* उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी विधान सभा द्वारा पारित किया गया कोई विधेयक, राष्ट्रपति की अनुमति दिए जाने तक विधान सभा का विघटन होने पर समाप्त नहीं हो जाता। यदि ऐसा कोई विधेयक पुनर्विचार के लिए वापस भेज दिया जाता है तो बाद में गठित सभा उस पर पुनर्विचार कर सकती है और यदि वह सभा उसे (संशोधनों सहित या बिना संशोधनों के) पारित कर दे तो यह माना जाएगा कि "पुन:" पारित कर दिया गया है—ए.आई.आर. 1962, एस.सी. 694।

436. नियम 154—नई दिल्ली से अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अविलम्बनीय मामले में महासचिव, अध्यक्ष की ओर से विधेयक को अधिप्रमाणित कर सकता है।

437. ऐसे विधेयक के मामले में, जिस पर राष्ट्रपति की अनुमति राज्य सभा सचिवालय ने प्राप्त की हो, अनुमति प्राप्त विधेयक की प्रति का प्रमाणीकरण राज्य सभा का महासचिव करता है और वह प्रति लोक सभा सचिवालय को दी जाती है जिससे कि वह सभा पटल पर रखी जा सके।

438. निदेश 35।

विधेयकों की सूचना

गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक को पुर:स्थापित करने संबंधी अनुमति प्रस्ताव की सूचना की अवधि एक मास है बशर्ते कि अध्यक्ष इससे कम अवधि में प्रस्ताव किए जाने की अनुमति न दे दे।[439]

सूचना की अवधि उस तारीख से गिनी जाती है जब विधेयक की सूचना सचिवालय में प्राप्त हुई हो। जिन विधेयकों को संविधान के अंतर्गत पहले से राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त किये बिना पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता, उनके पुर:स्थापन की सूचना की अवधि उस तारीख से गिनी जाती है, जिस तारीख को राष्ट्रपति की सिफारिश सचिवालय को प्राप्त हुई हो, यह उन दशाओं में होता है जहां राष्ट्रपति की सिफारिश की प्राप्ति की तारीख उनकी सूचना की प्राप्ति की तारीख के बाद की हो।

सरकारी विधेयक की तरह किसी गैर-सरकारी सदस्य से किसी विधेयक की जो सूचना प्राप्त होती है, उसके साथ विधेयक की प्रति तथा उद्देश्यों तथा कारणों का कथन संलग्न रहता है। जिस विधेयक के साथ उद्देश्यों और कारणों का कथन संलग्न न हो उसे सदस्य को वापस भेज दिया जाता है। ऐसे मामले में एक महीने की अवधि, सदस्य से उद्देश्यों और कारणों का कथन प्राप्त होने की तारीख से गिनी जाती है।[440] यदि विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में पुनरीक्षण करना आवश्यक समझा जाए तो ऐसा अध्यक्ष के निदेशानुसार किया जाता है और इस संबंध में संबंधित सदस्य की सहमति अवश्य प्राप्त की जाती है।[441]

---

439. नियम 65(3) ।

चौदहवीं लोक सभा के बारहवें सत्र के लिए आमंत्रण 5 नवम्बर 2007 को जारी किए गए थे और उस सत्र के दौरान गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत दूसरा दिन 30 नवम्बर, 2007 था। चूंकि आमंत्रण जारी करने की तारीख और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत दिन के बीच का समयान्तराल एक महीने से कम था इसलिए अध्यक्ष ने विधेयकों के लिए सूचना देने की एक माह की विहित अवधि में छूट दी। तदनुसार विधेयकों को, पुर:स्थापित किए जाने के लिए जो सूचनायें 8 नवम्बर, 2007 तक प्राप्त हुई उन्हें स्वीकार किया गया और उन विधेयकों को 30 नवम्बर, 2007 को सभा में पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गई।

वर्ष 1957, 1962, 1967, 1971, 1977, 1980, 1984, 1989 और 1991 में और क्रमश: दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं और नौवीं लोक सभा के पहले सत्र में भी इसी प्रकार की छूट दी गई थी।

440. उदाहरण: (i) पेंशन विधेयक, 1982; और (ii) मुस्लिम स्त्री (विवाह-विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) संशोधन विधेयक, 1988 ।

441. उदाहरण के लिए निम्नलिखित विधेयकों के मामले में उद्देश्यों तथा कारणों के कथनों का पुनरीक्षण किया गया था और संबंधित सदस्यों की सहमति प्राप्त की गई थी:

कोई सदस्य एक सत्र के दौरान चार से अधिक विधेयकों की सूचना नहीं दे सकता है।[442]

जब कई सदस्य एक जैसे विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए अलग-अलग अथवा संयुक्त रूप से सूचनाएं दें तो उन सभी सदस्यों के नाम विधेयक में सूचनाएं प्राप्त होने के समय के क्रम में रखे जायेंगे और कार्य-सूची में विधेयक को पुर:स्थापित करने के प्रस्ताव के सामने दिखाए जायेंगे। तथापि यदि दो अथवा अधिक सदस्य एक जैसे विधेयक की सूचनाएं एक समय पर देते हैं तो उनकी सापेक्ष पूर्ववर्तिता अवधारित करने के लिए बैलट किया जाता है[443] जिस सदस्य का नाम पहले आता हो उसे विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है। यदि पहला सदस्य अनुपस्थित हो तो दूसरा अथवा तीसरा अथवा अन्य उपस्थित सदस्य, यथास्थिति, विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव करता है।[444] जो सदस्य प्रस्ताव प्रस्तुत करता है वह विधेयक का प्रभारी सदस्य बन जाता है।

जब कोई विधेयक लोक सभा में लम्बित हो, तब किसी समान विधेयक की सूचना, चाहे वह लम्बित विधेयक के पुर:स्थापन से पूर्व या पश्चात् प्राप्त हुई हो, लम्बित सूचनाओं की सूची में से, यथास्थिति, निकाल दी जाएगी अथवा उसमें दर्ज नहीं की जाएगी, जब तक अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दे।[445]

वृद्धावस्था विवाह प्रतिबन्ध विधेयक, 1958; संघ राज्य क्षेत्र (विधि) संशोधन, विधेयक, 1958; अखिल भारतीय प्रसूति सुविधा विधेयक, 1958; विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर और पुनर्वास) संशोधन विधेयक, 1959; दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1967 (धारा 207क और 437 का संशोधन); तम्बाकू बोर्ड (संशोधन) विधेयक, 1987 (धारा 8 आदि का संशोधन) और युवक विधेयक, 1987 ।

442. इस संबंध में तीसरी लोक सभा की गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति ने अपने चौदहवें प्रतिवेदन, जिसे 7 मार्च, 1963 को सभा में प्रस्तुत और 8 मार्च 1963 को स्वीकार किया गया था, में सिफारिश की थी।

443. 28 फरवरी, 1994 को अपराह्न 4.50 बजे 10 सदस्यों ने रेल संरक्षण बल (संशोधन) विधेयक, 1994 (विधेयक के पूरे नाम के स्थान पर नए पूरे नाम का प्रतिस्थापन आदि) के संबंध में सूचनाएं दी थीं; 4 मार्च, 1994 को अपराह्न 4.25 बजे दो और सदस्यों ने विधेयक की ऐसी ही सूचनाएं दी थीं। चूंकि सभी विधेयकों को एक ही दिन (22 अप्रैल, 1994) को पुर:स्थापित किया जाना था, अत: जिन सदस्यों से एक ही दिन एक ही समय पर सूचनाएं प्राप्त हुई थीं, उनके नामों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता अवधारित करने के लिए दो अलग बैलट किए गए थे।

444. निदेश 28 ।

445. नियम 67 ।

1953 से पूर्व अर्थात् इस नियम की विरचना से पूर्व गैर-सरकारी सदस्यों के समान विधेयकों की सूचनाओं की अनुमति इसलिए दी जाती थी क्योंकि तब गैर-सरकारी सदस्यों के सभी

तथापि एक ही विषय से संबंधित विधेयकों को पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गई है[446] और जब कोई समान विधेयक राज्य सभा के समक्ष लम्बित हो तो लोक सभा में ऐसे किसी विधेयक के पुर:स्थापित किए जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

विधेयकों का प्रारूपण

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के प्रारूपण की मुख्य जिम्मेदारी संबंधित सदस्यों की होती है। तथापि सचिवालय सदस्यों को यथासंभव तकनीकी सहायता और सलाह देता है ताकि विधेयक तकनीकी आधार पर रद्द न किए जाएं।[447]

जहां सदस्य द्वारा किसी विधेयक का ठीक से प्रारूपण नहीं किया गया हो और उसका संपादन करना अत्यधिक दुरूह हो तथा सदस्य से अनुरोध करने पर वह उस विधेयक को पुनरीक्षित करना नहीं चाहता हो ऐसी स्थिति में यह प्रक्रिया अपनाई जाती है कि विधेयक को उसी रूप में मुद्रित किया जाए जिस रूप में वह सदस्य से प्राप्त हुआ था।[448]

विधेयकों का पुर:स्थापन

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के निपटान के लिए नियत किए गए दिन पुर:स्थापित किए जाने के लिए विधेयक उस दिन की गैर-सरकारी सदस्यों की कार्य-सूची में पहली मद के रूप में रखे जाते हैं[449] जहां किसी विधेयक के संबंध में प्रस्ताव यह है कि विधेयक को

विधेयकों के पुर:स्थापन के लिए भी बैलट किया जाता था। उस वर्ष गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के पुर:स्थापन के लिए बैलट को समाप्त करने के बाद गैर-सरकारी सदस्य के प्रत्येक विधेयक का पुर:स्थापन सुनिश्चित कर दिया गया था। इससे एक विषम स्थिति उत्पन्न हुई, क्योंकि यद्यपि एक ही सत्र में समान विधेयकों को पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता था किन्तु किसी पश्चात्वर्ती सत्र में किसी समान विधेयक के पुर:स्थापन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। परिणाम यह रहा कि सभा में विधेयकों पर चर्चा के विभिन्न प्रक्रमों के दौरान गैर-सरकारी सदस्यों के एक समान कई विधेयक सभा के साथ-साथ चर्चा के लिए आए। अत: यह नियम ऐसी स्थिति का परिहार करता है, साथ ही यह अध्यक्ष को स्वविवेकाधिकार से विशेष मामले में जहां आवश्यक हो, समान विधेयकों की सूचनाएं स्वीकार करने की शक्ति प्रदान करता है।

446. *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 12.12.1950, कॉ. 1548, 1552-53 और *लो.स.वा.वि.* (II), 24.8. 1956, पृ. 1416-17 और 27.3.1987, पृ. 159-60 ।

447. सचिवालय विधेयक की विषय-वस्तु की कोई जिम्मेदारी नहीं लेता है चाहे उसने कैसी भी अथवा कितनी ही सचिवालीय सहायता क्यों न की हो।

448. आय कर (संशोधन) विधेयक, 1985 (धारा, 2 का संशोधन आदि) के मामले में भी श्री मूलचन्द डागा, संसद सदस्य द्वारा यही प्रक्रिया अपनाई गई थी।

449. नियम 27(1)(क)—तथापि आपवादिक मामलों में सदस्यों को उस दिन के गैर-सरकारी सदस्यों के कार्यों के निपटान के पश्चात् विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति दी गई। *देखिए लो.स.वा.वि.,* 7.3.1958 और 2.5.1958; *लो.स.वा.वि.,* 27.3.1987, पृ. 193 और 24.4.1987, पृ. 224-25 ।

वापस लेने की अनुमति दी जाये, तो विधेयक को उस दिन की कार्य-सूची में पुर:स्थापित किए जाने वाले विधेयकों के तुरंत बाद रखा जाता है।[450]

जिस सदस्य ने विधेयक पुर:स्थापित करने की सूचना दी हो, वह किसी दूसरे सदस्य को अपनी ओर से उसे विधेयक पुर:स्थापित करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है, बशर्ते यह प्राधिकार लिखित में हो और उसमें यह स्पष्ट उल्लेख हो कि विधेयक के आगे के और प्रक्रमों के संबंध में बाद के सभी प्रस्तावों के लिए इस प्रकार प्राधिकृत सदस्य प्रभारी होगा।[451] इस प्रकार जो सदस्य विधेयक पुर:स्थापित करता है वह उस विधेयक का प्रभारी सदस्य बन जाता है। ऐसे मामलों में जहां किसी अन्य सदस्य द्वारा विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति मांगी गई हो, प्राधिकार पत्र पहले से महासचिव को भेजा जाना चाहिए।[452]

परिपाटी के अनुसार विधेयक को पुर:स्थापित किए जाने के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जाता है किन्तु ऐसे कई उदाहरण हैं जब पुर:स्थापित किए जाने के प्रस्ताव का विरोध किया गया और सभा द्वारा उसे अस्वीकृत भी किया गया।[453]

यदि गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक के पुर:स्थापन का इस आधार पर विरोध किया जाता है कि विधेयक द्वारा ऐसे विधान का सूत्रपात होता है जो सभा की विधायी शक्ति से परे है और यदि अध्यक्ष ऐसी आपत्ति को प्रथमदृष्टया ठीक समझे तो इसे गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति को जांच हेतु भेजा जा सकता है।[454]

पुर:स्थापन के बाद प्रस्ताव

सरकारी विधेयकों की भांति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक के मामले में अगला प्रस्ताव उसी दिन प्रस्तुत नहीं किया जाता जिस दिन उसे पुर:स्थापित किया गया हो। पुर:स्थापन

---

450. निदेश 47; *देखिए लो.स.वा.वि.,* 15.3.1985, पृ. 150-54; 31.7.1987, पृ. 199; 26.2.1988, पृ. 277 ।

451. निदेश 29 ।

452. *देखिए लो.स.वा.वि.,* 7.12.1956, पृ. 801-02 ।

453. उदाहरण के लिए *देखिए एल.ए., डिबेट्स,* 17.1.1922, पृ. 1652-57; 20.9.1922, पृ. 712-20; 20.2.1923, पृ. 2586-600; 3.7.1923, पृ. 4250-58; 21.2.1924, पृ. 875-78; 28.2.1924, पृ. 1060-63; 23.9.1924, पृ. 4023-36; *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 16.12.1949, पृ. 704-05, 707; *पी. डिबेट्स* (II), 14.8.1953, कॉ. 840-42, 844, 846-48; *लो.स.वा.वि.,* 13.3.1987, पृ. 223-26; 8.5.1987, पृ. 223-24; 30.8.1991, पृ. 277-91; 13.9.1991, कॉ 546-47; 8.5.1992 का 431-442; 4.3.1999, कॉ. 1095; 27.7.2001, कॉ 349-59; 10.8.2001, कॉ 373-74 ।

454. नियम 294(1)(घ); सामान्यत: विधेयकों की शक्ति संबंधी प्रक्रिया के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स* (II), 15.4.1955, कॉ. 5321-24 और इसी अध्याय में उप-शीर्षक सभा की विधायी शक्ति।

के बाद के विधायी प्रक्रम के संबंध में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता अध्यक्ष के निदेशों के अनुसार हुए बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है।[455]

गैर-सरकारी सदस्यों के लंबित विधेयकों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता निर्धारित करने के लिए प्रत्येक मास एक बैलट होता है जिसमें ऐसे विधेयकों के लिए दो आनुक्रमिक दिन नियत किये जाते हैं, बैलट इस प्रकार नियत किये गये प्रथम दिन से कम से कम सात दिन पहले किया जाता है।[456] बैलट में प्राप्त पूर्ववर्तिता के आधार पर प्रभारी सदस्य अपने विधेयक के संबंध में कोई अगला प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है।

> चूंकि पुर:स्थापन के पश्चात् गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है, सदस्यों को उन विधेयकों के संबंध में ऐसे प्रस्तावों की सूचना पहले से देनी पड़ती है जो कि वे सभा में रखना चाहते हैं।[457] लेकिन वास्तव में केवल उन्हीं सदस्यों से अगले प्रस्तावों की सूचना देने का अनुरोध किया जाता है जिनके विधेयकों ने बैलट में पहले बीस स्थान प्राप्त किये हों। जब अगले प्रस्तावों की सूचनाएं नियत किए गए दो दिनों में से प्रथम दिन की कार्य-सूची तैयार होने के बाद प्राप्त हुई हो तो संबंधित विधेयक नियत किए गए अगले दिन की कार्यवाही में ऐसे उपयुक्त स्थानों पर रखे जाते हैं जो कि उन दोनों दिनों के लिए किए गए बैलट द्वारा निश्चित किए गए हों।

गैर-सरकारी सदस्यों के सभी विधेयकों का निम्नलिखित क्रम में श्रेणी-वार बैलट किया जाता है:

> ऐसे विधेयक जिनका वर्गीकरण सभा ने गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति की सिफारिश के आधार पर श्रेणी 'क' के अंतर्गत किया है।
>
> ऐसे विधेयक जिनका वर्गीकरण (इसी प्रकार) श्रेणी 'ख' के अंतर्गत किया गया है।
>
> ऐसे विधेयक जो पुर:स्थापित किए जा चुके हैं किन्तु गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति द्वारा जिनका वर्गीकरण नहीं किया गया है बैलट के परिणाम की घोषणा बुलेटिनों में की जाती है।

---

455. नियम 27 और निदेश 3-8 ।

456. निदेश 3 ।

अगस्त, 1955 से पहले, जब अध्यक्ष द्वारा यह और अन्य सजातीय निदेश जारी किये गये थे गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर चर्चा करने के लिए नियत किये गये प्रत्येक दिन के संबंध में बैलट किया जाता था जिससे विधेयकों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता में निरंतर परिवर्तन आवश्यक हो गया और फलत: विधेयक, जिसने विधेयकों के लिए नियत किसी विशेष दिन पूर्ववर्तिता प्राप्त की थी, वह अगली बैठक के लिए बनी नहीं रही।

457. निदेश 8, सदस्यों को विभिन्न अवस्थाओं में समाचार (बुलेटिन) के माध्यम से ऐसी सूचनाएं देने के लिए स्मरण कराया जाता है।

तथापि, यदि श्रेणी 'क' में बीस से अधिक विधेयक हैं, तो केवल श्रेणी 'क' के विधेयकों का ही बैलट किया जाता है और श्रेणी 'ख' के विधेयकों का बैलट नहीं किया जाता।[458]

यह परिपाटी है कि बैलट किये गये सभी विधेयकों में से केवल चार विधेयकों[459] को (आंशिक रूप से चर्चा किये गये किसी विधेयक, अथवा वापस लिये जाने के लिए विधेयक अथवा ऐसे विधेयक, जिन पर राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है लेकिन यह सिफारिश प्राप्त नहीं हुई है, को छोड़कर) बैलट द्वारा निर्धारित पूर्ववर्तिता के क्रम में कार्य सूची[460] में शामिल किया जाता है लेकिन शर्त यह है कि उनके संबंध में अगले प्रस्ताव हो चुके हों और जिन्हें प्रस्तुत करने के लिए प्रभारी सदस्यों ने भी सभा में उपस्थित होने के अपने इरादे की सूचना दे दी हो।[461]

गैर-सरकारी सदस्य का ऐसा विधेयक जिसे श्रेणीबद्ध न किया गया हो लेकिन जिसका बैलट किया जा चुका हो और बाद में उसे श्रेणी 'क' में रखा गया हो उसे कार्य-सूची में श्रेणी 'क' के विधेयकों के बाद रखा जाता है, परन्तु ऐसे अवर्गीकृत विधेयक को जिसका बैलेट न किया गया हो परन्तु जिसे बाद में श्रेणी 'क' में रखा जाए, विधेयकों के लिए नियत अगले दिन की कार्य-सूची में उन विधेयकों के बाद रखा जाता है जिन पर कुछ चर्चा हो चुकी हो। परन्तु शर्त यह है कि सूची में उससे पहले बैलट द्वारा चुने गये श्रेणी 'क' के और कोई विधेयक न हों और उस विधेयक के प्रभारी सदस्य ने अपने विधेयक के संबंध में अगले प्रस्ताव की सूचना दे दी हो।

एक ही श्रेणी के अंतर्गत आने वाले विधेयकों के मामले में ऐसे विधेयक, जिसके संबंध में बैलट हो चुका है, को कार्य-सूची में उस विधेयक से पूर्ववर्तिता दी जाती है जिसके संबंध में बैलट नहीं हुआ है।

---

458. निदेश 5 और 6 ।

459. नियम 27(2), परन्तुक ।

460. 9 नवम्बर, 1962 को आपात स्थिति को देखते हुए, सभा द्वारा यह निर्णय लिया गया कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों हेतु कार्य-सूची में केवल चार संकल्पों को शामिल किया जायेगा। अध्यक्ष के निदेश के अन्तर्गत, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर भी यही सिद्धान्त लागू किया गया था।

461. *देखिए* निदेश 7 और 50वां प्रतिवेदन और 65वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति—पहली लोक सभा)।

सदस्य, जिसने विधेयक पुर:स्थापित किया है, बाद के प्रक्रम में अध्यक्ष की अनुमति से विधेयक के शेष प्रक्रम अथवा प्रक्रमों को आगे चलाने के लिए, दूसरे सदस्य का नाम-निर्देशन कर सकेगा।[462]

गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक उसी प्रवर अथवा संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है जिसे सजातीय विषय से संबंधित सरकारी विधेयक सौंपा गया है।[463]

ऐसी स्थिति में जहां गैर-सरकारी सदस्य द्वारा समर्थित विधेयक पर राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है, तो संबंधित सदस्य इस प्रकार की सिफारिश के लिए राष्ट्रपति को सीधे आवेदन कर सकता है। लेकिन जब कोई सदस्य राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के सचिवालय से अनुरोध करता है तो पत्र की एक प्रति संबंधित मंत्रालय को आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज दी जाती है। राष्ट्रपति का सचिवालय अथवा संबंध मंत्री, सचिवालय को सूचित करके राष्ट्रपति का आदेश सीधे सदस्य को संप्रेषित कर सकता है। जहां राष्ट्रपति के आदेश के बारे में सूचना संबंधित मंत्री के माध्यम से सचिवालय को प्राप्त होती है तो यह सदस्य को संप्रेषित की जाती है और बुलेटिन में प्रकाशित की जाती है।

गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों को समय का आबंटन

किसी दिन की कार्यसूची में शामिल गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर चर्चा के लिए समय के आबंटन की सिफारिश 'गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति' द्वारा की जाती है। प्रारम्भ में गैर-सरकारी सदस्यों के प्रत्येक विधेयक के लिए चर्चा हेतु दो घंटे का समय आबंटित किया जाता है। तथापि, सभा की सहमति से किसी विधेयक के लिए आबंटित समय को बढ़ाया जा सकता है।

वाद-विवाद का स्थगन

सभा में विचाराधीन गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक के किसी क्रम पर अध्यक्ष की सहमति से प्रस्ताव प्रस्तुत कर वाद-विवाद को स्थगित किया जा सकता है। ऐसे विधेयकों पर वाद-विवाद सभा में प्रस्तुत और स्वीकृत प्रस्तावों पर स्थगित किए गए हैं।[464]

---

462. निदेश 30, अध्यक्ष द्वारा इस प्रकार की अनुमति "इंस्टीट्यूशन ऑफ चार्टर्ड इंजीनियर्स बिल" के संबंध में दूसरी लोक सभा के सातवें सत्र और "कैथोलिक चर्च प्रिमिसिस एंड एक्लेसिएस्टिक आर्डर (रिस्ट्रिक्शन ऑफ पॉलिटिकल एक्टीविटी) बिल" के संबंध में दूसरी लोक सभा के दसवें सत्र; दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक के संबंध में तीसरी लोक सभा और गंदी बस्ती और झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र (न्यूनतम) विधेयक, 2001 के संबंध में तेरहवीं लोक सभा के दौरान दी गई थी।

463. *देखिए, लो.स.वा.वि.*, 8.5.1954, कॉ. 4843-44 ।

464. 6 दिसम्बर, 1985 को दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1985 (धारा 125 और 127 का संशोधन) के संबंध में वाद-विवाद को नियम 29 और 30(1) के परंतुक को निलंबित करके गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत अगले दिन अर्थात्, 20.12.1985 के लिए स्थगित कर दिया गया । लो.स.वा.वि. 12.3.1993, कॉ 388-89; 23.4.1993, कॉ. 295-97; 1-12-1995, कॉ 340; 2.5.1997, कॉ. -160-62 भी देखें।

लम्बित विधेयकों का रजिस्टर

इस संबंध में सरकारी विधेयकों पर लागू नियमों के अतिरिक्त यदि प्रभारी सदस्य सभा का सदस्य न रहे अथवा मंत्री नियुक्त किया जाये तो सभा के सामने लम्बित कोई गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक भी लम्बित विधेयकों के रजिस्टर में से हटा दिया जाता है।[465]

गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक, जिसके संबंध में राष्ट्रपति ने अपनी सिफारिश न दी हो, को रजिस्टर से हटाया नहीं जाता लेकिन उसे बैलट में शामिल नहीं किया जाता।

संविधान में संशोधन

संविधान में संशोधन करने के लिए संसद की शक्ति की व्याप्ति विवादास्पद विषय रही है।[466] *आई.सी.गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य के* मामले से पहले तक उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय था कि संविधान का कोई भी भाग असंशोधनीय नहीं है, संसद, अनुच्छेद 368 की अपेक्षाओं के अनुसरण में संविधान संशोधन अधिनियम पारित करके संविधान के किसी भी उपबंध में संशोधन कर सकती है।[467] लेकिन *गोलक नाथ के मामले में* उच्चतम न्यायालय का 6 और 5 अनुपात के बहुमत द्वारा यह निर्णय था कि पिछले निर्णयों में अनुच्छेद 368 की व्याप्ति और प्रभाव की उचित रूप से व्याख्या नहीं की गई है और कि उक्त अनुच्छेद में संसद को किसी भी स्थिति में संविधान के भाग-तीन में संशोधन करने की शक्ति नहीं दी गई है।[468]

---

12 मार्च, 1993 को रेल संरक्षण बल (संशोधन) विधेयक, 1991 (पूरे नाम आदि के स्थान पर नये पूरे नाम का प्रतिस्थापन) के संबंध में वाद-विवाद को नियम 29 और 30 (1) से संबंधित परंतुक को निलंबित करके गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत अगले दिन अर्थात् 26 मार्च, 1993 के लिए स्थगित कर दिया गया। उन्हीं नियमों को निलंबित करके उसी विधेयक से संबंधित वाद-विवाद को 23 अप्रैल, 1993 को गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के लिए नियत अगले दिन अर्थात् 7 मई, 1993 के लिए पुनः स्थगित कर दिया गया।

465. नियम 113 ।

466. *देखिए* भारत में संविधान संशोधन, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली 2007 ।

467. ए.आई.आर. 1967, एस.सी. 1643 ।

468. *शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत संघ के* मामले में (ए.आई.आर. 1951, एस.सी. 458) उच्चतम न्यायालय ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 के निबंधन पूर्णतः सामान्य हैं और वे संसद को बिना किसी अपवाद के संविधान में संशोधन करने की शक्तियां प्रदान करते हैं।

सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य के मामले में (ए.आई.आर. 1965, एस.सी. 845) उच्चतम न्यायालय ने तीन न्यायाधीशों के बहुमत द्वारा उसी विचार को दोहराया और यह निर्णय दिया कि जब अनुच्छेद 368 संसद को संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्रदान करता है तो इसी शक्ति का प्रयोग संविधान के सभी उपबन्धों पर भी किया जा सकता है।

गोलक नाथ मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप संसद ने वर्ष 1971 में संविधान (चौबीसवां संशोधन) अधिनियम पारित करना आवश्यक समझा। इस अधिनियम से स्पष्टत: यह उपबन्ध करने के लिए संविधान में संशोधन किया गया कि संसद को मौलिक अधिकारों से संबंधित उपबंधों सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की शक्ति है। *महापुनीत केशवानन्द भारती श्रीपदगलवारू बनाम केरल राज्य*[469] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने *गोलक नाथ* मामले में निर्णय की पुनरीक्षा की और निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 संसद को संविधान की मूल संरचना अथवा ढांचे में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं देता है। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के मूल ढांचे के सिद्धान्त की पुन:पुष्टि की और इसे *इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण*[470] के मामले में लागू किया तथा संविधान के कतिपय संशोधनों को रद्द कर दिया गया।[471]

तदनन्तर *मिनर्वा मिल्स लि. बनाम भारत संघ*[472] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 55[473] को असंवैधानिक और अमान्य घोषित करते हुए कहा:

> "चूंकि संविधान ने संसद को सीमित संशोधनकारी शक्ति प्रदान की थी इसलिए संसद उस सीमित शक्ति के प्रयोग के अन्तर्गत उस शक्ति को आत्यंतिक शक्ति में परिवर्धित नहीं कर सकती है। नि:संदेह सीमित संशोधनकारी शक्ति हमारे संविधान की एक मुख्य विशेषता है और इसलिए उस शक्ति की सीमाओं को समाप्त नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, संसद अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत अपनी संशोधनकारी शक्ति का विस्तार संविधान को निरस्त अथवा निराकृत करने अथवा इसकी मूल और अनिवार्य विशेषताओं

---

469. ए.आई.आर 1973, एस.सी. 1461 ।

470. इसे *चुनाव मामला* के नाम से भी जाना जाता है, ए.आई.आर. 1975, एस.सी. 2299 ।

471. इस मामले में संविधान (उनतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा अंत: स्थापित अनुच्छेद 329क को चुनौती दी गई। अनुच्छेद 329क प्रधान मंत्री और लोक सभा अध्यक्ष के चुनावों को न्यायपालिका की परिधि से बाहर रखता है और इसमें विधि द्वारा स्थापित किए जाने वाले प्राधिकरण द्वारा इनके चुनावों से संबंधित विवादों के निपटान की व्यवस्था की गई है। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 329क के खंड (4) और (5) को समाप्त कर दिया जिसने मौजूदा चुनाव विधि को प्रधान मंत्री और अध्यक्ष के निर्वाचन के बारे में अप्रयोज्य बना दिया था और ऐसे निर्वाचनों के संबंध में लंबित कार्यवाहियों को निष्प्रभावी घोषित कर दिया था।

472. ए.आई.आर. 1980, एस.सी. 1789 ।

473. *देखिए* धारा 55, संसद ने अनुच्छेद 368 में खंड (4) और (5) अंत:स्थापित किया था ताकि यह व्यवस्था की जा सके कि इस अनुच्छेद के अंतर्गत संविधान में किये गये किसी भी संशोधन पर "न्यायालय में किसी आधार पर आपत्ति नहीं की जाएगी" [खंड (4)] और "इस अनुच्छेद के अधीन इस संविधान के उपबन्धों का, परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन करने के लिए संसद की संविधायी शक्ति पर किसी प्रकार का निर्बंधन नहीं होगा।" [खंड (5)]

को समाप्त करने का अधिकार प्राप्त करने हेतु नहीं कर सकती है। सीमित शक्ति का अदाता उस शक्ति के प्रयोग के द्वारा सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में नहीं बदल सकता है।"

यह भी टिप्पणी की गई है कि संविधान की कोई विशेषता मूल विशेषता है या नहीं इस दावे का अवधारण न्यायालय के समक्ष आने वाले प्रत्येक मामले पर विचार करके किया जाएगा। उच्चतम न्यायालय ने बाद के मामलों में 'मूल ढांचे' की अवधारणा को और विकसित किया है। मुख्य ढांचे की अधिकाधिक नई आवश्यक विशेषताएं, कुछ मामलों यथा *वामन राव बनाम भारत संघ,*[474] *भीम सिंही बनाम भारत संघ,*[475] *एस.पी. गुप्ता बनाम भारत का राष्ट्रपति,*[476] *एस.पी. सम्पत कुमार बनाम भारत संघ,*[477] *पी. साम्बामूर्ति बनाम आंध्र प्रदेश राज्य,*[478] *और किहोटा होलोहन बनाम जाचिलूह तथा अन्य*[479] में जोड़ी गई है। *एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ*[480], *पी.वी. नरसिंह राव बनाम राज्य (सी.बी.आई./ एस.पी.ई.)*[481], *आई.आर. कोचो बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य*[482], *राजा राम पाल बनाम माननीय अध्यक्ष, लोक सभा और अन्य*[483]।

अनेक लिखित संविधानों में "संविधान के किसी भाग में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन" करने के लिए एक रूप प्रक्रिया की व्यवस्था की जाती है लेकिन भारत के संविधान में संशोधनकारी प्रक्रिया में विविधता की व्यवस्था की गई है। भारत में संविधान के इस पहलू को सराहा गया है। क्योंकि संशोधन की प्रक्रिया में एकरूपता के कारण किसी संविधान[484] के भाग के संशोधन पर 'अनावश्यक प्रतिबन्ध' लग जाते हैं।

संविधान में तीन श्रेणियों के संशोधन की व्यवस्था है; वे अनुच्छेद जिनमें केवल साधारण बहुमत के द्वारा संशोधन किया जा सकता है; वे अनुच्छेद जिनमें संशोधन के लिए विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है; और वे अनुच्छेद जिनमें संशोधन के लिए न केवल

---

474. ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 271 ।
475. ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 234 ।
476. इसे न्यायाधीशों के स्थानांतरण के मामले के नाम से भी जाना जाता है, ए.आई.आर. 1982, एस.सी. 149 ।
477. ए.आई.आर. 1987, एस.सी. 386 ।
478. ए.आई.आर. 1987, एस.सी. 663 ।
479. (1992) 1, एस.सी.सी. 309 ।
480. ए.आई.आर 1997, एस.सी. 1125 ।
481. ए.आई.आर. 1998, एस.सी. 2120 ।
482. (2007) 2, एस.सी.सी. 1 ।
483. जेटी 2007 (2), एस.सी. 1 ।
484. के.सी. वेयरे: *माडर्न कॉंस्टि्टयूशन्स,* लंदन, 1951, पृ. 143 ।

विशेष बहुमत बल्कि जिनका अनुसमर्थन कम से कम आधे राज्यों[485] के विधानमंडलों द्वारा किया जाना आवश्यक है।

> इसके अतिरिक्त, संविधान में ऐसे अनेक अनुच्छेद हैं जिनके अंतर्गत विषयों को संसद[486] द्वारा बनाए गए कानूनों के अधीन छोड़ दिया गया है। सामान्य कानून पारित करके संसद संविधान के कतिपय उपबंधों में आवश्यक संशोधन[487] किए बिना, रूपभेद कर सकती है, उनके प्रवर्तन को रद्द कर सकती है। लेकिन क्योंकि ऐसे कानूनों से संविधान के शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं होता इसलिए उन्हें संविधान के संशोधन में नहीं लाया जा सकता और न ही उन्हें संविधान के संशोधनों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

भारत में संविधान में संशोधन की प्रक्रिया निम्नलिखित विशेष बातों के कारण भिन्न है:

> "संविधान में संशोधन के प्रयोजन के लिए कोई पृथक संविधायी संस्था नहीं है, क्योंकि संविधायी शक्ति भी संसद में निहित है।
>
> सिवाए इसके कि संसद संविधान की मुख्य संरचना अथवा ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती है, संशोधनकारी शक्ति पर कोई अन्य परिसीमा नहीं लगायी गई है।"

संविधान में संशोधन के संबंध में राज्यों की भूमिका सीमित है। संविधान में निर्धारित अनुसमर्थन प्रक्रिया के द्वारा संवैधानिक प्रक्रिया से जुड़े होने के अलावा वे केवल इतना ही कर सकते हैं: (i) किसी राज्य अथवा राज्यों[488] के क्षेत्र, सीमाओं अथवा नाम को प्रभावित करने वाले प्रस्तावित विधेयक के संबंध में अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं जिसे राष्ट्रपति ने उनकी राय जानने के लिए भेजा हो—इस प्रकार राय जानने के लिए भेजने से संसद की उस

---

485. *शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ,* एस.सी.आर. 1952, 89 ।

486. *सं.स.वा.वि.,* खंड IX, पृ. 2619; साथ ही *देखिए* अध्याय-1 'संसद का प्राधिकार तथा अधिकार क्षेत्र', पृ. 4-5 ।

487. उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 5 से 10 में कुछ भी उल्लिखित होते हुए भी संसद अनुच्छेद 11 के अन्तर्गत नागरिकता के संबंध में कोई भी उपबंध कर सकती है।

इसी प्रकार के अनुच्छेदों के और उदाहरणों के लिए *देखिए* संविधान का भाग 21- "अस्थायी संक्रमणकालीन और विशेष उपबंध" जिसके अंतर्गत "इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी" संसद को राज्य सूची (अनुच्छेद 369) में सम्मिलित कतिपय विषयों के संबंध में विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है; अनुच्छेद 370(1) (घ) राष्ट्रपति को आदेश द्वारा संविधान के उपबंधों के जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में लागू होने के बारे में उपांतरण करने का अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 83(2) और 172(1) के परंतुक संसद को आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन के दौरान लोक सभा और राज्य विधान सभाओं का कार्यकाल पांच वर्ष की अवधि से अधिक बढ़ाने की शक्ति प्रदान करते हैं; और अनुच्छेद 171(2) में व्यवस्था की गई है कि "जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे" तब तक राज्यों की विधान परिषदों की संरचना खंड (3) में उपबंधित रीति से होगी।

488. अनुच्छेद 3, परन्तुक।

विधेयक[489] में आगे और संशोधन करने की शक्ति बाधित नहीं हो जाती; और (ii) अपने विधानमंडलों[490] में विधान परिषदों के सृजन अथवा उत्सादन की प्रक्रिया का सूत्रपात कर सकते हैं।

संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक

संविधान में संशोधन करने वाला विधेयक मंत्री अथवा गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। गैर-सरकारी सदस्य के मामले में, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों पर लागू सामान्य नियमों के अध्यधीन होने के अतिरिक्त विधेयक पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव को कार्य-सूची[491] में शामिल करने से पूर्व गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति को इनकी जांच और अनुशंसा भी करनी होगी।

यह सुस्थापित परिपाटी है कि मंत्रियों द्वारा प्रस्तुत संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक लोक सभा[492] में पुर:स्थापित किए जाते हैं।

मंत्रियों द्वारा पुर:स्थापित संविधान में संशोधन करने वाले विधेयकों पर क्रमानुसार नम्बर दिये जाते हैं चाहे वे किसी वर्ष में पुर:स्थापित किए गए हों। यह बात समान रूप से विधेयकों पर उस समय भी लागू होती है जब वे पारित होते हैं और संसद में अधिनियम बनते हैं।

साधारण बहुमत द्वारा संशोधन

निम्नलिखित विषयों के संबंध में विधेयक सामान्य विधेयक समझा जाता है अर्थात् यह साधारण बहुमत द्वारा पारित होता है:

> नए राज्यों का प्रवेश अथवा स्थापना, नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों[493] के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन;

---

489. *देखिए* लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा दिया गया विनिर्णय—*लो.स.वा.वि.,* 7.8.1956, कॉ. 2426-32।

490. अनुच्छेद 169(1), साथ ही *देखिए* अध्याय-1 ।

491. नियम 294(1)।

492. तथापि, संविधान (इकतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1975 राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था। राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक 18.1.1977 को पांचवीं लोक सभा भंग होने पर व्यपगत हो गया। संविधान (उनसठवां संशोधन) विधेयक, 1988 भी राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था। राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक 16.3.1988 को लोक सभा पटल पर रखा गया और 23.3.1988 को लोक सभा द्वारा पारित किया गया। संविधान (उनासीवां संशोधन) विधेयक, 1992, 22.12.1992 को राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया था।

493. अनुच्छेद 4—इस अनुच्छेद के अनुसरण में संसद ने निम्नलिखित अधिनियम (जिनका संबंध संविधान के संशोधन से है) सामान्य विधि के रूप में पारित किए:

राज्यों में विधान परिषदों का उत्सादन या सृजन;[494]

अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन और नियंत्रण;[495] और असम, मेघालय और मिजोरम राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन;[496]

आसाम (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1951; आंध्र राज्य अधिनियम, 1953; हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) अधिनियम, 1954; चंदरनागोर (विलयन) अधिनियम, 1954; राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956; बिहार और पश्चिमी बंगाल (राज्यक्षेत्र अंतरण) अधिनियम, 1956; राजस्थान और मध्य प्रदेश (राज्यक्षेत्र अंतरण) अधिनियम, 1959; आन्ध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1959; मुम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960; अर्जित राज्यक्षेत्र (विलयन) अधिनियम, 1960; नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962; पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966; बिहार और उत्तर प्रदेश (सीमा- परिवर्तन) अधिनियम, 1968; आन्ध्र प्रदेश और मैसूर (राज्यक्षेत्र अंतरण) अधिनियम, 1968; मद्रास राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1968; हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970; पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971; हरियाणा और उत्तर प्रदेश (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1979; मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986; अरुणाचल प्रदेश अधिनियम, 1986; गोवा, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987; मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000; उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 और बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 और उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011।

494. अनुच्छेद 169, 5 दिसम्बर, 1956 को आन्ध्र प्रदेश विधान सभा ने इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य के लिए विधान परिषद् के सृजन की सिफारिश करने वाला एक संकल्प पारित किया था। बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, पंजाब और उत्तर प्रदेश के विधानमण्डलों ने अपने विधानमण्डलों में विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या को बढ़ाने के लिए संकल्प पारित किए। इन मामलों के लिए उपबंध करने हेतु दूसरी लोक सभा के दूसरे सत्र में एक विधेयक पुर:स्थापित किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ अनुच्छेद 168 के संशोधन के लिए उपबंध (खण्ड 3) अंतर्विष्ट थे। इस विधेयक को संसद द्वारा विधान परिषद् अधिनियम, 1957 के रूप में साधारण बहुमत से पारित किया गया था। इसी प्रकार इस अनुच्छेद के अनुसार संबंधित राज्य विधान सभाओं द्वारा विधान परिषदों के उत्सादन के लिए पारित संकल्प के अनुसरण में संसद में पश्चिम बंगाल विधान परिषद् (उत्सादन) विधेयक, 1969; पंजाब विधान परिषद् (उत्सादन) विधेयक, 1969; आन्ध्र प्रदेश विधान परिषद् (उत्सादन) विधेयक, 1985; तमिलनाडु विधान परिषद् (उत्सादन) विधेयक, 1986; और आंध्र प्रदेश विधान परिषद् विधेयक, 2005 लाए गए और पारित किए गये थे। तमिलनाडु विधान सभा द्वारा राज्य में विधान परिषद के सृजन हेतु 12 अप्रैल 2010 को पारित एक संकल्प के अनुसरण में संसद द्वारा तमिलनाडु विधान परिषद विधेयक, 2010 लाया गया और पारित किया गया।

495. संविधान की पांचवीं अनुसूची का पैरा 7 । इस अनुसूची का संविधान (संशोधन) विधेयक, 1976 की पांचवीं अनुसूची के द्वारा संशोधन किया गया था, जिसे साधारण बहुमत के द्वारा पारित किया गया था।

496. संविधान की छठी अनुसूची का पैरा 21 ।

निम्नलिखित विधेयकों द्वारा, जिन्हें साधारण बहुमत द्वारा पारित किया गया था, छठी अनुसूची का संशोधन किया गया था। लुशाई पहाड़ी जिला (नाम-परिवर्तन) विधेयक, 1954;

यद्यपि जहां तक संशोधनों के इस वर्ग का संबंध है, सामान्य विधायी प्रक्रिया लागू होती है, फिर भी, नए राज्यों के गठन और विद्यमान राज्यों के क्षेत्र, सीमाओं या नामों में परिवर्तन के लिए उपबंध करने वाले विधेयकों पर कतिपय शर्तें लागू होती हैं। इस प्रकृति का कोई विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना और जहां विधेयक में अंतर्विष्ट प्रस्तावना का प्रभाव राज्यों में से किसी के क्षेत्र, सीमाओं या नाम पर पड़ता है वहां जब तक उस राज्य के विधानमंडल द्वारा उस पर अपने विचार, ऐसी अवधि के भीतर जो निदेश में विनिर्दिष्ट की जाए या ऐसी अतिरिक्त अवधि के भीतर जो राष्ट्रपति द्वारा अनुज्ञात की जाए, प्रकट किए जाने के लिए वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा उसे निर्देशित नहीं कर दिया है और इस प्रकार विनिर्दिष्ट या अनुज्ञात अवधि समाप्त नहीं हो गई है, संसद के किसी सदन में पुरःस्थापित नहीं किया जाएगा।[497]

विधि द्वारा राज्यों में विधान परिषदों के उत्सादन या सृजन का उपबंध करने की संसद की शक्ति केवल तभी प्रयोज्य होगी यदि इस संबंध में उस विशिष्ट राज्य की विधान सभा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की संख्या के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा एक संकल्प पारित करती है।[498]

जब ऐसा संकल्प किसी राज्य की विधान सभा द्वारा पारित किया गया हो और संसद को प्राप्त हो गया हो, संसद संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए बाध्य नहीं है परन्तु उसे अपने स्वविवेक और निर्णय को प्रयोग में लाना होगा क्योंकि संवैधानिक उपबंधों में 'सकेगा' शब्द का प्रयोग किया गया है न कि 'होगा'। संसद न केवल संकल्प के कार्यान्वयन के समय का चयन कर सकती है अपितु इसके विपरीत भी निर्णय ले सकती है। यदि राज्य की विधान सभा द्वारा रखे गये प्रस्ताव को संसद की मंजूरी मिलने से पूर्व, संबद्ध राज्य की विधान सभा अपने पूर्व संकल्प का प्रतिसंहरण अथवा उसमें संशोधन करना चाहे, तो संसद के लिए यह अधिक उचित होगा कि वह संबद्ध प्रावधान न लाये।[499]

नागा पहाड़ियां-त्युएनसांग क्षेत्र विधेयक, 1957; पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) विधेयक, 1971; मिजोरम राज्य विधेयक, 1986; और संविधान छठी अनुसूची (संशोधन) विधेयक, 2003 ताकि असम राज्य में एक स्वायत्त स्वशासी निकाय का सृजन किया जा सके और जिसे बोडोलैंड प्रादेशिक परिषद (बीटीसी) के नाम से जाना जाएगा।

497. अनुच्छेद 3 ।

498. अनुच्छेद 169(1) ।

499. विधि और समाज कल्याण मंत्री का वक्तव्य *लो.स.वा.वि.* 8.12.1970, कॉ. 216-18 ।

आन्ध्र प्रदेश विधान सभा ने 24 मार्च, 1983 को अनुच्छेद 169 के अन्तर्गत राज्य में विधान परिषद समाप्त करने के लिए संकल्प पारित किया था और उसे केन्द्र सरकार को भेजा था। सरकार उस संकल्प को प्रभावी बनाने के लिए संसद में विधेयक नहीं लाई। तत्कालीन, विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्री, जो लोक सभा सदस्य थे, के विरुद्ध विधान सभा द्वारा पारित संकल्प को अस्वीकार करने के लिए विधान सभा की विशेषाधिकारों संबंधी समिति को

यदि किसी विधान सभा द्वारा पारित संकल्प पर लोक सभा द्वारा विचार करने अथवा उस पर निर्णय लेने से पूर्व लोक सभा भंग हो जाती है, तो उसे व्यपगत नहीं माना जाता।

संसद द्वारा संकल्प पर विचार करने की कोई सीमित अवधि नहीं है और उसे अनिश्चित समय तक लंबित रखा जा सकता है।

विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान के विशिष्ट अनुच्छेदों और अनुसूचियों, जिनमें सामान्य बहुमत से संशोधन किया जा सकता है, के अतिरिक्त, संविधान के किसी अन्य भाग में संशोधन करने वाले विधेयक को संसद के प्रत्येक सदन द्वारा विशेष बहुमत से अर्थात् उस सदन की कुल सदस्यता के बहुमत तथा उपस्थित और मत[500] देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत से पारित करना होगा। कुछेक विधेयकों के संबंध में विशेष बहुमत और उन पर राज्य विधायिकाओं के अनुसमर्थन के अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों में विधायी प्रक्रमों में संविधान में संशोधन करने वाले विधेयकों के संबंध में कोई अन्य प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है।[501]

विशेषाधिकार का प्रश्न भेजा गया। लोक सभा में सदस्य द्वारा विशेषाधिकार का प्रश्न उठाये जाने पर, अध्यक्ष ने अन्य बातों के साथ-साथ टिप्पणी की कि संविधान का अनुच्छेद 169 जिसके अंतर्गत विधान सभा ने आन्ध्र प्रदेश विधान परिषद को समाप्त करने संबंधी संकल्प पारित किया था, भारत सरकार को इस उद्देश्य हेतु संसद में विधेयक लाने के लिए कार्यवाही करने के लिए किसी प्रकार बाध्य नहीं करता। किसी विशेष विषय पर विधेयक लाने के लिए समय और अवसर का चयन तथा संसद के सम्मुख उसे पेश करने का अधिकार विशेष रूप से सरकार का है।

500. अनुच्छेद 368 ।

संविधान में निर्धारित समस्त संख्या का तात्पर्य सदस्यों की उस समस्त संख्या से है जिससे सभा सन्निर्मित हो चाहे किसी भी कारण कुछ रिक्तियां या अनुपस्थितियां हों—नियम 159, व्याख्या: किसी विषय पर परिणाम घोषित करने में मतदान के समय 'मतदान में भाग न लेने' वाले सदस्यों के अभिलिखित मत की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इलैक्ट्रानिक मतदान रिकार्डर अथवा मतदान पर्ची अथवा किसी अन्य ढंग से अपना मत सभा में अपनी उपस्थिति और मतदान से परहेज रखने की उनकी मंशा को सूचित करने के लिए अभिलिखित करता है; वह अपना मत इस प्रकार दर्ज नहीं करता कि वह "उपस्थित और मतदान कर रहे" शब्दों की परिधि में आए। "उपस्थित और मतदान कर रहे" शब्दों का तात्पर्य उन सदस्यों से है जो 'हाँ' या 'नहीं' में मतदान करते हैं—कार्यवाही सारांश (नियम समिति) 8.9.1970 ।

501. सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि "संविधान निर्माताओं ने संसद का संविधान बनाते समय प्रत्येक सभा द्वारा बनाये गये नियमों (अनुच्छेद 118) सहित इसके सामान्य विधायी कार्यों के संचालन के लिए एक निश्चित प्रक्रिया निर्धारित की और उन्होंने संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान करते समय निश्चित रूप से यह चाहा होगा कि वह जहां तक लागू हो, अनुच्छेद 368 के स्पष्ट उपबन्धों के अनुरूप उस प्रक्रिया का अनुपालन करे"—*शंकरी प्रसाद बनाम संघ सरकार,* एस.सी.आर. 1952, 102-03 ।

संवैधानिक उपबंध का यदि निर्वचन किया जाए तो इसमें जिस विशेष बहुमत का विधान किया गया है उस विशेष बहुमत की आवश्यकता केवल तृतीय वाचन के समय मतदान के लिए हो सकती है, परन्तु सावधानी के लिए विधेयक के सभी प्रभावी प्रक्रमों के संबंध में विशेष बहुमत की आवश्यकता का उपबंध नियमों में किया गया है। जैसे, विधेयक पर विचार किए जाने संबंधी प्रस्ताव, संयुक्त या प्रवर समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित विधेयक पर विचार किए जाने संबंधी प्रस्ताव; विधेयक के खंडों और अनुसूचियों को पारित करने तथा विधेयक को पारित करने संबंधी प्रस्ताव। अत: जनमत प्राप्त करने के लिए परिचालित विधेयक अथवा प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपे जाने वाले विधेयक केवल सामान्य बहुमत से पारित किए जाते हैं।[502]

जब भी प्रस्ताव को विशेष बहुमत द्वारा स्वीकृत करना आवश्यक होता है मतदान हमेशा मत विभाजन द्वारा किया जाता है।[503] मतदान का परिणाम घोषित करते समय, अध्यक्ष इस बात

---

502. नियम 157 ।

अनुच्छेद 368 के निर्वचन पर मई, 1951 में अध्यक्ष मावलंकर द्वारा राय जानने के लिए भेजे गए संदर्भ के उत्तर में महान्यायवादी ने अपने निम्नलिखित विचार व्यक्त किए:

'प्रत्येक सभा में विधेयक पारित हो गया है' शब्दों का तात्पर्य विधेयक के अंतिम चरण में पारित होने से है। अनुच्छेद 368 में जिस बहुमत पर जोर दिया गया है उसकी केवल अंतिम चरण में मतदान के समय आवश्यकता होती है तथापि विधेयक के पारित होने के सभी चरणों में अपेक्षित बहुमत का होना ज्यादा सुरक्षित है।

'उस सभा के कुल सदस्यों के बहुमत' का तात्पर्य किसी निश्चित समय पर विचार करने योग्य सदस्यों की वास्तविक संख्या से नहीं है परन्तु 'सदस्यता' का तात्पर्य सदस्यों की कुल संख्या से है जो वहां होनी चाहिए वे वास्तव में वहां उपस्थित हों या न हों।

'कुल संख्या' शब्दों के प्रयोग और अरर्हक शब्दों 'उपस्थित और मतदान कर रहे' का लोप करके इस पहलू पर जोर दिया जाता है।

1956 में इस नियम में संशोधन करने से पूर्व विधेयक पर सदस्यों के 'मत' संबंधी प्रस्तावों और प्रवर अथवा संयुक्त समिति को विधेयक भेजने के मामले में विशेष बहुमत पर जोर दिया जाता था। इन चरणों में विशेष बहुमत की आवश्यकता (एक) परिचालन संबंधी प्रस्ताव में सभा विधेयक को परिचालित करने पर सिद्धान्त रूप से सहमत न हो, और (दो) प्रवर अथवा संयुक्त समिति को विधेयक भेजे जाने संबंधी प्रस्ताव के मामले में प्रवर अथवा संयुक्त समिति के प्रतिवेदन पर बाद में किसी भी स्थिति में सभा द्वारा विचार किया जाएगा और फिर एक परंपरा यह है कि संविधान संशोधन विधेयक सदैव प्रवर अथवा संयुक्त समिति को भेजे जाते हैं—कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 17.4.1956 ।

503. संविधान (चवालीसवां संशोधन) विधेयक, 1976 के खंडों पर मतदान के सम्बन्ध में सभा ने संसदीय कार्य मंत्री के इस सुझाव पर सहमति व्यक्त की कि प्रतिदिन निपटाये गये खंडों पर 17.30 बजे से 18.00 बजे तक मतदान करवाया जा सकता है—*लो.स.वा.वि.,* 28.10.1976, पृ. 12 ।

का विशेष उल्लेख करता है कि प्रस्ताव विशेष बहुमत से स्वीकृत हुआ है।[504]

प्रत्येक खंड या अनुसूची अलग से सभा में मतदान के लिए रखी जाती है और विशेष बहुमत द्वारा स्वीकृत की जाती है।[505]

> दिसम्बर, 1959 में जब संविधान (आठवां संशोधन) विधेयक, 1959, के खंड 2 को सभा में मतदान के लिए रखा गया, तो उसे विशेष बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। तथापि, खंड 3 को तथा इस प्रस्ताव को कि खण्ड 2 का लोप कर इस विधेयक को पारित किया जाए, विशेष बहुमत से स्वीकार किया गया।[506]

अध्यक्ष, सभा की सहमति से खण्डों या अनुसूचियों के किसी एक समूह को एक साथ सभा में मतदान के लिए रख सकता है।

23 सितम्बर, 1954 को, संविधान (तीसरा संशोधन) विधेयक, 1954 पर चर्चा शुरू किए जाने से पहले, अध्यक्ष ने इस विधेयक के खंडों पर मतदान की प्रक्रिया के संबंध में

---

504. नियम 158 ।

505. नियम 155—इस नियम के पीछे कारण यह है कि संविधान के विभिन्न पहलुओं अथवा विषयों संबंधी अनुच्छेदों में संशोधन करने वाले बहुउद्देशीय विधेयकों के सम्बन्ध में, विभिन्न पंक्तियों और विभिन्न प्रावधानों पर सदस्यों में मत-वैभिन्य हो सकता है। ऐसी स्थिति में, यदि अंतिम चरण में विशेष बहुमत से मतदान होगा, तो सदस्यों की स्थिति विचित्र हो जाएगी और विभिन्न प्रावधानों पर उनके द्वारा किया गया मतदान उनके वास्तविक मत को नहीं दर्शाएगा। कार्यवाही-सारांश (नियत समिति—पहली लोक सभा), 17.4.1956, पैरा 7 ।

सभा में इस विवाद पर कि अनुच्छेद 368 के अनुसार केवल पारित करने के प्रक्रम पर ही विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है। नियमों 155, 157 और 158 की शक्तिमत्ता संबंधी एक मामला उठाया गया। यह मामला नियम समिति को भेज दिया गया। यह समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि अनुच्छेद 100(1) और 368 के ठीक कानूनी निर्वचन के अनुसार संविधान में संशोधन करने वाले विधेयकों के लिए विशेष बहुमत की आवश्यकता विधेयक के पारित होने के अन्तिम प्रक्रम पर तब पड़ती है जबकि किसी विधेयक के संबंध में इस प्रकार का प्रस्ताव हो, 'कि विधेयक, या यथासंशोधित विधेयक, जैसी भी स्थिति हो, पारित किया जाए'। तथापि, समिति ने यह चेतावनी दी कि इस प्रकार के संविधान संशोधन विधेयक के संबंध में, जिनमें एक से अधिक मामले सम्मिलित हों, तो उन सदस्यों को जो कि इस विधेयक के कुछ भाग से सहमत न हों अन्तिम प्रक्रम पर ठीक तथा उचित रूप से मतदान करने में परेशानी आ सकती है। उन्हें इसमें उस स्थिति में सुविधा प्राप्त हो सकती है जब कि खंडों पर विशेष बहुमत का प्रावधान अलग से रखा जाए। समिति ने यह सुझाव दिया कि यदि अन्तिम प्रक्रम पर ही विशेष बहुमत का मतदान रखा जाए तो विधेयक में एक ही मामला होना चाहिए। 5वां प्रतिवेदन (नियम समिति—चौथी लोक सभा) पटल पर 9.12.1970 को रखा गया। तथापि, 23.12.1970 को लोक सभा के विघटित होने के साथ ही यह प्रतिवेदन व्यपगत हो गया और इसकी संस्तुतियों को प्रभावी नहीं किया जा सका।

506. *लो.स.वा.वि.,* 1.12.1959, कॉ. 2759-69 ।

निम्न टिप्पणी की थी:

> यद्यपि इस विधेयक में एक से अधिक खंड हैं, लेकिन व्यवहारत: विषय-वस्तु एक ही है। मैं इसलिए सभी खंडों, अधिनियमन सूत्र और विधेयक के नाम को एक ही समय सभा में मतदान के लिए रखना चाहता हूं ताकि मत विभाजन में लगने वाला समय बच सके।

खंड 1, 2 अधिनियमन सूत्र और विधेयक का पूरा नाम स्वीकार करने संबंधी प्रस्ताव पर सभा में मत विभाजन हुआ। प्रस्ताव विशेष बहुमत द्वारा स्वीकृत किया गया।

6 सितम्बर, 1956 को, संविधान (नौवां संशोधन) विधेयक पर खण्ड वार विचार करते समय, खण्डों के समूह, यथा, खण्ड 17, 19, 21, 22, 23 और अनुसूची, यथा-संशोधित, रूप में, और वे खण्ड जिनमें कोई संशोधन नहीं रखे गए यथा, खण्ड 18, 20 और 26 से 29 एक साथ सभा में मतदान के लिए रखे गए तथा ये यथानिर्धारित विशेष बहुमत द्वारा स्वीकृत किए गए तथा मत विभाजन के परिणाम को अलग-अलग खण्डों तथा अनुसूची पर अलग-अलग लागू किया गया।

23 जुलाई, 1975 के संविधान (उनतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1975 के खण्ड 2 से 8 को एक साथ मतदान के लिए रखा गया तथा ये यथानिर्धारित विशेष बहुमत द्वारा स्वीकृत किए गए तथा मत विभाजन के परिणाम को अलग-अलग खण्डों पर अलग-अलग लागू किया गया।

1 नवम्बर, 1976 को सभा इस बात पर सहमत हुई कि मत विभाजनों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण संविधान (चवालीसवां संशोधन) विधेयक के शेष खण्डों को मतदान के लिए एक साथ रखा जा सकता है जब तक कि सदस्यगण किसी विशेष खण्ड या खण्डों पर अलग से मतदान की मांग न करें। तद्नुसार, (1) खण्डों 13 से 16; (2) 18 से 20, यथासंशोधित खंड 21, खण्ड 22 से 28, यथासंशोधित खंड 29 और 30, खण्ड 31 से 33, यथासंशोधित खंड 34, खंड 35 से 41, यथासंशोधित खंड 42; (3) खण्ड 47 से 50 तथा यथासंशोधित खण्ड 51 और 52 को तीन अलग-अलग समूहों में सभा के समक्ष मतदान के लिए रखा गया तथा ये यथानिर्धारित विशेष बहुमत से स्वीकृत हुए और मत विभाजन का परिणाम प्रत्येक खण्ड पर अलग-अलग लागू किया गया।[507]

तथापि, विधेयक का संक्षिप्त नाम,[508] अधिनियमन सूत्र और विधेयक का पूरा नाम, तथा खण्डों या अनुसूचियों में संशोधन सामान्य बहुमत[509] से स्वीकृत किए जाते हैं।

---

507. *लो.स.वा.वि.,* 1.11.1976, पृ. 42-63 ।

508. खण्ड 1 को स्वीकृत किए जाने के लिए उस स्थिति में विशेष बहुमत की जरूरत पड़ती है जब यह संक्षिप्त नाम के अतिरिक्त अधिनियम के प्रारम्भ होने संबंधी प्रावधान भी अपने में सम्मिलित करता हो—कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 28.11.1955; *लो.स.वा.वि.,* 2.9.1970, कॉ. 221-304; 4.9.1974, कॉ. 59-107 ।

509. नियम 155 (तृतीय परन्तुक) और 156 ।

एक सदन द्वारा पारित और दूसरे सदन द्वारा संशाधनों सहित वापस किए गए संविधान संशोधन विधेयक

छठीं लोक सभा के दौरान, संविधान (पैतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 लोक सभा द्वारा 23 अगस्त 1978 को पारित किया गया था और उसी दिन राज्य सभा को भेजा गया था। लोक सभा द्वारा यथा पारित विधेयक राज्य सभा द्वारा 31 अगस्त, 1978 को छह संशोधनों के साथ पारित किया गया और 12 सितम्बर, 1978 को लोक सभा को वापस भेज दिया गया।

विधि मंत्रालय को एक पत्र भेजा गया कि विधेयक में राज्य सभा द्वारा किये गये संशोधनों के संबंध में क्या प्रक्रिया अपनायी जाए। विधि मंत्रालय की राय प्राप्त होने पर निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाए जाने का निर्णय लिया गया।

(एक) मंत्री द्वारा लाए जाने वाले प्रस्ताव कि राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों पर विचार किया जाए को स्वीकार किए जाने हेतु विशेष बहुमत की आवश्यकता होगी;

(दो) (एक) में वर्णित प्रस्ताव को स्वीकार किए जाने के बाद, अध्यक्षपीठ द्वारा यह प्रस्ताव किए जाने के लिए कि राज्यसभा द्वारा किए गए संशोधनों से लोक सभा सहमत है, विशेष बहुमत की आवश्यकता होगी; और

(तीन) राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों से लोक सभा के सहमत हो जाने पर मंत्री प्रस्ताव करेगा कि सहमत संशोधनों द्वारा संशोधित विधेयक पारित किया जाए, जिसके पारित किये जाने के लिए भी विशेष बहुमत की आवश्यकता होगी।

विधेयक संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 के रूप में अधिनियमत हुआ। अन्य संविधान संशोधन विधेयकों[510] के मामले में भी यही प्रक्रिया अपनाई गई थी।

---

510. (एक) संविधान (छिहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1992 को राज्य सभा द्वारा संविधान (इकहत्तरवां) संशोधन विधेयक, 1992 के रूप में 29 अप्रैल 1992 को पारित किया गया। लोक सभा ने संशोधनों सहित विधेयक को 7 मई, 1992 को वापस कर दिया जिन पर राज्य सभा ने 12 मई, 1992 को अपनी सहमति दी। विधेयक संविधान (सत्तरवां संशोधन) अधि नियम, 1992 के रूप में अधिनियमित हुआ।

(दो) संविधान (तिरानवेवां संशोधन) विधेयक, 2001 लोक सभा द्वारा 28 नवम्बर 2001 को पारित किया गया था और राज्य सभा द्वारा संशोधनों सहित 14 मई, 2002 को वापस कर दिया गया था। जिन पर लोक सभा ने 27 नवम्बर, 2002 को अपनी सहमति दी। विधयेक संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम, 2002 के रूप में अधिनियमित हुआ।

(तीन) संविधान (एक सौ तेरहवां संशोधन) विधेयक, 2010 लोक सभा द्वारा पारित किया गया और राज्य सभा द्वारा संशाधनों सहित 24.3.2011 को वापस कर दिया गया जिन पर लोक सभा ने 6 सितम्बर, 2011 को अपनी सहमति दी। विधेयक संविधान (छियानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2011 के रूप में अधिनियमित हुआ।

विशेष बहुमत द्वारा संविधान-संशोधन और राज्यों द्वारा अनुसमर्थन

यदि संविधान संशोधन का आशय—

राष्ट्रपति का निर्वाचन;[511] या

संघ एवं राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार;[512] या

उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय;[513] या

संघ एवं राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का बंटवारा;[514]

या संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व; या संविधान में यथानिर्दिष्ट संशोधन संबंधी प्रक्रिया[515] संबंधी अनुच्छेदों में कोई परिवर्तन करना हो तो वह विशेष बहुमत द्वारा पास किया जाएगा,

इस संशोधन का अनुसमर्थन कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा किया जाना आवश्यक है। इसके लिए राज्यों में विधानमंडलों को संकल्प पास करने होंगे और उसके बाद ही ऐसे संशोधन की व्यवस्था करने वाले विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके सामने रखा जाएगा।[516]

(चार) संविधान (एक सौ अठारह संशोधन) विधेयक, 2012 लोक सभा द्वारा 18 दिसम्बर 2012 को पारित किया गया और राज्य सभा द्वारा संशाधनों सहित 19.12.2012 को वापस कर दिया गया जिन पर लोक सभा ने 20 दिसम्बर, 2012 को अपनी सहमति दी। विधेयक संविधान (अठानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2012 के रूप में अधि नियमित हुआ।

511. अनुच्छेद 54 और 55 ।

512. अनुच्छेद 73 और 162 ।

513. अनुच्छेद 241, संविधान के भाग 5 का अध्याय 4 तथा भाग 6 का अध्याय 5 ।

514. संविधान के भाग 11 का अध्याय 1 और सातवीं अनुसूची ।

515. अनुच्छेद 368 ।

516. जब संविधान संशोधन संबंधी विधेयक राज्य विधानमंडल के समक्ष अनुसमर्थन हेतु रखा जाता है तो इस विधेयक में संशोधन प्रस्तुत करने की कोई गुंजाइश नहीं होती है और न ही ऐसे संशोधन की अनुमति है। इस प्रकार, सांविधिक प्रस्ताव में भी कोई संशोधन स्वीकार्य नहीं है क्योंकि सभा के समक्ष केवल यह बात होती है कि अनुसमर्थन संबंधी प्रस्ताव को स्वीकार किया जाए अथवा नहीं। महाराष्ट्र विधान परिषद् के अध्यक्ष का निर्णय (*जे.पी.आई.* अप्रैल, 1970, पृ. 238-39) संविधान में संशोधन संबंधी विधेयक का अनुसमर्थन करने वाले राज्य विधानमंडल के संकल्प पर राज्यपाल की अनुमति की आवश्यकता नहीं है—*जतिन चक्रवर्ती बनाम न्यायमूर्ति हिमान्शु कुमार बोस,* ए.आई.आर., 1964 कलकत्ता 500 ।

संविधान में ऐसी समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है जिसके अंतर्गत राज्यों को उन्हें भेजे गए संशोधनों के अनुसमर्थन या निरनुमोदन की सूचना भेजनी है।[517]

राज्य विधानमंडलों द्वारा संविधान संशोधन विधेयकों का अनुसमर्थन प्राप्त करने के संबंध में लोक सभा सचिवालय द्वारा अपनाई जाने वाली पद्धति के बारे में सभा की नियम समिति ने विचार किया था। विधि मंत्रालय के सचिवालय द्वारा राज्यों के विधानमंडल सचिवालयों को सीधा संप्रेषण भेजने की प्रक्रिया अधिक उचित रहेगी।[518] समिति का विचार

---

517. जहां तक संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के तत्सम प्रावधान का संबंध है अमेरिकी संविधान का अनुच्छेद 5 अनुसमर्थन के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं करता। अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने इस संबंध में निर्णय दिया है कि अनुसमर्थन, प्रस्ताव के पश्चात् उचित समय के भीतर प्राप्त कर लिया जाना चाहिए। (*डिल्लन बनाम ग्लॉस,* 65 विधि संस्करण 9945), किन्तु इस उचित समय-सीमा के निर्धारण की शक्ति न्यायालय को नहीं है (*कोलमैन बनाम मिल्लर,* 83 विधि संस्करण 1385)।

518. केवल संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 और संविधान (पचानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2009 के मामले के अलावा संविधान संशोधन विधेयक राज्य सभा को अंत में ही प्राप्त हुए। संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1971 से पहले, ऐसे विधेयकों को राज्य सभा से पारित होने के पश्चात् धारा 368 के अनुसार राज्य विधानमंडलों का अनुसमर्थन प्राप्त करने के लिए विधि मंत्रालय को भेज दिया जाता था। विधेयक पर अपेक्षित राज्य विधानमंडलों से अनुसमर्थन प्राप्त होने पर विधि मंत्रालय, राज्य सभा को सूचित करता था और ऐसे राज्यों की सरकारों से प्राप्त पत्रों की प्रतियां भेजता था। जिसमें इस आशय की सूचना रहती थी कि संबंधित विधानमंडलों ने यह संकल्प पारित किए हैं। तत्पश्चात्, विधि मंत्रालय के सचिव के माध्यम से राज्य सभा के सभापति द्वारा प्रमाणीकृत विधेयक राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने के लिए भेज दिया जाता था। संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1971 और परवर्ती विधेयकों हेतु यह अनुसमर्थन राज्य सभा सचिवालय ने सीधे ही प्राप्त कर लिया था।

संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 के मामले में आवश्यक अनुसमर्थन लोक सभा सचिवालय द्वारा प्राप्त किया गया था। यह विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित किया गया था और लोक सभा में ही पारित किया गया था। तथापि, राज्य सभा ने इसे छह संशोधनों के साथ लौटा दिया था। दिनांक 7.12.1978 को लोक सभा ने इन संशोधनों पर विचार कर इन पर अपनी सहमति दे दी थी। राज्य विधानमंडलों के अनुसमर्थन के लिए विधेयक भेजते समय उन्हें संकल्प का निम्नलिखित रूप भी भेजा गया था:

> "कि यह सभा धारा 368 के खण्ड (2) के परन्तुक के अनुसार भारत के संविधान में संशोधनों का अनुसमर्थन करती है जो संसद के दोनों सदनों द्वारा यथापारित संविधान (पैंतालीसवां संशोधन) विधेयक, 1978 के द्वारा प्रस्तावित है और जिसका संक्षिप्त नाम परिवर्तित करके संविधान (44वां संशोधन) विधेयक, 1978 कर दिया गया है।"

तत्कालीन 22 राज्यों में से 13 राज्यों (राज्य विधानमंडलों के आधे से अधिक) से विधेयक के अनुसमर्थन की सूचना प्राप्त होने पर, विधेयक की अनुसमर्थित प्रतियां राष्ट्रपति को भेज दी गईं। विधेयक की अनुसमर्थित प्रतियों के साथ विधेयक के अनुसमर्थन में राज्य विधानमंडलों से प्राप्त प्रत्येक पत्र की दो-दो फोटोप्रतियां भी विधि मंत्रालय को भेजी गईं।

था कि संविधान के संशोधनों को विधि मंत्रालय के माध्यम से अनुसमर्थित करवाने की बजाय यह प्रक्रिया अधिक अच्छी होगी कि सचिवालय राज्य विधानमंडलों को सीधे पत्र लिखे, विशेषकर, "ऐसी विशेष स्थिति में जहां राज्यों में, संशोधनों के अनुसमर्थनों के संबंध में मतभेद हो और जहां राज्यों से प्राप्त संकल्पों के परिणामस्वरूप उन पर संसद को पुनर्विचार करना पड़े और जहां संसद तथा राज्य विधानमंडलों के बीच संदेशों के माध्यम से सहमति प्राप्त करनी हो"। यह प्रक्रिया ऐसे विधेयक के संबंध में भी अधिक उपयुक्त होगी, जो किसी गैर-सरकारी सदस्य ने पुर:स्थापित किया हो और जिसे दोनों सभाओं ने सरकार द्वारा विरोध के बावजूद पास कर दिया हो और जहां सरकार को विधेयक पास करवाने में कोई दिलचस्पी न हो। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि "राज्यों द्वारा संविधान के संशोधनों का अनुसमर्थन, जहाँ भी आवश्यक हो, सभा तथा राज्य विधानमंडलों के सचिवालयों के बीच प्रत्यक्ष पत्र-व्यवहार द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए" और उसने यह इच्छा प्रकट की कि "लोक सभा द्वारा इस प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए, क्योंकि यह अधिक उचित है"।[519]

519. कार्यवाही सारांश (नियम समिति—पहली लोक सभा), 18.3.1957 । संविधान (एक सौ नौवां संशोधन) अधिनियम, 2009 संविधान (पंचानवेवां संशोधन) अधिनियम 2009 के रूप में अधिनियमित के मामले में भी लोक सभा सचिवालय द्वारा राज्यों से सीधे पत्राचार के माध्यम से अनुसमर्थन प्राप्त किया गया था।

अध्याय 23

राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं

अध्यादेश

अध्यादेश प्रख्यापित किए जाने के संबंध में राष्ट्रपति की शक्तियों के संबंध में लोक सभा में अनेक अवसरों पर चर्चाएं हुई हैं। सदस्यों ने सरकार द्वारा अपनी इस शक्ति के, विशेषकर संसद सत्र शुरू होने की तिथि के करीब, बार-बार प्रयोग किए जाने पर आपत्ति जतायी है और यह विचार व्यक्त किया है कि अध्यादेशों का प्रख्यापन केवल अति आवश्यक होने पर ही किया जाना चाहिए। वित्तीय अध्यादेशों[1] के बारे में इस आधार पर कि सरकार टैक्स लगाए जाने जैसा कार्य सदन के समक्ष प्रस्तुत किये बिना तथा बिना उसकी स्वीकृति लिए नहीं कर सकती, पुरजोर आपत्ति की गयी। जो भी हो, ऐसा कहा गया है कि अन्य अध्यादेशों की तुलना में वित्तीय अध्यादेश की तात्कालिकता की कसौटी अधिक कठोर होनी चाहिए।

अध्यक्ष का मत है कि किसी अध्यादेश का प्रख्यापन राष्ट्रपति की इस संतुष्टि पर निर्भर करता है कि उक्त विषय में तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता है। उक्त विषय में तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता के बारे में राष्ट्रपति को सलाह देते समय सरकार अपने उत्तरदायित्व

---

1. कर तथा शुल्क लगाने के प्रयोजन से राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किये गए अध्यादेशों में शामिल है धोती (अतिरिक्त उत्पाद शुल्क) अध्यादेश, 1953; उत्तर प्रदेश रेल यात्री सीमा कर, अध्यादेश, 1954; उत्तर प्रदेश रेल यात्री सीमा कर (संशोधन) अध्यादेश, 1954; मद्रास रेल यात्री सीमा कर अध्यादेश, 1956; खनिज तेल (अतिरिक्त उत्पाद शुल्क और सीमा-शुल्क) अध्यादेश, 1958; चीनी (विशेष उत्पाद शुल्क) अध्यादेश, 1959; एलजेपी गन्ना उपकर (अधिमान्यकरण) अध्यादेश, 1961; खनिज उत्पाद (अतिरिक्त उत्पाद शुल्क और सीमा-शुल्क) संशोधन अध्यादेश, 1966; स्टॉम्प और उत्पाद शुल्क (संशोधन) अध्यादेश, 1971; रेल यात्री किराया अध्यादेश, 1971; डाक वस्तुकर अध्यादेश, 1971; अन्तर्देशीय वायु यात्रा कर अध्यादेश, 1971; आयकर (संशोधन) अध्यादेश, 1972; केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक (संशोधन) अध्यादेश, 1973; आयकर (संशोधन) अध्यादेश, 1975; अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (टेक्सटाइल और टेक्सटाइल वस्तु) अध्यादेश, 1978; पंजाब उत्पाद शुल्क (दिल्ली संशोधन) अध्यादेश, 1979; केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा नमक और अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (संशोधन) अध्यादेश, 1979; अनिवार्य जमा योजना (आयकर दाता) संशोधन अध्यादेश, 1981; आयकर (संशोधन) अध्यादेश, 1981; सीमा-शुल्क टैरिफ (संशोधन) अध्यादेश, 1981; केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विधि (संशोधन तथा अधिमान्यकरण) अध्यादेश, 1982; वित्त (संशोधन) अध्यादेश, 1987; संघ उत्पाद शुल्क (वितरण) अध्यादेश, 1995 तथा अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (विशेष महत्व का माल) संशोधन अध्यादेश, 1995; विवरण के लिए *देखिए*-राष्ट्रपति के अध्यादेश 1950-2008, लोक सभा सचिवालय; नई दिल्ली, 2009.

को किसी अन्य के साथ नहीं बांट सकती, अध्यादेश की वांछनीयता अथवा अवांछनीयता को जांचने के संबंध में संसद की शक्ति केवल भूतलक्षी प्रभाव भर है।[2]

राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेशों के प्रख्यापन के विषय में अध्यक्ष मावलंकर तथा प्रधानमंत्री नेहरू के बीच पत्राचार हुआ ।

25 नवम्बर, 1950 को संसदीय कार्य मंत्री को लिखे अपने पत्र में अध्यक्ष मावलंकर ने कहा:

> अध्यादेशों के प्रख्यापन की प्रक्रिया ही मूलत: अलोकतांत्रिक है। कोई अध्यादेश युक्तिसंगत है अथवा नहीं, लेकिन अधिक संख्या में अध्यादेशों के जारी होने से मनोवैज्ञानिक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लोगों की यह धारणा बनती है कि सरकार का कामकाज अध्यादेशों के माध्यम से चलता है। सभा अपने को उपेक्षित महसूस करती है और केन्द्रीय सचिवालय में शिथिलता की आदत सी बन जाती है जिसके कारण अध्यादेशों को जारी किए जाने की आवश्यकता पड़ती है और इससे यह धारणा बन ही जाती है कि किसी विधान विशेष पर सभा की मंजूरी सर्वथा अपेक्षित है और सभा के पास अध्यादेश द्वारा लाये गये विधान के बारे में अपनी मंजूरी की मुहर लगाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह जाता है। यह स्थिति सर्वोत्तम संसदीय परम्पराओं के विकास के अनुकूल नहीं है।

---

2. लो.स.वा.वि. 16.11.1953, कॉ. 34-35; कॉ. 4925.; 14.5.1957, कॉ. 223-26; कॉ. 2932, 19.12.1953, कॉ. 2578-82; 16.2.1954, कॉ. 84-136; 13.8.1958, कॉ. 726-30; 18.8.1958, कॉ. 1380-87; 17.4.1954, 16.8.1958।

1947 में जारी किये गये अध्यादेशों का उल्लेख करते हुए अध्यक्ष मावलंकर ने पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में टिप्पणी की :

'केवल समय की कमी के कारण कार्यकारी सरकार द्वारा अध्यादेशों का प्रख्यापन किया जाना स्पष्ट रूप से गलत परम्परा थी। इस शक्ति का प्रयोग केवल आपात स्थिति में ही किया जा सकता था जब विधानमंडल की बैठक हो पाना संभव न हो। समय की कमी के कारण अध्यादेशों का प्रख्यापन करना वांछनीय पूर्वोदाहरण नहीं था क्योंकि इस प्रकार अवांछनीय विधान को भी प्रख्यापित किया जा सकता है।

इस संबंध में अध्यक्ष मावलंकर द्वारा सभा में व्यक्त किए गए विचारों के लिए *देखिए पी. डिबेट्स* (1) 22.2.1952, कॉ. 280-81 और *लो.स.वा.वि.* (II), 19.12.1953, कॉ. 2580-82

कुछ सदस्यों ने यह सुझाव दिया कि एक संसदीय समिति बनायी जाये और किसी अध्यादेश के प्रख्यापित किये जाने से पहले उस समिति से परामर्श किया जाये या यह समिति जारी किये गये अध्यादेशों का पुनरीक्षण करे। *लो.स.वा.वि.*, 16.2.1954, कॉ. 12-32 । नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया परन्तु बाद में ऐसी समिति की नियुक्ति का प्रश्न स्थगित कर दिया गया— पहली लोक सभा की नियम समिति का कार्यवृत्त, 17.12.1953 और 21.9.1954 ।

उक्त पत्र के उत्तर में प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 13 दिसम्बर, 1950 को लिखा:

मैं समझता हूँ कि मेरे सभी सहयोगी आपकी इस बात से सहमत होंगे कि सामान्यत: अध्यादेशों का जारी किया जाना वांछनीय नहीं है और विशेष तथा अविलम्बनीय महत्व के अवसरों को छोड़कर अध्यादेशों के प्रख्यापन से परहेज किया जाना चाहिए। ऐसा अवसर कब है और कब नहीं है यह निर्णय किये जाने का विषय है। न केवल राज्य की सरकार बल्कि संसद के गैर-सरकारी सदस्यगण भी लगातार अनुरोध कर रहे है कि नये विधान पारित किये जाने चाहिएं। संसदीय प्रक्रिया में विचार-विमर्श, वाद-विवाद तथा इसमें आने वाली कमियों और खामियों को रोकने हेतु पर्याप्त अवसर हैं। स्पष्टत: यह वांछनीय भी है। लेकिन इन सब में अत्यधिक विलंब हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण विधान बनाने का काम रुक जाता है। विश्व की प्रत्येक संसद को इस कठिन समस्या का सामना करना पड़ता है और इसे दूर करने के लिए अनेक प्रस्ताव दिये गये हैं।

17 जुलाई, 1954 को प्रधान मंत्री को पुन: लिखे अपने पत्र में अध्यक्ष मावलंकर ने कहा:

अध्यादेश जारी किये जाने का मुद्दा अलोकतांत्रिक है और अति अविलम्बनीय अथवा तात्कालिक विषय के मामलों को छोड़कर, इसे जारी किये जाने को न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है।

...प्रथम लोक सभा होने के नाते, परम्पराओं को स्थापित करने का दायित्व हमारा है। यह सरकार में विद्यमान लोगों का प्रश्न नहीं है बल्कि नजीरें स्थापित करने का प्रश्न है, और यदि अध्यादेशों को जारी किये जाने को परम्परा रूप में अति अविलंबनीय मामलों तक सीमित नहीं किया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप भविष्य में सरकार द्वारा अध्यादेश जारी किये जाते रहेंगे और लोक सभा के पास उन अध्यादेशों पर सहमति की मुहर लगाने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं रह जाएगा।

मैं आपका ध्यान एक और पहलू, भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 के संशोधन से जुड़े वित्तीय पहलू की ओर आकृष्ट करना चाहूंगा। यह प्रत्यक्ष रूप से कराधान उपाय नहीं है लेकिन इसका प्रयोजन कर वसूल करना है। अप्रत्यक्ष रूप से इसका वित्तीय प्रभाव है और इस प्रयोजन के लिए अध्यादेश लाना गलत नजीर स्थापित करना होगा।

19 जुलाई, 1954 के अपने उत्तर में प्रधान मंत्री ने लिखा :

हम अध्यादेश जारी करने के प्रति अनिच्छुक रहे हैं और हमने इन्हें केवल परिस्थितियों से विवश होकर जारी किया है। आप इस बात को समझेंगे कि किसी आकस्मिक स्थिति में कौन सा कदम उठाया जाना चाहिए, यह निर्णय करने का दायित्व सरकार का है। आवश्यकता पड़ने पर अध्यादेश जारी करने का प्रावधान संविधान में है और इस अधिकार का प्रयोग सरकार को अपने विवेक से करना होता है।

हमने पहले ही बहुत सीमित संख्या में अध्यादेश जारी किये हैं और उनमें से प्रत्येक अध्यादेश को जारी किये जाने के कारणों को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया है।

मैं स्वयं यह समझने में असमर्थ हूं कि इस प्रक्रिया को अलोकतांत्रिक क्यों माना जाना चाहिए। निश्चय ही, अन्य किसी शक्ति की तरह, इस शक्ति का भी दुरुपयोग किया जा

> सकता है परन्तु संसद ही अंतिम रूप से यह निर्णय करेगी कि इस शक्ति का सही उपयोग हुआ है अथवा गलत।

उत्तरवर्ती अध्यक्षों ने भी, जब भी ऐसा मौका आया, सरकार द्वारा बड़े पैमाने पर अध्यादेशों के माध्यम से बार-बार कार्यवाही विधान बनाये जाने की आलोचना की है।

15 नवम्बर, 1971 को, जब संसदीय कार्य मंत्रालय के उपमंत्री के अन्तरसत्रावधि के दौरान राष्ट्रपति द्वारा जारी तेरह अध्यादेशों की प्रतियों को सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगी तो उसका इस आधार पर विरोध किया गया कि संसद के इतिहास में कभी भी किसी अन्तरसत्रावधि विशेष के दौरान इतनी संख्या में अध्यादेश जारी नहीं किये गये थे। इस पर अध्यक्ष ने टिप्पणी की :

> मैं आपसे सहमत हूं कि इतने अध्यादेश जारी नहीं किये जाने चाहिए थे। मैं व्यक्तिगत तौर पर मानता हूं कि यह कोई हल्का-फुल्का मामला नहीं है जिसकी अवहेलना की जाए मेरे पूर्ववर्ती अध्यक्ष मावलंकर द्वारा कुछ टिप्पणियां की गई थीं जो महत्वपूर्ण निर्णय पर आधारित थीं। मैं सरकार का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि वह यह देखे कि क्या वास्तव में ऐसी तात्कालिकता अथवा अविलम्बनीयता थी जिसके कारण अध्यादेश जारी करना उचित था।[3]

जब 22 नवम्बर, 1971 को कुछ सदस्यों ने पुनः इस विषय को, विशेषकर उन अध्यादेशों से संबंधित विषय को, जिनके माध्यम से कतिपय कर लगाये गये थे, उठाया, तब अध्यक्ष ने टिप्पणी की:

> यदि आप समझते हैं कि वित्तीय तथा गैर-वित्तीय, कर तथा गैर-कर संबंधी अध्यादेशों के बीच कुछ विभेद होना चाहिए तो इस संबंध में मेरी जानकारी में ऐसा कुछ भी नहीं है जिस आधार पर मैं अपना विनिर्णय दे सकूं। मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैं उस अध्यादेश का अनुमोदन नहीं करता जो ऐसे समय जारी किया गया हो जब सभा की बैठक होने ही वाली हो।[4]

पुनः 13 नवम्बर, 1973 को अध्यक्ष ने टिप्पणी की :

> अध्यादेशों का जारी किया जाना अपने आप में कोई स्वागत योग्य बात नहीं है, विशेषकर तब जबकि संसद सत्र शुरू होने की तिथि स्पष्ट हो गयी हो और वह तिथि न केवल स्पष्ट हो बल्कि नजदीक भी हो। ऐसे मामलों में, जब तक विशेष कारण न हो, अध्यादेश जारी करने से बचा जाना चाहिए। मैंने यही विनिर्णय 22 नवम्बर, 1971 को दिया था और यही विनिर्णय मेरे पूर्ववर्ती अध्यक्षों द्वारा भी दिया गया था।[5]

संसद सत्र के शुरू होने से कुछ समय पूर्व अध्यादेशों के प्रख्यापन के संबंध में आपत्ति जताए जाने पर अध्यक्ष ने 17 नवम्बर, 1980 को फिर से कहा:

---

3. *लो.स.वा.वि.* 16.11.1971, कॉ. 232-234 ।
4. *लो.स.वा.वि.,* 22.11.1971, पृ. 203-05 ।
5. *पूर्वोक्त,* 13.11.1973, पृ. 133, साथ ही *देखिए,* 7.12.1973, पृ. 128-31; 9.7.1979, पृ. 200-201 ।

मेरे सम्मानित पूर्ववर्ती अध्यक्षों ने इस विषय के संबंध में पहले समय-समय पर टिप्पणियां की हैं। उन्होंने संसद सत्र के शुरू होने से कुछ समय पहले अध्यादेशों के जारी किये जाने का अनुमोदन नहीं किया था। मैं उनसे सहमत हूं।[6]

अध्यादेशों का प्रख्यापन

उस समय को छोड़कर, जब संसद के दोनों सदन सत्र में हैं[7] यदि किसी समय राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरन्त कार्यवाही करना उसके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे

---

6. *लो.स.वा.वि.,* 17.11.1980, पृ. 203 ।

7. अध्यादेश जारी किए जाने के ऐसे उदाहरण, जब लोक सभा का सत्र चल रहा था लेकिन राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा था और अध्यादेश की विषय-वस्तु संबंधी कोई भी विधेयक संसद के किसी भी सदन में लंबित नहीं था:

कलकत्ता ट्रामवेज (प्रबंध ग्रहण करना) संशोधन अध्यादेश, 1971, राष्ट्रपति द्वारा 17 जुलाई, 1971 को प्रख्यापित किया गया; कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) संशोधन अध्यादेश, 1976, राष्ट्रपति द्वारा 29 अप्रैल, 1976 को प्रख्यापित किया गया; राष्ट्रीय सुरक्षा (संशोधन) अध्यादेश, 1984, राष्ट्रपति द्वारा 5 अप्रैल, 1984 को प्रख्यापित किया गया; चाय कंपनी (रुग्ण चाय यूनिटों का अर्जन और अंतरण) अध्यादेश, 1985, राष्ट्रपति द्वारा 8 अप्रैल, 1985 को प्रख्यापित किया गया तथा स्वदेशी कॉटन मिल्स कंपनी लिमिटेड (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) अध्यादेश, 1986, राष्ट्रपति द्वारा 19 अप्रैल, 1986 को प्रख्यापित किया गया।

अध्यादेश जारी किए जाने के ऐसे उदाहरण, जब लोक सभा का सत्र चल रहा था लेकिन राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा था और अध्यादेश की विषय-वस्तु संबंधी विधेयक संसद के समक्ष लंबित था:-

त्रावनकोर-कोचीन विनियोग (लेखा अनुदान) अध्यादेश, 1956, राष्ट्रपति द्वारा 31 मार्च, 1956 को प्रख्यापित किया गया (लोक सभा द्वारा 29 मार्च, 1956 को विधेयक पारित किया गया); आवश्यक सेवाएं बनाए रखना अध्यादेश, 1957, राष्ट्रपति द्वारा 7 अगस्त, 1957 को प्रख्यापित किया गया (लोक सभा द्वारा 6 अगस्त, 1957 को विधेयक पारित किया गया) तथा सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) जारी रखना अध्यादेश, 1964 को राष्ट्रपति द्वारा 2 अप्रैल, 1964 को प्रख्यापित किया गया (लोक सभा में 25 मार्च, 1964 को विधेयक पुरःस्थापित किया गया)। अध्यादेश जारी किए जाने के ऐसे उदाहरण, जब राज्य सभा का सत्रावसान हो गया और लोक सभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया लेकिन उसका सत्रावसान नहीं हुआ:—

आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अध्यादेश, 1987, राष्ट्रपति द्वारा 23 मई, 1987 को प्रख्यापित किया गया, राष्ट्रीय सुरक्षा (संशोधन) अध्यादेश, 1987, राष्ट्रपति द्वारा 9 जून 1987, को प्रख्यापित किया गया तथा विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी क्रियाकलाप निवारण (संशोधन), अध्यादेश, 1987, राष्ट्रपति द्वारा 2 जुलाई, 1987 को प्रख्यापित किया गया।

उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों।[8]

इस प्रकार राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जैसा कि संसद के अधिनियम का होता है, परन्तु ऐसा प्रत्येक अध्यादेश संसद की दोनों सभाओं के सामने रखना पड़ता है और संसद के पुन: समवेत होने से छ: सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले दोनों सभा उसके निरनुमोदन का संकल्प पारित कर दें तो इनमें से दूसरे संकल्प के पारित होने पर वह अध्यादेश प्रवर्तन में नहीं रहेगा। राष्ट्रपति द्वारा इसे किसी भी समय वापस लिया जा सकता है।[9]

चूंकि अध्यादेश को विधि का बल प्राप्त होता है अत: अध्यादेश की वैधता का निर्णय अध्यक्ष के विनिर्णय द्वारा नहीं लिया जा सकता।[10]

राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने की शक्ति संसद की दोनों सभाओं में से किसी भी सभा का सत्रावसान होते ही प्राप्त हो जाती है। यदि कोई अध्यादेश सत्रावसान का आदेश दिये जाने और उसकी अधिसूचना होने से पहले प्रख्यापित कर दिया जाये तो वह अध्यादेश अमान्य होता है।[11] यदि राष्ट्रपति केवल अध्यादेश जारी करने के प्रयोजन से संसद का सत्रावसान करे तो उस कार्य को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती[12] और न्यायालयों को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह अध्यादेश जारी करने के अधिकार-क्षेत्र, उसके अवसर या प्रयोजन या विषय-वस्तु के सम्बन्ध में कोई आपत्ति कर सकें चाहे वह अध्यादेश सद्भावना से जारी न किया गया हो।

---

8. अनुच्छेद 123 (1) । 1950 से लेकर अप्रैल, 1999 के बीच कुल मिलाकर 559 अध्यादेशों को प्रख्यापित करने की आवश्यकता हुई (जिनमें राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 213(1) के अधीन जारी 2 अध्यादेश भी शामिल हैं क्योंकि उस समय पंजाब राज्य के राज्यपाल की शक्ति भी उनके पास थी); *देखिए* 'राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश 1950-2009' लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2009 ।
9. अनुच्छेद 123 (2)। आवश्यक सेवाएं बनाए रखना अध्यादेश, 1957, जो कि राष्ट्रपति द्वारा 7 अगस्त, 1957 को प्रख्यापित किया गया था, को राष्ट्रपति द्वारा 12 अगस्त, 1957 को वापस लिया गया; दिल्ली प्रशासन (संशोधन) अध्यादेश, 1977 जो कि राष्ट्रपति द्वारा 7 फरवरी, 1977 को प्रख्यापित किया गया था, को राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे उप-राष्ट्रपति द्वारा 21 अप्रैल, 1977 को वापस ले लिया गया और राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद (क्षेत्र अर्जन) अध्यादेश, 1990 जोकि राष्ट्रपति द्वारा 19 अक्तूबर, 1990 को प्रख्यापित किया गया, को 23 अक्तूबर, 1990 को प्रख्यापित राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद (क्षेत्र अर्जन) वापसी अध्यादेश, 1990 के द्वारा वापस ले लिया गया।
10. *पंजाब राज्य बनाम सत्यपाल डांग,* ए.आई.आर, 1969, एस.सी. 903 ।
11. *विद्या चौधरी बनाम बिहार प्रांत,* ए.आई.आर., 1950, पटना 19 ।
12. *देखिए वीरभद्र का मामला,* ए.आई.आर., 1950, मद्रास 253 । राज्यपाल द्वारा की जाने वाली संगत कार्यवाही हेतु *देखिए विश्वनाथ अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर 1956, इलाहाबाद 557, *प्रेम नारायण टंडन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर. 1960, इलाहाबाद 205 ।

न्यायालय केवल इस वाद योग्य आधार पर अध्यादेश पर आपत्ति कर सकते हैं कि वह संविधान द्वारा संघ को दी गयी विधायी शक्ति की सीमा से बाहर है।[13]

राष्ट्रपति किसी सभा अथवा उसकी समितियों में से किसी एक में पुरःस्थापित और उसके समक्ष लम्बित किसी विधेयक के उपबन्धों को लागू करने के लिये अध्यादेश जारी कर सकता है[14] या एक सभा द्वारा पास किये गये परन्तु दूसरी सभा द्वारा अभी तक पास न किये

---

13. *ज्ञान प्रसन्न बनाम पश्चिम बंगाल* (1948) 53, कलकत्ता वीकली नोट्स 27 (70) (एफ. बी); साथ ही *देखिए* अनुच्छेद 123 (3)।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने *बाबू राम शर्मा बनाम राज्य* (1961 इलाहाबाद लॉ जर्नल 837) के मामले में 1961 में यह निर्णय दिया था:—

राष्ट्रपति द्वारा तत्काल कार्यवाही किये जाने हेतु आवश्यक परिस्थितियों के विद्यमान होने के मामले में, उसकी सन्तुष्टि एक वैयक्तिक संतुष्टि का मामला है जिसकी न तो जांच की जा सकती है और न ही किसी न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है और ऐसी परिस्थितियों में उसके द्वारा वास्तव में क्या कार्यवाही की जाए, इसका निर्णय भी उसके विवेक पर निर्भर करता है और इसे चुनौती नहीं दी जा सकती।

जहां तक राज्यपाल की अध्यादेश जारी करने की शक्ति का संबंध है, उच्चतम न्यायालय ने *मैसर्स एस.के.जी. (पी) लि. बनाम बिहार राज्य* (ए.आई.आर. 1974, एस.सी. 1533) के मामले में यह निर्णय दिया :

यह एक सुस्थापित परिपाटी है कि तत्काल कार्यवाही और अध्यादेश प्रख्यापित करने की आवश्यकता का मामला पूर्णतया राज्यपाल की वैयक्तिक सन्तुष्टि पर निर्भर करता है। अध्यादेश जारी किये जाने हेतु आवश्यक परिस्थितियों के विद्यमान होने के मामले में निर्णय लेने का एकमात्र अधिकार उसको ही है। उसकी सन्तुष्टि वाद योग्य मामला नहीं है उसे न्याय-निर्णय में गलती अथवा अन्य किसी आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

14. विधेयक के लोक सभा अथवा सभा की समिति में पुरःस्थापित और लंबित होने की स्थिति में अध्यादेश जारी किए जाने के उदाहरण:—

चीनी संकट जांच प्राधिकारी अध्यादेश, 1950; प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) संशोधन अध्यादेश, 1954; रेल (सशस्त्र बल सदस्य नियोजन) अध्यादेश, 1965; दंड विधि (संशोधन) अध्यादेश, 1966; स्थावर संपत्ति अधिग्रहण और अर्जन (संशोधन) 1968; भारतीय पेटेंट तथा डिजाइन (संशोधन) अध्यादेश, 1968; सीमा शुल्क (संशोधन) अध्यादेश, 1969; भारतीय रेल (संशोधन) अध्यादेश 1969; राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र आयोजना बोर्ड अध्यादेश, 1984; आयकर (संशोधन) अध्यादेश, 1997; आवश्यक वस्तु (विशेष उपबंध) अध्यादेश, 1997; राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली विधि (विशेष उपबन्ध) द्वितीय अध्यादेश, 2007; उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) संशोधन अध्यादेश, 2009; तथा आपराधिक विधि (संशोधन) अध्यादेश, 2013 ।

विधेयक के राज्य सभा अथवा सभा की समिति में पुरःस्थापित और लंबित होने की स्थिति में अध्यादेश जारी किए जाने के उदाहरण:

सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) संशोधन अध्यादेश, 1968; आवश्यक वस्तु (संशोधन) चालू रखने का अध्यादेश, 1969; कलकत्ता पत्तन (संशोधन) अध्यादेश, 1970;

गये विधेयक के उपबन्धों को लागू करने के लिये अध्यादेश जारी कर सकता है[15] अथवा किसी सर्वथा नये विषय के सम्बन्ध में अध्यादेश जारी कर सकता है, जिसके बारे में बाद में सभा के सामने कोई विधेयक लाया जाना हो। वह किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में भी अध्यादेश जारी कर सकता है जिसके लिये स्थायी कानून की आवश्यकता न हो।[16]

अध्यादेश के स्थान पर लाया गया विधेयक

राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों को संसद की दोनों सभाओं के सामने रखना होता है।[17] सामान्यत: अध्यादेशों को उनके प्रख्यापन के बाद सभा की पहली बैठक के दिन, जब औपचारिक कार्य प्रारम्भ होता है, सभापटल पर रखा जाता है। यदि कोई अध्यादेश, जिसमें विधेयक के उपबंध अन्तर्विष्ट हों, रूप-भेद सहित अथवा बिना रूप-भेद के सभा के समक्ष लंबित होता है, तो अध्यादेश को प्रख्यापित किए जाने के कारणों को स्पष्ट करने वाला एक विवरण भी अध्यादेश के साथ सभापटल पर रखा जाता है[18] और उसकी प्रतियां सदस्यों को परिचालित की जाती हैं।

साधारणत: राष्ट्रपति शासन के अधीन किसी राज्य के संबंध में प्रख्यापित अध्यादेश को भी अध्यादेश के प्रख्यापन के बाद सभा की पहली बैठक के दिन सभापटल पर रखना होता है। लेकिन इसमें किसी प्रकार का विलम्ब अध्यादेश को बाद में सभापटल पर रखने में बाधक नहीं हो सकता। तथापि, अध्यादेश को विलम्ब से सभापटल पर रखने का कारण सभा में स्पष्ट

दिल्ली विश्वविद्यालय (संशोधन) अध्यादेश, 1970; केबल टेलीविजन नेटवर्क (विनियमन) अध्यादेश, 1994; कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) अध्यादेश, 1997; उपदान संदाय (संशोधन) अध्यादेश, 1997; और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान (संशोधन) अध्यादेश, 2006 साथ ही *देखिए* पीछे *पाद-टिप्पणी 7* ।

15. एक सभा द्वारा पारित परन्तु दूसरी सभा द्वारा पारित न किए गए विधेयक की स्थिति में अध्यादेश जारी किए जाने के उदाहरण :

    वाणिज्य पोत परिवहन (संशोधन) अध्यादेश, 1966; आयुध (संशोधन) अध्यादेश, 1983; भारत पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड (कर्मचारियों की सेवा शर्तों का निर्धारण) अध्यादेश, 1988; तथा राष्ट्रीय राजमार्ग (संशोधन) अध्यादेश, 1992, साथ ही *देखिए* पीछे *पाद-टिप्पणी 7* ।

16. कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं:— पुलिस (द्रोह उद्दीपन) (गुजरात दूसरा संशोधन) अध्यादेश, 1980; आवश्यक सेवाएं बनाए रखना (महाराष्ट्र) अध्यादेश, 1980; गुजरात आवश्यक सेवाएं बनाए रखना (संशोधन) अध्यादेश, 1980; आवश्यक सेवाएं बनाए रखना (उड़ीसा) अध्यादेश, 1980; लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अध्यादेश, 1985; तथा मिजोरम राज्य (संशोधन) अध्यादेश, 1986 । पूर्ववर्ती उदाहरणों के लिए *देखिए,* लोक सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित 'राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश', 2009 ।

17. अनुच्छेद 123(2)।

18. नियम 71(2), *लो.स.वा.वि.,* 21.8.1962, पृ. 1591-1603 ।

करना पड़ता है।[19] राष्ट्रपति शासनाधीन किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों को भी इसी रीति से सभापटल पर रखा जाता है।[20] यदि किसी राज्य के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषणा जारी होने से पूर्व उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश को राज्य विधानमंडल के समक्ष न रखा जा सका हो, तो उस अध्यादेश को भी सभापटल पर रखा जा सकता है।[21]

यदि सरकार यह चाहती हो कि किसी अध्यादेश के उपबंधों को अधिक समय के लिए जारी रखा जाये अथवा उसे स्थायी बना दिया जाये, तो उसके स्थान पर एक विधेयक लाया जाता है। जहां राष्ट्रपति शासन के अधीन किसी राज्य के संबंध में, संसद ने उस राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदत्त की है, तो उस राज्य के संबंध में राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेशों के स्थान पर संसद में विधेयक पुर:स्थापित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अध्यादेशों के स्थान पर राष्ट्रपति के अधिनियम प्रतिस्थापित किए जाते हैं।[22]

जब भी सभा में किसी अध्यादेश के स्थान पर उसके रूप-भेद सहित या उसके बिना, कोई विधेयक पुर:स्थापित किया जाता है तो सभा के सामने विधेयक के साथ, उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने वाला एक विवरण भी रखा जाता है जिनके कारण अध्यादेश द्वारा तुरन्त विधान बनाना आवश्यक हो गया है और विवरण की प्रतियां सदस्यों को परिचालित की जाती हैं।[23] यदि अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाला विधेयक राज्य सभा में पुर:स्थापित किया जाता है तो सभा के नियमों के अन्तर्गत अध्यादेश प्रख्यापन के कारणों को स्पष्ट करने वाला विवरण प्रस्तुत करना बाध्यकारी नहीं है। यदि मंत्री विवरण प्रस्तुत करना चाहता है तो इसे एक सामान्य पत्र के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है। जब कभी अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाला विधेयक,[24] अध्यादेश के प्रावधानों में उपांतरणों सहित, सभा में

---

19. *लो.स.वा.वि.,* 23.8.1966, पृ. 114-18 ।

20. उदाहरणार्थ, पंजाब पंचायत समितियां और जिला परिषद् (अस्थायी अधिक्रम) संशोधन, अध्यादेश, 1983 और गंगटोक नगर निगम (संशोधन) अध्यादेश, 1984 ऐसे ही अध्यादेश थे।

21. *लो.स.वा.वि.,* 23.8.1966, पृ. 112-13 ।

22. उदाहरणार्थ पंजाब स्थावर संपत्ति अधिग्रहण (संशोधन और वैधीकरण) अध्यादेश, 1951; पूर्वी पंजाब जन सुरक्षा (संशोधन) अध्यादेश, 1951; दंड प्रक्रिया संहिता (असम) संशोधन अध्यादेश, 1980; उत्तर प्रदेश सहकारी समितियां (संशोधन) अध्यादेश, 1993; हिमाचल प्रदेश विद्युत (शुल्क) संशोधन अध्यादेश, 1993; और मध्य प्रदेश लाटरी प्रतिबंध अध्यादेश, 1993।

23. नियम 71 (1); *लो.स.वा.वि.,* 21.8.1962, पृ. 114-18 ।

24. *देखिए* उदाहरणार्थ, सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) संशोधन अध्यादेश, 1968; *लो.स.वा.वि.,* 22.7.1968; नागालैंड राज्य (संशोधन) अध्यादेश, 1981; *लो.स.वा.वि,* 27.8.1981; पंजाब पंचायत समिति एवं जिला परिषद् (अस्थायी अधिक्रमण) संशोधन अध्यादेश, 1983; *लो.स.वा.वि.,* 6.12.1983; साधारण बीमा कारबार (राष्ट्रीयकरण) संशोधन अध्यादेश, 1984; राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र आयोजना बोर्ड अध्यादेश, 1984; चीनी उपक्रम (प्रबंधन अधिग्रहण) संशोधन अधिनियम, 1984; गंगटोक नगर निगम (संशोधन) अध्यादेश,

पुर:स्थापित किया जाता है, तो विधेयक[25] में दिए गए उपांतरणों को विधेयक के साथ संलग्न ज्ञापन में स्पष्ट किया जाना अपेक्षित है। यदि सम्बद्ध विषयों पर दो अथवा अधिक अध्यादेशों को प्रतिस्थापित किया जाना आशयित हो तो एक ही विधेयक पुर:स्थापित किया जा सकता है।[26]

> यह मत व्यक्त किया गया है कि अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाले विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति न देना उस अध्यादेश का निरनुमोदन नहीं है और उस अध्यादेश का प्रभावी रहना समाप्त नहीं हो जाता।[27]

अध्यादेशों का निरनुमोदन करने वाले सांविधिक संकल्प

यदि किसी अध्यादेश के निरनुमोदन हेतु किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा दिए गए सांविधिक संकल्प की सूचना[28] अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत कर ली जाती है तो सरकार को उस

1984-*लो.स.वा.वि.,* 18.1.1985; भोपाल गैस रिसाव विभीषिका (दावा कार्यवाही) अध्यादेश, 1985-*लो.स.वा.वि.,* 22.3.1985; और स्थावर संपत्ति अधिग्रहण एवं अर्जन (संशोधन) अध्यादेश, 1985-*लो.स.वा.वि.,* 25.3.1985 ।

25. हाल के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: विदेशी अभिदाय (विनियमन) संशोधन विधेयक, 1985; भोपाल गैस रिसाव विभीषिका (दावा कार्यवाही) विधेयक, 1985; राज्य सभा में यथा पुर:स्थापित; मोटर वाहन (संशोधन) विधेयक, 1986; राज्य सभा में यथा पुर:स्थापित; प्रशासनिक न्यायाधिकरण (संशोधन) विधेयक, 1986; राज्य सभा में यथा पुर:स्थापित; कोयला खान राष्ट्रीयकरण विधि (संशोधन) विधेयक, 1986; आतंकवादी एवं विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) विधेयक, 1987; वित्त (संशोधन) विधेयक, 1987; अयोध्या में कतिपय भूमि अर्जन विधेयक, 1993; नई दिल्ली नगरपालिका परिषद, 1994; पेटेंट (संशोधन) विधेयक, 1995; और आपराधिक विधि (संशोधन विधेयक, 2013 ।

26. *लो.स.वा.वि.,* 16.11.1962, पृ. 914-15 । उदाहरणार्थ कम्पनी (लाभांश पर अस्थायी निर्बंधन) विधेयक, 1974 ने कम्पनी (लाभांश पर अस्थायी निर्बंधन) अध्यादेश, 1974 और कम्पनी (लाभांश पर अस्थायी निर्बंधन) संशोधन अध्यादेश, 1974 को प्रतिस्थापित किया; आंतरिक सुरक्षा अनुरक्षण (संशोधन) विधेयक, 1975 ने आंतरिक सुरक्षा अनुरक्षण (संशोधन) अध्यादेश, 1975 और आंतरिक सुरक्षा अनुरक्षण (दूसरा संशोधन) अध्यादेश, 1975 को प्रतिस्थापित किया; बोनस संदाय (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1985 ने बोनस संदाय (संशोधन) अध्यादेश, 1985 और बोनस संदाय (दूसरा संशोधन) अध्यादेश, 1985 को प्रतिस्थापित किया।

27. *भूपेंद्र कुमार बोस बनाम उड़ीसा राज्य,* ए.आई.आर. 1960, उड़ीसा 46 ।

28. सत्र के लिए आमंत्रण जारी किए जाने के बाद सूचना दी जाती है। अन्तराल अर्थात् सत्रावसान और अगले सत्र के लिए आमंत्रण जारी करने के दौरान प्राप्त हुई सूचनाओं को अगले सत्र के लिए वैध नहीं माना जाता है और सदस्यों को आमंत्रण जारी होने के बाद नई सूचना देने की सलाह दी जाती है। 1 जनवरी, 1970 को तीन सदस्यों ने 30 दिसम्बर, 1969 को प्रख्यापित आवश्यक वस्तु (संशोधन) चालू रखने का अध्यादेश, 1969 के निरनुमोदन हेतु सांविधिक संकल्पों की सूचनाएं दीं। चूंकि अगले सत्र के लिए आमंत्रण जारी नहीं हुए थे, सूचनाओं को वैध नहीं माना गया और उन्हें आमंत्रण जारी होने के बाद नई सूचनाएं देने की लिखित सलाह दी गई थी।

पर[29] चर्चा के लिए समय देना पड़ेगा। तथापि, संकल्प और उस अध्यादेश के प्रतिस्थापन हेतु सरकारी विधेयक के विचारार्थ प्रस्ताव पर एक साथ चर्चा हो सकती है। पहले अध्यक्ष द्वारा इसकी अनुमति दिए जाने पर चर्चा के बाद संकल्प पहले मतदान के लिए रखा जाता था क्योंकि यदि संकल्प स्वीकृत हो जाता था तो इसका मतलब यह होता था कि अध्यादेश का निरनुमोदन हो गया है और विधेयक स्वतः ही बेकार हो जाता था।[30] यदि संकल्प अस्वीकृत हो जाता था तो विधेयक के विचारार्थ प्रस्ताव को मतदान के लिए रखा जाता था और विधेयक की अगली अवस्थाओं पर कार्यवाही की जाती थी।[31]

परन्तु, वर्ष 2002 में विधि मंत्रालय के मतानुसार यह निर्णय लिया गया कि अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाले विधेयक पर विचार करने वाले संकल्प को आगे बढ़ाया जा सकता है, भले ही अध्यादेश का निरनुमोदन करने वाला सांविधिक संकल्प सभा द्वारा पारित कर दिया गया हो।[32]

---

29. 8 अगस्त, 1957 को एक सदस्य ने आवश्यक वस्तु अनुरक्षण अध्यादेश, 1957 के निरनुमोदन के लिए संकल्प की सूचना दी। चूंकि संकल्प की सूचना एक संवैधानिक प्रावधान के अन्तर्गत दी गई थी, अध्यक्ष ने निर्णय लिया कि ऐसे सांविधिक संकल्पों को गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा नियम 28 के अन्तर्गत साधारण तौर पर प्रस्तुत की गई सूचनाओं से भिन्न माना जाए और सरकार द्वारा इन सांविधिक संकल्पों पर चर्चा के लिए समय दिया जाए।

30. दसवीं लोक सभा के दौरान, राष्ट्रपति, द्वारा 2 मार्च, 1991 को प्रख्यापित दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अध्यादेश, 1991 (1991 की सं. 4) के निरनुमोदन हेतु एक सांविधिक संकल्प राज्य सभा में 5 अगस्त, 1991 को स्वीकृत किया गया था और राज्य सभा के विचाराधीन इस अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाला विधेयक पारित नहीं हो पाया।

    ग्यारहवीं लोक सभा के दौरान, राष्ट्रपति द्वारा 5 जून, 1997 को प्रख्यापित राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति निर्वाचन (संशोधन) अध्यादेश, 1997 (1997 की सं. 13) के अंतर्गत निरनुमोदन हेतु सांविधिक संकल्प राज्य सभा में 7 अगस्त, 1997 को स्वीकृत किया गया और उक्त अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने वाला विधेयक, जो राज्य सभा के विचाराधीन था, पारित नहीं हो सका। राष्ट्रपतीय और उप-राष्ट्रपतीय निर्वाचन (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1997 के रूप में यह विधेयक 12 अगस्त, 1997 को लोक सभा में पुनः पुरःस्थापित किया गया।

31. *लो.स.वा.वि.*, 22.11.1957, पृ. 967; 21.8.1974, पृ. 152; 22.8.1974, पृ. 115।

32. तेरहवीं लोक सभा के आठवें सत्र के सत्रावसान के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा 30 दिसम्बर, 2001 को आतंकवाद निवारण (दूसरा) अध्यादेश, 2001 (2001 की संख्या 12) प्रख्यापित किया गया था। अध्यादेशा को प्रतिस्थापित करने वाला आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 लोक सभा में 8 मार्च, 2002 को पुरःस्थापित किया गया था। 18 मार्च, 2002 को अध्यादेश का निरमुमोदन करने वाले सांविधिक संकल्प के अस्वीकृत कर दिए जाने के पश्चात् विधेयक को लोक सभा द्वारा पारित कर दिया गया। जब सांविधिक संकल्प पर राज्य सभा में अभी चर्चा किया जाना शेष था, लोक सभा सचिवालय ने विधि मंत्रालय से यह बताने के लिए कहा कि यदि अध्यादेश का निरनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा अंगीकृत कर लिया जाता है

इसी प्रकार, किसी अध्यादेश के निरनुमोदन हेतु संकल्प और सम्बद्ध मामले पर प्रस्ताव पर एक साथ चर्चा हो सकती है।[33] जब विधेयक अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं लाया जाता है, तब अध्यादेश के निरनुमोदन हेतु संकल्प पर पृथक रूप से चर्चा हो सकती है।[34]

किसी अध्यादेश के निरनुमोदन हेतु लाया गया कोई संकल्प उस अध्यादेश के प्रतिस्थापन हेतु सरकारी विधेयक[35] पर आगे की कार्यवाही को बाधित नहीं कर सकता है और वह अध्यादेश वापस[36] ले लिए जाने के बाद ऐसा संकल्प व्यर्थ हो जाता है। यह तथ्य कि अध्यादेश को न्यायालय में चुनौती दी गई है और न्यायालय ने सरकार को प्रारम्भिक निर्णय जारी किया कि उस अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने हेतु पुर:स्थापित विधेयक को विचारार्थ लेने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।[37]

जहां तक अध्यादेश के निरनुमोदन हेतु संकल्प में संशोधनों के दायरे का संबंध है, यह विनिर्णय दिया गया है कि अध्यादेश को अनुमोदित करने वाला संशोधन अनुज्ञेय नहीं है। साथ ही, यदि किसी संशोधन में तर्क दिया गया है तो वह अस्वीकार्य है।

संचित निधि में से विनियोग के लिए अध्यादेश

संचित निधि में से धनराशियों के विनियोग के उद्देश्य से जारी किया गया अध्यादेश अमान्य होता है यदि तत्संबंधी अनुदानों की मांगों को लोक सभा के सामने रखा नहीं गया है, उसने उन पर विचार नहीं किया है और उनको स्वीकार नहीं किया है।[38]

तो क्या दूसरे सदन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 108(1) क के अर्थों में विधेयक को अस्वीकृत माना जाना चाहिए। विधि मंत्रालय का मत था कि संविधान में उक्त स्थिति से संबंधित कोई विशेष प्रावधान नहीं है। तथापि, यदि संकल्प के अस्वीकृत किए जाने के पश्चात् सांविधिक संकल्प और विधेयक पर पृथक-पृथक विचार किया जाता है तो विधेयक पर पृथक रूप से विचार और मतदान किया जाना चाहिए। यह सभापति को निर्णय करना होगा कि दोनों पर एक साथ विचार किया जाए या पृथक-पृथक। राज्य सभा द्वारा सांविधिक संकल्प अंगीकृत कर लिए जाने के पश्चात् 21 मार्च, 2002 को लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक पर विचार करने संबंधी प्रस्ताव मतदान के लिए रखा गया और अस्वीकृत हुआ। तदनुसार विधेयक राज्य सभा द्वारा नामंजूर किया हुआ मान लिया गया।

33. *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1960, पृ. 719-61 और 9.8.1960, पृ. 842-82 ।
34. आवश्यक सेवाएं बनाए रखने का अध्यादेश, 1960, *लो.स.वा.वि.,* 9.8.1960, कॉ. 1794 ।
35. *लो.स.वा.वि.,* 24.5.1957, पृ. 870-74 ।
36. *पूर्वोक्त,* 11.9.1957, पृ. 6009-14 ।
37. मैटल कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (उपक्रम का अर्जन) विधेयक का मामला-*लो.स.वा.वि.,* 22.11.1965, पृ. 1185-88; भारतीय रेल (संशोधन) विधेयक, 1968 का मामला, *लो.स.वा.वि,* 15.11.1968, पृ. 856 ।
38. *लो.स.वा.वि.,* 4.3.1961, पृ. 1522-24; 6.3.1961, पृ. 1678-79; 10.3.1961, पृ. 2145-46; 13.3.1961, पृ. 2265-67; और 14.3.1961, पृ. 2420 ।

जिस राज्य के प्रशासन को राष्ट्रपति उद्घोषणा जारी करके अपने हाथ में ले लेता है, उसकी धनराशियों के विनियोग के लिए वर्तमान प्रथा के अनुसार उस राज्य के बजट का प्रमाणीकरण अध्यादेश के द्वारा नहीं किया जाता है। इसका आधार यह सिद्धांत है कि संसद की मंजूरी के बिना संचित निधि में से कोई पैसा खर्च नहीं किया जा सकता। अत:, यदि ऐसे किसी राज्य के सम्बन्ध में विनियोग विधेयक पारित करने की अत्यधिक आवश्यकता पड़ जाये और राज्य सभा का सत्र न हो रहा हो, तो उसे इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से समवेत किया जाता है।[39]

तथापि, मेघालय राज्य, जहां राष्ट्रपति शासन था, के संबंध में संबंधित मांगों के बारे में लोक सभा की पूर्वानुमति के बिना धन का विनियोग करने वाला अध्यादेश प्रस्तावित किया गया था।[40]

उद्घोषणाएं

संविधान में तीन प्रकार की आपात स्थितियों की कल्पना की गई है और उनके अनुसार राष्ट्रपति तीन प्रकार की उद्घोषणाएं जारी कर सकता है :

> युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण उत्पन्न आपात स्थिति की उद्घोषणा;[41] राज्यों मे संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर जारी की जाने वाली उद्घोषणा;[42] और
>
> भारत या उसके किसी राज्य क्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में होने के कारण की जाने वाली उद्घोषणा।[43]

आपात स्थिति की उद्घोषणा

यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि गंभीर आपात विद्यमान है, जिससे युद्ध या बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह उद्घोषणा द्वारा, सम्पूर्ण भारत या उसके राज्य क्षेत्र के ऐसे भाग के

---

39. यह उड़ीसा विनियोग (लेखानुदान) विधेयक के मामले में किया गया था-*लो.स.वा.वि.,* 27.3.1961, पृ. 3561-66 और 28.3.1961, पृ. 3701-02; *रा.स.वा.वि.,* 27.3.1961, कॉ. 33 और 30.3.1961, कॉ. 375-89 ।

40. दिनांक 19 मार्च 2009 की उद्धोषणा द्वारा मेघालय राज्य पर राष्ट्रपति शासन लगाया गया था। राष्ट्रपति द्वारा दो अध्यादेश (एक) मेघालय विनियोग (लेखानुदान) अध्यादेश, 2009; और (दो) मेघालय विनियोग अध्यादेश, 2009 31 मार्च 2009 को प्रख्यापित किए गए थे। तथापि, उक्त अध्यादेश को प्रख्यापित करने वाले विधेयक लोक सभा में पुर:स्थापित नहीं किए गए थे क्योंकि 13 मई, 2009 की एक अन्य उद्घोषणा द्वारा उक्त उद्घोषणा को रद्द कर दिया गया था।

41. अनुच्छेद 352 ।

42. अनुच्छेद 356 ।

43. अनुच्छेद 360 ।

संबंध में, जो उद्घोषणा में विनिर्दिष्ट किया जाए, इस आशय की घोषणा कर सकेगा।[44] आपात स्थिति की आवश्यकता होने के बारे में राष्ट्रपति के समाधान के संबंध में उद्घोषणा में उल्लेख किये जाने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की :

> अनुच्छेद 352 में अपेक्षित है कि उल्लिखित कारणों में से किसी एक कारण से भारत की प्रतिरक्षा को खतरा उत्पन्न होने पर आपात स्थिति की उद्घोषणा की जा सकती है। हालांकि आपातकाल की उद्घोषणा करने की शक्ति का उपयोग उस स्थिति में ही किया जा सकता है जब आपात स्थिति के बारे में राष्ट्रपति का समाधान हो जाए, लेकिन अनुच्छेद में राष्ट्रपति के समाधान को उद्घोषणा में उल्लिखित करने का उपबंध नहीं है।[45]

राष्ट्रपति आपात स्थिति की उद्घोषणा या लागू उद्घोषणा में परिवर्तन करने वाली उद्घोषणा तब तक नहीं करेगा जब तक कि संघ के मंत्रिमंडल का यह विनिश्चय कि ऐसी उद्घोषणा की जाए, उसे लिखित रूप में संसूचित नहीं की जाती है।[46]

> यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाता है कि इस तरह का संकट सन्निकट है तो वह घोषित की जाने वाली आपात की उद्घोषणा युद्ध या ऐसे किसी आक्रमण या विद्रोह के वास्तव में होने से पहले की जा सकती है।[47]
>
> आपात स्थिति की उद्घोषणा में किसी पश्चात्वर्ती उद्घोषणा द्वारा परिवर्तन किया जा सकेगा या उसको वापस लिया जा सकेगा।[48]
>
> राष्ट्रपति को प्रदत्त शक्ति के अन्तर्गत युद्ध या बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के अथवा युद्ध या बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह संकट सन्निकट होने के विभिन्न आधारों पर विभिन्न उद्घोषणाएं करने की शक्ति होगी, चाहे पहले ही कोई उद्घोषणा की है या नहीं और ऐसी उद्घोषणा प्रवर्तन में है या नहीं।[49]

---

44. अनुच्छेद 352 और 356। जम्मू और कश्मीर राज्य पर, संविधान (जम्मू और कश्मीर पर लागू होना) आदेश, 1954 के खण्ड 2 के उप-खण्ड (13) में दिए गए ऐसे संशोधनों के साथ लागू होंगे।

45. *पी.एल. लखनपाल बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 243 ।

    संविधान संशोधन (चवालीसवां) अधिनियम, 1978 के पूर्व अनुच्छेद 352 के अंतर्गत आपात स्थिति की उद्घोषणा के सम्बन्ध में राष्ट्रपति का समाधान होना अंतिम और निर्णायक था और न्यायालय द्वारा आपात स्थिति की उद्घोषणा को जारी करने अथवा उसे जारी रखने की वैधानिकता के सम्बन्ध में किसी भी आधार पर किसी भी प्रश्न पर विचार करना उसके क्षेत्राधिकार से बाहर था। उक्त अधिनियम की धारा 38 (घ) ने उस समय विद्यमान अनुच्छेद 352 (5), जिसमें न्यायिक समीक्षा पर रोक थी, विलुप्त कर दिया।

46. अनुच्छेद 352 (3) ।

47. अनुच्छेद 352 (1)।

48. अनुच्छेद 352(2)। 26 अक्तूबर, 1962 को जारी की गई उद्घोषणा को 10 जनवरी, 1968 को वापिस ले लिया गया था।

49. अनुच्छेद 352 (9)।

उद्घोषणा जारी किए जाने के बाद, संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखी जानी होती है[50] और जहां वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को वापस लेने वाली उद्घोषणा नहीं है, वहां वह एक मास की समाप्ति पर, यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले संसद की दोनों सभाओं के संकल्पों द्वारा उसका अनुमोदन नहीं कर दिया जाता है तो वह प्रवर्तन में नहीं रहती।[51] यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय की जाती है, जब लोक सभा का विघटन हो गया है या लोक सभा का विघटन उपर्युक्त निर्दिष्ट एक मास की अवधि के दौरान हो जाता है और यदि उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है, किन्तु ऐसी उद्घोषणा के सम्बन्ध में कोई संकल्प लोक सभा द्वारा उस अवधि की समाप्ति से पहले पारित नहीं किया गया है तो, उद्घोषणा उस तारीख से जिसको लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर, प्रवर्तन में नहीं रहेगी, यदि उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति से पहले उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा भी पारित नहीं कर दिया जाता है।[52]

इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि वापस नहीं ली जाती है तो, उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्पों में से दूसरे संकल्प के पारित किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी।

परन्तु यदि, और जितनी बार, ऐसी-उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो उतनी बार वह उद्घोषणा, यदि वापिस नहीं ली जाती है तो, उस तारीख से जिसको वह अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती,

---

50. अनुच्छेद 352(4)। 26 अक्तूबर, 1962 को आपात स्थिति की जो उद्घोषणा जारी की गई थी वह दोनों सदनों का सत्र प्रारम्भ होने के प्रथम दिन 8 नवम्बर, 1962 को संसद के दोनों सदनों के पटलों पर रखी गई। *लो.स.वा.वि.*, 8.11.1962, पृ. 70 और *रा.स.वा.वि.*, 8.11.1962, कॉ. 190। उद्घोषणा अनुमोदन के आशय वाले सांविधिक संकल्प को लोक सभा द्वारा 14 नवम्बर, 1962 को स्वीकार किया गया।

    3 दिसम्बर, 1971 को भारत पर पाकिस्तान के आक्रमण के परिणामस्वरूप, उस दिन आपात स्थिति की घोषणा की गई थी। इसे संसद के दोनों सदनों के पटलों पर 4 दिसम्बर, 1971 को रखा गया था। उद्घोषणा अनुमोदन के आशय वाले सांविधिक संकल्प को लोक सभा द्वारा 4 दिसम्बर, 1971 को स्वीकार किया गया। 25 जून, 1975 को जारी की गई आपात स्थिति की उद्घोषणा को संसद के दोनों सदनों के पटलों पर 21 जुलाई, 1975 को रखा गया था और उद्घोषणा अनुमोदन के आशय वाले सांविधिक संकल्प को लोक सभा द्वारा 23 जुलाई, 1975 को स्वीकार किया गया।

51. अनुच्छेद 352 (4)।

52. अनुच्छेद 352 (4), परन्तुक, *लो.स.वा.वि.*, 8.11.1962, पृ. 70 और *लो.स.वा.वि.* 14.11.1962, कॉ. 1672; *रा.स.वा.वि.*, 8.11.1962, कॉ. 196 और 13.11.1962, कॉ. 993; *लो.स.वा.वि*, 4.12.1971, पृ. 7; *रा.स.वा.वि.*, 4.12.1971, कॉ. 46; 22.7.1975, कॉ. 124; *लो.स.वा.वि.* 23.7.1975, कॉ. 40।

छह मास की और अवधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी। परन्तु यदि लोक सभा का विघटन छह मास की ऐसी अवधि के दौरान हो जाता है और ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है, किन्तु ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने के सम्बन्ध में कोई संकल्प लोक सभा द्वारा उक्त अवधि के दौरान पारित नहीं किया गया है तो, उद्घोषणा उस तारीख से, जिसको लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी, यदि उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति से पहले उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा भी पारित नहीं कर दिया जाता है।[53]

आपात स्थिति की उद्घोषणा अथवा उद्घोषणा को आगे प्रवत्त बनाए रखने के अनुमोदन के प्रयोजन के लिए सभी संकल्प संसद की किसी सभा द्वारा उस सभा की कुल संख्या के बहुमत द्वारा तथा उस सभा में उपस्थित मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित किया जा सकेगा।[54]

जब आपात स्थिति की उद्घोषणा या ऐसी उद्घोषणा में परिवर्तन करने वाली उद्घोषणा का निरनुमोदन या उसको प्रवृत्त बनाए रखने का निरनुमोदन करने वाले संकल्प को प्रस्तावित करने के अपने आशय की सूचना लोक सभा की कुल सदस्य संख्या के कम से कम दसवें भाग द्वारा हस्ताक्षर करके लिखित रूप में, यदि लोक सभा सत्र में है तो अध्यक्ष को, या यदि लोक सभा सत्र में नहीं है तो राष्ट्रपति को, दी गई है वहां ऐसे संकल्प पर विचार करने के प्रयोजन के लिए लोक सभा की विशेष बैठक, अध्यक्ष या राष्ट्रपति को ऐसी सूचना प्राप्त होने की तारीख से चौदह दिन के भीतर की जाएगी।[55]

यदि लोक सभा आपात स्थिति की उद्घोषणा को या उसे प्रवृत्त बनाए रखने का निरनुमोदन करने वाला संकल्प पारित कर देती है तो राष्ट्रपति ऐसी उद्घोषणा को वापस ले लेगा।[56]

आपात स्थिति की उद्घोषणा के प्रभाव : आपात स्थिति की उद्घोषणा के प्रवर्तन के दौरान संघ की कार्यपालिका की शक्ति का विस्तार किसी राज्य को इस बारे में निर्देश देने तक हो जाता है कि वह राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस रीति से प्रयोग करे, किसी विषय के संबंध में विधियां बनाने की संसद की शक्ति के अन्तर्गत इस बात के होते हुए भी कि वह संघ सूची में प्रमाणित विषय नहीं है, ऐसी विधियां बनाने की शक्ति होगी जो उसे विषय के संबंध में संघ को या संघ के अधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति प्रदान करती है और उन पर कर्त्तव्य अधिरोपित करती है या शक्तियों का प्रदान किया जाना और कर्त्तव्यों का अधिरोपित किया जाना प्राधिकृत करती है।

53. अनुच्छेद 352 (5) ।
54. अनुच्छेद 352 (6) ।
55. अनुच्छेद 352 (8) ।
56. अनुच्छेद 352 (7) ।

जहां आपात की उद्घोषणा भारत के राज्य क्षेत्र के केवल किसी भाग में प्रवर्तन में है, वहां यदि और जहां तक भारत या उसके राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा, भारत के राज्य क्षेत्र के उस भाग में या उसके संबंध में, जिसमें आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, होने वाले क्रियाकलाप के कारण संकट में है तो निदेश देने की संघ की कार्यपालिका शक्ति का, और विधि बनाने की संसद की शक्ति का विस्तार किसी ऐसे राज्य पर भी होगा, जो उस राज्य से भिन्न है, जिसमें या जिसके किसी भाग में आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है।[57]

जब आपात स्थिति की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, तो राष्ट्रपति आदेश द्वारा, यह निदेश दे सकता है कि संविधान के वे सभी या उनमें से कोई उपबन्ध, जिनमें संघ तथा राज्यों के बीच राजस्व के वितरण की व्यवस्था की गयी है,[58] ऐसी किसी अवधि के लिए, जो उस आदेश में निर्दिष्ट की जाये और जो किसी भी दशा में उस वित्तीय वर्ष की समाप्ति से आगे नहीं बढ़ेगी जिसमें ऐसी उद्घोषणा प्रवर्तन में नहीं रहती है, ऐसे अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगे, जो वह ठीक समझे। ऐसा प्रत्येक आदेश किए जाने के पश्चात् उसे यथाशक्य शीघ्र संसद की प्रत्येक सभा के समक्ष रखा जाना आवश्यक है।[59]

जब युद्ध या बाह्य आक्रमण के कारण आपात स्थिति की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तो राज्य को कोई भी कानून बनाने या उसकी कार्यपालिका को कोई भी कार्यवाही करने की शक्ति मिल जाती है, चाहे संविधान के अनुच्छेद 19 में ऐसे उपबन्ध क्यों न हों जिनके अन्तर्गत नागरिकों को कुछ मूल अधिकारों की गारंटी दी गई है। किन्तु इस प्रकार बनाई गई कोई विधि उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने पर, अक्षमता की मात्रा तक, उन बातों के सिवाय तुरंत प्रभावहीन हो जाएगी, जिन्हें विधि के इस प्रकार प्रभावहीन होने से पहले किया गया है या करने का लोप किया गया है।[60] आपात स्थिति की उद्घोषणा के दौरान अनुच्छेद 19 निलम्बित रहता है लेकिन यह आपात स्थिति के दौरान अनुच्छेद 19 में विदित मूल अधिकारों को प्रभावित करते हुए हानिकारक कार्यपालिका कार्यवाही करने का प्राधिकार प्रदान नहीं करता, जो विधायी अधिकार के बिना अथवा आपात स्थिति के पूर्व विद्यमान किसी कानून, जो अधिनियम के लागू किए जाने के समय ही अमान्य हो, द्वारा प्रदत्त शक्ति का सोद्देश्य प्रयोग

---

57. अनुच्छेद 353 ।
58. अनुच्छेद 268 से 279 तक ।
59. अनुच्छेद 354 । राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार का कोई आदेश अभी तक जारी नहीं किया गया है।
60. अनुच्छेद 358 । अनुच्छेद 358 के अधीन बनाए गए भारत रक्षा अधिनियम, 1962, भारत रक्षा नियम, 1962, भारत रक्षा और आंतरिक सुरक्षा अधिनियम, 1971 और भारत रक्षा और आंतरिक सुरक्षा नियम, 1971 द्वारा अनुच्छेद 19 में दिए गए मौलिक अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए। आपात स्थिति की उद्घोषणा के प्रभावों के लिए *देखिए मध्य प्रदेश राज्य बनाम ठाकुर भरत सिंह,* ए.आई.आर. 1967, एस.सी. 1170*; मो. याकूब बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य,* ए.आई.आर. 1968, एस.सी. 765*; पी. वेंकटशेषम्मा बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर. 1976, *आन्ध्र प्रदेश; कृष्ण कुमार मोदी बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर 1976, कलकत्ता 26 ।

के बिना किया गया हो। सरकार अथवा इसके किसी अधिकारी द्वारा किया गया प्रत्येक कृत्य, यदि वह किसी व्यक्ति की पूर्वधारणा पर आधारित हो, वह विधायी प्राधिकार द्वारा समर्थित होना चाहिए।[61]

राष्ट्रपति आदेश द्वारा यह घोषणा कर सकता है कि आदेश में विदित मौलिक अधिकारों, अनुच्छेद 20 तथा 21 के अन्तर्गत वर्णित अधिकारों को छोड़कर, के प्रवर्तन के लिए किसी न्यायालय में जाने का अधिकार तथा उपरोक्त अधिकारों के प्रवर्तन हेतु न्यायालय में लम्बित सभी कार्यवाहियां उस अवधि तक के लिए, जब तक आपात स्थिति की उद्घोषणा लागू है, अथवा उस अल्प अवधि तक जो उक्त आदेश में विनिर्दिष्ट हो, स्थगित रहेंगी। इस प्रकार का आदेश पूरे देश अथवा भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग पर लागू होगा।

तथापि, जहां आपात की उद्घोषणा भारत के राज्य क्षेत्र के केवल उसी भाग में प्रवर्तन में है वहां किसी ऐसे आदेश का विस्तार भारत के राज्यक्षेत्र के किसी अन्य भाग पर तभी होगा जब राष्ट्रपति, यह समाधान हो जाने पर कि भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा, भारत के राज्य क्षेत्र के उस भाग में या उसके संबंध में, जिसमें आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, होने वाले क्रियाकलाप के कारण संकट में है, ऐसा विस्तार आवश्यक समझता है। प्रत्येक ऐसे आदेश किए जाने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र संसद की प्रत्येक सभा के समक्ष रखे जाने होते हैं।[62]

आपात स्थिति की उद्घोषणा जारी रहने के दौरान मूल अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए न्यायालय में समावेदन करने के निलम्बन के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती है।[63]

---

61. *बेनेट कॉलमैन एण्ड कं.लि. बनाम भारत संघ, ए.आई.आर.,* 1973 एस.सी. 106; *श्री मीनाक्षी मिल्स लि. बनाम भारत संघ, ए.आई.आर.* 1974 एस.सी. 366; *श्री लक्ष्मी टूअरिंग टाकीज बनाम कर्नाटक राज्य,* ए.आई.आर., 1975, *कर्नाटक* 37; *प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए. आई.आर.* 1975 *पंजाब और हरियाणा* 324 ।

62. अनुच्छेद 359 ।

    अनुच्छेद 352 व 359 तथा उपरोक्त आदेश और भारतीय प्रतिरक्षा अधिनियम, 1962 और उसके अन्तर्गत बनाए गए नियमों की वैधता के लिए *देखिए माखन सिंह तारासिक्का बनाम पंजाब राज्य के मामले में* उच्चतम न्यायालय का निर्णय *ए.आई.आर.* 1964 एस.सी.381 ।

    उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय को देखते हुए अनुच्छेद 359 के अन्तर्गत दिए गए निर्णय के प्रभाव के बारे में संदेह पैदा हुए। इन संदेहों को दूर करने के लिए एक विधेयक— संविधान (अठारहवां संशोधन) विधेयक, 1964, जिसमें अनुच्छेद 359 में एक नया खण्ड अंत:स्थापित किया गया था, लोक सभा में 24 अप्रैल, 1964 को पुर:स्थापित किया गया। तथापि सदस्यों द्वारा इसके पुर:स्थापना के समय इसकी आलोचना को ध्यान में रखते हुए, सरकार ने विधेयक पर आगे कोई कार्यवाही नहीं करने का निर्णय लिया—*लो.स.वा.वि.,* 28. 4.1964 ।

63. *के.के. मोदी बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1976, कलकत्ता 26 ।

जब संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त किन्हीं मौलिक अधिकारों, अनुच्छेद 20 और अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत उल्लिखित अधिकारों को छोड़कर, को प्रवर्तित कराने के लिए किसी न्यायालय को समावेदन करने के अधिकार को निलंबित करने का आदेश प्रवर्तन में है, तब उस भाग में उन अधिकारों को प्रदान करने वाली कोई बात राज्य को कोई विधि बनाने की या कोई कार्यपालिकीय कार्रवाई करने की शक्ति को, जिसे वह राज्य उस भाग में अंतर्विष्ट उपबंधों के अभाव में बनाने या करने के लिए सक्षम होता, निबंधित नहीं करेगी, किन्तु इस प्रकार बनाई गई कोई विधि, पूर्वोक्त आदेश के प्रवर्तन में न रहने पर, अक्षमता की मात्रा तक, उन बातों के सिवाय तुरन्त प्रभावहीन हो जाएगी, जिन्हें विधि के इस प्रकार प्रभावहीन होने के पहले किया गया या करने का लोप किया गया है।[64]

लोक सभा की अवधि को, जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, तब संसद विधि द्वारा ऐसी अवधि के लिए बढ़ा सकेगी जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं होगी और उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रह जाने के पश्चात् उसका विस्तार किसी भी दशा में छह मास की अवधि से अधिक नहीं होगा।[65]

पंजाब के सम्बन्ध में आपात स्थिति की उद्घोषणा

संविधान (उनसठवां संशोधन) अधिनियम, 1988 जो 30 मार्च, 1988 से प्रवृत्त हुआ, के द्वारा अनुच्छेद 359क को संविधान में अंतःस्थापित किया गया जिसमें पंजाब के सम्बन्ध में आपात स्थिति की उद्घोषणा जारी करने के विशेष उपबंध समाविष्ट किए गए। इस

---

64. अनुच्छेद 359 (1क) ।
65. अनुच्छेद 83 (2), परन्तुक ।

जब 3 दिसम्बर, 1971 और 25 जून, 1975 को जारी उद्घोषणाएं प्रवर्तन में थीं :

(i) पांचवीं लोक सभा की अवधि जो कि 18 मार्च, 1976 को समाप्त होनी थी, लोक सभा (कालावधि-विस्तारण) अधिनियम, 1976 के द्वारा कानून बनाकर एक वर्ष की अवधि के लिए बढ़ाई गई थी। लोक सभा (कालावधि-विस्तारण) संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा पांचवीं लोक सभा की अवधि एक और वर्ष की अवधि अर्थात्, 18 मार्च, 1977 तक बढ़ाई गई। तथापि, पांचवीं लोक सभा 18 जनवरी, 1977 को भंग कर दी गई थी।

(ii) केरल विधान सभा की अवधि, जो सामान्य कार्यकाल के दौरान, 21 अक्तूबर, 1975 को समाप्त होनी थी: केरल राज्य विधान सभा (कालावधि-विस्तारण) अधिनियम, 1975 के अन्तर्गत कानून बनाकर छह महीने की अवधि के लिए बढ़ाई गई। विधान सभा की अवधि केरल विधान सभा (कालावधि-विस्तारण) संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा कानून बनाकर और छह महीने की अवधि के लिए पुनः बढ़ाई गई। केरल विधान सभा (कालावधि-विस्तारण) दूसरा संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा विधान सभा की अवधि 22 अक्तूबर, 1976 से और छह महीने के लिए बढ़ाई गई। 22 मार्च, 1977 को विधान सभा भंग की गई और चुनावों के बाद निर्वाचित नई सभा का औपचारिक रूप से उसी दिन गठन किया गया।

अधिनियम के द्वारा राष्ट्रपति को पूरे पंजाब या इसके किसी भाग में आपात स्थिति की उद्घोषणा जारी करने की शक्ति प्रदान की गई, यदि पूरे पंजाब या इसके किसी भाग में आन्तरिक अशान्ति द्वारा भारत की एकता को खतरा होता है। अधिनियम के अन्तर्गत आपात स्थिति की उद्घोषणा के प्रवर्तन के दौरान, राष्ट्रपति को अनुच्छेद 20 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छोड़कर सभी मूल अधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति प्राप्त थी। इस उपबंध को अधिनियम के आरम्भ होने से दो वर्ष की अवधि तक प्रवृत्त रहना था। तथापि, इस अधिनियम का संविधान (तिरसठवां संशोधन) अधिनियम, 1989 के द्वारा निरसन किया गया जिसको 6 जनवरी, 1990 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई।

राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर उद्घोषणा

संघ का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक राज्य की सरकार का संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाया जाना सुनिश्चित करे।[66] यदि किसी राज्य के राज्यपाल से प्राप्त रिपोर्ट[67] के

---

66. अनुच्छेद 355 ।

    भारत शासन अधिनियम, 1935 के अंतर्गत गवर्नर जनरल को यह शक्ति प्राप्त थी कि संवैधानिक तंत्र की विफलता की स्थिति में वह अधिनियम की धारा 45 के अनुसार किसी केन्द्रीय निकाय अथवा प्राधिकार में निहित अथवा उसके द्वारा प्रयोक्तव्य समस्त शक्तियों अथवा उनमें से किसी शक्ति को अपने हाथ में ले ले। भारत (अंत:कालीन संविधान आदेश), 1947 के द्वारा इस धारा को अंगीकृत नहीं किया गया था। संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है और राष्ट्रपति को संघ में संवैधानिक तंत्र को निलम्बित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।

67. निम्नलिखित मामलों में न्यायालयों ने यह निर्णय दिया कि राज्यपाल का निर्णय और प्रतिवेदन वाद योग्य नहीं है (*विजयानन्द पटनायक बनाम भारत के राष्ट्रपति*, ए.आई.आर., 1974 उड़ीसा 52) और यह कि, यदि कार्यपालिका द्वारा शक्ति का दुरुपयोग किया गया हो अर्थात् शक्ति का प्रत्यक्षत: कदाशयता अथवा अप्रासंगिक विचारों के आधार पर प्रयोग किया गया हो, न्यायालय न्यूनतम न्यायिक पुनरीक्षा कर सकता है (*राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ, ए.आई. आर.* 1977 एस.सी. 1361)। तथापि, एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1931) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 (1) के अंतर्गत उद्घोषणा जारी करने की शक्ति का प्रयोग वाद योग्य है और कम से कम यह जांच करने की सीमा तक न्यायिक पुनरीक्षा के अध्यधीन है कि क्या उद्घोषणा जारी किए जाने से पूर्व की परिस्थितियों का समाधान कर लिया गया है अथवा नहीं। इस जांच में आवश्यक रूप से इस बात की संवीक्षा अंतर्ग्रस्त होगी कि क्या राष्ट्रपति के समाधान के लिए ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य मौजूद थे जिनसे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता था। यद्यपि ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों की पर्याप्तता अथवा अन्यथा पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता, परन्तु ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों के आधार पर लिए गए निर्णय की वैधता की निश्चित रूप से न्यायिक पुनरीक्षा की जा सकती है।

आधार पर, या अन्यथा[68] राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो वह उद्घोषणा द्वारा :—

उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य और राज्यपाल में या राज्य के विधानमंडल से भिन्न राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य सभी या कोई शक्ति अपने हाथ में ले सकेगा;

पुनः, उच्चतम न्यायालय ने *रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ* (ए.आई.आर 2006 एस.सी. 980) के मामले में यह निर्णय दिया कि न्यायालय, न्यायिक पुनरीक्षा के प्रयोग में, इस प्रश्न की जांच कर सकता है कि क्या राज्यपाल का प्रतिवेदन तथ्यों पर आधारित है अथवा नहीं और क्या तथ्यों का समुचित सत्यापन किया गया है अथवा नहीं।

68. 30 अप्रैल, 1977 को केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् की सलाह पर उप-राष्ट्रपति, जो कार्यवाहक राष्ट्रपति थे, ने संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत नौ उद्घोषणाओं पर हस्ताक्षर किए जिनके द्वारा बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल की विधान सभाओं को भंग किया गया और उन्हें नए चुनावों के पूरा होने तक राष्ट्रपति शासन के अधीन रखा गया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति ने स्वयं कार्यवाही की थी अर्थात् सम्बन्धित राज्यपालों के प्रतिवेदनों की प्रतीक्षा नहीं की गई।

इससे पहले, केन्द्र सरकार ने नौ राज्यों के मुख्यमंत्रियों को सुझाव दिया था कि वे राज्य विधानसभाओं को भंग करने के लिए अपने-अपने राज्यपालों को सलाह दें। यह सुझाव स्वीकार नहीं किया गया। इसकी बजाय कुछ राज्यों ने उच्चतम न्यायालय में मुकदमे और आदेश आवेदन पत्र दायर किए। तथापि उच्चतम न्यायालय ने हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया और 29 अप्रैल, 1977 को विधान सभा भंग करने के विरुद्ध दायर मुकदमों और आवेदन पत्रों को खारिज कर दिया।

17 फरवरी, 1980 को नौ राज्यों अर्थात् बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के संबंध में उन्हें राष्ट्रपति शासन के अधीन रखने की उद्घोषणाएं जारी की गई थीं।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के प्रतिवेदन प्राप्त होने के बारे में कोई उल्लेख नहीं था।

इसी प्रकार, 31 जनवरी, 1991 व 6 दिसम्बर, 1992 को तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश राज्यों के संबंध में राष्ट्रपति शासन के अधीन रखने की उद्घोषणाएं जारी की गई थीं और राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल का प्रतिवेदन प्राप्त होने के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया था।

उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त *रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ मामले* में यह निर्णय दिया कि यदि राष्ट्रपति के पास अनुच्छेद 356 द्वारा अभिप्रायित समाधान करने के लिए संगत तथ्य मौजूद हों तो राज्यपाल के प्रतिवेदन के बिना भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि उक्त राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है। "या अन्यथा" अभिव्यक्ति व्यापक महत्व की है।

यह घोषणा कर सकता है कि राज्य के विधानमंडल की शक्तियां संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोक्तव्य होंगी; और

राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी से संबंधित इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णतया या अंशतः निलम्बित करने के लिए उपबन्धों सहित ऐसे आनुषंगिक तथा परिणामी उपबन्ध कर सकता है जो उद्घोषणा के उद्देश्यों को प्रभावी करने के लिए राष्ट्रपति को आवश्यक या वांछनीय प्रतीत हों। (परन्तु इसके कारण राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि वह किसी उच्च न्यायालय में निहित या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य किसी शक्ति को अपने हाथ में ले ले या उच्च न्यायालयों से सम्बन्धित इस संविधान के किसी उपबन्ध के प्रवर्तन को पूर्णतः या भागतः निलम्बित कर दे।)[69]

ऐसी कोई उद्घोषणा किसी पश्चात्वर्ती उद्घोषणा द्वारा वापिस ली जा सकेगी या उसमें परिवर्तन किया जा सकता है जैसा कि आपात स्थिति की उद्घोषणा के सम्बन्ध में होता है।[70]

संविधान (अड़तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975, जिसके द्वारा अनुच्छेद 356 में खंड 5 अंत:स्थापित किया गया, में प्रावधान था:—

'संविधान में किसी बात के होते हुए भी, खंड(1) में उल्लिखित राष्ट्रपति का समाधान अंतिम व निर्णायक होगा और इसे किसी न्यायालय में किसी भी आधार पर चुनौती नहीं दी जाएगी।' तथापि, संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा खंड 5 को प्रतिस्थापित किया गया और यह प्रावधान किया गया कि किसी उद्घोषणा को प्रवृत्त रखने के संबंध में संकल्प संसद के किसी भी सदन द्वारा तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसे संकल्प को पारित करने के समय उद्घोषणा प्रवर्तन में न हो और निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित न कर दे कि इस तरह की निरंतरत, संबंधित राज्य की विधान सभा के साधारण निर्वाचन कराने में होने वाली कठिनाइयों के कारण आवश्यक है। विलोप से अभिप्रेत है कि खंड (1) में उल्लिखित राष्ट्रपति के समाधान की न्यायिक पुनरीक्षा अब सम्भव है।[71]

संविधान के अनुच्छेद 77 (1) के अन्तर्गत राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता को घोषित करने की राष्ट्रपति की शक्ति भारत सरकार की 'कार्यपालिकीय कार्यवाही' नहीं है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्रपति केबिनेट से बिल्कुल अलग होकर कार्य करता है। यह मंत्रिपरिषद का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति के कार्य-निष्पादन से संबंधित प्रत्येक मामले में उस को सहायता एवं सलाह दें।[72] और किसी राज्य के कृत्यों को स्वयं संभालने के

69. अनुच्छेद 356 (1)।

70. अनुच्छेद 356 (2)। 1951 तथा दिसम्बर 2013 के बीच 122 बार राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा की गई। विस्तृत जानकारी के लिए *देखिए* 'प्रेजीडेंट्स रूल इन द स्टेट्स एंड यूनियन टेरीटोरिज' लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2010 ।

71. एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ उपरि और रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1931 ।

72. *ए. श्रीरामुलु के मामले में,* ए.आई.आर. 1974, आन्ध्र प्रदेश 106 ।

लिए उद्घोषणा जारी करने में, राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सहायता एवं सलाह के आधार पर कार्य करने के लिए बाध्य होता है।[73]

अतः राष्ट्रपति की इस प्रकार, की उद्घोषणा जारी करने की शक्ति उसकी विवेक अनुसार निर्णय लेने की शक्ति नहीं होती; उसे मंत्रिपरिषद् के परामर्शों के अनुसार कार्य करना होता है जिसमें उसे यह समाधान हो कि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें किसी राज्य की सरकार संविधान में निहित प्रावधानों के अनुसार नहीं चल सकती।[74] इसके अतिरिक्त संविधान में ऐसा कोई भी प्रावधान नहीं है जो राष्ट्रपति को इस प्रकार की उद्घोषणा जारी करने से पहले संसद के सत्र के दौरान उससे परामर्श करने का व्यादेश दे।[75]

राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा में एक अभिव्यक्त प्रावधान यह हो सकता है कि सम्बद्ध राज्य की विधान सभा भंग कर दी गई है।[76] ऐसे मामलों में जहां सरकार बनाने की फिर भी कुछ संभावनाएं हों वहां विधान सभा को भंग नहीं किया जाता अपितु उसे 'निलम्बित अवस्था' में रखा जाता है।[77] यदि बाद में विधान सभा को भंग किया जाना आवश्यक समझा जाए तो राष्ट्रपति द्वारा पहली उद्घोषणा में परिवर्तन कर अन्य उद्घोषणा जारी की जाती है अथवा वह विधान सभा भंग करने का आदेश जारी कर सकता है।[78] उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के बाद, जिस राज्य की विधान सभा भंग की जाती है, वहां ताजा चुनाव कराए जाते हैं।

---

73. *विजयानन्द पटनायक बनाम भारत के राष्ट्रपति,* ए.आई.आर. 1974, उड़ीसा 52 ।
74. *ज्योतिर्मय बसु बनाम भारत संघ, ए.आई.आर.* 1971 कलकत्ता 122 ।
75. *लो.स.वा.वि.,* 24.3.1965, पृ. 2286-89 ।
76. एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ, उपरि के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी भी स्थिति में राष्ट्रपति विधान सभा भंग करने की राज्यपाल की शक्ति का प्रयोग तब तक नहीं करेगा जब तक संसद के दोनों सदनों ने कम से कम उसके द्वारा अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अंतर्गत जारी उद्घोषणा का अनुमोदन न कर दिया हो। संसद द्वारा उपरोक्त अनुच्छेद के खंड (3) के अंतर्गत उद्घोषणा के अनुमोदन के पूर्व विधान सभा का विघटन अनिवार्यतः अविधिमान्य माना जाएगा।
77. *लो.स.वा.वि.,* 31.8.1966, पृ. 163 ।

    उड़ीसा (11.1.1971 और 23.3.1971 को), आन्ध्र प्रदेश (18.1.1973 को), उत्तर प्रदेश (13.6.1973 को), गुजरात (9.2.1974 को), नागालैंड (22.3.1975 को), उत्तर प्रदेश (30.11.1975 को), गुजरात (12.3.1976 को), मणिपुर (16.5.1977 को) केरल (21.10. 1981 को) तथा झारखंड (18.1.2013)।
78. उदाहरण के लिए, 15 अप्रैल, 1968 को राष्ट्रपति ने उत्तर प्रदेश के संबंध में 25 फरवरी, 1968 की उद्घोषणा, जिसमें विधान सभा भंग किए जाने का प्रावधान नहीं था, में परिवर्तन कर एक उद्घोषणा की।

यदि किसी राज्य की विधान सभा, जिसे चुनाव आयोग द्वारा जारी अधिसूचना द्वारा विधिवत् गठित किया गया हो, उसे सभा की बैठक बुलाए जाने से पहले ही भंग कर दिया जाए तो उसमें कुछ भी असंवैधानिक नहीं है।[79]

कई बार राज्यपाल ने सम्बद्ध राज्य की विधान सभा को, राष्ट्रपति को इस संबंध में अपनी रिपोर्ट देने से पूर्व ही कि राज्य सरकार संविधान में निहित प्रावधानों के अनुरूप चलाए जाने में असमर्थ है, भंग कर दिया।[80]

राष्ट्रपति द्वारा जारी प्रत्येक उद्घोषणा को संसद की प्रत्येक सभा के समक्ष रखना होता है।[81] किसी उद्घोषणा को सभा पटल पर रखते समय सरकार के लिए यह अनिवार्य नहीं होता

मैसूर राज्य के मामले में, राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 174(2)(ख) के अंतर्गत दिनांक 27 मार्च, 1971 के साथ पढ़ी जाने वाली उद्घोषणा के अनुसार 14.4.1971 को विधान सभा भंग करते हुए एक आदेश जारी किया।

23 जनवरी, 1971 को राष्ट्रपति ने एक उद्घोषणा जारी करते हुए उड़ीसा विधान सभा को भंग किया जिसे 11 जनवरी, 1971 को जारी उद्घोषणा द्वारा निलम्बित अवस्था में रखा गया था। गुजरात विधान सभा जिसे 9 फरवरी, 1974 को जारी राष्ट्रपति की उद्घोषणा द्वारा निलम्बित अवस्था में रखा गया था, को 15 मार्च, 1974 को भंग किया गया। नागालैंड के संबंध में राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 174(2)(ख) के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, जिसे अनुच्छेद 356 के अंतर्गत जारी 22 मार्च, 1975 की उद्घोषणा के साथ पढ़ा जाए, नागालैंड विधान सभा को भंग किया। उसी प्रकार, पंजाब विधान सभा को, जिसे दिनांक 11 मई, 1987 को जारी उद्घोषणा द्वारा निलम्बित अवस्था में रखा गया था, राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 174(2)(ख), के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, जिसे 11 मई, 1987 को उद्घोषणा के साथ पढ़ा जाए, 6 मार्च, 1988 को भंग किया।

79. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 9 "संसद के सदनों को आहूत करना तथा सत्रावसान और लोक सभा का विघटन"

80. 4 अगस्त, 1970 को राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषणा जारी करने से पूर्व, केरल के राज्यपाल ने राज्य सरकार के समस्त कार्यों को अपने हाथ में लेते हुए अनुच्छेद 174(2)(ख) के अंतर्गत 26 जून, 1970 को विधान सभा भंग करने की एक अधिसूचना जारी की।

13 जून, 1971 को पंजाब के राज्यपाल ने विधान सभा भंग करते हुए एक आदेश जारी किया। बाद में 15 जून को उस राज्य की सरकार के समस्त कार्य अपने हाथ में लेते हुए राष्ट्रपति ने एक उद्घोषणा जारी की।

पश्चिम बंगाल के मामले में, 25 जून, 1971 को अनुच्छेद 174(2)(ख) के अंतर्गत राज्यपाल के आदेश द्वारा विधान सभा के भंग किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा 29 जून, 1971 को उद्घोषणा जारी की गई ।

केरल के मामले में भी, राज्यपाल द्वारा 30 नवम्बर, 1979 को विधान सभा भंग किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा 5 दिसम्बर, 1979 को उद्घोषणा जारी की गई।

81. अनुच्छेद 356 (3)।

कि वह सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल की रिपोर्ट की प्रति भी पटल पर रखे, जिन मामलों में राष्ट्रपति ने ऐसी रिपोर्ट पर कार्यवाही की हो।[82] तथापि, सामान्यत: राज्यपाल की रिपोर्ट का सारांश अथवा राज्यपाल की विस्तृत रिपोर्ट सभा पटल पर रखी गई है।

किसी उद्घोषणा की अवधि, यदि उसका पहले राष्ट्रपति द्वारा प्रतिसंहरण न किया गया हो, दो महीने होती है।[83] ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके अंतर्गत संसद इसकी अवधि कम कर दे।[84] यदि उद्घोषणा को दो महीने से अधिक जारी रखना है तो यह तभी संभव है, जब संसद के दोनों सदन इसे साधारण बहुमत द्वारा संकल्प पारित करके स्वीकृति दें।[85]

ऐसा माना गया है कि राष्ट्रपति की उद्घोषणा को अनुमोदित करने वाले संकल्प में संशोधन लागू नहीं होगा, यदि वह संशोधन नकारात्मक हो[86] अथवा संकल्प के क्षेत्र से बाहर हो[87] अथवा संकल्प के विषय के विपरीत हो।[88] कोई ऐसा संशोधन, जो उद्घोषणा को सशर्त स्वीकृति प्रदान करता हो वह भी अस्वीकार्य है।[89]

सभा किसी संकल्प को, जो उद्घोषणा का अनुमोदन करता हो, स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है। सभा के समक्ष संकल्प कोई अन्य रूप नहीं ले सकता। अत: इस प्रकार के संकल्प पर कोई संशोधन अथवा प्रतिस्थापन प्रस्ताव भी नहीं लाए जा सकते।[90] उद्घोषणा का निरनुमोदन करने वाला संकल्प अग्राह्य है, चूंकि अनुच्छेद 356 के अंतर्गत ऐसे किसी संकल्प के लिए प्रावधान नहीं है।

---

82. *पूर्वोक्त* ।

83. *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1959 कॉ. 122-131; 7.8.1959, का. 1196-1227; 17.8.1959, कॉ 2820 । जैसे ही राष्ट्रपति अनुच्छेद 356(1) के अंतर्गत उद्घोषणा जारी करता है, लोक सभा सचिवालय लिखित रूप से इसकी एक प्रति की मांग करता है और गृह मंत्रालय उसे उस तिथि को अभिनिश्चित करता है जब उद्घोषणा को सभा पटल पर रखा जाना है। प्रति प्राप्त होने के पश्चात् सचिवालय द्वारा इसे सभा पटल पर रखे जाने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाती है। उद्घोषणा सभा पटल पर रख दिए जाने के बाद, संसदीय कार्य मंत्रालय से वह तिथि अभिनिश्चित की जाती है जब उद्घोषणा के अनुमोदन के लिए एक संकल्प को सभा के समक्ष लाया जाएगा — विस्तृत प्रक्रिया के लिए *देखें,* अनुदेशात्मक आदेश सं. 1282, 18.8.2008, एल.बी. एल.एस.एस ।

84. *पूर्वोक्त,* 17.8.1959, पृ. 1502; 31.8.1956, पृ. 1665-66 ।

85. *पूर्वोक्त,* 20.8.1959, पृ. 1732; 19.11.1954, कॉ. 280-334 ।

86. *लो.स.वा.वि.,* 12.3.1953, कॉ. 1485; *लो.स.वा.वि.,* 29.3.1956, पृ. 1605; 6.5.1965, पृ. 5264-88 ।

87. *पी. डिबेट्स,* (II) 9.8.1951, कॉ. 197; *लो.स.वा.वि.,* 17.8.1956, कॉ. 2849-51 ।

88. *लो.स.वा.वि.,* 31.8.1956, पृ. 1665-66; 6.5.1965, पृ. 5264-88 ।

89. *पूर्वोक्त,* 31.8.1956, पृ. 1665-66 ।

90. *लो.स.वा.वि.,* 6.5.1965, पृ. 5264-88 ।

संसद की दोनों सभाओं द्वारा अनुमोदित कोई उद्घोषणा, जब तक उसका प्रतिसंहरण न हो, उद्घोषणा जारी करने की तिथि से छः महीने की अवधि की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहती। तथापि, यदि और प्राय: संसद की दोनों सभाओं द्वारा उद्घोषणा अनुमोदित करने का संकल्प पारित किया जाता है, जब तक उस उद्घोषणा का प्रतिसंहरण नहीं किया जाता, अगले छह महीने की अवधि के लिए, उस तिथि से जब से यह सामान्यत: अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहती, प्रभावी रहती है किन्तु किसी भी स्थिति में ऐसी उद्घोषणा तीन वर्ष से अधिक प्रभावशील नहीं रह सकती। तथापि, पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर राज्यों के संबंध में इसे तीन वर्ष से आगे बढ़ा दिया गया था।[91] यदि लोक सभा का विघटन छः मास की ऐसी अवधि के दौरान हो जाता है और ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया जाता है, तो उद्घोषणा उस तारीख से, जिसको लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहती यदि उक्त तीस दिन की अवधि समाप्ति से पहले, उद्घोषणा को प्रवृत बनाए रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा भी पारित नहीं कर दिया जाता।[92]

वह संकल्प, जिसके लिए कोई सदस्य उद्घोषणा को अगले छह महीनों तक जारी रखने के निरनुमोदन की सूचना देता है, अग्राह्य है।

जहां उद्घोषणा द्वारा यह घोषणा की जाती है कि राज्य के विधानमंडल की शक्तियां संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन प्रयोक्तव्य होंगी, वहां:

राज्य के विधानमंडल की विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान करने की और इस प्रकार प्रदत्त शक्ति का किसी अन्य प्राधिकारी को, जिसे राष्ट्रपति इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, ऐसी शर्तों के अधीन, जिन्हें राष्ट्रपति को अधिरोपित करना ठीक समझे, प्रत्यायोजन करने के लिए राष्ट्रपति को प्राधिकृत करने की संसद को क्षमता होगी।

---

91. पंजाब राज्य के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा 11 मई, 1987 को जारी उद्घोषणा में तीन वर्ष की अवधि को संविधान (सड़सठवां संशोधन) अधिनियम, 1990 तथा संविधान (अड़सठवां संशोधन) अधिनियम, 1991, द्वारा संविधान में दो आनुक्रमिक संशोधन करते हुए क्रमश: चार वर्ष तथा पांच वर्ष कर लिया गया। यह उद्घोषणा 25 फरवरी, 1992 तक प्रभावी रही, जब विधान सभा चुनावों के बाद लोकप्रिय सरकार बनने के उपरांत इसका प्रतिसंहरण हुआ।

    जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा 18 जुलाई, 1990 को जारी उद्घोषणा के संबंध में राष्ट्रपति की अधिसूचनाओं द्वारा संविधान (जम्मू-कश्मीर के लिए लागू) आदेश, 1954 में चार आनुक्रमिक संशोधन करते हुए तीन वर्ष की अवधि को क्रमश: चार वर्ष, पांच वर्ष, छह वर्ष एवं सात वर्ष किया गया। यह उद्घोषणा 9 अगस्त, 1996 तक प्रभावी रही, जब विधान सभा चुनावों के बाद लोकप्रिय सरकार बनने के उपरांत उसका प्रतिसंहरण हुआ।

92. अनुच्छेद 356 (4) *लो.स.वा.वि.,* 31.8.1956 कॉ. 5046, 1.9.1956, कॉ. 5211 ।

संघ या उसके अधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्तियां प्रदान करने या उन पर कर्त्तव्य अधिरोपित करने के लिए अथवा शक्तियों का प्रदान किया जाना या कर्तव्यों का अधिरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिए, विधि बनाने की संसद को अथवा राष्ट्रपति को या ऐसे अन्य प्राधिकारी को, जिसमें ऐसी विधि बनाने की शक्ति निहित है, क्षमता होगी ।

जब लोक सभा सत्र में नहीं है तब राज्य की संचित निधि में से व्यय के लिए, संसद की मंजूरी लंबित रहने तक ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति को क्षमता होगी।[93]

संसद की दोनों सभाओं द्वारा किसी उद्घोषणा के अनुमोदन के बाद एक अधिनियम बनाया जाता है जिसके माध्यम से राष्ट्रपति को कुछ शक्तियां दी जाती हैं, जिनमें सम्बद्ध राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति भी शामिल है। राष्ट्रपति को शक्तियों का प्रत्यायोजन करने वाले अधिनियम में यह भी व्यवस्था की जाती है कि वह उस राज्य के लिये कोई भी कानून बनाने से पहले, जब भी ऐसा करना व्यावहारिक समझे, इस उद्देश्य के लिए बनायी गयी संसदीय समिति से परामर्श करे। ऐसी समिति में लोक सभा तथा राज्य सभा के वे सभी सदस्य होंगे, जो कि उस समय दोनों सभाओं में राज्य के लिए नियत स्थानों पर राज्य का प्रतिनिधित्व करते हों। ऐसे कानून राष्ट्रपति के अधिनियम कहलाते हैं और इन्हें संसद की दोनों सभाओं के समक्ष रखना आवश्यक है और संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह इनके सभा पटल पर रखे जाने के तीस दिन के भीतर इनमें संशोधन कर सकती है।[94]

राज्य के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्प और उस राज्य के विधानमंडल की शक्तियों के प्रत्यायोजन के लिये विधेयक पर विचार करने हेतु प्रस्ताव पर संयुक्त चर्चा की जा सकती है।[95] अथवा ऐसे संकल्प और सन्दर्भाधीन राज्य

---

93. अनुच्छेद 357 (1) ।

94. राष्ट्रपति के अधिनियम को सभा पटल पर रखना आवश्यक है चाहे इस बीच उद्घोषणा का प्रतिसंहरण कर दिया गया हो। राष्ट्रपति के एक अधिनियम, अर्थात् पंजाब राज्य सुरक्षा अधिनियम, 1951 के संबंध में अन्तःकालीन संसद ने इस अधिनियम में संशोधन करने के लिये एक संकल्प स्वीकार किया—*देखिए पी. डिबेट्स* (II), 28.9.1951, कॉ. 3748 । बाद में इन संशोधनों को उस अधिनियम में शामिल कर दिया गया। दूसरे मामले अर्थात् केरल विश्वविद्यालय (संशोधन) अधिनियम, 1966 के संबंध में, लोक सभा ने इस अधिनियम में संशोधन करने के लिए 12 अप्रैल, 1966 को एक संकल्प स्वीकार किया, राज्य सभा ने 12 मई, 1966 को इस प्रस्ताव पर अपनी सहमति दी। राज्य सभा में संदेश प्राप्त होने के पश्चात् संकल्प की एक प्रति आवश्यक कार्यवाही करने हेतु सम्बन्धित मंत्रालय को भेजी गई: *लो.स.वा.वि.*, 12.4.1966, कॉ. 10626-655, *रा.स.वा.वि.*, 12.5.1966, कॉ. 1261-73 ।

95. उदाहरणार्थ *देखिए* केरल राज्य के संबंध में *लो.स.वा.वि.*, 6.5.1965, पृ. 5264-65; 7.5.1965, पृ. 5389-90; पश्चिम बंगाल राज्य के सम्बन्ध में *लो.स.वा.वि.*, 21.3.1968, पृ. 987-98; 22.3.1968, पृ. 1159-65; उत्तर प्रदेश राज्य के सम्बन्ध में *लो.स.वा.वि.*, 25.3.1968, पृ. 1351-62; पंजाब राज्य के सम्बन्ध में *लो.स.वा.वि.*, 29.8.1968, पृ. 182-97; बिहार राज्य के संबंध में *लो.स.वा.वि.*, 20.8.1969, कॉ. 127-73 ।

के बजट पर भी संयुक्त चर्चा की जा सकती है।[96] दूसरे मामले में, संयुक्त चर्चा करने के पश्चात् संकल्प मतदान के लिए रखा जाता है और इसे स्वीकार करने के पश्चात् अनुदान की मांगों का निपटान किया जाता है।[97] उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्प और नियम 189 के अंतर्गत स्वीकृत प्रस्ताव पर संयुक्त चर्चा भी की गई है।

हरियाणा राज्य के संबंध में उद्घोषणा जारी करने की सिफारिश करने वाली राज्यपाल की रिपोर्ट को अस्वीकृत न करने के सम्बन्ध में एक सदस्य द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव और राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले सांविधिक संकल्प पर 21 नवम्बर, 1967 को संयुक्त चर्चा की गई।

पहले सदस्य द्वारा प्रस्ताव और तत्पश्चात् गृह मंत्री द्वारा संकल्प पेश किया गया। संयुक्त चर्चा के पश्चात् प्रस्ताव और संकल्प को उसी क्रम में सभा में मतदान के लिए रखा गया।[98]

अब तक जो उद्घोषणाएं जारी की गयी हैं, उनमें यह घोषणा की गयी है कि राज्य के विधानमंडल की शक्तियों का प्रयोग संसद द्वारा अथवा उसके प्राधिकार के अंतर्गत होगा। इस उद्घोषणा के कारण—

संसद ने अनुदानों को स्वीकार किया[99] और सम्बद्ध राज्यों की संचित निधि में से धनराशियां निकालने के लिये विनियोग विधेयक पारित किये, और

---

96. जम्मू और कश्मीर बजट (1992-93) पर चर्चा राष्ट्रपति द्वारा 18 जुलाई, 1990 को जारी उद्घोषणा को 3 सितम्बर 1992 से प्रभावी अगले और छह महीने की अवधि तक बढ़ाने के लिए अनुमोदन प्राप्त करने वाले संकल्प के साथ की गई। *लो.स.वा.वि.,* 11.8.1992, कॉ. 496-522; 523-50 ।

    जम्मू और कश्मीर बजट (1994-95) पर चर्चा राष्ट्रपति द्वारा 18 जुलाई 1990 को जारी उद्घोषणा को 3 सितम्बर 1994 से प्रभावी अगले और छह महीने की अवधि तक बढ़ाने के लिए अनुमोदन प्राप्त करने वाले संकल्प के साथ की गई। *लो.स.वा.वि.,* 9.8.1994, कॉ. 511-78 ।

97. *लो.स.वा.वि.,* 30.3.1970; पृ. 189; 20.8.1970, पृ. 152-74; 21.8.1970, पृ. 161-70; 25.8.1970 पृ. 157-94 और 25.3.1985 पृ. 309-26; और 26.3.1985, पृ. 198-272 ।

98. *पूर्वोक्त,* 21.11.1967, पृ. 873-74; 18.4.1968, पृ. 773-97 ।

99. जब पांडिचेरी के बजट के संबंध में चर्चा आरंभ की गई तो एक सदस्य ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया कि केन्द्रीय बजट प्रस्तुत किये जाने और भारत की संचित निधि को संचालित किये जाने से पहले भारत सरकार से प्राप्त अनुदान सहायता और ऋण से घाटा पूरा करना वित्तीय रूप से अनुचित और अनियमित होगा। अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की कि इसमें कुछ भी गैर-कानूनी अथवा अनुचित नहीं है और किसी भी कानून का उल्लंघन नहीं है—*लो.स.वा.वि.* 11.3.1976, पृ. 92 ।

जिन पत्रों को किसी सांविधिक बाध्यता के अनुसार राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाना आवश्यक है, वे उसकी बजाए संसद के समक्ष रखे गये।[100]

राज्य के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा के अनुसार सभा को प्रस्तुत किया गया उस राज्य का बजट व्यपगत नहीं होता और यदि इस उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के तत्काल पश्चात् उस राज्य के संबंध में नई उद्घोषणा जारी कर दी जाये,[101] तो उस पर आगे चर्चा की जा सकती है।

राज्य के विधानमंडल की शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद अथवा राष्ट्रपति अथवा अन्य प्राधिकारी द्वारा निर्मित कोई भी विधि, जिसे अनुच्छेद 356 के अधीन की गई उद्घोषणा के अभाव में संसद या राष्ट्रपति अथवा ऐसा अन्य प्राधिकारी बनाने के लिए सक्षम नहीं होता, उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् तब तक लागू रहेगी, जब तक कि सक्षम विधानमंडल अथवा अन्य प्राधिकारी द्वारा उसे परिवर्तित अथवा निरस्त अथवा संशोधित न कर दिया जाये।[102]

वित्तीय आपात स्थिति की उद्घोषणा

यदि राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत अथवा उसके किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व या प्रत्यय संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा वित्तीय आपात की घोषणा कर सकेगा।[103] इस प्रकार जारी की गई उद्घोषणा को संसद की प्रत्येक सभा के समक्ष रखा जायेगा और वह पश्चात्वर्ती उद्घोषणा द्वारा वापस ली जा सकेगी अथवा परिवर्तित की जा सकेगी। यह उद्घोषणा दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी, यदि इस अवधि की समाप्ति से पहले संसद की दोनों सभाओं के संकल्पों द्वारा इसे अनुमोदित

---

100. *लो.स.वा.वि.,* 5.4.1961 पृ. 4420; *लो.स.वा.वि.,* 18.4.1961, कॉ. 11248; *लो.स.वा.वि.,* 26.4.1961, पृ. 6311-12; 2.5.1961, पृ. 6743 और 5.5.1961, पृ. 7149 ।

101. उपरोक्त, 26.3.1965, पृ. 2470-87 ।

102. अनुच्छेद 357(2) ।

103. अनुच्छेद 360 (1) संविधान में वित्तीय आपातकाल से संबंधित उपबन्धों को शामिल करने के कारणों को बताते हुए डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने टिप्पणी की थी: "इस देश की वर्तमान आर्थिक तथा वित्तीय स्थिति को देखते हुए इस सभा में मुश्किल से ही कोई ऐसा सदस्य होगा जो ऐसे उपबन्ध की आवश्यकता पर आपत्ति करे जो इस नये अनुच्छेद 280क में रखा गया है और इसलिये इस अनुच्छेद को हमारे संविधान के मसौदे में रखने का औचित्य बताने पर मैं अधिक समय खर्च करना नहीं चाहता। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूँ कि यह अनुच्छेद लगभग उसी अधिनियम के आधार पर बनाया गया है जो संयुक्त राज्य अमरीका में 1930 में या उस समय के लगभग पारित हुआ था और जिसे राष्ट्रीय रिकवरी अधिनियम कहते हैं जिससे राष्ट्रपति को आर्थिक तथा वित्तीय दोनों प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये ऐसे ही उपबंध बनाने की शक्ति दी गई थी, जब कि महान आर्थिक संकट के कारण अमरीकी लोगों पर वे कठिनाइयां आ पड़ीं थीं। उदाहरण के लिये, हमने संविधान में ऐसा उपबंध रखना आवश्यक क्यों समझा इसका कारण यह है कि हमें पता है कि अमरीका के संविधान के अधीन उस विधान को जो पारित किया गया, थोड़े समय बाद ही उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई और उच्चतम न्यायालय ने समूचे विधान को असंवैधानिक घोषित कर दिया जिसका

न कर दिया गया हो। संसद द्वारा अनुमोदित उद्घोषणा तब तक लागू रहेगी जब तक कि उसे राष्ट्रपति द्वारा वापस नहीं ले लिया जाये।[104] तथापि, पहले से ही लागू वित्तीय आपात की उद्घोषणा को वापस लेने अथवा परिवर्तित करने हेतु राष्ट्रपति द्वारा बाद में जारी की गई उद्घोषणा को संविधान के अन्तर्गत संसद की प्रत्येक सभा के समक्ष रखना आवश्यक नहीं है।

उस अवधि के दौरान, जब ऐसी उद्घोषणा प्रवृत्त हो, संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को वित्तीय औचित्य संबंधी ऐसे सिद्धांतों का पालन करने के लिए निदेश देने तक, जो निदेशों में विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसे अन्य निदेश देने तक होगा जिन्हें राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिए देना आवश्यक और पर्याप्त समझे।

ऐसे किसी निदेश के अंतर्गत, किसी राज्य से यह कहा जा सकता है कि वह राज्य के कार्यकलाप के संबंध में सेवा करने वाले सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों के वेतनों और भत्तों में कमी कर दे।

राज्य विधान मंडल द्वारा पारित किए गए सभी धन अथवा वित्तीय विधेयकों के बारे में यह अपेक्षित है कि वे राष्ट्रपति द्वारा विचार के लिए आरक्षित रखे जाएं।

राष्ट्रपति, ऐसी वित्तीय आपात स्थिति के दौरान, संघ के कार्यकलाप के संबंध में सेवा करने वाले सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों के, जिनके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश हैं, वेतन और भत्तों में कमी करने के लिए निदेश देने के लिए भी सक्षम होगा।[105]

परिणाम यह है कि उच्चतम न्यायालय की घोषणा के पश्चात्, राष्ट्रपति वह कार्य नहीं कर सकता जो वह राष्ट्रीय रिकवरी अधिनियम के उपबंधों के अधीन करना चाहता था। यदि हमारे राष्ट्रपति को ऐसे ही वित्तीय तथा आर्थिक आपात का सामना करना पड़ जाए तो शायद ऐसी ही कठिनाई उसके सामने भी आ सकती है। उस कठिनाई को रोकने के लिये ही हमने सोचा कि संविधान में ही स्पष्ट उपबंध रख देना अधिक अच्छा होगा और यही कारण है कि यह अनुच्छेद पेश किया गया है।" संविधान सभा, वा.वि. खंड X पृष्ठ 3292-95 ।

अनुच्छेद 360 के उपबंध, संविधान (जम्मू-कश्मीर आदेश को लागू होना) 1954 के खण्ड 2 के उपखण्ड (13) के परिप्रेक्ष्य में जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होंगे।

परन्तु अभी तक ऐसा कोई अवसर नहीं आया है जबकि इस अनुच्छेद के अन्तर्गत आपात संबंधी उपबंधों का प्रयोग करना पड़ा हो।

संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 के अधिनियमित किये जाने से पहले, आपात की उदघोषणा पर लागू प्रतिसंहरण, अवधि आदि के संबंध में उपबन्धों को वित्तीय आपात की उद्घोषणा पर लागू किया गया था। [प्रतिस्थापन से पहले अनुच्छेद 360(2)] । इसके अलावा, वित्तीय आपात की घोषणा के बारे में राष्ट्रपति का समाधान होना अन्तिम और निर्णायक था। लोप होने से पहले [अनुच्छेद 360(5)] न्यायालयों को वित्तीय आपात की उद्घोषणा जारी करने अथवा उसे जारी रखने की वैधता के सम्बन्ध में किसी भी आधार पर कोई आपत्ति सुनने का कोई अधिकार नहीं था। (उक्त अधिनियम की धारा 42 के अंतर्गत अनुच्छेद 360 के खण्ड 2 को नये खण्ड द्वारा प्रतिस्थापित किया गया और खण्ड 5 का लोप किया गया)।

104. अनुच्छेद 360(2) ।

105. अनुच्छेद 360(4) ।

अध्याय 24

अधीनस्थ विधान

'अधीनस्थ विधान' शब्दावली का अर्थ विधानमंडल के किसी अधीनस्थ निकाय द्वारा कानूनी लिखत बनाना है और वह निकाय यह कार्य विधानमंडल द्वारा विनिर्दिष्ट सीमाओं के भीतर प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए करता है। यह शब्दावली स्वयं भी कानूनी लिखत का अर्थ सूचित करती है और उसे समाविष्ट करती है।

विधान या तो सर्वोच्च होता है या अधीनस्थ। सर्वोच्च विधान वह है, जो राज्य में सर्वोच्च अथवा प्रभुतासम्पन्न शक्ति द्वारा बनाया जाता है और इसलिए इसे किसी अन्य विधायी प्राधिकारी द्वारा निरस्त, रद्द अथवा नियंत्रित नहीं किया जा सकता। अधीनस्थ विधान वह है जो प्रभुत्तासम्पन्न शक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य प्राधिकार द्वारा बनाया जाता है और इसलिए यह अपनी विद्यमानता और वैधता बनाए रखने के लिए किसी सर्वोच्च प्राधिकार पर निर्भर होता है। इसका उद्देश्य सर्वोच्च विधायी निकाय के अधिनियमों के प्रवर्तन के लिए आवश्यक विस्तृत नियम विहित करके उन्हें पूर्णता प्रदान करना है।[1]

जब कोई विधायी निकाय किसी अधिनियम को पारित करता है, तो वह अपने विधायी कृत्य का निष्पादन करता है। विधायी नीति का निर्धारण और संचालन नियम के रूप में उसका निरूपण इस प्रकार के कृत्य के अनिवार्य तत्त्व हैं। ये अनिवार्य तत्व विधानमंडल की ही विशेषताएं होती हैं। विधानमंडल द्वारा किसी कानून के बनाए जाने के बाद यह स्पष्ट है कि उस कानून को कार्यरूप देने के लिए इसका पूरा ब्यौरा तैयार करने तथा उसे प्रवर्तन और प्रभाव में लाने हेतु इसके कार्य को स्वयं विधानमंडल द्वारा किया जा सकता है अथवा यह कार्य किसी अधीनस्थ एजेंसी अथवा कार्यकारी अधिकारी पर छोड़ा जा सकता है। यद्यपि इसे कभी-कभी अस्पष्टत: विधायी शक्ति का 'प्रत्यायोजन' कहा गया है, परन्तु वास्तव में यह विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन से अलग है जिसका अर्थ है, विधायी नीति का निर्धारण और संचालन नियम के रूप में उसका निरूपण।[2] 'प्रत्यायोजित विधान' और 'विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन' शब्दावली का अर्थ स्पष्ट करते हुए न्यायाधीश फजल अली ने *दिल्ली विधि* अधिनियम मामले में यह टिप्पणी की:—

> ...."प्रत्यायोजित विधान" और "विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन" शब्दावली का प्रयोग कभी-कभी सामान्य अर्थ में और कभी-कभी सुनिश्चित अर्थ में किया जाता है। सामान्य अथवा प्रचलित अर्थ में इस शब्दावली का प्रयोग तथाकथित प्रत्यायोजित विधान से संबंधित विभिन्न पुस्तकों अथवा रिपोर्टों में किया गया है.... इसमें कोई संशय नहीं है कि यदि विधानमंडल अपने कृत्यों का पूर्णतया परित्याग कर देता है और अपनी संपूर्ण शक्ति अंतरित करके एक समानान्तर विधानमंडल का गठन करता है तो यह निस्संदेह

---

1. जॉन सेटमोंड : *जूरिसप्रुडेंस,* नौवां संस्करण, लंदन, स्वीट एण्ड मेक्सवैल लि., 1937, पृ. 210 । साथ ही *देखिए*-ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, आठवां संस्करण, पृ. 918 ।
2. *कानिया, सी जे: दिल्ली विधि अधिनियम के संबंध में,* ए.आई.आर. 1951 एस.सी. 332(338)।

> अपनी शक्ति के प्रत्यायोजन का वास्तविक उदाहरण होगा। दूसरे शब्दों में, यदि अपने संपूर्ण दायित्वों सहित विधायी शक्ति का अंतरण दूसरे प्राधिकारी को किया जाता है तो यह सुनिश्चित अर्थ में शक्ति का प्रत्यायोजन होगा।[3]

कल्याणकारी राज्य की आधुनिक संकल्पना में सरकार का कार्यकलाप मानव जीवन के हर क्षेत्र तक पहुंच गया है और इस प्रकार निरन्तर बढ़ रहे इस कार्यकलाप को विनियमित करने के लिए नाना प्रकार के कानून बनाने की आवश्यकता पड़ती है। विधानमंडल के पास इतना समय नहीं होता कि वह अधिनियमित कानून के कार्यान्वयन हेतु अपेक्षित सभी विनियामक उपायों पर विचार कर सके, उन पर चर्चा कर सके और उनका अनुमोदन कर सके। इसके अतिरिक्त, कानून बनाने की प्रक्रिया अब बहुत जटिल और तकनीकी स्वरूप की बन गई है, और कानून की सभी तकनीकी बारीकियों का बिल्कुल ठीक होना आवश्यक है।

इस परिस्थिति में, विधानमंडल यही करता है और कर सकता है कि जो भी कानून उसके सामने आये वह उसके संबंध में नीति और उद्देश्य निर्धारित कर दे और यह काम कार्यपालिका पर छोड़ दे कि वह उन सिद्धांतों के अनुसार उस कानून का औपचारिक तथा प्रक्रिया संबंधी ब्यौरा 'आदेशों' के रूप में तैयार करे।[4]

अधीनस्थ विधान की आवश्यकता पर जोर देते हुए उच्चतम न्यायालय ने *ग्वालियर रेयॉन मिल्स मैन्युफैक्चरिंग (वीविंग) कम्पनी लि. बनाम सहायक बिक्री कर आयुक्त मामले में यह* टिप्पणी की:

> "विधानमंडल द्वारा पारित अधिकांश आधुनिक सामाजिक-आर्थिक विधान मार्गदर्शक सिद्धांत और विधायी नीति निर्धारित करते हैं। विधानमंडलों के पास समय की कमी के कारण मामलों की बारीकियों में जाने का समय नहीं होता। अत: प्रत्यायोजित विधान के लिए उपबंध किया गया है जिससे इनमें लचीलापन और सुनम्यता लायी जा सके, इनको शीघ्रता से निपटाया जा सके और इनमें प्रयोग करने का अवसर मिल सके। कार्यपालिका को विहित क्षेत्र के भीतर अधीनस्थ विधान बनाने की शक्ति प्रदान करने की प्रक्रिया आधुनिक कल्याणकारी राज्य की वास्तविक अनिवार्यता और व्यावहारिक आवश्यकताओं के कारण उत्पन्न हुई है।"[5]

प्रत्यायोजन की यह शक्ति संपूर्ण रूप से विधायी शक्ति का संघटक तत्व है।[6] जहां विधानमंडल संविधि के प्रभावी उपबंधों में अधिनियमन की नीति और प्रयोजन का उल्लेख

---

3. *पूर्वोक्त* (355) ।
4. इस प्रयोजन के लिए 'आदेश' का मतलब है—संविधान के उपबंधों या संसद द्वारा किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रत्यायोजित विधायी कृत्यों के अनुसरण में बनाया गया विनियम, नियम, उपनियम, उपविधि आदि जिसे सभा के समक्ष रखा जाना अपेक्षित हो—नियम 319 ।
5. ए.आई.आर. 1974, एस.सी.1660(1667)।
6. *वसनलाल मगनभाई संजनवाला एंड द प्रताप स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लि. बनाम* बम्बई राज्य, ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 4; *मैसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि. बनाम मैसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि. के कर्मकार,* ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 1917 ।

करता है वहां केवल यह तथ्य की विधान एक ढांचा मात्र है अथवा यह तथ्य कि यह विवेकाधिकार उन्हें प्रदान किया गया है जिन्हें विधि के प्रशासन का कार्य सौंपा गया है, इस विवाद का आधार नहीं बनता है कि विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन किया गया है, यदि यह शक्ति अथवा विवेकाधिकार ऐसी रीति से प्रदत्त किया गया है जो विधिक और संविधानिक है।[7]

न्यायिक निर्णयों के आधार पर अब भारत में स्थापित विधि के रूप में यह माना जा सकता है कि विधानमंडल विधायी नीति का निर्धारण और संचालन नियम के रूप में उसका नियमन जैसे अपने आवश्यक विधायी कृत्य को कार्यपालिका अथवा किसी अन्य निकाय को प्रत्यायोजित करने के लिए सक्षम नहीं है।[8] परन्तु इस बात को स्वीकार किया गया है कि विधानमंडल समनुषंगी मामलों में अन्य निकायों की सहायता ले सकता है और जिन मामलों में ऐसी सहायता ली जा सकती है वे मुख्य रूप से विधान की दो श्रेणियों में आते हैं, जिन्हें सशर्त विधान तथा आनुषंगिक या अधीनस्थ विधान कहा जाता है।[9]

जहां तक सशर्त विधान के अर्थ का संबंध है, उसे मोटे तौर पर ऐसा विधान कहा जा सकता है जिसका प्रवर्तन किसी विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के निर्णय पर सशर्त होता है और यह उस विधान से भिन्न होता है जो पूर्ण है और जिसका प्रवर्तन किसी अन्य प्राधिकारी की इच्छा पर आश्रित न होकर स्वयं के बल पर होता है। इस संबंध में यह टिप्पणी की गई है:—

किसी सशर्त विधान में कोई विधि विस्तृत और पूर्ण तभी होती है जब इसे विधानमंडल के सदन की अनुमति मिल जाती है लेकिन उस विधि का प्रवर्तन किसी शर्त के पूरा होने पर निर्भर करता

---

7. *ज्योति प्रसाद बनाम दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र,* ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 1602 ।

8. *देवी दास गोपाल कृष्ण बनाम पंजाब राज्य,* ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1895 (1901); *दिल्ली नगर निगम बनाम बिरला कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स, दिल्ली* ए.आई.आर. 1968 एस.सी. 1232; *मैसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि. बनाम मैसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि. के कर्मकार,* ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 1917; *ग्वालियर रेयान मिल्स मैन्युफैक्चरिंग (वीविंग) कम्पनी लि. बनाम सहायक बिक्री कर आयुक्त,* ए.आई.आर., 1974 एस.सी. 1660, 1667-69 ।

9. *ए.आई.आर. कमेंट्रीज ऑन दी कॉनस्टिट्यूशन आफ इण्डिया खंड* IV, 1973 अनुच्छेद 215 टिप्पणी 9(क) भाग 6 साथ ही *देखिए* (i) *दिल्ली विधि अधिनियम 1912 के मामले में* 1951 एस.सी.आर. 747 (एस.सी.); (ii) *हरि शंकर बागला बनाम मध्य प्रदेश राज्य,* 1955, एस.सी. आर. 380 (एस.सी.); (iii) *राज नारायण सिंह बनाम सभापति, पटना प्रशासन समिति,* 1955 एस.सी.आर. 290 (एस.सी.); (iv) एडवर्ड मिल्स कंपनी बनाम अजमेर राज्य 1955 एस.सी.आर. 735 (एस.सी.)। सशर्त विधान को 'समाश्रित विधान' और आनुषंगिक विधान को 'अधीनस्थ' या 'समनुषंगी' या 'अनुपूरक' विधान भी कहा जाता है।

है और किसी बाहरी निकाय को केवल यह निर्धारित करने का प्राधिकार दिया जाता है कि वह अपने विवेक का इस्तेमाल करते हुए यह निर्धारित करे कि शर्त पूरी हुई है या नहीं।[10]

जहां तक अधीनस्थ या आनुषंगिक विधान का संबंध है, यह ऐसे मामलों को निर्देशित करता है जिनमें विधानमंडल प्राय: सामान्य रूप से नीति का निर्धारण करता है और किसी बाहरी प्राधिकारी को विधायी नीति को कार्यान्वित करने के लिये नियम तथा विनियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है। विधानमंडल उतने व्यापक रूप से और उतने कम या बहुत अधिक विस्तार से नीति बना सकता है जितना वह उचित समझे और शेष कार्य किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को सौंप सकता है जो उस नीति की रूप-रेखा के भीतर रहते हुए उस कानून के ब्यौरे तैयार करेगा।[11] *दिल्ली विधि अधिनियम* मामले में न्यायाधीश मुखर्जी ने यह टिप्पणी की:—

> विधायी प्राधिकार का प्रत्यायोजन करने की अनुमति दी जा सकती है, परन्तु ऐसा केवल समुचित विधानमंडल द्वारा विधि निर्माण की शक्तियों के प्रयोग के आनुषंगिक रूप में या उसके सहायक रूप में ही किया जा सकता है न कि उसके द्वारा अपने उत्तरदायित्व अथवा अत्यावश्यक कर्त्तव्यों को किसी अन्य अभिकर्ता या तंत्र को सौंप कर स्वयं को उनसे मुक्त करने के साधन के रूप में। सांविधानिक शक्ति का यह आशय हो सकता है कि उसमें प्राधिकार के प्रत्यायोजन की शक्ति निहित है जो कि उस प्रयोजन को पूरा करने के लिए आवश्यक होती है और इस सीमा तक शक्ति के प्रत्यायोजन को, उस शक्ति के प्रयोग मे निहित माना जा सकता है।[12]

उच्चतम न्यायालय द्वारा दिल्ली विधि अधिनियम मामले के बाद निर्णीत अन्य अनेक मामलों में उक्त सिद्धान्त पर बल दिया गया है। उदाहरण के तौर पर, *मैसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि. बनाम मैसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि.* के कर्मकार के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की:–

> तथापि, इस शक्ति की सीमा के संबंध में विधिक स्थिति के बारे में कोई संशय नहीं है। विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन केवल तभी अनुज्ञेय होता है जब विधायी नीति और सिद्धांत समुचित रूप से निर्धारित किए गए हों, तथा प्रतिनिधि को केवल विधानमंडल द्वारा निर्धारित मार्गदर्शक सिद्धान्तों के भीतर समनुषंगी नीति के कार्यान्वयन के लिए शक्ति प्रदान की गई हो। विधानमंडल को यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि वह अपने प्राधिकार का त्याग नहीं कर सकता और संविधान द्वारा उसे सौंपे गए दायित्व और जिम्मेदारी को किसी अन्य निकाय को नहीं सौंप सकता। विधानमंडल अपने द्वारा निर्धारित आवश्यक सिद्धान्तों के अंतर्गत ब्यौरों को कार्यरूप देने के प्रयोजन से ही अन्य निकायों अथवा प्राधिकारियों का उपयोग कर सकता है। इसलिए, प्रत्येक मामले में यह देखना होगा कि

10. न्यायाधीश मुखर्जी की टिप्पणी, *दिल्ली विधि अधिनियम का मामला,* 1951 एस.सी.आर. 747 (978, 979) ।

11. ए.आई.आर. कमेंट्रीज, उद्धृत कृति अनुच्छेद 245 टिप्पणी II (भाग 1); साथ ही *देखिए* ए. आई.आर. 1954, एस.सी. 465 (468)।

12. न्यायाधीश मुखर्जी, *उद्धृत कृति,* 1951, एस.सी.आर 747 (973) ।

> क्या आवश्यक विधायी कर्त्तव्यों का प्रत्यायोजन किया गया है अथवा क्या यह केवल ऐसा मामला है जिसमें विधानमंडल से भिन्न किसी प्राधिकारी अथवा निकाय को सरकार के विधायी स्कन्ध द्वारा निर्धारित आवश्यक मार्गदर्शक सिद्धांतों, नीति और सिद्धांतों के अंतर्गत समनुषंगी और आनुषंगिक ब्यौरों को तैयार करने की शक्ति प्रदान की गई है।[13]

अधीनस्थ या आनुषंगिक विधान में "अधीनस्थता" स्वयं उस विधान, जिसका प्रत्यायोजन किया गया है, के स्वरूप को निर्देशित करती है न कि केवल उस अभिकरण, जिसे विधान बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है, के अधीनस्थ स्वरूप को। अत: जहां तक विधायी नीति का संबंध है, उसका निर्धारण स्वयं विधानमण्डल द्वारा किया जाना चाहिए और समुचित नियमों और विनियमों द्वारा उस नीति को निष्पादित करने का एकमात्र कार्य किसी अधीनस्थ अभिकरण को प्रत्यायोजित किया जा सकता है।[14]

> हाल के वर्षों में, भारत में इस प्रकार के उप-प्रत्यायोजन की तकनीक का प्रयोग अधिक हुआ है। उप-प्रत्यायोजन तब होता है जब नियम बनाने वाले प्राधिकारी नियमों या निदेशों या विधायी स्वरूप की अन्य लिखतों को जारी करने की अतिरिक्त शक्ति या तो स्वयं को या किसी अन्य अधीनस्थ अभिकरण को प्रत्यायोजित करता है। इस प्रक्रिया को दोहराया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप मूल सामर्थ्यकारी अधिनियम से चार या पाँच प्रक्रम आगे विधि निर्माण हो सकता है।[15]

यद्यपि नियम, विनियम, आदि (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "आदेश" कहा गया है) कार्यपालिका द्वारा बनाये जाते हैं परन्तु उनका निर्माण संसद द्वारा उसे प्रत्यायोजित विशिष्ट प्राधिकार के अंतर्गत किया जाता है इसलिए ये विधि का बल रखते हैं और इनकी वही बाध्यकारी शक्ति होती है जो कि मूल अधिनियमन के किसी उपबन्ध की होती है। किसी अधीनस्थ अभिकरण को यह प्राधिकार प्रदत्त करते समय संसद अपनी शक्तियों का त्याग नहीं करती है। क्योंकि वह जब भी चाहे अपने द्वारा बनाए गए ऐसे अभिकरण को नि:शक्त कर सकती है, कोई नया अभिकरण बना सकती है या सारा मामला अपने हाथ में ले सकती है।

अधीनस्थ विधान पर नियंत्रण

अधीनस्थ विधान की मुख्य समस्या यह नहीं है कि अधीनस्थ विधान आवश्यक है या नहीं, बल्कि यह है कि इस प्रक्रिया का तालमेल लोकतांत्रिक परामर्श, संवीक्षा तथा नियंत्रण से कैसे बैठाया जा सकता है। लोक सभा, यह संवीक्षा तथा नियंत्रण निम्नलिखित प्रक्रमों में

---

13. ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 1917 (1922) ।
14. ए.आई.आर. कमेंट्रीज उद्धृत कृति टिप्पणी II (भाग 4 और 5); साथ ही *देखिए* 1951 एस.सी.आर. 747 (982, 984)।
15. भारतीय विधि संस्थान: *डेलीगेटेड लेजिस्लेशन इन इण्डिया* 1964, पृ. 31 ।

किसी एक या सभी प्रक्रमों का सहारा लेकर करती है:–

जब कोई विधायी उपाय शक्तियों के प्रत्यायोजन करने वाले विधेयक के रूप में सभा में विचाराधीन हो, तो उस समय इन आदेशों की व्याप्ति, स्वरूप तथा प्रयोजन के बारे में वाद-विवाद किया जा सकता है, उनकी सुस्पष्ट परिभाषा की जा सकती है और उन्हें सीमित किया जा सकता है;[16] या

जब आदेश स्वयमेव प्रस्तावित किये जाते हैं या बनाये जाते हैं, तो लोक सभा यह निर्दिष्ट कर सकती है कि उन्हें प्रारूप या अंतिम रूप में संसद के समक्ष उनका अनुमोदन करने या उन्हें रद्द करने के लिए रखा जाना चाहिए; या

आदेश बन जाने के बाद सभा पश्चातवर्ती विधान द्वारा उनका प्रतिसंहरण कर सकती है या उनमें परिवर्तन कर सकती है या सभा में प्रश्नों अथवा प्रस्तावों के माध्यम से उनके औचित्य या पर्याप्तता के संबंध में प्रश्न कर सकती है; और

इस सबके अतिरिक्त लोक सभा, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के माध्यम से संवीक्षा तथा नियंत्रण रख सकती है।[17]

---

16. उदाहरण के लिए 8 मई, 1973 को पूर्वोत्तर पहाड़ी विश्वविद्यालय विधेयक, 1973, पर और आगे विचार करते समय कुछ सदस्यों ने विधेयक के माध्यम से किए जाने वाले विधायी शक्तियों के प्रत्यायोजन के विषय के संबंध में कुछ प्रश्न उठाए। 9 मई, 1973 को अपना विनिर्णय देते हुए अध्यक्ष ने कहा कि पूर्ववर्ती केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियमों से भिन्न, इस विधेयक में विभिन्न विश्वविद्यालय प्राधिकरणों के गठन का उपबंध नहीं किया गया है, अपितु इसे परिनियमों द्वारा विहित किए जाने के लिए छोड़ दिया गया है। उन्होंने टिप्पणी की कि जब कभी कोई परिनियम जारी, संशोधित अथवा समाप्त किया जाता है तो उसकी एक प्रति 30 दिन के लिए सभा पटल पर रखी जानी चाहिए और उसमें संसद द्वारा संशोधन किया जा सकता है अथवा सरकार को लगभग एक वर्ष के बाद इस अधिनियम को अन्य केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियमों के समतुल्य लाने के लिए एक संशोधन लाना चाहिए ताकि संसदीय नियंत्रण के बिना उसे केवल प्रत्यायोजित विधान पर न छोड़ा जाए। अध्यक्ष ने महसूस किया कि यदि इस चरण में भी शिक्षा मंत्री तैयार हों तो विधेयक को 16 मई, 1973 को (वह तारीख जिस दिन सत्र समाप्त होना है) रिपोर्ट देने के लिए अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के समक्ष रखा जा सकता है, परन्तु समय बहुत कम है। इस पर शिक्षा मंत्री ने सभा को आश्वासन दिया कि जब कुलाध्यक्ष अंतिम रूप से परिनियम बना देते हैं तो सरकार उन पर विचार के लिए प्रस्ताव लाएगी ताकि सभा को उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन करने का अवसर मिल सके-*एल.एस. डिबेट्स,* 8.5.1973, कॉ. 314-23; *लो.स.वा.वि.,* 9.5.1973, पृ. 140-41 ।
17. नियम 317-322। अधीनस्थ विधान संबंधी समिति अपना यह समाधान करने के लिए कार्यपालिका द्वारा बनाये गये प्रत्येक आदेश की जांच करती है कि कार्यपालिका ने नियम बनाने की प्रत्यायोजित शक्ति के प्रयोग में किसी प्रकार का अतिक्रमण या अतिचार नहीं किया है- विस्तृत विवरण के लिए *देखिए*—अध्याय 30—'संसदीय समितियां' *अधीनस्थ विधान संबंधी समिति* शीर्षक के अंतर्गत ।

इसके अतिरिक्त, कार्यपालिका या प्रशासनिक अभिकरणों द्वारा कानूनी प्राधिकार के अधीन बनाये गये सभी आदेशों की अधिकारातीत तर्क के आधार पर तीसरे पक्ष के कहने पर न्यायालयों द्वारा जांच की जा सकती है।

ऐसे किसी नियम, चाहे यह घोषित किया गया है कि उसका यह प्रभाव होगा कि मानो वह अधिनियम में या अन्यथा अधिनियमित है, की विधिमान्यता को इस आधार पर कि यह अप्राधिकृत है, हमेशा चुनौती दी जा सकती है।[18]

विधिमान्य होने के लिए, अधीनस्थ विधान को उस परिनियम के अधिकारगत होना चाहिए जिसने कार्यपालिका को आदेश बनाने के लिए प्राधिकृत किया है और इसे संविधान के किसी उपबंध का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, विधानमंडल द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाए गए आदेश युक्तियुक्त होने चाहिए।[19] इसके अलावा, इन आदेशों को विधिमान्य और प्रभावी बनाने के लिए इन्हें विधिवत् और उपयुक्त रूप से प्रकाशित किया जाना चाहिए।[20]

जहां परिनियम संविधान के किसी उपबंध का उल्लंघन करता है या विधानमंडल आदेश देने की शक्ति का प्रत्यायोजन करने की बजाए अपने आवश्यक विधायी कृत्य अन्यों को दे देता है तो वह परिनियम स्वयं शून्य हो जाता है और उसके साथ ही उसके अधीन बनाये गये आदेश भी शून्य हो जाते हैं।[21]

अधिकारातीत सामान्य नियम के परिणामस्वरूप अधीनस्थ विधान की शक्ति का प्रयोग मूल अधिनियम में बताई गई रीति से ही किया जा सकता है न कि किसी अन्य रीति से।

सामान्य नियम के रूप में न्यायालय बनाए गए नियमों को तब तक प्रभावी नहीं करेगा जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि नियमों की विधिमान्यता के लिए संबंधित सभी पूर्व शर्तें पूरी कर ली गई हैं।[22]

किसी प्रभुतासम्पन्न विधानमंडल द्वारा बनाए गए विधान से भिन्न किसी प्रत्यायोजन द्वारा बनाया गया अधीनस्थ विधान भूतलक्षी प्रभाव से तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि संबंधित परिनियम में नियम बनाने की शक्ति सुस्पष्ट रूप से अथवा आवश्यक विविक्षा द्वारा इस निमित्त शक्ति प्रदत्त नहीं कर दी जाती है।[23]

---

18. *केरल राज्य बनाम के.एम. चारिया अब्दुल्ला एंड कम्पनी* ए.आई.आर. 1965, एस.सी. 1955।
19. *भूषण लाल बनाम* राज्य, ए.आई.आर. 1952, इलाहाबाद 866 ।
20. *हरला बनाम राजस्थान राज्य,* 1952, एस.सी.आर. 110; साथ ही *देखिए* नियम 319 ।
21. दिल्ली विधि अधिनियम का मामला, 1951 के संबंध में, एस.सी.आर., 747(946, 947) ।
22. *हुक्मचन्द बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1972, एस.सी. 2427 ।
23. *मध्य प्रदेश राज्य बनाम टीकमदास,* ए.आई.आर. 1975, एस.सी. 1429 (साथ ही *देखिए आयकर अधिकारी, एल्लेप्पी बनाम एम.सी. पोन्नूस,* ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 385) ।

आदेशों का सभा पटल पर रखा जाना

जब संविधान या संसद के किसी अधिनियम द्वारा प्रदत्त विधायी कृत्यों के अनुसरण में किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा बनाया गया आदेश, संविधान या संगत परिनियम में इस निमित्त उल्लिखित कालावधि के लिये सभा पटल पर रखा जाना अपेक्षित हो, तो यह उल्लिखित कालावधि लोक सभा के अनिश्चित काल के लिये स्थगित होने और बाद में उसके सत्रावसान होने से पहले पूरी हो जानी चाहिए, जब तक कि संविधान या संगत परिनियम में अन्यथा उपबन्धित न हो। यदि उल्लिखित कालावधि इस प्रकार पूरी न हो, तो यह आदेश अनुवर्ती सत्र या सत्रों में पुनः सभा पटल पर रखा जाना अपेक्षित है जब तक कि कथित कालावधि एक सत्र में पूरी न हो जाए।[24]

इन नियमों, विनियमों, आदि से युक्त सभी अधिसूचनाओं को, यदि लोक सभा का सत्र चल रहा हो, उनके राजपत्र में प्रकाशित होने के पश्चात् पन्द्रह दिन की अवधि के भीतर लोक सभा के पटल पर रखना अपेक्षित है। यदि लोक सभा का सत्र न चल रहा हो तो उनको यथाशीघ्र पटल पर रखा जाता है लेकिन उनको किसी भी दशा में अगले सत्र के प्रारम्भ होने के पन्द्रह दिन के भीतर रखा जाता है।[25]

किसी अधिनियम के अधीन कोई अधिसूचना, जिसमें उसके सभा पटल पर रखे जाने का उपबन्ध किया गया है, जारी कर दी जाती है, तो उसे सभा पटल पर रखना होता है। इसे केवल इस आधार पर रखे जाने से रोका नहीं जा सकता कि इसमें संशोधन किया जाना है और इसे संशोधित रूप में सभा पटल पर रखा जाएगा। ऐसे मामलों में दोनों प्रतियां सभा पटल पर रखनी होती हैं।[26]

---

24. नियम 234 । नियमों, आदि के पुनः सभा पटल पर रखे जाने के बारे में विस्तृत विवरण के लिए *देखिए* अध्याय-34 सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र और पत्रों की अभिरक्षा।

    अधीनस्थ विधान संबंधी समिति ने अपने दूसरे प्रतिवेदन (पांचवीं लोक सभा) में विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन के लिए सभी विधेयकों में शामिल किए जाने के लिए "सभा पटल पर रखे जाने संबंधी सूत्र" को स्वीकृति प्रदान की। इस सूत्र के अनुसार, अधिनियम के अधीन संघ सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद की प्रत्येक सभा के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल 30 दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी और यदि उक्त सत्र के अथवा पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान से पूर्व दोनों सभाएं नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं, तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा। यदि उक्त अवसान से पूर्व दोनों सभाएं सहमत हो जाएं कि नियम नहीं बनाया जाना चाहिए, तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभावी हो जाएगा किन्तु उस नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभावी होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।
25. दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा) पैरा 72 ।
26. *लो.स.वा.वि.*, 17.11.1959, पृ. 196 ।

जब किसी अधिसूचना को सभा पटल पर रखने में अनुचित विलम्ब होता है तो सम्बन्धित मंत्री के लिए अधिसूचना के साथ-साथ ऐसे विलम्ब के कारण बताने वाला एक विवरण सभा पटल पर रखना अपेक्षित होता है। तथापि, कुछ अपवादात्मक परिस्थितियों में, ऐसे विवरण बाद में रखे जा सकते हैं।[27]

सामान्यत: आदेश राजपत्र में अधिसूचित किए जाने के बाद ही सभा पटल पर रखे जाते हैं। तथापि, एक मामले में ऐसा अपवाद रहा है जिसमें राजपत्र में आदेशों को अधिसूचित किए जाने के संबंध में संविधान में कोई उपबंध नहीं था और मंत्री महोदय द्वारा अधिसूचना को प्रकाशित न किए जाने के आधार के रूप में 'सुरक्षा' का तर्क दिया गया था।[28]

आदेशों का उपांतरण

किसी आदेश के सभा पटल पर रखे जाने के बाद कोई भी सदस्य उस आदेश का उपांतरण करने के लिए किसी प्रस्ताव या प्रस्तावों को पेश करने के आशय की सूचना दे सकता है। इस अध्याय के इस पैरा और बाद के पैराओं में 'उपांतरण' शब्द का जो प्रयोग किया गया है उसमें इन आदेशों का 'संशोधन' भी शामिल है।

---

27. जब 10 मई, 1973 को लौह और इस्पात (नियंत्रण) आदेश, 1973 जो 12 अप्रैल, 1973 को राजपत्र में प्रकाशित हुआ था, सभा पटल पर रखा गया तो एक सदस्य ने इसे सभा पटल पर विलंब से रखे जाने के संबंध में व्यवस्था का प्रश्न उठाया और मांग की कि मंत्री महोदय विलम्ब के कारण स्पष्ट करें। उपाध्यक्ष ने यह टिप्पणी की कि अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की सिफारिश के अनुसार, सभी सांविधिक नियम और आदेश उनके प्रकाशन के 15 दिन के भीतर सभा पटल पर रखे जाने चाहिए और चूंकि इस मामले में विलम्ब हुआ है, अत: विलम्ब संबंधी विवरण यथाशीघ्र सभा पटल पर रखा जाना चाहिए। तदनुसार, विलम्ब के कारण स्पष्ट करने वाला विवरण 11 मई, 1973 को सभा पटल पर रखा गया।

    मास्टर और मेट जांच (संशोधन) नियम, 1973 जो 17 मार्च, 1973 के राजपत्र में प्रकाशित हुए थे, 14 मई, 1973 को सभा पटल पर रखे गए । विलम्ब के कारण स्पष्ट करने वाला विवरण 16 मई, 1973 को सभा पटल पर रखा गया।

28. उदाहरण के लिए, मंत्रिमंडल सचिवालय ने संविधान के अनुच्छेद 320(3) के परन्तुक के अधीन बनाए गए संघ लोक सेवा आयोग (परामर्श से छूट) सप्लाई विनियम, 1970 की प्रतियां संविधान के अनुच्छेद 320(5) के अधीन सभा पटल पर रखे जाने के लिए 25 अगस्त, 1970 को भेजीं। राजपत्र में अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख और नियम 319 को लागू किए जाने के संबंध में पूछे जाने पर मंत्रालय ने बताया कि 'सुरक्षा' को ध्यान में रखते हुए विनियमों को राजपत्र में प्रकाशित किया जाना वांछनीय नहीं है और अनुच्छेद 320 में भी विनियमों को राजपत्र में प्रकाशित करने के लिए कोई उपबंध नहीं है। मंत्रिमंडल सचिवालय द्वारा दिए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए उक्त विनियम राजपत्र में प्रकाशित किए बिना, जैसा कि नियम 319 में अपेक्षित है, 28 अगस्त, 1970 को सभा पटल पर रखे गए।

यहां तक कि उस परिनियम में, जिसके अधीन कतिपय नियम या विनियम बनाये गये हैं, उन्हें सभा पटल पर रखे जाने या उनमें संसद द्वारा उपांतरण किये जाने का उपबंध नहीं है, फिर भी लोक सभा को यह निहित शक्ति प्राप्त है कि वह ऐसे कानूनी नियमों को सरकार द्वारा सभा पटल पर रखे जाने के बाद उनमें उपांतरण करने की सिफारिश कर सकती है भले ही वे नियम सभा की मांग के अनुसार रखे गये हों, या किसी प्रश्न के उत्तर में या सरकार ने स्वत:[29] उन्हें रखा हो और प्रत्येक सदस्य इन नियमों का उपांतरण करने के लिए संशोधनों की सूचना देने का हकदार है।[30]

प्रस्तावों की सूचनाएं लिखित रूप में दी जाती हैं और उन्हें अध्यक्ष द्वारा गृहीत किये जाने के पश्चात् संसदीय समाचार[31] में प्रकाशित किया जाता है। गृहीत प्रस्ताव की एक प्रति संबंधित मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री को भेजी जाती है और किसी समुचित तारीख की कार्य-सूची में वह मद सम्मिलित कर ली जाती है।

---

29. पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा) पैरा 10 ।

पत्रकार (मजूदरी दर नियतन) अध्यादेश, 1958 के अधीन बनाए गए श्रमजीवी पत्रकार (मजदूरी दर नियतन) नियम, 1958, 22 अगस्त, 1958 को लोक सभा पटल पर रखे गए। यद्यपि अध्यादेश में यह उपबंध नहीं था कि नियम सभा पटल पर रखे जाएं। अध्यादेश का स्थान लेने वाले विधेयक में भी नियमों को सभा पटल पर रखने के संबंध में कोई उपबंध नहीं था। एक सदस्य द्वारा इन नियमों में संशोधन की सूचना देने पर यह निर्णय लिया गया कि अधीनस्थ विधान संबंधी समिति (पहली लोक सभा) के पहले प्रतिवेदन के पैरा 10 के अनुसार सभा को ऐसे नियमों में संशोधन की सिफारिश करने की शक्ति प्राप्त है। तथापि, समय की कमी के कारण उस सत्र में प्रस्तावों पर चर्चा नहीं हो सकी और बाद में सभा का सत्रावसान होने पर वे व्यपगत हो गए।

इसी प्रकार, 3 मार्च, 1959 तक यथासंशोधित केन्द्रीय सिविल सेवा आचरण नियम, 1955, राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक और अनुच्छेद 148 के खंड (5) द्वारा उन्हें प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए थे, सरकार द्वारा तारांकित प्रश्न संख्या 1223 के उत्तर में 13 मार्च, 1959 को लोक सभा पटल पर रखे गये। संविधान में नियमों को सभा पटल पर रखने का उपबंध नहीं है। नियमों में संशोधन के लिए प्रस्तावों की सूचनाएं गृहीत की गईं और उन्हें सिफारिशों के रूप में परिचालित किया गया। सभा में 9 मई, 1959 को प्रस्तावों पर चर्चा की गई और उन्हें अस्वीकार किया गया—*लो.स.वा.वि.,* 9.5.1959, पृ. 7671-78 ।

30. अनुच्छेद 320(5) के अधीन सभा पटल पर रखे गए विनियमों में संशोधन की सूचना 14 दिन—वह अवधि जिसके लिए विनियम सभा पटल पर रखे रहते हैं—के अन्दर दिया जाना आवश्यक नहीं है अपितु उस सत्र की समाप्ति से पूर्व किसी भी समय दी जा सकती है जिसमें वे सभा पटल पर रखे गए हों।

31. *संसदीय समाचार* में प्रकाशित किए जाने की प्रथा दूसरी लोक सभा के दसवें सत्र से शुरू की गई थी (*देखिए समाचार भाग-2,* 26.4.1960)। इससे पहले विधेयकों, संकल्पों, आदि पर संशोधनों की भांति गृहीत प्रस्तावों को अलग से परिचालित करने की प्रथा थी।

यदि प्रस्तावों की कई सूचनाएं दी जाती हैं तो गृहीत प्रस्तावों का पाठ प्रस्तावों की एक या अधिक सूचियों में उसी प्रकार सदस्यों को परिचालित किया जाए जैसा कि विधेयकों के संशोधनों की सूचियों में किया जाता है और इन प्रस्तावों का पाठ संसदीय समाचार में प्रकाशित न किया जाए और कार्य-सूची में शामिल किया जाए।[32]

जहां संविधान या मूल अधिनियम में यह उपबंध किया गया हो कि उसके अधीन बनाये गये आदेश एक निर्दिष्ट अवधि के लिए सभा पटल पर रखे जाएंगे और ये आदेश ऐसे उपांतरण के अध्यधीन होंगे जैसे कि संसद करे,[33] तो उस संबंध में लोक सभा में उस प्रस्ताव के दो भाग होते हैं। पहला भाग तो सभा का संकल्प है और दूसरा भाग राज्य सभा से की गई सिफारिश है कि वह उस संकल्प से सहमत हो।[34]

परन्तु जहां संविधान या मूल अधिनियम में केवल इतना उपबंध है कि उसके अधीन बनाये गये आदेश सभा पटल पर रखे जायेंगे, अर्थात् जहां उनमें उपांतरण करने का उपबंध नहीं है[35] वहां उसके संबंध में प्रस्ताव सरकार को की गई सिफारिश के रूप में गृहीत किया जाता है।

---

32. चौथी लोक सभा के बारहवें सत्र के दौरान राष्ट्रीयकृत बैंक (प्रबन्धन और प्रकीर्ण उपबंध) योजना, 1970 के उपांतरण के लिए प्रस्तावों की कई सूचनाएं सदस्यों से प्राप्त हुई थीं। सर्वप्रथम कुछ गृहीत प्रस्तावों को *संसदीय समाचार* में प्रकाशित किया गया था और गृहीत प्रस्तावों का पाठ पूर्ण रूप से 9 दिसम्बर, 1970 की अग्रिम कार्य-सूची में पुनः उद्धृत किया गया था। बाद में, यह निर्णय लिया गया कि प्रस्तावों का पाठ पूर्ण रूप से कार्य-सूची में पुनः उद्धृत नहीं किया जाना चाहिए और इसे संक्षेप में कार्य-सूची में शामिल किया जाना चाहिए। तद्नुसार, सभी प्रस्ताव, जो पहले गृहीत हो गए थे और जिन्हें *संसदीय समाचार में* प्रकाशित किया गया था और बाद में प्राप्त गृहीत प्रस्ताव सदस्यों आदि को प्रस्तावों की अलग सूची में परिचालित किए गए थे।

33. उदाहरण के लिए *देखिए* अनुच्छेद 320 (5); विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर तथा पुनर्वास) अधिनियम, 1954 की धारा 40(3); लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 28(3) और रेल संरक्षण बल अधिनियम, 1957 की धारा 28(3)।

34. *एल.एस. डिबेट्स,* 14.9.1955, कॉ. 13639-885; *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1956, पृ. 2027-44; 6.9.1961, पृ. 3698-3707 ।

35. पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस नियम, 1959 का उपांतरण करने के लिए प्रस्ताव पर 22 दिसम्बर, 1959 को सिफारिश के रूप में चर्चा हुई और इसे अस्वीकृत कर दिया गया। तेल क्षेत्र (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1948 की धारा 10 के अनुसरण में नियमों को सभा पटल पर रखा गया जिसमें केवल नियमों को सभा पटल पर रखने का उपबंध है न कि उनका उपांतरण करने का। *लो.स.वा.वि.,* 22.12.1959, पृ. 3244-45 ।

अब स्थिति बदल गई है। अधीनस्थ विधान संबंधी समिति (पांचवीं लोक सभा) की सिफारिश के अनुसार वर्ष 1984 में अधिनियम की धारा 10 में संशोधन किया गया था। अब इस धारा में नियमों, जो सभा पटल पर रखे जाते हैं, का संशोधन करने का भी उपबंध है।

प्रस्तावों को प्रस्तुत करने और उन पर चर्चा के लिए समय का नियतन

जहां किसी परिनियम में इस बात का उपबंध है कि आदेश संसद द्वारा उपांतरण के अध्यधीन होंगे वहां उनके उपांतरण के लिए किसी प्रस्ताव की सूचना के गृहीत कर लिए जाने पर सरकार प्रस्ताव पर चर्चा हेतु समय उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है।[36] जहां परिनियम में ऐसा कोई उपबंध नहीं है और आदेशों के उपांतरण के लिए किसी प्रस्ताव की सूचना गृहीत की गई है तो सरकार प्रस्ताव पर चर्चा हेतु समय उपलब्ध कराने के लिए बाध्य नहीं है परन्तु सामान्यत: समय उपलब्ध करा दिया जाता है।

अध्यक्षपीठ द्वारा उचित समय पर बुलाये जाने पर संबंधित सदस्य आदेशों का उपांतरण करने के लिए अपने नाम में रखे गये प्रस्ताव को पेश करता है। इस प्रस्ताव के प्रस्तावक को वाद-विवाद का उत्तर देने का अधिकार है।[37]

वाद-विवाद के दोहराव से बचने के लिए अध्यक्ष किसी सांविधिक नियम, आदेश आदि के उपांतरण के प्रस्ताव और नियम 184 के अधीन किसी प्रस्ताव पर संयुक्त चर्चा की अनुमति दे सकता है यदि दोनों प्रस्तावों की विषयवस्तु समान हो।[38]

यदि सभा द्वारा किसी सांविधिक नियम, आदेश आदि के उपांतरण का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाता है तो अगले सत्र में किसी समरूप या समान प्रस्ताव को ग्रहीत किया जा

---

36. नियम 235 ।

37. *एल.एस. डिबेट्स,* 7.9.1955, कॉ. 6230-31 ।

38. पंद्रहवीं लोक सभा के बारहवें सत्र के दौरान खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से संबंधित दिनांक 19 अक्तूबर 2012 की अधिसूचना संख्या सा.का.नि. 795(ड़) में उपांतरण के दो प्रस्ताव गृहीत किये गये थे और उन्हें दिनांक 3 दिसम्बर 2012 के समाचार भाग-दो में प्रकाशित किया गया था। इन प्रस्तावों को नियम 184 के अधीन मल्टी ब्रांड खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से संबंधित एक प्रस्ताव के साथ संयुक्त चर्चा हेतु दिनांक 4 दिसम्बर 2012 की कार्यसूची में शामिल किया गया था। परंतु इन प्रस्तावो पर चर्चा आरंभ होने से ठीक पूर्व नियम 184 के अधीन प्रस्ताव के साथ उपांतरण हेतु प्रस्तावों पर चर्चा करने पर आपत्तियां की गईं। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की "...यद्यपि नियम 184 के अधीन प्रस्ताव को स्वीकृत करने का प्रभाव उपांतरण हेतु प्रस्तावों से भिन्न है... परंतु नियम 184 के अधीन प्रस्ताव की विषयवस्तु वैसी ही है जैसी कि अधिसूचना के उपांतरण के प्रस्तावों की है। अत: इस विषय से संबंधित वाद-विवाद के दोहराव से बचने के लिए मैंने अपने विवेक से तीनों प्रस्तावों पर संयुक्त वाद-विवाद की अनुमति देने का निर्णय लिया है" तदनुसार 4 और 5 दिसम्बर 2012 को तीनों प्रस्तावों पर एक साथ चर्चा की गई। 5 दिसम्बर 2012 को सबसे पहले नियम 184 के अधीन प्रस्ताव पर मत विभाजन हुआ और वह अस्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् उपांतरण हेतु पहले प्रस्ताव पर मत विभाजन हुआ और वह अस्वीकृत हुआ। दूसरे प्रस्ताव को मत विभाजन हेतु नहीं रखा गया क्योंकि उसका पाठ पहले प्रस्ताव में शामिल था जिस पर सभा ने अपना निर्णय पहले ही दे दिया था।

सकता है और उस पर चर्चा की जा सकती है बशर्ते कि ऐसे प्रस्ताव की सूचना संगत संविधि के अधीन विहित समय-सीमा में दी गई हो।[39]

जहां किसी अधिनियम में यह उपबंध है कि उसके अधीन बनाये गये नियम तब तक लागू नहीं होंगे जब तक कि लोक सभा द्वारा उपांतरण के साथ या उसके बिना उनका अनुमोदन नहीं कर दिया जाता है,[40] तो यह जिम्मेदारी सरकार की होती है कि वह इन नियमों के सभा पटल पर रखे जाने के तुरन्त पश्चात् ऐसे नियमों के अनुमोदन के लिये एक संकल्प पेश करे। जहां किसी अधिनियम में इस बात का उपबंध है कि सरकार द्वारा बनाये गये प्रारूप नियम या विनियम लोक सभा या संसद की दोनों सभाओं द्वारा किसी निर्दिष्ट अवधि के भीतर उपांतरण के अध्यधीन होंगे।[41] वहां विरचित रूप में या ऐसे उपांतरणों के साथ नियम अथवा विनियम, जिन पर यथास्थिति, लोक सभा अथवा संसद की दोनों सभाओं की सहमति हुई हो, विनिर्दिष्ट अवधि के पश्चात् ही प्रख्यापित किए जा सकते हैं।

> एक मामले में कतिपय आदेशों (जो संविधान के उपबंधों के अधीन संसद की दोनों सभाओं द्वारा उस सत्र के दौरान, जिसमें वे पटल पर रखे गए थे, उपांतरण के अध्यधीन थे) के उपांतरण के लिए प्रस्तावों पर समयाभाव के कारण अगले सत्र में चर्चा करने की अनुमति दी गयी थी और उनमें से एक यथासंशोधित प्रस्ताव सभा के संकल्प के रूप में स्वीकृत किया गया था।[42]

दो भिन्न-भिन्न आदेशों के संशोधन के लिए दो प्रस्तावों पर संयुक्त वाद-विवाद किया जा सकता है, बशर्ते कि ये प्रस्ताव सहबद्ध मामले के संबंध में हों।[43]

उन आदेशों और कानूनी नियमों के उपांतरण के प्रस्तावों की सूचनाएं, जिन्हें गृहीत कर लिया गया है और जिन्हें संसदीय समाचार में प्रकाशित किया गया है परन्तु जिन पर सत्र के दौरान चर्चा नहीं हुई है, लोक सभा का सत्रावसान हो जाने पर व्यपगत हो जाती है।[44]

---

39. पंद्रहवी लोक सभा के तीसरे सत्र के दौरान, बारहवें सत्र के दौरान उपांतरण हेतु ग्रहीत प्रस्तावों के समरूप प्रस्तावों की सूचनाएं गृहीत की गई थीं और 1 और 22 अप्रैल 2013 के समाचार भाग-दो में प्रकाशित की गई थीं। कार्य मंत्रणा समिति ने इन प्रस्तावों पर चर्चा हेतु समय भी आवंटित किया था। तथापि, सभा के बार-बार स्थगित होने के कारण इन प्रस्तावों पर चर्चा नहीं की जा सकी।
40. उदाहरण के लिये *देखिए* खान तथा खनिज (विनियमन तथा विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 7 और मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952 की धारा 11(1) प्रस्ताव के प्रपत्र के लिये *देखिए लो.स.वा.वि.*, 31.8.1956, पृ. 1663 ।
41. *देखिए* सम्पदा शुल्क अधिनियम, 1953 की धारा 20(2) और कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 620(1)।
42. *लो.स.वा.वि.*, 27.9.1958, पृ. 4387-90; 18.11.1958, पृ. 158 और 162-63 ।
43. *पूर्वोक्त*, 11.12.1962, पृ. 2137 ।
44. नियम 335 ।

उन आदेशों के उपांतरण के प्रस्ताव, जिन्हें सभा में पेश किया गया है लेकिन जिन पर चर्चा समाप्त नहीं हुई है, सभा का विघटन हो जाने पर व्यपगत हो जाते हैं।

लोक सभा द्वारा यथास्वीकृत संशोधनों को राज्य सभा तथा संबंधित मंत्री को भेजा जाना

यदि कोई आदेश संसद द्वारा उपांतरण के अध्ययीन है और कोई संशोधन लोक सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो उसे राज्य सभा को उसकी सहमति के लिए भेजा जाता है और उस संशोधन से सहमत होने के बारे में राज्य सभा से कोई संदेश प्राप्त होने पर सचिवालय द्वारा उसे सम्बद्ध मंत्री को भेज दिया जाता है।[45]

यदि राज्य सभा, लोक सभा द्वारा पारित किये गये संशोधन से असहमत हो या उसे उसके अग्रेतर संशोधन के अधीन स्वीकार करे या उसके स्थान में अन्य संशोधन प्रस्तावित करे, तो लोक सभा या तो संशोधन को छोड़ सकेगी या राज्य सभा द्वारा प्रस्तावित संशोधन से सहमत हो सकेगी या लोक सभा द्वारा पारित मूल संशोधन पर आग्रह कर सकेगी। प्रत्येक दशा में, राज्य सभा को एक संदेश भेजा जाता है और यदि लोक सभा, राज्य सभा द्वारा अग्रेतर संशोधन से सहमत हो तो उसे सचिवालय द्वारा संबंधित मंत्री को भेज दिया जाता है।[46]

यदि लोक सभा द्वारा पारित मूल संशोधन से राज्य सभा सहमत हो जाये, तो वह संशोधन सचिवालय द्वारा संबंधित मंत्री को भेजा जाता है, किन्तु यदि राज्य सभा असहमत हो या ऐसे संशोधन पर आग्रह करे, जिससे लोक सभा सहमत नहीं है, तो यह मान लिया जाता है कि दोनों सभाओं में अन्तिम रूप से असहमति हो गयी है और उस सम्बन्ध में अग्रेतर कार्यवाही छोड़ दी जाती है।[47]

यदि दोनों सभाओं द्वारा पारित किसी संशोधन के अनुसार किसी आदेश में उपांतरण कर दिया जाता है तो संशोधित आदेश को सभा पटल पर रखना पड़ता है।[48]

परन्तु जहां कोई आदेश संसद द्वारा उपांतरण के अध्यधीन न हो, तो लोक सभा द्वारा स्वीकृत संशोधन सीधे संबंधित मंत्री को भेज दिया जाता है।

---

45. नियम 236 ।
46. नियम 237 ।
47. नियम 238—संविधान के लागू होने के बाद से ऐसा कोई मामला नहीं हुआ है।
48. नियम 239 ।

अध्याय 25

संकल्प

संकल्प किसी विचारक सभा, जैसे कि कोई विधायी निकाय, की राय, इच्छा अथवा कार्य की औपचारिक अभिव्यक्ति है।[1] प्रत्येक प्रश्न, जब उस पर सहमति हो जाए या तो सभा का आदेश या सभा का संकल्प बन जाता है। सभा अपने आदेशों के द्वारा अपनी समितियों, अपने सदस्यों, अपने अधिकारियों को अपनी स्वयं की कार्यवाही के संबंध में निदेश देती है; अपने संकल्पों के द्वारा सभा अपनी निजी राय और अपने प्रयोजनों की घोषणा करती है।[2]

कोई सदस्य या मंत्री, नियमों के अधीन लोक सभा में सामान्य लोकहित के किसी विषय के संबंध में संकल्प प्रस्तुत कर सकेगा।[3]

> 1909 के मॉरले-मिंटो सुधारों के अन्तर्गत पहली बार, विधान परिषद को सामान्य लोकहित के विषयों पर विशिष्ट सिफारिशों के रूप में संकल्पों के माध्यम से विचार करने की अनुमति मिली थी।[4] इस प्रयोजन के लिए जो नियम बनाये गये थे, उनके द्वारा न केवल उन विषयों को परिभाषित कर दिया गया जिन पर विचार किया जा सकता था, बल्कि साथ ही गवर्नर जनरल को भी, *अन्य बातों के साथ-साथ,* किसी संकल्प या उसके किसी अंश की सूचना को इस आधार पर अस्वीकार करने की शक्ति प्रदान की गई कि उस संकल्प को प्रस्तुत करना लोकहित के अनुकूल नहीं होगा।
>
> यह स्थिति 1947 तक व्यावहारिक रूप से अपरिवर्तित रही, स्वतंत्रता प्राप्त होने पर, उस नियम को जिसके अन्तर्गत गवर्नर जनरल को संकल्पों की सूचनाओं को अस्वीकार करने की शक्ति प्राप्त थी, छोड़ दिया गया और चर्चा के विषयों को प्रतिबन्धित करने वाले नियम में यह उपबंध करने के लिए संशोधन किया गया, कि *न्याय-निर्णयन के अधीन* विषयों को छोड़कर, सभी विषयों पर संकल्प के माध्यम से चर्चा की जा सकती थी।

संकल्पों को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

संकल्प, जो सभा द्वारा व्यक्त की गयी राय मात्र हैं: चूंकि ऐसे संकल्प का प्रयोजन केवल सभा की राय जानना है, इसलिये ऐसी परिपाटी है कि सरकार ऐसे संकल्पों में दी गई

---

1. ब्लैक विधि शब्दकोष (आठवां संस्करण)।
2. मे, चौबीसवां संस्करण, पृ. 418 ।
3. नियम 172 ।
4. पहला संकल्प 25 फरवरी, 1910 को पेश किया गया था, जिसमें यह सिफारिश की गयी थी कि नटाल में करारबद्ध मजदूरों को ले जाये जाने को निषेध कर दिया जाये। (1860 का करारबद्ध मजदूर समझौता भारत, नटाल और ब्रिटेन के बीच हुआ था। इससे ठेका मजदूरों को पोत द्वारा नटाल भेजा जाना संभव हुआ। करारबद्ध होने के बाद मजदूरों को एक संख्या दी जाती थी जिससे नटाल में उनके प्रवास के दौरान उनकी सभी प्रयोजनों के लिए पहचान होती थी)।

राय को कार्यरूप में परिणत करने के लिए बाध्य नहीं है। यह बात पूर्ण रूप से सरकार के स्वविवेक पर निर्भर करती है कि वह ऐसे संकल्पों में जिस कार्यवाही का सुझाव दिया गया है, वह कार्यवाही करे या नहीं।

संकल्प, जिनका सांविधिक प्रभाव है: सांविधिक संकल्प की सूचना संविधान के किसी उपबन्ध या संसद के किसी अधिनियम के उपबन्ध के अनुसरण में दी जाती है।[5] ऐसा संकल्प, यदि पारित हो जाये, तो वह सरकार पर बाध्यकारी होता है और ऐसे संकल्प में विधि की शक्ति निहित होती है।

संकल्प, जोकि सभा अपनी कार्यवाही पर नियंत्रण रखने के प्रयोजन से पारित करती है: सभा जो संकल्प अपनी कार्यवाही पर नियंत्रण के संबंध में पारित करती है, उसमें विधि की शक्ति निहित होती है और उसकी विधिमान्यता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। सभा कई बार ऐसे संकल्पों के माध्यम से किसी ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए अपनी प्रक्रिया बनाती है जिसके लिये उसके नियमों में कोई सुनिश्चित उपबन्ध नहीं किया गया है।[6]

संकल्प तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात्: गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प; सरकारी संकल्प और सांविधिक संकल्प।

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प

संकल्पों की सूचनाएं तथा शलाका (बैलट)

जो गैर-सरकारी सदस्य कोई संकल्प रखना चाहता हो, उसे सबसे पहले, इस आशय की सूचना देनी होती है। यह सूचना महासचिव को सम्बोधित होती है और संसदीय सूचना कार्यालय में शलाका (बैलट) की तिथि से कम से कम दो दिन पूर्व दी जाती है।[7]

जिन सदस्यों से ऐसी सूचनाएं प्राप्त होती हैं, उनके नामों की शलाका निकाली जाती है और उस शलाका के परिणामस्वरूप जिन सदस्यों को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिये नियत किसी दिन विशेष के लिये की गयी शलाका में पहले तीन स्थान प्राप्त होते हैं, उनसे अनुरोध किया जाता है कि वे शलाका की तारीख के पश्चात् दो दिन के भीतर अपने एक-एक संकल्प की सूचना दे दें।[8] ये संकल्प, यदि गृहीत हो जाते हैं, तो इन्हें कार्य-सूची में सम्मिलित किया जाता है। निर्धारित समय अवधि के पश्चात् सदस्यों से संकल्पों की सूचना

5. उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 61(4), 67(ख), 90(ग), 94(ग), 123(2), 169(1), 179(ग), 183(ग), 213(2), 249, 252, 312, 315(2), 352, 356 और 368 के अधीन संकल्प इसी श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार संसद के अधिनियमों के अंतर्गत बनाये गये कुछ आदेशों और विनियमों को भी संसद से स्वीकृत कराना होता है।
6. *देखिए* अध्याय 26– प्रस्ताव, में उपशीर्षक 'मूल प्रस्ताव' ।
7. नियम 170, *लो.स.वा.वि.,* 8.11.1962, पृ. 61-62; 9.11.1962, पृ. 204-06 ।
8. निदेश 9 ।

प्राप्त होने पर उन्हें कालातीत समझा जाता है। गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत प्रत्येक दिन के लिए अलग शलाका की जाती है।[9] शलाका की तारीखों और समय की सूचना सत्र आरंभ होने से पहले समाचार-भाग 2 में दी जाती है। किसी सत्र की पहली शलाका सत्र के दूसरे दिन होती है और बाद की शलाका ऐसे नियत दिनों के पूर्ववर्ती विनिर्दिष्ट दिनों को होती है।

जिस संकल्प की सूचना किसी सदस्य द्वारा दी गयी हो, उसकी जांच करने पर यदि यह पता चले कि वह अग्राह्य है, तो सम्बद्ध सदस्य को कहा जाता है कि वह दूसरा संकल्प प्रस्तुत करे।

संकल्पों का रूप तथा विषय

संकल्प राय की घोषणा या सिफारिश के रूप में हो सकता है; या यह ऐसे रूप में भी हो सकता है जिससे सरकार के किसी कार्य या नीति का सभा द्वारा अनुमोदन या निरनुमोदन अभिलिखित किया जाये या कोई सन्देश दिया जाये; या किसी कार्रवाई के लिए संस्तवन, अनुरोध या प्रार्थना करे; या किसी विषय या स्थिति पर सरकार द्वारा पुनर्विचार करने के लिये ध्यान आकर्षित किया जाये; या यह किसी ऐसे अन्य रूप में हो सकता है जो अध्यक्ष उचित समझें।[10] संकल्प में सम्पूर्ण सभा की राय की अभिव्यक्ति होनी चाहिए न कि उसके किसी वर्ग विशेष की। इसके अतिरिक्त किसी संकल्प का विषय सामान्य लोकहित के विषय से सम्बन्धित होना चाहिये और केवल वही विषय किसी संकल्प के विषय हो सकते हैं, जिनके लिये मुख्य रूप से भारत सरकार जिम्मेदार है।

ग्राह्यता की शर्तें

सदस्यों से मिली संकल्पों की सूचनाओं की जांच सचिवालय में की जाती है, जिससे कि यह पता लगाया जा सके कि वे उचित रूप में है या नहीं और वे ग्राह्यता की शर्तें पूरी करती हैं या नहीं। किसी संकल्प की ग्राह्यता का निर्धारण नियमों में विहित ग्राह्यता की शर्तों के अनुसार किया जाता है।[11]

संकल्प तभी ग्राह्य होता है जब यह स्पष्ट रूप से और ठीक-ठीक अपनी बात की अभिव्यक्ति करता है;[12] इसमें सारतः एक ही निश्चित मुद्दा उठाया जाना चाहिए;[13] कोई तर्क,

---

9. *पूर्वोक्त* ।
10. नियम 171 ।
11. नियम 173; अध्यक्ष द्वारा विनिर्णय—*लो.स.वा.वि.*, 16.3.1979, कॉ. 387-92
12. एक गृहीत और सभा में प्रस्तुत संकल्प बाद में सही रूप में नहीं पाया गया क्योंकि वह स्पष्ट नहीं था और उसमें यथावत शब्दों का प्रयोग नहीं किया था और तद्नुसार उस पर आगे चर्चा रोक दी गई। *लो.स.वा.वि.*, 8.3.1968 पृ. 1209-12; 23.3.1968 कॉ. 2693-2710 ।
13. जिस संकल्प में एक से अधिक विषय हों, बशर्ते कि वे एक ही निश्चित विषय के उदाहरण मात्र हों, वह ग्राह्य होता है—*एल.ए. डिबेट्स* 4.2.1946, पृ. 435-36 । *देखिए* 28.11.1986 की कार्य-सूची में भट्टम श्रीराम मूर्ति द्वारा आर्थिक नीतियों संबंधी संकल्प ।

अनुमान, व्यंग्यात्मक पद, लांछन या मानहानिकारक कथन नहीं होने चाहिए; व्यक्तियों के शासकीय या सार्वजनिक हैसियत के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में आचरण या चरित्र का उल्लेख नहीं होना चाहिए; वह किसी ऐसे विषय से सम्बन्धित नहीं होना चाहिये, जो भारत के किसी भाग में अधिकार क्षेत्र रखने वाले किसी न्यायालय के न्याय निर्णयन के अधीन हों; उसमें किसी ऐसे विषय पर चर्चा नहीं उठायी जानी चाहिए, जो किसी न्यायिक या अर्द्ध–न्यायिक कृत्य करने वाले किसी सांविधिक अधिकरण या सांविधिक प्राधिकारी के, या किसी विषय की जांच या अन्वेषण करने के लिये नियुक्त किसी आयोग या जांच न्यायालय, के समक्ष लम्बित हों;[14] (परन्तु अध्यक्ष स्वविवेक से ऐसे विषय को सभा में उठाने की अनुमति दे सकता है, जो जांच की प्रक्रिया या विषय या प्रक्रम से सम्बन्धित हो, यदि अध्यक्ष का समाधान हो जाये कि इससे सांविधिक अधिकरण, सांविधिक प्राधिकारी, आयोग या जांच न्यायालय द्वारा उस विषय पर विचार किये जाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है);[15] वह किसी ऐसे विषय से संबंधित नहीं होना चाहिए, जो किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हो (समिति द्वारा रिपोर्ट दे दिये जाने के बाद ही ऐसा संकल्प ग्राह्य हो सकता है); और उसमें किसी ऐसे विषय का उल्लेख नहीं होना चाहिए, जिसमें मंत्रीय जिम्मेदारी न हो।[16]

जब कोई संकल्प सभा में प्रस्तुत कर दिया गया हो तो उसके पश्चात् सारवान रूप से वही विषय उठाने वाला कोई अन्य संकल्प या उसमें संशोधन पूर्व संकल्प को प्रस्तुत करने की तारीख से एक वर्ष के भीतर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।[17] जब किसी संकल्प पर चर्चा एक सत्र के बाद दूसरे सत्र में भी कई दिन तक के लिये चली हो, तो एक वर्ष की अवधि की संगणना उस तारीख से की जाती है जिस तारीख को संकल्प सभा में प्रस्तुत किया गया था। यह निर्बंधन एक सभा की अवधि के दौरान ही लागू रहता है और उन संकल्पों पर लागू नहीं होता जिनकी सूचना आम चुनाव के बाद नयी सभा के सदस्यों द्वारा दी जाती है।

यदि कोई संकल्प सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया हो या उसके सम्बन्ध में यह मान लिया गया हो कि वह सभा की अनुमति से वापस लिया गया है तो सारवान रूप से वही विषय उठाने वाला कोई अन्य संकल्प उसी सत्र के दौरान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।[18] कोई भी संकल्प जिसमें सारवान रूप से वैसा ही प्रश्न उठाया गया हो जिस पर उसी

---

14. नियम 175; न्याय निर्णयन के अधीन विषयों के संबंध में चर्चा के लिए *देखिए* अध्याय 43—संसद और न्यायपालिका।
15. नियम 175, परन्तुक ।
16. नियम 186 (xi) और (xv) ।
17. नियम 182 ।
18. नियम 182, परन्तुक।

    जब किसी संकल्प को चर्चा के पश्चात् सभा की अनुमति से वापस लिया गया हो तो सारवान रूप से वही विषय उठाने वाला दूसरा संकल्प एक वर्ष के भीतर प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु उसी सत्र के दौरान नहीं प्रस्तुत किया जा सकता।

सत्र में सभा के समक्ष कोई संकल्प आगे चर्चा के लिये लम्बित हो, वह अग्राह्य होता है। पूर्वानुमान का नियम उस समय लागू नहीं होता जब संभावित मुद्दे पर चर्चा की संभावना क्षीण होती है।[19] किसी संकल्प में कोई ऐसा प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए जो सारवान रूप से उस प्रश्न के समरूप हो जिस पर सभा उसी सत्र में विनिश्चय कर चुकी हो।[20] अतः यदि किसी संकल्प में कोई ऐसा प्रश्न उठाया गया हो जो कि किसी ऐसे विधेयक में उठाया गया था जिस पर सभा ने उसी सत्र में अपना निर्णय दिया है तो वह ग्राह्य नहीं होगा। लेकिन यदि सभा ने किसी कटौती प्रस्ताव पर कोई निर्णय दे दिया है, तो उसके कारण उसी सत्र में कोई ऐसा संकल्प पेश करने पर कोई निर्बंधन नहीं है जिसमें कोई ऐसा प्रश्न उठाया गया हो, जिस पर कटौती प्रस्ताव पर चर्चा के समय ही सभा ने निर्णय कर दिया हो क्योंकि कटौती प्रस्ताव पर मतदान के समय वह विषय सभा के मतदान के लिए नहीं रखा जाता और सभा का निर्णय केवल कटौती प्रस्ताव पर ही होता है।

जिस संकल्प में सरकार से यह सिफारिश की गयी हो कि वह कोई नया कानून लाये या किसी विद्यमान कानून में कोई संशोधन करे, वह ग्राह्य होता है।[21] जिस संकल्प में सरकार की किसी भी घोषित नीति के विरुद्ध कोई सुझाव हो, वह भी ग्राह्य है क्योंकि सदस्य को यह अधिकार है कि वह ऐसी नीति के प्रतिवर्तन के लिए कह सकता है।

जो संकल्प किसी उपधारणा अथवा परिकल्पना पर आधारित हो, वह अग्राह्य है। जिन संकल्पों में ऐसे विषय उठाये जायें, जो मुख्य रूप से राज्य सरकार से संबंधित हैं और जिनसे राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप होता हो, वे अग्राह्य हैं।[22] यदि इस संबंध में कोई संदेह हो, तो संकल्प सम्बद्ध मंत्री को भेजा जाता है और उससे कहा जाता है कि वह यह बताए कि संकल्प के विषय के संबंध में, केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी कहां तक है लेकिन जब आपातकाल की घोषणा हो चुकी हो और राज्य के विधानमंडल की शक्तियां संसद में निहित हों, तब राज्य सूची में सम्मिलित विषय पर संकल्प ग्राह्य है।[23] कोई संकल्प जिसका आशय किसी सांविधानिक निदेश को कार्यान्वित करना हो, वह भी ग्राह्य है भले ही उसमें उठाया गया

---

19. अध्यक्ष द्वारा विनिर्णय—*एल.एस. डिबेट्स,* 16.3.1979, कॉ. 387-92 ।

20. नियम 338 ।

21. समाचार-भाग 2, 15.3.1958, पैरा 1218; 28.3.1958, पैरा 1272 ।

22. ऐसे संकल्पों की सूचना स्वीकार की गई, जिसका विषय मुख्य रूप से भारत सरकार की जिम्मेदारी नहीं थी क्योंकि इस संकल्प का उद्देश्य निर्धन व्यक्तियों को निःशुल्क कानूनी सहायता देने की आदर्श योजना तैयार करना था, जिसे राज्यों द्वारा कार्यरूप में परिणत किया जाना था। *देखिए नियम पुस्तिका,* नियम 173, पृष्ठ 44, नोट xii ।

23. वर्ष 1976 में राज्य विषय से संबंधित संकल्प (वन) को ग्राह्यता प्रदान की गई थी क्योंकि वहां आपात स्थिति की घोषणा थी और संसद संविधान के अनुच्छेद 250 के अंतर्गत ऐसी स्थिति में राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बना सकती है। *देखिए* 14.5.1976 की कार्य-सूची।

मुद्दा मुख्य रूप से राज्य का विषय हो।[24]

अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित विषयों पर संकल्पों को अस्वीकृत किया गया:

> सामान्य शान्ति के समय में कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ना; नियमों का संशोधन; किसी अन्य देश में घटने वाली घटनाएं;[25] कराधान संबंधी उपाय[26]; संविधान का संशोधन; मित्र देशों के प्रति शत्रुता की कार्यवाहियों के सुझाव; संविधान के प्रवर्तित होने के बाद संसद के दोनों सदनों और राज्य के विधानमण्डलों में विकसित परिपाटियों की जांच के लिए समिति की नियुक्ति; नयी रेल लाइनों का निर्माण; युद्ध के दिनों में उखाड़ी गई लाइन को फिर से बिछाना; छोटी लाइनों को बड़ी लाइनों में परिवर्तित किया जाना; रेलवे की जोनल व्यवस्था में परिवर्तन और अन्य ऐसे विषय जो मुख्य रूप से स्थानीय महत्व के विषय हैं; और विधान सभा चुनावों को रद्द करने के लिए सरकार से आग्रह करना तथा दलों के अनुशासन को लागू करना; मंत्रिपरिषद में अविश्वास प्रस्ताव के विषय में तथा किसी राज्य में उपचुनाव को रोकने के लिए मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा की गई कार्यवाही पर चर्चा करवाना।

अध्यक्ष यह विनिश्चित करता है कि कोई संकल्प या उसका कोई भाग नियमों के अन्तर्गत ग्राह्य है अथवा नहीं और वह किसी ऐसे संकल्प अथवा उसके किसी ऐसे भाग को अस्वीकृत कर सकता है जो उसकी राय में संकल्प प्रस्तुत करने के अधिकार का दुरुपयोग हो अथवा सभा की प्रक्रिया में बाधा डालने या उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिये हो, या नियमों के विरुद्ध हो।[27]

कोई भी संकल्प जिसका विषय अध्यक्ष के प्रशासनिक क्षेत्राधिकार में आता हो, ग्राह्य नहीं है। संकल्प ग्राह्य किये जाने के बाद प्रत्येक गृहीत संकल्प की एक प्रति संबन्धित मंत्री को भेजी जाती है।[28]

वर्ष 1986 में राज्य विषय से संबंधित संकल्प (जम्मू-कश्मीर राज्य में साम्प्रदायिक शांति और सद्भाव बहाल करने के लिए कदम) को ग्राह्यता प्रदान की गई थी क्योंकि यह राज्य, राज्यपाल के शासन के अधीन था और विधान सभा निलंबित कर दी गई थी। *देखिए* 25.3.1986 की कार्य-सूची।

24. *एल.एस. डिबेट्स;* 16.3.1979, कॉ. 387-92 ।
25. किसी दूसरे देश में हुई घटनाओं से मानवीय अधिकारों के संबंध में उठने वाले विषय पर जिसके संबंध में पूरे विश्व में बड़ा रोष था और सभा में लगभग सभी का यह मत था कि इस पर चर्चा की जाए, एक सरकारी संकल्प के माध्यम से चर्चा की गयी थी, *देखिए लो. स.वा.वि.,* 23.3.1960, पृ. 3589-95; इसी अध्याय में *देखिए* 'सरकारी संकल्प' शीर्षक के अंतर्गत ।
26. कराधान संबंधी उपायों पर बजट पर चर्चा के दौरान विचार किया जाता है और एक बार उनका निर्णय होने के बाद वर्ष के दौरान उस मामले को पुन: नहीं उठाया जा सकता।
27. नियम 174 ।
28. नियम 183 ।

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर स्थगित वाद-विवाद को पुनः प्रारम्भ किया जाना

जब किसी गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर वाद-विवाद अनिश्चित काल तक के लिये स्थगित कर दिया जाता है, तो संकल्प का प्रस्तावक यदि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिये नियत बाद के किसी दिन, इस संकल्प पर चर्चा कराना चाहता हो, तो वह स्थगित वाद-विवाद को पुनः प्रारम्भ करने के लिये सूचना दे सकता है और ऐसी सूचना प्राप्त होने पर ऐसे संकल्प की सापेक्ष पूर्ववर्तिता का निर्धारण अन्य सदस्यों के साथ उस सदस्य के नाम की भी शलाका करके किया जाता है।[29] किसी गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर वाद-विवाद किसी निश्चित तिथि तक के लिये स्थगित नहीं किया जाता।[30]

एक अपवाद के मामले में एक गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प को नियम 30 (1) के उपबन्धों और नियम 29 के परन्तुक को निलम्बित करके, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत अगले दिन तक के लिए स्थगित किया गया ताकि वह संकल्प अगले नियत दिन की कार्य-सूची में बिना शलाका के पहले स्थान पर रहे।[31] एक ऐसा भी उदाहरण है जब नियम 29 के परन्तुक का निलम्बन करके एक गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प के क्रम को बिना बदले उस पर चर्चा को बाद में नियत किये जाने वाले किसी दिन तक के लिए स्थगित किया गया।[32]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति ने एक गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर चर्चा के दौरान अध्यक्षपीठ की टिप्पणी के अनुसरण में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक/संकल्प पर चर्चा के स्थगन और साथ-साथ उस विधेयक/संकल्प पर चर्चा के दौरान नियम 30 (1) के निलम्बन के प्रश्न पर विचार किया[33] मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद समिति ने अध्यक्ष को दिये गये अपने प्रतिवेदन में टिप्पणी की कि गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक या संकल्प पर चर्चा में नियम 30 (1) के निलम्बित करने के किसी ऐसे प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की सामान्यतः अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिससे उस वर्ग के कार्य के लिए नियत अगले दिन की कार्य-सूची में चर्चा के लिए उस

---

29. *लो.स.वा.वि.*, 12.11.1965, पृ. 613-14 ।

30. नियम 30 (2) ।

31. *पूर्वोक्त*, 11.4.1975, पृ. 171-72; 23.12.1977, पृ. 250 ।

32. *एल.एस. डिबेट्स*, 28.4.1995, कॉ. 234-36 और *लो.स.वा.वि.*, 26.5.1995 कॉ. 272-73 । 28.4.1995 का पूरा गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य (संकल्प) ऐसे दिन के लिए अंतरित किया गया जो कि गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य का नियत दिन नहीं था। 28.4.1995 को जिस संकल्प पर चर्चा अधूरी थी वह गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के बीच के नियत दिन (12.5.1995 और 26.5.1995) की कार्य-सूची में सम्मिलित नहीं किया गया। लेकिन जिस दिन के लिए इस कार्य को अंतरित किया गया था (30.5.1995) उस दिन इसे पहली मद के रूप में शामिल किया गया। यद्यपि 26.5.1995 को एक और संकल्प पर चर्चा अधूरी रही थी जो गैर-सरकारी संकल्पों का इस बीच नियत दिन था। इसके लिए नियम 29 के परन्तुक का निलम्बन किया गया।

33. *एल.एस. डिबेट्स*, 11.12.1981, कॉ. 465-70; [(35 और 36 आर.एस. (7 एल.एस.)]; और *देखिए* नियम पुस्तिका, नियम 30, पृ. 177-78, नोट बीस।

विधेयक या संकल्प को बिना शलाका रखा जा सके। इसलिए नियम 30 (1) के निलम्बन के अनुरोध पर केवल असामान्य परिस्थितियों में, सदन में पूर्ण मतैक्य होने पर और स्थिति से निपटने के लिए अन्य कोई विकल्प उपलब्ध न होने की स्थिति में ही विचार किया जाना चाहिए।

सभा में संकल्प प्रस्तुत किये जाने के बाद इन पांच में से कोई भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है:—प्रस्ताव स्वीकृत किया जा सकता है; या अस्वीकृत किया जा सकता है; या वापस लिया जा सकता है; या हो सकता है कि उस पर चर्चा पूरी न हो, या यह हो सकता है कि उस पर वाद-विवाद स्थगित कर दिया जाए।

गृहीत संकल्प

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिये नियत दिन की कार्य-सूची में ऐसे संकल्प के अलावा जिस पर आंशिक चर्चा हुई हो, यदि कोई हो तो सामान्यत: शलाका में सफल हुए सदस्यों के नाम के तीन संकल्प होते हैं। तथापि, यदि कोई सदस्य शलाका में स्थान प्राप्त कर ले और किसी संकल्प की सूचना न दे या सूचना देने के बाद वह सूचित करे कि वह नियत दिन को सभा में उपस्थित नहीं होगा, तो कार्य-सूची में उसके संकल्प/संकल्पों को नहीं रखा जाता।

कार्य-सूची में संकल्प उसी क्रम में रखे जाते हैं जिस क्रम में संकल्पों के प्रभारी सदस्यों के नाम शलाका के परिणामस्वरूप सूची में आते हैं और शलाका करके निश्चित किये गये इस क्रम को बदला नहीं जाता।[34] जो संकल्प दिन के अन्त में चर्चाधीन हों, उसकी गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिये नियत अगले दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित बाकी सभी संकल्पों पर पूर्ववर्तिता होती है।[35] यदि किसी दिन विशेष की कार्य-सूची में रखा गया कोई संकल्प उस दिन न लिया जाये तो उसे व्यपगत मान लिया जाता है और उसके बाद किसी दिन चर्चा के लिये नहीं रखा जाता।

यदि किसी दिन की कार्य-सूची में दर्ज ऐसे संकल्प पर, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा हो चुकी है, चर्चा के लिए निर्धारित समय को सभा अथवा अध्यक्ष द्वारा बढ़ाया जाता है और इसके परिणामस्वरूप, बैलट में प्राप्त पहली वरीयता के आधार पर कार्य-सूची में सम्मिलित हुए अगले संकल्प को उस दिन प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो उस संकल्प को, गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए उसी सत्र के दौरान नियत अगले दिन आंशिक रूप से चर्चा किये गये संकल्प, यदि कोई हो, के पश्चात् पहली मद के रूप में रखा जाएगा।[36]

---

34. 24 सितम्बर, 1965 को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिये नियत समय का उपयोग संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा पास किये गये भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध विराम सम्बन्धी एक संकल्प पर अल्पकालिक चर्चा के लिये किया गया। लेकिन सभा में सर्वसम्मति से इस पर चर्चा भारत के राष्ट्रमण्डल छोड़ने के संबंध में एक गैर–सरकारी सदस्य के संकल्प पर अल्पकालिक चर्चा के साथ ही हुई, यद्यपि वह प्रस्ताव गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों की उस दिन की कार्य-सूची में तीसरे स्थान पर था।
35. नियम 29, परन्तुक।
36. निदेश 9 (क), *लो.स.वा.वि.,* 26.4.1974, पृ. 168; 10.5.1974, पृ. 170; 16.8.1974, पृ. 127; 30.8.1974, पृ. 125; 19.3.1976, पृ. 120; 2.4.1976, पृ. 122-23; 11.4.1986, पृ. 336; 3.4.1987, पृ. 182; 19.7.1996, कॉ. 268; 30.8.1996, कॉ. 379, 394 और 410।

संकल्पों के लिए समय का नियतन

एक शुक्रवार के अंतर से, प्रत्येक शुक्रवार की बैठक के अंतिम ढाई घंटे का समय गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर चर्चा के लिए नियत किया जाता है। यह क्रम प्रत्येक सत्र के दूसरे शुक्रवार से प्रारम्भ होता है। अध्यक्ष, सदन के नेता से परामर्श के बाद, ऐसे कार्य के लिए शुक्रवार के अतिरिक्त कोई अन्य दिन नियत कर सकता है। यदि किसी शुक्रवार को, जो गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत दिन है, सभा की बैठक न हो तो, अध्यक्ष यह निदेश दे सकता है कि सप्ताह के किसी अन्य दिन ढाई घंटे का समय गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत किया जाये।[37]

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर चर्चा, सभा की सर्वसम्मत सहमति से, शुक्रवार के अतिरिक्त किसी अन्य दिन की जा सकती है, जिससे कि सभा किसी अन्य अविलम्बनीय कार्य को जल्दी निपटा सके।[38] जब सभा में इस संबंध में मतैक्य न हो तो गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य किसी अन्य दिन के लिए अंतरित नहीं किया जाता।[39] यदि लोक सभा की कोई बैठक

---

37. नियम 26 ।

38. *लो.स.वा.वि.*, 26.8.1960, पृ. 2573-74; *एल.एस. डिबेट्स*, 26.4.1963, कॉ. 12169-70, *लो.स.वा.वि.*, 2.6.1995, पृ. 257-58 ।

    (*i*) गुरुवार, 27 मार्च, 1986 गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत दिन था। कार्यमंत्रणा समिति की सिफारिश [22वां प्रतिवेदन (कार्यमंत्रणा समिति—आठवीं लोक सभा)] पर इस दिन की बैठक रद्द कर दी गई और उस दिन के लिए नियत गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को मंगलवार 25 मार्च, 1986 के लिए अंतरित कर दिया गया।

    (*ii*) शुक्रवार, 15 अप्रैल, 1988 गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए नियत दिन था। कार्यमंत्रणा समिति की सिफारिश [51वां प्रतिवेदन (कार्यमंत्रणा समिति—आठवीं लोक सभा)] पर उस दिन की बैठक रद्द कर दी गई। 4 अप्रैल, 1988 को जब समिति की रिपोर्ट को स्वीकृत करने का प्रस्ताव सभा में पेश किया गया तो एक सदस्य के सुझाव पर 15 अप्रैल, 1988 के गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को 29 अप्रैल, 1988 के लिए अंतरित किया गया।

    (*iii*) शुक्रवार 14 मार्च, 2008 को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए आवंटित किया गया था। संसदीय कार्य मंत्री द्वारा अध्यक्ष को अनुरोध किए जाने और सभा द्वारा इस संबंध में सहमति दिए जाने पर उस दिन के लिए नियत गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य (संकल्प)। गुरूवार 17 अप्रैल, 2008 के लिए अंतरित कर दिया गया।

    (*iv*) शुक्रवार 20 फरवरी, 2009 को गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए आवंटित किया गया था। संसदीय कार्य मंत्री ने एक पत्र के माध्यम से अध्यक्ष से अनुरोध किया कि 20 फरवरी, 2009 के लिए नियत गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य (संकल्प) को 26 फरवरी, 2009 के लिए अंतरित कर दिया जाए जिसे कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष प्रस्तुत किया गया। कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर उस दिन के लिए निर्धारित कार्य को गुरूवार 26 फरवरी, 2009 के लिए अंतरित कर दिया गया।

39. *पूर्वोक्त*, 15.6.1962, पृ. 5019 ।

रद्द की जाती है और उस दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित संकल्पों के बारे में सभा में कोई स्पष्ट निर्णय न लिया गया हो तो जिन संकल्पों पर चर्चा जारी है उन्हें छोड़कर सभी संकल्पों को व्यपगत माना जाता है।[40]

अपवाद के मामलों में गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर चर्चा किसी नियत दिन के नियत समय से पहले या बाद में की जा सकती है।[41]

सभा की सर्वसम्मत सहमति से, इस समय को, जो सामान्यत: ढाई घंटे होता है, बढ़ाया जा सकता है।[42] या घटाया जा सकता है।[43]

संकल्पों के लिए समय-सीमा

किसी नियत दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित किये गये संकल्पों पर चर्चा के लिये समय की सीमा के संबंध में सिफारिशें गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति करती है।[44] यदि किसी कारण से समिति की बैठक न हो सके तो समय का नियतन सभा उस दिन करती है, जिस दिन संकल्पों पर विचार किया जाना हो।[45] गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर चर्चा की अधिकतम समय-सीमा चार घंटे है।[46] तथापि, ऐसे उदाहरण भी हैं जब संकल्पों पर दस घंटे से अधिक चर्चा हुई।[47]

---

40. *पूर्वोक्त,* 14.3.1984, पृ. 337-38; *एल.एस. डिबेट्स,* 2.4.1985, कॉ. 383-84 ।
41. *लो.स.वा.वि.,* 26.3.1965, पृ. 2489-90 ।
42. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.7.1956, कॉ. 483-84; *लो.स.वा.वि.,* 26.4.1974, पृ. 166; 16.8.1974, पृ. 127; *एल.एस. डिबेट्स* 2.4.1976, कॉ. 275; 19.12.2009 पृ. 537-543 ।
43. *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1962, पृ. 3240; 29.3.1974 कॉ. 320-21,; 2.9.1988 पृ.172 ।
44. नियम 294(1) (ङ) *लो.स.वा.वि.,* 21.4.1962, पृ. 165; 4.5.1962, पृ. 1319; और 18.5.1962, पृ. 2575। अध्याय 30—संसदीय समितियों में "गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति" के *अंतर्गत* भी *देखिए*।
45. *लो.स.वा.वि.,* 23.11.1962, पृ. 1442; *एल.एस. डिबेट्स,* 12.7.1996, कॉ. 214-15 ।
    नई लोक सभा के आरम्भ में और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के गठन से पूर्व संकल्पों के लिए समय का नियतन सभा की राय से अध्यक्षपीठ द्वारा किया जाता है—*लो.स.वा.वि.,* 18.1.1985, पृ. 144 ।
46. छठा प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों संबंधी समिति—पहली लोक सभा) सभा द्वारा स्वीकृत; *लो.स.वा.वि.,* 17.4.1954, कॉ. 3489-90; 7.8.1959, पृ. 673-74 ।
47. (*i*) केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में एक संकल्प पर चर्चा 31.3.1983, 15.4.1983, 29.4.1983, 5.8.1983 और 19.8.1983 को हुई जो कुल दस घंटे और तीस मिनट चली।
    (*ii*) आदिवासी लोगों के उत्थान के लिए किए गए उपायों के बारे में एक संकल्प पर चर्चा 16.4.1987, 30.4.1987, 7.8.1987, 21.8.1987, 13.11.1987, 11.12.1987 और 18.3.1988 को हुई जो लगभग चौदह घंटे चली।

किसी संकल्प पर पंद्रह मिनट से अधिक भाषण नहीं हो सकता है जब तक कि इसके लिए अध्यक्ष की अनुज्ञा न हो लेकिन किसी संकल्प का प्रस्तावक और सम्बद्ध मंत्री, पहली बार बोलते समय, आधा घंटा या उससे उतने अधिक समय के लिए बोल सकते हैं, जितने की अध्यक्ष अनुज्ञा दें।[48]

यदि समिति द्वारा किसी संकल्प पर चर्चा के लिये जिस समय की सिफारिश की गई है उसमें परिवर्तन करना हो, तो कोई भी सदस्य समिति की उस रिपोर्ट में उस समय कोई संशोधन प्रस्तुत कर सकता है जब वह रिपोर्ट स्वीकृति के लिए सभा के सामने आती है।[49]

समय का नियतन, आदेश और अवशिष्ट विषयों का निपटारा

संकल्पों के संबंध में समय का नियतन सभा द्वारा अनुमोदित होने पर ऐसे लागू होगा जैसे कि वह सभा का आदेश हो।[50] समय के नियतन के आदेश के अधिसूचित होने पर किसी संकल्प पर चर्चा के लिए समय को बढ़ाया जा सकता है[51] या कम किया जा सकता है।[52] परन्तु यह तभी हो सकता है जबकि इस संबंध में किसी सदस्य द्वारा सभा में पेश किया गया प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाये। तथापि अनेक मामलों में सभा की राय जानकर ही समय बढ़ाया गया है और उस प्रयोजन के लिए कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं रखा गया।[53]

अध्यक्ष, समय के नियतन के आवंटन के अनुसार, जब तक कि सभा द्वारा समय सीमा न बढ़ाई गई हो, निर्धारित समय पर संकल्प[54] और संशोधन यदि कोई हो, को सभा के मत-विभाजन के लिए रख सकता है। पहले संशोधन और उसके बाद संकल्प को मत-विभाजन के लिए रखा जाएगा।

जब सभा के विचाराधीन किसी संकल्प के संबंध में कोई व्यवस्था का प्रश्न उठाया जाता है, तो उस व्यवस्था के प्रश्न को निपटाने में लगाया गया समय भी संकल्प के लिये नियत कुल समय में गिना जाता है।[55]

(*iii*) पूजास्थलों और धार्मिक स्थानों की यथावत् स्थिति बनाए रखने के संबंध में एक संकल्प पर चर्चा 12.7.1991, 19.7.1991, 26.7.1991, 9.8.1991 और 23.8.1991 को हुई जो ग्यारह घंटे और पांच मिनट चली।

48. नियम 178 ।
49. *लो.स.वा.वि.*, 26.8.1955, पृ. 2195-97; 17.2.1956, पृ. 46-47 ।
50. नियम 296 ।
51. *लो.स.वा.वि.*, 7.8.1959, पृ. 673-74; 7.9.1962, पृ. 3240; 15.11.1962, पृ. 817 ।
52. *एल.एस. डिबेट्स,* 31.8.1956, कॉ. 5115-16 ।
53. *पूर्वोक्त,* 4.12.1959, कॉ. 3519; और 20.9.1963, कॉ. 10509; *लो.स.वा.वि.,* 14.3.1986, पृ. 337; 20.3.1987, पृ. 162 ।
54. नियम 297 ।
55. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.7.1956, का. 437; *लो.स.वा.वि.,* 2.3.1979, पृ. 167-69; 16.3.1979, पृ. 231-33 ।

संकल्पों का पेश किया जाना

कार्य-सूची में जिस सदस्य के नाम से संकल्प हो वह, सिवाय उस दशा में, जब कि वह उसे वापस लेना चाहता हो, पुकारे जाने पर, संकल्प पेश करता है।[56] कार्य-सूची में दिये गये रूप में औपचारिक प्रस्ताव को रखने के साथ प्रस्तावक अपना भाषण प्रारम्भ करता है।[57] परन्तु यदि कोई सदस्य औपचारिक रूप से अपना प्रस्ताव रखे बिना, उसके संबंध में भाषण देता है तो वह नियम के विरुद्ध नहीं है।[58]

कोई संकल्प उसी रूप में पेश किया जाना चाहिए जिस रूप में कि वह कार्य-सूची में दिया गया हो।[59] यदि संकल्प का प्रस्तावक उसके किसी भाग को हटाना चाहे, तो वह सभा के आदेश द्वारा ही ऐसा कर सकता है।[60] परन्तु ऐसे उदाहरण हुए हैं, जब अध्यक्ष ने कार्य-सूची में दिये गये संकल्प को संशोधित रूप में पेश करने की अनुमति दी है।[61]

कोई भी संकल्प, अध्यक्ष की अनुमति से, किसी अन्य सदस्य द्वारा उस सदस्य की ओर से जिसके नाम से संकल्प कार्य-सूची में सम्मिलित किया गया हो, अधिकार दिये जाने पर पेश किया जा सकता है जबकि प्रस्ताव के संबंध में ऐसा नहीं होता है।[62] संकल्प के प्रस्तावक का भाषण यदि पूरा न हो और वह यदि अगले नियत दिन पर अनुपस्थित हो तो उसके भाषण को समाप्त माना जाता है।[63] जब तक कि अध्यक्षपीठ द्वारा किसी संकल्प के प्रस्तावक द्वारा अपना भाषण पूरा कर लिये जाने के पश्चात् उसे सभा के समक्ष नहीं रख दिया जाता, सभा के समक्ष कोई प्रस्ताव नहीं होता।[64]

किसी सदस्य को इस आधार पर अपना प्रस्ताव पेश करने का चिरभोगाधिकार नहीं है कि कार्य-सूची में उसके संकल्प के पहले जो संकल्प है यदि उसके लिए समय बढ़ा दिया

---

56. 20 मार्च, 1972 की कार्य-सूची में संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत मणिपुर के संबंध में उद्घोषणा को मंजूरी दिए जाने के बारे में संविधान संकल्प सम्मिलित किया गया। यह संकल्प गृह राज्य मंत्री के नाम से था। जब नियत दिन पर उस मद पहुंचे तो मंत्री ने संकल्प पेश नहीं किया और यह तर्क दिया कि यह आवश्यक नहीं था क्योंकि उद्घोषणा को वापस ले लिया गया था और मणिपुर में मंत्रिपरिषद का गठन किया जा चुका था। *देखिए लो.स.वा.वि.,* 20.3.1972, पृ. 133-34 ।
57. नियम 176(1)।
58. *लो.स.वा.वि.,* 22.5.1957 कॉ 1502-78।
59. *पूर्वोक्त,* 8.12.1972, पृ. 130 ।
60. *एल.ए. डिबेट्स,* 17.2.1921, पृ. 158 ।
61. *लो.स.वा.वि.,* 17.8.1959, पृ. 1491-1503; 28.3.1960, पृ. 3938 ।
62. नियम 176(2) *लो.स.वा.वि.,* 7.8.1970, पृ. 167; 21.6.1971, पृ. 62-63; 31.3.1983, पृ. 300-01 ।
63. *पूर्वोक्त* 30.4.1976, पृ. 125-26; 14.5.1976, पृ. 102-03, 20.3.1987, पृ. 141 ।
64. अध्यक्ष द्वारा विनिर्णयन *एल.एस. डिबेट्स* 14.2.1958, कॉ. 893-96 ।

गया, तो उसके संकल्प पर सभा द्वारा विचार नहीं किया जा सकेगा।[65] जब किसी संकल्प पर चर्चा जारी है तो कार्य-सूची में आगे दिये गये संकल्प के प्रस्ताव को पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती है।[66]

लेकिन ऐसे कुछ अवसर रहे हैं जब गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर चर्चा को संकल्पों के लिए अगले नियत दिन तक स्थगित कर दिया गया और संकल्प के संबंध में नियम 30(1) और नियम 29 के परन्तुक को निलम्बित रखा गया। इसके पश्चात् अगला संकल्प पेश किया गया।[67]

संशोधनों की सूचना

किसी भी संकल्प के पेश किये जा चुकने पर, कोई भी सदस्य, संकल्पों संबंधी नियमों के अधीन उस संकल्प में कोई संशोधन पेश कर सकता है, परन्तु संशोधन पेश करने मात्र से ही उसे भाषण देने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता।[68] यदि किसी संशोधन की सूचना संकल्प के पेश किये जाने से एक दिन पहले नहीं दी गयी, जैसा कि नियमों के अंतर्गत अपेक्षित है, तो कोई भी सदस्य उस संशोधन के रखे जाने पर आपत्ति कर सकता है और जब तक कि अध्यक्ष उस संशोधन के पेश किये जाने की अनुमति न दे दे, ऐसी आपत्ति स्वीकार मानी जाती है।[69] किसी संशोधन के संबंध में सूचना की अवधि की शर्त उस दशा में हटा दी जाती है जबकि वह संकल्प के प्रस्तावक और सरकार को स्वीकार्य हो।[70]

जिन संशोधनों की सूचनायें मिलती हैं, उनकी सूचियां समय-समय पर सदस्यों को परिचालित की जाती हैं।[71]

संशोधनों की ग्राह्यता

किसी संशोधन के ग्राह्य होने के लिए यह आवश्यक है कि वह अस्पष्ट या अनिश्चित न हो[72] और न ही नकारात्मक हो।[73] यह अनावश्यक रूप से लम्बा नहीं होना चाहिए और न

---

65. *पूर्वोक्त,* 8.5.1959, कॉ. 1954-55; *लो.स.वा.वि.,* 21.8.1987, पृ. 252-53 ।
66. *एल.एस. डिबेट्स,* 14.8.1969, कॉ. 323-24 और 329-30; *लो.स.वा.वि.,* 22.12.1972, पृ. 173-76; 9.12.1977, पृ. 168-69; 3.3.1978, पृ. 159, 164 ।
67. *एल.एस. डिबेट्स,* 12.3.1965, कॉ. 455-58; *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1975, पृ. 164; 23.12.1977, पृ. 250 ।
68. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 28.11.1952, कॉ. 1370 ।
69. नियम 177 । किसी संशोधन की यदि पर्याप्त सूचना न दी गयी हो और यदि पर्याप्त सूचना वाला समान संशोधन किसी अन्य सदस्य द्वारा पहले ही दिया जा चुका हो और वह सदस्य ऐसे संशोधन को पेश करने से मना कर रहा हो तो उसे पेश किया जा सकता है।
70. *एल.एस. डिबेट्स,* 31.3.1956, कॉ. 3980-81; 28.8.1981, कॉ. 307-08 ।
71. नियम 177(3) ।
72. *एल.ए. डिबेट्स,* 5.12.1932, पृ. 2930 ।
73. *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1960, पृ. 1834-35 ।

ही इसमें कई मुद्दे उठाने की चेष्टा होनी चाहिए।[74] संशोधन ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि उससे संकल्प का क्षेत्र बढ़ जाता हो।[75] अतः ऐसा संशोधन, नियम-विरुद्ध होगा जिसमें कोई ऐसा विषय उठाने की चेष्टा की गयी हो, जो कि संकल्प के क्षेत्र से बाहर हो।[76] यदि कोई संशोधन सारतः वैसा ही हो, जैसाकि मूल संकल्प है, तो वह संशोधन नियम-विरुद्ध है।[77] ऐसे संशोधन ग्राह्य नहीं हैं, जो पूरी तरह या किसी अंश में, सारतः या शब्दों की दृष्टि से, वैसे ही प्रश्न उठाते हैं, जो उसी सत्र में पहले से निर्णीत संकल्प में उठाए गए थे।[78] संशोधन की ग्राह्यता के बारे में आपत्ति, संशोधन को पेश करते समय उठाई जा सकती है। वह संकल्प पर चर्चा समाप्त होने पर या संशोधन पर मतदान के समय नहीं उठाई जा सकती है।[79]

जैसे-जैसे दिन-प्रतिदिन वाद-विवाद होता है वैसे-वैसे ही अध्यक्ष, अपने विवेकाधिकार से, संशोधन पेश करने की अनुमति देने से इनकार कर सकता है।[80] तथापि अध्यक्ष के विवेकाधिकार के अंतर्गत ऐसे संशोधनों के रखने पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती, जिन पर सहमति हो और न ऐसे संशोधनों पर आपत्ति हो सकती है, जो वाद-विवाद के प्रयोजनों के लिए वास्तव में आवश्यक हो।[81]

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त, संकल्पों के संशोधनों की ग्राह्यता पर भी वही शर्तें *यथावश्यक परिवर्तन सहित,* लागू होती हैं, जो विधेयकों और प्रस्तावों के संबंध में संशोधन की ग्राह्यता पर लागू होती हैं।

चर्चा की व्याप्ति

किसी संकल्प पर चर्चा संकल्प के सर्वथा संगत और उसकी व्याप्ति के भीतर होनी चाहिए।[82] जब किसी संकल्प के माध्यम से कोई सामान्य प्रश्न उठाया गया हो तो उदाहरण देकर नाम लिये बिना व्यक्तिगत मामलों की चर्चा की जा सकती है, परन्तु सरकार से उनके संबंध में शिकायत दूर करने की अपील नहीं की जा सकती।[83]

---

74. *पूर्वोक्त,* 26.3.1965, पृ. 2503 ।
75. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.8.1934, पृ. 1275-76; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 17.4.1953, कॉ. 4463; *लो.स.वा.वि.,* 14.4.1961, पृ. 5287-88 ।
76. *एल.ए. डिबेट्स,* 27.1.1925, पृ. 301-02 ।
77. *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1960, पृ. 1834-35 ।
78. *एल.ए. डिबेट्स,* 21.7.1923, पृ. 4832 ।
79. *लो.स.वा.वि.,* 26.3.1975, कॉ. 151-65 ।
80. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 22.8.1953, कॉ. 1307-09 ।
81. *एल.ए. डिबेट्स,* 5.2.1946, पृ. 511; *लो.स.वा.वि.,* 2.7.1971, पृ. 132; 2.3.1973, पृ. 143, 154-55 ।
82. नियम 179 ।
83. *एल.ए. डिबेट्स,* 25.3.1943 पृ. 1438 ।

संकल्प का प्रभारी सदस्य संकल्प पर अपने भाषण के दौरान सामान्य रूप से उन संशोधनों के संबंध में अपने विचार प्रकट कर सकता है जो कार्य-सूची में हों, परन्तु जिन्हें अभी पेश न किया गया हो।[84]

उत्तर देने का अधिकार

किसी संकल्प के प्रस्तावक को वाद-विवाद का उत्तर देने का अधिकार है, परन्तु उसे अपने इस अधिकार की रक्षा के लिए अपने स्थान पर खड़ा होकर बोलने का समय मांगना पड़ता है। अध्यक्ष यह जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेता कि प्रत्येक संकल्प को सभा के सामने मतदान के लिये रखने से पहले उसके प्रस्तावक से पूछे कि वह वाद-विवाद का उत्तर देना चाहता है या नहीं।[85] किसी अन्य सदस्य को इस बात की अनुमति नहीं दी जाती कि वह संकल्प के प्रस्तावक की ओर से वाद-विवाद का उत्तर दे। गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प के संबंध में यदि संकल्प का प्रस्तावक वाद-विवाद का उत्तर देने के लिए उपस्थित नहीं है तो वाद-विवाद को मंत्री के भाषण के पश्चात् समाप्त समझा जाता है।[86]

प्रत्येक ऐसे संकल्प की एक प्रति, जो सभा द्वारा पारित किया गया हो, महासचिव द्वारा सम्बद्ध मंत्री को भेजी जाती है।[87]

संकल्प का वापस लिया जाना

जिस सदस्य के नाम में कोई संकल्प कार्य-सूची में हो वह, उसे पेश करने के लिए बुलाये जाने पर अध्यक्ष से कह सकता है कि वह संकल्प को पेश नहीं करना चाहता और इस दशा में वह अपनी बात केवल इस कथन तक ही सीमित रखेगा; परन्तु यदि कोई संकल्प या उसमें कोई संशोधन सभा में प्रस्तुत कर दिया गया हो, तो संकल्प को सभा की अनुमति से ही वापस लिया जा सकता है।[88] सदस्य उस समय संकल्प को वापस लेने की अनुमति नहीं मांग सकता, जबकि उस पर, या उसमें रखे गये किसी संशोधन पर मत-विभाजन चल रहा हो। किसी संकल्प के वापस लिये जाने के प्रस्ताव को तभी रखा जा सकता है, जबकि संशोधनों को निपटाया जा चुका हो, या तो उन्हें स्वीकार किया जा चुका हो या वापस लिया जा चुका हो, या अस्वीकृत किया जा चुका हो। तथापि, संशोधित संकल्प सभा की अनुमति से वापस लिया जा सकता है।

---

84. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.5.1957, कॉ. 1528 ।
85. *एल.ए. डिबेट्स,* 5.3.1921, पृ. 649 ।
86. *लो.स.वा.वि.,* 14.5.1976, पृ. 113; 10.12.1993, पृ. 318 ।
87. नियम 183 ।
88. नियम 180 ।

सरकारी संकल्प

यद्यपि सरकारी संकल्प के लिए सूचना देने की कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है, वास्तव में मंत्री उस तिथि से कई दिन पहले ऐसे संकल्प की सूचना देते हैं, जिस दिन उन्हें कार्य-सूची में शामिल किया जाना हो। जहां तक ग्राह्यता का संबंध है, सरकारी संकल्पों पर भी वही नियम लागू होते हैं जोकि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर। यदि सरकारी संकल्प की भाषा उपयुक्त नहीं है या उसमें एक से अधिक निश्चित मुद्दे को उठाया जाता है,[89] तो संबंधित मंत्री से संशोधित सूचना देने के लिए कहा जाता है। जब किसी ऐसे संकल्प की सूचना जो किसी मंत्री ने दी हो, अध्यक्ष द्वारा गृहीत कर ली जाती है, तो उसे संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है। अध्यक्ष सदन के नेता के परामर्श के बाद उस संकल्प पर चर्चा के लिए तिथि निश्चित करता है। उस संकल्प को कार्य-सूची में शामिल किये जाने से पहले सम्बद्ध मंत्री इस बात को सुनिश्चित करता है कि सभी संगत दस्तावेज और साहित्य, जहां आवश्यक हो, सदस्यों को काफी पहले से बांट दिये जाएं।

समय का नियतन और चर्चा

किसी सरकारी संकल्प पर चर्चा के लिए समय सभा द्वारा कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर नियत किया जाता है।[90] संकल्प प्रभारी मंत्री द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में उसकी ओर से अध्यक्ष को पूर्व सूचना देने के पश्चात् किसी अन्य मंत्री द्वारा पेश किया जा सकता है। उसमें संशोधन रखने तथा उनके निपटारे और संकल्प के निपटारे के संबंध में बाकी प्रक्रिया वही है जोकि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के संबंध में है।

सरकारी विधेयक[91] या कतिपय अन्य मदों[92] पर विचार के लिए सरकारी संकल्प और प्रस्ताव पर संयुक्त चर्चा की जा सकती है।

सरकारी संकल्पों को मोटे तौर पर निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

---

89. नियम 173: पंद्रहवीं लोक सभा के तेरहवें सत्र के दौरान मध्यस्थता बोर्ड द्वारा दो अलग-अलग सी.ए. संदर्भ अर्थात् 2004 का सी.ए. संदर्भ संख्या 6 और 2004 के सं. 2 में दिए गए निर्णय को अस्वीकार करने संबंधी एक सरकारी संकल्प की सूचना को मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखा गया। चूँकि, सूचना में दो अलग-अलग मुद्दे शामिल थे अत: संकल्प पर कोई कार्यवाही नहीं की गई और मंत्री से संकल्पों की दो पृथक सूचनाएं सभा पटल पर रखने का अनुरोध किया गया।

90. नियम 288; साथ ही *देखिए* (दूसरी लोक सभा की कार्य मंत्रणा समिति की) 37वीं और 39वीं रिपोर्ट; समिति के कृत्यों के ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 30—संसदीय समितियां।

91. *एल.एस. डिबेट्स,* 7.12.1967, कॉ. 5419-534, *लो.स.वा.वि.,* 8.12.1967, पृ. 2820-24; 11.12.1967, पृ. 2917-26; 12.12.1967, पृ. 3035-48 तथा 13.12.1967, पृ. 3179-96।

92. *लो.स.वा.वि.,* 17.12.1973, पृ. 142-62, 164-67, *एल.एस. डिबेट्स,* 18.3.1987, कॉ. 537-89 ।

ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संधियों, अभिसमयों या करारों का अनुमोदन करने वाले संकल्प जिन पर सरकार ने हस्ताक्षर किये हों:—संविधान के अंतर्गत भारत सरकार विदेशों के साथ संधियां तथा करार कर सकती है और उसे यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अन्य देश या देशों के साथ हुई संधि, करार या अभिसमय या किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संघ या अन्य निकाय द्वारा किये फैसलों को कार्यरूप में परिणत कर सके।[93] कभी-कभी, इस प्रयोजन से मंत्रियों द्वारा संकल्प लोक सभा में रखे जाते हैं कि अभिसमयों या उनकी सिफारिशों का अनुमोदन लोक सभा से प्राप्त किया जा सके या भारत सरकार द्वारा किये गये अभिसमयों या करारों का अनुसमर्थन किया जा सके।[94]

यह बात भारत सरकार के अधिकार क्षेत्र में है कि वह संधियों पर हस्ताक्षर करे और उनका अनुसमर्थन करे, परन्तु संविधान के अन्तर्गत सरकार के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह ऐसी संधियों के संबंध में संसद का अनुमोदन प्राप्त करे।[95] परन्तु जब किसी संधि में ही ऐसा उपबन्ध हो कि उसका अनुसमर्थन संविदाकारी पक्षकारों के विधानमंडलों द्वारा होना चाहिये, तो उस संधि को अनुमोदन के लिए सभा के सामने रखा जाता है।[96] यह भी कि भारतीय राज्य क्षेत्र का अध्यर्पण संविधान संशोधन के बिना नहीं किया जा सकता है। सीमा विवादों के निपटारे को राज्य क्षेत्र का अध्यर्पण नहीं माना गया है। इस संबंध में, उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि:—

> सामान्यत: किसी सीमा की समायोजना, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून दो राष्ट्रों के बीच विधिमान्य मानता है, न्यायालयों द्वारा मान्य होनी चाहिए और उसका कार्यान्वयन सदैव कार्यपालिका ही कर सकती है जब तक कि उसमें अध्यर्पण का ऐसा स्पष्ट मामला अंतर्ग्रस्त न हो जिसमें संसदीय मध्यस्थता की अपेक्षा की जा सकती है और उसे किया भी जाना चाहिए। यह उन राष्ट्रों की प्रथा रही है जिनके संविधानों में इस विषय पर विस्तार से नहीं बताया गया।[97]

---

93. *देखिए* अनुच्छेद 253 और सातवीं अनुसूची (सूची एक संघ सूची) की प्रविष्टियां 13 और 14। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने निम्न टिप्पणी की:

> सातवीं अनुसूची में सूची 1 की प्रविष्टि 14, संधियां किए जाने के संबंध में सभी विधान का उपबंध करती है। तथापि, इसका अर्थ यह नहीं है कि जब तक संसद इस मामले में विधि निर्माण न करे तब तक कोई संधि नहीं की जानी चाहिए। संधि करने के मामले में विधान की शक्ति, कार्यपालिका द्वारा संधि करने की शक्ति को प्रभावित नहीं करती है— *भारत संघ बनाम मनमुल्ल जैन,* ए.आई.आर. 1954, कलकत्ता 615।

94. समाचार भाग-1, 10.9.1957।
95. *लो.स.वा.वि.,* 14.11.1960 पृ. 69-71।
96. *पी. डिबेट्स,* 10.8.1950, कॉ. 713-14 और 736।
97. *मगनभाई ईश्वरभाई, पटेल बनाम भारत संघ,* ए.आई.आर. 1969 एस.सी. 783।

सरकार की कतिपय नीतियों की घोषणा अथवा उनका अनुमोदन करने वाले संकल्प: सरकारी संकल्प का आशय सरकार के किसी कार्य या नीति का सभा द्वारा अनुमोदन कराना होता है। उदाहरण के लिए ऐसे संकल्प जिनका आशय सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रारूप और राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर कार्यवाही कार्यक्रम में अंतर्विष्ट सिद्धांतों, उद्देश्यों तथा विकास कार्यक्रमों के संबंध में सभा का अनुमोदन प्राप्त करना था, सभा के समक्ष लाए गए हैं तथा स्वीकृत किए गए हैं।[98]

इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हुई घटनाओं के संबंध में सरकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले संकल्प भी सभा के समक्ष लाये गये हैं और स्वीकृत किये गये हैं।[99]

कतिपय समितियों की सिफारिशों का अनुमोदन करने वाले संकल्प: कभी-कभी सरकार ऐसे संकल्प लाती है जिनका आशय कतिपय समितियों के प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों पर सभा का अनुमोदन प्राप्त करना होता है।[100]

सरकार, मध्यस्थता बोर्ड जिसका गइन संयुक्त परामर्शदात्री तंत्र और अनिवार्य मध्यस्थता संबंधी योजना के पैरा 21 के अनुसार किया जाता है, द्वारा दिए गए निर्णयों को इस आधार पर अस्वीकृत करने के लिए सभा का अनुमोदन प्राप्त करने हेतु भी संकल्प प्रस्तुत करती है कि उसके द्वारा दिए गए निर्णयों के कार्यान्वयन से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।[101]

---

98. *एल.एस. डिबेट्स,* 13.9.1956, कॉ. 7146-47; *लो.स.वा.वि.,* 15.12.1983, पृ. 318-19; 16.12.1983, पृ. 278-335; 22.12.1983, पृ. 299-305; 6.5.1986, पृ. 273-79; 7.5. 1986, पृ. 255-344; 8.5.1986, पृ. 19-101; 21.8.1986, पृ. 70-168 ।

99. *पूर्वोक्त,* 28.3.1960, पृ. 3940-41; *एल.एस. डिबेट्स,* 22.5.1957, कॉ. 1576-78 ।

100. उदाहरणार्थ, रेल अभिसमय समिति की सिफारिशों के अनुमोदन के संबंध में, *लो.स.वा.वि.,* 18.3.1987, पृ. 345-82; 30.3.1993, पृ. 414-521, 31.3.1993, पृ. 224-25; 29.11. 2007 ।

101. (एक) तेहरवीं लोक सभा के तीसरे सत्र के दौरान, डाक और दूरसंचार विभाग के संचालन अधिकारियों के कार्य घंटों में कटौती करने के संबंध में 1980 के सी.ए. संदर्भ सं. 9(क) में मध्यस्थता बोर्ड द्वारा 21 फरवरी 1983 को दिए गए निर्णय को अस्वीकार करने के लिए सरकार के प्रस्ताव पर अनुमोदन प्राप्त करने संबंधी संकल्प को लोक सभा द्वारा 16 मई 2000 कॉ 422 को स्वीकार किया गया ।

(दो) निर्णय को अस्वीकार करने के लिए सभा का अनुमोदन प्राप्त करने संबंधी संकल्पों को गृहीत किया गया परंतु उन पर चर्चा नहीं हुई देखिए लोक सभा बुलेटिन भाग-दो दिनांक 24.11.2011, 20.3.2012 और 22.2.2013।

सांविधिक संकल्प

ऐसे संकल्पों को, जिन्हें 'संविधान या संसद के किसी अधिनियम के उपबन्ध के अनुसरण में 'सभा पटल पर रखा जाता है, सांविधिक संकल्प कहा जाता है[102] ऐसे संकल्प की सूचना या तो किसी मंत्री द्वारा दी जा सकती है अथवा किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा । परन्तु, कुछ अधिनियमितियों में सरकार से स्पष्ट रूप से यह अपेक्षा की गयी है कि वह निर्दिष्ट समयावधि के भीतर ऐसा कोई संकल्प लाए।[103]

सांविधिक संकल्प पेश करने की सूचना देने की कोई निश्चित अवधि नहीं रखी गई है, जब तक कि इस प्रकार की अवधि का उपबन्ध संविधान के किसी अनुच्छेद विशेष या उस कानून की किसी धारा में न किया गया हो, जिसके अंतर्गत इसे सभा पटल पर रखा जाता है।[104] सांविधिक संकल्प की ग्राह्यता, उसमें संशोधन पेश करने और निपटारे के संबंध में प्रक्रिया वही है जो कि अन्य संकल्पों के सम्बन्ध में है।[105]

सांविधिक संकल्प जब अध्यक्ष द्वारा गृहीत कर लिया जाता है तो उसे सदस्यों की जानकारी के लिये संसदीय समाचार में 'सांविधिक संकल्प' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाता है और चाहे किसी गैर-सरकारी सदस्य ने इसकी सूचना दी हो इस संकल्प पर बैलट नहीं होता।[106]

सांविधिक संकल्प को गृहीत और बुलेटिन में उसका प्रकाशन किए जाने के पश्चात् सदस्यों द्वारा तदुपरांत सभा पटल पर रखी गईं सांविधिक संकल्प की समान सूचनाओं को फिर से बुलेटिन में प्रकाशित नहीं किया जाता। इसके बजाय कार्य सूची में सांविधिक संकल्प को शामिल किए जाने पर उन्हें बुलेटिन में सदस्यों के नाम के नीचे प्रकाशित किया जाता है।

सांविधिक संकल्प पर चर्चा के लिए समय सरकार द्वारा सरकारी कार्य के लिए नियत समय में से दिया जाता है। ऐसे संकल्प के लिये समय सभा द्वारा कार्य मंत्रणा समिति की सलाह पर निश्चित किया जाता है। समिति, सभा में कार्य की स्थिति और संकल्प के महत्त्व को देखते हुए उस विचार के लिए आवश्यक समय की सिफारिश करती है।[107]

---

102. निदेश 9ख।
103. सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975, धारा 8(2), *लो.स.वा.वि.,* 20.8.1976, पृ. 96-97; राजभाषा अधिनियम, 1963, धारा 4(1) *लो.स.वा.वि.,* 29.7.1975, पृ. 37-38; सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975, धारा 8क(2) *लो.स.वा.वि.,* 29.8.2007 ।
104. उदाहरण के लिए अनुच्छेद 61, 67, 90 और 94 में कम से कम चौदह दिन की सूचना का उपबंध किया गया है।
105. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.12.1954, कॉ. 3281-301 ।
106. निदेश 9ख (1)।
107. *देखिए* 42वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति, आठवीं लोक सभा) जिसे सभा द्वारा 10.11.1987 को स्वीकृत किया गया था।

संविधान के अन्तर्गत संकल्प

संविधान में यह उपबंध है कि संकल्प संसद में निम्नलिखित प्रयोजनार्थ पेश किये जाएंगे:—

राष्ट्रपति पर महाभियोग

(*देखिए* अध्याय 3—राष्ट्रपति का संसद से सम्बन्ध)

उप राष्ट्रपति का पद से हटाया जाना

उप राष्ट्रपति राज्य सभा के ऐसे संकल्प द्वारा अपने पद से हटाया जा सकेगा जिसे राज्य सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पारित किया है और जिससे लोक सभा सहमत है; किन्तु इस खंड के प्रयोजन के लिए कोई संकल्प तब तक पेश नहीं किया जा सकता है जब तक कि उस संकल्प को पेश करने के आशय की कम से कम चौदह दिन की सूचना न दे दी गई हो।[108]

राज्य सभा के उप सभापति का पद से हटाया जाना

राज्य सभा के उप सभापति के पद पर आसीन सदस्य को राज्य सभा के तत्कालीन सभी सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा अपने पद से हटाया जा सकेगा; परन्तु इस संकल्प को तभी पेश किया जा सकता जब उस संकल्प को पेश करने के आशय की कम से कम चौदह दिन की सूचना दे दी गई हो।[109]

अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का पद से हटाया जाना

(*देखिए अध्याय* 7—लोक सभा के पीठासीन अधिकारी)

राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों का निरनुमोदन

(*देखिए* अध्याय 23—राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं)

संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय के संबंध में विधान बनाना

यदि राज्य सभा अपने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषणा करती है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद राज्य सूची में उल्लिखित ऐसे विषय के संबंध में, जो संकल्प में विनिर्दिष्ट हैं, विधि बनाए तो जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है संसद के लिए उस विषय के संबंध में भारत के संपूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाना विधिपूर्ण होगा।[110]

---

108. अनुच्छेद 67, अब तक ऐसा कोई संकल्प पेश नहीं किया गया।
109. अनुच्छेद 90, अब तक ऐसा कोई संकल्प पेश नहीं किया गया।
110. अनुच्छेद 249 (1), *पी. डिबेट्स* (II), 12.8.1950, कॉ. 994 और 5.6.1951, कॉ. 10202; तथा *आर.एस. डिबेट्स,* 13.8.1986, कॉ. 221-27 ।

ऐसा संकल्प एक वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए प्रवृत्त रहता है जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए। तथापि, राज्य सभा मूल संकल्प का प्रवर्तन जारी रखने के लिए आगे संकल्प पारित कर सकती है, परन्तु ऐसे प्रत्येक संकल्प की अवधि केवल एक वर्ष रहेगी।[111]

संकल्प के माध्यम से प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद द्वारा बनाये गये कानून का संकल्प के प्रवृत्त न रहने के पश्चात् छह मास की अवधि की समाप्ति पर, उक्त अवधि की समाप्ति से पहले की गयी या करने से छोड़ दी गई बातों के सिवाए, प्रभाव नहीं रहेगा।[112]

राष्ट्रीय हित में अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन

यदि राज्य सभा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषणा करती है कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो संसद विधि द्वारा संघ या राज्यों के लिए सम्मिलित, एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए उपबंध कर सकेगी। संविधान के प्रारम्भ पर भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के नाम से ज्ञात सेवाएं संविधान के अंतर्गत संसद द्वारा सृजित सेवाएं समझी गयी हैं।[113]

आपात स्थिति की उद्घोषणा तथा किसी राज्य के संवैधानिक तन्त्र के विफल होने पर जारी की गयी उद्घोषणा का अनुमोदन

(*देखिए* अध्याय 23—राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं)

संसद के अधिनियमों के अन्तर्गत संकल्प

कपितय कानूनों में यह उपबंध किया जाता है कि उनके अन्तर्गत बनाये गये नियम या जारी की गयी अधिसूचनाएं निर्दिष्ट अवधि के भीतर संसद के संकल्पों द्वारा अनुमोदित की जानी चाहिएं और जैसा कि संसद संकल्प के माध्यम से निदेश दे, इन नियमों का प्रभाव ऐसे रूपभेदों सहित होता है या इनका कोई प्रभाव नहीं होता।[114]

संकल्पों की स्थिति और प्रभाव

जहां तक संविधान के उपबंध या संसद के कानूनों के अनुसरण में प्रस्तुत किए गये संकल्पों का संबंध है उस कानून में प्रयुक्त यथावत वाक्य रचना और शब्द ही सरकार के लिए यह निर्णय करने का आधार बनते हैं कि उन्हें कार्यान्वित करना चाहिए अथवा नहीं। उदाहरण के लिए, राज्य विधान परिषद् के उत्सादन के लिए राज्य विधान सभा द्वारा संविधान के

---

111. अनुच्छेद 249(2), *पी. डिबेट्स* (II), 7.6.1951, कॉ. 10405-66 तथा *एल.एस. डिबेट्स,* 22.7.1952, कॉ. 1682-83 ।

112. अनुच्छेद 249(3)।

113. अनुच्छेद 312, *आर.एस. डिबेट्स,* 5.12.1961, कॉ. 1148-49; साथ ही *देखिए* अध्याय 44—संसद और सिविल सेवा ।

114. *देखिए* अध्याय 24—अधीनस्थ विधान ।

अनुच्छेद 169 के अंतर्गत स्वीकृत संकल्प केन्द्र सरकार पर कोई बाध्यता अधिरोपित नहीं करता कि वह संसद में विधि निर्माण हेतु कार्यवाही करे क्योंकि अनुच्छेद में प्रयुक्त शब्द "सकेगी" है।

गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया गया संकल्प यद्यपि सांविधिक नहीं है परन्तु उस पर कानून के उपबन्ध लागू हो सकते हैं और वह सभा द्वारा स्वीकृत संशोधन के माध्यम से सांविधिक बन सकता है तथा सरकार पर बाध्यकारी हो सकता है।[115]

जुलाई, 1953 में, जब मद्रास विधान परिषद् में विधान सभा द्वारा स्वीकृत संकल्प के संबंध में एक प्रश्न उठा था तो तत्कालीन मुख्य मंत्री सी. राजगोपालाचारी ने इस आशय का एक वक्तव्य दिया कि विधान सभा द्वारा पारित यह संकल्प "राय की अभिव्यक्ति मात्र" है। उन्होंने स्पष्ट किया कि सांविधिक संकल्पों और उन संकल्पों, जिनके द्वारा सभा अपनी कार्यवाही को नियंत्रित करती है, को छोड़कर सभी संकल्पों की प्रकृति केवल राय की अभिव्यक्ति स्वरूप होती है और उनमें विधि की शक्ति निहित नहीं होती है। संकल्प के माध्यम से सरकार या गैर-सरकारी सदस्य सभा की राय जान सकते हैं। विधि को दोनों सभाओं द्वारा पारित करवाना होता है और इस पर राष्ट्रपति की सहमति लेनी होती है जबकि संकल्प दोनों सभाओं में से एक ही सभा के विचारों को व्यक्त करता है।[116]

सभा द्वारा राय की अभिव्यक्ति से सरकार को अपनी नीतियां बनाने या निर्णय लेने में सहायता मिल सकती है, किन्तु संकल्प अनुशंसात्मक महत्व से अधिक कुछ नहीं हो सकता है। सभा स्वयं शासन या प्रशासन नहीं करती और न कर सकती है और इसके संकल्प सरकार को किसी तरह किसी भी नीति या कार्रवाई के लिए बाध्य नहीं कर सकते।[117] यह पूर्णत:

---

115. एक सदस्य ने 24 अप्रैल, 1981 को लोक सभा में निम्नलिखित संकल्प पेश किया:—

"यह सभा सरकार से सिफारिश करती है कि संकेतों, शब्दों या प्रकाशनों के द्वारा ऐसी किसी भी कार्रवाई को जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की छवि को धूमिल करती है, संज्ञेय अपराध माना जाये"। 28 अगस्त, 1981 को यह संकल्प निम्न संशोधित रूप से स्वीकार किया गया:

"यह सभा सरकार से सिफारिश करती है कि ऐसी किसी भी कार्रवाई को गंभीरता से नोट किया जाए जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नाम को धूमिल करती है और जांच आयोग अधिनियम, 1952 के तहत एक जांच आयोग नियुक्त किया जाए जो गांधी शांति प्रतिष्ठान, गांधी स्मारक निधि और अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ और उनसे जुड़े अन्य संगठनों के कार्य तथा गतिविधियों के साथ-साथ प्रकाशनों और निधियों के स्रोत और उनके दुरुपयोग की जांच करेगा तथा इसकी रिपोर्ट सरकार को छह महीनों की अवधि के भीतर देगा।"

इस संकल्प के अनुसरण में, सरकार ने न्यायमूर्ति पी.डी. कुदाल की अध्यक्षता में एक जांच आयोग नियुक्त किया—*लो.स.वा.वि.*, 28.8.1981, पृ. 209-40 ।

116. *मद्रास लेजिस्लेटिव काउंसिल डिबेट्स*, 30.7.1953; कॉ. 1908 (विदाई भाषण) ।

117. कैम्पियन के अनुसार (एन इन्ट्रोडक्शन टू दी प्रसीड्यर ऑफ दी हाउस ऑफ कामन्स) ऐसे संकल्पों का प्रयोग प्राय: उन प्रस्तावों के संबंध में सभा की भावना जानने के लिए किया जाता है जो अभी तक अनिश्चित है या जिन पर जनमत अभी नहीं लिया गया।

सरकार के विवेक पर निर्भर है कि वह ऐसे संकल्प में अंतर्विष्ट सुझावों पर कार्य करे अथवा नहीं। किन्तु ऐसी स्थिति आ सकती है जहां सरकार की व्यक्त इच्छा के विरुद्ध सभा द्वारा संकल्प पारित किया जा सकता है। यदि ऐसी स्थिति लोक सभा में उत्पन्न होती है जिसके लिए सरकार संवैधानिक दृष्टि से उत्तरदायी है तो यह प्रश्न उठेगा कि क्या इसे निन्दा की कोटि में रखा जायेगा। तथापि, राज्य सभा को निंदा प्रस्ताव या सरकार में अविश्वास प्रस्ताव पारित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है और सरकार की इच्छा के विरुद्ध राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प का प्रभाव, सिवाय इसके कि सरकार स्वयं स्वीकार करे, कुछ भी नहीं हो सकता है।

10 अगस्त, 1978 को एक प्रस्ताव, जिसमें सरकार से आग्रह किया गया था कि प्रधान मंत्री और गृह मंत्री के बीच हुए पत्राचार में उल्लिखित भ्रष्टाचार के अभिकथन को जांच आयोग अधिनियम, 1952, के अंतर्गत बने जांच आयोग को भेजा जाना चाहिए, राज्य सभा में सभापति द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात् पेश किया गया। एक संशोधन द्वारा सरकार से कहा गया कि वह या तो सभापति द्वारा नियुक्त ऐसी समिति जो सभा के 15 सदस्यों से मिलकर बनी हो और जिसमें अधिकथनों पर उचित और आवश्यक कार्यवाही करने हेतु तत्काल मार्गदर्शन और सलाह प्राप्त करे या विकल्पत: जांच आयोग अधिनियम, 1952 के तहत बिना किसी विलम्ब के सीधे दो अलग-अलग जांच आयोग गठित करे। यह प्रस्ताव, संशोधित रूप में, सभा द्वारा स्वीकृत किया गया। 17 अगस्त, 1978 को जब कुछ सदस्यों के प्रस्ताव को लागू करने के लिए दबाव डाला तो सभापति ने टिप्पणी की कि यह प्रस्ताव सरकार को सम्बोधित सिफारिश के तौर पर था और यह कि समिति की नियुक्ति इस बात पर निर्भर करेगी कि सरकार को उल्लिखित दोनों विकल्पों में से कौन सा स्वीकार्य है। 22 अगस्त, 1978 को प्रधान मंत्री ने सभा में अपने वक्तव्य में कहा कि सरकार प्रस्ताव में उल्लिखित दोनों विकल्पों में से किसी को भी स्वीकार करने को तैयार नहीं है, यदि संकल्प के संदर्भ में किसी भी सदस्य द्वारा लिखित रूप से भ्रष्टाचार का कोई विनिर्दिष्ट आरोप लगाया जाता है तो यह भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पास जांच हेतु भेज दिया जाएगा। 29 अगस्त, 1978 को पुन: सभापति ने यह विनिर्णय दिया कि उनके द्वारा किसी समिति का गठन सरकार की उससे सलाह और मार्गदर्शन लेने की इच्छा जो कि इस मामले में सरकार ने प्रदर्शित नहीं की, पर ही निर्भर करती है।

अध्याय 26

प्रस्ताव

व्यापक अर्थ में 'प्रस्ताव' से कोई ऐसी प्रस्थापना अभिप्रेत है जो सभा का निर्णय जानने के लिए सभा के समक्ष रखी जाये। सभा का एक मुख्य कार्य विभिन्न विषयों के संबंध में अपनी इच्छा का अभिनिश्चय करना है और इस प्रयोजनार्थ, सभा द्वारा निर्णय किए जाने वाले प्रत्येक प्रश्न की प्रस्थापना सदस्य द्वारा प्रस्ताव के रूप में ही की जानी चाहिए।

यह निश्चय प्रस्ताव का प्रस्तावक करता है कि प्रस्ताव को किस रूप में सभा के मतदान के लिए सभा के समक्ष रखा जाए। प्रस्ताव के रखे जाने के बाद, सदस्य उसके विषय के क्षेत्र में रहते हुए उस पर बोलते हैं और उसके बाद यदि प्रस्तावक ने प्रस्ताव वापस न लिया हो, सभा उसे या तो अस्वीकार कर देती है या प्रस्ताव को पूर्णतया या विशेष संशोधन सहित, यदि कोई हो, प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है।

प्रस्ताव पर वाद-विवाद में तीन प्रक्रम होते हैं— अर्थात् प्रस्ताव का रखा जाना, मतदान के लिए प्रश्न प्रस्तुत किया जाना और प्रश्न पर मतदान। प्रस्ताव का प्रस्तावक उसे उस रूप में विरचित करता है कि जिस रूप में वह अंततः सभा से उसे पारित करवाना चाहता है और जिस पर सभा का मत सुविधाजनक ढंग से लिया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो सदस्य यह चाहते हैं कि वह प्रस्ताव उससे भिन्न रूप में पारित हो, जिसमें उसे रखा गया है उन्हें मूल प्रस्ताव के प्रस्तावित किए जाने के बाद उसमें संशोधन रखने पड़ते हैं और यह संशोधन भी उस रूप में होने चाहिएं जिस रूप में संशोधित प्रस्ताव सभा द्वारा पारित किया जा सके और इसलिए संशोधन मुख्य प्रस्ताव के विषय के संगत होने चाहिएं।

> सभा में प्रत्येक विषय का निर्णय पीठासीन अधिकारी द्वारा किसी सदस्य के प्रस्ताव पर मतदान के लिए रखे गए प्रश्न के माध्यम से किया जाता है उसे सभा यथास्थिति स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। प्रश्न के शब्द वही होने चाहिएं, जो प्रस्ताव के हैं और उसे ऐसे रूप में विरचित किया जाना चाहिए कि उससे सभा के निर्णय की अभिव्यक्ति हो सके। प्रस्ताव के प्रस्तुत किए जाने और सभा में मतदान के लिए प्रश्न रखे जाने के बीच के समय में सामान्यतः चर्चा की जाती है और इस चर्चा के दौरान आगे कार्यवाही, जैसे कि संशोधन का रखा जाना, के लिए अवसर मिलते हैं। संशोधन का प्रयोग या तो सभा के समक्ष रखे गए प्रश्न में परिवर्तन करने के लिए किया जा सकता है या सभा के समक्ष एक ऐसी भिन्न प्रस्थापना रखने के लिए किया जा सकता है, जो मूल प्रस्ताव का विकल्प हो। इसके कारण मुख्य वाद-विवाद के अंतर्गत एक और गौण वाद-विवाद प्रारम्भ हो सकता है जिसका अपना ही प्रश्न और उसका निर्णय होगा। इस प्रक्रिया के अंत में, जब प्रश्न या मुख्य प्रश्न मतदान के लिए रखा जाता है, तो उस पर सभा अपना निर्णय देती है।
>
> कोई भी महत्वपूर्ण मामला किसी प्रस्ताव की विषय-वस्तु हो सकता है।[1]

---

1. *पी. डिबेट्स,* 1.3.1950, पृ. 1036-38 ।

प्रस्तावों का वर्गीकरण

प्रस्तावों के अंतर्गत संसदीय कार्यवाही के कई स्पष्ट रूप आ जाते हैं और उनको निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है—मूल प्रस्ताव, स्थानापन्न प्रस्ताव और गौण प्रस्ताव ।

मूल प्रस्ताव

मूल (सॅब्स्टैनटिव) प्रस्ताव वह स्वतः पूर्ण स्वतंत्र प्रस्थापना है, जिसे सभा के अनुमोदनार्थ प्रस्तुत किया गया हो और जिसका प्रारूप इस प्रकार तैयार किया गया हो कि उससे सभा का विनिश्चय व्यक्त हो सके।[2] अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के निर्वाचन संबंधी प्रस्ताव, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद का प्रस्ताव, लोक महत्व के विषय पर स्थगन प्रस्ताव, संकल्प, सामान्य लोकहित के विषय पर चर्चा उठाने के प्रस्ताव, मंत्रिपरिषद में विश्वास, अविश्वास का प्रस्ताव, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष को पद से हटाने के लिए संकल्प और ऐसे सदस्य का स्थान रिक्त घोषित करने के प्रस्ताव, जिसकी अनुपस्थिति की अनुमति के लिए सभा सहमत न हुई हो, उन मूल प्रस्तावों के उदाहरण हैं, जो लोक सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं।[3]

लेकिन यह प्रस्ताव "कि नीति या स्थिति या वक्तव्य या किसी अन्य विषय पर विचार किया जाये" वस्तुतः मूल प्रस्ताव नहीं है, क्योंकि उन्हें सभा के समक्ष मतदान के लिए नहीं रखा जाता।[4]

उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर केवल उचित रूप में रखे गए मूल प्रस्ताव के आधार पर ही चर्चा की जा सकती है।[5]

उदाहरणार्थ, निम्न विषयों से संबंधित प्रस्तावों पर सभा में चर्चा हुई है,

(*i*) कतिपय राज्यों के राज्यपालों के सरकारी कार्य–*लो.स.वा.वि.,* 1.12.1967, पृ. 2074–85 और 4.12.1967, पृ. 2177–94; 28.2.1968, पृ. 236–45 और 11.4.1968, पृ. 151–54; *एल.एस. डिबेट्स,* 21.8.1984, कॉ. 347–498; *लो.स.वा.वि.,* 26.11.1985, पृ. 253–315; 22.5.1990 पृ. 545–66 और 23.5.1990 पृ. 431–51, 26.2.1997, पृ. 312–13; 6.3.1997, पृ. 199–201 ।

(*ii*) मंत्रियों का आचरण–*लो.स.वा.वि.,* 19.8.1968, पृ. 1456–76; 18.12.1974, पृ. 138–61; 4.8.1977, पृ. 161–81; 5.8.1977, पृ. 160–66 और 7.8.1980, पृ. 215–74 ।

(*iii*) संसद के दोनों सदनों के एक साथ समवेत अधिवेशन में राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान विघ्न उत्पन्न करने वाले एवं अनादर प्रदर्शित करने वाले कतिपय सदस्यों का आचरण–*एल.एस. डिबेट्स,* 20.2.1968, कॉ. 2170–75; और *लो.स.वा.वि.,* 2.4.1971, पृ. 115–26, और पृ. 139–42, पृ. 150–51 ।

2. निदेश 41(2) (एक)।
3. नियम 7, 8, 17, 56, 170, 184, 198, 200, 241 और 328 और अनुच्छेद 101(4)। ब्यौरे के लिए विश्वास प्रस्ताव, अध्याय-28 देखिए।
4. नियम 342 ।
5. नियम 352 (पांच)।

> राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने और उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हटाने के संबंध में संसद के दोनों सदनों द्वारा राष्ट्रपति को समावेदन देने के लिए संविधान में विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित की गई है।[6] इसी प्रकार, संविधान में उपराष्ट्रपति, राज्य सभा के उपसभापति, लोक सभा अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के संकल्पों के माध्यम से पद से हटाये जाने के संबंध में भी उपबंध किया गया है।[7]

ऐसे अवसर भी आ सकते हैं, यद्यपि वे विरले ही होंगे, जब सभा मूल प्रस्ताव के माध्यम से किसी ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए प्रक्रिया का विकास करे, जिसके लिए नियमों में विशेष रूप से व्यवस्था नहीं की गयी।[8]

---

6. अनुच्छेद 61, 121, 124(4) और (5), 148(1) और 324(5) ।
7. अनुच्छेद 67, 90(ग) और 94(ग)।
8. उदाहरण के लिए (*i*) 25 सितम्बर, 1951 को जब लोक सभा के एक सदस्य के आचरण संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा की जा रही थी, तो चर्चा के बीच में उस सदस्य ने लोक सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया, लेकिन सभा ने यह निर्णय किया कि चर्चा जारी रखी जाये और उसके बाद यह प्रस्ताव पारित किया कि उस सदस्य का आचरण ऐसा था कि उसके कारण उसे निष्कासित किया जाना चाहिए।

   (*ii*) 15 जुलाई, 1957 को सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत करके अध्यक्ष को यह अधिकार दिया कि एक ऐसे व्यक्ति को, जिसने अपने आप को सभा का सदस्य बताया है मानसिक स्थिति की परीक्षा के लिए डाक्टरों के एक बोर्ड के पास भेजे, और उस बोर्ड की रिपोर्ट आने पर अध्यक्ष जैसा उचित समझे, कार्यवाही करे।

   (*iii*) 6 अगस्त, 1987 को सभा ने बोफोर्स संविदा की जांच करने के लिए सदनों की संयुक्त समिति नियुक्त करने हेतु एक प्रस्ताव स्वीकार किया।

   (*iv*) 6 अगस्त, 1992 को सभा ने प्रतिभूति एवं बैंकिंग संव्यवहार में अनियमितताओं की जांच करने के लिए सदनों की संयुक्त समिति नियुक्त करने हेतु एक प्रस्ताव स्वीकार किया।

   (*v*) 26 अप्रैल 2001 को सभा ने शेयर बाजार घोटाला और उससे संबंधित मामलों की जाँच करने के लिए सदनों की संयुक्त समिति नियुक्त करने हेतु एक प्रस्ताव स्वीकार किया;

   (*vi*) 22 अगस्त, 2003 को सभा ने पेय पदार्थों, फलों के रस और अन्य पेय पदार्थों में कीटनाशक अवशेषों और सुरक्षा मानकों संबंधी संयुक्त समिति की नियुक्ति करने हेतु एक प्रस्ताव स्वीकार किया।

   (*vii*) 17 अगस्त 2006 को सभा ने लाभ के पद से संबंधित सांविधानिक और विधिक स्थिति की जाँच करने के लिए संयुक्त समिति की नियुक्ति करने हेतु एक प्रस्ताव स्वीकार किया;

   (*viii*) 24 फरवरी 2011 को दूरसंचार लाइसेंस और स्पैक्ट्रम आवंटन और मूल्य निर्धारण में अनियमितताओं की जाँच करने के लिए संयुक्त समिति की नियुक्ति करने हेतु एक प्रस्ताव स्वीकार किया, और

   (*ix*) 21 दिसम्बर 2011 को सभा ने अन्य पिछड़ा वर्ग (ओ बी सी) के कल्याण हेतु समिति नामक दोनों सदनों की एक समिति की नियुक्ति करने के लिए एक प्रस्ताव स्वीकार किया।

नौवीं लोक सभा के दौरान 28 फरवरी, 1991 को, अध्यक्ष को भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को हटाए जाने हेतु भारत के राष्ट्रपति को एक समावेदन प्रस्तुत करने के लिए लोक सभा सदस्य प्रो. मधु दण्डवते सहित 107 अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित दिनांक 27 फरवरी, 1991 के प्रस्ताव की सूचना प्राप्त हुई। प्रस्ताव की सूचना सही पाए जाने पर अध्यक्ष ने इसे 12 मार्च, 1991 को स्वीकृत किया तथा न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2) के अनुसरण में, न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को हटाने के लिए की गई प्रार्थना के आधारों की जांच करने हेतु एक समिति गठित की जिसके सभापति, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति पी.बी. सावंत तथा सदस्य मुम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति, पी.डी. देसाई और उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी थे। समिति की नियुक्ति की घोषणा करते समय, अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि जांच समिति से रिपोर्ट के प्राप्त होने तक प्रस्ताव लंबित रहेगा। समिति द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने से पूर्व ही, 13 मार्च, 1991 को, राष्ट्रपति द्वारा नौवीं लोक सभा भंग कर दी गई। लोक सभा के भंग हो जाने पर, प्रस्ताव व्यपगत हो जाएगा अथवा कायम रहेगा, इस प्रश्न को लेकर एक याचिका उच्चतम न्यायालय में दायर की गई। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया—

> यह सत्य है कि पुरुषोत्तमन नम्बूदिरि मामला (ए.आई.आर. 1962 उच्चतम न्यायालय 694) विधायी उपाय से संबंधित था न कि उसका संबंध प्रस्ताव के रूप में किसी लंबित कार्य से था। किन्तु, हमारा यह दृष्टिकोण है कि न तो यह सिद्धांत कि सभा के भंग हो जाने से सभा के समक्ष लंबित कार्य समाप्त हो जाता है और न ही संविधान के अनुच्छेद 118 के अधीन बनाए गए किसी नियम अथवा नियमों में अंतर्विष्ट कोई विशेष प्रावधान अनुच्छेद 124 के अधीन किसी न्यायाधीश को हटाने के प्रस्ताव पर लोक सभा के भंग होने के प्रभाव का अवधारण करते हैं। इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 124(5) और उसके अधीन बनाई गई विधि इस क्षेत्र में अनुच्छेद 118 की संक्रिया को अपवर्जित करती हैं।[9]

तद्नुसार, प्रस्ताव की सूचना जीवित रही।

दसवीं लोक सभा 20 जून, 1991 को गठित हुई। जस्टिस सावंत समिति, जिसने जुलाई, 1992 में दसवीं लोक सभा के अध्यक्ष को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, ने अपनी रिपोर्ट में यह पाया कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी था। इस रिपोर्ट को लोक सभा के महासचिव द्वारा 17 दिसम्बर, 1992 को लोक सभा पटल पर रखा गया।

इस रिपोर्ट के लोक सभा पटल पर रखे जाने के पश्चात् अनुच्छेद 124(4) के अंतर्गत राष्ट्रपति को समावेदन प्रस्तुत करने के प्रस्ताव एवं समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए अनेक सदस्यों से सूचनाएं प्राप्त हुईं। चूंकि अपनी तरह का यह पहला मामला था, अत: सभा में दलों एवं ग्रुपों के नेताओं के साथ परामर्श करके अध्यक्ष ने निम्न प्रक्रिया विकसित की—

---

9. *देखिए* ए.आई.आर., 1992 एस.सी. 320 । आगे अध्याय 43 भी *देखिए* ।

(*i*) केवल उन्हीं सदस्यों की सूचनाओं पर विचार किया जाएगा जिन्होंने नौवीं लोक सभा के दौरान दिए गए प्रस्ताव की सूचना पर हस्ताक्षर किए थे; और

(*ii*) प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम के नियम 184 के अंतर्गत प्रस्तावों पर चर्चा को नियंत्रित करने वाले उपबंधों का यथासंभव, व्यापक रूप से अनुसरण किया जाए।

10 मई, 1993 की कार्य-सूची में वरीयता क्रम में पांच सदस्यों के नाम में निम्नलिखित दो प्रस्ताव शामिल किए गए—

(*i*) संविधान के अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति को समावेदन प्रस्तुत करने हेतु प्रस्ताव; और

(*ii*) जिन कारणों के आधार पर भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को पद से हटाने के लिए अनुरोध किया गया था, उनकी जांच करने के लिए गठित जांच समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने हेतु प्रस्ताव ।

प्रस्तावों पर विचार आरंभ करने से पूर्व, अध्यक्ष ने सभा में निम्नलिखित टिप्पणी की—

> इस मामले को बड़ी सावधानी और ऐसे सही ढंग से निपटाया जाए जो बहुत ही सटीक, सही और न्यायसंगत हो और जिसमें बातें दोहराई न जाएं, विषयेतर बातें न लाई जाएं और मुद्दे को जटिल न बनाया जाए तथा स्पष्ट रूप से सही निष्कर्ष निकाले जाएं। केवल कुछ ही सदस्य बोलें। न्यायाधीशों की समिति द्वारा दी गई रिपोर्ट तथा न्यायाधीश के बचाव पक्ष द्वारा दी गई रिपोर्ट सदस्यों को समय पर उपलब्ध करा दी गई हैं। प्रस्ताव पर बहस आज ही समाप्त हो, यदि आवश्यक हुआ, तो वह शाम छह बजे के बाद भी जारी रह सकती है। इस संबंध में मैं निर्णय सदन पर ही छोड़ता हूं। इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने वाले सदस्य प्रस्ताव प्रस्तुत करें और फिर बोलें। न्यायाधीश अथवा न्यायाधीश के वकील को इस मामले में सदन के सम्मुख निवेदन करने और वापस जाने की अनुमति दी जाए। प्रस्ताव को प्रस्तुत करने वाला सदस्य बहस का उत्तर दे, तत्पश्चात् प्रस्ताव और भारत के राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले समावेदन पर मतदान कराया जाए। पारित किए जाने वाले प्रस्ताव तथा समावेदन को पारित किए जाने के लिए सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा सदन में उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता है।[10]

सभा उपर्युक्त प्रक्रिया से सहमत हुई।

वरीयता क्रम में सर्वप्रथम श्री सोमनाथ चटर्जी ने (एक सदस्य के रूप में) इन दोनों प्रस्तावों को प्रस्तुत किया जिन पर एक साथ चर्चा हुई। उन्होंने चर्चा में भाग भी लिया। इसके बाद न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के काउंसेल श्री कपिल सिब्बल ने न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी की ओर से सभा के 'कठघरे' से अपने विचार रखे। अपनी बातें कहने के पश्चात् वह चले गए। अन्य सदस्यों को भी बोलने की अनुमति दी गई। प्रस्तावों पर चर्चा 11 मई, 1993 को जारी

---

10. *लो.स.वा.वि.,* 10.5.1993, पृ. 251-52 ।

रही। सदस्यों द्वारा अपने विचार रखे जाने के पश्चात् प्रस्तावों के प्रस्तावक ने वाद-विवाद का उत्तर दिया। फिर, प्रस्ताव और समावेदन सभा में मतदान के लिए रखे गए। मत विभाजन के परिणामस्वरूप (पक्ष में 196 और विपक्ष में शून्य) प्रस्ताव और समावेदन को, संविधान के अनुच्छेद 124 के खंड (4) के अनुसार, अपेक्षित बहुमत से न पारित होने वाला घोषित किया गया।[11]

इसी प्रकार, 20 फरवरी, 2009 को राज्य सभा के 57 सदस्यों ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, जस्टिस सौमित्र सेन के खिलाफ, कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा रिसीवर के रूप में उनकी नियुक्ति के दौरान उनके द्वारा बहुत बड़ी धनराशि का दुरुपयोग किए जाने तथा न्यायालय के समक्ष, धनराशि के दुरुपयोग के संबंध में गलत तथ्य पेश किए जाने के आधार पर संविधान के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित अनुच्छेद 217(1) (ग) के अंतर्गत उन्हें उनके पद से हटाने के प्रस्ताव की सूचना दी। राज्य सभा के सभापति ने प्रस्ताव को स्वीकार किया और उन आधारों, जिन पर जस्टिस सेन को पद से हटाने का अनुरोध किया गया था, की जाँच करने के प्रयोजन से न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम, 1968 के अंतर्गत एक जाँच समिति का गठन किया।

न्यायाधीश (जाँच) नियम, 1969 के नियम 9 और 10 के साथ पठित न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम, 1968 की धारा 4 के अनुसरण में जाँच समिति के प्रतिवेदन को 10 नवम्बर, 2010 को एक साथ राज्य सभा और लोक सभा के पटल पर रखा गया।

जाँच समिति ने यह मत व्यक्त किया कि जस्टिस सौमित्र सेन, संविधान के अनुच्छेद 217(1) के परन्तुक (ख) के साथ पठित अनुच्छेद 124(4) के अंतर्गत दुर्व्यवहार के दोषी हैं।

राज्य सभा ने 17 अगस्त 2011 को जस्टिस सेन पर महाभियोग चलाने के प्रस्ताव को लिया। प्रस्तावक द्वारा अपना भाषण समाप्त किए जाने के पश्चात् जस्टिस सेन ने राज्य सभा को संबोधित किया। उसके बाद प्रस्ताव पर चर्चा जारी रही। 18 अगस्त, 2011 को राज्य सभा ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के जस्टिस सौमित्र सेन को उनके पद से हटाने का अनुरोध करते हुए राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने के लिए एक समावेदन पारित किया। उसी दिन लोक सभा सचिवालय को इस संबंध में एक संदेश भेजा गया। 19 अगस्त, 2011 को लोक सभा में संदेश की सूचना दी गई। राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने हेतु राज्य सभा द्वारा पारित समावेदन को भी लोक सभा के पटल पर रखा गया।

संदेश की सूचना देने के बाद अध्यक्ष ने 19 अगस्त 2011 को न्यायाधीश (जाँच) नियमों के नियम 16(7) के अनुसरण में समावेदन पर विचार करने के लिए दिन नियत करने हेतु 23 अगस्त, 2011 को कार्य मंत्रणा समिति की एक बैठक बुलाने का निर्णय लिया।

---

11. *लो.स.वा.वि.*, 12.3.1991, पृ. 72-73; 10.5.1993, पृ. 250-372 और 11.5.1993, पृ. 216-379 ।

इस दौरान कलकत्ता उच्च न्यायालय के एडवोकेट और जस्टिस सौमित्र सेन के वकील सुभाष भट्टाचार्य ने महासचिव को संबोधित 19 अगस्त, 2011 के एक फैक्स पत्र के माध्यम से अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित अनुरोध किया:

(क) अध्यक्ष की अनुमति के अध्यधीन सुनवाई की तिथि 5 सितम्बर, 2011 नियत की जाए;

(ख) संसद सदस्यों द्वारा मुद्दे उठाए जाने/आरोप लगाए जाने के पश्चात् जस्टिस सेन को भी उत्तर देने का अवसर दिया जाए।

चूंकि, न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम, 1968 के उपबंधों और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों में किसी न्यायधीश को उसके पद से हटाने हेतु राष्ट्रपति को समावेदन प्रस्तुत करने के लिए किसी एक सभा द्वारा प्रस्ताव स्वीकार किए जाने और दूसरी सभा में भेजे जाने की स्थिति में दूसरी सभा द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में अस्पष्टता है अत:, संविधान के अनुच्छेद 124(4) तथा न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम के संगत उपबंधों और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों पर चर्चा करते हुए एक संक्षिप्त लेखा और लोक सभा में अपनाई जाने वाली प्रस्तावित प्रक्रिया को भारत के महान्यायवादी के पास उनकी राय जानने के लिए भेजा गया। महान्यायवादी ने अन्य बातों के साथ-साथ यह राय व्यक्त की:–

(एक) यदि राज्य सभा द्वारा पारित समावेदन का लोक सभा द्वारा समर्थन किया जाता है तब समावेदन लोक सभा सचिवालय द्वारा तैयार किया जाएगा।

(दो) इस तथ्य को दर्शाने के लिए कि राज्य सभा द्वारा स्वीकृत समावेदन को लोक सभा का समर्थन प्राप्त है, अभिभाषण के प्रारूप में समुचित परिवर्तन किए जाने चाहिएं।

(तीन) राज्य सभा द्वारा समर्थित और लोक सभा द्वारा पारित समावेदन के बारे में राज्य सभा को भी समुचित रूप से जानकारी दी जाए।

सुभाष भट्टाचार्य द्वारा किए गए अनुरोध के साथ-साथ इन मुद्दों को कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। कार्य मंत्रणा समिति ने निम्नलिखित निर्णय लिए–

(एक) सभा 5 सितम्बर 2011 को अपराहन 2 बजे इन मुद्दों पर कार्य करेगी (क) राज्य सभा द्वारा समर्थित समावेदन और (ख) राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाने वाला समावेदन तथा 6 सितम्बर 2011 को पद से हटाए जाने वाली प्रक्रिया;

(दो) अध्यक्ष दोनों समावेदनों का प्रस्ताव करेगा/करेगी;

(तीन) राज्य सभा द्वारा समर्थित समावेदन को अध्यक्ष द्वारा सभा के समक्ष प्रस्तावित किए जाने के बाद न्यायाधीश को दो घंटे तक सुनवाई का अवसर दिया जाएगा जिसे आगे नहीं बढ़ाया जाएगा; और

(चार) अध्यक्ष, संसद सदस्यों द्वारा उठाए गए मुद्दों/लगाए गए आरोपों के अंत में उत्तर देने का अवसर प्रदान करने हेतु जस्टिस सेन के अनुरोध पर कानूनी दृष्टि से विचार करेगा/करेगी।

महाभियोग प्रस्ताव को लेने हेतु निर्धारित तिथि को 25 अगस्त, 2011 के समाचार भाग दो में प्रकाशित किया गया।

सदस्यों द्वारा उठाए गए मुद्दों/लगाए गए आरोपों के अंत में जस्टिस सेन को भी उत्तर देने का अवसर दिए जाने के प्रश्न पर यह निर्णय लिया गया कि इस मुद्दे पर भी महान्यायवादी की राय ली जाए।

महान्यायवादी ने यह मत व्यक्त किया जस्टिस सेन के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है और लोक सभा को उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं करना चाहिए।

लोक सभा में अपनाए जाने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुमोदन किया गया:

(एक) अध्यक्ष सभा में यह प्रस्ताव करेगा/करेगी कि सभा राज्य सभा द्वारा समर्थित प्रस्ताव और समावेदन पर विचार करे और यह कि सभा राज्य सभा द्वारा समर्थित प्रस्ताव और समावेदन का समर्थन करती है;

(दो) यदि उप पैरा (एक) में दिए गए प्रस्ताव और समावेदन को स्वीकार किया जाता है तो अध्यक्ष समावेदन (राज्य सभा द्वारा समर्थित और समुचित रुप से परिवर्तित) को सभा के मतदान के लिए रख सकता/सकती हैं;

(तीन) उप पैरा (दो) में उल्लिखित समावेदन को राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाएगा और उप-पैरा (एक) में उल्लिखित प्रस्ताव को समावेदन के साथ संलग्न कर दिया जाएगा।

तदनुसार, कार्य सूची हेतु प्रविष्टियों को अनुमोदित किया गया।

2 सितम्बर, 2011 को ऐसी रिपोर्टें आईं कि जस्टिस सेन ने राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे दिया है। रिपोर्टों को देखते हुए महान्यायवादी से यह राय माँगी गई कि राष्ट्रपति द्वारा जस्टिस सेन के त्यागपत्र को स्वीकार कर लिए जाने की स्थिति में क्या लोक सभा को जस्टिस सेन को अपने पद से हटाने संबंधी प्रस्ताव पर कार्यवाही जारी रखनी चाहिए। महान्यायवादी ने यह मत व्यक्त किया कि ''त्यागपत्र दिए जाने के बावजूद लोक सभा को जस्टिस सेन को उनके पद से हटाने के प्रस्ताव पर कार्यवाही जारी रखनी चाहिए'' उनके मत के दृष्टिगत (एक) राज्य सभा द्वारा समर्थित प्रस्ताव और समावेदन पर विचार करने और उसके समर्थन हेतु प्रस्ताव; और (दो) कलकत्ता उच्च न्यायालय के जस्टिस सौमित्र सेन को उनके पद से हटाने हेतु अनुरोध करते हुए राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने हेतु लोक सभा द्वारा तैयार समावेदन को 5 सितम्बर, 2011 को अपराह्न 2.00 बजे कार्यवाही करने के लिए कार्य सूची में शामिल किया गया। जस्टिस सेन और राष्ट्रपति के सचिव को भी सभा की कार्य सूची में प्रस्ताव शामिल किए जाने के बारे में जानकारी दी गई।

अपराह्न 2.00 बजे सभा के समवेत होने पर, विधि मंत्री ने सभा को सौमित्र सेन के त्यागपत्र के बारे में जानकारी दी। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने सभा की अनुमति से जस्टिस सौमित्र सेन को उनके पद से हटाने संबंधी मद पर कार्यवाही न करने का निर्णय लिया।

तदनुसार, राज्य सभा सचिवालय को इस संबंध में जानकारी देते हुए एक संदेश भेजा गया।

ऐसे भी दृष्टान्त हैं जब अध्यक्ष द्वारा गठित जांच समितियों की सिफारिशें लागू करने हेतु प्रस्ताव सभा के समक्ष रखे गये। ऐसे ही एक दृष्टान्त में एक टीवी चैनल द्वारा लोक सभा के दस सदस्यों के अनुचित आचरण के प्रकटीकरण के पश्चात् अध्यक्ष[12] ने संबंधित सदस्यों से अनुरोध किया कि वे आगे का विनिर्णय होने तक सभा में न आयें तथा अनुचित आचरण के आरोपों की जांच करने एवं इस संबंध में प्रतिवेदन देने के लिए श्री पवन कुमार बंसल की अध्यक्षता में पांच सदस्यों वाली एक समिति गठित की।

22 दिसंबर, 2005 को जांच समिति का प्रतिवेदन सभा पटल पर रखा गया। 23 दिसम्बर, 2005 को सदन के नेता श्री प्रणब मुखर्जी ने नियम 184 के अंतर्गत निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया जिसे सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया:

> "यह सभा कुछ सदस्यों के अनुचित आचरण के आरोपों की जांच के लिए 12 दिसंबर, 2005 को गठित समिति के प्रतिवेदन पर गौर करने के बाद समिति के इन निष्कर्षों को स्वीकार करती है कि लोक सभा के दस सदस्यों, नामत: श्री नरेंद्र कुमार कुशवाहा, श्री अन्नासाहेब एम.के. पाटील, श्री मनोज कुमार, श्री वाई.जी. महाजन, श्री प्रदीप गांधी, श्री सुरेश चंदेल, श्री रामसेवक सिंह, श्री लाल चंद्र कोल, श्री राजाराम पाल तथा श्री चंद्र प्रताप सिंह का आचरण अनैतिक तथा संसद सदस्यों के लिए अशोभनीय है और उनका लोक सभा सदस्य बना रहना असमर्थनीय है तथा सभा यह संकल्प करती है कि उन्हें लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित किया जाये।"

इस मामले को विशेषाधिकार समिति को भेजे जाने हेतु प्रो. विजय कुमार मल्होत्रा द्वारा पेश किया गया संशोधन अस्वीकृत हुआ।

चूंकि उपर्युक्त प्रस्ताव भारत सरकार के किसी मंत्रालय से संबंधित नहीं था, अत:, प्रस्ताव को सम्बद्ध मंत्रालय को भेजे जाने की सामान्य प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया।

एक अन्य दृष्टान्त में, 19 दिसंबर 2005 को एक टीवी चैनल द्वारा संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के कार्यान्वयन के मामले में लोक सभा के कुछ सदस्यों का कथित रूप से अनुचित आचरण में लिप्त होना दिखाये जाने के बाद, अध्यक्ष[13] ने संबद्ध सदस्यों से अनुरोध किया कि वे मामले की जांच किये जाने तथा इस पर विनिर्णय लिये जाने तक सभा में न आयें। उन्होंने कथित अनुचित आचरण की जांच के लिए श्री पवन कुमार बंसल की अध्यक्षता में सात-सदस्यीय समिति का गठन किया । 14 मार्च, 2006 को समिति का प्रतिवेदन सभा पटल पर रखा गया।[14]

---

12. *लो.स.वा.वि.,* 12.12.2005, कॉ. 655-56 ।
13. *लो.स.वा.वि.,* 20.12.2005, कॉ. 1 ।
14. *लो.स.वा.वि.,* 14.3.2006, कॉ. 345-46 ।

18 मार्च, 2006 को सदन के नेता श्री प्रणब मुखर्जी ने नियम 184 के तहत निम्नलिखित प्रस्ताव की सूचना दी जिसे अध्यक्ष ने स्वीकार कर लिया:

> "कि सभा संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के कार्यान्वयन के मामले में कुछ सदस्यों के अनुचित आचरण के आरोपों की जांच करने वाली समिति के प्रतिवेदन जिसे 14 मार्च, 2006 को सभा पटल पर रखा गया था, पर विचार करते हुए सर्वश्री अलेमाऊ चर्चिल, पारस नाथ यादव, फग्गन सिंह कुलस्ते तथा राम स्वरूप कोली, संसद सदस्यों की भर्त्सना करती है तथा यह संकल्प करती है कि:
>
> (क) 20 दिसम्बर, 2005 को अध्यक्ष, लोक सभा के अनुरोध पर उक्त चार सदस्यों की सभा तथा समिति की बैठकों से अनुपस्थिति की अवधि को सभा की सदस्यता से आज तक उनका निलंबन समझा जाये; और
>
> (ख) सभा की सदस्यता से उक्त चार सदस्यों का निलंबन 22 मार्च, 2006 तक जारी रखा जाये।"

श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा पेश किये गये इस प्रस्ताव को सभा ने 20 मार्च, 2006 को स्वीकार किया।[15] चूंकि उपर्युक्त प्रस्ताव भी भारत सरकार के किसी मंत्रालय से संबद्ध नहीं था, अत: इस मामले में भी प्रस्ताव को संबद्ध मंत्रालय के पास भेजे जाने की सामान्य प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया।

एक संसद सदस्य, श्री बाबूभाई के. कटारा को अपनी पत्नी तथा पुत्र के पासपोर्ट पर दो व्यक्तियों (एक महिला तथा एक लड़का) को गैर-कानूनी तरीके से विदेश ले जाने के प्रयास में गिरफ्तार किये जाने पर अध्यक्ष, लोक सभा ने 16 मई, 2007 को लोक सभा सदस्यों के कदाचार की जांच करने हेतु एक समिति गठित की। सदस्यों के कदाचार के सभी पहलुओं की जांच करने हेतु समिति का कार्यक्षेत्र व्यापक था।

20 मई, 2007 को अध्यक्ष ने श्री बाबूभाई के. कटारा से संबंधित मामले को समिति के पास भेजा। समिति ने 20 अक्तूबर, 2008 को सभा पटल पर अपना तीसरा प्रतिवेदन रखा। उसी दिन सदन के नेता श्री प्रणब मुखर्जी ने नियम 184 के अंतर्गत निम्नलिखित प्रस्ताव की सूचना दी जिसे अध्यक्ष ने स्वीकार कर लिया:

> "कि सभा, लोक सभा सदस्यों के कदाचार की जांच करने वाली समिति के तीसरे प्रतिवेदन पर गौर करते हुए समिति के इन निष्कर्षों को स्वीकार करती है कि श्री बाबूभाई के. कटारा ने गंभीर कदाचार का आचरण किया है जिससे पूरी विधायक बिरादरी की बदनामी हुई है तथा इसकी छवि भी धूमिल हुई है और सभा यह संकल्प करती है कि उन्हें चौदहवीं लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित किया जाये।"

प्रस्ताव 21 अक्तूबर, 2008 को प्रस्तुत तथा स्वीकृत हुआ।

इसी बीच, एक सदस्य (श्री राजेश कुमार मांझी) के खिलाफ सरकारी हवाई यात्रा के दुरुपयोग के आरोप के मामले को अध्यक्ष ने जांच समिति को भेजा। समिति ने अपने पहले

---

15. *लो.स.वा.वि.,* 20.3.2006, कॉ. 10-15 ।

प्रतिवेदन, जिसे 23 अगस्त, 2007 को सभा पटल पर रखा गया था, में यह सिफारिश की कि अपनी सरकारी हवाई यात्रा के दुरुपयोग तथा समिति के समक्ष जानबूझकर सत्य छिपाने एवं झूठे प्रमाण पेश करने के लिये सदस्य को सभा की 30 बैठकों के लिये निलंबित किया जाये।

29 अगस्त, 2007 को सदन के नेता श्री प्रणब मुखर्जी ने नियम 184 के अंतर्गत निम्नलिखित प्रस्ताव की सूचना दी जिसे अध्यक्ष ने स्वीकार कर लिया:

"कि सभा लोक सभा सदस्यों के कदाचार की जांच करने वाली समिति के 23 अगस्त, 2007 को सभा पटल पर रखे गए प्रथम प्रतिवेदन के परिणामों, निष्कर्षों तथा सिफारिशों से अपनी सहमति प्रकट करती है तथा श्री राजेश कुमार मांझी की उनके कदाचार तथा समिति एवं सभा की अवमानना करने के लिये भर्त्सना करती है तथा यह संकल्प करती है कि:

(एक) श्री राजेश कुमार मांझी को सभा की तीस बैठकों के लिये सभा की सदस्यता से निलंबित किया जाये; और

(दो) उन्हें चौदहवीं लोक सभा के समाप्त होने तक सरकारी दौरों पर अपनी पत्नी अथवा किसी साथी को साथ ले जाने से रोका जाये।

प्रस्ताव 30 अगस्त, 2007 को प्रस्तुत तथा स्वीकृत किया गया।"[16]

विशेषाधिकार समिति की सिफारिशें लागू करने का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया जाये। 4 अगस्त, 2005 को डॉ. सुभाष सी. कश्यप, भूतपूर्व महासचिव, लोक सभा ने एक टीवी चैनल को दिये गये साक्षात्कार में एक सदस्या कुमारी ममता बनर्जी द्वारा प्रस्तुत स्थगन प्रस्ताव की सूचना अस्वीकृत किये जाने के अध्यक्ष के विनिश्चय पर कुछ टिप्पणियां की थीं।

एक सदस्य श्री हन्नान मोल्लाह ने 8 अगस्त, 2005 को डॉ. कश्यप के खिलाफ विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना दी जिसे अध्यक्ष ने विशेषाधिकार समिति को भेज दिया। विशेषाधिकार समिति ने 19 मई, 2006 को सभा में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। समिति की सिफारिशों के आधार पर सदन के नेता श्री प्रणब मुखर्जी ने डॉ. कश्यप की भर्त्सना करने वाला निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया। जिसे 23 मई, 2006 को स्वीकृत कर लिया गया।[17]:

> "कि यह सभा 19 मई, 2006 को सभा पटल पर रखे गये विशेषाधिकार समिति के तीसरे प्रतिवेदन पर गौर करने के बाद समिति के परिणामों तथा निष्कर्षों से सहमति व्यक्त करती है तथा यह संकल्प करती है कि डॉ. सुभाष सी. कश्यप, भूतपूर्व महासचिव, लोक सभा ने अध्यक्ष, लोक सभा के कर्तव्य निर्वहन में उनकी मंशा पर लांछन लगाकर तथा उनकी निष्पक्षता पर टिप्पणी कर विशेषाधिकार का हनन तथा सभा की घोर अवमानना की है अत: उनके इस गंभीर कदाचार के लिए उनकी भर्त्सना करती है।"

---

16. *लो.स.वा.वि.,* 30.8.2007, कॉ. 310-11 । अध्याय बारह-'सदस्यों का आचरण', भी देखें।
17. *लो.स.वा.वि.,* 23.5.2006 कॉ. 405-06 ।

चर्चा की पुनरावृत्ति से बचने के लिए यदि चर्चा की जाने वाली विषय वस्तु समान है तो सांविधिक नियमों में संशोधन हेतु प्रस्ताव के साथ किसी अन्य प्रस्ताव पर एक साथ चर्चा की जा सकती हैं।[18]

मूल प्रस्ताव के लिए सूचना देना आवश्यक है और उसे उसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है जिसने सूचना दी हो। लेकिन जहां कोई प्रस्ताव किसी मंत्री के नाम में हो, वह किसी अन्य मंत्री द्वारा रखा जा सकता है।[19] परन्तु प्रस्ताव रखने वाले को यह उल्लेख करना पड़ता है कि वह उस मंत्री की ओर से उस प्रस्ताव को पेश कर रहा है जिसके नाम में प्रस्ताव है।[20] यदि किसी प्रस्ताव को ऐसे रूप में रखा जाये जो उसकी सूचना में दिये गये शब्दों से भिन्न हो, तो ऐसा करना उस दशा में नियम विरुद्ध है, यदि ऐसे परिवर्तन के परिणामस्वरूप सूचना के क्षेत्र का अतिक्रमण होता हो।

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के निर्वाचन संबंधी प्रस्ताव और राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव को छोड़कर, किसी मूल प्रस्ताव का किसी अन्य सदस्य द्वारा अनुमोदन किया जाना आवश्यक नहीं है।

मूल प्रस्ताव के प्रस्तावक को वाद-विवाद का उत्तर देने का अधिकार है।[21]

जब मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई हो, तो अविश्वास प्रस्ताव के निपटाये जाने तक सरकार द्वारा नीति संबंधी मामलों पर कोई भी मूल प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जाएगा।[22]

स्थानापन्न प्रस्ताव

जो प्रस्ताव किसी मामले या नीति या स्थिति या वक्तव्य या किसी अन्य विषय पर विचार करने के प्रस्ताव के स्थान पर रखने के लिए प्रस्तुत किए गए हों, उन्हें स्थानापन्न प्रस्ताव कहा जाता है। यद्यपि, इन प्रस्तावों का प्रारूप इस ढंग से तैयार किया जाता है कि इनसे स्वत: कोई राय व्यक्त हो सके तथापि यथार्थ रूप से ये मूल प्रस्ताव नहीं होते, क्योंकि ये मौलिक प्रस्ताव (ऑरिजिनल) पर निर्भर होते हैं।[23] स्थानापन्न प्रस्ताव में संशोधन अनुमत्य नहीं होते।

---

18. लो.स.वा.वि. 4-12-2012 और 5-12-2012।
19. *एच.पी. डिबेट्स* (दो), 4.12.1952, कॉ. 1595-96; *लो.स.वा.वि.,* 28.7.1977, कॉ. 230।
20. *लो.स.वा.वि.,* 15.12.1958, कॉ. 4996; *लो.स.वा.वि.,* 28.7.1977, कॉ. 230।
21. नियम 358(3)।
22. *लो.स.वा.वि.,* 25.7.1966, कॉ. 230; 26.7.1966, कॉ. 457; 27.7.1966, कॉ. 779।
23. निदेश 41(2)(दो)।

    मूल तथा स्थानापन्न प्रस्तावों के रूप के लिए उदाहरणस्वरूप *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 19.12.1959, कॉ. 1509 और कॉ. 1816-17; *लो.स.वा.वि.,* 10.8.1972, पृ. 125-26; 18.9.1981, पृ. 230-35; 6.4.1987, पृ. 290-91।

जब यह मूल प्रस्ताव कि किसी नीति या स्थिति आदि पर विचार किया जाए, प्रस्तावक द्वारा सभा के समक्ष रख दिया जाता है और प्रस्तावक अपना भाषण समाप्त कर लेता है, तो सभा उस विषय पर विचार प्रारंभ करती है। वाद-विवाद समाप्त होने के बाद उस पर कोई प्रश्न सभा के समक्ष नहीं रखा जाता लेकिन चर्चा प्रारम्भ होने से पहले कोई सदस्य स्थानापन्न प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है जो मूल प्रस्ताव के विषय पर तो होता है परन्तु इस ढंग से लिखा जाता है कि उसमें सभा की कोई राय व्यक्त होती हो। स्थानापन्न प्रस्ताव मूल प्रस्ताव में संशोधन के रूप में होने के कारण उसे भी सभा के समक्ष रखा जाता है और उस पर मूल प्रस्ताव के साथ-साथ चर्चा की जाती है। वाद-विवाद के बाद केवल स्थानापन्न प्रस्ताव ही सभा के मतदान के लिए रखा जाता है।[24]

> 1954 से पहले ऐसे संशोधनों की अनुमति देने की प्रथा थी, जिनका उद्देश्य मूल प्रस्ताव के बाद कुछ शब्द जोड़ना हो। वाद-विवाद समाप्त होने पर मूल प्रस्ताव तथा संशोधन, दोनों सभा के समक्ष मतदान के लिए रखे जाते थे। जनवरी, 1954 में इस प्रथा को बदल दिया गया। इसका कारण यह था कि यह प्रस्ताव "कि किसी स्थिति या किसी वक्तव्य या किसी विषय पर विचार किया जाए" सभा का निर्णय मांगे बिना किसी विषय पर चर्चा करने का एक तरीका मात्र था, इसलिए यह आवश्यक नहीं समझा गया कि वाद-विवाद समाप्त होने पर उसे मतदान के लिए रखा जाए; और यह कि सभा का ठीक निर्णय जानने के लिए केवल वैकल्पिक या स्थानापन्न प्रस्तावों को सभा में मतदान के लिए रखा जा सकता है।[25]

जो सदस्य स्थानापन्न प्रस्तावों को प्रस्तुत करते समय अनुपस्थित रहेंगे, उन्हें उसी दिन बाद में अपने प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

> तथापि, 8 अगस्त, 1966 को, जब आर्थिक स्थिति के संबंध में सरकारी प्रस्ताव पर स्थगित वाद-विवाद आरंभ हुआ, तब एक सदस्य को अपना स्थानापन्न प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई क्योंकि उस सदस्य द्वारा यह निवेदन किया गया था कि सभा से उसकी सेवा को निलंबित किए जाने के कारण वह अपना प्रस्ताव पहले 26 जुलाई, 1966 को प्रस्तुत नहीं कर सका था।[26]

स्थानापन्न प्रस्तावों को सभा में मतदान के लिए निम्न क्रम से रखा जाता है—

- मूल प्रस्ताव में उल्लिखित सरकार की नीति अथवा कार्यवाही के निरनुमोदन को अभिव्यक्त करने वाले प्रस्ताव;
- सुझाव देने वाले प्रस्ताव; और

---

24. नियम 342 ।
25. *कार्यवाही सारांश* (नियम समिति), 23.12.1953 ।
26. *एल.एस. डिबेट्स,* 8.8.1966, कॉ. 3341 ।

- मूल प्रस्ताव में उल्लिखित सरकार की नीति अथवा कार्यवाही के अनुमोदन को अभिव्यक्त करने वाले प्रस्ताव।[27]

तथापि, अध्यक्ष स्वविवेकानुसार, सभा में मतैक्य को देखते हुए सरकार की नीति या कार्यवाही के अनुमोदन को अभिव्यक्त करने वाले प्रस्ताव को वरीयता प्रदान कर सकेगा।[28]

जब किसी मामले या नीति या स्थिति या किसी वक्तव्य या किसी अन्य विषय पर विचार करने के लिए किसी प्रस्ताव के स्थान पर कोई स्थानापन्न प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा सभा में मतदान के लिए नहीं रखा जाए और मूल प्रस्ताव के स्थान पर कोई अन्य स्थानापन्न प्रस्ताव सभा द्वारा पारित किया जाए, तो, उस प्रस्ताव को जो सभा के समक्ष न रखा गया हो, सभा द्वारा, यथास्थिति, अस्वीकृत या अवरुद्ध समझा जाएगा।[29]

गौण प्रस्ताव

गौण प्रस्ताव अन्य प्रस्तावों पर निर्भर या उनसे संबंधित होते हैं या सभा की किन्हीं कार्यवाहियों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। अपने आप में उनका कोई अर्थ नहीं होता और इनके द्वारा मूल प्रस्ताव या सभा की कार्यवाहियों का उल्लेख किए बिना सभा का कोई निर्णय नहीं बताया जा सकता।[30]

गौण प्रस्तावों को आगे तीन श्रेणियों में बांटा जाता है: सहायक प्रस्ताव; अधिक्रामक प्रस्ताव; और संशोधन ।

सहायक प्रस्ताव

सहायक प्रस्ताव वे प्रस्ताव हैं जिन्हें विभिन्न प्रकार का काम चलाने के लिए सभा में प्रचलित होने के कारण स्वीकृत नियमित तरीका माना गया है, अर्थात् यह वे प्रस्ताव हैं जो किसी विधेयक के विभिन्न प्रक्रमों के संबंध में रखे जाते हैं जैसा कि "विधेयक पर विचार किया जाए'' या ''विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपा जाये'' या विधेयक को "पारित किया जाये।"[31]

अधिक्रामक प्रस्ताव

अधिक्रामक प्रस्ताव ऐसे प्रस्ताव हैं जो यद्यपि अपने आप में स्वतंत्र होते हैं, परन्तु वे किसी अन्य प्रश्न पर वाद-विवाद के दौरान प्रस्तुत किए जाते हैं और इनका उद्देश्य उस प्रश्न

---

27. निदेश 45 (1) तथा *एल.एस. डिबेट्स,* 18.8.1965, कॉ. 746-64; 7.12.1965, कॉ. 6111-21।
28. *एल.एस. डिबेट्स,* 19.2.1958, कॉ. 1136-42; *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1958, पृ. 829 ।
29. नियम 342 के साथ पठित निदेश 45(2)।
30. निदेश 41(2)(तीन) ।
31. इन प्रस्तावों का विधेयक संबंधी प्रक्रिया के साथ गहरा संबंध है और इसलिए इनका ब्यौरा अध्याय 22—'विधान' में दिया गया है।

का अधिक्रमन करना होता है। ऐसे प्रस्तावों को किसी भी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, जो उस समय सभा के समक्ष किसी प्रश्न पर बोलने के लिए उठता है।

अत: किसी विधयेक पर विचार करने के प्रस्ताव के संबंध में, किसी अधिक्रामक प्रस्ताव के माध्यम से, यह कहा जा सकता है कि किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को पुन: सौंपा जाये या उस पर और राय जानने के लिए उसे फिर से परिचालित किया जाये या विधेयक पर वाद-विवाद को स्थगित किया जाये।[32] जहां अध्यक्ष का विचार हो कि अधिक्रामक प्रस्ताव विलंबकारी प्रस्ताव है, क्योंकि ऐसी कोई अप्रत्याशित या नयी परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई है, कि विधेयक को फिर से परिचालित किया जाये या पुन: प्रवर या संयुक्त समिति के पास भेजा जाए, तो उसे यह शक्ति प्राप्त है कि वह इस पर तुरन्त सभा का मत ले लें या उसे प्रस्तुत करने से अस्वीकार भी कर दें।[33] परन्तु जब अधिक्रामक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है और अध्यक्ष उसे विलम्बकारी नहीं समझता तो मूल प्रश्न का अधिक्रमण करने वाले नये प्रश्न के रूप में वह उस प्रस्ताव को प्रस्तुत करता है और मूल प्रश्न पर वाद-विवाद पुन: प्रारम्भ होने से पहले इस प्रश्न का निपटारा करना पड़ता है, परन्तु ऐसे किसी प्रस्ताव पर वाद-विवाद प्रस्ताव के समर्थन में दिए जाने वाले कारणों से सर्वथा संगत होना चाहिए।

संशोधन

संशोधन किसी अन्य प्रस्ताव पर वाद-विवाद के दौरान रखा जाने वाला गौण प्रस्ताव है जिसके माध्यम से मुख्य प्रस्ताव के रखे जाने और उस प्रस्ताव तथा तत्संबंधी प्रश्न पर निर्णय होने के बीच वाद-विवाद तथा निर्णय का एक नया क्रम प्रारम्भ हो जाता है।[34] संशोधन विधेयक के किसी खण्ड, संकल्प या प्रस्ताव के बारे में हो सकता है या विधेयक के किसी खण्ड, संकल्प या प्रस्ताव में संशोधन के संबंध में हो सकता है।

संशोधन का उद्देश्य या तो सभा के समक्ष किसी प्रश्न का रूपभेद करना है जिससे कि उसकी स्वीकार्यता बढ़ जाये या मूल प्रश्न के विकल्प के रूप में कोई भिन्न प्रस्थापना सभा के समक्ष रखना है।[35]

---

32. वाद-विवाद स्थगित करने का प्रस्ताव सारभूत कारणों पर आधारित होना चाहिए और केवल इस कारण ऐसा प्रस्ताव पेश नहीं किया जाना चाहिए जिससे कार्य की किसी अन्य मद को उससे पहले लिया जा सके। *एल.ए. डिबेट्स,* 20.3.1924, पृ. 2041 । सभा में कम सदस्यों की उपस्थिति अध्यक्ष द्वारा वाद-विवाद को स्थगित किए जाने का प्रस्ताव स्वीकार करने का समुचित कारण नहीं है—*एल.ए. डिबेट्स,* 1.4.1937, पृ. 2515 ।
33. नियम 341; *एल.ए. डिबेट्स,* 10.3.1924, पृ. 1377; *लो.स.वा.वि.,* 11.4.1955, पृ. 3742-43; 25.7.1955, कॉ. 122; 10.8.1955, पृ. 1164-65; *एल.एस. डिबेट्स,* 18.2.1956, कॉ. 282-84 और 20.2.1956, कॉ. 402-17 ।
34. मे, पृ. 397 ।
35. मे, पृ. 397 ।

स्थानापन्न प्रस्ताव का उद्देश्य भी यही होता है कि मूल प्रश्न के विकल्प के रूप में कोई भिन्न प्रस्थापना सभा के समक्ष रखी जाये, परन्तु यह संशोधन से इस बात में भिन्न है कि यह पूरे प्रस्ताव का स्थान ले लेता है। स्थानापन्न प्रस्ताव के विपरीत, संशोधन के माध्यम से मूल प्रस्ताव के केवल एक भाग में रूपभेद किया जाता है या उसके स्थान पर कुछ शब्द प्रतिस्थापित किए जाते हैं और इस कारण सभा के समक्ष रखे गए प्रश्न के सभी शब्द बदले नहीं जाते, यद्यपि उसके माध्यम से सभा के समक्ष भिन्न प्रस्थापना रखी जा सकती है। यदि स्थानापन्न प्रस्ताव स्वीकार हो जाये, तो वह मूल प्रश्न के स्थान पर आ जाता है, और फिर मूल प्रश्न को सभा में मतदान के लिए नहीं रखा जाता। परन्तु यदि कोई संशोधन स्वीकार हो जाता है तो मूल प्रश्न को संशोधित रूप में सभा के समक्ष रखा जाता है।

किसी मूल प्रस्ताव के संबंध में स्थानापन्न प्रस्ताव ग्राह्य नहीं है; केवल संशोधन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। स्थानापन्न प्रस्ताव में संशोधन की अनुमति नहीं दी जाती।

तथापि, जब बोफोर्स संविदा के संबंध में स्वीडन के नेशनल ऑडिट ब्यूरो की रिपोर्ट से उत्पन्न प्रश्नों की जांच करने के लिए संयुक्त समिति की नियुक्ति से संबंधित मूल प्रस्ताव को स्वीकार किया गया और 29 एवं 30 जुलाई और 3, 4 और 6 अगस्त, 1987 को उस पर चर्चा हुई, तब मूल प्रस्ताव से संबंधित स्थानापन्न प्रस्ताव स्वीकार किए गए तथा संशोधनों के रूप में सदस्यों को परिचालित किये गए।

जब कोई संशोधन प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु अध्यक्ष द्वारा उसे सभा में मतदान के लिए नहीं रखा जाता है तथा मूल प्रस्ताव सभा द्वारा पारित हो जाता है तो संशोधन सभा द्वारा अस्वीकृत समझा जाता है।[36]

संशोधन के रूप

संशोधन को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है, कुछ शब्दों, अंकों या चिह्नों का लोप करने के लिए रखे गए संशोधन; कुछ शब्दों, अंकों या चिह्नों के प्रतिस्थापन के लिए रखे गए संशोधन; कुछ शब्दों, अंकों या चिह्नों को जोड़ने या अंत:स्थापित करने के लिए रखे गए संशोधन।

जब प्रस्तावित संशोधन यह हो कि कुछ शब्दों, अंकों या चिह्नों का लोप कर दिया जाये, तो अध्यक्ष इस प्रश्न को इस प्रकार रखता है "कि मूल प्रस्ताव में दिए गए, शब्द, अंक या चिह्न (यहां वे शब्द, अंक और चिह्न लिखे जाएंगे जिनका लोप किया जाना है) का लोप किया जाए।" जब प्रस्तावित संशोधन प्रतिस्थापन करने के लिए हों तो अध्यक्ष कहता है; "कि मूल प्रस्ताव में (यहां वे शब्द, अंक या चिह्न रखे जाएंगे, जिनका लोप किया जाना है) के स्थान पर (यहां वे शब्द, अंक या चिह्न रखे जायेंगे, जिन्हें प्रतिस्थापित किया जाना है) को प्रतिस्थापित किया जाये।" जब संशोधन में यह प्रस्तावित हो कि कुछ शब्द, अंक या चिह्न जोड़ें या अंत:स्थापित किए जाएं तो अध्यक्ष कहता है, "कि मूल प्रस्ताव में (यहां पर वे शब्द,

36. निदेश 43 ।

अंक या चिह्न लिखे जाएंगे जिनके पश्चात् प्रस्तावित शब्द, अंक या चिह्न अंत:स्थापित किए जाने हैं) के पश्चात् निम्नलिखित अंत:स्थापित किया जाये" या "कि मूल प्रस्ताव के अंत में निम्नलिखित जोड़ा जाये," जैसी भी स्थिति हो। यदि सभा द्वारा कोई संशोधन स्वीकृत हो जाये, तो प्रश्न को संशोधित रूप में सभा के समक्ष रखा जाता है, अन्यथा उसे मूल रूप में सभा के समक्ष रखा जाता है।

संशोधन की सूचना

किसी अन्य सूचना के समान किसी प्रस्ताव में संशोधन की सूचना भी लिखित रूप में महासचिव को संबोधित होनी चाहिए। उस पर सूचना देने वाले सदस्य के हस्ताक्षर होने चाहिए और वह विहित समय के भीतर संसदीय सूचना कार्यालय में दी जानी चाहिए।

सूचनाएं मानक मुद्रित प्रपत्रों पर देना अपेक्षित है। अध्यक्ष ने कागज के टुकड़ों या पेंसिल से लिखी सूचनाएं देने को अनुचित बताया है।[37]

किसी प्रस्ताव में कोई संशोधन रखने की सूचना उस दिन से दो दिन पहले दी जानी चाहिए, जिस दिन प्रस्ताव पर विचार किया जाना हो, जब तक कि अध्यक्ष ऐसी सूचना के बिना संशोधन के प्रस्ताव की अनुमति न दे।[38] जिस संशोधन की समुचित सूचना न दी गयी हो उसे इस दशा में प्रस्तुत करने की अनुमति दी जा सकती है जब किसी अन्य सदस्य ने वैसे ही किसी संशोधन की समुचित सूचना दे दी हो और वह अपने उस संशोधन को प्रस्तुत करने से इंकार कर दे।[39]

अध्यक्ष सभा की सहमति से संशोधनों की सूचनाओं की शर्त को हटा सकता है।[40] मंत्रियों द्वारा प्रस्तावित संशोधन अध्यक्ष की अनुमति से, बिना सूचना के भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं, परन्तु यदि इससे लोक हित प्रभावित होता हो, तो उस प्रश्न पर विचार अगले दिन के लिए स्थगित किया जा सकता है, जिससे सदस्य संशोधनों के निहित अर्थों पर विचार कर सकें।[41] यदि कोई संशोधन प्रस्तावक तथा सरकार दोनों को स्वीकार्य हो तो उस दशा में भी, अध्यक्ष सूचना की शर्त हटा सकता है।[42] अंतिम समय में दिए गए संशोधन भी स्वीकार किए जा सकते हैं, यदि प्रस्तावक इससे सहमत हो और उसने अपनी स्वीकृति दे दी हो।[43]

---

37. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.4.1934, पृ. 3423 ।
38. नियम 345 ।
39. *एल.ए. डिबेट्स,* 1.12.1938, पृ. 3680 ।
40. *एच.पी. डिबेट्स,* 11.7.1952, कॉ. 3611 और *एल.एस. डिबेट्स,* 23.11.1956, कॉ. 2688-96; 12.2.1964, कॉ. 305-09; 25.4.1966, कॉ. 12863-885 ।
41. *एल.ए. डिबेट्स,* 26.3.1931, पृ. 2711-15 ।
42. *लो.स.वा.वि.*, 31.3.1956, पृ. 1685 ।
43. *पूर्वोक्त,* 27.5.1957, पृ. 994-95; *एल.एस. डिबेट्स,* 29.8.1957, कॉ. 10793-94 और *लो.स.वा.वि.*, 5.9.1957, पृ. 5471 ।

संशोधन प्रस्तुत करने की विधि

सभा के समक्ष प्रश्न के प्रस्तावित होने और उसके मतदान के लिए रखे जाने के बीच संशोधन प्रस्तुत किए जाते हैं, अर्थात् उस समय के बीच संशोधन रखे जाते हैं जो सामान्यतः चर्चा के लिए नियत किया जाता है। कोई संशोधन उस समय रखा जा सकता है जब अध्यक्ष ने प्रश्न का प्रस्ताव सभा के समक्ष रख दिया हो और संशोधन केवल उसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है जिसके नाम में वह संशोधनों की सूची में हो।[44] जब कोई संशोधन संयुक्त रूप से एक से अधिक सदस्यों के नाम में हो और उनमें से एक ने उसे प्रस्तुत कर दिया हो, तो दूसरे सदस्य इसे दोबारा प्रस्तुत नहीं कर सकते, लेकिन उन्हें इसके समर्थन में बोलने की अनुमति दी जा सकती है।[45] जिस सदस्य ने संशोधन की सूचना दी है उसे केवल इसी कारण अन्य किसी सदस्य की अपेक्षा पहले नहीं बुलाया जायेगा, जो उस प्रश्न पर बोलने के लिए खड़ा हुआ हो।[46]

संशोधनों की ग्राह्यता

किसी प्रस्ताव में कोई संशोधन तभी ग्राह्य हो सकता है, जब वह निम्नलिखित शर्तें पूरी करता हो—

> संशोधन उस प्रस्ताव से सुसंगत और उसकी व्याप्ति के भीतर होना चाहिए जिस पर वह प्रस्तुत किया जाता है। इसके माध्यम से कोई नया या बाहर का विषय नहीं आना चाहिए और न उससे प्रस्ताव का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए।[47]
>
> ऐसा संशोधन ग्राह्य नहीं है जिसका प्रभाव केवल नकारात्मक मत हो।[48] उसी आधार पर, वे संशोधन नियम विरुद्ध हैं, जिनका उद्देश्य विधेयक से किसी खण्ड को हटाना हो, और उन्हें परिचालित नहीं किया जाता।[49] जिस संशोधन का प्रभाव यह हो कि मूल प्रस्ताव को प्रत्यक्ष रूप से अस्वीकार कर दिया जाये, उसे नियम विरुद्ध ठहराया गया है।[50] ऐसे संशोधन को भी नियम विरुद्ध ठहराया गया है, जो प्रस्ताव के पाठ के विरुद्ध

---

44. *एल.एस. डिबेट्स,* 24.7.1956, कॉ. 672-73, जब प्रस्ताव और इस संबंध में प्रस्तुत किए गए संशोधनों पर पहले ही चर्चा जारी हो तो चर्चा के बाद के चरण में कोई संशोधन प्रस्तुत करने की अनुमति पीठासीन अधिकारी ने नहीं दी—*लो.स.वा.वि.,* 31.7.1975, कॉ. 99 ।

    एक अवसर पर, एक सदस्य को पहले से ही परिचालित संशोधन को सभा में प्रस्तुत करते समय इसके पाठ को परिवर्तित करने की अनुमति दी गई—*लो.स.वा.वि.,* 11.11.1970, पृ. 152-54 ।
45. *एल.एस. डिबेट्स,* 28.5.1956, कॉ. 9769-70 ।
46. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 28.11.1952, कॉ. 1370 ।
47. नियम 344(1); *एल.ए. डिबेट्स,* 27.5.1924, पृ. 2293; *एस.पी.डिबेट्स* (II), 17.4.1953, पृ. 3527-28 और 24.11.1953, कॉ. 612-14 ।
48. नियम 344(2)।
49. *एल.ए. डिबेट्स,* 16.2.1946, पृ. 1153; *एल.एस. डिबेट्स,* 24.12.1970, कॉ. 287 ।
50. *एल.एस. डिबेट्स,* 24.4.1959, कॉ. 13891; 19.8.1968, कॉ. 2736, पृ. 2825-26 ।

है।[51] इसी प्रकार, ऐसा संशोधन नियम विरुद्ध है जो कि सारतः वैसा ही हो जैसा कि मूल प्रस्ताव है।[52]

किसी प्रश्न पर कोई संशोधन उसी प्रश्न पर पहले किए गए किसी विनिश्चय से असंगत नहीं होना चाहिए।[53] अतः यदि कोई संशोधन प्रस्ताव के उन शब्दों से असंगत हो, जिन के संबंध में पहले सहमति हो चुकी है या जो किसी ऐसे संशोधन से असंगत हो, जो पहले स्वीकार किया जा चुका हो या सारतः ऐसा संशोधन हो, जो पहले ही अस्वीकार किया जा चुका हो, तो वह नियम विरुद्ध होगा।

इन शर्तों के अतिरिक्त संशोधनों की ग्राह्यता पर विधेयकों के समान कुछ अन्य सामान्य शर्तें भी लागू होती हैं, अर्थात् संशोधन बोधगम्य होना चाहिए और अस्पष्ट या अनिश्चित नहीं होना चाहिए,[54] अर्थहीन या तुच्छ नहीं होना चाहिए और उस रूप में होना चाहिए, जिसमें कि अध्यक्ष उसे सभा के मतदान के लिए रख सके। ग्राह्यता की जो सामान्य शर्तें विधेयकों के संशोधनों के संबंध में लागू होती हैं, वही समुचित परिवर्तनों के साथ प्रस्तावों के संशोधनों के संबंध में भी लागू होती हैं।

प्रस्तावित संशोधनों में संशोधन

किसी संशोधन में भी संशोधन ग्राह्य है। इन मामलों में, जब अध्यक्ष प्रश्न रखता है, तो वह पहले संशोधन को स्पष्ट रूप से प्रश्न के रूप में रखता है और दूसरे संशोधन को सामान्य संशोधन के रुप में। कुछ समय के लिए मूल प्रश्न एक तरफ रख दिया जाता है और संशोधन अपने आप में एक मूल प्रश्न बन जाता है। परन्तु किसी प्रस्तावित संशोधन में ऐसा संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जिसका उद्देश्य ऐसे प्रस्तावित संशोधन के सभी शब्दों को हटा देना हो। ऐसे मामलों में प्रस्तावित संशोधन में संशोधन, मूल प्रश्न में स्वतंत्र संशोधन के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है तथा संशोधन का प्रस्ताव तभी रखा जा सकता है जबकि पहला संशोधन अस्वीकार कर दिया गया हो अथवा वापस ले लिया गया हो।

संशोधनों का चयन

अध्यक्ष को किसी प्रस्ताव के संबंध में प्रस्तुत किए जाने वाले संशोधनों का चुनाव करने की शक्ति प्राप्त है और यदि वह ठीक समझे तो उस सदस्य से जिसने संशोधन की सूचना दी हो संशोधन के उद्देश्य की ऐसी व्याख्या करने के लिए कह सकता है जिससे वह उसके संबंध में निर्णय करने में समर्थ हो सके।[55]

---

51. *एल.एस. डिबेट्स* (II), 31.8.1956, कॉ. 5050-52 ।
52. *एल.ए. डिबेट्स,* 16.2.1928 और 6.4.1934, क्रमशः पृ. 393 और 3293 और *एल.एस. डिबेट्स,* 2.12.1960, कॉ. 3684 ।
53. नियम 344(3) ।
54. *एल.ए. डिबेट्स,* 5.12.1932, पृ. 2930 ।
55. नियम 346 ।

यदि किसी अन्य संशोधन के संबंध में सभा में सर्वसम्मति न हो[56] तो अध्यक्ष द्वारा चुने गए किसी विशेष संशोधन को सभा को स्वीकार करना पड़ता है।[57]

संशोधन पर वाद-विवाद की व्याप्ति

जिस संशोधन में मौलिक प्रस्ताव के विकल्प के रूप में कोई भिन्न प्रस्थापना रखी गयी हो, उस पर वाद-विवाद संशोधन तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि उसमें संशोधन तथा प्रस्ताव दोनों के प्रयोजन आ जाते हैं, क्योंकि दोनों विषय सभा के विचाराधीन होते हैं और सभा उन दोनों में से किसी भी प्रस्थापना को स्वीकार कर सकती है। यदि संशोधन का उद्देश्य प्रश्न के कुछ शब्दों को हटाने या उसमें कुछ शब्द जोड़ने का हो तो वाद-विवाद उन शब्दों के लोप करने या उनके जोड़े जाने की वांछनीयता तक सीमित रहता है। इसी प्रकार, यदि कुछ शब्दों को हटाने और कुछ शब्दों को प्रतिस्थापित करने का विचार हो, तब मूल और प्रस्तावित शब्द दोनों ही सामान्य रूप से विचाराधीन होते हैं।

प्रस्तावों की पुनरावृत्ति तथा उनका वापस लिया जाना

प्रस्तावों के संबंध में सामान्य नियम यह है कि किसी प्रस्ताव के माध्यम से कोई ऐसा प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए जो सारवान रूप से उस प्रश्न के समान हो जिसके संबंध में उसी सत्र में सभा कोई विनिश्चय कर चुकी हो।[58] तथापि यदि सभा उसी सत्र में पहले किए गए विनिश्चय में संशोधन करना चाहती है तो इस नियम को निलंबित करना होगा।[59]

जिस सदस्य ने कोई प्रस्ताव किया हो, वह उसे केवल सभा की अनुमति से ही वापस ले सकता है।[60] वह अनुमति उस प्रश्न के रखे जाने पर नहीं, बल्कि अध्यक्ष द्वारा सभा के विचार जानने के बाद ही दी जाती है। यदि कोई सदस्य प्रस्ताव वापस लेने की अनुमति देने के पक्ष में नहीं है या कोई सदस्य वाद-विवाद जारी रखना चाहता है तो अध्यक्ष तुरंत मूल प्रस्ताव रखता है।[61] जिस प्रस्ताव पर प्रस्तावक द्वारा मत विभाजन का आग्रह नहीं किया जाता, उसके संबंध में यह माना जाता है कि वह सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया है और उस स्थिति में सभा के सहमति की आवश्यकता नहीं होती।[62]

---

56. *एल.ए. डिबेट्स,* 8.9.1922, पृ. 286 ।
57. *पी. डिबेट्स,* 5.10.1951, कॉ. 4324-25; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 5.8.1957, *कॉ. 7035-36; एल.एस. डिबेट्स,* 30.11.1959, कॉ. 2452-53 ।
58. नियम 338 । *लो.स.वा.वि.,* 8.12.1955, कॉ. 1749-1814; 15.12.1958, पृ. 2408 ।
59. *एल.एस. डिबेट्स,* 15.4.1964, पृ. 3938; 25.11.1966, पृ. 2392-95; 7.8.1969, पृ. 176-77; 28.8.1970, पृ. 139-40, 165-66; 16.3.1973, पृ. 127-47; *एल.एस. डिबेट्स,* 4.9.1974, कॉ. 64-86; *लो.स.वा.वि.,* 26.7.1966, पृ. 120-36; और *एल.एस. डिबेट्स,* 22.7.1966, कॉ. 777 ।
60. नियम 339, *एल.एस. डिबेट्स,* 14.7.1967, कॉ. 12017-32 ।
61. *एल.एस. डिबेट्स,* 19.7.1957, कॉ. 1276 ।
62. निदेश 44 ।

प्रस्ताव का प्रस्तावक ही अपने प्रस्ताव को वापस लेने के लिए कह सकता है। सभा में किसी प्रस्ताव को उस समय भी वापस लिया जा सकता है, जबकि वह सभा के समक्ष रख दिया गया हो और मत विभाजन के लिए कह दिया गया हो, परन्तु प्रस्तावक को मत विभाजन होने से पहले इसे वापस लेने के लिए कहना पड़ता है।[63] अपना प्रस्ताव वापस लेने की अनुमति मांगते समय सदस्य को भाषण देने का अधिकार नहीं है।[64]

किसी सदस्य का प्रस्ताव वापस लेने का अधिकार पूर्ण तथा प्रतिबंध रहित नहीं है। अत: किसी विधेयक का खण्ड वापस नहीं लिया जा सकता। विधेयक संपूर्ण रूप में पुर:स्थापित किया जाता है और कोई सदस्य संपूर्ण विधेयक को सभा के समक्ष रखने के बाद उसके किसी खण्ड को वापस नहीं ले सकता। यदि किसी विधेयक से किसी खण्ड का लोप करना हो, तो उसे सभा के मतदान के लिए रखना पड़ता है और उसे अस्वीकृत करना पड़ता है।[65] इसके अतिरिक्त यदि किसी प्रस्ताव के संबंध में कोई संशोधन प्रस्तावित किया गया हो, तो मूल प्रस्ताव को तब तक वापस नहीं लिया जा सकता जब तक कि संशोधन को निपटा न दिया गया हो।[66]

यदि चर्चा के दौरान यह पता चले कि जिस संशोधन के प्रस्तुत किए जाने की अनुमति दी गयी है, वह नियम विरुद्ध है, तो अध्यक्ष को यह अधिकार है कि उस संशोधन को वापस ले लें ताकि सभा में उस पर और आगे विचार न हो सके।[67]

सामान्य लोक हित के विषय पर चर्चा का प्रस्ताव

संविधान अथवा नियमों में अन्यथा उपबंधित अवस्था को छोड़कर, अध्यक्ष की सम्मति से प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव के अतिरिक्त सामान्य लोकहित के विषय पर सभा में कोई चर्चा नहीं हो सकती है।[68] प्रस्ताव स्वीकार किये जाने के बाद भी यदि अध्यक्ष के ध्यान में यह बात आती है कि किसी बिंदु से ग्राहयता की शर्तों का उल्लघंन होता है तो वह उस भाग की अनुमति देने से मना कर सकता है।[69]

---

63. *पी. डिबेट्स,* 20.4.1950, पृ. 3079 ।
64. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.9.1927, पृ. 4659 ।
65. *लो.स.वा.वि.,* 9.2.1960, कॉ. 180-221; 10.2.1960, कॉ. 337-428; 11.2.1960, कॉ. 537-87; 6.12.1961, कॉ. 1759; 24.2.1970, पृ. 175-79; 4.5.1987, पृ. 272-74 ।
66. नियम 339 । उदाहरण के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 30.4.1954, कॉ. 6217-24; 2.8.1957, कॉ. 3814-19 और 19.7.1957, कॉ. 1276 ।
67. *एल.ए. डिबेट्स,* 2.12.1933, पृ. 2506-08 और 2538 ।
68. नियम 184 ।
69. नियम 186 । साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 4.8.1977, कॉ. 296-315 ।

किसी अन्य सूचना की तरह ऐसे प्रस्ताव की सूचना भी लिखित रूप में महासचिव को संबोधित की जाती है।[70] ऐसे प्रस्तावों की सूचना की कोई अवधि विहित नहीं की गयी है। सत्र के लिए आमंत्रण जारी होने की तिथि के बाद सूचनाएं दी जा सकती हैं। मंत्रियों द्वारा सभा में दिए जाने वाले वक्तव्यों के संबंध में प्रस्तावों की सूचना या सभा पटल पर रखे जाने वाले विवरण, प्रतिवेदन तथा पत्र उसी दिन प्रातः 10.00 बजे से प्राप्त किये जाते हैं जिस दिन की कार्य-सूची में वह मद शामिल है तथा जो सदस्यों को परिचालित की जाती हैं। यदि उस दिन शनिवार, रविवार अथवा कोई अन्य सार्वजनिक अवकाश हो तो सूचनाएं अगले कार्य दिवस पर 10.00 बजे से प्राप्त की जाती है।[71] यदि किसी वक्तव्य के संबंध में सभा में अनुपूरक कार्य-सूची परिचालित की जाती है तो ऐसे वक्तव्य के बारे में कार्य-सूची परिचालित होने के 15 मिनट के भीतर प्राप्त सूचना को उसी समय प्राप्त हुई सूचनाएं समझा जाता है तथा उनकी परस्पर वरीयता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है। यदि किसी मामले में सभा में मंत्री द्वारा दिए जाने वाले वक्तव्य के संबंध में पीठासीन अधिकारी द्वारा घोषणा की जाती है तो उस वक्तव्य के संबंध में सूचनाएं पीठासीन अधिकारी द्वारा घोषणा किए जाने के समय से प्राप्त की जाती हैं तथा पीठासीन अधिकारी द्वारा घोषणा किए जाने के 15 मिनट के भीतर प्राप्त सूचनाओं को उसी समय प्राप्त हुई सूचनाएं माना जाता है तथा उनकी परस्पर वरीयता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है। ऐसे मामले में जहां कार्य-सूची तथा अनुपूरक कार्य-सूची में सम्मिलित किए बिना वक्तव्य दिया जाता है तो ऐसे वक्तव्य के संबंध में सूचनाएं सभा में वास्तव में दिए गए वक्तव्य के समय से प्राप्त की जाती हैं तथा मंत्री द्वारा वक्तव्य पूरा हो जाने के 15 मिनट के भीतर प्राप्त सूचनाओं को उसी समय प्राप्त सूचनाएं माना जाता है तथा उनकी परस्पर वरीयता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है। सभी सूचनाएं संसदीय सूचना कार्यालय को देनी होती हैं न कि सभा पटल पर देनी होती हैं तथा संसदीय सूचना कार्यालय में सूचना की प्राप्ति के समय को ही ध्यान में रखा जाता है।

सूचना में निम्नलिखित जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए:

> स्थान और तिथि; सूचना देने वाले सदस्य का पता; सदस्य के हस्ताक्षर तथा विभाजन संख्या और यथातथ्य भाषा में प्रस्ताव का पाठ।
>
> इसके अतिरिक्त, किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्ताव की प्रत्येक सूचना के साथ उन प्रश्नों की सूची होनी चाहिए, जिन पर प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा की जानी है और उसके साथ एक संक्षिप्त व्याख्यात्मक ज्ञापन होना चाहिए, जिससे कि अध्यक्ष प्रस्ताव की ग्राह्यता के संबंध में निर्णय कर सके।

यदि किसी सूचना पर एक से अधिक सदस्यों ने हस्ताक्षर किए हों तो उसे केवल प्रथम हस्ताक्षरकर्ता सदस्य द्वारा दी गई सूचना माना जाता है।

---

70. नियम 185 ।

71. समाचार-भाग 2, 13.11.1987, पैरा 1950 ।

प्रस्ताव का रूप

सामान्य लोकहित के मामले पर चर्चा करने संबंधी प्रस्ताव के लिए कोई विशेष रूप निर्धारित नहीं किया गया है। यह राय की घोषणा अथवा सिफारिश के रूप में हो सकता है, अथवा यह सरकार के किसी कार्य अथवा नीति के बारे में सभा द्वारा अनुमोदन या निरनुमोदन रिकार्ड किए जाने के रूप में हो सकता है, अथवा चिंता या प्रशंसा व्यक्त करने, कोई कार्यवाही किए जाने का आग्रह या अनुरोध करने अथवा किसी दस्तावेज पर ध्यान देने अथवा किसी नीति, वक्तव्य या स्थिति पर विचार करने से संबंधित हो सकता है। सूचनाएं सामान्यत: दो रूपों में दी जाती हैं: एक रूप के अंतर्गत सभा सभा-पटल पर रखे गए किसी दस्तावेज पर ध्यान देती है और दूसरे के अंतर्गत किसी नीति अथवा स्थिति अथवा वक्तव्य या किसी अन्य मामले पर सभा विचार करती है।

प्रस्ताव के पहले रूप का प्रयोग सामान्यत: ऐसे प्रस्तावों के संबंध में किया जाता है, जिनका उद्देश्य सभा पटल पर रखे गए किसी प्रतिवेदन या किसी वक्तव्य आदि पर चर्चा करना होता है। अब यह प्रथा सुस्थापित हो चुकी है कि किसी भी ऐसे प्रतिवेदन पर चर्चा नहीं हो सकती, जो सभा पटल पर न रखा गया हो।[72] इस रूप में ऐसा प्रस्ताव एक मूल प्रस्ताव होता है, जो सभा को किसी निर्णय के लिए आबद्ध नहीं करता। उसे चर्चा के बाद सभा में मतदान के लिए रखा जाता है[73] और प्रतिवेदन आदि को अनुमोदित या निरनुमोदित करते हुए उसमें संशोधन प्रस्तुत किए जा सकते हैं।[74]

---

72. प्राक्कलन समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के प्रतिवेदनों पर सभा में चर्चा नहीं की जाती, परन्तु किसी भी प्रतिवेदन में की गयी विशिष्ट सिफारिश के संबंध में किसी प्रस्ताव पर विचार किया जा सकता है। लोक लेखा समिति के एक प्रतिवेदन पर 22 अगस्त, 1966 को चर्चा की गयी थी। चूंकि यह एक विशेष मामले से संबंधित था। चर्चा की सीमा उस मामले पर केवल समिति की सिफारिशों तक ही सीमित थी। चर्चा के दौरान नए अभियोग, नए आरोप अथवा अन्य मामले नहीं उठाए गए थे—*लो.स.वा.वि.,* 22.8.1966, पृ. 95-96।

    सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया जिसमें लोक लेखा समिति को अपने प्रतिवेदनों में से एक प्रतिवेदन में उल्लिखित मामले पर विचार करने तथा निर्धारित समयावधि के भीतर अपना प्रतिवेदन भेजने का निदेश दिया था—*लो.स.वा.वि.,* 2.8.1966, पृ. 106-10 ।

    लोक लेखा समिति और सरकार के बीच भिन्नता के क्षेत्रों के संबंध में प्रस्ताव सभा में प्रस्तुत किए गए तथा उन पर चर्चा की गई—*लो.स.वा.वि.,* 28.11.1967, पृ. 1603-11 ।

    सरकारी उपक्रमों के कार्यकरण तथा वार्षिक प्रतिवेदनों के संबंध में प्रस्ताव, जो सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के विचाराधीन हैं, स्वीकार नहीं किया जाता चूंकि सभा में चर्चा समिति द्वारा उपक्रम की, की जा रही जांच में पूर्वाग्रह उत्पन्न कर सकती है।
73. *एल.एस. डिबेट्स,* 12.3.1965, कॉ. 4062-63; 12.8.1967, कॉ. 19253-54; और *लो.स.वा. वि.,* 30.7.1985, पृ. 224-25 ।
74. *एल.एस. डिबेट्स,* 3.9.1959, कॉ. 6135-36 ।

तथापि, यदि किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा सरकार की नीति के विशेष पहलू के संदर्भ में सरकार की नीति पर "ध्यान देने के लिए" प्रस्ताव के इस रूप का सहारा लिया जाता है, तो किसी अन्य सदस्य द्वारा ऐसा संशोधन अग्राह्य है जिसका उद्देश्य सामान्य रूप से उस नीति का अनुमोदन करवाना हो।[75]

प्रस्ताव के दूसरे रूप का प्रयोग सामान्यत: उस समय किया जाता है जब किसी नीति या स्थिति या वक्तव्य या किसी अन्य विषय पर विचार किया जाना हो। प्रस्ताव इस रूप में हो तो उसको सभा के समक्ष मतदान के लिए नहीं रखा जाता और वाद-विवाद समाप्त होने पर कोई प्रश्न नहीं रखा जाता, परन्तु यदि किसी सदस्य ने मौलिक प्रस्ताव के स्थान पर कोई मूल प्रस्ताव रख दिया हो, जिसे अध्यक्ष ने विधिवत अनुमोदित कर लिया हो, तो उस पर सभा का मत लिया जाता है।[76]

कोई स्थानापन्न प्रस्ताव उस समय के बाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जब मूल प्रस्ताव पर चर्चा आरंभ हो गयी हो।[77] यह निर्णय दिया गया है कि जिस सदस्य ने यह प्रस्ताव रखा हो कि "किसी नीति या स्थिति या वक्तव्य आदि" पर विचार किया जाए, वह स्वयं मौलिक प्रस्ताव को वापस लिए बिना स्थानापन्न प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है।[78]

निन्दा प्रस्ताव

लोक सभा के प्रति मंत्रिपरिषद के सामूहिक उत्तरदायित्व के संबंध में संवैधानिक प्रावधानों को देखते हुए [अनुच्छेद 75(3)], केवल पूरी मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है न कि किसी एक मंत्री के विरुद्ध। तथापि, सामान्यत: प्रस्तावों से संबंधित नियमों के अंतर्गत किसी एक मंत्री के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव प्रस्तुत करने के पक्ष या विपक्ष में नियमों में कुछ नहीं कहा गया है।

> 4 अगस्त, 1977 को जब सभा के समक्ष एक सदस्य द्वारा एक मंत्री के विरुद्ध उसकी "भूलचूकों" के लिए सभा की तरफ से "रोष प्रकट करने तथा आचरण के निरनुमोदन" के लिए निन्दा प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, तो अनेक सदस्यों ने व्यवस्था का प्रश्न उठाते हुए प्रस्ताव की ग्राह्यता के संबंध में इस प्रकार के प्रश्न किए: (i) नियमों में किसी एक मंत्री के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव लाने का कोई प्रावधान नहीं है; (ii) अविश्वास प्रस्ताव के लिए अलग प्रक्रिया है; (iii) यहां तक कि नियम 184 के अंतर्गत भी निन्दा प्रस्ताव अग्राह्य है, चूंकि इसमें तीन अलग-अलग मामले उठाए गए हैं, पहले से चर्चा किए जा चुके मामले पर पुन: चर्चा की मांग की गई है तथा उठाए गए मामलों में एक मामले पर जांच भी चल रही है। अध्यक्ष ने निर्णय दिया कि इस प्रकार स्वीकार किए जा रहे

---

75. *एल.एस. डिबेट्स,* 29.8.1960, कॉ. 5540-41 ।
76. नियम 342 ।
77. *एल.एस. डिबेट्स,* 21.12.1959, कॉ. 6292-93 ।
78. *पूर्वोक्त,* 19.2.1958, कॉ. 1509-13 ।

प्रस्ताव के न तो पक्ष में और न ही विपक्ष में कोई नियम है और इस प्रकार, पूर्वोदाहरण का अनुसरण करते हुए उन्होंने इसे स्वीकार किया है। प्रस्ताव में तीन मामलों का उल्लेख किया गया था जिसके बारे में अध्यक्ष ने निर्णय दिया कि वास्तव में ये तीन व्याख्याएं हैं जो एक ही मामले से संबंधित हैं। एक आपराधिक मामले में एक घटना से संबंधित भाग जो कि जांच का विषय था, अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।[79]

निन्दा प्रस्ताव मंत्रिपरिषद, एक मंत्री अथवा मंत्रियों के एक समूह के विरुद्ध उनकी कार्यवाही करने में असफलता या न कर पाने के लिए या उनकी किसी नीति के संबंध में लाया जा सकता है तथा सभा मंत्री अथवा मंत्रियों की असफलता पर खेद, रोष या आश्चर्य व्यक्त कर सकती है। प्रस्ताव विनिर्दिष्ट तथा स्वत: स्पष्ट होना चाहिए ताकि निंदा के स्पष्ट व संक्षिप्त कारण रिकार्ड किये जा सकें।[80] किसी भी आधार पर कि प्रस्ताव नियमानुसार है या नहीं अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा।[81]

---

79. एल.एस. डिबेट्स, 4.8.1977, कॉ. 295-391 ।

80. लोक सभा में चर्चा किए गए कुछ निंदा प्रस्तावों के रूप इस प्रकार हैं:

   (i) कि यह सभा संकल्प करती है कि इस सभा के सदस्य और मंत्रिमंडल के सदस्य श्री ललित नारायण मिश्र को गम्भीर अनियमितताएं और कदाचार करने के कारण, जैसा कि भारत सेवक समाज के कार्यों की जांच करने वाले आयोग, के प्रतिवेदन तथा विशेषकर उक्त आयोग के प्रतिवेदनों के खण्ड 11, पृ. 97, पैरा 29.94, 29.95, 29.96; पृ. 98, पैरा 29.100; पृ. 103, पैरा 29.128, 29.129; पृ. 110, पैरा 29.146, 29.147; पृ. 126, पैरा (XXI); और पृ. 127, पैरा 29.194 में किए गए उल्लेख से स्पष्ट है, इस सभा की सदस्यता से हटाया जाए। *लो.स.वा.वि.,* 18.12.1974, पृ. 138-62 ।

   (ii) निम्नलिखित मामलों के संबंध में गृह मंत्री की ओर से हुई भूल-चूकों पर विचार करते हुए:

      (क) कि वह आधारहीन तथा अनुत्तरदायी वक्तव्य देकर सभा का दुरुपयोग कर रहे हैं जैसा कि अनेक उदाहरणों में से इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि 13 जुलाई, 1977 को गृह मंत्रालय की अनुदान मांगों से संबंधित वाद-विवाद का उत्तर देते हुए उन्होंने यह आरोप लगाया था कि पिछली सरकार की ओर से यह तैयारी की गयी थी तथा उनका यह विचार था कि राजनीतिक नेताओं को कारागार में ही गोली मार दी जाए।

      (ख) अन्य उदाहरणों में इस उदाहरण में उनके आचरण से स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने सरकारी पद का दुरुपयोग करते हुए स्वतंत्र संवैधानिक निकायों के कार्यों में हस्तक्षेप किया तथा निर्वाचन आयोग की फाइलों में से दिनांक 5 मई, 1977 का एक पत्र निकाल लिया जो उन्होंने बी.एल.डी. के नेता की हैसियत से लिखा था।

   यह सभा गृह मंत्री के प्रति अपना रोष व्यक्त करती है तथा उनके आचरण का निरनुमोदन करती है। *लो.स.वा.वि.,* 4.8.1977, पृ. 161-81; 5.8.1977, पृ. 160-66 ।

81. *एल.एस. डिबेट्स,* 19.8.1968, कॉ. 2714-2840; *लो.स.वा.वि.,* 4.8.1977, पृ. 161-81; 5.8.1977, पृ. 160-66 ।

निन्दा प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए सभा की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती। यह सरकार के विवेक पर निर्भर करता है कि वह इसके लिए कब समय निकालती है तथा इसकी चर्चा के लिए तारीख नियत करती है। इस प्रकार के प्रस्ताव पर सामान्य प्रस्तावों के नियम ही लागू होते हैं तथा इन्हें अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में स्वीकार किया जाता है तथा इन्हें लोक सभा समाचार में प्रकाशित किया जाता है।[82]

मंत्रिपरिषद से मंत्री को हटाने की मांग करने संबंधी निन्दा प्रस्ताव ग्राह्य नहीं है क्योंकि मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

तीसरे सत्र (सातवीं लोक सभा) के दौरान श्री ज्योतिर्मय बसु ने निम्नलिखित निन्दा प्रस्ताव की सूचना दी थी:

> "सभा विधि मंत्री द्वारा आज (28.7.1980) न्यायाधीश श्रीवास्तव के संबंध में लाए गए ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के उत्तर में दिए गए वक्तव्य को बहुत दुख के साथ नोट करती है तथा सिफारिश करती है कि चूंकि उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 121 का उल्लंघन किया है जिसका अनुपालन करने के लिए वे शपथबद्ध है, उन्हें मंत्रिपरिषद से हटा दिया जाना चाहिए तथा संसद सदस्य के रूप में इनकी निन्दा की जानी चाहिए।"
>
> चूंकि इस पर संविधान के अनुच्छेद 121 के प्रावधान लागू नहीं होते तथा मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है [अनुच्छेद 75(3)] सूचना को अस्वीकृत कर दिया गया।

पांचवें सत्र (13वीं लोक सभा) के दौरान अनेक सदस्यों ने नियम 184 के तहत प्रस्ताव की सूचनाएं दीं जिनमें यह मांग की गई थी कि मंत्रिपरिषद से तीन मंत्रियों को इस आधार पर हटाया जाये कि एक फौजदारी मामले में एक विचारण अदालत में उनके खिलाफ आरोप लगाये गये हैं। 11 दिसम्बर, 2000 को अध्यक्ष ने ये सूचनाएं इस आधार पर अस्वीकृत कर दीं कि मामला न्यायालय के विचाराधीन है और यह हाल ही की घटना नहीं है, तथा साथ ही यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत के विरुद्ध है।

उसी दिन 45 अन्य सदस्यों द्वारा नियम 184 के तहत प्रस्ताव की ऐसी ही सूचनाएं दी गईं जिनमें संबद्ध मंत्रियों के त्यागपत्र की इस औचित्य के आधार पर मांग की गई कि किसी फौजदारी मामले में अदालत में इन मंत्रियों के खिलाफ आरोप लगे हैं। अध्यक्ष ने सभी

---

82. नियम 189, उदाहरण के लिए *देखिए,* समाचार भाग-2, 29.7.1977, पैरा 249 ।

जब एक मंत्री के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव की सूचनाएं प्राप्त हुईं तो निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया गया: सूचना के विशिष्ट नहीं होने की दशा में संबंधित सदस्य को विशिष्ट सूचना देने का अनुरोध किया गया। सूचनाएं संबंधित मंत्री तथा प्रधानमंत्री को उनकी टिप्पणियों के लिए भेजी गयीं और सूचनाओं की ग्राह्यता के संबंध में निर्णय उनसे प्राप्त टिप्पणियों के आधार पर लिया गया। यथास्वीकृत प्रस्ताव लोक सभा, समाचार भाग-2, में अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में प्रकाशित किया गया तथा इसके चयन और चर्चा के लिए समय दिए जाने के लिए इसे कार्य-मंत्रणा समिति के समक्ष रखा गया।

सूचनाओं को अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि औचित्य का मामला किन्हीं प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत विनियमित नहीं होता है अत: सभा में इस पर चर्चा नहीं की जा सकी।

चूंकि सदस्यगण नियम 184 के तहत चर्चा करवाने पर जोर देते रहे, राजनीतिक दलों के नेताओं की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि परस्पर सहमति के पाठ वाले प्रस्ताव पर नियम 184 के तहत चर्चा की जाये। तद्नुसार 13 और 14 दिसंबर, 2000 को निम्नलिखित प्रस्ताव पर चर्चा करने के बाद प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ:

> "कि यह सभा प्रधानमंत्री से आग्रह करती है कि सरकार से तीन मंत्रियों नामत: श्री लाल कृष्ण आडवाणी, डॉ. मुरली मनोहर जोशी तथा कुमारी उमा भारती को हटाया जाये क्योंकि प्रथमदृष्टया इनके खिलाफ 6 दिसंबर, 1992 को बाबरी मस्जिद को विध्वंस करने की कार्रवाई में इनके शामिल होने के आरोप का पता चलता है तथा संबंधित मंत्रियों को माफी देने के प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण का निरनुमोदन करती है।"

वित्तीय समिति द्वारा जांचाधीन मामलों से संबंधित निन्दा प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं होता तथा सदस्य को समिति को प्रासंगिक जानकारी देने की सलाह दी जाती है।[83]

राजनैतिक टिप्पणियों/आलोचनाओं के रूप में मंत्रियों द्वारा सभा से बाहर दिए गए वक्तव्यों से संबंधित निंदा प्रस्तावों को अग्राह्य माना गया है।[84]

ग्राह्यता की शर्तें

सामान्य लोकहित के किसी विषय पर चर्चा उठाने का प्रस्ताव तभी ग्राह्य है, जबकि उसमें सारत: एक निश्चित मामला उठाया जाए; उसमें कोई तर्क, अनुमान, व्यंग्यात्मक पद, लांछन या मानहानिकारक कथन न हों; व्यक्तियों की सार्वजनिक हैसियत के अतिरिक्त उनके

---

83. *लो.स.वा.वि.,* 15.7.1982, पृ. 157-59 ।

84. छठे सत्र (आठवीं लोक सभा) के दौरान, श्री सी. माधव रेड्डी ने सरकारी उद्यमों के राज्य मंत्री (श्री. के.के. तिवारी) के विरुद्ध आन्ध्र प्रदेश के सरकारी दौरे के दौरान राज्य सरकार के विरुद्ध वक्तव्य दिये जाने के संबंध में एक निंदा प्रस्ताव की सूचना दी। सूचना को अस्वीकृत कर दिया गया चूंकि यह सूचना, मंत्री द्वारा सभा से बाहर पार्टी बैठकों में दिए गए वक्तव्य पर आधारित थी तथा इसका स्वरूप राजनैतिक टिप्पणियों/आलोचना जैसा लगता था।

    नौवें सत्र (आठवीं लोक सभा) के दौरान श्री सी. माधव रेड्डी ने गृह मंत्री (श्री बूटा सिंह) के विरुद्ध यह आरोप लगाते हुए निंदा प्रस्ताव की सूचना दी कि आंध्र प्रदेश के चुनावी दौरे के दौरान मंत्री ने राज्य सरकार के विरुद्ध आपत्तिजनक टिप्पणियां की हैं। सूचना, मंत्री के पास टिप्पणियों के लिए भेजी गयी। मंत्री ने उनकी तरफ से की गयी प्रेस टिप्पणियों से इंकार कर दिया। सूचना को इन आधारों पर स्वीकार नहीं किया गया: (*i*) सूचना में वास्तविक तथ्यों का अभाव है; और (*ii*) यह सूचना उन वक्तव्यों से संबंधित है जो सभा में नहीं दिए गए बल्कि आन्ध्र प्रदेश में चुनाव अभियान के दौरान दिए गए जो कि एक सामान्य राजनैतिक गतिविधि है।

आचरण या चरित्र के संबंध में कोई उल्लेख न किया गया हो;[85] वह हाल ही की किसी घटना से संबंधित विषय तक ही सीमित हो; उसमें विशेषाधिकार का कोई प्रश्न न उठाया गया हो;[86] उसमें किसी विषय पर पुन: चर्चा उठाने की चेष्टा न की गयी हो, जिस पर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी हो; किसी ऐसे विषय पर चर्चा करने का प्रयत्न न किया गया हो, जिस पर उसी सत्र में चर्चा होने की आशा हो; और वह किसी ऐसे विषय के संबंध में नहीं होना चाहिए जो भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय द्वारा न्याय-निर्णयन के अधीन हो।[87]

इसी प्रकार, सामान्यत: किसी ऐसे प्रस्तावों को प्रस्तुत करने की भी अनुज्ञा नहीं दी जाती, जिसका उद्देश्य किसी ऐसे विषय पर चर्चा करना हो, जो न्यायिक या अर्द्धन्यायिक कृत्य करने वाले किसी कानूनी न्यायाधिकरण या कानूनी प्राधिकारी के समक्ष या किसी जांच आयोग या जांच न्यायालय के समक्ष लंबित हो। अध्यक्ष स्वविवेक से ऐसे विषय को उठाने की अनुमति दे सकता है, जिसका संबंध किसी जांच की प्रक्रिया या विषय या प्रक्रम से हो, परन्तु इसके लिए अध्यक्ष का समाधान होना आवश्यक है कि इस प्रकार सभा में चर्चा की अनुज्ञा देने से उस न्यायिक प्राधिकारी द्वारा ऐसे विषय पर विचार किए जाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है।[88] यदि इस प्रकार के मामले से संबंधित प्रस्ताव चर्चा के लिए स्वीकार्य हो जाता है तो अध्यक्ष चर्चा के आरंभ में यह स्पष्ट कर देता है कि सदस्य जांच करने वाले

---

85. राज्य के राज्यपाल के आचरण संबंधी प्रस्ताव पर सभा में केवल उसी सीमा तक चर्चा हो सकती है जब राज्यपाल अपने विवेक से कार्य करता है अथवा संघ की सलाह पर कार्य करता है।

86. 15 दिसम्बर, 1987 (नौवां सत्र—आठवीं लोक सभा) को एक सदस्य ने 10 दिसम्बर, 1987 को "अविश्वास प्रस्ताव" की चर्चा के दौरान "कांडला मुक्त व्यापार क्षेत्र में बच्चन ब्रदर्स द्वारा लाइसेंसों को हस्तगत किए जाने" के संबंध में वाणिज्य मंत्रालय में राज्य मंत्री के विरुद्ध असत्य वक्तव्य देकर जानबूझकर सभा को गुमराह करने का आरोप लगाते हुए दूसरे सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना दी। 1 मार्च, 1988 (दसवां सत्र) को अध्यक्ष ने यह निर्णय दिया कि मामले में *प्रथम दृष्ट्या* विशेषाधिकार हनन का मामला नहीं बनता तथा इस मामले को सभा में विशेषाधिकार के मामले के रूप में उठाने के लिए अपनी सहमति नहीं दी। बाद में एक अन्य सदस्य ने नियम 184 के अंतर्गत विशेषाधिकार समिति को जांच हेतु एक मामला भेजने के संबंध में एक सूचना दी। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया, उस पर चर्चा की गयी तथा 5 मई, 1988 को सभा द्वारा स्वीकृत कर लिया गया। मामला विशेषाधिकार समिति को भेज दिया गया।

87. नियम 186 ।

न्यायनिर्णयन के अधीन विषय पर चर्चा संबंधी पद्धति के लिए *देखिए* अध्याय 43—'संसद और न्यायपालिका' में उचित शीर्षक के अंतर्गत।

88. नियम 188 ।

न्यायाधीश के आचरण पर कोई टिप्पणी न करे तथा चर्चा केवल सीमित पहलुओं पर ही हो।[89]

उपर्युक्त शर्तों के अतिरिक्त, कोई प्रस्ताव उस स्थिति में भी अग्राह्य होता है—

> यदि प्रस्ताव तथ्यों पर आधारित न हो; या अपुष्ट समाचारों पर आधारित हो; किसी एक अधिकारी के संबंध में हो और उसमें लोकहित या सरकार की जिम्मेदारी न आती हो और सरकार द्वारा उस मामले का स्पष्टीकरण करना आवश्यक न हो; उसके माध्यम से किसी मंत्रालय के कार्य के संबंध में वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट जिस, पर पहले ही सभा में समुचित चर्चा की जा चुकी हो; किसी ऐसे विषय पर चर्चा करने की कोशिश की गयी हो, जिसके संबंध में संविधान या नियमों के अंतर्गत विशिष्ट उपबंध किए गए हों; किसी ऐसी रिपोर्ट पर चर्चा करने की चेष्टा की गयी हो, जिसे सभा पटल पर न रखा गया हो;[90] राज्य सरकार द्वारा नियुक्त समिति की रिपोर्ट पर चर्चा की मांग की गयी हो; तथा किसी ऐसे पत्र अथवा दस्तावेज पर चर्चा की मांग की गयी हो जो गैर-सरकारी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखा गया हो।

इसी प्रकार अनुच्छेद 356 के अंतर्गत उद्घोषणा के निरनुमोदन की मांग करने वाले प्रस्तावों या उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के लिए राष्ट्रपति से सिफारिश करना[91] या अध्यक्ष के या राज्य विधानमंडल के सदस्यों का आचरण या वहां होने वाली घटनाओं या राज्य के मुख्यमंत्री के आचरण के संबंध में या प्रथम दृष्ट्या मामले के बिना बजट प्रस्तावों के लीक होने, या संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन उच्चतम न्यायालय को मामला भेजने की मांग करना या राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ और इसकी गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने की मांग करने, या किसी ऐसे विषय पर चर्चा की मांग करना जिससे गोपनीय स्वरूप वाले मामले की चर्चा आरंभ हो सकती है जिसका प्रभाव राष्ट्र की सुरक्षा पर पड़ सकता है,[92] अथवा जिसमें सरकार द्वारा किसी दूसरे देश के साथ की गयी संधि या समझौते की पुष्टि की मांग की गई है; जबकि संधि में ऐसा कोई प्रावधान न हो, संबंधी प्रस्तावों को भी अग्राह्य माना गया है।[93] राज्य के राज्यपाल

---

89. उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.*, 7.4.1966, पृ. 6354-55 ।

90. केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में सरकारिया आयोग की रिपोर्ट, जो सभा पटल पर नहीं रखी गयी थी तथा केवल संसद ग्रंथालय में रखी गयी थी, संबंधी एक प्रस्ताव को स्वीकार किया गया था, क्योंकि रिपोर्ट सार्वजनिक दस्तावेज बन गयी थी। समाचार भाग-2, 1.3.1988, पैरा 2134।

91. *एल.एस. डिबेट्स*, 6.5.1965, कॉ. 13525-26; *लो.स.वा.वि.*, 6.4.1992, कॉ. 517-54 ।

92. चौदहवीं लोक सभा के ग्यारहवें सत्र के दौरान, 'अमरीकी युद्धपोत यू.एस.एस. निमिट्ज से परमाणु विकिरण का प्रतिकूल प्रभाव, विषय पर प्रस्ताव की सूचनाएँ गृहीत नहीं की गईं चूँकि रक्षा मंत्रालय ने अपने उत्तर में, अन्य बातों के साथ-साथ, कहा कि 'सभा में इस विषय पर चर्चा से ऐसी विभाजित प्रकृति के मुद्दे उठ सकते हैं जिनका राष्ट्रीय सुरक्षा पर असर हो सकता है।'

93. 'अमरीकी युद्धपोत यू.एस.एस. निमिट्ज से परमाणु विकिरण का प्रतिकूल प्रभाव' विषय पर प्रस्ताव की सूचनाओं के संबंध में अध्यक्ष का विनिर्णय—*एल.एस. डिबेट्स*, 17.8.2007, कॉ. 474-75 ।

के आचरण संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा की जा सकती है।[94]

अध्यक्ष किसी प्रस्ताव या उसके किसी भाग को अस्वीकृत कर सकता है, जो उसकी राय में प्रस्ताव प्रस्तुत करने के अधिकार का दुरुपयोग हो या सभा की प्रक्रिया में बाधा डालने या उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला हो, या नियमों का उल्लंघन करता हो।[95] अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी प्रस्ताव पर मत लिए जाने से पहले उसे इस आधार पर नियम-विरुद्ध ठहरा सकता है कि उसमें सभा की प्रक्रिया आदि का दुरुपयोग किया गया है।[96]

एक स्थगन प्रस्ताव, जिस पर आंशिक रूप से चर्चा की गयी थी, को नियम 184 के अधीन प्रस्तावक तथा सभी की सहमति से सामान्य प्रस्ताव में बदला गया था।[97]

सूचना की ग्राह्यता और समय का नियतन

किसी ऐसी रिपोर्ट जो किसी कानून के उपबंधों के अनुसरण में सभा पटल पर रखी गयी हो, पर चर्चा उठाने के प्रस्ताव की सूचना, सामान्यतः अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत कर ली जाती है। यदि सरकार ऐसी रिपोर्ट जिस पर उसने कुछ निर्णय ले लिए हैं, पर विचार करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं करना चाहती तो कोई भी सदस्य इस बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है।[98] अन्य सूचनाओं की ग्राह्यता का निर्णय अध्यक्ष प्रत्येक मामले के गुण-दोषों के आधार पर करता है और समुचित मामलों में, संबद्ध मंत्री से प्राप्त तथ्यों या टिप्पणियों, यदि कोई हों, पर विचार करने के बाद यह निर्णय किया जाता है; अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत कर लिए जाने तथा कार्य-सूची में सम्मिलित हो जाने के बाद प्रस्ताव में परिवर्तन नहीं किया जाता।[99]

---

94. *लो.स.वा.वि.,* 1.12.1967, पृ. 2074-84; 4.12.1967, पृ. 2177-93; 28.2.1968, पृ. 236-45; *एल.एस. डिबेट्स,* 11.4.1968, कॉ. 300-19; *लो.स.वा.वि.,* 21.8.1984, पृ. 272-389; 26.11.1985, पृ. 253-315; 24.4.1989, पृ. 165-227; *एल.एस. डिबेट्स,* 25.4.1989, पृ. 253-352; 26.4.1989, पृ. 177-247; 22.5.1990, पृ. 285-301 और 23.5.1980, पृ. 230-43 ।
95. नियम 187 ।
96. *एल.ए. डिबेट्स,* 11.4.1929, पृ. 2989-91; *एल.एस. डिबेट्स,* 23.3.1968, कॉ. 2693-710।
97. 24 जुलाई, 1997 को ग्यारहवीं लोक सभा के पांचवें सत्र के दौरान विपक्षी दल के नेता (श्री अटल बिहारी वाजपेयी) ने बिहार की घटनाओं पर केन्द्र सरकार के निष्क्रिय रवैये से उत्पन्न होने वाली गंभीर स्थिति के संबंध में स्थगन प्रस्ताव पेश किया था। कुछ समय की चर्चा के बाद स्थगन प्रस्ताव को नियम 184 के अंतर्गत प्रस्तावक तथा सभा की सहमति से एक सामान्य प्रस्ताव में बदल दिया गया था। वाजपेयी ने नियम 184 के अंतर्गत प्रस्तावों के निर्धारित स्वरूप के साथ समरूपता लाने के लिए प्रस्ताव में संशोधन की सूचना दी। संशोधन 28 जुलाई, 1997 को प्रस्तुत किया गया तथा 29 जुलाई, 1997 को स्वीकार किया गया। प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया था। *एल.एस डिबेट्स,* 24.7.1997, कॉ. 419-62; 28.7.1997, कॉ. 252-84; 29.7.1997; कॉ. 466।
98. *एल.एस. डिबेट्स,* 30.11.1959, कॉ. 2441 ।
99. *लो.स.वा.वि.,* 10.3.1969, पृ. 153-54 ।

यदि कई सदस्य एक समान प्रस्तावों की सूचना देते हैं और उनमें से एक सूचना स्वीकृत कर ली जाती है, तो एक समान प्रस्तावों की सूचना देने वाले अन्य सदस्यों के नाम स्वीकृत की गई सूचना में शामिल कर लिए जाते हैं सदस्यों के नाम उस क्रम में लिखे जाते हैं जिस क्रम में उनकी सूचनाएं प्राप्त हुई हों। प्रस्ताव के स्वीकृत होने तथा लोक सभा समाचार में प्रकाशित होने के बाद सदस्यों के नाम जिनसे एक समान प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं, स्वीकृत की गयी सूचना में शामिल नहीं किए जाते।[100]

अनियत दिन वाले प्रस्ताव

यदि अध्यक्ष किसी प्रस्ताव की सूचना स्वीकृत कर लेता है और उस पर विचार के लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की जाती तो, उसे "अनियत दिन वाला प्रस्ताव" कहा जाता है और गृहीत प्रस्ताव की एक प्रति संबद्ध मंत्री को प्रस्ताव के विषय सहित भेज दी जाती है। यदि एक ही विषय पर सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों से प्रस्ताव की सूचनाएं मिलती हैं तो सरकारी प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया जाता है तथा गैर-सरकारी सदस्य का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाता है। यदि गैर-सरकारी सदस्य का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया जाता है और उसके बाद उसी विषय पर सरकारी प्रस्ताव की सूचना प्राप्त होती है तो सरकारी प्रस्ताव को भी स्वीकृत कर लिया जाता है। यदि यह निर्णय लिया जाता है कि उस विषय पर प्रस्ताव के रूप में चर्चा की जाए तो गैर-सरकारी प्रस्ताव की तुलना में सरकारी प्रस्ताव को वरीयता दी जाती है, क्योंकि "अनियत दिन वाले" प्रस्तावों पर सरकारी समय में चर्चा की जाती है।

ऐसे प्रस्तावों की स्वीकृत सूचनाएं उनके विषय की अविलम्बनीयता और महत्व के आधार पर और प्रस्ताव पर सभा में चर्चा कराने हेतु समय आबंटित कराने के लिए कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष चयन के लिए रखी जाती हैं। अनेक मामलों में कार्य मंत्रणा समिति प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए दिन और समय भी निर्धारित करती है।[101]

---

100. तेरहवीं लोक सभा के तीसरे सत्र के दौरान, एक सदस्य बीरसिंह महतो ने निम्नलिखित विषयों पर नियम 184 के अंतर्गत सूचनाएँ सभा—पटल पर रखी:

    (i) देश में बढ़ती निरक्षरता;

    (ii) विभिन्न क्षेत्रों में लगातार प्रतिभा-पलायन;

    (iii) बाढ़ से जान-माल और फसल का नुकसान; और

    (iv) महिलाओं पर अत्याचार की घटनाएं।

    उपर्युक्त सूचनाओं को अस्वीकृत कर दिया गया चूँकि ऐसे ही विषयों पर सूचनाओं को पहले गृहीत किया तथा बुलेटिन भाग-दो, 17.2.2000 में प्रकाशित किया गया था। (क्रमशः प्रस्ताव सं. 46, 52, 59 और 61)।

101. 1960 से पहले यह प्रश्न कि कौन-से स्वीकृत प्रस्ताव चर्चा के लिए सभा के समक्ष लाने चाहिएं, सरकार पर छोड़ दिया गया था। सदस्य इस प्रकार की प्रक्रिया से संतुष्ट नहीं थे और यह मामला कार्य मंत्रणा समिति की 14 नवम्बर, 1960 को हुई बैठक में उठाया गया था, तब कार्य मंत्रणा समिति ने ऐसे प्रस्तावों का चयन करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की थी।

जब तक अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दें अनियत दिन वाले प्रस्तावों तथा अल्पकालिक चर्चाओं[102] को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि कोई सदस्य किसी सत्र में इनमें से दो से अधिक प्रस्ताव प्रस्तुत न कर सकें अथवा चर्चा न उठा सकें।[103]

प्रस्ताव पर चर्चा

जिस सदस्य के नाम में प्रस्ताव को कार्य सूची में रखा गया हो, वह अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर औपचारिक रूप से अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करता है और अपना भाषण देता है। उसके बाद अध्यक्ष प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखता है। उसके बाद सदस्य संशोधन या स्थानापन्न प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं और इस विषय पर चर्चा होती है। सदस्य और संबद्ध मंत्री द्वारा वाद-विवाद में भाग लिए जाने के बाद प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाला सदस्य उत्तर देने के लिए उस पर बोल सकता है। संशोधन तथा स्थानापन्न प्रस्ताव, यदि कोई हो, सभा के मतदान के लिए रखे जाते हैं और इन्हें निपटाए जाने के बाद मुख्य प्रस्ताव पर मत लिए जा सकते हैं।

तथापि, वह सदस्य जिसके नाम से प्रस्ताव कार्य सूची में दिया गया है, वह उसे प्रस्तुत करने से मना भी कर सकता है।[104]

कार्यवाही सारांश (कार्य-मंत्रणा समिति—दूसरी लोक सभा) 14.12.1960, कार्यवाही सारांश (कार्य-मंत्रणा समिति की उप-समिति) 22.11.1960, 29.11.1960, 6.12.1960 और 13.12.1960 ।

1971 से सभा में चर्चा के लिए ऐसे प्रस्तावों का चयन कार्य-मंत्रणा समिति स्वयं कर रही है।

कार्य-मंत्रणा समिति ने 16 मार्च, 1988 को हुई अपनी बैठक में एक सदस्य द्वारा वाणिज्य मंत्रालय में राज्य मंत्री के विरुद्ध कांडला मुक्त व्यापार क्षेत्र में बच्चन ब्रदर्स द्वारा लाइसेंस हस्तगत करने के संबंध में सभा में झूठा वक्तव्य दिए जाने के बारे में लगाए गए आरोप से संबंधित मामला विशेषाधिकार समिति को जांच व रिपोर्ट हेतु 24 मार्च, 1988 को चर्चा कराने के लिए भेजा। प्रस्ताव कार्य-सूची में शामिल नहीं किया गया क्योंकि आरोप लगाने वाले सदस्य अस्वस्थ थे। समिति ने 30 मार्च, 1988 को हुई अपनी बैठक में प्रस्ताव पर चर्चा सदस्य के स्वस्थ होने तथा चर्चा में भाग लेने के लिए योग्य हो जाने तक स्थगित कर दी। समिति ने 21 अप्रैल, 1988 को हुई अपनी बैठक में 2 मई को वित्त विधेयक, 1988 पारित करने के बाद प्रस्ताव पर चर्चा करने का निर्णय लिया। समिति ने 2 मई, 1988 को हुई अपनी बैठक में अनेक सदस्यों के अनुरोध पर प्रस्ताव पर चर्चा कराने के लिए 5 मई, 1988 की तारीख नियत की। प्रस्ताव पर 5 मई, 1988 को चर्चा करायी गयी तथा इसे स्वीकार कर लिया गया। कार्यवाही सारांश (कार्य-मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा), 16.3.1988, 30.3.1988, 21.4.1988 और 2.5.1988, *लो.स.वा.वि.,* 5.5.1988, पृ. 291-319 ।

102. नियम 193 ।

103. निदेश 113ग ।

104. 20 मार्च, 1997 को श्री जसंवत सिंह के नाम से निम्नलिखित प्रस्ताव कार्य-सूची में सम्मिलित किया गया था:—

यदि प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाए तो इसे संबंधित मंत्री को भेज दिया जाता है। सामान्यतः सभा द्वारा प्रस्ताव 'ध्यानार्थ' स्वीकार किए जाते हैं। तथापि, कुछ ऐसे उदाहरण हैं जहां ऐसे प्रस्ताव सभा द्वारा अस्वीकृत किए गए हैं।[105]

किसी ऐसे प्रस्ताव तथा सांविधिक संकल्प पर जिसके द्वारा राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 के अंतर्गत किसी राज्य[106] के संबंध में की गयी उद्घोषणा का अनुमोदन करना हो अथवा किसी प्रस्ताव या सांविधिक संकल्प, जो अध्यादेश के निरनुमोदन के लिए हो, पर संयुक्त चर्चा हो सकती है।[107]

"कि उत्तर प्रदेश राज्य में संवैधानिक संकट जो अन्य बातों के साथ-साथ व्यापक अराजकता से ग्रस्त है और जिसके बारे में केन्द्रीय गृह मंत्री ने कहा है कि राज्य 'अव्यवस्था, अराजकता और विनाश' के कगार पर खड़ा है और केन्द्र सरकार के इस मूल्यांकन का राज्यपाल द्वारा किए गए खंडन और उनके इस स्पष्टीकरण कि उन्होंने प्रधानमंत्री से बात कर ली है, को गम्भीर मानते हुए यह सभा संकल्प करती है कि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल को तत्काल वापस बुलाया जाए।"

जब पीठासीन अधिकारी द्वारा जसवंत सिंह को प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए बुलाया गया तो उन्होंने कहा कि अब वास्तविक राजनैतिक स्थिति उस समय से भिन्न है जब उन्होंने प्रस्ताव की सूचना दी थी और अब वह इस गणतंत्र के उच्चाधिकारियों के बीच और विवाद नहीं बढ़ाना चाहते, अतः वह इस प्रस्ताव को प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं।

105. *एल.एस. डिबेट्स*, 27.8.1962, कॉ. 4362; 12.8.1967, कॉ. 19253; और *लो.स.वा.वि.*, 11.8.1983, पृ. 349 ।

106. हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश के राज्यपालों की संविधान की धारा 356 के अन्तर्गत उद्घोषणा जारी करने की सिफारिश करने वाली रिपोर्ट को रद्द न किए जाने के संबंध में प्रस्तावों तथा संबंधित राज्यों के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणाओं का अनुमोदन करने वाले सांविधिक संकल्पों पर संयुक्त चर्चा हुई थी।

एल.एस. डिबेट्स, 21.11.1967, कॉ. 1727, 1738; 18.4.1968, कॉ. 1448, 1568 ।

'राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत बिहार राज्य की बिगड़ती कानून और व्यवस्था की स्थिति तथा राज्य के मुख्य सचिव के लम्बी छुट्टी पर चले जाने से उत्पन्न स्थिति' संबंधी प्रस्ताव एवं सांविधिक संकल्प जिसके द्वारा बिहार राज्य में राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले सांविधिक संकल्प पर संयुक्त चर्चा हुई थी।

लो.स.वा.वि., 2.8.2005, कॉ. 414-592 ।

107. एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा आवश्यक सेवा अनुरक्षण अध्यादेश, 1960 का निरनुमोदन करने वाले सांविधिक संकल्प तथा 'केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की हड़ताल से उत्पन्न स्थिति' के संबंध में नियम 342 के अंतर्गत सरकारी प्रस्ताव पर संयुक्त चर्चा हुई थी।

एल.एस. डिबेट्स, 8.8.1960, कॉ. 1391-1536; 9.8.1960, कॉ. 1662-1800 ।

विश्वास प्रस्ताव

यद्यपि पिछले कई वर्षों से मंत्रिपरिषद में विश्वास से संबंधित प्रस्तावों के बारे में प्रक्रिया नियमों में कोई विशिष्ट नियम नहीं दिया गया है, संसद में बदलते हुए राजनैतिक गठन के परिणामस्वरूप यह नई प्रक्रिया विकसित हुई है। हाल ही में जब कभी एक राजनैतिक दल को सभा में बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, इस प्रक्रिया का अनुसरण किया गया। इन मामलों में जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया गया वह यह है कि नियम 184 के अंतर्गत राष्ट्रपति के निदेश पर प्रधानमंत्री द्वारा एक पंक्ति में प्रस्ताव की सूचना दी जाती है "कि यह सभा मंत्रिपरिषद में अपना विश्वास व्यक्त करती है"।[108]

108. *देखिए* अध्याय 28—'मंत्रिपरिषद में विश्वास और अविश्वास के प्रस्ताव'। साथ ही *देखिए,* जी.सी. मलहोत्रा: कैबिनेट रिस्पांसिबिलिटी टू लेजिस्लेचर: मोशंस आफ कंफिडेंस एंड नो कंफिडेंस इन लोक सभा एंड स्टेट लेजिस्लेचर्स (लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2004)

अध्याय 27

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा

1953 से पहले नियमों में ऐसा कोई उपबंध नहीं था कि सभा में अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय पर चर्चा उठायी जा सके सिवाय इसके कि उसके लिए संकल्प या प्रस्ताव लाया जाए। जब सदस्य लोक महत्व के किसी विषय की ओर सरकार का ध्यान दिलाना चाहते थे, तो वे स्थगन प्रस्ताव का सहारा लेते थे।[1] चूंकि, स्थगन प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव जैसा होता है, इसलिए नई लोकतांत्रिक गणतंत्रवादी व्यवस्था में जब सरकार संसद के प्रति उत्तरदायी बनी तब किसी महत्वपूर्ण विषय पर सभा में चर्चा करने के लिये ऐसी प्रक्रिया का सहारा लेना उचित नहीं समझा गया।

सदस्यों को महत्त्वपूर्ण मामलों पर चर्चा करने का अवसर देने के लिए मार्च, 1953 में लोक सभा में एक परिपाटी स्थापित हुई जिसके अनुसार सदस्य बिना किसी औपचारिक प्रस्ताव या उस पर मतदान के, अल्पकालीन चर्चा कर सकते थे। इस प्रकार की किसी चर्चा के लिये अध्यक्ष को सूचना देनी होती थी, जो इस चर्चा के लिये सरकार से परामर्श करके समय नियत करता था।[2]

यह प्रक्रिया, जो एक परिपाटी के रूप में प्रारम्भ हुई थी, बाद में नियमों का अंग बन गयी।[3]

चर्चा हेतु सूचना

जो सदस्य अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी विषय पर अल्पकालीन चर्चा करना चाहता हो, उसे महासचिव को लिखित सूचना देनी पड़ती है, जिसमें उस विषय का स्पष्ट और यथातथ्य उल्लेख करना पड़ता है, जिस पर वह चर्चा करना चाहता हो। उस सूचना के साथ एक व्याख्यात्मक टिप्पणी संलग्न करनी अपेक्षित है, जिसमें प्रश्नगत विषय पर चर्चा करने के कारण बताये गये हों और सूचना कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षरों से समर्थित होनी चाहिये।[4] यह निर्णय दिया गया है कि एक सूचना के माध्यम से एक ही विषय पर चर्चा की

---

1. *सं.वा.वि.,* (II) 25.3.1953, पृ. 2232-33 ।
2. *एच.पी. डिबेट्स,* 25.3.1953, कॉ. 2866 ।

   इस परिपाटी के अंतर्गत प्रथम चर्चा 25 मार्च, 1953 को हुई थी—*एच.पी. डिबेट्स* 25.3.1953, कॉ. 2684-2906 ।
3. नियम 193-196 ।
4. नियम 193, उदाहरण के लिये दसवीं लोक सभा के चतुर्थ सत्र के दौरान अनेक सदस्यों ने सरकारी प्रतिभूतियों में हजारों करोड़ रुपये के घोटाले के बारे में नियम 193 के तहत सूचना

जा सकती है।[5]

पिछले सत्रावसान तथा आगामी सत्र के लिये आमंत्रण (समन) जारी करने की तिथियों के बीच प्राप्त हुई अल्पकालीन चर्चा हेतु सूचनाओं को वैध नहीं माना जाता है तथा उन पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती। ऐसी सूचनाएं आगामी सत्र के लिये सदस्यों को आमंत्रण जारी करने के दिन के अगले दिन से स्वीकार की जाती हैं।

सभी सदस्यों को चर्चा हेतु सूचना देने के संबंध में समान अवसर दिये जाने की दृष्टि से सूचनाओं की प्राप्ति एवं उन पर कार्यवाही के लिये कतिपय सुस्पष्ट सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं।

नियम 193 या नियम 184 के अधीन अल्पकालिक चर्चा अथवा सभा में मंत्रियों द्वारा दिये जाने वाले वक्तव्य अथवा सभा पटल पर रखे जाने वाले प्रतिवेदनों एवं पत्रों के बारे में चर्चा हेतु सूचनाएं उस दिन 10.00 बजे से ली जाती हैं जिस दिन वह कार्य-सूची, जिसमें उस मद को शामिल किया गया है सदस्यों को परिचालित की जाती हैं। यदि उस दिन शनिवार, रविवार अथवा सार्वजनिक अवकाश हो, तो सूचनाएं अगले कार्य दिवस को 10.00 बजे से प्राप्त की जाती हैं।[6]

जहां किसी वक्तव्य के बारे में अनुपूरक कार्य-सूची सभा में परिचालित की जाती है, वहां उस वक्तव्य के बारे में कार्य-सूची के परिचालन के 15 मिनट के भीतर प्राप्त हुई सूचनाओं के बारे में यह समझा जाता है कि वे उसी समय प्राप्त हुई हैं और उनकी सापेक्ष पूर्ववर्तिता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है।[7]

उस दशा में जहां सभा में मंत्री द्वारा दिये जाने वाले वक्तव्य के बारे में पीठासीन अधिकारी द्वारा घोषणा की जाती है, उस वक्तव्य के बारे में सूचनाएं उसी समय स्वीकार की जाती हैं जिस समय पीठासीन अधिकारी द्वारा सभा में घोषणा की जाती है और पीठासीन अधिकारी द्वारा की गई घोषणा के बाद 15 मिनट के भीतर प्राप्त हुई सभी सूचनाओं को एक ही समय पर प्राप्त हुआ समझा जाता है और उनकी सापेक्ष पूर्ववर्तिता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है।[8]

दी। उन सूचनाओं को, जिनके साथ प्रश्नगत मामले पर चर्चा करने के कारण दर्शाने वाली व्याख्यात्मक टिप्पणी संलग्न नहीं की गई थी, और जो कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षरों से समर्थित नहीं थी, जैसा कि नियम के तहत अपेक्षित है, अस्वीकार कर दिया गया और केवल उपर्युक्त शर्तों को पूरी करने वाली सूचनाओं पर विचार किया गया।

5. *एल.एस. डिबेट्स* (II) 20.3.1956, कॉ. 7882 ।
6. निदेश 113 ख ख (2) । समाचार-भाग 2, 13.11.1987, पैरा 1950 ।
7. निदेश 113 ख ख (3) ।
8. निदेश 113 ख ख (4) ।

उस दशा में जहां वक्तव्य कार्य-सूची अथवा अनुपूरक कार्य-सूची में शामिल किए बिना दिया जाता है वहां ऐसे वक्तव्य के बारे में, सूचनाएं उस समय स्वीकार की जाती हैं जब वक्तव्य सभा में वास्तव में दिया जाता है[9] और दिए गए वक्तव्य के बाद 15 मिनट के भीतर प्राप्त हुई सभी सूचनाओं को एक ही समय पर प्राप्त हुआ समझा है और उनकी सापेक्ष पूर्ववर्तिता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है।[10]

सभी सूचनाएं संसदीय सूचना कार्यालय में देनी होती हैं न कि सभा पटल पर तथा संसदीय सूचना कार्यालय में सूचना की प्राप्ति के समय को ही ध्यान में रखा जाता है।

ग्राह्यता की शर्तें

ग्राह्यता निश्चित करते समय अध्यक्ष सूचना देने वाले सदस्य तथा सम्बद्ध मंत्री से कोई भी अतिरिक्त जानकारी मांग सकता है जो वह आवश्यक समझे। यदि अध्यक्ष का समाधान हो जाता है कि जिस विषय पर चर्चा उठाने की सूचना दी जा रही है वह अविलम्बनीय है और सभा में जल्दी ही उठाए जाने के लिए पर्याप्त महत्व का है तो वह सूचना को ग्रहण कर लेता है। परन्तु यदि ऐसे विषय पर चर्चा के लिए अन्यथा जल्दी अवसर उपलब्ध हो, तो अध्यक्ष सूचना ग्रहण करने से इनकार कर सकता है।[11]

जिन सूचनाओं में निम्नलिखित विषयों पर चर्चा हेतु चेष्टा की गयी हो, वे अग्राह्य हैं:—

– जो मुख्य रूप से भारत सरकार की जिम्मेदारी न हों

तथापि, किसी राज्य में विधि और व्यवस्था की स्थिति पर चर्चा हेतु अनुमति दी जा सकती है यदि उसमें राष्ट्रीय सुरक्षा अंतर्ग्रस्त हो तथा संघ सरकार किसी रूप में जिम्मेदार हो।[12]

---

9. निदेश 113 ख ख (5) ।
10. निदेश 113 ख ख (6) ।
11. नियम 194 । असाधारण मामलों में जहां विषय महत्वपूर्ण हो, अध्यक्ष अपने विवेक से आधे घंटे की किसी चर्चा को अल्पकालीन चर्चा में परिवर्तित कर सकता है—*देखिए लो.स.वा.वि,* 5.8.1960, पृ. 633 ।
12. (*i*) *लो.स.वा.वि.,* 13.6.1967, पृ. 2097-99 ।

    (*ii*) तेरहवीं लोक सभा के नौवें सत्र के दौरान, 11 मार्च, 2002 को 'गुजरात में गोधरा हत्याकांड और उसके पश्चात् हिंसा' पर अल्पकालीन चर्चा हुई।

    (*iii*) चौदहवीं लोक सभा के बारहवें सत्र के दौरान, विपक्षी दलों के सदस्यों ने पश्चिम बंगाल के नंदीग्राम में विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना के विरोध में वहाँ हुई हिंसा पर चर्चा कराने पर ज़ोर दिया। चूंकि यह मामला कानून और व्यवस्था की समस्या से संबंधित था जो कि राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार का विषय है, अत: अध्यक्ष ने विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं की आपसी सहमति से एक ऐसा पाठ तैयार करने का अनुरोध किया जिस पर सभा में चर्चा हो सके। इसके पश्चात्, 21 नवंबर, 2007 को आपसी सहमति के पश्चात् तैयार निम्नलिखित पाठ पर चर्चा हुई:

    "नंदीग्राम, पश्चिम बंगाल में विशेष आर्थिक जोन स्थापित करने का प्रस्ताव और परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर हुई हिंसा।"

अथवा उस मामले में जब संघ सरकार से राज्य सरकार ने परामर्श किया हो।[13]

राज्य के मुख्यमंत्री के आचरण के संबंध में चर्चा हेतु सूचनाएं अग्राह्य हैं।[14]

इसी प्रकार, राज्य सरकार द्वारा नियुक्त समिति की रिपोर्ट के संबंध में सूचना भी अग्राह्य है।

– *जो अस्पष्ट और अप्रमाणित आरोपों पर आधारित हों*

18 जुलाई, 1959 को एक सदस्य द्वारा एक विश्वविद्यालय में कथित प्रशासनिक अक्षमता, वित्तीय भ्रम तथा छात्रों की भर्ती में अनियमितताओं के संबंध में चर्चा करने के लिए दी गई सूचना इसलिए अस्वीकार कर दी गई क्योंकि सदस्य ने न ही ऐसे विशिष्ट मामले बताए जिनका उसे स्वयं पता हो, और न ही, कोई ऐसे प्रमाण दिये, जिनसे ये आरोप सिद्ध होते हों।

– *जो काल्पनिक हों*

जब एक राज्य में संवैधानिक तंत्र की असफलता के परिणामस्वरूप राष्ट्रपति ने उद्घोषणा जारी कर दी थी और उसके बाद वहां राष्ट्रपति शासन लागू हो गया था उस राज्य के लोक सभा के सदस्यों की संवैधानिक स्थिति के बारे में 11 अगस्त, 1959 को एक सदस्य द्वारा चर्चा हेतु सूचना को अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि इसमें चर्चा के माध्यम से एक काल्पनिक संवैधानिक बहस करने की चेष्टा की गयी थी।

– *जो समयपूर्व हों*

12 सितम्बर, 1958 को चार सदस्यों ने सूचनायें दीं, जिनका उद्देश्य भारत तथा पाकिस्तान के बीच सीमाओं के प्रस्तावित समायोजन के संबंध में चर्चा करना था क्योंकि इस विषय पर दोनों देशों के बीच और आगे बातचीत होनी थी, इसलिए यह समझा गया कि इस विषय पर चर्चा करना समयपूर्व होगा। इसी प्रकार 24 नवम्बर, 1959 को केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट पर चर्चा हेतु दी गई सूचना भी समयपूर्व होने के कारण अस्वीकार कर दी गयी, क्योंकि वह रिपोर्ट तब तक सभा पटल पर नहीं रखी गयी थी।

– *जो न्यायालय में विचाराधीन हों*

तथापि मुद्दे के लोक महत्व तथा विभिन्न राजनीतिक दलों/समूहों के सदस्यों की निरंतर

---

13. उदाहरण के लिये गजेन्द्र गडकर आयोग की सिफारिशों का क्रियान्वयन न किये जाने के संबंध में सूचना को ग्रहण कर लिया गया था चूंकि आयोग जम्मू और कश्मीर सरकार द्वारा संघ सरकार के परामर्श से नियुक्त किया गया था। समाचार भाग-2, 30.3.1970, पैरा 1615 ।

14. आठवीं लोक सभा के नौवें सत्र के दौरान, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में वहां के मुख्यमंत्री के विरुद्ध दो रिट याचिकाएं स्वीकार करने के संबंध में अल्पकालीन चर्चा के लिए सूचनाएं प्राप्त हुई थीं। सूचनाओं को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि उठाया गया मामला संघ के क्षेत्राधिकार में नहीं है तथा संघ और संबंधित राज्य सरकारों के बीच अनावश्यक तनाव उत्पन्न कर सकता है।

मांग को देखते हुए अध्यक्ष न्यायालय में विचाराधीन किसी मामले पर चर्चा की अनुमति दे सकता है। जब न्यायालय में विचाराधीन किसी मामले पर चर्चा की अनुमति दी जाती है तो अध्यक्ष सदा सदस्यों को सचेत कर देता है कि वे ऐसा कुछ भी न करें जिससे कानूनी प्रक्रिया या न्यायालय में लंबित मामला किसी भी तरह से प्रभावित हो।[15]

– *जो अविलम्बनीय न हों*

1 फरवरी, 1960 को एक सदस्य ने भ्रष्टाचार के महत्वपूर्ण मामलों की जांच करने के लिये एक स्थायी जांच समिति बनाने की आवश्यकता तथा औचित्य पर चर्चा हेतु एक सूचना दी क्योंकि इस विषय में अविलम्बनीयता की कोई बात नहीं थी जो कि ऐसी चर्चा के लिए आवश्यक है इसलिए इस सूचना को अस्वीकार कर दिया गया। अपवादात्मक मामलों में, अध्यक्ष नियम 193 के अन्तर्गत नियंत्रक महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन के कुछ पैराओं पर वाद-विवाद की अनुमति दे सकता है।[16]

ऐसी सूचना, जो मंत्रियों के आपसी पत्र व्यवहार का खुलासा करती है अथवा ऐसे व्यक्तियों के आचरण अथवा चरित्र की ओर संकेत करती है जो किसी सरकारी पद पर आसीन नहीं हैं, अग्राह्य है।

किसी सदस्य द्वारा नियम 357 के अंतर्गत सदन में दिए गए व्यक्तिगत स्पष्टीकरण पर चर्चा की सूचना अग्राह्य है।[17]

बजट सत्र में लोक महत्व के विभिन्न विषयों पर ऐसी चर्चा की सूचनाएं सामान्यत: स्वीकार नहीं की जातीं, क्योंकि सदस्य राष्ट्रपति के अभिभाषण, रेल बजट, सामान्य बजट और अनुदानों की मांगों तथा वित्त विधेयक पर वाद-विवाद द्वारा उपलब्ध अन्य अवसरों का लाभ उठाकर ऐसे मामलों पर चर्चा कर सकते हैं।

---

15. न्यायालय में विचाराधीन निम्नलिखित मामलों पर चर्चा की गई है:

    (एक) गृहमंत्री द्वारा कुतुबमीनार, दिल्ली में 45 व्यक्तियों की मृत्यु और अनेक लोगों के घायल होने के संबंध में घटना के दिन अर्थात् 4 दिसम्बर, 1981 को दिया गया वक्तव्य तथा 7 दिसम्बर, 1981 को इस पर चर्चा हुई। (दो) 3 दिसम्बर, 2001 को अयोध्या मुद्दे पर चर्चा हुई; और (तीन) 27 नवम्बर, 2006 को दिल्ली में चल रहे सीलिंग अभियान से उत्पन्न स्थिति पर चर्चा हुई।

16. *लो.स.वा.वि.*, 24.7.1989, पृ. 203; 25.7.1989, पृ. 201 और 26.7.1989, पृ. 190 ।

17. उदाहरण के लिये नौवीं लोक सभा के छठे सत्र के दौरान, 2 जनवरी, 1991 को एक सदस्य ने नियम 193 के अंतर्गत एक सूचना दी जो प्रो. मधु दण्डवते, संसद सदस्य द्वारा दिनांक 2 जनवरी, 1991 को उनके बारे में की गई उन कतिपय टिप्पणियों के बारे में नियम 357 के अंतर्गत सदन में दिए गए व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के संबंध में थी जो वित्त मंत्री, श्री यशवंत सिन्हा द्वारा 28 दिसम्बर, 1990 को सदन में तारांकित प्रश्न संख्या 24 'निर्माताओं को उत्पाद शुल्क की वापसी' के अनुपूरक प्रश्न का उत्तर देते हुए की थी। यह सूचना अस्वीकृत कर दी गयी क्योंकि नियम 357 किसी सदस्य द्वारा सभा में दिए गए व्यक्तिगत स्पष्टीकरण पर वाद-विवाद की अनुमति नहीं देता है।

तथापि, अपवादात्मक मामलों में, सदन में मांग किये जाने पर अथवा कार्य-मंत्रणा समिति की सिफारिश पर ध्यानाकर्षण सूचनाओं को अल्पकालीन चर्चा में बदला जा सकता है।[18]

अल्पकालीन चर्चा औपचारिक रूप में कोई सूचना दिये और गृहीत किये बिना कराई जा सकती है।[19]

अध्यक्ष किसी ऐसे विषय पर अल्पकालीन चर्चा की अनुमति दे सकता है जिसके बारे में स्थगन प्रस्ताव की सूचनाएं प्राप्त हुई हैं और जिन्हें प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अनुमति नहीं दी है।[20]

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा की सूचनायें गृहीत कर लिये जाने के बाद संसदीय समाचार में अधिसूचित की जाती हैं और उनकी प्रतियां संबंधित मंत्री को भेजी जाती हैं।

चर्चा के लिए तिथि-निर्धारण तथा समय का नियतन

अध्यक्ष एक सप्ताह में ऐसी दो बैठकें नियत कर सकता है जिनमें ऐसे विषय चर्चा हेतु लिये जा सकते हैं और चर्चा के लिए उतने समय की अनुमति दी जा सकती है जितना कि

---

18. कार्य-सूची, 17.8.1987; 18.11.1987; 24.8.2007 ।

19. 16 अप्रैल, 1979 को अध्यक्ष महोदय ने जमशेदपुर में दंगों और बड़े पैमानों पर विशेष रूप से अल्पसंख्यकों की हत्याओं के संबंध में यह कहते हुए स्थगन प्रस्ताव की अनुमति नहीं दी कि वह 18 अप्रैल, 1979 को पूर्ण चर्चा, अधिमानतः दो घंटे की चर्चा, की अनुमति देना चाहते हैं। 16 अप्रैल, 1979 को गृह मंत्री से अनुरोध किया गया था कि वे इस विषय पर 18 अप्रैल, 1979 को एक वक्तव्य दें। वक्तव्य के संबंध में 18 अप्रैल की कार्य-सूची में एक प्रविष्टि शामिल की गयी थी जिसके साथ यह पाद-टिप्पणी दी गयी थी कि वक्तव्य के बाद इस विषय पर एक चर्चा की जायेगी। तद्नुसार मंत्री के वक्तव्य के पश्चात् कोई सूचना दिए अथवा गृहीत किए बिना चर्चा हुई थी।

20. दिनांक 23 मार्च, 1993 को निम्नलिखित मुद्दों पर विभिन्न सदस्यों ने अलग-अलग स्थगन प्रस्ताव की सूचनाएं दी थीं–
    (*i*) बोट क्लब, नई दिल्ली पर राजनैतिक रैलियां आयोजित करने पर भारत सरकार द्वारा लगाया गया प्रतिबन्ध; और
    (*ii*) कोयला, इस्पात आदि के निर्देशित मूल्यों में वृद्धि। अध्यक्ष ने स्थगन प्रस्ताव पेश करने की अनुमति नहीं दी थी। विषयों के महत्व को देखते हुए अध्यक्ष ने स्थगन प्रस्ताव की सूचनाओं के आधार पर इन विषयों पर नियम 193 के अंतर्गत चर्चा की अनुमति दी। उन सदस्यों के नाम जिन्होंने स्थगन प्रस्ताव की सूचनाएं दी थीं, का बैलट किया गया और पूर्ववर्तिता पाने वाले सदस्यों को उसी दिन चर्चा करने की अनुमति दे दी गयी। राजनैतिक रैलियों पर प्रतिबंध के संबंध में सूचनाएं नियम 193 के तहत प्राप्त नहीं हुई थीं जबकि नियम 193 के तहत प्राप्त कोयला और इस्पात के मूल्यों में वृद्धि की सूचनाओं पर विचार नहीं किया गया।

वह उन परिस्थितियों में उचित समझे और जो बैठक की समाप्ति पर अथवा उससे पहले दो घंटे से अधिक न हो।[21]

> जून, 1967 से पहले, सूचना गृहीत हो जाने के पश्चात्, अध्यक्ष सदन के नेता के परामर्श से वह तिथि नियत किया करता था जब उस विषय पर चर्चा की जानी हो और वह ढाई घंटे से अनधिक उतना समय नियत करता था, जितना वह उन परिस्थितियों में उचित समझता था। बाद में समय का आबंटन सभा द्वारा कार्य-मंत्रणा समिति के परामर्श पर किया जाने लगा। सभी गृहीत सूचनाएं कार्य-मंत्रणा समिति की एक उप-समिति के समक्ष रखी जाने लगीं जो उनकी विषय-वस्तु की अविलम्बनीयता एवं महत्व के अनुसार सभा में चर्चा के लिए सूचनाओं का चयन करने लगी।
>
> वास्तव में जब, कोई सूचना गृहीत कर ली जाती है और अध्यक्ष इसे सदन में चर्चा के लिए महत्वपूर्ण समझता है तो संबद्ध मंत्री से कहा जाता है कि सदन के नेता के परामर्श से उस पर चर्चा के लिये तिथि निश्चित करे। इस प्रकार निश्चित तिथि की घोषणा सदन के नेता द्वारा सभा के कार्य संबंधी अपने साप्ताहिक वक्तव्य में कर दी जाती थी। ऐसे किसी अविलम्बनीय मामले में, जिसमें सभा के सभी पक्षों की ओर से रुचि दिखायी गयी हो, अध्यक्ष स्वयं उस तिथि और समय की घोषणा करता है, जब चर्चा की जानी हो। ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक चर्चा के लिये दो घंटे का समय नियत किया गया है और अध्यक्षपीठ के विवेकाधिकार से उचित मामलों में इस समय को आधा घंटा बढ़ाया जा सकता है।
>
> समय-सीमा संबंधी उपबंध को निलम्बित करने के लिए सभा में औपचारिक प्रस्ताव रख कर ढाई घंटे की अधिकतम सीमा को और बढ़ाया जा सकता था।
>
> तथापि जब सभा की मांग पर सरकार ऐसी चर्चा के लिये ढाई घंटे के विहित समय से अधिक समय देने के लिए तैयार हो गई, तो ऐसा आबंटन नियम के संगत उपबंध को निलम्बित करने के लिए औपचारिक प्रस्ताव लाये बिना ही किया गया।

वर्तमान प्रथा के अनुसार अल्पकालीन चर्चाओं हेतु सभी ग्राह्य सूचनाएं कार्य-मंत्रणा समिति के समक्ष रखी जाती हैं। समिति उस विषय की महत्ता एवं अविलम्बनीयता के अनुसार सदन में चर्चा के लिये सूचनाओं का चयन करती है। समिति चर्चा के लिये तिथि निर्धारण कर उसके लिये समय के आबंटन की भी सिफारिश करती है।

सामान्यत: महत्वपूर्ण लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा सप्ताह में दो बैठकों में की जाती है।

---

21. नियम 194(2), इस नियम में जून, 1967 में संशोधन किया गया और एक घंटे की समय-सीमा निर्धारित की गई । अप्रैल, 1987 में संशोधन करके इस समय-सीमा को बढ़ाकर दो घंटे कर दिया गया।

एक अवसर पर सभा की सर्वसम्मति से एक दिन के लिये नियत गैर-सरकारी सदस्यों के कार्यों को छोड़ दिया गया और उसके स्थान पर इस प्रकार की चर्चा के लिए समय दिया गया।[22]

कभी-कभार दो अल्पकालीन चर्चाएं एक साथ ली जा सकती हैं।[23]

चर्चा हेतु प्रक्रिया

सूचना के गृहीत होने और चर्चा के लिये तिथि निश्चित कर दिए जाने के पश्चात् उस मद को उस दिन की कार्य-सूची में केवल पहले दो सदस्यों के नाम से सम्मिलित किया जाता है।

पहले, सूचना देने वाले और सूचना का समर्थन करने वाले सभी सदस्यों के नाम जोड़े जाते थे।

जब कोई सूचना गृहीत कर ली जाती है और बुलेटिन में अधिसूचित कर दी जाती है तो उसके पश्चात् प्राप्त होने वाली सारतः तद्रूप सूचनाएं अस्वीकृत कर दी जाती हैं।

चर्चा उसी सदस्य द्वारा प्रारम्भ की जाती है जिसका नाम कार्य-सूची की मद में सबसे पहले है। यदि वह सदस्य अनुपस्थित हो तो चर्चा दूसरे सदस्य द्वारा, यदि वह उपस्थित हो, उठाई जाती है। यदि दोनों सदस्य अनुपस्थित हों, तो अगले उस सदस्य को, जिसकी सूचना ग्राह्य हो, चर्चा उठाने की अनुमति दी जा सकती है।[24]

चर्चा आरंभ होने के बाद वो सदस्य जिसका नाम कार्य सूची की मद के सामने लिखा हो सिर्फ इस कारण से दूसरे वक्ता के रूप में भाषण नहीं दे सकता कि उसका नाम कार्य सूची में सम्मिलित है। सदस्य को उसके दल की बारी आने पर ही भाषण देने का अवसर मिलता है।

पहले ऐसी चर्चाओं के लिए इस प्रकार की व्यवस्था थी कि कोई भी सदस्य एक सत्र के दौरान एक से अधिक चर्चा न उठा सके। जब उस सदस्य के नाम जो पहले कोई चर्चा

---

22. *लो.स.वा.वि.*, 23.9.1965, पृ. 2820-21; 24.9.1965, पृ. 2903 । सभा ने एक अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर अल्पकालीन चर्चा (भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध विराम की मांग के सिलसिले में संयुक्त राष्ट्र परिषद् का संकल्प) और एक गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प (भारत को कॉमनवेल्थ से हट जाना चाहिए) पर एक साथ चर्चा का निर्णय लिया।

23. पांचवीं लोक सभा के छठे सत्र के दौरान, 14 दिसंबर, 1972 को दो अल्पकालीन चर्चाओं : (*i*) छात्र-असंतोष, और (*ii*) 6 दिसंबर, 1972 को दिल्ली विश्वविद्यालय में हुई घटनाओं पर गृह राज्यमंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य; को एक साथ लिया गया। इस पर आगे चर्चा 15 दिसंबर, 1972 को हुई [*लो.स.वा.वि.*, 14.12.1972, पृ. 106; 15.12.1972, पृ. 150-58] ।

24. *लो.स.वा.वि.*, 29.3.1990, पृ. 276; 7.8.1991, पृ. 256 ।

उठा चुका हो, दूसरी चर्चा के लिए समय नियत किया जाता था तब क्रम-वार अगले सदस्य का नाम कार्य-सूची में सबसे ऊपर रखा जाता था, जिससे कि वह चर्चा उठा सके। एक सत्र में एक सदस्य द्वारा एक चर्चा के उठाये जाने संबंधी प्रतिबंध की व्यवस्था कार्य-मंत्रणा समिति के आठवें प्रतिवेदन में दी गई सिफारिश के आधार पर तीसरी लोक सभा के तीसरे सत्र में लागू की गई थी। अब यह प्रतिबंध हटा दिया गया है।

वर्तमान में यह प्रथा है कि जब तक अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दें, अनियत दिन वाले प्रस्तावों और अल्पकालीन चर्चाओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि कोई सदस्य किसी सत्र में इनमें से दो से अधिक प्रस्ताव पेश न कर सके अथवा चर्चा न उठा सके।[25]

सभा के सामने न कोई औपचारिक प्रस्ताव होता है और न ही कोई मतदान होता है। चर्चा का उद्देश्य यह होता है कि जिन सदस्यों के पास उस विषय के संबंध में कोई जानकारी हो वे सभा को उससे अवगत करायें। सूचना देने वाला सदस्य एक संक्षिप्त वक्तव्य देता है। विशेष परिस्थितियों में अध्यक्ष, उस सदस्य को, जिसका नाम कार्य-सूची में उस मद के सामने लिखा हो, इस बात की अनुमति दे देता है कि उसके स्थान पर कोई अन्य सदस्य भाषण दे।[26] वे सदस्य जिन्होंने अध्यक्ष को चर्चा में भाग लेने की अपनी मंशा के बारे में पूर्व सूचना दी हो, को चर्चा में भाग लेने की अनुमति प्रदान की जा सकती है और तत्पश्चात् संबद्ध मंत्री एक संक्षिप्त उत्तर देता है।[27] जब प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य पर चर्चा होती है तो वक्तव्य की विषय वस्तु से मुख्यतः संबंधित मंत्री उत्तर दे सकता है।[28] चर्चा करने वाले सदस्य को चर्चा का उत्तर देने का अधिकार नहीं होता है।[29]

25. निदेश 113ग ।
26. अध्यक्षपीठ ने एक सदस्य के इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि उसके दल के एक अन्य सदस्य को, जिसे तथ्यों की पूरी जानकारी है, आरम्भिक भाषण देने की अनुमति दी जाए। *लो. स.वा.वि.,* 19.4.1974, पृ. 125 ।
27. नियम 195, साथ ही *देखिए सं.वा.वि.* (II), 10.4.1953, पृ. 3230-31 ।
28. पन्द्रहवीं लोक सभा के आठवें सत्र के दौरान लोकपाल की नियुक्ति और 16 अगस्त, 2011 को हुई कुछ घटनाओं के बारे में प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य पर 17 अगस्त, 2011 को चर्चा हुई थी। जब अध्यक्ष ने गृहमंत्री को उत्तर देने के लिये बुलाया तो व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया कि चूंकि वक्तव्य प्रधानमंत्री ने दिया था इसलिये उन्हें उत्तर देना चाहिये। इस पर अध्यक्ष ने टिप्पणी की ''मैं मानती हूं कि परिपाटी के अनुसार सामान्यतः वक्तव्य देने वाले मंत्री द्वारा ही चर्चा का उत्तर दिया जाता है। प्रधानमंत्री ने मुख्य विपक्षी दल और कुछ अन्य दलों की मांग पर वक्तव्य दिया था। तथापि माननीय सदस्य यह स्वीकार करेंगे कि चर्चा की विषय वस्तु मुख्यतः गृह मंत्रालय से संबंधित है। अतः मैं सदस्यों से आग्रह करुंगी कि इस बात पर जोर न दें कि प्रधानमंत्री ही उत्तर दें''। तदनुसार गृहमंत्री ने चर्चा का उत्तर दिया।
29. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.12.1959, कॉ. 6728, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 20.8.1962, पृ. 1462; 21.8.1962, पृ. 1589-91 ।

यदि कोई चर्चा किसी सत्र में समाप्त नहीं होती है तो उसे अगले सत्र के लिए स्थगित कर दिया जाता है और तब उस पर पुनः चर्चा प्रारम्भ की जाती है।[30]

गैर-सरकारी सदस्य द्वारा अपने भाषण के दौरान सभा पटल पर रखे गये किसी पत्र अथवा दस्तावेज पर पृथक चर्चा करने की अनुमति नहीं दी जाती है।[31]

नियम 193 के अन्तर्गत, अल्पकालीन चर्चा के समाप्त होने के बाद उन्हीं विषयों पर संकल्प स्वीकृत किए जा सकते हैं।[32]

अध्यक्ष सामान्यतः भाषणों के लिए समय-सीमा निर्धारित कर सकता है।[33]

---

30. 10.12.1965, पृ. 2605; 17.12.1968, पृ. 150-51 । पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान, 24 मार्च, 2011 (सातवां सत्र) को उठायी गई चर्चा 19 मार्च, 2012 (दसवां सत्र) को समाप्त की गई।

31. 3 मार्च, 1965 को एक सदस्य ने नियम 193 के अंतर्गत एक अन्य सदस्य द्वारा उसी दिन आयकर (संशोधन) विधेयक, 1965 पर चर्चा के दौरान सभा पटल पर रखी गयी सी.बी. आई. रिपोर्ट पर चर्चा कराने के लिए एक सूचना दी परंतु अध्यक्ष ने सूचना को स्वीकार नहीं किया।

32. *एल.एस. डिबेट्स,* 19.8.1985, कॉ. 437-40; 16.4.1986, कॉ. 400-02, 11.12.2008, कॉ. 694-96 ।

33. नियम 196 ।

अध्याय 28

मंत्रिपरिषद् में विश्वास तथा अविश्वास प्रस्ताव

मंत्रिमण्डल का उत्तरदायित्व[1]

संसदीय लोकतंत्र की एक मूलभूत आवश्यकता जनता द्वारा निर्वाचित सभा के प्रति मंत्रिपरिषद् अथवा मंत्रिमण्डल के सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत है।[2] सत्ता में रहने के लिए सरकार को हमेशा निर्वाचित सभा का बहुमत प्राप्त होना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो, उसे या तो सदन में विश्वास प्रस्ताव लाकर और सभा का विश्वास मत प्राप्त कर अथवा विपक्षी दलों द्वारा उसके विरुद्ध लाए गए अविश्वास प्रस्ताव को पराजित कर सभा में अपने बहुमत का प्रदर्शन करना होता है।[3]

मंत्रिपरिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है;[4] वह उत्तरदायित्व संयुक्त तथा अविभाज्य है। संविधान में संसद के प्रति किसी मंत्री के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और उसके विभागीय प्रभार में भूल-चूक के सभी कार्यों के लिए उसकी जवाबदेही निर्धारित करने के लिए कोई विशिष्ट उपबंध नहीं है। तथापि, उच्च संसदीय परम्पराओं के अनुरूप, मंत्रियों

---

1. *देखिए,* सुभाष काश्यप, पार्लियामेंट ऑफ इंडिया, मिथ्स एंड रिएलिटीज, नई दिल्ली, 1988, पृ. 35, 39-43; *दि पार्लियामेंट एंड दि एक्जिक्यूटिव इन इंडिया,* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1987 और *दि टेबल* (लंदन), खंड 49, 1981 ।
2. जी.सी. मल्होत्रा, कैबिनेट रिस्पान्सिबिलिटी टू लेजिस्लेचर/मोशन्स ऑफ कान्फिडेंस एण्ड नो-कान्फिडेंस इन लोक सभा एण्ड स्टेट लेजिस्लेचर, लोक सभा सेक्रेटेरिएट, 2004, पी. (vii)।
3. पूर्वोक्त, पी. (v) ।
4. अनुच्छेद 75(3), अनुच्छेद 75(3) का निर्वचन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने *यू.एन.आर. राव बनाम श्रीमती इन्दिरा गांधी* (ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1002) मामले में यह टिप्पणी की:

   "अनुच्छेद 75(3) से जो बात उभर कर आती है उसे आमतौर पर 'उत्तरदायी सरकार' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में मंत्रिपरिषद् को लोक सभा का विश्वास प्राप्त होना चाहिए। जब लोक सभा का अनुच्छेद 85(2)(ख) के अधीन विघटन नहीं होता है तो अनुच्छेद 75(3) पूरी तरह प्रवर्तन में रहता है। किन्तु जब लोक सभा का विघटन कर दिया जाता है तो स्वाभाविक है कि तब मंत्रिपरिषद् को लोक सभा का विश्वास प्राप्त नहीं होता है।..... अनुच्छेद 75(3) केवल तभी लागू होता है जब लोक सभा का विघटन नहीं होता।"

ने स्वयं अपनी ओर से अपने विभागों की आलोचना अथवा कमियों के लिये उत्तरदायित्व स्वीकार किया है और उनके कारण त्यागपत्र दिया है।[5]

सामूहिक उत्तरदायित्व[6] दो सिद्धांतों के लागू किये जाने पर सुनिश्चित होता है: पहला यह है कि सिवाय प्रधानमंत्री के परामर्श के, किसी भी व्यक्ति को मंत्रिपरिषद् का सदस्य नामनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है और दूसरा यह है कि यदि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद् के किसी सदस्य को उसके पद से हटाने की मांग करता है तो वह मंत्रिपरिषद् का सदस्य बना नहीं रह सकता।[7] सामूहिक उत्तरदायित्व का अनिवार्य तत्व यह है कि कोई मंत्री किसी नीति पर चर्चा के समय में अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है, किन्तु जब निर्णय ले लिया जाता है तो प्रत्येक मंत्री से आशा की जाती है कि वह बिना किसी शर्त के उसका समर्थन करे। इसलिए यदि कोई मंत्री नीति के मामलों में प्रधानमंत्री से सहमत नहीं है या मंत्रिमंडल के किसी निर्णय का पक्ष लेने के लिए तैयार नहीं है तो उसके लिए एकमात्र विकल्प यह है कि

---

5. उदाहरण के लिये, श्री आर.के. षण्मुखम चेट्टी ने अपने निर्णय की एक गलती के कारण त्यागपत्र दे दिया था जिसमें उन्होंने "कुछ ऐसे मामलों को वापस लेने के आदेश दिये" जिन्हें आय-कर जांच आयोग को सौंपा गया था—*सी.ए.(लेजि.)* डिबेट्स, 17.8.1948, पृ. 357-59; श्री लाल बहादुर शास्त्री ने एक गंभीर रेल दुर्घटना के कारण त्यागपत्र दे दिया था—*एल.एस. डिबेट्स* (II), 26.11.1956, कॉ. 993-97; जीवन बीमा निगम द्वारा किये गये मूंधड़ा सौदे की जांच के पश्चात् श्री टी.टी. कृष्णामाचारी ने त्यागपत्र दे दिया था—*लो.स.वा.वि.,* 18.2.1958, पृ. 615; श्री ए.पी. जैन ने देश में खाद्य की स्थिति के संबंध में कड़ी आलोचना किए जाने के कारण त्यागपत्र दे दिया था—*लो.स.वा.वि.,* 14 8.1959, पृ. 1316-48; 21.8.1959, पृ. 1854-67 और 22.8.1959, पृ. 1983-2011; श्री कृष्ण मेनन ने चीन द्वारा आक्रमण किए जाने के तुरन्त बाद त्यागपत्र दे दिया था—*लो.स.वा.वि.,* 9.11.1962, पृ. 197-98; श्री के.डी. मालवीय ने एक फर्म, जिससे उनका संबंध बताया गया था, के कागजों में कुछ ऐसी प्रविष्टियों की जांच के बाद त्यागपत्र दे दिया था—*लो.स.वा.वि.,* 17.8.1963, पृ. 518-20; श्री गुलजारी लाल नंदा ने संसद भवन के समीप हिंसापूर्ण प्रदर्शन के बाद त्यागपत्र दे दिया था— *लो.स.वा.वि.,* 10. 11.1966, पृ. 1063-66; डा. कर्ण सिंह (पर्यटन तथा नागर विमानन मंत्री) ने 15 मार्च, 1973 को सिकंदराबाद के पास एच.एस.-748 विमान के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण त्यागपत्र दे दिया था। हालांकि प्रधानमंत्री ने उनका त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया था—*लो.स. वा.वि.,* 16.3.1973, पृ. 122-23; 20.3.1973, पृ. 132-33; श्री के.पी. सिंह देव और श्री चंदूलाल चंद्राकर ने जासूसी के मामले में एक व्यक्ति के विरुद्ध सरकार द्वारा फाइल किए गए आरोपपत्र में आये अपने नामों के कारण त्यागपत्र दे दिये थे—*लो.स.वा.वि.,* 5.3.1986, पृ. 127-30 और 11.3.1986, पृ. 189-90 ।
6. मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व और प्रशासनिक जवाबदेही के बीच अंतर के विश्लेषण के लिए *देखिए,* काश्यप, उद्धृत कृति ।
7. संविधान सभा में डा. बी.आर अम्बेडकर का भाषण—*सं.स.वा.वि.,* 30.12.1948, पृ. 1993-94 ।

वह त्यागपत्र दे दे।[8] इसी प्रकार यदि प्रधानमंत्री को यह पता चलता है कि किसी सहकर्मी के विचार या कार्य उसके लिये उलझन पैदा कर रहे हैं तो वह उचित ढंग से उसे त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है।[9]

लोक सभा के प्रति मंत्रिमंडल के उत्तदायित्व का निहित अर्थ यह है कि न केवल प्रधानमंत्री बल्कि मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में से अधिकतर, लोक सभा के सदस्यों में से चुने जायें।[10] परन्तु यदि प्रधानमंत्री या कोई मंत्री राज्य सभा के सदस्य हों तो यह बात संविधान के

---

8. उदाहरण के लिये, उद्योग तथा पूर्ति मंत्री डा. एस.पी. मुखर्जी ने पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यकों पर हो रहे निर्मम अत्याचारों के प्रति सरकार के ढीले, झिझकपूर्ण और असंगत रवैये के कारण त्यागपत्र दे दिया था—*पी. डिबेट्स,* 19.4.1950, पृ. 3017-22; और केन्द्रीय वित्त मंत्री डा. जान मथाई ने विशेषकर योजना आयोग के गठन को 'सही समय पर और सोच विचार कर न दिया गया' बताकर 'नीति के मूल सिद्धांतों' पर प्रधानमंत्री के साथ मतभेद होने के कारण त्यागपत्र दे दिया था— हिन्दू, 1.6.1950 और 3.6.1950; पुनर्वास मंत्री श्री महावीर त्यागी, ने 15 जनवरी, 1966 को ताशकंद समझौते पर हस्ताक्षर करने के प्रति अपनी असहमति के कारण त्यागपत्र दे दिया था; विदेश मंत्री श्री एम.सी. छागला, ने 5 सितम्बर, 1967 को सरकार की शिक्षा नीति के प्रति अपनी असहमति के कारण त्यागपत्र दे दिया था; पेट्रोलियम और रसायन मंत्री श्री अशोक मेहता, ने 22 अगस्त, 1968 को चेकोस्लोवाकिया मुद्दे पर सरकार द्वारा अपनायी गयी नीति से असहमति के कारण त्यागपत्र दे दिया था, *लो.स.वा.वि.* 26.8.1968, पृ. 234; उप-प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई, ने 16 जुलाई, 1969 को उन्हें वित्त मंत्री पद से "एकाएक हटाए जाने" के प्रति विरोध प्रकट करते हुए त्यागपत्र दे दिया था—*लो.स.वा.वि.,* 21.7.1969, पृ. 191-93; निर्माण तथा आवास राज्य मंत्री श्री मोहन धारिया ने 2 मार्च, 1975 को ज्वलंत समस्याओं के संबंध में राष्ट्रीय वार्ता करने और आम सहमति तैयार करने के मामले में प्रधानमंत्री के साथ उनके मतभेद हो जाने के कारण त्यागपत्र दे दिया था, *लो.स.वा.वि.,* 5.3.1975, पृ. 133-36 ।
9. उदाहरण के लिए 15 अक्तूबर, 1969 को प्रधानमंत्री ने चार मंत्रियों से त्यागपत्र देने के लिए कहा था, जो उन्होंने दे दिये थे।
10. इन सिद्धांतों को 1952 से ही ध्यान में रखा गया है जब संविधान के अधीन लोक सभा तथा राज्य सभा दो सदनों का गठन किया गया था। तथापि 1966 में मंत्रिपरिषद् का नेतृत्व श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया जो कि उस समय लोक सभा की सदस्य नहीं थी। बजट सत्र में सभा में एक गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक पर विचार किया गया जिसका आशय संविधान में यह संशोधन करना था ताकि यह उपबंध किया जा सके कि 'प्रधानमंत्री लोक सभा का सदस्य होना चाहिए'। इसके उत्तर में सरकार ने यह कहा कि वर्तमान प्रधानमंत्री स्वयं लोक सभा का चुनाव लड़ना चाहती थी परन्तु आपातकाल की उद्घोषणा लागू होने के कारण उपचुनाव नहीं हो रहे थे। विधेयक की भावना का स्वागत करते हुए मंत्री ने यह भी कहा कि 'संविधान में इस प्रकार उपबंध किया जाना उचित नहीं है। ऐसे अवसर आ सकते हैं और वे भी बहुत सीमित समय के लिये जब प्रधानमंत्री दूसरी सभा का सदस्य हो सकता है' —*लो.स.वा.वि.,* 15.4.1966 और 13.5.1966 ।

विरुद्ध नहीं है। संविधान में भी ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि किसी मंत्रिपद विशेष को धारण करने वाला कोई मंत्री किसी सभा विशेष का सदस्य होना चाहिए।[11] तथापि, उत्तरदायित्व का यह अर्थ नहीं है कि सरकार के प्रत्येक कार्य के संबंध में लोक सभा को बताया जाये और उसके बारे में उसका अनुमोदन प्राप्त किया जाये। सरकार के लिये अपने विधायी और वित्तीय प्रस्तावों तथा व्यय के बारे में स्पष्ट रूप से संसद का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है और कई बार उसे संसद के सामने अपनी नीति स्पष्ट करनी पड़ती है और उसे प्रमाणित करना पड़ता है। यदि सभा स्पष्ट रूप से यह कह दे कि वह सरकार का समर्थन नहीं करना चाहती—अर्थात् यदि सरकार ने सभा का विश्वास खो दिया है तो सरकार को या तो त्यागपत्र दे देना चाहिए या सभा का विघटन कर देना चाहिए।[12] तथापि, सरकार द्वारा त्यागपत्र या सभा का विघटन तभी किया जाना चाहिए जब सरकार ने सभा का विश्वास खो दिया हो। यह निर्णय सरकार को स्वयं करना पड़ता है कि कोई विषय इतना महत्वपूर्ण है जिसके आधार पर सरकार त्यागपत्र दे दे या सभा का विघटन कर दे। विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव पर सभा में मतदान की मांग कर सभा की राय का पता लगा सकता है।[13]

अविश्वास प्रस्ताव

लोक सभा के प्रति मंत्रिपरिषद् के सामूहिक उत्तरदायित्व के संबंध में स्पष्ट सांविधानिक उपबंध को देखते हुए, किसी एक मंत्री में अविश्वास का प्रस्ताव नियमों के विरुद्ध है। नियमों के अधीन केवल सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव ही स्वीकार्य होता है।[14]

---

11. राज्य सभा के सदस्य प्रणव कुमार मुखर्जी की संघ के वित्त मंत्री के रूप में नियुक्ति के संबंध में अध्यक्ष की टिप्पणी—*लो.स.वा.वि.,* 19.2.1982, पृ. 6-17 ।
12. सभा का विघटन तभी हो सकता है जब राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट हो कि किसी सरकार के हार जाने और उसके द्वारा त्यागपत्र दिए जाने के बाद उसके स्थान पर कोई वैकल्पिक सरकार बनाना संभव नहीं है। यह विवादास्पद बात है कि क्या राष्ट्रपति को वैकल्पिक सरकार, जिसे सभा का विश्वास प्राप्त हो, बनाने की सम्भावना का पता लगाये बिना हारी हुई सरकार का परामर्श स्वतः स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि राष्ट्रपति सभा का विघटन कर देता है तो हारी हुई सरकार, लोक सभा का विघटन होने के बाद साधारण निर्वाचन सम्पन्न होने तक अभिरक्षक सरकार के रूप में कार्य करती रहती है।

    तथापि, राज्यों में स्थिति भिन्न है। किसी सरकार के हार जाने और त्यागपत्र देने के बाद राज्य के राज्यपाल को यह पता लगाना पड़ता है कि कोई वैकल्पिक सरकार बनायी जा सकती है या नहीं और यदि वह ऐसा न कर सके, तो संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन उसे राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट देनी पड़ती है कि राज्य में सांविधानिक तंत्र विफल हो गया है।
13. कान्स्टीट्यूशनल प्रिसीडेंट्स, *उद्धृत कृति,* पृ. 1-3 ।
14. नियम 198(1) ।

    स्वतंत्रता से पहले कार्यपालिका केन्द्रीय विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय विधान सभा के नियमों या स्थायी आदेशों में अविश्वास का प्रस्ताव पेश करने के बारे में कोई उपबंध नहीं था।

मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव से बिल्कुल भिन्न है। किसी निन्दा प्रस्ताव में वे कारण या आरोप बताये जाते हैं, जिन पर वह आधारित होता है और उसे सरकार की कुछ नीतियों या कार्यों के लिए उसकी निन्दा करने के स्पष्ट प्रयोजन से पेश किया जाता है। लेकिन अविश्वास प्रस्ताव में उन कारणों को बताने की आवश्यकता नहीं है, जिन पर वह आधारित हो।[15] यद्यपि अविश्वास प्रस्ताव की किसी सूचना में कारण बताये भी गये हों और सभा में पढ़कर भी सुनाये गये हों तो भी वे अविश्वास प्रस्ताव का अंग नहीं बनते।[16]

एक ऐसा भी मामला हुआ है जब अध्यक्ष ने किसी सदस्य द्वारा अविश्वास प्रस्ताव की सूचना दिये जाने पर प्रस्ताव को पेश करने के लिए सभा की अनुमति मिलने के पहले न तो उसमें दिये गये कारण स्वयं पढ़े और न ही उस सदस्य को उन्हें पढ़ने की अनुमति दी जिसने उस प्रस्ताव की सूचना दी थी।[17]

अध्यक्ष चाहे तो अपने विवेकाधिकार से अविश्वास प्रस्ताव में दिये गये कारण सभा को बता सकता है।[18]

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के अधिनियमित हो जाने के बाद मंत्रिमंडल भारत की संविधान सभा के प्रति उत्तरदायी हो गया, जो कि उस समय भारत डोमिनियन के विधानमंडल की शक्तियों का भी प्रयोग कर रही थी और पहली बार नियमों में इस बात का उपबंध किया गया था कि मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया जा सकता है—*देखिए* संविधान सभा (विधायी) नियम, 1947 का नियम 24ख ।

15. *लो.स.वा.वि.,* 31.8.1961, पृ. 3076 ।

16. अध्यक्ष ने अविश्वास प्रस्ताव के पाठ को पढ़ने के बाद संक्षेप में सूचना में दिए गए कारण भी पढ़े किन्तु उन्होंने यह स्पष्ट किया कि वे कारण प्रस्ताव का अंग नहीं हैं। प्रस्ताव पेश करने के लिए सभा की अनुमति मांगते समय सदस्य ने केवल प्रस्ताव का पाठ पढ़ा और कारण नहीं पढ़े—*लो.स.वा.वि.,* 9.11.1962, पृ. 198-99; *लो.स.वा.वि.* 20.2.1963, कॉ. 2165-67; *लो.स.वा.वि.,* 13.8.1963, पृ. 112; 16.8.1965, पृ. 89-90; 25.7.1966, पृ. 98-103; 1.11.1966, पृ. 93; 18.3.1967, पृ. 39; 22.11.1967, पृ. 995; *लो.स.वा.वि.,* 9.3.1968, कॉ. 3211-12; *लो.स.वा.वि.,* 11.11.1968, पृ. 155-56; 18.2.1969, पृ. 155-56; 28.8.1969, पृ. 134; 28.7.1970, पृ. 318-19; 21.11.1973, पृ. 131 ।

17. अध्यक्ष ने यह विचार व्यक्त किया कि उस चरण पर प्रस्ताव में दिए गए कारण पढ़कर सुनाना आवश्यक नहीं है क्योंकि यदि सरकार को अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर नहीं दिया जाता तो यह उसके प्रति अन्याय होगा। यदि सरकार को अवसर दिया जाता है तो सूचना पर ही वाद-विवाद हो सकता है और अंततोगत्वा ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि सूचना का समर्थन करने के लिये उतने सदस्य न रहें, जितने कि नियमों के अधीन होने आवश्यक हैं—*लो.स.वा.वि.,* 31.8.1961, पृ. 3076 ।

18. *लो.स.वा.वि.,* 9.11.1962, पृ. 198-99; 13.8.1963, पृ. 112; *लो.स.वा.वि.,* 21.11.1963, कॉ. 227-30; *लो.स.वा.वि.,* 28.8.1969, पृ. 134; 28.7.1970, पृ. 318-19 ।

निन्दा प्रस्ताव

निन्दा प्रस्ताव पेश करने के लिए सभा की अनुमति आवश्यक नहीं है।[19] यह सरकार के विवेकाधिकार पर निर्भर है कि वह उसके लिये समय निकाले और उस पर चर्चा करने के लिये तारीख नियत करे। नियमों में निन्दा प्रस्ताव पेश करने के बारे में कोई विशिष्ट उपबंध नहीं हैं। ऐसे प्रस्ताव पर वही नियम लागू होते हैं जो सामान्य प्रस्तावों पर होते हैं[20] और उसे अनियत दिन वाले प्रस्ताव के रूप में गृहीत किया जा सकता है।[21]

निन्दा प्रस्ताव मंत्रिपरिषद् या किसी एक मंत्री या मंत्रियों के किसी समूह के विरुद्ध कार्य करने में असफल रहने या कार्य न करने या उनकी नीति के बारे में पेश किया जा सकता है और उसमें मंत्री या मंत्रियों की असफलता पर खेद, रोष या आश्चर्य व्यक्त किया जा सकता है। ऐसा प्रस्ताव सुस्पष्ट और स्वतः स्पष्ट होना चाहिए ताकि निंदा करने के कारण संक्षेप में और ठीक-ठाक रिकार्ड किए जा सकें। प्रस्ताव नियमानुकूल है या नहीं, इस संबंध में अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होता है।[22]

अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के संबंध में निर्बन्धन

मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रकट करने का प्रस्ताव निम्नलिखित निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए किया जा सकेगा:

> 'अध्यक्ष द्वारा बुलाये जाने पर सदस्य को प्रस्ताव पेश करने के लिए सभा की अनुमति मांगनी होती है; और
>
> प्रस्ताव पेश करने के लिये सभा की अनुमति मांगने वाले सदस्य को उस दिन की बैठक आरम्भ होने से पहले महासचिव को उस प्रस्ताव की लिखित सूचना देनी होती है, जो वह पेश करना चाहता हो।[23]

'बैठक प्रारम्भ होने से पहले' शब्दावली का अर्थ है बैठक प्रारम्भ होने से समुचित समय पहले। अविश्वास प्रस्ताव की सूचना जो कि उस दिन की सभा की बैठक के आरम्भ होने से पूर्व दी जानी चाहिए जिस दिन विषय को सभा में उठाया जाना है, उस दिन बैठक के आरम्भ होने से पहले 10.00 बजे तक अर्थात् बैठक के आरम्भ होने के एक घंटा पहले दी जानी चाहिए। यदि ऐसी सूचना 10.00 बजे के बाद प्राप्त होती है तो वह अगली बैठक के लिए ही मान्य होगी।[24]

---

19. *देखिए* अध्याय 26–प्रस्ताव ।
20. नियम 184-89 ।
21. *लो.स.वा.वि.,* 18.12.1964, पृ. 2258-60; 21.12.1964, पृ. 2343 ।
22. *पूर्वोक्त,* 19.8.1968, पृ. 1456-76; 4.8.1977, पृ. 165-66; 7.8.1980, पृ. 215-74 ।
23. नियम 198(1)।
24. निदेश संख्या 113ख ।

किसी सत्र के आरम्भ होने से पहले कोई सूचना अध्यक्ष द्वारा अग्रिम रूप से निर्धारित तारीख और समय तथा उसके अधिसूचित कर दिये जाने के पश्चात् यथाशीघ्र दी जा सकती है। सूचना किसी भावी तारीख के लिए भी दी जा सकती है।[25]

नियमों में किसी अविश्वास प्रस्ताव की ग्राह्यता के बारे में कोई शर्त निर्धारित नहीं है, तथापि, ऐसे किसी प्रस्ताव को गृहीत करने पर कोई रोक नहीं है, भले ही सदस्यों को उसी सत्र में राष्ट्रपति के अभिभाषण, बजट या अनुदानों की मांगों, आदि के बारे में चर्चा के समय सरकार की आलोचना करने का पहले ही अवसर मिल चुका हो।[26] अध्यक्ष को यह शक्ति भी दी गयी है कि वह यह निर्णय करे कि कोई प्रस्ताव नियमानुकूल है या नहीं। यदि वह समझे तो किसी ऐसी सूचना को जिसकी भाषा समुचित न हो या किसी अन्य आधार पर, जो उसे उचित लगे, सभा के समक्ष नहीं लाएगा या इसके किसी आपत्तिजनक अंश, यदि कोई हो, को इसमें से निकाल दिये जाने पर या सूचना के समुचित रूप से सम्पादित होने के बाद, सभा के समक्ष ला सकता है।

सभा की अनुमति

अविश्वास प्रस्तावों की सूचनाएं प्रश्न काल के बाद, और उस दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित सभा के मुख्य कार्य के प्रारम्भ होने से पहले निर्धारित प्रक्रम पर ली जाती हैं।[27]

यदि अध्यक्ष यह विनिर्णय दे कि कोई अविश्वास प्रस्ताव नियमानुकूल है तो वह सदस्य, जिसने प्रस्ताव की सूचना दी है, उस प्रस्ताव को पेश करने के लिए सभा की अनुमति मांगता है।[28]

---

25. 18 अगस्त, 1984 को एक सदस्य ने अविश्वास प्रस्ताव, जो उसके द्वारा 22 अगस्त, 1984 को पेश किया जाना था, की एक सूचना दी थी तथापि, 21 अगस्त, 1984 को सदस्य ने सूचना वापिस ले ली।
26. *लो.स.वा.वि.,* 7.5.1981, पृ. 214-30 ।
    एक ही सत्र के दौरान दूसरी बार अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए कोई सदस्य अपने अविश्वास प्रस्ताव को मान्य बनाने के लिए नियम 338 के निलम्बन के लिए एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। तथापि, दो शर्तों को पूरा करना होता है—अध्यक्ष को अपनी सहमति देनी होती है और प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकृत किया जाना होता है। अध्यक्ष की सहमति के लिए कोई नियम या सिद्धान्त निर्धारित नहीं किए गए हैं। वह प्रत्येक मामले पर गुणावगुणों के आधार पर निर्णय लेता है और अपनी सहमति देता या नहीं देता है। दूसरी अपरिहार्य बात, यह कि सभा को ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ता है, सत्तापक्ष को उत्तरदायित्व सौंप देती है। सत्तापक्ष के यह निर्णय लेना होता है कि मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध ऐसे अविश्वास प्रस्ताव की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं। वे यह निर्णय लेते हैं कि क्या ऐसे प्रस्ताव पर दूसरी बार चर्चा करने का कोई लाभ है।
27. निदेश संख्या 2 और *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1964, पृ. 96 ।
28. कोई भी भाषण देने की तब तक अनुमति नहीं दी जाती है जब तक कि सभा द्वारा ऐसा प्रस्ताव पेश करने की अनुमति न दे दी गई हो। *लो.स.वा.वि.,* 9.11.1962, पृ. 199-200; 18.8.2003, कॉ. 327-28; 19.8.2003, कॉ. 287-576 ।

पन्द्रहवीं लोक सभा के पन्द्रहवें सत्र (भाग I तथा II) के दौरान बैठक के लगभग सभी दिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, तेलुगु देशम पार्टी और वाई एस आर कांग्रेस के सदस्यों में मंत्रिपरिषद में अविश्वास की कई सूचनाएं प्रस्तुत की गईं।[29] यह पहली घटना है, जब सत्ता पक्ष के एक सदस्य ने सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव की सूचना प्रस्तुत की।

किन्तु सभी दिन सभा में लगातार व्यवधान रहने के कारण, अध्यक्ष ने अविश्वास की सूचनाओं को प्राप्त करने के संबंध में टिप्पणी[230] करने के बाद सभा के समक्ष कोई भी सूचना

---

29. निम्नलिखित सदस्यों ने प्रत्येक के सामने उल्लिखित तिथियों पर अविश्वास प्रस्ताव की सूचनाएं प्रस्तुत कीः
    1. 9-12-2013 को रायापति सांबासिवा राव के नारायण राव और वाई. एस. जगन मोहन रेड्डी तथा अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित।
    2. 11-12-2003 को एम. वेणुगोपाल रेड्डी, रायापति सांबोसिवा राव और एम. राजा मोहन रेड्डी तथा अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित।
    3. 12-12-2013 को रायापति सांबासिवा राव, नारायण राव और वाइ. एस. जगन मोहन रेड्डी तथा अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित।
    4. 13-12-2013 को के. नारायण राव, के रायापति सांबासिवा राव और वाई. एस. जगन मोहन रेड्डी तथा अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित।
    5. 16-12-2013 को के. नारायण राव और अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित।
    6. 17-12-2013 को एम. वेणुगोपाल रेड्डी।
    7. 18-12-2013 को सब्बम हरि, के. नारायण राव और वाई. एस. जगन मोहन रेड्डी और अन्य सदस्यों द्वारा हस्तारित।
    8. 5-2-2014 को वी. अरुण कुमार, एम. वेणुगोपाल रेड़्डी और के. नारायण राव तथा अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित।
    9. 6-2-2014 को सब्बम हरि, एम. वेणुगोपाल रेड्डी और एम. राजमोहन रेड्डी।
    10. 7-2-2014 को एम. वेणुगोपाल रेड्डी, जी. वी. हर्ष कुमार और एम. राजमोहन रेड्डी।
    11. 10-2-2014 को वी. अरुण कुमार, एम. वेणुगोपाल रेड्डी के. नारायण राव और एम. राजमोहन रेड्डी।
    12. 11-2-2014 को सब्बम हरि, के. नारायण राव, एम. राजमोहन रेड्डी और एल राजगोपाल।
    13. 12-2-2014 को रायापति सांबासिवा राव, एम. वेणुगोपाल रेड्डी और एम. राजमोहन रेड्डी।
    14. 13-2-2014 को ए. साई प्रताप, एम. वेणुगोपाल रेड्डी और एम. राजमोहन रेड्डी।
    15. 18-2-2014 को जी. वी. हर्ष कुमार।
30. अध्यक्ष ने निम्नलिखित घोषणा कीः

    ''माननीय सदस्यगण .... मुझे अविश्वास प्रस्ताव की सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। जब तक सभा व्यवस्थित रूप से नहीं चलती है, मैं अविश्वास प्रस्ताव की सूचनाएं सभा के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर पाऊंगी... यदि सभा व्यवस्थित ढंग से कार्य नहीं करती है, तो मैं अविश्वास की सूचना को नहीं ले पाऊंगी।''

    सूचनाएं सभा के व्यवस्थित नहीं होने के कारण उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं की जा सकी।

प्रस्तुत नहीं की। उस दिन के लिए वैध सभी सूचनाएं, उसी दिन सभा के स्थगन पर व्यपगत[31] हो गईं।

अध्यक्ष उन सदस्यों से, जो प्रस्ताव के पक्ष में हों, कहता है कि वे अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो जाएं। यदि कम से कम 50 सदस्य खड़े हो जाएं तो यह माना जाता है कि सभा ने प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दे दी है। प्रस्ताव का समर्थन करने वाले सदस्यों की गिनती वास्तव में की जाती है, जिससे यह पता चल सके कि उसके समर्थन में अपेक्षित सदस्य खड़े हुए हैं। ऐसी भी घटनाएं हुईं हैं, जब सभा ने प्रस्ताव पेश करने की अनुमति नहीं दी, क्योंकि प्रस्ताव के पक्ष में पचास से कम सदस्य खड़े हुए ।[32]

जब अध्यक्ष सदस्य से सभा की अनुमति प्राप्त करने के लिए कहे तो वह उस आशय का अनुरोध करके सूचना को वापिस ले सकता है।[33] तथापि, यदि सदस्य सभा की अनुमति मिलने के बाद अपना प्रस्ताव वापस लेना चाहता है तो वह केवल सभा की अनुमति से ही ऐसा कर सकता है।[34] अविश्वास प्रस्ताव की सूचना को संबंधित सदस्यों द्वारा इस मद के सभा में लिये जाने से पहले इस सूचना के साथ हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा हस्ताक्षर करके सूचना वापिस लेने के आशय का पत्र भेजकर भी वापिस लिया जा सकता है।[35] उस दशा में प्रस्ताव का उल्लेख सभा में नहीं किया जाता और न ही उसे सभा के समक्ष रखा जाता है।

जब किसी एक बैठक के लिए अविश्वास प्रस्ताव की कई सूचनाएँ प्राप्त हुई हों तो पारस्परिक पूर्ववर्तिता निर्धारित करने के लिए सूचनाओं का बैलेट किया जाता है। जिन सूचनाओं को नियमानुकूल ठहराया जाता है उन्हें पूर्ववर्तिता के क्रम में बारी-बारी से लिया जाता है। यदि सभा पहले प्रस्ताव को पेश किए जाने की अनुमति नहीं देती है तो दूसरा प्रस्ताव लिया जाता है। ज्यों ही सभा किसी प्रस्ताव को पेश किये जाने की अनुमति दे देती है तो बाकी के प्रस्ताव, यदि कोई हों, तब तक लम्बित रखे जाते हैं, जब तक उस प्रस्ताव का निर्णय न हो जाये, जिसको पेश करने की अनुमति सभा ने दी हो।[36] परन्तु जब अविश्वास प्रस्तावों की

---

31. नियम 198(1) (ख) और निदेश (113ख)

32. लो.स.वा.वि. 22-11-2012

33. *लो.स.वा.वि.,* 13.8.1963, पृ. 111-14; 9.11.1970, पृ. 155-56; 15.11.1971, पृ. 166; 7 दिसम्बर, 1987 को सदस्य का नाम पुकारे जाने पर वह सभा की अनुमति प्राप्त करने के लिए सभा में उपस्थित नहीं था।

34. *पूर्वोक्त,* 3.9.1973, पृ. 11-12 ।

35. 8 मार्च, 1965 को अविश्वास प्रस्ताव की चार सूचनाएं प्राप्त हुई थीं किंतु सभा में उस मद को लिए जाने से पहले हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा हस्ताक्षर करके सूचना वापिस लेने के आशय का पत्र भेजकर उन्हें वापिस ले लिया गया था।

36. जहां दो या अधिक अविश्वास प्रस्तावों की सूचनाएं प्राप्त हुई हों और सभा ने उनमें से एक प्रस्ताव को पेश किए जाने की अनुमति दे दी हो, तो उन सदस्यों के नामों का उल्लेख सभा में नहीं किया जाता जिन्होंने अन्य सूचनाएं दी हों—*लो.स.वा.वि.,* 9.3.1965, पृ. 1378 ।

कई सूचनाएं प्राप्त हुई हों और उन प्रस्तावों की सूचना देने वाले सभी सदस्यों की सहमति से यह मान लिया जाये कि किसी एक सूचना विशेष को लिया जाये तो अन्य सूचनाओं को सभा के समक्ष नहीं रखा जाता है। स्वीकृत प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वाले पहले सदस्य को सभा में प्रस्ताव पेश करने की अनुमति मांगने के लिए अनुमति दी जाती है।[37]

जहां किसी सूचना पर एक से अधिक सदस्यों ने हस्ताक्षर किए हों तो ऐसा माना जाता है कि इसे सभी हस्ताक्षरकर्ताओं ने दिया है। ऐसे मामलों में अन्य सदस्यों के नाम पहले हस्ताक्षरकर्ता के तुरन्त बाद दिए जाते हैं और इस बात का निर्णय उन पर छोड़ दिया जाता है कि सभा की अनुमति कौन मांगे।

जब किसी प्रस्ताव को पेश करने के लिए सभा की अनुमति मिल जाती है तो अविश्वास प्रस्ताव के निपटाये जाने तक सभा के समक्ष नीति संबंधी मामलों पर मूल प्रस्ताव नहीं लाया जाता।[38]

प्रस्ताव पर चर्चा और उसकी व्याप्ति

सामान्यत: जिस सदस्य को सभा की अनुमति मिल गयी हो वही अविश्वास प्रस्ताव पेश करता है तथा चर्चा आरम्भ करता है। तथापि, अध्यक्षपीठ द्वारा ऐसे सदस्य को बिना भाषण दिये केवल प्रस्ताव पेश करने तथा दल के किसी अन्य सदस्य को वाद-विवाद आरम्भ करने की अनुमति दी जा सकती है।[39]

किसी अविश्वास प्रस्ताव, जिसे पेश किए जाने की अनुमति सभा द्वारा दे दी गई है, पर चर्चा उन्हीं कारणों तक सीमित नहीं रहती है जिनका उल्लेख उस प्रस्ताव की सूचना में किया गया हो। सामान्यत: उन विषयों पर चर्चा की जाती है, जिनका उल्लेख प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य ने किया हो, परन्तु कोई भी सदस्य यदि चाहे तो, उस प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान किसी भी विषय को उठा सकता है।[40] ऐसे विषय भी उठाये जा सकते हैं जिन पर उसी सत्र में अलग से चर्चा हो चुकी हो, यदि यह पता चलता है कि पिछली बार चर्चा हो चुकने के बाद उस संबंध में सरकार की कोई असफलता रही है।[41]

---

37. *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1964, पृ. 94-95; 22.7.1974, पृ. 148-49; 7.5.1981, पृ. 214-30 ।
38. *पूर्वोक्त,* 25.7.1966, पृ. 109; 26.7.1966, पृ. 119; 27.7.1966, पृ. 127; 24.7.1974, पृ. 104।
39. *लो.स.वा.वि.,* 9.5.1974, पृ. 127 और पृ. 162 ।
40. *पूर्वोक्त,* 9.3.1965, पृ. 1378 ।
41. उदाहरण के लिए, लोक सभा में 7 से 10 सितम्बर, 1964 तक खाद्य स्थिति के संबंध में चर्चा हुई। उसके बाद 11 और 14 से 18 सितम्बर, 1964 तक अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान खाद्य समस्या को हल करने में सरकार की असफलता का उल्लेख किया गया।

चूंकि इसमें अविश्वास प्रस्ताव का आधार निर्धारित नहीं है, अत: सभा के समक्ष प्रस्ताव यह हे 'कि यह सभा मंत्रिपरिषद् में विश्वास का अभाव व्यक्त करती है।' एक ही सत्र में सारवान रूप में समान प्रस्ताव पेश करना नियमों के अधीन अनुमत नहीं है।[42] सामान्य दशा में, सभा में एक ही सत्र में एक अविश्वास सत्र पर चर्चा करने और उसे निपटाने के बाद एक अविश्वास प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता[43], क्योंकि उसका पाठ पहले के प्रस्ताव जैसा ही होगा।

तथापि एक सत्र में एक से अधिक अविश्वास प्रस्ताव पेश करने पर निर्बंधन नहीं है, हालांकि अभी तक ऐसा नहीं किया गया, जो पहले प्रस्ताव पर चर्चा से निकले कुछ नये परिणामों के कारण अनिवार्य बन गया हो। अत: दूसरा प्रस्ताव केवल तभी स्वीकार्य होगा यदि वह पिछले प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान कवर न किये गये नये मामलों पर आधारित है।

सामान्यत: विपक्ष जिम्मेदारी से कार्य करता है और एक ही सत्र में ऐसा प्रस्ताव पुन: नहीं लाता परन्तु यदि पहले प्रस्ताव पर चर्चा के बाद कुछ गंभीर बात होती है और सरकार की सार्वजनिक रूप से तथा सभा में आलोचना होती है जिससे मंत्रिपरिषद् की साख कम हो तो विपक्ष एक अन्य अविश्वास प्रस्ताव की सूचना दे सकता है। अध्यक्ष ऐसे प्रस्ताव के प्राप्त होने पर इसे सभा के समक्ष रख सकता है और यदि उसकी राय में तुच्छ या सामान्य मामले पर, जिसके लिए अन्य प्रक्रियाएं उपलब्ध हैं, सभा की प्रक्रियाओं का दुरुपयोग और सभा की कार्यवाही में बाधा पहुंचाने की दृष्टि से प्रस्ताव लाया गया है तो वह उसे अस्वीकार कर सकता है।[44]

---

42. नियम 338
43. लो.स.वा.वि. 4.9.1974., पृ. 18-20 ।
44. एक ही सत्र के दौरान किसी सदस्य द्वारा दूसरी बार दी गई अविश्वास प्रस्ताव की सूचना के संबंध में अध्यक्ष ने 4 सितम्बर, 1974 को टिप्पणी की कि प्रस्ताव इसलिए नहीं लिया जा सकता क्योंकि इसी सत्र के दौरान मंत्रिपरिषद् में अविश्वास के एक प्रस्ताव पर पहले ही चर्चा हो चुकी है तथा उसे अस्वीकार किया जा चुका है और नियम 338 एक ही सत्र के दौरान ऐसे प्रस्ताव को फिर से पेश किए जाने का प्रतिषेध करता है। सदस्य उक्त प्रस्ताव इसलिए पेश करना चाहता था कि कुछ व्यावसायिक कम्पनियों को लाइसेंस देने के लिए एक याचिका पर लोक सभा के 20 सदस्यों के हस्ताक्षरों की कथित जालसाजी की जांच करने के लिए एक संसदीय समिति नियुक्त करने से संबंधित अनियत दिन वाले प्रस्ताव पर चर्चा करने हेतु समय उपलब्ध कराने में सरकार असफल रही। कुछ सदस्यों ने यह दलील दी कि नियम 338 किसी ऐसे प्रश्न को उठाने का प्रतिषेध करता है जो सारवान रूप से उस प्रश्न के समान हो जिस पर सभा उसी सत्र में विनिश्चय कर चुकी है और इसलिए नये मामले को उठाने वाला अविश्वास प्रस्ताव लिया जा सकता है। इस पर अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि अविश्वास प्रस्ताव में कोई कारण नहीं दिये गये थे और यदि कोई कारण दिये भी गये थे तो वे प्रस्ताव का भाग नहीं थे। इसलिए उसी सत्र के दौरान अविश्वास प्रस्ताव फिर से नहीं किया जा सकता। तत्पश्चात् संबंधित सदस्य ने नियम 338 को निलंबित करने का प्रस्ताव पेश किया जिसे अस्वीकार कर दिया गया—*लो.स.वा.वि.,* 4.9.1974, पृ. 18-20 ।

किसी अविश्वास प्रस्ताव पर उस तारीख से जिसको सभा द्वारा प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दी गई हो दस दिन के भीतर सभा में चर्चा किया जाना अपेक्षित है। ऐसे प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए तारीख नियत करते समय अध्यक्ष सभा के नेता से यह कह सकता है कि वह विभिन्न विपक्षी दलों तथा ग्रुपों से परामर्श करके प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए तारीख या तारीखों के सुझाव दे।[45] प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिये समय का नियतन सभा द्वारा कार्य मंत्रणा समिति[46] की सिफारिश पर किया जा सकता है; या सभा में कार्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष स्वयं इस प्रयोजन के लिए एक या अधिक दिन नियत कर सकता है।[47] सभा की सर्वसम्मति से उस दिन चर्चा की जा सकती है जिसकी सभा अनुमति देती है।[48] परन्तु, इस प्रकार नियत किया गया समय सभा की सहमति से बढ़ाया जा सकता है।[49]

चूंकि, अविश्वास प्रस्ताव में उसे पेश करने के कोई कारण नहीं बताये जाते, इसलिए उस प्रस्ताव में कोई संशोधन उस स्थिति में नियम विरुद्ध है जबकि उसका आशय उसमें कोई कारण बताना हो अथवा किसी विशेष मंत्री या मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रकट करना हो।

इस उद्देश्य से कि प्रस्ताव पर चर्चा नियत समय में समाप्त हो जाये और उसमें सभा के सभी ग्रुपों को बोलने का उचित अवसर प्राप्त हो, अध्यक्ष भाषणों की समय-सीमा निर्धारित कर सकता है और यह बता सकता है कि विभिन्न ग्रुपों के बीच समय किस अनुपात से बांटा जायेगा। चर्चा के लिए नियत किये गये कुल समय में से अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से कुछ समय किसी विशिष्ट विषय पर चर्चा के लिए अलग रख सकता है।[50]

---

45. *लो.स.वा.वि.,* 13.8.1963, पृ. 114; 14.8.1963, पृ. 249 ।

46. सत्रहवां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—तीसरी लोक सभा) और *लो.स.वा.वि.,* 14.8.1963, पृ. 249-51; चौदहवां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—चौथी लोक सभा) *लो.स.वा.वि.,* 20.2.1968, पृ. 971; तेईसवां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—चौथी लोक सभा) और *लो.स.वा.वि.,* 12.11.1968, पृ. 326-27; 28वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—चौथी लोक सभा) *लो.स.वा.वि.,* 19.2.1969, पृ. 121; 51वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—चौथी लोक सभा) लो.स.वा.वि., 28.7.1970, पृ. 342; 29.7.1970, पृ. 148; 44वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—पांचवीं लोक सभा) *लो.स.वा.वि.,* 23.7.1974, पृ. 141; 24.7.1974, पृ. 104 ।

    सातवीं लोक सभा का नौवां सत्र जिसे 13 अगस्त, 1982 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया जाना था, अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए समय उपलब्ध कराने हेतु कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिश पर एक दिन (16.8.1982) और बढ़ा दिया गया।

47. नियम 198(3)।

48. *लो.स.वा.वि.,* 17.9.1981, पृ. 193, 212-13; 10.12.1987, पृ. 209-347; 18.8.2003, कॉ. 327-28 ।

49. *पूर्वोक्त,* 21.8.1963, पृ. 921-22; 22.8.1963, पृ. 1061-62 ।

50. 7 सितम्बर, 1964 को लोक सभा ने एक अविश्वास प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दी। अगले दिन अध्यक्ष ने लोक महत्व के विषय पर स्थगन प्रस्ताव पेश करने की अनुमति इस आधार

जब सदस्य प्रस्ताव पर बोल चुके हों तो प्रधान मंत्री[51] सरकार पर लगाये गए आरोपों का उत्तर देता है। प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को वाद-विवाद का उत्तर देने का अधिकार है।[52]

जब प्रस्ताव पर वाद-विवाद समाप्त हो जाता है तो अध्यक्ष प्रस्ताव पर सभा का निर्णय जानने के लिये तुरन्त सभा के सामने प्रश्न रख सकता है।[53]

त्यागपत्र देने वाले मंत्री का वक्तव्य

जो सदस्य मंत्री पद से त्यागपत्र दे दे, वह अध्यक्ष की सहमति से अपने त्यागपत्र के स्पष्टीकरण में व्यक्तिगत वक्तव्य दे सकता है[54] परन्तु सभा में ऐसे मंत्री द्वारा कोई वक्तव्य नहीं दिया जा सकता, जो लोक सभा का सदस्य न हो, क्योंकि उसका त्यागपत्र स्वीकार होते ही वह मंत्री नहीं रहता और फिर वह उस सभा की कार्यवाही में भाग लेने के अपने अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता, जिसका वह सदस्य नहीं है।

यद्यपि ऐसा मंत्री जिसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया हो, प्रथानुसार अपने त्यागपत्र के कारण स्पष्ट करने के लिये सभा में एक वक्तव्य देता है जबकि वह ऐसा वक्तव्य देने के लिए बाध्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, जहां त्यागपत्र दिए जाने के कारण सुविदित हों, वहां ऐसा वक्तव्य दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।[55]

पर नहीं दी कि उस विषय पर अविश्वास प्रस्ताव पर वाद-विवाद के दौरान चर्चा की जा सकती है। अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा के लिये नियत 20 घंटों में से ढाई घंटे का समय स्थगन प्रस्ताव के विषय पर चर्चा के लिये अलग रखा गया था—*लो.स.वा.वि.,* 7.9.1964, पृ. 95; 8.9.1964, पृ. 206-07 ।

51. 8 मई, 1998 को प्रधान मंत्री, जो राजकीय यात्रा पर विदेश गए हुए थे, की अनुपस्थिति में अविश्वास प्रस्ताव में उठाये गए प्रश्नों का उत्तर सरकार की ओर से वित्त मंत्री ने दिया था।
52. *लो.स.वा.वि.,* 25.7.1974, पृ. 140-49; 11.12.1987, पृ. 311-13 ।
53. नियम 198(4) *लो.स.वा.वि.,* 18.9.1964, पृ. 1073 ।
54. नियम 199 (1) नियमों में यथा परिभाषित 'मंत्री' शब्द का तात्पर्य मंत्रिपरिषद् का कोई सदस्य, राज्य मंत्री, उपमंत्री या संसदीय सचिव है—नियम 2 ।
    त्यागपत्र देने वाले मंत्रियों के वक्तव्यों के उदाहरणार्थ *देखिये—सी.ए.*(लेजि.) डिबेट्स (II), 17.8.1948, पृ. 357; *पी. डिबेट्स* (II); 19.4.1950, पृ. 3017; *लो.स.वा.वि.*, 25.7.1956, पृ. 281; *लो.स.वा.वि.,* 18.2.1958, पृ. 615; 17.8.1963, पृ. 517; 21.7.1969, पृ. 191-94; 31.7.1972, पृ. 160-61; 5.3.1975, पृ. 133-36; *लो.स.वा.वि.,* 5.3.1986, पृ. 127-31 और 11.3.1986, पृ. 189-90; 25.8.2006, का. 431-35; 20-4-2010 कॉ. 46-48; 21.11.2012 कॉ. 19-20; 29.11.2012 कॉ. 35-37 ।
    अभी तक लोक सभा में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है कि या तो किसी प्रधान मंत्री ने त्यागपत्र देने के बाद कोई वक्तव्य दिया हो या उसके उत्तराधिकारी ने मंत्रिमंडल में परिवर्तन के कारणों के संबंध में सभा को सूचित किया हो।
55. *लो.स.वा.वि.,* 9.11.1962, पृ. 197-98 और 28.6.1968, कॉ. 1650-51 ।

अध्यक्ष ऐसे सदस्य को, जिसने मंत्रीपद से त्यागपत्र दे दिया हो, सभा में वक्तव्य देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।[56] तथापि, मंत्रीपद से त्यागपत्र देने वाले सदस्य से वक्तव्य देने की मांग करने हेतु सदस्यों को नियम 199 के अधीन प्रश्न पूछने की अनुमति दी जा सकती है। यदि मंत्रीपद से त्यागपत्र देने वाले सदस्य को इस नियम के अधीन, सभा में वक्तव्य देने का विशेषाधिकार है, तो विविक्षित तौर पर अन्य सदस्यों को यह छूट है कि वे उस विशेषाधिकार का उपयोग करने के लिए अनुरोध करें। अन्ततः यह त्यागपत्र देने वाले सदस्य पर निर्भर करता है कि ऐसा वक्तव्य दे या न दे।

17 जुलाई, 1978 को जब अध्यक्ष ने उन मंत्रियों जिन्होंने हाल ही में मंत्रिपरिषद् से त्यागपत्र दिया परन्तु अपने त्यागपत्र के सम्बन्ध में सभा में कोई वक्तव्य नहीं दिया, के बारे में प्रश्न पूछने के लिए विपक्ष के नेता को आमंत्रित किया तो कई सदस्यों ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया कि यह मंत्री पद से त्यागपत्र देने वाले सदस्यों के स्वनिर्णय पर निर्भर करता है कि वे अपने त्यागपत्र के संबंध में वक्तव्य दें और अन्य सदस्यों को नियम 199 के अधीन ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है कि वे पूर्व मंत्रियों से ऐसे किसी वक्तव्य की मांग करें। अध्यक्ष ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि विगत में तीन ऐसे अवसर आए हैं जहां तत्कालीन अध्यक्ष ने पूर्व मंत्रियों से सभा में वक्तव्य देने का अनुरोध करने के लिए इस नियम के अधीन सदस्यों को प्रश्न पूछने की अनुमति दी थी।[57]

17 अगस्त, 1978 को अध्यक्ष ने एक पूर्व मंत्री द्वारा उन्हें दी गई इस आशय की जानकारी से सभा को अवगत कराया कि वह मंत्री पद से अपने त्यागपत्र देने के कारण स्पष्ट करने के लिए कोई वक्तव्य, जिसे उस दिन की कार्य सूची में शामिल किया गया था, नहीं देंगे। जब कई सदस्यों ने इस संबंध में व्यवस्था का प्रश्न उठाया तो अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि नियमों के अधीन उन्हें किसी सदस्य को वक्तव्य देने के लिए बाध्य करने का कोई अधिकार नहीं है। अध्यक्ष ने आगे यह विनिर्णय दिया कि सदस्य द्वारा अध्यक्ष को भेजा गया वक्तव्य सभा की सम्पत्ति नहीं बन गया है। इसके पश्चात्, उसी सत्र के दौरान उसी पूर्व मंत्री ने अध्यक्ष को लिखा कि वह 24 अगस्त, 1978 को नियम 199 के अधीन अपना वक्तव्य देंगे और वक्तव्य की एक प्रति सत्र के साथ भेजी जिसे उन्होंने इस बीच संशोधित कर दिया था। उस दिन की पुनरीक्षित कार्य-सूची में उस मद को शामिल किया गया था। जब उस मद को लिए जाने का समय आया तो अनेक सदस्यों ने पूर्व मंत्री को इतने विलम्ब से और उन्हें पहले दिए गए अवसर पर वक्तव्य देने से उनके द्वारा मना किये जाने के बाद वक्तव्य देने की अनुमति दिए जाने पर आपत्ति की। इस पर अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि जब भी कोई मंत्री स्वेच्छा से अथवा प्रधान मंत्री के अनुरोध पर त्यागपत्र देता है तो उसे सभा में वक्तव्य देने का अधिकार है और

56. *लो.स.वा.वि.*, 18.2.1965, पृ. 78; 2.3.1965, पृ. 849; 20.3.1981, पृ. 155-56 और 27.2.1986 कॉ -1 ।

57. *लो.स.वा.वि.*, 17.7.1978, पृ. 137-41 ।

इस नियम में वक्तव्य देने के सम्बन्ध में किसी प्रकार की समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है। अध्यक्ष ने यह भी टिप्पणी की कि यदि वक्तव्य देने में अनुचित विलम्ब हुआ तो उन्होंने इसकी अनुमति नहीं दी होती परन्तु, चूंकि यह वक्तव्य सत्र के दौरान ही दिया जा रहा है, तो यह उचित नहीं होगा कि वह सदस्य को अपना वक्तव्य देने के लिए अपनी अनुमति देने से मना करे। तत्पश्चात् पूर्व मंत्री ने अपने त्यागपत्र के स्पष्टीकरण में वक्तव्य दिया। इसके बाद प्रधान मंत्री ने अपना वक्तव्य दिया।[58]

इसी प्रकार, एक अन्य पूर्व मंत्री जिसने जून, 1978 में त्यागपत्र दे दिया था, ने अंततः 22 दिसम्बर, 1978 को नियम 199 के अधीन लोक सभा में वक्तव्य दिया। यद्यपि उन्होंने पहले वक्तव्य देने की इच्छा व्यक्त की थी, इसे किसी न किसी कारण से स्थगित किया जाता रहा। पूर्व मंत्री के वक्तव्य के बाद प्रधान मंत्री ने वक्तव्य दिया।[59]

नियम 199 को इस बीच संशोधित कर दिया गया है और अब वह मंत्री जो त्यागपत्र दे देता है, अध्यक्ष की सहमति से, उस सत्र, जिसमें राष्ट्रपति द्वारा त्यागपत्र स्वीकार किया गया, के दौरान किसी भी दिन अपना वक्तव्य दे सकता है।

इस नियम में यह उपबंध है कि यदि राष्ट्रपति द्वारा त्यागपत्र ऐसे समय स्वीकार किया जाता है। जब सभा का सत्र न हो तो सदस्य सत्र शुरू होने की तारीख से सात दिन के भीतर शीघ्र ही किसी दिन ऐसा वक्तव्य दे सकेगा।

जब कोई मंत्री अपने सहकर्मियों के साथ मतभेद के कारण त्यागपत्र दे देता है और सभा में वक्तव्य देने का निर्णय लेता है तो वह इस प्रकार के मतभेद, जिससे मंत्रिमंडल की गोपनीय बात की ऐसी किसी जानकारी, जिसका देश की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता हो, के प्रकट होने की संभावना हो, का उल्लेख नहीं कर सकता। तथापि, यदि वह यह महसूस करता है कि उसके लिए प्रासंगिक मामलों का उल्लेख करना आवश्यक है, तो उसे प्रधान मंत्री की अनुमति लेनी पड़ती है और अध्यक्ष को इस बात की सूचना पहले से देनी पड़ती है कि उसने प्रधान मंत्री की अनुमति प्राप्त कर ली है। किसी बात का रहस्योद्घाटन या सांविधानिक औचित्य के प्रति आक्रामक वक्तव्य दिये जाने से बचने के लिये त्यागपत्र देने वाले मंत्री के लिये यह आवश्यक है कि वह उस वक्तव्य, जो वह देना चाहता है, की एक प्रति या उसका सार अध्यक्ष तथा प्रधान मंत्री को उस दिन जिस दिन वक्तव्य दिया जाना है, से एक दिन पहले दे दे।[60]

अध्यक्ष द्वारा प्राप्त वक्तव्य की अग्रिम प्रति या उसके सार को तब तक गोपनीय समझा जाता है, जब तक वह वक्तव्य वास्तव में सभा में दे नहीं दिया जाता है।

---

58. *लो.स.वा.वि.,* 24.8.1978, पृ. 136-37 ।
59. *पूर्वोक्त,* 22.12.1978, पृ. 203-11 ।
60. *देखिए* नियम 199(2) । वक्तव्य की एक प्रति पहले से देने का उपबन्ध 1953 में किया गया था। कार्यवाही सारांश (नियम समिति) 17.4.1953 और यह उपबंध राजपत्र एच.पी. अधिसूचना संख्या 290-सी/53, 19.5.1953 में अधिसूचित किया गया था, *राजपत्र असाधारण* (1-1), 30.5.1953 ।

जब अध्यक्ष सभा में वक्तव्य दिये जाने की अनुमति दे देता है, तो उस मद को कार्य-सूची में शामिल कर लिया जाता है और ऐसा वक्तव्य सामान्यतः प्रश्नकाल के बाद और उस दिन का मुख्य कार्य प्रारम्भ होने से पहले दिया जाता है।[61] परन्तु यदि आपवादिक मामले में त्यागपत्र देने वाला मंत्री वक्तव्य देने से पहले कार्य-सूची में किसी ऐसी मद, जो उसके नाम में रखी गयी हो, का निपटान चाहता है तो वह ऐसे समय पर जो अध्यक्ष नियत करे, वक्तव्य दे सकता है।

वक्तव्य पर चर्चा न होना

किसी सदस्य, जिसने मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया है, द्वारा अपने त्यागपत्र के स्पष्टीकरण में दिए गए वक्तव्य पर किसी वाद-विवाद की अनुमति नहीं दी जाती है।[62] परन्तु उस वक्तव्य के दिये जाने के बाद कोई मंत्री उससे संगत कोई वक्तव्य दे सकता है।[63] ऐसा वक्तव्य सामान्यतः प्रधान मंत्री द्वारा दिया जाता है।[64] उसके बाद, अन्य कोई भी मंत्री त्यागपत्र देने वाले मंत्री के वक्तव्य में उठाये गये किसी विषय के संबंध में वक्तव्य नहीं दे सकता।

मंत्री और संसद

सरकार में अविश्वासः संसदीय प्रणाली में हाल ही में हुई घटनाओं से स्पष्ट रूप से यह निश्चित हो गया है कि सभा में सरकार की प्रत्येक हार का यह अर्थ नहीं है कि उसने सभा में अपना विश्वास खो दिया है। जब तक नीति संबंधी कोई महत्वपूर्ण मामला अंतर्ग्रस्त न हो, केवल इस तथ्य पर कि सरकार द्वारा लाए गए किसी प्रस्ताव को सभा द्वारा पारित नहीं किया गया है, मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास मत के रूप में नहीं माना जाता और सरकार त्यागपत्र देने के लिए बाध्य नहीं है। सरकार को केवल प्रत्यक्ष अविश्वास मत पारित करके ही बर्खास्त किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

---

61. नियम 199(3) और निदेश 2 ।
62. *लो.स.वा.वि.,* 17.8.1963, पृ. 521 ।
63. नियम 199(3), 1947 में बनाये गये मूल नियम में यह उपबन्ध किया गया था कि मंत्री 'उत्तर में' वक्तव्य दे सकता है। 1950 मे, अंतरिम संसद के लिये संविधान सभा (विधायी) नियमों को स्वीकार करते समय 'उत्तर में' शब्दों के स्थान पर 'उससे संबंधित' शब्द रखे गये थे— संसद सचिवालय अधिसूचना संख्या 30/1/50-ए 26.1.1950, *राजपत्र, असाधारण,* 14.2.1950।
64. उदाहरण के लिए 21 जुलाई, 1969 को मोरारजी देसाई ने उपप्रधान मंत्री पद से त्यागपत्र देने के बारे में एक वक्तव्य दिया। उन्होंने इस संबंध में तत्कालीन प्रधान मंत्री के साथ किए गए पत्र व्यवहार की प्रतियां भी सभा पटल पर रखीं। तत्कालीन प्रधानमंत्री (इंदिरा गांधी) ने भी उसके बाद एक वक्तव्य दिया—*लो.स.वा.वि.,* 21.7.1969, पृ. 191-94; अन्य उदाहरणों के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.*, 24.8.1978, पृ. 136-37; 22.12.1978, पृ. 179-211 ।

लोक सभा के प्रति मंत्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व [अनुच्छेद 75(3)] से संबंधित सांविधानिक उपबंध को ध्यान में रखते हुए, अविश्वास का प्रस्ताव केवल सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद के विरुद्ध पेश किया जा सकता है न कि केवल किसी एक मंत्री के विरुद्ध । तथापि, सामान्य प्रस्तावों के संबंध में नियम 184 के अधीन किसी एक मंत्री के विरुद्ध पेश किए गए किसी निन्दा प्रस्ताव के पक्ष में अथवा उसके विरुद्ध नियम में कुछ नहीं कहा गया है।[65]

मंत्री को पद तथा गोपनीयता की शपथ और सूचना का प्रकटीकरण: अनुच्छेद 75(4) में यह उपबंध है कि किसी मंत्री द्वारा अपना पद ग्रहण से पहले, राष्ट्रपति उसे पद की तथा गोपनीयता की शपथ दिलाएगा। गोपनीयता की शपथ किसी मंत्री को, उस उपलब्ध कराई गई जानकारी या उसे ज्ञात जानकारी के प्रकटीकरण, का प्रतिषेध करती है, सिवाय उस जानकारी के जो ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अपेक्षित हो। गोपनीयता का अर्थ एकदम छिपाना नहीं है। यह इस महत्वपूर्ण शर्त के अध्यधीन है, अर्थात् वह मंत्री के रूप में उसके द्वारा एकत्र की गई जानकारी को प्रकट कर सकता है यदि वह मंत्री के रूप में उसके कर्त्तव्यों के विधिवत् निर्वहन के लिए आवश्यक हो। किसी बात को एक अवसर पर गोपनीय रखना अपेक्षित होता है तो बाद में उसे लोगों की जानकारी में लाया जाना अपेक्षित हो सकता है। एक मंत्री का यह विचार हो सकता है कि किसी विशिष्ट सूचना को गोपनीय रखा जाना चाहिए जबकि उसके उत्तरवर्ती मंत्री का यह विचार हो सकता है कि इस जानकारी को लोगों के ध्यान में लाना लोक हित में होगा। इस प्रश्न कि क्या मंत्री द्वारा प्रकट की गई कोई विशिष्ट जानकारी मंत्री के रूप में उसके कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए अपेक्षित है, का निर्णय करना बहुत कठिन है और जब तक अध्यक्ष यह कहने में असमर्थ है कि किया गया प्रकटीकरण संबंधित मंत्री के कर्त्तव्यों के समुचित निर्वहन के लिए आवश्यक नहीं है, तब तक यह कहना संभव नहीं है कि इससे किसी सांविधानिक उपबंध का उल्लंघन हुआ है।[66]

विश्वास प्रस्ताव

नियम 198(1) के अधीन अविश्वास प्रस्ताव सुस्थापित प्रक्रियात्मक साधन होने के अतिरिक्त विश्वास प्रस्ताव का उपयोग सत्तारूढ़ सरकार के बहुमत का परीक्षण करने के लिए भी किया जाता है। मंत्रिपरिषद में विश्वास प्रस्ताव के सम्बन्ध में प्रक्रिया नियमों में कोई विशिष्ट नियम नहीं है। तथापि, हाल ही में मुख्य धारा के राजनीतिक दलों में विभाजन हो जाने के कारण अल्पमत सरकारों के युग के आगमन और त्रिशंकु संसद के परिणामस्वरूप मिली-जुली सरकारों के गठन का दौर शुरू होने पर विश्वास प्रस्ताव के साधन की आवश्यकता अनुभव की गई है।

---

65. *देखिए* प्रस्तावों संबंधी अध्याय 26 ।

66. *लो.स.वा.वि.*, 20.4.1978, पृ. 148 ।

किसी विशिष्ट नियम के अभाव में अविश्वास प्रस्तावों को नियम 184 के अधीन निर्दिष्ट प्रस्ताव जो लोक हित में मामलों पर चर्चा करवाने के लिये हैं, की श्रेणी के अन्तर्गत गृहीत किया गया है। ऐसे प्रस्तावों पर निर्णय नियम 191 के अधीन सभा के समक्ष सभी आवश्यक प्रश्न रख कर लिए जाते हैं। अविश्वास प्रस्ताव के लिये तो सभा की अनुमति लेनी होती है, किन्तु विश्वास प्रस्ताव के लिये सभा की अनुमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। नियम 184 के अधीन प्रस्ताव को एक पंक्ति की सूचना का पाठ इस प्रकार होता है—'यह सभा मंत्रिपरिषद में विश्वास व्यक्त करती है।'

विश्वास प्रस्ताव की भाषा अविश्वास प्रस्ताव की भाषा के एकदम विपरीत होती है। अविश्वास प्रस्ताव और विश्वास प्रस्ताव दोनों का प्रयोजन और उद्द्देश्य एक ही होता है। विश्वास प्रस्ताव को अविश्वास प्रस्ताव की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है भले ही दोनों प्रस्ताव की सूचनायें प्राप्त हुईं हो क्योंकि मुख्य रूप से नियम 25 के अधीन सरकारी कार्य के सम्पादन के लिये नियत दिनों में अन्य कार्यों की तुलना में सरकारी कार्य को प्राथमिकता प्राप्त है।

चूंकि इस प्रस्ताव की आवश्यकता तभी अनुभव की जाती है जब सरकार की वैधता को लेकर संदेह हो, अत: ऐसे में यही उपयुक्त होता है कि सकारात्मक विश्वास मत प्राप्त किया जाये।

अविश्वास प्रस्ताव को गृहीत करने के उद्देश्य से यह जरूरी है कि नियम 198 में निर्धारित शर्तों को पूरा किया जाये जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध किया गया है कि (क) यदि प्रस्ताव के समर्थन में कम से कम 50 सदस्य खड़े हो जायें तो अध्यक्ष घोषणा करेगा कि अनुमति दी जाती है, और (ख) कि प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा नियत किसी ऐसे दिन लिया जायेगा जो अनुमति मांगने के दिन से दस दिन से अधिक बाद का न हो। विश्वास प्रस्ताव के मामले में नियम 190 सुसंगत है जो सामान्य प्रस्तावों से संबधित है और जिसका पाठ इस प्रकार है: "अध्यक्ष सभा के कार्य की स्थिति पर विचार करने के बाद और सभा के नेता के परामर्श से या कार्यमंत्रणा समिति की सिफारिश पर ऐसे किसी प्रस्ताव पर चर्चा के लिये कोई एक दिन या अधिक दिन या किसी दिन का भाग नियत कर सकता है।''

लोक सभा में प्रस्तुत विश्वास प्रस्ताव और अविश्वास प्रस्ताव

विगत 60 वर्षों के दौरान, यानि 1952 में पहली लोक सभा के समय से 2012 में चौदहवीं लोक सभा के दौरान विभिन्न मंत्रिपरिषदों में 27 अविश्वास प्रस्तावों और 12 विश्वास प्रस्तावों को गृहीत किया गया जैसा कि आगे दी गई तालिका[67] में दर्शाया गया है :

67. जी.सी. मलहोत्रा: कैबिनेट रिस्पान्सिबिलिटी टू लेजिस्लेचर: *'मोशंस आफ कांफिडेंस एंड नो कांफिडेंस* इन लोक सभा एण्ड स्टेट लेजिस्लेचर्स (2004)' (तेरहवीं लोक सभा तक की स्थिति) लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली से उद्धृत।

तालिका

लोक सभा में गृहीत अविश्वास प्रस्ताव और विश्वास प्रस्ताव

लोक सभा	*अवधि*	*अविश्वास प्रस्ताव*	*विश्वास प्रस्ताव*
पहली	17.04.52–04.04.57	–	–
दूसरी	05.04.57–31.03.62	–	–
तीसरी	02.04.62–03.03.67	6	–
चौथी	04.03.67–27.12.70	6	–
पांचवीं	15.03.71–18.01.77	4	–
छठी	23.03.77–22.08.79	2	1
सातवीं	10.01.80–31.12.84	3	–
आठवीं	31.12.84–27.11.89	1	–
नौवीं	02.12.89–13.03.91	–	3
दसवीं	20.06.91–10.05.96	3	1
ग्यारहवीं	15.05.96–04.12.97	–	4
बारहवीं	19.03.98–26.04.99	–	2
तेरहवीं	10.10.99–6.02.2004	1	–
चौदहवीं	17.05.2004–8.05.2009	–	1
पंद्रहवीं	18.05.2009	1	—
योग		27	12

पहली दो लोक सभाओं में ऐसा कोई प्रस्ताव गृहीत नहीं किया गया था, जबकि तीसरी और चौथी लोक सभा में सर्वाधिक छह-छह अविश्वास प्रस्तावों पर चर्चा हुई और सबसे ज्यादा विश्वास प्रस्ताव ग्यारहवीं लोक सभा में लिए गए। सभा ने सभी 26 अविश्वास प्रस्तावों पर और 12 विश्वास प्रस्तावों में से 11 पर चर्चा की।[68] 22 नवम्बर 2012 को पन्द्रहवीं लोक सभा में अविश्वास प्रस्ताव को पेश करने की अनुमति नहीं दी गई क्योंकि प्रस्ताव के समर्थन में आवश्यक संख्या में सदस्य खड़े नहीं हुए थे।

68. इस विषय के विस्तृत विश्लेषण के लिए *देखिए पूर्वोक्त* ।

अध्याय 29

वित्तीय विषयों के संबंध में प्रक्रिया

बजट प्रस्तुत किया जाना

प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार का 'वार्षिक वित्तीय विवरण' या प्राक्कलित आय तथा व्यय का विवरण रखवाता है।[1] यह वार्षिक वित्तीय विवरण, जिसे दूसरे शब्दों में 'बजट' कहा जाता है, दो भागों में प्रस्तुत किया जाता है, अर्थात् रेल बजट, जो कि रेल वित्त के संबंध में होता है और सामान्य बजट, जो रेलवे को छोड़कर भारत सरकार की वित्तीय स्थिति का समूचा चित्र प्रस्तुत करता है।

रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग करने की सिफारिश सबसे पहले 1920-21 में की गयी थी,[2] और 'अलग-अलग बजट रखने की परम्परा' को केन्द्रीय विधान सभा ने 20 सितम्बर, 1924 को एक संकल्प के द्वारा स्वीकार किया।[3] इस पृथक्करण का मूल उद्देश्य यह था कि रेल राजस्व से सामान्य राजस्व को निश्चित रूप में अंशदान किये जाने की व्यवस्था करके सिविल प्राक्कलनों में स्थायित्व लाया जाये और रेल वित्त के प्रशासन में लचीलापन लाया जाये।

समय-समय पर गठित की जाने वाली रेल अभिसमय समिति जो संसद के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनती है; रेलवे द्वारा सामान्य राजस्व को देय लाभांश दर की सिफारिश करती है। समिति की सिफारिशों को लोक सभा तथा राज्य सभा द्वारा पारित संकल्पों के माध्यम से स्वीकार किया जाता है।

वर्ष 1949 की रेल अभिसमय समिति ने 1924 के इस सूत्र का परित्याग कर दिया, जिसके अंतर्गत रेलवे से सामान्य राजस्व को एक निश्चित वार्षिक अंशदान प्राप्त होता था और यह तय किया कि 'किसी सहमत अवधि में एक नियत लाभांश (4 प्रतिशत) सामान्य राजस्व को भारित पूंजी पर निश्चित प्रतिफल सुनिश्चित करेगा।'[4] समिति की इस सिफारिश को भारत की संविधान सभा (विधायी) ने 21 दिसम्बर, 1947 को स्वीकार कर लिया।[5]

---

1. अनुच्छेद 112 और नियम 204 ।
2. एकवर्थ समिति की रिपोर्ट, 1920-21, खण्ड 1, पृ. 26 सर विलियम एकवर्थ की अध्यक्षता में रेल, वित्त और प्रशासन से संबंधित मामलों संबंधी एक दस सदस्यीय विशेषज्ञ समिति ने 1921 में प्रकाशित अपने प्रतिवेदन में भारतीय रेल के राजकीय प्रबन्धन का समर्थन किया। रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग करने का ऐतिहासिक निर्णय भी इसी प्रतिवेदन का नतीजा था।
3. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.9.1924, पृ. 3869-70 ।
4. *देखिए* रेल मंत्री का 1950-51 का भाषण, *पी. डिबेट्स,* 21.2.1950, पृ. 686-705 ।
5. *सी.ए. (लेज.) डिबेट्स,* 21.12.1949, पृ. 942-43 ।

वर्ष 1960 के अभिसमय के अंतर्गत 1961 से 1966 की अवधि के लिए लाभांश की दर बढ़ाकर 4.25 प्रतिशत कर दी गयी। तथापि, चीन के आक्रमण और सरकार द्वारा लिये गए ऋण के बढ़ते हुये खर्च के कारण बदली हुई परिस्थितियों में 1 अप्रैल, 1963 से यह दर और बढ़ाकर 4.5 प्रतिशत कर दी गयी। वर्ष 1965 के अभिसमय के अंतर्गत 4.5 प्रतिशत की बढ़ी हुई दर आगामी पांच वर्ष की अवधि के लिये जारी रखी गयी।[6]

वर्ष 1971 की रेल अभिसमय समिति ने अपने अन्तरिम प्रतिवेदन में सिफारिश की थी कि समिति द्वारा सिफारिश की गई कुछ रियायतों और छूटों के अध्यधीन रेलवे को 1971–72 और 1972–73 की अवधि के दौरान 1963–64 तक रेलवे में निवेशित पूंजी पर 4.5 प्रतिशत की चालू दर से लाभांश के अतिरिक्त यात्री भाड़ा कर के बदले एक प्रतिशत और 31 मार्च, 1974 के पश्चात् निवेशित पूंजी पर 6 प्रतिशत की दर से सामान्य राजस्व में भुगतान करना जारी रखना चाहिए।[7] रेल अभिसमय समिति (1980) के सातवें प्रतिवेदन में की गई सिफारिश के अनुसार लाभांश की दर बढ़ाकर 6.5 प्रतिशत कर दी गई थी। बाद की सभी समितियों ने अपने प्रतिवेदनों में इसी दर को वर्ष 1992–93 तक बनाए रखा।

रेल अभिसमय समिति (1991) ने अपने पांचवें प्रतिवेदन में वर्ष 1994–95 के लिए 7 प्रतिशत लाभांश की सिफारिश की, चाहे निवेश वर्ष जो भी हो। नौवें प्रतिवेदन में समिति (1991) ने 7 प्रतिशत की इसी लाभांश दर को बनाए रखा और 1952 से पहले किए गए निवेश को लाभांश मुक्त घोषित कर दिया।

तथापि, रेल अभिसमय समिति (1996) ने अपने तीसरे प्रतिवेदन में फिर से पूर्व स्थिति पर आते हुए वर्ष 1996–97 के लिए निवेश के वर्ष पर विचार किये बिना लाभांश की दर 7 प्रतिशत बनाए रखने की सिफारिश की। रेल अभिसमय समिति (1998) ने भी लाभांश की इसी दर को बनाए रखा। रेल अभिसमय समिति (1999) ने अपने पहले ही प्रतिवेदन में लाभांश की दर बढ़ाकर 7.5 प्रतिशत कर दी। तथापि, दूसरे प्रतिवेदन में लाभांश की दर घटाकर 7 प्रतिशत कर दी गई और 2003–04 तक उसी दर को जारी रखा गया। रेल अभिसमय समिति (2004) ने अपने पहले प्रतिवेदन में लाभांश की दर को और घटाकर

---

6. रेल अभिसमय समिति के प्रतिवेदन, 1960 और 1965; *एल.एस. डिबेट्स,* 6.12.1960, कॉ. 4176; 8.12.1965, कॉ. 6443–51 ।

7. *देखिए* अध्याय 30—'संसदीय समितियां' उपशीर्षक 'रेल अभिसमय समिति' के अंतर्गत और साथ ही *देखिए रेल* अभिसमय समिति, 1971 का अंतरिम प्रतिवेदन; रेल अभिसमय समिति, 1971 का 'लेखा संबंधी मामलों' के बारे में प्रथम प्रतिवेदन; रेलवे अभिसमय समिति, 1973 का अन्तरिम प्रतिवेदन; रेल अभिसमय समिति, 1973 का छठा और ग्यारहवां प्रतिवेदन; रेल अभिसमय समिति, 1980 का सातवां प्रतिवेदन; रेल अभिसमय समिति, 1991 का पांचवां और नौवां प्रतिवेदन; रेल अभिसमय समिति, 1996 का तीसरा प्रतिवेदन; रेल अभिसमय समिति, 1999 का पहला और दूसरा प्रतिवेदन; रेल अभिसमय समिति, 2004 का पहला, पांचवां और छठा प्रतिवेदन; रेल अधिसमय समिति, 2009 का पहला, दूसरा, तीसरा और छठा प्रतिवेदन।

6.5 प्रतिशत कर दिया। वर्ष 2006-07 तक इसी दर को जारी रखा गया। रेल अभिसमय समिति (2004) के पांचवें प्रतिवेदन में वर्ष 2007-08 के लिए 7 प्रतिशत लाभांश दर की सिफारिश की गई। वर्ष 2008-09 में इसी दर को जारी रखा गया। रेल अभिसमय समिति (2009) के पहले प्रतिवेदन में वर्ष 2009-10 और 2010-11 के लिए 6 प्रतिशत लाभांश दर की सिफारिश की गई। दूसरे प्रतिवेदन में, लाभांश की दर को घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया और तीसरे प्रतिवेदन में इसे और घटाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया । रेल अधिसमय समिति (2009) ने अपने छठे प्रतिवेदन में वर्ष 2013-14 के लिए लाभांश की दर को बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दिया।

विधायिका के अनुमोदन हेतु बजट को तैयार करना और प्रस्तुत करना, केन्द्र और राज्यों, की सरकारों का एक संवैधानिक दायित्व है। एक कामचलाऊ सरकार द्वारा भी संसद में वित्तीय कार्य के संचालन को अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद् कोई राजनैतिक-शून्य पैदा किए बिना कार्य करना जारी रखती है।[8] ऐसा भी एक उदाहरण है जब एक सरकार द्वारा प्रस्तुत रेल बजट और अनुदानों की मांगों (रेल) तथा सामान्य बजट और अनुदानों की मांगों (सामान्य) को उत्तरवर्ती सरकार द्वारा विचारार्थ लिया गया[9] और सभा द्वारा पारित किया गया।

---

8. नौवीं लोक सभा के सातवें सत्र के दौरान केन्द्र में चन्द्र शेखर के नेतृत्व में एक कामचलाऊ सरकार थी। बुलेटिन (1), 6-3-1991 । 11 मार्च, 1991 को सदन को अनिवार्य वित्तीय कार्य करना था, यथा: 1991-92 का अंतरिम रेल बजट, 1991-92 का अंतरिम सामान्य बजट तथा पंजाब, असम तमिलनाडु, जम्मू-कश्मीर राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्र पांडिचेरी का वर्ष 1991-92 का बजट। अनेक सदस्यों ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया कि क्या एक कामचलाऊ सरकार लोक सभा में वित्तीय कार्य के संचालन के लिए सक्षम है। अध्यक्ष ने विनिर्णय दिया कि, प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद् कार्य कर रही है। कोई राजनैतिक-शून्य पैदा नहीं हुआ है। वित्तीय कार्य के संचालन में सरकार पूरी तरह सक्षम है। उपर्युक्त बजट बिना किसी चर्चा के पारित हो गया।

9. ग्यारहवीं लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान प्रधानमंत्री देवगौड़ा के नेतृत्व वाली सरकार के अन्तर्गत रेल मंत्री (श्री राम विलास पासवान) तथा वित्त मंत्री (पी. चिदम्बरम) द्वारा क्रमश: 26 और 28 फरवरी, 1997 को रेल बजट/अनुदानों की मांगें (रेल) और सामान्य बजट/अनुदानों की मांगें (सामान्य) प्रस्तुत की गई थीं। देवगौड़ा के नेतृत्व वाली सरकार 11 अप्रैल, 1997 को मतदान में गिर गई। तत्पश्चात् आई.के. गुजराल के नेतृत्व में नई सरकार ने कार्यभार संभाला तथा राम विलास पासवान और पी. चिदम्बरम ने अपने-अपने विभाग पुन: संभाल लिए। पूर्ववर्ती सरकार द्वारा प्रस्तुत की गई अनुदानों की मांगे (रेल) और अनुदानों की मांगें (सामान्य) को नई सरकार द्वारा विचारार्थ लिया गया तथा उन्हें क्रमश: 2 और 6 मई, 1997 को सदन द्वारा पारित कर दिया गया।

बजट[10] लोक सभा में ऐसे दिन प्रस्तुत किया जाता है, जैसा कि राष्ट्रपति निदेश दें।[11] परिपाटी यह है कि सामान्य बजट प्रत्येक वर्ष फरवरी के अन्तिम कार्य-दिवस[12] को पेश किया जाता है। पहले, वर्ष 1998 तक, बजट 17.00 बजे पेश किया जाता था। तथापि, वर्ष 1999 में, सामान्य बजट 27 फरवरी, शनिवार को 11.00 बजे पेश किया गया। वर्ष 2000 में, बजट 29 फरवरी को 14.00 बजे प्रस्तुत किया गया। वर्ष 2001 से अब परिपाटी यह है कि सामान्य बजट को 17.00 बजे की बजाय 11.00 बजे प्रस्तुत किया जाता है। सामान्य बजट प्रस्तुत किए जाने के तत्काल पश्चात् वित्त विधेयक पुर:स्थापित किया जाता है। तत्पश्चात् लोक सभा की बैठक दिन भर के लिए स्थगित कर दी जाती है। बजट प्रस्तुत किए जाने के दिन प्रश्न काल नहीं होता है।[13] रेल बजट को फरवरी के तीसरे सप्ताह में किसी समय प्रस्तुत किया जाता है।

---

10. नियम 213—सरकार सभा में एक से अधिक वार्षिक वित्तीय विवरण ला सकती है और यह संविधान के अनुच्छेद 112 का उल्लंघन नहीं है— *एल.एस. डिबेट्स,* 7.9.1974, कॉ. 183-85 ।

11. नियम 204 ।

12. यदि फरवरी के अंतिम कार्य-दिवस को सभा की बैठक नहीं होनी थी तो उस सामान्य बजट प्रस्तुत किये जाने के लिए 17.00 बजे विशेष रूप में सभा की बैठक बुलायी गई है। यदि बाद में बजट प्रस्तुत करने के लिए नियत उस दिन सार्वजनिक छुट्टी घोषित कर दी जाए, तो भी प्रस्तुतीकरण की तिथि में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है–*लो.स.वा.वि.,* 25.2.1969, पृ. 158-59; आठवीं लोक सभा के आठवें सत्र की बैठकों के अस्थायी कैलेंडर के अनुसार, शनिवार 28 फरवरी, 1987 जो छुट्टी का दिन था, को सभा की किसी बैठक का होना तय नहीं था तथापि, संसदीय कार्य मंत्री के अनुरोध पर 1987-88 के सामान्य बजट को प्रस्तुत करने के लिए उस दिन 17.00 बजे एक बैठक विशेष रूप से निर्धारित की गई थी। तद्नुसार, 28 फरवरी, 1987 को 17.00 बजे सामान्य बजट प्रस्तुत किया गया था—*लो.स.वा.वि.,* 28.2.1987, पृ. 4, समाचार भाग-2, 10.2.1987, पैरा 1485 ।

    वर्ष 1972 में सामान्य बजट 16 मार्च को प्रस्तुत किया गया था, क्योंकि सदन का सत्र मार्च में आरम्भ हुआ था। वर्ष 1976 में सामान्य बजट 15 मार्च को प्रस्तुत किया गया था। वर्ष 1977 में अन्तरिम बजट 28 मार्च को 12.55 बजे और अन्तिम बजट 17 जून, 1977 को प्रस्तुत किया गया था। वर्ष 1998 में सामान्य बजट 1 जून को प्रस्तुत किया गया था, क्योंकि सदन का सत्र मई, 1998 में आरम्भ हुआ था।

    वर्ष 1999 में सामान्य बजट 27 फरवरी अर्थात् शनिवार को 11.00 बजे प्रस्तुत किया गया जो कि 17.00 बजे प्रस्तुत करने की पुरानी परिपाटी से भिन्न था। छुट्टी का दिन होने के कारण सरकार के आग्रह पर सभा की बैठक विशेष रूप से सामान्य बजट प्रस्तुत करने के लिये ही बुलाई गई थी। इसे बैठकों के अस्थायी कैलेंडर में भी शामिल किया गया था।

13. जिस दिन सामान्य बजट प्रस्तुत किया जाना था उस दिन सामान्यतया लोक सभा बजट प्रस्तुत किये जाने से पूर्व आधा घंटे या कुछ समय के लिए स्थगित हो जाती थी।

    बजट प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित समय पर कोई अन्य कार्य नहीं लिया जा सकता है— *लो.स.वा.वि.,* 29.2.1968, पृ. 363 ।

तथापि, रेल बजट प्रस्तुत किए जाने के बाद सभा की बैठक को उस दिन के लिए स्थगित नहीं किया जाता है। सामान्य बजट और रेल बजट की एक-एक प्रति लोक सभा में उनके प्रस्तुत किए जाने के दिन ही राज्य सभा के पटल पर रखी जाती है।[14] जब सत्र देर से, यथा मार्च में आरम्भ होता है तो रेल बजट और सामान्य बजट किसी भी ऐसे दिन प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो सरकार के लिए सुविधाजनक हो। किसी निर्वाचन वर्ष में बजट दो बार प्रस्तुत किया जा सकता है—पहले कुछ महीने के लिए लेखानुदान पर स्वीकृति प्राप्त करने के लिए और तत्पश्चात् संपूर्ण बजट।[15] दूसरा अर्थात् संपूर्ण बजट किसी भी दिन जो निर्वाचन के बाद बनी सरकार के लिए सुविधाजनक हो, प्रस्तुत किया जा सकता है।

---

14. वर्ष 1957, 1962 और 1967 में रेल और सामान्य बजट दो बार प्रस्तुत किए गए। वर्ष 1971 में एक बार रेल और सामान्य बजट पांचवीं लोक सभा के प्रथम सत्र में क्रमशः 23 और 24 मार्च, 1971 को और पुनः पांचवीं लोक सभा के द्वितीय सत्र में क्रमशः 24 और 28 मई, 1971 को प्रस्तुत किए गए थे। वर्ष 1977 में एक बार बजट प्रथम सत्र में 28 मार्च, 1977 को और फिर छठी लोक सभा के द्वितीय सत्र में क्रमशः 11 और 17 जून, 1977 को प्रस्तुत किए गए थे।

    वर्ष 1980 में भी बजट दो बार प्रस्तुत किए गए। एक तो सातवीं लोक सभा के द्वितीय सत्र में 11 मार्च, 1980 को और फिर तीसरे सत्र में क्रमशः 16 और 18 जून 1980 को प्रस्तुत किए गए। वर्ष 1985 में दो बजट क्रमशः 14 और 16 मार्च, 1985 को प्रस्तुत किए गये। वर्ष 1991 में बजट दो बार प्रस्तुत किए गए, एक बार तो नौवीं लोक सभा के सातवें सत्र में 25 फरवरी और 4 मार्च, 1991 को और फिर दसवीं लोक सभा के प्रथम सत्र में क्रमशः 16 और 24 जुलाई, 1991 को प्रस्तुत किए गए।

    वर्ष 1996 में भी, रेल और सामान्य बजट दो बार प्रस्तुत किए गए, एक बार दसवीं लोक सभा के सोलहवें सत्र में क्रमशः 27 और 28 फरवरी, 1996 को और पुनः ग्यारहवीं लोक सभा के दूसरे सत्र में क्रमशः 16 और 22 जुलाई 1996 को। 1998 में भी रेल और सामान्य बजट दो बार प्रस्तुत किए गए, एक बार बारहवीं लोक सभा के पहले सत्र में 25 मार्च 1998 को (ये पूरे वर्ष के लिए वित्तीय विवरण थे लेकिन पहले चार महीनों के लिए इसमें लेखानुदान मांगा गया था) और पुनः बारहवीं लोक सभा के दूसरे सत्र में क्रमशः 29 मई और 1 जून, 1998 को।

    2004 को पुनः रेल और सामान्य बजट दो बार प्रस्तुत किए गए—एक बार तेरहवीं लोक सभा के चौदहवें सत्र में क्रमशः 30 जनवरी और 3 फरवरी 2004 को तथा पुनः चौदहवीं लोक सभा के दूसरे सत्र में क्रमशः 6 और 8 जुलाई 2004 को ।

    2009 में भी रेल और सामान्य बजट दो बार प्रस्तुत किए गये थे। एक बार चौदहवीं लोक सभा के पंद्रहवें सत्र में क्रमशः 13 और 16 फरवरी 2009 को तथा पुनः पंद्रहवीं लोक सभा के दूसरे सत्र में क्रमशः 3 और 6 जुलाई 2009 को।

15. 5 मार्च, 1975 को वित्त राज्य मंत्री ने 1975-76 का गुजरात बजट लोक सभा में प्रस्तुत करने से पूर्व राज्य सभा में प्रस्तुत करने के लिए लोक सभा से क्षमा याचना की और उन परिस्थितियों को स्पष्ट किया जिनके कारण ऐसा करना पड़ा—*लो.स.वा.वि.*, 5.3.1975, पृ. 137-38 ।

> बजट सत्र आरम्भ होने से लगभग एक पखवाड़ा पहले, सरकार बजट सत्र के दौरान वित्तीय कार्य के लिये तिथियों का अस्थायी कार्यक्रम लोक सभा सचिवालय को भेजती है जिसमें रेल बजट तथा सामान्य बजट प्रस्तुत किये जाने की तिथियों का भी उल्लेख होता है। जब अध्यक्ष बजट प्रस्तुत करने की तिथियों का अनुमोदन कर देता है तो महासचिव द्वारा इस पर राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त किया जाता है। राष्ट्रपति द्वारा इन तिथियों का अनुमोदन कर दिए जाने के बाद इस संबंध में सदस्यों की जानकारी के लिए समाचार भाग-दो में एक पैरा प्रकाशित किया जाता है।

रेल बजट रेल मंत्री द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रस्तुत करते समय वह अपना भाषण देता है और उसके बाद रेलवे के संबंध में वह अपने द्वारा विधिवत् अधिप्रमाणित वार्षिक वित्तीय विवरण सभा पटल पर रखता है।[16]

सामान्य बजट वित्त मंत्री द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। मंत्री के बजट भाषण के दो भाग होते हैं: भाग 'क', में देश का सामान्य आर्थिक सर्वेक्षण होता है, और भाग 'ख' में आने वाले वित्तीय वर्ष के लिये कराधान संबंधी प्रस्ताव होते हैं।[17] भाषण दे चुकने के बाद वह अपने द्वारा विधिवत् अधिप्रमाणित भारत सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण सभा पटल पर रखता है।

राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध अधिनियम, 2003 तथा राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध नियम, 2004 में वार्षिक वित्तीय विवरण और अनुदानों की मांगों के साथ निम्नलिखित विवरणों को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखने का उपबंध है, (1) राजवित्तीय नीति संबंधी मध्यावधि विवरण; (2) राजवित्तीय नीति संबंधी रणनीतिक विवरण; और (3) वृहत्त आर्थिक ढांचा विवरण। तदनुसार, उपर्युक्त विवरणों को वर्ष 2004 से प्रत्येक वर्ष, सभा पटल पर रखा जा रहा है।

---

16. रेल बजट (1973-74) प्रस्तुत करते समय रेल मंत्री (श्री एल.एन. मिश्रा) ने स्पष्ट रूप से कहा कि सभा का समय बचाने के लिए उन्होंने अपने बजट भाषण के, जिसे वह पढ़ रहे थे, कुछ पैराओं को छोड़ दिया। तथापि, भाषण को सभा पटल पर रखा गया और वह सभा की कार्यवाही का हिस्सा बना—*लो.स.वा.वि.,* 20.2.1973, पृ. 139; एक अन्य अवसर पर, रेल मंत्री (श्री एल.एन. मिश्रा) ने अपने मुद्रित बजट भाषण के कुछेक हिस्सों को छोड़ दिया था। तथापि, अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि उन्हें पढ़ा गया माना जाए। *लो.स.वा.वि.,* 27.2.1974, पृ. 135 । वर्ष 1982-83, 1983-84, 1984-85, 1985-86 और 1988-89 के रेल बजट भाषण दो भागों में थे। भाग-एक—रेलवे के परिचालनात्मक निष्पादन और भाग-दो—अतिरिक्त संसाधन जुटाने के प्रस्तावों से संबंधित था। तथापि, 1987-88 में भाषण केवल एक भाग में ही था।
17. आर्थिक सर्वेक्षण, जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थिति का द्योतक होता है, एक दिन पहले सभा पटल पर रखा जाता है। इसे, एक महत्वपूर्ण दस्तावेज होने के कारण व्यापक रूप से परिचालित किया जाता है। नए कराधान प्रस्तावों पर वक्तव्य मंत्री द्वारा किसी भी समय दिया जा सकता है। *एल.एस. डिबेट्स* 31.7.1974 कॉ. 3-9 ।

सामान्य बजट, नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के परामर्श से निर्धारित मुख्य लेखा शीर्षों के अनुसार तैयार किया जाता है। ये शीर्ष या तो भारत की संचित निधि के अंतर्गत आते हैं या भारत सरकार के लोक लेखा के अंतर्गत ।

भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व, खजाना हुंडिया (ट्रेजरी बिल्स) जारी करके लिए गए सभी ऋण या अर्थोपाय अग्रिम राशियां और ऋणों के प्रतिसंदाय के रूप में भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राशियां संचित निधि में डाल दी जाती हैं। अन्य सभी लोक धनराशियां, जो भारत सरकार से या भारत सरकार की ओर से प्राप्त हों, लोक लेखा में डाल दी जाती हैं।

सरकारी व्यय जिसमें सरकार के ऋणों तथा अग्रिम राशियों पर व्यय, ऋणों, खजाना हुंडियों और अर्थोपाय अग्रिम राशियों का प्रतिसंदाय शामिल है, संचित निधि में से किया जाता है। व्यय के प्राक्कलनों में, उस व्यय को पूरा करने के लिए अपेक्षित राशियां पृथक-पृथक दिखायी जाती हैं, जो संविधान के अंतर्गत संचित निधि पर 'भारित' हैं और जो दूसरे खर्चे पूरे करने के लिए अपेक्षित हैं।[18] बजट में राजस्व लेखा पर व्यय को दूसरे व्यय से अलग दिखाया जाता है। दूसरे व्यय में पूंजी परिव्यय, सरकार द्वारा दिये गये ऋण और ऋणों, खजाना हुंडियों और अर्थोपाय अग्रिम राशियों के प्रतिसंदाय हुये व्यय शामिल हैं। इस प्रकार बजट में भारत सरकार की ऋण की स्थिति दिखायी जाती है।

भारत सरकार के बजट में भारत सरकार की लगातार तीन वर्षों की आय और व्यय को दर्शाया जाता है। उसमें पिछले वर्ष का वास्तविक आय-व्यय, चालू वर्ष के पुनरीक्षित प्राक्कलन और आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन दिखाये जाते हैं।

सामान्य बजट प्रस्तुत करने के तुरंत बाद वित्त मंत्री लोक सभा में अगले वित्तीय वर्ष के संबंध में सरकार के वित्तीय प्रस्तावों को कार्यरूप देने के लिये लोक सभा में वित्त विधेयक पुर:स्थापित करता है[19] और उसके बाद सभा की बैठक दिन भर के लिये स्थगित हो जाती है।

वित्त विधेयक में प्राय: इस आशय की घोषणा की जाती है कि लोकहित में ऐसा करना कालोचित है कि सीमाशुल्कों या उत्पाद शुल्कों के लगाये जाने या उनमें वृद्धि के संबंध में विधेयक के उपबंध अनन्तिम कर संग्रहण अधिनियम, 1931 के अंतर्गत तुरन्त लागू हो जायेंगे।[20] इस प्रकार घोषित उपबंध उस दिन के, जिस दिन विधेयक पुर:स्थापित किया जाता है, समाप्त होने के तुरन्त बाद कानून की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।[21]

---

18. अनुच्छेद 112 (2)।
19. नियम 219 ।
20. वित्त विधेयक, 1952, वित्त विधेयक, 1962 और वित्त विधेयक, 1977 में ऐसी कोई घोषणा अन्तर्विष्ट नहीं थी, क्योंकि इन विधेयकों द्वारा कोई नये शुल्क नहीं लगाये जा रहे थे।
21. अनन्तिम कर संग्रहण अधिनियम 1931, धारा 4; साथ ही *देखिए* इसी अध्याय में *आगे* शीर्षक 'वित्त विधेयक' के अन्तर्गत ।

विनियोग और वित्त विधेयकों के पारित होने का समस्त वित्तीय कार्य समय पर पूरा करना होता है, नहीं तो सरकारी तंत्र ही ठप्प पड़ जायेगा। वित्तीय मामलों के संबंध में प्रक्रिया सदन द्वारा बनाये गये नियमों द्वारा विनियमित होती है।[22] और उनके अंतर्गत अध्यक्ष को समस्त वित्तीय कार्यों का समय पर निपटान सुनिश्चित करने की शक्ति प्रदान की गई है।[23] यदि सदन द्वारा बनाये गये नियम अपर्याप्त प्रतीत हों तो वित्तीय कार्य को समय पर पूरा करने के प्रयोजन से संसद, वित्तीय कार्यों के संबंध में संसद के प्रत्येक सदन में प्रक्रिया और कार्य संचालन को विधि द्वारा विनियमित कर सकती है और यदि इस प्रकार बनाया गया किसी विधि का कोई उपबंध संसद के किसी सदन द्वारा बनाये गये नियम से जहां तक असंगत है वहां तक उक्त उपबंध ही अभिभावी होगा।[24]

बजट पत्रों का वितरण

सम्बन्धित मंत्रालय द्वारा बजट पत्रों के सेट[25] सदस्यों को परिचालित करने हेतु संसद के दोनों सदनों के सचिवालयों को दिये जाते हैं। रेल बजट के मामले में, जैसे ही रेल मंत्री अपना बजट भाषण प्रारम्भ करता है, उसके फौरन बाद बजट पत्रों के सेट रेल मंत्रालय द्वारा

---

22. नियम 204-221 ।

23. नियम 221 ।

24. अनुच्छेद 119—अभी तक ऐसा कोई विधान बनाने का विचार नहीं किया गया है।

    27 अप्रैल, 1987 को एक सदस्य ने सुझाव दिया कि संसद में वित्तीय मामलों की प्रक्रिया विनियमित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन आवश्यक विधि अधिनियमित की जाये और उसके अधीन सभी अनुदानों की मांगों पर विस्तृत चर्चा के लिए आवश्यक नियम बनायें जायें। आठवीं लोक सभा की नियम समिति ने इस सुझाव पर विचार किया था। समिति ने महसूस किया कि निःसंदेह अनुदानों की मांगों की और अधिक संवीक्षा की आवश्यकता है, लेकिन मात्र विधि अधिनियमित करने से ही प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। मुख्य प्रश्न समय की कमी का है, न कि वित्तीय कार्य को निपटाने की प्रक्रिया का, विनियमित करने के लिए किसी विधि के अभाव का। अनुदानों की मांगों की विस्तृत संवीक्षा के लिए उन्हें स्वतः सदन की समितियों को सौंप दिया जाना ही व्यावहारिक समाधान है। दसवीं लोक सभा के छठे सत्र के दौरान *अन्य बातों के साथ-साथ* संबंधित मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों के संबंध में सदन द्वारा मांगों को स्वीकार किए जाने से पहले संवीक्षा के लिए विभागों से सम्बद्ध सदनों की 17 स्थायी समितियों का गठन किया गया । वर्ष 2004 में स्थायी समितियों की संख्या 17 से बढ़ाकर 24 कर दी गई। *देखिए* समाचार भाग-दो 20.7.2004, पैरा 253 । साथ ही *देखिए* अध्याय 30—संसदीय समितियां।

    अनुच्छेद 209 के अंतर्गत 13 मार्च, 1968 को पंजाब के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित पंजाब विधानमंडल (वित्तीय कार्य संबंधी प्रक्रिया का विनियमन) अध्यादेश, 1968 के अंतर्गत विधि द्वारा वित्तीय प्रक्रिया विनियमित की गई थी।

25. रेल बजट के पत्रों में सामान्यतः निम्नलिखित पत्र होते हैं:

सचिवालय को सौंप दिये जाते हैं और मंत्री के अपना भाषण समाप्त करने के बाद ये सेट सदस्यों को प्रकाशन काउण्टर से वितरित किए जाते हैं।

सामान्य बजट को बहुत सावधानीपूर्वक गुप्त रखा जाता है, क्योंकि वित्त मंत्री के भाषण के भाग 'ख' में कराधान सम्बन्धी प्रस्ताव होते हैं और वित्त मंत्रालय बजट पत्रों के सेट सचिवालय को तभी सौंपता है जब वित्त मंत्री अपने भाषण का भाग 'ख' प्रारम्भ कर दे। ये सेट वित्त मंत्री के भाषण की समाप्ति पर वित्त विधेयक के पुर:स्थापित होने और सभा की बैठक दिन भर के लिए स्थगित होने के बाद सभा कक्ष की भीतरी और बाहरी लॉबियों में सदस्यों को वितरित किए जाते हैं।[26]

बजट का समय से पूर्व पता चल जाना : विशेषाधिकार का प्रश्न

लोक सभा में बजट सम्बन्धी प्रस्तावों के प्रस्तुत किए जाने से पहले उनके समय से पूर्व पता चल जाने से सभा का विशेषाधिकार भंग नहीं होता है। अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया है:

> वर्तमान मत यह है कि सभा के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के पूर्व वित्तीय प्रस्ताव शासकीय गुप्त बात है...। यद्यपि बजट प्रस्तावों के समय से पूर्व पता चल जाने से सभा का विशेषाधिकार भंग नहीं होता, तथापि संसद को इस बात की समुचित शक्ति प्राप्त है कि वह उसके पता चल जाने के सम्बन्ध में किसी मंत्री के आचरण की, तथा इस बात की

रेल बजट पुर:स्थापित किए जाने संबंधी रेल मंत्री का भाषण; रेलवे के राजस्व और व्यय का बजट; रेल बजट संबंधी व्याख्यात्मक ज्ञापन; अनुदानों की मांगें; निर्माण कार्य, मशीनों और चल स्टाक संबंधी कार्यक्रम—भाग एक—संक्षेप और भाग दो—रेलवे का विस्तृत कार्यक्रम; भारतीय रेल रिपोर्ट और लेखा। सामान्य बजट के पत्रों में प्राय: निम्नलिखित पत्र होते हैं।

वित्त मंत्री का भाषण-बजट मुख्य विशेषताएं; वार्षिक वित्तीय विवरण; अनुदानों की मांगे; बजट दस्तावेजों की कुंजी; बजट एक नज़र में; वित्त विधेयक; वित्त विधेयक के उपबन्धों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन; राज वित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध संबंधी विवरण तथा बजट का क्रियान्वयन।

तथापि, प्राक्कलन समिति द्वारा 4 दिसम्बर, 1986 को लोक सभा में प्रस्तुत अपने सैंतीसवें प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों के आधार पर वर्ष 1987-88 के बजट पत्रों में अनुदानों की मांगों की पुस्तिका के स्थान पर निम्नलिखित कागज-पत्र उपलब्ध कराए गए थे:—

1. संघ सरकार की अनुदानों की मांगे (रेलवे को छोड़कर) 1987-88 ।
2. व्यय का बजट, 1987-88, खंड एक (व्याख्यात्मक ज्ञापन और योजना बजट सहित)।
3. व्यय का बजट, 1987-88, खंड दो (अनुदानों की मांगों संबंधी टिप्पणियों सहित)।
4. आय का बजट, 1987-88, (प्राप्तियां, ऋण वसूली, अन्य पूंजीगत प्राप्तियां और संघ सरकार की ऋण स्थिति सहित)।

26. रेल बजट और सामान्य बजट, दोनों, के सेट मीडिया को साथ-साथ वितरित किए जाते हैं तथा जैसे ही संबंधित मंत्री अपना भाषण शुरू करते हैं, उन्हें बिक्री पर उपलब्ध करा दिया जाता है।

कि किन परिस्थितियों में इन गोपनीय दस्तावेजों का समय से पूर्व पता चल गया, जांच समुचित प्रक्रिया के माध्यम से कर सकती है।[27]

बजट पर चर्चा

चर्चा के लिए समय का नियतन

बजट पर उस दिन कोई चर्चा नहीं होती, जिस दिन यह सभा में प्रस्तुत किया जाता है।[28] लोक सभा की प्रक्रिया के अनुसार सामान्य बजट पर साधारणतया उसके सभा में प्रस्तुत किए जाने के लगभग एक सप्ताह या दस दिन बाद चर्चा प्रारम्भ होती है, जबकि रेल बजट पर उसके प्रस्तुत किए जाने के लगभग एक सप्ताह बाद चर्चा प्रारम्भ होती है।

जब बजट प्रस्तुत किया जा चुका हो, तो अध्यक्ष उस पर चर्चा प्रारम्भ होने के लिए कोई दिन नियत कर सकता है और यह चर्चा उतने समय तक जारी रह सकती है जो अध्यक्ष नियत करे।[29] इसी प्रकार अध्यक्ष, सदन के नेता से परामर्श करके अनुदानों की मांगों पर चर्चा तथा मतदान के लिए उतने दिन नियत कर सकता है जितने लोकहित में सुसंगत हों।[30]

वास्तविक व्यवहार में रेल बजट और सामान्य बजट के लोक सभा में प्रस्तुत कर दिए जाने के बाद सदन का नेता उनके संबंध में सामान्य चर्चा और अनुदानों की मांगों पर चर्चा तथा मतदान के लिए समय नियत करने के सबंध में संसदीय कार्य मंत्री के माध्यम से सचिवालय को प्रस्ताव भेजता है। ये प्रस्ताव कार्य-मन्त्रणा समिति के समक्ष रखे जाते हैं और समिति अपनी रिपोर्ट सभा को देती है। जब सभा रिपोर्ट को स्वीकार कर लेती है तो समय के नियतन की सूचना समाचार भाग-2 में प्रकाशित की जाती है। नियत किए गए समय को देखते हुए संसदीय कार्य मंत्री द्वारा उन तिथियों को दर्शाते हुए, जब विभिन्न मंत्रालयों से संबंधित मांगों पर चर्चा की जानी हो और मतदान किया जाना हो, एक समय-सारणी तैयार की जाती है। जब अध्यक्ष इस समय-सारणी का अनुमोदन कर देता है, तो उसे समाचार में प्रकाशित कर दिया जाता है। सदन द्वारा स्वीकृत किए गए कार्यक्रम में यदि कोई परिवर्तन

---

27. *एल.एस. डिबेट्स,* 19.3.1956, कॉ. 2911-13; *लो.स.वा.वि.,* 10.3.1959, पृ. 2745-47; 29.7.1974, पृ. 126-29; 30.7.1974, पृ. 74; 7.3.1979, पृ. 129-30; 23.2.1981, पृ. 198-200; 25.2.1982, पृ. 179-80 ।
28. नियम 205 ।
29. नियम 207 ।
30. नियम 208 ।

    पिछले कुछ वर्षों के दौरान रेल/सामान्य बजट पर सामान्य चर्चा और अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान के लिए समय का आबंटन और लिया गया वास्तविक समय इस प्रकार है:

	रेल बजट						*सामान्य बजट*					
	सामान्य चर्चा			अनुदानों की मांगें			सामान्य चर्चा			अनुदानों की मांगें		
	आवंटित समय	लिया गया समय		आवंटित समय	लिया गया समय		आबंटित समय	लिया गया समय		आवंटित समय	लिया गया समय	
	दिन/घंटे	घं.	मि.	दिन/घंटे	घं.	मि.	दिन/घंटे	घं.	मि.	दिन/घंटे	घं.	मि.
1993-94	सामान्य चर्चा और अनुदानों की मांगों को चर्चा के लिए साथ-साथ लिया गया (आवंटित समय 2 दिन, लिया गया समय 17 घंटे 27 मिनट)						2 दिन	20	56	–	22	37
1994-95	15 घंटे	15	37	3 घंटे	8	58	10 घंटे	17	30	11घंटे	15	46
1995-96	सामान्य चर्चा और अनुदानों की मांगों को चर्चा के लिए साथ-साथ लिया गया (आवंटित समय 2 दिन; लिया गया समय18 घंटें 58 मिनट)						10 घंटे	5	50	3 दिन और 5 घंटे तथा 30 मिनट	19	39
1996-97	कार्य मंत्रणा समिति के दिनांक 25.7.96 के निर्णय के अनुसार, लेखानुदान के स्थान पर सामान्य चर्चा के साथ-साथ वर्ष 1996-97 के बजट (रेलवे) की अनुदानों की मांगों पर चर्चा की गई (आवंटित समय 3 दिन; लिया गया समय 25 घंटे 16 मिनट)						8 घंटे	13	34	28 घंटे	3	28
1997-98	**	26	05	**	7	32	8 घंटे	17	18	8 घंटे	10	54
	कुल आवंटित समय 9 घंटे											
1998-99	**	21	06	**	5	15	3 दिन	17	49	–	1	27
1999-2000	सामान्य चर्चा और अनुदानों की मांगों (रेलवे) को चर्चा के लिए साथ-साथ लिया गया (लिया गया समय 1 घंटा 2 मिनट)						2 दिन	11	15	–	0	05
									बिना चर्चा के स्वीकृति			
2000-01	4 घंटे	11	17	-	4	54	4 घंटे	11	49	24 घंटे	16	20
2001-02	2 दिन	0	05	1 दिन	01		3 दिन	0	05	2 दिन	6	52
	(बिना चर्चा के स्वीकृत)											
2002-03	2 दिन	9	20	1 दिन	4	43	2 दिन	14	26	1 दिन	5	48
2003-04	8 घंटे	10	58	-	4	56	10 घंटे	14	45	3 दिन	12	56
2004-05	4 घंटे सामान्य चर्चा और अंतरिम बजट (रेल) पर चर्चा और मतदान को साथ-साथ लिया गया (लिया गया समय 4 घंटे 18 मिनट)						6 घंटे सामान्य चर्चा और अंतरिम बजट (सामान्य) पर चर्चा और मतदान को साथ-साथ लिया गया (लिया गया समय 7 घंटे 12 मिनट)					

किया जाता है, तो संसदीय कार्य मंत्री सदन में एक वक्तव्य देता है और तत्पश्चात् समाचार में संशोधित कार्यक्रम प्रकाशित किया जाता है।[31]

2004-05	10 घंटे	11	03	-	0	02 (बिना चर्चा के स्वीकृत)	12 घंटे	17	35	5 दिन	0	07
2005-06	10 घंटे	14	32	-	3	36	12 घंटे	17	28	4 दिन	14	24
2006-07	12 घंटे	14	57	-	विचार किया गया और बिना चर्चा के स्वीकृत किया गया (लिया गया समय 03 मिनट)		12 घंटे	13	05	3 दिन	19	01
2007-08	12 घंटे	12	44		(विचार किया गया और बिना चर्चा के स्वीकृत किया गया) (लिया गया समय 03 मिनट)		16 घंटे	17	27	-	15	32
2008-09	12 घंटे	14	45	6 घंटे	427		12 घंटे	16	17	4 दिन	24	41
2009-10 (अंतरिम)	4 घंटे	सामान्य चर्चा और अंतरिम बजट (रेल) पर चर्चा और मतदान को साथ-साथ लिया गया (लिया गया समय 5 घंटे 23 मिनट					6 घंटे	सामान्य चर्चा और अंतरिम बजट (सामान्य) पर चर्चा और मतदान को साथ-साथ लिया गया (लिया गया समय 7 घंटे 16 मिनट				
2009-10	10 घंटे	17	57	–	00	02 (बिना चर्चा के स्वीकृत)	12 घंटे	17	12	5 दिन	31	32
2010-11	8 घंटे	0	09	4 घंटे	5	30	12 घंटे	9	57	5 दिन	17	27
2011-12	8 घंटे	9	52	–	2	23	10 घंटे	11	08	3 दिन	14	37
2012-13	12 घंटे	16	11	12 घंटे	4	36	12 घंटे	9	10	4 दिन	21	04
2013-14	12 घंटे	14	40	4 घंटे (बिना चर्चा के स्वीकृत)	0	02	12 घंटे	11 (बिना चर्चा के स्वीकृत)	55	4 दिन	0	04

31. सातवीं लोक सभा के सातवें सत्र के दौरान जिन मंत्रालयों/विभागों की मांगें बिना किसी चर्चा के गिलोटिन की जाने वाली थीं—उन्हें अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान के लिए समय-सारणी में शामिल नहीं किया है—*देखिए समाचार भाग*-2, 23.3.1973 पैरा 1092 । लेकिन जिन मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगे गिलोटिन की जानी होती हैं, उन्हें पांचवीं लोक सभा के तेरहवें सत्र से पहले की ही भांति, समय-सारणी में शामिल किया जाता है।

> यदि अनुदानों की मांगों के समूहों के संबंध में उनके लिए नियत किए गए समय से अधिक समय लग जाता है और बाकी मांगों के समूहों के संबंध में पहले से प्रकाशित समय-सारणी पुरानी पड़ जाती है, तो संसदीय कार्य मंत्री से बाकी अनुदानों की मांगों के संबंध में संशोधित समय-सारणी भेजने के लिए कहा जाता है और अध्यक्ष के अनुमोदन के बाद उस संशोधित समय-सारणी को समाचार में प्रकाशित कर दिया जाता है। ऐसे मामलों में, जिस दिन अनुदानों की मांगों के अन्तिम समूह का निपटान किया जाना हो, उसे समाचार में यथाप्रकाशित मूल या संशोधित समय-सारणी के अनुसार (जैसी भी स्थिति हो) नियत दिनों का अन्तिम दिन माना जाता है। इस बात का उल्लेख समाचार में भी किया जाता है।

बजट प्रस्तुत किए जाने से लेकर विनियोग तथा वित्त विधेयकों, जिनके माध्यम से बजट में दिए गए सरकार के व्यय तथा कराधान सम्बन्धी प्रस्तावों को लागू किया जाता है, के पारित होने पर सदस्यों को बजट पर सामान्य चर्चा, अनुदानों की मांगों पर चर्चा तथा मतदान, तथा विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक पर विचार किए जाने तथा उसे पारित किए जाने के दौरान सरकार की वित्तीय नीतियों पर चर्चा करने का अवसर मिलता है।

बजट पर सामान्य चर्चा

जिस दिन बजट प्रस्तुत किया जाए उसके बाद अध्यक्ष द्वारा नियत किए जाने वाले दिन और उतने समय के लिए, जितना कि इस प्रयोजन के लिए अध्यक्ष नियत करे, सभा बजट पर सम्पूर्ण रूप से या उसमें अन्तर्निहित सिद्धान्त के किसी प्रश्न पर चर्चा करने के लिए स्वतंत्र है, किन्तु कोई प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता है और न ही इस अवस्था में बजट सभा के मतदान के लिये रखा जाता है। वित्त मंत्री को चर्चा के अन्त में उत्तर देने का सामान्य अधिकार प्राप्त है।

बजट पर सामान्य चर्चा के प्रक्रम में आर्थिक प्रशासन का सामान्य सर्वेक्षण किया जा सकता है। इस प्रक्रम में चर्चा की व्याप्ति बजट की सामान्य योजना तथा उसके ढांचे की परीक्षा तक ही सीमित होती है। यह निर्णय दिया गया है कि बजट की योजना में राजस्व तथा व्यय के लेखे पर विचार और कुल आधिक्य या घाटे पर विचार भी शामिल हैं और राजस्व लेखा पर विचार करते समय सदस्य प्राक्कलन की विधि को भी ध्यान में रख सकते हैं। चर्चा इस बात तक सीमित रहनी चाहिए कि किसी मद विशेष के महत्व को ध्यान में रखते हुए और साथ ही बजट बनाने के तरीके को भी ध्यान में रखते हुए क्या व्यय की मदों को बढ़ाया अथवा घटाया जाना चाहिए। बजट तथा वित्त मंत्री के भाषण में कराधान की नीति की जो घोषणा की जाती है, वह भी सामान्य चर्चा के क्षेत्र में आ जाती है। इस प्रक्रम में ऐसी शिकायतें नियमानुकूल नहीं हैं, जिनका संबंध वित्त मंत्री के भाषण में उठायी गयी बातों से न हो या जो प्रस्ताविक व्यय के संबंध में प्रत्यक्ष रूप से न उठती हों। जब अनुदानों की मांगें तथा वित्त विधेयक सभा के समक्ष हों तब विशेष बिन्दुओं अथवा शिकायतों और कराधानों तथा व्यय के ब्यौरों पर विचार किया जा सकता है।[32]

---

32. *देखिए एच.पी. डिबेट्स* (II), 26.5.1952, कॉ. 539; 4.3.1953, कॉ. 1379-80; और *लो.स.वा.वि.,* 13.3.1956, पृ. 1008 ।

सामान्य चर्चा के दौरान, अध्यक्ष सामान्यतया भाषणों के लिए समय-सीमा निर्धारित कर देता है। यह समय-सीमा दलों के नेताओं तथा वित्त मंत्री को छोड़कर प्रत्येक सदस्य के लिए सामान्यतया पन्द्रह मिनट की होती है। दलों के नेताओं को उनके दलों के लिए उपलब्ध कुल समय की सीमा में से तीस मिनट तक का समय दिया जा सकता है—जबकि वाद-विवाद का उत्तर देते समय वित्त मंत्री जितना समय चाहे उतना ले सकता है। यदि मंत्री चाहे तो वह बजट पर चर्चा आरम्भ कर सकता है।[33]

बजट पर सामान्य चर्चा सामान्यतया पहले लोक सभा में प्रारम्भ होती है[34] और उसके बाद राज्य सभा में। तथापि, ऐसे कुछ ही अवसर हुए हैं, जब यह चर्चा लोक सभा में आरम्भ होने से पहले राज्य सभा में प्रारम्भ हुई।[35]

विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों द्वारा अनुदानों की मांगों पर विचार किया जाना

वर्ष 1993 में भारतीय संसद के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ जब विभागों से सम्बद्ध 17 स्थायी समितियों का गठन किया गया। 2004 में स्थायी समितियों की संख्या बढ़ाकर 24 कर दी गई।[36] प्रत्येक स्थायी समिति में 31 से अनधिक सदस्य होते हैं जिनमें से 21 सदस्यों को अध्यक्ष द्वारा लोक सभा के सदस्यों में से नाम-निर्दिष्ट किया जाता है और 10 सदस्यों को राज्य सभा के सभापति द्वारा राज्य सभा सदस्यों में से नाम-निर्दिष्ट किया जाता है।[37] भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों को स्थायी समितियों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।[38]

प्रत्येक स्थायी समिति के बजट संबंधी कृत्यों[39] में (एक)संबंधित मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों पर विचार करना और उनके संबंध में सदनों में प्रतिवेदन प्रस्तुत करना शामिल है। प्रतिवेदन में किसी भी प्रकार के कटौती प्रस्तावों का सुझाव नहीं दिया जाएगा; और

---

33. *लो.स.वा.वि.,* 4.3.1970, पृ. 140-41 ।
34. सरकार को यह देखना होता है कि बजट पर चर्चा पहले लोक सभा में प्रारम्भ हो और इसके बाद राज्य सभा में क्योंकि यह परमाधिकार लोक सभा का है कि पहले वह चर्चा शुरू करे और रूपान्तरण करे—*लो.स.वा.वि.,* 2.3.1963, का. 1740-41 ।
35. वर्ष 1955 में, बजट (सामान्य) पर सामान्य चर्चा राज्य सभा और लोक सभा में क्रमश: 3 और 16 मार्च 1955 को शुरू हुई। 1959 में क्रमश: 3 और 9 मार्च 1959 को; 1963 में क्रमश: 4 और 12 मार्च 1963 को; 1965 में क्रमश: 10 और 22 मार्च, 1965 को; तथा 2002 में क्रमश: 18 और 19 मार्च 2002 को शुरू हुई।
36. नियम 331ग । पहला प्रतिवेदन नियम समिति (14वीं लोक सभा) 8.8.2004, साथ ही *देखिए* समाचार भाग-2, 20.7.2004, पैरा 253 ।
37. नियम 331घ ।
38. नियम 331ग(2)।
39. नियम 331ङ । अधिक जानकारी के लिए *देखिए*—अध्याय 30, संसदीय समितियां ।

(दो) मंत्रालयों/विभागों के वार्षिक प्रतिदिन पर विचार करना और उनके संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।

प्रत्येक स्थायी समिति द्वारा अनुदानों की मांगों पर विचार करने और उनके संबंध में सदनों में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है[40]:—

(क) सभा में बजट पर सामान्य चर्चा पूरी हो जाने के पश्चात् सभा एक निश्चित अवधि अर्थात् सामान्यत: चार सप्ताह के लिए स्थगित कर दी जाएगी।

(ख) समितियां उपर्युक्त अवधि के दौरान संबंधित मंत्रालयों की अनुदानों की मांगों पर विचार करेंगी;

(ग) समितियां उपर्युक्त अवधि के दौरान अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करेंगी तथा और अधिक समय दिए जाने का अनुरोध नहीं करेंगी;

(घ) सभा द्वारा अनुदानों की मांगों पर समितियों द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा; और

(ङ) प्रत्येक मंत्रालय की अनुदानों की मांगों पर पृथक प्रतिवेदन होगा।

इस प्रकार, संसद, कार्यपालिका के व्यय पर और अधिक प्रभावी नियंत्रण रख सकती है क्योंकि भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों को सभा द्वारा अन्तिम रूप से स्वीकार किए जाने से पूर्व उनकी संवीक्षा स्थायी समितियों[41] द्वारा कर ली जाती है।

तथापि, ऐसे भी उदाहरण[42] हैं जब सामान्य बजट पर सामान्य चर्चा के समाप्त होने से पहले ही सभा को सत्र-मध्यावकाश हेतु स्थगित कर दिया गया। ऐसी स्थिति में, सभा द्वारा लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों के नियम 331छ(क) को निलंबित कर दिया गया। एक अवसर ऐसा भी आया है जब अनुदानों की मांगों (रेल तथा सामान्य) को उन पर विभागों से सम्बद्ध संबंधित समितियों द्वारा विचार किए बिना सभा के सत्र-मध्यावकाश के लिए स्थगित होने से पूर्व ही पारित कर दिया गया।[43]

---

40. नियम 331छ।

41. उदाहरण के लिए वर्ष 1993-94, 1994-95, 1995-96, 1996-97, 1997-98, 1998-99 और 1999-2000 के बजट के दौरान विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों ने भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों पर विचार किया और उनके संबंध में क्रमश: 19, 35, 44, 72, 29, 67 और 50 प्रतिवेदन प्रस्तुत किए।

42. *लो.स.वा.वि.*, 21.4.1993, पृ. 262-65; 19.3.1994, पृ. 24-25; 27.3.1995 कॉ. 274।

43. चौदहवीं लोक सभा (2006) के सातवें सत्र में, संसदीय कार्य मंत्री (श्री पी.आर. दासमुंशी) ने विभागों से संबद्ध संबंधित समितियों द्वारा मांगों पर विचार किए बिना 2006-07 की अनुदानों की मांगों (रेल) और 2006-07 को केन्द्र सरकार की अनुदानों की मांगों (रेल विभाग को छोड़कर) पर चर्चा और मतदान पर लागू होने वाले नियम 331 छ को निलंबित करने के लिए प्रस्ताव पेश किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुदानों की मांगों पर चर्चा

अनुदानों की मांगें लोक सभा में बजट विवरण के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। प्रत्येक मांग में पहले 'स्वीकृत' और 'भारित' व्यय का योग दिया जाता है और साथ ही मांग में 'राजस्व' और 'पूंजीगत' व्यय को अलग से शामिल किया जाता है और जिस व्यय की राशि के लिए मांग प्रस्तुत की जाती है उसका कुल योग भी दिया जाता है। इसके बाद विभिन्न शीर्षों के अन्तर्गत व्यय के प्राक्कलन दिए जाते हैं। बजट प्रस्तुत किए जाने के कुछ समय पश्चात्, लेकिन अनुदानों की मांगों पर चर्चा प्रारम्भ होने से पूर्व, अनुदानों की मांगों के बाद अनुदानों की ब्यौरे-वार मांगें लोक सभा पटल पर रखी जाती हैं। अनुदानों की इन ब्यौरे-वार मांगों में अनुदानों की मांगों में सम्मिलित प्रावधानों को आगे और विस्तृत रूप से दर्शाया जाता है।

वर्ष 1987-88 का सामान्य बजट प्रस्तुत किए जाने से पूर्व, सदस्यों को अनुदानों की मांगें (भाग एक और दो) बजट प्रस्तुत किए जाने के दिन उपलब्ध कराई जाती थीं और भाग तीन अर्थात् अनुदानों की ब्यौरे-वार मांगें सदन में चर्चा हेतु लिए जाने के एक अथवा दो सप्ताह पूर्व सभा पटल पर रखी जाती थीं। भाग एक में उन सेवाओं, जिनके लिए विनियोग आशयित था, को दर्शाए जाने के साथ-साथ मांगों में शामिल स्वीकृत और भारित व्यय का योग भी दर्शाया जाता था। भाग-दो में मुख्य और लघु लेखा शीर्षों द्वारा कुल प्रावधानों का वितरण दर्शाया जाता था और साथ ही उसमें अनुदानों की ब्यौरे-वार मांगों में दोहराई गई सूचना भी अन्तर्विष्ट रहती थी । बजट प्रस्तुतीकरण अवस्था में मुद्रण संबंधी कार्य कम करने और संसद को एक या दो सप्ताह पूर्व अनुदानों की ब्यौरे-वार मांगें उपलब्ध कराने के लिए वित्त मंत्रालय ने प्राक्कलन समिति (आठवीं लोक सभा) से अनुदानों की मांगों के प्रारूप और अन्तर्वस्तु की पुनरीक्षा करने का अनुरोध किया था। प्राक्कलन समिति ने मामले पर विचार करने के पश्चात् 4 दिसम्बर, 1986 को सभा में प्रस्तुत किए गए अपने सैंतीसवें प्रतिवेदन में सिफारिश की कि:

(*i*) मांगों के भाग-दो को भाग-तीन अर्थात् ब्यौरे-वार मांगों में दोहराई गई सूचना का लोप करके केवल मुख्य शीर्षों में ही प्रस्तुत किया जाये;

(*ii*) मांगों का भाग-दो एक खंड में ही प्रकाशित किया जाये;

(*iii*) अनुदानों की मांगों संबंधी विस्तृत टिप्पणों को मांगों के भाग-दो से अलग करके बजट पत्रों के साथ एक अलग खंड में दिया जाए;

तदनुसार, 2006-07 की अनुदानों की मांगों (रेल) तथा (सामान्य) को उन पर विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों द्वारा विचार किए बिना सभा के सत्र-मध्यावकाश के लिए स्थगित होने से पूर्व ही पारित कर दिया गया। तथापि, समितियों ने सत्र-मध्यावकाश की अवधि के दौरान अनुदानों की मांगों की जांच की और उन पर अपने प्रतिवेदन दिए।

(*iv*) किसी मंत्रालय से संबंधित अनुदानों की ब्यौरे-वार मांगों अर्थात् भाग-तीन को संगत मांगों पर चर्चा होने की तिथि से कम से कम पन्द्रह दिन पूर्व सभा पटल पर रखा जाना चाहिए; और

(*v*) वार्षिक वित्तीय विवरण में बिना विधानमण्डल वाले संघ राज्यक्षेत्रों की कुल प्राप्तियां और उनका व्यय, संघ राज्यक्षेत्र-वार अलग से दर्शाया जाए।

तदनुसार, 1987-88 के दौरान अनुदानों की मांगें संशोधित प्रारूप में प्रस्तुत की गई थीं।[44]

सामान्य या रेल बजट प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् संबंधित मंत्री अनुदानों की मांगों को सभा में प्रस्तुत करने के अपने आशय की सूचना देता है।

भारत की संचित निधि पर भारित न होने वाले व्यय से संबंधित जितने प्राक्कलन हैं, वे लोक सभा के समक्ष अनुदानों की मांगों के रूप में रखे जाते हैं जिसे यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी मांग को अनुमति दे, या अनुमति देने से इंकार कर दे अथवा किसी मांग को उसमें विनिर्दिष्ट रकम को कम करके अनुमति दे।[45] परन्तु किसी अनुदान की मांग राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही की जा सकती है अन्यथा नहीं[46] और ऐसी प्राप्त सिफारिश की सूचना सम्बन्धित मंत्री द्वारा एक निर्धारित प्रारूप में लोक सभा के महासचिव को भेजनी होती है।[47]

प्रत्येक मंत्रालय के लिए प्रस्तावित अनुदान के संबंध में साधारणतया एक पृथक मांग की जाती है, परन्तु वित्त मंत्री दो या अधिक मंत्रालयों या विभागों के लिए प्रस्तावित अनुदानों को एक ही मांग में सम्मिलित कर सकता है, या ऐसे व्यय के संबंध में एक संयुक्त मांग कर सकता है, जिसे मंत्रालयों विशेष के अन्तर्गत सहज ही वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मांग में पहले कुल प्रस्तावित अनुदान का विवरण दिया जाता है और उसके बाद मदों में विभाजित प्रत्येक अनुदान के अन्तर्गत विस्तृत प्राक्कलनों का विवरण दिया जाता है।[48]

---

44. अनुदानों की मांगों की पुस्तिका के लिए *देखिए* पृष्ठ 707-08 पर पाद-टिप्पण 24 ।
45. अनुच्छेद 113 (2)।
46. अनुच्छेद 113 (3)।
47. नियम 348 ।
48. नियम 206 ।

    25 मार्च, 1975 को वित्त राज्य मंत्री द्वारा पेश किया गया एक प्रस्ताव कि वित्तीय वर्ष 1975-76 के दौरान नागालैंड सरकार के व्यय के लिए अनुदानों की मांगों के संबंध में इस सदन द्वारा लेखानुदान की अनुमति दिए जाने के लिए लोक सभा के प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों के नियम 206 के उपनियम (2) का वह भाग जो 'मदों में विभाजित प्रत्येक अनुदान के अंतर्गत विस्तृत प्राक्कलन के विवरण' से सम्बद्ध है, निलम्बित किया जाए, स्वीकार कर लिया गया था—*लो.स.वा.वि.*, 25.3.1975, पृ. 150-51 ।

इस प्रकार प्राक्कलनों में से जितने प्राक्कलन भारत की संचित निधि पर 'भारित' व्यय से संबंधित हैं वे लोक सभा में मतदान के लिये नहीं रखे जाते हैं, किन्तु संसद ऐसे प्राक्कलनों पर विचार कर सकती है।[49] ऐसे प्राक्कलनों को अनुदानों की मांगें नहीं कहा जाता और उन्हें संसद के समक्ष रखने के लिये राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता नहीं है।[50]

अनुदानों की मांगें लोक सभा में प्रस्तुत किये जाने के बाद अध्यक्ष की अनुमति से और राष्ट्रपति की आवश्यक सिफारिश पर, कुल राशि को प्रभावित किए बिना मांगों की संरचना में परिवर्तन किये गये हैं।[51] घटी हुई राशि की कोई मांग विशेष प्रस्तुत करने की अनुमति भी दी गई है।[52]

अनुदानों की मांगें प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया

अनुदानों की मांगें सामान्यतया संबंधित मंत्री द्वारा सभा में प्रस्तुत नहीं की जाती।[53] मांगों के संबंध में यह मान लिया जाता है कि वे प्रस्तुत कर दी गई हैं और अध्यक्षपीठ द्वारा सभा का समय बचाने के लिए उन्हें सभा में प्रस्तावित किया जाता है।[54] परन्तु यदि संबंधित मंत्री चाहे तो वह अपने मंत्रालय के संबंध में अनुदानों की मांगों पर चर्चा प्रारम्भ कर सकता है।[55] एक ही मंत्री के प्रभार के अधीन दो भिन्न-भिन्न मंत्रालयों की अनुदानों की मांगों पर अलग-अलग चर्चा होती है।[56]

सामान्यत:, जिन राशियों के लिए सामान्य बजट संबंधी अनुदानों की मांगों के प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं उनमें वे राशियां शामिल नहीं होतीं जो सभा द्वारा उन मांगों के संबंध में लेखानुदान के माध्यम से पहले ही स्वीकृत की जा चुकी हैं।[57] तथापि, यदि साधारण निर्वाचन के बाद मंत्रालयों का पुनर्गठन कर दिया जाये, तो पुनर्गठन से प्रभावित मंत्रालयों के संबंध में अनुदानों की मांगें, अध्यक्ष की अनुमति से, जिन राशियों के लिए प्रस्तुत की जाती हैं तथा

---

49. अनुच्छेद 113 (1)।
50. *लो.स.वा.वि.,* 27.8.1959, पृ. 2390-91 ।
51. *एल.एस. डिबेट्स,* 19.7.1957, कॉ. 4335-36; 25.4.1961, कॉ. 19573-84 और 19658।
52. *पूर्वोक्त,* 25.3.1970, कॉ. 337-39; 28.3.1970, कॉ. 135; *लो.स.वा.वि.,* 16.3.1982, पृ.296; 17.3.1982, पृ. 225 ।
53. *पूर्वोक्त* ।
54. *एल.ए. डिबेट्स,* 10.3.1947, पृ. 1624; और *पी. डिबेट्स* (II), 20.12.1950, कॉ. 2064-65।
55. *एल.एस. डिबेट्स,* 30.3.1959, कॉ. 8565-85; 1.4.1959, कॉ. 9169-82; 28.3.1960, कॉ. 8405-13; 7.4.1961, कॉ. 10108-25; और *लो.स.वा.वि.,* 6.6.1962, पृ. 4328-36; 16.3.1964, पृ. 2066-68 ।
56. *पूर्वोक्त,* 21.7.1971, कॉ. 177-78 ।
57. *एल.एस. डिबेट्स,* 11.5.1976, कॉ. 196-98 ।

पारित होती हैं उनमें वे राशियां भी शामिल होती हैं जो लेखानुदान के माध्यम से पहले ही स्वीकृत की जा चुकी हों।[58]

अनुदानों की मांगों पर चर्चा की व्याप्ति

बजट पर सामान्य चर्चा के दौरान, यद्यपि सभा बजट पर सम्पूर्ण रूप से या उसमें अन्तर्निहित सिद्धान्त के किसी प्रश्न पर चर्चा करने के लिए स्वतंत्र है[59], लेकिन किसी मंत्रालय के संबंध में अनुदानों की मांगों पर चर्चा के समय वाद-विवाद अनिवार्य रूप से उसी विषय तक सीमित रहता है, जो उस मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अंतर्गत हो और चर्चा मांग के उसी शीर्ष पर होती है, जो सभा में मतदान के लिए रखा जाये। अनुदानों की मांगों पर चर्चा के दौरान, सदस्य चाहें तो किसी मंत्रालय विशेष द्वारा अपनाई जाने वाली नीति का निरनुमोदन कर सकते हैं या उस मंत्रालय के प्रशासन में मितव्ययिता के उपायों का सुझाव दे सकते हैं या विशेष स्थानीय शिकायतों पर मंत्रालय का ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

बजट पर सामान्य चर्चा के दौरान कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जाता है और न ही बजट सभा में मतदान के लिये रखा जाता है, परन्तु अनुदानों की मांगों पर चर्चा के समय किसी भी अनुदान मांग की राशि को कम करने के प्रस्ताव प्रस्तुत किए जा सकते हैं[60] परन्तु किसी मांग को कम करने के उद्देश्य से रखे गये प्रस्ताव में किसी संशोधन की अनुज्ञा नहीं है।[61] जब एक ही अनुदान की मांग से संबंधित कटौती के कई प्रस्ताव पेश किये जायें, तब उन पर मदों के उस क्रम में चर्चा की जाती है, जिसमें कि उनसे संबंधित शीर्ष बजट में दिए हों।[62] जब अनुदान की किसी मांग के संबंध में कटौती के सभी प्रस्तावों का निपटान हो जाये, तब वह मांग सभा के मतदान के लिये रखी जाती है।

सुविधा की दृष्टि से, किसी मंत्रालय/विभाग से संबंधित अनुदानों की सभी मांगों पर, इन मांगों में कटौती के लिए प्रस्तुत किए गए प्रस्तावों के साथ, एक साथ चर्चा की जाती है। चर्चा के पश्चात्, मांग की राशि को कम करने के प्रस्तावों को पहले निपटाया जाता है और तत्पश्चात् अनुदानों की मांगों को सभा के मतदान के लिए रखा जाता है।

गिलोटिन

अध्यक्ष, सदन के नेता के परामर्श से अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान के लिए दिन नियत करता है।[63] अध्यक्ष नियत दिनों के अंतिम दिन, 17.00 बजे अथवा किसी ऐसे

---

58. *लो.स.वा.वि.,* 22.6.1971, पृ. 130-31 ।
59. नियम 207 ।
60. नियम 208 (3) ।
61. नियम 208 (4) ।
62. नियम 208 (5) ।
63. नियम 208 का उपनियम (2) संशोधित और अधिसूचित किया गया था–*देखिए लोक सभा समाचार भाग*-2, 30.11.1965 तथा शब्द 'अथवा किसी ऐसे अन्य समय पर जो अध्यक्ष पहले

से निश्चित कर दें' 17.00 बजे के पश्चात् अन्तर्विष्ट किए गये। इस संशोधन से पूर्व, जब बकाया मांगों को नियत दिन या नियत दिनों के अंतिम दिन के बाद वाले दिन में 17.00 बजे के बाद के समय में गिलोटिन करना होता था, उपनियम (2) को निलम्बित करना पड़ता था। अब नियत दिनों के अंत में, बकाया मांगों को गिलोटिन किए जाने का समय अध्यक्ष द्वारा नियत किया जाता है और *समाचार भाग*-2 में पहले से अधिसूचित किया जाता है।

निम्नलिखित विवरण में उन मंत्रालयों/विभागों के नाम दर्शाये गये हैं जिनके संबंध में पिछले दस वर्षों के दौरान चर्चा हुई:

वर्ष	मंत्रालय/विभाग जिनकी अनुदानों की मांगों पर चर्चा हुई और मतदान हुआ
1998-99	कृषि
1999-2000	बिना चर्चा के स्वीकृत
2000-01	(1) संचार
	(2) गृह
	(3) मानव संसाधन विकास
2001-02	(1) ग्रामीण विकास
	(2) विनिवेश
2002-03	(1) कृषि
2003-04	(1) श्रम
	(2) विदेश
2004-05	बिना चर्चा के स्वीकृत
2005-06	(1) कृषि
	(2) ग्रामीण विकास
	(3) गृह
	(4) विज्ञान और प्रौद्योगिकी
2006-07	(1) गृह
	(2) ग्रामीण विकास
	(3) कृषि
2007-08	(1) श्रम और रोजगार
	(2) विज्ञान और प्रौद्योगिकी
	(3) गृह
2008-09	(1) गृह
2009-10	(2) रक्षा
	(3) ग्रामीण विकास
	(4) सूचना और प्रसारण
2009-10	(1) मानव संसाधन विकास
	(2) (एक) कृषि
	(दो) उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण

अन्य समय पर, जो वह पहले से निश्चित कर दे, अनुदानों की मांगों के संबंध में सभी बकाया मामलों को निपटाने के लिए प्रत्येक आवश्यक प्रश्न तुरन्त रखता है।[64]

तथापि, शेष अनुदानों की मांगों के निपटान के लिए बुलेटिन में पहले से अधिसूचित समय और तिथि, सभा द्वारा बदली जा सकती है अथवा बढ़ाई जा सकती है ताकि सभा कुछ और मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों पर चर्चा कर सके।[65]

यदि मांगों के किसी समूह के लिए नियत समय से अधिक समय ले लिया जाये और इसके परिणामस्वरूप मांगों के बाकी समूहों के संबंध में प्रकाशित समय-सारणी को संशोधित कर दिया जाये, तो संशोधित समय-सारणी के अनुसार अनुदानों की मांगों के अंतिम समूह का निपटान करने के लिये नियत दिन, नियत दिनों का अंतिम दिन माना जाता है।[66] यदि अंतिम दिन मांगों का वह अंतिम समूह, जिस पर विचार के लिए समय नियत किया गया है, निश्चित

---

	(3) विद्युत
	(4) गृह
	(5) महिला और बाल विकास
2010-11	(1) विदेश
	(2) ग्रामीण विकास
	(3) जनजातीय कार्य
2011-12	(1) ग्रामीण विकास
	(2) विदेश
	(3) खान
2012-13	(1) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण
	(2) शहरी विकास
	(3) गृह
	(4) वाणिज्य और उद्योग
2013-14	बिना चर्चा के स्वीकृत

64. नियम 208 (2)। बकाया मामलों का निपटान 21 मार्च, 1950 को 18.30 बजे; 12 मई, 1972 को 15.30 बजे; 11 मई, 1976 को 18.00 बजे किया गया। गिलोटिन के समय प्रस्ताव के प्ररूप के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 11.5.1976 कॉ. 226-67 ।

65. 22 अप्रैल, 1987 को सभा ने निर्णय किया कि उसके दिनांक 12 मार्च, 1987 के पहले निर्णय में आंशिक संशोधन करके 1987-88 के बजट (सामान्य) के संबंध में अनुदानों की सभी बकाया मांगों का निपटान किया जाये और उन्हें 24 अप्रैल, 1987 को 15.30 बजे के बजाय 28 अप्रैल, 1987 को 18.00 बजे सभा के मतदान के लिए रखा जाये और वित्त विधेयक, 1987 को विचार तथा पारित करने के लिए 27 और 28 अप्रैल, 1987 को पारित करने के बजाय 29 और 30 अप्रैल तथा 4 मई, 1987 को लिया जाये। तद्नुसार, बकाया मांगों को 28 अप्रैल, 1987 को 18.00 बजे सभा के मतदान के लिए रखा गया और पारित किया गया।

66. *लो.स.वा.वि.,* 17.4.1956, पृ. 2424; *एल.एस. डिबेट्स,* 20.4.1959, कॉ. 12420 ।

समय से पहले निपट जाता है तो बकाया मांगें नियत समय पर ही गिलोटिन की जाती हैं। बीच के समय में उस दिन की कार्य सूची में शामिल की गई किसी अन्य मद पर विचार किया जाता है।[67]

कटौती प्रस्ताव

अनुदानों की मांगों पर चर्चा के दौरान, किसी मांग की राशि को कम करने का प्रस्ताव किया जा सकता है। ऐसे प्रस्ताव को 'कटौती प्रस्ताव' कहा जाता है।[68] यह किसी मांग पर चर्चा प्रारम्भ करने का एक रूप मात्र है, जिससे कि सभा का ध्यान ऐसे प्रस्ताव में निर्दिष्ट मामले की ओर आकृष्ट किया जा सके। यह आवश्यक नहीं है कि चर्चा किसी कटौती प्रस्ताव पर ही प्रारम्भ हो; और न ही इसके कारण किसी सदस्य को यह अधिकार मिल जाता है कि वह अपना कटौती प्रस्ताव पेश करने का आग्रह करे। कटौती प्रस्तावों की सूचना केवल विरोधी पक्ष के सदस्यों द्वारा दी जाती है और सत्ताधारी दल के सदस्य सामान्यतया ऐसी सूचनायें नहीं देते, क्योंकि ऐसा करना मंत्रिपरिषद् की निंदा या अप्रत्यक्ष रूप से उसमें 'अविश्वास' का प्रस्ताव रखने वाली बात होगी।[69]

कटौती प्रस्तावों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—नीति निरनुमोदन कटौती, मितव्ययिता कटौती और सांकेतिक कटौती।

नीति निरनुमोदन कटौती

जब किसी प्रस्ताव का उद्देश्य किसी मांग की नीति का निरनुमोदन करना हो, तो उसका रूप यह होता है 'कि मांग की राशि को कम करके 1 रुपया किया जाये'। ऐसे कटौती प्रस्ताव की सूचना देने वाले सदस्य को स्पष्ट शब्दों में इस नीति का ब्यौरा बताना होता है, जिस पर वह चर्चा करना चाहता है। चर्चा उसी विशिष्ट मुद्दे अथवा मुद्दों तक सीमित रहती है जिनका उल्लेख सूचना में किया गया हो और सदस्य किसी वैकल्पिक नीति का सुझाव दे सकता है।

मितव्ययिता कटौती

यदि यह तर्क दिया जाए कि खर्चे में बचत हो सकती है, तो प्रस्ताव का रूप यह होता है, 'कि मांग की राशि में.... रुपये (एक राशि विशेष) कम किये जायें'। कम करने के लिए सुझाई गई राशि मांग में एकमुश्त राशि की कमी करने के बारे में हो सकती है या मांग में से किसी मद को हटाने या उसमें कमी करने के बारे में हो सकती है। "मितव्ययिता कटौती" के लिए प्रस्तावों में बचत की जाने वाली अनुमानित धनराशि अवश्य बताई जानी चाहिए।[70] कटौती प्रस्ताव की सूचना में संक्षेप में और स्पष्ट शब्दों में, उस विशिष्ट मुद्दे का उल्लेख करना

---

67. *लो.स.वा.वि.,* 16.4.1955, पृ. 4149-51; 20.4.1959, पृ. 5880-82 ।
68. नियम 209 ।
69. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.8.1957, कॉ. 8988-89 ।
70. *एल.एस. डिबेट्स,* 17.12.1956, कॉ. 3184 ।

जरूरी है, जिस पर चर्चा उठाने की मंशा हो तथा भाषण केवल उन्हीं बातों तक सीमित रहते हैं, जिनमें यह बताया गया हो कि बचत किस प्रकार की जा सकती है।

सांकेतिक कटौती

जब यह प्रस्ताव पेश किया जाता है, "कि मांग की राशि में 100 रुपये कम किए जायें," तो उसका उद्देश्य यह होता है कि भारत सरकार के उत्तरदायित्व के क्षेत्र में किसी बात के बारे में किसी विशेष शिकायत को प्रकट किया जाये। ऐसे कटौती प्रस्ताव पर चर्चा प्रस्ताव में विनिर्दिष्ट विशेष शिकायत तक ही सीमित रहती है।

> नीति की विशिष्टियां, विनिर्दिष्ट विषय या शिकायत, जैसी भी स्थिति हो, को कटौती प्रस्ताव की सूचना में, जिस पर सदस्य कटौती प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा उठाना चाहता हो—चाहे वह नीति निरनुमोदन कटौती प्रस्ताव हो या मितव्ययिता कटौती प्रस्ताव हो या सांकेतिक कटौती प्रस्ताव हो—संक्षेप में स्पष्ट रूप से बताने की प्रथा 1925 के बजट सत्र में प्रारम्भ की गई थी।[71]

कटौती प्रस्ताव की सूचना उस दिन से एक दिन[72] पहले देनी होती है, जिस दिन उस मांग पर विचार किया जाना हो, परन्तु अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपर्याप्त सूचना के आधार पर की गई आपत्ति को अस्वीकार कर सकता है।[73]

कटौती प्रस्तावों की ग्राह्यता

मांग की राशि कम करने का प्रस्ताव तभी ग्राह्य होता है जब वह निम्नलिखित शर्तें पूरी करे,[74] अर्थात्—

> उसका संबंध केवल एक मांग से होना चाहिए:

---

71. *एल.ए. डिबेट्स,* 16.2.1925, पृ. 1091-93 ।

72. चूंकि कटौती प्रस्ताव और संशोधन सदस्यों को अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में साथ-साथ परिचालित किए जाते हैं, इसलिए नियम समिति (चौथी लोक सभा) ने (1) विधेयकों में संशोधनों, संकल्पों और प्रस्तावों तथा (2) कटौती प्रस्तावों की सूचना देने की अवधि की अपर्याप्तता पर विचार किया। समिति ने तय किया कि सदस्यों से ऐसी सूचना उस दिन से जिस दिन उन्हें सदन में उठाया जाना है, कम से कम दो दिन पूर्व देने का अनुरोध किया जाना चाहिए। सत्र प्रारंभ होने से पूर्व सदस्यों से समाचार (बुलेटिन) के माध्यम से अनुरोध किया जाता है कि वे विधेयकों में संशोधनों, प्रस्तावों और संकल्पों तथा कटौती प्रस्तावों की सूचना उस दिन से कम से कम दो दिन पूर्व दें, लेकिन किसी भी हालत में उससे पूर्ववर्ती दिन 15.15 बजे के बाद न दें, जिस दिन उनसे संबद्ध मुद्दे पर सदन में विचार किया जाना है। *समाचार भाग*-2, 18.2.1988, पैरा 2103 ।

73. नियम 212—अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 31—प्रक्रिया के सामान्य नियम, 'सूचनायें', उपशीर्ष के अंतर्गत ।

74. नियम 210 ।

> किसी एक अनुदान की मांग के संबंध में कोई ऐसा सामान्य प्रस्ताव नहीं किया जा सकता, जिसमें अनुदानों की अनेक मांगों का उल्लेख किया गया हो। अत: ऐसा सर्वव्यापी कटौती प्रस्ताव नियमानुकूल नहीं है, जिसमें कई मांगों की राशि में किसी विनिर्दिष्ट प्रतिशत या राशि की सामान्य कटौती की बात कही गयी हो। जो सदस्य किसी मद विशेष में कटौती कराना चाहता हो, उसे उपयुक्त मांग के अंतर्गत केवल उसी मद के संबंध में सूचना देनी होती है।[75]

यह स्पष्टतया व्यक्त किया जाना चाहिए और उसमें तर्क, अनुमान, व्यंग्यात्मक पद, अभ्यारोपण, विशेषण या मानहानिकारक कथन नहीं होने चाहिएं:

यह एक ही विनिर्दिष्ट विषय तक सीमित रखा जाना चाहिए और उस विषय का वर्णन सटीक शब्दों में किया जाना चाहिए।[76]

किसी कटौती प्रस्ताव पर उठाया जाने वाला प्रश्न निश्चित होना चाहिए। प्रस्ताव में एक प्रश्न विशेष उठाया जाना चाहिए; यह व्यापक प्रस्ताव नहीं होना चाहिए, जैसे यह कि 'भारतीय रेल के कर्मचारियों की शिकायतों' पर विचार किया जाये। जिन विषयों का उल्लेख कटौती प्रस्ताव में न किया गया हो, उन पर कटौती प्रस्ताव के अंतर्गत चर्चा नहीं की जा सकती।[77] किसी कटौती प्रस्ताव के अंतर्गत केवल एक ही विषय पर चर्चा करने की अनुमति है।[78] कटौती प्रस्ताव पर भाषण का संबंध प्रस्ताव में विनिर्दिष्ट विशेष विषय से होना चाहिए तथा इस बारे में किसी सामान्य चर्चा की अनुमति नहीं है।[79]

उसमें किसी ऐसे व्यक्ति के चरित्र या आचरण पर अभ्युक्ति नहीं की जानी चाहिए, जिसके आचरण पर मूल प्रस्ताव के द्वारा ही आपत्ति की जा सकती हो;

उसमें विद्यमान विधियों का संशोधन या निरसन करने के लिये सुझाव नहीं दिये जाने चाहिये;

उसका संबंध किसी ऐसे विषय से नहीं होना चाहिए, जिसके लिए मुख्यतया भारत सरकार जिम्मेदार न हो;

उसका किसी ऐसे व्यय से संबंध नहीं होना चाहिये, जो कि भारत की संचित निधि पर भारित हो;

---

75. *एल.ए. डिबेट्स,* 1922 खण्ड 2, पृ. 3047 और 9.3.1931, पृ. 837-68 ।
76. *पूर्वोक्त,* 25.2.1942, पृ. 535 ।
77. *पी. डिबेट्स* (II), 4.3.1952, कॉ. 1885 ।
    कोई कटौती प्रस्ताव, जो मांग की विषय-वस्तु से असंबद्ध हो, नियमानुकूल नहीं है—*एल.एस.* डिबेट्स, 6.3.1959, कॉ. 4836 ।
78. *पूर्वोक्त* (II), 4.3.1952, कॉ. 1892 ।
79. *पूर्वोक्त,* कॉ. 1942 ।

उसका किसी ऐसे विषय से संबंध नहीं होना चाहिये, जो भारत के किसी भाग में अधिकारिता रखने वाले किसी न्यायालय के न्यायनिर्णयन के अन्तर्गत हो;

उसमें विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिये;

उसमें किसी ऐसे विषय पर फिर चर्चा नहीं की जानी चाहिये, जिस पर उसी सत्र में पहले चर्चा की जा चुकी हो और जिस पर पहले निर्णय किया जा चुका हो;

उसमें उस विषय की पूर्वाशा नहीं की जानी चाहिये, जो उसी सत्र में विचार के लिये पहले ही नियत किया जा चुका हो।[80]

उसमें साधारणतया ऐसे विषय पर चर्चा नहीं उठायी जानी चाहिये, जो किसी न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कृत्य करने वाले किसी सांविधिक अधिकरण या सांविधिक प्राधिकारी के, या किसी विषय की जांच या उसका अन्वेषण करने के लिये नियुक्त किसी आयोग या जांच न्यायालय के सामने विचाराधीन हो;

अध्यक्ष अपने विवेक से ऐसे विषय को सभा में उठाने की अनुमति दे सकता है, जो जांच की प्रक्रिया अथवा प्रक्रम से संबंधित हो, यदि उसका यह समाधान हो जाये कि इससे सांविधिक अधिकरण, सांविधिक प्राधिकारी, आयोग या जांच न्यायालय द्वारा उस विषय पर विचार किये जाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है; और

उसका संबंध किसी तुच्छ विषय से नहीं होना चाहिए।

अध्यक्ष इस बात का विनिश्चय करता है कि नियमों के अंतर्गत कोई कटौती प्रस्ताव ग्राह्य है या नहीं और जब भी उसके विचार में यह कटौती प्रस्ताव रखने के अधिकार का दुरुपयोग हो या उसका उद्देश्य सभा की प्रक्रिया में बाधा डालना या उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालना हो या वह नियमों के विरुद्ध हो, तो वह ऐसे किसी भी कटौती प्रस्ताव को नामंजूर कर सकता है।[81]

किसी मुद्दे पर कार्यवाही न करने के लिए सरकार की निन्दा करने के आशय वाले कटौती प्रस्ताव को यदि लिया जाता है तो यह संसद द्वारा पारित विधि का व्यतिक्रमण होगा और नियमानुकूल नहीं होगा।[82]

यह एक सुस्थापित प्रथा है कि किसी भी मामले में अध्यक्ष के कार्य पर चर्चा करने के लिये कोई कटौती प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता।[83] यदि कटौती प्रस्ताव उस विभाग या उन विषयों के संबंध में हों, जो कि पूर्णतया अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन हैं, तो वे नियम विरुद्ध होते हैं।[84] इसी प्रकार, उप राष्ट्रपति (जो राज्य सभा का पदेन सभापति भी होता है) के कार्यालय

---

80. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 26.6.1952, कॉ. 2526-27 ।

81. नियम 211 ।

82. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.8.1957, कॉ. 8988-89 ।

83. *पूर्वोक्त,* 6.3.1942, पृ. 777 ।

84. *सी.ए. (लेज.) डिबेट्स* (II), 23.12.1949, पृ. 997-98 ।

से संबंधित कटौती प्रस्ताव भी ग्राह्य नहीं होते हैं। यदि कटौती प्रस्तावों के माध्यम से कोई व्यक्तिगत शिकायतें व्यक्त की गई हों या उनमें किसी सरकारी कर्मचारी पर व्यक्तिगत रूप से आक्षेप किया गया हो, तो वे ग्राह्य नहीं होते। किसी मित्र देश के साथ संबंधों को प्रभावित करने संबंधी मामले या किसी स्वायत्तशासी निकाय[85] के आन्तरिक प्रशासन के ब्यौरे पर चर्चा चाहने वाले और साथ ही सम्पूर्ण अनुदान को समाप्त करने की मांग करने वाले कटौती प्रस्ताव[86] भी नियम विरुद्ध होते हैं।

तथापि, मांग विशेष के संबंध में किए गए प्रावधान की अपर्याप्तता पर चर्चा की अपेक्षा करने वाले सांकेतिक कटौती प्रस्ताव नियमानुकूल होते हैं।

कटौती प्रस्तावों की सूचियों का परिचालन

अनुदानों की विभिन्न मांगों पर कटौती प्रस्ताव की सूचनाओं को संख्यांकित करने के बाद उन्हें मंत्रालय-वार समेकित किया जाता है। समेकित सूचियां मुद्रित की जाती हैं और उन्हें सभी सदस्यों और संबंधित मंत्री को सामान्यत: जिस तारीख को सभा में उसके मंत्रालय से संबंधित अनुदानों की मांगें चर्चा के लिए ली जानी हों, उससे दो दिन पहले परिचालित की जाती हैं। यदि इस प्रकार की कोई समेकित सूची जारी किये जाने के बाद उन मांगों के संबंध में और कटौती प्रस्तावों की सूचनायें प्राप्त हों, तो उन्हें उस मंत्रालय के संबंध में बाद में सूची या सूचियां, जिन पर क्रमवार संख्या दी जाती है, जारी करके परिचालित किया जाता है।

सूची में कटौती प्रस्तावों को मांगों के अनुसार अलग-अलग समूहों में रखा जाता है।[87] जहां तक किसी मांग विशेष के संबंध में कटौती प्रस्तावों के क्रमानुसार रखे जाने का संबंध

सातवीं लोक सभा के दूसरे सत्र के दौरान लोक सभा सचिवालय से संबंधित मामले पर चर्चा हेतु प्रस्तुत निम्न कटौती प्रस्ताव अस्वीकार कर दिए गये थे और परिचालित नहीं किए गये थे:—

(*i*) कि लोक सभा शीर्ष के अंतर्गत मांग की राशि को कम करके 1 रुपया किया जाये। (लोक सभा के कर्मचारियों को दी जाने वाली सुविधाओं में सुधार करने में असफलता)।

(*ii*) कि लोक सभा शीर्ष के अंतर्गत मांग की राशि को कम करके 1 रुपया किया जाये। (लोक सभा कर्मचारी संघ को मान्यता देने में असफलता और उसके विकास के मार्ग में बाधाएं पैदा करना) ।

85. *एल.एस. डिबेट्स,* 25.3.1960, कॉ. 8134-37 ।

तथापि, स्वायत्तशासी निकायों के कार्यकरण से संबंधित कटौती प्रस्ताव स्वीकार किए जाते हैं यदि वे लोक महत्त्व का मामला उठाते हैं।

86. *एल.ए. डिबेट्स,* 9.3.1927, पृ. 1913-14 ।

87. पूर्व में, ''कार्य सूची'' में सूचीबद्ध कटौती प्रस्ताव आवश्यक रुप से क्रमानुसार नहीं होते थे। जब प्रश्न सभा में उठता था, तो अध्यक्ष द्वारा उनकी ग्राहृता पर निर्णय किया जाता था; *एल.ए.डिबेट्स,* 6.3.1928, पृ. 1537 ।

है, उस सूची में सबसे पहले नीति निरनुमोदन कटौती प्रस्ताव रखे जाते हैं, उनके बाद मितव्ययिता कटौती प्रस्ताव और अन्त में सांकेतिक कटौती प्रस्ताव रखे जाते हैं।

कटौती प्रस्तावों के पेश किए जाने की प्रक्रिया

किसी मंत्रालय विशेष से संबंधित अनुदानों की मांगों पर चर्चा के आरंभ में अध्यक्ष द्वारा यह घोषणा की जाती है कि मांगों के लिए जिन सदस्यों के कटौती प्रस्ताव परिचालित किये गये हैं, यदि वे अपने कटौती प्रस्ताव पेश करना चाहते हैं, तो अपने कटौती प्रस्तावों को जिन्हें वे पेश करना चाहते हैं की क्रम संख्या दर्शाते हुए पर्चियां 15 मिनट के भीतर सभा पटल पर भेज सकते हैं। केवल उन्हीं कटौती प्रस्तावों को, जिनके लिए निर्धारित समय में पर्चियां सभा पटल पर प्राप्त होंगी, पेश किया गया माना जाएगा।

उसके तुरंत बाद सदस्यों द्वारा दर्शाये गए क्रम संख्या वाले कटौती प्रस्तावों की सूची सूचना पटल पर लगायी जाती है ताकि सदस्य किसी त्रुटि, यदि कोई दो, के बारे में सभा पटल पर विद्यमान अधिकारियों के संज्ञान में तत्काल ला सके। इस चरण में भी अध्यक्ष को किसी कटौती प्रस्ताव को नियम विरुद्ध घोषित करने का विशेषाधिकार है भले ही इसे सदस्यों को परिचालित कर दिया गया हो। बाद में किसी प्रक्रम पर कटौती प्रस्ताव पेश नहीं किए जा सकते। लेकिन सदस्य अपने भाषणों के दौरान उनका उल्लेख कर सकते हैं।[88]

जब कटौती प्रस्तावों की सूची में कोई कटौती प्रस्ताव अनेक सदस्यों के नाम में मुद्रित हो और वे लिख कर दें कि वे उसे पेश करना चाहते हैं, तो कटौती प्रस्ताव उस सदस्य द्वारा पेश किया हुआ माना जाता है, जिसका नाम सूची में सबसे ऊपर हो, और यदि वह सभा में उपस्थित न हो या उसने प्रस्ताव को पेश करने के अपने अभिप्राय की सूचना न दी हो, तो दूसरे या तीसरे आदि सदस्य द्वारा, जो उस समय उपस्थित हो, उसके द्वारा पेश किया हुआ माना जाता है। कार्यवाही में केवल ऐसे सदस्य का नाम ही कटौती प्रस्ताव के प्रस्तावक के रूप में दिखाया जाता है। एक समान प्रस्ताव पेश करना नियामानुकूल नहीं है।[89]

वर्ष 2009 तक, लंबित मांगों के लिए कटौती प्रस्ताव पेश करने की अनुमति नहीं थी अथवा यदि समुचित चर्चा और मतदान के लिए समय न हो।[90] तथापि वर्ष 2010 से, लंबित

---

88. *एल.एस. डिबेट्स,* 23.7.1957, कॉ. 4733-35; *लो.स.वा.वि.,* 14.6.1971, पृ. 146; 15.6.1971, पृ. 103 ।
89. निदेश 42 ।
90. *एल.ए. डिबेट्स,* 25.2.1942, पृ. 512-15 ।

    गिलोटिन की जाने वाली अनुदानों की मांगों से संबंधित कटौती प्रस्ताव सदस्यों को परिचालित नहीं किए जाते हैं। तथापि, ऐसे कटौती प्रस्तावों की एक अग्रिम प्रति संबंधित मंत्रालय/विभाग को भेजी जाती है। चौदहवीं लोक सभा के सातवें और दसवें सत्र के दौरान यह निर्णय किया गया कि क्रमशः 2006-07 और 2007-08 की अनुदानों की मांगों (रेल) पर सभा द्वारा बिना चर्चा किए विचार और मतदान किया जा सकता है। जब मद को लिया जाना था, तो अध्यक्ष पीठ ने टिप्पणी की कि उन सभी कटौती प्रस्तावों जिनके लिए सूचनाएं दी गई थीं। तथा जिन्हें

मांगों के लिए कटौती प्रस्तावों को पेश करने की अनुमति है।[91]

परिचालित कर दिया गया था, को पेश किया माना जाए। तद्नुसार, सभी कटौती प्रस्तावों को पेश किया गया माना गया तथा मतदान के लिए रखा गया और सभा द्वारा उन्हें अस्वीकृत कर दिया गया।

91. बजट सत्र 2010-11 के दौरान, गुरुदास दासगुप्ता ने अध्यक्ष को संबोधित पत्र में लिखा कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 113 किसी सदस्य को यह अधिकार देता है कि वह अनुदानों की मांगों के रूप में प्रस्तुत किसी व्यय को अनुमति दे सकता है अथवा अनुमति देने से मना कर सकता है, परंतु गिलोटिन के माध्यम से पारित मांगों के संबंध में सदस्य को यह अधिकार नहीं है। अत: उन्होंने अध्यक्ष से इस अनियमितता पर विचार करने का अनुरोध किया था। संविधान के संबंधित उपबंधों और सभा के नियमों के आलोक में सदस्य के अनुरोध की जांच की गई। अध्यक्ष ने 27 अप्रैल 2010 को गिलोटिन की जाने वाली मांगों के लिए कटौती प्रस्तावों की अनुमति देते हुए यह व्यवस्था दी:

''श्री गुरुदास दासगुप्ता, माननीय सदस्य ने मुझे संबोधित एक पत्र में गिलोटिन की जाने वाली अनुदानों की मांगों के लिए कटौती प्रस्तावों को पेश करने के संबंध में सभा के सदस्यों के अधिकार से संबंधित एक महत्वपूर्ण मुद्दा उठाया है। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 113 का उल्लेख किया है और लिखा है कि जब संविधान ने लोक सभा को किसी मांग से संबंधित राशि विशेष को कम करने के अध्यधीन किसी मांग को स्वीकार करने की शक्ति प्रदान की है, तो सदस्यों को सभा के समक्ष अनुमति हेतु प्रस्तुत किसी भी मांग के संबंध में कटौती प्रस्ताव पेश करने का अधिकार है।

इस मुदद्े को 15 अप्रैल 2010 को आयोजित कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में विपक्ष की नेता, श्रीमति सुषमा स्वराज और अन्य माननीय सदस्यों द्वारा भी उठाया गया था। मैंने संवैधानिक उपबंधों और सभा में अनुसरण किए जा रहे नियमों तथा पद्धतियों के संदर्भ में इस मुद्दे की जांच करने का वादा किया था।

अभी तक सभा में इस परंपरा का अनुसरण किया जा रहा है कि जिन अनुदानों की मांगों को गिलोटिन किया जाना है उनके संबंध में कटौती प्रस्ताव परिचालित नहीं किये जाते हैं और इस प्रकार उन्हें पेश करने की अनुमति नहीं होती। परंतु मुझे ऐसा कोई नियम नहीं मिला जो ऐसी मांगों, जिन पर सभा में चर्चा न की गई हों, के संबंध में कटौती प्रस्तावों को पेश करने से रोकता हो।

किसी कटौती प्रस्ताव को पेश करने का अधिकार किसी मांग से संबंधित राशि विशेष को कम करने के अध्यधीन किसी मांग को स्वीकार करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 113 के अंतर्गत सभा में निहित शक्ति से प्राप्त होता है। यह अनुच्छेद अथवा अन्य कोई भी नियम सभा में चर्चा की जाने वाली और गिलोटिन की जाने वाली मांगों में किसी तरह का विभेद नहीं करता। अनुच्छेद 113 में ''कोई मांग'' शब्द का उपयोग किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 113(2) के अंतर्गत सभा में प्रस्तुत सभी मांगों के संबंध में कटौती प्रस्ताव प्रस्तुत पेश किये जा सकते हैं।

मैंने इन नियमों के साथ-साथ विगत वर्षों में कटौती प्रस्तावों के संदर्भ में अनुसरण की जा रही परंपरा पर सावधानीपूर्वक विचार किया है। मैंने संवैधानिक प्रावधान की भी जांच की है जिसने लोक सभा को सभा के समक्ष प्रस्तुत किसी भी मांग को कम करने की शक्ति प्रदान की है। सभा के सदस्यों के संवैधानिक अधिकार संविधान में दिए गए हैं जिन्हें कम नहीं किया

कटौती प्रस्ताव किसी और के द्वारा पेश नहीं किया जा सकता

''कटौती प्रस्तावों की सूचना देने वाले सदस्य के अतिरिक्त कोई अन्य सदस्य इसे प्रस्तुत नहीं कर सकता''।[92] किसी सदस्य द्वारा दी गई यह सूचना कि वह किसी मंत्रालय विशेष से संबंधित अनुदानों की मांगों पर कटौती प्रस्ताव पेश करेगा, उन्हें पेश मान लिया जाना पर्याप्त नहीं है; उस मंत्रालय की अनुदानों की मांगों को पेश किये जाते समय सदस्य को सदन में उपस्थित रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त, संशोधनों की तरह, कटौती प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को उस कटौती प्रस्ताव पर भाषण देने के लिये बुलाये जाने का अंतर्निहित अधिकार प्राप्त नहीं[93] है, और न ही उसे अपने कटौती प्रस्ताव पर वाद-विवाद का उत्तर देने का अधिकार है।[94]

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, परम्परानुसार सत्ताधारी दल के सदस्य अनुदानों की मांगों पर कटौती प्रस्ताव की न तो सूचना देते हैं और न ही कटौती प्रस्ताव पेश करते हैं[95] लेकिन वे चर्चा में भाग लेते हैं और अपने भाषणों में सरकार की नीति अथवा किसी व्यय के औचित्य अथवा वित्तीय सम्भावनाओं की आलोचना कर सकते हैं या उन पर प्रश्न उठा सकते हैं।[96] तथापि, ऐसे भी अवसर आये हैं जब सत्ताधारी दल के सदस्यों ने कटौती प्रस्तावों की सूचनाएं रखी थीं, किन्तु उन्हें पेश नहीं किया था।

जा सकता। अत: मैं गिलोटिन की जाने वाली मांगों के संबंध में कटौती प्रस्ताव पेश किए जाने की अनुमति देती हूं। विभिन्न मंत्रालयों/विभागों से संबंधित लंबित मांगों के लिए कटौती प्रस्तावों की सूचियां पहले ही परिचालित की जा चुकी हैं। सामान्य रुप से, सदस्यों को उन कटौती प्रस्तावों की, जिन्हें वे पेश करना चाहते हैं, कम संख्या दर्शाते हुए पर्चियां सभा पटल पर रखने के लिए 15 मिनट का समय दिया जाता है। तथापि, इस मामले में, चूंकि यह संभव नहीं है कि सदस्यों को उन कटौती प्रस्तावों की, जिन्हें वे पेश करना चाहते हैं, क्रम संख्या दर्शाते हुए पर्चियां सभा पटल पर रखने के लिए समय दिया जाना संभव नहीं है इसलिए विभिन्न मंत्रालयों विभागों की लंबित मांगों से संबंधित सभी कटौती प्रस्तावों, जिनके लिए सूचनाएं दी जा चुकी हैं और जिन्हें परिचालित किया जा चुका है, को पेश किया हुआ माना जाएगा। और इन कटौती प्रस्तावों को लंबित मांगों को सभा में मतदान के लिए रखने से पहले निपटाया जाएगा।''

92. *पूर्वोक्त,* 16.3.1921, पृ. 1147 ।
93. *एल.एस. डिबेट्स,* 24.9.1955, कॉ. 15107-09; 5.3.1959, पृ. 2408-12।
94. *एल.ए.डिबेट्स,* 27.2.1936, पृ. 1747-48 ।
95. आठवीं लोक सभा के पांचवें सत्र के दौरान सत्ताधारी दल के एक सदस्य ने अनुदानों की मांगों (वाणिज्य) पर एक कटौती प्रस्ताव की सूचना दी थी जिसे परिचालित किया गया था, लेकिन अध्यक्ष पीठ द्वारा इस आशय की घोषणा किए जाने पर सदस्य ने अपना कटौती प्रस्ताव पेश नहीं किया। ग्यारहवीं लोक सभा के दूसरे सत्र के दौरान 30.8.1996 को ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय के संबंध में अनुदानों की मांगों से संबंधित कटौती प्रस्तावों की सूचनाएं एक ऐसे सदस्य द्वारा दी गई थीं जिसकी पार्टी सत्ताधारी दल को बाहर से समर्थन दे रही थी। उसके कटौती प्रस्ताव परिचालित कर दिए गए थे। 9 सितम्बर 1996 को इस सदस्य ने अपने कटौती प्रस्ताव पेश किये लेकिन मंत्रालय की मांगें मतदान के लिए रखे जाने से पूर्व ही सभा की अनुमति से वापिस ले लिये।
96. *एल.एस. डिबेट्स,* 2.5.1962, कॉ. 2180; 22.6.1967, पृ. 3098; 29.3.1977, कॉ. 124 ।

मंत्रालयों के वार्षिक प्रतिवेदनों और कार्य-निष्पादन/परिणामी बजटों का परिचालन

बजट पर चर्चा के संबंध में मंत्रालयों के वार्षिक प्रतिवेदनों की प्रतियां सदस्यों को उपलब्ध करायी जाती हैं। इन प्रतिवेदनों में चालू वर्ष के दौरान मंत्रालय के कार्य-निष्पादन के संबंध में आवश्यक जानकारी और उसके कार्यकरण की पृष्ठभूमि तथा अगले वित्तीय वर्ष का कार्यक्रम भी दिया जाता है। ये प्रतिवेदन बड़े सूचनाप्रद और उपयोगी होते हैं और सच तो यह है कि ये उस भाषण के अनुपूरक होते हैं, जिस भाषण को देने की प्रत्येक मंत्री विशेष को अपनी मांग पेश करते समय उसका औचित्य बताने के लिये आवश्यकता पड़ती है।

वार्षिक प्रतिवेदन सामान्यत: बजट पेश किये जाने के बाद, परन्तु मंत्रालय विशेष से संबंधित मांगों पर सभा में चर्चा होने से पहले सदस्यों को उपलब्ध कराए जाते हैं। विभागों से संबद्ध स्थायी समिति प्रणाली की शुरुआत होने से इन समितियों को भी अनुदानों की मांगों पर विचार के संबंध में वार्षिक प्रतिवेदनों और कार्य-निष्पादन/परिणामी बजटों की प्रतियां उपलब्ध करा दी जाती हैं।[97]

वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय के संबंध में अनुदानों की मांगों पर चल रही एक चर्चा के दौरान सभा में यह शिकायत किए जाने पर कि मंत्रालय का वार्षिक प्रतिवेदन सदस्यों को परिचालित नहीं किया गया, बल्कि उन्हें मंत्रालय के कार्यकलाप का सारांश मात्र ही उपलब्ध कराया गया था, अध्यक्ष ने टिप्पणी की:

> 'मंत्रियों को यह बात सुनिश्चित करनी चाहिये कि सामान्य चर्चा प्रारम्भ होने से पहले ही समस्त प्रतिवेदन सदस्यों को उपलब्ध करा दिये जाएं, क्योंकि जब तक ये विभिन्न प्रतिवेदन सदस्यों को नहीं मिलते, सामान्य चर्चा का कोई लाभ नहीं होगा। यह आवश्यक नहीं है कि सभी सदस्य प्रत्येक विषय में रुचि रखते हों, परन्तु सामान्य चर्चा का उद्देश्य यही होता है कि सभी विषयों पर चर्चा हो सके।[98]

पंद्रहवीं लोक सभा के सातवें सत्र के दौरान 14 मार्च 2011 को ग्रामीण विकास मंत्रालय की अनुदानों की मांगों और परिणामी बजट को क्रमश: चर्चा और सभा पटल पर रखने हेतु कार्य-सूची में शामिल किया गया था। मंत्रालय द्वारा उसी दिन वार्षिक प्रतिवेदन की प्रतियां (केवल अंग्रेजी संस्करण) उपलब्ध कराई गईं और प्रकाशन फलक के माध्यम से सदस्यों को दी गईं। यह स्थिति अध्यक्ष के संज्ञान में लाई गई, जिन्होंने मंत्रालय की अनुदानों की मांगों को चर्चा हेतु लिए जाने से पूर्व टिप्पणी की कि भविष्य में सरकार यह सुनिश्चित करे कि मंत्रालयों के वार्षिक प्रतिवेदन, परिणामी बजट और विस्तृत अनुदानों की मांगों, जिन पर चर्चा की जानी है, को सदस्यों को पर्याप्त समय पूर्व उपलब्ध कराए जाएं ताकि उन्हें उनका अध्ययन करने के लिए समुचित समय मिल सके।[99]

---

97. नियम 331 छ ।
98. *एल.एस. डिबेट्स,* 19.3.1958, कॉ. 5633-34; 8.3.1963, पृ. 1420 ।
99. एल. एस. डिबेट्स 14-3-2011

वर्ष 1969 में, प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के आधार पर विकास कार्यक्रमों को देख रहे मंत्रालयों द्वारा कार्य-निष्पादन बजटों की प्रणाली शुरू की गई थी। मंत्रालय/विभाग के कार्य-निष्पादन बजट में कृत्यों, कार्यक्रमों और कार्यकलापों के सन्दर्भ में बजट की स्थिति दर्शायी गई। सदस्यों को अनुदानों की मांगों पर चर्चा के संबंध में संबंधित मंत्रालयों/विभागों से प्राप्त कार्य-निष्पादन बजटों की प्रतियां उपलब्ध कराई गई थीं।

चूंकि कार्य-निष्पादन बजट-दस्तावेजों में कतिपय खामियां रह गई थीं इसलिए वित्त मंत्रालय ने वर्ष 2006 में परिणामी बजट की अवधारणा शुरू की जिसमें पिछले वर्ष के वास्तविक कार्य निष्पादन, चालू वर्ष के पहले नौ महीनों के कार्य-निष्पादन और आगामी वर्ष के लक्षित निष्पादन के संदर्भ में वित्तीय बजटों का वास्तविक आयाम वृहत रूप से इंगित होता था। तदनुसार, 25 अगस्त 2005 को वित्त मंत्री ने पहली बार सभा के समक्ष विभिन्न मंत्रालयों और विभागों से संबंधित परिणामी बजट 2005-06 प्रस्तुत किया। मार्च, 2006 में विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के परिणामी बजट 2006-07 तथा कार्य-निष्पादन बजट 2005-06 संबंधित मंत्रालयों द्वारा सभा के समक्ष पृथक-पृथक रूप से प्रस्तुत किए गए। वित्त मंत्रालय ने दिसम्बर 2006 में, कार्य-निष्पादन बजट का परिणामी बजट में विलय कर दिया। तदनुसार, 2007-08 के बजट से शुरू करके, 'विभिन्न मंत्रालयों और विभागों का परिणामी बजट' नाम से एकल दस्तावेज अनुदानों की मांगों पर चर्चा के संबंध में सदस्यों को उपलब्ध कराया जा रहा है। बजट सत्र प्रारम्भ होने से पूर्व सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों से यह सुनिश्चित करने का अनुरोध किया जाता है कि मंत्रालयों के वार्षिक प्रतिवेदनों और कार्य-निष्पादन/परिणामी बजटों की प्रतियां लोक सभा सचिवालय को पर्याप्त संख्या में पहले से उपलब्ध करा दी जायें, ताकि संबंधित मंत्रालयों की अनुदानों की मांगों पर चर्चा प्रारम्भ होने से एक सप्ताह पूर्व ही उन्हें सदस्यों को परिचालित कर दिया जाये।

लेखानुदान

संविधान में लेखानुदान, अर्थात संसद द्वारा अग्रिम अनुदान देने का उपबन्ध किया गया है, जिससे कि सरकार अनुदानों की मांगों पर मतदान होने तक तथा सामान्य विनियोग विधेयक के पारित होने तक अपना कार्य चला सके।[100]

> लेखानुदान की प्रक्रिया का उपबंध पहली बार संविधान में किया गया। इस उपबंध के न होने की स्थिति में परिणाम यह था कि फरवरी के अंतिम दिन बजट के प्रस्तुत होने तथा वित्त विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने के बाद, दोनों को सभा द्वारा वित्तीय वर्ष के अन्त, अर्थात् 31 मार्च से पहले पारित करना आवश्यक था, जिससे कि सरकार को आने वाले वर्ष के लिए आवश्यक धनराशि दी जा सके और उसके लिये कराधानों संबंधी उपायों को लागू करने का प्राधिकार सरकार को दिया जा सके। इस व्यवस्था के अंतर्गत बजट पर उचित और संतोषजनक ढंग से विचार करने के लिये सभा के पास सीमित समय रहता था। इसके अतिरिक्त, इस व्यवस्था में कोई सुनम्यता नहीं थी और कार्यक्रम में अदल-बदल

100. अनुच्छेद 116(1) (क) और (2)।

करने के लिए समय की बहुत कम गुंजाइश थी। जब बजट पर चर्चा चल रही हो, उस समय किसी अविलंबनीय विधायी उपाय (कानून) के बारे में विचार करने में भी बहुत कठिनाई आती थी। लेखानुदान के प्रारम्भ किये जाने से न केवल कार्यक्रम में सुनम्यता आ गयी है बल्कि सदस्यों को भी वार्षिक वित्तीय प्रस्तावों के संबंध में अध्ययन करने, उनकी जांच करने और उन पर ब्यौरेवार विचार करने के लिये पर्याप्त समय मिल जाता है।

सामान्यत: लेखानुदान केवल दो महीने के लिये लिया जाता है। लेकिन जिस वर्ष के दौरान निर्वाचन होना हो अथवा यह संभावना हो कि मुख्य मांगों और विनियोग विधेयक के सभा द्वारा पारित किये जाने में दो महीने से अधिक समय लगेगा, लेखानुदान दो महीने से अधिक की अवधि के लिये हो सकता है और इसे बढ़ाकर तीन या चार महीने तक के लिए किया जा सकता है।

मार्च में लोक सभा से कहा जाता है कि वह विभिन्न अनुदानों के अन्तर्गत प्राक्कलित व्यय को लगभग छठे भाग या अन्य उपयुक्त भाग जैसी भी स्थिति हो के लिए अस्थायी रूप से मंजूरी दे दे। इसके लिये और भारित व्यय की उतनी ही राशि के लिये, आवश्यक विनियोग विधेयक पारित कर दिया जाता है। उसके बाद, सुविधानुसार, मांगों पर विस्तृत चर्चा प्रारम्भ की जाती है और सत्र के समाप्त होने से पहले सामान्य विनियोग विधेयक पारित किए जाने सहित मांगों पर मतदान का कार्य पूरा कर लिया जाता है।[101]

लेखानुदान की प्रक्रिया एक औपचारिक कार्यवाही है क्योंकि सामान्यतया सदन में इस पर चर्चा नहीं की जाती है। इसके पीछे मात्र विचार यह है कि व्यय करने के लिये सभा की स्वीकृति न लिये जाने पर सरकार का काम ठप न हो जाये।[102] जिस दिन सभा में लेखानुदान पर चर्चा होती है, उस दिन कार्य-सूची में दूसरा विधायी कार्य भी रखा जा सकता है।

परिपाटी के रूप में लेखानुदान सामान्यतया बिना किसी चर्चा के पारित कर दिया जाता है तथापि, अध्यक्ष, चाहे तो कुछ प्रश्नों के पूछे जाने तथा उनके उत्तर देने की अनुमति दे सकता है, जिससे कि सभा को यह बताया जा सके कि सदस्यों से किस संबंध में मत प्राप्त किया जा रहा है।[103]

अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की है कि लेखानुदान केवल अन्तरिम अवधि के लिये होता है और यह कि सदस्यों को उन मांगों पर चर्चा करने का अवसर बाद में मिलता है। यदि आवश्यक हो, तो सदस्यों को इस बात की अनुमति दी जा सकती है कि जब लेखानुदान का प्रस्ताव रखा जाये तो उस समय वे स्पष्टीकरण के लिये प्रश्न पूछ सकें।[104]

लेखानुदान पर चर्चा नहीं होने की परिपाटी संविधान के विरुद्ध नहीं है।

---

101. *पी.डिबेट्स*, 12.3.1951, कॉ. 4351-53; *एल.एस. डिबेट्स*, 9.3.1954, कॉ. 1591; 14.3. 1975, कॉ. 282-83 ।

102. *पूर्वोक्त* ।

103. *लो.स.वा.वि.*, 11.3.1958, पृ. 2085-87 ।

104. *एल.एस. डिबेट्स*, 5.5.1958, कॉ. 13107-31 ।

जब लेखानुदान दो महीने से अधिक की अवधि के लिए लिया जाए तथा लेखानुदान और मुख्य मांगों पर चर्चा के बीच पर्याप्त अन्तराल हो, तो लेखानुदान की मांगों संबंधी नीति पर चर्चा की अनुमति दी जाती है और इन मांगों पर कटौती प्रस्ताव पेश करने की अनुमति दी जाती है।[105]

चूंकि, लेखानुदान का प्रयोजन यह है कि अंतिम मांगों के स्वीकृत किए जाने तक सरकार का कार्य चलता रहे, इसलिए सामान्यतया इसका उपयोग 'नई सेवाओं' के लिए संसद का अनुमोदन प्राप्त करने के उपाय के रूप में नहीं किया जा सकता। अत: लेखानुदान के संबंध में मांगों की संगत पुस्तिका के प्रारम्भिक टिप्पण में सामान्यतया सरकार इस आशय का आश्वासन देती है कि लेखानुदान के माध्यम से जो प्रावधान प्राप्त किया जाएगा, उसका उपयोग 'नई सेवाओं' पर व्यय के लिए नहीं किया जाएगा।

सामान्यत:, जब लोक सभा सत्र में हो, तब किसी 'नई सेवा' पर होने वाले व्यय की पूर्ति के लिए आकस्मिक निधि से कोई राशि आहरित नहीं की जानी चाहिए और उस वर्ष के वार्षिक वित्तीय विवरण अथवा अनुपूरक अनुदानों की मांगों में उस राशि को शामिल कर लोक सभा की पूर्वानुमति प्राप्त करने का पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए। तथापि, आपवादिक मामलों में, जब कुछ प्रक्रियात्मक कठिनाइयों, यथा 'लेखानुदान' से आहरित धन किसी 'नई सेवा' पर व्यय नहीं किया जा सकता है, के कारण 'आकस्मिक निधि' से धनराशि आहरित करना अपरिहार्य हो जाए, तब सरकार को पहले ऐसा विवरण सदस्यों में परिचालित करना चाहिए जिसमें उस योजना का ब्यौरा दिया गया हो जिसके लिए धन की आवश्यकता हो और उन परिस्थितियों के बारे में बताया गया हो जिनके कारण सामान्य तरीके से संसद की मंजूरी प्राप्त नहीं की जा सकती है। तत्पश्चात् संबंधित मंत्री द्वारा सदन के समक्ष ऐसा संकल्प प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसमें अनुदानों की मांगों पर मतदान होने और विनियोग विधेयक अधिनियमित होने तक सरकार को भारत की आकस्मिक निधि से एक निश्चित धनराशि आहरित करने के लिए प्राधिकृत किया जाए।[106]

तथापि, इस प्रक्रिया में इस निर्णय के फलस्वरूप परिवर्तन हो गया है कि लोक सभा के सत्र में होने पर भी सरकार के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह 'नई सेवा' पर व्यय के लिए भारत की आकस्मिक निधि से एक निश्चित धनराशि आहरित करने हेतु सरकार को प्राधिकृत करने के लिए लोक सभा के समक्ष ऐसा संकल्प प्रस्तुत करे। यह निर्णय करना सरकार का कार्य है कि जब लोक सभा सत्र में हो तो 'नई सेवा' पर व्यय के लिए

---

105. *पी. डिबेट्स* (II), 6.2.1952, कॉ. 1283–84 और 1286; *एल.एस. डिबेट्स,* 26.3.1957, कॉ. 824; 24.3.1962, कॉ. 1713; 29.3.1977, कॉ. 120–25 ।

106. सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति, 1976–77 (पांचवीं लोक सभा) का तीसरा प्रतिवेदन।

आकस्मिक निधि में से अग्रिम राशि आहरित करना किन मामलों में आवश्यक होगा। जहां तक संभव हो ऐसे आहरण से पूर्व, संबंधित मंत्री यथा संभव, सदन में ऐसा वक्तव्य दे जिसमें धनराशि और उस योजना जिसके लिए धन की आवश्यकता है, का ब्यौरा दिया गया हो। तथापि, आपातिक मामलों में जहां सदस्यों को पूर्व सूचना दे पाना संभव न हो आकस्मिक निधि से आहरण किया जा सकता है और उसके तुरन्त बाद सदस्यों की जानकारी के लिए इसका एक ब्यौरा सभा पटल पर रखा जा सकता है।[107]

लेखानुदानों की मांगों के संबंध में प्रस्ताव पेश करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक नहीं है, क्योंकि ये मांगें मुख्य मांगों का अंश होती हैं, जिनके संबंध में राष्ट्रपति की सिफारिश पहले से ही प्राप्त कर ली गई होती है।

अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान

यदि किसी विशिष्ट सेवा पर चालू वित्तीय वर्ष के लिए व्यय किए जाने के लिए प्राधिकृत कोई रकम उस वर्ष के प्रयोजनों के लिए अपर्याप्त पाई जाती है या उस वर्ष के बजट में अनुध्यात न की गई किसी नई सेवा पर अनुपूरक या अतिरिक्त व्यय की चालू वित्तीय वर्ष के दौरान आवश्यकता पैदा हो गई है या किसी वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर, उस वर्ष और उस सेवा के लिए अनुदान की गई रकम से अधिक कोई धन व्यय हो गया है, तो राष्ट्रपति यथास्थिति संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस व्यय की प्राक्कलित रकम को दर्शित करने वाला दूसरा विवरण रखवाएगा या लोक सभा में ऐसे आधिक्य के लिए मांग प्रस्तुत करवाएगा।[108]

> अतः स्वीकृत अनुदान से पहले ही अधिक व्यय की जा चुकी धनराशि के लिए मांगें अनुपूरक अनुदान के रूप में नहीं, बल्कि अधिक अनुदान के रूप में की जाती हैं[109] और अधिक अनुदान की मांगें सदन में या तो उस सत्र में प्रस्तुत की जाती हैं जिसमें लोक लेखा समिति उस पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है या उसके बाद के सत्र में[110] पिछले वित्तीय वर्ष के दौरान किया गया व्यय संसद द्वारा चालू वर्ष के लिये अनुपूरक अनुदानों की मांगों द्वारा नियमित नहीं किया जा सकता।[111]

अनुपूरक, अतिरिक्त, अधिक या अपवादानुदान तथा प्रत्यायानुदान[112] ऐसे अनुकूलनों के

---

107. सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति (छठी लोक सभा) का चौथा प्रतिवेदन ।

108. अनुच्छेद 115 (1)।

109. *एल.ए. डिबेट्स,* 16.3.1929, पृ. 1989-90, *एल.एस. डिबेट्स,* 31.8.1974, कॉ. 156-57 और 2.9.1974, कॉ. 109 ।

110. *लो.स.वा.वि.,* 26.8.1968, पृ. 257-60 ।

111. *एल.एस. डिबेट्स,* 31.8.1974, कॉ. 70-78; *लो.स.वा.वि.,* 2.9.1974, पृ. 525 ।

112. *देखिए* अनुच्छेद 115 और 116: संविधान लागू होने के बाद से अब तक लोक सभा में अतिरिक्त और अपवादानुदानों तथा प्रत्यायानुदानों को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

अधीन रहते हुए, जो चाहे रूप भेद के हों या कुछ अंश जोड़कर या निकाल कर बनाए गये हों जैसा कि अध्यक्ष आवश्यक या वांछनीय समझे उसी प्रक्रिया से विनियमित होते हैं जो अनुदानों की मांगों के संबंध में लागू होती हैं।[113]

अनुदानों की मांगों की पुस्तिकाएं

अनुपूरक या अधिक अनुदानों की मांगें, जैसी भी स्थिति हो, प्रस्तुत किए जाने के बाद संबंधित मंत्रालय द्वारा भेजी गई अनुपूरक या अधिक अनुदानों की मांगों की पुस्तिकाओं की प्रतियां सदस्यों को परिचालित की जाती हैं। इन पुस्तिकाओं में व्यय का ब्यौरा, उस परियोजना की कुल लागत का ब्यौरा जिसके लिए धनराशि मांगी गई हो और उसका अलग-अलग विस्तृत ब्यौरा संसद की जानकारी के लिए दिया जाता है, भले ही संसद का अनुमोदन, परियोजना या उसके किसी चरण पर होने वाले व्यय के किसी अंश के लिए ही मांगा जा रहा हो।[114]

अनुपूरक या अधिक मांगों पर चर्चा

जब लोक सभा में अनुपूरक या अधिक मांगों[115] पर चर्चा प्रारंभ होती है, तो संबंधित मंत्री इन मांगों के संबंध में औपचारिक रूप से कोई प्रस्ताव पेश नहीं करता है; ऐसा माना जाता है कि मांगें पेश कर दी गई हैं और अध्यक्ष उन्हें सभा के समक्ष रखता है। कभी-कभी मंत्री सभा को सूचित करने के लिए कुछ बातें कहता है, जिससे यह पता चल सके कि कुल, अधिक या अनुपूरक मांग क्या है और वह किन मुख्य शीर्षों के अंतर्गत वे मांगें सभा के समक्ष रखना चाहता है और साथ ही इन मांगों के समर्थन के कारण भी बताता है[116] अनुदान की अनुपूरक मांग के मामले में संबंधित मंत्री द्वारा मांग की आवश्यकता के बारे में सदन को सामान्य जानकारी दिया जाना अपेक्षित होता है।[117]

ऐसे भी उदाहरण हैं जब अनुदानों की अनुपूरक मांगों के सदन में पेश किए जाने के बाद या तो मांग रखी नहीं गई या अध्यक्ष की अनुमति से और जहां आवश्यक हुआ, राष्ट्रपति

---

113. नियम 215 ।

114. जहां आवश्यक हो, संबंधित मंत्री अध्यक्ष की अनुमति से अनुदानों की मांगों की पुस्तिका के पाद-टिप्पणों में किसी त्रुटि का सुधार करने के लिए सभा में वक्तव्य दे सकता है।

115. यह उपयुक्त होगा कि रेल मंत्री द्वारा माल भाड़ा और यात्री किराया बढ़ाए जाने से पूर्व, अनुदानों की अनुपूरक मांगों को रेलवे के वित्तीय मामलों से संबंधित एक विवरण के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया जाए।

116. *पी. डिबेट्स*, 20.2.1951, कॉ. 3156-57 ।

117. *पूर्वोक्त*, 29.9.1951, कॉ. 3755 ।

की आवश्यक सिफारिश से मांग में परिवर्तन किया गया।[118] ऐसे मामलों में संबंधित मंत्री ने सभा में मांगों को चर्चा हेतु लिए जाने के समय व्याख्यात्मक वक्तव्य दिए हैं।

सभा के दो सत्रों के दौरान भिन्न-भिन्न तिथियों को पेश की गई अनुदानों की अनुपूरक मांगों को चर्चा और मतदान हेतु एक साथ लिया गया है और स्वीकृत राशियों को एक ही विनियोग विधेयक में सम्मिलित किया गया है।

अनुदानों की अनुपूरक मांगों पर वाद-विवाद उन्हीं मदों तक सीमित रहता है जो उन मांगों में सम्मिलित हों और जब तक चर्चाधीन मदों विशेष की व्याख्या करने या उन्हें स्पष्ट करने के लिए आवश्यक न हो, मूल अनुदानों पर या उनसे संबंधित नीति पर चर्चा नहीं की जा सकती।[119] उन योजनाओं के संबंध में, जो मुख्य बजट में पहले ही मंजूर की जा चुकी हों, सिद्धांत या नीति संबंधी किसी प्रश्न पर चर्चा की अनुमति नहीं दी जाती है। जिन मांगों के संबंध में कोई मंजूरी न ली गई हो, उनके संबंध में नीति संबंधी प्रश्न उन्हीं मदों तक सीमित रखे जाते हैं, जिन पर सभा की स्वीकृति मांगी गई हो।[120] किसी अनुपूरक अनुदान पर चर्चा के समय सामान्य शिकायतें नहीं बताई जा सकती। कोई सदस्य केवल इतना कह सकता है कि क्या अनुपूरक मांग आवश्यक है या नहीं।[121]

अधिक अनुदानों की मांगों पर चर्चा के दौरान सदस्य यह कहने के लिए स्वतंत्र है कि धन अनावश्यक रूप से व्यय किया गया है या यह कि यह व्यय नहीं होना चाहिए था, इसके अलावा सामान्य चर्चा की कोई गुंजाइश नहीं होती।[122]

किसी सत्र में अनुपूरक अनुदानों की मांगों अथवा अधिक अनुदानों की मांगों के सम्बन्ध में प्राप्त प्रस्तावों की सूचनाएं, जो उस सत्र में दी तो गई किन्तु प्रस्ताव पेश नहीं किए गए, सदन का सत्रावसान होने पर व्यपगत हो जाती हैं और अगले सत्र हेतु नई सूचना अपेक्षित होती है।

---

118. *लो.स.वा.वि.,* (II), 10.12.1955, पृ. 7196-7202 *एल.एस. डिबेट्स,* 19.7.1957, कॉ. 4335-36; *लो.स.वा.वि.,* 3.3.1958, पृ. 1517; 11.12.1958, पृ. 2162-64; *एल.एस. डिबेट्स,* 6.3.1961, कॉ. 3374-75; *लो.स.वा.वि.,* 20.3.1962, पृ. 504; और 19.3.1969, पृ. 114-16।

119. नियम 216 *एल.एस. डिबेट्स,* 7.12.1971, कॉ. 40, 45; 14.12.1971, कॉ. 12-13; *लो.स.वा.वि.,* 15.1.1976 पृ. 105-15 ।

120. *सी.ए. (लेज), डिबेट्स,* 31.3.1948, पृ. 2841-42; *एल.ए. डिबेट्स,* 27.3.1935 पृ. 2859-70; *पी. डिबेट्स* (II), 20.2.1951, कॉ. 3196; *एच.पी. डिबेट्स,* 8.12.1952, कॉ. 1830-31 और 1835; 12.12.1952, कॉ. 2156 और कॉ. 2197; *लो.स.वा.वि.* (II), 16.12.1954, कॉ. 2009-10 ।

121. *एल.ए. डिबेट्स,* 28.3.1944, पृ. 1635; 24.2.1961, कॉ. 1861-62 ।

122. *एल.एस. डिबेट्स,* 25.4.1960, कॉ. 1381-82 ।

अनुपूरक या अधिक मांगों संबंधी कटौती प्रस्ताव

अनुपूरक या अधिक अनुदानों की मांगों सम्बन्धी कटौती प्रस्तावों की सूचना ग्राह्यता तथा परिचालन के सम्बन्ध में प्रक्रिया वही है जो कि अनुदानों की मुख्य मांगों के कटौती प्रस्तावों के सम्बन्ध में है, सिवाय इसके कि

> ऐसे कटौती प्रस्ताव जो अनुपूरक या अधिक मांग की विषय-वस्तु के बाहर हों, नियम विरुद्ध होते हैं।[123] और अनुदानों की अनुपूरक या अधिक मांगों संबंधी ऐसे कटौती प्रस्ताव जिनका उद्देश्य किसी मांग में निहित नीति के विषयों पर चर्चा उठाना हो नियम-विरुद्ध होते हैं।[124] जब तक कि वह मांग किसी 'नई सेवा' अर्थात् किसी ऐसी सेवा के संबंध में न हो, जिसे शुरू करने का विचार बजट के समय नहीं था।[125]

तथापि, तीसरी लोक सभा के तीसरे सत्र के दौरान आपात स्थिति को ध्यान में रखते हुए अनुदानों की अनुपूरक मांगों (सामान्य) 1962-63 के संबंध में 'नीति का निरनुमोदन' संबंधी कतिपय कटौती प्रस्तावों की सूचनाएं गृहीत की गईं और उन्हें परिचालित किया गया, यद्यपि जिन मांगों के संबंध में कटौती प्रस्ताव थे, उनमें किसी 'नई सेवा' पर व्यय करने का विचार नहीं था। यह समझा गया कि अनुपूरक मांगें असाधारण स्वरूप की हैं, क्योंकि जिस आपात स्थिति के कारण अतिरिक्त धन मांगा गया था, वह उस समय नहीं थीं, जब 1962-63 की मुख्य मांगों पर चर्चा की गयी थी और उन्हें सभा ने स्वीकार किया था।

सांकेतिक अनुदान

जब किसी 'नई सेवा' पर प्रस्तावित व्यय के लिए पुनर्विनियोग द्वारा धन उपलब्ध किया जा सके तो किसी सांकेतिक राशि के अनुदान की मांग सभा के मतदान के लिए रखी जाती है और यदि सभा उस मांग पर अनुमति दे दे, तो धन इस तरह उपलब्ध करा दिया जाता है।[126]

विनियोग विधेयक

भारत की संचित निधि में से विधि द्वारा किए गए विनियोग के अधीन ही कोई धन निकाला जा सकता है, अन्यथा नहीं।[127] परिणामस्वरूप, सभा द्वारा अनुदान किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, भारत की संचित निधि में से सभा द्वारा इस प्रकार किए गए अनुदानों की, और भारत की संचित निधि पर भारित, किंतु संसद के समक्ष पहले रखे गए विवरण में दर्शित

---

123. *एल.एस. डिबेट्स,* 6.3.1959, कॉ. 4836; 4.5.1959, कॉ. 14805; 2.12.1959, कॉ. 2976-84; 16.8.1960, कॉ. 2675-78; 15.11.1962, कॉ. 1766 ।
124. *एच.पी. डिबेट्स,* 8.12.1952, कॉ. 1830-31 और 1835; *एल.एस. डिबेट्स* (II), 10.12.1955, कॉ. 2193-2205 ।
125. *एल.एस. डिबेट्स,* 24.8.1959, कॉ. 4097 ।
126. नियम 217 ।
127. अनुच्छेद 114 ।

राशि से किसी भी दशा में अनधिक व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित सभी धनराशियों के विनियोग का उपबंध करने के लिए विधेयक पुरःस्थापित किया जाता है।[128]

अध्यक्षपीठ द्वारा की गई इस टिप्पणी के बाद जिसमें पिछले वर्ष में हुए व्यय को उसके अगले वर्ष में अनुदानों की अनुपूरक मांगों के द्वारा विनियमित करने से इंकार किया गया, सरकार द्वारा पिछले विधेयक के स्थान पर एक नया विनियोग विधेयक लाया गया।[129]

सामान्यतः कोई विधेयक पुरःस्थापन के लिए कार्य-सूची में तब तक सम्मिलित नहीं किया जाता जब तक कि उसकी प्रतियां उस दिन से जबकि उस विधेयक को पुरःस्थापित किये जाने का विचार हो, कम से कम दो दिन पहले सदस्यों को उपलब्ध न कराई गई हों। परन्तु विनियोग विधेयकों के संबंध में अपवाद किया जाता है, जो सदस्यों को पहले से प्रतियां दिए बिना पुरःस्थापित किए जा सकते हैं।[130]

विनियोग विधेयक पुरःस्थापित करने की अनुमति प्रदान करने के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जा सकता क्योंकि यह विधेयक सदन द्वारा संगत मांगों को स्वीकृति प्रदान करने के बाद ही पुरःस्थापित किया जाता है।[131] ऐसा प्रस्ताव सदन की स्वीकृति के लिए तत्काल प्रस्तुत किया जाता है।[132] किसी विनियोग विधेयक में कतिपय मांग का लोप करने हेतु संशोधन इस आधार पर नियम विरुद्ध है कि मांग पर सदन द्वारा पहले ही स्वीकृति प्रदान की जा चुकी होती है।[133]

परिपाटी के अनुसार विधेयकों पर विचार तथा उन्हें पारित करने के प्रस्ताव उसी दिन की कार्य-सूची में नहीं रखे जाते जिस दिन वे सभा में पुरःस्थापित किए गए हों। तथापि, सामान्यतः अध्यक्ष मंत्री के विशेष अनुरोध पर विनियोग विधेयकों को उसी दिन पुरःस्थापित किए जाने, उन पर विचार किए जाने और उन्हें पारित किए जाने की अनुमति दी देते हैं।[134]

---

128. *पूर्वोक्त* ।

129. *लो.स.वा.वि.,* 2.9.1974, पृ. 525; 6.9.1974, पृ. 593बी; समाचार भाग-2, 5.9.1974, पैरा 1926 ।

130. निदेश 19-ख ।

131. *लो.स.वा.वि.,* 14.3.1969, पृ. 180 ।

132. नियम 72, दूसरा परन्तुक ।

133. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.3.1970, कॉ. 261 ।

134. *देखिए,* उदाहरणार्थ विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1960 *एल.एस. डिबेट्स,* 10.3.1960; विनियोग विधेयक, 1962-*लो.स.वा.वि.,* 19.3.1962; विनियोग (रेल) लेखानुदान विधेयक, 1971-*लो.स.वा.वि.,* 25.3.1971; विनियोग (सं. 2) 1971 *लो.स.वा.वि.,* 21.7.1971; पंजाब विनियोग (सं. 2) विधेयक, 1971, *लो.स.वा.वि.,* 14.12.1971 । विनियोग (रेल) सं. 4 विधेयक, 1974-*लो.स.वा.वि.,* 9.9.1974; तमिलनाडु विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 1977-*लो.स.वा.वि.,* 30.3.1977, सातवीं लोक सभा के दूसरे सत्र के दौरान चौबीस विनियोग विधेयकों, अर्थात् सामान्य बजट से संबधित दो विनियोग विधेयकों और 10 राज्यों अर्थात् असम, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु और

जब किसी मंत्री से विनियोग विधेयक पुरःस्थापित किये जाने की सूचना प्राप्त हो जाती है और ऐसे विधेयक के वास्तव में पुरःस्थापित किये जाने से पहले नई मंत्रिपरिषद पदभार ग्रहण कर लेती है तथा उस मंत्री के पास अपना पुराना विभाग रहता है, तब उस मंत्री से विधेयक को पुरःस्थापित किये जाने, उस पर विचार किये जाने और उसे पारित किये जाने के लिए नई सूचना प्राप्त की जाती है।[135]

चर्चा की व्याप्ति

किसी विनियोग विधेयक पर वाद-विवाद लोक महत्व के या विधेयक में आने वाले अनुदानों में अन्तर्निहित प्रशासकीय नीति के ऐसे विषयों तक सीमित रहता है जो पहले ही उस समय न उठाए जा चुके हों जब कि संगत अनुदानों की मांगें चर्चाधीन थीं।[136]

> विभिन्न अनुदान मांगों से संबंधित वाद-विवाद के दौरान जिन विभिन्न मुद्दों पर विस्तार से चर्चा हो चुकी हो, वे मुद्दे विनियोग विधेयक पर चर्चा की विषय-वस्तु नहीं बन सकते हैं।[137]
>
> जिन विषयों पर कटौती प्रस्ताव पेश किये गये हों और अनुदानों की मांगों पर चर्चा के दौरान उन्हें अस्वीकृत कर दिया गया हो, उन पर विनियोग विधेयकों पर चर्चा के दौरान पुनः चर्चा उठाए जाने की अनुमति नहीं दी जाती।[138]
>
> जो बात अनुदानों की मांगों पर चर्चा के समय संगत नहीं थी, वह विनियोग विधेयकों पर वाद-विवाद के समय भी संगत नहीं होती।[139]

उत्तर प्रदेश, सभी राष्ट्रपति शासन के अधीन, के बजट से संबंधित 20 विनियोग विधेयकों को उसी दिन विचार करने और पारित करने की अनुमति दी गई थी। जिस दिन संगत मांगों को स्वीकृति मिलने के बाद विधेयक पुरःस्थापित किए गए थे—*लो.स.वा.वि.,* 12.3.1980, 14.3.1980, 15.3.1980, 17.3.1980, 18.3.1980, 29.7.1985 और 7.8.1985, विनियोग (लेखानुदान) विधेयक, 2013 और विनियोग (रेल) लेखानुदान विधेयक, 2013 ।

135. ग्यारहवीं लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान श्री एच.डी. देवगौड़ा की सरकार में क्रमशः रेल मंत्री, श्री राम विलास पासवान और वित्त मंत्री श्री पी. चिदम्बरम ने विनियोग (रेल) संख्यांक 3 विधेयक, 1997 और विनियोग (संख्यांक 3) विधेयक, 1997 के पुरःस्थापन, उन पर विचार करने और उन्हें पारित किये जाने के लिए सूचनाएं दी थीं। इन दोनों विधेयकों को मुद्रित किया गया और सदस्यों में परिचालित किया गया था। इन विधेयकों के पुरःस्थापन से पहले ही श्री आई.के. गुजराल के नेतृत्व में एक नई सरकार का गठन हुआ। यद्यपि, दोनों मंत्रियों के पास उनके पुराने विभाग ही रहे, फिर भी इन मंत्रियों से उक्त विधेयकों के संबंध में उनके पुरःस्थापन, उन पर विचार करने और उन्हें पारित किये जाने हेतु नई सूचनाएं प्राप्त की गई थीं, जिन्हें बाद में पारित कर दिया गया।
136. नियम 218 (2)।
137. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 7.4.1953, कॉ. 3879-80 और 8.4.1953, कॉ. 3921-22 ।
138. *पूर्वोक्त,* (II), 8.4.1953, कॉ. 3923 ।
139. *पूर्वोक्त,* (II), 12.12.1952, कॉ. 2205 ।

किसी विनियोग विधेयक पर चर्चा के दौरान विषय विस्तार में नहीं जाया जाता।[140]

अध्यक्ष वाद-विवाद की पुनरुक्ति को रोकने की दृष्टि से, विनियोग विधेयक पर चर्चा में भाग लेने के इच्छुक सदस्यों द्वारा उन विशिष्ट विषयों पर पूर्व सूचना दिए जाने की अपेक्षा कर सकेगा जो वे उठाना चाहते हों और वह ऐसे विषयों को उठाने के लिए अनुज्ञा रोक सकेगा जो उसकी राय में उन विषयों की पुनरुक्ति प्रतीत होते हैं जिन पर किसी अनुदान की मांग के संबंध में चर्चा की जा चुकी है या जो पर्याप्त लोक महत्व के न हों।[141] जब कोई सदस्य अध्यक्ष की अनुमति से विनियोग विधेयक पर विचार के प्रस्ताव पर कतिपय बातें उठाता है, तो सम्बन्धित मंत्री को उनका उत्तर देने के लिये सभा में अवश्य उपस्थित होना चाहिए।[142] अध्यक्ष ने टिप्पणी की है: "मैं समझता हूं कि भविष्य में सदस्यों को प्रत्येक मंत्रालय के लिए अलग-अलग सूचनायें देनी चाहिए। यदि वे अलग-अलग मंत्रालयों को भेजे जाते हैं तो उनकी सूचनाएं अलग-अलग होनी चाहिए। 10.00 बजे तक प्राप्त सूचनायें सम्बन्धित मंत्रियों को भेज दी जायेंगी और सदन में उन मंत्रियों की उपस्थिति अपेक्षित होगी"।[143]

यदि कोई विनियोग विधेयक किसी विद्यमान सेवा के संबंध में अनुपूरक अनुदान के अनुसरण में हो तो चर्चा केवल उन्हीं मदों तक सीमित रखनी होती है, जिनसे वह अनुदान बना हो और जहां तक चर्चाधीन खास मद की व्याख्या करने या उसे स्पष्ट करने के लिए आवश्यक न हो, उस सीमा तक मूल अनुदान पर या उससे संबंधित नीति पर कोई चर्चा नहीं की जा सकती।[144]

संशोधन

किसी अनुदान की रकम में परिवर्तन करने या अनुदान के लक्ष्य को बदलने अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की रकम में परिवर्तन करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन विनियोग विधेयक में प्रस्थापित नहीं किया जा सकता और अध्यक्ष का इस बारे में निर्णय अंतिम होगा कि कोई संशोधन अग्राह्य है या नहीं।[145]

विनियोग विधेयकों के बारे में शेष प्रक्रिया ऐसे रूप भेदों के साथ जैसे अध्यक्ष आवश्यक समझे, वही होगी, जो विधेयकों के लिए होती है।[146]

---

140. *एल.एस. डिबेट्स,* 29.5.1957, कॉ. 2664-67 ।

141. नियम 218 (3), *एच.पी. डिबेट्स* (II), 3.7.1952, कॉ. 3131-32; 4.7.1952, कॉ. 3217-19; 12.12.1952, कॉ. 2205, *एल.एस. डिबेट्स,* 9.8.1957, कॉ. 1755; *लो.स.वा.वि.,* 24.8.1957, पृ. 446-69; *एल.एस. डिबेट्स,* 25.2.1960, कॉ. 2747-48; 12.3.1958, कॉ. 4530-31; 20.4.1961, कॉ. 12675-80 और 4.5.1993, कॉ. 867-68 ।

142. *एल.एस. डिबेट्स,* 25.2.1960, कॉ. 2747; *लो.स.वा.वि.,* 29.4.1974, पृ. 178-84 ।

143. *पूर्वोक्त,* 29.4.1975, कॉ. 411-14; 2.5.1975, कॉ. 226-27 ।

144. नियम 218 (4) ।

145. अनुच्छेद 114 (2) साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 23.2.1951, कॉ. 34055 ।

146. नियम 218 (1) ।

किसी विनियोग विधेयक में सदन द्वारा पहले स्वीकृत किसी मांग के लोप करने संबंधी संशोधन नियम विरुद्ध हैं। तथापि, किसी विनियोग विधेयक में ऐसा संशोधन नियम विरुद्ध नहीं है जिससे किसी अनुदान की राशि में परिवर्तन नहीं होता, या उसका लक्ष्य नहीं बदलता या भारत की संचित निधि पर भारित किसी व्यय की राशि में परिवर्तन नहीं होता अपितु वह केवल स्पष्टीकरण करने वाला होता है।[147]

वित्त विधेयक

'वित्त विधेयक' का तात्पर्य अगले वित्तीय वर्ष के लिये भारत सरकार के वित्तीय प्रस्तावों को प्रभावी करने के लिये साधारणतया प्रत्येक वर्ष पुर:स्थापित विधेयक से है और उसमें किसी कालावधि के लिए अनुपूरक वित्तीय प्रस्तावों को प्रभावी करने का विधेयक सम्मिलित है।[148] तथापि, इसमें ऐसे उपबन्ध सम्मिलित नहीं होते, जिनका उद्देश्य विद्यमान कानूनों में स्थायी परिवर्तन करना हो, जब तक कि ये परिवर्तन कराधान सम्बन्धी प्रस्तावों के परिणामस्वरूप या उनके आनुषंगिक न हो।[149]

सीमा शुल्क या उत्पाद शुल्क के लगाये जाने या उनमें वृद्धि करने से सम्बन्धित वित्त विधेयक के उपबन्ध उस दिन की समाप्ति पर ही तत्काल लागू हो जाते हैं, जिस दिन विधेयक

---

147. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.3.1970, कॉ. 259-60 ।

148. नियम 219 (1) ।

149. पंद्रहवीं लोक सभा के दसवें सत्र के दौरान 16 मार्च 2012 को वित्त विधेयक, 2012 पुर: स्थापित किया गया था। विधेयक के अध्याय छह में अंतर्विष्ट खंड 146-150 का उद्देश्य राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध अधिनियम, 2003 (एफआरबीएम अधिनियम) में संशोधन करना था। वित्त मंत्रालय से अन्य बातों के साथ-साथ यह भी पूछा गया कि क्या इन संशोधनों को वित्त विधेयक के भाग के रूप में पुर:स्थापित करना संवैधानिक अथवा कानूनी रुप से आवश्यक था अथवा संशोधनों को अलग विधेयक के द्वारा भी लाया जा सकता है। अपने उत्तर में, मंत्रालय ने मात्र वित्त (संख्या 2) विधेयक, 2004 का पूर्व-उदाहरण के रूप में उल्लेख किया जिसके द्वारा एफआरबीएम विधेयक में संशोधन किए गए थे।

विधेयक पर विचार हेतु प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान एक सदस्य द्वारा व्यवस्था का प्रश्न उठाने पर अध्यक्षपीठ ने व्यवस्था दी:

''माननीय सदस्य द्वारा उठाया गया प्रश्न पहले से ही माननीय अध्यक्ष के संज्ञान में है। उन्होंने निर्देश दिया कि मंत्रालयों को यथासंभव मिश्रित प्रकृति के विधेयक तैयार करने से बचना चाहिए और उपकर लगाने सहित कराधान उपायों को अन्य मामलों से अलग रखा जाए जब तक कि संवैधानिक अथवा कानूनी आधारों पर ऐसा करना असंभव न हो जाए। तद्नुसार व्यवस्था के प्रश्न का निपटान किया जाता है।''

वित्त मंत्रालय को यह सुनिश्चित करने को कहा गया कि विधेयक तैयार करते समय कराधान उपायों को अन्य उपायों से अलग रखने के संबंध में अध्यक्ष के निर्देशों का अनुपालन किया जाए- एल.एस. डिबेट्स 8.5.2012, कॉ 891-92, *लो.स.वा.वि.*, 7.12.1956, पृ. 784-93; 1.5.1970, पृ. 123-30; 4.5.1970, पृ. 169-71 ।

पुरःस्थापित किया गया हो। इस सम्बन्ध में इस आशय की एक घोषणा सामान्यतः वित्त विधेयक में सम्मिलित की जाती है।

वित्त विधेयक प्रत्येक वर्ष, फरवरी के अन्तिम सप्ताह में वित्त मंत्री द्वारा बजट प्रस्तुत किए जाने के शीघ्र बाद पुरःस्थापित किया जाता है।[150] वित्त विधेयक पुरःस्थापित करने की अनुमति हेतु पेश किये गये प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जा सकता; वह उसी समय मतदान हेतु रखा जाता है।[151] सामान्यतः, एक वित्तीय वर्ष में एक वित्त विधेयक पुरःस्थापित किया जाता है। परन्तु निर्वाचन के वर्षों में चूंकि बजट दो बार प्रस्तुत किया जाता है, इसलिये दो वित्त विधेयक पुरःस्थापित किये जाते हैं– एक निवर्तमान लोक सभा में और दूसरा नई लोक सभा में[152] अथवा एक बार नई लोक सभा के पहले सत्र में और फिर उसके दूसरे सत्र में।

> वैसे भी, किसी एक वित्तीय वर्ष में एक से अधिक वित्त विधेयक पुरःस्थापित किये जा सकते हैं, उन पर विचार किया जा सकता है और उन्हें पारित किया जा सकता है।[153] तथापि, वित्त विधेयक को अनुदानों की मांगें और सम्बन्धित विनियोग विधेयक से पहले प्रस्तुत किया जाना चाहिए और संविधान के अनुच्छेद 112 से 115 में बजट के सम्बन्ध में दिए गये क्रम का पालन किया जाना चाहिए।[154]

---

150. 28 फरवरी, 1970 को जब वित्त विधेयक, 1970 को पुरःस्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका था, अध्यक्ष ने, इसके पहले कि प्रधानमंत्री विधेयक पुरःस्थापित कर पाते, व्यवधान के बीच सभा को 2 मार्च, 1970 तक के लिए स्थगित कर दिया। विशेष परिस्थितियों और इस तथ्य को देखते हुए कि जब तक वित्त विधेयक पुरःस्थापित नहीं किया जाता, वे कर जो अनन्तिम कर संग्रहण अधिनियम, 1931 के अधीन उस अर्धरात्रि से संगृहीत किए जाने वाले थे, संगृहीत नहीं किए जा सके, यद्यपि वे सर्वविदित हो गये थे, अध्यक्ष ने नियम 15 के परन्तुक के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए लोक सभा को उस दिन 22.00 बजे समवेत होने का निर्देश दिया। तद्नुसार सदन की बैठक 22.00 बजे हुई और प्रधानमंत्री ने, जो उस समय वित्त मंत्रालय का कार्यभार भी देख रहे थे, उस दिन 22.55 बजे वित्त विधेयक पुरःस्थापित किया। *एल.एस. डिबेट्स,* 28.2.1970, कॉ. 1–22 ।
151. नियम 72, दूसरा परन्तुक, *लो.स.वा.वि.,* 28.2.1974, पृ. 147 ।
152. *एल.एस. डिबेट्स,* 28.2.1970, कॉ. 30–32 ।
153. *एल.ए. डिबेट्स,* 4.11.1931, पृ. 1575 ।
154. *साथ ही देखिए* समस्त व्यय संबधी ब्यौरे, अनुदानों की मांगें और विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक पारित करने के लिए कहे जाने से पहले सभा में अवश्य प्रस्तुत किए जाने चाहिए। अनुच्छेद 112, 113, 114 और 115 के संबंध में संविधान में निर्धारित अनुक्रम का पालन अवश्य किया जाना चाहिए।–*एल.एस. डिबेट्स,* 12.8.1974, कॉ. 238–41; *एल.एस. डिबेट्स,* 7.12.1956, कॉ. 2079–2105, 7.8.1974, कॉ. 287–93; *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1974, पृ.123–25 ।

एक वित्त विधेयक, जिसमें आगामी वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में कराधान संबंधी प्रस्ताव थे, पिछले कैलेण्डर वर्ष में पारित किया गया है।[155]

सभा में वित्त विधेयक के पुर:स्थापित होने के बाद किसी भी समय, अध्यक्ष सभा द्वारा विधेयक पारित किए जाने हेतु सभी या किसी प्रक्रम को पूरा करने के लिये, संयुक्त रूप से या अलग-अलग एक या कई दिन नियत कर सकता है,[156] परन्तु वास्तविक प्रक्रिया के अन्तर्गत समय नियत करने के सम्बन्ध में कार्यमन्त्रणा समिति सिफारिश करती है और बाद में सभा उस सिफारिश का अनुमोदन करती है। जब ऐसा समय नियत किया जा चुका है,[157] तो अध्यक्ष नियत दिन या नियत दिनों के अन्तिम दिन, जैसी भी स्थिति हो, विनिर्दिष्ट समय पर उस प्रक्रम या प्रक्रमों के संबंध में, जिनके लिये एक या कई दिन नियत किये गये हों, सभी बकाया विषयों को निपटाने के लिये तुरन्त सभी आवश्यक प्रश्न रखता है।[158]

यदि किसी ऐसे प्रस्ताव पर चर्चा हो रही हो, जिस पर मंत्री को उस दिन विनिर्दिष्ट समय से एक घंटा पहले वाद-विवाद का उत्तर देना हो और उसने उस समय तक अपना उत्तर प्रारम्भ न किया हो, तो उस समय अध्यक्ष, मंत्री से यह पूछकर कि उसे अपना उत्तर देने के लिए कितना समय चाहिए जो किसी भी स्थिति में एक घंटे से अधिक न हो, तत्समय सभा में भाषण कर रहे सदस्य से अपना आसन उतने समय तक ग्रहण करने के लिए कहता है जितना कि मंत्री ने अपना उत्तर समाप्त करने के लिए मांगा हो।

जब नियत दिन, या नियत दिनों के अन्तिम दिन, विनिर्दिष्ट समय पर रखा जाने वाला प्रश्न या प्रश्नों में एक प्रश्न यह हो कि विधेयक पारित किया जाये तो इस बात के होते हुए भी कि विधेयक में संशोधन किये गये हैं, उस प्रश्न को रखा जाता है।[159]

अध्यक्ष सामान्यत: वित्त विधेयक के सभी प्रक्रमों या किसी एक प्रक्रम में भाषणों के लिए समय-सीमा विहित करता है।[160]

चर्चा की व्याप्ति

इस प्रस्ताव पर कि वित्त विधेयक पर विचार किया जाये, कोई सदस्य सामान्य प्रशासन से संबंधित विषयों, भारत सरकार के उत्तरदायित्व के क्षेत्र में आने वाली स्थानीय शिकायतों या सरकार की मौद्रिक या वित्तीय नीति से सम्बन्धित विषयों की चर्चा कर सकता है।[161] कोई

---

155. *लो.स.वा.वि.*, 7.12.1956, पृ. 80784-801; *एल.एस. डिबेट्स.* 6.5.1969, कॉ. 372 ।
156. नियम 219 (2) ।
157. नियम 219, यथा उपांतरित *देखिए* लो.स. समाचार भाग-2, 9.5.1989, पैरा 2930; सामान्यत: 15 घण्टे से अधिक समय नियत नहीं किया जाता है।
158. *एल.एस. डिबेट्स*, 21.4.1964, कॉ. 12212 ।
159. नियम 219 (3) ।
160. नियम 219 (4) ।
161. नियम 219 (5) ।

सदस्य भारत सरकार की किसी भी कार्यवाही की चर्चा कर सकता है।[162] लेकिन वित्त विधेयक पर चर्चा के दौरान किसी राज्य सरकार के कार्यों की आलोचना नहीं की जा सकती।[163] जहां सरकार की नीति की सामान्य आलोचना की अनुमति है।[164] वहीं प्राक्कलनों विशेष पर विस्तार से चर्चा करना नियमानुकूल नहीं है। तथापि, कोई सदस्य, सरकारी नीति संबंधी उन विषयों की चर्चा कर सकता है, जिनके कारण कोई घाटा हुआ हो।[165] बजट के सामान्य सिद्धान्तों की चर्चा की जा सकती है, परन्तु उन सिद्धान्तों के ब्यौरे की नहीं।[166] संक्षेप में सारे प्रशासन की समीक्षा की जा सकती है, परन्तु उन प्रश्नों को पुन: नहीं उठाया जा सकता, जिन पर पहले किसी वाद-विवाद में चर्चा हो चुकी हो।[167]

वित्त विधेयक के माध्यम से वे सभी अधिनियम सभा के क्षेत्राधिकार में आ जाते हैं जिनका संबंध विधेयक से होता है और सभा इनमें से किसी एक या सभी अधिनियमों में उस सीमा तक संशोधन कर सकती है, जिस सीमा तक वित्त विधेयक से उनका संबंध हो।[168]

वित्त विधेयक के किसी खण्ड और उसके संशोधनों पर चर्चा प्रस्तावित कराधान और उसके संभावित विकल्पों तक ही सीमित रखनी पड़ती है।[169]

वार्षिक कराधान संबंधी प्रस्तावों वाले वित्त विधेयक पर लोक सभा द्वारा केवल तभी विचार किया जाता है और उसे पारित किया जाता है जब सभा में अनुदानों की मांगें स्वीकार कर ली गयी हों, और कुल खर्च ज्ञात हो।[170] तथापि, किसी ऐसे विधेयक पर अनुदानों की

---

162. *एल. ए. डिबेट्स,* 28.3.1940, पृ. 1884-92 ।
163. *पूर्वोक्त,* 27.3.1944, पृ. 1580 ।
164. *पूर्वोक्त,* 24.3.1927, पृ. 2706 ।
165. *पूर्वोक्त,* 20.3.1922, पृ. 3404 ।
166. *एल.एस. डिबेट्स,* 15.3.1926, पृ. 2494-95 ।
167. *पूर्वोक्त,* 24.3.1927, पृ. 2717; 22.3.1922, पृ. 3599-3605 ।
168. *पूर्वोक्त,* 25.3.1931, पृ. 2699-2700 ।
169. *पूर्वोक्त,* 19.3.1923, पृ. 3691 ।
170. 4 मई, 1987 को एक सदस्य ने *लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के* नियम 219 के उपनियम (2) में संशोधन करने का सुझाव दिया ताकि वित्त विधेयक पर विनियोग विधेयक पारित होने से पहले विचार किया जा सके और उसे पारित किया जा सके। क्योंकि उसने महसूस किया कि वित्त विधेयक से संबंधित सभी प्रश्नों को नियत दिन अथवा अंतिम दिन अथवा नियत दिनों के दौरान विनिर्दिष्ट समय पर रखने के प्रतिबंध को दूर किया जाना चाहिए। नियम समिति (आठवीं लोक सभा) ने सुझाव पर विचार किया और इस मामले पर वित्त मंत्रालय से राय ली। समिति वित्त मंत्रालय की राय से सहमत हुई और उसने यह निर्णय दिया कि विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक पर विचार करने और उन्हें पारित करने का विद्यमान अनुक्रम व्यावहारिक रूप से सुविधाजनक है एवं इसमें परिवर्तन करने का कोई अप्रतिरोध्य कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त, चूंकि कभी-कभी विधेयक में कर-कानूनों और

मांगें स्वीकृत होने से पहले विचार करने पर कोई सांविधिक प्रतिबन्ध नहीं है, जिसमें कराधान संबंधी स्थायी उपाय दिये गये हों।[171]

अनन्तिम कर संग्रहण अधिनियम, 1931 के अन्तर्गत घोषणा को देखते हुए, वित्त विधेयक को जिस दिन यह पुरःस्थापित हुआ, उस दिन के बाद से पचहत्तरवें दिन[172] की समाप्ति से पहले संसद द्वारा पारित किया जाना और उस पर राष्ट्रपति की अनुमति मिलना आवश्यक है।

दरों के व्यापक परिवर्तन अन्तर्विष्ट होते हैं, तथा पुरःस्थापन और संसद द्वारा विचार के बीच उपलब्ध वर्तमान अन्तराल में सदस्यों को आम जनता, उद्योग, व्यापार आदि के प्रतिनिधियों से चर्चा करने का समय मिल जाता है अतः इसे अत्यन्त उपयोगी पाया गया है।

171. धन कर विधेयक, 1957 और व्यय कर विधेयक, 1957 सभा में वित्त विधेयक, 1957 के साथ ही 15 मई, 1957 को वित्त मंत्री के बजट भाषण के शीघ्र बाद पुरःस्थापित किये गये थे। पहले दो विधेयकों पर चर्चा की गई और इन्हें क्रमशः 16 और 17 जुलाई, 1957 को प्रवर समिति को सौंप दिया गया; उससे पहले बजट (सामान्य) 1957-58 संबंधी अनुदानों की मांगों पर मंजूरी नहीं दी गयी थी, क्योंकि इन दो विधेयकों में स्थायी उपाय किये गये थे।

172. 1964 में इस अवधि को 60 दिन से बढ़ाकर 75 दिन कर दिया गया–*देखिए* अनन्तिम कर संग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1964 ।

वित्त विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति सचिवालय द्वारा प्राप्त की जाती है–*देखिए,* अध्याय 22– 'विधान' ।

अध्याय 30

संसदीय समितियां

क. समितियों के संबंध में सामान्य जानकारी

संसद अपना बहुत सा कार्य समितियों के माध्यम से करती है। इन समितियों की नियुक्ति कार्य की कुछ ऐसी विशेष मदों के निपटान के लिये की जाती है जिन पर विशेषज्ञों द्वारा गहराई से विचार किए जाने की आवश्यकता होती है। संसदीय समिति प्रणाली विशेष रूप से उन विषयों को निपटाने में बहुत लाभदायक सिद्ध होती है, जो विशेष या तकनीकी स्वरूप के होने के कारण सभा की बजाय कुछ सदस्यों द्वारा गहन विचार करके अधिक अच्छी तरह से निपटाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, इस प्रणाली से सभा का समय बच जाता है, जो महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा में लगाया जा सकता है और संसद मामले की बारीकियों में फंस कर नीति और विस्तृत सिद्धान्तों से परे नहीं जाती।

भारत में समिति प्रणाली का प्रारम्भ मोन्टेग-चेम्सफोर्ड सुधारों के परिणामस्वरूप हुआ था, परन्तु उन दिनों समितियां, केन्द्रीय विधान सभा की भांति, सरकार के नियंत्रण तथा उसके हस्तक्षेप से स्वतंत्र नहीं थीं। उन्हें कोई शक्तियां या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। वे अपनी प्रक्रिया स्वयं तय नहीं कर सकती थीं, यहां तक कि अपने आन्तरिक कार्यकरण हेतु भी स्वयं अपने नियम नहीं बना सकती थीं।

केन्द्रीय विधान सभा के स्थायी आदेशों में विधेयकों संबंधी याचिका समिति[1], स्थायी आदेशों के संशोधनों सम्बन्धी प्रवर समिति[2] और विधेयकों सम्बन्धी प्रवर समिति[3] नामक तीन समितियों का प्रावधान था। इनमें से विधेयकों सम्बन्धी याचिका समिति को विधान सभा की स्थायी समिति कहा जा सकता था। इनके अतिरिक्त, भारतीय विधायी नियमों में दो और समितियों नामत: किसी विधेयक के संबंध में संयुक्त समिति[4] और लोक लेखा समिति[5] के गठन की व्यवस्था की गयी थी।

वास्तव में, केन्द्रीय विधान सभा की लोक लेखा समिति को संसदीय समिति कहा ही नहीं जा सकता था क्योंकि यह सभा या अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन कार्य नहीं करती थी। इस समिति का अध्यक्ष वित्त सदस्य होता था और इसके संबंध में सचिवालय के कार्य वित्त विभाग करता था।[6]

---

1. विधान सभा के स्थायी आदेश, स्था.आ. 80 ।
2. *पूर्वोक्त,* स्था.आ. 56 ।
3. *पूर्वोक्त,* स्था.आ. 40 ।
4. जब एक सभा किसी विधेयक को दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंपने का संकल्प पारित कर देती थी और दूसरी सभा उससे सहमति प्रकट कर देती थी तो दोनों सभाएं अपने सदस्यों में से कुछ सदस्यों को उस संयुक्त समिति में काम करने के लिये नियुक्त करती थीं। इस संयुक्त समिति में दोनों सभाओं के सदस्यों की संख्या बराबर होती थी।
5. भारतीय विधायी नियम, नियम 42 और 51 ।
6. संसदीय समिति के रूप में इसके उद्भव संबंधी विस्तृत जानकारी के लिए ***देखिए*** इसी अध्याय में 'लोक लेखा समिति' शीर्षक के अन्तर्गत।

विधान सभा की समितियों के अतिरिक्त, केन्द्रीय विधान सभा के दोनों सदनों के सदस्य, भारत सरकार के विभिन्न विभागों की स्थायी परामर्शदात्री समितियों के सदस्यों के रूप में भी काम करते थे। ये सभी समितियां केवल परामर्शदात्री समितियां थीं और सरकार के नियंत्रण के अधीन काम करती थीं। सम्बद्ध विभाग का प्रभारी मंत्री समिति के सभापति के रूप में काम करता था।

संविधान लागू होने के बाद केन्द्रीय विधान सभा की स्थिति बिल्कुल बदल गयी और समितियों की व्यवस्था में भी बहुत अधिक परिवर्तन आया। न केवल समितियों की संख्या बढ़ गयी, बल्कि उनके कृत्य तथा शक्तियां भी बढ़ा दी गयीं।

संसदीय समिति सभा द्वारा नियुक्त या निर्वाचित की जाती है अथवा अध्यक्ष उसे नामनिर्दिष्ट करता है।[7] यह अध्यक्ष के निर्देश के अन्तर्गत कार्य करती है और अपने प्रतिवेदन सभा या अध्यक्ष को प्रस्तुत करती है और इसके सचिवालय का काम लोक सभा सचिवालय

---

7. अत: किसी संसदीय समिति का गठन नियमों के उपबंधों के अंतर्गत या संसद के अधिनियम के अनुसरण में किया जा सकता है (उदाहरणार्थ संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी समिति, न्यायाधीश (जांच) नियम संबंधी संयुक्त समिति) या सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव या संकल्प के द्वारा [उदाहरणार्थ, ब्रेटनवुड्स सम्मेलन संबंधी समिति, 1946; सदस्य के आचरण संबंधी समिति (मुद्‌गल का मामला, 1951); राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान कतिपय सदस्यों के आचरण संबंधी समिति (1963); संसद सदस्यों के वेतन, भत्तों और अन्य सुविधाओं संबंधी संयुक्त समिति (1968); अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति (1968); राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (1971); निर्वाचन विधि में संशोधन संबंधी संयुक्त समिति (1971); दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के कार्यकरण के प्रश्न की जांच संबंधी दोनों सभाओं की संयुक्त समिति (1980); बोफोर्स सौदे की जांच संबंधी संयुक्त समिति (1987); संविधान (इकहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990 संबंधी प्रवर समिति; प्रसव पूर्व निदान तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग निवारण), विधेयक, 1991 संबंधी संयुक्त समिति; संविधान (बहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1991 संबंधी संयुक्त समिति; संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) विधेयक; 1991 संबंधी संयुक्त समिति; प्रतिलिप्याधिकार (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1992 संबंधी संयुक्त समिति; प्रतिभूतियों और बैंक संव्यवहार में अनियमितताओं की जांच संबंधी संयुक्त समिति (1992); संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक, 1993 संबंधी संयुक्त समिति; लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1993; मानव अंग प्रत्यारोपण विधेयक, 1993 संबंधी प्रवर समिति; संविधान (अनुसूचित जनजाति) आदेश (संशोधन) विधेयक, 1996 संबंधी प्रवर समिति; संविधान 'इक्यासीवां संशोधन' विधेयक, 1996 संबंधी संयुक्त समिति] या अध्यक्ष में निहित शक्तियों के अन्तर्गत। इनमें से अंतिम श्रेणी की समितियों के उदाहरण इस प्रकार हैं: सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति; आवास समिति, भित्ति लेख समिति; हिन्दी पर्याय निर्धारण संबंधी समिति; संसद भवन में खानपान स्थापनों के कार्यकरण की जांच संबंधी समिति (1973); खेलकूद संबंधी अध्ययन समिति (1976); भाषा के प्रयोग संबंधी समिति (1978); और निरंकारियों और अकालियों के बीच सुलह कराने के लिए संसद सदस्यों की समिति (1983), जो राज्य सभा के सभापति के निदेशों के अन्तर्गत कार्यरत थी।

द्वारा किया जाता है।[8] यह प्रश्न कि जो समिति इन सभी शर्तों को पूरा नहीं करती है, वह संसदीय समिति है या नहीं; अध्यक्ष के पास निर्णय के लिये भेजा जाता है और इस संबंध में उनका निर्णय अन्तिम होता है।[9]

लोक सभा की समितियां

लोक सभा में समितियों की एक सुनियोजित व्यवस्था है।[10] समितियों की नियुक्ति, उनका कार्यकाल, कृत्य तथा समिति के कार्य संचालन की प्रक्रिया की मुख्य दिशाओं का विनियमन, नियमों के उपबंधों के अंतर्गत और उन नियमों के अन्तर्गत अध्यक्ष द्वारा जारी किये गये निदेशों के अनुसार किया जाता है।[11] संसदीय समितियों के सम्बन्ध में तीन प्रकार के नियम हैं—'सामान्य नियम'[12] जो सभी समितियों पर लागू होते हैं, 'विशिष्ट नियम'[13] जिनमें विशेष समितियों के लिये विशेष उपबन्ध किये गये हैं, और 'आंतरिक नियम'[14] जिनके माध्यम से प्रत्येक संसदीय समिति की आन्तरिक प्रक्रिया का विनियमन किया जाता है। 'आन्तरिक नियम' सम्बद्ध समितियों द्वारा स्वयं अध्यक्ष के अनुमोदन से बनाये जाते हैं और वे कार्य करने की विस्तृत प्रक्रिया से सम्बन्धित होते हैं। इन्हें 'नियमों' और 'निदेशों' के उपबन्धों के अनुसार बनाया जाता है।

मुख्य वर्गीकरण: लोक सभा की समितियों को मुख्य रूप से निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :—

---

8. नियम 2 (1) ।
9. गृह मंत्री के अनुरोध पर, पंजाबी सूबे की मांग के प्रश्न की जांच में मंत्रिमंडल समिति द्वारा संतोषजनक हल निकालने में सहायता करने के लिए, अध्यक्ष के सभापतित्व में दोनों सभाओं की एक तदर्थ समिति गठित की गई थी।

   जब सभा में यह प्रश्न उठाया गया कि तदर्थ समिति का प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत किया जाए या सभा को, अध्यक्ष महोदय ने टिप्पणी की :

   > संसद सदस्यों की समिति, जिसके सभापति अध्यक्ष हैं, का प्रतिवेदन सरकार को नहीं बल्कि संसद में प्रस्तुत किया जाता है—*एल.एस. डिबेट्स,* 1.3.1986, कॉ. 3072 ।

10. साथ ही ***देखिए***-सुभाष सी. काश्यप, '*अवर पार्लियामेंट*' नेशलन बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1989, अध्याय-11; *पार्लियामेंट ऑफ इंडिया-मिथ्स एण्ड रिएलिटीज,* नई दिल्ली, 1988, पृ. 192-208 और जे.डी. लीस एण्ड मालकम शॉ, *कमेटीज इन लेजिस्लेचर में* 'कमेटीज इन द इंडियन लोक सभा', ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 1979, पृ. 288-326 ।
11. निदेश 48-108क ।
12. नियम 253-286 ।
13. नियम 287-331ढ ।
14. नियम 282 के अंतर्गत बनाये गये।

स्थायी समितियां और तदर्थ समितियां

स्थायी समितियों को उनके कार्य-कलापों के अनुसार निम्नलिखित पांच मुख्य शीर्षों में बांटा जा सकता है।[15]

जांच करने वाली समितियां (अर्थात् याचिका समिति और विशेषाधिकार समिति); संवीक्षा करने वाली समितियां (अर्थात् सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति और अधीनस्थ विधान संबंधी समिति);

सभा के दिन-प्रतिदिन के कार्य-संबंधी समितियां (अर्थात् सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति, कार्य-मंत्रणा समिति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति, नियम समिति और सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति);

सदस्यों को सुविधायें दिलाने संबंधी समितियां (अर्थात् सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति, आवास समिति और ग्रंथालय समिति); और

सरकार की वित्तीय तथा प्रशासनिक शक्तियों पर नियंत्रण रखने वाली समितियां (अर्थात् प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति)।

इन समितियों का गठन नियमों के अनुसार किया गया है और प्रत्येक समिति का पुनर्गठन प्रतिवर्ष अथवा अन्य अन्तराल पर अथवा निर्धारित कार्यकाल यथास्थिति, पूरा करने पर किया जाता है।

इनके अतिरिक्त, अन्य स्थायी समितियां हैं: यथा संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति, जिसका गठन संसद सदस्य वेतन तथा भत्ता अधिनियम, 1954 के अंतर्गत किया गया था;[16] लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति, जो प्रत्येक लोक सभा के आरंभ में लोक सभा द्वारा स्वीकृत और राज्य सभा द्वारा सहमति प्राप्त प्रस्ताव पर गठित की जाती है;[17] अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति;[18] विभागों से संबद्ध अन्य 17 समितियां[19] तथा महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति है जिनमें दोनों सदनों के सदस्यों को निर्वाचित/नामनिर्देशित किया जाता है। इन समितियों में दोनों सदनों के सदस्य होते हैं।

---

15. *फर्स्ट पार्लियामेन्ट* (1952-57) : *ए सोविनियर,* पृ. 92 ।
16. संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति संसद सदस्य वेतन तथा भत्ता अधिनियम, 1954 की धारा 9(1) के अनुसार 6 सितम्बर, 1954 को पहली बार नियुक्त की गयी थी। बाद में इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम संसद सदस्य, वेतन भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के रूप में संशोधित किया गया था।
17. छठी लोक सभा में गठित नहीं की गई।
18. नियम 331ख के अन्तर्गत गठित की गई।
19. नियमों की पांचवीं अनुसूची!

तदर्थ समितियों को मोटे तौर पर दो शीर्षों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहले, वे तदर्थ समितियां हैं, जो या तो लोक सभा द्वारा समय-समय पर प्रस्ताव स्वीकृत करके बनायी जाती हैं अथवा अध्यक्ष द्वारा विशिष्ट विषयों की जांच करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए बनाई जाती हैं अर्थात् किसी सदस्य के आचरण संबंधी समिति (मुद्गल मामला 1951);[20] राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान कुछ सदस्यों के आचरण संबंधी समिति (1963);[21] रेल अभिसमय समिति, संसद सदस्यों के वेतन, भत्तों तथा अन्य सुविधाओं संबंधी संयुक्त समिति (1968);[22] अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति (1968);[23] राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (1971);[24] निर्वाचन विधि में संशोधनों संबंधी संयुक्त समिति (1971);[25] दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के कार्यकरण की जांच संबंधी दोनों सभाओं की संयुक्त समिति (1980);[26] बोफोर्स सौदे की जांच संबंधी संयुक्त समिति (1987);[27] संसद भवन में भित्ति लेखों संबंधी समिति,[28] संसदीय, विधिक और प्रशासनिक शब्दों के हिन्दी पर्याय निर्धारित करने संबंधी

---

20. इस समिति की नियुक्ति अस्थायी संसद द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार की गयी। *पी. डिबेट्स* (II), 8.6.1951, कॉ. 10457-65 ।
21. इस समिति की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा 18 फरवरी, 1963 को लोक सभा द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार की गई—*लो.स.वा.वि.,* 18.2.1963, पृ. 1-4, 19.2.1963, पृ. 100, 108 ।
22. लोक सभा द्वारा 26 अप्रैल, 1968 को स्वीकृत तथा राज्य सभा से 10 मई, 1968 को सहमति प्राप्त प्रस्ताव के अनुसरण में गठित की गई—*लो.स.वा.वि.,* 26.4.1968, पृ. 136-37; *आर. एस. डिबेट्स,* 10.5.1968, कॉ. 2237-76 ।
23. लोक सभा द्वारा 30 अगस्त, 1968 को स्वीकृत तथा राज्य सभा से 25 नवम्बर, 1968 को सहमति प्राप्त प्रस्ताव के अनुसरण में गठित की गई—*एल.एस. डिबेट्स,* 30.6.1968, कॉ. 3486-3542; *आर.एस. डिबेट्स,* 25.11.1968, कॉ. 1225-80 ।
24. सभा के 2 अप्रैल, 1971 के निर्णय के अनुसरण में अध्यक्ष द्वारा 5 अप्रैल, 1971 को नियुक्त की गई, *लो.स.वा.वि.,* 2.4.1971, पृ. 115-26, 139-42, 150-51 ।
25. लोक सभा द्वारा 22 जून, 1971 को स्वीकृत तथा राज्य सभा से 25 जून, 1971 को सहमति प्राप्त प्रस्ताव के अनुसरण में नियुक्त की गई-*लो.स.वा.वि.,* 22.6.1971, पृ. 105-07, *आर. एस. डिबेट्स,* 25.6.1971, कॉ. 262-263 ।
26. लोक सभा द्वारा 19 दिसम्बर, 1980 को स्वीकृत तथा राज्य सभा से 24 दिसम्बर, 1980 को सहमति प्राप्त प्रस्ताव के अनुसरण में गठित की गई—*लो.स.वा.वि.,* 19.12.1980, पृ. 238-39, *आर.एस.* डिबेट्स, 24.12.1980, कॉ. 279-80 ।
27. लोक सभा द्वारा 6 अगस्त, 1987 को स्वीकृत तथा राज्य सभा से 12 अगस्त, 1987 को सहमति प्राप्त प्रस्ताव के अनुसरण में गठित की गई—*लो.स.वा.वि.,* 6.8.1987, पृ. 256-313; *आर.एस. डिबेट्स,* 12.8.1987, कॉ. 287-401 ।
28. इस समिति की नियुक्ति अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 27 अप्रैल, 1956 को की थी। इसका पुनर्गठन 29 मई, 1957 को किया गया।

समिति;[29] पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूप संबंधी समितियां;[30] संसद भवन में खान-पान स्थापनों के कार्यकरण की जांच करने संबंधी समिति (1973);[31] खेलकूद संबंधी अध्ययन समिति (1970);[32] भाषा प्रयोग संबंधी समिति (1978);[33] निरंकारियों और अकालियों के बीच सुलह कराने हेतु संसद सदस्यों की समिति (1983);[34] प्रतिभूतियों और बैंक संव्यवहार में अनियमितताओं की जांच के लिए संयुक्त समिति;[35] संसद सदस्यों के लिए सुविधायें और परिलब्धियों हेतु सुझाव देने संबंधी संयुक्त समिति;[36] संसद परिसर में खान-पान संबंधी संयुक्त समिति; संसद परिसर में राष्ट्रीय नेताओं के चित्र/प्रतिमाएं लगाने संबंधी समिति; संसद सदस्यों को कम्प्यूटर उपलब्ध करवाने संबंधी समिति इत्यादि; और संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के निष्पादन तथा इसके कार्यान्वयन में आने वाली समस्याओं की आवधिक निगरानी तथा समीक्षा और योजना के संबंध में लोक सभा के सदस्यों से प्राप्त शिकायतों पर विचार करने के लिए संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (लोक सभा) संबंधी समिति;[37] लाभ के

---

29. इस समिति की नियुक्ति अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 5 मई, 1956 को की थी।
30. दूसरी पंचवर्षीय योजना प्रारूप संबंधी समितियों की नियुक्ति कार्य मंत्रणा समिति (पहली लोक सभा) की सिफारिश पर की गई थी। इन समितियों में राज्य सभा के सदस्यों को सम्बद्ध करने के लिए लोक सभा ने 11 मई, 1956 को प्रस्ताव स्वीकृत किया तथा 14 मई, 1956 को राज्य सभा ने उस प्रस्ताव के संबंध में अपनी सहमति दी-35वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—पहली लोक सभा) और *लो.स.वा.वि.* (II), 11.5.1956, पृ. 3389-91 । इसी प्रकार तीसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के संबंध में समितियों की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा 6 सितम्बर, 1960, को सभा में की गई घोषणा के अनुसरण में की गयी थी-*लो.स.वा.वि.,* 6.9.1960, पृ. 3563 । योजना मंत्री के अनुरोध पर अध्यक्ष ने चौथी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पर विचार करने के लिए समितियों के गठन के लिए अपनी सहमति दी-समाचार भाग-2, 15.9.1966 । इसी प्रकार, दिसम्बर, 1973 में पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पर विचार करने के लिए पांच समितियों का गठन किया गया—समाचार भाग-2, 17.12.1973 ।
31. लोक सभा अध्यक्ष ने सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति की सिफारिश पर तथा राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 7 सितम्बर, 1973 को इस समिति की नियुक्ति की थी।
32. लोक सभा अध्यक्ष द्वारा 15 मई, 1976 को गठित की गई।
33. लोक सभा अध्यक्ष द्वारा 24 नवम्बर, 1978 को गठित की गई-*लो.स.वा.वि.,* 24.11.1978, पृ. 213-14 ।
34. लोक सभा अध्यक्ष द्वारा राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 26 अगस्त, 1983 को गठित की गई-*लो.स.वा.वि.,* 26.8.1983, पृ. 375; 8.12.1983, पृ. 165-66 ।
35. लोक सभा में 6 अगस्त, 1992 को स्वीकृत तथा राज्य सभा से 7 अगस्त, 1992 को सहमति प्राप्त प्रस्ताव के अनुसरण में नियुक्त ।
36. 31 मई, 1993 को लोक सभा अध्यक्ष द्वारा राज्य सभा के सभापति के परामर्श से गठित ।
37. 22 फरवरी, 1999 को लोक सभा अध्यक्ष द्वारा गठित।

पद से संबंधित सांविधानिक और विधिक स्थिति की जांच करने के लिए संयुक्त संसदीय समिति (2006);[38] और लोक सभा सदस्यों के दुराचरण की जांच संबंधी समिति (2007);[39] संयुक्त संसदीय समिति द्वारा दूरसंचार लाइसेंस और स्पेक्ट्रम के आबंटन एवं मूल्य निर्धारण से संबंधित मामलों की जांच (2011)[40]; अन्य पिछड़ा वर्गों के कल्याण संबंधी संयुक्त संसदीय समिति[41]; तथा लोकसभा सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रतिमान नयाचार का उल्लंघन और अवमानपूर्ण व्यवहार संबंधी समिति (2012)[42]।

तदर्थ समितियों की दूसरी श्रेणी में वे समितियां आती हैं, जिनका गठन सभा को परामर्श देने के लिये किया जाता है। इस श्रेणी में वे विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां आती हैं, जो सभा में पारित इस प्रस्ताव के अनुसार गठित किसी विशेष विधेयक पर विचार करने तथा उसके संबंध में प्रतिवेदन देने के लिये गठित की जाती हैं। ये समितियां अन्य तदर्थ समितियों से इस बात में भिन्न होती हैं कि उनका संबंध उन विधेयकों से ही होता है जो उन्हें सौंपे जाते हैं और उनकी प्रक्रिया नियमों तथा अध्यक्ष द्वारा जारी किये गये निर्देशों में दी गई है।

तथापि, विधेयक संबंधी संयुक्त समिति की नियुक्ति के लिए पहले सभा में अलग से प्रस्ताव प्रस्तुत करने और उसे स्वीकृत करने संबंधी सामान्य प्रक्रिया का संविधान (इक्यासीवां) संशोधन विधेयक, 1996 संबंधी संयुक्त समिति के संबंध में अनुपालन नहीं किया गया।[43] प्रस्ताव पर विचार करने हेतु चर्चा के चरण पर 13 सितम्बर, 1996 को ही सभा द्वारा अध्यक्ष को राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके संयुक्त समिति का गठन करने के लिए प्राधिकृत करते हुए उक्त विधेयक को विचारार्थ संयुक्त समिति को सौंपने का निर्णय लिया गया। जैसा कि नियमों में अपेक्षित है, विधेयक को संयुक्त समिति के विचारार्थ भेजने के लिए सभा में अलग से कोई प्रस्ताव नहीं लाया गया।

---

38. लोक सभा द्वारा 17 अगस्त, 2006 को स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसरण में गठित और राज्य सभा द्वारा 18 अगस्त, 2006 को सहमति प्राप्त।
39. लोक सभा अध्यक्ष द्वारा 16.5.2007 को विभिन्न दलों के नेताओं के साथ एक दिन पूर्व किए गए परामर्श के बाद गठित।
40. 24 फरवरी 2011 को लोक सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव और 1 मार्च 2011 को राज्य सभा की सहमति के अनुसरण में नियुक्त।
41. 21 दिसम्बर 2011 को लोक सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव और 22 दिसम्बर 2011 को राज्य सभा की सहमति के अनुसरण में नियुक्त।
42. 2 अगस्त, 2012 को अध्यक्ष, लोक सभा द्वारा गठित।
43. लोक सभा अध्यक्ष द्वारा, राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 7 अक्तूबर, 1996 को गठित।

संयुक्त समिति का गठन

संयुक्त समिति, जिसमें दोनों सदनों के सदस्य होते हैं, का गठन या तो एक सदन द्वारा स्वीकृत किये गये और दूसरे सदन से सहमति प्राप्त प्रस्ताव के अनुसार अथवा दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों के बीच बातचीत द्वारा[44] या नियमों के अन्तर्गत किया जाता है।[45] इस प्रकार की संयुक्त समिति का गठन तभी हो सकता है जब दोनों सदनों के बीच इस संबंध में सहमति हो। यदि इस प्रकार की सहमति न हो, तो संयुक्त समिति का गठन नहीं हो सकता।

लोक लेखा समिति तथा सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति संयुक्त समितियां नहीं हैं। वे मुख्य रूप से लोक सभा की समितियां हैं। ये समितियां लोक सभा द्वारा स्वीकृत किए गए प्रस्ताव पर बनाई जाती हैं इन समितियों में राज्य सभा के सदस्य लोक सभा द्वारा स्वीकृत तथा राज्य सभा की सहमति प्राप्त एक स्वतंत्र प्रस्ताव पर नामित किए जाते हैं, जिसमें राज्य सभा के सदस्यों को इन समितियों से सम्बद्ध किए जाने का अनुरोध होता है। यदि राज्य सभा इस प्रस्ताव से सहमत नहीं भी होती या राज्य सभा के सदस्य इन समितियों में शामिल नहीं होते तो भी ये अपना काम जारी रखती हैं। यदि राज्य सभा के सदस्य इन समितियों से सम्बद्ध हो जाते हैं तो उन्हें भी लोक सभा के सदस्यों की भांति इन समितियों की कार्यवाही में भाग लेने तथा मत देने का बराबर का अधिकार होता है।[46]

समितियों में सदस्यों की नियुक्ति

संसदीय समिति में सदस्यों को सभा में प्रस्तुत और स्वीकृत प्रस्ताव पर नियुक्त या निर्वाचित किया जाता है अथवा अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किया जाता है।[47]

---

44. उदाहरण के लिये, 1954 में अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से अनुच्छेद 102(1) (क) के अंतर्गत सदस्यों की निरर्हता से संबंधित मामलों पर विचार करने के लिए लाभ के पदों संबंधी समिति की नियुक्ति की थी। इसी प्रकार अध्यक्ष ने, राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके 1956 में संसद भवन में भित्ति लेखों संबंधी समिति और संसदीय, विधि और प्रशासनिक शब्दों के हिन्दी पर्याय निर्धारित करने के लिए समिति की नियुक्ति की तथा 1964 में संसद के लिए एक और भवन बनाने और संसद भवन में लगाये जाने वाले चित्रों तथा मूर्तियों के संबंध में समिति की नियुक्ति की।
45. जैसे ग्रंथालय समिति।
46. *एच.पी. डिबेट्स,* 10.5.1954, कॉ. 6960 ।

    लोक लेखा समिति के सभी प्रतिवेदन जिनमें अतिरिक्त अनुदानों संबंधी अथवा प्रभारित विनियोग संबंधी प्रतिवेदन भी शामिल हैं। सम्पूर्ण समिति द्वारा स्वीकार किए जाते हैं। अभी तक ऐसा कोई अवसर नहीं आया, जबकि अतिरिक्त अनुदानों या प्रभारित विनियोगों पर विचार करने के लिए हुई समिति की बैठक में कोई मतदान हुआ हो, लेकिन यदि अतिरिक्त अनुदानों पर मतदान का प्रश्न उत्पन्न हो, तो राज्य सभा के सदस्य उस मतदान में भाग नहीं लेंगे।
47. नियम 254(1) ।

सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के फलस्वरूप नियुक्त की गयी समितियां

विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां ऐसी समितियां हैं। जिनकी नियुक्ति सभा द्वारा स्वीकृत किए गए प्रस्तावों पर की जाती है। किसी विधेयक को किसी प्रवर समिति को सौंपने के प्रस्ताव में उन सदस्यों के नाम होते हैं, जिन्हें उस समिति का सदस्य नियुक्त करने का प्रस्ताव हो। समिति में नियुक्ति के लिए केवल लोक सभा के सदस्यों के नामों का सुझाव दिया जाता है, लेकिन जो मंत्री राज्य सभा के सदस्य हों, उनको भी सभा की प्रवर समिति में सदस्य नियुक्त किया जा सकता है, परन्तु उन्हें समिति में मत देने का अधिकार नहीं होता है। जब सरकारी विधेयक किसी प्रवर समिति को सौंपा जाता है, तो इसके प्रभारी मंत्री को समिति का सदस्य नियुक्त किया जाता है किन्तु गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के संबंध में उनके प्रभारी सदस्य और उस मंत्री को प्रवर समिति का सदस्य नियुक्त किया जाता है, जिसके मंत्रालय से विधेयक के विषय का संबंध हो।

इसी प्रकार, किसी विधेयक संबंधी संयुक्त समिति में सदस्यों की नियुक्ति एक सदन द्वारा स्वीकृत और दूसरे सदन द्वारा सहमत प्रस्ताव के अनुसार की जाती है।

विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के अतिरिक्त, सदस्यों को सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर किसी अन्य तदर्थ समिति का सदस्य भी नियुक्त किया जा सकता है। ऐसे प्रस्ताव में समिति में नियुक्त किए जाने वाले प्रस्तावित सदस्यों के नाम व बैठक के लिए आवश्यक गणपूर्ति तथा समिति के लिए अन्य निर्देशों का उल्लेख किया जाता है।[48]

सभा द्वारा निर्वाचित समितियां

लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्येक वर्ष, लोक सभा के सदस्यों द्वारा किया जाता है। इस प्रयोजन हेतु सदन में प्रस्तावों का रखा जाना तथा उन्हें स्वीकृत किया जाना आवश्यक है। इस प्रस्ताव में निर्वाचन प्रक्रिया का उल्लेख किया जाता है अर्थात् समिति में सदस्यों का निर्वाचन उपस्थित तथा मतदान करने वाले सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत[49] द्वारा होता है। समिति के निर्वाचन में डाक द्वारा मतदान की अनुमति नहीं होती है।

---

48. उदाहरणार्थ, प्रतिभूति एवं बैंक संव्यवहार में हुई अनियमितताओं की जांच संबंधी संयुक्त समिति की नियुक्ति लोक सभा द्वारा 6 अगस्त, 1992 को स्वीकृत और राज्य सभा से 7 अगस्त, 1992 को सहमति प्राप्त एक प्रस्ताव के अनुसरण में की गई थी।

49. नियम 309 (1) और 311 (1), 312ख(1) और 331(ख) (1) । आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचन कराने का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक दल या समूह को, यथासंभव, समिति में उतना प्रतिनिधित्व मिल जाए, जो सभा में उसके सदस्यों की संख्या के अनुपात में हो।

इन समितियों में से किसी भी समिति के सदस्यों के निर्वाचित करने के प्रस्ताव में यह भी बताया जाता है कि कितने सदस्यों का निर्वाचन करने का प्रस्ताव है। यह प्रस्ताव निवर्तमान समिति के सभापति द्वारा उस समिति का कार्यकाल समाप्त होने से पहले सभा में रखा जाता है। किन्तु आम चुनाव के बाद नई लोक सभा के प्रारम्भ में सदस्यों के निर्वाचन के संबंध में ऐसे प्रस्ताव सभा के नेता/संसदीय कार्य मंत्री द्वारा पेश किए जाते हैं।[50]

आम चुनावों के बाद नई लोक सभा के प्रारंभ में लोक सभा के सदस्यों को लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति के लिए चुना जाना भी आवश्यक होता है।[51] इस बारे में आवश्यक प्रस्ताव विधि और न्याय मंत्री द्वारा रखा जाता है।

सदस्यों को किसी ऐसी तदर्थ समिति का सदस्य भी निर्वाचित किया जा सकता है जो उस संबंध में सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसरण में गठित की गई हो।[52]

प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबधी समिति तथा लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति या किसी अन्य तदर्थ समिति के लिये सदस्यों के निर्वाचन का प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद इन निर्वाचनों के लिए उम्मीदवारों के नामांकन की तारीख, नाम वापस लेने की तारीख और निर्वाचन की तारीख का विस्तृत कार्यक्रम संसदीय समाचार में दिया जाता है। नामांकन पत्र प्राप्त करने के लिये निर्धारित समय की समाप्ति पर निर्वाचन में खड़े उम्मीदवारों की सूची तैयार की जाती है और उसकी प्रतियां सदस्यों की जानकारी के लिए सूचना पटों पर लगा दी जाती हैं। यदि उम्मीदवारों द्वारा अपने नाम वापस लिये जाने के बाद वैध नामनिर्देशन पत्रों की संख्या रिक्त स्थानों के बराबर होती है, तो सभी उम्मीदवारों के चुने जाने की घोषणा कर दी जाती है और उनके नाम संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दिए जाते हैं। यदि वैध नामांकन पत्रों की संख्या रिक्त स्थानों की संख्या से कम है, तो सारे उम्मीदवारों के

---

50. *लो.स.वा.वि.,* 24.5.1957, पृ. 869; 26.5.1971, पृ. 112-14; 9.7.1977, पृ. 1-4; 24.7.1980, पृ. 139-40; 26.3.1985, पृ. 189-92 ।

51. *एल.एस. डिबेट्स,* 3.8.1959, कॉ. 142-46; *लो.स.वा.वि.,* 8.6.1962, पृ. 4554-55; 5.6.1967, पृ. 1335-36; 15.6.1971, पृ. 100-02; 25.11.1980, पृ. 195-96; 2.4.1985, पृ. 204-06 ।

छठी लोक सभा के दौरान लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति गठित नहीं की गई।

52. इस श्रेणी की समितियों के उदाहरण हैं—ब्रेटनवुड्स सम्मेलन संबंधी समिति (1946), *एल. ए. डिबेट्स,* 30.1.1946, पृ. 247; रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग करने के संबंध में अभिसमय की पुनरीक्षा करने वाली समिति (1949)—*सी.ए. (लेजि.), डिबेट्स,* 1.4.1949, पृ. 2210; लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति (1959)—*लो.स.वा.वि.,* 3.8.1959, पृ. 87-88; बोफोर्स सौदे की जांच संबंधी संयुक्त समिति (1987) *लो.स.वा.वि.,* 6.8.1987, पृ. 256-313; *आर.एस. डिबेट्स,* 12.8.1987, कॉ. 287-401 ।

संबंध में यह घोषणा कर दी जाती है कि वे विधिवत् रूप से चुन लिए गए हैं और नामांकन पत्र भेजने के लिए निश्चित समय-सीमा को आगे बढ़ा दिया जाता है, जिससे कि बाकी रिक्त स्थानों को भरा जा सके। इस प्रक्रिया को तब तक बार-बार दोहराया जाता है, जब तक कि उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले पदों से कम होती है। यदि नाम वापस लिए जाने के बाद भी वैध नामांकन पत्रों की संख्या रिक्त स्थानों की संख्या से अधिक हो, तो अध्यक्ष द्वारा ऐसे निर्वाचनों के लिये बनाये गये विनियमों के अनुसार निर्वाचन कराया जाता है।[53]

संबंधित मंत्री द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर, दोनों में से किसी भी सदन द्वारा संसद सदस्यों को संसदीय समितियों से भिन्न ऐसी समितियों या निकायों में कार्य करने के लिए चुना जाता है जिनकी स्थापना संविधान के उपबंधों अथवा संसद द्वारा बनाये गये किसी अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत अथवा ऐसी समिति अथवा निकाय के लिए सरकार के किसी संकल्प के उपबंधों के अनुसार की गई हो। इन समितियों या निकायों की निर्वाचन विधि भी वही होती है जो अन्य संसदीय समितियों की होती है।[54]

अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट समितियां

अध्यक्ष द्वारा विशिष्ट संसदीय समितियों में सदस्यों का नामनिर्देशन सभा के नेता और विरोधी पक्ष के दलों तथा ग्रुपों के नेताओं से परामर्श करने के बाद किया जाता है।

नई लोक सभा के प्रारम्भ में सचिवालय सभा के नेता से समितियों में नामनिर्देशन के लिये सरकारी पक्ष के सदस्यों के नामों की प्राथमिकता क्रम से तैयार की गई एक सूची भेजने को कहता है, जिससे उस सूची को समितियों में सदस्यों का नाम-निर्देशन करते समय अध्यक्ष के सामने रखा जा सके। इसी प्रकार विरोधी पक्ष के दलों अथवा ग्रुपों के नेताओं से भी अपने दलों या ग्रुपों के सदस्यों में से दो या तीन नामों का इस प्रयोजनार्थ प्राथमिकता क्रम में सुझाव देने के लिए कहा जाता है।[55] अध्यक्ष अपने विवेक से इन सूचियों में से नाम-निर्देशन करने के लिए सदस्यों को चुनता है, तथापि, सत्ताधारी दल अथवा अन्य दलों/समूहों के सदस्यों के नामनिर्देशन हेतु नामों की सूची बनाने की प्रथा बहुत पहले समाप्त कर दी गई है। वर्तमान प्रथा समितियों के दोनों समूहों अर्थात् 24 विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों और अन्य स्थायी समितियों में उपलब्ध स्थानों का आनुपातिक आवंटन पृथक् रूप से विभिन्न दलों और समूहों

---

53. ये विनियम हैं "एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से समितियों के निर्वाचन कराने संबंधी विनियम"—इसके पाठ के लिए *देखिए* प्रथम संस्करण का परिशिष्ट 7 ।

54. निदेश 108 (क)।

55. "दलों तथा ग्रुपों से अध्यक्ष द्वारा समितियों में नाम-निर्देशन के लिए सदस्यों के नाम देने का अनुरोध करते समय यह लिखने की प्रथा है कि 'अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के मामले में जहां तक संभव हो, वकील सदस्य के नाम का सुझाव दिया जाए,' इसका कारण यह है कि अधीनस्थ विधान संबंधी समिति को विभिन्न अधिनियमों के अंतर्गत बनाए गए नियम और विनियमों की जांच करनी पड़ती है।"

को सभा में उनकी सदस्य संख्या के अनुसार किया जाता है अध्यक्ष द्वारा अनुमोदित स्थानों के अनुसार दलों के नेताओं से किसी समिति में उसके दल को आवंटित प्रत्येक स्थान के लिए अपने सदस्यों में से केवल एक नाम अध्यक्ष द्वारा विचारार्थ और नामनिर्देशन हेतु दिए जाने का अनुरोध लिखित में किया जाता है। जहां तक सम्भव होता है, समितियों में विभिन्न दलों तथा ग्रुपों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व सभा में उनके सदस्यों की संख्या के अनुपात में किया जाता है। किसी समिति में नामनिर्देशन के लिए चुने जाने पर उस सदस्य से समिति में काम करने के लिए अपनी लिखित सहमति देने के लिए कहा जाता है।

अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट समितियों का पुनर्गठन : अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट संसदीय समितियों के पुनर्गठन के प्रश्न पर प्रत्येक वर्ष विचार किया जाता है। यह अध्यक्ष पर निर्भर करता है कि वह किसी समिति का पुनर्गठन करे या न करे। लेकिन सन् 1959 से चली आ रही प्रथा के अनुसार, सभी स्थायी संसदीय समितियों का प्रति वर्ष पुनर्गठन किया जाता है।[56] संसदीय समितियों में सभी दलों/ग्रुपों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए सदन में इनकी सदस्य संख्या के अनुपात में इन समितियों में उनके सदस्यों की संख्या को प्रति वर्ष चक्रानुक्रम में बदला जाता है।

समितियों में आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना

किसी संसदीय समिति में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों को नियुक्ति द्वारा या प्रस्ताव पर सभा द्वारा निर्वाचन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशन से, यथास्थिति, भरा जाता है। ऐसी रिक्ति पर नियुक्त, निर्वाचित या नामनिर्देशित कोई सदस्य उस कालावधि तक पद धारण करता है, जिसके लिए वह सदस्य जिसके स्थान पर कि वह निर्वाचित, नियुक्त या नामनिर्दिष्ट होता है, सामान्यत: उस पद को धारण करता।[57] संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के मामले में, उसका सदस्य नामनिर्देशन की तारीख से एक वर्ष तक समिति का सदस्य बना रहता है।[58] आकस्मिक रिक्ति को भरने की प्रक्रिया भी सामान्यत: वही है जो मूल नियुक्ति के समय अपनाई जाती है।

कार्यकाल

अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट समितियां

अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट संसदीय समिति 'एक वर्ष से अनधिक' अवधि तक या अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट कालावधि तक, या जब तक कोई नयी समिति नामनिर्देशित न हो जाए, कार्य करती है।[59]

---

56. छठी लोक सभा में 1 जुलाई, 1977 को गठित विशेषाधिकार समिति का 1978 में पुनर्गठन नहीं किया गया और वही समिति 31 मई, 1979 तक कार्य करती रही।
57. नियम 254(3) ।
58. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 2(क) ।
59. नियम 256 ।

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति, सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति, महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति, आवास समिति और ग्रन्थालय समिति का कार्यकाल 'एक वर्ष से अधिक नहीं' होता।[60] कार्य मंत्रणा समिति, याचिका समिति, विशेषाधिकार समिति और नियम समिति तब तक अस्तित्व में बनी रहती हैं, जब तक कि अध्यक्ष उनका पुनर्गठन न कर दे।[61]

यदि अध्यक्ष द्वारा नियुक्त की गयी किसी तदर्थ समिति का कार्यकाल निर्दिष्ट न किया गया हो, तो समिति तब तक बनी रहती है जब तक कि उसका काम पूरा न हो जाए और वह अपना प्रतिवेदन, यदि कोई हो, प्रस्तुत न कर दे।

सभा द्वारा निर्वाचित समितियां

लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सदस्यों का निर्वाचन सभा द्वारा 'एक वर्ष से अनधिक' अवधि के लिए किया जाता है।[62] सामान्यतः इन समितियों का निर्वाचन प्रत्येक वर्ष अप्रैल के महीने में किया जाता है और इनका कार्यकाल 1 मई से आरम्भ होता है और अगले वर्ष में 30 अप्रैल तक जारी रहता है। नई लोक सभा की स्थिति में, इन समितियों का निर्वाचन नई सभा की बैठक होने के बाद यथाशीघ्र किया जाता है और इनका कार्यकाल प्रस्ताव में निर्दिष्ट अवधि के लिए होता है (सामान्यतः यह कार्यकाल अगले वर्ष 30 अप्रैल को समाप्त होता है)।

जहां कालावधि बढ़ाना आवश्यक हो, वहां इस प्रयोजनार्थ एक प्रस्ताव रखा जाता है जिसे सदन स्वीकृत कर लेता है, किन्तु इससे पहले कालावधि बढ़ाने के प्रस्ताव में संबंधित नियम को निलंबित करने वाला प्रस्ताव स्वीकृत करना होता है।[63]

---

60. नियम 293 (2), 305क (2), 318(2), 324(2), 325 और 331ख (2) ।
61. नियम 256 के साथ पठित नियम 287, 306, 313 और 330 ।
62. नियम 309(2), 311(2) और 312ख (2) और 331ख (1) । लोक सभा द्वारा 13.8.1973 को स्वीकृत किए गए प्रस्ताव के अनुसरण में गठित की गई अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सदस्यों का कार्यकाल इस समिति की पहली बैठक की तारीख से लेकर दो वर्ष की अवधि के लिए था। लेकिन उनके कार्यकाल की अवधि को सदन द्वारा स्वीकृत दो प्रस्तावों द्वारा 31.3.1976 तक बढ़ाया गया—*लो.स.वा.वि.,* 28.7.1975 और 5.2.1976 ।
63. चौथी लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान तीनों वित्तीय समितियों की अवधि को बढ़ाना आवश्यक समझा गया। प्रत्येक समिति के संदर्भ में, संबंधित प्रस्ताव, 20 मार्च, 1968 को स्वीकृत किए गए। लोक लेखा समिति तथा सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के बारे में ऐसा प्रस्ताव रखा गया तथा स्वीकृत किया गया जिसमें राज्य सभा को यह सूचित करते हुए कि

विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है। सभा में किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने का जो प्रस्ताव रखा जाता है, उसमें सामान्यत: वह तिथि अथवा अवधि निश्चित कर दी जाती है, जिस तक समिति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है। यदि समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिये सदन ने कोई समय निश्चित न किया हो, तो समिति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सदन द्वारा विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के प्रस्ताव के स्वीकृत किए जाने की तारीख से तीन महीने के अन्दर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दे।[64]

किसी प्रस्ताव या संकल्प के द्वारा नियुक्त/निर्वाचित समितियां

सदन द्वारा किसी समिति की नियुक्ति या निर्वाचन के प्रस्ताव में या तो उसका कार्यकाल[65] निर्दिष्ट किया जाता है या वह तिथि[66] या अवधि[67] बतायी जाती है, जिस तक या जिसके भीतर समिति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होगा।

जब सदन ने समिति द्वारा प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण के लिए कोई समय निश्चित न किया हो, तो समिति को प्रतिवेदन उस तिथि से एक मास के भीतर प्रस्तुत करना होगा जिस तिथि को उसे निर्देशित किया गया था। तथापि, सदन प्रस्ताव किये जाने पर समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के समय को बढ़ा सकता है।[68]

संविधि के अंतर्गत नियुक्त समितियां

संसद के किसी अधिनियम के अंतर्गत गठित समिति के कार्यकाल की अवधि सामान्यत: संबंधित संविधि में निर्धारित होती है।

अन्य समितियां

उपर्युक्त समितियों के अतिरिक्त, अध्यक्ष अपने कृत्यों के निर्वहन में सहायता तथा परामर्श देने या सभा या उसके सदस्यों के संबंध में किसी विषय पर अपना प्रतिवेदन देने के

समिति के वर्तमान सदस्यों का कार्यकाल 30 अप्रैल, 1968 तक बढ़ा दिया गया है, उस सदन में यह सिफारिश की गई कि वह उक्त समितियों से सम्बद्ध राज्य सभा के सदस्यों के बारे में यथा उचित कार्यवाही करे।

जुलाई, 1975 तथा फरवरी, 1976 में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सदस्यों का कार्यकाल बढ़ाया गया था—*लो.स.वा.वि.,* 28.7.1975 और 5.2.1976 ।

64. नियम 303 (1), पहला परन्तुक ।
65. *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1959, पृ. 88 ।
66. *सी.ए.(लेजि.) डिबेट्स,* 1.4.1949, पृ. 2210; *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1960, पृ. 6102-11 ।
67. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 6.6.1951, कॉ. 10259-303; 8.6.1951, कॉ. 10457-65 ।
68. नियम 277(1) ।

लिये भी समिति की नियुक्ति कर सकता है। ऐसी समिति का कार्यकाल उतना होता है, जितना अध्यक्ष निर्दिष्ट करे या यह उस समय तक कार्य करती है, जब तक अध्यक्ष नई समिति की नियुक्ति नहीं कर देता। जब अध्यक्ष कोई कार्यकाल निर्दिष्ट न करे, तो समिति अपना कार्य समाप्त होने तक और अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने तक, यदि कोई हो, कार्य करती है।

समिति की सदस्यता पर आपत्ति

किसी संसदीय समिति में किसी सदस्य की नियुक्ति पर इस आधार पर आपत्ति की जा सकती है कि उस सदस्य का इतना अधिक वैयक्तिक, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित है कि उससे समिति द्वारा किसी विचारणीय विषय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।[69] इस प्रकार का हित अलग से उस व्यक्ति का ही होना चाहिए, जिसे समिति में सम्मिलित किये जाने पर आपत्ति की गयी है, अर्थात् वह जनसाधारण या उसके किसी वर्ग या भाग के सामान्य हित का नहीं होना चाहिए और न राज्य की नीति से उसका सम्बन्ध होना चाहिए। जिस सदस्य ने आपत्ति की हो, उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी आपत्ति का आधार तथा समिति के सामने आने वाले विषयों में प्रस्तावित सदस्य के आरोपित हित के स्वरूप का, चाहे वह वैयक्तिक, आर्थिक या प्रत्यक्ष हो, सुतथ्यता कथन करेगा। जिस सदस्य की समिति में नियुक्ति पर आपत्ति की गयी है, अध्यक्ष उसे भी अपनी स्थिति बताने के लिये कह सकता है। जब तथ्यों के संबंध में कोई विवाद हो, तो अध्यक्ष दोनों सदस्यों से दस्तावेज संबंधी या अन्य साक्ष्य मांग सकता है। इस संबंध में अध्यक्ष द्वारा दिया गया निर्णय अन्तिम माना जाता है।[70]

जब मामला अध्यक्ष को सौंपा गया हो तो, अध्यक्ष का निर्णय मालूम होने तक, वह सदस्य जिसकी सदस्यता पर आपत्ति की गयी है, समिति का सदस्य बना रहता है। वह समिति के विचार- विमर्श में भाग ले सकता है, परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं होता है।[71] यदि अध्यक्ष यह निर्णय करे कि सदस्य का समिति के समक्ष विचाराधीन विषय में कोई वैयक्तिक, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित है, तो उसकी सदस्यता तुरन्त समाप्त हो जाती है, परन्तु अध्यक्ष के निर्णय का समिति की उन बैठकों की कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, जिनमें वह

69. नियम 255 । पहली लोक सभा में प्राक्कलन समिति ने हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड के कार्यकरण की जांच करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की । इस उप-समिति का एक सदस्य हिन्दुस्तान शिपयार्ड मजदूर संघ का प्रेजीडेंट भी था। उसे उप-समिति का सदस्य बनाये जाने पर इसलिए आपत्ति की गयी कि उसका उसमें प्रत्यक्ष हित है क्योंकि वह मजदूर संघ का प्रेजीडेंट है। इस पर अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया कि वह उप-समिति के दौरे को स्थगित कर देंगे और इस बीच उप-समिति के सदस्यों और उसके निर्देश पदों पर पुनर्विचार करेंगे। लेकिन यह किये जाने से पहले ही समिति का कार्यकाल समाप्त हो गया और इसके परिणामस्वरूप उप-समिति ने कार्य करना बन्द कर दिया।

70. नियम 255(घ)।

71. नियम 255(ङ)।

सदस्य उपस्थित रहा हो।[72] जिस सदस्य का समिति के विचाराधीन किसी विषय में कोई वैयक्तिक, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित हो, तो उसके लिये भी आवश्यक है कि वह समिति के सभापति के माध्यम से उस हित की सूचना अध्यक्ष को दे।[73]

प्राक्कलन समिति अथवा लोक लेखा समिति अथवा सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति और सरकारी समितियों की सदस्यता

जब प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति या लोक लेखा समिति के सभापति या किसी सदस्य को सरकार द्वारा गठित किसी समिति की सदस्यता स्वीकार करने के लिये कहा जाता है, तो उस नियुक्ति को स्वीकार करने से पहले यह मामला अध्यक्ष के पास भेजा जाता है।[74] यदि अध्यक्ष यह समझे कि सभापति या सम्बद्ध सदस्य के लिए यह उचित नहीं होगा कि जब तक वह किसी संसदीय समिति का सदस्य है, तब तक वह किसी सरकारी समिति की सदस्यता भी स्वीकार करे, तो वह सभापति या सदस्य को सरकारी समिति की सदस्यता स्वीकार करने की अनुमति नहीं देता लेकिन जहां संसदीय कार्य के हित में, वह उन्हें इस बात की अनुमति देता है, वहां वह यह भी निर्देश देता है कि सरकारी समिति का

---

72. नियम 255 (च)।

73. निदेश 52 क; साथ ही *देखिए अध्याय* 12—सदस्यों का आचरण।

    5 मई, 1959 को बैंककारी कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समिति के एक सदस्य ने अध्यक्ष को लिखा कि वह कुछ बैंकों के कानूनी सलाहकार के रूप में कार्य कर रहा है और पूछा कि क्या वह उस समिति का सदस्य बना रह सकता है। अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि वह पत्र समिति के सभापति के पास भेजा जाये और समिति को पढ़कर सुनाया जाए और यदि कोई सदस्य उस पर आपत्ति न करे तो वह समिति का सदस्य बना रह सकता है, परन्तु यदि आपत्ति की जाती है तो अध्यक्ष उस समय बताये गये तथ्यों के प्रकाश में इस मामले का निर्णय करेगा। बाद में वही सदस्य समिति का सभापति नियुक्त किया गया और उसने वह पत्र समिति की पहली बैठक में पढ़कर सुनाया। चूंकि किसी भी सदस्य ने कोई आपत्ति नहीं उठायी, इसलिए इस मामले पर आगे कोई कार्यवाही नहीं की गयी– [बैंककारी कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समिति] का कार्यवाही सारांश, 9.5.1959 ।

    हाइड्रोजनीकृत वनस्पति तेलों के निर्माण तथा आयात का निषेध विधेयक के संबंध में याचिका समिति को कुछ याचिकाएं प्राप्त हुईं। क्योंकि समिति के सभापति ने विधेयक पेश किया था इसलिए अध्यक्ष ने 17 दिसम्बर, 1950 को, जिस दिन उन याचिकाओं पर विचार किया जाना था, समिति की बैठक की अध्यक्षता करने के लिए किसी अन्य सदस्य को कार्यवाहक सभापति नियुक्त कर दिया।

74. निदेश 97 ।

प्रतिवेदन सरकार को पेश किये जाने से पहले सम्बद्ध संसदीय समिति के सामने रखा जाए और वह उस पर जैसी टिप्पणी करना चाहे, करे।[75]

जब सरकार द्वारा गठित समिति का सदस्य लोक सभा की किसी समिति में नियुक्त किया जाता है, तो यह मामला अध्यक्ष के सामने रखा जाता है, जिससे कि वह निर्णय कर सके कि सदस्य को सरकारी समिति का सदस्य बने रहने की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं।[76] अध्यक्ष चाहे तो किसी सदस्य को संसदीय समिति का सदस्य बने रहने की अनुमति दे और चाहे न दे।[77] यदि अध्यक्ष किसी सदस्य को किसी सरकारी समिति का सदस्य बने रहने की अनुमति देता है तो वह यह शर्त लगा सकता है कि सरकारी समिति का प्रतिवेदन संबद्ध संसदीय समिति के सामने ऐसी टिप्पणी के लिए रखा जाना चाहिए जैसा कि समिति उचित

---

75. राष्ट्रपति द्वारा 1957 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के मामलों की जांच करने के लिए बनायी गयी जांच समिति की सदस्यता स्वीकार करने की अनुमति प्राक्कलन समिति के एक सदस्य को देते समय अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि जांच समिति की रिपोर्ट प्राक्कलन समिति से परामर्श किए बिना प्रकाशित न की जाए। उस समय प्राक्कलन समिति शिक्षा मंत्रालय के प्राक्कलनों की जांच कर रही थी। तद्नुसार ही कार्यवाही की गई।

    अध्यक्ष ने प्राक्कलन समिति के सभापति को 1957 में क्रय परामर्शदात्री परिषद् की सदस्यता स्वीकार करने की अनुमति इस निदेश के साथ दी कि जब वह यह महसूस करे कि समिति के सदस्य के रूप में और परिषद् के सदस्य के रूप में उसके कामों के बीच कोई परस्पर विरोध होने की संभावना है तो वह परिषद् की सदस्यता से त्यागपत्र दे दें।

    28 जनवरी, 1958 को प्राक्कलन समिति के एक सदस्य को नमक जांच समिति की सदस्यता स्वीकार करने की अनुमति देते हुए अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि सदस्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नमक जांच समिति की सिफारिशों में व्यक्त विचारों और उन विचारों में कोई गम्भीर अन्तर न हो जो प्राक्कलन समिति ने नमक संगठन और प्रबन्धन के कम्पनी स्वरूप को समाप्त करने के संबंध में अपने 15वें प्रतिवेदन (पहली लोक सभा) में व्यक्त किए हैं।

    1958 में अध्यक्ष ने प्राक्कलन समिति के एक सदस्य की नियुक्ति विश्वभारती विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद् में करने की अनुमति देते हुए यह निदेश दिया कि उसकी नियुक्ति 30 अप्रैल, 1958 के बाद किसी तिथि से हो, उस समय तक प्राक्कलन समिति द्वारा उसी विषय पर अपने प्रतिवेदन को अन्तिम रूप दे देने की संभावना है। तद्नुसार सदस्य को विश्वभारती विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद् में 1 मई, 1958 से नियुक्त किया गया।

76. निदेश 97(क)।

77. प्राक्कलन समिति (1958-59) का सदस्य निर्वाचित होने पर एक सदस्य ने, जो कि योजना की परियोजना संबंधी समिति के समाज कल्याण संबंधी अध्ययन दल का नेता था, प्राक्कलन समिति से त्यागपत्र दे दिया, जिससे कि अध्ययन दल के नेता और समिति के सदस्य के रूप में काम करते रहने में कोई कठिनाई न हो।

समझे और उसके बाद वह प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।[78] जब सरकार द्वारा गठित किसी जांच समिति का विषय और किसी संसदीय समिति द्वारा विचार किए जाने वाला कोई विषय एक ही हो, तो अध्यक्ष किसी सदस्य को दोनों समितियों का सदस्य बनने की अनुमति देते समय यह निदेश दे सकता है कि वह सदस्य सम्बद्ध संसदीय समिति की कार्यवाही में उस समय भाग न ले जबकि विशिष्ट विषय विचार के लिए उसके सामने आए।[79]

समिति से पदत्याग और स्थानों की रिक्ति

कोई सदस्य अध्यक्ष को सम्बोधित करके अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा समिति में अपने स्थान का त्याग कर सकता है।[80] पदत्याग का पत्र स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में होना चाहिए और पद त्याग तभी प्रभावी होता है, जब त्यागपत्र सचिवालय में पहुंच जाए और यह पत्र में उल्लिखित तिथि से प्रभावी होता है।[81] यदि पत्र में पदत्याग की कोई तिथि निर्दिष्ट न की गयी हो, तो पदत्याग पत्र की तिथि[82] से प्रभावी होता है और जब पत्र पर कोई तिथि न दी गयी हो, तो सचिवालय में उस पत्र की प्राप्ति की तिथि से लागू होता है।[83] वह पदत्याग स्वत: प्रभावी होता है और इसके अध्यक्ष द्वारा स्वीकार किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

---

78. 18 अप्रैल, 1957 को दिल्ली प्रशासन ने सहायता प्राप्त गैर-सरकारी स्कूलों की परिस्थितियों की समीक्षा के लिए एक जांच समिति बनाई। बाद में इस समिति के सभापति को प्राक्कलन समिति (1957-58) का सदस्य चुना गया। यह प्रश्न उठाये जाने पर कि इस जांच का प्रभाव शिक्षा मंत्रालय के प्राक्कलनों की जांच संबंधी प्राक्कलन समिति के कार्य पर पड़ेगा अथवा नहीं, अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि जांच समिति का प्रतिवेदन प्राक्कलन समिति के सभापति को दिया जाए। लेकिन प्रारम्भिक शिक्षा के संबंध में दोनों समितियों की सिफारिशों में कोई परस्पर विरोध नहीं पाया गया।
79. योजना की परियोजनाओं संबंधी समिति के समाज कल्याण संबंधी अध्ययन दल के एक सदस्य ने प्राक्कलन समिति का सदस्य चुने जाने पर, अध्यक्ष से यह प्रार्थना की कि उसे इन दोनों समितियों में बने रहने की अनुमति दी जाए। चूंकि एक विशेष मामले की अध्ययन दल और प्राक्कलन समिति, दोनों जांच कर रहे थे, इसलिए अध्यक्ष ने उस सदस्य की प्रार्थना स्वीकार करते समय यह निदेश दिया कि वह इस मामले से संबंधित प्राक्कलन समिति की कार्यवाही में भाग न ले। तदनुसार, सदस्य ने प्राक्कलन समिति की उन बैठकों में भाग नहीं लिया, जिनमें इस मामले के संबंध में विचार किया गया तथा इसके प्रारूप प्रतिवेदन को स्वीकार किया गया।
80. नियम 257 ।
81. *पूर्वोक्त* ।
82. *पूर्वोक्त* ।
83. *पूर्वोक्त* ।

यह तभी प्रभावहीन हो सकता है जब इसमें कोई दोष पाया जाए।[84] संयुक्त समितियों के मामले में, सदस्य जिस सभा से सम्बद्ध हो, उस सभा के पीठासीन अधिकारी के नाम अपना त्यागपत्र भेजकर समिति की सदस्यता से पदत्याग कर सकता है। इस प्रकार के मामलों में, यह प्रयास किया जाता है कि संयुक्त समिति की सदस्यता से त्यागपत्र को दोनों सदनों के संसद समाचार द्वारा एक साथ अधिसूचित किया जाए।

रिक्ति तब भी हो सकती है, जब समिति के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाए या वह सभा में अपने स्थान से त्यागपत्र दे दे या अन्यथा, सभा का सदस्य न रहे।[85]

यदि याचिका समिति अथवा लोक लेखा समिति अथवा प्राक्कलन समिति अथवा सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति अथवा अधीनस्थ विधान संबंधी समिति अथवा सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति अथवा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति अथवा महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति अथवा विभागों से सम्बद्ध स्थायी समिति का कोई सदस्य मंत्री नियुक्त हो जाता है, तो वह ऐसी नियुक्ति की तिथि से उस समिति का सदस्य नहीं रहता।[86] इस प्रकार के मामलों में, न तो किसी औपचारिक त्यागपत्र की आवश्यकता होती है और न ही सदस्यता समाप्त होने की सूचना संसद समाचार में अधिसूचित की जाती है। यदि कोई सदस्य समिति की लगातार दो या अधिक बैठकों से सभापति की अनुज्ञा के बिना अनुपस्थित रहता है, तो ऐसे सदस्य को समिति से हटाने के लिये सभा में प्रस्ताव किया जा सकता है।[87] जिन समितियों के सदस्यों को अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किया जाता है, उन सदस्यों को अध्यक्ष द्वारा हटाया जा सकता है।[88] सभा द्वारा ऐसा प्रस्ताव पारित किये जाने पर, या अध्यक्ष द्वारा आदेश दिये जाने पर, यथास्थिति, सम्बद्ध सदस्य उस समिति का सदस्य नहीं रहता। जहां कोई सदस्य कोई पद धारण करने के कारण किसी समिति का सदस्य हो, तो जब वह उस पद को छोड़ता है, तो वह समिति का सदस्य नहीं रह जाता।[89] तथापि, सदस्य उस समिति की सदस्यता से तब तक त्यागपत्र नहीं

---

84. उदाहरण के लिये, त्यागपत्र उस दशा में प्रभावहीन हो जाएगा यदि वह अध्यक्ष को सम्बोधित न किया गया हो, या उसमें कोई तिथि निर्दिष्ट न की गयी हो या उस पर सदस्य ने हस्ताक्षर न किए हों या उसमें कोई शर्त लगायी गयी हो आदि।

85. श्री आर.डी. भतूलारे, जो कि विशेषाधिकार समिति (1972-73) के सभापति थे, राज्यपाल नियुक्त होने पर लोक सभा से उनकी सदस्यता समाप्त हो गई। परिणामस्वरूप, वह विशेषाधिकार समिति के सदस्य और सभापति नहीं रहे। समितियों में नियुक्त राज्य सभा के सदस्यों की सदस्यता राज्य सभा से सेवानिवृत्त होने पर समाप्त हो जाती है।

86. नियम 306, 309(1), 311(1), 312क(1), 318(1), 324(1) और 331ख(1) ।

87. नियम 260 ।

88. *पूर्वोक्त* ।

89. यह नियम कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति और सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के संबंध में अध्यक्ष और सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के संबंध में उपाध्यक्ष, लोक सभा की स्थायी संसदीय समितियों के सभापतियों की तालिका के सदस्यों और सभा में मान्यता प्राप्त दलों और ग्रुपों के नेताओं पर लागू होता है।

दे सकता है, जब तक वह उस पद को धारण करता है।[90]

अन्य निकायों की सदस्यता से त्यागपत्र

जब कोई लोक सभा सदस्य, जो किसी सरकारी समिति, सरकारी निकाय, बोर्ड, आदि में संसद का प्रतिनिधित्व कर रहा हो, उस निकाय की सदस्यता से अध्यक्ष को सम्बोधित करते हुए त्यागपत्र देना चाहे, तो उसे सलाह दी जाती है कि वह अपना त्यागपत्र उस समिति, बोर्ड निकाय आदि के चेयरमैन/सक्षम प्राधिकारी को प्रेषित करे। अगर कोई सदस्य अपने पद के कारण किसी सरकारी समिति का सदस्य होता है, तो अपने पदत्याग के साथ ही वह समिति का सदस्य नहीं रह जाता है।[91]

समितियों की शक्तियां

लोक सभा की समितियों की शक्तिया[92] वही हैं जो संविधान,[93] नियमों[94] और उनके अन्तर्गत अध्यक्ष[95] द्वारा समय-समय पर जारी किये गये निदेशों में उल्लिखित हैं। कुछ समितियों से संबंधित नियमों में उन्हें विशिष्ट शक्तियां देने की बजाय यह उपबन्ध है कि संसदीय समितियों पर लागू होने वाले सामान्य नियम उन पर भी ऐसे अनुकूलनों सहित लागू

---

90. अप्रैल, 1983 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने, जो भारतीय जनता पार्टी के नेता होने के कारण सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के सदस्य थे, सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति से त्यागपत्र देने की अनुमति मांगी। उन्हें सूचित किया गया था कि सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति की सदस्यता पदेन है, इसलिए वह सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के सदस्य तब तक बने रहेंगें, जब तक वह लोक सभा में भारतीय जनता पार्टी के नेता का पद धारण करते हैं। वर्ष 1988 में, लोक सभा में तेलुगु देशम ग्रुप के नेता श्री सी. माधव रेड्डी ने सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति (1987-88) से त्यागपत्र देना चाहा। उन्हें सूचित किया गया कि जब तक वह लोक सभा में तेलुगु देशम ग्रुप के नेता रहेंगे, तब तक सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति में उनके दल से किसी अन्य सदस्य को मनोनीत करना सम्भव नहीं है।

91. यह नियम कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति और सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के संबंध में अध्यक्ष और सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के संबंध में उपाध्यक्ष, लोक सभा की स्थायी संसदीय समितियों के सभापतियों की तालिका के सदस्यों और सभा में मान्यता प्राप्त दलों और ग्रुपों के नेताओं और विभिन्न सरकारी निकायों में अपनी सेवाएं प्रदान करने हेतु निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्यों पर लागू होता है।

92. समिति के सभापति की नियुक्ति, कर्त्तव्यों तथा शक्तियों के लिए *देखिए* अध्याय 8-संसद के कार्यनिर्वाहक।

93. अनुच्छेद 105 (3)।

94. नियम 263(1), 269(2), और (3), 270, 271, 272, 273, 275 (1), 276, 278, 281, 282 और 302 ।

95. निदेश 57 (1), 98(2), 99 (1), 100, 101 (एक) और (चार) और 101 क (एक) और (तीन)।

होंगे, जो अध्यक्ष आवश्यक या सुविधाजनक समझे[96] वे चाहे रूपभेदों के माध्यम से हों, परिवर्धन के माध्यम से हों या उनमें से कुछ उपबन्धों के लुप्त होने के कारण हों।

संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के उपबंधों के अन्तर्गत संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति को अपनी प्रक्रिया का विनियमन करने की शक्ति[97] प्राप्त है। अधिनियम के अतिरिक्त, इस संयुक्त समिति को उक्त अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों के अनुसार एक या अधिक उप-समितियां नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है।[98] विधेयक सम्बन्धी संयुक्त समिति के मामले में, सदन में विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव किया जाता है, इसलिए संयुक्त समिति को विशिष्ट रूप से कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती। परन्तु उसमें यह व्यवस्था है कि संसदीय समिति पर लागू होने वाले लोक सभा के प्रक्रिया नियमों के सामान्य उपबन्ध ऐसे परिवर्तनों तथा रूपभेदों के साथ लागू होंगे, जो अध्यक्ष करे।[99]' कभी-कभी सदन में स्वीकृत प्रस्ताव के आधार पर, सदन द्वारा नियुक्त तदर्थ समितियों के मामले में ऐसी समिति की नियुक्ति के प्रस्ताव में विशिष्ट रूप से समिति को उनमें से कुछ शक्तियां दी जाती हैं, जो कि सामान्यत: लोक सभा की अन्य समितियों को प्राप्त हैं।[100]

जो शक्तियां सामान्य रूप से लोक सभा की सभी समितियों को प्राप्त हैं, उनका वर्णन संक्षेप में निम्नलिखित पैराओं में किया गया है:

उप-समितियां नियुक्त करने की शक्ति

कोई समिति एक या अधिक उप-समितियां नियुक्त कर सकती है और उन में से प्रत्येक उप-समिति को ऐसे विषयों की जांच करने के लिये, जिनका विस्तृत अध्ययन या जांच आवश्यक है, पूरी समिति की शक्तियां प्राप्त होती हैं। इस शक्ति के अनुसार, कई स्थायी समितियों और विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों ने विशेष विषयों का विस्तृत

---

96. सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के नियमों का नियम 3; आवास समिति के नियमों का नियम 9; और ग्रंथालय समिति के नियमों का नियम 6 ।

97. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9 (2) ।

98. संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के प्रक्रिया नियमों का नियम 9(1) ।

99. प्रस्ताव के उदाहरण के लिये, *देखिए लो.स.वा.वि.,* (II), 19.9.1963, पृ. 3486 ।

यदि किसी संयुक्त समिति के गठन का प्रस्ताव पहले राज्य सभा में लाया जाए तो उस प्रस्ताव में यह उपबंध किया जाता है कि ऐसी समिति पर वही नियम लागू होंगे जो उस सदन की संसदीय समितियों पर लागू होते हैं।

100. उदाहरण के लिए, *देखिए* एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (मुद्गल मामला, 1951) की नियुक्ति के लिये प्रस्ताव-*पी. डिबेट्स* (II), 8.6.1951, का. 10457-65 और साथ ही *देखिए* बोफोर्स सौदे की जांच करने संबंधी संयुक्त समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव-*लो.स.वा.वि.,* 6.8.1987, पृ. 307-09 ।

अध्ययन करने या किसी विधेयक के विशेष खण्डों का मसौदा फिर से तैयार करने में सहायता देने के लिए समय-समय पर उप-समितियों की नियुक्ति की है।[101] कुछ समितियों में स्थायी उप-समितियां होती हैं, यथा (i) सभा में चर्चा के लिए अनियत दिन वाले प्रस्तावों की गृहीत सूचनाओं को चुनने के लिये कार्य मंत्रणा समिति की उप-समिति[102], और (ii) आवास समिति की आवास संबंधी उप-समिति[103] इसी प्रकार, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के गठन से पूर्व प्राक्कलन समिति प्रत्येक वर्ष अपने गठन के तुरंत बाद सरकारी उपक्रमों संबंधी स्थायी उप-समिति[104] नियुक्त किया करती थी। प्राक्कलन समिति जब भी रक्षा मंत्रालय[105] के प्राक्कलनों की जांच करने का निर्णय करती है तो वह उस मंत्रालय के प्राक्कलनों की जांच के लिए एक उप-समिति नियुक्त करती है और समिति का सभापति स्वयं उप-समिति का सभापति होता है।

यदि उपाध्यक्ष किसी उप-समिति के सदस्य हों तो उसे उप-समिति का पदेन सभापति नियुक्त किया जाता है।

साक्ष्य लेने या दस्तावेज मंगाने की शक्ति

कोई समिति किसी ऐसे विषय के संबंध में जिस पर वह विचार, जांच या संवीक्षा कर रही हो, मौखिक और/या लिखित साक्ष्य ले सकती है अथवा उसके संबंध में दस्तावेज मंगा सकती है।[106]

---

101. उदाहरण के लिए कम्पनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति, स्त्री और बालक संस्था अनुज्ञापन विधेयक, 1953 संबंधी प्रवर समिति, लोक प्रतिनिधित्व (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1955 संबंधी प्रवर समिति, सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के कार्यकरण के प्रश्न की जांच संबंधी दोनों सभाओं की संयुक्त समिति और रेल विधेयक, 1986 संबंधी संयुक्त समिति ने उप समितियों की नियुक्ति की।
102. 'अनियत दिन वाले प्रस्तावों' की जांच करने के लिए कार्य मंत्रणा समिति की उप-समिति की नियुक्ति करने की प्रथा वर्ष 1971 से समाप्त हो गई है। *देखिए* आगे पृ. 783 ।
103. आवास समिति के नियमों का नियम 4 (1) ।
104. सरकारी उपक्रमों संबंधी एक अलग समिति के गठन के बाद प्राक्कलन समिति (1964-65) ने उन कानूनी तथा अन्य सरकारी निकायों के काम की जांच करने के लिये, जो सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के कार्यक्षेत्र में नहीं आते, एक उप-समिति की नियुक्ति की।
105. निदेश 101 (एक) प्राक्कलन समिति ने 1956-57 और 1957-58 में रक्षा संबंधी उप-समिति की नियुक्ति की। इस उप-समिति के काम के ब्यौरे के लिये *देखिए,* इसी अध्याय में 'प्राक्कलन समिति' शीर्षक के अन्तर्गत।
106. नियम 269-अधिक जानकारी के लिये *देखिए* इसी अध्याय में आगे 'साक्ष्य' शीर्षक के अन्तर्गत।

व्यक्तियों को बुलाने और पत्रों तथा रिकार्ड मंगाने की शक्ति[107]

(*देखिए* इसी अध्याय में आगे 'साक्ष्य' शीर्षक के अंतर्गत)

विशेष प्रतिवेदन देने की शक्ति

समिति को यह शक्ति प्राप्त है कि यदि वह ठीक समझे, तो किसी ऐसे विषय पर, जो उसके कार्य के दौरान उत्पन्न हो या प्रकाश में आये और जिसे समिति अध्यक्ष या सभा, यथास्थिति, के ध्यान में लाना आवश्यक समझे, विशेष प्रतिवेदन दे सकती है, चाहे ऐसा विषय समिति के निदेश पदों से प्रत्यक्षतया संबंधित न हो अथवा उसके अन्तर्गत नहीं आता हो या उनसे आनुषंगिक नहीं हो।[108]

प्रक्रिया संबंधी विषय पर संकल्प पारित करने की शक्ति

जब किसी मामले में समिति के कार्य को चलाने के लिये विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता हो, तो समिति तत्संबंधी प्रक्रिया के विषयों पर संकल्प पारित करके उन्हें अध्यक्ष के पास विचार के लिये भेज सकती है और अध्यक्ष प्रक्रिया में ऐसा परिवर्तन कर सकता है, जैसा वह आवश्यक समझे।[109]

विस्तृत नियम बनाने की शक्ति

नियमों तथा अध्यक्ष के निदेशों में दिये गये उपबन्धों के अतिरिक्त समिति, अध्यक्ष के अनुमोदन से अपने आन्तरिक कार्यचालन के लिये विस्तृत प्रक्रिया संबंधी नियम बना सकती है।[110]

---

107. नियम 270 और निदेश 99 (2) और 101 क (तीन)।

108. नियम 276।

एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (मुद्गल का मामला, 1951) ने दो विशेष प्रतिवेदन अध्यक्ष को सौंपे थे।

लोक लेखा समिति ने विभिन्न उप कर निधियों के कार्यकरण के संबंध में दो विशेष प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत किए-19वां और 20वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-दूसरी लोक सभा)।

109. नियम 281।

एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (मुद्गल का मामला, 1951) ने अपनी बाद की बैठकों में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया का फैसला किया। अध्यक्ष ने उस प्रक्रिया का अनुमोदन किया तथा समिति को और निदेश भी दिये।

110. नियम 282।

इस शक्ति के अनुसार, लोक सभा की अधिकांश स्थायी समितियों ने अपने आन्तरिक प्रक्रिया का विनियमन करने के लिये 'आन्तरिक नियम' बनाये हैं।

समितियों की बैठकें

समितियों की बैठकें सामान्यत: लोक सभा के सत्रों के दौरान होती हैं, परन्तु उन्हें अन्यथा शक्ति प्राप्त है कि वे अन्तर-सत्रावधि में भी बैठकें कर सकती हैं। सभा के सत्रावसान के कारण किसी समिति के सामने कोई कार्य व्यपगत नहीं हो जाता और ऐसे सत्रावसान के बावजूद समिति अपना काम जारी रखती है।[111] जब सभा का सत्र चल रहा हो, तो समिति की बैठक सामान्यत: सभा की बैठक प्रारम्भ होने के बाद 15.00 बजे से पहले नहीं होती।[112] यदि समिति की बैठक उस समय हो रही हो, जिस समय सभा की बैठक भी हो रही हो, तो समिति के सभापति के लिये यह आवश्यक है कि सदन में मत विभाजन होने पर समिति की कार्यवाही को उतने समय के लिये स्थगित कर दे, जितना समय उस के विचार में, सदस्यों को मत विभाजन में भाग लेने के लिये लगे।[113]

समिति की बैठक की तिथि तथा समय समिति के सभापति द्वारा नियत किया जाता है।[114] जब सभापति उस समय उपस्थित न हो, तो महासचिव किसी बैठक की तिथि तथा समय निश्चित कर सकता है, परन्तु किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में, वह विधेयक के प्रभारी मंत्री से परामर्श करके ऐसा करता है।[115]

---

111. नियम 284 ।

112. निदेश 51 । इस निदेश का उद्देश्य सभा में गणपूर्ति बनाये रखना और ऐसी व्यवस्था करना है जिससे सदस्य प्रश्न काल तथा सभा की अन्य कार्यवाही में भाग ले सकें-*एल.एस. डिबेट्स* (I), 6.4.1956, का. 1861 ।

    अध्यक्ष ने आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर इस निदेश की शर्त में ढील दी है।

    देखिए: कार्यवाही सारांश (विशेषाधिकार समिति) 17.12.1958 और 5.3.1959; कार्यवाही सारांश (याचिका समिति) 9.9.1957 और 15.12.1958; कार्यवाही सारांश [लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1958 संबंधी प्रवर समिति] 12.12.1958; कार्यवाही सारांश [लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक , 1961 संबंधी प्रवर समिति] 17.8.1961 और 18.8.1961; कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 3.12.1959, 16.12.1959, 17.12.1959, 18.12.1959, 21.12.1959 और 22.12.1959; कार्यवाही सारांश (कार्य मंत्रणा समिति) 10.2.1958; कार्यवाही सारांश (बोफोर्स सौदे संबंधी सयुंक्त समिति) 21.4.1988 ।

113. नियम 265 ।

114. नियम 264 ।

115. *पूर्वोक्त,* परन्तुक ।

समितियों की बैठकों को रद्द किया जाना

समिति की किसी बैठक को केवल सभापति का पूर्व निर्धारित बैठक से अनुपस्थित होने अथवा बैठक के लिए तत्काल उपलब्ध न होने के कारण रद्द अथवा पूर्वित अथवा स्थगित नहीं किया जा सकता।[116]

बैठकों का स्थान

संसदीय समिति या उप-समिति की औपचारिक या अनौपचारिक बैठकें, अनिवार्य रूप से संसद भवन परिसर में होती हैं।[117] यदि किसी कारण से समिति या उप-समिति की बैठक संसद भवन के बाहर करना आवश्यक हो जाए, तो यह मामला अध्यक्ष को भेज दिया जाता है और उसका निर्णय अंतिम होता है।[118]

---

116. *लो.स.* (भाग II), दिनांक 25.6.2010, पैरा 1522 द्वारा नया निर्देश 51'क'।

117. नियम 267 और निदेश 50(1) ।

118. *पूर्वोक्त,*

उदाहरण के लिए, निम्नलिखित समितियों ने अध्यक्ष के अनुमोदन से संसद भवन के बाहर बैठकें की हैं:

जून, 1955 में प्राक्कलन समिति की बैठक नैनीताल में हुई।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विधेयक संबंधी संयुक्त समिति की बैठक जुलाई, 1955 में बम्बई विधान सभा भवन, पूना में हुई।

जून, 1956 और जून, 1958 में लोक लेखा समिति की बैठकें शिमला में हुई। समिति की बैठकें 27 अक्तूबर, 1965 से 1 नवम्बर, 1965 तथा फिर सितम्बर, 1966 में त्रिवेन्द्रम में हुई।

सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति की बैठक फरवरी, 1966 में त्रिवेन्द्रम में हुई।

एक गैर-सरकारी सदस्य,श्री नाथ पाई द्वारा प्रस्तुत संविधान (संशोधन) विधेयक, 1967 संबंधी संयुक्त समिति की कुछ बैठकें जुलाई, 1968 में मैसूर विधान सभा, बंगलौर के कान्फ्रेंस-हाल में हुईं। काराधान विधि (संशोधन) विधेयक, 1969 संबंधी प्रवर समिति की बैठकें 8 से 10 जनवरी, 1970 तक काउन्सिल चैम्बर, कलकत्ता में, 15 से 17 जनवरी, 1970 तक काउंसिल हाल, बम्बई में; 5 और 6 फरवरी, 1970 को सेन्ट्रल हाल, लेजिसलेटर्स होस्टल, मद्रास में; 7 फरवरी, 1970 को कान्फ्रेंस हाल, विधानसभा, बंगलौर में; 19 और 21 जून को विधान सभा भवन, श्रीनगर में; 20 जून को पहलगाम क्लब, पहलगाम में; 22 जून 1970 को गुलमर्ग क्लब, गुलमर्ग में हुई।

भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1967 संबंधी प्रवर समिति की बैठक काउंसिल हाल, बम्बई, में 16 से 18 सितम्बर, 1968 तक हुई। जांच आयोग (संशोधन) विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति की बैठक 21 से 23 अक्तूबर, 1970 तक विधान सभा भवन, श्रीनगर में हुई; सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति की

वर्तमान प्रथा यह है कि संसदीय समितियों की बैठकें संसद भवन के बाहर करने की अनुमति नहीं दी जाती है।[119]

संसदीय समितियां अध्ययन दौरे के दौरान दौरा स्थानों पर अनौपचारिक बैठकें कर सकती हैं, परन्तु ऐसी बैठकों में कोई निर्णय नहीं लिए जाते और न ही कोई साक्ष्य लिया जाता है।[120] सामान्यत: जब सदन का सत्र चल रहा हो उस समय समितियों द्वारा कोई अध्ययन दौरे नहीं किए जाते।

कभी-कभी समिति के निदेश पदों में विशिष्ट रूप से समिति की बैठकों के स्थान का उल्लेख किया जा सकता है।[121]

गणपूर्ति

समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति समिति की सदस्य संख्या का लगभग एक-तिहाई होती है।[122] समिति के सदस्यों की एक-तिहाई संख्या की गणना समिति में रिक्तियों पर विचार किए बिना समिति के सदस्यों की कुल संख्या के सन्दर्भ में की जानी चाहिए और यदि

उप-समिति की बैठकें 16 से 21 सितम्बर, 1974 तक मद्रास-बंगलौर में; 8 से 12 अक्तूबर, 1974 तक, अहमदाबाद-बम्बई में; 30 दिसम्बर, 1974 से 3 जनवरी, 1975 तक कलकत्ता-भुवनेश्वर में; और 9 जनवरी से 13 जनवरी, 1975 तक गुवाहाटी-शिलांग में; 17 और 18 जनवरी, 1975 को लखनऊ में; 29 और 30 मई, 1975 को चंडीगढ़ में हुई। खादी और ग्रामोद्योग आयोग (संशोधन) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति की बैठकें 25 अक्तूबर, 1978 को अहमदाबाद में (फिजीकल रिसर्च लेबोरेटरी के कान्फ्रेंस रूम में) तथा 18 जनवरी, 1979 को पटना में श्री जयप्रकाश नारायण के निवास पर उनका साक्ष्य लेने के लिए हुई। रेल विधेयक, 1986 संबंधी संयुक्त समिति की बैठकें 24 से 27 जून, 1987 तक बम्बई में, 11 और 12 सितम्बर, 1987 तक कलकत्ता में, 22 और 23 जून, 1988 को बंगलौर में तथा 24 और 25 जून, 1988 को हैदराबाद में हुई।

119. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 18.8.1968, पैरा 3 ।

120. निदेश 50 (2) ।

121. एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (मुद्गल मामला, 1951) के निदेश पदों मे यह कहा गया कि समिति को बम्बई और/या भारत के किसी अन्य स्थान में, जैसा कि अध्यक्ष निर्णय करे, मौखिक या दस्तावेज संबंधी साक्ष्य सुनने और/या प्राप्त करने की शक्ति होगी-*पी. डिबेट्स* (II), 8.6.1951, कॉ. 10464-65 । बोफोर्स सौदे की जांच संबंधी संयुक्त समिति (1987) के निदेश-पदों में अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान था कि "यदि समिति जांच से संबंधित विशिष्ट प्रयोजनों के लिए विदेश जाने हेतु किसी उप-समिति को नामनिर्देशित करना चाहती है, तो उस मामले को अध्यक्ष के पास भेजा जाएगा, जो ऐसे निर्णय लेगा और ऐसे निदेश देगा, जिन्हें वह उचित समझता हो, परन्तु यह कि ऐसी उप-समिति विदेश में बैठकें आयोजित नहीं कर सकती, साक्ष्य नहीं ले सकती अथवा निर्णय नहीं ले सकती।" तथापि, समिति द्वारा ऐसी कोई उप-समिति नामनिर्देशित नहीं की गई-*लो.स.वा.वि.,* 6.8.1987, पृ. 307-09 ।

122. नियम 259 (1) ।

कोई गुणांक हो तो उसे गणना में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।[123] उदाहरण के लिए, यदि किसी विभाग से संबद्ध स्थायी समिति में 31 सदस्य हैं तो समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति हेतु 10 सदस्यों की संख्या होनी चाहिए।[124] जब किसी समिति की नियुक्ति अथवा उसका चयन सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव अथवा संकल्प द्वारा होता है, तो समिति की बैठक के लिए आवश्यक गणपूर्ति का उल्लेख सामान्यतः सभा में प्रस्तुत प्रस्ताव अथवा संकल्प में होता है।[125] अन्यथा गणपूर्ति के संबंध में सामान्य नियम, अर्थात् समिति की कुल सदस्य संख्या का एक-तिहाई, लागू[126] होता है। इस संबंध में किसी विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपने हेतु सभा में प्रस्तुत प्रस्ताव में समिति की गणपूर्ति का उल्लेख अनिवार्य रूप से होता है और सामान्यतः यह संख्या समिति की कुल सदस्य संख्या का एक-तिहाई होती है।[127] जब कोई संसदीय समिति संसद के किसी अधिनियम के अंतर्गत गठित की जाती है, तो समिति की गणपूर्ति की व्यवस्था या तो अधिनियम में की जाती है या अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में बनाए गए नियमों में की जाती है।[128]

---

123. सूचना प्रोद्यौगिकी संबंधी समिति द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में महासचिव के दिनांक 12 अप्रैल 2005 के आदेश के माध्यम से यह निर्णय किया गया कि नियम 259 के अंतर्गत गणपूर्ति की गणना करते समय यदि कोई गुणांक आए तो उस पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए।

124. नवम्बर 1957 में प्राक्कलन समिति द्वारा एक परिपाटी शुरू की गई जिसके अनुसार समिति ने अपनी उन बैठकों में गणपूर्ति पर जोर नहीं दिया जिनमें सरकारी साक्षियों का साक्ष्य इस आधार पर लिया गया कि उन बैठकों में कोई निर्णय नहीं किया जाएगा। बाद के वर्षों में इस परिपाटी का अनुसरण अधिकतर समितियों और विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों ने भी किया तथापि बाद में यह महसूस किया गया कि यह परिपाटी नियम 259 के उपबंधों के विपरीत है क्योंकि नियम किसी समिति अथवा उसके सभापति को किसी भी बैठक में किसी भी आधार पर गणपूर्ति के लिए आवश्यक संख्या को कम करने की अनुमति नहीं देता। अतः महासचिव के दिनांक 9 अप्रैल 2008 के आदेश के द्वारा यह निर्णय किया गया कि संसदीय समितियों की बैठकों में गणपूर्ति से संबंधित नियम 259 के उपबंधों का पालन कड़ाई से निपटाये जाने वाले कार्यों के स्वरूप पर विचार किए बिना किया जाना चाहिए।

125. *पी.डिबेट्स* (II), 8.6.1951, कॉ. 10457-65; *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1959, पृ. 87-88; 6.8.1987, पृ. 312 ।

126. नियम 259 (1); 1954 और 1960 की रेल अभिसमय समितियां-*एच.पी. डिबेट्स,* 12.5.1954, कॉ. 7171-72; *लो.स.वा.वि.,* 22.4.1960, पृ. 6102-11 ।

127. *लो.स.वा.वि.,* 29.4.1959 और 30.4.1959, पृ. 6695 और पृ. 6797; 3.12.1959, कॉ. 3232-33।

128. *देखिए* संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 की धारा 9 (2) के अंतर्गत बनाए गए संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के प्रक्रिया नियमों का नियम 6 (1)।

विशेष परिस्थितियों में, किसी समिति की बैठक के लिए आवश्यक गणपूर्ति, सदन या अध्यक्ष के आदेशानुसार, समिति के सदस्यों की कुल संख्या के एक-तिहाई से भी कम की जा सकती है।[129]

सामान्य प्रथा यह है कि समिति का सभापति समिति की बैठक आरम्भ होने अथवा मत लिए जाने के समय इस बात का समाधान कर लेता है कि बैठक में गणपूर्ति है। किसी अन्य समय बैठक में उपस्थित कोई भी सदस्य सभापति का ध्यान इस बात की ओर दिला सकता है कि बैठक में गणपूर्ति नहीं है। यदि ऐसी किसी बैठक में किसी समय गणपूर्ति न हो, तो समिति के सभापति के लिए यह आवश्यक है कि वह गणपूर्ति होने तक समिति की बैठक को निलम्बित कर दे अथवा बैठक को किसी अगली तिथि तक के लिए स्थगित कर दे।[130] यदि किसी समिति की बैठक गणपूर्ति के अभाव में बैठक के लिए निर्धारित दो तिथियों को लगातार स्थगित करनी पड़ती है, तो समिति के सभापति के लिए यह आवश्यक है कि वह इस बात की सूचना सदन[131] अथवा अध्यक्ष, जिसने भी उस समिति को नियुक्त किया हो, को दे।[132] सदन अथवा अध्यक्ष जैसी भी स्थिति हो, प्रत्येक मामले के गुण-दोषों पर विचार करके कार्यवाही निर्धारण कर सकते हैं।[133]

अजनबियों का प्रवेश

संसदीय समितियों की बैठकें गोपनीय होती हैं और उनमें अजनबियों का प्रवेश निषिद्ध होता है।[134] किसी भी बाहरी व्यक्ति अथवा प्रेस प्रतिनिधि को समिति की बैठकों में प्रवेश की अनुमति

---

129. संसदीय, विधिक और प्रशासनिक शब्दों के हिन्दी पर्याय निर्धारित करने वाली 33-सदस्यीय समिति (1956) की गणपूर्ति अध्यक्ष अय्यंगर द्वारा विशेष परिस्थितियों और मामलों की अनिवार्यता को देखते हुए ग्यारह से घटाकर पांच कर दी गयी थी।

130. नियम 259 (2), संसद सदस्यों के वेतन और भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के प्रक्रिया नियमों का नियम 6 (2) ।

131. नियम 259 (3) ।

132. नियम 259 (3) परन्तुक तथा संसद सदस्यों के वेतन और भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के प्रक्रिया संबंधी नियमों का नियम 6 (3) ।

133. नोटरी विधेयक, 1951 संबंधी प्रवर समिति के सभापति ने सदन को बताया कि समिति को लगातार दो दिन तक गणपूर्ति के अभाव में अपनी बैठक स्थगित करनी पड़ी, जिसके परिणामस्वरूप समिति के कार्य में कोई भी प्रगति नहीं हुई। सदन ने समिति के प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु निर्धारित समय को बढ़ा दिया-*पी. डिबेट्स* (II), 28.9.1951, कॉ. 3617; और 1.10.1951, कॉ. 3914-15 ।

    वित्त विधेयक, 1955 पर एक याचिका पर विचार करने हेतु गणपूर्ति के अभाव में 15 और 16 अप्रैल, 1955 को याचिका समिति की बैठकें नहीं हो पाईं। जब अध्यक्ष को इस बात से अवगत कराया गया, तो उन्होंने यह आदेश दिया कि सभी सदस्यों को याचिका सविस्तार भेज दी जाएं क्योंकि उस समय विधेयक सदन के समक्ष लंबित था।

134. नियम 266 ।

नहीं होती है। समिति अपने विचार-विमर्श में किसी बाहरी व्यक्ति अथवा किसी संस्था को औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से सम्मिलित नहीं करती और किसी विषय पर विचार-विमर्श के समय समिति के सदस्यों तथा सचिवालय के अधिकारियों के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों का बैठक से बाहर जाना आवश्यक होता है।[135] तथापि, समिति अथवा समिति के सभापति की पूर्वानुमति से कुछ व्यक्ति समिति की साक्ष्य संबंधी बैठक में उपस्थित रह सकते हैं, परन्तु उन्हें किसी भी रूप में समिति की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति नहीं होती है और न ही वे समिति के सदस्यों के साथ बैठ सकते हैं।[136]

समिति की बैठकों में गैर-सदस्यों का प्रवेश

किसी संसदीय समिति की बैठक में गैर-सदस्यों के प्रवेश अथवा समिति की कार्यवाही में भाग लेने के संबंध में प्रत्येक समिति में भिन्न-भिन्न प्रथा है। कुछ समितियों[137] में सभापति के आदेश से ऐसे सदस्य को विशेष आमंत्रित व्यक्ति के रूप में बैठकों में बुलाया जा सकता है, परन्तु उसे मताधिकार नहीं होता है। विशेषाधिकार समिति में जब विशेषाधिकार हनन अथवा सभा की अवमानना संबंधी विशिष्ट प्रश्न पर विचार किया जाना हो, तो समिति के सदस्यों के अतिरिक्त किसी भी सदस्य को समिति के विचार-विमर्श में भाग नहीं लेने दिया

---

135. नियम 268 । किसी विधेयक संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समिति के मामले में विधेयक से संबद्ध सरकारी प्रारूपकार को समिति की बैठक में उपस्थित रहने की अनुमति दी होती है।

136. राज्य सभा या किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य अथवा किसी राज्य विधानमंडल का कोई अधिकारी सभापति की अनुमति से प्राक्कलन समिति की साक्ष्य संबंधी बैठकों में उपस्थित रह सकता है, परन्तु वह किसी भी रूप में समिति की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता और न वह समिति के सदस्यों के साथ बैठ सकता है।

    4 दिसम्बर, 1956 को, संसदीय कार्य मंत्री की अनुपस्थिति में जब संसदीय कार्य विभाग का एक अधिकारी कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में भाग लेने आया तो समिति के सभापति ने समिति की बैठक में उसकी उपस्थिति पर आपत्ति प्रकट की और उस अधिकारी को समिति की बैठक में उपस्थित रहने की अनुमति नहीं दी गई।

137. ये समितियां इस प्रकार हैं:

    कार्य मंत्रणा समिति, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, याचिका समिति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति, आवास समिति और नियम समिति—*देखिए,* इन समितियों के आंतरिक नियम, कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 29.4.1958 ।

    विरोधी दल के, कार्य-मंत्रणा समिति के सदस्य के लिखित अनुरोध पर अध्यक्ष ने उसी ग्रुप के किसी अन्य सदस्य को कभी-कभी समिति की बैठकों में उपस्थित रहने की अनुमति दी है—*देखिए* कार्यवाही सारांश (कार्य मंत्रणा समिति), 23.5.1957, 15.7.1957, 11.11.1957, 15.11.1957, 10.2.1958, 14.4.1958 और 22.4.1960 ।

जाता।[138] प्राक्कलन समिति के संबंध में गैर-सदस्य सभापति की अनुमति से समिति की साक्ष्य संबंधी बैठक में उपस्थित रह सकता है, परन्तु समिति की विचार-विमर्श संबंधी बैठक में उपस्थित नहीं रह सकता। ऐसा सदस्य समिति की कार्यवाही में किसी रूप में भी भाग नहीं ले सकता और न ही समिति के सदस्यों के साथ बैठ सकता है।[139] विधेयक संबंधी किसी प्रवर समिति के मामले में, गैर-सदस्य समिति के विचार-विमर्श के दौरान उपस्थित रह सकता है, परन्तु न तो वह समिति को सम्बोधित कर सकता है और न ही वह समिति के सदस्यों के साथ बैठ सकता है।[140] किसी विधेयक संबंधी संयुक्त समिति के मामले में यदि यह महसूस किया जाए कि किसी सदस्य-विशेष को समिति की बैठक में सम्मिलित करने से समिति के विचार-विमर्श में सहायता मिलेगी, तो उस सदस्य को विशेषज्ञ साक्षी के रूप में आमंत्रित किया जा सकता है, परन्तु उसे अन्यथा समिति के विचार-विमर्श में सम्मिलित नहीं किया जा सकता।[141] एक मंत्री, जो विधेयक संबंधी किसी प्रवर या संयुक्त समिति का सदस्य नहीं है, समिति के सभापति की अनुमति से समिति को सम्बोधित कर सकता है,[142] परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं होता है।

---

138. 18 फरवरी, 1959 को, जब विशेषाधिकार समिति (दूसरी लोक सभा) विशेषाधिकार हनन के एक प्रश्न (*मथाई मामला,* 1959) की जाँच कर रही थी, तब समिति के एक सदस्य ने यह सुझाव दिया था कि राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति, जो उस समय उसी प्रश्न पर विचार कर रही थी, के सदस्यों अथवा सभापति को समिति के विचार-विमर्श में सम्मिलित किया जाए। समिति के सभापति ने यह विनिर्णय दिया था कि नियम 266 और 268 के अनुसरण में किसी बाहरी व्यक्ति अथवा संस्था को औपचारिक या अनौपचारिक रूप से समिति के विचार-विमर्श में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

139. आंतरिक नियमों का नियम 23 (प्राक्कलन समिति) ।

140. नियम 299 ।

141. परिवहन और संचार मंत्री ने जब वाणिज्य पोत परिवहन विधेयक, 1958 संबंधी संयुक्त समिति में यह सुझाव दिया कि राज्य सभा के एक सदस्य को जिसका नाम समिति की सदस्यता से निकाल दिया गया था—को समिति की बैठक में आमंत्रित किया जाए ताकि भारतीय पोत परिवहन के संबंध में उसके विशेष ज्ञान का लाभ उठाया जा सके, तो अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया था कि समिति उसे विशेषज्ञ साक्षी के रूप में बुला सकती है, परन्तु उसे अन्यथा अपने विचार-विमर्श में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

142. नियम 299, परन्तुक।

राजस्व और सिविल व्यय मंत्री ने जीवन बीमा निगम विधेयक, 1956 संबंधी प्रवर समिति को सभी बैठकों और उसकी कार्यवाही में भाग लिया था। उद्योग मंत्री ने 26 जुलाई, 1958 को संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक, 1957 संबंधी संयुक्त समिति को सम्बोधित किया था *देखिए,* कार्यवाही सारांश [संविधान (सातवां संशोधन) विधेयक, 1963 संबंधी संयुक्त समिति], 23.1.1964 । प्रधान मंत्री मोरारजी देसाई ने खादी और ग्रामोद्योग आयोग (संशोधन) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति की 27 सितम्बर, 1978 को हुई बैठक को सम्बोधित किया था। सूचना और प्रसारण मंत्री, पुरुषोत्तम कौशिक ने प्रसार भारती (भारतीय प्रसारण निगम) विधेयक, 1979 संबंधी संयुक्त समिति की 16 अगस्त, 1979 को हुई बैठक को

समितियों की कार्यवाही

समितियों में कार्यवाही संचालन मुख्य रूप से सदन की भांति ही होता है परन्तु यहां का वातावरण अधिक आत्मीय और अनौपचारिक होता है। समिति में विचार-विमर्श के दौरान विचाराधीन प्रश्न पर कोई भी सदस्य एक से अधिक बार बोल सकता है। जब सभापति इस बात से संतुष्ट हो जाए कि चर्चाधीन विषय पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है, तो वह समिति से इस सम्बन्ध में पूछता है और उसका निर्णय निश्चित रूप से जानना चाहता है। समिति की बैठक में सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाता है।[143] विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों को छोड़कर, सभी समितियों में प्रश्नों को औपचारिक रूप से समिति के मतदान हेतु नहीं रखा जाता है और, यथासंभव सर्वसम्मति से निर्णय लिये जाते हैं। बहुत ही कम मामलों में जब समिति में किसी विषय पर मतभेद होता है, उस स्थिति में, या तो दोनों मतों को समिति के प्रतिवेदन में सम्मिलित कर लिया जाता है या समिति के कार्यवाही सारांश में उस मतभेद का उल्लेख कर दिया जाता है। जिस प्रश्न पर समिति पहले ही निर्णय ले चुकी हो, उसे उसी बैठक या बाद की किसी बैठक में सभापति की अनुमति से पुनः उठाया जा सकता है।[144]

समिति की साक्ष्य सम्बन्धी कार्यवाही[145] अथवा समिति द्वारा चर्चा किए गए विषय के स्वरूप और महत्व को देखते हुए या अन्यथा आवश्यक समझे जाने पर उसका शब्दशः रिकार्ड रखा जाता है।[146] समिति की यह शब्दशः कार्यवाही केवल समिति के प्रयोग के लिए होती है और कार्यवाही के सभा पटल पर रखे जाने तक अध्यक्ष की अनुमति के बिना इसके किसी

सम्बोधित किया था। संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री, शीला दीक्षित ने लोक पाल विधेयक, 1985 संबंधी संयुक्त समिति की 4 मई, 1988 को हुई बैठक में भाग लिया था।

143. नियम 261 ।

144. निदेश 54 ।

उदाहरण के लिए *देखिए* कार्यवाही सारांश [सरकारी परिसर (बेदखली) संशोधन विधेयक, 1954 संबंधी प्रवर समिति] 30.4.1955 और 25 तथा 27.8.1955 ।

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के संबंध में किसी भी सत्र में 'ख' श्रेणी में रखे गये विधेयक के प्रस्तुतकर्ता सदस्य के आवेदन पर बाद के किसी सत्र में उसके पुनर्वर्गीकरण पर विचार किया जा सकता है—40 वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-पहली लोक सभा)।

145. नियम 273 (पाँच)।

146. उदाहरण के लिए, जब प्राक्कलन समिति अपने प्रारूप प्रतिवेदनों पर विचार करती है; जब गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति संविधान में संशोधन करने वाले विधेयकों की जांच करती है; और जब विशेषाधिकार समिति निर्णय लेती है। नियम समिति की कार्यवाही का शब्दशः रिकार्ड रखा जाता है, क्योंकि उससे नियमों की विवक्षा स्पष्ट होती हैं। बोफोर्स सौदे (1987) की जांच सम्बन्धी संयुक्त समिति की बैठकों की कार्यवाही का शब्दशः रिकार्ड किया गया था।

भी अंश को न तो किसी को प्रकट किया जा सकता है और न ही उसे समिति के सदस्य के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को संदर्भ हेतु दिखाया जा सकता है।[147]

समिति की कार्यवाही को गोपनीय माना जाता है और इसे सभा में प्रस्तुत किए जाने से पूर्व समिति के किसी भी सदस्य अथवा किसी भी अन्य व्यक्ति, जिसको समिति की कार्यवाही की जानकारी है, को समिति के प्रतिवेदन अथवा समिति द्वारा निकाले गए अन्तिम अथवा अनंतिम निष्कर्षो सहित कार्यवाही से संबंधित किसी भी जानकारी को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रेस अथवा किसी भी अन्य व्यक्ति को प्रकट करने की अनुमति नहीं है।[148]

तथापि, प्रतिभूति और बैंक संव्यवहार में हुई अनियमितताओं की जांच करने संबंधी संयुक्त समिति के मामले में समिति ने यह निर्णय लिया था कि व्यापक जनहित को ध्यान में रखते हुए समिति का सभापति समिति के विचार-विमर्श की जानकारी प्रेस को देगा। चूंकि सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव में यह प्रावधान किया गया था कि यदि आवश्यक हो, तो कुछ मामलों में समिति अध्यक्ष की सहमति से भिन्न प्रक्रिया अपना सकती है। अध्यक्ष ने इस संबंध में आवश्यक स्वीकृति प्रदान कर दी थी और सभापति ने समिति की प्रत्येक बैठक के अंत में समिति की कार्यवाही के बारे में प्रेस को संक्षिप्त जानकारी दी थी।

साक्ष्य

समिति अपने विचाराधीन, जांचाधीन अथवा अन्वेषणाधीन विषय के संबंध में मौखिक और/अथवा लिखित साक्ष्य ले सकती है और प्रत्येक समिति को साक्षियों को व्यक्तिगत रूप में बुलाने तथा पत्र और रिकार्ड मंगाने का अधिकार है।[149]

सामान्यत: मंत्रियों को समितियों के समक्ष साक्ष्य देने के लिए नहीं बुलाया जाता है। तथापि, प्रतिभूतियों और बैंक संव्यवहार में हुई अनियमितताओं की जांच करने संबंधी संयुक्त समिति ने मंत्रियों/पूर्व मंत्रियों से कुछ मुद्दों पर लिखित सूचना मांगने और यदि आवश्यक हुआ तो विचाराधीन विषय के व्यापक प्रभावों को देखते हुए साक्ष्य के लिए बुलाने का निर्णय लिया। अध्यक्ष ने आवश्यक स्वीकृति देते हुए बताया कि ऐसा मामले के असाधारण स्वरूप तथा समिति के गठन के समय और उसके बाद सभी दलों के नेताओं द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को ध्यान में रखते हुए किया जा रहा है। समिति ने लिखित में कुछ सूचना मांगी और वित्त मंत्री तथा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्री का साक्ष्य भी लिया।

---

147. सदस्यों द्वारा सभा में विशेष अनुरोध किए जाने पर अध्यक्ष के विवेक पर कार्यवाही का शब्दश: रिकार्ड उपलब्ध कराया जा सकता है–*एल.एस. डिबेट्स,* 12.8.1966 ।

148. निदेश 55(1), 65(1)।

149. नियम 270 ।

तथापि जहां किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण से देश की सुरक्षा अथवा हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हो, वहां सरकार उस दस्तावेज को समिति के समक्ष प्रस्तुत करने से इन्कार कर सकती है।[150]

---

150. पूर्वोक्त दूसरा परन्तुक।

एक सुस्थापित परिपाटी के अनुसार किसी संसदीय समिति को अपेक्षित गुप्त दस्तावेज मंत्रालय अथवा विभाग अथवा उपक्रम द्वारा उसे गोपनीय रूप से समिति के सभापति को उपलब्ध करा दिये जाते हैं; जब तक संबंधित मंत्री यह प्रमाणित न कर दे कि ऐसा दस्तावेज समिति को इस आधार पर उपलब्ध नहीं कराया जा सकता कि उसके सार्वजनिक करने से राष्ट्र की सुरक्षा अथवा हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। सभापति ऐसे किसी दस्तावेज को समिति के सदस्यों को उपलब्ध कराने से पहले मंत्रालय अथवा विभाग अथवा उपक्रम की इच्छाओं पर समुचित रूप से विचार करता है। मंत्रालय, आदि और सभापति के बीच मतभेद को बातचीत से दूर कर लिया जाता है और मतभेद के बातचीत से न सुलझने पर अन्त में उसे अध्यक्ष के पास भेज दिया जाता है। राष्ट्र की सुरक्षा अथवा हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के आधार पर दस्तावेजों को उपलब्ध न कराने सम्बन्धी तर्क स्वयं मंत्री द्वारा दिया जाना होता है। किसी सिविल सेवा के अधिकारी द्वारा अध्यक्ष अथवा किसी संसदीय समिति के सभापति के समक्ष ऐसा तर्क प्रस्तुत करना पर्याप्त अथवा उचित नहीं होगा।

(i) 13 जुलाई, 1956 को रक्षा मंत्री ने रक्षा मंत्रालय के प्राक्कलनों की जांच के संबंध में प्राक्कलन समिति के सभापति को कुछ रिपोर्टें दीं और उनसे अनुरोध किया कि उन्हें गुप्त दस्तावेज समझा जाये। उन रिपोर्टों को प्राक्कलन समिति की उप-समिति (रक्षा) के सदस्यों को परिचालित नहीं किया गया। तथापि, रिपोर्टों में अन्तर्विष्ट जानकारी का उपयोग जांच की कार्यविधि निर्धारित करने में किया गया।

(ii) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के वर्ष 1971-72 के राजस्व प्राप्तियां संबंधी प्रतिवेदन (खण्ड I) के उपयोगी ऊनी वस्त्रों को चिथड़ों के रूप में आयात करने से संबंधित लेखा परीक्षा पैरा 16 की जांच करते समय लोक लेखा समिति (1973-74) ने इच्छा व्यक्त की कि उसे इस संबंध में हुई अन्तर्मन्त्रालयीय बैठकों और प्रधान मंत्री की स्वीकृति से संबंधित सम्पूर्ण तथ्य उपलब्ध कराये जाएं। मंत्रिमंडल सचिवालय ने नियम 270 के दूसरे परन्तुक का सहारा लेते हुए आवश्यक फाइलें उपलब्ध कराने से इंकार कर दिया था। बाद में निर्माण, आवास और संसदीय कार्य मंत्री ने भी लोक सभा अध्यक्ष को एक अर्द्ध शासकीय पत्र लिखा था जिसमें यह बताया गया था कि लोक लेखा समिति के सभापति ने मंत्रिमंडल सचिवालय के जिन दस्तावेजों को देखने की इच्छा जाहिर की है वे समिति की जांच के लिए संगत दस्तावेज नहीं हैं। उन्होंने अध्यक्ष से संगत दस्तावेज मांगने और इस संबंध में विनिर्णय देने का भी अनुरोध किया था।

अध्यक्ष ने अन्य बातों के साथ निम्नलिखित विनिर्णय दिया था :

"…. मंत्रियों के बीच हुई चर्चा और प्रधान मंत्री द्वारा मंत्रियों की सिफारिशों को दी गई स्वीकृति का ब्यौरा लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम 270 के अर्थ के अन्तर्गत संगत नहीं है।"

यदि कभी यह प्रश्न उठता है कि किसी व्यक्ति का साक्ष्य अथवा किसी दस्तावेज का प्रस्तुत किया जाना समिति के प्रयोजन के लिए संगत है अथवा नहीं, तो वह प्रश्न अध्यक्ष को

(iii) विदेश से माइलो की खरीद के संबंध में भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के वर्ष 1972-73 के प्रतिवेदन से संबंधित पैरा 27 की जांच करते हुए, लोक लेखा समिति (1974-75) ने खाद्य विभाग से कुछ दस्तावेज मांगे थे। कृषि और सिंचाई राज्य मंत्री ने यह प्रमाणित किया था कि मांगे गये दस्तावेज देने से राष्ट्र की सुरक्षा और हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। सरकार ने नियम 270 के दूसरे परन्तुक का भी सहारा लिया था। अध्यक्ष ने मंत्री का यह अनुरोध मान लिया था।

(iv) लोक लेखा समिति ने भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के वर्ष 1974-75 के प्रतिवेदन के लेखा परीक्षा पैरा 27 की जांच करते हुए खाद्य मंत्रालय से कुछ दस्तावेज मांगे थे। खाद्य मंत्रालय ने नियम 270 के दूसरे परन्तुक का सहारा लिया था। गुप्त दस्तावेजों को समिति के सभापति को उपलब्ध कराने संबंधी सुस्थापित परिपाटी की ओर ध्यान दिलाये जाने पर कृषि और सिंचाई राज्य मंत्री ने इस बारे में लोक सभा के अध्यक्ष से विचार-विमर्श किया था। अध्यक्ष ने मंत्री के अनुरोध को स्वीकार करते हुए यह निदेश दिया था कि अपेक्षित दस्तावेज केवल समिति के सभापति को ही दिखाए जायें। तदनुसार, लोक लेखा समिति के सभापति को दस्तावेज उपलब्ध कराये गये थे।

(v) संघ सरकार (रक्षा) के बारे में भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के वर्ष 1985-86 के प्रतिवेदन के लेखा परीक्षा पैरा 35 की जांच करते समय लोक लेखा समिति (1987-88) ने रक्षा मंत्रालय से कुछ दस्तावेज प्रस्तुत करने को कहा था। अपेक्षित दस्तावेज सभापति को उपलब्ध करा दिए गए थे। तथापि, उन्होंने यह निदेश दिया था कि चूंकि दस्तावेज बहुत वृहदाकार हैं, इसलिए उन्हें व्यापक जांच करने के लिए लेखा परीक्षा निदेशक (भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक) को उपलब्ध कराये जायें। चूंकि लेखा परीक्षा के लिए दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराये गए, अत: इस मामले पर रक्षा मंत्रालय सचिव, के साथ पुन: बातचीत की गई। रक्षा मंत्री ने सभापति को यह सूचित किया कि एक दस्तावेज के अतिरिक्त अन्य सभी दस्तावेज लेखा परीक्षा के लिए उपलब्ध करा दिये गये हैं। उन्होंने इस बात को भी दोहराया कि मांगे गये दस्तावेज लोक लेखा समिति के सभापति को दिखाये जा सकते थे और सभापति ने इस बात को मान लिया है।

(vi) विशेषाधिकार समिति ने 'इंडियन एक्सप्रेस', 'फाइनेंशियल एक्सप्रेस' और 'जनसत्ता' के दिनांक 14 मार्च, 1988 के अंकों में क्रमश: "एन.एम.पी. एण्ड टू एकाउण्ट्स" और "एक सांसद और दो खाते" शीर्षक से प्रकाशित लेख में एक संसद सदस्य पर किए गए कथित आक्षेप के सम्बन्ध में इनके सम्पादकों के विरुद्ध विशेषाधिकार के एक मामले की जांच करते समय वित्त मंत्रालय से समिति के समक्ष विचाराधीन मामले से संबंधित कुछ दस्तावेज मांगे थे। रक्षा मंत्रालय ने अपेक्षित दस्तावेज भेजते हुए यह कहा था कि चूंकि ये दस्तावेज "गोपनीय" है, अत: इन्हें केवल सभापति के अवलोकनार्थ ही प्रस्तुत किया जाए।

निर्दिष्ट किया जाता है और उसका विनिश्चय अन्तिम होता है।[151] इसी प्रकार, यदि किसी राज्य सरकार के किसी अधिकारी का साक्ष्य लेना अथवा समिति के समक्ष राज्य सरकार के किसी पत्र, दस्तावेज या रिकार्ड को प्रस्तुत किया जाना आवश्यक हो, तो प्रत्येक मामले में सम्बद्ध राज्य सरकार अथवा अधिकारी से अनुरोध किए जाने से पूर्व अध्यक्ष के आदेश प्राप्त करने आवश्यक हैं।[152]

जब अध्यक्ष यह निर्णय लेता है कि राज्य के किसी विशिष्ट अधिकारी को साक्षी के रूप में बुलाने अथवा राज्य सरकार से कोई पत्र, दस्तावेज अथवा रिकार्ड मंगाने की आवश्यकता नहीं है, तो अध्यक्ष के निर्णय के संबंध में सभापति के माध्यम से समिति को बता दिया जाता है।[153]

समिति स्वत: अथवा समिति के विचाराधीन अथवा जाँचाधीन विषय में दिलचस्पी रखने वाले अथवा उससे प्रभावित होने वाले व्यक्तियों अथवा निकायों के अनुरोध पर विशेषज्ञों, सार्वजनिक निकायों, संघों, व्यक्तियों अथवा इच्छुक पक्षों का साक्ष्य ले सकती है।[154] किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के संबंध में, यदि समिति साक्ष्य लेने का निर्णय करती

समिति ने यह निदेश दिया कि वित्त मंत्री से यह पूछा जाए कि क्या इन दस्तावेजों को सभापति द्वारा सदस्यों को दिखाने पर क्या उन्हें कोई आपत्ति होगी अथवा वे यह प्रमाणित करेंगे कि इन दस्तावेजों को समिति के सदस्यों को इस आधार पर नहीं दिखाया जा सकता है कि इनके प्रकटीकरण से राष्ट्रीय सुरक्षा अथवा हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। वित्त मंत्रालय द्वारा वित्त राज्य मंत्री की स्वीकृति से यह सूचित किये जाने पर कि दस्तावेजों के प्रकटीकरण से राष्ट्रीय सुरक्षा अथवा हितों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, विशेषाधिकार समिति के सभापति ने 14 जुलाई, 1988 को हुई, समिति की बैठक में सदस्यों को यह दस्तावेज अवलोकनार्थ उपलब्ध करा दिए थे।

151. नियम 270, पहला परन्तुक ।

152. निदेश 60(1) ।

आयुध विधेयक, 1958 संबंधी संयुक्त समिति ने अध्यक्ष की अनुमति से दिनांक 14 जुलाई, 15 जुलाई और 18 जुलाई, 1959 को पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल की सरकारों के गृह सचिवों का साक्ष्य लिया था।

दण्ड विधि (संशोधन) विधेयक, 1980 संबंधी संयुक्त समिति ने अध्यक्ष अनुमति से 30 जून, 1 जुलाई, 4 जुलाई और 27 जुलाई, 1981 को हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र की सरकारों के विधि सचिवों का साक्ष्य लिया था।

153. निदेश 60(2) ।

154. निदेश 57(1) ।

है तो वह सामान्यत: एक प्रेस विज्ञप्ति जारी करती है,[155] जिसके माध्यम से इच्छुक पक्षों को विधेयक के संबंध में उनके विचार जानने हेतु लिखित ज्ञापन भेजने को कहती है। व्यक्तियों अथवा संगठनों से प्राप्त लिखित ज्ञापनों पर विचार करने के बाद समिति अथवा समिति द्वारा प्राधिकृत किए जाने पर समिति का सभापति समिति के समक्ष साक्ष्य देने हेतु बुलाए जाने वाले पक्षों का चयन करता है। विशेषज्ञों अथवा व्यक्तियों अथवा संगठनों का साक्ष्य लेने की अपेक्षा, उनसे विधेयक के बारे में लिखित राय आमंत्रित करना भी विधेयक संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समिति के विवेक पर निर्भर करता है।[156] जब किसी मंत्रालय, विभाग अथवा उपक्रम को किसी विषय के सम्बन्ध में समिति के समक्ष साक्ष्य देने हेतु बुलाया जाता है, तो उसका प्रतिनिधित्व यथास्थिति, विभाग अथवा उपक्रम का सचिव अथवा प्रमुख अधिकारी, करता है।[157] यदि किसी कारणवश ऐसा कोई अधिकारी किसी विशेष अवसर पर समिति के समक्ष उपस्थित नहीं हो सकता, तो समिति का सभापति, उस अधिकारी के अनुरोध पर किसी अन्य वरिष्ठ अधिकारी को उस अवसर पर मंत्रालय, विभाग या उपक्रम का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दे सकता है।[158] यदि समिति आवश्यक समझे तो सम्बद्ध मंत्रालय, विभाग या उपक्रम को समिति के सदस्यों में परिचालित करने के लिए विचाराधीन विषय के सम्बन्ध में उसके ज्ञापन की समुचित प्रतियां उस तिथि से काफी पहले, जब उसके प्रतिनिधियों को समिति के सामने अपना साक्ष्य देना हो, भेजनी पड़ती हैं।[159]

---

155. उदाहरण के लिए *देखिए,* आयुध विधेयक, 1958; कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1959; भारतीय स्टेट बैंक (समनुषंगी बैंक) विधेयक, 1959; भारतीय स्टेट बैंक (संशोधन) विधेयक, 1959; बैंककारी कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1959; विवाह विधि (संशोधन) विधेयक, 1981 और जीवन बीमा निगम विधेयक, 1983 संबंधी संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन ।

156. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विधेयक, 1954 संबंधी संयुक्त समिति ने सभी भारतीय विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को मौखिक साक्ष्य देने के लिये बुलाने की बजाय विधेयक के संबंध में उनके लिखित विचार आमंत्रित किए।

157. निदेश 59(1) ।

9 जुलाई, 1951 को लोक लेखा समिति ने उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में लेखाओं की जांच को उस समय स्थगित कर दिया, जब समिति ने यह देखा कि उस बैठक में उच्चतम न्यायालय का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सहायक पंजीयक को भेजा गया है।

अगस्त, 1955 में यह देखकर कि पुनर्वास मंत्रालय के एक उप-सचिव को लोक लेखा समिति की बैठक में मंत्रालय का प्रतिनिधित्व करने के लिए भेजा गया है, तो लोक लेखा समिति ने उस मंत्रालय के लेखाओं पर विचार तब तक के लिए स्थगित कर दिया, जब तक कि मंत्रालय का सचिव स्वयं समिति के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ।

158. निदेश 59(1), परन्तुक ।

159. निदेश 59(2)।

साक्षियों को बुलाने की प्रक्रिया

साक्षी में किसी मंत्रालय, विभाग, सरकारी उपक्रम या किसी अन्य संगठन का प्रतिनिधि या कोई अन्य व्यक्ति शामिल है। किसी साक्षी को पत्र भेजकर या औपचारिक आमन्त्रण भेजकर समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए बुलाया जा सकता है और/अथवा उससे यह कहा जा सकता है कि वह समिति के सामने कोई ऐसा दस्तावेज प्रस्तुत करे, जिसकी समिति को आवश्यकता है।[160] सामान्यत: पत्र ही भेजा जाता है और औपचारिक आमन्त्रण किसी साक्षी को तभी भेजा जाता है जब समिति न्यायिक स्वरूप की कोई जांच कर रही होती है।

आमंत्रण भेजे जाने या पत्र द्वारा बुलाये जाने पर यदि कोई साक्षी समिति के समक्ष उपस्थित नहीं होता अथवा कोई व्यक्ति समिति द्वारा मांगे जाने पर कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने से इन्कार कर देता है तो उसका आचरण सभा की अवमानना माना जाता है और समिति इस बात की सूचना सभा को दे सकती है।

यदि वह व्यक्ति जिसका समिति द्वारा साक्ष्य लिया जाना है, जेल में है, तो आवश्यक समझे जाने पर उसे गृह मंत्रालय तथा सम्बद्ध राज्य सरकार के माध्यम से समिति के सामने बुलाया जाता है।

> जब पंजाबी सूबे की मांग संबंधी संसदीय समिति से अनुरोध किये जाने पर समिति ने 1 फरवरी, 1966 को पंजाब सरकार के आदेश के अन्तर्गत नजरबन्द किये गये एक व्यक्ति की बात सुनने का निर्णय किया तो क्रमश: गृह मंत्रालय तथा पंजाब सरकार को लिखित रूप से और तार द्वारा यह सूचित किया गया कि वह 4 फरवरी को 15.00 बजे उस नजरबन्द व्यक्ति की समिति के समक्ष उपस्थिति सुनिश्चित करें। उस नजरबन्द व्यक्ति को जो उस समय दिल्ली के केन्द्रीय कारागार में था, नियत तिथि और समय पर पुलिस की अनुरक्षा में उसे संसद भवन लाया गया और मुख्य द्वार पर लोक सभा के सुरक्षा अधिकारी (वाच एण्ड वार्ड ऑफिसर)[161] ने उसे अपने अधिकार में ले लिया। उस व्यक्ति को लाने वाले पुलिस कर्मचारियों ने बाहर के स्वागत कार्यालय में प्रतीक्षा की और सुरक्षा अधिकारी उसे साक्ष्य हेतु प्रतीक्षा कक्ष में ले गया। वहां से समिति का काम देखने वाले अधिकारी उस नजरबन्द व्यक्ति को समिति कक्ष में ले गए। समिति के समक्ष साक्ष्य देने के बाद उसे सुरक्षा अधिकारी मुख्य द्वार तक ले गए और प्रतीक्षारत पुलिस कर्मचारियों को सौंप दिया जिससे कि वे उसे वापस कारागार ले जा सकें।
>
> *साक्षी का वकील*—समिति साक्षी की बात सामान्यत: व्यक्तिगत रूप से सुनती है। फिर भी, विशेष परिस्थितियों में, विशेषकर—न्यायिक प्रकार की जांच तथा

---

160. नियम 269(1)।

161. बाद में इस पद का नाम बदलकर संयुक्त सचिव, सुरक्षा कर दिया गया।

संवीक्षा में, किसी साक्षी को इस बात की अनुमति दी जा सकती है कि उसका वकील उसका प्रतिनिधित्व करे या उसके साथ आये।[162]

शपथ पर साक्ष्य—समितियों के समक्ष पेश होने वाले साक्षियों को सामान्यतः कोई शपथ नहीं दिलाई जाती अथवा उन्हें प्रतिज्ञान नहीं कराया जाता है। किसी साक्षी को शपथ लेने अथवा प्रतिज्ञान करने के लिये तभी कहा जाता है जब कोई जांच न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक प्रकार की हो और तथ्यों की सत्यता का पता लगाना हो।[163]

साक्षियों का साक्ष्य लेने की प्रक्रिया

किसी साक्षी को जांच के लिए बुलाने से पहले समिति का सभापति और सदस्य आपस में संक्षेप में विचार-विमर्श करते हैं और यह निर्णय करते हैं कि साक्षी से पूछताछ किस प्रकार की जायेगी और उससे कौन-कौन से प्रश्न पूछे जायेंगे।[164] समिति का सभापति साक्षी से पहले ऐसे प्रश्न पूछता है जो वह विचाराधीन विषय या तत्संबंधी किसी विषय के संबंध में आवश्यक समझे।[165] उसके बाद, समिति के सदस्य बारी-बारी से साक्षी से कोई अन्य प्रश्न पूछ सकते हैं।[166] किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में, जब किसी साक्षी को

---

162. नियम 271; मुद्गल मामले में समिति का गठन करने के लिए रखे गये प्रस्ताव में यह उपबन्ध किया गया था कि "श्री एच.जी. मुद्गल को समिति के समक्ष स्वयं अथवा यदि वह उचित समझें तो अपने वकील के माध्यम से अपनी बात कहने की अनुमति है और समिति वकील की बात को उस सीमा तक सुन सकती है जब तक कि वह किसी अन्य व्यक्ति की बात सुनना उचित समझे" *पी. डिबेट्स* (II), 8.6.1951, का. 10464-65 ।

163. नियम 272(1) *मुद्गल मामले और देशपांडे मामले* में, समितियों ने साक्षियों को शपथ दिलायी, *देखिए* क्रमशः एक सदस्य के आचरण सम्बन्धी समिति (मुद्गल का मामला) 1951 को प्रतिवेदन और विशेषाधिकार समिति (देशपांडे का मामला) 1952 का प्रतिवेदन। बोफोर्स सौदे की जांच करने संबंधी संयुक्त समिति ने शपथ दिलाकर साक्ष्य लेने का निर्णय लिया। तद्नुसार, सभी साक्षियों (जिनमें सरकारी साक्षी भी शामिल हैं) को सभापति द्वारा शपथ दिलाई गई—*देखिए* संयुक्त समिति का प्रतिवेदन।

164. नियम 273(1)। प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के मामले में साक्षियों के मौखिक साक्ष्य लेने के संबंध में मुद्दों और/अथवा प्रश्नों की सूची तैयार की जाती है। उसमें ऐसे सुझाव भी शामिल किये जाते हैं। जो समिति के सदस्यों से प्राप्त हुए हों। उस साक्षी का मौखिक साक्ष्य होने से पहले यह सूची समिति के सदस्यों में परिचालित की जाती है। यह प्रथा, वित्तीय समितियों के अतिरिक्त अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, याचिका समिति, सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति और सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति जैसी अन्य अनेक संसदीय समितियों में भी प्रचलित है।

165. नियम 273(2) और निदेश 62 (1) ।

166. *पूर्वोक्त* ।

उसके द्वारा भेजे गये लिखित ज्ञापन पर विचार करने के बाद साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाता है, तो उससे पूछताछ मुख्य रूप से उन्हीं मामलों तक सीमित रखी जाती है जो उसके ज्ञापन में स्पष्ट नहीं किये गये हैं और ऐसे विषय जो उसके ज्ञापन से उत्पन्न होते हैं। जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे उन विषयों तक सीमित होते हैं, जिनसे उन हितों पर प्रभाव पड़ता हो जिनका प्रतिनिधित्व साक्षी करता है या जिनके संबंध में वह अपनी राय देने में सक्षम है। जब समिति के सभी सदस्य अपने प्रश्न पूछ लेते हैं तो सभापति साक्षी से यह कह सकता है कि वह समिति के समक्ष ऐसी अन्य संगत बातें रखे जो पहले न पूछी गयी हों और जो साक्षी की राय में समिति के सामने अवश्य रखी जानी चाहिए।[167] कोई साक्षी सभापति की अनुमति से समिति के सामने कोई दूसरी संगत जानकारी भी रख सकता है जो पहले समिति के सामने न रखी गयी हो।[168]

साक्षियों द्वारा शालीनता तथा शिष्टाचार का पालन—किसी समिति या उसकी उप-समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले सभी साक्षियों को संसद की समिति के प्रति विनम्रता और सम्मान के साथ समुचित शालीनता और शिष्टाचार दिखाना चाहिए। साक्षियों के मार्गदर्शन के लिए उनके आचरण तथा शिष्टाचार के संबंध में कुछ बातें निर्धारित की गयी हैं।[169] जब आवश्यक समझा जाये, इनकी एक प्रति या तो साक्षी को उस समय भेजी जाती है जब उसे समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया जाता है या जब वह साक्ष्य देने के लिए उपस्थित होता है, तब उसे दिखा दी जाती है।

साक्ष्य का शब्दशः रिकार्ड

जब किसी साक्षी को किसी समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाता है, तो समिति की कार्यवाही का शब्दशः रिकार्ड रखा जाता है।[170] उस बैठक जिसमें साक्ष्य लिया गया हो, की कार्यवाही के शब्दशः रिकार्ड के संगत अंश, सचिवालय द्वारा साक्षी और सम्बद्ध सदस्यों को भेज दिये जाते हैं और उनसे यह कहा जाता है कि उस रिकार्ड की पुष्टि करने के बाद एक निश्चित तिथि तक उसे सचिवालय को लौटा दें।[171] यदि कार्यवाही की संशोधित प्रति निश्चित तिथि तक सचिवालय में नहीं पहुंचती, तो रिपोर्टर की प्रति को ही प्रामाणिक समझा जाता है।[172] कुछ अपवादात्मक मामलों में, समुचित कारण बताये जाने पर निश्चित तिथि के बाद प्राप्त हुई शुद्धियां भी स्वीकार की जा सकती हैं।

---

167. नियम 273(4)।
168. निदेश 62(2)।
169. आचरण तथा शिष्टाचार संबंधी मुद्दे समिति शाखा के पास होते हैं।
170. नियम 273(5)।
171. निदेश 65 (2)।
172. *पूर्वोक्त* ।

यदि साक्षी या किसी सदस्य को कार्यवाही के रिकार्ड में कोई शुद्धि करनी हो तो वह अपने हाथ से इस ढंग से की जानी चाहिए कि वह स्पष्ट और सुपाठ्य हो।

कोई साक्षी या सदस्य कार्यवाही में, अपनी बात के साहित्यिक रूपों को सुधारने या कार्यवाही के सार में परिवर्तन करने अथवा वृद्धि करने या उनमें से कुछ अंशों को निकालने के उद्देश्य से शुद्धि नहीं कर सकता। यदि कोई शुद्धि करनी हो, तो वह उन्हीं अशुद्धियों को सुधारने तक सीमित होनी चाहिए, जो लिखने में रह गई हों।[173]

समिति को दिये गये गुप्त या गोपनीय दस्तावेजों को उद्धृत न किया जाना

जब कभी गुप्त या गोपनीय अंकित कोई पत्र या दस्तावेज किसी समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है तो समिति के किसी भी सदस्य द्वारा उस पत्र या दस्तावेज की विषय-वस्तु अध्यक्ष की अनुज्ञा के बिना विमत-टिप्पण में या सभा में या अन्यथा प्रकट नहीं की जा सकती।[174] जब ऐसी आज्ञा मिल जाती है तो उस रीति या उस सीमा के बारे में, जिसके अनुसार उस दस्तावेज में आई हुई जानकारी प्रकट की जा सकती है, अध्यक्ष द्वारा लगाये गये किसी बन्धन का संबंधित सदस्य द्वारा कठोरता से पालन करना आवश्यक बन जाता है।[175] किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में, समिति के सदस्यों को परिचालित किए गए गुप्त या गोपनीय दस्तावेजों का उल्लेख यद्यपि विमत-टिप्पण या सभा में दिये गये भाषणों में नहीं किया जा सकता, किन्तु ऐसे दस्तावेजों में दिये गये तर्क उनके स्त्रोतों का पता बताए बिना दिये जा सकते हैं।[176]

सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने से पहले साक्ष्य के प्रकाशन का निषेध

समिति के सामने दिया गया साक्ष्य या उसे भेजा गया दस्तावेज सदा गोपनीय माना जाता है और जब तक उसे सभा पटल पर नहीं रख दिया जाता, उसका कोई अंश न तो किसी व्यक्ति को बताया जा सकता है और न किसी ऐसे व्यक्ति को वह दस्तावेज दिखाया जा सकता है जो समिति का सदस्य न हो।[177] समिति को सम्बोधित और सचिवालय में प्राप्त सभी दस्तावेज, अभ्यावेदन या ज्ञापन समिति के रिकार्ड का अंग होते हैं, और उन्हें समिति की जानकारी तथा अनुमोदन के बिना न तो वापस लिया जा सकता है और न ही उनमें कोई फेर-बदल किया जा सकता है।[178] विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में

---

173. निदेश 65(3)।
174. निदेश 55(2)।
175. *पूर्वोक्त* ।
176. कार्यवाही सारांश [दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1954 संबंधी संयुक्त समिति], 27.8.1964 ।
177. नियम 275(2); निदेश 55(1) और 65(1)।
178. नियम 269(3)।

समिति को संबोधित किसी अभ्यावेदन या ज्ञापन की प्राप्ति स्वीकार करते हुए उसके भेजने वाले को सूचित किया जाता है कि उसका अभ्यावेदन या ज्ञापन समिति के रिकार्ड में सम्मिलित कर लिया गया है, इसलिए उसे पूर्णत: गोपनीय माना जाए और किसी अन्य को परिचालित न किया जाये। समिति को भेजे गए किसी दस्तावेज में से, कोई व्यक्ति अध्यक्ष की अनुमति के बिना न तो कोई हवाला दे सकता है और न उसकी प्रतियां तब तक किसी और को भेज सकता है जब तक कि दस्तावेज को समिति के प्रतिवेदन के साथ या अलग से सभा में पेश न कर दिया जाए।[179] यदि कोई व्यक्ति किसी समिति को भेजे गये अपने अभ्यावेदन या ज्ञापन का प्रयोग करने की अनुमति मांगता है, तो अनुमति देने के साथ उससे यह कहा जाता है कि वह अपने अभ्यावेदन या ज्ञापन में दी गई दलीलों या कही गई बातों का प्रयोग बिना यह बताये करे कि उसने यही बातें समिति को दिये गये अभ्यावेदन आदि में भी कही हैं।[180] जब किसी समिति की बैठक, जिसमें साक्ष्य दिया गया है, की शब्दश: कार्यवाही के संगत अंश की प्रतियां किसी साक्षी या सदस्य को शुद्धि करके लौटाने हेतु भेजी जाती हैं तब उसे सूचित किया जाता है कि न तो उसे उस कार्यवाही की प्रतियां, बनाने की अनुमति है और न समिति की अनुमति के बिना उस कार्यवाही को कहीं उद्धृत किया जा सकता है और न ही किसी अन्य ढंग से उसका प्रयोग किया जा सकता है।

यदि कोई व्यक्ति किसी साक्ष्य या दस्तावेज को समिति द्वारा सभा में प्रस्तुत किए जाने से पहले समिति के समक्ष दिये गये किसी दस्तावेज का कोई अंश प्रकाशित करता है, तो यह विशेषाधिकार का उल्लंघन है।

---

179. निदेश 74 ।

180. कंपनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति और वाणिज्य पोत परिवहन विधेयक, 1958 संबंधी समिति को प्रस्तुत अभ्यावेदनों/ज्ञापनों को प्रकाशित करने की अनुमति संबंधित व्यक्तियों को इस आधार पर नहीं दी गई कि ये सभा पटल पर नहीं रखे गए।

इसी प्रकार कम्पनी विधि प्रशासन विभाग को उन लिखित साक्ष्यों को छापने की अनुमति नहीं दी गई, जो उसने कम्पनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति को दिये थे क्योंकि तब तक ये दस्तावेज सभा पटल पर नहीं रखे गये थे, यद्यपि उस साक्ष्य ने केवल सरकारी प्रयोग के लिए रिकार्ड का अंग बनना था।

कुछ व्यक्तियों और संघों को निम्नलिखित समितियों को दिए गए अभ्यावेदन या ज्ञापनों में दिये गये तर्कों या मुद्दों के प्रयोग की अनुमति दी गई:

वाणिज्य पोत परिवहन विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति, धन कर विधेयक, 1957 संबंधी प्रवर समिति और व्यय कर विधेयक, 1957 संबंधी प्रवर समिति।

फरवरी, 1969 में श्री पी.जी. मावलंकर को लास्की संस्थान के प्रस्तावित प्रकाशन में नाथ पाई द्वारा प्रस्तुत संविधान (संशोधन) विधेयक, 1967 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष उनके तथा संथानम द्वारा दिए गए साक्ष्य के पूरे पाठ को शामिल करने की अनुमति दी गई।

यह समिति के स्वविवेक पर निर्भर होगा कि वह उसके सामने दिये गये किसी मौखिक या लिखित साक्ष्य को गोपनीय या गुप्त समझे।[181] भले ही कोई साक्षी स्पष्ट रूप से यह इच्छा व्यक्त करे कि उसके साक्ष्य को गोपनीय समझा जाये, तो भी समिति इसके विरुद्ध फैसला कर सकती है और उसे सभा के सदस्यों को उपलब्ध करा सकती है।[182] जब समिति किसी साक्ष्य को गोपनीय मानने का निर्णय करती है तो उसे अन्य साक्ष्य के साथ नहीं छापा जाता और न ही सभा में प्रस्तुत किया जाता है परंतु समिति केवल सदस्यों के संदर्भ हेतु उसकी कुछ प्रतियां पुस्तकालय में रखने का निर्णय कर सकती हैं।[183] लेकिन किसी समिति के सामने दिया गया साक्ष्य और भेजे गए दस्तावेज समिति के सभी सदस्यों को उपलब्ध कराये जाते हैं।[184] सामान्यत: समिति के समक्ष दिये गये साक्ष्य का शब्दश: रिकार्ड सचिवालय में रखा जाता है, जिससे समिति के सदस्य चाहें, तो उसे देख सकें, लेकिन कई बार ऐसे साक्ष्य का रिकार्ड या उसका सारांश समिति के सदस्यों को परिचालित किया गया है।[185]

साक्ष्य का सभा पटल पर रखा जाना

यह निर्णय करना समिति का काम है कि उसके समक्ष दिये गये सम्पूर्ण साक्ष्य को अथवा उसका कोई अंश अथवा उसका सारांश सभा पटल पर रखा जाए।[186] इस संबंध में

---

181. नियम 269(2) ।

182. निदेश 58 ।

183. कुछ साक्षियों द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई इच्छा के कारण उनके द्वारा निम्नलिखित प्रवर/संयुक्त समितियों के समक्ष दिये गये साक्ष्य को गोपनीय माना गया और अन्य साक्षियों के साथ इनके साक्ष्य को प्रकाशित नहीं किया गया:

    (i) आयुध विधेयक, 1958 संबंधी संयुक्त समिति; (ii) कराधान विधि (संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी प्रवर समिति; (iii) विवाह संबंधी (संशोधन) विधेयक, 1982 संबंधी संयुक्त समिति; और (iv) जीवन बीमा निगम विधेयक, 1983 संबंधी संयुक्त समिति।

184. नियम 273(4)।

185. निम्नलिखित प्रवर/संयुक्त समितियों के समक्ष दिए गए साक्ष्य का अक्षरश: रिकार्ड समितियों के सदस्यों को परिचालित किया गया:

    (i) जीवन बिना निगम विधेयक; 1956 संबंधी प्रवर समिति; (ii) दंड विधि (संशोधन) विधेयक, 1980 संबंधी संयुक्त समिति; (iii) लोकपाल विधेयक, 1985 संबंधी संयुक्त समिति; और (iv) रेल विधेयक, 1986 संबंधी संयुक्त समिति।

    कम्पनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष दिए गए साक्ष्य का सारांश समिति के सदस्यों में परिचालित किया गया।

    प्राक्कलन समिति और लोक लेखा समिति के मामले में केवल कार्यवाही सारांश जिसमें इन समितियों के समक्ष दिए गए साक्ष्य का सार भी शामिल होता है, को समिति के सदस्यों में परिचालित किया जाता है।

186. नियम 275(1) ।

सामान्य प्रथा प्रत्येक समिति में भिन्न-भिन्न है। प्राक्कलन समिति ने निर्णय किया है कि वह जो साक्ष्य लेती है, उसे सामान्यतः उसके प्रतिवेदन के साथ प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है।[187] समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश में उस साक्ष्य का संक्षेप अनिवार्य रूप से दिया जाता है जो समिति के प्रतिवेदन के प्रस्तुत किये जाने के यथाशीघ्र बाद सभा पटल पर रख दिया जाता है।

> जब प्राक्कलन समिति की सरकारी उपक्रमों संबंधी तत्कालीन उप-समिति ने साक्ष्य लिया था, तो उन बैठकों का कार्यवाही सारांश, जिनमें साक्ष्य लिया गया था, पूरी समिति की बैठक के उस कार्यवाही सारांश के साथ सभा पटल पर रखा गया, जिसमें सम्पूर्ण समिति ने उप-समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार किया था।[188]

लोक लेखा समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य भी सामान्यतः सभा पटल पर नहीं रखा जाता, लेकिन जहां लोक लेखा समिति यह निर्णय करे कि साक्ष्य को सभा पटल पर रखा जाए, तो उसे एक अलग खण्ड के रूप में छापा जाता है, जिसे समिति के सम्बद्ध लेखाओं तथा उन पर लेखा-परीक्षा रिपोर्ट से संबंधित प्रतिवेदन का अंग माना जाता है। लोक लेखा समिति की किसी उप-समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य शब्दशः नहीं छापा जाता। उप-समिति का केवल कार्यवाही सारांश ही उसके प्रतिवेदन के साथ संलग्न कर दिया जाता है, जिसे समिति द्वारा अनुमोदित करने के बाद सम्पूर्ण समिति के प्रतिवेदन में शामिल कर लिया जाता है।[189] विशेषाधिकार समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य जब तक समिति ने अन्यथा निर्णय न किया हो,[190] समिति के प्रतिवेदन का अंग होता है और उसके साथ संलग्न कर दिया जाता है, जिसे

---

187. कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 7.2.1953 ।

    प्राक्कलन समिति के समक्ष दिये गये साक्ष्य को प्रकाशित न किये जाने का कारण यह है कि यदि समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले साक्षियों को पता हो कि उनका साक्ष्य छपेगा और प्रकाशित किया जायेगा तो संभव है कि वे बहुत संभलकर अपनी बात कहें और उस हद तक समिति उनके स्वतंत्र और निर्भीक रूप से प्रकट किये गये विचारों से वंचित रह जाएगी। विशेषकर गैर-सरकारी साक्षियों के मामले में जो गुप्त रूप से अपनी बात कहते हैं, समिति ने देखा है कि समुचित निष्कर्षों पर पहुंचने में उनका साक्ष्य बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। यदि गैर-सरकारी साक्षियों का साक्ष्य प्रकाशित करना हो, तो वे साफ-साफ अपनी बात कहने में झिझकेंगे और संभव है कि कुछ मामलों में वे समिति के सामने साक्ष्य देने में ही अनिच्छुक हों।

188. कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 11.4.1960 ।
189. लोक लेखा समिति ने दिल्ली परिवहन प्राधिकरण (बस अनुभाग) (1950-51 से 1953-54) संबंधी अपनी उप-समिति के प्रतिवेदन को अपने प्रतिवेदन के रूप में स्वीकार कर लिया और उप-समिति के सामने दिये गये साक्ष्य को प्रतिवेदन के साथ छापा गया।
190. *देखिए,* एस.आर. (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा), पृ. 12; 11वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा), पृ. 6 ।

सभा पटल पर रखा जाता है।[191] यदि किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति ने यह फैसला किया हो कि उसके समक्ष दिये गये साक्ष्य के सभा पटल पर रखे जाने की आवश्यकता नहीं है, तो वह साक्ष्य समिति के प्रतिवेदन का अंग नहीं बनता।[192] जब यह फैसला किया जाए कि साक्ष्य का केवल सारांश सभा पटल पर रखा जाए तो उस साक्ष्य को संक्षिप्त रूप में छापा जाता है और वह सभा पटल पर रखे गए प्रतिवेदन का अंग होता है।[193] किसी विधेयक संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समिति के मामले में सामान्यत: सारा साक्ष्य सभा पटल पर रखा जाता है, और जहां समिति निर्णय करे, उस साक्ष्य को अलग खण्ड के रूप में छापा जाता है।[194] इसी प्रकार संगठनों, संघों या व्यक्तियों द्वारा, जो किसी विधेयक संबंधी प्रवर/संयुक्त समिति के सामने साक्ष्य देते हैं, दिये गये ज्ञापन आदि, समिति द्वारा ऐसे निर्णय किये जाने पर साक्ष्य के परिशिष्ट के रूप में सभा पटल पर रखे जाते हैं।[195] समिति यह भी निर्णय कर सकती है कि ऐसे ज्ञापन आदि को अन्य साक्ष्य के साथ सभा पटल पर रखे जाने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उनकी कुछ प्रतियां सदस्यों के संदर्भ सुविधा हेतु पुस्तकालय में रख दी जाएं।[196]

सभा के सदस्यों को साक्ष्य का परिचालन

किसी समिति के समक्ष दिये गये साक्ष्य की प्रतियां सभा के सदस्यों को तभी उपलब्ध कराई जाती हैं, जब वे साक्ष्य सभा पटल पर रखे जा चुके हों लेकिन किसी अविलम्बनीय मामले में, विशेषकर जब सभा का सत्र न हो रहा हो, अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से यह

---

191. *देखिए देशपांडे* मामला, 1952, चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); 7वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); 12वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); 13वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा)।
192. कार्यवाही सारांश [सरकारी परिसर (बेदखली) संशोधन विधेयक, 1954 संबंधी प्रवर समिति], 27.8.1955; और कार्यवाही सारांश [प्रतिभूति संविदा (विनियमन) विधेयक, 1954 संबंधी प्रवर समिति], 18.2.1956 ।
193. *देखिए* विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकार तथा पुनर्वास) विधेयक, 1954 और दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1954 और लोकपाल तथा लोकायुक्त विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन ।
194. विद्युत (प्रदाय) संशोधन विधेयक, 1954 और जीवन बीमा निगम विधेयक, 1956 संबंधी प्रवर समितियों और कंपनी विधेयक, 1953 तथा मोटरयान (संशोधन) विधेयक, 1955 संबंधी संयुक्त समितियों और जीवन बीमा निगम विधेयक, 1983 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष दिये गये सम्पूर्ण साक्ष्यों को अलग-अलग खंडों में सभा पटल पर रखा गया था।
195. *देखिए* मोटरयान (संशोधन) विधेयक, 1955 और बैंककारी कंपनी (संशोधन) विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समितियों के प्रतिवेदनों के साक्ष्य वाले खण्ड ।
196. जीवन बीमा निगम विधेयक, 1956 संबंधी प्रवर समिति और आयुध विधेयक, 1958, मानसिक स्वास्थ्य विधेयक, 1978 और जीवन बीमा निगम विधेयक, 1983 संबंधी संयुक्त समिति को व्यक्तियों या संगठनों द्वारा भेजे गए ज्ञापन सभा पटल पर रखे गये साक्ष्य के साथ संलग्न नहीं किये गये थे, परन्तु उनकी कुछ प्रतियां सदस्यों के संदर्भ के लिए ग्रंथालय में रख दी गई थीं।

निदेश दे सकता है कि ऐसा साक्ष्य औपचारिक रूप से सभा पटल पर रखे जाने से पहले सदस्यों को गुप्त रूप से उपलब्ध करा दिया जाए।[197]

उप-समितियां

कोई संसदीय समिति किसी ऐसे विषय की जांच के लिए, जो उसे सौंपा गया हो, और जिसके लिए विस्तृत अध्ययन या जांच करने की आवश्यकता हो, उप-समिति की नियुक्ति कर सकती है, जिसे सम्पूर्ण समिति की शक्तियां प्राप्त होती हैं।[198] किसी मामले को उप-समिति को सौंपने के आदेश में जांच किए जाने वाले विषय या विषयों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाता है।[199] उप-समिति के सदस्यों की नियुक्ति सम्पूर्ण समिति के सदस्यों में से की जाती है। यदि किसी समिति का सभापति उसकी उप-समिति का सदस्य हो, तो वह स्वतः उप-समिति का सभापति बन जाता है अन्यथा समिति का सभापति उप-समिति के सभापति या उसके संयोजक की नियुक्ति करता है।[200] प्राक्कलन समिति का सभापति सामान्यतः रक्षा संबंधी उप-समिति का सभापति होता है और आवास समिति की आवास संबंधी उप-समिति के मामले में समिति का सभापति उस उप-समिति का पदेन सभापति होता है।[201]

उप-समिति में, यथासंभव, उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है, जैसा कि संपूर्ण समिति में किया जाता है।[202] समिति का सभापति अध्यक्ष द्वारा दिये गये किसी सामान्य या विशिष्ट निर्देश के अंतर्गत, प्रक्रिया संबंधी मामलों में उप-समिति के सभापति या संयोजक को ऐसे निर्देश दे सकता है, जो उप-समिति के कार्य के विनियमन तथा आयोजन के लिए आवश्यक हों।[203]

उप-समिति के सभापति द्वारा हस्ताक्षरित उप-समिति का प्रतिवेदन सम्पूर्ण समिति को प्रस्तुत किया जाता है और उसके द्वारा प्रतिवेदन पर विचार किया जाता है। यदि उप-समिति के प्रतिवेदन को समिति की बैठक में अनुमोदित कर दिया जाए, तो उसे सम्पूर्ण समिति का प्रतिवेदन माना जाता है।[204] जब समिति का प्रतिवेदन सभा को अथवा अध्यक्ष को प्रस्तुत किया

---

197. नियम 275(3), परन्तुक ।
198. नियम 263(1)।
199. नियम 263(2) ।
200. निदेश 56(2) ।
201. आवास समिति के नियमों का नियम 4(1) ।
202. निदेश 56(3) ।
203. निदेश 101(3) और 101 क(6) ।
204. निदेश 56(1) और नियम 263(1)(2) । *देखिए* दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के कार्यकरण की जांच करने संबंधी दोनों सभाओं की संयुक्त समिति का प्रतिवेदन। उप-समिति का प्रतिवेदन संयुक्त समिति को 6 अगस्त, 1982 को प्रस्तुत किया गया।

जाए तब उप-समिति का प्रतिवेदन भी सम्पूर्ण समिति के प्रतिवेदन के साथ संलग्न किया जा सकता है।[205]

समिति के निर्णयों का रिकार्ड

बैठकों के कार्यवाही सारांश

समिति की प्रत्येक बैठक के तुरन्त पश्चात् बैठक का कार्यवाही सारांश तैयार किया जाता है जिसमें बैठक में उपस्थित सदस्यों तथा अधिकारियों के नाम, बैठक की अवधि और बैठक में लिये गये निर्णय दिए गए होते हैं और समिति के सभापति या उस बैठक की अध्यक्षता करने वाले सदस्य द्वारा अनुमोदित किए जाने के पश्चात् उसे समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।[206] तथापि लोक लेखा समिति के मामले में विशिष्ट लेखाओं की जांच से संबंधित समिति की बैठकों के केवल समेकित कार्यवाही सारांश समिति के सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं। किसी उप-समिति की बैठकों का कार्यवाही सारांश सामान्यत: केवल उप-समिति के सदस्यों को ही परिचालित किया जाता है, किन्तु लोक लेखा समिति की उप-समिति की उन बैठकों का कार्यवाही सारांश जिनमें साक्ष्य लिया गया हो, समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।

जब आवश्यक समझा जाये, तो किसी समिति या उप-समिति की बैठक के कार्यवाही सारांश की एक प्रति या उसके संगत अंश, संबंधित मंत्रालय या किसी अन्य प्राधिकारी को भी भेजे जा सकते हैं।[207] यदि कोई सदस्य कार्यवाही सारांश में इस आधार पर कोई परिवर्तन करना चाहता है कि वह समिति द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार नहीं है तो उस विषय पर समिति या उसकी उप-समिति द्वारा अगली बैठक में विचार किया जाता है और उसमें लिये गये निर्णय को बैठक के कार्यवाही सारांश में सम्मिलित किया जाता है।[208] कार्यवाही सारांश

---

205. *देखिए* निम्नलिखित समितियों के प्रतिवेदन: कंपनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति, लोक प्रतिनिधित्व (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1955 संबंधी प्रवर समिति, लाभ के पदों संबंधी समिति, 1955 और संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक, 1957 संबंधी संयुक्त समिति।

206. नियम 274 और निदेश 66 ।

207. निदेश 66 (3) ।

लोक लेखा समिति के कार्यवाही सारांश के अंश किसी भी मंत्रालय को नहीं भेजे जाते, परंतु भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को ये कार्यवाही सारांश सूचनार्थ भेजे जाते हैं।

कार्य-मंत्रणा समिति की प्रत्येक बैठक के कार्यवाही सारांश की एक प्रति संसदीय कार्य विभाग को भी भेजी जाती है।

सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति तथा आवास समिति के संबंध में निर्णय किये जाने पर उसकी कार्यवाही के संगत अंश सम्बद्ध मंत्रालय तथा विभागों को आवश्यक कार्यवाही के लिए भेज दिये जाते हैं।

208. निदेश 66 (4)।

को तब तक गोपनीय माना जाता है जब तक उसे सभा पटल पर नहीं रख दिया जाता।[209]

कार्यवाही सारांश का सभा पटल पर रखा जाना : बैठकों के कार्यवाही सारांश सभा पटल पर रखे जाने संबंधी प्रक्रिया समिति के कार्य के स्वरूप के अनुसार अलग-अलग है। कार्य मंत्रणा समिति, सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति और संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति का कार्यवाही सारांश सभा पटल पर नहीं रखा जाता। सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, याचिका समिति और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के मामले में एक सत्र में हुई बैठकों के कार्यवाही सारांश, सत्र की समाप्ति से पूर्व समिति के सभापति या, उसकी अनुपस्थिति में, किसी अन्य सदस्य द्वारा सभा पटल पर रख दिये जाते हैं।[210] यदि इनमें से किसी भी समिति की बैठकें उस समय होती हैं जबकि लोक सभा का सत्र न हो रहा हो, तो उन बैठकों का कार्यवाही सारांश अगले सत्र में सबसे पहले सुविधानुसार अवसर पर सभा पटल पर रख दिया जाता है।[211] जहां तक विशेषाधिकार समिति, लोक लेखा समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति और विधेयकों संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समितियों का संबंध है, इनकी बैठकों का कार्यवाही सारांश समिति के सम्बद्ध प्रतिवेदन का अंग बनता है और जब वह प्रतिवेदन सभा पटल पर रखा जाता है या सभा में पेश किया जाता है तो उसे प्रतिवेदन के साथ ही लगा दिया जाता है।[212] जहां तक प्राक्कलन समिति का संबंध है, उसकी बैठकों के कार्यवाही सारांश संगत प्रतिवेदन पेश किये जाने के बाद यथाशीघ्र सभा पटल पर रखे जाते हैं।[213] नियम समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश को उपाध्यक्ष,

---

209. निदेश 66 (5)।

210. आंतरिक नियमों का नियम 11 (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति); आंतरिक नियमों का नियम 13 (1) (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति); आंतरिक नियमों का नियम 10 (1) (याचिका समिति) और आंतरिक नियमों का नियम 8 (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति)।

211. आन्तरिक नियमों का नियम 13(2) (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति) और आन्तरिक नियमों का नियम 10 (2) (याचिका समिति)।

212. आन्तरिक नियमों का नियम 8 (विशेषाधिकार समिति); पहला प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा) पृ. 39, पैरा 71; आंतरिक नियमों का नियम 8 (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति); आंतरिक नियमों का नियम 11 (लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति); और आंतरिक नियमों का नियम 9 (प्रवर संयुक्त समितियां)।

213. आंतरिक नियमों का नियम 17 (प्राक्कलन समिति)।
1958-59 से प्राक्कलन समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश प्रतिवेदनवार या अनेक प्रतिवेदनों को मिलाकर या मंत्रालयवार, जैसे भी सुविधाजनक हो, संकलित किये जाते हैं और प्रत्येक प्रतिवेदन या प्रतिवेदनों से तत्सम्बन्धी प्रतिवेदन या प्रतिवेदनों के सभा में पेश किये जाने के बाद उन्हें अलग से दस्तावेज के रूप में सभा पटल पर रखा जाता है। वर्ष 1958-59 से

यदि वह समिति का सदस्य हो, द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी सदस्य द्वारा उसके प्रतिवेदन के सभा पटल पर रखे जाने के तत्काल बाद पटल पर रखा जाता है।[214] अथवा जब इसे सभा पटल पर रखा जाता है तो कार्यवाही सारांश को सुसंगत प्रतिवेदन के साथ ही लगा दिया जाता है। सामान्यत: उस दिन की कार्य-सूची में इसकी एक प्रविष्टि की जाती है, जिस दिन किसी समिति की बैठकों का कार्यवाही सारांश सभा पटल पर रखा जाता हो।[215]

समितियों के प्रतिवेदन

किसी समिति का प्रतिवेदन प्रारम्भिक या अन्तिम हो सकता है।[216] यदि कोई समिति उचित समझे, तो किसी ऐसे विषय के संबंध में, जो उसके कार्य के दौरान प्रकाश में आये और जिसके संबंध में समिति यह समझे कि उसे अध्यक्ष या सभा के सामने लाना आवश्यक है, वह एक विशेष प्रतिवेदन दे सकती है, चाहे वह विषय उसके निदेश पदों से प्रत्यक्षत: संबंधित न हो, या उनके अंतर्गत न आता हो, या उनसे आनुषंगिक न हो।[217]

प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय-सीमा

स्थायी समितियां सामान्यत: अपना प्रतिवेदन, यथास्थिति, सभा या अध्यक्ष को समय-समय पर प्रस्तुत करती हैं।[218]

पहले प्रथा यह थी कि समिति की जितनी बैठकें एक वर्ष में होती थीं, उनके कार्यवाही सारांश इकट्ठे कर लिये जाते थे और उन्हें सुविधाजनक खंडों में अलग-अलग छापा जाता था और समिति के सभी संगत प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् उन्हें सभा में प्रस्तुत किया जाता था।

214. आन्तरिक नियमों का नियम 7 (नियम समिति)।

215. निदेश 67 (2)।

216. नियम 277 (2)।

1961 में *ब्लिट्ज* मामले में विशेषाधिकार समिति ने सभा को अपना अंतिम प्रतिवेदन देने से पहले एक प्रारंभिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। बारहवां और तेरहवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा)।

217. नियम 276 ।

एक सदस्य के आचरण के संबंध में (*मुद्गल मामला* 1951) समिति ने दो विशेष प्रतिवेदन अध्यक्ष महोदय को पेश किए थे।

लोक लेखा समिति ने विभिन्न उपकर निधियों के कार्यकरण के संबंध में दो विशेष प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किए थे। 19वां और 20वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-दूसरी लोक सभा)।

218. निदेश 68(1)।

सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति, आवास समिति और सदस्यों के वेतन तथा भत्ते संबंधी संयुक्त समिति का काम ही ऐसा है कि वे औपचारिक रूप से कोई प्रतिवेदन अध्यक्ष या सभा को

जब कोई विषय सभा द्वारा किसी समिति को सौंपा गया हो और सभा ने समिति द्वारा प्रतिवेदन पेश करने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित न की हो, तो उस समिति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उस तिथि से, जिसको वह मामला उसे सौंपा गया हो, एक महीने के अंदर अपना प्रतिवेदन सभा के सामने पेश करे।[219]

प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय का बढ़ाया जाना

यदि किसी समिति को ऐसा लगे कि उसके लिए निश्चित तिथि तक अपना प्रतिवेदन सभा के समक्ष पेश करना संभव नहीं है तो वह अपने सभापति या उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी अन्य सदस्य को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय बढ़ाने के लिए सभा में प्रस्ताव पेश करने के लिए प्राधिकृत करती है।[220] तत्पश्चात् इस प्रकार प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा सभा में एक प्रस्ताव रखा जाता है और जिस तिथि तक समय बढ़ाये जाने की प्रार्थना की गई है, उसका इस तर्कसंगत कल्पना के आधार पर उस प्रस्ताव में विशेष उल्लेख कर दिया जाता है कि उस तिथि को सभा का सत्र हो रहा होगा। यदि प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित तिथि को सभा का सत्र नहीं चल रहा हो या निर्धारित तिथि के बाद तक सभा के पुनः समवेत होने की सम्भावना न हो, तो समिति का सभापति, समिति द्वारा प्राधिकृत किये जाने पर, अध्यक्ष से प्रार्थना करता है कि वह सभा की ओर से, प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के लिए समय बढ़ा दें।[221] जब अध्यक्ष सभा की ओर से इस प्रकार समय बढ़ाता है तो वह सभा के पुनः समवेत होने के यथाशीघ्र बाद सभा को इसकी सूचना देता है।[222] जहां तक दोनों सदनों की संयुक्त समितियों का संबंध है, यदि अध्यक्ष सभा की ओर से समय बढ़ाने की अनुमति देता है तो राज्य सभा को एक संदेश भेजा जाता है, जिसमें उसे अध्यक्ष द्वारा समय बढ़ाये जाने की सूचना दी जाती है।[223]

नहीं देतीं। संसद की दूसरी स्थायी समितियां सामान्यतः अपने प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत करती हैं। जहां तक विशेषाधिकार समिति का संबंध है, यदि विशेषाधिकार का कोई प्रश्न अध्यक्ष ने नियम 227 के अंतर्गत सौंपा हो, तो उसके संबंध में प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत किया जाता है जो उस पर अंतिम आदेश दे सकता है या यह निदेश दे सकता है कि उसे सभा पटल पर रखा जाए *देखिए* पहले से सातवां और दसवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा)।

219. नियम 277(1) ।
220. नियम 277(1) परन्तुक।
221. उदाहरणार्थ, अध्यक्ष ने सभा की ओर से सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1955 संबंधी संयुक्त समिति और नागरिकता विधेयक, 1955 संबंधी संयुक्त समिति के मामले में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय बढ़ाया था।
222. उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.,* 21.11.1955, कॉ. 5 ।
223. उदाहरण के लिए *देखिए, एल.एस. डिबेट्स,* 22.11.1955, कॉ. 181-82 ।

प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करना और उसका परिचालन

समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश के आधार पर सचिवालय द्वारा समिति का प्रारूप प्रतिवेदन तैयार किया जाता है।[224] उसमें समिति के विचार-विमर्श के सार और उसकी सिफारिशें समाविष्ट की जाती हैं। किसी विधेयक सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में उस विषय पर अध्यक्ष द्वारा जारी निदेश में निर्धारित तरीके से प्रारूप प्रतिवेदन तैयार किया जाता है।[225] जब किसी समिति ने साक्ष्य लिया हो, तो इस बात का उल्लेख विशेष रूप से समिति के प्रतिवेदन में किया जाता है।[226] जब किसी विधेयक सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समिति को विधेयक के बारे में कोई याचिका, अभ्यावेदन या ज्ञापन प्राप्त होते हैं तो प्रतिवेदन में ऐसे दस्तावेजों की संख्या, उनका विवरण और उनके सम्बन्ध में समिति द्वारा की गई कार्यवाही के बारे में बताया जाता है।[227]

सचिवालय द्वारा तैयार किया गया प्रारूप प्रतिवेदन समिति के सभापति के समक्ष अनुमोदनार्थ प्रस्तुत किया जाता है।[228]

समिति के सभापति द्वारा प्रारूप प्रतिवेदन को अनुमोदित किए जाने के बाद उसकी साइक्लोस्टाइल्ड या प्रूफ प्रतियां उससे सम्बन्धित दस्तावेजों के साथ, सभापति के निदेशानुसार

224. निदेश 68 (2)।

225. निदेश 84 ।

226. निदेश 70 (1)।

जहां तक प्राक्कलन समिति और लोक लेखा समिति का संबंध है, उनकी बैठकों के कार्यवाही सारांश में सदस्यों के नामों के नीचे उन साक्षियों के नाम लिखे जाते हैं, जिन्होंने समिति के सामने साक्ष्य दिया हो।

किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में जब संघ, सार्वजनिक निकाय और व्यक्ति आदि समिति के सामने साक्ष्य देते हैं, तो इस बात का उल्लेख प्रतिवेदन में किया जाता है। प्रतिवेदन के साथ जो परिशिष्ट लगाया जाता है, उसमें उन संघों आदि के नाम और वे तिथियां दी जाती हैं जब समिति के समक्ष साक्ष्य दिया गया हो।

227. निदेश 83 ।

उदाहरण के लिए *देखिए* बैंककारी कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1955; भारतीय विद्युत (संशोधन) विधेयक, 1958 और आयुध विधेयक, 1958 के सम्बन्ध में संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन ।

228. निदेश 68 (2) विधेयकों सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समितियों के मामले में प्रारूप प्रतिवेदन पहले बैठकों में उपस्थित होने वाले प्रारूपकार और मंत्रालय के उन प्रतिनिधियों को जिन्होंने समिति की बैठकों में भाग लिया हो, तथ्यों के सत्यापन कर इसे वापिस करने के लिए भेजा जाता है—*देखिए* इसी अध्याय में 'विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां' उपशीर्षक के अन्तर्गत ।

प्रारूप प्रतिवेदन पर समिति द्वारा विचार किए जाने के लिए निश्चित तिथि से काफी पहले समिति के सदस्यों को परिचालित की जाती हैं।[229]

समिति द्वारा प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार और उसे स्वीकार किया जाना

प्रारूप प्रतिवेदन पर समिति द्वारा विचार करने के लिए समिति द्वारा निश्चित की गयी तिथि पर[230] सभापति प्रारूप प्रतिवेदन के प्रत्येक पैरा को पढ़ता है और प्रत्येक पैरा के बाद समिति के सामने यह प्रस्ताव रखता है, "कि यह पैरा प्रतिवेदन का अंग बने"[231] यदि कोई सदस्य प्रतिवेदन के किसी अंश पर इस आधार पर आपत्ति करता है कि यह समिति द्वारा किये गये निर्णय के अनुकूल नहीं है, तो वह उसमें संशोधन का सुझाव दे सकता है। यदि समिति उस संशोधन को स्वीकार कर ले, तो उसे प्रतिवेदन में शामिल कर लिया जाता है।[232]

प्रतिवेदन को समिति द्वारा स्वीकार करने के बाद सभापति समिति की ओर से उस पर हस्ताक्षर करता है। यदि सभापति अनुपस्थित हो या आसानी से उपलब्ध न हो, तो समिति अपने किसी और सदस्य को चुन सकती है, जो उसकी ओर से प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर करता है।[233]समिति प्रतिवेदन को सभापति द्वारा और उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी अन्य

---

229. निदेश 69 (1)—समिति द्वारा जांच किए गए किसी विधेयक संबंधी प्रारूप प्रतिवेदन के परिचालन सम्बन्धी प्रक्रिया के लिए *देखिए* 'विधेयकों सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समितियां' उपशीर्षक के अन्तर्गत। बोफोर्स सौदे की जांच करने संबंधी संयुक्त समिति ने 15 अप्रैल, 1988 को हुई अपनी बैठक में निर्णय लिया कि विचाराधीन विषय की संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए प्रारूप प्रतिवेदन की प्रतियां सदस्यों को अग्रिम रूप से भेजने की आवश्यकता नहीं है। इसके बजाय सदस्यों द्वारा प्रतिवेदन का अध्ययन समिति कक्ष में ही किया जाए और इस प्रयोजनार्थ समिति की एक बैठक रखी जाए। तद्नुसार, प्रारूप प्रतिवेदन की प्रतियां सदस्यों को 21 अप्रैल, 1988 को हुई समिति की बैठक में समिति कक्ष में परिचालित की गईं। कार्यवाही सारांश (बोफोर्स सौदे संबंधी संयुक्त समिति), 15.4.1988 और 21.4.1988 ।

230. जहां तक कार्य-मंत्रणा समिति या सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति के प्रतिवेदनों का सम्बन्ध है, उनके सभापति द्वारा अनुमोदित होने के बाद उन्हें समिति के सामने रखे बिना सीधे सभा में प्रस्तुत कर दिया जाता है।

     उसी प्रकार नियम समिति के प्रतिवेदन अध्यक्ष द्वारा अनुमोदित होने के बाद, जो समिति का पदेन सभापति होता है, नियम 331 के अन्तर्गत सभा पटल पर रख दिए जाते हैं।

231. निदेश 69(2) ।

232. *पूर्वोक्त* ।

233. नियम 277(3) और निदेश 71 ।

     इस उपबन्ध का कारण यह है कि ऐसा हो सकता है कि कुछ ऐसे अवसर आयें जब समिति के सभी सदस्य उस समय उपस्थित न हों जब प्रतिवेदन को अन्तिम रूप दिया जाये। इसके अतिरिक्त समिति में सभी बातों का निर्णय बैठक में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाता है और इसलिए सभापति ही सबसे उपयुक्त व्यक्ति है जो समिति द्वारा किये गये निर्णयों का प्रमाणीकरण करे और समिति की ओर से प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।

सदस्य द्वारा सभा में प्रस्तुत किये जाने की तिथि भी निश्चित करती है।

कार्यवाही सारांश/विमत-टिप्पण

संसदीय समितियों के प्रतिवेदन उन निर्णयों पर आधारित होते हैं, जो उनमें उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किये जाते हैं।[234] विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों को छोड़कर[235] समितियों के प्रतिवेदनों के साथ विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों के कार्यवाही सारांश/विमत-टिप्पण संलग्न नहीं किए जाते।[236] इसका कारण यह है कि

---

234. नियम 261 ।

235. विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन के साथ विमत-टिप्पण लगाए जाने के संबंध में ब्यौरे के लिए *देखिए,* इसी अध्याय में 'विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां' शीर्षक के अंतर्गत।

236. निदेश 68(3) ।

एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (*मुद्गल मामला,* 1951) के मामले में कुछ सदस्यों को, जो समिति के प्रतिवेदन से अन्यथा सहमत थे, समिति ने इस बात की अनुमति दे दी कि प्रतिवेदन के साथ अपनी टिप्पणियां, जो कि विमत-टिप्पण से भिन्न हैं, लगा दें। इन टिप्पणियों में संसद सदस्यों के आचरण के मामलों के संबंध में सामान्य प्रश्न की चर्चा की गयी थी—एक सदस्य के आचरण संबंधी समिति (*मुद्गल मामला,* 1951) का प्रतिवेदन।

उसी तरह *देशपांडे मामला,* 1952 के संबंध में विशेषाधिकार समिति ने अपने कुछ सदस्यों को अपने प्रतिवेदन के साथ टिप्पणी लगाने की अनुमति दी। उसमें यह कहा गया था कि जब सभा का सत्र चल रहा हो, तो सदस्यों को निवारक निरोध अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तारी से उन्मुक्ति दी जानी चाहिए। उसमें यह भी कहा गया था कि दिल्ली का जिला मजिस्ट्रेट अध्यक्ष को भ्रममूलक जानकारी देने का दोषी है—*देशपांडे मामला,* 1952 के संबंध में विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन।

बोफोर्स सौदे की जांच संबंधी संयुक्त समिति के मामले में, समिति द्वारा प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार के दौरान एक सदस्य ने यह जानना चाहा कि क्या वह प्रतिवेदन में टिप्पणी/विमत-टिप्पण शामिल कर सकते हैं। सभापति ने टिप्पणी की कि निदेश 68 के उपबन्धों के अनुसार प्रतिवेदन में कोई विमत-टिप्पण शामिल नहीं किया जा सकता। तत्पश्चात् सदस्य ने अध्यक्ष को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने सभापति को यह निदेश देने का अनुरोध किया कि उस सदस्य अथवा अन्य किसी सदस्य का 'विमत-टिप्पण' यदि कोई हो, शामिल किया जाए। इस पर अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि सदस्य के टिप्पण को प्रतिवेदन में शामिल किया जाए। सदस्य को 25 अप्रैल, 1988 को 13.00 बजे तक अपना टिप्पण प्रतिवेदन में शामिल कराने हेतु देने के लिए कहा गया; अध्यक्ष के कार्यकाल में उक्त टिप्पण 25 अप्रैल, 1988 को 10.55 बजे प्राप्त हुआ। समिति ने उसी दिन हुई अपनी बैठक में उक्त टिप्पण पर विचार किया और अध्यक्ष के निदेशानुसार समिति के प्रतिवेदन को स्वीकृत करने के पश्चात् सदस्य से प्राप्त टिप्पण को 'पश्च लेख' के रूप में शामिल करने का निर्णय किया। *देखिए,* बोफोर्स सौदे की जांच करने संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन।

समितियां सभा की ओर से कार्य करती हैं, इसलिए वे एक इकाई के रूप में काम करती हैं, और जहां तक संभव हो, उनके निर्णय सर्वसम्मति से होते हैं, यद्यपि उनके सदस्य विभिन्न दलों के होते हैं। जब किसी समिति में किसी विषय पर सर्वसम्मति न हो, तो बहुमत से ही निर्णय किया जाता है। यदि किसी विमत-टिप्पण देने की अनुमति दी जाती है, तो इस बात की संभावना है कि समितियों में विषयों का निर्णय दलगत आधार पर होगा।[237] इसके अतिरिक्त इससे सदस्यों का अपना रवैया और कड़ा हो सकता है और उन्हें समझौता करने के लिए कोई प्रेरणा शेष नहीं रहती। समिति के प्रतिवेदन में बहुमत व अल्पमत के विचार अलग-अलग दिये जायें तो इससे न केवल उनसे समिति की सिफारिशों का प्रभाव कम हो जायेगा, बल्कि कार्यपालिका पर उन सिफारिशों का प्रभाव कम पड़ेगा जिसे उन सिफारिशों को कार्यरूप में परिणत करना है। इसके विपरीत, किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में, जो विधेयक उसे सौंपा जाता है, उस पर सभा, समिति के प्रतिवेदन के साथ पुनः विचार करती है। सभा प्रतिवेदन में समाविष्ट सभी विचारों पर विचार करती है और फिर भी उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह समिति की सिफारिशों के बावजूद स्वतन्त्र रूप से किसी निष्कर्ष पर पहुंचे।

प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत करने से पहले सरकार को उपलब्ध कराना

सामान्यतः किसी समिति के प्रतिवेदन का कोई अंश, प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत किए जाने या सभा पटल पर रखे जाने से पहले किसी ऐसे व्यक्ति को न तो बताया जा सकता है और न दिखाया जा सकता है, जो समिति का सदस्य न हो।[238] तथापि, समिति यदि उचित समझे, तो तथ्यों के सत्यापन के लिए अपने प्रतिवेदन का कोई भी पूर्ण किया गया अंश सभा में उसे प्रस्तुत किये जाने से पहले, सरकार को दिखा सकती है।[239] किसी मंत्रालय या विभाग को ऐसा प्रतिवेदन भेजते समय उससे कहा जाता है कि जब तक प्रतिवेदन को अन्तिम रूप

---

237. वित्तीय समितियों के मामले में सदस्यों के भिन्न विचार इन समितियों के कार्यवाही सारांश में शामिल किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, *देखिए,* राज्य व्यापार निगम के संबंध में 86वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति—दूसरी लोक सभा) और पुनर्वास मंत्रालय के संबंध में 89वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति—दूसरी लोक सभा)।

238. नियम 275 और निदेश 55 ।

239. नियम 278 ।

लोक लेखा समिति के प्रतिवेदनों की अग्रिम प्रतियां सामान्यतः सरकार को नहीं भेजी जातीं। इस नियम के दो अपवाद हुए हैं, जब 6वां और 8वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति—पहली लोक सभा) सम्बद्ध मंत्रालयों को, उन प्रतिवेदनों के सभा में प्रस्तुत किये जाने से एक दिन पहले भेजा गया था।

जहां तक प्राक्कलन समिति का संबंध है, प्रारूप प्रतिवेदन की अग्रिम प्रतियां, जिन पर "गुप्त" लिखा रहता है, सम्बद्ध मंत्रालय या विभाग या उपक्रम को तथा वित्त मंत्रालय के प्रत्यापित प्रभाग को तथ्यों के सत्यापन के लिए भेजी जाती हैं।

न दे दिया जाए और सभा में प्रस्तुत न कर दिया जाए, तब तक वह उसकी बातों को "गोपनीय"/ "गुप्त" रखे।[240]

सभा या अध्यक्ष को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाना

जब किसी समिति का प्रतिवेदन सभा को प्रस्तुत किया जाना हो, तो उसके सम्बन्ध में उस दिन की कार्य-सूची में सामान्यत: इस बात की प्रविष्टि की जाती है। समिति का प्रतिवेदन सामान्यत: उसके सभापति द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में, समिति के किसी दूसरे सदस्य द्वारा, जिसे समिति ने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु प्राधिकृत किया हो, सभा में प्रस्तुत किया जाता है और प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय वह अपने आपको संक्षिप्त तथ्य कथन तक सीमित रखता है। इस अवसर पर उस कथन या प्रतिवेदन पर कोई वाद-विवाद नहीं होता।[241] संयुक्त समिति के मामले में, उसके प्रतिवेदन की प्रति लोक सभा के साथ-साथ राज्य सभा में भी, राज्य सभा के ऐसे सदस्य द्वारा, जो समिति में हो और जिसे समिति ने अधिकार दिया हो, सभा पटल पर रखा जाता है।

यदि कोई समिति अपने प्रतिवेदन का काम उस समय पूरा करे, जब सभा का सत्र न चल रहा हो, तो वह अपने सभापति को इस बात का अधिकार दे सकती है कि वह उसका प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत कर दें।[242] उपयुक्त मामलों में, समिति अध्यक्ष से विशेष रूप से यह प्रार्थना कर सकती है कि तथ्य संबंधी मामलों या स्पष्ट रूप से हुई गलतियों को ठीक करने का निदेश दे दिया जाए और उसके बाद ही वह प्रतिवेदन मुद्रित हो, प्रकाशित हो या परिचालित किया जाए और बाद में सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।[243] किसी समिति का जो प्रतिवेदन उस समय अध्यक्ष को प्रस्तुत किया जाए, जब सभा का सत्र न चल रहा हो, तो वह अगले सत्र में पहले सुविधाजनक अवसर पर सभापति द्वारा या, उसकी अनुपस्थिति में

प्राक्कलन समिति के प्रारूप प्रतिवेदन, जो एक से अधिक मंत्रालयों से संबंधित हों, सामान्यत: वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) को भेजे जाते हैं क्योंकि यह विभाग तालमेल रखने का काम करता है।

240. नियम 278 ।

241. नियम 279(2) ।

242. निदेश 71(क)(1)।

प्राक्कलन समिति ने 22.12.1956 को 45वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति—पहली लोक सभा) को स्वीकार किया। चूंकि उस समय सभा का सत्र नहीं हो रहा था और सभा के मार्च, 1957 तक पुन: समवेत होने की आशा नहीं थी, इसलिए सभापति ने वह प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत किया। जिन्होंने उस प्रतिवेदन के प्रकाशन और सदस्यों को परिचालित किए जाने का आदेश दिया—समाचार-भाग 2, 5.2.1957, पैरा 567 ।

243. निदेश 71क(4)।

समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा सभा को प्रस्तुत किया जाता है।[244] जो प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय इस बारे में संक्षिप्त वक्तव्य देता है कि प्रतिवेदन अध्यक्ष को उस समय प्रस्तुत किया गया जब सभा का सत्र नहीं चल रहा था, और जब अध्यक्ष ने इसके मुद्रण, प्रकाशन और परिचालित करने के आदेश दिये हों, तो इस तथ्य का उल्लेख सभा में किया जाता है।[245]

यदि किसी प्रतिवेदन के अध्यक्ष को प्रस्तुत किए जाने के बाद सभा में इसके प्रस्तुत किये जाने से पूर्व लोक सभा विघटित हो जाती है, तो उसकी प्रति महासचिव द्वारा नयी सभा के पटल पर रखी जाती है। प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखते समय महासचिव इस बारे में एक वक्तव्य देता है कि यह प्रतिवेदन लोक सभा के विघटित होने से पूर्व अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। यदि अध्यक्ष ने आदेश दिया हो कि प्रतिवेदन का मुद्रण, प्रकाशन और परिचालन किया जाए, तो इस तथ्य का उल्लेख भी महासचिव द्वारा सभा में किया जाता है।[246] लोक लेखा समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति या संयुक्त समिति के प्रतिवेदनों की एक-एक प्रति लोक सभा के साथ-साथ राज्य सभा के पटल पर रखी जाती है।

समितियों के प्रतिवेदन और सभा

यह सभा की इच्छा पर है कि वह उसे प्रस्तुत प्रतिवेदनों में किसी पर भी चर्चा करे, परन्तु वास्तव में कुछ समितियों के प्रतिवेदनों के संबंध में कुछ परिपाटियों का पालन किया जाता है और अन्य समितियों के संबंध में नियमों का। सभा द्वारा संसदीय समितियों के प्रतिवेदनों पर जो कार्यवाही की जाती है या नहीं की जाती, उसके संदर्भ, में संसदीय समितियों के प्रतिवेदनों को मोटे तौर पर चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

प्रतिवेदन जिन पर चर्चा नहीं होती;

प्रतिवेदन जिन पर सदा चर्चा होती है;

प्रतिवेदन जिन पर चर्चा की जाती है और उसे स्वीकार कर लिया जाता है; और

प्रतिवेदन जिन पर चर्चा हो भी सकती है और नहीं भी ।

प्रतिवेदनों की इन श्रेणियों पर क्रमानुसार नीचे विचार किया गया है:

प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा नहीं होती

परिपाटी यह है कि निम्नलिखित समितियों के प्रतिवेदनों पर चर्चा नहीं होती:

लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, याचिका समिति, सभा पटल पर

---

244. निदेश 71क(5)। 5वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—छठीं लोक सभा) जो 31 मई, 1979 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया गया, सचिव द्वारा लोक सभा के पटल पर 9 जुलाई, 1979 को रखा गया। *देखिए, लो.स.वा.वि.*, 9.7.1979, पृ. 208 साथ *ही देखिए,* समाचार-भाग 2, 4.7.1979, पैरा 1485 ।

245. निदेश 71क(5)।

246. निदेश 71क(6)।

रखे गये पत्रों संबंधी समिति, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति, महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति तथा विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियां।

इन समितियों के प्रतिवेदनों के संबंध में सभा में चर्चा की अनुमति तभी दी जा सकती है, जब किसी विशिष्ट मुद्दे के संबंध में समिति और सरकार के बीच गम्भीर मतभेद हों। वर्ष 1947 के बाद केवल एक बार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई है।[247]

प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा होती है

विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों के प्रतिवेदनों को औपचारिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता है परन्तु जब उनके द्वारा प्रतिवेदित तत्संबंधी विधेयकों पर विचार किया जाता है, तो उन प्रतिवेदनों पर सदैव चर्चा की जाती है।

विधेयक संबंधी किसी प्रवर या संयुक्त समिति का अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के बाद, विधेयक का प्रभारी सदस्य यह प्रस्ताव करता है कि समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर विचार किया जाए।[248] ऐसे प्रस्ताव पर वाद-विवाद समिति के प्रतिवेदन के विचार तक और उस प्रतिवेदन में निर्दिष्ट विषयों तक या विधेयक के सिद्धांत से सुसंगत किन्हीं वैकल्पिक सुझावों तक ही सीमित रहता है।[249]

प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा होती है और उन्हें स्वीकार किया जाता है

इस श्रेणी में कार्य-मंत्रणा समिति और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति के प्रतिवेदन आते हैं। इन प्रतिवेदनों के संबंध में[250] सभा में ये प्रस्ताव रखे जाते हैं कि सभा प्रतिवेदनों से सहमत है, या संशोधनों सहित सहमत है या उनसे असहमत है और उन प्रतिवेदनों में अन्तर्विष्ट सिफारिशों को सभा द्वारा उन प्रतिवेदनों को स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात् ही कार्यान्वित किया जा सकता है। ऐसे किसी प्रस्ताव पर यह संशोधन प्रस्तुत किया जा सकता है कि प्रतिवेदन या तो बिना किसी परिसीमा के या किसी विशिष्ट मामले के संबंध में संदर्भ दिए बिना वापस भेज दिया जाए। ऐसे प्रस्तावों पर चर्चा के लिए आधे घण्टे से अधिक का समय नियत नहीं किया जाता।

---

247. एक विशिष्ट मामले से संबंधित होने के कारण एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रतिवेदन पर विचार किये जाने के प्रस्ताव के आधार पर लोक लेखा समिति के पचपनवें प्रतिवेदन पर, 22 अगस्त, 1966 को लोक सभा में चर्चा हुई—*देखिए,* इसी अध्याय में, 'लोक लेखा समिति' शीर्षक के अन्तर्गत।

248. नियम 77 ।

249. नियम 78 साथ ही *देखिए एच.पी. डिबेट्स* (II), 25.7.1952, का. 4573 ।

250. नियम 290 और 295 ।

ऐसे प्रतिवेदन जिन पर सभा में चर्चा हो भी सकती है और नहीं भी

इस श्रेणी में विशेषाधिकार समिति, नियम समिति और सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति के प्रतिवेदन आते हैं। इन प्रतिवेदनों पर विचार किए जाने के प्रस्ताव कुछ ही मामलों में प्रस्तुत किए जाते हैं।[251] जहां तक उन तदर्थ समितियों का संबंध है, जो अपने प्रतिवेदन अध्यक्ष अथवा सभा को प्रस्तुत करती हैं, सभा को इस बात की छूट है कि वह चाहे तो उन पर चर्चा करे अथवा न करे।[252] समितियों के जो प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत किए जाते हैं, उन पर तभी चर्चा की जा सकती है जबकि अध्यक्ष ने ऐसे प्रतिवेदनों को सभा पटल पर रखवा दिया हो।

किसी समिति और सरकार के बीच असहमति

सरकार सामान्यतः संसदीय समिति की सिफारिशें स्वीकार कर लेती है और उन्हें कार्यान्वित करती है। यदि किसी सिफारिश के संबंध में सरकार की राय समिति की राय से भिन्न हो, तो सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह समिति को वे कारण बताये, जिनके आधार पर उसने सिफारिश को स्वीकार नहीं किया या कार्यान्वित नहीं किया। फिर, समिति उस विषय पर विचार करती है और यदि आवश्यक समझा जाए तो उस संबंध में एक और प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

> लोक लेखा समिति, 1952-53 के चौथे प्रतिवेदन के संबंध में सरकार ने इस प्रक्रिया का पालन नहीं किया और अपने विचार समिति के सामने रखने से पहले ही 11 अगस्त, 1953 को एक वक्तव्य सभा पटल पर रखा। समिति ने अध्यक्ष से अनुरोध किया कि वह इस संबंध में उसका मार्गदर्शन करे। अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि सभी मंत्रालयों को एक परिपत्र भेजा जाए और उसमें यह कहा जाए कि जिन मामलों में सरकार किसी समिति द्वारा की गयी सिफारिशों को कार्यान्वित करने की स्थिति में न हो, और सरकार के पास समिति की सिफारिश से असहमत होने के कारण हों, तो सुस्थापित प्रक्रिया के अनुसार संबंधित मंत्रालय को अपने विचार समिति के सामने रखने चाहिए और समिति, यदि उचित समझे तो उस विषय के संबंध में सरकार की राय पर विचार करने के बाद एक और प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत कर सकती है।

जब कभी समिति और सरकार के बीच मतभेद दूर न किया जा सके, तो वह मामला मार्गदर्शन के लिए अध्यक्ष को भेज दिया जाता है।

---

251. अधिक जानकारी के लिए इसी अध्याय में संबंधित समिति के अन्तर्गत *देखिए*।

252. बोफोर्स सौदे की जांच करने संबंधी संयुक्त समिति के प्रतिवेदन पर, जो 26 अप्रैल, 1988 को सभा में प्रस्तुत किया गया, सभा में नियम 193 के अन्तर्गत रखे गए एक प्रस्ताव के माध्यम से चर्चा की गई—*लो.स.वा.वि.,* 4.5.1988, पृ. 316-95 तथा पृ. 398-426; 5.5.1988, पृ. 239-90 ।

प्रतिवेदनों का मुद्रण तथा प्रकाशन

किसी समिति का प्रतिवेदन संबंधित दस्तावेजों सहित, यदि कोई हो, सभा या अध्यक्ष को प्रस्तुत किये जाने से पहले या उसके बाद, जैसा सुविधाजनक हो, मुद्रित किया जाता है।[253] सामान्यत: समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किए जाने से पहले मुद्रित किया जाता है। लेकिन यदि इतना समय न हो कि प्रतिवेदन को मुद्रित कराया जा सके, तो उसे साइक्लोस्टाइल या टाइप किये हुए रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।[254] उसके बाद प्रतिवेदन को यथाशीघ्र छापा जाता है। जब तक कोई प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता, उसे गोपनीय माना जाता है।[255] प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत होने के बाद ही वह सार्वजनिक दस्तावेज बनता है।[256]

किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत होने के बाद, टिप्पण अथवा विमत-टिप्पण सहित, यदि कोई हों, और समिति द्वारा प्रतिवेदित विधेयक सहित जनसाधारण की जानकारी के लिए राजपत्र में भी प्रकाशित किया जाता है।[257] जब किसी समिति का प्रतिवेदन अध्यक्ष को उस समय प्रस्तुत किया गया हो, जब सभा का सत्र न चल रहा हो, तो अध्यक्ष से प्रार्थना किये जाने पर वह प्रतिवेदन के मुद्रण, प्रकाशन या परिचालन का आदेश दे सकता है।[258] यदि कोई प्रतिवेदन अध्यक्ष के आदेशानुसार इस प्रकार प्रकाशित या परिचालित किया गया हो, तो इस बात की सूचना सदस्यों को संसदीय समाचार के माध्यम से दी जाती है।[259]

प्रतिवेदनों का परिचालन

प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत किये जाने के बाद, यथाशीघ्र उसकी प्रतियां लोक सभा के सदस्यों, भारत सरकार के मंत्रालयों/विभागों और ऐसे अन्य व्यक्तियों या प्राधिकारियों को परिचालित की जाती हैं, जिनके विषय में समय-समय पर निर्णय लिया गया हो।[260] प्रतिवेदन को सभा में प्रस्तुत किये जाने के तुरन्त बाद उसकी प्रतियां प्रेस संवाददाताओं को भी दे दी

---

253. निदेश 72(1)।

254. विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों के मामले में सामान्य प्रक्रिया यह है कि समिति का प्रतिवेदन सभा में साइक्लोस्टाइल या टाइप किए हुए रूप में उस विधेयक के साथ प्रस्तुत किया जाता है, जिसके संबंध में समिति ने दिया हो। प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत किए जाने के बाद, यथाशीघ्र उसे मुद्रित किया जाता है।

255. निदेश 72 (2)।

256. नियम 369 (2)।

257. नियम 305 ।

258. नियम 280 और निदेश 71क (2)।

259. निदेश 71 क (3); *देखिए* समाचार भाग-2, 5.2.1957, पैरा 567 ।

260. नियम 305 और निदेश 72 (3)।

जाती हैं और जनसाधारण को ये प्रतियां सचिवालय के बिक्री काउण्टर तथा देश भर के अधिकृत विक्रेताओं के माध्यम से उपलब्ध करायी जाती हैं।

विधेयक सम्बन्धी किसी प्रवर या संयुक्त समिति के मामले में, उसके प्रतिवेदन की प्रतियां, समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक की मुद्रित प्रतियों सहित, और अन्य संयुक्त समितियों के प्रतिवेदनों की प्रतियां, राज्य सभा सचिवालय को भी भेजी जाती हैं ताकि वे राज्य सभा के सदस्यों में परिचालित की जा सकें।

यदि किसी समिति का प्रतिवेदन साइक्लोस्टाइल या टाइप किये हुए रूप में सभा को प्रस्तुत किया गया हो, तो उसकी कुछ प्रतियां, सभा में प्रतिवेदन के प्रस्तुत होने के तुरन्त बाद ग्रन्थालय में रख दी जाती हैं जिससे सदस्य चाहें तो उन्हें देख सकें। ऐसे प्रतिवेदन की छपी हुई प्रतियां जैसे ही उपलब्ध होती हैं वे सदस्यों तथा अन्य संबंधित लोगों को परिचालित कर दी जाती हैं। जब कोई प्रतिवेदन अध्यक्ष को उस समय प्रस्तुत किया गया हो जब सभा का सत्र न हो रहा हो और सभा में प्रस्तुत होने से पहले अध्यक्ष के आदेशानुसार मुद्रित तथा परिचालित किया गया हो, तो उसकी प्रतियां सदस्यों को भेजे जाने की तिथि के एक सप्ताह बाद समाचार पत्रों को जारी कर दी जाती हैं।[261]

समितियों के पास लम्बित कार्य पर सत्रावसान का प्रभाव

किसी समिति के पास लम्बित कोई कार्य केवल इस कारण व्यपगत नहीं हो जाता कि सभा का सत्रावसान हो गया है और समिति सत्रावसान के बावजूद काम जारी रखती है।[262] पूर्वकालिक केन्द्रीय विधानमण्डल में भी यद्यपि स्थायी आदेशों में इस संबंध में कोई विशिष्ट उपबन्ध नहीं था, वास्तव में असेम्बली के सत्रावसान के बाद भी समितियों के पास लम्बित प्रत्येक कार्य जारी रहता था। संसद में लम्बित विधेयक उन सभाओं के सत्रावसान पर व्यपगत नहीं होते।[263] जब यह प्रश्न सभा में उठाया गया तो अध्यक्ष ने यह निर्णय दिया कि जो विधेयक संसद में लम्बित हों, उन पर समितियां विचार कर सकती हैं और उनमें वे विधेयक भी शामिल हैं, जिन पर समितियां विचार कर रही हों तथा उनके सम्बन्ध में अपना प्रतिवेदन दे सकती हैं, चाहे उस समय सभा की बैठक न हो रही हो या उसका सत्रावसान कर दिया

261. निदेश 73 ।

67वां और 68वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति—पहली लोक सभा) 29 मार्च, 1957 को अध्यक्ष को प्रस्तुत किया गया और तब तक लोक सभा की बैठक अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित की जा चुकी थी। अध्यक्ष की अनुमति से नियम 280 के अन्तर्गत इन प्रतिवेदनों का मुद्रण कराया गया और लोक सभा के सदस्यों को परिचालित किया गया। सदस्यों को परिचालित किए जाने के एक सप्ताह पश्चात् यह प्रतिवेदन प्रेस को जारी किए गए।

इस प्रथा का उद्देश्य यह है कि सदस्यों को प्रतिवेदनों की प्रतियां प्राप्त होने के पश्चात् ही यह अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध हों।

262. नियम 284 ।

263. अनुच्छेद 107 (3)।

गया हो।[264]

वर्ष 1956 में यह प्रश्न उठा कि क्या कोई ऐसी संसदीय समिति, जिसका किसी विधेयक पर विचार किये जाने से सम्बन्ध नहीं है, सत्रावसान की अवधि के दौरान इस तथ्य के बावजूद अपना कार्य जारी रख सकती है कि जिस सभा की वह समिति है, अर्थात् लोक सभा, उसका सत्रावसान हो गया है। यह मामला महान्यायवादी की राय के लिए उसके पास भेजा गया। उसने निम्नलिखित राय दी:

> जिन समितियों का विधेयकों से सम्बन्ध नहीं है, वे अन्तर सत्रावधि में कार्य कर सकती हैं, यदि प्रक्रिया नियमों में ऐसा उपबंध किया गया हो। इसमें कोई बेमेल बात दिखाई नहीं देती कि जब सभा कार्य न कर सकती हो तो समितियां काम करती रहें। सभा अपने प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत समितियों को कार्य करने का अधिकार दे सकती हैं और इस प्रकार समितियों की कार्य करने की शक्ति तथा प्राधिकार उन्हें सभा से प्राप्त होता है।[265]

पहली लोक सभा की नियम समिति इस राय से सहमत थी और इस विषय में किसी भी प्रकार का संशय न रहने देने और सुस्थापित प्रथा की पुष्टि करने के लिए, जो पूर्वकालिक विधान सभा के प्रारम्भ से ही चली आ रही थी, उसने यह सिफारिश की[266] कि नये नियम बनाये जायें, जिनमें विशिष्ट रूप से यह उपबन्ध किया जाये कि किसी समिति के सामने कोई लम्बित कार्य केवल इस कारण व्यपगत नहीं होगा कि सभा का सत्रावसान हो गया है और समिति ऐसे सत्रावसान के बावजूद अपना कार्य जारी रख सकेगी।[267]

> ब्रिटेन में सभा के सत्रावसान से जो कठोर प्रभाव होते हैं, वे भारत में सत्रावसान पर नहीं बल्कि लोक सभा के विघटन पर होते हैं। ब्रिटेन में, संसद के सत्रावसान और विघटन का लम्बित कार्य पर एक जैसा प्रभाव पड़ता है। परन्तु जहां तक भारत में लम्बित कार्य पर इनके प्रभाव का सम्बन्ध है भारत में पूर्वकालिक केन्द्रीय विधान सभा के प्रारम्भ से ही, सत्रावसान और विघटन के बीच विभेद किया गया है और लम्बित कार्य पर इन दोनों का प्रभाव भिन्न-भिन्न है। सत्रावसान के सम्बन्ध में सदा यह समझा गया है कि इससे सभा के और उसकी समिति के निरन्तर रूप से कार्य करने में कोई बाधा नहीं पड़ती, जबकि विघटन से सभा तथा उसकी समितियां दोनों समाप्त हो जाती हैं।

समितियों का अपूर्ण कार्य

जब कोई समिति अपने कार्यकाल की समाप्ति से पहले या लोक सभा के विघटन के पहले, अपना कार्य पूरा न कर सके तो वह इस बात की सूचना सभा को देती है।[268] ऐसे मामलों में, समिति ने जो भी कोई प्रारम्भिक प्रतिवेदन, ज्ञापन या टिप्पण तैयार किया हो या

264. *एल.एस. डिबेट्स,* 26.7.1956, कॉ. 978-86 ।

265. 8वां प्रतिवेदन (नियम समिति—पहली लोक सभा), पृ. 20-21 ।

266. *पूर्वोक्त* ।

267. नियम 284 ।

268. नियम 285 ।

कोई साक्ष्य लिया हो, तो वह बाद में नई समिति को उपलब्ध कराया जाता है।[269] प्राक्कलन समिति का कार्य लगातार जारी रहने वाला है और इसलिए उसके सम्बन्ध में सामान्य प्रथा यह रही है कि किसी समिति के कार्यकाल के अन्त में जो कार्य बच रहा हो, उसे बाद में आने वाली समिति वहीं से प्रारम्भ करती है जहां पर वह अधूरा छोड़ दिया गया है।[270] इसी प्रकार समितियों के प्रतिवेदन पर सरकार के उत्तरों या भारत सरकार के मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा की गयी कार्यवाही के विवरणों की जांच का कार्य भी लगातार जारी रहने वाला है। किसी समिति का कार्यकाल समाप्त होने के कारण या लोक सभा के विघटन के कारण ऐसा कोई भी जांच कार्य जो अधूरा रह गया हो, उसे बाद में आने वाली समिति वहीं से फिर प्रारम्भ करती है, जहां पहली समिति ने उसे छोड़ दिया हो।[271] उसी प्रकार सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का कार्यकाल समाप्त होने पर जो आश्वासन, वचन पूरा होने से रह जाते हैं उनके संबंध में बाद में आने वाली समिति आगे कार्यवाही करती है और उनके कार्यान्वयन के संबंध में सभा को प्रतिवेदन देती है। जिन आश्वासनों, वचनों तथा प्रतिज्ञाओं को लोक सभा के विघटन तक कार्यरूप में परिणित नहीं किया जाता, उनके संबंध में सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति सामान्य रूप से इस प्रक्रिया का पालन करती है। ऐसे आश्वासनों आदि को चुन लिया जाता है जो सारभूत हों और यथेष्ट लोक महत्व के हों और उन्हें वह समिति सभा में प्रस्तुत किये जाने वाले अपने प्रतिवेदन में सम्मिलित कर लेती है और उनके संबंध में विशिष्ट रूप से सिफारिश करती है कि सरकार उन्हें कार्यान्वित करे।[272] उसके बाद इन आश्वासनों आदि के कार्यान्वयन पर नयी सभा की समिति नजर रखती है।

---

269. *नियम 285*।

270. उदाहरण के लिए *देखिए* 6वां, 7वां और 10वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति–पहली लोक सभा) और 33वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति–दूसरी लोक सभा)।

271. उदाहरण के लिए *देखिए* 86वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति–दूसरी लोक सभा) में की गई सिफारिशों पर सरकार की कार्यवाही के संबंध में 149वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति–दूसरी लोक सभा); 81वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति–दूसरी लोक सभा) में की गयी सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही के संबंध में पहला प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति–तीसरी लोक सभा); 42वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति—दूसरी लोक सभा) जिसमें और बातों के अलावा यह बताया गया है कि समिति के 18वें प्रतिवेदन में की गयी सिफारिशों पर सरकार ने क्या कार्यवाही की और 25वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति–दूसरी लोक सभा) और 7वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति–दूसरी लोक सभा) जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ क्रमशः 16वें प्रतिवेदन और 23वें प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति–पहली लोक सभा) में की कई सिफारिशों के सम्बन्ध में की गई कार्यवाही को दर्शाया गया है।

272. उदाहरण के लिए, *देखिए,* चौथा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति–पहली लोक सभा) और दूसरा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति–दूसरी लोक सभा)।

सामान्यतः संसदीय समितियों के प्रमुख पहलुओं का मोटे तौर पर वर्णन किए जाने के बाद इस अध्याय में लोक सभा और विभागों से सम्बद्ध चौबीस स्थायी संसदीय समितियों की प्रत्येक समिति के गठन, कृत्यों तथा कार्य-विधि के संबंध में भी संक्षेप में चर्चा हुई है।

ख. अलग-अलग समितियां

कार्य-मंत्रणा समिति

कार्य-मंत्रणा समिति में अध्यक्ष और अधिकाधिक 14 अन्य सदस्य होते हैं, जिनका नाम-निर्देशन अध्यक्ष करता है।[273] अध्यक्ष इस समिति का *पदेन* सभापति होता है।

समिति, सामान्य निर्वाचन के बाद नई सभा के प्रारम्भ पर और, उसके बाद, समय-समय पर, नाम-निर्दिष्ट की जाती है। नियमों में इसका कोई कार्यकाल निर्धारित नहीं किया गया है लेकिन अन्य सभी संसदीय समितियों की तरह इसका कार्यकाल तब तक रहता है जब तक कि नई समिति नाम-निर्दिष्ट नहीं कर दी जाती।[274] समिति में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों की पूर्ति समिति के बाकी के कार्यकाल के लिए नये सदस्यों के नाम-निर्देशन द्वारा की जाती है।

> अध्यक्ष मावलंकर का विचार था कि सभा की एक समिति होनी आवश्यक है, जिसे यह काम सौंपा जाए कि वह सरकार के विधायी तथा अन्य कार्यों के लिए समय नियत करे। 28 मार्च, 1951 को सभा के नेता को लिखे अपने पत्र में उन्होंने टिप्पणी की कि वित्तीय विषयों को छोड़कर कार्यों की अन्य विभिन्न मदों के सम्बन्ध में समय नियत करने की कोई प्रक्रिया न होने के कारण वाद-विवाद को सीमित रखने के प्रश्न पर, और विशेषकर उस समय, जब किसी समापन प्रस्ताव, यदि कोई रखा गया हो, को स्वीकार करना पड़ता है तो अध्यक्ष की स्थिति नाजुक हो जाती है। अध्यक्ष मावलंकर ब्रिटेन की उस प्रक्रिया को जिसके अनुसार समय नियतन प्रस्ताव लाया जाता है ठीक नहीं समझते थे।[275] उनका विचार था कि यह बड़ी जटिल प्रक्रिया होगी और इस प्रस्ताव पर बहुत समय लग जाया करेगा। अध्यक्ष ने कहा कि मैं इस बात को अधिक अच्छा समझता हूं कि समय नियत करने का कर्तव्य सभा की एक संचालन समिति को सौंप दिया जाये। सभा के नेता ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया।[276] और तद्नुसार ऐसी समिति बनाने के लिए नियम बनाये गये।

---

273. नियम 287 ।

274. नियम 256 ।

275. इंग्लैंड में यह प्रक्रिया है कि जब संसद के पास इतना समय न हो कि वह सारे विधानों पर विचार कर सके तो विधेयकों के संबंध में एक 'समय-नियतन' प्रस्ताव सभा के सामने चर्चा के लिए रखा जाता है और जब सभा उसे स्वीकृत कर देती है तो अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह नियत समय में प्रत्येक विधेयक को निपटाने के लिए आवश्यक प्रस्ताव सभा के सामने रख सकें।

276. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 15.5.1951 ।

समिति की सीमित सदस्य संख्या और सभा में विपक्ष के अनेक समूहों (ग्रुप) को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष के लिए यह सम्भव नहीं होता कि प्रत्येक समूह (ग्रुप) से सदस्यों को नाम-निर्देशित करे। कार्य मंत्रणा समिति की सिफारिशें सभा के सभी सदस्यों को स्वीकार्य बनाने के उद्देश्य से समिति को यथासंभव व्यापक प्रतिनिधित्व देने के लिए इसकी बैठकों में ऐसे दलों, जिनके सदस्यों की संख्या पांच या अधिक है और जिन्हें इस समिति में प्रतिनिधित्व न मिला हो; के नेताओं/प्रतिनिधियों को विशेष आमंत्रिती के रुप में आमंत्रित किया जाता है। इन सदस्यों को समिति की बैठकों में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है। यदि उपाध्यक्ष को समिति में नाम-निर्देशित नहीं किया गया हो, तो अध्यक्ष के विशिष्ट आदेश के अंतर्गत एक विशेष आमंत्रिती के रूप में उसे इसकी बैठकों में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार आमंत्रित सदस्य समिति की चर्चाओं में तो भाग लेते हैं, परन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता और समिति की गणपूर्ति के प्रयोजनों के लिए भी उन्हें नहीं गिना जाता। समिति के किसी सदस्य के मंत्री पद पर नियुक्त होने पर सामान्यतः वह समिति से त्यागपत्र दे देता है, यद्यपि उसके समिति का सदस्य बने रहने पर कोई रोक नहीं है। संसदीय कार्य मंत्री को सदैव समिति में नाम-निर्देशित किया जाता है क्योंकि उसके माध्यम से ही किसी विषय विशेष पर सभा के नेता के विचार समिति को पता चलते हैं।

कृत्य

समिति का काम ऐसे सरकारी विधेयकों के विभिन्न प्रक्रमों तथा अन्य सरकारी कार्यों[277] पर चर्चा के लिए समय नियतन की सिफारिश करना है, जिन्हें अध्यक्ष सदन के नेता के परामर्श से समिति को सौंपे जाने के निदेश दे।[278] तथापि, वास्तव में समिति वित्तीय कार्य अर्थात् बजट, विभिन्न मंत्रालयों के संबंध में अनुदानों की मांगों पर सामान्य चर्चा, वित्त विधेयक और राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद-प्रस्ताव पर चर्चा के लिए भी समय-नियतन की सिफारिश करती है, यद्यपि इन मदों के लिए सदन के नेता के परामर्श से समय नियत करने की शक्ति अध्यक्ष में निहित होती है। उपयुक्त मामलों में समिति यह भी सिफारिश कर सकती है कि किसी विधेयक को विचार के लिए लिये जाने और उसे सीधे पारित करने के बजाय उसे किसी प्रवर समिति या संयुक्त समिति को सौंप दिया जाये।[279]

277. 'अन्य कार्य' की परिभाषा है गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों को छोड़कर बाकी सारा कार्य-लोक सभा अधिसूचना संख्या 783-सी 1/58, राजपत्र असाधारण (1-1), 7.5.1958 ।

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों के लिए समय नियत करने के प्रश्न पर गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति विचार करती है।

278. नियम 288 ।

279. 19वां प्रतिवेदन तथा 20वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति—चौथी लोक सभा)।

सदन की देर तक चलने वाली बैठकों, प्रश्न काल अथवा मध्याह्न भोजनावकाश को समाप्त करने, सभा के स्थगन होने के सामान्य समय के पश्चात् सभा की बैठकें चलाने और अतिरिक्त बैठकें निर्धारित करने/बैठकें रद्द करने से संबंधित सभी प्रस्ताव भी सामान्यत: समिति की सिफारिश के लिए उसके समक्ष रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त समिति की बैठकों का उपयोग सदस्यों द्वारा 'अनियत दिन वाले प्रस्तावों' पर चर्चा के लिए समय के नियत्न या उनके अथवा उनके दल के अन्य सदस्यों द्वारा 'अल्पकालिक चर्चा' के लिए दी गई सूचना को गृहीत करने का सुझाव देने के लिए किया जाता है। तथापि, ऐसे सभी सुझावों पर निर्णय अध्यक्ष द्वारा किया जाता है।

सरकारी कार्य के संबंध में पूर्ववर्तिता का निर्णय सरकार द्वारा किया जाता है।[280] लेकिन कतिपय मामलों में समिति ने कार्य की कुछ मदों को पूर्ववर्तिता देने की सिफारिश की है[281] या यह सुझाव दिया है कि कौन-सी तिथि को और किस समय पर कोई कार्य लिया जाये।[282] अथवा यह सिफारिश की है कि यदि समिति के समक्ष प्रस्तुत किये गये किसी कार्य के निपटान के लिए समय के नियतन के लिए सत्र के दौरान पर्याप्त समय उपलब्ध न हो, तो कार्य की कुछ मदों को स्थगित कर दिया जाये।

समिति ने समय-समय पर स्वप्रेरणा से सरकार से सिफारिश की है कि कोई विशेष विषय सभा में चर्चा के लिए लाया जाये और ऐसी चर्चा के लिए समय नियत करने की सिफारिश भी की है।[283]

---

280. *लो.स.वा.वि.,* (II), 28.11.1955, का. 6112-13; *एल.एस. डिबेट्स,* 29.8.1962, पृ. 2313 ।

281. 26वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पहली लोक सभा); 7वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा)।

282. 47वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पहली लोक सभा); 5वां, छठा और 9वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा); छठा प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा); 5वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-ग्यारहवीं लोक सभा)।

283. कुछ समसामयिक एवम् महत्वपूर्ण विषयों पर समिति की पहल पर चर्चा की गयी; उदाहरणार्थ, परमाणु ऊर्जा का शान्तिमय प्रयोग; सरकार की आर्थिक नीति; सरकार की कृषि नीति; प्रेस आयोग की रिपोर्ट और व्यापार तथा सीमा शुल्क सम्बन्धी सामान्य करार (गैट)-22वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पहली लोक सभा); नई शिक्षा नीति-23वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); पर्यावरण 27वां प्रतिवेदन (कार्य-मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); सती प्रथा का पुन: प्रचलन-42वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); मूल्य वृद्धि-44वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); जनसंख्या वृद्धि-54वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); राष्ट्रीय सांस्कृतिक नीति-एक दृष्टिकोण पत्र-35वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा); राष्ट्रीय आवास नीति-43वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा); भूमंडलीय तापवृद्धि-37वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा); भारत-अमरीका परमाणु समझौता-43वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा)।

कभी-कभी समिति यह सिफारिश भी कर सकती है कि कार्य की किसी मद को सभा द्वारा बिना चर्चा किये निपटाया जाए।[284] समिति किसी विधेयक के लिए सभा द्वारा पहले नियत किये गये समय पर बाद में होने वाली घटनाओं को ध्यान रखते हुए पुनः विचार कर सकती है और इस समय में वृद्धि[285] अथवा कटौती[286] करने की सिफारिश भी कर सकती है।

समिति सदस्यों द्वारा सभा में व्यक्त किये गये विचारों के संदर्भ में विभिन्न मंत्रालयों और विभागों की अनुदानों की मांगों (सामान्य) पर चर्चा एवम् मतदान करने के लिए नियत किये गये समय के संबंध में भी फिर से विचार[287] कर सकती है।

जब कार्य की दो या अधिक मदों के विषय ऐसे हों जिन पर एक साथ चर्चा की जा सकती है तो समिति इन मदों पर सभा में एक साथ चर्चा करने की सिफारिश करती है।[288]

---

284. समाचार-भाग 2, 21.12.1967, पैरा 430; और *लो.स.वा.वि.*, 23.12.1967, पृ. 4425-28; 47वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 54वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 26वां प्रतिवेदन (दसवीं लोक सभा); 13वां प्रतिवेदन (ग्यारहवीं लोक सभा); दूसरा और 19 वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति – पंद्रहवीं लोकसभा)।
285. 30वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पहली लोक सभा); 9वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-तीसरी लोक सभा); 14वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-नौवीं लोक सभा); 18वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा-समिति-नौवीं लोक सभा); और 17वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा)।
286. 45वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पहली लोक सभा); 9वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-नौवीं लोक सभा)।
287. 52वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 9वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-नौवीं लोक सभा)।
288. उदाहरण के तौर पर समिति ने दो अथवा अधिक विधेयकों पर एक साथ संयुक्त चर्चा कराने की सिफारिश की है। [29वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पहली लोक सभा); पहला, 42वां तथा 60वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा); 32वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 5वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 64वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-8वीं लोक सभा); 16वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-नौवीं लोक सभा); 10वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति- 10वीं लोक सभा); 32वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति–14वीं लोक सभा); 33 वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति 15वीं लोक सभा) सांविधिक संकल्प और विधेयक 26वां, 35वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा); 48वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 65वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 13वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-नौवीं लोक सभा); 34वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा); 11वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-ग्यारहवीं लोक सभा)]; दो प्रस्तावों [27वां, 29वां, 39वां, 41वां, प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा)]; 23वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); अतिरिक्त अनुदानों की मांगें (सामान्य) और (रेलवे), [32वां प्रतिवेदन

कई बार समिति ने कुछ प्रक्रिया सम्बन्धी विषयों[289] अथवा कुछ विशेष मामलों पर जो समिति के सामान्य कर्तव्यों के अंतर्गत नहीं आते,[290] विचार किया है।

कार्यकरण की पद्धति

प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ होने से कुछ दिन पहले सदन का नेता संसदीय कार्य मन्त्री के माध्यम से सरकार के विधान सम्बन्धी तथा अन्य कार्य का एक कार्यक्रम भेजता है। संसदीय कार्य मंत्रालय से अनुरोध प्राप्त होने पर, अध्यक्ष द्वारा समिति की बैठक हेतु तारीख और समय निश्चित किया जाता है और तदनुसार सभी सदस्यों तथा विशेष आमंत्रित व्यक्तियों को सूचना जारी की जाती है। समिति ऐसे सरकारी विधेयकों, वित्तीय कार्य अथवा सरकारी कार्य की अन्य मदों के लिए समय का नियतन करती है जिनका संसदीय कार्य मंत्री द्वारा उनकी विशिष्ट बैठकों की कार्य सूची के लिए सुझाव दिया जाए।

जब कार्य की किसी मद के संबंध में सम्बन्धित मंत्री की उपस्थिति आवश्यक समझी जाये, तो उसे भी उस बैठक में आने का निमन्त्रण दिया जाता है।[291]

यदि किसी बैठक में आवश्यक गणपूर्ति न हो, तो अध्यक्ष सूचना में बतायी गयी विभिन्न कार्य की मदों पर समय नियत करने के संबंध में अनौपचारिक रूप से उपस्थित सदस्यों की राय ले सकता है और ऐसी स्थिति में समिति, सभा के समक्ष कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि अध्यक्ष सभा को बैठक में उपस्थित सदस्यों की आम राय के बारे में बताता है और वह सभा की आम राय जानने के बाद विभिन्न मदों के लिए समय नियत करता है।[292]

(कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा); 49वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा)] और एक प्रस्ताव तथा एक अल्पकालिक चर्चा (कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा)।

289. उदाहरण के लिए समिति ने निम्नलिखित के लिए प्रक्रिया की सिफारिश की है—
कटौती प्रस्तावों पर सभा में चर्चा का विनियमन, प्रवर समितियों के प्रतिवेदनों पर विमत टिप्पणों का प्रकाशन, सम्पदा शुल्क विधेयक के बारे में संशोधनों का निपटाया जाना, समाचार-भाग 2, 17.4.1953, पृ. 603 ।

290. पाकिस्तान के आक्रमण को ध्यान में रखते हुए 3 सितम्बर, 1965 को समिति ने सुझाव दिया कि रक्षा मंत्रालय सदस्यों को प्रतिदिन जम्मू और कश्मीर की स्थिति के सम्बन्ध में समाचारपत्रों में प्रकाशित समाचारों के अतिरिक्त ताजा स्थिति बताने हेतु एक समाचार बुलेटिन उपलब्ध कराए। मंत्रालय द्वारा ऐसा किया गया और सदस्यों की जानकारी हेतु संसदीय सूचना कार्यालय में इन बुलेटिनों की प्रतियां रखी गयी थीं।

291. उदाहरण के लिए 6 अगस्त, 1962 को रेल मंत्री तथा रेल मंत्रालय में उप-मंत्री भी समिति की बैठक में उपस्थित थे। उस बैठक में रेल दुर्घटनाओं के संबंध में चर्चा कराने के प्रश्न पर विचार किया गया था।

292. *लो.स.वा.वि.,* 4.3.1961, पृ. 1526 ।

समिति उन विधेयकों के लिए विधिवत् समय नियत करने की सिफारिश नहीं करती जिनकी प्रतियां सदस्यों में परिचालित न की गयी हों। कुछ मामलों में, किसी विधेयक की प्रतियां समिति के सदस्यों को उपलब्ध करायी जा सकती हैं, परन्तु उसके पुर:स्थापित होने तक उन्हें उसकी विषय-वस्तु को गोपनीय रखना होता है।[293]

अन्य संसदीय समितियों की तरह यह समिति भी, ऐसे विषय के लिए उप-समितियां बना सकती है, जिस पर व्यापक रूप से विचार करने की आवश्यकता हो।

1962 से चौथी लोक सभा के अन्त तक, अध्यक्ष अनियत दिन वाले प्रस्तावों पर विचार करने हेतु कार्य मंत्रणा समिति की एक उप-समिति की नियुक्ति किया करता था। इस उप-समिति का काम गैर-सरकारी सदस्यों के गृहीत किये गये प्रस्तावों में से ऐसे प्रस्तावों को चुनना और सरकार से यह सिफारिश करना था कि उनमें से कौन से प्रस्ताव सभा में चर्चा के लिए रखे जाने चाहिएं। लेकिन 1971 से इस प्रथा को समाप्त कर दिया गया है।

कुछ अवसरों पर तदर्थ उप-समितियों की नियुक्ति भी की गयी है—उदाहरण के तौर पर विधेयक के खण्डों पर विचार करने के लिए व्यापक कार्यक्रम तैयार करने हेतु विभिन्न विधेयकों के महत्व आदि के संबंध में निर्णय करने के बाद किसी सत्र में लिये जाने वाले विभिन्न विधेयकों तथा अन्य कार्यों के लिए समय नियत करने संबंधी सुझाव देने हेतु अनुपूरक या अतिरिक्त अनुदानों की मांगों के लिए समय नियत करने का सुझाव देने के लिए; पंचवर्षीय योजना पर चर्चा के लिए समय नियत करने का सुझाव देने के लिए; और चर्चा के लिए रखे गये किसी विषय के संबंध में उन मुद्दों को निर्धारित करने के लिए जिन पर वाद-विवाद होना चाहिए (जैसे कि 'सरकार की आर्थिक नीति') ।

उप-समिति की रिपोर्ट पर, सामान्यत: संपूर्ण समिति द्वारा विचार किया जाता है, अथवा विकल्प के तौर पर सारी समिति के सदस्यों को इसकी प्रतियां भेजकर किसी विशिष्ट समय और तिथि तक उन्हें अपनी राय भेजने के लिए कहा जाता है। यदि उस समय के भीतर किसी सदस्य की कोई राय प्राप्त न हो, तो यह मान लिया जाता है कि सारी समिति ने उस रिपोर्ट का अनुमोदन कर दिया है अध्यक्ष के अनुमोदन के बाद या तो वह रिपोर्ट सभा को पेश कर

---

293. परन्तु किसी असाधारण मामले में किसी विधेयक की प्रतियां परिचालित होने से पहले, उसके लिए समय नियत करने की सिफारिश की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर 19 नवम्बर, 1962 को समिति ने दिल्ली मोटरयान कराधान विधेयक और मणिपुर पेट्रोल तथा स्नेहक बिक्री कराधान विधेयक के संबंध में समय नियत करने की सिफारिश की। इन विधेयकों की प्रतियां सदस्यों को परिचालित नहीं की गयी थीं। किसी ऐसे विधेयक के लिए भी समय आवंटित किया जाता है जो दूसरे सदन (राज्य सभा) के विचाराधीन है और जिस पर लोक सभा में विचार किए जाने की संभावना है, 43वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा), 44वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा), 49वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा)।

दी जाती है[294] या समिति की सिफारिशें संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दी जाती हैं।[295] कुछ मामलों में उप समिति की रिपोर्ट सीधे अध्यक्ष को दी गयी है और उस का अनुमोदन होने पर संसदीय समाचार में प्रकाशित की गयी है।[296] जब ऐसा करना उचित समझा जाए तो अध्यक्ष उप-समिति की सिफारिशों के संबंध में सभा में एक घोषणा कर देता है[297] या यह निदेश दे देता है कि वे सिफारिशें संबंधित मंत्री को आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज दी जाएं।[298]

प्रतिवेदन तथा कार्यवाही सारांश

जब अध्यक्ष या समिति को बैठक की अध्यक्षता करने वाले सदस्य द्वारा समिति के प्रतिवेदन का अनुमोदन कर दिया जाता है तो उसे समिति के सामने रखे बिना सभा में प्रस्तुत कर दिया जाता है।

जब अध्यक्ष समिति की किसी बैठक की अध्यक्षता करता है, तो उस प्रतिवेदन पर वही हस्ताक्षर करता है,[299] लेकिन यदि संसदीय कार्य मंत्री उस समिति का सदस्य हो और उस बैठक में वह उपस्थित रहा हो, तो सामान्यत: वह प्रतिवेदन उसके द्वारा या समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा, जो उस बैठक में उपस्थित रहा हो, जिसमें ये निर्णय किये गये थे, सभा में प्रस्तुत किया जाता है।[300]

---

294. 35वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-पहली लोक सभा) तथा *लो.स.वा.वि.,* 11.5.1956, पृ. 3389-91 ।

295. *समाचार-भाग 2,* 19.9.1955, पैरा 2455 और 2456; 1.3.1956, पैरा 2899 ।

296. कम्पनी (संशोधन) विधेयक के विभिन्न खण्डों पर विचार के लिए समय निर्धारित करने के संबंध में 21 नवम्बर, 1960 को उप-समिति द्वारा की गयी सिफारिशें अध्यक्ष ने स्वयं अनुमोदित कर दीं और उन्हें सम्पूर्ण समिति के सामने रखे बिना ही *लोक सभा समाचार में* प्रकाशित कर दिया गया।

297. *समाचार-भाग* 2, 2.9.1953, पैरा 800 ।

298. समिति ने 12.9.1955 को एक उप-समिति नियुक्त की थी, जिसका काम इस बात की जांच करना था कि अनुपूरक अनुदानों की मांगों की पुस्तिका में व्यय का क्या ब्यौरा दिया जाये। उप-समिति का प्रतिवेदन आवश्यक कार्यवाही के लिये वित्त मंत्री को भेज दिया गया।

299. अध्यक्ष समिति के सभापति के रूप में हस्ताक्षर करता है। फरवरी, 1963 तक वह अध्यक्ष के रूप में हस्ताक्षर करता था, यह परिवर्तन एक सदस्य के सुझाव पर किया गया, जबकि 20 फरवरी, 1963 को एक प्रतिवेदन के स्वीकार किए जाने के संबंध में सभा में प्रस्ताव रखा गया था।

300. 18 फरवरी, 1969 को 28वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-चौथी लोक सभा) समिति के एक सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया गया था। क्योंकि मंत्रियों के पदों में फेरबदल के बाद बने नए संसदीय कार्य मंत्री समिति के सदस्य नहीं थे, पर मंत्री ने प्रतिवेदन को स्वीकार किए जाने के लिए 19 फरवरी, 1969 को एक प्रस्ताव किया था क्योंकि नियमों के अंतर्गत कोई भी सदस्य प्रस्ताव रख सकता है। *लो.स.वा.वि.,* 19.2.1969, पृ. 121 ।

यदि किसी बैठक विशेष में अध्यक्ष उपस्थित न हो, तो उपाध्यक्ष बैठक की अध्यक्षता करता है और यदि वह उस समिति का सदस्य हो तो वह उस प्रतिवेदन पर **"सभापति की ओर से"** हस्ताक्षर करता है। यदि उपाध्यक्ष उस समिति का सदस्य नहीं है, तो वह समिति की अध्यक्षता तो कर सकता है; लेकिन प्रतिवेदन पर **"सभापति की ओर से"** हस्ताक्षर[301] बैठक में उपस्थित संसदीय कार्य मंत्री द्वारा या समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा किये जाते हैं।[302]

जब अध्यक्ष का पद, त्यागपत्र दिये जाने, मृत्यु होने या किसी अन्य कारण से रिक्त हो जाता है, तो संविधान के अनुच्छेद 95(1) के अन्तर्गत अध्यक्ष के पद के कृत्यों का निर्वहन नए अध्यक्ष का चुनाव होने तक उपाध्यक्ष करता है। ऐसी स्थिति में अगर उपाध्यक्ष कार्य मंत्रणा समिति का सदस्य नहीं है तो वह समिति की बैठक की अध्यक्षता कर सकता है तथा "सभापति **(पदेन)**" के रूप में प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर[303] करता है।

समिति का प्रतिवेदन सामान्यत: उसी दिन प्रस्तुत किया जाता है जिस दिन समिति की बैठक हुई हो। प्रतिवेदन को प्रस्तुत किये जाने के बारे में कार्य-सूची में प्रविष्टि तभी की जाती है, जबकि प्रतिवेदन को अगले दिन प्रस्तुत किया जाना हो।

जब समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत कर दिया जाता है, तो अगले दिन की कार्य-सूची में समिति के दो सदस्यों के नाम में[304] यह प्रस्ताव रखा जाता है—'कि सभा समिति के प्रतिवेदन से सहमत है'[305] यदि अनुमोदन सरकारी कार्य के लिए समय का नियतन करने से भिन्न अन्य विषयों के संबंध में हो, तो प्रतिवेदन को स्वीकार करने का प्रस्ताव कार्य-सूची में उपाध्यक्ष के नाम में रखा जाता है, बशर्ते कि वह समिति का सदस्य हो।[306]

---

301. 5वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 16वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 34वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 39वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा) और 47वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा)।

302. 47वें प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा) पर हस्ताक्षर उपाध्यक्ष द्वारा किए गए जिन्होंने कार्य मंत्रणा समिति की बैठक की अध्यक्षता की, हालांकि वह विशेष आमंत्रिती थे और कार्य मंत्रणा समिति के सदस्य नहीं थे।

303. तीसरा प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-छठी लोक सभा)।

304. नियम 290 ।

305. सामान्यत: यह संसदीय कार्य मंत्री और संसदीय कार्य मंत्रालय में राज्य मंत्री जो सामान्यत: समिति के सदस्य होते हैं के नाम रखा जाता है।

    संसदीय कार्य मंत्री भीष्म नारायण सिंह को, राज्य सभा का सदस्य होने के कारण समिति की बैठक में विशेष अतिथि के रूप में बुलाया गया था। तथापि समिति के प्रतिवेदन उन्होंने सदन में प्रस्तुत किए थे।

306. *लो.स.वा.वि.,* 11.5.1956, पृ. 3389 ।

जब प्रतिवेदन को उसी दिन सभा में पेश करना संभव न हो जिस दिन समिति की बैठक हुई हो, परन्तु उस प्रतिवेदन को अगले दिन उस कार्य के प्रारम्भ किये जाने से पहले स्वीकार किया जाना आवश्यक हो, जिसके लिए प्रतिवेदन में समय की सिफारिश की गयी है, तो प्रतिवेदन की प्रतियां उसके प्रस्तुत किए जाने से पहले सदस्यों में परिचालित कर दी जाती हैं और प्रतिवेदन अगले दिन सभा में प्रस्तुत कर दिया जाता है और उसके तत्काल बाद प्रतिवेदन को स्वीकार करने के संबंध में प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है।[307] जब परिस्थिति के अनुसार समिति का प्रतिवेदन उसी दिन प्रस्तुत और स्वीकृत किया जा सकता है, जिस दिन समिति की बैठक हुई हो। ऐसे मामले में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने वाला सदस्य प्रतिवेदन पढ़ कर सभा में सुनाता है और उसके स्वीकार होने के बाद उसकी प्रतियां सदस्यों में परिचालित कर दी जाती हैं।[308]

जब सरकारी कार्य के लिए समय आवंटन करने के लिए विचार करने हेतु समिति की बैठक आयोजित करने का समय न हो तो अध्यक्ष सदन की राय जानने के बाद कार्य-सूची में सम्मिलित संबंधित मद के आने पर समय आवंटित कर सकता है।[309]

किसी अविलम्बनीय मामले में, अध्यक्ष समिति की सिफारिशों की घोषणा सभा में करता है और उसके संबंध में सभा की राय ले ली जाती है।[310] यह प्रस्ताव सामान्यत: सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है कि सभा समिति के प्रतिवेदन से सहमत है, तथापि सदस्य चाहे तो कार्य की विभिन्न मदों के लिए नियत समय में, जिसकी सिफारिश की गयी हो, परिवर्तन का सुझाव दे सकते हैं अथवा वे उस प्रस्ताव पर उपयुक्त संशोधन प्रस्तुत करके समिति की किसी अन्य सिफारिश में परिवर्तन करने का भी सुझाव दे सकते हैं।[311] यह संशोधन भी पेश किया जा सकता है कि प्रतिवेदन या तो बिना परिसीमा के या किसी विशेष

---

307. तीसरा प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दूसरी लोक सभा) 15 जुलाई, 1957 को सदस्यों को परिचालित किया गया था जिस दिन समिति की बैठक हुई थी। प्रतिवेदन 16 जुलाई, 1957 को सभा में प्रस्तुत किया गया और उसी दिन स्वीकार किया गया-*लो.स.वा.वि.,* 16.7.1957, पृ. 1699 ।

308. *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1957, पृ. 3074-75 ।

309. *लो.स.वा.वि.,* 5.8.1986, पृ. 214-16 ।

310. *पूर्वोक्त,* 26.3.1957, उसके बाद समय नियतन क्रम को *समाचार-भाग* 2 में प्रकाशित किया गया—26.3.1957, पैरा 4111 ।

311. 4 मई, 1973 को जब एक सदस्य ने पांचवीं लोक सभा की कार्य मंत्रणा समिति के 29वें प्रतिवेदन में आगामी सप्ताह के दौरान चर्चा के लिए 3 अल्पावधि चर्चा प्रस्ताव शामिल करने की मांग करते हुए प्रतिवेदन को स्वीकार किए जाने के प्रस्ताव पर प्रतिस्थापन प्रस्ताव की सूचना दी तो अध्यक्ष द्वारा उसे अस्वीकार किया गया था और सदस्य को तद्नुसार सूचित किया गया था। जब सदस्य ने उस मामले को सभा में उठाना चाहा तो अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया कि समिति द्वारा जिस समय नियतन की सिफारिश की गई है, उसमें परिवर्तन के लिए संशोधन

विषय[312] के संबंध में समिति को वापस भेज दिया जाये, अथवा सभा अन्यथा इसे वापस भेजने के लिए सहमत हो सकती है।[313]

सुस्थापित परम्परा के अनुसार, सामान्यतः इस प्रस्ताव के संबंध में संशोधन प्रस्तुत नहीं किये जाते, यद्यपि कुछ असाधारण मामलों में संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं और उन्हें सभा में मतदान के लिए रखने पर जोर दिया गया है।[314]

ऐसे प्रस्ताव पर चर्चा के लिए आधे घण्टे से अधिक का समय नियत नहीं किया जाता और कोई भी सदस्य ऐसे प्रस्ताव पर पांच मिनट से अधिक समय तक नहीं बोल सकता।[315]

जब सभा प्रतिवेदन को स्वीकार कर लेती है तो विधेयकों तथा अन्य कार्य के संबंध में नियत समय, जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया हो, बिल्कुल वैसे ही लागू होता है जैसे कि सभा का कोई आदेश और इसकी सूचना संसदीय समाचार में अधिसूचित की जाती है।[316] तथापि कार्य की उन मदों के बारे में समय नियतन, संसदीय समाचार में प्रकाशित नहीं किया जाता जिन्हें सभा पहले ही निपटा चुकी है।[317] समय नियत किये जाने के संबंध में जानकारी

का प्रस्ताव दिया जा सकता है किन्तु संशोधनों द्वारा कार्य की नई मदें शामिल नहीं की जा सकतीं और यह कि नई मदों को शामिल करने के सुझाव तब दिए जा सकते हैं जब संसदीय कार्य मंत्री आगामी सप्ताह के कार्य के बारे में वक्तव्य देता है-*देखिए लो.स.वा.वि.,* 17.12.1981, पृ. 193-196 ।

25 अप्रैल 2013 को जब 46 वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति 15 लोक सभा) लोक सभा में 25 अप्रैल, 2013 को प्रस्तुत किए जाने के लिए कार्य सूची में शामिल किया गया तो एक सदस्य ने दो अन्य मदों को चर्चा हेतु शामिल किए जाने के लिए नियम 290 के अंतर्गत सूचना दी। उक्त सूचना अध्यक्ष द्वारा अस्वीकृत कर दी गई और सदस्य को सूचित किया गया चूंकि नियम 290 केवल मदों के लिए समय के आवंटन में संशोधन करने के प्रस्ताव को अनुमति देता है, न कि कार्य की नई मदों को शामिल करने की, और वह भी प्रतिवेदन को स्वीकृत किए जाने के लिए प्रस्ताव पर।

312. नियम 290, पहला परंतुक-*लो.स.वा.वि.,* 3.11.1966, का. 870-71 ।
313. *लो.स.वा.वि.,* 4.12.1967, पृ. 2176-77; 24.7.1968, पृ. 532 ।
314. *एल.एस. डिबेट्स,* 24.7.1956, का. 1688-99; *लो.स.वा.वि.,* 22.11.1960, पृ. 849; 3.11.1966, पृ. 377-81 ।
315. नियम 290, दूसरा परन्तुक; *लो.स.वा.वि.,* 24.4.1963, का. 11087 ।
316. नियम 290क ।
317. 26वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1986, पृ. 221-22 और 47वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-आठवीं लोक सभा); 36वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा); 37वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा); 43वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-दसवीं लोक सभा); तीसरा प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-ग्यारहवीं लोक सभा); 46वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-चौदहवीं लोक सभा); 47वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा); 48वां प्रतिवेदन (कार्य मंत्रणा समिति-14वीं लोक सभा)।

संसदीय समाचार में प्रकाशित होने के बाद, यदि कोई सदस्य किसी प्रकार की विशेष मदों के संबंध में नियत समय बढ़ाने का अभ्यावेदन दे, या उस सम्बन्ध में इस आशय का कोई प्रस्ताव लाये, तो सभा में उस मद के लिए जाने से पहले वह विषय समिति के सामने पुनर्विचार के लिये रखा जा सकता है।

अध्यक्ष विधेयक के किसी विशेष प्रक्रम या अन्य कार्य को पूरा करने के लिए समय के नियतन के आदेश के अनुसार निश्चित समय पर विधेयक के उस प्रक्रम या अन्य कार्य के सम्बन्ध में सभी अवशिष्ट विषयों को निपटाने के लिए प्रत्येक आवश्यक प्रश्न तुरन्त रख सकता है।[318] तथापि अध्यक्ष इस शक्ति का प्रयोग यदा-कदा ही करता है।

समय के नियतन के आदेश में कोई भी परिवर्तन अध्यक्ष की सहमति से प्रस्ताव किये जाने और उसके सभा द्वारा स्वीकार किये जाने के अतिरिक्त नहीं किया जाता है।[319] जब प्रतिवेदन को स्वीकार करते समय सभा ने किसी विधेयक विशेष के संबंध में समय नियत करने के प्रश्न पर अन्तिम निर्णय न किया हो, तो उस विधेयक के संबंध में सभा के निर्णय के अनुसार समय में परिवर्तन किया जा सकता है।

तथापि, अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया है कि वह सभा की राय जानने के बाद कोई प्रस्ताव प्रस्तुत किये बिना समय को एक घण्टे से अनधिक बढ़ा सकता है।[320] परन्तु यदि सरकार को समय बढ़ाने के बारे में कोई आपत्ति न हो,[321] या सभा अपनी बैठक के सामान्य समय के बाद देर तक बैठना स्वीकार कर ले[322] अध्यक्ष एक घण्टे से भी अधिक समय बिना किसी प्रस्ताव के बढ़ा सकता है।

---

318. नियम 291 ।

कार्य की किसी मद पर चर्चा के लिए नियत समय में वह समय भी शामिल है, जो आनुषंगिक चर्चा तथा व्यवस्था संबंधी प्रश्नों आदि पर लगता है-*लो.स.वा.वि.,* 24.8.1955, कॉ. 1953-54; 20.7.1956, पृ. 150 ।

319. नियम 292 ।

320. नियम 292, परन्तुक ।

समय को बढ़ाने के विवेकाधिकार का प्रयोग अध्यक्ष, कार्य की उन मदों के संबंध में नहीं करता है, जिनके लिए नियमों में अधिकतम समय की सीमा निर्धारित है, उदाहरण के लिए नियम 193 के अन्तर्गत होने वाली अल्पकालिक चर्चाएं, नियम 55 के अन्तर्गत होने वाली आधे घण्टे की चर्चाएं आदि। ऐसे मामलों में संगत नियम में समय-सीमा संबंधी विशिष्ट उपबन्ध को निलम्बित करने का प्रस्ताव औपचारिक रूप में प्रस्तुत करना और सभा द्वारा उसका स्वीकार किया जाना आवश्यक है (*लो.स.वा.वि.,* 20.11.1958, पृ. 402-03) बशर्ते सरकार समय की अधिकतम सीमा के बाद भी समय को बढ़ाने के लिए सहमत हो जाए। *लो.स.वा.वि.,* 21.8.1959, पृ. 1845; 22.8.1959, पृ. 1983; 26.8.1969 ।

321. *लो.स.वा.वि.,* 4.4.1960, पृ. 4466; 12.11.1962, पृ. 451; 22.11.1962, पृ. 1348 और 26.11.1962, पृ. 1487 ।

322. *पूर्वोक्त,* 22.3.1960 पृ. 3459-60; *एल.एस. डिबेट्स,* 20.8.1962, कॉ. 2976; 10.11. 962, कॉ. 815-17; *लो.स.वा.वि.,* 2.9.1966, पृ. 144-45 और 8.12.1969, पृ. 162 ।

अन्य संसदीय समितियों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के विपरीत, इस समिति के कार्यवाही सारांश को गोपनीय माना जाता है तथा इसे न तो सभा पटल पर रखा जाता है और न ही इसे समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।[323] जब कोई ऐसा विषय हो, जिसके संबंध में सरकार को कार्यवाही करनी हो और उसका उल्लेख सभा को प्रस्तुत किये गये प्रतिवेदन के बजाय केवल कार्यवाही सारांश में किया गया हो, तो कार्यवाही सारांश के संगत उद्धरण संबंधित मंत्री को भेज दिये जाते हैं।[324] कार्यवाही सारांश की प्रति संसदीय कार्य मन्त्री को भी भेजी जाती है।

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति

भारत के संविधान में संशोधन करने संबंधी विधेयकों को सभा में पुर:स्थापित करने से पूर्व, उनकी जांच करने, गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पुर:स्थापित किये गये सभी विधेयकों का वर्गीकरण करने तथा गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा सभा पटल पर रखे गये ऐसे विधेयकों अथवा संकल्पों पर विचार करने के लिए समय की सिफारिश करने के लिए गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी एक समिति है। इन विधेयकों की अविलम्बनीयता तथा उनके महत्व का निर्णय करने के प्रयोजन से तथा सभा को अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करने से पूर्व, विधेयकों के प्रभारी सदस्यों से यह कहा जाता है कि समिति के विचारार्थ अपने विधेयकों का वर्गीकरण करने के बारे में, यदि उनके कोई विचार हों, तो उन्हें वे लिखित रूप में भेजें, तथा जहां आवश्यक समझा जाता है, संबंधित मंत्रालय के प्रतिनिधियों को, प्रश्नगत विधेयक के उपबन्धों पर अपने विचार प्रस्तुत करने हेतु समिति की बैठकों में आमंत्रित किया जाता है। इस प्रकार समिति इस बात का अधिक अच्छी तरह मूल्यांकन कर सकती है कि विभिन्न विधेयकों का सापेक्ष महत्व क्या है और उनके लिए कितना समय नियत किया जाये।

इस समिति में पन्द्रह से अनधिक सदस्य होते हैं, जो अध्यक्ष द्वारा नाम-निर्देशित किए जाते हैं।[325] समिति के महत्व को देखते हुए उपाध्यक्ष को अनिवार्य रूप से समिति में सदस्य के रूप में शामिल किया जाता है और यथासम्भव सभा में सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को समिति में शामिल किया जाता है।

> 13 मार्च, 1953 को लोक सभा में यह सुझाव दिया गया कि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा जिन विधेयकों की सूचना दी जाती है, उनकी जांच करने के लिए, तथा उनके सापेक्ष महत्व के आधार पर उनका वर्गीकरण करने के लिए, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों

323. अप्रैल, 1961 तक यह प्रथा थी कि समिति की प्रत्येक बैठक के कार्यवाही सारांश, इसके सदस्यों को तथा आमन्त्रितियों को परिचालित किए जाते थे।
324. निदेश 66 (3)।
325. नियम 293 ।

सम्बन्धी एक स्थायी समिति का गठन किया जाये।[326] नियम समिति की उन सिफारिशों के अनुसरण में, जिन्हें सभा ने स्वीकार कर लिया था, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों सम्बन्धी समिति का 1 दिसम्बर, 1953 को गठन किया गया। प्रारम्भ में इसके सदस्यों की संख्या 10 थी। 13 मई, 1954 को इसके सदस्यों की संख्या 10 से बढ़ाकर 15 कर दी गई और इसके कृत्यों में विस्तार करके इसमें गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों को भी शामिल कर लिया गया।[327] तद्नुसार, समिति का नाम गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति कर दिया गया।[328]

समिति का कार्यकाल एक वर्ष है, जो प्रत्येक वर्ष एक जून को प्रारम्भ होता है और अगले वर्ष 31 मई को समाप्त हो जाता है।

कृत्य

इस समिति के कृत्य ये हैं—गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के सभा में पुर:स्थापन के बाद और उन पर विचार होने से पहले, उनके स्वरूप, अविलम्बनीयता और महत्व के आधार पर उनका वर्गीकरण करना, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों के लिए समय के नियतन की सिफारिश करना, संविधान में संशोधन करने वाले गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों की उनके पुर:स्थापन से पहले जांच करना, किसी गैर-सरकारी सदस्य के ऐसे विधेयक की जांच करना, जिसका विरोध सभा में इस आधार पर किया जाए कि उसके माध्यम से जो विधान बनाने का इरादा है वह सभा की विधायी क्षमता से बाहर है, तथा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों के बारे में अन्य ऐसे कृत्य करना जो कि समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा उसे सौंपे जाएं।[329] समिति के कुछ प्रमुख कृत्यों का वर्णन, संक्षेप में निम्नलिखित पैराओं में किया गया है।

विधेयकों का वर्गीकरण

दिसम्बर, 1953 से पहले, अर्थात् समिति की नियुक्ति से पहले गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के पुर:स्थापित होने के बाद, उन्हें ठीक उसी पूर्ववर्तिता के क्रम में विचार तथा पारित किये जाने के लिए रखा जाता था, जो इस प्रयोजन के लिए किये गये बैलेट में उन्हें प्राप्त हो। इस प्रक्रिया के कारण कोई अपेक्षाकृत कम महत्व के विधेयक, जो बैलेट में पूर्ववर्तिता पाया जाता था, गैर-सरकारी सदस्यों का सारा समय ले लेता था और उसके कारण अधिक महत्व के विधेयकों पर विचार नहीं हो पाता था। ऐसी परिस्थितियों से बचने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि समिति का एक कृत्य यह होना चाहिए कि वह प्रारम्भिक चरण

---

326. *पी. डिबेट्स* (II), 13.3.1953, कॉ. 2030-33 ।

327. नियम 294; कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 11.12.1953, पृ. 27 ।

328. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 22.12.1953 ।

329. नियम 294 ।

में ही सभी विधयेकों की जांच करे और कतिपय सिद्धांतों के आधार पर उनका वर्गीकरण करे।

विधेयकों को उनके स्वरूप, अविलम्बनीयता और महत्व के आधार पर दो श्रेणियों अर्थात् श्रेणी 'क' और श्रेणी 'ख' में वर्गीकृत किया जाता है।[330]

समिति ने 6 मार्च, 1954 को अपनी बैठक में निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किये, जिन्हें गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों का वर्गीकरण करते समय ध्यान में रखा जाता है।[331]

कि जनमत को देखते हुए प्रस्तावित विधान की सामान्य रूप से आवश्यकता है और उसकी मांग की जा रही है;

कि विधेयक का आशय किसी विद्यमान कानून में त्रुटि को दूर करने या उसके किसी दोष को सुधारने के लिए उपबंध करना है;

कि यह विधेयक राज्य के उन नीति-निर्देशक सिद्धांतों के विरुद्ध नहीं है, जिनकी परिभाषा संविधान में की गयी है, न यह राज्य के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप के विरुद्ध है, न सरकारी नीति के और न जनमत के;

कि विधान सम्बन्धी कार्यक्रम में एक विधेयक पहले से ही है, जिस पर सभा द्वारा विचार किया जाता है;

कि इस बात की सम्भावना है कि सरकार द्वारा बाद की तिथि में कोई व्यापक विधेयक पुर:स्थापित किया जाने वाला है; और

कि प्रस्तावित विधेयक इतने अधिक महत्व का तथा अविलम्बनीय है कि चाहे कोई व्यापक विधेयक बाद में पुर:स्थापित किया जाये, इस विधेयक पर पहले विचार होने से कम से कम सरकार की अपनी नीति का पता चलेगा अथवा उससे किसी महत्वपूर्ण मामले को निपटाने में सहायता मिलेगी।

किसी विधेयक को श्रेणी 'क' में रखते समय जिन सामान्य सिद्धांतों का पालन किया जाता है, वे हैं—उसका लोक महत्व और उसकी अविलम्बनीयता। अपेक्षाकृत कम अविलम्बनीयता अथवा कम महत्व वाले विधेयक श्रेणी 'ख' में रखे जाते हैं।

श्रेणी 'ख' में रखे गये किसी विधेयक को, बाद के किसी सत्र में पुन: वर्गीकृत किया जा सकता है, लेकिन यह तभी हो सकता है जबकि विधेयक का प्रभारी सदस्य इस संबंध

---

330. नियम 294 (1) ख ।

331. 8वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-पहली लोक सभा)।

में आवेदन करे और समिति इस बात से सन्तुष्ट हो कि उक्त विधेयक को अब ऊंची श्रेणी में लाना आवश्यक हो गया है।[332]

किसी विधेयक का पुनः वर्गीकरण करने का प्रश्न, समिति के संबंधित प्रतिवेदन को स्वीकार करने संबंधी प्रस्ताव में संशोधन का प्रस्ताव लाकर, समिति को पुनर्विचार करने के लिए वापस भेजा जा सकता है।[333] यदि समिति एक बार विधेयक को पुनः वर्गीकृत करने संबंधी अनुरोध को विचार करके, अस्वीकार कर देती है और सभा द्वारा संबंधित प्रतिवेदन को

---

332. 40वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति-पहली लोक सभा); *एल.एस. डिबेट्स* (II), 2.12.1965, कॉ. 1092 ।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित विधेयकों को, पुनर्विचार के बाद श्रेणी 'ख' से निकालकर श्रेणी 'क' में रखा गया:

(*i*) हार्ड कोक भट्टी और मृत्तिका उद्योगों के कर्मचारियों की मजदूरी का निर्धारण तथा विनियमन विधेयक 1985 [11वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-आठवीं लोक सभा)]।

(*ii*) पब्लिक और प्राइवेट स्कूल (उन्मूलन) विधेयक, 1985 [40वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-आठवीं लोक सभा)]।

(*iii*) मोटरयान (संशोधन) विधेयक, 1986 (धारा 2 आदि का संशोधन) [26वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-आठवीं लोक सभा)]।

(*iv*) (पंडित) विश्वनाथ शर्मा द्वारा प्रस्तुत संविधान (संशोधन) विधेयक, 1991 (अनुच्छेद 58, आदि का संशोधन) [11वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-दसवीं लोक सभा)]।

(*v*) श्री उदयसिंह राव गायकवाड़ द्वारा प्रस्तुत बम्बई उच्च न्यायालय (कोल्हापुर में स्थायी खंडपीठ की स्थापना) विधेयक, 1993 [26वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-दसवीं लोक सभा)]।

(*vi*) श्री विजय गोयल द्वारा प्रस्तुत लॉटरी (निषेध) विधेयक, 1966 [छठा प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-ग्यारहवीं लोक सभा)]।

(*vii*) श्री अमर पाल सिंह द्वारा प्रस्तुत उच्च-न्यायालय, इलाहाबाद (मेरठ में स्थायी खण्ड पीठ की स्थापना) विधेयक, 1996 [11वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-ग्यारहवीं लोक सभा)]।

333. *देखिए,* बिहार विधान परिषद (उन्मूलन) विधेयक के वर्गीकरण के संबंध में [65वां, 67वां और 68वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-चौथी लोक सभा)]।

स्वीकार कर लिया जाता है, तो उसी सत्र के दौरान विधेयक को पुनः वर्गीकृत करने संबंधी सदस्य के परवर्ती अनुरोध पर समिति द्वारा विचार नहीं किया जाता है।[334]

संविधान का संशोधन करने के उद्देश्य से रखे गये विधेयकों की जांच

संविधान (संशोधन) विधेयक को छोड़कर गैर-सरकारी सदस्य अन्य किसी भी विधेयक को पुरःस्थापित करने के लिए स्वतंत्र है। संविधान में संशोधन करने संबंधी प्रत्येक विधेयक, जिसकी किसी गैर-सरकारी सदस्य ने सूचना दी हो, की जांच समिति द्वारा की जाती है और जब समिति उसको पुरःस्थापित करने की सिफारिश करे तभी ऐसे विधेयक को पुरःस्थापित करने संबंधी अनुमति देने के प्रस्ताव को कार्य-सूची में शामिल किया जाता है।[335]

संविधान का संशोधन करने के उद्देश्य से रखे गये विधेयकों के मामले में, समिति ने निम्नलिखित सिद्धांतों की सिफारिश की और सभा ने 26 फरवरी, 1954 को उन्हें स्वीकार किया।[336]

> ऐसे विधेयक तभी लाये जाने चाहिएं, जब यह पता चले कि विभिन्न अनुच्छेदों का निर्वचन उस आशय के अनुकूल नहीं है, जो उन अनुच्छेदों के लिए अभिप्रेत है या जब कुछ घोर विषमताएं प्रकाश में आई हों। इस प्रकार के संशोधन सामान्यतः सरकार को लाने चाहिएं।
>
> ऐसा कोई संशोधन लाने से पहले कुछ समय बीतने देना चाहिए, जिससे कि संविधान के कार्यकरण का उचित मूल्यांकन किया जा सके।
>
> गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों की सूचनाओं की जांच उन प्रस्तावों की पृष्ठभूमि में की जानी चाहिए, जिन पर उस समय सरकार द्वारा विचार किया जा रहा हो, जिससे कि समेकित प्रस्ताव लाए जा सकें।
>
> किसी गैर-सरकारी सदस्य के ऐसे विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति दी जानी चाहिए, जिसके माध्यम से कोई अत्यधिक महत्वपूर्ण और लोकहित का विषय उठाया जा रहा हो। विधेयक में उठाये गए विषय का महत्व निर्धारित करने के लिए यह देखना चाहिए कि कहीं संविधान में ऐसे उपबन्ध तो नहीं हैं, जो तत्कालीन विचारों तथा जनता की मांग को पूरा करते हों।

---

334. श्री जे.बी. कृपलानी द्वारा प्रस्तुत अलंकरण प्रदान किया जाना (उन्मूलन) विधेयक के संबंध में [49वां और 59वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-चौथी लोक सभा)]।

335. नियम 294 ।

336. पहला प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-पहली लोक सभा)।

विधेयकों तथा संकल्पों के लिए समय का नियतन

समिति का एक महत्वपूर्ण कृत्य गैर-सरकारी सदस्यों के सभी विधेयकों और संकल्पों के लिए समय के नियत न करने की सिफारिश करना है। विधेयकों के मामले में समय का नियतन उन्हें सभा में पुरःस्थापित किये जाने के बाद किया जाता है और संकल्पों के मामले में समय का नियतन सदस्यों द्वारा दी गई सूचनाओं के गृहीत किये जाने और बैलट में पूर्ववर्तिता प्राप्त किये जाने के बाद ही किया जाता है। विधयेकों पर विचार तथा बाद के प्रक्रमों के लिए और साथ ही संकल्पों पर चर्चा के लिए समिति सामान्यतया दो घण्टे का समय दिये जाने की सिफारिश करती है।

सभा द्वारा समिति का प्रतिवेदन स्वीकार किये जाने के बाद विधेयकों तथा संकल्पों के संबंध में समय का आबंटन इस प्रकार लागू होता है जैसे कि वह सभा का कोई आदेश हो।[337] उसके बाद किसी विधेयक या संकल्प के लिए नियत समय तभी बढ़ाया जा सकता है।[338] या घटाया जा सकता है,[339] जब कि उस संबंध में किसी सदस्य द्वारा प्रस्ताव पेश कर दिया जाये और सभा उस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। तथापि, वर्तमान पद्धति के अनुसार मात्र सभा की भावना को ध्यान में रखते हुए समय बढ़ाया जाता है, और इस प्रयोजन के लिए सभा में औपचारिक प्रस्ताव नहीं रखा जाता है।[340]

जब सभा के सामने किसी कार्य विशेष के संबंध में कोई व्यवस्था का प्रश्न उठाया जाता है, तो उस व्यवस्था के प्रश्न के निपटाने में लगा समय भी उस कार्य के लिए नियत किये गये कुल समय में गिना जाता है।[341]

बैठकें बुलाने की प्रक्रिया

प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ होने से तीन सप्ताह पहले समिति की बैठकों का एक अनन्तिम कार्यक्रम इस प्रकार बनाया जाता है—

> कि समिति की बैठक की तिथि तथा उस तिथि के बीच कम से कम एक दिन का अन्तर हो, जिस दिन समिति का प्रतिवेदन सभा में पेश किया जाना हो; और
>
> कि उस दिन, जब प्रतिवेदन पेश किया जाना हो और उस तिथि के बीच कम से कम एक दिन का अन्तर हो, जब प्रतिवेदन के स्वीकार किये जाने के संबंध में सभा में प्रस्ताव रखा जाना हो।

---

337. नियम 296 ।

338. *लो.स.वा.वि.,* 2.4.1955, कॉ. 3197; 4.5.1956, पृ. 3134; 21.2.1958, पृ. 927; 7.8.1959, पृ. 673-74; 4.3.1960, पृ. 2096; 7.9.1962, पृ. 3240 और 27.4.1963, पृ. 5420 ।

339. *लो.स.वा.वि.,* 31.8.1956, पृ. 1681 और 4.3.1960, पृ. 2109 ।

340. *लो.स.वा.वि.,* 23.11.1956, पृ. 368; 27.7.1957, पृ. 2475; *एल.एस. डिबेट्स,* 4.12.1959, कॉ. 3529; *लो.स.वा.वि.,* 16.8.1963, पृ. 411; 28.11.1969, पृ. 151-52; 20.11.1970, पृ. 185; 4.5.2007, पृ. 378; और 30.11.2007, पृ. 5741

341. *लो.स.वा.वि.,* 20.7.1956, पृ. 150 ।

प्रतिवेदन के स्वीकार किये जाने के लिए प्रस्ताव गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए नियत प्रथम उपलब्ध दिवस की कार्य-सूची में निरपवाद रूप से पहली मद के रूप में रखा जाता है।

समिति की बैठकों के अनन्तिम कार्यक्रम का अनुमोदन सभापति द्वारा किया जाता है।

विधेयक से सम्बद्ध सदस्यों को भी समिति की बैठकों में आमंत्रित किया जाता है, जिससे कि वे विधेयकों के लिए समय के नियतन तथा विधेयकों के वर्गीकरण के संबंध में अपने विचार समिति के सामने रख सकें।[342] जब कभी सभापति या समिति चाहे, तो संबंधित मंत्रालयों के प्रतिनिधियों को भी उस बैठक में आने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता है, जिससे कि वे अपने विचार प्रकट कर सकें।[343]

तथापि, फरवरी, 1979 से यह प्रथा प्रचलित है कि विधेयक प्रायोजित करने वाले सदस्यों से व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क किया जाता है और उनसे यह अनुरोध किया जाता है कि वे समिति के विचारार्थ, अपने विधेयकों के वर्गीकरण के बारे में लिखित रूप में अपने विचार प्रस्तुत करें। जब आवश्यक समझा जाता है, समिति प्रभारी सदस्यों को अपने विधेयकों के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए समिति के समक्ष उपस्थित होने हेतु आमंत्रित करती है। जब कभी सभापति अथवा समिति चाहे, समिति के विचारार्थ विधेयक पर विधि और न्याय मंत्रालय की राय प्राप्त की जाती है।

जहां तक संकल्पों का संबंध है, उन सदस्यों को, जिनके संकल्प कार्य-सूची में शामिल किये जा रहे हों, अपने संकल्पों के समय नियतन के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए समिति की बैठक में भाग लेने के लिए तब तक आमंत्रित नहीं किया जाता, जब तक कि इस संबंध में सदस्य द्वारा विशेष रूप से अनुरोध न किया गया हो तथा इसे समिति द्वारा स्वीकार न कर लिया गया हो अथवा जब समिति स्वयं उस सदस्य को बुलाना आवश्यक या वांछनीय न समझती हो।

समिति के सदस्यों को बैठक की तिथि से काफी पहले कार्य-सूची की प्रतियां भेजी जाती हैं।[344]

समिति की कार्यवाही का शब्दश: रिकार्ड नहीं रखा जाता सिवाय उन अवसरों के जब कोई महत्वपूर्ण विषय समिति के विचाराधीन हो। समिति की सिफारिशें उसके प्रतिवेदनों में अन्तर्विष्ट होती हैं, जो उसके सभापति द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में, समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा सभा में प्रस्तुत किये जाते हैं।[345]

---

342. निदेश 27 ।

343. विगत में प्रथा (दूसरी लोक सभा के सातवें सत्र तक) यह थी कि संबंधित मंत्रालयों के प्रतिनिधियों को, एक नियम के रूप में, समिति की बैठकों में आमंत्रित किया जाता था।

344. विगत की यह प्रथा छोड़ दी गयी है कि कार्य-सूची के साथ विधेयक संबंधी ज्ञापन तथा समिति के सामने किसी अन्य विषय के संबंध में सरकार की प्रतिक्रिया, यदि कोई हो, की प्रतियां भी उपलब्ध करायी जायें।

345. नियम 279(1) ।

कार्यवाही-सारांश

समिति के निर्णयों को कार्यवाही सारांश में रिकार्ड किया जाता है, जो सचिवालय द्वारा तैयार किया जाता है और जिसका अनुमोदन सभापति या समिति की बैठक की अध्यक्षता करने वाला सदस्य करता है।[346]

किसी सत्र के दौरान हुई बैठकों के कार्यवाही सारांश की एक अधिप्रमाणित प्रति उस सत्र के अन्तिम सप्ताह में सभा पटल पर रखी जाती है। इस संबंध में उस दिन में कार्य-सूची में प्रविष्टि की जाती है, जिस दिन कार्यवाही सारांश सभा पटल पर रखा जाना हो।[347] यदि वे सदस्य उपस्थित न हों, जिनके नाम में वह प्रविष्टि कार्य-सूची में रखी गयी हो तो कार्यवाही सारांश समिति के किसी अन्य सदस्य द्वारा, जो उस समय सभा में उपस्थित हो, सभा पटल पर रखा जाता है।

प्रतिवेदन

समिति के प्रतिवेदन का अनुमोदन सभापति करता है और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के संबंध में एक प्रविष्टि कार्य-सूची में शामिल की जाती है। सामान्यतः प्रतिवेदन समिति की बैठक के एक दिन पश्चात् सभा में प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन विशेष परिस्थितियों में उस दिन भी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है जिस दिन समिति की बैठक हुई हो।[348]

प्रतिवेदन सभी सदस्यों को उस दिन परिचालित कर दिया जाता है, जिस दिन वह सभा में प्रस्तुत किया गया हो। सभा में प्रतिवेदन गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिये नियत दिन को स्वीकार किया जाता है और प्रतिवेदन स्वीकार किये जाने के लिए समिति के सभापति अथवा उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य द्वारा यह प्रस्ताव रखा जाता है कि सभा प्रतिवेदन से सहमत है। तथापि, कतिपय आकस्मिकताओं में प्रतिवेदन उसी दिन प्रस्तुत और स्वीकृत किया जा सकता है।[349] उस बैठक में गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व, पहली मद के रूप में प्रतिवेदन स्वीकार किये जाने का प्रस्ताव रखा जाता है। प्रस्ताव

---

346. *निदेश* 66(1), 66(2), और 67 । प्रत्येक बैठक का कार्यवाही सारांश समिति के सदस्यों को परिचालित करने की विगत की प्रथा अब छोड़ दी गई है।

347. निदेश 67 ।

348. दूसरी लोक सभा के नौवें सत्र के दौरान समिति की एक बैठक जो 17 नवम्बर, 1959 को होनी थी, गणपूर्ति न होने के कारण उस दिन न हो सकी। इसके फलस्वरूप अगले दिन अर्थात् 18 नवम्बर, 1959 के लिए समिति की बैठक निर्धारित की गई। लेकिन उस दिन सदन के वर्तमान सदस्य की मृत्यु होने के कारण बैठक रद्द की गई और बैठक 19 नवम्बर, 1959 को हुई। समिति का प्रतिवेदन उसी दिन सभा में प्रस्तुत किया गया, 51वां प्रतिवेदन [गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा]।

349. समिति की बैठक 2 जनवरी, 1991 को हुई थी। उस बैठक से संबंधित ग्यारहवां प्रतिवेदन (नौवीं लोक सभा) 3 जनवरी, 1991 को सभा में प्रस्तुत किया जाना था। केन्द्र सरकार के मंत्री द्वारा अध्यक्ष को गिरफ्तारी की कथित धमकी के संबंध में कई सदस्यों द्वारा मामले उठाने

स्वीकार किये जाने पर विधेयकों का वर्गीकरण और विधेयकों तथा संकल्पों के लिये नियत किया गया समय सभा का आदेश बन जाता है।

प्रतिवेदन को स्वीकार किये जाने संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा आधे घण्टे से अधिक नहीं होती है और ऐसे किसी प्रस्ताव पर कोई सदस्य पांच मिनट से अधिक नहीं बोल सकता है।[350]

यह संशोधन भी प्रस्तुत किया जा सकता है कि प्रतिवेदन या तो बिना परिसीमा के या किसी विशेष विषय के सम्बन्ध में समिति को वापस भेज दिया जाए।[351] यदि किसी विधेयक या संकल्प के लिये समय नियतन की जो सिफारिश की गई है, उसमें कोई परिवर्तन किया जाना अपेक्षित हो तो कोई भी सदस्य समिति के उस प्रतिवेदन में, जिसमें समय नियत करने के संबंध में सिफारिश की गयी हो, संशोधन पेश कर सकता है। यह संशोधन उस समय पेश किया जा सकता है, जब प्रतिवेदन को स्वीकार किये जाने का प्रस्ताव सभा में विचारार्थ लिया जाये।

विधेयकों सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समितियां

समय-समय पर सभा में प्रस्ताव पेश किए जाने और सभा द्वारा उसे स्वीकार किए जाने पर विधेयकों को प्रवर समितियों को सौंपा जाता है। प्रस्ताव में विशेष रूप से समितियों के सदस्यों के नामों का उल्लेख होता है। इसी प्रकार, राज्य सभा की सहमति से विधेयकों को

के प्रयास के कारण सभा को स्थगित किया गया और प्रतिवेदन उस दिन प्रस्तुत नहीं किया जा सका। अत:, प्रतिवेदन उस दिन प्रस्तुत नहीं किया जा सका अत:, प्रतिवेदन को 4 जनवरी, 1991 को प्रश्नकाल के पश्चात् प्रस्तुत किया गया और उसे उस दिन गैर सरकारी सदस्यों का कार्य प्रारम्भ किए जाने के ठीक पहले स्वीकृत किया गया। प्रतिवेदन की प्रतियां 4 जनवरी, 1991 को इसे प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् प्रकाशन फलक के माध्यम से सदस्यों को वितरित की गई और अन्य संसदीय पत्रों के साथ वितरण शाखा के माध्यम से उसी रात परिचालित की गईं (लोक सभा वाद-विवाद 4.1.1991)।

350. नियम 295 ।

11 दिसम्बर, 1953 को समिति (पहली लोक सभा) के प्रथम प्रतिवेदन के स्वीकार किये जाने के संबंध में समय-सीमा बढ़ाई गई और चर्चा 26 फरवरी, 1954 को पुन: प्रारम्भ हुई-*लो.स. वा.वि.,* (*ii*) क्रमश: 11.12.1953 और *एल.एस. डिबेट्स,* 26.2.1954, कॉ. 1360-61 और कॉ. 852 ।

351. नियम 295 ।

उदाहरणार्थ 42वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-पहली लोक सभा) किसी मामले विशेष के संदर्भ में वापस भेजा गया। *लो.स.वा.वि.,* (*ii*) 16.12.1955, कॉ. 7682 साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.,* 18.3.1960, पृ. 3253; 67वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-चौथी लोक सभा) 12.11.1970, पृ. 162; 14वां प्रतिवेदन (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति-सातवीं लोक सभा); 20.2.1981, पृ. 307-08 ।

संयुक्त समितियों को सौंपा जा सकता है जिनमें दोनों सदनों के सदस्य होते हैं। ऐसी प्रवर या संयुक्त समितियां तदर्थ समितियां होती हैं, जिनकी नियुक्ति उन्हें सौंपे गये विशेष विधेयकों पर विचार करने के लिये की जाती है।

विधेयकों सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समितियां सभा में विधेयक के दूसरे वाचन के पहले प्रक्रम में नियुक्त की जाती हैं। इस प्रक्रम में विधेयक का प्रभारी सदस्य स्वयं यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को सभा की प्रवर समिति को या, राज्य सभा की सहमति से, दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा जाये। यदि प्रभारी सदस्य ने यह प्रस्ताव पेश किया हो कि विधेयक पर विचार किया जाये, तो कोई अन्य सदस्य यह संशोधन रख सकता है कि विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपा जाये।[352] जब प्रस्ताव या संशोधन, जैसी भी स्थिति हो, स्वीकार कर लिया जाये, तो विधेयक प्रवर समिति को सौंप दिया जाता है और यदि विधेयक को किसी संयुक्त समिति को सौंपना हो, तो यथा स्वीकृत प्रस्ताव या संशोधन, राज्य सभा को उसकी सहमति तथा समिति में उस सदन के सदस्यों की नियुक्ति के लिये भेज दिया जाता है।

तथापि, संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 1996 (नये अनुच्छेद 330क और 332क का अंत:स्थापन) संबंधी संयुक्त समिति गठित किए जाने के मामले में सभा ने संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 1996 (अनुच्छेद 330क और 332क का अंत:स्थापन) पर विचार करने संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान अध्यक्ष को राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके विधेयक को दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपने के लिए प्राधिकृत किया।[353]

प्रवर समिति की सदस्यता

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, जिन सदस्यों को किसी प्रवर समिति का सदस्य नियुक्त करना हो, उनके नामों का उल्लेख विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के प्रस्ताव में ही कर दिया जाता है। प्रवर समिति के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। प्रत्येक समिति के सदस्यों की संख्या भिन्न हो सकती है, परन्तु सामान्यत: सदस्यों की संख्या 30 और 35 के बीच होती है।[354]

---

352. नियम 74 और 75; साथ ही *देखिए* अध्याय 22-विधान ।

353. संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 1996 (नये अनुच्छेद 330क और 332क का अन्त:स्थापन) संबंधी संयुक्त समिति का प्रतिवेदन ।

354. वित्त विधेयक, जो नियमों के अन्तर्गत संयुक्त समिति को नहीं सौंपे जाते हैं, सामान्यत: अधिक सदस्यों वाली प्रवर समितियों को सौंपे जाते हैं। उदाहरण के लिए दान-कर विधेयक, 1958 और सम्पदा शुल्क (संशोधन) विधेयक, 1958, जिन प्रवर समितियों को सौंपे गये, उनमें से प्रत्येक के सदस्यों की संख्या 43 थी। ऐसे उदाहरण भी हैं जब कम संख्या में सदस्यों को

संयुक्त समिति की सदस्यता

किसी विधेयक को किसी संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव में लोक सभा के उन सदस्यों की संख्या और उनके नामों का उल्लेख होता है, जिन्हें समिति का सदस्य नियुक्त किया जाना हो और साथ ही राज्य सभा के भी उन सदस्यों की संख्या का उल्लेख किया जाता है जिन्हें समिति में उस सदन द्वारा नियुक्त किया जाना हो। किसी संयुक्त समिति में लोक सभा तथा राज्य सभा के सदस्यों की संख्या का अनुपात 2:1 होता है। किसी संयुक्त समिति के सदस्यों की वास्तविक संख्या निर्धारित नहीं है। प्रत्येक समिति के सदस्यों की संख्या भिन्न हो सकती है, सामान्यतया यह संख्या 45 होती है।[355]

लेकर प्रवर समितियां गठित की गई थीं। उदाहरण के लिए, भारतीय रेल (संशोधन) विधेयक, 1961 जिस प्रवर समिति को भेजा गया था। उसमें 21 सदस्य थे। इसी प्रकार, लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1961 संबंधी प्रवर समिति में 15 सदस्य; महापत्तन न्यास विधेयक, 1962 संबंधी प्रवर समिति में 21 सदस्य; कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1963 संबंधी प्रवर समिति में 18 सदस्य; दिल्ली उच्च न्यायालय विधेयक, 1965 संबंधी प्रवर समिति में 23 सदस्य; आवश्यक वस्तु (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1967 संबंधी प्रवर समिति में 21 सदस्य; बैंककारी विधि (संशोधन) विधेयक, 1967 संबंधी प्रवर समिति में 22 सदस्य; भारतीय दण्ड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1967 संबंधी प्रवर समिति में 12 सदस्य; उच्चतम न्यायालय अपीली (दाण्डिक) अधिकारिता विस्तारण विधेयक, 1967 संबंधी प्रवर समिति में 22 सदस्य; अधिवक्ता (दूसरा संशोधन) विधेयक, 1968 संबंधी प्रवर समिति में 24 सदस्य; केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क विधेयक, 1969 संबंधी प्रवर समिति में 24 सदस्य; राजनयिक संबंध (वियना कन्वेशन) विधेयक, 1971 संबंधी प्रवर समिति में 19 सदस्य; उपदान संदाय विधेयक, 1971 संबंधी प्रवर समिति में 20 सदस्य; चिट फंड विधेयक, 1980 संबंधी प्रवर समिति में 21 सदस्य; संविधान (इकहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990 संबंधी प्रवर समिति में 20 सदस्य; मानव अंग प्रत्यारोपण विधेयक, 1993 संबंधी प्रवर समिति में 21 सदस्य; और संविधान अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) विधेयक, 1996 संबंधी प्रवर समिति में 15 सदस्य थे।

355. राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956 संबंधी संयुक्त समिति (2 मई, 1956 को गठित) में 51 सदस्य थे, संविधान (बत्तीसवां संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी संयुक्त समिति में 60 सदस्य थे, लोक वित्तीय संस्था विधि (संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी संयुक्त समिति में 60 सदस्य थे जबकि संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक, 1957 संबंधी संयुक्त समिति (21 दिसम्बर, 1957 को गठित) में केवल 30 सदस्य थे; त्रिपुरा भू-राजस्व और भूमि सुधार विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; मणिपुर भू-राजस्व और भूमि सुधार विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; दिल्ली भूमि जोत (हदबंदी) विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; प्रत्यर्पण विधेयक, 1961 संबंधी संयुक्त समिति में 21 सदस्य; दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के कार्यकरण के प्रश्न की जांच के लिए सदनों की संयुक्त समिति में 21 सदस्य; गंदी बस्ती क्षेत्र (सुधार तथा उन्मूलन) संशोधन विधेयक, 1963 संबंधी संयुक्त समिति में 24 सदस्य; खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) विधेयक, 1963 संबंधी

संयुक्त समिति द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में कोई नियम निर्धारित नहीं है। अतः इस प्रयोजन के लिये सदन में एक स्वतः पूर्ण प्रस्ताव रखा जाता है और इस प्रस्ताव पर दूसरे सदन की सहमति को विहित प्रक्रिया के प्रति उनकी सहमति माना जाता है। प्रस्ताव में यह उल्लेख होता है कि संयुक्त समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति क्या होगी, समिति पर कौन-से प्रक्रिया-नियम लागू होंगे, समिति को कब तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होगा और अन्त में दूसरे सदन से अनुरोध किया जाता है कि वह उस समिति में सम्मिलित हो और अपने उन सदस्यों के नाम सूचित करे, जिन्हें उस समिति का सदस्य नियुक्त किया गया है।

संयुक्त समिति में 33 सदस्य; न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; दिल्ली प्रशासन विधेयक, 1965 संबंधी संयुक्त समिति में 33 सदस्य; पेटेंट विधेयक, 1965 संबंधी संयुक्त समिति में 48 सदस्य; लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1966 संबंधी संयुक्त समिति में 36 सदस्य; अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) विधेयक, 1967 संबंधी संयुक्त समिति में 33 सदस्य; पेटेंट विधेयक 1967 संबंधी संयुक्त समिति में 33 सदस्य; संघ राज्यक्षेत्र (न्यायिक और कार्यपालिका कृत्यों का पृथक्करण) विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति में 33 सदस्य; बीमा (संशोधन) विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति में 33 सदस्य; दण्ड तथा निर्वाचन विधि (संशोधन) विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समिति में 33 सदस्य; नियंत्रक-महालेखा परीक्षक (कर्त्तव्य शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) विधेयक, 1969 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; निर्वाचन विधि, 1970 संबंधी संयुक्त समिति में 21 सदस्यं; खादी और ग्रामोद्योग आयोग (संशोधन) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) विधेयक, 1978 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; दण्ड विधि (संशोधन) विधेयक, 1980 संबंधी संयुक्त समिति में 33 सदस्य; विवाह विधि (संशोधन) विधेयक, 1981 संबंधी संयुक्त समिति में 21 सदस्य; जीवन बीमा निगम विधेयक, 1983 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य संविधान (इकहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990 (अनुच्छेद 81, 82, 170 और 327 का संशोधन) संबंधी संयुक्त समिति में 20 सदस्य; संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1991 (नये भाग IXक का अन्तःस्थापन और बारहवीं अनुसूची का परिवर्धन) संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य; प्रसूति पूर्व नैदानिक तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग निवारण) विधेयक, 1991 संबंधी संयुक्त समिति में 22 सदस्य; संविधान (बहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1991 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य, संविधान (अस्सीवां संशोधन) विधेयक, 1993 (नए अनुच्छेद 24क, 28क, 102क और 191क का अन्तःस्थापन और अनुच्छेद 329 और नौवीं अनूसूची में संशोधन) और लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक 1993 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य, और संविधान (इक्यासीवां संशोधन) विधेयक, 1996 (नए अनुच्छेद 330क और 332क का अन्तःस्थापन) संबंधी संयुक्त समिति में 31 सदस्य थे। पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण विधेयक, 1999, संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य थे। अनुसूचित जनजातियां (वन अधिकारों की मान्यता) विधेयक, 2005 संबंधी संयुक्त समिति में 30 सदस्य थे।

संयुक्त समिति पर सामान्यतया उस सदन की समितियों संबंधी नियम लागू होते हैं, जिसमें संयुक्त समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा गया हो।

जब प्रस्ताव स्वीकार हो जाता है तो उसे दूसरे सदन को उसकी सहमति के लिये भेजा जाता है। उस प्रस्ताव के प्राप्त होने पर दूसरा सदन चाहे तो विधेयक के सिद्धान्तों पर चर्चा कर सकता है और किन्हीं ऐसे निदेशों का सुझाव दे सकता है, जो संयुक्त समिति को दिये जा सकते हैं। (ऐसे निदेशों के बाध्यकारी होने से पूर्व उस सदन का सहमत होना आवश्यक है जिसमें यह प्रस्ताव प्रारम्भ में रखा गया था) और अपने सदस्यों को समिति के लिये नाम-निर्देशित कर सकता है। किसी विधेयक को संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव पर दूसरे सदन की सहमति का यह तात्पर्य नहीं है कि वह सदन विधेयक के आधारभूत सिद्धान्तों में बंध गया है।[356]

जिस सदन में संयुक्त समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव लाया जाता है वही उस समिति का प्रभारी सदन होता है और समिति का सभापति उस सदन के पीठासीन अधिकारी के निदेशों के अंतर्गत कार्य करता है।[357] समिति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिये समय बढ़ाने की मांग, यदि आवश्यक हो, उसी सदन से करनी पड़ती है। यदि संयुक्त समिति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए इस प्रकार अधिक समय दे दिया जाता है, तो दूसरे सदन को औपचारिक संदेश के माध्यम से इसकी सूचना दी जाती है।

प्रवर या संयुक्त समितियों के सदस्य

प्रवर या संयुक्त समिति के लिए केवल ऐसे सदस्यों के नामों का प्रस्ताव किया जाता है जो इस समिति में सेवा करने के लिए राजी हों।[358] प्रस्तावक, सदन में उनके नामों का प्रस्ताव करने से पूर्व उनकी सहमति प्राप्त कर लेता है।[359]

सामान्यत: विधेयक के प्रभारी मंत्री या विधेयक की विषय वस्तु से संबंध रखने वाले मंत्री को समिति का सदस्य बनाया जाता है क्योंकि समिति में सरकार का दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिये उसकी उपस्थिति आवश्यक है। किसी विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव (या संशोधन) पेश करने वाले सदस्य को सामान्यतया उस समिति का

---

356. *लो.स.वा.वि.* (II), 17.12.1953, कॉ. 16-19, *एल.एस. डिबेट्स,* 3.4.1956, कॉ. 6745-47।

357. नियम 283।

358. नियम 254 (2)।

359. *एल.ए. डिबेट्स,* 22.2.1921, पृ. 332; साथ ही *देखिए, एच.पी. डिबेट्स* (ii), 21.11.1953 कॉ. 126 और *एल.एस. डिबेट्स,* (ii), 26.11.1956, कॉ. 1064।

राजभाषा (संशोधन) विधेयक को सदनों की संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव मतदान के लिए नहीं रखा जा सका क्योंकि कतिपय सदस्यों, जिनके नाम प्रस्ताव में सम्मिलित थे, की सहमति नहीं ली गई थी—*लो.स.वा.वि.,* 13.12.1967, पृ. 3196।

सदस्य नियुक्त किया जाता है, यद्यपि उसे समिति में सम्मिलित न करने से वह प्रस्ताव अवैध नहीं हो जाता।[360]

किसी प्रवर या संयुक्त समिति में सदस्यों का परस्पर अनुपात वैसा ही होता है जैसा कि दोनों सदनों में विभिन्न दलों या समूहों का होता है और इस अर्थ में समिति सदन या सदनों का ही एक छोटा रूप होती है।[361]

जो सदस्य विधेयक के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध हों, उन्हें उस समिति का सदस्य नहीं बनाया जाना चाहिए।[362] साथ ही ऐसे सदस्यों को भी समिति में शामिल नहीं किया जाना चाहिए जिनका विधेयक की विषय-वस्तु में कोई व्यक्तिगत, आर्थिक या गहरा प्रत्यक्ष हित हो।

एक समिति को केवल एक ही विधेयक सौंपा जाता है: सामान्य नियम के अनुसार किसी प्रवर अथवा संयुक्त समिति को केवल एक ही विधेयक सौंपा जाता है, लेकिन एक जैसी विषय वस्तु के यदि दो विधेयक हों तो उन्हें एकल अथवा पृथक प्रस्ताव के माध्यम से एक ही प्रवर अथवा संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है।[363]

प्रवर या संयुक्त समिति में और सदस्यों का शामिल किया जाना

जब विधेयक किसी प्रवर समिति को सौंपा जा चुका हो, तो सदन में तत्संबंधी एक प्रस्ताव पेश करके समिति में और सदस्यों को शामिल किया जा सकता है।[364] ऐसा प्रस्ताव विधेयक का प्रभारी सदस्य या समिति का सभापति पेश करता है।

किसी संयुक्त समिति में और सदस्यों को शामिल करने के लिए तत्संबंधी प्रस्ताव उस सदन में रखा और पारित किया जाता है, जिसमें विधेयक पहले प्रस्तुत किया गया हो और दूसरा सदन उस प्रस्ताव से सहमति प्रकट करता है। प्रस्ताव में उस सदन के, जिसमें विधेयक पहले प्रस्तुत किया गया है, सदस्यों की संख्या तथा नाम और दूसरे सदन के सदस्यों की संख्या का उल्लेख भी किया जाता है, जिन्हें समिति में शामिल किया जाना हो। प्रस्ताव में दूसरे सदन से यह अनुरोध भी किया जाता है कि वह समिति में और सदस्यों को शामिल करने के लिए सहमत हो और उन सदस्यों के नाम सूचित करे जिन्हें वह सदन उस समिति में शामिल करना चाहता है।

---

360. *एल.एस. डिबेट्स* (*ii*), 4.5.1954, कॉ. 6479 ।

361. अध्यक्ष ने टिप्पणी की है कि प्रवर समिति यथासंभव सभा की प्रतिनिधि होनी चाहिए *एल. एस. डिबेट्स,* 8.12.1953, कॉ. 1669 ।

362. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि जो सदस्य विधेयक के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है, उन्हें प्रवर समिति में सम्मिलित नहीं होना चाहिए—*लो.स.वा.वि.,* 14.8.1958, पृ. 487 ।

363. *देखिए* अध्याय 22—विधान।

364. *एल.ए. डिबेट्स,* 30.8.1939, पृ. 149 ।

प्रवर या संयुक्त समिति में आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना

जब किसी प्रवर समिति में कोई आकस्मिक रिक्ति हो जाये, तो इस बात की सूचना संसदीय कार्य मंत्रालय को दी जाती है और साथ ही उससे यह बताने का अनुरोध किया जाता है कि क्या सरकार उस रिक्ति को भरना चाहती है और यदि हां, तो रिक्त स्थान पर जिस सदस्य को नियुक्त करने का प्रस्ताव हो उसका नाम बता दिया जाए।

संसदीय कार्य मंत्रालय से सदस्य का नाम प्राप्त होने पर समिति के सभापति या समिति द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य द्वारा लोक सभा में प्रस्ताव पेश किया जाता है।

सामान्यतः किसी प्रवर समिति में किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती, क्योंकि जब तक रिक्त स्थान पर नये सदस्य की नियुक्ति की जाती है, तब तक समिति का कार्य सामान्यतया पूरा हो चुका होता है।

संयुक्त समिति में आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए निम्नलिखित को छोड़कर वही प्रक्रिया अपनायी जाती है जो प्रवर समिति के संबंध में अपनाई जाती है;

लोक सभा द्वारा नियुक्त की गई संयुक्त समिति के मामले में:

> यदि समिति में लोक सभा के सदस्य का स्थान रिक्त हुआ हो, तो उस रिक्त स्थान पर जिस सदस्य को नियुक्त किया जाना होता है, उसके नाम का प्रस्ताव समिति के सभापति या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य द्वारा किया जाता है। प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर राज्य सभा सचिवालय को इस बात की सूचना एक पत्र के माध्यम से दी जाती है;
>
> यदि समिति में राज्य सभा के सदस्य का स्थान रिक्त हुआ हो, तो उस रिक्ति को वह सभा, लोक सभा द्वारा पारित एक प्रस्ताव में की गयी इस आशय की सिफारिश के अनुसार भरती है। जब प्रस्ताव लोक सभा में पारित हो जाता है तो उसे राज्य सभा की सहमति तथा उस रिक्ति को भरने के लिए उस सभा के सदस्य के नामनिर्देशन के लिए राज्य सभा को भेज दिया जाता है। जब राज्य सभा से यह संदेश प्राप्त हो जाता है कि वह उस प्रस्ताव से सहमत हो गयी है, तो उस संदेश के बारे में लोक सभा को सूचित किया जाता है।

यदि संयुक्त समिति राज्य सभा ने नियुक्त की हो, तो उसके संबंध में भी, विपरीत क्रम में यही प्रक्रिया अपनाई जाती है।

कार्यकाल

चूंकि विधेयक संबंधी कोई प्रवर या संयुक्त समिति एक *तदर्थ* समिति होती है जिसका गठन उसे सौंपे गये किसी विधेयक विशेष पर विचार करने के उद्देश्य से किया जाता है, इसलिए जब वह अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देती है, तो उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।[365]

---

365. *लो.स.वा.वि.* (II), 16.7.1956, पृ. 5 ।

सभापति के कर्त्तव्य, शक्तियां आदि

किसी प्रवर या संयुक्त समिति का सभापति[366] उन कर्त्तव्यों का निर्वहन करने और शक्तियों का प्रयोग करने के अतिरिक्त, जिनका निर्वहन/प्रयोग सामान्य रूप से सभी संसदीय समितियों के सभापति करते हैं,[367] कुछ अतिरिक्त कृत्यों का निर्वहन करता है; वह समिति की बैठक में पेश किए जाने वाले संशोधनों की ग्राह्यता का निर्णय करता है और उसका निर्णय अंतिम होता है।[368] किसी विधेयक के संबंध में प्राप्त ज्ञापनों या अभ्यावेदनों की प्रतियां सदस्यों को उपलब्ध कराने से पहले उसकी अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है और वह विमत-टिप्पणों से असंसदीय, असंगत या अन्यथा अनुपयुक्त शब्दों, वाक्यांशों और अभिव्यक्तियों को निकालने का आदेश देता है।[369]

प्रवर या संयुक्त समिति के कृत्य

विधेयक के संबंध में किसी प्रवर या संयुक्त समिति का कार्य विधेयक के पाठ का खण्ड-वार अध्ययन करना है,[370] ताकि यह पता चल सके कि विधेयक के उपबंधों से प्रस्तावित उपाय का आशय स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि विधेयक की कार्यान्विति में कोई प्रक्रिया संबंधी दोष नहीं होगा तथा विधेयक वर्तमान विधि के उपबंधों के विरुद्ध नहीं है और यह भी कि विधेयक का जो उद्देश्य है, वह पर्याप्त स्पष्ट रूप से प्रकट होता है।

समिति विधेयक के किसी उपबंध के बारे में कोई निर्णय लेने से पहले या निर्णय के समय विशेषज्ञों या हितबद्ध व्यक्तियों या संगठनों से लिखित ज्ञापन आमंत्रित कर सकती है या उनका मौखिक साक्ष्य ले सकती है या सरकारी अधिकारियों से यह कह सकती है कि विधेयक के प्रत्येक खंड की आधारभूत नीति पर प्रकाश डालें और समिति जो भी जानकारी

---

366. प्रवर या संयुक्त समिति के सभापति की नियुक्ति संबंधी प्रक्रिया के लिए *देखिए* अध्याय-8 ।

367. संसदीय समितियों के सभापतियों की शक्तियां तथा कृत्यों के लिए *देखिए* अध्याय 8 ।

368. निदेश 75,

कंपनी (संशोधन) विधेयक 1959 संबंधी संयुक्त समिति के सभापति ने वाणिज्य मंत्री द्वारा एक संशोधन पेश किये जाने की अनुमति नहीं दी जिसका उद्देश्य मूल अधिनियम की ऐसी धारा में संशोधन करना था, जिसमें संशोधनकारी विधेयक द्वारा कोई संशोधन नहीं किया गया था।

369. निदेश 91 ।

तथापि, संविधान (अनुसूचित जनजातियां) आदेश (संशोधन) विधेयक, 1996 संबंधी प्रवर समिति के मामले में श्री पी. कोदंडा रामैया और डा. जंयत रोंगपी, संसद सदस्यों ने अपने विमत टिप्पणों में सभापति के विरुद्ध कुछ अनुचित शब्द प्रयोग किए और सभापति पर आक्षेप किए। चूंकि ये आक्षेप सभापति पर किए गए थे, अत: सभापति ने उक्त वाक्यांशों को कार्यवाही-वृत्तान्त से निकालने हेतु मामला अध्यक्ष को सौंप दिया जिसने उक्त वाक्यांशों को निकाल दिया।

370. निदेश 77 ।

चाहती है वह उसे दें।[371] साक्ष्य, यदि कोई हो, लेने के बाद सभापति विधेयक को समिति के समक्ष खण्ड-वार रखता है और सदस्यों से उनकी टिप्पणियां, यदि कोई हों, देने के लिए कहता है और उसके बाद सदस्य अपने संशोधन, यदि कोई हों, प्रस्तुत करते हैं।[372] उसके बाद समिति इस बारे में अपने निष्कर्ष पर पहुंचती है कि क्या विधेयक में खण्ड का जो रूप है, वह यथोचित है और इसके आशय को पूरी तरह स्पष्ट करता है। यदि समिति के विचार में खण्ड की शब्दावली दोषपूर्ण हो या इसका आशय पूरी तरह स्पष्ट न किया गया हो या भाषा अस्पष्ट हो तो समिति उस खण्ड का संशोधन या पुनरीक्षण करती है।

समिति की बैठकों में, संबंधित मंत्री और उस मंत्रालय के अधिकारी तथा सरकारी प्रारूपकार भी उपस्थित रहते हैं जिससे कि वे किसी ऐसे मुद्दे या मुद्दों को स्पष्ट कर सकें जिनके संबंध में समिति जानकारी चाहती हो।[373]

प्रवर या संयुक्त समिति के समक्ष मौखिक और लिखित साक्ष्य

समिति, सामान्यत: अपनी पहली बैठक में यह निर्णय करती है कि क्या वह विधेयक के संबंध में साक्ष्य लेगी।[374] यह निर्णय लेते समय समिति विधेयक के स्वरूप, इस उपाय से

---

371. उदाहरणार्थ आयुध विधेयक, 1958, बैंककारी कंपनी (संशोधन) विधेयक, 1959, कंपनी (संशोधन) विधेयक, 1959 और रेल विधेयक, 1986 संबंधी संयुक्त समिति ने हितबद्ध पक्षों से लिखित ज्ञापन आमंत्रित किए और मौखिक साक्ष्य भी लिया। नौसेना विधेयक संबंधी संयुक्त समिति ने 8 अक्तूबर, 1957 को आयोजित अपनी बैठक में निर्णय किया कि न्यायाधीश, अधिवक्ता तथा नौसेना के कुछ वरिष्ठ अधिकारियों को समिति की सभी बैठकों में उपस्थित रहना चाहिए जिससे कि विधेयक के उपबंधों के संबंध में सदस्यों द्वारा मांगा जाने वाला स्पष्टीकरण दिया जा सके और यह कि यदि समिति बाद में आवश्यक समझे तो उन अधिकारियों से औपचारिक रूप से पूछताछ की जा सके।

372. निदेश 77 ।

373. उदाहरण के लिए ट्रेड एंड मर्कें‍टाइल मार्क्स बिल, 1958 संबंधी संयुक्त समिति की बैठक के दौरान जब विधेयक पर कतिपय संघों के साक्ष्य लिए जा रहे थे, वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के एक अधिकारी और विधि मंत्रालय के मुख्य प्रारूपकार ने सभापति की अनुमति से प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कई बार समिति की कार्यवाही में भाग लिया और उनके भाषणों को दिन की कार्यवाही में रिकार्ड किया गया।

374. आयुध विधेयक, 1958 और मोटर परिवहन कर्मकार विधेयक, 1960 संबंधी संयुक्त समितियों ने अपनी पहली बैठक में इन विधेयकों के संबंध में साक्ष्य लेने का फैसला किया—कार्यवाही सारांश (आयुध विधेयक संबंधी संयुक्त समिति) 8.5.1959 और कार्यवाही सारांश (मोटर परिवहन कर्मकार विधेयक) 7.9.1960, दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1954 के मामले में संयुक्त समिति ने विधेयक के संबंध में साक्ष्य न लेने का निर्णय किया, क्योंकि सरकार ने विधेयक का व्यापक प्रचार किया था और इसके संबंध में जनता के विभिन्न वर्गों के राय प्राप्त की थी—कार्यवाही सारांश [दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक संबंधी संयुक्त समिति 17.7.1954]।

प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने वाले विभिन्न हितों और इस बात को ध्यान में रखती है कि क्या विशेषज्ञों के साक्ष्य वांछनीय या उपयोगी होंगे।

समिति या तो स्वयं यह निर्णय कर सकती है कि साक्ष्य लिया जाये या इस संबंध में अलग से कोई अनुरोध किये जाने पर साक्ष्य लेने का निर्णय कर सकती है।[375]

यदि समिति साक्ष्य लेने का निर्णय करती है, तो सामान्यतया एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की जाती है जिसमें हितबद्ध संघों या संगठनों से विधेयक के संबंध में ज्ञापन आमंत्रित किए जाते

---

375. (*i*) भारत सरकार के एक कार्यरत सचिव ने सभापति से अनुरोध किया कि एक गैर-सरकारी सदस्य के संविधान (संशोधन) विधेयक संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष उन्हें निजी तौर पर उपस्थित होने की अनुमति दी जाए। समिति के निदेशानुसार [नाथपाई के संविधान (संशोधन) विधेयक संबंधी संयुक्त समिति की 23 अक्तूबर, 1967 की बैठक का कार्यवाही सारांश] सरकार से स्वयं अपनी ओर से पूर्व अनुमति लेने के बाद वह अधिकारी 26 अक्तूबर, 1967 को समिति के समक्ष उपस्थित हुआ।

(*ii*) तेन्नेती विश्वनाथम् के संविधान (संशोधन) विधेयक संबंधी प्रवर समिति की पहल पर कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश डी. बसु 21 और 22 जुलाई, 1970 को समिति के समक्ष उपस्थित हुए और विधेयक के उपबंधों के संबंध में अपना साक्ष्य दिया। तथापि, प्रारम्भ में ही न्यायाधीश बसु ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह जो साक्ष्य देने जा रहे हैं वह एक शिक्षाविद् की हैसियत से निजी साक्ष्य है। इससे पहले न्यायाधीश बसु ने इच्छा व्यक्त की थी कि अनुरोध गृह मंत्रालय के माध्यम से आना चाहिए। ऐसा ही किया गया।

(*iii*) कराधान विधि (संशोधन) विधेयक, 1973 संबंधी प्रवर समिति के सभापति ने इच्छा व्यक्त की कि प्रवर समिति की सितम्बर, 1973 में कलकत्ता में होने वाली बैठकों में कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री देवी प्रसाद पाल को साक्ष्य देने के लिए आमंत्रित किया जाए। इसके उत्तर में न्यायमूर्ति देवी प्रसाद पाल ने समिति के समक्ष उपस्थित होने में अपनी असमर्थता पर खेद व्यक्त करते हुए कहा कि "उच्च न्यायालय का कार्यरत न्यायधीश होने के नाते मैं उक्त विधेयक पर समिति के समक्ष अपना कोई विचार प्रकट करना उचित नहीं समझता हूं।"

(*iv*) कर्नाटक उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार ने 26, जुलाई 1974 को सूचित किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1974 संबंधी संयुक्त समिति की बैठकें यदि बंगलौर में होती हैं तो कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश समिति के समक्ष साक्ष्य देना चाहते हैं। चूंकि संयुक्त समिति की एक उप-समिति की बैठकें 19 सितम्बर, 1974 से 21 सितम्बर, 1974 तक मौखिक साक्ष्य लेने के लिए बंगलौर में होनी थीं, अत: यह निर्णय किया गया कि मुख्य न्यायाधीश को उप-समिति के समक्ष साक्ष्य के लिए बुलाया जाए।

हैं[376] और सचिवालय को ज्ञापन भेजने की अंतिम तिथि निर्धारित की जाती है। जो ज्ञापन विनिर्दिष्ट तिथि के बाद प्राप्त होते हैं, उन्हें सभापति की अनुमति से स्वीकार किया जा सकता है।

सामान्यतः समिति सभापति को, प्राप्त ज्ञापनों का अध्ययन करने और यह निर्णय करने के लिए प्राधिकृत करती है कि किन संघों और व्यक्तियों को मौखिक साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाए। इस प्रयोजन के लिए केवल उन्हीं संघों और व्यक्तियों को बुलाया जाता है, जिन्होंने मौखिक साक्ष्य देने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया हो। सभापति इस बात का भी ध्यान रखता है कि विधेयक के कारण जिन हितों पर प्रभाव पड़ता हो, उनमें से प्रत्येक अर्थात् नियोजकों, कर्मचारियों, उद्योग, व्यापार आदि के मुख्य प्रतिनिधियों को साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाए।

समिति को सम्बोधित ज्ञापन समिति के अभिलेख का अंश बन जाता है और उसे गोपनीय समझा जाता है।[377] जब तक कि उसे समिति के प्रतिवेदन के साथ या अलग से सभा

---

376. उदाहरणार्थ बैंककारी कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1959 संबंधी संयुक्त समिति ने 9 मई, 1959 को हुई अपनी पहली बैठक में यह निर्णय किया कि एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की जाये जिसमें ऐसे संघों, सार्वजनिक निकायों और व्यक्तियों से, जो विधेयक के संबंध में समिति के समक्ष अपने विचार रखना चाहते हों, कहा जाए कि वे सचिवालय को इस संबंध में अपने लिखित ज्ञापन 10 जून, 1959 तक भेज दें। समिति ने ज्ञापनों की जांच करने के बाद सभापति को यह निर्णय करने के लिए भी प्राधिकृत किया कि किन संघों और सार्वजनिक निकायों आदि से समिति के समक्ष मौखिक साक्ष्य देने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए कहा जाए।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1958 संबंधी समिति के मामले में संयुक्त समिति ने 18 अगस्त, 1958 को हुई अपनी पहली बैठक में यह निर्णय किया कि वह ऐसे सदस्य का साक्ष्य लेगी, जिसे विधेयक के उपबंधों की जानकारी हो। कोई प्रेस विज्ञप्ति जारी नहीं की गयी।

377. ज्यों ही ज्ञापन प्राप्त होता है, उसके भेजने वाले को लिखित रूप में सूचित कर दिया जाता है कि ज्ञापन को गोपनीय समझा जाये और यह किसी को परिचालित नहीं किया जाना चाहिए और यह कि उसका परिचालन या उसके प्रचार से प्रवर या संयुक्त समिति जो कि एक संसदीय समिति है का विशेषाधिकार भंग होगा।

कर्मचारी संघ ने उपदान संदाय विधेयक, 1971 संबंधी प्रवर समिति को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया। संघ के अनुरोध पर उसे अपने सदस्यों को इसकी प्रतियां इस शर्त पर उपलब्ध कराने की अनुमति दी गई कि इसकी विषय-वस्तु को गोपनीय समझा जाए और इसे प्रकाशित न किया जाए।

संविधान (चौथा संशोधन) विधेयक, 1954 संबंधी संयुक्त समिति का कार्य समाप्त होने के तुरन्त बाद एक अभ्यावेदन प्राप्त हुआ। यह निर्णय किया गया कि समिति को सम्बोधित पत्र समिति के अभिलेख का अंश है, चाहे वह पत्र समिति को उस समय भेजा गया हो जब वह विचार-विमर्श कर रही थी या उस समय भेजा गया हो जब वह अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर चुकी थी।

में प्रस्तुत न कर दिया जाए तब तक कोई भी व्यक्ति अध्यक्ष की अनुमति के बिना उसमें से उद्धरण नहीं दे सकता या किसी और को उसकी प्रतियां नहीं भेज सकता है।[378] तथापि ज्ञापन में दिए गए तर्कों या बातों का उपयोग किसी अन्य पत्र आदि में किया जा सकता है या किसी अन्य तरीके से उसका प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु ऐसा करने वाला कोई व्यक्ति इस बात का संकेत नहीं कर सकता कि प्रवर या संयुक्त समिति को दिए गए किसी ज्ञापन में ऐसी बातें कही गयी हैं।

यदि किसी ज्ञापन का, उसे समिति को भेजन से पहले प्रचार कर दिया गया हो, वह किसी अन्य व्यक्ति को सम्बोधित किया गया हो और उसकी एक प्रति समिति को पृष्ठांकित की गई हो, तो उसे समिति के नाम पत्र नहीं माना जाता और उसे या तो प्रेषक को वापस कर दिया जाता है[379] या उसे सभापति की स्वीकृति से अभ्यावेदन मान लिया जाता है।[380]

समिति का कोई सदस्य भी विधेयक के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए ज्ञापन प्रस्तुत कर सकता है।[381] सभापति यदि निदेश दे, तो ज्ञापन या उसके उद्धरणों की प्रतियां समिति के सदस्यों को परिचालित की जा सकती हैं।[382]

समिति द्वारा प्राप्त ज्ञापनों या अभ्यावेदनों की संख्या का उल्लेख समिति के प्रतिवेदन में किया जाता है, जबकि उनका ब्यौरा और उनके संबंध में की गई कार्यवाही का उल्लेख प्रतिवेदन के परिशिष्ट में शामिल किया जाता है।[383]

साक्षियों को साक्ष्य के लिए सचिवालय द्वारा पत्र भेजकर बुलाया जाता है। पत्र के साथ साक्षियों के मार्गदर्शन के लिए एक टिप्पण भी भेजा जाता है जिसमें बताया जाता है कि संसदीय समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले साक्षियों को किस प्रकार के आचरण और शिष्टाचार का अनुपालन करना चाहिए। जहां तक संघों या सार्वजनिक निकायों का संबंध है,

378. निदेश 74 ।

379. एक व्यक्ति ने वाणिज्य पोत परिवहन विधेयक, 1958 संबंधी संयुक्त समिति को एक ज्ञापन भेजा जिसकी प्रतियां विभिन्न पत्रिकाओं को प्रकाशन के लिए पहले ही भेजी जा चुकी थीं। उस दस्तावेज को समिति के नाम ज्ञापन नहीं माना गया और तद!नुसार उसे प्रेषक को वापस भेज दिया गया।

380. कलकत्ता वाणिज्य मंडल, कलकत्ता ने रेल विधेयक, 1986 संबंधी संयुक्त समिति को उस पत्र की एक प्रति भेजी जो प्रधान मंत्री को सम्बोधित था जिसमें विधेयक के बारे में विचार/सुझाव दिए गए थे। इसे अभ्यावेदन माना गया और सभापति की स्वीकृति प्राप्त करने के बाद इसे संयुक्त समिति के सदस्यों को परिचालित किया गया।

381. निदेश 81(1)।

382. निदेश 81(2)—कम्पनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति के एक सदस्य द्वारा प्रस्तुत ज्ञापन को सभापति के आदेश प्राप्त करने के बाद समिति के सदस्यों को परिचालित किया गया।

383. निदेश 83, प्रतिवेदन में यह ब्यौरा देने की प्रथा नवम्बर, 1956 में मोटरयान (संशोधन) विधेयक, 1956 सम्बन्धी संयुक्त समिति के प्रतिवेदन से प्रारम्भ हुई।

उन्हें पत्र भेजकर कहा जाता है कि वे विनिर्दिष्ट तिथि को यथा समय पर अपने प्रतिनिधि समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए भेजें। सामान्यत: उनसे कहा जाता है कि वे अपने दो या तीन प्रतिनिधि समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए भेजें और उनके नाम सचिवालय को पहले से सूचित कर दें।

यदि कोई मंत्री, जो प्रवर समिति का सदस्य न हो, समिति को सम्बोधित करना चाहे या समिति की कार्यवाही में भाग लेना चाहे, तो उसे ऐसा करने की अनुमति दे दी जाती है, परन्तु वह मतदान में भाग नहीं ले सकता।[384]

कोई प्रवर या संयुक्त समिति किसी भी ऐसे सदस्य को समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए बुला सकती है, जो समिति का सदस्य न हो।[385]

जब साक्षियों को साक्ष्य देने के लिए आहूत किया जाता है तो समिति की कार्यवाही का शब्दश: अभिलेख रखा जाता है।[386] साक्ष्य के कार्यवाही सारांश की साइक्लोस्टाइल की हुई प्रतियां सामान्यत: अगले दिन समिति के सभी सदस्यों को परिचालित कर दी जाती हैं।

समिति यह निर्णय लेती है कि क्या उसके समक्ष दिए गए साक्ष्य का अभिलेख विस्तृत रूप में या उसका कुछ भाग या उसका सारांश[387] सभा पटल पर रखा जाए और यह भी कि क्या संघों द्वारा दिए गए ज्ञापनों को साक्ष्य के परिशिष्ट के रूप में मुद्रित किया जाए अथवा सभा पटल पर रखा जाए अथवा सदस्यों की संदर्भ सुविधा के लिए ग्रंथालय में रखा जाए।[388]

---

384. नियम 299 ।

385. राज्य सभा के एक सदस्य से अपेक्षा की गयी कि वह भारतीय नौवहन के संबंध में अपने विशेष ज्ञान के कारण वाणिज्य पोत परिवहन विधेयक, 1958 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष साक्ष्य दें। उसने भारतीय राष्ट्रीय स्टीमशिप मालिक संघ के प्रतिनिधि की हैसियत से 8 जुलाई, 1958 को समिति के समक्ष साक्ष्य दिया।

    बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1958 संबधी प्रवर समिति ने 18 अगस्त, 1958 को हुई अपनी बैठक में यह निर्णय किया कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के बारे में विशेष जानकारी रखने वाले लोक सभा के एक सदस्य को समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाए। सदस्य ने 19 अगस्त, 1958 को समिति के समक्ष साक्ष्य दिया।

386. नियम 273(पांच)।

387. नियम 275 ।

388. मोटरयान (संशोधन) विधेयक, 1955 संबंधी संयुक्त समिति के मामले में संघों तथा सार्वजनिक निकायों, जिन्होंने समिति के सामने साक्ष्य दिया था, द्वारा दिए गए ज्ञापन साक्ष्य के परिशिष्ट के रूप में छापे गए थे, जिसे सभा पटल पर रखा गया।

    संविधान (बाइसवां संशोधन) विधेयक, 1968 तथा लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक, 1968 संबंधी संयुक्त समितियों को प्राप्त ज्ञापन/अभ्यावेदन की प्रतियां, संबंधित समिति के निर्णय के अनुसार, क्रमश: 5 मार्च, 1969 और 26 मार्च, 1969 को दोनों सभाओं के पटलों पर रखी गई थीं।

यदि समिति यह निर्णय लेती है कि सम्पूर्ण साक्ष्य अथवा उसका कोई अंश या उसका सारांश, जैसी भी स्थिति हो, सभा पटल पर रखा जाए[389] तो उसे पृथक् खंड के रूप में मुद्रित किया जाता है। समिति के सभापति द्वारा प्रमाणीकृत ऐसे साक्ष्य की प्रति सभापति या समिति द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य द्वारा, उसी दिन, जिस दिन समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया हो या उसके बाद किसी अन्य दिन सभा पटल पर रखी जाती है। जहां तक संयुक्त समिति का संबंध है, उसके सामने दिए गए साक्ष्य की प्रमाणीकृत प्रति या उसका सारांश, जैसी भी स्थिति हो, सचिवालय द्वारा राज्य सभा के पटल पर रखने के लिए भेजा जाता है और यह लोक सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत होने के साथ ही राज्य सभा के पटल पर रख दिया जाता है। यदि उस दिन राज्य सभा का सत्र न चल रहा हो, तो उसे उस सदन के पटल पर उस दिन रखा जाता है, जब वह पुनः समवेत हो। प्रवर या संयुक्त समिति के सामने दिए गए साक्ष्य की प्रतियां सभा पटल पर रखे जाने के बाद, लोक सभा और राज्य सभा के सभी सदस्यों को परिचालित की जाती हैं और जनता के लिए भी बिक्री पर उपलब्ध होती हैं।

संशोधन

प्रवर या संयुक्त समिति में संशोधन रखने के संबंध में, जहां तक वह व्यवहार्य हो, उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है, जिसका कि सभा में विधेयक के विचार प्रक्रम के दौरान किया जाता है। उसमें ऐसे अनुकूलन किए जा सकते हैं, जैसे कि अध्यक्ष आवश्यक या सुविधाजनक समझे।[390]

केवल समिति के सदस्यों को ही संशोधनों की सूचना देने का अधिकार है।[391] सामान्यतः सभा में संशोधन की ग्राह्यता संबंधी नियम इस समिति में भी लागू होते है।[392]

कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 1959 और मोटर परिवहन कर्मकार विधेयक, 1960 के मामले में संयुक्त समिति ने यह निर्णय किया कि चूंकि उनके समक्ष साक्ष्य देने वाले संघों द्वारा दिए गए ज्ञापन बहुत बड़े हैं, इसलिए उन्हें साक्ष्य के साथ न छापा जाए, परन्तु उनकी साइक्लोस्टाइल की हुई कुछ प्रतियां सदस्यों की संदर्भ सुविधा के लिए ग्रंथालय में रख दी जाएं।

389. नियम 275 ।

किसी प्रवर या संयुक्त समिति के सामने दिया गया साक्ष्य प्रतिवेदन के साथ सभा में प्रस्तुत नहीं किया जाता, बल्कि अलग से सभा पटल पर रखा जाता है।

390. नियम 300 (2)।

391. सरकारी संशोधनों के मामले में, सूचना आवश्यक रूप में मंत्री द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिए जो समिति का सदस्य होता है।

कम्पनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति में कतिपय सरकारी संशोधनों की जो सूचना प्राप्त हुई थी वह प्रारूपकार द्वारा हस्ताक्षरित थी। सूचना को समिति में शामिल मंत्री के हस्ताक्षर हेतु वापस भेज दिया गया।

392. सभा में संशोधनों की ग्राहयता की शर्तो के लिए *देखिए* अध्याय 22—विधान ।

तथापि समिति में संशोधन की सूचनाएं देने वाले सदस्य उन संशोधनों के "कारण" भी बता सकते हैं जबकि सभा में ऐसा नहीं किया जा सकता है।[393]

जब कोई विधेयक समिति को सौंपा जा चुका हो, तो किसी सदस्य द्वारा दी गई संशोधन की सूचना समिति को सौंपी गई समझी जाती है, परन्तु यदि संशोधन की सूचना किसी ऐसे सदस्य से प्राप्त हुई हो, जो समिति का सदस्य नहीं है, तो ऐसे संशोधन समिति द्वारा तब तक नहीं लिए जाते हैं, जब तक कि वे समिति के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत न किए गए हों।[394]

यदि कोई प्रश्न उठे कि क्या कोई संशोधन विशेष विधेयक के क्षेत्र में है, तो इस प्रश्न का निर्णय समिति के सभापति द्वारा किया जाता है, जिसका निर्णय अंतिम होता है।[395]

जिन संशोधनों की सूचनाएं प्राप्त हो गई हों और जो ग्राह्य हों, उन्हें विधेयक के संबंधित खंडों के क्रम में संशोधनों की सूचियों में रखा जाता है। सूची में संशोधनों का क्रम वही रहता है, जिसमें वे प्राप्त हुए हों। ये सूचियां समिति के सभी सदस्यों को सामान्यत: उसी दिन परिचालित कर दी जाती हैं जिस दिन वे संशोधन प्राप्त हुए हों।[396]

संशोधन पर चर्चा उस समय प्रारंभ होती है, जब सदस्य अपना संशोधन प्रस्तुत करता है। जब सभापति यह समझता है कि संशोधन पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है, तो वह उस संबंध

---

393. कम्पनी विधेयक, 1953 संबंधी संयुक्त समिति में यह सुझाव दिया गया कि प्रत्येक सरकारी संशोधन, जिसकी सूचना दी गई है, के 'कारण' समिति के सदस्यों को परिचालित की जाने वाली संशोधनों की सूची में प्रत्येक संशोधन के नीचे दिए जाएं।

    तथापि संशोधनों के 'कारण', सदस्यों को परिचालित की गई संशोधनों की सूची के साथ संलग्न अलग पृष्ठों पर दिए गए हैं।

394. नियम 301 ।

    इस नियम के अन्तर्गत आने वाले संशोधनों की सूचनाएं प्रवर समिति के सभी सदस्यों को अलग सूची में परिचालित की जाती हैं और उनमें आवश्यक संकेत दिया जाता है कि ये संशोधन इस नियम के अन्तर्गत हैं, जिससे कि उन्हें सूची में शामिल उन संशोधनों से अलग समझा जा सके जिनकी सूचनाएं समिति के सदस्यों ने दी हों।

    इस नियम के अन्तर्गत संयुक्त समिति को ऐसे संशोधनों की सूचनाएं नहीं सौंपी जातीं, जो राज्य सभा के किसी ऐसे सदस्य ने दी हों, जो विधेयक संबंधी संयुक्त समिति का सदस्य न हो। ऐसी दशा में संबद्ध सदस्य से कहा जाता है कि वह अपने संशोधनों को समिति के किसी सदस्य के माध्यम से भिजवाए।

395. निदेश 75 (2)।

396. संशोधनों की सभी सूचनाओं की प्रतियां विधि मंत्रालय के प्रारूपकार और सम्बन्धित मंत्रालय के उन अधिकारियों को भी भेजी जाती हैं जो समिति की बैठकों में भाग लेते हैं। जो विधेयक समितियों के सामने हों उनसे संबंधित संशोधनों की सूचियों पर अलग से शीर्षक दिया जाता है, जिससे कि उन्हें ऐसे विधेयकों से संबंधित संशोधनों की सूची न मान लिया जाए, जो सभा के विचाराधीन हैं।

में सामूहिक राय प्राप्त करता है और उसके बाद अपने निर्णय की घोषणा करता है। सामान्यत: मतदान नहीं कराया जाता, क्योंकि समिति में कार्यवाही उस तरह औपचारिक नहीं होती, जैसी कि सभा में होती है, परन्तु यदि कोई सदस्य इस बात पर जोर दे कि उसके किसी संशोधन विशेष पर मतदान कराया जाए, तो सदस्य हाथ उठा कर मतदान करते हैं और जिस पक्ष में अधिक मत आएं, उसके अनुसार हुआ निर्णय दर्ज कर लिया जाता है।[397] समिति द्वारा पहले ही निपटा दिए गए खण्ड पर सभापति की अनुमति से पुन: विचार किया जा सकता है।[398]

प्रवर या संयुक्त समिति का सदस्य, संशोधनों की सूचनाएं देने के अतिरिक्त, समिति द्वारा विधेयक पर अंतिम रूप से विचार समाप्त किए जाने से पूर्व किसी समय कोई ज्ञापन अथवा टिप्पण जिसमें उसने विधेयक के संबंध में अपने विचार समिति के विचारार्थ दिए हों, प्रस्तुत कर सकता है।[399] सभापति, यदि उचित समझे तो यह निदेश देता है कि उस टिप्पण की प्रतियां या उसके उद्धरण समिति के सदस्यों को परिचालित किए जाएं।[400]

विचार-विमर्श तथा जांच की परिधि

समिति में सम्पूर्ण विधेयक पर सामान्य चर्चा की अनुमति नहीं है, क्योंकि विधेयक का सिद्धांत तो सभा तब ही स्वीकार कर लेती है, जब वह उसे समिति को सौंपने का प्रस्ताव अंगीकार करती है।[401] तथापि, सभापति विधेयक में अन्तर्विष्ट कतिपय खंडों या मूल मुद्दों पर सामान्य चर्चा की अनुमति दे सकता है, ताकि विधेयक का प्रभारी मंत्री उसके प्रयोजन पर प्रकाश डाल सके या यदि शंकाएं हों, तो उन्हें दूर कर सके और उसे प्रारंभ में ही यह भी पता चल जाए कि सदस्यों के विचार क्या हैं। ताकि वह उचित समय पर यदि आवश्यक हो, तो सदस्यों की इच्छानुसार समुचित संशोधन प्रस्तुत कर सके।[402]

---

397. किसी संशोधन के पक्ष में और उसके विरुद्ध दिए गए मतों की कुल संख्या कार्यवाही-सारांश पुस्तिका में लिख ली जाती है।

398. निदेश 54—उच्चतम न्यायालय सरकारी परिसर (बेदखली) संशोधन विधेयक, 1954 के संबंध में विधेयकों पर विचार-विमर्श करके अपने निष्कर्ष के पश्चात् प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार करने हेतु बैठक की परन्तु कुछ सदस्यों के अनुरोध पर विधेयक के प्रभारी मंत्री जो कि उस दिन अनुपस्थित थे, की बात सुनने के लिए उसे स्थगित कर दिया। तत्पश्चात् मंत्री की बात सुनने और प्रारम्भ प्रतिवेदन संशोधित होने के पश्चात् खंडों और विधेयक पर चर्चा को पुन: खोला गया।

399. निदेश 81(1) ।

400. निदेश 81 (2) ।

401. निदेश 76 ।

402. उदाहरणार्थ निम्नलिखित विधेयकों के संबंध में सामान्य चर्चा की अनुमति दी गई :
मोटरयान (संशोधन) विधेयक, 1955 संबंधी संयुक्त समिति ने कतिपय मूल बातों के संबंध में विधेयक के उपबंधों पर सामान्य चर्चा की—कार्यवाही-सरांश (संयुक्त समिति 24.10.1956;

विधेयक के सिद्धांत के अतिरिक्त जिसे सभा विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव अंगीकार करके स्वीकार कर लेती है,[403] सभा समिति को कुछ और निदेश अथवा अनुदेश भी दे सकती है।[404]

कोई समिति विधेयक में ऐसा संशोधन या उसका इस प्रकार पुनरीक्षण नहीं कर सकती, जिससे कि जो विधेयक उसे सौंपा गया था, उसका सिद्धांत किसी तरह बाधित हो या उसे कोई क्षति पहुंचे। विधेयक के सिद्धांत की परख उसके पूरे नाम खंडों तथा अनुसूचियों, यदि कोई हो, से करनी होती है। विधेयक का सिद्धांत या व्याप्ति सुनिश्चित करने के लिए सम्पूर्ण विधेयक पर विचार करना होता है। सभी संशोधन या उपान्तरण विधेयक की व्याप्ति के भीतर ही होने चाहिएं तथा उन खंडों या अनुसूचियों के विषय से संगत होने चाहिएं, जिनके संबंध में वे किये गये हों।[405] ये विधेयक के उस सिद्धांत के अनुरूप भी होने चाहिएं, जिसे सभा पहले ही स्वीकार कर चुकी है। समिति विधेयक की मुख्य संकल्पना में परिवर्तन नहीं कर सकती।

तथापि, उपरोक्त सीमाओं के अन्तर्गत भी प्रवर या संयुक्त समिति की किसी विधेयक में संशोधन करने की शक्तियां बड़ी व्यापक और विस्तृत हैं। समिति किसी विधेयक में पूर्ण रूप से संशोधन कर सकती है या उसका पूर्णतः नया प्रारूप तैयार कर सकती है[406] तथा वह

आयुध विधेयक 1958 संबंधी संयुक्त समिति ने विधेयक के खण्ड-4 पर सामान्य चर्चा की जिससे कि यह निर्णय किया जा सके कि विधेयक केवल अग्नि शस्त्रों पर ही लागू हो या सामान्य रूप से सभी शस्त्रों पर—कार्यवाही-सारांश (संयुक्त समिति), 16.7.1959;

खान और खनिज (विनियमन और विकास) विधेयक, 1957 संबंधी संयुक्त समिति ने अपवाद के रूप में, विधेयक के उपबंधों पर सामान्य चर्चा की—कार्यवाही-सारांश (संयुक्त समिति), 30.11.1957, 3 और 4.12.1957; और

रेल विधेयक, 1986 संबंधी संयुक्त समिति ने भी विधेयक के उपबंधों पर सामान्य चर्चा की—कार्यवाही-सारांश (संयुक्त समिति), 6.1.1988, 7.1.1988, 8.1.1988 और 22.3.1988 ।

403. *एल.एस. डिबेट्स* (II), 30.7.1956, का. 1527-32 ।

404. उदाहरणार्थ *देखिए* लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1961 का मामला *लो.स.वा.वि.*, 14.8.1961, पृ. 1193 ।

405. नियम 80 (एक)।

406. मुस्लिम वक्फ विधेयक, 1952 तथा स्त्री और बालक संस्था अनुज्ञापन विधेयक, 1953, दोनों गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों का प्रवर समिति द्वारा पूर्णतः नया प्रारूप तैयार किया गया। इसी प्रकार, अनुसूचित जनजातियां (कृषक अधिकारों की मान्यता) विधेयक 2005 का संयुक्त समिति द्वारा पूर्णतः नया प्रारूप तैयार किया गया।

विधेयक के सिद्धांत में परिवर्तन किए बिना उसका पूरा नाम[407] और संक्षिप्त नाम[408] बदल सकती है। इसी प्रकार समिति किसी विधेयक में नए उपबंध सम्मिलित कर सकती है,[409] विधेयक की व्याप्ति को सीमित कर सकती है[410] या राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश प्राप्त करके कराधान प्रस्तावों के भार में भी परिवर्तन कर सकती है।[411]

यद्यपि समिति अपने सभापति की अनुमति से विधेयक के उन खण्डों पर फिर से चर्चा प्रारम्भ कर सकती है, जिनके सम्बन्ध में निर्णय किया जा चुका हो।[412] तथापि समिति यह सिफारिश नहीं कर सकती कि वह उस विधेयक के सिद्धान्त से सहमत नहीं है, जो कि उसे सौंपा गया हो।[413] यद्यपि उपयुक्त मामलों में वह विधेयक को वापस लेने की सिफारिश कर सकती है।[414] किसी संशोधन विधेयक के मामले में उसके संशोधन मूल अधिनियम की उन धाराओं तक ही सीमित रहते हैं, जिनमें विधेयक के माध्यम से संशोधन किये जा रहे हों, सिवाय उन मामलों के जबकि विधेयक के खण्डों के परिणामस्वरूप उनसे सम्बद्ध अन्य धाराओं का संशोधन या उपान्तरण करना आवश्यक हो।[415]

---

407. स्त्री और बालक संस्था अनुज्ञापन विधेयक, 1953 के मूल पूरे नाम का पाठ इस प्रकार था: "स्त्रियों तथा बच्चों की देखभाल करने वाली संस्थाओं को विनियमित तथा अनुज्ञापित करने हेतु विधेयक।" प्रवर समिति ने इसे संशोधित करके इसका पूरा नाम इस प्रकार कर दिया, "स्त्रियों तथा बच्चों की संस्थाओं के अनुज्ञापन तथा आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने वाला विधेयक।"

408. विधि व्यवसायी विधेयक, 1959 के संक्षिप्त नाम को संयुक्त समिति ने संशोधित करके 'अधिवक्ता विधेयक' कर दिया।

409. वाणिज्य पोत परिवहन विधेयक, 1958 संबंधी संयुक्त समिति ने कई नए खंड विधेयक में अन्त:स्थापित किए जिनके माध्यम से राष्ट्रीय पोत परिवहन बोर्ड और पोत परिवहन विकास निधि के सृजन का उपबंध किया गया था, संविधान (अनुसूचित जनजाति) आदेश (संशोधन) विधेयक, 1996 संबंधी प्रवर समिति, जिसका गठन असम की अनुसूचित जनजातियों की सूची में कोच-राजबोगशी समुदाय को शामिल करने का उपबंध करने हेतु किया गया था; ने विधेयक में असम के अन्य समुदायों को शामिल किया।

410. विधानमंडलों की कार्यवाही (प्रकाशन का संरक्षण) विधेयक, 1956 की व्याप्ति को प्रवर समिति द्वारा केवल संसद की कार्यवाही तक सीमित रखा गया।

411. व्यय-कर विधेयक, 1957 के मामले में प्रवर समिति ने इसके प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर दिया ताकि व्यय-कर के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत और अधिक व्यक्तियों को लाया जा सके। *देखिए* प्रवर समिति का प्रतिवेदन।

412. कार्यवाही-सारांश [सरकारी परिसर (बेदखली) संशोधन विधेयक, 1954 संबंधी प्रवर समिति] 30.4.1955, 25-27 और 30.8.1955 ।

413. *एल.ए. डिबेट्स,* 19.2.1926, पृ. 1541-45 ।

414. बालक विधेयक, 1954-देखिए प्रवर समिति का प्रतिवेदन।

415. *पी. डिबेट्स,* (II), 8.2.1951, कॉ. 2573-81; *लो.स.वा.वि.,* (II), 28.7.1955, पृ. 368-69 ।

समिति विधेयक में जिन संशोधनों को स्वीकार करती है, उन्हें विधायी विभाग का प्रारूपकार, जो समिति की सभी बैठकों में उपस्थित रहता है, विधेयक में शामिल कर देता है। जब कोई ऐसा संशोधन समिति द्वारा स्वीकार किया जाए, जिसकी जांच प्रारूपण की दृष्टि से कराना आवश्यक हो, तो प्रारूपकार द्वारा उसके प्रारूप को समिति की बाद में होने वाली बैठक में स्वीकार करवा लिया जाता है।[416]

जब विधेयक पर खण्डवार विचार समाप्त हो जाता है, तो प्रारूपकार यथासंशोधित विधेयक की पाण्डुलिपि तैयार करता है, जिसे मुद्रित किया जाता है तथा समिति के प्रतिवेदन का प्रारूप सचिवालय तैयार करता है।[417] प्रारूप प्रतिवेदन की प्रतियां प्रारूपकार और मंत्रालय के प्रतिनिधियों, जो समिति की बैठकों में उपस्थित रहते हैं, को तथ्यात्मक सत्यापन के बाद वापस लौटाने के लिए भेज दी जाती हैं। यदि वे कोई सुझाव दें, तो उन्हें प्रारूप प्रतिवेदन में उपयुक्त रूप से सम्मिलित कर लिया जाता है। प्रारूप प्रतिवेदन का तथ्यात्मक सत्यापन हो जाने पर उसे सभापति के अनुमोदन के लिए भेजा जाता है।

सभापति द्वारा यथाअनुमोदित प्रारूप प्रतिवेदन की प्रतियां समिति के सभी सदस्यों, प्रारूपकार और सम्बन्धित मंत्रालय के प्रतिनिधि को भेजी जाती हैं। प्रारूप प्रतिवेदन की प्रतियों के साथ समिति द्वारा यथासंशोधित विधेयक की मुद्रित प्रतियां भी परिचालित की जाती हैं।

प्रतिवेदन का स्वरूप और विषय-वस्तु

प्रतिवेदन का प्रारूप इस संबंध में अध्यक्ष द्वारा जारी निदेश के उपबन्धों के अनुसार एक निश्चित ढांचे के अनुसार तैयार किया जाता है।[418]

प्रतिवेदन के प्रारम्भिक पैराओं में विधेयक तथा समिति की कार्यवाही के संबंध में सामान्य जानकारी दी जाती है: इस जानकारी में विधेयक के पुरःस्थापित किये जाने की तिथि, वे तिथियां, जब विधेयक समिति को सौंपने का प्रस्ताव पेश किया गया, उस पर चर्चा हुई और उसे सभा या सभाओं, जैसी भी स्थिति हो, ने स्वीकार किया, समिति की बैठकों का ब्यौरा तथा प्रतिवेदन पेश करने के लिए समय बढ़ाने की कोई मांग की गयी हो तो उसका ब्यौरा, आदि बातें सम्मिलित होती हैं। यदि समिति को कोई ज्ञापन या अभ्यावेदन मिले हों या उसने कोई साक्ष्य लिया हो अथवा किसी विषय का अध्ययन करने के लिए दौरा किया हो, तो उसमें उस बात का उल्लेख भी किया जाता है। इसी प्रकार, यदि समिति किसी उप-समिति की नियुक्ति करती है, तो उसका उल्लेख भी किया जाता है और उप-समिति का प्रतिवेदन समिति के प्रतिवेदन के साथ एक परिशिष्ट के रूप में लगा दिया जाता है।

प्रतिवेदन के मुख्य भाग में, जहां समिति द्वारा विधेयक में किये गए परिवर्तनों के संबंध में समिति की टिप्पणियां और उसकी सामान्य सिफारिशें आदि दी जाती हैं, केवल उन्हीं

---

416. उदाहरणार्थ *देखिए* नौसेना विधेयक, 1957 का खण्ड 9 ।

417. निदेश 68 (2)।

418. निदेश 84 ।

संशोधनों के बारे में टिप्पणी की जाती है, जो वास्तव में समिति ने विधेयक में किये हों तथा साथ में वे सामान्य सिफारिशें दी जाती हैं जिन्हें सभा और/या सरकार का ध्यान दिलाने के लिए समिति ने अपने प्रतिवेदन में सम्मिलित करने का निर्णय किया है। समिति द्वारा किये गये संशोधनों के संबंध में तर्क या ब्यौरेवार कारण नहीं दिये जाते, परन्तु केवल उस निदेश का संकेत दिया जाता है जिसके अनुसार संशोधन किया गया है।

प्रतिवेदन के अन्त में सभा से की गई यह सामान्य सिफारिश रहती है कि विधेयक को, या समिति द्वारा यथासंशोधित विधेयक को पारित कर दिया जाए या कोई अन्य संगत सिफारिश हो तो उसका उल्लेख रहता है।[419] जब विधेयक में परिवर्तन कर दिया हो, तो समिति यदि उचित समझे, तो वह विधेयक के प्रभारी सदस्य से यह सिफारिश कर सकती है कि उसका अगला प्रस्ताव यह होना चाहिए कि समिति द्वारा यथासंशोधित विधेयक को परिचालित किया जाये या जहां विधेयक परिचालित किया जा चुका हो, उसे फिर से परिचालित किया जाए।[420]

प्रारूप प्रतिवेदन तथा समिति द्वारा यथासंशोधित विधेयक पर विचार

प्रारूप प्रतिवेदन तथा यथासंशोधित विधेयक पर समिति अपनी अंतिम बैठक में विचार करती है। सभापति पहले तो समिति के सामने यथासंशोधित विधेयक रखता है और समिति इस बात पर विचार करती है कि उसके द्वारा स्वीकार किये गये और कार्यवाही-सारांश में सम्मिलित किये गये सभी संशोधन मुद्रित विधेयक में उचित रूप से सम्मिलित कर लिये गये हैं या नहीं। जिस सदस्य को यथासंशोधित विधेयक के किसी भाग पर यह आपत्ति हो कि वह समिति के निर्णय के अनुरूप नहीं है, वह सभापति द्वारा बोलने के लिए पुकारे जाने पर अपनी आपत्ति का आधार संक्षेप में बताता है और उस विधेयक में ऐसे संशोधनों का प्रस्ताव रखता है, जिससे विधेयक समिति के निर्णयों के अनुरूप बन जायें। यदि वे संशोधन स्वीकार हो जायें, तो उन्हें विधेयक में सम्मिलित कर लिया जाता है। सामान्यतया इस प्रक्रम में विधेयक में किसी नये संशोधन को स्वीकार नहीं किया जाता है।[421] उसके बाद समिति यथासंशोधित विधेयक को स्वीकार करती है।

यथासंशोधित विधेयक के स्वीकार होने के बाद समिति का सभापति प्रारूप-प्रतिवेदन को समिति की स्वीकृति के लिए उसके सामने रखता है।[422] जब प्रारूप-प्रतिवेदन और

---

419. बालक विधेयक, 1954 (राज्य सभा द्वारा यथापारित) संबंधी प्रवर समिति ने यह सिफारिश की कि विधेयक के प्रस्तुतकर्ता को विधेयक वापस लेने के लिए आवश्यक प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए।

420. नियम 303 ।

421. खान और खनिज (विनियमन और विकास) विधेयक, 1957 संबंधी संयुक्त समिति में सभापति ने एक सदस्य को कतिपय नये संशोधन रखने की अनुमति दी-*देखिए* कार्यवाही-सारांश का पैरा 5; 13.12.1957 ।

422. निदेश 69 (2)।

यथासंशोधित विधेयक स्वीकार हो जाये, तो समिति प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए एक ऐसी तिथि निश्चित करती है, जो उस तिथि के बाद की नहीं होती, जो कि सभा ने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए नियत की हो। समिति अपने सभापति या, उसकी अनुपस्थिति में, किसी अन्य सदस्य को प्रतिवेदन को सभा में प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत करती है। संयुक्त समिति के मामले में, राज्य सभा के किसी सदस्य या उसकी अनुपस्थिति में उस सभा के किसी अन्य सदस्य को इस बात के लिए चुना जाता है कि वह प्रतिवेदन की प्रति उस सभा के पटल पर उसी समय रखे, जब प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत किया जा रहा हो।

विमत टिप्पण, यदि कोई हों, सचिवालय को भेजने के लिए समिति द्वारा कोई एक तिथि भी नियत की जाती है। इस प्रकार नियत तिथि, पत्र के माध्यम से समिति के सभी सदस्यों को उनकी जानकारी के लिए सूचित की जाती है। विमत टिप्पण यदि कोई हो, तो उसे, सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने से पहले प्रतिवेदन के साथ परिशिष्ट के रूप में लगा दिया जाता है।

विमत टिप्पण और टिप्पणियां

समिति का प्रतिवेदन उन निर्णयों पर आधारित होता है, जो उसने अपने सदस्यों के बहुमत से किये हों, परन्तु समिति का कोई सदस्य, जो उसके प्रतिवेदन या उसके किसी भाग से सहमत न हो, विधेयक संबंधी किसी विषय पर अथवा प्रतिवेदन में उल्लिखित किसी विषय पर विमत टिप्पण दे सकता है। विमत टिप्पण समय से पहले नहीं दिया जा सकता, और इसके साथ किसी प्रकार की कोई शर्त नहीं हो सकती तथा यह सदस्यों द्वारा तभी दिया जा सकता है, जब समिति ने प्रतिवेदन के प्रारूप पर विचार करके उसे स्वीकार कर लिया हो।[423]

विमत टिप्पण के लिए यह आवश्यक है कि वह फुलस्केप आकार के कागज पर स्याही से लिखा गया हो या टाइप किया गया हो। यह विमत टिप्पण समिति के किसी पदाधिकारी को या संसदीय सूचना कार्यालय में इस प्रयोजन के लिए समिति द्वारा निश्चित की गयी तिथि और समय तक देना आवश्यक है।[424] जो विमत टिप्पण निश्चित समय के बाद, परन्तु प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत किये जाने से पहले, प्राप्त होते हैं, वे सभापति की अनुमति से स्वीकार किये जा सकते हैं और उन्हें प्रतिवेदन के साथ परिशिष्ट के रूप में लगाया जा सकता है। जो विमत टिप्पण हिन्दी में दिये गये हों, उन्हें वैसे ही प्रस्तुत किया जाता है और उनको अंग्रेजी संस्करण प्रतिवेदन में सम्मिलित नहीं किया जाता।

सदस्य चाहें तो संयुक्त रूप से कोई विमत टिप्पण दे सकते हैं। प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत कर दिए जाने के बाद कोई विमत टिप्पण नहीं दिया जा सकता[425] और न कोई सदस्य प्रतिवेदन के प्रस्तुत होने के बाद, विमत टिप्पण में कोई परिवर्तन कर सकता है।[426] विमत टिप्पण संयत तथा शिष्ट भाषा में लिखा होना चाहिए और उसमें समिति पर कोई आक्षेप नहीं

423. निदेश 89 के साथ पठित नियम 303 (4) ।

424. निदेश 85 ।

425. निदेश 90 ।

426. जो सुधार सम्पादन के दृष्टिकोण से किये जाते हैं, केवल उन्हीं के लिए अनुमति दी जाती है।

दिया जाना चाहिए और न ही समिति में की गयी किसी चर्चा की ओर संकेत किया जाना चाहिए। यदि उसमें ऐसे शब्द या अभिव्यक्तियां हों तो सभापति[427] या अध्यक्ष[428] के आदेशानुसार उन्हें निकाल दिया जाता है। यदि कुछ शब्द सभापति के आदेशानुसार निकाल दिये गये हों, तो संबंधित सदस्य को सभापति के निर्णय की सूचना भेज दी जाती है ताकि यदि वह चाहे तो इस सम्बन्ध में अध्यक्ष से अपील कर सके और इस मामले में अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होता है।[429]

यदि कोई सदस्य समिति की उस बैठक में या उन बैठकों से अनुपस्थित रहा हो, जिनमें प्रतिवेदन के प्रारूप पर विचार करके, उसे स्वीकार किया गया हो, और वह विमत टिप्पण देना चाहे, तो अध्यक्ष के एक निदेश के अनुसार उसके लिए यह आवश्यक है कि वह लिखित रूप में यह प्रमाणित करे कि उसने प्रतिवेदन पढ़ लिया है।[430] यदि कोई सदस्य इस प्रमाण पत्र के बिना कोई विमत टिप्पण भेजता है तो उसे प्रतिवेदन के साथ परिशिष्ट के रूप में लगा दिया जाता है और यह पाद-टिप्पण दे दिया जाता है कि निदेश के अन्तर्गत अपेक्षित प्रमाण पत्र नहीं दिया गया है। यदि विमत टिप्पण में कोई तिथि न दी हुई हो, तो उसमें हस्ताक्षर करने वाले सदस्य के नाम के आगे वह तिथि दिखाई जाती है, जब वह सचिवालय में प्राप्त हुआ हो।[431]

जो सदस्य प्रतिवेदन से सहमत हो, परन्तु फिर भी यह सोचता हो कि किसी विषय विशेष पर समुचित बल नहीं दिया गया है, या जो विधेयक सम्बन्धी किसी विषय पर प्रतिवेदन में उल्लिखित किये विषय के सम्बन्ध में और सुझाव देना चाहता हो, वह प्रतिवेदन के साथ एक टिप्पणी दे सकता है (यह विमत टिप्पण से भिन्न होती है।)। सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय ऐसी टिप्पणियां भी, विमत टिप्पण की भांति प्रतिवेदन के साथ परिशिष्ट के रूप में लगा दी जाती हैं। प्रतिवेदन के साथ टिप्पणियां भेजने की प्रक्रिया भी वही है, जिसका अनुसरण विमत टिप्पण के संबंध में किया जाता है।

---

427. निदेश 91 (1)।

428. नियम 303 (6)।

429. निदेश 91 (2); *लो.स.वा.वि.*, 2.8.1968, पृ. 1845-47 । एक सदस्य ने अध्यक्ष से उस प्रतिवेदन में, जो सभा में प्रस्तुत किया जा चुका था, शामिल अपने विमत टिप्पण में से कतिपय पैराओं को हटाये जाने के विरुद्ध अपील की थी। अध्यक्ष ने इन दो पैराओं को फिर से शामिल करने का निदेश दिया। प्रतिवेदन का शुद्धिपत्र निकालकर इन पैराओं को शामिल किया गया। ये पैरा राजपत्र में भी प्रकाशित किये गये और सदस्यों को परिचालित किये गये।

430. निदेश 87; प्रवर या संयुक्त समिति द्वारा विधेयक पर खण्डवार विचार पूरा कर लिए जाने पर, सभापति समिति को निदेश 87 के उपबन्धों से अवगत कराता है। उसी दिन एक पत्र भी सभी सदस्यों को भेजा जाता है, जिसके माध्यम से उनका ध्यान इस निदेश की ओर आकृष्ट किया जाता है।

431. निदेश 86 ।

प्रतिवेदन का सभा में प्रस्तुत किया जाना

सभा में प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदन में सामान्यत: क्रमानुसार निम्नलिखित कागज-पत्र होते हैं:

> समिति के सदस्यों की सूची[432] समिति का प्रतिवेदन जिस पर सभापति के हस्ताक्षर होते हैं; टिप्पणियां तथा विमत टिप्पण यदि कोई हों, मूल रूप में; समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में संबंधित प्रारूपकार द्वारा प्रमाणीकृत विधेयक की मुद्रित प्रति; समिति को नियुक्त करने वाली सभा, द्वारा (या दोनों सभाओं द्वारा) प्रस्तुत प्रस्ताव का पाठ; यदि कोई उप-समिति हो, तो उसका प्रतिवेदन तथा उसका कार्यवाही सारांश; समिति को यदि कोई ज्ञापन/अभ्यावेदन प्राप्त हुए हों, तो उनका विवरण; समिति के सामने यदि किन्हीं साक्षियों ने साक्ष्य दिया हो तो उन साक्षियों की सूची; समिति की बैठकों का कार्यवाही सारांश, और अन्य महत्वपूर्ण कागज-पत्र, यदि कोई हों जो समिति के सदस्यों को उपलब्ध कराये गये हों और जिन्हें सभा में प्रस्तुत करने के लिए समिति के सभापति ने अनुमोदित कर दिया हो।[433]

संयुक्त समिति के मामले में, प्रतिवेदन की अधिप्रमाणीकृत प्रति[434] तथा पूर्ववर्ती पैरा में उल्लिखित अन्य पत्रों की प्रतियां सचिवालय द्वारा राज्य सभा सचिवालय को भेज दी जाती हैं जिससे कि लोक सभा में प्रस्तुत किये जाने के साथ-साथ उन्हें राज्य सभा के पटल पर भी रखा जा सके। यदि उस दिन राज्य सभा का सत्र न हो रहा हो, तो उन्हें उस सभा के पुन: समवेत होने के दिन सभा पटल पर रखा जाता है।

प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए जो तिथि निश्चित की जाती है, यदि उस दिन लोक सभा का सत्र न हो रहा हो, तो प्रतिवेदन अध्यक्ष को प्रस्तुत कर दिया जाता है। ऐसे मामलों में अध्यक्ष इस बात की व्यवस्था करता है कि सभा के पुन: समवेत होने के बाद, यथासम्भव शीघ्र प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखवा दिया जाये।[435]

प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय का बढ़ाया जाना

किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव में अनिवार्य रूप से उस निश्चित तिथि का उल्लेख होता है।[436] या यह बताया जाता है कि कितने समय में समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किया जाना है।[437] तथापि, यदि सभा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के

---

432. सूची में सम्बद्ध प्रारूपकार तथा समिति के सम्बद्ध सचिवालय के पदाधिकारी का नाम भी होता है।
433. निदेश 92 ।
434. प्रति का अधिप्रमाणीकरण समिति से सम्बद्ध पदाधिकारी करता है।
435. निदेश 80 (2)।
436. उदाहरणार्थ *देखिए लो.स.वा.वि.,* 14.8.1961, पृ. 1193 ।
437. *लो.स.वा.वि.,* 1.5.1961, पृ. 6643; 5.5.1961, पृ. 7160 ।

लिए कोई समय निश्चित न करे, तो समिति के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिवेदन उस तिथि से तीन मास की समाप्ति से पहले प्रस्तुत कर दिया जाए, जिस तिथि को सभा ने उक्त समिति को विधेयक सौंपे जाने का प्रस्ताव स्वीकार किया था।[438] यदि किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव पर विचार के समय अथवा असाधारण परिस्थितियों में, ऐसे प्रस्ताव के पारित होने के शीघ्र बाद, यह आवश्यक समझा जाये कि समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के नियत समय में कोई परिवर्तन किया जाये, तो वह परिवर्तन प्रस्ताव में संशोधन के माध्यम से किया जाता है जिसे सभा में पेश किया गया हो और सभा ने स्वीकार कर लिया हो।[439]

विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव में किसी संशोधन के माध्यम से प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने की निश्चित तिथि में किया गया यह परिवर्तन उस प्रस्ताव से भिन्न होता है जो उस स्थिति में लिया जाता है जब समिति यह देखे कि यह निश्चित तिथि तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं कर सकती।

जब कभी किसी समिति में उसके समक्ष विधेयक के बारे में प्रगति ऐसी हो, जिससे प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुतीकरण में देर हो जाने की संभावना हो, तो जैसे ही सभापति को यह स्पष्ट हो जाये कि वैसी देर होने की सम्भावना है, वैसे ही उस मामले को अध्यक्ष के ध्यान में लाया जाता है। सभापति उन परिस्थितियों को जो देर के लिए जिम्मेदार हैं तथा काम पूरा होने में लगने वाले समय के अपने अनुमान को और किसी दूसरे मामले को, जो उसके विचार से अध्यक्ष के ध्यान में लाया जाना चाहिए, संक्षेप में बताता है।[440] तत्पश्चात्, समिति अपने सभापति को, या उसकी अनुपस्थिति में समिति के किसी अन्य सदस्य को, प्राधिकृत करती है कि वह सभा में यह प्रस्ताव रखे कि प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण का समय प्रस्ताव में उल्लिखित किसी निश्चित तिथि तक बढ़ा दिया जाये।[441] सभा में समय बढ़ाने का प्रस्ताव जिस दिन प्रस्तुत किया जाना होता है उससे एक दिन पहले सभी सदस्यों को समिति के सभापति के विधिवत् हस्ताक्षर सहित एक ज्ञापन परिचालित किया जाता है जिसमें वे कारण बताये जाते हैं जिनके आधार पर समय बढ़ाने के लिए अनुरोध किया गया है। जब यह सम्भव या आवश्यक न हो कि समिति की बैठक केवल इसलिए बुलायी जाये कि वह अपने सभापति को समय बढ़ाने के लिए प्रस्ताव रखने के लिए प्राधिकृत करे, तो सभापति अपनी ओर से अध्यक्ष को सूचित करने के बाद, सभा में समय बढ़ाने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत कर देता है। वह तिथि जिस तक कि समिति के प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण का समय बढ़ाना अपेक्षित हो, उसका उल्लेख इस तर्कसंगत धारणा पर प्रस्ताव में किया जाता है कि उस तिथि को सभा का सत्र हो रहा होगा।[442]

---

438. नियम 303 (1); पहला परन्तुक।

439. *लो.स.वा.वि.,* 24.8.1956, पृ. 1419 और 1427; 25.8.1956, पृ. 139-40 ।

440. निदेश 79 (2)।

441. निदेश 80 (1); *लो.स.वा.वि.,* 20.11.1961, पृ. 109 ।

442. निदेश 80 (2)।

यदि समिति प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय का बढ़ाया जाना आवश्यक समझे और उस समय सभा का सत्र न चल रहा हो और सभा को प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण के लिए निश्चित तिथि के बाद ही समवेत होना हो, तो सभापति, इस निमित्त समिति द्वारा प्राधिकृत किए जाने पर अध्यक्ष से बात करता है, जो सभा की ओर से समय बढ़ा देता है और ज्यों ही सभा पुनः समवेत होती है, सभा को इस बात की सूचना दे देता है।[443]

समिति के सभापति की सुविधा को देखते हुए समय बढ़ाने के प्रस्ताव को, प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण के लिए मूल रूप से निश्चित तिथि की, या उससे पहले की तिथि की कार्य-सूची में सम्मिलित किया जाता है। चूंकि समय बढ़ाने का प्रस्ताव एक औपचारिक विषय है, इसलिए सामान्यतया इस प्रस्ताव पर सभा में कोई चर्चा नहीं होती। तथापि, सभा चाहे तो इस प्रस्ताव पर चर्चा कर सकती है।[444] संयुक्त समिति के मामले में, सभा द्वारा प्रस्ताव पारित किये जाने के बाद उसकी सूचना सन्देश के माध्यम से राज्य सभा को दी जाती है।

समिति प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण के लिए एक से अधिक बार समय बढ़वा सकती है।[445]

प्रतिवेदन का मुद्रण तथा उसकी प्रतियों का वितरण

प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुतीकरण के शीघ्र बाद उसकी टाइप की हुई या साइक्लोस्टाइल की हुई कुछ प्रतियां सदस्यों के सन्दर्भ हेतु ग्रन्थालय में रख दी जाती हैं। उसी समय प्रतियां प्रेस के प्रतिनिधियों को भी दी जाती हैं।

सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति

प्रत्येक सत्र के दौरान सरकार संसद के समक्ष अनेक अधिसूचनाएं, प्रतिवेदन, लेखा-परीक्षित लेखे तथा अन्य पत्र रखती है जिन्हें या तो संवैधानिक/सांविधिक उपबंधों के अनुपालन में अथवा विभिन्न विषयों के संबंध में संसद सदस्यों को जानकारी देने के लिए स्वतः रखा जाता है। यद्यपि इनमें से कुछ प्रतिवेदन/पत्र अधीनस्थ विधान संबंधी समिति सहित विभिन्न संसदीय

---

443. उदाहरणार्थ *देखिए लो.स.वा.वि.,* (II), 21.11.1955, कॉ. 5648 ।

444. *लो.स.वा.वि.,* 28.8.1961, पृ. 2645; और 29.8.1961, पृ. 2779 ।

445. धार्मिक न्यास विधेयक, 1960 संबंधी संयुक्त समिति का समय चार बार बढ़ाया गया—*लो.स.वा.वि.,* 18.11.1960, पृ. 582; 28.2.1961, पृ. 1138; 29.8.1961, पृ. 2779 और 7.12.1961, पृ. 1876 ।

लोकपाल विधेयक, 1985, संबंधी संयुक्त समिति का समय सात बार बढ़ाया गया—*लो.स.वा.वि.,* 12.3.1986, पृ. 167; 23.7.1986, पृ. 177-78; 4.12.1986, पृ. 236; 30.4.1987, पृ. 226; 19.8.1987, 7.12.1987 और 10.5.1988 ।

रेल विधेयक, 1986 सम्बन्धी संयुक्त समिति का समय चार बार बढ़ाया गया—*लो.स.वा.वि.,* 27.2.1987, पृ. 175; 25.8.1987, पृ. 196, 2.12.1987, पृ. 142-43 और 5.5.1988, पृ. 234-35 ।

समितियों को सौंप दिए जाते थे, तथापि उनमें से अधिकांश पत्रों पर, जून, 1975 में सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति का गठन होने से पूर्व, विचार नहीं हो पाता था।

संरचना और कार्यकाल

समिति में 15 से अधिक सदस्य नहीं होते इन्हें अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता है। समिति का कार्यकाल इसके गठन से ले अधिक से अधिक एक वर्ष होता है।[446]

समिति का सभापति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है।

कार्य क्षेत्र और कृत्य

समिति के कृत्य[447] मंत्रियों द्वारा सभा पटल पर रखे गये सभी पत्रों की जांच करना और सभा को इन बातों के बारे में प्रतिवेदन देना है कि:

(क) क्या संविधान, अधिनियम, नियम या विनियम के उन उपबंधों का पालन किया गया है, जिसके अन्तर्गत पत्र सभा पटल पर रखा गया है;

(ख) क्या पत्रों को सभा पटल पर रखने में कुछ अनुचित विलम्ब हुआ है;

(ग) यदि ऐसा विलम्ब हुआ है, तो क्या विलम्ब के कारण बताने वाला विवरण सभा पटल पर रखा गया है और क्या वे कारण संतोषजनक हैं;

(घ) क्या पत्र के हिन्दी और अंग्रेजी दोनों संस्करण सभा पटल पर रखे गये हैं; और

(ङ) क्या हिन्दी संस्करण के सभा पटल पर न रखे जाने के कारणों के बारे में विवरण दिया गया है और क्या वे कारण संतोषजनक हैं।

नियमों में यह उपबंध भी किया गया है[448] कि यदि कोई सदस्य कोई ऐसा मामला उठाना चाहता है जो समिति के कृत्यों के अंतर्गत आता है, तो वह उसे समिति के पास भेजेगा और उसे सदन में नहीं उठायेगा।

कार्य संचालन प्रक्रिया

जैसे ही पत्र सभा पटल पर रखे जाते हैं सचिवालय उनकी जांच करता है और उनमें से ऐसे पत्रों (विशेष रूप से विभिन्न संगठनों के वार्षिक प्रतिवेदनों/लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों) को छांटता है जिनको सभा पटल पर रखने में सरकार की ओर से स्पष्ट विलम्ब हुआ है। तत्पश्चात् इस बारे में संबंधित मंत्रालय को पत्र लिखा जाता है ताकि मामले के तथ्यों और सभा पटल पर पत्र के रखे जाने में विलम्ब के कारण आदि का पता लगाया जा सके। मंत्रालय से उत्तर प्राप्त होने पर मामले को ज्ञापन के रूप में समिति के समक्ष रखा जाता है। यदि समिति

---

446. नियम 305 क।

447. नियम 305 ख।

448. नियम 305 ग।

सरकार के उत्तर से उत्पन्न किसी मुद्दे पर और अधिक जानकारी चाहती है, तो संबंधित मंत्रालय के अधिकारियों को समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए बुलाया जा सकता है। उपयुक्त मामले में समिति तत्स्थानिक अध्ययन दौरा भी कर सकती है। अंत में इस प्रकार एकत्रित जानकारी के आधार पर सचिवालय समिति द्वारा विचार किये जाने के लिए एक प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करता है। समिति द्वारा स्वीकृति प्रदान किये जाने के बाद प्रतिवेदन सभापति द्वारा अथवा उसकी अनुपस्थिति में समिति द्वारा सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य द्वारा सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

सभा पटल पर पत्रों को रखने के संबंध में समिति द्वारा निर्धारित मुख्य मार्गनिदेश निम्नलिखित हैं–

(i) जब तक संगत अधिनियम अथवा नियमों, इत्यादि में अन्यथा निर्धारित न हो, सभी स्वायत्तशासी संगठनों/कंपनियों, इत्यादि को अपने वार्षिक प्रतिवेदन लेखा परीक्षित लेखे लेखा वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नौ माह के भीतर सभा पटल पर रख देने चाहिएं। यदि किसी कारणवश ये प्रतिवेदन निर्धारित अवधि के भीतर सभा पटल पर नहीं रखे जा सकें, तो मंत्रालय को 9 माह की निर्धारित अवधि की समाप्ति के 30 दिन के भीतर अथवा जैसे ही सदन की बैठक हो, इसमें जो भी बाद में हो, यह कारण बताने वाला एक विवरण सभा पटल पर रखना चाहिए कि प्रतिवेदन और लेखे निर्धारित अवधि के भीतर सभा पटल पर क्यों नहीं रखे जा सके।[449]

(ii) ऐसे स्वायत्तशासी संगठन को, जो केवल अपने वार्षिक प्रतिवेदन सभा पटल पर रखते हैं, लेखा वर्ष की समाप्ति के पश्चात् 6 माह के भीतर अपने प्रतिवेदन सभा पटल पर रख देने चाहिए।[450]

(iii) प्रशासनिक मंत्रालयों को उनके नियंत्रणाधीन संगठनों अथवा उपक्रमों के कार्यकरण पर एक ऐसी "समीक्षा" तैयार करनी चाहिए। जिसमें उन संगठनों की उपलब्धियों अथवा कमियों को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया हो, तथा उसे वार्षिक प्रतिवेदनों/लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों के साथ सभा पटल पर रखना चाहिए। उन मामलों में भी जहां सरकार प्रतिवेदन में दी गई जानकारी से सहमत है सरकार को प्रतिवेदन के साथ एक ऐसा विवरण सभा पटल पर रखना चाहिए जिसमें यह बताया गया हो कि वह प्रतिवेदन से सहमत है और इसलिए कोई समीक्षा नहीं रखी जा रही हैं।[451]

(iv) उन सभी संगठनों को, जिनका पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषण भारत की संचित निधि में से ली गयी धनराशि से किया जाता है, इस तथ्य के होते हुए भी कि इन संगठनों

---

449. दूसरा प्रतिवेदन (सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा), पैरा 4.16।

450. पहला प्रतिवेदन (सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा), पैरा 1.17 ।

451. दूसरा प्रतिवेदन (सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा), पैरा 4.18 ।

के नियमों में इस संबंध में उपबंध है अथवा नहीं, अपने वार्षिक प्रतिवेदनों/लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों को संसद के दोनों सदनों में सभा पटलों पर रखना चाहिए। लेखा वर्ष की समाप्ति के नौ माह के भीतर सभा पटल पर सरकार को संगठनों से संगत नियमों/परिनियमों, आदि में संशोधन करने की व्यवहार्यता पर भी विचार करना चाहिए, ताकि संबंधित मंत्रालय को ऐसे संगठनों के प्रतिवेदन सभा पटल पर रखने के लिए बाध्यकर बनाया जा सके।[452]

एकमुश्त 50 लाख रुपए अथवा उससे अधिक की सहायता प्राप्त करने वाली समितियों/संगठनों को अपनी वार्षिक रिपोर्टों और लेखा परीक्षित लेखाओं को संसद में सभा पटल पर रखना चाहिए। एकमुश्त 10 लाख रुपए की तथा 50 लाख रुपए से कम की सहायता प्राप्त करने वाली समितियों के मामले में, भारत सरकार के सभी मंत्रालयों और विभागों को अपनी वार्षिक रिपोर्टों में इनमें से प्रत्येक समिति को उपलब्ध कराए गए धन की राशि और उन प्रयोजनों, जिनके लिए धन व्यय किया गया था, को दर्शाने वाला एक विवरण संसद सदस्यों की सूचना हेतु शामिल करना चाहिए।[453]

25 लाख रुपये और उससे अधिक की आवर्ती अनुदान सहायता प्राप्त करने वाले स्वैच्छिक संगठनों को उत्तरवर्ती वित्तीय वर्ष की समाप्ति के नौ माह के भीतर अपने वार्षिक प्रतिवेदन और लेखापरीक्षित लेखे। संसद के समक्ष रखने चाहिए। 10 लाख रुपए से 25 लाख रुपए तक की आवर्ती अनुदान सहायता प्राप्त करने वाले निजी और स्वैच्छिक संगठनों के मामले में, भारत सरकार के सभी मंत्रालयों और विभागों को अपनी वार्षिक रिपोर्टों में इनमें से प्रत्येक संगठन को उपलब्ध कराए गए धन की राशि और उन प्रयोजनों, जिनके लिए धन व्यय किया गया था, को दर्शाने वाला विवरण संसद की सूचना हेतु शामिल करना चाहिए।[454]

याचिका समिति

लोक सभा के प्रारम्भ पर, या समय-समय पर, जैसी भी स्थिति हो, अध्यक्ष एक याचिका समिति नाम-निर्देशित करता है।[455] समिति अध्यक्ष द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि अथवा नई समिति के गठन होने तक अपना कार्यभार संभालती है। तथापि, व्यवहार में, समिति के एक वर्षीय कार्यकाल के अन्त में समिति, का पुनर्गठन करने अथवा उसी समिति का कार्यकाल बढ़ाने के लिए अध्यक्ष के आदेश ले लिए जाते हैं।

---

452. दूसरा प्रतिवेदन (सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति—छठी लोक सभा), पैरा 1.12 तथा 1.14 ।
453. 20वां प्रतिवेदन (सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति—दसवीं लोक सभा), पैरा 1.9 ।
454. 19वां प्रतिवेदन (सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति-14वीं लोक सभा), पैरा 1.10 और 1.12 ।
455. नियम 306 ।

इस समिति में कम से कम 15 सदस्य होते हैं। इनका नामनिर्देशन सभा में विभिन्न दलों और समूहों की संख्या के अनुपात में किया जाता है, ताकि यह समिति सभा में विद्यमान सभी विचारधाराओं की प्रतिनिधि हों।[456]

> याचिका समिति सभा की सबसे पुरानी समितियों में से एक है और स्वतंत्रता से पहले लेजिसलेटिव असेम्बली के दिनों से चलती आ रही है। इसका प्रादुर्भाव उस समय हुआ, जब 15 सितम्बर, 1921 को उस समय की काउन्सिल ऑफ स्टेट में एक सदस्य ने संकल्प पेश किया।[457] उस संकल्प में कहा गया था कि जनता की याचिकाओं के संबंध में एक समिति की नियुक्त की जाये जिसे साक्ष्य लेने की शक्ति प्राप्त हो। इस मामले पर सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने विचार किया। उस समिति ने इस बात को ठीक नहीं समझा कि विधानमण्डल को वे शक्तियां दी जायें, जिनका प्रस्ताव संकल्प में किया गया था। तथापि, उसने यह सिफारिश की कि सार्वजनिक कार्य के संबंध में विधानमण्डल को याचिका देने का अधिकार दिया जाना चाहिए।[458] इस सिफारिश के अनुसार अध्यक्ष व्हाइट ने 20 फरवरी, 1924 को इस समिति का गठन किया।[459] इसके सदस्यों की संख्या पांच निश्चित की गई और 1954 के प्रारम्भ तक यह संख्या इतनी ही रही। उस वर्ष अप्रैल में इसकी संख्या बढ़ाकर 15 कर दी गई, ताकि समिति में सभा के सभी दलों और समूहों को समुचित प्रतिनिधित्व मिल सके। वर्ष 1933 तक समिति का नाम "लोक याचिका समिति" था। उस वर्ष इसका नाम बदलकर "याचिका समिति" कर दिया गया।

कृत्य

किसी सदस्य द्वारा कोई याचिका अध्यक्ष[460] की सहमति से सभा में प्रस्तुत की जा सकती है और उस याचिका पर संबंधित सदस्य[461] के प्रति हस्ताक्षर होने चाहिए। तथापि, याचिका प्रस्तुत होने के बाद उस पर किसी वाद-विवाद की अनुमति नहीं दी जाती है।[462] समिति प्रत्येक याचिका की जांच करती है, जो लोक सभा में प्रस्तुत किये जाने के बाद उसे सौंपी गई समझी जाती है।[463] समिति का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसा साक्ष्य प्राप्त करने के

---

456. *देखिए* अध्याय आठ-संसद के कार्य निर्वाहक। इसमें समिति के सभापति की नियुक्ति के संबंध में प्रक्रिया दी गई है।
457. *सी.एस. डिबेट्स,* 15.9.1921, खंड II, पृ. 197 ।
458. लोक याचिका समिति का प्रतिवेदन, 1922 पैरा 9-13, यह प्रतिवेदन राजपत्र (1) दिनांक 1.4.1923 पृ. 334-38 पर प्रकाशित हुआ है।
459. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.2.1924, पृ. 817 ।
460. नियम 660 ।
461. नियम 164 (1)।
462. नियम 167 ।
463. नियम 169 । तथापि, एक प्रवर या संयुक्त समिति के समक्ष विचाराधीन विधेयक संबंधी याचिका के मामले में याचिका सभा में प्रस्तुत किए बिना ही समिति को निर्दिष्ट की जा सकती है और याचिकादाता को तद्नुसार सूचित कर दिया जाता है-निदेश 38 (3)।

बाद, जैसा कि वह ठीक समझे, उसे सौंपी गई याचिका में की गई विशिष्ट शिकायतें सभा को प्रतिवेदित करे और विचाराधीन मामले से सम्बन्धित, ठोस रूप में या भविष्य में ऐसे मामले रोकने के लिए, उपचारात्मक उपायों का सुझाव दे।[464] समिति यह भी निदेश दे सकती है कि याचिका, उसके विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप में सभा के सभी सदस्यों में परिचालित की जाये।[465] सामान्य लोक हित के विषयों संबंधी याचिकाओं के मामले में समिति उनमें दिये गये सुझावों की जांच करती है और, जहां आवश्यक हो, सम्बन्धित मंत्रालयों से तथ्यात्मक टिप्पणियां मांगती है और सभा को अपने प्रतिवेदन में उपयुक्त सिफारिशें करती है।

समिति विभिन्न व्यक्तियों तथा संघों से प्राप्त पत्रों और तारों सहित ऐसे अभ्यावेदनों पर भी विचार करती है जो याचिकाओं संबंधी नियमों के अन्तर्गत नहीं आते तथा उन्हें निपटाने के लिए निदेश देती है।[466] यह गुमनाम पत्रों या उन पत्रों पर विचार नहीं करती, जिन पर लिखने वाले का नाम और/या पता या तो दिया नहीं होता या पढ़ा नहीं जा सकता और न ऐसे पत्रों पर विचार करती है, जिनमें कोई विशेष प्रार्थना न की गई हो। समिति पत्रों की उन पृष्ठांकित प्रतियों पर भी, जो अध्यक्ष या सभा से भिन्न अन्य व्यक्तियों या प्राधिकारियों को सम्बोधित किये गये हों तब तक ध्यान नहीं देती, जब तक कि इनमें शिकायत को दूर करने की विशेष प्रार्थना का उल्लेख न हो। इस प्रकार के अनाम पत्रों या पृष्ठांकित प्रतियों को सचिवालय में सरसरी तौर पर पढ़ने के बाद फाइल कर दिया जाता है।[467]

जब कोई याचिका सभा में प्रस्तुत की जाती है तो उसको एक क्रम संख्या दे दी जाती है और वह याचिका समिति को सौंपी गयी समझी जाती है।[468] उसके बाद सचिवालय, समिति के विचार के लिए एक ज्ञापन तैयार करता है।

बैठकें

जब समिति की बैठक की तिथि और समय निश्चित हो जाता है, तो उसकी सूचना उन विषयों की कार्य-सूची सहित, जिन पर समिति को विचार करना है, उस तिथि से काफी पहले

---

464. नियम 307 (3)।

465. नियम 307 (1) और 2-व्यवहार में समिति केवल उन याचिकाओं के परिचालन का निदेश देती है जो सभा के विचाराधीन विधेयकों या अन्य विषयों से संबंधित हों ।

466. निदेश 95-अध्यक्ष की टिप्पणी के अनुसरण में [(याचिका समिति—पहली लोक सभा), परिशिष्ट–vii], समिति ने 25 अप्रैल, 1956 से अभ्यावेदनों पर विचार करने का काम प्रारम्भ कर दिया। समिति सभा को दी गई अपनी रिपोर्टों में उन अभ्यावेदनों का कोई ब्यौरा नहीं बताती, जिन पर उसने विचार किया हो।

467. निदेश 95, परन्तुक।

468. नियम 169 । पहली लोक सभा के छठे सत्र, 1954 से प्रत्येक लोक सभा के कार्यकाल के दौरान सभा में लम्बित विधेयकों संबंधी याचिकाओं को पेश होने के बाद क्रम संख्या दे दी जाती है तथा इन याचिकाओं को सम्बद्ध विधेयकों से संबंधित कागज-पत्रों के रूप में अलग से नहीं छापा जाता।

परिचालित कर दी जाती है। किसी बैठक की कार्य-सूची की मदों को निम्नलिखित क्रम में रखा जाता है:—

> सभा में पेश की गयी गृहीत याचिकायें; गृहीत याचिकाओं के संबंध में ज्ञापन; समिति के पिछले प्रतिवेदनों की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के संबंध में ज्ञापन; और महत्वपूर्ण अभ्यावेदनों के संबंध में ज्ञापन, यदि कोई हों।

यदि समिति की किसी बैठक में किसी ऐसी याचिका पर विचार किया जाना हो जो उस विधेयक के संबंध में हो, जिसका प्रस्ताव समिति के सभापति ने किया हो, तो अध्यक्ष किसी अन्य सदस्य को उस बैठक विशेष में सभापति के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर देता है।

जब समिति को किसी ऐसे विधेयक के संबंध में प्राप्त किसी याचिका पर विचार करना हो, जिस पर सभा मे चर्चा हो रही हो, या जिस पर शीघ्र चर्चा होने की संभावना हो, या जिसके सभा द्वारा उस दिन पारित किये जाने की संभावना हो, जिस दिन की याचिका प्रस्तुत हुई हो, तो समिति उस पर विचार करने के लिए तत्काल अपनी बैठक करती है।[469] इन मामलों में यथा ऐसी याचिका के संबंध में भी जो सभा के समक्ष लम्बित कार्य से संबंधित किसी अन्य मामले के संबंध में हो, समिति, नियम के अनुसार कोई अलग जांच-पड़ताल नहीं करती अथवा सभा को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि यह निदेश देती है कि जहां याचिका नियमानुसार हो, उसे उसके विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप में सदस्यों में परिचालित किया जाये।[470]

> यदि किसी विधेयक के विरुद्ध कतिपय याचिकाएं समिति के समक्ष लम्बित पड़ी हों, तो उस विधेयक पर चर्चा करने पर रोक नहीं है।[471]

समिति की बैठकें गुप्त रूप से होती हैं।[472] ऐसी बैठकों में समिति विचार-विमर्श करती है या पहले से परिचालित की गयी कार्य-सूची के अनुसार कभी-कभी साक्षियों से साक्ष्य भी लेती है। जब समिति विचार-विमर्श करती है, तो समिति के सदस्यों तथा लोक सभा सचिवालय के पदाधिकारियों के अतिरिक्त सब व्यक्ति बाहर चले जाते हैं।[473] जब समिति साक्ष्य ले रही हो, तो समिति के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्य सभापति की अनुमति से समिति की कार्यवाही देख सकते हैं।

यदि समिति यह अनुभव करे कि समिति के सदस्यों के अतिरिक्त कोई अन्य सदस्य याचिका या अभ्यावेदन में बताये गये तथ्यों के साथ अपना संबंध होने या उनका विशेष ज्ञान

---

469. निदेश 94 ।

470. *लो.स.वा.वि.,* 3.5.1963, पृ. 5879; 6.5.1963, पृ. 6020 ।

471. *पूर्वोक्त,* 21.12.1964, पृ. 2365-66 ।

472. नियम 266 ।

473. नियम 268 । 17 फरवरी, 1959 को जब समिति उत्तर-पूर्व रेलवे की युक्तिकरण योजना के संबंध में एक अभ्यावेदन पर विचार कर रही थी, तो अपवाद के रूप में सभापति ने रेल मंत्रालय के अधिकारियों को उनका साक्ष्य पूरा हो जाने के बाद प्रारम्भिक चर्चा में भाग लेने की अनुमति दी।

होने के कारण सहायक हो सकता है, तो उस सदस्य को सभापति के आदेश पर समिति की बैठक में उपस्थित होने का निमंत्रण दिया जा सकता है।[474] ये सदस्य समिति को आवश्यक सहायता देने के शीघ्र बाद उठ कर चले जाते हैं।

प्रतिवेदन की विषय-वस्तु

प्रतिवेदन का प्रारूप समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश के आधार पर तैयार किया जाता है। प्रारम्भिक पैराओं में पिछला प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के बाद हुई बैठकों की संख्या तथा तिथियां दी जाती हैं, इन बैठकों में जिन याचिकाओं पर विचार किया गया हो, उनकी विषय-वस्तु का कालक्रमानुसार उल्लेख किया जाता है और प्रतिवेदन के स्वीकार किये जाने की तिथि आदि बतायी जाती है। उसके बाद प्रतिवेदन में उन याचिकाओं के संबंध में पूरा ब्यौरा दिया जाता है जिनकी समिति द्वारा जांच की गई है। इसमें याचिका प्रस्तुत किये जाने की तिथि और उस सदस्य का नाम होता है, जिसने याचिका सभा में पेश की हो।[475] उसके बाद याचिकादाता की विशेष शिकायत अथवा परिवाद और वे तर्क शामिल किये जाते हैं जो उसने अपनी बात के पक्ष में दिये हों। जहां कहीं समिति के विचार के लिए सम्बद्ध मंत्रालय से तथ्यों संबंधी कोई राय प्राप्त की गई हो, तो उसका सारांश प्रतिवेदन में दिया जाता है। निष्कर्ष में, याचिका के निपटाने के संबंध में समिति का निर्णय या उसकी सिफारिश अथवा वह सुझाव दिया जाता है, जो समिति ने उपचार के रूप में की जाने वाली कार्यवाही के संबंध में दिया हो, यह कार्यवाही या तो ठोस रूप में उस मामले के संबंध में हो सकती है, जिस पर समिति ने विचार किया हो अथवा कुछ ऐसी हो सकती है, जिससे भविष्य में ऐसे मामले फिर न हों।

इनके अतिरिक्त, समिति जिन अन्य विषयों पर विचार करती है और जिनका उल्लेख समिति के प्रतिवेदन में रहता है, उनमें सरकार द्वारा समिति के पिछले प्रतिवेदनों की सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही; या समिति का यह निर्णय कि वह सिफारिशों को कार्यान्वित करने में सरकार द्वारा कुछ कठिनाइयां बताए जाने के बावजूद, अपनी सिफारिशों के संबंध में सरकार से आगे कार्यवाही करने के लिए कहेगी; अथवा समिति की कतिपय सिफारिशों को कार्यान्वित न कर पाने के बारे में स्पष्ट किए गए कारणों वाले सरकार के उत्तर को स्वीकार करने का निर्णय शामिल है।

प्रतिवेदन में उन अभ्यावेदनों की कुल संख्या का भी उल्लेख किया जाता है, जो विभिन्न व्यक्तियों, संस्थाओं, आदि से प्राप्त हुए हों और जो सभा को सम्बोधित याचिका के रूप में तो अग्राह्य हों, परन्तु जिन पर समिति ने प्रतिवेदन की अवधि के दौरान हुई अपनी बैठकों में विचार किया हो।[476] जहां समिति यह अनुभव करती है कि किसी अभ्यावेदन से उठने वाली

---

474. निदेश 57 ।

475. यदि कोई याचिका महासचिव ने ज्ञापित की हो, तो उसका भी उल्लेख किया जाता है— याचिकाओं के पेश किये जाने संबंधी ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 34, 'सभा में याचिकाओं का प्रस्तुतीकरण' शीर्षक के अन्तर्गत।

476. प्रतिवेदन में अन्य विषयों के सम्मिलित किये जाने की प्रथा दूसरी लोक सभा के दौरान समिति के पहले प्रतिवेदन से प्रारम्भ हुई।

बातों की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया जाना चाहिये, वहां उसका उल्लेख प्रतिवेदन में कर दिया जाता है और उसके संबंध में समुचित सिफारिशें कर दी जाती हैं।[477] प्रतिवेदन के अन्त में उन मामलों की संख्या बतायी जाती है, जिसमें समिति के हस्तक्षेप के कारण याचिकादाताओं को शीघ्र ही या समुचित राहत प्राप्त हुई हो।[478]

समिति को कोई विमत टिप्पण नहीं दिया जा सकता है और न ही प्रतिवेदन के साथ परिशिष्ट के रूप में लगाया जा सकता है।[479]

सिफारिशों का स्वरूप

सभा के समक्ष विचाराधीन विधेयकों या अन्य विषयों संबंधी याचिकाओं के मामले में समिति सामान्यत: कोई सिफारिशें नहीं करती, परन्तु याचिकाओं को उसके विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप में सभा के सदस्यों में परिचालित कर देती है और परिचालित करने की तिथियां बताते हुए इस बात का अपने प्रतिवेदन में उल्लेख कर देती है।[480] तथापि, यदि किसी याचिका के विषय के सभा में विचारार्थ प्रस्तुत होने से पूर्व पर्याप्त समय उपलब्ध हो, तो समिति उस याचिका की विस्तृत जांच करती है और उसके संबंध में सभा से समुचित सिफारिश करती है।

सामान्य लोकहित के विषयों[481] से संबंधित याचिकाओं के मामले में समिति सभा को अपना जो प्रतिवेदन भेजती है, उसमें याचिकादाता द्वारा बताये गए, तथ्य, उन पर संबद्ध मंत्रालय से प्राप्त टिप्पणियां तथा समिति के निष्कर्ष और सिफारिशें होती हैं।

समिति की सिफारिशें निम्नलिखित हो सकती हैं :–

> कि याचिकादाता का/के सुझाव पूर्णरूपेण कार्यान्वित किया जाना/किये जाने चाहिए; या कि याचिकादाता के सुझावों को उस रूप में कार्यान्वित किया जाये, जैसा कि समिति ने उपान्तरण किया हो या समिति को स्वीकार्य हो; या
>
> कि याचिका पर कोई कार्यवाही आवश्यक नहीं है क्योंकि सम्बन्धित मंत्रालय ने जो तथ्य दिये हैं या जो राय प्रकट की है या सरकार ने जो कार्यवाही की है, वह याचिकादाता की बातों का समुचित उत्तर है या समिति सरकार के विचारों से सहमत है या सुझाव व्यवहार्य नहीं होंगे, क्योंकि उनके कारण राजस्व पर अनुचित अतिरिक्त वित्तीय बोझ पड़ेगा या राजस्व की बहुत भारी हानि होगी या देश की अर्थ-व्यवस्था को हानि पहुंचेगी; या
>
> कि ऐसे उपचारात्मक ठोस उपाय किये जाएं, जो पुनरीक्षाधीन मामले में लागू होते हों या जिनसे भविष्य में इस प्रकार के मामलों को उत्पन्न होने से रोका जा सके।

---

477. *देखिए* 10वां प्रतिवेदन (याचिका समिति–दूसरी लोक सभा)।

478. *पूर्वोक्त* ।

479. निदेश 68 (3)।

480. कार्यवाही सारांश (याचिका समिति–पहली लोक सभा), 28.7.1956 ।

481. सामान्य लोकहित के विषयों संबंधी ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 33–'याचिकाएं और अभ्यावेदन' के अन्तर्गत शीर्षक 'याचिकाओं की व्याप्ति' में संगत पाद टिप्पण।

सिफारिशों के कार्यान्वयन हेतु कार्यवाही

जब समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत कर दिया जाता है तो उसके बाद उसकी प्रतियां समिति द्वारा की गयी सिफारिशों की विषय-वस्तु के साथ सम्बन्धित मंत्रालय को भेज दी जाती हैं। मंत्रालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे सचिवालय को ऐसे विवरण दें, जिनमें बताया गया हो कि उन्होंने समिति की सिफारिशों पर क्या कार्यवाही की है या क्या कार्यवाही करने का विचार है। इस प्रकार जो जानकारी प्राप्त होती है, वह एक ज्ञापन के रूप में समिति के सामने रख दी जाती है।

जब संबंधित मंत्रालय ने सिफारिशों को कार्यान्वित कर दिया हो, या उन्हें कार्यान्वित करने के लिए कार्यवाही की हो, तो इस तथ्य का उल्लेख समिति सभा को अपने प्रतिवेदन में कर देती है। जब कोई मंत्रालय यह महसूस करता है कि समिति की किसी एक या सभी सिफारिशों को कार्यान्वित करने में कठिनाई है तो वह समिति को इस संबंध में एक अभ्यावेदन देता है जिसमें बताया जाता है कि सिफारिश या सिफारिशों को कार्यान्वित करने के रास्ते में कौन-कौन सी रुकावटें हैं। समिति या तो इस उत्तर को स्वीकार कर सकती है या सिफारिशों पर जोर देने का निर्णय कर सकती है। समिति का यह निर्णय सभा को दिये जाने वाले उसके प्रतिवेदन में सम्मिलित कर लिया जाता है।

समिति को अभ्यावेदन

सार्वजनिक संस्थाएं, संघ या व्यक्ति किसी ऐसे विषय के संबंध में, जो सभा के अधिकार क्षेत्र में हो, समिति को अभ्यावेदन दे सकते हैं।[482]

यदि समिति को किसी प्रवर या संयुक्त समिति के विचाराधीन विधेयक के संबंध में कोई अभ्यावेदन प्राप्त हो तो वह विधेयकों संबंधी याचिकाओं की तरह याचिका समिति के सामने रखे बिना उसे प्रवर या संयुक्त समिति को भेज दिया जाता है।[483] भारत सरकार के अधिकार क्षेत्र के विषयों से संबंधित अन्य अभ्यावेदनों को समिति के सामने रखा जाता है।

> जहां समिति यह महसूस करती है कि प्रत्यक्षत: कोई शिकायत उचित है तो वह पहले यह निदेश देती है कि सम्बन्धित मंत्रालय से तथ्य मंगाये जायें तथा मंत्रालय के उत्तर पर विचार करने के बाद या मंत्रालय अथवा याचिकादाता से और स्पष्टीकरण मांगने के बाद यह निदेश देती है कि याचिकादाता को उसके निर्णय की समुचित सूचना भेज दी जाये।[484] जहां समिति यह महसूस करती है कि यद्यपि शिकायत सच्ची मालूम होती है पर यह सामान्य लोक महत्व की नहीं है, वहां वह यह निदेश देती है कि मूल अभ्यावेदन सम्बन्धित मंत्रालय को भेज दिया जाये, जो उस पर समुचित विचार करने के बाद उसका निपटारा करे।

---

482. अधिक जानकारी के लिए *देखिये* अध्याय 34-याचिकाएं और अभ्यावेदन, "अभ्यावेदन" शीर्षक के अंतर्गत ।

483. निदेश 38 (3), दूसरा परन्तुक ।

484. कार्यवाही-सारांश (याचिका समिति-दूसरी लोक सभा), 9.9.1957 ।

यदि अभ्यावेदन मामूली या तुच्छ मामलों से संबंधित होते हैं तो समिति सामान्यतः सम्बन्धित मंत्रालय से तथ्य नहीं मंगवाती। अभ्यावेदन या उनसे संबंधित तथ्यों पर विचार करने के बाद, जहां ये तथ्य समिति के निदेश के अनुसार प्राप्त किये गये हों, समिति यह महसूस करती है कि अभ्यावेदन में की गई शिकायत सच्ची है, परंतु अधिकारियों के साथ उन्हें न उठाने का निर्णय किया गया है तो वहां वह निदेश देती है कि मूल अभ्यावेदन सम्बन्धित मंत्रालय को भेज दिया जाये,[485] जिससे कि वह उसे निपटा सके और याचिकादाता को भी इस संबंध में तद्नुसार सूचना दे दी जाती है; और जहां समिति की राय में शिकायतें बहुत मामूली हों या पूरी तरह व्यक्तिगत हों, और उनके संबंध में समिति द्वारा हस्तक्षेप करना आवश्यक न हो, तो समिति अनिवार्यतः यह निदेश देती है कि इनके संबंध में कोई कार्यवाही न की जाये।[486]

समिति, अभ्यावेदनों को निपटाने से पहले, याचिकादाता अथवा याचिकादाताओं को समिति के समक्ष उपस्थित होने एवं अपनी शिकायतों तथा उन्हें दूर करने के लिए किये जाने वाले उपायों के बारे में बताने के लिए आमंत्रित कर सकती है। तत्पश्चात् समिति सामान्यतः सम्बन्धित मंत्रालय के प्रतिनिधियों को साक्ष्य के लिए बुलाती है। याचिकादाता तथा मंत्रालय से प्राप्त जानकारी के आधार पर समिति अभ्यावेदनों के संबंध में एक प्रतिवेदन सभा को प्रस्तुत करती है जिसमें उपयुक्त सिफारिशें समाविष्ट होती हैं, तथा वह सामान्य लोक महत्व की समस्याओं/शिकायतों को दूर करने के लिए उपचारात्मक उपायों का सुझाव भी दे सकती है। समिति विभिन्न प्रतिवेदनों में की गई अपनी सिफारिशों के क्रियान्वयन पर निगरानी भी रखती है तथा वह "की गई कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन" भी सभा को प्रस्तुत कर सकती है।[487]

लोक लेखा समिति

लोक सभा करदाताओं के पैसे बहुत बड़ी धनराशि के व्यय किये जाने की मंजूरी देने के बाद करदाताओं के हित में, इस बात की आशा करती है कि उचित समय पर ब्यौरे-वार यह हिसाब दिया जाये कि वह पैसा किस प्रकार खर्च किया गया है। लोक सभा इस बारे में अपना समाधान करती है कि उसने जिन धनराशियों के व्यय की मंजूरी दी थी क्या वे उन्हीं प्रयोजनों के लिये और मितव्ययिता से तथा विवेकशीलता से खर्च हुई हैं, जिनके लिए मंजूरी दी गई थी। नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक सरकार के वार्षिक लेखाओं की जांच करता है[488] और जांच करने के बाद लेखाओं का प्रमाणपत्र देता है और इस संबंध में जो राय उचित समझता है, देता है। वह अपने प्रतिवेदन राष्ट्रपति को देता है, जो उन्हें संसद के सामने रखवा देता है।[489] लोक सभा के लिये उन लेखाओं की विस्तृत जांच करना असम्भव नहीं तो कठिन

485. *पूर्वोक्त,* 8.4.1959 ।

486. *पूर्वोक्त,* 12.8.1959, 14.8.1959 और 20.8.1959 ।

487. उदाहरण के लिए *देखिए* 10वां प्रतिवेदन (याचिका समिति-दूसरी लोक सभा); 5वां, 6वां, 7वां प्रतिवेदन (याचिका समिति-आठवीं लोक सभा)।

488. अनुच्छेद 149 ।

489. अनुच्छेद 151 ।

अवश्य है, क्योंकि वे बड़े जटिल और तकनीकी ढंग के होते हैं और फिर, उसके पास इस प्रकार की विस्तृत जांच के लिए समय नहीं होता है। इसलिए लोक सभा ने एक समिति बनाई है, जिसे लोक लेखा समिति कहा जाता है और उन लेखाओं की ब्यौरे-वार जांच का काम लोक लेखा समिति को सौंपा गया है।

संरचना

समिति में लोक सभा से अधिकतम 15 सदस्य तथा राज्य सभा से सात सदस्य होते हैं[490] जिन्हें संबंधित सभा प्रतिवर्ष अपने सदस्यों में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित करती है। कोई मंत्री समिति का सदस्य निर्वाचित नहीं किया जाता और यदि कोई सदस्य समिति के लिए निर्वाचित होने के बाद मंत्री नियुक्त हो जाता है तो उस नियुक्ति की तिथि से वह समिति का सदस्य नहीं रहता।[491]

समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है।[492] तथापि किसी विशेष मामले में यह अवधि सदन द्वारा प्रस्ताव स्वीकार करके बढ़ाई जा सकती है।[493] समिति का कार्यकाल समाप्त होने से पहले प्रत्येक वर्ष नई समिति का निर्वाचन किया जाता है परंतु यह पुरानी समिति का कार्यकाल समाप्त होने के बाद ही अपना कार्य संभालती है। सामान्यतः समिति प्रत्येक वर्ष मई में बनाई जाती है, और उसका कार्यकाल अगले साल 30 अप्रैल को समाप्त हो जाता है।

> पहली समिति 1921 में, 1919 के मांटेग-चैम्स्फोर्ड सुधारों के अंतर्गत बनाई गई थी। इसके 12 सदस्य थे, जिनमें से 8 केन्द्रीय विधान सभा के गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा चुने गये थे। चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से हुआ था। समिति के गठन के समय चुने गये सदस्यों में से आधे से अन्यून सदस्यों को, पर्चियां डालकर चुना जाता था, और उन्हें निर्वाचन की तिथि से एक वर्ष बाद सेवा से निवृत्त होना पड़ता था और शेष को उस तिथि से दूसरे वर्ष की समाप्ति पर सेवा से निवृत्त होने वाले सदस्य पुनः चुने जा सकते थे।[494] तीन सदस्यों का नामनिर्देशन गवर्नर जनरल द्वारा किया जाता था। वित्त सदस्य समिति का सभापति होता था और यदि किसी विषय पर दोनों पक्षों में बराबर मत आयें तो वह निर्णायक मत दे सकता था।[495] 1950 से

490. 1954-55 से राज्य सभा के 7 सदस्यों को समिति में लिया जा रहा है।

491. नियम 309 (1) ।

492. नियम 309 (2)।

लोक लेखा समितियों के सभापतियों के दूसरे सम्मेलन में 14 मार्च, 1959 को की गई सिफारिश के अनुसरण में संसद में विभिन्न दलों तथा ग्रुपों द्वारा स्वीकार की गई एक परिपाटी के अनुसार सामान्यतः कोई भी सदस्य लगातार दो से अधिक बार समिति का सदस्य नहीं चुना जाता।

493. *लो.स.वा.वि.,* 20.3.1968, पृ. 829-33 ।

494. भारतीय विधायी नियम, 1938, नियम 51 (4) ।

495. भारतीय विधायी नियम, 1921 नियम 51(2) और (3) ।

जब संविधान लागू हुआ, तो समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 15 कर दी गई, और सभी सदस्यों का चुनाव लोक सभा के सदस्यों में से होने लगा। सन् 1954-55 के बाद समिति में 22 सदस्य होने लगे, लोक सभा से 15 सदस्य और राज्य सभा से 7 सदस्य।

प्रारम्भ में समिति का कार्यकाल तीन साल था, जो विधान सभा के कार्यकाल के साथ ही प्रारम्भ होता था, और उसके साथ ही समाप्त भी हो जाता था। 1933 में भारतीय विधायी नियमों में संशोधन करके यह उपबंध किया गया कि जब विधान सभा का कार्यकाल तीन वर्ष की अवधि से बढ़ा दिया जाये, तो तीन वर्ष की इस अवधि की समाप्ति पर नई समिति का गठन किया जाये, मानो एक नई विधान सभा का प्रारम्भ हो गया।[496]

समिति में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों की पूर्ति संबंधित सभा में प्रस्ताव पारित करके की जाती है। लोक सभा में यह प्रस्ताव समिति के सभापति द्वारा पेश किया जाता है और राज्य सभा में उसके किसी ऐसे सदस्य द्वारा जो समिति का भी सदस्य हो। आकस्मिक रिक्तियों की पूर्ति करने के लिए चुने गए सदस्य समिति के बाकी कार्यकाल में कार्य करते हैं।

जब समिति का कोई राज्य सभा का सदस्य, संविधान के उपबंधों के अंतर्गत राज्य सभा की सेवा से निवृत्त होता है,[497] तो उस सेवा-निवृत्ति के कारण समिति में हुई रिक्ति-पूर्ति, उस सभा के किसी अन्य सदस्य को नामनिर्देशित करके की जाती है। ऐसे मामलों में लोक सभा में एक प्रस्ताव रखा जाता है, जिसमें राज्य सभा से सिफारिश की जाती है कि वह राज्य सभा के किसी अन्य सदस्य को नामनिर्देशित करना स्वीकार कर ले, जिसे समिति के शेष कार्यकाल के लिए समिति में सम्मिलित किया जाये। उस सभा द्वारा नियुक्त सदस्य के नाम की सूचना लोक सभा को अधिकृत रूप से एक संदेश के माध्यम से दी जाती है। यदि वह सदस्य राज्य सभा की सेवा से निवृत्त होने के बाद फिर उस सभा के लिए चुन लिया जाये, तो उसे पुनः समिति का सदस्य बनाया जा सकता है।

वर्ष 1949-50 तक, समिति में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों की पूर्ति विधान सभा के गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से चुनाव करके की जाती थी। यह उस दशा में होता था जब, जिस सदस्य का स्थान रिक्त हुआ हो, वह निर्वाचित सदस्य हो यदि रिक्ति किसी नामनिर्देशित सदस्य के स्थान रिक्त होने के कारण हुई हो, तो उसे गवर्नर जनरल द्वारा नामनिर्देशन के माध्यम से पूरा किया जाता था। आकस्मिक रिक्ति को पूरा करने के लिए चुना गया या नामनिर्देशित सदस्य उतनी अवधि के लिए पद धारण करता था, जितने के लिए वह व्यक्ति सामान्यतया पद धारण करता, जिसके स्थान पर वह चुना या नामनिर्देशित किया गया हो।[498]

---

496. भारतीय विधायी नियम, 1938, नियम 51 (6)।

497. अनुच्छेद 83 (1)।

498. भारतीय विधायी नियम, 1921, नियम 51(3) ।

समिति का सभापति : समिति का सभापति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है।[499] उसके पद का कार्यकाल भी समिति के कार्यकाल की तरह एक वर्ष होता है। तीसरी लोक सभा के अंत तक समिति का सभापति संसद में बहुमत वाले दल में से चुना जाता था। परंतु 1967 में विरोधीपक्ष (स्वतंत्र पार्टी) के एक सदस्य को पहली बार समिति का सभापति नियुक्त किया गया और तब से यह परिपाटी चली आ रही है।

> जब पहली बार लोक लेखा समिति 1921 में बनी, तो गवर्नर जनरल के कार्यकारी परिषद् का वित्त सदस्य समिति का सभापति था। सभापति के पद का कार्यकाल समिति के कार्यकाल के साथ समाप्त हो जाता था, (जो तीन वर्ष था)[500] 1950 में, जब संविधान लागू हुआ, तो वित्त सदस्य/वित्त मंत्री ने समिति के सभापति के रूप में काम करना छोड़ दिया और समिति के सचिवालयीय कार्य जो अब तक वित्त मंत्रालय के हाथ में थे, संसद (अब लोक सभा)सचिवालय के हाथ में आ गये।

कृत्य

समिति का मुख्य काम है विनियोग लेखाओं की जांच करना, जिनमें भारत सरकार के खर्च के लिए संसद द्वारा अनुदत्त राशियों का विनियोग दिखाया जाता है। इसके साथ ही भारत सरकार के वार्षिक वित्तीय लेखाओं और सभा के सामने रखे गये ऐसे अन्य लेखाओं की परीक्षा करना समिति का काम है, जिनकी परीक्षा करना समिति उचित समझे।[501] भारत सरकार के विनियोग लेखाओं तथा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के तत्संबंधी प्रतिवेदन की जांच करते समय, समिति को अपना समाधान करना पड़ता है कि लेखाओं में जिन राशियों का भुगतान दिखाया गया है, वे कानूनी रूप में उसी सेवा या प्रयोजन के लिये उपलब्ध थीं या खर्च की जा सकती थीं, जिनके लिए उन्हें खर्च किया गया है या भारित किया गया है। समिति को यह भी देखना पड़ता है कि खर्च उस प्राधिकार के अनुरूप हुआ है, जिसके अंतर्गत वह किया गया है। समिति यह भी देखती है कि प्रत्येक पुनर्विनियोग सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में बनाये नियमों के उपबंधों के अनुसार किया गया है।[502]

समिति को निम्नलिखित कार्य भी करने पड़ते हैं;[503]

> राज्य निगमों, व्यापार तथा निर्माण योजनाओं, संस्थाओं और परियोजनाओं की आय तथा व्यय दिखाने वाले लेखा विवरणों की जांच तथा तुलन पत्रों और लाभ और हानि के लेखाओं के ऐसे विवरणों की जांच जिनको तैयार करने के लिये राष्ट्रपति ने कहा हो या जो किसी विशेष निगम व्यापार या निर्माण योजना या संस्था या परियोजना के लिए एक वित्तीय व्यवस्था विनियमित करने वाले संविहित नियमों के उपबंधों के अंतर्गत तैयार किये

---

499. नियम 258(1)।

500. भारतीय विधायी नियम, 1921, नियम 51(1)।

501. नियम 308(1)।

502. नियम 308(2)।

503. नियम 308(3)।

गये हों और उन पर नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की जांच (उनमें वे सरकारी उपक्रम नहीं आते जो सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति को सौंप दिये गये हों)।[504]

स्वायत्तशासी तथा अर्द्ध-स्वायत्तशासी निकायों की आय तथा व्यय दिखाने वाले लेखाओं के विवरणों की जांच, जिसके लेखाओं की परीक्षा भारत के नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा, राष्ट्रपति के निदेशों के अंतर्गत या संसद की किसी संविधि के अनुसार की जा सके, और[505]

नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के उन मामलों से संबंधित प्रतिवेदन पर विचार जिनके संबंध में राष्ट्रपति ने उनसे किन्हीं प्राप्तियों की लेखा परीक्षा करने अथवा भंडार और माल के लेखाओं की परीक्षा करने की अपेक्षा की हो।

अतिरिक्त व्यय

यदि किसी वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर उस प्रयोजन के लिए संसद द्वारा मंजूर की गई राशि से कुछ अधिक धन व्यय किया गया हो, तो समिति प्रत्येक मामले के तथ्यों के संबंध में उन परिस्थितियों की जांच करती है, जिनके कारण अधिक व्यय हुआ हो और ऐसी सिफारिशें करती है जो वह ठीक समझे।[506] यदि आवश्यक समझा जाए तो समिति व्यय के संबंध में अलग प्रतिवेदन देती है।[507] प्रतिवेदन में कारण देकर बताया जाता है कि कौन-कौन से व्यय अतिरिक्त व्यय की श्रेणी में आते हैं और यदि उनकी मंजूरी पर कोई आपत्ति हो, तो वह भी बताई जाती है।[508] यदि समिति ने यह सिफारिश की हो कि अतिरिक्त व्यय को नियमित किया जाये, अतिरिक्त अनुदानों की मांगें सभा के सामने पेश की जाती हैं और वित्त मंत्री अथवा रेल मंत्री अथवा दोनों जैसी भी स्थिति हो सभा से प्रार्थना करता है कि उस अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए अनुदान दिया जाये/विनियोग किया जाये।[509]

---

504. सभा द्वारा 20 नवम्बर, 1963 को स्वीकृत किये गये संकल्प के अनुसार 1 मई, 1964 को समिति का गठन किया गया—अधिक जानकारी के लिए इसी अध्याय में *देखिए* "सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति" के अंतर्गत।

505. समिति ने दामोदर घाटी निगम [18वां और 20वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा)] दिल्ली सड़क परिवहन प्राधिकरण [तीसरा, 5वां और 14वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-दूसरी लोक सभा)] तथा बहुत सांविधिक निगमों तथा सरकारी कम्पनियों के लेखाओं संबंधी लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों की जांच की।

506. नियम 308(4) ।

507. समिति ने कई अलग-अलग प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं। उदाहरण के लिए 21वां और 24वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा); दूसरा, 9वां, 10वां, 16वां, 23वां, 27वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-दूसरी लोक सभा)।

508. अभी तक ऐसा कोई मामला नहीं हुआ है।

509. *देखिए* (अनुच्छेद 115) यद्यपि 1950 से पहले इस संबंध में कोई स्पष्ट सांविधिक उपबंध नहीं था, लोक लेखा समिति (1921-23) ने इस विषय पर एक महत्वपूर्ण सिफारिश की:—

अतिरिक्त खर्च की जांच पहले लोक लेखा समिति करेगी और अतिरिक्त अनुदान की मांग करते समय सरकार विधान सभा के सामने ऐसी कोई भी सिफारिश रखेगी जो समिति करना चाहे।

> अतिरिक्त व्यय को शीघ्र नियमित रूप से मंजूरी दिलाने के लिए समिति ने यह सिफारिश की है कि नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक, उस अतिरिक्त व्यय के संबंध में विनियोग लेखाओं पर अपना लेखा परीक्षा प्रतिवेदन देने से पहले ही संसद को रिपोर्ट दे।[510]

जांच का स्वरूप और व्याप्ति

समिति के कृत्य यह देखने कि व्यय बुद्धिमानी से किया गया है या नहीं, भली-भांति उसी प्रयोजन के लिए खर्च किया गया है या नहीं, जिसके लिये मंजूरी दी गई थी और मितव्ययिता से काम लिया गया है या नहीं, की औपचारिकता से कहीं अधिक है। अतः समिति ऐसे मामलों की जांच करती है, जिनमें हानि हुई हो, निरर्थक खर्च हुआ हो और वित्तीय अनियमितताएं बरती गई हों। जब किसी ऐसे मामले की ओर समिति का ध्यान आकृष्ट किया जाता है, जिसमें यह प्रमाणित हो जाये कि लापरवाही के कारण हानि हुई या फिजूलखर्ची हुई है, तो सम्बन्धित मंत्रालय से यह बताने के लिए कहा जाता है कि इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति रोकने के लिए अनुशासनात्मक, या अन्यथा कौन सी कार्यवाही की गई है। ऐसे मामलों में समिति अपने विचार भी बताती है। वह या तो सरकार की कार्यवाही का निरनुमोदन करती है या सम्बन्धित मंत्रालय विभाग द्वारा फिजूलखर्ची या समुचित नियंत्रण के अभाव की कठोर निंदा करती है।[511]

समिति का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य वित्तीय अनुशासन और सिद्धांत संबंधी पहलुओं पर विचार करना है।[512]

व्यापक अर्थों में नीति के प्रश्नों से समिति का कोई सरोकार नहीं है। नियमानुसार समिति सामान्य नीति की बातों पर कोई विचार प्रकट नहीं करती परंतु यह बताना समिति के अधिकार क्षेत्र में है कि उस नीति को कार्यान्वित करते समय कोई फिजूलखर्ची/अपव्यय हुआ है या नहीं।[513]

चूंकि समिति का एक काम यह है कि खर्च के अविवेकपूर्ण तरीकों पर नियंत्रण रखा जाये, इसलिए निःसन्देह उसे इस बात की शक्ति प्राप्त है कि यदि वह आवश्यक समझे, तो प्रशासन के मामलों में हस्तक्षेप करे और उन व्यवस्थाओं की जांच करे, जिनके अंतर्गत मंत्रालय काम करते हैं। लेकिन इस प्रकार के हस्तक्षेप के मामले बहुत विरले हैं। समिति

---

510. 21वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा), पैरा 8 ।
511. *देखिए* 7वां, 17वां, 22वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा) और 17वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-दूसरी लोक सभा)।
512. *देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा) और 8वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-दूसरी लोक सभा)।
513. निदेश 98; साथ ही *देखिए* चौथा, 25वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा) और 18वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-दूसरी लोक सभा)।

सामान्यतया मितव्ययिता लाने के लिए सामान्य नियंत्रण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करती है और आंतरिक प्रशासन के प्रश्न हल करने का काम सम्बन्धित मंत्रालय पर छोड़ देती है।[514] परन्तु यह प्रशासन की कमजोरी के मुद्दों की ओर ध्यान आकृष्ट कर सकती है और उनके उपचार का काम मंत्रालय पर छोड़ सकती है।[515]

भारतीय विधायी नियमों के अंतर्गत, 1921 में गठित की गई समिति के कृत्य सपरिषद गवर्नर जनरल के लेखापरीक्षित तथा विनियोग लेखाओं की संवीक्षा तक ही सीमित थे ताकि यह इस संबंध में अपना समाधान कर सके कि असैम्बली ने जो धनराशि स्वीकृत की है, वह उस अनुदान की मांग की परिधि के अंतर्गत ही खर्च की गई है। समिति को ऐसे प्रत्येक पुनर्विनियोग की ओर भी असैम्बली का ध्यान आकर्षित करना था जो एक अनुदान से दूसरे अनुदान में किए गए थे और जो एक ही अनुदान में किये गये हों, परन्तु जो वित्त विभाग द्वारा विहित नियमों के अनुसार न किये गये हों। समिति उस सारे खर्च की ओर भी विधान सभा का ध्यान दिलाती थी, जिसकी मांग वित्त विभाग करता था।[516]

समिति के कार्यकाल की प्रारम्भिक अवधि में उसे रक्षा व्यय संबंधी लेखों की जांच की जिम्मेदारी नहीं दी गई थी क्योंकि यह व्यय असैम्बली द्वारा दत्तमत-व्यय नहीं था। परन्तु 1923 में यह फैसला किया गया कि रक्षा लेखाओं के संबंध में महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की एक प्रति समिति को केवल उसकी जानकारी के लिए भेजी जाये। बाद में यह निर्णय लिया गया कि महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की जांच एक विभागीय समिति (जिसे सैन्य लेखा समिति कहा जाता था) करे जिसमें वित्त सदस्य, वित्त सचिव और सेना सचिव हों। इस समिति का प्रतिवेदन लोक लेखा समिति के सामने रखा जाता था। और लोक लेखा समिति उसे अपने प्रतिवेदन में शामिल कर सकती थी।

लोक लेखा समिति की संवैधानिक स्थिति पर 1926 में विचार किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि समिति को इस बात का अधिकार है कि वह असैम्बली द्वारा दत्तमत-व्यय, या अदत्तमत-व्यय या प्राप्तियों के संबंध में लेखा परीक्षा प्रतिवेदन या विनियोग संबंधी प्रतिवेदन या महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार कर सकती है और उन पर अपनी टिप्पणी कर सकती है। इस प्रकार रक्षा व्यय भी समिति के अधिकार क्षेत्र में आ गये। परन्तु सैन्य लेखा समिति रक्षा लेखाओं को, लोक लेखा समिति को भेजने से पूर्व पहले की तरह उनकी जांच करती रही। 1931 में लोक लेखा समिति की सिफारिश पर सैन्य लेखा समिति का पुनर्गठन किया गया। जिसके अनुसार उस समिति का सभापति वित्त सदस्य होता था और उसके सदस्यों में वित्त सचिव और तीन गैर-सरकारी सदस्य होते थे, जिन्हें लोक लेखा समिति अपने सदस्यों में से नाम-निर्देशित करती थी। इस प्रकार

---

514. शब्दश: कार्यवाही, लोक लेखा समिति, 23.7.1959, सभापति की टिप्पणियां।

515. पहला प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा), पैरा 39; छठा प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा), पैरा 85; 11वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा), पैरा 90; 13वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा), पैरा 57; और 20वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा), पैरा 33 ।

516. भारतीय विधायी नियम 1921, नियम 52(1) और (2)।

पुनर्गठित सैन्य लेखा समिति 1947 तक कार्य करती रही। उसके बाद रक्षा व्यय की मंजूरी असैम्बली से ली जाने लगी और रक्षा सेवाओं के विनियोग लेखों और तत्संबंधी लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों पर समिति में समग्रत: वैसे ही विचार किया जाने लगा जैसे उन अन्य व्ययों के संबंध में किया जाता था जिनके लिए मंजूरी असैम्बली से ली जाती थी और तदर्थ सैन्य लेखा समिति का काम समाप्त हो गया था।

राजस्व संबंधी मामलों की जांच

सीमा शुल्क विभाग की प्राप्तियों की 1929 से लेखा परीक्षा जांच की जाती रही है। केन्द्रीय उत्पादन शुल्क, निगम कर और आयकर की प्राप्तियों की लेखा परीक्षा का कार्य नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा 1 अप्रैल, 1961 से स्थायी रूप से अपने हाथ में ले लिया गया। इन राजस्व प्राप्तियों का लेखा परीक्षा संबंधी प्रथम प्रतिवेदन, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ने अपने लेखा परीक्षा प्रतिवेदन (सिविल), 1962 में दिया था। इन प्राप्तियों की जांच के संबंध में लोक लेखा समिति (1962-63) ने शुरुआत की थी और उसने इस विषय पर छठा प्रतिवेदन (तीसरी लोक सभा) के रूप में एक अलग प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। राजस्व प्राप्तियों पर नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन की छान-बीन करने की प्रथा का समिति द्वारा तभी से नियमित रूप से पालन किया जा रहा है और अब यह समिति सरकार के कर प्रशासन के विभिन्न पहलुओं की जांच करती है जिनमें कम कर निर्धारण, कर अपवंचन, शुल्क उद्ग्रहण न करना, गलत वर्गीकरण आदि के मामले शामिल हैं।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों की संसद में प्रस्तुतीकरण से पूर्व स्वत: जांच

समिति लेखा परीक्षा प्रतिवेदन के संसद में पेश किये जाने से पहले ही उसकी जांच कर सकती है, परन्तु समिति उसके संबंध में तब तक सभा को कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं कर सकती जब तक की तत्संबंधी लेखाओं और लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों को औपचारिक रूप से संसद के सामने पेश नहीं कर दिया जाता।[517]

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों में शामिल नहीं किए गए मामलों की जांच

समिति ने स्वयं अपनी ओर से अनियमितताओं के अनेक मामलों की जांच की है जिन पर यद्यपि औपचारिक रूप से कोई लेखा परीक्षा प्रतिवेदन पेश नहीं किया गया था अथवा बाद

---

517. 1950 में वित्त तथा विधि मंत्रालयों के परामर्श से यह निर्णय किया गया कि विनियोग लेखाओं तथा तत्संबंधी लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों को संसद में पेश करने से पहले सदस्यों को परिचालित किया जाये। जहां तक इस प्रश्न का संबंध है कि लोक लेखा समिति इन दस्तावेजों की जांच प्रारम्भ कर सकती है या नहीं, अध्यक्ष मावलंकर ने यह निर्णय किया कि समिति को उसी समय उनकी परीक्षा करनी चाहिए, क्योंकि इससे उसे काम करने के लिये और अधिक समय मिल जायेगा, लेकिन वह उनके संबंध में सभा को तब तक कोई प्रतिवेदन नहीं दे सकती, जब तक कि संगत लेखाओं और तत्संबंधी लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों को औपचारिक रूप से सभा के सामने नहीं रख दिया जाता।

मे प्रस्तुत किया गया था। किन्तु वे जनता की जानकारी में आ गये थे या उनकी ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया गया था।[518]

1958-59 के दौरान लोक लेखा समिति ने दो उपकर निधियों[519] कोयला खान, श्रमिक सुरक्षा और संरक्षण निधि और कोयला खान श्रमिक आवास और सामान्य कल्याण निधि के कार्यकरण की जांच की जबकि इन निधियों के बारे में लेखा परीक्षा प्रतिवेदन में कोई उल्लेख नहीं था। इसी प्रकार समिति ने संक्रमित हॉप प्लांटो के अनधिकृत आयात, अनेक चिकित्सा एवं कृषि अनुसंधान परियोजनाओं में विदेशी भागीदारी अथवा सहयोग और भारत में किए गए परीक्षणों तथा एक विदेशी बैंक द्वारा कर अपवंचन, सिंचाई परियोजनाओं के संबंध में प्रक्रिया और निगरानी तंत्र मुख्य युद्धक टैंक के विकास और उत्पादन में अधिक समय और लागत, 1988 के बजट में मूल्यों के बारे में दिए गए मानव निर्मित रेशे और धागे के संबंध में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में रियायतों पर प्रभाव, संयंत्र और मशीनरी का कथित अनधिकृत आयात, एक वस्त्र निर्माता द्वारा सामान की गलत घोषणा और कम मूल्य का बीजक तैयार करने आदि से संबंधित मामलों की जांच की थी[520]—समिति ने इन विषयों पर इनके लेखा परीक्षण पैराओं पर आधारित न होते हुए भी विचार किया। लोक लेखा समिति (1995-96 और 1996-97) ने भी लोक सभा में इस विषय पर वाद-विवाद के दौरान अध्यक्ष द्वारा की गई टिप्पणियों के आधार पर विस्तृत जांच के लिए "बेलाडिला आयरन और माइन्स के निजीकरण" के विषय का भी चयन किया। सबरीमाला पर्वतीय-तीर्थस्थल पर एकत्र होने वाले लाखों श्रद्धालुओं के समक्ष आ रही भीषण कठिनाइयों और अमानवीय परिस्थितियों को देखते हुए लोक लेखा समिति (2003-04) ने "सबरीमाला तीर्थयात्रा-मानवीय समस्याओं और पारिस्थितिकी" विषय का चयन विस्तृत जांच और संसद में तत्संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु किया।[521]

---

518. उदाहरण के लिए 1953-54 की समिति ने न्यायमूर्ति राजाध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत उर्वरक जांच समिति के प्रतिवेदन, श्री एन.वी. दिवतिया द्वारा एक कंपनी से कृषि औजारों के क्रय और उपयोग की जांच संबंधी प्रतिवेदन—12वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा); भारत सरकार द्वारा महानदी पुल के मामलों की जांच करने के लिए नियुक्त एक विभागीय समिति चम्फेकर समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया था—11वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-पहली लोक सभा)।

519. 1958-59 की समिति ने उपकर निधियों के संबंध में एक उप-समिति नियुक्त की जिसने दो प्रतिवेदन (19वां और 20वां) प्रस्तुत किए। मुख्य समिति द्वारा स्वीकार किये जाने के बाद ये प्रतिवेदन संसद में पेश किये गये।

520. समिति ने इन विषयों पर क्रमशः 136वां, 167वां और 176वां (पांचवीं लोक सभा) और 141वां (सातवीं लोक सभा) 68वां, 156वां और 164वां प्रतिवेदन प्रस्तुत किये।

521. समिति ने इस विषय पर 63वां प्रतिवेदन (तेरहवीं लोक सभा) और 18वां प्रतिवेदन (चौदहवीं लोक सभा) प्रस्तुत किया।

यूनीफाइड एक्सेस सर्विस लाइसेंस (यूएएसएल) व्यवस्था के अंतर्गत 2 जी स्पेक्ट्रम के आवंटन में की गई कथित अनियमितताओं के संबंध में व्यक्त राष्ट्रव्यापी चिन्ताओं के आधार पर, गोपीनाथ मुंडे की अध्यक्षता में लोक लेखा समिति (2009-10) ने '2 जी और 3 जी स्पेक्ट्रम के आबंटन सहित दूरसंचार क्षेत्र में हाल ही में हुए विकास' विषय को विस्तृत जांच और उस पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए उठाए जाने का निर्णय लिया। डॉ. मुरली मनोहर जोशी की अध्यक्षता में अगली लोक लेखा समिति (2010-2011) द्वारा इस विषय को आगे बढ़ाया गया। समिति ने विभिन्न मंत्रालयों/विभागों से सुसंगत दस्तावेज मंगाए और दूरसंचार विभाग, वित्त मंत्रालय के प्रतिनिधियों, भा. इ. वि. प्रा. (टी.आर.ए.आई) के एक पूर्व-चेयरमैन तथा दूरसंचार क्षेत्र के एक गैर-आधिकारिक विशेषज्ञ का साक्ष्य लिया। तत्पश्चात् इस विषय पर नियंत्रक-महालेखापरीक्षक का प्रतिवेदन संसद के सभापटल पर रखा गया (2010-11 का संख्या 19)।

समिति को भेजे गए मामलों की जांच

वर्ष 1986 में राज्य सभा के सभापति ने सरकार द्वारा बजट 1986 की पूर्व संध्या पर सीमाशुल्क और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क लगाने से छूट देने के संबंध में कुछ अधिसूचनाएं जारी करने और सभा पटल पर रखे जाने के औचित्य की जांच करने हेतु लोक लेखा समिति को यह मामला भेजा। समिति ने इस मुद्दे की गहन जांच की और इस संदर्भ के बारे में अपनी टिप्पणियों के साथ राज्य सभा के सभापति को एक उत्तर भेजा। 11 नवम्बर, 1986 को राज्य सभा के सभापति ने उन्हें प्राप्त समिति की टिप्पणियों पर सभा में एक घोषणा की।

समिति ने अनुचित वसूली के मामलों में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की वापसी संबंधी मुद्दे के सभी पहलुओं की व्यापक जांच करने के लिए वित्त मंत्री द्वारा लोक सभा के अध्यक्ष से किए गए विशिष्ट अनुरोध पर अध्यक्ष द्वारा मामला समिति को सौंपे जाने पर इस विशिष्ट मामले की जांच की और इस पर एक प्रतिवेदन[522] पेश किया।

समिति के कार्यकरण की एक परवर्ती बात यह रही है कि उसने जनसंख्या के एक बड़े भाग को लाभ पहुंचाने वाले राष्ट्रव्यापी विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में कार्यपालिका के कार्यनिष्पादन का व्यापक मूल्यांकन किया है। समिति ने राष्ट्रीय राजमार्गों, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, सिंचाई परियोजनाओं के संबंध में योजना प्रक्रिया और निगरानी तंत्र, सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम, जिला उद्योग केन्द्रों, समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम; राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, जनता कपड़ा योजना, राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम आदि के संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं।[523] हाल के वर्षों में समिति ने गंगा कार्य योजना; सिर पर मैला ढोने वालों और उनके आश्रितों से संबंधित राष्ट्रीय मुक्ति और पुनर्वास

---

522. 22वां प्रतिवेदन (नौवीं लोक सभा) ।

523. समिति ने इन विषयों पर क्रमशः 88वां, 90वां, 141वां, 175वां, 219वां प्रतिवेदन (सातवीं लोक सभा) तथा 91वां और 94वां प्रतिवेदन (आठवीं लोक सभा) प्रस्तुत किये।

योजना; राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम; आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी विभाग; सर्वशिक्षा अभियान योजना, इत्यादि की जांच की और तत्संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत किए।[524]

समिति के कार्यकरण की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका काम राजस्व एकत्र करने के क्षेत्र में प्रणाली मूल्यांकन करना है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मौजूदा प्रणालियां किस हद तक निर्धारित उद्देश्यों को पूरा कर पाई हैं। समिति ने सीमा शुल्क प्राप्तियों–अन्तर्देशीय सीमा शुल्क सम्बद्ध भांडागारों के कार्यकरण, संघीय उत्पाद शुल्क—मूल्य सूचियों, मूल्यांकन प्रक्रिया—सारांश और जांच मूल्यांकन, लाटरी व्यापार का मूल्यांकन, परियोजना आयात, लघु उद्योग उपक्रमों का मूल्यांकन, धार्मिक और धमार्थ न्यासों का मूल्यांकन, जांच केन्द्रों की कार्य शैली, मुख्य लेखा कार्यालयों के कार्यकरण में प्रणाली दोष, संघीय उत्पाद शुल्क–अनन्तिम मूल्यांकन, अग्रिम लाइसेंसिंग योजना, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क—एक समान उत्पादों के लिए भिन्न–भिन्न वर्गीकरण, निजी स्कूलों, कालेजों तथा कोचिंग सेंटरों का मूल्यांकन; आयकर विभाग के 'पुनर्गठन' के जरिए कार्यकुशलता में सुधार की स्थिति आदि के बारे में प्रतिवेदन[525] प्रस्तुत किए हैं।

न्यायालय में लम्बित मामलों की जांच

यदि समिति किसी ऐसे मामले की जांच कर रही हो या जांच करना चाहती हो जिसका विषय किसी न्यायालय के न्यायनिर्णयन के अधीन है और सरकार यह तर्क देती है कि उस समय समिति द्वारा मामले की जांच से मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो समिति उस मामले पर विचार स्थगित कर देती है।[526]

लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों पर विचार और पैराओं का चयन

प्रत्येक समिति की अवधि की शुरुआत में सचिवालय नियंत्रक–महालेखापरीक्षक के उन प्रतिवेदनों को समिति के सदस्यों के पास भेजता है जिन्हें समिति द्वारा गहन जांच हेतु पैराओं के पिछले चयन के बाद सभा पटल पर रखा गया है। अपनी पहली बैठक में समिति के सदस्य महत्वपूर्ण लेखा–परीक्षा प्रतिवेदनों/पैराओं का सुझाव देते हैं जिनका चयन उनके अनुसार गहन जांच हेतु किया जा सकता है विस्तृत चर्चा के बाद समिति समय की उपलब्धता को ध्यान में

---

524. समिति ने इन विषयों पर क्रमशः 62वां प्रतिवेदन (तेरहवीं लोक सभा), 9वां प्रतिवेदन, 19वां प्रतिवेदन, 38वां प्रतिवेदन और 43वां प्रतिवेदन (चौदहवीं लोक सभा) प्रस्तुत किए।

525. समिति ने इन विषयों पर क्रमशः 124वां, 145वां और 173वां प्रतिवेदन (आठवीं लोक सभा); और 8वां, 23वां, 32वां, 97वां, 102वां, 116वां प्रतिवेदन (दसवीं लोक सभा); और 14वां तथा 24वां प्रतिवेदन (ग्यारहवीं लोक सभा); पहला प्रतिवेदन (तेरहवीं लोक सभा), 14वां प्रतिवेदन और 29वां प्रतिवेदन (चौदहवीं लोक सभा) प्रस्तुत किए।

526. *देखिए* 12वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति–पहली लोक सभा), पैरा 3 और 6 ।

रखते हुए वर्ष के दौरान जांच हेतु अधिक महत्वपूर्ण पैराओं का चयन करती है। इनका चयन करने में समिति की सहायता सचिवालय के अधिकारी और लेखा परीक्षा के प्रतिनिधि करते हैं।

यद्यपि समिति प्रतिवर्ष सीमित संख्या में लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों/पैराओं की व्यापक जांच शुरू करती है, किन्तु इस समिति ने 1982 के बाद से एक ऐसी अन्तर्निहित प्रणाली का विकास किया है जिसमें यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी लेखा परीक्षा पैराओं पर कार्यपालिका द्वारा तत्काल कार्यवाही की गई है। इस प्रणाली के तहत सम्बन्धित मंत्रालयों/विभागों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे वित्त मंत्रालय के माध्यम से समिति को सभा पटल पर संगत लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों को रखे जाने की तारीख से चार माह[527] की अवधि के भीतर यह बतायें कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सभी पैराओं पर क्या उपचारात्मक कार्यवाही की गई अथवा किए जाने के लिए प्रस्तावित है। यह प्रणाली उन सभी मुद्दों जिन पर लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों में चर्चा की गई है, के संबंध में कार्यपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित करती है।

उप-समितियां और कार्य दल

जब भी समिति किसी ऐसे मामले की जांच करने का फैसला करती है, जिसमें गम्भीर वित्तीय अनियमिततायें आदि हुई हों और जिनका उल्लेख विनियोग लेखाओं या तत्संबंधी लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों में किया गया हो, या समिति वैसे ही ऐसे किसी मामले की जांच करने का फैसला करे, तो वह उस मामले की जांच के लिये एक उप-समिति नियुक्त कर सकती है। इस प्रकार नियुक्त की गई उप-समिति को वही शक्तियां प्राप्त होती हैं, जो कि पूरी समिति के पास होती हैं, और समिति के अनुमोदन के बाद उस समिति का प्रतिवेदन सम्पूर्ण समिति का प्रतिवेदन माना जाता है।

वर्ष 1967-68 से, सभापति द्वारा समिति के पिछले प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों पर सरकार के उत्तरों की जांच करने और उस पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रति वर्ष एक "की गई कार्यवाही सम्बन्धी उप-समिति" गठित की जाती है जिसमें समिति के विभिन्न कार्यकारी दलों के संयोजक होते हैं।

नई समिति के बनते ही सभापति द्वारा समिति को अपने काम के कुछ पहलुओं की ओर अधिक गहनता से ध्यान देने योग्य बनाने के लिये, समिति के सदस्यों के परामर्श से कार्यकारी दल गठित किया जाता है। इन दलों के सदस्यों का चुनाव सभापति द्वारा किया जाता है और ऐसा करते समय उसके द्वारा यथासम्भव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सदस्यों का ज्ञात रुझान किस ओर है। इसके अतिरिक्त और बातों का भी ध्यान रखा जाता है। सभापति द्वारा

527. संशोधित अवधि 31 मार्च, 1996 को समाप्त होने वाले वर्ष और उससे आगे के लिए नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों से शुरू हुई—*देखिए* 9वां प्रतिवेदन (ग्यारहवीं लोक सभा)।

प्रत्येक कार्यकारी दल के लिए एक संयोजक और एक वैकल्पिक संयोजक की नियुक्ति भी की जाती है जिनमें से कोई एक सम्बन्धित कार्यकारी दल के नेता के रूप में कार्य करता है और उसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है।

समिति के प्रत्येक कार्यकाल में विभिन्न लेखाओं जैसे कि सिविल, रक्षा, रेलवे, डाक आदि, के लिये कार्यकारी दल गठित किये जाते हैं। कई बार एक ही दल को दो या अधिक लेखे अध्ययन के लिये दे दिये जाते हैं। प्रत्येक दल, सौंपे गये लेखाओं तथा तत्संबंधी लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों का विस्तृत अध्ययन करता है। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या वरिष्ठ अधिकारी सभी संबंधित सामग्री से उस दल की सहायता करता है। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसके प्रतिनिधियों के परामर्श से लेखा परीक्षा पैराओं को तीन शीर्षों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है: अत्यधिक महत्वपूर्ण, महत्वपूर्ण और कम महत्वपूर्ण। कार्यकारी दल द्वारा इस प्रकार के वर्गीकरण का उद्देश्य यह है कि समिति अधिक महत्वपूर्ण पैराओं पर अधिक ध्यान दे, जिससे कि उनकी जांच अधिक गहराई से की जा सके। कार्यकारी दल पूर्णत: अनौपचारिक रूप से कार्य करता है अत: यह समिति को अपने कार्यकरण के संबंध में कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करता।

मौके पर जाकर अध्ययन करने वाला दल

जब किसी कार्यालय, कारखाने, प्रतिष्ठान या संस्था विशेष से संबंधित विनियोग लेखाओं या किसी लेखा परीक्षा पैरा से कुछ ऐसी अनियमितताओं का पता चलता है, जिनके लिए मौके पर जाकर अध्ययन करने की आवश्यकता होती है जिससे कि उस संस्था या संगठन आदि के वास्तविक कार्यकरण के संबंध में मूल्यांकन किया जा सके, तो समिति अध्यक्ष के अनुमोदन से दौरा करती है।

ऐसे अध्ययन दौरे या तो सम्पूर्ण समिति द्वारा या उसके अध्ययन दलों द्वारा किये जाते हैं। सदस्य इस प्रकार के मौके पर जाकर किये जाने वाले अध्ययन व्यक्तिगत रूप से नहीं करते।

समिति जहां दौरे[528] के लिए जाती है, वहां न तो समिति के रूप में बैठक करती है, न साक्षियों के बयान लेती है, न दस्तावेज मांगती है और न ही अधिकारियों की जांच करती है, परन्तु दौरे के दौरान समिति की जांच विनियोग लेखाओं और लेखा परीक्षा प्रतिवेदन में उठाये गये मुद्दों तक ही सीमित नहीं रहती। समिति भण्डार या सामान का तथ्यात्मक सत्यापन स्वयं नहीं करती, परन्तु भण्डार रखने की स्थिति और उसकी प्रणाली तथा भण्डार के सत्यापन की प्रणाली का सामान्य रूप से अध्ययन कर सकती है।

---

528. लोक लेखा समिति की उप-समिति ने सबसे पहले दिसम्बर, 1952 में विभिन्न कार्यों अर्थात् पुलों, सिंचाई नहरों और बांधों आदि के निर्माण कार्य को मौके पर जाकर देखने के प्रयोजन से हीराकुंड बांध परियोजना का दौरा किया।

दौरे के आधार पर बनायी गई रिपोर्ट : समिति का अध्ययन दौरा समाप्त होने के बाद एक टिप्पणी तैयार की जाती है, और दौरे को देखते हुए समिति को यदि और किसी जानकारी की आवश्यकता हो, तो यह जानकारी सम्बन्धित मंत्रालयों से प्राप्त की जाती है। इस प्रकार तैयार की गई टिप्पणियां सदस्यों के प्रयोग तथा उनकी जानकारी के लिए होती हैं।

समिति के सदस्य व्यक्तिगत रूप से मंत्रालय या मंत्री को इस संबंध में अपनी राय नहीं बता सकते कि किसी सरकारी कार्यालय, परियोजना या उपक्रम के काम के संबंध में उनके क्या विचार हैं, जो मौके पर अध्ययन करने के फलस्वरूप उन्होंने बनाये हैं।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक समिति का एक महत्वपूर्ण सहायक है। नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त किया जाता है और उसे उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।[529] उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधान मंत्री की सलाह पर की जाती है। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक अपना पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त व्यक्ति के समक्ष संविधान में दिए गए प्रारूप के अनुसार शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है।[530]

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कर्त्तव्यों तथा शक्तियों का वर्णन अन्यत्र किया गया है।[531] नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की लेखा परीक्षा संबंधी रिपोर्ट स्वत: समिति को सौंपी मानी जाती है।

जब समिति सरकारी साक्षियों का साक्ष्य लेती है, उस समय नियंत्रक-महालेखापरीक्षक सभापति के दायीं ओर बैठता है और साक्ष्य लेने में उसकी सहायता करता है। सुस्थापित परिपाटी के अनुसार सभापति की अनुमति से वह किसी साक्षी से किसी बात को स्पष्ट करने के लिए कह सकता है और चाहे तो प्रश्न पूछ सकता है तथा मामले के तथ्यों के संबंध में और आगे वक्तव्य दे सकता है।[532]

लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों/पैराओं में अंतर्विष्ट मामलों की जांच के कार्य में समिति की सहायता करने के लिए नियंत्रक-महालेखापरीक्षक समिति द्वारा चुने गये प्रत्येक पैरा के बारे में समिति को महत्वपूर्ण मुद्दों का ज्ञापन प्रस्तुत करता है। इन मुद्दों पर अग्रिम जानकारी संबंधित

---

529. अनुच्छेद 148(1) और 124(4)।

530. प्रारूप के नमूने के लिए *देखिए* प्रारूप 4—संविधान की तीसरी अनुसूची।

531. *देखिए* अध्याय 8-संसद के कार्य-निर्वाहक साथ ही *देखिए* नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्तें), अधिनियम, 1971 ।

532. लोक लेखा समिति की 9 जनवरी, 2007 को हुई बैठक में, समिति के सभापति ने स्पष्ट किया कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को हस्तक्षेप करने और सभापति की अनुमति से प्रश्न पूछने का अधिकार है।

मंत्रालय से मंगाई जाती है। मंत्रालय से प्राप्त अग्रिम जानकारी, समिति के दौरा टिप्पणों, सदन में हुई संगत चर्चाओं, दोनों सदनों में दिये गए प्रश्नों के उत्तरों, प्रेस रिपोर्टों और उस विषय पर समिति द्वारा यदि पहले कोई प्रतिवेदन दिये गये हों तो उनके आधार पर समिति के सचिवालय द्वारा तैयार किए गए प्रश्नों को भी महत्वपूर्ण मुद्दों के रूप में ज्ञापन में शामिल किया जाता है। इन्हीं प्रश्नों के आधार पर संगठन अथवा संबंधित मंत्रालय के प्रतिनिधियों की जांच की जाती है।

समिति की बैठकें

समिति के गठन के बाद शीघ्र ही उसकी एक प्रारम्भिक बैठक होती है जिसमें सारे वर्ष के कार्यक्रम पर विचार किया जाता है। बैठकों का कार्यक्रम सचिवालय द्वारा तैयार किया जाता है और सभापति द्वारा उसका अनुमोदन किया जाता है।[533]

एक दिन (सामान्यत: कार्यक्रम का सबसे पहला दिन) समिति की अनौपचारिक बैठक के लिए नियत किया जाता है, जब सदस्य नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसके किसी वरिष्ठ अधिकारी से उन महत्वपूर्ण बातों पर विचार-विमर्श करते हैं, जो उन लेखाओं से उत्पन्न हुई हों, जिन की समिति को जांच करनी है:

> 1926-27 के लेखाओं की जांच करने वाली समिति के एक निर्णय के अनुसार, जब विभागीय साक्षियों को बुलाया गया हो तो, प्रत्येक बैठक के पहले 10 मिनट सदस्यों और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के बीच परस्पर परामर्श के लिए रखे जाते थे। ऐसी बैठकों की कार्यवाही का अभिलेख रखा जाता था। परन्तु बाद में एक परम्परा विकसित हुई है जिसके अनुसार विवरण देने संबंधी कार्यवाही के सत्रों का अभिलेख नहीं रखा जाता।

साक्ष्य

समिति किसी मंत्रालय विशेष से संबंधित लेखाओं की जांच के संबंध में साक्ष्य देने के लिए अधिकारियों को बुलाती है। समिति के समक्ष साक्ष्य देने या उन लेखाओं की जांच के संबंध में परामर्श के लिए किसी मंत्री को नहीं बुलाया जाता है।[534] जब कभी कोई मंत्री समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिये विशेष रूप से अनुरोध करता है तो उसे केवल तभी अनुमति मिल सकती है जबकि सभापति मंत्री के साथ बातचीत करने के पश्चात् ऐसा करना वांछनीय समझे।[535] सामान्य प्रथा यह है कि—समिति का सभापति यदि आवश्यक समझे तो विचार-विमर्श

---

533. कार्यक्रम की प्रतियां निम्नलिखित को भेजी जाती हैं: भारत सरकार के मंत्रालय, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और संबंधित लेखाधिकारी/लेखापरीक्षा अधिकारी और सभी राज्य विधान सभाओं के सचिवालय (जहां भी समितियों की बैठकों का कार्यक्रम लगातार तीन से अधिक दिनों का हो) यह इसलिए किया जाता है जिससे कि राज्यों की लोक लेखा समितियों के सभापति तथा उनके सदस्य और अधिकारी चाहें तो उन बैठकों की कार्यवाही देख सकें। समिति की बैठकों के कार्यक्रम के संबंध में एक प्रेस विज्ञप्ति भी जारी की जाती है।

534. निदेश 99(1)।

535. 50वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति-तीसरी लोक सभा)—हालांकि ऐसे उदाहरण दुर्लभ हैं।

समाप्त होने के बाद किसी मंत्री के साथ उसके मंत्रालय के संबंधित लेखाओं के संबंध में, जो समिति के विचाराधीन हों; अनौपचारिक बातचीत कर सकता है जिससे कि वह उसे इन बातों की जानकारी दे सके; (i) किसी मंत्रालय द्वारा निर्धारित नीति का कोई विषय जिससे समिति पूरी तरह सहमत न हो; और (ii) गुप्त या गोपनीय ढंग का कोई विषय, जिसे समिति अपने प्रतिवेदन में रिकार्ड पर नहीं लाना चाहती।

समिति चाहे तो इस बातचीत को ध्यान में रखते हुए अपने निष्कर्षों पर पुनः विचार कर सकती है, परंतु ऐसे विषयों के सभापति द्वारा संबंधित मंत्री के ध्यान में लाये जाने के बाद, समिति ऐसे किसी विषय के बारे में, मंत्री से अन्यथा पत्र-व्यवहार आदि नहीं करती लेकिन सभापति और सम्बन्धित मंत्री के बीच अभी तक इस प्रकार की अनौपचारिक वार्ताएं नहीं हुई हैं।

निजी कम्पनियों, गैर-सरकारी निकायों आदि के प्रतिनिधियों का साक्ष्य

समिति भारत सरकार द्वारा किसी निजी कम्पनी या किसी गैर-सरकारी निकाय के साथ हुए समझौते के कार्यकरण की जांच करते समय यदि उचित समझे, तो उस कम्पनी के या गैर-सरकारी निकाय के प्रतिनिधियों को किन्हीं ऐसे बिन्दुओं पर, जिन पर समिति और अधिक जानकारी चाहे या प्रतिनिधि कोई स्पष्टीकरण देना चाहे, जैसा भी मामला हो, समिति के समक्ष उपस्थित होने और उन पर साक्ष्य देने के लिए बुला सकती है।[536]

प्रतिवेदन का तैयार और प्रस्तुत किया जाना

जब विनियोग लेखाओं और तत्संबंधी लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों की जांच पूरी हो जाती है और सरकार से सभी संगत जानकारी प्राप्त हो जाती है, तो सचिवालय विभागीय प्रतिनिधियों द्वारा समिति के सामने दिये गये मौखिक तथा लिखित साक्ष्य के आधार पर, समिति का प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करता है। उसके बाद वह प्रारूप प्रतिवेदन सभापति के अनुमोदन के लिए उसके सामने रखा जाता है और उसकी एक प्रति नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को भेजी जाती है, जिससे कि वह तथ्यों के संबंध में उसका सत्यापन कर सके। जब समिति की बैठक सभापति द्वारा अनुमोदित प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए होती है, तो उसमें नियंत्रक-महालेखापरीक्षक भी उपस्थित होता है जिससे कि वह, जहां आवश्यक हो, तथ्यों तथा आंकड़ों में किये गये परिवर्तनों की ओर समिति का ध्यान दिला सके।

विमत टिप्पण की अनुमति नहीं है।

समिति द्वारा अंतिम रूप से स्वीकृत प्रतिवेदन को समिति का सभापति या उसकी अनुपस्थिति में उसके द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य सदस्य सभा में प्रस्तुत करता है। प्रतिवेदन की एक प्रति समिति द्वारा विधिवत प्राधिकृत इसमें किसी राज्य सभा सदस्य द्वारा राज्य सभा के पटल पर भी रखी जाती है। यदि लोक सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की तारीख को

---

536. निदेश 100 ।

राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा हो तो प्रतिवेदन की एक प्रमाणीकृत प्रति राज्य सभा सचिवालय को यह सूचित करते हुए भेजी जाती है कि प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत कर दिया गया है और यह अनुरोध किया जाता है कि प्रतिवेदन को राज्य सभा की अगली बैठक में सभा पटल पर रखा जाए।

समिति के प्रतिवेदन में प्रस्तावना, मुख्य प्रतिवेदन, समिति की संगत बैठकों के कार्यवाही सारांश, परिशिष्ट (मंत्रालयों द्वारा प्रस्तुत और समिति द्वारा प्रतिवेदन में शामिल किए जाने के लिए निर्णीत टिप्पणी शामिल होते हैं) यदि प्रतिवेदन में शामिल सामग्री के कारण रिपोर्ट बहुत मोटी हो जाती है तो इसे दो या दो से अधिक भागों में विभाजित कर दिया जाता है।

सिफारिशों का कार्यान्वयन

आरम्भ में समिति की सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही या प्रस्तावित कार्यवाही दर्शाने वाला विवरण सचिवालय द्वारा संकलित किया जाता था। इस विवरण के माध्यम से समिति को यह पता चलता था कि सरकार ने उसकी सिफारिशों को किस सीमा तक कार्यान्वित किया है। इस विवरण में किसी वर्ष विशेष के लेखाओं के संबंध में समिति की प्रत्येक सिफारिश का सारांश होता था और यह सम्बन्धित मंत्रालयों को आवश्यक कार्यवाही के लिए भेज दिया जाता था । मंत्रालयों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे सचिवालय को इस संबंध में जानकारी देते रहें कि उन्होंने उन सिफारिशों पर क्या कार्यवाही की है। इस प्रकार प्राप्त जानकारी के आधार पर इस विवरण का पुनरीक्षण किया जाता था और उसमें अद्यतन[537] स्थिति बतायी जाती थी। जब समिति सम्बन्धित मंत्रालयों से संबंधित लेखाओं की जांच प्रारम्भ करती थी, तो यह विवरण समिति के सामने रखा जाता था। उस विवरण से समिति को तत्काल यह पता चल जाता था कि उसमें दी गयी प्रत्येक सिफारिश के संबंध में क्या कार्यवाही की गई है या किये जाने का प्रस्ताव है।

---

537. अप्रैल, 1955 में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ने सुझाव दिया कि समिति की सिफारिशों पर शीघ्रातिशीघ्र कार्यवाही सुनिश्चित करने के विचार से मंत्रिमंडल सचिवालय को यह काम सौंप दिया जाये कि वह भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों की टिप्पणियों को समेकित करे और वर्ष के प्रारम्भ में उन्हें समिति के पास भेज दे। समिति का विचार था कि उसकी सिफारिशों को कार्यान्वित करने में जो देरी होती है वह इस सम्पूर्ण काम को मंत्रिमंडल सचिवालय को सौंपे जाने से दूर नहीं होगी। दूसरी ओर समिति का विचार था कि इससे समिति को जानकारी देने के संबंध में मंत्रालयों की जिम्मेदारियां बंट जायेंगी। इसका यह मतलब भी होगा कि यह काम दो बार होगा, क्योंकि लोक सभा सचिवालय भी पहले से सारी जानकारी इकट्ठी करता है और उसे समिति के सामने रखता है।

    वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत मंत्रालय प्रत्यक्ष रूप से समिति के प्रति जिम्मेदार है और इससे समिति को अपना काम निपटाने में सुविधा भी होती है।

शुरू में समिति द्वारा अपने प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों के आधार पर सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों को वित्त विभाग के एक संकल्प में दर्ज किया जाता था और उस संकल्प को राजपत्र में भी प्रकाशित किया जाता था। वर्ष 1929 में इस प्रथा की समीक्षा की गयी और समिति (1929-30) की सिफारिशों के अनुसरण में वर्ष 1930 में एक सर्वग्राही संकल्प जारी करने की प्रथा को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर वित्त विभाग ने समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर भारत सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा की गई कार्यवाही के बारे में त्रैमासिक विवरण जारी करना प्रारम्भ कर दिया।[538] बाद में प्रत्येक तीन महीने बाद वित्त विभाग द्वारा विवरण तैयार करने की प्रथा समाप्त कर दी गई और केवल एक विवरण तैयार किया जाने लगा जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ ऐसी मदें भी शामिल होती थीं जो पिछले प्रतिवेदनों से बकाया होती थीं। यह विवरण सम्बन्धित मंत्रालयों द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर तैयार किया जाता था। यह व्यवस्था 1950 तक जारी रही और इस वर्ष में समिति के सचिवालय कार्य लोक सभा सचिवालय को हस्तांतरित कर दिए गए।

सातवें दशक में समिति के ऐसे प्रत्येक मुख्य प्रतिवेदन के बारे में अलग से की गई कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की प्रथा प्रारम्भ हुई। की-गई-कार्यवाही सम्बन्धी प्रतिवेदन मुख्य प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के सामान्यतया छह महीनों के भीतर सरकार से प्राप्त उत्तरों पर आधारित होता है। इसमें पांच अध्याय होते हैं—अध्याय I : प्रतिवेदन; अध्याय II : सिफारिशें जिन्हें सरकार ने स्वीकार कर लिया है; अध्याय III : सिफारिशें जिनके बारे में सरकार से प्राप्त उत्तरों को देखते हुए समिति आगे कार्यवाही नहीं करना चाहती; अध्याय IV : वे सिफारिशें जिन्हें समिति दोहराना चाहती है; अध्याय V : वे सिफारिशें जिनके बारे में सरकार से अंतिम उत्तर प्राप्त नहीं हुए हैं। की-गई-कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् सरकार को समिति को सूचित करना होता है कि सरकार ने अध्याय-I में अंतर्विष्ट सिफारिशों पर क्या कार्यवाही की है अथवा करने का विचार है। अध्याय-पांच के संबंध में अंतिम उत्तर और सरकार के उत्तरों वाले विवरण समिति द्वारा अन्य किसी टिप्पणी के बिना दोनों सदनों के सभा पटलों पर रखे जाते हैं। तथापि, समिति यदि उचित समझे तो अध्याय-V में शामिल सिफारिशों के आधार पर एक और की-गई-कार्यवाही सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकती है।[539] अध्याय-V में वे सिफारिशें होती हैं जिनके बारे में सरकार ने की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदन को अंतिम रूप देते समय अन्तरिम उत्तर दे दिया है/कोई उत्तर नहीं दिया है।

सरकार और समिति के बीच असहमति की स्थिति में प्रक्रिया

सरकार समिति की सिफारिशों का आदर करती है और उनमें से अधिकतर को स्वीकार करके उन्हें कार्यान्वित करती है। यदि समिति के प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट किसी सिफारिश के संबंध में सरकार और समिति के बीच कोई मतभेद हो तो सरकार को पहले तो समिति को वे कारण बताने पड़ते हैं, जिनके आधार पर उसने किसी सिफारिश को स्वीकार न किया हो अथवा कार्यान्वित न किया हो।

538. भारत सरकार का वित्त विभाग, संकल्प संख्या डी/1200-बी, दिनांक 13 जून, 1930 ।

539. समिति (1977-78) ने 64वां 'की-गई-कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन' प्रस्तुत किया।

लोक लेखा समिति की की-गई-कार्यवाही संबंधी उप-समिति मंत्रालयों/विभागों से प्राप्त 'की-गई-कार्यवाही' संबंधी टिप्पणों की जांच करती है और 'की-गई-कार्यवाही' संबंधी पृथक प्रतिवेदन तैयार करती है, जिसे अंततः मुख्य समिति द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और सभा को प्रस्तुत कर दिया जाता है। की-गई-कार्यवाही संबंधी उप-समिति अपने प्रतिवेदन को अंतिम रूप देने से पहले मंत्रालयों/विभागों के प्रतिनिधियों को अनौपचारिक विचार-विमर्श के लिए बुला सकती है[540] और सरकार द्वारा भेजे गये टिप्पणों से उत्पन्न मुद्दों पर स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकती है और जिन मामलों में उत्तर प्राप्त नहीं हुए हैं उन्हें शीघ्र प्राप्त करने के लिए कार्यवाही कर सकती है।

> समिति (1952-53) के चौथे प्रतिवेदन के संबंध में भारत सरकार ने इस प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया और 11 अगस्त, 1953 को एक विवरण सभा पटल पर रखा। इस संबंध में सरकार ने पहले अपने विचार समिति के सामने नहीं रखे थे। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि एक परिपत्र सभी मंत्रालयों को भेजा जाए और उसमें यह कहा जाए कि जिन मामलों में सरकार के पास किसी समिति की सिफारिश से सहमत न होने के समुचित कारण हों, उनमें संबंधित मंत्रालय को सुस्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपने विचार समिति के सामने रखने चाहिएं और यदि समिति उचित समझे तो इस संबंध में सरकार के मत पर विचार करने के बाद एक और प्रतिवेदन सभा को दे सकती है।
>
> इसके बाद 1954 में संबंधित मंत्री ने उस टिप्पणी की एक प्रति सभा पटल पर रखी जिसे समिति के नौवें प्रतिवेदन (1953-1954) में की गई टिप्पणियों के बारे में समिति को दिया गया था। टिप्पणी को सभा पटल पर रखने से पहले सरकार ने इस बात की प्रतीक्षा नहीं की कि समिति उस पर विचार करे और उस विषय के संबंध में सभा को एक और रिपोर्ट दे। उस टिप्पणी के साथ वित्त मंत्री का एक संक्षिप्त वक्तव्य भी सभा पटल पर रखा गया, जिसमें सभा से यह अनुरोध किया गया था कि उस मामले को वहीं समाप्त समझा जाए। समिति ने इस प्रक्रिया को अनुचित ठहराया और यह विचार व्यक्त किया कि सुस्थापित संसदीय प्रक्रिया के अनुसार सभा द्वारा ऐसे विषय पर विचार का अवसर तभी आ सकता है जब समिति सरकार की राय पर पुनः विचार करने के बाद अपनी अंतिम सिफारिश दे दे।[541]

प्रतिवेदन पर चर्चा

यद्यपि यह बात लोक सभा पर निर्भर करती है कि वह समिति के प्रतिवेदनों पर विचार करे अथवा नहीं। किन्तु प्रतिवेदनों पर यदा-कदा ही चर्चा होती है। परन्तु सदस्य बजट, अनुदानों की मांगों आदि पर चर्चा के दौरान अपने भाषणों में समिति के प्रतिवेदनों से उद्धरण

---

540. समिति (1986-87) ने रेल मंत्रालय और सरकारी उद्यम विभाग के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लिया।

541. 14वां प्रतिवेदन (लोक लेखा समिति—पहली लोक सभा), पैरा 21; साथ ही *देखिए लो.स.वा. वि.*, 12.8.1966, पृ. 100-101 ।

आदि दे सकते हैं परन्तु यदि कोई ऐसा विशिष्ट मामला हो, जिस पर समिति और सरकार या मंत्री के बीच कोई मतभेद हो तो उस विषय को सभा में प्रस्ताव के माध्यम से लाया जा सकता है और उस पर चर्चा[542] की जा सकती है। किसी प्रस्ताव पर चर्चा केवल समिति द्वारा की गई टिप्पणियों पर की जा सकती है। उसके लिए न तो कोई प्रस्ताव अथवा स्थानापन्न प्रस्ताव सभा में मतदान के लिए रखा जा सकता है।[543]

> वर्ष 1946 तक लोक लेखा समिति की रिपोर्टों पर विधान सभा में विचार किया जाता था और उसके लिए वित्त सदस्य एक औपचारिक प्रस्ताव रखता था। विधान सभा में रिपोर्ट पर चर्चा समिति की सिफारिश पर 1930 से प्रारम्भ हुई। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि सरकार को चाहिए कि विधान सभा में व्यक्त की गई उत्कट इच्छाओं को पूरा करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि सभा को लोक लेखा समिति की उस रिपोर्ट पर सामान्य रूप से चर्चा करने की अनुमति दी जाए, जिस पर अतिरिक्त अनुदान आधारित है।[544] पहली चर्चा सामान्य प्रकार के प्रश्नों और समिति के कार्य क्षेत्र के संबंध में हुई। प्रस्ताव मतदान के लिए नहीं रखा गया।[545] परन्तु अगले वर्ष, वित्त सदस्य द्वारा समिति की रिपोर्ट पर वाद-विवाद का उत्तर देने के पश्चात् प्रस्ताव सभा में मतदान के लिए रखा गया और उसे स्वीकार कर लिया गया। यह प्रक्रिया जारी रही, लेकिन 1944 में वित्त सदस्य के प्रस्ताव पर एक संकल्प भी रखा गया और सभा ने उसे स्वीकार कर लिया।[546] इस प्रक्रिया में एक और परिवर्तन 1946 में किया गया। वित्त सदस्य ने उस वर्ष समिति के प्रतिवेदन पर विचार किये जाने का प्रस्ताव रखते समय इस बात का भी प्रस्ताव रखा कि प्रतिवेदन के वर्ष के दौरान मंजूर की गई राशियों से अधिक जो खर्च हुआ है, उसकी भी मंजूरी देकर उसे नियमित कर दिया जाए।[547]

प्राक्कलन समिति

भारत की संचित निधि पर भारित व्यय के अलावा अन्य व्यय से संबंधित प्राक्कलन, अनुदानों की मांगों के रूप में लोक सभा को प्रस्तुत किये जाते हैं और लोक सभा को यह

---

542. 1959 में लोक समिति के सभापतियों के सम्मेलन में भाषण देते हुए अध्यक्ष ने कहा:

"पूरे प्रतिवेदन पर यों ही चर्चा करने से कोई लाभ नहीं होगा और समिति की सिफारिशों का प्रभाव कम हो सकता है। इसलिए मेरा विचार है कि विशेष बातों पर ही चर्चा उठायी जानी चाहिए, विशेषकर उन बातों पर जिनके संबंध में समिति और सरकार के बीच मतभेद हो और वह मतभेद दूर न हो सका हो।"

543. *लो.स.वा.वि.*, 22.8.1966, पृ. 95-124 ।

544. 1926-27 के लेखाओं के संबंध में लोक लेखा समिति का प्रतिवेदन, खण्ड 1, पृ. 8, पैरा 11 ।

545. *एल.ए. डिबेट्स,* 7.7.1930, पृ. 26 ।

546. *एल.ए. डिबेट्स,* 21.11.1944, पृ. 1156-60 ।

547. *एल.ए. डिबेट्स,* 31.10.1946, पृ. 339-47 ।

शक्ति प्राप्त है कि वह किसी मांग को मंजूर करे या मंजूर करने से इन्कार कर दे या उसमें निश्चित रकम की कटौती सहित उसे मंजूर करे। उसे यह भी शक्ति प्राप्त है कि भारत की संचित निधि पर भारित व्यय के संबंध में प्राक्कलनों पर मतदान न करके उस पर विचार करे।[548] यद्यपि लोक सभा प्राक्कलनों पर काफी लम्बे समय तक विचार करती है।[549] परन्तु फिर भी यह देखा गया है कि सभा के पास न तो समय है और न ही इतनी गुंजाइश कि प्राक्कलनों के ब्यौरे तथा उनके तकनीकी पहलुओं पर विचार कर सके। इसलिए इस प्रयोजन के लिए लोक सभा ने एक समिति बनाई है, जिसका नाम, "प्राक्कलन समिति" है।

संविधान के लागू होने के बाद प्राक्कलन समिति के गठन के लिए नियमों में उपबन्ध किया गया। अध्यक्ष मावलंकर ने नियमों में किये गये परिवर्द्धन की सूचना सभा को देते हुए कहा था:[550]

> अनुच्छेद 113 से 116 तक के उपबन्धों की व्यवस्था के कारण और वैसे भी स्वतंत्र रूप से, यह आवश्यक समझा गया कि कार्यपालिका द्वारा किये गये खर्च पर सभा का वित्तीय नियंत्रण अधिक अच्छी तरह से रखने के लिए एक प्राक्कलन समिति गठित की जाए। इस समिति का मुख्य कृत्य यह होगा कि समिति जिन प्राक्कलनों पर विचार करना उचित समझे, विचार करे और उनकी आधारभूत नीति के अनुरूप बचत के सुझाव दे। इसके अतिरिक्त लोक लेखा समिति तो होगी ही, इन दोनों समितियों के कृत्य एक दूसरे के अनुपूरक होंगे और यह आशा की जाती है कि वे न केवल संपूर्ण आर्थिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत करेंगी, बल्कि ये समितियां पहले किये गये खर्च को देखते हुए, भविष्य में होने वाले खर्च की जांच करने में परस्पर सहायक हो सकेंगी।

सर्वप्रथम 1937 में पहली बार केन्द्रीय विधान सभा में यह पूछा गया था[551] कि क्या सरकार के सामने कोई ऐसा प्रस्ताव है कि हाउस ऑफ कॉमन्स की प्राक्कलन संबंधी प्रवर समिति जैसी कोई प्राक्कलन समिति भारत में भी बनाई जाएगी। वित्त सदस्य (सर जेम्स निग्ग) ने उत्तर दिया, "नहीं"। अगले वर्ष एक सदस्य ने एक छंटनी समिति की नियुक्ति के लिए गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत एक संकल्प में एक संशोधन रखा। इस संशोधन में एक प्राक्कलन समिति गठित करने का प्रस्ताव था। वित्त सदस्य ने प्राक्कलन समिति के गठन का समर्थन किया, परन्तु कुछ कारणों से विधान सभा ने इस संशोधन को स्वीकार नहीं किया।[552] 1944 में[553] जब विधानसभा में प्राक्कलन समिति बनाने का सुझाव फिर से दिया गया, तो वित्त सदस्य ने इस आधार पर इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि सरकारी अधिकारियों पर

548. अनुच्छेद 113 ।

549. *देखिए,* अध्याय 29—वित्तीय विषयों के संबंध में प्रक्रिया।

550. *पी. डिबेट्स,* 1.1.1950 ।

551. *एल.ए. डिबेट्स,* 25.8.1937, पृ. 506-07 ।

552. *पूर्वोक्त,* 8.4.1938, पृ. 2866-67 ।

553. *पूर्वोक्त,* 14.3.1944, पृ. 1040-45 ।

लोक लेखा समिति और स्थायी वित्त समिति की सहायता करने के कारण पहले ही अत्यधिक बोझ पड़ रहा है।

वर्ष 1949 के संविधान सभा (विधायी) के सचिव ने भारत में संसदीय प्रक्रिया के सुधारों के संबंध में एक ज्ञापन में इस बात पर जोर दिया कि संसद को पेश किये जाने वाले प्राक्कलनों की विषय-वार व्यापक जांच करने की आवश्यकता है। चूंकि प्राक्कलनों की व्यापक जांच करने के लिए संसद काफी समय नहीं निकाल सकती और सामान्य सदस्यों को प्रशासन की विस्तृत बातों और वित्तीय मामलों का विशेष ज्ञान नहीं होता, इसलिए सचिव ने इस बात पर जोर दिया कि खर्च पर संसद का प्रभावी नियंत्रण रखने के लिए यह आवश्यक है कि सभा की समुचित रूप से गठित एक समिति हो, जिसे आवश्यक शक्तियां दी जाएं और यह विनियोग लेखाओं तथा प्राक्कलनों की जांच करे।[554] अध्यक्ष मावलंकर ने इस प्रस्ताव का "जोरदार समर्थन" किया। सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया और वित्त मंत्री ने 28 फरवरी, 1950 को अपने बजट भाषण में इसका उल्लेख किया।[555]

संरचना

समिति में 30 से अनधिक सदस्य होते हैं,[556] जो प्रत्येक वर्ष सभा द्वारा अपने सदस्यों में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से चुने जाते हैं।[557] इस संबंध में सभा द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया जाता है। निर्वाचन की यह प्रणाली लोक सभा में प्रत्येक पार्टी/ग्रुप की संख्या के अनुपात में समिति में उसके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करती है। अप्रैल में प्रति वर्ष समिति के सदस्यों के निर्वाचन का प्रस्ताव संसदीय कार्य मंत्री द्वारा प्रत्येक लोक सभा के प्रारंभ में, और समिति के सभापति द्वारा बाद के वर्षों में, समिति का कार्यकाल समाप्त होने से पहले, रखा जाता है।[558]

> समिति के सदस्यों की सदस्यता निरंतर जारी रखने के लिए और इस बात का प्रबंध करने के लिए कि सदस्यों द्वारा प्राप्त अनुभव का लाभ समिति को एक वर्ष से अधिक की अवधि तक पहुंच सके, यह परम्परा बनाई गई है कि विभिन्न दल और ग्रुप समिति के सदस्यों के रूप में अपने सदस्यों का नाम निर्देशित करते समय इस बात का ध्यान रखें कि जहां तक संभव हो वही सदस्य समिति में निरंतर दो कार्यकाल तक कार्य करते रहें।

---

554. कौल: ज्ञापन ।

555. *पी. डिबेट्स,* 28.2.1950, पृ. 1002 ।

556. 10 अप्रैल, 1950 को गठित पहली समिति में 25 सदस्य थे, जिनका चुनाव सभा ने किया था। 1956-57 से समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 30 कर दी गयी। कार्यवाही सारांश (नियम समिति-पहली लोक सभा), 28.11.1955 ।

557. नियम 311(1)।

558. समिति के सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था यथासंभव पुरानी समिति का कार्यकाल समाप्त होने से लगभग पन्द्रह दिन पहले की जाती है।

किसी मंत्री को समिति का सदस्य निर्वाचित नहीं किया जाता; और यदि कोई सदस्य समिति का सदस्य निर्वाचित होने के बाद मंत्री नियुक्त हो जाए, तो वह मंत्री नियुक्त होने की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रहता।[559]

प्राक्कलन समिति का कार्यकाल प्रत्येक वर्ष पहली मई से आरम्भ होता है, परन्तु नई लोक सभा की पहली समिति का कार्यकाल नई सभा के गठन के बाद किसी भी दिन प्रारम्भ हो सकता है। हालांकि, कार्यकाल अगले वर्ष की 30 अप्रैल को अनिवार्य रूप से समाप्त हो जाता है। समिति के सदस्यों का कार्यकाल भी समिति के कार्यकाल जितना होता है।

समिति का सभापति : समिति के सभापति की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से ही की जाती है। वह संसदीय समितियों के सभापतियों जैसे सामान्य कृत्यों के साथ-साथ[560] दूसरे काम भी करता है, जिनका संबंध समिति के कार्यकरण से है। उदाहरण के लिए, परिपाटी यह है कि सभापति इस बात का भी अन्तिम रूप से निर्णय करता है कि कोई विशेष दस्तावेज या जानकारी जो गोपनीय होती है, सरकार से मांगी जानी चाहिए या नहीं और ऐसी जानकारी या दस्तावेज समिति के सभी सदस्यों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए या नहीं।[561] वह यह निर्णय करता है कि क्या बजट में "भारित" मदों के वर्गीकरण से संबंधित मामलों की समिति द्वारा जांच की जानी आवश्यक है[562] और यदि आवश्यक हो तो वह विशेष मामलों के संबंध में, मंत्रियों या मंत्रालयों के प्रतिनिधियों के साथ अनौपचारिक बातचीत करता है।[563]

यदि समिति का सभापति समिति का सदस्य नहीं रहता है, तो नये सभापति की नियुक्ति तक समिति की कोई बैठक नहीं होती है।

कृत्य

समिति ऐसे प्राक्कलनों की जांच करती है जिनकी जांच करना वह उचित समझे या जो सभा या अध्यक्ष द्वारा विशेष रूप से जांच के लिए उसे सौंपे गये हों, जिससे कि:

> प्राक्कलनों से सम्बन्धित नीति से संगत किस प्रकार के मितव्ययिता, संगठनात्मक सुधार, कार्य दक्षता संबंधी या प्रशासनिक सुधार किये जा सकते हैं, इस सम्बन्ध में प्रतिवेदित किया जा सके;

---

559. नियम 311 (1)। प्राक्कलन समिति के सभापति, चिंतामणि पाणिग्रही दिनांक 22 अक्तूबर, 1986 को राज्य मंत्री के रूप में नियुक्त हो जाने पर समिति के सभापति और सदस्य नहीं रहे। दिनांक 12 मई, 1986 को श्रीमती शीला दीक्षित राज्य मंत्री नियुक्त हो जाने पर समिति की सदस्य नहीं रहीं।

560. संसदीय समितियों के सभापतियों के सामान्य कृत्यों के लिए *देखिए,* अध्याय 8 संसद के कार्य-निर्वाहक।

561. निदेश 101 (5) (ग)।

562. 'भारत की संचित निधि' पर भारित व्यय के लिए *देखिए,* अनुच्छेद 112(3)।

563. उदाहरण के लिए, *देखिए* 52वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा), पैरा-1; 53वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा), पैरा-5 ।

प्रशासन में कार्य दक्षता तथा मितव्ययिता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों का सुझाव दिया जा सके;

प्राक्कलनों में अन्तर्निहित नीति की सीमाओं में रहते हुए धन ठीक ढंग से लगाया गया है या नहीं इस बात की जांच की जा सके; और

प्राक्कलन जिस रूप में संसद में प्रस्तुत किए जायेंगे इसका सुझाव दिया जा सके।[564]

समिति सरकारी क्षेत्र के ऐसे उपक्रमों के संबंध में अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं करती है जो प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत या अध्यक्ष द्वारा सरकारी उपक्रम संबंधी समिति को आवंटित किये गये हैं।

समिति प्रत्येक वर्ष अपने कार्यकाल के प्रारंभ में, किसी मंत्रालय या मंत्रालयों के प्राक्कलनों के किसी भाग से संबंधित विषयों को उस वर्ष के दौरान जांच के लिए चयन करती है।

समिति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी एक वर्ष के सारे प्राक्कलनों की जांच करे। समिति प्रत्येक वर्ष लगभग छह से आठ मंत्रालयों का चयन करती है और ज्यों-ज्यों उसकी जांच पूरी होती रहती है, वह अपना प्रतिवेदन सभा में पेश करती जाती है चयन का मार्गदर्शी सिद्धान्त यह है कि सभी मंत्रालयों के महत्वपूर्ण प्राक्कलनों की जांच का एक चक्र, यथासंभव, प्रत्येक लोक सभा के कार्यकाल के भीतर ही पूरा कर लिया जाए।[565]

अत्यधिक महत्व वाले कुछ तदर्थ विषय, जो प्रत्यक्ष ऐसे लगते हैं कि उनकी विस्तृत जांच आवश्यक है, समय-समय पर अध्यक्ष या सभा द्वारा समितियों को सौंपे जाते हैं। ये विषय या तो सभा में अध्यक्ष के निदेशों के माध्यम से[566] और या अध्यक्ष द्वारा समिति के सभापति को पत्र लिखकर सौंपे[567] जाते हैं। समिति स्वयं भी समुचित महत्व के किसी विषय को तदर्थ जांच के लिए या समिति के किसी सदस्य के सुझाव पर जांच के लिए ले सकती है, बशर्ते कि वह विषय सरकार के किसी ऐसे प्रस्ताव के संबंध में न हों, जिसे अन्तिम रूप न दिया गया हो।[568]

---

564. नियम 310 ।

565. प्राक्कलन समितियों के सभापतियों के सम्मेलन में अध्यक्ष का भाषण, 16.4.1958 ।

566. उदाहरण के लिए *देखिए, पी. डिबेट्स,* 15.3.1951, कॉ. 4623-25 और 24.3.1951, कॉ. 5030-57; 87वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा) और 59वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा)।

567. उदाहरण के लिए *देखिए,* 92वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा); 86वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-चौथी लोक सभा); और 87वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-चौथी लोक सभा)।

568. कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 10.7.1952 ।

"भारित" मदों की जांच

समिति चाहे तो भारत की संचित निधि पर भारित व्यय का ब्यौरा मांग[569] सकती है और इस बात की संवीक्षा कर सकती है कि "स्वीकृत" की जाने वाली और "भारित" खर्च की मदों का वर्गीकरण संविधान के उपबंधों तथा संसद के अधिनियमों के अनुसार किया गया है।[570]

वित्त मंत्रालय समिति को उन निर्णयों की सूचना देता है जो सरकार समय-समय पर व्यय की किसी "भारित मद" को पहली बार बजट में सम्मिलित करने के संबंध में करे या जब वह व्यय की किसी मद को "भारित" की श्रेणी से निकाल कर स्वीकृत व्यय की श्रेणी में डाले, या किसी स्वीकृत होने वाले खर्च को "भारित" मदों की श्रेणी में डाल दे।[571]

इसी प्रकार, जब कभी सरकार अनुदानों की मांगों संबंधी बजट पत्रों के प्रारूप में अथवा दी जाने वाली सूचना में कोई परिवर्तन करना चाहती है, तो यह मामला समिति को, उसकी सिफारिशों के लिए भेजा जाता है।[572]

विशेष रुचि के मामलों की जांच

समिति विशेष रुचि के ऐसे मामलों की भी जांच करती है, जिनका संबंध यद्यपि विशेष प्राक्कलनों से नहीं होता, परन्तु जो समिति के काम के दौरान उठते हैं या प्रकाश में आते हैं और जिनके संबंध में समिति यह समझती है कि उनकी ओर सभा का ध्यान दिलाया जाना चाहिए।[573]

---

569. भारत की संचित निधि पर भारित व्यय के लिए *देखिए*, अनुच्छेद 112(3)।

570. कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 12.10.1950 ।

571. 1959-60 के बजट-प्राक्कलनों की जांच के समय यह प्रश्न उठा कि क्या यह ठीक है कि भारत सरकार द्वारा वाणिज्यिक आधार पर चलने वाले विभागों को दिए गए ब्याज की अदायगी को अनुच्छेद 112 (3) (ग) के अंतर्गत भारित मदों के रूप में दिखाया जाए। यह मामला स्पष्टीकरण के लिए वित्त मंत्रालय को भेजा गया। मंत्रालय ने नियंत्रक-महालेखापरीक्षक तथा विधि मंत्रालय से परामर्श के बाद यह निर्णय किया कि भविष्य में खर्च की ऐसी मदों को सभा की स्वीकृत मदें समझा जाएगा, भारित मदें नहीं, क्योंकि वे अनुच्छेद 112 (3)(ग) के अर्थों के अंतर्गत भारत सरकार के दायित्व का अंग नहीं हैं। वर्गीकरण में यह परिवर्तन 1961-62 वर्ष के बजट प्राक्कलनों से प्रारम्भ किया गया।

572. 37वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-आठवीं लोक सभा)।

573. उदाहरण के लिए समिति ने निम्नलिखित विषयों के संबंध में अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत किए 'प्रशासनिक वित्तीय तथा अन्य सुधार'-9वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा); 'राष्ट्रीयकृत औद्योगिक उपक्रमों का संगठन तथा प्रशासन'-16वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा); 'सरकारी उपक्रमों के बजट प्राक्कलनों की तैयारी और संसद में उनके वार्षिक प्रतिवेदन तथा लेखाओं का पेश किया जाना'-73वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा); 'सरकारी उपक्रम-स्वरूप तथा संगठन'-80वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा) आदि।

जब समिति विषयों का चयन कर लेती है तो सम्बन्धित मंत्रालय से कहा जाता है कि वह अपने संगठन, व्यवस्था, कार्यकलाप, प्राक्कलनों संबंधी मुख्य ब्यौरे और खर्च आदि के ब्यौरे के संबंध में विस्तृत जानकारी दे। इस प्रकार प्राप्त सामग्री का अध्ययन करने के बाद सदस्य अपने सुझाव या ऐसे मुद्दे भेजते हैं, जिनके संबंध में उन्हें और आगे कोई जानकारी चाहिए। ये मुद्दे और सुझाव एक प्रश्नावली के रूप में समेकित कर दिये जाते हैं और उन पर सम्बन्धित, उप-समिति या अध्ययन दल द्वारा विचार किया जाता है। सभापति द्वारा प्रश्नावली का अनुमोदन होने के बाद उसे उत्तर देने के लिए मंत्रालय के पास भेजा जाता है।

समिति की जांच का मूल उद्देश्य यह है कि प्रशासन में मितव्ययिता और कार्यकुशलता आए और इस बात को सुनिश्चित किया जा सके कि प्राक्कलनों में निहित नीति की सीमाओं में रहते हुए धनराशियों का उचित ढंग से उपयोग किया जाए। समिति संसद द्वारा अनुमोदित नीति की जांच नहीं करती और न ही इस संबंध में अपनी राय प्रकट करती है,[574] परन्तु जब साक्ष्य के आधार पर यह प्रमाणित हो जाए कि किसी नीति विशेष का अपेक्षित अथवा वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहा है या जिसके फलस्वरूप धन का अपव्यय हो रहा है, तो समिति का यह कर्त्तव्य है कि वह सभा का ध्यान इस बात की ओर दिलाये, कि नीति में परिवर्तन करना वांछनीय होगा।

समिति को इस बात का अधिकार प्राप्त है कि वह संसद द्वारा अनुमोदित नीतियों से अलग सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों की जांच करे। इसी के साथ ही वह किसी ऐसे विषय की जांच भी कर सकती है, जिसे उस सरकार ने अपने कार्यकारी कृत्यों[575] के निर्वहन में नीति के विषय के रूप में निर्धारित कर दिया हो। समिति ने कई बार प्रशासन में कार्यकुशलता और

---

574. समिति (1959-60) की पहली बैठक में अध्यक्ष ने समिति के कृत्य की ठीक-ठीक व्याप्ति की व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में की:

"आपका काम नीति निर्धारित करना नहीं है। संसद द्वारा जिस भी नीति का निर्धारण किया जाता है, आपका कर्त्तव्य यह है कि आप यह देखें कि उस नीति का पालन हो... साथ ही आपको यह भी देखना है कि उसके भिन्न वित्तीय प्रभाव न पड़ें। आप नीति संबंधी केवल उसी विषय की जांच कर सकते हैं-आपको उसका अधिकार तभी तो मिलता है- जिसमें खर्च अन्तर्निहित होता है और आप यह देखें कि वह नीति ठीक ढंग से नहीं चल रही है। जहां नीति के फलस्वरूप धन का अपव्यय होता है, आपको उसके संबंध में उचित ढंग से टिप्पणी करने का अधिकार है।"

575. उदाहरण के लिए, समिति ने परिवहन मंत्रालय को रेल मंत्रालय से अलग करने तथा इसे एक पृथक् परिवहन मंत्री के प्रभार के अंतर्गत रखने की सिफारिश की थी-19वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा), पैरा 42; दो नौवहन निगमों का विलय 38वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 24; नमक संगठन का उत्सादन तथा एक स्वायत्तशासी नमक बोर्ड का गठन-15वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा), पैरा 21 और 22; छावनियों के सतत् अस्तित्व के प्रश्न की पुन: जांच-46वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा), पैरा 91 ।

मितव्ययिता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों का सुझाव दिया है।[576]

उप-समितियों/अध्ययन दलों का गठन

समिति कार्यकरण में लचीलापन लाने तथा जांच के लिए चुने गए विषयों की विस्तृत जांच करने के लिए, जहां आवश्यक समझती है, उप-समितियां तथा अध्ययन दल नियुक्त कर सकती है।

> समिति ने अपने पहले दो वर्षों में कोई भी उप-समिति नियुक्त नहीं की। 1950-51 और 1951-52 के दौरान पहली बार समिति ने अध्ययन दल नियुक्त किये, जिन्हें गहन अध्ययन के लिए विशेष विषय सौंपे गये।

अध्ययन दलों के गठन के जरिए समिति काम को अपने सदस्यों में बांट सकती है, जिससे कि वे किन्हीं खास विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त कर सकें और उनका गहन अध्ययन कर सकें। अध्ययन दलों का गठन सभापति द्वारा किया जाता है। सभापति, अध्ययन दलों के सदस्यों का चयन उनमें कार्य करने के लिए सदस्यों की इच्छा को ध्यान में रखकर किया जाता है।

सभापति प्रत्येक अध्ययन दल के लिए संयोजक की नियुक्ति भी करता है, जो दल के नेता के रूप में काम करता है और उसकी बैठक की अध्यक्षता करता है। समिति के कार्यकाल के दौरान अध्ययन दलों की नियुक्ति इसलिए की जाती है कि वे नये विषयों, पिछले प्रतिवेदनों पर सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही और प्रक्रिया संबंधी मामलों पर, विचार कर सकें। अध्ययन दलों की नियुक्ति किन्ही तदर्थ विषयों के लिए भी की जा सकती है।

किसी नये विषय पर विचार करने वाले अध्ययन दल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मंत्रालय या विभाग आदि द्वारा भेजी गयी सामग्री का गहन अध्ययन करे, प्रश्नावली तैयार करे और सभापति से उसका अनुमोदन करा कर उसे उस मंत्रालय या विभाग को भेजे, अध्ययन दौरे करे और दौरे के आधार पर बनाई गई राय का अभिलेख रखे, मोटे तौर पर वे बातें बताए जिनके आधार पर सचिवालय प्रारूप प्रतिवेदन तैयार कर सके; और उन्हें मुख्य समिति को परिचालित करने से पहले उन पर विचार करे।

---

576. उदाहरण के लिए, समिति ने निम्नलिखित के लिए सुझाव दिये:

छोटे पत्तनों संबंधी विषय को "समवर्ती सूची" से "संघ सूची" में अन्तरित करना-51वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा), पैरा 44; बेहतर निर्यात बाजार प्राप्त करने हेतु इस्पात पर उत्पाद शुल्क में कटौती-33वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 186; दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत निधियों के आवंटन का पुन: समायोजन तथा पोतों की खरीद के लिए अतिरिक्त निधियों का आवंटन-38वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 71; एयर-कार्पोरेशनों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले ईंधन पर सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क का उद्ग्रहण-43वां प्रतिवेदन (प्राक्कलन समिति-पहली लोक सभा), पैरा 82 और 83 ।

समिति के पूर्ववर्ती प्रतिवेदनों पर सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही से सम्बन्धित दल के लिए यह आवश्यक है कि वह सरकार से प्राप्त उत्तरों की संवीक्षा करे, वे विषय बताये, जिनके आधार पर सचिवालय को प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करना है और प्रारूप प्रतिवेदनों को सम्पूर्ण समिति को परिचालित करने से पहले उन पर विचार करे।

प्रक्रिया संबंधी विषयों से संबंधित अध्ययन दल में सामान्यत: विभिन्न दलों के संयोजक होते हैं और समिति का सभापति उस दल का नेता होता है। यह दल समिति, उप–समिति और अध्ययन दल का अस्थायी कार्यक्रम तैयार करता है, प्रक्रिया सम्बन्धी विषय सम्पूर्ण समिति के सामने रखने से पहले उन पर विचार करता है और विभिन्न अध्ययन दलों या उप–समितियों के कार्य के बीच समन्वय स्थापित करता है।

समिति द्वारा अध्ययन दौरे

समिति जांचाधीन संस्थान के कार्यकरण की जानकारी प्राप्त करने के लिए मौके पर जाकर अध्ययन करने के लिए दौरे करती है। सम्बन्धित दल या उप–समिति स्थानीय कार्यालयों में भी जाती हैं। दौरों के प्रयोजन के लिए समिति सामान्यत: अपने आपको दो अध्ययन दलों में बांट लेती है।

जिन संस्थानों का निरीक्षण करना होता है, उनके कार्यकरण के सम्बन्ध में संबंधित मंत्रालय से पहले से ही टिप्पण मंगा लिये जाते हैं और अध्ययन दल के सदस्यों को परिचालित कर दिये जाते हैं। अनौपचारिक चर्चा के लिए एक प्रश्न सूची भी बना ली जाती है।

> अध्ययन दल दौरे के दौरान अनौपचारिक बैठकें कर सकता है, परन्तु ऐसी बैठकों में कोई निर्णय नहीं लिये जाते और न ही कोई साक्ष्य लिया जाता है।[577]
>
> अध्ययन दल संगत जानकारी प्राप्त करने के लिए कुछ मुद्दों पर चर्चा कर सकता है, परन्तु कोई विचार व्यक्त नहीं करता। उसे यह अधिकार नहीं है कि वह की गयी चर्चा या व्यक्त किये गये विचार या दौरे के दौरान अध्ययन के आधार पर बनाये गये विचारों के संबंध में समाचारपत्रों या किसी बाहर के व्यक्ति को कोई जानकारी या साक्षात्कार दे।

अध्ययन दौरे के फलस्वरूप जो विचार बने हों, उनका सारांश एक टिप्पण के रूप में तैयार किया जाता है और यदि समिति को दौरे के फलस्वरूप कुछ और जानकारी की आवश्यकता हो, तो वह सम्बन्धित विभाग से ली जाती है।

सभापति/संबंधी अध्ययन दल के संयोजक के अनुमोदन के बाद टिप्पण की प्रतियां समिति के सदस्यों के संदर्भ के लिए सभापति के कक्ष में रख दी जाती हैं।

समिति को सहायता

समिति जांच के लिए चुने गये विषयों के संबंध में तकनीकी परामर्श लेने के पक्ष में नहीं है।[578] चूंकि यह तकनीकी समिति नहीं है, इसलिए यह तकनीकी ब्यौरे के मामले में नहीं

---

577. निदेश 50 (2) ।

578. समिति ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया कि समिति की सहायता के लिए ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाये जो उन विषयों के विशेषज्ञ हों जिनकी जांच समिति को करनी हो।

जाती। जिन विषयों की जांच की जा रही हो, उनके बारे में सम्पूर्ण स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए समिति सामान्यतया गैर-सरकारी विशेषज्ञों और उस विषय में हितबद्ध प्रमुख गैर-सरकारी संस्थाओं तथा संगठनों के प्रतिनिधियों को साक्ष्य देने के लिए आमंत्रित करती है।

साक्ष्य

सरकारी साक्षियों का बुलाया जाना

समिति किसी मंत्रालय या विभाग विशेष से संबंधित प्राक्कलनों की जांच के संबंध में साक्ष्य देने के लिए संबंधित अधिकारियों को बुलाती है। जब किसी मंत्रालय या विभाग को समिति के सामने किसी विषय पर साक्ष्य देना हो, तो मंत्रालय या विभाग का प्रतिनिधित्व यथास्थिति, उसका सचिव या विभागाध्यक्ष करता है। लेकिन यदि समिति के सभापति से यह अनुरोध किया जाये कि समिति के सामने मंत्रालय या विभाग के किसी अन्य वरिष्ठ अधिकारी को उनका प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी जाये, तो वह ऐसी अनुमति दे सकता है। जहां यह महसूस किया जाये कि जिन मंत्रालयों के प्राक्कलनों पर विचार किया जा रहा है, उनके अतिरिक्त अन्य मंत्रालयों की राय लाभकारी होगी, तो उनके प्रतिनिधि को भी उस विषय पर साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाता है[579] समिति द्वारा प्राक्कलनों की जांच के संबंध में, साक्ष्य देने या परामर्श के लिए किसी मंत्री को समिति के समक्ष नहीं बुलाया जाता।[580] आवश्यक होने पर, समिति का विचार-विमर्श समाप्त होने के बाद ही सभापति ऐसे मंत्री से अनौपचारिक बात कर सकता है, जिसके मंत्रालय के प्राक्कलनों पर समिति विचार कर रही हो। इसका उद्देश्य यह है कि मंत्री को नीति सम्बन्धी किसी ऐसे विषय की सूचना दी जा सके, जिसके संबंध में मंत्रालय ने नीति निर्धारित की हो, परन्तु जिससे समिति पूर्णतया सहमत न हो। इसके अतिरिक्त मंत्री को ऐसे गुप्त तथा गोपनीय मामलों की भी जानकारी दी जाती है, जिनका उल्लेख समिति अपने प्रतिवेदन में नहीं करना चाहती।[581] यद्यपि समिति चाहे तो, ऐसी चर्चा के प्रकाश में अपने निष्कर्षों पर पुनः विचार कर सकती है, परन्तु वह किसी विषय के संबंध में मंत्री के साथ अन्यथा और किसी प्रकार की बातचीत नहीं करती।[582]

अतः किसी मंत्री का औपचारिक साक्ष्य नहीं लिया जाता, परन्तु समिति के सामने किसी विषय के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए अनौपचारिक रूप से मंत्री से पूछा जा सकता

---

579. कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 20.12.1958 और 12.3.1959 ।
580. निदेश 99(1) ।
581. निदेश 99(2) ।
582. निदेश 99(3) ।

है। किसी आयोग या सांविधिक निकाय के सदस्यों के रूप में कई बार मंत्री समिति के समक्ष उपस्थित होकर मामलों पर विचार-विमर्श करते हैं।[583]

राज्य सरकारों के मंत्रियों की इस संबंध में वही स्थिति है, जो कि केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों की है और इसलिए समिति राज्यों के मंत्रियों को समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए नहीं बुलाती, परन्तु यदि राज्यों के मंत्री चाहें तो वे अपने विचार समिति की जानकारी में लाने के लिए समिति के सभापति को भेज सकते हैं।[584]

गैर-सरकारी साक्षियों का साक्ष्य

जब भी आवश्यक हो, समिति उद्योगों तथा संगठनों के उन प्रतिनिधियों, विशेषज्ञों, प्रख्यात नेताओं और सेवा-निवृत्त सरकारी अधिकारी आदि को भी साक्ष्य के लिए आमंत्रित करती है, जिनके साक्ष्य के संबंध में यह समझा जाये कि उससे समिति को अपनी जांच-पड़ताल के काम में सहायता मिलेगी। समिति के सामने साक्ष्य देने के लिए गैर-सरकारी साक्षियों को बुलाने के लिए उनका चयन सामान्यतः उनके द्वारा दिये गये ज्ञापनों आदि पर विचार करने के बाद किया जाता है।

निजी कम्पनियों तथा गैर-सरकारी निकायों आदि के प्रतिनिधियों का साक्ष्य

जब समिति भारत सरकार और किसी निजी कम्पनी या गैर-सरकारी निकायों के बीच हुए किसी करार के कार्यकरण की जांच करती है, तो वह यथास्थिति, कम्पनी या गैर-सरकारी निकायों के प्रतिनिधियों को बुला सकती है या उनको इस बात का अवसर दे सकती है कि वे समिति के सामने पेश हों और किसी भी ऐसी बात के संबंध में साक्ष्य दें, जिसके बारे में समिति और जानकारी चाहती हो या जिसके संबंध में वे प्रतिनिधि स्पष्टीकरण देना चाहते हों।[585]

---

583. 9 अप्रैल, 1958 को समिति ने योजना आयोग के सदस्यों के साथ आयोग की संरचना, संगठन तथा कृत्यों के संबंध में सामान्य महत्व के कुछ विषयों के संबंध में चर्चा की जो मंत्री योजना आयोग के सदस्य के रूप में समिति की बैठक में उपस्थित हुए उनमें योजना मंत्री, रक्षा मंत्री तथा योजना उपमंत्री भी शामिल थे।

    30 अक्तूबर, 1958 को समिति ने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लिया। संस्थान के जो प्रतिनिधि समिति के सामने आये, उनमें मुम्बई के वित्त मंत्री भी थे जो उपर्युक्त संस्थान की वित्तीय समिति के सभापति की हैसियत से समिति के सामने उपस्थित हुए।

584. सौराष्ट्र के वित्त मंत्री का यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया कि उसे समिति (1954-55) के सामने उपस्थित होने की अनुमति दी जाये। उस समय समिति कोयला बोर्ड, राज्य की कोयला खानों और नमक संगठन के प्राक्कलनों पर विचार कर रही थी।

585. निदेश 100 ।

मौखिक साक्ष्य के लिए मुद्दों/प्रश्नों की सूची

सरकारी अथवा गैर-सरकारी साक्षियों का मौखिक साक्ष्य लेने के संबंध में मुद्दों और/या प्रश्नों की सूची सभापति की अनुमति के लिए सचिवालय द्वारा तैयार की जाती है। उसमें सदस्यों से प्राप्त सुझाव भी शामिल कर लिये जाते हैं। सभापति द्वारा उसका अनुमोदन होने के बाद, उस सूची की अग्रिम प्रतियां समिति के सदस्यों में परिचालित की जाती हैं।[586] सभापति उस सूची में से साक्षी से एक-एक करके प्रश्न पूछते हैं। यदि कोई सदस्य किसी मुद्दे के स्पष्टीकरण के लिए कोई अनुपूरक प्रश्न पूछना चाहता है, तो वह सभापति की अनुमति से ऐसा कर सकता है।[587]

कार्यवाही सारांश

समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश सुविधानुसार प्रत्येक प्रतिवेदन या प्रतिवेदनों के समूहों के लिए अलग-अलग तैयार किए जाते हैं। कार्यवाही सारांश अनुबंधों के रूप में प्रतिवेदन में शामिल किये जाते हैं और वे संबंधित प्रतिवेदन के साथ सभा में प्रस्तुत किये जाते हैं।[588]

विमत टिप्पण रिकार्ड किया जाना

समिति के प्रतिवेदन के साथ विमत टिप्पण नहीं लगाये जाते। परन्तु जहां कोई सदस्य प्रतिवेदन में उल्लिखित कुछ तथ्यों से मतभेद रखता हो और यह इच्छा व्यक्त करे कि उसके विचार कार्यवाही सारांश में सम्मिलित किये जायें, तो समिति की स्वीकृति से वह तथ्य कार्यवाही सारांश में सम्मिलित किया जाता है।

प्रतिवेदन तैयार किया जाना

जब समिति द्वारा किसी मंत्रालय के प्राक्कलनों के किसी भाग की जांच पूरी कर ली जाती है तो लोक सभा सचिवालय प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करता है।[589] सभापति के अनुमोदन के बाद समिति की बैठक में उस पर विचार किये जाने तथा उसे स्वीकार किये जाने के लिए उसे समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।[590] तथापि रक्षा सम्बन्धी उप-समिति के प्रतिवेदन के बारे में प्रतिवेदन के ऐसे भाग, जो सभापति द्वारा गोपनीय विषयों से संबंधित समझे

---

586. आन्तरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 9 ।
587. आन्तरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 10 ।
588. निदेश 67(1); आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 18 । प्राक्कलन समिति द्वारा 4 मार्च, 1997 की बैठक में लिया गया निर्णय।

    1950-51 से लेकर 1958-59 तक यह प्रथा थी कि वर्ष भर में समिति की जितनी बैठकें हुई हों, उनका कार्यवाही सारांश सुविधाजनक खण्डों में संकलित किया जाए।
589. आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 18(2); और कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 27.9.1958 ।
590. आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 18(3) ।

जायें और जिन्हें प्रकट करना सुरक्षा के हित में वांछनीय न हो, उन्हें सम्पूर्ण समिति के समक्ष नहीं रखा जाता, बल्कि उन्हें सभापति द्वारा अध्यक्ष को भेज दिया जाता है।[591]

जब कुछ समय तक सदस्यों के समवेत होने की संभावना न हो, तो वे सभापति को परिचालन द्वारा तथा सदस्यों द्वारा दी गई टिप्पणियों के प्रकाश में समिति के प्रतिवेदन को अंतिम रूप देने के लिए प्राधिकृत कर देते हैं।[592] यदि समिति की कोई ऐसी बैठक, जिसमें प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार किया जाना हो, गणपूर्ति के अभाव में स्थगित कर दी जाती है तो प्रतिवेदन परिचालित करके स्वीकार किया जाता है।

प्रतिवेदनों के तथ्यों का सत्यापन

समिति द्वारा स्वीकृत प्रतिवेदन, सिफारिशों को छोड़कर, की अग्रिम प्रतियों पर "गुप्त" लिखा रहता है और वे सम्बद्ध मंत्रालय या विभाग को तथ्यों के सत्यापन के लिए भेजी जाती हैं। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत किए जाने तक उसकी विषय-वस्तु को गोपनीय मानें।[593] जिन प्रारूप प्रतिवेदनों का संबंध एक से अधिक मंत्रालयों से हो, उन्हें सामान्यत: सभी संबद्ध मंत्रालयों या केन्द्रक (नोडल) मंत्रालय को भेजा जाता है, जो कि तालमेल रखने वाली संस्था के रूप में कार्य करता है।

मंत्रालय या विभाग की टिप्पणियां प्राप्त होने पर, सभापति तथ्यात्मक अशुद्धियों को, यदि कोई हों, शुद्ध करने के लिए प्रतिवेदन में समुचित रूपभेद करता है अथवा जब मंत्रालय द्वारा ऐसे अतिरिक्त तथ्य प्रस्तुत किये गये हों, जिनके कारण सिफारिशों में परिवर्तन होने की संभावना हो, तो वह उस मामले को विचार करने के लिए समिति के समक्ष रखता है।[594]

समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा

परिपाटी यह है कि लोक लेखा समिति के प्रतिवेदनों की तरह समिति के प्रतिवेदनों पर भी सभा में चर्चा नहीं की जाती। इसके पीछे विचार यह है कि प्रतिवेदन विस्तृत होते हैं और उनमें विभिन्न विषयों पर विचार किया जाता है तथा सामान्य चर्चा में समिति की सिफारिशों को उचित संदर्भ में न देखे जाने की आशंका रहती है।[595] ऐसी चर्चा में काफी समय भी नहीं मिल पाता और न पूरे आंकड़े रखने की गुंजाइश होती है, जो प्रतिवेदन के ब्यौरे को ठीक ढंग से समझने के लिए आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, सभा में प्रतिवेदन पर चर्चा दलगत आधार पर हो सकती है और उससे उस स्वस्थ परिपाटी में बाधा पड़ सकती है, जिसके अंतर्गत समिति की सिफारिशें दलगत विचारों को ध्यान में रखे बिना की जाती हैं।

---

591. *देखिए* निदेश 101 ।

592. आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 18(4) ।

593. आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 19; और नियम 278 ।

594. आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 20 ।

595. *देखिए* कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 24.12.1958 और 20.2.1959 ।

जहां तक सरकार का संबंध है, उसे प्रारूप प्रतिवेदन के तथ्यों के सत्यापन के समय और समिति की सिफारिशों पर की गई कार्यवाही के बारे में सूचना भेजते समय, अपना दृष्टिकोण रखने का पूरा अवसर प्रदान किया जाता है और समिति के प्रतिवेदनों में सरकार के दृष्टिकोण को समुचित स्थान दिया जाता है।

सदस्य चाहें तो प्रश्न काल के दौरान समिति की सिफारिशों के कार्यान्वयन के संबंध में प्रश्न पूछ सकते हैं या कोई प्रश्न उठा सकते हैं, लेकिन यह उस समय हो सकता है जब संबद्ध मंत्रालय की अनुदानों की मांगें सभा के सामने रखी जायें।[596]

सिफारिशों का कार्यान्वयन

यद्यपि, तकनीकी तौर पर संसदीय समिति की सिफारिशें औपचारिक रूप से सभा के निदेश नहीं कही जातीं, लेकिन लम्बे समय से चली आ रही परिपाटी के अनुसार, उन्हें सभा के निदेश ही समझा जाता है। सरकार सामान्यत: प्राक्कलन समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लेती है और उन पर कार्यवाही करती है।

समिति के प्रतिवेदन के सभा में प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् उसकी प्रतियां सचिवालय द्वारा इस अनुरोध के साथ संबद्ध मंत्रालय को भेज दी जाती हैं कि वह सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने की तारीख से 6 महीने के भीतर[597] प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों के संबंध में अपने उत्तर भेजे। समिति के प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों पर सरकार द्वारा की-गयी-कार्यवाही दर्शाने वाले उत्तरों के प्राप्त होने पर, सचिवालय अथवा उत्तरों की जांच करने के उद्देश्य से नियुक्त अध्ययन दल/की- गई-कार्यवाही संबंधी उप-समिति उनकी जांच करती है और उन्हें अध्ययन दल की सिफारिशों सहित सभापति के समक्ष रखा जाता है।

यदि कोई ऐसा विषय हो, जिस पर अध्ययन दल तथा/या सभापति के विचार में समिति द्वारा विचार किया जाना आवश्यक हो, तो उसे विशेष रूप से समिति को भेजा जाता है।[598]

समिति या अध्ययन दल द्वारा की गयी टिप्पणियों के आधार पर प्रारूप 'की गयी कार्यवाही प्रतिवेदन' तैयार किया जाता है, जिसमें निम्नलिखित अध्याय होते हैं: (1) प्रतिवेदन; (2) सिफारिशें/ टिप्पणियां जिन्हें सरकार ने स्वीकार कर लिया है; (3) सिफारिशें/टिप्पणियां,

---

596. *लो.स.वा.वि.,* 21.11.1958, पृ. 483-84 ।

597. यदि 6 महीने के भीतर उत्तर प्राप्त न हों, तो सम्बद्ध मंत्रालय को स्मरण कराने के लिए पुन: पत्र लिखा जाता है और उससे कहा जाता है कि वह तीन महीने के भीतर उत्तर भेज दे तथा उत्तरों के न मिलने पर समिति, सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही के संबंध में अपने प्रतिवेदन को, उत्तरों की प्रतीक्षा किये बिना, अंतिम रूप दे देगी।

    यदि मंत्रालय उत्तर देने के लिए और समय मांगे, तो सभापति अपने विवेकाधिकार से समय में समुचित वृद्धि कर सकता है।

598. आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 22(1) और (2); कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति) 8.12.1955 ।

जिन पर समिति सरकार के उत्तरों को ध्यान में रखते हुए आगे कार्यवाही नहीं करना चाहती; (4) सिफारिशें/टिप्पणियां, जिनके संबंध में समिति ने सरकार के उत्तरों को स्वीकार नहीं किया; और (5) सिफारिशें/टिप्पणियां जिनके संबंध में सरकार के अंतिम उत्तर अभी प्राप्त नहीं हुए हैं।[599]

समिति का संबद्ध अध्ययन दल/की-गई-कार्यवाही संबंधी उप-समिति, प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार करती है और सभापति के अनुमोदन के पश्चात् उसे स्वीकार करने हेतु समिति, के सदस्यों को परिचालित किया जाता है। प्रतिवेदन पर विचार करने और उसे स्वीकार करने के लिए सम्पूर्ण समिति की बैठकें बुलाई जाती हैं। संबद्ध मंत्रालय या विभाग द्वारा तथ्यों का सत्यापन किए जाने के बाद सभापति द्वारा उसे अन्तिम रूप दिया जाता है और सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

की-गई-कार्यवाही संबंधी विवरणों को सभा पटल पर रखना

सरकार को की-गई-कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन भेजते समय संबंधित मंत्रालय को प्रतिवेदन के अध्याय-1 में अन्तर्विष्ट सिफारिशों पर उसके द्वारा की गई अथवा की जाने वाली कार्यवाही और अध्याय-5 में अन्तर्विष्ट सिफारिशों के संबंध में अन्तिम उत्तरों के विवरण यथाशीघ्र प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार प्राप्त उत्तरों को एक विवरण के रूप में समेकित किया जाता है और सभापति के अनुमोदन के बाद समिति द्वारा और आगे की कार्यवाही अथवा टिप्पणियां किए बिना सभा पटल पर रख दिये जाते हैं।[600]

समिति की सिफारिशों के अनुसरण में नियुक्त की गयी सरकारी समिति का प्रतिवेदन

जब सरकार, समिति के किसी प्रतिवेदन में की गयी सिफारिशों के अनुसरण में, कोई समिति नियुक्त करती है तो उस समिति के प्रतिवेदन को तब तक सार्वजनिक नहीं किया जाता, जब तक कि समिति द्वारा उसे देख नहीं लिया जाता।[601]

सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति

देश में नियोजित आर्थिक विकास प्रारम्भ किये जाने और सभा द्वारा वर्ष 1948 और 1956 में, औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प स्वीकृत किये जाने के परिणामस्वरूप ऐसे विभिन्न उद्यमों में निरन्तर वृद्धि होती रही है, जिनका नियंत्रण तथा प्रबन्ध भारत सरकार के हाथ में है। अत:, ऐसे बहुत से सांविधिक निगम और सरकारी कम्पनियां अस्तित्व में आईं, जिनमें बहुत अधिक पूंजी लगी हुई है। इन सरकारी उपक्रमों का कार्य निष्पादन अक्सर चर्चा का विषय बना रहा। इसलिए लोक सभा ने यह फैसला किया कि चूंकि इन उपक्रमों के लिए धन भारत की

---

599. ऐसे उत्तरों के संबंध में, प्रतिवेदन के अध्याय-1 या प्रस्तावना में समुचित उल्लेख कर दिया जाता है—आंतरिक नियम (प्राक्कलन समिति), नियम 22(3)।

600. कार्यवाही सारांश (प्राक्कलन समिति), 10.9.1960; साथ ही *देखिए* निदेश 102 ।

601. *पी. डिबेट्स* (I), 2.4.1954, कॉ. 1680 ।

संचित निधि में से विनियोजित होता है अतः उनके कार्यकलापों पर संसद का नियंत्रण होना चाहिए। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति का गठन किया गया था।

सरकारी उपक्रमों पर समुचित संसदीय नियंत्रण रखने के प्रश्न पर लोक सभा में पहली बार 1953 में चर्चा की गई थी।[602] यह सुझाव दिया गया था कि विभिन्न श्रेणियों के सरकारी निगमों, कम्पनियों तथा संस्थाओं के कार्यकलापों की जांच करने के लिए एक अलग संसदीय समिति बनायी जाये।[603] परन्तु सरकार का यह विचार था कि इस समय ऐसी समिति बनाना वांछनीय नहीं होगा।[604]

अध्यक्ष मावलंकर ने 19 दिसम्बर, 1953 को प्रधान मंत्री को सम्बोधित पत्र में यह बताया कि आम राय यह है कि स्वायत्तशासी सरकारी निगमों के कार्यकरण की जांच करने के लिए एक स्थायी संसदीय समिति की नियुक्ति की जाये। उन्होंने यह भी कहा कि प्राक्कलन समिति और लोक लेखा समिति के पास पहले ही बहुत कार्य है और वे इन निगमों के कार्य की जांच करने के लिए समय नहीं निकाल पाएंगी।[605] प्रधानमंत्री ने अपने उत्तर में यह टिप्पणी की कि स्वायत्तशासी तथा अर्द्ध-स्वायत्तशासी निगमों पर संसद का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि यदि स्वायत्तशासी निगमों के दिन-प्रतिदिन के कार्यकरण में कोई हस्तक्षेप हुआ, तो कुछ सीमा तक स्वायत्तशासी निगम बनाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा।

सरकारी निगमों अथवा स्वायत्तशासी निकायों के संबंध में प्राक्कलन समिति तथा लोक लेखा समिति के कृत्यों को उनसे लेने के लिए एक पृथक समिति बनाने की मांग पुनः 1956 में की गयी परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला।[606] प्राक्कलन समिति के सभापति के सुझाव पर सरकारी उपक्रमों के कार्यों पर विचार करने के लिए जुलाई, 1957 में प्राक्कलन समिति की एक उप-समिति का गठन किया गया।

प्रधान मंत्री ने 10 अप्रैल, 1958 को कांग्रेस संसदीय दल की एक उप-समिति की नियुक्ति की जिसका कार्य सरकारी स्वामित्व वाले निगमों तथा कम्पनियों से संबंधित समस्याओं पर विचार करना और यह सुझाव देना था कि संसद उन निगमों तथा कम्पनियों के दिन-प्रतिदिन के कार्यकलापों पर मोटे तौर पर कैसे नियंत्रण रख सकती है। इस उप-समिति

---

602. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 10.12.1953, कॉ. 1904-42; और 11.12.1953, कॉ. 1958-81 ।

603. *पूर्वोक्त,* 10.12.1953, कॉ. 1918-19 ।

604. *पूर्वोक्त,* का. 1981 ।

605. *देखिये* संसद में कांग्रेस दल की उप-समिति (जो कृष्ण मेनन समिति के नाम से प्रसिद्ध थी) का 'पार्लियामेंट्री कन्ट्रोल ओवर स्टेट अंडरटेकिंग्स' संबंधी प्रतिवेदन, पृ. 8 ।

606. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 17.12.1953 और *लो.स.वा.वि.,* (II), 21.5.1956, पृ. 1786-88; और 22.5.1956, पृ. 3880-84 ।

ने सरकारी उपक्रमों के लिए संसद की एक अलग समिति गठित किये जाने के अध्यक्ष मावलंकर के सुझाव का अनुमोदन किया। 24 नवम्बर, 1961 को सरकार ने एक सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति की नियुक्ति करने का निर्णय किया। उसी दिन लोक सभा के 10 और राज्य सभा के 5 सदस्यों वाली एक समिति के गठन का प्रस्ताव सभा में रखा गया। परन्तु कुछ सदस्यों द्वारा आपत्ति किये जाने पर उस प्रस्ताव पर आगे चर्चा स्थगित कर दी गयी।[607] बाद में, इस मामले पर राज्य सभा में चर्चा हुई और उसके सदस्यों ने यह आपत्ति की कि जब तक उन्हें पूरे अधिकार नहीं दिये जाते तब तक वे समिति में सम्मिलित नहीं हो सकते।[608] सदस्यों द्वारा दोनों सभाओं में उठायी गयी विभिन्न आपत्तियों पर विचार करने के बाद सरकार ने 21 सितम्बर, 1963 को लोक सभा में समिति के गठन के लिए दो पुनरीक्षित प्रस्ताव रखे, जिन्हें बाद में सभा ने स्वीकार कर लिया।[609] और राज्य सभा भी अपने सदस्यों को इस समिति से सम्बद्ध करने से सहमत हुई।[610] इन प्रस्तावों के अनुसरण में पहली बार यह समिति 1 मई, 1964 से गठित की गई थी।

संरचना

प्रारम्भ में गठित सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति में पन्द्रह सदस्य थे। दस सदस्य लोक सभा द्वारा अपने सदस्यों में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये गये थे। इसी विधि से राज्य सभा के निर्वाचित पांच सदस्यों को समिति में शामिल किया गया था। उपक्रमों की बढ़ती संख्या को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1974–75 से समिति की सदस्य संख्या 15 से बढ़ाकर 22 कर दी गई। इनमें से पन्द्रह सदस्य लोक सभा से निर्वाचित किये जाते हैं और सात सदस्य राज्य सभा से[611] लोक सभा द्वारा स्वीकृत और राज्य सभा द्वारा सहमति प्राप्त प्रस्ताव पर राज्य सभा के सदस्यों को समिति के साथ सहयोजित होने के लिये आमंत्रित किया जाता है। किसी मंत्री को समिति का सदस्य निर्वाचित नहीं किया जाता है। यदि कोई सदस्य समिति के लिए निर्वाचित होने के बाद मंत्री नियुक्त हो जाता है, तो वह ऐसी नियुक्ति की तारीख से समिति का सदस्य नहीं रहता है।

समिति के सभापति की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है।

समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक नहीं होता है।[612] परन्तु 1 मई, 1964 को पहली बार गठित की गई समिति के सदस्य तीसरी लोक सभा की अवधि तक अर्थात् लगभग तीन वर्ष तक अपने पद पर बने रहे। सामान्यत: समिति का कार्यकाल इसके

---

607. *लो.स.वा.वि.,* 24.11.1961, पृ. 548–59 ।

608. *आर.एस. डिबेट्स,* 27.8.1962, कॉ. 3480–86 ।

609. *लो.स.वा.वि.,* 20.11.1963, पृ. 385 ।

610. *आर.एस. डिबेट्स,* 2.12.1963, कॉ. 1766 ।

611. नियम 312 ख (1) ।

612. नियम 312 ख (2) ।

गठन के वर्ष 1 मई से अगले वर्ष 30 अप्रैल के बीच होता है। यदि किसी समिति का गठन किसी विशेष वर्ष जैसे कि चुनाव के वर्ष में 1 मई के बाद होता है तो भी उस समिति का कार्यकाल अगले वर्ष 30 अप्रैल को समाप्त हो जाता है।[613]

आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना

समिति में होने वाली आकस्मिक रिक्तियों को सम्बन्धित सभा में इस हेतु रखे गये प्रस्तावों के माध्यम से भरा जाता है। लोक सभा में प्रस्ताव, समिति के सभापति, द्वारा रखा जाता है और राज्य सभा में, उस सभा से समिति के किसी सदस्य द्वारा रखा जाता है।[614] राज्य सभा में यह प्रस्ताव रखने से पहले कि उस सभा के किसी सदस्य को समिति के शेष कार्यकाल के लिए समिति के साथ सहयोजित किया जाए, लोक सभा द्वारा एक प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है, जिसमें राज्य सभा से यह सिफारिश की जाती है कि उस आकस्मिक रिक्ति को भरा जाये और लोक सभा को सन्देश के माध्यम से औपचारिक रूप से उस सदस्य के नाम की सूचना दी जाती है, जिसे राज्य सभा ने निर्वाचित किया हो। राज्य सभा से समिति के किसी सदस्य के संविधान के उपबन्धों के अधीन राज्य सभा की सदस्यता से निवृत्त होने के कारण हुई रिक्ति को भरने के लिए भी यही प्रक्रिया अपनाई जाती है।

कृत्य

समिति के कृत्य इस प्रकार हैं:

(क) ऐसे सरकारी उपक्रमों के प्रतिवेदनों तथा लेखाओं की जांच करना, जो विशेष रूप से समिति को इस प्रयोजन के लिए सौंपे गये हों;[615]

---

613. समिति का गठन 1998 में आम चुनाव के कारण 7 अगस्त को किया गया था परन्तु इसका कार्यकाल 30 अप्रैल, 1999 तक ही रहा। इसी प्रकार, 2004 में समिति का गठन 27 अगस्त को किया गया और इसका कार्यकाल 30 अप्रैल, 2005 को समाप्त हो गया।

614. राज्य सभा में यह प्रस्ताव पेश किया जाना था कि समिति से तीन सदस्यों द्वारा त्यागपत्र दिये जाने के फलस्वरूप रिक्तियों को भरने के लिए तीन सदस्य नामनिर्दिष्ट किये जायें। समिति में राज्य सभा का कोई सदस्य नहीं था, जो प्रस्ताव पेश कर सके (क्योंकि तब समिति में राज्य सभा के सदस्यों के सदस्यता से निवृत्त होने से पहले से ही 2 रिक्तियां थीं, जिन्हें उस समय तक नहीं भरा गया था) इसलिए यह प्रस्ताव संसदीय कार्य विभाग में राज्य मंत्री ने पेश किया—*रा.स.वा.वि.*, 12.5.1956 ।

615. समिति के लिए निर्दिष्ट सरकारी उपक्रम इस प्रकार हैं:

I. केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत स्थापित सरकारी उपक्रम अर्थात् दामोदर घाटी निगम; जीवन बीमा निगम; केन्द्रीय भांडागार निगम; भारतीय खाद्य निगम; भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण; भारतीय औद्योगिक विकास बैंक।

II. ऐसी प्रत्येक सरकारी कम्पनी, जिसका वार्षिक प्रतिवेदन कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 619 क की उपधारा (1) के अन्तर्गत संसद की दोनों सभाओं के समक्ष रखा जाता है।

(ख) सरकारी उपक्रमों के सम्बन्ध में नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों, यदि कोई हों, की जांच करना;

(ग) सरकारी उपक्रमों की स्वायत्तता तथा कार्यकुशलता के संदर्भ में इस बात की जांच करना कि क्या सरकारी उपक्रमों के कार्यकलापों का प्रबंधन ठोस व्यापारिक सिद्धान्तों तथा विवेकपूर्ण वाणिज्यिक प्रथाओं के अनुसार किया जा रहा है अथवा नहीं; और

(घ) सरकारी उपक्रमों के संबंध में लोक लेखा समिति तथा प्राक्कलन समिति में निहित ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करना, जो उपर्युक्त खण्ड (क), (ख) और (ग) के अन्तर्गत न आते हों, और जो समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा समिति को सौंपे जायें।[616]

इसके अलावा अध्यक्ष द्वारा लोक महत्व के किसी ऐसे मामले को, जिसमें कोई सरकारी उपक्रम संबंधित हो, जांच करने और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु समिति को सौंपा जा सकता है।[617]

समिति निम्नलिखित विषयों में से किसी की जांच नहीं करती :

प्रमुख सरकारी नीति संबंधी मामले, जो सरकारी उपक्रमों के व्यापारिक अथवा वाणिज्यिक कृत्यों से भिन्न हों;

दिन-प्रतिदिन के प्रशासन संबंधी मामले; और

ऐसे मामले जिन पर विचार करने के लिए उस विशेष संविधि द्वारा किसी तंत्र की स्थापना की गई हो जिसके अंतर्गत किसी सरकारी उपक्रम विशेष की स्थापना की गई है।[618]

समिति द्वारा सरकारी उपक्रमों की जांच सामान्यत: उनके कार्य निष्पादन के मूल्यांकन के रूप में की जाती है जिसमें नीतियों और कार्यक्रमों का कार्यान्वयन, प्रबन्ध तथा वित्तीय कार्यकरण, आदि पहलू सम्मिलित होते हैं।

III. विशिष्ट उद्यम अर्थात् हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड, भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड, मझगांव डॉक लिमिटेड और गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड।

मार्च, 1999 तक इस समिति के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत 248 सरकारी उपक्रम (उसकी सहायक कम्पनियों सहित) थे।

616. राज्य सरकार के उपक्रम समिति के क्षेत्राधिकार में नहीं आते। केरल राज्य में 10 सितम्बर, 1964 से राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था और केरल राज्य का शासन भारत सरकार के अधीन हो गया था। वर्ष 1965-66 के दौरान समिति ने केरल राज्य के राज्यपाल के अनुरोध पर अध्यक्ष के निदेश के अनुसार केरल राज्य सरकार की 7 कम्पनियों की जांच की।

617. एक सदस्य के अनुरोध पर राज्य व्यापार निगम द्वारा गन्धक की सप्लाई हेतु किसी अमरीकी फर्म के साथ किये गये ठेके से सम्बन्धित मामले को अध्यक्ष द्वारा समिति को सौंपा गया। *लो.स.वा.वि,* 21.7.1967, पृ. 6120-23; 25.7.1967, पृ. 6541-42 ।

618. नियम 312 क ।

समिति की कार्य-प्रणाली

समिति अपने प्रत्येक कार्यकाल के प्रारम्भ में उन विषयों या उपक्रमों का चयन कराती है[619] जिनकी जांच उस अवधि के दौरान की जानी होती है। अगले वर्ष के लिए कुछ विषयों या उपक्रमों का अग्रिम रूप से चयन[620] करने की भी प्रथा है।

किसी उपक्रम या किसी विषय की पूरी जांच करने के अतिरिक्त समिति किसी उपक्रम के ऐसे कार्यकलापों की सीमित जांच भी कर सकती है, जो सामयिक रुचि के विषय हों। ऐसे मामलों में सभापति को यह अधिकार दिया जाता है कि वह समिति से पहले पूछे बिना, सम्बद्ध उपक्रम से पूरे तथ्य बताने के लिए कहे।[621]

समिति द्वारा जिन विषयों की जांच की जानी होती है, उन से सम्बद्ध मंत्रालय या उपक्रम से कहा जाता है कि वह समिति के सदस्यों के उपयोग के लिए प्रारम्भिक सामग्री भेजे। सामग्री प्राप्त होने पर वह सदस्यों को परिचालित कर दी जाती है और वे उसका अध्ययन करने के बाद प्रश्न तैयार करते हैं या ऐसे मुद्दे तय करते हैं, जिनके सम्बन्ध में उन्हें और जानकारी चाहिए। इन विषयों तथा प्रारम्भिक सामग्री और उस विषय पर उपलब्ध अन्य जानकारी का स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने के बाद सचिवालय सभापति के अनुमोदन से सम्बन्धित उपक्रमों और मंत्रालयों की जांच करने के लिए एक प्रश्नावली तैयार करता है। प्रश्नावली को उपक्रम/मंत्रालय के प्रतिनिधियों के साक्ष्य लिये जाने से काफी समय पहले समिति के सदस्यों तथा सम्बन्धित उपक्रम/मंत्रालय को परिचालित कर दिया जाता है। यदि किसी मंत्रालय/उपक्रम का साक्ष्य निर्धारित तारीखों में पूरा नहीं होता है तो उपक्रम/मंत्रालय को निर्दिष्ट अवधि में शेष प्रश्नों के उत्तर भेजने होते हैं। प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होने पर उन्हें समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है और यदि समिति आवश्यक समझे तो वह उपक्रम/मंत्रालय का और आगे साक्ष्य ले सकती है।

समिति जांचाधीन विषयों पर गैर-सरकारी संगठनों, जैसे वाणिज्य मंडलों, व्यापार संगठनों, पेशेवर परामर्शदाताओं, गैर-सरकारी क्षेत्र की कम्पनियों और गैर-सरकारी व्यक्तियों से भी ज्ञापन आमंत्रित कर सकती है। ऐसे गैर-सरकारी संगठनों आदि से भी ज्ञापन मांगे जाते हैं, जिन्होंने उस विषय पर गहरी दिलचस्पी दिखाई हो या जिन्हें उद्योग का विशेष ज्ञान हो और जिनकी राय से समिति को सहायता मिल सकती है।

समिति जांच करने के लिए चुने गए उपक्रमों के पंजीकृत मजदूर संघों के मुख्य पदाधिकारियों से भी ज्ञापन आमंत्रित कर सकती है। जब भी समिति किसी जांचाधीन उपक्रम या परियोजना का दौरा करने जाती है, तो कर्मचारियों या मजदूरों के पंजीकृत संघों को उस उपक्रम के कार्यकरण के सम्बन्ध में समिति के समक्ष अपने विचार व्यक्त करने का अवसर

---

619. वर्ष 1997-98 के दौरान समिति ने जांच के लिए 23 विषय चुने ।

620. कार्यवाही सारांश (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), 24.12.1964 और 10.3.1966 ।

621. *पूर्वोक्त,* 8.9.1964 ।

दिया जाता है, यदि आवश्यक समझा जाए तो समिति मजदूर संघों से कहती है कि वे अपने प्रतिनिधियों को अपने खर्च पर दिल्ली भेजें, जिससे वे समिति के सामने और साक्ष्य दे सकें। उत्पादकता, उत्पादन लागत, फिजूलखर्ची को रोकने, कार्यकुशलता और बचत आदि के सम्बन्ध में मजदूर संघों के विचारों पर गौर किया जाता है, परन्तु समिति औद्योगिक विवादों[622] से संबंधित मामलों अथवा विषयों पर विचार नहीं करती है।

सरकारी उपक्रमों का समस्तरीय अध्ययन

जांच करने के लिए चुने गये सरकारी उपक्रमों की जांच करने के अतिरिक्त, समिति उनके कुछ सामान्य पहलुओं[623] या उनकी समस्याओं का समस्तरीय अध्ययन भी करती है। ऐसे मामलों में उन सभी उपक्रमों से उन विशेष पहलुओं या समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी मांगी जाती है, जिन्हें समिति ने अध्ययन के लिए चुना है जानकारी के प्राप्त होने और उसकी जांच कर लिए जाने पर समिति सम्बद्ध मंत्रालयों के प्रतिनिधियों के साक्ष्य लेती है। ऐसे समस्तरीय अध्ययनों में समिति जिस प्रक्रिया का अनुसरण करती है, वह उस प्रक्रिया से अधिक भिन्न नहीं है, जिसका अनुसरण अलग-अलग उपक्रमों की जांच करने में किया जाता है।

अध्ययन दल/उप समितियां

विषयों का चयन करने के पश्चात् इन विषयों का विस्तृत रूप से अध्ययन करने तथा इन विषयों की गहन जांच करने में समिति की सहायता करने हेतु अध्ययन दलों की नियुक्ति की जाती है। समिति के पहले के प्रतिवेदनों में की गई विभिन्न सिफारिशों पर की गई कार्यवाही का उल्लेख करने वाले सरकार के उत्तरों तथा प्रारूप की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए एक उप-समिति की भी नियुक्ति की जाती है।

अध्ययन दौरे

समिति यदि यह समझती है कि जांचाधीन उपक्रमों की तत्स्थानिक जांच करना आवश्यक है, तो वह उनके कार्यकरण का अध्ययन करने के लिए दौरे करती है।[624] दौरे का

---

622. कार्यवाही सारांश (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), 8.9.1964 और 24.9.1964 ।

623. समिति ने सामग्री प्रबन्धन, वित्तीय प्रबन्धन, जन सम्पर्क एवं प्रचार, उत्पादन प्रबन्धन, कार्मिक नीतियां और श्रमिक प्रबन्धन सम्बन्ध, सरकारी उपक्रमों की भूमिका एवं उपलब्धियां, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में विदेशी सहयोग, सरकारी उपक्रमों के प्रबन्ध बोर्डो की संरचना, सरकारी कम्पनियों में लेखा परीक्षकों की नियुक्ति, प्रबन्धन एवं नियंत्रण प्रणालियां, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में उत्पादकता और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में उत्तरदायित्व तथा स्वायत्तता, रद्दी माल का निपटान, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के लम्बित मुकदमे, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के सामाजिक उत्तरदायित्व और उनकी जनता के प्रति जवाबदेही और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में रुग्णता तेल गवेषण, स्वास्थ्य बीमा और विद्युत उत्पादन करने वाले सरकारी उपक्रमों का कार्य-निष्पादन जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं की जांच की है।

624. आंतरिक नियम (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), नियम 10 ।

कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किया जाता है कि समिति एक ही दौरे में उन उपक्रमों की कई परियोजनाओं तथा कार्यालयों का दौरा कर सके। दौरों की व्यवस्था उस समय की जाती है जब संसद का सत्र न चल रहा हो। इन दौरों के अतिरिक्त दिल्ली के आस-पास किसी परियोजना या कार्यालय या स्थानीय कार्यालयों का दौरा भी सप्ताह के अन्त में किया जाता है।

अन्य संसदीय समितियों की तरह, जब यह समिति दौरे पर जाती है, तो वहां अनौपचारिक बैठकें करती है, जिनमें उपक्रमों के कार्यकरण के सम्बन्ध में परियोजना अधिकारियों के साथ बातचीत की जाती है परन्तु ऐसी बैठकों में कोई निर्णय नहीं किये जाते और न ही कोई साक्ष्य दर्ज किया जाता है।[625] कभी-कभी समिति गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ विचार-विमर्श करती है, ताकि जांचाधीन उपक्रमों के कार्यकरण के सम्बन्ध में उनके विचार तथा सुझाव प्राप्त किये जा सकें। सचिवालय एक टिप्पण तैयार करता है, जिसमें दौरे के फलस्वरूप बनी धारणा और अधिकारियों के साथ हुए विचार-विमर्श का सारांश दिया जाता है। सभापति द्वारा अनुमोदित किये जाने के बाद यह टिप्पण समिति के सदस्यों को परिचालित किया जाता है।

साक्ष्य

समिति उपक्रम के अधिकारियों को उस उपक्रम की जांच के सम्बन्ध में समिति के समक्ष आकर साक्ष्य देने के लिए बुलाती है और यह साक्ष्य सामान्यतया समिति की दो से चार बैठकों में पूरा कर लिया जाता है। उसके बाद समिति सम्बद्ध प्रशासनिक मंत्रालय के अधिकारियों का साक्ष्य लेती है। उपक्रम के अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श उस संगठन के कार्यकरण के ब्यौरे से सम्बन्धित होता है, लेकिन मंत्रालय का साक्ष्य नीति सम्बन्धी मामलों तथा अन्य ऐसे मामलों के बारे में होता है जिनके लिये मंत्रालय आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से जिम्मेदार हो। किसी उपक्रम के प्रतिनिधियों और सम्बद्ध प्रशासनिक मंत्रालय के प्रतिनिधियों को अलग-अलग बुलाने की प्रथा इस बात को ध्यान में रख कर स्थापित हुई है कि उपक्रमों ने स्वायत्तता की मांग की ताकि उन्हें स्वतंत्र रूप से अपना दृष्टिकोण समिति के समक्ष रखने का मौका मिल सके।

जब किसी उपक्रम के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लिया जा रहा हो, तो सम्बद्ध प्रशासनिक मंत्रालय के प्रतिनिधियों को उसमें उपस्थित रहने की अनुमति नहीं दी जाती है। इसी प्रकार, जब प्रशासनिक मंत्रालय का साक्ष्य लिया जा रहा हो, तो सम्बद्ध उपक्रम के प्रतिनिधियों को उसमें उपस्थित रहने की अनुमति नहीं दी जाती है।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से सहायता

समिति, जांच करने के लिए ली गई सरकारी कम्पनियों या सांविधिक निगमों से सम्बन्धित लेखा परीक्षा रिपोर्ट (वाणिज्यिक) या लेखा परीक्षा रिपोर्टों में उठाये गये मामलों के सम्बन्ध में आगे कार्यवाही करने में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसके प्रतिनिधियों की

---

625. आंतरिक नियम (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), नियम 10 (3) ।

सहायता लेती है। समिति लेखा परीक्षा रिपोर्टों में उठाये गये विषयों के सम्बन्ध में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से 'महत्वपूर्ण प्रश्नों का ज्ञापन' प्राप्त करती है। लेखा परीक्षा रिपोर्टों और नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा दिये गये ज्ञापन के आधार पर समुचित प्रश्न तैयार किये जाते हैं। जब समिति जांचाधीन उपक्रमों के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लेती है, तो उस समय नियन्त्रक-महालेखापरीक्षक या उसके प्रतिनिधि समिति की सहायता करते हैं और वह सभापति की अनुमति से किसी साक्षी से किसी भी प्रश्न पर स्पष्टीकरण या किसी मामले के तथ्यों के सम्बन्ध में विवरण देने के लिए कह सकता है। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसके प्रतिनिधि को इस विचार-विमर्श में केवल लेखा परीक्षा रिपोर्टों में उठाये गये विषयों के सम्बन्ध में ही सम्बद्ध किया जाता है। जब यह चर्चा समाप्त हो जाती है, तो वे लोग समिति के कक्ष से उठकर चले जाते हैं।

किसी उपक्रम के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लेने से पहले समिति लेखा परीक्षा रिपोर्टों में उठाये गये कुछ मुद्‌दों को स्पष्ट करने के लिए नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के साथ एक अनौपचारिक बैठक करती है।

प्रतिवेदन तैयार करना और उसे प्रस्तुत करना

जब किसी विषय की जांच पूरी हो जाती है, तो समिति अपने प्रतिवेदन में सम्मिलित करने के लिए निष्कर्ष और सिफारिश तैयार करती है।[626] इन निष्कर्षों तथा सिफारिशों के आधार पर सचिवालय प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करता है। सभापति के अनुमोदन के बाद उस प्रतिवेदन को समिति के सदस्यों में परिचालित किया जाता है, और उसके बाद उस पर समिति की बैठक में विचार किया जाता है।[627]

समिति द्वारा स्वीकार किये गये अग्रिम प्रतिवेदन (सिफारिशों को छोड़कर) की प्रतियों पर "गोपनीय" लिखा रहता है और वे प्रतियां सम्बद्ध मंत्रालय तथा उपक्रम को तथ्यों के सत्यापन के लिये भेज दी जाती हैं। प्रतिवेदन के भाग, जो लेखा परीक्षा रिपोर्ट के पैराओं पर आधारित हों या उनसे सम्बन्धित हों, नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक के पास तथ्यों के सत्यापन के लिए भेजे जाते हैं। उन सबसे प्रतिवेदन को तब तक गोपनीय रखने के लिए कहा जाता है जब तक उसे लोक सभा में प्रस्तुत न कर दिया जाए।[628]

यदि मंत्रालय तथा उपक्रमों द्वारा कोई टिप्पणी की जाती है तो उन्हें सभापति के समक्ष रखा जाता है और वह प्रतिवेदन में तथ्यात्मक अशुद्धियों को ठीक करने के लिए उपयुक्त संशोधन करता है। जब मंत्रालय द्वारा ऐसे कोई अतिरिक्त तथ्य दिये जाते हैं, जिनके आधार पर प्रतिवेदन में सम्मिलित निर्णयों के बदल जाने की संभावना हो, तो सभापति वह मामला समिति के विचारार्थ उसके समक्ष प्रस्तुत करता है।[629]

---

626. कम महत्व के विषयों के संबंध में, समिति सभापति को प्राधिकृत करती है कि वह समिति के विचारों को प्रतिवेदन में शामिल करने की बजाए सीधे सम्बद्ध मंत्रालय को बता दे— कार्यवाही सारांश (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति)।

627. आंतरिक नियम (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), नियम 24, परिचायक संदर्शिका (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति सं. 667), पैरा 105-09 ।

628. आंतरिक नियम (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), नियम 25 ।

629. *पूर्वोक्त,* नियम 26 ।

प्रतिवेदन की एक अधिप्रमाणित प्रति सभापति द्वारा सभा में प्रस्तुत की जाती है, परन्तु यदि वह ऐसा करने में असमर्थ हो तो समिति के किसी सदस्य को उसकी ओर से प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत किया जाता है। इसके साथ ही राज्य सभा का समिति का कोई सदस्य जिसे उसके लिए प्राधिकृत किया गया हो, प्रतिवेदन की एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखता है। यदि उस दिन, जिस दिन लोक सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाना हो, राज्य सभा का सत्र न चल रहा हो तो राज्य सभा की अगली बैठक होते ही सभा के पटल पर रख दिया जाता है।

यह परम्परा है कि समिति के प्रतिवेदन पर प्राक्कलन समिति और लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन की तरह सभा में चर्चा नहीं होती।

बैठकों का कार्यवाही सारांश

सचिवालय द्वारा प्रत्येक प्रतिवेदन के सम्बन्ध में समिति की बैठकों का कार्यवाही सारांश तैयार किया जाता है और इसकी सभापति द्वारा अधिप्रमाणित प्रतियां तत्संबन्धी प्रतिवेदनों के साथ दोनों सभाओं के पटलों पर रखी जाती हैं।[630]

सिफारिशों का कार्यान्वयन

लोक सभा में समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के बाद उसकी प्रतियां सम्बद्ध मंत्रालय तथा उपक्रम को भेज दी जाती हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे प्रतिवेदन के प्रस्तुत किए जाने के छः माह के भीतर प्रतिवेदन में अन्तर्विष्ट सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही दर्शाने वाला एक विवरण सचिवालय को भेज दें। सभापति की अध्यक्षता में की-गई-कार्यवाही संबंधी उप-समिति इस विवरण की जांच करके 'की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदन' तैयार करती है जिसमें निम्नलिखित अध्याय होते हैं :

(I) प्रतिवेदन; (II) सिफारिशें, जिन्हें सरकार ने स्वीकार कर लिया है; (III) सरकार के उत्तर जिन्हें समिति द्वारा अंतिम रूप से स्वीकार किया गया है; (IV) सरकार के उत्तर जिन्हें समिति द्वारा अंतिम रूप से स्वीकार नहीं किया गया है; और (V) सिफारिशें, जिनके संबंध में सरकार से अंतिम उत्तर अभी प्राप्त नहीं हुए हैं।

बाद में सम्पूर्ण समिति प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार करती है और उसे स्वीकार करती है। समिति द्वारा यथास्वीकृत प्रारूप 'की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदन' सिफारिशों के बिना सम्बद्ध मंत्रालय/विभाग तथा उपक्रम को तथ्यों के सत्यापन के लिए भेज दिया जाता है। समिति का सभापति मंत्रालय आदि की टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए प्रतिवेदन को अन्तिम रूप देता है और इसे प्रस्तुत करने की तारीख नियत करता है।

उन सिफारिशों, जिनके बारे में समिति ने 'की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदन' के अध्याय I में टिप्पणियां की थीं और अध्याय V में अन्तर्विष्ट सिफारिशों के संबंध में सरकार से प्राप्त

---

630. आंतरिक नियम (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति), नियम 23; परिचायक संदर्शिका (सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति संख्या 667), पैरा 104 ।

उत्तरों[631] को सभापति अथवा समिति के किसी सदस्य द्वारा दोनों सभाओं के पटल पर समिति द्वारा और आगे कार्यवाही अथवा टिप्पणियां किए बिना रखा जाता है।

विशेषाधिकार समिति

संसद की प्रत्येक सभा को सामूहिक रूप से, और उसके सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से, कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं, अर्थात् उन्हें कुछ अधिकार तथा उन्मुक्तियां मिली हुई हैं, जिनके बिना सभा तथा उसके सदस्य संविधान द्वारा उन्हें सौंपे गए कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकते हैं। इन विशेषाधिकारों का उद्देश्य सभा, उसकी समितियों तथा सदस्यों की स्वतंत्रता, प्राधिकार और गरिमा की रक्षा करना है।[632] जहां किसी विशेषाधिकार के कथित भंग होने का प्रश्न हो वहां सभा उस विषय की जांच कर सकती है, परन्तु सामान्यतः सभा उस विषय की जांच, अनुसंधान तथा उस पर प्रतिवेदन देने के लिये उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप देती है।

नयी लोक सभा के प्रारम्भ में और उसके बाद समय-समय पर, अध्यक्ष समिति में सदस्यों का नामनिर्देशन करता है, जिसमें 15 सदस्य से अधिक नहीं होते हैं।[633] सामान्यतः विशेषाधिकार समिति का पुनर्गठन भी प्रत्येक वर्ष लोक सभा की अन्य संसदीय समितियों के साथ ही किया जाता है। समिति का गठन करते समय अध्यक्ष सभा के विभिन्न दलों तथा ग्रुपों के दावों, हितों तथा सदस्य संख्या का ध्यान रखता है जिससे कि समिति पूर्णतया प्रतिनिधि समिति बन सके। विधि मंत्री तथा संसदीय कार्य मंत्री को सामान्यतः समिति में शामिल किया जाता है। यदि उपाध्यक्ष समिति का सदस्य हो, तो वह उसके सभापति के रूप में काम करता है।[634]

> विशेषाधिकार समिति की नियुक्ति पहली बार अध्यक्ष द्वारा 1 अप्रैल, 1950 को की गयी थी।[635] प्रारम्भ में समिति में केवल 10 सदस्यों की नियुक्ति की गयी थी। बाद में, अन्य संसदीय समितियों की तरह, समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 15 कर दी गयी जिससे सभा के विभिन्न दलों तथा ग्रुपों को इसमें समुचित प्रतिनिधित्व दिया जा सके। 2 मई, 1955 को पुनर्गठित समिति में पहली बार 15 सदस्यों की नियुक्ति की गयी।[636]

कृत्य

जब सभा विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को उठाने की अनुमति दे दे, तो या तो सभा उस प्रश्न पर स्वयं विचार कर सकती है और विनिश्चय कर सकती है या विशेषाधिकार का

---

631. मंत्रालय/विभाग/उपक्रम के लिए यह अपेक्षित नहीं है कि वह 'की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदनों' के सम्बन्ध में अपनी टिप्पणियां दे, सिवाय उन मामलों के, जहां मूल प्रतिवेदनों की किसी सिफारिश के सम्बन्ध में यह कहा गया हो कि उस पर अभी तक कार्यवाही नहीं की गयी है या समिति ने विशेष रूप से प्रतिवेदन के अध्याय-1 में उत्तर देने के लिए कहा हो।

632. लोक सभा की शक्तियों, विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के लिए *देखिये* अध्याय 11 ।

633. नियम 313 ।

634. नियम 258 (1), परन्तुक ।

635. *पी. डिबेट्स,* (II), 1.4.1950, कॉ. 2401-02 ।

636. *समाचार भाग* 2, 3.5.1955, पैरा 2173 ।

प्रश्न उठाने वाले सदस्य द्वारा या किसी अन्य सदस्य द्वारा किये गये प्रस्ताव पर विचार करने तथा उस पर प्रतिवेदन देने के लिए उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप सकती है।[637] व्यवहार में, सभा सामान्यत: विशेषाधिकार के लगभग सभी प्रश्नों को समिति को सौंप देती है और अपना निर्णय तभी करती है जब समिति का प्रतिवेदन सभा में पेश हो जाये।[638]

इसके अतिरिक्त, अध्यक्ष स्वप्रेरणा से भी विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को जांच, अनुसंधान और प्रतिवेदन देने के लिए समिति को सौंप सकता है।[639] ऐसे मामलों में समिति अपना प्रतिवेदन अध्यक्ष को पेश करती है, जो यह निदेश दे सकता है कि प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखा जाये[640] अथवा उस पर आगे कोई कार्यवाही न की जाये। जब प्रतिवेदन सभापटल पर रख दिया जाता है, तो इस मामले में आगे कार्यवाही सभा के निर्णय के अनुसार की जाती है। कुछ मामलों में जब अध्यक्ष ने सभा में थोड़ी सी चर्चा के बाद, विशेषाधिकार का कोई मामला समिति को सौंपा तो समिति ने अपना प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किया।[641]

समिति का यह कर्त्तव्य है कि वह उसे सौंपे गए विशेषाधिकार के प्रत्येक प्रश्न की जांच करे और प्रत्येक मामले के तथ्यों के अनुसार यह निर्धारित करे कि किसी विशेषाधिकार का भंग अन्तर्ग्रस्त है या नहीं, और यदि है, तो किस स्वरूप का है और किन परिस्थितियों में हुआ है और ऐसी सिफारिशें करे जो वह उचित समझे।[642] अत: समिति दोषी व्यक्तियों को किसी विशेष प्रकार का दण्ड दिए जाने की सिफारिश कर सकती है।[643] समिति यह भी सुझाव दे

---

637. नियम 226 ।

638. *लो.स.वा.वि.*, 27.11.1958, पृ. 795-814; 10.2.1959, पृ. 82-95; 30.8.1960, पृ. 2829; 20.4.1961, पृ. 5794-95; 17.3.1982, पृ. 218-20; 29.4.1983, पृ. 252-53 । वर्ष 1967 में एक मामला हुआ था जब कि सभा में कथित विशेषाधिकार भंग के संबंध में मतभेद था। इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपने की बजाय सभा ने स्वयं ही निर्णय कर दिया—*लो.स.वा.वि.*, 5.4.1967, पृ. 1128-48 । वर्ष 1970 में एक अन्य मामले में समिति को मामला सौंपे बिना दो सम्बन्धित पुलिस अधिकारियों को बुलाकर एवं उनकी क्षमायाचना स्वीकार कर सभा ने कथित विशेषाधिकार भंग के प्रश्न पर निर्णय किया—*लो.स.वा.वि.*, 3.12.1970, पृ. 134-36 ।

639. नियम 227 ।

640. *देखिए* दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति के पहले प्रतिवेदन से सातवें प्रतिवेदन तक और दसवां प्रतिवेदन तथा दसवीं लोक सभा की विशेषाधिकार समिति का चौथा प्रतिवेदन।

641. *देशपाण्डे मामला* (पहली लोक सभा 1952); *दशरथदेव मामला* (पहली लोक सभा 1952); *सिन्हा मामला* (पहली लोक सभा 1952); *सुन्दरैया मामला* (पहली लोक सभा 1952) ।

642. नियम 314 ।

643. *ब्लिट्स मामला*-13वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); *एस.सी. मुखर्जी मामला*-12वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-चौथी लोक सभा)।

सकती है कि सभा समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिये किस प्रक्रिया का पालन करे।[644]

समिति को कई बार सभा या अध्यक्ष ने यह भी कहा है कि वह सभा के विशेषाधिकारों से सम्बन्धित प्रक्रिया के प्रश्नों पर विचार करे।[645] एक मामले में लोक सभा तथा राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठकें हुई थीं और उन्होंने उस प्रकिया पर एक संयुक्त प्रतिवेदन दिया जिसका पालन उन मामलों में किया जाना चाहिए, जहां एक सभा के किसी सदस्य या अधिकारी पर यह आरोप हो कि उसने दूसरी सभा का विशेषाधिकार भंग किया है या उसकी अवमानना की है।[646]

संविधान की दसवीं अनुसूची के पैरा 8 के अन्तर्गत अध्यक्ष द्वारा बनाये गये लोक सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम 1985 के 18 मार्च, 1986 से लागू किये जाने के बाद समिति को एक अतिरिक्त कृत्य सौंपा गया है।[647] यदि अध्यक्ष मामले के स्वरूप एवं परिस्थितियों से संतुष्ट है कि ऐसा करना आवश्यक अथवा युक्तिसंगत है तो वह दल परिवर्तन के आधार पर किसी सदस्य की निरर्हता से सम्बन्धित याचिका को प्रारंभिक जांच करने तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए[648] समिति को निर्दिष्ट कर सकता है।[649] प्रारंभिक जांच करने के लिए सामान्यत: समिति द्वारा उसी प्रक्रिया[650] का अनुपालन किया जाता है, जिस प्रक्रिया का सभा के विशेषाधिकार भंग के किसी प्रश्न की जांच तथा अवधारणा में अनुपालन

---

644. नियम 314; साथ ही *देखिए* पहला और छठा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)।

645. पहला और छठा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)।

646. लोक सभा तथा राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक का प्रतिवेदन (1954)।

647. संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 द्वारा संविधान में जोड़ा गया जो 1 मार्च, 1985 से लागू हुआ।

648. ऐसे दो मामले हुए हैं जब अध्यक्ष ने संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत निरर्हता संबंधी याचिकाओं से उत्पन्न मामलों की प्रारंभिक जांच करने तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपे थे। दोनों मामले आठवीं लोक सभा से संबंधित थे–(i) *लाल डुहोमा मामला; लो.स.वा.वि.*, 16.11.1987, पृ. 177–78 (ii) *हरद्वारी लाल मामला,* समाचार–*भाग* 2, 15.1.1988, पैरा 2034 ।

649. लोक सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 का नियम 2 (ख) और 7 (4) ।

650. बहुजन समाजवादी पार्टी के सदस्यों श्री मोहम्मद शाहिद अखलाक, भाल चंद्र यादव और श्री रमाकांत यादव द्वारा संविधान की दसवीं अनुसूची और तद्धीन निर्मित नियमों के अन्तर्गत दी गई निरर्हता संबंधी याचिका (जो 14वीं लोक सभा के दौरान समिति को सौंपी गई थी) के संदर्भ में विशेषाधिकार समिति (14वीं लोक सभा) 'प्रारंभिक जांच' पद के वास्तविक आशय

किया जाता है। समिति ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं देती कि कोई सदस्य, अपना मामला प्रस्तुत करने तथा व्यक्तिगत सुनवाई के लिए पर्याप्त अवसर पाए बिना दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत निरर्ह हो गया है।[651]

समिति बाहर के किसी व्यक्ति या संस्था को औपचारिक या अनौपचारिक रूप से अपने विचार-विमर्श में भाग लेने का अवसर नहीं देती।

जब सभा या अध्यक्ष द्वारा विशेषाधिकार का कोई प्रश्न समिति को सौंपा जाता है, तो सचिवालय समिति के विचारार्थ उस विषय पर एक ज्ञापन तैयार करता है। उस ज्ञापन में संक्षेप में बताया जाता है कि कौन-सा मामला (मामले) अंतर्ग्रस्त हैं; उस मामले के तथ्य क्या हैं और उस प्रश्न के सम्बन्ध में कानून, प्रथाएं और पूर्व दृष्टांत क्या हैं। यह ज्ञापन समिति के सदस्यों को उस बैठक, जिसमें इस विषय पर समिति द्वारा विचार किया जाना हो, की सूचना के साथ परिचालित किया जाता है। समिति महासचिव से यह भी कह सकती है कि वह उस विषय में अन्तर्निहित किसी विशिष्ट तथ्य या कानून के सम्बन्ध में उसके विचारार्थ एक ज्ञापन तैयार करवाये।[652]

विशेषाधिकार के प्रश्न की भली प्रकार जांच करने के लिए समिति उस सदस्य की बात सुन सकती है जिसने सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया हो।[653] या उसे इस बात की अनुमति दे सकती है कि वह एक लिखित वक्तव्य में अपनी बात स्पष्ट करे[654] और या सभा के किसी अन्य सदस्य की बात सुन सकती है, जो समिति के विचाराधीन विशेषाधिकार प्रश्न

पर बहुत सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद और पूर्ववर्ती समिति (विशेषाधिकार समिति, आठवीं लोक सभा) के प्रतिवेदन के निष्कर्षों के प्रति पूर्वाग्रहरहित होकर इस निष्कर्ष पर पंहुची कि ऐसे मामलों में समिति मामले के तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाले और समिति को यह छूट नहीं है कि वह विधि के प्रश्नों को विनिश्चित करे, वह मामले के गुणावगुण के आधार पर निष्कर्ष निकाले और सिफारिशें करे। तद्नुसार समिति ने अपने छठे, सातवें और आठवें प्रतिवेदन में केवल मामलों के तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किये। परवर्ती मामलों, अर्थात् संविधान की दसवीं अनुसूची के अंतर्गत संसद सदस्य श्री कुलदीप सिंह बिश्नोई, श्री हरिभाउ राठोड, डॉ. पी.पी. कोपा, एडवो. तुकाराम रेंगे पाटिल, श्री राजनारायण बुधोलिया, डॉ. सी. कृष्णन, श्री एल. गणेशन, श्री जिंजी रामचंद्रन, श्री एस. रविचन्द्रन के विरुद्ध (विशेषाधिकार समिति को सौंपे गये) मामलों में भी समिति ने अपने क्रमशः चौदहवें, पंद्रहवें, सोलहवें, अठारहवें, बीसवें और इक्कीसवें प्रतिवेदन में केवल मामले के तथ्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये।

651. लोक सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 का नियम 7 (7) ।

652. *सिन्हा मामला और सुन्दरैया मामला* (पहली लोक सभा)।

653. *देशपाण्डे मामला* (पहली लोक सभा); 8वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा)।

654. *दशरथदेव मामला* (पहली लोक सभा)।

पर अपने विचार समिति के सामने रखना चाहे[655] अथवा उसे नहीं सुनने का निर्णय कर सकती है।[656] जब वह मामला सभा के किसी सदस्य के विशेषाधिकार भंग का हो तो समिति उसे अपनी बात स्पष्ट करने के लिए अपने समक्ष उपस्थित होने का अवसर देती है।[657]

समिति को व्यक्तियों को बुलाने और संबंधित पत्रों तथा अभिलेखों को मंगाने की शक्ति प्राप्त है।[658] कोई साक्षी महासचिव के हस्ताक्षरित आदेश द्वारा समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया जा सकता है और उसे ऐसे दस्तावेज पेश करने के लिए कहा जा सकता है जो समिति के उपयोग के लिये आवश्यक हों।[659] समिति सामान्यत: उस व्यक्ति को, जिस पर यह आरोप लगाया गया हो कि उसने सभा का विशेषाधिकार भंग किया है या उसकी अवमानना की है, लिखित रूप से[660] और व्यक्तिगत रूप से भी[661] अपना स्पष्टीकरण देने का अवसर देती है। समिति अध्यक्ष के निदेश के अधीन किसी साक्षी को अपनी बात किसी ऐसे वकीलो द्वारा कहलवाने की अनुमति दे सकती है जो उसके द्वारा नियुक्त तथा समिति द्वारा अनुमोदित किया गया हो।[662] जब किसी मामले के तथ्यों के सम्बन्ध में विवाद हो, तो समिति साक्षी का साक्ष्य लेने से पहले उसे शपथ दिला सकती है या प्रतिज्ञान करा सकती है।[663]

जब सभा के विशेषाधिकार भंग या उसकी अवमानना का आरोप किसी दस्तावेज पर आधारित हो, तो समिति यह कह सकती है कि उस मूल दस्तावेज को पेश किया जाये।[664]

---

655. *ब्लिट्स मामला*–13वां प्रतिवेदन, (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा); 12वां और 14वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–तीसरी लोक सभा)।

656. 11वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–तीसरी लोक सभा)।

657. *देशपाण्डे मामला* (पहली लोक सभा); *दशरथदेव मामला* (पहली लोक सभा); चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा) और 8वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा); *कृष्णन मनोहरन मामला*–11वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–पांचवीं लोक सभा); *कुंवर राम मामला* (विशेषाधिकार समिति–सातवीं लोक सभा); *सतीश अग्रवाल मामला*–5वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–सातवीं लोक सभा); *सत्यनारायण जटिया मामला*–8वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–सातवीं लोक सभा)।

658. नियम 270 ।

659. नियम 269 ।

660. *देशपाण्डे मामला* (पहली लोक सभा); सुन्दरैया मामला (पहली लोक सभा); 7वां, 11वां, 12वां और 13वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा); पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–तीसरी लोक सभा)।

661. *देशपाण्डे मामला* (पहली लोक सभा); ब्लिट्ज मामला–13वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)।

662. नियम 271 ।

663. नियम 272; *देशपाण्डे मामला* (पहली लोक सभा)।

664. *सिन्हा मामला*–(पहली लोक सभा); 8वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति–दूसरी लोक सभा)।

समिति प्रत्येक मामले में इस बात का निर्णय करती है कि उसके समक्ष दिया गया मौखिक अथवा लिखित साक्ष्य प्रतिवेदन के साथ संलग्न किया जाये अथवा नहीं।[665] प्रतिवेदनों के साथ कोई विमत टिप्पण संलग्न नहीं किये जाते हैं।[666] किन्तु समिति इस बात से सहमत हो सकती है कि कार्यवाही सारांश में यह उल्लेख किया जाये कि किसी सदस्य ने प्रतिवेदन या निष्कर्षों या सिफारिशों के बारे में अपना विमत व्यक्त किया है।[667] समिति ने सदस्य या सदस्यों के विचारों से युक्त टिप्पण को उसके प्रतिवेदन के साथ संलग्न किये जाने की भी अनुमति दी है।[668]

प्रतिवेदन पर विचार किया जाना

समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् समिति का सभापति अथवा उसका कोई सदस्य अथवा कोई अन्य सदस्य यह प्रस्ताव रख सकता है कि प्रतिवेदन पर विचार किया जाये, जिस पर अध्यक्ष सभा के सामने प्रश्न रख सकता है। प्रश्न को सभा के सामने रखने से पूर्व अध्यक्ष प्रस्ताव पर वाद-विवाद की अनुमति दे सकता है जिसकी अवधि सामान्यत: आधे घण्टे से अधिक की नहीं होती। ऐसे वाद-विवाद में प्रतिवेदन के ब्यौरे का उससे अग्रेतर जिक्र करने की अनुमति नहीं होती जितना यह सिद्ध करने के लिए आवश्यक हो कि सभा द्वारा प्रतिवेदन पर विचार किया जाए।[669]

इस आशय के रखे गये प्रस्ताव पर कि प्रतिवेदन पर विचार किया जाए, ऐसा प्रस्ताव अथवा संशोधन रखा जा सकता है कि सभा प्रतिवेदन से सहमत है अथवा असहमत है अथवा संशोधनों के साथ सहमत है।

> प्रतिवेदन पर विचार करने के प्रस्ताव के स्वीकार किए जाने के बाद इस प्रस्ताव के कि सभा प्रतिवेदन से सहमत है अथवा असहमत है अथवा संशोधनों के साथ सहमत है, पेश किए जाने से पूर्व इस आशय का प्रस्ताव कि उस व्यक्ति को जिसके विरुद्ध अभियोग लगाया गया है, सभा में उपस्थित होने को कहा जाए, पेश किया गया और उसे नियमानुसार पाया गया।[670]

---

665. एक मामले में सभा की इच्छानुसार समिति ने एक सदस्य द्वारा उसके समक्ष दिये गये लिखित विवरण एवं मौखिक साक्ष्य को प्रतिवेदन के साथ संलग्न करने के लिए सहमति दी-चौथा और 7वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा)।
666. निदेश 68 (3); 11वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा)।
667. तीसरा, चौथा, 5वां, 11वां और 13वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा)।
668. *देशपाण्डे मामला*-(पहली लोक सभा); चौथा और 5वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा); *इन्दिरा गांधी मामला*-तीसरा प्रतिवेदन (छठी लोक सभा)।
669. नियम 315 (1) और (2)।
670. *लो.स.वा.वि.*, 18.8.1961, पृ.1641; 13वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) के बारे में ।

ऐसे विषयों से सम्बन्धित प्रस्ताव अथवा कोई संशोधन जो विचाराधीन प्रतिवेदन में सम्मिलित न हो अथवा प्रतिवेदन को समिति को वापस भेजने से सम्बन्धित हो तो वह नियमानुसार नहीं है।[671] प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् हुई और घटनाओं के मामले में सभा इस विषय को समिति के पास वापस भेजने के बजाय उस पर स्वयं विचार कर सकती है।[672]

> तथापि, सभा के नेता द्वारा रखे गए प्रस्ताव पर प्रतिवेदन के सम्बन्ध में उत्पन्न कुछ मुद्दों पर विचार करने के लिए उस प्रतिवेदन को समिति के पास वापस भेजा गया।[673] और एक अन्य अवसर पर एक सदस्य, जिसने मूल रूप से विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया था, की बात सुनने के पश्चात् प्रतिवेदन को विचार करने के प्रक्रम पर समिति को फिर से विचार करने के लिए वापस भेजा गया।[674] एक अन्य अवसर पर समिति के निष्कर्षों को स्वीकार करते समय सभा ने दिये जाने वाले दण्ड की मात्रा की पुनरीक्षा के लिए प्रतिवेदन समिति को वापस भेजा था।[675]

जब समिति के प्रतिवेदन में कहा जाये कि सभा का कोई विशेषाधिकार भंग नहीं हुआ है तो सामान्यतः उस प्रतिवेदन के सम्बन्ध में आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाती।[676] परन्तु यदि समिति यह प्रतिवेदन दे कि कोई विशेषाधिकार भंग नहीं हुआ है और यह सिफारिश करे कि इस मामले में कोई कार्यवाही न की जाये, तो सभा प्रतिवेदन पर विचार कर सकती है और उसके बाद वह संकल्प पारित कर सकती है कि इस मामले में आगे कोई कार्यवाही न की जाए।[677]

जब किसी कथित दोषी व्यक्ति द्वारा खेद व्यक्त किया जाये अथवा स्पष्टीकरण दिया जाये, समिति इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके कि कोई विशेषाधिकार भंग हुआ है अथवा नहीं

---

671. *लो.स.वा.वि.*, 24.2.1959, पृ. 1420-26 ।
672. *पूर्वोक्त,* 19.8.1961, पृ. 1771; 13वें प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) के बारे में।
673. यह एक सदस्य द्वारा समिति के समक्ष दिए गए लिखित वक्तव्य और मौखिक साक्ष्य को कार्यवाही सारांश से निकालने के संबंध में था।
674. *लो.स.वा.वि.*, 24.11.1969, पृ.150-54 ।
675. *कुंवर राम मामला*-दूसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-सातवीं लोक सभा); *लो.स.वा.वि,* 13.7.1982, पृ. 441-75 ।
676. उदाहरण के लिए, *देखिए देशपाण्डे मामला* (पहली लोक सभा-1952); *दशरथदेव मामला* (पहली लोक सभा-1952); *सिन्हा मामला* (पहली लोक सभा-1952); *सुन्दरैया मामला* (पहली लोक सभा 1952); चौथा और 5वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); और *डॉ. नगेन्द्र सिंह मामला*-7वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा)।
677. *देखिए,* 8वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा); *लो.स.वा.वि.*, 24.2.1959, पृ. 1420-26 ।

और यह सिफारिश करे कि इस मामले पर सभा द्वारा आगे कोई कार्यवाही न की जाए,[678] तो ऐसे मामलों में सभा द्वारा सिफारिश को अनिवार्य रूप से स्वीकार कर लिया जाता है।

इस प्रस्ताव को कि समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया जाये, सामान्यतः वही प्राथमिकता दी जाती है, जो कि विशेषाधिकार के किसी विषय को बशर्ते कि उस प्रस्ताव को लाने में विलम्ब न हुआ हो। सभा के समक्ष विचाराधीन कार्य और विषय की अविलम्बनीयता को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष प्रस्ताव लिये जाने की तारीख निर्धारित करता है। इस मामले में अपना निर्णय देने से पहले अध्यक्ष चाहे तो सभा के नेता से भी परामर्श कर सकता है, परन्तु यदि प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए कोई तारीख पहले ही निश्चित की जा चुकी हो, तो फिर निश्चित दिन इस प्रस्ताव को रखे जाने को प्राथमिकता दी जाती है। यदि प्रतिवेदन के प्रस्तुत किए जाने के बाद पर्याप्त समय बीत गया हो, तो अध्यक्ष को यह विवेकाधिकार प्राप्त है कि वह प्रतिवेदन पर विचार करने के प्रस्ताव को अग्राह्य ठहरा दे।[679]

अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति

कल्याणकारी राज्य सरकारी कार्यकलापों के बढ़ने के कारण अधीनस्थ विधान एक आवश्यकता बन गया है।[680] जबकि संसद किसी विधान के लिए मोटे तौर पर सिद्धान्त निर्धारित कर देती है और यह काम कार्यपालिका पर छोड़ देती है कि वह उन सिद्धान्तों के अनुसार औपचारिक और प्रक्रिया सम्बन्धी ब्यौरा तैयार करे, जो नियमों, विनियमों, आदि के रूप में हो। इस प्रकार कार्यपालिका को प्रत्यायोजित प्राधिकार पर दृष्टि रखना आवश्यक है। संसद अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति के माध्यम से यह आवश्यक नियंत्रण तथा निगरानी रखती है। समिति का काम यह देखना है कि संविधान द्वारा प्रदत्त या संसद द्वारा प्रत्यायोजित नियम बनाने की जो शक्ति कार्यपालिका को दी गयी है, वह उस प्रत्यायोजन की सीमा के भीतर प्रयुक्त की जा रही है अथवा नहीं।[681] संसद की प्रत्येक सभा की अपनी समितियां होती हैं और वे स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं।

संरचना

लोक सभा में इस समिति में 15 सदस्य होते हैं जिनका नामनिर्देशन अध्यक्ष द्वारा किया जाता है।[682] सभा के नेता और अन्य दलों और ग्रुपों के नेताओं द्वारा प्रस्तुत सदस्यों के नामों

---

678. *कुंवर राम मामला,* दूसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-सातवीं लोक सभा); *भोगेन्द्र झा मामला*-चौथा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-सातवीं लोक सभा)।

679. नियम 316 ।

680. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 24-अधीनस्थ विधान ।

681. समिति के कार्यकरण के बारे में भारतीय विधि आयोग द्वारा की गई टिप्पणियों के लिए, *देखिए* आयोग का 14वां प्रतिवेदन, खण्ड II, पृष्ठ 706 ।

682. नियम 318 ।

की तालिका में से सदस्यों का चयन करते समय अध्यक्ष उन सदस्यों को तरजीह देता है जिन्हें कानून का ज्ञान तथा अनुभव हो।

> अधीनस्थ विधान के सम्बन्ध में एक स्थायी समिति गठित करने का सुझाव पहली बार अन्तरिम संसद में 1950 के बजट सत्र के दौरान दिया गया था।[683] ऐसी समिति के गठन के लिए नियम बनाये गये और उन्हें 30 अप्रैल, 1951 को नियमों में सम्मिलित किया गया है।[684] पहली समिति का गठन 1 दिसम्बर, 1953 को किया गया जिसमें 10 सदस्य थे। 9 जनवरी 1954 को सम्बन्धित नियम में संशोधन करके समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 15 कर दी गयी।[685]

समिति का कार्यकाल उसकी नियुक्ति की तारीख से एक वर्ष तक होता है।[686] अधिकतर स्थायी समितियों की भांति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति का गठन नई लोक सभा की शुरुआत में किया जाता है तथा उसके बाद वार्षिक आधार पर उसका पुनर्गठन किया जाता है।

कृत्य

समिति का मुख्य कार्य इस बात की जांच करना और सभा को प्रतिवेदन देना है कि नियम, विनियम, उपनियम, उपविधि आदि (जिन्हें इसमें इसके बाद 'आदेश' कहा गया है) बनाने की संविधान द्वारा प्रदत्त या संसद द्वारा प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग उचित ढंग से ऐसे प्रत्यायोजन की सीमाओं के भीतर किया जा रहा है अथवा नहीं।[687]

समिति उन विधेयकों की भी जांच करती है जिनका उद्देश्य "आदेश" निर्मित करने की शक्तियों का प्रत्यायोजन करना हो अथवा ऐसी शक्ति का प्रत्योजन करने वाले पिछले अधिनियमों का संशोधन करना हो। इस जांच का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि क्या उन विधेयकों में "आदेशों" को संसद की प्रत्येक सभा में सत्रावधि के दौरान, कुल तीस दिनों की अवधि के लिए जो एक सत्र में अथवा दो अथवा अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकती है, सभा पटल पर रखे जाने के लिए उपयुक्त उपबंध किए गए हैं अथवा और ऐसा उपबंध किया गया है अथवा नहीं कि उपरोक्त सत्र के तुरन्त पश्चात् आने वाले सत्र में अथवा आनुक्रमिक सत्रों में दोनों सभाओं द्वारा उसमें संशोधन किया जा सकता है अथवा नहीं।[688]

---

683. *पी. डिबेट्स* (II), 11.4.1950, पृ. 2783 ।
684. कार्यवाही सारांश (नियम समिति–पहली लोक सभा), 24.4.1951 ।
685. *पूर्वोक्त,* 17.12.1953 ।
686. नियम 318 (2) ।
687. नियम 317 ।
688. व्यावहारिक रूप में सचिवालय द्वारा सभी विधेयकों की उनके लोक सभा में पुरःस्थापित किए जाने अथवा राज्य सभा द्वारा उसे भेजे जाने के तुरन्त बाद जांच की जाती है। यदि किसी विधेयक में संसद द्वारा आदेशों में संशोधन किए जाने के अध्यधीन उन्हें संसद के सभा पटल पर रखे जाने का उपबन्ध न हो तो यह मामला समिति के समक्ष रखा जाता है और जहां तक

अध्यक्ष चाहे तो, वह किसी विधेयक को, जिसमें विधायी शक्तियों के प्रत्यायोजन से संबंधित उपबन्ध हों समिति को भेज सकता है जिससे कि वह यह जांच कर सके कि ऐसी शक्ति का प्रत्यायोजन[689] किस सीमा तक किया जाना है जिन मामलों में शक्ति का प्रत्यायोजन किसी सहायक उपबन्ध को लागू किये जाने या कोई अन्य "आदेश" दिये जाने के लिए राज्य सरकारों या अन्य प्राधिकारियों को किया जाना हो, उनमें समिति को यह जांच करनी पड़ती है कि ऐसा प्रत्यायोजन आवश्यक है या नहीं और साथ ही यह देखना पड़ता है कि सम्बद्ध अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा ऐसी शक्तियों का प्रयोग किस हद तक और किस विधि से किया जायेगा। यदि समिति की यह राय हो कि विधायी शक्तियों का प्रत्यायोजन करने वाले उपबन्धों को पूर्णतः या अंशतः रद्द कर दिया जाये या उनमें किसी प्रकार संशोधन कर दिया जाये तो सभा में उस विधेयक पर विचार आरम्भ किए जाने अथवा और आगे विचार किये जाने से पूर्व[690] वह अपनी राय तथा उसके आधारों को सभा को बताती है।

किसी 'आदेश' को रद्द करने या उसमें संशोधन करने के सम्बन्ध में अपनी राय सभा को बताने के अतिरिक्त, समिति उन "आदेशों" से सम्बन्धित कोई अन्य विषय सभा के ध्यान में लाती है जो उसके विचार में सभा के सामने रखा जाना चाहिए।[691]

संभव हो, समिति का कोई सदस्य विधेयक में आवश्यक संशोधन का प्रस्ताव रखता है। सभा सामान्यतः ऐसे संशोधनों को स्वीकार कर लेती है-*देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 2529, और 5वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 28-29 । जब प्रश्नाधीन विधेयक को प्रवर समिति को सौंपा जाना हो तो यह त्रुटि समिति की जानकारी में लाई जाती है-5वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 26-27, स्वर्ण (नियन्त्रण) विधेयक, 1963 के बारे में ।

689. आवश्यक सेवाएं बनाए रखने का विधेयक, 1968 पर विचार करने के प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान जब यह शंका जताई गई कि क्या विधेयक में उल्लिखित नियम बनाने की शक्तियों का प्रत्यायोजन सामान्य अथवा अपवादस्वरूप का है तो अध्यक्षपीठ द्वारा विधेयक जांच करने तथा उस पर प्रतिवेदन देने के लिए समिति को सौंपा गया। समिति की यह राय थी कि यद्यपि शक्तियों का प्रत्यायोजन सामान्य है और विधेयक में निर्धारित विधायी नीति की परिधि के अंतर्गत है, विधेयक के संगत खण्ड को उसमें निर्धारित नियमों को यथास्थिति सभा पटल पर रखे जाने अथवा संसद का सत्र पुनः शुरू होने से 40 दिन के अंदर संसद के अनुमोदन के लिए नया रूप प्रदान करना चाहिए अन्यथा नियम लागू नहीं होंगे। सभा ने समिति द्वारा सुझाये गये संशोधन को स्वीकार कर लिया था। *देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-चौथी लोक सभा); *लो.स.वा.वि.,* 12.12.1968, पृ. 111 और 17.12.1968, पृ. 150-82 ।

690. निदेश 103 क ।

691. नियम 321 (2) और निदेश 103 (3) ।

व्यावहारिक रूप से समिति, भारत सरकार द्वारा या किसी अन्य अधीनस्थ प्राधिकारी[692] जो अन्ततोगत्वा सरकार के प्रति उत्तरदायी हो, द्वारा बनाये गये उन सभी "आदेशों" की संवीक्षा करती है, जो राजपत्र में प्रकाशित किये गये हों या सभा पटल पर रखे गये हों। समिति राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये उन "आदेशों" की संवीक्षा नही करती, जो उन्होंने संसद के अधिनियम द्वारा उन्हें प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाये हों।[693] उसी प्रकार समिति उन नियमों की संवीक्षा नहीं करती, जो उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 145 के अधीन बनाये हों या उच्च न्यायालयों ने सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन बनाये हों जो नियम राष्ट्रपति ने राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष के परामर्श से बनाये हों।[694]

विचार-विमर्श तथा जांच की व्याप्ति

किसी "आदेश" की जांच करते समय समिति विशेष रूप से,[695] इन बातों पर विचार करती है कि क्या वह आदेश संविधान या उस अधिनियम के सामान्य उद्देश्यों के अनुकूल है या नहीं जिनके अनुसरण में वह बनाया गया है।[696] क्या उसमें कोई ऐसा विषय अन्तर्विष्ट है

समिति सिफरिशों के रूप में अनेक मामले सभा के समक्ष लाई, जैसे संशोधनकारी आदेशों में संक्षिप्त नाम तथा समुचित सन्दर्भ देना, नियमों को संख्यांकन करना, मूल नियमों का तब पुनः मुद्रण तब उनमें बहुत अधिक संशोधन किए गए हों, नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग न किया जाना, और नियमों में अत्यधिक लम्बे वाक्यों का प्रयोग न किया जाना, आदि-*देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 41-46; चौथा प्रतिवेदन, (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 30-38; छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 75-76; तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 4-6 और 30-59; चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 32-35; पांचवां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 21; और छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 21 ।

692. उदाहरण के लिए कपड़ा आयुक्त द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 या उसके अधीन बनाये गये नियमों के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी किये विधायी स्वरूप के आदेश-*देखिए* दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा) पैरा 55-62; विभिन्न छावनी बोर्डों द्वारा छावनी अधिनियम, 1924 के अधीन बनायी गयी उप विधियाँ आदि।

693. उदाहरण के लिए मोटरयान अधिनियम, 1939 और संसद द्वारा बनायी गयी बहुत-सी श्रम संबंधी विधियों के अधीन राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये आदेश।

694. उदाहरण के लिए अनुच्छेद 98 (3) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा अध्यक्ष/सभापति से परामर्श के बाद बनाये गये नियम।

695. नियम 320 ।

696. दिल्ली परिवहन प्राधिकरण नियम, 1952 के मामले में समिति ने यह टिप्पणी की कि मुख्य लेखा अधिकारी की राय को अस्वीकृत करने की चेयरमैन की शक्तियां दिल्ली सड़क परिवहन

या नहीं जिसको अधिक समुचित ढंग से निपटाने के लिए समिति की राय में संसद का कोई अधिनियम होना चाहिए।[697] क्या उसमें कोई करारोपण अन्तर्विष्ट है या नहीं।[698] क्या उसमें न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रुकावट होती है या नहीं।[699] क्या वह उपबंधों में से किसी को भूतलक्षी प्रभाव देता है या नहीं जिनके संबंध में संविधान या

प्राधिकरण अधिनियम, 1950, की धारा 16(3), जिसके अधीन नियम बनाए गये थे, के विपरीत हैं- दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 20-22 अन्य ऐसे ही उदाहरणों के लिए *देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 30-31; चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 18-20; छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 29-31; पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 30-33, 62 और 72; 5वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 24 और 25; 20वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पांचवीं लोक सभा), पैरा 111 ।

697. समिति ने चलचित्र (सेंसरशिप) नियम, 1951 के नियम 6क के 1953 के का.नि.आ. 85 द्वारा यथा अन्त:स्थापित, उपबंधों को मूल उपबंध माना जिन्हें नियमों की बजाय संगत अधिनियम में सम्मिलित किया जाना चाहिए था-दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 6-8; बाद में ये उपबंध अधिनियम में सम्मिलित किए गए थे-चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पृ. 19, मद 1; साथ ही *देखिए* दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 23-24; तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 8; तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 21-25; और 19वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पांचवीं लोक सभा), पैरा 27।

698. समिति ने टिप्पणी की है कि नियमों या उपविधियों द्वारा शुल्क लगाने की शक्ति मूल अधिनियम में स्पष्ट रूप से दी जानी चाहिए-*देखिए* पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 9-13, 67-72, 99-101 और 131-33; दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 9-11, 26-27, 35-40 और 55-59; 5वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 4-9; 22वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-सातवीं लोक सभा), पैरा 43; और 19वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-आठवीं लोक सभा), पैरा 49 ।

699. समिति ने यह माना कि नियम 6क का उपबंध न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर है और तद्नुसार यह उपबंध नियम बनाने की शक्तियों की सीमाओं से परे है-दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 6-8; साथ ही *देखिये* पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 14-17 और 26वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-सातवीं लोक सभा), पैरा 28-29 ।

अधिनियम स्पष्ट रूप से ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं करता।[700] क्या उसमें भारत की संचित निधि या सरकारी राजस्व में से व्यय अन्तर्ग्रस्त है या नहीं; क्या उसमें संविधान या उस अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का असामान्य या अप्रत्याशित प्रयोग किया गया प्रतीत होता है या नहीं, जिसके अनुसरण में यह बनाया गया है।[701] क्या किसी कारण से उसके रूप या अभिप्राय के लिए किसी विशदीकरण की आवश्यकता है या नहीं;[702] और क्या उसके प्रकाशन;[703] या संसद के समक्ष रखे जाने;[704] में अनुचित विलम्ब हुआ प्रतीत होता है या नहीं।

साधारणत: सभी "आदेश" उनके लागू हो जाने की तारीख से पहले प्रकाशित किये जाने चाहिएं अथवा उन्हे उनके प्रकाशित होने की तारीख से ही लागू किया जाना चाहिए। फिर भी, यदि किसी मामलें विशेष में किन्हीं अपरिहार्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किसी आदेश को भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया जाना हो जबकि भूतलक्षी प्रभाव अन्यथा वैधानिक रूप में मान्य हो तो इस सम्बन्ध में या तो आदेशों में स्पष्टीकरण के माध्यम से अथवा संगत

---

700. *देखिये* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 7-9; और छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 18-19; साथ ही *देखिए-इंडियन शुगर्स एंड रिफाइनरीज लि. बनाम मैसूर राज्य और अन्य,* ए.आई.आर. 1960, मैसूर 326; दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-चौथी लोक सभा), पैरा 10; 7वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-चौथी लोक सभा), पैरा 49; और चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-छठी लोक सभा), पैरा 9 ।

701. दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 25-27; चौथा प्रतिवदेन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 22-24; दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पृ. 17, मद 6; और दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—छठी लोक सभा), पैरा 14 ।

702. समिति की सिफारिश पर "पत्तन प्राधिकरण" पद को बाद में कलकत्ता डॉक कर्मकार (नियोजन का विनियमन) योजना, 1956 में परिभाषित किया गया था; दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पृ. 20, पद 13; अन्य उदाहरणों के लिए *देखिए,* चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 12-13; और 23वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ अविधान संबंधी समिति-सातवीं लोक सभा), पैरा 67 ।

703. समिति ने कई ऐसे मामलों की जानकारी दी, जिनमें सांविधिक नियमों, आदि के शुद्धिपत्र के प्रकाशन में अत्यधिक विलम्ब हुआ था—*देखिए* छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 26-28; और छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-आठवीं लोक सभा), पैरा 67 ।

704. समिति ने पहली लोक सभा के दौरान ऐसे 222 मामलों की जानकारी दी, जिनमें आदेशों को सभा पटल पर रखने में विलम्ब हुआ था। दूसरी लोक सभा में ऐसे मामलों की संख्या 279 थी, तीसरी लोक सभा में 160; पांचवीं लोक सभा के दौरान 93; *देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-छठी लोक सभा), पैरा 7; और छठी लोक सभा के दौरान ऐसे मामलों की संख्या 99 थी।

"आदेशों" के पाद टिप्पण के रूप में इस आशय का स्पष्टीकरण दिया जाना अपेक्षित होता है कि ऐसे "आदेशों" को भूतलक्षी प्रभाव से लागू करने के परिणामस्वरूप किसी पर भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।[705]

किसी "आदेश" की जांच करते समय समिति निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखती है :

> कि यह सरल भाषा में लिखा गया हो;[706] यदि यह संशोधनकारी विनियम या नियम है तो इसमें मूल विनियम, नियमों आदि तथा किसी अंतिम संशोधन, यदि कोई हो, के पर्याप्त संदर्भ दिए गए हों जिससे कि मूल नियमों में सशोधनों पर नजर रखी जा सके;[707] कि इसमें सटीक सांविधिक प्राधिकार का उल्लेख किया गया हो, जिसके अन्तर्गत यह बनाया गया है;[708] कि इसमें मूल अधिनियम द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के बिना विधायी शक्ति किसी और को प्रत्यायोजित करने का उपबन्ध न हो।[709] अथवा जहां किसी और को प्रत्यायोजित करने का अधिकार दिया गया हो, वहां यह समुचित सुरक्षोपायों के बिना व्यापक और सामान्य नहीं होना चाहिए;[710] कि पर्याप्त सूचना उपबन्धों के अभाव में इससे किसी नागरिक को किसी प्रकार की कठिनाई होने की संभावना न हो;[711] कि इसमें कोई ऐसे उपबन्ध न हों जिनसे कार्यपालिका को नागरिकों के हितों को प्रभावित करने वाले आदेश जारी करने की शक्ति मिलती है और नागरिकों को अपनी बात कहने का अवसर और अपील करने का अधिकार नहीं दिया जाता है;[712] कि इसमें ऐसा कोई उपबन्ध न हो

---

705. दूसरा, 5वां और 7वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—चौथी लोक सभा); क्रमशः पैरा 10, 22 और 51 ।
706. तीसरा प्रतिवदेन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 9 तथा छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 21 ।
707. तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 45 ।
708. छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 75-76; पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 76-86, और दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 4-8 ।
709. दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 41-43 ।
710. छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 8-13 ।
711. तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 16-19; और छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 57-59; साथ ही *देखिए* पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 38-42 ।
712. छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 6-7; छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पृ. 16, मद 2; पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 134-37 और 1958 का.आ. 1671; दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 26 (2) और 1958 का का.आ. 1670 ।

जिसके परिणामस्वरूप शक्तियों का मनमाने ढंग से प्रयोग हो सकता है;[713] और कि इसका कोई उपबंध सामान्य लोकतंत्रात्मक सिद्धान्तों के आधार पर अनुचित न हो;[714] और यह अस्पष्ट न हो।[715]

जब किसी अधिनियम में यह उपबन्ध किया गया हो कि कुछ विषयों का विनियमन उस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों, विनियमों, आदि द्वारा किया जाये, तो समिति इस बात पर विचार करती है कि क्या ऐसे नियमों को बनाने में कोई अनुचित विलम्ब तो नहीं हुआ है और इस बारे में सभा को सूचित करती है।[716]

चूंकि, सरकार पर सामान्य रूप से ऐसा कोई कानूनी दायित्व नहीं है।[717] कि वह उन आदेशों को फिर से मुद्रित कराये, जिनमें व्यापक संशोधन किये गये हैं, इसलिए समिति ने

---

713. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के अधीन जारी किये गये कतिपय नियंत्रण आदेशों द्वारा तलाशी के समय साक्षियों की उपस्थिति, बरामद हुए माल की सूची तैयार करना आदि जैसा कि दंड प्रक्रिया विधि के अधीन अपेक्षित है, जैसे सुरक्षापायों के बिना तलाशी तथा जब्ती, आदि की व्यापक शक्तियां प्रदत्त की गई थीं। समिति के कहने पर नियंत्रण आदेशों में समुचित संशोधन किया गया था—चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 44-45; तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा, 21-23; और 1959 का सा.का.नि. 343; साथ ही *देखिये* छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 15-17; चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी संमिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 28-30; और छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पृ. 10 मद 11 ।

714. छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 18-22 और 1959 का सा.का.नि. 958 ।

715. पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 152-55 और 1957 का का.नि.आ. 2220-21; पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 144-51 और 156-71; और तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 30-45 ।

716. तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 4-6; साथ ही *देखिए* 5वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पैरा 32-35, इनमें समिति ने 6 महीने की अधिकतम अवधि निर्धारित की, जिसके भीतर अधिनियम के प्रारम्भ होने के पश्चात् नियम बना लिए जाने चाहिएं ।

717. सागर सीमा शुल्क अधिनियम, 1878 एकमात्र ऐसा केन्द्रीय अधिनियम है जिसमें ऐसी शर्त विहित की गयी है। उसकी धारा 204 में यह निर्धारित किया गया है कि अधिनियम के अधीन बनाये गये और तत्समय प्रवृत्त सभी नियम संकलित किऐ जायेंगे, क्रमवार लगाए जाएंगे और उन्हें दो वर्ष से अनधिक के अंतराल पर प्रकाशित किया जायेगा और उचित मूल्य पर जनता को बेचा जाएगा।

सम्बद्ध मंत्रालयों को यह सुझाव दिया कि जनता की सुविधा के लिए समय-समय पर ऐसे नियमों को फिर से मुद्रित कराया जाये।[718]

कार्य प्रणाली

ज्योंही कोई "आदेश" राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है,[719] या सभा पटल पर रखा जाता है, सचिवालय उसकी जांच यह निर्धारित करने के लिए करता है कि क्या उसके किन्हीं उपबन्धों को नियमों में निर्दिष्ट किसी आधार पर[720] या समिति की किसी प्रथा या निदेश के अनुसार समिति के ध्यान में लाना आवश्यक है।[721]

समिति किसी नियम/विनियम के व्यावहारिक कार्यकरण के संबंध में व्यक्तियों अथवा संगठनों से प्राप्त अभ्यावेदनों/शिकायतों पर भी विचार करती है और अपने प्रतिवेदन के माध्यम से नियमों में रूपभेद/संशोधन करने के लिए समुचित सिफारिशें करती है।[722]

---

718. आदेशों आदि के पुन: मुद्रण के संबंध में समिति की सामान्य सिफारिशों के लिए *देखिए* चौथा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा) पैरा 28-29; साथ ही सांविधिक नियमों तथा आदेशों के मुद्रण तथा प्रकाशन के लिए समिति के सूझावों के संबंध में *देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा) पैरा 46-52 ।

719. केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाये गये सभी नियम और विनियम, सामान्यत: संबंधित मूल अधिनियमों के अधीन राजपत्र में प्रकशित किए जाने अपेक्षित हैं। वे इस प्रकार प्रकाशित होने पर तभी लागू होते हैं जब तक कि अधिनियम या नियमों में स्पष्ट रूप से अन्यथा उपबन्ध न किया गया हो।

720. नियम 320 ।

721. समिति की सिफारिश के अनुसार, 'आदेश' की जांच यह देखने के लिए की जाती है कि क्या इसका कोई संक्षिप्त नाम है और क्या उसके तात्पर्य को स्पष्ट करने के लिए कोई व्याख्यात्मक टिप्पणी आवश्यक है और ऐसी टिप्पणी 'आदेश' में संबंधित जनता की सुविधा के लिए जोड़ दी जाती है-*देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा) पैरा 44 और 46 और दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा) पृ. 16, मद 9 ।

    संशोधनकारी 'आदेश' की दशा में यह भी जांच की जाती है कि क्या इसमें मूल 'आदेशों' के समुचित संदर्भ दिए गए हैं या नहीं-*देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पहली लोक सभा) पैरा 45 और 7वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा) पैरा 33-35 ।

722. उदाहरण के लिए *देखिए* 16वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा) पैरा 104-28;) 7वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—आठवीं लोक सभा) पैरा 7 और 19वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—आठवीं लोक सभा) पैरा 1-8 ।

यदि किसी आदेश की जांच के दौरान, उससे उत्पन्न किसी प्रश्न के संबंध में स्पष्टीकरण मांगना आवश्यक समझा जाये तो वह मामला सम्बद्ध मंत्रालय को उस पर टिप्पणी देने के लिए भेजा जाता है।[723] जब मंत्रालय की टिप्पणी प्राप्त हो जाती है, तो उस मामले की फिर से जांच की जाती है और यदि कोई बात या बातें समिति के ध्यान में लाना आवश्यक समझा जाए तो समिति के सभापति के अनुमोदन के लिए प्रत्येक प्रश्न पर एक परिपूर्ण ज्ञापन तैयार किया जाता है।[724] सभापति द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद ज्ञापन तथा संगत आदेश की प्रतियां या उसके उद्धरण बैठक की तारीख से पहले, समिति के सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं।[725]

समिति की बैठक में ज्ञापनों पर एक-एक करके विचार किया जाता है और चर्चा के अन्त में सभापति, वाद-विवाद के रुझानों को देखते हुए समिति के विनिश्चय की घोषणा करता है जो सदा सर्वसम्मति से होता है और तद्नुसार उसे अभिलिखित किया जाता है।

कई बार जब समिति के जांचाधीन किसी "आदेश" से कोई महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न उठते हैं और यदि समिति यह महसूस करती है कि इस संबंध में महान्यायवादी की प्रामाणिक राय आवश्यक है, तो ऐसी राय मांगी जाती है और समिति के समक्ष एक ज्ञापन के रूप में रखी जाती है।[726] तत्पश्चात् समिति महान्यायवादी की राय पर विचार करने के बाद विनिश्चय करती है।

अधिकारियों का साक्ष्य

समिति मंत्रालय के सचिव अथवा विभागाध्यक्ष को समिति के जांचाधीन "आदेशों" के किन्हीं पहलुओं के बारे में साक्ष्य देने हेतु बुला सकती है।

अध्ययन दौरे

केवल कुछ ही मामलों में समिति, किसी संगठन के कार्यकरण को शासित करने वाले किसी अधिनियम के अनुसरण में सरकार द्वारा जारी किए गए "आदेशों" के प्रभाव के बारे

---

723. निदेश 105 (2) । व्यवहार में किसी 'आदेश' से उठने वाले अधिकतर प्रश्नों के संबंध में पहले तो सम्बद्ध मंत्रालय की राय मालूम की जाती है, ताकि सचिवालय तथा मंत्रालय दोनों का दृष्टिकोण एक ही समय समिति के समक्ष रखा जा सके।

 समिति के कहने पर, कुछ मामलों में, उदाहरण के लिए दिल्ली (कंट्रोल ऑफ बिल्डिंग आपरेशन्ज़) विनियम, 1955; पंजाब गन्ना (गुड़ के प्रयोग या उत्पादन का प्रतिषेध) आदेश, 1959, और निर्यात, (नियंत्रण) आदेश, 1977 में महान्यायवादी की राय भी मांगी गयी थी।

724. निदेश 105 (3) ।

725. निदेश 106 ।

726. पहला प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पैरा 70-71, और कार्यवाही सारांश (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), 16.4.1959 पैरा 13-16 ।

में, उस संगठन का मौके पर अध्ययन करने और उसके अधिकारियों तथा प्रतिनिधियों के साथ बातचीत करने के लिए संगठन का दौरा कर सकती है।

प्रतिवेदन का प्रस्तुत किया जाना

समय-समय पर, समिति सभा के सामने उसके द्वारा जांच किए गए विभिन्न "आदेशों" के बारे में या उनसे संबंधित किसी अन्य विषय[727] के बारे में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है।

प्रतिवेदन के प्राक्कथन के आरम्भिक पैरा में प्रतिवेदन की संख्या बताई जाती है और यह भी बताया जाता है कि समिति ने प्रतिवेदन को सभा में प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी है। इसके बाकी पैराओं में अन्य बातों के साथ-साथ यह दर्शाया जाता है कि समिति की कितनी बैठकें हुईं और उसमें उल्लिखित अवधि में समिति ने कितने "आदेशों" पर विचार किया और किस तारीख को समिति ने प्रतिवेदन स्वीकार किया।

उसके बाद के अध्यायों में वे 'आदेश' होते हैं जिनके सम्बन्ध में समिति अपनी टिप्पणियां और सिफारिशें करती है। प्रत्येक अध्याय में किसी नियम या विनियम विशेष के सम्बन्ध में उठाये गये प्रश्न होते हैं और सम्बद्ध मंत्रालय द्वारा दिए गए उत्तर, यदि कोई हों, का सारांश और समिति के विचार दिए जाते हैं। सामान्यतः प्रतिवेदन के अन्तिम अध्याय में समिति के पहले के प्रतिवेदनों में की गयी विभिन्न सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गई अथवा की जाने वाली कार्यवाही के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है।[728] प्रतिवेदन के अंत में सिफारिशों का सारांश दिया जाता है।

सभापति द्वारा प्रतिवेदनों पर हस्ताक्षर कर लिए जाने के बाद उसे सभापति द्वारा नियत तारीख को सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किए जाने के बाद उसकी प्रतियां सभी सदस्यों को परिचालित की जाती हैं। समिति के प्रतिवेदनों पर सभा में चर्चा नहीं की जाती है परन्तु सदस्यों ने कई बार प्रश्नों या वाद-विवाद के दौरान समिति की सिफारिशों का उल्लेख किया है।[729] कभी-कभी उन 'आदेशों' पर सभा में चर्चा की जाती है, जो सभा पटल पर रखे जाते हैं।[730] जब सदस्यों द्वारा सभा पटल पर रखे गये 'आदेशों' में रूपभेद करने के प्रस्तावों की सूचनाएं दी जाती हैं, तो कार्य-मन्त्रणा समिति कभी-कभी उन प्रस्तावों को सभा में उन पर विचार किए जाने से पहले विचार करने तथा प्रतिवेदन देने के लिए समिति के पास भेज देती है। समिति

---

727. नियम 317 और 321 ।

728. दूसरे से आठवां प्रतिवेदन, दसवें से बारहवां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा)।

729. सभा के सांविधिक नियमों तथा विनियमों पर चर्चा के संबंध में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 24-अधीनस्थ विधान ।

730. 5वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पहली लोक सभा)।

संबंधित सदस्यों के विचार सुनने के बाद सुझाए गए रूपभेदों पर विचार करती है, और अपना प्रतिवेदन सभा को देती है। ऐसे मामलों में भी समिति के प्रतिवेदनों पर चर्चा नहीं की जाती, परन्तु वाद-विवाद के दौरान सदस्य समिति द्वारा अपने प्रतिवेदन में व्यक्त किए गए विचारों का उल्लेख कर सकते हैं।[731]

सिफारिशों का कार्यान्वयन

समिति अपनी सिफारिशों की कार्यान्विति पर निरन्तर निगरानी रखती है।[732] सम्बद्ध मंत्रालयों से कहा जाता है कि वे समय-समय पर ऐसे विवरण भेजें, जिनसे पता चले कि समिति द्वारा की गई सिफारिशों और समिति के साथ हुए पत्र-व्यवहार के दौरान उनके द्वारा दिए गए आश्वासनों पर सरकार ने क्या कार्यवाही की है या करने का विचार रखती है।[733] इस प्रकार प्राप्त जानकारी की जांच सचिवालय में की जाती है और वह ज्ञापन के रूप में सभापति के अनुमोदन से समिति के समक्ष रखी जाती है।[734] यदि मंत्रालय सिफारिशों को कार्यान्वित करने की स्थिति में न हो या किसी सिफारिश को कार्यान्वित करने में कोई कठिनाई महसूस करता हो, तो वह अपनी बात समिति के सामने रखता है और बताता है कि उसे क्या कठिनाई है। यदि समिति मंत्रालय की बात से सन्तुष्ट हो जाये, तो वह या तो अपनी सिफारिशों में रूपभेद कर देती है या उन्हें छोड़ देती है।[735] यदि मंत्रालय का उत्तर संतोषजनक न हो, तो उस सिफारिश के सम्बन्ध में आगे लिखा-पढ़ी की जाती है।[736] समिति समय-समय पर अपने प्रतिवेदन में सभा को यह बताती है कि उसकी विभिन्न सिफारिशों की कार्यान्विति के संबंध में क्या प्रगति हुई है।[737]

---

731. *लो.स.वा.वि.,* (II), 7.9.1956, पृ. 2028-29 और 2031 ।

732. समिति की सिफारिशों के कार्यान्वयन की प्रगति समिति के प्रतिवेदनों के साथ संलग्न विवरणों के रूप में दिखाई जाती है। *देखिये* दूसरे से आठवां प्रतिवेदन, दसवें से तेरहवां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा)।

733. जब समिति द्वारा उठाया गया कोई प्रश्न संबद्ध मंत्रालय को भेजा जाता है, तो मंत्रालय उसे तुरन्त स्वीकार कर लेता है और उस त्रुटि को दूर करने का आश्वासन देता है। समिति ऐसे आश्वासन को नोट करती है और इसकी सूचना सभा को देती है। समिति ऐसे आश्वासन की कार्यान्विति पर भी निगरानी रखती है। *देखिये* 13वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा) पृ. 8-9 ।

734. निदेश 108(1) ।

735. निदेश 108(2) उदाहरण के लिए *देखिये* दूसरा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-दूसरी लोक सभा), पृ. 24; छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पृ. 20 ।

736. छठा प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा), पृ. 22 ।

737. *एल.एस. डिबेट्स,* (I), 24.2.1955, कॉ. 176, और *एल.एस. डिबेट्स,* (II), 23.11.1954, कॉ. 798-800; *लो.स.वा.वि.,* 14.12.1954, कॉ. 1873; 28.2.1955, कॉ. 496-99; 28.7.1955, कॉ. 368-69, और 21.11.1955, कॉ. 5738-43; 8.12.1961, पृ. 1930-31 ।

सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति

किसी मामले पर विचार करने, कार्यवाही करने अथवा सभा को बाद में सूचना देने के लिए मंत्रियों द्वारा सभा में समय-समय पर विभिन्न आश्वासन वचन और परिवचन दिए जाते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि इन आश्वासनों आदि को उचित समय में क्रियान्वित किया जाए, लोक सभा ने सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति का गठन किया है। सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति भारतीय संसद की अपनी ईजाद है जिसके माध्यम से मंत्रियों द्वारा सभा में समय-समय पर दिए गए वचनों और परिवचनों को पूरा किया जाना सुनिश्चित करने के लिए प्रक्रिया को संस्था का रूप दिया गया है।[738]

समिति में 15 से अधिक सदस्य नहीं होते हैं, और उनका नामनिर्देशन अध्यक्ष करता है। समिति के सभापति की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है। परन्तु यदि उपाध्यक्ष समिति का सदस्य है तो उसे सभापति नियुक्त किया जाता है। नियमों में किसी मंत्री को समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित करने पर मनाही है और यदि कोई सदस्य समिति में नामनिर्देशित होने के पश्चात् मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह ऐसी नियुक्ति की तारीख से समिति का सदस्य नहीं रहता है।[739] समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक नहीं होता है।[740]

> इस समिति का नामनिर्देशन पहली बार अध्यक्ष ने 1 दिसम्बर, 1953 को किया था। उस समय उसमें केवल 6 सदस्य थे। बाद में 13 मई, 1954 को अध्यक्ष ने 9 और सदस्यों को इस समिति के लिए नामनिर्दिष्ट किया।[741] पहली लोक सभा के कार्यकाल में समिति का पुनर्गठन उसके बाद दो बार, 21 मई, 1955 और 13 जून, 1956 को किया गया था। उसके बाद से 15 सदस्यों वाली समिति का पुनर्गठन प्रत्येक वर्ष किया गया है।

कृत्य

समिति उन आश्वासनों, परिवचनों और वचनों की संवीक्षा करती है, जो मंत्री समय-समय पर सभा में प्रश्नों के उत्तर देते समय या विधेयकों, संकल्पों, प्रस्तावों, आदि पर चर्चा के दौरान देते हैं। समिति इस सम्बन्ध में प्रतिवेदन देती है कि ऐसे आश्वासन, आदि का किस सीमा तक परिपालन किया गया है। और जहां आश्वासन का परिपालन हुआ है, वह इस प्रयोजन के लिए न्यूनतम आवश्यक समय के भीतर किया गया है या नहीं।[742]

---

738. इस संबंध में लोक सभा अग्रणी कार्य करने का श्रेय ले सकती है। *देखिए* एम.एन. कौल: *पार्लियामैंट्री प्रोसीजर सिन्स इन्डीपेन्डेन्स; फर्स्ट पार्लियामैन्ट, ए सोविनिअर, उद्धृत कृति,* पृ. 31-32 ।

739. नियम 324 (1) का परन्तुक। उदाहरण के लिए *देखिये* समाचार-भाग 2, 20.2.1978 और 6.11.1980 ।

740. नियम 324 (2) ।

741. एच.पी.अधिसूचना सं. 404/सी-54, 9.1.1954; *राजपत्र, असाधारण, भाग*-I, खंड-I, 13.1.1954 ।

742. नियम 323 ।

समिति ने शब्दावलियों या रूपों की एक मानक सूची अनुमोदित की है, जिन्हें मंत्रियों द्वारा दिए गए आश्वासन, वचन, आदि माना जाता है।[743] शब्दावलियों की यह सूची विशद नहीं है, यह तो समिति के मार्गदर्शन के लिये है। इसमें नयी शब्दावलियों या रूपों को जोड़ने या पुरानी शब्दावलियों या रूपों को हटाने के संबंध में निर्णय समिति द्वारा लिया जाता है।

विभिन्न मंत्रियों की ओर से सभा की कार्यवाही से आश्वासन, आदि छांटने की जिम्मेदारी संसदीय कार्य मंत्रालय पर है। संसदीय कार्य मंत्रालय प्रारंभत: लोक सभा वाद-विवाद की जांच करता है और जिस तारीख से वे वाद-विवाद संबंधित होते हैं उन तारीखों से एक सप्ताह के भीतर आश्वासनों के विवरण लोक सभा सचिवालय के समक्ष प्रस्तुत करता है। लोक सभा सचिवालय भी स्वतंत्र रूप से लोक सभा वाद-विवाद की जांच करता है और उन उत्तरों/विवरणों को चिह्नांकित करता है जिनमें आश्वासन दिए गए होते हैं।[744] बाद में इन दोनों को समेकित करके इस प्रकार छांटे गए आश्वासनों से भारत सरकार को अवगत कराया जाता है। इसी प्रकार, मंत्री के उस उत्तर को, जिसे संसदीय कार्य मंत्रालय ने आश्वासन माना है किंतु जो लोक सभा सचिवालय की राय में आश्वासन नहीं है, लंबित आश्वासनों की सूची में से हटा दिया जाता है और उसे हटा देने के लिए उसकी सूचना संबंधित मंत्रालय तथा संसदीय कार्य मंत्रालय को दे दी जाती है।

यदि कोई मंत्रालय या विभाग यह अभ्यावेदन दे कि मंत्री के किसी वक्तव्य विशेष को आश्वासन न माना जाये और यदि समिति या उसका सभापति ऐसे अभ्यावेदन को स्वीकार करने में असमर्थता महसूस करे, तो समिति यह विनिश्चय करने से पूर्व कि आश्वासन को छोड़ दिया जाये या उसके परिपालन के संबंध में आगे कार्यवाही की जाये उस मंत्रालय या विभाग के प्रतिनिधि की बात सुन सकती है जिसका संबंध आश्वासन के विषय से हो।

जहां आवश्यक हो, समिति या उसका सभापति, किसी मामले पर मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये उसे अध्यक्ष के पास भेज सकता है।

आश्वासनों का कार्यान्वयन

सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति ने किसी आश्वासन को पूरा करने के लिए तीन महीने की अवधि निर्धारित की है। इसकी गणना उस तारीख से की जाती है जिस तारीख को सभा में आश्वासन दिया गया हो।[745] परन्तु यदि सरकार निर्धारित अवधि के भीतर आश्वासन

---

743. *देखिए* पहला प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 11 ।

744. *देखिए* तीसरा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पृ. 2; पहला प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पृ. 2 ।

745. अप्रैल, 1968 से पहले किसी आश्वासन को पूरा करने लिए अनुमत्य अवधि दो माह थी। अप्रैल, 1968 में सरकार ने समिति से अभ्यावेदन किया कि वह इस अवधि को बढ़ाकर छह माह कर दे। समिति ने सरकार की इस दलील से सहमत न होते हुए आश्वासनों को शीघ्र पूरा किये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया और वह प्रायोगिक आधार पर इस अवधि को बढ़ाकर तीन माह करने पर सहमत हुई। नवम्बर, 1969 में इस मामले पर पुनर्विचार किया गया और समिति ने आश्वासनों को पूरा करने के लिए तीन महीने की अवधि की पुष्टि कर दी।

को पूरा करने में वस्तुत: कोई कठिनाई अनुभव करती है, तो संबंधित मंत्रालय समिति से उतना समय बढ़ाये जाने का अनुरोध कर सकता है जितना वह आश्वासन पूरा करने के लिए न्यूनतम समझता है।[746] सामान्यत: समिति ऐसे अनुरोध को स्वीकार कर लेती है और तभी अस्वीकार करती है जब वह उसे निरर्थक समझती है।

समिति द्वारा लिए गए एक निर्णय के अनुसार आश्वासनों को क, ख और ग तीन श्रेणियों में बांटा जाता है। श्रेणी 'क' में केवल संघ सूची के विषयों से संबंधित आश्वासन आते हैं। जिनको पूरा करने के लिए केवल संघ सरकार द्वारा ही कार्यवाही की जानी होती है अथवा जानकारी एकत्रित की जानी होती है। श्रेणी 'ख' में वे आश्वासन आते हैं जो उन विषयों से सम्बन्धित हैं जो समवर्ती सूची के अन्तर्गत आते हैं, और इन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक जानकारी कुछ संघ सरकार से और कुछ राज्य सरकार से संबंधित होती है। श्रेणी 'ग' में ऐसे आश्वासन आते हैं जिनका संबंध ऐसे मामलों से होता है जो पूर्णत: राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार में आते हैं और जिनको पूरा करने के लिए राज्य सरकार/राज्य सरकारों द्वारा कार्यवाही की जानी अथवा जानकारी दी जानी होती है तथा केन्द्रीय सरकार का कार्य तो केवल इसे सभा के समक्ष रखना होता है। समिति आशा करती है कि श्रेणी 'क' के आश्वासनों को तीन महीने के भीतर पूरा किया जाना चाहिए। श्रेणी 'ख' के आश्वासनों के संबंध में यदि राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली जानकारी प्राप्त नहीं हुई हो, तो तीन महीने के पश्चात् एक अथवा इससे अधिक बार समय बढ़ाया जा सकता है। श्रेणी 'ग' के आश्वासनों के मामले में, समिति क्रियान्वयन के लिए निर्धारित अवधि में और अधिक उदारता से समय बढ़ा सकती है, क्योंकि केन्द्रीय सरकार इस संबंध में पूर्णत: राज्य सरकार पर निर्भर होती है।[747]

तथापि, समिति के इस निर्णय को आश्वासनों के श्रेणीकरण की व्यावहारिक कठिनाइयों को देखते हुए व्यावहारिक रूप से लागू नहीं किया गया है। लेकिन लंबित आवश्वासनों के कार्यान्वयन की दृष्टि से सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति (2009-10) ने लंबित आश्वासनों की समीक्षा और साथ ही सरकार द्वारा कार्यान्वित आश्वासनों की गुणवत्ता और उनके लंबित रहने के कारणों को देखने के लिए भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के प्रतिनिधियों को चरणबद्ध रीति से बुलाने का नीतिगत निर्णय लिया। समीक्षा के दौरान समिति यह भी सुनिश्चित करती है कि भारत सरकार के संबंधित मंत्रालय/विभाग आश्वासनों को पूरी तरह अथवा संतोषप्रद रूप से लागू करें।

इसी प्रकार, यदि किन्हीं मान्य कारणों से सरकार यह पाती है कि सभा में दिए गए किसी आश्वासन का पूरा करना व्यवहार्य नहीं है, तो सरकार को इसके लिए समिति से

---

746. *देखिए* 7वां प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-चौथी लोक सभा), पैरा 6 ।,

747. छठे प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-सातवीं लोक सभा) के साथ संलग्न कार्यवाही सारांश (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति), 11.1.1983 तथा चौथा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-दसवीं लोक सभा), पैरा 1-9 ।

अनुरोध करना पड़ता है और उसके विचारार्थ तथ्य प्रस्तुत करने होते हैं। यदि समिति इस बात से सहमत हो जाती है कि आश्वासन को पूरा करना संभव नहीं है, तो वह सभा में प्रस्तुत किए जाने वाले अपने प्रतिवेदन में आश्वासन को छोड़ देने की सिफारिश कर सकती है। एक अवसर पर समिति संबंधित मंत्रालय की इस बात से सहमत हो गई थी कि पहले दिए गए आश्वासन को पूरा करना गोपनीयता अथवा जनहित के आधार पर वांछनीय नहीं है।[748] समिति का कार्य सतत् प्रकृति का है और सामान्यतः यह होता रहा है कि उसके कार्यकाल की समाप्ति पर अपूर्ण रह गए कार्य को उसके पश्चात् गठित नई समिति वहीं से शुरू करती है, जहां उसे पूर्ववर्ती समिति ने छोड़ा था। लोक सभा के विघटन पर आश्वासन व्यपगत नहीं होते। नई लोक सभा के गठन के पश्चात् नियुक्त पहली समिति लम्बित आश्वासनों की जांच करती है और केवल उन्हीं आश्वासनों को छोड़ती है जो समय बीत जाने के कारण अपना लोक महत्व और उपयोगिता खो चुके होते हैं। शेष आश्वासनों के लिए समिति प्रयास करती है कि उन्हें पूरा किया जाये।[749]

सभा पटल पर समय-समय पर[750] ऐसे विवरण रखे जाते हैं। जिनमें यह दर्शाया जाता है कि सभा में मंत्रियों द्वारा दिए गए आश्वासनों आदि को पूरा करने के संबंध में सरकार ने क्या कार्यवाही की है। जब समिति ने यह देखा कि लम्बित आश्वासनों को निपटाने के मामले में स्थिति काफी बिगड़ गयी है और यह कि जिन आश्वासनों को पूरा नहीं किया जाता है उनका महत्त्व समय बीत जाने के कारण कम हो जाता है, तो समिति ने अपने नियम में यह परिवर्तन कर दिया कि आश्वासनों को पूरा करने में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही को दर्शाने वाले विवरण संबंधित मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखे जायें। प्रक्रिया में यह परिवर्तन लाने का उद्देश्य यह था कि जो मंत्रालय कार्यवाही करने में विलम्ब करते हैं, उन्हें सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया जाये[751] इस प्रकार ऐसी चूकों की जिम्मेदारी उन पर डाली

---

748. तीसरा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-पहली लोक सभा), पैरा 7 ।

749. पहला प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-दसवीं लोक सभा), पैरा 6-10 ।

750. नियम 323 । संबंधित मंत्री द्वारा संसदीय कार्य मंत्री को जानकारी भेजे जाने और संसदीय कार्य मंत्री द्वारा उसे सभा पटल पर रखे जाने में सदैव समय का अन्तराल होता है। कार्यवाही सारांश (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति), 5.11.1965 ।

यदि कोई सदस्य सभा पटल पर रखे गए विवरण में बताए गए कारणों से संतुष्ट नहीं है, अथवा यह समझता हो कि दिया गया उत्तर पर्याप्त नहीं है तो सभा में प्रश्न पूछे जा सकते हैं। *लो.स.वा.वि.*, 26.8.1974, पृ. 122 और 27.8.1974, पृ. 85-86 ।

751. सभा में अगस्त-सितम्बर और नवम्बर-दिसम्बर, 1965 के सत्रों के दौरान पूछे गये प्रश्नों से यह और पता चला कि संसदीय कार्य मंत्री के लिए सदैव यह सम्भव नहीं होता कि जब भी सभा में लम्बित आश्वासनों के संबंध में विशिष्ट रूप से पूछा जाए तो वह उन आश्वासनों के बारे में स्थिति स्पष्ट कर सके -*लो.स.वा.वि.*, 23.9.1965, पृ. 2813-14; 24.9.1965, पृ. 2900-01; 10.11.1965, पृ. 428-29; 1.12.1965, पृ. 1862-64; 9.12.1965, पृ. 2488-89 ।

जाये।[752] तथापि, अभी तक संशोधित नियम लागू किया गया है, क्योंकि संसदीय कार्य मंत्री ने विभिन्न मंत्रियों द्वारा आश्वासनों को पूरा करने का काम तेजी से करवाने की जिम्मेदारी ली है।

इसके अलावा, सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति (2009-10) द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार संबंधित मंत्रालय/विभाग के प्रतिनिधियों के मौखिक साक्ष्य किए जाते हैं ताकि लंबित आश्वासनों का निपटान शीघ्र किया जा सके। किसी मंत्रालय विशेष के प्रतिनिधियों के मौखिक साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति प्रतिवेदनों को लोक सभा के समक्ष प्रस्तुत करती है। संसदीय कार्य मंत्रालय को भी समय-समय पर निदेश दिया जाता है कि विभिन्न मंत्रालयों/विभागों को कहे कि संसदीय कार्य मंत्रालय द्वारा इस संबंध में जारी अनुदेशों/दिशानिर्देशों का कठोरता से अनुपालन करें। समिति यह भी निर्देश देती है कि संबंधित मंत्रालय/विभाग अपने तंत्र की समीक्षा करें और सुनिश्चित करें कि आश्वासन विदित समय में पूरे किए जाएं और इस संबंध में जारी अनुदेशों का सभी संबंधितों द्वारा ध्यानपूर्वक अनुपालन किया जाए।[753]

सभा पटल पर रखे गये विवरणों की जांच सचिवालय द्वारा की जाती है। जिन आश्वासनों के संबंध में ऐसा प्रतीत हो कि उनको पूरी तरह या संतोषजनक ढंग से पूरा नहीं किया गया है, या जहां आश्वासन के स्वरूप को देखते हुए उसे पूरा करने में अनावश्यक विलम्ब हुआ हो तो उन्हें समिति के समक्ष उसके विचारार्थ रखा जाता है।

अध्ययन दौरे

यदि लंबित आश्वासनों अथवा आश्वासनों के परिचालन के बारे में सभा पटल पर रखे गये किसी विवरण की जांच के दौरान समिति यह महसूस करती है कि किसी आश्वासन के परिपालन में विलम्ब के कारणों की प्राथमिक जानकारी प्राप्त करने अथवा यह पता लगाने के लिए कि अश्वासन का न्यूनतम उचित अवधि के भीतर पर्याप्त रूप से परिपालन किया गया है अथवा नहीं, तत्स्थानिक अध्ययन दौरा करना आवश्यक है, तो समिति अध्यक्ष की स्वीकृति से दौरा कर सकती है। ऐसे अध्ययन दौरों के टिप्पण सचिवालय द्वारा तैयार किये जाते हैं और सभापति द्वारा अनुमोदित किए जाते हैं तथा अध्यक्ष के अनुमोदन से, उन्हें समिति के सभी सदस्यों में परिचालित किया जाता है।

यद्यपि सभा पटल पर विवरण संसदीय कार्य मंत्री ने रखा, किन्तु किसी विशेष आश्वासन की क्रियान्विति में विलम्ब के बारे में आलोचना और उस विषय के गुणावगुण संबंधी प्रश्नों का उत्तर संबंधित मंत्री को देना पड़ा। *देखिए* चौथा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति-तीसरी लोक सभा), पैरा 13-15 ।

752. कार्यवाही-सारांश (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति), 5.11.1965 और 8.12.1965 ।

753. सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति का पांचवां प्रतिवेदन (पंद्रहवीं लोक सभा) 5.5.2010 को लोकसभा को प्रस्तुत किया गया।

साक्ष्य

समिति यदि आवश्यक समझती हो तो कतिपय आश्वासनों के परिपालन में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही के संबंध में संबंधित मंत्रालयों के अधिकारियों को अपने समक्ष साक्ष्य देने के लिए बुला सकती है।[754] समिति का सभापति उपयुक्त मामले में किसी मंत्रालय के सचिव या किसी विभाग अथवा सरकारी उपक्रम के प्रमुख को भी बुला सकता है ताकि वह बहुत अधिक समय से लम्बित पड़े आश्वासनों के परिपालन में हुए विलम्ब के कारणों को व्यक्तिगत तौर पर स्पष्ट कर सके।

प्रतिवेदन तैयार और प्रस्तुत किया जाना

आश्वासनों के परिपालन के लिये सरकार द्वारा की गई कार्यवाही की जांच करने के बाद और यह देखने के बाद कि वास्तव में आश्वासनों का किस सीमा तक परिपालन हुआ है और यह परिपालन इस प्रयोजन के लिए आवश्यक समय के भीतर हुआ है या नहीं, समिति प्रतिवेदन में शामिल करने के लिए अपने निष्कर्ष तथा सिफारिशें तैयार करती है। इन निष्कर्षों तथा सिफारिशों के आधार पर सचिवालय प्रारूप प्रतिवेदन तैयार करता है। सभापति के अनुमोदन के बाद प्रतिवेदन समिति के सदस्यों में परिचालित किया जाता है और उस पर इस उद्देश्य के लिए होने वाली बैठक में विचार किया जाता है।

जब समिति प्रतिवेदन का अनुमोदन कर चुकी होती है, तो सभापति अथवा उसकी अनुपस्थिति में सभापति द्वारा सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिये प्राधिकृत समिति का कोई अन्य सदस्य, सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। परिपाटी यह है कि समिति के प्रतिवेदन पर सभा में चर्चा नहीं की जाती। समिति के निर्णय सर्वसम्मत होते हैं और प्रतिवेदन में कोई विमत टिप्पण नहीं दिया जाता।[755]

कार्यवाही-सारांश का सभा पटल पर रखा जाना

समिति की बैठकों के कार्यवाही-सारांश प्रायः उस प्रतिवेदन का भाग बन जाते हैं जो सभा में प्रस्तुत किया जाता है। समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश पृथक रूप से सभा पटल पर नहीं रखे जाते हैं।

सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति

संविधान में यह उपबन्ध किया गया है कि यदि सभा का कोई सदस्य सभा की अनुमति के बिना साठ दिन की अवधि तक उसकी सभी बैठकों से अनुपस्थित रहे तो सभा उसके

754. उदाहरण के लिए *देखिए* दूसरा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 20 तथा तीसरा प्रतिवेदन (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 5; और तीसरा प्रतिवेदन, (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति—आठवीं लोक सभा), पैरा 7, 10वां प्रतिवेदन, (सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति—आठवीं लोक सभा), पैरा 5 ।

755. निदेश 68(3) ।

स्थान को रिक्त घोषित कर सकती है।[756] तद्नुसार, नियमों में एक उपबन्ध किया गया है जिसमें सदस्य द्वारा जब अनुपस्थित रहना आवश्यक हो जाता है, अनुपस्थित रहने के लिए सभा से अनुमति मांगने का तरीका निर्धारित किया गया है और यथावश्यक स्थान रिक्त करने के लिए भी उपबंध किया गया है। सदस्यों की अनुपस्थिति की अनुमति के प्रार्थना-पत्रों और तत्संबंधी विषयों पर विचार करने के लिए सभा द्वारा एक समिति बनाई गई है जिसे 'सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति' कहा जाता है।

समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनका नामनिर्देशन अध्यक्ष करता है और इस समिति की पदावधि एक वर्ष से अधिक नहीं होती।[757]

समिति का गठन प्रत्येक लोक सभा के प्रारंभ में किया जाता है और उसके बाद प्रत्येक वर्ष के मई या जून मास में उसका पुनर्गठन किया जाता है।

> 12 मार्च, 1954 में इस समिति का पहली बार गठन किया गया था, उससे पहले सदस्यों से बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगने के जो प्रार्थना-पत्र प्राप्त होते थे, उन पर सभा विचार करती थी। कोई प्रार्थना-पत्र आने पर अध्यक्ष उसे सभा में पढ़कर सुनाता था और उसके संबंध में सभा की राय ली जाती थी।
>
> अनुमति देने की प्रक्रिया पर नियम समिति ने पुन: विचार किया। समिति ने देखा कि अनुपस्थित सदस्यों की संख्या बढ़ती जा रही है और इसलिए सभा के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह सीधे ऐसे मामलों पर विचार और निर्णय करे, इसलिए नियम समिति ने यह सिफारिश की कि सभा को एक समिति नियुक्त करनी चाहिए, जो पहले उन प्रार्थना-पत्रों की जांच करे और उसके बाद सभा इस प्रस्तावित समिति द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदन पर विचार करे।[758]

कृत्य

समिति के कृत्य निम्नलिखित हैं:[759]

> सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहने की अनुमति के लिए सदस्यों से प्राप्त सभी प्रार्थना-पत्रों पर विचार करना; और
>
> ऐसे प्रत्येक मामलों की छानबीन करना, जिसमें कोई सदस्य बिना अनुमति के सभा की बैठकों से 60 दिन या अधिक कालावधि तक लगातार अनुपस्थित रहा हो और यह प्रतिवेदित करना कि अनुपस्थिति माफ की जानी चाहिए या नहीं अथवा मामले की परिस्थितियों को देखते हुए यह उचित है कि सभा को उस सदस्य का स्थान रिक्त घोषित

---

756. अनुच्छेद 101(4) ।

757. नियम 325 ।

758. कार्यवाही-सारांश (नियम समिति) 17.12.1953, पृ. 2 ।

759. नियम 326 । तथापि, समिति ऐसे प्रार्थना-पत्रों पर विचार नहीं करती जिसमें 15 दिन से कम अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति मांगी गई हो—7वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा)।

कर देना चाहिए।[760]

इसके अतिरिक्त, समिति सभा में सदस्यों की उपस्थिति के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करती है, जो समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा उसे सौंपे जायें।[761]

जब कोई सदस्य बिना अनुमति लिए, सभा की बैठकों से लगातार 40 दिन की अवधि तक अनुपस्थित रहता है, तो सचिवालय उसे एक पत्र भेजता है, जिसमें उसका ध्यान संविधान तथा प्रक्रिया नियमों के संगत उपबंधों की ओर दिलाया जाता है और उसे सलाह दी जाती है कि वह समय रहते, अनुपस्थिति की अनुमति के लिए प्रार्थना-पत्र दे दे। जब उसकी लगातार अनुपस्थिति 50 दिन की हो जाती है तो उसे एक स्मरण पत्र भेजा जाता है।[762] उसका उत्तर आने पर या यदि उपयुक्त समय के भीतर कोई उत्तर न आये, तो इस मामले पर समिति विचार करती है।

> पहले यह प्रथा थी कि सदस्य को तभी चिट्‌ठी लिखी जाती थी, जब वह लगातार 60 दिन से अधिक अवधि तक अनुपस्थित रहता था। बाद में, यह महसूस किया गया कि यदि अनुपस्थिति का प्रार्थना-पत्र समय पर नहीं दिया जाता, तो कुछ जटिलताएं उत्पन्न हो

---

760. एक सदस्य, जो सभा की अनुमति के बिना सभा की बैठकों से लम्बी अवधि के लिए अनुपस्थित रहा, का स्थान सभा में एक प्रस्तुत और स्वीकृत किये जाने पर, रिक्त घोषित किया गया—18वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा) तथा *लो.स.वा.वि.* (II), 5.12.1956, पृ. 726-29 ।

761. एक सदस्य द्वारा उठाए गए निम्नलिखित मुद्‌दों को अध्यक्ष ने समिति को जांच के लिए सौंपा: कोई सदस्य जितनी अवधि की अनुपस्थिति की अनुमति मांगता है, उसे पूरी अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति देने के बजाय पहली बार केवल 59 दिन की अनुपस्थिति की अनुमति देने का क्या उद्‌देश्य है और उसे पूरी अवधि के लिए अनुमति क्यों नहीं दी जाती; और अनुभव की गई परिवहन संबंधी कठिनाइयों का स्वरूप, जो एक सदस्य ने अपने प्रार्थना-पत्र में अनुपस्थिति की अनुमति के लिए कारण के रूप में बताया था—*लो.स.वा.वि.* (II) 29.9.1955; और कार्यवाही सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा), 13.12.1955 ।

    एक अन्य अवसर पर अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि निम्नलिखित मुद्‌दे समिति के विचार के लिए और उस संबंध में प्रतिवेदन देने के लिए भेजे जायें:

    'कि क्या जो सदस्य लोक सभा की बैठक के पहले घंटे में भाग नहीं लेते उन्हें सारे दिन के लिए अनुपस्थित माना जाये।'

    समिति ने 29 मई, 1956 को इस प्रश्न पर विचार किया और इसके संबंध में अध्यक्ष को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

762. कार्यवाही-सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति), 15.3.1956, पैरा 4 और 5; 13वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 16, कार्यवाही-सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा) 24.3.1975, 11.4.1975 और 25.7.1975 ।

सकती हैं और समिति के लिए यह कठिनाई आ सकती है कि ऐसे मामलों में, जहां अनुपस्थित रहने की अनुमति का प्रार्थना-पत्र लगातार 60 दिन की अनुपस्थिति समाप्त होने के बाद प्राप्त हुआ हो, वहां अनुपस्थिति को माफ करने की सिफारिश कैसे करें।[763]

सामान्यतः समिति यह सिफारिश करती है कि अनुमति दे दी जाये या अनुपस्थिति क्षमा कर दी जाये। परन्तु जहां कोई सदस्य सभा की अवहेलना करते हुए उसकी बैठकों से 60 दिन या अधिक अवधि तक लगातार अनुपस्थित रहने के बाद, कोई संतोषजनक कारण नहीं देता, तब समिति यह सिफारिश करती है कि उसकी अनुपस्थिति को माफ न किया जाये और सभा उसका स्थान रिक्त घोषित कर दे।[764] ऐसा प्रतिवेदन सभा में तभी पेश किया जाता है, जब अध्यक्ष और सभा के नेता ने समिति की सिफारिश से सहमति प्रकट कर दी हो। जब कभी सदस्यों ने कुछ ऐसे बाहरी कारणों, जो उनके नियंत्रण से बाहर हैं, से अनुपस्थिति की अनुमति के लिए प्रार्थना-पत्र दिए हैं, तो समिति ने ऐसे मामलों की ओर अध्यक्ष तथा सम्बद्ध मंत्रालय का ध्यान आकृष्ट किया है।[765]

समिति की कार्यवाही

सभा की बैठकों से अनुपस्थिति की अनुमति के संबंध में सदस्यों से प्राप्त सभी

---

763. पहला प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा)।

764. नियम, 241; साथ ही *देखिए,* 18वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा), पैरा 9(9)। जहां समिति ने अनुपस्थिति के कारणों को संतोषजनक माना है, वहां 60 दिन से अधिक अवधि की अनुपस्थिति को भी क्षमा करने की सिफारिश की गई है—*देखिए* तीसरा, 7वां और 13वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा) और 20वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा)।

765. एक सदस्य, जिसने अनुपस्थित रहने की अनुमति का प्रार्थना-पत्र इसलिए दिया कि उसे पोर्टब्लेयर से जहाज में स्थान लेने में कठिनाई हुई थी, को अनुमति प्रदान करने की सिफारिश करते हुए समिति ने यह सुझाव दिया था कि इस संबंध में उस सदस्य को यह शिकायत काफी अरसे से है, अतः इस बात को ध्यान में रखते हुए सम्बद्ध मंत्रालय का ध्यान इस विषय की ओर दिलाना चाहिए—कार्यवाही-सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति) 30.11.1954 ।

एक अन्य मामले में एक सदस्य, जो जेल में था, ने इस आधार पर अनुमति मांगी कि उसने अपने विरुद्ध चलाये गये मामलों में जो अपील दायर की थी, उनकी सुनवाई अभी नहीं हुई है। समिति ने अनुमति देने की सिफारिश की और अन्य बातों के साथ-साथ यह भी सुझाव दिया कि इस मामले की ओर अध्यक्ष का ध्यान दिलाया जाये क्योंकि उसकी अपीलें बहुत लम्बे समय से लम्बित थीं और उनकी सुनवाई नहीं हुई थी—कार्यवाही-सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति), 11.3.1955 ।

प्रार्थना-पत्र सचिवालय द्वारा प्रारम्भिक जांच के बाद समिति के सामने रखे जाते हैं।[766] वे प्रार्थना-पत्र समिति के सामने नहीं रखे जाते, जिनमें 15 दिन से कम समय की अनुपस्थिति की अनुमति मांगी गयी हो।[767]

सामान्यत: समिति में चर्चा मुख्य रूप से उस ज्ञापन पर होती है, जिसमें अनुपस्थिति की अनुमति के उन सभी प्रार्थना-पत्रों का ब्यौरा रहता है, जिन पर समिति को विचार करना होता है।[768] प्रत्येक प्रार्थना-पत्र पर उसके गुण-दोषों के आधार पर विचार किया जाता है।[769] समिति विशेष रूप से यह देखती है कि कोई सदस्य जितनी अवधि के लिए अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगता है, वह 60 दिन से अधिक न हो और वह अपनी अनुपस्थिति के जो कारण बताये, वे अस्पष्ट न हों।[770]

समिति किसी सदस्य को एक बार में 59 दिन से अधिक दिन की अनुपस्थिति की अनुमति देने की सिफारिश नहीं करती, भले ही उसने अधिक लम्बे समय के लिए अनुमति मांगी हो।[771] ऐसे मामले में समिति संबंधित सदस्य को यह परामर्श देती है कि वह बाकी के समय के लिए फिर से प्रार्थना-पत्र दे।[772] परन्तु ऐसे सदस्य की दशा में, जो 60 दिन तक लगातार अनुपस्थित रहने के बाद अनुपस्थिति की अनुमति का प्रार्थना-पत्र देता है, उसके प्रार्थना-पत्र की तिथि तक की अवधि की अनुपस्थिति को माफ करने की सिफारिश की जाती है और प्रार्थना पत्र की तिथि के बाद की अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति दिये जाने

---

766. नियम 243 । जैसा कि पहले बताया गया है, 1954 में इस समिति के गठन से पहले अनुपस्थिति की अनुमति का प्रत्येक प्रार्थना-पत्र अध्यक्ष द्वारा सभा में पढ़कर सुनाया जाता था।

767. 7वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा) में अंतर्विष्ट सिफारिश, जिसे सभा ने 23.12.1954 को स्वीकार किया।

768. ज्ञापन में जो ब्यौरा दिया जाता है, उसमें सदस्य का नाम, प्रार्थना-पत्र की तिथि, वह अवधि जिसके लिए अनुपस्थिति की अनुमति मांगी गई हो, अनुपस्थिति की कुल अवधि और उसके कारण शामिल होते हैं।

769. पहला प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा)।

770. चौथा प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा)।

771. यह सिद्धान्त नियम 242 के परन्तुक और समिति के इस निर्णय कि 60 दिन से अधिक की अवधि के लिए छुट्टी न मांगी जाए—से उत्पन्न होता है—*देखिए* पहला प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा)।

772. 20वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा); 9वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—दूसरी लोक सभा); साथ ही *देखिए* कार्यवाही-सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति), 26.7.1965।

की सिफारिश की जाती है।[773]

जो सदस्य बीमारी के कारण अनुपस्थित रहने की अनुमति मांगे, उसके संबंध में समिति इस बात पर आग्रह नहीं करती कि वह सदस्य चिकित्सा का प्रमाण-पत्र पेश करे।[774]

प्रत्येक प्रार्थना-पत्र के संबंध में समिति की सिफारिश प्रतिवेदन का भाग बनती है, जिसे समिति की बैठक के एक या दो दिन के अन्दर सभा में प्रस्तुत किया जाता है।[775]

कार्यवाही-सारांश

कार्यवाही-सारांश में समिति द्वारा विचार किए गए अनुपस्थिति की अनुमति के प्रार्थना-पत्रों पर समिति के निर्णय होते हैं। यदि समिति ने अपनी प्रक्रिया के संबंध में कोई टिप्पणी की हो, तो उसे भी कार्यवाही-सारांश में शामिल कर लिया जाता है।[776] जिन मामलों में समिति ऐसा करना चाहे, कार्यवाही-सारांश के उद्धरण उस सदस्य को भेज दिये जाते हैं, जिसकी अनुपस्थिति की अनुमति के प्रार्थना-पत्र पर समिति ने विचार किया हो।

सभा के सत्र के दौरान समिति की जो बैठकें होती हैं, उनके कार्यवाही सारांश सत्र के अंत में सभापटल पर रखे जाते हैं।

प्रतिवेदन का स्वरूप और विषय-वस्तु

समिति के प्रतिवेदन में साधारणतः अनुपस्थित रहने की अनुमति के प्रार्थना-पत्र के संबंध में सिफारिशें होती हैं और अनुपस्थिति की अवधि का ब्यौरा तथा उसके कारण बताये जाते हैं और यदि समिति ने अन्य विषयों पर विचार किया हो, तो उनके संबंध मे समिति की सिफारिशें तथा निर्णय होते हैं।

जब समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत कर दिया जाता है[777] तो उसके समान्यतः दो दिन बाद अध्यक्ष समिति की सिफारिशों के संबंध में सभा की राय मालूम करता है जिससे कि सदस्य प्रतिवेदन में ऐसे किसी मुद्दे के बारे में सूचना दे सकें जो वे प्रतिवेदन के संबंध में उठाना चाहते हों। इस संबंध में कार्य-सूची में प्रविष्टि की जाती है।

---

773. 7वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा); साथ ही *देखिए* पीछे पृ. 379 ।

774. कार्यवाही-सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति), 26.7.1957; 17वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा); *लो.स.वा.वि.*, 3.12.1974 ।

775. पहला प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा) ।

776. कार्यवाही-सारांश (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति), 30.8.1958 ।

777. सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् विस्तृत प्रक्रिया जानने के लिए, *देखिए* अध्याय-16 सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति ।

जहां समिति ने किसी प्रार्थना-पत्र के संबंध में अनुपस्थिति की अनुमति की सिफारिश न की हो, वहां कोई भी सदस्य यह प्रस्ताव रख सकता है कि सभा उस प्रार्थना-पत्र के संबंध में समिति की सिफारिशों से सहमत है या संशोधनों सहित सहमत है, या असहमत है।[778]

जब समिति के प्रतिवेदन में केवल सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति देने या उनकी अनुपस्थिति को माफ कर देने के बारे में सिफारिशें हों, तो उस प्रतिवेदन को सभा में प्रस्ताव द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता, बल्कि अध्यक्ष समिति की सिफारिशों के संबंध में सभा की राय जान लेता है। परन्तु जहां किसी प्रतिवेदन में अन्य मामलों के संबंध में भी सिफारिशें हों तो उनकी स्वीकृति के लिए सभा में प्रस्ताव लाया जाता है।[779]

एक ऐसे प्रतिवेदन को, जिसमें केवल सदस्यों को अनुपस्थिति की अनुमति दिये जाने के कारणों पर ही विचार किया गया था, सभा में प्रस्ताव लाकर स्वीकार कर लिया गया था।[780]

नियम समिति

नियम समिति के सदस्यों का नामनिर्देशन अध्यक्ष करता है और उसके 15 सदस्य होते हैं जिनमें अध्यक्ष भी सम्मिलित है। अध्यक्ष इस समिति का *पदेन* सभापति होता है।[781] नियम समिति के सदस्यों का नामनिर्देशन करते समय सभा के सभी प्रमुख दलों/समूहों को समिति में प्रतिनिधित्व देने का प्रयास किया जाता है। तीसरी लोक सभा तक उपाध्यक्ष को नियम समिति के एक सदस्य के रूप में नामनिर्देशित करना एक सामान्य प्रथा थी। चौथी लोक सभा (28 मार्च, 1967 से 1 नवम्बर, 1969 तक) के दौरान यद्यपि उपाध्यक्ष सत्ताधारी दल से सम्बद्ध था तथापि उसे नियम समिति के लिए नामनिर्देशित किया गया था। दिनांक 9 दिसम्बर, 1969 को लोक सभा में विपक्षी दल/समूह के सदस्य के उपाध्यक्ष चुने जाने पर उपाध्यक्ष को नियम समिति में नामनिर्देशित करने की प्रथा को समाप्त कर दिया गया। वर्ष 1977 से

---

778. नियम 328 ।

779. उदाहरण के लिए चौथा प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पहली लोक सभा) में यह विशेष सिफारिश की गई थी कि भविष्य में तब तक अनुपस्थिति की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जब तक समिति प्रार्थना-पत्र में बताये गये कारणों पर विचार कर यह तय न कर ले कि वह उचित है। सभा में इस प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया गया था—*लो.स.वा.वि.* (II), 20.9.1954, कॉ. 1863-64, इसी समिति के सातवें प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया गया था कि 15 दिन से कम अवधि के लिए अनुपस्थिति की अनुमति संबंधी प्रार्थना-पत्र समिति के समक्ष रखने की आवश्यकता नहीं है। सभा ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया था—*लो.स.वा.वि.* (II), 23.12.1954, कॉ. 2568-71 ।

780. 17वां प्रतिवेदन (सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति—पांचवीं लोक सभा) को लोक सभा ने 3 दिसम्बर, 1974 को स्वीकार किया।

781. नियम 330 ।

उपाध्यक्ष को नियम समिति की बैठकों में एक विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जाता है।

समिति के सदस्यों के अतिरिक्त, सभा के अन्य सदस्यों को भी समिति की विशेष बैठकों में भाग लेने का निमंत्रण दिया जा सकता है, ताकि या तो सभा के ऐसे वर्ग को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा सके, जिसका प्रतिनिधि पहले से ही समिति में न हो,[782] या समिति को उसके विचाराधीन किसी विषय के संबंध में उनके विचारों से अवगत कराया जा सके जिसके बारे में उन्हें विशेष ज्ञान या रुचि हो। समिति ने जटिल कानूनी और संवैधानिक प्रश्नों से संबंधित मामलों के संबंध में महान्यायवादी को भी राय देने के लिए आमंत्रित किया है।[783] नियमों में संशोधन या परिवर्धन करने के संबंध में किसी सदस्य और/अथवा मंत्री द्वारा दिए गये प्रस्तावों पर विचार करते समय सम्बद्ध सदस्य और/अथवा मंत्री को समिति के सम्मुख अपने दृष्टिकोण पर प्रकाश डालने हेतु आमंत्रित भी किया जा सकता है, जैसा कि अन्य समितियों में होता है, इस प्रकार आमंत्रित व्यक्तियों को समिति में मत देने का अधिकार नहीं होता है।

कृत्य

समिति का काम सभा के प्रक्रिया तथा उसके कार्य-संचालन के विषयों पर विचार करना और नियमों में आवश्यक संशोधन या परिवर्धन करने की सिफारिश करना है।[784] नियमों में संशोधन या परिवर्धन करने का सुझाव सभा के किसी भी सदस्य द्वारा दिया जा सकता है, और मंत्री[785] भी ऐसे सुझाव दे सकते हैं। समिति स्वयं भी ऐसे संशोधन या परिवर्धन का सुझाव

---

782. नियम 330, 29.4.1958 । परवर्ती लोक सभा के दौरान हुई बैठकों के कार्यवाही सारांश भी *देखिए*। चूंकि कांग्रेस (ओ.) का नियम समिति (1971-72) में प्रतिनिधित्व नहीं था, इसलिए उस ग्रुप से श्री एस.एन. मिश्र को नियम समिति की सभी बैठकों में विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जाता था। छठी लोक सभा के दौरान उपाध्यक्ष के अतिरिक्त, सभा के दलों/ग्रुपों के नेताओं तथा नियमों में संशोधन के लिए सूचना देने वाले सदस्यों को भी समिति की बैठकों में आमंत्रित किया जाता था।

783. *पूर्वोक्त,* 17.4.1956, पैरा 4 ।

784. नियम 329 ।

785. कार्यवाही-सारांश (नियम समिति) 31.8.1957, पैरा 5; छठी लोक सभा के दौरान लोक सभा अध्यक्ष ने सभी दलों और ग्रुपों के नेताओं को एक अर्द्धशासकीय पत्र भेजा था जिसमें विभिन्न नियमों के कार्यकरण के संबंध में उनके सुझाव/टिप्पणियां आमंत्रित किये गये थे। समाचार-भाग 2 में भी एक पैरा जारी किया गया था जिसके द्वारा विभिन्न नियमों के कार्यकरण के संबंध में सभा के सदस्यों से टिप्पणियां/सुझाव आमंत्रित किए गए थे। सदस्यों ने अनेक सुझाव दिये थे तथा नियम समिति ने उन पर विचार किया था और विचार करने के पश्चात् नियम समिति ने प्रश्न काल, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव इत्यादि संबंधी प्रक्रिया में कतिपय परिवर्तन करने का सुझाव दिया। तथापि, समिति ने किसी भी नियम में औपचारिक रूप से संशोधन की सिफारिश नहीं की थी।

दे सकती है।[786]

नियमों में संशोधन तथा परिवर्धन के सभी प्रस्तावों पर पहले सचिवालय विचार करता है और उसके बाद सभापति के अनुमोदन से उन्हें समिति के सम्मुख ज्ञापनों के रूप में रखा जाता है। उन ज्ञापनों में प्रत्येक प्रस्ताव के निहितार्थों को स्पष्ट रूप से बताया जाता है। ये ज्ञापन उस बैठक, जिसमें उन पर समिति द्वारा विचार किया जाना हो, की तिथि से काफी दिन पहले, समिति के सदस्यों को परिचालित किये जाते हैं।

सदस्यों द्वारा सभा में दिये गये सुझावों के आधार पर या अन्यथा, नियमों में संशोधन या परिवर्धन करने या नियमों के कार्यान्वयन में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने, या सभा में प्रथा और परम्पराओं के लिए नियमों का आधार देने हेतु सचिवालय द्वारा भी समिति के विचार के लिए प्रस्ताव दिए जाते हैं।

सचिवालय द्वारा समिति का प्रारूप प्रतिवेदन तथा कार्यवाही सारांश सभापति के अनुमोदन के लिए तैयार किए जाते हैं।

नियमों में संशोधनों की प्रक्रिया

समिति की सिफारिशें प्रतिवेदन के रूप में सभापटल पर रखी जाती हैं।[787] कोई भी सदस्य इन सिफारिशों के सभापटल पर रखे जाने के दिन से सात दिन की अवधि के भीतर ऐसी सिफारिशों में किसी संशोधन की सूचना दे सकता है।[788] इस प्रकार किसी सदस्य द्वारा दी गई सूचना स्वत: समिति को सौंप दी जाती है और सात दिन की उक्त अवधि समाप्त होने के बाद समिति की बैठक होती है, जिसमें संशोधनों की ऐसी सभी सूचनाओं पर विचार किया जाता है।[789]

> यदि सिफारिशों में संशोधन की सूचना किसी सदस्य से विहित अवधि समाप्त होने के बाद प्राप्त हो, तो उस संशोधन को समिति के सामने नहीं रखा जाता।

जो सदस्य समिति की सिफारिशों में संशोधन की सूचना देते हैं, उन्हें समिति की उस बैठक में भाग लेने का निमंत्रण दिया जाता है, जिसमें उनके संशोधनों पर विचार किया जाना हो, जिससे कि वे समिति को उनके द्वारा सुझाए गए संशोधनों के संबंध में अपना दृष्टिकोण बता सकें।[790] परन्तु, ऐसे सदस्य अपना दृष्टिकोण बताने के बाद वहां से उठकर चले जाते हैं। और उसके बाद समिति विचार-विमर्श करके किसी निर्णय पर पहुंचती है।[791]

सदस्यों ने जिन संशोधनों का सुझाव दिया हो, उन पर विचार करने के बाद समिति का अंतिम प्रतिवेदन सभापटल पर रख दिया जाता है। उसके बाद समिति के किसी सदस्य द्वारा

786. कार्यवाही-सारांश (नियम समिति), 9.5.1956, पैरा 2-6 ।

787. नियम 331(1) ।

788. *पूर्वोक्त* ।

789. नियम 331(2) ।

790. कार्यवाही-सारांश (नियम समिति), 10.9.1957, पैरा 3 ।

791. *पूर्वोक्त,* 24.4.1956, पैरा 5 ।

पेश किए गए प्रस्ताव पर सभा द्वारा प्रतिवेदन स्वीकार कर लिए जाने पर सभा द्वारा अनुमोदित नियमों के संशोधनों को अध्यक्ष के आदेश से संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दिया जाता है।[792]

> जब समिति के प्रतिवेदन पर सभा की सहमति का प्रस्ताव सभा के समक्ष हो, तो अध्यक्ष उन सदस्यों को, जिन्होंने संशोधन की सूचनाएं दी थीं। और जिनके संशोधन समिति द्वारा स्वीकार नहीं किये गये थे, अपने संशोधन प्रस्तुत करने और अपना दृष्टिकोण सभा के समक्ष रखने का अवसर प्रदान करता है।[793]

यदि समिति की सिफारिशों में संशोधन की सूचना सात दिन के अंदर प्राप्त नहीं होती तो यह मान लिया जाता है कि सभा ने सिफारिशों को अनुमोदित कर दिया है और उक्त अवधि की समाप्ति पर नियमों में समिति की सिफारिशों के अनुसार किये गये संशोधन अध्यक्ष के आदेश से *संसदीय समाचार में* प्रकाशित कर दिये जाते हैं।[794]

नियमों के संशोधन, जब तक कि अन्यथा विनिर्दिष्ट न हों, *संसदीय समाचार* में प्रकाशन के बाद प्रवृत्त हो जाते हैं।[795]

सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति

सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति का गठन सभा के कार्यों से सम्बद्ध ऐसे विषयों पर विचार करने और परामर्श देने के लिए किया जाता है, जो अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर उसे सौंपे जायें।[796] समिति में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति तालिका के सदस्य, सभा की स्थायी संसदीय समितियों के सभापति, लोक सभा में मान्यता प्राप्त दलों तथा समूहों के नेता और ऐसे अन्य सदस्य होते हैं, जिनका अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशन किया गया हो।[797] अध्यक्ष इस समिति का *पदेन* सभापति होता है।[798] यदि अध्यक्ष किसी कारण से समिति की किसी बैठक में उपस्थित न हो, तो उपाध्यक्ष और यदि वह भी उपस्थित न हो, तो सभापति तालिका का कोई वरिष्ठ सदस्य बैठक की अध्यक्षता करता है।

---

792. संशोधन भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग I, खण्ड I में भी सामान्य जानकारी हेतु प्रकाशित किए जाते हैं।

793. *लो.स.वा.वि.* (II), 26.4.1956 ।

794. नियम 331(3)। संशोधन भारत के *राजपत्र, असाधारण,* भाग I, खण्ड I में भी सामान्य जानकारी हेतु प्रकाशित किए जाते हैं।

795. नियम 331(4) ।

796. आन्तरिक नियम, (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति), नियम 2 ।

797. *पूर्वोक्त,* नियम 1, वर्ष 1967 में सी.पी.आई. और सी.पी.आई. (एम.) ग्रुपों के नेताओं के अलावा अध्यक्ष ने इन ग्रुपों में से प्रत्येक ग्रुप से एक और सदस्य को सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के लिए नामनिर्दिष्ट किया था। समाचार-भाग 2, दिनांक 3.7.1967, पैरा 248 ।

798. *पूर्वोक्त,* नियम 2 ।

समिति किसी मंत्री अथवा किसी अन्य सदस्य को अपनी बैठक में विशेष आमंत्रिती के रूप में आमंत्रित कर सकती है।[799]

> अध्यक्ष द्वारा समिति की नियुक्ति पहली बार 26 नवम्बर, 1954 को की गई थी। इसका उद्देश्य यह था कि अध्यक्ष सभा में विभिन्न दलों तथा समूहों के प्रतिनिधियों को उन विभिन्न निदेशों के संबंध में अपने विश्वास में ले सके और उनसे अनौपचारिक परामर्श कर सके, जिनसे कि सभा के कार्य को सुधारा जा सकता हो, और अधिक उचित ढंग से सुव्यवस्थित किया जा सकता हो, ताकि ऐसे सभी विषयों में उनके पूरे समर्थन के साथ आगे कार्यवाही चलाई जा सके जिसका व्यवहारिक तात्पर्य यह है कि सारी सभा का सहयोग प्राप्त हो सके।[800]

समिति सभा के कार्य से संबंधित उन मामलों पर विचार करती है और अध्यक्ष को परामर्श देती है जो समुचित रूप से अन्य किसी संसदीय समिति के कार्य क्षेत्र में नहीं आते हों।[801] समिति ने अभी तक विभिन्न प्रकार के विषयों पर विचार किया है जैसे कि संसद के बढ़ते कार्यकलाप के लिये अतिरिक्त भवनों की आवश्यकता; किसी वर्तमान सदस्य के निधन पर सभा की बैठक का स्थगित किया जाना; सभा की समितियों के समक्ष साक्ष्य देने के लिये साक्षियों के रूप में राज्य सरकारों के अधिकारियों का बुलाया जाना; स्वचालित मत-अभिलेख यंत्र की स्थापना; संसद के सत्रों के दौरान केन्द्रीय हाल में आगन्तुकों का प्रवेश; संसद भवन संपदा के भीतर व्यवस्था कायम रखना;[802] नये संसद भवन का नामकरण, लोक सभा द्वारा अवकाश रखना, संसद भवन में रेलवे खान-पान एकक का कार्यकरण; संसद भवन परिसर में राष्ट्रीय नेताओं के चित्र, मूर्ति, अर्धप्रतिमा, आदि के लिए आवेदन; अवकाश प्राप्त करने वाले राष्ट्रपतियों को विदाई, स्वतंत्र भारत की 25वीं वर्षगांठ; उत्तर रेलवे खान-पान एकक को राज सहायता देना; विशेषाधिकार हनन के मामलों में सरकार के अधिकारियों को सजा देने की प्रक्रिया; राष्ट्रपति चुनाव के संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत वर्ष 1974 के विशेष निर्देश संख्या 'एक' के मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय के लोक सभा अध्यक्ष को प्राप्त सूचना; लोक सभा में दलों और समूहों के नेताओं के साथ अध्यक्ष की बैठक की कार्यवाही वृत्तान्तों को समाचार पत्र में प्रकाशन के प्रयोजनार्थ संसदीय समितियों के

---

799. कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति) 13.11.1967, 15.11.1968, 12.3.1969, 23.7.1971, 16.5.1972, 30.8.1973, 20.12.1973, 7.5.1974, 20.8.1974, 19.3.1975, 22.12.1980, 19.7.1982, 4.11.1982, 22.8.1983, 9.3.1984, 1.8.1984, 6.8.1985, 20.8.1985, 30.10.1985, 10.12.1985, 19.2.1986, 25.2.1986, 12.8.1986, 23.8.1990, 26.11.1991, 10.8.1992, 19.8.1992, 27.8.1993, 13.2.1995, 3.6.1995, और 12.3.1996 ।

800. कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति—पहली लोक सभा), 26.11.1954 ।

801. आन्तरिक नियम (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति), नियम 2 ।

802. इस विषय पर सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसरण में अध्यक्ष द्वारा एक नया निदेश 124क जारी किया गया।

कार्यवाही वृत्तांतों के समकक्ष मानना;[803] 'इंडियन पार्लियामेंट' पर एक वृत्तचित्र; संसदीय सौध में 'हॉल ऑफ नेशनल एचीवमेंट्स' की स्थापना; एक संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार की स्थापना; संसद भवन में सुरक्षा व्यवस्था: लोक सभा सदस्य (दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985; सदस्यों का सामूहिक फोटोग्राफ; संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरो द्वारा आयोजित प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों/कार्यक्रमों में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों के लिए आवास व्यवस्था आदि; संविधान और संसद की 25वीं वर्षगांठ; लोक सभा में निधन संबंधी उल्लेख प्रक्रिया; नये संसद ग्रन्थालय भवन का निर्माण; लोक सभा के कार्यवाही वृत्तान्तों का टेप रिकार्ड; संसद भवन के सचित्र प्रस्तुति का उपयोग; कुछ संगठनों द्वारा अपने नाम में 'संसदीय' शब्द का प्रयोग; विभाजन मत घंटी बजने की अवधि में वृद्धि करने का सुझाव; वाद-विवाद का हिन्दी संस्करण तैयार करना; संसदीय समितियों के प्रतिवेदनों को अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में साथ-साथ प्रस्तुत किया जाना; लोक सभा में सभी भाषाओं में साथ-साथ भाषांतरण की सुविधा; सीटों आदि का नवीकरण; संसदीय समितियों द्वारा दौरे; सदस्यों को डायरियों की आपूर्ति; संसद की कार्यवाही का टेलीविजन पर प्रसारण; कम्प्यूटरीकरण एवं आधुनिकीकरण (संसद सदस्यों और अधिकारियों को बेहतर सुविधाओं का प्रावधान); विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों का गठन; प्रत्येक सत्र के आरंभ एवं समापन पर राष्ट्र-गान एवं राष्ट्र-गीत की धुन बजाया जाना; संसदीय विषयों पर वीडियो फिल्में तैयार करना; संसद भवन, ग्रंथालय भवन और संसदीय सौध को जोड़ने वाले भूमिगत मार्ग का निर्माण; संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना; लोक सभा कक्ष में ध्वनि व्यवस्था, साथ-साथ भाषान्तरण और स्वचालित मत अभिलेखन प्रणाली को बदलना, इत्यादि।

प्रत्येक वर्ष सभी स्थायी संसदीय समितियों के पुनर्गठन के बाद अध्यक्ष इस समिति के पुनर्गठन पर विचार करता है। तीसरी लोक सभा में इस समिति का औपचारिक रूप से पुनर्गठन नहीं किया गया था, तथापि, अध्यक्ष ने विभिन्न विषयों के संबंध में दलों तथा समूहों के नेताओं के साथ अनेक बैठकें कीं।

समिति विशेष विषयों की विस्तृत जांच के लिये एक या अधिक उप-समितियां नियुक्त कर सकती है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त, सभा के अन्य सदस्यों को भी किसी उप-समिति के तदर्थ सदस्यों के रूप में नियुक्त किया जा सकता है, या निमंत्रण द्वारा उन्हें उसके साथ सम्बद्ध किया जा सकता है।

समिति अपने विचाराधीन किसी विषय का भी तत्स्थानिक अध्ययन कर सकती है।[804]

---

803. सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के उपर्युक्त निर्णय को समाविष्ट करने के लिए अध्यक्ष ने निदेश 55 में संशोधन भी जारी किया।

804. लोक सभा के पत्रों के मुद्रण संबंधी उप-समिति ने भारत सरकार के मुद्रणालय में पत्रों की छपाई के संबंध में स्थिति का तत्स्थानिक अध्ययन करने हेतु 10 मई, 1955 को मुद्रणालय का दौरा किया। सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति (1983-84) संसदीय ग्रन्थालय भवन के निर्माण के संबंध में भूखंड संख्या 115 को देखने गयी।

समिति की बैठकों में, बाहर के किसी व्यक्ति को नहीं आने दिया जाता। समिति जहां आवश्यक समझे, साक्ष्य ले सकती है।[805] यदि समिति अपने कार्य के निष्पादन के लिये आवश्यक समझे तो वह व्यक्तियों को बुला सकती है और पत्र या अभिलेख मंगा सकती है।[806] जहां समिति की कार्यवाही का शब्दशः अभिलेख रखना आवश्यक हो, वहां ऐसा अभिलेख रखा जा सकता है।

समिति दोनों सभाओं से संबंधित मामलों पर विचार करने के लिए राज्य सभा की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के साथ संयुक्त बैठक कर सकती है और राज्य सभा में दलों और समूहों के नेताओं के साथ भी बैठकें कर सकती है।[807]

---

805. राज्य सभा के एक सदस्य डा. राधाकुमुद मुकर्जी ने यह प्रस्ताव किया था कि सरकार से कहा जाये कि उनके लेखों 'न्यू लाइट ऑन अशोक चक्र' तथा 'फर्दर न्यू लाइट ऑन अशोक चक्र' में दिए गए सुझाव के संदर्भ में सरकार राष्ट्रीय चिह्न को बदले। इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए 28 जुलाई, 1956 को समिति ने डा. मुकर्जी को समिति की बैठक में आमंत्रित किया—*देखिए,* कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति-पहली लोक सभा), 28.7.1956; संसदीय ग्रन्थालय भवन के निर्माण से संबंधित ज्ञापन पर विचार करते समय, सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति (1983-84) ने महा निदेशक (निर्माण), निर्माण और आवास मंत्रालय, मुख्य अभियन्ता (न.दि. जोन) और (विद्युत) मुख्य वास्तुविद (के.लो.नि.वि.), वाइस-चेयरमैन (दि.वि.प्रा.) तथा अन्य व्यक्तियों को आमंत्रित किया। *देखिए* कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति), 9.3.1984, 20.8.1985, 30.10.1985 ।

दलबदल विरोधी नियमों के प्रारूप पर विचार करते समय, समिति ने सचिव (विधि और न्याय मंत्रालय) को अपनी बैठकों में आमंत्रित किया। *देखिए* कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधीं समिति), 20.8.1985, 10.12.1985 ।

806. कॉन्सटीट्यूशन क्लब के नए भवन के निर्माण संबंधी उप-समिति ने निर्माण और आवास तथा पूर्ति मंत्रालय से चेम्सफोर्ड क्लब के पूर्ववृत्त की जानकारी मांगी जिसे मंत्रालय ने उप-समिति को भेज दिया।

उसी उप-समिति ने सदस्यों हेतु क्लब के लिये नया भवन बनाने और साथ ही चेम्सफोर्ड क्लब का अधिग्रहण करके उसमें और अधिक सुविधाएं उपलब्ध कराने पर अनुमानित व्यय के बारे में केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के अपर मुख्य अभियन्ता से तुलनात्मक विवरण मांगा था—उप-समिति का प्रतिवेदन, पैरा 7 । संसदीय पत्रों के मुद्रण संबंधी उप-समिति (1980-81) ने सचिव, निर्माण और आवास मंत्रालय; सचिव व्यय विभाग; मुद्रण निदेशक और महाप्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली के साक्ष्य लिए । (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति (1980-81) की संसदीय पत्रों के मुद्रण संबंधी उप-समिति का प्रतिवेदन) ।

807. सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने संसद भवन और संसदीय सौध में भारत की स्वतंत्रता की 25वीं वर्षगांठ मनाने से संबंधी ज्ञापन पर विचार करने के लिए राज्य सभा में दलों और ग्रुपों के नताओं के साथ बैठकें कीं—*देखिए* कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति), 24.5.1972, 2.8.1972 और 8.8.1972 । संसद की कार्यवाहियों के टेलीविजन पर प्रसारण हेतु विचार करने के लिए दोनों सभाओं की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समितियों की संयुक्त बैठक 26.11.1991 को हुई।

समिति कोई प्रतिवेदन सभा में पेश नहीं करती। परन्तु, जहां कोई मामला उसकी उप-समिति को सौंपा जाता है तो उप-समिति अध्यक्ष को प्रतिवेदन पेश करती है। यदि उप-समिति की नियुक्ति अध्यक्ष ने की हो,[808] तो वह प्रतिवेदन पर अंतिम आदेश दे सकता है या यह निदेश दे सकता है कि इसे पूर्ण समिति के सामने रखा जाये। यदि उप-समिति की नियुक्ति समिति ने की हो[809] तो उप-समिति का प्रतिवेदन अध्यक्ष के अनुमोदन से पूर्ण समिति के सामने रखा जाता है।[810]

सिफारिशों का कार्यान्वयन

जब समिति की सिफारिशों को सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जाना अपेक्षित होता है, तो उप-समिति के संगत कार्यवाही सारांश/प्रतिवेदन की प्रतियां आवश्यक कार्यवाही हेतु संबंधित मंत्रालयों को भेजी जाती हैं।

संसदीय समितियों पर लागू होने वाले सामान्य नियम इस समिति पर ऐसे अनुकूलनों, चाहे वे संशोधन के रूप में हों, परिवर्धन के रूप में हों अथवा लोप के रूप में हों, के साथ, जिन्हें अध्यक्ष आवश्यक या सुविधाजनक समझे, लागू होते हैं।[811]

आवास समिति

आवास समिति में सभापति सहित अधिकाधिक 12 सदस्य होते हैं, और अध्यक्ष उसे प्रत्येक वर्ष नाम-निर्देशित करता है। किसी सदस्य को अगली कार्यावधि के लिए भी नाम-निर्देशित किया जा सकता है। समिति की बैठक के लिये गणपूर्ति पांच है।

केन्द्रीय विधान सभा के सदस्यों में आवास आवंटन संबंधी व्यवस्था तथा तत्संबंधी प्रशासनिक मामलों के बारे में असंतोष था। भारतीय विधानमंडल के सदस्यों के लिए रहने

---

808. अध्यक्ष ने किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य या विख्यात व्यक्ति के निधन पर सभा के स्थगन के संबंध में (अप्रैल, 1955); मुद्रण संबंधी और आवास तथा संसद भवन के रख-रखाव आदि के संबंध में (मई, 1956 और जुलाई, 1957) उप-समितियां नियुक्त कीं। सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के निर्णय के अनुसरण में, राज्य सभा के सभापति के परामर्श से अध्यक्ष ने संसद भवन में खान-पान स्थापनाओं संबंधी समिति नियुक्त की। कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति) 30.8.1973 ।

809. समिति ने निम्नलिखित विषयों के संबंध में उप-समितियों की नियुक्ति की: लोक सभा की बैठकों की अवधि (नवम्बर 1954); संसदीय पत्रों का मुद्रण (नवम्बर, 1954) और कॉन्सटीट्यूशन क्लब के लिए नया भवन (जुलाई, 1956) ।

    चित्रों संबंधी उप-समिति (1978, 1980 और 1986); संसदीय पत्रों के मुद्रण संबंधी (1980-81); सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति के 20.12.1983 के निर्णय के अनुसार 'इंडियन पार्लियामेंट' नामक चलचित्र की पटकथा की जांच करने संबंधी की नियुक्ति की गई। इस उप-समिति में राज्य सभा के सभापति द्वारा राज्य सभा के सदस्यों को भी नामित किया गया।

810. आन्तरिक नियम (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति) नियम 10—*देखिए* कार्यवाही सारांश (सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति), 8.5.1981 ।

811. *पूर्वोक्त* नियम 3, अभी तक नियम का इस प्रकार कोई अनुकूलन नहीं किया गया।

के स्थान और आवास के प्रश्न पर विचार के लिए 14 सितम्बर, 1927 को विधान सभा में पारित किये गये एक प्रस्ताव के अनुसरण में एक समिति की नियुक्ति की गई थी।[812] समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, परन्तु इसी बीच विधान सभा विभाग का सृजन हुआ और सदस्यों को आवास आवंटन का कार्य उस विभाग ने सम्भाल लिया। लेकिन, नवम्बर, 1931 में 55 सदस्यों ने अपने हस्ताक्षर से एक अभ्यावेदन अध्यक्ष को दिया जिसमें उसका ध्यान इस बात की ओर दिलाया गया कि सदस्यों को रहने के लिये जो आवास दिये जाते हैं, वे अनुपयुक्त और अपर्याप्त हैं। उस अभ्यावेदन के अनुसरण में अध्यक्ष ने दलों के नेताओं के परामर्श से 22 फरवरी, 1932 को एक आवास समिति का नाम-निर्देशन किया, जिसमें सभापति सहित दस सदस्य थे।[813] उसके बाद अध्यक्ष समय-समय पर इस समिति का गठन करते रहे हैं।

यह समिति परामर्शदात्री समिति के रूप में कार्य करती है और इसके कार्य निम्नलिखित हैं:—

लोक सभा के सदस्यों के लिये निवास-स्थान संबंधी सभी प्रश्नों को निपटाना; और सदस्यों को दिल्ली में उनका निवास-स्थान तथा होस्टलों में दी गई आवास, भोजन, चिकित्सा सहायता और अन्य सुविधाओं की देख-भाल करना।

सदस्यों के निवास-स्थान तथा सुविधाओं संबंधी सभी प्रस्तावों, सुझावों आदि की जांच कार्यपालिका प्राधिकारियों के परामर्श से, जहां आवश्यक हो, सचिवालय द्वारा की जाती है। जब समिति के विचार के लिये पर्याप्त संख्या में मदें उपलब्ध हो जाती हैं, तो सभापति के परामर्श से समिति की बैठक की तिथि और समय नियत किया जाता है। संबंधित कार्यपालिका प्राधिकारियों के प्रतिनिधियों को भी बैठक में आमंत्रित किया जाता है, ताकि वे विचारणीय प्रस्तावों संबंधी पेचीदगियों की जानकारी और मांगी गई सूचना समिति को दे सकें। जो सदस्य समिति का सदस्य न हो, वह सभापति से अनुरोध करे तो सभापति उसे समिति की बैठक में भाग लेने की अनुमति दे सकता है, परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं है।

समिति कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करती। समिति की बैठकों के कार्यवाही सारांश को समिति के सभी सदस्यों को परिचालित किया जाता है और उसके संगत उद्धरण आवश्यक कार्यवाही के लिये उपयुक्त अधिकारियों को भेज दिये जाते हैं। समय-समय पर समिति को इस बात की जानकारी दी जाती है कि उसकी सिफारिशों के क्रियान्वयन में कहां तक प्रगति हुई है। समिति द्वारा की गई सिफारिशों को सामान्यत: सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। यदि सरकार किसी सिफारिश को कार्यान्वित करने में असमर्थ हो तो समिति सरकार की

---

812. यह प्रस्ताव 5 सितम्बर, 1927 को प्रस्तुत किया गया था और 14 सितम्बर, 1927 को संशोधित रूप में पारित किया गया-*एल.ए. डिबेट्स,* 5.9.1927 पृ. 3968-72; 14.9.1927, पृ. 4332-35, राज्य परिषद् से भी यह कहा गया कि वह अपने सदस्यों को इस समिति में भेजे—*सी.एस. डिबेट्स,* 19.9.1927, पृ.1276-78 ।

813. *एल.ए. डिबेट्स,* 22.2.1932, पृ. 1017-18 ।

आपत्तियों पर विचार करती है और, यदि आवश्यक हो तो अपनी पहली सिफारिश में संशोधन करती है।

समिति एक या अधिक उप-समितियों की नियुक्ति कर सकती है, और प्रत्येक उप-समिति को इस समिति की सभी शक्तियां प्राप्त होती हैं। ये उप-समितियां सदस्यों के आवास, भोजन, चिकित्सा और सदस्यों के निवास-स्थान पर अन्य सुविधाओं के बारे में विशिष्ट मुद्दों की जांच करती है।

इस समिति की एक आवास उप-समिति है, जो एक स्थायी उप-समिति है। यह सदस्यों को निवास स्थान के आवंटन के संबंध में परामर्श देती है। इस उप-समिति में अधिकाधिक चार सदस्य होते हैं, जिनमें समिति का सभापति भी सम्मिलित होता है जो कि इसका *पदेन* सभापति होता है। उप-समिति की बैठक की गणपूर्ति दो है। समिति या आवास उप-समिति के निर्णय के विरुद्ध अध्यक्ष महोदय से अपील की जा सकती है और इस संबंध में उनका निर्णय अन्तिम होता है।

दोनों सभाओं के सदस्यों के सामान्य हित के प्रस्तावों, सुझावों आदि पर दोनों सभाओं की आवास समितियों के सभापतियों की संयुक्त बैठक में विचार और निर्णय किया जाता है, यदि उन्हें उनकी अपनी-अपनी आवास समितियों ने इसके लिए प्राधिकृत किया हो। ऐसी बैठकों का सचिवीय कार्य लोक सभा सचिवालय द्वारा किया जाता है, परन्तु कार्यवृत्त का अनुमोदन दोनों सभापतियों द्वारा किया जाता है।

लोक सभा भंग होने पर नयी लोक सभा के सदस्यों को निवास स्थान के आवंटन का कार्य अध्यक्ष के निर्देश से सचिवालय द्वारा तब तक किया जाता है, जब तक कि नयी आवास समिति का गठन नहीं हो जाता है।

ग्रंथालय समिति

1921 में स्थापित संसद ग्रंथालय दोनों सभाओं के सदस्यों की जानकारी संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करता है। ग्रंथालय संबंधी विषयों के संबंध में अध्यक्ष को परामर्श देने के लिए, उसके द्वारा एक परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया, जिसे ग्रंथालय समिति कहा जाता है। अध्यक्ष द्वारा 21 नवम्बर, 1950 को अंतरिम संसद में की गई घोषणा के माध्यम से इस समिति का पहली बार गठन किया गया था।[814]

इस समय इस समिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष द्वारा नाम-निर्देशित लोक सभा के पांच सदस्य और राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्देशित उस सभा के तीन सदस्य हैं। उपाध्यक्ष इस समिति का *पदेन* सभापति है। समिति में आकस्मिक रिक्तियां होने पर लोक सभा के सदस्यों का स्थान रिक्त होने की दशा में अध्यक्ष द्वारा नाम-निर्देशन के माध्यम से, और राज्य सभा के सदस्यों की दशा में, राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्देशन के माध्यम से उनकी पूर्ति की जाती है।

---

814. अन्य संसदीय समितियों की भांति ग्रंथालय समिति का गठन भी प्रतिवर्ष किया जाता है और यह जून माह के प्रारंभ से अगले वर्ष मई माह के अंतिम दिन तक कार्य करती है।

समिति के कृत्य निम्नलिखित हैं:—

ग्रंथालय के संबंध में ऐसे विषयों पर विचार करना और उनके संबंध में परामर्श देना जो समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा उसे सौंपे जायें;

ग्रंथालय सुधार संबंधी सुझावों पर विचार करना; और

ग्रंथालय द्वारा उपलब्ध सेवाओं के पूर्णरूपेण उपयोग में संसद-सदस्यों को सहायता देना।

समिति का मुख्य कार्य यह है कि सदस्यों को ग्रंथालय में उपलब्ध सामग्री के उपयोग में सहायता दी जाये और ग्रंथालय में जो कर्मचारी काम करते हैं, उनकी सेवाओं का लाभ उठाया जाये। एक तरह से यह समिति संसद सदस्य और ग्रंथालय के बीच संपर्क का काम करती है। यह सदस्यों को इस बात के लिये भी प्रोत्साहित करती है कि वे ग्रंथालय तथा उसकी सन्दर्भ सेवाओं के विकास के लिये उपयोगी तथा रचनात्मक सुझाव दें। यह समिति ग्रंथालय से सम्बन्धित सभी विषयों, उदाहरणार्थ पुस्तकों के चयन, नियम बनाने, भावी आयोजना आदि के सम्बन्ध में अध्यक्ष को परामर्श देती है।

ग्रंथालय समिति की एक उप-समिति ग्रंथालय के लिए खरीदी गई पुस्तकों आदि की गुणवत्ता और संख्या पर निगरानी रखती है तथा संसदीय ग्रंथालय और उसकी सहायक सेवाओं के कार्यकरण में और सुधार लाने हेतु टिप्पणी करती है तथा सुझाव देती है।

ग्रंथालय समिति और उसकी उप-समिति की बैठकें आवश्यकता पड़ने पर होती हैं। बैठकों का कार्यवृत्त रखा जाता है, किन्तु समिति संसद की सभाओं में अथवा अध्यक्ष को कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करती है।

संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों सम्बन्धी संयुक्त समिति

संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों सम्बन्धी संयुक्त समिति का गठन संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अन्तर्गत नियम बनाने के लिए पहली बार 6 सितम्बर, 1954 को किया गया था।[815] इसमें लोक सभा से दस सदस्य होते हैं, जिनका नाम-निर्देशन अध्यक्ष करता है और राज्य सभा से पांच सदस्य होते हैं, जिनका नाम-निर्देशन राज्य सभा का सभापति करता है। इस संयुक्त समिति का पुनर्गठन समय-समय पर किया जाता है, परन्तु सदस्य अपने नाम-निर्देशन की तिथि से एक वर्ष तक अपना पद धारण करते हैं।[816]

समिति का कार्य भारत सरकार के साथ परामर्श करके चिकित्सा, आवास, टेलीफोन सुविधाओं, निर्वाचन क्षेत्र भत्ता, वाहन क्रय के लिए अग्रिम इत्यादि जैसे मामलों की व्यवस्था

---

815. संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9(1) ।

816. *पूर्वोक्त,* 1954, धारा 9(2क) ।

करने और सामान्य रूप से अधिनियम के अन्तर्गत दैनिक तथा यात्रा भत्तों की अदायगी का विनियमन करने के लिये नियम बनाना है।[817]

समिति को अपनी प्रक्रिया का विनयमन करने की शक्ति प्राप्त है।[818] समिति की बैठक में सभी विषयों का निर्णय उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाता है। समिति की बैठक करने के लिए गणपूर्ति पांच है और समिति के सचिवीय कार्य लोक सभा सचिवालय द्वारा किये जाते हैं।

समिति एक या अधिक उप-समितियां नियुक्त कर सकती है और उनमें से प्रत्येक उप-समिति को किसी भी ऐसे विषय, जो उसे सौंपा गया हो, की जांच करने हेतु सम्पूर्ण समिति की शक्तियां प्राप्त हैं।

सभापति द्वारा अनुमोदित कार्यवाही सारांश की प्रतियां समिति के सदस्यों, राज्य सभा सचिवालय और संसदीय कार्य मंत्रालय को परिचालित की जाती हैं। समिति दोनों सभाओं में से किसी भी सभा में कोई प्रतिवेदन पेश नहीं करती।

समिति द्वारा बनाये गये नियम[819] तब तक प्रभावी नहीं होते जब तक कि दोनों सभाओं के पीठासीन अधिकारियों द्वारा उनका अनुमोदन और उनकी पुष्टि न कर दी जाये तथा उन्हें भारत के राजपत्र में प्रकाशित न कर दिया जाये। नियमों का इस प्रकार प्रकाशित किया जाना इस बात का अन्तिम प्रमाण है कि वे विधिवत् बनाये गये हैं।[820]

लाभ के पदों सम्बन्धी संयुक्त समिति

कोई व्यक्ति संसद की किसी सभा का सदस्य चुने जाने के लिये और सदस्य होने के लिये निरर्ह होगा, यदि वह भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसे धारण करने वाले का निरर्ह न होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई अन्य लाभ का पद धारण करता है।[821] संसद ने इस सम्बन्ध में कानून बनाया है।[822] परन्तु चूंकि सरकार द्वारा नयी समितियां, आयोग आदि गठित किए जाते हैं (जिन्हें अब बाद में

---

817. *पूर्वोक्त,* धारा 9(3) । संयुक्त समिति ने आवास और टेलीफोन सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1956; संसद सदस्य (यात्रा और दैनिक भत्ते) नियम, 1957; चिकित्सा सुविधाएं (संसद सदस्य) नियम, 1959; संसद सदस्य (विदेश यात्रा के लिए भत्ते) नियम, 1960; संसद सदस्य (निर्वाचन-क्षेत्र संबंधी भत्ता), नियम 1986 और संसद सदस्य (वाहन क्रय अग्रिम) नियम, 1986 बनाये हैं।

818. *पूर्वोक्त,* धारा, 9(2), साथ ही *देखिए* संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के प्रक्रिया नियम।

819. *पूर्वोक्त,* धारा 9(3) ।

820. *पूर्वोक्त,* धारा 9(4) ।

821. अनुच्छेद 102(1) क—साथ ही *देखिए,* अध्याय—6 'लाभ का पद' ।

822. संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 ।

सरकारी समितियां कहा जायेगा) जिनमें सदस्यों की भी नियुक्ति की जाती है, इसलिए यह समझा गया कि इस मामले की सतत् जांच किया जाना आवश्यक है। यह कार्य लाभ के पदों सम्बन्धी संयुक्त समिति करती है।

समिति का गठन तभी किया जाता है, जब इस सम्बन्ध में सभा में प्रस्ताव स्वीकृत हो जाये और राज्य सभा उससे सहमत हो जाये।[823] समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनमें से दस सदस्य लोक सभा के और पांच राज्य सभा के होते हैं, जिनका निर्वाचन संबंधित सभा के सदस्यों में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से किया जाता है। यदि समिति में लोक सभा के किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो जाये तो उसे इस सम्बन्ध में लोक सभा में स्वीकृत किये गये प्रस्ताव के माध्यम से भरा जाता है।[824] जबकि राज्य सभा के किसी सदस्य का स्थान यदि रिक्त हो जाये, तो उसे लोक सभा द्वारा स्वीकृत किये गए प्रस्ताव के माध्यम से भरा जाता है, जिसमें राज्य सभा से सिफारिश की जाती है कि वह रिक्त स्थान को भरे।[825]

समिति का गठन प्रत्येक लोक सभा की अवधि के लिये किया जाता है।[826] समिति के सभापति की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा उसके सदस्यों में से की जाती है।

> यद्यपि अनुच्छेद 102(1)(क) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए संसद द्वारा कुछ अधिनियम पारित किए गए थे फिर भी यह महसूस किया गया कि इसमें से किसी ने भी परिस्थिति के अनुरूप आवश्यकताओं को समग्र रूप से पूरा नहीं किया। संसद सदस्यों के अभ्यावेदन पर अध्यक्ष मावलंकर ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 24 अगस्त, 1954 को लाभ के पदों सम्बन्धी समिति नियुक्त की (इस समिति को इसके सभापति पंडित ठाकुर दास भार्गव के नाम पर 'भार्गव समिति' कहा गया) जिसका कार्य अन्य बातों के अलावा, सिफारिशें करना था ताकि सरकार यह विचार कर सके कि किस प्रकार का व्यापक विधेयक सभा के समक्ष लाया जाना चाहिए। समिति की सिफारिश के अनुसरण में सरकार ने 5 दिसम्बर, 1957 को लोक सभा में संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक, 1957 पुर:स्थापित किया। इसे दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंपा गया और उसकी रिपोर्ट 10 सितम्बर, 1958 को लोक सभा में प्रस्तुत की गई।[827]

---

823. *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1959, पृ. 88; *आर.एस. डिबेट्स,* 31.8.1959, का. 2309; *लो.स.वा.वि.,* 8.6.1962, पृ. 4554-55; और *आर.एस.डिबेट्स,* 16.6.1962, का. 760; *लो.स.वा.वि.,* 5.6.1967, पृ. 1335-36 और *आर.एस. डिबेट्स,* 23.6.1967, *लो.स.वा.वि.,* 15.6.1971, पृ. 100-02; और *रा.स.वा.वि.,* 25.6.1971, *लो.स.वा.वि.,* 25.11.1980, पृ. 195-96 और *रा.स.वा.वि.,* 23.12.1980; *लो.स.वा.वि.,* 2.4.1985, पृ. 204-06 और *रा.स.वा.वि.,* 13.5.1985।

824. *लो.स.वा.वि.,* 13.3.1961, पृ. 2266 ।

825. *पूर्वोक्त,* 4.4.1960, पृ. 4465; और *आर.एस. डिबेट्स,* 14.4.1960, कॉ. 843-44; *लो.स.वा.वि.,* 28.11.1985, पृ. 159 और 14.3.1986, पृ. 252 और *रा.स.वा.वि.,* 10.3.1986 ।

826. *लो.स.वा.वि.,* 3.8.1959, पृ. 88; 8.6.1962, पृ. 4554-55 ।

827. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 6—'लाभ का पद'।

संयुक्त समिति द्वारा की गई सिफारिश और इस संबंध में विधि मंत्री द्वारा दिये गये आश्वासन के कार्यान्वयन को ध्यान में रखते हुए[828] अगस्त, 1959 में दूसरी लोक सभा के कार्यकाल के लिये लाभ के पदों सम्बन्धी संयुक्त समिति का गठन किया गया।[829] इस समिति में सदस्यों की कुल संख्या 15 थी, जिनमें 10 सदस्य लोक सभा के और 5 सदस्य राज्य सभा के थे। इसके विचारार्थ विषय निम्नलिखित थे:

सभी वर्तमान 'समितियों' [उन समितियों को छोड़कर जिनकी जांच संसद (निरर्हता निवारण) विधेयक, 1957 सम्बन्धी संयुक्त समिति ने की थी] और बाद में गठित की जाने वाली सभी 'समितियों' की रचना और उनके स्वरूप की जांच करना, जिनकी सदस्यता के कारण कोई व्यक्ति संसद की किसी सभा का सदस्य चुने जाने और सदस्य होने के लिए संविधान के अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत निरर्ह हो जायेगा;

जिन 'समितियों' की इसके द्वारा जांच की गई, उनके सम्बन्ध में यह सिफारिश करना कि किन पदों के कारण निरर्हता होनी चाहिए और किन पदों के कारण निरर्हता नहीं होनी चाहिए; और

समय-समय पर संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की अनुसूची की जांच करना और उसमें संशोधनों की सिफारिश करना, चाहे वे संशोधन उसमें जोड़े गए रूप में हों, उसमें से कुछ अंश निकाले गये हों अथवा अन्यथा रूप में हों।

छठी लोक सभा को छोड़कर प्रत्येक नई लोक सभा के लिए लगभग ऐसे ही विचारार्थ विषय वाली समिति का गठन किया गया।

कार्य प्रक्रिया

भारत सरकार के सभी मंत्रालय, राज्य सरकारों के मुख्य सचिव और संघ राज्यक्षेत्रों के प्रशासक समय-समय पर समिति के विचारार्थ उनके द्वारा नियुक्त सरकारी समितियों (जिनमें आयोग, बोर्ड आदि शामिल हैं) के संबंध में संगत जानकारी भेजते हैं। उसके बाद सचिवालय द्वारा समिति के विचारार्थ प्रत्येक सरकारी समिति के सम्बन्ध में एक ब्यौरे-वार ज्ञापन तैयार किया जाता है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित जानकारी दी जाती है:

(*i*) क्या यह पूर्णतया परामर्शदात्री समिति/निकाय है, अथवा इसे संरक्षण देने के कारण भी प्रभाव या शक्ति प्राप्त है; क्या यह गैर-परामर्शदात्री समिति है, जिसे कार्यकारी विधायी या न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं, अथवा निधियों का वितरण करने, जमीन आवंटित करने और लाइसेंस आदि जारी करने की शक्ति प्रदान करती है, या नियुक्तियां करने, छात्रवृत्तियां आदि देने की शक्ति प्रदान करती है और क्या यह आकस्मिक या संविदा पर आधारित निकाय है; और

---

828. *लो.स.वा.वि.,* 2.12.1958, पृ. 1270-74 ।

829. लोक सभा ने 3 अगस्त, 1959 को प्रस्ताव स्वीकार किया और राज्य सभा उससे 31 अगस्त, 1959 को सहमत हुई।

(*ii*) क्या धारक को 'क्षतिपूर्ति भत्ते' जैसा कि संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 2(क) में परिभाषित है, के अतिरिक्त कोई पारिश्रमिक दिया जाता है।

समिति, प्रत्येक सरकारी 'समिति' के सम्बन्ध में संगत जानकारी की जांच के बाद इस सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें देती है कि क्या उसे संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की अनुसूची के भाग-1 अथवा भाग-2 में[830] रखा जाये अथवा इसे निरर्हता से उन्मुक्ति प्रदान की जाये।

समिति समय-समय पर लोक सभा को प्रस्तुत अपनी रिपोर्टों में, उन सरकारी समितियों के सम्बन्ध में, जिनकी जांच उसने की है, यह सिफारिश करती है कि किसी सम्बद्ध मामले के लिए अथवा उसके संबंध में किन-किन पदों को धारण करने वालों को संसद की सदस्यता के लिये निरर्ह माना जाये और किन-किन पदों को धारण करने वालों को सदस्यता के लिये निरर्ह न माना जाये। इसके अतिरिक्त यह इससे सम्बन्धित अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी सिफारिशें करती है।

समिति का प्रतिवेदन लोक सभा में प्रस्तुत किये जाने के साथ-साथ ही, इसकी एक प्रति राज्य सभा के उस सदस्य, जो उस समिति का सदस्य हो और जिसे विशेष रूप से समिति द्वारा प्राधिकृत किया गया हो, के द्वारा राज्य सभा के पटल पर रखी जाती है।

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति

संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए अनेक रक्षोपायों तथा इन रक्षोपायों के क्रियान्वयन पर निगरानी रखने के लिए एक तंत्र का प्रावधान है।[831] संवैधानिक उपबंध[832] के अनुसरण में 'अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयुक्त' के नाम से एक विशेष अधिकारी की सन् 1950 में नियुक्ति की गई, जो तब से काम कर रहा है तथा राष्ट्रपति को अपने प्रतिवेदन देता है, जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की कल्याण-योजनाओं के कार्यान्वयन में उसकी जानकारी में आये कोई अपव्यय और अपर्याप्तता की ओर संबंधित प्राधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया जाता है। इन प्रतिवेदनों में उठाए गए मुद्दों की व्यापक रूप से संवीक्षा करने के लिए संसद समय नहीं निकाल पाती। इसलिए यह जरूरी समझा गया कि यह कार्य एक स्थायी संसदीय समिति को सौंप दिया जाना चाहिए। अनेक सदस्यों द्वारा इस आशय के सुझाव उस समय दिए गए, जब लोक सभा में आयुक्त के चौदहवें और पन्द्रहवें प्रतिवेदनों पर चर्चा की जा रही थी।[833]

---

830. संसद (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की अनुसूची के भाग-1 में उन 'समितियों' का उल्लेख है जिनके सभापति, और भाग-2 में उन 'समितियों' का उल्लेख है जिनके सभापति तथा सचिव, संसद के सदस्य चुने जाने या होने के लिए निरर्हता से उन्मुक्त नहीं हैं।

831. संगत अनुच्छेद हैं : 15 (4), 16-17, 330, 332, 334-335, 338, 341 और 342 ।

832. अनुच्छेद 338 ।

833. *लो.स.वा.वि.,* 2.8.1967, 3.8.1967, 7.8.1967 और 8.8.1967 ।

अत: लोक सभा द्वारा 30 अगस्त, 1968 को पारित किए गए प्रस्ताव के अनुसार संसद की दोनों सभाओं की, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति नामक एक समिति गठित की गई।[834] इस प्रस्ताव पर राज्य सभा ने 25 नवम्बर, 1968 को अपनी सहमति प्रदान की।[835]

12 मार्च, 1992 से प्रभावी संविधान (पैंसठवां संशोधन) अधिनियम, 1990 के माध्यम से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयुक्त कार्यालय समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग बनाया गया। फरवरी, 2004 में संविधान (नवासीवें) संशोधन अधिनियम, 2003 प्रभावी होने के बाद राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग को दो पृथक आयोगों अर्थात् राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग में बांट दिया गया था।

संरचना

समिति में कुल तीस सदस्य होते हैं, जिनमें से लोक सभा के बीस और राज्य सभा के दस सदस्य होते हैं। इन्हें आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से चुना जाता है। समिति के सभापति की नियुक्ति, अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है।

पहले समिति का कार्यकाल, समिति की पहली बैठक की तारीख से दो वर्ष के लिए था।[836] अब इसका कार्यकाल अन्य संसदीय समितियों की भांति एक वर्ष का ही होता है।[837]

कृत्य

समिति के कृत्य निम्नलिखित हैं[838]:

संविधान के अनुच्छेद क्रमश: 338(5)(घ) और 338क(5)(घ) के अंतर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदनों पर विचार करना तथा दोनों सभाओं को ऐसे उपायों के बारे में बताना, जो संघ राज्यक्षेत्र के प्रशासनों सहित केन्द्र सरकार के अधिकार-क्षेत्र में आने वाले मामलों में केन्द्र सरकार द्वारा किए जाने चाहियें;

---

834. *पूर्वोक्त,* 30.8.1968, कॉ. 3542 ।

835. *आर.एस. डिबेट्स,* 25.11.1968, कॉ. 1271-79 ।

836. समिति की पहली बैठक 18.12.1968 को हुई थी।

837. नियम 331 ख (2)।

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति के सदस्यों के कार्यकाल को बढ़ाने के लोक सभा और राज्य सभा के दो प्रस्ताव सभा द्वारा नियम 331 (ख) के उप-नियम (2) को निलंबित करने के बाद स्वीकार किए गए-*लो.स.वा.वि.,* 28.7.1975, पृ. यू 13 *आर.एस. डिबेट्स,* 30.7.1975, कॉ. 4-6 और *लो.स.वा.वि.,* 5.2.1976, पृ. 9-10, *आर.एस.डिबेट्स,* 6.2.1976, कॉ. 10 ।

838. नियम 331 क ।

समिति द्वारा प्रस्तावित उपायों पर केन्द्र सरकार तथा संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासनों द्वारा की गई कार्यवाही के बारे में दोनों सभाओं को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना;

अनुच्छेद 335 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, केन्द्रीय सरकार के नियंत्रणाधीन सेवाओं और पदों (जिनमें सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों, सांविधिक और अर्ध-सरकारी निकायों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में नियुक्तियां शामिल हैं) में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के समुचित प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा किए गए उपायों की जांच करना;

संघ राज्यक्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी कार्यक्रमों के कार्यकरण के बारे में दोनों सभाओं के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत करना;

ऐसे मामलों की जांच करना, जिन्हें समिति जांच के लिए उपयुक्त समझे अथवा जिन्हें सभा अथवा अध्यक्ष द्वारा उसे विशेष रूप से निर्दिष्ट किया जाये।

ऐसे उदाहरण हैं, जहां अध्यक्ष ने हरिजनों पर अत्याचार के विशिष्ट मामलों के संबंध में सदस्यों द्वारा प्रस्तुत की गई सूचनाओं को *(i)* अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के पूर्ववर्ती आयुक्त, के माध्यम से[839]; अथवा *(ii)* स्वयं समिति जांच किए जाने के लिए समिति सौंपा।[840] एक मामले में, मराठवाड़ा में बड़े पैमाने पर हुए उपद्रवों और कुछ हत्याओं से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के बाद सभा ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें समिति से मामले की जांच करने और ऐसी घटनाओं के लिए जिम्मेदार लोगों का पता लगाने तथा वर्तमान स्थिति से निपटने और भविष्य में भारत के किसी भी भाग में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए उपचारात्मक उपाय सुझाने का अनुरोध किया गया था।[841]

समिति का एक अध्ययन दल प्रभावित क्षेत्रों में गया और नागपुर पालिका क्षेत्र में हुई घटनाओं को छोड़कर, जिसके बारे में राज्य सरकार द्वारा न्यायिक जांच के आदेश दिए जा चुके थे, अन्य घटनाओं, परिस्थितियों आदि के बारे में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[842]

---

839. (i) गांव अमली कौर (जिला बांदा) के दो हरिजनों की हत्या; और (ii) गांव बुधाचक (जिला पटना) में एक हरिजन खेतिहर मजदूर की हत्या के बारे में तीन सदस्यों द्वारा नियम 377 के अंतर्गत मामले उठाने के लिए प्रस्तुत की गई सूचनाओं को अध्यक्ष ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के आयुक्त के माध्यम से जांच कराने हेतु समिति को भेजा था। आयुक्त से सूचना प्राप्त करने के पश्चात् समिति ने गृह मंत्रालय के प्रतिनिधियों का साक्ष्य लिया तथा 31 मार्च, 1976 को 51वां प्रतिवेदन (पांचवीं लोक सभा) प्रस्तुत किया।

840. दिनांक 6 दिसम्बर, 1976 को अध्यक्ष ने लोक सभा को सूचित किया कि उसने हरिजनों पर अत्याचार संबंधी अनेक शिकायतें जांच करने तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु समिति को भेजी थीं। उपरोक्त प्रतिवेदन में समिति ने इन घटनाओं को सम्मिलित कर लिया था।

841. *लो.स.वा.वि.,* 14.8.1978, पृ. 219 ।

842. दिनांक 30 अप्रैल, 1979 को प्रस्तुत किया गया 39वां प्रतिवेदन (पांचवीं लोक सभा)।

अत्याचार संबंधी एक अन्य उदाहरण में, समिति ने हरियाणा के हिसार जिले के प्रभावित मिर्चपुर गांव का दौरा किया और एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसके संबंध में राज्य सरकार ने न्यायिक जांच का ओदश दिया था। यह प्रतिवेदन 30 अगस्त, 2010 को संसद के दोनों सदनों के सभा-पटल पर रखा गया।

समिति ने हरियाणा कें जींद और कैथल जिलों के गांवों का भी दौरा किया जहाँ अनुसूचित जाति की महिलाओं पर अत्याचार के मामलों की सूचना मिली थी। समिति ने प्रभावित महिलाओं और उनके परिवार के सदस्यों से मुलाकात की और राज्य सरकार के अधिकारियों के साथ चर्चा की और उन्हें आरोपियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करने और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 के अनुसार पीड़ितों के लिए मुआवजा जारी करने और हरियाण में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने के निर्देश दिए। समिति ने 19 दिसम्बर, 2012 को संसद के दोनों सदनों के सभा-पटलों पर अपना प्रतिवेदन रखा।

समिति की कार्यप्रणाली

समिति ने अपने आंतरिक कार्यकरण के लिए प्रक्रिया संबंधी नियम बनाए हैं, जिन्हें अध्यक्ष द्वारा अनुमोदित किया गया है। ये नियम वित्तीय समितियों, अर्थात् लोक लेखा, प्राक्कलन और सरकारी उपक्रमों संबंधी समितियों से संबंधित नियमों पर आधारित हैं। समिति, अन्य बातों के साथ-साथ, सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्तियों का साक्ष्य ले सकती है, विषयों की जांच करने के संबंध में पत्रों, व्यक्तियों और अभिलेखों को भेजने के लिए कह सकती है, और अपने प्रतिवेदनों में की गई सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही दर्शाने वाले विवरण मंगा सकती है।

विषयों का चयन

समिति, समय-समय पर ऐसे विषयों का चयन करती है, जिन्हें यह उपयुक्त समझती है तथा जो इसे सौंपे गए कृत्यों के क्षेत्राधिकार में आते हैं। मंत्रालय/विभाग/उपक्रम/राष्ट्रीयकृत बैंक को लिखित रूप से कहा जाता है कि वे समिति द्वारा चुने गए विषय के संबंध में विस्तृत टिप्पणी और सामग्री भेजें। इनकी प्राप्ति पर इन्हें समिति के सदस्यों के उपयोग के लिए परिचालित कर दिया जाता है। इस तरह प्राप्त सामग्री और समिति के सदस्यों के सुझावों के आधार पर मंत्रालय/विभाग आदि से और सूचना प्राप्त करने के लिए प्रश्नावलियां तैयार की जाती हैं। प्रश्नावलियां तैयार करते समय राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा अपने प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों को ध्यान में रखा जाता है।

उप-समितियां/अध्ययन दल

समिति, उप-समितियां गठित करने के लिए प्राधिकृत है।

ऐसी एक उप-समिति का कार्य राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग के प्रतिवेदनों का विस्तृत अध्ययन करना है। समिति, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी विभिन्न विषयों के गहन अध्ययन के लिए समय-समय पर

अनेक अध्ययन दल गठित करती है, जिसमें प्रक्रिया और 'की गई कार्यवाही' प्रतिवेदनों संबंधी एक अध्ययन दल भी शामिल है।

अभ्यावेदन

जब से इस समिति का गठन हुआ है, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शिकायतें/अभ्यावेदन समिति के पास आ रहे हैं, जिनमें उनके कल्याण संबंधी मामलों के बारे में शिकायतों का उल्लेख होता है। सचिवालय में प्राप्त शिकायतें/अभ्यावेदनों की जांच की जाती है और सभी वास्तविक मामलों को संबंधित मंत्रालयों को तथ्यात्मक टिप्पणी के लिए भेज दिया जाता है।

प्राप्त तथ्यों के आधार पर यदि मंत्रालय/विभाग/उपक्रम संतोषजनक रीति से स्थिति को स्पष्ट करता है अथवा शिकायत का निपटान करता है, तो संबंधित व्यक्ति को स्थिति से अवगत करा दिया जाता है। जहां, मामले में नीतिगत अथवा सिद्धान्त का कोई प्रश्न निहित हो, तो सभापति की अनुमति से उसे समिति/प्रक्रिया संबंधी अध्ययन दल के विचारार्थ और निर्देश हेतु रखा जाता है।

तत्स्थानिक अध्ययन दौरे

समिति जांच हेतु लिए गए विषयों और सेवाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व तथा विभिन्न राज्यों 'संघ राज्यक्षेत्रों में अनुसूचित जातियों' अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति की जांच करने के लिए तत्स्थानिक दौरे करती है। समिति दौरे के प्रयोजनार्थ दो या तीन अध्ययन दलों में विभाजित हो जाती है। दौरे से वापस आने पर एक 'दौरा प्रतिवेदन' तैयार किया जाता है और इसे लोक सभा/राज्य सभा के पटल पर रखा जाता है। लोक सभा और राज्य सभा के पटलों पर 'दौरा प्रतिवेदन' रखे जाने के बाद प्रतिवेदन की प्रतियां सदस्यों के उपयोग के लिए संसदीय ग्रंथालय में भी रखी जाती हैं। राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाली शिकायतों/ अभ्यावेदनों को संबंधित राज्य सरकारों के मुख्य सचिवों द्वारा उन पर उचित विचार और निपटान करने के लिए भेजा जाता है।

साक्ष्य

समिति, सरकारी और गैर-सरकारी साक्षियों का साक्ष्य लेती है।

जब साक्ष्य लिए जा रहे होते हैं तो किसी बाहरी व्यक्ति को बैठक में आने की अनुमति नहीं दी जाती है। कार्यवाही का शब्दशः रिकार्ड रखा जाता है और इसे गोपनीय समझा जाता है।

प्रतिवेदन तैयार और प्रस्तुत किया जाना

साक्ष्य लेने के बाद जांच के विषय/विषयों के संबंध में एक प्रतिवेदन तैयार किया जाता है और सभापति द्वारा या इसके लिए प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य द्वारा इसे सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

बैठकों के कार्यवाही-सारांश

सभापति के अनुमोदन के पश्चात् समिति की बैठकों का कार्यवाही-सारांश समिति के सदस्यों को भेजा जाता है और उनके संबंधित प्रतिवेदनों के साथ उन्हें संसद के प्रत्येक सदन के सभा-पटल पर रखा जाता है।

समिति कार्य का प्रभाव

पिछले वर्षों में, अनुसूचित जातियों तथ अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों की सुरक्षा करने के एक प्रभावी यंत्र के रूप में विकसित हो चुकी है। समिति ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों हेतु आरक्षण, रोजगार और उनके सामाजिक-आर्थिक विकास के मामलों में सरकार और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों पर अत्यधिक प्रभाव डाला है। यह जागरुकता उत्पन्न की गयी है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संवैधानिक सुरक्षोपायों के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने के लिए संसद की एक निगरानी समिति है। अपने निदेश पदों के कारण, समिति द्वारा जांच हेतु चयनित विषयों के विशेष संदर्भ में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों पर की-गई-कार्यवाही के संबंध में सरकार से सूचना अथवा स्पष्टीकरण मांगने के संबंध में विशेष ध्यान दिया है।

महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति

महिलाओं के लिए समानता और उनका उचित दर्जा सुनिश्चित करने हेतु तथा उन्हें भेद-भाव से बचाने के लिए संविधान तथा अन्य विधियों में सुरक्षोपाय किए गए हैं। वास्तव में, अनुच्छेद 15(3) में राज्य को अध्यारोही आधार पर महिलाओं के लिए विशेष उपबंध करने का अधिकार दिया गया है। भारतीय संसद ने इन संवैधानिक दायित्वों के अनुसरण में तथा महिलाओं के अधिकारों को केन्द्र बिन्दु में लाने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 अधिनियमित किया। महिलाओं से संबंधित विषयों पर विचार करने के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त, स्वशासी सर्वोच्च निकाय के रूप में कार्य करने वाले इस आयोग की स्थापना 31 जनवरी, 1992 को की गई थी। यह आयोग तब से काम कर रहा है और संबंधित विषयों पर प्रतिवेदन देता रहा है।

73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जहां पंचायती राज संस्थाओं, नगरपालिकाओं को संवैधानिक स्वीकृति प्रदान की गई, वहीं इस अधिनियम में अन्य बातों के साथ-साथ राजनीति और विकास संबंधी निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं को अधिक अधिकार सुनिश्चित करने की दृष्टि से इन संस्थाओं में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए निर्धारित किए गए हैं।

महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने और उनके उत्थान की बढ़ती आवश्यकता पर विचार के मद्दे-नजर महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए 8 मार्च, 1996 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर राज्य सभा और लोक सभा की तत्संबंधी स्थायी समिति के गठन के लिए दोनों सभाओं में समान स्वरूप के संकल्प प्रस्तुत किए गए।

उपर्युक्त संकल्प के अनुसरण में, मामले पर नियम समिति (11वीं लोक सभा) द्वारा विचार किया गया। नियम समिति ने 6 मार्च, 1997 को सभा पटल पर रखे गए अपने दूसरे प्रतिवेदन में सिफारिश की कि इस उद्देश्य के लिए एक समिति गठित की जाए। तद्नुसार 29 अप्रैल, 1997 को महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति गठित की गई।

संरचना

समिति में 30 सदस्य होते हैं, जिनमें से 20 सदस्य अध्यक्ष द्वारा लोक सभा के सदस्यों में से नामनिर्दिष्ट किए जाते हैं और 10 सदस्य राज्य सभा के सभापति द्वारा राज्य सभा के सदस्यों में से नामनिर्दिष्ट किए जाते हैं।

समिति के सभापति की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है। कोई मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता और यदि समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट होने के बाद कोई सदस्य मंत्री नियुक्त होता है, तो इस नियुक्ति की तिथि से वह समिति का सदस्य नहीं रहता है। अन्य संसदीय समितियों की भांति इस समिति का कार्यकाल भी एक वर्ष से अधिक नहीं होता है।

कृत्य

महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी समिति के कार्य इस प्रकार हैं:

> राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों पर विचार करना तथा संघ राज्यक्षेत्र के प्रशासन सहित केन्द्र सरकार के अधिकार क्षेत्र के अधीन मामलों के संबंध में महिलाओं की स्थिति/दशा में सुधार लाने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा किए जाने वाले उपायों के बारे में प्रतिवेदन देना; महिलाओं को सभी मामलों में समानता, उचित दर्जा और प्रतिष्ठा दिलाने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा किए गए उपायों की जांच करना; व्यापक शिक्षा हेतु तथा विधायी निकायों/सेवाओं और अन्य क्षेत्रों में महिलाओं के पर्याप्त प्रतिनिधित्व हेतु केन्द्र सरकार द्वारा किए गए उपायों की जांच करना; महिलाओं के कल्याण कार्यक्रमों के कार्यकरण के बारे में प्रतिवेदन देना; समिति द्वारा प्रस्तावित उपायों के मामले में केन्द्र सरकार और संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासनों की ओर से 'की-गई-कार्रवाई' के बारे में प्रतिवेदन देना; और ऐसे अन्य मामलों की जांच करना जिन्हें समिति उपयुक्त समझती हो, अथवा जो इसे सभा या अध्यक्ष द्वारा तथा राज्य सभा या राज्य सभा के सभापति द्वारा विशेष रूप से सौंपे जाएं।

समिति की कार्यप्रणाली

समिति महिलाओं से जुड़े मुद्दों से संबंधित विषयों को विस्तृत जांच के लिए चुनती है। समिति संबद्ध मंत्रालयों/विभागों और अन्य सरकारी निकायों के साथ-साथ कुछ गैर-सरकारी संगठनों से इन विषयों से संबंधित प्रारंभिक सामग्री मंगाती है। समिति प्रश्न-सूची के माध्यम से अनुपूरक और साक्ष्योपरांत उत्तरों सहित लिखित उत्तरों को भी मांगती है। इसके अलावा समिति संबंधित मंत्रालयों/विभागों के प्रतिनिधियों का मौखिक साक्ष्य भी लेती है। समिति चयनित विषयों के संबंध में संबंधित महिला प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श करने के प्रयोजन से तत्स्थानिक दौरे भी करती है।

प्रारंभिक सामग्री, लिखित उत्तरों, गैर-सरकारी अधिकारियों से प्राप्त ज्ञापनों, मंत्रालय के साक्ष्य, अध्ययन-दौरे के दौरान प्राप्त जानकारी, प्रेस कतरनों और प्रासंगिक पुस्तकों और पत्रिकाओं के आधार पर, समिति विषय की जांच करती है और प्रतिवेदन तैयार करती है और उन्हें संसद में प्रस्तुत करती है।

सभा में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् प्रतिवेदन संबंधित मंत्रालय/विभाग/संगठन को भेजा जाता है जिन्हें लोक सभा सचिवालय को प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण की तिथि से छह महीनों के भीतर अथवा प्रतिवेदन में निर्धारित समय के भीतर प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिशों पर उनके द्वारा की-गई-कार्यावाही को दर्शाने वाला विवरण प्रस्तुत करना होता है। इसके अतिरिक्त, समिति मंत्रालयों/विभागों से प्राप्त की-गई-कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदनों पर की-गई-कार्यवाही टिप्पणों की जांच करती है और उन्हें की गई कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदनों पर सरकार द्वारा की-गई-कार्यवाही संबंधी विवरण के रूप में सभा के पटल पर रखा जाता है।

रेल अभिसमय समिति

रेल अभिसमय समिति एक तदर्थ समिति है जिसका गठन, रेल उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व को देय लाभांश की दर तथा रेल वित्त की तुलना में सामान्य वित्त से संबंधित अन्य अनुषंगी मामलों की समीक्षा करने के लिए तथा इन सब विषयों पर सिफारिश करने के लिए समय-समय पर किया जाता है। सामान्य राजस्व को रेलवे द्वारा देय लाभांश दर की सिफारिशें करने के अलावा यह मूल्यह्रास, आरक्षित निधि, पेंशन निधि, पूंजी निधि, विकास निधि, भूमि सुरक्षा निधि और प्रतिबद्ध दायित्व निधि जैसी विभिन्न रेल निधियों के लिए विनियोजन स्तर का भी सुझाव देती है।

भारतीय रेल के विकास का सबसे अधिक श्रेय भारत के गर्वनर जनरल लार्ड डलहौजी (1848-1856) को जाता है, जिन्होंने बम्बई, बंगाल और मद्रास प्रेजीडेन्सी के आन्तरिक क्षेत्रों को उनके मुख्य बन्दरगाहों के साथ और इन प्रेजिडेन्सियों को आपस में एक-दूसरे से जोड़ने वाली ट्रंक लाइन प्रणाली के लिए सुझाव दिए थे। चूंकि इस कार्य को करने के लिए सरकार के पास न तो धन था न ही तकनीकी कार्मिक। इसलिए इस कार्य को निजी कम्पनियों को दे दिया गया और उन्हें 25 वर्षों की अवधि के लिए उनकी पूंजी पर 5 प्रतिशत का प्रतिलाभ देने की गारंटी दी गई। इसके बदले में, उन कम्पनियों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे अपने अधिशेष लाभ में सरकार को सहभागी बनाएं और पच्चीस वर्षों के बाद रेलवे को सरकार के हाथों बेच दें। चूंकि अपेक्षित लाभ की प्राप्ति नहीं हो पाई और गारंटी शुद्ध प्रतिलाभ को राजकोष से पूरा किया जाता रहा, इसलिए सरकार ने अनुबंध अवधि की समाप्ति पर रेलवे को खरीद लिया, हालांकि रेलवे का प्रबंधन फिर भी कम्पनियों के हाथों में ही रहा। बाद में, एक्वर्थ समिति (1920-21) की सिफारिशों के अनुसार सरकार ने रेलवे के बड़े भाग के प्रबन्धन का कार्य अपने हाथों में ले लिया। समिति ने रेल राजस्व से एक निश्चित अंशदान की व्यवस्था कर मुख्यत: सिविल कार्य प्राक्कलन में स्थायित्व लाने के लिए तथा रेल संबंधी वित्त-प्रशासन में लचीलापन लाने के लिए रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग करने की सिफारिश की।

17 सितम्बर, 1924 को रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग करने के संकल्प को लेजिस्लेटिव असेम्बली में प्रस्तुत करते समय तत्कालीन वाणिज्य सदस्य सर चार्ल्स इन्स ने अपने उद्‌देश्यों को निम्नलिखित शब्दों में अत्यन्त संक्षेप में बताया:

"सबसे पहले जहां तक राजकीय रेलवे का सवाल है, हम एक वर्ष के लिए स्वीकृत राजस्व-कार्यक्रम की इस प्रणाली को भी पूर्णतः समाप्त करना चाहते हैं। हम एक उपयुक्त मूल्यह्रास कोष स्थापित करना चाहते हैं, जो वैज्ञानिक तथा बुद्धिमत्तापूर्ण विधि से बनाया गया हो। उसके बाद हम रेल आरक्षित निधि बनाना चाहते हैं। हम यह इसलिए बनाना चाहते हैं ताकि हमारा वित्त और अधिक लचीला हो सके और हम लाभांश में समरूपता लाने के उपबंध कर सकें। सामान्यतः हम एक ऐसी वित्त-प्रणाली लाना चाहते हैं, जो इस सभा के सशक्त नियंत्रण को बरकरार रखते हुए तथा सामान्य राजस्व के लिए रेल सम्पत्ति से समुचित प्रतिलाभ को सुनिश्चित करते हुए बड़े वाणिज्य उपक्रम की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। अन्त में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हम एक सिद्धांत तय करना चाहते हैं। यह सही और उचित है कि रेलवे में धन लगाने वाले करदाताओं एवं सरकार को उनके धन पर उचित स्थाई प्रतिलाभ मिलना चाहिए। लेकिन यदि आप इससे आगे जाते हैं, अर्थात् आप रेलवे से उस उचित प्रतिलाभ से अधिक लेते हैं, तो इसका मतलब है कि आप छिपे तौर पर कराधान के गलत तरीके को अपना रहे हैं। अर्थात् परिवहन पर कर लगा रहे हैं। इस सदन के समक्ष इन प्रस्तावों को रखने का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य इस सिद्धांत को स्थापित करना है।

यही कारण है कि हम इस सभा को सामान्य वित्त से रेलवे को अलग करने सम्बन्धी सुधार को स्वीकार करने के लिए कह रहे हैं जिस पर एक्वर्थ समिति बार-बार जोर देती रही है। हमने इस मामले में विधान बनाने की संभावना पर विचार किया, किन्तु हमने निश्चय किया कि संकल्प में सुझाए गए तरीकों से ही आगे बढ़ना बेहतर होगा अर्थात् हमने निश्चय किया कि यह बेहतर होगा कि सभा को एक अभिसमय के बारे में सहमत होने के लिए कहा जाए। अभिसमय में कुछ ऐसे फायदे हैं, जिनसे समय-समय पर परवर्ती आवश्यकताओं और कठिनाइयों के अनुरूप समायोजन किया जा सकता है। इसे संविधान की सुनियोजित प्रगति से भी समायोजित किया जा सकता है। हमारा सदैव यही प्रयास रहा है कि सभा के द्वारा हम जो भी व्यवस्था करें उसकी समय-समय पर समीक्षा होती रहनी चाहिए। सभा यह सुनिश्चित करेगी कि समिति की सिफारिश पर हमने संशोधित संकल्प के अंतिम खंड में इसका निश्चित रूप से प्रावधान किया है।"

इस अभिसमय, जिसे सामान्यतः 'पृथक्करण अभिसमय' के रूप में जाना जाता है, को 20 सितम्बर, 1924 को सभा के एक संकल्प द्वारा अंगीकृत किया गया था और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स द्वारा अनुमोदित किया गया था। 'पृथक्करण अभिसमय' के अन्तर्गत रेलवे को अपनी पूंजी पर, जिसे पूर्ण रूप से भारत सरकार द्वारा दिया जाता था, एक निर्धारित दर पर लाभांश देना अपेक्षित था। संकल्प में यह प्रावधान था कि सामान्य राजस्व को रेलवे से एक निश्चित वार्षिक अंशदान प्राप्त होगा जो रेलवे की प्राप्तियों पर पहला प्रभार होगा। अंशदान का परिकलन पूर्वान्तिम वित्तीय वर्ष के अन्त में प्रभारित पूंजी का एक प्रतिशत और इस निश्चित राशि की अदायगी के बाद बचे अधिलाभ का 1/5 हिस्से के

हिसाब से किया जाना था बशर्ते किसी वर्ष में रेलवे का राजस्व पूंजी प्रभार के एक प्रतिशत की दर से प्रतिलाभ देने में अपर्याप्त हो तो अगले और आगामी वर्षों के लिए वितरण हेतु अधिलाभ तब तक उद्भूत नहीं माना जाएगा जब तक कि इस कमी को पूरा न कर लिया जाए। प्रभारित पूंजी पर ब्याज और कार्यरत महत्वपूर्ण लाइनों को हुई क्षति को सामान्य राजस्व द्वारा वहन किया जाना था और इसे रेलवे द्वारा भुगतान किये जाने वाले अंशदान में से कम किया जाना था। सामान्य राजस्व को किये गये इस भुगतान के बाद किसी तरह के शेष अधिलाभ को रेलवे रिजर्व में अन्तरित किया जाना था बशर्ते कि रेलवे की आरक्षित निधि को अन्तरित की जाने वाली उपलब्ध राशि किसी भी वर्ष में तीन करोड़ रुपये से अधिक हो तो तीन करोड़ रुपये से अधिक राशि का केवल दो-तिहाई ही रेलवे की आरक्षित निधि को अन्तरित किया जाएगा और शेष एक-तिहाई राशि सामान्य राजस्व को उद्भूत होगी।

'पृथक्करण अभिसमय' की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में पहली विशेषता यह भी थी कि रेलवे से सामान्य राजस्व को देय एक निश्चित वार्षिक अंशदान का निर्धारण जिसकी गणना रेल प्रणाली की प्रभारित पूंजी तथा इसके द्वारा अर्जित लाभ के संदर्भ में की जाती है और दूसरी विशेषता यह थी कि रेलवे के लिए आरक्षित निधि तथा मूल्यह्रास निधि की स्थापना की गई थी। मुख्यत: निम्न कारण इन व्यवस्थाओं के पक्ष में थे :

– क्योंकि सरकार ने अपनी साख पर भारत में रेल निर्माण के लिए धन जुटाया है, इसलिए यह उचित है कि रेलवे द्वारा देय प्रतिलाभ मुख्य रूप से जुटाये गये धन पर आधारित होना चाहिए;

– ऐसे प्रतिलाभों की गणना का सबसे उत्तम तरीका ऐसी रेल लाइनों पर खर्च किया गया धन होता है जिनसे प्रतिलाभ होने की अपेक्षा होती है न कि उन रेल लाइनों से जिन्हें बिल्कुल अन्य कारणों से बनाया गया है; और

– जहां एक ओर करदाता की लाभकारी वर्षों में अपने द्वारा वित्तपोषित रेलवे की समृद्धि में सहभागिता उचित है वहीं यह उसके लिए लाभकारी होता है क्योंकि जैसे-जैसे निवेशित पूंजी बढ़ती जाती है उससे दीर्घावधि में उसकी आय में भी निश्चित रूप से वृद्धि होती है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए यह वांछनीय है कि अंशदान का अपेक्षाकृत एक छोटा भाग रेलवे की अतिरिक्त आय पर निर्भर होना चाहिए और मुख्य भाग सरकार द्वारा व्यावसायिक लाइनों के निर्माण के लिए मुहैया कराये गये धन पर एक निश्चित अर्जित लाभ हो।

अभिसमय में ही तीन वर्षों के भीतर स्वयं अपनी समीक्षा करने का उपबंध अन्तर्विष्ट है। सभा की एक समिति ने इस विषय की 1928 में जांच की थी लेकिन वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंची। चौथे दशक के आरंभिक वर्षों में सामान्य आर्थिक मंदी से रेलवे की वित्तीय व्यवस्था काफी प्रभावित हुई थी और उसका सभी आरक्षित धन सामान्य राजस्व में अंशदान को बनाये रखने में ही खत्म हो गया जिसका परिणाम यह हुआ कि रेलवे के सभी नवीकरण और प्रतिस्थापन के कार्य स्थगित हो गये। अन्ततोगत्वा स्थिति इतनी खराब हो गई कि अधिस्थगन की घोषणा करनी पड़ी और पांचवें दशक के आरंभिक वर्षों में सामान्य वित्त में तब तक रेलवे से कोई अंशदान प्राप्त नहीं हुआ जब तक द्वितीय विश्वयुद्ध

के दौरान भारत में रेल यातायात में भारी बढ़ोत्तरी नहीं हुई और इसके बाद ही इसने भारी लाभ दर्शाया।

अनेक कटौती प्रस्ताव, संकल्प और प्रश्न लाये गये इन सब के बदलती परिस्थितियों के अन्तर्गत सन्तोषजनक कार्य करने में अभिसमय की असफलता की ओर संकेत किया गया। 20 मार्च, 1942 को लाये गये कटौती प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान भाग लेने वाले कई सदस्यों ने इस तथ्य पर जोर दिया था।

इसलिए 2 मार्च, 1943 को रेलवे और युद्ध परिवहन के तत्कालीन सदस्य सर एडवर्ड बेन्थॉल ने निम्न संकल्प पेश किया था:

"जबकि ऐसा पाया गया है कि अभिसमय, जिसे 20 सितम्बर, 1924 को असेम्बली के संकल्प के अंतर्गत स्वीकार किया गया था और जिसका उद्देश्य सामान्य बजट को उसमें समाविष्ट रेल प्राक्कलन से उत्पन्न भारी उतार-चढ़ाव से मुक्त करना था और रेलवे को इस प्रयोजनार्थ सक्षम बनाना था कि सरकार द्वारा व्यय की गई राशि पर सामान्य राजस्व को एक निश्चित प्रतिलाभ मिलने की आवश्यकता पर आधारित एक सतत् रेलवे नीति रेलवे द्वारा क्रियान्वित की जाए जबकि यह पाया गया है कि इस अभिसमय के तहत इन उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया गया है, अत: यह असेम्बली गवर्नर जनरल इन कौंसिल को सिफारिश करती है कि:

(*i*) वर्ष 1942-43 के लिए अभिसमय के अन्तर्गत देय वर्तमान और बकाया अंशदान के अतिरिक्त 2,35,32 हजार रुपये सामान्य राजस्व के रूप में भुगतान किये जायेंगे;

(*ii*) 1 अप्रैल, 1943 से, जैसा अभिसमय में सामान्य राजस्व के रूप में अंशदान और अधिशेष के आवंटन का प्रावधान है, यह प्रभावी नहीं रहेगा;

(*iii*) वर्ष 1943-44 के लिए व्यावसायिक लाइनों पर अधिशेष मूल्यह्रास निधि से किसी बकाया ऋण की पुनर्अदायगी के लिए उपयोग किये जाएंगे और उसके बाद 25 प्रतिशत राशि रेलवे की आरक्षित निधि के रूप में तथा 75 प्रतिशत सामान्य राजस्व के रूप में दी जाएगी और महत्वपूर्ण लाइनों पर नुकसान, यदि कोई हो, तो उसकी भरपाई सामान्य राजस्व से की जायेगी; और

(*iv*) अनुवर्ती वर्षों के लिए और जब तक सभा द्वारा कोई नवीन अभिसमय स्वीकार नहीं किया जाता, रेल निधि और सामान्य राजस्व के बीच वाणिज्यिक लाइनों के संबंध में अधिशेष राशि के आवंटन का निर्णय, प्रतिवर्ष रेलवे और सामान्य राजस्व की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाएगा। यदि महत्वपूर्ण लाइनों के संबंध में कोई घाटा होगा तो उसकी पूर्ति सामान्य राजस्व से की जाएगी।"

इस संकल्प को लाने के कारणों को स्पष्ट करते हुए, सर एडवर्ड बेन्थॉल ने कहा:

"इस संकल्प को इस रूप में लाने के दो कारण हैं। पहला कारण इस वर्ष तथा आगामी वर्ष के सामान्य राजस्व पर भार को कम करने की आवश्यकता है। माननीय वित्त सदस्य ने शनिवार को जो आम बजट पेश किया, वह स्वयं इसके औचित्य को स्पष्ट करता है। दूसरा यदि हमें वर्तमान आपात स्थिति में प्रस्तावित सीमा तक पहली आवश्यकता को पूरा करना है आगामी वर्षों में रेल बजट पर भार कम करने की आवश्यकता है। मेरे विचार

से तो अधिशेष-लाभ का इतना बड़ा हिस्सा सामान्य राजस्व में देना तर्कसंगत नहीं होगा, जब तक कि भविष्य में रेलवे को उसके एक प्रतिशत अंशदान से मुक्त न कर दिया जाए। रेलवे के दृष्टिकोण से, मैं संकल्प के पैरा (*ii*) को, 1943-44 के प्रत्याशित अधिशेष का वितरण करने के प्रस्तावों का अनिवार्य हिस्सा मानता हूँ। यदि आगामी वर्षों के लिए रेलवे को इस एक प्रतिशत अंशदान से मुक्त नहीं किया जाता, तो हमें रेल आरक्षित निधि के लिए अधिक राशि आवंटित करनी चाहिए जिससे कि मन्दी के समय भी इस राशि का भुगतान किया जा सके। इसके अलावा अन्य कोई भी कदम, दीर्घावधिक दृष्टि से, सुदृढ़ वित्त नहीं माना जा सकता।"

उस समय कुछ सदस्यों ने अभिसमय की तत्काल व्यापक समीक्षा करने का अनुरोध किया। परन्तु, सर एडवर्ड बेन्थॉल ने आगाह किया कि इस समय वे बाजार में तेजी की स्थितियों के बीच बजट की प्रक्रिया से गुजर रहे थे (क्योंकि उस समय युद्ध पूरे जोरों पर था) और अंतिम रूप से समीक्षा करने के लिए यह आवश्यक होगा कि रेलवे और सामान्य राजस्व के बीच आवंटन का समुपयुक्त आधार निश्चित करने से पूर्व, सामान्य दिनों में संभावित सकल प्राप्त राशि और व्यय का प्राक्कलन किया जाए। इस संकल्प पर हुई चर्चा के दौरान तीन प्रस्ताव रखे गए। पहला यह था कि इस पूरे विषय की जांच करने के लिए एक तदर्थ समिति होनी चाहिए। दूसरा यह था कि एक विशेषज्ञ आयोग गठित किया जाना चाहिए। तीसरे प्रस्ताव में यह कहा गया था कि इस प्रश्न की जांच करने के लिए सभा की एक समिति गठित की जानी चाहिए। सर एडवर्ड बेन्थॉल ने जो सुझाव रखा, वह यह था कि इस विषय को रेलवे की वित्त संबंधी स्थायी समिति और यदि उपयुक्त समझा जाए तो, केन्द्रीय रेल सलाहकार परिषद् को सौंप दिया जाए। चर्चा समाप्त करते हुए, सर एडवर्ड बेन्थॉल ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए सभा की एक विशेष समिति नियुक्त करने की पेशकश की और संकल्प स्वीकार कर लिया गया।

वर्ष 1943 में स्वीकृत संकल्प का सार यह था कि जहां तक सामान्य राजस्व में अंशदान का प्रश्न था, उस संबंध में 1924 के संकल्प के प्रावधान लागू नहीं होंगे। सामान्य वित्त प्रबंध तथा रेलवे वित्त प्रबंध दोनों की परिस्थितियों के अनुसार संकल्प में तदर्थ आधार पर व्यवस्था की गई थी।

इस संकल्प के अनुपालन में, 23 मार्च, 1943 को असेम्बली द्वारा पारित सभा के 2 मार्च, 1943 के संकल्प के खण्ड (4) से उत्पन्न विषयों पर विचार करने के लिए, सभा द्वारा 20 सितम्बर, 1924 को स्वीकृत पृथक्करण अभिसमय में संशोधन करके एक रेल अभिसमय समिति गठित की गई; किन्तु उसके द्वारा एक अतंरिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् शीघ्र ही उसे समाप्त कर दिया गया। समिति ने, अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश की थी कि अभिसमय के पुनर्गठित होने तक, मूल्यह्रास निधि में दिये जाने वाले अंशदान की तत्कालीन दर को कम नहीं किया जाना चाहिए। 1947 में, बजट-सत्र के दौरान, इस विषय में जांच-पड़ताल करने के लिए केन्द्रीय विधान सभा की एक समिति गठित की गई; किन्तु सत्ता के हस्तांतरण के कारण आसन्न संवैधानिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, 1947 के बजट-सत्र के बाद सभा के भंग होने पर केन्द्रीय विधान सभा और उसकी समिति अस्तित्व में नहीं रहीं।

अभिसमय के पुनर्गठन के मसले पर पण्डित एच.एन. कुंजरू की अध्यक्षता वाली भारतीय रेल जांच समिति (1946-47), ने भी विचार किया था। समिति तत्काल पुनर्गठन के विरुद्ध थी और उसने यह सुझाव दिया था कि युद्ध के परिणामस्वरूप प्रतिस्थापन योग्य लम्बित कार्यों आदि को रेलवे जब तक पूरा नहीं कर लेता, तब तक प्रतीक्षा की जानी चाहिए। इस समिति का कहना था:

"क्योंकि वर्तमान अस्थिरता को देखते हुए निधियों के लिए राशि का आवंटन करने के संबंध में कोई भी निर्धारित मानदण्ड नहीं बनाया जा सकता, अतएव, हम केवल यही सिफारिश करते हैं कि अगले पांच वर्षों के लिए कोष में, लगभग 22 करोड़ रु. प्रतिवर्ष की दर से, वार्षिक अंशदान किया जाये।"

तथापि, सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार नहीं किया।

वर्ष 1943 के अभिसमय-संकल्प में की गई व्यवस्थाएं यद्यपि 1948-49 तक चलती रहीं, किन्तु वे बहुत संतोषजनक नहीं रहीं। 1948-49 के लिए रेल-बजट प्रस्तुत करते हुए रेल मंत्री ने रेल-अधिशेष के आबंटन के प्रश्न का निर्णय करने के लिए श्री जी.वी. मावलंकर, जो संविधान सभा (विधायी) के अध्यक्ष थे, की अध्यक्षता में वित्त संबंधी स्थायी समिति के तीन सदस्य और रेलवे की वित्त संबंधी स्थायी समिति के तीन सदस्य वाली एक समिति नियुक्त करने की घोषणा की। इस समिति ने 1948-49 के लिए, अनुमानित बजट अधिशेष, 9 करोड़ के 50 प्रतिशत भाग (अर्थात् 4.5 करोड़ रु.) को सामान्य राजस्व में दिया जाना निर्धारित किया और यह कि यदि यह राशि 9 करोड़ रु. से अधिक हो तो वह सुधार-कोष में जमा की जानी होगी। तथापि, 1948-49 में रेलवे के संशोधित प्राक्कलनों के आधार पर यह राशि बढ़ाकर 7.34 करोड़ रु. कर दी गयी। 1949-50 के रेल बजट-अनुमान तैयार करते समय भी इसी सिद्धान्त को अपनाया गया था।

1949 का अभिसमय-प्रथम स्वातंत्र्योत्तर अभिसमय

वर्ष 1949-50 के लिए बजट-भाषण देते हुए रेलमंत्री ने इस विषय की जांच तथा मूल्यह्रास निधि से संबंधित समस्याओं की जांच करने के लिए एक रेल अभिसमय समिति गठित करने के संबंध में घोषणा की जिसमें सभा के सदस्यों को लिया जाना था और जिसे कैलेण्डर वर्ष 1949 की समाप्ति तक अपनी सिफारिशें देनी थीं।

अंततः इस समिति ने 1924 की व्यवस्था समाप्त करने और उसके स्थान पर एक सरल, अधिक समीचीन तथा अपेक्षाकृत सुगम व्यवस्था अपनाने का निर्णय किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि एक नियत लाभांश से सहमत अवधि के दौरान, प्रभारित पूंजी पर विश्वसनीय प्रतिलाभ मिलेगा और इससे सामान्य राजस्व में सुनिश्चित आय होगी जिससे भावी योजनाएं बनाने में सुविधा होगी, और साथ ही रेलवे उपक्रम को लम्बे समय से लम्बित चले आ रहे नवीकरण, प्रतिस्थापन और उपेक्षित रख-रखाव के कार्य को पूरा करने और इसके साथ-साथ रेल सेवा में सुधार एवं विस्तार करने के लिए एक व्यापक पुनर्वास कार्यक्रम के कार्यान्वयन में सहायता मिलेगी।

समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिशें कीं:

सामान्य वित्त के तहत उपक्रम में निवेश की गई ऋण-पूंजी पर सावधि लाभांश की गारंटी होनी चाहिए जो वार्षिक आधार पर परिकलित होती है। 1950-51 से शुरू होकर, पांच वर्षों की अवधि के लिए ऐसी पूंजी पर लाभांश दर 4 प्रतिशत होनी चाहिए;

सभा की एक समिति को इस अवधि की समाप्ति पर दरों की समीक्षा करनी चाहिए और रेल उपक्रम की राजस्व आय सरकार की औसतन उधार दर और किसी अन्य प्रासंगिक कारक को ध्यान में रखते हुए आगामी वर्षों में इसके समायोजन के लिए, यदि आवश्यक समझा जाए, सुझाव देना चाहिए;

मूल्यह्रास निधि में अंशदान; वर्ष 1950-51 से शुरू होकर 5 वर्षों के लिए प्रतिवर्ष 15 करोड़ रुपये की न्यूनतम धनराशि होनी चाहिए। प्रतिस्थापन की पूर्ण लागत इस निधि से प्रभारित की जानी चाहिए;

समिति ने पूंजी और राजस्व के बीच व्यय के आबंटन संबंधी मौजूदा नियमों में परिवर्तन करने, एक विकास निधि बनाने और अप्रयोज्य धनराशि से ऋण की धनराशि के अलग किये जाने आदि के बारे में भी सिफारिश की है।

21 दिसम्बर, 1949 को तत्कालीन रेल मंत्री गोपालस्वामी अय्यंगर ने 1949 के अभिसमय की स्वीकृति हेतु संकल्प पेश करते समय कहा था:

1924 के संकल्प के 'सूत्र' अथवा 1943 के संकल्प में विहित 'प्रतिवर्ष के लिए' 'तदर्थ रीति' के आधार पर इस प्रकार की किसी अधिशेष राशि को सामान्य राजस्व में अतिरिक्त अंशदान के रूप में देने की बात को, सामान्य वित्त या रेल-वित्त के लिए लागू सुदृढ़ वित्तपोषण का कोई भी स्वीकार्य सिद्धांत नहीं माना जा सकता है। ऐसा करने से सामान्य और रेल वित्त दोनों में अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। यह दोनों के लिए अच्छी स्थिति नहीं होगी। सामान्य वित्त की गणना कुछ निश्चित आधार पर की जाती है और यह आधार रेलवे के प्रतिवर्ष कार्यकरण से प्राप्त होता है अन्यथा शुरू की जाने वाली किसी भी योजना के बारे में अनिश्चितता बनी रहने से उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। रेल वित्त को इसके लिए भी आश्वस्त करना होगा कि यदि रेल प्रशासन के पास कोई अधिशेष राशि आती है तो उस पर उसका पूर्ण नियंत्रण होगा जिसका उपयोग वह लम्बी अवधि से पड़े हुए रख-रखाव और सुधार कार्य करने के प्रयोजन से कर सकता है। इससे विभिन्न दिशाओं में विस्तार हेतु धन प्राप्त करने में भी उसे सक्षम बनाया जा सकेगा।

संविधान सभा (विधायी) ने उसी दिन संकल्प स्वीकार कर लिया।

इस समिति द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में से एक बुनियादी सिद्धांत यह था कि लाभांश की निश्चित दर का निर्धारण करना जिसमें रेलवे के लिए उपलब्ध कराई गई पूंजी पर सरकार द्वारा प्रदत्त मात्र ब्याज के अतिरिक्त सामान्य राजस्व में अंशदान के घटक को भी शामिल किया गया। यह सिद्धांत इस बात को ध्यान में रखकर प्रतिपादित किया गया कि असल में सामान्य करदाता उपक्रम का स्वामी और पूर्ण शेयरधारक है। इस अभिसमय के कार्यकरण से सामान्य राजस्व को निरंतर आय सुनिश्चित हो गयी और यह रेलवे को पुनर्वास, परिचालन कार्य क्षमता बढ़ाने और पर्याप्त सुविधाओं के प्रावधान के लिए अपने दायित्व के निर्वहन हेतु अपनी निधियों को बढ़ाने में सक्षम बनाया है। इसने रेल उपक्रम में अत्यधिक पूंजीकरण को भी रोका ।

संरचना

पृथक्करण अभिसमय के कार्यकरण की 1954, 1960, 1965, 1973, 1977, 1980, 1985, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 और 2009 में नियुक्त समिति द्वारा समय-समय पर पुनरीक्षा की गई है।

रेल अभिसमय समिति का गठन सरकार द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत और राज्य सभा द्वारा स्वीकृत एक संकल्प के माध्यम से किया जाता है। इस समिति में लोक सभा के बारह और राज्य सभा के छह सदस्य होते हैं जिन्हें लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, नामनिर्दिष्ट किया जाता है। समिति के सभापति की नियुक्ति लोकसभा अध्यक्ष द्वारा लोकसभा के सदस्यों में से ही की जाती है। समिति के लिए नामनिर्दिष्ट सदस्यों में वित्त मंत्री और रेल मंत्री भी होते हैं।[843]

कार्यकाल

समिति एक बार गठित हो जाने पर लोक सभा के भंग होने तक अपना कार्य करती है जब तक कि वह अपना अन्तिम प्रतिवेदन पहले ही प्रस्तुत न कर दे और इस प्रकार भारमुक्त हो जाए।

कृत्य

यद्यपि रेल अभिसमय समिति ने अपने आंतरिक कार्यकरण को विनियमित करने के लिए कोई पृथक नियम नहीं बनाए हैं और यह कमोबेश संसद की अन्य वित्तीय समितियों जैसे

---

843. तथापि, पहली बार वित्त मंत्री को अभिसमय समिति (1989) के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट नहीं किया गया था। 10 नवम्बर, 1990 को केन्द्र में सत्ता-परिवर्तन के बाद नये रेल मंत्री को भी समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट नहीं किया गया और पूर्व रेल मंत्री समिति के सदस्य के रूप में बने रहे। अभिसमय समिति (1991) में रेल मंत्री और वित्त मंत्री दोनों को समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट नहीं किया गया। तथापि दोनों मंत्रियों को परवर्ती रिक्तियां होने पर समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट किया गया था। रेल अभिसमय समिति (1996) में सिर्फ रेल मंत्री को ही नामनिर्दिष्ट किया गया था। 2004 में दोनों मंत्रियों में से किसी को भी सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट नहीं किया गया।

के. सी. वेणुगोपाल को दिनांक 15.3.2010 के समाचार-भाग 2 के पैरा संख्या 1256 द्वारा रेल अभिसमय समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट किया गया था। वे अधिसूचना सं. 1/34/1/2011-कैब द्वारा 19.1.2011 को ऊर्जा राज्य मंत्री बने। तथापि, वे रेल अभिसमय समिति के सदस्य बने रहे तथा उन्होंने 4.2.2011 को समिति की बैठक में भाग लिया। वेणुगोपाल ने दिनांक 27.2.2011 के समाचार-भाग 2 द्वारा 21.12.2011 को रेल अभिसमय समिति की सदस्यता से त्यागपत्र दिया।

पी. बलराम नाईक और गिरिजा व्यास दिनांक 15.3.2010 के समाचार-भाग 2 संख्या 1256 द्वारा रेल अभिसमय समिति के सदस्यों के रूप में नामनिर्दिष्ट किए गए थे। वे क्रमश: 28.10.2012 और 12.06.2013 को मंत्री बने। तथापि, वे 28.06.2013 तक रेल अभिसमय समिति के सदस्य बने रहे।

लोक लेखा समिति,[844] प्राक्कलन समिति[845] और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति[846] की तरह ही कार्य करती है।

समिति का कार्यकरण भी संसदीय समितियों से संबंधित सामान्य नियमों द्वारा ही शासित होता है।[847] इन नियमों की प्रतिपूर्ति के रूप में अध्यक्ष के वे निदेश भी शामिल हैं, जो वह नियम 389 तथा अन्य नियमों के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके जारी करता है।

अन्य विषयों की जांच

जहां वर्ष 1949, 1954, 1960 और 1965 की अभिसमय समितियों ने उत्तरवर्ती पांच वर्षों तक केवल रेल-उपक्रम द्वारा देय लाभांश की दर निर्धारित करने पर ही विचार किया वहीं 1971 की रेल अभिसमय समिति ने पहली बार रेल वित्त से जुड़े कुछ विषयों का विस्तृत जांच हेतु चयन किया 1973, 1977, 1980, 1985, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004, और 2009 में गठित उत्तरवर्ती समितियों ने भी रेल वित्त और रेलवे के कार्यकरण से जुड़े विभिन्न पहलुओं की जांच की। यह समिति, अपने गठन के तुरन्त बाद से ही जांच के लिए विषयों का चयन करती रही है तथा रेल मंत्रालय और अन्य संबंधित मंत्रालयों और व्यक्तियों/संगठनों से ज्ञापन मंगाती रही है। कभी-कभी यह राज्य सरकारों से भी ज्ञापन मंगाती है।

लाभांश-दर

जहां तक उस लाभांश-दर का संबंध है, जो रेलवे द्वारा सामान्य राजस्व को देय होता है, समिति रेल वित्त आयुक्त से ज्ञापन मंगाती है। इस ज्ञापन में, उसमें उल्लिखित विभिन्न प्रस्तावों के संबंध में रेल मंत्रालय और वित्त मंत्रालय दोनों के विचार सम्मिलित होते हैं।

रेल मंत्रालय द्वारा प्रस्तुत अंतरिम ज्ञापन पर विचार करने के पश्चात् अभिसमय समिति (2009) ने, पूर्णतया एक अंतरिम उपाय के रूप में, अपने पहले प्रतिवेदन में यह सिफारिश की थी कि वर्ष 2009-10 और 2010-2011 के लिए सामान्य राजस्व को लाभांश का भुगतान उस समस्त पूंजी पर 6 प्रतिशत की दर से किया जाये जिसका सामान्य राजस्व से रेलवे में निवेश किया गया है चाहे यह निवेश किसी भी वर्ष में किया गया हो, इसमें वह राशि भी शामिल थी जो रेलवे द्वारा यात्री किराया कर तथा अंशदान के बदले में राज्यों को दिये जाने वाले अनुदान के रूप में सामान्य राजस्व को दी जानी थी जिससे कि राज्यों को वित्तीय वर्ष 2008-09 के दौरान वित्तीय संरक्षण कार्यों के लिए सहायता मिल सके। यह वर्ष 2008-09 के लिए निर्धारित 7% की लाभांश दर से 1% कम थी। अन्य सभी रियायतें विद्यमान आधार पर वर्ष 2009-10 और 2010-11 के लिए जारी रखने की अनुमति दी गई।

---

844. नियम 308 और 309 ।

845. *पूर्वोक्त,* 310-12 ।

846. *पूर्वोक्त,* 312 क और ख।

847. *पूर्वोक्त,* 253-86 ।

अभिसमय समिति (2009) ने अपने तीसरे प्रतिवेदन में वर्ष 2012-13[848] के लिए 4 प्रतिशत लाभांश की दर की सिफारिश की। तथापि, समिति ने अपने छठे प्रतिवेदन में सिफारिश की कि वर्ष 2013-14 के लिए सामान्य राजस्व को लाभांश का भुगतान उस समस्त पूंजी पर 5 प्रतिशत की दर से किया जाए जिसका सामान्य राजस्व से रेलवे में निवेश किया गया है चाहे यह निवेश किसी भी वर्ष में किया गया हो, इसमें वह राशि शामिल थी जो रेलवे द्वारा यात्री किराया कर तथा अंशदान के बदले में राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान के रूप में सामान्य राजस्व को दी जानी थी जिससे राज्यों को वित्तीय वर्ष 2012-13 के दौरान वित्तीय संरक्षण कार्यों के लिए सहायता मिल सके।

प्रतिवेदन पर विचार

सभा द्वारा रेल मंत्री द्वारा प्रस्तुत एक संकल्प के माध्यम से समिति की लाभांश दर, संबंधी प्रतिवेदन पर सभा में विचार किया जाता है। तथापि समिति के अन्य प्रतिवेदनों पर सभा में, सामान्यत: चर्चा नहीं की जाती है।

संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति (लोक सभा)

बारहवीं लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति (लोक सभा) नामक एक नई तदर्थ समिति का गठन किया गया।[849] इस समिति में 23 सदस्य थे और इसका कार्यकाल एक वर्ष से अनधिक था। वर्तमान में इस समिति में 24 सदस्य हैं समिति के मुख्य कृत्य: *(i)* संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (लोक सभा) के कार्यनिष्पादन और इसके कार्यान्वयन में आने वाली समस्याओं की निगरानी और इसकी आवधिक समीक्षा करना; *(ii)* योजना के संबंध में संसद सदस्यों की शिकायतों पर विचार करना; और *(iii)* समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा दिए जाने वाले अन्य कार्यों का निष्पादन करना था।

ग. विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियां

स्थायी समितियों का विकास और गठन

गत वर्षों में सरकारी गतिविधियों में अभूतपूर्व वृद्धि हो जाने के कारण, संसद प्रशासनिक और वित्तीय जवाबदेही सुनिश्चित करने की अपनी प्रमुख भूमिका के निर्वाह में स्वयं को कुछ

---

848. रेल अभिसमय समिति (2009) ने अपने तीसरे प्रतिवेदन में रेलवे द्वारा सामान्य राजस्व को वर्ष 2012-13 के लिए दिए जाने वाले लाभांश की 4 प्रतिशत दर की सिफारिश की। मंत्रालय ने अपने का. ज्ञा. सं. स. एफ 7(2)-ख (एसी) 2011 दिनांक 16.08.2012 को रेल अभिसमय समिति से वर्ष 2012-13 के लिए लाभांश की दर से संबंधित सिफारिश पर पुन: विचार करने तथा इसे न्यूनतम 5 प्रतिशत तक बनाए रखने का अनुरोध किया। समिति ने वित्त मंत्रालय के अनुरोध पर विचार किया परंतु उसे स्वीकार नहीं किया।

849. संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के संबंध में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 13—वेतन, भत्ते अन्य हकदारियां और सुख-सुविधाएं।

अशक्त पा रही थी। समय की कमी के कारण विभिन्न मंत्रालयों के बड़े-बड़े बजटीय आबंटन भी संसद में पर्याप्त चर्चा किए बिना पारित किए जा रहे थे। उदाहरणार्थ 1989 में केवल 3 मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों पर चर्चा हुई और 34 मंत्रालयों/विभागों की मांगों को गिलोटीन कर दिया गया।

वर्ष 1978 में भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया गया था। नई दिल्ली में जनवरी, 1984 में आयोजित तीसरी क्षेत्रीय राष्ट्रमंडल संसदीय संघ विचारगोष्ठी में भी यह मामला जोर-शोर से प्रकाश में लाया गया। इस मामले पर 1984 में कलकत्ता में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में पुनः चर्चा हुई। तदुपरान्त, लोक सभा की नियम समिति ने अनुदानों की मांगों की मत-विभाजन पूर्व संवीक्षा हेतु 9 तदर्थ समितियां बनाने के प्रस्ताव पर विचार किया। परन्तु इस पर कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया जा सका।

आठवीं लोक सभा के अंतिम महीनों में बजट समितियों के गठन के प्रस्ताव पर अंतिम निर्णय होने से पहले ही समिति प्रणाली को सुदृढ़ बनाने और अधिक प्रभावी ढंग से प्रशासनिक जवाबदेही सुनिश्चित करने संबंधी एक अन्य दूरगामी प्रभाव वाला प्रस्ताव, नियम समिति के समक्ष लाया गया। नियम समिति ने 30 मार्च और 9 मई, 1989 को हुई अपनी बैठकों में कृषि, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा पर्यावरण एवं वन विषयों से संबंधित तीन विषय-समितियों के गठन के प्रस्ताव पर विचार किया और इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। नियम समिति ने क्रमशः 2 मई और 25 जुलाई, 1989 को सभा पटल पर रखे गए अपने दूसरे और चौथे प्रतिवेदन में इस संबंध में आवश्यक सिफारिशें कीं। सभा ने इन समितियों से संबंधित नियमों का अन्तिम रूप से अनुमोदन किया और 18 अगस्त, 1989 को पहली बार इन समितियों का गठन हुआ।

इन विषय समितियों को, अन्य बातों के साथ-साथ, संबंधित मंत्रालयों/विभागों के कार्यकलापों की जांच और संसद द्वारा अनुमोदित नीति के अनुसार इनमें कौन-कौन सी किफायतें, संगठन में सुधार, कार्यकुशलता या प्रशासनिक सुधार लाए जाने चाहिएं, इस संबंध में रिपोर्ट देनी थी। अन्य कार्यों के साथ-साथ इन समितियों को संबंधित मंत्रालयों के वार्षिक प्रतिवेदनों और योजनागत परियोजनाओं/कार्यकलापों की जांच भी करनी थी।

कुछ समय तक तीन विषय समितियों के कार्यकरण के अवलोकन के बाद दसवीं लोक सभा के दौरान 1992 में सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति और नियम समिति ने विभागों से संबद्ध स्थायी संसदीय समितियों के मामले पर पुनः विचार किया और इन दोनों समितियों ने महसूस किया कि विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों की एक पूर्ण विकसित प्रणाली तैयार की जाये और भारत सरकार के सभी मंत्रालय/विभाग इनके क्षेत्राधिकार में आएं।

तत्पश्चात् संसद के दोनों सदनों की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समितियों और नियम समितियों ने साथ-साथ फरवरी और मार्च, 1993 के दौरान सम्पूर्ण विषय पर नए सिरे से विचार किया। विचार करने के पश्चात् इस बात पर आम सहमति हुई कि दोनों सदनों को प्रस्तुत तथा लोक सभा अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति द्वारा सौंपी गई अनुदानों की मांगों,

विधेयकों तथा तर्कसंगत दीर्घावधि नीति दस्तावेजों और संबंधित मंत्रालयों/विभागों की वार्षिक रिपोर्टों पर विचार करने के लिए स्थायी समितियां गठित की जाएं।

लोक सभा और राज्य सभा की नियम समितियों की रिपोर्टों को 29 मार्च, 1993 को दोनों सदनों द्वारा स्वीकार किये जाने से विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ जिनके क्षेत्राधिकार में संघ सरकार के सभी मंत्रालय/विभाग आ गये। इन समितियों के गठन के साथ ही अगस्त, 1989 में गठित की गयी तीन विषय समितियों का अस्तित्व समाप्त हो गया। सभी सरकारी मंत्रालयों/विभागों को शामिल करती हुई नई समिति प्रणाली 31 मार्च 1993 को आरंभ हुई तथा 8 अप्रैल 1993 से 17 स्थायी समितियां गठित की गई। इन 17 विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों में से 11 समितियां लोक सभा और 6 समितियां राज्य सभा के अंतर्गत थीं।

एक दशक से भी अधिक समय तक विभागों से संबद्ध स्थायी समिति प्रणाली के कार्यकरण के अनुभव के बाद जुलाई 2004 में इस प्रणाली का पुनर्गठन किया गया जिसमें विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों की संख्या 17 से बढ़ाकर 24 कर दी गई। इन समितियों के क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित मंत्रालय/विभाग हैं:

क्रमांक	*समिति का नाम*		*मंत्रालय/विभाग*
	भाग-I		
1.	वाणिज्य संबंधी समिति		वाणिज्य और उद्योग
2.	गृह कार्य संबंधी समिति	(1)	गृह
		(2)	उत्तर-पूर्व क्षेत्र का विकास
3.	मानव संसाधन विकास संबधी समिति	(1)	मानव संसाधन विकास
		(2)	युवक कार्यक्रम और खेल
		(3)	महिला और बाल विकास
4.	उद्योग संबंधी समिति	(1)	भारी उद्योग और लोक उद्यम
		(2)	लघु उद्योग
		(3)	कृषि और ग्रामीण उद्योग
5.	विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबधी समिति	(1)	विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी
		(2)	अंतरिक्ष
		(3)	पृथ्वी विज्ञान
		(4)	परमाणु ऊर्जा
		(5)	पर्यावरण और वन
6.	परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी समिति	(1)	नागर विमानन
		(2)	सड़क परिवहन और राजमार्ग
		(3)	पोत परिवहन,
		(4)	संस्कृति
		(5)	पर्यटन

क्रमांक	*समिति का नाम*		*मंत्रालय/विभाग*
7.	स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संबंधी समिति		स्वास्थ्य और परिवार कल्याण
8.	कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी समिति	(1)	विधि और न्याय
		(2)	कार्मिक, लोक, शिकायत और पेंशन
	भाग-II		
9.	कृषि संबंधी समिति	(1)	कृषि
		(2)	खाद्य प्रसंस्करण उद्योग
10.	सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी समिति	(1)	संचार और सूचना प्रौद्योगिकी
		(2)	सूचना और प्रसारण
11.	रक्षा संबंधी समिति		रक्षा
12.	ऊर्जा संबंधी समिति	(1)	नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा
		(2)	विद्युत
13.	विदेशी मामलों संबंधी समिति	(1)	विदेशी मामले
		(2)	प्रवासी भारतीय कार्य
14.	वित्त संबंधी समिति	(1)	वित्त
		(2)	कॉर्पोरेट कार्य
		(3)	योजना
		(4)	सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन
15.	खाद्य, उपभोक्ता मामले और सार्वजनिक वितरण संबंधी समिति		उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण
16.	श्रम संबंधी समिति	(1)	श्रम और रोजगार
		(2)	वस्त्र
17.	पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस संबंधी समिति		पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस
18.	रेल संबधी समिति		रेल
19.	शहरी विकास संबंधी समिति	(1)	शहरी विकास
		(2)	आवास और शहरी गरीबी उपशमन
20.	जल संसाधन संबंधी समिति		जल संसाधन
21.	रसायन और उर्वरक संबंधी समिति	(1)	रसायन और उर्वरक
		(2)	रसायन और पेट्रोरसायन विभाग
		(3)	उर्वरक विभाग
		(4)	भेषज विभाग

क्रमांक	समिति का नाम	मंत्रालय/विभाग
22.	ग्रामीण विकास संबंधी समिति	(1) ग्रामीण विकास
		(2) पेयजल और स्वच्छता
		(3) पंचायती राज
23.	कोयला और इस्पात संबंधी समिति	(1) कोयला
		(2) खान
		(3) इस्पात
24.	सामाजिक न्याय और अधिकारिता संबंधी समिति	(1) सामाजिक न्याय और अधिकारिता
		(2) जनजातीय कार्य
		(3) अल्पसंख्यक मामले

भाग I और II के अंतर्गत विनिर्दिष्ट समितियां क्रमशः राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष के निदेशों के अधीन कार्य करती हैं।

स्थायी समितियों को शासित करने वाले नियम

सभा के अन्य कार्यों की तरह, स्थायी समितियों के कार्य भी लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (पन्द्रहवां संस्करण) के संसदीय समितियों संबंधी सामान्य नियमों (अध्याय 26 के नियम 253 से 286 तक) सहित अध्याय 26 (नियम 331ग से 331ढ) में शामिल विभागों से संबंधित स्थायी समितियों से संबंधित कतिपय नियमों द्वारा भी शासित होते हैं।

संरचना

1993 में डीआरएससी प्रणाली लागू करते समय 17 डीआरएससी में 45 सदस्य थे जिसमें से लोक सभा के 30 सदस्यों को लोक सभा अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता था और राज्य सभा के 15 सदस्यों को राज्य सभा के सभापति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाता था। तथापि, जुलाई, 2004[850] में डीआरएससी के पुनर्गठन, जब डीआरएससी की संख्या 17 से बढ़ाकर 24 कर दी गई थी, तब सदस्य संख्या को 45 से घटाकर 31 कर दिया गया। जिसमें 21 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाने थे। प्रत्येक समिति की सीटों का आवंटन विभिन्न दलों और समूहों के बीच यथा संभव व्यवहार्य रूप, में सभा में उनकी संख्या के अनुसार किया जाता है। इन समितियों की सीटों का आवंटन पर्याप्त संख्या में निर्दलीय और असंबद्ध सदस्यों को भी किया जाता है। सिद्धांत रूप में, मंत्रियों को छोड़कर लोक सभा और राज्य सभा के सभी सदस्य किसी न किसी स्थायी समिति के लिए नामनिर्दिष्ट किए जाते हैं।

सभापति की नियुक्ति

भाग I में विनिर्दिष्ट प्रत्येक स्थायी समिति के सभापति की नियुक्ति राज्य सभा के

850. लोक सभा समाचार (II) 20.07.2004

सभापति द्वारा और भाग II में विनिर्दिष्ट समितियों के संबंध में अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों में से की जाती है।

मंत्री समिति का सदस्य नहीं होगा

कोई भी मंत्री किसी भी स्थायी समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट किए जाने का पात्र नहीं होगा और यदि कोई सदस्य किसी भी स्थायी समिति में नामनिर्दिष्ट किए जाने के पश्चात् मंत्री नियुक्त होता है तो वह उक्त नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रहेगा।

कार्यकाल

प्रत्येक स्थायी समिति के सदस्यों का कार्यकाल समिति के गठन की तिथि से एक वर्ष तक के लिए है।

कृत्य

प्रत्येक स्थायी समिति के कृत्य इस प्रकार हैं:—

(क) संबंधित मंत्रालयों/विभागों की अनुदानों की मांगों पर विचार करना और उनके संबंध में सभाओं को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना। प्रतिवेदन में किसी भी प्रकार के कटौती प्रस्तावों का सुझाव नहीं दिया जायेगा;

(ख) संबंधित मंत्रालयों/विभागों से संबंधित ऐसे विधेयकों की जांच करना जो सभापति, राज्य सभा अथवा अध्यक्ष, लोक सभा, जैसा भी मामला हो द्वारा, सौंपे गए हैं और उनके संबंध में सभा को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना;

(ग) मंत्रालयों/विभागों के वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार करना और उनके संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करना; और

(घ) दोनों सभाओं में प्रस्तुत राष्ट्रीय आधारभूत दीर्घावधि नीति संबंधी दस्तावेजों, यदि वे राज्य सभा के सभापति या अध्यक्ष, लोक सभा, जैसा भी मामला हो, द्वारा समिति को सौंपे गए हों, पर विचार करना और उन पर प्रतिवेदन[851] प्रस्तुत करना।

स्थायी समितियां संबंधित मंत्रालयों/विभागों के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के मामलों पर विचार नहीं करती हैं।

स्थायी समितियां सामान्यत: उन मामलों पर भी विचार नहीं करतीं जो अन्य संसदीय समितियों के विचाराधीन हैं।

अनुदानों की मांगों पर विचार करने संबंधी प्रक्रिया

सभा में बजट पर सामान्य चर्चा होने के पश्चात् दोनों सभाएं एक निश्चित अवधि के लिए स्थगित कर दी जाती हैं। समितियां उपर्युक्त अवधि के दौरान संबंधित मंत्रालयों की अनुदानों की मांगों पर विचार करती हैं और अपने प्रतिवेदन के लिए समय बढ़ाने की मांग

851. नियम 331(ड़.)।

किए बिना उसे उस अवधि के भीतर ही प्रस्तुत कर देती हैं। प्रत्येक मंत्रालय की अनुदान की मांगों पर पृथक प्रतिवेदन होता है। सभा द्वारा समितियों के प्रतिवेदनों के आलोक में अनुदानों की मांगों पर विचार किया जाता है।

विधेयकों पर विचार किए जाने से संबंधित प्रक्रिया

समितियां किसी भी सभा में पुर:स्थापित ऐसे विधेयकों पर विचार करती हैं जो सभापति, राज्य सभा अथवा अध्यक्ष, लोक सभा, जैसा भी मामला हो, द्वारा उनके पास भेजे जाते हैं। समितियां उन्हें सौंपे गए विधेयकों के सामान्य सिद्धांतों और खंडों पर विचार करती हैं और नियत समयावधि के भीतर तत्संबंधी प्रतिवेदन[852] तैयार करती हैं।

वार्षिक प्रतिवेदनों की जांच

समितियां उन्हें सौंपी गयी अनुदानों की मांगों तथा विधेयकों पर विचार करने के अतिरिक्त संबंधित समिति के अधिकार क्षेत्र के भीतर आने वाले मंत्रालयों/विभागों की वार्षिक रिपोर्टों के आधार पर जांच के लिए अन्य विषयों का चयन भी कर सकती है।

---

852. बहु-राज्य सहकारी सोसाइटी (संशोधन) विधेयक, 2010 को जांच और उस पर प्रतिवेदन देने के लिए 20.12.2010 को कृषि संबंधी समिति को सौंपा गया था। 4.1.2.11 को हुई चौथी बैठक के दौरान, समिति ने जांच किए जा रहे विधेयक तथा 'संविधान (एक सौ ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 2009 के (जिस पर समिति ने 30.8.2010 को संसद में अपना बारहवां प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था, के कुछ प्रस्तावित खण्डों के बीच अनेक समानताएं तथा विरोधाभास पाए तथा संविधान (एक सौ ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 2009 के अभिनियमित होने तक विधेंक की जांच को अस्थगित करने का निर्णय लिया लोक सभा अध्यक्ष ने 9.2.2011 को समिति के निर्णय को स्वीकार कर लिया। इस निर्णय की सूचना कृषि मंत्रालय (कृषि और सहकारिता विभाग) को दे दी गई।

4.3.2011 को कृषि और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्री ने 'बहु-राज्य सहकारी सोसाइटी (संशोधन) विधेयक 2010 की जांच करने तथा उस पर यथाशीघ्र अपनी सिफारिशें करने के विषय पर पुन: विचार करने और इस संबंध में कृषि संबंधी समिति को परामर्श देने के लिए अध्यक्ष लोक सभा को एक पत्र लिखा ताकि इस विधेयक को बजट सत्र 2011 अथवा मानसून सत्र 2011 के दौरान लिया जा सके। समिति द्वारा उक्त अनुरोध पर विचार किया गया तथा गहन विचार-विमर्श के उपरांत यह महसूस किया गया कि चूंकि संविधान (एक सौ ग्यारहवां संशोधन) विधेयक, 2009 जिसे अभी अधिनियमित किया जाना है, के कतिपय उपबंध 'बहु-राज्य सहकारी सोसाइटी (संशोधन) विधेयक, 2010' से संबंधित हैं, अत: वे इस विधेयक पर कोई सुविचारित निष्कर्ष निकाल पाने की स्थिति में नहीं होंगे। लोक सभा अध्यक्ष द्वारा समिति के निर्णय को सहमति दी गई। 'बहु-राज्य सहकारी सोसाइटी (संशोधन) विधेयक, 2010' की जांच सरकार द्वारा संविधान '97वां संशोधन) विधेयक अधिसूचित किए जाने के उपरांत ही आरंभ की जा सकी तथा इस तथ्य से समिति सचिवालय को 23.01.2012 की अधिसूचना द्वारा सूचित किया गया।

उप-समितियों/अध्ययन दलों की नियुक्ति

समिति का सभापति उनके द्वारा चयन किए गए विषय का विस्तृत अध्ययन/जांच कराने के विचार से और उनके पूर्व प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों पर सरकार द्वारा की गई कार्रवाई की जांच करने और प्रक्रियात्मक तथा सामान्य मामलों पर विचार करने के लिए संबंधित समितियों के सदस्यों में से अध्ययन दल/उप-समितियां नियुक्त कर सकता है।

विषयों की जांच की प्रक्रिया

अन्य संसदीय समितियों पर लागू नियम स्थायी समितियों पर भी लागू होते हैं। विषय की जांच विभिन्न चरणों में की जाती है यथा प्राथमिक सामग्री मांगना, लिखित उत्तर मांगना, जिसमें अनुपूरक और साक्ष्योपरांत उत्तर, गैर-सरकारी व्यक्तियों से ज्ञापन मांगना और गैर-सरकारी व्यक्तियों तथा सरकारी अधिकारियों का साक्ष्य तथा अध्ययन दौरों के दौरान तथा अखबार की कतरनों, प्रासंगिक पुस्तकों और पत्रिकाओं आदि से प्राप्त प्रतिक्रियाएं भी शामिल है।

विशेषज्ञों/तकनीकी विशेषज्ञों/परामर्शदाताओं इत्यादि का सहयोग

स्थायी समितियां प्रतिवेदन तैयार करने के लिए विशेषज्ञों/तकनीकी विशेषज्ञों/परामर्शदाताओं इत्यादि का सहयोग ले सकती हैं, और यदि आवश्यक हो तो, विषय की जांच के विभिन्न चरणों पर जनता की राय मांग भी सकती हैं।

प्रतिवेदन और कार्यवाही सारांश

जांच किए गए विषय पर प्रत्येक स्थायी समिति के निष्कर्ष इसके प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट होते हैं जो कि संबंधित समिति द्वारा इसे स्वीकार कर लिए जाने और संबंधित मंत्रालय द्वारा वास्तविक सत्यापन के पश्चात्, संबंधित सभापति द्वारा संबंधित सभाओं में प्रस्तुत किए जाते हैं। समितियों की बैठकों के कार्यवाही सारांश सुसंगत प्रतिवेदनों सहित सभा पटल पर रखे जाते हैं।

प्रतिवेदनों को सदस्यों के बीच व्यापक सहमति द्वारा स्वीकार किया जाता है। तथापि, स्थायी समिति का सदस्य समिति के प्रतिवेदन पर विमत टिप्पण दे सकता है और इसे प्रतिवेदन के साथ सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

की-गई-कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन

स्थायी समिति के प्रतिवेदनों का महत्व, आग्रही होता है और उन्हें समिति द्वारा दी गई प्रभावशाली सलाह के रूप में देखा जाता है। जिन विधेयकों पर समिति प्रतिवेदन देती है, उन पर सभाओं में समिति के प्रतिवेदनों के आलोक में विचार किया जाता है। अनुदानों की मांगों और अन्य विषयों से संबंधित प्रतिवेदनों पर मंत्रालय अथवा संबंधित विभाग को प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिशों और निष्कर्षों पर कार्यवाही करनी होती है उन पर की-गई-कार्यवाही संबंधी उत्तर प्रस्तुत करने होते हैं।

मंत्रालयों/विभागों से प्राप्त की-गई-कार्यवाही टिप्पणों की समिति द्वारा जांच की जाती है और उन पर की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदनों को समिति द्वारा सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

समिति मंत्रालयों/विभागों से प्राप्त की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदनों पर आगे की-गई-कार्यवाही टिप्पणों की भी जांच करती है और इसे की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदनों पर सरकार द्वारा आगे की-गई-कार्यवाही संबंधी विवरण के रूप में सभा पटल पर रखा जाता है।

समिति के प्रतिवेदनों पर मंत्री द्वारा वक्तव्य

संबंधित मंत्री अपने मंत्रालय/विभाग के संबंध में लोक सभा की विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों के प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों के कार्यान्वयन की स्थिति के संबंध में छः महीने में एक बार सभा में वक्तव्य देता है।[853]

घ. संसदीय समितियों से भिन्न समितियां जिनमें सदस्यों का प्रतिनिधित्व था/है

विधायी निकायों की स्थायी समितियां

प्रथम लोक सभा के गठन से पहले भारत सरकार के विभिन्न विभागों की स्थायी समितियां थीं, जिनके लिए केन्द्रीय विधान मंडल के सदस्य निर्वाचित होते थे।

स्थायी समितियों का प्रारंभ मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिशों के आधार पर किया गया था और इन समितियों का मुख्य प्रयोजन निर्वाचित सदस्यों को "प्रशासन की प्रक्रिया से अवगत कराना" और "भारत में राजनैतिक शिक्षा के प्रसार में सहायता करना था।"[854] ये समितियां परामर्शदात्री के रूप में कार्य करती थीं और नीति संबंधी मामलों, एक निर्धारित सीमा से अधिक व्यय वाली नई योजनाओं और जिन विभागों से ये समितियां सम्बद्ध होती थीं। उनके वार्षिक प्रतिवेदनों के मामलों में सरकार के विचारार्थ अपनी राय दर्ज कराती थीं।

स्थायी वित्त समिति

वर्ष 1921 में केन्द्रीय विधान सभा द्वारा पारित एक प्रस्ताव के आधार पर एक स्थायी वित्त समिति का गठन किया गया।[855] इस समिति में वित्त सदस्य, जिसे गवर्नर जनरल द्वारा सभापति के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जाता था, के अतिरिक्त दस सदस्य होते थे। अगले वर्ष, सभापति के अतिरिक्त समिति के निर्वाचित सदस्यों की संख्या दस से बढ़ाकर चौदह कर दी गई। समिति की यह संरचना 1949 तक अपरिवर्तित रही, और 23 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा (विधायी) द्वारा पारित एक प्रस्ताव के आधार पर सरकार के मुख्य सचेतक को समिति का पदेन सदस्य नामनिर्दिष्ट कर दिया गया।[856] अंतरिम संसद द्वारा 5 अप्रैल, 1950 को पारित एक प्रस्ताव के अनुसार समिति के निर्वाचन सदस्यों की संख्या बढ़ाकर सोलह कर दी गई।

---

853. निर्देश 73क देखिए लोक सभा समाचार भाग-दो, दिनाँक 1 सितम्बर, 2004।

854. भारतीय सांविधिक आयोग रिपोर्ट (इंडियन स्टैट्यूटरि कमीशन रिपोर्ट) जिसे साइमन रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है, खंड-1 भाग 425 और 426।

855. *एल.ए. डिबेट्स,* 22.2.1921, पृ. 335-37।

856. *सी.ए (लेजि.) डिबेट्स,* 23.11.1949, पृ. 1767।

मार्च 1951 में वित्त राज्य मंत्री को भी समिति का पदेन सदस्य बना दिया गया।[857] समिति की यह सरंचना 1952 तक स्थायी वित्त समिति के साथ अन्य स्थायी सलाहकार समितियों के अस्तित्व समाप्त होने तक बनी रही।

स्थायी वित्त समिति के कृत्य भी इसकी संरचना की तरह समय-समय पर बदलते रहे। 1921 में जब पहली बार समिति गठित की गई थी तो वित्त सदस्य ने बताया कि इसके कृत्य निम्नलिखित होंगे[858] :

> बजट प्रस्तुत किये जाने से कुछ समय पहले, समिति को स्वीकृत सिविल प्राक्कलनों की जांच करने का अवसर दिया जाएगा; अनुपूरक अनुदानों के प्रस्तावों की जांच समिति द्वारा की जानी चाहिए और समिति को वर्ष में किसी ऐसी योजना की जांच करनी चाहिए, जो विभागों द्वारा उस नए खर्च के संबंध मे रखी जाए, जिसकी मंजूरी सभा को देनी हो, परन्तु वे योजनाएं मुख्य योजनाएं हों और वे इतनी बड़ी होनी चाहिए कि उनका बजट पर प्रभाव पड़ता हो।

वर्ष 1922 में, केन्द्रीय विधान सभा के कहने पर, स्थायी वित्त समिति को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये थे:[859]

> भारत सरकार के सभी विभागों के उन सभी प्रस्तावों की जांच करना, जो नये व्यय के बारे में हों, और जिन पर मतदान किया जाना हो; एकमुश्त राशि के अनुदानों में से आवंटनों की स्वीकृति देना; व्यय में कटौती और बचत संबंधी सुझाव देना; और सामान्यत: भारत सरकार के वित्त विभाग की उन मामलों के संबंध में सलाह देकर सहायता करना जो उसे उस विभाग द्वारा सौंपे गये हों।[860]

वर्ष 1946 के बाद समिति के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया गया और उसमें अस्वीकृत नाम-वोटेड शीर्षों के अंतर्गत आने वाले व्यय की नयी मदों पर विचार करना सम्मिलित किया गया।

अन्य स्थायी समितियां

जनवरी, 1922 में केन्द्रीय विधान सभा ने एक संकल्प पारित किया जिसमें गवर्नर जनरल से यह सिफारिश की गई थी कि स्थायी समितियों को सेना और विदेश तथा राजनैतिक विभागों को छोड़कर भारत सरकार के विभिन्न विभागों से भी सम्बद्ध किया जाए।[861] सरकार ने इस संकल्प को सीमित रूप से लागू करने का निर्णय किया और चार विभागों के लिए

---

857. *पी. डिबेट्स* (II), 20.3.1951, कॉ. 4818-19 ।

858. *एल.ए.डिबेट्स,* 22.2.1921, पृ. 335-37।

859. *पूर्वोक्त,* 11.3.1922, पृ. 2973 ।

860. स्थायी वित्त समिति के संबंध में भारतीय सांविधिक आयोग (इंडियन स्टैट्युटरि कमीशन) ने कहा कि कार्यपालिका ने शायद ही कभी इसकी सलाह को न माना हो। विधान सभा ने तो कभी इसके विचारों को अस्वीकार नहीं किया साईमन रिपोर्ट, खंड 1, पैरा 426 ।

861. *एल.ए. डिबेट्स,* 19.1.1922, पृ. 1755-89 ।

स्थायी समितियां गठित की गयीं।[862] इन समितियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि प्रत्येक समिति में दोनों चैम्बरों द्वारा निर्वाचित सदस्यों के पृथक-पृथक पैनलों में से गर्वनर जनरल द्वारा विधान सभा (असैम्बली) के तीन सदस्यों और परिषद् (काउंसिल) से दो सदस्यों को नामनिर्दिष्ट किया जाता था।

समितियों के गठन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन 1931 में किया गया जब गवर्नर जनरल द्वारा पैनलों में से सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करने की परम्परा समाप्त की गयी और उसके स्थान पर दोनों सदनों द्वारा सदस्यों का सीधा निर्वाचन करने की व्यवस्था शुरू की गई।

यह स्थिति थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ वर्ष 1944 तक बनी रही परन्तु उन विभागों को, जिन के लिए स्थायी समितियां निर्वाचित की जाती थीं, कभी बढ़ाया और कभी घटाया जाता रहा। उस वर्ष नई अधिसूचना के जारी होने से यह सुनिश्चित हो गया कि भारत सरकार के लगभग सभी विभागों के लिए स्थायी समितियां निर्वाचित की जाएंगी।

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ विधानमण्डल का अस्तित्व न रहने के कारण तत्कालीन विभागों से संबद्ध स्थायी समितियां भी समाप्त हो गईं। परन्तु, मंत्रिमण्डल द्वारा उन्हें पुनः गठित कर दिया गया हालांकि विधि मंत्रालय का यह मत था कि नयी व्यवस्था में, जब सरकार विधानमण्डल के प्रति पूर्णतः उत्तरदायी है, स्थायी समितियों की व्यवस्था की उपयोगिता संदिग्ध है।

यह भी निर्णय किया गया कि समितियों के नियमों को आगे से सरकार द्वारा बनाये जाने की बजाय इनकी स्वीकृति विधानमण्डल द्वारा दी जायेगी।[863] तथापि, अन्य विषयों के संबंध में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया और समितियों का परामर्शदात्री स्वरूप कायम रहा; वे संबंधित मंत्रालय अथवा विभाग के प्रभारी मंत्री अथवा राज्य मंत्री की अध्यक्षता में कार्य करती रहीं तथा इन समितियों का सचिवालयीय कार्य भी संबंधित मंत्रालय अथवा विभाग के पास ही रहा।

निम्नलिखित विषयों को सामान्यतः स्थायी समितियों के सामने प्रस्तुत किया जाता था:

सभी गैर-सरकारी विधेयक, जो विधान सभा (असेम्बली) में पुर:स्थापित किए गये हों, अथवा पुर:स्थापित किये जाने हेतु प्रस्तावित हों तथा वे सभी विधायी प्रस्ताव, जिन्हें सम्बद्ध मंत्रालय द्वारा लाने का इरादा हो;

समितियों और आयोगों के प्रतिवेदन, परन्तु उन विभागीय समितियों के अप्रकाशित प्रतिवेदन इस दायरे में नहीं आते थे जिनमें विधानमण्डल का पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो;

सामान्य नीति और वित्तीय प्रस्तावों से संबंधित मुख्य प्रश्न; वार्षिक प्रतिवेदन; और

---

862. ये हैं- गृह विभाग; राजस्व और कृषि विभाग; वाणिज्य और उद्योग विभाग; तथा शिक्षा और स्वास्थ्य विभाग ।

863. नियमों को संविधान सभा (विधायी) द्वारा 19 नवम्बर, 1947 को स्वीकार किया गया था।

प्रभारी मंत्री की अनुमति से समिति के कार्यक्षेत्र में आने वाला लोक महत्व का कोई विषय जिसे समिति का कोई सदस्य चर्चा के लिए प्रस्तावित करना चाहे।

बाद में यह महसूस किया गया कि ये स्थायी समितियां आज के संदर्भ में पुरानी पड़ गई हैं और देश में हुए उन संवैधानिक परिवर्तनों और लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप नहीं हैं जिसमें नीतियों का बनाना एवम् उनका कार्यान्वयन मंत्रिपरिषद, जो कि संसद के प्रति उत्तरदायी है, की जिम्मेदारी हो गई है। जब पहली लोक सभा की बैठक हुई और सरकार ने इन समितियों के गठन हेतु प्रस्ताव नहीं रखा तो कुछ सदस्यों ने विनियोग (संख्या 2) विधेयक, 1952 पर हुई चर्चा के दौरान यह मामला उठाया। इन स्थायी समितियों को समाप्त करने के सरकार के निर्णय की घोषणा करते हुए प्रधान मंत्री ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की:

इन स्थायी समितियों का गठन बहुत विशेष परिस्थितियों में किया गया था जो जाहिर है कि अब विद्यमान नहीं हैं। स्थायी वित्त समिति को छोड़कर जिसकी बैठकें प्राय: होती रहती थीं, अन्य समितियों की बैठकें वर्ष में मुश्किल से दो या तीन बार होती थीं। ये बैठकें कुछ परियोजनाओं पर विचार करने के लिए होती थीं जिनके संबंध में वित्त समिति अथवा जो भी इस प्रकार की समिति होती थी, से सिफारिश की जाती थी अथवा जिन्हें वे उसे सौंपती थीं। प्रशासन के बारे में जांच शायद ही कभी होती थी, ऐसा अवसर ही नहीं आता था। यदि आप मानें तो यह मात्र औपचारिकता थी और हमारी पूर्ववर्ती सरकार पर, कुछ नियंत्रण था। जिस प्रकार से आज हम कार्य कर रहे हैं इसमें इस प्रकार की विशेष स्थायी समिति का कोई अर्थ नहीं है....

मैं इस सभा में सहयोग की बात नहीं कर रहा हूं बल्कि महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में वास्तविक विचार-विमर्श आदि की बात कर रहा हूं। मैं किसी भी प्रस्ताव पर विचार करने के लिए पूरी तरह तैयार हूं। परन्तु मैं यह समझता हूँ कि स्थायी समितियों की यह पुरानी व्यवस्था बिल्कुल निरर्थक है। यह ब्रिटिश शासन की यादगार है जिसकी अब कोई आवश्यकता नहीं है। अत:, हमने इस व्यवस्था को समाप्त करने का निर्णय किया है, परन्तु विचार-विमर्श अथवा सहयोग करने की सम्भावना को समाप्त करने का प्रश्न नहीं है।[864]

परामर्शदात्री समितियां

स्थायी समितियों के समाप्त हो जाने के बाद, सरकार का ध्यान संसद सदस्यों को विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के कार्यचालन से अवगत कराने तथा सरकार की मुख्य नीतियों पर अनौपचारिक रूप से चर्चा के अवसर उपलब्ध कराने की ओर रहा। मंत्रिमण्डल के निर्णयानुसार, 1954 में इस प्रयोजनार्थ विभिन्न, मंत्रालयों/विभागों के लिए अनौपचारिक परामर्शदात्री समितियों का गठन किया गया।

वर्ष 1957 में, इन अनौपारिक परामर्शदात्री समितियों के पुनर्गठन पर संसद में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं द्वारा इन समितियों के कार्यकलापों को अधिक उद्धेश्यपूर्ण बनाये जाने की इच्छा व्यक्त की गई। विभिन्न स्तरों पर हुई चर्चा के

---

864. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 4.7.1952, कॉ. 3261-62 ।

परिणामस्वरूप सरकार और विरोधी दलों के बीच अप्रैल, 1969 में एक सामान्य समझौता हुआ। इस समझौते के अंतर्गत इन समितियों को नाम ''परामर्शदात्री समितियां'' रखा गया तथा इन समितियों के गठन एवं कार्यकलापों के संबंध में आपसी सहमति से मार्गनिर्देश तैयार किये गये। किन्तु परामर्शदात्री समितियों के स्थान पर संसदीय समितियों का गठन करने संबंधी विपक्ष का सुझाव नहीं माना गया।

संसदीय कार्य मंत्री स्वयं सदस्यों द्वारा अथवा दलीय नेताओं द्वारा दर्शायी गई प्राथमिकता के आधार पर परामर्शदात्री समितियों में संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करता है। सत्ता पक्ष के सदस्यों और असम्बद्ध सदस्यों को स्वयं उनके द्वारा दर्शायी गई और निजी तौर पर संसदीय कार्य मंत्री को भेजी गयी प्राथमिकता के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया जाता है तथा विपक्षी दलों/समूहों के सदस्यों को उनके दल के नेताओं/मुख्य सचेतकों द्वारा दर्शायी गई प्राथमिकता के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया जाता है।

इन समितियों का सदस्य बनना सदस्यों की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है। एक संसद सदस्य को केवल एक ही परामर्शदात्री समिति में नामनिर्दिष्ट किया जाता है। एक परामर्शदात्री समिति में अधिक से अधिक 40 सदस्य हो सकते हैं।

रेलवे जोनों के लिए भी परामर्शदात्री समितियां होती हैं। इन समितियों का नाम "अनौपचारिक परामर्शदात्री समितियां" ही चल रहा है। किसी संसद सदस्य को उस रेलवे जोन की अनौपचारिक परामर्शदात्री समिति का सदस्य नामनिर्दिष्ट किया जाता है जिसमें उसका निर्वाचन क्षेत्र पड़ता है। यदि उसका निर्वाचन क्षेत्र एक से अधिक रेलवे जोनों में पड़ता है तो यदि सदस्य चाहे तो उसे इन सभी रेलवे जोनों की अनौपचारिक परामर्शदात्री समितियों में नामनिर्दिष्ट किया जा सकता है।

दिशानिर्देशों के अनुसार परामर्शदात्री समितियों का पुनर्गठन प्रत्येक वर्ष बजट सत्र के दौरान किया जाना होता है। परन्तु प्रचलित परम्परा के अनुसार इन समितियों का पुनर्गठन हर दूसरे वर्ष किया जाता है।

संबंधित मंत्री परामर्शदात्री समिति का सभापति होता है और वह उसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसकी अनुपस्थिति में, मंत्रालय में राज्य मंत्री बैठकों की अध्यक्षता करता है।

परामर्शदात्री समितियां सरकार की समस्याओं एवं नीतियों और प्रशासनिक मंत्रालयों/विभागों के कामकाज के संबंध में सदस्यों, मंत्रियों तथा सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों के बीच इस प्रकार के अनौपचारिक विचार-विमर्श के लिए एक मंच का काम करती हैं जो कि सभा व्यवहार्य नहीं है। मंत्रीगण यह निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होते हैं कि वे अपने मंत्रालयों से संबद्ध प्रश्नों एवं समस्याओं पर सदस्यों को किस प्रकार जानकारी उपलब्ध कराना चाहते हैं। इन समितियों में अनौपचारिक विचार-विमर्श किया जाता है और उनकी बैठकों में किये गये विचार-विमर्श का सभा में कोई उल्लेख नहीं किया जाता है। यह बात सरकार एवं सदस्यों के लिए बाध्यकारी होती है।

किसी परामर्शदात्री समिति की बैठक के लिए कार्य-सूची में सदस्यों अथवा मंत्रालय द्वारा सुझाये गये विषय शामिल किये जा सकते हैं। कार्य-सूची में शामिल विषयों के संबंध में टिप्पण तैयार किये जाते हैं तथा सदस्यों को पहले ही भेज दिये जाते हैं। रक्षा मंत्रालय, विदेश मंत्रालय और परमाणु ऊर्जा विभाग तथा अन्य वैज्ञानिक विभागों से संबंधित बैठकों के कार्यवाही सारांशों को छोड़कर अन्य बैठकों के कार्यवाही सारांशों तथा उन पर की गई कार्यवाही के प्रतिवेदनों को भी सदस्यों को भेजा जाता है। समितियों को किसी भी साक्षी को बुलाये जाने तथा किसी भी सरकारी दस्तावेज की जांच करने का अधिकार नहीं हैं। समिति का सभापति सदस्यों द्वारा मांगी गई कोई भी अतिरिक्त जानकारी उपलब्ध कराता है।

परामर्शदात्री समिति के लिए प्रत्येक सत्रावधि में एक बार तथा अंतर-सत्रावधि के दौरान एक बार बैठक आयोजित करनी अपेक्षित होती है। केवल रेल मंत्रालय की समिति को अंतर-सत्रावधि के दौरान ही बैठकें आयोजित करनी होती हैं। इसका कारण यह है कि रेल मंत्रालय सत्रावधि के दौरान रेलवे जोनों की अनौपचारिक परामर्शदात्री समितियों की बैठकें आयोजित करता है।

मितव्ययिता के उद्देश्य से परामर्शदात्री समितियों पर दिल्ली से बाहर अपनी बैठकें आयोजित करने पर प्रतिबन्ध (जुलाई, 1981 से) था। किन्तु अक्तूबर, 1995 में वित्त मंत्रालय की अनुमति से यह निर्णय लिया गया कि यदि समिति के सभापति की इच्छा हो तो मंत्रालय/विभाग एक वर्ष में, अंतर-सत्रावधि के दौरान, परामर्शदात्री समिति की एक बैठक भारत में कहीं भी आयोजित की जा सकती है किन्तु दिल्ली से बाहर होने वाली ऐसी बैठक में भाग लेने वाले अधिकारियों की संख्या न्यूनतम रखी जायेगी। तथापि, परामर्शदात्री समितियों के सदस्यों के लिए सरकारी क्षेत्र के प्रमुख उपक्रमों के दिल्ली से बाहर स्थित परियोजना स्थलों के अध्ययन दौरों का प्रबंध किया जा सकता है। परामर्शदात्री समिति के वे सदस्य जो अंतर-सत्रावधि में आयोजित बैठकों और अध्ययन दौरों में भाग लेते हैं, यात्रा भत्ता/दैनिक भत्ता पाने के पात्र होते हैं।

यदि समितियों के विचार एकमत हों तो सरकार सामान्यत: निम्नलिखित अपवादों के अध्यधीन इन विचारों को स्वीकार कर लेती है यथा वित्तीय अन्तर्ग्रस्तता संबंधी कोई विचार; सुरक्षा, रक्षा, विदेश तथा परमाणु ऊर्जा संबंधी कोई विचार, और किसी स्वायत्त निगम के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाला कोई विषय। यदि किन्हीं विचारों को स्वीकार करने में कोई कठिनाई आती है तो उन्हें स्वीकार न करने के कारण समिति के सदस्यों को बता दिए जाते हैं।

यद्यपि कुछ सदस्यों द्वारा अक्सर यह विचार व्यक्त किया जाता है कि परामर्शदात्री समितियों के स्थान पर संसदीय समितियां गठित की जानी चाहिएं, तथापि गत 28 वर्षों से भी अधिक समय से इन समितियों के कार्यकरण के अनुभव से यह बात सिद्ध हो जाती है कि ये समितियां सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों और इनके कार्यान्वयन के तरीके के संबंध में एक ओर मंत्रियों और अधिकारियों तथा दूसरी ओर संसद सदस्यों के बीच अनौपचारिक

विचार-विमर्श के लिए उपयोगी मंच सिद्ध हुई हैं। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि किसी संसद सदस्य के लिए परामर्शदात्री समिति का सदस्य बनना अनिवार्य नहीं हैं, फिर भी लगभग सभी संसद सदस्यों ने समितियों का सदस्य बनने की इच्छा जाहिर की और वे समितियों की बैठकों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

सरकारी समितियां

सरकार ने अनेक समितियों, परिषदों, बोर्डों इत्यादि (जिन्हें इसके पश्चात् "सरकारी समितियां" कहा गया है) का गठन किया है जिनमें दोनों में से किसी न किसी सदन के सदस्यों को आंशिक प्रतिनिधित्व मिला हुआ है।[865] सरकारी समितियां संसद के किसी अधिनियम अथवा सरकारी संकल्प के उपबंध के अनुसरण में गठित की जाती हैं। इन समितियों का कार्य मुख्य रूप से कुछ खास मुद्दों पर सरकार को सलाह देना अथवा कुछ विषयों की जांच करना है। कुछ मामलों में, इन समितियों को शिक्षा संस्थानों का संचालन करने, ओद्यौगिक विकास, व्यापार आदि को बढ़ावा देने के लिए नियम, विनियम अथवा उप-विधि बनाने के लिए भी कहा जाता है।

इन समितियों में लोक सभा के सदस्यों को संबंधित मंत्री के अनुरोध पर लोक सभा अध्यक्ष नाम निर्दिष्ट करता है। जब ऐसा अनुरोध प्राप्त होता है तब सचिवालय, सभा में दलों और ग्रुपों के नेताओं से, अध्यक्ष द्वारा विचार किये जाने के लिए, वरीयता क्रम में नामों के पैनल का सुझाव देने को कहता है। दलों अथवा ग्रुपों के नेताओं से नाम आमंत्रित करते समय इस बात पर बल दिया जाता है कि वे केवल उन्हीं सदस्यों के नामों का सुझाव दें जो अन्य संसदीय अथवा सरकारी समितियों के सदस्य न हों। नाम-निर्देशन के लिए चुने गये सदस्यों द्वारा समितियों में कार्य करने के बारे में अपनी लिखित सहमति दिये जाने के पश्चात् उनके नाम समाचार (बुलेटिन) में प्रकाशित किये जाते हैं तथा संबंधित मंत्रालय को भी सूचित कर दिये जाते हैं।[866] ये समितियां न तो अध्यक्ष के निर्देशों के अंतर्गत कार्य करती हैं और न ही सदन अथवा अध्यक्ष को अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं।

यहां तक कि जब सरकार सीधे किसी सरकारी समिति का गठन करती है तथा उसमें सभा से सदस्यों को शामिल करने का प्रस्ताव होता है तो भी संबंधित मंत्री इस विषय में

---

865. उदाहरण के लिए, लोक सभा के सदस्यों को दिल्ली विकास प्राधिकरण की सलाहकार परिषद; अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद; अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान; केन्द्रीय रेशम बोर्ड; अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का कोर्ट; हज समिति, इत्यादि जैसे निकायों में प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

ऐसी समितियों की सूची के लिए *देखिये*—"लोक सभा के पूर्ण अथवा आंशिक प्रतिनिधित्व वाली समितियां और अन्य निकाय" संबंधी पुस्तिका, जिसे लोक सभा सचिवालय द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जाता है।

866. *देखिए*, पीछे पृ. 362 ।

अध्यक्ष से परामर्श करता है।[867] जब सरकार द्वारा गठित समितियों/निकायों में लोक सभा के सदस्यों के नामनिर्देशन संबंधी मामलों पर सरकार द्वारा अध्यक्ष से परामर्श करने का मामला सदन में 4 नवम्बर 1965 को उठाया गया तो अध्यक्ष ने टिप्पणी की कि जटिल स्थिति से बचने के लिये परामर्श करना आवश्यक था। उत्तर में प्रधान मंत्री ने कहा था कि वे इसके विरुद्ध नहीं हैं किन्तु अध्यक्ष से बातचीत के बाद ही अंतिम निर्णय लेंगे। तथापि ऐसे मामलों में सरकार द्वारा अध्यक्ष से परामर्श करने की व्यवस्था करते हुए कोई औपचारिक निर्णय नहीं लिया गया है अथवा ऐसी कोई परंपरा नहीं स्थापित की गई है। इसी प्रकार, जब सरकार विदेशों में प्रतिनिधिमण्डल भेजती है और ऐसे प्रतिनिधिमंडल में लोक सभा के सदस्यों को शामिल करना हो तो संबंधित मंत्री सदस्यों के नाम अध्यक्ष की स्वीकृति के लिए भेजता है। सरकारी समितियों अथवा प्रतिनिधिमण्डलों में सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करते समय सरकार द्वारा निम्नलिखित मुख्य दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखा जाता है:[868]

(i) सरकारी समितियों, आयोगों, इत्यादि में नियुक्तियां, सदस्यों के रुझान, उनकी रुचि, पिछले अनुभव आदि, जिसका अभिनिश्चय सदस्यों द्वारा लोक सभा/राज्य सभा सचिवालय को दिये गये जीवन-वृत्त से किया जाता है, विभिन्न संसदीय गतिविधियों में उनकी भागीदारी और सहयोजन तथा परामर्शदात्री समितियों में नामनिर्देशन के लिए सदस्यों द्वारा दिये गये विकल्प के आधार पर की जाती है।

(ii) सदस्यों को यथासंभव अधिक अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से ऐसे सदस्यों को प्राथमिकता दी जाती है जिन्हें अन्य संसदीय अथवा सरकारी समितियों में पहले से न चुना गया हो अथवा नामनिर्दिष्ट न किया गया हो; और

(iii) वित्तीय समितियों में कार्य कर रहे सदस्यों को सामान्यत: अन्य समितियों में नामनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है।

सरकार नामों को अंतिम रूप दिये जाने से पहले समितियों आदि में नियुक्त किये जाने वाले सदस्यों की सहमति प्राप्त कर लेती है।

संसदीय प्रतिनिधिमण्डलों में नाम-निर्देशन, संसद के पीठासीन अधिकारियों द्वारा किया जाता है।[869]

---

867. *लो.स.वा.वि.,* 4.11.1963, कॉ. 291; 29.11.1965, कॉ. 4278-79 ।

868. *पूर्वोक्त,* 14.8.1970, अता.प्र.सं. 2811 ।

869. *लो.स.वा.वि.,* 29.11.1965, कॉ. 4278-79 ।

अध्याय 31

संसदीय मंच

संसद किसी लोकतंत्र में विचार-विमर्श करने का एक सर्वोच्च मंच है जहाँ लोक महत्व के अनेक मुद्दों पर चर्चा की जाती है। मानवता की बेहतरी और जीवन के लिए कुछ विषयों का काफी महत्व है और इसलिए इन विषयों पर लगातार ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। अत:, इन विषयों से संसद के अंदर और बाहर कारगर ढंग से निपटने हेतु संसद सदस्यों के लिए एक शर्त के रूप में पहले यह आवश्यक है कि उन्हें इन महत्वपूर्ण विषयों से जुड़े प्रासंगिक मुद्दों की समुचित समझ हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु, माननीय अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी ने इन महत्वपूर्ण विषयों में से प्रत्येक पर एक विशिष्ट संसदीय मंच गठित करने की अभिकल्पना की, जिसमें संसद सदस्य विषय-वस्तु के विभिन्न पहलुओं का गहरा अंतर्ज्ञान प्राप्त करने हेतु सूचनापूर्ण चर्चाओं में भाग ले सकें और उन्होंने इस दिशा में पहला कदम 12 अगस्त, 2005 को जल संरक्षण एवं प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच गठित करके उठाया। मंच के गठन से पूर्व इस संबंध में 12 मई, 2005 को, माननीय अध्यक्ष ने लोक सभा में एक टिप्पणी भी की थी कि उन्होंने जल संरक्षण एवं प्रबंधन संबंधी एक संसदीय मंच गठित करने का निर्णय लिया है ताकि संसद सदस्य जल जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर सुव्यवस्थित ढंग से चर्चा कर सकें तथा तत्संबंधी मुद्दों को सभा के भीतर और कारगर ढंग से उठा सकें। तदन्तर, बालकों संबंधी, युवाओं संबंधी, जनसंख्या और जन-स्वास्थ्य संबंधी तथा भूमंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच भी गठित किए गए।

पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान भी इन मंचों का गठन किया गया। तत्पश्चात् तीन और संसदीय मंचों का गठन किया गया। इस प्रकार वर्तमान में निम्नलिखित विषयों पर आठ संसदीय मंच हैं–

1. जल संरक्षण एवं प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच
2. संसदीय बाल मंच
3. संसदीय युवा मंच
4. जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच
5. भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच
6. आपदा प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच
7. शिल्पकार और दस्तकार संबंधी संसदीय मंच
8. सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य संबंधी संसदीय मंच

इन मंचों का व्यापक लक्ष्य और उद्देश्य संसद सदस्यों को संबंधित मंचों के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों से संबंधित मुद्दों और उनके विकास से जुड़ी जानकारी और ज्ञान प्रदान करना है ताकि सांसदों को स्थिति की गंभीरता से अवगत कराया जा सके एवं इन मुद्दों

के प्रति उन्हें परिणामोन्मुखी दृष्टिकोण अपनाने में समर्थ बनाया जा सके। मंचों के दिशानिर्देशों में यह प्रावधान किया गया है कि ये संसदीय मंच विभागों से संबद्ध स्थायी समिति अथवा मंत्रालयों/संबंधित विभागों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप या प्रवेश नहीं करेंगे।

उद्‌देश्य

उपर्युक्त आठ संसदीय मंचों को गठित करने के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(क) मंच के सदस्यों को संबंधित मंत्रियों, विशेषज्ञों तथा प्रमुख मंत्रालयों के मुख्य अधिकारियों के साथ संवाद हेतु मंच प्रदान करना ताकि कार्यान्वयन प्रक्रिया तेज करने हेतु परिणामोन्मुखी दृष्टिकोण अपनाते हुए महत्वपूर्ण विषयों पर भली-भांति एवं सार्थक चर्चा की जा सके;

(ख) सदस्यों को विषय के महत्वपूर्ण क्षेत्रों और वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी प्रदान करना तथा उन्हें अद्यतन जानकारी, तकनीकी ज्ञान एवं अपने देश और दूसरे देशों के विशेषज्ञों से भी महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराना ताकि इन विषयों को सदन में एवं विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों की बैठकों में भी कारगर ढंग से उठाया जा सके; और

(ग) संबंधित मंत्रालयों, इंटरनेट, विश्वनीय गैर-सरकारी संगठनों, समाचार-पत्रों, संयुक्त राष्ट्र संघ, आदि से महत्वपूर्ण विषयों पर आंकड़े एकत्र कर डाटा बेस तैयार करना तथा इन्हें सदस्यों को परिचालित करना ताकि वे मंच की चर्चा में सार्थक ढंग से भाग ले सकें एवं बैठक में उपस्थित विशेषज्ञों अथवा अधिकारियों से स्पष्टीकरण मांग सकें।

संरचना

लोक सभा के माननीय अध्यक्ष *(i)* जल संरक्षण एवं प्रबंधन; *(ii)* युवाओं; *(iii)* बालकों; *(iv)* भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन; *(v)* आपदा प्रबंधन; और *(vi)* शिल्पकार और दस्तकार संबंधी संसदीय मंचों के पदेन अध्यक्ष होंगे। जनसंख्या और जन-स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच के मामले में, राज्य सभा के माननीय सभापति अध्यक्ष तथा लोकसभा के माननीय अध्यक्ष सह-अध्यक्ष होगें अध्यक्ष के अतिरिक्त, राज्य सभा के उप-सभापति, लोक सभा के उपाध्यक्ष, संबंधित मंत्री और संबंधित विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियों के सभापति मंच के उपाध्यक्ष होंगे।

मार्गनिर्देशों में यह प्रावधान भी किया गया कि मंच का अध्यक्ष, अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों के नियमित संचालन के लिए एक सदस्य-संयोजक नियुक्त कर सकता है। जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच, राज्य सभा के सभापति जिसके पदेन अध्यक्ष तथा लोक सभा अध्यक्ष पदेन सह-अध्यक्ष होते हैं, के संबंध में ऐसे सदस्य-संयोजक की नियुक्ति अध्यक्ष और सह-अध्यक्ष द्वारा की जा सकती है।

मंचों के मार्गनिर्देशों में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक मंच में 31 से अनधिक सदस्य (अध्यक्ष, सह-अध्यक्ष, उपाध्यक्षों को छोड़कर) होंगे जिनमें 21 से अनधिक सदस्य लोक सभा से और 10 से अनधिक सदस्य राज्य सभा से होंगे। लोक सभा अध्यक्ष और

राज्य सभा के सभापति, यथास्थिति विभिन्न राजनीतिक दलों/ग्रुपों के नेताओं अथवा उनके नामितियों, जिन्हें विषय की विशेष जानकारी हो, विषय में गहरी रुचि हो, में से सदस्यों को नामित करेंगे।

मंचों के दिशानिर्देशों में यह भी प्रावधान है कि पांच अतिरिक्त उपाध्यक्षों/सदस्यों जिनमें से 3 से अनाधिक लोक सभा से और 2 से अधिक राज्य सभा से, को यथास्थिति लोक सभा के अध्यक्ष, राज्य सभा के सभापति द्वारा संबंधित मंच के लिए नामित किया जा सकता है।

विशेषज्ञों का सहयोजन

जल, युवकों, बालकों, जनसंख्या और जन-स्वास्थ्य तथा भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन आपदा प्रबंधन, शिल्पकार और दस्तकार तथा सहस्राब्दि विकास; लक्ष्य, के क्षेत्र से जुड़े विशेषज्ञों का सहयोजन विशेष अतिथियों के तौर पर किया जा सकता है जो मंच की बैठकों/संगोष्ठियों के दौरान अपने विचारों का आदान-प्रदान तथा संबंधित पत्र प्रस्तुत कर सकते हैं।

कार्यकाल

मंच के सदस्यों का कार्यकाल संबंधित सभाओं में उनकी सदस्यता के साथ सह-विस्तारी होगा। कोई सदस्य सभापति/राज्य सभा अथवा अध्यक्ष, लोक सभा जैसी स्थिति हो, को संबोधित स्व-हस्ताक्षारित पत्र लिखकर मंच से त्याग-पत्र भी दे सकता है।

आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना

मंच में आकस्मिक रिक्ति को उसके घटित होने पर, सदस्यता हेतु विहित रीति से यथाशीघ्र भरा जाएगा।

संसदीय मंचों की बैठकें

मंच के अध्यक्ष/सदस्य संयोजक द्वारा अनुमोदित कार्यक्रम के अनुसार विभिन्न मंचों की बैठकों का आयोजन किया जाता है। इनका आयोजन केवल सत्र के दौरान किया जाता है। अध्यक्ष/सदस्य संयोजक के अनुमोदन के अनुसार देश और विदेशों से चिह्नित विशेषज्ञ मंचों की बैठकों में प्रस्तुति देते हैं। चौदहवीं और पन्द्रहवी लोक सभा के दौरान विभिन्न संसदीय मंचों की कुल 64 और 76 बैठकें हुई।

जल संरक्षण और प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच

लोक सभा अध्यक्ष ने चौदहवीं लोक सभा के दौरान 12 अगस्त, 2005 को जल संरक्षण और प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच का गठन किया तथा राज्य सभा के सभापति के परामर्श पर मंच के नियमित अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों का आयोजन करने के लिए 15 मई, 2006 को डॉ॰ वल्लभभाई कथीरिया, संसद सदस्य, लोक सभा को मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया गया। पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान भी लोक सभा अध्यक्ष ने 21 जनवरी, 2010 को जल संरक्षण और प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच का पुनर्गठन किया। श्री प्रबोध पांडा, सदस्य लोक सभा को मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया गया।

कार्य

जल संरक्षण एवं प्रबंधन संबंधी मंच के निम्नलिखित कार्य हैं–

(क) जल से जुड़ी समस्याओं का पता लगाना तथा सरकार/संबंधित संगठनों को विचारार्थ और समुचित कार्यवाही हेतु सुझाव देना/सिफारिश करना;

(ख) संसद सदस्यों को उनके राज्यों/निर्वाचन क्षेत्रों में जल संरक्षण और जल संसाधनों में वृद्धि करने के कार्य में शामिल करने के तरीकों का पता लगाना;

(ग) जल के संरक्षण और कुशल प्रबंधन हेतु जागरूकता पैदा करने के लिए विचार-गोष्ठियों/कार्यशालाओं का आयोजन करना; और

(घ) ऐसे अन्य सम्बद्ध कार्य करना जिसे यह उचित समझे।

बैठकें

चौदहवीं लोक सभा के दौरान, 'जल सरंक्षण[1]; प्रभावी जल संरक्षण तकनीक[2]; जल संरक्षण और प्रबंधन संबंधी मुद्दे[3]; और अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छता वर्ष के संदर्भ में जल स्वच्छता[4] जैसे विषयों पर चर्चा करने के लिए इस मंच के अंतर्गत कुल 16 बैठकें हुईं। इसके अतिरिक्त मंच की बैठकों के दौरान विभिन्न विशेषज्ञों ने 10 प्रस्तुतियां दीं तथा सदस्यों के लिए जल विषय पर एक फिल्म का प्रदर्शन किया। पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान इस मंच की 'बढ़ते जल संकट से जूझते विश्व के लिए जल प्रबंधन हेतु एजेंडा-भावी समाधान[5] जल उपयोग में दक्षता[6]; 'पेयजल'[7]; समेकित जल प्रबंधन-नीति और कार्यवाही[8]; ग्रामीण क्षेत्रों में जल-निकाय[9]; वर्षा जल-संसाधनों का अपर्याप्त दोहन[10]; पर्यावरण और गंगा नदी में प्रदूषण नियन्त्रण[11];

---

1. विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र के विशेषज्ञों ने 17.8.2005 को बैठक को संबोधित किया।
2. तरुण भारत संघ राजस्थान के विशेषज्ञों ने 1.12.2005 को बैठक को संबोधित किया।
3. डॉ॰ के॰ कस्तूरी रंगन, सदस्य, राज्य सभा ने 7.12.2006 को बैठक में विषय पर भाषण दिया।
4. बाल परिवेश कार्यक्रम से एक विशेषज्ञ और एक वरिष्ठ स्वच्छता विशेषज्ञ ने 23.4.2008 को संयुक्त रूप से बैठक में सदस्यों को संबोधित किया।
5. विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र के विशेषज्ञ ने 3.8.2010 को बैठक को संबोधित किया।
6. जल प्रौद्योगिकी केन्द्र के विशेषज्ञ ने 17.8.2000 को हुई बैठक को संबोधित किया।
7. युनीसेफ, इंडिया के जल और पर्यावरण स्वच्छता विशेषज्ञ ने 30.11.2010 को बैठक को संबोधित किया।
8. समावेशी विकास हेतु अल्प कार्बन रणनीति हेतु विशेषज्ञ समूह के चेयरपर्सन ने 3.3.2011 को हुई बैठक को संबोधित किया।
9. केन्द्रीय जल आयोग के विशेषज्ञ ने 17.8.2011 को बैठक को संबोधित किया।
10. ग्लोबल हाइड्रोलोजिकल सोल्यूशन्स से विशेषज्ञ ने 29.11.2011 को बैठक को संबोधित किया।
11. राष्ट्रीय गंगा सफाई मिशन पर्यावरण और वन मंत्रालय के मिशन निदेशक ने 21.3.2012 को बैठक को संबोधित किया।

गंगा नदी का परिस्थितिकी तन्त्र–वर्तमान नीतियां और गतिविधियां[12] राष्ट्रीय जल मिशन, उद्देश्य और जल संरक्षण कार्यनीति[13]; सिंचाई, जलापूर्ति तथा उद्योगों में जल उपयोग दक्षता में सुधार[14]; ग्रामीण स्वच्छता में प्रौद्योगिकीय विकल्प–भारतीय परिप्रेक्ष्य[15]; तथा जल संरक्षण–वर्षा जल संचयन[16] जैसे विषयों पर कुल 13 बैठकें की।

संसदीय युवा मंच

युवा संबंधी संसदीय मंच का गठन माननीय लोक सभा अध्यक्ष द्वारा राज्य सभा के माननीय सभापति के परामर्श से 20 फरवरी, 2006 को किया गया था और श्री नवीन जिन्दल, संसद सदस्य, लोक सभा को मंच के अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों को नियमित रूप से आयोजित करने के लिए 15 मई, 2006 को मंच का सदस्य–संयोजक नियुक्त किया गया था।

अध्यक्ष ने 22 मार्च, 2007 को युवा संबंधी संसदीय मंच के चार उप–मंचों, अर्थात् (*i*) खेल और युवा विकास संबंधी उप–मंच; (*ii*) स्वास्थ्य संबंधी उप–मंच; (*iii*) शिक्षा संबंधी उप–मंच; और (*iv*) रोजगार संबंधी उप–मंच का भी गठन किया। बैठकों का आयोजन करने के लिए प्रत्येक उप–मंच का अपना एक संयोजक है।

पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान, अध्यक्ष ने 21 जनवरी, 2010 को युवा संबंधी संसदीय मंच का पुनर्गठन किया। अशोक तंवर, सदस्य, लोक सभा को मंच का सदस्य–संयोजक नियुक्त किया गया।

कार्य

युवा संबंधी संसदीय मंच के निम्नलिखित कार्य हैं–

(क) विकास संबंधी पहलों को गति देने के लिए युवा शक्ति के भरपूर उपयोग हेतु बनाई जाने वाली नीतियों पर बारीकी से चर्चा करना;

(ख) सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाने हेतु युवा शक्ति की संभाव्यता के संबंध में जन नेताओं में तथा निचले स्तर पर अधिकाधिक जागरूकता पैदा करना;

(ग) युवा प्रतिनिधियों तथा नेताओं के साथ नियमित आधार पर संपर्क करना, ताकि उनकी आशाओं, आकांक्षाओं, सरोकारों और समस्याओं को बेहतर ढंग से समझा जा सके;

---

12. गंगा अह्वान से विशेषज्ञ ने 3.5.2012 को बैठक को संबोधित किया।
13. राष्ट्रीय जल मिशन, जल संसाधन मंत्रालय के मिशन निदेशक ने 22.8.2012 को बैठक को संबोधित किया।
14. केन्द्रीय जल आयोग के विशेषज्ञ ने 11.12.2012 को बैठक को संबोधित किया।
15. सुलभ इन्टरनेशनल सामाजिक संगठन के संस्थापक ने 13.3.2013 को बैठक को संबोधित किया।
16. डेवलपमेंट अल्टरनेटिव्स, एक एनजीओ के विशेषज्ञ ने 30.8.2013 को बैठक को संबोधित किया।

(घ) विभिन्न युवा वर्गों तक संसद की पहुंच का विस्तार करने संबंधी उपायों पर विचार करना ताकि लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रति उनकी निष्ठा और प्रतिबद्धता को सुदृढ़ किया जा सके और उनमें उनकी सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा दिया जा सके; और

(ङ) युवा अधिकारिकता के मामले में जननीति के पुनर्निर्धारण हेतु विशेषज्ञों, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय शिक्षाविदों और संबंधित सरकारी एजेंसियों के साथ परामर्श करना।

बैठकें

चौदहवीं लोक सभा के दौरान इस मंच की 25 बैठकें हुई जिनमें प्रारूप व्यापक राष्ट्रीय खेल नीति 2007[17] जैसे विषयों पर चर्चा हुई और युवाओं से जुड़े विभिन्न सरोकारों से संबंधित अनेक विशेषज्ञों द्वारा 15 प्रस्तुतियां दी गईं। युवा संबंधी संसदीय मंच ने पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान, लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में युवाओं हेतु नीतियां[18]; भारत में विश्व-विद्यालय शिक्षा[19]; बेराजगारी की समस्या और उसका समाधान[20]; राष्ट्रीय खेल नीति[21]; खेलों में चुनौतियां और सुधार[22]; युवक और व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा दक्षता विकास की आवश्यकता[23]; प्रकृति संरक्षण में युवाओं की भूमिका[24]; युवा और उद्यमिता[25]; युवा और आर्थिक विकास[26]; व्यावसायिक शिक्षा और रोजगार परकता[27]; कौशल विकास[28]; उच्च शिक्षा के लिए छात्र वित्त

---

17. 22.8.2007 को हुई बैठक में विचार-विमर्श हुआ।
18. राजीव गांधी राष्ट्रीय युवा विकास संस्थान के निदेशक ने 4.5.2010 को हुई बैठक को संबोधित किया।
19. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष ने 11.8.2010 को बैठक को संबोधित किया।
20. वोकेशनल ट्रेनिंग एंड स्किल डेवलपमेंट विद द इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइजेशन (आईएलओ)डिसेंट वर्क टीम फॉर साउथ एशिया के विशेषज्ञ और श्रम और रोजगार मंत्रालय की उपमहा निदेशक (रोजगार) ने 16.11.2010 को संयुक्त रूप से बैठक को संबोधित किया।
21. भारतीय खेल प्राधिकरण के सचिव ने 9.3.2011 को विषय पर संक्षिप्त जानकारी दी।
22. युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 10.8.2011 को संबंधित विषय पर व्यापक भाषण दिया।
23. राष्ट्रीय कौशल विकास के प्रबंध निदेशक और मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने 15.12.2011 को बैठक को संबोधित किया।
24. राष्ट्रीय सेवा योजना के वरिष्ठ अधिकारी ने 28.3.2012 को संबंधित विषय पर विस्तृत जानकारी दी।
25. ओ.पी.जिंदल ग्लोबल यूनिवर्सिटी के कुलपति ने 17.5.2012 को बैठक को संबोधित किया।
26. नीति अनुसंधान केन्द्र के विशेषज्ञ ने 27.8.2012 को बैठक को संबोधित किया।
27. दो वरिष्ठ परामर्शदाता मनोवैज्ञानिकों ने 29.11.2012 को संयुक्त रूप से बैठक को संबोधित किया।
28. राष्ट्रीय कौशल विकास के प्रबंध निदेशक और मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने 21.3.2013 को बैठक को संबोधित किया।

पोषण और मांग प्रबंधन[29]; और युवा और सोशल मीडियाः चुनौतियां और अवसर[30] जैसे विषयों पर कुल 14 बैठकें कीं।

संसदीय बाल मंच

चौदहवीं लोक सभा के दौरान श्री जयराम रमेश, सदस्य, राज्य सभा से एक टिप्पण प्राप्त होने के बाद लोक सभा अध्यक्ष ने 28 सितम्बर, 2005 को बाल संबंधी एक संसदीय मंच का गठन करने की इच्छा व्यक्त की। तद्नुसार राज्य सभा के सभापति के परामर्श पर लोक सभा अध्यक्ष ने 2 मार्च, 2006 को उक्त मंच का गठन किया।

अध्यक्ष ने श्रीमती प्रेमा करियप्पा, संसद सदस्य, राज्य सभा को मंच के अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों को नियामित रूप से आयोजित करने के लिए 15 मई, 2006 को मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया। 9 अप्रैल, 2008 को श्रीमती करियप्पा के राज्य सभा से सेवानिवृत्त होने के उपरांत अध्यक्ष ने श्रीमती जया बच्चन, संसद सदस्य, राज्य सभा को 28 अप्रैल, 2008 को मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया।

पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान अध्यक्ष ने 21 जनवरी, 2010 को बाल संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। नवीन जिंदल, संसद सदस्य, लोक सभा को मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया गया।

कार्य

मंच के कार्य इस प्रकार हैं—

(क) बाल कल्याण को प्रभावित करने वाले गंभीर मुद्दों के प्रति सांसदों की जागरूकता और ध्यान में वृद्धि करना ताकि वे विकास प्रक्रिया में उनका उचित स्थान सुनिश्चित करने हेतु यथोचित नेतृत्व प्रदान कर सकें;

(ख) सांसदों को कार्यशालाओं, विचारगोष्ठियों, प्रबोधन कार्यक्रमों इत्यादि के माध्यम से बालकों के संबंध में विचारों, दृष्टिकोणों, अनुभवों और सुविज्ञ प्रक्रियाओं का व्यवस्थित ढंग से आदान-प्रदान करने हेतु मंच प्रदान करना;

(ग) सांसदों को, अन्य बातों के साथ-साथ, स्वयंसेवी क्षेत्र, मीडिया और कार्पोरेट जगत में बालकों के मुद्दों को विशिष्टता प्रदान करने हेतु सिविल समाज के साथ संवाद के अवसर उपलब्ध कराना और इस प्रकार, इस संबंध में कारगर रणनीतिक भागीदारी विकसित करना;

(घ) सांसदों को विश्वभर में क्षेत्र विशेष में विकास से संबंध विशेषज्ञों के प्रतिवेदनों, अध्ययनों, समाचारों और रुख विश्लेषणों इत्यादि के संबंध में संयुक्त राष्ट्र के

29. मानव संसाधन विकास मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 7.5.2013 को संबंधित विषय पर विस्तृत जानकारी दी।

30. गुगल इंडिया के पब्लिक अफेयर्स एनेलिस्ट ने 5.9.2013 को बैठक को संबोधित किया।

'यूनिसेफ' जैसे विशिष्टकृत अभिकरणों तथा अन्य सदृश बहुपक्षीय अभिकरणों के साथ सुस्थापित ढंग से संवाद कायम करने हेतु जानकारी प्रदान करना; और

(ङ) ऐसे अन्य कार्य, परियोजनाएं, नियत कार्य इत्यादि आरंभ करना जिन्हें मंच उचित समझे।

बैठकें

चौदहवीं लोक सभा के दौरान मंच की कुल 17 बैठकें हुईं जिनमें बाल विकास; भारत के समक्ष चुनौतियां[31]; बाल अधिकार[32]; बालिका के अधिकार[33]; बाल श्रम संबंधी विधान का प्रभाव और भावी चुनौतियां आदि जैसे विषयों पर चर्चा की गई और बैठकों के दौरान पांच प्रस्तुतियां दी गई। पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान इस मंच ने शिक्षा का अधिकार[34]; भारत में कुपोषण और नवजात शिशुओं की उत्तरजीविता बढ़ाने की अत्यावश्यकता[35]; चिल्ड्रन एज़ एजेटंस ऑफ चेंज; वायसस फ्राम द फील्ड[36]; बाल अधिकार[37]; खुशहाल स्कूली बच्चे[38]; एशिया प्रशांत देशों में बाल शोषण और उपेक्षा: चुनौतियां और अवसर[39]; बाल विवाह: अधिकारों का उल्लंघन[40]; बाल दुर्व्यापार[41]; राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद की पुस्तकों के पुनरीक्षण/अद्यतन बनाने की स्थिति[42]; प्रारंभिक बाल देख-रेख और विकास[43]; पोषाहार, भोजन और कुपोषण[44] राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद की पुस्तकों

---

31. यूनाइटेड नेशंस चिल्ड्रन फंड (यूनीसेफ) के विशेषज्ञ ने 9.12.2015 को हुई बैठक में सदस्यों को संबोधित किया।
32. 14.3.2006 को हुई बैठक में चर्चा हुई।
33. इंडिया एलाएंस फार चाइल्ड राइट्स के विशेषज्ञ ने 23.5.2006 को सदस्यों को संबोधित किया।
34. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के विशेषज्ञ ने बैठक को संबोधित किया।
35. शिशु रोग विभाग, एम्स, पोषाहार प्रमुख यूनीसेफ तथा कार्यक्रम अधिकारी, पोषाहार, विश्व खाद्य कार्यक्रम के विशेषज्ञों ने संयुक्त रूप से बैठक को संबोधित किया।
36. यूनीसेफ और योजना आयोग के विशेषज्ञों ने बैठक को संबोधित किया।
37. इंडिया एलाएंस फॉर चाइल्ड राइट्स के विशेषज्ञ ने बैठक को संबोधित किया।
38. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष ने बैठक को संबोधित किया।
39. भारतीय बाल शोषण, उपेक्षा और बाल श्रम समूह के विशेषज्ञ ने बैठक को संबोधित किया।
40. यूनीसेफ, इंडिया में बाल सुरक्षा के प्रमुख ने 8.12.2011 को हुई बैठक में समस्या पर चर्चा की।
41. बाल और महिला दुर्व्यापार और उत्पीड़न रोकथाम के विशेषज्ञ ने 27.3.2012 को बैठक में विस्तृत जानकारी दी।
42. विषय पर 27.3.2012 को मानव संसाधन विकास मंत्रालय/एनसीईआरटी/सीबीएसई के प्रतिनिधियों के साथ विस्तृत चर्चा की गई।
43. निदेशक, सेंटर फार अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन एण्ड डवलपमेंट ने 8.5.2012 को विषय पर भाषण दिया।
44. निदेशक, न्यूट्रीशियन फाउंडेशन ऑफ इंडिया 8.5.2012 की बैठक के विशेषज्ञ वक्ता थे।

के पुनरीक्षण/अद्यतन बनाने की स्थिति[45]; बाल श्रम उन्मूलन[46]; सेव द चिल्ड्रन[47]; किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण अधिनियम, 2000[48]; एनडोंडरिंग डेवलपमेंट: द ट्वेल्थ प्लान परस्पेक्टिव[49]; बच्चों के लिए खेल अवसंरचना के सुदृढ़ीकरण हेतु योजनाएं[50] जैसे विषयों पर कुल 15 बैठकें कीं।

जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच

पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान माननीय अध्यक्ष, लोक सभा ने राज्य सभा के माननीय सभापति से जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी एक संसदीय मंच गठित करने का सुझाव प्राप्त होने के बाद 26 जुलाई, 2006 को परम राष्ट्रीय महत्व के विषय, जनसंख्या और जन स्वास्थ्य के प्रति आवश्यक प्रतिबद्धता सृजित करने तथा सांसदों का समर्थन जुटाने हेतु राज्य सभा के माननीय सभापति के परामर्श से जन स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। राज्य सभा के माननीय सभापति तथा लोक सभा के माननीय अध्यक्ष जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच का गठन क्रमश: अध्यक्ष और सह-अध्यक्ष हैं। राज्य सभा के माननीय सभापति तथा मंच के अध्यक्ष ने 26 नवम्बर, 2007 को श्री त्रिलोचन सिंह, सदस्य, राज्य सभा को मंच के अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों को नियमित रूप से संचालित करने के लिए सदस्य-संयोजक नियुक्त किया।

पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान भी, अध्यक्ष, लोक सभा ने 21 जनवरी, 2010 को जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। श्री त्रिलोचन सिंह, सदस्य, राज्य सभा को पुन: मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया गया। 01 अगस्त, 2010 को राज्य सभा से उनका कार्यकाल समाप्त होने पर, अध्यक्ष द्वारा 16 नवम्बर, 2010 को प्रो॰ रामगोपाल यादव, सदस्य, राज्य सभा को मंच के सदस्य-संयोजक के रूप में नियुक्त किया गया।

---

45. सदस्यों ने 8.5.2012 को आयोजित बैठक में मानव संसाधन विकास मंत्रालय/एनसीईआरटी/सीबीएसई के प्रतिनिधियों के साथ विषय पर चर्चा की।
46. श्रम और रोजगार मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 23.8.2012 को इस मुद्दे पर सदस्यों को जानकारी दी।
47. पॉलिसी एंड एडवोकेसी, सेव दि चिल्ड्रेन के विशेषज्ञ और कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर ने 12.12.2012 को आयोजित बैठक में भाग लिया।
48. प्रयास इन्स्टीट्यूट ऑफ जुवेनाइल जस्टिस के विशेषज्ञ ने 11.3.2013 को इस विषय पर सदस्यों को जानकारी दी।
49. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान में कार्यरत अर्थशास्त्र के प्रोफेसर ने 3.5.2013 को आयोजित बैठक में विषय पर भाषण दिया।
50. भारतीय खेल प्राधिकरण के वरिष्ठ अधिकारी ने 27.8.2013 को आयोजित बैठक में विषय पर सदस्यों को जानकारी दी।

कार्य

मंच के कार्य इस प्रकार हैं–

(क) जनसंख्या स्थिरीकरण और उससे जुड़े मामलों से संबंधित नीतियों पर विषय केन्द्रित विचार-विमर्श करना;

(ख) जन स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर चर्चा करना और नीति बनाना;

(ग) जनसंख्या नियंत्रण और जन स्वास्थ्य के संबंध में समाज के सभी वर्गों, विशेषकर निचले स्तर पर लोगों में अधिक जागरूकता पैदा करना; और

(घ) राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञों के साथ जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी मामलों पर व्यापक वार्ता और चर्चा करना तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष, अकादमिक विशेषज्ञों और संबंधित सरकारी एजेंसियों जैसे बहुपक्षीय संगठनों से संवाद करना।

बैठकें

चौदहवीं लोक सभा के दौरान जनसंख्या और जन स्वास्थ्य संबंधी मंच की चार बैठकें आयोजित की गई थीं जिनमें तीन वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रस्तुतीकरण शामिल है। पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान "एम्पावारिंग अप्रोच टू पापुलेशन स्टेबलाइजेशन[51] जन स्वास्थ्य संबंधी मुद्दे[52]; ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता एवं अपशिष्ट व्ययन[53]; स्मृतिभ्रंश[54]; जनसंख्या नीति: वर्तमान स्थिति और नई जनसंख्या नीति की आवश्यकता[55] सेनीटेशन इन्टरवेंशन्स फॉर पब्लिक हेल्थ एंड हाइजीन[56], भारत में सभी को स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करने की दिशा में प्रयास[57]

---

51. पॉपुलेशन फाउण्डेशन ऑफ इंडिया के विशेषज्ञ ने 28.7.2010 को आयोजित बैठक में इस विषय पर भाषण दिया।
52. नेशनल सेंटर फॉर डिसीज कन्ट्रोल के निदेशक ने 14.3.2011 को आयोजित बैठक को संबोंधित किया।
53. पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 24.8.2011 की बैठक में सदस्यों को जानकारी दी।
54. अल्जाइमर्स एण्ड रिलेटिड डिसआर्डर्स सोसायटी ऑफ इंडिया के राष्ट्रीय अध्यक्ष ने 13.12.2011 की बैठक में इस मुद्दे पर भाषण दिया।
55. परिवार नियोजन प्रभाग, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 21.5.2012 की बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
56. परिवार नियोजन प्रभाग, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के वारिष्ठ अधिकारी ने 6.9.2012 को बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
57. भारत में विश्व स्वास्थ्य संगठन के प्रतिनिधि, एंडालुसियान स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ, स्पेन और स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने संयुक्त रूप से 18.12.2012 की बैठक को संबोधित किया।

भारत में दृष्टिहीनता निवारण[58] और कुंभ मेले का प्रबंधन[59] जैसे विषयों पर कुल 10 बैठकें आयोजित की गई।

भूमंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच

चौदहवीं लोक सभा के दौरान माननीय अध्यक्ष, लोक सभा ने श्री मानवेन्द्र सिंह, संसद सदस्य, लोक सभा से भूमंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी एक संसदीय मंच गठित करने हेतु पत्र प्राप्त होने के बाद 14 जुलाई, 2008 को राज्य सभा के माननीय सभापति के परामर्श से भूमंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। माननीय अध्यक्ष मंच के पदेन अध्यक्ष हैं। माननीय अध्यक्ष ने 4 सितम्बर, 2008 को श्री एन. के.सिंह, संसद सदस्य, राज्य सभा को मंच के अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों के नियमित संचालन के लिए मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया।

पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान भी, अध्यक्ष लोक सभा ने 21 जनवरी, 2010 को भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। श्री राजीव प्रताप रूड़ी, सदस्य, राज्य सभा के मंच का सदस्य-संयोजक नियुक्त किया गया।

कार्य

मंच के कार्य इस प्रकार हैं–

(क) भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन से संबंधित समस्याओं की पहचान करना तथा भू-मंडलीय तापवृद्धि की व्यापकता को कम करने के लिए सरकार/संबंधित संगठनों के विचारार्थ और समुचित कार्यवाही हेतु सुझाव देना/सिफारिशें करना;

(ख) भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन पर काम कर रहे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय निकायों के विशेषज्ञों के साथ संवाद करने हेतु संसद सदस्यों को शामिल करने के लिए मार्गोपाय ढूंढ़ने के साथ-साथ भू-मंडलीय तापवृद्धि का शमन करने हेतु नई प्रौद्योगिकियां विकसित करना;

(ग) संसद सदस्यों में भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन के कारणों और प्रभावों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए विचारगोष्ठियां/कार्यशालाएं आयोजित करना;

(घ) भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन की रोकथाम हेतु जागरूकता का प्रचार-प्रसार करने में संसद सदस्यों को शामिल करने के लिए मार्गोपाय ढूंढ़ना; और

(ङ) ऐसे अन्य संबद्ध कार्य करना जिसे मंच उचित समझे।

---

58. शंकर नेत्रालय के विशेषज्ञ ने 25.4.2013 को बैठक को संबोधित किया।

59. इलाहाबाद के वरिष्ठ अधिकारी ने 8.5.2013 की बैठक में सदस्यों को जानकारी दी।

बैठकें

पन्द्रहवीं लोक सभा के दौरान भू-मंडलीय तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच ने यू.एन.एफ.सी.सी. द्वारा भारत सरकार को यथा संसूचित वर्ष 2022 तक भारतीय जीडीपी उत्सर्जन तीव्रता में 20-25% तक कमी लाने हेतु कार्य योजना[60]; जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव[61]; जलवायु परिवर्तन के संबंध में जनसंख्या, संसाधन और जैव विविधता[62]; वन वन्यजीव और जलवायु परिवर्तन[63]; प्रौद्योगिकी और जलवायु परिवर्तन[64]; जलवायु परिवर्तन का ऊर्जा सुरक्षा पर प्रभाव[65]; जलवायु परिवर्तन का मानव जीवन और पर्यावास पर प्रभाव[66] जलवायु परिवर्तन संबंधी राष्ट्रीय कार्य योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय सौर मिशन तथा संबंधित पहलें[67]; राष्ट्रीय सतत् आवास मिशन[68]; नवीकरणीय ऊर्जा; नई चुनौतियां और प्राथमिकताएं[69]; जलवायु विज्ञान जलवायु परिवर्तन के बारे में हाल ही के निष्कर्ष और नवीन प्रतिक्रियायें[70]; राष्ट्रीय जल मिशन-जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव[71] और यूके के जलवायु परिवर्तन अधिनियम से सीखे गए सबक जैसे विषयों पर कुल 15 बैठकें[72] आयोजित की गईं।

---

60. प्रयास दि एनर्जी ग्रुप से विशेषज्ञ ने 3.5.2010 को बैठक को संबोधित किया।
61. दिवेचा सेन्टर फॉर क्लाइमेंट चेंज, भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलुरु से विशेषज्ञ और पर्यावरण विज्ञान प्रभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक ने 10.3.2011 की बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
62. डेवेलपमेंट आल्टरनेटिव्य से विशेषज्ञ ने 18.8.2011 को बैठक को संबोधित किया।
63. भारतीय वन्यजीव बोर्ड, भारत सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों ने 25.8.2011 को बैठक को संबोधित किया।
64. जैव प्रौद्योगिकी विभाग के वरिष्ठ अधिकारी ने 30.11.2011 को बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
65. विद्युत मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 26.3.2011 को बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
66. पर्यावरण और वन मंत्रालय के सलाहकार ने 2.5.2012 को बैठक को संबोधित किया।
67. नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 30.8.2012 को आयोजित बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
68. शहरी विकास मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी ने 17.12.2012 को आयोजित बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
69. महासचिव, जलवायु संसद ने 27.2.2013 को आयोजित बैठक में सदस्यों को संबोधित किया।
70. एक जलवायु परिवर्तन विशेषज्ञ ने 30.4.2013 को आयोजित बैठक में सदस्यों को संबोधित किया।
71. केन्द्रीय जल आयोग से वरिष्ठ अधिकारी ने 28.8.2013 को आयोजित बैठक में सदस्यों को जानकारी प्रदान की।
72. हाउस ऑफ लॉर्ड्स, ब्रिट्रिश गवर्नमेंट में ऊर्जा/जलवायु संबंधी विपक्षी प्रवक्ता और उपाध्यक्ष, ग्लोब इंटरनेशनल ने 17.12.2013 को आयोजित बैठक में सदस्यों को संबोधित किया।

आपदा प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच

पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान 03 दिसम्बर, 2010 को एक प्रतिनिधिमंडल ने लोक सभा अध्यक्ष से भेंट की और भोपाल गैस रिसाव आपदा के शिकार हुए लोगों की दुर्दशा के बारे में एक ज्ञापन दिया। तदुपरांत, अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 8 दिसंबर, 2011 को आपदा प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। अध्यक्ष ने डॉ॰ शशि थरूर, सदस्य, लोक सभा को मंच के नियमित अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों के आयोजन के लिए सदस्य-संयोजक के रूप में नियुक्त किया। डॉ॰ शशि थरूर की मंत्री पद पर नियुक्ति के परिणामस्वरूप डॉ॰ थरूर ने 01 नवंबर, 2012 को मंच की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने 26 नवम्बर, 2012 को डॉ॰ काकोली घोष दस्तिदार, सदस्य, लोक सभा को मंच के सदस्य-संयोजक के रूप में नियुक्त किया।

कार्य

मंच के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं–

(क) आपदा प्रबंधन से संबंधित समस्याओं का पता लगाने तथा आपदाओं के प्रभाव को कम करने के लिए संबंधित सरकार/संगठनों के विचारार्थ और समुचित कार्यवाही हेतु सुझाव देना/सिफारिश करना;

(ख) आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में कार्यरत राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय निकायों के विशेषज्ञों के साथ संवाद हेतु संसद सदस्यों को शामिल करने के तौर-तरीकों का पता लगाने के साथ-साथ आपदाओं के प्रभाव का शमन करने के लिए नई प्रौद्योगिकियों का विकास करना;

(ग) संसद सदस्यों में आपदा प्रबंधन के कारणों और प्रभावों के बारे में जागरूकता विकसित करने के लिए विचारगोष्ठियां/कार्यशालाएं आयोजित करना;

(घ) आपदा प्रबंधन के बारे में जागरूकता का प्रचार-प्रसार करने में संसद सदस्यों को शामिल करने के तौर-तरीके ढूंढ़ना; और

(ङ) ऐसे अन्य संबद्ध कार्य करना जो जिसे मंच वह उचित समझे।

बैठकें

पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान आपदा प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच ने आपदा प्रबंधन[73]; बांधों की सुरक्षा[74]; शहरों की बाढ़ और आपदा को कम करना[75]; बाढ़, सुनामी और इनका

---

73. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के वरिष्ठ अधिकारी ने 22.3.2012 को आयोजित बैठक में सदस्यों को संबोधित किया।
74. केन्द्रीय जल आयोग के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी ने 25.4.2012 को सदस्यों को संबोधित किया।
75. भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली से एक प्रोफेसर ने 16.8.2012 को इस मुद्दे पर सदस्यों को संबोधित किया।

प्रबंधन[76]; आपदा से निपटने हेतु सामुदायिक तैयारी[77]; और भारत में आपदा प्रबंधन की बढ़ती चुनौतियां[78]; जैसे विषयों पर कुल 7 बैठकें आयोजित की गईं।

शिल्पकार और दस्तकार संबंधी मंच

अध्यक्ष, लोक सभा ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 26 अप्रैल, 2013 को शिल्पकार और दस्तकार संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। अध्यक्ष ने श्रीमती पुतुल कुमारी, संसद सदस्य, लोक सभा को मंच के नियमित अनुमोदित कार्यक्रमों/बैठकों के आयोजन के लिए सदस्य-संयोजक के रूप में नियुक्त किया।

कार्य

मंच के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं—

(क) शिल्पकारों और दस्तकारों को प्रभावित करने वाले गंभीर मुद्दों के प्रति सांसदों का ध्यान आकर्षित करना और उनकी जागरूकता में वृद्धि करना ताकि विभिन्न तंत्रों के माध्यम से परम्परागत कला और शिल्प का संरक्षण और संवर्धन किया जा सके।

(ख) सांसदों को कार्यशालाओं, विचारगोष्ठियों, प्रबोधन कार्यक्रमों इत्यादि के माध्यम से शिल्पकारों और दस्तकारों के संबंध में विचारों, दृष्टिकोणों, अनुभवों, सुविज्ञता तथा बेहतर प्रक्रियाओं का व्यवस्थित ढंग से आदान-प्रदान करने हेतु मंच प्रदान करना।

(ग) सांसदों को, अन्य बातों के साथ-साथ, स्वयंसेवी क्षेत्र, मीडिया और कार्पोरेट जगत में शिल्पकारों और दस्तकारों के मुद्दों को उजागर करने हेतु सिविल सोसाइटी के साथ संवाद के अवसर उपलब्ध कराना और इस प्रकार, इस संबंध में कारगर नीतिगत भागीदारी विकसित करना।

(घ) सांसदों द्वारा विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों, खादी और ग्रामोद्योग आयोग, (केबीआईसी) बोर्ड, लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् (कापार्ट) जैसे सरकारी संगठनों और अन्य संबंधित संगठनों/निकायों के प्रतिनिधियों के साथ संस्थागत ढंग से संवाद प्रक्रिया को सुगम बनाना।

(ङ) कला और परम्परागत शिल्प के संरक्षण तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर विशेषज्ञों/संगठनों के साथ शिल्पकारों और दस्तकारों को बढ़ावा देने से संबंधित मामलों पर व्यापक संवाद और चर्चा आयोजित करना।

---

76. ए.यू.एन.डी.पी. के रिजनल डिजास्टर रिडक्शन एडवाइजर ने 19.12.2012 को सदस्यों को संबोधित किया।

77. सस्टेनेबल एन्वायरनमेंट एंड इकोलोजकल डेवलपमेंट सोसाइटी, भारत के विशेषज्ञ ने 5.3.2013 को सदस्यों को संबोधित किया।

78. डिजास्टर मैनेजमेंट इन्फ्रास्ट्रक्चर एंड कन्ट्रोल सोसाइटी के विशेषज्ञों ने संयुक्त रूप से 13.2.2014 को सदस्यों को संबोधित किया।

(च) ऐसे अन्य कार्य, परियोजनाएं नियत कार्य आदि आरंभ करना जिन्हें मंच उचित समझे।

बैठकें

पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान शिल्पकार और दस्तकार संबंधी संसदीय मंच ने 13.8.2013 को आरम्भिक बैठक आयोजित की। इसने 18 दिसम्बर, 2013 से 20 दिसम्बर, 2013 तक 'हथकरघा और हस्तशिल्प–भावी चुनौतियां' विषय पर संसदीय सौध में एक कार्यशाला–सह–प्रदर्शनी का भी आयोजन किया।

सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य संबंधी संसदीय मंच

लोक सभा अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति के परामर्श से 11 दिसम्बर, 2013 को सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य संबंधी संसदीय मंच का गठन किया। अध्यक्ष ने श्री कमल किशोर कमांडो, सदस्य, लोक सभा को सहस्राब्दि विकास लक्ष्य संबंधी मंच के नियमित अनुमोदित कार्यक्रमो/बैठकों के आयोजन के लिए सदस्य–संयोजक के रूप में नियुक्त किया।

कार्य

मंच के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं–

(क) सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों के अंतर्गत वर्ष 2015 तक लक्ष्यों की प्राप्ति/निर्धारित लक्ष्यों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण मुद्दों की समीक्षा करना और सांसदों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करके उनकी जागरूकता में वृद्धि करना।

(ख) सांसदों को कार्यशालाओं, विचारगोष्ठियों, प्रबोधन कार्यक्रमों इत्यादि के माध्यम से सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों के कार्यान्वयन के संबंध में विचारों, दृष्टिकोणों, अनुभवों, सुविज्ञता तथा बेहतर प्रक्रियाओं का व्यवस्थित ढंग से आदान–प्रदान करने हेतु मंच प्रदान कराना।

(ग) सांसदों को सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों यथा–गरीबी और भुखमरी का उन्मूलन करना; सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करना; स्त्री–पुरुष समानता को प्रोत्साहन देना और महिलाओं को शक्तियां प्रदान करना; शिशु मृत्यु दर कम करना; मातृ स्वास्थ्य में सुधार करना; एचआइवी/एड्स, मलेरिया और अन्य बीमारियों का मुकाबला करना; पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना और विकास हेतु वैश्विक साझेदारी विकसित करना संबंधी मुद्दों को उजागर करने हेतु सिविल सोसइटी के साथ संवाद के अवसर उपलब्ध।

(घ) सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सांसदों को विशिष्ट संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों और इस जैसी अन्य बहुपक्षीय एजेंसियों के साथ संवाद प्रक्रिया और विशेषज्ञों की रिपोर्ट, अध्ययन, समाचार और रुझान का विश्लेषण आदि के अवलोकन को संस्थागत ढंग से सुगम बनाना।

(ङ) ऐसे अन्य कार्य, परियोजनाएं, नियत कार्य इत्यादि आरंभ करना जिन्हें मंच उचित समझे।

बैठक

श्री सलमान खुर्शीद, विदेश मंत्री ने 17 फरवरी, 2014 को आयोजित बैठक में सहस्राब्दि विकास लक्ष्य संबंधी मंच का उद्‌घाटन किया।

संसदीय समितियों और संसदीय मंचों के बीच अंतर

संसदीय समितियां संसदीय मंचों से भिन्न होती हैं। संसदीय समितियों को सांविधिक स्वीकृति होती है क्योंकि उनकी उत्पत्ति, शक्तियां, कृत्य और विशेषाधिकार संविधान उसके अधीन बनाये गये नियमों, संसद के अधिनियमों अथवा सदन द्वारा अंगीकृत प्रस्तावों/संकल्पों से प्राप्त होते हैं। संसदीय समितियां, जो कि सरकार के कार्यकरण की संवीक्षा करती हैं, की संरचना में केवल संसद सदस्य होते हैं और नियम मंत्रियों को ऐसी समितियों में सदस्य के रूप में नियुक्ति की अनुमति नहीं देते। संसदीय समितियां अपने अधिदेश के भीतर विषयों की जाँच करती हैं और सभाओं को प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं। वे अपने प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों का कार्यान्वयन सरकार से कराती हैं और उसके पश्चात् की गई कार्यवाही प्रतिवेदन सभा को प्रस्तुत करती हैं। संसदीय समितियों को विषयों की जाँच के संबंध में अभिलेखों को मंगाने और व्यक्तियों को बुलाने की और किसी विशेषाधिकार के लिए जांच तथा उपयुक्त कार्रवाई के बारे में सभा को रिपोर्ट करने की शक्ति प्रदान की गई है। दूसरी ओर संसदीय मंच अनौपचारिक तंत्र होते है, जिसमें तात्कालिक महत्व के महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार-विमर्श हेतु संसद सदस्य और मंत्रीगण होते हैं ताकि सदस्य ऐसे मुद्दों से परिचित हो सकें, ताकि वे अपने समक्ष समस्याओं से निपटने हेतु उपयुक्त, रणनीति और नीतियां बनाने हेतु सभा में विचार-विमर्श तथा चर्चा में प्रभावपूर्ण ढंग से भाग ले सकें। मंचों के गठन को कोई सांविधिक स्वीकृति नहीं होती और न ही उनके पास संसदीय समितियों को प्रदत्त शक्तियां और विशेषाधिकार होते हैं। मंच सभाओं को कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करते हैं। अतः संसदीय मंचों की भूमिका और महत्त्व का मूल्यांकन करते हुए संसदीय मंचों के दर्जे, शक्तियों, विशेषाधिकार इत्यादि के संबंध में संसदीय समितियों से इन मंचों की बराबरी नहीं करनी चाहिए और इस संबंध में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए ।

अध्याय 32

सामान्य प्रक्रिया नियम

सूचनाएं

कोई भी विषय जिसे सदस्य सभा में उठाना चाहता हो, वह चाहे प्रश्न के रूप में हो, संकल्प के रूप में, प्रस्ताव के रूप में, विधेयक के रूप में, संशोधन के रूप में या अन्यथा हो, उसके लिए पहले से सूचना देने की आवश्यकता है। अध्यक्ष किसी भी विषय को तब तक सभा में उठाने की अनुमति नहीं देता, जब तक उसे उसके लिए अपेक्षित सूचना प्राप्त न हो गयी हो। नियमों के अन्तर्गत अपेक्षित प्रत्येक सूचना लिखित रूप में दी जानी चाहिए और महासचिव को सम्बोधित होनी चाहिए। उस पर सूचना देने वाले सदस्य के हस्ताक्षर होने चाहिएं और वह अधिसूचित समय के भीतर संसदीय सूचना कार्यालय में दी जानी चाहिए।[1] अध्यक्ष ने सदस्यों द्वारा सूचनाएं अध्यक्ष के व्यक्तिगत नाम से भेजे जाने या उसके घर भेजे जाने की परिपाटी को अनुचित ठहराया है।[2] सदस्य सूचनाएं या तो स्वयं दे सकते हैं या अपने संदेशवाहक के हाथ भिजवा सकते हैं। वे चाहें तो डाक के माध्यम से भी सूचना भेज सकते हैं। असाधारण मामलों में, तार के माध्यम से भी सूचनाएं दी जा सकती हैं। परन्तु तार द्वारा भेजी गयी सूचना के तुरन्त बाद उनकी लिखित रूप से पुष्टि किया जाना आवश्यक है। यदि इस प्रकार की पुष्टि न की जाये, तो तार के माध्यम से भेजी गयी सूचना को नियमों के विरुद्ध ठहराया जाता है।

सूचनाओं का छपे हुए मानक प्रपत्रों पर दिया जाना आवश्यक है। अध्यक्ष ने सदस्यों द्वारा कागज की छोटी-छोटी पर्चियों पर या पेंसिल से लिखकर सूचनाएं देने की बात को बुरा बताया है।[3]

चूंकि सूचनाएं सभा में सत्र के दौरान निष्पादित किये जाने वाले कार्य के सम्बन्ध में होती हैं, इसलिए विभिन्न सूचनाएं सदस्यों को आमंत्रण भेजे जाने के अगले दिन 10.00 बजे से स्वीकार की जाती हैं।

दिनांक 24 जुलाई, 2005 को दलों के नेताओं के साथ लोक सभा अध्यक्ष की बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार 'प्रश्न काल' के बाद उठाए जाने वाले अविलम्बनीय लोक

---

1. नियम 332 सूचना प्राप्त करने का समय कार्य दिवसों के दौरान 10.00 बजे से 15.15 बजे तक है। 15.15 बजे के बाद मिलने वाली सूचनाओं को अगले दिन अर्थात् अगले कार्य दिवस को प्राप्त सूचनाएं माना जाता है।
2. *लो.स.वा.वि.*, 20.11.1970, पृ. 150; 23.3.1964, पृ. 2493 ।
3. *एल.ए. डिबेट्स* 9.4.1934, पृ. 3423 ।

महत्व के मामलों से संबंधित सूचनाएं महासचिव को संबोधित होनी चाहिए और सदस्यों द्वारा उस दिन जिस दिन सदस्य मामले को उठाना चाहता है, 9.30 बजे तक दी जानी चाहिए। (वर्तमान व्यवस्था में सदस्यगण 08:30 बजे से 09:00 बजे तक देते हैं।)[4]

अब यह एक स्वीकृत प्रथा है कि सत्र प्रारम्भ होने से पहले स्थगन प्रस्तावों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों, मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्तावों या किन्हीं अन्य प्रस्तावों की सूचनाएं जिनका उस दिन सभा की बैठक प्रारम्भ होने से पहले दिया जाना आवश्यक है, जिस दिन उन्हें सभा में उठाने का विचार हो, केवल उस दिन से ली जाती हैं जिसे इस प्रयोजन के लिए समाचार भाग-2 में अधिसूचित किया जाता है क्योंकि सत्र से काफी समय पहले इन सूचनाओं के प्राप्त होने पर अध्यक्ष के लिए उन पर विचार करना संभव नहीं होता है।[5]

सूचनाएं कार्य की विभिन्न मदों के लिए निर्धारित अवधि के भीतर दे देनी चाहिए। जब सूचना ''बैठक प्रारम्भ होने से पहले'' देना आवश्यक हो तो सूचना उस दिन 10.00 बजे तक अध्यक्ष तथा महासचिव को मिल जानी चाहिए।[6] यदि सूचना निर्धारित समय के बाद प्राप्त होती है तो उसे अगले दिन की बैठक के लिए दी गई सूचना माना जाता है। जिन मामलों में सूचना अवधि निर्धारित नहीं है, जैसे अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर चर्चा या *अनियत दिन वाले* प्रस्तावों के मामले में[7] सदस्य जब चाहें सूचना दे सकते हैं और उनकी ग्राह्यता पर विचार करने के लिए अध्यक्ष जितना चाहे समय ले सकता है।

लेकिन अल्पकालिक चर्चा उठाने, मंत्रियों द्वारा सभा में दिये जाने वाले वक्तव्यों संबंधी प्रस्ताव या सभा पटल पर रखे जाने वाले वक्तव्यों, प्रतिवेदनों और प्रपत्रों के बारे में सूचनाएं उस दिन 10.00 बजे से प्राप्त की जाती हैं जिस दिन की कार्य-सूची में, जो सदस्यों को भेजी गईं हों, उस मद को सम्मिलित किया गया हो। यदि उस दिन शनिवार, रविवार या सरकारी छुट्टी है तो सूचनाएं अगले कार्य दिवस को 10.00 बजे से प्राप्त की जाती हैं। जब किसी वक्तव्य के बारे में सभा में *अनुपूरक कार्य-सूची* परिचालित की जाती है तो *कार्य-सूची* का परिचालन पूरा होने के 15 मिनट के अन्दर उस वक्तव्य के सम्बन्ध में, जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं उन्हें एक ही समय पर प्राप्त हुई सूचनाएं माना जाता है और उनकी *सापेक्ष पूर्ववर्तिता* बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है। जब किसी मंत्री द्वारा सभा में दिए जाने वाले वक्तव्य के बारे में अध्यक्षपीठ से घोषणा की जाती है तो उस वक्तव्य के सम्बन्ध में अध्यक्षपीठ से की गई घोषणा के समय से सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं और जो सूचनाएं अध्यक्षपीठ की घोषणा के 15 मिनट के अन्दर प्राप्त होती है उन्हें एक ही समय पर प्राप्त हुई सूचनाएं माना जाता है और

---

4. समाचार भाग-2, 29.7.2005, पैरा 1425 ।
5. समाचार भाग-2, 8.1.1973, पैरा 991 । इन सूचनाओं की प्राप्ति के लिए अधिसूचित दिन सामान्यत: सत्रारम्भ से पहले चौथा कार्यदिवस होता है।
6. निदेश 113 ख ।
7. *देखिए* नियम 185 और 193 ।

उनकी *सापेक्ष पूर्ववर्तिता* बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है। जब *कार्य-सूची* या *अनुपूरक कार्य-सूची* में एक मद के रूप में शामिल किए बिना सभा में कोई वक्तव्य दिया जाता है तो उस वक्तव्य के संबंध में सूचनाएं सभा में वस्तुतः वक्तव्य के दिये जाने के समय से प्राप्त की जाती हैं और वक्तव्य पूरा होने के 15 मिनट के अन्दर जो सूचनाएं प्राप्त होती हैं उन्हें एक ही समय पर प्राप्त हुई सूचनाएं माना जाता है और उनकी *सापेक्ष पूर्ववर्तिता* बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है।

नियमों में सूचना देने की जो अवधि विहित की गयी है, उस पर सामान्यतः बल दिया जाता है और जिन प्रस्तावों या संकल्पों की सूचना निर्धारित समय के अनुसार नहीं दी जाती, उन्हें सामान्यतः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाती। तथापि जिन नियमों में सूचना की अवधि निर्धारित की गयी है, उनमें अध्यक्ष को यह शक्ति भी दी गई है कि वह उपयुक्त मामलों में सूचना की अवधि को हटा सकता है और किसी प्रस्ताव विशेष को अल्पावधि सूचना पर या बिना सूचना के भी स्वीकार कर सकता है,[8] परन्तु ऐसे मामले बहुत ही कम होते हैं।

प्रश्नों तथा संकल्पों के सम्बन्ध में सूचना की अवधि का हिसाब लगाते समय, वह दिन जिस दिन सूचना प्राप्त हुई हो और वह दिन जिसको प्रश्न का उत्तर दिया जाना हो या संकल्प को प्रस्तुत किया जाना हो, दोनों छोड़ दिये जाते हैं।

किसी विधेयक अथवा संकल्प के कार्य-सूची में रखे जाने से पूर्व उसके सम्बन्ध में सदस्यों द्वारा संशोधनों की सूचनाएं दी जा सकती हैं। परन्तु ऐसे संशोधन, संगत मद को *कार्य-सूची* में अथवा अगले सप्ताह के कार्य के बारे में संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य में रखे जाने के दिन या उस दिन के बाद सदस्यों को परिचालित किये जाते हैं।[9]

सदस्य चाहे तो शपथ-ग्रहण करने या प्रतिज्ञान करने से पहले सूचनाएं दे सकता है, परन्तु जिस सदस्य ने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो— वह कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता, न कोई संकल्प, कटौती प्रस्ताव या स्थगन प्रस्ताव रख सकता है और न ही कोई विधेयक पुरःस्थापित कर सकता है, भले ही उसने उसके लिए सूचना दी हो।

जब दो या अधिक सदस्य एक जैसे प्रस्ताव या एक ही विषय के संबंध में प्रस्तावों की अलग-अलग सूचना देते हैं, तो ऐसे सभी सदस्यों के नाम गृहीत सूचना पर इकट्ठे लिखे जाते हैं। इन सदस्यों के नाम उसी क्रम में लिखे जाते हैं, जिस समयक्रम में उनकी सूचनाएं प्राप्त हुई हों, या यदि उस मामले में बैलट हुआ हो तो बैलट में आये क्रमानुसार उनके नाम लिखे जाते हैं। ऐसे मामलों में प्रस्ताव रखने का अधिकार सबसे पहले तो उस सदस्य को होता है, जिसका नाम सूची में सबसे पहले होता है।

---

8. जिन मामलों में अध्यक्ष सूचना की अवधि हटा सकता है या जहां उसने सूचना की अवधि हटाई है, उनका विवरण संबंधित अध्यायों में उचित स्थानों पर दिया गया है।

9. निदेश 113 ।

एक ही जैसे या पर्याप्त रूप से वैसे ही प्रश्नों को, जिसकी सूचना कई सदस्यों ने अलग-अलग दी हो, या तो समेकित कर दिया जाता है या उस प्रश्न को गृहीत किया जाता है, जिसकी भाषा सबसे अधिक उपयुक्त हो, और बाकी सब सदस्यों के नाम उसमें जोड़ दिये जाते हैं। परन्तु यदि कोई सदस्य इस प्रकार अपना नाम जोड़े जाने पर आपत्ति करे तो उसका नाम हटा दिया जाता है। इसी प्रकार, जब एक ही विषय पर दो या अधिक स्थगन प्रस्तावों की सूचना प्राप्त हो तो अध्यक्ष, अपने विवेकाधिकार से ऐसी सूचना को स्वीकार कर सकता है, जिसकी भाषा सबसे अधिक उपयुक्त हो, चाहे वह सबसे पहले प्राप्त न हुई हो। तत्पश्चात् उन अन्य सदस्यों के नाम उस सूचना में जोड़ दिये जाते हैं और नामों का क्रम वही रहता है जिस समयक्रम में सूचनायें प्राप्त हुई हों। विधेयकों के मामले में भी जिन सदस्यों ने एक ही जैसे विधेयक की सूचनाएं दी हों उन सबके नाम उस क्रम में, जिस समयक्रम में सूचनाएं प्राप्त हुई हों उन में जोड़ दिये जाते हैं। जिस सदस्य ने सबसे पहले सूचना दी हो, उसे यह अधिकार मिलता है कि वह विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव करे।[10] परन्तु यदि कोई विधेयक लोक सभा में लम्बित हो, तो उस जैसे किसी अन्य विधेयक की सूचना किसी अन्य सदस्य द्वारा नहीं दी जा सकती, जब तक कि अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दे।[11]

जब कई सदस्यों के नामों में गृहीत कोई प्रस्ताव, संशोधन या कटौती प्रस्ताव वास्तव में प्रस्तुत न किया गया हो, परन्तु अध्यक्ष को ऐसे सदस्यों द्वारा लिखित रूप में बताये जाने[12] पर प्रस्तुत किया समझा गया हो तो, यथास्थिति वह प्रस्ताव, संशोधन अथवा कटौती प्रस्ताव उस सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया गया माना जाता है। जिसका नाम *कार्य-सूची* में सबसे पहले हो और यदि वह सभा में उपस्थित न हो या उसने यह न कहा हो कि वह उसे प्रस्तुत करना चाहता है तो वह दूसरे या तीसरे सदस्य आदि द्वारा प्रस्तुत किया गया माना जाता है, जो कि सभा में उपस्थित हो। छपे हुए वाद-विवाद में भी उसी सदस्य का नाम यथास्थिति ऐसे प्रस्ताव संशोधन या कटौती प्रस्ताव के प्रस्तावक के रूप में दिखाया जाता है।[13]

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक के मामले में, जिस विधेयक को एक से अधिक सदस्यों के नाम गृहीत किया गया हो, उसे पुर:स्थापित करने की अनुमति मांगने का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार उस सदस्य को है जिसका नाम *कार्य-सूची* में सबसे ऊपर हो। यदि

---

10. निदेश 28 ।
11. जिस मामले में एक विधेयक को लम्बित विधेयक जैसा नहीं माना गया उसके लिए *देखिए पी. डिबेट्स* (II), 12.12.1950, कॉ. 1548 और 1552-53 ।
12. जब वैकल्पिक प्रस्ताव, कटौती प्रस्ताव या संशोधन बहुत अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं, तो सभा का समय बचाने के लिये यह प्रथा अपनायी गयी है कि अध्यक्ष सदस्यों से कहता है कि वे उन चुने हुये वैकल्पिक प्रस्तावों, कटौती प्रस्तावों या संशोधनों की संख्याएं लिखकर, पर्चियां सभा पटल पर भेज दें, जिन्हें वे चाहते हैं कि प्रस्तुत किया गया मान लिया जाये।
13. निदेश 42 ।

पहला सदस्य अनुपस्थित हो तो उससे अगला सदस्य, जो सभा में उपस्थित हो, विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है।[14]

जिस सदस्य ने किसी विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति मांगने का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की सूचना दी हो वह किसी अन्य सदस्य को अपनी ओर से वह प्रस्ताव रखने के लिए प्राधिकृत कर सकता है।[15] लेकिन यदि अध्यक्ष को काफी पहले इस बात की सूचना न दी गयी हो कि सदस्य ने किसी दूसरे सदस्य को अपनी ओर से विधेयक पुरःस्थापित करने के लिए प्राधिकृत किया है, तो अध्यक्ष दूसरे सदस्य को विधेयक पुरःस्थापित करने की अनुमति देने से इंकार कर सकता है।[16] परन्तु कोई संशोधन या कटौती प्रस्ताव किसी सदस्य की ओर से किसी अन्य सदस्य द्वारा पेश नहीं किया जा सकता।[17] संशोधन या कटौती प्रस्ताव की सूचना देने वाले सदस्य को उस समय सभा में उपस्थित होना चाहिये, जब संशोधन या कटौती प्रस्ताव विचार हेतु लिया जाये[18] अन्यथा वह उसे प्रस्तुत करने का अपना अवसर खो बैठता है।[19] परन्तु संकल्पों के सम्बन्ध में किसी अन्य सदस्य को प्राधिकृत करने की अनुमति है और अध्यक्ष की अनुमति से कोई सदस्य किसी ऐसे सदस्य को, जिसके नाम में वही संकल्प *कार्य-सूची* में नीचे हो, यह प्राधिकार दे सकता है कि वह उसे उसकी ओर से पेश करे।[20]

संभाव्य सूचनाएं

कोई सदस्य किसी ऐसे प्रस्ताव या संकल्प या विधेयक की सूचना दे सकता है, जिसे वह चाहता है कि वह कार्य की उस अन्य मद की समाप्ति पर लिया जाये, जिस पर कि वह प्रस्ताव समाश्रित हो और, यदि अध्यक्ष ऐसी सूचना को गृहीत कर ले तो उसे *कार्य-सूची* में

---

14. निदेश 28 ।

 तथापि 27 जुलाई, 1956 को पुरःस्थापित किए गए साधू तथा संन्यासी (पंजीयन तथा लाइसेंस) विधेयक, 1956, जिसकी सूचना संयुक्त रूप से दो सदस्यों ने मिलकर दी थी, एक सदस्य ने पुरःस्थापित किया था। पुरःस्थापन के बाद वह सदस्य जिसने वास्तव में विधेयक को पुरःस्थापित किया था, विधेयक का प्रभारी सदस्य बन गया और दूसरे सदस्य द्वारा दी गई सूचना को व्यपगत माना गया। *लो.स.वा.वि.*, 27.7.1956, कॉ. 121।

15. निदेश 29 ।

16. *लो.स.वा.वि.*, 7.12.1956, पृ. 801-02 ।

17. *एल.एस. डिबेट्स*, 5.9.1957, कॉ. 12142-43 और 6.9.1957, कॉ. 12382; 26.4.1963, कॉ. 12156; 29.4.1969, कॉ. 560-61, 577-578 ।

18. *पूर्वोक्त*, 24.11.1960, कॉ. 2151 ।

19. सी.ए. (*लेजि.*) *डिबेट्स* (II), 2.12.1949, पृ. 20; और *एल.एस. डिबेट्स*, 9.9.1957, कॉ. 12889 ।

20. नियम 176 (2) और (3) ।

यथास्थिति प्रस्ताव या संकल्प या विधेयक की संभाव्य सूचना शीर्षक के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। सभा में ऐसी किसी सूचना को तभी लिया जा सकता है जब कार्य की वह मद निपटायी जा चुकी हो जिस पर वह सूचना समाश्रित है।[21]

संभाव्य सूचनाएं सामान्यत: विनियोग विधेयकों के सम्बन्ध में दी जाती हैं, जिन्हें सरकार, सभा द्वारा संगत अनुदानों की मांगों के स्वीकार किये जाने के बाद, यथाशीघ्र, पारित करवाना चाहती है। ऐसे विशेष मामलों में, जिनमें विनियोग विधेयकों के बहुत शीघ्रता से पारित किये जाने की आवश्यकता हो, संबंधित मंत्री अध्यक्ष से इस बारे में विशेष अनुरोध करता है कि "विधेयक की संभाव्य सूचना" के अंतर्गत विधेयक के पुर:स्थापित किये जाने, उस पर विचार किये जाने और उसके पारित किये जाने के प्रस्ताव उसी दिन की *कार्य-सूची* में रखे जायें, जिस दिन सभा द्वारा उससे संबंधित अनुदानों की मांगें स्वीकृत की जानी हों।

जब किसी सरकारी विधेयक पर वाद-विवाद, सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के आधार पर, अनिश्चित काल तक के लिये स्थगित कर दिया जाये, तो उस विधेयक पर आगे चर्चा उस दिन की *कार्य-सूची* में "विधेयक की संभाव्य सूचना" शीर्षक के अन्तर्गत सम्मिलित की जाती है जिस दिन विधेयक पर स्थगित वाद-विवाद को फिर से आरम्भ करने का प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकृत किया जाना हो।

यदि किसी गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर वाद-विवाद, सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के आधार पर, अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित कर दिया जाता है और उसके बाद ऐसे संकल्प पर, स्थगित चर्चा, नियम 30(2) को निलम्बित करके उस संकल्प पर परस्पर पूर्ववर्तिता पुन: बैलट द्वारा निर्धारित किये बिना पुन: प्रारम्भ करनी हो, तो ऐसे संकल्प पर स्थगित वाद-विवाद पुन: प्रारम्भ करने का प्रस्ताव उस दिन की *कार्य-सूची* में "प्रस्ताव की संभाव्य सूचना" शीर्षक के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है जिस दिन सभा द्वारा संगत नियम को निलम्बित करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया जाना हो।

सूचनाओं में संशोधन

यदि अध्यक्ष की राय में किसी सूचना में ऐसे शब्द, वाक्यांश या अभिव्यक्तियां हों जो विवादास्पद हों अथवा, असंसदीय, व्यंग्यात्मक, असंगत, शब्दाडम्बरपूर्ण या अन्यथा अनुचित हों, तो वह ऐसी सूचना को परिचालित किये जाने से पूर्व स्वविवेक से, उसमें संशोधन कर सकता है।[22]

ऐसे संशोधनों की सूचनायें जो बोधगम्य न हों, या जिनके कारण उस विधेयक का कोई खण्ड या संकल्प या प्रस्ताव, जिससे वे सम्बन्धित हों, अबोधगम्य या व्याकरण की दृष्टि से गलत हो जाएं, तो उन्हें सदस्यों में परिचालित करने से पहले उनका उचित सम्पादन कर दिया

---

21. नियम 333, उदाहरणार्थ, *देखिए* कार्य-सूची, 4.12.1992 ।
22. नियम 337 ।

जाता है। यदि आवश्यक हो, तो संशोधनों का सम्पादन करते समय संबंधित सदस्यों से परामर्श भी किया जाता है।

प्रस्ताव को नियम-विरुद्ध ठहराने की अध्यक्ष की शक्ति

प्रस्तावों, संकल्पों आदि की सूचनाओं में संशोधन या परिवर्तन करने की शक्ति के अतिरिक्त, अध्यक्ष को यह निर्णय करने की भी शक्ति प्राप्त है कि कोई संकल्प या प्रस्ताव या उसका कोई भाग नियमों के अन्तर्गत ग्राह्य है या नहीं, और यदि वह यह समझे कि कोई संकल्प या प्रस्ताव या उसका कोई भाग प्रस्ताव या संकल्प को पेश करने के अधिकार का दुरुपयोग है या उसका उद्देश्य सभा की प्रक्रिया में बाधा डालना या उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालना है तो वह उस संकल्प या प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकता है।[23] अध्यक्ष को यह अन्तर्निहित शक्ति प्राप्त है कि वह किसी प्रस्ताव पर मत लिये जाने से पहले किसी भी समय उसे इस आधार पर नियम विरुद्ध ठहरा सकता है कि उसके माध्यम से सभा की कार्य प्रणाली या प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है।[24] *कार्य-सूची* या किसी संसदीय पत्र में दर्ज सभी मदें अन्तिम होती हैं। सदस्य इस तरह दर्ज किसी मद के सम्बन्ध में व्यवस्था का प्रश्न उठा सकते हैं और यदि अध्यक्ष का समाधान हो जाये तो वह उस मद को नियम-विरुद्ध ठहरा सकता है।[25]

चर्चा की प्रत्याशा

जो सदस्य किसी ऐसे विषय पर चर्चा उठाना चाहे जिसकी सूचना पहले से ही किसी अन्य सदस्य या मंत्री ने दे रखी हो तो उसे प्रत्याशा के आधार पर ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जाती।[26] परन्तु यह निर्णय करते समय कि प्रत्याशा के आधार पर कोई सूचना नियम-विरुद्ध है या नहीं, अध्यक्ष चर्चा की ग्राह्यता के बारे में निर्णय लेने से पहले इस बात को ध्यान में रखता है कि क्या इस मामले पर किसी यथोचित अवधि के भीतर सभा में चर्चा होने की संभावना है। अतः किसी संकल्प के ऐसे संशोधन को नियम विरुद्ध ठहराया गया है जो आगे आने वाले किसी ऐसे संकल्प की प्रत्याशा में दिया गया हो जिसकी सूचना संशोधन से पहले दी गयी थी।[27] इसी प्रकार ऐसे विषय से संबंधित संकल्प की सूचना को, जो किसी गैर-सरकारी सदस्य के विधेयक के रूप में पहले ही सभा के सामने था, प्रत्याशा के आधार पर अग्राह्य ठहराया गया। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव पर ऐसे संशोधन, जो ऐसे विषय से संबंधित हों, जिस पर कोई संकल्प कुछ दिनों बाद चर्चा के लिये आने वाला

---

23. नियम 174, 187 और 211 ।
24. *एल.ए. डिबेट्स,* 11.4.1929, पृ. 2989-91 ।
25. *लो.स.वा.वि.,* 8.3.1968 पृ. 1209-12; 22.3.1968, पृ. 1186-91 ।
26. नियम 343 ।
27. *एल.ए. डिबेट्स,* 7.9.1922 पृ. 201-02 ।

हो, प्रत्याशा के आधार पर अग्राह्य ठहरा दिये जाते हैं।[28]

इसी तरह किसी मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य पर किसी ऐसे विषय पर स्पष्टीकरण के रूप में प्रश्न करने या चर्चा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती जिस पर किसी अन्य प्रस्ताव के माध्यम से जल्दी ही चर्चा होने की संभावना हो।[29] लेकिन इस आपत्ति को कि सरकारी नीति का अनुमोदन करने वाले स्थानापन्न प्रस्ताव पर उस दशा में मतदान नहीं हो सकता, जबकि मंत्रिपरिषद में अविश्वास के प्रस्ताव पर जल्दी ही चर्चा होने वाली हो, इस आधार पर नियम-विरुद्ध ठहराया गया है कि नियम के अंतर्गत उस प्रस्ताव, जिस पर चर्चा पूरी हो गई हो, के स्थानापन्न प्रस्ताव पर चर्चा की प्रत्याशा करना प्रतिषिद्ध है और उस पर मतदान प्रतिषिद्ध नहीं है।[30]

सूचनाओं का व्यपगत होना

सभा का सत्रावसान हो जाने पर किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव के विचार की सूचना को छोड़कर, सभी लम्बित सूचनायें व्यपगत हो जाती हैं और यदि संबंधित सदस्य अगले सत्र में उस विषय को उठाना चाहें तो उन्हें उसकी सूचना फिर से देनी चाहिए।[31] परन्तु किसी ऐसे विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव रखने के लिये नयी सूचना की आवश्यकता होती है, जिसके सम्बंध में राष्ट्रपति की मंजूरी या सिफारिश आवश्यक हो और यदि पहले दी गई ऐसी मंजूरी या सिफारिश, प्रवृत्त न रही हो।[32]

जब कोई सदस्य सभा के अनिश्चित काल तक के लिये स्थगित होने के बाद, परन्तु उसके सत्रावसान से पहले, किसी विषय को अगले सत्र में उठाने के आशय से उसकी सूचना देता है तो ऐसी सूचना को अगले सत्र के लिये वैध नहीं माना जाता। अनुदानों की ऐसी अनुपूरक मांगों का प्रस्ताव करने के लिये, जिन पर किसी सत्रावसान के पहले मतदान न हो गया हो, नयी सूचना देना आवश्यक है।

सभा का सत्रावसान हो जाने पर सभा के सामने लम्बित विधेयक व्यपगत नहीं होते।[33] इसी प्रकार प्रवर या संयुक्त समिति के सामने लंबित विधेयक भी व्यपगत नहीं होते।[34]

कोई प्रस्ताव, संकल्प या संशोधन, जो पेश कर दिया हो और सभा में लम्बित हो, केवल इस कारण व्यपगत नहीं होता कि सत्रावसान हो गया है और उस पर आगे चर्चा के लिये नयी

---

28. *लो.स.वा.वि.*, 22.2.1960, पृ. 1035 ।
29. *एल.एस. डिबेट्स*, 14.8.1963, कॉ. 415 ।
30. *पूर्वोक्त*, 10.9.1964 कॉ. 1032-33; 23.2.1968 कॉ. 3071-72, 3089-90 ।
31. नियम 335 ।
32. नियम 335 का परन्तुक ।
33. अनुच्छेद 107 (3) ।
34. *लो.स.वा.वि.* (II), 26.7.1956, पृ. 337 ।

सूचना की आवश्यकता नहीं है।[35] अविलम्बनीय लोक महत्त्व के मामले पर अल्पकालिक चर्चा उठाई गयी हो परन्तु सत्र के दौरान समाप्त नहीं हुई हो, तो वह भी सत्रावसान पर व्यपगत नहीं होती और आगामी सत्र में पुनः कराई जा सकती है।[36] किसी लंबित विधेयक के सम्बन्ध में पेश किये गये संशोधन या प्रस्ताव जिनका निपटान न हुआ हो, सत्रावसान पर व्यपगत नहीं होते। अगले सत्र में ऐसे संशोधनों या प्रस्तावों पर उस चरण से आगे कार्यवाही की जा सकती है जहां तक वह पिछले सत्र में पहुंची हो।[37]

यदि कोई सदस्य नियमों के अंतर्गत किसी विषय के सम्बन्ध में लिखित रूप से सूचना देने के बाद मंत्री नियुक्त हो जाता है तो उसके द्वारा दी गयी सूचना को, ऐसी नियुक्ति की तारीख से व्यपगत हुआ समझा जाता है।[38] दूसरी ओर यदि किसी सरकारी विधेयक का प्रभारी मंत्री विधेयक के वस्तुतः पुरःस्थापित किये जाने से पहले पदत्याग कर देता है, अथवा उसे भिन्न विभाग आबंटित कर दिया जाता है तो विधेयक की सूचना व्यपगत नहीं होती। तथापि, उद्देश्यों और कारणों के कथन में और राजपत्र में प्रकाशन के लिए अभिप्रेत विधेयक की प्रति में डॉकेट पृष्ठ पर विधेयक को पुरः स्थापित करने वाले नए प्रभारी मंत्री का नाम प्रतिस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार, लोक सभा में यथा पुरः स्थापित विधेयक की प्रतियां भी मुद्रित कराई जाती हैं।

सरकारी विधेयक के मामले में कोई ऐसा संशोधन जिसकी सूचना प्रभारी सदस्य से प्राप्त हो गई हो, इस कारण व्यपगत नहीं हो जाती कि प्रभारी सदस्य मंत्री या सदस्य नहीं रहा है और ऐसा संशोधन विधेयक के नए प्रभारी सदस्य के नाम से छपता है।[39] तथापि, जब मंत्रिमंडल में परिवर्तन होता है और नया मंत्रिमंडल बनता है तथा कुछ मंत्री जिन्होंने सरकारी विधेयकों के बारे में विचार के लिए प्रस्तावों आदि की सूचना दी है नए मंत्रिमंडल में भी सम्मिलित किए जाते हैं या कुछ मंत्रियों के पास जिन्होंने सूचनाएं दी हैं, वही विभाग नहीं रहते, तो पहले दी गई सूचनाएं वैध नहीं मानी जाती और नए मंत्रियों से विधेयकों के पुरः स्थापन, विचार किए जाने और पारित किए जाने तथा प्रस्तावों पर विचार किए जाने, आदि के लिए नई सूचनाएँ ली जाती हैं।

राष्ट्रपति की सिफारिश

विधेयकों को पुरःस्थापित करने के लिये निम्नलिखित मामलों में राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित है:

---

35. नियम 336 ।
36. *एल.एस. डिबेट्स,* 27.9.1958, कॉ. 9047; *लो.स.वा.वि.*, 18.11.1958, पृ. 178–93; *एल.एस. डिबेट्स*, 10.12.1965, कॉ. 6908 ।
37. साथ ही *देखिये* अध्याय 9–"संसद के सदनों को आहूत करना, सत्रावसान और लोक सभा का विघटन"।
38. निदेश 113 (क) ।
39. नियम 79 (1), परन्तुक ।

नये राज्यों के निर्माण तथा विद्यमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन से सम्बन्धित विधेयक;[40] धन विधेयक और वित्त विधेयक;[41] और ऐसे कराधान पर प्रभाव डालने वाले विधेयक जिसमें राज्य हितबद्ध है।[42]

जिस विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिये राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित है, वह यदि सिफारिश प्राप्त किये बिना पुर:स्थापित कर दिया जाये, तो उसे वापस ले लिया जाता है। अपेक्षित सिफारिश प्राप्त करने के बाद उसे फिर से पुर:स्थापित किया जा सकता है।

ऐसे विधेयक पर जिसके द्वारा भारत की संचित निधि से व्यय किया जाना हो विचार करने और उसे पारित करने के लिये राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है।[43] ऐसे विधेयक पर विचार करने के लिये भी सिफारिश आवश्यक है—

यदि विधेयक ऐसा हो जिसके अधिनियमित हो जाने पर परोक्ष रूप से व्यय करना पड़े;

यदि विधेयक किसी ऐसे अधिनियम को जारी करने के लिये हो जिसके कारण भारत की संचित निधि में से व्यय करना पड़े, यद्यपि जब मूल विधेयक पारित किया गया था, उस समय सिफारिश प्राप्त नहीं की गई थी;

यदि विधेयक ऐसा हो जिससे किसी विद्यमान अधिनियम या अधिनियमों को समेकित करना हो जिनके कारण भारत की संचित निधि में से व्यय होना हो;

यदि विधेयक संशोधनकारी विधेयक हो जिसके द्वारा किसी विद्यमान अधिनियम को स्थायी बनाना हो, यदि मूल अधिनियम पर विचार करने के लिए भी सिफारिश आवश्यक थी।

परन्तु किसी सरकारी विधेयक पर विचार करने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश उस समय भी प्राप्त की जा सकती है जब विधेयक पर चर्चा चल रही हो।[44]

राष्ट्रपति की प्रत्येक सिफारिश की सूचना सम्बन्धित मंत्री द्वारा लिखित रूप में महासचिव को दी जाती है।[45]

जब कोई विधेयक राज्य सभा द्वारा विचार करने के पश्चात् पारित करके लोक सभा सचिवालय को भेजा जाता है, तो सम्बन्धित मंत्री लोक सभा में विधेयक पर विचार किये जाने की सिफारिश भी लोक सभा सचिवालय को भेजता है, यद्यपि उसी प्रकार की सिफारिश पहले राज्य सभा को भी भेजी गई है जब विधेयक उस सभा के समक्ष लंबित था।

---

40. अनुच्छेद 3 ।
41. अनुच्छेद 117 (1) ।
42. अनुच्छेद 274 (1) ।
43. अनुच्छेद 117 (3) ।
44. *लो.स.वा.वि.*, 1.12.1960, पृ. 1714 और 1718-19 ।
45. नियम 348, *लो.स.वा.वि.*, 13.5.1969, पृ. 159-62; 14.5.1969, पृ. 109-10 ।

विधेयकों पर सिफारिशों का मुद्रण

किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने या उस पर विचार करने के संबंध में राष्ट्रपति की प्रत्येक सिफारिश सदस्यों की जानकारी के लिये विधेयक के साथ छापी जाती है। संबंधित मंत्री महासचिव को यह सिफारिश भेजते समय जो पत्र लिखता है, वह विधेयक में उद्देश्यों तथा कारणों के कथन के बाद शब्दश: छापा जाता है। जिन मामलों में सिफारिश समय पर नहीं मिलती और विधेयक के साथ नहीं छापी जा सकती, उन मामलों में उसे *संसदीय समाचार* में प्रकाशित कर दिया जाता है।[46] यहां भी सिफारिश का पत्र शब्दश: छापा जाता है।

ऐसे विधेयक पर जो राज्य सभा में पुर:स्थापित किया गया हो और वहां पारित होने के बाद लोक सभा को भेजा गया हो, विचार करने के संबंध में राष्ट्रपति की सिफारिश सदस्यों की जानकारी के लिए *संसदीय समाचार* में प्रकाशित की जाती है।

राष्ट्रपति की सिफारिश सभा की सम्बद्ध कार्यवाही में भी उपयुक्त स्थान पर निम्नलिखित पाद-टिप्पण के रूप में दिखायी जाती है:[47]

"राष्ट्रपति की सिफारिश से पुर:स्थापित/प्रस्तुत"

सदस्यों को भाषण देने के लिए बुलाए जाने की विधि

जो सदस्य सभा में किसी वाद-विवाद या चर्चा में भाग लेना चाहता है, वह निम्नलिखित तीन विधियों में से किसी एक को अपना सकता है:[48]

वह उस संसदीय दल या ग्रुप के माध्यम से, जिसका वह सदस्य है, अपना नाम अध्यक्ष तक भिजवा सकता है।

सभी महत्वपूर्ण वाद-विवादों के लिए प्रत्येक दल या ग्रुप अपने उन सदस्यों की सूची भेजता है जो उसकी ओर से ऐसे वाद-विवाद में उनके प्रवक्ता होंगे। अध्यक्ष न तो उस सूची के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होता है और न उस क्रम में जिसमें वे नाम दिये गये हैं परन्तु सदस्यों को भाषण देने के लिये पुकारते समय वह ऐसी सूचियों का समुचित ध्यान रखता है।

सदस्य चाहे तो अपने संसदीय दल या ग्रुप के माध्यम से अपना नाम भेजने की बजाए सीधे अध्यक्ष को लिखित सूचना दे सकता है।

कोई सदस्य सीधे अध्यक्ष या महासचिव को लिखित सूचना दे सकता है कि वह इस वाद-विवाद में भाग लेना चाहता है। जब ऐसे अनुरोध सदस्यों से सीधे, या उनके दल या ग्रुप के माध्यम से प्राप्त होते हैं तो सचिवालय ऐसे सदस्यों की दल-वार सूची तैयार करता है और उसे अध्यक्ष के सामने रखता है।

वह अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित कर सकता है।

---

46. *लो.स.वा.वि.*, 26.8.1969, पृ. 165 ।

47. नियम 348 ।

48. निदेश 115क ।

जो सदस्य अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है, वह जब भी किसी वाद-विवाद में भाग लेना चाहे तो उसे अपने स्थान पर खड़ा होना पड़ता है। अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करने की एक सुस्थापित संसदीय परिपाटी है। प्रत्येक सदस्य को बोलने का अवसर पाने के लिये अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करना पड़ता है, चाहे उसने पहले से अध्यक्ष को लिखित सूचना दे दी हो या अपने दल या ग्रुप के माध्यम से अपना नाम उस तक भिजवा दिया हो। जब तक कोई सदस्य अपने स्थान पर खड़ा नहीं होता, संभव है कि तब तक उसे बोलने के लिए बुलाया न जाए, चाहे उसके दल या ग्रुप ने या उसने स्वयं लिखित रूप में अध्यक्ष से अनुरोध किया हो कि उसे बोलने की अनुमति दी जाये।

भाषण के लिये बुलाये जाने वाले सदस्यों के क्रम का चयन

अध्यक्ष यह निर्णय करता है कि वह किस क्रम में सदस्यों को भाषण देने के लिये बुलायेगा: कोई सदस्य यह नहीं कह सकता कि उसे किस क्रम में बुलाया जाये।[49]

> संसदीय दलों तथा ग्रुपों के सचेतक अपने-अपने प्रवक्ताओं की सूचियां अध्यक्ष को देते हैं, जिससे कि अध्यक्ष सदस्यों का इस प्रकार चयन कर सके कि वाद-विवाद सुव्यवस्थित और संतुलित हो। तथापि, अध्यक्ष ऐसी सूचियों का अनुसरण करने के लिए बाध्य नहीं है। सचिवालय सचेतकों द्वारा भेजी गई सूचियों और सदस्यों के सीधे प्राप्त अनुरोधों के आधार पर माननीय अध्यक्ष के मार्गदर्शन हेतु जो सूची तैयार करता है, उसमें अध्यक्ष परिवर्तन या फेरबदल कर सकता है।[50] सदस्यों से सीधे प्राप्त या उनके दलों के माध्यम से प्राप्त अनुरोध केवल अध्यक्ष के मार्गदर्शन के लिए होते हैं और उन्हें सभा में पढ़कर नहीं सुनाया जा सकता।[51]

अध्यक्ष को वाद-विवाद को विनियमित करने और वाद-विवाद में भाग लेने वाले सदस्यों का चयन करने का अधिकार है। कोई सदस्य इस बात पर जोर नहीं दे सकता कि उसे बोलने के लिए अवश्य बुलाया जाए।[52]

> पांचवीं लोक सभा के दौरान, जब राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर बोलने वाले इच्छुक सदस्यों की संख्या इतनी अधिक हो गई कि सभी को बोलने का अवसर नहीं दिया जा सकता था, तो अध्यक्ष ने, यह सुनिश्चित करने के लिए कि छोटे ग्रुपों को भी बोलने का अवसर मिले, प्रमुख दलों/ग्रुपों के दो सदस्यों को और उसके बाद

---

49. *एल.एस. डिबेट्स*, 7.2.1958, कॉ. 5071 ।
50. *पी.डिबेट्स*, 9.4.1951, कॉ. 6342-44; *लो.स.वा.वि.* (ii), 11.4.1956, पृ. 2201; 26.5.1962, कॉ. 6910-12; साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स*, 7.4.1950, कॉ. 1318; 27.2.1951, कॉ. 3580; 7.4.1951, कॉ. 6287-88; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 6.6.1952, कॉ. 1316-17; *एल.एस. डिबेट्स,* 23.11.1955, कॉ. 317; 15.3.1956, कॉ. 2692; 9.4.1957, कॉ. 6343-44; 15.5.1957, कॉ. 409; 28.5.1957, कॉ. 2500; 30.8.1957, कॉ. 10943-44; 18.11.1957, कॉ. 1098; 26.5.1962, कॉ. 6910-12; *लो.स.वा.वि.*, 31.3.1976, पृ. 102; *एल.एस. डिबेट्स*, 29.3.1977, कॉ. 26; 30.3.1977, कॉ. 28 ।
51. *एल.एस. डिबेट्स*, 7.12.1962, कॉ. 4789 ।
52. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 20.12.1952, कॉ. 2959-60 ।

मध्यम ग्रुप से एक सदस्य को और फिर छोटे ग्रुप से एक सदस्य को क्रम में बुलाने का निर्णय किया।[53] प्रमुख दल/ग्रुप वह है जिनके सभा में 15 से अधिक सदस्य हैं। जबकि मध्यम ग्रुप के 5-15 सदस्य तथा छोटे ग्रुप के 5 से कम सदस्य हों।

कोई सदस्य बोलने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता। उसे अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए और अपनी बारी की प्रतीक्षा करनी चाहिए।[54] जिस सदस्य को भाषण देने के लिये बुलाया जाता है, उसके लिए यह मान लिया जाता है कि उसने अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट किया है।[55] जो सदस्य चिल्लाकर अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा करता है, संभव है उसे बोलने के लिए न पुकारा जाये;[56] इसी तरह हो सकता है कि उस सदस्य को भी बोलने के लिये नहीं पुकारा जाये, जो अपने स्थान पर नहीं बैठा रहता।[57] जो सदस्य अनुपस्थित हो या ध्यान से न सुन रहा हो और जब अध्यक्ष उसे बोलने के लिए पुकारे तो वह आरम्भ न करे, तो वह बोलने का अपना अवसर खो बैठता है।[58] जिस सदस्य को बोलने के लिए नहीं पुकारा जाये, उसे अध्यक्ष के निर्णय पर विरोध करने का अधिकार नहीं है।[59]

सदस्यों के चयन के मामले में अध्यक्ष के आसन पर उस समय बैठा व्यक्ति ऐसे किसी भी निदेश से बाध्य नहीं है जो उससे पहले अध्यक्ष के आसन पर बैठे हुए व्यक्ति ने दिया हो।[60]

सभा में प्रत्येक ग्रुप इस बात पर जोर नहीं दे सकता कि उसे प्रत्येक वाद-विवाद में भाग लेने का अवसर दिया जाये।[61] इसके अलावा जो सदस्य संशोधन या कटौती प्रस्ताव पेश करता है वह यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे बोलने का अधिकार है।[62]

जिस सदस्य को किसी प्रवर या संयुक्त समिति का सदस्य बनाने के लिये प्रस्तावित किया गया हो, वह विधेयक को उस प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद में भाग लेने के लिए अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा नहीं करता, चाहे उसने प्रवर या संयुक्त समिति को विधेयक सौंपने के प्रस्ताव पर संशोधन पेश क्यों न किया

---

53. *लो.स.वा.वि.*, 31.3.1971, पृ. 76 ।
54. *पी. डिबेट्स* (II), 7.4.1951, कॉ. 6287-88; 9.4.1951, कॉ. 6343-44; *एल.एस. डिबेट्स*, 11.7.1957, कॉ. 4095 ।
55. *पी. डिबेट्स* (I), 10.3.1951, कॉ. 2127-28 ।
56. *लो.स.वा.वि.*, 7.5.1965, पृ. 5373 ।
57. *पी. डिबेट्स*, 21.3.1950, कॉ. 955-56 ।
58. *पूर्वोक्त*, 18.3.1950, पृ. 1756; *एल.एस. डिबेट्स*, 25.2.1963, कॉ. 1095 ।
59. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 18.6.1952, कॉ. 2032 ।
60. *लो.स.वा.वि.*, 23.11.1955, पृ. 5875 ।
61. *एल.एस. डिबेट्स*, 27.3.1958, कॉ. 9411 ।
62. *एल.एस. डिबेट्स*, 15.5.1957, कॉ. 448; 28.8.1962, कॉ. 4590; 6.4.1955, कॉ. 4479; 25.7.1957, कॉ. 5235-36 ।

हो,[63] विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, उसे वाद-विवाद विशेष में बोलने के लिए नहीं बुलाया जाता।[64]

जिस सदस्य को किसी विधेयक को प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपने के समय बोलने का अवसर न मिला हो, उसे यथासंभव उस समय बोलने का अवसर दिया जाता है जब समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर चर्चा की जा रही हो।[65]

जो सदस्य किसी विधेयक सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समिति का सदस्य न हो, उसे प्रवर या संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर चर्चा के दौरान भाषण देने के लिये सामान्यत: पूर्ववर्तिता दी जाती है।[66] किसी ऐसे सदस्य को जो समिति का सदस्य हो, तभी अवसर दिया जा सकता है, जबकि अन्य सदस्यों द्वारा उठाई गई बातों का उत्तर देना आवश्यक हो।

कोई सदस्य किसी वाद-विवाद में दो बार नहीं बोल सकता, चाहे उसे कोई नया संशोधन पेश करना हो या वाद-विवाद के लिए नियत समय बढ़ा दिया गया हो।[67] लेकिन विशेष मामले के रूप में अध्यक्ष, किसी सदस्य को किसी प्रस्ताव या संकल्प पर फिर से बोलने की अनुमति दे सकता है, यदि वह वाद-विवाद दो सत्रों में हुआ हो और सत्रों के बीच की अवधि में कोई नई बातें हो गई हों।[68]

जहां तक संभव होता है, सत्तारूढ़ दल और विरोधी पक्ष के बीच समय का बंटवारा सभा में उनकी संख्या के अनुपात में किया जाता है:[69] मंत्रियों द्वारा लिया गया समय सत्तारूढ़ दल के लिए नियत समय में गिना जाता है।[70]

सामान्यत:, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव, सामान्य बजट, रेल बजट अथवा किसी अन्य महत्वपूर्ण विधेयक जैसी महत्वपूर्ण चर्चाओं पर बड़ी संख्या में सदस्य वाद-विवाद में भाग लेना चाहते हैं। किंतु नियत समय सीमित होता है, इसलिए पीठासीन अधिकारी सदस्यों को अपने लिखित भाषण सभापटल पर रखने की अनुमति देता है। इसके परिणामस्वरूप, कई सदस्य पूर्णत: अथवा अंशत: अपने लिखित भाषण सभापटल पर रखते

---

63. *एल.एस. डिबेट्स*, 9.5.1954, कॉ. 6570-71; 8.8.1962, कॉ. 771-74 ।
64. *पी. डिबेट्स* (II), 4.6.1951, कॉ. 10121-24, *एच.पी. डिबेट्स* (II), 21.4.1953, कॉ. 4716; 30.4.1954, कॉ. 6140; *लो.स.वा.वि.*, 16.11.1954, कॉ. 20-21; साथ ही *देखिए पी. डिबेट्स*, 21.11.1950, कॉ. 351-52; *एच.पी. डिबेट्स*, 6.11.1952, कॉ. 89-90; *एल.एस. डिबेट्स*, 15.12.1964, कॉ. 5100 ।
65. *एल.एस. डिबेट्स*, 24.11.1958, कॉ. 1238 ।
66. *एल.एस. डिबेट्स*, 12.8.1959, कॉ. 2050-51 ।
67. *पी. डिबेट्स* (II), 16.11.1950, कॉ. 101; 17.11.1950, कॉ. 183 ।
68. *लो.स.वा.वि.*, 10.11.1965, पृ. 449 ।
69. *लो.स.वा.वि.*, 12.9.1956, पृ. 2230 ।
70. *एल.एस. डिबेट्स*, 13.9.1957, कॉ. 12129; 12.3.1958, कॉ. 6270 ।

हैं और वे कार्यवाही वृत्तान्त का भाग बनते हैं तथा उन्हें वाद-विवाद में प्रकाशित किया जाता है।[71]

सभा को सम्बोधित करने की विधि

जो सदस्य सभा के समक्ष किसी विषय के सम्बन्ध में कोई बात कहना चाहता है, उसे अपने स्थान पर खड़ा होकर बोलना पड़ता है।[72] उसे हमेशा अध्यक्ष को सम्बोधित करना पड़ता है। जो सदस्य रोग या दुर्बलता के कारण असमर्थ हो, अध्यक्ष उसे अपने स्थान पर बैठे-बैठे बोलने की अनुमति दे सकता है।[73]

> सदस्य द्वारा अपने स्थान पर खड़ा होकर बोलने की प्रथा का अनुसरण केन्द्रीय विधान सभा में भी किया जाता था। 1920 में यह प्रस्ताव किया गया था कि यदि भाषण सभा भवन में एक केंद्रीय मंच से दिये जायें, तो वे अधिक अच्छी तरह सुनाई दे सकते हैं, परन्तु वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया। यह प्रश्न 1957 में जयपुर में हुए सचिवों के सम्मेलन में फिर उठाया गया था और इस बात पर सहमति व्यक्त की गई थी कि सदस्यों द्वारा अपने स्थानों से भाषण देने की प्रथा से कई लाभ हैं और यह प्रथा जारी रहनी चाहिए।

भाषण के समय पालन किये जाने वाले नियम

सभा में वाद-विवाद या चर्चाओं में भाग लेते समय सदस्यों को बोलने का ढंग के संबंध में कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। उनका विवरण 'सदस्यों का आचरण' संबंधी अध्याय-12 में दिया गया है।

---

71. सत्र शुरू होने से पहले सदस्यों से समाचार भाग-दो में प्रकाशित पैरा के माध्यम से यह अनुरोध किया जाता है कि वे अपने लिखित भाषणों को सभा पटल पर रखते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखें:—
    1. अध्यक्ष को संबोधित भाषण का पाठ अंग्रेजी अथवा हिन्दी में 'डबल लाइन स्पेस' में टाइप होना चाहिए और भाषण बहुत लंबा नहीं होना चाहिए और यह दो अथवा तीन पृष्ठों तक सीमित होना चाहिए।
    2. भाषण में व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियां, अपमानजनक वक्तव्य आदि नहीं होने चाहिए।
    3. भाषणों के पाठ के साथ सरकार को पत्र, सारणीबद्ध सांख्यिकीय विवरण आदि जैसे अनुलग्नक नहीं लगाए जाएं।
    4. भाषण का पाठ सदस्य की विभाजन संख्या के साथ विधिवत् हस्ताक्षरित पटल अधिकारी को दिया जाए।
    5. यदि कोई सदस्य अपने भाषण का एक भाग सभा में बोलता है तथा शेष भाग को लिखित भाषण के रूप में सभा पटल पर रखता है, तो उसे यह अवश्य सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके द्वारा सभा में पहले से ही बोले गए मुद्दे लिखित भाषण में न दोहराए जाएं।
72. नियम 349 (vii) ।
73. नियम 351 ।

न्याय-निर्णयाधीन विषयों पर चर्चा

सदस्य तत्संबंधी किसी ऐसे विषय पर उल्लेख नहीं कर सकते जो न्याय-निर्णयाधीन हों।[74]

सदस्य का किसी राज्य में मंत्री नियुक्त किया जाना

जब संसद के किसी भी सदन के सदस्य को किसी राज्य में मंत्री नियुक्त किया जाता है और वह संसद में अपने स्थान से त्याग-पत्र नहीं देता है तो वह अनर्ह नहीं होता और वह उस सदन का सदस्य बना रहता है और साथ-साथ राज्य विधान मंडल के लिए निर्वाचित हुए बिना 6 महीने की अवधि के लिए राज्य में मंत्री भी बना रह सकता है।[75] ऐसे मामले में यद्यपि सदस्य को सदन में आने से रोकने के लिए कोई संवैधानिक उपबंध नहीं है, तथापि यह वांछनीय है कि यदि ऐसा सदस्य सदन में आता है तो उसे सभा की कार्यवाही में भाग नहीं लेना चाहिए।[76] सभा में मतदान करने के संबंध में पीठासीन अधिकारियों ने इस मामले में निर्णय लेने का अधिकार संबंधित सदस्य के स्वविवेक पर छोड़ दिया है।[77]

---

74. *देखिए* अध्याय 42—'संसद और न्यायपालिका'।

75. अनुच्छेद 164 (4) के साथ पठित अनुच्छेद 102 (2)।

76. *लो.स.वा.वि.*, 6.9.1963, पृ. 2408 और 12.12.1963, पृ. 2309-10।

77. *आर.एस. डिबेट्स*, 17.11.1964, कॉ. 174-75; 18.11.1964, कॉ. 330-31।

बारहवीं लोक सभा के चौथे सत्र के दौरान, 17 अप्रैल, 1999 को मंत्रिपरिषद् में विश्वास प्रस्ताव सभा में मतदान के लिए रखने से पहले संसदीय कार्य मंत्री ने निवेदन किया कि परम्परा के अनुसार, सदस्य (श्री गिरिधर गमांग) के उड़ीसा के मुख्यमंत्री का पदभार संभालने के बाद उन्हें मतदान करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। विपक्ष के नेता (श्री शरद पवार) और विपक्ष के कुछ अन्य सदस्यों ने निवेदन किया कि चूंकि वह अभी भी सभा के सदस्य हैं, इसलिए वे मंत्रिपरिषद् में विश्वास प्रस्ताव पर मतदान करने के हकदार हैं। इस पर अध्यक्ष ने टिप्पणी की:

ऐसे कुछ उदाहरण हैं जिनमें सदस्यों ने राज्यों में मंत्रियों के रूप में उनकी नियुक्ति होने पर भी सभा में अनुपस्थिति के कारण स्थान की हानि से बचने के लिए लोक सभा के उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर किये हैं। तथापि कुछ उदाहरण हैं जिनमें अध्यक्षपीठ ने यह टिप्पणी की कि यद्यपि ऐसे मंत्री सभा के सदस्य हैं; तथापि उनके लिए यह अभीष्ट नहीं होगा कि वे सभा के वाद-विवाद में भाग लें। तद्नुसार, ऐसे सदस्य सभा से तत्काल बाहर चले गए।

श्री गिरिधर गमांग जो कि उड़ीसा के मुख्यमंत्री हैं, अभी भी लोक सभा के सदस्य हैं। वे विश्वास प्रस्ताव पर मतदान करने के लिये उपस्थित हुए हैं। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मैं विश्वास प्रस्ताव पर मतदान करने के प्रश्न के संबंध में, उन्हें स्वविवेक से निर्णय लेने की अनुमति देता हूं।

सदस्य ने प्रस्ताव के विरोध में मतदान किया। *देखिए एल.एस. डिबेट्स*, 17.4.1999, कॉ. 30-31।

किसी व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाया जाना

सदस्यों को सदन में बोलने की स्वतंत्रता है और इस विशेषाधिकार के अनिवार्य परिणामस्वरूप सदन में कही गई किसी भी बात के लिए किसी भी सिविल या फौजदारी न्यायालय में उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती।[78] यह आवश्यक नहीं है कि किसी सदस्य को ऐसे भाषण या वक्तव्य देने चाहिए जो न्यायालय में सही सिद्ध हो सकें। भाषण देते समय सदस्य किसी भी प्राधिकारी या व्यक्ति की आलोचना कर सकता है अथवा ऐसे वक्तव्य दे सकता है, जो साधारणतया देश के कानून के अंतर्गत मानहानि का मामला बनता हो और जब तक अध्यक्ष ने उसे ऐसा वक्तव्य देने से न रोका हो या कार्यवाही-वृत्तान्त से उसे न निकाला हो, वह वक्तव्य कार्यवाही-वृत्तान्त में बना रहेगा।

तथापि, वाक्स्वातन्त्र्य का संवैधानिक विशेषाधिकार, संविधान के अन्य उपबन्धों तथा सदन के नियमों के अध्यधीन है।

किसी विधेयक, प्रस्ताव, संकल्प अथवा किसी अन्य प्रकार की चर्चा पर सदस्य के भाषण के दौरान उच्च पदाधिकारियों के आचरण पर टीका-टिप्पणी नहीं की जा सकती। संविधान में कुछ प्राधिकारियों, अर्थात् राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक, मुख्य निर्वाचन आयुक्त आदि के आचरण पर उसमें बताये गए तरीके अनुसार चर्चा किए जाने का उपबंध है। राज्यपालों, मंत्रियों, सांविधिक प्राधिकारियों जैसे अन्य उच्च पदाधिकारियों के आचरण पर चर्चा अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत रूप में तैयार किए गए समुचित प्रस्तावों के माध्यम से की जा सकती है। वास्तव में सभा ने राज्यपालों के आचरण पर राज्यपाल के रूप में उनके कृत्यों के निर्वहन से संबंधित विशिष्ट संकल्पों के माध्यम से कई बार चर्चा की है।[79] राज्य सरकारों के मुख्यमंत्रियों तथा मंत्रियों के आचरण पर प्रश्न पूछे जा सकते हैं बशर्ते कि ये मामले संघ सरकार को सौंपे गए हों या उसके विचाराधीन हों। जब भी संघ सरकार किसी पदाधिकारी से संबंधित किसी मामले को विचार करने अथवा जांच करने के लिए अपने हाथों में लेती है तो उस हालत में कोई प्रश्न या ध्यानाकर्षण प्रस्ताव यह जानने के लिए ग्राह्य होता है कि सरकार क्या कार्यवाही कर रही है अथवा करने का विचार रखती है।[80]

समय-समय पर यह प्रश्न उठा है कि किसी उच्च पदाधिकारी के उस आचरण पर सदन में चर्चा का क्षेत्राधिकार क्या है, जो उसके द्वारा धारित पद के कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित नहीं है—अर्थात् यदि पद ग्रहण करने से पूर्व या पद पर रहते हुए उसने पद से असम्बद्ध कोई कार्य किया है, तो किसी विधेयक, प्रस्ताव या संकल्प पर वाद-विवाद या किसी अन्य प्रकार की चर्चा में उसका उल्लेख करना उचित माना जायेगा बशर्ते कि संघ सरकार ऐसी आलोचना का उत्तर देने के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हो।

78. अनुच्छेद 105 (1) और (2) ।

79. अधिक जानकारी तथा उदाहरण के लिए *देखिए* आगे अध्याय 41—"संसद और राज्य" ।

80. *पूर्वोक्त* ।

नियमानुसार, किसी सदस्य द्वारा किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई मानहानिकारक अथवा अपराधात्मक स्वरूप का आरोप नहीं लगाया जा सकता जब तक कि सदस्य ने अध्यक्ष को उसकी पूर्व सूचना न दे दी हो तथा उनकी अनुमति[81] न ली हो और संबंधित मंत्री को सूचित न किया हो ताकि मंत्री उत्तर के प्रयोजन के लिए मामले की जांच कर सके।[82] परन्तु, अध्यक्ष किसी भी समय किसी सदस्य को आरोप लगाने से प्रतिषिद्ध कर सकता है, यदि उसकी यह राय हो कि ऐसा आरोप सदन की गरिमा के विरुद्ध है अथवा ऐसा आरोप लगाने से कोई लोकहित सिद्ध नहीं होता।[83]

इस नियम का प्रस्ताव करते हुए नियम समिति ने यह टिप्पणी की:

> किसी व्यक्ति के विरुद्ध मानहानिकारक वक्तव्य देना या अपराधात्मक स्वरूप का आरोप लगाना संसदीय वाद-विवाद सम्बन्धी नियमों तथा शिष्टाचार के विरुद्ध है और स्थिति उस समय और भी खराब हो जाती है यदि ऐसे आरोप उन व्यक्तियों के विरुद्ध लगाये जायें जो सदन में अपना बचाव करने की स्थिति में नहीं हैं। सदन को एक ऐसा मंच भी नहीं बनाया जाना चाहिए जहां पर व्यक्तियों के आचरण तथा चरित्र पर विवाद खड़ा किया जाए क्योंकि जिस व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाये गये हैं, उसके पास विशेषाधिकार प्राप्त सदन में दिए गए भाषण के विरुद्ध कोई उपचार नहीं है। लोगों के सम्मान की रक्षा के लिए आमतौर पर यह अनिवार्य है कि सदस्य स्वेच्छा से संयम बरतें और ऐसे नितांत आवश्यक मामलों में ही आरोप लगायें जहां पर जनहित की बात निहित हो। ऐसे मामलों में भी यह आवश्यक है कि संबंधित मंत्री को मामले की जांच करने और संबंधित व्यक्ति की ओर से आवश्यक हो तो बचाव करने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।
>
> सदस्यों द्वारा ऐसे आरोप लगाये जाने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना भी उचित नहीं होगा क्योंकि ऐसा करना जिम्मेदार सदस्यों के रूप में अपने दायित्वों का निर्वहन करने के उनके मार्ग में बाधक होगा। जहां, किसी सदस्य को इस बात का पूर्ण अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह किसी भी ऐसे मामले की ओर सदन का ध्यान दिला सके, जिसे उचित जांच के बाद वह समझता है कि उठाया जाना चाहिए, चाहे उसमें किसी व्यक्ति के चरित्र या प्रतिष्ठा का प्रश्न निहित हो, वहीं उसे सार्वजनिक नैतिकता तथा उच्च संसदीय शिष्टाचार के हित में ऐसा करने के अपने आशय के बारे में अध्यक्ष को तथा संबंधित मंत्री को पूर्व सूचना देनी चाहिए। इससे मंत्री को मामले की पहले से जांच करने और उत्तर देने के लिए

---

81. *लो.स.वा.वि.*, 20.8.1976, पृ. 87, *एल.एस. डिबेट्स*, 31.7.1992, कॉ. 372-75 ।
82. नियम 353 ।
83. *पूर्वोक्त*, परन्तुक ।

एल.एस. डिबेट्स, 21.3.1973, कॉ. 131-42; *लो.स.वा.वि.*, 14.3.1974, पृ. 118-28; *एल.एस. डिबेट्स*, कॉ. 296-303; *एल.एस. डिबेट्स*, 5.4.1974, कॉ. 271; *लो.स.वा.वि.*, 29.4.1974, पृ. 150-51; *एल.एस. डिबेट्स*, 3.12.1974, कॉ. 800-03; *लो.स.वा.वि.*, 19.1.1976, पृ. 106-07 ।

> तैयार होकर आने का भी अवसर मिलेगा। इसके साथ ही अध्यक्ष को भी इस बारे में अपना समाधान करने का अवसर मिलेगा कि सदस्य ने समुचित जांच कर ली है और उसके पास अपने आरोपों के समर्थन में *प्रथम दृष्ट्या* प्रमाण है।

समिति का यह विचार था कि प्रस्तावित नियम का, वाद-विवाद को विनियमित करने तथा सदस्यों और उन व्यक्तियों के लिए जिनके विरुद्ध आरोप लगाये जायेंगे तथा सरकार के लिए भी आवश्यक रक्षोपायों की व्यवस्था करने पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।[84]

आरोप लगाते समय सदस्य को सावधान रहना होगा। उसे अपने आपको इस बात से संतुष्ट करना होगा कि स्रोत विश्वसनीय हैं और आरोप तथ्यों पर आधारित हैं। वास्तव में, उसे अध्यक्ष या मंत्री को लिखने से पूर्व तथा विशेषकर सदन में बोलने से पहले मामले की *प्रथम दृष्ट्या* जांच कर लेनी चाहिए। समाचार-पत्रों में प्रकाशित रिपोर्टों पर आधारित किसी आरोप से संबंधित सूचना की तब तक अनुमति नहीं दी जाती जब तक कि सूचना देने वाला सदस्य अध्यक्ष को इस बात का पर्याप्त प्रमाण नहीं देता कि आरोप तथ्य पर आधारित हैं।[85]

अध्यक्ष को दी जाने वाली सूचना में सदस्य द्वारा उस आरोप के बारे में संक्षिप्त ब्यौरा देना जरूरी है, जो वह किसी व्यक्ति या किसी अन्य सदस्य के विरुद्ध लगाने का विचार रखता है ताकि अध्यक्ष मामले के बारे में पहले से कुछ तय कर सके।[86]

जैसा कि पहले बताया गया है कि जब तक अध्यक्ष तथा संबंधित मंत्री को पूर्व सूचना नहीं दी जाती, तब तक किसी सदस्य को सदन में आरोप लगाने की अनुमति नहीं दी जाती।[87] जब इस अपेक्षा को पूरा किए बिना आरोप लगाये जाएं तो सभा में उस पर किसी भी सदस्य द्वारा आपत्ति उठाई जा सकती है और ऐसे मामले में पीठासीन अधिकारी उस आपत्ति को स्वीकार कर सकता है और सदस्य को उस विषय पर आगे बोलने से मना कर सकता है।[88] जब आरोप निर्धारित प्रक्रिया अपनाये बिना लगाये जाएं तो पीठासीन अधिकारी स्वत: उन आरोपों पर आपत्ति कर सकता है। समुचित मामलों में सदस्य से आरोप वापस लेने के लिए कहा जा सकता है[89] अथवा पीठासीन अधिकारी कार्यवाही से उन आरोपों को हटाने के लिये भी आदेश दे सकता है,[90] यद्यपि ऐसा किसी विशेष मामलों में ही किया जाता है।

---

84. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 22.12.1953; *लो.स.वा.वि.*, 17.12.1970, पृ. 188-90 ।
85. *लो.स.वा.वि.*, 9.4.1969, पृ. 1-2; *एल.एस. डिबेट्स*, 7.3.1975, कॉ. 325-42 ।
86. *एल.एस. डिबेट्स*, 10.12.1970, कॉ. 174 ।
87. *पूर्वोक्त*, 24.2.1966, कॉ. 1978; 8.5.1975, कॉ. 821-35 ।
88. *पूर्वोक्त*, 24.8.1966, कॉ. 6827-28 ।
89. *एल.एस. डिबेट्स*, 9.3.1966, कॉ. 4416-17 ।
90. *एल.एस. डिबेट्स*, 7.11.1966, कॉ. 1579-81; 26.11.1973, कॉ. 360-62; 20.8.1976, कॉ. 147; 8.5.1986, कॉ. 70, 72, 74, 76 और 78, 19.7.1980; कॉ. 68-69; 14.8.1987, कॉ. 46-47 ।

जब कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य अथवा किसी मंत्री के विरुद्ध आरोप लगाता है और जिस पर आरोप लगाया गया है वह उन आरोपों का खंडन करता है तो सामान्यत: आरोप लगाने वाले सदस्य को उस खण्डन को स्वीकार कर लेना चाहिए जब तक कि वह लगाए गए आरोपों के सही होने के बारे में स्वयं निश्चित न हो और उसके लिए पूरी जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार न हो।[91] जब दोनों यानि वह सदस्य, जिसने आरोप लगाये हैं तथा वह सदस्य अथवा मंत्री जिसके विरुद्ध आरोप लगाये गए हैं, अपनी-अपनी बात पर दृढ़ रहते हैं और अध्यक्ष द्वारा जांच कराने के लिए तैयार हैं तो उन्हें अपने वक्तव्यों के समर्थन में उनके पास जो साक्ष्य हैं उसे प्रस्तुत करने के लिए कहा जा सकता है। साक्ष्य की तथा मामले के तथ्यों की जांच करने के बाद अध्यक्ष अपने निष्कर्षों की सूचना सभा को दे सकता है। यदि अध्यक्ष इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आरोप सही सिद्ध नहीं हुआ है क्योंकि दस्तावेजों के सही होने के बारे में संदेह है तो मामले के बारे में सदस्य को तद्नुसार सूचना दी जाती है।[92] यदि आरोप लगाने वाला सदस्य खेद व्यक्त कर देता है तो सभा इस मामले को समाप्त हुआ मानने के लिए सहमत हो सकती है।[93]

सामान्यत: जब कोई सदस्य पूर्व सूचना दिये बिना सभा में किसी मंत्री अथवा किसी सदस्य के विरुद्ध कोई आरोप लगाता है तो इस विषय पर नियमों के उपबंधों को लागू किया जाता है और सदस्य को व्यवस्था बनाये रखने के लिये कहा जाता है।[94] कई मामलों में ये आरोप सभा की कार्यवाही में शामिल होते हैं और यदि उनको चुनौती नहीं दी जाती है तो उससे संबंधित सदस्य के सम्मान और प्रतिष्ठा पर प्रभाव पड़ सकता है। अत: जब इस प्रकार के कोई आरोप कार्यवाही वृत्तांत में शामिल हो जाते हैं तो जिस मंत्री अथवा सदस्य के विरुद्ध आरोप लगाये गये हैं यदि वह अनुरोध करता है तो उसे उसी दिन अथवा बाद में अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए सभा में वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है और इससे मामला समाप्त हो जाता है।[95]

जब किसी मंत्री अथवा सदस्य के विरुद्ध कोई आरोप लगाया जाता है तो वह मंत्री अथवा सदस्य आरोपों का खंडन करने के लिए कोई भी कार्यवाही कर सकता है।[96] कोई मंत्री अपने विरुद्ध आरोपों का मंत्री की हैसियत से उसी समय खंडन कर सकता है और उसे अपने

---

91. *पूर्वोक्त*, 20.11.1973, कॉ. 291, 305-06; 31.7.1992; 29.4.1993 ।
92. *एल.एस. डिबेट्स*, 21.11.1973, कॉ. 257-58; 22.11.1973, कॉ. 224-26; 13.12.1974, कॉ. 214 ।
93. *पूर्वोक्त*, 2.9.1965, कॉ. 3425-27; 3.9.1965, कॉ. 3729-36; 17.11.1965, कॉ. 2397-2402; 2.12.1965, कॉ. 6987-7005, 7011-16; 5.12.1965, कॉ. 1412-31 ।
94. *लो.स.वा.वि.*, 24.8.1973, पृ. 166-72 ।
95. वैयक्तिक स्पष्टीकरण देने की विहित प्रक्रिया के लिए *देखिए* पीछे अध्याय-18 ।
96. *लो.स.वा.वि.*, 2.12.1974, पृ. 152; *एल.एस. डिबेट्स*, कॉ. 294-97; *लो.स.वा.वि.*, 5.12.1974, पृ. 113-16; 31.7.1992 कॉ. 372-75 ।

वक्तव्य का लिखित पाठ प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है।[97] जब राज्य सभा का कोई सदस्य उसके विरुद्ध लोक सभा के किसी सदस्य द्वारा अपमानजनक टिप्पणी किए जाने से व्यथित अनुभव करता है तो वह उन आरोप संबंधी टिप्पणियों का खंडन करने के लिए संबंधित मंत्री से लोक सभा में वक्तव्य देने के लिए कह सकता है।[98]

जब सभा में किसी राजनैतिक दल विशेष के विरुद्ध आरोप लगाये जाते हैं तो सभा में उस दल अथवा ग्रुप के नेता अथवा मुख्य सचेतक को उस संबंध में वक्तव्य देने के लिए अनुमति दी जाती है। तथापि जो सदस्य व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देना चाहता हो उसे पहले अपने वक्तव्य का पाठ लिखित रूप में अध्यक्ष को भेजना होता है। यदि अध्यक्ष वक्तव्य पढ़ने के बाद उसे वक्तव्य देने की अनुमति देता है तो वह सदस्य वक्तव्य दे सकता है।[99]

परन्तु किसी सदस्य को, जो सभा में आरोप लगाता है, उस सूचना अथवा दस्तावेजों या उस साक्ष्य जिस पर आरोप आधारित है, के अपने स्रोत को बताने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है चाहे वह दस्तावेज किसी के द्वारा लीक किए जाने से, चोरी से अथवा अनियमित तरीके से क्यों न प्राप्त किया गया हो।[100]

यह संसदीय परंपरा है कि किसी सदस्य द्वारा विदेशी राजनयिक मिशनों के प्रमुखों के विरुद्ध आमतौर से कोई आरोप नहीं लगाया जाता या आलोचना नहीं की जाती।[101]

अध्यक्ष ने उन व्यक्तियों के विरुद्ध जो सभा में अपना बचाव करने के लिए उपस्थित नहीं हों यों ही आरोप लगाने की अनुमति नहीं दी है और उसकी निन्दा की है।[102] जहां किसी नागरिक की यह शिकायत हो कि वाद-विवाद में उसका नाम उसकी निंदा करने, उसे बदनाम करने अथवा उसकी आलोचना करने के लिए लिया गया है, वह संबंधित सदस्य को सही तथ्यों का विवरण देते हुए यह अनुरोध करते हुए लिख सकता है कि सदस्य इस बारे में सभा में आवश्यक संशोधन करे। वह संबंधित मंत्री को भी सभी तथ्यों का विवरण देते हुए लिख सकता है और मंत्री ऐसी जांच करने के बाद, जिसे वह उचित समझे स्थिति को स्पष्ट करने के लिए सभा में वक्तव्य दे सकता है। मंत्री सभा में किसी सदस्य द्वारा किसी बाहर के व्यक्ति के विरुद्ध लगाये गए आरोप का खंडन कर सकता है किन्तु वह संबंधित व्यक्ति द्वारा उसे दिये गये वक्तव्य को सभा में पढ़ नहीं सकता।[103] व्यथित व्यक्ति अध्यक्ष से मामले में हस्तक्षेप करने अथवा सभा में उसके वक्तव्य या निवेदन को पढ़ने के लिए नहीं कह सकता। तथापि, उपचार के रूप में व्यथित व्यक्ति सभा की याचिका समिति को उसके समक्ष सभी तथ्यों को रखते हुए अभ्यावेदन कर सकता है और समिति मामले में सभी पहलुओं की जांच करने के

---

97. *एल.एस. डिबेट्स*, 28.4.1974, कॉ. 216-17; 29.8.1974, कॉ. 153-64 ।
98. *एल.एस. डिबेट्स*, 21.11.1976, कॉ. 230-58 ।
99. *एल.एस. डिबेट्स,* 11.12.1967, कॉ. 6019; और 13.12.1967, कॉ. 6606-08 ।
100. *एल.एस. डिबेट्स*, 26.2.1965, कॉ. 1721 ।
101. *देखिए,* राज्यों के साथ राजनयिक संबंधों के बारे में वियना सम्मेलन का अनुच्छेद-29 ।
102. *लो.स.वा.वि.*, 11.3.1968, पृ. 1365-66 ।
103. *एल.एस. डिबेट्स*, 4.12.1970, कॉ. 242-45 ।

बाद सभा को रिपोर्ट दे सकती है।[104] यह सभा पर निर्भर करता है कि वह आगे ऐसी कार्यवाही करे जिसे वह उचित समझे।

कोई नागरिक, जिसकी सभा में आलोचना की गई है, प्रेस में एक तथ्यात्मक विवरण दे सकता है या उसे संसद सदस्यों को उनकी जानकारी के लिए भेज सकता है। परंतु, उसे अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए किसी सदस्य या सभा अथवा पीठासीन अधिकारी पर आक्षेप करने से बचना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उसे सभा की अवमानना करने का दोषी ठहराया जा सकता है।[105]

सभा में सरकारी-अधिकारी-दीर्घा में उपस्थित अधिकारियों का हवाला देने की अनुमति नहीं है।[106] जब कोई सरकारी कर्मचारी सभा में किसी बात को कहे जाने पर व्यथित अनुभव करता है तो वह उचित माध्यम से उस संबंध में उसे जो कुछ कहना है, उसे संबंधित मंत्री के ध्यान में ला सकता है। तत्पश्चात्, मंत्री यदि आवश्यक समझे, तो अध्यक्ष की पूर्व अनुमति से सभा में वक्तव्य दे सकता है।[107]

सभा में आरोप लगाने से पहले किसी सदस्य के लिए अध्यक्ष को केवल सामान्य रूप में सूचना देना ही काफी नहीं है। इसके लिए यह आवश्यक है कि:

(i) सदस्य अध्यक्ष को तथा संबंधित मंत्री को पर्याप्त समय पहले सूचना दे;

(ii) जो आरोप लगाये जाने हैं उनका स्पष्ट विवरण दिया जाए और उनके समर्थन में आवश्यक दस्तावेज भी साथ लगाए जायें जिन्हें सदस्य द्वारा प्रमाणित किया जाये;

(iii) सदस्य सभा में आरोप लगाने से पहले जांच करने के बाद स्वयं यह समाधान करे कि आरोपों को लगाने का कोई आधार है;

(iv) सदस्य आरोपों की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार है; और

(v) सदस्य आरोपों को सिद्ध करने के लिए तैयार है।

बाहर के व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए अध्यक्ष ने निम्नलिखित प्रक्रिया निर्धारित की है:[108]

(1) किसी सदस्य को बाहर के व्यक्ति के विरुद्ध तब तक आरोप लगाने की अनुमति नहीं दी जायेगी जब तक उसने अध्यक्ष को तथा संबंधित मंत्री को उसकी पूर्व सूचना देकर अध्यक्ष की पूर्व अनुमति न ले ली हो। ऐसी सूचना में संबंधित व्यक्ति का नाम और

---

104. *देखिए* याचिका समिति (तीसरी लोक सभा) कॉ. 5.5.1964 को प्रस्तुत दूसरा प्रतिवेदन ।

105. 13वां प्रतिवेदन (याचिका समिति—राज्य सभा) जो 11 जून, 1971 को प्रस्तुत किया गया था।

106. *एल.एस. डिबेट्स*, 14.4.1960, कॉ. 11862-64, पृ. 5460 ।

107. *एल.एस. डिबेट्स*, 3.12.1969, कॉ. 192, 215, 224-26 और 255 ।

108. *पूर्वोक्त*, 17.12.1970, कॉ. 278-81 ।

उसके विरुद्ध लगाये जाने वाले आरोप का स्वरूप बताया जायेगा तथा यह दिखाने के लिये कुछ साक्ष्य दिया जाएगा कि उसके विरुद्ध *प्रथम दृष्ट्या* मामला बनता है।

(2) जब कोई सदस्य अध्यक्ष की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना बाहर के किसी व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाता है तो उसे सभा के कार्यवाही वृत्तान्त में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।

(3) सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये आरोपों के मामले में यह संबंधित मंत्री पर निर्भर करता है कि वह चाहे तो सभा में वक्तव्य दे।

(4) जब बाहर का कोई व्यक्ति अपने अभ्यावेदन में आरोप के विरुद्ध दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करता है तो अध्यक्ष अपने विवेक से मामले को सरकार को अथवा याचिका समिति को जांच करने तथा प्रतिवेदन देने के लिए भेज सकता है।

यदि कोई सदस्य सभा में बाहर वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाता है और उसकी विषय-वस्तु बाद में पुलिस अथवा किसी अन्य जांच प्राधिकारी की जांच का मामला बन जाता है तो पुलिस अथवा जांच प्राधिकारी सदस्य से सूचना का स्रोत बताने के लिए अथवा उसके पास जो साक्ष्य है वह देने के लिए नहीं कह सकता है जिससे पुलिस अथवा जांच प्राधिकारी को जांच करने में सहायता मिले। ऐसे मामलों में जांच प्राधिकारियों द्वारा सदस्य से सीधे संपर्क करना विशेषाधिकार भंग करना होगा। संबंधित प्राधिकारियों के लिए ऐसे मामलों में उचित तरीका यह है कि वे अपना मामला मंत्री को प्रस्तुत करें और यदि मंत्री इस बात से संतुष्ट हो जाये कि सदस्य के पास जो साक्ष्य है वह जांच पूरी करने के लिए संगत या आवश्यक है तो वह सदस्य को लिख सकता है और उससे मामले में सहयोग करने के लिए कह सकता है किन्तु यह पूरी तरह से सदस्य के विवेक पर निर्भर करता है कि उसके पास जो जानकारी है वह उसे दे या नहीं। यदि वह जानकारी देने से मना कर देता है तो मामले पर आगे कार्यवाही नहीं की जा सकती।[109]

पीठासीन अधिकारी ने कई अवसरों पर सदस्यों से जोर देकर कहा है कि जो सदस्य किसी व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगाता है उसे पहले तथ्यों की सच्चाई सुनिश्चित कर लेनी चाहिए, और उसे संसद सदस्य के रूप में अपनी जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। जब किसी सदस्य के विरुद्ध यह आरोप हो कि उसने सभा की गरिमा के अथवा संसद सदस्य के रूप में उसके अपेक्षित स्तर के अनुरूप काम नहीं किया है तो सभा में उसके आचरण के संबंध में प्रस्ताव पर चर्चा की अनुमति दी जा सकती है। तथापि, अध्यक्ष द्वारा इस प्रकार के प्रस्ताव को अस्वीकृत करने से पूर्व कुछ प्रारंभिक प्रक्रिया अपनाई जानी होती है।[110]

भाषणों का क्रम और उत्तर देने का अधिकार

जब प्रस्ताव पेश करने वाला सदस्य भाषण दे चुका हो, तो उस प्रस्ताव पर अन्य सदस्य ऐसे क्रम में भाषण दे सकते हैं जिसमें अध्यक्ष उन्हें बुलाये। यदि कोई सदस्य, जिसे भाषण

---

109. 12वां प्रतिवेदन (याचिका समिति—राज्य सभा) जो 6.12.1968 को प्रस्तुत किया गया था। राज्य सभा ने प्रतिवेदन स्वीकृत कर लिया था।

110. सभा में इस प्रकार के प्रस्ताव पर चर्चा से पूर्ववर्ती प्रक्रिया के लिए *देखिए* पीछे अध्याय-12।

देने के लिए बुलाया जाये न बोले तो उसे, सिवाय अध्यक्ष की अनुमति के, प्रस्ताव पर वाद-विवाद के किसी बाद के प्रक्रम में बोलने का अधिकार नहीं है।[111]

उत्तर देने के अधिकार के उपयोग को छोड़कर, कोई सदस्य किसी प्रस्ताव पर अध्यक्ष की अनुमति के बिना, एक बार से अधिक नहीं बोल सकता।[112] जहां सदस्य ने कोई प्रस्ताव प्रस्तुत किया हो वह उस के वाद-विवाद के उत्तर में पुनः बोल सकता है और यदि प्रस्ताव किसी गैर-सरकारी सदस्य ने प्रस्तुत किया हो तो संबंधित मंत्री अध्यक्ष की अनुमति से (चाहे वह वाद-विवाद में पहले बोल चुका हो या नहीं) प्रस्तावक के उत्तर देने के बाद बोल सकता है। किसी प्रस्ताव या संकल्प पर वाद-विवाद का उत्तर कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य की ओर से नहीं दे सकता।[113] तथापि, किसी विधेयक या संकल्प में संशोधन रखने वाले सदस्य को अध्यक्ष की अनुमति के बिना उत्तर देने का अधिकार नहीं है।[114]

जब कोई प्रस्ताव या संशोधन जो कई सदस्यों के नाम में हो, उनमें से एक सदस्य द्वारा पेश किया जाए, तो अन्य सदस्य उसके समर्थन में ही बोल सकते हैं और उस प्रस्ताव या संशोधन को पुनः प्रस्तुत नहीं कर सकते।[115] ऐसे मामलों में यथास्थिति, प्रस्ताव या संशोधन उस सदस्य द्वारा रखा जाता है जिसका नाम कार्य-सूची में सबसे ऊपर हो और यदि वह सभा में उपस्थित न हो, तो उसके बाद के दूसरे या तीसरे सदस्य आदि द्वारा, जो सभा में उपस्थित हो, रखा जाता है और केवल ऐसे सदस्य का नाम ही कार्यवाही में उस प्रस्ताव के प्रस्तावक के रूप में दिखाया जाता है।[116]

कोई भी सदस्य किसी प्रस्ताव पर एक बार से अधिक नहीं बोल सकता भले ही उसे कोई नया संशोधन पेश करना हो अथवा वाद-विवाद के लिए आवंटित समय बढ़ाया गया हो।[117] जब तक कि नियमों में विशेष रूप से व्यवस्था न हो।[118] अथवा अध्यक्ष पीठ द्वारा उसे इस बात की अनुमति न दी गई हो।[119]

एक सदस्य द्वारा दूसरी बार दिया गया भाषण, जिसकी अनुमति भूल से दी गई थी, वाद-विवाद से निकाल दिया गया।[120]

यदि किसी प्रस्ताव अथवा संकल्प के प्रस्तावक का भाषण अपूर्ण रहता है और यदि प्रस्तावक दूसरे अवसर पर, जब चर्चा पुनः आरम्भ होती है, अनुपस्थित रहता है तो उसके

---

111. नियम 358(1) ।
112. नियम 358(2)—ऐसी अनुमति कभी-कभार ही दी जाती है।
113. *लो.स.वा.वि.*, 5.12.1974, पृ. 126 ।
114. नियम 358(3)(1)—ऐसी अनुमति कभी-कभार ही दी जाती है।
115. *लो.स.वा.वि.* (II), 28.5.1956, पृ. 4098 ।
116. निदेश 42 ।
117. *एल.एस. डिबेट्स*, 16.11.1950, कॉ. 101; 17.11.1950, कॉ. 183 ।
118. उदाहरणार्थ नियम 234 और 315 ।
119. उदाहरणार्थ *लो.स.वा.वि.* (II), 12.9.1956, पृ. 2230 ।
120. *एल.एस. डिबेट्स* (II), 25.7.1955, कॉ. 8310 ।

भाषण को समाप्त हुआ माना जाता है।[121] प्रस्तावक को अपने अपूर्ण भाषण को जारी रखने के लिए दूसरे सदस्य को अधिकृत करने की अनुमति नहीं है। यह बात किसी भी ऐसे भाषण पर लागू होती है जो अपूर्ण रहे और संबंधित सदस्य उस समय अनुपस्थित हो जब उस मद पर पुनः चर्चा आरंभ हो।[122]

अध्यक्ष यह जिम्मेदारी नहीं लेता कि प्रस्ताव को मतदान के लिए रखने से पहले, प्रत्येक मामले में, वह किसी प्रस्ताव या संकल्प के प्रस्तावक से यह पूछे कि क्या वह वाद-विवाद का उत्तर देना चाहता है। यह काम स्वयं प्रस्तावक का है कि वह अपने स्थान पर खड़े होकर उत्तर देने की अनुमति मांगे और इस प्रकार अपने उत्तर देने के अधिकार की रक्षा करे।[123]

मूल प्रस्ताव के प्रस्तावक के उत्तर के बाद वाद-विवाद समाप्त हो जाता है[124] और अध्यक्ष ने उत्तर के बाद और आगे भाषण देने की अनुमति देने से इंकार किया है[125] परंतु संशोधनों पर उत्तर से वाद-विवाद समाप्त नहीं होता।[126]

> किसी अध्यादेश के निरनुमोदन संबंधी सांविधिक संकल्प पर तथा उस अध्यादेश के स्थान पर सरकारी विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव पर संयुक्त चर्चा के बाद पहले मंत्री को भाषण देने के लिए कहा जाता है ताकि संकल्प के प्रस्तावक को मंत्री द्वारा प्रस्तुत किए

---

121. *पूर्वोक्त*, 19.8.1966, कॉ. 5838; 5.12.1974, कॉ. 265-67 ।

एक सदस्य जिसे गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर अपना अपूर्ण भाषण फिर से आरम्भ करना पड़ा, चर्चा के दौरान कई सदस्यों के बाद बोला न कि तब चर्चा आगे आरंभ हुई—*एल.एस. डिबेट्स*, 25.4.1975, कॉ. 326-44 ।

आठवीं लोक सभा के दसवें सत्र के दौरान, एक सदस्य को जो 18 मार्च, 1988 को जब सभा उस दिन के लिए स्थगित हुई, केन्द्र-राज्य संबंधी संकल्प को पेश करते हुए अपना भाषण पूरा नहीं कर सका था, सभा की सहमति से अपना अपूर्ण भाषण 29 अप्रैल, 1988 को पूरा करने की अनुमति दी गई यद्यपि वह 30 मार्च, 1988 को जब संकल्प पर आगे चर्चा आरम्भ हुई, उपस्थित नहीं था—*लो.स.वा.वि.*, 18.3.1988, पृ. 347 और 29.4.1988, पृ. 301 ।

122. *लो.स.वा.वि.*, 29.7.1966, पृ. 145; 22.7.1968, पृ. 221; *एल.एस. डिबेट्स*, 7.3.1969, कॉ. 237-38; 31.3.1969, कॉ. 207 ।

123. जब संकल्प का प्रस्तावक उत्तर देने के अपने अधिकार का प्रयोग करने के समय हिरासत में था, तो उसे सभा से अनुपस्थित माना गया और सभा ने संकल्प स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने की आगे कार्यवाही की—*एल.एस. डिबेट्स*, 11.4.1975, कॉ. 367; *लो.स.वा.वि.*, 16.1.1976, पृ. 185-87 ।

124. नियम 359, सरकारी प्रस्ताव के मामले में प्रस्तावक हस्तक्षेप कर सकता है और दूसरा मंत्री वाद-विवाद का उत्तर दे सकता है यदि प्रस्तावक वाद-विवाद की समाप्ति के समय उपलब्ध नहीं था—*एल.एस. डिबेट्स*, 22.12.1967, कॉ. 9298 ।

125. *एल.ए. डिबेट्स*, 16.3.1925, पृ. 2486; 4.4.1946, पृ. 3526 ।

126. *एल.ए. डिबेट्स*, 23.3.1927, पृ. 2656 ।

गए तर्कों का उत्तर देने का अवसर मिल सके। यदि सदस्य अपने उत्तर में कोई नए मुद्दे उठाता है तो मंत्री को बोलने का दूसरा अवसर दिया जा सकता है।[127]

अध्यक्ष द्वारा सम्बोधन

अध्यक्ष स्वयं ही, या किसी सदस्य द्वारा कोई प्रश्न उठाये जाने पर, या अनुरोध किए जाने पर किसी भी समय सभा में विचाराधीन विषयों पर सदस्यों को उनके विचार-विमर्श में सहायता करने की दृष्टि से, सभा को संबोधित कर सकता है।[128] विचारों की इस प्रकार की अभिव्यक्ति को किसी प्रकार निर्णय के रूप में नहीं लिया जा सकता।[129]

अध्यक्ष सामान्यतः सभा के अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने पर विदाई उल्लेख करता है।

समापन

किसी प्रस्ताव के पेश किए जाने के बाद किसी भी समय कोई सदस्य समापन के लिए प्रस्ताव कर सकता है और यदि वह ऐसा करता है तो अध्यक्ष यह प्रस्ताव रखता है कि "अब प्रस्ताव मतदान के लिए रखा जाये" जब तक कि अध्यक्ष को यह प्रतीत न हो कि समापन प्रस्ताव से नियमों का दुरुपयोग होता है या उससे उचित वाद-विवाद के अधिकार का उल्लंघन

---

127. *लो.स.वा.वि.*, 7.9.1965, पृ. 1718-19; और साथ ही *देखिए एल.एस. डिबेट्स*, 14.12.1967, कॉ. 4554 और 4568 ।

128. उदाहरण के लिए अध्यक्ष ने राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट पर वाद-विवाद को विनियमित करने की दृष्टि से सभा को संबोधित किया था—*लो.स.वा.वि.* (II), 9.12.1955, कॉ. 6965-70 और *एल.एस. डिबेट्स*, 14.12.1955, कॉ. 2575-78 । एक दूसरे अवसर पर अध्यक्ष ने सभा को इस बात पर बधाई दी कि उसने हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक पारित कर दिया है जिसे वह महत्वपूर्ण कानून समझता था—*लो.स.वा.वि.*, 8.5.1956, पृ. 3276-77 । संसद सदस्य वेतन और भत्ता (संशोधन) विधेयक, 1975 पर विचार करने के प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान अध्यक्ष ने भारत में संसद सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा अन्य देशों में उनके समकक्ष सदस्यों के वेतन और भत्तों के बारे में सभा को संबोधित किया—*लो.स.वा.वि.*, 6.8.1975, पृ. 8-9 । जम्मू और कश्मीर में निर्दोष व्यक्तियों की हत्या की घटनाओं के संबंध में नियम 184 के अंतर्गत प्रस्ताव से पूर्व अध्यक्ष ने सदस्यों से यह अपील की कि वे सैन्य बलों का मनोबल गिराने वाले भाषण न दें तथा ऐसा भाषण भी न दें जिससे देश में व्याप्त साम्प्रदायिक सद्भावना का अच्छा खासा संतुलन बिगड़ जाए, लोक सभा वाद-विवाद 21.8.2000, कॉ. 428 । अध्यक्ष ने पूर्ववर्ती सप्ताह में सभा द्वारा किए गए कार्य को सभा में बताने की नई परम्परा आरंभ करने की भी घोषणा की, *लो.स.वा.वि.*, 15.3.2005, कॉ. 441 । सदस्यों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के बारे में निवेदन के दौरान, अध्यक्ष ने 21 फरवरी, 2006 को मनाए गए अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के सम्मान में सभा को बांग्ला में संबोधित किया, *लो.स.वा.वि.*, 21.2.2006, कॉ. 275-76 ।

129. नियम 360 ।

होता है।[130] यदि यह प्रस्ताव कि "अब प्रस्ताव मतदान के लिये रखा जाये", स्वीकृत हो जाये, तो उससे आनुषंगिक प्रस्ताव या प्रस्तावों को आगे वाद-विवाद के बिना तुरंत मतदान के लिये रखा जाता है। हां, उससे पहले अध्यक्ष किसी सदस्य को उत्तर देने के अधिकार का प्रयोग करने की अनुमति दे सकता है।[131]

समापन प्रस्ताव किसी भी समय रखा जा सकता है। इसके लिए एकमात्र शर्त यह है कि यदि उस समय कोई सदस्य बोल रहा हो तो उसे अपना भाषण पूरा करने की अनुमति दी जाती है और यदि प्रस्तावक को वाद-विवाद के उत्तर का अधिकार हो तो उसको उत्तर देने दिया जाता है। यह अध्यक्ष के विवेक पर निर्भर है कि यदि वह यह समझे कि पर्याप्त वाद-विवाद हो चुका है और ऐसा प्रस्ताव रखने का उपयुक्त समय है तो वह उस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता है।[132] अध्यक्ष का विवेकाधिकार समापन प्रस्ताव की स्वीकृति तक सीमित है, परंतु इस बात का अंतिम निर्णय करना सभा के हाथ में है कि वाद-विवाद समाप्त हो या नहीं।[133] यदि सभा में सामान्यतः सदस्य समापन प्रस्ताव के पक्ष में भी हों तो भी अध्यक्ष को इस बात का पूरा विवेकाधिकार है कि यदि वह उचित समझे कि पर्याप्त वाद-विवाद नहीं हुआ है तो वह उस प्रस्ताव को मानने से इंकार कर सकता है।[134] परन्तु यदि एक बार अध्यक्ष द्वारा समापन प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये तो इस प्रश्न पर चर्चा करने की अनुमति नहीं दी जाती कि पर्याप्त वाद-विवाद हुआ है या नहीं।[135] जब समापन प्रस्ताव मतदान के लिये रखा जाता है, तो किसी वाद-विवाद, तर्क या अपील की अनुमति नहीं दी जाती।[136] तथापि, 1953 में कार्य मंत्रणा समिति बनने के बाद, समापन प्रस्ताव का सहारा लेने की प्रथा लगभग समाप्त हो गई है और अब इसका प्रयोग कभी-कभार ही किया जाता है।[137] विभिन्न श्रेणियों के कार्यों पर चर्चा के लिए समय की सिफारिश अब इस समिति द्वारा की जाती है जिसकी सिफारिशें रिपोर्ट के रूप में सभा के सामने प्रस्तुत की जाती हैं। (गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के मामले में चर्चा के लिए समय की सिफारिश गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समिति करती है) समय का नियतन, जिसका अनुमोदन सभा ने किया हो, सभा के आदेश की तरह लागू होता है। समय नियतन आदेश के अनुसार, नियत समय पर सभा के सामने किसी विधेयक के प्रक्रम या किसी अन्य कार्य के

---

130. नियम 362(1) ।
131. नियम 362(2) ।
132. *एल.ए. डिबेट्स*, 17.2.1921, पृ. 195, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 28.2.1968, पृ. 243-44 ।
133. *पूर्वोक्त*, 27.9.1921, पृ. 1102 ।
134. *पूर्वोक्त*, 24.2.1923, पृ. 2782-83 ।
135. *पूर्वोक्त*, 5.4.1940, पृ. 2250 ।
136. *पूर्वोक्त*, 18.3.1925, पृ. 2629 ।
137. *लो.स.वा.वि.*, 21.8.1970, कॉ. 326-27; 4.8.1971, पृ. 161; 6.8.1987, पृ. 273-74 ।

संबंध में सभी बकाया मामलों का निपटारा करने के लिए प्रत्येक आवश्यक प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा मतदान के लिए रखा जाता है। अत: वाद-विवाद के समापन का प्रस्ताव रखने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है।

वाद-विवाद की परिसीमा

जब कभी किसी विधेयक के संबंध में किसी प्रस्ताव पर या किसी अन्य प्रस्ताव पर वाद-विवाद अनुचित रूप से लंबा हो जाए, तो अध्यक्ष सभा का अभिप्राय जानने के बाद यथास्थिति, विधेयक के किसी प्रक्रम या सभी प्रक्रमों या प्रस्ताव पर चर्चा की समाप्ति के लिए समय-सीमा निश्चित कर सकता है।[138]

विधेयक या प्रस्ताव के किसी प्रक्रम विशेष को पूरा करने के लिये निश्चित समय-सीमा के अनुसार नियत समय पर, यदि वाद-विवाद उससे पूर्व समाप्त न हो गया हो तो, अध्यक्ष विधेयक या प्रस्ताव के उस प्रक्रम के संबंध में सभी बकाया विषयों को निपटाने के लिए प्रत्येक आवश्यक प्रश्न को मतदान के लिए रखता है।[139]

विनिश्चय के लिये प्रश्न

जिस विषय पर सभा का विनिश्चय अपेक्षित हो, उसका सदस्य द्वारा किये गए प्रस्ताव पर अध्यक्ष द्वारा रखे गए प्रश्न द्वारा विनिश्चय किया जाता है।[140] प्रस्ताव के प्रस्तुत किये जाने के बाद अध्यक्ष उस प्रस्ताव को सभा के विचार के लिये औपचारिक रूप से प्रस्तुत करता है अथवा रखता है। प्रस्ताव पर वाद-विवाद के अंत में वह प्रस्ताव को सभा के विनिश्चय के लिए निम्न शब्दों में मतदान के लिये रखता है:

"प्रश्न यह है: '......' (प्रश्न रखते समय अध्यक्ष उसी प्रस्ताव को दोहराता है जो कि सदस्य ने प्रस्तुत किया हो)।

जो सदस्य उस प्रस्ताव के पक्ष में हों वे 'हां' और जो उसके विपक्ष में हों वे 'ना' कहें।

यदि किसी प्रस्ताव में दो या अधिक अलग-अलग प्रस्थापनाएं हों, तो अध्यक्ष उन्हें अलग-अलग प्रश्नों के रूप में प्रस्तावित कर सकता है।[141]

अध्यक्ष प्रस्ताव को सभा के सामने उस रीति से मतदान के लिये रख सकता है, जिसे वह उस सभा का विनिश्चय मालूम करने के लिये आवश्यक या उचित समझे।[142] कुछ मामलों में, अध्यक्ष सदस्यों से अनुरोध कर सकता है कि वे किसी संकल्प को पारित करते समय उस अवसर पर महत्त्व को देखते हुए अपने स्थानों पर खड़े हो जायें।[143]

---

138. नियम 363(1) ।
139. नियम 363(2) ।
140. नियम 364 ।
141. नियम 365 ।
142. *लो.स.वा.वि.*, 1.8.1967, पृ. 398-420 ।
143. *एल.एस. डिबेट्स*, 14.11.1962, कॉ. 1678; *लो.स.वा.वि.*, 24.12.1969, पृ. 1; 26.3.1977, कॉ. 15-25 ।

किसी प्रस्ताव पर वाद-विवाद तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि अध्यक्ष ने वह प्रश्न प्रस्तुत न किया हो और वह प्रस्ताव सभा के सामने न हो। प्रस्ताव प्रस्तावक के भाषण की समाप्ति पर प्रस्तुत किया जाता है।

किसी भी प्रश्न को बिना वाद-विवाद के सभा के विनिश्चय के लिये तब तक नहीं रखा जा सकता जब तक सभा में उसके लिए सहमति न हो अथवा इसका नियमों में विशिष्ट रूप से उपबंध न हो।[144] अन्य सभी मामलों में उसे वाद-विवाद के बाद मतदान के लिए रखा जाता है।[145] किन्तु यदि प्रस्तावक अपने भाषण के दौरान प्रस्ताव[146] को पेश न करने का अपना अभिप्राय व्यक्त करता है अथवा जब अध्यक्ष यह समझता है कि प्रस्ताव से सभा की प्रक्रिया तथा नियमों का दुरुपयोग होता है तो अध्यक्ष प्रस्ताव को नहीं रख सकता है।[147]

जब अध्यक्ष किसी प्रश्न पर "हां" वालों और "ना" वालों, दोनों पक्षों की गिनती कर लेता है तो उसके बाद किसी सदस्य को उस पर बोलने की अनुमति नहीं दी जाती।[148] तथापि, यदि पीठासीन अधिकारी केवल "हां" वाले पक्ष की ही गिनती करता है और तब कहता है कि प्रस्ताव वाद-विवाद के बाद मतदान के लिए रखा जाएगा तो यह नियम लागू नहीं होता।[149]

मत-विभाजन

जब किसी प्रस्ताव पर वाद-विवाद समाप्त हो जाता है तो अध्यक्ष उसे मतदान के लिए रखता है और जो उस प्रस्ताव के पक्ष में हो, उनसे कहता है कि "हां" कहें, और जो प्रस्ताव के विपक्ष में हो उनसे कहता है कि "ना" कहें। उसके बाद अध्यक्ष कहता है "मैं समझता हूं कि 'हां' वाले (या यथास्थिति 'ना' वाले) जीत गए हैं"। यदि किसी प्रश्न के विनिश्चय के संबंध में अध्यक्ष की राय को चुनौती न दी जाए तो वह दो बार कहता है "हां" "(या यथास्थिति "ना" वाले) जीत गये हैं" और सभा के सामने प्रश्न का निर्णय तदनुसार किया जाता है। परन्तु यदि किसी प्रश्न पर विनिश्चय के संबंध में अध्यक्ष की राय को चुनौती दी जाए तो अध्यक्ष आदेश देता है कि लाबी खाली हो जाये। लगभग 3½ मिनट बीत जाने पर[150] अध्यक्ष प्रश्न को दोबारा रखता है और यह घोषणा करता है कि उसके विचार में "हां"

144. उदाहरण के लिए *देखिए*, नियम 374, नियम 201(2) ।
145. *लो.स.वा.वि.*, 1.8.1967, पृ. 398-420 ।
146. *पूर्वोक्त*, 7.3.1958, कॉ. 3700-01 ।
147. *एल.ए. डिबेट्स*, 11.4.1929, पृ. 299 ।
148. नियम 366 ।
149. *लो.स.वा.वि.*, 1.8.1967, पृ. 399-400 ।
150. पटल पर उपस्थित अधिकारी मत विभाजन घंटी का बटन दबाते हैं और घंटी साढ़े तीन मिनट तक बजती रही है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि जो सदस्य सदन के परिसर में किसी अन्य स्थान पर हों वे मत विभाजन में भाग लेने के लिए सभा कक्ष में आ सकें। मत विभाजन घंटी के रुकने पर सभा कक्ष की अंदर वाली लॉबी के द्वार बंद कर दिए जाते हैं तथा मत विभाजन सम्पन्न होने तक किसी भी सदस्य को सभा में प्रवेश या सभा से जाने की अनुमति नहीं होती है।

वाले या "ना" वाले जीत गये हैं। यदि उसकी इस प्रकार घोषित राय पर फिर आपत्ति की जाती है, तो अध्यक्ष यह निदेश देता है कि मत या तो स्वचालित मत-यंत्र के माध्यम से रिकार्ड किये जायें या "हां" और "ना" अथवा "किसी भी पक्ष में मतदान न देने" वाली पर्चियों का प्रयोग करके या सदस्यों द्वारा लाबियों में जाकर मत डालकर।[151] तथापि, मतदान रिकार्ड करने के प्रयोजन के लिये लाबियों में जाकर मत डालने की प्रथा अब प्रचलित नहीं है।

प्रश्नों का विनिश्चय सामान्यत: ध्वनि मत के माध्यम से किया जाता है बशर्ते कि सदस्य अध्यक्ष की राय पर आपत्ति न करें और मत-विभाजन की मांग न करें। मत-विभाजन की मांग होने पर अध्यक्ष मत-विभाजन का आदेश देता है। जब किसी प्रश्न का विनिश्चय ध्वनि मत के माध्यम से होता है, तो अध्यक्ष "हां" और "ना" वालों की संख्या की घोषणा नहीं करता।[152]

यदि कोई सदस्य किसी प्रश्न पर निर्णय के संबंध में अध्यक्ष की राय को चुनौती देना चाहता हो, तो उसे यह चुनौती अध्यक्ष द्वारा परिणाम की घोषणा किए जाने से पहले और उसी समय दे देनी चाहिए जब अध्यक्ष कहता है कि "मेरे विचार में निर्णय हां/ना वालों के पक्ष में हुआ"।[153] परिणाम घोषित किये जाने के बाद पीठासीन अधिकारी को मामले पर पुनर्विचार करने का अधिकार नहीं है।[154] जब मत विभाजन किया जाने वाला हो, तो केवल सभा के सदस्यों को भीतरी लाबी में रहने का अधिकार है और अन्य सभी व्यक्तियों को, जिनमें वे लोग भी शामिल हैं, जिन्हें मानस्वरूप वहां जाने का अधिकार है, लाबी अवश्य खाली कर देनी चाहिए।[155] दूसरे सदन का वह सदस्य जो मंत्री हो, मत-विभाजन के दौरान सभा में उपस्थित रह सकता है लेकिन उसे मतदान का अधिकार नहीं है। बाद में उठाई जाने वाली किसी आपत्ति से बचने के लिए अच्छा होगा कि वह उस समय सभा में उपस्थित न रहे।[156] यदि ऐसा सदस्य अपनी उपस्थिति का लाभ उठाकर लाबी में जाता है तो इस पर आपत्ति की जा सकती है।[157]

> 1954 और 1962 के वर्षों के बीच इस परिपाटी का पालन किया गया कि दोपहर एक बजे और ढाई बजे के बीच किसी ऐसे प्रश्न के बारे में अंतिम निर्णय नहीं किया जाता था, जिसके लिये सभा में मतदान आवश्यक हो।[158] इस अवधि में ध्वनि मत कराया जाता था, परन्तु यदि उसे चुनौती दी जाती थी, तो उस मामले को स्थगित कर दिया जाता था

---

151. नियम 367 (3)(ग) ।
152. *एल.ए. डिबेट्स*, 17.8.1943, पृ. 770 ।
153. *पूर्वोक्त*, 24.2.1921, पृ. 370 ।
154. *लो.स.वा.वि.*, 28.1.1976, पृ. 101-02 ।
155. *एल.ए. डिबेट्स*, 10.1.1922, पृ. 1460-61; 14.2.1947, पृ. 628-29 ।
156. *लो.स.वा.वि.*, 2.9.1970, पृ. 165; *एल.एस. डिबेट्स*, 3.9.1976, कॉ. 15-16 ।
157. *एल.एस. डिबेट्स*, 15.2.1966, कॉ. 399-402 और *देखिये एल.एस. डिबेट्स*, 8.8.1967, कॉ. 18013 ।
158. *पूर्वोक्त*, 29.8.1962, कॉ. 4833-34; 2.9.1963, कॉ. 3896 ।

और मत-विभाजन दोपहर ढाई बजे के बाद ही होता था।[159] परंतु यदि पहले से प्रारंभ कोई मत-विभाजन दोपहर एक बजे के बाद भी चलता रहता था, तो इसे परिपाटी के विरुद्ध नहीं माना जाता था।[160]

यदि इस दौरान किसी विधेयक पर विचार के प्रस्ताव में किसी संशोधन पर मत-विभाजन की मांग की जाती, तो उस विधेयक पर तब तक आगे चर्चा नहीं हो सकती थी जब तक कि उस संशोधन का फैसला न हो जाये। ऐसे मामलों में या तो सभा की बैठक ढाई बजे तक स्थगित कर दी जाती थी[161] या विधेयक पर चर्चा रोक दी जाती थी और कार्य-सूची की अगली मद ले ली जाती थी।[162]

सभी दलों और सदस्यों की सर्वसम्मति से दी गयी सहमति पर इस परिपाटी का कभी-कभार त्याग कर दिया जाता था और मत-विभाजन दोपहर को एक बजे और ढाई बजे के बीच होता था,[163] लेकिन 1962 में तीसरी लोक सभा के प्रारंभ में इस परिपाटी का पालन नहीं किया गया।

जब किसी विधेयक के खंडों या खंडों के संशोधनों या अनुदानों की मांगों के कटौती प्रस्तावों या मूल प्रस्ताव के स्थान पर स्थानापन्न प्रस्तावों के संबंध में कई मत-विभाजन हों, तो ये एक के बाद एक इकट्ठे किये जाते हैं और लाबियों को बार-बार खाली करवाने की आवश्यकता नहीं होती।[164]

सभा की सर्वसम्मति से दी गई सहमति से, दो से अधिक संशोधनों या कटौती प्रस्तावों को इकट्ठे मतदान के लिये रखा जा सकता है और ध्वनि मत से उनका निर्णय किया जा सकता है, परन्तु जब मत-विभाजन की मांग की जाये, तो मत-विभाजन प्रत्येक संशोधन या कटौती प्रस्ताव पर अलग-अलग होता है।[165] कई बार, पहले से लाबी खाली करवाये बिना मत-विभाजन कराए गये। उसके लिये पहले उन सदस्यों से अपने स्थानों पर खड़े होने के लिए कहा गया जो "हां" के पक्ष में थे और बाद में उन सदस्यों से जो "ना" के पक्ष में थे।[166]

---

159. *एल. एस. डिबेटस*, 8.9.1954, कॉ. 1248-52; 11.4.1955, कॉ. 4828-30; 9.4.1956, कॉ. 4727; 26.8.1960, कॉ. 5159-60; 21.11.1962, कॉ. 2752 ।
160. *पूर्वोक्त*, 20.2.1961, कॉ. 858 ।
161. *पूर्वोक्त*, 29.8.1962, कॉ. 4883-84 ।
162. *पूर्वोक्त*, 2.9.1963, कॉ. 3896 ।
163. *एल.एस. डिबेट्स*, 1.12.1959, कॉ. 2708; 16.12.1960, कॉ. 6012; 2.5.1962, कॉ. 2087-89; 31.5.1962, कॉ. 8114-18 ।
164. *पूर्वोक्त*, 6.8.1957, कॉ. 7373-74; 14.2.1964, कॉ. 562; 30.3.1964, कॉ. 8198; 28.10.1976, कॉ. 185-250; 29.10.1976, कॉ. 197-307; 1.11.1976, कॉ. 199-383 ।
165. *पूर्वोक्त*, 12.4.1965, कॉ. 9037 ।
166. *पूर्वोक्त*, 26.4.1960, कॉ. 13869; 17.8.1962, कॉ. 2371-72 ।

यदि मत-विभाजन का आदेश सभा की बैठक समाप्त होने के सामान्य समय से तुरन्त पहले दिया जाता है तो यह आपत्ति नहीं की जा सकती कि मत-विभाजन अगले दिन तक के लिए स्थगित कर दिया जाये।[167] जब सभा की बैठक उसके इस सामान्य समय के बाद तक बढ़ा दी जाती है, तो सामान्य समय के बाद बढ़ाये गये समय में भी मत-विभाजन हो सकता है।[168] परन्तु यदि यह आपत्ति की जाये कि बैठक का समय बढ़ाने के संबंध में सदस्यों को पहले से जानकारी नहीं दी गई थी, तो अध्यक्ष सामान्यत: उस आपत्ति को उचित ठहराता है और मत-विभाजन को स्थगित कर देता है।[169]

मत-विभाजन घंटियों का बजना

जब अध्यक्ष मत-विभाजन का आदेश देता है तो मत-विभाजन घंटियां सामान्यत: 3½ मिनट तक बजती हैं। घंटियों का बजना समाप्त होते ही सभा भवन की भीतरी लाबी के सभी बाहर के दरवाजे बंद कर दिये जाते हैं, जिससे कि मत-विभाजन होने तक कोई बाहर से न आ सके।

मत-विभाजन घंटियां केवल सदस्यों की सुविधा के लिये हैं। सदस्यों को पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए कि विभाजन के समय वह मत देने के लिए उपस्थित रहें। संसद भवन के किसी भाग में मत-विभाजन घंटियों का न बजना इस बात का कोई आधार नहीं है कि मत-विभाजन सूची में कोई परिवर्तन किया जाये।[170] परन्तु यदि घंटियां सामान्य रूप से खराब हों, तो मत देने से पहले दरवाजों को फिर दो मिनट के लिए खोला जा सकता है।[171] एक बार जब बिजली के खराब होने के कारण मत-विभाजन घंटियां नहीं बज रही थीं, अध्यक्ष ने सदस्यों से कहा कि वे अपने स्थानों पर खड़े हो जायें। इस प्रकार "हां" और "ना" वाले पक्षों के सदस्यों की गिनती करके परिणाम की घोषणा कर दी गई।[172] सामान्यत: यदि यांत्रिक अथवा अन्य खराबी के कारण मत-विभाजन घंटियां न बजें, तो मतदान अविधिमान्य नहीं हो जाता; दलों के सचेतकों का यह कर्तव्य है कि सदस्यों को मत-विभाजन के संभावित समय के संबंध में जानकारी दें।[173]

जब मत-विभाजन कराने हेतु लाबियों को खाली करने के लिए घंटियां बजा दी जाती हैं और दरवाजे बंद करने के बाद यह पता चलता है कि सभा में गणपूर्ति नहीं है तो अध्यक्ष फिर

---

167. *पूर्वोक्त*, 28.8.1963, कॉ. 3273 ।
168. *पूर्वोक्त*, 14.2.1964, कॉ. 949-52 ।
169. *पूर्वोक्त*, 3.9.1962, कॉ. 5698-99 ।
170. *एल.ए. डिबेट्स*, 16.9.1938, पृ. 2579, 2613-15; 17.9.1938, पृ. 2619-20; 27.3.1946, पृ. 3049; *लो.स.वा.वि.*, 28.4.1964, पृ. 4670-71 ।
171. *एल.ए. डिबेट्स*, 27.3.1946, पृ. 3049 ।
172. *लो.स.वा.वि.*, 20.2.1961, पृ. 471 ।
173. *एल.एस. डिबेट्स*, 2.5.1963, कॉ. 13484 ।

घंटी बजाने का आदेश दे सकता है। दूसरी बार घंटी बजाना बंद होने के बाद जब दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं, तब मत-विभाजन होता है।[174] परन्तु यदि फिर भी यह देखा जाये कि सभा में गणपूर्ति नहीं है, तो सभा को गणपूर्ति के अभाव में स्थगित कर दिया जाता है और मत-विभाजन स्थगित कर दिया जाता है।[175]

लाबी के दरवाजे बंद कर दिये जाने के बाद सदस्य अध्यक्ष के आसन के पीछे के दरवाजे से या किसी अन्य दरवाजे से सभा भवन में प्रवेश नहीं कर सकते।[176] यदि किसी सदस्य के शरीर का कोई अंग उस समय लाबी में हो, जब दरवाजे बंद किये जा रहे हों, तो उसे वस्तुतः दरवाजा बंद करने से पहले अंदर जाने दिया जाता है। दरवाजा बंद किए जाने से पहले किसी सदस्य के सभा भवन में न आने देने के संबंध में कोई शिकायत या कोई प्रश्न, मत लिये जाने के बाद, परन्तु परिणाम की घोषणा होने से पहले, अध्यक्ष के ध्यान में लाया जाना चाहिए।[177]

मत-विभाजन के दौरान भाषणों का न दिया जाना

जब मत-विभाजन करने के लिये कह दिया गया हो और लाबियां खाली की जा रही हों, तो वाद-विवाद बंद हो जाता है और कोई भी सदस्य भाषण देने के लिये खड़ा नहीं हो सकता।[178] लाबियां खाली हो जाने के बाद अध्यक्ष किसी व्यवस्था के प्रश्न की अनुमति दे सकता है, परन्तु वह सभा के समक्ष जो प्रश्न है केवल उससे ही संबंधित होना चाहिये और वह केवल यही हो सकता है कि मत-विभाजन करवाया जाये अथवा नहीं। यदि मत-विभाजन के दौरान कोई अनियमितता होती है, तो सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे उसकी ओर अध्यक्ष का ध्यान लिखित रूप में दिलायें, परन्तु किसी अन्य तरीके से सभा को संबोधित करना अनियमित है।[179]

जब लाबियां खाली की जा रही हों, तो किसी भाषण, व्यवस्था के प्रश्न या निवेदन को कार्यवाही वृत्तांत में सम्मिलित नहीं किया जाता।[180]

मत-विभाजन की अनुमति न देने का अध्यक्ष का विवेकाधिकार

अध्यक्ष को यह देखना होता है कि मत-विभाजन की अनावश्यक रूप से मांग न की जाये। अध्यक्ष ने तुच्छ कारणों से मत-विभाजन के लिये किये गये अनुरोध अस्वीकार कर दिए

---

174. *पूर्वोक्त*, 8.3.1963, कॉ. 3108 ।

175. *पूर्वोक्त*, 19.11.1965, कॉ. 2974; 15.11.1974, कॉ. 493-95; 4.12.1992, कॉ. 683-84 ।

176. *एल.ए. डिबेट्स*, 24.9.1928, पृ. 1383 ।

177. *एल.एस. डिबेट्स*, 1.12.1955, कॉ. 415-20 ।

178. *एल.ए. डिबेट्स*, 16.11.1943, पृ. 450 ।

179. *पूर्वोक्त*, 21.3.1921, पृ. 1459 ।

180. *लो.स.वा.वि.*, 21.11.1966, पृ. 1840-41 ।

हैं।[181] ऐसे मामलों में जब सदस्य इस बात के लिए आग्रह करें कि गिनती की जाये, तो अध्यक्ष किसी प्रस्ताव के पक्ष में और उसके विरुद्ध मत देने वाले सदस्यों से यह कह सकता है कि वे अपने स्थानों पर खड़े हो जायें और उनकी गिनती करने के बाद वह सभा के निर्णय की घोषणा कर सकता है।[182] ऐसे मामलों में मत देने वाले सदस्यों के नाम सामान्यत: वाद-विवाद में सम्मिलित नहीं किए जाते।[183] तथापि, कुछ मामलों में अध्यक्ष किसी प्रस्ताव के पक्ष में या उसके विरुद्ध मत देने वाले सदस्यों से कह सकता है कि वे अपने नाम सभा पटल पर भेज दें जिससे कि उन्हें कार्यवाही में सम्मिलित किया जाये।[184] अध्यक्ष ने कभी-कभी उन सदस्यों के नाम भी कार्यवाही में सम्मिलित करने की अनुमति दी है, जिनकी गिनती कम थी।[185]

> ध्वनि मत के आधार पर अध्यक्ष द्वारा घोषित निर्णय को चुनौती दिये बिना कोई सदस्य अध्यक्ष से अनुरोध कर सकता है कि नाम दर्ज किये जायें; यह मांग करना किसी सदस्य का अन्तर्निहित अधिकार है कि किसी मामले विशेष में उसने किस प्रकार मतदान किया है इसका कार्यवाही वृत्तांत में उल्लेख किया जाये।[186] यदि मामला महत्वपूर्ण है और सभा की आम राय उसके पक्ष में है तो अध्यक्ष ऐसे अनुरोध को स्वीकार कर सकता है। सामान्यत: जब सदस्यों का बहुमत इस बात के विरुद्ध हो और मामला भी अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हो तो मत-विभाजन या नाम दर्ज करना आवश्यक नहीं समझा जाता।[187] यह निर्णय किया गया है कि केवल सदस्यों का नाम दर्ज करने के लिए मत-विभाजन का आदेश नहीं दिया जा सकता।[188]

यदि कोई संशोधन, जिस पर मत-विभाजन की मांग की जाये, नियम विरुद्ध ठहराया जाता है, तो मत-विभाजन की अनुमति नहीं दी जाती, चाहे लाबियां खाली कर ली गई हों।[189]

स्वचालित मतदान अंकन यंत्र द्वारा मत-विभाजन

स्वचालित मतदान अंकन व्यवस्था के अंतर्गत, प्रत्येक सदस्य अपनी आवंटित सीट पर बैठे-बैठे बटन दबा कर, जो इस प्रयोजन के लिये प्रत्येक सदस्य की सीट पर लगाये गए हैं, मतदान करता है। तथापि, कई बार ऐसा भी हुआ है जब कुछ सदस्य स्वचालित मतदान अंकन

---

181. *एल.एस. डिबेट्स*, 28.7.1955, कॉ. 8756; 18.4.1956, कॉ. 5649-50 ।
182. *एल.ए. डिबेट्स*, 5.6.1914, पृ. 1669-70; *एल.एस. डिबेट्स*, 24.3.1970, कॉ. 646 ।
183. *पूर्वोक्त*, 8.11.1943, पृ. 26-27; 25.7.1955, कॉ. 8390 ।
184. *एल.एस. डिबेट्स* (II), 17.8.1956, कॉ. 3670-71; 2.8.1956, कॉ. 4529-30 ।
185. *एल.ए. डिबेट्स*, 5.9.1932, पृ. 92-93; 1.4.1937, पृ. 25-28; 30.3.1938, पृ. 2418-22; *लो.स.वा.वि.*, 28.5.1956, पृ. 4101; *लो.स.वा.वि.*, 20.2.1961, पृ. 471; 27.11.1962, पृ. 1537 ।
186. *एल.एस. डिबेट्स*, 14.2.1968, कॉ. 796-98 ।
187. *पूर्वोक्त*, 28.7.1955, कॉ. 8756 ।
188. *एल.ए. डिबेट्स*, 17.8.1943, पृ. 770 ।
189. *एल.एस. डिबेट्स*, 21.6.1962, कॉ. 12347-60 ।

यंत्र द्वारा अपनी सीट से मतदान करने में असमर्थ थे क्योंकि वे गंभीर रूप से बीमार थे। ऐसे सदस्यों को सभा की सम्मति से अध्यक्ष ने भीतरी लाबी से पर्ची भरकर मतदान करने की अनुमति दी थी।[190]

प्रत्येक सदस्य की सीट पर स्वचालित मतदान अंकन प्रणाली में एक पुश बटन सेट जिसमें एक प्रकाश द्योतक बत्ती और चार पुश बटन का सेट होता है, जिसमें हरा बटन 'हां' के लिए, लाल बटन 'ना' के लिए, पीला बटन 'मतदान में भाग न लेने' के लिए और एम्बर बटन 'उपस्थित' के लिए और इसके साथ एक मतदान आरंभक स्विच होता है जो भाषा-चयनक स्विच बोर्ड पर लगा होता है। जब मतदान का परिणाम सूचक-बोर्ड पर आ जाता है, तो अध्यक्ष मत-विभाजन के परिणाम को घोषित कर देता है और कोई सदस्य इसे चुनौती नहीं दे सकता। जो सदस्य किसी ऐसे कारण से जिसे अध्यक्ष समुचित समझे, बटन दबाकर अपना मत न दे सके, उसे मौखिक रूप से यह बताने पर कि वह प्रस्ताव के पक्ष में है या विरोध में है अपना मत दर्ज कराने की अनुमति दी जा सकती है, परन्तु यह सब मतदान के परिणाम की घोषणा होने से पहले होना चाहिए। उसी प्रकार, यदि कोई सदस्य यह देखता है कि उसने गलत बटन दबाकर मतदान में गलती कर दी है, तो उस गलती को सुधारने की अनुमति दी जा सकती है, बशर्ते कि वह मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा होने से पहले इस बात की ओर अध्यक्ष का ध्यान दिला दे।[191]

जब स्वचालित मतदान अंकन यंत्र द्वारा मत-विभाजन होने पर सूचक-बोर्ड पर आए परिणाम से यह पता चलता है कि "हां" और "ना" के लिए डाले गए मतों के बीच भारी अंतर है तो पीठासीन अधिकारी शुद्धि के अध्यधीन विभाजन के परिणाम की घोषणा करता है। यदि 'हां' और 'ना' के लिए सदस्यों द्वारा डाले गए मतों के बीच बहुत कम अंतर हो तो पर्चियों के माध्यम से सदस्यों द्वारा डाले गए/शुद्ध किये गये मतों की गणना की जाती है और सभा पटल अधिकारी 'हां' और 'ना' और किसी भी ओर मत न देने वाली पर्चियों की गिनती करके अंतिम परिणाम तैयार करता है। तत्पश्चात् इस प्रकार प्राप्त हुए अंतिम परिणाम की घोषणा पीठासीन अधिकारी कर देता है।

> तथापि, आजकल प्रथा यह है कि मत-विभाजन का जो परिणाम सूचक-बोर्ड पर आया हो, उसमें सदस्यों के इस अभ्यावेदन पर कि वे अपना मत ठीक से नहीं दे सके, परिवर्तन नहीं किया जाता, जब तक कि यंत्र में कोई खराबी न आ गई हो, या जिस गलती की ओर सदस्य ने ध्यान दिलाया है उसके कारण मत-विभाजन के परिणाम पर ठोस प्रभाव न पड़ता हो।[192] जब स्वचालित मतदान अंकन यंत्र में कोई खराबी आने के कारण

---

190. *एल.एस. डिबेट्स*, 26.2.1999, कॉ. 604-05; 17.4.1999, कॉ. 32; 22.7.2008 ।

191. नियम 367क; *एल.एस. डिबेट्स*, 5.9.1957, कॉ. 12101-02; 6.9.1957, कॉ. 12413-14; *लो.स.वा.वि.*, 10.12.1957, पृ. 2284; *लो.स.वा.वि.*, 21.11.1963, पृ. 483-84 ।

192. *एल.एस. डिबेट्स*, 13.2.1964, कॉ. 562; *लो.स.वा.वि.*, 30.3.1964, पृ. 2918; *एल.एस. डिबेट्स*, 13.4.1964, कॉ. 10725-26; *लो.स.वा.वि.*, 21.4.1964, पृ. 4234, 12100 ।

> सूचक-बोर्ड पर गलत परिणाम आ जाए तो अध्यक्ष सदस्यों की सहमति से, उसे ठीक करके परिणाम घोषित कर सकता है, बशर्ते गलती स्पष्ट हो।[193]

जब किसी मत-विभाजन में भाग लेने वाले सभी सदस्यों के नाम उस प्रिंट आउट में नहीं आते जिसमें कि मत-विभाजन का परिणाम दिखाया जाता है, तो वाद-विवाद में केवल वे नाम सम्मिलित किए जाते हैं जोकि प्रिंट आउट में दर्शाए गए हों। जहां तक उन सदस्यों के नामों का संबंध है जो दर्ज नहीं हो सके, "हां" या "ना" में आंकड़ों पर ऊपर यथास्थिति तारे का चिन्ह लगा दिया जाता है और एक पाद-टिप्पण देकर स्थिति स्पष्ट कर दी जाती है।[194]

17 अप्रैल, 1999 को एक सदस्य ने अभ्यावेदन दिया कि मंत्रिमंडल में विश्वास प्रस्ताव पर हुए मत-विभाजन के दौरान उसने लाल बटन ("ना" के लिए) दबाया था। परन्तु कम्प्यूटर प्रिंट आउट में उसका मत दर्ज नहीं हुआ। उसने अनुरोध किया कि कम्प्यूटर में उसके नाम के सामने "कोई मत नहीं" छपा है, अतः इस गलती को सुधारा जाये।

इस मामले में पूछताछ की गई और के.लो.नि.वि. के अधिकारियों से जांच कराने के उपरांत उनकी रिपोर्ट में यह बताया गया-

> इसका केवल एक संभावित कारण यही हो सकता है कि सीट सं. 101 पर बैठे सदस्य ने समय-सूचक बोर्ड में "00" आने से कुछ मिली सेकेंड पहले और दूसरी बार घंटी बजने से पहले ही बटन छोड़ दिया होगा। इससे पहले कि कंप्यूटर में उस परिवर्तन को ग्रहण करके उसकी गिनती "कोई मत नहीं" में कर दी गई किंतु इससे पहले कि सूचना-बोर्ड पर सही संकेत भेजा जाता, मतों की गिनती पूरी हो गई और सूचना बोर्ड पर "ना" का संकेत बना रहा। हालांकि, इस तरह की घटनाएं बहुत ही कम होती हैं।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि सीट सं. 101 पर बैठने वाले सदस्य ने "ना" सूचक बटन दबाया।

अध्यक्ष जी.एम.सी. बालयोगी ने व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के माध्यम से 22 अप्रैल, 1999 को सभा में उस सदस्य को यह मामला उठाने की अनुमति दे दी।

तदनुसार, एक पत्र के माध्यम से सदस्य को सूचित किया गया। सदस्य ने और स्पष्टीकरण के लिए अनुरोध किया था। तथापि, इस मामले को समाप्त समझा गया और आगे कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया। परिणाम में कोई शुद्धि नहीं की गई।

---

28 अगस्त, 1987 को संविधान (58वां संशोधन) विधेयक, 1987 पर विचार किये जाने के प्रस्ताव पर स्वचालित मतदान अंकन यंत्र द्वारा मत-विभाजन कराया गया और सूचक-बोर्ड पर दो बार गलत परिणाम दिखाई पड़ा। उस समय पीठासीन उपाध्यक्ष महोदय ने निदेश दिया कि नियम 367 क के अधीन "हां" और "ना" वाली पर्चियां बांटकर मत-विभाजन किया जाये क्योंकि स्वचालित मशीन खराब हो गई है।

193. *लो.स.वा.वि.*, 21.11.1963, पृ. 483-84 ।

194. *एल.एस. डिबेट्स*, 28.8.1962, कॉ. 4610; 30.8.1962, कॉ. 5147; 31.8.1962, कॉ. 5315 ।

एक बार जब फोटोग्राफ लिये जाने के पूर्व मशीन का अचानक फ्यूज उड़ जाने के कारण मत-विभाजन का परिणाम प्राप्त नहीं हो सका तो जिन सदस्यों ने मत-विभाजन में भाग लिया था उनके नाम वाद-विवाद में नहीं दिए जा सके। इस बारे में वाद-विवाद में पाद-टिप्पण में स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की गई–

> जिन सदस्यों ने मतदान किया है उनके नाम सम्मिलित नहीं किए जा सके हैं क्योंकि स्वचालित मतदान अंकन यंत्र में खराबी आ जाने के कारण मत-विभाजन के परिणाम का फोटोग्राफ नहीं लिया जा सका।[195]

यदि सदस्य अध्यक्ष से कहें कि स्वचालित मतदान अंकन यंत्र ने मत ठीक-ठीक दर्ज नहीं किए तो अध्यक्ष या तो "हां" और "ना" वाली पर्चियां बंटवा कर उनके मत ले सकता है या सदस्यों से यह कह सकता है कि वे अपने मत देने के लिये लाबी में चले जायें। ऐसी अवस्था में अध्यक्ष यह निदेश देता है कि लाबियों को फिर से खाली कराया जाये।[196]

जब किसी मत विभाजन के परिणाम की घोषणा से पहले, बहुत से सदस्य अपने मतदान को शुद्ध करने के लिए कहें, तो अध्यक्ष सभा की राय मालूम करने के बाद यह निदेश दे सकता है कि लाबी को पुनः खाली कराये बिना फिर स्वचालित मतदान अंकन यंत्र व्यवस्था के माध्यम से मत लिये जायें।[197]

पंद्रहवीं लोक सभा के नौवें सत्र के दौरान की घटना है जब संविधान (एक सौ ग्यारहवाँ संशोधन) विधेयक, 2011 पर मत विभाजन के दौरान अध्यक्ष ने संसदीय कार्य मंत्री के अनुरोध पर और संसदीय कार्य मंत्री के अनुरोध पर मत लेकर, सभा की राय जानने की पश्चात्, सदस्यों को पुनः मतदान करने की अनुमति दी थी। लाबियों को पुनः खाली कराया गया था। इस मामले में अपना निर्णय देते हुए अध्यक्ष ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"माननीय मंत्री ने अनुरोध किया था। इसलिए अति विशेष मामले के रूप में मैं मत विभाजन की अनुमति दे रही हूँ। इसे भविष्य में पूर्वोदाहरण के रूप में उद्धृत नहीं किया जाएगा।"[198]

यदि सदस्यों द्वारा मत दे चुकने के बाद, परन्तु सूचक बोर्ड पर परिणाम आने से पहले, स्वचालित मतदान अंकन यंत्र का फ्यूज उड़ जाये, तो अध्यक्ष सदस्यों को निदेश दे सकता है कि सदस्य यदि तब तक यंत्र ठीक कर दिया गया हो तो पुनः स्वचालित मतदान अंकन यंत्र के माध्यम से या "हां" और "ना" की पर्चियों द्वारा मत देकर या अपने स्थानों पर खड़े होकर बतायें कि वे पक्ष में मत देना चाहते हैं या विपक्ष में।[199]

---

195. *एल.एस. डिबेट्स*, 4.9.1974, कॉ. 251 ।
196. *पूर्वोक्त*, 30.11.1959, कॉ. 2553-54 ।
197. *पूर्वोक्त*, 28.8.1962, कॉ. 4628 ।
198. *पूर्वोक्त*, 2.12.2011, कॉ. 87-90।
199. *पूर्वोक्त*, 27.11.1962, कॉ. 3539 ।

"हां", "ना" और "किसी भी पक्ष में मतदान न देने" वाली पर्चियों द्वारा मत-विभाजन

सभा में पर्चियां बांटकर मत-विभाजन कराने का तरीका केवल तभी प्रयोग में लाया जाता है जब स्वचालित मतदान अंकन यंत्र खराब हो जाए या जब नई लोक सभा के आरम्भ होने पर नवनिर्वाचित सदस्यों को सीटें/विभाजन संख्याएं आवंटित न की गई हों।

जब भी कभी उपर्युक्त ढंग से मत-विभाजन कराना आवश्यक हो जाता है तो सदस्यों को मतदान के लिए उनकी सीटों पर ही पर्चियां दे दी जाती हैं जिन पर "हां" और "ना" छपा होता है। पर्ची के एक ओर अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों में हरे रंग में "हां" छपा होता है और दूसरी ओर लाल रंग में "ना" छपा होता है। सदस्यों को अपनी इच्छानुसार मतदान करने के लिए इन पर्चियों पर उपयुक्त स्थान पर अपना नाम, विभाजन संख्या तथा तारीख स्पष्ट शब्दों में लिखकर हस्ताक्षर करने होते हैं। जो सदस्य किसी भी पक्ष में मत न देना चाहे वे अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों में छपी पीली पर्ची का प्रयोग कर सकते हैं। ये पर्चियां विभाजन क्लर्क से मांगकर ली जा सकती हैं। यदि किसी सदस्य को सीट/विभाजन संख्या का आबंटन नहीं किया गया है तो उसे पृथक पर्ची दी जाती है जिसमें वह अपने हस्ताक्षरों के नीचे अपना नाम, निर्वाचन क्षेत्र, राज्य तथा तारीख स्पष्ट शब्दों में लिखकर दे सकता है।

मतदान के पश्चात् विभाजन क्लर्क प्रत्येक सदस्य से पर्चियां इकट्ठी करके सभापटल पर बैठे अधिकारी को देते हैं। तत्पश्चात् सभा पटल पर बैठा अधिकारी "हां" और "ना" तथा किसी भी पक्ष में मतदान न देने वाली पर्चियों की जांच करता है और मतों की गणना करके परिणाम तैयार करता है। इस प्रकार तैयार किये गये परिणाम की पीठासीन अधिकारी घोषणा करता है। प्रत्येक सदस्य द्वारा किये गये मतदान संबंधी विवरण तथा प्रत्येक मत-विभाजन का अंतिम परिणाम मुद्रित वाद-विवाद में सम्मिलित किया जाता है।

लाबियों में जाकर मत-विभाजन

जब अध्यक्ष यह निर्णय करे कि सदस्य लाबियों में जाकर मतदान करें तो वह सदस्यों से कहता है कि "हां" के पक्ष वाले सदस्य दायीं ओर की लाबी में चले जायें और "ना" वाले सदस्य बायीं ओर की लाबी में। मत दर्ज कराने के लिए चार बूथों की 'हां' वाली लाबी में और चार बूथों की 'ना' वाली लाबी में व्यवस्था की जाती है जिन पर क्रमानुसार विभाजन संख्या होती है। "हां" या "ना" वाली लाबी में यथास्थिति प्रत्येक सदस्य अपनी विभाजन संख्या बताता है और विभाजन क्लर्क मत-विभाजन सूची में उस सदस्य की विभाजन संख्या पर निशान लगा देता है और उस सदस्य का नाम पुकारता है। यदि यह देखा जाए कि पीठासीन अधिकारी ने लाबी में जाने के संबंध में निदेश देते समय कोई गलती कर दी है और सदस्यों ने गलत लाबी में जाकर मत दिया है, तो नए सिरे से मत-विभाजन कराया जा सकता है।[200]

लाबियों में मतों के दर्ज किये जाने के बाद मत-विभाजन सूचियां सभापटल पर लायी जाती हैं, जहां सभापटल पर बैठे अधिकारी मतों की गणना करते हैं और "हां" और "ना"

---

200. *एल.ए. डिबेट्स*, 10.1.1922, पृ. 1460-61 ।

के पक्ष में आये कुल मतों की कुल संख्या अध्यक्ष को बताते हैं। एक बार सभापटल पर लाई गई मत विभाजन सूचियां अध्यक्ष की अनुमति के बिना लाबियों में वापस नहीं ले जाई जा सकतीं।[201] उसके बाद अध्यक्ष मत विभाजन के परिणाम की घोषणा करता है और कोई भी सदस्य उसे चुनौती नहीं दे सकता।

जो सदस्य बीमारी या दुर्बलता के कारण लाबी में जाने में असमर्थ हो[202] वह अध्यक्ष की अनुमति से या तो अपनी सीट से या बाद में लाबी में जाकर परन्तु मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा होने से पहले, अपना मत दे सकता है। यदि कोई सदस्य यह देखे कि उसने गलती से गलत लाबी में जाकर मत दिया है, तो उसे अपनी भूल को सुधारने की अनुमति दी जा सकती है, बशर्ते कि वह मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा होने से पहले इस बात की ओर अध्यक्ष का ध्यान दिला दे। जब मत-विभाजन सूचियां सभापटल पर लाई जाती हैं तो जिस सदस्य ने तब तक अपना मत न दिया हो, परन्तु बाद में मत देना चाहता हो, वह अध्यक्ष द्वारा मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा किये जाने से पहले, अध्यक्ष की अनुमति से अपना मत दे सकता है।[203]

> किसी सदस्य को किसी विशेष लाबी में जाकर मत देने के लिये विवश करना सभा की अवमानना है। मत-विभाजन लाबी में स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेने का अधिकार वाक-स्वातंत्र्य के अधिकार का एक महत्वपूर्ण तत्व है।[204]
>
> जो सदस्य गलत लाबी में चला जाये और मत-विभाजन क्लर्क को अपना नाम बता दे, परन्तु क्लर्क द्वारा मत दर्ज किए जाने से पहले उसे अपनी भूल का पता चल जाये, तो वह ठीक लाबी में जाकर अपना मत दे सकता है।[205]
>
> एक अवसर पर एक सदस्य ने "जो तटस्थ रहना चाहता था" जैसा कि उसने बाद में घोषणा की, "हां" और "ना" दोनों लाबियों में अपना मत दिया। अध्यक्ष के आदेश से उसका नाम मत-विभाजन सूचियों से निकाल दिया गया।[206]
>
> सामान्यत: लोक सभा में मत-विभाजन स्वचालित मतदान अंकन यंत्र द्वारा होता है। मशीन खराब होने की स्थिति में सभा में मत-विभाजन सदस्यों को "हां", "ना" और "किसी भी पक्ष में मतदान न देने" की पर्चियां बांट कर कराया जाता है।

मत-विभाजन में अनियमितताएं

यदि किसी मत-विभाजन के परिणाम की घोषणा होने से पहले, उसमें हुई अनियमितताओं की ओर अध्यक्ष का ध्यान दिलाया जाए, तो वह या तो तत्काल नए सिरे से मत-विभाजन का

---

201. *पूर्वोक्त*, 26.3.1935, पृ. 2792 ।

202. *पूर्वोक्त*, 7.2.1935, पृ. 568; *एल.एस. डिबेट्स*, 22.2.1955, कॉ. 1255 ।

203. नियम 367 ख ।

204. *एल.ए. डिबेट्स*, 26.1.1922, पृ. 1981 ।

205. *एल.ए. डिबेट्स*, 14.1.1936, पृ. 3899-900 ।

206. *एच.पी. डिबेट्स*, 23.12.1953, कॉ. 2963-64 ।

आदेश दे सकता है या, यदि उस समय सभा की बैठक स्थगित होने वाली हो तो अगली बैठक में नए सिरे से मत-विभाजन करवा सकता है।[207]

विभाजन संख्याएं आवंटित न होने की स्थिति में मत-विभाजन

नयी सभा में प्रारंभ में सदस्यों को सीट तथा विभाजन संख्याएं आवंटित किए जाने से पहले यदि मत-विभाजन हो तो उसके लिये उन्हें "हां" और "ना" वाली पर्चियां दे दी जाती हैं और उन्हें उन पर अपने नाम, निर्वाचन क्षेत्र, राज्य और तारीख के साथ-साथ अपने हस्ताक्षर कर के मत देना पड़ता है।[208]

मत-विभाजन सूचियां

मत-विभाजन सूची या दर्ज हुए मतों की कम्प्यूटरीकृत सूची, जिनमें दिखाया गया हो कि किन सदस्यों ने "हां" के पक्ष में मत दिया है और किन सदस्यों नें "ना" के पक्ष में, और किन सदस्यों ने किसी भी पक्ष में मतदान नहीं किया है, किसी दल या ग्रुप को नहीं दी जाती है और दलों के नेता/सचेतक यह जान सकते हैं कि क्या उनके सदस्यों ने मतदान के संबंध में उनके द्वारा जारी किए गए निदेशों का पालन किया है। विधिवत रूप से ठीक की गई सूची सदस्यों के सूचनार्थ बाहरी लॉबी के सूचना-पट पर प्रदर्शित की जाती है और उसे उस दिन के वाद-विवाद में भी सम्मिलित किया जाता है।

उपाध्यक्ष और सभापति तालिका के सदस्यों द्वारा मतदान

संविधान के अंतर्गत अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति मत-विभाजन में मत नहीं दे सकता। उसे केवल निर्णायक मत देने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु उसका उपयोग वह तभी करता है, जब किसी विषय के पक्ष में और उसके विरुद्ध बराबर मत आयें।[209] यदि उपाध्यक्ष या सभापति तालिका का कोई सदस्य, जो मतदान के समय पीठासीन हो, उस आसन को छोड़ दे और परिणाम की घोषणा होने से पहले अध्यक्ष अपने आसन पर आ बैठें, तो सभापति तालिका का सदस्य अपना मत नहीं दे सकता, क्योंकि वह उस समय पीठासीन था जब कि मतदान प्रारम्भ हुआ।[210]

जिस समय मतदान चल रहा हो, अर्थात् मतदान आरंभ होने के समय से लेकर उसके समाप्त होने तक उपाध्यक्ष, जो कि मतदान प्रारम्भ होने के समय पीठासीन हो सभापति तालिका के किसी सदस्य को अध्यक्ष के आसन पर नहीं बिठा सकता जिससे कि वह स्वयं जा कर अपना मत दे सके, क्योंकि वह तब भी सभा भवन में ही होगा। जिस समय वह सभा भवन से बाहर जा रहा हो, केवल तभी वह सभापति तालिका के किसी सदस्य से यह कह

---

207. *लो.स.वा.वि.*, 30.11.1959, पृ. 1247; 1.12.1959, पृ. 1330-42 ।

208. *पूर्वोक्त*, 23.4.1962, कॉ. 487; 17.3.1967, का. 47-48 ।

209. अनुच्छेद 100 (1) ।

210. *लो.स.वा.वि.*, 18.9.1964 ।

सकता है कि वह अध्यक्ष का आसन सम्भाले। सभापति तालिका का सदस्य भी पीठासीन होने पर मत विभाजन में भाग नहीं ले सकता। परन्तु उसे निर्णायक मत देने का अधिकार होगा–दूसरा मत नहीं–जिसका प्रयोग उसे दोनों पक्षों के मतों के बराबर होने की अवस्था में ही करना पड़ेगा।

अतः उपाध्यक्ष या सभापति तालिका का कोई सदस्य, यथास्थिति, जो अपना मत दे चुका हो, वह मत-विभाजन के समय अर्थात् तब जब मतदान समाप्त हो जाए और परिणाम घोषित किया जाने वाला हो अध्यक्षता नहीं कर सकता क्योंकि दोनों पक्षों में बराबर मत आने पर वह अपने निर्णायक मत के माध्यम से उस प्रश्न का निपटारा करने की स्थिति में नहीं होगा।[211]

निर्णायक मत

किसी विचार-विमर्श करने वाली सभा या संसदीय सभा में निर्णायक मत, किसी प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत होने की स्थिति में अध्यक्षता करने वाले अधिकारी द्वारा दिया जाने वाला निर्णायक मत होता है। कभी-कभी इस प्रकार दिये गए मत से केवल एक मत का बोध होता है और कभी-कभी इससे ऐसे व्यक्ति द्वारा दिए गए दोहरे मत का बोध होता है, जिसने पहला मत सदस्य की हैसियत से दिया हो और दूसरा मत बाद में, प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत होने की स्थिति में, निर्णय करने के लिये दिया हो।

जैसे कि ऊपर बताया जा चुका है, संविधान अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति द्वारा, प्रथमतः, मत दिये जाने का निषेध करता है, अर्थात् वह सामान्य सदस्य के रूप में मत-विभाजन में भाग नहीं ले सकता। उसे केवल निर्णायक मत देने का अधिकार है जिसका उसे किसी प्रस्ताव के दोनों पक्षों में बराबर मत आने पर प्रयोग करना चाहिए।[212] पीठासीन अधिकारी द्वारा निर्णायक मत देने के अधिकार का प्रयोग सामान्यतः ऐसे ढंग से किया जाता है जिससे कि यथापूर्व स्थिति बनी रहे।

केंद्रीय विधान सभा में मोटरयान विधेयक के खंडों पर चर्चा के दौरान एक प्रस्ताव पर-जिसका उद्देश्य एक खण्ड का लोप करना था-मत-विभाजन हुआ, तो दोनों पक्षों में बराबर मत आये और अध्यक्ष ने अपना निर्णायक मत प्रस्ताव के पक्ष में दिया। जब एक सदस्य ने कहा कि प्रथा के अनुसार[213] निर्णायक मत सामान्यतया इस प्रकार दिया जाता है कि यथापूर्व स्थिति बनी रहे और यह जानना चाहा कि अध्यक्ष ने जिस ढंग से मत दिया है, उसके पीछे क्या सिद्धान्त है, तो अध्यक्ष ने कहा:

---

211. *एल.ए. डिबेट्स*, 1.9.1938, पृ. 1444-48, 1455-63; 5.9.1938, पृ. 1583-86 ।

212. अनुच्छेद 100 (1) ।

213. *एल.ए. डिबेट्स*, 21.3.1927, पृ. 2658-59; 24.9.1928, पृ. 1383-84; 30.1.1929, पृ. 291; 20.2.1930, पृ. 843 ।

मैंने उस सिद्धान्त का ध्यान रखा है। मैंने न केवल खण्ड और प्रस्तावित संशोधन को ध्यान में रखा है, बल्कि साथ ही दण्ड प्रक्रिया संहिता की उस विद्यमान विधि को भी ध्यान में रखा, मैंने उस सिद्धान्त पर गौर किया है। मैंने न केवल प्रस्तावित खण्ड और संशोधन पर ही विचार नहीं किया है बल्कि दण्ड प्रक्रिया संहिता विद्यमान मौजूदा कानून जिसके संशोधन की बात कहीं गई है, उस पर भी विचार किया है। मैं यह कहूंगा कि यथापूर्व स्थिति बनाएं रखने का नियम सामान्य मामलों में बहुत अच्छा नियम है परन्तु यह कोई अपरिवर्तनीय नियम नहीं है।[214]

यह विनिर्णय दिया गया है कि अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति द्वारा जो निर्णायक मत दिया जाये, उस पर चर्चा नहीं की जानी चाहिए।[215]

संसदीय समितियों के मामले में, समिति के सभापति या सभापति के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति को, किसी विषय पर बराबर मत आने की स्थिति में, दूसरा या निर्णायक मत देने का अधिकार है।[216] अतः अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति के विपरीत, समिति का सभापति या सभापति के रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति प्रथमतः सामान्य सदस्य के रूप में मत देता है, और बाद में यदि दोनों पक्षों में बराबर मत आयें तो वह दूसरी बार अपना निर्णायक मत देता है। यह विभेद इस आधार पर किया गया है कि अध्यक्ष तो सभा में वाद-विवाद के सदस्य के रूप में भाग नहीं लेता, जबकि समिति का सभापति न केवल समिति के विचार-विमर्श का मार्गदर्शन करता है बल्कि समिति जिन निष्कर्षों पर पहुंचती है, उनके प्रतिपादन में उसकी मुख्य भूमिका होती है। इसलिये उसे प्रारंभ में किसी मामले पर समिति के किसी अन्य सदस्य की तरह मत देने का अधिकार दिया गया है।

व्यवस्था बनाए रखना

सभा में व्यवस्था बनाये रखना अध्यक्ष की जिम्मेदारी है और इस प्रयोजन के लिये वह अपने विनिश्चयों के प्रवर्तन के लिये सभी आवश्यक शक्तियों का प्रयोग करता है।[217] यदि सभा में घोर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएं, तो अध्यक्ष को सभा स्थगित करने अथवा उतने समय के लिए, जितना वह उचित समझे, सभा की बैठक निलंबित करने की शक्ति प्राप्त है।[218]

---

214. *एल.ए. डिबेट्स*, 16.9.1938, पृ. 2567-68 ।

215. *पूर्वोक्त*, 12.3.1936, पृ. 2403-09 ।

216. नियम 262 ।

217. नियम 378; *एल.ए. डिबेट्स*, 13.3.1924, पृ. 1625-26 । *देखिए* विगत अध्याय 8-संसद के कार्य-निर्वाहक ।

218. नियम 375; *एल.ए. डिबेट्स*, 20.3.1929, पृ. 2264, 8.4.1929, पृ. 2985, *लो.स.वा.वि.*, 30.3.1966, पृ. 2264; 23.6.1967, पृ. 3300; 28.2.1968, पृ. 245; 11.4.1969, पृ. 176; 16.12.1970; पृ. 204-06; *एल.एस. डिबेट्स*, 7.5.1975, का. 237-370; *लो.स.वा.वि.*, 25.7.1966; पृ. 96; 5.9.1966, पृ. 22; 7.11.1966, पृ. 671-72; 10.11.1966, पृ. 405-07; 16.11.1966, पृ. 1425; 12.7.1967, पृ. 5033; 1.8.1967, पृ. 405-07; 3.9. 1968, पृ. 1444; 21.11.1969, पृ. 279; 22.12.1969, पृ. 159-60 ।

व्यवस्था का प्रश्न

कोई सदस्य किसी भी ऐसी घटना जिसे वह व्यवस्था का भंग होना या सभा के किसी लिखित अथवा अलिखित कानून का उल्लंघन समझता है और जिस ओर अध्यक्ष का ध्यान न गया हो, की ओर अध्यक्ष का तत्काल ध्यान आकर्षित कर सकता है, और उसे ऐसा करना भी चाहिए और कोई सदस्य प्रक्रिया के संबंध में किसी प्रकार की अस्पष्टताओं के बारे में पीठासीन अधिकारी का मार्गदर्शन और सहायता भी प्राप्त कर सकता है। इसलिए व्यवस्था का प्रश्न लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन संबंधी नियमों अथवा परंपराओं या संविधान के ऐसे अनुच्छेदों के निर्वचन या प्रवर्तन से संबंधित होना चाहिए, जो सभा के कार्य के विनियमन से संबंधित है और उसके माध्यम से केवल ऐसा प्रश्न उठाया जाना चाहिए जो कि अध्यक्ष के संज्ञान में हो।[219] कोई प्रश्न व्यवस्था का प्रश्न है या नहीं, उसकी कसौटी यह नहीं है कि पीठासीन अधिकारी कोई राहत प्रदान कर सकता है, बल्कि यह है कि क्या नियमों, आदि के ऐसे निर्वचन अथवा उनके प्रवर्तन से संबंधित है और साथ ही यह भी कि क्या उसके माध्यम से कोई ऐसा प्रश्न उठाया जा रहा है, जिसका विनिश्चय केवल अध्यक्ष ही कर सकता है।[220] लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम 376 द्वारा शासित प्रक्रिया पद्धति के रूप में व्यवस्था का प्रश्न उठाये जाने का प्रभाव यह होता है कि सभा की कार्यवाही निलंबित हो जाती है। व्यवस्था का प्रश्न सभा के समक्ष, तत्काल जो कार्य है उसी के संबंध में ही उठाया जा सकता है।[221] 'सभा के समक्ष कार्य' का अर्थ उस दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित कार्य है।[222] लेकिन किसी कार्य की मद निपटाए जाने के बाद उस मद के बारे में व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[223] कार्य की दो मदों के बीच के खाली समय में व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता तथापि, यदि व्यवस्था का प्रश्न सभा में व्यवस्था बनाये रखने या सभा के समक्ष कार्य विन्यास के संबंध में हो, तो अध्यक्ष कार्य की एक मद के समाप्त होने और दूसरी मद के प्रारंभ होने के बीच के अन्तराल के दौरान उसे उठाने की

---

219. नियम 376(1): साथ ही *देखिए पंजाब राज्य* बनाम *सत्यपाल डांग*, ए.आई.आर., 1969, एस.सी. 903 ।

220. *एल.ए. डिबेट्स*, 31.3.1930, खण्ड III (1930), पृ. 2674; *लो.स.वा.वि.*, 11.6.1962, पृ. 4595-96 ।

221. नियम 376 (2); *लो.स.वा.वि.*, 5.12.1960, पृ. 1931; *एल.एस. डिबेट्स*, 25.4.1962, कॉ. 881; *लो.स.वा.वि.*, 9.9.1963, पृ. 2477-78; *एल.एस. डिबेट्स*, 1.4.1966, कॉ. 8971; *लो.स.वा.वि.*, 31.7.1968, पृ. 1454; *एल.एस. डिबेट्स*, 19.2.1975, कॉ. 222-29; 29.7. 1980, कॉ. 280-81 ।

222. *लो.स.वा.वि.*, 30.11.1965, पृ. 1768-70 ।

223. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 10.8.1953, का. 447-48, *एल.एस. डिबेट्स*, 27.4.1976, कॉ. 145-46 ।

अनुमति दे सकता है।[224] इस प्रकार इस अन्तराल में व्यवस्था का प्रश्न उस स्थिति में उठाया जा सकता है, जब वह किसी सदस्य को निलंबित करने से संबंधित नियमों को लागू करने के संबंध में हो।[225]

जब कोई सदस्य किसी ऐसे विषय के संबंध में व्यवस्था का प्रश्न उठाना चाहे जो कार्यसूची में न हो, तो उसे पहले से अध्यक्ष को लिखित सूचना देनी पड़ती है, जिसमें स्पष्ट रूप से यह बताया गया हो कि वह कौन-सा प्रश्न उठाना चाहता है।[226] वह सभा में तब तक व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठा सकता, जब तक कि अध्यक्ष उसे अनुमति न दे।

व्यवस्था का प्रश्न उठाने का अधिकार सदस्यों का बड़ा मूल्यवान अधिकार है और इसका प्रयोग सदस्यों द्वारा किसी भी समय, चर्चाधीन विषय अथवा कार्य के संबंध में कुछ शर्तों के अध्यधीन किया जा सकता है, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

व्यवस्था का प्रश्न कोई विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं है[227] और किसी सदस्य को जानकारी प्राप्त करने के लिए, या अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए, या यह बताने के लिए कि उस समय जब किसी प्रस्ताव को मतदान के लिए सभा के समक्ष रखा जा रहा हो, मत विभाजन घण्टी नहीं बजी या सुनायी नहीं पड़ी, व्यवस्था का प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं है।[228] इसलिए किसी विधेयक के खण्ड के बारे में व्यवस्था का प्रश्न सभा द्वारा उस खण्ड का निपटान किए जाने से पहले ही उठाया जाना चाहिए।[229] इसके अलावा किसी भी सदस्य को ऐसा कोई व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाना चाहिए, जो काल्पनिक अथवा केवल सैद्धान्तिक हो।[230]

मंत्रियों या सदस्यों के कथित परस्पर विरोधी वक्तव्यों[231] पर या सदस्य की निरर्हता से संबंधित व्यवस्था का कोई भी प्रश्न उठाया नहीं जा सकता। प्रश्न काल के दौरान व्यवस्था का प्रश्न नहीं हो सकता।[232] इसके अलावा, प्रश्न काल के पश्चात् जब अविलंबनीय लोक महत्व के मामले उठाए जाते हैं तो उस दौरान भी व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।

---

224. नियम 376 (2) परन्तुक ।
225. *लो.स.वा.वि.*, 10.2.1960, पृ. 157-58 और 161-64 ।
226. *एल.एस. डिबेट्स*, 15.3.1965, कॉ. 4253-55 ।
227. नियम 376 (5) ।
228. नियम 376 (6) तथा *लो.स.वा.वि.*, 21.11.1963, पृ. 482 ।
229. *पी. डिबेट्स* (II), 17.9.1951, कॉ. 2677 ।
230. नियम 376 (6) तथा *एल.एस. डिबेट्स*, 9.12.1954, कॉ. 2391-97 ।
231. निदेश 115; *लो.स.वा.वि.*, 11.6.1962, पृ. 4595; 11.3.1965, पृ. 1599 ।
232. *एल.एस. डिबेट्स*, 23.7.1984, कॉ. 9-10 ।

व्यवस्था के प्रश्न में सभा की प्रक्रिया का उल्लेख होना चाहिये और न कि किसी प्रस्ताव, संकल्प, प्रश्न आदि संबंधी किन्हीं स्वतंत्र तर्क का[233] व्यवस्था के प्रश्न के माध्यम से किसी सदस्य को उस विषय की व्याख्या करने का अधिकार नहीं है, जिस पर चर्चा चल रही हो।[234] व्यवस्था के प्रश्न पर व्यवस्था का कोई प्रश्न नहीं हो सकता।[235] कोई सदस्य एक विषय पर व्यवस्था का प्रश्न एक बार से अधिक नहीं उठा सकता।[236]

किसी विधेयक या किसी संकल्प के संबंध में व्यवस्था का प्रश्न तब तक नहीं उठाया जा सकता, जब तक कि कार्य-सूची में उस विधेयक या संकल्प के सम्बन्ध में सम्मिलित प्रस्ताव प्रस्तुत न कर दिया गया हो और सभा के समक्ष रख न दिया गया हो[237] इसी प्रकार किसी संकल्प या प्रस्ताव की ग्राह्यता[238] के संबंध में कोई व्यवस्था का प्रश्न या कोई ऐसी व्यवस्था का प्रश्न जिसमें यह तर्क दिया गया हो कि किसी संकल्प या प्रस्ताव विशेष को प्रस्तुत करने की अनुमति न दी जाये, तभी उठाया जा सकता है, जब संकल्प या प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया गया हो और सभा के समक्ष रख दिया गया हो। जब ऐसे व्यवस्था के प्रश्न उठाये जाने हों, तो संबंधित सदस्य से कहा जाता है कि वह बिना भाषण दिए संकल्प या प्रस्ताव को प्रस्तुत करे। उसके बाद अध्यक्ष संकल्प या प्रस्ताव को सभा के समक्ष रखता है और फिर व्यवस्था के प्रश्न के संबंध में विनिश्चय करता है। ऐसे मामलों में प्रस्ताव करने वाला सदस्य तब अपना भाषण दे सकता है, जब अध्यक्ष ने व्यवस्था के प्रश्न के संबंध में अपना निर्णय दे दिया हो।[239]

विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति संबंधी प्रस्ताव के बारे में कोई व्यवस्था का प्रश्न उस विधेयक के प्रभारी सदस्य द्वारा प्रस्ताव के प्रस्तुत किए जाने और पीठासीन अधिकारी द्वारा उसे सभा के समक्ष रखे जाने से पहले नहीं उठाया जा सकता।[240]

जिस समय सभा में मत-विभाजन हो रहा हो[241] अथवा जब अध्यक्ष किसी प्रस्ताव को सभा के समक्ष रख रहा हो[242] अथवा अपना विनिर्णय दे रहा हो या कोई टिप्पणी कर रहा

---

233. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 18.6.1952, कॉ. 2038 ।
234. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.1.1922, पृ. 1807 ।
235. *एल.एस. डिबेट्स,* 6.8.1962, कॉ. 115 ।
236. *पूर्वोक्त,* 5.8.1968, कॉ. 253 ।
237. *पूर्वोक्त,* 10.3.1954, कॉ. 1720-21; 25.2.1966, कॉ. 2615-16; 13.4.1963, कॉ. 9440।
238. केन्द्रीय विधान सभा में यह विनिर्णय दिया गया था कि व्यवस्था के प्रश्न पर किसी भी सदस्य को संकल्प की ग्राह्यता का प्रश्न उठाने का अधिकार नहीं है-*एल.ए. डिबेट्स,* 13.11.1944, पृ. 222-23 ।
239. *लो.स.वा.वि.,* 7.9.1962, पृ. 3239 ।
240. *एल.एस. डिबेट्स,* 13.4.1963, कॉ. 9440 ।
241. *पूर्वोक्त,* 15.2.1966, कॉ. 394-402 ।
242. *पूर्वोक्त,* 21.11.1963, कॉ. 913 ।

हो अथवा अन्यथा बोल रहा हो, उस समय व्यवस्था का कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

सभा में यह प्रथा सुस्थापित हो चुकी है कि अध्यक्ष व्यवस्था के किसी ऐसे प्रश्न के संबंध में विनिर्णय नहीं देता; जिसमें यह प्रश्न उठाया गया हो कि कोई विधेयक संवैधानिक रूप से सभा के विधायी कार्य के अंतर्गत आता है या नहीं अथवा किसी प्रस्ताव/संकल्प पर होने वाली चर्चा के तहत कोई घोषणा/करार/संधि संवैधानिक है अथवा नहीं; ऐसे विषयों का विनिश्चय करना सभा की जिम्मेदारी है।[243] अध्यक्ष इस प्रश्न के बारे में भी अपना विनिश्चय नहीं देता है कि क्या कोई संशोधनकारी विधेयक संविधान के किसी अनुच्छेद के प्रतिकूल है अथवा नहीं।[244]

ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जिनमें व्यवस्था के प्रश्न की आड़ में कतिपय मामले सभा में उठाये गये हैं।[245] व्यवस्था के प्रश्न की आड़ में सदस्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का मंत्रियों द्वारा उत्तर दिये जाने की आशा की जाती है। व्यवस्था के प्रश्नों के बारे में विनिश्चय अध्यक्ष को करना होता है, न कि मंत्रियों को।[246]

अब यह प्रथा बन गयी है कि किसी सदस्य को व्यवस्था का प्रश्न उठाने की अनुमति देने से पहले उससे यह कहा जाता है कि वह संविधान का वह अनुच्छेद, नियम, निदेश या विनिर्णय या प्रथा विशेष बताये, जिसका उल्लंघन या अतिक्रमण हो रहा है। जो सदस्य संबंधित नियम आदि न बता सके उन्हें व्यवस्था का प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जाती।[247]

> 8 मार्च, 1965 को अध्यक्ष ने सभा में घोषणा की कि व्यवस्था का प्रश्न उठाने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया का अनुसरण किया जायेगा और सदस्यों से कहा कि वे उसका ध्यान रखें जिससे कि कार्य संचालन अधिक अच्छी तरह किया जा सके।[248]
>
> जिस सदस्य को व्यवस्था का प्रश्न उठाना हो, उसे उठकर कहना चाहिए, "व्यवस्था का प्रश्न"। उसे तब तक अपना व्यवस्था का प्रश्न बताना प्रारंभ नहीं करना

---

243. *एल.ए. डिबेट्स,* 17.2.1942, पृ. 280-83; 25.3.1942, पृ. 1533-54; *सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स,* 9.12.1947, पृ. 1568; *पी. डिबेट्स* (II), 8.2.1951, कॉ. 2607-08; 24.4.1951, का. 7366; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 25.11.1952, कॉ. 1148; 9.5.1953, कॉ. 6289-90; 28.8.1953, कॉ. 1789-90; *लो.स.वा.वि.* (II), 15.4.1955, कॉ. 5324; 1.9.1956, पृ. 1736, 1746-47; 13.11.1957, पृ. 223-24; 21.12.1957, पृ. 3516; 6.5.1958, कॉ. 13372-77; 29.9.1958, कॉ. 8370-73; *लो.स.वा.वि.*, 3.12.1958, पृ. 1406-10; 9.12.1958, कॉ. 3996-97; 3.4.1959, पृ. 4708-11; 19.12.1960, पृ. 3059; 4.5.1963, पृ. 5948; 16.2.1966, कॉ. 643-44; 19.8.1966, पृ. 108-10; 29.11.1966, पृ. 2528-30; 23.6.1967, पृ. 3284-87; 12.8.1967, पृ. 1811-12; 1.9.1976, पृ. 9-10 ।
244. *लो.स.वा.वि.*, 31.8.1976, पृ. 102-20 ।
245. *पूर्वोक्त,* 8.12.1965, कॉ. 10326-27; 21.2.1986, कॉ. 303, 305, 306; 4.8.1986, कॉ. 317 ।
246. *पूर्वोक्त,* 29.4.1968, कॉ. 311-12; 31.7.2003, कॉ. 317-18; 5.8.2003, कॉ. 497-500।
247. *पूर्वोक्त,* 9.12.1965, कॉ. 10549-52; 17.4.1978, कॉ. 295-96 ।
248. *लो.स.वा.वि.*, 8.3.1965, कॉ. 2979-81 ।

चाहिए जब तक कि पीठासीन अधिकारी उसे बोलने के लिए न कहे। जब उसे पीठासीन अधिकारी द्वारा बुलाया जाये, तभी उसे अपने व्यवस्था के प्रश्न पर बोलना प्रारंभ करना चाहिए;

व्यवस्था का प्रश्न बताते समय सदस्य को सभा की प्रक्रिया से संबंधित उस विशिष्ट नियम या संविधान के उपबंध का उल्लेख करना चाहिये, जिसकी उपेक्षा या अवहेलना या उल्लंघन किया गया हो;

जब अध्यक्ष खड़ा हो तो किसी भी सदस्य को न तो उठना चाहिये और न बैठे-बैठे या खड़े होकर बोलना चाहिए।[249] जब अध्यक्ष सभा को संबोधित कर रहा हो तो उस समय व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। अध्यक्ष की बात खामोशी से सुनी जानी चाहिए और जो सदस्य बोलना चाहता हो, उसे तभी उठकर बोलना शुरू करना चाहिये, जब अध्यक्ष स्वयं बैठ जाये और सदस्य से बोलने के लिये कहे;

जिन विषयों के संबंध में अध्यक्ष शिकायत दूर नहीं कर सकता, उन्हें व्यवस्था के प्रश्न का विषय नहीं बनाना चाहिये। यदि कोई सदस्य किसी मंत्री से कोई स्पष्टीकरण चाहता हो, या किसी मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य पर आपत्ति करना चाहता हो, उसे अध्यक्ष की अनुमति से यह बात स्पष्ट रूप से सभा में करनी चाहिये और इस बात को व्यवस्था के प्रश्न की आड़ में नहीं उठाना चाहिये।[250]

जिस व्यवस्था के प्रश्न के बारे में पहले ही विनिश्चय हो चुका हो, उसे इस आधार पर पुन: नहीं उठाया जा सकता कि जब इसे पहली बार उठाया गया था तो सदस्य उस नियम की खोज और उसे उद्धृत नहीं कर सका था जिसके अंतर्गत वह व्यवस्था का प्रश्न उठाना चाहता था।[251]

व्यवस्था का प्रश्न उठाये जाने पर, उस समय जो सदस्य बोल रहा हो उसे बैठ जाना चाहिए।[252] व्यवस्था के प्रश्न के बारे में किसी भी प्रकार के वाद-विवाद की अनुमति नहीं है, परन्तु अध्यक्ष यदि उचित समझे तो अपना विनिश्चय देने से पहले सदस्यों की बात सुन सकता है।[253]

जब किसी विषय पर दो या अधिक व्यवस्था के प्रश्न उठाए जाएं, तो अध्यक्ष एक-एक करके उनके संबंध में अपना विनिश्चय दे सकता है।[254]

व्यवस्था का प्रश्न उठाने के इच्छुक सदस्य को, अध्यक्ष द्वारा विनिश्चय दिए जाने से पहले अपनी बात कहने का अधिकार है। सदस्य द्वारा व्यवस्था के प्रश्न संबंधी बात पूरी किए

---

249. *पूर्वोक्त*, 13.5.1957, कॉ. 66 ।
250. *लो.स.वा.वि.*, 8.3.1965, कॉ. 2975-81 ।
251. *पूर्वोक्त*, 25.8.1966, कॉ. 7083-85 ।
252. *एल.ए. डिबेट्स*, 25.3.1931, पृ. 2653 ।
253. नियम 376 (4) ।
254. *एल.एस. डिबेट्स*, 5.8.1966, कॉ. 2944-45; 23.11.1966, कॉ. 4998-5000 ।

जाने पर अध्यक्ष यह विनिश्चय करता है कि उठाया गया प्रश्न व्यवस्था का प्रश्न है अथवा नहीं और यदि हो तो वह उस पर अपना विनिश्चय देता है, जो अंतिम होता है।[255] सदस्य अध्यक्ष के विनिर्णय के बारे में आपत्ति नहीं कर सकते क्योंकि ऐसा करना सभा और अध्यक्ष की अवमानना है।[256] पीठासीन अधिकारी द्वारा दिए गए विनिर्णय के बारे में सभा में चर्चा नहीं की जा सकती और न ही उसके बारे में कोई स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है।[257]

सूचनाओं की ग्राह्यता के बारे में अध्यक्ष के विनिश्चय के विरुद्ध व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[258]

यदि अध्यक्ष किसी सदस्य द्वारा उठाये गए व्यवस्था के प्रश्न का संज्ञान न ले, तो वह सर्वथा नियमानुकूल है।[259] अध्यक्ष किसी व्यवस्था के प्रश्न पर उस समय अपना विनिर्णय सुरक्षित रख सकता है[260] और बाद में किसी दिन उस पर अपना विनिर्णय दे सकता है[261] इसी प्रकार उपाध्यक्ष या सभापति तालिका का कोई पीठासीन सदस्य किसी व्यवस्था के प्रश्न को अध्यक्ष के विनिश्चय के लिए सुरक्षित रख सकता है।

जब कोई व्यवस्था का प्रश्न किसी ऐसे कार्य विशेष के संबंध में उठाया जाये जो उस समय सभा के समक्ष हो तो व्यवस्था के प्रश्न के निपटान में लगाया गया समय उस कार्य के लिए नियत कुल समय में गिना जाता है।[262]

नियम 377 के अधीन मामले उठाया जाना

नियम 377 के अधीन कोई भी सदस्य अध्यक्ष की पूर्व स्वीकृति से सभा की जानकारी में कोई भी ऐसा मामला ला सकता है, जो व्यवस्था का प्रश्न न हो। इस प्रयोजन के लिए उठाये जाने वाले प्रस्तावित मामले का संक्षेप में उल्लेख करते हुए महासचिव को एक लिखित सूचना देनी होती है। जबकि, पहले नियम 377 के अधीन उठाये जाने के लिए जिन मामलों की अनुमति दी जाती थी वे संवैधानिक अथवा कानूनी महत्व के विषय ही होते थे जो सभा के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते थे अथवा जो सभा की कार्यवाही अथवा उसकी प्रक्रिया से संबंधित होते थे जो व्यवस्था के प्रश्नों के समान ही होते थे, परन्तु व्यवस्था के प्रश्नों की परिधि में नहीं आते थे; जबकि छठी लोक सभा के चौथे सत्र से अपेक्षाकृत अधिक उदार

---

255. नियम 376 (3) ।
256. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 9.3.1953, कॉ. 1588-90; 24.8.1953, कॉ. 1366; 7.9.1956, कॉ. 6096-97; *लो.स.वा.वि.*, 28.4.1958, कॉ. 11944-45, 4.2.1971, कॉ. 143 ।
257. *लो.स.वा.वि.*, 3.12.1958, कॉ. 2973; 7.8.1959, कॉ. 1227 और 1230 ।
258. *पूर्वोक्त*, 26.8.1976, कॉ. 160-61 ।
259. *पी. डिबेट्स* (I), 10.3.1951, कॉ. 2127-28 ।
260. *लो.स.वा.वि.*, 5.8.1966, कॉ. 2944-45, 23.11.1966, कॉ. 4998-5000 ।
261. *पूर्वोक्त,* 8.12.1955, कॉ. 1813-14 ।
262. *लो.स.वा.वि.*, 20.7.1956, कॉ. 437 ।

दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा। नियम 377 के अंतर्गत प्रत्येक दिन पांच सूचनाओं की अनुमति दी जाने लगी ताकि सदस्य यथाशीघ्र विशेष रूप से अपने निर्वाचन क्षेत्रों के बारे में लोक महत्व के विभिन्न मामले उठा सकें।[263] सातवीं लोक सभा के दौरान प्रतिदिन आठ मामलों को उठाये जाने की अनुमति की परम्परा प्रारम्भ हुई जो नवम्बर, 1997 तक चलती रही। तत्पश्चात् यह विनिश्चय किया गया कि नियम 377 के अधीन वर्तमान में उठाये जा रहे मामलों की संख्या प्रतिदिन 8 से बढ़ाकर 24 कर दी जाये जिसके आवंटन का आधार राजनीतिक दलों/समूहों के संसद सदस्यों की संख्या हो। सदस्य सचिवालय द्वारा स्वीकृत अपनी सूचनाओं के मूल पाठ का संक्षिप्त विषय पढ़ेंगे और संबंधित मामले का मूल पाठ सभा पटल पर रखा हुआ माना जाएगा।[264]

तथापि, ग्यारहवीं लोक सभा के भंग होने तक अर्थात् 4 दिसम्बर, 1997 तक इस विनिश्चय को अमल में नहीं लाया जा सका, क्योंकि नियम 377 के अधीन मामलों को लगातार व्यवधान के कारण सभा में उठाना संभव नहीं हो सका।

वास्तव में इसे 26 मार्च, 1998 यानि बारहवीं लोक सभा के प्रथम सत्र से अमल में लाया गया। तत्पश्चात् 29 मई, 1998 को हुई कार्य मंत्रणा समिति की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि प्रतिदिन 24 सदस्यों के बजाय 12 सदस्यों को अपने मामले को उठाने की अनुमति होगी तथा इस आवंटन का आधार लोक सभा में राजनीतिक दलों/समूहों के सदस्यों की संख्या होगीं। अध्यक्ष की दलों के नेताओं के साथ 19 नवम्बर, 2000 को हुई बैठक में यह निर्णय लिया गया कि प्रयोग के आधार पर नियम 377 के अधीन प्रतिदिन उठाए जाने वाले मामलों की संख्या 12 से बढ़ाकर 15 की जाए तथा सूचनाओं के मूल पाठ में शब्दों की संख्या 250 से घटाकर 150 कर दी जाए। यह प्रथा 27 नवम्बर, 2000 से लागू हुई।[265] इसके अतिरिक्त दिनांक 20 अप्रैल, 2005 को लोक सभा में दलों के नेताओं के साथ हुई लोक सभा अध्यक्ष की बैठक में यह निर्णय लिया गया था कि नियम 377 के अधीन उठाए जाने वाले मामलों की संख्या को प्रतिदिन 15 से बढ़ाकर 20 कर दिया जाना चाहिए। यह निर्णय 25 अप्रैल, 2005 से लागू[266] हुआ। यह प्रथा अभी भी चल रही है। सदस्यों को संबंधित मामलों के मूल पाठ को पढ़ने की अनुमति दी जाती है।[267]

अब इस नियम के दायरे का विस्तार कर दिया गया है जिससे सदस्य अपनी बात को सभा के कार्यवाही वृत्तांत में सम्मिलित करा सकें। ये सामान्यत: उन मामलों के बारे में होने चाहिए जो प्रश्नों, अल्प सूचना प्रश्नों, ध्यानाकर्षण सूचनाओं और प्रस्तावों आदि संबंधी नियमों के अंतर्गत नहीं उठाये जा सकते। उठाये गये मुद्दे के बारे में संबंधित मंत्री अथवा सरकार

---

263. *समाचार-भाग* 2, 24.4.1978, समाचार-भाग 2, 2.8.1978 ।

264. *समाचार-भाग* 2, 19.11.1997, पैरा 1591 ।

265. *समाचार-भाग* 2, 24.11.2000, पैरा 1405 ।

266. *समाचार-भाग* 2, 21.4.2005, पैरा. 1143 ।

267. *समाचार-भाग* 2, 29.5.1998, पैरा. 233 ।

द्वारा तत्काल उत्तर दिए जाने की कोई बाध्यता नहीं है। जब मामला उठाया जाता है तो उस समय संबंधित मंत्री की सभा में उपस्थिति भी अनिवार्य नहीं है।

> 30 जून, 1977 को नियम 377 के अधीन एक मामले को उठाने के इच्छुक सदस्य ने अध्यक्ष से यह शिकायत की कि संबंधित मंत्री (वित्त मंत्री) सभा में उपस्थित नहीं थे। एक अन्य मंत्री (संसदीय कार्य मंत्री) की उपस्थिति की ओर सदस्य का ध्यान आकर्षित करते हुए, अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया कि नियम 377 में यह कहा गया है कि कोई भी सदस्य अध्यक्ष की अनुमति से किसी विषय को उठा सकता है परन्तु इसके अंतर्गत मंत्री सभा में उपस्थित रहने और उस विषय के बारे में तत्काल उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है। सभा में उपस्थित अन्य मंत्री इस मामले को नोट कर सकते हैं और संबंधित मंत्री उठाये गये मामले का अध्ययन करने और उसकी जांच करने के लिए समय ले सकते हैं।[268]

नियम 377 के अधीन मामला उठाने के लिए महासचिव को लिखित में सूचना देनी होती है। सभा में दिए जाने वाले वक्तव्य का पाठ संक्षिप्त और उठाए जाने वाले विषय से संबद्ध होना चाहिए तथा सामान्यत: 150 शब्दों से अधिक का नहीं होना चाहिए। कोई भी मामला अध्यक्ष द्वारा अनुमति दिए बिना नहीं उठाया जा सकता तथा केवल स्वीकृत पाठ ही कार्यवाही वृत्तांत में शामिल किया जाता है।

सूचना देने का समय

नियम 377 के अधीन मामला उठाने के लिए सूचना सत्र के आमंत्रण के साथ भेजे गए समाचार भाग-2 में निर्दिष्ट तारीख से दी जा सकती है। सामान्यत: सूचना सत्र शुरू होने के तीन कार्य दिवस पहले से ली जाती है।

पहले दिन पूर्वाह्न 10.00 से 10.30 बजे के बीच मिली सूचनाओं को एक ही समय प्राप्त हुआ माना जाता है तथा उनकी परस्पर पूर्ववर्तिता निर्धारित करने के लिए उनका एक साथ बैलट किया जाता है। इसके बाद प्राप्त होने वाली सूचनाओं को उसके प्राप्त होने के दिन और समय के अनुसार रखा जाता है।

अन्य दिनों में ये सूचनाएं प्रात: 10.00 बजे तक दी जाती हैं। किसी दिन 10.00 बजे के बाद दी गई सूचनाएं सभा की अगली बैठक के लिए दी गई मानी जाती हैं। परन्तु, यह आवश्यक नहीं कि किसी दिन विशेष के लिए दी गई सूचनाओं के विषय को उसी दिन उठाने की अनुमति दे दी जायेगी।

किसी दिन एक ही समय पर प्राप्त सूचनाओं की परस्पर पूर्ववर्तिता निर्धारित करने के लिए उनका बैलट किया जाता है।

सूचनाओं की वैधता

नियम 377 के अधीन दी जाने वाली सभी सूचनाएं उस सप्ताह के लिए वैध होती है

---

268. *लो.स.वा.वि.*, 30.6.1977, कॉ. 152 ।

जिस सप्ताह में वे दी गई हैं। सप्ताह के जिस अंतिम दिन सभा की बैठक हो, उस दिन पूर्वाह्न 10.00 बजे तक मिलने वाली जो सूचनाएं मामला उठाने के लिए चुनी नहीं जातीं, वे स्वतः ही व्यपगत हो जाती हैं। तथापि, वे सूचनाएं अगले सप्ताह के लिए फिर दी जा सकती है। अगले सप्ताह के लिए सूचनाएं सप्ताह के उस अन्तिम दिन, जिस दिन की बैठक हो पूर्वाह्न 10.00 बजे के बाद ही दी जा सकती हैं तथा वे अगले समूचे सप्ताह के लिए वैध होंगी। ऐसी सभी सूचनाएं जो 10.00 बजे के बाद परन्तु 10.30 बजे तक प्राप्त होती हैं, एक ही समय प्राप्त हुई मानी जाती हैं तथा उनकी परस्पर पूर्ववर्तिता निर्धारित करने के लिए उनका एक साथ बैलट किया जाता है। जो सूचनाएं 10.30 बजे के बाद प्राप्त होती हैं उन्हें उनके प्राप्त होने के समय के अनुसार दर्ज किया जाता है।

जब अध्यक्ष सूचना में उठाए गए मामले के बारे में तथ्य जानना चाहे तो तथ्य मालूम करने के लिए उसे संबंधित मंत्रालय को भेजा जा सकता है। तथ्यों की जानकारी के लिए भेजी गई सूचना तब तक व्यपगत नहीं होती जब तक उसे अंतिम रूप से न निपटाया जाये।

ग्राह्यता की शर्तें[269]

सूचना को ग्राह्य बनाने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी होंगी:—

(i) वह उस विषय से संबंधित नहीं होती जो मुख्यतः भारत सरकार से संबंधित नहीं है;

(ii) वह उस विषय के संबंध में नहीं होगी जिस पर उसी सत्र में चर्चा की जा चुकी हो या सत्र के दौरान इस नियम के अन्तर्गत, सदस्य द्वारा पहले उठाए गए विषय के समान हो;

(iii) उसमें 150 से अधिक शब्द नहीं होंगे;[270]

(iv) उसमें एक से अधिक प्रश्न नहीं उठाये जाएंगे;

(v) उसमें प्रतर्क, अनुमान, व्यंग्यात्मक पद, अभ्यारोप, विशेषण या मानहानिकारक कथन नहीं होंगे; और

(vi) उसमें संसदीय/सलाहकार समिति के कार्यवाही वृत्तांतों का उल्लेख नहीं किया जाएगा।

मामला उठाए जाने का समय

सदस्य को जिस दिन मामला उठाने की अनुमति दी जाती है उस दिन उसे अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत पाठ की एक प्रति दे दी जाती है। पहले इस मद को कार्य-सूची में सम्मिलित नहीं किया जाता था तथा इसे निदेश-2 में निर्धारित प्रक्रमों अर्थात् पत्रों को पटल पर रखने तथा विधेयकों को पुरःस्थापित करने के बाद लिया जाता था। तथापि, 7 अगस्त, 1990 से 'नियम

---

269. नियम 377क ।

270. माननीय अध्यक्ष की दलों के नेताओं के साथ 19.11.2000 को हुई बैठक में लिए गये निर्णय के द्वारा पाठ को लगभग 150 शब्दों तक सीमित कर दिया गया है। (*देखिए समाचार भाग* (II) दिनांक 24.11.2000) ।

377 के अधीन मामले' शीर्ष में एक सामान्य प्रविष्टि करके इसे कार्य-सूची में शामिल किया जाता है। नवंबर, 1997 से, यह निश्चय किया गया कि इस मद को अपराह्न 5.30 बजे शुरू किया जाएगा।

तद्नन्तर, 29 मई, 1998 को हुई मंत्रणा समिति की बैठक में यह निश्चय किया गया कि 'नियम 377 के अधीन मामले' शीर्ष की मद प्रश्न काल के बाद और विविध प्रकार के कार्यों की सापेक्ष अग्रता संबंधी अध्यक्ष के निदेश के अधीन निदेश संख्या 2 के अनुसार कार्य सूची में सूचीबद्ध अन्य औपचारिक मदों के निपटान के बाद ली जाएगी।

मामले उठाने की सीमा

एक सदस्य सप्ताह में केवल एक मामला उठा सकता है।

जिस दिन (सामान्यत: शुक्रवार को) संसदीय कार्य मंत्री सरकारी कार्य के बारे में वक्तव्य देता है, उस दिन नियम 377 के अधीन मामले नहीं उठाए जाते।

नियम 377 के अधीन उठाए गए मामलों के संगत कार्यवाही वृत्तांत को मंत्री के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए अगले कार्य दिवस को संबंधित मंत्रालय के पास भेज दिया जाता है। संगत कार्यवाही वृत्तांत सहित इस प्रकार के पत्र व्यवहार की प्रतियां संसदीय कार्य मंत्रालय को भी भेजी जाती हैं जिसे सदस्यों द्वारा उठाए गए मामलों के संबंध में की जाने वाली कार्यवाही में समन्वय रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। सदस्यों द्वारा नियम 377 के अधीन उठाए गए मामलों के संबंध में मंत्री सदस्यों को पत्र लिखते हैं जिनमें उन्हें मामले पर सरकार का मत और/अथवा सरकार द्वारा की गई कार्यवाही से अवगत कराया जाता है। इसके अतिरिक्त, नियम समिति (आठवीं लोकसभा-चौथा प्रतिवेदन) द्वारा लिए गए निर्णय और लोक सभा द्वारा इस पर दी गई सहमति के अनुसार, मंत्री नियम 377 के अधीन सदस्यों द्वारा उठाए गए मामलों के संबंध मे एक माह के अन्दर उनको सीधे उत्तर भेजते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि कोई स्पष्टीकरण लेना हो, तो उसे सदस्य संबंधित मंत्री/मंत्रालय से सीधे ले सकते हैं।

सामान्यत: मंत्री नियम 377 के अधीन उठाए गए मामलों पर वक्तव्य नहीं देते हैं। तथापि, यदि कोई मंत्री विषय पर वक्तव्य देना चाहे तो वह अध्यक्ष की अनुमति से दे सकता है।

नियम 377 के अधीन उठाए गए मामलों पर मंत्रालयों द्वारा भेजे गए उत्तरों की स्थिति की समीक्षा अध्यक्ष की प्रत्येक सत्र की शुरुआत से पहले दलों के नेताओं के साथ होने वाली बैठक में की जाती है।

सभा पटल पर रखा गया माना जाना

चूंकि सदस्यों को केवल अपने मामलों के अनुमोदित पाठ को पढ़ने की अनुमति होती है। एक परंपरा विकसित हुई जिसके अन्तर्गत कभी-कभार कार्य सूची में सूचीबद्ध महत्वपूर्ण मदों पर विचार करने के लिए सभा का समय बचाने के लिए अध्यक्ष पीठ द्वारा इस आशय की घोषणा के बाद नियम 377 के अधीन मामलों को सभा पटल पर रखा गया। माना गया नियम 377 के अधीन उठाए जाने के लिए अनुमोदित सभी बीस मामलों को सभा पटल पर रखा गया माना गया और वे उस दिन की कार्यवाही का हिस्सा बने।

तथापि, जब यह बात ध्यान में आई कि इस परम्परा के अन्तर्गत उन सदस्यों के मामले भी जो उस दिन सभा में उपस्थित नहीं थे, भी सभा की कार्यवाही में सम्मिलित किए जा रहे हैं, तो प्रक्रिया में संशोधन किया गया।

5 नवम्बर, 2009 को अध्यक्ष ने निर्णय लिया कि यदि मामलों को सभा पटल पर रखा गया माना जाना है तो अध्यक्षपीठ द्वारा एक घोषणा की जाएगी कि उस दिन जिन सदस्यों को नियम 377 के अधीन मामले उठाने की अनुमति दी गई है वह सदस्य 20 मिनट के भीतर मामलों का अनुमोदित पाठ भेज सकते हैं। तत्पश्चात् जिन सदस्यों को अनुमति दी गई है और जो अपने मामले उठाने के इच्छुक हैं। वह सभा की कार्यवाही में सम्मिलित किए जाने के लिए व्यक्तिगत रूप से मामले का पाठ 20 मिनट के अन्तर्गत सभा पटल पर दे सकते हैं। केवल उन्हीं मामलों की सभा पटल पर रखा गया माना जाएगा और कार्यवाही का भाग बनेंगे जो निर्धारित समय के अन्तर्गत सभा पटल पर प्राप्त होंगे। नियम 377 के अधीन जो मामले निर्धारित समय सीमा के अन्तर्गत सभा पटल पर प्राप्त नहीं होंगे वह कार्यवाही का भाग नहीं बनेंगे और उन्हें व्यपगत माना जाएगा।

यह निर्णय पन्द्रहवीं लोक सभा के तीसरे सत्र से प्रभावी हुआ।

'प्रश्न काल' के पश्चात अर्थात्, 'शून्य काल' के दौरान उठाए जाने वाले अविलम्बनीय लोक महत्व के मामले

जन प्रतिनिधियों के रूप में संसद और राज्य विधानमंडलों के सदस्य सदन में लोक महत्व के मामलों को उठाने, लोगों की शिकायतों को अभिव्यक्त करने और उनका समाधान खोजने; सरकार से सूचना प्राप्त करने और विधायिका के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही को लागू करने के लिए कर्त्तव्यबद्ध हैं।

भारत जैसे विशाल देश में गंभीर और आक्स्मिक किस्म के मुद्दे प्राय: प्रतिदिन उठते रहते हैं और उनको तुरन्त सरकार के ध्यान में लाया जाना आवश्यक है। जब ऐसे मामले उठते हैं और सदस्यों के मन को उद्वेलित करते हैं तो वे महसूस करते हैं कि वे सामान्य प्रक्रिया नियमों का अनुपालन करने की प्रतीक्षा नहीं कर सकते और यह कि उन्हें कार्यसूची के अनुसार सदन द्वारा नियमित कार्यवाही शुरू करने से पहले ही अवसर प्राप्त होते हैं। सदन में वे मामले सबसे पहले उठाने चाहिए।

इसी पृष्ठभूमि में लोक सभा में 'शून्य काल'—जिससे सदस्यों को उन मामलों, जिन्हें वे अविलम्बनीय लोक महत्व का समझते हैं और जिसको उठाने में कोई विलम्ब नहीं किया जा सकता, चाहे नियमों में इसकी अनुमति भी न हो, को उठाने का सदस्यों को अवसर मिलता है—के उद्भव को देखना होगा।

इस प्रकार 'शून्य काल' को 'प्रश्न काल' की समाप्ति और दिन की कार्यवाही के लिए सूचीबद्ध मदों को लेने के बीच मध्यान्तर काल के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है। संसद की बैठक पूर्वाह्न 11 बजे शुरू होती है और 'प्रश्न काल' के बाद मध्याह्न 12 बजे 'शून्य काल' शुरू होता है। यह आवश्यक नहीं कि 'शून्य काल' जैसा कि इस शब्द के अर्थ से प्रतीत होता है एक घंटे तक चले।

'शून्य काल' शब्द का उद्भव

लोक सभा में 'शून्य काल' शब्द का उद्भव सन् 1960 के आस-पास हुआ जब प्रश्न काल के तुरन्त बाद सदस्यों द्वारा अलिम्बनीय लोक महत्व के मामलों को स्थगन प्रस्ताव, व्यवस्था का प्रश्न इत्यादि के रूप में उठाया जाने लगा। यद्यपि अध्यक्ष इस प्रकार की अधिकांश सूचनाओं की अनुमति नहीं देते थे किन्तु कभी-कभी सदस्यों को सभा के अन्दर उन मामलों का उल्लेख करने का अवसर मिल जाता था। इससे कुछ हद तक उनका प्रयोजन सिद्ध हो जाता था और इससे उनको थोड़ा संतोष हो जाता था कि कम से कम वे उन मामलों की ओर सभा और सरकार का ध्यान आकर्षित करने और उपयुक्त कार्यवाही की मांग करने में सफल रहे।

धीरे-धीरे, प्रश्न काल के बाद और सभा में कार्य की सूचीबद्ध मदों को लेने से पहले के बीच के मध्यान्तर काल—जिसे 'शून्य काल' के नाम से जाना जाता है—का उपयोग सदस्य इस प्रकार के मामलों को उठाने में करने लगे और यह परिपाटी सभा की कार्यवाही का नियमित लेकिन अनभिज्ञान हिस्सा बन गई। इस समय का उपयोग वरिष्ठ सांसदों ने वास्तव में कुछ महत्वपूर्व मुद्दों की ओर सभा तथा उसके माध्यम से राष्ट्र का ध्यान बड़ी दक्षता से आकर्षित किया। समय बीतने के साथ ही, शून्य काल की कार्यवाहियां मीडिया के माध्यम से सुर्खियों में आनी शुरू हो गईं जिससे अधिकाधिक सदस्य इस तात्कालिक सहज सुलभ साधन का सहारा लेने को प्रोत्साहित हुए।

कुछ वर्षों में यह परिपाटी बहुत से राज्य विधानमंडलों में भी लोकप्रिय हो गई।

हालांकि 'शून्य काल' सदस्यों में लोकप्रिय और स्वीकार्य हो रहा था किन्तु कई बार सदन के बहुमूल्य समय पर अप्रत्याशित अतिक्रमण, कभी-कभी कुछ सदस्यों के उग्र और अनुशासनहीन और अभद्र आचरण को देखते हुए पीठासीन अधिकारियों द्वारा स्वीकृत नहीं दी जाती थी। इसके साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि 'शून्य काल' जीवन्त और महत्वपूर्ण बन चुका है। यह महत्वपूर्ण मामलों को उठाने और लोक शिकायतों को अभिव्यक्त करने का साधन था और इसलिए इसे समाप्त नहीं किया जा सकता था। यद्यपि एक ओर यह मत था कि यह सामान्य कार्य के निपटान को सुनिश्चत करने में पीठासीन अधिकारियों के समक्ष बहुत बाधा है, किन्तु दूसरी ओर संसदीय परिपाटी में इसके योगदान के कारण इसे मौलिक चीज माना जाने लगा।

चूंकि इस प्रकार के मामलों को उठाने में लोक सभा का काफी समय लगता है इसलिए सन् 1990 में 'शून्य काल' को विनियमित करने का निर्णय लिया गया ताकि कार्य का सुचारू ढंग से निपटान सुनिश्चित किया जा सके और पीठासीन अधिकारी को पहले से यह भी पता चल सके कि सदस्य कौन से मुद्दे उठाना चाहते हैं।

तभी से 'शून्य काल' के दौरान कार्यवाही संचालन का प्रयास एक सतत् प्रक्रिया है। लोक सभा में एक के बाद एक आने वाले अध्यक्षों ने दलों के नेताओं के साथ की गई बैठकों तथा कार्य मंत्रणा समिति में इस मामले पर विचार-विमर्श किया है। उन्होंने कई अवसरों पर

नेताओं को यह सलाह दी है कि वे अपने दल के सदस्यों को आत्म-संयम बरतने के लिए समझाएं तथा यह बात भी समझाएं कि वे ऐसे मामलों, जो तात्कालिक राष्ट्रीय महत्व के नहीं हैं, को न उठाएं।

प्रक्रियात्मक विनियमों का क्रमिक विकास

कुछ समय से 'शून्य काल' के संचालन से संबंधित मामला भारत में विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट कर रहा है। महाराष्ट्र विधान परिषद के सभापति प्रो. नारायण एस. फरांडे की अध्यक्षता में 'प्रक्रियात्मक एकरूपता तथा सदन के समय की बेहतर आयोजना' विषय पर पीठासीन अधिकारियों संबंधी समिति ने विचार-विमर्श किया था और अपनी रिपोर्ट जून, 2001 में पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में प्रस्तुत की थी। समिति ने यह सिफारिश की थी कि प्रश्न काल के पश्चात् तथा सभा की औपचारिक कार्यवाही शुरू होने से पहले उठाए गये मामलों, चाहे वे शून्य काल के नाम से जाने जाते हों अथवा विशेष उल्लेख अथवा किसी अन्य नाम से जाने जाते हों, को इस प्रयोजनार्थ समुचित दिशानिर्देश निर्धारित करके सख्ती से विनियमित किये जाने की आवश्यकता है। समिति में यह विचार भी प्रकट किया गया कि पीठासीन अधिकारी द्वारा शून्य काल के लिए किसी भी सूरत में प्रतिदिन 30 मिनट से ज्यादा समय की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

दिनांक 4 से 6 फरवरी, 2003 तक मुंबई में हुए भारत के विधानमण्डलों के पीठासीन अधिकारियों के 66वें सम्मेलन में लोक सभा अध्यक्ष तथा सम्मेलन के सभापति श्री मनोहर जोशी ने दिनांक 6 फरवरी, 2003 को "शून्य काल के विनियमन" के संबंध में पीठासीन अधिकारियों की एक समिति का गठन किया।

समिति ने, दिनांक 29 मार्च, 2003 को भोपाल में, दिनांक 24 जून, 2003 को जयपुर में, दिनांक 23 सितम्बर, 2003 को नई दिल्ली में तथा दिनांक 14 नवम्बर 2003 को जम्मू में, चार बैठकें कीं। समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश भी की:—

(i) शून्य काल को 'विशेष उल्लेख' का नाम दिया जाए;

(ii) 'विशेष उल्लेख, मद प्रश्न काल के पश्चात् लिया जाए;

(iii) 'कोई सदस्य' विशेष उल्लेख के दौरान किसी मामले को उठाने की सूचना केवल तभी दे सकेगा जब सही समय पर मुद्दे पर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए कोई अन्य व्यवस्था उपलब्ध नहीं होगी;

(iv) केवल उन्हीं मामलों को उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए जो पिछले दिन की बैठक की समाप्ति के बाद और इस दिन की बैठक की शुरूआत से पहले उत्पन्न हुए हों।

(v) विशेष उल्लेख के दौरान उठाए जाने के लिए, मामले की गंभीरता, महत्व तथा तात्कालिक आवश्यकता प्रमुख मानदण्ड होने चाहिए;

(vi) बैठक आरंभ होने से कम से कम एक घंटा पहले सदस्यों द्वारा इसके लिए सूचनाएं दी जानी चाहिएं;

(vii) सूचना के मूल पाठ की शब्द सीमा अधिकतम 150 तक हो;

(viii) विशेष उल्लेख की अवधि 20 मिनट होनी चाहिए। तथापि, यह अवधि विधानमंडल के सदस्यों की संख्या तथा अध्यक्षपीठ के विवेक पर निर्भर होने के कारण भिन्न-भिन्न हो सकती है; और

(ix) यदि संबंधित मंत्री के पास सूचना तत्काल उपलब्ध है तो वह उठाये गये मामले का तुरंत उत्तर दे, अन्यथा मंत्री द्वारा मामले का शीघ्रातिशीघ्र उत्तर दिया जाए।

दिनांक 9-10 अक्तूबर, 2004 को कोलकाता में हुए भारत के विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों के 67वें सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया था कि शून्य काल को विनियमित करने हेतु विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए मुंबई में हुए 66वें सम्मेलन में गठित समिति द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिशों को कार्यान्वित करने का कार्य विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाये।

कोलकाता में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में लिए गये निर्णय के अनुसरण में माननीय अध्यक्ष ने दिनांक 24 जुलाई, 2005 को लोक सभा में दलों के नेताओं के साथ बैठक की तथा यह निर्णय लिया कि प्रश्न काल के पश्चात् उठाए गये अविलंबनीय लोक महत्व के विषय चरणबद्ध ढंग से लिये जाएं। प्रथम चरण में प्रश्न काल के पश्चात् अविलंबनीय राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्व के पांच विषय लिये जायें। दूसरे चरण में उस दिन विशेष के लिए स्वीकृत लोक महत्व के शेष मामले सायं 6.00 बजे के बाद अथवा सभा की नियमित कार्यवाही की समाप्ति के बाद उठाए जायें। इस प्रयोजनार्थ सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे जिस दिन मामले को उठाया जाना प्रस्तावित है उस दिन 9.30 बजे तक महासचिव को संबोधित सूचनाएं दे दें।

'शून्य काल' के दौरान मामलों को उठाये जाने की प्रणाली को दिनांक 1 अगस्त, 2005 से प्रभावी किया गया है।

वर्तमान परिदृश्य

तात्कालिक लोक महत्व के मामलों को उठाने की उपरोक्त प्रक्रिया के लागू होने के बाद इन मामलों को उठाने के लिए सदस्यों से प्राप्त होने वाली सूचनाओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। कभी-कभी प्रति दिन 100 से 120 सूचनाएं प्राप्त होती हैं। चूंकि इससे सभा का बहुमूल्य समय बरबाद हो रहा था इसलिए तात्कालिक लोक महत्व के मामलों को उठाए जाने को और नियंत्रित करने का निर्णय लिया गया। मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्गत संसदीय सूचना कार्यालय में सुबह 5.30 बजे से 9 बजे के बीच प्राप्त हुई तात्कालिक लोक महत्व (शून्य काल) की सूचनाओं का किसी सदस्य की उपस्थिति (सदस्य के उपलब्ध न होने की स्थिति में किसी वरिष्ठ अधिकारी की उपस्थिति) में बैलेट किया जाता है। 9 बजे के बाद प्राप्त हुई सूचनाओं पर 'कालबाधित' लिख दिया जाता है। बैलेट के माध्यम से चुनी गई 20 सूचनाओं पर 'ड्रॉ॰ ऑफ लॉट' में उनकी प्राथमिकता के आधार पर क्रम संख्या अंकित की जाती है। ऐसी सूचनाओं की एक सूची तैयार की जाती है। जिसमें सदस्यों के नाम, उनके दल का नाम

और सूचनाओं के विषय लिखे जाते हैं। इस सूची को राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के पांच मामलों का चयन करने के लिए अध्यक्ष को प्रस्तुत किया जाता है। जिन सदस्यों के मामलों का इस तरह से चयन होता है उन्हें पहले यह सूचना दे दी जाती है कि सभा में 12 बजे पत्र इत्यादि रखे जाने के बाद उनके मामले उठाने के लिए उन्हें बुलाया जाएगा। बाकी सदस्यों को 6 बजे सायं या उस क्रिया के लिए सूचीबद्ध कार्य पूरा होने के बाद सभा में अपने मामले उठाने को अवसर दिया जाता है।

तथापि यह देखा गया है कि बैलेट के नितान्त रूप से अवसर आधारित होने के कारण जो मामले वास्तव में राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय लोक महत्व के थे बैलेट में नहीं आ पाते हैं। ऐसे सदस्यों को ऐसे मामलों को सभा में उठाने का अवसर प्रदान करने के लिए मामले के महत्व से संतुष्ट होने के बाद अध्यक्ष सदस्यों को बैलेट में प्राथमिकता प्राप्त करने के बावजूद सदस्यों को उनके मामले उठाने की अनुमति देता है।

यद्यपि नियमों में न तो 'शून्य काल' शब्द का उल्लेख है और न ही उसकी प्रक्रिया का। ंफिर भी विभिन्न दलों के सदस्य सभा के इस तरीके का पूरा उपयोग कर रहे हैं। कुछ मामलों में इस तरह से उठाए गए मामलों में मंत्रियों ने तुरन्त उत्तर दिए हैं, यद्यपि मंत्री ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है।

निवेदन

जिस दिन (सामान्यत: शुक्रवार को) संसदीय कार्य मंत्री अगले सप्ताह के सरकारी कार्य के बारे में वक्तव्य देते हैं, उस दिन नियम 377 के अधीन मामले नहीं लिए जाते। जो सदस्य मंत्री के वक्तव्य पर निवेदन करना चाहते हैं, उन्हें अगले सप्ताह की कार्यवाही में शामिल किए जाने के लिए अधिकतम दो विषयों का पाठ देते हुए सूचना देनी होती है। निवेदन की सूचना उस दिन, जब संसदीय कार्य मंत्री का अगले सप्ताह की कार्यवाही का वक्तव्य कार्यसूची में शामिल किया हो, 10.00 बजे तक देना अपेक्षित है।

निवेदनों की अनुमति देने का प्रयोजन सदस्यों को यह अवसर प्रदान करना है कि वे सभा के, विशेषकर संसदीय कार्य मंत्री के ध्यान में यह बात ला सकें कि लोक हित के उस मामले पर चर्चा करने के लिए समय देने की आवश्यकता है जिसे समय की कमी के कारण चर्चा के लिए अन्यथा प्राथमिकता नहीं दी जाती।

कार्य मंत्रणा समिति के सदस्यों द्वारा दी गई सूचनाओं को छोड़कर पूर्वाह्न 10.00 बजे तक प्राप्त सभी सूचनाओं का बैलट किया जाता है ताकि दस सदस्यों के नाम और उन्हें निवेदन करने के लिए बुलाने का क्रम निर्धारित किया जा सके। वर्षों में विकसित हुई परंपरा के अनुसार कार्य मंत्रणा समिति के सदस्यों को निवेदन करने की अनुमति नहीं दी जाती है। यदि कार्य मंत्रणा समिति के सदस्यों द्वारा निवेदन के लिए नोटिस दिया जाता है तो मामलों को उठाने की अनुमति रोक दी जाती है।

निवेदन का पाठ संक्षिप्त एवं विषय तक सीमित होना चाहिए तथा सामान्यत: प्रत्येक निवेदन में शब्दों की संख्या 50 (अर्थात् दो सुझावों के लिए कुल 100 शब्द) से अधिक नहीं होनी चाहिए। अध्यक्ष की सहमति के बिना कोई भी मामला नहीं उठाया जा सकता तथा केवल

स्वीकृत पाठ को ही कार्यवाही वृत्तांत में शामिल किया जाता है। संसदीय कार्य मंत्री सदस्यों को यह आश्वासन देता है कि या तो वह सदस्यों द्वारा सुझाए गए विभिन्न विषयों पर चर्चा के लिए समय निकालने का प्रयत्न करेगा या यह कि वह उन्हे कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष विचारार्थ रखेगा।

4 अगस्त, 1989 से सरकारी कार्य के संबंध में संसदीय कार्य मंत्री के वक्तव्यों पर सदस्यों को 'निवेदन' करने की अनुमति देने की परम्परा को समाप्त कर दिया गया[271] और सदस्यों को सप्ताह के सभी दिनों में नियम 377 के अधीन मामले उठाने की अनुमति दे दी गई।[272] तथापि, नियम समिति ने 28 अगस्त, 1990 को हुई अपनी बैठक में 28 दिसम्बर, 1990 से आगामी सप्ताह के सरकारी कार्य के संबंध में संसदीय कार्य मंत्री द्वारा दिये जाने वाले वक्तव्यों पर सदस्यों द्वारा निवेदन की प्रक्रिया समाप्त करने के संबंध में अपने द्वारा की गई पहले की सिफारिशों पर पुनर्विचार किया और ऐसे दिनों में नियम 377 के अधीन मामले उठाने की प्रथा को समाप्त कर दिया गया।[273]

नियमों का निलंबन

कोई सदस्य, अध्यक्ष की सम्मति से, प्रस्ताव कर सकता है कि सभा के समक्ष किसी प्रस्ताव विशेष पर किसी नियम का लागू होना निलंबित कर दिया जाये और यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाये तो वह नियम उस समय के लिए निलंबित कर दिया जाता है।[274]

नियम को निलंबित करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने की सम्मति देने का अधिकार केवल अध्यक्ष को ही है: इस संबंध में नियम समिति को मामला सौंपने की आवश्यकता नहीं है[275] और यह विनिश्चय करना कि किसी नियम विशेष को निलंबित किया जाए अथवा नहीं, सभा का कार्य है[276] नियमों को निलम्बित करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने हेतु अध्यक्ष की सम्मति पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।[277]

> कोई नियम या उप-नियम पूर्णयता या केवल अंशत: निलंबित किया जा सकता है।[278] जहां किसी नियम या उप-नियम का केवल कोई अंश निलंबित किया गया हो, वहां उसका बाकी भाग लागू रहता है। किसी नियम या उप-नियम के किसी एक वक्तव्य या कुछ वाक्यों को निलंबित करना नियमानुकूल नहीं है।

---

271. नियम समिति, नियम 4, 25.7.1989 को सभा पटल पर रखा गया ।
272. *समाचार-भाग* 2, 2.8.1989, पैरा 3097 ।
273. *समाचार-भाग* 2, 19.12.1990, पैरा 948 ।
274. नियम 388 ।
275. *लो.स.वा.वि.*, 23.4.1956, पृ. 2608-17 ।
276. *पूर्वोक्त*, 28.8.1962, कॉ. 4495 ।
277. *पूर्वोक्त*, 2.4.1969, कॉ. 153-54 ।
278. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 3.9.1953, कॉ. 2161; *लो.स.वा.वि.*, 23.4.1956, पृ. 2616-17; 28.8.1962; पृ. 2187-90 ।

किसी नियम के किसी खंड के किसी भाग को भी निलंबित किया जा सकता है बशर्ते कि वह अपने सार और अर्थ में पूर्ण है।[279]

किसी नियम या उप-नियम के निलंबन से यदि शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो उसका निलंबन नहीं किया जा सकता।[280]

किसी विधेयक के प्रभारी मंत्री को, चाहे वह राज्य सभा का सदस्य हो, लोक सभा में किसी नियम को निलंबित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार है।[281]

यद्यपि अध्यक्ष का यह विवेकाधिकार है कि वह किसी नियम के निलंबन का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की सम्मति दे सकता है, पर किसी मामले की सारी परिस्थितियों पर विचार करने के बाद[282] वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग अत्यंत सावधानी से करता है। इस संबंध में अध्यक्ष के मार्गदर्शन के लिए निश्चित नियम नहीं है प्रत्येक अनुरोध पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाता है और उसके बाद ही अध्यक्ष अपनी सम्मति देता है, तथापि, सामान्यत: ऐसे प्रस्तावों को प्रस्तुत करने की अनुमति देने के अध्यक्ष के विनिश्चय पर किसी महत्वपूर्ण कानून के पारित होने में होने वाले विलम्ब का परिहार करने और तकनीकी दृष्टि से आई किसी आपत्ति को दूर करने जैसी बातों का प्रभाव पड़ता है। कई अवसरों पर अध्यक्ष ने ऐसा प्रस्ताव रखने की अनुमति इस आधार पर देने से इनकार कर दिया है कि मामले की परिस्थितियां ऐसी नहीं थीं कि ऐसा कदम उठाया जाए।

संविधान (दसवां संशोधन) विधेयक, 1961 और दादरा और नगर हवेली विधेयक, 1961, 11 अगस्त, 1961 को पुर:स्थापित किए गए थे। दादरा और नगर हवेली विधेयक, संविधान (दसवां संशोधन) विधेयक पर आधारित था। अविलम्बनीयता के आधार पर संसदीय कार्य मंत्री ने अध्यक्ष से अनुमति मांगी कि, यदि आवश्यक हो तो नियम 66 को निलंबित करने का प्रस्ताव रखने दिया जाये। अध्यक्ष ने इस बात को स्वीकार नहीं किया।[283]

किसी प्रस्ताव विशेष के संबंध में किसी नियम को निलंबित करने का प्रस्ताव तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब वह सभा के समक्ष हो, अर्थात् जब वह प्रस्ताव कार्य-सूची में सम्मिलित कर लिया गया हो।

कार्य तीन प्रकार के होते है; ऐसा कार्य जो उस समय सभा के समक्ष हो; ऐसा कार्य जो उस दिन के लिए सभा के समक्ष हो (अर्थात् जो कार्य-सूची में सम्मिलित कर लिया गया हो, परन्तु उस समय सभा के समक्ष न हो); और ऐसा कार्य जो सभा में लंबित हो परन्तु सभा के समक्ष न हो (अर्थात् जो कार्य-सूची में सम्मिलित न किया गया हो)। यह

---

279. *लो.स.वा.वि.*, 2.4.1969 पृ. 87 ।

280. *पूर्वोक्त*, 24.11.1966, कॉ. 5316-23 ।

281. *पूर्वोक्त*, (II), 23.4.1956, कॉ. 6052-76 ।

282. जब तक सभा में सर्वसम्मति न हो गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य संबंधी नियम 26 के निलंबन पर प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता—*लो.स.वा.वि.*, 9.5.1975, पृ. 199-203 ।

283. *लो.स.वा.वि.*, 17.5.1966, पृ. 8824 ।

विनिर्णय दिया गया है कि जो सभा में लंबित हो परन्तु कार्य-सूची में सम्मिलित न किया गया हो वह नियमों के निलंबन संबंधी नियम के प्रयोजनों के लिए "सभा के समक्ष कार्य" नहीं है।[284]

किसी नियम के निलंबन संबंधी प्रस्ताव को सभा में प्रस्तुत करने से पहले उसकी अग्रिम सूचना देनी होती है तथा ऐसे प्रस्ताव को सभा में प्रस्तुत करने से पहले उसे सदस्यों में परिचालित करना होता है।[285]

संसदीय कार्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत एक प्रस्ताव पर कि पांचवीं लोक सभा के 14वें सत्र के दौरान केवल सरकारी कार्यों को ही लिया जाए तथा सभी संगत नियम उस सीमा तक निलंबित माने जाएं, कुछ सदस्यों ने उसका प्रतिवाद किया कि सभी नियमों का इस तरह एक साथ निलंबन नहीं किया जा सकता और यह कि प्रस्ताव का संबंध सभा के समक्ष जो कार्य हैं उससे संबंधित किसी विशिष्ट नियम से होना चाहिए। अध्यक्ष ने विनिर्णय दिया कि प्रस्ताव संविधान के अनुच्छेद 118 के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है और यह नियमानुकूल है।[286]

अध्यक्ष को पद से हटाने संबंधी प्रस्ताव से संबंधित नियमों के बारे में किसी नियम के निलंबन का प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति देने से अध्यक्ष इनकार कर सकता है।[287]

कुछ परिस्थितियों में, उदाहरण के लिये, जब किसी सदस्य को सभा की सेवा से निलंबित करने के संबंध में किसी नियम को निलंबित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाना हो, तो अध्यक्ष यह कह सकता है कि उस प्रस्ताव को कार्य-सूची में सम्मिलित करने से पहले सभा के नेता की सहमति प्राप्त की जाये।

एक अन्य मामले में कार्य मंत्रणा समिति के प्रतिवेदन के संबंध में सभा द्वारा दिए गए विनिश्चयों को रद्द करने संबंधी प्रस्ताव से संबंधित नियम को निलंबित करने के प्रस्ताव को सभा के नेता की सहमति से कार्य-सूची में सम्मिलित किया गया।[288]

सभा द्वारा अस्वीकृत किसी विधेयक को संगत नियम का निलंबन करके इस उद्देश्य से वापस नहीं लिया जा सकता कि सरकार उस विधेयक को उसी सत्र में बिना कोई परितर्वन किए पुनः पुरःस्थापित कर सके।[289]

संविधान (22वां संशोधन) विधेयक के संबंध में एक अपवाद स्थगित किया गया था, जिसका खंड 2 सभा द्वारा इस कारण स्वीकृत नहीं किया गया था कि मत विभाजन पर उसे अपेक्षित विशेष बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। कार्य मंत्रणा समिति की बैठक, जिसमें विपक्षी

284. *पूर्वोक्त*, 30.11.1965, पृ. 1769-70 ।

285. *लो.स.वा.वि.*, 23.8.1970, कॉ. 242, 245-47 ।

286. *लो.स.वा.वि.*, 21.7.1975, कॉ. 26-38 ।

287. *पूर्वोक्त*, 24.11.1966, कॉ. 5322 ।

288. *लो.स. डिबेट्स*, 4.11.1966, कॉ. 1214-20 ।

289. *पूर्वोक्त*, 17.5.1966, कॉ. 17300 ।

दलों/ग्रुपों के नेता भी उपस्थित थे, में की गई सिफारिश और विधेयक की अविलंबनीयता को दृष्टिगत रखते हुए अध्यक्ष ने संगत नियम के निलंबन संबंधी प्रस्ताव को अपनी सम्मति दे दी थी और विधेयक को पुरःस्थापित किया गया था, लेकिन उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि भविष्य में इसे पूर्वोदाहरण के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए और प्रधान मंत्री ने इस आशय का आश्वासन दिया।[290]

सभा में मंत्रियों की उपस्थिति

कोई ऐसा नियम नहीं है जिसमें यह उपबंध किया गया हो कि सभा की कार्यवाही के दौरान मंत्रियों को सभा में अवश्य उपस्थित रहना चाहिए। अध्यक्ष को भी यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह किसी भी मंत्री विशेष को सभा में उपस्थित होने पर विवश करे।[291] परंतु अध्यक्ष की अंतर्निहित शक्ति के अंतर्गत उसके द्वारा समय-समय पर व्यक्त किए गए विचारों के परिणामस्वरूप, सभा में मंत्रियों की उपस्थिति के संबंध में कुछ परिपाटियां बन गई हैं।

यह परिपाटी सुस्थापित हो चुकी है कि महत्वपूर्ण अवसरों पर, जैसे प्रश्न काल, बजट या राष्ट्रपति के अभिभाषण या अंतर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान, संबंधित मंत्रियों को यथासंभव सभा में उपस्थित रहना चाहिए।[292] अन्य अवसरों पर सभा के समक्ष जो कार्य हो उसके प्रभारी मंत्री या मंत्रियों का सभा में उपस्थित रहना आवश्यक है।[293] यदि प्रभारी मंत्री की सभा से अनुपस्थिति अनिवार्य हो जाये, तो यह आशा की जाती है कि इस बात का प्रबंध किया जायेगा कि कोई अन्य मंत्री सभा में हो रहे और सभा में होने वाले वाद-विवाद पर ध्यान देगा। जब कोई मंत्री थोड़े समय के लिए सभा से बाहर जाता है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह इस संबंध में अध्यक्ष को सूचना दे दे और साथ ही यह भी बता दे कि उसकी अनुपस्थिति में उसके स्थान पर दूसरा कौन-सा मंत्री कार्य करेगा।[294] अध्यक्ष ने विनिर्णय दिया है कि मंत्रियों की अनुपस्थिति में गैर-सरकारी सदस्य सरकार का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते।[295] अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की है कि जब सभा की बैठक हो रही हो, तो

---

290. *लो.स.वा.वि.*, 2.4.1969, कॉ. 152-53, 159 ।

291. *लो.स.वा.वि.*, 24.11.1955, कॉ. 445 ।

292. *पूर्वोक्त*, 5.12.1970, कॉ. 203-04 ।

293. *पी. डिबेट्स*, 6.12.1950, कॉ. 1275; 23.2.1951, कॉ. 3412-13; 3.3.1952, कॉ. 1798; *एच.पी. डिबेट्स* (II), 1.8.1952, कॉ. 5083-84; *एल.एस. डिबेट्स* 27.3.1954, कॉ. 3209; 17.9.1955, कॉ. 14260-62; 9.12.1955 पृ. 6996-98 और कॉ. 7051; *लो.स.वा.वि.*, 25.7.1957, पृ. 2339-40; *एल.एस. डिबेट्स*, 13.3.1958, कॉ. 4751; 31.3.1958, कॉ. 7559-63; *लो.स.वा.वि.*, 3.12.1959, पृ. 1565-66; *लो.स. डिबेट्स*, 26.3.1962, कॉ. 1903-04; *लो.स.वा.वि.*, 19.12.1973, पृ. 140-41; 16.3.1972, पृ. 106 ।

294. *पी. डिबेट्स*, 6.12.1950, कॉ. 1275; 23.2.1951, कॉ. 3412-13; *लो.स.वा.वि.*, 16.5.1956, पृ. 36401 ।

295. *एच.पी. डिबेट्स* (II), 1.8.1952, कॉ. 5083-84 ।

विधि मंत्री या उसके किसी उप-मंत्री को सभा में रहना चाहिए, जिससे किसी चर्चा के दौरान कोई कानूनी बातें उठें, तो वह उसके संबंध मे अपनी राय दे सके।[296]

जब कोई मंत्री सरकारी कार्य से या अन्यथा दिल्ली से बाहर जाता है, तो उसके लिए यह आवश्यक होता है कि वह अध्यक्ष को पहले इस बात की सूचना दे दे और यह बता दे कि उसकी अनुपस्थिति में सभा में उसके कार्य की देखभाल करने के लिए क्या प्रबंध किया गया है। जब किसी मंत्री की ओर से उसके मंत्रालय से सम्बद्ध राज्यमंत्री या उपमंत्री सभा में उपस्थित हो, तो उस मंत्री का सभा में उपस्थित रहना आवश्यक नहीं है।

लेकिन अध्यक्ष ने समय-समय पर यह कहा है कि जब मंत्रियों के मंत्रालयों और विभागों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संबंधित कार्य सभा के समक्ष हो, तो ऐसे अवसरों पर प्रभारी मंत्रियों को सभा में उपस्थित रहना चाहिए।

अध्यक्ष की अवशिष्ट और अन्तर्निहित शक्तियां

अध्यक्ष को ऐसे सभी मामलों को निपटाने की शक्ति प्राप्त है, जिनके सम्बन्ध में नियमों में विशिष्ट रूप से या उपयुक्त ढंग से उपबन्ध न किया गया हो। नियमों की विस्तृत क्रियान्विति से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का भी अध्यक्ष द्वारा विनियमन किया जाता है।[297] इन शक्तियों का उपयोग करते हुए अध्यक्ष ने समय-समय पर निदेश जारी किए हैं जिन्हें समेकित करके अध्यक्ष के निदेश के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त, अध्यक्ष ऐसे विशिष्ट मामलों या प्रश्नों के संबंध में (विभागीय फाइलों पर) विनिर्णय या व्यक्तिगत विनिश्चय देता है जो समय-समय पर उत्पन्न होते हैं और जिसके संबंध में उससे विनिश्चय देने के लिए कहा जाता है।

अध्यक्ष की कुछ अन्तर्निहित शक्तियां भी हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के अन्तर्गत अध्यक्ष ने सभा में मंत्रियों की उपस्थिति के संबंध में समय-समय पर कुछ विचार व्यक्त किए हैं और उनके परिणामस्वरूप कुछ परिपाटियां बन गई हैं। अध्यक्ष अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के अन्तर्गत कुछ विशेष मामलों में ऐसे प्रस्तावों के प्रस्तुत किए जाने या वापस लिए जाने की अनुमति दे सकता है जो प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत नहीं आते।[298] वह सभा की कार्यवाही से कुछ शब्दों को निकालने से संबंधित नियम में उपबंधित आधार के अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर भी कार्यवाही वृत्तांत से कुछ शब्दों को निकाल सकता है[299] तथा पहले दिए गए किसी विनिश्चय में सुधार या संशोधन कर सकता है।[300]

---

296. *लो.स.वा.वि.*, 19.11.1965, कॉ. 2893 ।

297. नियम 389, *देखिए* पिछला अध्याय 8 'संसद के कार्य निर्वाहक' ।

298. *लो.स.वा.वि.*, 1.12.1960, पृ. 1695; 7.12.1960, पृ. 2104-05; *लो.स.वा.वि.*, 8.12.1960, कॉ. 4579; *लो.स.वा.वि.*, 7.8.1961, पृ. 133; 5.9.1962, पृ. 2913 ।

299. *पूर्वोक्त*, 18.4.1956, कॉ. 5639; 30.4.1956, कॉ. 67447 ।

300. *पूर्वोक्त*, 26.5.1967, कॉ. 1195-1222 ।

सामान्यत: वह सभा द्वारा तथा नियमों द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अन्तर्गत ही कार्य करता है और यह सुनिश्चित करता है कि सुस्थापित प्रक्रियाओं से विचलन न हो।[301] यदि प्रक्रिया में कोई परिवर्तन वांछनीय हो तो मामला नियम समिति को जांच करने तथा प्रतिवेदन देने के लिए भेजा जाता है फिर सभा उस पर निर्णय लेती है।

सभा की कार्यवाही के संबंध में या सभा में अध्यक्ष द्वारा दी गई टिप्पणियों के स्पष्टीकरण के लिए अध्यक्ष सार्वजनिक पत्र-व्यवहार नहीं करता। अध्यक्ष किसी भी व्यक्ति के साथ संसदीय समितियों के कार्यक्षेत्र तथा कृत्यों के संबंध में तथा प्रक्रिया सम्बन्धी अन्य विषयों के बारे में अथवा लोक सभा की कार्यवाही के संबंध में पत्र-व्यवहार नहीं करता, चाहे किसी व्यक्ति या सार्वजनिक संस्था के विरुद्ध सभा में कुछ भी क्यों न कहा गया हो।

> यदि किसी राज्य सरकार के मंत्री से सभा में उसके विरुद्ध कही गयी किसी बात के बारे में पत्र प्राप्त हो तो उसे यह सलाह दी जा सकती है कि वह केन्द्रीय सरकार के संबंधित मंत्री को लिखे कि स्थिति को स्पष्ट करने के लिए, यदि वह आवश्यक समझे तो सभा में वक्तव्य दे। अध्यक्ष अपने स्वविवेक से उस पत्र को संबंधित सदस्य को उसकी राय जानने के लिए अग्रेषित भी कर सकता है। यदि इस संबंध में पत्र किसी भूतपूर्व सदस्य से प्राप्त होता है तो उसे संबंधित मंत्री को ऐसी कार्यवाही करने हेतु अग्रेषित कर दिया जाता है जो वह आवश्यक समझे; जब ऐसा कोई पत्र किसी विदेशी राजनयिक से सभा में उसके देश के विरुद्ध कही गई किसी बात के बारे में प्राप्त होता है तो उस पत्र की प्रति विदेश मंत्रालय को इस दृष्टि से भेजी जाती है कि वह उस राजनयिक को यह बता सके कि सभा की कार्यवाही के संबंध में अध्यक्ष द्वारा पत्र व्यवहार करने की प्रथा नहीं है।

इसके अतिरिक्त अध्यक्ष द्वारा किसी राज्य विधानमंडल के सदस्य के साथ उनके राज्य विधानमंडलों में उठने वाले प्रक्रिया संबंधी मामलों के बारे में पत्र व्यवहार करने तथा उन विधानमंडलों में पीठासीन अधिकारियों द्वारा दिए गए विनिर्णयों के संबंध में कोई विचार अभिव्यक्त करने की प्रथा नहीं है। साथ ही अध्यक्ष द्वारा किसी ऐसे कार्य का दायित्व लेने की प्रथा नहीं है जो उसके कार्यों से संबंधित नहीं है और जिसके कारण आचरण पर उंगली उठाए जाने की गुंजाइश हो।

अध्यक्ष इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि वह उसे प्राप्त किसी पत्र या अभ्यावेदन को सभा पटल पर रखे।[302]

अध्यक्ष इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि वह अपने विनिश्चयों के कारण बताये[303] और अध्यक्षपीठ से उसके द्वारा की गई कोई टिप्पणी निजी पत्र-व्यवहार में नहीं उठाई जा सकती। अध्यक्ष द्वारा दिए गए किसी विनिश्चय के संबंध में सदस्य उससे तर्क-वितर्क नहीं

---

301. 22.11.1965, कॉ. 3109-11 ।

302. *लो.स.वा.वि.*, 17.3.1960, कॉ. 6433 ।

303. *एल.एस. डिबेट्स*, 5.8.1959, कॉ. 661; 7.8.1959, कॉ. 1195; 17.8.1959, कॉ. 2809; 1.12.1960, कॉ. 3339 ।

कर सकते।[304] अध्यक्ष द्वारा दिया गया आदेश अंतिम होता है और उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती।[305] अध्यक्ष द्वारा व्यक्तिगत रूप से (अर्थात् विभाग की किसी फाइल पर) दिया गया विनिश्चय भी उतना ही बाध्यकारी है जितना कि उसके द्वारा सभा में दिया गया कोई विनिर्णय।[306]

संभव है कि कुछ परिस्थितियों में अध्यक्ष सभा की बैठकों की अध्यक्षता न करे।[307]

अध्यक्ष को सभा के कार्यकरण तथा उसके सदस्यों से संबंधित प्रशासनिक स्वरूप की आवश्यक शक्तियां प्राप्त हैं।

---

304. *एल.एस. डिबेट्स*, 11.3.1964, कॉ. 4832 ।

305. *पूर्वोक्त*, 4.12.1964, कॉ. 3378-79 ।

306. *पूर्वोक्त*, 21.4.1960, कॉ. 13091-92 ।

307. *पूर्वोक्त*, 19.11.1959, कॉ. 733 ।

अध्याय 33

लोक सभा में अजनबियों का प्रवेश

लोक सभा की बैठकों के दौरान सभा के उन भागों में, जो सदस्यों के अनन्य उपयोग के लिए आरक्षित न हो, अजनबियों का प्रवेश अध्यक्ष द्वारा जारी किये गए आदेशों के अनुसार विनियमित किया जाता है।[1] जब सभा की बैठक हो रही हो, तो सभा कक्ष (चैम्बर) सदस्यों के अनन्य प्रयोग के लिए आरक्षित किया जाता है और वहां पर किसी अजनबी को आने की अनुमति नहीं दी जाती है। यदि कोई अजनबी यह जानते हुए कि वह सभा की सदस्यता के लिए अर्हित नहीं है या निरर्हित कर दिया गया है सभा कक्ष में आकर बैठ जाता है तो सभा की अवमानना के लिए उसके (सभा) द्वारा की जाने वाली किसी अन्य कार्यवाही के अतिरिक्त वह 500 रुपये की शास्ति का भागी होगा जो संघ को देय ऋण[2] के रूप में वसूल की जाएगी। सभा के अन्य भाग, जहां अजनबियों को कुछ विशिष्ट शर्तों के अंतर्गत जाने की अनुमति है वे हैं, भीतरी तथा बाहरी लॉबियां, दीर्घाएं और केन्द्रीय कक्ष जिसे लॉबी के एक भाग के रूप में माना जाता है। सभा कक्ष, लॉबी और दीर्घाओं से मिलकर बने क्षेत्र को 'सभा की भीतरी प्रसीमा' कहा जाता है।

> अजनबियों के प्रवेश से संबंधित प्रक्रिया की शुरुआत गवर्नर जनरल द्वारा 17 मई, 1854 को लिखित टिप्पण से हुई। उसी वर्ष बाद में स्वीकृत एक स्थायी आदेश के अनुसार अजनबियों को सभा भवन में आने की अनुमति दी जा सकती थी परन्तु किसी भी सदस्य द्वारा पेश किये गए और सभा द्वारा पारित किये गए प्रस्ताव पर उन्हें बैठक से उठकर चला जाना पड़ता था, जब तक कि उनके फिर से प्रवेश के संबंध में प्रस्ताव पारित न हो जाये।
>
> 1921 में गवर्नर जनरल के अनुमोदन से अध्यक्ष द्वारा जारी किए गए आदेशों के अनुसार विधान सभा की दीर्घाओं में अजनबियों के प्रवेश को विनियमित करने के लिए एक स्थायी आदेश[3] स्वीकार किया गया था। भारत के स्वतंत्र होने के बाद इस संबंध में गवर्नर जनरल का नियंत्रण नहीं रहा और प्रवेश का विनियमन अध्यक्ष के आदेशानुसार किया जाने लगा।

विभिन्न दीर्घाओं[4] में अजनबियों के प्रवेश को अध्यक्ष के निदेशों के अधीन इस निमित्त बनाये गए नियमों के अनुसार विनियमित किया जाता है और इन नियमों में जिस विषय का

---

1. नियम 386—सभा के सदस्यों के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों को अजनबी माना जाता है, सिवाय सभा के अधिकारियों तथा सभा में काम पर लगाये गए कुछ संदेशवाहकों के ।
2. अनुच्छेद 104 ।
3. स्थायी आदेश 35 ।
4. ये दीर्घाएं 1921 में केन्द्रीय विधान सभा के अस्तित्व में आने के समय से ही हैं, सिवाय राजनयिक दीर्घा के जो 1950 में बनाई गई थी।

उपबंध नहीं है, उसका विनियमन अध्यक्ष द्वारा उसके विवेकाधिकार से किया जाता है। विशेष कोष्ठ (बॉक्स) को छोड़कर जिसमें प्रवेश के लिए कोई प्रवेश-पत्र जारी नहीं किये जाते, दीर्घाओं में प्रवेश दर्शक प्रवेश-पत्रों के माध्यम से होता है, जो महासचिव के आदेश से केन्द्रीयकृत पास निर्गम प्रकोष्ठ (सी.पी.आई.सी.) द्वारा जारी किये जाते हैं। तथापि, जहां तक अध्यक्ष दीर्घा का संबंध है, उसके प्रवेश-पत्र अध्यक्ष के विवेकाधिकार से जारी किये जाते हैं।

अध्यक्ष किसी भी समय कोई कारण बताये बिना, किसी भी दीर्घा के किसी भी प्रवेश-पत्र को रद्द कर सकता है और प्रवेश-पत्र धारक को दीर्घा से बाहर चले जाने का आदेश दे सकता है। प्रवेश-पत्र को रद्द किये जाने के संबंध में सभा में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[5]

अध्यक्ष जब कभी ठीक समझे, अजनबियों को सभा के किसी भाग से बाहर चले जाने का आदेश दे सकता है।[6] कोई अजनबी जिसे दीर्घा से चले जाने का आदेश दिया गया हो और वह दीर्घा से नहीं जाता है या अन्यथा दुर्व्यवहार करता है या अजनबियों के प्रवेश के संबंध में बनाए गए विनियमों[7] का जान-बूझकर उल्लंघन करता है तो उसे या तो सभा की प्रसीमा

---

5. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.9.1935, पृ. 1414 ।
6. नियम 387 ।
7. दर्शक प्रवेश-पत्र के पीछे निम्नलिखित निदेश छपे रहते हैं:
   (1) प्रवेश स्थान उपलब्ध होने पर मिलेगा ।
   (2) इस प्रवेश-पत्र को बिना सूचना और बिना कोई कारण बताए रद्द किया जा सकता है।
   (3) वह व्यक्ति (जिसके नाम पर यह प्रवेश पत्र जारी किया गया है) इसके सुरक्षित रख-रखाव और उचित उपयोग के लिये जिम्मेदार होगा। जिस अवधि के लिए यह प्रवेश पत्र जारी किया गया है उसके समाप्त होने के पश्चात् इसे सी.पी.आई.सी को लौटा दिया जाना चाहिए अथवा पुन: वैद्यीकरण करा लिया जाना चाहिए।
   (4) सभा की कार्यवाही देखने के पश्चात् "समय खत्म होने के बाद अथवा सुरक्षा स्टॉफ द्वारा कहे जाने पर जो भी पहले हो, दर्शकों को तत्काल संसद भवन परिसर से बाहर चले जाना चाहिए।
   (5) गैर-अनुमति वाले क्षेत्रों में घूमते पाए जाने पर दर्शकों को तत्काल संसद भवन परिसर से बाहर निकाल दिया जाएगा।
   (6) दर्शकों को चाहिए कि वे शांति बनाए रखें। प्रदर्शन करना, हर्षध्वनि करना, शोर मचाना और पर्चे बांटना मना है। जहाँ तक संभव हो, इधर-उधर न घूमें।
   (7) सुरक्षा स्टॉफ द्वारा मांगे जाने पर इस प्रवेश पत्र को दिखाया जाना चाहिए।
   (8) किसी भी दर्शक को कोई कारण बताए बिना किसी भी समय दीर्घा से बाहर जाने के लिए कहा जा सकता है, भले ही उसके पास वैध दर्शक प्रवेश पत्र क्यों न हो।

से बाहर निकाल दिया जाता है या अभिरक्षा में ले लिया जाता है।[8]

1929-30 तक इस बात का निर्णय केवल भारत सरकार को ही करना होता था कि केन्द्रीय विधान सभा की प्रसीमा में सुरक्षा की व्यवस्था पर्याप्त है या नहीं। उस वर्ष अध्यक्ष पटेल ने इस विचार से असहमति प्रकट की और यह निर्णय दिया कि विधान सभा की प्रसीमा अध्यक्ष के सर्वोच्च नियंत्रण के अंतर्गत आती है और उस प्रसीमा में किसी ऐसे उपाय को लागू नहीं किया जा सकता, जिसके लिये पहले से अध्यक्ष का अनुमोदन प्राप्त न कर लिया गया हो। अत: विधान सभा की दीर्घाओं का संरक्षण विधान सभा के कर्मचारी करने लगे और सार्वजनिक दीर्घा में सादे कपड़ों में केवल एक पुलिसकर्मी को जाने की अनुमति दी जाती थी, जैसी कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रथा है। 1930 में दिल्ली के मुख्य आयुक्त ने इस

---

(9) दर्शकों को भवन के अंदर कोई भी आपत्तिजनक सामान छड़ियां, छाते, हैंडबैग, अटैचियां किताबें आदि और इलेक्ट्रॉनिक सामान (मोबाइल फोन, कैमरे, सीड़ी, पेन ड्राइव, रेडियो, आई-पॉड/आई-पैड, लैपटाप आदि ले जाने की अनुमति नहीं हैं। उन्हें ऐसे सामानों की घोषणा करनी चाहिए और इन्हें टोकन केबिन में जमा कराना चाहिए।

(10) संसद भवन परिसर में आग्नेयआस्त्र लाने की अनुमति नहीं है। आग्नेआस्त्र साथ में होने की स्थिति में उसे संसद भवन परिसर के बाहर छोड़ दें।

(11) जिन दर्शकों के हैंड बैग में नकदी या कीमती चीजें हों वे लॉकर की मांग अवश्य करें।

(12) दस वर्ष से कम आयु के बच्चों को दीर्घा में जाने की अनुमति नहीं है।

(13) इन निर्देशों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है।

(14) संसद भवन परिसर में धूम्रपान पूर्णतया निषिद्ध है।

(15) मीडिया के साथ संपर्क करने या साक्षात्कार देने की अनुमति नहीं है।

(16) संसद भवन परिसर में अनुशासन और इसकी गरिमा बनाए रखने के लिए कृपया ड्यूटी पर मौजूद सुरक्षा स्टॉफ के साथ सहयोग करें।

(17) किसी भी तरह की आवश्यकता पड़ने पर नजदीकी सुरक्षा कार्मियों से संपर्क करें और उनका सहयोग करें।

(18) किसी भी उद्देश्य हेतु प्रवेश पत्र की फोटोकॉपी करना/स्कैन करना/छेड़छाड़ करना पूर्णतया निषिद्ध है।

(19) भ्रमण पूरा होने के पश्चात् इस प्रवेश अनुमति को निकास द्वारा पर मौजूद सुरक्षा सहायक को दे देना चाहिए।

(20) इस प्रवेश पत्र के खोने की सूचना तत्काल सी.पी.आई.सी लोक सभा तथा संचार नियंत्रण कक्ष को देनी चाहिए।

8. नियम 387क—कोई अवचार अथवा विनियमों का उल्लंघन घोर अपराध और सभा की अवमानना माना जाता है जो कारावास से दंडनीय है। *एल.एस. डिबेट्स,* 15.12.1967, कॉ. 7471-82; *लो.स.वा.वि.,* 15.11.1968, पृ. 876-77; 9.4.1969, पृ. 145-47; 13.12. 1969, पृ. 134, 138 ।

प्रथा का उल्लंघन करके सार्वजनिक दीर्घा में वर्दीधारी चार पुलिस कर्मियों को तैनात किया। अध्यक्ष ने सभा को यह बात बताई और यह निदेश दिया कि प्रेस दीर्घा को छोड़कर सभी दीर्घाओं में से व्यक्तियों को फौरन निकाल दिया जाये और जब तक अध्यक्ष आदेश न दे तब तक कोई प्रवेश-पत्र जारी न किया जाये।[9]

जब सभा की गुप्त बैठक हो रही हो तो अध्यक्ष द्वारा अधिकृत किए गए व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी भी अजनबी को सभाकक्ष, लॉबी या दीर्घाओं में उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी जाती है।[10]

कोई सदस्य दीर्घाओं में जा सकता है, परन्तु यह वांछनीय नहीं है कि वह जब तक चाहे दर्शक दीर्घा में रहे।[11] यदि किसी सदस्य को सभा से उठकर चले जाने हो कहा गया हो या जिसे सभा की सेवा से निलंबित कर दिया गया हो तो उसे सभा से बाहर रहने की अवधि या निलम्बन की अवधि की समाप्ति से पहले दीर्घाओं में जाने की अनुमति नहीं है। तथापि, वह केन्द्रीय कक्ष, लॉबी और सभा के अन्य बाह्य परिसर में जा सकता है।

लोक सभा दीर्घाएं

अध्यक्ष दीर्घा सामान्यत: अध्यक्ष के नजदीकी मित्रों और संबंधियों तथा राज्य विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों और उनकी पत्नियों/पतियों के उपयोग के लिए है। यदि विशिष्ट दर्शक दीर्घा में स्थान उपलब्ध न हो तो राज्य सरकारों के मंत्रियों और उनकी पत्नियों/पतियों तथा अखिल भारतीय राजनीतिक दलों के अध्यक्षों को भी अध्यक्ष दीर्घा में बैठाया जाता है।

विशिष्ट दर्शक दीर्घा का उपयोग संसद के भूतपूर्व सदस्यों, राज्य विधानमंडलों के सदस्यों तथा सचिवों, न्यायाधीशों, कुलपतियों, भारत सरकार और राज्य सरकारों के उच्च अधिकारियों, सार्वजनिक जीवन में प्रमुख स्थान प्राप्त व्यक्तियों, जैसे अखिल भारतीय राजनैतिक दलों के अध्यक्षों तथा विदेशों से आए विशिष्ट व्यक्तियों के लिए किया जाता है।

केन्द्रीय विधानमंडल, संविधान सभा, अंतरिम संसद और लोक सभा के भूतपूर्व सदस्यों को भूतपूर्व सदस्य फोटो प्रवेश-पत्र जारी किये जाते हैं। इस प्रवेश-पत्र के आधार पर वे विशिष्ट दर्शक दीर्घा, लॉबी और केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश कर सकते हैं। यदि किसी भूतपूर्व सदस्य के पास ऐसा फोटो प्रवेश-पत्र नहीं है तो उसे सी.पी.आई.सी. द्वारा दिन-प्रतिदिन के आधार पर विशिष्ट दर्शक दीर्घा के लिए प्रवेश-पत्र जारी किए जा सकेंगे। विशिष्ट दर्शक दीर्घा के लिए प्रवेश-पत्र पूरे दिन के लिए जारी किए जाते हैं। लोक सभा और राज्य सभा के भूतपूर्व महासचिव लोक सभा के महासचिव की मंजूरी पर विशिष्ट दर्शक दीर्घा में प्रवेश करने के हकदार होते हैं और इसके लिए जारी किए गए प्रवेश-पत्र पूरे दिन के लिए विधिमान्य होते हैं।

---

9. *एल.ए. डिबेट्स,* 20.1.1930, पृ. 1-2 ।
10. नियम 248 (2) ।
11. *एल.ए. डिबेट्स,* 22.2.1927, पृ. 1153 ।

लोक सभा के वर्तमान सदस्यों की पत्नियों/पतियों को सी.पी.आई.सी. से संबंधित सदस्यों के अनुरोध पर सत्र-प्रवेश-पत्र जारी किये जाते हैं। जो मंत्री तथा उपमंत्री राज्य सभा के सदस्य हैं और जिन्हें लोक सभा में बैठने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, वे भी, यथास्थिति, अपनी पत्नियों या पतियों के लिए, इस दीर्घा में प्रवेश के लिए सत्र-प्रवेश-पत्र लेने के हकदार हैं।

विशेष दीर्घा वर्तमान सदस्यों की पत्नियों/पतियों तथा अन्य सगे-संबंधियों अर्थात् पुत्र/पुत्री, पिता और माता के उपयोग के लिए है।

राजनयिक दीर्घा केवल विदेशी राजनयिकों के उपयोग के लिए है। इस दीर्घा में प्रवेश के लिए दो प्रकार के प्रवेश-पत्र अर्थात् विदेशी मिशनों के प्रमुखों के लिए वार्षिक प्रवेश-पत्र और राजनयिक दूत संवर्ग के अन्य सदस्यों के लिए दिन-प्रतिदिन के आधार पर "बार कोडेड" प्रवेश-पत्र जारी किए जाते हैं।

विशेष कोष्ठ (बॉक्स) राष्ट्रपति के परिवार तथा उनके अतिथियों, राज्यों के राज्यपालों, विदेशी राष्ट्राध्यक्षों और प्रधान मंत्रियों, विदेशों के युवराजों तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों अर्थात् भूतपूर्व राष्ट्रपतियों और भूतपूर्व गवर्नर जनरल, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, राज्यों के मुख्यमंत्रियों, विदेशों से आये संसदीय शिष्टमण्डलों, आदि के लिए आरक्षित है।

सार्वजनिक दीर्घा सामान्यत: जनता के उपयोग के लिए है। कोई सदस्य केवल उन व्यक्तियों के लिए दर्शक प्रवेश-पत्र जारी करने के लिए आवेदन कर सकता है, जिनसे वह व्यक्तिगत रूप से भली-भांति परिचित हो। ऐसे प्रवेश-पत्रों के लिए आवेदन करते समय सदस्यों को इस आशय का एक प्रमाण-पत्र देना पड़ता है कि "उपर्युक्त नाम वाला दर्शक मेरा संबंधी/निजी मित्र है और मैं उससे व्यक्तिगत रूप से परिचित हूं तथा मैं उसके लिए पूरी जिम्मेदारी लेता हूं।" सुरक्षा कारणों को ध्यान में रखते हुए दर्शकों को चाहिए कि वे अपना फोटो पहचान कार्ड़ साथ रखें और सुरक्षा कर्मियों के मांगे जाने पर इसे दिखाएं।

सदस्यों को इस बात को भी सुनिश्चित करना होता है कि आवेदन-पत्र में अपेक्षित ब्यौरा सम्यक् रूप से भरा गया है। दर्शकों के पूरे नाम दिये जाने अपेक्षित हैं, न कि आद्यक्षरों में। किसी दर्शक के पिता/पति का भी अनिवार्य रूप से पूरा नाम दिया जाना चाहिए। सार्वजनिक दीर्घा में प्रवेश के लिए प्रवेश-पत्र हेतु आवेदन-पत्र उस तारीख जिसके लिए दर्शक प्रवेश-पत्र चाहिए, से पहले कार्य दिवस को 16.00 बजे तक सी.पी.आई.सी. में दे दिया जाना चाहिए। सदस्य को किसी दिन विशेष के लिए नियत घंटे (घंटों) के लिए सामान्यत: एक ही दर्शक प्रवेश-पत्र जारी किया जाता है। तथापि आपवादिक मामलों में दो दर्शक प्रवेश-पत्र भी जारी किए जा सकते हैं।

आपात् मामलों में, जब सदस्य के लिए निर्धारित समय-सीमा के भीतर दर्शक प्रवेश-पत्र के लिए आवेदन-पत्र दे पाना संभव न हो तो दर्शक प्रवेश-पत्र के लिए उसी दिन आवेदन-पत्र दिया जा सकता है। ऐसे मामले में स्थान उपलब्ध होने पर सी.पी.आई.सी. द्वारा किसी सदस्य को निम्नलिखित शर्तों पर दर्शक प्रवेश-पत्र जारी किया जाता है:

(i) किसी सदस्य को किसी दिन विशेष के लिए दो से अधिक दर्शक प्रवेश-पत्र जारी नहीं किए जाते।

(ii) दर्शक प्रवेश-पत्र सदस्य को स्वयं लेना होता है।

(iii) जिस विशिष्ट घंटे के लिए दर्शक प्रवेश-पत्र वैध होता है वह उस पर अंकित रहता है।

(iv) दर्शक प्रवेश-पत्र आवेदन-पत्र प्राप्त होने के कम से कम 2 घंटे बाद उपलब्ध कराये जाते हैं। सदस्यों से अनुरोध है कि वे दर्शक प्रवेश-पत्र में अंकित समय से पूर्व अपने अतिथियों को प्रवेश कराने के लिए दबाव न डालें।

सामान्य बजट पेश किए जाने के अवसर पर सदस्य केवल एक व्यक्ति के लिए दर्शक प्रवेश-पत्र हेतु आवेदन कर सकेगा। सदस्य की पत्नी/पति को प्राथमिकता दी जाती है। बैठने के स्थान पूरा होते ही दर्शक प्रवेश-पत्रों को जारी किया जाना बंद कर दिया जाता है।[12]

दीर्घा का एक भाग केवल उन महिलाओं के बैठने के लिए रखा गया है, जो अलग से बैठना चाहें।

> मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थाओं के वास्तविक छात्रों या सरकारी विभागों या अन्य संस्थाओं के कर्मचारियों को प्रवेश की अनुमति तभी दी जाती है जब उस संस्था या विभाग का प्रमुख उस बैठक की तारीख, जिसके लिए दर्शक प्रवेश-पत्र की जरूरत होती है, से एक दिन पूर्व महासचिव को लिखित अनुरोध करता है, जिसमें उक्त समूह के सदस्यों के बारे में आवश्यक ब्यौरा दिया गया होता है।

राज्य सभा दीर्घा केवल राज्य सभा के सदस्यों के उपयोग के लिए है जिन्हें राज्य सभा सचिवालय द्वारा जारी किए गए पहचान-पत्र दिखाने पर इस दीर्घा में प्रवेश करने की अनुमति दी जाती है।

अधिकारी दीर्घा केवल भारत सरकार के उन अधिकारियों और कुछ मामलों में राज्य सरकारों के उन अधिकारियों के उपयोग के लिये है, जिनकी उपस्थिति सभा में उसके कार्य के संबंध में आवश्यक हो। इस दीर्घा में अधिकारियों के प्रवेश के लिए दो प्रकार के प्रवेश-पत्र हैं अर्थात् एक तो सत्रीय अधिकारी दीर्घा प्रवेश-पत्र और दूसरा दिन-प्रतिदिन का प्रवेश-पत्र।

प्रश्न काल के दौरान उन मंत्रालयों के अधिकारियों को प्राथमिकता दी जाती है, जिनके मंत्रियों को उस दिन प्रश्नों का उत्तर देना होता है। सामान्यतया प्रश्नोत्तरकाल में एक मंत्रालय के एक से अनधिक अधिकारी को ही उपस्थित रहने की अनुमति दी जाती है। सामान्यतया किसी भी अधिकारी को इस बात की अनुमति नहीं दी जाती कि वह अपना काम समाप्त होने के बाद भी दीर्घा में बैठा रहे।

प्रेस दीर्घा में प्रेस संवाददाताओं के प्रवेश का विनियमन सामान्यतया प्रेस दीर्घा समिति के परामर्श के आधार पर किया जाता है। इस समिति का पुनर्गठन प्रत्येक वर्ष प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र रखने वाले प्रेस प्रतिनिधियों में से किया जाता है।

---

12. *समाचार-भाग* 2, 6.3.1976, पैरा 2682 ।

वर्ष 1929 में सबसे पहली समिति, जिसे प्रेस परामर्शदात्री समिति कहा गया था, अध्यक्ष पटेल द्वारा नियुक्त की गयी थी। इस समिति में 7 सदस्य थे। उनमें से चार तत्कालीन विधान सभा के 'सदस्य' थे और विधान सभा का सचिव समिति के सचिव के रूप में कार्य करता था। वर्ष 1933 में समिति का नाम प्रेस परामर्शदात्री समिति से बदल कर प्रेस दीर्घा समिति कर दिया गया; उसके सदस्यों की संख्या 7 से बढ़ाकर 9 कर दी गई और सभी सदस्यों को प्रेस प्रतिनिधियों में से चुना गया और समिति के ही एक सदस्य को समिति के सचिव के रूप में चुना गया।

समिति को और अधिक प्रतिनिधिक संस्था बनाने के लिए और उसमें अंग्रेजी, हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं के समाचार-पत्रों को स्थान देने हेतु समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 1970-71 में 10 और 1974-75 में 12 कर दी गई। 1993 में समिति का नाम प्रेस दीर्घा समिति से बदलकर पुनः प्रेस परामर्शदात्री समिति कर दिया गया और उसके सदस्यों की संख्या 12 से बढ़ाकर 21 कर दी गई। वर्ष 2004 में समूचे देश के क्षेत्रीय भाषाई समाचार-पत्रों तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को प्रतिनिधित्व देने के लिए समिति के सदस्यों की संख्या पुनः बढ़ाकर 27 कर दी गई है। समिति के लिए नामनिर्देशित सदस्य लोक सभा प्रेस दीर्घा के लिए प्राधिकृत प्रेस प्रतिनिधियों में से होते हैं। समिति के चार सदस्य समिति के पदाधिकारियों अर्थात् चेयरमैन, वाइस चेयरमैन, सचिव और संयुक्त सचिव के रूप में नामनिर्देशित किये जाते हैं।

समिति के कृत्य इस प्रकार हैं:—

(एक) सभा की कार्यवाही संबंधी समाचार प्रस्तुत करने वाले समाचार पत्रों/समाचार एजेंसियों/मीडिया के प्रतिनिधियों के लिए स्थायी प्रवेश पत्रों को जारी करने की अनुशंसा करना।

(दो) सभा की कार्यवाही के दौरान दीर्घा में उपस्थित होने और कार्यवाही अथवा अन्य किसी संसदीय समारोह या गतिविधि को कवर करने वाले समाचार पत्रों/समाचार एजेंसियों/मीडिया के प्रतिनिधियों के लिए अस्थायी प्रवेश पत्रों को जारी करने की अनुशंसा करना।

(तीन) समाचार पत्रों/समाचार एजेंसियों/मीडिया के प्रतिनिधियों के विरुद्ध की गई शिकायतों की जांच करना और इस संबंध में समुचित कार्यवाही हेतु अध्यक्ष लोक सभा से सिफारिश करना।

(चार) समुचित कार्यवाही/माननीय लोक सभा अध्यक्ष से की गई मीडिया से संबंधित शिकायतें।

(पांच) माननीय लोक सभा अध्यक्ष विधि और नियमों के प्रावधानों के अनुरूप और सामान्य प्रयोजन समिति की सलाह के अनुरूप भी कार्यवाही कर सकती सकता है।

(छह) उनके कर्तव्यों के निर्वहन के लिए उन्हें दी जा सकने वाली सुविधाओं के बारे में लोक सभा अध्यक्ष से सिफारिश/अनुशंसा करना।

(सात) उन्हें सौपें गए कार्यों के अनुरूप ही अन्य कार्य करना।

प्रेस दीर्घा में समाचार-पत्रों और उनके संवाददाताओं के प्रवेश के लिए प्राप्त सभी आवेदन पत्र सामान्यतया सचिवालय द्वारा समिति को उसकी राय तथा परामर्श के लिये भेज दिये जाते हैं। इसी प्रकार प्रेस दीर्घा में स्थानों के आबंटन से संबंधित सभी मामलों में समिति की राय ली जाती है। समिति किसी समाचार-पत्र को स्थान आबंटित करते समय सामान्यतया इस बात का ध्यान रखती है कि उस समाचार-पत्र में सभा की कार्यवाही को कितना स्थान दिया गया है और उसकी प्रतिदिन कितनी प्रतियां बिकती हैं।

प्रेस दीर्घा में नये संवाददाताओं के प्रवेश की सिफारिश करते समय समिति ने यह परिपाटी निर्धारित की है कि संवाददाताओं को पत्रकारिता का कम से कम पांच वर्ष का अनुभव होना चाहिए।

प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र : इस दीर्घा में प्रेस संवाददाताओं का प्रवेश उन प्रवेश-पत्रों के आधार पर होता है जो महासचिव द्वारा सीपीआईसी के जरिए अध्यक्ष के सामान्य आदेशों के अनुसार जारी किये जाते हैं। अब प्रत्येक संवाददाता को एक कैलेंडर वर्ष की अवधि के लिए एक फोटो लेमीनैटेड प्रवेश-पत्र दिया जाता है।

प्रेस परामर्शदात्री समिति के किन्हीं दो सदस्यों द्वारा लिखित में सिफारिश करने पर ऐसे वास्तविक पत्रकारों को, जो लोक सभा के सत्र के दौरान कुछ समय के लिये दिल्ली आये हों, कोई स्थान आबंटित किए बिना एक सप्ताह से अनधिक अवधि के लिये अस्थायी प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र जारी किए जाते हैं।

विदेशी संवाददाताओं का प्रवेश : प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र जारी करने के लिये विदेशी संवाददाताओं से प्राप्त आवेदन-पत्रों पर तभी विचार किया जाता है यदि वे भारत सरकार द्वारा अधिकृत हों और यदि इस आशय के अनुरोध भारत सरकार के प्रेस सूचना ब्यूरो के माध्यम से सचिवालय में प्राप्त हुए हों।

प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र का रद्द किया जाना : अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार से प्रेस दीर्घा के किसी प्रवेश-पत्र को रद्द कर सकता है।[13] सभा की कार्यवाही को जानबूझकर गलत ढंग से पेश करना[14], प्रश्नों तथा उनके उत्तरों का समय से पहले प्रकाशन या किसी ऐसे विषय का

---

13. 1928 में *टाइम्स ऑफ इण्डिया* में छपे एक समाचार में और *डेली टेलीग्राफ,* लंदन के शिमला संवाददाता के संदेश में अध्यक्ष के विरुद्ध कुछ आलोचना की गयी थी। अतः दोनों संवाददाताओं के प्रेस दीर्घा प्रवेश पत्र रद्द कर दिए गए थे *टाइम्स ऑफ इण्डिया* के संबंधित संवाददाता और उसके मालिक द्वारा बिना शर्त क्षमा याचना करने पर संवाददाता को बाद में प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र जारी किया गया।

    5 सितम्बर, 1936 को कलकत्ता के समाचार-पत्र *अमृत बाजार पत्रिका* के संवाददाता को जारी किया गया प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र इसलिए रद्द कर दिया गया था कि उसमें छपे एक लेख में अध्यक्ष पर आक्षेप किया गया था।

    सभा के निर्णय के अनुसरण में, अध्यक्ष ने 21 अगस्त, 1961 को सभा में घोषणा की थी कि उन्होंने *ब्लिट्ज* के संवाददाता "ए. राघवन को जारी किया गया लोक सभा प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र तथा केन्द्रीय कक्ष प्रवेश-पत्र रद्द कर दिया है।" *एल.एस. डिबेट्स,* 20.4.1961, कॉ. 2659-70; 19.8.1961, कॉ. 3335-80; *लो.स.वा.वि.,* 21.8.1961, पृ. 153 ।
14. *एल.ए. डिबेट्स,* 7.3.1935, पृ. 1781-82, 1813 ।

प्रकाशन जो जनता के लिये न हो, जैसे कारण प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र वापस लिए जाने के समुचित आधार माने जा सकते हैं।

प्रेस दीर्घा की सुविधाओं के अतिरिक्त प्रेस संवाददाताओं को कुछ अन्य सुविधायें भी दी जाती हैं, जिससे कि उन्हें सभा की कार्यवाही के समाचार देने में सहायता मिल सके। इन सुविधाओं का उल्लेख अध्याय 44—संसद और प्रेस में किया गया है।

लॉबी

लोक सभा की लॉबी में भीतरी लॉबी (जिसे मतदान लॉबी भी कहा जाता है) और बाहरी लॉबी शामिल है। लॉबी संसद सदस्यों और लोक सभा के उन भूतपूर्व सदस्यों के उपयोग के लिये है जिन्हें अध्यक्ष के विवेकाधिकार से लॉबी की सुविधायें दी गयी हों।

> केन्द्रीय विधानमण्डल, संविधान सभा, अंतरिम संसद, लोक सभा (पूर्ववर्ती लोक सभा से भिन्न) या राज्य सभा के भूतपूर्व सदस्यों को केन्द्रीय कक्ष में संसदीय संबंधित सूचना कार्यालय द्वारा जारी पहचान पत्रों के आधार पर ही प्रवेश की अनुमति दी जाती है।

लॉबी में प्रवेश हेतु सत्र के लिये प्रवेश-पत्र विधि मंत्रालय के सचिव और प्रधान मंत्री के सचिव को जारी किए जाते हैं। ये अधिकारी जब भी आवश्यक हो, विधेयकों के प्रारूपण से संबंधित सरकारी कार्य के संबंध में अथवा प्रधान मंत्री की ओर से लॉबी में जा सकते हैं।

लॉबी में केवल उन्हीं पत्रकारों को प्रवेश करने की अनुमति दी जाती है जिनके प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्रों पर अध्यक्ष के निदेशों के अधीन लॉबी के लिए पृष्ठांकन किया होता है। ऐसे प्रवेश-पत्रों की संख्या 12 तक सीमित रखी गई है। तथापि, इन 12 संवाददाताओं, जिनके पास पहले से ही ये प्रवेश-पत्र हैं, में से किसी की मृत्यु हो जाने या किसी संवाददाता द्वारा इस व्यवसाय को छोड़ दिए जाने के कारण कोई रिक्ति उत्पन्न होती है तो इसे आवश्यक मानदण्ड पूरा करने वाले दूसरे उपयुक्त पत्रकार द्वारा भरा जा सकता है।

केन्द्रीय कक्ष और उसकी दीर्घाएं

केन्द्रीय कक्ष लॉबी का ही विस्तार है और यह प्रमुख रूप से संसद सदस्यों के उपयोग के लिये है। भूतपूर्व संसद सदस्यों और प्रेस संवाददाताओं, जिनके पास केन्द्रीय कक्ष और लॉबी के लिए पृष्ठांकित प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र होते हैं, को प्रवेश-पत्र दिखाने पर केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश करने की अनुमति दी जाती है। कतिपय श्रेणियों के उन पत्रकारों, जिनके पास अस्थायी प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र होते हैं, को भी सत्र के दौरान बहुत ही कम अवधि के लिए केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश करने की अनुमति दी जा सकती है। सदस्यों के विशेष अनुरोध पर राज्यों के राज्यपालों और मंत्रियों तथा राज्य विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों और सदस्यों को लोक महत्व के विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिये केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश करने की अनुमति दी जाती है। जिस सभा से सदस्य संबंधित होते हैं उससे अनुरोध करने पर उस सभा के सचिवालय द्वारा जारी किए गए प्रवेश-पत्रों के माध्यम से प्रवेश विनियमित किया जाता है।

लोक सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन के बाद पहले सत्र के प्रारंभ होने पर और प्रत्येक वर्ष पहले सत्र के प्रारंभ होने पर, जब राष्ट्रपति संसद की एक साथ समवेत दोनों

सभाओं के सदस्यों के समक्ष अभिभाषण देता है, दर्शकों को केन्द्रीय कक्ष की लाबियों अथवा दीर्घाओं से अभिभाषण सुनने की अनुमति दी जाती है।

इस अवसर पर केन्द्रीय कक्ष की चार लॉबिया राष्ट्रपति के परिवार के सदस्यों तथा अतिथियों; विदेशी दूतावासों के प्रमुखों तथा उनकी पत्नियों; सभापति, अध्यक्ष, उप-सभापति, और उपाध्यक्ष के परिवार के सदस्यों और उनके अतिथियों; तथा लोक सभा और राज्य सभा सचिवालय के अधिकारियों और भारत सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए आरक्षित की जाती हैं।

केन्द्रीय कक्ष की दीर्घाएं प्रेस संवाददाताओं, लोक सभा सदस्यों के अतिथियों, राज्य सभा सदस्यों के अतिथियों तथा प्रतिष्ठित दर्शकों (लोक सभा और राज्य सभा सदस्यों की पत्नियों/पतियों विशिष्ट विदेशी अतिथियों; मंत्रियों राज्य विधान सभाओं और विधान परिषदों के सदस्यों सहित) और केन्द्रीय विधानमण्डल तथा संसद के भूतपूर्व सदस्यों के लिए आरक्षित होती हैं।

किसी विशेष अवसर पर केन्द्रीय कक्ष की लाबियों और दीर्घाओं में प्रवेश उस अवसर के लिये जारी किये गए प्रवेश-पत्रों के माध्यम से विनियमित किया जाता है। एक सदस्य केवल एक व्यक्ति के लिए ही दर्शक प्रवेश-पत्र के लिए आवेदन कर सकता है। लेकिन इस संबंध में वरीयता यथासंभव लोक सभा और राज्य सभा सदस्य की पत्नी अथवा पति को दी जाती है। चूंकि दर्शक दीर्घा में लोक सभा के सदस्यों के अतिथियों के बैठने के लिए केवल 150 स्थानों की व्यवस्था है, इसलिए इस संख्या से अधिक प्राप्त हुए आवेदनों पर राष्ट्रपति के अभिभाषण की समाप्ति के आधा घंटे बाद लोक सभा की बैठक के लिए दर्शक प्रवेश-पत्र जारी करने हेतु विचार किया जाता है।[15]

विदेशी राष्ट्राध्यक्षों या प्रधान मंत्रियों या अन्य प्रतिष्ठित विदेशी अतिथियों द्वारा संसद सदस्यों के समक्ष भाषण दिये जाने की व्यवस्था केन्द्रीय कक्ष में की जाती है। ऐसे अवसरों पर केन्द्रीय कक्ष में बैठने की व्यवस्था लगभग वैसी ही रहती है जैसी कि राष्ट्रपति के अभिभाषण के अवसर पर होती है, सिवाय इसके कि केन्द्रीय कक्ष में आरक्षित स्थानों पर वे विशेष अतिथि बैठते हैं, जो उस आगन्तुक के साथ हों जो संसद सदस्यों के समक्ष भाषण देने आया हो।

लोक सभा में अंतरसत्रावधि में दर्शकों का प्रवेश

अंतरसत्रावधि के दौरान दर्शकों को केवल कार्य दिवसों पर निश्चित समय के दौरान संसद भवन दिखाने की व्यवस्था की जाती है। ऐसे दर्शकों को सुरक्षा सहायक प्रत्येक आधे घंटे बाद 40 या 50 व्यक्तियों के सुविधाजनक समूहों में ले जाता है। इसके लिये संसद सुरक्षा सेवा के सक्षम प्राधिकारी के निर्देश पर उन्हें स्वागत कार्यालय द्वारा नियत अवधि के लिए अनुज्ञा-पत्र जारी किया जाता है। इन दर्शकों को प्रातः 11 बजे से सांय 5 बजे के बीच लोक सभा, राज्य सभा कक्ष और केन्द्रीय कक्ष में ले जाया जाता है।

15. *समाचार-भाग* 2, 1.1.1976, पैरा 2547; 24.3.1977, पैरा 26 ।

अध्याय 34

याचिकायें और अभ्यावेदन

याचिकायें

लोकतंत्र में सर्वसाधारण को देश के विधानमण्डल में अपनी याचिकाएं प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त है ताकि वे उसके समक्ष अपनी शिकायतें रख सकें और लोक महत्त्व के विषयों पर रचनात्मक सुझाव दे सकें। भारत में यह अधिकार सुस्थापित है और प्राचीन काल से चला आ रहा है। शिकायतों को दूर करने के लिए याचिका देने की संकल्पना को अब परोक्ष रूप में संविधान में भी स्वीकार किया गया है।[1]

लोक सभा ने जनता द्वारा याचिकायें प्रस्तुत करने और सभा द्वारा उन पर विचार करने के लिए प्रक्रिया नियम बनाये हैं।[2]

याचिकाओं की व्याप्ति

लोक सभा अध्यक्ष की सम्मति से लोक सभा को याचिकायें ऐसे विधेयक के संबंध में जो प्रकाशित कर दिया गया हो या जो सभा में पुर:स्थापित किया जा चुका हो[3]; अथवा सभा के समक्ष लम्बित कार्य से संबंधित किसी विषय के संबंध में[4] अथवा सामान्य लोकहित में

---

1. अनुच्छेद 350 ।
2. नियम 160-169 ।
3. जिन कतिपय महत्वपूर्ण विधेयकों और अधिनियमों के संबंध में याचिकाएं प्राप्त हुई वे हैं: खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954; विधानमंडल कार्यवाही (प्रकाशन का संरक्षण) विधेयक, 1956; राज्य पुनर्गठन विधेयक, 1956; अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) विधेयक 1956; आन्ध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा परिवर्तन) विधेयक, 1959; संविधान (नौवां संशोधन) विधेयक, 1960; अधिवक्ता अधिनियम, 1961; बैंककारी विधि (सहकारी सोसायटी का उपयोजन) अधिनियम, 1965; आवश्यक सेवाएं बनाये रखने का अधिनियम, 1968 का निरसन, बैंककारी कम्पनी (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) विधेयक 1969; हिन्दुस्तान ट्रैक्टर्स लि. (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) अधिनियम, (1978 कॉ. 13); विक्रय संवर्धन कर्मचारी (सेवा शर्तें) संशोधन विधेयक 1980; दिल्ली नगर निगम-संशोधन और विधिमान्यकरण-विधेयक, 1980; पंजाब नगर निगम विधि (चंडीगढ़ पर विस्तारण) अधिनियम, 1994।
4. विधेयकों के अलावा कतिपय महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में जो याचिकायें पेश की गईं—उनमें शामिल हैं—राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट, राजभाषा संबंधी संसदीय समिति की रिपोर्ट, 1958 में वित्त मंत्री के बजट भाषण में प्रस्तावित वनस्पति अवाष्पशील तेल पर उद्ग्रहणीय उत्पाद शुल्क की छूट को वापस लिया जाना, सरकार की शिक्षा नीति और स्वाधीनता के बाद

किसी विषय के संबंध में[5] पेश की जा सकती हैं या भेजी जा सकती हैं, बशर्ते कि यह ऐसा विषय न हो, जो भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय या जांच

शिक्षा के लिए रखी गई धनराशि, बेरोजगारी तथा युवाओं की अन्य शिकायतें, दिल्ली टेलीफोन्स द्वारा अधिक राशि के बिल भेजे जाने और एस.टी.डी प्रणाली के कार्यकरण के बारे में शिकायत, सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी कर्मचारियों की आवास, कृषि स्नातकों और स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त लोगों तथा कृषि इंजीनियरों की बेरोजगारी, बढ़ते मूल्य, बेरोजगारी तथा अन्य समस्याएं, सड़क कर के भुगतान से छूट और शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को पेट्रोल की सप्लाई, पेंशन भोगियों की शिकायतें तथा मांगें, बम्बई उपनगरीय दैनिक यात्रियों की कठिनाइयां।

5. अन्य बातों के साथ-साथ याचिकायें तथा अभ्यावेदन निम्नलिखित विषयों पर प्राप्त हुए और स्वीकार किये गये: रेलवे समय-सारिणी तथा निर्देशिका तैयार करना और उनका प्रकाशन; पब्लिक स्कूलों आदि में योग्यता छात्रवृत्ति के लिये प्रतियोगिता परीक्षा में भाग लेने के इच्छुक छात्रों को दो तरफ की यात्राओं में से एक तरफ के रेल किराये की रियायत देना; डाकखाना बचत बैंक नियमों में संशोधन, जिससे कि एकल जमा करने वालों को नाम-निर्देशन की सुविधा दी जा सके, भारत में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का कल्याण, कारखाना अधिनियम, 1948 में संशोधन, केरल में नारियल जटा उद्योग का संरक्षण; निर्वाचन संबंधी नियम, 1961 में संशोधन; स्वर्ण नियंत्रण से संबंधित भारत रक्षा (संशोधन) नियम, 1963; लोक सभा या उसके किसी सदस्य को प्रस्तुतीकरण के लिए भेजी जाने वाली याचिकाओं को बुक पैकेट दरों पर डाक द्वारा भेजने की जनता को सुविधा उपलब्ध कराना; सरकारी खजाने में जाकर अपनी देय राशि का सरकार को भुगतान करने वाले व्यक्तियों के उपयोग के लिए, प्रकीर्ण मनी आर्डर फार्म जारी करना; लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951; और भारतीय डाकघर नियम, 1933; केन्द्रीय सरकार के पेंशनभोगियों की पेंशन में वृद्धि; कच्छ क्षेत्र का विकास; भारत में नेत्रहीन व्यक्तियों का कल्याण; भारत में डाक जोन संख्या आरंभ किया जाना; दिल्ली के मेडिकल कालेजों में प्रवेश; बिहार में कोयला खानों का राष्ट्रीयकरण; वाहनों का प्रयोग करने वाले शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को सड़क कर के भुगतान से छूट और उन्हें रियायती दरों पर पेट्रोल की सप्लाई; श्रीराम औद्योगिक अनुसंधान संस्थान, दिल्ली का सरकार द्वारा अधिग्रहण; गन्ना मूल्य; आयकर अधिकारी द्वितीय श्रेणी की सेवा संबंधी शिकायतें; बागान उद्योग और व्यापार का राष्ट्रीयकरण; दिल्ली विद्यालय शिक्षा अधिनियम, 1973 के उपबन्धों और उसके अंतर्गत बनाये गए नियमों का कथित उल्लंघन; रेल कर्मचारियों की शिकायतें; इन्दौर में रेल सेवाओं का बढ़ाया जाना; सिक्किम के कुछ भागों में विदेशी पर्यटकों के प्रवेश पर प्रतिबंध; और वृद्धावस्था पेंशन योजना शुरू किया जाना; असंगठित क्षेत्रों के कामगारों की मांगों का समाधान; भागलपुर के 1989 के दंगा पीड़ितों को राहत, महानदी कोलफील्ड्स लिमि. (एमसीएल) द्वारा उड़ीसा सरकार की पुनर्वास नीति, 1989 का क्रियान्वयन न किया जाना और अन्य सम्बद्ध मुद्दे: भारतीय दन्त परिषद द्वारा एल. एन. मिथिला यूनिवर्सिटी दरभंगा, बिहार के विभिन्न दन्त महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को दी गई बी.डी.एस. डिग्री को मान्यता प्रदान करना; भारतीय समुद्री क्षेत्र में खतरनाक अपशिष्ट ले

न्यायालय या सांविधिक न्यायाधिकरण या प्राधिकरण या किसी अर्द्ध-न्यायिक निकाय या किसी आयोग के संज्ञान में आता हो अथवा जो सामान्यत: किसी राज्य विधानमंडल में उठाया जाना चाहिए अथवा जो किसी मूल प्रस्ताव या संकल्प के माध्यम से ही उठाया जा सकता है, या जिसके लिए कानून, जिसमें अधीनस्थ विधान भी शामिल है, के अंतर्गत उपचार उपलब्ध हो।

यदि कोई याचिका वित्तीय विषयों से संबंधित हो या उस पर भारत की संचित निधि से व्यय अंतर्ग्रस्त हो, तो उसे तब तक सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जब तक कि राष्ट्रपति इसकी सिफारिश न करे।[6]

याचिकाओं के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं: एक तो यह है कि इसके द्वारा किसी सार्वजनिक विषय के गुण बताये जाते हैं, जिसकी ओर याचिकाकर्ता लोक सभा का ध्यान दिलाना चाहता है; और दूसरा उस विषय को उतना ही महत्वपूर्ण प्रदर्शित करना है जितना कि बाहर जनता उसे मानती है। दूसरी श्रेणी की याचिकाओं का उद्देश्य यह है कि जनमत को प्रखर और केन्द्रित किया जाये, जिससे कि सरकार को वास्तविक शिकायत पर शीघ्र कार्यवाही करने के लिए तैयार किया जा सके।[7]

याचिका संबंधी आवश्यक बातें

याचिका एक विहित प्रपत्र में प्रस्तुत की जानी चाहिए और उसमें ये बातें होनी चाहिएं: 'सभा को औपचारिक सम्बोधन' अर्थात् यह लोक सभा को सम्बोधित होनी चाहिए[8]; शिकायत का नपी-तुली भाषा में, संक्षेप में वर्णन; उस विषय के निश्चित उद्देश्य[9] के संबंध में प्रार्थना, जिससे कि याचिका सम्बद्ध हो और याचिकाकर्ता का नाम, पदनाम और पता जो उसके हस्ताक्षर से और यदि वह अनपढ़ हो, तो उसके अंगूठे के निशान से अधिप्रमाणित हो।[10] इसके अतिरिक्त याचिका की पंक्तियों के मध्य शब्दों का सन्निवेश नहीं होना चाहिए और न ही लिखे शब्द मिटाने के निशान होने चाहिए।

जाने वाली एस.एस.ब्ल्यू. लेडीशिप के प्रवेश को अनुमति देने में प्राधिकारियों की भूमिका; आयात की गई सामग्री को गलती से पुराने वस्त्र घोषित करने के कारण भारत सरकार को होने वाली अत्यधिक राजस्व हानि; बी.सी.सी.एल. की एक यूनिट भोजुडीह कोल वाशरी के ठेका कामगारों को नियमित करना और बधिर विकलांग व्यक्तियों की केन्द्रीय उत्पाद शुल्क निरीक्षक के रूप में नियुक्ति।

6. नियम 160क-इस नियम में जिन वित्तीय विषयों का उल्लेख किया गया है वे वही हैं जो संविधान के अनुच्छेद 110 के खण्ड (1) के उप-खण्ड (क) से (च) तक में दिये गये हैं।
7. नौवां प्रतिवेदन (याचिका समिति—पहली लोक सभा), अनुबंध-क ।
8. नियम 165 ।
9. नियम 165 ।
10. नियम 162 (1) ।

जब कोई याचिका एक से अधिक व्यक्तियों की ओर से दी गई हो तो कम से कम एक व्यक्ति उस पर हस्ताक्षर अवश्य करे, या यदि वह अनपढ़ हो, तो उस कागज पर, जिस पर याचिका लिखी गयी हो, उसके अंगूठे का निशान अवश्य होना चाहिए। यदि हस्ताक्षर या अंगूठे के निशान एक से अधिक कागजों पर लगे हों, तो याचिका की प्रार्थना प्रत्येक कागज के शीर्ष पर दोहरायी जानी चाहिए।[11]

जो याचिका सीधे किसी याचिकाकर्ता से प्राप्त हो और उसमें कुछ अंश दोषपूर्ण हो, या वह याचिकाओं से संबंधित नियमों के किसी एक या अधिक उपबंधों के विरुद्ध हो, तो उस याचिका को वापस लौटा दिया जाता है। याचिकाकर्त्ता को बताया जाता है कि उसमें क्या दोष है और यह कहा जाता है कि यदि वह चाहे तो उसमें आवश्यक संशोधन करने के बाद उसे फिर सचिवालय को भेज सकता है।

यदि किसी सदस्य के माध्यम से प्राप्त हुई याचिका में, किसी नियम का उल्लंघन किया गया हो, तो सचिवालय द्वारा उसका समुचित ढंग से सम्पादन किया जाता है और उसमें किये गये परिवर्तनों के बारे में सदस्य की सम्मति भी ली जाती है। जब पर्याप्त संशोधन किये बिना, किसी याचिका का सम्पादन असंभव हो, तो वह सदस्य की सहमति से याचिकाकर्त्ता को वापस भेज दी जाती है और उसे बताया जाता है कि उसमें क्या परिवर्तन किये जाने चाहिए।

लोक सभा को भेजी गई प्रत्येक याचिका या तो हिन्दी में होनी चाहिए या अंग्रेजी में। यदि किसी अन्य भारतीय भाषा में कोई याचिका दी जाये तो उसके साथ उसका हिन्दी या अंग्रेजी में अनुवाद संलग्न होना चाहिए और उस पर याचिकाकर्त्ता के हस्ताक्षर होने चाहिए।[12]

पत्र, शपथ-पत्र या अन्य दस्तावेज किसी याचिका के साथ नहीं लगाये जाने चाहिएं।[13] अत: याचिका अपने आप में सम्पूर्ण और अपने आप में स्पष्ट होनी चाहिए परन्तु व्यवहार में अब तक किसी भी याचिका को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया गया है कि उसके साथ पत्र, दस्तावेज आदि संलग्न थे।

किसी ऐसी ग्राह्य याचिका, जिसमें समाचारपत्रों का उल्लेख किया गया हो और उनकी कतरनें लगायी गयी हों या अन्य वक्तव्य या आंकड़े दिये गये हों, जिनके बिना याचिका बोध गम्य न हो, का सम्पादन इस ढंग से किया जाता है किं समाचार या वक्तव्य या आंकड़े याचिका में ही उचित स्थान पर सम्मिलित कर लिये जायें। यदि किसी सदस्य ने उस याचिका पर प्रति-हस्ताक्षर किये हों तो उसको उसमें किये गये परिवर्तनों की सूचना दे दी जाती है।

विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त ऐसी याचिकाओं को, जिनकी भाषा बिल्कुल एक जैसी हो, एक याचिका समझा जाता है और पहले याचिकाकर्ता को ऐसी याचिका पर हस्ताक्षर करने वाला पहला व्यक्ति माना जाता है और अन्य याचिकाकर्ताओं की केवल संख्या ही उस पर

11. नियम 162 (2) ।
12. नियम 161 (3) ।
13. नियम 163 ।

लिखी जाती है। जब ऐसी याचिकायें किसी सदस्य के माध्यम से प्राप्त हों, और उसे उन याचिकाओं को सभा में प्रस्तुत करना हो, तो उन याचिकाओं पर कार्यवाही करने से पहले उस सदस्य को इस प्रक्रिया की सूचना दे दी जाती है।[14]

परन्तु, आपवादिक मामलों में, जहां सार्वजनिक जीवन में प्रमुख स्थान रखने वाले व्यक्तियों से एक जैसी याचिकायें प्राप्त हों, तो याचिकाओं पर हस्ताक्षर करने वाले पहले व्यक्ति के नाम और पते के बाद अन्य याचिकाकर्ताओं की कुल संख्या बताने की बजाय बाकी सब याचिकाकर्ताओं के नामों का उल्लेख भी किया जाता है, परन्तु उनके पते नहीं दिये जाते हैं।

यदि किसी याचिका पर हस्ताक्षर करने वाले किसी व्यक्ति, का उसके सभा में पेश होने से पहले देहान्त हो जाये, तो उसे अस्वीकार कर दिया जाता है क्योंकि याचिका प्रस्तुत करने के समय याचिकाकर्त्ता का एक जीवित व्यक्ति अथवा निगमित निकाय के रूप में विद्यमान होना आवश्यक है।

याचिकाओं की ग्राह्यता

याचिका किसी ऐसे विषय से संबंधित होनी चाहिए, जो सभा की सक्षमता या उसके क्षेत्राधिकार में हो, और जिस में सभा हस्तक्षेप कर सके और वह राहत दे सके, जिसके लिए प्रार्थना की गयी हो।[15] साधारणतया जो विषय एक राज्य विधानमंडल में उठाये जाने चाहियें उनसे सम्बद्ध याचिकाएं गृहीत नहीं की जाती हैं। तथापि, लोक सभा का कोई सदस्य ऐसी याचिका दे सकता है जो राज्य सभा के सदस्य द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत की जाये।[16]

याचिका का उद्देश्य, अर्थात् वह विषय, जिससे याचिका का सम्बन्ध हो, सुस्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए। ऐसी याचिका रद्द कर दी जाती है, जिसमें कोई निश्चित सुझाव न दिया गया हो या जिसमें कोई ऐसी शिकायत न बतायी गई हो, जिसे दूर किया जाना हो। इसके अतिरिक्त याचिका सम्मानपूर्ण, शिष्ट तथा संयत भाषा में लिखी जानी चाहिये। जो याचिका इस प्रकार न लिखी गयी हो या जिसमें अभ्यारोप लगाये गये हों, या जो राजनैतिक अभियोग के स्वरूप की हो, स्वीकार नहीं की जाती है।

ऐसी याचिकायें ग्राह्य नहीं हैं, जिनमें सदस्यों के विरुद्ध उनके व्यक्तिगत जीवन के आचरण के संबंध में शिकायतें की गयी हों, और जिनका सम्बन्ध संसद सदस्यों के रूप में उनके आचरण से न हो।[17]

---

14. ऐसे मामलों में सामान्यत: याचिका पेश करते समय सदस्य द्वारा उस याचिकाकर्त्ता के नाम का उल्लेख किया जाता है जिसे प्रथम हस्ताक्षरकर्ता माना गया है।
15. नियम 160-*देखिए* पीछे इसी अध्याय में 'याचिकाओं की व्याप्ति' के अंतर्गत ।
16. कार्य-सूची, राज्य सभा, 5.12.1973 ।
17. अध्यक्ष ऐसी शिकायतों का निपटारा सम्बन्धित सदस्य से बातचीत करके अथवा आरोपों के संबध में सदस्य से तथ्य मंगा कर करता है।

ऐसी याचिका सभा में प्रस्तुत किये जाने के लिए ग्राह्य नहीं है जिसमें मूल रूप से वही प्रश्न उठाया गया हो जिस पर एक विधेयक या एक संकल्प के माध्यम से सभा में चर्चा किये हुए एक वर्ष से अधिक का समय न हुआ हो।[18] इस प्रथा के पीछे यह सिद्धांत है कि किसी विधेयक या संकल्प पर सभा द्वारा निर्णय लिये जाने के पश्चात् ऐसी समय-सीमा निर्धारित करना आवश्यक होगा जिसके भीतर उसी मामले पर पुनः चर्चा नहीं की जानी चाहिए जब तक कि याचिका में कोई नए तथ्य सामने नहीं लाये जाते हैं।

याचिका निजी या व्यक्तिगत शिकायतों के बारे में नहीं होनी चाहिये। यदि कोई याचिका निजी या व्यक्तिगत शिकायतों के बारे में है तो उसे याचिका के रूप में रद्द कर दिया जाता है।[19] तथापि, यदि निजी शिकायत सभा के समक्ष लम्बित कार्य से सम्बद्ध किसी मामले के बारे में हो और याचिका अन्यथा ठीक हो तो इसे इस पर प्रतिहस्ताक्षर करने वाले सदस्य द्वारा पेश करने के लिए गृहीत किया जाता है।[20]

ऐसी याचिकाएं ग्राह्य नहीं हैं, जिनमें वर्तमान करों के माफ करने या समाप्त करने का सुझाव हो, या नये कर लगाने का सुझाव हो या सरकार के खर्च आदि के लिए भारत की संचित निधि से धन निकालने का सुझाव हो। ऐसी याचिकाएं तभी ग्राह्य हो सकती हैं, जब राष्ट्रपति ने इनकी सिफारिश की हो। यह बात इस सिद्धान्त पर आधारित है कि संविधान के अंतर्गत केवल लोक सभा को ही अनुदानों की उन मांगों पर मत देने का अधिकार है, जिनकी सिफारिश राष्ट्रपति ने की हो।

विदेशों की संसदों से या विदेशों के निवासियों से ऐसे विषयों के संबंध में प्राप्त पत्रों, तारों को, जो लोक सभा की सक्षमता तथा क्षेत्राधिकार से बाहर हों, याचिका के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि सभा के नाम याचिका में ऐसी शिकायत होनी चाहिये, जो उसके अधिकार क्षेत्र तथा शक्तियों की सीमा में हों और जिसके संबंध में सभा राहत दे सकती हो।[21]

---

18. नियम 182, तथापि विशेष मामलों में, अध्यक्ष अपवाद स्वरूप ऐसा कर सकता है। उदाहरणार्थ उच्च करों, अनिवार्य जमा योजना आदि (इन विषयों पर सभा में पहले चर्चा की गई थी), के संबंध में तीसरी लोक सभा के दौरान एक याचिका इसलिए गृहीत की गई कि इस पर बहुत अधिक लोगों के हस्ताक्षर थे और इसका प्रेस ने भी काफी प्रचार किया था—दूसरा प्रतिवेदन (याचिका समिति—तीसरी लोक सभा), पैरा 24 ।
19. निदेश 40 (1) (एक) । तथापि, ऐसी याचिका को एक अभ्यावेदन के रूप में याचिका समिति के समक्ष रखा जाता है। अधिक जानकारी के लिए इस अध्याय में आगे *देखिए 'अभ्यावेदन'* और अध्याय 30—'संसदीय समितियां', *याचिका समिति के अंतर्गत।*
20. नियम 160 (दो) और दूसरा प्रतिवेदन (याचिका समिति—तीसरी लोक सभा), पैरा 7 ।
21. कार्यवाही सारांश (नियम समिति), 15.12.1953 । ऐसे अनुरोध अथवा तार, जहां आवश्यक हो, सदस्यों के सूचनार्थ ग्रन्थालय में रखे जाते हैं।

जिस याचिका में संविधान में संशोधन करने का सुझाव दिया गया हो, वह ग्राह्य नहीं है क्योंकि संविधान में संशोधन इस प्रयोजनार्थ सभा में पुरःस्थापित किए गए विधेयक के माध्यम से ही किया जा सकता है।[22]

जब याचिका में ऐसे सरकारी तथ्य हों, जो ज्ञात न हों, तो कई बार सम्बद्ध मंत्रालय से तथ्यों की परिशुद्धता का सत्यापन करने के लिए कहा जाता है और ऐसे सत्यापन के बाद उस याचिका की ग्राह्यता का निर्णय लिया जाता है।[23]

सभा में याचिकाओं का प्रस्तुतीकरण

ऐसी प्रत्येक याचिका पर, जिसे कोई सदस्य सभा में प्रस्तुत करना चाहता हो, सदस्य के प्रतिहस्ताक्षर होने चाहिएं।[24] यदि याचिका हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भारतीय भाषा में हो, तो उसका हिन्दी या अंग्रेजी में अनुवाद होना चाहिये, जिस पर उस सदस्य के भी प्रतिहस्ताक्षर होने चाहियें, जो उसे पेश करना चाहता है जिससे कि यह पता चले कि वह मूल याचिका का ठीक-ठीक और प्रमाणिक अनुवाद है।

यदि किसी व्यक्ति से सीधे कोई याचिका प्राप्त हो और उस पर किसी सदस्य के प्रतिहस्ताक्षर न हों और उसकी जांच करने पर सचिवालय यह समझे कि वह याचिका ग्राह्य है तो वह याचिकाकर्ता को वापस कर दी जाती है और उससे कहा जाता है कि वह उस पर किसी सदस्य के प्रतिहस्ताक्षर करवाए, जिससे कि उस याचिका को सभा में प्रस्तुत किया जा सके। यह प्रथा इस सिद्धांत पर आधारित है कि याचिकायें सामान्यतः सदस्यों द्वारा जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं और उन्हें याचिका में कही गई बातों की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है और यदि उनके संबंध में सभा में प्रश्न उठाये जायें तो उनका उत्तर देना पड़ता है।

सूचना की आवश्यकताएं और प्रस्तुतीकरण की विधि

जो सदस्य कोई याचिका सभा में प्रस्तुत करना चाहता हो, वह उसके संबंध में महासचिव को पहले से सूचना देता है[25] सूचना देने से पहले सदस्य से यह आशा की जाती है कि वह इस संबंध में अपना समाधान कर ले कि यह सूचना याचिका संबंधी किसी नियम का उल्लंघन नहीं करती है। यदि सदस्य को इस संबंध में कोई संदेह हो तो वह याचिका

---

22. *देखिए* अनुच्छेद 368 ।

23. *निदेश* 40 (2) । आपवादिक मामलों में मंत्रालय से पूछा जाता है और सामान्यतः, याचिकाओं की ग्राह्यता संबंधी नियमों आदि को ध्यान में रखकर सचिवालय ही उनकी जांच करता है।

24. नियम 164 (1)—इस प्रथा के पीछे यह सिद्धांत है कि जो सदस्य कोई याचिका प्रस्तुत करना चाहता हो, उसे उसकी विषय-वस्तु उसमें कही गयी अन्य बातों की जिम्मेदारी लेनी होती है।

25. नियम 166 ।

प्रस्तुत करने के अपने आशय की सूचना में यह कह सकता है कि यदि उसमें कोई आपत्तिजनक अंश हों तो उन्हें हटा दिया जाये, या उनमें संशोधन करके याचिका को नियमों के अनुकूल बना दिया जाये। सूचना देते समय सदस्य को महासचिव को वह मूल याचिका भी भेजनी होती है जिस पर याचिकाकर्ता ने हस्ताक्षर किये हों और स्वयं सदस्य ने भी उस पर विधिवत् प्रतिहस्ताक्षर किये हों।[26]

याचिका प्रस्तुत करने के लिये पहले सूचना देने की कोई न्यूनतम अवधि निर्धारित नहीं की गयी है। सामान्यत: दो दिन की सूचना पर्याप्त समझी जाती है। आपवादिक मामलों में पहले सूचना देने की शर्त हटा दी गई है।

> जब सभा में लम्बित किसी ऐसे मामले के सम्बन्ध में, जिस पर तुरन्त चर्चा होने की संभावना है, याचिका प्रस्तुत करने की सूचना देर से प्राप्त होती है और उसे उस दिन की *कार्य-सूची* में शामिल नहीं किया जा सकता है तो सदस्य द्वारा सूचना दिए बिना याचिका पीठासीन अधिकारी की इजाजत से प्रस्तुत की जा सकती है।[27]

सदस्य सामान्यत: याचिका प्रस्तुत करने के आशय की सूचना में उस तिथि का उल्लेख करता है, जिस दिन वह याचिका प्रस्तुत करना चाहता है। यदि वह कोई तिथि न बताये, तो सचिवालय उससे परामर्श करके तिथि नियत करता है।

किसी सदस्य द्वारा जब कोई याचिका सभा में किसी निश्चित तिथि को प्रस्तुत की जानी हो, तो उसी दिन की *कार्य-सूची* में उसकी प्रविष्टि की जाती है।

कोई भी सदस्य अपनी ओर से याचिका प्रस्तुत नहीं कर सकता।[28] हालांकि वह किसी सार्वजनिक निगमित निकाय या सोसाइटी के सदस्य या अधिकारी के रूप में उसकी ओर से याचिका प्रस्तुत कर सकता है।

अध्यक्ष न तो अपनी ओर से और न ही किसी सदस्य की ओर से कोई याचिका प्रस्तुत करता है।

दो या दो से अधिक सदस्यों के प्रतिहस्ताक्षर युक्त याचिका सामान्यत: उस सदस्य द्वारा प्रस्तुत की जाती है, जिसने पहले उस पर प्रतिहस्ताक्षर किये हों, या यदि वह अनुपस्थित हो, तो दूसरा या तीसरा या कोई अन्य सदस्य, जिसने उस पर प्रतिहस्ताक्षर किये हों, उसे सभा में

---

26. नियम 164 (1) और 167 ।
27. दूसरी लोक सभा के आठवें सत्र के दौरान, 25 अगस्त, 1959 को, एक सदस्य ने आंध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा परिवर्तन) विधेयक, 1959 के सम्बन्ध में इस अनुरोध के साथ एक याचिका भेजी कि उसे उसी तिथि को इस याचिका को पेश करने की अनुमति दी जाये क्योंकि प्रश्नगत विधेयक को 27 अगस्त, 1959 को लिया जाना था, इसलिए सदस्य को वह याचिका उसी दिन प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी गयी।
28. नियम 164 (2)—तथापि वह चाहे तो अपनी याचिका किसी अन्य सदस्य को उस पर प्रतिहस्ताक्षर करने और उसे प्रस्तुत करने के लिए सौंप सकता है।

प्रस्तुत करता है। जो सदस्य याचिका प्रस्तुत करता है, उसका नाम याचिका का मुद्रण करते समय सबसे ऊपर लिखा जाता है और उसके बाद उन सदस्यों के नाम लिखे जाते हैं, जिन्होंने उस पर प्रतिहस्ताक्षर किये हों।

किसी याचिका को प्रस्तुत करने के बाद यदि उसमें कुछ त्रुटियां पायी जायें, तो उसे अध्यक्ष के आदेश से वापस ले लिया जाता है और याचिकाकर्ता को उसकी सूचना दे दी जाती है।[29]

आम तौर पर याचिका सभा में प्रश्न काल के बाद प्रस्तुत की जाती है।[30] यदि कोई सदस्य जिसने याचिका प्रस्तुत करने के अपने आशय की सूचना दी हो, अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर अपने स्थान पर उपस्थित न हो, तो सामान्यत: उसे बाद में उसी दिन याचिका प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाती है तथापि, वह सदस्य आगे जिस दिन याचिका प्रस्तुत करना चाहता हो उस तिथि का उल्लेख कर सकता है।

याचिका प्रस्तुत करने के समय वाद-विवाद करने की अनुमति नहीं दी जाती है।[31]

महासचिव द्वारा याचिकाओं के बारे में सूचना दिया जाना

आपवादिक मामलों में, जहां किसी सदस्य द्वारा किसी याचिका को प्रस्तुत कराये जाने की व्यवस्था नहीं की जा सकती हो, या सभा में याचिका के विषय को लिये जाने के पहले उसका प्रस्तुत किया जाना संभव न हो और अध्यक्ष यह समझता हो कि याचिका सभा में प्रस्तुत की जानी चाहिये, तो अध्यक्ष महासचिव को निदेश देता है कि वह याचिका के सम्बन्ध में सभा को सूचित करे। महासचिव द्वारा याचिका की प्राप्ति की सूचना जिस रूप में सभा को दी जाती है, उसकी व्यवस्था नियमों में की गयी है।[32] परन्तु प्रथा यह है कि महासचिव किसी याचिका की प्राप्ति की सूचना देते समय सभा का समय बचाने की दृष्टि से संक्षिप्त सूत्र का प्रयोग करता है। तथापि, दीर्घ सूत्र जैसा कि नियमों में विनिर्दिष्ट है, सभा के रेसो-साइक्लोस्टाइलग्राफ तथा मुद्रित वाद-विवाद में सम्मिलित किया जाता है।[33]

किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत की गयी किसी याचिका की भांति महासचिव द्वारा दी गई याचिका की रिपोर्ट पर किसी वाद-विवाद की अनुमति नहीं दी जाती है।

प्रस्तुतीकरण के बाद याचिकाओं का याचिका समिति को सौंपा गया माना जाना

किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत की गयी या महासचिव द्वारा सूचित की गई प्रत्येक याचिका,

---

29. निदेश 39 ।
30. निदेश 2 के तहत मद संख्या (अठारह)
31. नियम 168 ।
32. नियम 167 ।
33. *लो.स.वा.वि.*, 15.12.1958, पृ. 2405-6; *एल.एस. डिबेट्स,* 16.2.1959, का. 5273-74 ।

जैसी भी स्थिति हो, याचिका समिति को सौंपी गई मानी जाती है।[34] उसके बाद सचिवालय समिति के विचार के लिये एक ज्ञापन तैयार करता है, जिसमें संक्षेप में याचिकाकर्ता की शिकायत या अनुरोध को शामिल किया जाता है, उस मामले की पृष्ठभूमि बतायी जाती है और उसके उपचार का सुझाव, यदि कोई हो, दिया जाता है। यदि सम्बद्ध मंत्रालय से याचिका के सम्बन्ध में कोई तथ्य या राय प्राप्त हुई हो[35] तो उसको भी ज्ञापन में सम्मिलित किया जाता है।

समिति किसी याचिका के प्रस्तुत होने के बाद, यथाशीघ्र उस पर विचार करने के लिये बैठती है।[36] यह बात सभा के समक्ष लम्बित विधेयकों या अन्य मामलों संबंधी सभी याचिकाओं पर समान रूप से लागू होती है[37] यद्यपि अविलम्बनीय मामलों, में जब संबंधित विधेयक या याचिका के विषय पर सभा में चर्चा हो रही हो, तो समिति की बैठक याचिका के प्रस्तुत होने पर तत्काल उस पर विचार करने के लिए बुलाई जाती है।[38]

यदि कोई याचिका किसी विधेयक या किसी ऐसे मामले के सम्बन्ध में हो, जिस पर सभा में चर्चा हो रही हो या तत्काल चर्चा होनी हो, और समिति समय या गणपूर्ति के अभाव में बैठक न कर सके, तो याचिका अध्यक्ष के सामने रख दी जाती है और अध्यक्ष यह निदेश देता है कि इसे सम्पूर्ण रूप में या संक्षिप्त रूप में परिचालित कर दिया जाये।[39] लेकिन जब सभा में याचिका के विषय पर विचार किये जाने से पूर्व पर्याप्त समय उपलब्ध हो तो समिति याचिका पर विस्तार से विचार कर सकती है और सभा से यथोचित सिफारिशें कर सकती है।

प्रवर/संयुक्त समिति के समक्ष लम्बित विधेयकों पर याचिकायें

किसी प्रवर/संयुक्त समिति के समक्ष लम्बित किसी विधेयक पर प्राप्त किसी याचिका, जो नियमों के अन्तर्गत ग्राह्य हो, को सभा में प्रस्तुत नहीं किया जाता है और न उसके बारे में सूचना दी जाती है, परन्तु वह प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपी गई मानी जाती है और तदनुसार इसकी सूचना याचिकाकर्ता को दे दी जाती है।[40] यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि जब प्रवर या संयुक्त समिति विधेयक पर विस्तारपूर्वक विचार करती है और अपनी रिपोर्ट सभा को पेश करती है, तो वांछनीय यह होगा कि विधेयक की जितनी याचिकायें और अभ्यावेदन आदि प्राप्त हों, उन सब की जानकारी समिति को मिले, ताकि यदि वह आवश्यक समझे तो विधेयक में समुचित संशोधन कर सके।

---

34. नियम 169 ।
35. निदेश 40 (2) के अन्तर्गत ।
36. निदेश 94 ।
37. नियम 160 (एक) और (दो)।
38. निदेश 94—अधिक जानकारी के लिये *देखिये अध्याय* 30–'संसदीय समितियां', *याचिका समिति* के अंतर्गत।
39. नियम 307 (1) और (2) ।
40. निदेश 38 (3) दूसरा परन्तुक, और निदेश 82 ।

अभ्यावेदन

जिन याचिकाओं में निजी अथवा व्यक्तिगत शिकायतें हों, उन्हें याचिकाओं के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता बल्कि उन्हें याचिका समिति के सामने अभ्यावेदनों के रूप में रखा जाता है।[41] रोजगार की मांग करने वाले, किसी रूप में आर्थिक या वित्तीय सहायता की याचना करने वाले, राज्य सरकारों के नियंत्रण में आने वाले विषयों से संबंधित शिकायतों और न्यायालयों के विचाराधीन विषयों सम्बन्धी अभ्यावेदन समिति के क्षेत्राधिकार में नहीं आते, ऐसे अभ्यावेदन भी समिति के क्षेत्राधिकार में नहीं आते जो अन्य प्राधिकारियों को भेजे गए पत्रों की पृष्ठांकन प्रतियां मात्र होती हैं और जिनमें राहत के लिए पृष्ठांकन में विशेष रूप से अनुरोध नहीं किया जाता है। अनाम अभ्यावेदन या ऐसे अभ्यावेदन जिनमें हस्ताक्षर नहीं पढ़े जा सकते या जिनमें पूरे नाम अथवा पते न दिये गए हों, ग्राह्य नहीं होते।

भारत सरकार, राज्य सरकारों, ऐसे सांविधिक निगमों, जिनमें भारत सरकार का नियन्त्रक हित हो, के कर्मचारियों अथवा भूतपूर्व कर्मचारियों द्वारा अपनी शिकायतें बताने के लिये दिये गए अभ्यावेदनों के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही नहीं की जाती है क्योंकि इन कर्मचारियों के सामने और बहुत से रास्ते हैं और वे देश के सर्वोच्च अधिकारी तक अपनी बात पहुंचा सकते हैं। परन्तु यदि इन अभ्यावेदनों में निम्नलिखित में से कोई बात उठायी गयी हो, तो उन्हें सभापति की अनुमति से समिति के सामने रखा जाता है:—

> कि विषय से सम्बन्धित नियम, विनियम आदि या तो संविधान के उपबन्धों या न्याय की धारणा के विपरीत हैं या उनके अनुकूल नहीं हैं; कि निर्णय मनमाने ढंग से लिया गया है, अर्थात् निर्णय करते समय नियम लागू नहीं किये गये या निर्णय में कानून या नियमों का बल नहीं है; कि याचिकाकर्ता को अपनी बात कहने या अपना पक्ष प्रस्तुत करने का समुचित अवसर नहीं दिया गया है या अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिये उसे संगत तथा आवश्यक जानकारी नहीं दी गयी है; कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दिए गए निर्णय या कार्यपालिका की कार्यवाही के जो कारण बताये गये हैं उनसे कानून की या नियमों को लागू करने की किसी स्पष्ट गलती का पता चलता है; कि प्रत्यक्षत: ऐसा लगता है कि न्याय नहीं हुआ है; कि याचिकाकर्ता की शिकायत ऐसी है कि नियमों या विनियमों में संशोधन करने की आवश्यकता है, यद्यपि उसके मामले का निर्णय ठीक हुआ है, उदाहरणार्थ यदि नियमों को लागू करने से सरकारी कर्मचारियों के किसी वर्ग या श्रेणी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

कई बार सचिवालय में ऐसे पत्र, तार और संकल्पों आदि की प्रतियां आती हैं जिन्हें नियमों के अन्तर्गत याचिकाओं के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता है। उन्हें अभ्यावेदन मान लिया जाता है और समिति उन पर विचार करती है।

---

41. तथापि, प्रशासनिक विलम्ब और अधिकारियों की अक्षमता तथा भ्रष्टाचार अथवा प्रतिशोधात्मकता से सम्बन्धित किसी व्यक्ति की याचिका जो प्रमाण सहित हो, को स्वीकार किया जा सकता है।

सार्वजनिक संस्थायें, संघ या व्यक्ति लोक सभा के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले किसी भी विषय पर समिति को अभ्यावेदन दे सकते हैं। कोई अभ्यावेदन तभी ग्राह्य हो सकता है और समिति के समक्ष रखा जा सकता है जब वह सम्मानपूर्ण, शिष्ट और संयत भाषा में लिखा गया हो।

याचिकाओं के विपरीत, अभ्यावेदन देने के लिये किसी विशेष प्रपत्र की व्यवस्था नहीं की गयी है। यह पत्र के रूप में हो सकता है। अभ्यावेदन अन्य मामलों में भी याचिका से भिन्न होता है। अभ्यावेदन की व्याप्ति अधिक व्यापक है। याचिका के विपरीत, यह उस दशा में भी ग्राह्य है, जब इसमें कोई ऐसे प्रश्न उठाये गये हैं, जो लोक सभा में किसी ऐसे विधेयक या संकल्प के माध्यम से उठाए गए प्रश्न के समान हो, जिन पर एक वर्ष पहले चर्चा हुई हो।[42] अभ्यावेदन द्वारा संविधान में संशोधन, करों की माफी या हटाया जाना या नये करों के लगाये जाने के सुझाव दिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अभ्यावेदन में भारत की संचित निधि से धन निकालने का सुझाव भी दिया जा सकता है और कोई सदस्य अपनी व्यक्तिगत शिकायतें बताने के लिये अपनी ओर से अभ्यावेदन दे सकता है।[43] ऐसे मामले में समिति यह कह सकती है कि वह कोई राहत देने की स्थिति में नहीं है, क्योंकि स्वयं सभा भी ऐसा नहीं कर सकती, या समिति मंत्रालय को सुझाव दे सकती है कि यदि इस पर सरकार द्वारा जांच करना उचित हो, तो वह इस विषय की जांच करे और ऐसी कार्यवाही करे, जैसी वह उचित समझे।

यदि किसी अभ्यावेदन में ऐसी कोई शिकायत की जाये कि सदस्यों द्वारा सभा में वाद-विवाद के दौरान गलत बातें कहीं गयी हैं तो उस पर तब तक ध्यान नहीं दिया जाता है जब तक याचिकाकर्ता उस आरोप की पुष्टि में कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत न करे। तथापि, जब अध्यक्ष ऐसा निदेश दे, तो ऐसे अभ्यावेदनों की प्रतियां सम्बद्ध सदस्यों को उनकी जानकारी के लिये भेजी जा सकती हैं।

सभा की संगत कार्यवाही से याचिकाकर्ता की शिकायत सच्ची ही क्यों न प्रमाणित हो, सचिवालय ऐसी शिकायत पर कोई कार्यवाही नहीं करता, क्योंकि सदस्यों को सभा में भाषण का विशेषाधिकार प्राप्त है, और वाद-विवाद को विनियमित करना पूर्णतया अध्यक्ष के विवेकाधिकार में है। परन्तु ऐसे अभ्यावेदन याचिका समिति के सामने रखे जाने के लिए ग्राह्य हैं जिनमें, सभा में किसी सदस्य द्वारा कही गयी ऐसी बातों या किये गये ऐसे कार्यों पर विरोध प्रकट किया गया हो, जिनसे किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचती हो, या जिनमें यह आरोप हो कि सदस्य ने सभा में किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में गलत बातें कही हैं।[44]

---

42. *कार्यवाही-सारांश* (याचिका समिति—दूसरी लोक सभा), 23.7.1957 ।
43. पहली लोक सभा के दौरान अध्यक्ष ने तीन सदस्यों से प्राप्त शिकायतें याचिका समिति को भेजीं और उसने अभ्यावेदनों के रूप में उन शिकायतों पर विचार किया—कार्यवाही-सारांश (याचिका समिति—पहली लोक सभा) 11.5.1956; 27.8.1956 और 1.11.1956 ।
44. *कार्यवाही-सारांश* (याचिका समिति—दूसरी लोक सभा), 11.3.1960 और 30.8.1961 ।

सभा की कार्यवाही या सभा में सदस्यों के गलत आचरण तथा व्यवहार के सम्बन्ध में पत्र, अभ्यावेदन आदि इस परिपाटी के कारण ग्राह्य नहीं किये जाते हैं कि सभा अपनी आन्तरिक प्रक्रिया सम्बन्धी विषयों में बाहर के किसी हस्तक्षेप की अनुमति नहीं देती परन्तु अध्यक्ष के आदेशानुसार इनको समिति के विचार के लिये उसके सामने रखा जा सकता है।[45]

> संसद सदस्यों के निजी जीवन में उनके आचरण, जिसका संसद सदस्य के रूप में उनके आचरण से कोई सम्बन्ध न हो, के खिलाफ शिकायतों को न तो याचिका माना जाता है और न ही उनको अभ्यावेदन के रूप में याचिका समिति के समक्ष रखा जाता है। ऐसी शिकायतों पर, जहां आवश्यक हो, सम्बन्धित सदस्यों से तथ्य प्राप्त करके अध्यक्ष स्वयं विचार करता है।

---

45. *कार्यवाही-सारांश* (याचिका समिति—दूसरी लोक सभा), 11.3.1960 ।

अध्याय 35

सभा पटल पर रखे गए पत्र और पत्रों की अभिरक्षा

सभा पटल पर रखे गए पत्र

सभा पटल पर पत्र इसलिए रखे जाते हैं कि सभा को अधिकृत तथ्यों की जानकारी दी जा सके जिससे कि विभिन्न विषयों के संबंध में चर्चा के लिये आधार तैयार किया जा सके। पत्र या तो संविधान, विभिन्न केन्द्रीय कानूनों और प्रक्रिया नियमों में दिये गये विशिष्ट उपबंधों के अनुपालन में या समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा जारी किये गये निदेशों या संसदीय समितियों की सिफारिशों और उस संबंध में सुस्थापित प्रथाओं और परिपाटियों के अनुसरण में सभा पटल पर रखे जाते हैं।

> सभा पटल पर पत्र रखने की परंपरा बहुत लम्बे समय से चली आ रही एक परंपरा है। केन्द्रीय विधान सभा ने प्रारम्भ से ही अपने सामने कुछ जानकारी रखवाने के अपने अधिकार का दावा किया।[1] कुछ केन्द्रीय अधिनियमों में, यद्यपि उनकी संख्या बहुत कम है, कुछ दस्तावेजों को, जिसमें विधान बनाने की प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग करते हुए सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के मसौदे भी शामिल हैं, सभा पटल पर रखने का विशिष्ट उपबन्ध होता था।[2] कभी-कभी सरकार अपने आप ही कुछ महत्वपूर्ण प्रतिवेदन[3], करार[4] और अन्य विविध पत्र सभा पटल पर रखती थी।
>
> परन्तु स्वतंत्रता से पहले सभा पटल पर पत्र रखने की परंपरा बहुत ही सीमित थी। कार्यपालिका को विभिन्न प्रकार के नियम तथा विनियम बनाने की अबाधित शक्ति प्राप्त थी और उस पर विधानमण्डल का कोई नियंत्रण नहीं था और वह चाहती तो बिना कोई कारण बताये कोई भी पत्र प्रस्तुत करने से या जानकारी देने से इन्कार कर सकती थी। वस्तुत: 1950 तक ऐसा कोई विशेष नियम नहीं था, जिसमें यह उपबन्ध किया गया हो कि सभा में जिस दस्तावेज का उल्लेख किया जाये, उसे सभा पटल पर रखा जाए, यद्यपि सरकारी सदस्यों द्वारा जिन दस्तावेजों का उल्लेख किया जाता था, वे केन्द्रीय विधान सभा के दिनों में सभा पटल पर रखे जाते थे।[5]

---

1. *एल.ए. डिबेट्स,* (1921), पृ. 933-42 ।

   1921 से पहले भी इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में ऐसे विवरण सभा पटल पर रखे जाते थे जिनमें वह जानकारी होती थी, जिसका वायदा कौंसिल के सदस्यों द्वारा समय-समय पर पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों में सरकार करती थी—*लेजिस्लेटिव कौंसिल की कार्यवाही,* 1904, पृ. 110; 1911, पृ. 711; 1916, पृ. 18 और 80-81; 1920, पृ. 14 ।
2. *एल.ए. डिबेट्स,* (1923), पृ. 3095-96 ।
3. *पूर्वोक्त* (1934), पृ. 2457-58; (1942), पृ. 211; (1934), पृ. 530-33 ।
4. *पूर्वोक्त* (1935), पृ. 99-103; पृ. 128-29 ।
5. *पूर्वोक्त* (1936), पृ. 1992-94 ।

संविधान के अंतर्गत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र

संविधान में निम्नलिखित पत्रों के सभा पटल पर रखे जाने की व्यवस्था की गयी है:

> बजट तथा उससे संबंधित अन्य दस्तावेज,[6] राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश और उद्घोषणाएं तथा उनसे संबंधित आदेश,[7] संविधान के अंतर्गत गठित विभिन्न प्राधिकरणों के प्रतिवेदन तथा उनसे संबंधित अन्य पत्र ।

संविधान के अंतर्गत रखे जाने वाले पत्रों की अंतिम श्रेणी में भारत सरकार के लेखाओं के संबंध में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन आते हैं (जिन्हें सामान्यतः लेखा परीक्षा प्रतिवेदन कहा जाता है)।[8] उनके अतिरिक्त वित्त आयोग की सिफारिशें तथा उन पर की गयी कार्यवाही संबंधी व्याख्यात्मक ज्ञापन,[9] राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग[10]; राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग[11]; और राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग[12]; के प्रतिवेदन तथा उन पर की गई कार्यवाही संबंधी व्याख्यात्मक ज्ञापन; भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त के प्रतिवेदन[13] और संघ लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन,[14] और साथ ही ऐसे मामलों, यदि कोई हों जिनमें सरकार ने उस आयोग की सलाह न मानी हो और न मानने के कारण बताये हों, के बारे में ज्ञापन। संघ लोक सेवा आयोग के संबंध में, राष्ट्रपति द्वारा बनाये गये आयोग के कृत्यों की व्याप्ति की परिभाषा करने वाले विनियम भी सभा पटल पर रखे जाते हैं।[15]

वित्त आयोग और राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के प्रतिवेदन जब भी राष्ट्रपति को प्रस्तुत किये जाते हैं, उन्हें सभा पटल पर रखा जाता है, इसके अतिरिक्त उपर्युक्त सभी प्रतिवेदन वर्ष में एक बार सभा पटल पर रखे जाते हैं।

संविधियों के अंतर्गत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र

विभिन्न संविधियों के अंतर्गत जिन पत्रों का सभा पटल पर रखा जाना आवश्यक है, उन्हें मोटे तौर पर निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है:—

---

6. अनुच्छेद 112 (1) अधिक जानकारी के लिये *देखिए* अध्याय 29—वित्तीय विषयों के संबंध में प्रक्रिया।
7. अनुच्छेद 123 (2) (क), 352 (4), 356 (3), 359 (3) और 360 (2) (ख) अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 23—राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश और उद्घोषणाएं।
8. अनुच्छेद 151 (1) ।
9. अनुच्छेद 281 ।
10. अनुच्छेद 338 ।
11. अनुच्छेद 338 (क) ।
12. अनुच्छेद 340 (3) ।
13. अनुच्छेद 350ख (2) ।
14. अनुच्छेद 323 (1) ।
15. अनुच्छेद 320 (5), *एल.एस. डिबेट्स*, 11.9.1958, कॉ. 5957 ।

(i) नियम, उप-नियम, विनियम और उप-विधियां जो कि कार्यकारी प्राधिकारियों ने विधान की प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनायी हों। प्रत्येक संविधि में, जिनमें नियम बनाने के लिए उपबन्ध होते हैं, ऐसे नियमों के बनाये जाने के बाद उन्हें यथाशीघ्र सभा पटल पर रखे जाने का उपबंध होता है। ये नियम निश्चित अवधि तक सभा पटल पर रखे जाते हैं और सभा चाहे, तो इन नियमों में उपांतरण कर सकती है।[16]

(ii) कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन निगमित या विशिष्ट अधिनियमों के अंतर्गत बनाये गये सरकारी उपक्रमों के वार्षिक प्रतिवेदन तथा लेखापरीक्षित लेखे।

(iii) संसद के विशिष्ट कानूनों के अंतर्गत गठित सरकारी उपक्रमों से भिन्न सांविधिक निकायों के प्रतिवेदन आदि। परन्तु इन निकायों के पत्रों के सभा पटल पर रखे जाने का उपबंध सभी संविधियों में एक जैसा नहीं है। उनमें से अधिकांश में केवल यह अपेक्षा की गयी है कि उनके लेखे या उनके वार्षिक प्रतिवेदन या उनके तदर्थ प्रतिवेदन सभा पटल पर रखे जायेंगे।

इसके अतिरिक्त, केन्द्र के बहुत से कानूनों में भी यह उपबंध किया गया है कि सरकारी संकल्प, सांविधिक आदेश या कार्यकारी आदेश या उनके अंतर्गत जारी किये गये या तैयार किये गये कोई अन्य पत्र सभा पटल पर रखे जायेंगे।

> किसी भी सांविधिक प्रतिवेदन को विशेष दस्तावेज नहीं माना जा सकता और इसलिये उसे सभा पटल पर अवश्य रखा जाना चाहिए।[17]
>
> जब किसी राज्य में अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाता है तो उस राज्य के विनियोग लेखे और उनके लेखा परीक्षा प्रतिवेदन को भी सभा पटल पर रखना होता है। परन्तु यदि वे दस्तावेज राज्य विधान सभा का अस्तित्व समाप्त होने से पहले उसके समक्ष रख दिये गये हों तो उन्हे पुन: केन्द्र की लोक लेखा समिति की संवीक्षा के लिये संसद के समक्ष प्रस्तुत करना सरकार के लिए जरूरी नहीं है।
>
> जिन प्रतिवेदनों का संविधि के अंतर्गत सभा पटल पर रखा जाना जरूरी है उन्हें संविधि की अपेक्षा के अनुसार ही सभा पटल पर रखा जाना चाहिए। इसी प्रकार

---

16. अधिक जानकारी के लिये *देखिये* अध्याय 24—'अधीनस्थ विधान' और अध्याय 30—'संसदीय समितियां' के अंतर्गत उप-शीर्ष 'अधीनस्थ विधान संबंधी समिति'।

17. यह विनिर्णय दिया गया कि रामनाथपुरम में हुए उपद्रवों के बारे में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त का प्रतिवेदन, संविधान के अनुच्छेद 338 के अंतर्गत एक सांविधिक प्रतिवेदन है और इसे अवश्य ही सभा पटल पर रखा जाना चाहिये। ऐसा प्रतिवेदन नियम 368 के पहले परन्तुक के अंतर्गत नहीं आता और इसलिये इसे विशेष महत्त्व का दस्तावेज नहीं माना जा सकता—लो.स.वा.वि., 18.12.1957 पृ. 6249।

जांच आयोग अधिनियम के अंतर्गत प्रतिवेदनों तथा उन पर की गई कार्यवाही संबंधी ज्ञापन को आयोग द्वारा सरकार को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के छः महीने के अन्दर सभा पटल पर रखा जाना चाहिये। अंतरिम प्रतिवेदन भी सभा पटल पर रखा जा सकता है।[18]

प्रक्रिया नियमों के अंतर्गत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र

जिन पत्रों को नियमों में किये गये विभिन्न उपबन्धों के अंतर्गत सभा में प्रस्तुत किया जाना या सभा पटल पर रखा जाना जरूरी है[19] उनमें निम्नलिखित शामिल है:—

विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन[20] स्थायी संसदीय समितियों के प्रतिवेदन,[21] याचिकाएं,[22] अध्यादेशों संबंधी वक्तव्य,[23] दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत संशोधनों के अनुसार रूपभेदित नियम, विनियम, आदि,[24] राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक[25] जिनमें संशोधनों सहित राज्य सभा द्वारा लौटाये गये

---

18. *लो.स.वा.वि.*, 9.3.1978, पृ. 258-80 ।

19. संविधान तथा नियमों में 'प्रस्तुत किये जाने' और 'पटल पर रखे जाने'—इन दोनों अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया गया है और इन दोनों का अभिप्राय एक ही है। यद्यपि प्रत्येक दस्तावेज या पत्र विशेष के संबंध में, प्रयोग के कारण इनका विशेष अर्थ रहता है। लेकिन चाहे कोई पत्र प्रस्तुत किया जाये या

    सभा पटल पर रखा जाये, उसका प्रभाव एक जैसा ही है अर्थात् सभा ऐसे पत्र पर संज्ञान लेती है और सभा पटल पर रखे जाने वाले और सभा में प्रस्तुत किये जाने वाले पत्रों का परिणाम एक जैसा ही होगा।

    तथापि यदि किसी पत्र अथवा दस्तावेज को सभा पटल पर रखने वाले सदस्य या मंत्री द्वारा अधिप्रमाणीकरण की मूल शर्त पूरी नहीं की जाती तो उस पत्र को सभा पटल पर रखा गया नहीं माना जाता। उदाहरण के लिये, मौखिक उत्तर के लिए सभा में न पहुंचने वाले तारांकित प्रश्नों के उत्तर और अतारांकित प्रश्नों के उत्तर सभा पटल पर रखे गये पत्र नहीं माने जाते यद्यपि नियमों के अंतर्गत ऐसा समझा जाता है कि उन्हें सभा पटल पर रखा गया है। यह बात दूसरे सदन से प्राप्त विधेयक के बारे में भी है जो विभिन्न प्रक्रमों में सभा पटल पर रखे जाते हैं। साथ ही *देखिए* लो.स.वा.वि., 23.11.1959, पृ. 1231 ।

20. अधिक जानकारी के लिये *देखिए* अध्याय 30—संसदीय समितियां ।

21. पूर्वोक्त नियम समिति के प्रतिवेदन को छोड़कर जो कि सभा पटल पर रखा जाता है, शेष सभी संसदीय स्थायी समितियों के प्रतिवेदन सभा में पेश किये जाते हैं। परंतु विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों के प्रतिवेदनों के मामले में, लोक सभा की समितियों के प्रतिवेदन सभा में पेश किए जाते हैं तथा साथ ही इन्हें राज्य सभा के पटल पर तथा विलोमतः रखे जाते हैं। साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 1.8.1977, पृ. 289-90 ।

22. नियम 167 साथ ही *देखिए* अध्याय 33—याचिकाएं और अभ्यावेदन ।

23. नियम 71 साथ ही *देखिए* अध्याय 23—अध्यादेश और उद्घोषणाएं ।

24. नियम 239 साथ ही *देखिए* अध्याय 24—अधीनस्थ विधान ।

25. नियम 114 ।

विधेयक[26] भी शामिल हैं; राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिये लौटाये गये विधेयक[27] और अतारांकित प्रश्नों के उत्तर अथवा उन तारांकित प्रश्नों के उत्तर, जिनका मौखिक उत्तर न दिया गया हो।[28]

अध्यक्ष के निदेशों के अंतर्गत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र

अध्यक्ष द्वारा जारी निदेशों के अनुसार निम्नलिखित दस्तावेज या पत्र सभा पटल पर रखने आवश्यक हैं:—

आधे घंटे की चर्चा के उत्तर में मंत्रियों द्वारा वक्तव्य : जब आधे घंटे की कोई चर्चा गणपूर्ति के अभाव में अपूर्ण रह जाये या इतना समय न हो कि मंत्री वाद-विवाद का पूरा उत्तर दे सके तो अध्यक्ष मंत्री को यह निदेश देता है कि वह एक वक्तव्य सभा पटल पर रख दे।[29]

विधेयकों पर राय : जब किसी विधेयक पर, जिसे राय जानने के लिये परिचालित किया गया हो, राय प्राप्त हो जाए तो सरकारी विधेयक पर प्राप्त हुई राय को संबंधित मंत्री और गैर-सरकारी विधेयक के संबंध में उसका प्रभारी सदस्य सभा पटल पर रखता है।[30] यदि गैर-सरकारी विधेयक का प्रभारी सदस्य अनुपस्थित हो, तो उसके संबंध में प्राप्त राय संबंधित मंत्री विधेयक के साथ सभा पटल पर रखता है। जो राय उस समय प्राप्त हों, जब लोक सभा का सत्र न चल रहा हो, तो उन्हें सभा के पुनः समवेत होने के बाद यथाशीघ्र सभा पटल पर रखा जाता है।

विधेयक जिन पर राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो चुकी हो : संसद द्वारा पारित किये गये प्रत्येक ऐसे विधेयक को जिसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो चुकी हो, महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखा जाना आवश्यक है। यदि किसी विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति राज्य सभा सचिवालय ने प्राप्त की हो, तो राष्ट्रपति द्वारा अनुमति दिये गये विधेयक का प्रमाणीकरण राज्य सभा के महासचिव द्वारा किया जाता है और उसके बाद उसे सभा पटल पर रखा जाता है।[31]

---

26. नियम 98, 139 और 149 ।
27. नियम 129(2) और 144 ।
28. नियम 39; साथ ही देखिए *एल.एस.डिबेट्स,* 1.8.1977, पृ॰ 289-90 ।
29. निदेश 19; *एल.एस. डिबेट्स,* 1.3.1960, कॉ. 3595; 16.3.1960, कॉ. 6198 ।
30. निदेश 24 (1) ।
31. निदेश 35 ।

    महासचिव सत्र के दूसरे दिन और उसके बाद प्रत्येक सप्ताह के उस अंतिम दिन को जब सभा की बैठक हो, उन सभी विधेयकों के संबंध में सूचना देता है, जिन पर राष्ट्रपति ने पिछली रिपोर्ट के बाद अनुमति दी हो और संबंधित विधेयक की राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदत्त प्रतियों को सभा पटल पर रखता है। इस उद्देश्य के लिए दोनों सचिवालयों के बीच ऐसी अनौपचारिक व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति जिन विधेयकों पर अनुमति देता है, उनकी प्रमाणीकृत प्रतियां दोनों सचिवालय एक-दूसरे को भेजते हैं।

ध्यानाकर्षण सूचनाओं के उत्तर में वक्तव्य : यदि किसी एक दिन की कार्य-सूची में ध्यानाकर्षण की दो सूचनायें सम्मिलित कर दी जायें, तो पहली सूचना के संबंध में वक्तव्य सभा में दिया जाता है और दूसरी सूचना के उत्तर में वक्तव्य सम्बद्ध मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखा जा सकता है।[32] परन्तु व्यवहार में, जब भी किसी मंत्री को ध्यानाकर्षण की सूचना के उत्तर में वक्तव्य देना हो और वह वक्तव्य लम्बा हो, तो मंत्री उसका सारांश पढ़कर सुना सकता है और पूरा वक्तव्य सभा पटल पर रखा जा सकता है।

संसदीय स्थायी समितियों के कार्यवाही सारांश : जब समिति का सभापति उसकी बैठक या बैठकों के कार्यवाही सारांश को अनुमोदित कर देता है तो उसकी एक प्रमाणीकृत प्रति सभा पटल पर रखी जाती है।[33]

किसी प्रवर या सयुंक्त समिति के प्रतिवेदन से संबधित दस्तावेज : किसी विधेयक संबंधी प्रवर या संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के साथ, विभिन्न बैठकों के कार्यवाही सारांश विधेयक में सरकार के संशोधन, यदि कोई हों, और अन्य महत्वपूर्ण पत्र जो समिति के सदस्यों को उपलब्ध कराये गये हों और जिन्हें सभा में पेश किये जाने का अनुमोदन सभापति कर दे, भी सभा में पेश किये जाते हैं। किसी प्रवर या संयुक्त समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य प्रतिवेदन के साथ सभा में पेश नहीं किया जाता। यदि समिति उसे सभा के समक्ष रखने का निर्णय करे, तो उसे अलग से सभा पटल पर रखा जाता है, सामान्यत: उसी दिन, जिस दिन प्रतिवेदन पेश किया गया हो।[34]

संसदीय समितियां अपने प्रतिवेदनों में कुछ रिपोर्टों अथवा व्याख्यात्मक ज्ञापनों को सभा में पेश किये जाने की सिफारिशें कर सकती हैं। इन सिफारिशों के अनुसार कुछ पत्र सभा पटल पर रखे जाते हैं।

निदेश 73 क के अंतर्गत मंत्रियों द्वारा वक्तव्य: निदेश 73क के अंतर्गत मंत्रियों द्वारा छह महीने में एक बार उनके मंत्रालय/विभाग से संबंधित विभागों से संबद्ध स्थायी समितियों के प्रतिवेदनों में अंतर्विष्ट सिफारिशों के कार्यान्वयन की स्थिति के बारे में सभा में वक्तव्य देना होता है। चूंकि वक्तव्य अनेक पृष्ठों में होता है अत: संबंधित मंत्री सामान्यत: अध्यक्ष की अनुमति से वक्तव्य को सभा पटल पर रखता है।

उद्धृत पत्रों का सभा पटल पर रखा जाना

जब कोई मंत्री सभा में किसी से प्रेषण-पत्र या अन्य राज पत्र (स्टेट पेपर) को उद्धृत कर दे, जो सभा के समक्ष न रखा गया हो तो यह मांग किये जाने पर कि उसे सभा पटल

---

32. निदेश 47 क; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 13.9.1957, पृ. 6241-44; 27.9.1958, पृ. 4298-4301 ।
33. निदेश 67 (1) साथ ही *देखिए* अध्याय 30—संसदीय समितियां ।
34. निदेश 92 ।

पर रखा जाए, उस मंत्री के लिए उसे सभा पटल पर रखना आवश्यक है।[35] जब मंत्री किसी दस्तावेज को आंशिक रूप से ही पढ़ कर सुनाये तब भी सम्पूर्ण दस्तावेज को सभा पटल पर रखा जाना जरूरी है।[36] यह नियम उस दस्तावेज पर लागू नहीं होता, जिसके बारे में मंत्री यह कहे कि यह इस प्रकार का है कि इसका प्रकटीकरण लोकहित में नहीं होगा।[37] लोकहित क्या है, यह निर्णय करना केवल सरकार का काम है।[38] लोकहित के आधार पर किसी दस्तावेज को सभा पटल पर न रखने के विशेषाधिकार का दावा विशेष रूप से वही मंत्री कर सकता है, जिसने दस्तावेज का हवाला दिया हो।[39]

> यदि कोई मंत्री किसी गोपनीय दस्तावेज को सभा पटल पर रखने से इंकार करता है तो यह विशेषाधिकार भंग नहीं है।[40] अध्यक्ष किसी मंत्री को ऐसे दस्तावेज को सभा पटल पर रखने के लिए बाध्य नहीं कर सकता जिसके बारे में यह दावा किया जाये कि इसका प्रकटीकरण लोकहित के विरुद्ध होगा।[41] यदि कोई मंत्री विशेषाधिकार के आधार पर किसी दस्तावेज में अंतर्विष्ट बातों को प्रकट करने से इंकार करता है और बाद में उसी दस्तावेज के किसी अंश को प्रधान मंत्री द्वारा प्रकट कर दिया जाता है तो इससे मंत्रिपरिषद के सामूहिक उत्तरदायित्व का उल्लंघन नहीं होता।[42] यदि कोई मंत्री इस आधार पर किसी दस्तावेज को सभा पटल पर रखने से इंकार करता है कि ऐसा करना लोकहित के विरुद्ध होगा तो उस दस्तावेज में अंतर्विष्ट बातों को गोपनीय रखना सरकार का दायित्व होगा।

जब कोई मंत्री किसी ऐसे प्रेषण-पत्र या राजपत्र का अपने शब्दों में संक्षेप या सार बताए और वास्तव में उसमें से कुछ उद्धृत न करे, तो उसके लिये उस पत्र को सभा पटल पर रखना

---

35. नियम 368 ।
36. *एल.ए. डिबेट्स*, खण्ड 4, 1938, पृ. 484-89 ।
37. नियम 368, पहला परन्तुक, साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 3.4.1963, पृ. 3342-44; 26.2.1965, पृ॰ 1697-1722 ।
38. *एल.ए. डिबेट्स*, 3.4.1937, पृ. 2631; ऐसे भी उदाहरण हैं जब अध्यक्ष मंत्रियों से यह पूछने के लिये सहमत हो गए कि दस्तावेज का सभा पटल पर रखा जाना लोकहित के विरुद्ध क्यों है, *लो.स.वा.वि*, 26.2.1970, पृ. 156, 2.3.1970, पृ. 155 ।
39. *लो.स.वा.वि.*, 3.4.1963, पृ. 4345 ।
40. *लो.स.वा.वि.*, 7.8.1959, पृ. 650-657 ।
41. नियम 368, पहला परन्तुक, *एल.एस. डिबेट्स*, 19.11.1957, कॉ. 1313-15—सदस्यों द्वारा मांग किये जाने पर अध्यक्ष यदि उचित समझे तो संबंधित मंत्री से कह सकता है कि वह संबंधित दस्तावेज को उसके चैम्बर में आकर उसे दिखाए ताकि वह उस दस्तावेज के लोकहित संबंधी पहलू पर विचार कर सके—उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.*, 26.2.1970, पृ. 156; 2.3.1970, पृ. 155 ।
42. *एल.एस. डिबेट्स*, 2.3.1964, कॉ. 3328-29 ।

आवश्यक नहीं है।[43] इसी प्रकार, यदि किसी दस्तावेज का उल्लेख सरसरी तौर पर किया जाये तो उसे सभा पटल पर रखने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि इस बात पर जोर दिया जाये कि वह दस्तावेज सभा की कार्यवाही में आ जाये तो मंत्री को उस दस्तावेज को सभा पटल पर रखना आवश्यक है।[44] एक बार ऐसा भी हुआ है कि जब मंत्री के इस कथन को कि उसने दस्तावेज का सार दे दिया था, चुनौती दी गई तो अध्यक्ष ने मंत्री से कहा कि वह दस्तावेज को उन्हें गुप्त रूप से दिखा दे ताकि वह (अध्यक्ष) यह निर्णय ले सके कि दस्तावेज का सार दिया गया था अथवा नहीं और बाद में अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि मंत्री ने सार दे दिया था।[45] कई बार दस्तावेजों को पूरी तरह पढ़कर सुना देने के पश्चात् भी उन्हें सभा पटल पर रखा गया है।[46]

> यदि कोई मंत्री अपने भाषण के दौरान किसी ऐसे वक्तव्य में से पढ़ रहा है जिसकी सत्यता को चुनौती दी गई है और लगातार व्यवधान होने के कारण उसके लिये अपना भाषण जारी रखना सम्भव नहीं है, तो अध्यक्ष उससे वक्तव्य के शेष भाग को सभा पटल पर रखने के लिए कह सकता है। अध्यक्ष को इस बात का निर्णय करने की जरूरत नहीं है कि मंत्री जो कह रहा है वह सही है या नहीं। वक्तव्य को सभा में पेश करने से यह सिद्ध नहीं होता है कि उसमें जो बातें कही गई हैं वे सही हैं या वक्तव्य उस बात के उत्तर में है जो सभा में दिया गया है। वक्तव्य के साथ पटल पर रखे जाने के बाद इसकी सामान्य रूप से जांच की जा सकती है।[47]

मंत्रियों के बीच पत्र-व्यवहार

मंत्रिपरिषद की लोक सभा के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत के अनुसरण में[48] मंत्रियों के बीच पत्र-व्यवहार को गुप्त अथवा गोपनीय समझा जाता है जब तक कि सरकार स्वयं किसी विशेष पत्र अथवा उसके किसी अंश को सार्वजनिक करने का निर्णय न करे। सरकार को यह निर्णय करने का पूर्ण अधिकार है कि क्या गुप्त या गोपनीय है और क्या सभा पटल पर रखा जाना चाहिए। यहां तक कि यदि कोई मंत्री सभा में किसी दस्तावेज से उद्धृत

---

43. नियम 368, दूसरा परन्तुक। साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 16.3.1965, पृ. 1897-1900, 4.4.1984; पृ. 296-302 ।
44. *एल.एस. डिबेट्स*, 19.12.1956, कॉ. 2755; *लो.स.वा.वि.*, 17.4.1963, पृ. 4475-96; 18.4.1963, पृ. 4567-68; *एल.एस. डिबेट्स*, 20.4.1963, कॉ. 10921 ।
45. *पूर्वोक्त*, 23.8.1973, कॉ. 192; 5.9.1973, कॉ. 49-53 ।
46. *पूर्वोक्त*, 19.12.1956, कॉ. 2756; 27.11.1958, कॉ. 12232 ।
47. *पूर्वोक्त*, 15.2.1966, कॉ. 383-92 ।
48. देखिए पीछे अध्याय 7 'संसद के कार्य निर्वाह', उप-शीर्षक 'मंत्रिपरिषद' के अन्तर्गत और अध्याय 28—"*मंत्रिपरिषद में विश्वास तथा अविश्वास के प्रस्ताव*", उप-शीर्षक "*मंत्रिमंडल का उत्तरदायित्व*" के अन्तर्गत।

करता है, तो वह उस दस्तावेज को इस आधार पर सभा पटल पर रखने से मना कर सकता है कि उसका प्रकटीकरण लोकहित में नहीं होगा। 'लोकहित' क्या है, इसका निर्धारण करना भी पूर्ण रूप से सरकार के हाथ में होगा।

यदि कोई गैर-सरकारी सदस्य किसी ऐसे दस्तावेज से उद्धृत करता है या उसकी प्रति सभा पटल पर रखता है जिसे उसने मूल दस्तावेज की सत्य-प्रतिलिपि के रूप में प्रमाणित किया है तो सरकार के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह मूल दस्तावेज को सभा पटल पर रखे या संबंधित प्रतिलिपि के सही होने को स्वीकार करे या अस्वीकार करे। यद्यपि, लोक सभा, मंत्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके किसी भी सरकार को त्याग-पत्र देने के लिये बाध्य कर सकती है तथापि न तो अध्यक्ष और न ही सभा किसी मंत्री को मंत्रियों के बीच हुए किसी ऐसे पत्र-व्यवहार को सभा पटल पर रखने के लिये बाध्य कर सकती है जिसे सरकार गुप्त अथवा गोपनीय मानती है और जिसके प्रकटीकरण को वह लोकहित के विरुद्ध समझती है।[49]

राज्य सभा के जुलाई-अगस्त, 1978 के सत्र में प्रधान मंत्री के परिवार तथा तत्कालीन गृह मंत्री के परिवार के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के बारे में प्रधान मंत्री और तत्कालीन गृह मंत्री के बीच हुए कथित पत्र-व्यवहार को सभा पटल पर रखे जाने की मांग विभिन्न तरीकों से बार-बार उठाई जाती रही।

19 जुलाई, 1978 को, इस विषय पर ध्यानाकर्षण की सूचना पर राज्य सभा में बोलते हुए, प्रधान मंत्री ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि यह एक सुस्थापित सिद्धान्त है कि मंत्रियों के बीच हुए पत्र-व्यवहार को विशेष दस्तावेज माना जाता है। मंत्रियों के बीच विचारों के उन्मुक्त आदान-प्रदान के लिये यह आवश्यक है और इस सिद्धान्त को 'मे' की संसदीय व्यवहार नामक पुस्तक में भी स्वीकार किया गया है। प्रधान मंत्री ने आगे यह भी कहा कि वह सरकारी कार्य के निष्पादन के लिये इस अनुल्लंघनीय सिद्धान्त का पालन करते रहना चाहते हैं।[50]

इस पत्र-व्यवहार को सभा पटल पर रखे जाने की लगातार मांग किये जाने और सभा में काफी शोर-गुल होने पर, जिसके कारण कुछ दिन सभा को जल्दी स्थगित करना पड़ा था, सभापति ने प्रधान मंत्री के साथ बात-चीत करने के बाद यह घोषणा की कि उन्होंने सरकार को सलाह दे दी है और सरकार ने यह स्वीकार कर लिया है कि यदि वह उस पत्र-व्यवहार को सभा में विपक्ष और अन्य दलों तथा ग्रुपों के नेताओं के अवलोकनार्थ सभापति के चैम्बर में रख दें तो बहुत अच्छा होगा।

बाद में लोक सभा में प्रधान मंत्री और गृह मंत्री के बीच हुए उस पत्र-व्यवहार को

---

49. *लो.स.वा.वि.*, 19.7.1978, पृ. 262 ।

50. *आर.एस. डिबेट्स*, 19.7.1978 ।

गृह मंत्री ने सरकार से अपने त्याग-पत्र पर दिये गए वक्तव्य में सार्वजनिक रूप से प्रकट कर दिया।[51]

जब व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार या प्रेषण-पत्रों या ज्ञापनों का उल्लेख किया जाये, तो दस्तावेजों को सभा पटल पर रखने का नियम लागू नहीं होता।

कोई सदस्य किसी पत्र को तभी सभा पटल पर रख सकता है जब उसे अध्यक्ष द्वारा ऐसा करने के लिए प्राधिकृत किया गया हो।[52] जब कोई सदस्य किसी पत्र या दस्तावेज से कुछ उद्धृत करता है, वह चाहे सरकारी दस्तावेज हो या व्यक्तिगत, तो उससे यह कहा जा सकता है कि वह उसे सभा पटल पर रख दे।[53] उसे सभा पटल पर रखने से पहले, सदस्य के लिये यह आवश्यक है कि वह उस पत्र या दस्तावेज को अध्यक्ष को अवलोकनार्थ पेश करे और जब अध्यक्ष उसके लिये अनुमति दे दे, तभी उसे सभा पटल पर रखा गया पत्र माना जा सकता है।[54] परन्तु किसी सदस्य को किसी अन्य सदस्य के व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार को सभा पटल पर रखने की अनुमति नहीं है।

जब तक किसी सदस्य ने सभा में किसी दस्तावेज से उद्धृत न किया हो, उसे सामान्यत: उस पत्र या दस्तावेज को सभा पटल पर रखने की अनुमति नहीं दी जाती।[55] यदि सभा सदस्य के मौखिक वक्तव्य से सन्तुष्ट हो, तो उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह उस दस्तावेज को सभा पटल पर रखे।[56] यदि किसी सदस्य ने किसी दस्तावेज का केवल उल्लेख किया है और उसके किसी अंश को उद्धृत नहीं किया है तो उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह उस दस्तावेज को सभा पटल पर रखे।[57]

सदस्यों का गुप्त दस्तावेजों से उद्धृत करने का अधिकार

सदस्य सामान्यत: किसी ऐसे दस्तावेज से उद्धृत कर सकता है जिसे सरकार गुप्त या गोपनीय मानती है और जिसे सरकार ने लोकहित में प्रकट नहीं किया है। हो सकता है कि ऐसा दस्तावेज चोरी-छिपे या किसी अनियमित ढंग से प्राप्त किया गया हो, तथापि, सदस्य को यह बताने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता कि उसने उस दस्तावेज की प्रति कहां से प्राप्त की है।[58]

---

51. *लो.स.वा.वि.*, 22.12.1978, पृ. 181-204 ।
52. निदेश 117 ।
53. *एल.एस. डिबेट्स,* क्रमश: 26.3.1958, कॉ. 6882-84; 4.9.1958, कॉ. 4699-4703; 12.4.1959; कॉ. 9033 और 9265 ।
54. निदेश 118 ।
55. *एल.एस. डिबेट्स*, 11.4.1963, कॉ. 13937-38 ।
56. *पूर्वोक्त*, 1.8.1956, कॉ. 1779-81 ।
57. *पूर्वोक्त*, 14.9.1964, कॉ. 479 ।
58. *लो.स.वा.वि.* 20.2.1958, पृ॰ 1746-53, 24 जुलाई, 1974 को पीठासीन अधिकारी ने टिप्पणी की कि सदस्यों को अपनी जानकारी का स्रोत बताने कि लिये बाध्य नहीं किया जा सकता—*लो.स.वा.वि.*, 8.8.1974, पृ. 5 ।

सामान्यत: किसी सदस्य से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह किसी ऐसे दस्तावेज से, जो सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं किया गया है, उद्धरण देकर अध्यक्ष, सभा और सरकार को हैरत में डाल दे। सभी के प्रति निष्पक्षता की दृष्टि से और संसदीय परिपाटियों के अनुसार, सदस्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अध्यक्ष और सरकार को पहले ही सूचित कर दे ताकि वे मामले को सभा में उसी समय निपटा सकें जब वह सभा में उठाया जाये। यदि यह अपेक्षा पूरी नहीं कि जाती तो अध्यक्ष सदस्य को ऐसे दस्तावेज से उद्धृत करने से रोक सकता है और उससे कह सकता है कि वह उस दस्तावेज से उद्धरण देने से पहले उसकी एक प्रति पीठासीन अधिकारी को दे दे।

यद्यपि सरकार को इस बात के लिए विवश नहीं किया जा सकता कि जिस दस्तावेज को गुप्त या गोपनीय माना गया है वह उसकी कथित प्रति के ठीक होने की बात[59] स्वीकार करे या उससे इन्कार करे, परन्तु ऐसे दस्तावेज से उद्धरण देने वाले सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि वह यह प्रमाणित करे कि उसने अपने व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर इस बात का सत्यापन कर लिया है कि वह दस्तावेज और उस मूल दस्तावेज की सत्य प्रतिलिपि है जो प्रामाणिक है और वह सदस्य अपनी जिम्मेदारी पर ऐसा करेगा। सदस्य को विहित प्ररूप में दस्तावेज पर प्रमाण-पत्र भी देना होगा।[60] तदनुसार अध्यक्ष उसे आगे बोलने देगा। यदि सदस्य इस प्रकार का प्रमाण पत्र देने के लिये तैयार नहीं है और ऐसे दस्तावेज से उद्धृत करने के लिये आग्रह करता है तो अध्यक्ष सदस्य को ऐसे दस्तावेज से उद्धरण देने से रोक सकता है।

जहां देश की सुरक्षा अन्तर्ग्रस्त है, वहां अध्यक्ष राष्ट्रीय हित में किसी भी सदस्य को ऐसे दस्तावेज से उद्धृत करने से रोक सकता है। अध्यक्ष का यह अधिकार सर्वोपरि है। वह अपने इस अधिकार का प्रयोग बिना कोई कारण बताए कर सकता है।[61]

जब कोई सदस्य किसी गोपनीय दस्तावेज का कोई अंश पढ़ता है तो वह अंश या तो उसे बोधगम्य बनाने के लिये कोई अन्य संगत अंश सभा पटल पर रखा जाता है, सारे दस्तावेज को सभा पटल पर रखे जाने की आवश्यकता नहीं है।[62] परन्तु यदि सरकार ने किसी गोपनीय दस्तावेज को सभा पटल पर इसलिये न रखा हो कि उसका प्रकटीकरण लोकहित के विरुद्ध होगा और कोई गैर-सरकारी सदस्य उसे इस आधार पर सभा पटल पर रखना चाहे कि इस दस्तावेज का रहस्य पहले ही खुल चुका है तो उसे सभा पटल पर रखने की अनुमति केवल तभी दी जाती है जब सदस्य अपने व्यक्तिगत ज्ञान से इस बात का सत्यापन कर दे कि वह जिस दस्तावेज को सभा पटल पर रखना चाहता है वह उस मूल दस्तावेज की सत्य प्रतिलिपि है जो प्रामाणिक है और साथ ही उस पर इस आशय का प्रमाण-पत्र दे दे।[63]

---

59. साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 26.12.1965, पृ. 1698-1722 ।
60. निदेश 118क ।
61. *लो.स.वा.वि.*, 26.2.1965, पृ. 708-14; *एल.एस. डिबेट्स*, 24.4.1968, कॉ. 241 ।
62. 241 *एच.पी. डिबेट्स*, खण्ड 5, 1954, कॉ. 6621-23 ।
63. *लो.स.वा.वि.*, 26.2.1965, पृ. 708-14; 3.4.1963, पृ. 3330; 22.2.1965, पृ. 326-34; 8.6.1967, पृ॰ 3518, 12.6.1967, पृ॰ 4367 ।

जब कोई सदस्य किसी गुप्त दस्तावेज से उद्धरण देता है और उसे सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगता है तो उसे वह दस्तावेज या उसकी एक प्रति अध्यक्ष को देनी होती है और उस पर प्रमाण-पत्र दर्ज करना होता है।[64] फिर वह दस्तावेज उसकी प्रामाणिकता की जांच के लिए सरकार को भेजा जाता है। सरकार से तथ्य प्राप्त होने पर पीठासीन अधिकारी उन पर विचार करता है कि दस्तावेज सभा पटल पर रखने दिया जाए या नहीं और उसका निर्णय अंतिम होता है।

> 10 दिसम्बर, 1987 को मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर बोलते हुए[65] एक सदस्य ने जनरल मायादास की अध्यक्षता में बनी 155 एम.एम. तोपों संबंधी तकनीकी मूल्यांकन और वार्ता समिति का प्रतिवेदन सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगी। चूंकि, सदस्य ने प्रतिवेदन से कुछ उद्धरण दे दिये थे, इसलिए यह मांग की गई कि प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखा जाए। इस पर सदस्य ने कहा कि वह प्रतिवेदन सभा पटल पर रख देगा। बाद में सदस्य ने निम्नलिखित प्रमाण-पत्र देने के उपरान्त प्रतिवेदन सौंप दिया:
>
> "मैं अपनी वैयक्तिक जानकारी से प्रमाणित करता हूं कि यह दस्तावेज मूल दस्तावेज, जो प्रामाणिक है, की सत्य प्रतिलिपि है।"
>
> सुस्थापित प्रक्रिया के अनुसार, सदस्य द्वारा सौंपे गए प्रतिवेदन की प्रति रक्षा मंत्रालय को टिप्पणी के लिए भेजी गई, विशेषकर उसकी प्रामाणिकता के बारे में जांच करने के लिए ताकि अध्यक्ष यह निर्णय ले सके कि क्या उसे सभा पटल पर रखा गया पत्र माना जाए। मामले के सभी पहलुओं पर जिसमें मंत्रालय से प्राप्त उत्तर तथा यह तथ्य भी शामिल है कि मामला संसदीय समिति के विचाराधीन है, विचार करने के बाद अध्यक्ष ने दस्तावेज को सभा पटल पर रखने की अनुमति न देने या उसे सभा पटल पर रखा गया मानने का निर्णय दिया।

27 फरवरी, 1991 को एक सदस्य ने टेलीफोन टेप किये जाने के बारे में केन्द्रीय जांच ब्यूरो (विशेष अन्वेषण ग्रुप) की एक रिपोर्ट का हवाला देते हुए उससे उद्धृत किया। सदस्य ने उक्त रिपोर्ट को सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगी जिसके लिये उसने उसी दिन अध्यक्ष को उसकी पूर्व सूचना दे दी थी। चूंकि वह गुप्त रिपोर्ट थी, अतः मामला गृह राज्य मंत्री को उनकी टिप्पणी के लिये, विशेष रूप से रिपोर्ट की प्रामाणिकता के बारे में उनकी टिप्पणी के लिये भेज दिया गया। सरकार ने इस बात की पुष्टि की कि रिपोर्ट की फोटोस्टेट प्रति सरकार तथा विशेषाधिकार समिति को प्रस्तुत की गई केन्द्रीय जांच ब्यूरो की रिपोर्ट की सत्य प्रतिलिपि है।

चूंकि उक्त रिपोर्ट का हवाला देते हुए सदस्य ने उससे उद्धृत किया था तथा उसे सभा पटल पर रखे जाने की मांग की गई थी, अतः रिपोर्ट को सभा पटल पर रखा गया मान लिया गया।

---

64. निदेश 118क ।
65. *लो.स.वा.वि.*, 10.12.1987, पृ. 331-33 ।

यदि कोई दस्तावेज जिसे सरकार के पास विद्यमान दस्तावेज की प्रतिलिपि बताया गया है, किसी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखा जाता है तो उससे सरकार के पास विद्यमान वह दस्तावेज तथ्यत: सार्वजनिक नहीं हो जाता। अध्यक्ष सरकार के पास विद्यमान दस्तावेज को प्रकाशित करने या किसी अन्य व्यक्ति को बताने के लिए या उस दस्तावेज को सभा पटल पर रखने के लिए सरकार को विवश नहीं कर सकता यदि सरकार ने उस दस्तावेज को अभी भी गोपनीय की श्रेणी में रखा हुआ है।[66]

यदि किसी प्रश्न के उत्तर में या वाद-विवाद के दौरान, मंत्री यह बता देता है कि उसे अमुक सलाह या राय अमुक सरकारी अधिकारी या अन्य व्यक्ति या प्राधिकारी ने दी है, तो वह संगत दस्तावेज या उसका भाग, जिसमें वह राय या सलाह या उसका संक्षेप दिया गया है, सामान्यत: सभा पटल पर रखा जाता है।[67] परन्तु यह सदैव ही मंत्री पर निर्भर होता है कि वह इस विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकता है कि जिस दस्तावेज में वह सलाह या राय दी गई है, उसे सभा पटल पर रखना लोकहित में नहीं है, चाहे उसका स्रोत प्रकट ही क्यों न कर दिया गया हो।[68]

जब उस दस्तावेज का, जिसमें वह सलाह या राय दी गई थी जिसके संबंध में मंत्री ने सभा में उसे न बताने के विशेषाधिकार का दावा किया था, बाद में पता लग गया, तो मंत्री को उसकी प्रति सभा पटल पर रखनी पड़ी क्योंकि एक सदस्य ने उस दस्तावेज की एक प्रति

---

66. *एल.एस. डिबेट्स*, 12.6.1967, कॉ. 4366–73 ।

67. नियम 370, *एल.एस. डिबेट्स*, 31.5.1956, कॉ. 4516; लो.स.वा.वि., 21.12.1960, पृ. 3233–37; 22.12.1960, पृ. 3431–32; *एल.एस. डिबेट्स*, 23.3.1966, कॉ. 7170–80; 8.4.1978, पृ॰ 395–416; 24.4.1978, पृ॰ 314–16 ।

    नियम 370 सन् 1953 में सम्मिलित किया गया था। नियम समिति की राय थी कि सभा के प्रति मंत्री उत्तरदायी हैं न कि वे अधिकारी जिनकी सलाह मंत्री ने ली हो। इसलिए, यदि कोई मंत्री ऐसी सलाह पर निर्भर करता है तो सर्वप्रथम उसे उस सलाह को अपनी राय बना लेना चाहिए, तब सभा में उसे अपने विचार के रूप में अभिव्यक्त करना चाहिए या यदि वह उसे दी गई सलाह का स्रोत बता देता है तो उसे दस्तावेज को सभा पटल पर रखने के लिए तैयार रहना चाहिए।

    इसके पीछे विचार यह था कि सभा यह निष्पक्ष निर्णय कर सके कि मंत्री को दी गई सलाह उचित और लोकहित में है या नहीं और यदि सभा सलाह को सही नहीं समझती तो वह मंत्री को निदेश दिलवा सके। दूसरे मामले में यानि जब मंत्री अपनी स्वयं की राय अभिव्यक्त करता है तो वह चाहे उसने स्वयं बनाई हो या अपने किसी सलाहकार या अधिकारी के परामर्श से बनाई हो और सभा का मंत्री की उस राय से काफी मतभेद हो तो सभा मंत्री की भर्त्सना कर सकती है। *कार्यवाही सारांश* (नियम समिति), 22.12.1953 ।

68. *एच.पी. डिबेट्स* (1) 13.8.1953, कॉ. 575–76; *एल.एस. डिबेट्स*, 21.2.1960, कॉ. 6661–62 ।

सभा में पेश कर दी और सम्बद्ध मंत्री ने जांच की तो यह पता चला कि वह मूल दस्तावेज की सत्य प्रतिलिपि है।[69]

पत्रों को सभा पटल पर रखने के लिए अध्यक्ष की अनुमति

किसी भी पत्र को सभा पटल पर रखने से पहले अध्यक्ष की स्वीकृति लेना आवश्यक है। राज्य के दस्तावेजों और पत्रों के संबंध में यदि उन्हें सांविधिक दायित्वों, नियमों, प्रथाओं तथा सभा की परिपाटियों के अनुसरण में रखा जा रहा हो, तो यह मान लिया जाता है कि अध्यक्ष की अनुमति मिल गई है। परन्तु जब कोई मंत्री अल्प सूचना पर कोई पत्र सभा पटल पर रखना चाहता है तो अध्यक्ष की विशिष्ट अनुमति लेनी आवश्यक है।[70]

पत्रों को सभा पटल पर रखने की सक्षमता

सामान्यतः मंत्री दस्तावेज सभा पटल पर रखते हैं। अधिकांश दस्तावेज सांविधिक या संविधान के उपबंधों के अंतर्गत या प्रक्रिया नियमों तथा अध्यक्ष के निदेशों के अनुसरण में सभा पटल पर रखे जाते हैं। अन्य दस्तावेजों के संबंध में मंत्रियों को स्वयं यह निर्णय करना पड़ता है कि किसी पत्र को सभा पटल पर रखना है या नहीं और यदि रखना चाहिए, तो कब। जब मंत्री यह निर्णय करता है कि विषय ऐसा है जिस पर सभा को विश्वास में लेना चाहिए, तो उसे उस दस्तावेज को पहले सभा के समक्ष रखना चाहिए और फिर प्रेस को देना चाहिए।[71]

> यह निर्णय करना सरकार का काम है कि किसी विभागीय समिति के प्रतिवेदन को या किसी प्रतिवेदन विशेष को सभा पटल पर रखा जाना चाहिए या नहीं। सदस्यों ने जब कभी अध्यक्ष से यह अनुरोध किया कि ऐसा अमुक प्रतिवेदन सभा पटल पर रखा जाए तो अध्यक्ष ने सरकार को इस बारे में कोई निदेश देने से इंकार कर दिया।[72]
>
> केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच पत्र-व्यवहार को सभा पटल पर रखने या उसे सदस्यों में परिचालित करने की जिम्मेदारी सरकार की है और अध्यक्ष यह निर्धारित नहीं करता है कि सरकार को इस बारे में क्या कार्यवाही करनी चाहिए। सामान्यतः इस प्रकार का पत्राचार सभा पटल पर नहीं रखा जाता।[73]
>
> राज्य सरकारों की जांच रिपोर्टें सभा पटल पर नहीं रखी जाती हैं।[74]

---

69. *लो.स.वा.वि.*, 4.5.1963, पृ. 5974-81; 6.5.1963, पृ. 6012-13 ।
70. *देखिए* आगे इसी अध्याय में "*पत्रों को सभा पटल पर रखने की प्रक्रिया*" उप-शीर्षक के अंतर्गत।
71. *एल.एस. डिबेट्स*, 8.4.1960, कॉ. 10378-80 ।
72. *पूर्वोक्त*, 18.4.1959, कॉ. 7060-63; 20.3.1959, कॉ. 7535-47; 16.8.1963, कॉ. 634; 21.8.1961, कॉ. 3482-85; 8.12.1961, कॉ. 4182 ।
73. *पूर्वोक्त*, 21.2.1966, कॉ. 1217; साथ ही *देखिए लो.स.वा.वि.*, 5.8.1970, पृ. 21-24 ।
74. *पूर्वोक्त*, 16.8.1961, कॉ. 2403-04 ।

> जब सरकार के आमंत्रण पर संसद सदस्यों का कोई दल किसी स्थान का भ्रमण करता है और प्रतिवेदन देता है, तो वह सभा पटल पर रखा जाने वाला सरकारी दस्तावेज नहीं होता, क्योंकि मंत्रियों से केवल सरकारी दस्तावेज सभा पटल पर रखने की अपेक्षा होती है।[75]

संविधान या सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों या साक्ष्य अधिनियम में कोई ऐसी बात नहीं है जो न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत वाद-पत्र, लिखित बयान, शपथ-पत्र या याचिका समेत किसी पत्र या दस्तावेज को सभा पटल पर रखने से सरकार को रोके[76] परन्तु यदि कोई मंत्री इस आधार पर उसे सभा पटल पर रखने से इनकार करता है कि यह लोक हित के विरुद्ध होगा तो अध्यक्ष मंत्री को उस पत्र को सभा पटल पर रखने के लिए विवश नहीं कर सकता।[77]

कोई भी सदस्य किसी पत्र या दस्तावेज को सभा पटल पर रख सकता है, पर ऐसा वह केवल अध्यक्ष द्वारा प्राधिकृत किए जाने पर ही कर सकता है।[78]

कुछ पत्र जैसे कि संसदीय समितियों के प्रतिवेदन जो सभा के भंग हो जाने के कारण पेश न किए जा सके हों, राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त विधेयकों की प्रतियां आदि महासचिव द्वारा अध्यक्ष के निदेश के अनुसार सभा पटल पर रखी जाती हैं। यह भी प्रथा है कि महासचिव प्रत्येक वर्ष दो पुस्तिकाएं सभा पटल पर रखता है, जिनके नाम है "*संसदीय समितियां—कार्य का सारांश*" और "*वित्तीय समितियां—एक समीक्षा*"। इसके अतिरिक्त, महासचिव द्वारा वर्ष 2005 से अन्तर संसदीय संघ, राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलन, संसदीय शिष्टमंडल, सद्‌भावना यात्रा आदि के प्रतिवेदन सभा पटल पर रखे जा रहे हैं।[79]

आम चुनावों के बाद, जब नई लोक सभा की बैठक होती है, तो महासचिव एक पुस्तिका सभा पटल पर रखता है जिसमें सभा के लिए निर्वाचित सदस्यों के नाम दिए होते हैं और जो मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा अध्यक्ष को प्रस्तुत की जाती है।

महासचिव राज्य सभा द्वारा पारित तथा लोक सभा को भेजे गए विधेयकों और राज्य सभा द्वारा लोक सभा को लौटाए गए विधेयकों की प्रतियां सभा पटल पर रखता है।

महासचिव, संविधान के अनुच्छेद 87 के अंतर्गत संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति द्वारा दिए गए अभिभाषण की एक प्रति भी सभा पटल पर रखता है।

---

75. *लो.स.वा.वि.*, 23.3.1965, पृ. 2160-62 ।
76. *पूर्वोक्त*, एल.एस. डिबेट्स, 6.5.1968, कॉ. 2198-2202, 2246-50; 7.5.1968, कॉ. 264-65; 9.5.1968, कॉ. 3149-54; 21.2.1980, कॉ. 252-61 ।
77. *पूर्वोक्त, एल.एस. डिबेट्स*, 9.5.1968, कॉ. 3149-56 ।
78. निदेश 117, साथ ही *देखिए* निदेश 118 और *एल.एस. डिबेट्स*, 15.5.1957, कॉ. 455-56, 8.3.1958, कॉ. 3891 ।
79. साथ ही *देखिए* संसद के अधिकारी संबंधी अध्याय आठ, ऊपर ।

यह निर्णय दिया गया है कि यदि प्रशासनिक मामलों से संबंधित कोई पत्र जो अध्यक्ष के संज्ञान में न हो, किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखा जाता है और उसके बाद उसे सरकार की राय जानने के लिए भेजा जाता है तो सरकारी टिप्पणी सहित वह पत्र संबंधित मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखा जाना चाहिए, महासचिव द्वारा नहीं।[80]

सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्रों का अधिप्रमाणीकरण

सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र या दस्तावेज का संबंधित मंत्री या सदस्य द्वारा विधिवत् अधिप्रमाणीकरण किया जाता है।[81] जब कोई पत्र महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखा जाता है तो उस पत्र का उसके द्वारा अधिप्रमाणीकरण किया जाता है।[82] अत: जो व्यक्ति किसी दस्तावेज का अधिप्रमाणीकरण करता है, उसके बारे में यह माना जाता है कि वह उसकी सत्यता, शुद्धता और प्रामाणिकता के लिए पूरी जिम्मेदारी लेता है। यह आवश्यक है क्योंकि एक बार कोई दस्तावेज सभा पटल पर रख दिया जाए तो वह सभा के स्थायी अभिलेखों का अंग बन जाता है और इस प्रकार वह एक सार्वजनिक दस्तावेज बन जाता है जिसे सदस्य देख सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते हैं।[83]

दस्तावेजों के अधिप्रमाणीकरण के लिए एक निर्धारित विधि है[84] और मंत्री अध्यक्ष द्वारा जारी किए गए स्थायी निदेशों के अनुसार उसका पालन करते हैं।

---

80. 4 सितम्बर, 1958 को एक सदस्य न केरल की स्थिति के संबंध में अपने स्थगन प्रस्ताव के समर्थन में कुछ पत्र सभा पटल पर रखे—*एल.एस. डिबेट्स*, 4.5.1958, कॉ. 4675-99 ।

    बाद में, अध्यक्ष ने यह निदेश दिया कि वे पत्र राज्य सरकार को भेज दिए जाएं और यदि वह उनके संबंध में कोई टिप्पणी दे तो उसे राज्य सरकार की सहमति से सभा पटल पर रखा जाए। जब गृह मंत्रालय ने यह सूचना दी कि राज्य सरकार को इस बारे में कोई आपत्ति नहीं है कि उनकी टिप्पणी सभा पटल पर रख दी जाए तो यह निर्णय लिया गया कि यह अधिक उचित होगा कि गृह मंत्री उसे सभा पटल पर रखे क्योंकि यदि महासचिव उसे सभा पटल पर रखता है, तो उसकी जिम्मेदारी अध्यक्ष पर आ जाएगी और ऐसे प्रशासनिक मामलों में जो अध्यक्ष के संज्ञान में नहीं है यह आवश्यक है कि यह सरकार की जिम्मेदारी पर रहे।

81. नियम 369 (1) ।

82. परन्तु कुछ दस्तावेज ऐसे हैं जो महासचिव द्वारा सभा पटल पर रखे जाते हैं पर वह उनका अधिप्रमाणीकरण नहीं करते। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति द्वारा संसद के दोनों सदनों के समक्ष दिया गया अभिभाषण राष्ट्रपति द्वारा अधिप्रमाणित किया जाता है। इसी प्रकार जो विधेयक राज्य सभा द्वारा पारित किए जाते हैं और महासचिव द्वारा लोक सभा के पटल पर रखे जाते हैं, उनका अधिप्रमाणीकरण राज्य सभा का महासचिव करता है।

83. *कार्यवाही सारांश* (नियम समिति), 17.4.1953 ।

84. प्रत्येक दस्तावेज का अधिप्रमाणीकरण उपयुक्त स्थान पर, और संभव हो तो मुखपृष्ठ पर, किया जाता है।

किसी मंत्री द्वारा पत्र या दस्तावेज के सभा पटल पर रखे जाने के संबंध में कार्य-सूची में प्रविष्टि की जाती है। यदि ऐसी प्रविष्टि से पहले मंत्री के विभाग में कोई परिवर्तन हो जाए, तो नये मंत्री के लिए यह आवश्यक है कि वह उस पत्र की एक अन्य प्रति का अधिप्रमाणीकरण करे और कार्य-सूची में तदनुसार प्रविष्टि की जाती है। इसी प्रकार जिन पत्रों को लोक सभा के विघटन के बाद नये सिरे से सभा पटल पर रखे जाने की आवश्यकता हो या पत्र पुनः रखे जाने हों, यदि उनके संबंध में मंत्री के पद में परिवर्तन हो जाता है तो उनका पुनः अधिप्रमाणीकरण जरूरी हो जाता है।

किसी गैर-सरकारी सदस्य को पत्र सभा पटल पर रखने का तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक अध्यक्षपीठ उसकी अनुमति नहीं दे दे। पत्र को सभा पटल पर रखने की अनुमति दिये जाने के बाद उनके अधिप्रमाणीकरण की जरूरत होती है।

जिस दिन जो पत्र या दस्तावेज सभा पटल पर रखे जाने हैं उस दिन उन सभी की अधिप्रमाणित प्रतियां बैठक प्रारंभ होने से पहले पटल कार्यालय में तैयार रखी जाती हैं और सभा पटल पर रखने के कुछ देर पश्चात् संसद ग्रंथालय में भेज दी जाती हैं।

पत्रों को सभा पटल पर रखने की प्रक्रिया

सरकार द्वारा सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र

मंत्रियों को पत्रों के अंग्रेजी और हिंदी दोनों संस्करण सभा पटल पर रखने होते हैं। जब अध्यक्ष किसी पत्र के केवल एक संस्करण को सभा पटल पर रखने की अनुमति देता है तो मंत्री को पत्रों के साथ एक विवरण भी सभा पटल पर रखना पड़ता है, जिसमें पत्र का दूसरा संस्करण साथ-साथ न रखने के कारण दिए होते हैं।

जब मंत्री कोई पत्र या दस्तावेज सभा पटल पर रखना चाहता है, तो संबंधित मंत्रालय प्रत्येक अधिसूचना की छियालीस प्रतियां और किसी अन्य ऐसे पत्र की हिन्दी और अंग्रेजी दोनों संस्करणों की सभी दृष्टियों से पूर्ण छब्बीस प्रतियां सचिवालय को भेजता है। उनमें हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण की एक-एक प्रति संबंधित मंत्री द्वारा विधिवत् अधिप्रमाणीकृत होती है। ये प्रतियां उस तिथि से दो दिन पहले भेजी जाती हैं, जब मंत्री उसे सभा पटल पर रखना चाहता है।[85] परन्तु विशेष परिस्थितियों में, अध्यक्ष किसी मंत्री के अनुरोध पर, अल्प सूचना पर कोई पत्र सभा पटल पर रखने की अनुमति दे सकता है।[86] जिस मंत्री के नाम पर कार्य-सूची में वह मद है, यदि वह अनुपस्थित हो तो दूसरा मंत्री पत्र सभा पटल पर रख सकता है, पर इसके लिए उसे अध्यक्ष को पहले से सूचित करना होता है।[87]

85. *एल.एस. डिबेट्स*, 27.8.1954, कॉ. 346; निदेश 116 (2), पत्रों को सभा पटल रखने के पश्चात् मंत्रालयों/विभागों के लिए अब यह आवश्यक है कि वे मंत्रालय के नाम, सभा पटल पर रखे जाने की तारीख और उनके शीर्षकों का उल्लेख करते हुए Computer159@sansad.nic.in का अपना वेबलिंक उपलब्ध करायें ताकि उन्हें लोक सभा होमपेज के साथ जोड़ा जा सके।

86. निदेश 116 (3) ।

87. *एल.एस.डिबेट्स*, 25.7.1975, कॉ. 1-2 ।

यदि कोई पत्र किसी विशेष कानून के अंतर्गत सभा पटल पर रखा जा रहा है, तो मंत्रालय सचिवालय के नाम अपने पत्र में यह बताता है कि उस कानून के कौन से उपबंध के अंतर्गत वह पत्र सभा पटल पर रखा जा रहा है। यदि सभा पटल पर रखे जाना वाला पत्र 'आदेश'[88] है तो उस अवधि का भी उल्लेख किया जाता है जिसके लिए उसे सभा पटल पर रखा जाता है और साथ-साथ यह भी सूचित किया जाता है कि क्या 'आदेश' में कोई संशाधन किया जाना है अथवा नहीं।

मंत्रालय से जो पत्र प्राप्त होते हैं, उनकी सचिवालय में यह देखने के लिए जांच की जाती है कि वह तत्संबंधी सांविधिक अपेक्षाओं, यदि कोई हों, के अनुरूप है या नहीं।[89] यदि यह पाया जाता है कि उस पत्र को सभा पटल पर रखने में विलम्ब हुआ है तो संबंधित मंत्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे पत्र या दस्तावेज के साथ विलम्ब के कारण बताने वाले विवरण भी सभा पटल पर रखे।[90]

यदि मंत्री ने कोई विशेष तिथि बताई हो, जिस दिन वह कोई पत्र सभा पटल पर रखना चाहता है, तो उस दिन की कार्य-सूची में तत्संबंधी प्रविष्टि की जाती है। यदि किसी तिथि का उल्लेख न किया गया हो तो, प्रविष्टि सामान्यत: उससे अगले दिन की कार्य-सूची में की जाती है, जो उस मंत्री द्वारा सभा में प्रश्नों के उत्तर देने के लिए नियत किया गया हो। यह प्रविष्टि उस मंत्री के नाम में की जाती है जिसने पत्र का अधिप्रमाणीकरण किया हो और वही मंत्री सभा पटल पर पत्र रखता है जब तक कि उसने अपनी ओर से किसी अन्य मंत्री को यह कार्य करने के लिए प्राधिकृत न किया हो। परन्तु यदि वह स्वयं सभा में उपस्थित है तो दूसरा मंत्री प्राधिकृत किए जाने पर भी पत्र सभा पटल पर नहीं रख सकता। प्रविष्टि में केवल पत्र के

---

88. यहां 'आदेश' का अर्थ है कोई ऐसा विनियम, नियम, उप-नियम, उप-विधि, आदि जो संविधान के उपबधों या संसद द्वारा अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रत्यायोजित विधायी कृत्य के अनुसरण में बनाया गया हो और जिसका लोक सभा के सामने रखा जाना आवश्यक हो—नियम 319।

89. उदाहरण के लिए, सरकारी उपक्रमों की वार्षिक रिपोर्टों के मामले में कम्पनी अधिनियम, 1956 में निर्धारित कानून की अपेक्षा यह है कि उनके साथ लेखा परीक्षा प्रतिवेदन तथा उस पर नियंत्रक-महालेखा परीक्षक द्वारा की गई टिप्पणी या उसके द्वारा लेखा परीक्षा रिपोर्ट पर प्रस्तुत अनुपूरक रिपोर्ट होनी चाहिए। अत: यदि किसी मंत्रालय से कोई ऐसी विशेष वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त होती है, जिसके साथ लेखापरीक्षित लेखे और उनके संबंध में नियंत्रक-महालेखा परीक्षक की टिप्पणियां न हों, तो उस मद को कार्य-सूची में सम्मिलित किये जाने से पहले इस बात की ओर संबंधित मंत्रालय का ध्यान उपर्युक्त कानूनी अपेक्षा को पूरा करने के लिये तुरन्त दिलाया जाता है। इसी प्रकार यदि किसी पत्र के साथ अन्य अपेक्षित जानकारी न हो तो मंत्रालय से कहा जाता है कि वह उस पत्र को सभी प्रकार से पूर्ण बना दे जिससे कि उस मद को कार्य-सूची में सम्मिलित किया जा सके।

90. *लो.स.वा.वि.*, 22.8.1962, पृ. 1712।

'आदेशों' के मामले में ऐसे विवरण के लिए आग्रह नहीं किया जाता और विलम्ब और मंत्रालय द्वारा विलम्ब के लिए दिए गए कारणों, यदि कोई हों, को अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के ध्यान में लाया जाता है जो उस विषय का संज्ञान लेती है।

विषय का संक्षेप में उल्लेख किया जाता है और उसका आशय नहीं बताया जाता।[91] सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र की विषय-वस्तु को उसके सभा पटल पर रखे जाने तक गोपनीय रखा जाता है। मंत्री चाहे तो पत्र को सभा पटल पर रखे जाने से पहले उसमें कोई भूल-सुधार कर सकता है या उसमें परिवर्तन कर सकता है। तथापि, इस प्रकार की गई सभी शुद्धियों को मंत्री द्वारा अधिप्रमाणीकृत किया जाता है या जिस अंतिम रूप में पत्र सभा पटल पर रखा जाना है उसकी अधिप्रमाणीकृत प्रति, पत्र के सभा पटल पर रखे जाने से पहले या उसके तुरन्त बाद सचिवालय को दी जाती है।

'किसी पत्र के सभा पटल पर रखे जाने' का मतलब यह नहीं है कि मंत्री को उस समय वह पत्र वस्तुत: सभा पटल पर देना होता है। होता यह है कि सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र की अधिप्रमाणीकृत प्रति पटल कार्यालय में रखी जाती है। जब मंत्री अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर औपचारिक रूप से यह कहता है कि वह उस पत्र को सभा पटल पर रखता है तो उसके बाद, यदि आवश्यक हो, वह पत्र सदस्य के अनुरोध पर उसे संदर्भ के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है। जब सभा पटल पर रखा जाने वाला कोई दस्तावेज दूरगामी महत्व का होता है। तो अध्यक्ष की अनुमति से उसे सभा में पढ़कर सुनाया जा सकता है।[92]

जब कोई पत्र सभा पटल पर रखा जा रहा हो तो उसके विधि सम्मत या संविधान सम्मत होने के बारे में कोई व्यवस्था का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।[93]

यह विचार करना और सभा को प्रतिवेदित करना सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति का काम है कि (i) क्या संविधान, अधिनियम, नियम या विनियम के उन उपबंधों का पालन हुआ है जिनके अंतर्गत पत्र सभा पटल पर रखा गया है, (ii) क्या पत्र को सभा पटल पर रखने में कोई अनुचित विलम्ब हुआ है, (iii) यदि ऐसा विलम्ब हुआ है तो क्या विलम्ब के कारण बताने वाला विवरण सभा पटल पर रखा गया है और क्या वे कारण संतोषजनक हैं, (iv) क्या पत्रों के हिन्दी और अंग्रेजी दोनों संस्करण सभा पटल पर रखे गए हैं, और (v) क्या संस्करण सभा पटल पर न रखे जाने के कारण बताने वाला विवरण सभा पटल पर रखा गया है और क्या वे कारण संतोषजनक हैं।

सदस्यों द्वारा सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र

कोई सदस्य भी दस्तावेज या पत्र सभा पटल पर रख सकता है, परन्तु उसके लिए पहले से अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त करना जरूरी है।[94] अत: सदस्य को उसकी एक अग्रिम प्रति अध्यक्ष को भेजनी चाहिए ताकि वह निश्चय कर सके कि अनुमति दी जाए या नहीं।

---

91. *लो.स.वा.वि.*, 24.5.1957, पृ. 867 ।
92. *पूर्वाक्त, एल.एस. डिबेट्स*, 13.3.1958, कॉ. 4736-39 ।
93. *पूर्वाक्त, एल.एस. डिबेट्स*, 24.3.1975, कॉ. 228-32 ।
94. निदेश 117,

अध्यक्ष ने टिप्पणी की है कि वह किसी गैर-सरकारी सदस्य को सरकार की ओर से कोई सरकारी दस्तावेज सभा पटल पर रखने की अनुमति नहीं दे सकते। *लो.स.वा.वि.*, 8.8.1974, पृ. 5 ।

किसी सदस्य द्वारा सभा पटल पर कोई पत्र रखने का अवसर सामान्यत: तभी आता है जब वह किसी दस्तावेज से उद्धरण दे और उसे या तो स्वयं सभा पटल पर रखना चाहे या उसके लिए सभा में मांग की जाये या जब कोई विशेषाधिकार का मामला अन्तर्ग्रस्त हो और सदस्य को उसके द्वारा लगाए गए आरोप को प्रमाणित करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य देना जरूरी हो। ऐसे मामलों में सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि यदि उसने पहले ही उस पत्र की प्रति नहीं दे दी हो, तो वह उसकी प्रति सभा पटल अधिकारी को दे दे। परन्तु पत्र को तभी सभा पटल पर रखा गया माना जाता है, जब अध्यक्ष उसका अध्ययन करने के बाद उसे सभा पटल पर रखने की अनुमति दे दे।[95]

किसी सदस्य द्वारा दिए गए किसी पत्र को सभा पटल पर रखा गया मान लेने की अनुमति देते समय अध्यक्ष अन्य बातों के अतिरिक्त इन बातों का भी ध्यान रखता है कि सदस्य ने सभा में दस्तावेज का उल्लेख किया है या उसके उद्धरण पढ़कर सुनाये हैं और उसके पटल पर रखे जाने की मांग की गई है[96] या यह कि वह अध्यक्षपीठ के निदेशों के अधीन सभा पटल पर रखा जा रहा है;[97] कि दस्तावेज इतना महत्वपूर्ण है कि उस सभा की कार्यवाही के रिकार्ड में लाना आवश्यक है;[98] कि दस्तावेज में ऐसी कोई बात नहीं है जो कि राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध हो; कि दस्तावेज प्रचारात्मक नहीं है और दस्तावेज को सभा पटल पर रखकर सभा को ऐसे विचार व्यक्त करने का माध्यम नहीं बनाया जा रहा है जिससे सभा की प्रतिष्ठा या प्राधिकार को हानि पहुंच सकती हो; कि उस पत्र या दस्तावेज में जिस विषय की चर्चा है उसका सभा के कार्य से किसी न किसी प्रकार संबंध अवश्य है;[99] कि दस्तावेज का प्रकाशन किसी राज्य सरकार या किसी अन्य सक्षम प्राधिकारी[100] द्वारा किया गया है और यह कि वह मूलरूप में है और प्रामाणिक है।[101]

---

95. निदेश 118 (3) (1) जब अध्यक्ष पत्र को सभा पटल पर रखने की अनुमति दे देता है तो उसकी सूचना संसदीय समाचार में प्रकाशित की जाती है-*लो.स.वा.वि.*, 7.7.1967, पृ. 4722, यदि अध्यक्ष अनुमति नहीं देता तो वह पत्र सदस्य को वापस लौटा दिया जाता है और इस बात का उल्लेख मुद्रित वाद-विवाद में पाद-टिप्पण के रूप में किया जाता है।
96. *सं.वा.वि.*, 11.6.1952, कॉ. 1137, 12.6.1952, पृ. 1182, *एल.एस. डिबेट्स*, 22.2.1956, कॉ. 581, 582, *लो.स.वा.वि.*, 25.3.1956, पृ. 1341, 23.4.1956, पृ. 2629, *एल.एस. डिबेट्स*, 21.5.1956, कॉ. 8985-86, *लो.स.वा.वि.*, 15.11.1957, पृ. 465-66, *एल.एस. डिबेट्स*, 13.11.1962; कॉ. 1241-43, *लो.स.वा.वि.*, 9.7.1980, पृ. 167-68, 2.12.1981, पृ. 211 ।
97. *पूर्वोक्त*, 27.11.1958, कॉ. 1679, 1683-84 ।
98. *पूर्वोक्त*, 19.12.1956, कॉ. 3530, 20.2.1958, कॉ. 1750, 1753, 4.9.1988, कॉ. 4699, 4713 ।
99. *लो.स.वा.वि.*, 4.12.1985, कॉ. 255-56 ।
100. *पूर्वोक्त*, 3.4.1959, पृ. 4688-89 ।
101. *पूर्वोक्त*, 1.4.1959, कॉ. 9033; 2.4.1959, कॉ. 9265; 3.4.1959, कॉ. 9639; 6.4.1959, कॉ. 10153 ।

जब कोई सदस्य कोई पत्र या दस्तावेज सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगता है तो उसके लिए, यथास्थिति, निम्नलिखित में से किसी एक रूप में उस पत्र पर प्रमाण-पत्र[102] रिकार्ड कराना जरूरी है:—

(क) 'मैं अपनी वैयक्तिक जानकारी से प्रमाणित करता हूं कि यह मूल दस्तावेज है जो प्रामाणिक है'।

(ख) 'मैं अपनी वैयक्तिक जानकारी से प्रमाणित करता हूं कि यह दस्तावेज मूल दस्तावेज की सत्य प्रतिलिपि है जो प्रामाणिक है'।

(ग) 'मैं प्रमाणित करता हूं कि इस दस्तावेज की विषय-वस्तु सही है और प्रामाणिक जानकारी पर आधारित है'।

यदि कोई पत्र या दस्तावेज एक से अधिक पृष्ठ का है तो सदस्य को उसके प्रत्येक पृष्ठ पर तारीख सहित हस्ताक्षर करने होते हैं।[103]

किसी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र को अध्यक्ष के निदेशों के अंतर्गत एक संसदीय समिति / उप समिति को उस दशा में भेजा जा सकता है यदि उस पत्र में उल्लिखित मामला उस संसदीय समिति / उप-समिति के विचाराधीन हो।[104]

अध्यक्ष द्वारा तब अनुमति नहीं दी जाती जब दस्तावेज का स्वरूप निजी पत्राचार हो या जब सदस्य ने दस्तावेज को अपने उन तर्कों को मात्र प्रबल बनाने के लिए उद्धृत किया हो, जिनका उत्तर मंत्री पहले ही दे चुका हो[105] या जब दस्तावेज को सभा पटल पर रखने की सभा में मांग न हो[106] या जब दस्तावेज से सदस्य के वक्तव्य की पुष्टि न होती हो।[107] इसी प्रकार तब भी अनुमति रोक दी जाती है जब दस्तावेज में सदस्य द्वारा स्वयं तैयार किये गये वक्तव्य में केवल आंकड़ों का विवरण हो और जिसका प्रयोग वह अपने भाषण में कर सकता था।[108] या उसमें सदस्य के अपने विचार हों और जिसकी विषय-वस्तु की प्रामाणिकता की सदस्य पुष्टि न कर सकता हो[109] या जब दस्तावेज मूल रूप में न हो बल्कि उसकी प्रतिलिपि मात्र हो, जिसकी प्रामाणिकता का सत्यापन नहीं किया जा सकता हो[110] या जब दस्तावेज में किन्हीं ऐसे दस्तावेजों से उद्धरण दिए गए हों जो पहुंच से बाहर है और जिनका अस्तित्व सत्यापित

---

102. निदेश 118क (1) ।
103. निदेश 118क (2) ।
104. *एल.एस. डिबेट्स,* 1.12.1967, कॉ. 4259-60 और समाचार (भाग दो), 14.12.1967 ।
105. *पूर्वोक्त,* 19.11.1958, पृ. 275-76, *एल.एस. डिबेट्स,* 6.4.1959, कॉ. 10151-53, 20.8.1963, कॉ. 1554 ।
106. *पूर्वोक्त,* 30.11.1967, कॉ. 3919 ।
107. *पूर्वोक्त,* 17.8.1956, कॉ. 3624 ।
108. *पूर्वोक्त,* 18.11.1963, कॉ. 185 ।
109. *पूर्वोक्त,* 13.3.1959, कॉ. 6269-70, 27.11.1967, कॉ. 3058 ।
110. *पूर्वोक्त,* 6.4.1959, कॉ. 10151-53 ।

नहीं किया जा सकता या जब इसके विपरीत दस्तावेज संदर्भ के लिए आसानी से मिल सकता हो[111] या जब सदस्य ऐसा दस्तावेज रखना चाहता हो जो सभा के समक्ष संगत कार्य से संबंधित नहीं हो या जब सदस्य ने न तो उस दस्तावेज से कोई उद्धरण दिया हो जिसे वह सभा पटल पर रखना चाहता था और न उसे सभा पटल पर रखने के लिए कहा गया हो और न ही कोई विशेषाधिकार का प्रश्न अंतर्ग्रस्त हो, जिससे कि उसे उसके द्वारा लगाए गए आरोपों को प्रमाणित करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य देना जरूरी हो।[112]

सभा पटल पर रखे गये पत्रों का परिचालन

किसी मंत्री द्वारा पत्र सभा पटल पर रखे जाने के तुरन्त बाद उसकी कुछ प्रतियां पुस्तकालय में सदस्यों के संदर्भ के लिए रख दी जाती हैं और समाचारपत्रों को भी आम जानकारी के लिए दे दी जाती हैं।

सामान्यत: किसी सांविधिक बाध्यता के तहत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्रों को जब तक अध्यक्ष ने अग्रिम रूप से परिचालित करने की अनुमति न दी हो[113] या जिस कानून के अधीन पत्रों को सभा पटल पर रखा जाना है, जब तक उसमें ऐसा उपबंध नहीं किया गया है[114] तब तक उन्हें न तो सदस्यों में अग्रिम रूप से परिचालित किया जाता है और न ही प्रेस को जारी किया जाता है। तदर्थ रिपोर्टों तथा अन्य पत्रों के मामले में, जिन्हें किसी कानूनी या

---

111. *पूर्वोक्त*, 14.5.1957, कॉ. 214 ।

112. *पूर्वोक्त*, 19.8.1959, पृ. 1619-20, 21.8.1959, कॉ. 3607, 1.9.1961, पृ. 3233, *एल.एस. डिबेट्स*, 11.4.1963, कॉ. 9281-83 ।

113. 11 मार्च, 1959 को अध्यक्ष ने सभा को सूचित किया कि वह इस बात से सहमत हो गए हैं कि सरकारी कंपनियां उनकी वार्षिक आम बैठक होने के तुरन्त बाद अपने वार्षिक प्रतिवेदनों की प्रतियां सभी सदस्यों को सीधे भेजेंगी। उन्होंने यह भी टिप्पणी की कि प्रतिवेदन की 10 प्रतियां पुस्तकालय को भेजी जाएंगी, और जैसा कि कंपनी अधिनियम 1956 के अंतर्गत अपेक्षित है, प्रतियों को यथासंभव शीघ्र औपचारिक रूप से सभा पटल पर रखा जाएगा—*लो. स.वा.वि.*, 11.3.1959, पृ. 2864।

    14 अगस्त, 1961 को प्रधान मंत्री ने राज्यों के मुख्यमंत्रियों और केन्द्रीय मंत्रियों की 10, 11 और 12 अगस्त, 1961 को हुई बैठक में जारी किया गया वक्तव्य सभा पटल पर रखा। हालांकि वह वक्तव्य प्रेस को पहले ही जारी कर दिया गया था और समाचार पत्रों ने इसे 13 अगस्त, 1961 को प्रकाशित किया था।

    प्रेस को वक्तव्य पहले देने का कारण बताते हुए प्रधान मंत्री ने अध्यक्ष को भेजे गए दिनांक 12 अगस्त, 1961 के पत्र में कहा कि उस वक्तव्य का प्रकाशन 14 अगस्त, 1961 तक, जिस दिन उसे सभा पटल पर रखा जाना था, रोके रखना कठिन था क्योंकि राज्यों के मुख्यमंत्रियों और केन्द्रीय मंत्रियों की बैठक में लोगों की काफी दिलचस्पी दिखाई दी और बैठक में जो निर्णय लिए गए उनको समाचार पत्रों द्वारा तोड़-मरोड़ कर प्रकाशित किए जाने कि संभावना थी।

114. उदाहरण के लिए 'आदेश' सर्वदा राजपत्र में अधिसूचित हो जाने के बाद सभा पटल पर रखे जाते हैं, तब तक कि उन्हें मसौदे के रूप में सभा पटल पर रखना अपेक्षित न हो।

अन्य उपबंध के अंतर्गत सभा पटल पर रखे जाने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु जिन्हें सरकार स्वत: अपनी ओर से सभा पटल पर रखती है, प्रथा यह है कि ऐसे पत्र, यदि सभा का सत्र चल रहा हो, शिष्टाचार के नाते पहले सभा के सामने रखे जाते हैं, और उसके बाद समाचार पत्रों को दिए जाते हैं।[115] यदि सभा का सत्र न चल रहा हो तो अध्यक्ष की अनुमति से ऐसे पत्र को पहले से परिचालित कर दिया जाता है और अगले सत्र में सभा पटल पर रख दिया जाता है।[116]

---

115. *एल.एस. डिबेट्स,* 8.4.1960, कॉ. 10378-80, *लो.स.वा.वि.*, 9.5.1962, पृ. 1688 ।

ऐसे दृष्टांत हैं जब पत्र सभा पटल पर रखे जाने से पहले सदस्यों को परिचालित किए गए। उदाहरण के लिए—

(i) 12वें सत्र (तीसरी लोक सभा) के पहले दिन (16 अप्रैल 1962) प्रधान मंत्री को जून, 1965 के भारत-पाकिस्तान समझौते के संबंध में एक विवरण सभा पटल पर रखना था जिसका संबंध गुजरात-पश्चिम पाकिस्तान सीमा से था और उसी दिन उक्त विवरण पर विचार का प्रस्ताव पेश करना था। इस आशय की 12 अगस्त, 1965 को जारी हुई प्रविष्टियां 16 अगस्त, 1965 की *पुनरीक्षित कार्य-सूची* में शामिल की गई थीं। चूंकि विवरण पर उसी दिन चर्चा होनी थी जिस दिन उसे सभा पटल पर रखा जाना था। अत: उसकी प्रतियां तथा समझौते का मूलपाठ 15 अगस्त, 1965 को पहले ही सदस्यों को परिचालित कर दिये गये।

(ii) पांचवे सत्र (5वीं लोक सभा) के पहले दिन (19 मार्च 1971) विदेश मंत्री को भारत और पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय संबंधों पर हुए समझौते के बारे में, जिस पर 2 जुलाई, 1972 को शिमला में हस्ताक्षर हुए थे, एक वक्तव्य देना था और समझौते की एक प्रति भी सभा पटल पर रखनी थी। उसी दिन उस वक्तव्य पर विचार करने का सरकारी प्रस्ताव लिया जाना था। इस आशय की प्रविष्टियां 31 जुलाई, 1972 की *पुनरीक्षित कार्य-सूची* में की गई थी। सदस्यों को समझौते की प्रतियां पहले ही 28 जुलाई, 1972 को परिचालित कर दी गई थीं।

(iii) 16 दिसम्बर, 1996 को (तीसरा सत्र-11वीं लोक सभा) वाणिज्य मंत्री को 'विश्व व्यापार संगठन' की सिंगापुर घोषणा पर भारत का 'रुख' विषय पर वक्तव्य देना था। उसी दिन उस विषय पर एक अल्पकालिक चर्चा भी होनी थी।

इस आशय की 13 दिसम्बर 1996 को जारी की गई प्रविष्टि 16 दिसम्बर, 1996 की *कार्य-सूची* में शामिल की गई थी। बैठक शुरू होने के बाद सभा में सदस्यों को वक्तव्य की प्रतियां अग्रिम रूप से परिचालित की गई थीं। उसी दिन 4 बजे अपराह्न में शुरू हुई अल्पकालिक चर्चा से पहले संसदीय कार्य मंत्री ने वाणिज्य मंत्री की ओर से वक्तव्य की प्रति सभा पटल पर रखी थी।

साथ ही *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 19.3.1979, कॉ. 261-65; 20.3.1989, कॉ. 273 ।

116. अध्यक्ष ने यह बात स्वीकार की कि संघ लोक सेवा आयोग तथा विवियन बोस जांच बोर्ड (जीवन बीमा निगम की पूंजी लगाने से सम्बद्ध कुछ अधिकारियों के आचरण तथा तत्संबंधी सरकारी निर्णयों) से संबंधित रिपोर्ट सत्रों के बीच की अवधि में सदस्यों को परिचालित करने दी जाए और इन रिपोर्टों को अगले सत्र (अगस्त-सितम्बर, 1959) में सभा पटल पर रख दिया जाए। इसी प्रकार नशाबंदी संबंधी टेकचन्द समिति की रिपोर्ट यद्यपि मई, 1964 में प्रकाशित कर दी गई परन्तु वह 2 जून, 1964 को सभा पटल पर रखी गई।

सभा पटल पर रखे गये पत्रों की प्रतियां सदस्यों को तभी परिचालित की जाती हैं जब मंत्री ऐसा करना चाहे या अध्यक्ष सभा में सामान्य रूप से मांग किए जाने पर उन्हें परिचालित करने का निदेश दे।[117] कतिपय मामलों में सभा में अध्यक्ष द्वारा इस संबंध में व्यक्त किए गए विचारों के अनुसरण में सभी मंत्रालयों को स्थायी निदेश दे दिए गए हैं।[118] बजट दस्तावेज, संघ लोक सेवा आयोग की रिपोर्टें, अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयोग की रिपोर्टें, आदि जैसे पत्र, जिन पर सभा में चर्चा होती है, अनिवार्यत: सदस्यों को परिचालित किए जाते हैं।

मंत्रालयों/विभागों द्वारा अध्यादेश की अंग्रेजी और हिन्दी संस्करणों में क्रमश: 900 और 500 प्रतियां राष्ट्रपति द्वारा इसका प्रख्यापन किए जाने के तुरन्त बाद सभा पटल कार्यालय (टेबल ऑफिस) को देनी आवश्यक है ताकि इनका परिचालन सदस्यों को दो बार किया जा सके अर्थात् (i) अध्यादेश की अंग्रेजी और हिन्दी संस्करणों की क्रमश: 450 और 250 प्रतियां प्राप्त होने के तुरन्त बाद सदस्यों को परिचालित की जाती हैं, और (ii) पुन: उतनी ही प्रतियां सदस्यों को सत्र आरंभ होने के एक दिन पहले परिचालित की जाती हैं।

सामान्यत: किसी सदस्य द्वारा सभा पटल पर रखे गये पत्र केवल संदर्भ प्रयोजन के लिए ग्रंथालय में रखे जाते हैं। तथापि, विशेष मामलों में सचिवालय द्वारा उनकी प्रतियां बनवाकर सदस्यों को उनके अनुरोध पर दी जाती हैं।[119]

पत्रों को पुन: सभा पटल पर रखा जाना

जब संविधान या किसी कानून में यह व्यवस्था की गई हो कि उसके अंतर्गत जो 'आदेश' जारी किए जाएं उन्हें 'इतने दिन से कम दिनों के लिए' या 'कम से कम इतने दिन के लिए' या 'पूरे इतने दिन के लिये' सभा पटल पर रखा जाए तो यह आवश्यक है कि यह अवधि एक सत्र में पूरी हो जाए और यदि वह अवधि इस प्रकार पूरी नहीं होती हो तो बाद के सत्र या सत्रों में तब तक आदेश को पुन: रखना होता है, जब तक कि वह अवधि एक सत्र में पूरी न हो जाए।[120] 'पूरे इतने दिन' या 'कम से कम इतने दिन' या 'इतने से कम दिन' का हिसाब लगाते समय प्रारंभ के और अंत के दो दिनों को नहीं गिना जाता है। अन्य मामलों में नियम यह है कि पहले दिन को निकाल दिया जाये और अंतिम दिन को सम्मिलित किया जाये। जब 'आदेश' दोनों सभाओं के पटल पर दो भिन्न-भिन्न तारीखों को रखे जाते हैं, तो जिस अवधि के लिए उन्हें सभा पटल पर रखा जाना है वह बाद की तारीख से आरंभ होती है।

---

117. उदाहरण के लिए, महलनवीस समिति की रिपोर्ट और उन घटनाओं तथा परिस्थितियों की जांच जिनके फलस्वरूप फेयरफैक्स ग्रुप इनकॉर्पोरेशन के साथ समझौता हुआ (ठक्कर-नटराजन आयोग) संबंधी रिपोर्ट की प्रतियां अध्यक्ष के निदेशानुसार सदस्यों को परिचालित की गईं- *लो.स.वा.वि.*, 29.4.1964, पृ. 4740, 9.12.1987 ।

118. *लो.स.वा.वि.*, 21.8.1962, पृ. 1595-97, 25.8.1962, पृ. 1966 ।

119. *एल.एस. डिबेट्स*, 4.9.1958, कॉ. 4699-4713 ।

120. नियम 234 ।

जब कतिपय 'आदेशों' को सभा पटल पर रखने की विहित अवधि न तो उस सत्र में पूरी होती है, जिसमें उन्हें प्रारंभ में सभा पटल पर रखा गया हो और न बाद के सत्र में, जब उन्हें फिर सभा पटल पर रखा गया हो, तो यह जरूरी है कि उक्त आदेशों को अगले सत्र में पुनः सभा पटल पर रखा जाये, जिससे कि उस सत्र में वह विहित अवधि पूरी हो सके।[121] जब ये आदेश उत्तरवर्ती सत्र में सभा पटल पर पुनः इसलिए नहीं रखे जाते कि या तो संबंधित मंत्रालय उन्हें कार्य-सूची में शामिल करने हेतु उनके संबंध में आवश्यक सूचना सचिवालय को नहीं भेज सका या इस कारण कि उन्हें सभा पटल पर रखने की निर्धारित अवधि उस सत्र में पूरी होने की संभावना नहीं है तो यह आवश्यक है कि उन्हें तुरन्त बाद में आने वाले सत्र में सभा पटल पर रखा जाये।

जब किसी कानून में यह उपबंध किया गया हो कि उसके अंतर्गत बनाये गए 'आदेशों' को किसी अवधि विशेष के लिए सभा पटल पर रखा जाये जो एक सत्र में हो या दो या उससे अधिक सत्रों में, तो एक सत्र में सभा पटल पर रखे गए 'आदेशों' के संबंध में यह माना जाता है कि वे बाद के सत्र में सभा पटल पर तब तक रखे रहें जब तक कि वह विशिष्ट अवधि पूरी नहीं हो जाती और इन आदेशों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि निर्धारित अवधि पूरी करने के लिये अगले सत्र में उन्हें फिर से औपचारिक ढंग से सभा पटल पर रखा जाये।[122] परन्तु यदि किसी 'आदेश' के बारे में यह अपेक्षित हो कि उसे 30 दिन की 'कुल अवधि' तक सभा पटल पर रखा जाए, जो एक सत्र में हो या लगातार होने वाले दो सत्रों में तो, इस प्रकार निर्धारित अवधि उस सत्र में, जिसमें वह आदेश रखा गया हो और उसके बाद आने वाले सत्र में पूरी होनी चाहिए। यदि वह अवधि इस तरह पूरी न हो, तो अगले सत्र में ऐसे 'आदेश' का पुनः सभा पटल पर रखा जाना आवश्यक है।[123]

---

121. *पी. डिबेट्स,* 16.11.1950, कॉ. 98-99, *लो.स.वा.वि.,* 19.3.1962, पृ. 402-03, 24.3.1962, पृ. 672-73 ।

122. उदाहरणार्थ *देखिए* केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा लवण अधिनियम, 1954 धारा 38, और भारत रक्षा अधिनियम, 1962 धारा 41 ।

123. *देखिए* कॉफी अधिनियम, 1948 धारा 43 (3); दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957, धारा 479 (2); खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम, 1956, धारा 26 (3); मणिपुर भू राजस्व तथा भूमि सुधार अधिनियम, 1960, धारा 169 आदि। इन अधिनियमों के अन्तर्गत बनाये गये नियम दूसरी लोक सभा में सभा पटल पर रखे गये थे, परन्तु क्योंकि निर्धारित अवधि पूरी नहीं हुई थी इसलिए उन्हें तीसरी लोक सभा के पहले सत्र में नए सिरे से सभा पटल पर रखा गया-*एल.एस. डिबेट्स,* 3.4.1962, कॉ. 2358, 2611-12, *लो.स.वा.वि.,* 7.5.1962, पृ. 1411-12, 8.5.1962, पृ. 1554-55; 9.5.1962, पृ. 1689-90 और 10.5.1962, पृ. 1784 ।

> यदि 'आदेशों' का सभा पटल पर पुनः रखा जाना आवश्यक हो और यदि यह पता हो कि निर्धारित अवधि लोक सभा के विघटन से पहले उसके अन्तिम सत्र में पूरी नहीं होगी तो उन्हें पुनः सभा पटल पर नहीं रखा जाता। इतना ही काफी है कि इन 'आदेशों' को नई लोक सभा के पहले सत्र में नए सिरे से सभा पटल पर रखा जाये।[124]
>
> यदि 'आदेश' लोक सभा के किसी सत्र में अधूरी अवधि के लिए सभा पटल पर रखे जाते हैं और उसके बाद सभा का विघटन कर दिया जाता है तो यह आवश्यक है कि नई लोक सभा के पहले सत्र में उन्हें नए सिरे से (दोबारा नहीं) पूरी अवधि के लिए सभा पटल पर रखा जाए।[125]
>
> जिस राज्य में राष्ट्रपति शासन हो, उसके संबंध में अधिसूचनाएं जिनका सभा पटल पर पुनः रखा जाना आवश्यक हो, पुनः सभा पटल पर नहीं रखी जातीं यदि इस बीच राष्ट्रपति ने उस उद्घोषणा का प्रतिसंहरण कर दिया हो जिसके अन्तर्गत उसने राज्य के कृत्य संभाले थे।[126]

लोक सभा के सत्र का अवसान होने के बाद सचिवालय उस सत्र में सभा पटल पर रखे गए पत्रों की जांच करता है, जिससे कि यह पता चले कि मूल अधिनियमों के अन्तर्गत उनके संबंध में निर्धारित अवधि यदि कोई है, पूरी हो गई है या नहीं। जिन मामलों में कानूनी उपबंधों के अनुसार विहित अवधि पूरी न हुई हो, तो संबंधित मंत्रालयों से कहा जाता है कि वे उन पत्रों को अगले सत्र में पुनः सभा पटल पर रखने की व्यवस्था करे। इस प्रकार पुनः रखे गए पत्र या पत्रों के संबंध में संसदीय समाचार में एक पाद-टिप्पण दिया जाता है।

बजट सत्र की पूर्व संध्या को सरकार द्वारा कराधान संबंधी अधिसूचनाएं जारी करने के औचित्य का प्रश्न संसद में बार-बार उठाया गया है। 4 मार्च, 1986 को राज्य सभा के सभापति ने बजट सत्र के एकदम पहले सीमा शुल्क की अदायगी से विभिन्न मदों को छूट देने के संबंध में सरकार द्वारा अधिसूचनाएं जारी करने के औचित्य का मामला लोक लेखा समिति को सौंप दिया। समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि इस सिद्धांत का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिये कि जब तक संसद ने उस पर चर्चा न कर ली हो तथा उसे स्वीकृत न

---

124. क्षेत्रीय परिषद अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत जारी किये गए नियम, 29 नवम्बर, 1961 को अधूरी अवधि के लिए सभा पटल पर रखे गए थे और उन्हें अगले सत्र—लोक सभा के अन्तिम सत्र में पुनः सभा पटल पर रखना आवश्यक था। चूंकि 30 दिन से अन्यून की विहित अवधि उस सत्र में पूरी होने की संभावना नहीं थी, इसलिए तीसरी लोक सभा के पहले सत्र में 14 मई, 1962 को ये नियम नए सिरे से सभा पटल पर रखे गए—लो.स.वा.वि., 14.5.1962, पृ. 2134-35 ।

125. *देखिए लो.स.वा.वि.*, 23.4.1962, पृ. 257-59, खान तथा खनिज (विनियमन तथा विकास) अधिनियम, 1957, और चावल मिल उद्योग (विनियम) अधिनियम, 1958 के अन्तर्गत बनाये गये नियमों आदि के लिए और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 के अन्तर्गत बनाये गए नियम आदि के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.*, 26.4.1962, पृ. 544-45 ।

126. *पूर्वोक्त,* 11.12.1956, कॉ. 2491 ।

कर दिया हो तब तक सरकार द्वारा कराधान सम्बन्धी कोई भी प्रस्ताव लागू नहीं किया जाना चाहिए। वहीं इस संबंध में कुछ लचीलापन भी होना चाहिए ताकि सरकार जनहित में आपात स्थिति से निपट सके। समिति ने यह भी कहा कि कुछ अधिसूचनाओं को तब तक रोके रखा जा सकता है जब तक संसद को उन पर विचार करने का अवसर नहीं मिल जाता। समिति ने यह टिप्पणी भी की कि अधिसूचना के पश्चात् कराधान संबंधी प्रस्तावों पर संसद द्वारा स्वीकृति, विशेष रूप से जब कि वे प्रस्ताव अनुमोदित बजट से भिन्न है, पहले किये जाने वाले वाद-विवाद और चर्चा का स्थान नहीं ले सकते।

लोक लेखा समिति की इन टिप्पणियों का उल्लेख करते हुए 11 नवम्बर, 1986 को राज्य सभा के सभापति ने यह टिप्पणी की कि सरकार को इस पर उचित ध्यान देना चाहिये और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिये कि ऐसी अधिसूचनाएं कम से कम संख्या में जारी की जायें जिनमें राजस्व अन्तर्ग्रस्त हों।[127]

संवेदनशील अधिसूचनाओं का सभा पटल पर रखा जाना

संवेदनशील अधिसूचनाएं वे अधिसूचनाएं होती हैं जिनके द्वारा निर्यात शुल्क में परिवर्तन, प्रक्रियाओं में भारी परिवर्तन और आयात तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में ऐसे परिवर्तन किये जाते हैं जिनमें प्रति वर्ष 50 लाख रुपये से अधिक का राजस्व अन्तर्ग्रस्त हो, इनमें वे मामले छोड़ दिए गए हैं, जहां वर्तमान छूट जारी रखी जा रही है।

संवेदनशील अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखने के संबंध में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाती है :—

(i) सभी संवेदनशील अधिसूचनाओं को असाधारण राजपत्र में प्रकाशित करना आवश्यक है।

(ii) यदि अधिसूचना को जारी करने के लिए 18.00 बजे से पहले प्रेस भेजा गया है, तो उसे उसी दिन सभा के स्थगित होने से तुरन्त पूर्व सभा पटल पर रखा जायेगा।

(iii) यदि अधिसूचना 18.00 बजे के बाद जारी की जाती है, तो मंत्रालय द्वारा उसकी प्रतियां लोक सभा सचिवालय को उसी दिन आधी रात तक भेजी जानी चाहिये ताकि प्रतियां सदस्यों को परिचालित की जा सकें। ऐसी अधिसूचना को अगली बैठक में सभा पटल पर रखा जाना चाहिये तथापि, विशेष परिस्थितियों में, जब अधिसूचना को जारी करने का पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता, संबंधित मंत्री को उसी दिन अध्यक्ष को एक पत्र भेजना चाहिये जिसके साथ अधिसूचना की प्रति संलग्न हो और जिसमें लोक सभा की अगली बैठक में अधिसूचना को सभा पटल पर रखने के अपने आशय की सूचना हो।

संवेदनशील अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखने के लिए अनुपूरक कार्य-सूची जारी की जाती है ताकि अधिसूचनाओं की विषय-वस्तु के बारे में सदस्यों को अग्रिम जानकारी हो सके।

---

127. *आर.एस. डिबेट्स,* 11.11.1986, कॉ. 186-87 ।

अन्तर्सत्रावधि के दौरान संवेनदशील अधिसूचनाओं सहित जारी की गई सभी अधिसूचनाओं को अगले सत्र के प्रारंभ होने की तारीख से 7 दिन के भीतर सभा पटल पर रखना होता है।[128]

सभा पटल पर रखे गए पत्रों में शुद्धियां

सभा पटल पर रखे जाने वाला कोई भी पत्र या दस्तावेज सही और सम्पूर्ण होना चाहिये। परन्तु यदि सभा पटल पर रखे गये पत्र में कोई गलती या भूल, छपाई की या टंकण की स्पष्ट भूल से बड़ी गलती हो और उसकी सूचना संबंधित मंत्री ने बाद में दी हो, तो उसे एक भारी गलती माना जाता है और यह आवश्यक है कि उसके लिए मंत्री, यथाशीघ्र, औपचारिक शुद्धिपत्र सभा पटल पर रखे।

एक मुख्य रिपोर्ट में परिशिष्ट का न लगाया जाना भारी गलती मानी गयी और परिशिष्ट को सभा पटल पर रखना आवश्यक हो गया।[129] इसी प्रकार, सभा पटल पर रखे गये पत्र में सारभूत विषयों से संबंधित शुद्धिपत्र को भी औपचारिक रूप से सभा पटल पर रखना आवश्यक हो गया।[130]

जब कोई गलती मामूली या शाब्दिक समझी जाये, तो उस गलती का सुधार पत्र की अधिप्रमाणित प्रति में तथा पुस्तकालय में रखी गयी प्रतियों में कर दिया जाता है और उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि मंत्री औपचारिक रूप से कोई शुद्धि पत्र सभा पटल पर रखें।

मंत्री किसी पत्र के सभा पटल पर रखे जाने के पूर्व उसके पाठ में शुद्धि अथवा परिवर्तन कर सकता है। तथापि, पत्र में की गई ऐसी सभी शुद्धियां मंत्री द्वारा अधिप्रमाणित की जानी चाहिए अथवा सभा पटल पर अन्तिम रूप से रखे गए पत्र की एक अधिप्रमाणित प्रति पत्र को सभा पटल पर रखने से पहले या उसके तुरन्त बाद सचिवालय को भेजी जानी चाहिये।

किसी अधिनियम के अन्तर्गत जारी की गई उन सभी अधिसूचनाओं को, जिनमें उनके सभा पटल पर रखे जाने के लिए उपबंध हो, सभा पटल पर रखा जाना चाहिए। जिस अधिसूचना में संशोधन किया जाना है, उसे सभा के समक्ष रखने से केवल इस आधार पर नहीं रोका जाना चाहिये कि इसमें संशोधन किया जाना है और उसे संशोधित रूप में सभा पटल पर रखा जायेगा।

सभा पटल पर रखे गए पत्रों का वापस लिया जाना

सभा पटल पर रखे गये किसी पत्र या दस्तावेज को वापस लेने के लिए अभी तक कोई औपचारिक प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है। जब कोई ऐसा मामला उठेगा, तो अध्यक्ष को

---

128. 12वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-पांचवीं लोक सभा) और 21वां प्रतिवेदन (अधीनस्थ विधान संबंधी समिति-छठी लोक सभा) ।

129. खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग की रिपोर्ट (1960-61) का एक परिशिष्ट, 11 दिसम्बर, 1962 को सभा पटल पर रखा गया।

130. *लो.स.वा.वि.*, 27.2.1964, पृ. 1071-72 ।

अपनी निहित शक्तियों का प्रयोग करना पड़ेगा और प्रत्येक मामले की परिस्थिति के अनुसार अपना निर्णय देना पड़ेगा।

सभा पटल पर पत्र रखने के परिणाम

जब कोई पत्र सभा पटल पर रखा जाता है तो वह सार्वजनिक बन जाता है[131] और सभा के स्थायी अभिलेख का अंग बन जाता है। उस पत्र को पुस्तकालय में रखा जाता है तथा संदर्भ की सुविधा के लिए मुद्रित वाद-विवाद में पत्र का शीर्षक तथा पुस्तकालय की विषय-सूची संख्या दी जाती है। यह विशेषाधिकार नियमों के अन्तर्गत आ जाता है और तद्नुसार ऐसे पत्र या दस्तावेज के प्रकाशन के संबंध में किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, सभा पटल पर रखे गये किसी पत्र या दस्तावेज पर सभा में चर्चा की जा सकती है, कोई भी सदस्य उस पर चर्चा कराने के उद्देश्य से प्रस्ताव की सूचना दे सकता है।[132]

अध्यक्ष सभा पटल पर रखे गये किसी पत्र, दस्तावेज या रिपोर्ट के मुद्रण, प्रकाशन, वितरण या विक्रय को प्राधिकृत कर सकता है।[133] सामान्यत: सभा पटल पर रखे गए पत्रों को ग्रंथालय में रखा जाता है और वाद-विवाद में उसका समुचित संकेत दिया जाता है।[134] किसी पत्र को वाद-विवाद के अंदर केवल तभी मुद्रित किया जाता है जब इसमें ऐसी संक्षिप्त तथा महत्वपूर्ण सामग्री दी गई है जो मुद्रित रूप में अन्यथा उपलब्ध नहीं है।

जब किसी दस्तावेज या पत्र के बारे में सरकार उस संरक्षण की आवश्यकता महसूस करती है जो सभा के प्राधिकार के अंतर्गत प्रकाशित किसी प्रकाशन को प्रदान किया जाता है।[135] तो उस दस्तावेज या पत्र को सभा पटल पर रखा जाता है और सभा के प्राधिकार के अन्तर्गत उसे प्रकाशित करने के लिए सभा में एक प्रस्ताव पेश किया जाता है। तथापि, ऐसे प्रस्ताव के पेश किये जाने की स्थिति में सभा यह निर्णय ले सकती है कि क्या उसे सभा के प्राधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित किया जाना चाहिये या नहीं।

> ग्रामीण बैंककारी जांच समिति ने सरकार को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय ये आशंकाएं व्यक्त की थीं कि यदि इसमें दी गई सिफारिशों को प्रकाशित किया जाता है तो इससे कतिपय बैंकों के भविष्य पर दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है जिससे उनके लिए कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं और समिति के सदस्यों, जिन्हें इस प्रकार के प्रकाशन के फलस्वरूप होने वाले कानूनी परिणामों से कोई कानूनी छूट प्राप्त नहीं है, के लिए परेशानी की स्थिति पैदा हो सकती है। तद्नुसार, सरकार

---

131. नियम 369 ।
132. नियम 185 ।
133. नियम 382 (1) ।
134. संकेत इस प्रकार है '[ग्रंथालय में रखा गया, *देखिये* संख्या *एल.टी....*]'
135. अनुच्छेद 105 (2) ।

ने उस प्रतिवेदन को सभा के प्राधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित करने का प्रस्ताव किया। प्रतिवेदन की प्रति सभा पटल पर रखने के बाद वित्त मंत्री ने सभा में आवश्यक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसे सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।[136] उसके बाद सरकार द्वारा वह प्रतिवेदन प्रकाशित किया गया जिसके बाहरी आवरण पृष्ठ पर निम्नलिखित शब्द मुद्रित किये गये:—

"संसद के प्राधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित।"

इसी प्रकार, उप वित्त मंत्री ने औद्योगिक वित्त निगम जांच समिति के प्रतिवेदन की एक प्रति सभा पटल पर रखी और संविधान के अनुच्छेद 105 के खण्ड (2) के अधीन सभा के प्राधिकार के अन्तर्गत उसके प्रकाशन के लिए सभा में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। प्रस्ताव स्वीकार किया गया।[137]

पत्रों की अभिरक्षा

संसदीय पत्रों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है एक तो वे पत्र हैं जिनका संबंध सभा की कार्यवाही से है और जो सचिवालय द्वारा जारी किये जाते हैं और दूसरे वे जो बाहर से पेश किये जाते हैं। लोक सभा को यह शक्ति प्राप्त है कि वह सभी दस्तावेजों को अपने सामने या अपनी समितियों के सामने पेश करने का आदेश दे सकती है, जिन्हें वह अपनी जानकारी के लिए आवश्यक समझे। सभा या उसकी किसी समिति अथवा सचिवालय के सभी अभिलेख, दस्तावेज और पत्र महासचिव की अभिरक्षा में रहते हैं। कोई भी ऐसा अभिलेख, दस्तावेज या पत्र अध्यक्ष की अनुमति के बिना संसद भवन के बाहर नहीं ले जाया जा सकता।[138]

जब कोई दस्तावेज सभा में पेश किया जाता है या उसकी किसी समिति या सचिवालय को दिया जाता है तो वह सभा के अभिलेख का अंग बन जाता है।

जब विधि मंत्रालय के सचिव ने भारतीय वित्त विधेयक, 1948 संबंधी प्रवर समिति की मूल रिपोर्ट तथा समिति द्वारा संशोधित विधेयक की प्रति मांगी तो उन्हें बताया गया कि सभा को पेश किया गया दस्तावेज संसदीय पत्रों का अंग बन जाता है और यह कि अध्यक्ष के आदेश के अन्तर्गत ऐसे दस्तावेज सचिव की अभिरक्षा में रहते हैं और ऐसे दस्तावेजों को पहले से समय लेकर सचिव के कमरे में देखा जा सकता है।

दूसरी लोक सभा के पांचवें सत्र में एक सदस्य ने केरल की स्थिति पर चर्चा उठाने के लिए अपने प्रस्तावों की सूचना (नियम 184 के अन्तर्गत) के संबंध में कुछ दस्तावेज अध्यक्ष को भेजे। बाद में सदस्य ने वे पत्र वापस करने का अनुरोध

---

136. *पी. डिबेट्स* (II), 11.8.1950, कॉ. 810-12 ।

137. *पूर्वोक्त*, 23.12.1953, कॉ. 2947-48 ।

138. नियम 383 ।

किया। अध्यक्ष के आदेशानुसार कुछ पत्रों की प्रतियां (मूल पत्र नहीं) सदस्य को दी गयीं, क्योंकि मूलपत्र सभा के अभिलेख का अंग बन गये थे।

यदि सभा या उसकी किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित किसी दस्तावेज जो महासचिव की अभिरक्षा में हो, किसी न्यायालय में पेश करने की आवश्यकता पड़े, तो वह केवल सभा की अनुमति से ही दिया जा सकता है।[139] जब सभा का सत्र न चल रहा हो, तो किसी अविलम्बनीय मामले में अध्यक्ष उस दस्तावेज को न्यायालय में पेश किये जाने की अनुमति दे सकता है, ताकि न्याय प्रशासन में विलम्ब न हो और तद्नुसार जब सभा पुन: समवेत हो तो, वह सभा को इस बात की सूचना दे सकता है या संसदीय समाचार के माध्यम से सदस्यों को इस बात की जानकारी दे सकता है।[140]

जब किसी पत्र को पेश किये जाने का अनुरोध उस समय किया जाये, जब सभा का सत्र चल रहा हो, तो अध्यक्ष यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप देता है, चाहे उस दस्तावेज का संबंध सभा या उसकी किसी समिति की कार्यवाही से हो या वह ऐसा दस्तावेज हो जो महासचिव की अभिरक्षा में हो। समिति की रिपोर्ट आने पर समिति का सभापति या समिति का कोई सदस्य सभा में इस आशय का प्रस्ताव पेश करता है कि सभा समिति की रिपोर्ट से सहमत है। उसके बाद सभा की राय जानी जाती है और सभा के निर्णय के अनुसार अगली कार्यवाही की जाती है,[141] अथवा सभा विशेषाधिकार समिति को मामला सौंपे बिना सीधे निर्णय ले सकती है।[142]

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 78 (2) के अन्तर्गत सभा की कार्यवाही को अधिकृत संसदीय प्रकाशन पेश करके प्रमाणित किया जा सकता है। अत: लोक सभा को केवल तभी कार्यवाही करनी पड़ती है जब किसी न्यायालय में उसकी कार्यवाही के अप्रकाशित दस्तावेज साक्ष्य के रूप में पेश करना आवश्यक हो। अधिकतर अन्य मामलों में

---

139. पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) *लो.स.वा.वि.*, 13.9.1957, पृ. 6245-46 ।

यह सभा को निर्णय करना होता है कि दस्तावेज कब भेजे जाएं तथा किस प्रारूप में भेजे जाएं। *लो.स.वा.वि.,* 25.8.1958 कॉ. 11484-97 ।

140. *समाचार-भाग* 2, 28.10.1957, पैरा 665 ।

141. दूसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) और *लो.स.वा.वि.*, 25.4.1958 पृ. 5433-37; दसवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) और *लो.स.वा.वि,* 7.9.1959 पृ. 3420-21; दूसरा प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-तीसरी लोक सभा) और *लो.स.वा. वि.*, 10.9.1965; उन्नीसवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-चौथी लोक सभा) और *लो.स.वा. वि.*, 26.11.1969, पृ. 130; अठारहवां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-पांचवी लोक सभा) और *लो.स.वा.वि.*, 20.8.1976, पृ. 63 ।

142. *एल.एस. डिबेट्स,* 7.5.1965 कॉ. 13924-26 ।

कम से कम पहली बार तो सामान्यत: किसी भी कीमत पर दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां ही मांगी जाती हैं। जब कोई पक्ष पक्के प्रमाण प्रस्तुत करने का आग्रह करे तभी बाद में मूल दस्तावेज मंगाये जा सकते हैं।[143]

जब कार्यपालिका से संबंधित अधिकारी, उदाहरणार्थ पुलिस, आयकर आयुक्त आदि किसी सदस्य के संबंध में कोई जानकारी सचिवालय की अभिरक्षा में रखे गये अभिलेखों से मांगते हैं, तो उनके अनुरोध को सीधे स्वीकार नहीं किया जाता है।

जब ऐसी जानकारी कार्यपालिका के प्राधिकारियों को किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध फौजदारी मामले की जांच के संबंध में आवश्यक हो, जहां किसी सदस्य को क्षति पहुंची हो, तो निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार सभा की स्वीकृति प्राप्त करने के बाद उस जानकारी से संबंधित पत्र उन्हें दिये जा सकते हैं।

जब ऐसे दस्तावेज को जो किसी प्रशासनिक मामले के संबंध में न्यायालय में पेश किया जाना था और जो सभा की कार्यवाही से संबंधित नहीं था, उदाहरणार्थ लोक सभा सचिवालय के किसी अधिकारी का सेवा रिकार्ड या संसद भवन के केजुअल एन्ट्री परमिट रजिस्टर में दर्ज प्रविष्टि, तो अध्यक्ष ने मामले को सभा के समक्ष लाये बिना संबंधित दस्तावेज को न्यायालय में प्रस्तुत करने या उसकी प्रमाणीकृत प्रति देने की अनुमति दे दी।

चौदहवीं लोक सभा के दौरान दिसंबर, 2004 में केंद्रीय जांच ब्यूरो के पुलिस अधीक्षक ने अनुरोध किया कि किसी आपराधिक मामले में जांच के लिए एक पूर्व सदस्य के 'स्वीकृत हस्ताक्षर' वाले मूल दस्तावेज उपलब्ध कराये जायें। 19 जुलाई, 2005 को अध्यक्ष ने मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। अपने प्रथम प्रतिवेदन में समिति ने सिफारिश की कि लोक सभा सचिवालय के पास उपलब्ध पूर्व सदस्य के हस्ताक्षरयुक्त नामांकन प्रपत्र तथा घोषणा प्रपत्र की मूल प्रतियां सभा की अनुमति से केंन्द्रीय जांच ब्यूरो के पुलिस अधीक्षक को उपलब्ध कराई जायें। समिति ने यह भी सिफारिश की कि केंद्रीय जांच ब्यूरो के मामले की जांच से संबंधित उप-अधीक्षक, लोक सभा सचिवालय से व्यक्तिगत रूप से नये दस्तावेज प्राप्त करें तथा हस्ताक्षरों का वांछित मिलान किये जाने के तुरंत बाद इन्हें लोक सभा सचिवालय को लौटा दें। प्रतिवेदन 25 अगस्त, 2005 को सभा पटल पर रखा गया तथा इसे 29 अगस्त, 2005 को सभा द्वारा स्वीकृत किया गया।

---

143. यह प्रक्रिया विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन, पहला प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा) में अन्तर्विष्ट सिफारिशों और उन पर लोक सभा में हुई चर्चा के अनुसरण में बनायी गयी है—

लो.स.वा.वि, 13.9.1957, पृ. 6245-46, भारत सरकार ने राज्य सरकारों से अपने-अपने उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों से सभा की कार्यवाही आदि से संबंधित दस्तावेजों को न्यायालय में पेश किये जाने हेतु समुचित निदेश जारी किए जाने के लिए विचार-विमर्श करने का अनुरोध किया।

चौदहवीं लोक सभा के दौरान एक अन्य मामले में, दिल्ली पुलिस ने एक आपराधिक मामले की जांच के संबंध में पाँच लोक सभा सदस्यों के कतिपय दस्तावेजों की मूल प्रतियां उपलब्ध कराये जाने का अनुरोध किया। अध्यक्ष ने यह मामला 1 जनवरी, 2008 को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। अपने दसवें प्रतिवेदन में समिति ने सिफारिश की कि दिल्ली पुलिस द्वारा तैनात किये गये संबंधित न्यायिक तथा हस्तलेख विशेषज्ञों को लोक सभा के पाँच सदस्यों के वर्ष 2000 से उनके विदेश दौरों के संबंध में उनके खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता तथा भारतीय पारपत्र अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत उनके खिलाफ दायर प्रथम सूचना रिपोर्ट की जांच के लिए उनके द्वारा प्रस्तुत मूल दस्तावेजों (पत्र, आवेदन पत्र, अनुमति आदि) की मूल प्रतियों के फोटोग्राफ लेने हेतु अनुमति दी जाए। समिति ने यह भी सिफारिश की कि फोटोग्राफ पुलिस उप-अधीक्षक, अपराध तथा रेलवे, दिल्ली अथवा इस उद्देश्य हेतु तैनात किसी अन्य पुलिस अधिकारियों तथा लोक सभा सचिवालय के संबद्ध अधिकारियों की उपस्थिति में लोक सभा सचिवालय परिसर के भीतर ही लिये जायें। प्रतिवेदन 27 फरवरी, 2008 को सभा पटल पर रखा गया तथा इसे 28 फरवरी, 2008 को सभा द्वारा स्वीकृत किया गया।

चौदहवीं लोक सभा के दौरान विशेषाधिकार समिति ने अपने बारहवें प्रतिवेदन[144], में सभा, उसकी समितियों की कार्यवाही से संबंधित या महासचिव, लोक सभा की अभिरक्षा में रखे गए दस्तावेजों को न्यायालयों में पेश करने और जांच प्रयोजनों हेतु न्यायालयों और जांच एजेंसियों से प्राप्त अनुरोध पर विचार करने के लिए अपनाई जा रही प्रक्रिया पर पुनः विचार करने का निर्णय लिया और तदनुसार सिफारिश की। समिति ने यह भी सिफारिश की कि (1) कोई दस्तावेज सभा या उसकी किसी समिति से संबंधित है अथवा नहीं इस बात का निर्णय अध्यक्ष द्वारा किया जाएगा और इस संबंध में अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा, (2) सभा या उसकी किसी समिति की कार्यवाही से संबंधित दस्तावेजों, जो सार्वजनिक दस्तावेज हों, का न्यायिक संज्ञान लिया जाना चाहिए और उनकी प्रमाणित प्रतियों के लिए सामान्यतः अनुरोध नहीं किया जाना चाहिए। जब तक कि ऐसे अनुरोध हेतु पर्याप्त कारण न हों। (3) विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत और सभा पटल पर रखे जाने के बाद की प्रक्रिया ।

पंद्रहवीं लोक सभा के दौरान, दिल्ली पुलिस ने अध्यक्ष, लोक सभा से न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल करने के उद्देश्य से "विश्वास प्रस्ताव पर मतदान के संबंध में धनराशि की कथित पेशकश के बारे में कुछ सदस्यों द्वारा की गई शिकायत की जांच संबंधी समिति" के प्रतिवेदन से संबंधित मूल दस्तावेज प्राप्त करने हेतु अनुमति मांगी थी। अध्यक्ष ने विशेषाधिकार समिति, (चौदहवीं लोक सभा) के दसवें और बारहवें प्रतिवेदनों में की गई सिफारिशों के आधार पर दिल्ली पुलिस को मूल दस्तावेज न देकर आरोप पत्र दाखित करने हेतु अपेक्षित दस्तावेजों के फोटोग्राफ उपलब्ध कराने की अनुमति प्रदान की थी।

---

144. यह प्रतिवेदन 30 अप्रैल, 2008 को सभा पटल पर रखा गया। और 23 अक्तूबर, 2008 को सभा द्वारा स्वीकृत किया गया।

सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति

संसद के सत्र के दौरान बहुत से पत्र प्रतिदिन सभा पटल पर रखे जाते हैं। इन पत्रों की संख्या तथा विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए सभा स्वयं इन सभी पत्रों की सूक्ष्मता से जांच करने तथा उनके महत्व और अभिप्राय को जानने की स्थिति में नहीं होती है। चूंकि इन पत्रों का पूर्व परिचालन नहीं किया जाता है अत: सदस्य भी उन्हें सभा पटल पर रखते समय आपत्तियां, यदि कोई हों उठाने की स्थिति में नहीं होते। पत्रों को सभा पटल पर रखने में हुए असाधारण विलम्ब के मामलों में ही यदा कदा सभा में कुछ आपत्तियां उठाई गईं और संबंधित मंत्री से विलम्ब के कारण बताने के लिए कहा गया। ऐसी आपत्तियों का पूर्वानुमान करते हुए यह प्रथा बन गई कि जहां पर विलम्ब हुआ हो वहीं संबंधित मंत्री उन पत्रों के साथ एक व्याख्यात्मक टिप्पण या ज्ञापन साथ लगाए। बाद में यह पता चला कि मंत्री द्वारा विलम्ब के लिए दिया गया व्याख्यात्मक ज्ञापन भी अपर्याप्त और प्राय: असंतोषजनक है। कभी-कभी किसी मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखे गये पत्रों पर असंवैधानिकता या अनौचित्य के आधार पर आपत्ति उठाई गई। वस्तुत: सम्पूर्ण सभा को इन सभी मामलों पर विचार करने के लिए समय नहीं होता है। इन कारणों से सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति गठित करने की आवश्यकता महसूस हुई और 1 जून, 1975 को यह समिति गठित कर दी गई। समिति के कृत्य मंत्रियों द्वारा सभा पटल पर रखे गये सभी पत्रों की जांच करना और सभा को यह रिपोर्ट देना कि— (क) क्या संविधान के उपबंधों, अधिनियम, नियम या विनियम जिनके अन्तर्गत पत्र सभा पटल पर रखा गया है, का पालन किया गया है; (ख) क्या पत्र को सभा पटल पर रखने में अनावश्यक विलम्ब हुआ है; (ग) क्या विलम्ब के मामले में विलम्ब के कारण बताने वाला विवरण सभा पटल पर रखा गया है और क्या ये कारण संतोषजनक हैं; (घ) क्या हिन्दी और अंग्रेजी दोनों संस्करणों को सभा पटल पर रखा गया है, और (ङ) क्या हिन्दी संस्करण को सभा पटल पर न रखने का कारण बताने वाला कोई विवरण दिया गया है और क्या ऐसे कारण संतोषजनक हैं।[145]

---

145. नियम 305क, 305ख और 305ग; साथ ही *देखिए* अध्याय 30-संसदीय समितियां।

अध्याय 36

लोक सभा में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं

सभा में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं

सभा का कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में करना होता है। तथापि अध्यक्ष, किसी सदस्य को, जो इन दोनों में से किसी भी भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सभा को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।[1]

> 1862 में विधान परिषद में इस आशय का एक विशिष्ट उपबंध किया गया था कि कोई भी सदस्य किसी अन्य ऐसे सदस्य की प्रार्थना पर उसकी ओर से बोल सकता है जो कि अंग्रेजी में अपने विचारों को व्यक्त नहीं कर सकता। 1921 में यह उपबंध किया गया कि केन्द्रीय विधान सभा का कार्य अंग्रेजी में किया जायेगा, परन्तु अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी ऐसे सदस्य को किसी भारतीय भाषा में भाषण देने की अनुज्ञा दे सकेगा जो अंग्रेजी से अनभिज्ञ हो।
>
> अंग्रेजी के अतिरिक्त जब किसी अन्य भाषा में भाषण दिए जाते थे, तो ऐसे भाषणों के अंग्रेजी अनुवाद को ही वाद-विवाद में छापा जाता था। कुछ मामलों में जब हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त किसी अन्य भारतीय भाषा का प्रयोग किया जाता था तब वाद-विवाद में केवल इतना लिखा जाता था कि सदस्य ने अग्रेंजी के अतिरिक्त किस भाषा विशेष में भाषण दिया और उसके भाषण का अंग्रेजी अनुवाद वाद-विवाद के बाद के किसी अंक में परिशिष्ट के रूप में छापा जायेगा।[2]
>
> परन्तु हिन्दुस्तानी में दिए गए भाषण इस नियम का अपवाद थे। ऐसे भाषणों के अंग्रेजी अनुवाद वाद-विवाद में छापे जाते थे और हिन्दुस्तानी में भाषणों का पाठ वाद-विवाद के परिशिष्ट के रूप में छापा जाता था।[3] कुछ मामलों में वाद-विवाद में केवल यह उल्लेख कर दिया जाता था कि सदस्य ने हिन्दुस्तानी में भाषण दिया और सदस्य के हिन्दुस्तानी में दिए गए भाषण का पाठ तथा उसका अंग्रेजी अनुवाद वाद-विवाद के बाद के किसी अंक में परिशिष्ट के रूप में छापा जायेगा।[4]

यद्यपि अध्यक्ष के निदेशों के अन्तर्गत जब कोई सदस्य हिन्दी अथवा अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य अनुसूचित भाषा[5] में भाषण देता है तो उसे अपने भाषण का हिन्दी अथवा अंग्रेजी

---

1. अनुच्छेद 120, एक सदस्य को सभा में नेपाली में भाषण देने की अनुमति दी गई–*लो.स.वा.वि*, 29.6.1971 ।
2. *एल.ए. डिबेट्स,* 17.1.1931, पृ. 42 और परिशिष्ट, पृ. 2701–03 ।
3. *पूर्वोक्त,* 7.9.1922, पृ. 203–05 और परिशिष्ट पृ. 1–4 ।
4. *पूर्वोक्त,* 1.2.1922, पृ. 2087, 25.3.1922, पृ. 3716 ।
5. संविधान की आठवीं अनुसूची।

अनुवाद पहले उपलब्ध कराना होता है।[6] परन्तु यदि वह हिन्दी अथवा अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध नहीं कराता है लेकिन सचिवालय को पहले सूचित कर किसी क्षेत्रीय भाषा में भाषण देता है तो इस बारे में यह सामान्य प्रथा अपनाई जाती है कि उसके भाषण का साथ-साथ हिन्दी तथा अंग्रेजी में भाषांतर किया जाता है और सचिवालय द्वारा तैयार किए गए अंग्रेजी और हिन्दी अनुवाद को वाद-विवाद में छापा जाता है और पाद टिप्पण में यह बताया जाता है कि सभा में मूलत: किस भाषा में भाषण दिया गया।[7] किन्तु यदि सदस्य ऐसी भाषा में भाषण देता है जिसके भाषांतर की कोई व्यवस्था नहीं है और सदस्य अनुवाद भी उपलब्ध नहीं कराता है तो इस तथ्य का कि सदस्य ने हिन्दी अथवा अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में भाषण दिया है, इस टिप्पणी के साथ वाद-विवाद में उल्लेख कर दिया जाता है कि सदस्य ने हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अपने भाषण का अनुवाद उपलब्ध नहीं कराया।[8] यदि सदस्य ऐसी भाषा में भाषण देता है जिसके साथ-साथ भाषांतर की व्यवस्था विद्यमान है तो भाषण के अनुदित पाठ को कार्यवाही में शामिल किया जाता है।

> 3 अप्रैल, 1967 को अध्यक्ष ने सभा में विभिन्न समूहों के नेताओं के साथ एक बैठक में उन सदस्यों द्वारा, जो अपनी बात हिंदी अथवा अंग्रेजी में अच्छी तरह से नहीं रख सकते, क्षेत्रीय भाषाओं में भाषण दिए जाने के प्रश्न पर विचार किया। यह निर्णय किया गया कि सदस्य अपने भाषण का हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद पहले उपलब्ध कराए बिना किसी भी अनुसूचित भाषा में भाषण दे सकते हैं।[9]
>
> यह भी निर्णय किया गया है कि अनुसूचित भाषाओं में साथ-साथ भाषांतर की व्यवस्था होने तक यह सुविधा प्रश्न काल के दौरान नहीं मिलेगी क्योंकि इसके लिए सीमित समय निर्धारित किया गया है और सरकार से अधिकतम जानकारी प्राप्त करने के लिए अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर तुरंत मांगे जाते हैं।

उर्दू में दिए गए भाषण सामान्यत: देवनागरी लिपि में छापे जाते हैं सिवाय उन सदस्यों के भाषणों के जिन्होंने विशिष्ट रूप से यह प्रार्थना की हो कि उनके भाषण फारसी लिपि में छापे जायें। ऐसे मामलों में भाषण देवनागरी लिपि में छापे जाते हैं और उसके बाद कोष्ठकों में

---

6. निदेश 115ख।
7. 30 मार्च, 1967 से पहले जो सदस्य हिन्दी या अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी भाषा में भाषण देता था उसे अपने भाषण का हिन्दी या अंग्रेजी अनुवाद सचिवालय को पहले से देना पड़ता था और सदस्य द्वारा विधिवत् प्रमाणीकृत ऐसा ही अनुवाद वाद-विवाद में छापा जाता था। उसके साथ एक पाद टिप्पणी में यह बताया जाता था कि मूल भाषण किस भाषा में दिया गया-*देखिए एच.पी. डिबेट्स* (II), 19.3.1953, कॉ. 2398-2402; *एल.एस. डिबेट्स* (II), 20.12.1955, कॉ. 3401-07, 3408-09; *लो.स.वा.वि.*, 14.8.1957, पृ. 3884-3925; 27.3.1958, पृ. 3358-59 ।
8. निदेश 115 ख(2), परन्तुक।
9. परीक्षण के रूप में अध्यक्ष ने कतिपय सदस्यों को अपने भाषणों का हिन्दी अथवा अंग्रेजी अनुवाद पहले उपलब्ध कराए बिना किसी अनुसूचित भाषा में भाषण देने की अनुमति दी-*एल.एस. डिबेट्स*, 30.3.1967, कॉ. 1918-19 ।

फारसी लिपि में छापे जाते हैं।[10]

अंग्रेजी में छपे कुछ संसदीय पत्रों में मंत्रियों के पदनाम और मंत्रालयों/विभागों के नाम पहले अंग्रेजी में और फिर हिंदी में देवनागरी लिपि में दिए जाते हैं।

> अप्रैल, 1971 तक अंग्रेजी में छपे संसदीय पत्रों में मंत्रियों के पदनाम और मंत्रालयों/विभागों के नाम अंग्रेजी में दिए जाते थे। मई 1971 में इस व्यवहार में परिवर्तन किया गया और ऐसे पदनाम तथा नाम रोमन वर्णमाला में हिन्दी में दिए जाने लगे। उसके बाद पदनाम तथा नाम अंग्रेजी में और उसके बाद कोष्ठकों में रोमन वर्णमाला में हिन्दी में देने की पद्धति इस संबंध में अपनाई गई। अन्ततोगत्वा यह निश्चय किया गया कि प्रश्न सूचियों में मंत्रियों के पदनाम तथा मंत्रालयों/विभागों के नाम पहले अंग्रेजी में और फिर देवनागरी लिपि में हिन्दी में दिये जायें। तथापि, अन्य पत्रों में पदनाम और नाम केवल अंग्रेजी में ही दिए जाने थे।[11]

संसदीय समितियों में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं

सभा की तरह संसदीय समितियों का कार्य भी हिन्दी या अंग्रेजी में किया जाता है। संसदीय समिति में यदि कोई सदस्य हिन्दी या अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में भाषण

---

10. *एल.एस. डिबेट्स*, 16.2.1959, कॉ. 1239-61; 4.3.1959, कॉ. 4270-76; 26.3.1959, कॉ. 8005-25। अक्तूबर, 1958 से पहले सदस्यों के हिन्दुस्तानी में दिए गए भाषण देवनागरी लिपि में छापे जाते थे किन्तु जिन सदस्यों ने यह लिखकर दिया हो कि उनके भाषणों का फारसी लिपि में लिप्यंतरण किया जाये उनके मामले में उनके भाषण वाद-विवाद में फारसी लिपि में छापे जाते थे। उसके तुरंत बाद उसका अंग्रेजी अनुवाद छापा जाता था—देखिए एच.पी. डिबेट्स (II), 22. 9.1954, कॉ. 2794-2800; लो.स.वा.वि. (II), 16.5.1957, पृ. 309-12 ।

11. मई, 1971 में मंत्रिमंडल सचिवालय से प्राप्त निम्नलिखित दो दस्तावेज सदस्यों को परिचालित किए गए—(i) 2 मई, 1971 को मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की सूची जिसमें मंत्रियों के पदनाम तथा मंत्रालयों के नाम रोमन वर्णमाला में केवल हिन्दी में दिए हुए थे; और

    (ii) दिनांक 3 मई, 1971 की अधिसूचना, जिसमें भारत सरकार (कार्य का नियतन) 88वें संशोधन नियम, 1971, दिए गए थे। (इन नियमों में अन्य बातों के साथ-साथ रोमन लिपि में केवल हिन्दी में मंत्रालयों तथा विभागों के नाम दिए गए थे।)

    सभा में आपत्ति उठाए जाने पर अध्यक्ष, संसदीय कार्य मंत्री तथा कार्यमंत्रणा समिति के सदस्यों के बीच विचार-विमर्श हुआ। 1 जून, 1971 को संसदीय कार्य मंत्री ने सभा में एक वक्तव्य दिया कि मंत्रियों के पदनाम और मंत्रालयों इत्यादि के नाम अंग्रेजी में दिए जाएं और उसके बाद उनके हिन्दी समतुल्य देवनागरी लिपि में दिए जायें। एक सदस्य द्वारा पूछे जाने पर अध्यक्ष तथा संसदीय कार्यमंत्री ने इस बात की पुष्टि की कि वह केवल संसदीय कार्य के संबंध में ही लागू होगा। प्रश्नों की सूचियों में मंत्रियों के पदनाम और मंत्रालयों के नाम तदनुसार 2 जून, 1971 से दर्शाये जा रहे हैं। हालांकि, अन्य पत्रों तथा पत्राचार में उक्त पदनाम तथा नाम केवल अंग्रेजी में दिये जाते हैं। *लो.स.वा.वि.*, 1.6.1971, पृ. 99-100 ।

देता है, तो उसके भाषण का हिंदी या अंग्रेजी अनुवाद तैयार किया जाता है, जिससे कि उसे रिकॉर्ड के रूप में रखा जा सके और आवश्यकता पड़ने पर रिपोर्ट तैयार करने में उसका उपयोग किया जा सके। संसदीय समितियों के कार्यवाही-सारांश तथा उनके प्रतिवेदन हमेशा हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में तैयार किए जाते हैं और सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं।

कार्यवाही का साथ-साथ भाषांतरण

लोक सभा में सदस्य सामान्यतः हिन्दी या अंग्रेजी में भाषण देते हैं। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, चौथी लोक सभा के पहले सत्र से सदस्यों को किसी भी अनुसूचित भाषा में भी भाषण देने की अनुमति दी गई। तदनुसार, उनके भाषणों का हिन्दी तथा अंग्रेजी में साथ-साथ भाषांतरण करने की व्यवस्था करने के प्रश्न पर विचार किया गया।[12]

> तीसरी लोक सभा में भी जो सदस्य हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं से परिचित नहीं थे उन्हें सभा की कार्यवाही समझने में कठिनाई हो रही थी। अतः सदस्यों ने उत्तरोत्तर यह महसूस किया कि सभा की कार्यवाही का हिन्दी से अंग्रेजी और अंग्रेजी से हिन्दी में साथ-साथ भाषांतरण करने की समुचित व्यवस्था की जाये, जिससे वे कार्यवाही को ठीक-ठीक समझ सकें। इस मांग को पूरा करने के लिए कार्यवाही के साथ-साथ भाषांतरण की व्यवस्था तीसरी लोक सभा के नौवें सत्र के प्रारंभ से 7 सितम्बर, 1964 को शुरू की गई।[13]

साथ-साथ भाषांतरण की व्यवस्था अब 14 अनुसूचित भाषाओं अर्थात् असमिया, बंगला, कन्नड़, मलयालम, मैथिली, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु और उर्दू में कर दी गई है। इनमें से किसी भी भाषा में भाषण देने के इच्छुक सदस्य को सभा पटल के अधिकारी को कम से कम आधे घंटे पूर्व सूचना देना आवश्यक है ताकि जब संबंधित सदस्य अपना भाषण दें तो भाषांतरकार इसके लिए तैयार रहें। उसके भाषण का हिन्दी और अंग्रेजी में साथ-साथ भाषांतरण किया जाता है। बाद में सम्बद्ध भाषांतरकार द्वारा भाषण का अंग्रेजी अथवा हिन्दी में अनुवाद किया जाता है ताकि उसे उस दिन के कार्यवाही-वृत्तान्त में अथवा उससे अगले दिन के अनुपूरक अंक में शामिल किया जा सके। यह सुविधा अब प्रश्नकाल में भी उपलब्ध है और यह केवल उन सदस्यों को ही उपलब्ध नहीं होती है जिनका नाम तारांकित प्रश्नों की सूची में होता है बल्कि किसी अन्य सदस्य को भी उपलब्ध होती है।

---

12. 3 अप्रैल, 1967 को लोक सभा में विभिन्न समूहों के नेताओं के साथ हुई एक बैठक में अध्यक्ष ने उन्हें बताया कि अनुसूचित भाषाओं के साथ-साथ भाषांतरण की व्यवस्था करने में कुछ तकनीकी कठिनाइयां हैं। यह निर्णय लिया गया कि सभा में किसी भी अनुसूचित भाषा में दिए गए भाषण का हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनुवाद करने की चेष्टा की जायेगी।

13. 2 दिसम्बर, 1963 को अध्यक्ष ने सदन के नेता और विभिन्न समूहों के नेताओं से बातचीत करने के बाद सभा में घोषणा की कि जल्दी ही सभा में भाषणों के साथ-साथ भाषांतरण की व्यवस्था शुरू की जाएगी। तीसरी लोक सभा के आठवें सत्र की बाद की अन्तर्सत्रावधि में आवश्यक उपकरण लगाये गये और साथ ही भाषांतर करने वाले कर्मचाारियों को प्रशिक्षण भी दिया गया।

सदस्य को इस संबंध में अग्रिम सूचना, प्रश्न काल शुरू होने से कम से कम आधा घंटा पूर्व देनी होती है। मंत्रिगण अग्रिम सूचना देकर अथवा अध्यक्षपीठ द्वारा अनुमति दिए जाने पर उस भाषा में भी उत्तर दे सकते हैं जिसमें वे देना चाहें।[14]

साथ-साथ भाषांतरण करने के उपकरण लोक सभा कक्ष, केन्द्रीय कक्ष, संसद भवन के कमरा संख्या 53, 62 और 63, संसदीय सौध में समिति कक्षों समिति कक्ष एफ (जी. 74, के. ब्लॉक) और संसदीय ज्ञानपीठ में बी.पी.एस.टी. में मुख्य व्याख्यान कक्ष में लगाए गए हैं। यदि भाषण हिन्दी में दिया जा रहा है तो इसका साथ-साथ भाषांतरण अंग्रेजी में और यदि भाषण अंग्रेजी में दिया जा रहा है तो इसका साथ-साथ भाषांतरण हिन्दी में सुना जा सकता है। यदि मूल भाषण उपर्युक्त किसी अनुसूचित भाषा में दिया जाता है तो उसका भाषांतरण हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी में भी सुना जा सकता है। प्रत्येक सीट पर एक हैडफोन और भाषा-चयन का स्विच लगा होता है। भाषा चयन की घुंडी घुमाकर सदस्य अपनी इच्छित भाषा में कार्यवाही सुन सकता है। ध्वनि को नियंत्रित करने के लिए भाषा चयन स्विच पैनल के साथ एक दूसरी घुंडी भी लगी होती है।

---

14. अध्यक्षपीठ ने एक सदस्य को कन्नड़ भाषा में अनुपूरक प्रश्न पूछने की अनुज्ञा दी, यद्यपि तारांकित प्रश्न उनके नाम पर नहीं था, और मंत्री ने भी उत्तर उसी भाषा मे दिया—*एल.एस. डिबेट्स*– 29.7.2005, कॉ. 17. ।

अध्याय 37

सभा, संसदीय समितियों और संसदीय समारोहों की कार्यवाहियों का अधिकृत वृत्तांत तैयार करना

महासचिव सभा की प्रत्येक बैठक की कार्यवाही का पूरा वृत्तांत तैयार करवाता है और उसे यथाशीघ्र ऐसे रूप में तथा ऐसे ढंग से प्रकाशित करवाता है जैसा कि अध्यक्ष समय-समय पर निदेश दे।[1]

वाद-विवाद शब्दश: छपवाने और उसे किसी दिन की बैठक की कार्यवाही के पश्चात् उस दिन से लगभग एक या दो महीने के भीतर सदस्यों को उपलब्ध कराने के अतिरिक्त, सचिवालय प्रत्येक दिन प्रात: सभा की पिछले दिन के पूरे कार्यवाही वृत्तांत की मल्टीग्राफ की हुई प्रतियां तैयार करवाता है, जिससे कि उसे तत्काल संदर्भ के लिए इस्तेमाल किया जा सके।[2] जिस दिन लोक सभा की बैठक सामान्य समय के बाद तक होती है, उस दिन की सामान्य समय के बाद के कार्यवाही वृत्तांत की मल्टीग्राफ की हुई प्रतियां वाद-विवाद के अनुपूरकांक के रूप में अगले दिन[3] जारी की जाती हैं। इसके अलावा जनहित में तत्काल सूचना के उद्देश्य से 'वाद-विवाद' शीर्ष के अधीन पूरे दिन की सभा की बैठकों के कार्यवाही के आंकड़े सरकारी वेबसाइट अर्थात्, http://loksabha.nic.in अथवा http://parliamentofindia.nic.in पर जारी किए जाते हैं जिन पर 'अशोधित, प्रकाशन के लिए नहीं' लिखा रहता है।

सभा में कार्यवाही वृत्तांत की रिपोर्टिंग

सभा में कही गयी प्रत्येक बात का शब्दश: रिकार्ड संसदीय रिपोर्टरों द्वारा तैयार किया जाता है। उसमें केवल वे कुछ शब्द, शब्दावलियां तथा वाक्यांश नहीं होते, जिन्हें सभा की

---

1. नियम 379 ।
2. वाद-विवाद को स्टेंसिल और साइक्लोस्टाइल करने की प्रक्रिया 1949 में प्रारंभ की गई थी। वर्ष 1993 में रिपोर्टर शाखा में कम्प्यूटर लग जाने के बाद अब कार्यवाही वृत्तांत की साइक्लोस्टाइल प्रतियों के स्थान पर मल्टीग्राफ प्रतियां जारी की जाती हैं। इस मल्टीग्राफ किये हुए वाद-विवाद को दो भागों में प्रकाशित किया जाता है, भाग-1 में शपथ लेने वाले सदस्यों, विदेशों से आए गण्यमान्य व्यक्तियों अथवा प्रतिनिधिमंडलों के स्वागत, निधन संबंधी उल्लेख और प्रश्नों तथा उत्तरों का ब्यौरा रहता है और भाग-2 में बाकी कार्यवाही वृत्तांत दिया जाता है। वाद-विवाद की मल्टीग्राफ की हुई प्रति के प्रत्येक पृष्ठ पर तिथि के अतिरिक्त यह लिखा रहता है 'अशोधित/प्रकाशन के लिए नहीं है।' अत: वाद-विवाद की यह मल्टीग्राफ की हुई प्रति केवल तत्काल संदर्भ के प्रयोजनों के लिए होती है।
3. ऐसे अनेक अवसर आए जब सभा की कार्यवाही रात भर चली और इसलिए वाद-विवाद का दूसरा और तीसरा अनुपूरक कार्यवाही वृत्तांत भी जारी करना पड़ा। *लो.स.वा.वि.*, 29.8.1997, 30.8.1997 ।

कार्यवाही से निकाले जाने का आदेश अध्यक्ष ने दिया हो अथवा जिन्हें रिकार्ड न करने का आदेश अध्यक्ष ने तब दिया हो जब सदस्य अध्यक्ष की अनुमति के बिना बोले हों।

संसदीय कार्यवाही की शब्दशः रिपोर्टिंग के तरीके को वर्तमान रूप में पहुंचने तक इसमें अनेक परिवर्तन हुए हैं।

> विनियमन अधिनियम, 1773 के अंतर्गत स्थापित और 1784 के अधिनियम (पिट्स इण्डिया एक्ट) के अधीन पुनर्गठित भारत के गवर्नर जनरल की परिषद के "कानूनी कार्य" से संबंधित कार्यवाही की रिकार्डिंग केवल कार्यवाही सारांश के रूप में की जाती थी।[4] विधायी कार्य से संबंधित कार्यवाही सारांश केवल 1835 के बाद से मिलते है।[5]
>
> 1854 में पहली बार परिषद की बैठकों में अजनबियों को आने की अनुमति दी गयी और इस प्रकार परिषद की कार्यवाही को बाहर वालों के लिए खोल दिया गया। तदनुसार आधिकारिक रूप से रिपोर्टर की नियुक्ति की गई और उसके द्वारा विस्तृत कार्यवाही वृत्तांत तैयार किया गया। हालांकि यह वृत्तांत अप्रत्यक्ष शैली में तैयार किया जाता था, जिसमें किए गए कार्य का ब्यौरा और सदस्यों द्वारा दिए गए भाषणों की मुख्य बातें ही होती थीं। ये कार्यवाही वृत्तांत परिषद (काउन्सिल) के प्राधिकार के अंतर्गत प्रकाशित किये जाते थे और जनता के लिए उपलब्ध थे।[6]
>
> 1861 के भारतीय परिषद अधिनियम के अंतर्गत, विस्तृत कार्यवाही वृत्तांत का मुद्रण तथा प्रकाशन बन्द कर दिया गया; उसके स्थान पर केवल कार्यवाही सारांश का प्रकाशन करके जनता को उपलब्ध कराया जाने लगा। धीरे-धीरे भाषणों के अंश 'प्रत्यक्ष शैली' में[7] आने लगे और सारांश के स्थान पर धीरे-धीरे कार्यवाही का पूरा वृत्तांत प्रकाशित होने लगा।
>
> फरवरी, 1897 में तैयार किये गये तथा स्वीकृत किए गए प्रक्रिया नियमों में पहली बार 'कार्यवाही के पूरे वृत्तांत' का उल्लेख किया गया और उसके बाद से कार्यवाही के शब्दशः वृत्तांत जारी किये जाने लगे। वे वृत्तांत परिषद के कुछ गैर-सरकारी सदस्यों तथा कुछ प्रेस प्रतिनिधियों की मांग पर लिए गए निर्णय के अनुसार, राजपत्र में भी प्रकाशित किये जाते थे और इसके लिए गवर्नर जनरल का अनुमोदन प्राप्त किया जाता था।[8]
>
> 1921 में द्विसदनीय विधानमंडल के अस्तिव में आने के बाद काउंसिल ऑफ स्टेट्स तथा विधान सभा के शब्दशः कार्यवाही वृत्तांत पुस्तक के रूप में अलग-अलग जारी किये जाने लगे।

---

4. उदाहरण के लिए देखिए 'लॉ प्रोसीडिंग्स'—जनवरी-दिसंबर, 1781 ।
5. लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, बॉडी शीट्स, 1835, (बॉडी शीट्स, भारत के गवर्नर जनरल का दिन-प्रतिदिन की बैठकों का क्रमांक सहित कार्यवाही सारांश था जिसे सेक्रेटरी तैयार करता था)।
6. लेजिस्लेटिव काउंसिल ऑफ इंडिया का कार्यवाही वृत्तांत, 1854 से 1861—खंड 1 से 7 ।
7. कार्यवाही का सारांश, 16.3.1864 ।
8. तथापि, राजपत्र में कार्यवाही का प्रकाशन जुलाई, 1920 में बंद कर दिया गया।

रिपोर्टर पांच-पांच मिनट के क्रम में बारी-बारी से कार्यवाही को रिकार्ड करते हैं। यह क्रम सभा के आरंभ होने से उस दिन की सभा स्थगित होने तक चलता रहता है। चूंकि सभा में भाषण सामान्यत: अंग्रेजी या हिन्दी में ही दिए जाते हैं, इसलिए सभा की कार्यवाही को अक्षरश: रिकार्ड करने के लिए एक अंग्रेजी का तथा एक हिन्दी का रिपोर्टर सभा-भवन में हमेशा ड्यूटी पर रहता है। वे आपस में पूर्ण समन्वय से कार्य करते हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कार्यवाही के पूर्ण तथा सही अभिलेख तैयार किए जा रहे हैं।

प्रश्न-काल के तत्काल बाद होने वाली कार्यवाही, जब सदस्यों द्वारा स्थगन प्रस्तावों की सूचनाएं, विशेषाधिकार प्रश्न और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के आपातिक मामले उठाए जाते हैं, की रिपोर्टिंग करने के लिए अत्यधिक मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है और इसलिए रिपोर्टर कार्यवाही की अनुलिपि करने से पूर्व संबंधित निदेशक के मार्गदर्शन में उन अंशों की जांच, डिजिटली रिकॉर्ड की हुई कार्यवाही के साथ ध्यानपूर्वक मिलान करके करते हैं।

प्रश्न काल आंरभ होने से पहले उस दिन के तारांकित प्रश्नों के लिखित उत्तरों का एक पूरा सेट पहले से रिपोर्टरों को दे दिया जाता है। जब संबंधित मंत्री उठकर लिखित उत्तर पढ़ता है, तो रिपोर्टर अपनी प्रति से यह देखता है कि कहीं आखिरी समय में उसमें ऐसा कोई परिवर्तन तो नहीं किया गया है जो कि मंत्री ने सभा में ही किया हो।

प्रश्न-काल की कार्यवाही की रिपोर्टिंग की अनेक विशेषताएँ हैं। वाद-विवाद, जिसमें अधिकतर भाषण किसी विषय पर होते हैं, के विपरीत प्रश्न काल में जो अनुपूरक प्रश्न पूछे जाते हैं, वे बड़े भिन्न-भिन्न प्रकार के विषयों से संबंधित होते हैं और प्राय: उन विषयों का एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं होता। सभा में विभिन्न पक्षों द्वारा तत्काल अनुपूरक प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके उत्तर भी तुरंत ही दिए जाते हैं। अत: रिपोर्टर को न केवल प्रश्न पूछने वाले सदस्यों को ठीक-ठीक पहचानना पड़ता है बल्कि बड़ी तेजी से बताये जा रहे आंकड़ों, नामों और (नए) तकनीकी शब्दों आदि सहित प्रत्येक शब्द को रिकार्ड करना पड़ता है। जब अनुपूरक प्रश्न पूछे जा रहे होते हैं, तो राज्य मंत्री किसी अनुपूरक प्रश्न का उत्तर दे सकता है या यदि प्रश्न महत्वपूर्ण है, तो उस विभाग का प्रभारी मंत्री या स्वयं प्रधान मंत्री हस्तक्षेप करके उस अनुपूरक प्रश्न विशेष का उत्तर दे सकते हैं। इसलिए रिपोर्टरों को यह नोट करते समय बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है कि अनुपूरक प्रश्नों का उत्तर कौन सा मंत्री दे रहा है।

रिपोर्टर संबंधित सदस्यों से उद्धरणों, आंकड़ों या तकनीकी ब्यौरे संबंधी अन्य मामलों का पुन: मिलान करते हैं, रिपोर्टरों को जब भी संदेह होता है तो वे अपनी कापी का मिलान डिजिटली रिकार्ड की गई कार्यवाही से कर लेते हैं। परंतु वह सभा में दिए गए भाषण में न तो कुछ जोड़ते हैं और न उससे कुछ निकालते हैं।

कार्यवाही की अनुलिपि तैयार करते समय रिपोर्टरों को व्याकरण, भावार्थ और प्रस्तुतीकरण की शैली का ध्यान रखना पड़ता है। निदेशक (रिपोर्टिंग) संयुक्त निदेशकों की सहायता से सावधानीपूर्वक अनुलिपि की जांच करते हैं, उनका ताल-मेल देखते हैं, पाठ तथा प्रस्तावों, खंडों और संशोधनों के निपटान इत्यादि की जांच करते हैं, आवश्यक सम्पादन और त्रुटि-निवारण करते हैं तथा यह सुनिश्चित करते हैं कि कार्यवाही का प्रत्येक भाग निर्धारित

स्वरूप और प्रक्रियाओं के अनुरूप हो। इस लंबी कार्यवाही का लक्ष्य इस आधिकारिक रिपोर्ट को पूर्णत: त्रुटिहीन बनाना है।

सभी अनुलिपियों की जांच करने के बाद उन्हें अंतिम रूप में स्वीकृत किये जाने के पश्चात् पूरे दिन की बैठक की कार्यवाही को विस्तृत, अविच्छिन्न और तथ्यपरक वृत्तांत का रूप देने के लिए उन अनुलिपियों को क्रमानुसार मिलाया जाता है और फिर प्रत्येक पृष्ठ पर पृष्ठ संख्या डाली जाती है। फिर इस संकलन की, विषय-सूची वाले पृष्ठों सहित एक मुख्य प्रति मल्टीग्राफिंग और वितरण के लिए वितरण शाखा को प्रेषित की जाती है।

सभा की समस्त कार्यवाही की डिजिटल रिकार्डिंग भी की जाती है इससे रिपोर्टरों को कार्यवाही की पूरी तरह से सही अनुलिपि तैयार करने में सहायता मिलती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कई सदस्य एक साथ बोलना आरंभ कर देते हैं जिससे सभा में जो कुछ कहा गया है रिपोर्टरों को उसे नोट करने में कठिनाई होती है। ऐसे अवसरों पर डिजिटल रिकार्डिंग से काफी सहायता मिलती है क्योंकि रिपोर्टर जो कुछ भी वास्तविक कार्यवाही के दौरान सुन अथवा समझ नहीं सकें तो उसे इसकी सहायता से सुनिश्चित कर सकते हैं।[9]

रिपोर्टर की प्रति को कार्यवाही का प्रामाणिक रिकार्ड माना जाता है। यदि रिपोर्टरों द्वारा रिकार्ड की गई कार्यवाही के सही होने के बारे में विवाद उठता है, तो इसकी जांच डिजिटली रिकार्ड किए गए भाषण के पाठ से की जाती है और रिकार्ड के लिए बाद में सभा में सही स्थिति बताई जाती है।

सदस्यों द्वारा पुष्टि

सदस्य द्वारा किसी दिन-विशेष को दिए गए प्रत्येक भाषण, पूछे गए अनुपूरक प्रश्न या सदस्य द्वारा सभा में पैदा किए गए व्यवधान की मल्टीग्राफ प्रति पुष्टि के लिए सदस्य को उसके निवास पर दूसरे दिन सवेरे ही भेज दी जाती है और यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसमें शुद्धियां, यदि कोई हों, करके अगले कार्य दिवस को अपराह्न 3.00 बजे तक वापस लौटा दें। यदि वह अनुलिपि वापस नहीं की जाती है तो, रिपोर्टर द्वारा तैयार की गई अनुलिपि अंतिम और प्रामाणिक मानी जाती है।[10]

चूंकि अधिकृत कार्यवाही वृत्तांत की रिपोर्ट सभा में वास्तव में दिए गए भाषणों की सही प्रतिकृति होनी चाहिए, इसलिए सदस्य को इस बात की अनुमति नहीं है कि वह अपने भाषण में कुछ शब्द जोड़कर या, उसमें से कुछ शब्द निकालकर उसके मूलार्थ को ही बदल दे। समय-समय पर संसदीय समाचार में इस बारे में एक पैरा भी प्रकाशित किया जाता है, जिसमें सदस्यों को सूचना दी जाती है कि उनके भाषण केवल पुष्टि के लिए और इस प्रयोजन के लिए उन्हें भेजे जाते हैं कि उनमें यदि कोई अशुद्धि हो तो वे उसे ठीक कर दें न कि वे उनके साहित्यिक स्वरूप में सुधार कर दें या उनकी विषय वस्तु में कोई परिवर्तन कर दें। व्याकरण

---

9. *एल.एस. डिबेट्स*, 30.7.1973, कॉ. 217, 242-52.

10. *देखिए* लो.स. बुलेटिन भाग II, दिनांक 26.2.2008 ।

की दृष्टि से की गई शुद्धियां या कहीं-कहीं किसी शब्द को ठीक करने या किसी वाक्यांश को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखने की अनुमति है, लेकिन किसी ऐसी सारगत शुद्धि की अनुमति नही है जो सदस्य द्वारा सभा में कही गई किसी बात से भिन्न हो।[11]

दिन भर की सारी कार्यवाही की मल्टीग्राफ की हुई एक प्रति अगले दिन प्रातः सदस्यों के संदर्भ के प्रयोजन के लिए ग्रंथालय में रखी जाती है। कार्यवाही की प्रतियां संदर्भ के लिए मंत्रालयों को भी भेजी जाती हैं।

गुप्त बैठकों की कार्यवाही

जब सभा की कोई बैठक गुप्त रूप से आयोजित होती है तो अध्यक्ष उसकी कार्यवाही का वृत्तांत ऐसे ढंग से जारी करवा सकता है जो वह ठीक समझे, परन्तु किसी भी अन्य उपस्थित व्यक्ति को गुप्त बैठक की किसी कार्यवाही या निर्णयों का अंशतः अथवा पूर्णतया कोई नोट या अभिलेख रखने की अनुमति नहीं दी जाती है और न ही उसे ऐसी कार्यवाही का वृत्तांत जारी करने या ऐसी कार्यवाही वृत्तांत का वर्णन करने की अनुमति दी जाती है।[12]

जब यह समझा जाये कि किसी गुप्त बैठक की कार्यवाही के बारे में गोपनीयता बनाये रखने की आवश्यकता नहीं रही तो अध्यक्ष की सम्मति से सदन के नेता या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी सदस्य द्वारा इस आशय का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है कि ऐसी गोपनीय बैठक के दौरान हुई सभा की कार्यवाही को अब गुप्त न समझा जाये। सभा द्वारा उस प्रस्ताव के पारित किए जाने पर कार्यवाही-वृत्तांत के प्रकाशन से संबंधित सामान्य नियम लागू होता है।[13]

संसदीय समितियों की कार्यवाही की रिपोर्टिंग

जब संसदीय समिति के समक्ष साक्षियों को साक्ष्य देने के लिए बुलाया जाता है अथवा जब कोई महत्वपूर्ण मामले नोट करने हों या बैठक में सदस्यों द्वारा व्यक्त किए गए व्यक्तिगत विचारों का संदर्भ के लिए रिकार्ड रखना होता है तब उस कार्यवाही को शब्दशः रिकार्ड किया जाता है।[14]

समिति की जिस बैठक में साक्ष्य लिया गया हो, उसकी शब्दशः कार्यवाही के संगत अंश साक्षियों तथा संबंधित सदस्यों को भेजे जाते हैं, जिससे कि वे उनकी पुष्टि करके उन्हें सचिवालय द्वारा निर्धारित तिथि तक वापस लौटा सकें। यदि कार्यवाही की शुद्ध की गई प्रतियां निर्दिष्ट तिथि तक वापस न पहुंचे, तो रिपोर्टर्स की प्रति को ही प्रामाणिक माना जाता है।[15]

---

11. *एच.पी. डिबेट्स* (भाग दो), 17.2.1950, पृ. 635; *लो.स.वा.वि.*, 19.2.1959, कॉ. 1937 ।
12. नियम 249, 27.2.1942, को केन्द्रीय विधान सभा की गुप्त बैठक में सरकारी रिपोर्टरों को उसी समय सभा-भवन से बाहर चले जाना पड़ा था, जब दीर्घाओं को खाली कराने का आदेश दिया गया था। ब्यौरे के लिए *देखिए* अध्याय 17—सभा की बैठकें।
13. नियम 251 । नियम 379 भी *देखें* ।
14. निदेश 273 (5) ।
15. निदेश 65 (2) ।

शब्दशः कार्यवाही को यदि रिकार्ड किया गया है, तो उसे गोपनीय माना जाता है और अध्यक्ष के आदेश के बिना किसी को भी उपलब्ध नहीं कराया जाता है।[16]

उन अवसरों के अतिरिक्त, जब शब्दशः कार्यवाही रिकार्ड की जाती है, समिति के निर्णयों का कार्यवाही सारांश के रूप में रिकार्ड रखा जाता है।[17]

सम्मेलनों, विचारगोष्ठियों, कार्यशालाओं, व्याख्यानों आदि की रिपोर्टिंग

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो और भारतीय संसदीय ग्रुप के तत्वावधान में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय सम्मेलनों, संसदीय समितियों के पीठासीन अधिकारियों और सभापतियों के सम्मेलनों, सेमीनारों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, व्याख्यान मालाओं अथवा अन्य के अंतर्गत संसद सदस्यों के समक्ष प्रतिष्ठित व्यक्तियों, सम्मानित विदेशी मेहमानों आदि के द्वारा दिए गए भाषणों की कार्यवाही को भी शब्दशः रिकार्ड किया जाता है। इसके अलावा विभिन्न संसदीय मंचों अर्थात् जल संरक्षण, बाल, युवा, जनसंख्या और लोक स्वास्थ्य और भूमंडलीय तापवृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन, आपदा प्रबंधन, शिल्पकार और दस्तकार तथा संसदीय मैत्री समूह के तत्वावधान में आयोजित बैठकों की भी रिपोर्टरों द्वारा शब्दशः रिकार्डिंग की जाती है।

---

16. निदेश 65 (1) ।
17. नियम 274 और निदेश 66 (1), अध्याय 30—संसदीय समितियां भी देखें।

अध्याय 38

सभा अथवा उसकी समितियों के कार्यवाही-वृत्तांत से शब्दों का निकाला जाना

अध्यक्ष को सभा के कार्यवाही-वृत्तांत से ऐसे शब्द निकालने के आदेश देने का अधिकार है जो उसकी राय में मानहानिकारक या अशिष्ट या असंसदीय या अभद्र हैं।[1] इसी प्रकार, वह किसी उच्च पदाधिकारी या प्राधिकारी या संगठन के विरुद्ध संबद्ध नियमों और विनिर्णयों की उपेक्षा करते हुए प्रयुक्त किए गए मानहानिकारक या अनर्गल या आरोपात्मक शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने के आदेश दे सकता है।[2]

केन्द्रीय विधान सभा में शब्दों को इस प्रकार कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने के संबंध में कोई विशिष्ट नियम नहीं था। सामान्यत: जब किन्हीं असंसदीय या अन्यथा आपत्तिजनक शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग किया जाता था, तो अध्यक्ष अपने आप या किसी सदस्य या मंत्री द्वारा की गई आपत्ति के फलस्वरूप, वाद-विवाद में हस्तक्षेप करता था और उन शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग करने वाले सदस्य से कहता था कि वह इस संबंध में उचित संशोधन करे। ऐसा इन तीन विकल्पों में से किसी एक प्रकार से किया जा सकता था। शब्दों या वाक्यांशों को वापस लिया जा सकता था[3] अथवा क्षमायाचना की जा सकती थी[4] और यह आश्वासन दिया जा सकता था कि उन शब्दों का प्रयोग पुन: नहीं किया जाएगा; या, अपेक्षाकृत कुछ ही मामलों में, आपत्तिजनक शब्दों या वाक्यांशों के लिए नए शब्द प्रतिस्थापित किए जाते थे।[5] कुछ ऐसे भी मामले थे, जिनमें अध्यक्ष ने केवल इतना ही कहा कि आपत्तिजनक शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।[6]

---

1. नियम 380 ।
2. नियम 352, 353 और 380 ।
3. उदाहरणार्थ वे मामले जिनमें सदस्यों द्वारा शब्दों या वाक्यांशो को वापस लिया गया। *देखिए, एल.ए. डिबेट्स,* 24.9.1924, पृ. 4071; 16.9.1937, पृ. 1825; 26.3.1946, पृ. 2929 ।
4. उन मामलों के लिए जिनमें क्षमायाचना की गई और आश्वासन दिया गया, *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 14.3.1932, पृ. 1963-64; 15.2.1933, पृ. 699; 9.9.1937, पृ. 1439 ।
5. उन मामलों के लिए जहां नए शब्द प्रतिस्थापित किए गए, *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 24.9.1924, पृ. 4071; 11.4.1934, पृ. 3613; 18.3.1936, पृ. 2798; 27.2.1937, पृ. 1154-55 और 1169-70 ।
6. उदाहरणार्थ जहां अध्यक्ष ने कतिपय शब्दों के प्रयोग को अनुचित बताया, *देखिए एल.ए. डिबेट्स,* 18.9.1924, पृ. 3738; 30.9.1937, पृ. 2723; 19.11.1943, पृ. 553 ।

तथापि, आपत्तिजनक शब्द और बाद में उनका वापस लिया जाना या इस बारे में अन्यथा जो भी निपटान होता, उन सबका अभिलेख कार्यवाही-वृत्तांत में रहने दिया जाता था।

आपवादिक मामलों में, जहां उपर्युक्त उपाय पर्याप्त नहीं समझा गया, आपत्तिजनक शब्दों या वाक्यांशों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश दिया गया।[7] ऐसे मामलों में सामान्यत: प्रथा यह थी कि अध्यक्ष या सदस्य या किसी मंत्री की ओर से एक प्रस्ताव रखा जाता था और उस पर सभा की औपचारिक सहमति प्राप्त कर ली जाती थी।[8]

वास्तव में, शब्दों को निकाले जाने को शासित करने वाले नियम की व्याप्ति को बढ़ा दिया गया है और कुछ मामलों में अध्यक्ष ने अपने विवेकाधिकार से समय-समय पर उन शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकालने का आदेश दिया है जिनके संबंध में उसका विचार था कि ये शब्द राष्ट्रहित पर प्रतिकूल प्रभाव[9] डालने वाले हैं या किसी विदेशी राष्ट्र के साथ मैत्रीपूर्ण[10] संबंध बनाये रखने के लिए हानिकारक हैं; मित्र राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों सहित अन्य उच्च पदाधिकारियों के लिए मानहानिकारक हैं[11]; इन शब्दों से राष्ट्र की भावनाओं को या किसी सम्प्रदाय की धार्मिक भावनाओं को ठेस[12] पहुंच सकती है; सेना की प्रतिष्ठा घट[13] सकती है; अथवा ये शब्द शोभनीय[14] न हों या अन्यथा आपत्तिजनक हों और उनसे सभा का उपहास होता हो अथवा अध्यक्षपीठ, सभा या सदस्यों की गरिमा[15] को आघात पहुंच सकता हो।

जब कोई सदस्य यह कहे जाने पर कि वह उन आपत्तिजनक शब्दों को वापस ले ले, जो वाद-विवाद के संबंध में संगत नहीं है, ऐसा करने से इंकार कर देता है, तो अध्यक्षपीठ द्वारा उन शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश दिया जा सकता है।[16]

---

7. *एल.ए. डिबेट्स,* 3.3.1936, पृ. 1865-66; 10.9.1936, पृ. 757; 14.9.1936, पृ. 933; 1.10.1936, पृ. 2176; 6.10.1936, पृ. 2413; 6.2.1947, पृ. 224; 14.2.1947, पृ. 628।
8. *एल.एस. डिबेट्स,* 10.9.1936, पृ. 757 ।
9. *एल.एस. डिबेट्स,* 21.1.1985, कॉ. 195; 10.8.2005, कॉ. 833।
10. *एल.एस. डिबेट्स,* 31.7.2006, कॉ. 341; 29.11.2007, कॉ. 5098 ।
11. नियम 352 (पाँच); *एल.एस. डिबेट्स,* 26.2.1986, कॉ. 373; 26.7.1986, कॉ. 373; 1.12.2005, कॉ. 331-32 ।
12. *एल.एस. डिबेट्स,* 25.7.2006, कॉ. 304, 25.8.2006, कॉ. 405-06; 14.12.2006, कॉ. 259 ।
13. *एल.एस. डिबेट्स,* 2.5.2005, कॉ. 449 ।
14. *एल.एस. डिबेट्स,* 22.11.2007, कॉ. 2146; 27.11.2007, कॉ. 553 ।
15. *एल.एस. डिबेट्स,* 4.4.1984, कॉ. 431; 22.11.2007, कॉ. 1822; 26.11.2007, कॉ. 3287; 3.12.2007, कॉ. 561 ।
16. *एल. एस डिबेट्स* 8.5.1968 *कॉ.* 2941.42; 15.4.1987 *कॉ.* 581-6071

अध्यक्षपीठ द्वारा किसी सदस्य को यह कहे जाने पर कि वह उन दस्तावेजों से उद्धृत न करे जिनके बारे में पूर्व सूचना न दी गई हो और जो वाद-विवाद से संगत न हों, यदि फिर भी वह सदस्य उद्धृत करना जारी रखता है, तो अध्यक्षपीठ द्वारा उन उद्धरणों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश दिया जा सकता है।[17] जब कोई सदस्य अध्यक्षपीठ द्वारा बोलने की अनुमति दिए बिना और मना करने के बावजूद बोलना जारी रखता है तो अध्यक्षपीठ द्वारा उसके भाषण को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश दिया जा सकता है।[18] इसी प्रकार, यदि कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य या मंत्री के भाषण में व्यवधान डालता रहता है तो अध्यक्ष आदेश दे सकता है कि उन व्यवधानों को कार्यवाही-वृत्तांत में सम्मिलित न किया जाये।[19]

एक ऐसा उदाहरण भी है जब एक सदस्य के भाषण को कार्यवाही-वृत्तांत से इसलिए निकाल दिया गया था, क्योंकि वह पिछले सत्र में उसी प्रस्ताव पर बोल चुका था।[20]

कार्यवाही-वृत्तांत से शब्दों या वाक्यांशों के निकाले जाने का आदेश निम्नलिखित परिस्थितियों में दिया जाता है:

> अध्यक्ष स्वयं यह निर्णय कर सकता है कि सभा में बोले गये कौन-से शब्द मानहानिकारक या अशिष्ट या असंसदीय या अभद्र हैं और यह आदेश दे सकता है कि उन्हें कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया जाए।[21]
>
> कोई सदस्य या मंत्री उस समय अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित कर सकता है, जब मानहानिकारक या अशिष्ट या असंसदीय या अभद्र शब्दों का प्रयोग किया जा रहा हो, या बाद में उसका ध्यान आकर्षित कर सकता है और, यदि अध्यक्ष सहमत हो तो वह यह आदेश दे सकता है कि उन शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया जाये।
>
> यदि सचिवालय के किसी अधिकारी द्वारा प्रयोग किए गए आपत्तिजनक या अन्यथा शब्दों की ओर अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित किया जाए, तो अध्यक्ष ऐसे शब्दों के कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश दे सकता है।
>
> शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने के लिए प्रस्ताव पेश किया जा सकता है।[22]

---

17. *एल.एस.डिबेट्स,* 8.8.1969, कॉ. 267-84 ।
18. *पूर्वोक्त,* 22.2.1968, कॉ. 2705; 23.2.1968, कॉ. 3022; 2.8.1972, कॉ. 29; 24.2.1981, कॉ. 265-66; 19.3.1982, कॉ. 337-40; 15.4.1982, कॉ. 599 ।
19. *पूर्वोक्त,* 25.3.1964, कॉ. 7417; 2.12.1970, कॉ. 198; 15.4.1987, कॉ. 584-607 ।
20. *पूर्वोक्त,* (II) 25.7.1955, कॉ. 8310 ।
21. नियम 380 ।
22. *एल.एस.डिबेट्स,* 7.5.1965, कॉ. 13923-924; 22.2.1973; कॉ. 215, 217-18 ।

> जब कोई सदस्य अपने भाषण से कुछ शब्दों के निकाले जाने का स्वयं अनुरोध करे तो उन शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाला जा सकता है। अन्यथा, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब किसी सदस्य के भाषण से कुछ अंश निकाले जाने का आदेश दिया जाये तो उन अंशों को निकाले जाने के बारे में सदस्य को सूचित किया जाना चाहिए।[23]
>
> वाद-विवाद के दौरान किसी सदस्य द्वारा जबकि उसे उत्तर देने का अधिकार न था, दूसरी बार दिया गया भाषण भी कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया गया।[24]

कतिपय मामलों में कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गए शब्दों के स्थान पर उचित शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है, जिससे कि सदस्य का आशय अधिक स्पष्ट हो जाये अथवा उन शब्दों का प्रभाव कम हो जाये जिन पर आपत्ति की गई है।[25]

सभा में किसी भाषण के दौरान जिन शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग किया गया हो, बेशक वे असंसदीय न हों, फिर भी कोई सदस्य औचित्य के आधार पर उन पर आपत्ति कर सकता है। ऐसे मामलों में यदि अपने भाषण में ऐसे शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग करने वाला सदस्य उन्हें कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने पर सहमत हो जाये तो अध्यक्ष के आदेशानुसार उन्हें कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया जाता है। इसे स्वयं सदस्य द्वारा की गई साधारण शुद्धि माना जाता है और ऐसे मामले में कार्यवाही-वृत्तांत में कोई व्याख्यात्मक पाद-टिप्पण देना आवश्यक नहीं समझा जाता।

जब किसी मंत्री द्वारा की गई टिप्पणी पर सभा में किसी सदस्य द्वारा या टिप्पणी से प्रभावित किसी व्यक्ति द्वारा आपत्ति की जाती है तो बाद में अध्यक्ष मंत्री को अपनी टिप्पणी वापस लेने या सभा में मामला स्पष्ट करने की अनुमति दे सकता है। ऐसे मामले में कार्यवाही-वृत्तांत में परिवर्तन नहीं किया जाता।[26]

नियमों के अन्तर्गत कोई सदस्य भाषण देते समय किसी ऐसे तथ्य का उल्लेख नहीं कर सकता, जिसके संबंध में कोई न्यायिक विनिश्चय लंबित हो।[27] ऐसे मामले के संबंध में किसी सदस्य द्वारा उल्लेख किए जाने पर अध्यक्ष यह कह सकता है कि सदस्य को ऐसे मामले का उल्लेख नहीं करना चाहिए था, जो न्याय-निर्णय के अधीन हो, परंतु अध्यक्ष ऐसे शब्दों को

---

23. *एल.एस. डिबेट्स,* 21.12.1959, कॉ. 6265-66 ।
24. *एल.एस. डिबेट्स,* 25.7.1955, कॉ. 8310 ।
25. एक सदस्य के संबंध में "व्यक्तिगत अनुभव" के स्थान पर "व्यक्तिगत जानकारी" शब्द प्रतिस्थापित किए गए—एच.पी. डिबेट्स (II), 30.3.1953, कॉ. 3253 । आगे के अन्य उदाहरणों के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स,* 30.11.1956, कॉ. 880; लो.स.वा.वि., 14.8.1957, कॉ. 8377, 29.4.1959, कॉ. 13935 ।
26. *एल.एस. डिबेट्स,* 10.3.1960, कॉ. 5252-57; 14.3.1960, कॉ. 5698-703 ।
27. नियम 352 (एक); *एल.एस. डिबेट्स,* 11.8.1971, कॉ. 281-85 ।

कार्यवाही-वृत्तांत से निकालने का आदेश नहीं देता। तथापि, यदि सदस्य बार-बार ऐसा उल्लेख करता रहे, तो अध्यक्ष उसे तत्काल अपना भाषण बंद करने के लिए कह सकता है।[28]

सदस्यों द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध की गई आरोपात्मक टिप्पणियों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाल दिया जाता है।[29]

किसी वाक्यांश को तब भी कार्यवाही-वृत्तांत से निकाला जा सकता है जब उस वाक्यांश को प्रयोग करने वाला सदस्य उसे वापस ले ले।[30]

ऐसे अवसर आए हैं जब एक सदस्य द्वारा की गई मानहानिकारक टिप्पणी को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने के बाद उस सदस्य से क्षमायाचना करने के लिए कहा गया और उसके ऐसा न करने पर अध्यक्षपीठ द्वारा उस सदस्य को चेतावनी दी गई।[31]

यदि मामले को उसी दिन अध्यक्षपीठ के ध्यान में नहीं लाया जाता जिस दिन वे शब्द, जिन पर आपत्ति की गई, बोले गए हों, तो सामान्यत: उन्हें कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश नहीं दिया जाता है।[32] विरले मामलों में ही अध्यक्ष ने अगले दिन या तो स्वप्रेरणा से या किसी सदस्य[33] द्वारा अथवा किसी प्रभावित व्यक्ति[34] द्वारा विशेषकर संविधान के अन्तर्गत किसी उच्च पदाधिकारी द्वारा अभ्यावेदन करने पर (इस मामले में वाद-विवाद के पश्चात् किसी भी समय लेकिन वाद-विवाद के मुद्रित होने से पहले) शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश दिया है। इसलिए, नियमों के तहत, अध्यक्ष को समय बीत जाने के बाद भी वाद-विवाद से कुछ शब्दों को निकाल देने की शक्ति प्राप्त है।[35]

आमतौर पर, कार्यवाही-वृतांत से निकाले गए शब्दों के बारे में कोई समीक्षा नहीं की जाती और निकाले गए शब्दों को पुन: शामिल करने या निकाले गए शब्दों के बारे में सभा में प्रश्न उठाने के सदस्यों के अनुरोध सामान्यत: अस्वीकार किए गए हैं।[36] विरले मामलों में

---

28. अध्यक्ष का विनिर्णय—*एल.एस. डिबेट्स,* 27.6.1967, कॉ. 7829-45; 28.6.1967, कॉ. 8116-19।
29. *एल.एस. डिबेट्स,* 18.7.1956, कॉ. 113-14; 7.5.1970, कॉ. 201; 7.5.1987, कॉ. 444, 446 ।
30. *पूर्वोक्त,* 10.6.1971, कॉ. 222-24; 29.7.1986, कॉ. 465 ।
31. *पूर्वोक्त,* 2.5.1972, कॉ. 443-50; 3.5.1972, कॉ. 172-86; 15.4.1987, कॉ. 584-607।
32. *पूर्वोक्त,* 17.8.1963, कॉ. 924-26; 4.5.1965, कॉ. 13923-24; 6.7.1967, कॉ. 9985-86 ।
33. *पूर्वोक्त,* 13.3.1973, कॉ. 234 ।
34. *पूर्वोक्त,* 22.5.1956, कॉ. 9223; 13.8.1956, कॉ. 3078-79 ।
35. *एल.एस. डिबेट्स,* 13.8.1956, कॉ. 3087-90 ।
36. *एल.एस. डिबेट्स,* 4.3.1966, कॉ. 3938; 8.3.1966, कॉ. 4170-73; 16.8.1963, कॉ. 79; 17.8.1963, कॉ. 924-26; 19.3.1963, कॉ. 1225-32 ।

ही अध्यक्ष पुनर्विचार के पश्चात् पिछले दिन के कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गए कुछ शब्दों को पुन: शामिल करने के लिए सहमत हुए हैं।[37]

किन्हीं शब्दों को निकालने के संबंध में पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम है और इस बारे में अध्यक्ष से अपील नहीं की जा सकती। अध्यक्ष का यह विनिर्णय है कि उसे अध्यक्षपीठ द्वारा, चाहे वह उपाध्यक्ष हो या तालिका का कोई सदस्य,[38] एक बार दिए गए निर्णय को बदलने या संशोधित करने या उसकी समीक्षा करने का अधिकार नहीं है। लेकिन जब किसी पीठासीन अधिकारी द्वारा किसी प्रश्न या आपत्तिजनक शब्दों, आदि को कार्यवाही-वृत्तांत से निकालने के संबंध में निर्णय लेने का मामला अध्यक्ष के विनिर्णय के लिए रख दिया जाता है तो अध्यक्ष कार्यवाही-वृत्तांत को पढ़कर, यदि आवश्यक हो, शब्दों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकालने के लिए आदेश दे सकता है।[39]

जब अनेक सदस्य एक साथ बोलने लगते हैं या जब कोई सदस्य उसका नाम पुकारे जाने बिना बोलने लगता है या जबकि उसे अपने आसन पर बैठने के लिए कहा जाये, तब भी बोलना जारी रखता है या अध्यक्षपीठ की अनुमति के बिना बोलता है, तो अध्यक्षपीठ अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के आधार पर घोषणा कर सकता है कि भाषण अभिलेख का भाग नहीं बनेगा और इसे कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश दे सकता है।[40]

कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गए शब्दों के संबंध में संकेत

अध्यक्षपीठ के आदेशों के अनुसार कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गए शब्दों और अंशों को तारे के चिह्न (*) से दर्शाया जाता है और कार्यवाही-वृत्तांत में एक पाद-टिप्पण *"अध्यक्षपीठ के आदेशानुसार कार्यवाही-वृत्तांत से निकाला गया"* अन्त:स्थापित कर दिया जाता है। यदि कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले जाने का आदेश अगले दिन दिया जाता है, तो निकाला गया अंश और उससे पहले निकाले गए अंश, यदि कोई हों तो तारे के चिह्न तथा पाद-टिप्पण द्वारा मुद्रित वाद-विवाद में ही दर्शाया जाता है। उसी प्रकार यदि अध्यक्षपीठ द्वारा किसी सदस्य के भाषण या व्यवधान के संबंध में यह निदेश दिया जाता है कि कुछ भी कार्यवाही-वृत्तांत में सम्मिलित नहीं किया जायेगा तो एक पाद-टिप्पण *"कार्यवाही-वृत्तांत में सम्मिलित नहीं किया गया"* कार्यवाही-वृत्तांत में अन्त:स्थापित कर दिया जाता है।[41]

---

37. *एल.एस.डिबेट्स,* 28.7.1971, कॉ. 296, 301-303 ।
38. *पूर्वोक्त,* 5.9.1962, कॉ. 6761-67; 7.9.1962, कॉ. 6768; 6.3.1968, कॉ. 1981; 1.8.1977, कॉ. 362-69; 21.3.1978, कॉ. 539-41; 25.3.1982, कॉ. 282 ।
39. *पूर्वोक्त,* 26.3.1973, कॉ. 360-62; 27.2.1981, कॉ. 269-70 ।
40. *पूर्वोक्त,* 29.11.1977, कॉ. 239-41; 17.4.1978, कॉ. 297-98; 15.5.1978, कॉ. 171; 24.2.1981, कॉ. 265-66 ।
41. भारत में लोक सभा और राज्य सभा, राज्य विधानमंडलों में और राष्ट्रमंडल की कुछ संसदों में असंसदीय घोषित किए गए शब्दों और अभिव्यक्तियों के रूप में निकाले गए शब्दों से युक्त "असंसदीय अभिव्यक्तियाँ" नामक प्रकाशन लोक सभा सचिवालय द्वारा हर वर्ष निकाला जाता है।

कार्यवाही-वृत्तांत से निकाले गए शब्दों के बारे में प्रेस को सूचना

समाचारपत्रों से यह आशा की जाती है कि सभा में जिन शब्दों या वाक्यांशों के निकाले जाने का आदेश दिया गया हो, वे उनका ध्यान रखें। अधिक सावधानी के तौर पर सचिवालय भी उन शब्दों या वाक्यांशों के संबंध में समाचारपत्रों को सूचना दे देता है, जिन्हें कार्यवाही–वृत्तांत से निकाला गया हो। तथापि यदि किसी समाचारपत्र संवाददाता को ऐसी सूचना न मिले तो उसका यह मतलब नहीं है कि कार्यवाही–वृत्तांत से निकाले गये अथवा उसमें सम्मिलित नहीं किए गए शब्दों के प्रकाशन के फलस्वरूप होने वाली कार्यवाही से वह बच जाएगा। अध्यक्ष जिन शब्दों या वाक्यांशों के निकालने का आदेश सभा के बाहर देता है, यदि यह आदेश उसी दिन दिया गया हो, जिस दिन उन शब्दों का प्रयोग किया गया है, तो उसके संबंध में महत्वपूर्ण समाचार एजेंसियों को यथाशीघ्र सूचना दे दी जाती है और उनसे यह अनुरोध किया जाता है कि वे उस सामग्री का प्रकाशन न करें, जिसे कार्यवाही–वृत्तांत से निकाल दिया गया है।

कार्यवाही के सीधे प्रसारण के समय शब्दों के निकाले जाने का प्रभाव

जब कुछेक शब्दों या अभिव्यक्तियों को निकाल देने या अभिलेख का भाग नहीं बनने देने का आदेश दिया गया हो तब मीडिया से ऐसे आदेश को ध्यान में रखने और यह सुनिश्चित करने की आशा की जाती है कि ऐसे अंशों को इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा 'अभिलिखित रूप' में नहीं दिखाया जाए या प्रेस में नहीं छापा जाए।

लोक सभा टेलीविजन चैनल के पास रहने वाले मूल वीडियो टेप में भी निकाले गए/रिकार्ड न किए गए अंशों को हटाकर मुद्रित रूप के साथ अनुरूप बना दिया जाता है।

कार्यवाही-वृत्तांत से शब्दों के निकाले जाने के बारे में कानूनी प्रभाव

कार्यवाही–वृत्तांत से शब्दों, टिप्पणियों या कार्यवाही के किसी भाग को निकालने संबंधी अध्यक्ष के आदेश का कानूनी प्रभाव यह है कि यह माना जाए कि ये शब्द/टिप्पणियां या कार्यवाही का वह भाग कभी बोला ही नहीं गया था। निकाले गए शब्दों या वाक्यांश का प्रकाशन विशेषाधिकार भंग माना जाएगा।[42]

वीडियो द्वारा रिकार्ड की गई सभा की कार्यवाहियों से अंशों का निकाला जाना

वीडियो द्वारा रिकार्ड की गई सभा की कार्यवाही में भी निकाले गए अंशों को, यद्यपि एक दिन बाद, हटाकर मुद्रित रूप के अनुरूप बना दिया जाता है। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि निकाला गया कोई भी अंश डब नहीं किया जाये और ऐसे किसी सदस्य, जो अपने भाषण को वीडियो रूप देने का अनुरोध करता है, को नहीं दिया जाए।[43] तथापि, निकाले गए अंश का अभिलेख सचिवालय के ऑडियो–विजुअल यूनिट में रखा जा रहा है।

---

42. *सर्चलाइट मामला*, ए.आई.आर. 1959, एस.सी. 395–422 ।

43. *देखिए*, अध्याय 46 संसदीय कार्यवाही का टेलीविजन और रेडियो पर प्रसारण।

संसदीय समितियों के कार्यवाही-वृत्तांत से शब्दों का निकाला जाना

यदि किसी संसदीय समिति या उप-समिति के सभापति की यह राय हो कि समिति या उप-समिति, यथास्थिति, की कार्यवाही में जो शब्द या शब्दावलियां या वाक्यांश प्रयुक्त किए गए हैं, उनमें ऐसी जानकारी अंतर्विष्ट है, जिसका प्रकाशन लोकहित में नहीं होगा या उनमें ऐसे निष्कर्ष अंतर्विष्ट हैं जो सर्वथा वैयक्तिक स्वरूप के हैं, तो वह ऐसे शब्दों, शब्दावलियों या वाक्यांशों को कार्यवाही-वृत्तांत से निकालने का आदेश दे सकता है। कार्यवाही-वृत्तांत की प्रति में संगत पृष्ठ पर इस आशय का एक पाद-टिप्पण दे दिया जाता है।

अध्याय 39

संसदीय पत्रों का मुद्रण तथा प्रकाशन

लोक सभा तथा इसके सचिवालय से संबंधित सभी पत्रों का मुद्रण तथा प्रकाशन सभा के प्राधिकार[1] से किया जाता है। सभा प्रत्येक पत्र के मुद्रण के मामले में विशेष रूप से आदेश नहीं देती परंतु सभी मामलों में यह मान लिया जाता है कि सभा ने पत्रों के प्रकाशन का प्राधिकार दिया है। असाधारण मामलों में किसी पत्र या दस्तावेज के मुद्रण से पहले अध्यक्ष से आज्ञा ले ली जाती है।

लोक सभा के पत्रों का मुद्रण महासचिव के आदेश से मुख्यत: भारत सरकार मुद्रणालय, मिंटो रोड, नई दिल्ली में होता है और आवश्यकतानुसार दिल्ली अथवा अन्य स्थानों पर स्थित इसकी अन्य शाखाओं से भी कराया जाता है। सारे गोपनीय पत्र केवल भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, नई दिल्ली के गोपनीय अनुभाग में छापे जाते हैं। सचिवालय द्वारा कुछ प्रकाशनों का मुद्रण गैर-सरकारी मुद्रणालयों या प्रकाशकों के साथ व्यवस्था करके कर लिया जाता है। सरकारी तथा गैर-सरकारी मुद्रणालय जिन्हें संसदीय पत्रों के मुद्रण का कार्य सौंपा जाता है, दोनों सचिवालय द्वारा जारी निर्देशानुसार कार्य करते हैं।

संसदीय कार्य से संबंधित अविलम्बनीय प्रकार के छोटे-छोटे कार्यों के मुद्रण/मल्टीग्राफिंग की व्यवस्था सचिवालय में भी की गई है। आज कल जिन पत्रों की साइक्लों स्टाइलिंग[2] की जाती है/डिजिटल प्रिंटर्स/फोटो कोपियर्स पर रेजोग्राफी की जाती है अथवा जो सचिवालय में ही मुद्रित किए जाते हैं, उनका मुख्य वर्गीकरण इस प्रकार है:

सदस्यों, मंत्रियों और सचिवालय की विभिन्न शाखाओं में परिचालन के लिए डाक वितरण शाखा में रेजोग्राफ/फोटोकापी किये जाने वाले पत्र : सदस्यों तथा मंत्रियों को रातों-रात परिचालित किये जाने वाले अशोधित वाद-विवाद; संसदीय समितियों के कार्य जैसे सूचनाएं, ज्ञापन, प्रारूप प्रतिवेदन आदि; ग्रंथालय, शोध, संदर्भ, प्रलेखन तथा सूचना सेवा द्वारा तैयार किए गए पृष्ठाधार नोट, सूचना बुलेटिन, सूचना सार लोक सभा के प्रत्येक सत्र के समापन पर भारत के सभी राज्यों के विधान-मंडलों के सचिवों को महासचिव द्वारा भेजे जाने वाले अर्द्ध शासकीय पत्र आदि तथा सचिवालय से संबंधित विविध परिपत्र/आदेश।

सचिवालय के रोटाप्रिंट/बाइंडरी अनुभाग शाखा में छापे जाने वाले और बाउण्ड किए जाने वाले पत्र : सभी मानकीकृत प्रपत्र, रजिस्टर, लैटर हैड; अर्द्ध-सरकारी लेखन सामग्री; विजिटिंग काड्र्स, शुभकामना-पत्र, आमंत्रण-पत्र, मेनू काड्र्स, फाइल कवर इत्यादि; विभिन्न संसदीय समितियों की रिपोर्टें, यदि वे शीघ्र अपेक्षित हों; संसदीय कार्यक्रमों में गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भाषण; बाहर से आने वाले/बाहर जाने वाले संसदीय शिष्टमंडलों के सदस्यों से संबंधित कार्य, कार्यक्रम; तथा संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरो

---

1. नियम 382 ।
2. नई प्रिंटिंग प्रौद्योगिकियों के आने के कारण साइक्लोस्टाइल मशीनों की जगह रेजोग्राफ/फोटोकॉपीइंग मशीनों ने ले ली है।

द्वारा आयोजित विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम। इसके अलावा अविलंबनीय और गोपनीय प्रकृति के कार्य का मुद्रण सचिवालय में ही किया जाता है।

आवश्यकतानुसार, पत्रों, रजिस्टरों, पुस्तकों आदि की सामान्य, संपूर्ण रेक्सिन/कपड़े की और आधे कपड़े की बाइंडिंग की जाती है।

सरकारी प्रेस/प्राइवेट प्रिंटर्स द्वारा छापे जाने वाले पत्र : वाद-विवाद और उनकी अनुक्रमणिकाएं; विधेयक तथा विधेयकों संबंधी प्रवर और संयुक्त समितियों की रिपोर्टें; संसदीय समाचार; प्रश्न-सूची; कार्य-सूची; संशोधन तथा कटौती प्रस्तावों की सूचियां; वाद-विवाद का सारांश; संसदीय समितियों और स्थायी समितियों की रिपोर्टें; मोनोग्राफ; पत्रिकाएं; विवरणिका तथा सदस्यों की जानकारी संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए अन्य अनुसंधान और संदर्भ अध्ययन सामग्री आदि का मुद्रण भारत सरकार मुद्रणालय अथवा निजी प्रिंटर्स/प्रकाशकों द्वारा किया जाता है।

वाद-विवाद

लोक सभा वाद-विवाद, जिनका मुद्रण और प्रकाशन किया जाता है, सभा की कार्यवाही का स्थायी सरकारी अभिलेख बनता है। सभा की कार्यवाहियों को दो भागों में विभक्त किया जाता है। भाग-I में मौखिक तथा लिखित, दोनों तरह के प्रश्नों के उत्तर एवं अनुपूरक प्रश्नों के भी उत्तर अंतर्विष्ट होते हैं। भाग-II में सभा पटल पर रखे गए पत्र, संदेश, चर्चाएं, इत्यादि तथा सभा द्वारा निष्पादित अन्य कार्य अंतर्विष्ट होते हैं। लोक सभा वाद-विवाद तथा उसकी कार्यवाही के तीन संस्करण अर्थात् (एक) मूल संस्करण, (दो) अंग्रेजी संस्करण, और (तीन) हिन्दी संस्करण तैयार किए जाते हैं।

मूल संस्करण में सभा में अंग्रेजी और हिन्दी में होने वाली कार्यवाही यथावत रूप में अंतर्विष्ट होती है तथा क्षेत्रीय भाषाओं में दिए गए भाषणों का अंग्रेजी/हिन्दी में अनुवाद होता है। चौदहवीं लोक सभा के बारहवें सत्र तक प्रथा यह थी कि वाद-विवाद के मूल संस्करण को रेसोग्राफी (कम्प्यूटर प्रिंटआउट) रूप में ठीक से जिल्दबंद करके अभिलेख और सन्दर्भ के प्रयोजनार्थ संसद ग्रन्थालय में रखा जाता था। तथापि, चौदहवीं लोक सभा के तेरहवें सत्र से इसे मुद्रित किया जा रहा है और उसके सम्पादित संस्करण को भारत की संसद की वेबसाइट अर्थात् www.parliamentofindia.nic.in अथवा www.loksabha.nic.in पर उपलब्ध कराया जाता है।

वाद-विवाद का अंग्रेजी संस्करण आठवीं लोक सभा के पहले सत्र अर्थात् जनवरी, 1985 से तैयार और प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें अंग्रेजी में हुई कार्यवाही तथा हिन्दी एवं किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा में होने वाली कार्यवाही का अंग्रेजी अनुवाद अंतर्विष्ट होता है।

वाद-विवाद के पूर्ण शब्दश: हिन्दी संस्करण की शुरुआत नवम्बर, 1978 में की गई थी। तथापि, इससे पूर्व (1952 से), वाद-विवाद का संक्षिप्त अनुदित संस्करण ही तैयार किया जाता था। हिन्दी संस्करण में हिन्दी में हुई कार्यवाही तथा अंग्रेजी एवं किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा में दिए गए भाषण का हिन्दी अनुवाद अंतर्विष्ट होता है।

वाद-विवाद के दोनों संस्करणों (अंग्रेजी और हिन्दी) में सभी तारांकित और अतारांकित प्रश्नों और उनके दिए गए उत्तरों का अंग्रेजी/हिन्दी में शब्दशः अनुवाद अंतर्विष्ट होता है।

किसी सत्र के पहले दिन के वाद-विवाद में सदस्यों के वर्णानुक्रमानुसार नामों और उनके निर्वाचन क्षेत्रों को दर्शाने वाली सूची तथा मंत्रिपरिषद की सूची शामिल होती है। तथापि, नव-निर्वाचित लोक सभा के पहले सत्र के पहले दिन के वाद-विवाद में निर्वाचन आयोग से प्राप्त सदस्यों की सूची शामिल की जाती है।

लोक सभा के अधिकारियों के नाम भी प्रत्येक दिन के वाद-विवाद के आरम्भ में विषय-सूची के बाद दिए जाते हैं।

अंग्रेजी/हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा अर्थात् असमिया, बंगला, कन्नड़, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु और उर्दू में दिए गए भाषणों के मामले में, जिनके संबंध में भाषान्तरण की व्यवस्था पहले से उपलब्ध है, संबंधित भाषान्तरकार द्वारा पाठ की टेप रिकार्ड से जांच करके इन भाषणों के अंग्रेजी/हिन्दी में अनुदित संस्करण वाद-विवाद में शामिल किए जाते हैं और पाद टिप्पण में यह इंगित कर दिया जाता है कि मूल भाषण किस भाषा में दिया गया था।

यदि कोई सदस्य किसी ऐसी क्षेत्रीय भाषा में भाषण देता है, जिसके लिए साथ-साथ भाषान्तरण की व्यवस्था नहीं है तो उस सदस्य को भाषण की अंग्रेजी या हिंदी में अनुदित प्रमाणित प्रति पहले प्रस्तुत करनी होती है ताकि उसे वाद-विवाद में शामिल किया जा सके। यदि अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया जाता तो उसके भाषण को वाद-विवाद में स्थान नही दिया जाता और उसके स्थान पर इस आशय का एक पाद-टिप्पण दे दिया जाता है।[3]

वाद-विवाद का शुद्धि-पत्र, यदि कोई हो, संबंधित वाद-विवाद शाखा द्वारा तैयार किया जाता है। इस प्रकार से तैयार किए गए शुद्धि-पत्र को मुद्रित वाद-विवाद के अंतिम आवरण पृष्ठ (कवर पेज) के अंदर की ओर दिया जाता है।

सभी सदस्यों को उनकी पसंद के अनुसार वाद-विवाद के मूल या अंग्रेजी या हिंदी संस्करण की एक प्रति निःशुल्क प्रदान की जाती है और जो सदस्य इनकी जिल्दबंद प्रतियां चाहते हैं तो उन्हें भुगतान पर वाद-विवाद के सजिल्द खंड प्रदान किए जाते हैं।

दस दिन के वाद-विवाद से एक खंड तैयार होता है। प्रकाशित वाद-विवादों के खंड और शृंखलाएं प्रत्येक लोक सभा के कार्यकाल के साथ-साथ चलते हैं जबकि प्रत्येक मुद्रित वाद-विवाद की क्रम संख्या प्रत्येक सत्र के लिए अलग-अलग होती है।

प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम, 1957 की धारा 51 के अंतर्गत वाद-विवाद से किसी सामग्री के पुनः प्रकाशन का प्रतिलिप्याधिकार सचिवालय को है। लोक सभा वाद-विवादों से किसी सामग्री के पुनः प्रकाशन हेतु अध्यक्ष की अनुमति आवश्यक होती है। ऐसे अनुरोधों पर विचार करने हेतु एक सुस्थापित प्रक्रिया निर्धारित है और प्रत्येक मामले के गुणावगुण पर

---

3. पिछला अध्याय 38 भी *देखें* ।

विचार करने के बाद अनुमति प्रदान की जाती है।[4] जब वाद-विवाद में से सामग्री छापने की अनुमति दे दी जाती है तो संबंधित पक्ष के लिए यह अपेक्षित होता है कि वह प्रकाशित दस्तावेज में सामग्री के स्रोत का उल्लेख करे और उस प्रकाशन की दो प्रतियां लोक सभा सचिवालय को भी भेजे ।

सदस्यों द्वारा पुष्टि : किसी विशेष दिन किसी सदस्य द्वारा दिए गए प्रत्येक भाषण, उसके द्वारा पूछे गए प्रश्न अथवा उसके द्वारा किए गए व्यवधान का प्रतिलेख अगले दिन प्रात:काल उसकी पुष्टि के लिए उसके आवास पर भेजा जाता है। सदस्य को उसे संशोधन सहित, यदि कोई हो, अगले दिन अपराह्न 3.00 बजे तक वापस करना होता है। यदि इसे वापस नहीं भेजा जाता है तो रिपोर्टर द्वारा तैयार प्रतिलेख को अंतिम और प्रामाणिक मान लिया जाता है।

चूंकि सरकारी रिपोर्ट को सभा में वास्तव में दिए गए भाषणों का शब्दश: प्रकाशन होना चाहिए, इसलिए सदस्यों को परिवर्धन अथवा लोपन द्वारा अपने भाषणों के साहित्यिक स्वरूप में सुधार करने की अनुमति नहीं होती है। सदस्यों को समय-समय पर यह सूचित करने के लिए समाचार भाग-दो में पैरा दिया जाता है कि उनके पास भाषण सिर्फ पुष्टि करने तथा यदि कोई अशुद्धियां हों तो उनकी शुद्धि करने के प्रयोजनार्थ भेजे जाते हैं न कि साहित्यिक स्वरूप में सुधार करने के लिए अथवा भाषणों के सार में परिवर्तन करने के लिए। जहां व्याकरणिक संशोधन अथवा यहां वहां किसी शब्द में सुधार करने अथवा किसी खंड को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की अनुमति होती है वहीं कोई बड़ा संशोधन करने की अनुमति नहीं होती है जिससे सदस्य द्वारा सभा में वास्तव में दिए गए भाषण के सार में अंतर आ जाए।[5]

वाद-विवाद की अनुक्रमणिकाएं

अंग्रेजी वाद-विवादों की अनुक्रमणिका दो श्रेणियों अर्थात् विषय अनुक्रमणिका और नाम अनुक्रमणिका के अंतर्गत तैयार की जाती है। नाम अनुक्रमणिका में वाद-विवाद में भाग लेने वाले सदस्यों, और जहां कहीं आवश्यक हो सरकार की ओर से उत्तर देने वाले मंत्रियों और संसदीय सचिवों के नाम शमिल होते हैं। परन्तु "प्रश्न तथा उत्तर" के मामले में मंत्रियों आदि के बारे में कोई प्रविष्टि अनुक्रमणिकाओं में सम्मिलित नहीं की जाती है। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या सभापति के नाम में कोई प्रविष्टि तैयार नहीं की जाती हैं। सदस्यों आदि के नाम अनुक्रमणिकाओं में संक्षिप्त रूप में दिये जाते हैं, जैसे कि वे सदस्यों की वर्णानुक्रम सूची में दिये होते हैं।

आठवीं लोक सभा के पहले सत्र से वाद-विवाद के हिन्दी संस्करण की अनुक्रमणिकाएं भी तैयार की जाने लगी हैं तथापि वाद-विवाद के हिन्दी संस्करण में केवल विषय अनुक्रमणिका ही तैयार की जाती है। चौदहवीं लोक सभा के तेरहवें सत्र से वाद-विवादों के मूल संस्करण की अनुक्रमणिका तैयार करने और प्रकाशित करने का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया है। वाद-विवाद के मूल संस्करण की अनुक्रमणिका तैयार करने की विधि वही है जो वाद-विवाद के अंग्रेजी संस्करण की अनुक्रमणिका तैयार करने के लिए अपनाई जाती है।

---

4. आर.ओ. सं. 18, 22.7.1965 (संपादन शाखा)।
5. *पी. डिबेट्स* (भाग दो), 17.2.1950, पृ. 635, *एल.एस. डिबेट्स,* 19.2.1959, कॉ. 1937 ।

सभी सदस्यों को उनकी पसंद के अनुसार वाद-विवाद के अंग्रेजी या हिंदी या मूल संस्करण की अनुक्रमणिका की एक प्रति निःशुल्क प्रदान की जाती है। जो सदस्य इनकी जिल्दबंद प्रतियां चाहते हैं, उन्हें भुगतान पर सजिल्द खंड प्रदान किए जाते हैं।

वाद-विवाद का सारांश

वाद-विवाद का सारांश, वाद-विवाद में दिए गए महत्वपूर्ण सुझावों और कही गई बातों का सारांश है। उसमें तर्कों, दलीलों आदि का ब्यौरा, रखे गए प्रस्ताव या संशोधन, सभा पटल पर रखे गए पत्र और अन्य औपचारिक मदें सम्मिलित नहीं की जातीं। वाद-विवाद का सारांश, वाद-विवाद के दिन ही तैयार किया जाता है और उसी रात को छापा जाता है और उस पर "प्रकाशनार्थ नहीं—केवल संसद सदस्यों के लिए" शब्द सबसे ऊपर मुद्रित होते हैं। छपी हुई हिंदी या अंग्रेजी प्रतियां सदस्यों को उनकी व्यक्तिगत पसंद के अनुसार संसदीय पत्रों के साथ अगले दिन प्रातः भेज दी जाती हैं। उस दिन के सारांश में शामिल नहीं किए गए अंशों, यदि कोई हों, का सम्पूरकांक अगले दिन जारी किया जाता है। प्रत्येक सत्र के अन्त में दैनिक सारांश को खंड के रूप में जिल्द में बांधा जाता है, जिसमें प्रस्तावना और वर्गीकृत विषय-सूची दी जाती है। उसकी सजिल्द प्रतियां संदर्भ के लिए पुस्तकालय में रखी जाती हैं। लोक सभा के कार्यवाही-वृत्तांत का सारांश (अंग्रेजी संस्करण) इंटरनेट/इंट्रानेट के माध्यम से भी उपलब्ध कराया जाता है।

वाद-विवाद तथा अनुषंगी प्रकाशन यथा अनुक्रमणिकाएं तथा वाद-विवाद का सारांश रियायती मूल्य पर बेचे जाते हैं। इन प्रकाशनों के लिए बजट में जो राशि रखी जाती है, वह सचिवालय के वार्षिक अनुदानों में सम्मिलित की जाती है।

विधेयक

सरकारी तथा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक विभिन्न प्रक्रमों पर छापे जाते हैं, यथा पुरःस्थापित किए जाने वाले; पुरःस्थापित किये गए रूप में; किसी विधेयक को यदि वह किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपा गया हो तो उस समिति द्वारा संशोधित रूप में; और लोक सभा द्वारा पारित किए गए रूप में और यदि विधेयक तथा सभी धन विधेयक जो अंत में लोक सभा के द्वारा पारित हों तो वे संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए गए रूप में छापे जाते हैं।

जब कोई विधेयक लोक सभा द्वारा राष्ट्रपति को उसकी अनुमति हेतु भेजा जाना होता है तो उसे आसमानी नीले एवं मोटे कागज पर मुद्रित किया जाता है और उसी रंग का आवरण (कवर) भी होता है।[6]

---

6. पहले, विभिन्न प्रक्रमों पर विधेयकों में अंतर करने के लिए आवरण पृष्ठ भिन्न रंगों में छापे जाते थे जो इस प्रकार हैं:—पुरःस्थापित किए जाने के लिए/पुरःस्थापित रूप में-श्वेत; लोक सभा द्वारा पारित रूप में—हल्का पीला; प्रवर/संयुक्त समिति द्वारा संशोधित रूप में आवरण रहित ।

सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों, दोनों को केन्द्रीय विधेयक पंजी में क्रमानुसार संख्या प्रदान की जाती है और प्रत्येक वर्ष नई क्रम संख्या की जाती है। जब किसी विधेयक को राजपत्र में मुद्रित अथवा प्रकाशित किया जाना अपेक्षित होता है तो उस विधेयक को प्रत्येक प्रक्रम पर केन्द्रीय विधेयक पंजी में दी गई संख्या (जैसे 39) के साथ छापा जाता है और उस संख्या के बाद उस पर 'क' 'ख' 'ग' आदि अलग-अलग अक्षर छापे जाते हैं जैसा कि नीचे बताया गया है:—

> पुर:स्थापन-39; प्रवर समिति का प्रतिवेदन-39 क; संयुक्त समिति का प्रतिवेदन-39 ख; एक सभा द्वारा पारित और दूसरी सभा को भेजा गया विधेयक-39 ग; एक सभा द्वारा पारित और दूसरी सभा की प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित विधेयक-39 ग क; एक सभा द्वारा पारित और दूसरी सभा को लौटाया गया विधेयक-39 घ; एक सभा द्वारा पारित और दूसरी सभा द्वारा अस्वीकृत किया गया विधेयक-39 घ क; दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में पारित विधेयक-39 ङ; संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक-39 च; संसद की सभाओं द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार हेतु लौटाया गया विधेयक, यदि एक सभा द्वारा पुन: संशोधन सहित या संशोधन रहित पारित और दूसरी सभा को भेजा गया विधेयक-39 च ग, अनुच्छेद 111 के परन्तुक के अन्तर्गत संसद की सभाओं द्वारा पुन: पारित किया गया विधेयक-39च च।

विधेयक के सभी प्रक्रमों में, दोनों सभाओं द्वारा पारित किए गए विधेयक को छोड़कर, पंक्तियों का संख्यांकन किया जाता है और प्रत्येक पांच पंक्तियों के बाद पंक्ति संख्या दर्शायी जाती है। विधेयक के प्रत्येक पृष्ठ पर संख्या नए सिरे से प्रारंभ की जाती है।

जैसे ही कोई विधेयक सभा में पुर:स्थापित किया जाता है, उसकी एक प्रति उसी तिथि के राजपत्र[7] में प्रकाशन हेतु भेज दी जाती है।

किसी विधेयक के प्रभारी सदस्य के अनुरोध पर अध्यक्ष विधेयक के पुर:स्थापन से पहले उसके प्रकाशन की अनुमति दे सकता है। ऐसे में राजपत्र में विधेयक के साथ यह अधिसूचना भी प्रकाशित की जाती है कि अध्यक्ष के आदेशानुसार विधेयक को पुर:स्थापन से पहले प्रकाशित किया जा रहा है। पुर:स्थापन से पहले राजपत्र में प्रकाशन हेतु अनुरोध करते समय विधेयक के प्रभारी सदस्य को अध्यक्ष के विचारार्थ उस विधेयक को पुर:स्थापित करने से पहले प्रकाशित करने के कारण बताने होते हैं।

जब सभा का सत्र चल रहा हो तो किसी विधेयक को उसके पुर:स्थापित किए जाने से पहले राजपत्र में प्रकाशित करने की प्रथा नहीं है यद्यपि विशेष परिस्थितियों में अध्यक्ष ने ऐसे प्रकाशन की अनुमति दी है।[8] जो विधेयक पुर:स्थापित किए जाने से पहले राजपत्र में

7. विधेयक, राजपत्र असाधारण (II-2) में प्रकाशित किए जाते हैं।

8. *देखिए,* अध्याय 22—'विधान' ।

प्रकाशित किया जाता है उसे पुर:स्थापित किए जाने के बाद राजपत्र में पुन: प्रकाशित नहीं किया जाता है।[9]

प्रवर/संयुक्त समितियों के प्रतिवेदन

किसी विधेयक संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किया जाता है और उसके साथ समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक लगा होता है। यदि प्रतिवेदन को मुद्रित कराने हेतु पर्याप्त समय न हो तो उसे टाइप अथवा रेसोग्राफी किए हुए रूप में सभा में प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु उसके साथ प्रतिवेदित विधेयक मुद्रित रूप में ही होता है और उसमें पंक्तियों का संख्यांकन किया जाता है तथा उसके बाद ही उसे सभा में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे प्रतिवेदन को सभा में प्रस्तुत किए जाने के बाद अन्य संबंधित पत्रों के साथ मुद्रित किया जाता है और सदस्यों को वितरित किया जाता है।[10] किसी समिति के समक्ष दिए गए साक्ष्य को सामान्यत: एक अलग खंड में प्रकाशित किया जाता है परन्तु यह तब होता है जब साक्ष्य को सभा पटल पर रखने का निर्णय लिया गया हो। किसी विधेयक संबंधी प्रवर अथवा संयुक्त समिति के प्रत्येक प्रतिवेदन को समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में उस विधेयक के साथ उसी तिथि के राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है जिस तिथि को उसे सभा में प्रस्तुत किया गया हो।[11]

संसदीय प्रकाशनों/स्मारिकाओं की बिक्री

संसद सदस्यों और जनसाधारण की सुविधा हेतु 14 मई, 1950 से एक बिक्री काउंटर कार्यरत है जहां से सभी मूल्यांकित संसदीय प्रकाशन/स्मारक स्मारिकाएं, विधेयक, वाद-विवाद, समितियों के प्रतिवेदन और सभा की दैनंदिन कार्यवाही के कार्यवाही-वृत्तांत खरीदे जा सकते हैं। यह बिक्री काउंटर संसद भवन के स्वागत कार्यालय में सुबह 10.00 बजे से दोपहर 3.00 बजे (सोमवार से शुक्रवार) तक खुला रहता है। ये संसदीय प्रकाशन/स्मारिकाएं भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलनों, भारतीय संसद द्वारा आयोजित अंतर-संसदीय/राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलनों के स्थलों पर और संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो द्वारा अधिकारियों, विधानमंडल के सदस्यों और अन्य विशिष्टजनों हेतु आयोजित प्रबोधन कार्यक्रमों के दौरान भी बिक्री हेतु उपलब्ध कराए जाते हैं।

---

9. नियम 73 ।
10. अध्याय 30—संसदीय समितियों के अन्तर्गत 'विधेयकों संबंधी प्रवर या संयुक्त समितियां' भी *देखिए* ।
11. नियम 305—विधेयकों की तरह प्रतिवेदन भी *राजपत्र असाधारण* (भाग II-2) में प्रकाशित किए जाते हैं।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन प्रभाग द्वारा भी प्रकाशनों की बिक्री की जाती है जिसकी बिक्री-राशि को सीधे कोषागार में जमा करा दिया जाता है। मंत्रालय इन प्रकाशनों की बिक्री से संबंधित त्रैमासिक बिक्री-रिपोर्ट लोक सभा सचिवालय को प्रस्तुत करता है।

इसके अलावा, सचिवालय प्रकाशनों की बिक्री हेतु एजेंट भी नियुक्त करता है जिन्हें पच्चीस प्रतिशत छूट पर ये उपलब्ध कराए जाते हैं। एजेंट इसका मासिक लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है और बिक्री-राशि, बिल और भुगतान शाखा में जमा कराता है। एजेंट के खातों की वर्ष में दो बार संवीक्षा की जाती है।

संसदीय संग्रहालय स्थित स्मारिका-चिह्न विक्रय केंद्र मंगलवार से शनिवार प्रात: 11.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक खुला रहता है। इस विक्रय केंद्र की बिक्री-राशि की संबंधित पंजिकाओं में प्रविष्टि कर लेने के पश्चात् इसे अगले कार्यदिवस पर बिल और भुगतान शाखा के कैशियर के पास जमा कर दिया जाता है।

अध्याय 40

लोक सभा का सचिवालय और बजट

सचिवालय

संविधान में यह उपबंध है कि प्रत्येक सदन का एक पृथक सचिवालय होगा।[1] संविधान के लागू होने पर भूतपूर्व विधान सभा विभाग, जिसे संसद सचिवालय का नया नाम दिया गया था, 'हाउस ऑफ द पीपल' का सचिवालय बना रहा। अध्यक्ष मावलंकर ने 13 मई, 1954 को सभा में घोषणा की कि 'हाउस ऑफ द पीपल' और उसके सचिवालय को अब क्रमश: 'लोक सभा' और 'लोक सभा सचिवालय' कहा जायेगा।[2]

> वर्ष 1920 में मांटेग-चैम्सफोर्ड सुधार लागू होने पर केन्द्रीय विधानमंडल के दो सदन, एक विधान सभा और दूसरा राज्य परिषद हो गए। भारतीय विधानमंडल के दोनों सदनों का प्रशासनिक तथा लिपिकीय कार्य विधायी विभाग द्वारा किया जाता था। विधायी विभाग में भारत सरकार का सचिव दोनों सदनों का सचिव था; विधायी विभाग के संयुक्त सचिव और उप-सचिव विधान सभा तथा राज्य परिषद के सचिव के सहायक थे और दोनों सदनों के पटल अधिकारी (क्लर्क ऐट द टेबल) उन्हीं अधिकारियों में से लिये जाते थे; सभी लिपिकों की व्यवस्था विधायी विभाग के लिपिक वर्गीय कर्मचारियों में से की गई थी।
>
> वर्ष 1921 में कुछ सदस्यों ने[3] विधान सभा के लिये एक पृथक स्थापना का प्रश्न सभा में उठाया तथा 1922 और 1923 में भी वाद-विवाद में यह मामला उठाया गया।[4] वर्ष 1924 में सरकार ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि 'यह निर्णय लिया गया है कि फिलहाल मितव्ययिता और कार्यकुशलता दोनों ही की दृष्टि से यह वांछनीय है कि विधान सभा का कार्य भारत सरकार का विधायी विभाग ही करता रहे'।[5]

---

1. अनुच्छेद 98 ।
2. *एल.एस. डिबेट्स*, 13.5.1954, कॉ. 7388-89 ।
3. *एल.ए. डिबेट्स*, 5.3.1921, पृ. 595; 22.2.1921, पृ. 829 ।
4. *पूर्वोक्त*, 16.3.1922, पृ. 3166, 3167 और 3169; 22.9.1922, पृ. 772; 15.3.1923, पृ. 3461 और 3464 ।
5. *पूर्वोक्त*, 1.2.1924, पृ. 28; लोक सभा सचिवालय के संक्षिप्त इतिहास के लिए *देखिए* सुभाष सी. काश्यप 'सिक्सटी इयर्स आफ सर्विसिंग द सैंट्रल लेजिस्लेचर', लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, जनवरी 1989 ।

> तथापि, अगस्त 1925 में जब श्री विट्ठल भाई पटेल अध्यक्ष चुने गए तो उन्होंने और सभा के अनेक अन्य सदस्यों ने यह अनुभव किया कि चूंकि विधान सभा का सचिव भारत सरकार के अन्तर्गत विधायी विभाग का सचिव है, इसलिए निर्वाचित अध्यक्ष की स्वतंत्रता पर इस बात का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सदस्यों ने विधान सभा में ऐसे कई प्रश्न भी पूछे, जिनमें इस बात पर बल दिया गया था कि विधान सभा विभाग के लिये एक पृथक कार्यालय होना चाहिए।[6]

अध्यक्ष पटेल ने अपने पद का कार्य-भार सम्भालने के शीघ्र बाद जनवरी, 1926 में पीठासीन अधिकारियों का एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें यह संकल्प पारित किया गया कि विधान सभा के लिए एक पृथक कार्यालय बनाया जाये, जो सरकार से स्वतंत्र और असंबद्ध हो। यह मामला शीघ्र ही सरकार को विचार करने तथा उस पर कार्यवाही करने के लिए भेजा गया। चूंकि, सरकार ने एक वर्ष से अधिक समय तक उस मामले में कोई कार्यवाही नहीं की, इसलिये पटेल ने पुनः अध्यक्ष चुने जाने के बाद, 17 अगस्त, 1927 को सरकार के समक्ष एक योजना प्रस्तुत की जिसमें विधान सभा के लिये एक पृथक विभाग या कार्यालय स्थापित करने के ठोस प्रस्ताव शामिल थे।[7] भारत सरकार ने यह योजना 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया' को भेज दी, परन्तु उसने कतिपय मामलों में अध्यक्ष पटेल के विचार स्वीकार नहीं किये जिन्हें श्री पटेल महत्वपूर्ण समझते थे।[8] अतः अध्यक्ष ने अपना प्रस्ताव सीधे सदन के विचार के लिये रखा और बड़े जोरदार शब्दों में यह घोषणा की कि "निर्वाचित सभापति (अध्यक्ष) होने के नाते मैं विधान सभा के प्रति उत्तरदायी हूं और किसी अन्य अधिकारी के प्रति उत्तरदायी नहीं हूं"।[9] 22 सितम्बर, 1928 को श्री मोती लाल नेहरू ने सभा में यह संकल्प पेश किया कि एक पृथक विधान सभा विभाग बनाया जाये। यह संकल्प सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया।[10]

बाद में, 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया' ने उस संकल्प में दी गयी योजना को कतिपय परिवर्तनों के साथ अपनी स्वीकृति दे दी तथा एक पृथक, स्वतः पूर्ण विभाग 10 जनवरी, 1929 को बनाया गया, जिसका नाम 'विधान सभा विभाग' (लेजिस्लेटिव असेम्बली डिपार्टमेंट) था। यह विभाग गवर्नर जनरल के अधिकार क्षेत्र में था और इसका प्रधान विधान सभा का अध्यक्ष था।[11] विधान सभा विभाग (सेवा की शर्तें) नियम, 1929 के अनुसार इसके कर्मचारियों की नियुक्ति अध्यक्ष के अनुमोदन से की जाने लगी।

---

6. *एल.ए. डिबेट्स*, 23.2.1926, पृ. 1648; 16.3.1927, पृ. 2333; 21.3.1927, पृ. 2439; 18.8.1927, पृ. 2996 ।
7. *एल.ए. डिबेट्स*, 5.9.1928, पृ. 221 ।
8. *पूर्वोक्त*, 17.9.1928, पृ. 921-40 ।
9. *पूर्वोक्त*, 5.9.1928, पृ. 219 ।
10. *पूर्वोक्त*, 22.9.1928, पृ. 1249-63 ।
11. *पूर्वोक्त*, 28.1.1929, पृ. 2 ।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के उपबंधों के अन्तर्गत केन्द्रीय विधानमंडल के विधायी कृत्य भारत की संविधान सभा ने संभाल लिये। 29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा ने यह संकल्प पारित किया कि संविधान निर्मात्री संस्था के रूप में संविधान सभा का कार्य डोमिनियन विधान मंडल के कृत्यों से स्पष्टतः पृथक होना चाहिये और यह कि उक्त विधान मंडल के रूप में कार्य करते हुए सभा की अध्यक्षता करने हेतु अध्यक्ष के निर्वाचन के लिये उपबंध किया जाना चाहिये। तत्पश्चात्, इस संकल्प के अनुसरण में, संविधान सभा के कृत्यों को संविधान सभा और संविधान सभा (विधायी) में बांट दिया गया। संविधान सभा का अपना पृथक सचिवालय था और विधान सभा विभाग ने उस निकाय के अध्यक्ष के नियंत्रण के अधीन संविधान सभा (विधायी) के सचिवालय के रूप में कार्य किया। 26 जनवरी, 1950 को संविधान के लागू होने तथा अन्तरिम संसद बनने पर विभाग का नाम बदलकर 'संसद सचिवालय' कर दिया गया।

पहले साधारण निर्वाचन के बाद, 1952 में लोक सभा (हाउस ऑफ द पीपल) बनने के बाद भी यही स्थिति रही। तथापि, वर्ष 1954 में सचिवालय का नाम 'संसद सचिवालय' से बदलकर 'लोक सभा सचिवालय' कर दिया गया। परन्तु 30 सितम्बर, 1955 तक सचिवालय के अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सेवा की शर्तों पर, समय-समय पर यथा-संशोधित और अनुकूलित विधान सभा विभाग (सेवा की शर्तें) नियम, 1929 ही लागू होते थे। बाद में, 1 अक्तूबर, 1955 को विद्यमान नियम अर्थात् लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम 1955[12] बनाये गये और राष्ट्रपति ने अध्यक्ष के परामर्श से[13] उनका प्रख्यापन किया।

कतिपय स्थायी और अस्थायी पदों के सृजन, अस्थायी पदों के बने रहने और उनके स्थायी पदों में परिणत किये जाने, विभिन्न पदों पर नियुक्ति, अधिकारियों/कर्मचारियों के आचरण, अनुशासन और नियंत्रण तथा स्थायीवत् और अस्थायी सेवाओं के विनियमन से सम्बन्धित शक्तियां अध्यक्ष में निहित हैं, लेकिन इस संबंध में जहाँ विनिर्दिष्ट हो, वित्त मंत्रालय से परामर्श किया जाना आवश्यक है।[14] सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों की भर्ती और नियुक्ति, पदोन्नति, स्थायीवत् और अस्थायी सेवा, आचरण, आदि के विनियमन करने वाले भर्ती और सेवा की शर्तों संबंधी आदेश अध्यक्ष द्वारा जारी किये जाते हैं।[15]

तथापि, अध्यक्ष ने नियमों को लागू करने से संबंधित मामलों में कतिपय शक्तियां महासचिव को सौंपी हुई हैं।[16]

---

12. अनुच्छेद 98 (3)।
13. का.नि.आ.सं. 2181, राजपत्र, असाधारण 1.10.1955।
14. लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1955।
15. *पूर्वोक्त*।
16. भर्ती और सेवा की शर्तें आदेश संख्या पी.डी.ए.—1104/2004 दिनांक 17.12.2004।

सचिवालय की स्वतंत्र स्थिति को संविधान तथा लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1955, दोनों के अन्तर्गत सुरक्षा प्रदान की गयी है।

सेवा की शर्तें और भर्ती नियम

वर्ष 1929 में सचिवालय के गठन के समय से ही सरकार ने सचिवालय की स्वतंत्र स्थिति को मान्यता दे रखी है तथा प्रशासनिक और वित्तीय शक्तियों के संबंध में सचिवालय को वही दर्जा प्राप्त है, जो भारत सरकार के किसी मंत्रालय (पहले विभाग के नाम से ज्ञात) को प्राप्त है।

वर्ष 1948 में सचिवीय और वरिष्ठ गैर-सचिवीय पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में चयन मण्डल की सिफारिशों पर विचार करते हुए अध्यक्ष मावलंकर ने टिप्पणी की थी:

> 'विधानमण्डल के सचिवालय में काम करने वाले प्रत्येक अधिकारी को, वह अधीनस्थ हो या नहीं, इस स्थिति में होना चाहिये कि वह कार्यपालिका सरकार के भय या पक्ष के बिना अपना कार्य कर सके और स्पष्ट है कि यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि विधानमण्डल सचिवालय में नौकरी करने वाले व्यक्ति सचिवालय में अपने भविष्य तथा अपनी पदोन्नति के लिये चयन मण्डल जैसे उन निकायों पर निर्भर हो, जिनमें कार्यपालिका के अधिकारी और नाम-निर्दिष्ट व्यक्ति शामिल होते हैं। पुरानी व्यवस्था में भी जब कार्यपालिका विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थी और सम्पूर्ण शक्ति तकनीकी रूप से गवर्नर जनरल में निहित थी, वह परिपाटी सुस्थापित हो चुकी थी कि जहां तक विधान सभा विभाग में नियुक्तियों, पदोन्नतियों, आदि का संबंध है, पीठासीन प्राधिकारी (अध्यक्ष) एकमात्र निर्णायक और नियंत्रक है।'

भारत सरकार द्वारा गठित संस्थापन प्रस्ताव समिति को सचिवालय के संबंध में जानकारी देने के प्रश्न पर अध्यक्ष मावलंकर ने 2 अप्रैल, 1948 को टिप्पणी की थी: कार्यपालिका के किसी भी विभाग को अधिकार नहीं होना चाहिये कि चुनौती की बात तो दूर, वह उस बात की संवीक्षा भी करे, जिसे करना विधानमण्डल के प्रधान ने आवश्यक और उचित समझा हो। तथापि, अध्यक्ष ने उस समिति को इस शर्त पर अपेक्षित जानकारी देना स्वीकार किया कि समिति की सिफारिशें अध्यक्ष को उसके विचारार्थ गोपनीय रूप से भेजी जायेंगी और वे सिफारिशें औपचारिक रिपोर्ट का अंग नहीं बनेगी।

वर्ष 1955 में भर्ती और सेवा की शर्तें संबंधी नियमों के मसौदे पर विचार के दौरान सरकार और संघ लोक सेवा आयोग इस बात पर सहमत हुए कि सचिवालय के अधिकारियों से संबंधित मामलों के बारे में आयोग से परामर्श करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तद्नुसार, इस संबंध में संघ लोक सेवा आयोग (परामर्श से उन्मुक्ति) विनियम, 1958 में उपबंध किया गया। आयोग से सचिवालय में काम करने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों के अनुशासन संबंधी मामलों तथा क्षति संबंधी पेंशन दिये जाने के दावों के बारे में भी कोई परामर्श नहीं किया जाता है। संसद के दोनों सदनों में से किसी भी सदन के सचिवालय में नियुक्त किए गए किसी भी कर्मचारी पर प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 भी लागू नहीं होता है।

इस प्रकार सचिवालय अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की भर्ती स्वयं करता है तथा अध्यक्ष के नियंत्रण के अधीन एक स्वतंत्र निकाय के रूप में कार्य करता है, जिसमें उसका मार्गदर्शन अंतिम होता है।[17]

सुस्थापित परिपाटी के अनुसार भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों को सरकार द्वारा जारी किये गये आदेश लोक सभा के अधिकारियों और कर्मचारियों पर स्वत: लागू नहीं होते। लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1955 के प्रख्यापित होने के बाद सरकार ने इस स्थिति को औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया है। सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों की सेवा की शर्तों के संबंध में जारी किये गये प्रत्येक आदेश की जांच महासचिव द्वारा की जाती है और यदि यह निर्णय लिया जाता है कि उस आदेश को पूर्णरूपेण सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों पर लागू कर दिया जाये, तो वित्त मंत्रालय या संबद्ध मंत्रालय से परामर्श किये बिना, भर्ती और सेवा की शर्तें संबंधी आदेश (आर. एण्ड सी.एस. आर्डर) के रूप में अनुकूलन आदेश जारी किये जाते हैं। जब कोई रूपभेद या परिवर्तन, आदि आवश्यक समझा जाये, तो अनुकूलन आदेश वित्त मंत्रालय से परामर्श के बाद जारी किया जाता है। तथापि, ऐसा अपवाद स्वरूप ही होता है।

वित्तीय स्वरूप के आदेशों के संबंध में भी सरकार ने औपचारिक रूप से इस बात को स्वीकार कर लिया है कि ये आदेश सचिवालय पर तब तक स्वत: लागू नहीं होते, जब तक कि अध्यक्ष के आदेश द्वारा इन्हें विशेष रूप से लागू नहीं किया जाता। जब अध्यक्ष ऐसे किसी आदेश को लागू करने का निर्णय करता है तो अनुकूलन आदेश जारी किया जाता है।

वेतन आयोग की सिफारिशों का अनुकूलन

सचिवालय के स्वतंत्र स्वरूप को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर गठित वेतन आयोगों की सिफारिशें सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों पर स्वत: ही लागू नहीं होती हैं। तथापि, पहले और दूसरे वेतन आयोगों द्वारा क्रमश: वर्ष 1947 और वर्ष 1959 में की गई सिफारिशों के आधार पर सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतनमान भी वित्त मंत्रालय से परामर्श करने के उपरान्त अध्यक्ष द्वारा जारी किये गये आदेशों के अन्तर्गत समुचित रूप से पुनरीक्षित किये गये थे।

वेतन पुनरीक्षण और पुनर्गठन के लिए पहली संसदीय समिति

जब भारत सरकार द्वारा गठित तीसरे वेतन आयोग ने वर्ष 1973 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, तो लोक सभा अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति ने संसदीय कर्मचारियों के वेतन और अन्य सेवा शर्तों के पुनरीक्षण के बारे में उन्हें सलाह देने के लिए अगस्त, 1973 में संयुक्त रूप से पहली संसदीय समिति नियुक्त की।

---

17. *देखिए,* सुभाष सी. काश्यप, *'सर्विसिंग पार्लियामेंट—स्टाफिंग द लेजिस्लेचर्स एण्ड ट्रेनिंग इन पार्लियामेंटरी इन्स्टीट्यूशन्स एण्ड प्रोसीजर्स',* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, मार्च, 1987 ।

अध्यक्ष ने 16 अगस्त, 1973 को लोक सभा में समिति के गठन की घोषणा की।[18] प्राक्कलन समिति के सभापति को इस समिति का सभापति नियुक्त किया गया और इसमें अन्य सदस्यों के साथ-साथ वित्त मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री तथा दोनों सभाओं के महासचिव सम्मिलित किए गए।

20 सितम्बर, 1974 को लोक सभा अध्यक्ष को प्रस्तुत किये गये अपने प्रतिवेदन में समिति ने अनेक सिफारिशें की जिनमें से मुख्य सिफारिश यह थी कि दोनों सचिवालयों का एक ऐसे रूप में युक्ति-संगत पुनर्गठन किया जाये, जो प्रकार्यात्मक, कार्यकुशल और मितव्ययी हो।

चौथे केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप वेतन पुनरीक्षण के लिए दूसरी संसदीय समिति

संविधान के अनुच्छेद 98 के उपबंध के अंतर्गत, चौथे केन्द्रीय वेतन आयोग ने लोक सभा तथा राज्य सभा सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए वेतन ढांचे, भत्तों, छुट्टी और पेंशन संबंधी लाभों के बारे में कोई सिफारिश नहीं की थी। राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष ने परस्पर परामर्श के पश्चात् 21 जुलाई, 1986 को संसद की एक समिति नियुक्त की। प्राक्कलन समिति के सभापति इस समिति के सभापति थे तथा इसके सदस्यों में लोक लेखा समिति का सभापति, वित्त मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री तथा राज्य सभा के दो सदस्य शामिल थे। लोक सभा और राज्य सभा सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए वेतनमानों की सिफारिश करते समय समिति ने निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन किया:—

(*i*) वेतनमानों की संख्या घटाकर यथा आवश्यक न्यूनतम की जाए;

(*ii*) दोनों सचिवालयों में विभिन्न पदों के पदनाम यथासंभव वही रखे जायें जो भारत सरकार में हैं;

(*iii*) संसद के सचिवालयों में कार्य संबंधी अपेक्षाओं के अत्यधिक विशिष्ट स्वरूप और कर्मचारियों द्वारा अधिक लम्बे समय तक कार्य करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, वेतनमान सरकार में उसी प्रकार की जिम्मेदारियों के लिए उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ वेतनमानों के समकक्ष रखे जायें; और

(*iv*) इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये कि दोनों सचिवालयों के कर्मचारियों को क्या-क्या उपयुक्त सुविधायें, प्रतिपूर्ति, प्रोत्साहन अथवा भत्ते दिये जा सकते हैं।

पदों की विभिन्न श्रेणियों से सम्बद्ध अधिकारियों और कर्मचारियों के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए अनेक मामलों में पदनामों और वेतनमानों में परिवर्तन करने की सिफारिश की गई थी। तद्नुसार, 1 जनवरी, 1986 से पदनामों और उनके वेतनमानों को पुनरीक्षित किया गया।

---

18. *लो.स.वा.वि.*, 16.8.1973, पृ. 358 ।

पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप वेतन पुनरीक्षण के लिए तीसरी संसदीय समिति

केन्द्रीय सरकार द्वारा पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करने तथा उन्हें कार्यान्वित करने के पश्चात् परिपाटी के अनुसार, अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके छह-सदस्यीय संसदीय वेतन समिति नियुक्त की जिसका सभापति प्राक्कलन समिति के सभापति को बनाया गया। समिति के सदस्यों में लोक लेखा समिति के सभापति, वित्त मंत्री तथा संसदीय कार्य मंत्री शामिल थे। समिति का कार्य पांचवें वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकार के निर्णय के संदर्भ में राज्य सभा और लोक सभा सचिवालयों के अधिकारियों और सभी श्रेणियों के कर्मचारियों के वेतन ढांचे, भत्तों, छुट्टी तथा पेंशन संबंधी लाभों में वांछनीय परिवर्तन किये जाने के संबंध में राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष को सलाह देना था।

समिति ने 11 नवंबर, 1997 को हुई अपनी पहली बैठक में यह सिफारिश की कि पांचवें वेतन आयोग की सिफारिशों को कुछ परिवर्तनों के साथ एक अंतरिम उपाय के रूप में लोक सभा और राज्य सभा सचिवालयों के अधिकारियों के लिए अनंतिम रूप से लागू किया जाए। तथापि, 4 दिसंबर, 1997 को ग्यारहवीं लोक सभा के भंग हो जाने के साथ वेतन समिति भी समाप्त हो गई।

तदुपरांत, बारहवीं लोक सभा के गठन के पश्चात् अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके, पिछली समिति के अपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए 20 नवंबर, 1998 को संसदीय वेतन समिति का पुनर्गठन किया। समिति की कुल मिलाकर छह बैठकें हुईं और 26 अप्रैल, 1999 को उसने वेतनमानों के संबंध में अपना पहला प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। तथापि, समिति द्वारा वेतनमानों से भिन्न अन्य मामलों पर विचार किए जाने और उन पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने से पहले ही बारहवीं लोक सभा भंग हो गई। समिति द्वारा की गई सिफारिशें 30 अप्रैल, 1999 को अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत की गईं।

तेरहवीं लोक सभा के गठन के बाद लोक सभा अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके, पिछली समिति के छूटे हुए कार्यों पर विचार करने के लिए 28 जुलाई, 2000 को संसदीय वेतन समिति का पुनर्गठन किया। समिति ने राज्य सभा सचिवालय और लोक सभा सचिवालय के कर्मचारियों से संबंधित भत्तों, प्रसुविधाओं, सुविधाओं आदि पर विचार-विमर्श पूर्ण करके 28 अगस्त, 2001 को हुई अपनी बैठक में प्रतिवेदन को अंतिम रूप दिया और उसे 30 अगस्त, 2001 को राज्य सभा के सभापति और लोक सभा अध्यक्ष को प्रस्तुत किया। समिति द्वारा की गई सिफारिशों को अध्यक्ष ने 30 अगस्त, 2001 को स्वीकार कर लिया।

छठे केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप वेतन ढांचे के पुनरीक्षण के लिए चौथी संसदीय समिति

परिपाटी के अनुसार, लोक सभा अध्यक्ष ने राज्य सभा के सभापति से परामर्श करके छठे केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों पर सरकार के निर्णय के संदर्भ में लोक सभा और

राज्य सभा सचिवालय के अधिकारियों और सभी श्रेणियों के कर्मचारियों के वेतनमानों, भत्तों, छुट्टी तथा पेंशन संबंधी लाभों में वांछनीय परिवर्तन करने हेतु राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष को सलाह देने के लिए छह-सदस्यीय संसदीय वेतन समिति गठित की। प्राक्कलन समिति के सभापति को इसका सभापति बनाया गया तथा लोक लेखा समिति के सभापति, वित्त मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री इसके सदस्यों में शामिल थे, लोक सभा और राज्य सभा के महासचिव भी इस समिति से संबद्ध थे।

समिति ने राज्य सभा सचिवालय और लोक सभा सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा दिए गए सुझावों पर विचार किया और अपनी अनेक बैठकों में इन प्रस्तावों पर विचार-विमर्श किया। समिति ने विचार-विमर्श पूर्ण करके 25 फरवरी, 2009 को अपनी छठी बैठक में प्रतिवेदन को स्वीकृत किया।

समिति का प्रतिवेदन 26 फरवरी, 2009 को राज्य सभा के सभापति और लोक सभा अध्यक्ष को प्रस्तुत किया गया।

राज्य सभा के सभापति और लोक सभा अध्यक्ष ने, संसदीय भत्ता दिए जाने के संबंध में कुछ रूपभेद सहित, वेतन समिति की सिफारिशों को अपनी औपचारिक सहमति दे दी। इस प्रतिवेदन की सिफारिशों को, पूर्वोक्त रूपभेदों सहित, 20 अप्रैल, 2009 को राज्य सभा सचिवालय और लोक सभा सचिवालय में साथ-साथ लागू कर दिया गया।

कार्यात्मक आधार पर मोटे तौर पर कार्य का विभाजन

सचिवालय का प्रमुख महासचिव होता है। महासचिव का पद एक ऐसा पद है जो कई प्रकार से अद्वितीय है। पूरे सचिवालय के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में उसे यह सुनिश्चित करना होता है कि सभा और उसकी समितियों का सचिवीय कार्य योग्य, सक्षम और निष्ठावान अधिकारियों द्वारा किया जाये तथा उसे महासचिव के स्वयं के समग्र उत्तरदायित्व के अधीन उपयुक्त और समुचित रूप से आयोजित और संचालित किया जाये।[19]

वेतन पुनरीक्षण और पुनर्गठन संबंधी संसदीय समिति की सिफारिशों के आधार पर सचिवालय का 1 दिसम्बर, 1974 से प्रकार्यात्मक आधार पर निम्नलिखित सेवाओं में पुनर्गठन किया गया:—

(*i*) *विधायी सेवा*—सभा का कार्य जैसे कि विधान, प्रश्न, कार्य सूची तैयार करना आदि कार्य निपटाने के लिये;

(*ii*) *वित्तीय समिति सेवा*—तीनों वित्तीय समितियों और रेल अभिसमय समिति को सचिवीय सहायता उपलब्ध कराने तथा उनसे संबंधित सभी कार्य करने के लिये;

---

19. *देखिए,* अध्याय 8—'संसद के कार्य निर्वाहक', साथ ही *देखिए*—सुभाष सी. काश्यप, '*दि आफिस ऑफ द सेक्रेटरी जनरल*', लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली—1989 ।

(*iii*) *कार्यकारी तथा प्रशासनिक सेवा*—प्रशासनिक और सामान्य मामलों को निपटाने तथा सदस्यों और कर्मचारियों को वेतन, भत्तों के भुगतान तथा अन्य सुविधाओं की देखभाल करने के लिए;

(*iv*) *ग्रन्थालय तथा संदर्भ, शोध, प्रलेखन और सूचना सेवा*—संसद सदस्यों को एक अद्यतन और सुसज्जित ग्रंथालय तथा कार्य कुशल शोध और सन्दर्भ सेवाओं को बनाये रखकर भारत और विदेशों के दिन-प्रतिदिन के घटनाक्रम से भली-भांति अवगत रखने तथा लोक सभा और राज्य सभा, दोनों सदनों के समक्ष आने वाले विधायी अध्युपायों और अन्य मामलों के बारे में संदर्भ सामग्री उपलब्ध कराने के लिए, जिससे सदस्य अपने-अपने सदनों के वाद-विवादों में प्रभावी ढंग से भाग लेने में समर्थ हो सकें;

(*v*) *शब्दांश: आशुलेखन, निजी सचिव और आशुलिपिक सेवा*—संसदीय कार्यवाही और समितियों की कार्यवाही के आशुलेखन तथा अधिकारियों के लिए आशुलिपिकीय सहायता की व्यवस्था करने के लिए;

(*vi*) *संसदीय भाषान्तरण सेवा*—लोक सभा तथा उसकी समितियों की कार्यवाही का साथ-साथ भाषान्तरण करने के उत्तरदायित्व के लिए;

(*vii*) *मुद्रण, प्रकाशन, लेखन सामग्री, बिक्री, भण्डार, वितरण और अभिलेखागार सेवा*—इसके कार्यों में (क) मुद्रण, रोटा मुद्रण और जिल्दसाजी कार्य; (ख) लेखन सामग्री तथा भण्डार, अभिलेख के रख-रखाव, और अभिलेखागार; (ग) बिक्री; और (घ) प्राप्ति तथा वितरण कार्य शामिल हैं;

(*viii*) *सम्पादन तथा अनुवाद सेवा*—वाद-विवाद के सम्पादन और वाद-विवाद के सारांश लेखन, वाद-विवाद, प्रतिवेदनों और संसदीय पत्रों के अनुवाद के लिए;

(*ix*) *सुरक्षा, द्वारपाल तथा सफाई सेवा*—संसद भवन के भीतर और बाहर सुरक्षा उपायों की देखभाल करने और परिसर का उचित रख-रखाव सुनिश्चित करने के लिए;

(*x*) *लिपिक, टंकक, रिकार्ड सार्टर और दफ्तरी सेवा*; और

(*xi*) *संदेशवाहक सेवा*—अन्य सभी सेवाओं के लिए आवश्यक सहायक कर्मचारियों के रूप में कार्य करने के लिए।

नए संगठनात्मक ढांचे को ध्यान में रखते हुए सचिवालय में अधिकांश पदों का नया पदनाम रखा गया। समिति की सिफारिश के अनुरूप पदों का प्रकार्यात्मक आधार पर नया पदनाम रखने के साथ-साथ कार्य के स्वरूप और महत्त्व, कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्व और दबाव को ध्यान में रखते हुए 1 दिसम्बर, 1974 से सभी पदों के वेतनमानों को पुनरीक्षित किया गया।[20]

1 जून, 1981 से लोक सभा सचिवालय में 'विधायी सेवा','वित्तीय समिति सेवा','कार्यकारी और प्रशासनिक सेवा', तथा 'मुद्रण, प्रकाशन, लेखन-सामग्री, विक्रय, भण्डार, वितरण और

20. *देखिए,* एस.एल. शकधर, "पार्लियामेंटरी स्टाफ इन इंडिया", *जरनल ऑफ पार्लियामेंटरी इन्फार्मेशन,* खण्ड XXII, सं. 3, जुलाई-सितम्बर, 1976 ।

अभिलेखागार सेवा' के एक भाग का विलय करके 'विधायी, वित्तीय समिति, कार्यकारी और प्रशासनिक सेवा', के नाम से ज्ञात एक एकीकृत सेवा बना दी गई और 'मुद्रण, प्रकाशन, लेखन-सामग्री, विक्रय, भण्डार, वितरण और अभिलेखागार सेवा' के शेष भाग का नया नाम 'मुद्रण और प्रकाशन सेवा' रखा गया।

वर्तमान में, लोक सभा सचिवालय में 10 सेवाएं हैं जिन्हें कार्यात्मक आधार पर व्यवस्थित किया गया है और जो सभा की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। प्रत्येक सेवा के कृत्य एक दूसरे के पूरक और अनुपूरक हैं और प्रत्येक सेवा की विशेष और भिन्न प्रकृति के कारण इनके अधिकारियों और कर्मचारियों की निर्बाध रूप से अदला-बदली नहीं की जा सकती। ये सेवाएं हैं: विधायी, वित्तीय समिति, कार्यकारी एवं प्रशासनिक सेवा; ग्रंथालय, संदर्भ, शोध, प्रलेखन और सूचना सेवा; शब्दश: प्रतिवेदन सेवा; निजी सचिव और आशुलिपिक सेवा; साथ-साथ भाषान्तरण सेवा; मुद्रण और प्रकाशन सेवा; संपादन और अनुवाद सेवा; संसद सुरक्षा सेवा[21]; लिपिकीय सेवा[22]; और संदेशवाहक सेवा इसके अतिरिक्त लोक सभा टेलीविजन सेवा संबंधी विभिन्न कार्यकलापों हेतु 'लोक सभा सैटेलाइट टीवी चैनल यूनिट बनाई गई है।

दोनों सचिवालयों में संयुक्त भर्ती

वेतन पुनरीक्षण और पुनर्गठन संबंधी संसदीय समिति की सिफारिशों के आधार पर वर्ष 1974 में यह निर्णय किया गया कि लोक सभा तथा राज्य सभा सचिवालयों में पदों की जिन सामान्य श्रेणियों के लिए सीधी भर्ती की व्यवस्था है, उनके लिए संयुक्त भर्ती परीक्षायें और साक्षात्कार करके तथा इसे पैनल बनाकर संयुक्त भर्ती की जाये जिनके आधार पर दोनों सचिवालयों में से किसी भी सचिवालय में नियुक्ति के प्रस्ताव भेजे जा सकें। विभिन्न संवर्गों और सेवाओं में पदों की संख्या का आकलन करने तथा सचिवालयों में विभिन्न श्रेणियों के लिए वेतनमानों और भत्तों का पुनरीक्षण करने के लिए सक्षम प्राधिकारी लोक सभा तथा राज्य सभा दोनों के महासचिवों का बोर्ड होगा जो वित्त मंत्रालय से परामर्श करने के बाद समय-समय पर सभापति/अध्यक्ष को, जैसा भी मामला हो, उपयुक्त सिफारिशें कर सकेगा।

राज्य सभा सचिवालय ने अपना अलग भर्ती प्रकोष्ठ सृजित किया है और संयुक्त भर्ती प्रकोष्ठ द्वारा राज्य सभा में विभिन्न पदों हेतु रिक्तियों की अन्तिम अधिसूचना 2009 में जारी की गई थी।

कर्मचारी कल्याण

सचिवालय का एक अधिकारी, अधिकारियों और कर्मचारियों के कल्याण संबंधी मामलों की देखभाल करता है। वह कर्मचारियों की कार्य-कुशलता और कल्याण में बेहतरी हेतु, उनकी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का तथा कार्यालय में ड्यूटी के दौरान अथवा निवास

---

21. 5 मई 2009 के आर एण्ड सी.एस. आदेश सं. पी.डी.ए.-1189/2009 द्वारा 'वाच एण्ड वार्ड, डोर कीपिंग एवं सफाई सेवा' का नाम बदलकर 'संसद सुरक्षा सेवा' कर दिया गया है।

22. 20 अप्रैल 2009 के आर एण्ड सी.एस. आदेश सं. पी.डी.ए. 1186/2009 द्वारा।

स्थानों पर उनके समक्ष आने वाली अन्य समस्याओं का समाधान करने में उनकी सहायता करता है।

लोक सभा सचिवालय का कार्यकरण

वर्ष 1929 के विधान सभा विभाग से लेकर आज के लोक सभा सचिवालय तक, विश्व के विशालतम लोकतंत्र की संसद को सेवाएं प्रदान करने संबंधी व्यवस्था ने नए आयाम ग्रहण किए हैं। वर्तमान लोक सभा सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों से संसद सदस्यों को अपने संसदीय कृत्यों के निर्वहन में उचित समय पर सहायता उपलब्ध कराकर उनकी बहुविध आवश्यकताओं को पूरा करने की अपेक्षा की जाती है। अधिकारियों और कर्मचारियों से सदन, अध्यक्ष तथा संसद सदस्यों की उद्देश्यपूर्ण, निष्पक्ष, और कुशल सेवा प्रदान करने की आशा की जाती है इसलिए इन्हें जो दायित्व सौंपे गए हैं, वे श्रमसाध्य हैं। विगत वर्षों में सचिवालय ने अपने दायित्वों का निर्वहन करने में असाधारण दक्षता दर्शाई है तथा कार्यकुशलता, ईमानदारी, निष्पक्षता और द्रुत गति से कार्य करने के लिए एक विशिष्ट प्रतिष्ठा अर्जित की है।[23]

सूचना का अधिकार अधिनियम का कार्यान्वयन

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 दिनांक 12 अक्तूबर, 2005 को लागू किया गया। प्रत्येक सरकारी प्राधिकारी[24] के कार्यकरण में पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व को बढ़ावा देने के उद्देश्य से इस अधिनियम में अन्य बातों के साथ-साथ सरकारी प्राधिकारियों के नियंत्रणाधीन सूचना तक जनता की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सूचना के अधिकार का व्यावहारिक विधान किया गया है। इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार लोक सभा सचिवालय द्वारा लोक सभा एवं लोक सभा सचिवालय से संबंधित सूचना जनता को उपलब्ध करायी जा रही है। इस अधिनियम को समुचित रूप से कार्यान्वित करने के उद्देश्य से दिनांक 14 नवंबर, 2005 को इस सचिवालय में सूचना प्रकोष्ठ का गठन किया गया। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 5 में दिये गये प्रावधानों के अनुसार इस सचिवालय में एक केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी (सी.पी.आई.ओ) तथा एक केन्द्रीय सहायक जन सूचना अधिकारी (सी.ए.पी.आई.ओ.) को नामोद्दिष्ट किया जाता है। सूचना प्रकोष्ठ इन अधिकारियों के कार्य में इनकी सहायता करता है। इस अधिनियम की धारा 19 के अनुसार केन्द्रीय जन सूचना अधिकारी से वरिष्ठ अधिकारी को अपीलीय प्राधिकारी के रूप में भी नियुक्त किया जाता है।

इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए लोक सभा सचिवालय सूचना का अधिकार (फीस एवं लागत का विनियमन) नियम, 2005 (2007 में यथा संशोधित) बनाये गये तथा सरकारी राजपत्र में अधिसूचित किये गये हैं। सूचना देने के लिए आवेदन की ग्राह्यता के लिए इस अधिनियम के उपबंधों तथा इन नियमों के अनुसार प्रकोष्ठ में नागरिकों से प्राप्त

---

23. *देखें* लोक सभा सचिवालय की कार्य प्रणाली—1 दिसंबर, 1988 को नई दिल्ली में आयोजित सेमिनार की कार्यवाही तथा लोक सभा में संदर्भ, 2 दिसंबर, 1988 लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1989 ।
24. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 ।

आवेदनों की प्रथम दृष्ट्या जांच की जाती है। उसके बाद आवेदक को दी जाने वाली सूचना प्रस्तुत करने के लिए उस आवेदन को संबंधित प्रभागों के अधिकारियों (निदेशक से निम्न स्तर का नहीं हो) को अग्रेषित किया जाता है। उस संबंधित प्रभाग के संयुक्त सचिव द्वारा विधिवत अनुमोदित सूचना के सूचना प्रकोष्ठ में प्राप्त होने के बाद इस उद्देश्य से उसकी जांच की जाती है कि आवेदक द्वारा अपने आवेदन में उठाये गये सभी मुद्दों पर सूचना दी गयी हो। आवेदन की प्राप्ति के 30 दिनों के अंदर आवेदक को सूचना दिया जाना अपेक्षित है।[25] आवेदक से लोक सभा सचिवालय द्वारा दिनांक 27 दिसंबर, 2005 को सूचना का अधिकार, अधिनियम, 2005 के तहत जारी फीस एवं लागत नियमावली सम्बंधी अधिसूचना तथा दिनांक 12 जून, 2007 को जारी फीस एवं लागत नियमावली में संशोधन सम्बंधी अधिसूचना में यथा निर्धारित 2 रुपये प्रति पृष्ठ की दर से 'सूचना फीस' का भुगतान करने का अनुरोध किया जाता है।

यदि आवेदन की प्रथम दृष्ट्या जांच में यह लगता है कि आवेदन का विषय इस सचिवालय से संबंधित नहीं है या आंशिक रूप से किसी अन्य मंत्रालय/विभाग से संबंधित है तो सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 6(3) के तहत आवेदन की एक प्रतिलिपि भारत सरकार के संबंधित मंत्रालय/विभाग को भेज दी जाती है तथा आवेदक को इसकी सूचना दी जाती है कि वह आगे की जानकारी के लिए उस मंत्रालय/विभाग से सम्पर्क करे।

सूचना प्रकोष्ठ आवेदकों द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 19(1) के तहत अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष की गयी अपीलों तथा उसके द्वारा सी.पी.आई.ओ. को भेजी गयी अपीलों से संबंधित कार्य भी देखता है। सी.पी.आई.ओ. के निर्णय के विरुद्ध आवेदक द्वारा 30 दिनों के अंदर की गयी प्रथम अपील पर सचिवालय के अपीलीय प्राधिकारी द्वारा सुनवायी की जाती है। इस अधिनियम की धारा 19(3) के अनुसार आवेदक द्वारा प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के निर्णय या आवेदक को निर्णय मिलने की वास्तविक तिथि के 90 दिनों के अंदर की गयी दूसरी अपील पर केन्द्रीय सूचना आयोग (सी.आई.सी.) द्वारा सुनवायी की जाती है। ऐसे मामलों में भी सी.आई.सी. द्वारा निर्धारित समय के अंदर सचिवालय की टिप्पणियां सी.आई.सी. को भेजी जाती हैं। इसके अतिरिक्त सुनवायी के लिए निर्धारित तिथि को संबंधित प्रभाग के अधिकारियों के साथ सूचना प्रकोष्ठ के अधिकारी सी.आई.सी. के समक्ष प्रस्तुत होते हैं।

हर वर्ष सूचना प्रकोष्ठ द्वारा लोक सभा सचिवालय के प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष की गयी अनेकों अपीलों तथा सी.आई.सी. में की गयी अपीलों के अतिरिक्त बड़ी संख्या में प्राप्त आवेदनों का निपटारा किया जाता है।

सूचना का अधिकार, 2005 की धारा 4 तथा कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, भारत सरकार द्वारा दिये गये दिशानिर्देशों (सूचना का अधिकार, 2005 की धारा 4 के तहत स्वतः प्रेरित घोषणा का कार्यान्वयन-दिनांक 15.04.2013 के दिशानिर्देशों का निर्गम) के अंतर्गत, लोक सभा सचिवालय से संबंधित विभिन्न विषयों और मुद्दों पर व्यापक जानकारी लोक सभा

25. *देखें* सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 7 ।

की वेबसाइट पर संबंधित शीर्षो/शाखाओं/प्रभागों/लिकों के तहत निरंतर अपलोड की जाती है और उसे अद्यतन किया जाता है, जो सभी के लिए उपलब्ध है। यह उस जानकारी के अतिरिक्त है, जो इस अधिनियम की अन्य धाराओं के तहत प्रसारित की जा रही है।

लोक सभा बजट

वित्तीय स्वायत्तता

संसद के सदस्यों तथा अधिकारियों के वेतन और भत्तों तथा उनकी सुख-सुविधा के संबंध में होने वाला व्यय भारत की संचित निधि में से किया जाता है। भारत सरकार के अन्य मंत्रालयों की तरह राज्य सभा तथा लोक सभा के संबंध में भी अलग-अलग अनुदानों की मांगें संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जाती हैं। संसद प्रत्येक वर्ष विनियोग अधिनियम के माध्यम से उस व्यय की मंजूरी देती है।

वस्तुत: वित्तीय स्वायत्तता विधायिका तथा इसके सचिवालय की स्वतंत्रता के महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। यह स्वायत्तता समय-समय पर कार्यपालिका के साथ निरंतर पत्राचार तथा परिपाटी और अध्यक्ष पीठ के निदेशों से हासिल की गयी है।

अप्रैल, 1964 में बजट सत्र के दौरान जब कुछ सदस्यों ने संसद के दोनों सदनों के व्यय का मामला उठाया तो लोक सभा अध्यक्ष सरदार हुकम सिंह ने निम्नलिखित अभिमत दिया:—

> "लोक सभा तथा राज्य सभा—दोनों संसदीय विभागों की मांगों पर इस सदन द्वारा चर्चा करना संभव नहीं है। ऐसा इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका जवाब देने के लिए कोई नहीं है........। मैंने यह निर्णय लिया है, यद्यपि इस वर्ष यह संभव नहीं है, कि मांगों को मेरे समक्ष प्रस्तुत किये जाने से पहले मैं एक समिति गठित करूंगा जिसमें लोक लेखा समिति के सभापति, प्राक्कलन समिति के सभापति तथा एक अन्य माननीय सदस्य, चाहे वह उपाध्यक्ष हो या कोई और, अर्थात् तीन सदस्य सम्मिलित होंगे और यह समिति लेखाओं की जाँच करेगी, संवीक्षा करेगी तथा उसके बाद उन्हें मेरे समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। मेरे द्वारा उन्हें प्रमाणित किये जाने के बाद उसकी कोई और जाँच नहीं होनी चाहिए।"[26]

तद्नुसार लोक सभा अध्यक्ष द्वारा लोक सभा बजट सम्बंधी समिति का गठन किया जाता है जिसके अध्यक्ष लोक सभा के उपाध्यक्ष होते हैं तथा प्राक्कलन समिति एवं लोक लेखा समिति के सभापति सदस्य होते हैं, इस प्रकार प्रत्येक वर्ष महासचिव द्वारा यथा अनुमोदित लोक सभा एवं इसके सचिवालय के प्रस्तावित बजट प्राक्कलनों को संवीक्षा एवं विचार के लिए समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। समिति द्वारा यथा अनुमोदित प्रस्तावित बजट प्राक्कलनों के साथ उस बैठक के कार्यकृत्त अध्यक्ष द्वारा उन पर विचार एवं उनका अनुमोदन करने के लिए उनके समक्ष रखे जाते हैं। तत्पश्चात् उन प्राक्कलनों को संघ के बजट में शामिल किये जाने हेतु वित्त मंत्रालय को भेजा जाता है।

राज्य सभा और लोक सभा तथा उनके सचिवालयों के बजट प्राक्कलन तैयार करने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से राज्य सभा और लोक सभा के सचिवालयों पर है। इन प्राक्कलनों को

---

26. *एल.एस. डिबेट्स*, 4.4.1964, कॉ. 9184-85 ।

संघ बजट में पृथक मांगों यथा 'राज्य सभा' और 'लोक सभा' के रूप में शामिल किया जाता है।

> वर्ष 1929-30 से पहले, विधानमण्डल, अर्थात् राज्य परिषद और विधान सभा के संबंध में एक ही मांग, अर्थात् 'विधायी निकाय' के अन्तर्गत प्रावधान किया जाता था। वर्ष 1930-31 में राज्य परिषद और विधान सभा के संबंध में अलग-अलग बजट प्राक्कलन बनाये गये और ये दो पृथक् मांगों अर्थात् 'राज्य परिषद' और 'विधान सभा तथा विधान सभा विभाग' के अन्तर्गत रखे गये। यह स्थिति 1947-48 के बजट तक जारी रही।
>
> स्वतंत्रता के बाद, जब नया बजट पेश किया गया और भारत की संविधान सभा ने दो हैसियतों से काम करना शुरू किया, अर्थात् वह संविधान बनाने वाली संस्था भी थी और विधायी निकाय भी, तो बजट में भारत की संविधान सभा (विधायी) और उसके विभाग के संबंध में पृथक प्रावधान किया गया। वर्ष 1948-49 और 1949-50 के लिये भी वैसा ही प्रावधान किया गया।
>
> वर्ष 1950 में जब संविधान लागू हुआ, तो अन्तःकालीन संसद बनी और उसके लिये वर्ष 1950-51 और 1951-52 के लिए प्रावधान एक अलग मांग 'संसद' के अन्तर्गत किया गया। वर्ष 1952 में आम चुनाव हुए और पहली संसद का सत्र मई, 1952 में बुलाया गया। वर्ष 1952-53 से 1955-56 तक राज्य परिषद (अब राज्य सभा) और हाउस ऑफ द पीपल (अब लोक सभा) के संबंध में प्रावधान केवल एक ही मांग अर्थात् 'संसद' के अन्तर्गत किया गया। वर्ष 1956-57 से राज्य सभा और लोक सभा के संबंध मे पृथक प्रावधान किये गये और उन्हें अनुदानों की मांगों में दो अलग-अलग मांगों, अर्थात् 'राज्य सभा' और 'लोक सभा' के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया।

लोक सभा और इसके सचिवालय के बजट प्राक्कलनों की जाँच वित्त मंत्रालय की किसी विभागीय समिति या संसद की किसी अन्य समिति द्वारा नहीं की जा सकती है। लोक सभा और लोक सभा सचिवालय के तहत विनियोगों के विभिन्न एककों पर होने वाला व्यय भारत की संचित निधि में से किया जाता है। भारत सरकार के अनेक मंत्रालयों की तरह राज्य सभा तथा लोक सभा के संबंध में भी अलग-अलग अनुदानों की मांगें संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखी जाती हैं। संसद विनियोग अधिनियम के माध्यम से उस व्यय की मंजूरी देती है संसद के दोनों सदनों तथा उनके सचिवालयों के बजट के संबंध में किसी कटौती प्रस्ताव या चर्चा की अनुमति सभा में नहीं दी जाती है।

यदि वित्त मंत्रालय को कोई सुझाव देना हो, तो वह अध्यक्ष को उसके विचार के लिए भेज देता है और मोटे तौर पर कहें तो बातचीत के बाद अन्तिम निर्णय लिया जाता है जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य हो[27] अध्यक्ष तथा वित्त मंत्रालय के बीच मतभेद[28] होने की स्थिति में, यद्यपि इसकी संभावना कम ही रहती है, सामान्यतः अध्यक्ष का निर्णय ही मान्य होता है,

27. कार्यालय आदेश भाग-I, सं. 1142 और 1143, दिनांक 26.10.2006 ।
28. अभी तक अध्यक्ष और वित्तमंत्री के बीच किसी भी मामले में कोई भी अनसुलझा मतभेद नहीं है।

क्योंकि यह फैसला करना उसका काम है कि लोक सभा तथा उसके सचिवालय के दायित्वों के कुशल निर्वहन के लिये क्या आवश्यक है।

लोक सभा के बजट प्राक्कलन मुख्य शीर्ष '2011' संसद के तहत तैयार किए जाते हैं और उन्हें इन चार लघु शीर्षों में विभाजित किया जाता है: 101—लोक सभा; 102—लोक सभा सचिवालय; 103—वेतन और लेखा कार्यालय, और 01.789—अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग। प्राक्कलन सचिवालय के समेकित वित्त एकक (आई.एफ.यू.) द्वारा बजट बनाने एवं कार्यान्वयन के सामान्य सिद्धांतों तथा दिशानिर्देशों को ध्यान[29] में रखकर संकलित किये जाते हैं।

इन प्राक्कलनों में जो व्यय सम्मिलित किया जाता है, उसमें से अधिकांश व्यय विभिन्न अधिनियमों तथा उनके अन्तर्गत बनाए गए नियमों और आदेशों द्वारा शासित होता है।[30] संसद भवन परिसर के रख-रखाव और उसमें कराए जा रहे विभिन्न निर्माण कार्य महानिदेशक, केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा संकलित किए जाते हैं और उन्हें शहरी विकास मंत्रालय को अपने विभाग की मांगों में सम्मिलित करने हेतु भेज दिया जाता है। सदस्यों के निवास स्थानों, यथा उन्हें ठीक-ठाक रखने और उनकी मरम्मत करने आदि के बारे में, व्यय का प्रावधान सीधे ही शहरी विकास मंत्रालय द्वारा किया जाता है।

वित्त मंत्रालय और शहरी विकास मंत्रालय द्वारा पूंजी बजट के उपबंधों को शहरी विकास मंत्रालय के बजट अनुदान से लोक सभा के बजट अनुदान को अंतरित किए जाने के निर्णय को लोक सभा बजट समिति द्वारा 20 नवम्बर, 2013 को हुई अपनी बैठक में अस्वीकार कर दिया गया था जिसमें वित्त सचिव और सचिव, (शहरी विकास) उपस्थित थे। शहरी विकास मंत्रालय को निर्देश दिया गया कि वह लोक सभा के पूंजी बजट को वर्तमान प्रक्रिया के अनुसार शहरी विकास मंत्रालय की अनुदान की विस्तृत मांग में ही रखे और लोक सभा की बजट समिति तथा अध्यक्ष की पूर्व अनुमति के बिना लोक सभा में विभिन्न पूंजी कार्यों हेतु बजट उपबंधों को अंतरित न करे। वित्त मंत्रालय और शहरी विकास मंत्रालय ने लोकसभा की बजट समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन, भत्ते और चिकित्सीय उपचार संबंधी प्रभार का वित्तीय प्रावधान लोक सभा के बजट में लघु शीर्ष 101-लोक सभा के अन्तर्गत प्रभारित मद के रूप

---

29. *देखिए* इस संबंध में प्रति वर्ष वित्त मंत्रालय द्वारा जारी अनुदेशों के साथ पठित कम्पाइलेशन ऑफ जनरल फाइनेंशियल रूल्स (बाइसवां संस्करण), 2007 का अध्याय-3 ।

30. ये हैं: संसद के अधिकारियों के वेतन और भत्ते अधिनियम, 1953; संसद सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन अधिनियम, 1954, यथा संशोधित; संसद सदस्य (विदेश यात्रा के लिए भत्ते) नियम, 1960; संसद के अधिकारी (यात्रा एवं दैनिक भत्ते) नियम, 1956; लोक सभा सचिवालय (भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1955; वेतन तथा भत्ते, छुट्टी, पेंशन आदि जैसे विभिन्न विषयों के संबंध में भर्ती और सेवा शर्तें आदेश और वित्तीय आदेश।

में किया जाता है।[31] इसी लघु शीर्ष में पृथक् उप-शीर्षों के अन्तर्गत पीठासीन अधिकारियों द्वारा वैवेकिक अनुदान; सदस्यों के वेतन, भत्ते, चिकित्सा व्यय पुनर्भुगतान आदि; सदस्यों को जारी किए गए नि:शुल्क रेल पासों के लिये रेलवे को भुगतान; तथा टेलीफोन सुविधाओं के लिए डाक और तार विभाग को भुगतान हेतु स्वीकृत मद के रूप में प्रावधान किया जाता है।

इसी लघु शीर्ष के अन्तर्गत मेजबान संगठनों/शीर्षस्थ मंत्रालयों द्वारा, संसदीय समितियों के अध्ययन दौरों के दौरान किए गए व्यय के पुनर्भुगतान के लिए भी प्रावधान किया जाता है तथा विदेश जाने वाले भारतीय संसदीय शिष्टमंडलों और भारत आने वाले विदेशी संसदीय शिष्टमंडलों का खर्च पूरा करने के लिए भी अलग-अलग उप-शीर्षों अर्थात् 'विदेश जाने वाले भारतीय संसदीय शिष्टमंडल' और 'भारत आने वाले विदेशी संसदीय शिष्टमंडल' के अन्तर्गत प्रावधान किया जाता है। संसदीय ग्रंथालय, वाद-विवादों का मुद्रण, सदस्यों के कार्यालय-व्यय, विभिन्न संसदीय सम्मेलनों और बैठकों में भाग लेने के लिए राज्यों से आने वाले प्रतिनिधियों और व्यक्तिगत हैसियत से भारत आने वाले विदेशी प्रतिष्ठित व्यक्तियों आदि के आतिथ्य संबंधी व्यय के भी प्रावधान लघु शीर्ष 101—लोक सभा के अन्तर्गत किए जाते हैं।

सचिवालय के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के वेतन और भत्तों का उपबंध लघु शीर्ष '102—लोक सभा सचिवालय' के अन्तर्गत किया जाता है। उसमें अलग-अलग उपशीर्ष होते हैं जैसे कि 'स्थापना का वेतन' और भत्ते, चिकित्सा उपचार, यात्रा व्यय, कार्यालय व्यय तथा अनुषंगी व्यय, आदि।

सचिवालय के ऐसे कर्मचारी जिनका सेवा काल के दौरान ही निधन हो जाता है के परिवार को अथवा ऐसे कर्मचारी या उसके परिवार के आश्रित सदस्य को, जिसका अत्यधिक आपात स्थितियों में इलाज किया जाता है, वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए अनुग्रह निधि[32] का प्रावधान लघु शीर्ष '102—लोक सभा सचिवालय' के अन्तर्गत किया जाता है।

सचिवालय से संबद्ध एक अलग लेखा कार्यालय अर्थात् 'वेतन और लेखा कार्यालय', है। इस कार्यालय का काम आन्तरिक लेखा परीक्षा करना, अदायगी का प्राधिकार देना तथा सचिवालय के विनियोग लेखे और भविष्य निधि लेखे रखना है। वेतन और लेखा कार्यालय के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के वेतन और भत्तों का उपबंध लोक सभा की मांग के अन्तर्गत एक अलग लघु शीर्ष '103—वेतन और लेखा कार्यालय, लोक सभा' के अन्तर्गत किया जाता है।

> "दिसंबर, 1952 से पहले सदस्यों के यात्रा और दैनिक भत्तों के बिलों की पूर्व लेखा-परीक्षा का कार्य महालेखाकार, केन्द्रीय राजस्व के कार्यालय के एक लेखा परीक्षा दल द्वारा किया जाता था। यह दल संसद के सत्र-काल के दौरान संसद भवन में बैठता था। अदायगी की पूर्व लेखा-परीक्षा की पद्धति समाप्त होने पर यह व्यवस्था समाप्त कर दी गई। इन बिलों की अदायगी पर आन्तरिक नियंत्रण रखने के उद्देश्य से फरवरी, 1953 में सचिवालय में एक भुगतान कार्यालय खोला गया। बाद में

---

31. अनुच्छेद 97 और अनुच्छेद 112(3)(ख) ।
32. लोक सभा सचिवालय (अनुग्रह निधि विनियम) नियम, 2001, 20 दिसम्बर 2005, तक यथा संशोधित।

अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन तथा भत्तों संबंधी बिलों की अदायगी तथा सचिवालय के आकस्मिक बिलों की अदायगी का काम भी इस कार्यालय को सौंप दिया गया।

लेखाओं और लेखा परीक्षा को अलग-अलग कर दिए जाने के साथ ही अक्तूबर, 1955 में 'वेतन और लेखा कार्यालय, लोक सभा' की स्थापना की गई। यह कार्यालय आन्तरिक लेखा परीक्षा करता है और सचिवालय के संबंध में सभी भुगतान करने के लिए जिम्मेदार है[33] और इस प्रयोजन के लिए निर्धारित संगत नियमों के अनुसार लगभग महालेखाकार, केन्द्रीय राजस्व के कार्यालय की भांति ही कार्य करता है।

अंतर-संसदीय संघ, जेनेवा और राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ, लंदन को वार्षिक अंशदानों के भुगतान के लिए उपबंध लघु शीर्ष '01.798-अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग' के अन्तर्गत किया जाता है।

एकीकृत वित्त एकक

वित्त पर निगरानी

लोक सभा तथा इसके सचिवालय की अनुदानों की माँगों को दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने तथा सचिवालय को दिए जाने के पश्चात् विनियोग की प्रत्येक इकाई के अंतर्गत हुए व्यय की सचिवालय द्वारा स्वतंत्र निगरानी की जाती है। कार्यपालिका को सचिवालय के वित्तीय प्रबंधन मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है तथा न ही स्वीकृत अनुदानों पर होने वाले किसी भी व्यय के संबंध में उनकी सहमति प्राप्त की जाती है।

बचत में से धन का पुनर्विनियोजन उन विनियोजन इकाइयों की ओर किया जाता है जहां कमी पाई जाती है। जबकि पुनर्विनियोजन के सिद्धांतों का बहुत ईमानदारी से पालन किया जाता है, प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार वित्त मंत्रालय से स्वीकृति लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। लोक लेखा समिति द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार किसी वित्त वर्ष के दौरान पुनर्विनियोजन का कोई भी आदेश जिसके प्रभाव से किसी उप-शीर्ष या मानक मद शीर्ष के अन्तर्गत बजट प्रावधान में वृद्धि बजट अनुमान के 25 प्रतिशत से अधिक या एक करोड़ रुपये जो भी अधिक हों, की सूचना वित्त वर्ष की अनुपूरक माँगों के अंतिम वर्ग के साथ संसद में रखे जाने हेतु वित्त मंत्रालय को दी जाती है। इसी प्रकार से लोक सभा की अनुदानों के तहत यदि कोई बचत हो तो वे सामान्य तौर पर प्रत्येक वर्ष मार्च में महासचिव, लोक सभा की अनुमति से वित्त मंत्रालय को लौटा दी जाती हैं।

सरकार द्वारा तथा भारत सरकार के मंत्रालयों तथा विभागों को जारी वित्तीय नियम एवं आदेश स्वत: ही लोक सभा तथा इसके सचिवालय पर लागू नहीं होते हैं। सदन तथा इसके सचिवालय की आवश्यकताओं के अनुसार वित्तीय समायोजन लोक सभा अध्यक्ष करता है।

---

33. अनुदेशात्मक आदेश सं. 702, 18.11.1955 ।

निधियों के आहरण की विधि

आबंटित विनियोजन इकाइयों में से निधि का आहरण, आहरण एवं संवितरण अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित बिल 'वेतन और लेखा अधिकारी, लोक सभा' को प्रस्तुत करके किया जाता है जो कि मान्यता प्राप्त बैंक (वर्तमान में) भारतीय स्टेट बैंक पर, लेखा परीक्षा के बाद, चैक आहरित करता है। इसमें बैंकर की नियुक्ति वित्त मंत्रालय द्वारा रिजर्व बैंक की सहमति से की जाती है।

आदेशों का अधिप्रमाणीकरण

विभिन्न आदेश तथा वित्तीय संस्वीकृतियां अध्यक्ष, लोक सभा के नाम से जारी की जाती हैं। अध्यक्ष, लोक सभा की वित्तीय शक्तियां महासचिव तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों को प्रत्यायोजित की गई हैं।[34]

जवाबदेही और लेखापरीक्षा

चूंकि व्यय के लिए लोक सभा सचिवालय द्वारा निधि का आहरण भारतीय संचित निधि से किया जाता है, इसके लेखाओं की लेखापरीक्षा भी नियंत्रक महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य, शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 के प्रावधानों के तहत की जाती हैं। दोनों सचिवालयों की सुविधा के लिए भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक द्वारा, एक विशेष मामले के रूप में, दोनों सचिवालयों के लेखाओं की समवर्ती लेखापरीक्षा हेतु संसदीय सौध में एक लेखापरीक्षा दल को स्थाई रूप से रखा गया है। इसके अतिरिक्त नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कार्यालय से एक विशेष लेखापरीक्षा दल भी वर्ष में एक या दो वर्ष में एक बार सचिवालय के लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है। लेखापरीक्षा परम्परा के अनुसार, मसौदा लेखा परीक्षा जाँच रिपोर्ट, जिसमें लोक सभा तथा इसके सचिवालय से संबंधित आपत्तियाँ तथा मसौदा पैरा, यदि कोई हो, अन्तर्विष्ट होते हैं को नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की अंतिम रिपोर्ट में सम्मिलित करने से पूर्व लोक सभा सचिवालय के समक्ष उसका मत लेने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

एकीकृत वित्त एकक (आई.एफ.यू.) तथा वित्तीय सलाहकार

दिनांक 26 अक्तूबर, 2006 के कार्यालय आदेश भाग-1, सं. 1142 तथा 1143 के तहत महासचिव, लोक सभा को वित्तीय मामलों में सहायता प्रदान करने के लिए एक वित्तीय सलाहकार की अध्यक्षता में एक एकीकृत वित्त एकक की स्थापना की गई है।[35] इस एकीकृत वित्त एकक के मुख्य कार्य इस प्रकार से हैं : (i) लोक सभा तथा इसके सचिवालय के बजट अनुमानों को तैयार करने से संबंधित सभी कार्य; (ii) महासचिव, लोक सभा को सचिवालय के व्यय से संबंधित योजना, कार्यक्रम, बजट तैयार करना तथा उसकी निगरानी संबंधी कार्य

---

34. कार्यालय आदेश, भाग-एक, 825, 20.5.1988 ।
35. कार्यालय आदेश, भाग-एक, संख्या 1142 तथा 1143, 26.10.2006 द्वारा ।

करने में सहायता प्रदान करना; (iii) सभी अनुभागों द्वारा योजनाओं, परियोजनाओं के निरूपण में शुरुआती स्तर से ही सहायता करना; (iv) बजट तैयार करने, परियोजनाओं की जाँच तथा बजट उपरान्त सतर्कता में सहायता करना जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि व्यय में न तो बहुत अधिक कमी रही है तथा न ही अपूर्व अनुमानित व्यय अधिकता हुई है जिसके लिए मूल बजट में अथवा संशोधित अनुमानों में कोई प्रावधान नहीं किए गए हैं; (v) बजट में दी योजनाओं की प्रगति पर निगरानी रखना तथा सचिवालय का निष्पादन बजट तैयार करना; तथा (vi) वित्त मामलों में सलाह देना।

कम्प्यूटरीकरण और कम्प्यूटर प्रबंधन

बीसवीं शताब्दी में सूचना संचयन, प्रसंस्करण उसके वितरण संबंधी प्रौद्योगिकी में अत्यधिक प्रगति हुई है आज इन सब तकनीकों ने मिलकर देश, क्षेत्र या विश्व के दूर-दराज के इलाकों में रहने वाले लोगों को एक-दूसरे के नजदीक आने, एक साथ मिलकर सोचने तथा समान लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए साथ काम करने को सुविधाजनक बनाया है। संचार एवं संगणन, आधुनिक सूचना तकनीकी (आई.टी.) की गति एवं क्षेत्र में वृद्धि ने मानव संवाद, संचार एवं विचार के मूल स्वरूप में व्यापक परिवर्तन कर दिया है। इससे आर्थिक वृद्धि एवं विकास को बढ़ावा मिला है तथा विश्वभर में सूचना एवं ज्ञान के बेहतर प्रसार में मदद मिली है।

ग्रन्थालय में कम्प्यूटरीकरण

भारत ने अपने संसदीय नेताओं को उनके कार्यों को और अधिक प्रभावी ढंग से करने में मदद करने हेतु सूचना तकनीकी में विकास करने में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। संसदीय ग्रंथालय द्वारा आटोमेशन हेतु एक छोटी सी शुरुआत दिसंबर 1985 में की गई जब राष्ट्रीय सूचना केन्द्र (एन.आई.सी.) की मदद से ग्रंथालय सूचना प्रणाली (पी.ए.आर.एल.आई.एस.) को चलाने हेतु एक कम्प्यूटर केन्द्र की स्थापना की गई थी। आने वाले वर्षों में कम्प्यूटरीकरण कार्यक्रम ने बड़ी मात्रा में प्रगति की तथा आज सम्पूर्ण लोक सभा सचिवालय का आटोमेशन कर दिया गया है।

संसदीय ग्रंथालय सूचना प्रणाली को ग्रंथालय के द्वारा संसद सदस्यों के लाभ हेतु बनाया गया था। शुरुआत में यह संसदीय सूचना संबंधी संदर्भ अनुक्रमणिका का डाटाबेस था। बाद में, इन सभी डाटाबेसों को वेब फार्मेट में पूरा टेक्सट डाटाबेस बनाकर भारतीय संसद के होम पेज पर उपलब्ध कराया गया।

ग्रंथालय संबंधी डाटाबेस

संसद ग्रंथालय के सभी कार्यकलापों का देश में ही विकसित साफ्टवेयर पैकेज 'लिबसिस' की सहायता से आटोमेशन किया गया है। लिबसिस ग्रंथालय में काम आने वाला एक एकीकृत साफ्टवेयर पैकेज है जिसमें ग्रंथालय के लगभग सभी कार्य शामिल हैं। संसद सदस्य और अन्य ग्रंथालय प्रयोक्ता इन्टरनेट अथवा इन्ट्रानेट पर भी ग्रंथालय डाटाबेस का उपयोग कर सकते हैं।

(*i*) *ग्रंथालय पुस्तक-सूची* : इस पुस्तक-सूची में, जिसे 'ऑन-लाइन' देखा जा सकता है, 1992 से संसद ग्रंथालय में शामिल किए गए दस्तावेजों (पुस्तकों/रिपोर्टों) के बारे में जानकारी दी गई है। पुस्तकों को लेखक, शीर्षक, वर्गीकरण संख्या, विषय, शीर्षक के संकेत शब्द, संदर्भ के संकेत शब्द के॰डब्ल्यू॰आई॰सी॰ से और इन सबके 'बुलियन लॉजिक' द्वारा एक साथ प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है।

(*ii*) *क्रम नियंत्रण* : संसद ग्रंथालय में संसदीय ज्ञानपीठ में प्राप्त पत्रिकाओं और नियत पत्रिकाओं हेतु तैयार स्थानीय रूप से विकसित यूनिक्स आधारित सॉफ्टवेयर प्रबंधन मॉडयूल का 1989 से उपयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, शीर्षक, विषय और संकेत शब्द संबंधी सूचना आवधिक आधार पर और प्रकाशक तथा विक्रेता के नाम के माध्यम से तैयार की जा सकती है। प्राप्त न हुई पत्रिकाओं और अंशदान बकाया रिपोर्ट भी तैयार की जा सकती हैं।

(*iii*) *संसदीय प्रलेखन* : यह समसामयिक जागरूकता सेवा (सीएएस) वर्ष 1998 से चयनित पुस्तकों, रिपोर्टो पत्रिकाओं और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के समाचारपत्रों की विषय सूची प्रदान कर रही है। विषय, अवधि, लेखक और प्रकाशन आदि जैसे विभिन्न मानदंडों के आधार पर जानकारी प्राप्त की जा सकती है। एक पाक्षिक प्रकाशन जो कि संसद सदस्यों को महत्वपूर्ण लेखों की विषय सूची और पाठों के बारे में तत्काल अद्यतन जानकारी उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करता है भी आनलाइन उपलब्ध है

(*iv*) *प्रेस कतरन सेवा* : इस सेवा में सम्पादकीय, लेखों, महत्वपूर्ण समाचारों और विभिन्न विषयों पर अन्य जानकारी की प्रेस कतरनों का सुवर्गीकृत संग्रह रखा जाता है। ये कतरनें देश में प्रकाशित हिन्दी और अंग्रेजी के प्रमुख समाचार पत्रों से ली जाती हैं। इस सेवा को डाटा स्कैन साफ्टवेयर की सहायता से कम्प्यूटरीकृत किया गया है। विभिन्न अंग्रेजी समाचार पत्रों में से भिन्न-भिन्न विषयों पर चयनित प्रेस कतरनों को स्कैन किया जाता है और उन्हें 'संकेत शब्द' दिए जाते हैं। सूचना को विषय-वार, तारीख-वार और समाचार पत्र-वार प्राप्त किया जा सकता है। लोकल एरिया नेटवर्क (एल.ए.एन.) पर प्रेस कतरनों को ऑनलाइन प्राप्त किया जा सकता है।

बेबसाइट: (एक) भारतीय संसद (http:parliamentofindia.nic.in)

तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने 15 मार्च, 1996 को संसद के होम पेज का उद्घाटन किया था। अल्पावधि में राज्य सभा और लोक सभा में सृजित सूचना दर्शाने वाला होम पेज भारत के संविधान, भारतीय संसद के इतिहास, संसद की पद्धति और प्रक्रिया संसद सदस्यों के जीवनवृत्त और उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और संविधान सभा की कार्यवाही के बारे में सूचना का महत्वपूर्ण स्त्रोत और संदर्भ-साधन बन गया है। वर्तमान में राज्य सभा और लोक सभा के सचिवालयों की अपनी अलग-अलग वेबसाइट है जो भारतीय संसद के होम पेज पर संबद्ध है।

लोक सभा की वेबसाइट पर उपलब्ध डाटा का प्रयोक्ता अनुकूल ड्रॉप डाउन मेन्यू के जरिए यौक्तिक रूप से प्रबंधन किया जाता है। पृष्ठों पर सूचना का मार्गनिर्देश उपलब्ध है। वर्तमान समय में लोक सभा के होम पेज (http://loksabha.nic.in) पर उपलब्ध संसदीय सूचना के मुख्य घटक इस प्रकार हैं:–

(*i*) *सदस्य* : इस विंडो पर वर्तमान सांसदों, महिला सांसदों की वर्णानुक्रमिक, राज्य–वार, दल–वार, सूचियां मनोनीत सांसदों, रिक्तियों की सूचना और उनके पते और ई–मेल पते दिए गए हैं। लोक सभा सदस्यों की समेकित सूची (पहली से पंद्रहवीं लोक सभा), लोक सभा में उनका कार्य–काल, दसवीं लोक सभा से अब तक सांसदों के जीवनवृत्त, के बारे में भी सूचना दी गई है। वर्तमान लोक सभा के प्रत्येक सदस्य के होम पेज में उनके जीवनवृत्त, संसद की कार्यवाही, प्रश्नों, विधेयकों, प्रस्तावों में उनकी भागीदारी और उनके क्षेत्रों में किए गए विकास कार्यों के बारे में जानकारी और डाटाबेस में विभिन्न सर्च विकल्प भी उपलब्ध हैं।

(*ii*) *सभा का कार्य* : इसमें सभा के कार्य, बुलेटिन, प्रत्येक सत्र के दौरान किए गए कार्य के सारांश के बारे में सूचना उपलब्ध है।

(*iii*) *प्रश्न* : इसमें मई, 1998 से अब तक प्रश्न–सूची, प्रश्नों के पाठ, और उनके उत्तर, जुलाई, 2000 से पूरक प्रश्न और उनके उत्तर और 1985 से 1999 तक के प्रश्नों के चयन हेतु अनुक्रमणिका के बारे में सूचना उपलब्ध है।

(*iv*) *वाद–विवाद* : इसमें मार्च, 1998 से प्रतिदिन के वाद–विवाद का पाठ, वाद–विवाद का सारांश, विभिन्न सर्च–सुविधा के साथ वाद–विवाद संबंधी जानकारी उपलब्ध है। 1985 से नवम्बर, 1993 तक चुनिंदा संसदीय कार्यवाहियों (प्रश्नों के अतिरिक्त) के विषय इंडैक्स संदर्भ का डाटाबेस भी उपलब्ध है।

(*v*) *विधायन* : इस विंडो में लोक सभा और राज्य सभा में प्रस्तुत सरकारी/गैर–सरकारी विधेयकों की विषय–वस्तु और उनका पाठ उपलब्ध है। शीर्षक–वार, सदस्य/मंत्रालय–वार, श्रेणी–वार सर्च–विकल्प और लोक सभा तथा समितियों में लंबित विधेयकों की सूची भी उपलब्ध है। सरकारी विधेयकों पर वाद–विवाद, अनुमति की तिथि अनुमति प्राप्त विधेयकों की राजपत्र में अधिसूचना से संबंधित जानकारी भी उपलब्ध है।

(*vi*) *सभा पटल पर रखे गऐ पत्र*: इस डाटाबेस में फरवरी, 2013 से सभा पटल पर रखें गए पत्र का शीर्षक और पाठ उपलब्ध होता है। डाटाबेस में विषय मंत्रालय और सत्रवार सर्च उपलब्ध है।

(*vii*) *समितियां*: इसके अंतर्गत सभी वित्तीय, विभागों से संबद्ध, स्थायी, तदर्थ और जाँच समितियों की सदस्यता, सभापति चयनित विषय, बैठकें निर्धारित कार्यक्रम, अध्ययन दौरे और प्रतिवेदनों से संबंधित जानकारी होती है।

(*viii*) *संसदीय मंच* : प्रत्येक संसदीय मंच का अपना पेज होता है जिसमें उस मंच के गठन तथा बैठकों की जानकारी होती है।

(*ix*) *सचिवालय*: इसके अन्तर्गत संगठन चार्ट, अनुदानों की मांगें-लोक सभा, सचिवालय के कर्मचारियों पर लागू नियम, भर्ती और सेवा शर्तें कल्याण संबंधी आदेश तथा बिक्री हेतु प्रकाशन उपलब्ध हैं।

(*x*) *भर्ती* : इसके अंतर्गत विभिन्न पदों हेतु रिक्तियों की अधिसूचना संबंधी विज्ञापन विज्ञापनों; परीक्षा की तिथि की जानकारी देने वाली सूचनाएं, परिणामों की घोषणा आदि; पिछले प्रश्न-पत्र परिणाम संबंधी जानकारी के अतिरिक्त भर्ती प्रकोष्ठ द्वारा आयोजित भर्ती परीक्षा परीक्षाओं में बैठने वाले आवेदकों द्वारा बार-बार माँगी जाने वाली अन्य महत्वपूर्ण जानकारी होती है।

इसके अतिरिक्त, होम पेज पर संसद के बारे में सामान्य जानकारी, लोक सभा में प्रक्रिया और कार्य-संचालन के नियम, अध्यक्ष द्वारा निदेश, मंत्रालयों में संसदीय कार्य का संचालन करने के लिए भारत सरकार का मैनुअल, और प्रशासन तथा संसद सदस्यों के बीच सरकारी काम-काज के बारे में सरकारी अनुदेशों तथा ससंद भवन और संसदीय ज्ञानपीठ के आभासी दौरे के बारे में जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त, होम पेज पर चौबीसों घंटे लोक सभा टीवी वेबकास्ट, इसकी समय-सारणी महत्वपूर्ण विडियो क्लिपिंग्स भी दी गई हैं। लोक सभा की कार्यवाही भी वेब पर डाली जाती है। भारत में विधायी निकायों; राज्य सभा भारत के राष्ट्रपति; प्रधानमंत्री; मंत्रालयों, राज्यों और संघ शासित प्रदेशों; निर्वाचन आयोग; भारतीय न्यायालयों, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय और अन्य संसदों, अन्तर-संसदीय संघ, राष्ट्रमंडल संसदीय संघ के लिंक भी होम पेज पर दिए गए हैं।

(दो) लोकसभा अध्यक्ष वेबसाइट (http://speakerloksabha,nic.in)

लोक सभा अध्यक्ष के लिए एक अलग होम पेज विकसित किया गया है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, वर्तमान अध्यक्ष का जीवन वृत्त, उनकी राजनैतिक एवं व्यक्तिगत उपलब्धियां, अध्यक्ष की भूमिका, उन्होंने जिन समारोहों में भाग लिया उसके भाषण और प्रेस विज्ञप्तियां उपलब्ध होती हैं। इसके अलावा, इस सेक्शन में सभी भूतपूर्व अध्यक्षों के जीवनवृत्त और उनके कार्यकाल भी उपलब्ध हैं।

(तीन) संसदीय ग्रथांलय वेबसाइट (http://164.100.47.134/plibrary home.htm)

संसदीय ग्रंथालय की एक 'पृथक वेबसाइट तैयार की गई है जिसमें संसद ग्रंथालय के संग्रह में आए नए प्रकाशनों, ई-संसाधनों, ग्रंथालय नियमों तथा संसद सदस्यों को उपलब्ध विभिन्न सेवाओं संबंधी जानकारी उपलब्ध है।

(चार) संसदीय संग्रहालय वेबसाइट (http://parliamentmuseum.org)

संसदीय संग्रहालय की नई इन्टरएक्टिव वेबसाइट लोक सभा अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी ने 19 दिसम्बर, 2007 को प्रारम्भ की थी। इस वेबसाइट में भारतीय इतिहास के 2500 वर्षों की लोकतांत्रिक विरासत की कहानी दी गई है। यह कहानी सांउड-लाइट-वीडियो एनिमेशन, लार्ज-स्क्रीन इंटरएक्टिव कम्प्यूटर मल्टी-मीडिया, एनिमैट्रोनिक्स, मल्टीस्क्रीन पैनोरमिक प्रोजेक्शन के प्रभावी प्रदर्शन के साथ वाक-थ्रू पीरियड सैटिंग्स की मदद से दर्शाई गई है। दर्शक भारतीय

लोकतंत्र पर प्रश्नोत्तरी में भाग ले सकते हैं। पिक्चर-पोस्ट कार्ड और ई-मेल का चयन करके इस वेबसाइट के माध्यम से सुझाव दे सकते हैं अथवा संग्रहालय से प्रश्न पूछ सकते हैं।

(पांच) संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो (बीपीएसटी) वेबसाइट (http://bpst.nic.in)

इस वेबसाइट पर संसद सदस्यों, राज्य विधानमंडलों, मीडिया कर्मियों और लोकतंत्र से जुड़े विभिन्न पक्षकारों के लिए प्रबोधन कार्यक्रम, व्याख्यान, पाठ्यक्रम, विचार गोष्ठियों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, अध्ययन दौरों आदि से संबंधित जानकारी उपलब्ध होती है। इसमें अखिल भारतीय सेवा के परिक्षार्थियों के लिए आयोजित परिबोधन पाठ्यक्रमों, संसदीय और सरकारी अधिकारियों आदि के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि से संबंधित जानकारी भी उपलब्ध होती है।

संसद सदस्यों को कम्प्यूटर सुविधाएं

सांसदों द्वारा अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन प्रभावी तरीके से करने के लिए उनकी तात्कालिक और सारगर्भित सूचना आवश्यकताओं को देखते हुए उनके आवास/कार्यस्थलों पर कम्प्यूटर सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। इससे सदस्यों को विभिन्न कार्यकलापों के संबंध में तुरंत और अद्यतन जानकारी प्राप्त करने; उन्हें अपना कार्यालयी कामकाज व्यवस्थित करने, इलेक्ट्रॉनिक मेल प्राप्त करने/भेजने; अपने आवास/कार्यस्थल पर ही विधायी और संसदीय मामलों इत्यादि के बारे में तुरन्त और सही जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलती है।

किसी सदस्य के लिए कम्प्यूटर उपकरण की खरीद के संबंध में उसकी वित्तीय हकदारी संबंधी मामलों और कम्प्यूटर से संबंधित अन्य मुद्दों पर लोक सभा अध्यक्ष को परामर्श देने के लिए लोक सभा के सदस्यों के लिए कम्प्यूटर के प्रावधान संबंधी एक दस सदस्यीय समिति है। यह समिति संसद भवन परिसर में विधायी दलों के कार्यालयों तथा लोक सभा के संयुक्त सचिव और उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों को कम्प्यूटर उपलब्ध कराने संबंधी मामलों पर भी विचार करती है।

कम्प्यूटर उपकरण (लोक सभा सदस्य) नियम, 2009 के अंतर्गत इस योजना के तहत किसी सदस्य द्वारा उसके लोक सभा सदस्य रहने की अवधि के दौरान कम्प्यूटर उपकरण और सॉफ्टवेयर खरीदने हेतु वित्तीय सीमा तीन लाख रुपए होगी, चाहे वह सदस्य आम चुनाव/उपचुनाव द्वारा चुना गया हो अथवा राष्ट्रपति के द्वारा संविधान के अनुच्छेद 331 के अंतर्गत नामनिर्दिष्ट किया गया हो।[36] नियमों के अंतर्गत, सदस्य अपनी इच्छानुसार किसी भी विक्रेता से कम्प्यूटर उपकरण खरीदने हेतु स्वतंत्र हैं बशर्ते कि वह उत्पादों की प्रामाणिकता, वारंटी कवर और खरीद उपरांत सेवा की गुणवत्ता से संतुष्ट हो तथा प्रतिपूर्ति हेतु भुगतान का सबूत (मूल) कम्प्यूटर (हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर) प्रबंधन शाखा को सौंपे। कम्प्यूटर (हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर) प्रबंधन शाखा द्वारा सत्यापन किए जाने के पश्चात् संसद सदस्य वेतन और भत्ते शाखा द्वारा सदस्यों को इसकी प्रतिपूर्ति की जाएगी। वैकल्पिक रूप से कोई सदस्य खरीदे जाने

36. 13.01.2015 से अन्त: स्थापित।

वाले कम्प्यूटर उपकरण हेतु प्रोफार्मा इनवॉइस भी ला सकता है। कम्प्यूटर (हार्डवेयर और साफ्टवेयर) प्रबंधन शाखा द्वारा सत्यापन कर दिए जाने पर संसद सदस्य वेतन और भत्ते शाखा द्वारा विक्रेता को सीधे भुगतान कर दिया जाता है किसी सदस्य की सदस्यता समाप्त होने पर खरीदे गए कम्प्यूटर उपकरण सदस्य के पास ही रहते हैं। तथापि प्रचलित आय कर नियमों के अनुसार सदस्यों को उसका ह्रासित मूल्य (डेप्रिशिएटिड कॉस्ट) जमा कराना होता है।

कम्प्यूटरों की खरीद और रख-रखाव

कम्प्यूटर (हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर) प्रबंधन शाखा नये कम्प्यूटर/लैपटॉप की खरीद, पुराने कम्प्यूटरों की बदली और विद्यमान हार्डवेयर का रख-रखाव करती है। सूचना के कुशल प्रबंधन हेतु लोक सभा सचिवालय में बड़ी संख्या में कम्प्यूटर और सर्वर लगाए गए हैं। लोक सभा सचिवालय के विभिन्न कार्यालयों/शाखाओं की कम्प्यूटर हार्डवेयर आवश्यकताओं पर विचार और सिफारिश करने के लिए सचिवालय में अधिकारियों की एक समिति का गठन किया गया है। इस समिति की सिफारिशों पर आवश्यक कम्प्यूटर हार्डवेयर की खरीद की जाती है। कम्प्यूटर से संबंधित तकनीकी मुद्दों पर सुझाव देने के लिए सचिवालय के अधिकारियों, एनआईसी और सूचना प्रौद्योगिकी में दक्ष अन्य संगठनों को मिलाकर एक स्थाई तकनीकी सलाहकार समिति (एसटीएसी) का भी गठन किया गया है।

कम्प्यूटरों के रख-रखाव का कार्य संसद परिसर में कम्प्यूटर (हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर) शाखा के पूर्ण निगरानी के अंतर्गत स्थापित एक हेल्प डेस्क द्वारा किया जाता है। प्राप्त शिकायतों को दूर करने के लिए इंजीनियरों का एक दल नियुक्त किया गया है। हेल्प डेस्क उपयोगकर्त्ताओं की सदस्यता हेतु तकनीकी सहयोग भी प्रदान करती है।

सदस्य पूछताछ कक्ष

संसदीय ज्ञानपीठ के कक्ष संख्या जी-127 में सदस्य पूछताछ कक्ष की स्थापना की गई है जहां सदस्यों को वित्तीय हकदारी योजना से संबंधित सहायता प्रदान की जाती है।

प्रशिक्षण

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो द्वारा सदस्यों और उनके व्यक्तिगत कर्मचारियों के साथ-साथ सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए भी संसदीय कार्य के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न उपयोगों के बारे में उनके ज्ञान अर्जन और उनके कौशल के विकास के लिए नियमित रूप से कम्प्यूटर जागरूकता/प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इन कार्यक्रमों का आयोजन संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की विशेषज्ञ एजेंसियों यथा राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र (एनआईसी), राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक और सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (एनआईईएलआईटी) आदि द्वारा किया जाता है। संसद ग्रंथालय भवन में एक अत्याधुनिक कम्प्यूटर लैब स्थित है जहां संसद सदस्यों, उनके कर्मचारियों और संसद के अधिकारियों को प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

इन्ट्रानेट और ई-मेल सेवाएं

आंकड़ों को साझा करने और इंटरनेट तक पहुंच की सुविधा को सुगम बनाने के लिए एक तीव्र गति वाले लोकल एरिया नेटवर्क (एल.ए.एन.) को बिछाया गया है। संसद परिसर स्थित तीन भवनों और स्वागत कार्यालयों के स्वतंत्र लोकल एरिया नेटवर्क को उच्च गति की कनेक्टिविटी उपलब्ध कराने के लिए ऑप्टिकल फाइबर केबल द्वारा एक-दूसरे से जोड़ा गया है। इंटरनेट सहित बाहर की दुनिया के साथ कम्प्यूटर कनेक्टिविटी राष्ट्रीय सूचना विज्ञान के नेटवर्क, जिसे निकनेट कहा जाता है द्वारा उपलब्ध करायी जा रही है। भारतीय संसद दो लाइनों के माध्यम से प्रत्येक 1 जी.बी.पी.एस. ऑप्टिकल फाइबर लिंक के द्वारा राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र (मुख्यालय), सीजीओ काम्पलेक्स के साथ निकनेट से जुड़ी हुई है। निकनेट सभी केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों, राज्यों की राजधानियों, महत्वपूर्ण संस्थाओं और देश के सभी जिला मुख्यालयों को जोड़ता है। संसद परिसर में लगभग 3000 लोकल एरिया नेटवर्क नोड्स है। सभी उपयोगकर्ताओं को इंटरनेट तक पहुंच उपलब्ध करायी गई है। सभी संसद सदस्यों और संसद के सचिवालयों के उपयोगकर्त्ताओं/अनुभागों को (sansad.nic.in) के डोमेन नाम सहित एक समर्पित ई-मेल संदेश सेवा भी उपलब्ध कराई गई है।

अध्याय 41

संसद सम्पदा

संसद भवन सम्पदा क्षेत्र के अन्तर्गत संसद भवन (पार्लियामेंट हाउस), स्वागत कार्यालय भवन, संसदीय ज्ञानपीठ (संसद ग्रंथालय भवन), संसदीय सौध (पार्लियामेंट हाउस अनेक्सी) और इनके चारों तरफ फैले प्रांगण आते हैं, जहां फव्वारों से युक्त तालाब बने हुए हैं। सम्पूर्ण संसद भवन सम्पदा क्षेत्र शोभाकारी लाल बलुआ पत्थर की दीवार अथवा लौह ग्रिलों, जिसमें लौह द्वार बने हैं, से घिरा है।

संसद भवन (पार्लियामेंट हाउस)

संसद भवन, नई दिल्ली स्थित अत्यंत भव्य इमारतों में से एक है। इस विशाल वृत्ताकार भवन का व्यास 560 फुट (लगभग 171 मीटर) और परिधि 1/3 मील (0.54 किलोमीटर) है।[1] भवन परिसर लगभग छह एकड़ (24281.16 वर्ग मीटर) क्षेत्र में फैला हुआ है। भवन के बारह द्वार हैं जिनमें संसद मार्ग (पार्लियामेंट स्ट्रीट) की ओर खुलने वाला द्वार संख्या-1 मुख्य द्वार है। प्रथम तल पर खुले बरामदे के किनारे-किनारे क्रीम रंग के बलुआ पत्थर के 144 स्तम्भ हैं। प्रत्येक स्तम्भ की ऊंचाई 27 फुट (8.2 मीटर) है।

संसद भवन (जिसे मूलत: कौंसिल हाउस के नाम से जाना जाता था) का शिलान्यास 12 फरवरी, 1921 को ड्यूक ऑफ कनाट (1850-1942) ने किया था। संसद भवन का उद्घाटन 18 जनवरी, 1927 को भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड इरविन (1881-1959) द्वारा किया गया था।[2] केन्द्रीय विधान सभा (सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव एसेम्बली) का तीसरा सत्र

---

1. इस भवन का निर्माण दो प्रसिद्ध वास्तुविदों—सर एडविन लुट्यन (1869-1944) और सर हरबर्ट बेकर (1842-1946) की देखरेख में हुआ।

   इस भवन के निर्माण में छ: वर्ष लगे और इस पर 83 लाख (8.3 मिलियन) रुपये खर्च हुए।

2. उद्घाटन समारोह में गवर्नर जनरल ने सम्राट का संदेश पढ़कर सुनाया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया था:

   यह वृत्त (वृत्ताकार भवन) एकता से भी बड़ी चीज का प्रतीक है। प्राचीन काल से यह स्थायित्व का प्रतीक भी रहा है और कवि ने प्रकाश के गोले में शाश्वतता का सच्चा प्रतीक देखा है। मैं ईश्वर से कामना करता हूं कि हम और हमारे बाद आने वाले, इन दोनों कल्पनाओं को साकार होते देखें। चूंकि हमारी दृष्टि अथवा विचार इस कौंसिल हाउस पर टिके हैं, अत: हम प्रार्थना करते हैं कि यह शताब्दियों तक बना रहे और सभी मतभेदों के होते हुए भी प्रत्येक जाति और वर्ग तथा धर्म वाले व्यक्ति यहां एकता के सूत्र में बंधकर यह महान संकल्प लें कि वे भारत का इस प्रकार नेतृत्व करेंगे जिससे कि उसका भविष्य उज्ज्वल हो।

19 जनवरी, 1927 को संसद भवन में हुआ जब निर्वाचित सदस्यों ने शपथ ग्रहण की।[3] अध्यक्ष का निर्वाचन 20 जनवरी, 1927 को हुआ[4] और गवर्नर जनरल ने विधानमण्डल के समक्ष अपना अभिभाषण 24 जनवरी, 1927 को दिया।[5]

भवन का केन्द्रीय तथा प्रमुख भाग उसका विशाल वृत्ताकार केन्द्रीय कक्ष है। इसके तीन ओर दो कक्ष अर्थात् लोक सभा चैम्बर, राज्य सभा चैम्बर तथा लाइब्रेरी हाल (ग्रंथालय कक्ष-जिसे पहले प्रिंसेज चैम्बर कहा जाता था) है। इनके बीच खुले उद्यान-प्रांगण हैं। इन कक्षों के चारों ओर तीन मंजिला वृत्ताकार भवन हैं, जिसमें राज्य सभा के सभापति और उपसभापति, लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, मंत्रियों, संसदीय समितियों के सभापतियों, अध्यक्ष द्वारा मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों/ग्रुपों के कार्यालय, संबंधित सभाओं के कार्य से संबद्ध लोक सभा और राज्य सभा सचिवालयों की शाखाएं और साथ ही संसदीय कार्य मंत्रालय के कार्यालय भी हैं। इसके अलावा प्रथम तल पर स्थित तीन समिति कक्षों का उपयोग संसदीय समितियों की बैठकों के लिए किया जाता है। उसी तल पर स्थित तीन अन्य कक्षों का उपयोग प्रेस संवाददाताओं द्वारा किया जाता है जो दोनों सभाओं की प्रेस दीर्घा में आते हैं।

भवन के वास्तु-शिल्प पर भारतीय परंपरा की गहरी छाप है[6] जिसकी झलक भवन के अन्दर और बाहर के फव्वारों की बनावट, भारतीय प्रतीकों के प्रयोग, दीवारों और खिड़कियों पर बने हुए छज्जों और पत्थर तथा संगमरमर दोनों पर बनाई गई नाना प्रकार की जालियों में मिलती हैं।

---

3. इससे पहले केन्द्रीय विधान सभा (सेन्ट्रल एसेम्बली) और विधान परिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल) (जो कि केन्द्रीय सभा से पहले थी) की बैठक पुरानी दिल्ली स्थित सचिवालय के चैम्बर (कक्ष) में हुआ करती थी।
   दिल्ली में *विधान परिषद* की पहली बैठक उसी चैम्बर में 27 जनवरी, 1913 को हुई थी। उस तिथि से पहले विधान परिषद की बैठकें गवर्नमेंट हाउस, कलकत्ता (अब कोलकाता) में होती थी, क्योंकि 1911 तक कलकत्ता भारत की राजधानी हुआ करती थी।
4. इस तिथि को विट्ठलभाई जे. पटेल पुनः अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। वह पहले भारतीय थे, जो 24 अगस्त, 1925 को अध्यक्ष निर्वाचित हुए। यह निर्वाचन पुरानी दिल्ली स्थित सचिवालय के चैम्बर में हुआ-निर्वाचन के बारे में अधिक जानकारी के लिए *देखिए* पीछे अध्याय 7-'लोक सभा के पीठासीन अधिकारी'।
5. 24 जनवरी, 1927 को नए विधान सभा भवन में विधान सभा के सदस्यों को संबोधित करते हुए गवर्नर जनरल ने कहा :
   "आज आप दिल्ली में अपने नए और स्थायी भवन में पहली बार मिल रहे हैं। इस सभा भवन में, विधान सभा की गरिमा और महत्व के अनुरूप परिवेश की व्यवस्था की गई है और मैं इसके वास्तुशिल्पी की सराहना करते हुए यह कामना करता हूं कि इस सभा भवन में जिस ढंग से भारत के सार्वजनिक कार्य संचालित किए जाएंगे उसमें इसकी संकल्पना प्रतिबिम्बित होगी।" *एल.ए. डिबेट्स*, 24.1.1927, पृ. 43 ।
6. इस भवन का निर्माण भारतीय श्रमिकों द्वारा स्वदेशी सामग्री से किया गया। स्तम्भों के लिए काला संगमरमर गया से लाया गया और पुस्तकालय के हाल की दीवारों पर लगा सफेद और लाइनदार संगमरमर मकराना से लाया गया। दरवाजों के लिए प्रयुक्त इमारती लकड़ी (सागवान

भवन के भूमि तल पर गलियारे की बाहरी दीवार पर भित्तिचित्र हैं, जिनमें भारतीय इतिहास की प्राचीन काल की घटनाओं तथा पड़ोसी देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक संबंधों को दर्शाया गया है। संसद भवन के चारों ओर बड़े-बड़े उद्यान हैं जहां फूल, फव्वारे और तालाब हैं। संसद भवन एक बहुत ही खूबसूरत पत्थर की दीवार से घिरा हुआ है, जिसमें लौह द्वार हैं।

राष्ट्रीय नेताओं[7] की प्रतिमाएं और आवक्ष प्रतिमाएं विभिन्न स्थानों जैसे-उद्यानों, प्रांगणों और लोक सभा कक्ष की लॉबियों के प्रवेश-कक्ष में स्थापित की गई हैं।

संसद भवन सम्पदा की रखवाली दिन-रात की जाती है। संसद भवन के छह प्रवेश मार्ग हैं और उन पर बने लौह द्वारों पर संतरी तैनात किए गए हैं। संसद भवन में केवल पासधारकों को ही प्रवेश मिलता है। संसद भवन में बिना रोक-टोक प्रवेश के लिए सदस्यों और कार से आने वाले अन्य अधिकृत व्यक्तियों को कार लेबल जारी किए जाते हैं।

केन्द्रीय कक्ष

केन्द्रीय कक्ष, जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है, भवन के मध्य में स्थित है। इस कक्ष की परिधि से समान दूरी पर छोटे-छोटे रास्ते निकलते हैं जो इसे लोक सभा कक्ष, राज्य सभा कक्ष और ग्रंथालय कक्ष से जोड़ते हैं।

यह विस्तृत कक्ष गोलाकार है। इसके गुम्बद का व्यास 98 फुट (29.9 मीटर) और ऊंचाई 118 फुट (36 मीटर) है। कहा जाता है कि यह गुम्बद विश्व के भव्यतम गुम्बदों में से एक है। कक्ष में जो रास्ता इसे राज्य सभा कक्ष से जोड़ता है, उसके सामने एक मंच है, जो कक्ष का स्थायी अंग है। केन्द्रीय कक्ष में वाष्पनिक प्रशीतन संयंत्र (इवैपोरेटिव टाइप आफ कूलिंग प्लांट) क्रियाशील है।

और अन्य प्रकार की लकड़ी) असम और बर्मा से तथा काले रंग की लकड़ी (शीशम) दक्षिण भारत से लायी गई।

7. पंडित मोतीलाल नेहरू, गोपाल कृष्ण गोखले, डा. बी.आर. अम्बेडकर, महात्मा गांधी, वाई.बी. चव्हाण, पंडित जवाहरलाल नेहरू आवक्ष प्रतिमा और प्रतिमा, पंडित गोविन्द बल्लभ पंत, बाबू जगजीवन राम, पंडित रविशंकर शुक्ल, श्रीमती इन्दिरा गांधी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, के. कामराज, प्रो. एन.जी. रंगा, सरदार वल्लभभाई पटेल, बिरसा मुंडा, आंध्र केसरी तंगुतूरी प्रकाशम, लोकनायक जय प्रकाश नारायण, एस. सत्यमूर्ति, सी.एन. अन्नादुरई, लोकप्रिय गोपीनाथ बरदोलोई, पी. मुथुरामलिंगा थेवर, छत्रपति शिवाजी महाराज, महात्मा बसावेश्वरा, महाराजा रणजीत सिंह, शहीद हेमू कलानी, चौ. देवी लाल, महात्मा ज्योतिराव फुले, एस.ए. डांगे, ए.के. गोपालन, आचार्य नरेन्द्र देव, शहीद दुर्गा मल्ला, गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविंदो, स्वामी विवेकानंद, देवी अहिल्याबाई होल्कर, इन्द्रजीत गुप्त, विट्ठलभाई पटेल, भूपेश गुप्त, एम.जी. रामचन्द्रन, मुरासोली मारन, महाराणा प्रताप, कित्तुर रानी चेन्नम्मा, शहीद भगत सिंह, राजार्षि छत्रपति साहू महाराज। संसद भवन के द्वार संख्या 5 के सामने के बरामदे में लाल बलुआ पत्थर पर चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रतीकात्मक कांस्य प्रतिमा भी लगाई गई है।

मंच के ऊपर मेहराब में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का चित्र लगा है।[8] कक्ष की दीवारों के साथ लगे लकड़ी के पैनलों पर 23 सुनहरे किनारे वाले आयताकार चित्र फ्रेम हैं, जिनमें राष्ट्रीय नेताओं के चित्र लगे हैं।[9] मंच के दायीं तथा बायीं ओर की मेहराबों पर सी. राजगोपालाचारी और सुभाष चन्द्र बोस के चित्र लगे हैं जो केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रीय नेताओं की चित्र-शाला को सुशोभित करते हैं। कक्ष की दीवारों पर बारह सुनहरे प्रतीक चिह्न भी हैं जो अविभाजित भारत के बारह रजवाड़ों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

केन्द्रीय कक्ष ऐतिहासिक महत्व का स्थान है। संविधान इसी कक्ष में तैयार किया गया था और 14 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को ब्रिटेन से भारत को सत्ता का हस्तांतरण भी इसी कक्ष में ही हुआ था।

> आरंभ में इस कक्ष का प्रयोग केन्द्रीय विधान-मण्डल पुस्तकालय के वाचनालय के रूप में किया जाता था। 1946 में इसे नया रूप देकर इसमें संविधान सभा[10] की बैठकों के लिए सीटों की व्यवस्था की गई। गद्देदार बेंचों पर 396 सीटों का प्रावधान किया गया और इनके आगे डेस्कों पर फोल्डिंग फ्लैप लगाए गए। ये अभी तक यथावत हैं।

वर्तमान में, केन्द्रीय कक्ष का प्रयोग एक साथ समवेत संसद की दोनों सभाओं के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण के लिए और दोनों सभाओं की संयुक्त बैठकें आयोजित करने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त, नवनिर्वाचित राष्ट्रपति अपने पद की शपथ भी केन्द्रीय कक्ष में ही लेते हैं। विदेशी गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा संसद सदस्यों को संबोधन तथा अन्य महत्वपूर्ण संसदीय समारोह भी इसी कक्ष में होते हैं। संसद सत्र के दौरान केन्द्रीय कक्ष दोनों सभाओं के सदस्यों हेतु अनौपचारिक वार्तालाप और परस्पर मिलन का स्थल होता है।

केन्द्रीय कक्ष का प्रयोग किसी ऐसे प्रयोजन या समारोह के लिए नहीं किया जा सकता, जिसका आयोजन संसद सदस्यों द्वारा अथवा संसद सदस्यों की ओर से सरकारी तौर पर न किया गया हो।

केन्द्रीय कक्ष के साथ लगने वाले गलियारों को उपयुक्त रूप से बंद तथा सुसज्जित करके उनमें छह लॉबियां बनाई गई हैं। इनका उपयोग विभिन्न प्रयोजनों के लिए किया जाता है। अर्थात्— एक लॉबी संसद सदस्यों के सामान्य उपयोग के लिए है। दूसरी लॉबी केवल

---

8. चित्र को सर ओसवाल बिरले द्वारा तैयार किया गया तथा भारत की संविधान सभा के सदस्य ए.पी.पट्टानी द्वारा राष्ट्र को भेंट किया गया।
9. सुनहरे फ्रेमों में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, देशबंधु चितरंजन दास, दादाभाई नौरोजी, श्रीमती इंदिरा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, पंडित मदनमोहन मालवीय, मौलाना अबुल कलाम आजाद, पंडित मोतीलाल नेहरू, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, श्रीमती सरोजिनी नायडू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, डॉ. राममनोहर लोहिया, मोरारजी देसाई, राजीव गांधी, चौधरी चरण सिंह, लाल बहादुर शास्त्री और स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर के चित्र लगे हैं।
10. संविधान सभा की बैठक 9 दिसंबर, 1946 से 24 जनवरी, 1950 तक यहीं हुई थी।

महिला संसद सदस्यों के उपयोग हेतु है और एक अन्य लॉबी सभापतियों के पैनल के उपयोग हेतु है। एक अन्य लॉबी में संसद सदस्यों की सुविधा के लिए प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र है।

प्रथम तल पर छह दीर्घाएं हैं। जब दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक होती है, तो मंच के दायीं ओर की दो दीर्घाओं में संवाददाता बैठते हैं; मंच के सामने की दीर्घा विशिष्ट दर्शकों के लिए रखी जाती है और अन्य तीन दीर्घाओं में दोनों सभाओं के सदस्यों के अतिथि बैठते हैं।[11] दीर्घाओं में स्प्लिट एयर कंडीशनर्स लगे हैं।

सभाओं की बैठकों के दौरान केन्द्रीय कक्ष में केवल संसद सदस्य और कुछ विशिष्ट संवाददाता जा सकते हैं। भूतपूर्व संसद सदस्यों, राज्यों के मंत्रियों, राज्यपालों तथा राज्यविधान मण्डलों के सदस्यों को उनके विशेष अनुरोध पर सदस्यों से मिलने के लिए केन्द्रीय कक्ष में जाने की अनुमति दी जा सकती है।

लोक सभा कक्ष

लोक सभा कक्ष घोड़े की नाल के आकार का है जिसका फर्शी क्षेत्रफल लगभग 446 वर्ग मीटर है।[12] अध्यक्ष का आसन जिसके ऊपर छत्र है, कक्ष के उपर्युक्त आकार (घोड़े की नाल) के दो सिरों को मिलाने वाली सीधी रेखा के मध्य में एक ऊंचे मंच पर स्थित है। अध्यक्ष के आसन के ठीक ऊपर एक काष्ठ पट पर संस्कृत का आदर्श वाक्य "धर्मचक्र प्रवर्तनाय" लिखा हुआ है, जो निऑन बत्ती से आलोकित रहता है। अंग्रेजी में अनूदित इस आदर्श वाक्य का अर्थ है 'धर्म अर्थात् सच्चे रास्ते का अनुसरण हो' - और विधानमंडल का आदर्श वास्तव में यही होना चाहिए।

सभा कक्ष में अध्यक्ष के आसन के समक्ष निम्नस्थ स्थल पर महासचिव का आसन है। उनके लिए एक अलग मेज और कुर्सी इस ढंग से लगाई गई है कि वह संपूर्ण सभा को देख सकते हैं। उनके सामने एक बड़ी मेज लगी है जो सभा पटल है जिस पर मत्रियों और सभा के अधिकारियों द्वारा औपचारिक रूप से पत्र रखे जाते हैं। यहां सचिवालय के अन्य अधिकारी बैठते हैं जो महासचिव की उनके कार्य में सहायता करते हैं तथा अधिकारी रिपोर्टर भी यहीं बैठते हैं।

लगभग 4800 वर्ग फुट (लगभग 466 वर्ग मीटर) फर्शी क्षेत्रफल वाले इस सभा कक्ष में 550 सदस्यों के बैठने की व्यवस्था है। प्रत्येक सदस्य के लिए एक स्थान निश्चित है और उसे सभा की प्रत्येक बैठक में उसी स्थान पर बैठना होता है।

---

11. एक साथ समवेत दोनों सभाओं के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय केन्द्रीय कक्ष में की जाने वाली व्यवस्था के लिए *देखिए* पीछे अध्याय 10—*सदन में राष्ट्रपति का अभिभाषण, संदेश तथा संसूचनाएं।*

12. संसद भवन के वास्तुविदों में से एक सर हरबर्ट बेकर द्वारा मूल रूप से डिजाइन किया गया।

प्रारंभ में लोक सभा कक्ष का फर्शी क्षेत्रफल 3688 वर्ग फुट (लगभग 342.63 वर्ग मीटर) था और उसमें 148 सदस्यों के बैठने की व्यवस्था थी। 1947 में जब संविधान सभा ने केन्द्रीय विधानमण्डल के कृत्य संभाले, तो बहुत अधिक संख्या में सदस्यों के बैठने की व्यवस्था करने के उद्देश्य से इसे नया रूप दिया गया। संविधान के अंतर्गत प्रथम साधारण निर्वाचन के बाद बनी अंतरिम संसद और नई लोक सभा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए और अधिक सदस्यों के बैठने की व्यवस्था की गई। 1955 में 461 स्थानों की कुल संख्या को बढ़ाकर 499 कर दिया गया।

संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 में सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 522 करने का उपबंध किया गया था। साथ ही, सभा कक्ष में स्वचालित मतदान अंकन प्रणाली की व्यवस्था करने का भी प्रस्ताव किया गया था, जिसके लिए प्रत्येक सदस्य के लिए एक स्थान आरक्षित करना आवश्यक था। प्रत्येक सदस्य के लिए अलग स्थान की व्यवस्था करने और भविष्य में सदस्यों की सख्ंया में कोई वृद्धि होने पर पर्याप्त व्यवस्था करने के लिए सभा कक्ष में स्थानों की संख्या बढ़ाकर 530 स्थिर स्थान कर दी गई।

वर्ष 1973 में, संविधान (इकतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1973 के अंतर्गत सभा की अधिकतम सदस्य संख्या पुनः बढ़ाकर 547 कर दी गई। तदनुसार, सभा कक्ष में भी स्थानों की संख्या बढ़ाकर 550 कर दी गई।

वर्तमान में सभा कक्ष में सीटों को छह ब्लॉकों में विभक्त किया गया है तथा प्रत्येक ब्लॉक में ग्यारह कतारें हैं। अध्यक्ष के आसन के दायीं ओर ब्लॉक 1 तथा बायीं ओर ब्लॉक सं. 6 में प्रत्येक में 97 सीटें हैं। शेष चार ब्लॉकों में प्रत्येक में 89 सीटें हैं। प्रत्येक सदस्य के लिए एक सीट आबंटित है। अध्यक्ष के दायीं ओर के स्थानों पर सत्तारूढ़ दल के सदस्य बैठते हैं और अध्यक्ष की बायीं ओर विपक्षी सदस्य तथा राजनीतिक दलों से असंबद्ध सदस्य बैठते हैं। जिन दलों/ग्रुपों की सदस्य संख्या सबसे अधिक होती है, उनके सदस्य सबसे बायीं ओर बैठते हैं और उससे कम सदस्य संख्या वाले दल/ग्रुप के सदस्य उनके बायीं ओर बैठते हैं।[13]

अध्यक्ष के आसन के ठीक सामने जहां लकड़ी की कलापूर्ण नक्काशी है, केन्द्रीय विधान सभा के पहले निर्वाचित अध्यक्ष, विट्ठलभाई जे. पटेल का एकमात्र चित्र लगा हुआ है, विट्ठलभाई जे. पटेल ने उच्च संसदीय परंपराओं को स्थापित करने तथा अध्यक्षपीठ की

---

13. पांचवीं लोक सभा (1971-76) तक अध्यक्ष के आसन के दायीं ओर से प्रारंभ होने वाले पहले तीन ब्लाकों और चौथे ब्लाक के एक भाग में सत्तारूढ़ दल के सदस्य बैठते थे। अध्यक्ष के आसन के बायीं ओर पांचवें और छठे ब्लाकों तथा चौथे ब्लाक के शेष भाग में विपक्ष के सदस्य तथा वे सदस्य बैठते थे, जो किसी भी दल से संबद्ध नहीं होते थे।

संपूर्ण स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखने के लिए निर्भीकतापूर्वक संघर्ष किया।[14] सभा कक्ष में चारों ओर लकड़ी के 35 सुनहरे डिजाइन हैं जो अविभाजित भारत के विभिन्न प्रांतों के डोमिनियन और कतिपय अन्य उपनिवेशों को दर्शाते हैं।

सभा कक्ष पूर्णतया वातानुकूलित है[15] और उसमें आधुनिक ध्वनि प्रणाली की व्यवस्था है।[16]

लोक सभा कक्ष में आधुनिक स्वचालित मतदान अंकन और ध्वनि प्रवर्धन प्रणाली की व्यवस्था की गई है। कुछ ऊंचे चुने हुए स्थानों पर सशक्त माइक्रोफोन लगाये गए हैं ताकि आवाज स्पष्ट सुनाई दे। प्रत्येक सीट पर एक सुग्राही माइक्रोफोन लगाया गया है जिसे आवश्यकतानुसार ऊंचा अथवा नीचा किया जा सकता है और बैंच के पीछे छिपा हुआ लाउडस्पीकर लगा हुआ है। दीर्घाओं में छोटे लाउडस्पीकर भी लगाए गए हैं।

---

14. नियमानुसार सभा कक्ष में कोई भी चित्र लगाने की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु एक उल्लेखनीय अपवाद अध्यक्ष पटेल के बारे में किया गया और 8 मार्च 1948 को सभा कक्ष में उनके चित्र का अनावरण किया गया—*सी.ए. (लेजि.) डिबेट्स*, 8.3.1948, कॉ. 1740-43 ।

15. जब संसद भवन का निर्माण हुआ था तो ग्रीष्मकाल में भारत सरकार के कार्य शिमला से होते थे इसलिए सभा कक्ष को ठंडा रखने की कोई व्यवस्था नही की गई थी। सभा कक्ष को ठंडा रखने हेतु 1941 में वाष्पनिक प्रशीतन संयंत्र (इवैपोरेटिव टाइप ऑफ कूलिंग प्लाण्ट) लगाया गया। 1952 में इसके स्थान पर रेफ्रीजरेशन वाला वातानुकूलित संयंत्र लगाया गया, जो गर्मियों में कक्ष को ठंडा रखता था और सर्दियों में गर्म। चूंकि रेफ्रीजरेशन किस्म का वातानुकूलन संयंत्र संतोषजनक कार्य नहीं कर रहा था, इसलिए लोक सभा/राज्य सभा कक्षों, लॉबी, ग्रंथालय कक्ष जैसे स्थानों और अन्य महत्वपूर्ण स्थानों के लिए 2,82,71,886/- रुपये की अनुमानित लागत से वर्ष 1987 में भूखंड सं. 118 पर केन्द्रीय वातानुकूलन संयंत्र लगाया गया। वर्ष 2002-03 में 285 लाख रुपये की लागत से केन्द्रीय वातानुकूलन संयंत्र उपकरण को बदला गया।

16. वर्तमान ध्वनि प्रणाली 1994 में लगाई गई। प्रारंभ में सभा कक्ष में कोई लाउडस्पीकर नहीं था और 1929 में सदस्यों ने यह शिकायत की थी कि आवाज ठीक से सुनाई नहीं देती, किन्तु 1943 में जाकर अध्यक्षपीठ के लिए एक माइक्रोफोन सभा कक्ष में लगाया गया जो दो लाउडस्पीकरों से जुड़ा हुआ था। 1951 तक संपूर्ण कक्ष में 35 माइक्रोफोन थे, परन्तु सदस्यों को उठकर निकटतम माइक्रोफोन तक जाना पड़ता था और परिचारकों को सभा कक्ष में इधर से उधर जाना पड़ता था ताकि वे माइक्रोफोन को ऊंचा या नीचा कर सकें। इस व्यवस्था में एक और त्रुटि थी और वह यह थी कि बोलने वाले सदस्य की आवाज सभा कक्ष के सभी भागों में स्पष्ट रूप से सुनाई नहीं पड़ती थी। अतः 1951 में पुरानी प्रणाली को बदलकर नई व्यवस्था की गई।

    निर्माण तथा आवास मंत्रालय द्वारा गठित उच्चाधिकार प्राप्त समिति की सिफारिशों पर लोक सभा कक्ष में अब समेकित माइक्रोफोन प्रबंध प्रणाली, साथ-साथ भाषांतरण व्यवस्था और स्वचालित मतदान अंकन प्रणाली सहित ध्वनि प्रणाली की व्यवस्था कर दी गई है।

कार्यवाही का प्रसारण

अधिक जानकारी के लिए देखिए आगे अध्याय 45–संसदीय कार्यवाही का टेलीविजन और रेडियो पर प्रसारण।

सभा कक्ष के उपयोग पर निर्बन्धन

सभा की बैठकों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिए सभा कक्ष के उपयोग की अनुमति नहीं दी जाती।[17] यद्यपि आजकल संसदीय कार्यवाही का टेलीविजन प्रसारण किया जा रहा है, किन्तु जिस समय सभा का सत्र चल रहा हो, उस समय सभा कक्ष की फिल्म नहीं बनाई जा सकती, फोटो नहीं लिए जा सकते और न ही कोई स्केच बनाए जा सकते हैं। तथापि, कुछ परिस्थितियों में खाली कक्ष के कुछ भागों की तस्वीरें खीचने की अनुमति दी गई है।[18]

---

17. नियम 384—1921 में केन्द्रीय विधान सभा के प्रारंभ से ही यह परिपाटी चली आ रही है और इसका कभी उल्लंघन नहीं हुआ है। प्रथम अध्यक्ष सर फ्रेड्रिक व्हाइट ने कहा था कि सभा कक्ष पवित्र स्थल है। - *एल.ए. डिबेट्स* 23.9.1921, पृ. 975; पी. डिबेट्स (II), 24.5.1951, कॉ. 9305 ।

18. सितम्बर, 1953 में जब एक फिल्म कंपनी ने एक फिल्म के निर्माण के संबंध में खाली सभा कक्ष की तस्वीरें खींचने की अनुमति मांगी तो अध्यक्ष मावलंकर ने यह निदेश दिया कि फिल्म निर्माता खाली सभा कक्ष के संगत भागों की तस्वीरें ही खींच सकते हैं परन्तु उन्हें विभिन्न भागों की उतनी तस्वीरें नहीं खींचनी चाहिए जिससे कि पूरे कक्ष का चित्र बन जाए और जिसमें सभा कक्ष को जाने वाले विभिन्न रास्ते भी दिखाए गए हों। न ही उन्हें सभा कक्ष की हूबहू प्रतिकृति तैयार करनी चाहिए जिसमें कि उसके सभी दरवाजे और उसकी ओर जाने वाले सारे रास्ते दिखाए गए हों और न उन्हें ऐसी प्रतिकृति पर्दे पर दिखानी चाहिए।

    अगस्त, 1954 में भारत सरकार के फिल्म प्रभाग ने अध्यक्ष से अनुरोध किया कि ऐसे समय जब सभा का सत्र न चल रहा हो उसे प्रेस गैलरी की तस्वीरें खींचने की अनुमति दी जाए, जिसमें संवाददाताओं को नोट करते हुए दिखाया गया हो। उसे खाली प्रेस गैलरी की तस्वीरें खींचने की अनुमति केवल तभी दी गई जब सभा का सत्र न चल रहा हो, लेकिन ऐसे चित्र खींचने की अनुमति नहीं दी गई जिनमें संवाददाताओं को प्रेस गैलरी में बैठकर नोट लेते दिखाया गया हो। सभा कक्ष को जाने वाले रास्ते या प्रेस गैलरी से सभा कक्ष के चित्र खींचने की अनुमति नहीं दी गई।

    कई अवसरों पर सरकारी प्रचार माध्यमों को लोक सभा के सभा कक्ष (खाली) की फोटो निम्नलिखित शर्तों पर खींचने की अनुमति दी गई: (क) चित्र शैक्षिक प्रयोजनों हेतु लिए जाएं न कि वाणिज्यिक उपयोग हेतु; (ख) फिल्म की पटकथा के अनुरूप चित्र लिए गए हों; और (ग) चित्र किसी व्यक्ति की उपस्थिति के बिना लिए गए हों।

    इसका अनुसरण करते हुए सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने 1976 में भारत की संसद पर एक वृत्त-चित्र तैयार करने के लिए तथा 'संविधान निर्माण' पर फिल्म बनाने के सिलसिले में लोक सभा के सभा कक्ष (खाली) को फिल्माने का कार्य किया। तदुपरांत, निम्नलिखित

कोई भी कागज, दस्तावेज, आदि जिसका पूर्ण रूप से या सरकारी रूप से सभा के कार्य से कोई संबंध न हो, अध्यक्ष के आदेश के बिना सभा कक्ष में परिचालित नहीं किया जा सकता।[19]

सभा की बैठक समाप्त होने के बाद सशस्त्र पुलिस को छोड़कर, जोकि सभा कक्ष को अपनी अभिरक्षा में ले लेती है, किसी को भी सभा कक्ष (जिसमें भीतरी लॉबी भी शामिल है) में रहने की अनुमति नहीं दी जाती।[20]

सदस्यों की लॉबी

सभा कक्ष के बाहर दो अर्ध-गोलाकार गलियारे हैं जो सभा कक्ष की दीवार के साथ संलग्न हैं। भीतरी गलियारे को भीतरी लॉबी कहा जाता है और बाहर के गलियारे को बाहरी लॉबी। भीतरी लॉबी सदस्यों के लिए है, परन्तु जिन संवाददाताओं के पास लॉबी के पास हों, वे उसमें प्रवेश कर सकते हैं।

> पहली लोक सभा बनने के समय यह महसूस किया गया कि नई सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ जाने के कारण भीतरी लॉबी में स्थान कम पड़ता है। अतः 1955 में लॉबी के बाहर के खुले बरामदे को क्रांचित जालियां लगाकर बंद कर दिया गया और सह-लॉबी के रूप में उपयुक्त रूप से सुसज्जित किया गया। भीतरी लॉबी तथा इस सह-लॉबी के बीच फर्क करने के लिए इसका नाम बाहरी लॉबी रख दिया गया।

भीतरी लॉबी की दीवारों पर 1927 और उसके बाद के भूतपूर्व अध्यक्षों के चित्र और सभा के सदस्यों के ग्रुप फोटो लगे हैं। लॉबी में अन्य कोई चित्र लगाने की प्रथा नहीं रही है।[21]

भीतरी लॉबी में लकड़ी का एक रैक रखा है जिस पर विधेयकों की प्रतियां, संसदीय पत्र तथा संसद सदस्यों द्वारा दिए जाने वाले विभिन्न नोटिसों के फार्म इत्यादि रखे जाते हैं।

बाहरी लॉबी में सदस्यों के लिए लकड़ी के लॉकर हैं जिनमें वे अपने संसदीय पत्र आदि रख सकते हैं।

मामलों में भी लोक सभा के खाली सभा कक्ष की तस्वीरें लेने की अनुमति प्रदान की गई: (i)1987 में जवाहरलाल नेहरू पर एक वृत्त-चित्र तैयार करने हेतु; (ii) अप्रैल, 1988 में गोविन्द बल्लभ पंत पर एक टी.वी. फिल्म बनाने के लिए; (iii) जून, 1988 में आर्थिक कार्य विभाग को "मार्चिंग टूवर्ड्स दी गोल" नामक वृत्त-चित्र बनाने के लिए; (iv) जून, 1988 में "रिपोर्टर" नामक टी.वी फिल्म बनाने के लिए तथा (v) अक्तूबर, 1988 में अध्यक्ष, जी.वी. मावलंकर पर एक वृत्त-चित्र तैयार करने के लिए।

19. *एल.ए. डिबेट्स*, 14.9.1922, पृ. 505 ।
20. *लो.स.वा.वि.*, 26.11.1964, कॉ. 1899-1905 ।
21. इस संबंध में एक अपवाद 1935 में लॉबी में लगाया गया पहले गोलमेज सम्मेलन का एक तैल चित्र था, जिसे 1952 में हटा दिया गया क्योंकि लॉबी के जिस भाग में यह लगा था, उसमें कुछ संरचनात्मक परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था।

लॉबियों अथवा संसद भवन संपदा के किसी भी भाग का उपयोग सदस्यों द्वारा किसी प्रदर्शन, हड़ताल, अनशन अथवा धार्मिक अनुष्ठान के लिए नही किया जा सकता।[22] सदस्य जब सभा की बैठक हो रही हो तब और बैठक शुरू होने से कुछ देर पहले और बैठक समाप्त होने के कुछ समय बाद तक संसद भवन के परिसर में रह सकता है। यदि कोई सदस्य उस अवधि से अधिक देर तक संसद भवन में रुकना चाहता है तो इसके लिए उसे अध्यक्ष से विशिष्ट अनुमति लेनी होगी। सदस्य को संसद भवन संपदा में रहने के लिए दी गई ऐसी अनुमति किसी भी समय वापस ली जा सकती है। सदस्य को संसद भवन संपदा में रुकने के लिए दी गई रियायत का प्रयोग प्रदर्शन हेतु अर्थात् लॉन में चारपाई, मेज अथवा कुरसी इत्यादि लगाकर लोगों को वहां एकत्रित करने के लिए नहीं करना चाहिए। एक सदस्य को केन्द्रीय कक्ष अथवा संसद भवन के भीतर हवन करने से रोका गया था। यदि कोई सदस्य सभा की बैठक स्थगित होने के बाद संसद भवन के परिसर में एक घंटे से अधिक समय तक धरने पर बैठा रहता है तो अध्यक्ष के आदेश से उसे सुरक्षा कर्मियों द्वारा बाहर किया जा सकता है।[23]

दीर्घाएं

भू-तल पर अध्यक्ष के आसन के दायीं ओर अधिकारी दीर्घा है। उसी प्रकार बायीं ओर विशेष प्रकोष्ठ हैं। प्रथम तल पर अन्य दीर्घाएं हैं जहां से सभा कक्ष दिखाई देता है। प्रेस दीर्घा अध्यक्ष के आसन के ऊपर और सभा के बिलकुल सामने है।[24] सत्ता पक्ष की पिछली बैंचों के ऊपर राजनयिक प्रतिनिधियों और विशिष्ट दर्शकों की दीर्घाएं हैं और उनके बिलकुल सामने

---

22. *लो.स.वा.वि.*, 26.11.1964, पृ. 807-08, *एल.एस. डिबेट्स,* 10.5.1968, कॉ. 14027-33; *लो.स.वा.वि.,* 10.11.1970, पृ. 151-53; 28.8.1972, पृ. 126; *एल.एस. डिबेट्स,* 20.12. 1978, कॉ. 220-22।

23. *लो.स.वा.वि.*, 29.8.1972, का. 233-37 ।

    तथापि 19 दिंसबर, 1978 को विपक्ष (कांग्रेस पार्टी) के आठ सदस्य श्रीमती इंदिरा गांधी को सत्रावसान तक जेल भेजने और उन्हे सभा की सदस्यता से निष्कासित करने संबंधी प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर लॉबी में भूख हड़ताल पर रहे।

    20 दिसंबर, 1978 को पांच और सदस्य उनके साथ शामिल हो गये। इस पर राज्य सभा के कुछ सदस्यों ने भी भूख हड़ताल की और राज्य सभा की लॉबी में धरने पर बैठ गये। अनशन पर बैठे लोक सभा सदस्यों को वही सुविधाएं प्रदान की गई जो कि राज्य सभा के अनशन पर बैठे सदस्यों को दी गयी थीं।

24. प्रेस दीर्घा में पांच पंक्तियों में 98 स्थान हैं। पहली दो पक्तियों में फोल्डिंग फ्लैप लगे हुए हैं जिनमें प्रत्येक में 30 स्थान हैं, जबकि क्रमशः तीसरी पंक्ति में 18 स्थान और चौथी तथा पांचवी पंक्ति में 10-10 स्थान हैं। जब संसद भवन बना था, तो प्रेस दीर्घा में केवल 45 स्थान थे। 1952 तक स्थानों की संख्या बढ़ाकर 73 कर दी गयी, परन्तु प्रेस संवाददाताओं के बैठने के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता को देखते हुए यह स्थान भी पर्याप्त नहीं था। इसलिए प्रेस प्रतिनिधियों के लिए और अधिक स्थान जुटाने के लिए 1953 में प्रेस दीर्घा को नया रूप दिया गया।

अध्यक्ष की दीर्घा (अध्यक्ष के अतिथियों के लिए), राज्य सभा की दीर्घा (राज्य सभा सदस्यों के लिए) और विशेष दीर्घा है। बाकी के गोलार्ध में सार्वजनिक दीर्घा है।[25]

राज्य सभा कक्ष

राज्य सभा कक्ष भी घोड़े की नाल के आकार का है और यह भी लोक सभा कक्ष के नमूने पर बना है। परन्तु, यह आकार में छोटा है और इसमें 250 सदस्यों के बैठने की व्यवस्था है। यह पूरी तरह वातानुकूलित है तथा स्वचालित मत अंकन और साथ-साथ भाषान्तरण प्रणाली सहित आधुनिक ध्वनि व्यवस्था से सुसज्जित है।

> आरंभ में, राज्य सभा कक्ष में केवल 82 सदस्यों के ही बैठने की व्यवस्था थी। नये संविधान के अंतर्गत 216 सदस्यों के बैठने की व्यवस्था करने के लिए इस कक्ष को नया रूप दिया गया। 1957 में जब यहां स्वचालित मत अंकन यंत्र लगाया गया तो भविष्य में सभा के संभावित विस्तार को ध्यान में रखते हुए स्थानों की संख्या को बढ़ाकर 250 कर दिया गया।

लोक सभा अध्यक्ष के आसन की भांति राज्य सभा के सभापति का आसन भी कक्ष के उपर्युक्त आकार के दो सिरों को जोड़ने वाली सीधी रेखा के मध्य में एक ऊंचे मंच पर है। अधिकारी दीर्घा, विशेष प्रकोष्ठ तथा अन्य मामलों में दोनों सभा कक्ष एक समान हैं।

सभापति के आसन के ऊपर दो दीर्घाएं हैं जिनका उपयोग अन्य दीर्घाओं में दर्शकों की भारी भीड़ होने पर ही किया जाता है। सभापति के आसन के बायीं ओर से प्रारंभ होते हुए सार्वजनिक दीर्घा, सभापति दीर्घा, राजनयिक दीर्घा, विशिष्ट दर्शक दीर्घा, प्रेस दीर्घा और लोक सभा दीर्घा स्थित हैं।[26]

---

25. पहली लोक सभा के बनने तथा दर्शकों की संख्या बढ़ने पर उनके लिये बैठने के और अधिक स्थानों की व्यवस्था करना आवश्यक हो गया। तदनुसार, विभिन्न दीर्घाओं को नया रूप दिया गया और इस समय उनमें 580 दर्शकों के बैठने की व्यवस्था है। ये स्थान इस प्रकार बंटे हुए हैं:

अध्यक्ष दीर्घा	28
राज्य सभा दीर्घा	55
प्रेस दीर्घा	98
सार्वजनिक दीर्घा	311
विशिष्ट दर्शक दीर्घा	55
राजनयिक दीर्घा	28

26. राज्य सभा की विभिन्न दीर्घाओं में 386 निश्चित स्थान हैं जो इस प्रकार हैं:—

सार्वजनिक दीर्घा	155
सभापति दीर्घा	
राजनयिक दीर्घा	78
विशिष्ट दर्शक दीर्घा	
प्रेस दीर्घा	76
लोक सभा दीर्घा	77

ग्रंथालय कक्ष

दोनों सभा कक्षों की भांति ग्रंथालय कक्ष भी घोड़े की नाल के आकार का है। मूलतः इसका निर्माण अविभाजित भारत के विभिन्न रजवाड़ों के शासकों के लिए सम्मेलन कक्ष के रूप में किया गया था और इसे 'प्रिंसेज चैम्बर' कहा जाता था। स्वतंत्रता के पश्चात् अगस्त, 1958 तक इसका प्रयोग भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायालय कक्ष के रूप में किया जाता रहा। तत्पश्चात् इस कक्ष के ढांचे में थोड़ा परिवर्तन कर इसके फर्श को ऊंचा करके बरामदे के फर्श के बराबर किया गया। इस प्रकार बरामदे के साथ-साथ बने कमरों वाले इस कक्ष को नया रूप देकर ग्रंथालय के भाग के रूप में एक बड़ा वाचनालय बना दिया गया और इसलिए, इसका नाम ग्रंथालय कक्ष पड़ा। यहां सदस्यों की सुविधा हेतु बहुत सी पत्रिकाएं और समाचार पत्र अध्ययन मेजों पर रखे जाते हैं।

इस कक्ष की दीवारों पर लगे लकड़ी के पैनलों पर 102 सुनहरे डिजाइन बने हैं, जो पुराने रजवाड़ों के प्रतीक चिह्न हैं।

समिति कक्ष

संसद भवन के प्रथम तल पर चार बड़े-बड़े समिति कक्ष हैं, जो वातानुकूलित हैं और समुचित रूप से सुसज्जित हैं।[27] जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ये कक्ष मुख्य रूप से संसदीय समितियों की बैठकों के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। इस प्रयोजन हेतु प्रत्येक कक्ष में सार्वजनिक संबोधन प्रणाली लगाई गई है। तथापि, संसदीय कार्य के लिए आवश्यकता न होने पर समिति कक्ष प्रेस सूचना ब्यूरो द्वारा आयोजित प्रधानमंत्री के प्रेस सम्मेलन या विभिन्न परामर्शदात्री समितियों में से किसी समिति, जिसमें दोनों सदनों के सदस्य होते हैं, की बैठकें आयोजित करने के लिए दिया जा सकता है।

संसदीय दलों या ग्रुपों के लिखित अनुरोध पर केन्द्रीय कक्ष या कोई समिति कक्ष उन्हें संसदीय कार्य से संबंधित दलीय बैठकों के आयोजन के लिए दिया जाता है।[28]

मंत्रियों के कक्ष

जब संसद का सत्र चल रहा हो, तो मंत्रियों को दिन में अधिकांश समय में संसद भवन में रहना आवश्यक हो जाता है। उन्हें कार्यालय के लिए स्थान देने के उद्देश्य से संसद भवन में कई कक्ष सदन के नेता को दिए गए हैं, जिससे कि वह सत्रावधि के दौरान उन्हें मंत्रियों को आबंटित कर सकें। संसदीय समितियों के सभापतियों को भी संसद भवन में कार्यालय हेतु स्थान उपलब्ध कराया जाता है।

---

27. समिति के चार कक्षों में से एक कक्ष राज्य सभा के अधिकार क्षेत्र में आता है और यह उसके सचिवालय के नियंत्रण में है।

28. *देखिए पीछे* अध्याय 14—*संसद में राजनीतिक दलों को मान्यता।*

मंत्रिमंडल का कक्ष

संसद के सत्र के दौरान मंत्रिमंडल की बैठकें आयोजित करने के लिए मंत्रियों की सुविधा हेतु संसद भवन के भूमितल पर एक बड़ा और सुसज्जित कक्ष उपलब्ध कराया गया है। इस कक्ष को मंत्रिमंडल-सचिवालय के नियंत्रण में रखा गया है।

दलों के कार्यालयों के कक्ष

सत्ताधारी दल तथा विपक्षी दल/ग्रुपों[29] को संसद भवन के भूमितल और तृतीय तल पर कार्यालय के लिए कक्ष दिए गए हैं।

संसदीय सौध

सदस्यों की आवश्यक जरूरतों को पूरा करने तथा उन्हें दी जाने वाली कुछ सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए संसद भवन के उत्तर में संसदीय सौध[30] का निर्माण किया गया। इसका शिलान्यास 3 अगस्त, 1970 को राष्ट्रपति वी.वी. गिरि द्वारा किया गया था और इस भवन का निर्माण अक्तूबर, 1975 में पूरा हुआ। इसका उद्‌घाटन 24 अक्तूबर 1975 को प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी द्वारा किया गया।

इस भवन का डिजाइन कार्यात्मक और आधुनिक है। इसका ढांचा आर.सी.सी. फ्रेम का है और निर्माण में वाफल स्लैब पद्धति अपनाई गई है। भवन में पच्चीकारी की जाली की सुन्दर चार "बौद्ध चैत्य मेहराबों" के कारण उसके आकार और प्रकार से सौन्दर्य का नया बोध होता है और शान्ति का संदेश मिलता है। पच्चीकारी की जाली के सामने पतले, दुगुनी ऊंचाई के सीधे खड़े आर.सी.सी. स्तम्भों पर चबूतरे के ऊपर की बाहर की ओर निकली छत टिकी हुई है जिससे इसका अग्रभाग काफी आकर्षक बन गया है।

सात मंजिले इस भवन का मुख्य प्रवेश आगे के तीन मंजिले ब्लाक से है और सदस्यों के लिए आराम कुर्सियां, पूछताछ कार्यालय, सभागार सहित बहुप्रयोजनीय हॉल, समिति की बैठकों हेतु दो सुसज्जित कमरे, बैंक, डाकघर और चिकित्सा केन्द्र जैसी सामान्य सुविधाएं मुख्य समागम हॉल (मेन कोन्कोर्स हॉल) में उपलब्ध कराई गई हैं। आगे के ब्लॉक की तीन मंजिलों को निम्नतल पर तालाब के ऊपर एक खड़ी सीढ़ी से जोड़ा गया है। मध्यवर्ती क्षेत्रों के ऊपर कांच के पिरामिडों से प्राकृतिक रोशनी प्रचुर मात्रा में फैलकर आती है।

---

29. *पूर्वोक्त* ।

30. यह भवन 9.8 एकड़ (3.85 हेक्टेयर) भूमि पर बना हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 35,400 वर्गमीटर है तथा वातानुकूलन, साथ-साथ भाषांतरण प्रणाली और फर्नीचर तथा साज-सज्जा सहित भवन की कुल लागत 3.70 करोड़ रुपये थी।

    इस भवन का डिजाइन केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के मुख्य वास्तुकार जे.एम. बैन्जामिन ने तैयार किया था।

सात मंजिलें केन्द्रीय ब्लॉक में निम्नतल पर पूर्ण सुसज्जित चिकित्सा केन्द्र, टेलीफोन एक्सचेंज और टेलीकॉम बर्व और भूमि तल पर भोज कक्ष, प्राइवेट भोजन कक्ष, अल्पाहार कक्ष तथा ऊपर के तलों पर संसद की दोनों सभाओं के सचिवालय के कार्यालय हैं।

पीछे के तीन मंजिले ब्लॉक में गहराई में एक वर्गाकार प्रांगण है, जिसके मध्य में अष्टकोणीय ताल है, इसके चारों ओर पांच बड़े-बड़े वातानुकूलित समिति कक्ष हैं। इन सभी कक्षों की दीवारें काष्ठमंडित हैं और आधुनिक ध्वनि व्यवस्था से सुसज्जित हैं। इनमें साथ-साथ भाषान्तरण की भी व्यवस्था है। पच्चीकारी की जाली के परदे से युक्त केन्द्रीय प्रांगण का दृश्य बहुत ही सुन्दर है जिसे मकराना पत्थर तथा नदियों के आस-पास मिलने वाले छोटे-छोटे सजावटी पत्थरों से सजाया-संवारा गया है। कांच के पिरामिडों तथा चारों ओर से पच्चीकारी की जाली से आने वाली झीनी रोशनी एक मोहक वातावरण सृजित करती है।

संसदीय ज्ञानपीठ

मई, 2002 तक संसद ग्रंथालय संसद भवन में कार्य कर रहा था। समय के साथ-साथ ग्रंथालय सेवा धीरे-धीरे विकसित हुई है जिसे अब ग्रंथालय और संदर्भ, शोध, प्रलेखन और सूचना सेवा (लार्डिस) के नाम से जाना जाता है। संसद ग्रंथालय और इसकी अनुषंगी सेवा के लिए संसद भवन में उपलब्ध स्थान ग्रंथालय द्वारा प्राप्त की जा रही साहित्यिक सामग्री को देखते हुए कम था। इसके अलावा, संसद सदस्यों को अधिक प्रभावी, कुशल और आधुनिक शोध, संदर्भ तथा सूचना सेवा उपलब्ध कराए जाने की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए नए संसद ग्रंथालय भवन का निर्माण किया गया।

सन् 1984 में लोक सभा की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने संसद ग्रंथालय भवन के निर्माण के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 15 अगस्त, 1987 को भवन का शिलान्यास किया और भवन का डिजाइन 15 नवम्बर, 1991 को अनुमोदित किया गया। नए संसद ग्रंथालय भवन का निर्माण कार्य संसद भवन और संसदीय सौध के बीच एक स्थान पर अप्रैल 1994 में आरंभ किया गया।[31]

संसदीय ज्ञानपीठ का कुल भूखण्ड क्षेत्रफल लगभग 40,000 वर्गमीटर और पार्किंग के लिए लगभग 8,000 वर्गमीटर सहित कुल निर्मित क्षेत्र लगभग 55000 वर्गमीटर है। इसमें विभिन्न व्यास के कुल 12 गुंबद हैं, एक पूर्णतः कांचित है और दूसरा आंशिक रूप से कांचित अथवा अपारदर्शी है। संसदीय ज्ञानपीठ की छत पर बना उद्यान संसद भवन के बाहरी गलियारे से देखा जा सकता है।

बाहर से, यह भवन संसद भवन जैसा है और इसमें एक जैसे लाल और बिस्कुटी रंग के बलुआ पत्थरों[32] की सामग्री का उपयोग किया गया है। सामान्य ऊँचाई संसद भवन के गोल

31. इस पूर्णतः वातानुकूलित विशाल भवन का निर्माण के.लो.नि.वि. द्वारा किया गया और मैसर्स राज रेवल एसोसिएशन इसके परामर्शदायी वास्तुकार थे।
32. इसके पत्थर आगरा और धौलपुर से लाए गए थे।

स्तम्भों के नीचे चबूतरे तक सीमित रखी गई है। ग्रंथालय भवन की छत पर राष्ट्रपति भवन पर चारों ओर बने गुम्बदों के समान इस्पात के ढांचे पर कम ऊंचाई वाले बुलबुलेनुमा गुम्बद बने हुए हैं। इस भवन का डिजाइन भी संसद भवन के समान ब्रह्मांड जैसे छोटे-छोटे वृत्तों में है। आन्तरिक रूप से, यह एक पृथक भाव का संचार करता है जो दूरदर्शिता और ज्ञान को परिलक्षित करता है।

भवन के मूल ढांचे की संकल्पना प्रवलित सीमेंट कंक्रीट के फ्रेम के ढांचे के रूप में की गई है जिसके स्तंभ सामान्यत: 5-5 मीटर के अंतर पर बनाए गए हैं। मध्यवर्ती फ्लोर में कॉफर यूनिट कंस्ट्रक्शन है जबकि छत में अंशत: कॉफर यूनिट हैं और अंशत: इस्पात एवं कंक्रीट के गुम्बद हैं।

गुम्बदों का डिजाइन व इसकी बनावट देश में अपने किस्म की पहली संरचना है। गुम्बदों के निर्माण में निहित कुछ नूतन विशेषताएं इस प्रकार हैं:—

- 12 गुम्बदों में से दो में ए.आई.एस.आई. 304 एल श्रेणी के स्टेनलेस स्टील का प्रयोग किया गया है। इस स्टील को चिकना रूप दिया गया है। अन्य सभी गुम्बद कार्बन स्टील के हैं जिन पर एपोक्सी पेंट किया गया है।
- फ्रेमवर्क के सभी जोड़ ढलाईघर में तैयार किए गए थे और नियंत्रित स्थिति में वैल्डिंग और एच.एस.एफ.जी वोल्टों की मदद से ट्यूबों के साथ जोड़े गए। परिणामस्वरूप जोड़ मजबूत दिखाई पड़ते हैं। ये वहां भी ऐसे ही दिखते हैं जहां 12 अवयव एक ही जोड़ पर मिलते हैं।
- गुम्बद के विभिन्न अवयवों अर्थात् कास्ट ज्वाइंट, मुड़े हुए ट्यूब और इस्पात के फ्रेमवर्क पर बिठाए गए पहले से ढाले गए कंक्रीट के बबल का निर्माण करने और जोड़ने में ज्यामितिक सूक्ष्मता देखने को मिलती है।
- समस्त स्टेनलेस स्टील, पूर्णत: चमकदार मध्य गुम्बद, जो 25 मीटर तक फैला हुआ है, भवन के भीतरी हिस्से को खुले आकाश से जोड़ते हुए अत्यधिक चमक और उष्णता को दूर करता है। स्टेनलेस ट्यूब को एक दूसरे से वेल्ड करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाली टीआईजी वेल्डिंग का उपयोग किया गया है ताकि दोषरहित और मजबूत वेल्ड सुनिश्चित किया जा सके।
- गुम्बदों के ऊपर बिठाए गए बबल संरचनात्मक रूप से परस्पर जुड़े हुए नहीं हैं। बबल के तापमान की गति का लेखा-जोखा रखने के लिए अन्तत: 500 प्रतिशत तक बढ़ने की क्षमता वाले युरिथेन पोलीयूरिया मेम्ब्रेन का प्रयोग करते हुए वाटर प्रूफिंग की गई थी।

पूरे भवन में बहुत अधिक ग्लेजिंग की गई है। ग्लेजिंग यूनिटों की संरचना का चयन इस प्रकार से किया गया है कि ऊष्मा व ताप ऊर्जा का भीतर आना वांछित स्तर तक सीमित हो सके ताकि वातानुकूलन पर भार अत्यधिक न हो सके और पढ़ने के प्रयोजनार्थ प्रकाश व्यवस्था का एक सुखद स्तर उपलब्ध हो सके।

इंस्यूलेटिड, डेसिकेंट-फिल्ड, डबल ग्लेज्ड वर्टिकल (उर्ध्वाधर), यूनिटें (2,600 वर्गमी.) हीट स्ट्रेंथंड, लैमिनेटिड, इंस्यूलेटिड तथा ऊष्मा परावर्तित करने वाली क्षैतिज यूनिटें (220 वर्गमी.) और ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज अनुप्रयोग (16.50 वर्गमी.) दोनों के लिए कांच के ब्लॉक का प्रयोग किया गया है। कांच के लिए अपेक्षित सभी फैब्रिकेशन अर्थात् ऊष्मा सुदृढ़ीकरण, लैमिनेटिंग तथा इन्सुलेटिंग का कार्य कंप्यूटर नियंत्रित प्रोसेसिंग मशीनों वाले वर्कशॉप्स के माध्यम से करवाया गया है।

भवन का लगभग 45,000 वर्गमीटर क्षेत्र (पार्किंग और संयंत्र कक्ष को छोड़ कर) वातानुकूलित है जिसमें कुल 2040 टी.आर. का ऊष्मीय भार पड़ता है। बेसमेंट में पांच ऊर्जा दक्ष केन्द्राभिसारी प्रशीतक मशीनें, जिनमें से प्रत्येक 550 टी.आर. की हैं और प्रत्येक आर-123 गैस (रेफ्रिजरेंट) पर कार्यरत हैं, लगाई गई हैं। पहले ये मशीनें आर-11 गैस के साथ कार्य कर रही थी। किन्तु पर्यावरण संरक्षण संबंधी मांट्रियल प्रोटोकॉल के अंतर्गत आर-11 को हटा दिया गया है। 2 × 1000 किलोवाट उष्ण जल जनरेटर तथा ए.आई.आई.यू. की हीटिंग कोइल्स की मदद से शीत ऋतु में तापन की और आर्द्रता को कम करने की व्यवस्था की गई है। प्रणाली में डबल स्किन एयर हैंडलिंग यूनिटों के साथ पर्यावरण के अनुकूल कार्बन और सूक्ष्म फिल्टर लगाए गए हैं। भवन के वायु वितरण को 66 ए.एच.यू. से होकर फायर कम्पार्टमेन्टेशन के अनुकूल बनाया गया है।

स्वचालित, बोधगम्य अग्नि चेतावनी प्रणाली, विधिवत रूप से इंटरलॉक्ड में फायर चैक दरवाजे हैं ताकि आग लगने की स्थिति में समन्वित रूप से कार्य किया जा सके तथा धुएं, ऊष्मा, ऑप्टिकल और बीम संसूचक भी लगे हुए हैं।

कंप्यूटर केन्द्र और माइक्रो-फिल्मिंग स्टोर के लिए एन.ए.एफ.एस.-III गैस युक्त नॉन-वेट फायर फाइटिंग सिस्टम लगाया गया है। कुशल अग्निशमन प्रणाली या तो ए.एच.यू.एस. के माध्यम से (सभी क्षेत्रों में) और एक स्वतंत्र प्रणाली के रूप में (मध्य गुम्बद क्षेत्र में), जो एकीकृत रूप से अग्नि चेतावनी प्रणाली से जुड़े हुए हैं, लगाए गए हैं।

संसदीय ज्ञानपीठ में निम्नलिखित सुविधाएं भी उपलब्ध हैं अर्थात् पूरे भवन में ऊर्जा दक्ष प्रकाश व्यवस्था; निगरानी के लिए सीसीटीवी, ग्रंथालय का कामकाज और संसद की कार्यवाही के टेलीविजन पर सीधे प्रसारण के लिए सुविधाएं; डोर फ्रेम मेटल डिटेक्टर्स और सुरक्षा जांच के लिए बैगेज स्कैनर; चार हाइड्रॉलिक लिफ्टें (प्रत्येक-13 यात्री क्षमता वाली), एक ग्लेज्ड लिफ्ट (10 यात्री क्षमता), चार गुड्स लिफ्टें, दस डम्ब वेटर्स और एक चार यात्री की क्षमता वाली) वीआईपी लिफ्ट, उद्घोषणाओं के लिए पी.ए. सिस्टम, कार हेलिंग, पूर्व में रिकार्ड किए गए संदेशों को चलाना और बेल रिपीटर सिस्टम; सभी समिति कक्षों में डिजिटल कांफ्रेसिंग प्रणाली और तीन चयनित समिति कक्षों में साथ-साथ भाषांतरण प्रणाली; पार्किंग क्षेत्र के लिए कार नियंत्रण प्रणाली, और यूपीएस के माध्यम से विद्युत से चलने वाला एक्ज़िट लाइट सिस्टम।

ग्रंथालय भवन के भीतर के स्थान खुले संसद भवन के भीतर सदृश स्थानों से मेल खाते हैं किन्तु ये अपेक्षाकृत अधिक जटिल और पेचीदा हैं। ये खाली स्थान भवन की आंतरिक गतिविधियों और बाहरी परिधीय कृत्यों के बीच में रखे गए हैं। इनसे ग्रीष्मकाल में तापमान

को कम करने में मदद मिलती है। प्रांगण केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रों के केन्द्र-बिन्दु के आस-पास घुमावदार रूप में बाहर भ्रमण क्षेत्र उपलब्ध कराते हैं।

केन्द्रीय संरचना के आस-पास तीन प्रांगण हैं जिनसे भवन के समीपस्थ क्षेत्र के भीतर किए जाने वाले विभिन्न कार्यकलापों में सुविधा होती है। पहला प्रांगण संसद-सदस्य वाचनालय और संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो के व्याख्यान कक्ष के समीप बना हुआ है और यहाँ नीचे बनाए गए एम्फीथिएटर के चारों ओर शान्त वातावरण है जो स्वंतत्रता का प्रतीक है। दूसरे प्रांगण के बीच में एक विशाल वृक्ष है जो न्याय का प्रतीक है। तीसरा प्रांगण संग्रहालय और सभागार से घिरा हुआ है और इस स्थान का उपयोग बाहरी प्रदर्शनियों के आयोजन के लिए जलाशय के चारों तरफ किया जा सकता है जोकि समानता का प्रतीक है।

ग्रन्थालय का मुख्य प्रवेश द्वार सीधे संसद भवन के एक द्वार से जुड़ा हुआ है। यह एक वृत्ताकार कक्ष से ढके हुए प्रांगण की ओर जाता है जो स्टेनलेस स्टील रिंग के ऊपर सौम्य प्रकाश से आलोकित है।

भवन का मुख्य केन्द्र सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करने वाले अत्याधुनिक, इमारती शीशों और स्टेनलेस स्टील से निर्मित है। इसकी संरचना में चार पंखुड़िया हैं। ये पंखुड़ियां उत्कृष्ट टेन्शन रॉड से एक साथ जुड़ी हैं। शीशे के गुंबद के ऊपरी हिस्से में एक वृत्त का प्रतीक है जो अशोक चक्र को निरूपित करता है।

संसद सदस्य अध्ययन कक्ष

एच ब्लॉक में स्थित कक्ष ग्रन्थालय परिसर के ठीक मध्य में है और इसके सामने एक आंतरिक आंगन है। यह दो मंजिल ऊँचा स्थान है जिसमें एक भीतरी प्रांगण है जोकि चार स्तम्भों पर टिके एक वृत्ताकार गुंबद से ढका हुआ है। सफेद पेन्ट किए गए इस्पात के मूल ढांचे को छत के स्तर से ऊपर उठाया गया है और यहां कांच के ब्लॉकों से होकर पारभाषी प्रकाश आता है जिससे हॉल के भीतर भव्य व सुंदर परिवेश बनता है।

ग्रंथालय

मुख्य ग्रंथालय का बड़ा हॉल और क्रॉस एक्सिस के दोनों छोरों पर दृश्य-श्रव्य संग्रहालय भी समान दृश्य उपस्थित करता है। इसमें 35 मीटर का बड़ा क्षेत्र है। यह शीर्ष से प्रकाशित है जिसमें कंक्रीट बबल के भीतर कांच के ब्लॉक लगे हुए हैं। इस्पात के मूल ढांचे को नीचा रखा गया है और यह बाह्य सतह के प्राकृतिक प्रकाश से प्रदीप्त रहता है। इस ग्रंथालय में तीन मिलियन वॉल्यूम रखने हेतु पर्याप्त स्थान है।

जीएमसी बालयोगी सभागार

35 एमएम फिल्म प्रक्षेपण के लिए अत्याधुनिक डिजिटल डॉल्बी और गूंजने वाली ध्वनि प्रणाली से सुसज्जित लगभग 1067 व्यक्तियों के बैठने की क्षमता वाला एक सभागार: ग्राउन्ड के लिए तथा चार भाषाओं के भाषांतरण के लिए वायरलैस वाली साथ-साथ भाषांतरण प्रणाली, वीडियो प्रक्षेपण; उच्च शक्ति वाली जीनॉन प्रकाश प्रणाली जिसमें 10,000 एएनएसआई

लुमेन्स प्रकाश उत्पन्न होता है; और स्कैनर से नियंत्रित होने वाले एफओएच प्रकाश की स्टेज लाइट प्रणाली भी इस भवन में है।[33]

अन्य प्रदत्त सुविधाएं

इनके अतिरिक्त, इस भवन में शोध और संदर्भ प्रभाग, कम्प्यूटर केन्द्र, प्रेस और जन सम्पर्क सेवा के हिस्से के रूप में नवीनतम दूरसंचार सुविधाओं से सुसज्जित एक मीडिया केन्द्र, प्रेस ब्रीफिंग कक्ष, संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो, संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार, एक दृश्य श्रव्य एकक, एक माइक्रोफिल्म रीडर कक्ष, मल्टीमीडिया प्रस्तुति की सुविधायुक्त एक लघु सभागार, ग्रंथालय समिति कक्ष और सम्मेलन कक्ष भी अवस्थित हैं। इस भवन में संरक्षण प्रयोगशाला, एक बाइडिंग एकक और दृश्य-श्रव्य सामग्री के संरक्षण हेतु क्वथनांक (फ्रीजिंग प्वाइंट) से नीचे तापमान वाला एक अभिलेखीय कक्ष, कम्प्यूटर सामग्री और माहक्रोफिल्म रॉल भी हैं। इसके अतिरिक्त, इस भवन से चौबीस घंटे स्वतंत्र प्रसारण सुविधायुक्त लोक सभा टेलीविजन चैनल एकक भी कार्य करता है।

स्वागत कार्यालय

मुख्य संसद भवन के सामने पूर्व दिशा में वातानुकूलित स्वागत कार्यालय है जो संसद भवन परिसर के परिवेश के अनुरूप है। 29.26 मीटर के व्यास वाला यह वृत्ताकार भवन[34] जिसकी छत शंखनुमा है, पुरानी तथा नई वास्तुकला का सम्मिश्रण है। भवन का बाहरी भाग लाल बलुआ पत्थर से बना हुआ है और आंतरिक भाग में लकड़ी की लाइनिंग का काम है जिससे स्वागत एवं आत्मीयता की भावना प्रकट होती है। मध्य में 14.02 मीटर का भाग विलोम शंखनुमा है जो एक ऐसे स्तम्भ पर टिका है जिसकी मोटाई ऊपर की ओर कम होती जाती है और यह एक फव्वारे का आभास देता है। शेष भाग बीम के सहारे बारह खम्बों पर टिका स्वतंत्र शंखनुमा आकार का है। इसमें एक कैफेटीरिया है जो थोड़ा ऊंची जगह पर बना है और इसके नीचे संसद सदस्यों को मिलने और आगंतुकों के लिए एक विश्राम कक्ष है। सेवा फलक और कैफेटीरिया की रसोई का इस प्रकार आयोजन किया गया है जिससे कार्यात्मक कुशलता तथा स्वच्छता दोनों बनी रहें।

विद्युत उपकेन्द्र

स्वागत कार्यालय के बिलकुल निकट उप-बिजली घर[35] है जिसके बाहर का डिजाइन

---

33. सभागार का नाम अध्यक्ष जी.एम.सी. बालयोगी के नाम पर रखा गया है। जिनका निधन कार्यकाल के दौरान 3 मार्च, 2002 को एक हवाई दुर्घटना में हुआ था।

34. स्वागत कार्यालय भवन का कुर्सी क्षेत्रफल विश्राम कक्ष सहित 2722 वर्गमीटर है। यह भवन 15 लाख (1.5 मिलियन) रुपये की लागत से बना है, जिसमें 11.00 लाख (1.1 मिलियन) रुपये स्वागत कार्यालय भवन की लागत और 4.00 लाख रुपये वातानुकूलन की लागत है।

35. विद्युत उपकेन्द्र का कुर्सी क्षेत्रफल 2555 वर्गमीटर है। भवन की कुल लागत 17.0 लाख (1.7 मिलियन) रुपये, अर्थात् 6.4 लाख (0.64 मिलियन) रुपये भवन की लागत और 11. 5 लाख (1.15 मिलियन) रुपये, विद्युत उपकेन्द्र उपकरणों और जनरेटिंग सैटों की लागत है। उपकेन्द्र के उपकरणों को 2004-05 में 598 लाख रुपए की लागत से बदला गया है।

स्वागत कार्यालय के डिजाइन की तरह का है। संसद भवन को बिजली की नियमित आपूर्ति करने के लिए उच्च विद्युतगामी बल वाली बिजली की सप्लाई 1600 के.वी.ए. क्षमता वाले तीन ट्रांसफार्मरों के माध्यम से तीन स्वतंत्र स्त्रोतों से ली गई है। सामान्य बिजली की सप्लाई के फेल होने की स्थिति में संसद भवन में महत्वपूर्ण स्थानों को बिजली उपलब्ध कराने के लिए विकल्प के रूप में एक डीजल चालित जनरेटर भी लगाया गया है।

सदस्यों की आगन्तुकों से भेंट की व्यवस्था

इस बात की व्यवस्था की गई है कि सदस्य अपने अतिथियों और अन्य व्यक्तियों से 'सदस्य प्रतीक्षालय' (जो सभा कक्ष की लॉबी के प्रवेश द्वार के समीप है) में मिल सकते हैं। जब कोई व्यक्ति स्वागत कार्यालय में आता है और किसी सदस्य से मिलने की इच्छा प्रकट करता है, तो संबंधित सदस्य को एक भेंट पर्ची दी जाती है। जब सदस्य उस पर लिख देता है कि वह उस व्यक्ति से कब और कहां मिलना चाहेगा तो उसके उस स्थान तक पहुंचने की व्यवस्था की जाती है।

संसद भवन में सदस्यों के लिए विशेष सुविधाएं

सदस्यों की सुविधा के लिए संसद भवन में कुछ सुविधाओं की व्यवस्था की गई है।[36] भीतरी और बाहरी लॉबियों में तथा केन्द्रीय कक्ष के पास विश्राम कक्षों में केवल सदस्यों के उपयोग के लिए टेलीफोन लगे हैं।

संसद भवन में खान-पान की भी व्यवस्था की गई है। जलपान गृह मुख्य रूप से सदस्यों के उपयोग के लिए है। सदस्यों के विशेष अनुरोध पर उन्हें जलपान गृहों में पार्टी का आयोजन करने की अनुमति भी दी जाती है, परन्तु वहां पर कोई भी पार्टी तब तक नहीं हो सकती जब तक उसमें सदस्य शामिल न हों।[37]

संसद भवन के एक कक्ष में एक औषधालय है, जो टेलीफोन के जरिये सीधे एक सरकारी अस्पताल में जुड़ा है ताकि औषधालय का प्रभारी चिकित्सक किसी सदस्य के गंभीर रूप से बीमार होने की स्थिति में किसी चिकित्सा विशेषज्ञ को बुला सके और जरूरत पड़ने पर सदस्य को अस्पताल में भर्ती कराने की व्यवस्था कर सके।[38]

अन्तर सत्रावधि के दौरान संसद में आगन्तुकों का प्रवेश

(*देखिये* अध्याय 33)

सदस्यों के लिए विशेष सेवाएं

(*देखिये* अध्याय 13 और 40)

---

36. *देखिए* पीछे अध्याय 13—*वेतन, भत्ते, अन्य हकदारियां और सुख-सुविधाएं।*
37. *देखिए* पीछे अध्याय 13—*वेतन, भत्ते अन्य हकदारियां और सुख-सुविधाएं।*
38. *पूर्वोक्त* ।

अध्याय 42

संसद और राज्य

भारत के संविधान को अर्ध-संघीय कहा गया है जिसका एक सशक्त एकात्मक स्वरूप है अर्थात् इसमें केन्द्र अधिक शक्तिशाली है। संविधान निर्माताओं ने आरम्भ में ही अपना इरादा साफ कर दिया था कि "संविधान संघीय होगा जिसमें केन्द्र मजबूत होगा"।[1] जैसा कि डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने कहा था कि भारतीय प्रणाली इसलिए अनूठी है क्योंकि इसमें एकल भारतीय नागरिकता के साथ ही दोहरी राज्य व्यवस्था है जो समय और परिस्थितियों के अनुसार एकात्मक और संघीय दोनों ही हो सकती है।[2] विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय शक्तियों के वितरण की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि इसका शीर्षक केन्द्र के पक्ष में रखा गया है। आबंटित विषयों के क्षेत्र में भी राज्यों द्वारा शक्तियों के प्रयोग पर कतिपय प्रतिबंध लगाए गए हैं जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की शक्तियाँ संघ की शक्तियों के समकक्ष नहीं हैं।

जहां तक संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का संबंध है, इसमें न केवल संघ को अधिक महत्व दिया गया है, अपितु संघ और राज्यों के कानूनों के बीच विवाद के मामलों में संघ की सर्वोच्चता के सिद्धांत को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है।[3] इसके अतिरिक्त, संविधान में विभिन्न अन्य तरीकों से संसद की प्रधानता सुनिश्चित की गई है। उदाहरणार्थ, विधान के कतिपय विषय जो प्रथमतया विशिष्ट रूप से राज्यों के हैं, पूर्णतया संसद के अधीन विषय हो सकते हैं यदि राज्य सभा ने उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया हो कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद ही संकल्प के लागू रहने के दौरान राज्य सूची में निर्धारित किसी विषय के संबंध में विधान बनाए।[4]

कार्यपालिका के क्षेत्र में राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार, संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उन विषयों पर होता है जिनके संबंध में उस राज्य के विधानमण्डल को विधि बनाने की शक्ति है, बशर्ते कि किसी भी विषय में जिसके बारे में किसी राज्य के

---

1. आरसीएस सरकार, भारत में संघ-राज्य संबंध (1986), पृष्ठ 7, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. सुभाष सी. कश्यप, एन इंट्रोडक्शन टू द इंडियाज कांस्टिट्यूशन एंड कांस्टिट्यूशनल लॉ, पृष्ठ 43 (1994), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
3. *देखिए* पीछे अध्याय 22-विधान।
4. अनुच्छेद 249, राज्य सभा ने 12-13 अगस्त, 1986 को इस अनुच्छेद के अंतर्गत संकल्प पारित किया जिसमें संविधान की सातवीं अनुसूची में राज्य सूची की सूची-II के अन्तर्गत प्रविष्टि 2, 4, 64, 65, और 66 के कतिपय विषयों पर संसद को कानून बनाने के लिए अधिकृत किया गया।

विधानमंडल और संसद को कानून बनाने की शक्ति है, राज्य की कार्यपालिका शक्ति इस संविधान द्वारा या संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा, संघ या उसके प्राधिकारियों को अभिव्यक्त रूप से प्रदत्त कार्यपालिका शक्ति के अधीन और उससे परिसीमित है।[5] संसद द्वारा अधिनियमित कोई भी विधि प्रत्येक राज्य में विधि के रूप में प्रवृत्त होगी जब तक कि अधिनियमिति में इसके प्रतिकूल उपबंध न किया गया हो। प्रत्येक राज्य का यह संवैधानिक कर्तव्य है कि वह संघ की विधियों को राज्य पर अपेक्षानुसार लागू करे। इस उद्देश्य से राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग किया जाएगा जिससे संसद द्वारा बनायी गयी विधियों का अनुपालन सुनिश्चित हो सके और संघ की कार्यपालिका को राज्य सरकार को इस कर्तव्य के उचित अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए निदेश देने की शक्ति प्राप्त है।[6] केवल यही नहीं, बल्कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का स्वयं उसके कार्य क्षेत्र में भी इस प्रकार प्रयोग किया जाएगा जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन न हो या उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, और संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य को ऐसे निदेश देने तक है जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हो।[7] यदि कोई राज्य, संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुए दिए गए किन्हीं निदेशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफल रहता है तो राष्ट्रपति को यह धारणा बनाने का प्राधिकार है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।[8]

संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 के द्वारा संघ को किसी भी राज्य में कानून और व्यवस्था की गंभीर स्थिति से निपटने के लिए संघ के किसी सशस्त्र बल अथवा अन्य बल को भेजने की शक्ति प्रदान की गई थी। ऐसे बल को संघ सरकार के निदेशों के अनुसार काम करना था और वह राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन नहीं होता था। संसद कानून द्वारा किसी राज्य में तैनात ऐसे बल के सदस्यों की शक्तियां, कृत्य और दायित्वों को भी निर्धारित कर सकती थी। इस उपबंध का बाद में संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 के द्वारा अनुच्छेद 257क का निरसन करके लोप किया गया।

राष्ट्रीय, राजनैतिक अथवा वित्तीय आपातस्थिति के समय राज्य केवल ऐसी विधायी तथा कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं जिनके बारे में संघ अनुमति दे। जब आपातस्थिति की घोषणा की जाती है तो संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय के संबंध में भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है और विसंगति की स्थिति में संसद द्वारा बनायी गयी विधियां ही राज्य विधियों के स्थान

---

5. अनुच्छेद 162 ।
6. अनुच्छेद 256 ।
7. अनुच्छेद 257 (1) ।
8. अनुच्छेद 365 ।

पर प्रवृत्त होंगी। यदि युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह के परिणामस्वरूप भारत अथवा उसके किसी क्षेत्र की सुरक्षा को खतरा होता है तो राष्ट्रपति आपातस्थिति की घोषणा कर सकता है और संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्यों को यह निदेश देने के लिए होगा कि वे अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस रीति से करें और संसद की विधि बनाने की शक्ति का विस्तार किसी भी विषय के संबंध में, चाहे वह विषय संघ सूची में न हो, संघ अथवा उसके अधिकारियों तथा प्राधिकारियों को शक्ति प्रदान करने अथवा शक्तियां प्रदान करने के लिए अधिकृत करने तथा कर्तव्य सौंपने तक विधि बनाने के लिए होगा।[9] आपातस्थिति के दौरान राष्ट्रपति संघ और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण से संबंधित संवैधानिक उपबंधों की प्रक्रिया को भी स्थगित कर सकता है और वित्तीय आपातस्थिति के दौरान सभी धन विधेयकों को राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित किए जाने के बाद राष्ट्रपति के विचारार्थ प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकता है।

न्यायालयों ने यह निर्णय दिया है कि संविधान के अंतर्गत राज्य 'प्रभुसत्ता संपन्न' नहीं है।[10] उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है कि वे व्यापक शक्तियां राज्यों की प्रभुता के सिद्धान्त के विरुद्ध प्रतीत होती हैं जो राज्यों की सीमाओं को बदलने तथा राज्यों के अस्तित्व तक को समाप्त करने के प्रयोजन से संसद में निहित हैं।[11]

तथापि, राज्यों को अपने विधायी और कार्यपालिका प्राधिकार के लिए संघ पर निर्भर नहीं कहा जा सकता यदि वे राज्यों को आबंटित विषयों से संबद्ध हों और संघ के प्राधिकार से टकराते न हों। राज्य की मंत्रिपरिषद को राज्य के प्रशासन के संबंध में अपने कृत्यों में पूरी स्वायत्तता प्राप्त है।[12] सामान्य समय में राज्य के प्राधिकार पर प्रतिबंध सुरक्षा उपाय के रूप में हैं जिन्हें व्यापक राष्ट्रीय हित में अपनाया जाता है। केवल जब राष्ट्रपति द्वारा गंभीर आपातस्थिति अथवा वित्तीय आपातस्थिति की घोषणा की जाती है तभी राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप किया जा सकता है।

राज्यपाल

राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होती है और वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करता है।[13] राज्यपाल को

9. अनुच्छेद 353।
10. वीरेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1955)। एस.सी.आर., 415 एच.सी. सेन गुप्त बनाम अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल, ए.आई.आर. 1956 कलकत्ता, 378, श्री कृष्ण बनाम राज्य ए.आई.आर. 1957, आन्ध्र प्रदेश 734।
11. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1963, एस.सी. 1241–इस मामले में पश्चिम बंगाल सरकार ने कोयला क्षेत्र वाली भूमि संघ सरकार के लिए अधिगृहीत किए जाने और भूमि में अथवा उस पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयोजन से संसद के कानून बनाने के उस अधिकार को चुनौती दी थी जो कि राज्य सरकार में निहित है *देखिए* राज्य सूची प्रविष्टि 23 और संघ सूची की प्रविष्टि 54।
12. *राज्यपालों की समिति का प्रतिवेदन,* राष्ट्रपति सचिवालय, नई दिल्ली, 1971, पृ. 6।
13. अनुच्छेद 154।

राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करता है और संविधानेत्तर परम्परा के रूप में नियुक्ति से पहले संबद्ध राज्य के मुख्यमंत्री की अनौपचारिक रूप से सलाह ली जाती है।[14] राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है[15] और राज्यपाल की सामान्य पदावधि पांच वर्ष होती है। व्यवहार में कुछ राज्यपालों को सामान्य पदावधि से अधिक समय तक अपने पद पर बने रहने की अनुमति दी गयी है। कभी-कभी राज्यपाल का उसकी अवधि के दौरान एक राज्य से दूसरे राज्य में राष्ट्रपति के आदेश से स्थानान्तरण किया गया है। राज्यपाल के पद की शपथ के अनुसार उसे संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करना होता है।[16]

राज्यपाल के कृत्य संविधान में निर्धारित किये गये हैं। उन्हें मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात् राज्य के प्रमुख के रूप में, केन्द्र से संपर्क करने वाले के रूप में और राष्ट्रपति शासन के दौरान राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के नाते मुख्य कार्यकारी पदाधिकारी के रूप में।

राज्य के राज्यपाल के कुछ महत्वपूर्ण कृत्य ये हैं, मुख्यमंत्री तथा मंत्रीपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करना,[17] राज्य विधान सभा को आहूत करना, उसका सत्रावसान करना और उसका विघटन करना,[18] किसी विधेयक पर अनुमति देना अथवा उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखना[19] और राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना।[20]

राज्य के प्रमुख के रूप में राज्यपाल का कर्त्तव्य यह देखना है कि राजनैतिक अस्थिरता के कारण राज्य का प्रशासन अस्त-व्यस्त न हो और उसे साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना है कि राज्य में उत्तरदायी सरकार के काम में बाधा उपस्थित न हो अथवा उसे अतिष्ठित न किया जाए।[21]

संविधान में यह निर्दिष्ट नहीं किया गया है कि इन कृत्यों का निर्वहन राज्यपाल द्वारा किस प्रकार किया जाएगा और न संविधान में किसी प्राधिकारी में राज्यपाल को कोई निदेश जारी करने की शक्ति निहित करने के बारे में अथवा राज्यपाल के मार्गदर्शन के लिए कोई

---

14. *एल.एस. डिबेट्स*, 23.2.1968, ता.प्र. सं. 265 कॉ. 2889-2890; 25.4.1969, अता.प्र. सं. 7696, कॉ. 151 ।
15. अनुच्छेद 155 और 156 ।
16. अनुच्छेद 159 ।
17. अनुच्छेद 164 ।
18. अनुच्छेद 172 और 174 ।
19. अनुच्छेद 200 ।
20. अनुच्छेद 356 ।
21. *राज्यपालों की समिति का प्रतिवेदन, उद्धृत कृति*, पृ. 68 ।

संहिता अथवा नियम निर्धारण किया गया है। तथापि राष्ट्रपति किसी आकस्मिकता में किसी राज्य के राज्यपाल के कृत्यों के निर्वहन के लिए ऐसा उपबंध, जो वह ठीक समझे, जो संविधान के भाग छह के अध्याय 2 में नहीं किया गया है, करने के लिए स्वतंत्र है।[22]

इस प्रश्न पर कि क्या राज्यपाल को अनुदेश की लिखत जारी की जानी चाहिए, संविधान सभा द्वारा विचार किया गया था किन्तु बाद में यह प्रस्ताव छोड़ दिया गया। इस प्रस्ताव पर विचार न करने का मुख्य कारण यह था, कि पहले की स्थिति के विपरित, संविधान के अंतर्गत राज्यपाल राज्य के प्रमुख के रूप में काम करेगा और किसी के नियंत्रणाधीन नहीं होगा। डा. अम्बेडकर ने यह स्थिति निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट की:

> आरम्भ में ब्रिटिश संविधान में उपनिवेशों के शासन के सम्बन्ध में आदेश पत्र राज्यों के प्रधानों को इस सम्बन्ध में आदेश देने के लिये रखा गया था कि उन्हें स्वविवेक से प्रयोग करने के लिये जो शक्तियां प्रदान की गई हैं उन्हें वे कैसे प्रयोग करें। गवर्नर अथवा वायसराय, जिन्हें ये आदेश दिये जाते थे, सेक्रेट्री ऑफ स्टेट के अधीन होते थे। यदि कोई बहुत गम्भीर मामला उठ खड़ा होता था, जैसे कि यदि कोई गवर्नर आदेश पत्र द्वारा उसे दिये हुए आदेशों की बराबर उपेक्षा करता था तो सेक्रेट्री ऑफ स्टेट उसे हटा कर किसी अन्य व्यक्ति को उस के स्थान पर नियुक्त कर सकता था और इस प्रकार आदेश-पत्र को प्रयोग में ला सकता था। जहां तक हमारे संविधान का संबंध है, हमने उस में किसी ऐसे प्राधिकारी के संबंध में उपबन्ध नहीं रखे हैं जो राज्यपालों को आदेश-पत्र के आदेशों का वफ़ादारी से अनुसरण करने के लिये बाध्य करें।[23]

राज्यपाल अधिकांशतः राज्य तंत्र के अंग के रूप में काम करता है किन्तु साथ ही संघ को प्रतिवेदन देना भी उसका कर्तव्य है। संघ के प्रति उसे यह दायित्व संविधान में किए गए मुख्यतः इस उपबंध के कारण निभाना होता है कि उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है।[24] संघ के साथ संपर्क रखने की भूमिका में राज्यपाल राष्ट्रपति को समय-समय पर तथा नियमित रूप से भी राज्य से संबंधित मामलों के बारे में सूचित करता रहता है। समय-समय पर रिपोर्ट देने के अतिरिक्त ऐसे भी अवसर हो सकते हैं, जब राज्यपाल को विशेष रूप से गंभीर आंतरिक अशांति और खासतौर से कुछ राज्यों में अखिल भारतीय संदर्भ में बाह्य आक्रमण होने अथवा उसके संभावित खतरे के बारे में राष्ट्रपति को सूचित करना होता है।[25]

---

22. अनुच्छेद 160 ।
23. *सं.स.वा.वि.*, 11.10.1949, खंड X, पृ. 115 ।
24. *प्रशासनिक सुधार आयोग, नई दिल्ली को प्रस्तुत केन्द्र-राज्य संबंधों पर अध्ययन दल का प्रतिवेदन,* 1967, खण्ड 1. पृ. 272 ।
25. *राज्यपालों की समिति का प्रतिवेदन,* 1971, *उद्धृत कृति,* पृ. 22-23 ।

जहां तक राष्ट्रपति को रिपोर्ट देने के राज्यपाल के कर्तव्य का संबंध है, इस प्रकार टिप्पणी की गयी है:—

> रिपोर्ट देने संबंधी कर्तव्य के बारे में अनुच्छेद 355 में उपबंध किया गया है और इसका अनुच्छेद 356 में विशिष्ट उल्लेख किया गया है। यह सुनिश्चित करने का कर्तव्य संघ सरकार का है कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार शासन करे। संघ सरकार का राज्य में राज्यपाल के अतिरिक्त ऐसा कोई अभिकरण नहीं है जो वहां की घटनाओं की सूचना दे तथा इस बात की सूचना भी दे कि राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार शासन कर रही है या नहीं। संवैधानिक व्यवस्था के ठप्प हो जाने पर राज्यपाल से राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दिये जाने की अपेक्षा की जाती है तथा वह राष्ट्रपति को यह सलाह भी दे सकता है कि वह राज्य की सरकार के कृत्य अपने हाथ में ले।[26]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है राज्य का यह संवैधानिक कर्त्तव्य है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करे जिससे संसद द्वारा बनाई गई विधियों का अनुपालन सुनिश्चित रहे और दूसरी बात यह कि जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन न हो, उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इस संबंध में संघ सरकार राज्य सरकार को ऐसे अनुदेश देने के लिए सक्षम है जो इस प्रयोजन के लिए आवश्यक हों। राज्यपाल एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा संघ को मोटे तौर पर सूचना दी जाती है कि कोई राज्य ऐसे निदेशों का पालन कर रहा है या नहीं।

कतिपय मामलों में राज्यपाल संविधान के अंतर्गत अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना स्वतंत्र रूप से काम कर सकता है। ऐसे मामले, तब उठते हैं, जब उदाहरणार्थ किसी दल को विधानसभा में पूर्ण बहुमत नहीं मिलने के कारण मुख्यमंत्री की नियुक्ति करनी होती है विधान सभा भंग करनी होती है, जब मुख्यमंत्री बहुमत खो देता है, किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करना होता है, राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल होने पर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देना होता है, जब राज्यपाल से संविधान, विधि अथवा प्रथा के अधीन अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना स्वतंत्र होकर कोई निर्णय लिए जाने की अपेक्षा की जाती है।

यदि राज्यपाल की राय में ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार शासन नहीं कर सकती है तो राज्यपाल का यह कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति को इस बारे में अपना प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति को राज्य सरकार के कृत्य अपने हाथ में लेने के लिए निवेदन करे। राष्ट्रपति अन्यथा भी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि इस प्रकार की स्थिति पैदा हो गई है।[27] छठी लोक सभा के चुनाव के बाद जब जनता पार्टी ने केन्द्र

---

26. *देखिए* अध्ययन दल का प्रतिवेदन 'खण्ड 1'. (1967), *उद्धृत कृति*, पृ. 276 ।
27. संविधान के अनुच्छेद 356 तथा संघ राज्य क्षेत्र सरकार अधिनियम-1963 की धारा 51 के अंतर्गत जारी की गई राष्ट्रपति की उद्घोषणाओं से संबंधित विवरणों के लिए *देखिए "राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में राष्ट्रपति का शासन,"* लोक सभा सचिवालय, 2010 ।

में कार्य भार संभाला तो उन्होने नौ राज्यों के मुख्यमंत्रियों से यह अनुरोध किया कि वे इस आधार पर अपनी विधान सभाओं का विघटन कर नए चुनाव कराने की सलाह राज्यपालों को दें कि सात राज्यों ने संविधान में मूलतः निर्धारित पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा कर लिया है। (उनके कार्यकाल को आपातस्थिति के दौरान छह वर्ष के लिए बढ़ाया गया। *देखिए* 42वां संविधान संशोधन अधिनियम 1976) और इस तथ्य के कारण भी कि मार्च, 1977 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी (नौ राज्यों में सत्ताधारी दल) को लोक सभा में केवल दो स्थान मिले हैं और उसने राज्यों में शासन करने का जनादेश खो दिया। मुख्यमंत्रियों ने ऐसा करने से इंकार कर दिया राष्ट्रपति ने संघ की मंत्रिपरिषद की सलाह पर अनुच्छेद 356 के अधीन नौ राज्यों में विधान सभा का विघटन करने की उद्घोषणा की और उन राज्यों की विधान सभाओं के लिए चुनाव कराने के आदेश दिए।

जनवरी 1980 में लोक सभा के मध्यावधि चुनावों के बाद 17 फरवरी 1980 को नौ राज्यों के संबंध में अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणाएं जारी की गई और इन राज्यों की विधान सभाएं एक साथ विघटित की गई क्योंकि संघ सरकार ने यह महसूस किया कि लोक सभा चुनावों में भारी पराजय के कारण इन राज्यों में तत्कालीन सत्ताधारी दल लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

राज्यपाल से प्राप्त प्रतिवेदन के आधार पर 7 अगस्त, 1988 को अनुच्छेद 356 के अधीन नागालैंड राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया था। राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने के निर्णय की वैधता को गुवाहाटी उच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी[28] राज्यपाल से प्राप्त प्रतिवेदन के आधार पर 21 अप्रैल, 1989 को कनार्टक राज्य में भी राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने के निर्णय को कर्नाटक उच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी।[29] गुवाहाटी और कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की गई थी। इन मामलों में निर्णय, एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ के महत्वपूर्ण मामले में, उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा किया गया। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि 1988 में नागालैंड में और 1989 में कर्नाटक में राष्ट्रपति शासन लगाया जाना असंवैधानिक था और इसलिए, इसे समाप्त किया जाना चाहिए। तथापि इन राज्यों में इस पर कोई कार्यवाही नहीं हो सकी क्योंकि चुनाव पहले ही हो चुके थे और नई सरकारें गठित हो चुकी थीं, और पुरानी विधान सभाओं को बहाल करना संभव नहीं था।

अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिराये जाने के बाद, भारतीय जनता पार्टी शासित उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश राज्यों में अनुच्छेद 356 के अधीन दिसम्बर, 1992 में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया था। राष्ट्रपति की इस कार्यवाही की वैधता को तीन

---

28. (1988) 2 गुवाहाटी एल.जे. 468 ।

29. ए.आई.आर. 1990, कर्नाटक 5 ।

राज्यों अर्थात् मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश के उच्च न्यायालयों में चुनौती दी गई थी। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि मध्य प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना असंवैधानिक है और इस कृत्य को न्यायोचित ठहराने हेतु कोई संगत सामग्री उपलब्ध नहीं है।[30] इस निर्णय के विरुद्ध भारत सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील की गई। उच्चतम न्यायालय की नौ सदस्यीय पीठ ने गुवाहाटी, कर्नाटक और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों और राजस्थान और हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालयों में दायर उन याचिकाओं जिन्हें उच्चतम न्यायालय में अंतरित कर दिया गया था, की एक साथ सुनवाई की।

उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से लिए अपने निर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा कि अनुच्छेद 356 के द्वारा राष्ट्रपति को प्रदत्त अधिकार एक सशर्त शक्ति है। यह आत्यंतिक शक्ति नहीं है। इस संबंध में आवश्यक सामग्री का राज्यपाल के प्रतिवेदन से युक्त होना या जिसमें राज्यपाल के प्रतिवेदन का सम्मिलित होना एक पूर्व शर्त है। संगत सामग्री के संबंध में राष्ट्रपति का समाधान आवश्यक है। इसमें यह भी कहा गया है कि न्यायालय केन्द्रीय मंत्रिपरिषद (भारत संघ) को न्यायालय के समक्ष वह सामग्री प्रस्तुत करने को कह सकता है जिसके आधार पर राष्ट्रपति ने आवश्यक सामाधान किया है और अनुच्छेद 74 (2) न्यायालय को इस बात से वर्जित नहीं करता। मंत्रिपरिषद द्वारा दिया गया प्रशासनिक निर्णय राष्ट्रपति को दी गई सलाह से सर्वथा भिन्न है और उत्तरवर्ती को राष्ट्रपति की उद्घोषणा हेतु आधार या कारण नहीं समझा जाना चाहिए। पूर्ववर्ती मंत्रिपरिषद द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह का हिस्सा नही है। अनुच्छेद 356 (1) के अधीन की गई उद्घोषणा, न्यायिक संवीक्षा से परे नहीं है। इस प्रकार की उद्घोषणा का सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय द्वारा निरसन किया जा सकता है यदि यह असद्भावपूर्वक अथवा पूर्णरूपेण अप्रासंगिक या बाह्य आधार पर की गई हो। जब निर्देश दिया जाएगा तो संघ सरकार को वह सामग्री प्रस्तुत करनी होती है जिसके आधार पर ऐसी कार्यवाही की गई। यदि सरकार अपने निर्णय को उचित ठहराना चाहती है तो वह ऐसा करने से इंकार नहीं कर सकती। न्यायालय सामग्री की सत्यता अथवा उसकी पर्याप्तता की जांच नही करता बल्कि उसकी जांच यह देखने तक ही सीमित होती है कि क्या सामग्री इस आधार पर लिए गए निर्णय हेतु प्रासंगिक है या नहीं। यदि सामग्री का कोई अंश प्रसंगेतर हो तब भी न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नही कर सकता जब तक कि सामग्री का कुछ भाग की गई कार्यवाही हेतु प्रासंगिक हो। यदि न्यायालय उद्घोषणा का निरसन करता है तो उस अवस्था में इसे अपदस्थ सरकार को बहाल करने और विधान सभा को पुन:प्रवर्तित और सक्रिय करने का अधिकार है, जहां कहीं इसे विघटित कर दिया गया हो अथवा निलंबित कर दिया गया हो। विधान सभा को विघटित करने की शक्ति का प्रयोग, संसद के दोनों सदनों द्वारा उद्घोषणा के अनुमोदन के बाद ही किया जा सकता है, उससे पहले नही।[31]

---

30. 1993 जबलपुर एल.जे. 387 ।

31. *एस.आर. बोम्मई* बनाम *भारत संघ,* ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1918 (पृष्ठ 2006, पैरा 96) (1994) 3 एस.सी.सी. ।

ऐसे ही एक अन्य मामले में, तेरहवीं बिहार विधान सभा के चुनाव फरवरी 2005 में तीन चरणों में हुए थे। 4 मार्च 2005 को भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 के अनुसरण में बिहार विधान सभा के सम्यक् गठन से संबंधित अधिसूचना जारी की गई। विधान सभा की 243 सीटों के लिए किसी भी दल/चुनाव पूर्व गठबंधन को सामान्य बहुमत नहीं मिला। इस परिस्थिति में बिहार के राज्यपाल ने अपनी 6 मार्च 2005 की रिपोर्ट में राष्ट्रपति से यह सिफारिश की कि इस नवगठित विधान सभा को निलंबित रखा जाए। चूंकि कोई भी राजनीतिक दल सरकार बना पाने की स्थिति में नहीं था, 7 मार्च 2005 को संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत अधिसूचना जारी करके बिहार राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया और विधान सभा को निलंबित रखा गया। तथापि, कोई भी स्थायी गठबंधन नहीं हो पाने पर, बिहार के राज्यपाल ने 21 मई 2005 को राष्ट्रपति को एक अन्य रिपोर्ट भेजी। राज्यपाल की रिपोर्ट में यह उल्लेख था कि उनकी राय में, राज्य में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि जिसमें राज्य के हित में यह वांछनीय होगा कि निलंबित रखी गई विधान सभा को विघटित कर दिया जाए ताकि लोगों को एक और जनादेश देने का अवसर प्राप्त हो सके। केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने रिपोर्ट को स्वीकार करने का निर्णय किया और राष्ट्रपति को बिहार विधान सभा का विघटन करने की सिफारिश कर दी। राष्ट्रपति ने सिफारिश का अनुमोदन कर दिया। आवश्यक प्रक्रिया के बाद 23 मई 2005 को विधान सभा के विघटन की अधिसूचना जारी की गई। इस प्रकार बिहार विधान सभा अपने गठन के पश्चात् एक दिन की भी बैठक किए बिना विघटित हो गई। तथापि, इस कार्यवाही को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से निर्णय दिया कि बिहार विधान सभा सभी आशयों और प्रयोजनों हेतु, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) की धारा 73 के तहत अधिसूचना जारी होने पर सम्यक् रूप से गठित मानी गई थी और उसकी अवधि इसके सम्यक् गठन से मिली थी। न्यायालय ने आगे निर्णय दिया कि बिहार विधान सभा को विघटित करने वाली उद्घोषणा असंवैधानिक थी परन्तु यह टिप्पणी की कि यदि विघटन वाली अधिसूचना असंवैधानिक थी तो भी स्वाभाविक परिणाम यथापूर्व स्थिति की बहाली करना नहीं था। विघटन संबंधी अधिसूचनाओं को अवैध घोषित करते समय न्यायालय जमीनी वास्तविकताओं और संगत तथ्यों का मूल्यांकन कर सकता है और परिस्थितियों के अनुसार निर्णय ले सकता है। न्यायालय ने महसूस किया कि यथापूर्व स्थिति की बहाली कोई राहत नहीं पहुंचा पाएगी भले ही अधिसूचनाएं अवैध घोषित हो गई हों।[32]

जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के बारे में उद्घोषणा करता है तो वह प्राय: राज्य के उन कृत्यों के निर्वहन के लिए, जो उद्घोषणा के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा अपने हाथ में ले लिए गए हैं, राज्यपाल को राज्य का प्रमुख कार्यकारी प्राधिकारी नियुक्त करता है।[33]

---

32. *रामेश्वर प्रसाद* और *अन्य बनाम भारत संघ* और अन्य, ए.आई.आर 2006 एस.सी 980 (पृष्ठ 1103-04)

33. *देखिए* अनुच्छेद 356 ।

संसद में और संसद के बाहर यह सुझाव दिया गया है कि राज्यपाल द्वारा विवेकाधिकारों का प्रयोग किस प्रकार से किया जाए, इसके लिए मार्गदर्शी सिद्धांत बनाए जाने चाहिएं। गृह मंत्री ने कहा कि राज्यपालों को विशेष रूप से अंतःकालीन अवधि के दौरान कतिपय मार्गदर्शी सिद्धांत देने के लिए गुंजाइश है किन्तु इन मार्गदर्शी सिद्धांतों के बारे में सभी राजनीतिक दलों की सहमति होनी चाहिए जिससे उन्हें परंपरा के रूप में शक्ति मिले। तथापि कोई भी मार्गदर्शी सिद्धांत जारी नहीं किए गए क्योंकि दलों के नेताओं को दिए गए कतिपय सुझावों की कोई प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई है।[34]

राज्यपालों की समिति जिसे राष्ट्रपति के कहने पर गठित किया गया था, ने राज्यपालों के लिए किन्हीं कठोर मार्गदर्शी सिद्धांत जारी करने के विरुद्ध मत व्यक्त किया क्योंकि "इस तथ्य के अतिरिक्त कि स्वयं संविधान में इस प्रकार के मार्गदर्शी सिद्धांत जारी करने का कोई उपबंध नहीं है, यह यथार्थपरक नहीं है और बुद्धिमता से पूर्ण भी नहीं है।"[35] तथापि समिति उसके विचारार्थ सौपे गए मामलों के बारे में निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंची।[36]

मुख्यमंत्री का चयन

जहां विधान सभा में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ हो, वहां राज्यपाल को प्रथमतः तथा आवश्यक रूप से, स्वयं का समाधान करना होगा कि वह जिस व्यक्ति को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करे, उसे विधान सभा में बहुमत से समर्थन प्राप्त है और इस उद्देश्य हेतु विभिन्न दलों अथवा समूहों के नेताओं से परामर्श करने से उसे कोई भी बात निवारित नहीं करती, वस्तुतः अधिकांश परिस्थितियों में ऐसा करना उसके लिए आवश्यक हो।

यदि किसी साधारण निर्वाचन से पूर्व कुछ दल किसी सहमत कार्यक्रम पर एकजुट हों अथवा चुनावी समझौता करते हैं कि अगर उनके दलों के गठबंधन को बहुमत मिलता है तो वे मिलकर सरकार बनाएंगे और अगर ऐसे गठबंधन को बहुमत प्राप्त होता है, तब राज्यपाल गठबंधन के आम सहमति से चुने गए नेता को सरकार बनाने हेतु आमंत्रित करने के लिए बाध्य होगा।

जहां कुछ दल अथवा समूह चुनाव के बाद सरकार बनाने के लिए गठबंधन करते हैं वहां गठबंधन करने वाले दल अथवा समूह यदि अपने नेता का चुनाव कर लें तो इससे राज्यपाल को मुख्य मंत्री का चुनाव करने में आसानी होगी।

ऐसे व्यक्ति को, जो कि विधान सभा का सदस्य नहीं है, अथवा नामनिर्दिष्ट सदस्य नहीं है, सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना संसदीय प्रणाली की भावना के विरुद्ध होने के आधार पर इसकी आलोचना हो सकती है।

---

34. *एल.एस. डिबेट्स*, 24.3.1970, कॉ. 395 ।
35. राज्यपालों की समिति का प्रतिवेदन, *उद्धृत कृति*, पृ. 73 ।
36. *पूर्वोक्त*, पृ. 28-63 ।

राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल

मिली-जुली सरकार में जब भागीदारों के बीच खुला विभाजन हो जाये और उन भागीदारों में से कोई एक या अधिक भागीदार सरकार से अपना समर्थन वापस ले लें तो मुख्यमंत्री को, अपने उन सहयोगियों, जिनके साथ उनकी नहीं बन रही है, से त्यागपत्र मांगने के बजाय अपना ही त्यागपत्र दे देना चाहिए जिसका अभिप्राय होगा कि उनकी पूरी मंत्रिपरिषद् ने त्यागपत्र दे दिया है। ऐसी अवस्था में यदि वह चाहे तो बहुमत के समर्थन से नया मंत्रिमंडल बनाने के लिए नए सिरे से दावा कर सकता है और यदि राज्यपाल का समाधान हो जाता है कि ऐसा समर्थन विद्यमान है तो वह मुख्यमंत्री को सरकार बनाने की अनुमति दे सकता है। परन्तु यदि मुख्यमंत्री ऐसी परिस्थितियों में त्यागपत्र नहीं देता है तो राज्यपाल को वैकल्पिक सरकार बनाने की संभावनाओं का पता लगाने के लिए तुरंत पहल करनी चाहिए। यदि उन्हें ऐसी कोई संभावना नजर नहीं आती तभी उन्हें अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति को इसकी रिपोर्ट देनी चाहिए।

यदि मिली-जुली सरकार में किसी विशेष दल या ग्रुप के कुछ मंत्री, मुख्यमंत्री से मतभेद होने के कारण या किसी अन्य कारण से अपने आप ही त्याग-पत्र देते हैं तो मुख्यमंत्री को त्यागपत्र देने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु इस प्रकार त्यागपत्र दिए जाने से यदि विधान सभा में मुख्यमंत्री के बहुमत को खतरा पैदा हो जाता है तो मुख्यमंत्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राज्यपाल को यह सलाह दे कि विधान सभा को शीघ्रातिशीघ्र आहूत किया जाए ताकि वह अपने पक्ष में उसका निर्णय प्राप्त करके विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध कर सके। यदि मुख्यमंत्री यह तरीका नहीं अपनाता है तो राज्यपाल को दूसरी सरकार बनाने के लिए दूसरे दलों के नेताओं से परामर्श आरंभ करना चाहिए। यदि राज्यपाल का समाधान हो जाता है कि कोई अन्य नेता बहुमत के समर्थन से सरकार बना सकता है तो राज्यपाल को उस नेता को मंत्रिमंडल बनाने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। तब राज्यपाल के लिए वर्तमान मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद् से अपना "प्रसाद" वापस लेना उचित होगा। दूसरी ओर, यदि राज्यपाल का समाधान हो जाता है कि विधान सभा में किसी भी नेता को बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है तो उसे संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति के पास इसके बारे में प्रतिवेदन भेजना चाहिए और विघटन के लिए सिफारिश करनी चाहिए। ऐसे मामले में विघटन ही एक सही तरीका होगा क्योंकि इससे मतदाताओं को एक स्थिर सरकार को सत्ता में लाने का अवसर मिल जायेगा।

विधान सभा को आहूत किया जाना

विधानमंडल को आहूत करने के लिए राज्यपाल को अपनी मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करना होता है क्योंकि मंत्रिपरिषद् ही विधानमंडल के सत्र के लिए कार्य निर्धारित करता है।

विधान सभा का सत्रावसान

सत्रावसान के लिए राज्यपाल को सामान्यत: अपने मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही कार्य करना चाहिए। जब मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास की सूचना विधान सभा के विचाराधीन हो, तो राज्यपाल को सबसे पहले अपना समाधान करना चाहिए कि सूचना निराधार तो नहीं है और यह सरकार के बहुमत को चुनौती देने के विपक्ष के संसदीय अधिकार का औचित्यपूर्ण प्रयोग है। यदि राज्यपाल का समाधान हो जाता है तो उन्हें मुख्यमंत्री से विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहना चाहिए और प्रस्ताव पर बहस और मतदान कराना चाहिए। अन्यथा विधान सभा का सत्रावसान करना विधान सभा के प्रति मंत्रिपरिषद् के दायित्व से बचने के समान होगा।

यदि किसी राज्य में विधान सभा या विधानमंडल का सत्रावसान कर दिया जाता है तो इस मामले को लोक सभा में उठाया जा सकता है और कतिपय परिस्थितियों में अध्यक्ष उस पर चर्चा करने की अनुमति दे सकते हैं।[37]

विधान सभा का विघटन

सामान्यत: राज्यपाल को विघटन की अपनी शक्ति का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह पर करना चाहिए। यदि वह मुख्यमंत्री जिसे बहुमत का समर्थन प्राप्त है, विघटन की सलाह देता है तो राज्यपाल को उसकी सलाह मान लेनी चाहिए, परन्तु यदि वह उस समय विघटन की सलाह देता है जब उसका बहुमत नहीं रह गया है तो राज्यपाल को उसकी सलाह उसी स्थिति में माननी चाहिए जब मंत्रिमंडल की किसी मुख्य नीति के प्रश्न पर हार हो गई है और मुख्यमंत्री उस नीति पर जनादेश प्राप्त करने के लिए मतदाताओं से अपील करना चाहते हैं। यदि किसी मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव किया जाता है और मुख्यमंत्री विधान सभा में बहुमत सिद्ध करने के बजाय राज्यपाल को विधान सभा का विघटन करने की सलाह देता है तो राज्यपाल के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह ऐसी सलाह को माने, बल्कि उन्हें मुख्यमंत्री से कहना चाहिए कि वह अविश्वास प्रस्ताव पर विधान सभा का निर्णय प्राप्त करे। जम्मू और कश्मीर विधान सभा के विघटन के बारे में एक स्थगन प्रस्ताव लोक सभा द्वारा 29 मार्च, 1977 को चर्चा हेतु लिया गया। चर्चा के उपरान्त प्रस्ताव को सभा की अनुमति से वापस लिया गया।[38] 27 नवम्बर, 1996 को (1) उत्तर प्रदेश में राज्यपाल के कथित असंवैधानिक कृत्य तथा उस राज्य में राष्ट्रपति शासन जारी रखे जाने; (2) उत्तर प्रदेश में राजनीतिक और संवैधानिक गतिरोध; और (3) राज्यों में सरकार बनाने के संबंध में राज्यपालों के आचरण संबंधी दिशानिर्देश बनाने में सरकार की विफलता के संबंध में श्री अटल बिहारी वाजपेयी,

---

37. सभा को अनुमति प्रदान की गई और "राज्यपाल द्वारा मध्य प्रदेश विधान सभा का सत्रावसान रोकने में केन्द्रीय सरकार की असफलता" के आधार पर स्थगन प्रस्ताव नियम 60 और 61 का निलम्बन करने के बाद स्वीकृत हुआ—*लो.स.वा.वि.*, 20.7.1967 ।

38. *एल.एस. डिबेट्स*, 29.3.1977, कॉ. 159–237 ।

डॉ. मुरली मनोहर जोशी, सर्वश्री जसवंत सिंह, प्रमोद महाजन, एस. बंगारप्पा और राम नाइक द्वारा स्थगन प्रस्ताव की सूचनाएं दी गईं। अध्यक्ष ने सदस्यों और संबंधित मंत्री को सुनने के पश्चात् सूचनाओं को स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह मामला न्यायालय के विचाराधीन था।[39] एक अन्य मामले में, अध्यक्ष ने गोवा में सम्यक् रूप से निर्वाचित सरकार को बर्खास्त कर दिए जाने के बारे में श्री लाल कृष्ण आडवाणी द्वारा दिए गए स्थगन प्रस्ताव की सूचना को स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि यह मामला भी न्यायालय के विचाराधीन था।[40]

ऐसे मामले में जिसमें मुख्यमंत्री उस समय विधान सभा के विघटन की सिफारिश करता है जब बजट पास नहीं हुआ हो और मंत्रिमंडल बहुमत के समर्थन का दावा करता हो तो ऐसी स्थिति में मंत्रिमंडल को विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करना चाहिए और किसी भी कारण से विघटन की मांग करने से पहले बजट पारित करना चाहिए। दूसरी ओर यदि यह विश्वास करने का कोई ठोस कारण है कि मुख्यमंत्री को बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है, तो राज्यपाल को यह पता लगाने के लिए कार्यवाही करनी चाहिए कि क्या ऐसा दूसरा मंत्रिमंडल बनाना संभव है जिसे बहुमत का समर्थन प्राप्त हो और जो बजट पारित करा सके। इन दोनों में से यदि कोई भी बात न हो, तो राज्यपाल के पास अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति को इस स्थिति के बारे में प्रतिवेदन देने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह जाता क्योंकि तब केवल संसद ही राज्य का प्रशासन चलाने के लिए विनियोग हेतु स्वीकृति प्रदान कर सकती है।

यदि मुख्यमंत्री को बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है तो राज्यपाल विधान सभा का विघटन करने संबंधी उसकी सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है।

संसद और राज्य के मामले

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों में राज्य के उन विषयों पर चर्चा करने की मनाही है जिन पर संबंधित राज्य विधान मंडल में समुचित रूप में चर्चा की जा सकती है।[41] कुछ मिले-जुले प्रश्न हैं जहां राज्य और केन्द्र दोनों का दायित्व अंतर्ग्रस्त है, उदाहरणार्थ यद्यपि कानून और व्यवस्था राज्य की जिम्मेदारी है तथापि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को दबाने या केन्द्र सरकार के नियंत्रणाधीन किसी उपक्रम में हिंसक उपद्रवों से निपटने या औद्योगिक श्रमिकों की मांग को दबाने आदि के लिए पुलिस बल का प्रयोग संबंधी प्रश्न ऐसे हैं जिनके लिए केन्द्र भी उत्तरदायी है, ये प्रश्न संसद में उठाये जा सकते हैं। अतः

---

39. *एल.एस. डिबेट्स*, 27.11.1996, कॉ. 200-01 ।

40. *पूर्वोक्त*, 1.3.2005, कॉ. 11-12 ।

41. *सिल्वर जुबली सोवेनीर ऑफ दि हिमाचल प्रदेश स्टेट लेजिस्लेचर असेम्बली*, 1988 पृ. 16-19 में *देखिए* सुभाष सी. कश्यप, "पार्लियामेंट एंड स्टेट लेजिस्लेचर्स—ए लुक इंटू देयर पार्टिसिपेटरी रिलेशनशिप" ।

किसी राज्य सरकार से संबंधित मामले पर स्थगन प्रस्ताव तब तक विधिमान्य नहीं है[42] जब तक कि उसी सूचना के साथ ऐसा विवरण संलग्न नहीं है जिसमें यह दर्शाया गया हो कि केन्द्र का दायित्व किस प्रकार पूरा नहीं किया गया।[43] इस प्रकार, ऐसे संकल्प या प्रस्ताव जो उन मामलों के बारे में है जिनका राज्य सरकारों से मुख्य रूप से संबंध है और जो उनकी स्वायत्तता में हस्तक्षेप करते हैं, ग्राह्यय नहीं है।

सामान्यत: उन मामलों पर ध्यानाकर्षण की सूचनाएं स्वीकृत नहीं की जातीं जो मुख्यत: भारत सरकार से संबंधित नहीं होतीं। अत: किसी राज्य में किन्हीं व्यक्तियों की गिरफ्तारी ध्यानाकर्षण सूचना का विषय नहीं हो सकती जब तक कि यह न दिखाया जाये कि गिरफ्तारी केन्द्र सरकार की सलाह पर की गई थी।[44] किन्ही मामलों में उनके विशेष महत्व और लोकहित को देखते हुए, ऐसी सूचनायें गृहीत कर ली गई हैं, यथा अनुसूचित जातियों[45] की एक बारात को तंग किए जाने का आरोप या राज्य विधानमंडल के परिसर की मर्यादा को भंग किया जाना।[46] किसी राज्य के विषय के किसी विशेष पहलू पर ध्यानाकर्षण सूचना गृहीत की गई है यदि उसमें केन्द्र का दायित्व अंतर्ग्रस्त है।[47] उदाहरणार्थ राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में बड़े स्तर पर तोड़-फोड़ अभियान चलाए जाने के कारण दिल्ली वासियों की समस्याओं का समाधान करने में सरकार की उदासीनता से उत्पन्न स्थिति,[48] उड़ीसा के कलिंगनगर में कथित रूप से पुलिस द्वारा आदिवासियों पर निर्दयतापूर्ण हमले और उन्हें मारे जाने के कारण उत्पन्न स्थिति[49] तथा गुवाहाटी में 24 नवम्बर, 2007 को ऑल आदिवासी स्टूडेन्ट्स एसोसिएशन ऑफ असम (एएएसएए) द्वारा प्रदर्शन के दौरान और उसके पश्चात् हुई हिंसा से उत्पन्न स्थिति और इस संबंध में सरकार द्वारा उठाए गए कदम।[50] हाल ही में देश के विभिन्न भागों में डेंगू और चिकुनगुनिया के प्रकोप से उत्पन्न स्थिति और तमिलनाडु में नारियल उत्पादकों की दशा जिसके परिणामस्वरूप भुखमरी से मृत्यु हो रही है, से संबंधित ध्यानाकर्षण की सूचनाएं ग्रहीत की गई तथा उन पर चर्चा की गई।[51] केन्द्र का यह संवैधानिक कर्त्तव्य भी है कि वह यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार

---

42. उदाहरणार्थ *देखिए एल.एस.डिबेट्स,* 13.3.1959, कॉ. 6144-45; 25.7.1966, कॉ. 127-57; *लो.स.वा.वि.*, 12.8.1966, पृ. 116 ।
43. *एल.एस.डिबेट्स,* 29.8.1957, कॉ. 10666-67 ।
44. *पूर्वोक्त,* 15.3.1966, कॉ. 5582-83 ।
45. *पूर्वोक्त,* 20.2.1959, कॉ. 2176-77 ।
46. *पूर्वोक्त,* 4.8.1969, कॉ. 236-37, 6.8.1969, कॉ. 231-34 ।
47. *पूर्वोक्त,* 17.8.1963, कॉ. 926 ।
48. *पूर्वोक्त,* 6.3.2006, कॉ. 331 ।
49. *पूर्वोक्त,* 14.3.2006, कॉ. 353 ।
50. *एल.एस.डिबेट्स,* 3.12.2007, कॉ. 480 ।
51. *एल.एस.डिबेट्स,* 30.11.2012, कॉ. 778-86; और 10.12.2012, कॉ. 799-811

चलाई जाये।[52] इन्ही बातों को ध्यान में रखते हुए, पंजाब विधान सभा और तमिलनाडु विधान सभा में संवैधानिक संकटों से संबंधित ध्यानाकर्षण सूचनाएं गृहीत की गईं और उन पर चर्चा की गई।[53]

एक अन्य मामले में, कानून और व्यवस्था के एक मामले में संबंधित ध्यानाकर्षण सूचना के अस्वीकार किए जाने के बाद मंत्री से कहा गया कि वह राज्य सरकार से जानकारी प्राप्त करने के बाद इस शर्त पर तथ्यात्मक वक्तव्य दे कि जिन सदस्यों ने सूचना दी है, उन्हें वक्तव्य पर प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जायेगी।[54]

ऐसे किसी मामले पर प्रश्न स्वीकार नहीं किया जाता जो पूर्णत: राज्य की स्वायत्तता के अंतर्गत आता है या जिसके संबंध में राज्य सरकारों का केन्द्रीय सरकार से कोई सरोकार नहीं है और विधि या तथ्य की दृष्टि से राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। केवल उन्हीं प्रश्नों को स्वीकार किया जा सकता है जिनमें अखिल भारतीय स्वरूप के किसी मामले पर आंकड़ों के रूप में जानकारी मांगी गई है और जो किसी राज्य की नीति अथवा प्रशासन से संबंधित न हों। तथापि, किन्हीं मामलों में राज्य प्रशासन की नीतियों से संबंधित प्रश्न भी स्वीकार किए जा सकते हैं यदि (1) प्रत्येक राज्य प्रशासन द्वारा अलग-अलग परंतु अखिल भारतीय स्तर पर कार्यवाही किया जाना अपेक्षित हो; (2) मामला अखिल भारतीय महत्व अथवा रुचि का हो; (3) ऐसी नीतियां या मामले अंतर्ग्रस्त हों जिनमें भारत सरकार अनुदान, ऋण अथवा सलाह देती है; (4) राज्य सरकारें भारत सरकार के अभिकरणों के रूप में कार्य करती हैं तथा अभिकरणों के रूप में ही ब्यौरा तैयार करती हैं; (5) यदि मामला अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, अल्पसंख्यकों पर अत्याचार या सांप्रदायिक गड़बड़ी का हो, (6) यदि मामला रेल यात्रा में सुरक्षा का हो; और (7) यदि प्रश्न केन्द्रीय अधिनियम अथवा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं को लागू करने से संबंधित हो।

जब किसी राज्य के मुख्यमंत्री के विरुद्ध राष्ट्रपति अथवा प्रधान मंत्री के पास अभ्यावेदन अथवा आरोप भेजे जाते हैं तो उन पर क्या कार्यवाही की गई है यह जानने के लिए प्रश्न पूछा जा सकता है। यदि मामले की जांच केन्द्र सरकार द्वारा की गई है, तो राज्य सरकार के मुख्यमंत्रियों, मंत्रियों और भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप से संबंधित प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं।

ऐसे मामलों पर जो भारत सरकार और किसी राज्य की सरकार के बीच पत्र-व्यवहार का विषय रहे हैं, कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। तथापि, तथ्य के मामले पर प्रश्न पूछा जा सकता है और इसके उत्तर में केवल तथ्य ही बताये जाते हैं। कोई सदस्य तथ्य के मामले में

52. *देखिए* अनुच्छेद 355 ।

53. पंजाब में संवैधानिक संकट के लिए *देखिए एल.एस.डिबेट्स,* 11.3.1968, कॉ. 2908-15; 14.3.1968, कॉ. 892-930; 20.3.1968, कॉ. 1821-23 और 1890-98; 21.3.1968, कॉ. 2303-98; तथा तमिलनाडु में संवैधानिक संकट के लिए *देखिए एल.एस.डिबेट्स,* 5.12.1972 ।

54 *लो.स.वा.वि.*, 18.4.1966, पृ. 6805 ।

जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछ सकता है, जैसे कि क्या किसी महत्वपूर्ण मामले पर राज्य सरकार ने केन्द्र सरकार से परामर्श किया था।[55] केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच हुए पत्र–व्यवहार के संबंध में क्या विशेष जानकारी सभा को दी जाए, इसका फैसला करना संबंधित मंत्री का कार्य है।[56] भारत सरकार के किसी विशेष संदर्भ पर राज्य सरकार द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को जानने के लिए पूछे गए प्रश्न सामान्यत: गृहीत नहीं किए जाते।

कानून और व्यवस्था राज्य का विषय है परन्तु किसी राज्य की कानून और व्यवस्था की स्थिति पर चर्चा करने की अनुमति दी जा सकती है यदि उसमें राष्ट्रीय सुरक्षा अन्तर्ग्रस्त है और किसी न किसी रूप में भारत सरकार को भी उसके लिए उत्तरदायी ठहराया गया हो।[57] उदाहरणार्थ, 16 दिसम्बर, 2012 को दक्षिणी दिल्ली में हुए सामूहिक बलात्कार की घटना के संबंध में चर्चा की अनुमति दी गई थी।[58]

संसद ने सभा के अंदर प्रक्रिया और कार्य संचालन के संदर्भ में, राज्य विधान मंडलों की प्रभुता को स्वीकर किया है और अध्यक्ष ने उससे संबंधित किसी भी मामले के बारे में चर्चा की अनुमति नहीं दी है।[59] लेकिन अपवाद स्वरूप कुछ मामलों में घटनाओं के विशेष महत्व के कारण चर्चा की अनुमति दी गई है। एक ध्यानाकर्षण सूचना को स्वीकार किया गया क्योंकि संबंधित विषय एक राज्य विधान मंडल के परिसर की मर्यादा भंग करने के बारे में था।[60] एक राज्य विधान सभा में उर्दू भाषा में कुछ सदस्यों द्वारा शपथ लिए जाने/प्रतिज्ञान कराने से इंकार किए जाने के समाचार पर एक ऐसी ही सूचना को इस आधार पर स्वीकार कर लिया गया कि यह एक संवैधानिक मामला है कि क्या अल्पसंख्यक भाषाई समूह के किसी निर्वाचित सदस्य को अपनी ही भाषा में शपथ लेने के उसके अधिकार से वंचित किया जा सकता है[61] और जिस व्यक्ति को इस प्रकार वंचित किया जाता है वह न्याय प्राप्त करने के लिए किसी न्यायालय में जा सकता है। एक अन्य मामले में, किसी राज्य में राज्य विधान सभा का सत्रावसान कर दिया गया जबकि इसके समक्ष मंत्रिपरिषद में अविश्वास का एक प्रस्ताव चर्चा हेतु लंबित था इस बारे में लोक सभा में कुछ सदस्यों द्वारा स्थगन प्रस्ताव की सूचना दी गई। अध्यक्ष ने इस स्थगन प्रस्ताव को अनुमति नहीं दी और कहा कि लोक सभा, राज्य विधान सभा में अंगीकृत प्रक्रिया को प्रश्नगत करने के लिए सक्षम नहीं है। तथापि, अध्यक्ष

---

55. *पूर्वोक्त,* 21.5.1957, ता.प्र.सं. 189 ।
56. *लो.स.वा.वि.,* 8.8.1957 ।
57. उदाहरण के लिए *देखिए लो.स.वा.वि.*, 13.6.1967, पृ. 2097–2105 और 19.3.1984, पृ. 481–501 ।
58. एल.एस. डिबेट्स, 18.12.2012, कॉ. 8.887–90।
59. *पूर्वोक्त*, 21.8.1969, कॉ, 234, 235, 244–45 और *लो.स.वा.वि.*, 29.8.1969, पृ. 152–55 ।
60. *पूर्वोक्त*, 4.8.1969, पृ. 161–63 और 6.8.1969, पृ. 139–40 ।
61. *एल.एस. डिबेट्स,* 20.3.1969, कॉ. 201 ।

ने सभा को इस प्रश्न के संवैधानिक पहलू पर विचार करने की अनुमति दे दी परन्तु साथ ही यह टिप्पणी की कि चर्चा के दौरान कोई सदस्य विशेष निर्णय लेने की विधान सभा की सक्षमता और विधान सभा अध्यक्ष के विनिर्णय के बारे में किसी प्रकार का उल्लेख न करे।[62]

जब कोई राज्यपाल, राज्य के संवैधानिक प्रमुख के कर्त्तव्यों का निर्वहन करता है तो उसके कृत्य संसद में प्रश्न पूछे जाने अथवा वाद-विवाद का विषय नहीं बन सकते। परन्तु जब वह अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना स्वतंत्र रूप से कोई निर्णय लेता है या जब वह राष्ट्रपति शासन के अधीन किसी राज्य के मुख्य कार्यकारी के रूप में कार्य करता है तो संसद उसके कृत्यों की संवीक्षा कर सकती है।

चौथे आम चुनावों के परिणामस्वरूप, कई राज्यों के राज्यपालों को कठिन और नाजुक स्थितियों का सामना करना पड़ा। कई राज्यों में विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं, नीतियों और कार्यक्रमों वाले विभिन्न राजनीतिक दलों की मिली-जुली सरकारें बनीं और विधायकों द्वारा बार-बार दल परिवर्तन करने के कारण राजनीतिक अस्थिरता की गंभीर स्थिति पैदा हो गई जिसके परिणामस्वरूप राज्यपालों को ऐसी बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ा जिसकी संभवत: संविधान के निर्माताओं ने कल्पना भी नहीं की थी। राज्यपालों को ऐसे बहुत से निर्णय लेने पड़े जिनके लिए शक्तियां यद्यपि उनकी संवैधानिक स्थिति में निहित थीं तथापि, उसके कारण संसद में और उसके बाहर भी विवाद उठ खड़े हुए।

अत: राज्यपालों के कृत्यों पर संसद में समय-समय पर चर्चा होती रही है। इस संबंध में आपत्ति किए जाने पर अध्यक्ष ने यह राय व्यक्त की कि यद्यपि संसद में राज्यपाल के आचरण पर चर्चा नहीं की जा सकती तथापि, उसके शासकीय कार्यों पर चर्चा किया जाना विधिसम्मत है।[63] सरकार को बर्खास्त करने[64] या मुख्यमंत्री की नियुक्ति में अपनाए गए तरीकों और प्रक्रिया[65] या सरकार बनाने[66] के विषयों पर सभा में चर्चा हुई है। राज्य सरकार द्वारा संबंधित राज्य के राज्यपाल को वापस बुलाए जाने की मांग के प्रश्न को सभा में एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से उठाया गया।[67] एक दूसरे मामले में संसद में एक प्रस्ताव पेश किया गया जिसमें "राज्य में हाल के संवैधानिक संकट से निपटने के लिए... के राज्यपाल के आचरण का निरनुमोदन" किया गया तथा राज्यपाल को वापस बुलाने की सिफारिश की गई। तथापि यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ।[68]

---

62. *पूर्वोक्त*, 4.3.1970, कॉ. 326 ।
63. *पूर्वोक्त*, 28.2.1968, कॉ. 505-09 ।
64. *पूर्वोक्त*, 1.12.1967, कॉ. 4265-319; 4.12.1967, कॉ. 4509-585 और 21.8.1984, कॉ. 347-498 ।
65. *पूर्वोक्त*, 28.2.1968, कॉ. 505-64 और 11.4.1968, कॉ. 300-19 ।
66. *पूर्वोक्त*, 23.2.1970, कॉ. 304-62, और 24.3.1970, कॉ. 389-414 ।
67. *पूर्वोक्त*, 3.3.1969 ।
68. *पूर्वोक्त*, 19.11.1970, कॉ. 272-433 ।

मध्य प्रदेश, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, पंजाब तथा पश्चिम बंगाल के राज्यपालों द्वारा विधान सभा को अचानक आहूत करने, स्थगित करने, सत्रावसान करने तथा विघटन करने के प्रश्न पर संसद में चर्चा की गई है।[69] (कुछ राज्य विधानमंडलों में उठाए गए इन विषयों से संबंधित विभिन्न मामलों पर चर्चा पहले की जा चुकी है।)[70]

संसद, अनुच्छेद 365 के अंतर्गत, किसी मामले पर राज्य को निदेश देने में केन्द्रीय सरकार की असफलता पर भी चर्चा कर सकती है। इसी प्रकार, जब राज्यपाल, राष्ट्रपति को, किसी विषय पर प्रतिवेदन देने अथवा राष्ट्रपति की अनुमति के लिए किसी विधेयक को आरक्षित रखने के संबंध में अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करने में असफल होता है तो संसद इस पर चर्चा कर सकती है अथवा किसी प्रश्न या ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर स्वरूप केन्द्रीय सरकार से एक वक्तव्य देने के लिए कह सकती है। राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप से बचने के लिए, संसद, राज्यपाल की बर्खास्तगी अथवा उसे वापस बुलाने अथवा राष्ट्रपति का 'प्रसाद' वापस लेने संबंधी किसी प्रस्ताव पर चर्चा कर सकती है।

जब किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो तो राज्य प्रशासन के सभी पहलुओं के बारे में जिनमें वे मामले भी शामिल हैं जो पहले राज्य सरकार और विधान मंडल के विषय थे, के संबंध में प्रश्न पूछे जा सकते हैं परन्तु जब उद्घोषणा वापस ले ली जाती है और राष्ट्रपति शासन समाप्त हो जाता है तो जो प्रश्न या मुद्दे उस अवधि से संबंधित हों जब राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू था, के बारे में संसद में प्रश्न पूछने या वाद-विवाद का अधिकार नहीं है। यदि वे प्रश्न या चर्चाएं पहले नियत कर ली गयी हों और प्रश्न-सूची अथवा कार्य-सूची में शामिल कर ली गयी हों तो भी उद्घोषणा वापस लेने के तुरन्त बाद प्रश्न सूची अथवा कार्य सूची में से उनका लोप कर दिया जाता है अथवा उन पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती है। ध्यान रखने की बात यह है कि किसी मामले से संबंधित प्रश्न या चर्चा के शुरू होने के समय राज्य का प्रशासन किसके नियंत्रण में है—संसद के, केन्द्र सरकार के पास या विधान सभा के प्रति जवाबदेह राज्य सरकार के पास।

जब अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा प्रवृत्त होती है तो संसद राज्य सूची में दर्ज उन सभी विषयों पर चर्चा करने के लिए सक्षम है जिन पर उद्घोषणा से पहले केवल उस राज्य विधान मंडल में ही चर्चा की जा सकती थी और इस अवस्था में केन्द्रीय मंत्री राज्य के मामलों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी हो जाते हैं। कार्य की विभिन्न मदों की ग्राह्यता के संबंध में निर्णय लोक सभा के प्रक्रिया नियमों के अंतर्गत लिया जाता है, निष्क्रिय विधान सभा के

---

69. उदाहरण के लिए *देखिए एल.एस. डिबेट्स*, 3.3.1969, कॉ. 214-24; 12.3.1969, कॉ. 200-11; 4.3.1970, कॉ. 298-378 और *आर.एस. डिबेट्स*, 21.6.1971, कॉ. 97-148, 22.6.1971, कॉ. 19-42 ।

70. *देखिए* पीछे अध्याय 9—संसद के सदनों को आहूत करना तथा सत्रावसन और लोक सभा का विघटन।

नियमों के अंतर्गत नही[71] जिस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होता है वहां का बजट लोक सभा के समक्ष पेश किया जाता है और लोक सभा अनुदानों को मंजूरी देती है तथा संबंधित राज्यों की संचित निधि में से धन निकालने के लिए विनियोग विधेयक संसद ही पारित करती है।

उद्घोषणा की अवधि के दौरान लोक सभा की संसदीय समितियां राज्य की समितियों के स्थान पर कार्य करती हैं और उन्हें राज्य के किसी भी मामले पर कार्रवाई करने का अधिकार होता है तथापि, संसदीय समितियां कतिपय मामलों पर विचार नहीं भी करती उदाहरणार्थ अधीनस्थ विधान संबंधी समिति ने राज्य के नियमों अथवा 'आदेशों' पर विचार करना ठीक नहीं समझा क्योंकि उसकी राय में जब राज्य विधान मंडल के नियंत्रणाधीन सामान्य राज्य प्रशासन कार्य करने लगेगा तब राज्य की समिति उस पर बाद में विचार कर लेगी।

राष्ट्रपति के शासन के अधीन राज्य से संबंधित राष्ट्रपति अधिनियम संसद के समुचित अधिनियम के अधीन गठित एक संसदीय समिति के साथ परामर्श करने के बाद बनाये जाते हैं। राष्ट्रपति के शासन के दौरान राज्य विधान मण्डल के समक्ष प्रस्तुत किए जाने हेतु अपेक्षित प्रतिवेदन और पत्र लोक सभा पटल पर रखे जाते हैं।

---

71. *लो.स.वा.वि.*, 5.8.1959, पृ. 368-70 ।

अध्याय 43

संसद और न्यायपालिका[1]

संसद, कार्यपालिका और न्यायपालिका हमारे लोकतांत्रिक ढांचे के तीन प्रमुख स्तंभ हैं। भारत का संविधान प्रत्येक अंग की शक्तियां परिभाषित करता है, अधिकार क्षेत्र परिसीमित करता है और उत्तरदायित्वों का सीमांकन करता है। जहां तक संसद और न्यायपालिका के बीच संबंधों की बात है, दोनों इस संवैधानिक बाध्यता के अधीन हैं कि वे एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करेंगे। इस बारे में अनुच्छेद 121 में यह उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के आचरण के विषय में संसद में कोई चर्चा, उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव के अतिरिक्त, नहीं की जा सकती। इसके अलावा, जो मामले न्यायालय के विचाराधीन हैं, उन पर संसद में बहस नहीं हो सकती। अनुच्छेद 122 में यह उपबंध है कि न्यायपालिका द्वारा भी संसद की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।

हमारे संविधान की व्यवस्था के अंतर्गत, सर्वोच्च विधायी निकाय होने के कारण संसद को हमारी शासन प्रणाली में विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है। कई संवैधानिक उपबंधों में इसे प्रमुखता से दर्शाया गया है। लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए कई वर्षों में संसद वस्तुत: लोगों की एक अति उत्कृष्ट संस्था बन गयी है। देश में विधि बनाने वाली सर्वोच्च निकाय होने के कारण संसद, विभिन्न विधानों पर चर्चा करती है, उनकी जांच करती है और यदि आवश्यक हुआ तो उनके प्रारूप में संशोधन करती है और तत्पश्चात् इस पर अनुमोदन की मुहर लगाती है और इस प्रकार कार्यपालिका द्वारा बनाए गए विधायी प्रस्तावों को कानूनी वैधता प्रदान करती है।

संविधान में न्यायपालिका को भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है जिसमें उच्चतम न्यायालय को न्यायिक व्यवस्था के शीर्ष पर रखा गया है। सिविल और आपराधिक अपीलों का अंतिम न्यायालय होने के अलावा, उच्चतम न्यायालय को संघ और राज्यों के बीच तथा दो या इससे अधिक राज्यों के बीच विवादों में अनन्य आरंभिक अधिकारिता प्राप्त है;[2] और संविधान की व्याख्या करने संबंधी सभी मामलों में उच्चतम न्यायालय ही अंतिम विवाचक है। मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए इसे व्यापक रिट अधिकारिता[3] और राष्ट्रपति द्वारा इसके पास भेजे गए विधि अथवा तथ्य के प्रश्न पर सलाहकार का क्षेत्राधिकार

---

1. साथ ही *देखिए* पीछे अध्याय 5, 11 और 26 ।

2. अनुच्छेद 131 ।

3. अनुच्छेद 32 ।

भी प्राप्त है।[4] उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति यह सुनिश्चित करती है कि विधायिका और कार्यपालिका, दोनों अपने संबंधित क्षेत्राधिकार की परिधि के भीतर रहकर कार्य करें और वे संविधान की अवज्ञा न कर पाएं। यह संविधान द्वारा अपने नागरिकों को प्रत्याभूत मूल अधिकारों की रक्षा करती है, इनका संरक्षण करती है और उन्हें लागू भी कराती है। उच्चतम न्यायालय ने वास्तव में न्यायिक समीक्षा को संविधान के मूल ढांचों में से एक ढांचा घोषित किया है जिसे अति पवित्र माना जाना चाहिए।

इस प्रकार, हमारी संवैधानिक योजना के अनुसार, संसद और न्यायपालिका दोनों अपने-अपने संबंधित क्षेत्रों में सर्वोच्च हैं। विभिन्न संवैधानिक उपबंधों ने राज्य के इन दो महत्वपूर्ण अंगों के बीच टकराव की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी है। वास्तव में, संसदीय संप्रभुता के सिद्धांतों और न्यायिक समीक्षा का सुंदर सामंजस्य भारतीय संविधान की अद्वितीय विशेषता है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, उच्चतम न्यायालय के तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात्, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे[5], की जाती है। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी अन्य न्यायधीश की नियुक्ति के मामले में, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से अवश्य ही परामर्श किया जाता है।[6] एक न्यायाधीश की नियुक्ति की

---

4. अनुच्छेद 143 ।
5. अनुच्छेद 124 (2) ।
6. पूर्वोक्त, परन्तुक ।

संविधान के अनुच्छेद 124 (2) के अंतर्गत न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय सर्वोपरि होनी चाहिए, इस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय ने *एस.पी. गुप्ता* बनाम *भारत के राष्ट्रपति* (ए.सी.आर 1982 एस.सी. 149) मामले में विचार किया था। इस मामले में बहुमत भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को ऐसी सर्वोच्चता दिए जाने के विरुद्ध था। तथापि, उच्चतम न्यायालय अधिवक्ता—ऑन रिकार्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ (ए.आई.आर 1994 एस.सी. 268) मामले में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने बहुमत के निर्णय में कहा:—

"भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय, जिसका प्रवर न्यायाधीश मंडल की नियुक्ति में प्राधान्य है, से तात्पर्य है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय सामूहिक रूप से ली गई राय है अर्थात् इस राय को लेते हुए उन्होंने अपने वरिष्ठ सहयोगियों की राय को भी ध्यान में रखा है। दूसरे शब्दों में, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का विचार वास्तव में न्यायपालिका का विचार है अर्थात् इस राय के पीछे बहुलता का तत्व है। वास्तविक रूप में, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति यही प्रक्रिया अपनाते हैं और उनसे ऐसा करने की अपेक्षा भी की जाती है ताकि उनके द्वारा अंतिम रूप से व्यक्त राय मात्र उनकी अपनी राय न रहे बल्कि कुछ अन्य न्यायाधीशों जोकि पारंपरिक रूप से इस प्रक्रिया से जुड़े हैं, की सामूहिक राय रहे।"

सिफारिश को अनुमोदित करने का अंतिम प्राधिकार भारत संघ का है।[7] इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 124 के खंड(2) के तहत और उच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 217 के खंड(1) के तहत राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।[8] यद्यपि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न उसके अन्य

भारत के राष्ट्रपति ने 23 जुलाई, 1998 को संविधान के अनुच्छेद 143 (1) के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय को उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में भारत के मुख्य न्यायामूर्ति द्वारा अपनाई जाने वाली परामर्श प्रक्रिया का हवाला दिया। उच्चतम न्यायालय की नौ-सदस्यीय न्यायपीठ ने अपने सर्वसम्मत निर्णय में कहा कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में परामर्श प्रक्रिया अपनाए बिना भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिशें सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं है। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अपनाई जाने वाली परामर्श प्रक्रिया में कई अन्य न्यायाधीशों की राय लिया जाना अपेक्षित है। न्यायपीठ का विचार था कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की अपनी वैयक्तिक राय अनुच्छेद 124 (2) के अर्थ के अंतर्गत परामर्श की श्रेणी में नहीं आती है (ए.आई.आर. जनवरी, 1999 एस.सी. खण्ड 86)।

7. शांति भूषण व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, (2009)। एस.सी.सी.657; (2008) 17 एस.सी.आर. 791।

8. उच्चतम न्यायालय के निर्णयों और न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित संगत संवैधानिक प्रावधानों की समीक्षा के पश्चात्, सरकार ने संविधान (एक सौ बीसवां संशोधन) विधेयक, 2013 और न्यायिक नियुक्ति आयोग विधेयक, 2013, 29 अगस्त 2013 को राज्य सभा में पुरः स्थापित किया। संविधान (एक सौ बीसवां संशोधन) विधयेक, 2013 का उद्देश्य उच्चतर न्यायलयों में न्यायधीशों की नियुक्तियों के संबंध में सिफारिशें करने के लिए एक न्यायिक नियुक्ति आयोग का गठन करने हेतु एक नया अनुच्छेद 124 क जोड़ना था। ऐसा महसूस किया गया कि प्रस्तावित आयोग चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता लाने के दौरान कार्यपालिका और न्यायपालिका को अपने विचार व्यक्त करने तथा प्रतिभागियों को उत्तरदायी बनाने में सार्थक भूमिका प्रदान करेगा। राज्य सभा ने 5 सितम्बर 2013 को संविधान (एक सौ बीसवां) संशोधन विधेयक पारित कर दिया। राज्य सभा द्वारा यथा पारित विधेयक 6 सितम्बर 2013 को लोक सभा के पटल पर रखा गया।

न्यायिक नियुक्त आयोग विधेयक, 2013 में भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों और अन्य न्यायधीशों की नियुक्ति के लिए व्यक्तियों की सिफारिश करने के उद्देश्य से न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन, इसके कार्य, इसके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और इससे संबंधित या उसके आनुषांगिक विषयों हेतु उपबंध किया गया है। राज्य सभा के सभापति ने जांच और रिपोर्ट के लिए न्यायिक नियुक्ति आयोग विधेयक, 2013 को 9 सितम्बर 2013 को कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी विभागों से संबंध संसदीय स्थायी समिति को भेज दिया। समिति ने अपना प्रतिवेदन (चौसठवां प्रतिवेदन) राज्य सभा को 9 दिसम्बर 2013 को प्रस्तुत कर दिया जिसे 9 दिसम्बर 2013 को लोक सभा के पटल पर रखा गया। समिति ने कुछ

न्यायाधीशों की संख्या संविधान के अंतर्गत 'सात से अनधिक' तक सीमित की गई है, तथापि संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह इनकी संख्या में वृद्धि कर सकती है। इस समय न्यायाधीशों की संख्या इस प्रकार विहित रूप में तीस है।[9]

उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होने के लिए किसी व्यक्ति का भारत का नागरिक होना आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति केवल उन्हीं व्यक्तियों में से किसी को न्यायाधीश नियुक्त करता है जो कम से कम 5 वर्षों तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहें हों या किसी उच्च न्यायालय के अधिवक्ता हों, जिन्हें वकालत करते हुए कम से कम 10 वर्ष हो गए हों या जो राष्ट्रपति के विचार में पारंगत विधिवेत्ता हों।[10]

किसी उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति भी, राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल और वहां के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के

सिफारिशें/टिप्पणियाँ की। वर्तमान कोलेजियम के स्थान पर न्यायिक नियुक्ति आयोग की स्थापना के लिए सरकार के प्रयास की सराहना करते हुए समिति ने यह महसूस किया कि प्रस्तावित आयोग सहयोग और सहभागी तरीके से कार्यपालिका और न्यायपालिका दोनों में बराबर और सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करेगा जिससे न्यायिक नियुक्तियों के संबंध में कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के बीच एक संतुलन बना रहे। अन्य बातों के साथ-साथ समिति यह भी सिफारिश की कि की आयोग की संरचना और इसके कृत्यों का उल्लेख संविधान में ही कर दिया जाना चाहिए। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि दो के स्थान पर तीन विख्यात व्यक्ति होने चाहिए और इन तीन में से कम-से-कम एक व्यक्ति अनुसूचित जाति (एस.सी) अनुसूचित जनजाति (एस.टी.) अन्य पिछड़ा वर्ग (ओ.बी.सी.)/महिला/अल्पसंख्यक वर्ग का होना चाहिए और बारी-बारी से किया जाना चाहिए। सरकार ने डी.आर.एस.सी. की कुछ सिफारिशें को स्वीकार और इस संबंध में दोनों विधेयकों अर्थात् संविधान (एक सौ बीसवां संशोधन विधेयक) तथा न्यायिक नियुक्ति आयोग विधेयक, 2013 में अधिकारिक संशोधन करने के लिए सूचनाएं दी है। तथापि, पंद्रहवीं लोक सभा के विघटन इसे विधेयक पर विचार नहीं हो सका।

9. अनुच्छेद 124 (1)। संविधान के अनुच्छेद 124 (1) में शुरू में यह उपबंध किया गया था कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर, न्यायाधीशों की संख्या 7 होगी जिसे उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीश संख्या) अधिनियम, 1956 के जरिये बढ़ाकर 17 कर दिया गया। यह संख्या उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीश संख्या) संशोधन अधिनियम, 1986 के जरिये बढ़ाकर 25 कर दी गयी। उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीश संख्या) संशोधन अधिनियम, 2008 के जरिये पुन: 25 से बढ़ाकर 30 कर दी गयी। (2009 का अधिनियम संख्या 11) ।

10. अनुच्छेद 124 (3)

सामान्यतया यह प्रथा रही है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नयी नियुक्तियां उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों या सेवानिवृत्त न्यायाधीशों या निश्चित समय तक उच्च न्यायालय में वकालत कर चुकने वाले अधिवक्ताओं में से की जाए। अब तक प्रतिष्ठित विधिवेत्ताओं की श्रेणी में से किसी व्यक्ति को न्यायाधीश के रूप में नियुक्त नहीं किया गया है।

परामर्श के बाद करता है।[11] उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या पर कोई सांविधिक सीमा नहीं लगाई गई है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति कम से कम 10 वर्ष तक भारत में किसी न्यायिक पद पर रह चुका हो या कम-से-कम उतनी ही अवधि तक किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रहा हो।[12]

न्यायाधीशों की सेवा की शर्तें

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश 65 वर्ष का होने तक अपने पद पर रहता है[13] और उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बासठ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहता है।[14] उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश अपने पद से हटने के बाद भारत में कहीं भी वकालत नहीं कर सकता।[15] कोई व्यक्ति, जिसने इस संविधान के प्रारंभ के पश्चात् किसी उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश के रूप में पद धारण किया है, वह उस उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में अभिवचन या कार्य नहीं कर सकता, जहां वह न्यायाधीश रहा हो। परन्तु उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों में अभिवचन या कार्य कर सकेगा।[16]

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन मूलतः संविधान द्वारा निश्चित किए गए थे। तत्पश्चात् इनमें 1986 में संविधान (चौवनवां) संशोधन अधिनियम, 1986 के द्वारा दूसरी अनुसूची के भाग घ में संशोधन करके संशोधन किया गया था। संविधान संशोधन अधिनियम के अधीन अनुच्छेद 125 (1) और 221 (1) में भी संशोधन किया गया जिसके अंतर्गत यह उपबंध किया गया कि उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को संसद द्वारा विधि के द्वारा अवधारित वेतन दिए जाएंगे तथा इस संबंध में उपबंध किए जाने तक उन्हें दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट वेतन दिए जाएंगें। संसद ने प्रदान की गई शक्तियों के अंतर्गत, उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा की शर्तें) संशोधन अधिनियम, 2009 पारित किया गया। जिसके अधीन अन्य बातों के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति और न्यायाधीशों के वेतन 1 जनवरी, 2006 से भूतलक्षी प्रभाव से बढ़ाने हेतु उच्च न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1954 तथा उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1958 में संशोधन किया गया।[17]

---

11. अनुच्छेद 217 (1) ।
12. अनुच्छेद 217 (2) ।
13. अनुच्छेद 124 (2) ।
14. अनुच्छेद 217 (1) ।
15. अनुच्छेद 124 (7) ।
16. अनुच्छेद 220 ।
17. अनुच्छेद 125 (1) और 221 (1)

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नि:शुल्क आवास का भी हकदार है।[18] न्यायाधीशों के वेतनों तथा भत्तों में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता; केवल वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा की अवधि में ही राष्ट्रपति उनमें कोई कमी कर सकता है।[19]

संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की छुट्टी, पेंशन और अन्य विशेषाधिकार तथा भत्तों संबंधी सेवा की शर्तों को कानून द्वारा विनियमित कर सकती है, परन्तु किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के बाद इन शर्तों में ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता, जिससे उसे हानि पहुंचती हो।[20]

भारत के संविधान की दूसरी अनुसूची के भाग घ में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का वेतन मूलत: 5000 रु. और उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का वेतन 4000 रु. और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों का वेतन 3500 रु. निर्धारित किया गया था। इसके पश्चात् संसद ने उच्च न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) अधिनियम 1954 और उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) अधिनियम 1958, अधिनियमित किये जिसमें उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और अन्य सेवा शर्तों संबंधी उपबंध हैं।

इस अधिनियम में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन इत्यादि को बढ़ाने के लिए समय-समय पर संशोधन किए गए हैं। उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) संशोधन अधिनियम 2009, के अनुसार जिसका आशय उच्च न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1954 तथा उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) संशोधन अधिनियम 1958 में संशोधन करना था, उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति 1,00,000 रु. प्रतिमाह वेतन प्राप्त करता है, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश 90,000 रु. प्रतिमाह वेतन पाते हैं जो कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के मासिक वेतन के समतुल्य है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश 80,000 रु. प्रतिमाह वेतन आहरित करते हैं।

18. *देखिए* संविधान की दूसरी अनुसूची, पैरा 9 (2) ।
19. अनुच्छेद 360 (4) (ख) ।
20. अनुच्छेद 125(2) और 221(2)—संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर संसद ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश (वेतन और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1958 तथा उच्च न्यायालय न्यायाधीश (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1954 अधिनियमित किये हैं। इनमें क्रमानुसार उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की छुट्टी, पेंशन और अन्य विशेषाधिकार तथा भत्तों के संबंध में शर्तों का विधान किया गया है। इन दो अधिनियमों को 1971 में, 1971 के अधिनियम 77 और 78 द्वारा, 1976 में 1976 के अधिनियम 35 और 36 और 1980, 1985, 1986, 1987, 1988, 1989, 1993, 1994, 1996, 1998, और 1999 में क्रमश: 1980 के अधिनियम 57, 1985 के 36, 1986 के 38, 1987 के 48, 1988 के 20, 1989 के 32, 1993 के 72, 1994 के 2, 1996 के 20, 1998 के 18 और 1999 के अधिनियम 7, 2003 के अधिनियम 7 और 8 द्वारा 2003 में; 2005 के अधिनियम 46 और 2009 के अधिनियम 23 द्वारा संशोधन किया गया था।

उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के पुनर्नियोजन पर कोई प्रतिबधं नहीं है।[21]

न्यायाधीशों द्वारा पदत्याग तथा उनको पद से हटाया जाना

उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश, राष्ट्रपति को सम्बोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकता है[22], परन्तु उसे सिवाय राष्ट्रपति के उस आदेश द्वारा, जो कि विहित रीति से संसद के प्रत्येक सदन द्वारा समावेदन किये जाने पर जारी किया गया हो, पद से नहीं हटाया जा सकता।[23]

उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाये जाने के संबंध में समावेदन राष्ट्रपति को केवल "साबित कदाचार" या "असमर्थता" के आधार पर पेश किया जा सकता है। यह समावेदन राष्ट्रपति को उसी सत्र में पेश किया जाना चाहिए, जिसमें वह संसद के प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत और प्रत्येक सदन के उपस्थित तथा मत देने वाले कम से कम दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत के समर्थन से भी पारित किया गया है।[24] यदि दोनों सदनों का समावेदन संविधान के उपरोक्त उपबंध के अनुरूप हो, तो राष्ट्रपति उस न्यायाधीश को उसके पद से हटाने का आदेश जारी करता है।

किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता की जांच तथा प्रमाण तथा राष्ट्रपति को ऐसा समावेदन प्रस्तुत करने की प्रक्रिया न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 में विहित की गई है।[25]

---

21. *लो.स.वा.वि.*, 24.3.1970, अता. प्र. सं. 3611 ।
    किसी भी न्यायाधीश को सेवानिवृत्ति के पश्चात् राजदूत, राज्यपाल अथवा मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। उसे किसी विश्वविद्यालय का कुलपति भी नियुक्त किया जा सकता है अथवा वह सरकार द्वारा गठित किसी आयोग, समिति आदि का अध्यक्ष बन सकता है।
22. अनुच्छेद 124(2) (क) और 217(1)(क) ।
23. अनुच्छेद 124(4) और (5) तथा अनुच्छेद 218 ।
24. अनुच्छेद 124(4) और 217(1)(ख) ।
    यदि यह भी मान लिया जाए कि किसी न्यायाधीश ने निर्णय के दौरान भारी गलती की है, तो उसे भी कदाचार नहीं समझा जाता—*सी.के. दफ्तरी बनाम ओ.पी. गुप्ता, ए.आई.आर.*, 1971 एस.सी. 1132 ।
25. एक विधेयक अर्थात् न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2006, जिसका आशय न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 को प्रतिस्थापित करना था और जिसे लोक सभा में 19 दिसंबर, 2006 को पुर:स्थापित किया गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कथित कदाचार अथवा असमर्थता के आरोपों की जांच के लिए एक राष्ट्रीय न्यायिक परिषद की स्थापना करने का उपबंध किया गया था। विधेयक को कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय के विभागों से संबंधित स्थायी समिति को जांच और प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए सौंपा गया था। प्रतिवेदन 17 अगस्त, 2007 को सभा पटल

अधिनियम द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अधीन किसी न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए राष्ट्रपति को समावेदन पेश करने के प्रस्ताव की सूचना यदि लोक सभा में दी जाती है तो उस पर लोक सभा के कम से कम 100 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए और यदि राज्य सभा में सूचना दी जाती है तो उस पर सभा के कम से कम 50 सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए। अध्यक्ष या सभापति, यथास्थिति, उस पर विचार और परामर्श करके प्रस्ताव को गृहीत कर सकता है या गृहीत करने से इंकार कर सकता है।[26] अभी तक ऐसी दो सूचनाएं ग्रहीत की गई हैं, एक सूचना लोक सभा अध्यक्ष द्वारा वर्ष, 1991 में और दूसरी राज्य सभा के सभापति द्वारा वर्ष, 2009 में।[27]

प्रस्ताव गृहीत किये जाने के बाद, अध्यक्ष या सभापति, यथास्थिति, तीन सदस्यों की एक समिति बनायेगा जिसमें (1) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति तथा अन्य न्यायाधीशों;

पर रख दिया गया था। विधेयक 18 मई, 2009 को चौदहवीं लोक सभा के विघटन के कारण समाप्त हो गया। न्यायिक मानक और जवाब दे ही। विधेयक, 2010 नामक एक अन्य विधेयक 1 दिसम्बर, 2010 (छठा सत्र पंद्रहवीं लोक सभा) को लोक सभा में पुर: स्थापित किया गया था। इस विधेयक का उद्देश्य न्यायिक मानक निर्धारित करना और न्यायाधीशों की जवाबदेही का उपबंध करना और उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कदाचार के संबंध में व्यक्तिगत शिकायतों के बारे में अन्वेषण करने के लिए विश्वसनीय और समीचीन तंत्र की स्थापना करना और ऐसे अन्वेषण के लिए प्रक्रिया विनियमित करना तथा किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए कार्यवाही के संबंध में संसद द्वारा राष्ट्रपति को संबोधन पेश करना था। इस विधेयक का उद्देश्य न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 को निरस्त करना भी था।

यह विधेयक लोक सभा द्वारा 29 मार्च, 2012 को पारित किया गया तथा 30 मार्च, 2012 को राज्य सभा के सभा पटल पर रखा गया। पंद्रहवीं लोक सभा के विघटन होने तक विधेयक को विचारार्थ नहीं लिया जा सका।

26. न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 पारित किये जाने के बाद, उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए राष्ट्रपति को एक समावेदन पेश करने हेतु एक प्रस्ताव की सूचना लोक सभा में 15 मई, 1970 (दसवां सत्र, चौथी लोक सभा) को एस.एम. जोशी और 198 अन्य सदस्यों द्वारा दी गई। अध्यक्ष (डॉ. जी.एस. ढिल्लन) ने इसे न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अंतर्गत कार्रवाई हेतु उपयुक्त मामला नहीं समझा तथा सूचना को गृहीत नहीं किया।

27. नौवीं लोक सभा के दौरान, 28 फरवरी 1991 को अध्यक्ष श्री रवि राय ने भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को उनके पद से हटाने के लिए भारत के राष्ट्रपति को एक समावेदन पेश करने हेतु 27 फरवरी, 1991 को एक प्रस्ताव जिस पर प्रो. मधु दंडवते तथा 107 अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर थे, प्राप्त किया। प्रस्ताव की सूचना को नियमानुसार पाने पर अध्यक्ष ने 12 मार्च, 1991 को इसे स्वीकार कर लिया।

(2) उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों और (3) प्रतिष्ठित न्यायाविदों[28] में से एक-एक सदस्य लिया जाएगा। यदि प्रस्ताव की सूचना दोनों सभाओं में एक ही दिन दी जाती है तो समिति तभी गठित की जाएगी जब प्रस्ताव दोनों सभाओं में गृहीत कर लिया गया हो और तत्पश्चात् अध्यक्ष तथा सभापति द्वारा संयुक्त रूप से गृहीत किया गया हो। अगर प्रस्ताव की सूचना दोनों सभाओं में अलग-अलग तारीखों को दी गयी है तो बाद में दी गयी सूचना निरस्त मानी जाएगी।

समिति न्यायाधीश के विरुद्ध निश्चित आरोप लगायेगी जिनके आधार पर जांच की जाएगी और व्यक्तियों को शपथ दिलाकर उनसे पूछताछ करने, दस्तावेजों को मंगवाने आदि के बारे में समिति को सिविल न्यायालय के अधिकार होंगे। प्रत्येक आरोप के आधार सहित सभी आरोपों का एक विवरण न्यायाधीश को भेजा जाएगा और एक विहित समय-सीमा के अन्दर न्यायाधीश को अपने बचाव में लिखित वक्तव्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर प्रदान

---

20 फरवरी 2009 को राज्यसभा के सभापति (एम हामिद अंसारी) को सीताराम येचूरी और राज्यसभा के 56 अन्य सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित दिनांक 20 फरवरी 2009 के एक प्रस्ताव की सूचना प्राप्त हुई, जिसमें कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति सौमित्र सेन को हटाने के लिए भारत के राष्ट्रपति को अभ्यावेदन दिया गया था। प्रस्ताव की सूचना सही पाये जाने पर, सभापति ने इसे 27 फरवरी 2009 को स्वीकार कर लिया।

28. अध्यक्ष ने न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2) के अनुसरण में, उन कारणों जिनके आधार पर न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को उनके पद से हटाए जाने का अनुरोध किया गया था, की जांच के लिए एक समिति गठित की जिसमें भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति पी.बी. सावंत (सभापति), बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति न्यायमूर्ति पी.डी. देसाई और भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी (सदस्य) शामिल थे। (*एल.एस. डिबेट्स*, 12 मार्च, 1991, कॉ. 115-18)

न्यायमूर्ति सौमित्र सेन के मामले में, राज्य सभा के सभापति ने उन आधारों की जांच करने के लिए एक समिति का गठन किया जिन पर न्यायमूर्ति सौमित्र सेन को हटाये जाने की प्रार्थना की गयी थी। इस समिति में भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति डी.के. जैन (अध्यक्ष), न्यायमूर्ति टी.एस.ठाकुर, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और श्री फाली एस.नरीमन, वरिष्ठ अधिवक्ता, भारत के उच्चतम न्यायालय सदस्य शामिल थे।

अध्यक्ष ने 25 जून, 2009 को समिति का पुनर्गठन किया जिसमें न्यायमूर्ति बी॰ सुदर्शन रेड्डी, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश; न्यायमूर्ति टी.एस.ठाकुर, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और श्री फाली एस.नरीमन, वरिष्ठ अधिवक्ता भारत के उच्चतम न्यायालय सदस्य शामिल थे।

अध्यक्ष ने 16 दिसम्बर, 2009 को समिति का पुन: पुनर्गठन किया जिसमें तीन सदस्य थे यथा न्यायमूर्ति बी.सुदर्शन रेड्डी, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश; न्यायमूर्ति मुकुल मुद्गल, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और श्री फाली एस.नरीमन, वरिष्ठ अधिवक्ता, भारत का उच्चतम न्यायालय।

किया जाएगा। कथित शारीरिक या दिमागी असमर्थता के मामले में और जब ऐसे आरोप से इंकार किया गया हो, तो यथास्थिति, अध्यक्ष द्वारा या सभापति द्वारा, या दोनों के द्वारा जब संयुक्त रूप से समिति बनाई गई हो, तो न्यायाधीश की डाक्टरी जांच के लिए एक डाक्टरी बोर्ड नियुक्त किया जाएगा।

जांच की समाप्ति के बाद, समिति अपना प्रतिवेदन यथास्थिति, अध्यक्ष[29] को या सभापति को या यदि समिति संयुक्त रूप से गठित की गई है तो दोनों को प्रस्तुत करेगी जिसमें वह प्रत्येक आरोप के संबंध में अलग से अपने निष्कर्ष बतायेगी और सारे मामले पर ऐसी टिप्पणियां करेगी जो वह उचित समझती हो। तत्पश्चात् प्रतिवेदन संबंधित सभा या यदि अध्यक्ष और सभापति द्वारा संयुक्त रूप से समिति नियुक्त की गई है तो दोनों सभाओं के सभा पटल पर रखा जाएगा।

यदि समिति न्यायाधीश को किसी भी प्रकार के कदाचार या असमर्थता के आरोप से मुक्त कर देती है तो यथास्थिति संबंधित सभा या सभाओं में विचाराधीन प्रस्ताव पर आगे कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। यदि समिति के प्रतिवेदन से यह निष्कर्ष निकलता है कि न्यायाधीश किसी कदाचार[30] का दोषी है या वह किसी प्रकार असमर्थ है तो, प्रस्ताव पर

---

29. न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले में समिति अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती उससे पहले ही 13 मार्च, 1991 को नौवीं लोक सभा राष्ट्रपति द्वारा विघटित कर दी गई। लोक सभा के विघटित हो जाने पर यह प्रश्न कि क्या यह प्रस्ताव व्यपगत हो गया अथवा यह अभी भी अस्तित्व में है, उच्चतम न्यायालय में दायर एक याचिका में उठाया गया था। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया:

    "यह सच है कि *पुरुषोत्तमन नम्बूदिरी मामला* (ए.आई.आर, 1962, एस.सी. 694) विधायी उपायों से संबंधित है, न कि प्रस्ताव के रूप में विचाराधीन कार्यवाही से। किन्तु हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि कोई भी सिद्धांत नहीं है जिससे सभा के विघटित हो जाने से संसद में विचाराधीन कार्यवाही स्वतः समाप्त हो जाती है, न ही संविधान के अनुच्छेद 118 के अंतर्गत बनाए गए किसी नियम अथवा नियमों में कोई विशेष उपबंध अंतर्विष्ट है जो अनुच्छेद 124 के अंतर्गत एक न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए प्रस्ताव पर सभा के विघटित होने के प्रभाव को सुनिश्चित करता है। इसका कारण यह है कि अनुच्छेद 124(5) और इसके अंतर्गत बनाई गई विधि इस क्षेत्र को अनुच्छेद 118 के प्रवर्तन से बाहर करती है।" (*न्यायिक उत्तरदायिता संबंधी उप-समिति बनाम भारत संघ* ए.आई.आर. 1992, एस.सी. 320, पृष्ठ 344, तदनुरूप प्रस्ताव की सूचना का अस्तित्व बना रहा। 20 जून, 1991 को दसवीं लोक सभा का गठन हुआ। न्यायमूर्ति सावंत समिति ने दसवीं लोक सभा के अध्यक्ष (शिवराज वि. पाटील)को अपना प्रतिवेदन जुलाई, 1992 में सौंप दिया।

30. न्यायमूर्ति सावंत समिति ने अपने प्रतिवेदन में पाया कि न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी कदाचार के दोषी थे और यह प्रतिवेदन लोक सभा के महासचिव द्वारा 17 दिसम्बर, 1992 को सभा पटल पर रखा गया।

समिति के प्रतिवेदन के साथ सभा या दोनों सभाओं, जिसमें वह विचाराधीन[31] है, में विचार किया जाएगा।

न्यायामूर्ति सौमित्र सेन के मामले में, न्यायमूर्ति बी.सुदर्शन रेड्डी की अध्यक्षता वाली समिति ने अपने प्रतिवेदन में पाया कि न्यायमूर्ति सौमित्र सेन भारी धनराशि के दुर्विनियोजन के दोषी है जो उन्होंने कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त रिसीवर की हैसियत से पायी थी और कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष धन के दुर्विनियोजन के बारे में तथ्यों की गलतबयानी की। इस प्रतिवेदन की दोनों सभाओं के पटल पर संबंधित महासचिवों द्वारा एक साथ 10 नवम्बर, 2010 को रखा गया।

31. न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले में जांच समिति के प्रतिवेदन को सभा पटल पर रखे जाने के बाद अनुच्छेद 124(4) के अंतर्गत राष्ट्रपति को एक समावेदन प्रस्तुत करने हेतु प्रस्ताव पर और समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए कई सदस्यों से सूचनाएं प्राप्त हुईं। चूंकि यह अपनी तरह का पहला मामला था, अध्यक्ष ने सभा में दलों और गुटों के नेताओं के परामर्श से निम्नलिखित प्रक्रिया निर्धारित की तथा सभा ने इस पर अपनी सहमति जताई:

(1) सिर्फ उन्हीं सदस्यों की सूचनाओं पर विचार किया जाएगा जिन्होंने नौवीं लोक सभा के दौरान दिए गए प्रस्ताव की सूचना पर हस्ताक्षर किए थे, और

(2) प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम के नियम 184 के अंतर्गत प्रस्ताव पर चर्चा संबंधी उपबंधों का सामान्यतया यथासंभव अनुसरण किया जाएगा।

10 मई, 1993 के लिए कार्य-सूची में प्राथमिकता क्रम में पांच सदस्यों के नाम में निम्नलिखित दो प्रस्ताव सम्मिलित किए गए थे:—

(1) संविधान के अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपति को एक समावेदन प्रस्तुत करने हेतु प्रस्ताव; और

(2) भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को उनके पद से हटाने के लिए की गई प्रार्थना के आधारों की जांच के लिए गठित जांच समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए प्रस्ताव।

इससे पूर्व कि प्रस्ताव पर चर्चा शुरू हो, अध्यक्ष ने सभा में निम्नलिखित घोषणा की :

इस मामले को बड़ी सावधानी और ऐसे सही ढंग से निपटाया जाए जो बहुत ही सटीक, सही और न्यायसंगत हो और जिसमें प्वाइंट दोहराए न जाएं, विषयेत्तर बातें न लाई जाएं और मुद्दे को जटिल न बनाया जाए तथा स्पष्ट रूप से सही निष्कर्ष निकाले जाएं। केवल कुछ ही सदस्य बोल सकते हैं। न्यायाधीशों की समिति द्वारा दी गई रिपोर्ट तथा न्यायाधीश के बचाव पक्ष द्वारा दी गई रिपोर्ट सदस्यों को काफी समय पहले उपलब्ध करा दी गई है। प्रस्ताव पर बहस आज ही समाप्त हो सकती है और यदि आवश्यक हुआ, तो वह शाम छह बजे के बाद भी जारी रह सकती है। मैं इस संबंध में निर्णय सदन पर ही छोड़ता हूं। प्रस्ताव को पेश करने वाले सदस्य प्रस्ताव को प्रस्तुत करें और फिर बोलें। न्यायाधीश अथवा न्यायाधीश के वकील को इस मामले में सदन के सम्मुख निवेदन करने और वापस जाने की अनुमति दी जाए। प्रस्ताव को पेश करने वाला सदस्य बहस का उत्तर दे; तत्पश्चात् प्रस्ताव और भारत के राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले समावेदन पर मत-विभाजन कराया जाए। पारित किए जाने वाले

संविधान के उपबंधों के अनुसार प्रस्ताव स्वीकार किये जाने की स्थिति में न्यायाधीश का कदाचार या उसकी असमर्थता सिद्ध हुई समझी जाएगी और न्यायाधीश को पद से हटाने के लिए निवेदन का समावेदन विहित रीति से संसद की प्रत्येक सभा द्वारा उसी सत्र में प्रस्तुत किया जाएगा जिसमें उसे स्वीकार किया गया है।[32]

प्रस्ताव तथा समावेदन को पारित किए जाने के लिए सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा सदन में उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों को कम से कम दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता है। *(लो.स.वा.वि.*, 10.5.1993, कॉ. 486-87 ।)

सभा उपर्युक्त प्रक्रिया पर सहमत हुई।

श्री सोमनाथ चटर्जी, जो अग्रताक्रम में सबसे पहले थे, ने दोनों प्रस्तावों (जिन पर एक साथ चर्चा हुई) को पेश किया तथा चर्चा भी की। तत्पश्चात्, न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के वकील, श्री कपिल सिब्बल ने न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी की ओर से सदन के कठघरे (बार ऑफ द हाऊस) से निवेदन प्रस्तुत किया। अपना निवेदन प्रस्तुत करने के बाद वह वापस चले गए। अन्य सदस्यों को बोलने की अनुमति दी गई। इन प्रस्तावों पर चर्चा अगले दिन 11 मई, 1993 को भी जारी रही। जब सदस्य बोल चुके, प्रस्तावों को पेश करने वाले सदस्य ने बहस का उत्तर दिया।

32. अनुच्छेद 124 (4) और 217(1) (ख), 'न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले मे प्रस्ताव और समावेदन पर सदन में मतदान हुआ। मत विभाजन के परिणामस्वरूप (पक्ष में : 196 और विपक्ष में: में शून्य), संविधान के अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) के अनुरूप, प्रस्ताव और समावेदन को आवश्यक बहुमत का समर्थन नहीं मिलने की घोषणा कर दी गई। (*लो.स.वा. वि.,* 12.3.1991, कॉ. 115-18; 10.5.1993, कॉ. 485-656; और 11.5.1993, कॉ. 513-758) ।

न्यायमूर्ति सौमित्र सेन के मामले में प्रस्ताव और समावेदन पर 18 अगस्त, 2011 राज्य सभा में मतदान हुआ। मत विभाजन के परिणामस्वरूप (पक्ष में: 189 और विपक्ष में: 19), संविधान के अनुच्छेद 124 की धारा (4) तथा अनुच्छेद 217 (1) (ख) के सहपाठ के अनुरूप प्रस्ताव और समावेदन को आवश्यक बहुमत का समर्थन मिला। उसी दिन लोक सभा सचिवालय को संदेश प्रेषित कर दिया गया और लोक सभा को 19 अगस्त, 2011 को सूचित किया गया। राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाने वाला और राज्य सभा द्वारा पारित समावेदन लोक सभा में सभा पटल पर भी रखा गया।

विचार करने के लिए प्रस्ताव और राज्य सभा द्वारा समर्पित प्रस्ताव और समावेदन को समर्थन देने एवं न्यायमूर्ति सौमित्र सेन को हटाने की प्रार्थना करते हुए राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाने वाला लोक सभा द्वारा एक समावेदन 5 सितम्बर, 2011 को अपराहन् 2.00 बजे की कार्य सूची में विचारार्थ सम्मिलित किया गया। जब सभा अपराहन् 2.00 बजे समवेत हुई, विधि और न्याय मंत्री ने सभा को श्री सौमित्र सेन के त्यागपत्र के विषय में सूचित किया। इसके बाद, अध्यक्ष ने सभा की राय लेते हुए न्यायमूर्ति, सौमित्र सेन को हटाने संबंधी मद को नहीं लेने का निर्णय लिया। तदनुसार, न्यायमूर्ति सौमित्र सेन को हटाने संबंध मद को नहीं लिया गया। (एल.एस.डिबेट्स–5.9.2011)

विधि द्वारा प्रक्रिया निर्धारित किये जाने से पूर्व कई बार सदस्यों ने न्यायाधीश को कदाचार या असमर्थता के आधार पर पदच्युत करने के प्रस्तावों की सूचनाएं दीं। जब भी किसी सदस्य से ऐसा प्रस्ताव रखने की कोई सूचना प्राप्त होती थी तो अध्यक्ष उस सदस्य के साथ उस मामले पर बातचीत और यह सुनिश्चित करने के लिए उस विषय की जांच करता था जिसके आधार पर आरोप लगाया गया था, जिससे यह पता चल सके कि इस मामले में आगे कार्यवाही करने का कोई प्रत्यक्ष कारण है या नहीं। वह सदस्य से कहता था कि वह अपने प्रस्ताव की विषय-वस्तु को सार्वजनिक न करे; वास्तव में इस मामले को पूर्णतया गुप्त रखा जाता था। जब अध्यक्ष इस बात से संतुष्ट हो जाता था कि इस प्रस्ताव का कोई प्रत्यक्ष आधार है, तो वह उस शिकायत की एक प्रति सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को भेजता था, जिससे कि वे इस मामले की जांच कर सकें। एक प्रति गृह मंत्री को भी उसकी टिप्पणी के लिए भेजी जाती थी। अध्यक्ष इस प्रक्रिया को इसलिए अपनाता था जिससे इस मामले का सभा में उठाये बिना समाधान किया जा सके।

ऐसे मामलों में इस प्रक्रिया के अपनाये जाने के फलस्वरूप या तो सम्बन्धित न्यायाधीश ने स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति ले ली या उस गलती को तुरन्त ठीक कर दिया गया और इस प्रकार अप्रिय विवाद को, जिससे न्यायपालिका की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंच सकती थी, सभा में नहीं उठाया गया और शिकायत किए गए मामलों का सभा में उठाए जाने से पूर्व समाधान कर दिया गया।[33] और इस प्रकार मामले के सभा में उठाये जाने से पहले ही शिकायत दूर कर दी गई।

न्यायालयों का विधायिका के साथ संबंध

यद्यपि संविधान में पूर्ण अनम्यता के रूप में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को मान्यता नहीं दी गई है, तथापि राज्य के तीन अंगों अर्थात् विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के कृत्यों को भली-भांति निर्धारित किया गया है। जैसा कि न्यायाधीश राघव राव ने टिप्पणी की है:

> तीनों अंगों में से प्रत्येक की शक्तियों का प्रयोग मूलभूत रूप से उस अंग से संबंधित संविधान के उपबंधों और अन्य अंगों से संबंधित उपबंधों के अध्यधीन किया जाना चाहिए।.......राज्य के एक अंग द्वारा दूसरे अंग का सम्मान ही तो वह बात है जिससे संविधान के सुचारू कार्यकरण को सुनिश्चित किया जा सकता है और यही तो उसके गुणों को परखने की सच्ची कसौटी है चाहे उसके उपबंधों का सैद्धान्तिक महत्व कुछ भी हो।[34]

संसद तथा राज्य विधानमंडलों को उन क्षेत्रों में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है, जो संविधान में उनके लिए निर्धारित किए गए हैं। लिखित संविधान के अधीन विधायिका की सर्वोच्चता,

---

33. *देखिए,* न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 संबंधी संयुक्त समिति के समक्ष लोक सभा के पूर्व सचिव, एम.एन. कौल का साक्ष्य।

34. *ए.के. गोपालन के मामले के संबंध* में ए.आई.आर. 1953, मद्रास 41 ।

जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने कहा, उसी क्षेत्र में है जो उसके अधिकार में है लेकिन जब किसी विशिष्ट अधिनियम को चुनौती दी जाती है तो यह बताना कि विधानमंडल के अधिकार में क्या है और क्या नहीं, न्यायालय का काम है।[35]

सभी विधान, चाहे संघ के हों, राज्य के हों या प्रदत्त किए हुए हों, अधिकारातीत के सिद्धांत के अध्यधीन हैं और उनकी न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।[36] समीक्षा का दायरा इस बात तक सीमित है कि क्या जिस विधान का विरोध हो रहा है, वह प्रदत्त शक्तियों के अंतर्गत आता है और क्या वह संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का हनन करता है अथवा क्या वह संविधान के किसी अनिवार्य उपबंध का उल्लंघन करता है। न्यायालयों का काम कानून की व्याख्या करना है, यह चर्चा करना नहीं कि कानून कैसा होना चाहिए।[37] विधानमंडल न्यायालयों द्वारा बताई गई त्रुटियों या कमियों को दूर करने के लिए कानूनों में संशोधन कर सकते हैं या मूल आशय को कार्यरूप देने के लिए नया कानून बना सकते हैं और इस प्रकार के संशोधनों आदि को न्यायालय वैध कानूनों के रूप में मानते हैं।

इसके अलावा, संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि संसद अपनी संविधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए इस संविधान के किसी उपबंध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन इस अनुच्छेद में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार कर सकेगी। लेकिन यह संविधायी शक्ति 'संविधान के मूल ढांचे के सिद्धांत' के अध्यधीन है जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने महात्मा केशवानंद भारती—श्री पादगालवरू बनाम केरल राज्य[38] के अपने निर्णय में प्रतिपादित किया है और अनेक परवर्ती मामलों में इसे

---

35. *रूस्तम कावसजी कूपर बनाम भारत संघ*, ए.आई.आर. 1970 एस.सी 1318 ।
36. *के.जे. थॉमस बनाम कृषि आयकर आयुक्त*, मद्रास, ए.आई.आर, 1958 केरल 6 ।
    1976 से पूर्व संघ के किसी कानून की वैधता को उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती थी। संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 के बाद केवल उच्चतम न्यायालय को संघ के किसी कानून की संवैधानिक मान्यता अवधारित करने की अनन्य अधिकारिता थी और संघ के किसी कानून पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालयों को वंचित कर दिया गया। इसी प्रकार, उच्च न्यायालयों को राज्य के कानूनों की वैधता के मामलों पर विचार करने की अनन्य मूल अधिकारिता प्रदत्त की गयी। तथापि, उच्चतम न्यायालय का अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार में राज्य के कानूनों की वैधता पर निर्णय देने का अधिकार बना रहा, जहां संघ के कानून और राज्य के कानून की संवैधानिक वैधता का मामला अंतर्ग्रस्त है, वहां उच्चतम न्यायालय को ही ऐसे कानूनों की संवैधानिक वैधता अवधारित करने का अधिकार है। परन्तु संविधान (43वां संशोधन) अधिनियम, 1977 के लागू हो जाने से संघ या राज्य के किसी कानून की संवैधानिक वैधता के सम्बन्ध में 1976 से पूर्व की स्थिति बहाल हो गई है।
37. *पुरूषोत्तम गोविन्दजी हलाई बनाम बी.एम. देसाई*, ए.आई.आर 1956 एस.सी. 20 ।
38. ए.आई.आर 1973, एस.सी. 1961 ।

दोहराया है। तद्नुसार अद्यतन स्थिति यह है कि संविधान के प्रत्येक उपबंध में संशोधन किया जा सकता है बशर्ते संविधान का मूल आधार और ढांचा अपरिवर्तित रहे। संविधान की मौलिक विशेषताएं सीमित नहीं हैं। इन्दिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण मामले[39] और मिनर्वा मिल्स लि. बनाम भारत संघ[40] मामले में उच्चतम न्यायालय की यह टिप्पणी है कि संविधान की किसी 'मौलिक विशेषता' को 'विशिष्ट विशेषता' के दावे का निर्धारण हर उस मामले में किया जाएगा जो भी उसके समक्ष आएगा। देश में अपील का सर्वोच्च न्यायालय होने के अलावा, उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक भी है। इस प्रकार संवैधानिक उपबंधों के अर्थ के बारे में अंतिम निर्णय उच्चतम न्यायालय का है।

न्यायालय द्वारा संसद की कार्यवाही की जांच न किया जाना

संविधान के उपबंधों के अध्यधीन संसद और राज्य विधानमंडल अपनी प्रक्रिया का स्वयं विनियमन कर सकते हैं। संसद के दोनों सदनों में से किसी सदन या किसी विधानमंडल की किसी कार्यवाही की वैधता पर किसी न्यायालय में, प्रक्रिया की किसी कथित अनियमितता के आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती।[41] राजाराम पाल बनाम माननीय अध्यक्ष लोक सभा व अन्य[42] मामले के अपने निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा है कि अनुच्छेद 122(1) के संदर्भ में प्रक्रिया की अनियमितता मात्र को संसद की कार्यवाहियों अथवा उसके प्रभाव को चुनौती देने का आधार नहीं माना जा सकता और जबकि ऐसे दृष्टिकोण को 'तर्कशून्यता' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है लेकिन संवैधानिक योजना में अवैधानिकता अथवा असंवैधानिकता से संसदीय कार्यवाहियों को बचाया नहीं जा सकता। संसद या राज्य विधानमंडलों के अतिरिक्त प्रत्येक सभा की अध्यक्षता करने वाला अधिकारी या यथास्थिति संसद या विधानमंडल का कोई अधिकारी या सदस्य जिसे प्रक्रिया विनियमित करने या कार्य-संचालन करने या व्यवस्था बनाये रखने या संसद के किसी सदन या विधानमंडल के किसी सदन के निर्णय को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति कुछ समय के लिए प्राप्त हो, उन शक्तियों के प्रयोग में न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता।[43]

उच्चतम न्यायालय ने सभा से अपने सदस्यों के निष्कासन की संसद की शक्ति का भी अनुमोदन किया।[44]

---

39. ए.आई.आर 1975, एस.सी. 2299 ।
40. ए.आई.आर 1980, एस.सी. 1789 ।
41. अनुच्छेद 122 (1) और 212 (1) *एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्री कृष्ण सिन्हा* (सर्चलाइट मामला- दूसरा निर्णय) ए.आई.आर, 1960, एस.सी. 1186 ।
42. 2007 3 एस.सी.सी. 184 ।
43. अनुच्छेद 122(2) और 105(3) *सी. कृष्णन* बनाम *हैदराबाद राज्य,* ए.आई.आर. 1956 हैदराबाद 186 ।
44. *राजा राम पाल* बनाम *माननीय अध्यक्ष लोक सभा व अन्य* (2007) 3 एस.सी.सी 184 । अधिक जानकारी के लिए देखिए विशेषाधिकार से संबंधित अध्याय-ग्यारह।

न्यायालयों को यह क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है कि वे सभा में की गई किसी बात या किसी ऐसी बात के संबंध में, जिसका प्रभाव सभा के आन्तरिक मामलों पर हो, कोई रिट, निदेश या आदेश जारी करे।[45] उसी प्रकार अध्यक्षता करने वाला अधिकारी यदि सभा की कार्यवाही को विनियमित करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने में असफल रहे, तो वह भी न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता।[46] संविधान में इस बात की गारंटी दी गई है कि सभा में अथवा उसकी किसी समिति में कही गई। 'किसी बात' और 'प्रत्येक बात' के समतुल्य हुई किसी बात के बारे में किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।[47]

संसद में न्यायाधीशों के आचरण संबंधी प्रश्नों और चर्चा पर निर्बंधन

इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि न्यायाधीश कार्यपालिका तथा विधायिका, दोनों के प्रभाव से स्वतंत्र हो, संविधान में इस संबंध में विशेष उपबंध किया गया है कि उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के 'अपने कर्तव्यों के निर्वहन में' किए गए आचरण के विषय में संसद में कोई चर्चा उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के मूल प्रस्ताव पर ही होगी, अन्यथा नहीं।[48]

अत: उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के न्यायिक आचरण पर सभा में कभी वाद-विवाद[49] या स्थगन प्रस्ताव पर आनुषंगिक रूप में[50] या प्रश्न आदि[51] के माध्यम से कोई चर्चा नहीं की जा सकती। अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किसी न्यायाधीश के आचरण पर चर्चा करने का तरीका यह है कि उसको अपने पद से हटाने का प्रस्ताव लाया जाए। वह भी तभी हो सकता है जब विनिर्दिष्ट उपबंधों के अंतर्गत प्रस्ताव की सूचना दी गई हो और इस संबंध में जो प्रक्रिया विहित की गई है, उसका अनुसरण किया गया हो। यदि कोई न्यायाधीश अपने न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए कोई गलत फैसला दे या किसी व्यक्ति के संबंध में प्रतिकूल टिप्पणी करे तो एक ही रास्ता है, और वह यह है कि यदि कोई पुनर्विलोकन या पुनरीक्षण अपील की गयी है, तो उस फैसले के विरुद्ध अपील की जाए।

---

45. *राज नारायण सिंह* बनाम *गोविन्द खेर* के मामले में यह फैसला दिया गया है। कि यद्यपि किसी सदस्य को सभा से किसी अवधि के लिए निलंबित किये जाने के कारण उसका अपने चुनाव क्षेत्र का संसद में बराबर प्रतिनिधित्व करते रहने का अधिकार प्रभावित होता है, लेकिन, फिर भी सदस्य के लिए कोई कानूनी उपचार नहीं है क्योंकि उसके अधिकारों पर ऐसी चीज का प्रभाव पड़ा है, जोकि विधानमंडल में ही की गई है—ए.आई.आर. 1954, इलाहाबाद 319 ।
46. *सुरेन्द्र महन्ती* बनाम *नवकृष्ण चौधरी*, ए.आई.आर. 1958, उड़ीसा 168 ।
47. *तेज किरण जैन* बनाम *एन. संजीव रेड्डी*, ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1573 'न्यायालय और विशेषाधिकार के मामले' के लिए *देखिए* अध्याय-ग्यारह।
48. अनुच्छेद 121 और 124 (4) ।
49. नियम 352(पांच); *एस.ओ.पी. डिबेट्स* (II), 1.12.1953, कॉ. 1164, *एल.एस. डिबेट्स*, 27.3.1961, कॉ. 7433 और *लो.स.वा.वि.*, 27.3.1984, कॉ. 417, *आर.एस. डिबेट्स*, 11.8.1980, अ.सू.प्र.स. 2, कॉ. 53-54 ।
50. नियम 58(आठ) ।
51. नियम 41(नौ) ।

न्यायाधीश को यह संरक्षण केवल उसके न्यायिक कर्तव्यों के संबंध में प्राप्त है और उसके व्यक्तिगत आचरण पर लागू नहीं होता है।[52]

उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के अपने कर्तव्य के पालन में किये गये आचरण के विषय में राज्यों के विधानमंडल कोई चर्चा नहीं कर सकते।[53]

तथापि, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की पदोन्नति और अधिक्रमण आदि से संबंधित मामलों पर लोक सभा में चर्चा की गई है।[54]

सामान्यत: न्यायालयों के न्यायिक कार्यों से संबंधित मामलों को सभा में उठाये जाने की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु उच्च न्यायालयों के बारे में तथ्यात्मक जानकारी मांगने वाले या उच्च न्यायालयों में लंबित अवशिष्ट कार्य की मात्रा के संबंध में प्रश्न गृहीत किए गए हैं और लोक सभा में उनका उत्तर दिया गया।[55] इसी प्रकार, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों

---

52. न्यायिक अधिकारी संरक्षण अधिनियम, 1850, धारा-1 में यह उपबंध किया गया है कि किसी न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट पर उसके न्यायिक कार्य के लिए किसी दीवानी अदालत में किसी कार्य के लिए या किसी ऐसे कार्य के लिए जिसका आदेश उसने अपने न्यायिक कर्तव्य के पालन में दिया हो, कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

53. अनुच्छेद 211 ।

54. (1) श्री ए.एन. राय की भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में नियुक्ति और उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों के अधिक्रमण पर लोक सभा में नियम 193 के अधीन 2 और 4 मई, 1973, को चर्चा की गई—*लो.स.वा.वि.*, 2.5.1973, कॉ. 311-401; 4.5.1973, कॉ. 174-205, 206-317; 6.5.1975, कॉ. 362-80 ।

    (2) किसी न्यायाधीश की पदोन्नति में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के बारे में श्री के.एस. वीरा भद्राप्पा के गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर दिनांक 12 और 27 अप्रैल, 1979 को चर्चा की गयी। छठी लोक सभा के विघटित हो जाने के कारण संकल्प व्यपगत हो गया।

55. उदाहरण के लिए, *देखिए, लो.स.वा.वि.*, दिनांक 25.8.1965, ता.प्र.सं. 197, कॉ.1695; 25.8.1965, अंता.प्र.सं. 682, पृ. 1758; 6.4.1966, अता.प्र.सं. 3282, कॉ. 9685-86; 25.7.1978, अता.प्र. सं. 1214, कॉ. 289-90; अता.प्र.सं. 1368, कॉ. 446-49; अता.प्र.सं. 1371, कॉ. 451-56; 23.2.1982, अता.प्र.सं. 284, कॉ. 118-22; *लो.स.वा.वि.* 6.12.1991, अता.प्र.सं. 2662, कॉ. 441-48; 24.4.1992, अ.ता.प्र.सं. 7815, कॉ. 156-62; 29.3.1995, ता.प्र.सं. 222, कॉ. 6-7; 25.2.1996, अ.ता.प्र.सं. 242, कॉ. 58-64 तथा 12.7.1996, अता.प्र. सं. 409, कॉ. 136-37; 29.4.2005, अ.प्र.सं. 5181, कॉ. 147-148; 3.3.2006, ता.प्र.सं. 191; कॉ. 57-62; 18.8.2006, अता.प्र.सं. 2647; कॉ. 260-61 और 24.11.2006, ता.प्र.सं. 55, कॉ. 193-94, 10.8.2007, अता.प्र.सं. 96; 16.11.2007, ता.प्र. सं. 35; 30.11.2007, अता.प्र.सं. 2144; 11.12.2013; अता.प्र.स. 1101; *आर.एस. डिबेट्स,* 3.5.1982, अता.प्र.सं. 609, कॉ. 117-21; 19.3.2001; अता.प्र.सं. 2459, कॉ. 94-95; 21. 3.2005, अता.प्र.सं. 2103, पृ. 132-133, 6.3.2006; अता.प्र.सं. 1434, पृ. 193-97; 7.3. 2013; ता प्र.स.142, प्र० 25-33; 14.3.2013 अता.प्र.सं.2853, और 2964; 13.12.2013, अता.प्र.स. 1027।

में हिन्दी के प्रयोग, उच्च न्यायालयों में लंबित बकाया कार्य, उच्च न्यायालयों में अवकाश या विभिन्न उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के सामान्य प्रश्न के संबंध में गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प भी गृहीत किए गए।[56] सदस्य अपने भाषणों में किसी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालने, यह सुझाव देने कि क्या कानून में परिवर्तन करने की आवश्यकता है और यदि हां, तो यह बताने के लिए कि वह परिवर्तन किस प्रकार किया जाये या न्यायालयों के फैसलों में सरकार की या व्यक्तियों की क्या आलोचना की गई है यह बताने के लिए, न्यायालयों के फैसलों का उल्लेख कर सकते हैं। सदस्य यह भी टिप्पणी कर सकते हैं कि न्यायालय का कोई निष्कर्ष विशेष तथ्यों के आधार पर गलत था या तथ्य ठीक ढंग से न्यायाधीश के सामने नहीं रखे गए थे।[57]

न्यायाधीन मामलों पर चर्चा

देश के शासन और उसके लोगों से संबंधित सभी मामलों पर चर्चा करने और विचार करने का पूर्ण विशेषाधिकार केवल विधानमंडल और उसके सदस्यों को है। सभा में वाकस्वातंत्र्य संसदीय लोकतंत्र का सार है। इस स्वतंत्रता पर स्वेच्छा से कुछ सीमित निर्बंधन लगे हैं, उनमें से एक यह है कि न्यायालयों के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लम्बित पड़े मामलों पर सभा में चर्चा करने से बचा जाए, ताकि ऐसे मामलों के निपटाए जाने में विचारण के दायरे से बाहर कही गई बातों का न्यायालयों के कार्य पर प्रभाव न पड़े।

न्यायाधीन मामलों संबंधी नियम के बारे में नियंत्रण लागू करते समय, इस बात का ध्यान रखा जाए कि वाक्-स्वतंत्रता के मूल अधिकार पर ऐसी अनुचित रोक न लगे, जो विधानमंडलों के कार्य में बाधक हो। इस संबंध में अध्यक्ष ने विनिर्णय दिया:

---

56. गैर-सरकारी सदस्यों के निम्नलिखित संकल्प गृहीत किए गए:

(1) "इस सभा की यह राय है कि उच्च न्यायालयों में मामलों को निपटाने में होने वाली देरी को रोकने के लिए लंबित मामलों को तय करने के लिए सरकार को चाहिए कि वह समुचित कानून लाये..... जिससे कि उच्च न्यायालयों में लंबे ग्रीष्मकालीन अवकाश को कम किया जाए......" समाचार (भाग-2), 21.7.1959, पैरा 2728 ।

(2) "कि इस सभा की राय है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का, संविधान के अनुच्छेद 222 के उपबन्धों के अनुसरण में जल्दी-जल्दी स्थानान्तरण किया जाए", समाचार (भाग-2), 7.4.1970, पैरा 3631 ।

तथापि, इन संकल्पों को बैलट में प्राथमिकता नहीं मिली।

(3) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में हिन्दी के प्रयोग के संबंध में चौधरी लछी राम द्वारा रखे गए एक गैर-सरकारी संकल्प को स्वीकार किया गया और 12 अप्रैल, 1989 के *गैर-सदस्यों के संकल्पों की कार्य-सूची* में शामिल किया गया।

57. *एल.एस. डिबेट्स,* 15.9.1965, कॉ. 5765-66, 5795-5810-11; 3.11.1965, कॉ. 220 और 229; 11.11.1965, कॉ. 1450 और 1458; 19.11.1965, कॉ. 2944-45; 22.11.1965, कॉ. 3116 और 3117; 9.12.1965, कॉ. 66.73; 31.7.1992, कॉ.358-59; 25.8.1993, कॉ. 376-77; 27.8.1993, कॉ. 403-09 और 11.8.1994, अता.प्र.सं. 2727 ।

इस नियम की कि क्या किसी ऐसे प्रस्ताव का, जिसका संबंध एक ऐसे मामले से है, जो न्यायालय के अधिनिर्णयाधीन है, गृहीत किया जाना चाहिए अथवा उस पर सभा में चर्चा की जानी चाहिए, स्पष्ट व्याख्या की जानी है। जहां एक ओर अध्यक्ष पीठ को यह सुनिश्चित करना है कि सभा में ऐसी कोई चर्चा न की जाए जिससे न्याय की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े, दूसरी ओर अध्यक्ष पीठ को यह भी सुनिश्चित करना है कि सभा को इस आधार पर लोक महत्व के किसी मामले पर चर्चा करने से न रोका जाये कि इस प्रकार का, समवर्गी अथवा सम्बद्ध मामला न्यायालय के समक्ष है। मेरे विचार से, न्यायालय के न्यायाधीन की कसौटी यह होनी चाहिए कि जिस मामले को सभा में उठाये जाने का प्रस्ताव है, वह एक ऐसे मामले जैसा है जिस पर न्यायालय ने अधिनिर्णय देना है। इसके अतिरिक्त, यदि अध्यक्ष पीठ यह निर्णय देती है कि मामला न्यायालय के न्यायाधीन है, तो इस विनिर्णय का प्रभाव यह होता है कि उस मामले पर चर्चा तब तक स्थगित की जाती है जब तक न्यायालय द्वारा निर्णय न दे दिया जाये। न्यायालय के न्यायाधीन होने का प्रतिबंध उसके बाद तब तक लागू नहीं रहेगा, जब तक वह मामला उच्चतर न्यायालय को अपील करने पर फिर से न्यायालय के न्यायाधीन न हो जाए।[58]

यह सुस्थापित नियम है कि ऐसे मामले पर, जो न्यायालय के न्यायाधीन है, चर्चा नियम विरुद्ध है[59] और ऐसा निर्णय दिया गया है कि कोई मामला तब तक न्यायालय के न्यायाधीन नहीं माना जाता है जब तक उस मामले में कानूनी कार्यवाही वस्तुत: आरंभ नहीं हुई है।[60] तथापि लोक महत्व के मुद्दे और विभिन्न राजनीतिक दलों समूहों के सदस्यों द्वारा लगातार मांग को ध्यान में रखते हुए, अध्यक्ष न्यायाधीन मामले पर चर्चा की अनूमति दे सकता है। जहां न्यायाधीश मामले पर चर्चा की अनुमति दी जाती है वहां अध्यक्ष सदस्यों को ऐसा कुछ न कहने के लिए सदैव सतर्क कराता है। जिससे न्यायालय के समक्ष किसी मामले की प्रक्रिया पर किसी भी रीति से प्रतिकूल प्रभाव पड़े।[61] इस प्रश्न पर कि क्या कोई मामला न्यायाधीन है, अध्यक्ष द्वारा निर्णय प्रत्येक मामले के गुण-दोषों के आधार पर लिया जाता है।

---

58. *एल.एस. डिबेट्स,* 9.5.1968, कॉ. 3154 ।
59. *पूर्वोक्त,* 20.3.1956, कॉ. 3143-44 ।
60. *एल.ए. डिबेट्स,* 13.2.1946, पृ. 924-25 ।
61. लोक सभा अध्यक्ष द्वारा निम्नलिखित न्यायाधीन मामलों पर चर्चा की अनुमति दी गई हैं:
    (एक) दिल्ली के कुतुब मीनार में 4 दिसम्बर, 1981 को 45 लोगों की दु:खद् मृत्यु और अनेक अन्य लोगों के घायल होने के बारे में 4 दिसंबर, 1981 को गृह मंत्री द्वारा वक्तव्य (7 दिसंबर, 1981 को नियम 193 के अधीन);
    (दो) प्रधानमंत्री से अपनी मंत्रिपरिषद् से तीन मंत्रियों यथा श्री लालकृष्ण आडवाणी, डॉ॰ मुरली मनोहर जोशी और कुमारी उमा भारती, जिनके विरुद्ध 6 दिसंबर, 1992 को बाबरी मस्जिद गिराने में शामिल होने के लिए लगाए गए प्रथम दृष्टया आरोप सही पाए गए थे, को हटाने की मांग करने वाला प्रस्ताव। (13 दिसंबर, 2000 और 14 दिसंबर, 2000 को नियम 184 के अधीन।)

यदि किसी मामले में न्यायालय के समक्ष कोई रिट याचिका गृहीत होने के लिए लंबित पड़ी है तो यह मामला न्यायालय के न्यायाधीन नहीं होता है।[62]

लोक सभा के नियमों के अन्तर्गत किसी ऐसे मामले को जो किसी ऐसे न्यायालय के न्यायाधीन है जिसका भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार है, प्रश्नों,[63] स्थगन प्रस्तावों,[64] प्रस्तावों,[65] संकल्पों,[66] और कटौती प्रस्तावों,[67] जैसे किसी भी रूप में सभा में नहीं उठाया जा सकता है। किसी स्थगन प्रस्ताव पर, यद्यपि उसे गृहीत किया जा चुका है, निश्चित समय पर कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती है यदि उस समय तक उसकी विषय-वस्तु न्यायालय के न्यायाधीन हो गई।[68] यदि किसी स्थगन प्रस्ताव की विषय-वस्तु दो भागों में है और उसका एक भाग सभा में उसे पेश करने के प्रस्ताव पर सभा की अनुमति मिलने के बाद न्यायालय के न्यायाधीन हो जाता है तो प्रस्ताव पर चर्चा उसके अन्य भाग तक ही, जो न्यायालय के न्यायाधीन[69] नहीं है, सीमित होती है। एक संकल्प को पेश करने की अनुमति नहीं दी गई क्योंकि मामला तब तक न्यायालय के न्यायाधीन हो गया था।[70]

यह नियम उन मामलों पर लागू कर दिया गया है जो किसी संसदीय समिति, किसी सांविधिक न्यायाधिकरण या कोई न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्य करने वाले किसी सांविधिक प्राधिकरण या किसी मामले की जांच या अन्वेषण करने के लिए नियुक्त किसी आयोग या जांच न्यायालय के समक्ष विचाराधीन हो। इस प्रकार के मामले सामान्यतः प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव, संकल्प, प्रस्ताव या कटौती प्रस्ताव के जरिए नहीं उठाए जाते। तथापि, एक उपबंध है कि जांच को प्रभावित न कर सकने वाले पहलुओं पर चर्चा की अनुमति अध्यक्ष द्वारा दी जा सकती है। लोक महत्व अथवा अति महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा की अनुमति दी जा सकती है लेकिन यह चर्चा एक सीमा के अन्तर्गत ही हो सकती है।[71] परन्तु अध्यक्ष उस दशा में प्रश्न

(तीन) अयोध्या मामला (3 दिसंबर, 2001 को नियम 193 के अधीन);

(चार) दिल्ली में चल रहे सीलिंग अभियान से उत्पन्न स्थिति (27 नवम्बर, 2006 को नियम 193 के अधीन)।

62. *लो.स.वा.वि.*, 6.9.1966, कॉ. 9476- यह भी निर्णय दिया गया कि रिट याचिका विधि निर्माण के मार्ग में बाधक नहीं हो सकती।
63. नियम 41 (2) (अठारह) ।
64. नियम 58 (सात); *एल.एस. डिबेट्स,* (2) 9.3.1953, कॉ. 1579-81 ।
65. नियम 186 (आठ) ।
66. नियम 173 (पांच) ।
67. नियम 210 (आठ) ।
68. *एल.ए. डिबेट्स,* 24.2.1938, पृ. 1104; 25.2.1938, पृ. 1220-21 ।
69. *पूर्वोक्त,* 13.2.1946, पृ. 1958-59; *एल.एस. डिबेट्स* 18.7.1967, कॉ. 12738-41, 4.8.1977 कॉ. 295-315 ।
70. *पी. डिबेट्स* (2), 23.11.1950, कॉ. 541-43 ।
71. *एल.एस. डिबेट्स* 7.4.1966 कॉ. 10029-33 ।

गृहीत कर सकता है जब वह उन मामलों से संबद्ध हो जो जांच की प्रक्रिया या विषय या चरण से संबंधित है और न्यायाधिकरण या आयोग या जांच न्यायालय के विचाराधीन मामले को प्रभावित न करता हो।[72] इसी प्रकार अध्यक्ष अपने विवेकानुसार स्थगन प्रस्ताव, संकल्प या प्रस्ताव या कटौती प्रस्ताव संबंधी उन मामलों को सभा में उठाने की अनुमति दे सकता है जो जांच की प्रक्रिया या विषय या चरण से संबद्ध हों बशर्ते वह इस बात से संतुष्ट हो जाए कि इससे सांविधिक न्यायाधिकरण, न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्य कर रहे सांविधिक प्राधिकरण या आयोग या जांच न्यायालय के न्यायाधीन मामला प्रभावित नहीं होता है।[73]

जिस मामले की पुलिस जांच कर रही हो उस विषय पर प्रश्न इस आधार पर अस्वीकृत नहीं किया जाता कि मामला न्यायाधीन है। परन्तु जिन मामलों में पुलिस जांच चल रही हो उन पर प्रश्न पूछे जाने की बात को हतोत्साहित किया गया है; पुलिस के जांचाधीन मामले की बाबत यदि सदस्यों के पास कोई विशिष्ट और विश्वसनीय जानकारी है, तो उन्हें वह जानकारी संबद्ध मंत्री को भेजने की सलाह दी गई है।[74]

सदस्य से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने भाषण के दौरान उस मामले के तथ्य का उल्लेख न करें जिस पर न्यायिक निर्णय लंबित है[75] जो मामला न्यायाधीन है, उस पर चर्चा करना उचित नहीं है।[76] यह आपत्ति उठाए जाने पर कि सदस्य को ऐसे दस्तावेज से उद्धरण देने की अनुमति न दी जाए, जो न्यायाधीन है, और उससे न्यायिक निर्णय प्रभावित हो सकता है, अध्यक्ष ने सदस्य को केवल उस अंश को उद्धृत करने की अनुमति दी जो मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखे गए अपने वक्तव्य में उठाए गए बिन्दुओं का खंडन करने के लिए संगत था।[77] तथापि, अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया है कि जो मामला न्यायालय के विचाराधीन है, सदस्य उस पर अपनी तर्कपूर्ण टिप्पणियां करने के लिए स्वतंत्र है और यह नियम उनके आड़े नहीं आएगा।[78]

जहां तक विशेषाधिकार के मामलों का प्रश्न है, विधानमंडल अपने विशेषाधिकार का एकमात्र निर्णायक है। और विशेषाधिकार अथवा सभा के सदस्यों के संबंध में अनुशासनात्मक अधिकारिता के मामलों के बारे में न्यायाधीन विषयक नियम लागू नहीं होता।[79]

---

72. नियम 41 (2) (तेईस) ।
73. नियम 59, 175, 188, 210 (बाईस) ।
74. *एल.एस. डिबेट्स*, 7.4.1958, कॉ. 8533-34 ।
75. नियम 352 (एक) ।
76. *एल.एस. डिबेट्स*, 20.3.1956, कॉ. 3143-44।
77. *एल.एस. डिबेट्स*, 25.7.1967, कॉ. 14587-94 ।
78. *एल.एस. डिबेट्स*, 22.11.1965, कॉ. 3113-28 ।
79. *पूर्वोक्त*, 20.11.1974, कॉ., 193-239, 2.12.1974 कॉ. 222-236 ।

न्यायाधीन विषयक नियम विधि निर्माण के आड़े नहीं आता जब कोई विधि निर्माण किया जाता है, कोई नियम बनाया जाता है तो न्यायाधीन नियम लागू नही होता।[80] यदि इस नियम को विधि निर्माण पर लागू किया गया तो इससे विधानमंडल उस मामले में न केवल न्यायालय के अधीनस्थ हो जायेगा अपितु उसके लिए कानून बनाना भी असंभव हो जाएगा क्योंकि कई कानूनों से संबद्ध अनेक मामले सदा ही किसी न किसी न्यायालय में न्यायनिर्णयन हेतु लंबित रहते हैं। इससे संसद का कानून बनाने का मुख्य काम ही रुक जायेगा। इसकी न तो संविधान स्वीकृति देता है और न ही गुणावगुण के आधार पर इसका औचित्य है। विधानमंडल कानून बनाने के विषय में सर्वोच्च और प्रभुतासम्पन्न है और विधि निर्माण के क्षेत्र में उनके कार्य पर कोई प्रतिबंध नहीं है। संसद की कानून बनाने की शक्ति बंधन रहित है भले ही विधि-निर्माण की विषय-वस्तु न्यायालय के विचाराधीन हो।[81] परन्तु जब किसी विधेयक पर सदन में चर्चा चल रही हो, तो सदस्य न्यायालय में लम्बित किसी मामले के तथ्यों का उल्लेख नहीं करते।

अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया है कि किसी ऐसे विधेयक पर चर्चा भी, जिसका विषय उच्चतम न्यायालय में लंबित किसी अपील के कारण न्यायालय के न्यायाधीन है, नियमानुकूल है बशर्ते कि सदस्य अपीलाधीन किसी मामले विशेष के तथ्यों का उल्लेख न करें। इससे सभा में वाद-विवाद से उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील की सुनवाई पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।[82]

इस तथ्य के बावजूद कि अध्यादेश को विधि न्यायालय में चुनौती दी गई है और न्यायालय ने सरकार को आदेश जारी किया है, अध्यादेश के स्थान पर लाए जाने वाले विधेयक पर सदन में चर्चा की जा सकती है।[83]

> सभा में व्यवस्था का प्रश्न उठाया गया था कि आवश्यक सेवाओं को बनाये रखने संबंधी अध्यादेश, 1968 का निरनुमोदन करने के लिए पेश किए गए संकल्प पर चर्चा नहीं की जा सकती, क्योंकि अध्यादेश विधि न्यायालयों के समक्ष न्यायाधीन था। व्यवस्था के प्रश्न को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि "न्यायाधीन का नियम विधान पर लागू नहीं होता है और अध्यादेश का निरनुमोदन करने संबंधी संकल्प विधान के प्रकार का है, क्योंकि इसके माध्यम से अध्यादेश का निरनुमोदन करने का अर्थात् ऐसे विधान का निरसन करने का प्रस्ताव है जो प्रभावी है और अध्यादेश में वही बल होता है जो संसद के कानून में होता है।" यह विनिर्णय दिया गया था कि "संसद अपनी विधायी शक्तियों का उपयोग करने के मामले में सर्वोच्च और प्रभुतासम्पन्न है और केवल इस तथ्य के कारण संसद को पंगु नहीं बनाया जा सकता कि वर्तमान विधान की संवैधानिकता के

---

80. पूर्वोक्त, 11.4.1974, कॉ. 215-40 ।
81. *एल.एस. डिबेट्स,* , 12.12.1974, कॉ. 220-42 ।
82. *पूर्वोक्त,* 26.9.1955, कॉ. 15235-54 ।
83. *पूर्वोक्त,* 22.11.1965, कॉ. 3126-29; 27.8.1974 कॉ. 172-80 ।

विरुद्ध रिट याचिका विधि न्यायालय में लम्बित है।[84]"

जहां तक किसी ऐसे विषय का संबंध है जो न्यायाधीन है और जिसका सभा में किसी भाषण या वाद-विवाद अथवा किसी वक्तव्य में उल्लेख किया गया है, अध्यक्ष को केवल इस आधार पर किन्हीं भी शब्दों अथवा वाक्यांशों को कार्यवाही वृत्तान्त से निकालने का आदेश देने का अधिकार नहीं है कि वे किसी ऐसे मामले से संबंधित है जो न्यायिक निर्णय के लिए किसी विधि न्यायालय में लम्बित है। पीठासीन अधिकारी द्वारा किसी सदस्य को यह कहे जाने के बावजूद कि सदस्य ऐसे मामले का उल्लेख न करें जो न्यायाधीन हैं, सदस्य द्वारा ऐसे न्यायाधीन मामले का उल्लेख जारी रखने पर पीठासीन अधिकारी सदस्य से तत्काल अपने भाषण को समाप्त करने के लिए कह सकता है। अध्यक्ष यह टिप्पणी भी कर सकता है कि सदस्य को ऐसे मामले का उल्लेख नहीं करना चाहिए था जो न्यायाधीन हैं। इसके पश्चात् दोनों ही वक्तव्य कार्यवाही वृत्तांत में रहेंगे, परन्तु अध्यक्ष ऐसे शब्दों को कार्यवाही वृत्तान्त से निकालने का आदेश नहीं दे सकता और उसे देना भी नहीं चाहिए।

अक्तूबर, 1967 में नई दिल्ली में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में लिए गए निर्णय के अनुपालन में सभापति द्वारा नवंबर, 1967 में पीठासीन अधिकारियों की एक समिति गठित की गयी थी जिसे अन्य बातों के साथ-साथ न्यायाधीन नियम की व्याप्ति की जांच करनी थी कि क्या जब कोई मामला किसी न्यायालय की न्याय निर्णयन की प्रक्रिया के अन्तर्गत हो तो उसे संसदीय कार्यवाहियों के लिए किसी प्रस्ताव अथवा अन्यथा (सिवाय एक विधेयक द्वारा) सभा के समक्ष लाया जाना चाहिए या नहीं? समिति ने न्यायाधीन संबंधी इस विषय की जांच की और इसे महाराष्ट्र विधान परिषद के सभापति, श्री वी.एस. वागे की अध्यक्षता में इस विषय पर अंतिम निर्णय लिया। समिति ने यह महसूस किया कि अगर कुछ मार्गदर्शी सिद्धांतों की रचना की जाए तो यह पीठासीन अधिकारियों के लिए उपयोगी होगा। तद्नुसार, समिति ने निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धांतों की रचना की है।[85]

(1) वाक् स्वातंत्र्य एक प्राथमिक अधिकार है जबकि न्यायाधीन का नियम स्वयं लगाया गया प्रतिबंध है। इसलिए जहां आवश्यक हो, न्यायाधीन के नियम की अपेक्षा वाक् स्वातंत्र्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(2) न्यायाधीन का नियम विशेषाधिकार के मामलों पर लागू नहीं होता।

(3) न्यायाधीन नियम सामान्यतः विधान पर लागू नहीं होता।

(4) सिविल और दंड न्यायालयों मे न्यायाधीन मामलों अथवा भारत के किसी भाग में किए जा रहे कोर्ट मार्शल की कार्यवाही के संबंध में न्यायाधीन का नियम लागू किया जाना चाहिए तथा साधारणतः न्यायाधिकरण जैसे अन्य न्यायिक अथवा अर्द्ध न्यायिक

---

84. *पूर्वोक्त,* 11.12.1968, कॉ. 152-54 ।

85. *पागे समिति का प्रतिवेदन,* 1968, *पैरा* 30 ।

निकायों, इत्यादि पर नहीं क्योंकि ये आमतौर पर तथ्यों का पता लगाने वाले निकाय हैं।[86]

(5) न्यायाधीन का नियम प्रश्नों वक्तव्यों, प्रस्तावों (विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति, विधेयक को विचारार्थ रखने, विधेयक को प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपने, विधेयक पर राय जानने के लिए उसे परिचालित करने तथा विधेयक को पारित करने संबंधी प्रस्तावों को छोड़कर) संकल्पों और अन्य वाद-विवादों पर लागू होता है।

(6) न्यायाधीन का नियम केवल न्यायालय में न्यायाधीन विशिष्ट मामलों के संबंध में लागू होता है। समस्त मामले को निवारित नहीं किया जा सकता।

(7) सम्बद्ध मामलों के विषय में, जिनमें कुछ मामले न्यायाधीन हैं और कुछ नहीं हैं, उन मामलों पर वाद-विवाद की अनुमति दी जा सकती है जो न्यायाधीन नहीं हैं।

(8) न्यायाधीन का नियम केवल उस अवधि में लागू रहता है, जब मामले पर किसी न्यायालय में अथवा कोर्ट मार्शल के दौरान सक्रिय विचार हो रहा हो। इसका अर्थ यह होगाः

(क) आपराधिक मामलों में आरोप पत्र दायर करने के समय से लेकर निर्णय दिए जाने तक।

(ख) कोर्ट मार्शल में—आरोपों के लगाए जाने के समय से आरोपों की पुष्टि तक।

(ग) सिविल वाद में—वाद की विरचना से निर्णय दिए जाने तक।

(घ) रिट याचिकाओं में—उनके मंजूर होने से आदेश पारित होने तक।

(ङ) व्यादेश याचिकाएं—उनके मंजूर होने से आदेश पारित होने तक।

(च) अपीलें—अपील दाखिल होने से निर्णय दिए जाने तक।

विधायिका और न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों के संवर्द्धन हेतु उपायों संबंधी पीठासीन अधिकारियों की समिति

मद्रास (जिसे अब चेन्नई के नाम से जाना जाता है) में 25 और 26 जून, 1993 को हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में लिए गए निर्णय के अनुपालन में लोक सभा अध्यक्ष तथा विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन के सभापति द्वारा विधायिका और

---

86. नियम 188 के अनुसार साधारणतया ऐसे प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की अनुज्ञा नहीं दी जाएगी जो किसी ऐसे विषय पर चर्चा के लिए हो जो किसी न्यायिक या अर्धन्यायिक कृत्य करने वाले किसी संविहित न्यायाधिकरण या संविहित प्राधिकारी के या किसी विषय की जांच या अनुसंधान करने के लिए नियुक्त किसी आयोग या जांच न्यायालय के सामने लंबित हो।

परंतु अध्यक्ष अपने स्वविवेक से किसी ऐसे विषय को सभा में उठाने की अनुमति दे सकेंगे जो जांच की प्रक्रिया या विषय या प्रक्रम से संबंधित हो यदि अध्यक्ष का समाधान हो जाए कि इससे संविहित न्यायाधिकरण, संविहित प्राधिकरण या आयोग या जांच न्यायालय द्वारा उस विषय के विचार किए जाने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है।

न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों के संवर्द्धन हेतु उपायों संबंधी पीठासीन अधिकारियों की समिति गठित की गई थी। समिति ने सर्वसम्मति से 22 जनवरी, 1994 को रिपोर्ट स्वीकार कर ली थी। समिति के विचारणीय विषय निम्नलिखित थे:—

(i) विधायिका और न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों के संवर्द्धन हेतु उपायों के लिए सुझाव देना; और

(ii) उपर्युक्त मुद्दा सं. (1) के आनुषंगिक मामलों पर अन्य सिफारिशें करना।

समिति ने विधायिका और न्यायपालिका के बीच परस्पर विरोध के निम्नलिखित चार मुख्य क्षेत्रों की पहचान की:—

(i) संसदीय विशेषाधिकारों का अस्तित्व, विस्तार और परिधि तथा अवमानना किए जाने पर विधानमंडलों की दण्ड देने की शक्ति;

(ii) संसद/विधानमंडलों की कार्यवाहीं में हस्तक्षेप;

(iii) विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा दल परिवर्तन रोधी कानून के अंतर्गत दिए गए निर्णय; और

(iv) विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा अपने-अपने सचिवालयों के प्रशासन के सम्बन्ध में दिए गए निर्णय।

समिति ने परस्पर विरोध के इन सभी क्षेत्रों के बारे में अलग-अलग चर्चा की और इस संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां/निष्कर्ष/सिफारिशें कीं।[87]

(1) *संसदीय विशेषाधिकारों का अस्तित्व, विस्तार और परिधि तथा अवमानना के लिए विधानमंडलों की दण्ड देने की शक्ति*

संसद/विधानमंडल द्वारा अपने-अपने विशेषाधिकारों के अस्तित्व, विस्तार और परिधि निर्धारित करना, उनका अतिलंघन न होने देना तथा विशेषाधिकार भंग और सदन की अवमानना की संभावित स्थिति में दण्ड देने की शक्ति रखना सदन का एक अनिवार्य अधिकार है। वास्तव में, अपने विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की रक्षा के अंतर्निहित अधिकार के बिना तथा विशेषाधिकार भंग और अवमानना की स्थिति में दण्ड देने की शक्ति के बिना सदन के सभी अन्य विशेषाधिकार अर्थहीन हैं।

तथापि, समिति ने टिप्पणी की कि संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य इस दृष्टि से अत्यन्त स्पष्ट था जब उन्होंने सदन के, इसके सदस्यों के और समितियों के विशेषाधिकारों के संबंध में अनुच्छेद 105/194 के अंतर्गत संवैधानिक उपबंधों की व्यवस्था की और इस बात को दोहराया कि इन मामलों के निर्णय में केवल सभा को अधिकार/शक्तियां प्राप्त हैं।

समिति ने इस बात की जांच की कि क्या विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किया जाना, इस विषय में अधिक स्पष्टता लाने में सहायक होगा और जिसके द्वारा विधायिका और

---

87. विधायिका और न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के संवर्द्धन हेतु उपायों सम्बन्धी पीठासीन अधिकारियों की समिति का प्रतिवेदन (लोक सभा सचिवालय, जनवरी, 1994) ।

न्यायपालिका के बीच विरोध के क्षेत्रों को कम किया जा सकेगा। तथापि, समिति का विचार है कि संहिताबद्ध किए जाने से विधायिका और न्यायपालिका के बीच स्वत: ही बेहतर सौहार्द सुनिश्चित नहीं हो पाएगा, बल्कि ऐसा करने से अप्रत्याशित समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

समिति ने टिप्पणी की कि संविधान द्वारा विधायिका और न्यायपालिका को विशेष कर्त्तव्य तथा दायित्व सौंपे गए हैं और इनकी भूमिका एक दूसरे के लिए पूरक के रूप में नियत की गई हैं। अत: यह देश में प्रजातांत्रिक स्वरूप के लिए अत्यंत हितकारी होगा यदि दोनों परस्पर विश्वास तथा आदर के साथ, एक दूसरे की स्वतंत्रता, गरिमा और क्षेत्राधिकार का ध्यान रखते हुए कार्य करें।

(2) *संसद/विधानमंडलों की कार्यवाही में हस्तक्षेप*

समिति ने टिप्पणी की कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 118/208 के अधीन संसद/राज्य विधायिका के प्रत्येक सदन को संविधान के उपबंधों के अधीन अपनी प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम बनाने का अधिकार है। अत: विधानमंडलों की प्रक्रिया में न्यायिक हस्तक्षेप ने विधायिका और न्यायपालिका के आपसी संबंधों को परस्पर विरोधी आयाम दे दिये हैं।

उपर्युक्त टिप्पणी करते हुए समिति का आशय इस प्रकार की सामान्य राय का आश्रय लेना नहीं है कि भारत में न्यायालयों को विधायिका की कार्यवाही की जांच नहीं करनी चाहिए। समिति टिप्पणी करती है कि भारत में विधायिका संविधान के उपबंधों से उतनी ही बंधी हुई है जितनी न्यायपालिका है। विद्यमान प्रणाली के अनुसार, विधायिका कानून बनाती है और न्यायपालिका इनका निर्वचन करती है और देखती है कि क्या कानून संविधान के उपबंधों की परिधि में है अथवा नहीं।

समिति के विचार में, संसदीय लोकतंत्र में विधानमंडलों की कार्यवाही का प्रश्न वस्तुत: विधानमंडलों की उनके अपने क्षेत्र में प्रभुता की पूर्वापेक्षा करता है। अत: विधानमंडलों को उचित गरिमा, शिष्टाचार और स्वतंत्रता से अपना कार्य करने की आजादी होनी चाहिए। अत: समिति सिफारिश करती है कि संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं के अध्यधीन विधानमंडलों को अपने-अपने सदनों में प्रक्रिया तथा कार्य संचालन के मामलों में पूरी-पूरी आजादी होनी चाहिए।

इस संबंध में, समिति ने संविधान के अनुच्छेद 121/211 का भी उल्लेख किया जिसके द्वारा उच्चतम न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कर्त्तव्यों के निर्वहन में उसके आचरण के संबंध में संसद/राज्य विधानमंडलों में चर्चा किए जाने पर प्रतिबंध लगाया गया है। समिति महसूस करती है कि यदि पीठासीन अधिकारियों के संबंध में भी इसी प्रकार के उपबंध किए जाएं तो पीठासीन अधिकारियों और उनके अपने-अपने सदनों की स्वतंत्रता और गरिमा की और अधिक सुरक्षा करने में सहायता मिल सकती है। अत: समिति इस संबंध में संविधान में इस आशय का उचित संशोधन करने की सिफारिश करती है।

(3) *विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा दल परिवर्तन रोधी कानून के अंतर्गत दिए गए निर्णय*

दल परिवर्तन रोधी कानून के प्रवर्तन से कई त्रुटियां और कमियां सामने आई हैं। परिणामस्वरूप, इस कानून के अतंर्गत मामलों पर निर्णय करते समय पीठासीन अधिकारियों ने इसके उपबंधों के संबंध में भिन्न-भिन्न निर्वचन दिए हैं। इससे इसके प्रवर्तन के क्षेत्र में काफी अनिश्चितता पैदा हो गई है और यह विधायिका और न्यायपालिका के संबंधों में तनाव का कारण बन गया है। पीठासीन अधिकारियों द्वारा दल परिवर्तन संबंधी मामलों मे निर्णय लेने की शक्ति का प्रयोग करने के परिणामस्वरूप जब सदस्यों को निरर्ह करार दिया गया तो उन्होंने भारत के उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों में मौलिक अधिकारों के हनन का प्रश्न उठाया।

समिति ने इस कानून के अंतर्गत मामलों पर निर्णय लेने की शक्ति को इस सभा के सभापति/अध्यक्ष को शामिल किए बिना किसी न्यायिक निकाय को सौंपने की संभावना पर गहन विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि इस प्रकार की व्यवस्था के स्पष्टत: कई लाभ हो सकते हैं, तथापि इससे नए विवाद पैदा हो सकते हैं।

समिति ने इस मुद्दे की जांच की और यह मत व्यक्त किया कि दल परिवर्तनरोधी कानून के अंतर्गत मामलों का निपटान करते समय निम्नलिखित विकल्पों में से किसी एक विकल्प का अनुपालन किया जा सकता है:—

(क) संबंधित सभापति/अध्यक्ष मामले पर निर्णय करेगा और यदि मामला संसद के किसी सदन से संबंधित हो, तो ऐसे निर्णय के विरुद्ध भारत के उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है अथवा यदि यह मामला राज्य विधान परिषद/सभा से संबंधित हो, तो संबंधित उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। ऐसे मामले में सभापति/अध्यक्ष, जो दल-परिवर्तन रोधी कानून के अंतर्गत मामले पर निर्णय लेते समय एक न्यायिक प्राधिकारी की भूमिका निभाता है, के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह ऐसी कार्यवाहियों में एक पक्ष बने और विधि न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की भांति ऐसे निर्णयों के विरुद्ध भी अपील करने हेतु समुचित कानूनों का प्रारूप तैयार किया जाना चाहिए। उनमें संशोधन किया जाना चाहिए।

(ख) यदि मामला राज्य सभा से संबंधित हो तो संबंधित सभापति/अध्यक्ष मामले पर निर्णय दे सकता है और ऐसे निर्णय के विरुद्ध संयुक्त रूप से भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के समक्ष अपील की जा सकेगी; अथवा यदि यह मामला लोक सभा से संबंधित हो तो भारत के राष्ट्रपति, भारत के उपराष्ट्रपति और लोक सभा अध्यक्ष के समक्ष अपील की जा सकेगी; अथवा यदि यह मामला राज्य की विधान परिषद से संबंधित हो तो उस राज्य के राज्यपाल और विधान परिषद के सभापति के समक्ष अपील की जा सकेगी; अथवा यदि यह मामला राज्य की विधान सभा से संबंधित हो तो उस राज्य के राज्यपाल, विधान परिषद, यदि कोई हो, के सभापति और विधान सभा के अध्यक्ष के समक्ष अपील की जा सकेगी।

(ग) मामले का निर्णय सभा के वरिष्ठ सदस्यों की एक समिति द्वारा किया जा सकता है और इस निर्णय के विरुद्ध सभा के संबंधित सभापति/अध्यक्ष के समक्ष अपील की जा सकती है।

(घ) ऐसी कोई अन्य प्रक्रिया, जिस पर राज्य के तीनों अंग अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सहमत हों।

समिति सिफारिश करती है कि यदि आवश्यक हो, तो ऐसे मामलों हेतु अपनाई जा सकने वाली उचित प्रक्रिया के बारे में निर्णय करने के लिए लोक सभा अध्यक्ष को भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और अन्य किसी प्राधिकारी के साथ चर्चा हेतु प्राधिकृत किया जा सकता है।

(4) *विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा अपने-अपने सचिवालयों के प्रशासन के संबंध में दिए गये निर्णय*

समिति टिप्पणी करती है कि विधानमंडल सचिवालयों के प्रशासनिक मामले अक्सर कर्मचारियों के मौलिक अधिकार से संबद्ध होते हैं जिनके बारे मे भारत के संविधान में गारंटी दी गई है। इसलिए ऐसे कर्मचारियों का यह अधिकार होना चाहिए कि वे संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अधीन अपनी शिकायतों के निवारण के लिए न्यायालयों में जा सकें।

विधानमंडल सचिवालयों के प्रशासन से संबंधित मामलों में पीठासीन अधिकारियों के व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित होने के प्रश्न पर समिति यह तथ्य नोट करती है कि यद्यपि भारत के मुख्य न्यायाधीश और विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों द्वारा उनके अपने-अपने सचिवालयों के संबंध में दिए गए प्रशासनिक निर्णयों को भी विधि न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती है, वे ऐसे मामलों में न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं होते। समिति का यह मत है कि इसी तर्क के आधार पर पीठासीन अधिकारियों को भी ऐसे मामलों में न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने से उन्मुक्ति प्रदान की जानी चाहिए।

समिति ने भारत की सिविल प्रक्रिया संहिता के उन उपबंधों का भी उल्लेख किया जिनमें यह उपबंध है कि केन्द्र/राज्य सरकार के विरुद्ध मुकदमें के मामले में संबंधित सरकार के सचिव को नोटिस दिया जाता है और वह विधि न्यायालय में मामले की पैरवी करता है।

समिति इस बात पर जोर देती है कि ससंदीय लोकतंत्र में पीठासीन अधिकारियों की अनूठी स्थिति, महत्वपूर्ण कृत्य और नाजुक भूमिका को देखते हुए यह आवश्यक है कि उनकी प्रतिष्ठा, गरिमा और स्वतंत्रता की कानून और परिपाटियों, दोनो द्वारा रक्षा की जाए। इस संदर्भ में समिति का यह विचार है कि विधि न्यायालय में किसी पीठासीन अधिकारी की व्यक्तिगत उपस्थिति अनावश्यक है और इससे बचा जाना चाहिए।

इसलिए, समिति यह सिफारिश करती है कि पीठासीन अधिकारियों को उनके विधानमंडल सचिवालयों के प्रशासनिक मामलों से संबंधित मुकदमों में व्यक्तिगत रूप में पक्षकार नहीं

बनाया जाना चाहिए, बल्कि संबंधित विधानमंडल के सचिव के माध्यम से उस विधानमंडल पर मुकदमा दायर किया जा सकता है। इस प्रकार, वह सचिव न्यायालय में तत्संबंधी विधानमंडल का प्रतिनिधित्व कर सकता है और यदि आवश्यक हुआ तो उस मामले में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित भी हो सकता है। समिति सिफारिश करती है कि सिविल प्रक्रिया संहिता में समुचित रूप से ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए जिससे भारत की संसद के दोनों सदनों और राज्य विधानमंडलों के पीठासीन अधिकारियों को उनके सचिवालयों के प्रशासनिक मामलों से संबंधित मुकदमों में विधि न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने से छूट दी जा सके।

पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में स्वीकृत संकल्प

दिसंबर 2005 में, लोक सभा के दस सदस्यों को पैसे लेकर सभा में प्रश्न पूछने के अनुचित व्यवहार के कारण लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित कर दिया गया। निष्कासित सदस्यों की अपील पर संज्ञान लेते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय और माननीय उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ लोक सभा अध्यक्ष और लोक सभा सचिवालय के विरुद्ध नोटिस जारी कर दिए थे। इस घटनाक्रम के आलोक में, माननीय अध्यक्ष ने 20 जनवरी, 2006 को सभी दलों की एक बैठक आयोजित की जिसमें सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि माननीय अध्यक्ष को न तो यह नोटिस स्वीकार करना चाहिए और न ही इसका प्रत्युत्तर देना चाहिए। इस बीच, इस मामले पर विचार करने के लिए 4 फरवरी, 2006 को नई दिल्ली में पीठासीन अधिकारियों की एक आपात बैठक हुई। विचार-विमर्श के पश्चात् सम्मेलन में निम्नलिखित संकल्प स्वीकृत किया गया :

> भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों ने 4 फरवरी, 2006 को नई दिल्ली में आयोजित आपात बैठक, संसद सदस्यों के निष्कासन को विधि न्यायालयों में दी गयी चुनौती के संबंध में शुरू की गयी कार्यवाहियों से उत्पन्न मामलों पर विचार-विमर्श करने के पश्चात्, राज्य सभा के सभापति और लोक सभा अध्यक्ष द्वारा लिए गए इस निर्णय का सर्वसम्मति से अनुमोदन किया है कि दोनों सभाओं से सदस्यों के निष्कासन के मामले पर विधि न्यायालयों द्वारा जारी नोटिस को न तो स्वीकार किया जाएगा और न ही इसका प्रत्युत्तर दिया जाएगा।

भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के तिरूवनंतपुरम में 26 मई, 2007 को आयोजित अपने बहत्तरवें सम्मेलन में ''विधायिका और न्यायपालिका के बीच संबंध'' के बारे में सर्वसम्मति से निम्नलिखित संकल्प स्वीकृत किया गया :

> भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारी 26 मई 2007 को तिरूवनंतपुरम में आयोजित अपने बहत्तरवें सम्मेलन में इस बात पर चिंता व्यक्त करते हैं कि विधायिका के कार्यकरण में हस्तक्षेप की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है जिसके कारण विधायिका और न्यायपालिका के बीच के संबंध में परिहार्य तनाव बढ़ता जा रहा है।

सम्मेलन में यह टिप्पणी की गई है कि हमारे संविधान की योजना के अनुसार राज्य के तीन प्रमुख अंग, अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका बाकी दो के हस्तक्षेप के

बिना अपने-अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं और संविधान में उनकी शक्तियां और कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित हैं; उनके उत्तरदायित्व बंटे हुए हैं; और एक दूसरे के साथ अपने संबंधों को विनियमित करता है।

सम्मेलन में इस तथ्य को दोहराया गया है कि विधायिका की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां एक जिम्मेदार शासन व्यवस्था के संवैधानिक स्तंभ हैं क्योंकि वे यह सुनिश्चित करते हैं कि इस अंग द्वारा निष्पादित सांविधिक कार्यकरण कार्यपालिका अथवा न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप से उन्मुक्त है।

तद्नुसार सम्मेलन ने यह संकल्प किया है कि संविधान में एक दूसरे पर अध्यारोही प्राधिकार वाले किसी उत्कृष्ट अंग पर विचार नहीं किया गया है। विधायिका, जो कि उच्चतम विधायी और प्रतिनिधिमूलक निकाय है और जो देश के करोड़ों लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को आवाज देता है, किसी ऐसे अन्य प्राधिकार, जो कि लोगों के प्रति उत्तरदायी नहीं है, हस्तक्षेप के बिना कार्य करने का हकदार है और राज्य के सभी अंग संविधान द्वारा प्रदत्त कार्यों और अधिकारिता का कठोरता से अनुपालन करें ताकि देश में प्रजातांत्रिक व्यवस्था के सुचारू कार्यकरण को सुनिश्चित किया जा सके।

अध्याय 44

संसद और सिविल सेवा

'सिविल सेवा' शब्दों की कई प्रकार से व्याख्या की गयी है, परन्तु कोई ऐसी सुस्पष्ट परिभाषा नहीं की गयी है, जो सभी परिस्थितियों में लागू हो। सबसे उपयुक्त परिभाषा संभवत: यह है कि सिविल सेवा का अधिकारी किसी सरकारी विभाग अथवा एजेंसी के लिए कार्य करने वाला सिविलियन करियर पब्लिक सेक्टर का कर्मचारी होता है और इस सेवा में सशस्त्र बल सम्मिलित नहीं हैं। इस श्रेणी में आने वाले विशिष्ट वर्ग के कार्मिक अलग-अलग देशों में भिन्न-भिन्न हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम इन शब्दों का प्रयोग भारत में हुआ था और इनका प्रयोग सशस्त्र सेनाओं से इतर सेवाओं के अधिकारियों के लिए किया गया था।[1]

सिविल सेवा में सम्मिलित व्यवसायी, वैज्ञानिक और तकनीकी वर्ग अपेक्षाकृत नये हैं। भारत में 'सिविल सेवा' शब्दों का प्रयोग सरकारी सेवा के प्रशासनिक वर्ग तक सीमित है, यद्यपि, व्यापक अर्थ में इसमें वे लाखों असैनिक कर्मचारी आते हैं, जिन्हें सरकार ने सामान्य या विशेष क्षेत्रों में नियोजित किया हुआ है। तथापि, 'सिविल सेवा' शब्दों का प्रयोग इस अध्याय में उच्च पदों पर आसीन सिविल अधिकारियों के लिए किया गया है, जो मंत्रियों के निकट रहते हैं, और उन्हें परामर्श देते हैं और उनसे अनुदेश लेते हैं तथा प्रशासनिक तंत्र के व्यापक कार्यकरण के लिए उनके प्रति जिम्मेदार हैं। ये सिविल सेवा का संभ्रांत वर्ग है।

संसदीय सरकार, विशेषकर जहां जनता द्वारा मताधिकार का प्रयोग करके सरकार चुनी जाती है, का एक अनिवार्य गुण यह है कि उसमें प्रशासन कला का अच्छा ज्ञान रखने अथवा न रखने वाले व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त किया जा सकता है और इससे उन्हें पर्याप्त प्रशासनिक शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। संभव है कि मंत्री को अपने पद के कार्य की सभी जटिलताओं और बारीकियों का ज्ञान प्राप्त होने से पहले ही उसे किसी और विभाग का मंत्री बना दिया जाये। मंत्री को अपने दायित्व का संतोषजनक ढंग से निर्वहन करने के लिए अपने मंत्रालय के अधिकारियों का सतत सहयोग अपेक्षित होता है। मंत्री को उनके साथ और उनके माध्यम से काम करना होता है।

सिविल सेवा के अधिकारी सरकार के स्थायी अधिकारी हैं और सरकार बदलने के साथ उन्हें अपने पदों से नहीं हटाया जाता; चाहे कोई भी दल सत्तारुढ़ हो, ये अधिकारी काम करते

---

1. 'सिविल सेवा' शब्दों का प्रयोग पहली बार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में अपने असैनिक अथवा 'सिविलियन' कर्मचारियों के लिए किया था, जिससे कि उन्हें सैनिक, समुद्रीय और धार्मिक स्थापनों से अलग बताया जा सके। प्रारम्भ में ये असैनिक कर्मचारी व्यापारी थे। धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कम्पनी के वाणिज्यिक निगम से सरकार बन जाने के साथ इसके 'असैनिक कर्मचारी' प्रशासक बन गये। अत: 'सिविल सेवा' शब्दों का वर्तमान सीमित अर्थ राज्य की प्रशासनिक सेवा की असैनिक शाखाएं हो गया—ई. ब्लण्ट, दी आई.सी.एस., पृ. 1 ।

रहते हैं। मंत्रियों को अधिक दिलचस्पी, नीति संबंधी मामलों में होती है जो ठीक भी है, परन्तु सिविल सेवा के अधिकारियों का दायित्व उन नीतियों का कार्यान्वयन है, यद्यपि नीति निर्धारण में भी उनकी भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं होती। मंत्रियों को परामर्श देने में उन्हें अपने विचार निर्भीकता से प्रकट करने की पूरी स्वतंत्रता होती है। वस्तुतः यह सिविल अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि किसी नीति विशेष की कमियों के बारे में वे मंत्री को परामर्श दें। परन्तु जब मंत्री द्वारा कोई अन्तिम निर्णय ले लिया जाता है तो सिविल अधिकारी को इसे सही अर्थ में कार्यान्वित कराना होता है, चाहे वह निर्णय उसके द्वारा दिए गए परामर्श के विपरीत ही क्यों न हो।

सिविल सेवा की एक अनिवार्य विशेषता है इसका गैर-राजनीतिक चरित्र। सिविल सेवा के अधिकारी से अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष रहे। यद्यपि, उसका अपना व्यक्तिगत राजनीतिक दृष्टिकोण हो सकता है, वह उसे जनता अथवा मीडिया के सामने प्रकट नहीं कर सकता। उसे विश्वसनीय सलाहकार होना चाहिए और उसकी भूमिका निष्कपटता और ईमानदारी से सरकार के नीतिगत निर्णय लेने और उन्हें लागू करने की होती है, भले ही सत्ता में कोई भी हो।

सिविल अधिकारियों में कार्य के प्रति समर्पण की भावना होनी चाहिए। उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में गहरी रुचि लेनी होगी और उस कार्य के पीछे जो राजनीतिक दर्शन है उससे अपने आप को अलग रखना होगा।

मूल रूप में, सिविल सेवा और संसद के बीच सम्बन्ध मंत्री के माध्यम से होता है। सिविल अधिकारियों का संसद सदस्यों के साथ बहुत कम सम्पर्क होता है। जहां तक उन पर संसद के सीधे नियंत्रण का प्रश्न है, ऐसा नहीं हो सकता। यह केवल मंत्री के माध्यम से ही होता है, जो उनके मध्य एक मध्यवर्ती के रूप में कार्य करता है। संसद कार्यपालिका के दिन-प्रतिदिन के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती। परन्तु, सिविल अधिकारियों के प्रत्येक सही अथवा गलत कार्य को औचित्य संसद के समक्ष सिद्ध करना होता है। अतः प्रशासन पर संसद को अपने कार्यकलापों की सही स्थिति से हमेशा अवगत कराने का बहुत बड़ा दायित्व होता है।

सिविल अधिकारी को सलाहकार होने के नाते मंत्री को जानकारी देने में इस बात का ध्यान रखते हुए अत्यन्त सावधानी बरतनी पड़ती है कि संसद सदस्य छोटी-छोटी बातों का भी ध्यान रखते हैं और कि जानकारी प्राप्त करने के उनके अपने स्रोत भी हैं। सिविल अधिकारी को कभी भी संसद को गुमराह नहीं करना चाहिए क्योंकि संसद गलत काम को क्षमा कर सकती है पर जान-बूझकर गलत जानकारी दिए जाने को कभी भी स्वीकार नहीं करेगी। संसद से कोई जानकारी छिपाई नहीं जानी चाहिए और न ही उसमें विलम्ब होना चाहिए। संसद को दी गई जानकारी संगत और सटीक होनी चाहिए; अतिरिक्त या अनावश्यक जानकारी नहीं दी जानी चाहिए।

संसद, जो कि जनता के कल्याण और भलाई से संबंधित है, सभी सिविल अधिकारियों के कल्याण में दिलचस्पी भी लेती है। सिविल अधिकारियों की भर्ती के तरीके तथा उनके

कार्य–काल[2] संबंधी विभिन्न निबंधनों और शर्तों का संसद द्वारा अनुमोदन किया जाना आवश्यक है। यद्यपि, व्यक्तिगत मामले सभा के समक्ष नहीं लाये जाते, तथापि संसद सिविल सेवा की विभिन्न श्रेणियों को प्रभावित करने वाली सामान्य प्रकार की वास्तविक शिकायतों में दिलचस्पी लेती है। ऐसे मामले प्रश्नों, विशिष्ट प्रस्तावों पर चर्चा आदि के माध्यम से उठाये जाते हैं।[3]

संसद, संघ और राज्यों के लिए अखिल भारतीय सेवाओं (जिसमें अखिल भारतीय न्यायिक सेवा भी शामिल है) का गठन कर सकती है[4] और उनकी भर्ती तथा सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकती है।[5]

---

2. अनुच्छेद 309 और 310 ।
3. इसी प्रकार सशस्त्र सेनाओं पर संसद का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं है, परन्तु वह रक्षा मंत्री के माध्यम से उनके कल्याण आदि के संबंध में पूरी जानकारी प्राप्त करती है। संसद सामान्यतया सैनिक कार्यों या सशस्त्र सेनाओं के अनुशासन संबंधी मामलों पर चर्चा नहीं करती, परन्तु सशस्त्र सेनाओं और उनकी सेवा की सामान्य शर्तों से संबंधित नीति विषयक मामलों पर चर्चा करने के लिए संसद ने सदैव पर्याप्त समय दिया है।
4. अनुच्छेद 312 (3)—जिला न्यायाधीश के स्तर से नीचे का कोई पद अखिल भारतीय न्यायिक सेवा में शामिल नहीं किया जाएगा; अनुच्छेद 236 भी *देखें* ।
5. अनुच्छेद 312 । संसद ने अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 अधिनियमित किया है जिसके अन्तर्गत संघ सरकार को यह शक्ति प्राप्त है कि वह राज्यों से परामर्श करने के बाद किसी अखिल भारतीय सेवा में नियुक्त किए गए व्यक्तियों की भर्ती और सेवा के संबंध में नियम बना सकती है। ये नियम संसद के समक्ष रखने होते हैं और संसद उनमें संशोधन कर सकती है। संघ सरकार ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए नियम बनाए हैं।

   जिन अखिल भारतीय सेवाओं का गठन किया गया है उनमें से भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा का, जो संविधान के लागू होने के समय अस्तित्व में थी, संसद द्वारा अनुच्छेद 312 के अन्तर्गत गठन किया गया माना जाता है। राज्य सभा द्वारा स्वीकार किए गए संकल्प के अनुसरण में अखिल भारतीय सेवा (संशोधन) अधिनियम, 1963 पारित किया गया जिसके द्वारा तीन अन्य अखिल भारतीय सेवाओं, अर्थात् भारतीय इंजीनियरी सेवा, भारतीय वन सेवा और भारतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा का गठन किया गया। भारतीय वन सेवा का गठन 1 जुलाई, 1966 को किया गया था। दो और अखिल भारतीय सेवाओं—भारतीय कृषि सेवा और भारतीय शिक्षा सेवा के गठन के लिए राज्य सभा ने 30 मार्च, 1965 को एक संकल्प स्वीकार किया था। चूंकि बहुत से राज्यों ने इन दोनों सेवाओं को न अपनाने का निर्णय लिया इसलिए केंद्र ने आगे कार्यवाही नहीं की।

   सितम्बर, 1946 में विदेशों में भारत का राजनयिक, कांसुलर और वाणिज्यिक प्रतिनिधित्व के लिए भारतीय विदेश सेवा (भा.वि.से) की स्थापना की गई थी। वर्ष 1948 में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित संयुक्त सिविल सेवा परीक्षा के अंतर्गत भा.वि.से. के अधिकारियों के पहले समूह की भर्ती की गई थी। इसके अतिरिक्त, संविधान (बयालीसवां संशोधन)

संसद विधि द्वारा संघ सरकार के कर्मचारियों और राज्य सरकारों के कर्मचारियों, भारत सरकार के नियंत्रणाधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण अथवा सरकार के स्वामित्वाधीन या उसके नियंत्रणाधीन किसी निगम के कर्मचारियों की भर्ती और सेवा की शर्तो से सम्बद्ध विवादों का निपटारा करने के लिए प्रशासनिक अधिकरण स्थापित कर सकती है। संघ, एक या दो अथवा दो से अधिक राज्यों के लिए पृथक्-पृथक् अधिकरण बनाए जा सकते हैं। ऐसे अधिकरणों के क्षेत्राधिकार और शक्तियों को ऐसी संसदीय विधि द्वारा परिभाषित भी किया जा सकता है।[6]

सिविल सेवा के अधिकारियों की तुलना में मंत्रियों की भूमिका

समय-समय पर इस संबंध में सुझाव दिए जाते रहे हैं कि लोकतन्त्रात्मक सरकार में मंत्रियों की, विशेष रूप से सिविल सेवा के अधिकारियों के साथ उनके संबंधों के संदर्भ में, क्या भूमिका होनी चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मंत्री तथा उसके मंत्रालय के बीच समुचित संबंध बनाये रखने के लिए कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

> मंत्रियों की दो अलग-अलग भूमिकाएं हैं। एक भूमिका में तो वे मंत्रिमंडल के सदस्य होने के नाते सरकार की सामान्य नीति निर्धारण में भाग लेते हैं। इस प्रयोजन हेतु उनके जीवन के सामान्य अनुभव, उनके दल सम्बन्धी कार्यकलाप और संसद में उनकी सदस्यता के अतिरिक्त वे जो योगदान दे सकते हैं, वह मंत्रालयों विशेष के प्रमुख के रूप में उनकी दूसरी भूमिका से ही उद्भूत होना चाहिए। इसका कारण यह है कि उन्हें कार्यक्रमों पर वास्तव में विचार करने और विकसित करने का अवसर प्राप्त होता है और कि उन्हें अपने मंत्रालयों के भीतर विभिन्न प्रशासनिक समस्याओं की जानकारी होती है।

अधिनियम, 1976 के द्वारा खंड (3) और (4) के साथ अखिल भारतीय न्यायिक सेवा शुरू की गई।

अखिल भारतीय सेवाओं के अतिरिक्त, संघ सरकार के अधीन विभिन्न प्रकार और ग्रेडों की कई केन्द्रीय सेवाएं विद्यमान हैं।

6. अनुच्छेद 323 क । प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में संघ सरकार को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राज्य प्रशासनिक अधिकरण स्थापित करने की शक्ति दी गई है। ये अधिकरण क्रमश: संघ सरकार के कर्मचारियों तथा सम्बद्ध राज्य सरकार के कर्मचारियों की सेवा संबंधी मामलों से सम्बद्ध विवादों और शिकायतों को निपटाते हैं।

जिस केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की सरकारी कर्मचारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय दिलाने के लिए 1 नवम्बर, 1985 को स्थापना की गई थी, उसने 6 और न्यायपीठों की स्थापना के साथ जून, 1986 में पूर्ण रूप से काम करना आरम्भ कर दिया है। इस समय अधिकरण की कुल 21 अर्थात् नई दिल्ली, अहमदाबाद, इलाहाबाद, बेंगलुरू, लखनऊ, मुम्बई, कोलकाता, चंडीगढ़, कटक, एर्णाकुलम, गुवाहाटी, हैदराबाद, जबलपुर, जोधपुर, जयपुर, चेन्नै, पटना नागपुर, ग्वालियर, इंदौर और रांची न्यायपीठें हैं।

सबसे योग्य मंत्री वही होता है, जो उस कार्यान्वयन एजेन्सी, जिसका वह प्रमुख है, के कार्यों की सराहना करता है, उसका सही उपयोग करता है, उसका विकास करता है और सामान्य रूप से उसका मार्गदर्शन करता है। किसी संगठन का अच्छा प्रमुख अपने समय का अधिकांश भाग अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की दशा सुधारने, उन्हे अनुचित तथा अज्ञात आलोचना से बचाने की ओर देता है और इस प्रकार उनको भरसक प्रयत्न करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

यदि मंत्री कई निर्णय स्वयं लेने का प्रयास करता है तो उनमें से अनेक निर्णय अविवेकपूर्ण हो सकते हैं और इस प्रकार वह अपने विभाग में तुरन्त उपलब्ध सहायता और प्रतिभा से वंचित रह सकता है। उसे चाहिए कि वह स्वयं को अपेक्षाकृत सामान्य निर्णयों तक सीमित रखे और ऐसे कुछ विशेष मामलों में ही निर्णय ले, जिन्हें निचले स्तरों पर संतोषजनक ढंग से नहीं लिया जा सकता हो। सामान्यत: एक सफल मंत्री वही होता है, जो शक्ति का समुचित प्रत्यायोजन करता है और उन व्यवस्थित प्रक्रियाओं के संबंध में सामान्य पथप्रदर्शन करता है, जिनके माध्यम से उसके निचले स्तरों पर निर्णय किए जाते हैं। सच तो यह है कि उसकी मूल जिम्मेदारी उस व्यवस्था के प्रति है, जिसके माध्यम से निर्णय किए जाते हैं और कार्मिकों को उनकी योग्यताओं के अनुसार इस प्रकार काम पर लगाने की है, जिससे कि उनकी योग्यता का अधिक उचित ढंग से उपयोग किया जा सके।[7]

मंत्रीय-दायित्व का सिद्धान्त

प्रत्येक सरकारी विभाग का प्रमुख मंत्री होता है और उस विभाग पर संसद मंत्री के माध्यम से नियंत्रण रखती है। व्यवहारिक दृष्टि से मंत्रालय का अपना स्वायत्त अस्तित्व होता है और यह अपना कार्य सांविधिक उपबन्धों, नियमों और विनियमों या लम्बे समय से चली आ रही प्रथा के अनुसार चलाता है। मंत्रालय पर संसद का नियंत्रण इस बात में है कि मंत्रालय के किसी भी कार्य पर कोई सदस्य आपत्ति कर सकता है और उस मंत्रालय के प्रशासन के लिए जिम्मेदार मंत्री को अपने अधिकारियों के कार्यों के बारे में सफाई देनी होती है। चूंकि, यह एक सुस्थापित संवैधानिक सिद्धान्त है कि अपने मंत्रालय के सभी कार्यों के लिए मंत्री ही संसद के प्रति जिम्मेदार है और यदि संसद किसी प्रशासनिक कार्यवाही का निरनुमोदन करती है तो मंत्री को ही सारा दोष अपने सिर लेना होता है। तथापि, ऐसा मामला भी हो सकता है, जहां किसी सिविल अधिकारी ने जानबूझ कर या बिना सोचे समझे अपने मंत्री की नीति से अलग या नीति के विरुद्ध कोई कार्य किया हो। ऐसा करने पर वह मंत्री को उसे संरक्षण देने की जिम्मेदारी से मुक्त कर देता है। किन्तु मंत्री का संसद के प्रति संवैधानिक दायित्व बना रहता है और उसे संसद को संतुष्ट करना पड़ता है कि वह मामले पर उचित कार्यवाही कर रहा है।

---

7. पाल एच. एपिलबी, "कन्सर्निंग मिनिस्टर्स"—इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, अप्रैल-जून, 1955, खण्ड 1, संख्या 2, पृ. 89-91 ।

संसद यह नहीं कहती कि किस सिविल अधिकारी को दंड दिया जाये और उसे किस प्रकार दंड दिया जाये। यह काम सरकार के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, यद्यपि संसद अपनी भावनाएं व्यक्त कर सकती है। यह कार्य भी सरकार पर छोड़ दिया जाता है कि वह यह फैसला करे कि जिस सिविल अधिकारी के किसी ऐसे कार्य के लिए संसद ने आलोचना या निरनुमोदन किया है उसे दंड दिया जाए या नहीं।[8]

मंत्री का यह कर्त्तव्य है कि वह अनुचित या अन्यायपूर्ण आलोचना के लिए अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की, चाहे वे कितने ही निचले स्तर के क्यों न हों, बचाव करे, विशेष रूप में ऐसी स्थिति में जब सिविल अधिकारी व्यक्तिगत रूप से आलोचना का उत्तर नहीं दे सकता। ऐसा कार्य करके मंत्री सिविल अधिकारियों में यह विश्वास उत्पन्न करता है कि उनके साथ उचित व्यवहार किया जायेगा और उन्हें समुचित संरक्षण प्राप्त होगा। इसी कारण लोक सभा में बार-बार इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है कि जो व्यक्ति अपनी सफाई पेश करने की स्थिति में नहीं है, उस पर आक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। सरकारी विभागों के अधि कारियों और दूसरे व्यक्तियों के संबंध में भी इसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। इस संबंध में अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की:[9]

> मैंने अनेक बार कहा है कि यह बात गलत और अनुचित है कि इस सभा का कोई सदस्य उन व्यक्तियों के नामों का उल्लेख करे, जो सभा में उपस्थित नहीं हैं और इस कारण उन्हें यह अवसर प्राप्त नहीं है कि वे या तो सभा में तथ्यों पर प्रकाश डालें या उन पर लगाये गए आरोपों का उत्तर दें। किसी भी प्रकार की पायी गयी अथवा संभावित त्रुटि के लिए सदस्य नाम लिये बिना मंत्री की आलोचना कर सकता है। सभा के प्रति उत्तरदायी तो मंत्री है और उसके अधीनस्थ अधिकारियों को सभा की चर्चा के दायरे में नहीं लाया जाना चाहिए।
>
> इस प्रश्न के संबंध में भी एक नियम है।[10] कई बार चर्चा के दौरान गरमागर्मी में आरोप लगा दिये जाते हैं। मैं सदस्यों से अपील करना चाहता हूं कि वे किसी का नाम न लें। जो इस बात का उल्लंघन करेगा वह अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित नहीं कर सकेगा.....।

---

8. सरकार की अपनी आन्तरिक प्रक्रियाएं हैं, जिनके माध्यम से अनुशासनहीन या गलती करने वाले सिविल अधिकारियों को समुचित दंड दिया जाता है। निर्णय करते समय सरकार अलग-अलग अधिकारियों के संबंध में सभा में की गयी आलोचना का ध्यान रखती है, परन्तु यह फैसला करना पूर्णरूपेण सरकार के विवेकाधिकार में है कि किसी अधिकारी को दंड दिया जाए या नहीं, और यदि दंड दिया जाए तो वह कैसा होना चाहिए। तथापि, संसद को यह अधिकार है कि उसे ऐसे मामलों की सूचना दी जाए और वह दंड न दिए जाने अथवा अपर्याप्त दंड दिये जाने पर टिप्पणी कर सकती है। इस प्रकार की टिप्पणियां सामान्यत: अलग-अलग सदस्यों द्वारा की जाती हैं लेकिन सभा के सामने कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं होता और न ही ऐसे मामले का निर्धारण करने के लिए मतदान होता है।
9. *एच.पी. डिबेट्स,* (II), 8.4.1954, कॉ. 4361-62 ।
10. नियम 353 ।

> सरकार की नीति की आलोचना करते समय, सदस्य को अधिकार है कि वह अपनी राय प्रकट करे और ऐसे आरोप लगाए जिनके संबंध में वह समझता है कि इनका समुचित आधार है। किसी अधिकारी विशेष के नाम का उल्लेख करना तथा उस पर आरोप लगाना गलत है। ऐसा नहीं किया जाना चाहिए।

एक सदस्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि किसी मंत्री की आलोचना करते समय क्या सदस्य यह भी नहीं कह सकेगा कि मंत्री ने ऐसे व्यक्ति को इसलिए नियुक्त किया क्योंकि वह उसका संबंधी था और इस प्रकार वह उस व्यक्ति के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगा रहा है। अपितु मंत्री के विरुद्ध आरोप लगा रहा है, अध्यक्ष ने कहा:

> यदि कोई सदस्य ऐसा कोई आरोप लगाना चाहे, तो उसे पहले अध्यक्ष के पास आना चाहिए। तथ्यों के संबंध में अध्यक्ष को संतुष्ट करने के बाद ही ऐसे आरोप लगाये जा सकते हैं। मैं केवल सम्बन्ध के आधार पर ऐसे आरोपों की अनुमति नहीं दे सकता और न इस आक्षेप की अनुमति दे सकता हूं कि केवल संबंध मात्र से यह विश्वास करने का कोई कारण हो जाता है कि भाई-भतीजावाद बरता गया है। इस सभा के सभी सदस्यों को मिलकर इस बात का प्रयास करना चाहिए कि इस प्रकार नाम लेकर प्रशासन की प्रतिष्ठा नहीं गिराई जानी चाहिए और वाद-विवाद का स्तर नीचे नहीं गिरने दिया जाना चाहिए। मैं केवल यही कहना चाहता हूं।[11]

तथापि ऐसे मामले हो सकते हैं जहां प्रशासन की कुछ त्रुटियों की दोष-सिद्धि के लिए किसी अधिकारी विशेष के कदाचार का उल्लेख करना आवश्यक हो। ऐसे मामले में यह प्रक्रिया बनायी गयी है कि यदि सदस्य के पास व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर या विश्वसनीय प्रमाण के आधार पर यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है कि किसी अधिकारी ने अपने सरकारी कर्त्तव्यों के निर्वहन में अवचार किया है, तो यह आवश्यक है कि उस मामले को सभा में उठाने से पहले वह सम्बद्ध मंत्री को सूचना दे दे, जिससे कि मंत्री रिकॉर्ड मंगवा सके और यह देख सके कि जब वह मामला उठाया जायेगा, तो उसका क्या उत्तर दिया जाना चाहिए। हो सकता है कि उसके पास आरोपों का खण्डन करने के लिए सामग्री हो या उसे यह विश्वास हो कि आरोपों का समुचित आधार है जिसके लिए वह जांच के आदेश दे सकता है या विभागीय कार्यवाही कर सकता है। इस प्रक्रिया से इस मामले को उठाने वाले सदस्य का अपेक्षित उद्देश्य पूरा हो जाता है और इसके साथ ही उन अधिकारियों के हितों की रक्षा भी हो जाती है, जो सभा में अपनी सफाई पेश करने की स्थिति में नहीं हैं।

जब सभा में कुछ अधिकारियों के विरुद्ध गंभीर आरोप लगाये गए, तो उपाध्यक्ष ने यह टिप्पणी कि:

> इन मामलों के संबंध में, मैं प्रत्येक माननीय सदस्य से यह आशा करता हूं कि ऐसे आरोप लगाने से पहले माननीय मंत्री जी को उनकी सूचना दी जानी चाहिए, जो सामान्य बातों के संबंध में नहीं बल्कि व्यक्तियों के विरुद्ध आरोपों के संबंध में या उस तरीके के संबंध में भी हो जिस पर अधिकारियों ने आचरण किया हो। मैं सदैव यह आशा करता हूं

---

11. *एच.पी. डिबेट्स,* (II), 8.4.1954, कॉ. 4363 ।

कि ऐसी बातों के संबंध में मंत्रियों को पूर्व सूचना दी जानी चाहिए, जिससे कि वे यह पता लगा सकें कि वह जानकारी ठीक है या गलत और सभा की कार्यवाही के वृत्तान्त में ऐसी जानकारी न आये जो अतिशयोक्तिपूर्ण हो या गलत हो।

उसी दिन बाद में, जब उपाध्यक्ष से इस संबंध में विनिर्णय देने के लिए कहा गया कि क्या अधिकारियों के नाम लेकर उन पर आक्षेप करना उचित है, तो उपाध्यक्ष ने इस संबंध में यह टिप्पणी की कि क्योंकि सदस्य मंत्री पर आक्षेप कर सकता है, अतः यह न तो उचित है और न ही न्यायपूर्ण है और न ही इस सभा की गरिमा के अनुकूल है कि अधिकारियों को अलग-थलग कर उनकी आलोचना की जाये, उनके नाम का उल्लेख किया जाए और उनके विरुद्ध सभी प्रकार के निराधार आरोप लगाये जाएं। उपाध्यक्ष ने अपनी पहले कही गयी बात फिर दोहरायी।[12]

सिविल अधिकारियों को जो सक्रिय भूमिका अदा करनी पड़ती है, उसके बावजूद उन्हें प्रचार और लोक प्रसिद्धि से बचना चाहिए। एक सुस्थापित परिपाटी के अनुसार मंत्री सभा में किसी अधिकारी की प्रशंसा नहीं करते और न ही उसकी निन्दा करते हैं। यदि कोई मंत्री किसी अच्छे या बुरे काम के लिए किसी अधिकारी के नाम का उल्लेख करता है तो सभा को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह उस अधिकारी के संबंध में अपनी राय प्रकट करे।

संसद की तुलना में सिविल सेवा के कृत्य

एक लोकतांत्रिक और कल्याणकारी राज्य में सिविल सेवा के सदस्य राजनीतिज्ञों के साथ मिलकर कार्य करते हैं। परदे के पीछे रहते हुए वे नीतियां बनाते हैं, योजनाएं और स्कीमें तैयार करते हैं और उन्हें कार्यान्वित करते हैं, कानून बनाते हैं और संसद में उठाये गए मुद्दों पर विचार करते हैं। लोक सभा अध्यक्ष के आसन के ठीक पीछे दायीं ओर अधिकारी दीर्घा है, जो अक्सर सिविल सेवा के अधिकारियों से भरी रहती है। यद्यपि वे स्वयं सभा के कार्य में भाग नहीं लेते हैं तथापि वे मंत्रियों को उनके कर्त्तव्यों के निर्वहन में सहायता करते हैं। मंत्री समय-समय पर किसी सदस्य द्वारा पूछे गए किसी विशेष प्रश्न पर जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने स्थान पर खड़ा होता है अथवा अपने उप-मंत्री को विषय विशेष के संबंध में कुछ तथ्य प्राप्त करने के लिए भेजता है। जानकारी और परामर्श के सुलभ साधन के रूप में कार्य करते हुए, सिविल सेवा के अधिकारी सभा को प्रश्नों का उत्तर देने हेतु सरकार को सक्षम बनाने के लिए आवश्यक तथ्य और जानकारी उपलब्ध कराते हैं। संसद सत्र के दौरान सिविल सेवा के शीर्ष अधिकारियों के कार्यकलाप अधिकांशतः सामयिक संसदीय कार्यों से ही सम्बद्ध होते हैं। सिविल सेवा के अधिकारी विधेयक तैयार करने, सभा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर तैयार करने, सदस्यों द्वारा मंत्रियों को भेजे गए अनौपचारिक पत्रों के उत्तर तैयार करने, वाद-विवाद के दौरान मंत्रियों के उपयोग हेतु टिप्पण तैयार करने और मंत्रियों के सभा में भाषणों के लिए सामग्री जुटाने, आदि जैसे अधिकांश संसदीय कार्यों में व्यस्त रहते हैं।

---

12. *सं.वा.वि.*, 30.3.1953, पृ. 2496-97 ।

सिविल अधिकारी का कार्य मंत्री को सही परामर्श देना है। परामर्श को मानना या न मानना मंत्री पर निर्भर करता है। परामर्श को स्वीकार कर लिए जाने पर यह मंत्री का निर्णय बन जाता है। सिविल अधिकारी का दायित्व केवल निर्णय के कार्यान्वयन का है।

सिविल सेवा बजट तैयार करने और धनराशि को विधि तथा नियमों के अनुसार व्यय करने के लिए उत्तरदायी है। प्रशासन द्वारा तैयार वार्षिक लेखाओं की सम्पूर्ण जांच नियन्त्रक-महालेखापरीक्षक करता है। वह इन लेखाओं के सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार करता है जिसमें न केवल त्रुटिपूर्ण बजट प्रणाली और वित्तीय अनियमितताओं का उल्लेख होता है, अपितु धन के निरर्थक व्यय के संबंध में भी टिप्पणी की होती है। अन्ततोगत्वा, संसद और इसकी समितियां इस बात की संतुष्टि हेतु इन लेखाओं की जांच करती हैं, कि धनराशियां अपेक्षित प्रयोजनों के लिए ही खर्च की गयी हैं, और प्रशासन ने उन्हें मितव्ययिता तथा विवेकपूर्ण ढंग से खर्च किया है।

सिविल सेवा के शीर्ष अधिकारी संसदीय समितियों, जैसे प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति, विभागों से संबद्ध स्थायी समितियां आदि के समक्ष उन सभी मामलों में उपस्थित होते हैं, जिनके संबंध में समितियों द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाते हैं। उन्हें अपने मंत्रालयों, विभागों और सरकारी उपक्रमों के कार्यकरण और कार्यनिष्पादन, धन के अनुकूल और कुशल उपयोग और लेखाओं में पाई जाने वाली अनियमितताओं, यदि कोई हों, के कारणों तथा भविष्य में ऐसी अनियमितताओं को रोकने के लिए किए गए उपायों और सरकारी सेवाओं, बैंकों, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों आदि में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व के बारे में स्पष्टीकरण देने हेतु बुलाया जाता है। सिविल सेवा के शीर्ष अधिकारी[13] संसद सदस्यों के निकट सम्पर्क में आते हैं और समितियों में ही उनकी अग्नि-परीक्षा होती है। सरकारी विभागों अथवा सरकारी उपक्रमों के अधिकारी भी संसदीय समितियों के तत्स्थानिक अध्ययन दौरों के अवसर पर संसद सदस्यों के सम्पर्क में आते हैं। इन दौरों के समय अनौपचारिक विचार-विमर्श ही होता है तथा सरकारी साक्ष्य नहीं लिया जाता है।

प्रत्येक विभाग में, विभाग का प्रशासनिक प्रमुख, धन का अभिरक्षक होता है। प्रशासनिक प्रमुख, मंत्रालय में भारत सरकार का सचिव या अधीनस्थ अथवा सम्बद्ध कार्यालयों के अन्य नामित अधिकारी समस्त धन के अभिरक्षक होते हैं। अत: उसी के हस्ताक्षर के अधीन सभी लेखाओं का संकलन होता है, धन व्यय किया जाता है तथा नीतियों का कार्यान्वयन होता है। इसलिए, नीतियों के कार्यान्वयन के लिए वही उत्तरदायी होता है। यदि कुछ गलत होता है

13. निदेश 59 और 60 मंत्रालयों के सचिव अथवा विभागों या उपक्रमों के प्रमुख बुलाये जाने पर, समितियों के समक्ष उपस्थित हों। यदि वे समिति की बैठकों मे उपस्थित होने में असमर्थ हों, तो उन्हें समिति को अपनी असमर्थता के कारण उदाहरणार्थ बीमारी, अपरिहार्य सरकारी कार्य इत्यादि, जिनसे समिति संतुष्ट हो, बताने होते हैं तथा उन्हें अपने स्थान पर अन्य वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त करने हेतु समिति के सभापति की पूर्वानुमति लेनी होती है।

तो उसे ही स्पष्ट करना होता है कि ऐसा क्यों हुआ इसलिए संसदीय समिति के समक्ष अधिकारी, सचिव और उनके सहायक उपस्थित होते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि कोई अनियमितता क्यों हुई और किसी नीति विशेष को क्यों अपनाया जाये या क्यों न अपनाया जाए।

नियमानुसार लोक सभा की विभिन्न समितियां अपने प्रतिवेदन में अधिकारियों के नामों का उल्लेख नहीं करती हैं। जब कभी आवश्यकता होती है तो ऐसे अधिकारियों का उल्लेख उनके पद नाम से किया जाता है और समितियां सम्बद्ध मंत्रालय से सिफारिश करती हैं कि उनके विरुद्ध समुचित कार्यवाही की जाए। व्यक्तिगत नियुक्तियों, पदोन्नतियों या तबादलों आदि से समितियों का कोई संबंध नही होता है और कुछ विरले मामलों को छोड़कर, वे दोषी अधिकारियों के नाम भी नहीं मांगती हैं। समितियां उनके विरुद्ध स्वयं जांच नहीं करती हैं और इस संबंध में कोई निर्णय भी नहीं लेती हैं कि दोषी अधिकारी को क्या दंड दिया जाए। समितियां दोषी अधिकारियों के प्रति व्यक्ति निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाती हैं क्योंकि समितियों का संबंध व्यक्तियों से नहीं अपितु शासन प्रणाली से होता है।

कार्य की अधिकता और संसद के विधि-निर्माण करने वाली एक गैर-तकनीकी संस्था होने के कारण, इसे मुख्य उद्देश्यों तथा नीतियों तक ही सीमित रहना पड़ता है। सिविल सेवा को इस निर्धारित ढांचे में रहते हुए ही ब्यौरा तैयार करना होता है। संसदीय लोकतंत्र और "कल्याणकारी राज्य" की संकल्पना की अनिवार्यताओं के अधीन संसद को अधिकांश संविधियों में निर्दिष्ट विषयों के संबंध में नियम और विनियम बनाने हेतु सिविल सेवा को शक्ति प्रदत्त करने के लिए विशेष उपबन्ध करने होते हैं।

नियम बनाने की इस शक्ति के प्रत्यायोजन के कारण सिविल सेवा परोक्ष रूप से अधीनस्थ विधान संबंधी समिति के माध्यम से संसद के सम्पर्क में आती है। इस समिति के कार्यकरण पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है।[14] नियम, विनियम और आदेश आदि तैयार करने वाले सिविल सेवा अधिकारी यह जानते हैं उन्हें इस समिति के सामने उनका औचित्य भी सिद्ध करना पड़ेगा और यह बात संसद द्वारा संवीक्षा के अतिरिक्त उन पर एक नियंत्रण का काम करती है जो सिविल सेवा के अधिकारियों को उनकी सांविधिक शक्तियों के दुरुपयोग से रोकती है।

सिविल सेवा के अधिकारियों को याचिका समिति के समक्ष बुलाकर यह स्पष्टीकरण देने हेतु कहा जाता है कि लोगों की शिकायतें दूर क्यों नहीं की गईं और समिति उनको यह निदेश भी दे सकती है कि वे उन शिकायतों की जांच करें और इस बारे में समिति को संतोषजनक उत्तर दें। इसी प्रकार, सिविल सेवा अधिकारियों को संसद की किसी समिति द्वारा बुलाए जाने पर उसके समक्ष उपस्थित होना पड़ता है अथवा दस्तावेज और पत्र प्रस्तुत करने हेतु कहे जाने पर उन्हें ये प्रस्तुत करने होते हैं।

---

14. *देखिए पीछे* अध्याय 30—संसदीय समितियां।

संसद सदस्य और सिविल सेवा के अधिकारी

संसद सदस्यों और सिविल सेवा के अधिकारियों के बीच संबंध आमतौर पर कुछ मान्य सिद्धान्तों और वर्षो के दौरान विकसित परम्पराओं द्वारा नियमित होते हैं। सिविल सेवा के अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वे जन प्रतिनिधियों के साथ शिष्टाचार और सम्मानपूर्वक व्यवहार करें और महत्वपूर्ण कार्यों के निर्वहन में उनकी यथासंभव सहायता करें। तथापि, यदि अधिकारी सदस्यों के अनुरोध या सुझावों को मानने में असमर्थ हैं तो वे अपनी इस असमर्थता के कारणों को बहुत विनम्रतापूर्वक उन्हें बताते हैं।[15]

सिविल अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे संसद सदस्यों के साथ सरकारी काम-काज के दौरान समय-समय पर निर्धारित नयाचार प्रतिमानों का अनुपालन करें। यह सुनिश्चित करने के लिये कि ऐसे प्रतिमानों का उल्लंघन न हो और सभी सरकारी अधिकारी लोक सभा के सदस्यों के साथ सरकारी काम-काज में यथोचित शालीनता दर्शाएं, 2 अगस्त, 2012 को लोक सभा सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों द्वारा नयाचार प्रतिमान का उल्लंघन और अवमानपूर्ण व्यवहार संबंधी समिति का गठन किया गया था। समिति का अधिदेश अध्यक्ष द्वारा निम्न विषयों से संबंधित भेजी गई प्रत्येक शिकायत की जाँच करना है– (एक) संसद सदस्यों के साथ सरकारी काम-काज के संबंध में समय-समय पर निर्धारित नयाचार प्रतिमानों का उल्लंघन; (दो) संसद सदस्य और प्रशासन के बीच सरकारी काम-काज के संबंध में सरकार द्वारा जारी निर्देशों अथवा मार्ग-निर्देशों का उल्लंघन; और (तीन) सरकारी काम-काज के दौरान सदस्य के साथ सरकारी कर्मचारी का अशिष्ट व्यवहार।[16]

सामान्यत: सदस्यों और सिविल सेवा के अधिकारियों के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता है। तथापि, रोजमर्रा के सभी मामलों में सदस्यों को यह परामर्श दिया जाता है कि अपने पत्र सदैव ही मंत्रालय के सचिव को सम्बोधित करें, चाहे वांछित जानकारी मंत्रालय से संबंधित हो अथवा उसके अधीनस्थ या सम्बद्ध कार्यालय से संबंधित हो। किसी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में यदि सदस्य यह महसूस करता हो कि उस पर उच्च स्तर पर विचार होना चाहिए, तो सदस्य उस पत्र को सीधे मंत्री या उप-मंत्री को सम्बोधित कर सकता है। यदि कोई सदस्य धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी, कुशासन, आदि जो उसकी जानकारी में आये हैं, के बारे में तथ्यों की जानकारी चाहता है, तो वह सम्बद्ध मंत्री को सीधे पत्र लिख सकता है और उसकी प्रति संसदीय कार्य मंत्री को भेज सकता है अथवा मंत्री के साथ व्यक्तिगत रूप से उस मामले पर बात कर सकता है।[17]

सदस्यों से प्राप्त होने वाले पत्रों को मंत्रालयों में उच्च प्राथमिकता दी जाती है। जिन पत्रों का तुरन्त उत्तर नहीं दिया जा सकता अर्थात् जिन पत्रों का उपलब्ध जानकारी के आधार पर

---

15. लो.स.वा.वि., 26.4.1968, अता प्र. सं 8667, पृ.83।
16. लो.स. बुलटिन सं॰ 4274, 2.8.2012
17. सदस्यों की निर्देशिका, *उद्धृत कृति*, पैरा 45 (तीन) ।

उत्तर नहीं दिया जा सकता, उनका अन्तरिम उत्तर भेज दिया जाता है। सामान्यतः, पत्रों के सभी उत्तर संबंधित सचिव या संयुक्त सचिव के अनुमोदन से भेजे जाते हैं।[18]

सिविल सेवा के अधिकारी और मताधिकार

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सिविल सेवा के किसी अधिकारी के अपने राजनीतिक विचार हो सकते हैं किन्तु वह किसी राजनीतिक ग्रुप अथवा दल से सम्बद्ध नहीं हो सकता है। सिविल सेवा का ऐसा कोई भी अधिकारी किसी राजनीतिक दल या किसी ऐसे संगठन का सदस्य नहीं हो सकता या अन्यथा उससे संबंध नहीं रख सकता, जो राजनीति में भाग लेता हो और न ही वह किसी राजनीतिक आन्दोलन या कार्यकलाप में भाग ले सकता है या उसकी सहायता के लिए चन्दा दे सकता है या किसी अन्य तरीके से उसकी सहायता कर सकता है।[19] सिविल सेवा का कोई भी अधिकारी किसी विधानमंडल अथवा स्थानीय प्राधिकरण के किसी निर्वाचन में प्रचार नहीं कर सकता है, न ही उसमें अन्यथा हस्तक्षेप कर सकता है, न उसके संबंध में अपने प्रभाव का प्रयोग कर सकता है और न ही उसमें भाग ले सकता है।[20] यदि ऐसा कोई अधिकारी चुनाव लड़ना चाहता है तो उसे इस दशा में कोई भी कदम उठाने से पहले पद-त्याग करना पड़ेगा। यद्यपि, सिविल सेवा के अधिकारियों को पूर्ण मताधिकार प्राप्त है, तथापि इस अधिकार का प्रयोग इस ढंग से किया जाए जिससे यह पता न चले कि वह किस प्रकार मत देना चाहता है या उसने किस प्रकार मत दिया है।[21]

---

18. *लो.स.वा.वि.*, 25.2.1970, अता. प्र.सं. 519, पृ. 95-96 ।
19. केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1964, नियम 5 (1) ।

    न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि सरकारी कर्मचारी, जहां नियमों में इस प्रकार की व्यवस्था हो, गैर-सरकारी संगठनों के लिए भी धनराशि एकत्र नहीं कर सकते हैं और न ही उनके लिए टिकट आदि बेच सकते हैं—*सेतुमाधव राव* बनाम *दक्षिण अरकाट के कलक्टर*, ए. आई.आर., 1955, मद्रास 468 ।
20. केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1964, नियम 5 (4) ।
21. *पूर्वोक्त*, नियम 5 (4) का परन्तुक (1) ।

    तथापि न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि सरकारी कर्मचारी को चुनाव में किसी उम्मीदवार का नाम-निर्देशन करने या उसका अनुमोदन करने का अधिकार है। विधि की नीति यह है कि सरकारी कर्मचारियों को राजनीति से अलग रखा जाये और उन्हें उन लोगों से बचाया जाये, जो प्रभावशाली हैं या अधिकार तथा शक्ति का प्रयोग करने की स्थिति में हैं और इसका अभिप्राय किसी उम्मीदवार के चुनाव जीतने में सरकारी तंत्र के प्रयोग को रोकना भी है परन्तु साथ ही विधि की नीति यह भी नहीं है कि कर्मचारियों को उनके मत देने के अधिकार से वंचित किया जाए और देश के सामान्य नागरिकों के रूप में उनके अधिकारों को छीना जाये—*राजकृष्णा* बनाम *विनोद*, ए.आई.आर., 1954 एस.सी. 202 ।

आज सिविल सेवा लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन गयी है। संसद, मंत्रियों और सिविल सेवा को मिलकर अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होती है। इनमें से कोई भी एक दूसरे की सहायता के बिना स्वतंत्र रूप से कुशलता से कार्य नहीं कर सकता, विशेष रूप से ऐसी परिस्थितियों में जब सरकार के कार्य उसकी गतिविधियां/कार्यस्थिति एवं जनकल्याण कानून–व्यवस्था बनाये रखने से कहीं अधिक होती है और उनमें ऐसी प्रत्येक बात शामिल है, जिसका प्रभाव जनता की परिस्थितियों में सुधार और जनकल्याण में वृद्धि करना है।

न्यायालय ने यह निर्णय भी दिया है कि सरकारी कर्मचारी को पोलिंग एजेंट के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। तथापि, यदि उम्मीदवार अथवा उसके एजेंट अपने चुनाव जीतने की संभावना को बढ़ाने हेतु किसी सरकारी कर्मचारी को पोलिंग एजेंट के रूप में नियुक्त करने संबंधी अपने अधिकार का दुरुपयोग करता है तो इसे भ्रष्ट आचरण माना जायेगा—*सत्य देव बुसहारी* बनाम *पदमदेव* (1955), 1. एस.सी.आर., 549 ।

अध्याय 45

संसद और प्रेस

संसदीय लोकतंत्र में प्रेस (मीडिया) की भूमिका संसद और जनता के बीच प्रमुख संपर्क-सूत्र की है। सूचना के प्रचार-प्रसार में इसकी महती भूमिका है। वस्तुतः प्रेस ही वह माध्यम है जो संसद के काम-काज को समय की मांग के अनुरूप बनाने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करती है। प्रेस ही जनता को संसद में हुए काम-काज, संसदीय विधान और चर्चा का सार की जानकारी देते हुए संसद की छवि तैयार करती है। संसद में क्या हो रहा है इस बारे में भी प्रेस जनता को अवगत कराती है। प्रेस की इस उल्लेखनीय भूमिका को देखते हुए उसे अक्सर लोकतांत्रिक शासन का 'चौथा स्तंभ' कहा जाता है। प्रेस और संसद लोकहित में कार्य करती है अतः लोकतंत्र के सफल व उसके सुचारू कार्यकरण हेतु दोनों ही महत्वपूर्ण हैं।

जनता की राय के व्यापक प्रसार का मुख्य माध्यम प्रेस ही है। प्रेस के माध्यम से ही संसद जानकारी एकत्रित करती है, जिससे उसे प्रभावी ढंग से कार्यपालिका के काम पर नजर रखने और उसका संसद के प्रति उत्तरदायित्व प्रभावी ढंग से सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है। बहुधा प्रेस को संसद का विस्तार माना जाता है। प्रेस ही शासन की त्रुटियों, उसमें हुए गोलमाल और उसकी खामियों को उजागर करने का भरसक प्रयत्न करती है, लोगों की शिकायतों तथा कठिनाइयों को अभिव्यक्त करती है तथा इस संबंध में रिपोर्ट करती है कि नीतियों को किस प्रकार क्रियान्वित किया जा रहा है और प्रशासन किस प्रकार लोगों को प्रभावित कर रहा है।

संसद के प्रश्नों, प्रस्तावों तथा वाद-विवाद के लिए अधिकतर आवश्यक सामग्री दैनिक समाचार पत्रों से प्राप्त होती है और प्रेस ही वह महत्वपूर्ण साधन है, जिस पर सदस्य बहुधा निर्भर करते हैं। यद्यपि समाचार पत्रों में जो कुछ छपता है, उसका प्रभाव सदस्यों पर पड़ता है और उन्हें उससे समुचित जानकारी मिलती है, परन्तु वह सामग्री तथ्यों का प्रमाणिक अभिलेख नहीं है और संसद का कोई सदस्य केवल उसी बात पर निर्भर नहीं कर सकता जोकि समाचार पत्रों में छपी हो। अतः कई अध्यक्षों ने यह विनिर्णय दिया है कि प्रश्न, प्रस्ताव और सूचनाएं, जो केवल समाचार पत्रों के समाचारों पर आधारित हों गृहीत न की जाएं। सदस्यों से कोई और प्राथमिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कहा जा सकता है जिस पर उनकी सूचना आधारित है।

इस बात का सर्वोपरि सार्वजनिक और राष्ट्रीय महत्व है कि संसद की कार्यवाही उन लोगों तक पहुंच जाये जो यह जानने में दिलचस्पी रखते हों कि संसद में क्या हो रहा है, क्योंकि संसद में जो कुछ कहा और किया जाता है, उस पर सारे समाज का कल्याण निर्भर है।[1] प्रेस प्रभावी

---

1. वासन वाल्टर, एल.आर. 4 क्यू.बी. 73 ।

ढंग से इस काम को तभी कर सकती है जब उसे वह स्वतंत्रता प्राप्त हो जिसे 'प्रेस की स्वतंत्रता' कहा जाता है।[2]

प्रेस की स्वतंत्रता

'प्रेस की स्वतंत्रता' की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि यह किसी लोक प्राधिकारी के हस्तक्षेप के बिना अपनी स्वतंत्र राय रखने, छपे हुए रूप में जानकारी प्राप्त करने तथा दूसरों को जानकारी देने की स्वतंत्रता है।[3] परन्तु स्वतंत्रता के साथ कुछ जिम्मेदारियां भी आती हैं और यह स्वतंत्रता किसी भी लोकतंत्र और किसी संगठित मानव समाज में निर्बाध रूप से नहीं होती।[4] प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में "अन्य सभी बातों की तरह, और अन्य सब बातों से अधिक, स्वतंत्रता के साथ कुछ जिम्मेदारियां या दायित्व और अनुशासन भी आते हैं और, यदि वे जिम्मेदारियां या दायित्व और अनुशासन न हो, तो यह स्वतंत्रता नहीं है, यह स्वतंत्रता का अभाव है, चाहे वह स्वतंत्रता किसी व्यक्ति की हो या किसी समूह की, किसी समाचार पत्र की या किसी और की"।[5]

प्रेस की स्वतंत्रता के संबंध में संविधान में स्पष्ट रूप से कोई उपबंध नहीं किया गया है, परन्तु संविधान के अंतर्गत नागरिकों को "वाक् स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति की जो स्वतंत्रता" दी गई है, उसमें प्रेस की स्वतंत्रता भी निहित है।[6] इसके अलावा न्यायिक निर्णयों द्वारा यह तय किया गया है कि वाक् स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता शामिल

---

2. जे. पातंजलि शास्त्री के शब्दों में "...सभी लोकतंत्रात्मक संगठनों का आधार वाक् स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता है, क्योंकि अबाध रूप से राजनैतिक चर्चा के बिना जनता को शिक्षित करना संभव नहीं, जो लोकप्रिय सरकार की प्रक्रियाओं के कार्यकरण को उचित ढंग से चलाने के लिए आवश्यक है"—

   रमेश थापर बनाम, मद्रास राज्य (1950) एस.सी.आर, 594 (602) । बैनट कोलमैन एण्ड कम्पनी के मामले में दिए गए निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा: "प्रेस की स्वतंत्रता लोकतंत्र के प्रति वचनबद्धता का आधार है क्योंकि इसकी संस्थाओं के कार्यकरण के लिए जन-आलोचना अनिवार्य है...." ए.आई.आर. 1973, एस.सी. 160(150) ।
3. *प्रेस आयोग का* प्रतिवेदन, 1954 भाग 1, पृ. 358 ।
4. ब्लैकस्टोन के शब्दों में "प्रेस की स्वतंत्रता इस बात में निहित है कि प्रकाशन पर पहले से कोई प्रतिबंध न हो और इसमें निहित नहीं है कि जब आपराधिक मामला प्रकाशित हो, तो उसके लिए समाचार पत्र की आलोचना न की जाए"—ब्लैकस्टोन कमेन्ट्रीज, खण्ड(v), पृ. 151-52 ।
5. पी. डिबेट्स, 16.5.1951, कॉ. 8823-24 ।
6. अनुच्छेद 19 (1) (क) ।

   अनुच्छेद 19 (1) (क) में प्रेस की स्वतंत्रता का उल्लेख इस वजह से नहीं किया गया क्योंकि ऐसा करना आवश्यक नहीं समझा गया। संविधान सभा में डा.बी.आर. अम्बेडकर ने इस बात को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया था "....प्रेस को ऐसे कोई विशेष अधिकार नहीं

है।[7] संविधान के अतंर्गत प्रेस की स्वतंत्रता किसी साधारण नागरिक की स्वतंत्रता से अधिक नहीं है और इस पर भारत की प्रभुसत्ता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार अथवा सदाचार अथवा न्यायालय की अवमानता, मानहानि अथवा किसी अपराध के लिए उकसाना आदि के हित में कानून द्वारा तर्कसंगत प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।[8] "वाक् स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" में न केवल अपने विचारों का प्रचार करने की स्वतंत्रता शामिल है, बल्कि ऐसे मामले छापने का अधिकार भी शामिल है, जो किसी अन्य व्यक्ति से लिए गए हों या उस व्यक्ति के निदेशानुसार छापे गए[9] और इसमें प्रकाशन तथा परिचालन की स्वतंत्रता भी शामिल है।[10]

संसदीय विशेषाधिकार और प्रेस

प्रेस के संदर्भ में संसद के विशेषाधिकार का प्रश्न मुख्यत: दो स्थितियों में उत्पन्न होता है— संसद की कार्यवाही के प्रकाशन से और संसद के किसी सदन, उसकी समितियों, समितियों के सदस्यों या अधिकारियों पर आक्षेप करने वाली टिप्पणियों से।[11]

संविधान में संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही के प्रकाशन से संबंधित सभी व्यक्तियों को किसी भी न्यायालय की कार्यवाही से पूर्णरूपेण उन्मुक्ति दी गई है, बशर्ते कि यह प्रकाशन संसद द्वारा या उसके अधिकार के अतंर्गत किया गया हो।[12] यह उन्मुक्ति समाचार पत्रों में संसदीय कार्यवाही के समाचार छापने पर लागू नहीं होती, चाहे उनका प्रकाशन सभा के किसी सदस्य द्वारा किया गया हो या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, जब तक कि ऐसे प्रकाशन का अधिकार संसद के किसी सदन द्वारा स्पष्ट रूप से न दिया गया हो।[13] परंतु समाचार-पत्रों में

होते हैं जो किसी नागरिक को निजत: न दिये जा सकें या जिनका वह प्रयोग न कर सकें। प्रेस संपादक या प्रबंधक, सब आखिरकार नागरिक ही हैं और जब वे समाचार-पत्रों में कुछ लिखना चाहते हैं तो केवल अपने अभिव्यक्ति-अधिकार का ही प्रयोग करते हैं, इसलिए मेरे विचार से प्रेस की स्वतंत्रता के विशेष उल्लेख की कोई जरूरत नहीं है।"—*सी.ए. डिबेट्स,* खण्ड vii, पृ. 780 । *साथ ही देखिए रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य* (1950), एस.सी.आर. 594(597) ।

7. बृज भूषण *बनाम* दिल्ली राज्य (1950) एस.सी.आर. 605; सकल पेपर्स लि. बनाम भारत संघ (1962).

   3 एस.सी.आर. 842; बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी *बनाम* भारत संघ (1973), 2 एस.सी.आर. 757 ।
8. अनुच्छेद 19 (2) ।
9. एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ तथा अन्य (1959), एस.सी.आर. 12 ।
10. रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य (1950), एस.सी.आर. 594 (597) ।
11. *देखिए* सुभाष सी. कश्यप, पार्लियामेंटरी प्रिवलेजिज, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1988 ।
12. अनुच्छेद 105(2); साथ ही *देखिए*, नियम 379 ।
13. *डॉ. सुरेश चन्द्र बनर्जी* तथा *अन्य बनाम पुनीत ग्वाला ए.आई.आर.* (38) 1951, कलकत्ता 176; साथ ही *देखिए, डॉ. जतीशचन्द्र घोष* बनाम *हरिसाधन मुखर्जी,* ए.आई.आर. 1956, कलकत्ता 433 ।

संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही के सारतः सही विवरण प्रकाशन या बेतार प्रेषण प्रणाली के माध्यम से प्रसारण को विधि द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है, बशर्ते कि ऐसी रिपोर्ट सार्वजनिक हित में हो और किसी विद्वेष भाव से प्रेरित न हो।[14] यह संरक्षण इस सर्वोपरि सीमा के अतंर्गत दिया गया है कि सभा को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपने वाद-विवाद या कार्यवाही के प्रकाशन पर नियंत्रण कर सकती है और यदि आवश्यक हो तो उनका प्रकाशन रोक सकती है और अपने आदेश का उल्लंघन करने पर दंड दे सकती है।[15] सामान्यतया सभा की कार्यवाही के समाचार देने पर कोई निर्बंधन नहीं लगाये जाते, परंतु जब सभा या उसकी समितियों के वाद-विवाद या कार्यवाही का समाचार दुर्भावना से दिया जाता है या जानबूझकर कुछ बातें गलत ढ़ंग से प्रकाशित की जाती हैं, या कुछ सदस्यों के भाषणों को जानबूझकर छिपाया जाता है तो यह सभा के विशेषाधिकार का हनन तथा अवमानना है और इसके लिए दोषी को दंड दिया जा सकता है।[16] इसके अतिरिक्त किसी संसदीय समिति की कार्यवाही या उसके सामने दिए गए साक्ष्य या पेश किए गए दस्तावेज को समाचार पत्रों द्वारा तब तक प्रकाशित करने की मनाही है, जब तक ऐसी कार्यवाही या साक्ष्य या दस्तावेजों को सभा में पेश न कर दिया गया हो।[17] समाचार पत्रों के लिए यह भी आवश्यक है कि सभा की किसी गुप्त बैठक की कार्यवाही या निर्णयों को तब तक प्रकट न करें, जब तक संसद गोपनीयता

---

14. यह संरक्षण आरम्भ में 1956 में संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1956 के अंतर्गत दिया गया था। उक्त अधिनियम को संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) निरसन अधिनियम, 1976 द्वारा निरस्त किया गया था। तथापि, संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1977 के अधिनियमन द्वारा अप्रैल, 1977 में प्रेस को संरक्षण पुनः बहाल किया गया। बाद में यह उपबंध, भारत के संविधान में अनुच्छेद 361क को अन्तःस्थापित करके जोड़ा गया था।

15. *एम.एस.एम. शर्मा* बनाम *श्री कृष्ण सिन्हा,* ए.आई.आर. 1959, एस.सी. 395-422 । साथ ही *देखिए लो.स.वा. वि.*, 21.12.1959, कॉ. 6264-66; 9.2.1960, पृ. 64 ।

16. साथ ही *देखिए* अध्याय 11-सदनों, उनकी समितियों और सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ।

17. सुन्दरैया का मामला, प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—पहली लोक सभा), पृ. 2-3; नियम 275 और निदेश 55; साथ ही *देखिए हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड* का मामला, 7वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति-दूसरी लोक सभा), *एल.ए. डिबेट्स,* 6.3.1940, पृ. 979; 12.3.1940, पृ. 1183-84; सं.वा.वि. (II) 27.3.1950, पृ. 2848-49 ।

    संसदीय प्रथा, व्यवहार और परिपाटी के अनुसार किसी भी व्यक्ति के लिए यह अनुचित है कि सभा के कार्य से संबंधित विभिन्न मामलों का समय से पहले समाचार पत्रों में प्रचार करे। यद्यपि यह तकनीकी दृष्टि से विशेषाधिकार हनन या सभा की अवमानना नहीं है। अधिक जानकारी के लिए *देखिए,* अध्याय 11—'सदनों, उनकी समितियों और सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां'।

का प्रतिबंध नहीं हटा लेती। इस प्रकार का कोई भी प्रकाशन या प्रकटीकरण संसद के विशेषाधिकार का गम्भीर हनन माना जाता है।[18] इसी प्रकार वाद-विवाद के उन अंशों का प्रकाशन भी विशेषाधिकार का हनन और संसद की अवमानना है, जिन्हें अध्यक्ष के आदेश से सभा की कार्यवाही-वृतांत से निकाल दिया गया हो और तद्नुसार यह दंडनीय है।[19]

प्रेस को इस बात की भी सावधानी बरतनी पड़ती है कि ऐसे अपमानजनक लेख न छापें या प्रकाशित न करें, जिनमें सभा या उसकी समितियों के आचरण या कार्यवाही पर अथवा किसी सदस्य का संसद सदस्य के रूप में उसके चरित्र और आचरण पर आक्षेप किया गया हो, क्योंकि ऐसे प्रकाशन सभा के विशेषाधिकार हनन और अवमानना माने जाएंगे।[20]

परन्तु यह बात सभा की गरिमा के अनुरूप नहीं मानी जाती कि प्रत्येक मानहानिकारक लेख के प्रकाशन के मामले में, जो सभा का विशेषाधिकार भंग या अवमानना हो, गंभीर नोटिस लिया जाए या कार्यवाही की जाए। ऐसे अपमानजनक लेखों के मामलों का निर्णय करने के संबंध में अपमानजनक वक्तव्य के प्रकाशन के विस्तार तथा परिस्थिति और ऐसे वक्तव्य देने वाले व्यक्ति की प्रतिष्ठा को भी ध्यान में रखा जाता है।[21]

यद्यपि प्रेस की यह जिम्मेदारी है कि वे कार्यवाही-वृतांत से निकाले गए अंशों का ध्यान रखें और उन अंशों को जिन्हें कार्यवाही-वृतांत से निकालने/शामिल न करने के आदेश दिए गए हैं, प्रकाशित न करें, फिर भी विशेष सावधानी के तौर पर समाचार पत्रों को कार्यवाही-वृतांत से निकाले गए अंशों के संबंध में जानकारी दे दी जाती है और उनसे कहा जाता है कि वे सचिवालय से पता लगा लें कि कौन से अंश कार्यवाही से निकाले गए हैं या कार्यवाही-वृत्तांत में शामिल नहीं किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, प्रेस को सदस्यों की पहचान करने[22] और कार्यवाही का अधिकृत अभिलेख देखकर अपनी शंकाओं का समाधान करने[23] की पूरी सुविधाएं दी जाती हैं।

---

18. नियम 251 और 252; साथ ही *देखिए आब्जर्वर का मामला*, एच.सी. 94 (1940-41) पृ. IV।
19. नियम 380, 381 और 313-15 के साथ पठित अनुच्छेद 105 (3) और 118 (1); साथ ही *देखिए* अध्याय 11—सदनों, उनकी समितियों और सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां।
20. अधिक जानकारी के लिए *देखिए* अध्याय 11—सदनों, उनकी समितियों और सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां।

    ब्लिट्स के मामले के लिए *देखिए* 13वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—दूसरी लोक सभा); लो.स.वा.वि., 18.8.1961, पृ. 1639-41; 19.8.1961, पृ. 1769-79; 21.8. 1961, पृ. 1953; और 29.8.1961, 2778-79 ।
21. 9वां प्रतिवेदन (विशेषाधिकार समिति—दूसरी लोक सभा) श्री एम.ओ. मथाई का पत्र ।
22. संसद सदस्यों की पहचान के लिए पुस्तक 'सदस्य परिचय' में से संबंधित सदस्यों का जीवन-वृत्त प्रेस द्वारा मांग किए जाने पर उपलब्ध कराया जाता है। इसके अलावा, सदस्यों का जीवन-परिचय संसद की आधिकारिक वेबसाइट www.parliamentofindia.nic.in या www.loksabha.nic.in पर भी उपलब्ध है।
23. सभा की कार्यवाही से निकाले जाने वाले/शामिल न किए जाने वाले अंशों के संबंध में एक सूचना सूचना-बोर्ड पर लगा दी जाती है। इस आशय की सूचना की प्रतियां तीनों प्रेस कक्षों को उपलब्ध करा दी जाती है—कि मीडिया उसे प्रकाशित न करे।

प्रेस को जो अन्य सुविधाएं दी जाती हैं, उनका वर्णन संक्षेप में निम्न पैराग्राफों में किया गया है:

प्रेस दीर्घा सुविधाएं

लोक सभा को प्रत्यायित समाचार पत्रों/समाचार एजेंसियों/गैर-सरकारी भारतीय इलेक्ट्रोनिक मीडिया के प्रेस संवाददाताओं को प्रेस दीर्घा में अध्यक्ष के विवेकानुसार प्रवेश की अनुमति दी जाती है।[24] तथापि, अध्यक्ष अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए प्रेस के उन वरिष्ठ संवाददाताओं, जिनके पास प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र होते हैं, में से प्रतिवर्ष उसके द्वारा नियुक्त की जाने वाली प्रेस सलाहकार समिति की सिफारिशों[25] को ध्यान में रखता है । ये प्रवेश-पत्र महासचिव द्वारा एक वर्ष[26] के लिए अध्यक्ष के सामान्य आदेशानुसार जारी किए जाते हैं।

प्रेस सलाहकार समिति निम्नलिखित कृत्य निष्पादित करती है:—

(1) दीर्घा से सभा की कार्यवाही अथवा किसी अन्य संसदीय समारोह या गतिविधि को देखने तथा उसे सूचित करने की इच्छा रखने वाले समाचारपत्र/समाचार-एजेंसी/मीडिया प्रतिनिधियों को अस्थायी प्रवेश-पत्र जारी करने की सिफारिश करना।

---

24. प्रेस दीर्घा आपातकालीन अवधि (1975-77) के दौरान हुए सत्रों में भी सामान्य रूप से प्रेस के लिए खुली थी। संवाददाताओं को अध्यक्ष के आदेशानुसार प्रेस दीर्घा में आने की अनुमति दी जाती थी। अध्यक्ष ने स्वविवेकानुसार उन कतिपय प्रेस संवाददाताओं को प्रेस दीर्घा सुविधा प्रदान की थी, जिनके परिचय पत्रों का सरकार द्वारा नवीकरण भी नहीं किया गया था। प्रेस संवाददाताओं को सभा की कार्यवाही को शब्दश: नोट करने की भी अनुमति थी। सरकार द्वारा देश में लगाई गई प्रेस सैंसरशिप संसदीय कार्यवाही पर लागू नहीं थी और सरकार के सैंसर कार्यालय को संसद भवन में कार्य करने की अनुमति नहीं थी।

25. सात सदस्यों वाली प्रेस सलाहकार समिति का गठन सन् 1929 में किया गया था। 1933 में इसका नाम बदलकर प्रेस दीर्घा समिति कर दिया गया और सदस्य-संख्या भी बढ़ाकर नौ कर दी गई तथा यह 1993-94 तक इसी नाम से जानी जाती रही। 1970-71 में सदस्यों की संख्या नौ से बढ़ाकर दस और फिर 1974-75 में बारह कर दी गई। तथापि, वर्ष 1993-94 के लिए समिति का गठन करते समय अध्यक्ष ने इसका नाम प्रेस दीर्घा समिति से पुन: बदलकर प्रेस सलाहकार समिति कर दिया और सदस्यों की संख्या भी बारह से बढ़ाकर इक्कीस कर दी। 2004 में पुन: सदस्य-संख्या को बढ़ाकर सत्ताईस किया गया ताकि देश भर के प्रतिनिधियों को इसमें स्थान मिल सके। अध्यक्ष समिति में 27 सदस्यों को नामित करता है जिसमें चार पदाधिकारी अर्थात् सभापति, उप-सभापति, सचिव और संयुक्त सचिव होते हैं। तथापि, यह संख्या अध्यक्ष के विवेकानुसार बदली जा सकती है। समिति के सदस्य मनोनीत करते समय यह सुनिश्चित किया जाता है कि प्रेस दीर्घा हेतु प्रत्यायित देश के सभी भागों के प्रतिनिधियों, विभिन्न भाषाई समाचारपत्रों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के संवाददाताओं को उसमें स्थान मिले। यह भी ध्यान में रखा जाता है कि नामित किए जा रहे सदस्यों को संसद और/या राज्य विधानमंडलों/विदेशी संसदों की कार्यवाही रिपोर्ट करने का पर्याप्त अनुभव हो।

26. लोक सभा प्रेस दीर्घा हेतु प्रत्यायित संवाददाताओं को वर्ष 2004 से एक वर्ष की अवधि के लिए रेडियो आवृत्ति (आर.एफ.) टैग जारी किए जा रहे हैं। सितंबर 2008 तक, 385 मीडियाकर्मियों को लोक सभा प्रेस दीर्घा प्रवेश-पत्र जारी किए गए जो एक वर्ष तक वैध हैं।

(2) सभा की कार्यवाही को रिपोर्ट करने की इच्छा रखने वाले समाचार पत्र/समाचार -एजेंसी/मीडिया प्रतिनिधियों को स्थायी प्रवेश-पत्र जारी करने की सिफारिश करना।

(3) समाचारपत्र/समाचार-एजेंसी/मीडिया प्रतिनिधियों के खिलाफ की गई शिकायतों की जाँच करके उपयुक्त कार्रवाई हेतु लोक सभा अध्यक्ष को सिफारिश करना।

(4) लोक सभा अध्यक्ष को यह सिफारिश करना कि प्रेस कर्मियों को अपने दायित्व-निर्वहन हेतु किस प्रकार की सुविधाएं दी जाएँ।

(5) उनके कृत्यों से संबंधित अन्य कार्य करना।

लोक सभा की प्रेस दीर्घा में 100 संवाददाताओं के बैठने की सुविधा है और इन सीटों पर साथ-साथ भाषांतरण व्यवस्था उपलब्ध है। इन 100 सीटों के अलावा प्रेस दीर्घा में 25 अतिरिक्त कुर्सियों की सुविधा है। पहली दो पंक्तियों में 57 सीटें हैं जिनमें लिखने के छोटे डैस्क और साथ-साथ भाषांतरण व्यवस्था से जुड़े हेडफोन उपलब्ध हैं जो प्रेस सलाहकार समिति से परामर्श के बाद विशिष्ट समाचारपत्रों और समाचार एजेंसियों को दिए जाते हैं। शेष 68 सीटों पर कोई कहीं भी बैठ सकता है। प्रेस दीर्घा में बड़ी स्क्रीन वाले चार टेलीविजन सेट भी लगाए गए हैं। प्रेस दीर्घा में मीडियाकर्मियों के लिए परामर्श हेतु पर्याप्त संख्या में संसदीय पत्र जैसे प्रश्न सूची, बुलेटिन और कार्यवाही-वृत्तांत का सारांश रखे जाते हैं।

सभा की कार्यवाही को गलत ढंग से पेश करने, प्रश्नों तथा उत्तरों को समय से पहले प्रकाशित करने या किसी ऐसे विषय के प्रकाशन करने को, जो जनता के लिए न हो, प्रेस दीर्घा कार्ड वापस लेने का समुचित आधार माना जा सकता है।[27]

संसदीय पत्रों का दिया जाना

संसदीय पत्र जैसे कार्य-सूची, प्रश्नों की सूचियां, बुलेटिन, सभा में पुरःस्थापित किये गये विधेयकों की प्रतियां और संसदीय समितियों की रिपोर्टों और मंत्रियों द्वारा सभा में दिये गए वक्तव्यों की प्रतियां उन संवाददाताओं को दी जाती हैं जो लोक सभा की कार्यवाही का ब्यौरा लिखते हैं। सभा पटल पर प्रस्तुत अन्य पत्रों यानि वार्षिक रिपोर्टों/समझौता ज्ञापन की प्रतियां फोटोकॉपी कराकर मीडिया के लोगों को उनकी मांग करने पर दे दी जाती हैं।

प्रेस कक्ष सुविधाएं

तीन कमरे, जिनमें पर्याप्त मेज-कुर्सी हैं, समाचार एजेंसियों और प्रमुख समाचारपत्रों और सरकारी इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के संवाददाताओं तथा उनके सहायकों के लिए रखे गये हैं, जिनमें बैठकर वे अपना काम कर सकते हैं और अपने समाचार तैयार कर सकते हैं।

प्रेस पुस्तकालय और संदर्भ सुविधाएं

प्रेस एवं जन-संपर्क स्कन्ध में एक छोटा प्रेस पुस्तकालय है जिसमें वे पुस्तकें हैं,

---

27. प्रेस संवाददताओं से प्रेस दीर्घा सुविधाएं वापस लिए जाने के कारणों के सदर्भ में *देखिए* अध्याय 33—लोक सभा में अजनबियों का प्रवेश।

जिनका प्रेस संवाददाता सामान्य तौर पर प्रयोग करते हैं। विभिन्न सत्रों के वाद-विवाद, संसदीय समितियों की रिपोर्टों, सभा पटल पर पुरःस्थापित किये गए विधेयक और रखे गए पत्रों आदि का एक-एक सेट प्रेस पुस्तकालय में प्रेस संवाददाताओं के प्रयोग के लिए रखा जाता है।

जिन मीडियाकर्मियों को लोक सभा और राज्य सभा प्रेस दीर्घा कार्ड प्राप्त हैं, उन्हें अपने कार्य के लिए सन्दर्भ हेतु संसद ग्रन्थालय का प्रयोग करने की भी अनुमति है। संवाददाताओं द्वारा मांग किए जाने पर उन्हें पुस्तकों/दस्तावेजों के अध्यायों/अंशों की निशुल्क फोटोकॉपी उपलब्ध कराई जाती है।

केन्द्रीय कक्ष और लॉबी सुविधाएं

जिन संवाददाताओं को संसद तथा राज्य विधानमंडलों/विदेशी संसदों की कार्यवाही के समाचार देने का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव हो, उन्हें कतिपय शर्तों पर अपने-अपने समाचारपत्रों/एजेंसियों की ओर से केन्द्रीय हॉल में प्रवेश की अनुमति दी जाती है।

प्रतिष्ठित तथा सत्यनिष्ठ[28] पत्रकारों को, जिनके पास लोक सभा के प्रेस दीर्घा कार्ड होते थे, अध्यक्ष के विवेक पर, सदन की लॉबी में जाने की अनुमति दी जाती है। तथापि, प्रेस संवाददाताओं को सभा की लॉबी के लिए नए पास जारी करना मई, 1970 से बंद कर दिया गया था। सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति द्वारा 12 अगस्त, 1986 को अपनी बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार प्रेस संवाददाताओं को दिए जाने वाले लॉबी पासों की संख्या 12 तक सीमित कर दी गई है। तथापि, किसी संवाददाता की मृत्यु पर या उसके द्वारा अपना व्यवसाय छोड़े जाने पर उसकी रिक्ति को किसी अन्य उपयुक्त संवाददाता द्वारा भरा जा सकता है।

जिस संवाददाता के पास लॉबी पास हो, वह लॉबी और केन्द्रीय कक्ष में भी जाकर सदस्यों से संपर्क कर सकता है। जबकि केन्द्रीय कक्ष के पास धारकों को केवल केन्द्रीय कक्ष में ही सदस्यों से सम्पर्क करने की सुविधा प्राप्त है।

संसदीय ज्ञानपीठ स्थित मीडिया वर्क-स्टेशन

लोक सभा प्रेस दीर्घा के लिए प्रत्यायित मीडियाकर्मियों के उपयोगार्थ संसदीय ज्ञानपीठ में एक मीडिया वर्क-स्टेशन बनाया गया है जिसमें दस कंप्यूटरों और दो प्रिंटरों सहित टेलीफोन व टेलीविजन की सुविधा उपलब्ध है।

प्रेस विज्ञप्तियों का जारी किया जाना

सभा में प्रस्तुत किए गए संसदीय समितियों के प्रतिवेदनों के संबंध में संवाददाताओं को अपने समाचार तैयार करने में सहायता देने के लिए सामान्यतया इन प्रतिवेदनों के संबंध में सचिवालय द्वारा प्रेस विज्ञप्तियां जारी की जाती हैं। इनमें उन प्रतिवेदनों में की गई सिफारिशों

---

28. इस संदर्भ में 'प्रतिष्ठित' से अभिप्राय है कि संसद की कार्यवाहियों का ब्यौरा लिखे जाने का कम से कम 20 वर्ष का अनुभव और 'सत्यनिष्ठा' से अभिप्राय है वे व्यक्ति जिन पर विश्वास किया जा सके, जिनमें प्रचार करने की दुष्प्रवृत्ति न हो और जो विभिन्न स्रोतों से समाचार प्राप्त करने में अपनी विचार-दृष्टि और विवेक का प्रयोग करते हों।

या समिति के विचारों के संबंध में उल्लेखनीय बातों पर प्रकाश डाला जाता है। संसदीय सम्मेलनों, विचार गोष्ठियों, संसदीय कार्यक्रमों इत्यादि के बारे में मुद्रित प्रतियों व स्कैन किए गए छायाचित्रों सहित फैक्स, डाक और ई-मेल के जरिए इसी प्रकार प्रेस विज्ञप्तियां जारी की जाती हैं।

सरकार के प्रचार संगठनों को सुविधाएं

प्रेस दीर्घा की सुविधाएं भारत सरकार के चार विभागों-आकाशवाणी, दूरदर्शन, प्रेस सूचना ब्यूरो और विदेशी प्रचार प्रभाग को दी गई हैं।

आकाशवाणी का समाचार सेवा प्रभाग, समाचार एजेंसी के रूप में काम करता है और उसे प्रभावी ढंग से कार्य करने में सहायता देने के लिए प्रेस दीर्घा में तीन स्थान दिए गए हैं। इन तीनों स्थानों के लिए बारी-बारी से आने के लिए लगभग 15 प्रेस दीर्घा कार्ड जारी किए जाते हैं। उसके दो वरिष्ठ प्रतिनिधियों को केन्द्रीय हाल की सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं। दिल्ली दूरदर्शन को, जो एक समाचार एजेंसी के रूप में भी कार्य करता है, प्रेस दीर्घा में एक स्थान दिया गया है, जिसके लिए बारी-बारी से आने के लिए छह प्रेस दीर्घा कार्ड जारी किए जाते हैं। इसके दो वरिष्ठ प्रतिनिधियों को केन्द्रीय हाल की सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं।

प्रेस सूचना ब्यूरो के अधिकारी भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों से सम्बद्ध हैं और उनको सभा की कार्यवाही के प्रचार के लिए वैसे ही कार्य करना पड़ता है, जैसे संवाददाताओं को। इस ब्यूरो को प्रेस दीर्घा में एक स्थान दिया गया है। इस एक स्थान के लिए लगभग 39 सूचना अधिकारियों को बारी-बारी से प्रेस दीर्घा कार्ड जारी किए जाते हैं। प्रेस सूचना ब्यूरो के महानिदेशक (मीडिया और संचार) को भी केन्द्रीय कक्ष में जाने की सुविधा उपलब्ध है। उसी प्रकार विदेशी प्रचार प्रभाग को प्रेस दीर्घा में एक स्थान दिया गया है और इसके सूचना और प्रचार अधिकारियों को बारी-बारी से आने के लिए चार प्रेस दीर्घा कार्ड दिये गये हैं।

प्रेस फोटोग्राफरों को सुविधाएं

भारत सरकार के प्रेस सूचना ब्यूरो के लिए प्रत्यायित प्रेस फोटोग्राफरों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कैमरामैनों को संसद में आने के लिए फोटोग्राफर पास दिए जाते हैं। वे सचिवालय द्वारा संसद भवन/संसदीय सौध/संसदीय ज्ञानपीठ में आयोजित समारोहों/बैठकों में फोटो/टी.वी. चित्र खींचते हैं।[29] फोटो प्रभाग के उन फोटोग्राफरों, प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कैमरामैनों को फोटोग्राफर पास जारी किए जाते हैं जिन्हें संसद परिसर के अन्दर कुछ चुनिन्दा स्थानों की फिल्म बनाने की अनुमति दी जाती है बशर्ते इन फिल्मों को वाणिज्यिक प्रयोग के लिए नहीं बल्कि शैक्षिक प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाए।

तथापि, प्रेस सूचना ब्यूरो के लिए प्रत्यापित फोटोग्राफरों को अपने प्रेस सूचना ब्यूरो के प्रत्यायन पास दिखाने पर संसद भवन के द्वार सं. 1 और 4 तथा संसदीय सौध के वी.आई.पी. द्वार से प्रतिष्ठित व्यक्तियों और संसद सदस्यों के चित्र खींचने की अनुमति दी जाती है।

---

29. सरकारी फोटोग्राफरों और सरकारी न्यूजरील एवं टी.वी. कैमरामैनों को सत्रावधि के लिए सीमित संख्या में फोटोग्राफर पास जारी किए जाते हैं क्योंकि उन्हें सरकारी कार्यों के लिए अक्सर संसद भवन आना पड़ता है।

सम्मेलनों के दौरान उपलब्ध सुविधाएँ

भारत की संसद द्वारा नई दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संसदीय सम्मेलनों, विचार-गोष्ठियों, संगोष्ठियों इत्यादि के दौरान कार्यक्रम-स्थल पर ही मीडिया केंद्र स्थापित किए जाते हैं जहां प्रत्यापित मीडियाकर्मियों को इंटरनेट कनेक्शन सहित कम्प्यूटर, टेलीफोन, फैक्स व फोटोकॉपी जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं ताकि वे समाचार तैयार करके प्रसारित कर सकें।

टेलीप्रिंटर सेवा

सदस्यों को विशेषकर संसद के सत्रों के दौरान देश व विदेश में हो रही अद्यतन घटनाओं की जानकारी प्रदान करने की दृष्टि से संसद भवन में हिन्दी और अंग्रेजी भाषा के टेलीप्रिंटर स्थापित किए गए हैं जिनमें राष्ट्रीय समाचार एजेंसियों द्वारा समाचार प्रेषित किए जाते हैं। इसी प्रकार संसदीय ज्ञानपीठ में भी हिन्दी व अंग्रेजी टेलीप्रिंटर स्थापित किए गए हैं जिन पर राष्ट्रीय समाचार एजेंसियों द्वारा समाचार प्रेषित किए जाते हैं। इन टेलीप्रिंटरों पर प्राप्त मुख्य समाचारों को संकलित करके, उनकी स्कैनिंग करके सारे दिन नियमित अन्तराल पर भू-तल स्थित ग्रन्थालय के निकट बने समाचार संप्रदर्शन पटल पर दिखाया जाता है। इसके अलावा संसद भवन में चुनिंदा स्थलों पर न्यूज स्कैनर्स भी लगाए गए हैं।

मीडियाकर्मियों के लिए परिचय-कार्यक्रम

लोक सभा सचिवालय का संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो मीडियाकर्मियों हेतु परिचय-कार्यक्रम आयोजित करता है जिसमें उन्हें विभिन्न संसदीय विषयों पर प्रख्यात विशेषज्ञों के साथ संवाद करने का मौका मिलता है। परिचय-कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किया जाता है जिससे मीडियाकर्मियों को भारतीय संसदीय प्रणाली के प्रचालन-तंत्र की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सके।

प्रेस हेतु खान-पान सुविधाएं

संसद भवन के कमरा सं. 54 और 73 तथा संसदीय ज्ञानपीठ में जी: 142 को मीडियाकर्मियों के नाश्ते व भोजनादि की सुविधा हेतु आरक्षित किया गया है। इस कक्ष में दो टेलीविजन सेट व टेलीफोन उपलब्ध कराए गए हैं। प्रेस-दीर्घा में जाने से पूर्व उनके मोबाइल फोन सुरक्षित रूप से रखने हेतु एक कोष्ठ की भी व्यवस्था की गई है।

मीडियाकर्मियों के बच्चों को बाल-कक्ष में जाने की अनुमति

लोक सभा व राज्य सभा की प्रेस-दीर्घाओं हेतु प्रत्यायित मीडियाकर्मियों के 8 से 17 वर्ष के आयुवर्ग के बच्चे संसदीय ज्ञानपीठ स्थित 'बालकक्ष' में जा सकते हैं।

अध्याय 46

संसदीय कार्यवाही का टेलीविजन और रेडियो पर प्रसारण

विधानमंडलों के सदनों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को प्रवेश की अनुमति देने की वांछनीयता पर लम्बे समय से पीठासीन अधिकारियों और अन्य लोगों का ध्यान रहा है। इस दिशा में ठोस कदम वर्ष 1989 के अंत में उठाए गए[1]। दिनांक 20 दिसम्बर, 1989 को केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति द्वारा संसद के एक साथ समवेत दोनों सदनों के सदस्यों के समक्ष दिए गए अभिभाषण को पहली बार दूरदर्शन और आकाशवाणी पर सीधे प्रसारित किए जाने की अनुमति दी गई थी।

तत्पश्चात् इस विषय पर गंभीरता से विचार उस समय किया गया जब नौवीं लोक सभा के उपाध्यक्ष ने पहली बार संसदीय कार्यवाही के दूरदर्शन–प्रसारण की संभाव्यता, तकनीकी व्यवहार्यता, प्रसारण के तौर–तरीके तथा इसके सामान्य लाभों पर प्रकाश डालते हुए एक व्यापक प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

लोक सभा की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने 23 अगस्त, 1990 को हुई अपनी बैठक में इस मामले पर विचार किया। समिति ने तत्कालीन अध्यक्ष को दोनों सदनों की एक ऐसी संयुक्त उप–समिति गठित करने के लिए प्राधिकृत किया जो संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही के दूरदर्शन–प्रसारण की वांछनीयता, तकनीकी व्यवहार्यता और इस पर आने वाली लागत के बारे में अध्ययन करके अपनी उपयुक्त सिफारिशें दोनों सदनों को विचारार्थ भेजे। तदनुसार, लोक सभा के अध्यक्ष ने एक संयुक्त उप–समिति का गठन किया, जिसमें 6 सदस्य लोक सभा के तथा 3 सदस्य राज्य सभा के थे।[2] 13 मार्च, 1991 को नौवीं लोक सभा के भंग हो जाने के कारण यह समिति अपना कार्य आगे नहीं बढ़ा सकी। तथापि, संसदीय कार्यवाही को दूरदर्शन से प्रसारित किए जाने का मामला पूर्ववत् चर्चा का विषय बना रहा।

दसवीं लोक सभा के गठन के बाद लोक सभा अध्यक्ष ने यह मामला नये सिरे से उठाया और लोक सभा में विभिन्न दलों और ग्रुपों के नेताओं से इस बारे में विचार–विमर्श किया।

---

1. काफी पहले, महात्मा गांधी की हत्या के बाद सदन में दिये गये भाषणों को रिकार्ड किया गया था तथा बाद में इन्हें आकाशवाणी से प्रसारित किया गया। बजट सत्र, 1946 के दौरान एक सदस्य ने सरकार को यह सुझाव देते हुए एक प्रश्न पूछा था कि क्यों न कक्ष के बाहर लाउडस्पीकर लगाये जाने की सलाह पर विचार किया जाए ताकि आम जनता भी सभा की कार्यवाही सुन सके। परन्तु अध्यक्ष मावलंकर इस विचार से सहमत नहीं हुए तथा तद्नुसार सभा के नेता द्वारा 26 फरवरी 1946 को इस प्रश्न का उत्तर दे दिया गया।
2. लोक सभा के सदस्य थे-सर्वश्री सत्यपाल मलिक (सभापति), बसुदेव आचार्य, संतोष मोहन देव, इन्द्रजीत गुप्त, जसवंत सिंह और आर. मुथैया तथा राज्य सभा से सदस्य थे-डॉ. बापू कालदाते, पी. शिवशंकर और अटल बिहारी वाजपेयी।

18 नवम्बर, 1991 को संसदीय कार्य मंत्री और सूचना एवं प्रसारण मंत्री तथा लोक सभा सचिवालय और अन्य संबंधित विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों की एक बैठक हुई जिसमें सभी इस बात पर सहमत हुए कि दूरदर्शन से प्रायोगिक आधार पर प्रश्नकाल का प्रसारण प्रारम्भ किया जाए। 26 नवम्बर, 1991 को इस विषय पर पहले तो लोक सभा की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति[3] ने और फिर दोनों सदनों की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समितियों की संयुक्त बैठक[4] में गहराई से विचार किया गया। यह निर्णय लिया गया कि लोक सभा तथा राज्य सभा के प्रश्न काल की कार्यवाही को रिकार्ड किया जाए। प्रश्न काल के इस रिकार्डेड संस्करण

---

3. प्रस्ताव के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा से निम्नलिखित बिन्दु/निर्णय सामने आए:—

(i) सभा की कार्यवाही का दूरदर्शन से प्रसारण करने का प्रस्ताव सराहनीय था।

(ii) प्रारम्भिक चरण में केवल प्रश्न काल की कार्यवाही का ही दूरदर्शन पर प्रसारण किया जाए। बाद में, नियम 377 के अधीन उठाए गए मामले, तथाकथित 'शून्य काल' के दौरान उठाए गए महत्वपूर्ण मुद्दे तथा विधायी और वित्तीय कार्य का भी प्रसारण होना चाहिए।

(iii) प्रसारित किए जाने वाले अवसरों, मामलों और घटनाओं के बारे में निर्णय लेने के लिए लोक सभा के अध्यक्ष के सभापतित्व में एक छोटी समिति गठित की जा सकती है।

(iv) चूँकि सदस्य कार्यवाही के प्रसारण को देखना चाहेंगे इसलिए ऐसे प्रसारण का समय और सभा की बैठक का समय एक ही नहीं होना चाहिए। सूचना और प्रसारण मंत्री सहित अनेक सदस्य कार्यवाही का प्रसारण अगले दिन सुबह के प्रसारण के समय किए जाने के पक्ष में थे।

(v) समिति इस बात पर सहमत थी कि केवल रिकार्ड की गई और अध्यक्ष द्वारा यथा अनुमोदित कार्यवाही का ही प्रसारण किया जाना चाहिए।

(vi) कार्यवाही का सम्पादन करने के संबंध में संसद में विभिन्न दलों/ग्रुपों के नेताओं के परामर्श से दिशा-निर्देश तैयार करने का सुझाव दिया गया।

(vii) सप्ताह के दौरान हुई संसद की कार्यवाही की समीक्षा सप्ताहांतों, अर्थात् शनिवार और रविवार को प्रसारित की जाए।

4. इन बैठकों के दौरान हुई चर्चाओं से निम्नलिखित बिन्दु/निर्णय सामने आए:—

(i) दोनों सभाओं की कार्यवाही का दूरदर्शन से प्रसारण करने संबंधी प्रस्ताव पर लगभग सर्वसम्मति थी।

(ii) प्रारम्भिक चरण में प्रश्न काल की कार्यवाही का प्रसारण किया जाए और बाद के चरणों में विधायी, वित्तीय और अन्य महत्वपूर्ण मामलों संबंधी कार्यवाही का प्रसारण किया जाए।

(iii) प्रसारण का समय दोनों सभाओं की बैठकों के समय से भिन्न होना चाहिए।

(iv) बुनियादी सुविधाओं संबंधी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए यह अनुभव किया गया कि शुरू में दोनों सभाओं की पहले से रिकार्ड की गई कार्यवाही का प्रसारण बारी-बारी से प्रत्येक सप्ताह किया जाए।

में प्रश्न को लिखित रूप में दर्शाया जाए, साथ ही उसे पढ़कर सुनाया जाये तथा प्रश्न करने वाले संसद सदस्यों और उत्तर देने वाले मंत्रियों के नाम भी दर्शाये जाएं। इस प्रकार सम्पादन के बाद इसे अगले दिन सुबह दूरदर्शन से प्रसारित किया जाए। यह निर्णय भी लिया गया कि बारी-बारी से एक सप्ताह लोक सभा तथा दूसरे सप्ताह राज्य सभा के प्रश्न काल की कार्यवाही प्रसारित की जाए।

उपर्युक्त निर्णय लेने के बाद 2 दिसम्बर, 1991 को लोक सभा के प्रश्नकाल का टेली-फिल्मांकन किया गया, जिसे अगले दिन प्रात: 7.15 बजे से 8.15 बजे तक दूरदर्शन पर दिखाया गया। इस प्रकार भारत की संसद उन चुनिंदा संसदों में शामिल हो गई जिन्होंने अपनी संसदीय कार्यवाही को टेलीविजन पर प्रसारित किए जाने की अनुमति दे रखी है। यह प्रयोग 1991 के शीतकालीन सत्र की पूरी अवधि तक जारी रहा। 1 जनवरी, 1992 को लोक सभा अध्यक्ष ने दस सदस्यों की एक संसदीय समिति[5] गठित की, जिसे प्रकाश और ध्वनि प्रणाली में सुधार के संबंध में सुझाव देने का दायित्व सौंपा गया। इस समिति की सिफारिशों[6] पर बाद में कुछ आवश्यक सुधार/परिवर्तन भी किये गये।

सम्पूर्ण प्रसारण व्यवस्था में और सुधार लाने के उद्देश्य से लोक सभा अध्यक्ष ने संसदीय कार्यवाही के टेलीविजन प्रसारण के तकनीकी तथा कार्यप्रणाली संबंधी पहलुओं का अध्ययन करने के लिए एक संसदीय अध्ययन दल को जून, 1992 में ब्रिटेन, फ्रांस तथा जर्मनी भेजा। सूचना और प्रसारण मंत्री के नेतृत्व में गए सात सदस्यीय दल ने प्रत्येक टेलीविजन-व्यवस्था की तकनीक और डिजाइन का अध्ययन किया तथा उसे क्रियान्वित करने में उक्त तीनों देशों द्वारा अपनाई जा रही प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी प्राप्त की और वापस आकर इस दल ने एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अनेक सिफारिशें की गयी थीं।

दूरदर्शन पर प्रश्नकाल के प्रसारण के प्रारम्भिक चरण के प्रति लोगों की प्रतिक्रियाओं से प्रोत्साहित होकर लोक सभा की सामान्य प्रयोजनों संबंधी समिति ने न केवल इसे जारी रखने का निर्णय लिया अपितु संसदीय कार्यवाही का प्रसारण-क्षेत्र और बढ़ाने का भी निर्णय लिया। तद्नुसार, 24 फरवरी, 1992 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के अलावा 25 फरवरी, 1992 और 29 फरवरी, 1992 को क्रमश: रेल बजट और सामान्य बजट के प्रस्तुतीकरण को पहली बार

---

5. लोक सभा से सदस्य थे– सुनील दत्त (सभापति), अरविन्द त्रिवेदी, मोहन सिंह, सैफुद्दीन चौधरी, डी. वेंकटेश्वर राव और श्रीमती गीता मुखर्जी; राज्य सभा से सदस्य थे– सुरेश पचौरी, शंकर दयाल सिंह, श्रीमती सरला महेश्वरी और श्रीमती सुषमा स्वराज।

6. समिति ने इस बात पर बल दिया कि सभा कक्ष के सौंदर्य को छेड़े बिना चकाचौंध-रहित प्रकाश व्यवस्था सुनिश्चित की जाए। समिति की यह भी इच्छा थी कि माइक्रोफोन स्तम्भों की ऊंचाई भी कम की जाए ताकि कैमरे की आंख से मंत्री/सदस्य ठीक से दिखाई दे सकें। यह भी सुझाव दिया गया कि सभा कक्ष के खम्भों और दीवारों पर सफेद पेंट कराया जाए ताकि बेहतर प्रकाश प्रभाव उत्पन्न हो सके। समिति ने इस बात पर बल दिया कि अधिक परिष्कृत कैमरे और अन्य संबद्ध उपकरण खरीदे जाएं ताकि सभा कक्ष में अधिक तीव्रता वाली प्रकाश व्यवस्था, जैसी उस समय उपलब्ध थी, की आवश्यकता समाप्त हो सके।

दूरदर्शन से सीधा प्रसारित किया गया।[7] इतना ही नहीं, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा, बजट पर आम चर्चा और मानव संसाधन विकास, कृषि, खाद्य, ग्रामीण विकास, नागरिक आपूर्ति तथा विदेश मंत्रालय जैसे मंत्रालयों की अनुदान मांगों पर बहस के दौरान प्रधानमंत्री, विपक्ष के नेता तथा अन्य दलों के नेताओं द्वारा दिए गए महत्त्वपूर्ण भाषणों को संक्षेप में टेलीविजन पर प्रसारित किया गया, ताकि दर्शक विभिन्न विषयों पर विभिन्न दलों के विचारों से अवगत हो सकें।[8] दूरदर्शन के साथ यह प्रबन्ध किया गया कि वह इन भाषणों को हर सोमवार को जब प्रश्न काल का प्रसारण नहीं होता है, प्रसारित करने की व्यवस्था करे। टेलीविजन पर ऐसा प्रथम प्रसारण सोमवार, 23 मार्च, 1992 को किया गया। उपरोक्त मंत्रालयों के अनुदानों की मांगों संबंधी संपूर्ण चर्चाओं की टेलीफिल्म भी अभिलेखागार में रखने हेतु बनाई गई। लोक सभा में विभिन्न दलों और ग्रुपों के नेताओं की 7 जुलाई, 1992 को हुई एक बैठक में यह निर्णय लिया गया कि कार्यवाही से लिए गए अंशों को दूरदर्शन समाचार बुलेटिनों में उसी दिन दिखाया जा सकता है।[9]

18 अप्रैल, 1994 से, लोक सभा की संपूर्ण कार्यवाही की टेलीफिल्में अभिलेखागार में रखने हेतु बनाई जा रही हैं।[10]

संसद की संपूर्ण कार्यवाही का सीधा प्रसारण करने की दिशा में एक बड़ा कदम 25 जुलाई, 1994 को उठाया गया जब संसद भवन में एक 100 वाट वी.एच.एफ. ट्रांसमीटर लगाया गया। इस 'लो पावर ट्रांसमीटर' (एल.पी.टी.) की सहायता से लोक सभा की कार्यवाही का संसद भवन से 15 किलोमीटर के दायरे में सीधा प्रसारण 25 अगस्त, 1994 को औपचारिक रूप से शुरू हुआ था।[11] टेलीविजन पर यह प्रसारण, चैनल 11 बैण्ड 3 पर उपलब्ध था। राज्य सभा का सीधा प्रसारण 7 दिसम्बर, 1994 को चैनल 9 बैण्ड 3 पर संसद भवन में ही स्थापित एक अन्य लो पावर ट्रांसमीटर के माध्यम से प्रारंभ किया गया था।

इसके अतिरिक्त, 7 दिसम्बर, 1994 से दोनों सभाओं के प्रश्न काल की कार्यवाही का पूरे देश में सीधा प्रसारण दूरदर्शन के मुख्य चैनल पर बारी-बारी से एक-एक सप्ताह के लिए 11.00 बजे से 12.00 बजे के बीच किया जाता है।[12] प्रश्न काल के अतिरिक्त, राष्ट्रपति के अभिभाषण तथा रेल और आम बजट का तथा मंत्रिपरिषद के प्रति विश्वास/अविश्वास प्रस्तावों पर वाद-विवाद का मुख्य चैनल पर सीधा प्रसारण किया जाता है। मंत्रिपरिषद के प्रति विश्वास प्रस्ताव पर हुई चर्चा का ऐसा सीधा प्रसारण प्रथम बार 27 मई, 1996 को किया गया था।

---

7. लोक सभा अध्यक्ष ने 12 मई, 1992 को बजट सत्र के अंत में समापन सम्बोधन करते समय इस संबंध में उल्लेख किया-*लो.स.वा.वि.,* 12.5.1992, पृ. 152-55 ।
8. *पूर्वोक्त,* कॉ. 212-13 ।
9. दूरदर्शन समाचार बुलेटिन में सर्वप्रथम दिखाया गया अंश 10 जुलाई, 1992 को राज्य सभा के उप-सभापति के रूप में डॉ. (श्रीमती) नज़्मा हेपतुल्ला के पुन: निर्वाचित होने से संबंधित था।
10. समाचार भाग-2, पैरा सं. 2964, दिनांक 26.4.1994 ।
11. लोक सभा में अध्यक्ष द्वारा की गई घोषणा-*लो.स.वा.वि.,* 25.8.1994, पृ. 182 ।
12. अध्यक्ष द्वारा लोक सभा में की गई घोषणा-*लो.स.वा.वि.,* 7.12.1994, कॉ. 7 ।

1 अगस्त, 1997 को लोक सभा में यह घोषणा की गई[13] कि विद्यमान बड़े आकार के कैमरों की सदन के अन्दर के सभी स्थानों पर पर्याप्त पहुंच संभव नहीं है और न ही इन कैमरों के माध्यम से विभिन्न दिशाओं से वांछित चित्र ले पाना संभव है, अत: यह निर्णय किया गया है कि विभिन्न देशों की रिमोट कंट्रोल कैमरा प्रणालियों का अध्ययन करने के बाद प्रत्येक सदन के लिए इसी प्रकार की कोई रिमोट कन्ट्रोल कैमरा प्रणाली अधिष्ठापित की जाए। आठ नए प्रकार के रोबोटिक कैमरों ने, संसद भवन के कक्ष संख्या 50 में स्थापित एक अत्याधुनिक स्टूडियो के माध्यम से रिमोट कंट्रोल द्वारा कार्य करना आरम्भ कर दिया है। ये कैमरे सदन के अंदर सभी स्थानों का चित्र ले सकने में सक्षम है। इस प्रणाली ने वर्ष 1997 में संसद के शीतकालीन सत्र से कार्य करना शुरू कर दिया है।[14]

रेडियो से प्रसारण

लोक सभा अध्यक्ष ने 6 जुलाई, 1992 को यह निर्देश दिया कि प्रश्न काल की कार्यवाही का रेडियो से भी प्रसारण किया जाए। इस निर्णय के अनुपालन में आकाशवाणी के अधिकारियों के साथ परामर्श करके, 1992 के मानसून सत्र से प्रश्न काल के रेडियो प्रसारण की तकनीकी व्यवस्था की गई[15] रिकार्डिड प्रश्न काल का पहली बार आकाशवाणी से राष्ट्रीय प्रसारण 21 जुलाई, 1992 को 21.30 बजे दिल्ली 'बी' से किया गया। उस समय यह निर्णय लिया गया था कि जिस सप्ताह लोक सभा के प्रश्न काल का रेडियो से प्रसारण किया जा रहा हो, उस सप्ताह राज्य सभा के प्रश्न काल का टेलीविजन से प्रसारण किया जाएगा और उसके अगले सप्ताह लोक सभा के प्रश्न काल को टेलीविजन से तथा राज्य सभा के प्रश्न काल को रेडियो से प्रसारित किया जाएगा। आकाशवाणी द्वारा उसी दिन के प्रश्न काल की कार्यवाही की रिकार्डिंग का प्रसारण उसी रात को किया जाता है।

कार्यवाही के टेलीविजन-प्रसारण के लिए दिशा-निर्देश

22 जून, 1994 को लोक सभा अध्यक्ष ने राष्ट्रपति के अभिभाषण तथा लोक सभा की कार्यवाही का टेली-फिल्मांकन करने और टेलीविजन पर प्रसारण करने के लिए दिशा-निर्देश जारी किए।

इन दिशा-निर्देशों के अनुसार, राष्ट्रपति के अभिभाषण का टेलीविजन पर प्रसारण, संसद भवन के द्वार संख्या 5 पर राष्ट्रपति के स्वागत के साथ प्रारम्भ होता है। राष्ट्रपति की संपूर्ण शोभा यात्रा के समय-समय पर लम्बी दूरी से व्यापक चित्र लिए जाते हैं। केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति के अभिभाषण की महत्ता व गरिमा बनाए रखने के लिए अधिकांश समय कैमरे राष्ट्रपति पर

---

13. पीठासीन अधिकारी द्वारा लोक सभा में 1 अगस्त, 1997 को इस आशय की घोषणा की गई।
14. इनके स्थान पर दस नये रोबोटिक कैमरे लगाये गये। आगे इस अध्याय में एल.एस.टी.वी. के अन्तर्गत *देखिए*।
15. विभिन्न दलों और ग्रुपों के नेताओं की 7 जुलाई, 1992 को लोक सभा अध्यक्ष के साथ हुई एक बैठक में, अध्यक्ष ने उन्हें इस निर्णय से अवगत कराया।

तथा कभी-कभी प्रतिष्ठित गण्यमान्य व्यक्तियों पर केन्द्रित किए जाते हैं। यदा-कदा दोनों सदनों के सदस्यों के केवल व्यापक चित्र ही लिए जाते हैं। कैमरों को प्रेस दीर्घा और सार्वजनिक दीर्घाओं तथा किसी प्रकार के व्यवधान, अव्यवस्था या बहिर्गमन के दृश्यों पर केन्द्रित नहीं किया जाता है।

राष्ट्रपति के अभिभाषण के अतिरिक्त, किन्हीं प्रतिष्ठित विदेशिक गण्यमान्य अतिथियों या विशिष्ट आमंत्रित व्यक्तियों द्वारा दोनों सदनों के सदस्यों के समक्ष किए गए महत्वपूर्ण सम्बोधनों संसदीय पुरस्कारों समारोहों, लोक सभा समारोहों की वर्षगांठ के मामले में भी सभापति अथवा अध्यक्ष द्वारा इस प्रकार के प्रत्येक अवसर हेतु लिए गए विशिष्ट निर्णय के अनुसार इनका टेलीविजन पर सीधा प्रसारण किया जाता है। इस प्रकार के भाषणों का टेलीविजन पर प्रसारण भी, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर लागू दिशा-निर्देशों की तर्ज पर ही होता है।

प्रश्न काल के टेलीविजन-प्रसारण के समय केवल प्रश्नों और उत्तरों से संबंधित कार्यवाही का ही प्रसारण किया जाता है। तथापि, यदा-कदा प्रश्न काल के दौरान कार्य-सूची की निम्नलिखित मदें भी दिखाई जाती हैं: (क) किसी सदस्य/प्रतिष्ठित व्यक्ति के निधन पर निधन संबंधी उल्लेख; (ख) यात्रा पर आए किसी विदेशी संसदीय शिष्टमंडल का स्वागत; (ग) किसी नए सदस्य द्वारा शपथ ग्रहण; (घ) पीठासीन अधिकारी द्वारा कोई विशेष उल्लेख; और (ड.) पीठासीन अधिकारी द्वारा समय-समय पर यथानिर्देशित कोई अन्य मद। प्रश्न काल के टेलीविजन-प्रसारण में- (क) किसी असंसदीय बात; (ख) ऐसी कोई चीज जो बार-बार हो रही हो; (ग) पीठासीन अधिकारी द्वारा कार्यवाही से निकाल दिये जाने वाले शब्दों या अनुमति नहीं दी जाने वाली मदों; और (घ) पीठासीन अधिकारी द्वारा दिए गए निर्देशानुसार उत्तर न दिए जाने वाले अनुपूरक प्रश्नों को शामिल नहीं किया जाता है।

'शून्य काल' चूंकि लोक सभा के प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमों के किसी भी नियम के द्वारा शासित नहीं होता है, अत: शून्य काल की कार्यवाही से संबंधित यू-मैटिक/बेटकैम/डी.वी.सी.प्रो. टेपों को लोक सभा अध्यक्ष की स्पष्ट पूर्वानुमति के बिना न तो किसी को दिखाया जाता है और न ही दिया जाता है। तथापि 5 जुलाई, 1994 से शून्य काल की कार्यवाही को सीधे प्रसारण में शामिल किया जा रहा है और अनुरोध प्राप्त होने पर उसे उपलब्ध भी कराया जा रहा है।

विधिवत् अनुमोदन के उपरांत महत्वपूर्ण वाद-विवाद का बाद में एक से तीन घंटे के कैप्सूल (लघु रूप) में टेलीविजन-प्रसारण किया जा सकता है। इन कैप्सूलों को तैयार करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि इनके कुल समय को, विभिन्न संसदीय दलों/ग्रुपों की सदन में कुल सदस्य संख्या के आनुपातिक आधार पर आबंटित किया जाए। किसी कैप्सूल विशेष में आबंटित समय के बारे में सम्बन्धित संसदीय दल/ग्रुप के नेता को सूचित किया जाता है। संबंधित संसदीय दल/ग्रुप के नेता द्वारा इस बात के निर्णय की सूचना दिए जाने के बाद कि किन-किन सदस्यों के भाषणों को उस कैप्सूल में शामिल किया जाएगा, संबंधित सदस्य या सदस्यों से यह अनुरोध किया जाता है कि वे अपने भाषणों को उन्हें आबंटित समय के अंदर ही समुचित रूप से संपादित करें।

रेल बजट तथा आम बजट के सीधे टेलीविजन प्रसारण के दौरान अधिकांश समय कैमरा संबंधित मंत्री पर ही केन्द्रित रहता है। कभी–कभी पीठासीन अधिकारी और सभा के व्यापक दृश्य दिखाए जाते हैं।

प्रत्येक दिन की कार्यवाही से पीठासीन अधिकारी द्वारा कार्यवाही वृत्तांत में शामिल किए जाने की अनुमति न दिए जाने वाले अंश या बाद में कार्यवाही–वृत्तांत से निकाल दिए जाने वाले अंशों को, अगले दिन ही यू–मैटिक/बेटकैम/डी.वी.सी.प्रो. टेपों से मिटा दिया जाता है ताकि लिखित रिकार्ड और टेपों के रिकार्ड एक दूसरे के अनुरूप हों। ये यू–मैटिक/बेटकैमडी/वी. सी. प्रो. टेप उपर्युक्त प्रकार के अंशों को मिटाए जाने के बाद ही ग्रंथालय/अभिलेखागार में भेजे जाते हैं।

अध्यक्ष के आसन पर बैठे व्यक्ति के चित्र दर्शाए जाने में काफी सावधानी बरती जाती है। पीठासीन अधिकारी के चित्र उसी समय लिए जाते हैं जब वह किसी प्रकार का विनिर्णय देता है या कोई टिप्पणी/हस्तक्षेप करता है। पीठासीन अधिकारी जब अधिकारियों को कोई अनुदेश देता है या उनसे कोई कागज–पत्र प्राप्त करता है, तो उस समय उसके चित्र नहीं लिए जाते हैं।

आमतौर पर सभा पटल के निकट बैठे अधिकारियों (महासचिव को छोड़कर) और परिचारकों को, जब तक कि वे सदन के किसी व्यापक दृश्य का भाग न हों, प्रसारण में नहीं दर्शाया जाता है। कभी–कभी किसी समूह के चित्र मिड शॉट और क्लोजअप या तो किसी समूह के सदस्यों की प्रतिक्रिया दर्शाने या कक्ष के किसी भाग विशेष की भौगोलिक स्थिति को दर्शाने के उद्देश्य से लिए जाते हैं। पत्रकार, जनता, अधिकारी तथा अन्य अतिथियों के दीर्घाओं के दृश्य नहीं दर्शाए जाते हैं, क्योंकि सभा की कार्यवाही से इनका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता है। तथापि, विशिष्ट कक्ष में आसन ग्रहण करने वाले किसी विदेशी संसदीय शिष्टमंडल पर यह प्रतिबंध लागू नहीं होता है। गंभीर अव्यवस्था या असंसदीय आचरण के अवसर पर, व्यवस्था के पुनः बहाल हो जाने तक कैमरा पीठासीन अधिकारी पर ही केन्द्रित रखा जाता है। तथापि, इस बीच कभी–कभी कक्ष के व्यापक दृश्य दर्शाए जा सकते हैं।

दिशानिर्देशों में संशोधन

बाद में मई 2005 में दूरदर्शन से होने वाले प्रसारण संबंधी दिशानिर्देशों में संशोधन किये गये जिनमें अध्यक्ष के निदेशों के अनुसार निम्नलिखित संशोधन किये गये। लोक सभा की कार्यवाही का दूरदर्शन द्वारा किये जाने वाले प्रसारण में यह वास्तविक रूप से परिलक्षित होना चाहिए कि सभा में क्या कुछ हो रहा है तथा इसमें अव्यवस्था, सभा से बहिर्गमन, पीठासीन अधिकारी के आसन के पास चले जाना, आदि भी शामिल होना चाहिए। सभा में ऐसी अव्यवस्था के अवसरों पर कैमरा कक्ष में अव्यवस्था वाले दृश्यों पर केंद्रित होगा। ऐसी स्थिति में पीठासीन अधिकारी को थोड़े–थोड़े समय के लिए दिखाया जाएगा। वर्ष, 2010 के संशोधित दिशानिर्देशों के अनुसार, जैसे ही अध्यक्ष, उपाध्यक्ष अथवा सभापति सभा में प्रवेश करेंगे, सीधा प्रसारण आरम्भ हो जाएगा और तब तक जारी रहेगा जब तक निम्नलिखित में से कोई स्थिति उत्पन्न न हो जाए: (i) पीठासीन अधिकारी द्वारा सभा के स्थगन की घोषणा की जाए; (*ii*) पीठासीन अधिकारी नियंत्रण कक्ष को कैमरा बंद करने अथवा सीधा प्रसारण रोकने का

निर्देश देने के लिए विशेष रूप से उपलब्ध कराया गया बटन दबा दें; (iii) पीठासीन अधिकारी कैमरा बंद करने अथवा सीधा प्रसारण रोकने के लिए मौखिक आदेश दें और सभा में अव्यवस्था की स्थिति में, कैमरा पीठासीन अधिकारी पर केंद्रित रहेगा।

संसद की कार्यवाही की रिकार्डिंग

लोक सभा की संपूर्ण कार्यवाही का टेलीफिल्मांकन किया जाता है। अध्यक्ष के आदेशानुसार कार्यवाही से निकाले गये भागों को रिकार्ड की गई प्रत्येक टेपों से हटा दिया जाता है।, प्रत्येक दिन की कार्यवाही का टेली-रिकार्ड लोक सभा सचिवालय के दृश्य-श्रव्य एकक के पास सुरक्षित रखा जाता है। लोक सभा टेलीविजन चैनल की स्थापना से पहले संसद की कार्यवाही की रिकार्डिंग दूरदर्शन आकाशवाणी द्वारा की जा रही थी। जुलाई, 2006 से रिकार्डिंग लोक सभा टेलीविजन चैनल/आकाशवाणी द्वारा की जा रही है। दूरदर्शन लोक सभा टेलीविजन से सिग्नल ले सकता है और आकाशवाणी इस कार्यवाही का सीधा रेडियो प्रसारण कर सकती है जिसका निर्णय अध्यक्ष लेता है। अन्य टेलीविजन तथा रेडियो प्रसारण एजेंसियों को भी रिकार्ड की गई कार्यवाही से उद्धरणों का प्रसारण करने की अनुमति है, परन्तु इसके लिए उन्हें लोक सभा सचिवालय की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करनी होती है।

जिन निजी एजेंसियों को अपने कार्यक्रम में दृश्य-श्रव्य फुटेज प्रयोग करने की अनुमति दी जाती है, उन्हें अपने द्वारा किए जा रहे रेडियो/टेलीविजन प्रसारण में यह सुनिश्चित करना होता है कि :—

(क) संसद की कार्यवाही की सही और निष्पक्ष रिपोर्ट दी जा रही है;

(ख) इसमें व्यक्त की गई राय में संतुलित प्रतिनिधित्व है जिसमें विभिन्न संसदीय दलों/ग्रुपों की सदस्य संख्या के आनुपातिक प्रतिनिधित्व का ध्यान रखा गया है;

(ग) इसका प्रयोग किसी व्यंग्य या उपहास के लिए नहीं किया गया है;

(घ) इसका प्रयोग किसी राजनीतिक दल के विज्ञापन या चुनाव प्रचार या वाणिज्यिक विज्ञापन के लिए नहीं किया गया है;

(ङ) इसमें ऐसी कोई टिप्पणी शामिल नहीं है जिसके संबंध में कोई संसद सदस्य मिथ्या निरूपण का दावा करता हो या उस टिप्पणी को वापस लेने की मांग करता हो, जिसे बाद में वापस लेने का आदेश प्राप्त हो गया हो या स्वेच्छा से उसने इसे वापस ले लिया हो;

(च) इसमें कार्यवाही का कोई ऐसा अंश शामिल नहीं है जिसे पीठासीन अधिकारी द्वारा कार्यवाही वृत्तांत में शामिल न करने का आदेश दिया गया हो या बाद में जिसे कार्यवाही से निकाल दिया गया हो; और

(छ) संसद की कार्यवाही का टेली-फिल्मांकन करने और उसका टेलीविजन प्रसारण करने के लिए बनाए गए नियमों का कड़ाई से और पूर्णरूपेण पालन किया गया है।

रोबोट नियंत्रित मल्टी कैमरा प्रणाली

संसदीय ज्ञानपीठ स्थित जी.एम.सी. बालयोगी सभागार तथा बी.पी.एस.टी. के मुख्य समिति कक्ष में आयोजित किये जाने वाले संसदीय समारोहों/कार्यक्रमों को कवर करने के लिए 9 दिसंबर, 2004 को रोबोट नियंत्रित मल्टी कैमरा प्रणाली तथा कार्यक्रम निर्माण नियंत्रण कक्ष स्थापित किये गये हैं। संसदीय ज्ञानपीठ के अन्य समिति कक्षों, संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में कार्यक्रमों/घटनाओं/समारोहों के ऑन लाइन प्रोडक्शन के लिए तथा संसद भवन परिसर में एल.एस.टी.वी. कार्यक्रमों की आउट-डोर शूटिंग के लिए एक चल रोबोट नियंत्रित मल्टी कैमरा प्रणाली भी खरीदी गई है। बाहर के किसी स्थान से समाचार प्राप्त करने के लिए दो इलेक्ट्रॉनिक समाचार संकलन कैमरों (ई.एन.जी.) का भी उपयोग किया जाता है। ये वस्तुएँ जो पहले दृश्य श्रव्य एकक के पास थी इन्हें 9 मई, 2008 को एल.एस.टी.वी. को सौंप दिया गया है।

सीधे टेली प्रसारण हेतु पृथक उपग्रह चैनल

14 दिसंबर, 2004 को संसद के दोनों सदनों अर्थात् लोक सभा और राज्य सभा की कार्यवाहियों का पूरे देश में सीधा टेली प्रसारण करने के लिए दो अलग उपग्रह चैनलों का शुभारंभ क्रमश: भारत के उपराष्ट्रपति और लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा किया गया। 14 दिसंबर, 2004 से ही संसद के दोनों सदनों की पूरी कार्यवाहियों का सीधा प्रसारण दूरदर्शन द्वारा इन दो अलग उपग्रह चैनलों के माध्यम से किया जा रहा है। अलग उपग्रह चैनलों द्वारा प्रसारण आरंभ किये जाने से अब कम शक्तिशाली ट्रांसमीटरों पर संसद की कार्यवाही का प्रसारण नहीं हो रहा है।

लोक सभा उपग्रह टेलीविजन (एल.एस.टी.वी) चैनल एकक

अगस्त, 2005 में अध्यक्ष ने लोक सभा के सभी राजनीतिक दलों के नेताओं के साथ विचार-विमर्श करके, लोक सभा का 24 घंटे प्रसारण करने वाला अपना एक टेलीविजन चैनल शुरू करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया। इस टेलीविजन चैनल को दूरदर्शन से स्वतंत्र रखा गया है। इसे केबल-ऑपरेटरों के माध्यम से संपूर्ण देश में उपलब्ध कराने की योजना बनायी गयी। 24 जुलाई, 2006 को संसद के मानसून सत्र के आरंभ की घोषणा के साथ ही, लोक सभा टेलीविजन (एलएसटीवी) ने लगातार 24 घंटे अपना प्रसारण आरंभ कर दिया। इस महत्वपूर्ण घटनाक्रम ने लोक सभा को एक अनूठा आयाम प्रदान किया तथा इससे सभा विश्व की ऐसी चुनिंदा सभाओं में शामिल हो गई, जिसका अपना एक टीवी चैनल है और वह स्वयं उसका संचालन भी करती है। लोक सभा चैनल को संपूर्ण देश में दिखाए जाने हेतु यह दूरदर्शन के डी.टी.एच. पर भी उपलब्ध है। इस प्रकार इस चैनल का उद्देश्य संसद की दर्शक-दीर्घा का विस्तार है। इस चैनल की पहुँच बढ़ाने के लिए, लोक सभा अध्यक्ष ने 9 मई, 2012 को लोक सभा टीवी चैनल की वेबसाइट का शुभारंभ किया। इस वेबसाइट (www.loksabha tv.nic.in) के माध्यम से एल.एस.टी.वी. को इंटरनेट पर डालकर एक ओर तो व्यापक युवा दर्शक वर्ग तक इसकी पहुंच बढ़ाई गई है और दूसरी ओर अपने सरोकारों के समाधान के इच्छुक लोगों को भी इससे मदद मिली है।

लोक सभा टेलीविजन की स्थापना के एक भाग के रूप में, संसदीय ज्ञानपीठ के प्रथम बेसमेंट में आधुनिक रिकार्डिंग तथा टेलीप्रसारण सुविधाओं से युक्त एक स्टूडियो बनाया गया। यह स्टूडियो पहले दूरदर्शन द्वारा तैयार किया गया था और बाद में इसे लोक सभा टेलीविजन को सौंप दिया गया। तदनुसार संसद भवन में लगे पुराने रोबोटिक कैमरों को बदलकर दस नये रोबोटिक कैमरों को ऐसे कोणों पर लगाया गया जहां से कार्यवाही का बेहतर दृश्यता हेतु प्रसारण किया जा सके। हाई-डेफिनिशन उपकरणों से सुसज्जित एक दूसरा स्टूडियो भी बनाया गया ताकि एल.एस.टी.वी. कार्यक्रम की रिकार्डिंग और चैनल पर उसका प्रसारण अधिक सुविधाजनक हो सके। इसके अलावा आधुनिक और अद्यतन संपादन और ग्राफिक्स उपकरण भी लगाए गए हैं जिससे एल.एस.टी.वी. प्रसारण क्षेत्र में तकनीकी दृष्टि से उन्नत हुआ है।

एल.एस.टी.वी. हेतु एक भू-केंद्र भी स्थापित किया गया है ताकि चैनल के प्रसारण को सीधे उपग्रह से जोड़ा जा सके। इस भू-केंद्र की स्थापना से यह चैनल अपनी किस्म का पहला ऐसा संसदीय चैनल बन गया जिसके पास अपना भू-केंद्र है।

लोक सभा की कार्यवाही के सीधे और रिकार्डिड प्रसारण के अलावा यह चैनल लोकतंत्र, शासन, सामाजिक, आर्थिक व संवैधानिक मुद्दों तथा नागरिक-सरोकारों से जुड़े आम रुचि के मुद्दों पर ऐसे अनेक ज्ञानवर्धक, संवादपरक और सारवान मूल्य के कार्यक्रम दिखाता है।

लोक सभा अध्यक्ष ने लोक सभा टेलीविजन के कार्यक्रमों से संबंधित मामलों में सहायता करने और सलाह देने के उद्देश्य से एक सलाहकार परिषद का गठन किया है।[16] इस परिषद के कृत्य निम्नलिखित हैं:—

(एक) प्रसारणीय कार्यक्रमों हेतु मार्गनिदेश प्रदान करना;

(दो) नए कार्यक्रमों की परिकल्पना पर विचार करना;

(तीन) चैनल के प्रभावी कार्यकरण हेतु विचारों का सुझाव देना; और

(चार) चैनल के कार्यकरण से संबंधित किसी अन्य विषय पर विचार-विमर्श करना।

एल.एस.टी.वी. चैनल के समुचित वितरण और इसकी निगरानी सुनिश्चित करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि देश भर में सभी केबल आपरेटरों द्वारा लोक सभा टेलीविजन चैनल का प्रसारण हो, पूरे देश में क्षेत्रीय स्तर पर 15 वितरकों को नियुक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त, वर्ष 2007 में सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा केबल टेलीविजन नेटवर्क (विनियम) अधिनियम, 1995 (1995 के 7) की धारा 8 की उप-धारा (1) में किये गये संशोधन (देखिए अधिसूचना, एस.ओ. 1881(ई) दिनांक 6 नवंबर, 2007) से सभी केबल

---

16. लोक सभा टेलीविजन सलाहकार परिषद के सदस्य हैं:

1. अध्यक्ष, लोक सभा - अध्यक्ष
2. उपाध्यक्ष - उपाध्यक्ष
3. सूचना और प्रसारण मंत्री - उपाध्यक्ष
4. लोक सभा में 10 या उससे अधिक सदस्य संख्या वाले राजनीतिक दलों के नेता, अथवा उनके नामनिर्देशिती
5. महासचिव, लोक सभा

ऑपरेटरों के लिए यह अनिवार्य बना दिया गया है कि वे अपनी केबल सेवा में एल.एस.टी.वी. चैनल का प्रसारण करे। इसके परिणामस्वरूप, एल.एस.टी.वी. का प्रसारण देश के सभी क्षेत्रों में संभव हो गया है।

दृश्य-श्रव्य एकक और टेलीविजन प्रसारण एकक

दृश्य-श्रव्य एकक

ग्रन्थालय और सूचना सेवा के आधुनिकीकरण के अंग के रूप में संसद भवन के कक्ष सं. 46 में एक दृश्य-श्रव्य एकक की स्थापना की गई है। इस एकक का एक अवलोकन कक्ष है जिसमें चार छोटे केबिन हैं। संसदीय ग्रंथालय के वर्ष 2002 में स्थानांतरण के कारण अब दृश्य-श्रव्य एकक संसद भवन के कक्ष सं. जी 140 में कार्य कर रहा है जिसमें अवलोकन कक्ष और संपादन कक्ष है। संसद सदस्यों को लोक सभा वाद-विवाद, एल.एस.टी.वी. के कार्यक्रमों, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संसदीय सम्मेलनों/संगोष्ठियों की कार्यवाही, संसदीय फिल्मों और "भाषा संबंधी" पाठ्यक्रमों के वीडियो रिकार्डों को अवलोकन कक्ष मे देखने/सुनने की सुविधा उपलब्ध है। भारतीय और विदेशी विशिष्ट जनों को भी लोक सभा की कार्यवाही संसदीय विषयों तथा अन्य घटनाओं पर फिल्में दिखाई जाती हैं। लोक सभा के प्रत्यायित संवाददाता भी अवलोकन कक्ष में उपलब्ध सुविधाओं का लाभ उठा सकते हैं।[17]

यह एकक सम्पूर्ण संसदीय कार्यवाही, अन्य संसदीय समारोहों, कार्यक्रमों इत्यादि के वीडियो (यू-मैटिक बीटा कैम और वी.एच.एस., डी.वी.सी.प्रो.) और ऑडियो कैसेट/टेप परिरक्षित रखता है।[18] वह एकक विभिन्न कार्यक्रमों की रिकार्डिंग के लिए लोक सभा टेलीविजन चैनल को खाली कैसेट/डीवीडी/वीसीडी भी उपलब्ध कराता है। यह एकक सामग्री का चयन और संग्रहण, अधिग्रहण, वर्गीकरण तथा सम्मेलनों, संगोष्ठियों, परिचर्चाओं, कार्यशालाओं

---

17. पहले, यदि कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य के रिकार्ड किये गये भाषण के किसी अंश को सुनना चाहता था तो इसके लिए उसे दिये गये उस भाषण के तीन दिन के भीतर अध्यक्ष से लिखित रूप में अनुरोध करना पड़ता था। अपने अनुरोध में उसे दिये गये भाषण के उस अंश का उल्लेख करना पड़ता था, जिसे वह सुनना चाहता हो। साथ ही इसके कारणों का भी उल्लेख करना पड़ता था। अध्यक्ष की अनुमति मिलने पर ही सदस्य को रिकार्ड किये गये भाषण के उक्त अंश को सुनने की अनुमति दी जाती थी।

18. लोक सभा की कार्यवाही को टेप में रिकार्ड किये जाने का कार्य अगस्त, 1956 में आरंभ हुआ। आम-तौर पर रिकार्ड किये गये टेपों को उस दिन से एक सप्ताह बीतने तक संरक्षित किया जाता है जिससे यह संबद्ध है। उसके बाद उसे मिटा दिया जाता है और इसके पुन: प्रयोग हेतु इसका पुनर्चक्रण किया जाता है। परन्तु, विवाद के मुद्दों यथा विशेषाधिकार संबंधी मामले, के टेप कुछ अधिक समय तक रखे जाते हैं और वे तब तक रखे जाते हैं जब तक कि उन मुद्दों का निपटान न हो जाए। संसद की दोनों सभाओं के सदस्यों को संबोधित राष्ट्रपति के अभिभाषण तथा विशिष्ट आगन्तुकों द्वारा सदस्यों को संबोधित भाषण, जो लोक सभा की कार्यवाही का भाग नहीं होते, के भी रिकार्ड किये गये टेपों को रखा जाता है। 1992 से पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व वाले टेपों को दृश्य-श्रव्य टेली प्रसारण एकक में स्थायी रूप से संरक्षित किया जाता है। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

जैसे महत्वपूर्ण संसदीय समारोहों और घटनाओं के कैसेटों तथा संसदीय प्रक्रिया एवं पद्धति के विभिन्न पहलुओं पर बनी टेलीफिल्मों के परिरक्षण से संबंधित कार्यों को देखता है। भुगतान के आधार पर संसद सदस्यों के भाषणों की वी.एच.एस. कैसेट/वीसीडी/डीवीडी में डबिंग करने की भी व्यवस्था की गई है।

दृश्य-श्रव्य एकक में कई भाषा संबंधी पाठ्यक्रम (ऑडियो और वीडियो कैसेट) भी विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं तथा शास्त्रीय वाद्य संगीत और देश भक्ति के गीत भी संसद सदस्यों के उपयोग हेतु तथा विभिन्न संसदीय समारोहों के अवसर पर उपयोग के लिए उपलब्ध हैं। सुनने/देखने के लिए निम्नलिखित भाषा संबंधी पाठ्यक्रम (ऑडियो और वीडियो कैसेट) अवलोकन कक्ष में उपलब्ध हैं :

ऑडियो कैसेट

(*i*) अंग्रेजी भाषा के माध्यम से कन्नड़, मलयालम, तमिल और तेलुगू में भाषा पाठ्यक्रम;

(*ii*) असमिया, बंगाली, अंग्रेजी, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, तमिल और तेलुगू में व्याख्या के माध्यम से हिन्दी भाषा पाठ्यक्रम;

एक साथ समवेत संसद की दोनों सभाओं के सदस्यों को संबोधित राष्ट्रपति का अभिभाषण

विशिष्ट आगन्तुकों का सदस्यों को संबोधित भाषण।

प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण भाषण, जिनमें राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव का उत्तर भी शामिल है।

ऐतिहासिक महत्व के मामले संबंधी कार्यवाही

सभा द्वारा पारित संविधान (संशोधन) विधेयक संबंधी कार्यवाही

रेल मंत्री द्वारा दिया गया रेल बजट भाषण

रेल बजट संबंधी वाद-विवाद पर रेल मंत्री का उत्तर

वित्त मंत्री द्वारा दिया गया बजट भाषण

आम बजट पर सामान्य चर्चा का वित्त मंत्री का उत्तर

वित्त विधेयक पर विचार करने के लिए विधेयक प्रस्तुत करते हुए वित्त मंत्री का भाषण

वित्त विधेयक पर वाद-विवाद का वित्त मंत्री का उत्तर

विपक्ष के नेता के महत्वपूर्ण भाषण

अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा

महत्वपूर्ण विधेयकों और प्रस्तावों पर चर्चा, विश्वास प्रस्तावों पर चर्चा।

प्रश्न काल। सदस्यों द्वारा शपथ ग्रहण।

अप्रैल, 1994 से लोक सभा की सारी कार्यवाही की रिकार्डिंग प्रसारण गुणवत्ता वाले वीडियो कैसेटों में संरक्षित रखी जाती है।

पहले किसी लोक सभा के सदस्य के शपथ ग्रहण समारोह संबंधी टेप केवल उस लोक सभा की अवधि तक के लिए ही संरक्षित किये जाते हैं।

(*iii*) अंग्रेजी भाषा के माध्यम से 23 विदेशी भाषाओं अर्थात् अरबी, चीनी, डेनिश, डच, फिनिश, फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक, हिब्रू, आइसलेंडिक, इन्डोनेशियन, इटालियन, जापानी, कोरियाई, मलयी, नार्वेजियन, पर्शियन, पोलिश, पुर्तगाली, रूसी, सर्बो-क्रोशियन, स्पेनिश और स्वीडिश में "भाषा संबंधी" पाठ्यक्रम;

(*iv*) अंग्रेजी माध्यम से हिन्दी भाषा में भाषा संबंधी पाठ्यक्रम; और

(*v*) हिन्दी माध्यम से अंग्रेजी भाषा में भाषा संबंधी पाठ्यक्रम।

वीडियो कैसेट

अंग्रेजी के माध्यम से चार विदेशी भाषाओं अर्थात् फ्रेंच, जर्मन, इटालियन और स्पेनिश में भाषा संबंधी पाठ्यक्रम।

राज्य सभा की कार्यवाही की वीसीडी

मार्च, 1992 से पुरालेखीय तथा ग्रंथालय संबंधी प्रयोजनों के लिए राज्य सभा की कार्यवाही की वीसीडी भी खरीदी जा रही है।

टेलीविजन प्रसारण एकक

यह एकक संसद परिसर तथा अन्य स्थानों पर आयोजित महत्वपूर्ण संसदीय समारोहों के अतिरिक्त संसदीय कार्यवाहियों और राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों/संगोष्ठियों के टेलीविजन/रेडियो प्रसारण हेतु दूरदर्शन/आकाशवाणी और अन्य सरकारी एजेंसियों के साथ समन्वय स्थापित करता है। यह एकक संबंधित एजेंसियों को अवसंरचनात्मक तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराकर टेलीविजन/रेडियो पर प्रभावी तथा निर्बाध प्रसारण के लिए सभी आवश्यक प्रबन्ध करता है। यह एकक कार्यवाही को यू-मैटिक टेप/बीटा कैम टेप/वी.एच.एस./डी.वी.सी.-प्रो. /वी.सी.डी./डी.वी.डी. से परस्पर अन्तरित करने के लिए सरकारी/गैर-सरकारी एजेंसियों से सम्पर्क रखने के काम की देख-रेख भी कर रहा है।

टेलीफिल्मिंग और संसदीय कार्यवाहियों को टेलीविजन पर प्रदर्शित करने के कार्य के विस्तार के रूप में संसद और राज्य विधानमंडलों के नए सदस्यों के लिए विभिन्न संसदीय प्रक्रियाओं और पद्धतियों तथा संबंधित संसदीय विषयों पर वीडियो फिल्में तैयार की जा रही हैं। ये फिल्में छात्रों, मीडिया से जुड़े व्यक्तियों तथा अन्य लोगों को संसद के कार्यकरण के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देने में सहायता करती है।[19]

---

19. अभी तक ऐसी छः संसदीय फिल्में तैयार की गई हैं, जिनके विषय इस प्रकार हैं— "गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक", "संसदीय प्रश्न", "संसदीय शिष्टाचार और आचरण", "वित्तीय समितियां", "विधानमंडलों में वाद-विवाद को समृद्ध बनाना" तथा "प्रभावी सांसद कैसे बनें?"

अक्तूबर, 1996 में नई दिल्ली में हुए विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में स्वीकृत एक संकल्प[20] के अनुसरण में लोक सभा अध्यक्ष ने राज्य विधानमंडलों की कार्यवाही के टेलीविजन प्रसारण के संबंध में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों की एक समिति[21] गठित की। 18 दिसम्बर, 1996 को हुई अपनी पहली बैठक में समिति ने यह निर्णय लिया कि राज्य विधानमंडलों की कार्यवाही के टेलीविजन पर सीधे प्रसारण हेतु स्वीकृति प्राप्त होने और बुनियादी सुविधाओं की स्थापना होने तक, राज्यपाल के अभिभाषण, बजट प्रस्तुत किए जाने और राज्य विधान सभाओं के प्रश्न काल को रिकार्ड किया जाए और उसी दिन शाम को दिखाया जाए। तद्नुसार दूरदर्शन ने वर्ष 1997 के बजट सत्र से राज्यपाल के अभिभाषण और कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्यवाहियों (जैसे कुछ राज्य विधानमंडलों में वित्त मंत्री के बजट भाषण) का टेलीविजन प्रसारण आरम्भ कर दिया है। अक्तूबर, 2004 में कोलकाता में आयोजित विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के 67वें सम्मेलन में यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि राज्य विधानमण्डलों की कार्यवाही को टेलीविजन पर प्रसारित किया जाए। यह प्रस्ताव भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय तथा योजना आयोग के विचाराधीन है।

लोक सभा की कार्यवाही की वीडियो कैसेटों की आपूर्ति

लोक सभा की कार्यवाही की वीडियो कैसेटें भारत में और विदेशों में संवैधानिक पदाधिकारियों/उच्च पदस्थ व्यक्तियों, लोक सभा/राज्य सभा के प्रत्यायित प्रेस संवाददाताओं (प्रिंट/इलेक्ट्रॉनिक मीडिया) भारत सरकार/राज्य सरकारों के मंत्रालयों और विभागों, राज्य विधानमंडलों, प्रतिष्ठित समाचार एजेंसियों, जिनके पास पी.आई.बी. का प्रत्यायन हो/संबद्ध क्षेत्र के प्रख्यात निर्माताओं; मान्यता प्राप्त शैक्षिक संस्थाओं/विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों, अध्यापकों, शोधकर्त्ताओं, संसदीय राजनीतिक दलों तथा अन्य ऐसे व्यक्तियों, जिनके बारे में लोक सभा सचिवालय निर्णय करे, को मानार्थ आधार पर प्रदान/उपलब्ध की जाती हैं।

---

20. संकल्प में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिशें शामिल हैं:—

    चूँकि टेलीविजन प्रसारण के प्रचालन क्षेत्र में व्यापक परिणाम सन्निहित हैं, अत: लोक सभा अध्यक्ष की अध्यक्षता में पीठासीन अधिकारियों की एक समिति को इस मामले के सभी पहलुओं की जांच करनी चाहिए तथा सुविचारित सिफारिशों से युक्त अपनी रिपोर्ट देनी चाहिए।

21. समिति के सभापति लोक सभा अध्यक्ष पी.ए. संगमा थे तथा इसके सदस्य थे: हाशिम अब्दुल हलीम, अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान सभा; दत्ताजी शंकर नालवाडे, अध्यक्ष, महाराष्ट्र विधान सभा; रमेश कुमार, अध्यक्ष, कर्नाटक विधान सभा; कौल सिंह ठाकुर, अध्यक्ष, हिमाचल प्रदेश विधान सभा; श्रीनिवास तिवारी, अध्यक्ष मध्य प्रदेश विधान सभा; जिंग्सन ड्रिंगवेल रिम्बाय, अध्यक्ष, मेघालय विधान सभा और चौ. मोहम्मद असलम, अध्यक्ष, जम्मू और कश्मीर विधान सभा।

जब भी लोक सभा की किसी कार्यवाही के नियमित वाद-विवाद में किसी सदस्य के भाषण वाली कैसेट उपलब्ध कराने का अनुरोध प्राप्त होता है, तो दृश्य-श्रव्य एकक द्वारा इसकी व्यवस्था की जाती है तथा आवश्यक संपादन करके नाममात्र भुगतान के आधार पर, जैसा भी समय-समय पर निर्णय लिया जाए, उपलब्ध कराई जाती है। 5 जुलाई, 2004 से, शून्य काल की कार्यवाही सीधे प्रसारण में शामिल की जा रही है और इसे उपलब्ध भी कराया जा रहा है।

यदि संसदीय कार्यवाही की दृश्य-श्रव्य रिकार्डिंग का उपयोग निजी उद्देश्य के बजाय किसी अन्य उद्देश्य के लिए किया जाना हो, तो उस स्थिति में वही शर्तें लागू होंगी जो उन गैर-सरकारी एजेंसियों पर लागू होती हैं, जिन्हें अपने कार्यक्रमों में दृश्य-श्रव्य सुविधा का उपयोग करने की अनुमति दी जाती है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है।

इन शर्तों में से किसी भी शर्त का उल्लंघन या हनन किए जाने पर समझौते के उल्लंघन, कदाचार और/अथवा सदन के विशेषाधिकार के हनन से संबंधित संगत उपबंधों के अन्तर्गत कार्रवाई की जा सकती है:

लोक सभा सचिवालय निम्नलिखित बातें सुनिश्चित करता है:

(i) विक्रय के लिए चयनित टेपों में कोई मानहानिकारक सामग्री अथवा कानून के अन्तर्गत कार्यवाही की जाने योग्य कोई अन्य सामग्री न हो।

(ii) जहां तक व्यवहार्य हो, रिकार्ड की गई सामग्री मुद्रित सामग्री के अनुरूप ही हो तथा उसमें माननीय अध्यक्ष/उपाध्यक्ष/सभापति द्वारा कार्यवाही से निकाले गए अंशों को सम्मिलित न किया गया हो।

(iii) रिकार्ड की गई टेपों के आरम्भ में सदन की कार्यवाही की तारीख का उल्लेख किया जाता है जिससे कि उन टेपों को संविधान के अनुच्छेद 105 (2) के अन्तर्गत अधिप्रमाणित किए जाने में सहायता मिल सके।

अध्याय 47

अन्तरसंसदीय संबंध और आदान-प्रदान

संसदों के बीच संबंधों की स्थापना और विकास राष्ट्रीय संसदों के नियमित कार्यकलापों का एक भाग है। हालाँकि अन्तरसंसदीय संबंध संवर्धन कई वर्षों से संसद सदस्यों के कार्य का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है, फिर भी हाल में वैश्विक परिस्थिति में राष्ट्रों की अंतर-निर्भरता के कारण इसे एक नया बल मिला है। यह समीचीन है कि सांसद विश्व के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का सामना करने तथा अपने देश और अन्य देशों में शांति और समृद्धि लाने के लिए इसे एक अवसर में परिणत करने तथा लोकतंत्र की रक्षा करने हेतु मिल-जुल कर कार्य करें। अतः, संसार के विभिन्न भागों के सांसदों के पास एक ऐसा मंच है, जहां वे इकट्ठे हो सकते हैं और अपनी समान समस्याओं का समाधान ढूंढ सकते हैं और जहां न केवल नयी और पुरानी संसदों के बीच बल्कि विभिन्न लोकतंत्रीय प्रणालियों के अंतर्गत कार्य करने वाले सांसदों के बीच अभिनव विचारों का प्रादुर्भाव और आदान-प्रदान हो सकता है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी समस्याओं पर सरकारों के बीच होने वाले सम्मेलनों में विचार किया जाता है, परन्तु यह विचार-विमर्श इतने अबाध और खुले तौर पर नहीं होता जैसा कि विधायकों के किसी सम्मेलन में संभव है।

अतः, अंतरसंसदीय संबंधों का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि आज सारी दुनिया के सामने बहुत सी विकट समस्याएं हैं। संभव है कि जो समस्याएं आज एक संसद के सामने हैं, कल उनका सामना किसी दूसरी संसद को करना पड़े। इसलिए यह आवश्यक है कि विश्व की विभिन्न संसदों के बीच सम्पर्क बने। भारत यह सम्पर्क विदेशों की संसदों के साथ प्रतिनिधिमण्डल तथा सदभावना शिष्टमण्डलों के आदान-प्रदान, पत्र-व्यवहार और दस्तावेजों आदि के आदान-प्रदान के माध्यम से बनाए हुए हैं। ऐसा भारतीय संसदीय ग्रुप के माध्यम से होता है। यह ग्रुप अंतरसंसदीय संघ के राष्ट्रीय ग्रुप के रूप में और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की भारतीय शाखा दोनों के रूप में भी काम करता है।[1]

---

1. अंतरसंसदीय संघ का मुख्यालय जिनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में है, राष्ट्रमंडल संसदीय संघ का मुख्यालय लंदन में है। अन्तरसंसदीय संघ संप्रभु देशों की संसदों का एक राष्ट्रीय संगठन है। इसका लक्ष्य शांति और सहयोग हेतु कार्य करना, प्रतिनिधि संस्थाओं की सुदृढ़ स्थापना हेतु कार्य करना, संसदों और संसद सदस्यों के बीच संपर्क और सहयोग बढ़ाना, अन्तर्राष्ट्रीय हितों के प्रश्न पर विचार करना, मानवाधिकारों को प्रोत्साहन देना तथा प्रतिनिधि संस्थाओं को सशक्त बनाना है। यह संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों को समर्थन देता है तथा समान आदर्श से प्रेरित अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग करता है। अंतरसंसदीय संघ उन संसदीय ग्रुपों की संस्था है, जो विभिन्न देशों की संसदों में इस उद्देश्य के लिए बनाये जाते हैं कि विभिन्न देशों की संसदों के सदस्यों के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क बढ़ाया जाए। राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ उन

भारतीय संसदीय ग्रुप

संविधान सभा (विधायी) द्वारा 16 अगस्त, 1948 को स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसरण में वर्ष 1949 में एक स्वायत्त निकाय के रूप में भारतीय संसदीय ग्रुप का गठन हुआ।

केवल संसद सदस्य ही भारतीय संसदीय ग्रुप के सदस्य बन सकते हैं। संसद या अन्त:कालीन संसद के भूतपूर्व सदस्य सह-सदस्य बन सकते हैं और उन्हें सीमित अधिकार प्राप्त हैं।[2] भारतीय संसदीय ग्रुप द्विपक्षीय संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए संसद में अन्य देशों के साथ

शाखाओं को मिलाकर बना संघ है जो संसदीय लोकतंत्र वाले राष्ट्रमंडल देशों के विधानमंडलों में बनायी गयी हैं। इसकी शाखा बनने के लिए उसका एक विधायी निकाय होना आवश्यक है अत: राष्ट्रीय और राज्य अथवा प्रांतीय संसदें और आश्रित क्षेत्रों के विधानमंडल इसके सदस्य हो सकते हैं।

अंतरसंसदीय संघ सम्मेलन वर्ष में दो बार आयोजित किये जाते हैं। पहला सम्मेलन वर्ष के पूर्वार्ध में एक सदस्य देश द्वारा आयोजित किया जाता है और यह सामान्यत: पांच कार्य दिवसों तक चलता है। दूसरा सम्मेलन यदि अंतरसंसदीय संघ का शासी निकाय कुछ और निर्णय नहीं लेता तो वर्ष के उत्तरार्ध में जिनेवा में आयोजित किया जाता है और इसमें सामान्यत: तीन कार्यदिवस होते हैं। अप्रैल, 2013 तक 128 सम्मेलन हो चुके हैं भारत ने नई दिल्ली में नवम्बर, 1969 में 57वां तथा अप्रैल, 1993 में 89वां सम्मेलन आयोजित किया था। इसके अतिरिक्त, भारतीय ग्रुप ने भारतीय संसदीय ग्रुप और अंतरसंसदीय संघ के संयुक्त तत्वावधान में फरवरी, 1997 में नई दिल्ली में 'राजनीति में पुरुषों और महिलाओं की सहभागिता की ओर' एशियाई संसदो हेतु विधान से लेकर प्रभावी प्रर्वतन तक महिलाओं और बालिकाओं के विरुद्ध हिंसा का निवारण और कार्रवाई के बारे में नई दिल्ली में सितम्बर, 2011 और तथा नई दिल्ली में ही अक्तूबर, 2012 में लिंग संवेदी संसदों के बारे में संसदों की महिला अध्यक्षों की सातवीं बैठक पर विशिष्ट आईपीयू सम्मेलनों का आयोजन किया था।

श्री गुरदयाल सिंह ढिल्लों और श्रीमती नज़मा हेपतुल्ला भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए क्रमश: 1973-1976 और 1992-2002 की अवधि तक अंतरसंसदीय संघ के अध्यक्ष थे।

इससे पूर्व राष्ट्रमंडल संसदीय संघ के पूर्ण सम्मेलन राष्ट्रमंडल के विभिन्न देशों की राजधानियों में दो वर्ष में एक बार आयोजित किए जाते थे, परन्तु 1961 से यह वर्ष में एक बार आयोजित किए जाते हैं। वर्ष 1948 से अब तक 58 सम्मेलन आयोजित किए जा चुके हैं। भारत ने नई दिल्ली में 1957, 1975, 1991 तथा 2007 में क्रमश: पांचवां, इक्कीसवां, सैंतीसवां तथा तिरेपनवां सम्मेलन आयोजित किया था।

2. प्रत्येक सदस्य (सह-सदस्य सहित) द्वारा अंतरसंसदीय संघ की आजीवन सदस्यता के लिए निर्धारित अभिदान का भुगतान किया जाना अपेक्षित होता है।

अंतरसंसदीय संघ या राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की बैठकों या सम्मेलनों में सह-सदस्यों को प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं है और न उन्हें राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की कुछ शाखाओं से सामान्य अथवा आजीवन सदस्य को दी जाने वाली यात्रा संबंधी रियायतें मिलती हैं।

संसदीय मैत्री समूह का गठन करता है। प्रत्येक मैत्री समूह में संसद के कम से कम बाईस वर्तमान सदस्य (लोक सभा से 15 और राज्य सभा से 7) लोक सभा तथा राज्य सभा में दलों की संख्या के अनुपात में होते हैं। इस समूह का उद्देश्य व लक्ष्य विभिन्न देशों के बीच राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संपर्क स्थापित करना तथा संसदीय कार्यकलापों से संबंधित मुद्दों पर जानकारी तथा अनुभवों का आदान-प्रदान करने में सहायता करना है[3]। भारतीय संसदीय ग्रुप के सारे मामलों का प्रबंध तथा नियंत्रण कार्यकारिणी समिति के हाथ में है, जिसमें एक अध्यक्ष, दो उपाध्यक्ष, एक कोषाध्यक्ष और 16 सदस्य होते हैं। कार्यकारिणी समिति की बैठकों में कुछ सदस्य/भूतपूर्व सदस्य स्थायी विशेष आमंत्रिती के रूप में नामनिर्दिष्ट भी किए जाते हैं। लोक सभा अध्यक्ष इस भारतीय संसदीय ग्रुप और कार्यकारिणी समिति का पदेन अध्यक्ष होता है। अंतर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार, लोक सभा के उपाध्यक्ष और राज्य सभा के उपसभापति समूह के पदेन उपाध्यक्ष होते हैं। कोषाध्यक्ष तथा कार्यकारी समिति के अन्य सदस्यों को आम सभा में समूह के आजीवन सदस्यों में से चुना जाता है।[4] लोक सभा का महासचिव इस भारतीय संसदीय ग्रुप और इसकी कार्यकारिणी समिति के पदेन महासचिव के रूप में कार्य करता है।

कार्यकारिणी समिति की बैठकें आवश्यकतानुसार समय-समय पर होती हैं।

---

3. प्रत्येक मैत्री समूह के मुखिया एक प्रधान तथा दो उप-प्रधान (एक लोक सभा से तथा दूसरा राज्य सभा से) होते हैं, जिनकी नियुक्ति अध्यक्ष, लोक सभा द्वारा संबंधित समूह के सदस्यों में से की जाती है। 31.12.2013 की स्थिति के अनुसार संसदीय मैत्री समूह:

   1. अफगानिस्तान, 2. अल्जीरिया, 3. ऑस्ट्रेलिया, 4. अजरबैजान, 5. बहरीन, 6. बांग्लादेश, 7. बेलारूस, 8. बेस्निया और हर्जेगोविना, 9. बोत्सवाना, 10. बुल्गारिया, 11. कनाड़ा, 12. चिली, 13. चीन, 14. क्रोएशिया, 15. क्यूबा, 16. साइप्रस, 17. चेक गणराज्य, 18. एस्टोनिया, 19. यूरोपीय संसद, 20. फिनलैंड, 21. फ्रांस, 22. जॉर्जिया, 23. जर्मनी, 24. घाना, 25. ग्रीस, 26. हंगरी, 27. इंडोनेशिया, 28. ईरान, 29. इराक, 30. इजरायल, 31. जापान, 32. जॉर्डन, 33. कजाखस्तान, 34. कुवैत, 35. लाओडीपीआर, 36. लातविया, 37. लेबनान, 38. मलेशिया, 39. मालदीव, 40. मैक्सिकों, 41. मंगोलिया, 42. मोरक्को, 43. नेपाल, 44. पाकिस्तान, 45. पनामा, 46. पेरू, 47. फिलीपींस, 48. पोलैंड, 49. पुर्तगाल, 50. कोरिया गणराज्य, 51. रोमनिया, 52. रूसी संघ, 53. सऊदी अरब, 54. स्लोवाक गणराज्य, 55. स्पेन, 56. श्रीलंका, 57. स्वीडन, 58. त्रिनीदाद और टोबैगो, 59. ट्यूनीशिया, 60, तुर्की, 61. यूक्रेन, 62. युनाइटेड किंगडम, 63. संयुक्त राज्य अमरीका, 64. वेनेजुएला, 65. वियतनाम, 66. यमन, 67. भूटान, 68, ओमान, 69. थाईलैंड, 70. उरुग्वे, 71. मॉरीशस, 72. कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य, 73. मिस्र, 74. स्लोवेनिया, 75. सिंगापुर, 76. इथोपिया, 77. लिथुआनिया, 78. म्यांमार, 79. युगांडा।

4. कोषाध्यक्ष एवं कार्यकारी समिति के अन्य सदस्यों का चुनाव: अन्तरसंसदीय समूह की वार्षिक आय सभा में आम सभा लोकसभा अध्यक्ष (समूह का अध्यक्ष को कोषाध्यक्ष तथा सदस्यों को नामित करने के लिए अधिकृत कर देती है।

भारतीय संसदीय ग्रुप की वार्षिक सामान्य बैठक प्रत्येक वर्ष संसद के सत्र के दौरान की जाती है, तथापि, ग्रुप का अध्यक्ष विशेष सामान्य बैठक बुला सकता है, अगर इस हेतु ग्रुप के कम से कम 20 सदस्य लिख कर ऐसी मांग करें।

अन्य संसदों के सदस्यों के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिए, संसद के सद्भावना मिशन और प्रतिनिधिमंडल विदेशों में भेजे जाते हैं और विदेशों से आने वाले ऐसे शिष्टमंडलों का ग्रुप की ओर से स्वागत किया जाता है।[5] ग्रुप द्वारा अंतरसंसदीय संघ और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ के सम्मेलनों में संसदीय प्रतिनिधिमण्डल भेजे जाते हैं जहां पर विभिन्न देशों की संसदों के समक्ष आने वाले लोक महत्व के विभिन्न प्रश्नों पर चर्चा की जाती है।

भारतीय संसदीय ग्रुप के निर्णयानुसार वर्ष 1995 में 'उत्कृष्ट सांसद पुरस्कार' की शुरुआत की गयी थी जो लोक सभा अध्यक्ष, राज्य सभा उपाध्यक्ष, संसद के दोनों सदनों में से एक-एक वरिष्ठ सदस्य और एक वरिष्ठ पत्रकार से मिलकर बनी एक पुरस्कार समिति द्वारा चुने गये सर्वाधिक उत्कृष्ट सांसद को प्रत्येक वर्ष प्रदान किया जाता है। अब तक पुरस्कार पाने वालो में रहे अरुण जेटली, (2010), डॉ॰ कर्ण सिंह, (2011) और श्री शरद यादव, (2012) श्री चन्द्रशेखर (1995), श्री सोमनाथ चटर्जी (1996), श्री प्रणब मुखर्जी (1997), श्री जयपाल रेड्डी (1998), श्री एल.के. आडवाणी (1999), श्री अर्जुन सिंह (2000), श्री जसवंत सिंह (2001), डा. मनमोहन सिंह (2002), श्री शरद पवार (2003), श्रीमती सुषमा स्वराज (2004), श्री पी. चिदम्बरम (2005), श्री मणिशंकर अय्यर (2006), श्री प्रियरंजन दास मुंशी, (2007) मनमोहन सिंह, (2008) और डॉ. मुरली मनोहर जोशी, (2009).

राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ शाखाओं के लिए संसदीय पद्धति और प्रक्रिया संबंधी विचार-गोष्ठियां

राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ की भारत शाखा की कार्यकारिणी समिति के निर्णय के अनुसरण में, राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्रों में राष्ट्रमंडल संसदीय संघ शाखाओं के लिए संसदीय पद्धति और प्रक्रिया संबंधी चार क्षेत्रीय विचारगोष्ठी आयोजित की गई थी। इनमें से तीन विचारगोष्ठियां नई दिल्ली में क्रमशः अक्तूबर, 1980; जनवरी, 1982 और जनवरी, 1984 में आयोजित की गई थीं। दिसम्बर, 1986 में बेंगलूरु में

---

5. विदेशी संसदों के पीठासीन अधिकारियों से उनके देश में दौरे के निमंत्रण विदेश मंत्रालय के माध्यम से लोक सभा के अध्यक्ष तथा राज्य सभा के सभापति को प्राप्त होते हैं। अध्यक्ष, विदेश मंत्री तथा राज्य सभा के सभापति के परामर्श से यह फैसला करता है कि उस निमंत्रण को स्वीकार किया जाये या नहीं।

   किसी दूसरे देश के संसदीय प्रतिनिधिमण्डलों को भारत आने के लिए आमंत्रित करने का प्रस्ताव सबसे पहले विदेश मंत्रालय द्वारा सचिवालय को दिया जाता है। उपयुक्त मामलों में अध्यक्ष स्वयं ऐसा प्रस्ताव कर सकता है।

   ऐसे दौरे का ब्यौरा—कि कितने प्रतिनिधि होंगे, दौरे की अवधि क्या होगी आदि का निर्णय नई दिल्ली में उस देश के राजदूतावास और उस देश में भारतीय राजदूतावास के परामर्श से किया जाता है।

एक विचारगोष्ठी आयोजित की गयी थी। गत तीन विचारगोष्ठियों में एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ्रीका क्षेत्रों की राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की शाखाओं के प्रतिभागियों ने भाग लिया था। इन विचारगोष्ठियों में शामिल होने वाले सदस्यों की संख्या एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ्रीका क्षेत्रों में प्रत्येक राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की मुख्य शाखा से प्रत्येक से दो सदस्यों तक सीमित थी। इसके अलावा, राज्य शाखाओं वाले देश अपनी चार राज्य शाखाओं में से एक-एक प्रतिनिधि भेजें। भारत में राज्य शाखाओं से दो-दो प्रतिनिधि और संघ राज्य क्षेत्र विधानमंडलों से एक-एक प्रतिनिधि भेजने का भी अनुरोध किया जाता है। राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ की भारत शाखा की कार्यकारिणी समिति द्वारा किसी विचारगोष्ठी में चर्चा के लिए विषयों का चयन किया गया था। प्रत्येक विषय पर मुख्य भाषण के बाद चर्चा की जाती है।

विचारगोष्ठियों का उद्देश्य संसदविदों के बीच सम्पर्क को बढ़ावा देना, संसदीय प्रणाली तथा राष्ट्रमंडल देशों के बीच मैत्री-संबंधों को सुदृढ़ करना है।

वार्षिक राष्ट्रमंडल संसदीय संघ

राष्ट्रमंडल संसदीय संघ एक वार्षिक राष्ट्रमंडल संसदीय विचारगोष्ठी का आयोजन विभिन्न शाखाओं के साथ मिलकर क्षेत्रीय आवर्तन के आधार पर करता है। इस विचारगोष्ठी का आयोजन वर्ष 1989 से संयुक्त रूप से किया जा रहा है। वार्षिक राष्ट्रमंडल संसदीय विचारगोष्ठी सामान्यतया संसदीय पद्धति और प्रक्रिया पर केन्द्रित रहती है। भारत में राष्ट्रमंडल संसदीय संघ, लंदन के समय से अपने यहां तीन वार्षिक राष्ट्रमंडल संसदीय विचारगोष्ठियों का आयोजन किया है। छठी राष्ट्रमंडल संसदीय विचार गोष्ठी भारतीय संसदीय ग्रुप और राष्ट्रमंडल संसदीय संघ के संयुक्त तत्वावधान में 17 से 25 जनवरी, 1994 के मध्य नई दिल्ली में आयोजित की गई थी। चौदहवीं राष्ट्रमंडल संसदीय विचारगोष्ठी का आयोजन अक्तूबर, 2002 में आन्ध्र प्रदेश राष्ट्रमंडल संसदीय शाखा में हैदराबाद किया। भारत संघ राष्ट्रमंडल संसदीय संघ ने 24 नवम्बर से 29 नवम्बर के दौरान नई दिल्ली में बाईसवीं वार्षिक राष्ट्रमंडल संसदीय संघ विचार गोष्ठी आयोजित की थी और इसमें सदस्य राष्ट्रमंडल देशों के 21 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। डॉ॰ विलियम एफ.शिजा महासचिव, राष्ट्रमंडल संसदीय संघ, भारतीय संसद के सदस्यों और राज्य राष्ट्रमंडल संसदीय संघ शाखाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।

भारत क्षेत्र विचारगोष्ठी

भारत क्षेत्र के राष्ट्रमंडल संसदीय संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर 8-9 मार्च, 2013 को एक राष्ट्रमंडल महिला सांसद विचारगोष्ठी का आयोजन किया था। विचार गोष्ठी का विषय लैंगिक न्याय और जबावदेह प्रशासन था। भारत क्षेत्र की राष्ट्रमंडल संसदीय संघ की शाखाओं के 38 प्रतिनिधियों/राष्टमंडल महिला सांसदों ने इसमें भाग लिया। इस विचारगोष्ठी में जिन दो विषयों पर चर्चा की गई वे थे (एक) लैंगिक और आपराधिक न्याय प्रणाली: समाज में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों को समझने की चुनौती और (दो) महिलाओं के बीच कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए विशेष कार्यक्रम की आवश्यकता।

राष्ट्रमंडल संसदों के अध्यक्षों और पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन

वर्ष 1966 में ओटावा में आयोजित की गई राष्ट्रमण्डल संसदीय संघ की अनौपचारिक बैठक में अध्यक्षों द्वारा लिये गये निर्णय के परिणामस्वरूप 8 से 12 सितम्बर, 1969 तक ओटावा और टोरंटो में राष्ट्रमंडल संसदों के अध्यक्षों और पीठासीन अधिकारियों का प्रथम सम्मेलन आयोजित किया गया था। अब तक ऐसे बाईस[6] सम्मेलन आयोजित किए गए हैं। इनमें से तीन सम्मेलन वर्ष 1970-71 में दूसरा और वर्ष 1986 में आठवां और वर्ष, 2010 में 20वाँ नई दिल्ली में आयोजित हुए।

सदस्यता

राष्ट्रमंडल के संप्रभु राष्ट्रों की संसदों के अध्यक्ष और पीठासीन अधिकारी ही इस सम्मेलन के सदस्य हो सकते हैं। आयोजक संसद को पूर्व सूचना देकर उप पीठासीन अधिकारी अपनी संसद के अध्यक्ष अथवा पीठासीन अधिकारी के स्थान पर सदस्य के रूप में सम्मेलन में भाग ले सकता है और ऐसे सदस्य को सम्मेलन के सदस्य का दर्जा प्राप्त होगा।

आयोजक संसद के निचले सदन का अध्यक्ष सम्मेलन का सभापति और निचले सदन का 'क्लर्क' अथवा सचिव सम्मेलन का महासचिव होता है। सम्मेलन द्वारा दो उप-सभापति चुने जाते हैं। उप-सभापति हेतु नामांकनों का सम्मेलन में प्रस्तावित एवं समर्थन किया जाता है। यदि दो से अधिक प्रत्याशियों का नामांकन होता है तो पदों हेतु चुनाव किए जाते हैं।

---

6. पहला सम्मेलन 8 से 12 सितम्बर, 1969 तक ओटावा और टोरंटो (कनाडा) में आयोजित किया गया था। दूसरा सम्मेलन 28 दिसम्बर, 1970 से 1 जनवरी, 1971 तक नई दिल्ली (भारत) में आयोजित किया गया। तीसरा सम्मेलन 24 से 28 सितम्बर, 1973 तक लुसाका (जाम्बिया) में आयोजित किया गया। चौथा सम्मेलन 7 से 10 सितम्बर, 1976 तक लन्दन (ब्रिटेन) में आयोजित किया गया। पांचवां सम्मेलन 28 अगस्त से 1 सितम्बर, 1978 तक कैनबरा (आस्ट्रेलिया) में आयोजित किया गया। छठा सम्मेलन 23 से 25 अप्रैल, 1981 तक ओटावा (कनाडा) में आयोजित किया गया। सातवां सम्मेलन 9 से 11 जनवरी, 1984 तक वैलिंगटन (न्यूजीलैण्ड) में आयोजित किया गया। आठवां सम्मेलन 6 से 8 जनवरी, 1986 तक नई दिल्ली (भारत) में आयोजित किया गया। नौवां सम्मेलन 20 से 22 जुलाई, 1988 तक लंदन (ब्रिटेन) में आयोजित किया गया। दसवां सम्मेलन 8 से 12 जनवरी, 1990 तक हरारे (जिम्बाब्वे) में आयोजित किया गया। ग्यारहवां सम्मेलन जनवरी, 1992 में किंगस्टन, जमैका में आयोजित किया गया। बारहवां सम्मेलन 3 से 7 जनवरी, 1994 तक पापुआ न्यूगिनी में आयोजित किया गया। तेरहवां सम्मेलन 4 से 9 जनवरी, 1996 तक निकोसिया और पापोस (साइप्रस) में आयोजित किया गया। चौदहवां सम्मेलन 5 से 11 जनवरी, 1998 तक त्रिनिडाड और टोबैगो में आयोजित किया गया। पन्द्रहवां सम्मेलन 5 से 8 जनवरी, 2000 तक कैनबरा, ऑस्ट्रेलिया राजधानी क्षेत्र (ऑस्ट्रेलिया) में आयोजित किया गया। सोलहवां सम्मेलन 8 से 13 जनवरी, 2002 तक कसाने (बोत्स्वाना) में आयोजित किया गया। सत्रहवां सम्मेलन 9 से 12 जनवरी, 2004 तक मोंटेबेलो, क्यूबेक (कनाडा) में आयोजित किया गया। अठारहवां सम्मेलन 3 से 8 जनवरी, 2006 तक नैयरोबियांड मोम्बारा (केन्या) में आयोजित किया गया। उन्नीसवां सम्मेलन 2 से 6 जनवरी, 2008 तक लंदन (युनाइटेड किंगडम) में आयोजित किया गया। बीसवां सम्मेलन 4 से 8 जनवरी 2010 तक नई दिल्ली (भारत) में आयोजित किया गया था। इक्कीसवां सम्मेलन 7 से 12 जनवरी 2012 तक पोर्ट ऑफ स्पेन (त्रिनीदाद और टोबेगो) में आयोजित किया गया। और बाईसवां सम्मेलन 21 से 24 जनवरी 2014 तक वेलिंगटन (न्यूजीलैंड) में आयोजित किया गया।

आयोजक संसद, अपने अध्यक्ष या पीठासीन अधिकारी के विवेक पर किसी भी व्यक्ति को बुला सकता है जो एक पर्यवेक्षक के रूप में सम्मेलन में योगदान कर सकता है।

सम्मेलन में पीठासीन अधिकारियों को आपस में मिलने, एक-दूसरे से अवगत होने और पारस्परिक रुचि के मामलों पर चर्चा करने का अवसर प्राप्त होता है। सम्मेलन बारी-बारी से राष्ट्रमंडल के विभिन्न देशों में आयोजित किया जाता है। सामान्य परम्परा के अनुसार सम्मेलन प्रत्येक दो वर्ष की अवधि के बाद आयोजित किया जाता है और यह तीन दिन तक चलता है।

सम्मेलन कार्य सूची के किसी भी विषय से संबंधित उत्पन्न होने वाले किसी भी मामले को एक तदर्थ समिति के विचारार्थ भेज सकता है। सामान्यत: सम्मेलन तदर्थ समिति के विचारार्थ विषयों और संरचना के बारे में निर्णय करता है। समिति का सभापति सदस्यों में से चुना जाता है। यदि सम्मेलन उचित समझे तो समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा कर सकता है।

स्थायी समिति

नौ क्षेत्रों के पन्द्रह सदस्यों वाली एक स्थायी समिति[7] को सामान्य बैठक में सम्मेलन द्वारा निर्वाचित किया जाता है। समिति में पिछले आयोजक, वर्तमान आयोजक तथा अगले आयोजक सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले तीन पदेन सदस्य होते हैं। आयोजक संसद का अध्यक्ष अथवा पीठासीन अधिकारी इसका सभापति होता है। समिति का कार्यकाल एक सम्मेलन के समाप्त होने से लेकर अगले सम्मेलन की समाप्ति तक होता है। समिति की गणपूर्ति पांच सदस्यों से होती है।

स्थायी समिति की बैठक अगले सम्मेलन की तारीखों और स्थान का निर्णय करने, अगले सम्मेलन में चर्चा के विषयों का प्रस्ताव करने और कार्यसूची के प्रारूप को तैयार करने, सम्मेलन के विचार के लिए नियमों में संशोधन के मसौदे का प्रस्ताव करने और वित्तीय व्यवस्थाओं सहित सम्मेलन के संगठन और संचालन सहित सभी मामलों पर विचार करने के लिए आयोजित की जाती है।

समिति की बैठक सामान्यत: सम्मेलन से पहले आयोजित की जाती है। बैठक में किए गए निर्णय राष्ट्रमंडल संसदों के सभी अध्यक्षों और पीठासीन अधिकारियों को उनकी जानकारी के लिए परिचालित किए जाते हैं।

राष्ट्रमंडल संसदीय संघ का भारत क्षेत्र

राष्ट्रमंडल संसदीय संघ ने राष्ट्रमंडल देशों को नौ क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है। सितंबर, 2004 में एशिया क्षेत्र से पृथक होने के पश्चात् सीपीए का भारत क्षेत्र नौवें क्षेत्र के रूप में अस्तित्व में आया।

क्षेत्र का नियंत्रण एवं प्रबंधन क्षेत्र की कार्यकारी समिति के पास है। कार्यकारी समिति में सभापति और छह सदस्य होते हैं। लोक सभा अध्यक्ष कार्यकारी समिति का पदेन अध्यक्ष होता है।

---

7. नई दिल्ली में 1970 में आयोजित राष्ट्रमंडल अध्यक्षों और पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की सामान्य बैठक में स्थायी समिति गठित करने के लिए नियम स्वीकार किया गया।

सीपीए के भारत क्षेत्र का संविधान नई दिल्ली में 25 सितंबर, 2007 को सीपीए के भारत क्षेत्र की कार्यकारी समिति द्वारा अंगीकार किया गया। सीपीए के भारत क्षेत्र की कार्यकारी समिति द्वारा 20 मार्च, 2005 को गठित सचिवों की समिति ने अपनी बैठक में संविधान का प्रारूप तैयार किया।

सीपीए का भारत क्षेत्र अब तक चार संयुक्त भारत-एशिया क्षेत्र सम्मेलनों का आयोजन कर चुका है। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय सम्मेलन वर्ष 2004, 2005, 2007 और, 2010 में क्रमशः हैदराबाद (आंध्र प्रदेश), नई दिल्ली तथा इस्लामाबाद और रायपुर में आयोजित किए गए।

सितंबर, 2007 में दिल्ली में भारतीय संसद द्वारा आयोजित 53वां राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलन सीपीए के भारत क्षेत्र के तत्वावधान में आयोजित किया गया था। सम्मेलन में राष्ट्रमंडल देशों के लगभग 800 व्यक्तियों ने भाग लिया, जिसमें वहां की संसदों के अध्यक्षों, पीठासीन अधिकारियों, संसद सदस्यों, पर्यवेक्षकों, उनके पति-पत्नियों तथा सहयोगियों ने भाग लिया। भारतीय संसद ने चौथी बार राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलन का आयोजन किया था। इससे पूर्व, नई दिल्ली में 1957, 1975 तथा 1991 में इस सम्मेलन का आयोजन किया जा चुका है।

राष्ट्रमंडल महिला सांसदों का भारत क्षेत्र

राष्ट्रमंडल महिला सांसद (सी.डब्ल्यू.पी.) महिला सांसदों का एक ग्रुप है जो सीपीए का अंग है और यह महिला सांसदों को संसद में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के तरीकों पर विचार करने का अवसर प्रदान करता है और सीपीए के सभी कार्यकलापों और कार्यक्रमों में लैंगिक मुद्दों को प्रमुखता दिए जाने पर कार्य करता है। सी.डब्ल्यू.पी. (अंतर्राष्ट्रीय) के तर्ज पर भारत क्षेत्र सी.डब्ल्यू.पी. का गठन किया गया, एक संचालन समिति भी गठित की गई है, समिति में 6 महिला सदस्य है। इसमें लोक सभा और राज्य सभा से एक-एक सदस्य चार महिला विधायक जो चार क्षेत्रों जिनमें राज्य शाखाओं को रखा गया है का प्रतिनिधित्व करती हैं। सीपीए भारत क्षेत्र का सीडब्ल्यूपी (अंतर्राष्ट्रीय) संचालन समिति का प्रतिनिधि समिति का पदेन सभापति होता है।

8 और 9 मार्च, 1993 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर ''जेन्डर जस्टिस एन्ड रिस्पोन्सिव गवर्नेंस'' पर दो दिवसीय जी.डब्ल्यू.पी. भारत क्षेत्र सेमीनार का आयोजन किया गया था।

सार्क देशों के अध्यक्षों और सांसदों का संघ

साउथ एशियन एसोसिएशन फॉर रीजनल को-ऑपरेशन (सार्क) के अनुवर्ती शिखर सम्मेलनों के निर्णय के अनुसरण में, जिसमें लोगों के परस्पर सहयोग पर अधिक बल दिया गया था, सार्क देशों (बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका) की संसदों के अध्यक्षों ने 1992 में काठमांडू में हुई एक बैठक में सार्क देशों के अध्यक्षों और सांसदों के संघ का गठन करने का संकल्प किया। जिसके मुख्यालय को काठमांडु रखा गया।

संघ के चार्टर में अन्य बातों के साथ-साथ सदस्य संसदों के बीच संबंधों को बढ़ाने, समन्वय स्थापित करने और अनुभवों का आदान-प्रदान करने तथा सार्क के कार्य में सहयोग करने और इसके सांसदों के बीच इसके सिद्धांतों और गतिविधियों के संबंध में ज्ञान बढ़ाने; संसदीय कार्य प्रणाली और प्रक्रिया के संबंध में विचारों और सूचनाओं का आदान-प्रदान करने के लिए तथा सुझाव देने के लिए मंच प्रदान करने और आम हित के मामलों के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में सहयोग करने का प्रयास किया गया है।

सार्क देशों के अध्यक्षों और सांसदों के संघ के पहले सम्मेलन का आयोजन भारत की संसद द्वारा दिनांक 22 से 24 जुलाई, 1995 में नई दिल्ली में किया गया था।

दूसरा सम्मेलन इस्लामाबाद, पाकिस्तान में 25 से 28 अक्तूबर, 1997 में हुआ था।

तीसरा सम्मेलन ढाका, बांग्लादेश में 18 से 22 मार्च, 1999 में हुआ था।

चौथा सम्मेलन कोलम्बो, श्रीलंका में 28 मार्च से 3 अप्रैल, 2003 में हुआ था।

पांचवा सम्मेलन नई दिल्ली, भारत में 9 से 12 जुलाई, 2011 में हुआ था।

छठा सम्मेलन इस्लामाबाद, पाकिस्तान मे 4 से 6 नवंबर, 2012 में हुआ था।

संसद तथा राज्य विधानमण्डलों के बीच संबंध

संविधान के अंतर्गत संसद या राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन को यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपनी प्रक्रिया के विनियमन तथा कार्य-संचालन के लिए नियम बना सकता है।[8] सभी विधानमंडलों ने अपने कार्य संचालन के लिए लगभग एक जैसे प्रक्रिया नियम बनाये हैं, सिवाय कुछ मामूली परिवर्तनों के, जोकि उनकी स्थानीय आवश्यकताओं के कारण आवश्यक हैं। यह एकरूपता इस कारण आयी है कि संसद तथा राज्य विधानमंडलों के बीच बराबर सम्पर्क रहा है। यह सम्पर्क, सम्मेलनों, विचार-विमर्श तथा पत्र-व्यवहार आदि के माध्यम से रखा गया है।[9]

विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों और सचिवों तथा संसदीय समितियों के सभापतियों द्वारा समय-समय पर सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं। पीठासीन अधिकारियों और सचिवों के सम्मेलनों की कार्य-सूची पीठासीन अधिकारियों के अखिल भारतीय सम्मेलन की स्थाई समिति द्वारा निर्धारित की जाती है। सम्मेलन की कार्य सूची का निर्धारण लोक सभा के महासचिव और सम्मेलन के सभापति द्वारा राज्य सभा के महासचिव जो सम्मेलन के सह-सभापति हैं, की सहमति से होता है। संसदीय समितियों के सभापतियों के सम्मेलन की

---

8. अनुच्छेद 118 और 208 ।

9. *देखिए*—सुभाष सी. काश्यप; पार्लियामेंट एण्ड स्टेट लेजिस्लेचर्स—ए लुक इन्टु देअर पार्टिसिपेटरी रिलेशनशिप, द सिल्वर जुबली सोविनियर ऑफ द हिमाचल प्रदेश स्टेट लेजिस्लेटिव असेम्बली 1988, पृ. 16-19 ।

कार्य-सूची संबंधित सम्मेलन के सभापति के अनुमोदन से सचिवालय द्वारा तैयार की जाती है। इस संबंध में राज्य विधानमण्डल के सचिवालयों से भी परामर्श किया जाता है। ये सम्मेलन सार्वजनिक नहीं होते हैं, सिवाय इसके कि समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों और कुछ सम्मानित व्यक्तियों कों पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन के आरंभिक सत्र में आने का निमंत्रण दिया जाता है। इन सम्मेलनों में कोई मतदान नहीं होता और नियमानुसार कोई औपचारिक संकल्प पास नहीं किए जाते। परन्तु किसी महत्वपूर्ण विषय पर सम्मेलन द्वारा संकल्प स्वीकार किया जा सकता है और सभी संबंधित व्यक्तियों को भेजा जा सकता है।

इन सम्मेलनों की राय सिफारिश स्वरूप होती है। तथा चर्चाओं का बड़ा लाभ होता है, क्योंकि पद्धति और प्रक्रिया के जटिल प्रश्नों का निर्णय करने में इन चर्चाओं से बड़ी जानकारी प्राप्त होती है। इन सम्मेलनों में लिए गए निष्कर्ष गोपनीय माने जाते हैं और सभा में विनिर्णय के समर्थन में उनका हवाला नहीं दिया जाता है और न वे किसी बाहरी प्राधिकारी को बताये जाते हैं।

ऐसे सम्मेलनों की कार्यवाही का शब्दश: अभिलेख रखा जाता है, उसे बाद में छापा जाता है और सभी राज्य विधानमंडलों के सचिवालयों को भेजा जाता है। इसके सचिवालयीय कार्य लोक सभा सचिवालय द्वारा, महासचिव के मार्गनिर्देशन और पर्यवेक्षण में किये जाते हैं।

विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन

पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन का आयोजन उतना ही पुराना है जितनी कि केन्द्रीय विधान सभा। पहला सम्मेलन 14 सितम्बर, 1921 को शिमला में अध्यक्ष फ्रेडरिक व्हाइट की अध्यक्षता में हुआ था। उसके बाद सम्मेलन बहुधा होते रहे, यद्यपि वे नियमित अंतराल पर नहीं हुए परन्तु अब ऐसे सम्मेलन प्रतिवर्ष आयोजित किए जाते हैं। सम्मेलन विचार-विमर्श का बहुत उपयोगी मंच है, जहां सभी अपने अनुभवों का आदान-प्रदान करते हैं और इसमें प्रक्रिया संबंधी समस्याओं का अच्छी तरह से विश्लेषण किया जाता है। सम्मेलन का उद्देश्य यह देखना है कि शासन की संसदीय प्रणाली का विकास उचित ढंग से हो और उस दिशा में उचित परिपाटियों और परम्पराओं का विकास किया जाए तथा संसद और राज्य विधानमंडलों की पद्धति और प्रक्रिया में यथासंभव एकरूपता लायी जाए।

लोक सभा अध्यक्ष, इस सम्मेलन का पदेन सभापति और महासचिव, लोक सभा इसका पदेन सचिव होते हैं। सम्मेलन में जिन विषयों पर चर्चा की जाती है, वे सामान्यत: सभा या उसकी समितियों की कार्यवाही में संबद्ध विभिन्न विषयों की प्रक्रिया से संबंधित होते हैं। सम्मेलन की कार्य-सूची का निर्धारण अखिल भारतीय पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की स्थायी समिति द्वारा किया जाता है।

सम्मेलन विभिन्न राज्यों में होता है[10] और ऐसे समय पर होता है जब संसद या राज्य विधानमण्डल का सत्र न होने वाला हो, जिससे कि सभी पीठासीन अधिकारी इस सम्मेलन में भाग ले सकें। सम्मेलन सामान्यत: वर्ष में एक बार होता है और दो या तीन दिन चलता है।

सम्मेलन किसी महत्वपूर्ण मामले की व्यापक जांच करने के लिए समिति बना सकता है, जो उस पर आगे विचार करने के लिए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। सामान्यत: सम्मेलन विचारार्थ विषय तय कर देता है, परन्तु समिति का गठन तथा उसके संयोजक या सभापति की नियुक्ति सम्मेलन के सभापति पर छोड़ दी जाती है। रिपोर्ट पेश करने के बाद समिति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

विधायी निकायों के सचिवों का सम्मेलन

सचिवों के सम्मेलन[11] का उद्देश्य प्रशासकीय, प्रक्रिया संबंधी और अन्य विषयों पर विचार करना, सारे भारत में विधानमण्डलों में सचिवालयों के संगठन में एकरूपता लाना, पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन द्वारा उसे सौंपे गये किसी विषय पर विचार करना और रिपोर्ट देना और उस सम्मेलन को ऐसे विषयों के संबंध में सिफारिश करना है, जिन पर सम्मेलन द्वारा विचार करने की आवश्यकता है। सम्मेलन की कार्य-सूची का निर्धारण लोक सभा के महासचिव और सम्मेलन के सभापति द्वारा राज्य सभा के महासचिव जो सम्मेलन के सह-सभापति हैं, की सहमति से होता है।

यह सम्मेलन सामान्यत: पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन से एक दिन पहले होता है और पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की तरह इसमें भी मतदान नहीं किया जाता और न ही औपचारिक संकल्प पास किये जाते हैं। चर्चा के अंत में सभापति सारी स्थिति को संक्षेप में बताता है और साथ ही संक्षेप में यह भी बताता है कि किन-किन बातों पर सर्वसम्मत राय प्रकट की गई है। सम्मेलन में लिए गये महत्वपूर्ण निर्णय अलग से कार्यान्वयन के लिए राज्य विधानमण्डलों के सचिवालयों को भेज दिये जाते हैं और सचिवालय उनकी प्रगति पर नजर रखता है।

संसदीय समितियों के सभापतियों का सम्मेलन

संसदीय समितियों के सभापतियों का सम्मेलन "अनौपचारिक बैठकों" जैसा होता है, जिनमें उन समितियों से संबंधित पारस्परिक हित के प्रश्नों पर विचार किया जाता है और पद्धति और प्रक्रिया के अलग-अलग प्रश्नों पर विचारों का आदान-प्रदान होता है, जिससे कि केन्द्र

---

10. 1950 तक सम्मेलन या तो दिल्ली में होता था या शिमला में।
11. भारत में विधायी संस्थाओं के सचिवों का सम्मेलन करने का विचार सबसे पहले अध्यक्ष मावलंकर ने नई दिल्ली में 1950 में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में प्रकट किया था।

तथा राज्यों में ऐसे प्रश्नों पर समान दृष्टिकोण अपनाया जा सके।[12] इन सम्मेलनों का उद्देश्य स्वस्थ संसदीय परिपाटियों का विकास करना है। ये सभी सम्मेलन नयी दिल्ली में संसदीय सौध में होते हैं और लोक सभा की संबंधित संसदीय समिति का सभापति सम्मेलन के सभापति के रूप में कार्य करता है। ऐसे किसी सम्मेलन को बुलाने का निर्णय अध्यक्ष द्वारा संसद तथा राज्य विधानमंडलों की संबद्ध समितियों के सभापतियों की राय जानने के बाद किया जाता है। इन सम्मेलनों में सामान्यतः समितियों के कार्य क्षेत्र और कृत्य, गठन, कार्य-नियमों और सिफारिशों के कार्यान्वयन आदि से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया जाता है।

प्रत्येक सम्मेलन में जो निर्णय किये जाते हैं, यदि सम्मेलन द्वारा ऐसा निर्णय किया जाए तो ये निर्णय राज्यों के विधानमंडलों को उनकी जानकारी तथा कार्यान्वयन के लिए मुद्रित कार्यवाही वृत्तांत भेजने से पहले भेजे जाते हैं।

---

12. अब तक निम्नलिखित सम्मेलन हुए हैं:
    - (i) लोक लेखा समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (अप्रैल-मई, 1955, मार्च, 1959, अप्रैल, 1966, दिसम्बर, 1971, दिसम्बर, 1978, फरवरी, 1983, सितम्बर, 1986 और मार्च, 1977, और जनवरी, 2001)।

      सार्क संसदों में लोक-लेखा समितियों का भी एक सम्मेलन नई दिल्ली में 30 और 31 अगस्त, 1997 को हुआ था।
    - (ii) प्राक्कलन समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (नवम्बर, 1954, अप्रैल, 1958, अप्रैल, 1965, अप्रैल, 1975, दिसम्बर, 1982 और दिसम्बर, 1988 और दिसम्बर, 2002)।
    - (iii) सरकारी उपक्रमों संबंधी समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (मार्च, 1975, अप्रैल, 1982 और दिसम्बर, 2000)।
    - (iv) अधीनस्थ विधान संबंधी समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (अप्रैल, 1960, मार्च, 1975, जुलाई, 1981, नवम्बर, 1986 और अक्तूबर, 2005)।
    - (v) सरकारी आश्वासनों संबंधी समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (मार्च, 1976, अगस्त, 1981, अगस्त, 1987 और अक्तूबर, 2006)।
    - (vi) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (जनवरी, 1976, अप्रैल, 1979, अगस्त, 1983, अप्रैल, 1987 और दिसम्बर, 2001)।
    - (vii) याचिका समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (अप्रैल, 1979, अगस्त, 1986 और नवम्बर, 2002)।
    - (viii) ग्रंथालय समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (नवम्बर, 1976, मार्च, 1983)।
    - (ix) गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (मई, 1982)।
    - (x) विशेषाधिकार समितियों के सभापतियों का सम्मेलन (मार्च, 1992) ।

इन सम्मेलनों के अतिरिक्त राज्य विधानमण्डल के सदस्य संसद में आते हैं, समितियों की बैठकें देखते हैं और अनौपचारिक बातचीत में अध्यक्ष, सभापति, महासचिव और संसद सदस्यों से विचार-विमर्श करते हैं।

राज्य विधानमण्डलों के सचिवालयों से संसदीय पद्धति और प्रक्रिया से संबंधित विषयों पर बहुत से पत्र आते हैं। जब भी किसी राज्य विधानमण्डल को किसी नियम या संविधान के किसी अनुच्छेद या विशेषाधिकार के प्रश्न का निर्वचन करने में कोई कठिनाई होती है, तो यह परामर्श तथा मार्गदर्शन के लिए सचिवालय को पत्र लिखता है। राज्य विधानमण्डलों तथा सचिवालय के बीच इस पत्र-व्यवहार के कारण उन्हें यह जानने में सहायता मिलती है कि एक-दूसरे के सामने क्या समस्याएं हैं तथा उनके समाधान के लिए समान प्रक्रिया कैसे अपनाई जाए।

राज्यों के विधानमण्डल अपने अधिकारियों को सचिवालय के काम के तरीकों से परिचित कराने और संसद की पद्धति और प्रक्रिया की जानकारी दिलाने के लिए प्राय: प्रशिक्षण तथा अध्ययन के लिए लोक सभा सचिवालय भेजते हैं। इन अधिकारियों को सचिवालय की विभिन्न शाखाओं में प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हें कुछेक शाखाओं में नियुक्त करके उनके अधिकारियों के साथ व्यक्तिगत विचार-विमर्श करने का भी अवसर दिया जाता है। सचिवालय के अधिकारियों को भी कई बार राज्य विधानमण्डलों में उनके सचिवालयों का पुनर्गठन करने में सहायता करने के लिए भेजा गया है।

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो

संसद सदस्यों, विधायकों, अधिकारियों और संसदीय लोकतंत्र में अन्य हितधारकों को संसदीय संस्थाओं की विभिन्न शाखाओं, प्रणालियों और प्रक्रियाओं के सुव्यवस्थित अध्ययन और प्रशिक्षण का संस्थागत अवसर प्रदान करने की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जा रही थी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए लोक सभा सचिवालय के एक अभिन्न प्रभाग के रूप में संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरो (बीपीएसटी) की स्थापना 1976 में की गयी थी।

अपने आरंभ से ही बीपीएसटी संसदीय प्रणाली के कार्यकरण में लगे कर्मचारियों को व्यावसायिक जानकारी, विशेषज्ञता तथा प्रशिक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से संसदीय और विधायी क्षेत्रों में विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन कर रहा है।

ब्यूरो की गतिविधियों में संसद सदस्यों और राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम और विचार-गोष्ठियों; संसद सदस्यों के लिए व्याख्यानमाला; प्रो. हिरेन मुखर्जी स्मारक वार्षिक संसदीय व्याख्यान, सामयिक मुद्दों पर गोल मेज चर्चा; संसद और राज्य विधानमंडलों के सचिवालयों के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों; अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारियों और भारत सरकार के वरिष्ठ तथा मध्यवर्ती स्तर के अधिकारियों के लिए परिबोधन पाठ्यक्रमों का आयोजन शामिल है।

ब्यूरो इसके साथ विदेशी संसदीय अधिकारियों के लिए दो अंतरराष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रमों अर्थात् (i) 'विदेशी संसदीय अधिकारियों के लिए संसदीय इन्टर्नशिप कार्यक्रम', और (ii) 'विधायी प्रारूप लेखन में अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम' का भी आयोजन करता है।

इसके अतिरिक्त ब्यूरो विदेशी संसदों के सदस्यों, सरकारी अधिकारियों, विद्वानों, छात्रों और अन्य लोगों के लिए अल्पकालिक अध्ययन दौरों का आयोजन करता है। यह विदेशी सांसदों तथा संसदीय/सरकारी अधिकारियों के लिए संलग्नक (अटैचमेंट) कार्यक्रमों का भी आयोजन करता है। बीपीएसटी को जनवरी, 2008 में आरंभ किये गये 'लोक सभा इन्टर्नशिप कार्यक्रम' को आयोजित करने का भी उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

संसद/राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के लिए प्रबोधन कार्यक्रम

संसद तथा राज्य विधानमंडलों के नवनिर्वाचित सदस्यों को संसदीय प्रक्रिया एवं कार्यसंचालन नियम, अभिसमय, शिष्टाचार और परंपराओं से परिचित कराने के लिए ब्यूरो उनके लिए प्रबोधन कार्यक्रमों का आयोजन करता है। प्रत्येक कार्यक्रम एक सप्ताह का होता है। इन कार्यक्रमों में हमारे लोकतांत्रिक ढांचे में प्रतिनिधि संस्थाओं के रूप में संसद और राज्य विधानमंडलों की संवैधानिक भूमिका और स्थिति की उपयुक्त समझ विकसित करने का प्रयास किया जाता है। यह अपेक्षा की जाती है कि इस कार्यक्रम से संसद सदस्यों को अधिक जानकारी वाली और उपयोगी चर्चाओं के लिए सभा के बहुमूल्य समय का सर्वोत्तम और अति प्रभावी उपयोग करने में सहायता मिलेगी। इस कार्यक्रम में प्रतिष्ठित सांसद, वरिष्ठ संसदीय अधिकारी और संसदीय प्रक्रिया एवं कार्यसंचालन के विभिन्न पहलुओं के विशेषज्ञ, सदस्यों को संबोधित करते हैं।

संसद सदस्यों के लिए व्याख्यानमाला

वर्ष 2005 से बीपीएसटी संसद सदस्यों के लिए सामयिक रुचि वाले विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा व्याख्यान का आयोजन करता है। इन व्याख्यानों से उन्हें चर्चाधीन विषयों की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है और सदस्यों को संबंधित विषय के विशेषज्ञों के साथ अपने विचारों का आदान-प्रदान करने में सहायता मिलती है। इन व्याख्यानों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों, जिनमें विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय निकाय शामिल हैं, के विशेषज्ञों ने संसद सदस्यों के साथ अपने विचारों का आदान-प्रदान किया है।

प्रो. हिरेन मुखर्जी स्मारक वार्षिक संसदीय व्याख्यान

2008 से उत्कृष्ट सांसद प्रो. हिरेन मुखर्जी के सम्मान में लोक सभा द्वारा एक वार्षिक संसदीय व्याख्यान आरंभ किया गया था, पहला व्याख्यान नोबल पुरस्कार विजेता प्रो. अमर्त्य सेन द्वारा " डिमांड्स फॉर सोशल जस्टिस" विषय पर 11 अगस्त, 2008 को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में दिया गया था। नोबल पुरस्कार विजेता और ग्रामीण बैंक ऑफ बांग्लादेश के संस्थापक/ महाप्रबंधक प्रो. मोहम्मद यूनुस ने दूसरा व्याख्यान "सोशल बिजनेस: ए स्टेप टूवर्ड्स क्रिएटिव, ए न्यू इकोनोमिक एण्ड सोशल आर्डर" विषय पर दिया था। तीसरा व्याख्यान प्रो. जगदीश भगवती, कोलंबिया विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र और विधि के प्रोफेसर और

काउंसिल ऑफ फॉरेन रिरेशंस, यू.एस.ए. में अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में वरिष्ठ अध्येता द्वारा "इंडियन रिफाम्लेर्स: येस्टर्डे एण्ड टुडे" विषय पर 2 दिसम्बर, 2010 को दिया गया था। चौथा व्याख्यान महामहिम लियोनचेन जिग्मे वाई. थिन्ले, भूटान के प्रधान मंत्री द्वारा "ग्रोस नेशनल हैप्पीनेस: ए होलिस्टिक पैराडाइम फॉर सस्टेनेबल वेल–बींग" विषय पर 20 दिसम्बर, 2011 को दिया गया था।

संसद/राज्य विधानमंडल के सदस्यों के लिए विचार-गोष्ठियां और कार्यशालाएं

संसद के समक्ष विभिन्न मुद्दों और राष्ट्र के समक्ष अन्य सामयिक मुद्दों पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की संपूर्ण समझ विकसित करने के लिए ब्यूरो संसदीय और सामयिक महत्व के विभिन्न विषयों पर विचार–गोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन करता है ताकि वे ऐसे मुद्दों की संपूर्ण समझ प्राप्त कर सकें।

कंप्यूटर जागरूकता कार्यक्रम

ब्यूरो सदस्यों के लिए कंप्यूटर जागरुकता कार्यक्रमों का समय–समय पर आयोजन करता है ताकि उनके कर्तव्यों जैसे निर्वाचन क्षेत्र प्रबंधन कार्यो, कार्यालय स्वचालित यंत्रों के प्रयोग संबंधी क्रियाकलापों, वैयक्तिक सूचना प्रबंधन आदि के प्रभावी निर्वहन में उनकी सहायता की जा सके। कंप्यूटर जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन लोक सभा सचिवालय के अधिकारियों के साथ–साथ सदस्यों के निजी स्टाफ के लिए भी किया जाता है।

मीडिया कर्मियों हेतु परिचय कार्यक्रम

ब्यूरो संसद की कार्यवाही रिपोर्ट करने वाले मीडिया कर्मियों हेतु समय–समय पर अभिज्ञता कार्यक्रम आयोजित करता है।

विदेशी सांसदों हेतु कार्यक्रम

अनुरोध करने पर ब्यूरो द्वारा विदेशों के पीठासीन अधिकारियों, सांसदों और संसदीय अधिकारियों हेतु परंपरागत संयोजन कार्यक्रम (कस्टमाइज्ड अटैचमेंट प्रोग्राम) तथा अध्ययन दौरे आयोजित किए जाते हैं। ये कार्यक्रम तदर्थ प्रकृति के होते हैं और इस प्रकार से तैयार किए जाते हैं कि दौरे पर आने वाले शिष्टमंडलों की विशेष जरूरतों को पूरा करते हों तथा उन्हें भारत में संसदीय संस्थाओं के कार्यकरण का प्रत्यक्ष ज्ञान उपलब्ध कराते हों।

ब्यूरो भारतीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग (आईटीईसी), विशिष्ट राष्ट्रमंडल अफ्रीकी सहायता योजना (एससीएएपी) तथा कोलम्बो योजना के अंतर्गत आने वाले देशों के संसदीय/सरकारी अधिकारियों के लिए दो अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम अर्थात् संसदीय इन्टर्नशिप कार्यक्रम तथा विधायी प्रारूप लेखन में अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम 1985 से प्रत्येक वर्ष महीनेभर के लिए आयोजित करता है। इनका वित्तपोषण विदेश मंत्रालय और वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है। ये कार्यक्रम उन व्यक्तियों के लिए भी उपलब्ध हैं, जिनके प्रायोजक प्राधिकारी अथवा स्वयं प्रतिभागी खाने–पीने, ठहरने और यात्रा आदि का खर्च उठाने को तैयार हैं।

संसदीय इन्टर्नशिप कार्यक्रम का उद्देश्य प्रतिभागियों द्वारा अपने विधानमंडलों में अपने अनुभवों के संदर्भ में विचारों का आदान-प्रदान करने तथा भारतीय परिवेश, परंपरा, संस्कृति और भारत में संसदीय संस्थाओं के कार्यकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना है। विधायी प्रारूप लेखन में अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य संसदीय अधिकारियों को विधान प्रारूपण हेतु अपेक्षित मूलभूत अवधारणाओं दक्षता और तकनीकों से अवगत कराया जाए,

2013 में ब्यूरो द्वारा अरबी और स्पेनी भाषाई देशों के संसदीय अधिकारियों के लिए अरबी और स्पेनी भाषा में दो विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए थे।

अखिल भारतीय और केंद्रीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारियों तथा सरकारी अधिकारियों हेतु परिबोधन पाठ्यक्रम

संसदीय अध्ययन और प्रशिक्षण ब्यूरो (बीपीएसटी), अखिल भारतीय और केंद्रीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारियों तथा भारत सरकार के वरिष्ठ एवं मध्यवर्ती स्तर के अधिकारियों के लिए संसदीय प्रक्रिया और कार्य संचालन में नियमित रूप से 3 से 5 दिन के परिबोधन कार्यक्रमों का आयोजन करता है। ये पाठ्यक्रम संसदीय संस्थाओं के परिवेश, संस्कृति और परंपराओं के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी मुहैया कराते हैं ताकि वे संसदीय प्रणाली के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में अपनी भूमिका व स्थान को बेहतर तरीके से समझने में सक्षम हो सकें और इस प्रकार संसद से जुड़े अपने कार्यों को बेहतर समझ के साथ संपन्न कर सकें।

संसद और राज्य विधानमंडलों के अधिकारियों हेतु पाठ्यक्रम

ब्यूरो संसद के सचिवालयों और राज्य विधानमंडलों में कार्यरत अधिकारियों की कार्यात्मक दक्षता को और प्रखर बनाने हेतु आधार पाठ्यक्रम, पुनश्चर्या पाठ्यक्रम और विशिष्ट पाठ्यक्रम आयोजित करता है। ये पाठ्यक्रम संसदीय अधिकारियों के लिए आवश्यक समुचित प्रवृति और गुणों यथा सेवा के प्रति समर्पण, सुस्पष्टता व तत्परता, दृष्टिकोण की वस्तुपरकता, जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति अत्यंत आदर-भाव और समुचित शिष्टाचार को विकसित करते हैं। ब्यूरो सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों हेतु देश और विदेश के विभिन्न प्रशिक्षण संस्थाओं में आवश्यकतानुसार कार्यक्रमों और विदेशी संसदों का अध्ययन दौरे का भी आयोजन करता है।

2013 से ब्यूरो केन्द्रीय/राज्य सरकारों और भारत के विधानमंडलों हेतु दो सप्ताह का विधायी प्रारूप लेखन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर रहा है।

अध्ययन दौरे

ब्यूरो सरकार और विधानमंडलों के सचिवालयों के अधिकारियों तथा भारत और विदेशों के शिक्षाविद् और विद्यार्थियों के लिए संक्षिप्त अध्ययन दौरों का आयोजन करता है। ऐसे अध्ययन दौरों के दौरान प्रतिभागियों को संसदीय संस्थाओं के महत्वपूर्ण पहलुओं से अच्छी तरह अवगत कराया जाता है और तत्पश्चात् उन्हें लोक सभा चैम्बर और राज्य सभा चैम्बर,

सेंट्रल हॉल और पार्लियामेंट म्यूजियम ले जाया जाता है। यदि सत्र चल रहा होता है तो उन्हें लोक सभा और राज्य सभा की कार्यवाहियों को दिखाया जाता है।

ब्यूरो, शिक्षाविदों/विद्यालयों/महाविद्यालयों छात्रों सहित विभिन्न हितधारकों की लोक सभा के अध्यक्ष के साथ नियमित रूप से बैठकों का भी आयोजन करता है।

लोक सभा इन्टर्नशिप कार्यक्रम

जनवरी, 2008 में 'लोक सभा इन्टर्नशिप कार्यक्रम' आरंभ किया गया। इस एक वर्ष लंबे इन्टर्नशिप कार्यक्रम का उद्देश्य विशिष्ट अकादमिक और पाठ्येत्तर उपलब्धि प्राप्त युवाओं को सामान्य रूप से संसदीय लोकतंत्र तथा लोकतांत्रिक संस्थानों तथा विशिष्ट रूप से भारतीय संसदीय व्यवस्था से परिचित करवाना है। कार्यक्रम का उद्देश्य पांच चयनित इन्टर्न को अपेक्षित कौशल तथा जानकारी से सज्जित करना है ताकि हमारे लोकतांत्रिक प्रणाली में विधायिका की भूमिका के बारे में एक उचित दृष्टकोण का विकास किया जा सके जो उन्हें भविष्य में उनके स्वयं के चुने हुए क्षेत्रों में कार्य करने में मददगार साबित हों।

ब्यूरो लोक सभा महासचिव के समग्र नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण में कार्य करता है। संसदीय ग्रंथागार भवन में स्थित ब्यूरो आधुनिक अवसंरचना और प्रशिक्षण सुविधाओं से सुसज्जित है।[13]

13. www.bpst.nic.in

संदर्भिका

पुस्तकें

आचारी, पी.डी.टी. : *स्पीकर रूल्स,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 2001

: *लॉ ऑफ इलेक्शन्स,* नई दिल्ली, भारत लॉ हाउस, 2004

: *लॉ एण्ड प्रैक्टिस रिलेटिंग टू ऑफिस ऑफ प्राफिट,* नई दिल्ली, भारत लॉ हाउस, 2006

: *कांस्टिट्यूशन अमेन्डमेन्ट इन इंडिया,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 2008

: पार्लियामेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 2008

आस्टिन ग्रेनविल्ले : *वर्किंग ऑफ ए डेमोक्रेटिक कांस्टिट्यूशन : द इंडियन एक्सपीरिएंस,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999

इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन, जिनेवा : *पार्लियामेंट्स ऑफ द वर्ल्ड: ए कम्परेटिव रेफरेंस कम्पेंडियम,* हैंट्स, गावर पब्लिशिंग, 1986

: *वीमेन एंड पॉलिटिकल पॉवर,* जिनेवा, आई.पी.यू., 1992

: *वीमेन इन पार्लियामेंट्स,* 1950–1995, ए *वर्ल्ड स्टैटिस्टिकल सर्वे*, जिनेवा, आई.पी.यू., 1997

: *डेमोक्रेसी: इट्स प्रिंसिपल्स एण्ड एचीवमेंट्स, जिनेवा,* आई.पी.यू., 1998

: दि पार्लियामेंट्री मैनडेट, आई.पी.यू. 2000

: *टूल्स फॉर पार्लियामेंट्री ओवरसाइट,* हीरोनोरी यामामोतो (संपादित) जिनेवा, आई.पी.यू., 2008

एक्सटमैन, रोलैण्ड : *डेमोक्रेसी : प्रोब्लम्स एण्ड पर्सपेक्टिव,* एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007

काश्यप, सुभाष सी. : *ओरियंटेशन फार लेजिस्लेटर्स,* नई दिल्ली, इंस्टीट्यूट ऑफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज, 1971

: *दि पोलिटिक्स ऑफ पावर : डिफेक्शंस एण्ड स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया,* दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1974

: *ह्यूमन राइट्स एण्ड पार्लियामेंट,* नई दिल्ली, मैट्रोपॉलिटन बुक कं., 1978

: *दि मिनिस्टर्स एण्ड लेजिस्लेटर्स,* नई दिल्ली, मैट्रोपॉलिटन बुक कं., 1982

(सम्पादित) : *नेहरू एण्ड पार्लियामेंट,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1986

: *पार्लियामेंट्स एंड इन्फार्मेशन डिसेमिनेशन,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट 1986

: *दि पार्लियामेंट एण्ड दि एक्जिक्यूटिव इन इंडिया,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1987

: *पार्लियामेंट ऐज़ ए मल्टी फंक्शनल इंस्टीट्यूशन,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1987

: *संसदीय विशेषाधिकार, नई दिल्ली,* लोक सभा सचिवालय, 1988

: *दि पार्लियामेंट ऑफ इंडिया:* मिथ्स एंड रियलिटीज, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988

: *दल सचेतक, संसदीय विशेषाधिकार और दल परिवर्तन निरोधी कानून,* नई दिल्ली, लोक सभा सचिवालय, 1985

: *प्राइवेट मेम्बर्स राइट टु कोट फ्राम एंड ले सीक्रेट डाक्यूमेंट्स ऑन दि टेबल ऑफ दि हाउस,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1988

: *स्पीकर्स राइट टु रिजाइन,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1989

: *दादा साहब मावलंकर, फादर ऑफ लोक सभा : हिज़ लाइफ, वर्क एंड आइडियाज़–ए सेंटेनरी वॉल्यूम, नई दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1989*

: *इंटर-पार्लियामेंट्री कोऑपरेशन-रोल ऑफ इंटर-पार्लियामेंट्री यूनियन,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1989

: *दि आफिस ऑफ दि सेक्रेटेरी जनरल,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1989

(संपादित) : *पार्लियामेंट्स ऑफ दि कामनवेल्थ,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1989

: *सिक्सटी इयर्स ऑफ सर्विसिंग द सैंट्रल लेजिस्लेचर,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1989

: *जवाहरलाल नेहरू, दि कांस्टिट्यूशन एण्ड दि पार्लियामेंट,* मेट्रोपॉलिटन बुक कं., नई दिल्ली, 1990

: *दि पॉलिटिकल सिस्टम एण्ड इंस्टीट्यूशन बिल्डिंग अंडर जवाहरलाल नेहरू,* नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1990

: *ऑफिस ऑफ दि स्पीकर एण्ड स्पीकर्स ऑफ लोक सभा,* दिल्ली, शिप्रा पब्लिकेशंस, 1991

: *लेजिस्लेटिव मैनेजमेंट स्टडीज,* नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1995

: *अवर पार्लियामेंट: एन इन्ट्रोडक्शन टु पार्लियामेंट आफ इंडिया,* नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1995

: *हिस्ट्री ऑफ पार्लियामेंट,* वाल्यूम I-VI, नई दिल्ली, शिप्रा पब्लिकेशंस, 1994-2000

(सम्पादित)	:	*जुडीशियल एक्टिविज्म एण्ड लोकपाल,* नई दिल्ली, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, 1997
	:	*नेशनल रिसर्जेन्स थ्रू इलेक्टोरल रिफार्म्स,* दिल्ली, शिप्रा पब्लिकेशंस, 2002
	:	द *सिटीजन एण्ड जूडिशियल रिफार्म्स अन्डर इंडियन पॉलिटी,* नई दिल्ली, 2003
	:	*एंटी डिफेक्शन लॉ एण्ड पार्लियामेंट्री प्रीविलेजिज,* यूनिवर्सल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2003
	:	*कांस्टीट्यूशन मेकिंग सिन्स 1950–एन ओवरव्यू* (1950–2004), यूनिवर्सल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004
	:	*हिस्ट्री ऑफ पार्लियामेन्ट्री डेमोक्रेसी, शिप्रा* पब्लिकेशंस, 2008
	:	*पार्लियामेंट्री प्रोसीजर, लॉ, प्रिविलेजिज, प्रैक्टिस एण्ड प्रिसीडेन्ट्स–2* खंड, यूनिवर्सल पब्लिशर्स, नई दिल्ली
कुमार, जी. गोपा	:	*फ्यूचर ऑफ पार्लियामेन्ट्री डेमोक्रेसी इन इंडिया,* आइकन पब्लिकेशंस, प्रा.लि., 2007
कुरैशी, एम.ए.	:	*इंडियन पार्लियामेंट : पावर्स, प्रिविलेजिज इम्यूनिटीज,* नई दिल्ली, दीप एंड दीप पब्लिकेशंस, 1991
कोठारी, रजनी	:	*रिथिंकिंग डेमोक्रेसी,* हैदराबाद, ओरिएण्ट लांगमैन, 2005
	:	*पॉलिटिक्स इन इंडिया,* ओरिएण्ट लांगमैन, 1995
गिडिंग्स फिलिप (संपादित)	:	*पार्लियामेंट्री एकाउंटेबिलिटी: ए स्टडी ऑफ पार्लियामेंट एण्ड एक्जिक्यूटिव एजेंसीज,* लंदन, मैकमिलन प्रेस, 1995
गुहा, ठकुराता, परांजय एण्ड रघुरमन, शंकर	:	*डिवाइडेड वी स्टैंड: इंडिया इन ए टाइम ऑफ कॉलिशन्स,* नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन, 2007
गुहा, रामचन्द्र	:	इण्डिया आफ्टर गांधी, दि हिस्ट्री ऑफ वर्ल्डस लार्जेस्ट डेमोक्रेसी, पिकाडोर, 2008
गेहलोत, एन. एस.	:	*न्यू चैलेंजिस टू इंडियन पालिटिक्स,* नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशंस, 2002
गोपालन, एस. (संपादित)	:	*स्पीकर्स ऑफ लोक सभा,* लोक सभा सेक्रेटेरियट, नई दिल्ली, 1998
गोस्वामी, बी.	:	सिक्स्टी इयर्स ऑफ पार्लियामेंट, जयपुर, राजस्थान पब्लिशिंग, 2013
ग्रियर, इयॉन	:	*राइट टु बि हर्ड: ए गाइड टु पॉलिटिकल रिप्रेजेंटेशन एण्ड पार्लियामेंट्री प्रोसीजर, लंदन,* इयान ग्रियर एसोसिएट्स, 1985
चावला, मोनिका	:	*डेलिगेशन ऑफ लेजिस्लेटिव पावर्स,* नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशंस, 2007
चीमा, जी. शब्बीर	:	*बिल्डिंग डेमोक्रेटिक इंस्टीट्यूशन्स: गवर्नेंस रिफार्म इन डेवलपिंग कंट्रीज,* यू.एस.ए., कुमारियन प्रेस इंक. 2005

चेइबूब, जोस अन्तोनियो : *प्रेजीडेन्शियलिज्म, पार्लियामेन्टरिज्म एंड डेमोक्रेसी*, न्यूयार्क, यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007

चौबे, आर. के. : *फेडरलिज्म, ऑटोनॉमि एण्ड इंटर–स्टेट रिलेशन्स,* दिल्ली, सत्यम बुक्स, 2007

चौहान, के. एस. : *पार्लियामेंट : पावर्स, फंक्शंन एण्ड प्रिविलेजिज़ ए कंपरेटिव कांस्टिट्यूशनल पर्सपेक्टिव*, गुड़गांव, लेक्सिस नेक्सिस, 2013

छिब्बर, प्रदीप के. : *डेमोक्रेसी विदाउट एसोसिएशन्स: ट्रांसफार्मेशन ऑफ द पार्टी सिस्टम एण्ड सोशल क्लीवेजेज इन इंडिया,* यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस, 1999

जंडा केनेथ एण्ड अदर्स : *द चैलेंज ऑफ डेमोक्रेसी गवर्नमेंट इन अमेरिका,* यू.एस.ए., हाउटन मिफिन कं., 2008

जाखड़, बलराम : *दि पीपुल, दि पार्लियामेंट एण्ड दि एडमिनिस्ट्रेशन,* नई दिल्ली, मैट्रोपॉलिटन बुक कं., 1982

जिग्लर, एस. काट्जा और अन्य : *कांस्टीट्यूशनलिज्म एंड दि रोल ऑफ पार्लियामेंट्स,* ऑक्सफोर्ड, हार्ट पब्लिशिंग, 2007

जेम्स, लोचिरी : *मीटिंग प्रोसिजर्स: पार्लियामेंट्री लॉ एण्ड रूल्स ऑफ आर्डर*, फार दि टवेन्टीफर्स्ट सेंचुरी, लन्हम, द स्केयरक्रो प्रेस, 2003

जैन, आर.बी. : *इंडियन पार्लियामेंट: इनोवेशंस, रिफॉर्म्स एण्ड डेवलपमेंट्स,* कलकत्ता, मिनर्वा एसोसिएट्स, 1976

जैन, सी.के. (संपादित) : *ऑल इंडिया कॉन्फ्रेंस ऑफ प्रिसाइडिंग आफिसर्स, लीडर्स ऑफ पार्टीज एण्ड व्हिप्स ऑन "डिसिप्लिन एण्ड डेकोरम इन दि पार्लियामेंट एण्ड स्टेट लेजिस्लेचर्स"* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1992

(संपादित) : *कांस्टिट्यूशन ऑफ इंडिया इन प्रिसेप्ट एण्ड प्रैक्टिस,* नई दिल्ली, सी.बी.एस. पब्लिशर्स, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1992

: *पार्लियामेंट्री सिस्टम इन इंडिया,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1993

(संपादित) : *दि यूनियन एण्ड स्टेट लेजिस्लेचर्स इन इंडिया*, नई दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1993

जोशी, मनोहर : *सर स्पीक्स : सेलेक्टेड स्पीचेज,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 2004

जौहरी, जे.सी. : *इंडियन पार्लियामेंट: ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ इट्स इवोल्यूशन, कम्पोजीशन एंड वर्किंग,* नई दिल्ली, मेट्रोपालिटन बुक कं., 2006

झा, मनोरंजन : *रोल ऑफ सेंट्रल लेजिस्लेचर इन फ्रीडम स्ट्रगल,* दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1972

झा, राधा नंदन : *सम आस्पेक्ट्स ऑफ पार्लियामेंट्री प्रोसीजर,* पटना, जानकी प्रकाशन, 1982

झा, उमेश कुमार : *अपोजीशन पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया*, नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन्स, 2007

ढोलकिया, कुंदनलाल : *थॉट्स ऑन पार्लियामेंट्री प्रोसीजर, अहमदाबाद,* हेराल्ड लास्की इंस्टिट्यूट ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 1976

त्रिपाठी, आर. सी. : *सेकंड चैम्बर, बाइकेमेरालिज्म टुडे,* नई दिल्ली, राज्य सभा सचिवालय, 2002

: *इमर्जेंस ऑफ सेकंड चैंबर इन इंडिया,* नई दिल्ली, राज्य सभा सचिवालय, 2002

दत्ता, प्रभात : *इंडियाज डेमोक्रेसी: न्यू चैलेंजेज,* नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स, 1997

दहल, राबर्ट ए : *ऑन डेमोक्रेसी,* येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998

दाम, शुमांकर : *प्रेसिडेंशियल लेजिस्लेशन इन इंडिया दि लॉ एण्ड प्रैक्टिस ऑफ आर्डिनैंसेज* दिल्ली, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014

दीवान, पारस एण्ड पीयूषी : *अमेंडिंग पावर्स एण्ड कांस्टीट्यूशनल अमेंडमेंट्स: फ्राम फर्स्ट टु दि लेटेस्ट अमेंडमेंट्स,* सैकंड एडीशन; नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशंस, 1997

दूबे, माया : *स्पीकर इन इंडिया: ए स्टडी ऑफ ओरिजिन एंड ग्रोथ ऑफ द स्पीकर्स ऑफिस इन इंडियन पार्लियामेंट,* नई दिल्ली, एस. चांद, 1971

दोआबिया, एच. एस. : *लॉ आफ इलैक्शन्स एंड इलैक्शन पेटीशन्स, ए कमेंट्री ऑन दी लॉ रिलेटिंग टु इलैक्शन्स टु दि पार्लियामेंट* (चौथा संस्करण), गुड़गांव, लेक्सिस नेक्सिस, 2013

नार्टन, फिलिप (सम्पादित) : *लेजिस्लेचर्स,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990

निगम, राज. के. (सम्पादित) : *पब्लिक अकाउंटेबिलिटी इन इंडियन पॉलिटी,* डी.सी. पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1998

पचौरी, पी.एस. : *लॉ ऑफ पार्लियामेंट्री प्रिविलेजिज इन यू.के. एंड इन इंडिया,* बाम्बे, एन.एम. त्रिपाठी, 1971

पलानीथुराई, जी. : *इवाल्विंग ग्रासरूट्स डेमोक्रेसी,* नई दिल्ली, कन्सेप्ट पब्लिशिंग, 2007

पांडेय, राम दर्शन : *फण्डामेंटल राइट्स एण्ड कांस्टीट्यूशनल अमेन्डमेन्ट्स,* दिल्ली, कैपिटल पब्लिशिंग हाउस, 1985

पानन्दिकर, वी.ए.पै. एण्ड अदर्स : *टूवर्ड्स फ्रीडम इन साउथ एशिया: डेमोक्रेटाइजेशन, पीस एण्ड रीजनल कोऑपरेशन,* नई दिल्ली, कोणार्क पब्लिशर्स, 2008

पाल, जगत : *ज्युडिसियरी–लेजिस्लेचर इंटरफेस,* नई दिल्ली, सीरियल्स पब्लिकेशंस, 2008

पोलार्ड, ए.एफ. : *दि इवॉल्यूशन ऑफ पार्लियामेंट,* मेरठ, शलभ पब्लिशिंग हाउस, 2007

प्रसाद, नर्मदेश्वर : *टुवर्ड्स वर्ल्ड पार्लियामेंट: ए सागा ऑफ आई.पी.यू.: ए स्टडी इन इंटरनेशनल आर्गनाइजेशन,* दिल्ली, कलिंगा पब्लिकेशंस, 2003

फोले, माइकेल : *साइलेंस ऑफ कांस्टीट्यूशन्स: गैप्स, एबेयांसेज एण्ड पॉलिटिकल टेम्परामेंट इन दि मेन्टिनेंस आफ गवर्नमेंट,* लंदन, राउटलेज, 1989

बक्शी, उपेन्द्र एण्ड अदर्स : *रिकंस्ट्रक्टिंग द रिपब्लिक,* नई दिल्ली, हर-आनन्द पब्लिकेशन्स, 1999

: द *फ्यूचर ऑफ ह्यूमन राइट्स,* नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006

बक्शी, पी.एम. : *लेजिस्लेटिव प्रोसेस: आइडियल्स एण्ड रिएलिटी,* नई दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1990

बज, इयान एण्ड केमन, हैंस : *पार्टीज एण्ड डेमोक्रेसी: कोलिशन फार्मेशन एण्ड गवर्नमेंट फंक्शनिंग इन ट्वेन्टी स्टेट्स,* ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990

बसरूर, एम. राजेश : *चैलेंजेज टू डेमोक्रेसी इन इंडिया,* दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009

बासु, दुर्गादास : *कम्पेरेटिव कंस्टीट्यूशनल लॉ (तीसरा संस्करण) गुड़गांव, लेक्सिस नेक्सिस,* 2014

बेलावादी, एस.एच. : *थियोरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ पार्लियामेंट्री प्रोसीजर इन इंडिया,* बम्बई, एन.एम. त्रिपाठी, 1988

बेल्लामी, रिचर्ड : *पॉलिटिकल कांस्टिट्यूशनलिज्म:* ए रिपब्लिकन डिफेंस ऑफ द कांस्टिट्यूशनेलिटी ऑफ डेमोक्रेसी, कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008

बैश्य, के.एन. : *पीपुल, लेजिस्लेचर, लॉ मेकिंग,* नई दिल्ली, मैट्रोपॉलिटन बुक कं, 1987

भाटिया, सीता : *फ्रीडम ऑफ प्रेस: पॉलिटिको-लीगल आसपेक्ट्स ऑफ प्रेस लेजिस्लेशन इन इंडिया,* जयपुर, रावत पब्लिकेशंस, 1997

भाम्भरी, चंद्र प्रकाश : *डेमोक्रेसी इन इंडिया,* नई दिल्ली, न्यू बुक ट्रस्ट, 2008

भारद्वाज, आर.सी. : *टेलीकास्टिंग ऑफ पार्लियामेंट्री प्रोसीडिंग्स,* लोक सभा सेक्रेटेरियट, नई दिल्ली, 1993

: *लेजिस्लेशन बाई मेम्बर्स इन दि इण्डियन पार्लियामेंट,* नई दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स, 1994

(संपादित) : *कांस्टिट्यूशन अमेण्डमेंट इन इंडिया,* नई दिल्ली, नार्दन बुक सेंटर, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1995

(संपादित) : *सार्क पार्लियामेंट्स,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1995

भालेराव, एस.एस. (संपादित) : *राज्य सभा: सेकंड चेम्बर इन दि इण्डियन पार्लियामेंट,* दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1977

मलहोत्रा, जी.सी. : *मोशन्स ऑफ कान्फिडेंस एण्ड नो कान्फिडेंस,* नई दिल्ली, मेट्रोपॉलिटन बुक कंपनी, 1998

मल्होत्रा, एस. : *मैनुअल ऑफ इलेक्शन लॉ: ए कम्पाइलेशन ऑफ दि स्टेच्युटरी प्रोविजन्स गवर्निंग इलेक्शन्स टु* पार्लियामेंट, स्टेट लेजिस्लेचर्स, पंचायत्स एंड अर्बन लोकल बॉडीस, दिल्ली, बाहरी ब्रदर्स, 1994

माइरबो, बैट्सखैम (संपादित) : *पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी इन इंडिया: एक्सपीरियंसेज एंड प्रोस्पैक्ट्स,* नई दिल्ली, आकांक्षा पब्लिशिंग, 2014,

मिश्र, सुरेन्द्र : *फाइनेंस मिनिस्टर्स बजट स्पीचिज़:* 1947–96, नई दिल्ली, सुरजीत पब्लिकेशंस, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1996

: प्रेसीडेन्शियल एड्रेसिस टु पार्लियामेंट, नई दिल्ली, नार्दन बुक सेंटर, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1996

: *इन्दिरा गांधी: स्पीचेज़ इन पार्लियामेंट,* नई दिल्ली, 1996

मुखर्जी, ए.आर. : *पार्लियामेंट्री प्रोसीजर इन इंडिया* (तीसरा संस्करण), कलकत्ता, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1983

मे, थामस एर्सकिन : *ट्रीटीज ऑन दि लॉ, प्रिविलेजिस, प्रोसीडिंग्स एण्ड यूसेज ऑफ पार्लियामेंट,* (23वां संस्करण), चार्ल्स गॉर्डन (संपादित) लंदन, बटरवथ्र्स, 2004

मेहता, अजय के. (संपादित) : *पार्टी सिस्टम इन इंडिया* : इमर्जिंग ट्रेजेक्ट्रोज, नई दिल्ली, लांसर, 2013

मेहता, अशोक : *इन्साइड लोक सभा,* मद्रास, सोशलिस्ट बुक सेंटर, 1955

मोरे, एस.एस. : *प्रैक्टिस एंड प्रोसीजर ऑफ इंडियन पार्लियामेंट,* बम्बई, ठक्कर, 1960

रमादेवी, वी. एस : *हाउ इंडिया वोट्स, इलैक्शन लॉज, प्रेक्टिस एण्ड प्रोसीजर,* गुड़गांव, लेक्सिस नेक्सिस, 2014

राज्य सभा सचिवालय : *डिपार्टमेंटली रिलेटिड पार्लियामेंट्री स्टैंडिंग कमेटीज* (राज्य सभा)– एन ओवरव्यू, 1999

: आचार समिति, 2003

: *राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विषयक नियम* (राज्य सभा), नई दिल्ली, 2005

: *राज्य सभा प्रैक्टिस एंड प्रोसीजर सीरीज,* 2005

: राज्य सभा एट वर्क, (डॉ. योगेन्द्र नारायण), नई दिल्ली, 2006

: राज्य सभा कमेटी मेम्बरशिप : स्टैंडिंग कमेटीज एंड डिपार्टमेंटली रिलेटिड स्टैंडिंग कमेटीज, 2006

रानी, नीरा : *आर.टी.आई इन इंडिया एंड अदर कंट्रीज: ए कपरेटिव स्टडी,* नई दिल्ली, अभिजित पब्लिकेशन्स, 2013

राव, एम. गोविन्द एण्ड अदर्स : रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन टु रिव्यू द वर्किंग ऑफ कॉंस्टिट्यूशन (एन.सी.आर.डब्ल्यू.सी. रिपोर्ट), नई दिल्ली, 2002

रूडॉल्फ, लायड 1 एण्ड अदर्स : *एक्सप्लेनिंग इंडियन डेमोक्रेसी: ए फिफ्टी ईयर पर्सपेक्टिव,* 1956–2006, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008

रेडिस, लिसाने एण्ड अदर्स : *मैम्बर्स ऑफ पार्लियामेंट: दि जॉब ऑफ ए बैक बेंचर,* लंदन, मेकमिलन प्रेस, 1987

लिज्फार्ट, एरेंड : *इलेक्टोरल सिस्टमस एण्ड पार्टी सिस्टम: ए स्टडी ऑफ ट्वेंटी सेवन डेमोक्रेसीस,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994

लिमये, मधु : *कैबिनेट गवर्नमेंट इन इंडिया,* नई दिल्ली, रेडियन्ट पब्लिशर्स, 1989

: *पार्लियामेंट, जुडिश्यरी एण्ड पार्टीज: एन इलैक्ट्रो-कार्डियोग्राम ऑफ पॉलिटिक्स,* दिल्ली, अजन्ता, 1994

: *इण्डियन पॉलिटी इन ट्रांजिशन,* नई दिल्ली, रेडियन्ट पब्लिशर्स, 1990

: मद्रास लेजिस्लेटिव काउन्सिल; एक्सप्रैशन इन पार्लियामेंट, 1968

लेफ्टविच, अड्रियन : *डेमोक्रेसी एण्ड डेवलपमेन्ट,* यू.के. पॉलिटी प्रेस, 1996

लोक सभा सचिवालय : *एक्सपंक्शंस फ्रॉम पार्लियामेंट्री प्रोसीडिंग्स,* नई दिल्ली, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस, 1985

: *लेजिस्लेटिव काउंसिल्ज इन स्टेट्स—देयर क्रिएशन एंड अबोलिशन,* नई दिल्ली, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस, 1985

: *क्वैश्चन आवर इन लोक सभा,* नई दिल्ली, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस, 1985

: *वोटिंग एण्ड डिवीजन इन लोक सभा,* नई दिल्ली, 1985

: *डिक्शनरी ऑफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री टर्म्स,* 1991

: *मिस्टर स्पीकर: रोल एण्ड फंक्शन्स,* नई दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स, 1992

: *प्रेसीडेंशियल आर्डिनेन्सेज, 1950-1996,* नई दिल्ली, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस, 1996

: *राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में राष्ट्रपति शासन,* नई दिल्ली, भारत सरकार मुद्रणालय, 1996

: *कमेंसमेंट एण्ड टर्मिनेशन ऑफ सेशंज ऑफ दि सेन्ट्रल लेजिस्लेचर, प्रोविजनल पार्लियामेंट एण्ड लोक सभा एण्ड नेम्स एण्ड टेन्योर ऑफ प्रिसाइडिंग आफिसर्ज (1921 टू 1997),* फोर्थ एडीशन, नई दिल्ली, 1990

: *लोक सभा के अध्यक्ष,* नई दिल्ली, 1998

: *भारत में विधायक, वेतन एवं अन्य सुविधाएं,* नई दिल्ली, 1999

: द *स्पीकर स्पीक्स: सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ बालयोगी,* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1999

: *कमेटीज एण्ड अदर बॉडीज ऑन विच लोक सभा इज रिप्रेजेन्टेड होली और पार्शिअली,* थर्टीन्थ लोक सभा, 1999-2000

: *पार्लियामेंट्री प्रिविलेजेस-डाइजेस्ट ऑफ केसेज 1950-1985,* नई दिल्ली, 2001

: *पार्लियामेन्ट ऑफ इंडिया,* नई दिल्ली, 2002

: *इन्टरनेशनल पार्लियामेंट्री कांफ्रेंस टू मार्क द गोल्डेन जुबली ऑफ पार्लियामेंट ऑफ इंडिया (22-24 जनवरी 2003)–ए कमेमोरेटिव सोवेनियर,* नई दिल्ली, 2003

: *सर स्पीक्स–सेलेक्टेज स्पीचेज ऑफ मनोहर जोशी,* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली 2004

: *कैबिनेट रिस्पांसिबिलिटी टू द लेजिस्लेचर: मोशन्स ऑफ कॉन्फिडेन्स एण्ड नो-कॉन्फिडेंस इन द लोक सभा एण्ड स्टेट लेजिस्लेचर्स,* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2004

: *एंटी-डिफेक्शन लॉ इन इंडिया एंड द कॉमनवेल्थ,* लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2005

: *असंसदीय शब्द,* नई दिल्ली, भारत सरकार मुद्रणालय, 2009

: *लोक सभा अध्यक्ष के निदेश,* नई दिल्ली, 2014

: *लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम,* 2007

: *भारत की संसद: तेरहवीं लोक सभा 1999-2004 (एक स्मारिका),* नई दिल्ली, 2008,

पार्लियामेंटरी प्रोसीजर, नई दिल्ली, 2014

वरदाचारी, वी.के. : *गवर्नर इन द इंडियन कांस्टीट्यूशन,* नई दिल्ली, हेरीटेज पब्लिशर्स, 1980

वर्मा, उमेश्वर प्रसाद : *लॉ, लेजिस्लेचर एण्ड जुडिशियरी,* नई दिल्ली, मित्तल पब्लिकेशन्स, 1996

वर्मा, एस.पी. : *इंडियन पार्लियामेंटेरियन्स: ए स्टडी ऑफ द सोशियो-पोलिटिकल बैकग्राउण्ड,* नई दिल्ली, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, 1986

वारविक, पॉल वी. : *गवर्नमेंट सर्वाइवल इन पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसीस,* कैम्ब्रिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994

वार्ष्णेय, आशुतोष : *इंडिया एंड द पॉलिटिक्स ऑफ डेवलोपिंग कंट्रीज,* सेज पब्लिकेशंस, 2004

वोरा, राजेन्द्र और अन्य : *इंडियन डेमोक्रेसी: मीनिंग्स एंड प्रेक्टिसेज,* नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशंस, 2004

शकधर, एस.एल. : *सम आस्पेक्ट्स ऑफ पार्लियामेंट्री प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर: ए कलैक्शन ऑफ आर्टिकल्स,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1969

: *पब्लिक अकाउंटस कमेटी इन इंडिया विस-ए-विस इट्स काउंटरपार्ट्स इन अदर कंट्रीज,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1971

: *पावर्स एंड फंक्शंस ऑफ स्पीकर्स विद परटीकुलर रेफरेंस टु डेवलपमेंट्स इन सम स्टेट्स,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1973

: द *कोडिफिकेशन ऑफ लेजिस्लेटिव प्रिविलेजिस,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1967

शास्त्री, बी., शिव धर्मा : *ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ द स्पीकर: इंडिया, ब्रिटेन एण्ड द यू.एस.ए.*, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1978

शेषाद्री, एस. : *पार्लियामेंट्री कंट्रोल ओवर फाइनेंस: ए स्टडी ऑफ द पब्लिक एकाउंट्स कमेटी ऑफ पार्लियामेंट,* नई दिल्ली, अलाइड पब्लिशर्स, 1975

साहू, एन.के. : *इलैक्टोरल पॉलिटिक्स इन फेडरल इण्डिया: एम.पी. लोकल एरिया डेवलपमेंट स्कीम,* नई दिल्ली, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, 2006

सिंह, बी.पी. : *लेजिस्लेटिव कंट्रोल ओवर गवर्नमेंट एक्सपेंडिचर,* दिल्ली, बी.बी. पब्लिशिंग, 1986

सिंह, महेन्द्र प्रसाद और अन्य : *कोलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया: प्राब्लम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स,* नई दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशंस, 2009

सिंह, शांति स्वरूप : *दि प्रेस एंड द इंडियन पार्लियामेंट,* नई दिल्ली क्लासिकल पब्लिशिंग, 2005

सीरवाय, एच.एम. : *पोज़िशन ऑफ जुडिशियरी अण्डर द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया,* बाम्बे, यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे, 1970

सुन्दर राम, डी. : *रोल ऑफ अपोजिशन पार्टीज इन इंडियन पॉलिटिक्स,* नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, 1992

सूर्यप्रकाश, ए. : *ह्वाट एल्स इंडियन पार्लियामेंट? एन एग्ज़ास्टिव डायग्नोसिस,* नई दिल्ली, इन्डस, 1995

स्मिथ, बी.सी. : *अंडरस्टैंडिंग थर्ड वर्ल्ड पॉलिटिक्स: थ्योरीज ऑफ पॉलिटिकल चेंज एंड डेवलपमेंट,* न्यूयार्क, पाल्ग्रेव मैक्मिलन, 2003

हेनेस, जेफरी : *पॉलिटिक्स इन द डेवलपिंग वर्ल्ड: ए कन्साइज इंट्रोडक्शन,* यूएसए, ब्लैकवेल पब्लिशिंग, 2002

हेल्ड, डेविड : *डेमोक्रेसी एण्ड द ग्लोबल आर्डर: फ्राम द माडर्न स्टेट टू कॉस्मोपॉलिटन गवर्नेन्स,* यूके, पॉलिटी प्रेस, 1996

हेम्स लुडगर (संपादित) : *पार्लियामेन्टरी अपोजिशन इन ओल्ड एण्ड न्यू डेमोक्रेसीज,* यूके, 2002

लेख

अग्रवाल, सतीश : पार्लियामेंट्री स्क्रूटिनी ऑफ पब्लिक एक्सपेंडिचर, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फॉरमेशन,* वोल्यूम–XXVI, नं. 3, 1980, पृष्ठ 300–16

अंसारी, एन. जमाल : "आर वी ए फंक्शनल डेमोक्रेसी", *नेशन एंड दि वर्ल्ड,* वोल्यूम-15, नं. 395, 2008, पृष्ठ 25-26

आचारी, पी.डी.टी. : दि लॉ ऑन *"ऑफिस ऑफ प्रोफिट, पार्लियामेंटेरियन"* वोल्यूम-LXXXVIII, नं. 2, 2007, पृष्ठ 39-45 *"दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन"*, वोल्यूम-LIV, नं.-1, 2008, पृष्ठ 15-28

आमना, मिर्जा : "पार्लियामेंटेराइजेशन वर्सेज फेडरलाइजेशन," *मेनस्ट्रीम,* वोल्यूम-46 नं. 29, 2008, पृष्ठ 6-7

इंस्टीट्यूट ऑफ कांस्टीट्यूशनल एन्ड पार्लियामेंटरी स्टडीज़ : डिसोल्यूशन ऑफ लोक सभा–सम कांस्टीट्यूशनल क्वेश्चन्स, *जर्नल ऑफ कांस्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज, वोल्यूम–*V, 1971, पृष्ठ 320–30

इकबाल नारायण : ऑफिस ऑफ दि स्पीकर–दि प्राब्लम ऑफ रोल आइडेंटिफिकेशन, इन हिज़् *टवाईलाइट ऑर डॉन : दि पॉलिटिकल चेंज* इन इंडिया (1967–71), आगरा, शिव लाल अग्रवाल, 1972, पृष्ठ 126–33

कावर्ट, पॉल : इलैक्ट्रानिक वोटिंग सिस्टम्स इन पार्लियामेंट, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम–88, नं. 1, 2007, पृष्ठ–15–19

काश्यप, सुभाष सी. : रोल ऑफ दि स्पीकर, *इंडियन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू,* वोल्यूम-III, नं. 1-2, 1968-69, पृष्ठ 62–70

: इन्फार्मेशन मैनेजमेंट फार मेम्बर्स ऑफ पार्लियामेंट, *मन्थली पब्लिक ओपिनियन सर्वेज़,* वोल्यूम XVIII, नं. 6, 1973

: पार्लियामेंट्री ओरिएन्टेशन एण्ड ट्रेनिंग नीड्स, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम-LVII, नं. 3, जुलाई, 1976

: हू लेजिस्लेट्स इन द मार्डन वर्ल्ड? जिनेवा में आयोजित फोर्थ इंटर-पार्लियामेंटरी सिम्पोज़ियम, इंटर पार्लियामेंटरी यूनियन, 1976

: कमेटीज़ इन द इंडियन लोक सभा *इन कमेटीज़ इन लेजिस्लेचर्स–ए कम्पेरेटिव एनालिसिस,* जॉन डी. लीस एंड मैल्कम शॉ (संपादित), यू.के. 1979

: *सैटिंग अप ऑफ पार्लियामेंट्री म्यूज़ियम एण्ड आर्काइव्स, दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम XLV, अप्रैल, 1985

: प्रैक्टिस एण्ड प्रोसीजर: रिक्रूटमेंट एण्ड ट्रेनिंग ऑफ पार्लियामेंट्री स्टाफ, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम XXII, नं. 3, 1986, पृष्ठ 134–36

: डिक्लाइन ऑफ लेजिस्लेचर्स-सम क्वैश्चन्स, सोविनियर ऑन *फ्रीडम एण्ड लेजिस्लेचर: 75 ईयर्स ऑफ ओल्ड सेक्रेटेरिएट,* दिल्ली मेट्रोपॉलिटन काउंसिल, 1988

: पार्लियामेंट एण्ड स्टेट लेजिस्लेचर्स-ए लुक इन टु देयर पार्टिसिपेटरी रिलेशनशिप, *हिमाचल प्रदेश लेजिस्लेटिव असेम्बली सिल्वर जुबिली सोविनियर* (1963–88), 1988

कुशवाहा, शिवनाथ सिंह : रोल ऑफ प्रिजाइडिंग ऑफिसर्स इन दि इवोल्यूशन ऑफ पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी इन इंडिया–देअर स्टेटस एण्ड म्यूचुअल रिलेशनशिप, *इन सैकण्ड चैम्बर: इट्स रोल इन मॉडर्न लेजिस्लेचर: दि ट्वेन्टी फाइव इयर्स ऑफ राज्य सभा बाई* एस.एस. भालेराव (सम्पादित), दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1977, पृष्ठ 177–83

कोदंडराव, पी. : सुप्रीमेसी: पार्लियामेंट ऑर सुप्रीम कोर्ट, *जर्नल ऑफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज़,* वोल्यूम IV, 1970, पृष्ठ 107–10

कौल, एम.एन. : ग्रोथ ऑफ द पोजिशन एण्ड पावर ऑफ द स्पीकर, *हिन्दुस्तान टाइम्स,* 24 जनवरी, 1954

: पोजीशन एण्ड फंक्शंस ऑफ दि डिप्टी स्पीकर, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन, वोल्यूम* III, *नं.* 2, 1957, पृष्ठ 145-48

: माई इम्प्रेंशस अबाउट द वर्किंग एंड अचीवमेंट्स ऑफ द पब्लिक अकांउट्स कमेटी, इन द *पब्लिक अकांउट्स कमेटी,* 1921-71, *गोल्डन जुबली सोविनियर,* नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1971

: राज्य सभा : सेकंड चैम्बर इन द इंडियन पार्लियामेंट, *इन सेकंड चैम्बर : इट्स रोल इन मार्डन लेजिस्लेचर, दि टवेन्टी-फाइव इयर्स ऑफ राज्य सभा* बाई एस.एस. भालेराव (संपादित) दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1977, पृष्ठ 256-62

कौर, सुमनदीप : इलेक्टोरल रिफार्म्स इन इंडिया: प्रोएक्टिव रोल ऑफ इलेक्शन कमीशन, *मेनस्ट्रीम,* वोल्यूम-46, 2008, पृष्ठ 26–30

कौशिक, आशा : पार्लियामेंट, जुडीशियरी एण्ड सोशल चेंज इन इंडिया, *इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस,* वोल्यूम-XXXVIII, 1977, पृष्ठ 82–95

खरे, हरीश : रि-नरिशिंग द इंडियन पॉलिटी, *हिन्दू,* 2008

ग्रंथालय तथा संदर्भ, शोध, प्रलेखन और सूचना सेवा, लोक सभा सचिवालय : दि कमेटी ऑन गवर्नमेंट एश्योरेंसेज, द *जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इंफार्मेशन,* वोल्यूम-XXVII, नं. 4, 1981, पृष्ठ 393-413

: सोशियो-इकॉनामिक बैकग्राउंड ऑफ मैम्बर्स ऑफ द इलेवेंथ लोक सभा–ए स्टडी, द *जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इनफोर्मेशन,* वॉल्यूम-XLIII, नं. 4, 1997, पृष्ठ 428-56

: मैम्बर्स ऑफ दि ट्वैल्फ्थ लोक सभा–ए सोशियो-इकॉनामिक स्टडी, द *जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इनफार्मेशन,* वोल्यूम-XLVI, नं. 1, मार्च, 2000, पृष्ठ 47–79

: मैम्बर्स ऑफ द सिक्सटीन्थ लोक सभा : ए स्टडी द जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फोर्मेशन, LX सं. 3, 2014, पृष्ठ 357–77।

चटर्जी, श्री सोमनाथ : भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का 67वां सम्मेलन, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इंफार्मेशन*, वोल्यूम–L, नं. 4, 2004, पृष्ठ 363–77

: दि सिम्पोजियम ऑन "दि रिलेशनशिप बिटवीन दि लेजिस्लेचर एंड दि जुडीशियरी", *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इंफार्मेशन,* वोल्यूम–L, नं. 4, 2004, पृष्ठ 378–84

: सिक्स्थ डी.पी. कोहली मेमोरियल लेक्चर ऑन पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी इन इंडिया–प्रेजेंट एंड फ्यूचर, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन, वोल्यूम*–LI, नं. 3, 2005, पृष्ठ 303–17

: सिम्पोजियम ऑन "एंटी–डिफेक्शन लॉ–नीड फॉर रिव्यू", दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इंफारमेशन, वोल्यूम–LIV, नं. 4, 2008, पृष्ठ 445–50

चतुर्वेदी, टी.एन. : पार्लियामेंट्री कंट्रोल ओवर पब्लिक एक्सपेंडिचर: रोल ऑफ दि ऑफिस ऑफ दि काम्पट्रोलर एंड आडिटर–जनरल, *दि जनरल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन*, वोल्यूम XXXVI, नं. 3, 1990, पृष्ठ 290–99

जाखड़, बलराम : रोल एंड फंक्शंस ऑफ लेजिस्लेटर्स इनसाइड एंड आउटसाइड द लेजिस्लेचर, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन*, वोल्यूम XXVII, नं. 4, 1981, पृष्ठ 380–84

: पार्लियामेंटरी डेकोरम, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंटरी इन्फार्मेशन,* वोल्यूम–XXXI, सं. 1, 1985, पृष्ठ 25–30

जॉइस, एम. रामा, डॉ. : पावर ऑफ द पार्लियामेंट टु अमेंड दि कांस्टीट्यूशन, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन,* वोल्यूम–LIV, नं. 4, 2008, पृष्ठ 413–30

हार्मोनियस वर्किंग ऑफ दि लेजिस्लेचर, दि एग्जिक्यूटिव एंड दि जुडिशियरी, दि जर्नल ऑफ पालियामेंट्री इनफोर्मेशन, वोल्यूम LV, नं. 1, 2009, पृष्ठ 3-25।

जैन, सी.के. : जस्टिस रामास्वामी केस, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन,* वोल्यूम–XXXIX, नं. 2, 1993, पृष्ठ 427–40

जोसफ, टी.एम. : डेमोक्रेसी एंड गवर्नेस: डज इलेक्टोरल सिस्टम मैटर? *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* वोल्यूम–53, नं. 1, 2007, पृष्ठ 125–38

डे, निखिल और अन्य : दि राइट टू ट्रान्सपेरेंट गवर्नेस: *साउथ, एशियन जर्नल,* अप्रैल–जून 2007, पृष्ठ 76–87

तारकुंडे, वी.एम. : फिफ्टी इयर्स आफ्टर फ्रीडम–न्यू अपार्चुनिटीज एण्ड चैलेंजिस, *रेडिकल ह्यूमेनिस्ट,* वोल्यूम 61, नं. 9, 1997, पृष्ठ 16–20

त्रिपाठी, आर.सी. : फंक्शनिंग ऑफ पार्लियामेंट इन इंडिया, *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* वोल्यूम 43, नं. 3, 1997, पृष्ठ 400–07

त्रिपाठी, एम. : कॅमिटी सिस्टम इन इंडियन पार्लियामेंट, *जर्नल ऑफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज,* वोल्यूम XIV, 1980, पृष्ठ 442–64

दंडवते, मधु : रोल ऑफ पार्लियामेंट इन इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन,* वोल्यूम–XXXIV, नं. 1, 1988, पृष्ठ 3–12

दत्ता, नलिनी कांता : अकाउंटेबिलिटी इन पब्लिक गवर्नेंस, *असम ट्रिब्यून,* 2008

दर्मोडी, कैथलीन और अन्य : पार्लियामेंट्री कमिटीज एंड नेगलेक्टेड वायसेज इन सोसायटी, *दि टेबल,* वोल्यूम–74, 2006, पृष्ठ 45–55

धर्माधिकारी, विनय : इलेक्शंस एण्ड गवर्नेंस: ए सिस्टम-इंजीनियर्ड डिजाइन, *पॉलिटिक्स इंडिया,* वोल्यूम 2, नं. 4, अक्तूबर, 1997, पृष्ठ 25–29

नम्बूदरीपाद, ई.एम.एस. : सिंगल पार्टी रूल वर्सेस कोएलिशन्स, *फ्रंटलाइन,* वोल्यूम 14, नं. 20, 1997, पृष्ठ 49–51

नाम्बियार, सतीश : रोल फॉर इंडिया इन द इमर्जिंग वर्ल्ड आर्डर, *यू एस आई जर्नल,* वोल्यूम–136, नं. 565, 2006, पृष्ठ 339–53

पचौरी, पी.एस. : जनरल प्रिंसिपल्स ऑफ पार्लियामेंट्री प्रोसिजर, *जर्नल ऑफ कांस्टिट्यूशनल एंड पार्लियामेंट्री स्टडीज,* वोल्यूम XV, नं. 1–4, 1981, पृष्ठ 21–41

पइली, एम.वी. : केयरटेकर गवर्नमेंट: व्हाट एंड व्हाई, *पॉलिटिक्स इंडिया,* वोल्यूम 2, नं. 10, 1998, पृष्ठ 18–20

परांजपे, एच.जी. : कॉन्सेप्ट ऑफ सबऑर्डिनेट लेजिस्लेशन ऐज व्यूड बाई दि लोक सभा कॅमिटि ऑन सबआर्डिनेट लेजिस्लेशन, *जर्नल ऑफ कांस्टिट्यूशनल एंड पार्लियामेंट्री स्टडीज, वोल्यूम* XI, 1977, पृष्ठ 47–75

पराशर, नारायण चंद : कॅमिटि ऑन गवर्नमेंट एश्योरेंसिज, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन, वोल्यूम* XXXIV, नं. 3, 1988, पृष्ठ 297–312

: पार्लियामेंट्री क्वेश्चन्स, *दि टेबल,* वोल्यूम XLIV, 1975, पृष्ठ 58–61

: प्रॉसीजर इन लोक सभा फॉर डीलिंग विद मैटर्स ऑफ प्रिविलिज, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXI, नं. 1, 1980, पृष्ठ 58–61

पाण्डेय, सरजू : पार्लियामेंट एंड इट्स रोल अंडर दि कांस्टिट्यूशन *इन कांस्टिट्यूशन एंड दि पार्लियामेंट इन इंडिया: 25 इयर्स ऑफ दि रिपब्लिक* बाई एस.एल. शकधर (संपादित) दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1976, पृष्ठ 323–27

प्रेह्य, रासमस : पार्लियामेंट्री कंट्रोल ऑफ गवर्नमेंट पॉलिसी इन ई.यू., द *पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXXVIII, नं. 2, 2007

फ्रेंकलिन, मार्क एन. एण्ड तप्पिन, माइकेल : "अर्ली डे मोशन्स" ऐज़ अनोब्ट्रूसिव मेज़र्स ऑफ बैक बैंच ओपिनियन इन ब्रिटेन, *ब्रिटिश जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस,* वोल्यूम-VII, नं. 1, 1977, पृष्ठ 49–69

बसु, रणजीत : पोज़िशन ऑफ स्पीकर ऑन डिज़ोल्यूशन: ए स्टडी ऑफ वेस्ट बंगाल केसिस, *जर्नल ऑफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज,* वोल्यूम XXI, नं. 3–4. 1987, पृष्ठ 153–63

बालयोगी, जी.एम.सी. : इम्पेरेटिव ऑफ डिसीप्लीन एंड डेकोरम इन पार्लियामेंट, द *जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन,* वोल्यूम, XLVI नं. 1, 2000, पृष्ठ 39–46

बालाजी, वी. : कम्पलसरी वोटिंग फॉर बैटर गवर्नेस, *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* वोल्यूम 52, नं. 4, 2006, पृष्ठ 756–66

बोस, मार्क : पार्लियामेंट्री कमेटीज, दि टेबल, वोल्यूम 72, 2004,पृष्ठ 26–35

भारद्वाज, के.के. : केयरटेकर गवर्नमेंट, डिज़ोल्यूशन ऑफ लोक सभा एण्ड जनरल इलेक्शन्स: रोल ऑफ दि प्रेसीडेंट, *पॉलिटिक्स इंडिया,* वोल्यूम, 2, नं. 10, 1998, पृष्ठ 16–17

भारद्वाज, आर.सी. : पार्लियामेंट्री पार्टनर्स: डिपार्टमेंटली रिलेटिड स्टैंडिंग कमेटीज इन इंडिया, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम 76, नं. 4, अक्तूबर, 1995, पृष्ठ, 313–19

मरे, एंड्रयू : इवेल्यूएशन ऑफ द प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स बाई पार्लियामेंट, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वॉल्यूम 87, नं. 3, 2006, पृष्ठ 228–31

मलहोत्रा, जी.सी. : प्रिविलेजेज ऑफ दिल्ली मेट्रोपोलिटन काउंसिल विस-ए-विस अदर इंडियन लेजिस्लेचर्स *इन सोविनिर ऑन स्पीकर एंड डेमोक्रेसी,* दिल्ली मेट्रोपोलिटन काउंसिल, 1989

: इंडियाज प्रिजाइडिंग ऑफिसर्स रिस्पांड टू कोर्ट चैलेंज, *दि पार्लियामेंटेरियन,* जुलाई 1992, LXXIII, नं. 3, पृष्ठ 212

: लाइब्रेरी, रेफरेन्स, रिसर्च, डाक्युमेन्टेशन एंड इन्फॉरमेशन सर्विसेज टू मैम्बर्स ऑफ पार्लियामेंट इन इंडिया; वर्कशाप ऑन लाइब्रेरी एंड इन्फॉरमेशन सर्विसेज टू दि संसद: *आईएफएलए,* 3 सितम्बर, 1992, लोक सभा सेक्रेटेरियट, पृष्ठ 18–57

: पार्लियामेंट्री टेलीविजन–दि इंडियन एक्सपेरिमेन्ट, *दि पार्लियामेंटेरियन,* अप्रैल 1992, LXXIII, नं, 2, पृष्ठ 134

: डिसिप्लिन एंड डेकोरम इन पार्लियामेंट एंड स्टेट लेजिस्लेचर्स, *दि पार्लियामेंटेरियन,* अप्रैल, 1993, LXXIV, नं. 2, पृष्ठ 112–13

: इंडियाज डिपार्टमेन्टली रिलेटेड कमिटि सिस्टम, दि पार्लियामेंटेरियन, जुलाई 1993, LXXIV, नं. 3, पृष्ठ 169–70

: ऑटोमेशन इन पार्लियामेंट्स, *एपीएलएपी न्यूजलेटर,* नं. 7, दिसम्बर 1994, पृष्ठ 4

: रिसोर्सिज एंड इन्फॉरमेशन शेयरिंग ऑफ लेजिस्लेशन: दि इंडियन एक्सपीरिएंस, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इंफारमेशन,* वोल्यूम XL, नं. 2, जून 1994, पृष्ठ 198–205

: ऑटोमेटिंग पार्लियामेंट्स, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXXVI नं. 3, 1995, पृष्ठ 240–42

: पार्लियामेंट इन दि डॉक, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXXVII, नं. 4, अक्तूबर 1996

: भारत की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के अवसर पर आयोजित स्मृति समारोह, *संसदीय पत्रिका,* खण्ड 43, अंक 4, दिसम्बर 1997, पृष्ठ 9–12

: एजेन्डा फॉर इंडिया: पार्लियामेंट मार्क्स ए माइलस्टोन, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXXIX, नं. 2, अप्रैल 1998, पृष्ठ 159–67

पार्लियामेंन्टी कमिटीज विद स्पेशल रेफरेन्स टू डिपार्टमेन्टली रिलेटेड स्टैंडिंग कमिटीज, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंटरी इन्फॉरमेशन,* वोल्यूम XLIV, नं. 3, सितम्बर, 1998, पृष्ठ 236–64

: लोक सभा में अब तक पेश दस विश्वास प्रस्ताव, *संसदीय पत्रिका,* खण्ड 44, अंक 2, जून 1998, पृष्ठ 64–72

: ए गवर्नमेन्ट फॉल्स–दि कोलैप्स ऑफ ए कोएलिशन, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXXX, नं. 3, जुलाई 1999, पृष्ठ 267–70

: केवल एक मत के अन्तर से सरकार का पतन, *संसदीय पत्रिका,* खण्ड 45, अंक 3, सितम्बर 1999, पृष्ठ 5–12

: इंश्योरिंग एक्जेक्यूटिव एकाउंटेबिलिटी–इंडियाज पब्लिक एकाउंट्स कमिटि, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXXXI, नं. 2, मार्च 2000

: कांफ्रेंस ऑन, 'पार्लियामेंट एंड द मीडिया: मीडिया एन इफेक्टिव रिलेशनशिप', द *जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन,* वोल्यूम XLVI, नं. 2, 2000, पृष्ठ 267–86

: इलेक्शन ऑफ स्पीकर इन यू.के. एंड इंडिया, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री* इन्फार्मेशन, वोल्यूम XLVI, नं. 4, 2000, पृष्ठ 551–74

: लेजिस्लेटिव डेडलॉक इन बाइकैमरल लेजिस्लेचर्स (ज्वाइंट सिटिंग ऑफ दि टू हाउसेस ऑफ इंडियन पार्लियामेंट आन दि प्रिवेंशन ऑफ टेरोरिज्म बिल, 2002) द *जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन,* वोल्यूम XLIX, नं. 1, 2003, पृष्ठ 41–56

मातारयन, जयन्त : वर्किंग टुवर्ड्स अ हेल्दी डेमोक्रेसी, *डेक्कन क्रोनिकल,* 2009

मावलंकर, जी.वी. : ऑफिस ऑफ दि स्पीकर, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन,* वोल्यूम III, नं. 1, 1956, पृष्ठ 33–36

: डेवलपमेंट ऑफ पार्लियामेंट्री प्रोसीजर इन इंडिया, *एशियन रिव्यू*, वोल्यूम XLIX, नं. 177, 1953, पृष्ठ 1–13

मुखर्जी, प्रणब : रोल एंड पोजीशन ऑफ दि लीडर ऑफ दि हाउस एंड व्हिप्स इन पार्लियामेंट्री बिजनेस, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फोर्मेशन*, वोल्यूम-XXVII, नं. 3, 1981, पृष्ठ 301–10

मुखर्जी, हीरेन्द्रनाथ : पार्लियामेंट इन डिक्लाइन, इन सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स इन कन्टेम्पोरेरी इंडिया बाई अमल कुमार मुखोपाध्याय (सम्पादित), कलकत्ता, काउंसिल फॉर कल्चरल स्टडीज, 1974, पृष्ठ 81–84

मैसेको, लिंडिवे मिशिल : "रोल ऑफ पार्लियामेंटेरियन्स इन जेन्डर बजेटिंग", *दि पार्लियामेंटेरियन*, वोल्यूम 87, नं. 3, 2006, पृष्ठ 199–201

यादव, जय नारायण सिंह : स्पीकर एण्ड हिज़ रूलिंग्स, जर्नल ऑफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज़, वोल्यूम XL, 1977, पृष्ठ 1–16

यादव, श्याम लाल : क्वेश्चन आवर–हाऊ टु मेक इट मोर इफैक्टिव? *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन*, वोल्यूम XXVIII, नं. 1, 1982, पृष्ठ 8–14

रंगा, एन.जी. : पार्लियामेंट्री आर्मरी ऑफ डेमोक्रेसी–ओल्ड एंड न्यू वेपन्स इन *कॉन्स्टीट्यूशन एंड दि पार्लियामेंट इन इंडिया: 25 इयर्स ऑफ दि रिपब्लिक* बाई एस.एल. शकधर, (सम्पादित), दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1976, पृष्ठ 270–78

रंगा रेड्डी, पी. : सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि प्रॉब्लम्स एंड पर्सपैक्टिव्स ऑफ पार्लियामेन्टेरियंस, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फॉर्मेशन*, वोल्यूम XX, नं. 4, 1974, पृष्ठ 760–63

रघुराम, पी. : क्रिटिक ऑफ गवर्नेंस फ्राम द ग्रासरूट्स पर्सपैक्टिव, *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, वोल्यूम 52, नं. 4, 2006, पृष्ठ 746–55

रस्तोगी, के.सी. : पार्लियामेन्ट ऐट वर्क: एन अप्रैज़ल, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फॉर्मेशन,* वोल्यूम XXXVIII, नं. 3, 1991, पृष्ठ 402–09

राइल, माइकल : प्रिविलेज इश्यूज एट वेस्टमिन्सटर, *दि पार्लियामेंटेरियन,* वोल्यूम LXVII, नं. 3, 1966, पृष्ठ 102–03

राज्य सभा कमेटी ऑन पेपर्स लेड ऑन दि टेबल, दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इंफोर्मेशन, वाल्यूम XXVIII, नं. 2, 1982, पृष्ठ 193-94

राधाकृष्णन, वरकला : रोल ऑफ लेजिस्लेचर इन इन्श्योरिंग एडमिनिस्ट्रेटिव एकाउंटेबिलिटी, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फॉरमेशन,* वोल्यूम XXXV, नं. 4, 1989, पृष्ठ 425–31

रूडॉल्फ, लॉयड आई एंड सुसेन एच. रूडॉल्फ : रूलिंग्स ऑन मेम्बर्स राइट्स एंड प्रिविलेजेज इनवोल्विंग कमिटीज इन इंडिया, दि पार्लियामेंटेरियन, वोल्यूम LXIII, नं. 4, 1982, पृष्ठ 348–50

वर्नी, डगलस वी. : पार्लियामेंट्री सुप्रीमेसी वर्सेस जुडीशियल रिव्यू: इज ए कम्प्रोमाइज पॉसिबल? *जर्नल ऑफ कॉमनवेल्थ एण्ड कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स,* वोल्यूम 27, नं. 2, 1989, पृष्ठ 185–200

वर्मा, ए.के. : अ न्यू ट्विस्ट टु आफिस ऑफ प्राफिट बिल, *मेनस्ट्रीम,* वोल्यूम 44, नं. 30, 2006, पृष्ठ 29–30

वाकलैंड, एस.ए. : पॉलिटिक्स ऑफ पार्लियामेंट्री रिफार्म, *पार्लियामेंट्री अफेयर्स,* वोल्यूम XXIV, नं. 2, 1976, पृष्ठ 190–280

विश्वानाथन, टी.के. : फोर्टीन्थ वाइस प्रेसीडेंशियल इलैक्शन 2012; एन एक्सपीरियंस दि जर्नल ऑफ पार्लियोमेंट्री इन्फोर्मेशन, वोल्यूम LIX, 2012, पृष्ठ 12-17

वीर, धरम : लेजिस्लेचर्स सुप्रीमेसी एंड एक्जेक्यूटिव्स एक्सेस, *इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* वोल्यूम 42, नं., 7, 2007, पृष्ठ 561–70

वेंकटरमन, आर. : पार्लियामेंट इन दि इंडियन पॉलिटी, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फार्मेशन,* वोल्यूम XXX, नं. 2, जून 1984, पृष्ठ 197–206

शकधर, एस.एल. : ऑफिसर्स ऑफ पार्लियामेंट, *इन इंडियन पार्लियामेंट बाई* ए.बी. लाल (संपादित), इलाहाबाद, चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, 1956, पृष्ठ 3–41

: इम्पोर्ट लाइसेंसेज केस: सम इंपोर्टेंट प्रिविलेज इश्यूज, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फॉर्मेशन,* वोल्यूम XXI, नं. 3, 1975, पृष्ठ 339–55

: पार्लियामेंट्री इनिशिएटिव्स, *इन कांस्टीट्यूशन एंड दि पार्लियामेंट इन इंडिया: 25 इयर्स ऑफ दि रिपब्लिक* बाई एस.एल. शकधर (संपादित), दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1976, पृष्ठ 285–308

: डिस्टिंक्टिव फीचर्स ऑफ पार्लियामेंट्री प्रोसीजर इन इंडिया, *इन कॉमनवेल्थ पार्लियामेंट्स,* बाई एस.एल. शकधर (सम्पादित), नई दिल्ली, लोक सभा सेक्रेटेरियट, 1975, पृष्ठ 151–57

: इलेक्टोरल प्रोसेस इन इंडिया, दि पार्लियामेंटेरियन, वोल्यूम LXI, नं. 4, 1980, पृष्ठ 205–11

शर्मा, आर.डी. : पार्लियामेंट्री प्रिविलेज: ए केस फॉर कोडीफिकेशन, *हिन्दुस्तान टाइम्स,* 5 सितम्बर, 1984

शास्त्री, टी.एस.एन. : एक्सेलेंस इन पब्लिक सर्विस: नीड फार फाइनेंशियल आटोनोमी टु द जुडीशियरी, *इन्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* वोल्यूम 52, 2006, पृष्ठ 478–83

सिंह, दलीप : डिपॉलिटिसाइजिंग द इंडियन स्पीकर, *जर्नल ऑफ कॉस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज,* वोल्यूम–V, 1971, पृष्ठ 106–15

सिंह, रण बहादुर : पार्लियामेंट ऑफ इंडिया–इट्स यूनीक्नेस एण्ड पोटेंशियल इन *कांस्टिट्यूशन एण्ड दि पार्लियामेंट इन इंडिया: 25 इयर्स ऑफ द रिपब्लिक* बाई एस.एल. शकधर (संपादित), दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1976, पृष्ठ 316–22

सिन्हा, वीणा : सम रिसेंट स्टडीज इन आर्डिनेंस मेकिंग इन इंडिया, *जर्नल ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव साइंस,* वोल्यूम XXIV-XXV, 1979-80, पृष्ठ 127–38

सुचरिता, सी.के. : इंडियन पार्लियामेंट एट वर्क: सम सजेशन्स फॉर रिफार्म, *जर्नल ऑफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज,* वोल्यूम XV, 1981, पृष्ठ 176–99

सुपाकर, श्रद्धाकर : क्वेश्चन आवर, *दि जर्नल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन,* वोल्यूम XX, नं. 3, 1974, पृष्ठ 561–63

सैनी, महेन्द्र कुमार : स्टडी ऑफ नो-कॉन्फीडेन्स मोशन्स इन दि इंडियन पार्लियामेंट, 1952–70, *इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस,* वोल्यूम XXXII, 1971, पृष्ठ 297–315

सोराबजी, सोली जे. : इंडियन डेमोक्रेसी : रिएलिटि ऑर मिथ, *इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर क्वार्टरली,* वोल्यूम 42, नं. 7, 2007, पृष्ठ 561-70

संसदीय वाद-विवाद की पद्धति और प्रक्रिया

वाद-विवाद

अम्बेडकर, भीमराव रामजी : संसद के सत्र, सत्रावसान और विघटन, *संविधान सभा वाद-विवाद,* खण्ड XVIII, 1949, पृष्ठ 181–84

आयंगर, एम. अनंतशयनम : संसद और उसके सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां, *संविधान सभा वाद-विवाद,* खण्ड V, 1949, पृष्ठ 260–62

: संसद सदस्यों के वेतन और भत्ते, *संविधान सभा वाद-विवाद,* खण्ड VIII, 1949, पृष्ठ 274–76

कामत, हरि विष्णु : संसद और उसके सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां, *संविधान सभा वाद-विवाद,* खण्ड VIII, 1949, पृष्ठ 245–47

कृष्णमाचारी, टी.टी. : राज्य सूची के विषय के संबंध में राष्ट्रीय हित में विधि बनाने की संसद की शक्ति, *संविधान सभा वाद-विवाद,* खण्ड VIII, 1949, पृष्ठ 1193–1213

नागप्पा, एस. : कतिपय मामलों में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक, *संविधान सभा वाद-विवाद,* खण्ड VIII, 1949, कॉ 304–05

: ध्यानाकर्षण सूचनाओं को निपटाने संबंधी प्रक्रिया, *लोक सभा वाद-विवाद,* 20 नवंबर, 1978, कॉ 191–92

: रिजोल्यूशन पास्ड बाई दि लेजिस्लेटिव असेम्बली ऑफ आंध्र प्रदेश रिकमेंडिंग एबालिशन ऑफ दि स्टेट लेजिस्लेटिव काउंसिल एण्ड दि गवर्नमेंट्स रिएक्शन देयरटूः कालिंग ऐटेंशन—*राज्य सभा डिबेट्स,* 14 मार्च, 1984, कॉ., 160—201

: देश में लोकतांत्रिक संस्थाओं का सुचारू रूप से कार्यकरण सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निर्वाचित जनप्रतिनिधियों की ब्लैक-मेलिंग और चरित्रहनन रोकने तथा तद्नुसार निर्वाचक कानूनों को संशोधित करने हेतु मार्गदर्शी सिद्धांत बनाने की आवश्यकता पर चर्चा, *लोक सभा वाद-विवाद*, 7 मई, 1987, कॉ. 288—316

: न्यायमूर्ति रामास्वामी का मामला, *लो.स. वाद-विवाद,* 12 मार्च, 1991, पृष्ठ 72—73; 10 मई, 1993, पृ. 250—372 और 11 मई, 1993, पृष्ठ 216—379

: भारत की स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगांठ के अवसर पर विशेष बैठकें, *लोक सभा वाद-विवाद*, 26 अगस्त से 1 सितम्बर, 1997

: नियम 56 पर अध्यक्ष की टिप्पणी, लोक सभा वाद-विवाद, फिफ्टींथ सीरीज, वाल्यूम VII, नं. 3, पृष्ठ 16-17

: कटौती प्रस्तावों पर अध्यक्ष की टिप्पणी, लोक सभा वाद-विवाद, फिफ्टीन्थ सीरीज, वाल्यूम-IX, नं 24, पृष्ठ 585-86

: स्थगन प्रस्ताव पर अध्यक्ष की टिप्पणी, लोक सभा वाद-विवाद, फिफ्टींथ सीरीज, वाल्यूम-X, नं. 3, पृष्ठ 56-57

: भारत की संसद की पहली बैठक की 60वीं वर्षगांठ मनाने के लिए विशेष बैठक, लोक सभा वाद-विवाद, 13 मई 2012

अनुबंध

गैर-सरकारी सदस्यों के अधिनियमित विधेयकों के ब्यौरे दर्शाने वाला विवरण

क्रमांक	विधेयक का नाम	प्रभारी सदस्य	उद्देश्य	चर्चा की तारीखें	स्थिति	अधिनियम संख्या और राजपत्र में प्रकाशन की तारीख
1.	मुस्लिम वक्फ विधेयक, 1952	सैयद मोहम्मद अहमद काजमी	भारत में मुस्लिम वक्फों का बेहतर शासन और प्रशासन तथा मुटावाली प्रबंध मंडल का पर्यवेक्षण करने के लिए उपबंध करना	16.7.52 30.7.52 13.3.53 14.8.53 26.11.53 18.2.54 4.3.54 12.3.54	पारित	1954 का अधिनियम 29 21.5.1954
2.	दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक 1953 **(धारा 435 का संशोधन)**	श्री रघुनाथ सिंह	निचली अदालतों के अंतिम आदेशों पर रोक लगाने अथवा उन्हें निलंबित करने के लिए पुनरीक्षण न्यायालयों को सशक्त बनाना	27.11.53 29.4.55 5.8.55 27.7.56 13.8.56	पारित	1956 का अधिनियम 39 1.9.1956
3.	भारतीय रजिस्ट्रीकरण (संशोधन) विधेयक 1955 **(धारा 2, आदि का संशोधन)**	श्री एस.सी. सामंत	भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होने के नाते रजिस्ट्रीकरण विलेख में दलों की जातियों और उपजातियों को अभिलिखित करने की विषमता को दूर करना	16.9.55 16.12.55 15.3.56 23.3.56	पारित	1956 का अधिनियम 17 6.4.1956
4.	विधानमंडल की कार्यवाही (प्रकाशन का संरक्षण) विधेयक, 1956	श्री फिरोज गांधी,	विधान मंडलों की कार्यवाहियों की रिपोर्टों के सद्भावनापूर्वक किए गए प्रकाशनों के लिए उपलब्ध विशेषाधिकारों को विधि द्वारा परिभाषित करना	24.2.56 23.3.56 6.4.56 1.5.56 4.5.56	पारित	1956 का अधिनियम 24 26.5.1956

1	2	3	4	5	6	7
5.	स्त्री और बालक संस्था (अनुज्ञापन) विधेयक, 1954	राजमाता कमलेंदुमती शाह	18 वर्ष से कम आयु की महिलाओं और बच्चों की देखभाल करने वाले अनाथालयों और अन्य संस्थाओं को विनियमित करना तथा अनुज्ञप्ति देना और उनके अंत:वासियों को उचित अभिरक्षा, देखभाल और उन्हें प्रशिक्षण देने के लिए उपबंध करना	26.2.54 10.8.56 24.8.56 25.8.56 30.11.56 7.12.56	पारित	1956 का अधिनियम 105 30.12.1956
6.	प्राचीन एवं ऐतिहासिक संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष (राष्ट्रीय महत्व का होने की घोषणा) विधेयक, 1954 **(24.8.56 को राज्य सभा द्वारा यथापारित)**	श्री बलवंत सिंह मेहता	1951 के मूल अधिनियम में घोषित राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों की सूची में कतिपय संस्मारकों को शामिल करना	31.8.56 (सभा पटल पर रखा गया) 7.12.56	पारित	1956 का अधिनियम 70 15.12.1956
7.	हिन्दू विवाह (संशोधन) विधेयक 1956 **(धारा 10 का संशोधन)** (30.11.56 को राज्य सभा द्वारा यथापारित)	श्रीमती उमा नेहरू	ऐसे व्यक्तियों को, जब दोनों पक्षकार हिन्दू धर्म से हों और विशेष विवाह अधिनियम के अंतर्गत विवाह कर रहे हों, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 से शासित किए जाने की अनुमति देना	3.12.56 (सभा पटल पर रखा गया) 7.12.56	पारित	1956 का अधिनियम 73 20.12.1956
8.	दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक 1957 **(धारा 198 का संशोधन)**	श्रीमती सुभद्रा जोशी	किसी ऐसी महिला को, जिसके पति ने द्विविवाह का अपराध किया हो, मुकद्में में खर्च होने वाले धन के कारण हो रही कठिनाई को दूर करना	20.12.57 11.9.59 27.11.59 23.8.60 23.12.60	पारित	1960 का अधिनियम 56 26.12.1960

1	2	3	4	5	6	7
9.	अनाथालय और अन्य पूर्त आश्रम (पर्यवेक्षण और नियंत्रण) विधेयक 1960 (14.2.1960 को राज्य सभा द्वारा यथापारित)	श्री दीवानचंद शर्मा	अनाथालयों और अन्य पूर्त संस्थाओं के बेहतर प्रबंध के लिए उनका पर्यवेक्षण और नियंत्रण करने हेतु उपबंध करना	26.2.60 18.3.60	पारित	1960 का अधिनियम 10 9.4.1960
10.	भारतीय समुद्री बीमा विधेयक, 1959 (राज्य सभा में यथा पुर:स्थापित) समुद्री बीमा विधेयक, 1963 **(राज्य सभा द्वारा यथापारित विधेयक लोक सभा पटल पर रखा गया)**	श्री दीवानचंद शर्मा	समुद्री बीमा से संबंधित विधि का संहिताबद्ध किया जाना 5.4.63	14.3.63 22.3.63	पारित	1963 का अधिनियम 110 18.4.1963
11.	हिन्दू विवाह (संशोधन) विधेयक 1962	श्री दीवानचंद शर्मा	न्यायिक पृथक्करण या दांपत्याधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी डिक्री के मामले में विवाह विच्छेद के लिए आवेदन करने का अधिकार केवल उस पक्षकर को, जिसने डिक्री प्राप्त की है, उपलब्ध कराने की बजाए दोनों पक्षकारों को उपलब्ध कराना है	22.2.63 4.12.64	पारित	1964 का अधिनियम 44 20.12.1964
12.	संसद सदस्य वेतन और भत्ता (संशोधन) विधेयक, 1964 **(धारा 3 और 5 का संशोधन)**	श्री रघुनाथ सिंह	संसद सदस्यों के वेतन और भत्ते में वृद्धि उच्च निर्वाह व्यय को पूरा करने के लिए करना तथा विमान यात्रा सुविधाएं भी उपलब्ध कराना	10.4.64 24.4.64 25.9.64	पारित	1964 का अधिनियम 26 29.9.1964

1	2	3	4	5	6	7
13.	भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1967 (धारा 292, 293 आदि का संशोधन)	श्री दीवानचंद शर्मा	अश्लीलता के लिए दंड देने से संबंधित मूल अधिनियम में कलाकृतियों को शास्तिक खंडों से छूट देना	20.12.67 (सभा पटल पर रखा गया) 14.3.68 29.3.68 11.4.68 01.5.69 16.5.69	पारित	1969 का अधिनियम 36 / 7.9.1969
14.	उच्चतम न्यायालय अपीली (दंड) अधिकारिता विस्तारण विधेयक, 1968	श्री आनन्द नारायण मुल्ला	दांडिक विषयों में उच्चतम न्यायालय की अपीली अधिकारिता का विस्तार करना	15.11.68 3.4.69 18.4.69 17.11.69 19.12.69 25.3.70 31.7.70	पारित	1970 का अधिनियम 28 / 9.8.1970

केस (मुकदमा) अनुक्रमणिका

अंशुमाली मजुमदार *बनाम* पश्चिम बंगाल राज्य 346, 348

अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ (रेलवे) *बनाम* भारत संघ 12

अध्यक्ष, उड़ीसा विधान सभा *बनाम* उत्कल केशरी परिदा 79

अर्जुन अरोड़ा 419

अर्जुन सिंह भदौरिया 316

अलाई ओ साई 394

अल्ताप अली *बनाम* जमसूर अली 774

अवस्थी, डी.एस. *बनाम* वीरेन्द्र स्वरूप 116

अशोक कुमार भट्टाचार्य *बनाम* अजय विश्वास 113, 120

असम ट्रिब्यून 398

असम वीकली 391

आठवले, रामदास बनाम भारत संघ 355

आनंदन नाम्बियार के. और उमानाथ आर. *बनाम*
मुख्य सचिव, मद्रास सरकार 349

आनंदन नाम्बियार के. का मामला 346, 349, 355

आबू, के.के. *बनाम* भारत संघ और अन्य 265

आब्जर्वर 1559

आयकर अधिकारी, एल्लेप्पी *बनाम* एम.सी. पोन्नूस 913

आयात अनुज्ञा पत्र 436

आर.एम.डी.सी. लिमिटेड *बनाम* बम्बई राज्य 220

आर्गेनाइजर 391

आर्य संदेश 391

आर्यावर्त 391, 393, 394

आल इंडिया रेडियो 391, 393, 394

इंडियन एक्सप्रेस 393, 394, 395

इंडियन नेशन 394

इंडियन शुगर्स एंड रिफाइनरीज लि.
बनाम मैसूर राज्य और अन्य 1221

इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया 391

ईशर सिंह *बनाम* मंजीत इन्दर सिंह 117

उच्चतम न्यायालय अधिवक्ता-ऑन रिकार्ड एसोसिएशन *बनाम* भारत संघ 1513
उपेन्द्र लाल *बनाम* श्रीमती नारायणी देवी 110
उमराव सिंह, एस. *बनाम* दरबारा सिंह 109

एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स *बनाम* भारत संघ 1557
एडवर्ड मिल्स कम्पनी *बनाम* अजमेर राज्य 909
एस.के.जी. (पी.) लि. *बनाम* बिहार राज्य 883

कंवर लाल गुप्ता *बनाम* अमरनाथ चावला एवं अन्य 75
कंसारी हैदर 355
कछवाय, एच.सी. 316
कटारा, बाबूभाई के. 387
कपूर, बी.आर. *बनाम* तमिलनाडु राज्य 2
कपूर, राय साहब राम जवाया *बनाम* पंजाब राज्य 13, 14
कलकत्ता गैस कंपनी लि. *बनाम* पश्चिम बंगाल राज्य 779
कलिंग 393
कश्यप, एस.सी. 364
कांता कथूरिया *बनाम* मानक चन्द सुराना 113, 118, 119
किशनलाल लामरोर *बनाम* मदन सिंह 117
किहोटा होल्लोहॉन *बनाम* जाचिलु और अन्य 2, 85
कुंजन नाडर, ए. *बनाम* राज्य 346, 347
कुंवर राम 1213, 1216
कृष्णन मनोहरन 399, 1213, 1215
कृष्णन सी *बनाम* हैदराबाद 1526
कृष्णप्पा *बनाम* नारायण सिंह 115, 117
केरल उच्च न्यायालय (**साथ ही देखिए** राज्य *बनाम* आर. सुदर्शन बाबू और अन्य) 383
केरल कौमुदी 391
केरल राज्य *बनाम* के.एस. चारिया अब्दुल्ला एंड कम्पनी 913
केरल राज्य *बनाम* सुदर्शन बाबू और अन्य 323, 383
केशव सिंह *बनाम* अध्यक्ष, विधानसभा, उत्तर प्रदेश 376
केशवानन्द भारती श्री पदागलवारू *बनाम* केरल राज्य 2, 863, 1525
कैम्ब्रियन रेलवे डायरेक्टर्स 319

कोलमैन *बनाम* मिल्लर 875
कौल्हे, आई.आर *बनाम* तमिलनाडु राज्य और अन्य 2
कौशिक, के.एम. 364, 414
खाजे खनवा खादर खान हुसैन खां
बनाम सिद्दवानाहल्ली निजलिंगप्पा 88
खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग 396

गणपति केशवराम रेड्डी *बनाम* नफीसुल हसन 360, 375
गांधी, श्रीमती इंदिरा 387, 1214
गांधी, श्रीमती इंदिरा नेहरू *बनाम* राज नारायण 863, 1526
गिरि, वी.वी. *बनाम* डी. सूरी डोरा 26
गुप्ता, एस.पी. व अन्य *बनाम* भारत का राष्ट्रपति 12
व अन्य (इसे न्यायाधीशों के स्थानांतरण के मामले के नाम से भी जाना जाता है) 2, 1573
गुरदयाल सिंह संधु 346
गुरू गोविंद बसु *बनाम* संकरी प्रसाद घोषाल तथा अन्य 114, 116
गुलाब चन्द *बनाम* कुदीलाल 773
गुलाम चंद चोरड़िया *बनाम* ठाकुर नारायण सिंह 110
गुहा, समर 399
ग्रेट वेस्टर्न रेलवे कम्पनी *बनाम* बेटर 108
गोदावरिस मिश्र *बनाम* नंद किशोर दास 322, 324, 376
गोपाल कुरूप *बनाम* सैमुअल अरूलप्पन पॉल 116
गोपालन, ए.के., के मामले में 1524
गोपालन *बनाम* मद्रास राज्य 11
गोलक नाथ, आई.सी. *बनाम* पंजाब राज्य 862
गोलाम याजदानी 413
गोविंद मालवीय *बनाम* मुरली मनोहर 118
ग्वालियर रेयान मिल्स मैन्युफैक्चरिंग (वीविंग)
कम्पनी लि. *बनाम* सहायक बिक्री कर आयुक्त 909

घासीराम *बनाम* दलसिंह 92
घोष, निरेन 399

चंदर नाथ *बनाम* कुँवर जसवंत सिंह 110
चंद्र कुमार, एल. *बनाम* भारत संघ और अन्य 2, 864

चटर्जी, एन.सी.	419
चन्द्रकली *बनाम* सीताराम	190
चरण लाल साहू *बनाम* फखरूद्दीन अली अहमद	60
चुनाव मामला (**साथ ही देखिए** इंदिरा नेहरू गांधी *बनाम* राजनारायण)	863
छोटेलाल *बनाम* उ.प्र. राज्य	12
जगजीत सिंह	389
जतिन चक्रवर्ती *बनाम* न्यायमूर्ति हिमान्शु कुमार बोस	874
जतीश चंद्र घोष *बनाम* हरिसाधन मुखर्जी	318, 1557
जनयुगोम	394
जनसत्ता	391, 394
जनहित याचिका केन्द्र *बनाम* भारत संघ व अन्य	12
जय सिंह राठी *बनाम* हरियाणा राज्य	324
जयराम अय्यर, के. मामला	192
जाम्बवंत धोते	354
जालन्धर रबर गुड्स मैन्यूफैक्चर्स एसोसिएशन *बनाम* भारत संघ	775
जुगल किशोर *बनाम* डॉ. बलदेव प्रकाश	92
जे.के. आर्गेनाइजेशन	391
जैनेश्वर बोरा *बनाम* रिटर्निंग अधिकारी	119
ज्योति प्रसाद *बनाम* दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र	909
ज्योति प्रसाद उपाध्याय *बनाम* कालका प्रसाद भटनागर	116
ज्योतिर्मय बसु *बनाम* भारत संघ	899, 391
ज्ञान प्रसन्न *बनाम* पश्चिम बंगाल	5, 883
झारखंड मामला	500
टाइम मामला	415
टाइम्स ऑफ इंडिया	393, 394
टाटा, जे.आर.डी.	389, 391, 396
टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि. *बनाम* मैसर्स टाटा आयरन एंड स्टील कम्पनी लि. के कर्मकार	908, 909
ठाकुर दाऊ सिंह *बनाम* राम कृष्ठ राठौर	109, 108
डाक्टर एस. सी. कृष्ण कामण	392
डालटन	405
डिल्लन *बनाम* ग्लॉस	875
डेली प्रताप	391

डेली मेल 357
डेली हैराल्ड 391
तेज किरण जैन *बनाम* एन. संजीव रेड्डी 315, 317, 1527
त्यागी, महावीर 354
थानीनीराम 389
थॉमस 405
थॉमस, के.जे. *बनाम* कृषि आयकर आयुक्त 11, 1525
दफ्तरी, सी.के. *बनाम* ओ.पी. गुप्त 1518
दशरथ देव 421, 422, 1212, 1213, 1215
दाऊद मिया खान 325, 392
दासगुप्त, सी.आर, 396
दिल्ली नगर निगम *बनाम* बिरला कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स 909
दिल्ली विधि अधिनियम मामला 1, 2, 13, 907, 910, 913
दीपिका 396
देवराव लक्ष्मण आनन्दे *बनाम* केशव लक्ष्मण बोरकर 103, 109, 110, 112
देवी दास गोपाल कृष्ण *बनाम* पंजाब राज्य 909
देशपांडे 297, 354, 421, 422, 1002, 1003, 1005, 1089, 1103, 1212, 1103, 1213, 1214, 1215
दैनिक देशबंधु 389, 391, 396
दौलतराम *बनाम* महाराजा आनन्द चन्द 118
धनोआ, एस.एस. *बनाम* भारत संघ 222
धुनेसुर कुंवर *बनाम* राय गुडर सहाय 774
नगेन्द्र सिंह 1215
नम्बूदरीपाद 414
नरेन्द्र नाथ बरुआ *बनाम* देवकांत बरुआ और अन्य 359
नवजीवन 394
नवभारत टाइम्स 391
नागराज, एम. और अन्य *बनाम* भारत संघ और अन्य 2
नायक, पी.आर. और खेड़ा, एस.एस. 389, 392, 396
नारायण स्वामी नायडू *बनाम* कृष्णमूर्ति 113
नॉर्दर्न इंडिया पत्रिका 394
नेशनल हैराल्ड 391
नैयर, कुलदीप *बनाम* भारत संघ और अन्य 2
न्यायिक उत्तरदायित्व संबंधी उपसमिति *बनाम* भारत संघ 272, 1521
पंचायत प्रधान 400

पंजाब राज्य *बनाम* अजायब सिंह 375
पंजाब राज्य *बनाम* सत्यपाल डांग 36, 177, 262, 573, 752, 882
पंजाब विधान सभा के सदस्य 399
पंजाब विधान सभा के सदस्यों पर हमला 399
पई, टी.ए. और वालमुखी 391
पटना जिला ट्रक ओनर्स एसोसिएशन *बनाम* स्टेट ऑफ बिहार 752
पटनायक विजयानन्द *बनाम* भारत के राष्ट्रपति 896, 899
पटवान यूनियन 398
पटेल 401
पशुपति नाथ सिंह *बनाम* हरिहर प्रसाद सिंह 87
पशुपति नाथ सुकुल *बनाम* नेम चन्द्र जैन 91
पश्चिम बंगाल राज्य *बनाम* भारत संघ 1495
पाइपलाइन जांच आयोग 396
पॉयनियर 392
पीटर सैमुअल वैलेस *बनाम* भारत संघ 67
पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स *बनाम* भारत संघ 12
पुरुषोत्तम गोविन्दजी हलाई *बनाम* बी.एम. देसाई 1525
पुरुषोत्तमन नम्बूदिरी *बनाम* केरल राज्य 854, 1521
पैट्रियट 391
पैरट 319
पैराडाइज लाटरी सेन्टर *बनाम* आंध्र प्रदेश राज्य 4
पोडयाल, आर.सी. *बनाम* भारत संघ 2
प्रताप सिंह *बनाम* पंजाब राज्य 894
प्रतिपक्ष 389, 391
प्रेम नारायण टंडन *बनाम* उत्तर प्रदेश राज्य 882
प्रेस सूचना ब्यूरो 397, 415
फकीर चन्द *बनाम* प्रीतम सिंह 117
फरीदी, ए.जे. *बनाम* उत्तर प्रदेश विधान परिषद के सभापति (आर.वी. धूलेकर) 149
फाइनेंशियल एक्सप्रेस 389, 396
फिलिप्स तथा अन्य 319
फेडरल कमिश्नर आफ टैक्सेशन *बनाम* मुनरो 748
फ्रांस का मामला 391
फ्रॉम नुसरवानजी *बनाम* बम्बई राज्य 12
फ्रिडा टोपनो 352
फ्री प्रैस जरनल (बम्बई) 392, 395, 415

बंधुआ मुक्ति मोर्चा *बनाम* भारत संघ 12
बच्चन, जया *बनाम* भारत संघ 120
बम्बई राज्य *बनाम* नरोत्तमदास जेठा भाई 779
बर्डट *बनाम* एबट 358
बलसारा, नुसरवानजी *बनाम* बम्बई राज्य 12
बसु, ज्योति 391
बसुमती 391
बाबू राम शर्मा *बनाम* राज्य 883
बाबूराव पटेल *बनाम* डॉ. जाकिर हुसैन 69, 71
बाबू लाल *बनाम* बम्बई राज्य 10
बालू 389
बॉवल्स और हट्समैन 391
बिजनेस स्टैंडर्ड 391, 392
बिजेय सिंह *बनाम* नरबदा चरण लाल 109
बिहार राज्य *बनाम* कामेश्वर सिंह 322, 376
बिहारीलाल दोबरे *बनाम* रोशन लाल दोबरे 120
बृज भूषण *बनाम* दिल्ली राज्य 1557
बेनेट कॉलमैन एण्ड कं.लि. *बनाम* भारत संघ 894, 1557
बेरूबाड़ी 10
बोम्मई, एस.आर. *बनाम* भारत संघ 896, 899, 1500
ब्लिट्ज (साथ ही देखिए होमी डी. मिस्त्री *बनाम* नफीसुल हसन) 216, 314, 363, 403, 414, 1099, 1210, 1213, 1559
ब्रह्मदत्त *बनाम* परिपूर्णानंद पेनुली 113
ब्रह्मानंद स्वामी 352
ब्राउन और सिविल सर्विस क्लैरिकल एसोसिएशन 318
भगवती प्रसाद दीक्षित 'घोड़ेवाला' *बनाम* राजीव गांधी 120
भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के मामले में 317, 381
भारत संघ *बनाम* गोपाल चंद्र मिश्र 146
भारत संघ *बनाम* मनमुल्ल जैन 937
भारत सेवक समाज 396
भीम सिंह जी *बनाम* भारत संघ 2
भूपेन्द्र कुमार बोस *बनाम* उड़ीसा राज्य 886
भूषण लाल *बनाम* राज्य 913
भैरोंलाल *बनाम* डूंगरसीदास 109, 117

भोगेन्द्र झा 413, 1216
भोला नाथ *बनाम* कृष्ण चन्द्र गुप्ता 116
भौमिक, धीरेन्द्र 391, 414
मंगल सिंह बनाम भारत संघ 23
मंगल सिंह और एक अन्य *बनाम* भारत संघ 9
मगनभाई ईश्वर भाई पटेल *बनाम* भारत संघ 937
मजूमदार, बी.के. 387, 414
मथाई, एम.ओ 391, 389, 414, 1559
मदरलैंड 394
मधु लिमये 392
मधुकर जी.ई. पानक्कर *बनाम* जसवन्त चोबीदास राजन 114
मध्य प्रदेश राज्य *बनाम* टीकमदास 913
मध्य प्रदेश सरकार *बनाम* ठाकुर भरत सिंह 893
महाराष्ट्र टाइम्स 391
महालक्ष्मी *बनाम* श्यामरंगिनी 774
महावीर प्रसाद शर्मा *बनाम* प्रफुल्ल चन्द्र घोष 191
मांझी, राजेश कुमार 387
माखन सिंह तारासिक्का *बनाम* पंजाब राज्य 894
मिथिलेश कुमार *बनाम* आर. वेंकटरामण और अन्य 67
मिनर्वा मिल्स लिमिटेड *बनाम* भारत संघ 1, 7, 1526
मिश्र, कन्हैया लाल 394
मुखर्जी, एस.सी. 364, 387, 1210
मुदलियार, टी.के. *बनाम* पोट्टी 769
मुद्गल 98, 218, 446, 1053, 1072, 1074, 1089, 1099, 1103
मुनरो 748
मुलगांवकर 389
मेहता, एम.सी. *बनाम* भारत संघ 12
मैटल कॉरपोरेशन आफ इंडिया लि. *बनाम* भारत संघ 779, 888
मोदी, कृष्ण कुमार *बनाम* भारत संघ 893, 894
मो. याकूब *बनाम* जम्मू और कश्मीर राज्य 893
मौलाना अब्दुल शकूर *बनाम* रिखब चन्द तथा अन्य 114, 115
यशवंत राव मेघावाले *बनाम* मध्य प्रदेश विधान सभा 429
युगल किशोर सिन्हा *बनाम* नागेन्द्र प्रसाद यादव 109
योगेन्द्र नाथ हांडा *बनाम* राज्य 281

रमेश थामर बनाम मद्रास राज्य 1556

रवीन्द्रन, के. 404

राज कृष्ण *बनाम* विनोद 1553

राज नारायण और अन्य (उत्तर प्रदेश विधान सभा) 401

राज नारायण सिंह *बनाम* आत्माराम गोविंद खेर 322, 323, 376

राज नारायण सिंह *बनाम* सभापति, पटना प्रशासन समिति 909, 1527

राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ 896

राजस्थान विधान सभा 313, 399

राजा राम पाल *बनाम* माननीय अध्यक्ष, लोक सभा और अन्य 372, 1526

राबिनसन और नेशनल यूनियन ऑफ डिस्ट्रीब्यूटिव एण्ड एलाइड वर्कर्स 318

राम किशोर सेन *बनाम* भारत संघ 8

राम जवाया बनाम पंजाब राज्य 32

राम दूबे *बनाम* मध्य भारत सरकार 322, 376

राम मूर्ति *बनाम* सुंभा सरदार 118

राम स्वरूप *बनाम* हरि राम और अन्य 119

रामनारायण रामगोपाल चमेदिया *बनाम* रामचन्द्र जोगाबा काडू 116

रामप्पा, एम.बनाम संगप्पा तथा अन्य 114

रामेश्वर प्रसाद *बनाम* भारत संघ 266, 897, 1501

राय रामकृष्ण बनाम बिहार राज्य 779

राय, सरदीश और भौरा, बी.एस. 399

राव, पी.वी. नरसिम्हा *बनाम* राज्य 372

राव, यू.एन.आर. *बनाम* श्रीमती इन्दिरा गांधी 195

रावन्ना *बनाम* कग्गूडप्पा 109

रुस्तम कावासजी कपूर *बनाम* भारत संघ 1525

रैम्से मामला 296

रोमेश थापर *बनाम* मद्रास राज्य 1557

लक्ष्मीकांत पाण्डेय *बनाम* भारत संघ 12

लखनपाल, पी.एल. *बनाम* भारत संघ 890

लालजी भाई 399

लीला देवी *बनाम* रंगीला राम राव 120

लीलाधर कोटकी 415, 423

लीविस 297

वसनलाल मगनभाई संजनवाला एंड द प्रताप स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लि. *बनाम* बम्बई राज्य 908

वामनराव *बनाम* भारत संघ 2, 864

वासन *बनाम* वाल्टर 1555

विद्या चौधरी *बनाम* बिहार प्रान्त 264, 882

विन्ध्य प्रदेश विधान सभा के सदस्यों के मामले में 103, 111, 114

विरजी राम सुतारिया *बनाम* नाथालाल प्रेमजी भनवाडिया 88

विश्वनाथ अग्रवाल *बनाम* उत्तर प्रदेश राज्य 882

वीरभद्र का मामला 882

वीरेन्द्र सिंह *बनाम* उत्तर प्रदेश राज्य 1495

वेंकटरामन, आर. 391, 412

वेंकटशेषम्मा, पी. *बनाम* आन्ध्र प्रदेश राज्य 893

वेंकटेस्वरलू के मामले में 346, 348

शंकराचार्य 377

शंकरी प्रसाद *बनाम* भारत संघ 862, 865, 869

शर्मा, एम.एस.एम. *बनाम* श्री कृष्ण सिन्हा 262, 309, 316, 317, 319, 320 376, 381, 392, 394, 411, 1526, 1558

शांति भूषण और अन्य *बनाम* भारत संघ और अन्य 12, 1514

शिब्बन लाल सक्सेना 415

शिवमूर्ति स्वामी *बनाम* संगन्ना 114

शिवराम केवरान्थी *बनाम* वेंकटरामन गौड़ा 110

शील भद्र याजी 412

शेरिडन 375

श्रद्धाकर *बनाम* उड़ीसा विधान सभा 322, 376

श्री किष्ण, सी. *बनाम* हैदराबाद स्टेट 12, 322, 376, 1526

श्री मीनाक्षी मिल्स लि. *बनाम* भारत संघ 894

श्री रामुलु, ए. के मामले में 898

श्री लक्ष्मी टूअरिंग टाकिज *बनाम* कर्नाटक राज्य 894

संजीवैयया, डी. *बनाम* इलैक्शन ट्रिब्यूनल, आन्ध्र प्रदेश 91

संपत कुमार एस.पी. *बनाम* भारत संघ 2

सकल पेपर्स लि. *बनाम* भारत संघ 1557

सज्जन सिंह *बनाम* राजस्थान राज्य 862

सतीश अग्रवाल 393, 1213

सत्य देव बुसहारी *बनाम* पदमदेव 1554

सत्यनारायण जटिया 413, 1213

सबा मूर्ति पी *बनाम* आंध्र प्रदेश राज्य 2

समाचार भारती 394

समाज 417

सम्राट *बनाम* क्रीवे 321

सर्चलाइट (साथ ही देखिए शर्मा, एम.एस.एम. *बनाम* श्रीकृष्ण सिन्हा के अंतर्गत) 303, 314, 316, 319, 360, 381, 392, 411, 1439 1526

सामी सांज 394

साहा, ए.के. 399

साहू चरण लाल *बनाम* फखरुद्दीन अली अहमद 60

सिंह, डी.बी. *बनाम* भारत संघ और अन्य 12

सिद्दावीरप्पा, एच. और अन्य *बनाम* मैसूर राज्य 259

सिन्हा 421, 422, 388, 1212, 1213, 1215

सुन्दरम, के.वी.के. के मामले में 76

सुन्दरैया 395, 396, 421, 422, 1212, 1213, 1215, 1558

सुब्रह्मण्यम, सी. *बनाम* अध्यक्ष, मद्रास विधान सभा 305, 314, 405

सुरेंद्र महंती *बनाम* नवकृष्ण चौधरी 317, 321, 323, 330, 376, 1527

सुरेश चंद्र बनर्जी *बनाम* पुनीत गोआला 317, 1557

सुशांत कुमार चांद *बनाम* उड़ीसा विधान सभा 361

सेतुमाधव राव *बनाम* दक्षिण अरकाट के कलक्टर 1553

सेन गुप्त, एच.सी. *बनाम* अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल 1495

सैयद अब्दुल मन्सूर हबीबुल्लाह *बनाम* अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान सभा 276, 282

सैली मामला 362, 389

स्टेट्समैन 392, 394

हंसा जीवराज मेहता *बनाम* इन्दूभाई बी. अमीन 103, 115

हबीबुल्लाह सैयद अब्दुल मंसूर 276

हरकचन्द रमनचन्द बंथिया *बनाम* भारत संघ 779

हरद्वारी लाल 391, 368, 389, 429

हरला *बनाम* राजस्थान राज्य 913

हरशरण वर्मा *बनाम* चन्द्रभान गुप्ता 190

हरशरण वर्मा *बनाम* त्रिभुवन नारायण सिंह 190

हरि शंकर बागला *बनाम* मध्य प्रदेश राज्य 909

हरेन्द्र नाथ बरुआ *बनाम* देवकांत बरुआ 376

हल्दर के.सी. 352

हावर्ड *बनाम* गोसेट 361

हिदाऊ, राम 399

हिन्दुस्तान मामला 391, 417

हिन्दुस्तान टाइम्स 391, 393, 395
हिन्दुस्तान स्टेण्डर्ड 391, 395, 1558
हुक्मचन्द *बनाम* भारत संघ 913
हेमचंद्र सेनगुप्ता *बनाम* अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल विधान सभा 322, 376
होतीलाल *बनाम* राय बहादुर 110
होमी डी. मिस्त्री *बनाम* नफीसुल हसन 359, 360, 361, 362, 363, 376

विषय अनुक्रमणिका

अजनबियों :

का सभा में प्रवेश, 1365-68

की परिभाषा, 1365

को बाहर निकालना, 319, 543, 1368

द्वारा सभा की अवमानना, 386

अतारांकित प्रश्न, 650

अतिरिक्त अनुदान, 1040

अतिरिक्त व्यय :

को नियमित किया जाना, 1170

अधिनियमन सूत्र, 765

अधीनस्थ विधान :

अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति
देखिए 'समितियां'

आदेशों का उपान्तरण, 915

आदेशों, विनियमों आदि का
सभा पटल पर रखा जाना, 914

का अर्थ, 907-11

का उप प्रत्यायोजन, 910-11

की परिभाषा, 907

नियमों आदि का सभा पटल पर
रखा जाना, 914

नियमों, विनियमों आदि से युक्त

सभी अधिसूचनाओं का सभा पटल पर
रखा जाना, 914

पर नियन्त्रण, 911

प्रस्तावों को प्रस्तुत करने और उन पर चर्चा के
लिए समय का नियतन, 918

बनाने की आवश्यकता, 907

यथा संशोधित विनियमों, नियमों आदि का सभा
पटल पर रखा जाना, 914-17

सशर्त विधान, 909

स्वीकृत प्रस्तावों को राज्य सभा/मन्त्री को भेजा
जाना, 920

अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति :

देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

अध्यक्ष :

अग्रता क्रम, 178

और महासचिव, 225

का आसन, 134-41

का कार्यकाल, 141-42

का निर्णायक मत, 161

का पद

स्वंतत्रता प्राप्ति से पूर्व, 124-26

स्वतंत्रता और उसके बाद, 126-29

की अनुपस्थिति, 546

की अनुमति, *देखिये* अनुमति

की अनुशासनात्मक शक्तियां, 173-77

की अन्तर्निहित शक्तियां, 1362

की अवशिष्ट शक्तियां, 1362

की निर्वाचन विधि, 131-34

की निष्पक्षता, 161

की प्रशासनिक शक्तियां, 1363-64

की भूमिका, 161-62, 171-78

की वेशभूषा, 155-56

की शक्तियां और कृत्य, 162

की शक्तियां, सीमाएं, 173

के कार्य, 173

के चुनाव के संबंध में संवैधानिक
उपबंध तथा नियम, 129-31

के विनिर्णय, 171
के वेतन, भत्ते आदि, 457
को सुविधाएं, 459
घोर अव्यवस्था होने पर सभा
स्थगित करना, 173
दल-बदल के आधार पर निरर्हता, 171
द्वारा की गई घोषणा, 610
द्वारा धन विधेयक का प्रमाणीकरण, 163
द्वारा ध्यानाकर्षण सूचना की ग्राह्यता, 697
द्वारा निधन सम्बन्धी उल्लेख, 598-603
द्वारा शपथ, 155
द्वारा संबोधन, 1326
द्वारा संसदीय समितियों के सभापतियों की
नियुक्ति, 170
द्वारा सदस्यों को सभा से बाहर जाने के लिए
कहना, 173
द्वारा सभापतियों की नियुक्ति, 170
धन विधेयक का प्रमाणीकरण, 163
निर्णायक मत, 1341
नियमों की विस्तृत क्रियान्विति, 171-73
पद से हटाया जाना, 147
प्रक्रिया नियम का निर्वचन, 167-68
प्रक्रिया विनियमन के लिए निदेश, 425
प्रथम अध्यक्ष, 124
भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों
के सम्मेलन का सभापति, 173-74
भारतीय संसदीय ग्रुप का अध्यक्ष, 173
भाषण अध्यक्ष को सम्बोधित करना, 432
मंत्रियों से पूछे गए प्रश्नों की ग्राह्यता, 626, 678
महान अवसरों पर सभा में उल्लेख, 162, 604
राजनीतिक दलों के साथ सम्बन्ध, 134-41
लोक सभा का प्रतिनिधित्व करना, 173
वाद-विवाद का विनियमन, 167
विदाई भाषण, 174
विधिक विषयों पर विनिर्णय न देना, 178
विधेयक में प्रत्यक्ष गलतियों को
शुद्ध करना, 174
विशेषाधिकार भंग की शिकायत, 170
विशेषाधिकार भंग होना, 170
शपथ लेने के तरीके के बारे में विनिर्णय, 518-19
संकल्प की ग्राह्यता, 168
संयुक्त बैठकों की अध्यक्षता करना, 163
संशोधनों और नए खण्डों का चयन, 826
संसदीय दलों को मान्यता, 511
संसदीय समितियों के सभापतियों को निदेश
देना, 170
सचिवालय का प्रमुख, 175
सभा की अवमानना, 170
सभा की कार्यवाही को विनियमित करना, 167
सभा की बैठक, 165
सभा के विघटन पर त्यागपत्र
का अधिकार, 142-43
सभा को अध्यक्ष द्वारा संसूचना, 161-62
सभा में व्यवस्था बनाए रखना, 173
स्थगन प्रस्ताव के लिए सहमति, 736-38
स्थगित होने के बाद भी सभा की बैठक
बुलाना, 165
स्मरणीय अवसरों पर उल्लेख, 164, 604

अध्यक्ष का आसन, 134-41

अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करना, 1311-12

अध्यादेश :
का निरनुमोदन करने वाले सांविधिक
संकल्प, 886-87
का प्रख्यापन, 881
का प्रयोजन, 883
की अवधि, 882
की वैधता, 882
के स्थान पर लाए गए विधेयक, 884
द्वारा तुरन्त विधान बनाने के संबंध में
विवरण, 885
द्वारा धन का विनियोग, 888
में संशोधन का दायरा, 888

अनन्तिम कर संग्रहण, 1013

अनियत दिन वाले प्रस्ताव :
देखिए 'प्रस्ताव' के अन्तर्गत

अनुदानों की मांगें :
अतिरिक्त अनुदान, 1040
अनुपूरक मांगें, 1040
के संबंध में चर्चा, 1041
को पेश करना, 1040-41
में कटौती प्रस्ताव, 1045
में परिवर्तन, 1041-42
की संरचना में परिवर्तन, 1026
के लिए नियत दिन, 1019
के वाद-विवाद में चर्चा की व्याप्ति, 1025
को प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया, 1024
पर मतदान, 1025
पर विचार करने सम्बन्धी प्रक्रिया, 1274
प्रत्ययानुदान, 1040
में कटौती प्रस्ताव, 1028
में भारित व्यय, 1022
में राष्ट्रपति की सिफारिश, 1024
लेखानुदान, 1037
और नई सेवा, 1043
सांकेतिक अनुदान, 1043

अनुपस्थिति :
अध्यक्ष की, 546-47
उपाध्यक्ष की, 546-47
मंत्रियों की, 546-47
सदस्यों की, समिति से, 1070

अनुपस्थिति की अनुमति :
अनुपस्थिति की शेष अवधि का व्यपगत होना, 550
अनुपस्थिति को क्षमा करना, 543
अनुमति दिया जाना, 541
अनुमति देने के आधार, 541-46
अनुमति देने संबंधी प्रक्रिया, 548
आवेदन-पत्र समिति को भेजना, 508
उपस्थिति रजिस्टर, 539
ऐसे सदस्यों की अनुपस्थिति, जिन्होंने शपथ न ली हो या प्रतिज्ञान न किया हो, 547
की अधिकतम अवधि, 537-39
के लिए आवेदन, 541
मंत्रियों के लिए प्रार्थना-पत्र भेजना आवश्यक नहीं है, 546
संवैधानिक उपबन्ध, 537
स्थान की रिक्ति, 538
निर्णय का सम्प्रेषण, 548

अनुपूरक अनुदानों की मांगें, 1040

अनुपूरक प्रश्न, 687-89

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थान, 26

अनुसूचियां :
अनुसूचियों में संशोधन, 773-74

अन्तर्राष्ट्रीय करारों का :
अनुसमर्थन, 937
संशोधन, 818

अन्तरसंसदीय संबंध :
का महत्व, 1580
भारतीय संसदीय ग्रुप, 1581
संसद और विधानमंडल, 1588
सम्मेलन :
के पीठासीन अधिकारी, 1589
विधायी निकायों के सचिव, 1590
संसदीय समितियों के सभापतियों का सम्मेलन, 1590

अन्तरसत्रावधि, 259

अपराधियों की भर्त्सना, 363

अपवादानुदान, 1040

अभ्यावेदन :
ग्राह्यता, 1385-86
याचिकाओं से भिन्न, 1385-86
व्यक्तिगत शिकायतों की व्याप्ति, 1385-86
(*देखिए* 'याचिका' तथा 'याचिका समिति' के अन्तर्गत)

अल्प सूचना प्रश्न, 689-91

अवमानना :

एक सभा के सदस्य द्वारा दूसरी सभा के सदस्य की, 415-21

का मामला समझा जाए, 391-403

की परिभाषा, 356

के मामले न समझे जाए, 404-10

अविलम्बनीय लोक महत्व के मामले :

पर ध्यान आकर्षित करना, 711-45

अल्पकालीन चर्चा, 978

उठाने के लिए सूचना, 978

की ग्राह्यता, 938

की परिपाटी, 978

के लिए समय का नियतन, 983

चर्चा हेतु प्रक्रिया, 985

पर स्थगन की सूचना, 711-45

पर स्थगन प्रस्ताव, 711-45

अविश्वास प्रस्ताव :

की ग्राह्यता, 991

की सूचना, 992

के लिए समय का नियतन, 999

चर्चा की व्याप्ति, 997

निंदा प्रस्ताव, 993

भाषणों की समय-सीमा, 999

सभा की अनुमति, 994

सभापटल पर रखना, 1005

सूचना वापस लेना, 997

अव्यवस्था :

घोर अव्यवस्था उत्पन्न होने पर सभा की बैठक का स्थगन, 1342

घोर अव्यवस्थापूर्ण व्यवहार, 427

असंसदीय वाक्यांशों :

का प्रयोग नहीं किया जाना, 1433-40

आंग्ल-भारतीयों का नामनिर्देशन, 23

आकस्मिकता निधि, 41

आक्षेप :

दूसरे सदन के सदस्यों अथवा अधिकारियों के विरुद्ध, 416-21

न्यायाधीशों के आचरण सम्बन्धी, 1527-29

सदस्यों पर, 389-92

सभा पर, 389-92, 396-97

आचरण नियम, 455-56

आधे घण्टे की चर्चा, 642

आपात स्थिति :

का प्रतिसंहरण, 902

तीन प्रकार की आपात स्थिति, 899

पंजाब के संबंध में आपात स्थिति की उद्घोषणा, 895

राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर उद्घोषणा, 896

वित्तीय आपात् स्थिति, 905

की अवधि, 905

की उद्घोषणा, 889

की परिभाषा, 890

के प्रभाव, 892

संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना, 891, 900

विधायी शक्तियों का प्रयोग, 903

संकल्प पारित करके, 901

आपात स्थिति की उद्घोषणा

देखिए 'आपात स्थिति'

आरोप :

सदस्यों/व्यक्तियों पर लगाए गए, 1317

सिविल सेवा अधिकारियों के विरुद्ध, 1546-49

उद्देशिका, 764

उपचुनाव में निर्वाचित सदस्य द्वारा शपथ का प्रतिज्ञान, 527-28

उपराष्ट्रपति :

का निर्वाचन, 59-66

की पदावधि, 69

के पद की शपथ, 70

उपस्थिति रजिस्टर, 539

उपाध्यक्ष :

और संसदीय समितियां, 180

का अग्रता क्रम, 181

का अपने दल की गतिविधियों में भाग लेना, 180

का कार्यकाल, 159-60

का निर्वाचन, 156-58

का पद, 156

का वेतन, भत्ते इत्यादि, 181, 457

की शक्तियां, 179

की शक्तियों की परिसीमा, 180

के कृत्य, 180

के बैठने की व्यवस्था, 528

को पद से हटाया जाना, 150

को सुविधाएं, 457-460

द्वारा मतदान, 1340

द्वारा संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक, 180

उल्लेख निबंध संबंधी - 598-603

दुखद घटनाओं संबंधी, 603

महत्वपूर्ण अवसरों संबंधी, 604-09

कक्ष :

राज्य सभा, 1484

लोक सभा, 1478

की भीतरी प्रसीमा, 1365

की लॉबी, 1373

में स्थान, 1478-79

कटौती प्रस्ताव : 1028

का क्रम, 1032-33

का परिचालन, 1032

की ग्राह्यता का अध्यक्ष द्वारा निर्णय, 1029-32

की ग्राह्यता की शर्तें, 1029-30

की श्रेणियां, 1028-29

की सूचना, 1035

प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया, 1033

कराधान :

अनन्तिम कर संग्रहण, 1013

को प्रभावित करने वाले संशोधन, 822-23

कार्य

गैर-सरकारी सदस्यों का, 613

के लिए समय, 616

सरकारी, 582-96

का विन्यास, 617

के लिए समय, 615

गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य, 596

सूची, 623

कार्य मंत्रणा समिति

देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

कार्य सूची, 623

में परिवर्तन, 621

कार्यवाही :

का अधिकृत वृत्तान्त तैयार करना, 1427, 1442

का झूठा या विकृत प्रस्तुतीकरण, 392

का दूरदर्शन प्रसारण, 1565-69

का प्रकाशन, 1444-45

का प्रसारण, 1565-69

का साथ-साथ भाषांतरण, 1425

कार्यवाही वृत्तान्त से निकाले गए अंशों का प्रकाशन, 394

कार्यवाही-वृत्तान्त से शब्दों का निकाला जाना, 1433-40

की अनुक्रमणिकाएं, 1444

की परिभाषा, 324

की वैधता, 321

के प्रकाशन पर नियन्त्रण का अधिकार, 320
के प्रसारण पर प्रतिबंध, 1569–71
के सम्बन्ध में न्यायालयों में साक्ष्य, 325
गोपनीय सत्र, 1368
गोपनीय सत्रों की कार्यवाही का प्रकाशन, 395
झारखंड मुक्ति मोर्चा मामला–सभा में मतदान करने के लिए न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति, 330
दण्ड विधि और, 330
न्यायालय के न्यायाधीन मामले, 1529
वाद–विवाद का सारांश, 1445
विशेषाधिकार और, 321
सदस्यों द्वारा पुष्टि, 1430
समय से पहले प्रकाशन, 395
समिति की, 1082
साक्ष्य के सम्बन्ध में, 325

गणपूर्ति, 568–70

समिति की बैठक के लिए गणपूर्ति, 568–70

गिलोटिन, 1025–28

गुप्त बैठकें :

की कार्यवाही, 1430
गुप्त बैठकें करना, 578

गैर-सरकारी सदस्यों का कार्य, 613

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों संबंधी समिति

देखिए 'समितियां' के अंतर्गत

गैर-सरकारी कार्य, 613

ग्राह्यता :

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा की सूचनाओं की, 978–79
अविश्वास प्रस्ताव की, 967, 991–92
कटौती प्रस्तावों की, 1029–30
ध्यानाकर्षण सूचनाओं की, 695–97
नियम 377 के अधीन मामलों की, 1112
प्रश्नों की, 656
के संबंध में अध्यक्ष के विनिर्णय, 678
याचिकाओं की, 1379
विशेषाधिकार के प्रश्न की, 410–13
विश्वास प्रस्ताव की, 1005
व्यवस्था के प्रश्न की, 1343
संकल्पों की, 923
के संबंध में अध्यक्ष का विनिर्णय, 926
संकल्पों में संशोधनों की, 933
संशोधनों की, 816–19, 933, 961–62
सामान्य लोकहित के मामलों की, 964
स्थगन प्रस्ताव की, 717–26

घोर अव्यवस्था :

सभा का स्थगन, 173

छूट :

साक्षी के रूप में उपस्थिति से, 349

ज्ञापन :

प्रत्यायोजित विधान, 776
वित्तीय, 761

तारांकित प्रश्न, 645–49

त्याग पत्र :

अध्यक्ष का, 141
उपाध्यक्ष का, 159–60
त्यागपत्र देने वाले मंत्री का वक्तव्य, 1000
पीठासीन अधिकारियों का, 141, 159–60
सदस्य का, 99–101
समिति की सदस्यता से, 1069

दर्शकों का प्रवेश, 1368–72

दस्तावेज :

मंगाने की शक्ति, 1417–18
समितियों द्वारा, 1073, 1084

धन विधेयक, 747
के संबंध में विशेष प्रक्रिया, 752
प्रभावीकरण, 750

धन्यवाद प्रस्ताव, 289-92

ध्यानाकर्षण सूचना :
अल्पसूचना प्रश्न और, 689
की अवधारणा मूलतः भारतीय, 695
की ग्राह्यता के संबंध में अध्यक्ष का निर्णय लेने का अधिकार, 695
की प्रक्रिया, 703
की व्याप्ति, 709
के संबंध में मंत्री द्वारा वक्तव्य, 704
के समय के नियतन के संबंध में अध्यक्ष का विवेकाधिकार, 695
के स्पष्टीकरण के संबंध में प्रश्न, 706
को वापिस लिया जाना, 709
ग्राह्यता की शर्तें, 697
देने की विधि, 695
पर वाद-विवाद, 707

ध्वनि मत, 1329-31

निर्णायक मत, 1341
अध्यक्ष का, 1341-42
उपाध्यक्ष का, 1341-42
की परिभाषा, 1341
सभापति तालिका के सदस्यों का, 1342
समितियों के सभापति का, 1342

निधन सम्बन्धी उल्लेख, 598-603

निन्दा
देखिए, 'निन्दा प्रस्ताव', 'प्रस्ताव' और 'अविश्वास प्रस्ताव' के अन्तर्गत

निन्दा प्रस्ताव :
की सूचना, 993
पर चर्चा और उसकी व्याप्ति, 997
मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध, 992
मंत्रियों के विरुद्ध, 992
सभा की अनुमति, 993

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक :
का पद, 208
का प्रतिवेदन, 211
की नियुक्ति, 208
के कर्तव्य, 210
को पद से हटाया जाना, 208

नियम 377 के अधीन मामले, 1348-50
अध्यक्ष की स्वीकृति, 1348
उठाये जाने वाले मुद्दों का दायरा, 1349
का उद्देश्य, 1348
की ग्राह्यता की शर्तें, 1351
की सूचना देना, 1350
के उठाने की सीमा, 1352
के बारे में वक्तव्य, 1352

नियम बनाने सम्बन्धी खण्ड, 771-72

नियम समिति
देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

निरसन खण्ड, 772

निर्वाचन :
अध्यक्ष का, 131
उपराष्ट्रपति का, 58
उपाध्यक्ष का, 156
राष्ट्रपति का, 58
संसदीय समितियों का, 1064
सदस्यों का, 63
दल परिवर्तन के आधार पर, 76
दसवीं अनुसूची का मूल्यांकन, 85
निर्वाचन की विधि, 87
सदस्यता के लिए निरर्हताएं, 74

निर्वाचन आयोग :
द्वारा निर्वाचन कराया जाना, 222
सदस्यों की निरर्हता के बारे में राष्ट्रपति द्वारा निर्वाचन आयोग की राय लिया जाना, 74

निर्वाचन याचिका :
राष्ट्रपतीय निर्वाचन, 66
संसदीय निर्वाचन, 90

निलम्बन :
नियमों का, 1358
सभा की बैठक का, 1343-44
सदस्य का, 429-30
स्वत:, 441

निवारक निरोध :
गिरफ्तारी से छूट के विशेषाधिकार का दावा नहीं किया जाना, 348

निवेदन :
सदस्यों द्वारा निवेदन, 1357

निष्कासन, 363-73, 429

नेता :
विपक्ष का, 201-04
सभा का, 196

न्यायनिर्णयाधीन मामले, 1529-35

न्यायपालिका :

न्यायाधीश :
की नियुक्ति, 1513
की सेवा शर्तें, 1516
के न्यायिक आचरण, चर्चा, प्रतिबंध, 1527
के विधायिका के साथ संबंध, 1524
जनहित याचिका, 12
न्यायनिर्णयाधीन मामले, विधानमण्डलों में चर्चा और, 1529
न्यायालय और विशेषाधिकार संबंधी मामले, 376
पद से हटाए जाने की प्रक्रिया एवं त्यागपत्र, 1518
संसद की कार्यवाही, न्यायालयों द्वारा जांच पड़ताल की अनुमति नहीं, 321, 1526

न्यायालयों द्वारा समीक्षा, 1512, 1524

पत्रों का सभा पटल पर रखा जाना :
का अर्थ, 1388
संबंधी नियम, 1404

परामर्शदात्री समितियां,
देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

पुनरुक्ति :
उकता देने वाली पुनरुक्ति, 441
प्रस्तावों की पुनरावृत्ति, 963

पूर्णावधि सत्र (लेम डक सेशन), 613

प्रकाशन :
उत्तरों के अग्रिम प्रकाशन की अनुमति नहीं, 692
वाद-विवाद और कार्यवाही, 1442-45
समय से पहले प्रतिवेदन के प्रकाशन का निषेध, 395
समय से पहले साक्ष्य का, 1092
समिति की कार्यवाही या साक्ष्य का प्रकाशन, 1091-92

प्रतर्कों की उकता देने वाली पुनरुक्ति, 435

प्रतिज्ञान
देखिए 'शपथ अथवा प्रतिज्ञान' के अन्तर्गत

प्रत्ययानुदान, 1040

प्रत्यायोजित विधान
देखिए अधीनस्थ विधान के अन्तर्गत,

प्रत्याशा चर्चा की: 1307,

प्रमाणपत्र :
अध्यक्ष का, 163

प्रश्न :
अतारांकित प्रश्नों के उत्तरों को सभा पटल पर रखना, 650
अध्यक्ष का नियन्त्रण, 678
अध्यक्ष का निर्णय, 678

अध्यक्ष को सम्बोधित नहीं, 655
अध्यक्ष द्वारा मौखिक अथवा लिखित प्रश्नों का निर्धारण, 645-48
अनुपस्थित सदस्यों के, 686-87
अनुपूरक प्रश्न, 687-89
अल्प सूचना, 689-91
आधे घण्टे की चर्चा, 692-94
उत्तर से इन्कार, 663
उत्तरों के अग्रिम प्रकाशन, 692
उत्तरों के लिए मन्त्रालयवार दिन नियत करना, 649
उत्तरों में शुद्धि, 653-55
ऐसे विषयों पर जानकारी मांगना जो किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हों, 666
किसी सदस्य के प्रश्न के लिए वरीयताक्रम निर्धारित करना, 645-48
की सूचना, 640-42
की सूचना का रूप नियम, 642-45
के उत्तर, 633-39, 651-53
गैर-सरकारी सदस्यों को संबोधित, 655
ग्राह्यता सम्बन्धी शर्तें, 656
तारांकित प्रश्नों की संख्या के सम्बन्ध में सीमाएं, 648-49
दूसरे सदन के अधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते, 671
न्यायालय के विचाराधीन मामले, 666
प्रश्न काल, 633-39
प्रश्न काल का निलम्बन, 637-38
प्रश्न काल के बाद, 637-38
प्रश्न काल के बाद भी प्रश्नों का उत्तर, 638
प्रश्न पूछने की विधि, 681-84
प्रश्नों का वापिस लिया जाना, 684-86
प्रश्नों का सूची क्रम, 678
प्रश्नों का स्थगित होना, 684-86
प्रश्नों की प्रक्रिया का विकास, 626-33
प्रश्नों की सूचनाओं का व्यपगत होना, 691
प्रश्नों की सूचनाओं संबंधी प्रक्रिया, 642-45
प्रश्नों के उत्तरों को पहले से सदस्यों में न बांटा जाना, 633-35
बैंक, 674-75
भारत सरकार और राज्यों के बीच पत्र व्यवहार सम्बन्धी प्रश्न, 670-71
मन्त्रालयवार प्रश्नों के उत्तर के लिए दिन नियत करना, 649-50
मंत्रिमण्डल में चर्चा के सम्बन्ध में अग्राह्यता, 669
मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न, 645-48
मौखिक उत्तर से लिखित उत्तर में बदलना, 645-48
मौखिक प्रश्नों की संख्या, 648-49
राज्य सरकार के मन्त्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के सम्बन्ध में, 671-72
राज्य सभा में दिए गए किसी उत्तर में लोक सभा में उसी सत्र में दिए गए किसी उत्तर या उसकी कार्यवाही का कोई उल्लेख नहीं किया जा सकता, 652
राष्ट्रपति से सम्बन्धित प्रश्न, 669
लिखित उत्तर, 650-51
लिमिटेड कम्पनियां, 675-76
लेखा परीक्षा रिपोर्ट, 668
वित्तीय निगम, 674-75
विश्वविद्यालय देखिए 'स्वायत्तशासी संगठनों' के अंतर्गत
सदस्यों के नामों को शामिल किया जाना, 633
समय न बढ़ाया जाना, 636
सांविधिक निगम, 673-74
सांविधिक संगठन, 677-78
सूचनाओं का व्यपगत होना, 691
स्पष्टीकरण की आवश्यकता वाले उत्तर (आधे घण्टे की चर्चा), 692
स्वायत्तशासी संगठन, 676

प्रश्नों के उत्तर :

अनुपस्थित सदस्यों के, 686-87
का अग्रिम प्रचार, 692
की प्रतियों का पहले से न दिया जाना, 633
प्रश्न काल के बाद देना, 638
में शुद्धि, 653-55
में स्पष्टीकरण की आवश्यकता, 692
लोकहित में उत्तर देने से इन्कार, 664

प्रस्ताव :

अधिक्रामक, 944
अनियत दिन वाले :
का चयन, 957
की परिभाषा, 974
पर चर्चा, 975
अविश्वास, 991
मंत्रिपरिषद में अविश्वास (देखिए 'अविश्वास प्रस्ताव')
का वर्गीकरण, 945
का वापस लिया जाना, 963
की पुनरावृत्ति, 963
गौण, 957
ग्राह्यता:
की शर्तें, 961
के बारे में अध्यक्ष द्वारा निर्णय करना, 962
सूचना की ग्राह्यता और समय का नियतन, 973
निन्दा, 967
की अग्राह्यता, 972
की ग्राह्यता के सम्बन्ध में अध्यक्ष का निर्णय, 970-71
के लिए सभा की अनुमति, 994
ग्राह्यता की शर्तें, 970
मंत्रिपरिषद/मंत्री के विरुद्ध, 993
पर वाद-विवाद के प्रक्रम, 944
प्रक्रिया से संबंधित मामले, 945
मूल, 945
में संशोधन की सूचना, 978
विलम्बकारी, 837
विश्वास, 830, 977
संशोधन, 958
का उद्देश्य, 960
का चयन, 962
की सूचना, 960
के रूप, 959
ग्राह्यता की शर्तें, 961
पर वाद-विवाद की व्याप्ति, 963
प्रस्तावित संशोधनों में संशोधन, 962
प्रस्तुत करने की विधि, 961
सभा के विनिश्चय हेतु प्रश्न प्रस्तुत करना, 1328
सम्भाव्य सूचनायें, 1305
सहायक, 957
सामान्य लोकहित के विषय पर चर्चा, 964
का रूप, 966
की सूचना, 964
ग्राह्यता की शर्तें, 970
पर चर्चा के लिए समय का नियतन, 973
स्थगन, *देखिए* 'स्थगन प्रस्ताव' के अन्तर्गत,
स्थानापन्न, 955

प्रस्तुतीकरण :

अनुदानों की मांगें, 1022
पत्र, 1388
बजट, 1007
याचिका, 1381
समिति के प्रतिवेदन, 1104-05
सांविधिक प्रतिवेदन, 42
सांविधिक नियम, 914

प्राक्कलन समिति :

देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

प्रेस :

दी गई सुविधाएं, 1561
निकाले गए अंशों के बारे में सूचना, 1559

भूमिका, 1555
संसद और, 1555
संसदीय विशेषाधिकार और, 1557
स्वतंत्रता, 1556

प्रेस परामर्शदात्री समिति, 1372
टेलीप्रिंटर सेवा, 1564

प्रेस संवाददाता :
केन्द्रीय कक्ष में प्रवेश, 1373
प्रेस दीर्घा प्रवेश पत्र का रद्द किया जाना, 1372
प्रेस दीर्घा में प्रवेश, 1372
विदेशी संवाददाता, 1372

फौजदारी अपराध :
में गिरफ्तारी से छूट का दावा नहीं, 346-47

बजट :
अधिक अनुदान, 1040
अनुदानों की मांगें
चर्चा की व्याप्ति, 1025
चर्चा के लिए समय का नियतन, 1016
प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया, 1024
प्रारूप और अंतर्वस्तु की पुनरीक्षा, 1022
मतदान, 1025
राष्ट्रपति की सिफारिश, 1024
संरचना, 1022
अनुपूरक अनुदान, 1040
कटौती प्रस्ताव, 1043
चर्चा की व्याप्ति, 1041
प्रस्तुत किया जाना, 1041
में परिवर्तन, 1041-42
अपवादानुदान, 1040
ऐसे प्रस्ताव जिन्हें सामान्य चर्चा के दौरान बताया जा सकता हो, को स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से नहीं उठाया जा सकता, 722
कटौती प्रस्ताव
का क्रमनिर्धारण, 1028, 1032
की ग्राह्यता, 1029
की श्रेणियां, 1028-29
की सूचना, 1029
की सूचियों का परिचालन, 1032
के संबंध में अध्यक्ष द्वारा निर्णय लिया जाना, 1031
पेश किए जाने की प्रक्रिया, 1033
कार्य निष्पादन बजट, 1036
गिलोटिन, 1025
प्रत्ययानुदान, 1040
प्रशासनिक प्रतिवेदनों का परिचालन, 1036
प्रस्तुत किया जाना, 1012
के दिन चर्चा न किया जाना, 1010-11
बजट पत्रों का वितरण, 1014
बजट पर सामान्य चर्चा, 1019
चर्चा की व्याप्ति, 1019
चर्चा के लिए समय का नियतन, 1016
भाषण के लिए समय सीमा, 1020
भारित व्यय, 1022
रेल अभिसमय समिति, 1007
रेल वित्त अलग किया जाना, 1007
रेलवे राजस्व से अंशदान, 1007
लेखानुदान, 1037
नई सेवाओं के लिए नहीं, 1039
पर चर्चा, 1038
वार्षिक वित्तीय विवरण, 1007
वित्त विधेयक,
का पुरः स्थापन, 1048
का परिभाषा, 1047
चर्चा की व्याप्ति, 1049
चर्चा के लिए समय का नियतन, 1049
भाषणों के लिए समय सीमा, 1049
वित्तीय कार्य समय से पूरा किया जाना,1014
वित्तीय प्रक्रिया का विनियमन, 1014
विनियोग विधेयक
की परिभाषा, 1043
चर्चा की व्याप्ति, 1045
संशोधन, 1046

विभागों से सम्बध स्थायी समितियों द्वारा अनुदानों की मांगों पर विचार किया जाना, 1020
समय से पूर्व पता चल जाना
विशेषाधिकार भंग नहीं, 1015
सांकेतिक अनुदानों संबंधी प्रक्रिया, 1043

बन्दीकरण :
अध्यक्ष को सूचना, 353

बन्दीकरण से उन्मुक्ति :
निवारक निरोध लागू नहीं, 347
फौजदारी अपराधों में नहीं, 346
सदस्यों की, 346-47, 398
सभा के अधिकारियों को, 401
सभा के परिसर में, 350
साक्षियों इत्यादि की, 356

बैठकें :
अध्यक्ष तथा बैठकें, 562-68
आहूत करना, 237
निर्धारित समय के बाद स्थगन, 576
बैठक के दौरान गणपूर्ति, 565-73
बैठक निलम्बित करना, 1342
बैठक प्रारम्भ होना, 565-68
बैठक प्रारम्भ होने का समय, 562-65, 615-17
बैठकों का नियतन, 553-62
बैठकों का बढ़ाया जाना, 559-60
बैठकों का रद्द किया जाना, 560-62
में अजनबियों का प्रवेश, 1079
लोक सभा की, 613-615
शनिवार, 558
सबसे लम्बी बैठक, 576-77
सभा का स्थगन, 570-78
सभा की गुप्त बैठक, 578-81
सभा द्वारा अवधारित करना, 572
सामान्य समय से पहले स्थगन, 574
से अजनबियों को बाहर निकालना, 319, 1079
स्थानों की रिक्तियां, 84

बैलट :
गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक, 854-858
गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प, 922

भारत के विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन, 1589-90

भारत के विधायी निकायों के सचिवों के सम्मेलन, 1590

भाषणों के लिए समय-सीमा :
धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के लिए, 288
वित्त विधेयक पर, 1050
संकल्प पर चर्चा के लिए, 930
सामान्य नियम, 1326-27
स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा के लिए, 741

भाषा :
कार्यवाही का साथ-साथ भाषान्तरण, 1425
सभा में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं, 163, 1422
समितियों में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं, 1424

भीतरी प्रसीमा, 1365

मंत्रिपरिषद् :
की नियुक्ति, 186
की लोक सभा के प्रति जवाबदेही, 13-14, 818
के कार्य, 192
गठबंधन सरकार की, 191-92
में विश्वास
देखिए 'मंत्रिपरिषद में विश्वास तथा अविश्वास के प्रस्ताव' के अन्तर्गत, साथ ही देखिए 'मंत्री के अन्तर्गत राज्यपाल'
राज्यपाल और, 189, 1503
लोक सभा और, 193
से मंत्रिमंडल भिन्न, 189

मंत्रिमण्डल :
के उत्तरदायित्व की चर्चा से संबंधित प्रश्न अग्राह, 669

मंत्रिमंडल, प्रतिछाया, 202

मंत्री :

अल्प सूचना प्रश्न के लिए सहमति, 689
अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर मंत्रियों द्वारा वक्तव्य, 585-86
अशुद्धियां सुधारने के लिए वक्तव्य, 586-88
के लिए सुविधाएं, 491
वाहन, 496
आवास, 495
चिकित्सा, 496
के वक्तव्य पर सदस्यों के निवेदन, 1357
(मंत्रिपरिषद के अन्तर्गत भी *देखिए*)
के वेतन, भत्ते, हकदारियां, 494
को दण्ड, 365
को पद और गोपनीयता की शपथ और सूचना का प्रकटीकरण, 1004
को प्रस्ताव पर दो बार बोलने पर रोक नहीं, 1323-24
द्वारा किसी अन्य सदस्य पर अध्यक्ष को अग्रिम सूचना दिये बिना आरोप लगाना, 586
द्वारा पद त्याग के संबंध में वक्तव्य, 1000
पर चर्चा पर रोक, 1003
मंत्रिपरिषद में चर्चा या त्यागपत्र आदि से सम्बन्धित जानकारी के प्रकटीकरण पर प्रतिषेध, 1004
मंत्रिमंडल का उत्तरदायित्व, 988
मौखिक रूप से न पूछे जा सके प्रश्न (नों) के उत्तर, 682
यात्रा एवं दैनिक भत्ता, 495
लोकहित में प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार करना, 664
वाद-विवाद में भाग लेने का अधिकार, 193-94
सभा में मंत्रियों की उपस्थिति, 1361
सभा पटल पर प्रतिवेदन रखने के संबंध में सलाह, 1401
सम्बद्ध मंत्री को पारित संकल्प की प्रति भेजना, 935
सिविल सेवा के अधिकारी और, 402, 1545

मत :

अध्यक्ष द्वारा, 1341
आपत्ति की स्थिति में, 444
उपाध्यक्ष द्वारा, 1340
के संबंध मे गलती को ठीक करना, 1334-35, 1338-39
ध्वनि, 1329
पीठासीन अधिकारियों का, 1341
प्रत्ययानुदान, 1040
सभापति तालिका के सदस्यों द्वारा, 1340
सभा या किसी समिति के विचाराधीन विषयों में व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित रखने वाले सदस्यों का, 444
समिति के सभापति द्वारा, 1340

मत विभाजन :

अनावश्यक रूप से, 1333-34
के दौरान भाषणों का न दिया जाना, 1333
के दौरान व्यवस्था का प्रश्न, 1343
को स्थगित करना, 1333
गणपूर्ति के अभाव में, 1333
गलत लॉबी में मतदान, 1338-39
घंटियों का बजना, 1332
दूसरे सदन के सदस्य, जो मंत्री हों, की उपस्थिति में, 1330
दोनों लॉबियों में मतदान, 1338-39
ध्वनि मत द्वारा, 1329-30
निर्णायक मत 1341
अध्यक्ष द्वारा, 1341
उपाध्यक्ष महोदय द्वारा, 1341-42
की परिभाषा, 1341
सभापति तालिका के सदस्यों द्वारा, 1340-41
समितियों के सभापतियों द्वारा, 1342
बीमारी या दुर्बलता की स्थिति में, 1339
में अनियमितताएं, 1339

में व्यक्तिगत या आर्थिक हित, 444
में सदस्यों का नाम दर्ज करना, 1330
में स्वतंत्रता पूर्वक निर्णय लेने का अधिकार, 1339
लॉबियों में मतदान, 1338
विभाजन संख्याएं आंबटित न होने की स्थिति में, 1340
सूचियां, 1340
स्वचालित मतदान अंकन यंत्र द्वारा, 1334

महान्यायवादी : 215
और उच्चतम न्यायालय, 216
की नियुक्ति, 215
की राय, 216
के कृत्य, 216
लोक सभा, 217

महाभियोग :
की प्रक्रिया, 46-47

महासचिव : 225
अध्यक्ष के साथ सम्बन्ध, 225
की अर्हता, 226
की नियुक्ति, 233
के संसदीय तथा प्रशासनिक कर्तव्य, 226-27, 231-34
को अनुदानों की मांगों के संबंध में राष्ट्रपति की सिफारिश की सूचना, 1023
को अशुद्धियां सुधारने के लिए वक्तव्य, 586, 653
गिरफ्तारी से छूट, 233
द्वारा कार्यवाही
का मुद्रण, 1441
दीर्घा में प्रवेश, 1365-66
पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन का पदेन सचिव, 1585
बजट, लोक सभा, 231, 1461
भारतीय संसदीय ग्रुप का पदेन सचिव, 231-32, 1587
याचिकाओं का प्रस्तुतीकरण, 1381
राज्य सभा को सन्देश भेजना, 49-50
राज्य सभा से सन्देश, 49-50
रिक्त स्थान की घोषणा की सूचना प्रकाशित करना, 549-550
लोक सभा की बैठकें, 227
विधेयकों का प्रमाणीकरण, 228
विधेयकों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की सिफारिश, 1311
संसद के दोनों सदनों में राष्ट्रपति का अभिभाषण, 228
संसदीय पत्रों/रिकार्डों की अभिरक्षा, 550, 1417
संसदीय प्रक्रिया, 227
संसदीय समितियों के प्रतिवेदन प्रस्तुत करना, 229
संसदीय समितियों के सचिव, 229
सदस्यों को आमंत्रित करना, 227
सभा पटल पर रखना :
राष्ट्रपति का अभिभाषण, 228
राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त विधेयक, 851, 1392
समितियों के प्रतिवेदन, 1105
सभा में स्थान, 226
सभापति की अनुपस्थिति में बैठक, 1075
सरकारी कार्य का विन्यास, 227
सूचना को महासचिव को सम्बोधित करना, 1301

मुक्ति :
गिरफ्तारी से, 345-48

मुख्य निर्वाचन आयुक्त :
की नियुक्ति, 222
के कृत्य, 224
को हटाया जाना, 223

मुख्य सचेतक सरकार का, 206

मुद्रण :
वाद-विवाद, 1442

वाद-विवाद की अनुक्रमणिकाएं, 1444
विधेयक, 1445
समितियों के प्रतिवेदन, 1156, 1447

मौखिक उत्तर के लिए प्रश्न, 645

याचिका :
अधिप्रमाणित, 1377
अभ्यावेदन से पृथक, 1321
आवश्यकताएं, 1377
उद्देश्य, 1377
एक जैसी, 1379
ग्राह्यता, 1379
दस्तावेज संलग्न न किए जाएं, 1378
प्रस्तुतिकरण, 1381
से पहले परिचालन, 396
भाषा, 1378
महासचिव द्वारा सूचना दिया जाना, 1383
याचिका समिति को सौंपा जाना, 1383
वित्तीय विषयों के संबंध में, 1377
विधेयक पर प्रवर/संयुक्त समिति, 1384
वैयक्तिक शिकायत, 1380
व्याप्ति, 1375-77
सदस्य के हस्ताक्षर, 1381
सम्बोधन, 1377
सूचना की आवश्यकताएं, 1381

याचिका समिति
देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

याचिकादाताः
का संरक्षण, 318-19
के विशेषाधिकार, 356

यात्रा व्यय :
अध्यक्ष को, 457-60
उपाध्यक्ष को, 457-60
सदस्यों को, 464

राज्य :
में मंत्रिपरिषद्, 189
राज्यों की कार्यपालिका शक्ति, 1493-95
राज्यों की विधायी शक्ति, 1-4, 1494
संसद और राज्य, 1493-1511

राज्य विधानमण्डल :
का विघटन, 267-68, 991, 1504
का सत्रावसान, 36, 258, 1504
का स्थगन, 237-42
राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर उद्घोषणा, 896-905
संसद तथा राज्य विधानमण्डल को आहूत किया जाना, 237-42, 1503

राज्य विधान सभा
सभा का विघटन, 243, 264, 1504
सभा का सत्रावसान, 258, 1504
सभा को आहूत करना, 224, 241, 243, 1503

राज्य सभा :
उपसभापति के वेतन, भत्ते आदि, 457-60
का चेम्बर, 1484
की दीर्घाएं, 1370
की संरचना, 19-20
के सभापति के वेतन, भत्ते आदि, 457-60
राज्य सभा द्वारा संशोधन सहित लौटाए गए विधेयकों का निपटान, 842-45
समितियों के साथ सम्बद्ध करना :
अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का कल्याण, 1253
लाभ के पद, 1250
लोक लेखा, 1066
संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों सम्बन्धी संयुक्त समिति, 1249
सरकारी उपक्रम, 1199
सदस्य :
भत्ते, 461-66, 470

यात्रा भत्ता, 464, 472-73
वेतन, 461-66
सुविधाएं, 472-73
सदस्यता के लिए निरर्हता, 65
सदस्यों का कार्यकाल, 22

राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधन :
अन्य खण्डों में संशोधन, 842

राज्यपाल :
का कार्य, 1495-1502
की नियुक्ति, 1496
मंत्रिपरिषद, 186, 1503
मुख्यमंत्री का चयन, 1502

राज्यपाल का अभिभाषण, 276-77

राष्ट्रपति :
अध्यादेश जारी करना, 5, 43-44, 876-79
अनुपूरक अनुदानों की मांगों को संसद के समक्ष रखवाना, 41, 1039
कतिपय प्रतिवेदनों को संसद में रखवाना, 42
कतिपय विधेयकों के पुर:स्थापन और विचार के लिए अनुशंसा, 752-64, 1309-10
का निर्वाचन, 49-50, 58-68
की कार्यपालिका शक्ति, 13, 30, 32, 34-35
की विधायी शक्तियां, 43-45
जानकारी का अधिकार, 32-35
द्वारा शपथ या प्रतिज्ञान, 70
पर महाभियोग की प्रक्रिया, 46-47
पुनर्निर्वाचन के लिए पात्रता, 70
राष्ट्रपति का उत्तराधिकारी, 47-48
विधेयकों को अनुमति, 34, 851

शक्तियां :
आंग्ल भारतीयों को नामनिर्दिष्ट करना, 41
उच्चतम/उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति की, 1513-16
कार्यकारी अध्यक्ष की नियुक्ति की, 38
नियंत्रक महालेखापरीक्षक की नियुक्ति की, 208
प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति की, 186
महान्यायवादी की नियुक्ति, 215
राज्य सभा के कार्यकारी सभापति की नियुक्ति की, 38
राज्य सभा के लिए बारह सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करने की, 20
सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने की, 38
सभा के आमंत्रण, सत्रावसान और विघटन की, 36-38
शक्तियों की सीमाएं, 39
संसद और, 35-36
संसद में अभिभाषण, 37, 257, 277-94
सलाह और सहायता के लिए मंत्रिपरिषद्, 30-32, 186

राष्ट्रपति का अभिभाषण : 37
अशुद्धियों को ठीक करना, 286
के दौरान कार्यवाही का नियंत्रण, 256
तिथि का निर्धारण, 277
धन्यवाद प्रस्ताव, 288-89
में संशोधन, 289-92
पर चर्चा, 288
भाषणों की समय-सीमा, 289
समारोह, 278

राष्ट्रपति का उत्तराधिकारी, 47-48

राष्ट्रमंडल संसदीय संघ, 1583, 1584, 1585

राष्ट्रमंडल संसदों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन, 1583

रिश्वत :
सदस्य को, 399, 446

लॉबी, 1373

लाभ का पद, 102-23
के बारे में न्यायालयों के निर्णय, 110-20
के बारे में भार्गव समिति की सिफारिशें, 104
संवैधानिक और विधिक स्थिति, 120-23

लेखा परीक्षा रिपोर्ट :

पर आधारित प्रश्न की ग्राह्यता के मापदण्डों का निर्धारण, 667

लेखानुदान, 1037-39

का उपयोग नई सेवाओं के लिए नहीं, 1039

पर कोई चर्चा नहीं, 1038

देखिए लोक लेखा समिति के अन्तर्गत

लोक महत्व के मामले :

लोक महत्व के मामलों सम्बन्धी प्रश्न, 656

लोक सभा :

और महान्यायवादी, 217

का आपात सत्र, 273

का आपातस्थिति के दौरान विस्तार, 895

का गठन, 23-29

का निर्वाचन, 70, 90-91

का पूर्णावधि सत्र (लेम डक सेशन), 613

का बजट, 1461

का विघटन, 235, 264-73

का वित्तीय विशेषाधिकार, 752-53, 1027

का सचिवालय *देखिए* 'सचिवालय' के अन्तर्गत

का सत्र, 235, 243, 244

का सत्रावसान, 237, 258-64

का स्थगन, 238

घोर अव्यवस्था, 1342

सदस्य का निधन, 598-99

की अवधि, 28-29, 235

की दीर्घाएं, 1368

की पहली बैठक, 257

की बैठक का समय, 562-65, 615

की भीतरी प्रसीमा, 1365

की लॉबी, 1373

की सदस्यता के लिए निरर्हता, 74, 99

के आदेशों की अवज्ञा, 387

के पीठासीन अधिकारी, 124-60

के प्रति मंत्रिमंडल का उत्तरदायित्व, 12-18, 35, 988

के प्रति मंत्रीय उत्तरदायित्व, 13-14, 988-91

के विघटन का प्रभाव, 270

को आहूत करना, 246

गणपूर्ति, 568

पर आक्षेप, 389-94, 396

भर्त्सना और फटकार, 363

में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, का प्रतिनिधित्व, 25-28

में आंग्ल-भारतीय का नामनिर्देशन, 26

में दलों की स्थिति, 506

में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं, 1422

में बैठने की व्यवस्था, 528-36

में सभा का नेता, 196

में सभा का नेता - कृत्य, 197

विधायी शक्ति, 778

से निष्कासन, 363-73

सदस्य को आमंत्रण भेजा जाना, 248

वक्तव्य :

अध्यादेशों के द्वारा तुरन्त कानून बनाना, 884

अविलम्बनीय लोक महत्व के प्रश्नों पर वक्तव्य, 582-86

अशुद्धियां सुधारने के लिए, 586

त्याग-पत्र देने वाले मंत्री का वक्तव्य, 588, 818-22, 1000

ध्यानाकर्षण सूचना के उत्तर में मंत्री द्वारा वक्तव्य, 703-09

वैयक्तिक स्पष्टीकरण, 589

सरकार की ओर से, 704-05

वाद-विवाद :

का मुद्रण, 1442-43

का सारांश, 1445

की अनुक्रमणिकाएं, 1444

में शुद्धियां, 834

वाद-विवाद की व्याप्ति :

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को हटाने सम्बन्धी संकल्प, 147
अनुदानों की मांगे, 1019
अनुदानों की मांगें, अनुपूरक, 1040
अविश्वास प्रस्ताव :
पीठासीन अधिकारियों में, 147-52
मंत्रिपरिषद् में, 997-98
गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प, 927
राष्ट्रपति का अभिभाषण, 275-77
विधेयक :
तीसरा वाचन, 828
पर विचार करने का प्रस्ताव, 801
प्रवर/संयुक्त समिति द्वारा बताए गए अनुसार, 803-4
वित्त, 758, 759, 1047
विनियोग, 1043

संशोधन, 962

स्थगन प्रस्ताव, 741-42

वाद-विवाद, सामान्य नियम :

का अलग से प्रकाशन, 320
का पुनरारंभ, 836
का समापन, 1326
का स्थगन, 834, 861
के दौरान अव्यवस्था :
अध्यक्ष की शक्तियां, 173, 422, 1342
के दौरान गैलरी में बैठे व्यक्ति से बात नहीं करनी चाहिए, 433
के दौरान बोलने का स्थान, 436, 1312
के दौरान बोलने वाले दलों के सदस्यों का क्रम, 1312
के दौरान सदस्यों को बुलाए जाने सम्बन्धी विधि, 1311
के दौरान सभा में व्यवस्था, 173, 426, 1343
के नियम, 436
में अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित करना, 1311-12
में अध्यक्ष के खड़े होने संबंधी प्रक्रिया, 438
में अपमानजनक शब्दों से बचना, 436
में असंसदीय शब्दों के प्रयोग से बचना, 1433
में आरोप लगाया जाना, 1317
में आलोचना की गुंजाइश, 435
में उत्तर देने का अधिकार, 1323
में उद्धृत पत्रों का सभा पटल पर न रखा जाना, 1393
में कटौती की विधि :
संशोधनों का चयन, 962
समय-सीमा की, 1328
समापन में, 1326
में कार्यवाही का साथ-साथ भाषान्तरण, 1425
में किसी व्यक्ति विशेष पर आक्षेप, 437
में नियमों का निलम्बन, 1350-51
में पुनरुक्ति, 435
में प्रतर्क, उकता देने वाली पुनरुक्ति, 435
में प्रयोग की जाने वाली भाषाएं, 1422
में प्रश्न पूछना, 1328
में प्रस्तावक के अनुपस्थित रहने पर उसके उत्तर को समाप्त माना जाना, 1324
में भाग लेने वाले सदस्यों का चयन, 1312
में भाषण किस भाषा में दिया गया, 1422
में भाषण के समय पालनीय नियम, 436
में भाषण देने के लिए बुलाया जाना, 1311
में भाषणों का क्रम, 1323
में राष्ट्रपति का उल्लेख न किया जाना, 437
में व्यक्तिगत हितों का प्रकटन, 444
में व्यवस्था का प्रश्न, 1343
में समय की कटौती, 1328
संसदीय शिष्टाचार के नियम, 430
सम्बोधन की विधि, 435

वापस लिया जाना :

आपत्तिजनक शब्दों का, 1434
खण्डों का, 811

प्रश्नों का, 684
प्रस्तावों का, 963
मानहानिकारक वाक्यांशों का, 1433
विधेयकों का, 839
संकल्पों का, 935
संशोधनों का, 828
सभा पटल पर रखे गये पत्रों का, 1415
स्थगन प्रस्ताव का, 741-45

वांरट :
के निष्पादन की शक्तियां, 361
के प्रपत्र, 361
सुपुर्दगी का, 375

वार्षिक प्राक्कलन :
देखिए 'बजट'

वार्षिक वित्तीय विवरण :
देखिए 'बजट'

विघटन, 264-73
और महासचिव, 269
का प्रभाव, 270
आश्वासन, 273
विधेयक, 270
विधेयक, अन्य कार्य, 271
समितियों के समक्ष लम्बित कार्य, 272
की प्रक्रिया, 269
राज्य विधान सभाओं का, 265, 1504
समय से पहले, 264
होने पर अध्यक्ष का त्यागपत्र का अधिकार, 142

वित्त विधेयक :1047
का पुर:स्थापन, 1047-48
कार्य निष्पादन बजट, 1036
की प्रक्रिया, 1048
को प्रस्तुत किया जाना, 1048
गिलोटिन, 1025
चर्चा की व्याप्ति, 1049
चर्चा के लिए समय नियत करना, 1048-49
परिभाषा, 1048
प्रत्ययानुदान, 1040
भाषणों के लिए समय-सीमा, 1044
रेल वित्त को अलग करना :
रेल अभिसमय समिति, 1007
लेखानुदान, 1037
वित्तीय कार्य का समय पर पूरा होना, 1050
समय से पूर्व पता चल जाना-विशेषाधिकार भंग नहीं, 405
सांकेतिक अनुदान, 1043

वित्तीय ज्ञापन, 761

वित्तीय प्रक्रिया :
देखिए 'बजट' के अंतर्गत

विधान
की परिभाषा, 746
विधान मंडल दलों को सुविधायें, 513

विधेयक :
अध्यक्ष खण्ड पर विचार स्थगित कर सकता है, 811
अनुसूचियां, 773-74
अनुसूचियों पर विचार, 813
उद्देश्यों तथा कारणों का कथन, 774
का वर्गीकरण, 747
किसी खण्ड को वापस लेने के प्रस्ताव की अनुमति नहीं, 811
खण्ड वार विचार, 811
खण्डों पर टिप्पणियां, 775
तीसरा वाचन, 828
धन विधेयक का प्रमाणीकरण, 750
नाम, 764
नियम बनाने सम्बन्धी खण्ड, 771
पर अनुमति, 851

पर चर्चा की गुंजाइश, 811
पुर:स्थापन से पहले परिचालन, 801
प्रमाणित करना, राष्ट्रपति द्वारा वापस किया गया और संसद के दोनों सदनों द्वारा पुन: पारित किया गया, 853-54
प्रवर/संयुक्त समिति का प्रतिवेदन
प्रस्तुतीकरण के बाद की प्रक्रिया, 809
प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले तथा प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्य का व्याख्यात्मक वक्तव्य, 840-41
प्रारम्भ सम्बन्धी खण्ड, 768
में शुद्धियां, 831
राज्य सभा में पुर:स्थापित और लोक सभा में लम्बित प्रस्ताव को वापस लेने सम्बन्धी प्रक्रिया, 840
राज्य सभा में मूल रूप से पुर:स्थापित विधेयकों के संबध में लोक सभा की प्रक्रिया, 704
राय जानने के लिए, 801
वाद-विवाद का स्थगन, 834-37
विलम्बकारी प्रस्ताव, 837
स्थगित वाद-विवाद का पुनरारंभ, 836
वापस लेने का प्रस्ताव, 839
वापस लेने का प्रस्ताव जो किसी प्रवर/संयुक्त समिति के विचाराधीन है, स्वत: समिति को सौंपा माना जाएगा, 839-40
व्यावृत्ति खंड, 772
संक्षिप्त नाम, 766-67
संविधान में संशोधन, 862
विशेष बहुमत द्वारा, 869
विशेष बहुमत द्वारा और राज्यों द्वारा अनुसमर्थन, 874
साधारण बहुमत द्वारा, 866

विधेयक का तीसरा वाचन, 828

इस चरण पर संशोधन की अनुमति नहीं, 828

विधेयक का नाम : 764

में संशोधन, 764, 813, 448

विधेयकों के अनुबन्ध, 777

विधेयकों के उद्देश्यों तथा कारणों का कथन, 774

विधेयकों पर अनुमति, 39-40, 851

विधेयकों सम्बन्धी प्रवर समिति

देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

विनियोग विधेयक : 1043

की चर्चा की व्याप्ति, 1045
की परिभाषा, 1043-44
की पुर:स्थापना से पूर्व प्रतियों का परिचालन आवश्यक नहीं, 1044
भारित व्यय, 1043
में संशोधन, 1046

विपक्ष का नेता, 201-204

की सीट की व्यवस्था, 528-29
की सुविधाएं, 204

विशेषाधिकार :

अपराधी
अपराधियों की भर्त्सना, 363
अपराधियों को सभा के कटघरे में बुलाना, 363
उपस्थिति सुनिश्चित करने की शक्ति, 358-59
गिरफ्तारी, 363-65
भर्त्सना, 363
मुकदमा चलाना, 364

अवमानना :
अजनबी या साक्षी, 386-87
एक सभा के सदस्य द्वारा दूसरी सभा के सदस्य के विरुद्ध मामले, 416
दंड देने की शक्ति, 356-61
दूसरी सभा की, 416
परिभाषा, 356
साक्षी या अजनबी, 386-87

सिविल सेवकों का उत्पीडन, 402
आक्षेप, 389-92
आदेशों की अवज्ञा, 387-88
उपस्थिति सुनिश्चित करने का अधिकार, 358-59
कानूनी कार्यवाही से उन्मुक्ति, 312, 314-15, 350-51

कार्यवाही :
अपराधियों पर मुकदमा चलाना, 364
उन्मुक्ति, 314
कार्यवाही का प्रकाशन कानूनी कार्यवाही से उन्मुक्ति, 312-13
गापनीय सत्रों - का प्रकाशन, 395
गोपनीयता का प्रकटन, 395
झारखंड मुक्ति मोर्चा मामला, मतदान से उन्मुक्ति, 330-40
झूठे वृत्तांत का प्रकाशन, 392-93
टेप रिकार्डिंग, 363-64
दंड विधि, 337
निकाले गए अंशों का प्रकाशन, 394
न्यायालय जांच नहीं करेंगे, 312
परिभाषा, 324
वृत्तांत से निकाले गए अंशों का प्रकाशन, 394
ग्राह्यता की शर्तें, 410-13

गिरफ्तारी :
छूट, 313, 349, 398
सभा को सूचित किया जाना, 314, 351-54
गिरफ्तारी के संबंध में सूचना, 313, 351
गिरफ्तारी से छूट, फौजदारी अपराधों में नहीं होती, 349
झूठे दस्तावेज प्रस्तुत करना, 388
झूठे वृत्तांत का प्रकाशन, 392
डराना-धमकाना, 400
दंड का स्वरूप, 363
दस्तावेज उपलब्ध कराना, 325-27
निर्वाचकों को कोई संरक्षण नहीं, 404

न्यायालय :
क्षेत्राधिकार, 376-84
विशेषाधिकार, 376-84
संसद के अधिकारियों द्वारा साक्ष्य, 313, 325-27
साक्षी के रूप में उपस्थिति से छूट, 313
सुपुर्दगी के कारण, 375
न्यायालय के समक्ष साक्ष्य, 325
न्यायालय के समक्ष साक्ष्य देने की प्रक्रिया, 325
न्यायालय के समक्ष साक्ष्य न दिया जाना, 313
परिभाषा, 296
प्रत्येक सदन की स्वतंत्रता, 296
प्रमुख, 312-13
प्रयोजन, 296-97
बजट प्रस्तावों का रहस्योदघाटन विशेषाधिकार का मामला नहीं, 405

भंग
कारावास की अवधि, 631
की परिभाषा, 357

मुक्ति
गिरफ्तारी से, 313, 349
भाषण की, 314-16
सभा के परिसर से गिरफ्तारी से, 350-51
याचिका देने वाले, 356
याचिकाओं को प्रस्तुत करने से पहले उनका परिचालन, 396
वाक् स्वातंत्र्य, 314-16
पर प्रतिबंध, 313-14

वारंट
के निष्पादन की शक्ति, 361
के प्रपत्र, 361

विधिमान्यता, 322
विशेषाधिकार का प्रश्न :
अध्यक्ष की अनुमति, 410-11
अध्यक्ष की निदेश देने की शक्ति, 422
अध्यक्ष द्वारा समिति को सौंपना, 421-22
की प्रक्रिया, 410-11
के प्रश्न की ग्राह्यता की शर्तें, 410-12
के प्रश्न की पूर्ववर्तिता, 410-11
के प्रश्न की सूचना, 410-11
के प्रश्न पर विचार, 410-12
सभा की अनुमति, 413-14
विस्तार क्षेत्र एवं व्याप्ति, 311-12
वैधता, 322
संसद और प्रेस, 1554

संसद के अधिकारी :
उत्पीड़न, 403
बाधा डालना, 403
संरक्षण, 363
साक्षी के रूप में, 313

संसद भवन संपदा :
संसद का दंड देने का क्षेत्राधिकार, 297, 356
संहिताबद्ध करने का प्रश्न, 300-11

सदस्य :
अवचार, 386-87
उपस्थिति का रिकार्ड, 550
का निष्कासन, 372
के विरुद्ध शिकायतें, 416
गिरफ्तारी आदि के संबंध में सभा को सूचना, 351
डराना-धमकाना, 400
प्रभाव डालना, 399
हिरासत में रखे गए-द्वारा संदेश, 354

सदस्यों का अवचार :
उत्पीड़न, 398
दंड, 323-65
दंड देने का अधिकार, 323
बाधा डालना, 399-400, 403-04
सदस्यों का अवचार, दंड देने का अधिकार, 323
साक्षी के रूप में मंत्री और सिविल सेवक, स्थान रिक्त होना, 366-68
हथकड़ी का प्रयोग, 355
सदस्यों की रिहाई की सूचना अध्यक्ष को देना, 351
सदस्यों को रिश्वत, 399, 446-47
सदस्यों को सूचना, 314, 351-54
सभा, अन्य
दूसरे सदन के सदस्यों अथवा अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें, 416-17
साक्षी के रूप में उपस्थित होना, 313
साक्षी के रूप में सदस्यों की उपस्थिति, 313, 422-23

सभा का परिसर :
कानूनी आदेशिका दिए जाने से उन्मुक्ति, 349
सभा के कार्यों से संबंधित मामलों का समय से पहले प्रकाशन, 397-98
सभा को प्रस्तुत दस्तावेजों में हेरफेर करना, 389
सभा पर आक्षेप, 389-92, 396

साक्षी
के रूप में उपस्थिति से छूट, 349
के रूप में शपथ लेना, 386-87
गिरफ्तारी से छूट, 356
साक्ष्य, 325-27
सिविल सेवक और, 402

विश्वास प्रस्ताव, 1004
1952-1999 के दौरान विश्वास प्रस्ताव, 1006

वेतन तथा भत्ते :
पीठासीन अधिकारियों के, 461-69
मंत्रियों के, 457-59
सदस्यों के, 461-64

वैयक्तिक स्पष्टीकरण, 589-93
अध्यक्ष की पूर्व अनुमति, 588, 590
आर्थिक हित, 444-46
स्पष्टीकरण, 589-93

व्यवस्था का प्रश्न :
अध्यक्ष द्वारा विनिश्चय, 1347-48
ग्राह्यता, 1343-48
धोखाधड़ी, 1346
निपटाने का समय, 1348
परिभाषा, 1343-44
प्रक्रिया, 1343-48
मत विभाजन के दौरान, 1333
मामले उठाने का अधिकार, 1344
विधायी क्षमता, 1345-46
सूचना की आवश्यकता, 1344

व्यावृत्ति खंड, 772

शपथ या प्रतिज्ञान : 597
उप-चुनाव में निर्वाचित सदस्य द्वारा, 527
करने से पहले सदस्यों के अधिकार, 521
का प्ररूप, 518
किये बिना अनुपस्थिति की अनुमति, 522-23
किये बिना सभा में बैठने के लिए शास्ति, 520
किये बिना सभा में मत देने के लिए शास्ति, 520
की भाषा, 520-21, 524
निर्वाचन प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना, 518-21
संबंधी प्रक्रिया, 525
सदस्यों की नामावली में हस्ताक्षर करना, 523, 525-27
सामयिक अध्यक्ष, 518

शब्दों का कार्यवाही से निकाला जाना, 1433-40
समितियों में, 1440

संकल्प :
अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन का, 941
अध्यक्ष द्वारा विनिश्चय, 926
आपातस्थिति, 941
उद्घोषणा का प्रयोजन, 890
का रूप, 923
का वापस लिया जाना, 935
की ग्राह्यता की शर्तें, 923
की सूचना, 922
की स्थिति और प्रभाव, 941
के लिए समय-सीमा, 930
गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प पर स्थगित वाद-विवाद का पुनः प्रारम्भ किया जाना, 927
चर्चा की व्याप्ति, 934
न्यायालय के न्यायनिर्णयाधीन, 924
पर चर्चा के लिए समय का नियतन, 929
पूर्व संकल्प को उठाए जाने की अनुमति नहीं, 924
प्रक्रिया, 924
प्रख्यापित अध्यादेशों का निरनुमोदन, 940
प्रस्तुत किया जाना, 932
राज्य सूची के किसी विषय के संबंध में विधान बनाना, 940
राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर, 896-904
राष्ट्रपति पर महाभियोग, 46-47
शलाका (बैलट), 922
श्रेणियां, 922, 936-37
संकल्पों की शुरुआत, 921
संशोधनों की ग्राह्यता, 933
संशोधनों की सूचना, 933
समय का नियतन और चर्चा, 936
सरकारी संकल्प, 936

सांविधिक नियमों आदि का अनुमोदन, 941,
सांविधिक संकल्प, 939
सूचना, 922
हटाया जाना :
अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का, 147–50
उपराष्ट्रपति का, 940
नियंत्रक महालेखापरीक्षक का, 208
न्यायाधीशों का, 1518
मुख्य निर्वाचन आयुक्त का, 223
राज्य सभा के उपसभापति का, 940

संधियों का अनुसमर्थन, 937

संविधान :
का बुनियादी ढांचा, 1
के अनिवार्य तत्व, 1
के प्रमुख लक्षण, 1
के संशोधन, 7–11

संशोधन :
अधिनियमन सूत्र में, 813
अध्यादेश का निरनुमोदन करने वाले संकल्पों में, 886–88
अनुसूचियों में, 812
एक समान, 827
कराधान को प्रभावित करने वाले, 822
का उद्देश्य, 958
का चयन, 962
का वापस लिया जाना, 828
का विन्यास, 824
की ग्राह्यता, 816
की परिभाषा, 959
की सूचना, 813, 960
की सूची, 824
के रूप, 816–959
खण्डों के पुनःस्थापन के, 810
तीसरे वाचन में, 828
धन्यवाद प्रस्ताव में, 289
पर क्रमवार विचार, 826
पर वाद-विवाद की व्याप्ति, 963
पारिणामिक, 820
प्रस्तावों में, 957–62
प्रस्तुत करने का क्रम, 826
प्रस्तुत करने की विधि, 826, 961
राज्य सभा द्वारा किए गए संशोधनों में, 842
राष्ट्रपति की सिफारिश की आवश्यकता वाले, 821
विधेयक की उद्देशिका में, 764
विधेयक के पूरे नाम में, 1149
विधेयक के संक्षिप्त नाम में, 1149
विधेयक पर विचार किए जाने के समय, 811
विधेयकों के पुरःस्थापन के बाद के प्रस्तावों में, 799
विधेयको में, 813
विनियोग विधेयकों में, 1046
संकल्पों में, 933
संविधान का, 8–11, 862
संशोधनकारी विधेयकों में, 819
संशोधनों में, 962
सांविधिक नियमों में, 914
समाप्त हो जाने वाली विधियों का जारी रखना, 820

संसद :
और न्यायपालिका, 1582
का प्राधिकार, 1–18
की अवधि, राज्य सभा 19–22
लोक सभा, 23–28
की पूर्ण शक्तियां, 2–12
की वित्तीय शक्तियां, 14
की विधायी सक्षमता, 1–10
की शक्तियां, विशेषाधिकार आदि
देखिए विशेषाधिकार के अन्तर्गत
की संविधायी शक्ति, 1–10
के अधिकारियों का उत्पीड़न, 403

के प्रति मंत्रिपरिषद का उत्तरदायित्व, 192
के सदनों की संयुक्त बैठक, 53
के सदनों की संयुक्त समिति, 52
के सदनों के बीच संवाद, 49
न्यायाधीशों को पद से हटाए जाने की प्रक्रिया, 1518
न्यायालय संसद की कार्यवाही की वैधता की जांच नहीं कर सकते, 321
न्यायालयों में साक्ष्य, 325
में राष्ट्रपति का अभिभाषण, 33
राष्ट्रपति का संसद से संबंध, 30-32, 35
राष्ट्रपति पर महाभियोग, 46-47
विधि बनाने की अवशिष्ट शक्तियां, 3
संसद और प्रेस, 1555-64
संसद और राज्यों से संबंधित मामले, 1505
संसद को आहूत करना, 36, 235-44
सदस्य
देखिए, 'सदस्य' के अन्तर्गत
सभा का सत्रावसान, 36
सभा के आदेशों की अवज्ञा करना, 387
सिविल सेवा, 1542, 1549

संसद का दंड देने का क्षेत्राधिकार, 323, 356

संसद के अधिनियम :
का प्रारंभ, 768
का संक्षिप्त नाम, 766
की प्रत्यक्ष गलतियों की शुद्धि, 830
की वैधता और राष्ट्रपति की स्वीकृति, 45

संसद भवन
का उदघाटन, 1474
की दीर्घाएं, 1125, 1483
में कार्यवाही का प्रसारण और सभा कक्ष के उपयोग पर निर्बधन, 1481
में केन्द्रीय कक्ष, 1373, 1476
में ग्रंथालय कक्ष, 1485
में दर्शकों का प्रवेश, 1374, 1477
में दलों के कार्यालयों के कक्ष, 1486
में मंत्रिमंडल कक्ष, 1486
में मंत्रियों के कक्ष, 1485
में राज्य सभा कक्ष, 1484
में लॉबी, 1373, 1442
में लोक सभा कक्ष, 1478
में सदस्यों के लिए विशेष सुविधाएं, 1490-91
में समिति कक्ष, 1485
में स्वागत कार्यालय, 1491
संसदीय ज्ञानपीठ, 1487
संसदीय सौध, 1486

संसद में राजनैतिक दलों को मान्यता :
दसवीं अनुसूची लागू होने के बाद की स्थिति, 506-11
संसदीय दलों को मान्यता का सिद्धांत, 506

संसद में लम्बित कार्य :
विघटन का प्रभाव, 270
सत्रावसान का प्रभाव, 262

संसद संपदा, 1474

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो :
की स्थापना, 1592

संसदीय कार्यवाही :
ऑडियो कैसेट, 1576
का आकाशवाणी से प्रसारण, 1569
की रिकार्डिंग, 1572
की वीडियो कैसेटों की उपलब्धता, 1575
के दूरदर्शन प्रसारण के लिए दिशानिर्देश, 1569
के लिए दृश्य-श्रव्य एकक और दूरदर्शन प्रसारण एकक, 1575
दूरदर्शन प्रसारण एकक, 1569
दृश्य-श्रव्य एकक, 1575
लोक सभा टेलीविजन चैनल, 1573
वीडियो कैसेट, 1577

संसदीय दल
दलीय प्रणाली का विकास, 497-98
मान्यता की शर्तें, 506-13

दसवीं अनुसूची लागू होने के बाद की स्थिति, 512-13
सुविधाएं, 514-17
लोक सभा में दलों की स्थिति, 501-03
संसदीय समूह, 507-11

संसदीय पत्र :
अभिरक्षा, 1417-20
महासचिव की अभिरक्षा में रहते हैं, 1417
का मुद्रण, 1442-47
कार्यपालिका से संबंधित अधिकारी, 1417-20
न्यायालय और, 1353-57
बिक्री, 1447
वर्गीकरण, 1417

संसदीय विशेषाधिकार :
देखिए 'विशेषाधिकार'

संसदीय शिष्टाचार :
नियम, 430-35
संसदीय सचिव, 195

संसदीय समितियां :
आकस्मिक रिक्तियां, 1063
उप समिति नियुक्त करने की शक्ति, 1072
का कार्यवाही सारांश, 1097-98, 1103
का वर्गीकरण, 1054
समितियों के लिए निर्वाचन प्रस्ताव, 593

कार्यकाल :
किसी अधिनियम के अन्तर्गत गठित, 1065
नामनिर्दिष्ट, 1063-64
निर्वाचित, 1064
प्रस्ताव द्वारा नियुक्ति/निर्वाचित, 1065
की अनुमति के बिना अनुपस्थिति, 1079
की कार्यवाही, 1082-83
की कार्यवाही से शब्दों का निकाला जाना, 1440
की दस्तावेज मंगाने की शक्ति, 1073
की परिभाषा, 1053
की प्रक्रिया संबंधी विषय पर संकल्प पारित करने की शक्ति, 1074
की बैठकों का कार्यवाही सारांश, 1097-99
की बैठकों का नियतन, 1075-76
की बैठकों का स्थान, 1076-77
की बैठकों में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से निर्णय, 1082
की बैठकों में गैर-सदस्यों का प्रवेश, 1080-81
की बैठकों में लिए गए निर्णयों का प्रचालन, 1097-99
की विशेष प्रतिवेदन देने की शक्ति, 1074
की शक्तियां और कर्तव्य, 185-86
की संयुक्त समिति का गठन, 1059
की सदस्यता पर आपत्ति, 1066
प्रतिवेदन स्वीकार करने संबंधी प्रस्ताव, 594
की सिफारिशों का कार्यान्वयन, 1108
के कार्य, 15-18, 1071-1074
के कार्यवाही सारांश का सभा पटल पर रखा जाना, 1098
के पास लंबित कार्य पर सत्रावसान का प्रभाव नहीं होता, 1110
के प्रतिवेदन, 1099
के प्रतिवेदन पर सभा द्वारा की गई कार्यवाही, 1106
के प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए समय-सीमा, 1099-1100
के प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाना, 1099-1100
के सदस्यों द्वारा गोपनीय दस्तावेज प्रस्तुत करने के संबंध में, 1084, 1091
के सभापति की शक्तियां, 185-186
के समक्ष दिए गए साक्ष्य, 1083-88
का परिचालन, 1095
का शब्दशः रिकार्ड, 1090
का सभा पटल पर रखा जाना, 1090-95
का समय से पहले प्रकाशन, 1091-93
को गोपनीय मानना, 1091
शपथ पर साक्ष्य लेना, 1089

साक्ष्य लेने की शक्ति, 1073, 1083-87
के समक्ष व्यक्तियों को बुलाने और पत्र तथा रिकार्ड मंगाने की शक्ति, 1074
गणपूर्ति, 1077-79
गणपूर्ति के अभाव में बैठक का स्थगन अध्यक्ष को सूचित किया जाना, 1078-79
तदर्थ समितियां, 1055
नामनिर्दिष्ट समितियां, 1062
नियम बनाने की शक्ति, 1074
प्रणाली का प्रारंभ, 1053-54
प्रतिवेदन पर
चर्चा, 1107
चर्चा नहीं, 1106
चर्चा किया जाना और प्रतिवेदन स्वीकार किया जाना, 1102, 1107
चर्चा हो भी सकती है और नहीं भी, 1108
प्रारूप प्रतिवेदन
आक्षेप, 389
तैयार किया जाना, 1101-02
प्रस्तुत किया जाना, 1105-06
परिचालन, 1101-02, 1109
मुद्रण, 1109
स्वीकार किया जाना, 1102
में निर्वाचन, 1060-61
में सदस्यों की नियुक्ति पर आपत्ति, 1066
में सदस्यों की नियुक्ति संबंधी प्रक्रिया, 1059
राज्य सभा के सदस्यों को सम्बद्ध किया जाना, 1066, 1200, 1249, 1254
वित्तीय और सरकार द्वारा गठित समितियों की साथ-साथ सदस्यता स्वीकार करना, 1067, 1069
विमत टिप्पण, 1103-04
सभापति, 183
का निर्णायक मत, 1340-41
की नियुक्ति, 183
से पदत्याग, 1069
से संबंधित नियम, 1054

संसदीय समितियों के सभापति, 183-86
की नियुक्ति, 183
के कर्तव्य और शक्तियां, 185
को अध्यक्ष द्वारा निदेश, 186
द्वारा मतदान, 1340

संसदीय समितियों के सभापतियों के सम्मेलन, 1590

संसूचना :
राष्ट्रपति से सभा को, 294
सदनों के बीच, 38-39, 845, 920, 921
सभा से राष्ट्रपति को, 161, 294

सचिवालय :
इन्टरानेट, 1473
एकीकृत वित्त एकक, 1466
का उद्‌भव, 1449-52
का प्रमुख, 175
कर्मचारी कल्याण, 1458
कम्प्यूटरीकरण, 1467
डाटाबेस, 1467
बजट, 1461
भर्ती नियम, 1452-53
विभिन्न शाखाएं, 1456
वेतन पुनरीक्षण, संसदीय समिति, 1453
संयुक्त भर्ती, 1458
संवैधानिक उपबन्ध, 1449
सदस्यों के लिए कम्प्यूटर सुविधा, 1471
सूचना प्रौद्योगिकी, 1467
सेवा शर्तें, 1452-53

सचेतक, 204
सरकार का मुख्य, 206

सदनों की संयुक्त बैठक, 844
की प्रक्रिया, 54-55

सदस्य :
और संसदीय दलों का टूटना (दल बदल), 512

कटौती प्रस्ताव के लिए किसी को प्राधिकृत करने की अनुमति नहीं, 1305
का उत्पीड़न, 398
का कदाचार, 323, 426-27, 446
का किसी राज्य में मंत्री नियुक्त किया जाना, 1316
का गुप्त दस्तावेजों से उद्धृत करने का अधिकार, 1397
का नाम लेना, 441
का निलम्बन, 428-29, 441
का निर्वाचन, 71
का निष्कासन, 98, 365, 429
का वाद-विवाद में भाग लेने के लिए चयन, 1312
का शपथ लिए बगैर मतदान इत्यादि के लिए शास्ति, 519-20
का संसदीय प्रतिनिधिमण्डलों में नामनिर्देशन, 1284
की अर्हताएं, 74, 89
की आगन्तुकों से मिलने की व्यवस्था, 1492
की उपस्थिति, 551
    के संबंध में जानकारी, 551
    के संबंध में रिकॉर्ड, 550
की गिरफ्तारी के बारे में सूचना, 314, 351
की दलीय सम्बद्धता और निरर्हता, 76, 512
की निरर्हता, 65
के आचरण की जांच प्रक्रिया, 455, 426
के आचरण की परिभाषा, 426
के आचरण के बारे में मानदंड, 426
    अध्यक्ष का सभा को संबोधन, 438
    आचार संहिता, 439
    नैतिक सिद्धांत, 456
    प्रश्न पूछा जाना, 435
    बोलना/भाषण, 436
    सभा की बैठक, 427, 553-62
के कर्तव्य निर्वहन में बाधा डालना, 398
के निजी जीवन के संबंध में शिकायतें, 1385
के निवेदन, 1357
के बैठने की व्यवस्था, 528-36
के विरुद्ध आरोप, समितियों में, 444
के विरुद्ध विशेषाधिकार की शिकायतें, 413, 416
के वेतन, 457-66
के वेतन, भत्ते और अन्य हकदारियां, 453-68
के वेतन तथा भत्ते, भुगतान की विधि, 469
के व्यक्तिगत अथवा आर्थिक हित, 444
के साथ पुलिस प्राधिकारियों द्वारा दुर्व्यवहार, 413
के स्थानों की रिक्तियां, 93-101
को अनुपस्थिति की अनुमति, 537
को उत्तर का अधिकार, 1323-24
को कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार, 193
को दण्ड, 365
को देय यात्रा भत्ता, 464
को पेंशन, 469
को रिश्वत, (घूस) 399
को सभा में मतदान करने के लिए न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति, 330
गिरफ्तारी से मुक्ति, 314, 345, 398
गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक पुर:स्थापित करने के लिए प्राधिकृत करने की अनुमति, 1304-05
डराना-धमकाना, 400
द्वारा एक से अधिक बार न बोला जा सकना, 1323-24
द्वारा किसी एक दिन के लिए प्रश्नों/सूचनाओं की संख्या, 648
द्वारा दी जाने वाली सूचनाओं की संख्या, 648-49
द्वारा न्यायाधीन विषयों का उल्लेख न किया जाना, 1316
द्वारा बोलते समय पालनीय नियम, 435
द्वारा वैयक्तिक स्पष्टीकरण, 589-93
द्वारा व्यवस्था का प्रश्न उठाये जाने का अधिकार, 1343

द्वारा शपथ, 518-521
द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान पूर्व अधिकार, 521
द्वारा शपथ, प्रतिज्ञान की प्रक्रिया, 523-27
द्वारा शपथ लिए बिना अनुपस्थिति की अनुमति, 522-23
द्वारा संकल्प, प्राधिकृत करने की अनुमति, 1304-05
द्वारा सभा में उपस्थिति के समय पालनीय नियम, 430
दैनिक भत्ता पाने का हकदार नहीं, 464
न्यायालयों में साक्षी के रूप में उपस्थिति से छूट, 349
न्यायालयों में साक्ष्य, 325
पर आक्षेप, 389
परामर्शदात्री समितियों में नामनिर्देशन, 1280
प्राधिकृत:
    विधेयक, 1304-05
    संकल्प, 1304-05
बीमार या दुर्बल सदस्यों द्वारा मतदान में भाग लेना, 1334-35, 1338

भत्ते, 383-87
    दैनिक भत्ते, 461
    यात्रा भत्ता, 464
    रेल द्वारा मुफ्त यात्रा, 467
    विदेश यात्रा, 488
भ्रष्टाचार के मामलों में लिप्त होना, 446
भाषण देने के लिए चयन, 1312
मत विभाजन के दौरान भाषणों का न दिया जाना, 1333
वाद-विवाद के गलत या विकृत वृतान्त का प्रकाशन, 392
वाद-विवाद में भाग लेना, 1311
शपथ अथवा प्रतिज्ञान के बिना सभा में बैठने या मत देने के लिए शास्ति, 520
शपथ आदि लिए बिना सभा में बैठने पर शास्ति, 520
संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना, (एम.पी.एल.ए.डी.एस) 493
संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी समिति, 1269
सदस्य को सभा से निकालने के लिए, 173, 430
सदस्यों के भाषण का क्रम, 1323
    का अलग प्रकाशन, 330
सभा के परिसर में गिरफ्तारी, 349
समितियों में नियुक्ति, 1059
सरकारी प्रतिनिधिमण्डलों में नामनिर्देशन, 1284
सरकारी समितियों में नामनिर्देशन, 1284
सरकारी समितियों में सेवा करने के लिए, 1283
सिविल सेवा के अधिकारी और, 402
सूचना का रहस्योद्घाटन, 404

सदस्यों की नामावली :
में हस्ताक्षर, 518, 525

सदस्यों की पेंशन, 469-71

सदस्यों को डराना-धमकाना, 363

सभा का कठघरा :
अपराधियों को लाना, 363

सभा का परिसर :
    कानूनी प्रक्रिया का निष्पादन, 350-54
    में गिरफ्तारी, 350-54
    सभा का स्थगन, 570-78
    सभा का प्रस्ताव, 595

सभा का सत्रावसान, 258-64
की परिभाषा, 254
के प्रभाव, 262
प्रस्ताव, संकल्प और संशोधन, 263
विधानमण्डल, 258-64, 1504
विधेयक, 262
संसद, 36
संसदीय समितियों के समक्ष लम्बित कार्य, 263-64
सत्रावसान की प्रक्रिया, 261-62

सभा की अनुमति :

अविश्वास प्रस्ताव :

मंत्रिपरिषद में, 991

विशेषाधिकार का प्रश्न, 414

स्थगन प्रस्ताव हेतु, 739

सभा की गुप्त बैठक, 578-81

सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी समिति, 548-50

देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

सभा का विधायी कार्य, 595

सभा की विधायी शक्ति, 778

सभा के परिसर में कानूनी आदेशिका दिया जाना, 349

सभा के संकल्प, 596

सभा पटल पर रखे गए पत्र : 582

अध्यक्ष के निदेशों के अंतर्गत रखे जाने वाले पत्र, 1392-93

अभिभाषण की प्रति का सभा पटल पर रखा जाना

का अर्थ, 1388

का परिचालन, 1409

का प्रमाणीकरण, 1403

का वापस लिया जाना, 1415

(संसदीय पत्रों के अन्तर्गत भी *देखिए*)

का सभा पटल पर रखा जाना, 1391

के परिणाम, 1416

के बारे में मंत्रियों को दी गई सलाह, 1400

के बारे में संवेदनशील अधिसूचनाएं, 559-60

के सम्बन्ध में मंत्रियों द्वारा विशेषाधिकार का प्रयोग करना, 1400

के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधान, 1389

गुप्त दस्तावेज, 1397

गुप्त दस्तावेजों से उद्धृत करने का सदस्यों का अधिकार, 1397-1401

जिन पत्रों का हवाला दिया गया है उन्हें सभा पटल पर रखना आवश्यक है, 1393

पत्रों के सभा पटल पर रखने की प्रक्रिया, 1404-06

पत्रों को पुनः सभा पटल पर रखा जाना, 1411

पत्रों को सभा में प्रस्तुत किया जाना, 1391

पत्रों को सभा पटल पर रखने की सक्षमता, 1401-03

प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत रखे जाने वाले पत्र, 1391-92

मंत्रियों के बीच पत्र-व्यवहार, 1395-97

में शुद्धियां, 1415

शपथ-पत्र आदि, 1402

संबंधी समिति, 1421

संविधियों के अन्तर्गत सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र, 1389

सांविधिक प्रावधान, 1389-90

सदस्यों द्वारा सभा पटल पर रखे गए पत्र, 1406

सभा पटल पर पत्र रखने के लिए अध्यक्ष की अनुमति, 1401

सभापति तालिका, 181-82

का पद, 182

के लिए नामनिर्देशन, 181

सभापति द्वारा मतदान, 1340

सभा में अवचार :

अजनबियों का, 386

जांच समिति, 456

प्रश्न पूछने के एवज में धन लेना, 370

सदस्यों का, 363, 386, 426-28, 446

समय का नियतन :

अनियत दिन वाले प्रस्तावों के लिए, 974

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यानाकर्षण के लिए, 695

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर अल्पकालीन चर्चा के लिए, 983

अविश्वास प्रस्ताव के लिए, 993

कार्य-मंत्रणा समिति द्वारा, 1113

गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य के लिए, 1129

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों के लिए, 928
राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा के लिए, 288
वित्तीय मामलों के लिए, 170, 1016, 1038
विश्वास प्रस्ताव के लिए, 977
सरकारी कार्य के लिए, 1113
सरकारी संकल्पों के लिए, 936
सांविधिक आदेशों के उपांतरण के प्रस्तावों के लिए, 919
स्थगन प्रस्तावों के लिए, 739

समाप्त होने वाली विधियों को जारी रखने सम्बन्धी विधेयक :
में संशोधन, 820

समितियां :

अधीनस्थ विधान संबंधी :
का उद्देश्य, 1216
का कार्यकाल, 1217
का प्रादुर्भाव, 1217
की कार्य प्रणाली, 1224-25
की संरचना, 1216-17
की सिफारिशों का कार्यान्वयन, 1227
के कृत्य, 1216-17
के प्रतिवेदन का प्रस्तुतीकरण, 1226
विषयवस्तु पर सभा में चर्चा न किया जाना, 1226
के विचार-विमर्श की व्याप्ति, 1219
द्वारा अध्ययन दौरे, 1225-26
द्वारा महान्यायवादी से राय लिया जाना, 1225
द्वारा साक्ष्य लिया जाना, 1225

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी :
का उद्देश्य, 1253
का कार्यकाल, 1254
का प्रादुर्भाव, 1253
की कार्य प्रणाली, 1256
की संरचना, 1253
के कृत्य, 1253
के प्रतिवेदन, 1257
द्वारा साक्ष्य लिया जाना, 1257
बैठकों के कार्यवाही सारांश, 1257

आचार समिति :
की सिफारिशें, 442-43
कृत्य, 442
संरचना, 442

आवास :
का प्रादुर्भाव, 1246
की आवास उप-समिति, 1247
की कार्य प्रणाली, 1246-47
की संरचना, 1246
के कृत्य, 1246
दोनों सभाओं के सदस्यों के मामले, 1248
प्रतिवेदन प्रस्तुत न किया जाना, 1248
सामान्य हित, 1248
सिफारिशों का कार्यान्वयन, 1248

कार्य मंत्रणा :
का कार्यकाल, 1113
का गठन, 1113
का प्रतिवेदन, 1119-24
का प्रादुर्भाव, 1113
की संरचना, 1113
के कार्यकरण की पद्धति, 1117-19
के कार्यवाही सारांश सभा पटल पर न रखा जाना, 1124
के कृत्य, 1114-17
के प्रतिवेदन, 1119
के संबंध में प्रस्ताव, 1122-23

कृषि :
का उद्देश्य, 1270-71
का प्रादुर्भाव, 1270

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों संबंधी : 596-97
का कार्यकाल, 1125

का गठन, 1125
का प्रादुर्भाव, 1125
की बैठकें बुलाने की प्रक्रिया, 1129
के कार्यवाही सारांश, 1131
के कृत्य, 1125
के प्रतिवेदन, 1131
द्वारा संविधान का संशोधन करने के उद्देश्य से रखे गए विधेयकों की जांच, 1128
द्वारा समय का नियतन, 1129
विधेयकों का वर्गीकरण, 1125

ग्रंथालय :
का उद्देश्य, 1248
का प्रादुर्भाव, 1248
की उप-समिति, 1249
की संरचना, 1249
के कृत्य, 1249

तदर्थ :
सदस्यों के आचरण की जांच करने के लिए, 426-28

नियम :
का गठन, 1239
का प्रतिवेदन सभा पटल पर रखा जाना, 1240
की कार्य पद्धति, 1239
की सिफारिशों में संशोधन की सूचना, 1239
के कृत्य, 1240
नियमों में संशोधनों की प्रक्रिया, 1240
संसद सदस्यों को बैठकों में निमंत्रित किया जाना, 1239

प्राक्कलन समिति:
का उद्देश्य, 1186
का कार्यकाल, 1188
का प्रादुर्भाव, 1186
का सभापति, 1188
की बैठकों में कार्यवाही सारांश, 1196
की संरचना, 1187
की सिफारिशों का कार्यान्वयन, 1198
के अध्ययन दल, 1193
के कृत्य, 1188-89
के प्रतिवेदन :
का सत्यापन, 1197
पर चर्चा, 1197
को प्राप्त की गई कार्यवाही संबंधी विवरणों को सभा पटल पर रखना, 1198
द्वारा साक्ष्य लिये जाने की प्रक्रिया, 1196
मंत्रियों
को संबद्ध न किया जाना, 1187
को साक्ष्य देने के लिए न बुलाया जाना, 1194
विमत टिप्पण, 1196

महिलाओं को शक्तियां प्रदान करने संबंधी :
का कार्यकाल, 1259
का सभापति, 1259
की कार्य प्रणाली, 1259
की संरचना, 1259
के उद्देश्य, 1259
के कृत्य, 1259-60

याचिका :
का कार्यकाल, 1160
का गठन, 1160
का प्रादुर्भाव, 1160
की बैठकें, 1161-62
की सिफारिशों :
का कार्यान्वयन, 1165
का स्वरूप, 1165
के कृत्य, 1161, 1163
के प्रतिवेदन
की विषय वस्तु, 1163

रेल अभिसमय :
का प्रादुर्भाव, 1260-65
की लाभांश दर, 1268
की संरचना, 1267
के कृत्य, 1267

के प्रतिवेदन पर विचार, 1269
द्वारा अन्य विषयों की जांच, 1267

लाभ के पदों संबंधी :
का उद्देश्य, 1251
का कार्यकाल, 1251
का प्रादुर्भाव, 1251
की कार्य प्रक्रिया, 1252
की संरचना, 1252
के कृत्य, 1253
में आकस्मिक रिक्तियां, 1251

लोक लेखा :
अतिरिक्त व्यय की जांच, 1170
का उद्देश्य, 1166
का कार्यकाल, 1167
का प्रादुर्भाव, 1167
का सभापति, 1169
की बैठकें, 1180
की संरचना, 1167
के अध्ययन दल, 1178
के कृत्य, 1169-70
के कार्य दल, 1177
के प्रतिवेदन
के साथ विमत टिप्पण न लगाया जाना, 1181
को तैयार और प्रस्तुत किया जाना, 1181
पर चर्चा, 1184-85
द्वारा गैर-सरकारी कम्पनियों आदि के प्रतिनिधियों का साक्ष्य, 1195
द्वारा न्यायालय में लम्बित मामलों की जांच, 1176
नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और, 1173, 79
नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों में शामिल न किए गए मामलों की जांच, 1179
मंत्रियों को संबद्ध न किया जाना, 1066
मंत्रियों को साक्ष्य के लिए न बुलाया जाना, 1180
में आकस्मिक रिक्तियां, 1067, 1202
राजस्व संबंधी मामलों
की जांच, 1173
राज्य सभा
के सभा पटल पर प्रतिवेदन रखा जाना, 1185
को संबद्ध किया जाना, 1066
लेखापरीक्षा प्रतिवेदन पर विचार, 1176
समिति को भेजे गए
मामलों की जांच, 1175-76
सिफारिशों
का कार्यान्वयन, 1182
के संबंध में सरकार से असहमति, 1184-85

विधेयक :
का कार्यकाल, 1138
की सदस्यता, 1134-37
को धन विधेयक न सौंपा जाना, 757, 803-06
को विधेयक सौंपे जाने संबंधी प्रस्ताव, 1137
में आकस्मिक रिक्तियों का
भरा जाना, 1138,1202
में और सदस्यों को शामिल किया जाना, 1137
(साथ ही *देखिए* 'विधेयकों' संबंधी प्रवर समिति के अन्तर्गत)

विधेयकों संबंधी प्रवर समिति :
का कार्यकाल, 1138
की नियुक्ति, 1133
की सदस्यता, 1134
में आकस्मिक रिक्ति, 1138
में वृद्धि, 1138
के कृत्य, 1139
के प्रतिवेदन :
का मुद्रण, 1156
का प्रस्तुतीकरण, 1154
का वितरण, 1156

की विषय-वस्तु, 1150-51
के विचार-विमर्श का क्षेत्र, 1147
के विमत टिप्पण, 1152-53
को गोपनीय समझा जाना, 1142
के सभापति के कर्तव्य, 1139
को प्रस्तुत ज्ञापन, 1143, 1144
द्वारा साक्षियों को बुलाया जाना, 1143
द्वारा साक्ष्य
के संबंध में प्रेस विज्ञप्ति जारी किया जाना, 1141
को सभा पटल पर रखा जाना, 1145
द्वारा साक्ष्य लिया जाना, 1140-45
प्रतिवेदन प्रस्तुत करने
के लिए समय बढ़ाया जाना, 1154
प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार, 1151
में अन्य मंत्रियों की उपस्थिति, 1144
में प्रभारी मंत्री को सम्बद्ध किया जाना, 1136-37
में संशोधन, 1145-47
की सूचना, 1145
पर चर्चा, 1146
से संबंधित प्रक्रिया, 1145-47

विभागों से सम्बद्ध स्थायी समितियां :

का गठन, 1270-71
का विकास, 1270-71
की उप समितियां, 1276
की संरचना, 1273
के अध्ययन दल, 1276
के कार्यवाही सारांश, 1276
के की गई कार्यवाही संबंधी प्रतिवेदन, 1276
के कृत्य, 1274
के नाम, 1271
के प्रतिवेदन, 1277
के सदस्यों का कार्यकाल, 1274
के सभापति की नियुक्ति, 1273
को शासित करने वाले नियम, 1273
द्वारा वार्षिक प्रतिवेदनों की जांच, 1275
द्वारा विशेषज्ञों/तकनीकी विशेषज्ञों/ परामर्शदाताओं इत्यादि का सहयोग लिया जाना, 1276
मंत्री की सदस्यता की पात्रता न होना, 1274
में अनुदानों की मांगों पर विचार संबंधी प्रक्रिया, 1274
में विधेयकों पर विचार संबंधी प्रक्रिया, 1275
में विषयों की जांच संबंधी प्रक्रिया, 1276

विशेषाधिकार :

का कार्यकाल, 1209
का गठन, 1209
का प्रादुर्भाव, 1209
की कार्य पद्धति, 1209-14
के कृत्य, 1209
के विचार-विमर्श में बाहर के किसी व्यक्ति को शामिल न किया जाना, 1212
प्रतिवेदन
पर कार्यवाही, 1214
से संबंधित प्रस्ताव को प्राथमिकता दिया जाना, 1214

संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना संबंधी, 1069

संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी :

का कार्यकाल, 1249-50
का प्रादुर्भाव, 1249-50
की संरचना, 1249
के कृत्य, 1250

के सभापति का निर्वाचन, 1249
द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत न किया जाना, 1250
प्रक्रिया का विनियमन करने की शक्ति, 1250
में आकस्मिक रिक्ति, 1249

सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति संबंधी :

अनुपस्थिति की अनुमति की सिफारिश के लिए सभा की सहमति, 1234
अनुपस्थिति की अनुमति की सिफारिश न किए जाने की दशा में प्रस्तुत प्रस्ताव, 1234
अनुपस्थिति की अनुमति के आवेदनपत्रों का निपटान, 548-49
का कार्यकाल, 1239
का गठन, 1234
का प्रादुर्भाव, 1234
का प्रतिवेदन, 1238
की कार्यवाही, 1236
के कार्यवाही सारांश, 1238
के कृत्य, 1234-35

सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी :

का कार्यकाल, 1157
का गठन, 1157
का प्रतिवेदन, 1157
का प्रादुर्भाव, 1156-57
की कार्यप्रणाली, 1157
की संरचना, 1157
के कृत्य, 1157
द्वारा निर्धारित मार्गनिर्देश, 1158-59

सरकारी :

का गठन, 1283
में सदस्यों का नामनिर्देशन, 1284

सरकारी आश्वासनों संबंधी :

आश्वासनों का कार्यान्वयन, 1229-32
का उद्देश्य, 1228
का गठन, 1228
का प्रादुर्भाव, 1228
की संरचना, 1228
के अध्ययन दौरें, 1232
के कार्यवाही सारांश सभा पटल पर रखा जाना, 1233
के कृत्य, 1228
के प्रतिवेदन :
तैयार और प्रस्तुत किया जाना, 1233
पर चर्चा न किया जाना, 1233
द्वारा साक्ष्य दिया जाना, 1233

सरकारी उपक्रमों संबंधी :

का उद्देश्य, 1200
का कार्यकाल, 1202
का प्रादुर्भाव, 1200-01
की उप समितियां, 1205
की कार्यप्रणाली, 1204-05
की बैठकों के कार्यवाही सारांश, 1208
की संरचना, 1201-02
की सिफारिशों का कार्यान्वयन, 1208
के अध्ययन दल, 1205
के कृत्य, 1202-03
के प्रतिवेदन :
का सत्यापन, 1207
को तैयार और प्रस्तुत किया जाना, 1207
पर चर्चा, 1207-08
के साथ मंत्रियों को संबद्ध न किया जाना, 1202
द्वारा अध्ययन दौरे, 1205-06
द्वारा समस्तरीय अध्ययन, 1206
द्वारा साद्वय लिया जाना, 1206
नियंत्रक महालेखापरीक्षक और, 252, 1206-07
में आकस्मिक रिक्तियां, 1202
राज्य सभा
के सभा पटल पर प्रतिवेदन रखा जाना, 1207-08
को संबद्ध किया जाना, 1201

सामान्य प्रयोजनों संबंधी :

का उद्देश्य, 1243-44

का कार्यकाल, 1244

का प्रादुर्भाव, 1243-44

की उप समिति नियुक्त करने की शक्ति, 1244

की कार्य पद्धति, 1243-44

की बैठकों में बाहर के व्यक्तियों को शामिल न किया जाना, 1245

की संरचना, 1243-44

की सिफारिशों का कार्यान्वयन, 1246

के कृत्य, 1244

द्वारा प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत न किया जाना, 1246

समितियों के निर्वाचन प्रस्ताव, 893

सरकारी कार्य, 582

सरकारी समय, 615

सहमति :

अध्यक्ष की

स्थगन प्रस्ताव के लिए, 736

अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट समितियों अथवा विधेयकों संबंधी प्रवर/संयुक्त समितियों में कार्य करने हेतु, 1062, 1136-37

अल्प सूचना प्रश्न हेतु मंत्रियों की, 689

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यानाकर्षण के लिए, 695

गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा :

पत्र सभा पटल पर रखे जाने के लिए, 1406

याचिका प्रस्तुत करने के लिए, 169, 1381

विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने के लिए, 410

वैयक्तिक स्पष्टीकरण के लिए, 589

त्यागपत्र देने वाले मंत्री द्वारा वक्तव्य दिए जाने के लिए, 1000

नियम 377 के अधीन मामलों को उठाने के लिए, 1348

विधेयक पर वाद-विवाद के स्थगन के लिए, 834, 840

सांकेतिक अनुदान, 1043

सार्क के अध्यक्षों और संसदविदों के संघ के सम्मेलन, 1588

साक्षी :

का उत्पीड़न, 403-04

का फरार होना, 387

का विशेषाधिकार, 318, 356

का संरक्षण, 318

के बयान लेने की प्रक्रिया, 1089

को गिरफ्तारी से छूट, 356

को तोड़ना, 404

को बुलाने की प्रक्रिया, 1088

को वकील द्वारा प्रतिनिधित्व की अनुमति, 1089

को शपथ पर साक्ष्य, 1089

द्वारा, जिसे सभा या उसकी समिति ने अपने सामने पेश होने के लिए कहा हो, उस आदेश को मानने से इनकार किया जाना, 387-88, 1088

द्वारा झूठा साक्ष्य देना, 387

द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से इन्कार, 387

द्वारा शालीनता और शिष्टाचार का पालन, 1090

साक्ष्य :

गोपनीय समझा जाए, 1091

झूठा, 387

न्यायालयों में, 325

सदस्यों या अधिकारियों द्वारा साक्ष्य न दिए जाने के सम्बन्ध में, 325

सभा पटल पर रखा जाना, 1093

समय से पूर्व प्रकाशन, 395

समितियों के समक्ष, 1083

साक्ष्य का शब्दशः रिकार्ड, 1090

सामयिक अध्यक्ष, 153-55, 257, 518-19

सामान्य प्रयोजनों सम्बन्धी समिति

देखिए 'समितियां' के अन्तर्गत

सामान्य लोक हित के विषय पर चर्चा का प्रस्ताव, 964

सिविल सेवा अधिकारी :

की विशिष्टताएं, 1542-45

के विरुद्ध आरोप, 1549

के विशेषाधिकार, 402

मंत्री और, 402-03

मंत्रीय उत्तरदायित्व का सिद्धांत, 1546

मताधिकार और, 1553

संसद और, 1542, 1546, 1547

संसद सदस्य और, 402-03, 1552

सुविधाएं :

अन्य, 491

आयकर से छूट, 478

आवास, 495

आशुलिपिकीय सहायता, 477

कम्प्यूट्रीकृत सूचना सेवा, 485

ग्रन्थालय सेवा, 478

चिकित्सा, 496

टेलीप्रिन्टर सेवा, 491

टेलीफोन, 475

प्रलेखन विंग, 480

प्रेस कतरन सेवा, 481

माइक्रोफिल्मिंग सेवा, 482

रिप्रोग्राफी सेवा, 483

लार्डिस (सं.ग्र.सं.शो.प्र.सू.सेवा), 478

वाहन खरीदने के लिए अग्रिम, 477

विशेष सुविधाएं, 1480

शोध प्रभाग, 484

संग्रहालय और अभिलेखागार, 488

संदर्भ सेवा, 483

सावधिक पत्रिकाएं, 491

सूचना :

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यान आकर्षित करना, 695

आधे घण्टे की चर्चा की, 692

एक ही जैसे प्रश्नों की, 1303

का व्यपगत होना, 1308

की अवधि, 1303

की अवधि को हटा सकना, 1303

गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक को पुर:स्थापित करने संबंधी अनुमति के प्रस्ताव की, 855

गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प की, 923

देने की आवश्यकता, 1301-03

देने की प्रक्रिया, 1301-05

नियम 377 के अधीन विषयों को उठाये जाने की, 1350

पूर्वाशा नियम, 730, 1307

प्रश्नों की, 640

प्रस्ताव में संशोधन की, 960

में संशोधन, 1306

में संशोधन करने अथवा उसे अस्वीकृत करने का अध्यक्ष का अधिकार, 1307

विधेयक में संशोधन की, 813, 1303

विशेषाधिकार के प्रश्न की, 410

शपथ-ग्रहण करने या प्रतिज्ञान करने से पहले, 1303

संभाव्य, 1305

सभा के सत्रावसान पर :

सूचना का व्यपगत होना अथवा लम्बित होना, 1308

विधेयक को पुर:स्थापित करना अथवा उस पर विचार करना, 786-95

सामान्य लोकहित के विषय पर चर्चा की, 964
स्थगन प्रस्ताव की, 714, 1301

सूचना का अधिकार :
का कार्यान्वयन, 1459

स्थगन :
राज्य विधान सभा का, 265
वाद-विवाद का, 834-36
सभा का, 236-37, 570-78, 598-603
घोर अव्यवस्था उत्पन्न होने पर, 1342
निर्धारित समय के बाद, 576
सदस्य की मृत्यु पर, 558, 574-75
सामान्य समय से पहले, 575
समितियों का
मत विभाजन के दौरान, 1075

स्थगन प्रस्ताव :
का उद्देश्य, 711
का पूर्वाशा संबंधी नियम, 730
की ग्राह्यता, 717, 726
की चर्चा की रीति तथा व्याप्ति, 741
की राष्ट्रपति के अभिभाषण वाले
दिन प्राप्त सूचनाएं, 716
की समय-सीमा, 743
की सूचना का विषय गुप्त रखा जाना, 714
की सूचना पर विचार करना, 715
की सूचनाओं की संख्या की सीमा, 715
के विषय का अविलम्बनीय होना, 721-24
के विषय का लोक महत्व का होना, 724-26
के विषय का स्पष्ट होना, 720-21
के स्थान पर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
की सूचना, 738
को लेने का समय, 739
द्वारा विशेषाधिकार का प्रश्न
न उठाया जाना, 727
न्यायाधीन मामलों के संबंध में, 726
पर "चर्चा मात्र", 742
पर विचार का स्थगन, 716
प्रस्तुत करने की प्रक्रिया
अध्यक्ष की सहमति, 736
सभा की अनुमति, 739
प्रस्तुत करने संबंधी निर्बंधन, 726-36
में विचार के लिए पहले ही नियत
किया जा चुका विषय, 730
विशेष मामलों में सहमति देने से इन्कार, 736
सामान्य प्रक्रियागत माध्यमों द्वारा उठाये
जा सकने वाले मामलों पर, 723, 730

स्थानों की रिक्तियां, 93-101, 367
अनुपस्थिति की अनुमति, और, 537-45

स्वतंत्रता :
गिरफ्तारी से, 312, 345, 398
प्रेस की, 1556
वाक् स्वातंत्र्य की, 312, 314

स्वायत्तशासी संगठन :
से संबंधित प्रश्न, 676

इस कृति के लेखक लोक सभा के दो प्रतिष्ठित पूर्व महासचिव हैं। स्वर्गीय श्री महेश्वर नाथ कौल लोक सभा के प्रथम सचिव (1952-1964) थे और वह 1966 से 1972 तक राज्य सभा के सदस्य भी रहे। श्री कौल के बाद श्री श्याम लाल शकधर लोक सभा सचिव/महासचिव (1964-1977) के पद पर आसीन हुए। बाद में, श्री शकधर मुख्य निर्वाचन आयुक्त (1977 से 1982) रहे।

इस संस्करण के संपादक श्री अनूप मिश्र इस समय लोक सभा के महासचिव हैं। वह विद्वान और विशिष्ट लोक सेवक हैं जिन्हें प्रशासन का व्यापक अनुभव है।

पिछले अंग्रेज़ी संस्करणों की समीक्षाओं से कुछ उद्धरण

"इस कृति में भारतीय संसद के स्वरूप तथा उसकी शक्तियों और लोक सभा की पद्धति का सम्पूर्ण विवरण दिया गया है। इसकी विषय वस्तु को रोचक शैली द्वारा पठनीय और पाद टिप्पणों व परिशिष्टों के माध्यम से विश्वसनीय बनाया गया है।"

(द टेबल, *XXXV*, लंदन)

"निस्संदेह यह प्रकाशन भारतीय संसदविदों और लोक सभा में रुचि रखने वाली अगली पीढ़ियों के लिए एक प्राधिकृत पुस्तक सिद्ध होगी।"

(हार्वर्ड जर्नल ऑन लेजिस्लेशन, खंड 6, सं. 133)

"यह सामयिक प्रकाशन है। निस्संदेह, यह पुस्तक भारत की संसदीय प्रक्रिया का मानक प्रतिपादन है और अपनी तमाम जटिलताओं के बीच विधायकों के सहायतार्थ एक विश्वसनीय मार्गदर्शक सिद्ध होगी।"

(बॉम्बे लॉ रिपोर्टर)

"यह इस विषय पर एक मानक पुस्तक है और भारत की संसदीय पद्धति और प्रक्रिया के संदर्भ ग्रंथ के रूप में इस प्रामाणिक पुस्तक की सहायता ली जा सकती है।"

(हिन्दू)

"यह पुस्तक भारत के विधानमण्डल के कार्यकरण की व्यापक और विस्तृत जानकारी पाने के इच्छुक विधायकों, अध्येताओं और विद्यार्थियों के लिए एक अनिवार्य संदर्भ ग्रंथ है।"

(हिन्दुस्तान टाइम्स)

"यह कृति अपनी स्पष्ट और सटीक शैली में ... अनेक विचारों और प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है। वर्तमान संस्करण के संपादकों ने इसके पिछले संस्करणों की शैली को अक्षुण्ण बनाए रखा है। यह संस्करण इस पुस्तक के मूल लेखकों की रचनात्मक भूमिका एंव संसदीय प्रणाली की जीवंतता और ओजस्विता को एक उत्तम भेंट है। ... वास्तविक रूप में एक उत्कृष्ट ग्रंथ है।"

(द पार्लियामेन्टेरियन, खंड *LXXII*, सं. 3, लंदन)

... यह उत्तम ग्रंथ अपने क्षेत्र की एक निश्चयात्मक संदर्भ कृति है। ...विषय-वस्तु की स्पष्टता के कारण इससे जानकारी प्राप्त करना बहुत ही आसान है। इसमें पिछले संस्करणों की रूपरेखा एवं तदनुसार विषय-वस्तु-वार और केस (मुकदमा)-वार अनुक्रमणिकाएं दी गई हैं। यह विधायकों, विशेषज्ञों और रुचिवान पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

(इण्टर-पार्लियामेन्टरी बुलेटिन, जिनेवा, 1991)

JACKET DESIGN : KAM STUDIO

लोक सभा सचिवालय
भारत

मेट्रोपोलिटन